954.03

ग्राण्ट डफ़ लिखित

मराठों का इतिहास

[सम्पूर्ण तीन भाग एक जिल्द में]

●

HISTORY OF MARATHAS

GRANT DUFF

[COMPLETE THREE VOLS. IN ONE]

●

अनुवादक—

श्री कमलाकर तिवारी

क्रम संख्या 3424
प्राप्ति तिथि 13/6
State Museum, Library, Lko.

●

प्रकाशक—

इतिहास प्रकाशन संस्थान

४६२, मालवीय नगर

इलाहाबाद ।

जनवरी १९६५

[मूल्य २५ रु०

पहला संस्करण]

प्रकाशक
गिरिधर शुक्ल
इतिहास प्रकाशन संस्थान
४६२, मालवीय नगर
इलाहाबाद ।

मुख्य वितरक
आदर्श हिन्दी पुस्तकालय
४१६, अहियापुर
इलाहाबाद

954.03
(954.02) त म

मुद्रक—
तारा प्रिंटिंग प्रेस,
२५७, मीरापुर
प्रयाग ।

हमारी अप्राप्य एवं विलुप्त ग्रन्थों के प्रकाशन की योजना पर प्राप्त आशीर्वादों में से कुछ का उल्लेख—

वर्तमान राष्ट्रपति

Thank you for your letter. I send my best wishes for the success of your endeavours.

(Sd. Radhakrishnan)

वर्तमान प्रधान मन्त्री

आपकी योजना उत्तम है। प्रमाणिक और महत्वपूर्ण ग्रन्थों में समाया हुआ हमारा अतीत का गौरव जहाँ कहीं भी हो, प्रकाश में आना ही चाहिये, इस सुन्दर तथा उपयोगी कार्य के लिये आपको हार्दिक बधाई।

लाल बहादुर शास्त्री

भूतपूर्व राष्ट्रपति

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप ऐसे अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन हिन्दी में करनै जा रहे हैं, जिनका मौलिक रूप से बड़ा महत्व है। मैं आपके इस सत्कार्य में आपकी सफलता चाहता हूँ।

डा० राजेन्द्र प्रसाद

उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्य मन्त्री

आप अपनी सुन्दर योजना का शुभारम्भ टाड राजस्थान का हिन्दी अनुवाद छाप कर प्रकाशित करने जा रहे हैं जिसे जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई। इस योजना की सफलता में मेरी हार्दिक शुभकामनायें आपके साथ हैं।

चन्द्रभानु गुप्त

प्रसिद्ध इतिहासकार डा० ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं—

Pandit Girdhar Shukla deserves to be congratulated on the admirable publishing enterqrise on which he has embarked. He has brought out Hindi editions of important historical works which are extremely valuable for the student of history as well as the lay readers. He has just got Grant Duff's History of the Marathas translated into Hindi. Grant Duff is a classic now and I have no doubt its Hindi edition will be a very valuable contribution to our historical literatnre. All lovers of history and literature should welcome this venture.

Sd. Ishwari Prasad.

प्रकाशक की ओर से

अपनी "अप्राप्य एवं विलुप्त ग्रन्थों के प्रकाशन की योजना" के अन्तर्गत सर्वं प्रथम जब मैंने जेम्स टाड लिखित "राजस्थान के इतिहास" का हिन्दी अनुवाद छापकर जन साधारण के सामने उपस्थित किया तो, मुझे ऐसे अनेकों विद्यानुरागी सम्मानित महानुभावों की शुभकामनाएँ एवं आशीर्वाद प्राप्त हुए, जिसमें उन्होंने मेरी इस योजना को मौलिक रूप से महत्वपूर्ण बताते हुए, अपनी बहुमूल्य सम्मतियों एवं सुझावों द्वारा मेरे इस महान कार्य को सरल एवं सुगम बनाने में वे विशेष रूप से सहायक हुए, ऐसे उदार एवं सहृदय महानुभावों का मैं चिरकृतज्ञ हूँ।

जिस प्रकार जेम्स टाड महोदय ने बीर राजपूत जाति के शौर्य, साहस, रणकौशल एवं उनके स्वाभाविक गुण दोषों का निष्पक्ष भाव से सच्चाई के साथ विवेचन किया है, उसी भाँति ग्राण्ट डफ ने भी, महाराष्ट्र प्रान्त में एक दीर्घ काल तक सरकारी पद पर होते हुए भी अपने इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ में, जिस सच्चाई और निष्पक्ष भाव से वीर मराठा जाति के रणकौशल, वीरता, शौर्य, साहस एवं उनके स्याभाविक गुण दोषों का बखान किया है, उसे देखकर मुझे यह उचित और आवश्यक प्रतीत हुआ कि विद्वान लेखक की ऐसी महत्वपूर्ण कृति का हिन्दी अनुवाद छाप कर पाठकों के समक्ष उपस्थित करना सामयिक दृष्टि आवश्यक और महत्वपूर्ण है।

ग्राण्ट डफ महोदय का यह इतिहास प्रामाणिक माना गया है। अनेक इतिहासकारों ने अनेक स्थान और अवसरों पर प्रमाण स्वरूप इस ग्रन्थ का उल्लेख किया हैं। ग्राण्ड डफ महोदय ने अपने इस महान ग्रन्थ को जिस कठिनाई, परिश्रम, साहस और लगन से वर्षों में अत्यन्त खोज के साथ इसकी आवश्यक सामग्री को एकत्रित करके इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ को तैयार किया है, उसे पाठकगण स्वयं मूल लेखक की भूमिका में देखेंगे।

ग्राण्ट डफ महोदय की यह मूल कृति अँग्रेजी में छोटे छोटे तीन भागों में है। पर हिन्दी में मैंने इसे अलग अलग भागों में न छापकर मूल पुस्तक के तीनों भाग को एक ही जिल्द में समाप्त किया हैं। ऐसा मैंने इसलिये किया कि बहुधा एक से अधिक भाग वाली पुस्तको को भिन्न-भिन्न भागों में निकालने से पाठकों के सामने एक यह कठिनाई उपस्थित हो जाती है कि ऐसी पुस्तकों के कोई न कोई भाग प्रायः खण्डित हो जाते हैं और फिर जिनका प्राप्त होना दूकानदारों के यहाँ भी कठिन हो जाता है। इन्हीं कठिनाइयों से बचने के लिये एवं ग्राहकों की सुबिधा का ख्याल करके मैंने मूल पुस्तक के सम्पूर्ण तीन भागों को एक ही जिल्द में प्रकाशित किया है, जो आपके सामने है।

इलाहाबाद।
१-१-६५

विनीत—
गिरिधर शुक्ल

इस पुस्तक के मूल लेखक

जेम्स ग्राण्ट डफ़

मूल लेखक की भूमिका

भारत में साम्राज्य स्थापन के विषय में मराठों में और हम अंग्रेजों में पूर्वापर का सम्बन्ध है। मराठे हमारे पूर्ववर्ती हैं। उनके उदय, विकास व पतन के सम्पूर्ण इतिवृत्त का अभाव भारतीय कार्य कलाप में रुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को खलता रहा है, क्योंकि इसके बिना हम यह जान सकने में असमर्थ हो जाते हैं कि भारत में हमारा साम्राज्य स्थापित कैसे हो गया ?

मराठों का इतिहास प्रस्तुत करने में सर्वाधिक बड़ी कठिनाई इस बात की पड़ रही थी कि इसके लिए आवश्यक सामग्री कहाँ से जुटायी जाय। इसी कठिनाई ने हमारे देश के कितने ही उत्साही लेखकों के हौसले पस्त कर दिये। प्रसिद्ध इतिहास लेखक आर्मी ने इस विषय में जो कुछ लिखा वे असम्बद्ध लेख उसकी खोज व उसके द्वारा उठाये गये कष्ट के स्मारक रूप में ही रह गये। वे इतिहास का रूप न धारण कर सके। आर्मी के परवर्ती लेखक मि० विलियम वारिंग भी उन्हीं कठिनाइयों में फँस गया, जिसका अनुभव आर्मी ने किया था। ऐसे लोग भी इस कठिनाई का समाधान न कर सके, जिनके हाथ में इस प्रकार के कार्यों को करने के लिये पर्याप्त अवसर थे, क्योंकि वे मराठों के ही देश में कार्यरत थे। परिस्थितियों ने अनायास ही मुझे इस स्थिति में ला दिया। पूर्ववर्ती लेखकों द्वारा अनुभूत अनेक कठिनाइयों के हटने के भी लक्षण दिखाई देने लगे। अब तक जो लेख व प्रपत्र लोगों की पहुँच के बाहर थे, वे ही सहज रूप से मेरी पहुँच की सीमा में आ गये। फिर भी इस कार्य में जो जो श्रम व व्यय लगाना पड़ा है, उसका पूर्ण अनुभव केवल वे ही लोग कर सकते हैं जिन्होंने इन प्रतियों की तैयारी में मेरा हाथ बँटाया है, या जिन्होंने भारत में इसी प्रकार का खोज पूर्ण कार्य किया है।

पेशवा का राज्य भंग होने के पश्चात् मि० एलफिन्स्टन ने पेशवा के अभिलेखागार के महत्व पूर्ण पत्रकों, तथा उनके गुप्त पत्राचारों के संकलन को सँभालने का भार मेरे ऊपर दे दिया। उस समय वे मारक्विस आफ होस्टिंग्ज की आज्ञानुसार सर्व सत्तायुक्त आयुक्त के रूप में दक्षिण के विजित राज्यों के बारे में आवश्यक बन्दोबस्त कर रहे थे। उन्हीं के आदेशानुसार पूना के कलेक्टर एवम् मैजिस्ट्रेट कैप्टन हेनरी राबर्टसन ने इस बात की अनुमति दे दी कि मेरे द्वारा नियुक्त एजेन्ट पेशवा के महलों में पाये गये असंख्य पत्रकों तक को जा कर उन्हें देख सकते हैं और आवश्यक कागजों के आवश्यक अंशों को नोट कर सकते हैं। मेरे लिये स्वर्गीय लेफ्टिनेंट जान मैक्लियोड ने राज्य का लगान सम्बन्धी बहियों को देख कर आवश्यक उद्धरण तैयार किया। उस समय वे मि० चैप्लिन के प्रथम सहायक थे। यही मि० चैप्लिन बाद में मि० एलफिन्स्टन के पश्चात् आयुक्त हुये। सतारा के कागजात तो हमारे ही हाथों में थे। राजा ने स्वयम् ऐसे अनेक महत्व पूर्ण कागजात मुझे दिये जिनका पता पेशवाओं को भी नहीं था। जब मि० एलफिन्स्टन बम्बई के गवर्नर हुये तो उन्होंने बम्बई सरकार के अभिलेखागार की सहायता लेने की भी अनुमति मुझे दे दी। वहां मैंने १७९५ ई० तक के साधारण कागजों को भी और गुप्त कागजों को पढ़ा और उनसे आवश्यक टिप्पणियां तैयार की। इस कार्यालय में मेरे काम की इतनी अधिक सामग्री थी कि मुझे काट-छाँट तथा संक्षिप्तीकरण का सहारा लेना पड़ा। चीफ सेक्रेटरी मि० वार्डन ने मुझे कागजों का एक ऐसा संग्रह दिया जो मेरे लिये

अत्यन्त उपयोगी था और जिसने भविष्य में मुझे अनेक कष्टों से मुक्ति दे दी। इस संग्रह में मराठों और बृटिश सम्बन्धों का पूर्ण इतिवृत्त संग्रहीत था। सूरत के पोलिटिकल एजेन्ट मि० रोमर ने अपने खर्च से न केवल सूरत की पुरानी फैक्ट्री के कागजों को पढ़ कर उनकी टिप्पणी ही तैयार किया वरन् उन्होंने फारसी में लिखित इतिहास की एक पुस्तक भी मुझे दी, जिनका उल्लेख मैंने स्थान २ पर किया है। गोआ के गवर्नर ने अति कृपा पूर्वक मुझे पुर्तगालियों द्वारा रचित मराठों से सम्बन्धित कागजात दिया। हमारे कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने भी मुझ को ईस्ट इंडिया हाउस में जाने तथा आवश्यक कागज पत्रों को देखने की अनुमति दे दी, जिससे हमें बंगाल के उन प्रपत्रों की प्राप्ति हो सकी, जिनकी सहायता से अनेक ऐसी बातों की पुष्टि सम्भव हो सकी, जिन्हें मराठे कहा करते थे, परन्तु जिनकी पुष्टि बम्बई सरकार के कागजात से नहीं हो पा रही थी। ईस्ट इंडिया हाउस के अधिकारी सदैव ही मेरे प्रति बहुत दयालु रहे। डा० विल्किन्स के हाथ में कुछ ऐसे कागजात थे, जिन्हें पढ़ पाने में मुझे बड़ी परेशानी हो रही थी। मेरे इस काम को पूरा किया मि० आर्मस्ट्रांग ने जो उस समय मि० प्लाट के आफिस में कर्मचारी थे।

जहाँ तक भारतीयों द्वारा लिखी सामग्रियों का प्रश्न है, उनके लिये मैंने मंदिरों के कागजातों की खोज किया। कितने ही लोगों के व्यक्तिगत संग्रह भी देखे गये, पारिवारिक कहानियों में से आवश्यक तथ्य प्राप्त किये गये, साथ ही जो कभी महत्व पूर्ण पद पर रह चुके थे उनके वंशजों के अधिकार में पड़े हुये प्रपत्रों की भी छान-बीन करवायो गयी। अनेक मुकदमों के ज्ञात वृत्तान्त तथा उनके निर्णय देखे गये। देश के कोने-कोने में बिखरे हुए फारसी एवम् मराठी भाषा में लिखित हमारे काम के लिये आवश्यक कागजात मँगवाये गये। बिना लागत की परवाह किये हुये ही इतना काम किया गया। सैंकड़े से ऊपर की संख्या में इन कागजातों का अनुवाद कराया गया। उनमें से दो एक संग्रह तो मेरी इस समूची पुस्तक के समान ही विशाल थे। अनेक मराठा सर्दारों से हमारी गहरी दोस्ती थी। देश के कितने ही उच्च ब्राह्मण परिवार हमारे मित्र थे। इनमें से कितने तो ऐसे भी थे जो उन घटनाओं के नायक या दर्शक रह चुके थे, जिनका विवरण लिखने की मैं तैयारी कर रहा था। इन लोगों से मुझे जो सहायता मिली वह शायद ही किसी यूरोपियन को नसीब होती, क्योंकि अभी महाराष्ट्र में जो क्रांति हुई, उसके बाद अपने दावों को स्वीकृत कराने के लिए लोगों ने ऐसे-ऐसे कागज निकाले जो हमारे बड़े काम के थे, अन्यथा वे निकाले ही नहीं जा सकते थे। देश के कितने ही लोगों ने समय-समय पर बहुमूल्य सामग्रिया व सलाहें मुझे दी हैं, मैं उन सब का आभार मानता हूँ।

मि० एलफिन्स्टन के अतिरिक्त मैं इस कार्य के लिये जिनका ऋणी हूँ और जिन्होंने केवल सामग्री प्राप्ति में ही सहायता नहीं दी है, वरन् अपनी उत्साह पूर्ण वाणी से सदा मेरे मन को अनुप्राणित करते रहे हैं, वे हैं मेरे मित्र कैप्टेन हेनरी ऐडम्स जो सतारा के राजा के लगान सरवेयर थे तथा मि० विलियम रिचर्ड मारिस जो बम्बई सिविल सर्विस में थे और उस समय हमारे सहायक थे। इन सज्जनों ने सैकड़ों दस्तावेजों एवम् पत्रों, कितने ही सन्धि पत्रों तथा कितनी ही मोटी-मोटी इतिहास की पुस्तकों का अनुवाद किया और आफिस के समय के अतिरिक्त हर समय वर्षों तक मेरी सहायता में लगे रहे।

इस पुस्तक का एक बड़ा भाग भारत में ही लिखा गया है। जो भी अध्याय समाप्त हो जाता, उसे मैं ऐसे व्यक्तियों को दे देता था जो तथ्यों की छान-बीन कर सकते थे या हमारी त्रुटियों को सुधार देते थे। यदि मैं इस सम्बन्ध के सभी लोगों के नामों की गणना करने बैठूँ तो ऐसे लोगों की

सूची बड़ी लम्बी हो जायगी, जिनका मैं कृतज्ञ हूँ। कितनों ने ही मेरे लेखों को पढ़ा है, भारत में भी और इंग्लैंड में भी। कितनों ने ही हमारी अनेक प्रकार से मदद की है, मैं उन सब का कृतज्ञ हूँ।

मैंने उन सभी लोगों के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन का प्रयास किया है, जिन्होंने मेरे इस काम में मेरे ऊपर कृपा की है, राय दी है या जिन्होंने इन प्रतियों की तैयारी में तनिक भी सहायता की हैं। स्थान-स्थान पर मैंने अनेक उपकारियों का नाम दिया है। फिर भी यदि किसी सहायक या परामर्शदाता का नाम छुट भी गया हो तो वे सज्जन यह निश्चय जान लें कि ऐसा भूल से ही हो गया है न कि स्वेच्छा से। वे विश्वास रक्खें कि ऐसा काम इसलिए नहीं हुआ है कि मैं उनके ।यश का अपहरण कर स्वयम् यशभागी बनूँ।

मैं अनुभव करता हूँ कि इस पुस्तक के द्वारा जन सामान्य के सामने आने की धृष्टता मैं अनेक कठिनाइयों के जाल में पड़ा हुआ कर रहा हूँ। मैंने १६ वर्ष की अवस्था में स्कूल छोड़ दिया। इसके बाद लगातार इक्कीस वर्षों तक भारत में नागरिक तथा फौजी प्रशासन में कार्य करता रहा। इस सेना काल में ऐतिहासिक तथ्यों एवम् उनके प्रमाणों को प्राप्त करने के अवसर अवश्य मिलते रहे, परन्तु इसका तो यह तात्पर्य कदापि नहीं होता कि ये अवसर मुझे इतिहासकार भी बना दें। इन सब कारणों के होते हुए भी यदि हमारे जैसे लोग इन विषयों पर लेखनी न उठावें तो दूसरों को ये सूचनाएँ मिलने से रही। फिर भविष्य के इतिहासकार का सम्बल ही क्या होगा? या अँगरेज जाति भारत या भारतीय के विषय में जानेंगे ही कैसे? उपरोक्त कठिनाइयाँ तो सामने थी ही और उनके कारण कुछ त्रुटियाँ भी सम्भव थीं परन्तु मराठों के उलझे हुए कर्णाकटु नामों तथा अत्यधिक विवरणों की उपस्थिति में अभ्यस्त से अभ्यस्त लेखक के भी पथभ्रष्ट हो जानेकी सम्भावना थी। एक तो कार्य टेढ़ा, दूसरे लेखन अनुभव कम और उसी में मिल गयी विषय की जटिलता। इन सबों ने मिलकर मुझे कम परेशान नहीं किया है। यह एक मान्य सत्य है कि अन्य रियासतों में व्याप्त गड़बड़ियों के कारण ही तथा उन्ही के बीच ही मराठों का उदय हुआ, इसलिये मराठों के लिये यही स्वाभाविक था कि वे या तो पिछले ऐतिहासिक प्रमाणों को नष्ट कर डालते या उन्हें विकृत रूप में सुरक्षित रखते, जिससे पुराने स्वत्वाधिकारी अपना स्वत्व न जता सकें। चूंकि मराठा सैन्य का अभियान भारत के लगभग सभी प्रान्तों पर हुआ अतः उन प्रान्तों के इतिहास में भी मराठों का इतिहास घुल-मिल गया। उन्होंने अन्त का लाभ उठा कर अशान्ति ही मचाया और उनके इतिहास के अनेक अंग इन्हीं अशान्तियों में छिन्न-भिन्न अथवा नष्ट भ्रष्ट हो गये। मराठों के इतिहास की अनेक घटनायें इतनी उलझी हुई है, इतनी तेजी से घटित हुई और कभी-कभी एक साथ ही कई घटनाएँ घटित हो गयी हैं कि उन पर कुछ लिखने वाले को क्रम भंग का आभास होने लगता है। कभी-कभी तो ये जटिलताएँ इतनी बढ़ गयी हैं कि घटनाओं का पूर्वापर सम्बन्ध ही उलझ जाता है। इन उलझनों से बँचने का एकमात्र यही उपाय मेरी समझ में आया कि इस इतिहास को लिखने में विषय को क्रमवद्धता पर कम, परन्तु घटनाओं के पूर्वा पर सम्बन्ध पर अधिक ध्यान देना चाहिये और यही मैंने किया भी है। इसी कारण से इस पुस्तक में विशेष कर प्रथम भाग में पूर्व कथात्मक शैली अधिक उभड़ आयी है। यद्यपि मेरी ऐसी इच्छा नहीं थी इसका रूप पूर्व वृत्तात्मिक हो जाय, पर विवशता के कारण ऐसा करना ही पड़ा। परन्तु यदि मैं ऐसा न करता तो या तो मुझे अति सामान्य अनुमान का सहारा लेना पड़ता या फिर व्यर्थ की विशालता के बल पर काम चलाना पड़ता। इस पुस्तक में कुछ अंग ऐसे भी हैं जो मात्र यूरोपियन पाठकों के लाभार्थ लिखे गये है। भारतीय पाठकों के लिये वे अनावश्यक हैं। कुछ ऐसे अंश भी हैं, जिन्हें कितनों की राय में छोड़ देना ही ठीक होता

अत्यन्त उपयोगी था और जिसने भविष्य में मुझे अनेक कष्टों से मुक्ति दे दी। इस संग्रह में मराठों और बृटिश सम्बन्धों का पूर्ण इतिवृत्त संग्रहीत था। सूरत के पोलिटिकल एजेन्ट मि० रोमर ने अपने खर्च से न केवल सूरत की पुरानी फैक्ट्री के कागजों को पढ़ कर उनकी टिप्पणी ही तैयार किया वरन् उन्होंने फारसी में लिखित इतिहास की एक पुस्तक भी मुझे दी, जिनका उल्लेख मैंने स्थान २ पर किया है। गोआ के गवर्नर ने अति कृपा पूर्वक मुझे पुर्तगालियों द्वारा रचित मराठों से सम्बन्धित कागजात दिया। हमारे कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने भी मुझ को ईस्ट इंडिया हाउस में जाने तथा आवश्यक कागज पत्रों को देखने की अनुमति दे दी, जिससे हमें बंगाल के उन प्रपत्रों की प्राप्ति हो सकी, जिनकी सहायता से अनेक ऐसी बातों की पुष्टि सम्भव हो सकी, जिन्हें मराठे कहा करते थे, परन्तु जिनकी पुष्टि बम्बई सरकार के कागजात से नहीं हो पा रही थी। ईस्ट इंडिया हाउस के अधिकारी सदैव ही मेरे प्रति बहुत दयालु रहे। डा० विल्किन्स के हाथ में कुछ ऐसे कागजात थे, जिन्हें पढ़ पाने में मुझे बड़ी परेशानी हो रही थी। मेरे इस काम को पूरा किया मि० आर्मस्ट्रांग ने जो उस समय मि० प्लाट के आफिस में कर्मचारी थे।

जहाँ तक भारतीयों द्वारा लिखी सामग्रियों का प्रश्न है, उनके लिये मैंने मंदिरों के कागजातों की खोज किया। कितने ही लोगों के व्यक्तिगत संग्रह भी देखे गये, पारिवारिक कहानियों में से आवश्यक तथ्य प्राप्त किये गये, साथ ही जो कभी महत्व पूर्ण पद पर रह चुके थे उनके वंशजों के अधिकार में पड़े हुये प्रपत्रों की भी छान-बीन करवायी गयी। अनेक मुकदमों के ज्ञात वृत्तान्त तथा उनके निर्णय देखे गये। देश के कोने-कोने में बिखरे हुए फारसी एवम् मराठी भाषा में लिखित हमारे काम के लिये आवश्यक कागजात मँगवाये गये। बिना लागत की परवाह किये हुये ही इतना काम किया गया। सैकड़े से ऊपर की संख्या में इन कागजातों का अनुवाद कराया गया। उनमें से दो एक संग्रह तो मेरी इस समूची पुस्तक के समान ही विशाल थे। अनेक मराठा सर्दारों से हमारी गहरी दोस्ती थी। देश के कितने ही उच्च ब्राह्मण परिवार हमारे मित्र थे। इनमें से कितने तो ऐसे भी थे जो उन घटनाओं के नायक या दर्शक रह चुके थे, जिनका विवरण लिखने की मैं तैयारी कर रहा था। इन लोगों से मुझे जो सहायता मिली वह शायद ही किसी यूरोपियन को नसीब होती, क्योंकि अभी महाराष्ट्र में जो क्रांति हुई, उसके बाद अपने दावों को स्वीकृत कराने के लिए लोगों ने ऐसे-ऐसे कागज निकाले जो हमारे बड़े काम के थे, अन्यथा वे निकाले ही नहीं जा सकते थे। देश के कितने ही लोगों ने समय-समय पर बहुमूल्य सामग्रिया व सलाहें मुझे दी हैं, मैं उन सब का आभार मानता हूँ।

मि० एलफिन्स्टन के अतिरिक्त मैं इस कार्य के लिये जिनका ऋणी हूँ और जिन्होंने केवल सामग्री प्राप्ति में ही सहायता नहीं दी है, वरन् अपनी उत्साह पूर्ण वाणी से सदा मेरे मन को अनुप्राणित करते रहे हैं, वे हैं मेरे मित्र कैप्टेन हेनरी ऐडम्स जो सतारा के राजा के लगान सरवेयर थे तथा मि० विलियम रिचर्ड मारिस जो बम्बई सिविल सर्विस में थे और उस समय हमारे सहायक थे। इन सज्जनों ने सैकड़ों दस्तावेजों एवम् पत्रों, कितने ही सन्धि पत्रों तथा कितनी ही मोटी-मोटी इतिहास की पुस्तकों का अनुवाद किया और आफिस के समय के अतिरिक्त हर समय वर्षों तक मेरी सहायता में लगे रहे।

इस पुस्तक का एक बड़ा भाग भारत में ही लिखा गया है। जो भी अध्याय समाप्त हो जाता, उसे मैं ऐसे व्यक्तियों को दे देता था जो तथ्यों की छान-बीन कर सकते थे या हमारी त्रुटियों को सुधार देते थे। यदि मैं इस सम्बन्ध के सभी लोगों के नामों की गणना करने बैठूं तो ऐसे लोगों की

सूची बड़ी लम्बी हो जायगी, जिनका मैं कृतज्ञ हूँ। कितनों ने ही मेरे लेखों को पढ़ा है, भारत में भी और इंग्लैंड में भी। कितनों ने ही हमारी अनेक प्रकार से मदद की है, मैं उन सब का कृतज्ञ हूँ।

मैंने उन सभी लोगों के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन का प्रयास किया है, जिन्होंने मेरे इस काम में मेरे ऊपर कृपा की है, राय दी है या जिन्होंने इन प्रतियों की तैयारी में तनिक भी सहायता की हैं। स्थान-स्थान पर मैंने अनेक उपकारियों का नाम दिया है। फिर भी यदि किसी सहायक या परामर्शदाता का नाम छुट भी गया हो तो वे सज्जन यह निश्चय जान लें कि ऐसा भूल से ही हो गया है न कि स्वेच्छा से। वे विश्वास रक्खें कि ऐसा काम इसलिए नहीं हुआ है कि मैं उनके ।यश का अपहरण कर स्वयम् यशभागी बनूँ।

मैं अनुभव करता हूँ कि इस पुस्तक के द्वारा जन सामान्य के सामने आने की धृष्टता मैं अनेक कठिनाइयों के जाल में पड़ा हुआ कर रहा हूँ। मैंने १६ वर्ष की अवस्था में स्कूल छोड़ दिया। इसके बाद लगातार इक्कीस वर्षों तक भारत में नागरिक तथा फौजी प्रशासन में कार्य करता रहा। इस सेना काल में ऐतिहासिक तथ्यों एवम् उनके प्रमाणों को प्राप्त करने के अवसर अवश्य मिलते रहे, परन्तु इसका तो यह तात्पर्य कदापि नहीं होता कि ये अवसर मुझे इतिहासकार भी बना दें। इन सब कारणों के होते हुए भी यदि हमारे जैसे लोग इन विषयों पर लेखनी न उठावें तो दूसरों को ये सूचनाएँ मिलने से रही। फिर भविष्य के इतिहासकार का सम्बल ही क्या होगा ? या अँगरेज जाति भारत या भारतीय के विषय में जानेंगे ही कैसे ? उपरोक्त कठिनाइयाँ तो सामने थी ही और उनके कारण कुछ त्रुटियाँ भी सम्भव थीं परन्तु मराठों के उलझे हुए कर्णकटु नामों तथा अत्यधिक विवरणों की उपस्थिति में अभ्यस्त से अभ्यस्त लेखक के भी पथभ्रष्ट हो जानेकी सम्भावना थी। एक तो कार्य टेढ़ा, दूसरे लेखन अनुभव कम और उसी में मिल गयी विषय की जटिलता। इन सबों ने मिलकर मुझे कम परेशान नहीं किया है। यह एक मान्य सत्य है कि अन्य रियासतों में व्याप्त गड़बड़ियों के कारण ही तथा उन्ही के बीच ही मराठों का उदय हुआ, इसलिये मराठों के लिये यही स्वाभाविक था कि वे या तो पिछले ऐतिहासिक प्रमाणों को नष्ट कर डालते या उन्हें विकृत रूप में सुरक्षित रखते, जिससे पुराने स्वत्वाधिकारी अपना स्वत्व न जता सकें। चूंकि मराठा सैन्य का अभियान भारत के लगभग सभी प्रान्तों पर हुआ अतः उन प्रान्तों के इतिहास में भी मराठों का इतिहास घुल-मिल गया। उन्होंने अन्त का लाभ उठा कर अशान्ति ही मचाया और उनके इतिहास के अनेक अंग इन्हीं अशान्तियों में छिन्न-भिन्न अथवा नष्ट भ्रष्ट हो गये। मराठों के इतिहास की अनेक घटनायें इतनी उलझी हुई है, इतनी तेजी से घटित हुई और कभी-कभी एक साथ ही कई घटनाएँ घटित हो गयी हैं कि उन पर कुछ लिखने वाले को क्रम भंग का आभास होने लगता है। कभी-कभी तो ये जटिलताएँ इतनी बढ़ गयी हैं कि घटनाओं का पूर्वापर सम्बन्ध ही उलझ जाता है। इन उलझनों से बँचने का एकमात्र यही उपाय मेरी समझ में आया कि इस इतिहास को लिखने में विषय को क्रमवद्धता पर कम, परन्तु घटनाओं के पूर्वा पर सम्बन्ध पर अधिक ध्यान देना चाहिये और यही मैंने किया भी है। इसी कारण से इस पुस्तक में विशेष कर प्रथम भाग में पूर्व कथात्मक शैली अधिक उभड़ आयी है। यद्यपि मेरी ऐसी इच्छा नहीं थी इसका रूप पूर्व वृत्तात्मिक हो जाय, पर विवशता के कारण ऐसा करना ही पड़ा। परन्तु यदि मैं ऐसा न करता तो या तो मुझे अति सामान्य अनुमान का सहारा लेना पड़ता या फिर व्यर्थ की विशालता के बल पर काम चलाना पड़ता। इस पुस्तक में कुछ अंग ऐसे भी हैं जो मात्र यूरोपियन पाठकों के लाभार्थ लिखे गये है। भारतीय पाठकों के लिये वे अनावश्यक हैं। कुछ ऐसे अंश भी हैं, जिन्हें कितनों की राय में छोड़ देना ही ठीक होता

परन्तु वे आगे चल कर महाराष्ट्र प्रान्त के रहने वालों के लिये लाभ कर समझ कर ही मैंने उन्हें छोड़ने का साहस नहीं किया।

इस विषय में दो मत हैं कि इतिहास लेखक के क्या कर्तव्य हैं। एक मत कहता है कि इतिहासकार को चाहिये कि वह तथ्यों के साथ-साथ उन पर अपना मन्तव्य भी प्रगट करता चले और दूसरा मत यह है कि इतिहास लेखक को केवल विवरण प्रस्तुत कर के उन पर मन्तव्य देने का काम पाठकों के जिम्मे छोड़ दिया जाय। लोग अपने-अपने मत के अनुसार एक या दूसरे की प्रशंसा करते हैं। किसी भी विवरण को प्रस्तुत करते समय जिन मनोभावों की सृष्टि मुझमें हुई है, उन्हें मैने उसी स्थान पर अवश्य दे दिया है, परन्तु उसे इतना विस्तार नहीं दिया है कि विवरण की मुख्यता को पृष्ठभूमि में डाल दें। मैं जानता हूं कि एक मत को मानने वालों की प्रसन्नता के लिये यदि मैं अपने में ही थोड़ा अविश्वास प्रगट कर दूँ तो इससे दूसरे मत वालों को भी कोई व्यथा नहीं होगी।

पाठक देखेंगे कि मैंने यद्यपि पूरा प्रयत्न किया है कि अनेक जटिलताओं के बीच से मैं वास्तविकता को ही लोगों के सामने रक्खूं, फिर भी इस पुस्तक के पहले मराठा-इतिहास सम्बन्धी इतनी चीजें प्रकाशित हो चुकी है और स्थान-स्थान पर उनमें इतना विरोध है कि सत्य का निरुपण कर पाना असम्भव सा हो उठा है। ऐसे स्थानों में उपयुक्त सामग्री का पता दे कर ही मैं सन्तोष कर गया हूँ। उनके तर्क वितर्क के चक्कर में फँसने से पुस्तक का आकार ही बहुत बड़ा हो जाता। मैंने यह भी प्रयत्न किया है कि प्रत्येक मत की छान-बीन हो जाय और जहाँ विरोधी उद्धरण भी महत्व पूर्ण मालूम पड़े हैं, उन्हें पाठकों के समक्ष रखने में मैं तनिक भी नहीं हिचका हूँ ताकि वह स्वयम् भी अपना मत स्थापित करने की स्थिति में रहे न कि मेरा मानसिक दास ही बना रहे। फिर भी इस बड़े कार्य में त्रुटियाँ स्वाभाविक हैं अतः मैं किसी भी ऐसे व्यक्ति का आभार मानूंगा जो पर्याप्त तर्क वितर्क के पश्चात् मेरी त्रुटियों की सूचना व्यक्तिगत रूप से या सार्वजनिक रूप से मुझे देंगे।

ह० ग्रान्ट डफ़

विषय सूची

—: ० :—

पहला अध्याय

भूगोल तथा प्रारम्भिक इतिहास पृष्ठ २५–४४

दूसरा अध्याय

दक्षिण भारत में मुसलमानी राज्य की स्थापना

मुसलमानों द्वारा दक्षिण की विजय—उनका नर्मदा पार करके देवगिरि की तरफ बढ़ना —राज्य स्थापित करना—देवगिरि का नाम परिवर्तन करके दौलताबाद के नाम से भारत में मुस्लिम साम्राज्य की राजधानी बनाना विद्रोह द्वारा दक्षिण में एक स्वतत्र राज्य की नींव पड़ना—बहमनी वंश —इस वंश का शासन-काल—इस शासन में मराठों की स्थिति—अपने मुस्लिम शासकों के विरुद्ध मराठों के कुछ विद्रोह—भयानक अकाल—दुर्गादेवी—शहरों का वीरान हो जाना—पहाड़ी किले पालगरों और डाकुओं के अधिकार में शान्ति स्थापित करने के लिए शासकों के प्रयत्न—दादू नरसू काली—उसका राजस्व प्रबन्ध - विद्रोहियों का दमन करने का दूसरा एवं तीसरा प्रयास—एक मराठा राजा द्वारा मुसलमानी सेना का विश्वासघात से कत्लेआम—सन् १४६९ ई० में कोंकण की पराजय—बहमनी वंश का पतन और पतन के कारण। पृष्ठ ४५–५६

तीसरा अध्याय

बहमनी राज्य और प्राचीन मराठा वंश

बहमनी वंश के विनाश से पाँच स्वतंत्र राज्यों की उत्पत्ति—अहमदनगर, बीजापुर तथा गोलकुन्डा की शक्तिशाली रियासतों का अभ्युदय—दक्षिण (डेकन) शब्द का तत्कालीन अर्थ—सोलहवीं शातब्दी की प्रमुख घटनाओं की झलक—मराठों द्वारा किलों पर सैन्य संग्रह—मलावार एवं महाराष्ट्र के तट पर पुर्तगालियों का पहली बार प्रकट होना - उनके द्वारा गोआ की विजय—अहमदनगर के बादशाह द्वारा एक ब्राह्मण पेशवा की नियुक्ति—पुर्तगालियों द्वारा समुद्र तट की बरबादी—तेलीकोटा का युद्ध—विजयनगर राज्य की पराजय—अहमदनगर और बीजापुर के बादशाहों द्वारा पुर्तगालियों पर असफल आक्रमण—१५७३ ई० में महाराष्ट्र के अधिकांश भाग्य पर बीजापुर औप अहमदनगर का अधिकार—बीजापुर; अहमदनगर और गोलकुन्डा का विस्तार—आन्तरिक प्रशासन—विभिन्न रियासतों के मराठों में अपसी विरोध—प्रमुख मराठा परिवार—बीजापुर एवं अहमदनगर में भोंसले तथा अन्य प्रमुख परिवारों का वर्णन—दक्षिण विजय के लिए मुगलों के आक्रमण का मराठों के अभ्युदय पर प्रभाव—अकबर के काल में दक्षिण की परिस्थिति—मलिक अम्बर—लुक जी जाधवराव—इब्राहीम आदिलशाह की मृत्यु—शाहजी भोंसले—मराठों का तीव्र विकास—मुहम्मद आदिलशाह का राज्या-

भिषेक---फतेह खाँ का उत्तराधिकार प्राप्त करना---मुर्तजा निजामशाह द्वारा मलिक अम्बर का कैद किया जाना---लुक जी जाधवराव की हत्या---जहाँगीर की मृत्यु खाह जहाँ लोदी का विद्रोह एवं मृत्यु---शाहजी भोंसले का मुगल दरबार में प्रवेश---मुर्तज़ा निज़ामशाह एवं बीजापुर के बादशाह में घनिष्ठता---बीजापुर की सेनाओं का मुगलों द्वारा पराजित होना---फतह खाँ द्वारा मुर्तजा निजामशाह की हत्या---शाहजी को दिए जाने वाले कुछ जिलों का फतह को सौंपा जाना---शाह जी का विवश होकर बीजापुर की सेना में सम्मिलित होना - फतह खाँ का छल पूर्वक मुगलों से अलग हो जाना---दौलताबाद पर आक्रमण और विजय---शाहजी का उच्चपद एवं शक्ति प्राप्त करना---शाहजहाँ की नीति---बीजापुर से युद्ध सन्धि---सन्धि की शर्तें---शाहजी द्वारा हिरपुर पर आक्रमण चालू---अन्त में हताश होकर बीजापुर दरबार में सम्मिलित होना---बहेरी वंश की समाप्ति । पृष्ठ ५७-७९

चौथा अध्याय

शिवाजी का प्रारम्भिक जीवन

बीजापुर सरकार की नौकरी में शाहजी की उन्नति---उनकी दूसरी विजय---पहली स्त्री से उनके दो पुत्र, शिवाजी और संभाजी तथा एक पुत्र । उनकी दूसरी स्त्री से वेंकोजी---शाहजी का कर्नाटक से हटना---अपनी पहली स्त्री तथा पुत्र शिवाजी को दादाजी कोणदेव के साथ अपनी जागीर को पूना भेजना---बीजापुर और गोलकुन्डा का राजनैतिक विवरण---दक्षिण में मुगलों की नई लगान-व्यवस्था तथा 'फसली' सदी का आरम्भ होना-दादाजी कोणदेव की लगान व्यवस्था---मावली लोग--- उनके एवं जीवन-यापन की सुविधाओं में विस्तार---शिवाजी की शिक्षा, प्रवृत्ति और प्रेरणायें---उनके प्रथम तीन सहायक---तोरण किले पर शिवाजी का अधिकार---न्याय प्रशासन विधि---उनके द्वारा राजगढ़ का निर्माण---दादाजी कोणदेव की मृत्यु---चाकण और कोन्डाना के किलेदारों पर शिवाजी का अधिकार---शिवाजी का पुरन्दर और सूपा पर स्वामित्व । पृष्ठ ८०-८८

पाँचवाँ अध्याय

शिवाजी का अभ्युदय और मुगलों की हलचल

शिवाजी के पड़ोस में बीजापुर सरकार के अधिकारी और किले---बारी के सामन्त---जिंजीरा के सिद्दी---साहसिक लूटपाट- किले का आश्चर्यजनक अपहरण---कल्याण प्रदेश के कुछ क्षेत्र पर अधिकार---शाहजी की गिरफ्तारी---शिवाजी द्वारा सम्राट शाहजहाँ से उनकी रिहाई की प्रार्थना---शिवाजी की गिरफ्तारी का निष्फल प्रयत्न- शाहजी की रिहाई---उनका कर्नाटक लौटना---उनके बड़े पुत्र संभाजी की हत्या---शिवाजी की प्रगति---जावली के राजा की हत्या तथा उनके राज्य पर शिवाजी का अधिकार- रुहेरा दूर्ग---प्रतापगढ़ का निर्माण---श्यामराज पंत का प्रथम मराठा पेशवा होना---मुगलों के जिलों के बारेमें शिवाजी की राय---१६३६ के बाद दक्षिण में मुगलों का इतिहास---मीर जुमला---मुगलों का गोलकुन्डा पर आक्रमण---बीजापुर से युद्ध---शाहजहाँ का रोग ग्रस्त होना---उसके चारों लड़के---सबों का राज सिंहासन के लिए उलझना---औरंगजेब का चरित्र तथा प्रगति ।

पृष्ठ---८९---९९

छठाँ अध्याय

अनेक किलों पर शिवाजी का अधिकार

शिवा जी का औरंगजेब के साथ पत्र व्यवहार---जुन्नार और अहमद नगर को लूटने का कारण---

मुगलों से दुश्मनी--शिवाजी की सवार सेना में बृद्धि—औरंगजेब और शिवाजी की राजनैतिक चालें--सेना में पठानों की नियुक्ति--बीजापुर की डाँवाडोल स्थिति--खान मुहम्मद की नृशंसता पूर्ण हत्या--शामरजी पन्त की सिद्दी से पराजय--मोरो त्रिम्मुल का पेशवा बनाया जाना—शिवाजी के विरुद्ध तैयारी—शिवाजी के द्वारा अफजल खाँ की हत्या—शिवाजी द्वारा पन्हाला पर अधिकार—रुस्तम जुम्मन की पराजय—बीजापुर के पास तक शिवाजी की सेना का तहस-नहस करना—बीजापुर से लगान वसूल करना—शिवाजी के खिलाफ सिद्दी जौहर द्वारा कूच—पन्हाला के अन्दर शिवाजी का घिरना—किले से कुशलता पूर्वक निकल जाना—उनकी पिछली सेना का वीरतापूर्ण कार्य—बाजी प्रभु की वीरोचित मौत—शिवाजी द्वारा विजित अपने क्षेत्र पर पुनः अधिकार—शिवाजी द्वारा राजापुर पर अधिकार—सिंगारपुर पर शिवाजी की विजय—डोडापुर के क्षेत्र पर अधिकार—घोरपड़े की हत्या—वारी की विजय—शाहजी शिवाजी का मिलाप—शिवाजी का राज्य और उनकी सेना—मुगलों का विवरण। पृष्ठ १००-११४

सातवाँ अध्याय

मुगलों के साथ संघर्ष

मुगल क्षेत्रों पर शिवाजी का आक्रमण—शिवाजी को दबाने के लिये शाइस्ता खाँ का भेजा जाना—पूना तथा चाकन पर विजय—शाइस्ता खाँ की मदद के लिए जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह का भेजा जाना—शिवाजी का साहसिक प्रयास—शाइस्ता खाँ का वापस बुलाया जाना—दक्षिण में शाहजादा मुअज्जम तथा जसवन्तसिंह की नियुक्ति—शिवाजी द्वारा सूरत में लूटपाट--शाहजी की मृत्यु—शिवाजी द्वारा राजा की पदवी ग्रहण करना एवं अपने नाम का सिक्का चलवाना—अहमदनगर में लूटपाट दक्षिण के विजय में औरंगजेब का विचार और उसकी नीति—जयसिंह का आगे बढ़ना—शिवाजी सावधान और परेशान—पुरन्दर पर आक्रमण और बचाव—शिवाजी द्वारा हार मानना—बीजापुर से युद्ध—शिवाजी और वेंकोजी एक दूसरे के विरुद्ध—शिवाजी का दिल्ली गमन और औरंगजेब द्वारा कैद किया जाना—शिवाजी का भाग कर दक्षिण पहुंचना—जयसिंह की प्रगति—दिल्ली लौटते समय जयसिंह की मृत्यु। पृष्ठ ११५-१३०

आठवाँ अध्याय

शिवाजी के राज्य की शासन व्यवस्था

शाहजादा मुअज्जम और जसवन्तसिंह—उनके चरित्र—उनके माध्यम से शिवाजी को सम्राट से प्राप्त छूटें—मुअज्जम के द्वारा अपने पिता के खिलाफ कथित विद्रोह की चर्चा पर औरंगजेब का विश्वास—बीजापुर और मुगलों का समझौता—बीजापुर और गोलकुन्डा द्वारा शिवाजी को वार्षिक कर देने का निश्चय—जंजीरा और गोआ के विरुद्ध शिवाजी का असफल अभियान—अपने प्रशासनिक और सैनिक सुधारों के करते समय शिवाजी के बारे में उठती अफवाहें—शिवाजी के शासन की सुगठित संस्थायें—उनका निर्माण—अनुशासन तथा आन्तरिक सैनिक अर्थ व्यवस्था—उनके किले—आर्थिक और न्यायिक विधियों में सुधार—उनके मुख्य प्रशासनिक अधिकारी और कार्यकर्त्ता। पृष्ठ १३१-१४१

नवाँ अध्याय

शिवाजी का राज्याभिषेक और राज्य विस्तार

दक्षिण की शान्ति भंग—सिंहगढ़ की विजय और तानाजी मालसुरे की मृत्यु—कई किलों का

छीना जाना—सिद्दी का मुगल सेना में प्रवेश—शिवाजी द्वारा सूरत की लूट—मुगल सेना पर किया गया आक्रमण—उनकी पराजय—जलसेना का विकाश · खानदेश का दौरा और चौथ की वसूली – सालेरगढ़ की विजय—मराठों की भारी विजय—शिवाजी और पुर्तगालियों का युद्ध—चौकन्ने अंग्रेज—शिवाजी की गोलकुन्डा यात्रा—सूरत और जंजीरा की सम्मिलित जल सेना द्वारा शिवाजी का अधिकृत किनारों पर आक्रमण—अली अदिलशाह की मृत्यु—खवास खाँ को बीजापुर का संरक्षक बनाया जाना—शिवाजी द्वारा पन्हाला पर पुनः अधिकार प्राप्त करना—शिवाजी द्वारा बीजापुर के साथ युद्ध—बीजापुर की सेना के प्रस्थान पर प्रतापराव द्वारा उस पर आक्रमण—प्रतापराव का लौटना—सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी यादव का सम्मान—आबाजी सोनदेव की मृत्यु—पोन्डा का घेरा—शिवाजी द्वारा सिंहासन धारण करना तथा राजतिलक करके राजा की उपाधि धारण करना—अंग्रेजों के साथ सन्धि—पुर्तगालियों द्वारा लगान—हम्मीरराव की वीरता—पोन्डा पर अधिकार—खवास खाँ की हत्या—शिवाजी द्वारा पन्हाला से सतारा तक किलों की श्रेणियों का निर्माण—सतारा में शिवाजी की बीमारी—शिवाजी द्वारा अति महत्वपूर्ण आक्रमण की योजना बनाया जाना। पृष्ठ १४२-१५७

दसवाँ अध्याय

मुगुलों को दक्षिण विजय में असफलता

शिवाजी के कर्नाटक अभियान के समय दक्षिण की राजनैतिक अवस्था—शिवाजी का अभियान—गोलकुण्डा के सुल्तान से हैदराबाद वार्ता और सन्धि—दक्षिण की ओर बढ़ाव—असाधारण लगन—गोलकुण्डा पर मुगलों और बीजापुर की सम्मिलित सेनाओं की विजय—उनका पीछे हटा दिया जाना—शिवाजी की वापसी— वेंकोजी द्वारा शिवाजी पर आक्रमण—उसकी पराजय—बीजापुर सेना की एक मराठा टुकड़ी शिवाजी की सेना द्वारा पराजित—मोरो पन्त की प्रगति सुल्तान मुअज्जम पुनः दक्षिण के सूबेदार—दिलेर खाँ को पुनः बीजापुर पर आक्रमण करने का आदेश—२७ किलों पर अधिकार—मसूद खां द्वारा भविष्य में भी सहायता की याचना—सम्भाजी मुगलों की ओर—सम्भाजी का अपने पिता के पास लौट जाना - दिलेर खाँ द्वारा बीजापुर का घेरा - मुगलों की पराजय—शिवाजी द्वारा बीजापुर से सहायता की क्षति पूर्ति की मांग - शिवाजी की बुद्धिमत्ता पूर्ण सलाह - शिवाजी की मृत्यु—उनका चरित्र—उनके अधिकार क्षेत्र और संपत्ति—जनार्दन पन्त पर अधिकार—मोरों पन्त और हम्मीरराव सम्भाजी की ओर—रायगढ़ किले की सेना तथा अन्य सेनाओं का सम्भाजी की ओर मिलना। पृष्ठ १५८-१७३

ग्यारहवाँ अध्याय

दक्षिण में मराठों और मुगलों के संघर्ष

अधिकार प्राप्त होने पर संभाजी द्वारा कठोर अत्याचार—सोयरा बाई को दण्ड—उसके शासन का शुभारम्भ—राजाराम के लिये संभाजी के खिलाफ षडयन्त्र मोरो पन्त की कैद—रघुनाथ नारायण हनुमंते—संभाजी द्वारा जिंजीरा पर आक्रमण - मुगलों का कर्नाटक में अग्रसर होना—सम्भाजी द्वारा पुर्तगालियों पर आक्रमण—संभजी का प्रधान मंत्री कुलुशा—शिवाजी द्वारा निर्मित संस्थाओं का पतन—सेना की दशा—खेतों पर बढ़ी लगान—औरंगजेब का आगमन शाहजादे मुअज्जम को संभाजी पर, कोंकण पर आक्रमण करने का आदेश—जजिया कर की वसूली—दिलेर खाँ की मृत्यु—अहमदनगर में औरंगजेब का आगमन—बीजापुर और गोलकुण्डा के प्रति प्रतिक्रिया—रघुनाथ पन्त की

हत्या – वर्तमान उजड़ी दशा का विवरण —गोलकुण्डा का पतन—मराठों की प्रतिक्रिया —हम्मीरराव की मृत्यु —संभाजी की सेना की अनुशासन हीनता—औरंगजेब की दुर्नीति—दक्षिण की सरकारों के १२ वर्ष के बीच की अवस्था।
पृष्ठ १७४-२०३

बारहवां अध्याय

दक्षिण में भारी असफलता के साथ औरंगजेब की मृत्यु

राजाराम—रायगढ़ में प्रमुख मराठा प्रधानों का सम्मेलन—प्रहलाद नीराजी का प्रमुख योगदान – रायगढ़ का घेरा और पतन—संभाजी की विधवा स्त्री और पुत्र का पकड़ा जाना - पन्हाला का पतन—सन्ताजी घोरपड़े और धनाजी जाधव का महाराष्ट्र भेजा जाना—राजाराम का राज्याभिषेक—ज़ुल्फिकार खाँ को जिंजी पर आक्रमण करने का आदेश—दक्षिण की घटनाओं का क्रम, कारण और अवस्था—रायगढ़ और पन्हाला पर पुनः अधिकार—औरंगजेब – पुर्तगाली और अंगरेज—मुगलों पर सफल आक्रमण—जिंजी का पुनः नवीन घेरा—जिंजी का पतन—सतारा मराठों की राजधानी—परिवर्तन और उन्नति— जुल्फिकार खां का राजाराम पर प्रभाव पूर्ण आक्रमण—राजाराम की मृत्यु और चरित्र – उसकी विधवा ताराबाई का संरक्षक होना—धनाजी जाधव के अधीन मराठे—मुगलों की कमजोरी—मराठों की शक्ति—औरंगजेब द्वारा पूना का पड़ोस छोड़कर पूर्व की ओर बढ़ना—मराठों द्वारा अपने किलों पर पुनः अधिकार—औरंगजेब की मृत्यु और चरित्र।
पृष्ठ २०४—२३३

तेरहवां अध्याय

शाहू और पेशवा राज्य

शाहू मुगलों की कैद से मुक्त—अकलकोट के राजाओं का अभ्युदय—शाहू द्वारा सतारा पर अधिकार तथा सिंहासन पर बैठना—बालाजी विश्वनाथ—मुगलों की हलचल—शाहू को प्रगति—ताराबाई के साथ युद्ध—दाऊद खां के साथ सन्धि—धनाजी जाधव की मृत्यु—संभाजी की प्रगति, ताराबाई का बन्दिनी बनाया जाना—मुगलों द्वारा सन्धि की उपेक्षा—निजामुल मुल्क—मुगलों से लड़ाई तथा मराठों का वापस लौटना - सीदोजी घोरपड़े को कोल्हापुर का सेनापति बनाया जाना—सोनदुर्ग पर अधिकार—कान्होजी आंग्रे द्वारा पेशवा पन्त पिंगले की पराजय—बालाजी—पूना जिले में शान्ति व सुव्यवस्था स्थापित करना—मराठों की सुलझी स्थिति—शाहू का चरित्र—मुगल शहंशाह फारुखसियर तथा मराठे—हुसेन अली खाँ दक्षिण के सूबेदार—दाऊद खाँ द्वारा आपत्ति और उसकी हत्या—खन्डेराव दाभाड़े द्वारा पराजित जुल्फिकार बेग—शाहू व सूबेदार की सन्धि—मराठों की भारी सेना के साथ दिल्ली को प्रस्थान—बालाजी को चौथ व सरदेशमुखी का अधिकार प्रदान किया जाना—लगान व्यवस्था विभाजन—कान्होजी आंग्रे—एक दूसरे के क्षेत्र में वसूली के अधिकार—पैतृक अधिकारों को प्राप्त करना।
पृष्ठ २३४—२६१

चौदहवां अध्याय

मराठा राज्य के मुख्य शासक—पेशवा

निजामुलमुल्क की महत्वाकाँक्षा—बालापुर का युद्ध—हुसेन अली खाँ की हत्या—शाहपुर का युद्ध—सैंयद अब्दुल्ला बन्दीगृह में—मराठा दरबार में कुछ रद्दोबदल—मराठा सरदारों कीर

मृत्यु--श्रीपतराव तथा बाजीराव—दम्मा जी गायकवाड़ की मृत्यु--बड़ौदा के शासक-- निजामुलमुल्क वजीर के रूप में--हैदर कुली खां का विद्रोह--निजामुलमुल्क वकील मुतल्लिक के रूप में--बाजीराव की कार्यवाहियाँ--होल्कर तथा सिंधिया का मूल वंश —ऊदा जी पवार--बाजीराव तथा मालवा—मुबारिज खाँ—शाकरखेड़ा का युद्ध--राजा गिरधर बहादुर की नियुक्ति मालवा के गवर्नर पद पर--सरबुलन्द खां गुजरात का गवर्नर—रुस्तम अली--कान्ता जी तथा पिला जी और गुजरात --शाहेबाग का युद्ध--बाजीराव तथा मालवा--कर्नाटक पर आक्रमण की नोंटिस।
पृष्ठ २६२—२७९

पन्द्रहवां अध्याय

बाजीराव पेशवा और निजाम

निजामुलमुल्क के दोहरे प्रयत्न--हैदराबाद के समोपस्थानों की चौथ--मुक्ति—युद्ध का बातावरण--बाजीराव की योग्यता से निजाम का विवश होना—सरबुलन्द खां तथा गुजरात से चौथ व सरदेशमुखी--कोल्हापुर का सम्मा जी--सतारा तथा कोल्हापुर में सन्धि--सेनापति तथा पेशवा-- डभई के युद्ध में पेशवा की विजय--निजामुलमुल्क ने पेशवा को मुगल सम्राट की ओर फेर दिया--गुजरात के विषय में सेनापति तथा पेशवा के बीच समझौता--जोधपुर के राजा अभयसिंह की नियुक्ति सर बुलन्द खां के ऊपर--निजाम की नीति--बाजीराव का मालवा की ओर बढ़ाव —गुजरात में पिला जी गायकवाड़ तथा अभयसिंह का युद्ध--पिला जी की हत्या--बुन्देलखन्ड में बाजीराव द्वारा चित्तौर के राजा को सहायता--मुगलों का बुन्देल खन्ड खाली कर देना—बाजीराव को बुन्देलखन्ड का मिलना--राजा जयसिंह की मालवा के सूबेदार पद पर नियुक्त--बाजीराव तथा जयसिंह--जयसिंह ने मालवा का शासन बाजीराव को सौंप दिया। पृष्ठ २८०—२९१

सोलहवां अध्याय

मुगल साम्राज्य की निर्बलता

मराठों की स्थिति--रघू जी भोंसले की नयी नियुक्ति—कोंकण की स्थिति--आवन्त—आंग्रे--सीदियों के विरुद्ध प्रतिनिधि के असफल अभियान--जंजीरा का विद्रोह--पेशवा की मालवा से वापसी--कोंकण में नया प्रबन्ध--वजीर खान दौरान की नीति- मुगल बादशाह द्वारा निजाम का सम्मान--मुजफ्फर खां का मराठा अभियान—होल्कर के कारनामे—गुजरात के सूबेदार पद पर मोमिन खाँ की नियुक्ति--बाजीराव की आर्थिक विषमतायें तथा मुगल बादशाह—निजाम का मराठों के विरुद्ध मुगल बादशाह की मदद करने का निश्चय--सआदत खाँ द्वारा मराठों का यमुना पार भगाया जाना--बाजीराव के कारनामे--आँग्रे समस्या तथा पुर्तगीजों से युद्ध—पेशवा तथा निजाम—अंग्रेजों का व्यवहार—मराठों की प्रगति—पेशवा तथा रघू जी भोंसले—नादिरशाह के अभियान का समाचार—वेसीन का घेरा—नादिरशाह का लौटना। पृष्ठ २९२—३०८

सत्रहवाँ अध्याय

बाजीराव की मृत्यु और उसकी महानता

निजाम की प्रतिज्ञा के अनुसार पेशवा को मालवा के बारे में सनद का न मिलना—दक्षिण के अभियान के पूर्व बाजीराव के कार्य कलाप—रघू जी भोंसले तथा कर्नाटक—पेशवा और नासिर जंग—पेशवा का उत्तर की ओर प्रस्थान— चिमणा जी तथा बाजीराव कोंकण में—बाजीराव की

मृत्यु—मराठों के उदय व विकास पर एक दृष्टि—मुगल साम्राज्य तथा भारत की अन्य सत्तायें—शाही दर्बार—अवध का नवाब—राजपूत – जाटों का उदय—अलीवर्दी खां—रुहेले—दक्षिण और कर्नाटक—अर्काट—कुरनूल—सावनेर—तंजौर—अंग्रेज—फ्रांसीसी—पुर्तगीज—सूंडा के राजा—कांरवार के देसाई—मैसूर—मराठों की लगान व्यवस्था—बाजीराव का चरित्र—उसके पुत्र ।

पृष्ठ ३०९–३१६

अठारहवाँ अध्याय

बंगाल पर मराठोंके हमले और दक्षिणकी तत्कालीन अवस्था

कर्नाटक में मराठे—मालवा में नया गवर्नर—सदाशिव चिम्मन जी भाऊ—भास्कर पन्त का बङ्गाल पर आक्रमण—गायकवाड़ का मालवा पर आक्रमण—समूचे मुगल साम्राज्य से चौथ—रघु जी का बङ्गाल पर आक्रमण—पेशवा को मालवा की प्राप्ति । निजामुलमुल्क के कारनामें—भास्कर पन्त की हत्या—अहमदशाह अब्दाली का उदय—हिन्दुस्तान पर आक्रमण तथा पराजय—महमूद शाह की मृत्यु—अहमदशाह का बादशाह होना—निजाम की मृत्यु—शाहू की बीमारी तथा सतारा में षड्यंत्रों की भरमार ।

पृष्ठ ३१७–३३४

उन्नीसवाँ अध्याय

दक्षिण की परस्पर विरोधी शक्तियों में संघर्ष

पेशवा का रघूजी को मिला लेना—पूना मराठों की राजधानी—राजा की अन्तिम इच्छानुसार प्रबन्ध—यम्माजी का विद्रोह तथा दमन—पेशवा तथा भाऊ में मतभेद—रामचन्द्र बाबा सेनवी—पेशवा ने गाजीउद्दीन का पक्ष लिया—नासिरजंग की मृत्यु तथा उसका चरित्र—मुजफ्फरजंग का प्रभाव—राजा रघुनाथदास तथा हैदरजंग—मुजफ्फरजंग की मृत्यु—पेशवा की प्रतिक्रिया—गायकवाड़ की गिरफ्तारी—पेशवा का सलावतजंग पर आक्रमण—महाराष्ट्र प्रदेश में युद्ध—मुगल-सैन्य तथा बुशी—सन्धि पत्र—राजा रघुनाथदास की हत्या—मीरहबीब की मृत्यु—मुगल दर्बार—अब्दाली—रुहेले—होल्कर दक्षिण में—अब्दाली का अभियान—सलावतजंग के कार्यकलाप—लश्कर खाँ तथा शाहनवाज का प्रभाव—सतारा में—कर्नाटक तथा गुजरात का अभियान—रघूजी भोंसले की मृत्यु—तानाजी भोंसले—दिल्ली के क्रिया कलाप—मीर शहाबुद्दीन का मराठों से सहायता याचना—गाजीउद्दीन की वजीर रूप में नियुक्ति—जहांदार शाह का बादशाह बनाया जाना ।

पृष्ठ ३३५–३५८

बीसवां अध्याय

पेशवा, अंग्रेज और फ्रांसीसी

पेशवा और अंग्रेज—सावनेर पर आक्रमण—पेशवा और शाहनवाज खाँ—पेशवा का अंग्रेजों से सम्बन्ध—अंगेरिया का अभियान—स्वर्णदुर्ग पर आधिपत्य—मराठी बेड़ा—अंगेरिया का द्वितीय अभियान—मराठों की सफलतायें—घेरिया का पतन—अंग्रेजों का व्यवहार—सावनेर का घेरा तथा पतन—सलावत जंग के यहाँ से सैनिक दस्ते का हटाया जाना—वुशी का मछलीपट्टम जाना—सलावत जंग के दर्बार में पुनर्नियुक्त तथा सम्मान प्राप्ति—१७५६ ई० में पेशवा और अंग्रेजों की सन्धि (पूना की सन्धि)।

पृष्ठ ३५९–३६९

इक्कीसवां अध्याय

मराठों के उत्कर्ष की चरम सीमा

रघुनाथराव का हिन्दुस्तान पर अभियान—अँगरेजों से किये गये सुलहनामे में पेशवा का उद्देश्य—कर्नाटक का अभियान—श्रीरंगपट्टम पर आक्रमण—सन्धि पेशवा का पूना लौटना—कर्नाटक में बलवन्तराव भंडली के कार्य—कुड़ापा का युद्ध—मैसूर सरकार का व्यवहार तथा उस पर हैदरअली का प्रभाव—पेशवा और हैदराबाद—फ्रांसीसियों को निकालने का षड्यन्त्र हैदरजग की हत्या—शाहनवाज खाँ की मृत्यु—निजामअली का बुरहानपुर भागना—वुशी का पांडीचेरी बुलाया जाना—सूरत की गद्दी पर अँगरेजों का अधिकार—कर्नाटक में मराठे—निजामअली तथा जानोजी भोंसले—अँगरेजों द्वारा निजामअली की सहायता—सदाशिवराव भाऊ—पेशवा का परिवार—मुजफ्फर खां का षड्यन्त्र एवम् प्राणदण्ड—सदाशिव प्रधान सेनापति एवम् रघुनाथराव प्रधान मन्त्री बने—दक्षिण की लड़ाइयाँ—हिन्दुस्वान में मराठे—हिन्दुस्तान के मामले। पृष्ठ ३७०–३८३

बाईसवाँ अध्याय

पानीपत की तीसरी लड़ाई का मराठा राज्य पर बुरा प्रभाव

मुल्तान और लाहौर पर मीर शहाबुद्दीन का घेरा—अहमदशाह अब्दाली द्वारा उसका निष्कासन—बादशाह तथा नजीबुद्दौला के विरुद्ध मीर शहाबुद्दीन का रघुनाथराव से मदद माँगना—रघुनाथराव का मुल्तान और लाहौर पर अधिकार—अब्दाली का सामना करने के लिए रुहेलखण्ड से दत्ताजी को बुलाया जाना—मीर शहाबुद्दीन द्वारा आलमगीर द्वितीय का कत्ल—मुल्तान और लाहौर पर अब्दाली का अधिकार—दिल्ली की ओर बढ़ना सिन्धियाँ की सेना पर आक्रमण—सदाशिव राव भाऊ का दिल्ली पर अधिकार करना—राजपूतों और जाटों का फूटना—कुंजपुर पर धावा—अहमदशाह का जमुना पार करना—अक्टूबर से जनवरी तक की धटनाएँ—पानीपत की तीसरी लड़ाई—अफगानों की क्रूरता—बालाजी की मृत्यु—उसका चरित्र—उसके शासन काल में देश की परिस्थिति।

पृष्ठ ३८४–३९९

तेईसवाँ अध्याय

पेशवा, हैदरअली और अंग्रेज

माधवराव का पेशवा पद प्राप्त करना—ताराबाई की मृत्यु—निजाम अली से संघर्ष की योजना—संरक्षक की हैसियत से रघुनाथराव की अंग्रेजों से सन्धिवार्ता—मुगलों का पूना की ओर बढ़ना—सशक्त विरोध—सन्धि—रघुनाथराव और माधवराव में विवाद—माधवराव की पराजय—पूना में लूटपाट और अग्निकाण्ड—रघुनाथराव का हैदराबाद पर आक्रमण—मुगल सेना की भयंकर पराजय—औरंगाबाद में शान्ति—देश द्रोही जानोजी को माधवराव द्वारा दण्ड—हैदरअली का सिर उठाना—रघुनाथराव के उत्तरदायित्व पर सन्धि की शर्तें—जानोजी के विरुद्ध पेशवा और निजाम में आक्रामक सन्धि—भारत में अंग्रेजों की स्थिति—मराठों के कारण, कई प्रमुख घटनाओं से अंग्रेजों का शक्ति प्राप्त करना। पृष्ठ ४००–४१५

चौबीसवां अध्याय

पेशवा माधवराव और राज्य की तत्कालीन अवस्था

अंग्रेजों की प्रगति—माधवराव का कर्नाटक अभियान—निजाम अली व अंग्रेजों में नई

सन्धि—राघोबा का हिन्दुस्तान अभियान—होलकर की मृत्यु—राघोबा की माधवराव के प्रति ईर्ष्या और अविश्वास तथा विद्रोह—राघोवा कारागार में—जानोजी के विरुद्ध पेशवा और निजाम अली की सन्धि और हैदर अली पर माधवराव द्वारा प्रशासन में सुधार का प्रयास—मराठों द्वारा हैदर अली पर विजय—मुगल बादशाह का अंग्रेजों की शरण में जाना—नजीबुद्दौला और मराठों में सन्धि—नजीबुद्दौला की मृत्यु—मराठों द्वारा रुहेलखण्ड पर आक्रमण—माधवराव की मृत्यु—उसका शासन तथा आन्तरिक व्यवस्था। पृष्ठ ४१६—४५०

पच्चीसवां अध्याय

रघुनाथराव (राघोबा) द्वारा पेशवा नारायणराव की हत्या

माधवराव की मृत्यु के पश्चात् दलगत स्थिति—रघुनाथ राव की मुक्ति और पुनः बन्दी बनना-नारायणराव का कर्नाटक अभियान—नारायण राव की हत्या—रघुनाथ राव का पेशवा पद ग्रहण करना—नारायण राव का चरित्र—जानोजी भोंसले की मृत्यु एवं उसके स्थान पर राघोजी भोंसले की नियुक्ति—निजाम अली से युद्ध—रघुनाथ राव का कर्नाटक की ओर बढ़ना—उसके विरुद्ध षड्यन्त्र—राघोवा द्वारा त्र्यम्बक राव की पराजय—माधव राव नारायण का जन्म—मराठा सरदारों में मतभेद और राघोवा के पक्षपातियों का दमन—हैदरअली द्वारा सेरा और गुरमकोण्डा पर अधिकार—बसालतजंग का सर उठाना—पूना में तैयारियाँ—रघुनाथराव द्वारा अंग्रेजों से पुनः सन्धि।

पृष्ठ ४५१—४६९

छब्बीसवां अध्याय

अंग्रेजों और राघोबा के बीच सन्धि

ईस्ट इंडिया कम्पनी के कोर्ट आव डाइरेक्टर्स का पूना दर्बार में एक रीजेडेन्ट रखने का आदेश—इस आदेश का उद्देश्य—भड़ौच पर अधिकार—निजाम अली के विरुद्ध राघोबा की सैनिक आर्यवाही तथा उस पर बम्बई सरकार की प्रतिक्रिया—राघोबा से सन्धिवार्ता—उसे मदद देने का बम्बई सरकार का प्रस्ताव—अगरेजों की शर्तों को मानने से राघोवा का इनकार—थाना पर अधिकार—सिंधिया तथा होल्कर का राघोबा को छोड़ देना—राघोबा की बम्बई सरकार से पुनः सन्धिवार्ता—दंमाजी गायकवाड़ की मृत्यु तदनन्तर उसके परिवार की दशा—अंगरेजों तथा राघोबा के बीचसन्धि।

पृष्ठ ४७०—४७७

सत्ताईसवां अध्याय

राघोबा और अंगरेजों को सन्धि से मराठों की हार

कीटिंग के सेनापतित्व में सेना को गुजरात को रवानगी—राघोबा की हार—उसका सूरत को पलायन—कीटिंग से सम्मिलन—कैम्बे में उतरना—बम्बई सरकार की स्वीकृति—मि० ड्रेपर का विरोध—कर्नल कीटिंग को निर्देश राघोबा की सेना से कीटिंग की सेना का सम्मिलन—नदियाद को प्रस्थान—युद्ध की प्रगति—कर्नल कीटिंग की सन्धिवार्ता—उसके दूत का अपमान—रघुनाथ राव को दक्षिण जाने की सलाह—अरास का युद्ध—फतहसिंह से सन्धि। पृष्ठ ४७८--४८८

अट्ठाईसवां अध्याय

अंगरेजों और मराठों में सुलहनामें की बातचीत

बंगाल की सुप्रीम कांउसिल को सामान्य प्रशासन का काम अपने हाथ में लेना—बम्बई सरकार के साथ पत्र व्यवहार—राघोबा के साथ की गयी सन्धि अस्वीकृत—संभाजी भोंसले की मृत्यु बम्बई सरकार के कार्यों की कटु आलोचना—लेफ्टिनेन्ट कर्नल अप्टन की राजदूत पद पर नियुक्ति—बम्बई सरकार के तर्क—मि० हेस्टिंग्ज़ की सम्मति—सखाराम बापू को लिखा गया पत्र—कर्नल अप्टन की विफलता तथा बंगाल की प्रतिक्रिया—पुरन्दर का सन्धिपत्र—कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स द्वारा बम्बई सरकार का समर्थन—मि० ड्रेपर का मतभेद—मि० मोरिटन की पुनर्नियुक्ति—पुना में फ्रेंच दूत का सत्कार—कोंकण में शान्ति—हैदरअली की विजय—कोल्हापुर का इतिहास—हैदरअली की उन्नति—हरीपन्त फड़के—राम राजा की मृत्यु—प्रतिनिधि की मृत्यु—मूदाजी भोंसले—फतह सिंह गायकवाड़—राजा के रूप में त्र्यम्बक जी राजा भोंसले के पुत्र का चुनाव—ब्राह्मणों की विचित्रता।

पृष्ठ ४८९–५०५

उन्तीसवाँ अध्याय

मराठों और अंग्रेजों के दांवपेंच

मराठों के विषय में हार्नबी का विवरण—फ्रांस का।राजदूत सेंट लूविन—पूना में उसके कार्य—कोर्ट आव डाइरेक्टर्स का पत्र—मंत्रियों में फूट—मोरोबा फड़नवीस— बंगाल की सेना का महाराष्ट्र के लिए प्रस्थान —बम्बई सरकर के लक्ष्य—नाना फड़नवीस की तैयारियाँ—मि० कार्नक का उत्साह—मि० ड्रेपर की सलाह—क्षेत्रीय समिति का संगठन एवम् उसकी नियुक्ति—मोरघाट पर अधिकार—राघोबा—पनवेल में सेना का उतरना—मराठों के कार्य—अंग्रेजों के कार्य—मि० कार्नक तथा कर्नल काकबर्न का अबदस्थ किया जाना—बम्बई सरकार की परेशानियाँ— हार्नबी की दृढ़ता—कर्नल लेस्ली के हाथ से सेनापतित्व का भार ले लेना—कर्नल—गोडार्ड—भोपाल के नबाव की उदारता—मि० हार्नवी की योजना--बंगाल सरकार का व्यवहार—गोडार्ड का ब्रिगेडियर जनरल बनाया जाना—महाद जी सिन्धिया की नीति—रघोबा का पलायन—नाना फड़नवीस—सखाराम बापू की मृत्यु।

पृष्ठ ५०६–५३३

तीसवाँ अध्याय

सालबाई की सन्धि

कृष्णा के दक्षिणस्थ मराठा अधिकृत प्रदेशों पर हैदर अली का अधिकार कर लेना—अंगरेजों पर पश्चिम भारत में फ्रेंच आक्रमण की सम्भावना—राघोबा का स्वागत—अंगरेजों के विरुद्ध सम्मेलन का समाचार—बृटिश शासन की सीधे पूना दर्बार से सन्धि वार्ता—युद्ध की घोषणा—फतहसिंह गायकवाड़ से सन्धि—अहमदाबाद का पतन—होल्कर और सिन्धिया की नीति—गुजरात में लम्बा युद्ध और उसके कारण—ले० कर्नल हार्टले कोंकण में—बम्बई सरकार की परेशानियाँ—हैदरअली से युद्ध—गबर्नर हार्नबी का प्रशंसनीय व्यवहार—बेसी का घेरा—दुगौर का युद्ध—अंगरेज विरोधी मण्डल का विस्तार—पूना से सन्धि का प्रयत्न—गोडार्ड का पनवेल की ओर लौटना—बंगाल सरकार की कार्यवाहियाँ—मूदाजी की सेना कटक में—हेस्टिंग्ज द्वारा घूस देकर मूदाजी को फोड़ लेना—सिंधिया से सन्धि—सालबाई की सन्धि।

पृष्ठ ५३४–५६२

इकतीसवाँ अध्याय

मुगल दर्बार पर मराठों का प्रभाव

मुलग दर्बार—नजीफखाँ—शुजाउद्दौला—उसका उत्तराधिकारी—नजीफ खां का प्रतिद्वन्दी—नजीफ खां के उत्तराधिकारी—महादजी सिन्धिया तथा नाना फड़नवीस—उनके दृष्टिकोण—हैदर अली—बंगाल पर आक्रमण का प्रस्ताव—अंगरेजों से मित्रता स्थापन के पक्ष में सिन्धिया के तर्क—नाना फड़नवीस को नीति—हैदर अली की मृत्यु—सन्धि का स्वीकार किया जाना—पेशवा का जल सेनाध्यक्ष—टीपू के युद्ध—महादजी सिन्धिया की धमकी—अंगरेजों की टीपू से सन्धि—हैदराबाद तथा पूना के दृष्टिकोण—सम्मेलन—दावों पर तर्क वितर्क—जंजीरा का सीदी—टीपू द्वारा निजाम अली का अपमान—युद्ध की सम्भावना—राघोबा की मृत्यु—महादजी सिन्धिया—मुगल दर्बार की दलबन्दी—मिर्जा जवांवख्त का पलायन—सालबाई की सन्धि के बाद का सिन्धिया—पूना दर्बार पर प्रभाव—अंगरेजों का पूना दर्बार में दूत भेजने का निश्चय—सिन्धिया को आपत्ति—दक्षिण के कार्यकलाप। पृष्ठ ५६३–५७३

बत्तीसवां अध्याय

मराठों और टीपू में संघर्ष

टीपू—नलगोंडा—नलगोडा से सम्बन्धित विवाद—टीपू का विश्वासघात—वलात् धर्म परिवर्तन—अंगरेजों से सन्धि करने के लिये नाना का प्रस्ताव—अंगरेजो की उदासीनता—पुर्तगीजों से सन्धि का प्रस्ताव—पूना में अंगरेज रेजिडेण्ट भेजने का आदेश—मराठा सैन्य का प्रयाण—मूदाजी भोंसले का पूना दर्बार से घनिष्ट सम्पर्क—आक्रमण की योजना—वदामी पर अधिकार—एडोनी पर टीपू का आक्रमण—होल्कर का सावनेर को प्रयाण—बुरहानुद्दीन का आक्रमण—हरीपन्त के युद्ध—टीपू का तुंगभद्रा को पार करना—मराठों द्वारा सावनेर का त्याग—टीपू द्वारा सन्धि का प्रस्ताव—सिंधिया। पृष्ठ ५७४–५८४

तेंतीसवाँ अध्याय

महादजी सिन्धिया और राजपूतों में संघर्ष

सिंधिया की परेशानियाँ—उसकी भूलें—मुसलमान सर्दारों से उसकी अनबन—मु० बेग हमदानी—सिंधिया द्वारा राजपूतों से कर वसूली—राजपूतों से उसका संघर्ष—सिंधिया की बिकट परिस्थितियाँ—राजपूतों से सन्धि का विफल प्रयास—मु० बेग का विश्वासघात—राजपूतों की विजय—शाही सेना का विलगाव—सिंधिया की चारित्रिक दृढ़ता का प्रदर्शन—नाना फड़नवीस का दृष्टिकोण—भरतपुर के समीप युद्ध—मराठों एवम् जाटों का पराभव—मराठों की प्रगति—सिंधिया पुनः प्रतिष्ठित—उसकों स्थिति—सिंधिया का दृष्टिकोण—दक्षिण के कार्यकलाप। पृष्ठ ५८५–५९५

चौंतीसवाँ अध्याय

मराठे, अंगरेज और निजामअलीकी संयुक्त सेनासे टीपूकी पराजय

टीपू और पेशवा के बीच की संधि का भंग होना—उसकी तैयारियाँ—अंगरेजों की शंका—नाना द्वारा अंगरेजों से सुरक्षा सन्धि का प्रस्ताव और गवर्नर जनरल द्वारा इनकार—अंगरेज और

निजामअली —निजामअली की टीपू से सन्धि वार्ता —टीपू के विरुद्ध अंगरेज, निजाम एवम् मराठों का सम्मिलन—मराठों का कृष्णा को पार करना --कोपवल तथा बहादुरबेड़ा पर घेरा डालने का प्रयास---धारवाड़ का घेरा—धारवाड़ का समर्पण—लार्ड कार्नवालिस का सेनापतित्व---बंगलौर पर अधिकार—मराठा सेनापति का पूना से प्रयाण—मराठा सेना श्रीरंगपट्टम की ओर—बृटिश सेना की परेशानी—कमरुद्दीन द्वारा युद्ध—वेदनूर को जीतने को परशुराम भाऊ की योजना—सिमोगा का युद्ध—श्रीरंगपट्टम का युद्ध—टीपू से सन्धि । पृष्ठ ५९६-६१६

पैंतीसवाँ अध्याय

पेशवा दर्बार में महादजी सिन्धिया

टीपू के राज्यक्षेत्र पर अधिकार के विषय में मराठा मंत्रियों की राय—हिन्दुस्तान की ओर महादजी सिन्धिया की गतिविधि—पाटन का युद्ध—इस्लामाइल बेग की पराजय—मेड़ता का युद्ध—राजपूतों के साथ सन्धि—हिम्मत बहादुर की मदद से अली बहादुर का बुन्देलखन्ड में धाक जमाना—सिन्धिया का पूना की ओर बढ़ना—सिन्धिया द्वारा पेशवा का विश्वास प्राप्त करने के प्रयत्न—सिन्धिया और होलकर की सेनाओं के बीच परस्पर शत्रुता—हिन्दुस्तान में सिन्धिया की धाक—नाना और पेशवा के बीच उल्लेखनीय विवाद —महादजी सिन्धिया का मत—सिन्धिया की मृत्यु ।

पृष्ठ ६१७-६२६

छत्तीसवाँ अध्याय

महादजी सिन्धिया और जिंजीरा के सिद्दी

महादजी शिन्धिया के मृत्यु का प्रभाव—उनकी नीति और उसका चरित्र—उसके पौत्र दौलत राव का उत्तराधिकारी होना—सिन्धिया की प्रशिक्षित पैदल सेना—नागपुर और बड़ौदा की गतिविधियां—गोविन्द राव गायकवाड़ की रीजेन्ट के पद पर नियुक्ति—महाराष्ट्र के समुद्र तट की घटनाएँ—पेशवा का जहाजी बेड़ा—कोलाबा का आंग्रे -जिन्जीरा के सिद्दी—जिन्जरा का घटना चक्र ।

पृष्ठ ६३०-६४०

सैंतीसवाँ अध्याय

कुर्दला में मराठों द्वारा निज़ामअली की पराजय

इस काल में मराठों की सैनिक परिस्थिति—मराठों और निजामअली के बीच युद्ध के पूर्व अंग्रेजों की नीति—पूना और हैदराबाद के शासकों में विवाद—युद्ध की घोषणा—कुर्दला का युद्ध—निजामअली की पराजय—अंग्रेजों की तटस्थता पर निजाम अली का मर्याहत होना—शाहजादा आलीजाह का अप्रत्याशित विद्रोह और अंग्रेजों की प्रतिक्रिया—एम• रेमण्ड द्वारा विद्रोह का दमन—मराठों की गतिविधियाँ—शक्ति की चोटी पर खड़े नाना फड़नवीस पर आकस्मिक विपत्ति ।

पृष्ठ ६४१-६५५

अड़तीसवां अध्याय

बाजीराव (द्वितीय) का पेशवा पद प्राप्त करना

नाना फड़नवीस—पेशवा माधवराव (द्वितीय) के साथ उसका व्यवहार—सतारा का राजा-

मृत रघुनाथ राव के परिवार का विवरण—बाजीराव—नाना के विरुद्ध बाजीराव की कार्रवाईयां—बाजीराव का पेशवा पद प्राप्त करने के लिए प्रयत्न—नाना फड़नवीस का सिन्धिया को फोड़ने का प्रयत्न और सफलता बाजीराव कैद में—चिम्मणा जी अप्पा के पेशवा होने की घोषणा—नाना की दुःख पूर्ण परिस्थितियां—बालजी कूँजर की उन्नति—शीराजी राव घाटगे का उत्कर्ष—बाजीराव का हिन्दुस्तान की ओर प्रयाण—पूना में घटना क्रम—नाना फड़नवीस की योजनाएँ परिपक्व—महार की सन्धि—राघोजी भोंसले के साथ सुलह—बाजीराव का पेशवा बनाना—चिम्मणा जी अप्पा की गुजरात में नियुक्ति। पृष्ठ ६५६–६७२

उन्तालीसवाँ अध्याय

पूना में अशान्ति और अव्यवस्था

नया प्रशासन—सेना की दुर्व्यवस्था—सिन्धिया तथा भोंसले के साथ की गई सन्धि की शर्तों का नाना द्वारा पूरा किया जाना मुशीरुलमुल्क का पूना से प्रस्थान—बाजीराव की नीति—तुका जी होलकर की मृत्यु—सिन्धिया का व्यवहार—बाजीराव की लोकप्रियता—बाजीराव द्वारा सिन्धिया और नाना फड़नवीस में फूट डालने का प्रयत्न—नाना फड़नवीस कारागार में—उनकी सम्पत्ति की लूटपाट—अमृत राव का प्रधान मंत्री (दीवान) बनाया जाना घाटगे की लड़की से सिन्धिया का व्याह—अमृत राव द्वारा सिन्धिया को कैद करने का प्रस्ताव—बाजीराव द्वारा समर्थन—बाजीराव के सामने सिन्धिया की पेशी—बाजीराव की कमजोरियां—सतारा की गति विधियां—बाजीराव की सेना द्वारा विद्रोह—परशुराम भाऊ का मुक्त किया जाना। सैन्य संगठन—सतारा के राजा पर धावा और विजय।

पृष्ठ ६७३–६८६

चालीसवां अध्याय

मराठा राज्य की गिरती हालत

पूना की अव्यवस्थाओं में वृद्धि—महादजी सिन्धिया की विधवाएँ—अमृत राव पर कपटपूर्ण आक्रमण—पेशवा और सिन्धिया के बीच मतभेद और विवाद—नाना फड़नवीस की मुक्ति—सिन्धिया और पेशवा में पुनः मेल—सिन्धिया की आज्ञा से शीरजी राव घाटगे को कैद किया जाना—अंग्रेजों की नीति से पेशवा और सिन्धिया के संगठन का शक्तिशाली होना—फिर से प्रशासन सम्हालने के लिये नाना से अनुरोध—बाजीराव का कपटपूर्ण व्यवहार—नाना का व्यवहार—निजाम अली और अंग्रेजों में नई सन्धि—टीपू के क्षेत्र का बंटवारा—अंग्रेजों और निजाम के बीच फिर नई सन्धि—सिन्धिया की गतिविधियाँ—महादजी सिन्धिया की विधवाओं के उपद्रवों को दबाने के लिए बालोवा तात्या की पुनः नियुक्ति—कोलापुर के राजा के साथ युद्ध की स्थिति—परशुगम भाऊ की पराजय और मृत्यु—कोल्हापुर का घेरा।

पृष्ठ ६८७–७०८

इकतालीसवाँ अध्याय

सिन्धिया और होलकर में भयानक संघर्ष

नाना फड़नवीस की मृत्यु—चरित्र—सिन्धिया और पेशवा में पुनः विवाद—धुन्देबा और नारायण राव बख्शी की भयानक कार्रवाइयाँ—अराजकता एवम् अव्यवस्था की स्थिति—धूड़िया बाघ के उपद्रव—अंगरेजी सेना द्वारा उसका दमन—पूना की गतिविधियाँ—बाजीराव की स्थिति और उसके

विचार— मालवा मे सिन्धिया की नाजुक स्थिति—जसवन्त राव होलकर का उदय और उत्कर्ष— सिन्धिया की प्रतिरक्षात्मक निर्बलता – हिन्दुस्तान की तरफ प्रयाण—सिन्धिया के दो सैनिक दस्तों का होलकर द्वारा विनाश—मेजर ब्राउनरिंग से हार कर पीछे लौटना –पूना की गतिविधियाँ—विट्ठो जी होलकर—इन्दौर में जसवन्त राव होलकर की पराजय—जसवन्त राव द्वारा दक्षिण की तरफ युद्ध— सफलता उसके विरुद्ध—सदाशिव भाऊ भास्कर को भेजा जाना—पेशवा का व्यवहार—पूना का युद्ध— होलकर की विजय—पेशवा का वसई की तरफ बढ़ना—गुजरात में घटना क्रम ।

पृष्ठ ७०९–७३२

बयालीसवां अध्याय

गुज़रात की घटनाएँ

बड़ौदा की परिस्थिति—गोविन्दराव गायकवाड़ एवम् आबा शेलूकर में युद्ध—सूरत की नवाबी और अंग्रेज—गायकवाड़ द्वारा आबा शेलूकर पर विजय—गोविन्दराव गायकवाड़ की मृत्यु—उसके ज्येष्ठ पुत्र आनन्दराव गायकवाड़ का सिंहासन पर बैठना—दरबार में रावजी अप्पाजी तथा कान्होजी राव गायकवाड़ के नेतृत्व में दो परस्पर विरोधी दलों का संगठन—अंग्रेजों का रावजी अप्पाजी का पक्ष ग्रहण करना—अंग्रेजी सहायक टुकड़ी पर मल्हारराव गायकवाड़ का आक्रमण—मल्हारराव की पराजय—बड़ौदा में अंग्रेजों की सब्सीडियरी सेना—नाज़ुक आर्थिक स्थिति—अरबी व्यापारियों द्वारा नए सुधारों की योजना का विरोध—बड़ौदा का घेरा और आत्मसमर्पण—कान्होजी राव गायकवाड़ द्वारा वर्तमान सरकार का विरोध—सावरी में घटनाक्रम—मेजर होम्स का वीरोचित व्यवहार ।

पृष्ठ ७३३–७४३

तैंतालीसवां अध्याय

अंग्रेजों के साथ युद्ध में सिन्धिया और भोंसले का पतन

पूना में घटनाक्रम—होलकर द्वारा अमृतराव के लड़के विनायकराव का पेशवा बनाया जाना—बसई सन्धि—सन्धि की शर्तों के विरुद्ध सिन्धिया और रघूजी भोंसले का मतैक्य—ब्रिटिश सैन्य की प्रगति—पेशवा की पूना में वापसी—युद्ध की तैयारियाँ—युद्ध घोषणा—अहमदनगर पर अधिकार—बुरहानपुर, असीरगढ़, भड़ौच और पवनगढ़ पर अधिकार—हिन्दुस्तान की सामरिक परिस्थिति—दक्षिण में युद्ध—अरगाँव का युद्ध—राजपूतों, जाटों और अम्बाजी इंग्लिया के साथ सन्धि—गाबिलगढ़ पर घेरा और विजय—संधिवार्ता—देव गाँव की संधि ।

पृष्ठ ७४४–७७१

चवालीसवाँ अध्याय

अंग्रेजों के साथ युद्ध में होल्कर की पराजय

पिछले युद्धों पर कुछ विचार—जसवन्त राव होलकर के इरादे—सन्धि वार्ता – होलकर के विरुद्ध लार्ड लेक का अभियान—होलकर का चम्बल की ओर लौटना—अमीरखाँ बुन्देलखण्ड में—कर्नल मान्सन का आगे बढ़ना—हिंगलेशगढ़ पर अधिकार—होलकर का चम्बल पार करना—मान्सन की हिचकिचाहट—होलकर और मान्सन में मुठभेड़—मान्सन का पीछे हटाना—होलकर द्वारा हिन्दुस्तान पर आक्रमण—मथुरा विजय –दिल्ली में असफलता—शामली में कर्नल बर्न द्वारा दृढ़ प्रतिरक्षा—होलकर दोआब में—लार्ड लेक द्वारा उसका पीछा—डीग का युद्ध—दक्षिण में होलकर के क्षेत्रों पर विजय—इन्दौर विजय—लार्ड लेक द्वारा भरतपुर को घेरने का निश्चय—जाट राजा का निश्चय ।

पृष्ठ ७७२–७८८

पैंतालीसवाँ अध्याय

भरतपुर का संग्राम

भरतपुर के घेरे का प्रारम्भ—होलकर तथा अमीर खाँ द्वारा प्रतिरोध—अमीर खाँ का रुहेलखंड
की ओर जाना—जेनरल स्मिथ द्वारा उसका पीछा करना—अमीर खाँ का विवश होकर भरतपुर की ओर
लौटना—अंग्रेजों के चार आक्रमण जाटों द्वारा विफल—राजा द्वारा सन्धि का प्रयत्न—उसके द्वारा
रक्खी गयी शर्तों की स्वीकृति—सिंधिया से विवाद—लार्ड कार्नवालिस का गवर्नर जनरल बन कर भारत
आना—उसका दृष्टिकोण—उसकी मृत्यु—सर जार्ज बार्लो का गवर्नर जनरल बनना—होलकर पंजाब
के रास्ते पर—लार्ड लेक द्वारा उसका पीछा—सर जार्ज बार्लो की नीति—अंगरेजों की राजपूत संबंधी
पृष्ठ ७८९–८०३
नीति—गायकवाड़ से सन्धि ।

छियालीसवाँ अध्याय

मराठा मण्डल की आपसी फूट से राज्य की दुर्दशा

मराठों के विभिन्न राज्य—उनके प्रति बृटिश नीति—होल्कर के कारनामे—उन्माद—बन्दी
जीवन—मृत्यु और चरित्र—अमीर खाँ का नियन्त्रण व संरक्षण—दल बन्दियाँ– अराजकता जनित
परेशानियाँ—सिंधिया के राज्य की स्थिति—शिरजीराव घाटगे का देहान्त—रघूजी भोंसले के मसले—
पिंडारियों का उद्भव—उनके एकत्रित होने एवम् आक्रमण करने के तरीके—उनकी उन्नति—मध्य
पृष्ठ ८०४–८१३
भारत में अराजकता का दौर—लुटेरी शक्तियों की वृद्धि ।

सैंतालीसवां अध्याय

बाजीराव (द्वितीय) के समय में मराठा राज्य की दुर्दशा

पेशवा द्वारा फिर से मसनद प्राप्त कर लेने के बाद उसके कारनामें—बृटिस रेजिडेंसी से
निबटने के लिये सदाशिव भाऊ की नियुक्ति· रियायत के प्राचीन सेवकों के अधिकारों की उपेक्षा—
कोपरगांव में भीलों को छल से पकड़ना तथा उनकी हत्या—प्रतिनिधि का विद्रोह—अप्पा देसाई नेपन-
कर—कोल्हापुर एवम् सावन्तवाड़ी के युद्ध—मि० एलफिस्टन की पूना के रेजिडेण्ट पद पर नियुक्ति—
दक्षिण के जागीरदार तथा पेशवा– कोंकण में लुटेरुओं का दमन—कोलापुर एवम् सावन्त बाड़ी के
साथ संधियां—पेशवा तथा उसका नया सैनिक प्रयत्न—बाजीराव ला विस्तृत दृष्टिकोण—सैनिक
भर्ती—त्र्यम्बक जी का प्रधान मंत्री बनना—कृबि में सुधार के ढंग—नागरिक प्रशासन के प्रति
बाजीराव की उपेक्षा—वृहद् मंडल बनाने की योजना—गुजरात में मुख्यता प्राप्ति के प्रयत्न— बड़ौदा
सरकार—ले० कर्नल वाकर का सुप्रबन्ध—पेशवा के दावे—गायकवाड़ के दावे—पेशवा का अंगरेजों
के बिरुज प्रयत्न रेजिडेण्ट की प्रतिक्रिया—एकत्रित सेना को विद्रोही करार देना—उनका पीछा और
उन पर आक्रमण—वार्ता स्थागित—बाजीराव की अस्वीकृति—प्रस्तावित शर्तों को मानने से इनकार—
पृष्ठ ८१४–८३४
पूना का घेरा जाना—पेशवा की स्वीकृति—नयी सन्धि ।

अड़तालीसवां अध्याय

अनेक मराठ ।राज्यों पर अंग्रेजों का प्रभाव

लार्ड हेस्टिंग्ज की गवर्नर जनरल पद पर नियुक्ति—भारत में लुटेरों की वृद्धि—भारत की
दशा—पठान और पिंडारी—सुरक्षात्मक तैयारियां—भूपाल और जयपुर से विफल सन्धिवार्ता—नाग-
पुर के संरक्षक अप्पा जी के साथ रक्षात्मक सन्धि अप्पा साहब पूना के अनुकूल—परसा जी की
हत्या—पिंडारियों की प्रगति— हेस्टिंज की योजनाएँ—राजनैतिक एवम सैनिक व्यवस्थाएँ—सिंधिया
पृष्ठ ८३५–८४०
की विवशता—विभिन्न सन्धिवार्ताओं की प्रगति ।

बाजीराव की अन्तिम पराजय से मराठाशाही का अन्त

उन्चासवाँ अध्याय

पेशवा का पँढरपुर प्रस्थान—अपनी सैनिक शक्ति घटाने का बहाना—पूना की सहायक सेना—गवर्नर जनरल का पोलिटिकल एजेण्ट सर जान मालकम का पूना पहुँचना—पेशवा से माहोली में साक्षात्कार—बाजीराव द्वारा धोखा—दक्षिण की सेना का आगे बढ़ना—माहोली में पेशवा के काम—बापू गोखले को पूरा अधिकार—सेना को फोड़ने का प्रयास—सिपाहियों की वफादारी—प्रेसीडेंट को मरने से बँचाना—दशहरा का त्यौहार—पूना के लक्षण—पेशवा को हिचकिचाहट यूरोपियन रेजिमेन्ट का पहुँचना—वृटिश सेना का स्थिति परिवर्तन—पेशवा की सेना द्वारा सहसा आक्रमण—खिडकी का युद्ध—रेजिडेंसी का लूटा और जलाया जाना—पेशवा के हिसक कार्य—प्रार्थनाएं—रेजिडेंट के मुंशी की गोखले से भेंट—जनरल स्मिथ का पूना लौटना—पेशवा का पलायन—पूना पर अधिकार—पेशवा का पीछा—कोरीगांव की रक्षा—पेशवा का भागते ही जाना—जनरल प्रिजलर द्वारा पीछा—जनरल स्थिमथ—मि० एलफिस्टन की कमिश्नर पद पर नियुक्ति—उसके अधीन दक्षिण की दो डिवीजन सेनाएँ सतारा पर अधिकार—सतारा की घोषणा – सेना का नया विभाजन—पेशवा की सेना पर स्मिथ का आकमण—सतारा के राजा को बचाना—नागपुर के कार्य—ब्रिटिश सैनिकों पर धोखे से हमला—सीतावल्डी का युद्ध—अप्पा साहब का समर्पण—उसकी तोपों पर आक्रमण एवम् अधिकार—नागपुर का आक्रमण वेकार करना—अरबों के कारनामें—उत्तरी जिलों को जीतना - अप्पा साहब फिर गद्दी पर—मालवा और हिन्दुस्तान का विवरण।

पृ० ८४१-८५४

दक्षिण की सारी रियासतों पर अंगरेजों का प्रभुत्व

पचासवाँ अध्याय

पिंडारी—करीम खां तथा वासिल मुहम्मद—चीतू का पीछा—होल्कर द्वारा शरण दान—गड़बड़ी की स्थिति—जनरल मालकम् व जनरल हिस्लाय का सम्मिलन—महीदपुर का संग्राम—होल्कर से संधि—जसवन्त राव भाऊ द्वारा चीतू को शरणदान—जसवन्तराव के साथ शत्रुता का व्यवहार—उसके कैम्प पर धावा—पिंडारियों का भगाया जाना—पठानों का संगठन भंग—राजपूतों के साथ सन्धि—बूंदी का राजा तथा भूपाल का नवाब—सर जान मालकम की नियुक्ति—पेशवा के विरुद्ध कार्यवाही—सिउनी में किये गये कार्य—बाजीराव का संकट—सर जान मालकम द्वारा वार्ता—साक्षात्कार – समर्पण—सन्धि—ज्ञातव्य—त्र्यम्बक जी का पकड़ा जाना—अप्पा साहब का भागना—असीरगढ़ पर अधिकार।

पृ० ८५५-८६१

दक्षिण में अंगरेजी राज्य की स्थापना एवं शान्ति, सुव्यवस्था और सुधार

इक्यावनवाँ अध्याय

पेशवा के राज्य का अन्तिम प्रबन्ध—जनरल प्रिजलर द्वारा विभिन्न किलों पर अधिकार—राजा सतारा का स्थापन—जनरल मनरो की सफलताएँ—शोलापुरकी पैदल सेना का तितर बितर होना—बम्बई सरकार द्वारा कोकण पर अधिकार—नागरिक प्रशासन के अधिकारियों की नियुक्ति—निर्देश—कार्यपद्धति—मालीगाँव एवम् परीक्षित गढ़ पर अधिकार—विद्रोहों के रोकने के उपाय—भीलों की समस्या का समाधान—षड्यंत्र का भंडाफोड़—विभिन्न लोगों के अधिकार—न्याय और लगान व्यवस्था—पंचायतें—पुरस्कार—धार्मिक अनुदान—हिन्दू कालेज—प्रबन्ध के विषय में ज्ञातव्य।

पृ० ८६२-८६६

अनुक्रमणिका पृ० ८६७-८७२

मराठों का इतिहास

पहला अध्याय

भूगोल तथा प्रारम्भिक इतिहास

हिन्दू भौगोलिकों के अनुसार नर्मदा तथा महानदी के दक्षिण में स्थित भूभाग को दक्षिण कहते हैं, जिसमें वैसे तो अनेक प्रदेश हैं, परन्तु पाँच मुख्य विभाग हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं :— (१) द्रविड़ देश, (२) कर्नाटक, (३) आंध्र या तेलंगाना, (४) गोंडवाना तथा (५) महाराष्ट्र । प्राय: प्रत्येक शिक्षित हिन्दू इन विभागों के विषय में जानते हैं, परन्तु इनकी सीमाओं के विषय में वे एक मत नहीं हैं । प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव में डा० विल्क्स ने सीमा निर्धारण का प्रयास भाषा के आधार पर किया है, अर्थात् जितने भूभाग में एक ही भाषा बोली जाती है, उसी को एक प्रदेश मान लिया है ।

द्रविड़ देश कन्या कुमारी अन्तरीप से मद्रास के उत्तर तक फैला हुआ है तथा इस प्रदेश में तामिल भाषा बोली जाती है ! प्राचीन कर्नाटक प्रदेश वही था, जो आज मलावार पहाड़ियों तथा वर्तमान कारोमंडल तट के बीच में स्थित है । पूर्वी तथा पश्चिमी घाट की पहाड़ियां ही इसकी पूर्वी तथा पश्चिमी सीमायें हैं और यह प्रदेश एक कोण के आकार में तेलंगाना तथा महाराष्ट्र के बीच में फैला हुआ है । उत्तर में मंजारा नदी से तेलंगाना प्रदेश की पश्चिमी तथा महाराष्ट्र प्रदेश की दक्षिणी पूर्वी सीमा बनती है । दक्षिण में पूलीकट स्थान से तेलंगाना प्रारम्भ होता है, जो द्रविड़ प्रदेश की उत्तरी सीमा पर स्थित है । उत्तर में उड़ीसा प्रान्त का सीकाकोल नामक स्थान तेलंगाना की उत्तरी सीमा पर है । यह स्थान तेलंगाना प्रदेश तथा महानदी के बीच में पड़ता है । पांचवाँ विभाग तेलंगाना तथा गोंडवाना की पश्चिमी सीमा से प्रारम्भ होकर पश्चिम की ओर फैला है अर्थात् इस प्रदेश की पूर्वी सीमा तेलंगाना तथा गोंडवाना से मिलती है । इस महाराष्ट्र प्रदेश का कुछ विस्तृत विवरण आवश्यक होगा ।

महाराष्ट्र प्रदेश उस जाति की जन्मभूमि है, जिसका इतिहास हम प्रस्तुत करना चाहते हैं । विभिन्न ग्रंथों में इसकी विभिन्न सीमायें दी गयी हैं । 'तत्व' नाम का ज्योतिष शास्त्र का एक ग्रंथ है, जिसके अनुसार इस प्रदेश की सीमा चन्दौर की पहाड़ियों से आगे नहीं जाती तथा इसकी उत्तरी सीमा कालवन, बगलाना तथा खानदेश से मिलती है जिनके आगे के प्रदेश को समवेत रूप से विंध्यादि (विंध्य-पर्वत) कहा जाता है ।

यदि भाषावार विभाजन को स्वीकार किया जाय तो चन्दौर तथा मंजेरा के बीच का भूभाग अवश्य ही महाराष्ट्र प्रदेश है । इस भूभाग की बोली जानेवाली भाषा में स्थानीय अन्तर बहुत कम दिखाई पड़ता है । किन्तु यदि स्थानीय अन्तरों को दूर करके देखा जाय और भाषा को और भी व्यापक मान लिया जाय तो महाराष्ट्र प्रदेश उस भाग को कहेंगे जो उत्तर में सतपुड़ा के समानान्तर नान्देद से

नागपुर के पूर्व में वेन गंगा तक फैला हुआ है। वेन गंगा का पश्चिमी किनारा इस प्रदेश की पूर्वी सीमा होती है। यह सीमा वहां समाप्त हो जाती है जहां वेन गंगा वरधा में मिलती है। वहां से इसकी सीमा वरधा के पूर्वी किनारे के साथ चलती हुई मानिक दुर्ग तक आती है और उसके और भी पश्चिम बह कर माहोर तक जा पहुंचती है। यहां से एक टेढ़ी-मेढ़ी रेखा गोआ तक खींची जा सकती है। पश्चिम में इस प्रदेश की सीमा अरब सागर के तट से निर्धारित होती है!

मराठी भाषा उपरोक्त भूभाग में सर्वत्र बिना किसी अपवाद के बोली जाती है, यद्यपि बीच-बीच में ग्रामीण भाषायें बदलती रहती हैं। उपरोक्त सीमा पर स्थित क्षेत्रों की बोली में पड़ोसी देशों के लोगों की बोली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। सूरत, भड़ौंच एवं राजपीपली के आस-पास एक छोटा-सा क्षेत्र है, जहाँ के लोग गुजराती बोलते हैं, जिसे मराठी भाषा-भाषी क्षेत्र से अलग करके डामन से एक रेखा नान्देद तक अर्थात् सतपुड़ा के पश्चिमी भाग तक काल्पनिक रूप से खींची जा सकती है। इस भाग का क्षेत्रफल करीब एक लाख दो हजार वर्गमील होगा, और सरकारी कागजातों की मदद से यहाँ की जन संख्या * साठ लाख कूती गयी थी, अर्थात् इस क्षेत्र में प्रति वर्ग मील में उनसठ व्यक्ति रहते थे।

इस प्रदेश की भाषा को मराठी भाषा कहते हैं, यहां के ब्राह्मणों को विशेष रूप से मराठा कहते हैं, परन्तु साधारण रूप से यहां के सभी निवासियों को मराठा ही कहते हैं। शायद यह प्रदेश काफी दिनों पहले किसी एक ही हिन्दू राजा के शासन में था। इस मान्यता को प्रमाणित करने के लिये न तो कोई प्रत्यक्ष प्रमाण ही है और न इस देश का प्राचीन इतिहास ही लिखित रूप में लभ्य है। इस प्रदेश का थोड़ा बहुत अस्पष्ट विवरण पुराणों में अवश्य मिलता है, परन्तु देवताओं एवं मानवों के उलझन पूर्ण विवरणों में ये पुराण इतने अस्पष्ट हो गये हैं कि कोई भी कष्ट पूर्ण अनुसंधान इसे स्पष्टता नहीं प्रदान कर सकता †।

महाराष्ट्र के उस भाग को कोकण प्रदेश कहते हैं जो पश्चिमी घाट की पहाड़ियों एवम समुद्र-तट के बीच में स्थित है तथा जो शिवदास गढ़ से ताप्ती नदी तक समुद्र के किनारे फैला हुआ है। यद्यपि यह प्रदेश पहाड़ियों एवं समुद्र के मध्य में स्थित है, फिर भी यह समझ लेने की भूल न करना चाहिये कि यह कोई समतल प्रदेश है। बल्कि इसकी भूमि इसके विपरीत ही है, ऊबड़ खाबड़ है, बीच-बीच में अनेक बड़े बड़े बन तथा ऊँची ऊँची पहाड़ियाँ है, जिनके बीच से होकर कितनी ही नदी, नद,

---

* यह जन संख्या सन् १७१० ई० के आस पास की है। —अनुवादक

† इन पुराणों में से एक में परशुराम के द्वारा क्षत्रिय विनाश का वर्णन है, जिसमें उन्होंने समस्त अत्याचारी क्षत्रियों का नाश करके उनकी समस्त भूमि ब्राह्मणो को दे दिया, तो ब्राह्मणो की इच्छा हुई कि वे इन सभी स्थानों को छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जायँ। वहाँ से चलकर परशुराम पश्चिमी समुद्र तट पर पहुँचे और समुद्र से अपने निवास योग्य भूमि मांगा। समुद्र ने उनकी बात नहीं मानी। तब क्रुद्ध होकर उन्होंने पश्चिमी घाट के एक शिखर पर खड़े होकर शरसन्धान किया। जहां जाकर उनका बाण गिरा वहां तक समुद्र पीछे हट गया। समुद्र द्वारा छोड़े गये इसी भूभाग को कोंकण और मलावार तट कहते हैं। इस क्षेत्र में विभिन्न भाषायें बोली जाती हैं तथा हिन्दू भौगोलिकों ने इस क्षेत्र को जिन सात भागों में बाँटा है; उनके नाम इस प्रकार हैं:—(१) केरल, (२) तूलवा, (३) गोहराष्ट्र (४) कोंकरण या कुम्पुन, (५) कुरार, (६) वरार तथा (७) बर्वर प्रदेश। इनमें से प्रथम तीन विभाग तो द्राविड़ तथा कर्णाटक में हैं तथा शेष चार विभाग आजकल वह दक्षिणी कोंकण में शामिल हैं। इस पुस्तक में जहाँ कही कोंकण शब्द आया है, उससे वह भूभाग समझना चाहिये जो समुद्र तट से उस भाग तक फैला हुआ है जहाँ पश्चिमी घाट की पहाड़ियाँ निचले प्रदेश में प्रवेश करती हैं।

नाले अति तीव्र वेग से बहते हैं। ये नदियाँ तथा नाले जब समतल प्रदेश में पहुंचते हैं तो समुद्र के ज्वार भाटे का प्रभाव इन पर पड़ने लगता है और इसीलिये इनकी गहराई भी बहुत हो जाती है और इनकी तलहटी में कीचड़ भी बहुत हो जाता है। इस प्रदेश की सड़कें पत्थर के टुकड़ों की बनी है और अत्यन्त सँकरी होती हैं तथा ज्यों ज्यों वे सह्याद्रि (एक पहाड़) की ओर जाती हैं त्यों त्यों उनकी दुर्गमता बढ़ती जाती है। ब्रिटिश सरकार के प्रयत्नों से इन स्थानों की दुर्गमता में कमी अवश्य आ गयी है, फिर भी कहीं कही ऐसी चढ़ाई मिल जाती है कि पहाड़ी घोड़ों को भी बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। यदि किसी प्रकार इन चढ़ाइयों को पारकर इन पहाड़ों के शिखर भाग पर पहुंचा जा सके तो जो दृश्य चहुं ओर दिखाई पड़ता है वह अनुपम है। यदि हम पहाड़ों के ऊपर पहाड़ों की कल्पना करते-करते तीन चार हजार फीट की ऊँचाई पर पहुंच जायँ तो देखेंगे कि शिखरस्थित यह सारा क्षेत्र अति सुन्दर वृक्षावालियों से ढंका हुआ है तथा बीच बीच में इतनी काली चट्टानों के छोटे छोटे ऐसे मैदान दिखाई पड़ते हैं कि इनके बीच में किसी भी घास या पेड़ की जड़ें प्रवेश नहीं कर पातीं। ज्यों ज्यों हम पूना की ओर बढ़ते हैं त्यों त्यों यह हरीतिमा अधिक चित्ताकर्षक होतीं जाती है। वर्षा-काल में और विशेषकर वर्षा के अन्त समय में जब इन स्थानों की हरीतिमा सांवले वर्ण की हो जाती है, तो ऊँचे स्थानों से गिरने वाले झरनों की संगति में इनकी मनोहारिता द्विगुणित हो उठती है। इन पर्वतों पर स्वतंत्र रूप से विचरण करने वाले बादलों पर पड़ने वाली प्रभाकर किरणे इन्द्रधनुष के विविध रंगों की सृष्टि सी करती हुई इन वृक्ष मालाओं को नितनव रंग सा प्रदान करती हुई प्रतीत होती है। दक्षिणी पश्चिमी मानसून के प्रारम्भ और अन्त में अन्धड़ों एवं तूफानों की संख्या तथा उनका क्रम अत्यधिक बढ़ जाता है और इस भूभाग में इन प्रकृतिदत्त उपादानों से जीवन की कठिनाइयों में तो वृद्धि होती ही है, इन स्थानों के आकर्षण में भी वृद्धि हो जाती है।

कोंकण की विषम भूमि ही उसकी विशेषता है, फिर भी इसके कुछ भाग अत्यधिक उपजाऊ हैं। समुद्र से सह्याद्रि पर्वत तक उस प्रदेश की चौड़ाई कहीं पचीस मील तथा कहीं कहीं बढ़कर पचास मील तक चली गयी है। इसका उत्तरी भाग अधिक चौड़ा है और यहाँ के निवासी इस भाग को कोंकण घाट-माथा * कहते हैं। इस पर्वत माला की सबसे ऊँची चोटी पठार के धरातल से एक हजार से लेकर दो हजार फीट तक ऊंची है। कोंकण घाट-माथा की चौड़ाई बीस से पचीस मील तक है तथा उत्तरी एवं पूर्वी भाग की सभी पहाड़ियाँ इसमें आ जाती हैं। महाराष्ट्र के लोग कोंकण-घाट-माथा का प्रारम्भ उस स्थान से मानते हैं, जहाँ पूर्वी भाग में ये पहाड़ियाँ नीची होते होते पठार के धरातल पर आ गयी हैं।

कोंकण घाट-माथा का जुन्नार से लेकर कोल्हापुर के बीच का प्रदेश मावल, खोर, तथा मोर नामक तीन भागों में बंटा हुआ है। यहाँ के निवासी इन प्रान्तों को भी इसी नाम से पुकारते हैं तथा यहाँ की घाटियों का भी तीनों ही भाग पूर्णतया आबाद हैं तथा इन घाटियों में खूब खेती होती है। यहाँ के निवासी सीधे, सादे, तथा शान्त प्रकृति के हैं, परन्तु वे बड़े ही कर्मठ तथा धैर्यवान् होते हैं। आगे

---

* घाट से तात्पर्य यहाँ पश्चिमी घाट की पहाड़ियों से हैं। इस पुस्तक में या अन्य किसी भी इतिहास ग्रन्थ में जहाँ कहीं भी घाट शब्द आता है, वहां दक्षिण भारत की पहाड़ियों के अर्थ में ही शब्द को ग्रहण किया जाना चाहिये। बम्बई की तरफ जहाँ कहीं घाट शब्द आता है तो उसका तात्पर्य उन पर्वत मालाओं से होता है जो समुद्र के किनारे समूचे पश्चिमी भाग को घेरे हुये हैं तथा जिसे सह्याद्रि कहते हैं। वैसे घाट उस अर्थ में भी ग्रहण किया जाता है, जहां लोग नदियों में स्नान करते हैं, या पार उतरते हैं; परन्तु जब तक प्रसंग वैसा न हो तब तक इतिहास में 'घाट' शब्द को इन पहाड़ियों के ही अर्थ में ग्रहण करना चाहिये।

चलकर हम देखेंगे कि शिवाजी की शक्ति वृद्धि में इन मावलियों का कितना हाथ था। जुन्नार के उत्तर में पड़ने वाली घाटियाँ न तो उपजाऊ ही हैं और न इनमें अधिक खेती ही होती है तथा यहाँ के मूल निवासी भील तथा कोली लोग ही मुख्य हैं, जो प्रागैतिहासिक काल से यहीं निवास करते हैं, तथा जिनका जीवन यापन मुख्यतया शिकार तथा लूट पाट से होता है। ये सभी प्रदेश वन्यपशुओं से पटे पड़े हैं, विशेष करके यहाँ का व्याघ्र बड़ा ही भयानक एवं विध्वंसकारक होता है।

इन सभी पहाड़ियों के शीर्षस्थ भाग या कितनों के मध्यस्थ भाग विशाल काली शिलाओं से ढँके हैं। थोड़े ही परिश्रम एवं थोड़ी ही कारीगरी की सहायता से यहाँ इस प्रकार के सुदृढ़ दुर्गों को बनाने की सुविधा प्राप्त है, जो दुर्गम तो अपने स्थान के ही कारण से हैं, साथ ही वे अन्य प्रकार से भी अभेद्य होते हैं। इन पहाड़ियों में मीठे पानी के अनेक श्रोत हैं, जिनको बांधों के द्वारा रोककर किसी भी बड़े नगर के लिये पानी की व्यवस्था की जा सकती है। यहाँ वर्षा होती है मई से अक्तूबर तक के मासों में, अतः इन महीनों में इस प्रदेश में किसी प्रकार की फौजी कार्यवाहीं नहीं हो सकती। इस प्रदेश की पहाड़ियों ने इसे यों भी दुर्गम बना रक्खा है, परन्तु यहाँ की निरन्तर होती रहने वाली वर्षा के कारण यहाँ का जलवायु इस प्रकार अस्वास्थ्यकर हो जाता है कि अन्य देशीय व्यक्तियों पर इसका दुष्प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। मेरी राय तो संक्षेप में यह है कि सैनिक दृष्टिकोण से इतना अभेद्य स्थान शायद ही संसार में कहीं हो।

घाट माथा के आगे चलकर खुला हुआ प्रदेश या 'देश' मिलता है। ज्यों ज्यों हम पूर्व की ओर चलते हैं, त्यों त्यों यह समतल होता जाता है, परन्तु इस भाग में भी सह्याद्रि की चार श्रेणियाँ पश्चिम से पूरब को फैली हैं। सतपुड़ा के सिलसिले में ही महाराष्ट्र प्रदेश की उत्तरी सीमा एक पहाड़ी तक चली गयी है जिसे चन्दौर श्रेणी कहते हैं तथा जो रूर से लेकर बरार के मध्य भाग तक फैली हुई है, अहमदनगर की पहाड़ियाँ जुन्नार से भोर तक फैली हैं, तीसरी पहाड़ी पूना के दक्षिण में है तथा महादेव पहाड़ी सतारा के उत्तर में है।

यह कहा जा सकता है कि सारा महाराष्ट्र देश ही पहाड़ियों से पटा पड़ा है, जिनकी घाटियों में पानी की कमी नहीं है तथा यहाँ का जलवायु भारतवर्ष भर में सर्वाधिक स्वास्थ्यबर्द्धक है, परन्तु उपजाऊपन में यह भाग अधिकांश भागों से निम्न स्तर का है।

नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी, भीमा तथा कृष्णा यहाँ की मुख्य नदियाँ हैं। इन नदियों के किनारे की कुछ भूमि उपजाऊ तथा कृषि योग्य है तथा यहाँ के अनाज गुण में भी और आधिक्यमें भी सर्वोत्तम होते हैं। गोदावरी को उस देश वाले गंगा कहते हैं। इसके किनारे के प्रदेश तथा साथ ही भीमा नदी तथा उसकी सहायक नीरा एवं मोन नदियों के किनारे के प्रदेशों के घोड़े दक्षिण के सर्वोत्तम घोड़े होते हैं।

यदि संक्षेप में वर्णन करना चाहें, तो कहना पड़ेगा कि इस देश की अधिकांश जनसंख्या हिन्दुओं की है, जो अपने धर्मशास्त्र के आदेशानुसार चार वर्णों[६] में विभाजित हैं। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं--(१) ब्राह्मण, (२) क्षत्रिय, (३) वैश्य और (४) शूद्र। ये सभी जातियाँ अब स्पष्ट विभाजन के रूप में नहीं रह गयी हैं तथा अब कितने ही वर्णों का अस्तित्व प्रायः समाप्त सा हो चला है और जो अवशिष्ट भी हैं वे अनेक वर्णों में विभाजित हो गये हैं।

ब्राह्मणों का वर्ग पुरोहित वर्ग है, जिनके जीवन का यह आदर्श है कि वे यावज्जीवन पूजन-पाठ एवं आध्यात्मिक चिन्तन करें और वे शेष लोगों को धार्मिक एवं सामाजिक विषयों में पथ प्रदर्शन करें। यह बताना उन्हीं का काम था कि शेष तीनों वर्णों के लोगों के कर्तव्य क्या हैं, उन्हीं लोगों की सहायता से सभी लोगों को देव कृपा की प्राप्ति होती थी और वे अगले जन्म के लिये शुभाशायें प्रदान

करते थे। उनके लिये सांसारिक बन्धन कुछ नहीं हैं। उनका जीवनादर्श कुछ इस प्रकार का है कि पठन-पाठन; भजन-पूजन एवं आध्यात्मिक चिन्तन के सिवा उन्हें किसी भी सांसारिक कार्य में नहीं लगना चाहिये, परन्तु वे राज्य के बड़े-बड़े पदों पर भी काम करते आये हैं तथा उन्होंने कितनी ही बार सेनापति तक का कार्य संभाला है। निस्संदेह उक्त आदर्शों को पालने वाले ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा अन्य जनों से अधिक होती है। अन्य लोगों की प्रतिष्ठा राज्याधिकारी रूप में चाहे जितनी हो, ब्राह्मण* के रूप में नहीं ही होती! इस समूचे महाराष्ट्र प्रदेश में ब्राह्मणों † की आठ श्रेणियाँ हैं, जिनकी अपनी मान्यतायें हैं, अपने-अपने सिद्धान्त हैं तथा अपने-अपने अलग जीवनादर्श भी हैं। उनके चरित्र, व्यवहार एवं वेषभूषा का अन्तर देखने मात्र से स्पष्ट हो जाता है।

हिन्दुओं की चार प्रमुख श्रेणियों में द्वितीय श्रेणी क्षत्रियों की है जो कि प्रतिरक्षा का भार ग्रहण करती है। शुद्ध क्षत्रिय तो अब समाप्त हो चले हैं, लेकिन राजपूत ‡ जो इन क्षत्रियों का नाम और अधिकार ग्रहण करते हैं, इन्हीं क्षत्रियों के वंशज हैं या न भी हों तो माने अवश्य जाते हैं।

---

† भारतवर्ष में ब्राह्मणो के दो वर्ग हैं, जिन्हें पंच गौड़ तथा पंच द्राविड़ कहते हैं। इनमें से प्रत्येक के पांच-पांच उप विभाग होते हैं। पंच गौड़ ब्राह्मण विद्वानों के मतानुसार नर्मदा नदी के उत्तर के रहने वाले हैं और पंचद्राविड़ ब्राह्मण गुजरात के या नर्मदा के दक्षिण में स्थित भूभाग के निवासी हैं। इन दो विभाजनों की सीमा के रूप में विंध्य पर्वत या सतपुड़ा पर्वत को भी मान्यता दी जा सकती है। सतपुड़ा के दक्षिण के निवासी अर्थात् पंच द्राविड़ ब्राह्मणो में (१) महाराष्ट्रीय, (२) आंध्रदेशीय, (३) तैलंग (तेलंगाना देशीय), (४) द्रविड़ देशीय तथा (५) कर्णाटक देशीय ब्राह्मण हैं। इनके उप विभागों में शैव और वैष्णव नामक दो उपविभाग तो मुख्य हैं ही, परन्तु और भी कितने ही अन्य आधारों पर बने हुये इनके अनेक वर्ग हैं। कभी कभी इनका नामकरण उस वेद के आधार पर भी हो जाता है, जिसकी शिक्षा उनको दी जाती है।

‡ मराठों के उत्कर्ष काल में जिन पेशवाओं को अत्यधिक अधिकार मिले हुये थे वे कोंकणी थे। यदि ये वर्ण विचार से पर्याप्त ऊंचे नहीं होते तो इनके हाथों में इतने अधिक अधिकार कभी न दिये गये होते। प्राचीन ग्रन्थों में पेशवाओं को चितपावन कहा गया है। इसका प्रसंग इस प्रकार का है कि एक बार परशुराम अवतारधारी विष्णु ने विभिन्न वर्णों के चौदह मुर्दों को (जो समुद्र में डूब कर मर गये थे) ले जाकर परशुराम क्षेत्र या कोंकण (जिस क्षेत्र को बाण मार कर परशुराम ने समुद्र से छीन लिया था) में रक्खा। उस सद्यः शुष्क निर्जन प्रदेश को बसाने के लिये उन्होंने उन मुर्दों को फिर से जिला दिया। इन्हीं चौदह मानवों से कोंकणी ब्राह्मण हुये जो कालान्तर में साठ नये नामों में विभाजित हो गये। देशी ब्राह्मणो ने अपनी कुल संज्ञा का व्यवहार करने के बदले अपने नाम के साथ पिता का नाम भी प्रयोग में लाने लगे या अपने निवास स्थान का नाम भी अपने नाम के आगे लगाने लगे।

इन पेशवाओं में बालाजी विश्वनाथ प्रथम पेशवा कहे जाते हैं, यद्यपि उनके पूर्व चार पेशवा और हो चुके थे। पहले इनकी नियुक्ति हरकारों एवम् भेदियों के रूप में की जाती थी न कि प्रशासकीय अधिकारियों के रूप में। बाद में इन्होंने उन्नति की और मंत्री के रूप में काम करने लगे। जितने भी ब्राह्मणो से मिलने का मुझे अवसर मिला है, उनमें कोंकणी लोग ही सर्वाधिक कुशल एवम् प्रतिभाशाली जान पड़े।

इन आठों श्रेणियों के नाम इस प्रकार हैं:—१–कुर्रर, २–यजुर्वेदीय, ३–कण्व, ४–देवरुक, ५–कृण्वन्त, ६–सेन, ७–त्रिगुल तथा ८–सुबास।

‡ राजपूतों के पिता तो क्षत्रिय थे, परन्तु इनकी मातायें क्षत्रियेतर वर्णों की थीं। इनका अस्तित्व कलियुग की बीसवीं शताब्दी से माना जाता है।

तीसरी श्रेणी वैश्यों * की है, इस श्रेणी को व्यावसायिक एवं व्यापारिक समुदाय माना जाता है।

चार प्रमुख श्रेणियों में अन्तिम स्थान शूद्रों का है। इनका प्रमुख धन्धा कृषि है, और इसीलिए महाराष्ट्र प्रदेश में इन्हें 'कुनबी' के नाम से पुकारा जाता है।

परन्तु हिन्दुओं की इन प्रमुख चार श्रेणियों के अतिरिक्त, हिन्दुओं में असंख्य उपवर्ग हैं। ये वर्णशंकर हैं। इनका प्रादुर्भाव इन प्रमुख श्रेणियों के एक दूसरे में मिल जाने से हुआ है। इस प्रकार के वर्णन को पढ़कर यूरोप निवासी उन्हें जाति निष्कासित समझ सकते हैं, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। उनका अपना एक अलग समुदाय है; उनके अपने विशेष पद, कार्य एवं व्यवसाय हैं। उनके कार्यों एवं धन्धों की संख्या बहुत अधिक है। इसी समुदाय में अनगिनत व्यवसायों तथा कला-शिल्पों ने जन्म लिया है। इस श्रेणी को महाराष्ट्र में सामान्यतः 'संकर जाति' † के नाम से पुकारा जाता है।

सभी श्रेणियों तथा वर्गों में ईश्वर भक्तों ने जन्म लिया है जिन्होंने सांसारिक मोहमाया तथा बन्धनों को त्याग कर धर्म में ही स्वयं को लीन कर दिया है। वे विश्वास करते हैं कि इस प्रकार वे जो भी त्याग करते हैं, ईश्वर उन्हें उससे अधिक प्रदान करेगा। परन्तु इन्हीं ईश्वर भक्तों में से कुछ महान आत्माओं ने अपने चरित्र तथा व्यवहार द्वारा अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। ऐसा माना जाता है कि अपने जीवन के व्यवहार, विचार एवं तपस्या द्वारा इन महान आत्माओं ने ऐसी उच्च आशाओं का उद्वेलन अनुभव किया है जिनके समक्ष सभी सांसारिक कष्ट एवं पीड़ायें तुच्छ तथा नगण्य हैं। इन भक्तों ने किसी भी सांसारिक सुख सुविधा प्राप्त करने की इच्छा नहीं प्रगट की है। उन्होंने अहं को भी पराजित कर दिया था। अन्य मनुष्यों द्वारा की हुई अपनी प्रसंशा का वे कुछ भी महत्व नहीं देते थे! इस प्रकार वे उस महानतम बुराई से दूर थे जिसके समान पथ-भ्रष्ट करने वाला कोई

---

* कहा जाता है कि वास्तविक वैश्यों का अस्तित्व अब नहीं रह गया है। आज कल के बनियों को ही वैश्य कहने लगे हैं, परन्तु वे वास्तविक वैश्य हैं नहीं। तेलंगाना के कामथ लोग इन वैश्यों के सर्वाधिक समीप हैं। अन्य बनियों को लिंगायत, गूजर और जैन कहते हैं। लिंगायत बनियों की तीन उपजातियाँ शीलवंत, पंचम, तथा तिरुली हैं, जिनके गुरुओं को जंगम कहते हैं। वे लिंग धारण करते हैं तथा उनके कितने ही आचार अन्य हिन्दुओं से विभिन्न हैं। गुजर लोग अपने देश के ही कारण इस नाम से पुकारे जाते हैं। ब्राह्मणों में भी गूजर होते हैं, जिनकी संख्या इस प्रदेश में मामूली ही है।

† संकर जाति के लोगों की एक अपनी धार्मिक सरकार होती है, जिनके मुखियों को आज मुकद्दम या चौधरी कहा जाता है, जिनका पद नाम मात्र के मत संग्रह पर अवलम्बित था। वैसे किसी मुकद्दम को महाराष्ट्र में कोई खास अधिकार नहीं प्राप्त हैं, परन्तु धार्मिक एवम् सामाजिक मामलों में उनकी मुख्यता असन्दिग्ध है। सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध कार्य करने वालों के विरोध में पूरा का पूरा समाज ही उठ खड़ा हो जाता है और अपराधी को दंड देने में किसी को भी किसी प्रकार की रियायत नहीं दी जाती। संकर जाति वालों में जो सबसे छोटे वर्ग के लोग भी हैं; उनमें भी इस प्रकार का अनुशासन पूर्णरूपेण प्रचलित है। शायद इसी लिये यूरोपीय सैनिक अधिकारियों का कहना है कि जाति सम्बन्धी उलझनें उन सैनिक टुकड़ियों में अक्सर उठा करती हैं; जिनमें छोटी जाति के लोग होते हैं। इस विषय की पूरी जानकारी प्राप्ति की इच्छा रखने वालों को एशियाटिक रिसर्चेज का पांचवाँ भाग देखना चाहिये, जिसमें मि० कोलब्रुक ने इस विषय का सांगोपांग विवरण प्रस्तुत किया है। इनकी एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि शूद्र पिता और ब्राह्मणी माता के संयोग से उत्पन्न सन्तान सर्वाधिक निम्नवर्गीय मानी जाती है। जिस अर्थ में उत्तर भारत में वर्ण-संकर शब्द प्रयुक्त होता है, उसी अर्थ में दक्षिण में संकर-जाति प्रयोग में आता है।

दूसरा प्रलोभन नहीं है। इस प्रकार के धार्मिक चरित्र वाले व्यक्ति को साधु कहा जाता है ! ये साधु किसी जाति विशेष से सम्बन्ध नहीं रखते; वे किसी भी जाति के हो सकते हैं। हिन्दू यह विश्वास करते हैं कि किसी भी धर्म, जाति अथवा लिंग के लोगों में शुद्ध ईश्वर-भक्ति हो सकती है। ऐसे साधुओं में, जो कि महाराष्ट्र में प्रसिद्ध हैं, कबीर [*] एक मुसलमान थे; सन्त तुकाराम एक बनिया थे, कानूपत्र जाति की एक गणिका थी और चकमल एक महरा या ढेड़ था।

ब्राह्मण भक्त तीन प्रकार के हैं—ब्रह्मचारी, [†] वानप्रस्थ एवं सन्यासी।

यद्यपि बनियां वर्ग में भी कुछ भक्त हुये हैं परन्तु इस वर्ग में अन्य श्रेणियों के समान भक्त होने की प्रवृत्ति अधिक नहीं हैं।

राजपूत तथा शूद्रों [‡] के सभी वर्ग में गोसाईं और बैरागी हो सकते हैं। जब कोई ब्राह्मण गोसाईं या बैरागी हो जाता है, तो उसकी कोई जाति नहीं रह जाती, वे अपना ब्राह्मणत्व खो बैठते हैं। फिर भी सामान्यतः, प्रख्यात महापुरुष,[1] एवं ब्रह्मचारी स्वामी रामदास के शिष्यों को ही गोसाईं के नाम से जाना जाता है (स्वामी रामदास शिवाजी के आध्यात्मिक गुरू थे)। उन ब्राह्मणों को भी गोसाई कहते हैं जो कथा कहते हैं; इन्हें हरिदास गोसाईं कहते हैं। पर इन मामलों में, यह केवल एक नाम मात्र का भेद है। ये गोसाईं [2] लोग महादेव के उपासक हैं और बैरागी लोग विष्णु के।

गोसाइयों की संख्या महाराष्ट्र में वैरागियों से अधिक है और इनके विभेद भी अधिक हैं। यदि वे कपड़े पहनते हैं तो वे जोगिया रंग में रंगे होते हैं। वैरागियों पर इतना अधिक प्रभाव पड़ गया है कि उनके वस्त्र एवं वेश-भूषा में कोई विशेषता नहीं रह गयी है। वे व्यापार भी करते हैं, सेना में नौकरी भी करते हैं, उनमें से कितने ही व्याह शादी करके गृहस्थ हो गये हैं और रखेलियां तो प्रायः सभी रखते हैं ! कुछ गोसाईं ऐसे भी होते हैं जो नंगे रहते हैं और इनका चरित्र भी औरों से ऊँचा माना जाता है ! सर्वाधिक आदरणीय गोसाई वे लोग हैं जो बाल नहीं बनवाते और न नाखून ही कटाते हैं। इनमें से कई लोग तो ऐसा प्रण भी कर लेते है कि वे किसी अंग विशेष को निरन्तर एक विशेष स्थिति में ही रक्खेंगे। इनकी तपश्चर्या में शीत, घाम, वर्षा को इतना अधिक सहन करने की शक्ति होती है कि साधारण मानव-शरीर उतना बर्दाश्त ही नहीं कर सकता। वे स्वयं ही अपने शरीर को विविध यंत्रणायें दिया करते हैं !

जो लोग इतना अधिक सहन करने की शक्ति रखते हैं और शीत, घाम तथा वर्षा के इतने

---

[*] कबीर मुसलमान थे, परन्तु उनकी गणना हिन्दू साधुओं में की जाती है।

[†] यह अवस्था जन्म काल से लेकर विवाह होने तक के समय रहती है। व्याह के बाद हिन्दू युवक गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करते हैं।

[‡] शूद्रों में ग्वाल लोग सर्वोच्च माने जाते हैं। नाई प्रायः उच्च वर्गीय व्यक्तियों के सम्पर्क में रहने से उच्च माने जाते हैं परन्तु वे वास्तव में संकर जाति से हैं।

[1] इनके संस्थापक थे शंकराचार्य। इनके दस विभाग हैं और प्रत्येक विभाग के धार्मिक आचारों में कुछ न कुछ विभिन्नता है। इनके नाम इस प्रकार हैं:—गुरी, पुरी, भारती, बन, अरुण, सरस्वती, तीर्थ, ऊगश्रिन, सकुण एवम् पर्वत।

[2] गोसाईं होने के लिये आवश्यक है कि वे करधनी के स्थान पर एक करडा पहनते हैं और किसी गोसाईं के चेला हो जाते हैं। इसके बाद एक हवन क्रिया होती है जिससें वे सविधि दीक्षा प्राप्त करते हैं। गोसाईं लोग तीन ढंग से से शिष्यता प्राप्त करते हैं (१) स्वयम् गोसाईं हो जाने वाले लोग (२) खरीदे गये लोग तथा (३) वे बच्चे जिनके माता-पिता बच्चे के जन्म के पूर्व ही संकल्प करके उन्हें गोसाइयों के हाथों में सौंप देते हैं।

उपद्रव नंगे शरीर पर बर्दाश्त कर लेते हैं, वे यदि हाथ में तलवार लेकर शत्रु के सम्मुख आ जायँ तो उनका सामना कोई कैसे कर सकता है ! इन गोसाइयों तथा वैरागियों ने एकाधिकबार धार्मिक युद्धों का श्री गणेश किया है और आपस में ही उनमें भयानक संघर्ष हुये हैं। यदा-कदा वे साधारण तथा शान्तिमय जीवन बिताने वाली जनता के लिये भी आतंक के कारण उपस्थित कर चुके हैं, परन्तु इस प्रकार के कार्यों के लिये गोसाईं लोग वैरागियों से अधिक कुख्यात हैं। वे हथियार बन्द होकर बड़े-बड़े दलों में इतस्ततः घूमा करते हैं तथा दान के नाम पर जनसाधारण से जबर्दस्ती धन वसूल किया करते हैं ! जहाँ-कहीं कोई व्यक्ति या गांव इनका असफल प्रतिरोध करता हैं, वहां वे प्रायः लूट, हत्या, आगजनी तथा अन्य कितनी ही प्रकार की पाशविकताओं की सृष्टि कर देते हैं।

ऊपर की पंक्तियों में जो कुछ कहा जा चुका है, उससे पाठकों पर इतना तो अवश्य ही स्पष्ट हो गया होगा कि जब भी किसी देश विशेष की तुलना में मराठा नाम लिया जाता है, तो उस स्थल पर सम्पूर्ण मराठा जाति के ही रूप में उसे ग्रहण करना चाहिये जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र लोग अपने-अपने वर्गों के सहित सम्मिलित हैं, परन्तु आन्तरिक वर्णन में मराठा ब्राह्मण अपने को अन्य वर्णों एवं वर्गों से स्पष्टरूपेण अलग कर लेता है। वैसे इस देश के कुनबी भी मराठा जाति में ही माने जाते हैं, जो अपने को प्राचीन राजपूतों की सन्तान मानते हैं और इस प्रकार की मान्यता सन्देह पूर्ण भले ही हो, परन्तु असम्भव नहीं है।

मराठा लोग अपनी स्त्रियों के साथ सदाशयता पूर्ण व्यवहार करते हैं। वे अपने पतियों की साथिनें हैं, न कि गुलाम। उनकी स्थिति उतनी गिरी हुई नहीं है जैसा कि कुछ यात्रियों ने भारत के अन्य भागों की स्त्रियों के विषय में कहा है या जिस अवस्था में वे धर्मशास्त्रों के निर्देशानुसार पड़ गयी हैं। उनमें एक यही प्रथा पायी जाती है कि मराठा सर्दारों की स्त्रियाँ अपने सर्वांग को मुसलमान स्त्रियों की तरह ही विविध वस्त्रों से ढँके रखती हैं। यदि किसी अहिन्दू की दृष्टि उनके अनावृत मुख पर पड़ जाय तो उनके लिये बड़ी निन्दा की बात समझी जाती है। यह प्रथा शायद उन्होंने उन मुसलमानों से ग्रहण की है जो पहले पहल दक्षिण में आए थे। परन्तु उनका कहना है कि यह प्रथा उन राजपूतों से उत्तराधिकार रूप में मिली है जिनके वे वंशज थे। इस श्रेणी की स्त्रियाँ पति के मरने पर प्रायः उनके शव के साथ सती हो जाती हैं परन्तु यदि वे गर्भवती होती हैं या उनकी गोद में असहाय बच्चा होता है या कोई परिवारिक महत्वपूर्ण कार्य करने को शेष रह जाता है, तो वे तब तक जीवित रहती हैं, जब तक उनकी पूर्ण निवृत्ति नहीं हो जाती, परन्तु ऐसी दशा में उनका पर्दा बहुत कुछ ढीला कर दिया जाता है, क्योंकि ऐसी दशा में उन्हें विविध कार्यों के सिलसिले में प्रायः पुरुषों के समक्ष तथा उनकी संगति में आना जाना पड़ता है।

यदि समस्त हिन्दू जाति की धार्मिक मान्यताओं का समवेत रूप से विश्लेषण किया जाय तो यह पता चलेगा कि पुनर्जन्म के सिद्धान्त में उनकी अचल आस्था है उनकी उलझी हुई धार्मिक कथाओं एवं उनके स्थानीय अन्तरों को विस्मृत करते हुए यदि हम केवल मराठा प्रदेश के धार्मिक विश्वासों का ही संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर दें तो वह हमारे पाठकों के लिए, विशेषतया यूरोपीय पाठकों के लिए विशेष सुविधाजनक होगा। इन लोगों का विश्वास है कि परब्रह्म परमात्मा सर्वव्यापक है, ब्रह्मांड का एक एक कण उसी का एक अंश है, प्रत्येक मानव की आत्मा उसी परब्रह्म का एक अंश है और इसी आत्मा का जब पूर्ण पवित्रीकरण हो जाता है, तो यह फिर उसी परमात्मा में लीन हो जाता है। आत्मा का इस प्रकार परमात्मा में लीन हो जाना ही उसका सर्वोच्च पुरस्कार है और यह पुरस्कार सर्वोच्च अच्छाइयों के फलस्वरूप ही मिलता है। इसके विपरीत अपवित्र या यों कहें कि बुराइयों में लिप्त आत्माओं को 'पुनरपि जननम पुनरपि मरणम्' के चक्कर में फँसा रहना पड़ता है और इन

अनेक जन्मों में परमात्मा से उस आत्मा की दूरी सदैव ही अच्छे बुरे कर्मों के अनुसार घटती बढ़ती रहती है। ब्राह्मणों का शरीर इस कार्य के लिये सर्वाधिक उपयुक्त है, क्योंकि उनके आत्मा की दूरी परमात्मा से बहुत ही कम रहती है। यदि वे अपने शास्त्रीय धार्मिक विश्वासों पर दृढ़ रहते हैं तो यह दूरी और भी घट जाती है और अन्त में उनकी आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है; परन्तु इन धार्मिक मान्यताओं को सम्यक् रूप से न मानने पर उनको अपने पापों के प्रायश्चित्त के लिये नरक में रहना पड़ता है, जहाँ पाप-फल पूरा का पूरा भोग लेने पर उनको निज कर्मानुसार फिर शरीर धारण करना पड़ता है और यह पुनर्शरीर धारण उसी योनि में होता है जिसके योग्य उसके कर्म होते हैं। इस प्रकार मुक्ति प्राप्ति करने के लिये समस्त योनियों को मानव शरीर और समस्त मानवों को ब्राह्मण शरीर धारण करना पड़ता है। ब्राह्मण शरीर में आकर उन सब गुणों का विकास अपने में करना पड़ता है, जो साधुजनों के लिये आवश्यक बताये गये हैं। इन गुणों की प्राप्ति एवं उनके विकास के बाद परमात्मा में लय होने का लक्ष्य पूर्ण हो जाता है।

मराठा लोगों का विश्वास है कि यह परमात्मा स्वयमेव अभिकर्ता नहीं हो सकता। अतएव इस ब्रह्म से प्रकृति एवं ब्रह्मा की रचना होती है, इसी से पालनाहार विष्णु तथा संहारक शंकर की उत्पत्ति होती है। इन तीनों देवों की पत्नियों के नाम हैं सावित्री, लक्ष्मी तथा पार्वती। ब्रह्मा ने तमाम रचनाएँ की हैं, मानवों को भी बनाया है और स्वयम भी बना है। वह देवों अर्थात् भले आत्माओं के भी जनक हैं और दैत्यों अर्थात् दुष्ट आत्माओं के भी। देवों में मुख्य हैं इन्द्र तथा दानवों के मुख्य का नाम है 'बलि'। जिस प्रकार ब्रह्मा की सृष्टि अयोनिज रूप से हुई है, उसी प्रकार विष्णु और शिव की भी रचना बिना माता पिता के हुई है। अपने कर्तव्यों की पूर्ति के लिये परमात्मा के इन प्रतिनिधि शक्तियों को कई बार जन्म भी लेना पड़ा है। इन जन्मों को इन देवों का अवतार कहते हैं। इन विभिन्न अवतारों एवं उनके सम्बन्ध से निःसृत देवताओं की संख्या तैंतीस कोटि तक जा पहुंची है।

अजमेर के पास पुष्कर ही भारत का एक मात्र ऐसा स्थान है जहां ब्रह्मा का मन्दिर पाया जाता है विष्णु एवं शिव के विभिन्न अवतारों के असंख्य मन्दिर देश के कोने-कोने में फैले हैं। इन मन्दिरों में से कितनों ही में इन देवों की धर्म पत्नियों की मूर्ति भी होती है। वैसे तो इन देवताओं के अनेक अवतार हैं, परन्तु शिव के उन ग्यारह अवतारों का विशेष महत्व है, जों उन्होंने दैत्यों के विरुद्ध इन्द्र की सहायता के लिये धारण किये थे। विष्णु के दस अवतारों का अत्यधिक महत्व है, क्योंकि उन्होंने अधर्म से धर्म की, अन्याय से न्याय की एवं बुराई से भलाई की रक्षा के लिये अवतार धारण किये हैं और इस के लिये उन्हें कितने ही अन्यायी राजाओं का भी विनाश करना पड़ा है। कई बार पृथ्वी को दानवों से बचाने के लिये भी उन्हें कुछ अवतार धारण करने पड़े थे। इन अवतारों की अगणित कथायें पुराणों में भरी पड़ी है। इन महापुरुषों के ही जीवन चरित्र को आधार मानकर रामायण, श्री मदभागवत एवं महाभारत नामक महाकाव्यों की रचनायें की गयी हैं। कालान्तर में इन महाकाव्यों के रूपान्तर मराठी भाषा में भी हुये हैं। इन्हीं जीवनवृत्तों के आधार पर भारतीय कथाकारों ने अनेक कथाओं की सृष्टि की है। इन कथाओं में अनेक गेय पद होते हैं जो संगीत प्रधान होते हैं। इन कथाओं में विभिन्न देवों द्वारा किये गये विभिन्न साहसिक कार्यों तथा उनकी तपस्याओं का वर्णन होता है तथा इन कथाओं की शिक्षायें नैतिकता से पूर्ण रहती हैं और प्रमुख मनोरंजन-साधनों में कथाओं का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

हिन्दुओं के जितने विभाग एवं उपविभाग हैं, उतने संसार के किसी भी धर्म में नहीं हैं। इनमें से दो विभाग मुख्य हैं। प्रथम विभाग वैष्णवों का है जो विष्णु को सर्वोच्च स्थान प्रदान करते हैं तथा द्वितीय विभाग है शैवों का जो शिव को सर्वोच्च नहीं तो विष्णु के समकक्ष अवश्य मानते हैं। यद्यपि इस

प्रदेश में दोनों ही वर्ग के लोग पाये जाते हैं, परन्तु शैव मत महाराष्ट्र का बहुत दिनों तक सर्वाधिक प्रचतिल मत रह चुका है।

भारत में अधिकांश जनों के अपने-अपने देवता होते हैं, जिन्हें वे आराध्य मानकर पूजते हैं, परन्तु प्रत्येक परिवार के एक अलग कुल देवता होते हैं। जिन्हें कुलस्वामी भी कहते हैं। सभी देवताओं के पूजन विधान एवं अवसर निश्चित होते हैं, जैसे महादेव-पुत्र गणपति की पूजा सभी शुभ कार्यों के प्रारम्भ में होती है। रामनाम का उच्चारण मृत्यु के समय किया जाता है। आराध्य देवों तथा कुल देवों की पूजा शक्ति एवं वैभव प्राप्ति के लिए प्रायः की जाती है। बुराइयों से दूर रहने के लिये तथा भलाइयों में रत रहने के लिये या किसी अभीष्ट प्राप्ति के लिये भी इनकी उपासना का विधान है। इन पूजनों में पुरोहित अर्थात् उपाध्याय एवं गुरु की प्रधानता मानी जाती है। उपाध्याय तो पीढ़ी दर पीढ़ी एक ही परिवार के लोग होते हैं, परन्तु गुरु लोग प्रायः बदलते रहते हैं। कई बार कितने ही योग्य व्यक्तियों की मध्यस्थता से पूजन किया जाता है, क्योंकि ऐसा विश्वास किया जाता है, कि जितनी उपलब्धि इनके माध्यम से हो सकती है, उतनी दूसरे लोगों के माध्यम से सम्भव नहीं है। लोग साधुओं का सा सम्मान तो नहीं पाते, परन्तु गुरुओं के समान प्रतिष्ठा तो उन्हें मिलती ही है। लोगों को महापुरुष कहते हैं। कभी-कभी मराठों के महापुरुष मुसलमान भी होते देखे गये हैं।

भारत का प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह कितना भी प्रतिभावान क्यों न हो अन्धविश्वासी होता है, ज्योतिष शास्त्र में, पहुंचे हुये व्यक्तियों में शकुनों तथा भविष्यवाणियों में इनकी अटूट श्रद्धा होती है और वे किसी भी जादू, टोने पर सरलता से विश्वास कर ले सकते हैं।

मराठे लोग पढ़ना, लिखना और प्रारम्भिक गणित सीख लेने के पश्चात् शेष शिक्षा के लिये ब्राह्मणों पर ही आश्रित रहते हैं, जिनके चरणों में बैठकर वे पहले संस्कृत भाषा का, तदनन्तर अन्य शास्त्रों एवं वेदों का अध्ययन करते हैं। इस देश के तमाम ग्रन्थ संस्कृत भाषा में ही हैं। इनमें वेद प्रमुखतम हैं। वेद चार हैं, शास्त्र छः हैं और पुराण अठारह हैं। इनमें से प्रत्येक के कितने ही स्पष्टीकरण एवं व्याख्यायें हैं। मराठा लोगों में बहुत थोड़े से लोग संस्कृत जानते हैं, शेष लोगों को हिन्दू साहित्य का अल्प ज्ञान ही है।

लोगों ने हिन्दू विद्या और उनकी आध्यात्मिकता की पक्षपात पूर्ण प्रशंसा की है, और इन प्रशंसात्मक बातों के प्रकाश में इन लोगों के चरित्रों को देखने से वह प्रशंसा आपत्तिजनक ही प्रतीत होती है और लोगों ने इनकी निन्दा भी कम नहीं किया है। मेरी राय में उक्त प्रशंसा तथा निन्दा के दोनों ही कारण अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। मेरे विचार में किसी भी राजकीय कर्मचारी को इस प्रकार की प्रशंसा या निन्दा के चमत्कार में नहीं पड़ना चाहिये। यदि हमारे देश के नवयुवक बिना कोई पूर्व धारणा बनाये इस देश में आवें, यहां के लोगों में घुल मिलकर उनका, उनके साहित्य एवं उनकी विद्याओं का अध्ययन बिना किसी पक्षपात भावना के करें तो पर्याप्त सम्पर्क के पश्चात् यहां के निवासियों के प्रति वे बहुत ही सहानुभूति पूर्ण स्मृतियां एवं भावनाएँ ग्रहण करेंगे। हमारे देशवासी कुछ समय के लिये यहां के भ्रष्टाचार, क्षुद्रता और हर प्रकार की निम्न भावनाओं के प्रदर्शन को देखकर स्तब्ध एवं आवाक् हो सकते हैं; परन्तु यदि पूरे संसार का विस्तृत भ्रमण किया जाय तथा सूक्ष्म निरीक्षण किया जाय तो ये बुराइयां सम्पूर्ण मानव जाति में देखने को मिलेंगी। यदि इन बुराइयों की उत्पत्ति के कारण पर हमारे बन्धु विचार करें तो यही निष्कर्ष निकालेंगे कि इसके दो मुख्य कारण हैं। इन बुराइयों की उत्पत्ति का प्रथम कारण एक भ्रष्ट और अत्याचारी शासन है तथा द्वितीय कारण है, मनुष्यों पर अनैतिक प्रभाव डालने वाले यहां के प्रचलित अन्धविश्वास और परम्परागत कुसंस्कार। इस देश के

लोगों में बहुत से गुण और कलायें भरी हुई हैं। जीवन के विषय में जितनी भी सम्भावित उच्च भावनाएँ हैं; यहां के लोगों में पाई जाती है।

अब हम उन घटनाक्रमों का अध्ययन करेंगे जो कि हमें प्राप्त हैं और जो हम लोगों से सम्बन्धित हैं। जिनके विषय में हमें विशेष रूप से लिखना है।

किसी भी देश का प्राचीन इतिहास पूर्णतः प्रामाणिक रूप में प्राप्त नही होता। वही बात महाराष्ट्र के इतिहास के विषय में भी हैं। फिर भी मुस्लिम विजय के पूर्व हुई दो या तीन क्रान्तियों के कुछ प्रमाण उपलब्ध हैं। प्रचलित लोककथाओं से प्रतीत होता है कि गरसी नाम की जाति के लोग यहां के आदि निवासी थे। यह एक निम्न जाति है और देश के देशी संगीतज्ञों में यह प्रमुख स्थान रखती हैं! पुराण भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। पुराणों में लिखा है कि कावेरी और गोदावरी नदियों के बीच के भूभाग को दण्डकारण्य के नाम से पुकारा जाता था। जब रावण का आधिपत्य सर्वत्र था, उसने इस भूभाग को संगीतज्ञों को दानस्वरूप दे दिया था। परन्तु सर्वप्रथम जिस राजवंश का प्रामाणिक वर्णन प्राप्त होता है उसके राज्य का केन्द्र नागर था। ईसा से २५० वर्ष पूर्व मिस्र के व्यापारी इस नगर से व्यापारिक सम्बन्ध रखते थे। द्वितीय शताब्दी के मध्य में एक लेखक ने लिखा है कि यह नगर भ्रमण का केन्द्र था और ग्रीकवालों के लिये अपना माल बेचने का यह एक प्रमुख बाजार था।

विद्वान् हिन्दुओं को इस नगर का नाम भलीभाँति ज्ञात है यद्यपि इसकी सही स्थिति का निर्णय अभी तक नहीं हो सका है। कुछ लोग मानते हैं कि शायद यह भीर नामक आधुनिक शहर के कुछ उत्तर-पूर्व में गोदावरी नदी के तट पर स्थित था। यह नगर एक राजपूत राजा के अधिकार में था। जिसकी शक्ति का प्रभाव काफी दूर तक था। ऐसा लगता है कि कई अन्य राजा उसका आधिपत्य स्वीकार करते थे क्योंकि उसे राजाधिराज के नाम से सम्बोधित किया गया है। यह सम्बोधन कुछ दानपत्रों पर तथा पीतल की प्लेटों पर लिखा हुआ है।

यह सम्भव है कि नागर के राजाओं की शक्ति उत्तर की तरफ से विजय प्राप्त करने के कारण बढ़ी हो। इसके पश्चात् दूसरी क्रान्तिकारी घटना जिसके कुछ चिन्ह हमें प्राप्त होते हैं, शालिवाहन नाम के एक निम्नजातीय व्यक्ति के नेतृत्व में हुई थी। शालिवाहन के राज्यारोहण से एक नया युग प्रारम्भ होता है। शालिवाहन सन् ७७-७८ ई० में सिंहासन पर बैठा था।

ऐसा माना जाता है कि शालिवाहन ने * प्रतिष्ठान को अपने शासन का केन्द्र बनाया। इस नगर का उल्लेख पेरिप्लस में पायथान के नाम से किया गया है। इसी को आजकल मूंगपट्टन कहते हैं जो कि गोदावरी नदी के तट पर स्थित है। इस राजा के विषय में आगे जो कुछ भी लिखा गया है, उसका आधार इस क्षेत्र में प्रचलित असंख्य लोककथाएँ हैं।

शालिवाहन ने † असीर में राज्य करने वाले एक अन्य राजा के राज्य को अपने राज्य क्षेत्र में मिला लिया। यह राजा सूर्यवंशी राजपूतों के सीसोदिया कुल में उत्पन्न हुआ था। उसके पूर्वज कौशल

---

* कुछ लोग शालिवाहन को 'कुनबी' मानते हैं तथा कुछ अन्य विद्वान इसे 'कुम्हार' का पुत्र मानते हैं। इस देश की लोक कथाओं में उसे महादेव का अवतार माना गया है। इन्हीं लोक कथाओं के अनुसार उसकी माँ एक ब्राह्मण कुमारी थी जिसने एक पवित्र नाग के संयोग से गर्भधारण किया था। परिणामस्वरूप इसके माँ बाप ने लोक लज्जा से भयभीत होकर उसे अपने घर से अपमानित करके निकाल दिया। तत्पश्चात् एक कुम्हार के घर,में उसने शरण पाई जिसने उसकी रक्षा की।

† भारत के विभिन्न भागों में शालिवाहन के विषय में असंख्य कथाएँ प्रचलित हैं; ऊपर की लोक कथा महाराष्ट्र में अधिक प्रचलित है; परन्तु किसी विशेष कथा को सत्य मानकर उसे महत्व देना अधिक लाभजनक नहीं सिद्ध होगा।

देश से (जिसे आजकल अवध कहते हैं) यहाँ आये थे और नर्मदा नदी के दक्षिण ओर उन्होंने अपना राज्य स्थापित किया था। जब शालिवाहन ने इस राज्य पर विजय प्राप्त की तो यह राज्य १६८० वर्ष पुराना हो चुका था। एक स्त्री को छोड़कर, इस परिवार के सभी सदस्यों को शालिवाहन ने मौत के घाट उतार दिया। वह स्त्री, अपने नवजात शिशु के साथ अपनी जान बचा कर भाग निकली और बहुत चमत्कारपूर्ण रीति से उसने सतपुड़ा की पहाड़ियों में शरण प्राप्त की। इसी शिशु ने, उचित आयु प्राप्त करने पर, चित्तौड़ के राणा-परिवार की नींव डाली। इन्हीं चित्तौड़ के राणाओं से उदयपुर के राजाओं ने अस्तित्व ग्रहण किया जिनके परिवार को सभी इतिहासकारों ने हिन्दुस्तान का सबसे प्राचीन परिवार माना है। ऊपर की लोककथा के अनुसार इसी राजवंश से मराठा राज्य की स्थापना करने वाले व्यक्ति ने भी जन्म प्राप्त किया। इसी लोककथा के अनुसार शालिवाहन ने मालवा के राजा विक्रमादित्य से बहुत समय तक युद्ध छेड़े रखा। अन्त में उन दोनों में सन्धि हो गई जिसके अनुसार नर्मदा नदी शालिवाहन की उत्तरी सीमा तथा विक्रमादित्य की दक्षिणी सीमा मानी गयी। इन दोनों राजाओं ने अपने-अपने संवत्सर चलायें जो कि इस देश में आगे चलकर प्रचलित हुये। विक्रमी सम्वत् ईसा के जन्म से ५७ वर्ष पहले से प्रारम्भ होता है, और नर्मदा के उत्तरी भाग में अब भी पूर्ण रूप से प्रचलित है। शालिवाहन का सम्वत्, जिसका विवरण पहले ही दिया जा चुका है, दक्षिण में प्रचलित है। मराठी पाण्डुलिपियों में विक्रमादित्य एवं शालिवाहन में हुई सन्धि को सिद्ध करने के लिये इन सम्वतों में कुछ हेर-फेर कर दिया गया है; चूंकि उन दोनों के सम्वतों में १३३ वर्षों[*] का अन्तर है इसलिये ये सम्वत् ही सन्धि की कहानी को झूठी सिद्ध कर देते हैं, या फिर एक बात और हो सकती है कि विक्रमादित्य के पूर्वजों ने यह सम्वत् चलाया हो और विक्रमादित्य ने भी अपने पूर्वजों के नाम से शालिवाहन के समय में राज्य किया हो। यह बात मान लेने पर उन दोनों में हुई सन्धि को सही साबित किया जा सकता है।

इनके अतिरिक्त, सम्भव है कि महाराष्ट्र में कुछ अन्य महान राजनैतिक परिवर्तन भी हुये हों; परन्तु किस काल में या किस कारण राजधानी पाइयान से हटकर देवगिरि (आधुनिक दौलताबाद) में चली आई, इस विषय में कोई सूत्र नहीं मिलता। कुछ हस्तलिखित ग्रन्थ शालिवाहन से लेकर रामदेव राव तक के राजाओं की सूची का वर्णन करते हैं। रामदेव राव, तेरहवीं शताब्दी के अन्त में मुसलमानों के प्रथम प्रवेश के समय में इस प्रदेश पर राज्य कर रहा था। उस काल में, तथा उसके पहले भी जहाँ तक प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि मराठों का यह देश छोटे-छोटे कई राज्यों में विभक्त था जिनमें से अधिकांश स्वतन्त्र थे।

फरिश्ता इस बात का उल्लेख करता है कि गुजरात के सूबेदार अलप खां ने मलिक काफ़ूर के नेतृत्व में दक्षिण पर हुये दूसरे आक्रमण में सहयोग दिया था एवं सूबेदार का कर्ण नामक एक राजा द्वारा कड़ा विरोध किया गया था। इस लेखक ने गोंडवाना के राजा का उल्लेख किया है, साथ ही बगलाना के राजा का विवरण भी प्रायः आया है। बम्बई के निकट पाये गये तांबा की प्लेट पर खुदे हुये एक भूमि के दानपत्र[1] के द्वारा यह पता लगता है कि एक राजा सालसिट द्वीप में १०१८ ई० के आसपास शासन करता था और जो कि तगारा के राजवंश से सम्बन्धित होने का दावा करता था। इसी आशय का तांबे की प्लेट पर खुदा हुआ एक और दानपत्र[2] सतारा में मिला है जिस के अनुसार सन् ११९२ ई० में पन्हाला में एक राजा था जिसके आधिपत्य में काफी विस्तृत क्षेत्र[3]

---

* १ 'एशियाटिक रिसर्चेज़' पहला भाग, पृष्ठ ३५७।

२ 'ट्रांजेक्शन्स ग्राफ बाम्बे लिटरेरी सोसाइटी' तीसरा भाग।

३ कहा जाता है कि इस राजा ने निम्नलिखित १५ किले बनवाए थे—(१) पवनगढ़

था। देश में प्रचलित लोककथाओं के अनुसार सतारा के उत्तर में महादेव पहाड़ियों की श्रेणी से लेकर कोल्हापुर के दक्षिण में हिरण्यकेशी नदी तक उसका राज्य फैला हुआ था। उसके राज्य क्षेत्र में सदाशिव गढ़ तक कोंकण के दक्षिण का समस्त भूभाग सम्मिलित था।

यह राजा भी अपने को तगारा के राजवंश से ही सम्बन्धित मानता था। इन कथाओं के अनुसार संगिन् नाम के एक राजपूत राजा ने उसके राज्य को हड़प लिया था। उस समय उसकी सेनायें पन्हाला को तहस-नहस कर रहीं थीं। जिस स्थान पर उसकी छावनी थी, वह स्थान, कहा जाता है कि सतारा से दक्षिण में महासुरम् के पास स्थित पुसासावली से सटा हुआ है।

राजा संगिन् पूर्णतः अपनी जड़ जमाने के पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो गया और पन्हाला के राजा भोज का राज मराठा शासकों के हाथ में पड़ गया। पूना से लेकर वारना तक कोंकण घाट माथा सिरके नाम के परिवार से सम्बन्धित हैं जिन्होंने राजा की पदवी ग्रहण की और अब भी महाराष्ट्र के ऊँचे परिवारों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

यूरोप निवासी सामान्यतः मानते हैं कि मुस्लिम विजय के बहुत पहले ही से भारत छोटे छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। सम्भव है कि भविष्य की गवेषणाओं से ऊपर दी हुई राजाओं की सूची में वृद्धि कर सकें और यूरोप-वासियों के इस सामान्य विचार की पुष्टि कर सकें।

इस प्रकार की गवेषणाओं का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण लाभ यह होगा कि शायद इससे मालगुजारी निर्धारित करने तथा वसूल करने के ढंग तथा इस समय देश में प्रचलित विभिन्न संस्थाओं की उत्पति के विषय में भी कुछ पता लग जायगा। इन विषयों का कुछ संक्षिप्त वर्णन यहां दे देना आवश्यक है क्योंकि पाठकों को इस सम्बन्ध में कुछ प्रारम्भिक जानकारी रखना अत्यन्त ही आवश्यक है। इससे उन्हें विभिन्न कालों में देश की परिस्थितियों को समझने में सहायता मिलेगी। इससे उन कारणों का भी पता लग जायगा जिनका सहारा लेकर मराठों ने धीरे धीरे भ्रष्ट एवं लापरवाह मुसलमानों पर छलपूर्वक आक्रमण करना प्रारम्भ किया।

महाराष्ट्र में, साथ ही पूरे भारतवर्ष में, उनकी जाति व्यवस्था के अतिरिक्त एक चीज और महत्वपूर्ण है। देश की राजनैतिक व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण अंग है पूरे देश का छोटे छोटे गाँवों में विभाजित होना जिनमें से प्रत्येक गाँव एक भिन्न समुदाय का सा है।

दक्षिण में एक स्थान पर स्थित कुछ परिवारों के समूह को गाँव कहते हैं। यदि इस गाँव के पास अपना बाजार भी होता है तो इसे कस्बा कहते हैं, और यदि बाजार न हुआ तो मौजा कहते हैं। संगठन की दृष्टि से प्रत्येक गाँव एक छोटे राज्य की भाँति होता है। दुर्गम पहाड़ी भाग या वीरान बंजरों के अतिरिक्त सभी भूमि एक गाँव से सम्बन्धित होती है। गाँव के अधिकार की भूमि की सीमाएँ निश्चित होती हैं जिसमें किसी भी प्रकार के अनुचित प्रवेश या हेरफेर पर प्रतिबन्ध रहता है। समस्त कर्षण (कृषि) योग्य भूमि अलग अलग खेतों में बाँट दी जाती है। प्रत्येक खेत का एक अलग नाम रक्खा रखा जाता है। खेत का नाम तथा उसके स्वामी या जोतने वाले का नाम पंञ्जीकृत कर लिया जाता है। गाँव के निवासी प्रायः कृषक होते हैं जो या तो अब मीरासदार † हैं या ऊपरी ‡ है। उन के नाम

---

(२) पन्हाला (३) भद्रगढ़ (४) देवगढ़ (५) विशालगढ़ (६) सामनगढ़ (७) राँगना (८) वसन्तगढ़ (९) सतारा (१०) चन्दन (११) वन्दन (१२) नन्दगिरि (१३) शिवगढ़ (१४) पान्डुगढ़ (१५) विरत गढ़। जहाँ तक मैं जानता हूँ भद्रगढ़ को छोड़ कर शेष सभी अब भी इन्हीं नामों से पुकारे जाते हैं।

† मीरासदार एक मुसलमानी शब्द है यद्यपि समानार्थी मराठी शब्द से यह अधिक प्रचलित है। यह एक प्रकार के कृषि सम्बन्धी बन्दोबस्त से भूमि प्राप्त करता है।

‡ ऊपरी का अर्थ अजनबी है और यहाँ पुश्तैनी कृषक के विपरीत अर्थ में प्रयोग किया गया है।

बन्दोबस्तों के लिए प्रयोग किए जाते हैं जिनके अनुसार कृषक खेत पर अपना स्वामित्व रखते हैं। ऊपरी कृषक एक अस्थायी कृषक है। शासन की इच्छा ही उसे भूमि का स्वामी बना सकती है या भूमि विहीन कर सकती है। उसके विपरीत मीरासदार पुश्तैनी कृषक हैं। जब तक वह निर्धारित मालगुजारी अदा करता रहता है, सरकार उसकी भूमि नहीं छीन सकती। गांव में मीरासदार को विशेष सुविधाएँ एवं सम्मान प्राप्त होता है; उसके पास एक बहुत ही महत्वपूर्ण अधिकार है। वह कृषि पर अपने स्वामित्व का परिवर्तन कर सकता है या उसे बेच सकता है। मीरासदार को अपने स्वामित्व को हस्तान्तरित करने का अधिकार ही इस बात को सिद्ध करता है कि उस समय में भूमि पर कर भार अपेक्षाकृत कम रहा होगा। बृटिश भारत के विभिन्न भागों में इस प्रश्न पर समय-समय पर काफी विवाद हुआ कि वास्तव में भूमि का स्वामी कौन है राजा या मीरासदार। समूचे मराठा प्रदेश के लोग यह मानते है कि पूर्व काल में उस देश में मीरासदारी प्रथा ही चालू थी।

कृषकों एवं कृषि कार्य से सम्बन्धित अन्य व्यक्तियों के अतिरिक्त गांव की आबादी के अनुपात में गांव में अन्य जाति तथा व्यवसाय के लोग भी रहते हैं, पटेल, कुलकर्नी, छागला तथा अन्य २४ जाति के लोग जिन्हें वारह बलवते तथा वारह[†] अलवते कहते हैं, मिलकर गांव का आर्थिक व सामाजिक संगठन पूर्ण करते हैं। ये २४ व्यक्ति विभिन्न व्यवसाय या देशों के होते हैं। कला-शिल्प, सार्वजनिक सेवा, धार्मिक व्यवस्था तथा मनोरंजन आदि ही इनके कार्य हैं। इसी दृष्टि से बहुत कम गांव पूर्ण कहे जा सकते हैं।

[†] सामान्य मराठा मत के अनुसार १२ बलवते और अलवते निम्नलिखित हैं:—
१२ बलवते का मुखिया बढ़ई होता है, दूसरा लुहार, तीसरा मोची या चमार, चौथा महरा या देग। मंग को छोड़ कर महरा संकर जाति की निम्नतम श्रेणी में माने जाते हैं परन्तु गाँव की व्यवस्था में उसके कर्तव्य बहुत महत्व पूर्ण होते हैं। महरा प्रायः पथप्रदर्शन या चौकीदारी का कार्य करता है, वह यात्रियों के घोड़ों की सेवा करता है और आवश्यकता पड़ने पर उनका सामान भी ढोता है। वह गाँव की सरहदों का प्रमुख पहरेदार है। इस प्रकार महरा जाति महाराष्ट्र की बहुत ही क्रियाशील, उपयोगी और बुद्धिमान जाति है। पांच मंग हैं जो कृषकों के प्रयोग के लिए चमड़े की रस्सियाँ, कोड़े आदि बनाता है। वे भी प्रायः चौकीदारी का कार्य करते हैं। वैसे इनका सामान्य पेशा चोरी और डाकाजनी है। अवसर पड़ने पर ये किराये के हत्यारों के रूप में भी कार्य करते हैं। जब ये कहीं डाका डालते हैं तो हत्या करने में भी नहीं हिचकते। इनमें महरों जैसी बुद्धि नहीं होती। ये दोनों मरे हुए एवं रोगों से ग्रासित पशुओं का मांस खाते हैं। छठा कुम्हार है; सातवाँ नाई और आठवाँ धोबी है। नवाँ वर्ग गारू लोगों का है जो शूद्र होते हैं। ये गांव के मन्दिर की सफाई रखते हैं, आभूषणों को साफ करते हैं और भोज आदि के अवसर पर पत्रावली (पतरी) तैयार करते हैं। वे ढोल तासे भी बजाते हैं और इस कार्य के लिए मराठों की सेनाओं में भी भर्ती होते हैं। दसवाँ स्थान जोशी का है जो ब्राह्मण होता है, यह जन्म कुण्डली बनाता है तथा ग्रह नक्षत्रों के आधार पर शुभ अशुभ दिनों की भविष्यवाणी करता है। ग्यारहवाँ वर्ग भाट का है। बारहवाँ महत्वपूर्ण व्यक्ति मौला या मौलाना है जो कि मस्जिद तथा मुसलमान फकीरों की कब्रों की देखभाल करता है और मस्जिद से सम्बन्धित गुजारे के लिए प्राप्त भूमि की व्यवस्था करता है। मुसलमान परिवारों के विवाह सम्पन्न कराना उसी का कार्य है यद्यपि गाव में प्रायः उसके अतिरिक्त अन्य मुस्लिम परिवार नहीं रहते। मन्दिरों में हिन्दुओं द्वारा बलि किए जाने वाले भेड़ बकरों को काटने का भी कार्य करता है। वह खटिक के लिए भी भेड़ बकरे काटते हैं। कुछ लोग खटिक को कसाई भी कहते हैं; पर वह खाल तथा मांस साफ करके बेचता है। मौलाना खटिक के लिए काटे गए प्रत्येक जीव की कलेजी का हकदार होता है। सामान्यतः मराठा तभी मांस खाते हैं जब मौलाना-नियत पढ़कर उस मांस को हलाल या उचित करार देता है। हिन्दुओं द्वारा इस मुस्लिम रीति का

कोंकण के पर्याप्त भागों में ये किसान जो खेतों के पुश्तैनी मालिक हैं, वे एक सरपंच का पद ग्रहण करते हैं। परन्तु देश के उत्तरी भाग में हर गांव में एक पटेल और एक कुलकर्नी होता है। इस बड़े गांव में एक भाट, ज्योतिषी या जोषी, बढ़ई, लुहार, नाई और चौकीदार रहते हैं। छोटे गाँव में ऐसे दो ही चार महत्वपूर्ण लोग रहते हैं।

पटेल गांव की व्यवस्था करने वाला प्रधान व्यक्ति होता है। उसका सहकारी छागला होता हैं, ये दोनों प्रायः जाति के शूद्र होते हैं। महाराष्ट्र के कुछ पटेल अपने को राजपूतों का वंशज कहते हैं; परन्तु कोई भी बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती क्योंकि ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं कि इन लोगों नेकिसी जाति से यह पद खरीद लिया है। हिन्दुओं के उत्तराधिकार विधान के अनुसार पटेल का पद एवं अपने वेतन या क्षेत्र को बेचने को उसका अधिकार विभिम्न परिवारों में दो, चार या अधिक भागों में बँट जाता है। जिस परिवार के मालिक के पास कोई ऐसा हक है तो उसके परिवार के सभी सदस्य अपने को पटेल कहते हैं। जिस पटेल के अधिकार में गांव की पूरी व्यवस्था का अधिकार रहता है उसे मुकद्दम कहते हैं। इसी प्रकार एक कुलकर्नी परिवार के सभी सदस्य अपने को कुलकर्नी कहते हैं। उत्तराधिकारी से प्राप्त होने वाले सभी इस प्रकार चलते हैं।

पटेल के बाद दूसरा मुख्य पुरुष कुलकर्नी होता है जिसका कार्य गांव से सम्बन्धित कागजातों की व्यवस्था करना है। कुलकर्नी प्रायः ब्राह्मण ही होता है। पर यह आवश्यक नहीं है; सुनार, दर्जी आदि जाति के लोग भी इस पद पर पाए गये हैं। ब्राह्मण इस सांसारिक व्यवसाय को अपनाने का यह कारण बताते हैं कि अब लोग इतने दुराचारी और भ्रष्ट हो गये हैं कि ब्राह्मणों को पर्याप्त दान नहीं प्राप्त होता, और पेट की समस्या को हल करने के लिये ब्राह्मणों को दो रोटी प्राप्त करने का कोई न कोई साधन निकालना ही पड़ता है।

ग्रहण करना एक आश्चर्यजनक बात है। मौलाना को भी अन्य प्रजाओं की तरह वार्षिक या मौसमी भत्ते मिलते हैं।

१२ अलवते निम्म लिखित हैं। (१) सुनार सिक्कों की परख करता है और सोने चाँदी के आभूषण बनाता है। (२) जंगम या लिंगायत वर्ग का गुरु; (३) दर्जी, (४) कोली या पानी भरने वाला, (५) तुरेल ये महरों से मिलते जुलते हैं। यह उनका कर्तव्य है कभी भी गाँव की सरहद न छोड़े। वह सदैव पटेल के अधीन रहता है और अतिथियों या यात्रियों के गाँव में प्रवेश करने के क्षण से ही उनकी सेवा में लग जाता है। यह यात्रियों को आवश्यक सूचनाएँ तथा सामान प्रदान करता है और उनके लिए हर प्रमार से उपयोगी सिद्ध होता है। (६) माली (७) डौड़ी जो कि डोंड़ (एक प्रकार की बड़ी ढोल) पीटता है, (८) गुरसी जो बाजा बजाते हैं, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ये भीमा और कावेरी नदी के बीच स्थित दण्डकारण्य के आदि-निवासी माने जाते हैं। (९) रमूही या भील यद्यपि इनके कार्य एक ही हैं पर ये विभिन्न जाति के हैं, पर व्यवहार में वे परस्पर मिलते-जुलते हैं। ये दोनों जाति से चोर होते हैं। रमूसी विशेषतः महाराष्ट्र से सम्बन्धित हैं। महाराष्ट्र में भील लोग खानदेश सह्याद्रि की श्रेणियों के समीप ही मिलते हैं। गांवों में वे प्रायः चौकीदारी करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर पुलिस का कार्य भी सम्भालते हैं. परन्तु कमजोर शासन के अन्दर या अराजकता के समय वे चोरी करना और डाके डालना प्रारम्भ कर देते हैं। रमूसी लोग प्रायः बन्दूक का भी प्रयोग करते हैं और भील धनुष बाण का। भील अपेक्षाकृत बन्जारों की तरह ही रहते हैं। भील नर्बदा नदी के उत्तरी भाग में और गुजरात के अधिकांश भाग में फैले हुए हैं। (१०) तेली या तेल बेचने वाला, (११) तमोली या पान वाला, (१२) गोंडुली [illegible] वाले।

गांव का पटेल गांव की उचित व्यवस्था करने के लिये इन विभिन्न वर्गों की सहायता प्राप्त करता है जिनका वर्णन ऊपर किया गया है। उनकी सेवाओं का मूल्य उन्हें भूमि, अन्न या द्रव्य के रूप में चुकाया जाता है; समुदाय या गाँव के नियमानुसार प्रत्येक व्यक्ति के जिम्मे एक हिसाब से कुल अदा किये जाने वाले द्रव्य को हिस्सों में बाँट दिया जाता है।

पटेल कृषि का निरीक्षण करता है, तथा पुलिस गाँव की सुरक्षा की व्यवस्था करता है, और विशेष अवसरों पर ग्रामवासियों के मनोरजन तथा सुरक्षा के लिये द्रव्य प्रदान करता है। कोई विवाद उठ खड़ा होने पर जब पड़ोसियों द्वारा परस्पर समझौता नहीं हो पाता तो उस विवाद या झगड़े को पटेल के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। पटेल विवाद पर अपनी राय देता है, अनुचित कार्य करने वाले पक्ष को चेतावनी देता है और दोनों दलों में समझौता कराने का प्रयत्न करता है। परन्तु यदि वह आवश्यक समझता है तो विवाद सम्बधी परिस्थितियों से भिन्न-व्यक्तियों की एक बैठक बुलाकर उस विवाद को उनके समक्ष विचार के लिये रख दिया जाता है। इस बैठक को पंचायत कहते हैं। इन पंचायतों में प्रायः ५ व्यक्ति होते हैं जिन्हें पंच कहा जाता है। यही गांव के दीवानी (सिविल) शासन की साधारण रूप रेखा है। फौजदारी या मारपीट या हत्या के अपराधों में अपराधियों पर अर्थ दण्ड लगाने, कारावास का दंड या शारीरिक दण्ड देने का अधिकार पटेल को नहीं है, यद्यपि, मराठा शासन के अन्तर्गत पटेलों द्वारा कुछ इस प्रकार के अधिकारों का प्रयोग करने के उदाहरण प्राप्त होते हैं। इस प्रकार की कोई वारदात होने पर अपने से श्रेष्ठ अधिकारी के पास उसका विवरण पहुंचाना और अपराधियों की खोज करके उन्हें उच्च अधिकारी के हवाले करना पटेल का कर्तव्य ही है।

यद्यपि 'पटेल' शब्द अरबी या फारसी भाषा का नहीं है, परन्तु महाराष्ट्र के ब्राह्मण यह मानते हैं कि यह शब्द मुसलमानों द्वारा ही प्रचलित किया गया है। पटेल के लिये प्राचीन काल के हिन्दुओं में 'गौड़' नाम प्रचलित था; और गाँव की व्यवस्था करने वाले पटेल या मुकद्दम को 'ग्रामाधिकारी' कहा जाता था। कुलकर्नी के लिए पहले 'ग्राम-लेखक' का प्रयोग किया जाता था। पटेल और कुलकर्नी का एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है मालगुजारी तहसीलने की व्यवस्था करना। गाँव से सम्बन्धित सभी कागजातों का विवरण लिखा जाता है; तत्पश्चात् गाँव की स्थिति, सड़कों तथा सभी कृषि के अयोग्य बेकार की भूमि का वर्णन रहता है। इसके बाद कृषि योग्य भूमि का लेखा रहता है।

इसके पश्चात् उस भूमि का विवरण दिया जाता है जिस पर सरकार को मालगुजारी दी जाती है। इस विवरण के साथ ऐसी भूमि की उपज के अनुमानित आंकड़े भी दिये रहते हैं। शास्त्रों के विधान के अनुसार प्रजा या कृषक द्वारा कुल कृषि उपज का छठवाँ भाग राजा को दिया जाना चाहिये परन्तु यह प्राचीन नियम अब व्यवहार में नहीं दिखाई पड़ता, और लगान निर्धारण करने तथा वसूल करने के कई तरीके प्रचलित हो गये हैं। विभिन्न शासक अपनी बुद्धि तथा आवश्यकतानुसार अपनी नीतियों के अनुसार लगान की दर बदलते रहते हैं।

महाराष्ट्र के गाँवों में राजस्व का अधिकांश भाग भूमि के लगान से ही प्राप्त होता है। पर राजस्व के दो प्रमुख मद और भी है; एक को अतिरिक्त कर कहा जा सकता है और दूसरे को चुंगी या महसूल। पहले मद के सभी तरह के अन्य करों को सम्मिलित किया जाता है, और इस आय तथा मालगुजारी द्वारा प्राप्त आय के योग को जमाबन्दी कहा जाता है। अतिरिक्त कर न तो अधिक ही होते है और न महत्वपूर्ण ही, यद्यपि उनमें कई-कई छोटे-छोटे कर तथा आयके मद सम्मिलित हैं। परन्तु चुंगी अपेक्षाकृत अधिक उलझी हुई प्रकृति की है। जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, गाँवों को प्रायः मौजा या कस्बा कहते हैं; कोई बड़ा गाँव बिना अन्य गाँवों को सम्मिलित किये ही कस्बा माना जा

सकता है परन्तु प्रायः ५ से २५ गाँवों को मिलाकर एक कस्बा * बनता है। कस्बे को ही सबसे छोटा केन्द्र मानकर अन्तर्देशीय उलझे हुये महसूल देशी प्रशासन द्वारा लगाये जाते हैं जो कि शायद किसी पुराने हिन्दू विधान के आधार पर निर्धारित किये जाते हैं।

विभिन्न भत्तों के अतिरिक्त पटेल, कुलकर्नी तथा छागला मिलकर गाँव की बिना लगान वाली भूमि का २५वाँ भाग प्राप्त करते हैं। इस देश के विद्वान् एवं विचारवान् व्यक्तियों का अनुमान है कि प्राचीनकाल में सरकारी उच्च कर्मचारियों के निरीक्षण में यही स्थानीय कर्मचारी अन्न तथा वस्तु के रूप में मालगुजारी वसूल करते थे। उस समय राजा तथा इन स्थानीय कर्मचारियों के बीच के अधिकारी किस नाम से पुकारे जाते थे यह अभी तक निश्चित नहीं हो सका है, परन्तु वर्तमान समय में कई गाँवों से मिलकर बने हुये एक जिले में सदैव दो अधिकारी होते हैं जो उत्तराधिकार से अपने पद प्राप्त करते हैं। उनमें से एक को देशमुख, देसाई या जमीन्दार कहते हैं और दूसरे अधिकारी को देशपान्डे, देशलेखक या कानूनगो कहते हैं। प्रायः अब दोनों अधिकारी स्वयं को ही जमीन्दार ही कहते हैं; परन्तु महाराष्ट्र में देशमुख और देशपान्डे के नाम का ही अधिक प्रचलन है। उनके अधिकार भी मुस्लिम काल में उनके जिलों के सम्बन्ध में पटेल और कुलकर्नी के थे। महाराष्ट्र में प्रायः देशमुख और पटेल सम्पूर्ण मराठा जाति के हैं जबकि अधिकांश देशपांडे और कुलकर्नी ब्राह्मण ही हैं। देशमुख और देशपांडे जिले के विभिन्न भागों के भूमि के एक भाग की उपज का उपभोग करते हैं। भूमि का यह भाग कुल कृषि योग्य भूमि का २० वां भाग या ५ प्रतिशत भाग भी वे अपने लिये वसूल करते है। ये दोनों वसूलियाँ अलग-अलग होती हैं और फिर वे हिसाब लगाते हैं कि वास्तव में कितना वसूल होना चाहिये। यह वर्णन केवल इसलिये किया गया है कि इससे इन अधिकारियों के अतिरिक्त आय का अनुमान लगाया जा सके, यद्यपि इस आय की मात्रा सर्वत्र एक ही नहीं है। उनके अधिकार में कई प्रकार की अन्य वसूलियाँ भी हैं जिनकी गणना आवश्यक नहीं है। देशपान्डे को देशमुख को दिये जाने वाले धन, वस्तु या भूमि तथा अन्य भत्तों का आधा मिलता है।

---

* हर कस्बे पर उनकी विशेषताओं एवं धन्धों के अनुसार महसूल लगाये जाते हैं। किसी भी कस्बे से निर्यात की जाने वाली तथा कस्बे द्वारा आयात की जाने वाली वस्तुओं पर कर लगता है। इस प्रकार कस्बे के निवासियों के लिये महसूल की दर कुछ और दर है। कस्बे से सम्बन्धित मौजे के निवासियों के लिए कुछ और है, किसी दूसरे कस्बे के व्यक्ति के लिए कुछ और ही है। नगरों में या बड़े शहरों में हर वस्तु का बाजार अलग लगता है, ऐसे बाजारों के समूह को पेठ कहते हैं। निर्यात चुंगी दो तरह की होती हैं; एक जो गांवों से एकत्रित होती है और दूसरी जो देश से बाहर जाने वाली वस्तुओं पर लगती है। देश भर की वसूल की जाने वाली चुंगी नकद अदा होती है। यह वसूली, कम से कम मुस्लिम काल से, सरकार के ही मातहत थी। कस्बे की महसूल की वसूली के नियम बहुत ही उलझे हुए हैं। सरकार द्वारा नियुक्त सरकारी कर्मचारी इस महसूल में से, जो अन्न या वस्तु के रूप में वसूल किया जाता है अपना हिस्सा भी लगाते हैं। बहुत से व्यक्ति चुंगी के आधार पर पेन्शन भी पाते हैं, उस पेन्शन का रूप होता है––किसी वस्तु का थोड़ा सा हिस्सा ले लेना या किसी विशेष स्थान पर प्रत्येक विक्रेता से उसकी वस्तुओं में से कुछ भाग निकाल लेना। यह अधिकार धीरे-धीरे पुश्तैनी हो जाता है, और ये नियम कुछ अन्तर के साथ, हिन्दुओं की प्रत्येक सम्पत्ति पर लागू होते हैं।

महाराष्ट्र में, जहाँ तक प्रामाणिक विवरण प्राप्य हैं, व्यापार से प्रशासन के लिए कम महत्व-पूर्ण चीज माना जाता है।

देशमुख * और देशपान्डे की उत्पत्ति के विषय में बहुत से अनुमान किये जाते हैं। शायद वे हिन्दू राज्यों में पूर्व प्रचलित पद थे, और इतना प्राचीन हैं जितना कि ग्राम-संगठन या जाति विभाजन। जिस प्रकार गाँवों में ग्रामाधिकारी और ग्राम लेखक थे उसी प्रकार शायद जिले में देश लेखक और देशाधिकारी ही मुख्य रूप से प्रबन्ध के लिये उत्तरदायी थे। याज्ञवल्क्य द्वारा लिखित † विज्ञानेश्वर

---

* मुसलमान इस नाम को अपनी ही भाषा से बना हुआ सिद्ध करते हैं; वे 'दस' का अर्थ १० की संख्या से लगाते हैं और मुख का अर्थ मुट्ठी से, उनके अनुसार देशमुख वह है जो उपज का दसवाँ भाग हस्तगत करे। हिन्दुस्तानी में देशमुख का अर्थ होता है देश का मुखिया या प्रधान; मराठे मानते हैं कि मुख का अर्थ मुंह है, मुखिया नहीं, अर्थात् देशमुख एक जिले की भावनाओं और विचारों को व्यक्त करने वाला व्यक्ति होता है। बहुत से अंग्रेजों ने मुस्लिम व्याख्या को ही ग्रहण किया है।

† यद्यपि अन्य हिन्दू पदों की तरह देशाधिकारी का पद भी उत्तराधिकार द्वारा चलने की ही सम्भावना ही अधिक है, पर इस सम्भावना के पक्ष और विपक्ष में तर्क दिए जा सकते हैं। चूंकि हिन्दुओं के प्रत्येक पद व अधिकारों का प्रामाणिक विवरण देना ही इस पुस्तक का उद्देश्य है इसलिये मैं पाठकों के समक्ष दोनों तरह के तर्क रख देता हूँ। अधिकारी एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ 'किसी कार्य का प्रधान' होता है। यह शब्द राज्य के प्रधानमंत्री, उसके द्वारा नियुक्त कर्मचारियों या राजा द्वारा नियुक्त कर्मचारियों में से किसी के लिए प्रयोग किया जा सकता है, इस शब्द का अर्थ किसी वस्तु या सम्पत्ति पर किसी व्यक्ति विशेष के स्वामित्व से भी लगाया जा सकता है जो प्रायः उत्तराधिकार से प्राप्त होता है, इस प्रकार अधिकारी का अर्थ स्वामी, उत्ताराधिकारी या किसी सुविधा को प्राप्त करने वाला हो सकता है। यह शब्द शासन द्वारा नियुक्त राजस्व से सम्बन्धित कर्मचारियों के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार नाम से ही स्पष्ट है कि देशाधिकारी का पद उत्तराधिकार पर आधारित था और ग्रामाधिकारी की भांति देशाधिकारी भी उस समय के प्रशासन का मुख्य निरीक्षक था।

देशाधिकारी के देशमुख से भिन्न तथा श्रेष्ठ होने का प्रश्न भी विचाराधीन है। वर्तमान समय में भी मराठे उपयुक्त संस्कृत शब्द न मिलने पर मुस्लिम शब्दों एवं सम्बोधनों का ही प्रयोग अपने पत्रों तथा सरकारी कागजातों में करते हैं। किसी गाँव की भूमि का कोई भाग इनाम या बिना लगान के देने के अवसर पर चार भिन्न सनदें या दान पत्र लिखे जाते हैं। पहली सनद इनाम पाने वाले व्यक्ति के या संस्था के नाम होती है जिसके अनुसार वह व्यक्ति व उसके उत्तराधिकारी सदैव के लिए उसके अधिकारी माने जाते हैं; दूसरी सनद गाँव के पटेल के नाम, तीसरी देशमुख या देशपान्डे के नाम और चौथी देशाधिकारी के नाम लिखी जाती है। प्रथम तीन सनदों में सम्बन्धित दल को ही सम्बोधित किया जाता है पर चौथी में 'राज श्री देशाधिकारी व लेखक वर्तमान' को सम्बोधित किया जाता है। मुस्लिम सनदों में 'वर्तमान' के स्थान पर 'हाल इस्तकबाल' का प्रयोग हुआ है, और इसके लिए मराठों ने संस्कृत शब्दों का प्रयोग शायद ही कभी किया है। जो देशमुख के अधिकारों की प्राचीनता के पक्ष में हैं, वे इस सम्बोधन को सरकार के उन वर्तमान तहसीलदारों के लिए प्रयोग किया हुआ मानते हैं जो कि देशमुखों का स्थान ग्रहण करते हैं। कुछ अन्य लोग पटेल व राजा के बीच किसी उत्तराधिकार से प्राप्त होने वाले पद का अस्तित्व नहीं स्वीकार करते। इनके अनुसार वर्तमान समय के देशमुख और देशपान्डे के पद मुसलमानों द्वारा दक्षिण में प्रथम विद्रोह करने के समय प्रचलित हुए थे। बादशाह के विरुद्ध नायकों, पालगरों को मिलाने के लिए उन्होंने ऐसे सभी पदाधिकारियों एवं देशाधिकारियों को उनके जिलों में विशेष अधिकार दिए थे। इसके पक्ष में एक दिलचस्प दलील दी जाती है—दक्षिण के मुस्लिम शासकों के बहुत पुराने फरमानों में देशमुख को उसके वतन या क्षेत्र में पर्याप्त अधिकार दिए जाने की बात है। ये पद या तो वहमनी वंश के लोगों की सेवा के

शास्त्र में यह लिखा हुआ मिलता है कि ग्रामाधिकारी के आदेश द्वारा पंचायत की अपील देशाधिकारी के यहाँ की जाती थी; इस प्रकार तो यह स्पष्ट हो जाता है कि देशाधिकारी का अस्तित्व पहले भी था परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि वे अधिकार द्वारा पद प्राप्त करते थे या उन्हें इस तरह की भूमि और धन आदि मिलते थे जैसा कि दक्षिण के मुस्लिम शासन के अन्तर्गत देशमुख पाते थे ।

यदि इस प्रकार देखा जाय तो देशमुख के पद का अस्तित्व महाराष्ट्र में वहमनी राजवंश के उदय के साथ, प्रारम्भ हुआ, भले ही उसके पहले यह पद प्रचलित न रहा हो । परन्तु जब हिन्दू राज्यों ने मुस्लिम राज्यों पर आधिपत्य जमाया तो देशमुखों को अपने देश पर उतना अधिकार नहीं रह गय। जितना कि उन्हीं के कोटि के अधिकारियों के पास अंग्रेजी शासन के अंतर्मत बंगाल के स्थायी बन्दोबस्त के अनुसार दिया गया था । यह बन्दोबस्त, भारत की अन्य भूमि व्यवस्थाओं से भिन्न है और इसे जमींदारी प्रथा कहते हैं ।

उनकी उत्पत्ति जैसे भी हुई हो परन्तु महाराष्ट्र के शासकों के हाथ में यह एक बहुत बड़ा राजनैतिक अस्त्र था कि वे अवसर पड़ने पर इन अधिकारियों के अधिकारों को सीमित दर असीमित कर देते थे । चाहे ये शासक विदेशी रहे हों या देशी, और चाहे देशाधिकार केवल वैतनिक कर्मचारी या पुश्तैनी रहे हों, पर इसमें कोई शंका नहीं है कि मुस्लिम विजय के पूर्व इनके पास कई विषयों के संबन्ध में, कम या अधिक, अधिकार रहते थे, साथ ही साथ उनकी स्वतन्त्रता में भी वृद्धि होती रही जैसा कि नायक, * पालगर या राजा आदि नामों से ज्ञात होता है ।

बस्तियों एवं संस्थाओं के इस वर्णन से पाठकों को आगे सहायता मिलेगी; साथ ही एक महत्वपूर्ण बात उनके हृदय में पूर्णतः दृढ़ हो जायगी कि उत्तराधिकार से प्राप्त होने वाली जिले या गाँव की भूमि का अंश, या अन्य आय के साधनों को प्राचीन हिन्दू प्रशासन में वृत्ति † कहा जाता था । महाराष्ट्र भर में अब ऐसी बस्तियों को वतन ‡ और इस प्रकार के अधिकारों को ग्रहण करने वाले व्यक्ति को वतनदार कहा जाता है । यह पदवी बहुत सम्भावित मानी जाती है ।

लिए दिए गए हैं, या दावेदारों की इस प्रार्थना पर दिए गए हैं कि किसी राजा द्वारा जिसने सिंहासन पर बैठने पर अपने वादे के अनुसार न चलकर किसी अन्य व्यक्ति को पद दे दिया है, और प्रार्थी का भी उस पद पर हक है; इसलिए प्रार्थी को वह पद दिया जाय । जाँच करने पर मुझे पता चला है कि ये फरमान जाली हैं और गलत, परन्तु प्रचलित मुस्लिम विचार के अनुसार बने हैं और इनका उद्देश्य बीजापुर के राजाओं और उनके कर्मचारियों पर अनुचित दबाव डालना है । ऐसे पदाधिकारियों के पास इन फरमानों का होना सिद्ध करता है कि वे अपने उद्देश्य में सफल रहे । देशमुख उससे कहीं अधिक पुराने है जितना कि कुछ विद्वान बताते हैं । 'पालिटिकल एनालिसिस' में देशमुख के अस्तित्व के प्रारम्भ का समय अकबर के शासनकाल में माना है ।

देशमुख एवं देसाई की प्राचीनता के पक्ष में एक और महत्वपूर्ण प्रमाण लंका से मिलता है; इस कथन का तात्पर्य यह नहीं है कि लंका से उनका अस्तित्व प्रारम्भ हुआ था । परन्तु महाराष्ट्र में कोई भी ब्राह्मण आपको बता सकता है कि यहाँ के प्रख्यात वैद्य या चिकित्सक भीम पन्त ने लंका के राक्षस राजा रावण के भाई विभीषण का इलाज किया था और वहाँ से लौटने पर उसने लंका के राक्षसों से सीखी हुई कुछ कलाओं और लेखों का अपने देश में प्रचार किया था ।

*—नायक का अर्थ स्वामी होता है । मुसलमानों के अधीन रहने वाले सरदारों को (जो मराठा थे) नायक कहा जाता था ।

†—वृत्ति एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है आय का साधन ।

‡—वतन एक अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ 'देश' होता है ।

इन प्रारम्भिक वर्णनों के पश्चात् अब हम उस काल का अध्ययन करेंगे जब मुसलमानों ने पहले पहल दक्षिण भारत पर हमला किया था। उसी समय से मराठा प्रायः लुप्त हो गये और जब सत्रवहीं सदी में अचानक मराठों ने पहाड़ियों में से निकलकर उपद्रव करना शुरू किया, तो अन्य देशों ने अनुमान लगाना प्रारम्भ किया कि वे सम्भवतः किसी नई और अज्ञात जाति के लोग हैं। इस पुस्तक के लिखने के दो उद्देश्य हैं; प्रथम मुस्लिम शासनकाल में मराठों की स्थिति पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करना; द्वितीय पूर्णतः स्पष्ट रूप से अंग्रेजों के आने से पहले भारत में अपना सिक्का जमाने वाली मराठा जाति के उत्थान, प्रगति, पतन और विनाश का विवरण देना। इन मराठों की शक्ति जैसा कि हम आगे देखेंगे, बढ़ती ही गई और अन्त में इस जाति को छत्रपति शिवाजी जैसा एक बीर ,चतुर, महान साहसी एवं परम देशभक्त नेता मिला, जो आज भी संसार भर में विख्यात है।

दूसरा अध्याय

दक्षिण भारत में मुसलमानी राज्य की स्थापना

मुसलमानों द्वारा दक्षिण की विजय—उनका नर्मदा पार करके देवगिरि की तरफ बढ़ना—राज्य स्थापित करना—देवगिरि का नाम परिवर्तन करके दौलताबाद के नाम से भारत में मुस्लिम साम्राज्य की राजधानी बनाना—विद्रोह द्वारा दक्षिण में एक स्वतंत्र राज्य की नींव पड़ना—बहमनी वंश—इस वंश का शासन-काल—इस शासन में मराठों की स्थिति—अपने मुस्लिम शासकों के विरुद्ध मराठों के कुछ विद्रोह—भयानक अकाल—दुर्गादेवी—शहरों का वीरान हो जाना—पहाड़ी किले पालगरों और डाकुओं के अधिकार में—शान्ति स्थापित करने के लिए शासकों के प्रयत्न—दादू नरसू काली—उसका राजस्व प्रबन्ध—विद्रोहियों का दमन करने का दूसरा एवं तीसरा प्रयास—एक मराठा राजा द्वारा मुसलमानी सेना का विश्वासघात से कत्लेआम—सन् १४६६ ई० में कोंकण की पराजय—बहमनी वंश का पतन और पतन के कारण।

भारत में मुस्लिम विजयों के पहले ही मुसलमानों ने चोरी छिपे अचानक आक्रमण करके लूट पाट मचाना प्रारम्भ कर दिया था। उन्होंने दसवीं शताब्दी के अन्त में प्रथम बार अटक पार किया। इसके ३०० वर्ष बाद अचानक अलाउद्दीन खिलजी के नेतृत्व में ८००० घुड़सवारों ने नर्मदा नदी पार करके खानदेश को रौंदते हुए देवगिरि को घेर लिया।

उस समय रामदेव राव यादव नाम का राजा देवगिरि में राज्य कर रहा था। उसने नगर की रक्षा करने का कुछ प्रयत्न किया परन्तु पराजय के लक्षण देखकर उसने अलाउद्दीन से सन्धि कर ली इस सन्धि के अनुसार, उसके लौट जाने की शर्त पर राजा ने उसे कर देना स्वीकार किया। अभी इधर सन्धि की वार्ता चल ही रही थी और मुसलमान भी शर्त के अनुसार लौटने वाले ही थे कि राजा रामदेव के लड़के ने एक सेना संगठित करके देवगिरि की तरफ कूच कर दिया। सन्धि के बावजूद भी अपने पिता के वचनों की अवहेलना करके उसने अलाउद्दीन के पास एक बहुत ही अपमान जनक पत्र भेजा जिसके परिणामस्वरूप तुरन्त युद्ध प्रारम्भ हो गया। यद्यपि प्रारम्भ में युद्ध की स्थिति शंकाजनक रही, परन्तु हिन्दुओं की पूर्ण रूप से पराजय हुई।

इस घटना के बाद राजा को अपने पुत्र के इस कपटपूर्ण कार्य के लिये मँहगी कीमत चुकानी पड़ी। विजयी मुसलमानोंने अपनी माँग बहुत अधिक बढ़ा दी। राज्यके सम्पूर्ण कोष तथा एलिचपुर एवं इससे सम्बन्धित भाग को ले लेने के बाद ही अलाउद्दीन सन्धि की पुरानी शर्तों पर स्थिर रहने कों तैयार हुआ।

एक ही आक्रमण से इतना अधिक धन प्राप्त कर लेने पर अलाउद्दीन के हृदय में दिल्ली का सिंहासन हड़पने की लालसा जागी। इस प्रकार की प्रसिद्धि प्राप्त कर लेने के कारण लोग उससे आतंकित भी हो गये और फलतः उसने दिल्ली पर आसानी से अधिकार जमा लिया। अपने शासनकाल में उसने अपने विश्वाशपात्र सेनापति मलिक काफूर के नेतृत्व में तीन बड़ी सेनाएँ दक्षिण विजय के लिए भेजा। मलिक काफूर ने इन सेनाओं की सहायता से तेलंगाना को जीता, और महाराष्ट्र के अधिकांश भाग पर भी अधिकार कर लिया। साथ ही उसकी सेनाओं ने नर्मदा से कुमारी अन्तरीप तक पूरे क्षेत्र में लूट-पाट की और असीमित धन एकत्र किया।

अलाउद्दीन के शासन के अन्तिम वर्षों में उसके साम्राज्य में अव्यवस्था एवं अराजकता फैलनी

शुरू हो गई । उसकी मृत्यु के बाद दिल्ली-दरबार में भी तरह-तरह के षड़यंत्रों का जन्म हुआ और आन्तरिक व्यवस्था भी असंतुलित हो गई । इन कारणों से दक्षिण के निवासियों को फिर से हिन्दू राज्य स्थापित करने का अवसर मिल गया । देवगिरि के किले को छोड़कर शेष भागों में उन्हें सफलता भी मिल गई । बादशाह मुबारक ने एक बड़ी सेना लेकर देवगिरि पर हमला किया । इस पर हरपाल देव और अन्य राजा जो उसके सहायक थे, भाग निकले पर हरपाल देव का पीछा किया गया, उसे पकड़ लिया गया और बादशाह की आज्ञा से बड़े अमानवीय ढंग से जिन्दा उसकी खाल खींच लीं गई ।

सन् १३२३

तुगलकों के शासनकाल में दक्षिण पर एक और आक्रमण किया गया । यह आक्रमण गाजी तुगलक के पुत्र जूना खाँ के नेतृत्व में किया गया था । उसने तेलंगाना के मध्य तक प्रवेश किया और अन्त में सन् १३२३ ईसवी में उसकी सेनाओं ने तेलंगाना की राजधानी पर विजय प्राप्त किया । तेलंगाना और वारगल के पतन के फलस्वरूप वहां के बहुत से निवासी और प्रमुख सरदार भाग निकले जिसमें से दो सरदारों ने तेलंगाना की पराजय के १२ वर्ष बाद तुंगभद्रा के किनारे विजयनगर नामक नगर स्थापित किया, कुछ ही समय में यह नगर नर्मदा नदी के दक्षिण में एक शक्तिशाली राज्य के रूप में विकसित हो गया । *

जूना खाँ (बाद में मुहम्मद तुगलक) इस प्रकार युद्धों में सफलता प्राप्त करने के पश्चात् बड़ी शान से दिल्ली लौटा और सन् १३२५ में अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् उसने सिंहासन पर अधिकार प्राप्त किया तथा मुहम्मद तुगलक के नाम से सिंहासन पर बैठा ।

यह बादशाह अपने समय के इने गिने विद्वानों में से था, पर एक शासक की दृष्टि से वह बहुत ही क्रूर, जल्दबाज एवं आशाबादी था । उसे सिंहासन पर बैठे दो वर्ष भी नहीं बीते थे कि मुगल काफी शक्ति एवं उत्साह के साथ दिल्ली के दरवाजे तक आ पहुंचे, परन्तु जान बचा कर भागने के लिए उन्हें गहरी कीमत चुकानी पड़ी । कर्नाटक के अवशेषों तथा द्वारसमुद्र † का धन लेकर भी उसे सन्तोष नहीं हुआ । अपने खजाने को बड़ों के लिए उसने अनुचित साधनों का सहारा लिया जिससे कि जनता के शासन की न कोई साख ही रह गई न विश्वास ही रह गया । उसने चीन पर आक्रमण करने की एक योंजना बनाई जिसके फलस्वरूप उसकी एक भारी सेना व्यर्थ में समाप्त हो गई । उसने चाँदी के सिक्कों के स्थान पर उसी कीमत पर ताँबे की सांकेतिक मुद्रा चलाई परन्तु ऐसी मुद्रा के बदले में कोई भी सुरक्षित कोष नहीं रक्खा । उसने एक और मूर्खतापुर्ण एवं हानिकारक कार्य किया जिसके लिए इतिहासकार उसे सनकी मानते हैं । उसने दिल्ली के स्थान पर देवगिरि को अपनी राजधानी बनाया, जिसे बाद में उसने दौलताबाद नाम दिया, और दिल्ली की सारी जनता को देवगिरि में बसाया । यह स्थान परिवर्तन जबर्दस्ती कराया गया और शाही आज्ञा से पूरी दिल्ली जनशून्य हो गई । इस घटना से लोगों को बहुत असन्तोष हुआ और अव्यवस्था फैलगई जिससे साम्राज्य की जड़ें केन्द्र तक हिल गईं ।

पूरे राज्य में विद्रोह फैलने लगा । बादशाह मुश्किल से एक विद्रोह दबाता था कि तब्र तक उसे किसी दूसरे भाग से विद्रोह का समाचार प्राप्त होता था । अफगानों का घेरा पड़ने से तथा उत्तरी भारत की कुछ जातियों के आक्रमण से शाही सेना राजधानी से पर्याप्त दूरी पर इन हमलावरों से उलझी

---

*--विल्क्स लिखित 'हिस्टारिकल स्केचेज़'

†--कुछ विद्वान उसे कर्नाटक के राजा बलाल देव की राजधानी मानते हैं । अन्य लोग मानते हैं कि यह कर्नाटक का प्रमुख बन्दरगाह था, और कनारा में स्थित है । परन्तु इसकी स्थिति अब अज्ञात है; ऐसा ज्वार भाटा के कारण हुआ है ।

रही। इसी समय वारंगल के राजाने कर्नाटक की सेनाओं की मदद प्राप्त की और इन मुस्लिम आक्रामकों के विरुद्ध सकलतापूर्वक युद्ध किया और विजय प्राप्त की।

बादशाह इस समय दक्षिण पर पूर्ण आधिपत्य जमाने के उद्देश्य से एक बहुत बड़ी सेना का संगठन करने में व्यस्त था। अचानक एक विद्रोह उठ खड़ा हुआ जिसके कारण नर्मदा नदी के दक्षिण में कई स्वतंत्र मुस्लिम राज्यों की नीव पड़ी। यह विद्रोह गुजरात के कुछ ऐसे बागी सरदारों द्वारा आरम्भ हुआ जिनके द्वारा की गई एक बगावत को हाल ही में बादशाह ने दबाया था। बादशाह के भय से उन्होंने दौलताबाद के सूबेदार कुतलग खाँ के यहाँ शरण लिया। सूबेदार ने भी उन्हें यह सोचकर शरण दिया कि शायद उचित परिस्थितियाँ आने पर बादशाह उनकी गलती को क्षमा कर दे। परन्तु इन बागी सरदारों को शरण देने के कारण उसे बादशाह का कोपभाजन बनना पड़ा और उससे दौलताबाद की सूबेदारी छीन ली गई। इसके साथ ही इन बागी सरदारों को बादशाह के सामने हाजिर करने का आदेश जारी किया गया, यद्यपि इन सरदारों को माफ करने का वादा भी बादशाह ने किया था।

माफी का वादा सुनने पर ये सरदार बड़े ही निश्चिन्त एवं उत्साहित हो कर गुजरात की तरफ चल पड़े जहाँ उस समय बादशाह का पड़ाव पड़ा हुआ था। परन्तु जब ये सूबे की सरहद पर पहुंचे तो कुछ घटनाएँ ऐसी घटीं कि उन्हें बादशाह के वादे में कपट और विश्वासघात की गन्ध प्रतीत हुईं। इस बात का निश्चय हो जाने पर उन्होंने अपने साथ के शाही हाकिम को मार डाला और बगावत का झण्डा खड़ा करके वे दौलताबाद की तरफ वापस लौट गए।

बादशाह के अत्याचार से पीड़ित हो कर अनेक हिन्दू सरदार भी उनकी सहायता करने के लिए उनसे जा मिले। जब वे दौलताबाद पहुंचे तो उनकी संख्या इतनी अधिक और आतंकित करने वाली थी कि नगर-रक्षक सेनाओं ने भी विद्रोह की घोषणा कर देने का उत्साह प्राप्त किया। उन्होंने अपने सूबेदार को कैद कर लिया और किला विद्रोहियों के हाथ में दे दिया।

अब इन सरदारों के सामने एक नेता चुनने का प्रश्न आया। अभी तक इन सरदारों में से कोई ऐसा नहीं था जिसमें सरदार बनने के गुण होते। फिर भी उन्होंने इसमाइल नामक एक हजारी (१००० सवारों का सरदार) को अपना नेता चुना। इस चुनाव से उन्हें यह भी आशा थी कि मालवा की शाही सेना का सिपहसालार मलिक मंगू, जो इस्माइल का भाई था, सम्भवतः अपने भाई के कारण उन्ही के दल में मिल जाय। इस नए राजा ने अपना नाम नासिरुद्दीन रक्खा।

इस भयानक एवं सफल विद्रोह का समाचार पाने पर बादशाह मुहम्मद शाह एक भारी सेना लेकर गुजरात से चल पड़ा। दौलताबाद पहुंचने पर उसने इस विद्रोही सेना को मुकाबले के लिये तैय्यार पाया। एक कठिन युद्ध प्रारम्भ हो गया, और यद्यपि युद्ध की अवस्था अनिश्चित रही फिर भी शाही सेना ने ही युद्ध-क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व जमाए रक्खा।

पहले मुकाबले में विजय की आशा न दिखाई पड़ने पर बागी सरदारों ने आपस में सलाह मशविरा किया जिसके अनुसार नासिरुद्दीन को दौलताबाद की रक्षा का भार दिया गया तथा शेष सरदारो ने विभिन्न जिलों से छिटपुट हमले प्रारम्भ कर दिए।

इन बागी सरदारों में बहादुरी,-व्यवहार तथा सैन्य संचालन की दृष्टि से जफर खाँ विशेष रूप से प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि वह एक साधारण परिवार में पैदा हुआ था फिर भी अपने उद्योग से वह उच्च पद पर पहुंचा और अन्त में उसने एक राजवंश की स्थापना करने का गौरव प्राप्त किया।

इन बागियों की योजनाओं का समाचार पाने पर बादशाह ने स्वयं दौलताबाद पर घेरा डाल दिया और अपने एक विश्वस्त सरदार उम्मदुलमुल्क तबरेजी को एक सेना सौंप कर जफर खाँ का पीछा

करने का जिम्मा उसे दे दिया। इसी समय दिल्ली से भी बगावत का समाचार बादशाह को मिला और वह सेना की कुछ टुकड़ियों को अपने साथ लेकर दिल्ली की ओर रवाना हो गया। दौलताबाद को घेरने वाली सेना की संख्या बहुत कम रह गई, और वह भी थी शाही शिपहसालारों के अधीन, क्योंकि बादशाह तो उधर दिल्ली में उलझा हुआ था। दक्षिण वालों ने बादशाह के लौटने की खबर पा कर इस अवसर का अच्छा लाभ उठाया। उन्होंने हर तरफ से सेनाएं संगठित करके दौलताबाद को घेरे हुए शाही सेना पर आक्रमण करके उन्हें परेशान करना शुरू कर दिया। इससे शाही सिपहसालार इतने आतंकित हो गए कि उन्होंने घेरा उठा लेने में ही अपनी कुशल समझी और नर्मदा नदी के किनारे तक हट गए। दक्षिण की सेनाएँ निरन्तर उनका पीछा करती रहीं और शाही सेनाओं को हानि पहुंचती रही।

जफर खाँ को बागियों के दलने विशेष महत्व का कार्य सौंपा था। उसके अधीन बीस हज़ार घुड़सवारों की सेना थी। वह अपनी सेना के साथ उम्मदुलमुल्क तबरेजी की तरफ बढ़ा। उम्मदुलमुल्क ने भी उसका सामना करने में अपनी कुशल न समझी। जफर खाँ का पीछा करने के बजाय अपनी भारी सेना के साथ उसने वीदर में मोर्चाबन्दी की। इससे जफर खाँ को पर्याप्त लाभ प्राप्त हुआ। उसकी सेना स्वयं शाही सेना का मुकाबिला करने के लिए पर्याप्त थी; इसी आधार पर उसने तेलंगाना के राजा से भी सहायता के लिए १५,००० घुड़सवार प्राप्त किए, साथ ही दौलताबाद से भी ५००० सवारों के एक दल की सहायता उसे और प्राप्त हुई। इस प्रकार पूर्ण रूप से संगठित हो जाने पर उसने शाही सेना पर भयानक आक्रमण कर दिया। यह युद्ध बहुत ही भयानक हुआ। इस युद्ध में उम्मदुलमुल्क मारा गया और विजय श्री जफर खाँके हाथ में पड़ी। कुछ लोगों को वहीं छोड़ कर यह विजयी सेना दौलताबाद चलपड़ी जहाँ स्वयं नासिरुद्दीन ने फाटक खोलकर उनका स्वागत किया। नासिरुद्दीन एक बुद्धिमान व्यक्ति था उसने जफर खाँ की योग्यता और बढ़ती हुई लोकप्रियता का अनुभव कर लिया; साथ ही वह स्वयं अपने मुकाबिले में भी जफर खाँ को अधिक योग्य समझता था। उसने सभी सामन्तों एवं सरदारों को एकत्रित किया और सबके सामने इसने स्वयं सिंहासन त्यागने का प्रस्ताव रक्खा; साथ ही उसने अपने बदले में जफर खाँ को राज्य सिंहासन सौंपने का प्रस्ताव भी सबके समक्ष रक्खा। यह प्रस्ताव सर्वमान्य हुआ और जफर खाँ ने इस दल का नेतृत्व सम्भाला।

कहा जाता है कि जफर खाँ दिल्ली में रहने वाले कांगू या गंगू * नामक एक ब्राह्मण का गुलाम था। जब उस ब्राह्मण ने अपने गुलाम में कुछ विशिष्ट गुणों की झलक देखी तो उसने जफर खाँ को स्वतंत्र कर दिया, साथही आगे बढ़ने में उसकी बहुत सहायता भी की। जब जफर खाँ की शक्ति बढ़ी और वह एक राज्य का अधिकारी हुआ तो वह अपने इस शुभचिन्तक को नहीं भूल पाया। जफर खाँ ने उसे अपने राज्य का खजान्ची बनाया। इस ब्रह्मण ने पाटन के राजवंश को 'बहमनी वंश' का लाभ प्रदान करने का गौरव भी प्राप्त किया।

सन् १३४७ में जफर खाँ ने बादशाह के रूप में स्वीकृति प्राप्त की और सुल्तान अलाउद्दीन हुसेन कानगो बहमनी के नाम से उसने शासन भार ग्रहण किया। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, इस विद्रोह में दक्षिण के बहुत से देशी राजाओं ने भी सहयोग दिया था; और जिस तरह से बागी सरदारों ने बादशाह के खिलाफ लड़ाई छेड़ दी थी, बिना देशी राजाओं की मदद के सफलता सम्भव भी नहीं थी। यद्यपि मुसलमान इतिहासकारों ने इस सहायता को अधिक महत्व नहीं दिया है, परन्तु

---

*—'फरिश्ता' के अनुसार दक्षिण के सभी कानूनगो (जो देशपान्डे के समकक्ष हैं) महाराष्ट्र की अपभ्रंश भाषा में कानगो कहे जाते हैं। यह अपभ्रंश फारसी में भी पाया जाता है। कानगो ही बिगड़कर कांगू हो गया है।

वास्तव में देशी राजाओं द्वारा की गई सहायता बहुत ही महत्वपूर्ण थी। इस सुल्तान की बुद्धिमत्ता एवं न्यायप्रियता के अनेक लिखित उदाहरण मिलते हैं, परन्तु उसकी बुद्धिमत्ता का सबसे बड़ा उदाहरण यह है कि उसने इन सभी जिलों कों, जो पहले मुस्लिम शासन के अन्तर्गत थे, अपने में मिला लिया और साथ ही वारंगल के राजा से भी मित्रता करके उसने उसका विश्वास प्राप्त किया जिससे पहले के मुस्लिम शासक सावधान रहने के साथ-साथ शत्रुता भी रखते थे।

दिल्ली के बादशाह मुहम्मद तुगलक की मृत्यु की खबर पाने पर नए सुल्तान को उस तरफ की चिन्ता से छुटकारा मिल गया। बहुत शीघ्र ही उसने, कर्नाटक में प्राप्त हुई विजयों से प्रेरित हो कर अपने बहादुर और साहसी सैनिकों के मस्तिप्क एवं हृदय को युद्ध प्रिय बना दिया। बीजापुर के राजाओं की प्रतिद्वन्दिता के कारण भी बहमनी वंश के उत्तराधिकारी आंतरिक कलह एवं फूट से अपने को बचाते रहे। यदि उन्होंने अधिक दूर के क्षेत्रों तक अपना राज्य वढ़ाया होता या उनकी सेनाएँ युद्ध के पश्चात् शान्ति पूर्ण आनन्द एवं विलासिताओं में ही लिप्त हो जातीं तो यह वंश इतने अधिक समय तक न टिका रहता।*

बहमनी वंश † का अस्तित्व काल डेढ़ शताब्दी से कुछ ऊपरही माना जा सकता है। उनके शासन काल में मराठों की स्थिति क्या थी इसका ज्ञान हमें कुछ मुसलमान इतिहासकारों की कृतियों से ही मिल सकता है। प्राचीन मराठा परिवारों के उत्तराधिकारियों द्वारा सुरक्षित रक्खे गए कुछ कागजात और कथाएँ भी इस काल में मराठों की स्थिति पर कुछ प्रकाश डालती हैं!

यह पहले ही कहा जा चुका है कि मुस्लिम विजय के समय देश अनगिनत छोटे-छोटे राज्यों में

---

* उपरोक्त मुस्लिम इतिहास का अधिकांश भाग 'फरिश्ता' से लिया गया है। १७वीं शताब्दी के आरम्भ तक के विषय में फरिश्ता से हमें काफी प्रामाणिक तथ्य प्राप्त होते हैं परन्तु जहाँ कहीं भी मैंने अन्य स्रोतों से सहायता ली है, उनका उल्लेख भी कर दिया है।

† फरिश्ता के अनुसार अलाउद्दीन के उत्तराधिकारियों के नाम और उनके शासनकाल निम्नलिखित हैं:—

पहला सुल्तान—१३५७ में मर गया और उत्तराधिकार उसके बेटे को मिला।

दूसरा सुल्तान—मुहम्मदशाह बहमनी—१३७४ ई० में उसकी मृत्यु हो जाने पर उसका बेटा गद्दी पर बैठा।

तीसरा सुल्तान—मुजाहिद शाह बहमनी—१३७७ में उसके चाचा ने उसका बध करके गद्दी सम्भाली।

चौथा सुल्तान—दाऊदशाह बहमनी—केवल १ महीने शासन करने के बाद रुपुरवार आगा की साजिश से मार डाला गया और उसके बाद—

पाँचवाँ सुल्तान—महमूदशाह बहमनी—यह पहले वाले सुल्तान का छोटा बेटा था; १३९६ में उसकी मृत्यु के बाद उसका बेटा गद्दी पर बैठा।

छठाँ सुल्तान—गाजिउद्दीन बहमनी—केवल १ माह २० दिन राज्य करने के बाद एक तुर्की गुलाम ने उसकी हत्या कर दी और उसका भाई सिंहासन पर बैठा।

सातवाँ सुल्तान—शमसुद्दीनशाह बहमनी—६ महीने के भीतर ही दाऊद शाह बहमनी का बेटा उसे गद्दी से उतार कर स्वयं सुल्तान बन बैठा।

आठवाँ सुल्तान—फीरोजशाह बहमनी—१४२२ में उसकी मृत्यु के बाद उसका भाई गद्दी पर बैठा।

बँटा हुआ था जो कि कम या अधिक स्वतंत्र थे। यह सम्भव है कि इनमें से अधिकांश नजदीकी देशी राज्यों ने १३४७ ई० में ‡ उभरने वाले इस सुल्तान अलाउद्दीन से या तो मित्रता कर ली हो या उसकी अधीनता स्वीकार कर ली हो।

देश के लोगों द्वारा प्राप्त की हुई सहायता के फलस्वरूप सुल्तान ने उनके प्रति कृतज्ञता का अनुभव किया और उसने प्रमुख सहायकों को या तो उत्तराधिकार के आधार पर चलने वाली भूसम्पति एवं सुविधाएँ दीं या जो लोग पहले से किसी स्थान पर देशमुख या देशपान्डे थे, उन्हें उनके स्थान पर ही स्थायीं अधिकार दे दिया। इसके साथ ही कुछ प्रधान सरदारों को उसने सेना में भी उचित

नवाँ सुल्तान—अहमदशाह बली बहमनी—१४३४ में उसकी मृत्यु के बाद उसका लड़का सुल्तान हुआ।

दसवाँ सुल्तान—अलाउद्दीन शाह बहमनी (द्वितीय)—१४५७ में मृत्यु होने पर उसका पुत्र उत्तराधिकारी हुआ।

ग्यारहवाँ सुल्तान—हुमायूं शाह बहमनी—जिसे सामान्यतः जालिम और अत्याचारी माना जाता है। वह भी क्रूरता का ही शिकार होकर १४६० में मर गया और उसका बेटा उत्तराधिकारी हुआ।

बारहवाँ सुल्तान—निजामशाह बहमनी—१४६२ में उसके मरने पर उसका भाई सुल्तान हुआ।

तेरहवाँ सुल्तान—मुहम्मदशाह बहमनी—१४८२ में मरा और उसका बेटा गद्दी पर बैठा।

चौदहवाँ सुल्तान—महमूदशाह बहमनी—१५१८ में मर गया और उत्तराधिकार उसके बेटे को मिला।

पन्द्रहवाँ सुल्तान—अहमद शाह बहमनी—वह भी १५२० में ही मर गया और उसके स्थान पर—

सोलहवाँ सुल्तान—अलाउद्दीन (तृतीय) हुआ जिसको कठोरता पूर्वक कैद करके १५२६ में कलीमुल्ला बहमनी गद्दी पर बैठा और वही इस वंश का अन्तिम बादशाह था।

‡ ईसा संवत् के अतिरिक्त महाराष्ट्र में चार अन्य संवत् प्रचलित हैं—(१) शालिवाहन (२) सूर सन (३) फसली वर्ष (४) राज्य-अभिषेक—यह संवत् शिवा जी के राज्यारोहण के दिन से प्रारम्भ होता है।

हिन्दुओं के अनुसार दिन और रात में मिलाकर ६० घड़ी होती है। वे दिन का प्रारम्भ सबेरे के उस समय से मानते हैं जब कि वस्तुएँ दिखाई पड़ने लगती हैं। इस प्रकार हमारे (अंग्रेजी) दिन रात और उनके दिन रात के हिसाब में अन्तर है। जब हमारे हिसाब से रविवार की सुबह के १ या दो बजते हैं तो वह शनिवार की रात्रि का अन्तिम भाग होता है।

फसली वर्ष अंग्रेजी कैलेन्डर के जून तथा हिन्दी वैशाख महीने के अन्त से प्रारम्भ होता है। यद्यपि हिन्दुओं के महीने चन्द्रमा के आधार पर व्यवस्थित हैं परन्तु अधिक महीना (मलमास) की व्यवस्था करके (जिसके अनुसार प्रति चौथे वर्ष एक महीना दो बार गिना जाता है) सूर्य के अनुसार भी बना लिया है। इस व्यवस्था को और उचित तथा सही बनाने के लिए हर १८०वें वर्ष में से एक महीना घटा दिया जाता है। उस घटाए जाने वाले माह को क्षय माह कहते हैं।

गणना करने पर ज्ञात होता है कि सूर सन ४४५ हिज़री या १३४४-४५ ई० में प्रारम्भ हुआ था जिससे स्पष्ट है कि मुहम्मद तुगलक ने ही उसे प्रारम्भ किया होगा। अकबर के शासन काल में नर्मदा के उत्तरी भाग में फसली वर्ष चलाया गया। यह फसली वर्ष दक्षिण में उसके पौत्र शाहजहाँ

स्थान दिया, * उसके प्रमाण भी मिलते हैं। ऐसे सरदारों के साथ रहने वाले घुड़सवारों की व्यवस्था के लिए उन्हें जागीरें भी प्रदान की, परन्तु ऐसी भू सम्पत्तियाँ या छोटी जागीरें किसी बड़े मुसलमान जागीर के नियंत्रण में रहती थी। यह जागीरदार स्वयं सूबे के सूबेदार के अधीन रहता था। इन उपायों से बादशाह ने इस प्रदेश के निवासियों को अपना प्रिय एवं हितैषी बना लिया। कोंकण घाट माथा, पुरन्दर की श्रेणियों से लेकर हिरण्यकेशी नदी के पास तक तथा देवल से लेकर रामेश्वरम तक के भाग को छोड़कर (जो कि दक्षिण में मुसलमानी राज्य स्थापित हो जाने के एक शताब्दी से अधिक समय तक जीते नहीं जा सके था) लगभग पूरे महाराष्ट्र पर उसने अधिकार कर लिया था। उनके शासन प्रबन्ध से देश के निवासी इतने सन्तुष्ट थे कि अपने मुसलमान शासकों के खिलाफ यदा कदा ही उन्होंने बगावत का झंडा उठाया। ऐसा ही एक विद्रोह सन् १३६६ ई० में सुल्तान मुहम्मदशाह के शासन काल में हुआ। जिस समय यह विद्रोह प्रारम्भ हुआ, सुल्तान मुहम्मदशाह कर्नाटक की पहली यात्रा से लौट रहा था।

सन १३६६]

जिस विद्रोह की ओर ऊपर संकेत किया गया है उसका नेतृत्व सम्भालने वाला बहराम खाँ मजीदुर्रानी नाम का सरदार था जो सुल्तान के ही अधीन था। सुल्तान की मृत्यु की खबर से, तथा इस निश्चिन्तता से कि दौलताबाद में नाम मात्र की ही सेना है (क्योंकि सुल्तान सेना के साथ कर्नाटक की तरफ गया हुआ था)—प्रेरित होकर बहराम खाँ ने अवसर से लाभ उठाने की सोची। यादव † नामक एक मराठा सरदार ने उसे इस विद्रोह के लिए उकसाया था। सम्भवतः यादव राजाओं के किसी वंश का था, 'क्योंकि उसे प्रधान कहा गया है; यादव आज भी देश के उस भाग में देशमुख के पद पर हैं। इन विद्रोहियों को बगलाना के राजा ने भी सहायता दी जब कि बरार के मराठा, बड़ी नीति कुशलता के साथ, गुप्त रूप से छोटी-छोटी सैनिक टुकड़ियाँ भेजते रहे। अधिकतम सहायता प्राप्त करके बहराम खाँ ने उस जिले के जो काफूर के समय से ही महाराष्ट्र‡ के नाम से जाना जाता है—अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया।

मुहम्मदशाह ने सन्धि के प्रस्ताव भेजे। वह व्यक्तिगत रूप से बहराम खाँ का सम्मान भी करता था इसलिए उसने बहुत आकर्षक शर्तें भी प्रस्तुत की। परन्तु बहराम खाँ पूर्णतः मराठों का ही

द्वारा हिजरी १०४७ (१६३७-३८) में प्रचलित किया गया। सूर सन और फसली वर्ष सूर्य के अनुसार व्यवस्थित हैं, अपने प्रारम्भ होने के हिज़री वर्ष से ही उनकी गणना प्रारम्भ होती है। इन संवतों में सूर्य और चन्द्र वर्षों में होने वाले अन्तर की व्यवस्था नहीं की गई है जिसके फलस्वरूप एक शताब्दी में तीन वर्ष से अधिक का अन्तर पड़ जाता है।

* हरनक पोहल और कामराजे घटके नामक सरदारों के पास २०० से ३०० घोड़ों की मन्सबदारियाँ थी। कुछ अन्य लोग भी थे, पर एक का नाम ज्ञात नहीं है। मराठा पाण्डु लिपि।

† स्काट के अनुवाद में इसे जयदेव (Geodeo) लिखा गया। फरिश्ता की कुछ प्रतियों में इसे गोविन्द देव लिखा गया है। 'फरिश्ता' यह भी बताता हैं कि नायकों का मुखिया देवगिरि के राज का वशंज था। देवगिरि के राजा का नाम रामदेवराव यादव था (जैसा कि सभी प्राचीन हिन्दू ग्रन्थ मानते हैं)। यह बात भी सम्भव मानी जा सकती है कि शायद इस सरदार का नाम गोविन्द देव यादव रहा हो।

‡ यह नाम कुछ अनुमानों को जन्म देता है। सम्भवतः यह कोई छोटा भूभाग था और उस जगह स्थित था जहाँ आज खानदेश धूलिया स्थित है और किसी मराठा पालगर के हाथ में था। यह नाम उतना ग़लत नहीं है जितना कि यूरोपियन लेखकों वारा प्रयोग किए नाम-तुलावा और कनारा; यद्यपि इन नामों की व्याख्या भी उपरोक्त ढंग से की जा सकती है। देखिए विल्क्स-भाग ?

अनुगामी था, उसने सुल्तान के प्रस्ताव कीबिल्कुल परवाह न की । ये विद्रोही पाटन की तरफ बढ़ चले जहाँ बहुत से साहसिक प्रवृति के उपद्रवी, जो प्राय: ऐसे ही अवसरों की ताक में रहा करते थे, उनके साथ मिल गए ।

सुल्तान ने जो सेना उनका दमन करने के लिए भेजा उसका नेतृत्व मसनद अली खाँ मोहम्मद के हाथ में था जो कि बहुत बुद्धिमान नेता था । उसने विद्रोहियों पर एकदम आक्रमण न करने की योजना न बना कर, पाटन से कुछ मील पहले ही से गाँव में पड़ाव डाल दिया । उसको आश्चर्य चकित करने के लिए बहराम खाँ ने उस पर अचानक आक्रमण कर दिया, पर मसनद अली को मुकाबिले के लिए तैयार पाकर वह वापस लौट गया । इससे दुश्मन को उसकी कमजोरी का पता चल गया, साथ ही सेना भी विचार करने लगी कि शायद उनका नेता एक समान शक्तिशाली सेना से लड़ने पर विजय के विषय में शशंकित है । इसका परिणाम बहुत घातक हुआ । मसनद अली ने तुरन्त ही बहराम खाँ पर आक्रमण करने की योजना बना ली और उस समय पास ही की पहाड़ियों में शिकार खेलने के लिए आए हुए बादशाह को भी उसने सूचित कर दिया कि वह विद्रोहियों से निपटने जा रहा है । सुल्तान ने खबर पाते ही तुरन्त कूच कर दिया और युद्ध प्रारम्भ होने के पहले ही वह सेना में सम्मिलित हो गया । उसके आ जाने की खबर पाने पर बागियों में खलबली मच गई । बगलाना का राजा तुरन्त भाग खड़ा हुआ और अन्य टुकड़ियों ने भी उसी का अनुसरण किया । बहराम खाँ और यादव ने पहले दौलताबाद में और फिर गुजरात में शरण ली, जहाँ कि वे शत्रुओं की पहुंच के बाहर थे । बहमनी वंश के पतन के काल तक महाराष्ट्र में यही एक विद्रोह ऐसा हुआ जिसे कुछ महत्व दिया जा सकता है । इसी समय मराठों द्वारा संगठित कुछ टुकड़ियों ने भी छिटपुट हमले करना प्रारम्भ कर दिया ।[1]

सन १३९६]

सन १३९६ ई० में महाराष्ट्र में भयानक अकाल पड़ा जिसकी भयंकरता के कारण लोग अब भी इसे 'दुर्गा देवी' के नाम से याद करते हैं । हिन्दू लोक कथाओं के अनुसार यह अकाल लगातार १२ वर्षों तक लोगों को त्रस्त किए रहा । उसके बाद समय से वर्षा हुई परन्तु उधर के सभी जिले जनहीन हो गए थे । ३० वर्ष से भी अधिक समय तक बहुत कम मालगुजारी वसूल हुई । गोदावरी और कृष्णा नदी के बीच के क्षेत्र ही मुख्य रूप से अकाल ग्रस्त थे । मुसलमानों द्वारा जीते हुए पहाड़ी किलों और सामरिक महत्व के स्थानों पर पालगरों एवं डाकुओं ने अधिकार कर लिया था । अकाल के भय से भागे हुए किसान जब गाँवों को वापस लौटने लगे तो इन डाकुओं ने उन्हें खदेड़ना शुरू कर दिया ।[2] सन् १४२९ ई० में जब कि शासन भार सुल्तान अहमदशाह वली बहमनी के हाथ में था—इन क्षेत्रों से डाकुओं को भगाने के लिए, जनता में सुरक्षित होने की भावना करने के लिए एवं अराजकता मिटा कर शान्ति स्थापित करने के लिए एक भारी सेना भेजी गई ; विद्रोहियों का दमन करने के लिए भेजी गई इस सेना का नेतृत्व मलिक-उल-तिजार के हाथ में था । उसके साथ विभिन्न जिलों के बचे खुचे देशमुख थे, तथा दादू नरसू काले नाम का एक बहुत विद्वान और अनुभवी ब्राह्मण भी उसके साथ था । उसका पहला हमला कटाव देश के रमूसियों तथा महादेव की पहाड़ियों में छुपे हुये डाकुओं के एक दल पर हुआ ।[3] तत्पश्चात् सेना ने बाई की तरफ कूच किया और रास्ते में कई किलों को ध्वस्त करती हुई कोंकण तक जा पहुंची । ऐसा लगता है कि मलिक उल तिजार ने घाट को पार तो कर लिया पर दोनों तरफ फैली हुई श्रेणियों की खोज बीन उसने नही की । वीदर लौटने पर उसने दादू नरसू और दरबार के एक तुर्की खोजा को, देश का

---

[1] 'फ़रिश्ता' । [2] मराठा पाण्डुलिपि और वाई के देशमुखों में से एक के पास प्राप्त एक फरमान के आधार पर । [3] मराठा पाण्डुलिपि ।

प्रबन्ध करने के लिए तथा भागे हुए लोगों को फिर से बुलाकर बसाने के लिए वहीं छोड़ दिया।[४] पहले के गाँवों की सरहदें समाप्त हो चुकी थीं। दादू नरसू जब फिर सीमाएँ निर्धारित करने लगा तो उसने बहुत बड़े-बड़े गाँव बना दिए। उसने प्रायः एक ही गाँव में दो तीन गाँव मिला दिया। जो लोग खेती करने के लिए तैयार थे, उन्हें भूमि दी गई। पहले वर्ष में खेत के लिए कोई भी लगान न माँगी गयी; और दूसरे वर्ष एक बीघे के ऊपर केवल एक तोबड़ा[५] अन्न मालगुजारी के रूप में लिया गया। परन्तु इस दमन का लाभ बहुत क्षणिक रहा। शीघ्र ही फिर डाकुओं के उपद्रव शुरू हो गए। यह बात तुरन्त ही स्पष्ट हो गई कि जब तक सभी पहाड़ी किलों को ध्वस्त नहीं किया जाता तब तक किसी भी तरह की स्थाई सुरक्षा सम्भव नहीं थी।

दिलावर खाँ को सिपहसालार बनाकर शान्ति स्थापित करने के लिए एक और सेना सन् १४३६ में भेजी गई। परन्तु दिलावर खाँ को विद्रोहियों का दमन करने में अधिक सफलता प्राप्त नहीं हो सकी और सुल्तान अलाउद्दीन (द्वितीय) बहमनी के शासन काल में मलिक उल तिजार के अधीन एक तीसरी सेना और भेजी गई। मलिक उल तिजार कुछ चुनी हुई टुकड़ियों को लेकर आगे-आगे चल पड़ा। ये टुकड़ियाँ दक्षिण की सेना की सर्व श्रेष्ठ टुकड़ियाँ थीं। उसने एक क्रमबद्ध योजना बनाई और जीते हुए भागों की व्यवस्था भी साथ ही साथ करता चला ताकि आगे बढ़ जाने पर इन स्थानों की सुरक्षा व शान्ति बनी रहे। उसने अपना स्थायी निवास चाकण ‡ में बनाया और जुन्नार नगर के पास एक किला भी बनवाया। वहाँ से वह समय-समय पर कोंकण की ओर सेनाएँ भेजता रहा और कुछ ही समय में उसने दक्षिण के कई राजाओं को अपने अधीन कर लिया। वह स्वयंम् देश के उस भाग में गया और एक किले पर घेरा डाला उस किले के राजा नें पराजय स्वीकार कर ली और परिवार सहित स्वयंम् को उसके हाथों में सौंप दिया।

सन् १४३६]

इस राजा का पारिवारिक नाम सिरके था। निस्सन्देह वह उसी पालगर के वंश का था जिसने—पन्हाला के राजा की सिनगिन के हाथों पराजय के बाद (यह घटना तेरहवीं सदी के प्रारम्भ की है)—कृष्णा नदी के स्रोत के आस-पास की पहाड़ियों पर अपना अधिकार कर लिया था।

मलिक उल तिजार ने उस राजा पर, अपना धर्म छोड़कर कुरान पर विश्वास रखने तथा मुसलमान हो जाने के लिए दबाव डालना शुरू किया। राजा को क्रोध बहुत आया पर उसने मराठों की जन्म जात प्रकृति का सहारा लिया। उसने बदला लेने के लिए एक बहुत कपटपूर्ण योजना तैयार की। उसनें मलिक उल तिजार को बताया कि मुसलमान धर्म स्वीकार कर लेने में उसको कोई एतराज नहीं है परन्तु उसमें एक खतरा है। उसने कहा कि कोंडन * क्षेत्र के सिंहगढ़ † के राजा से उसकी

---

[४] काले के नाम के आधार पर दरबार के खोजाओं को काला खोजा और गोरा खोजा नाम दिया गया। दक्षिण के मुस्लिम दरबारों में यूरोप के तुर्क बहुत पहले ही प्रवेश पा चुके थे।

[५] तोबड़ा एक प्रकार के चमड़े का थैला होता है जिसमें घोड़ों को खिलाया जाता है। इसमें दाना रखकर घोड़ों की गरदन में लटका दिया जाता है। तोबड़ा हर घुड़सवार के आवश्यक साज-सामानों में से एक है।

‡ चाकण पूना से १८ मील उत्तर की ओर एक छोटा सा किला है। इसके चारों ओर ३० फीट चौड़ी १५ फीट गहरी खाँई है पर केवल उत्तर ओर वाली खाँई में जल रहता है। कुछ हिन्दू मानते हैं कि यह किला मलिक उल तिज़ार द्वारा नहीं बल्कि १२९५ ई० में एक अबीसीनियन पालगर द्वारा बनवाया गया था। पर इसका कोई प्रमाण उनके पास नहीं है।

* मराठा पाण्डुलिपि।

† सम्भवतः सिंहगढ़, जो पूना से ८ मील दक्षिण में स्थित है, मुसलमान इसे कोण्डन के

परिवारिक प्रतिद्वन्दिता है । जब सिंहगढ़ के राजा को यह पता लगेगा कि उक्त राजा ने अपना धर्म छोड़ दिया है तो वह उसकी प्रजा को उसके खिलाफ भड़काकर उसे नष्ट कर देने की योजना बनाएगा । उसने मलिक-उल तिजार को राय दी कि वह पहले कोंडन को जीतकर वहाँ के राजा का धर्म परिवर्तन कराए । उसने प्रतिज्ञा की कि ऐसा हो जाने पर वह स्वयम् धर्म तो बदल ही देगा, साथ ही सुल्तान को कुछ कर भी प्रति वर्ष देगा । उसनें सुल्तान की खिलाफत करने वाले अन्य राजाओं को दबाने में भी सहयोग देने का बचन दिया ।

मलिक उल तिजार ने धर्मान्धिता के नशे में उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया । उसकी सेनाएँ चल पड़ीं । रात को उसे सेना सहित एक घिरे हुए स्थान में सोने की सलाह मिली और उसने मान लिया । जब ६००० मुसलमानों की वह सेना नींद में गाफिल थी, माराठों नें सारी
सन १४५३ ई०] सेना को उनके सिपहसालार सहित बड़ी निर्दयतापूर्वक मृत्यु के धाट उतार दिया ।
सुल्तान की सेना के बचे खुचे लोग वापस भाग खड़े हुए और उस क्षेत्र पर पुनः सिरके परिवार का अधिकार हो गया । उसके पश्चात् आगे के १६ वर्षों तक कोई भी इस प्रकार की योजना नहीं बनाई गई और मराठे निर्द्वन्दता से स्वतंत्रता का सुख भोगते रहे ।

इस तथ्य का कोई निश्चित प्रमाण नहीं है कि विजय नगर के राजाओं के अधिकार में गोआ कब आया । परन्तु सन १४६९ में गोआ उनके हाथ से निकल गया । ख्वाजा जहाँ गावान ने, मुहम्मदशाह के शासन काल में एक सेना लेकर गोआ की तरफ अभियान प्रारम्भ किया
सन १४६९ ई०] और उस पूरे शक्तिशाली क्षेत्र पर विजय प्राप्त करके अपने अधीन बनाया जो कि
आज भी महाराष्ट्र के दक्षिणी पश्चिमी भाग के रूप में महाराष्ट्र में सम्मिलित है ।

इस तरह से जीता हुआ यह सारा देश अधिक समय तक बहमनी वंश के सुल्तानों के पास न रह सका । वह इमारत, जो कि अलाउद्दीन द्वारा बनाई गई थी, उसके उत्तराधिकारियों द्वारा निरन्तर शक्तिशालो बनाई जाती रही, परन्तु कुछ ही वर्षों में इस इमारत की ऊंचाई इतनी अधिक हो गई कि प्रारम्भिक संक्षिप्त नींव पर इस इमारत का आधारित रहना सम्भव नहीं रह सका । उड़ीसा राजा पर मुहम्मदशाह की विजय से, पूर्व की ओर का जितना क्षेत्र बहमनी साम्राज्य में मिलाया गया था, उसी क्षेत्र से एक ऐसी संकट की लहर आई जिसका अन्त एक क्रान्ति के रूप में ही हुआ ।

इस वंश की समाप्ति यद्यपि १५२६ ई० में हुई परन्तु इसके बहुत पहले ही दक्षिण में पाँच अन्य बड़े-बड़े मुस्लिम राज्य स्थापित हो चुके थे (१) आदिलशाही या बीजापुर (२) कुतुबशाही या गोलकुन्डा या हैदराबाद, (३) उम्मदशाही या बरार (४) निजामशाही या अहमदनगर (५) बरीदशाही या अहमदाबाद बीदर । प्रथम मुस्लिम साम्राज्य के विनाश के फलस्वरूप शक्तिशाली बने
सन १५२६ ई०] इन पाँच स्वतन्त्र राज्यों में से उस समय केवल तीन राज्य बचे थे जब कि मराठों
नें गुलामी तथा पराधीनता से ऊब कर सर उठाना शुरू किया और वे भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भाग लेने लगे ।

अपने विषय की दृष्टि से यह जानना हमारे लिए बहुत ही आवश्यक है कि बहमनी वंश के पतन के क्या कारण थे और किस तरह उपरोक्त पाँच राज्यों का अभ्युदय और विकास हुआ ।

१३५७ ई० में पहले सुल्तान की मृत्यु के समय मुसलमानों का साम्राज्य लगभग सम्पूर्ण महाराष्ट्र तेलंगाना के कुछ भाग, तथा कर्नाटक में रायचूर और मुगदल तक फैला हुआ था । मुहम्मद-

---

नाम से पुकारते थे, पर शिवाजी ने बाद में इसे सिंहगढ़ नाम दिया । स्काट के अनुवाद में इसे 'केलना' कहा गया है । केलना का आधुनिक नाम विशालगढ़ है । फ़रिश्ता में दिए हुए वर्णन से विशालगढ़, सिंहगढ़ का अधिक मेल खाता है ।

शाह ने सिंहासन पर बैठते ही सर्वप्रथम अपने पूरे राज्य को चारों भागों में बाँट दिया और उन भाग को 'तरफ' नाम दिया। प्रत्येक 'तरफ' का प्रबन्ध करने के लिए प्रतिनिधि के रूप में उसने एक एक तरफदार की नियुक्ति की।

१३० वर्षों के लम्बे काल में विजय नगर, तेलंगाना एवं उड़ीसा के राजाओं तथा कोंकण के पालगरों को जीत कर अपने में मिला लेने के कारण इनका राज्य क्षेत्र बहुत अधिक हो गया था। विजय नगर को छोड़कर शेष क्षेत्रों की शासन व्यवस्था भी इन्ही के हाथ में थी। परन्तु प्रारम्भिक चार तरफें जिन पर बाद में विशेष ध्यान नहीं दिया गया और न उनकी व्यवस्था में कोई संशोधन ही किया गया—बुराइयों एवं दुर्व्यवस्था से भर गईं। इनके तरफदारों की शक्ति इतनी बढ़ चुकी थी कि उन पर नियंत्रण रखना या उनकी व्यवस्था में दखल देना नितान्त असम्भव हो गया।

ऐसी परिस्थितियों में कोई सुधार करना बहुत ही कठिन हो जाता है फिर भी सन् १४७८ में ख्वाजा जहाँ गावान ने, जो कि मुहम्मदशाह का सबसे बुद्धिमान वजीर था—इन परिस्थितियों को बदलने का एक प्रयत्न किया। उसने शासन को विकेन्द्रित करके प्रत्येक तरफ या सूबे के कार्यों का विधिवत निरीक्षण करने की सलाह दी। साम्राज्य के प्रारम्भिक विभाजन और उसके (गावान के) द्वारा नए उपविभाजनों की आयोजना को दिखाने से उसकी सोची हुई व्यवस्था स्पष्ट हो जायगी। सभी उपविभाजनों के अधिकारियों के नाम भी साथ ही जुड़े हुए हैं। पाठकों के लिए इस व्यवस्था की रूपरेखा विशेष ध्यान देने की वस्तु है :—

सन् १४७८]

	नए विभाजन
पुराना विभाजन (तरफों में)	इसके दो उपविभाग शासन केन्द्र हुए—
१—गुलबर्गा——	१—बीजापुर—इसका विस्तार भीमा, राय-चूर एवं मुगदल तक है। यहाँ स्वयं ख्वाजा जहाँ गावान की नियुक्त हुई।
	२—आसनाबाद—इसमें गुलबर्गा, सागर, नलद्रुग और शोलापुर सम्मिलित है। यहाँ का तरफदार दस्तूर दीनार नाम का एक अबीसीनियन खोजा था।
२—दौलताबाद——	३—दौलताबाद—यहाँ का तरफदार यूसुफ आदिल खाँ सावी को बनाया गया।
	४—जुन्नार—कोंकण, तथा दक्षिण में गोआ एवं बेलगाँव तक इसमें सम्मिलित हैं; फकीरूल मुल्क को यहाँ का तरफदार बनाया गया।
३—तेलगांना——	५—राज महेन्द्री—मछलीपट्टम, पील कोण्डा, उड़िया तथा कुछ अन्य क्षेत्र इसमें सम्मिलित है इस क्षेत्र को निजामुल मुल्क बहेरी के सुपुर्द किया गया।
	६—वारंगल—यहाँ का तरफदार अजीम खाँ नियुक्त हुआ।
४—बरार——	७—गवेल—यहाँ का तरफदार फतह उल्ला उम्मदुल मुल्क को बनाया गया।
	८—माहूर—अबीसीनिया का खुदा बन्द खाँ यहाँ का तरफदार बनाया गया।

इन सूबों या तरफों पर प्रशासनिक नियंत्रण रखने के लिए प्रत्येक तरफों के कुछ स्थानों की सम्पूर्ण आय बादशाह के निजी व्यय के लिए सुरक्षित रख ली जाती थी। इस प्रकार से होने वाली आयकी व्यवस्था के लिए विशेष तहसीलदार नियुक्त किए गए।

यदि ख्वाजा जहाँ गावान द्वारा प्रस्तावित उपाय कुछ समय तक भी कार्य में लाए गए होते तो

बादशाह अपनी खोई हुई शक्ति पुनः वापस पा लेता, पर ख्वाजा का प्रभाव अधिक समय तक स्थायी न रह सका क्योंकि उसके प्रभाव से ईर्ष्या रखने वाले उसके शत्रु भी अपना कार्य कर रहे थे। उसका जीवन समाप्त करने के लिए उसके दुश्मनों ने एक भयंकर साजिश की; उनके द्वारा उसे अपराधी सिद्ध किया गया, और मुहम्मदशाह द्वारा क्षणिक उत्तेजना में दिए हुए हुक्म से उसे मौत के घाट उतार दिया गया।

वे बुराइयाँ, जिनको रोकने के लिए ख्वाजा ने ये उपाय बताए थे, उसकी मृत्यु के कारण और तेजी से बढ़ने लगीं। ख्वाजा जहाँ के शत्रु सामन्त सदैव सुल्तान का कान भरते रहे और धीरे-धीरे ख्वाजा के सभी सहयोगी वजीरों को मरवा डालने और सारी शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित कर लेंने की फिराक में बादशाह की चापलूसी करने में लगे रहे। अनुमान है कि ख्वाजा के पतन की योजना बनाने में निजामुल मुल्क का प्रमुख हाथ था। निजामुल मुल्क की उत्पत्ति एवं विकास का ढङ्ग भी ध्यान देने योग्य चीज है। वह पथरी * नगर के एक कुलकर्णी ब्राह्मण का लड़का था, और देश में अकाल पड़ जाने के कारण वह अपने पिता के साथ कर्नाटक चला आया था। उस नगर में उनके निवास काल में अहमदशाह वली बहमनी की सेनाओं ने कर्नाटक को रौंदते समय इस बालक को कैद कर लिया और एक दास के रूप में बादशाह के सामने पेश किया। बादशाह ने उसे मुसलमान बना लिया और उसका नाम मलिक हुसेन रक्खा गया। मुहम्मदशाह के शासन काल में उसे हजारी (१००० घोड़ों का सरदार) बना दिया गया; इसी प्रकार वह धीरे-धीरे उन्नति करता रहा; अन्त में ख्वाजा जहाँ की सिफारिश से उसे निजामुल मुल्क का खिताब दिया गया और उसे तेलगांना का तरफदार (सूबेदार) कर दिया गया, साथ ही उसे एक जागीर भी दे दी गई। निजामुल मुल्क, अपने बेटे को अपना सहकार नियुक्त करा कर, एवं स्वयं बादशाह के नजदीक रहकर षड़यंत्र करता रहा और अन्त में एक दिन उसी की जान का ग्राहक हो गया, जिसने उसे इतने ऊँचे पद पर पहुंचाया था। उसकी दुरभिसन्धि से राज्य से एक ऐसे व्यक्ति का अस्तित्व समाप्त हो गया जिसकी सेवाओं की उस समय राज्य को नितान्त आवश्यकता थी। यद्यपि उसकी योजना पूरी हो गई और ख्वाजा जहाँ मारा गया, परन्तु स्वयं उसका भी अन्त उतना ही भयानक हुआ। उसकी भी हत्या, बहुत कपट पूर्ण ढङ्ग से एक ऐसे व्यक्ति द्वारा कर दी गई जिसे उसने विपत्त से छुटकारा दिला कर महत्वपूर्ण पद पर पहुंचाया था।

ख्वाजा जहाँ की मृत्यु के बाद तरफदारों तथा अन्य शक्तिशाली सरदारों में सुल्तान मुहम्मदशाह का अदब और रुआब बहुत कम हो गया। यद्यपि कुछ सरदार अब भी दिखावटी तौर पर सुल्तान के आज्ञाकारी बने रहे परन्तु धीरे-धीरे वे भी स्वेच्छाचारी एवं आजाद हो गए।

इस प्रकार दक्षिण में उन राज्यों का अभ्युदय हुआ जिनको अपने अधीन बनाने के लिए तैमूर के वंशज एक लम्बे समय तक संघर्षरत रहे। यद्यपि दक्षिण के ये मुसलमान शासक धीरे-धीरे निर्बल पड़ते गए परन्तु इसी के साथ-साथ मराठों की उपद्रवी प्रकृति जो यद्यपि स्वभावगत थी, परन्तु इतने काल तक दबी पड़ी थी, अब उबाल खाने लगी। अपने विजेताओं को निरन्तर संघर्षरत देख कर उनके हृदय में भी चिनगारी दहक उठी; धीरे-धीरे इसी चिनगारी ने अपना आकार बढ़ा कर सह्याद्रि की श्रेणियों एवं वनों में विद्रोह की एक ज्वाला सी फैला दी। मराठों ने अग्नि की ज्वाला की भाँति अपनी शक्ति बढ़ाई और दूर-दूर के लोग इस ज्वाला की प्रचंडता पर आश्चर्य करने लगे।

:——:

---

* गोदावरी के उत्तर में स्थित है। 'फ़रिश्ता' मराठा पाण्डुलिपि और लक्ष्मी नारायण की 'हकीकत-ए-हिन्दुस्तान' के आधार पर।

तीसरा अध्याय

बहमनी राज्य और प्राचीन मराठा वंश

बहमनी वंश के विनाश से पाँच स्वतंत्र राज्यों की उत्पत्ति—अहमदनगर, बीजापुर तथा गोलकुन्डा की शक्तिशाली रियासतों का अभ्युदय—दक्षिण (डेकन) शब्द का तत्कालीन अर्थ—सोलहवीं शताब्दी की प्रमुख घटनाओं की एक झलक—मराठों द्वारा किलों पर सैन्य संग्रह—मलावार एवं महाराष्ट्र के तटपर पुर्तगालियों का पहली बार प्रकट होना—उनके द्वारा गोआ की विजय—अहमदनगर के बादशाह द्वारा एक ब्राह्मण पेशवा की नियुक्ति—पुर्तगालियों द्वारा समुद्र तट की बरबादी—तेलीकोटा का युद्ध—विजयनगर राज्य की पराजय—अहमदनगर और बीजापुर के बादशाहों द्वारा पुर्तगालियों पर असफल आक्रमण—१५७३ ई० में महाराष्ट्र के अधिकांश भाग्य पर बीजापुर और अहमदनगर का अधिकार—बीजापुर; अहमदनगर और गोलकुन्डा का विस्तार—आन्तरिक प्रशासन—विभिन्न रियासतों के मराठों में आपसी विरोध—प्रमुख मराठा परिवार—बीजापुर एवं अहमदनगर में भोंसले तथा अन्य प्रमुख परिवारों का वर्णन—दक्षिण विजय के लिए मुगलों के आक्रमण का मराठों के अभ्युदय पर प्रभाव—अकबर के काल में दक्षिण की परिस्थिति—मलिक अम्बर—लुक जी जाधवराव—इब्राहीम आदिलशाह की मृत्यु—शाहजी भोंसले—मराठों का तीव्र विकास—मुहम्मद आदिलशाह का राज्याभिषेक—फतेह खाँ का उत्तराधिकार प्राप्त करना—मुर्तजा निज़ामशाह द्वारा मलिक अम्बर का कैद किया जाना—लुक जी जाधवराव की हत्या—जहांगीर की मृत्यु—खान जहां लोदी का विद्रोह एवं मृत्यु—शाहजी भोंसले का मुगल दरबार में प्रवेश—मुर्तज़ा निज़ामशाह एवं बीजापुर के बादशाह में घनिष्ठता—बीजापुर की सेनाओं का मुगलों द्वारा पराजित होना—फतह खाँ द्वारा मुर्तज़ा निज़ामशाह की हत्या—शाह जी को दिए जाने वाले कुछ जिलों का फ़तह खाँ को सौंपा जाना—शाह जी का विवश होकर बीजापुर की सेना में सम्मिलित होना—फ़तह खाँ का छल पूर्वक मुग़लों से अलग हो जाना—दौलताबाद पर आक्रमण और विजय—शाहजी का उच्चपद एवं शक्ति प्राप्त करना—शाहजहाँ की नीति—बीजापुर से युद्ध—सन्धि—सन्धि की शर्तें—शाहजी द्वारा हिरपुर पर आक्रमण चालू—अन्त में हताश होकर बीजापुर दरबार में सम्मिलित होना—बहेरी वंश की समाप्ति।

ख्वाजा जहाँ गावान के प्रशासन में सरकारी (शासन केन्द्रों) का जो बँटवारा हुआ जैसा कि हमने पिछले अध्याय में देखा है, उसके अनुसार यूसुफ आदिल सावी को दौलताबाद में नियुक्त किया गया था परन्तु उसके मरते ही आदिल खाँ को बीजापुर चला जाना पड़ा। बीजापुर में अनुकूल परिस्थितियों से उसकी शक्ति बढ़ती रही और सन् १४८९ तक उसने अपने आपको वहाँ का सुल्तान घोषित कर दिया। इस प्रकार बीजापुर के सुल्तानों का जन्म हुआ जिसे दक्षिण में आदिलशाही साम्राज्य के नाम से प्रसिद्धि मिली।

अहमदनगर का पहला शासक मलिक अहमद था जिसने निजामशाही या बहेरी साम्राज्य की स्थापना की थी। वह उसी निजामुलमुल्क का पुत्र था जिसका ख्वाजा जहाँ गावान की हत्या में प्रमुख हाथ था।

मृत वजीर के पद पर अधिकार पाने के पश्चात् निजामुलमुल्क, मुहम्मदशाह की राय से, उसके बेटे सुल्तान महमूद का प्रधान मंत्री बन बैठा। इससे उसकी जागीर में भीर तथा कुछ और जिले भी

शामिल हो गये। मलिक अहमद उस समय अपने पिता की, हाल ही में मिली जागीर राजमहेन्द्री और उड़िसा में अपने पिता के सहायक का कार्य कर रहा था। वहाँ से उसे उत्तर की तरफ कर दिया गया। ऐसा लगता है कि १४७८ के बंदोबस्त के अनुसार दौलताबाद और जुन्नार का प्रमुख शासक वही था।

जब उसके पिता-निजामुलमुल्क की हत्या कर दी गई तो उसने उसका बदला लिया। सर्वप्रथम उसने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित किया और तब उसने महमूदशाह बहमनी द्वारा किए गए सभी हमलों को व्यर्थ कर दिया जो उसकी सल्तनत को खत्म करने के लिए किए गए थे।

कुतुबुलमुल्क, जिसे १४९५ में तेलगांना का तरफदार नियुक्त किया गया था, अब स्वयम् सुल्तानों सा आचरण करने लगा। उसने १५१२ में गद्दी पर बैठना शुरू कर दिया। इसी समय उसने कुतुबशाह की उपाधि भी धारण की।

बरार राज्य का संस्थापक फतह उल्ला उम्मद-उलमुल्क, पहले वहीं का सूबेदार था। उम्मदशाही राज्य का अन्त १५७४ में हो गया जब मुर्तजा निजामशाह प्रथम द्वारा विजित होकर बरार राज्य अहमदनगर में मिला लिया गया।

बरीदशाही राज्य, जिसे अमीर बरीद ने संस्थापित किया था, उम्मदशाही राज्य से कुछ पहले ही खत्म हो गया था। अमीर बरीद का सारा प्रभाव केवल इसलिए था कि बादशाह पर उसका काफी नियंत्रण था। उसकी जागीर गुलबर्गा और बीदर की सीमा के आगे कभी नहीं बढ़ी। जागीर का अधिक भाग बाद में बीजापुर में मिला लिया गया था।

इन्हीं तीनों राज्यों-अर्थात् बीजापुर, अहमदनगर और गोलकुण्डा से हमारा विशेष प्रयोजन है। *

---

* उन तीनों वंशों के शासकों की नामावली (सोलहवीं सदी के अन्तिम चरण तक) उनके शासन काल के साथ इस प्रकार है:—

बीजापुर का आदिलशाही राज्य	अहमदनगर का निजामशाही राज्य बहेरी वंश	गोलकुन्डा का कुतुबशाही राज्य
१—सुल्तान यूसूफ आदिलशाह ने १४८९ में स्वतंत्र घोषित किया और १५५० में मृत्यु हुई।	१—मलिक अहमद ने अहमद निज़ामुल मुल्क की उपाधि धारण की। १४८७ के करीब वह स्वतंत्र हुआ; १५०८ में मर गया।	१—सुल्तान कुतुबउलमुल्क १५१२ में स्वतंत्र हुआ और १५५१ में मर गया।
२—सुल्तान इस्माइल आदिलशाह ने अपने पिता के बाद गद्दी प्राप्त की और १५५४ में मर गया।	२—सुल्तान निज़ाम बुरहानशाह ने अपने पिता से गद्दी ली; १५५३ में मृत्यु हुई।	२—सुल्तान ने अपने पिता से गद्दी पाई। सात महीने बाद ही अपने भाई द्वारा पदच्युत कर दिया गया।
३—सुल्तान मुल्लू आदिल शाह ने अपने पिता से गद्दी प्राप्त की और १५५५ तक रहा।	३—सुल्तान हुसेन निज़ाम शाह ने अपने पिता से गद्दी प्राप्त की; १५६५ में मर गया।	३—सुल्तान इब्राहीम कुतुबशाह, उसकी मृत्यु १५८१ में हुई।
४—इब्राहीम आदिलशाह ने अपने भाई से १५५७ में गद्दी प्राप्त की।	४—सुल्तान मुर्तज़ा निज़ाम शाह ने अपने पिता से गद्दी पाई; अपने पुत्र द्वारा १५८७	४—सुल्तान मुहम्मद कली कुतुबशाह ने अपने पिता से गद्दी प्राप्त की। उसके बाद उसका

आगे लिखने के पहले, पाठकों की सुविधा के लिए, हमें 'दक्षिण' शब्द को समझ लेना चाहिए। हमें आजकल के प्रचलित 'दक्षिण,' या हिन्दू पुराणों में वर्णित दक्षिण से भी इस इतिहास के सम्बन्ध में कुछ सहायता नहीं प्राप्त हो सकती, क्योंकि इस प्रकार तो हमें 'दक्षिण' में भारतीय प्रायद्वीप के पाँचों प्रमुख विभागों को सम्मिलित कर लेना पड़ेगा। पश्चिमी विद्वानों ने इसे मुसलमानों में प्रचलित अर्थ में लिया है। दक्षिण की आधुनिक संज्ञा में तेलगांना का कुछ भाग, गोंडवाना का कुछ भाग तथा घाटों के ऊपर स्थित महाराष्ट्र का प्रशस्त भाग जो कृष्णा से नर्मदा तक विस्तृत है, सम्मिलित हैं।

अब हमें १६ वीं सदी की मुख्य घटनाओं, राज्यों पर उनके प्रभाव तथा देश व निवासियों की दशा के बारे में गम्भीरता से विचार करना चाहिए।

सन् १४८७ में मलिक अहमद की नियुक्ति दौलताबाद तथा जुन्नार के शासक के रूप में हुई। उस समय मानों क्रान्ति के द्वार पर खड़े मराठों की सेनाएँ पहाड़ी किलों में जमा रहती थीं। मलिक अहमद को पहली आवश्यकता इस बात की जान पड़ी कि वह पूना, कोण्डने या सिंहगढ़, तथा कोंकण के कुछ किलों (जैसे अहमद नगर राज्य के एकदम दक्षिण में स्थित डांडा राजापुर का किला) अपने अधिकार में कर लें।

मराठों द्वारा इन किलों का समर्पण न करने से महमूद शाह उतना परेशान नहीं था जितना कि उनकी आए दिन होने वाली छोटी मोटी लड़ाइयों से। इन छिटपुट लड़ाइयों से उसके दरबार की शांति आए दिन भंग होती रहती थी।

सोलहवीं सदी में एक और शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ जिसका इस काल की होने वाली घटनाओं में प्रमुख हाथ था। यह नई शक्ति पुर्तगालियों की थी जिन्होंने वास्को-डि-गामा के नेतृत्व में सन् १४९८ में सर्वप्रथम कालीकट में (जो मलाबार या केरल के समीप है) अपने चरण रक्खे। १५०७ में फ्रांसिस्को डि अलमिडा का पुत्र लारेन्ज़ों, मिश्र के सोल्डन लोंगों के बेड़े से युद्धरत था। यह युद्ध अहमनगर राज्य के चोल नामक इलाके में चल रहा था। इसी सिलसिले में पुर्तगाली तोपों की प्रथम आवाज महाराष्ट्र तट पर सुनाई पड़ी। केवल मलिक निजामुलमुल्क बहेरी द्वारा शासित प्रदेश ही ऐसा था जहाँ पुर्तगाली समुद्री डाकुओं का जोर नहीं था। अहमदनगर के शासकों के साथ उन्होंने हमेशा मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाए रक्खा।

५—अली आदिलशाह ने अपने पिता से गद्दी पाई। १५८० में उसकी हत्या कर दी गई।

६—सुल्तान इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय ने पिता से गद्दी पाई।

में मार डाला गया।

५--सुल्तान मीर हुसेन निज़ाम शाह अपने शासन के दो महीने के भीतर ही मार डाला गया।

६--सुल्तान इस्माइल निज़ामशाह मीर हुसेन का चचेरा भाई था; इसे गद्दी पर बैठाया गया, परन्तु अपने पिता द्वारा हटा दिया गया।

७--सुल्तान बुरहान निज़ामशाह द्वितीय; उसकी मृत्यु १५९५ में हुई।

भाई गद्दी पर बैठा।

५—सुल्तान अब्दुला कुतुबशाह।

३० दिसम्बर सन् १५०८ में पुर्तगाली बेड़ा देवल में उतरा। वाइसराय फ्रांसिस्को डि अलमिडा स्वयम् बेड़े का संचालन कर रहा था। उसने अपने आदमियों को उतार कर किनारे के नगरों को लूटा तथा जला दिया। परन्तु पुर्तगालियों की महत्वपूर्ण विजय उस द्वीप पर हुई, जिस पर आधुनिक गोआ स्थित है। गोआ का यह महत्वपूर्ण द्वीप उस समय बीजापुर रियासत के आधीन था।

एक भारतीय जलदस्यु तिमूजी के सुझाव पर जो कनात का रहने वाला था—अलफान्ज़ो ने गोआ पर आक्रमण करने का इरादा किया था। इस आक्रमण पर गोआ निवासी आश्चर्य चकित रह गये, और २७ फरवरी १५१० को उन्हें आत्म समर्पण करना पड़ा, परन्तु कुछ महीनों में ही यूसुफ आदिल शाह ने पुनः इसपर अपना अधिकार जमा लिया। ज्यों ही अच्छा मौसम आया इस पर अलबुकर्क ने पुनः आक्रमण किया और तभी से (२५ नवम्बर १५१०) यह भाग पुर्तगालियों के अधिकार में है।

यह भी स्मरणीय है कि सन् १५२९ के आस पास बुरहान निजाम शाह ने अपना पेशवा या प्रधान मंत्री कुंवरसेन नामक एक ब्राह्मण को बनाया। तभी से हिन्दुओं को निजामशाही सरकार में काफी महत्वपूर्ण पद प्राप्त हुआ। सुल्तान इब्राहीम आदिलशाह ने भी बीजापुर की गद्दी पर बैठने के बाद महाराष्ट्रियों को स्थान दिया चाहे वे व्यापारी रहे हों या सैनिक। उसने अपना हिसाब किताब, जो अब तक फारसी में होता था, मराठी भाषा में रखवाना शुरू किया, यद्यपि महत्वपूर्ण चीजें * दोनों भाषाओं में लिखी जाती थीं। इस सुधार ने निश्चित रूप से मराठा ब्राह्मणों की शक्ति और महत्व को बढ़ाया। इसी प्रकार इब्राहीम आदिल शाह ने प्रायः सभी विदेशी सेनाओं को भी भंग कर दिया तथा कई विदेशी सलाहकारों और विद्वानों को भी हटा दिया। उसके पास तीस हजार दक्षिणी सवार सैनिक थे। उसने सर्वप्रथम बारगीर † सैनिकों की भरती का श्रीगणेश किया जो एक घोड़े के साथ किसी राज्य या व्यक्ति द्वारा सल्तनत को दिये जाते थे, और इस प्रकार स्वतः ‡ सिलेदार सैनिकों का महत्व कम हो गया।

सन् १५३२ ई० में पुर्तगालियों नं समुद्री किनारों पर आक्रमण करना, किनारे के शहरों को जलाना और बर्बाद करना शुरू किया। चिकली तारापुर से लेकर बसीन तक उन्होंने समस्त प्रतिरक्षात्मक मोर्चे बन्दियों को, जिनमें अच्छे किले भी थे, को बर्बाद किया तथा थाना और बंबई से उसने कर वसूल किया। उसके दो वर्ष बाद उन्होंने डामन पर अधिकार किया। पुर्तगालियों ने गुजरात के सुलतान बहादुर को बसीन देकर बदले में उससे ड्यू में एक किला बनाने की आज्ञा प्राप्त की तथा लाल सागर से होने वाले अपने व्यापार पर से चुंगी खत्म करवा लिया, अर्थात् बिना रोक टोक के व्यापार करने का अधिकार प्राप्त कर लिया। इसके लिये बदले में सुल्तान को मुगलों के खिलाफ युद्ध में सहायता करने का वचन दे दिया गया।

कुछ वर्ष तो पुर्तगालियों को गुजरात से ही फुर्सत नहीं मिली, पर १५४८ में उन्होंने बीजापुर के किनारे वाले क्षेत्रों में भीषण मारकाट आरम्भ कर दिया। गोआ और वानकोट के बीच के नगरों तथा इनके पड़ोस के क्षेत्रों में तलवारों और अग्निकांडों से तहलका मचाने के बाद पुर्तगालियों को निमंत्रण मिला कि वे इब्राहीम अदिल शाह को गद्दी से हटा कर उनके भाई, अब्दुल्ला को बैठाने वाले दल के साथ साजिश में सम्मिलित हो जायं, अब्दुल्ला उन दिनों गोआ में ही रह रहा था। अपने इस प्रयत्न में वे सफल नहीं हुये।

---

* प्राचीन प्रपत्रों के आधार पर

† फ़रिश्ता

‡ सिलेदार सैनिक एक इज्जतदार कोटि का सैनिक होता है, वह अपना सवारी घोड़ा अपने खर्च पर रखता है

दक्षिणी मुस्लिम शक्तियों की सम्मिलित सेनाओं का कर्नाटक की हिन्दू सेनाओं से तालीकोट नामक स्थान पर सन १५६४ में निर्णायक युद्ध हुआ। इस लड़ाई में विजयनगर राज्य तो लगभग समाप्त ही हो गया था, पर मुसलमानी सुल्तानों के आपसी मनमुटाव ने केनारा की राजधानी को एकदम बर्बाद होने से बचा लिया। राम राय के भाई को कुछ राज्य दे दिया गया, परन्तु यह राज्य कभी भी अपने को मजबूत न बना सका तथा इसकी कमजोरी से फायदा उठा कर देशमुखों और जमींदारों ने अपनी स्वतन्त्र स्थिति बना ली।

सन् १५७१ में बीजापुर और अहमद नगर के शासकों ने सम्मिलित रूप से पुर्तगालियों पर आक्रमण किया। अली आदिल शाह ने गोआ पर आक्रमण किया और उसमें उसे शानदार विजय मिली। इसके विपरीत चोल में जहाँ मुर्तजा निजाम शाह ने आक्रमण किया था, और जिसकी प्रतिरक्षा लुइस, फेरारा डि अन्ड्रेडा कर रहा था। वहाँ विजय पुर्तगालियों की हुई, कारण, जैसा कि साधारण तथा देशी सेनाओं के हारने पर होता हैं। मुसलमानों के आक्रमण का उद्देश्य विजय न होकर बदले की भावना थी।

इस सम्बन्ध में फरिश्ता का कहना है कि "निजाम शाह के, सभी राज कर्मचारी लोलुप और शराबी थे।" दोनों सुल्तानों को इसी साल के अगस्त महीने के बाद युद्ध करना पड़ा, पर तब तक आदिलशाह ने कर्नाटक के कुछ राजाओं के ऊपर हाथ साफ कर दिया था और वह उनकी कुछ सीमा को अपने में मिलाने में सफल भी हो गया था।

सन् १५७३ में महाराष्ट्र प्रायः बीजापुर और अहमद नगर के शासकों के अधीन था। अपवाद के रूप में खानदेश पर सुल्तान, बुरहानपुर तथा उत्तरी कोंकण पर गुजरात के सुल्तान और कुछ क्षेत्रों पर पुर्तगालियों का शासन था। विजय नगर की शक्ति तो हमेशा के लिये क्षीण हो गई थी। बरार और बीदर अपने शक्तिशाली पड़ोसियों के अधिकार में चले गये थे।

दक्षिण की इन तीन मुसलमानी रियासतों पर जिन्होंने प्रायः सम्पूर्ण रूप से अधिकार जमा रखा था, हम उन्हें विस्तार से जान सकते हैं, तथा उनका स्पष्ट परिचय भी दे सकते हैं।

बीजापुर का विस्तार नीरा नदी से तुंगभद्रा तक था। तुंगभद्रा के दक्षिण के जिले अदोनी और शायद नंडियाल भी बीजापुर के अधिकार में थे। इसकी पश्चिमी सीमा कुछ पूर्व उल्लिखित अपवादों के साथ वानकूट से लेकर रामा अन्तरीप तक के समुद्री किनारों से निर्धारित होती थी। पूर्व में रायचूर, इदगीर, मलकेर और बीदर के जिले इसे गोलकुंडा की राजधानी से अलग करते थे। आकलकोट, नल दुर्ग और कल्यान इसकी उत्तरी सीमा के प्रदेश थे। शोलापुर अहमद नगर और बीजापुर के बीच में होने के कारण वह कभी बीजापुर की सेनाओं द्वारा रौंदा जाता और कभी अहमद नगर की सेनाओं द्वारा।

अहमद नगर का विस्तार बरार के बड़े भाग के अलावा उन क्षेत्रों तक था जो पीछे औरंगाबाद सूबे के क्षेत्र के रूप में सामने आया। खानदेश के जालना के अतिरिक्त कुछ जिले तथा कोंकण का कल्यानी जिला अर्थात् बानकोट से बसीन तक का क्षेत्र इस राज्य की सीमा के अंदर आता था।

गोलकुण्डा की सीमा बीजापुर तथा अहमद नगर की पूर्वी सीमा से आगे शुरू होती थी और इसके आगे समुद्र तट तक विस्तृत थी। परन्तु राज्य का राजमहेन्द्री के आसपास का क्षेत्र, जो उड़ीसा राज्य का विजित प्रदेश था, उन्हीं के राजवंश के शासकों द्वारा शासित था। इसका कर लिया जाता था, कारण उस समय इब्राहीम कुतुब शाह कर्नाटक राज्य के हिस्सों को जीतने में लगा हुआ

था। इन्हीं दिनों बीजापुर और अहमद नगर के सुल्तान या तो पुर्तगालियों के साथ उलझे पड़े थे, अथवा बरार या कर्नाटक में अपनी सीमा बढ़ाने का प्रयास कर रहे थे।

इन शासकों के अधीन देश सरकारों (Sirkars) में बँटे हुए थे। यद्यपि इन विभाजनों में मुगलों जैसी स्थिति का अभाव था, सरकारों में भी उपविभाग थे, जिनको विभिन्न प्रकार के नाम दिये जाते थे, जैसे, परगना, किरियात, सम्मत, महाल, और ताल्लुका। इसके अलावा भी हिन्दू नाम करण में इन्हें प्रान्त और देश कहा जाता था। खोरा, मूरा और मवूल के विषय में हम कोंकण-घाट-माथा जैसे विषयों के साथ-साथ ही जान चुके हैं। वे नाम प्राचीन हिन्दू प्रबन्ध के हैं जो इस काल के शासन प्रबन्ध में हिन्दुओं के द्वारा प्रयोग में लाये गये हैं।

इन सारी मुसलमानी रियासतों में लगान छोटे भागों में निर्धारित होता था। किसी-किसी भाग में यह एक गांव पर एक साथ निर्धारित होता था। जहां लगान निर्धारित नहीं होता था वहां यह हिन्दू सिद्धान्तों के अनुसार निर्धारित हो जाता था। लगान की वसूली के लिये आमिल होते थे जो सरकार द्वारा नियुक्त होते थे। इनके अधिकार में सैनिक रहते थे जो लगान वसूली को सुचारू रूप से चलाने में उनकी मदद करते थे। यही लोग राजकीय मुकदमे भी सुनते थे, पर वे किसी के जन्म जात पद जैसे मुखिया तथा पैतृक अधिकार के मुकदमें नहीं सुनते थे, इस प्रकार के मुकदमे पंचायतों द्वारा निर्णीत होते थे। लगान के लेन देन संबन्धी मामलों में यही आमिल अपना निर्णय देता था, जो प्रायः अन्तिम होता था, बीजापुर राज्य में एक अमलदार होता था। जिसके अन्तर्गत वसूली करने वाले समस्त आमिल कार्य करते थे वह एक निश्चित भाग में वसूली कार्य का प्रबन्ध देखता था। इस कर्मचारी को मकसददार के नाम से पुकारा जाता था। ऐसा पता लगता है कि उसको इस वसूली का कुछ प्रतिशत बतौर पारिश्रमिक के रूप में मिलता था। मिलने वाली यह रकम कितनी थी, यह निश्चित पता नहीं चलता। इस बात के प्रमाण हैं कि इस अधिकारी का कार्यकाल बीस वर्ष या और भी अधिक रहा है और यह अनुवंशिक अधिकार के रूप में उसके पुत्रों और पौत्रों को मिला है, पर यह सब सुल्तान की इच्छा पर निर्भर था। कुछ तो साल भर में ही हटा दिये जाते थे। यह आवश्यक नहीं था कि मकसददार मुसलमान ही हो। प्रायः मकसददार के ऊपर सूबेदार का नियन्त्रण होता था, पर यह आवश्यक नहीं था, क्योंकि वह निश्चित रूप से किसी नगर में नहीं रहता था तथा लगान वसूली संबन्धी कार्यों में वह कोई हस्तक्षेप नहीं करता था तथापि शाही फर्मान और अन्य महत्वपूर्ण आदेश उसी के नाम से प्रचारित होते थे।

इन शासनों के प्रथम चरणों में मराठों की स्थिति प्रायः वैसी ही रही जैसी बहमनी राजाओं के शासन काल में थी। पहाड़ी किले मराठे सैनिकों से भरे रहते थे। कभी-कभी तो वे सीधे सरकार से वेतन लेते थे और कभी-कभी वे जागीरदारों और देशमुखों के अधिकार में रहते थे। महत्व के कुछ किले जिनमें काफी सैनिक रहते थे सीधे शासक के अधिकार में रहते थे। इन किलों के किलेदार या गवर्नर इन्हीं शासकों द्वारा नियुक्त होते थे। परन्तु इस स्थल पर हमें पुनः सावधानी से पीछे की ओर लौटना पड़ेगा। मुगलों की भांति मराठा प्रमुखों को भी मन्सब, कायम जो किसी निश्चित सैनिक के हिसाब से होता था, इन प्रमुखों को दिया जाता था, परन्तु यह कुछ मानों में भिन्न था। जहां मुगलों का मन्सबदार नाम मात्र का मन्सबदार होता था, वहां मराठा मन्सबदार अपनी मन्सब के हिसाब से घोड़े भी रखता था। उदाहरणार्थ मुगलों का दस हजारी मन्सबदार शायद पांच हजार भी सवार सेना नहीं रखता था, तथा शायद ही किसी मन्सबदार के पास वास्तविक रूप में दस हजार से अधिक घोड़े रहे हों, पर मराठी मन्सबदारों के पास, जैसा कि हम देखेंगे चौबीस हजार तक घोड़े रहते थे तथा इस सेना के भरण पोषण के लिये जो इन [illegible] जागीर और जमीन दी

जाती थी। सैनिकों की संख्या के हिसाब से यह जागीर बहुत अधिक होती थी, जैसे पठान देश, जिसको मराठा पेशवाओं ने ३५० घोड़ों के बदले में दिया, वही, बीजापुर की सरकार ने सिर्फ पचास सज्जित सवारों के लिये दिया था। परन्तु इसमें एक सुविधा भी थी, वह यह कि मराठे प्रमुख या सरदार अल्प सूचना पर अपनी सेना तैय्यार कर देते थे तथा इनका पद सुल्तान की इच्छा पर हटाया और बनाया जाता था जो इन खर्चीले दरबारों के लिये विशेष सुविधाजनक था। बहुत से मराठों को उपाधियाँ भी दी जाती थीं, यद्यपि दक्षिण में ये उपाधियां सिर्फ प्राचीन हिन्दू परम्पराओं की पुनरावृति ही थीं। राजा, नायक और राव, इस प्रकार की साधारण उपाधियां थीं और ये उपाधियां यद्यपि इन्ही मुस्लिम विजेताओं द्वारा दी जातीं थीं पर इन उपाधियों में भी मराठों को दी गई उपाधियां असाधारण रूप से सम्मानित होतीं थीं तथा इनमें खास विशेषता उपाधियों के साथ संलग्न जागीर का होना थी, जो प्रायः उनके नये पद के रक्षण और निर्वाह के लिये दिये जाते थे।

आदिल शाही नरेशों के इतिहास में मराठों को वर्गी नाम से उल्लेख किया है। मराठे पश्चिमी विद्वानों में बर्गी नाम से ही विख्यात हैं। वर्गी या वर्गे नाम मुसलमानों द्वारा बहुतायत से लिये जाते थे। कर्नाटक के नायकों को वे इसी नाम से पुकारते थे, इनमें से जो सैनिक अपनी मातृ भाषा भी बोलना नहीं जानते थे, स्वयंम् को मराठा कहते थे। परन्तु मराठी मन्सबदारों की सारी सेना इसी वर्गी नाम से पुकारी जाती थी। भारत के कई भागों में उन्हें अब भी उसी नाम के पुकारा जाता है। ऐसा लगता है कि यह बारह भाई * की तरह ही किसी प्रकार चल निकला, जब बीजापुर की सेना में इन दक्षिणियों को रखने का सवाल उठा होगा वह किसी विदेशी सवार सेना से नकल करके उनके लिये वर्गी नाम रखा गया होगा। इसलिये कि वे और सेना से अलग रह सकें। मराठों की यह सेना हर समय के लिये लाभदायक थी। इनका उपयोग रास्ता रोकने में, दुश्मनों की रसद बंद करने में तथा भागती सेना का पीछा करने में सफलता पूर्वक किया जाता था। देश को रौंदने, लूटने पाटने, और बर्बाद करने में भी इनका जोड़ नहीं था।

फरिश्ता लिखता है कि "सन् १५७८ के आस-पास इन कुछ बर्गी सर्दारों ने अपनी जागीरों में भयानक अत्याचार किये।" ये जागीरें कर्नाटक में थीं। इन लोगों को दबाने के लिये उचित रूप से काफी सेनायें भेजी गयीं, परन्तु एक साल की लगातार लड़ाई के बाद, दबाने के लिये भेजी गई सेना के सर्दार ने, बर्गियों को किसी प्रकार दबाने में अपनी असमर्थता स्वीकार की। तब अली आदिल शाह ने अपना वह स्मरणीय जाल बिछाया जिसे दक्षिण हमेशा याद रक्खेगा। इस जाल के अनुसार उसने सभी अत्याचारी वर्गी सरदारों को अपनी शक्ति के अन्दर कर, जागीरों को छीन कर उन्हें मार डाला। इस कार्य में उसका, मुख्य सहायक एक ब्राह्मण था, वासो जी पन्त, जो काफी सर्दारों को फुसलाने में सफल हुआ।

इसके बाद बर्गियों ने अपने आपको, सुल्तान के सहयोगी के रूप में सामने रक्खा और इसी कारण सुल्तान इब्राहीम आदिल शाह के शासन काल में हम उन्हें स्वाभाविक रूप से निजाम शाही के विरुद्ध युद्ध करते हुए देखते हैं।

मराठों की संख्या, स्वाभाविक रूप से बीजापुर और अहमद नगर की सेनाओं में अधिक थीं, क्योंकि ये दोनों राज्य ही लगभग सारे महाराष्ट्र पर कब्जा किये हुये थे, परन्तु कुछ मराठे गोलकुण्डा

---

* मराठी भाषा में वारह भाई शब्द उस समय प्रयोग में आता है जहां एक ही वस्तु या कार्य या संस्था कई हाथों में हो और उन अधिकारियों के अधिकारों में कोई स्पष्ट विभाजन न हो। यूरोपियन लेखकों ने इस शब्द को बड़े ही भ्रामक अर्थों में लिखा है। मराठा ब्राह्मणों ने इस शब्द का प्रयोग उसी स्थान पर किया है जहां उनका किसी वस्तु पर सम्पूर्ण अधिकार नहीं होता था।

की सेना में भी थे। इनके आपसी मारकाट को न तो राष्ट्रीय भावना रोक पाती थी और न ही जाति या धर्म की एकता। इनकी यह लड़ाई सिर्फ इसलिये ही होती थी कि वे विभिन्न सरकारों की प्रजा थे। यह बात नहीं, एक ही घर परिवार के सदस्यों में भी दुश्मनी और बदले की भावना के उदाहरण बहुतायत से देखने को मिलते थे। वे साधारण पारिवारिक बंटवारे और पैतृक संपत्तियों के लिये एक दूसरे पर जान ले व दे कर आक्रमण कर देते थे। दुश्मनी की इस भावना को बहमनी शासन ने प्रोत्साहन दिया। इसका बुरा परिणाम यह होता था कि मराठे आपसी एकता कभी न बना पाते थे। यही स्थिति आगे के राज्यों में भी कायम रही।

बीजापुर के अन्तर्गत मुख्य मराठा सर्दार निम्न थे, (१) चन्द्र राव मोरे (२) राव नायक निम्बालकर (३) जुझार राव घाटगे (४) राव माने (५) घोरपड़े (६) डफले (७) वारी के देशमुख सावन्त बहादुर इत्यादि।

अहमद नगर के अन्तर्गत (१) राव जाधव (२) राजा भोंसले, के अतिरिक्त अन्य कई और सर्दार भी थे, जिनका यहां पर कोई खास महत्व नहीं है।

बीजापुर के सर्दार मोरे को, जो शुरू में कर्नाटक का नायक मात्र था, युसूफ आदिल शाह के क्षेत्र की ओर बारह हजार हिन्दू सेना के नायक के पद पर इस उद्देश्य से नियुक्त किया गया था कि वह नीरा और वरुणा नदी के बीच के स्थल पर अधिकार कर ले। अपने इस अभियान में मोरे सफल रहा। उसने राज सिरकी के उत्तराधिकारियों को अपदस्थ करके उनके अधीन समस्त छोटे-मोटे जमींदारों वगैरह को भी खत्म कर दिया। इनमें से कुछ प्रमुख परिवार, गूजरों, मामुलकर, मोहिते, तथा महारिकों के थे। अपने इस कार्य के लिये मोरे को चन्दर राव की उपाधि प्रदान की गई, और उसका पुत्र जो निजाम शाह के साथ पुरिन्दा के निकट हुए युद्ध में अपनी बहादुरी के लिये ख्याति प्राप्त कर चुका था, अपने पिता की प्राप्त संपति और सम्मान के अधिकार प्राप्त कर जावली के राज्य का शासक हुआ। उसको वे समस्त सुविधायें मिलीं जो उसके पिता को प्राप्त थीं। इस बंश की सात पीढ़ियों ने उसी क्षेत्र पर राज्य किया। इनके जनप्रिय और लाभदायक शासन ने इस नगण्य और असभ्य इलाके को प्रसिद्धि के शिखर पर बैठा दिया। मोरे बंश के सभी उत्तराधिकारियों ने चन्द्रराव की उपाधियाँ धारण की। इसी राजा की प्रेरणा से इस क्षेत्र पर सरकारी लगान नाम मात्र से कुछ ही अधिक ली जाती थी जो इनके कम उपजाऊ जिलों को जो सदियों से मुसलमानों द्वारा चूसे और तहस-नहस किये गये थे, बोझिल न लगती थी।

बीजापुर दर्बार का दूसरा प्रमुख मराठा सर्दार पलटन का नायक था। इसको राव नायक निम्बालकर की उपाधि मिली हुई थी, तथा उन्हें पलटन राव भी कहा जाता था। उनका पारिवारिक नाम 'पवार' बताया जाता है। निम्बालकर नाम उनके गाँव निम्बालक से लिया गया है जिसे आज कल निमलक नाम से जाना जाता है। यहीं इनके पूर्वज रहते थे। उनका देशमुख का पद पल्टन देश से संबन्धित है जिसका अब पता नहीं चलता। यह परिवार मानो महाराष्ट्र का काफी प्राचीन परिवार कहा जाता था। सत्रहवीं सदी के मध्य से कुछ पहिले निम्बालकर को पल्टन देश का सर देशमुख नियुक्त किया गया था। सनद देखने से तिथि और इस बात का पता चलता है, कि यह नियुक्ति बीजापुर नरेश ने ही की थी। ऐसा कहा जाता है कि पीछे पल्टन देश का यह देशमुख कर्तव्यच्युत हो गया और कई बार लगातार जिले की आय खा गया, परन्तु इस घटना के किसी सही समय का पता नहीं चलता।

नायक कंगोजी जिसे अधिकतर जगपाल के नाम से जाना जाता है, सत्रहवीं सदी के प्रथम चरण में अपने अनवरत कार्य और डाकेजनी के लिये प्रसिद्ध था। इसी जगपाल की बहन प्रसिद्ध शिवाजी की

दादी थी। निम्बालकर वंश के किसी भी व्यक्ति ने अपने पूर्वजों की उपाधि को राजा जैसी किसी अन्य उपाधि से कभी नहीं बदली, और सभी अपने नाम के साथ नायक की उपाधि ही लगाते रहे।

मलोरों के देशमुख जुझार राव, घाटगे नामक शक्तिशाली परिवार के मुख्य थे। उनका घर कुताबदेश में था जो निम्बालकर के क्षेत्र से एक महादेव नामक पहाड़ियों की श्रेणी से अलग हो गया था। घाटगे लोग बहमनी शासन में, मान परगना के देशमुख और सर देशमुख एवम् मनसबदार थे। सन् १६२६ से पहले उन्हें देशमुख और सर देशमुख की उपाधि नहीं मिली थी। इसी समय इब्राहीम आदिलशाह ने उन्हें बिना किसी शर्त के यह उपाधि-नागोजी घाटगे को प्रदान की। इसी के साथ जुझार राव की भी उपाधि दी गई। सर देशमुखों को मिलने वाली लगान की संख्या के बारे में किसी भी आदिलशाही नरेशों द्वारा लिखित कुछ नहीं मिलता। परिवार का प्रसिद्ध पूर्वज पुरुष कामराज घाटगे को बहमनी शासन में छोटा सा मन्सब मिला हुआ था। उस कथन से लेकर इस काल तक यह परिवार अपनी प्रसिद्धि और राजकीय संपत्ति को बनाये रख सका हैं। बीजापुर क्षेत्र में इन्हे इनाम और जागीर के रूप में जमीनें मिलती रही हैं और इन्होंने बीजापुर की सरकार को घोड़े और सवार प्रदान किये हैं। इनकी जागीरें मकसददार के सीधे अधिकार में रहती थीं, और वही इनका मौके का आफिसर होता था।

माने परिवार का मुखिया, मन्सवार का देशमुख था। यह क्षेत्र घाटगे लोगों के जिले के पास ही सटा हुआ था। यह परिवार बीजापुर राज्य में सिलेदार के रूप में था परन्तु इस परिवार के लोगों की बदला लेने की प्रवृत्ति सिरके सैनिकों से भी अधिक थी। अपने इस स्वभाव के कारण इनकी काफी कुल्याति रही है।

घोरपड़े लोगों का वास्तविक नाम भोंसले था। उनकी पारिवारिक गाथाओं से पता चलता है कि बहमनी सुल्तानों के शासन काल में इनके किसी पूर्वज ने कोंकण में स्थित एक अभेद्य दुर्ग को सर कर लिया था। इस विजय को प्राप्त करने के लिये उन्होंने किले के एक स्थान विशेष (जिसे घोर पड़ कहा जाता था) के चारों ओर मजबूत रस्सा बाँध कर उस पर चढ़ने में सफलता प्राप्त की थी। तभी से इनको घोरपड़े कहा जाने लगा। इस समय वे बीजापुर शासन के अन्तर्गत देशमुख का कार्य कर रहे थे। और उसी समय के आसपास यह परिवार दो शाखाओं में विभाजित हो गया, एक शाखा को कापसी कहते हैं, यह वरुणा नदी के पास रहते थे। दूसरी शाखा को मधोले कहते थे। वे घटपुरवा के पास रहते थे। इन्होंने काफी पहले ही अपनी विशिष्ठता प्राप्त कर ली थी। कापसी शाखा के एक व्यक्ति को बीजापुर शासकों की ओर से अमीर उल उमराह की उपाधि दी गई थी।

डफले लोग झट्ट परगने के देशमुख थे जो बीजापुर से दूर नहीं था। उनका वास्तविक नाम चहवान था। उनका यह उपनाम इनके गांव डफलापुर से लिया गया है। इस गाँव के लोग वंशतः पटेल थे। उनके पास मन्सब था मगर उपाधि नहीं थी। बीजापुर नरेशों ने उन्हें कोई उपाधि नहीं दी थी।

सावंत लोग वारी के वंश के देशमुख थे। यह गोआ के समीप है। पुर्तगालियों से हुए किसी युद्ध में इनको बीजापुर के सुल्तानों ने बहादुर की उपाधि दी थी। इनका वास्तविक नाम भोंसले था, और आज भी इनके परिवार के लोग अपने को भोंसले ही लिखते हैं। यह स्मरणीय है कि इनके पारिवारिक जन्म स्थान को हमारे आधुनिक मानचित्रों में स्थान दिया गया है। सेना नायकों में इनका विशिष्ट स्थान था, जो उनके काल में उस प्रदेश में सर्वत्र सम्मान पूर्ण माना जाता था।

अहमद नगर की नौकरी में प्रमुख मराठा सर्दार जाधव राव थे। यह सिन्दखेर के देशमुख थे और इन्हें देवगढ़ के राजवंश का माना जाता है। मराठों में इस परिवार से अधिक शक्तिशाली और कोई परिवार नहीं था। सोलहवीं सदी के अन्त में लखु जी जाधव राव को निजामशाही की ओर से १०००० सैनिकों (घोड़ों) के भरण पोषण के लिये जागीर मिली हुई थी।

इसी प्रकार बापूजी भोंसले नामक एक और मराठा परिवार था जो काफी सम्माननीय माना जाता था और जिसका इस समय के इतिहास में काफी महत्व है। अहमद नगर के शासन काल में सर्व प्रथम इसको लोगों ने बढ़ते देखा। लोगों का कहना है कि इन्होंने और भी कई जगहों पर पटेल का पद पाया था, परन्तु उनका वास्तविक जन्म स्थान दौलताबाद के निकट बरोली था। बापूजी भोंसले के दो लड़के थे। बड़े का नाम मालो जी था तथा छोटे का नाम विटो जी। मालो जी का व्याह बचपन में ही बंगोजी वा जगपाल राव नायक निम्बलकर की बहन दीपाबाई से हुआ था, जो पल्टनपुर का देशमुख था। पच्चीस वर्ष की आयु में सन् १५७७ में लखू जी जाधव राव के प्रयत्न से उसे मुर्तजा निजाम शाह के राज्य में नौकरी मिली। उसके साथ घोड़ों की एक टुकड़ी थी जिसका संचालन स्वयम वही करता था। बहुत समय तक उसे कोई सन्तान नहीं हुई जो हिन्दुओं में महान अभाग्य का सूचक होता है। वह महादेव और भवानी का बहुत बड़ा भक्त माना जाता था, जो लाजपुर में स्थापित थे। यही उनके कुल देवता माने जाते थे; परन्तु उनकी सारी अर्चना व्यर्थ गई और उनके कोई उत्तराधिकारी नीं पैदा हुआ। अहमदनगर में रहने वाले एक मुस्लिम फकीर या पीर को जिसकी काफी शोहरत थी, इस फल प्राप्ति के लिये प्रार्थना करने हेतु नियुक्त किया गया। थोड़े समय के अन्दर ही मालोजी की रानी ने पुत्र जना। इसको उसी फकीर की दुआओं का फल मान कर उसी के नाम के अनुसार, शाह, कहकर पुकारा गया और इसके आगे, मराठी सम्मान सूचक शब्द 'जी' लगा कर शाह जी पुकारा गया और दूसरे ही साल उनको एक और पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम शरीफ जी रखा गया। शाह जी का जन्म सन् १५५४ में हुआ था।

मालोजी भोंसले एक क्रियाशील सिलेदार था। उसने अपने कार्यों और अपनी कार्य कुशलता से जल्दी ही अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। उसने प्रयत्न करके अपने घोड़ों की सख्या बढ़ा लिया। उसके राजनीतिक संरक्षकों में जाधवराव हमेशा उसका विशेष ध्यान रखते थे। उसका बड़ा लड़का असाधारण सुन्दर लड़का था। सन् १५९९ की होली के त्योहार में जब शाह जी सिर्फ पाँच साल का था, अपने पिता के साथ जाधवराव के घर गया। सभी जातियों में इस अवसर पर एक दूसरे से मिलने की प्रथा है। विशेष कर छोटे अपने से बड़ों के यहाँ होली के दिन अवश्य जाते हैं। ऐसे आवागमन में यदि परिवारों में जरा भी परिचय घनिष्ट होता हो तो बच्चे भी अपने पिता के साथ अवश्य जाते हैं। इसी अवसर पर जाधव राव की नजर सुन्दर स्वस्थ शाह जी पर पड़ी। उन्होंने बड़े प्यार से शाह जी को अपने समीप बुलाया और वहीं अपनी लड़की के समीप जिसका नाम जीजा था, बैठा दिया। लड़की तीन चार वर्ष की छोटी सी बच्ची थी। दोनों बच्चे आपस में मिलकर खेलने लगे। अचानक ही जाधवराव ने बिना विचारे मजाक में अपनी बेटी से पूछा; "क्यों बेटी, क्या तू इस लड़के से विवाह करेगी?" यह कहकर वे दूसरो की ओर घूमे और कहा, "कितनी अच्छी जोड़ी है।" बच्चे इस समय प्रसन्नता से एक दूसरे पर लाल रंग डाल-डाल कर खुश हो रहे थे, जो इस त्योहार का साधारण चलन है। यह देख-देखकर वहाँ एकत्रित सभी लोग हंस पड़े। हंसी अचानक थम गई और मालोजी खड़े होकर कहने लगे, मित्रों, आपके सामने जाधव राव ने अपनी पुत्री का विवाह मेरे पुत्र से करने का वादा

किया है आप इसके गवाह है। इस पर वहाँ कुछ लोगों ने हामी भी भरी, परन्तु जाधवराव हक्का-बक्का रह गया। कुछ वह भी न कह सका।

इस कांड को मजाक में टालने के लिये जाधव राव ने अगले दिन मालोजी को भोजन के लिये बुलाया परन्तु उन्होंने यह कहकर आना अस्वीकार कर दिया कि जब तक आप हमारे पुत्र को अपना दामाद नहीं मानेंगे मैं निमंत्रण स्वीकार न करूँगा। इसको जाधवराव ने बुरी तरह इन्कार कर दिया, और उनकी स्त्री जिसे अपनी मर्यादा और खून का भारी गर्व था, अपने पति का मजाक में भी अपनी लड़की का बर शाह जी को चुनना बहुत बुरा लगा। मालोजी काफी कुशल और कार्यशील आदमी था; उसने अपनी छोटी सी जागीर से भी काफी धन बचा लिया था, ताकि उनका यह उद्देश्य पूरा हो जाय। वह वहाँ से अपने गाँव वापस चले गये। ऐसा कहा जाता है कि उनकी देवी भवानी ने स्वयम प्रकट होकर उन्हें एक गुप्त खजाना दिखाया था। कुछ भी हो, वह और उनके भाई काफी धनवान हो गये। जो शायद निजाम शाही के विपन्नावस्था में (१६०१) उन्हें यह धन डाके जनी से मिला हो जो उन दिनों काफी प्रचलित था; उनका विश्वासपात्र एक साहूकार केशव नायक पन्डे था। इसका घर चमरगुण्डी में था। इसी के यहाँ मालोजी ने अपना सारा धन जमा कर दिया। मराठी लोक कथाओं के अनुसार देवी ने उन्हें कोई खजाना न दिखा करके सिर्फ उसका रास्ता बताया था। वह रास्ता एक प्रकार की घोषणा के रूप में था जिसके अनुसार देवी ने कहा था कि "तेरे वंश में एक प्रतापशाली राजा होगा उसमें भगवान शंकर का अंश होगा, वह महाराष्ट्र के अन्दर पुनः धर्म और न्याय की स्थापना करेगा, और उन सभी को बर्बाद कर देगा जो ब्राह्मणों और मन्दिरों को नष्ट करते हैं। उसका शासन एक युग युग तक रहेगा और उसकी २७ पीढ़ियाँ सिंहासन धारण करेंगी।"

मालोजी ने अपनी समस्त संपत्ति से घोड़े खरीदना शुरू किया। इसके अतिरिक्त भी अन्य प्रसिद्धि के कार्य, जैसे, तालाब खुदवाना, कुआँ खुदवाना, मन्दिर बनवाना, शुरू किया। परन्तु सब कुछ करने का उद्देश्य उसने यही बनाया कि वह जाधव राव की लड़की से अपने पुत्र का विवाह करेगा। पल्टन का जगपाल नायक निम्बालकर, दीपा, का भाई और मालो जी का साला भी मालो जी के इस प्रयत्न में उसकी सहायता कर रहा था। संपत्ति भी गिरती दशा में क्या कुछ नहीं खरीद सकती। अहमदनगर ने अपनी गिरती माली हालत में मालो जी को उसको मनचाही चीज दे दी, और जब कि जाधवराव को अब विवाह करने में सिर्फ मालो जी की नीची उपाधि ही बाधा थी, मालो जी ने उसे भी दूर कर दिया, कारण अब अहमदनगर ने उन्हें ५००० घोड़ों की कमान सौंप दी तथा मालोजी को राजा भोंसले' की उपाधि भी दी। शिवनेरी और चाकन के किले भी अपने संलग्न जिलों के साथ मालो जी के अधिकार में आ गये, तथा पूना और सूपा परगना भी उनको जागीर में दे दिया गया। जाधव राव के पास अब कोई बहाना नहीं था, जो शाह जी के बेटे के विवाह के लिये इन्कार करते। फलतः शाह जी और जीजा का विवाह बड़े धूमधाम से हो गया। इस अवसर पर सुल्तान स्वयं ब्याह में शरीक हुआ था।

अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा पर मुगलों के आक्रमण और विजय से मराठों की उन्नति में प्रगति हुई। भारतवर्ष की जिस क्रान्ति ने तैमूर वंश को दिल्ली के सिंहासन पर ला बैठाया उसी ने बहमनी राजकुमारों को दक्षिण में अपनी शक्ति को मजबूत करने का मौका भी दिया। अगर मुगल उत्तरी भारत को जीतने के बाद दक्षिण में भी उसी प्रकार अधिकार करने में सफल रहते तब उत्तर और दक्षिण दोनों में दो विरोधी मुस्लिम साम्राज्य होते और अवश्य ही उनका शासन अपेक्षाकृत

अधिक स्थायी हुआ होता। जब महान परन्तु महत्वाकांक्षी अकबर ने दक्षिण विजय आरम्भ किया उस समय वे आपस में लड़ा ही नहीं करते थे वरन् उनके आन्तरिक मतभेद ने उनकी स्वयं की शक्ति को भी प्रयोग में लाने से वंचित कर दिया था, अहमदनगर राज्य में उस समय अव्यवस्था का ही साम्राज्य था जो राज्य की दो पार्टियों या दलों में मतभेद का परिणाम होता था। इनमें से एक दल हिन्दू लोगों का था और दूसरा दल अबसीनियन सर्दारों का। हिन्दू दल ने यद्यपि अल्पकाल में ही पुनः अपनी शक्ति प्राप्त कर ली, परन्तु दक्षिण में मुगलों को बुलाने का कलंक उन्हीं के माथे पर लगा। इसी का परिणाम यह हुआ कि सन् १६०५ में जब अकबर ने अपनी आँखें सदा के लिये बन्द किया तब तक न सिर्फ खानदेश जिसे उसने स्वतन्त्र मुसलमान शासकों से छीना था, और जो वहाँ काफी समय से शासन करते आ रहे थे, वरन् निजाम राज्य के बरार क्षेत्र के भारी भाग के अतिरिक्त अहमद नगर तथा उसके साथ संलग्न आसपास के जिलों पर भी उसका अधिकार हो गया था। जब मुगलों ने अहमद नगर पर अधिकार किया, बहादुर निजाम शाह गद्दी पर था। मुगलों ने उसे ग्वालियर में आजीवन कैद रक्खा, परन्तु निजाम शाही अब तक मुगलों से अप्रभावित रही यद्यपि उसकी राजधानी, और न्यायिक या वास्तविक अधिकारी मुगलों के आजीवन कैद में था। अबीसीनियन गुट का नेतृत्व उस समय एक असाधारण शक्तिशाली और प्रतिभाशाली व्यक्ति के हाथ में था उसका नाम मलिक अम्बर था। इसी के हाथ में इस समय निजामशाही सत्ता थी उसने मुर्तजा निजामशाह के नाम से दूसरा सुल्तान बना कर बहेरी साम्राज्य के स्तर पर ही दौलताबाद में शासन केन्द्रित किया जो पत्थर जैसा मजबूत था, और कुछ ही समय में उसने पुनः निजाम शाही का पहले वाला सम्मान और स्थान प्राप्त कर लिया।

मलिक अम्बर के बारे में कई बातें प्रचलित हैं, सबसे जादा विश्वासपूर्ण कथन यह है कि वह चंगेज खाँ के व्यक्तिगत सहायकों में से एक था। उसकी गणना मुर्तजा निजाम शाह प्रथम के अत्यन्त स्वामिभक्त वजीरों में थी, और शायद उसने अपने समर्थक सुल्तान से ही वह गुण प्राप्त किया था जो उसने शक्ति पाते ही राज्य पर लागू किया! उसने लगान व्यवस्था में सुधार किया। दक्षिण की अव्यवस्थित सीमा को पुनः व्यवस्था प्रदान की तथा बाहरी आक्रमणों से रक्षा के लिये उसने भीतरी सुरक्षा को इतना मजबूत कर दिया कि अगले बीस वर्षों के लिये शासन की उमर बढ़ गई तथा उसकी जड़ें मजबूत हो गईं। जब जहाँगीर और उसके पुत्र सुल्तान खुसरो में सिहांसन के लिये झगड़ा हुआ और मलिक अम्बर को मुगलों से कुछ फुर्सत मिली, तब उसने अपनी लगान व्यवस्था को सुव्यवस्थित करना शुरू किया। उसने अहमद नगर के उन क्षेत्रों पर, जहाँ मुगल सेना नहीं रहती थी, पुनः अपना अधिकार जमाना शुरू किया तथा उसने अपनी शासनसत्ता को भीतर और बाहर सम्मानित बनाने के लिये अनवरत श्रम आरंभ कर दिया। परन्तु बीजापुर और गोलकुंडा के सुल्तानों से मलिक की यह उन्नति देखी नहीं जाती थी। यह अभाग्य ही था, यही कारण था कि उन्हें उसकी वजह से अपनी सत्ता खतरे में दिखलाई पड़ती थी, इब्राहीम आदिल शाह ने तो मलिक से व्यक्तिगत दुश्मनी भी पैदा कर ली थी, दोनों सुल्तानों ने उसके खिलाफ एक प्रकार का सामरिक संगठन सा बना लिया था क्योंकि उन दोनों को निकट भविष्य में अपनी सल्तनत के अम्बर द्वारा हड़पे जाने की पूरी संभावना थी।

मलिक अम्बर ने दौलताबाद के निकट खिरकी नामक नगर बसाया और उसी को अपनी राजधानी बनाया। यहाँ उसने कई सुन्दर महल और स्थान बनवाये। उसने कई बार मुगल सेनाओं को परास्त किया और एक समय तो उसने अहमद नगर तथा बरार के जिलों को पुनः जीत लिया। हमेशा लड़ाई में व्यस्त रहने पर भी यह महान् व्यक्ति देश में कलाओं के विकास एवं आर्थिक सुधार में लगा

रहा और आज भी अपने क्षेत्र के गाँवों में न्यायप्रिय और जनप्रिय शासक के नाम से जितना प्रसिद्ध है उतना सैनिक प्रबन्ध और शौर्य के लिये नहीं। उसने लगान द्वारा होने वाली खेती के पुराने नियम को खत्म करके लगान व्यवस्था को ब्राह्मणों के हाथ में सौंप दिया। उनपर निगरानी का कार्य मुसलमान अधिकारी किया करते थे। गाँवों में व्यर्थ पड़ी जमीन को उसने पुनः कृषि कार्य में लगाने के साथ साथ उत्पत्ति पर लगान व्यवस्था को निर्भर करके खेतों की उपज बढ़ाया। खेतों से उत्पन्न वस्तुओं पर उचित रूप से कुछ प्रतिशत कर उसी रूप में लिया जाता था जैसा पैदा किया जाता था; जैसे गेहूं पैदा होने पर अनुपात से लगान रूप में गेहूं ही लिया जाता। यह नियम कई फसलों तक चला और तब इसको रुपयों में बदल दिया गया जो सम्पूर्ण पैदावार को रुपयों में मापने के बाद लगान के प्रतिशत उतना लगाया जाता था। यह लगान साल में एक बार तय होती थी। इन सुधारों से जल्द ही उसके जिले समृद्धशाली और प्रसिद्ध हो गये। यद्यपि उसका शासन व्यय अधिक था, परन्तु उसका खजाना कभी खाली नहीं रहता था। उसकी अर्थव्यवस्था का भारी खर्चे के बावजूद संतुलित रहने का श्रेय उसके इन्हीं सुधारों को था जिनका वर्णन हमने अभी ऊपर किया है।

परन्तु मलिक अम्बर हमेशा समृद्धशाली ही नहीं रहा। अपने जीवन में उसने कई भयानक संकटों का अनुभव प्राप्त किया था। इस सम्बन्ध में सन् १६२१ का संकट स्मरणीय है जब निजामशाही के कुछ प्रमुख मराठा सर्दारों ने उसके द्वारा अपनी आय में कटौती को स्तरहीन समझ उसे छोड़ मुगलों के पास चले गये। इस प्रकार छोड़कर जाने वालों में सिन्दखेर के देशमुख, लखुजी जाधवराव का नाम अधिक प्रसिद्ध है। इनको एक मराठा प्रमुख के रूप में हमने ऊपर देखा है। मुगलों ने जिस प्रकार इनका स्वागत किया और जिस प्रकार इन्हें जागीर पुरस्कार स्वरूप दिया उसी से इनकी श्रेष्ठता का पता चलता है, तथा यह भी पता चलता है कि मराठा जाति ने उस समय तक कितनी शक्ति और मर्यादा प्राप्त कर ली थी। मुगलों ने उन्हें २४००० हजार की मन्सब मय १५००० घोड़ों के साथ प्रदान किया तथा उनके उन रिश्तेदारों को जो उनके साथ-साथ मुगलों के पास गये थे, अच्छे-अच्छे पद दिये गये।

परन्तु तभी अचानक शाहजादे शाहजहाँ की बगावत ने मुगल सेनाओं को पुनः अपनी ओर आकर्षित कर लिया और मलिक अम्बर अपनी मृत्यु से कुछ पहिले दक्षिण में पुनः विजय का डंका बजा दिया। मलिक की मृत्यु सन् १६२६ के शुरू में हुई। बीजापुर का इब्राहीम आदिलशाह मलिक अम्बर पर साल भर से अधिक अपनी श्रेष्ठता न दिखा सका। इन दोनों का स्मरण सम्मान के साथ, इस क्षेत्र के गाँव अपनी लोक कथाओं में किया करते हैं। इब्राहीम आदिलशाह का मकबरा आज भी पूर्ण और अन्य भवनों की तुलना में अधिक सुन्दर रूप में बीजापुर के खडहरों में है, जो अपने निर्माण कर्ता के शासन की सुधरता, महत्ता और सौंदर्यप्रियता का परिचायक है।

मलिक अम्बर को युद्ध में अपने मराठा सर्दारों से भारी सहायता मिलती थी। शाहजी भोंसले ने जिन्होंने अपने पिता मालोजी के बाद जागीर प्राप्त किया था, सन् १६२० में मुगलों के साथ हुए। उस युद्ध में अपनी बहादुरी से अपने लिये श्रेष्ठता प्राप्त कर ली थी, जो अहमद नगर की उत्तरी सीमा के पास हुआ था, इस युद्ध में यद्यपि मलिक अम्बर की पराजय हुई थी, परन्तु इसका कारण हम मराठों को कभी नहीं मान सकते। इस लड़ाई में लखुजी जाधवराव और शाह जी का समान विवरण मिलता है। इसी लड़ाई में पल्टन का एक नायक * भी मारा गया था। इस प्रदेश में मुसलमानों की प्रथम विजय से

---

* इस समय बर्तमान जन राब नायक निम्बालकर से पता चलता हैं कि यह नायक जगपाल था जो इस युद्ध में मारा गया। यद्यपि पल्टन के नायकों को जागीर बीजापुर से मिली थी। हम इस लड़ाई में यह नहीं मान सकते कि इब्राहीम आदिल शाह भी इसमें शामिल था या मुगलों के खिलाफ किसी

लेकर इस काल तक वहाँ के हिन्दू निवासियों के बारे में किसी मुसलमान इतिहासकार ने अच्छी तरह विवरण नहीं दिया है। † हिन्दू नेताओं और उनके देश (राज्य) को हम शायद ही कहीं पाते हों। परन्तु इस समय से हम उन्हें तेजी से शक्तिशाली और महत्वपूर्ण होता हुआ पाते हैं, और इसी से अब यह आवश्यक है कि हम इस समय की घटनाओं और वातावरण का विशद विवेचन करें जिसने शिवाजी को अचानक ही इतना शक्तिशाली बना दिया।

सम्मिलित सेना का युद्ध हुआ। जगपाल का चरित्र जैसा उनकी परिवारिक कथा से पता चलता है इस प्रकार का था कि जहाँ भी शिकार हो रहा हो या लड़ाई, वहाँ जगपाल अवश्य हाजिर रहते थे। बिना अपनी सरकार से अनुज्ञा लिये भी।

† फारिश्ता, जिसको हमने इस प्रकरण के इतिहास का मुख्य आधार माना है, सत्रहवीं सदी के शुरुआत में ही खत्म हो जाता है। तब से अगले चालीस वर्षों के इतिहास अर्थात् अहमदनगर के सुल्तानों के समाप्त होने तक के लिये हमने खाफी खां को, जो अधिकतम विश्वास योग्य है, अपना आधार माना है। यह उसका असली नाम नहीं है, उसका असली नाम मुहम्मद हशीम खाँ था। वह इतिहासकार ख्वाजा मीर का पुत्र था, तथा मुराद बख्स के यहाँ एक अच्छे पद पर कार्य करता था। उसके मरने के बाद वह औरंगजेब के यहाँ रहने लगा, औरंगजेब के ही निरीक्षण में वह पलापोसा तथा औरंगजेब ने उसे राजनीतिक और सामाजिक दोनों कार्य पर समय-समय पर नियुक्त किया। इसके इतिहास से, ही उद्धरण लेकर कई लोगों ने लिखा है। परन्तु इस इतिहास का कोई अंगरेजी अनुवाद नहीं मिलता। खाफी खां ने औरंगजेब की मृत्यु के बाद लिखना शुरू किया। इस लेखक ने ही मुगल इतिहास के इस भारी छूटे काल को पूरा किया है। औरंगजेब के शासन के दसवें साल से बीसवें तक यह कुछ-कुछ भ्रामक भले हो परन्तु इसके बाद हम इतिहास को सुलझा और सत्य पाते हैं, तथा स्थान-स्थान पर सूचना का आधार भी मिलता है।

बीजापुर की कई यात्राओं के दौरान में मैंने, वहां के निवासियों, बीरान इमारतों के मौजूदा मालिकों से उनके खान्दानी कागज-पत्र देखने को मिले, मुझे उनके द्वारा जितने आधार सामने आये या जिनको मैंने इस इतिहास में अपना आधार बनाया वे निम्न हैं :—

पहला—बीजापुर का इतिहास लिखने की सामग्री, जो अब्दुल हुसैन कादरी द्वारा इकट्ठी की गई है बीजापुर शहर के पतन के कुछ दिन बाद मर गये। यह अब परिजादा या साहिब हजरत, अब्दुल साहब, जो शहर के बुजुर्ग और बीजापुर के इतिहास के जानकार भी हैं, के दामाद हैं। अब्दुल साहब से मैंने काफी सूचनायें प्राप्त की हैं।

दूसरा—मीर हुसैन लोहर के पुत्र मीर इब्राहीम द्वारा लिखित, बीजापुर का इतिहास इसे दक्षिण के मुसलमान हमेशा उद्धरित करते हैं, दर असल प्रमुख व्यक्तियों के जीवन-मरण तथा बहुत संक्षिप्त परिचय के अतिरिक्त अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, सिवा इसके कि तारीखों को अंकों में न लिख शब्दों में लिखा गया है।

तीसरा—सैय्यद अली मुहम्मद हुसैनी कादिरी के पुत्र नूर उल्लाह द्वारा लिखित अली आदिल शाह का इतिहास जिसमें व्यर्थ की बातों के बीच कुछ आवश्यक सूचनायें भी हैं।

चौथा—बीजापुर के अकेले कवि नुसरत द्वारा लिखित कविता, जो अली आदिल शाह द्वितीय के शासन काल के समय पर लिखी गई है, इस कवि का लिखा, 'अली नाम्र' तथा गुलसने इश्क से प्रथम की एक प्रतिलिपि टीपू सुल्तान के पुस्तकालय में पायी गयी।

अभी ऊपर हमने जिस इब्राहीम आदिलशाह फी मृत्यु की चर्चा की है, वह इस नाम का दूसरा शासक था जो बीजापुर की गद्दी पर बैठा। उसके बाद उसका बेटा मुहम्मद आदिलशाह, पन्द्रह या सोलह साल की अवस्था में बीजापुर का सुल्तान हुआ। खजाने दौलत से भरे हुए थे, अस्सी हजार घोड़ों के साथ लगभग दो लाख पैदल सेना थी, ‡ जिसमें किलों में इकठ्ठा मराठे सैनिक भी शामिल हैं, तथा देश की माली हालत भी विकासशील थी।

मलिक अम्बर के दो लड़के थे, फतेह खाँ तथा चंगेज खाँ। निजाम शाही में मलिक अम्बर का स्थान उसके बड़े लड़के फतेह खाँ को मिला। इस नये प्रशासक ने आते ही मुगलों के खिलाफ लड़ाई शुरू कर दी, परन्तु अपने पिता की तुलना में उसके पास योग्यता का अभाव होने के कारण सम्भव था वह बर्बाद ही हो जाता यदि मुगल सेनापति खान जहाँ लोदी खाँ ने अत्यन्त उदार शर्तों पर सुलह करके उसे बचा न लिया होता।

सुल्तान मुर्तजा निजाम शाह द्वितीय को, जो अब इस लायक हो गया था, अब अपनी नाम मात्र की स्थिति से संतोष नहीं था। वह फतेह खाँ की शक्तियों को कम करना चाहता था, फतेह खाँ की हिंसक प्रवृत्ति से उसे समाप्त करने में काफी सहायता मिली। अन्यथा इस कुटिल, प्रतिशोधी और अस्थिर शाहजादे के लिये, जो शासन कार्य में एक दम अयोग्य था, फतेह खाँ को हटा देना इतना सहज न होता। कठिन विपत्ति काल में उसकी अयोग्यता साबित हो जाती है जैसा कि उसके अभाग्य के दिनों से हमें पता चलता है। तकर्रिब खाँ की सहायता से उसने फतेह खाँ को कैद कर लिया। इस खबर को सुनकर लखुजी जाधवराव ने × पुनः अहमद नगर की निजाम शाही में अपने पुराने मन्सब पर लौटने की इच्छा प्रकट की।

परन्तु उनके पिछले कार्य को शाहजादा भुला नहीं सका। वही बात उसे बार-बार याद आती जब जाधवराव मुगलों के पास, अहमद नगर छोड़ कर चले गये थे। उसका क्रोध तब तक शान्त न हुआ जब तब कि उसने दौलताबाद किले में एक आम सभा में बुलाकर उनकी हत्या न करा दिया। यह हत्या भी बहुत ही कष्टपूर्ण ढंग से की गई थी, साथ में कई बन्धु बान्धव भी मारे गये। उनकी विधवा जिसे हमने जीजा के विवाह के प्रसंग में देखा हैं, हत्या की सूचना पाते ही अपने पति की सेना लेकर सिन्दखेर भाग गई। वहाँ से अपने देवर, जगदेव राव जाधव को साथ लेकर उसने पुनः मुगलों की शरण लीं। वहाँ उसके कहने पर जगदेवराव को जागीर पर कायम करके उसे पाँच हजारी का मन्सब भी दिया गया। इसके बाद सिन्दखेर के जादव लाग हमेशा मुगलों की आधीनता स्वीकार करते रहे।

जहाँगीर की मृत्यु सन् १६२७ में हो गयी। उसके बाद शाहजहाँ सिंहासन पर बैठा। नया सम्राट, खान जहाँ लोदी से व्यक्तिगत रूप से जलता था। लोदी उन दिनों दक्षिण में मुगलों का सूबेदार था। उसने लोदी को वहाँ से मालवा जाने को कहा और प्रस्थान से पहले दर्बार में बुलाया। यद्यपि पहली बार शाहजहाँ उससे सज्जनता से मिला परन्तु भविष्य में सताये जाने के भय से वह पुनः दक्षिण

पांचवां—बीजापुर का इतिहास जिसे सैय्यद मुईउद्दीन परिजादा ने लिखा है। इनसे जानकारी एक अंगरेज आफिसर ने किया था जो १८२१ के मराठा युद्ध से ही अक्सर बीजापुर जाया करता था और इस अंगरेज अधिकारी के भारी कष्ट के बाद भी लेखन के भ्रमात्मक हिजरी तथा सूर सन् के कारण तारीख इधर-उधर हो गई हैं फिर भी यह आधार का उपयोग हो सकता है।

‡ बीजापुर की पान्डु लिपियों से।

× जी० यस० तामसकर ने इसे लखू जी जाधव राव लिखा है। वे मराठी लेखक हैं सम्भव है उन्हीं का उच्चारण ठीक हो। अनुवादक

भाग गया और निजाम साम्राज्य के बगलाना नामक किले में जाकर शरण लिया। उसकी गिरफ्तारी के लिये एक सेना तुरंत भेजी गई। परन्तु उस क्षेत्र के जमीदार और देशमुख, लोदी की रक्षा के लिये उठ खड़े हुए और उन्होंने किसी भी शर्त पर लोदी को मुगलों को सौंपने से इन्कार कर दिया। शाहजहाँ को लोदी से इतनी जलन थी कि उसने सल्तनत के अनेकों महत्वपूर्ण कार्यों को जो उसकी सल्तनत तक को खतरे में डाल सकते थे, एक ओर रख दिया और एक भारी सेना से साथ वह दक्षिण की ओर बढ़ा। उसने इतना निश्चय कर लिया था कि जो भी लोदी के लिये सामने आयेगा, उसे तबाह कर दूँगा। सेना के कई विभाग करके लड़ने का उसे अपना अनुभव था। इसी से उसने अपनी सेना के तीन टुकड़े किये, जिनके सेनापति क्रमशः अजीम खाँ, इरादत खाँ तथा शाइस्ता खाँ थे। अजीम खाँ की सेना ने पश्चिमी मार्ग से प्रस्थान किया, और एक अत्यन्त क्रियाशील और सचेत पदाधिकारी होने के कारण उसने जल्दी ही खान जहाँ लोदी को दक्षिण भाग जाने को मजबूर कर दिया (१६२९)।

शाह जी भोंसले लोदी के समर्थकों में से था। परन्तु जब लोदी भाग गया तो शायद वह अपनी जागीर छिन जाने के भय से भयभीत हो गया हो। अतः उसने अपनी सास का उदाहरण सामने रख उसी के अनुसार आचरण किया। अजीम खाँ के जरिये उसने अपनी सेवाओं को मुगलों को अर्पण करना स्वीकार किया और यह प्रतिज्ञा किया कि "माफीनामा पाने पर दर्बार में हाजिर हो जाऊँगा।" प्रार्थना स्वीकार हो जाने पर वे दर्बार में उपस्थित हुये। उनके साथ उनके परिवार और बन्धु-बान्धवों के साथ २००० घोड़े भी थे। शाहजहां के प्रति अपने सम्मान प्रदर्शन के बाद शाहजी की पदोन्नति कर ६००० का मन्सब तथा ५००० घोड़े भी साथ में प्रदान किये गये। उनके कई रिश्तेदारों को भी अच्छे-अच्छे पद दिये गये। कुछ को मन्सब भी दिये गये। वह केवल अपनी जागीर में ही नहीं मुस्तकिल किये गये वरन् साथ में उन्हें कुछ और जिले भी मन्जूर दिये गये, नाम का पता ठीक से नहीं चलता परन्तु अहमद नगर[*] भी शायद उन्हीं में था। शाह जी के भतीजे, केलो जी भोंसले जो विटो जी का पुत्र था, लगभग इसी समय शाही नौकरी में शामिल हुआ और उसे मन्सब[†] मिली।

खाँ जहाँ लोदी को जब निजामशाही राज्य के पश्चिमी हिस्से से खदेड़ा गया तब वह बीजापुर गया, वहाँ उसने मुहम्मद अली को मुर्तजा निजाम से मिलकर मुगलों का सामना करने को कहा। परन्तु उसका तात्कालिक परिणाम कुछ नहीं निकला और विवश हो लोदी को दौलताबाद पुनः वापस लौटना पड़ा। सन् १६२९-३० में पानी बिल्कुल नहीं बरसा। परिणाम स्वरूप वहाँ अकाल तथा साथ में विनाशक रोगों की महामारी का साथ-साथ आगमन हुआ। परन्तु खां जहां लोदी के दौलताबाद लौटने का समाचार पाते ही इन आपत्तियों की जरा भी परवाह किये बिना अजीम खाँ अपनी सेना के साथ दौलताबाद की ओर बढ़ चला। पहले से तैयार निजाम सेना ने सामना किया परन्तु उन्हें हार कर मैदान छोड़ देना पड़ा।

इस हार ने खाँ जहाँ लोदी को काबुल में अफगानों की ओर जाने को विवश किया। परन्तु जैसे ही शाही फौज को पता चला, उसने उसका पीछा किया। पीछा करने वालों ने अन्त में उसे

---

[*] यहाँ पर शायद मैं इसलिये कहता हूँ कि मुझे ऐसा विवरण कहीं नहीं मिलता की शाह जी के परिवार ने कभी भी अहमद नगर की देशमुखी की हो, परन्तु उसके पुत्र शिवाजी के समय में हमें उनके वहाँ रहने का प्रमाण मिलता है।

[†] शाहजहाँ का शाही फरमान जो केलोजी के नाम था, एक मराठा परिवार के पास मिला। यह विशाल गढ़ के छोटे से इलाके में रहते थे। औरङ्गजेब ने केलोजी को मरवा डाला था। सही तिथि पता नहीं चलती। मराठा पान्डुलिपि से।

पकड़ ही लिया। उसके साथ उसके कुछ विश्वासपात्र सर्दार और सैनिक थे। सबों ने बहादुरी से उसका साथ दिया। वह स्वयम् घावों की अधिकता से गिर गया परन्तु अपनी आखिरी सांस तक बहादुरी से लड़कर भी वह अपनी जान न बचा सका, हाँ अपने अतुल शौर्य से उसने शत्रुओं के दिल में भी आदर अवश्य उत्पन्न कर दिया।

अजीम खाँ ने अपनी इस विजय से पूरा फायदा उठाया उसने निजामशाही के इस क्षेत्र के जिलों पर अधिकार कर लिया। निजामशाही देशमुखों, जागीरदारों और मन्सबदारों को हटाकर उसने अपने आदमियों को वहाँ नियुक्त किया। दौलताबाद से अजीम खाँ दक्षिण की ओर बढ़ चला। अपने रास्ते में पड़ने वाले सभी स्थानों पर कब्जा करता गया। आश्चर्य से लोगों ने देखा कि उसने भीर के धारुर नामक किले को भी कँपा दिया। यह गढ़ अपनी मजबूती के लिये प्रसिद्ध था। निजाम की सेना के दो सेनापति थे। बहलोल खाँ, जो लोदी का एक अफगान साथी था और मकरिब खाँ, जिसने छिटपुट लड़ाई हमेशा जारी रखी। वह यद्यपि सामने की लड़ाई में लगातार भागता रहा परन्तु पराजित कभी नहीं हो सका।

सन् १६३१ में मुर्तजा निजामशाह ने अपनी बर्बादी को देखा, जो चारों ओर से उसे घेरे हुए थी। परन्तु न तो उसने अपने शासन प्रबन्ध की कमजोरी जानने की कोशिश की और न उन खराबियों को दूर करने का प्रयत्न किया। अपने मंत्रियों पर से उसका विश्वास समाप्त हो गया था। परिणाम स्वरूप उसने अपने कैदी फतेह खाँ की ओर अपना ध्यान दिया था। उसने उसे मुक्त करके पुनः उसको पहले के ही समान सम्मनित पद पर नियुक्त कर दिया। तकरीब खाँ उसके इस कार्य से परेशान और भयभीत हो अजीम खाँ के पास चला गया, जहाँ उसने शाही सेना में छः हजारी का मनसब प्राप्त किया। उसका निजामशाही से हट कर शाही सेना में आना मुगलों को लाभकर हुआ। कारण मुहम्मद आदिल शाह के रूप में एक अब और शत्रु बढ़ गया था।

ऐसा प्रतीत होता है कि मलिक अम्बर के साथ युद्ध के समय मुगलों ने इब्राहीम आदिल शाह के साथ एक बंटवारा समझौता किया था। यह गुप्त था। उस समझौते के अनुसार यदि निजामशाही को खत्म करने में बीजापुर मुगलों को सक्रिय सहयोग देता तो विजय के बाद उसे कोकंण के जिलों के अलावा आदिलशाही जिलों की ओर के पांच किले तथा शोलापुर का किला भी दिये जाने की बात थी, जिसमें धारानगर का किला भी एक था। परन्तु मुहम्मद आदिलशाह अनुमानतः इस समझौते को जान कर भी मुगलों की राय के अनुसार पूर्णतया नहीं चल पाता था। अगर संभव होता तो वह स्वयं आक्रमण करके निजामशाही क्षेत्र के कुछ भाग पर कब्जा कर सकता था। परन्तु इस शक्तिशाली और विशाल मुगल सेना के साथ मिलकर निजामशाही पर आक्रमण करना उसे राजनीति से बाहर की बात लगती थी। इस समय यद्यपि यह मुर्तजा निजामशाह के साथ एक गुप्त समझौते में शामिल था। उसने अपनी सेना को रनदुल्ला खां के साथ मुगलों की ओर से लड़ने के लिये भेज दिया। जब रनदुल्ला खाँ अजीम खां की सेना के पास पहुंचा तो उसने अजीम खाँ से वार्ता के अनुसार धारानगर का किला मांगा। अजीम खां ने किसी कारणवश इन्कार कर दिया। कारण उसने यह बताया कि चूँकि इसके जीतने में मुहम्मद आदिल शाह की सेना ने कोई सहायता नहीं दी है, और न समझौते की शर्तो को ही पूरा किया है अतएव वह उनकी माँग को पूरा करने में असमर्थ है। परन्तु चूँकि अभी अब भी आपकी सहायता की आवश्यकता और समय है, यह हो सकता है कि आपके विश्वासपूर्ण कार्यो

को देख शाहशाह उस पर पुनः विचार करें। इसी समय निजाम के इस बात से राजी होने पर कि वह शोलापुर को मुहम्मद आदिल शाह को वापस कर देगा, उन दोनों में एक समझौता हुआ जिसके अनुसार दोनों मिलकर मुगलों का सामना करने को तत्पर हुये।

अजीम खां और रनदुल्ला खाँ की सेना में लड़ाई होने के कारण उठने लगे। इस समय तक मुर्तजा निजाम शाह और मुहम्मद आदिल शाह के बीच लड़ाई का पूरा ब्योरा तय नहीं हो पाया था कि अजीम खां और रनदुल्ला खां की सेना आपस में लड़ बैठी। बीजापुर की सेना को पराजय मिली।

यह दोनों राज्य अपने सम्मिलित प्रयास से संभव था अपने घाटे को पूरा कर लेते। परन्तु इसी समय मूर्तजा निजाम शाह को उन्हीं के द्वारा पुनः शक्ति प्राप्त कर फतेह खां ने कैद में डालकर अपना बदला ले लिया। फतेह खां ने उसे गला दाबकर मार डालने से ही संतोष नहीं कर लिया वरन अभागे शाहजादे के तमाम शुभचिन्तकों और विश्वासपात्र साथियों को भी मरवा डाला।

अपनी हिंसा वृत्ति और बदले की भावना को तृप्त कर फतेह खां ने शाहजहां के दरवार में अपनी इन क्रियाओं पर माफीनामा पेश किया और कहा कि उसके इस कार्य से शाही इच्छा पूरी हुई है। उसने कहा कि मुगल प्रशासन के लिये ही इस प्रकार का कार्य किया है, तथा शाहशाह की इच्छा जानने तक के समय के लिये उसने मृतक के पुत्र को खाली गद्दी पर बैठा दिया है।

शाहजहां ने इसके जवाब में फतेह खां के कार्यो में अपना विश्वास प्रकट किया और यह जानते हुए भी कि आस-पास के जिले और इलाके साम्राज्य में मिलाये जाने योग्य है उसने कुछ किलों को जीतने में व्यर्थ शक्ति लगाने से बचने के लिए उन्हें फतेह खां को योंही में दे देने का निश्चय किया। शर्त यह थी कि निजामशाही परिवार की कीमती चीजों को, हीरे जवाहिरातों तथा विशाल सर्वोत्तम हाथियों को शाही सेना और दरबार के हवाले कर दिया जाय। इसके बदले में फतेह खां का खूब सम्मान किया गया तथा उसे जागीर में काफी जिले देने का वादा किया गया। इन वादा किये गये जिलों में कुछ वे जिले भी थे जिन्हे पहले शाहजी भोंसले को दिया गया था।

बीजापुर से संबंध विच्छेद पर दक्षिण में सेनाओं में नवीन शक्ति का संचार किया गया। यह प्रसार भारी मात्रा में हुआ। आसिफखां सेनापति के रूप में सेना लेकर निजामशाही क्षेत्र से होता हुआ आगे बढ़ रहा था। उसे अचानक ही सूचना मिली कि बीजापुर मुगलों से विलग हो गया और वह मुहम्मद आदिलशाह के राज्य को जीतने लगा। जीते हुये भाग को व्यर्थ बर्वाद करता वह उसकी राजधानी पर जा चढ़ा और किले पर घेरा डाल दिया। परन्तु रसद आदि के न मिलने तथा विरोधियों की प्रतिरक्षा कला की श्रेष्ठता ने उसे घेरा उठा लेने को विवश किया। तब पश्चिम में मेरिच तक देश को रौंदने और तबाह करने के बाद वह अपनी सेना के साथ वापस लौटा। महावत खां, जो लोदी के बाद दक्षिण का सूबेदार बनाया गया था, उसने अब लड़ाई की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली। विचार यह था कि वीजापुर राज्य की सेनाओं को संकुचित कर दिया जाय परन्तु परिस्थितियों ने सारे का सारा दृश्य ही बदल दिया।

फतेह खां ने शुरू में हाथियों और जवाहरातों को देने के बारे में अपनी अनिच्छा दिखाई परन्तु जैसे ही इन चीजों को भेजा गया उसको संरक्षक के पद पर मुस्तकिल कर दिया गया तथा उसे इस बात की अनुज्ञा प्राप्त हो गई कि वह प्रतिज्ञानुसार दी गई जमीन पर कब्जा कर ले। शाहजी अपने प्रति किये गये इस व्यवहार से दुखी होकर पुनः बीजापुर सरकार की ओर पलटे। उन्होंने अपना यह प्रस्ताव ब्राह्मण मोरार जी पन्त द्वारा भेजा जो उस समय बीजापुर दरबार में एक प्रभुत्वपूर्ण मंत्री था।

शाहजी ने जो प्रस्ताव मोरारजी के सामने रक्खा था वह एक प्रकार से दौलताबाद के खिलाफ शक्ति-संगठन के विषय में था । मोरारजी पन्त ने दौलताबाद की अव्यवस्थित दशा, किलों के मराठे सिपाहियों के युद्ध के प्रति अनुत्साह, सर्दारों की नाराजगी तथा सताये गये सर्दारों को इकट्ठे होकर मुगलों तथा फतेह खां से बदला लेने की इच्छा को इतने जोरदार शब्दों में सामने रक्खा कि सुल्तान को सहमति देनी ही पड़ी ।

जब फतेह खां को यह पता चला कि बीजापुर की सेना शाहजी की सेना के साथ आ रही है तब उसने अपने प्रति फैली दुर्भावना और असहयोग को समझकर मुगल सेनापति महावत खां से अपनी रक्षा करने का प्रस्ताव किया । किला छोड़ देने का भी उसने निश्चय किया । महावत खां इतना सुविधाजनक प्रस्ताव सुन कर तुरन्त दौलताबाद की ओर बढ़ चला । बीजापुर की सेना पहले पहुंची और संचार व्यवस्था तथा नाकेबन्दी के लिये किले पर घेरा डाल दिया । इस प्रकार उन्होंने अपने को किले और मुगलों के बीच में डाल लिया । वहां लड़ाई हुई । बीजापुर तथा शाहजी की सेना ने अपनी बहादुरी दिखाई । शाहजी ने अवश्य ही अपनी सहायता को पूर्णता दी, परन्तु उन्हें हारकर भागना पड़ा । दौलताबाद से १६ मील दूर उन्हें अपना खेमा गाड़ना पड़ा ।

बीजापुर के सर्दारों ने दक्षिणी कूटनीतिज्ञों की तरह अपना वार्तालाप जारी रखा । इसी कारण जहाँ सेनाओं से हार हुई, उनकी वार्ता ने पाँसा पलट दिया । उन्होने फतेह खाँ के सामने यह प्रस्ताव रक्खा कि यदि वह अपने यहाँ शाहजी को जागीर दे तथा दौलताबाद को शाहंशाह को न देने का वादा करे तो वे उसको सहायता देंगे और उनका पुराना समझौता पुनः कायम हो जायेगा । प्रस्ताव स्वीकार किये जाने पर दोनों सेनाओं नें बिना किसी पूर्व सूचना के मुगलों पर घनघोर आक्रमण कर दिया । इस बात ने महावत खाँ को इतना चिढ़ा दिया कि उसने फतेह खाँ की इस दगाबाजी का बदला, चप्पे-चप्पे जमीन से लेने का निश्चय किया । अपने साथ की सुन्दर सेना, जिसमें कई लड़ाइयों के अनुभवी सर्दार और कर्मचारी थे, के एक भाग को उसने तीन विभागों में बाँटा । एक को बीजापुर की सेनाओं का सामना करने को कहा दूसरा विभाग उसके स्वयम के रसद आदि का प्रबन्ध करता था । तीसरा विभाग इस बात की देखभाल करता था कि किले के अन्दर कुछ आने-जाने न पावे और एक बड़े भाग को उसने स्वयम सक्रिय आक्रमण के लिये सीधे अपने अधिकार में लिये रखा ।

आक्रमण बहुत ही सुनियोजित और तैय्यारी के साथ किया गया था । परन्तु प्रतिरक्षा भी उतनी ही शक्तिशाली थी । अतः परिणाम वही हुआ जो किलों में सामान, रसद और बारूद आदि की कमी से होता है । मुगलों की नाकेबन्दी से किले में बाहरी सहायता का आना-जाना पूर्णतया असम्भव था । इस प्रकार मुगलों की विजय हुई और फतेह खाँ की सारी सत्ता समाप्त हो गई । वह मुगलों का पेन्शनर हुआ । * उसने जिस शाहजादे को गद्दी पर रक्खा था, उसे ग्वालियर को क़िले में आजन्म कारावास दे दिया गया तथा उससे छोटे शाहजादे को उसी किले में कैद कर दिया गया ।

फरवरी सन् १६३३]

बीजापुर की सेना में शाहजी को असाधारण सत्ता प्राप्त हो गई थी । उसके कार्य पर किसी प्रकार का भी नियन्त्रण प्रायः असम्भव-सा हो चला था । जब बीजापुर की सेना दौलताबाद के आक्रमण में फँसी हुई थी उसी समय त्र्यम्बक का निजामशाही किलेदार महलदार खाँ मुगलों से जा मिला । उसने अपनी बात महावत खाँ से चलाई । महावत ने उससे यह कहा कि यदि वह दौलताबाद के पास रहने वाली शाहजी की धर्मपत्नी और उनके परिवार को किसी भी प्रकार मुगलों के पास भिजवा सके तो उसे

---

* मुगलों द्वारा दी जाने वाली गुजारे की रकम पाने वाला । कुछ दिनों बाद वह पागल होकर सिर पर लगे एक घाव के परिणाम स्वरूप मर गया ।

किसी अच्छे पद पर रखने की सिफारिश मुगल सम्राट से की जा सकती है। क़िलेदार महलदार खाँ ने इस कार्य के लिये प्रयास किया और सफल भी हुआ, परन्तु इसके बदले में मुगलों ने जो कुछ भी देने का वादा किया था वह किसी कारणवश न पूरा किया जा सका। दूसरी तरफ शाहजी के कुछ रिश्तेदारों के प्रयत्न से जीजाबाई को मुगलों की कैद से आजादी भी मिल गई तथा उन्होंने उन्हें † कोंडाना के किले में रहने के लिये भिजवा दिया।

दौलताबाद के पतन के बाद महावत खाँ ने खाँन दौरान को वहाँ का प्रबन्ध सौंप बीजापुर को सेना का पीछा किया। बीजापुर की सेना सामने तो ठहर नहीं पाती थी। परन्तु छिटपुट लड़ाइयाँ होती रहीं। कभी-कभी ये लड़ाइयाँ गंभीर हो उठती थीं। इसी प्रकार की एक लड़ाई में नागोजी ‡ नामक प्रसिद्ध मराठा सरदार मारा गया था। मोरार जी पंत द्वारा संधि के लिये प्रयत्न किये गये, परन्तु वे असफल रहे। कारण, अपनी पिछली भूल से महावत खां शिक्षा ले चुका था। यथार्थ में भी संधि के ये प्रस्ताव महावत खां को उसकी सेना से दूर फेंकने के प्रयास मात्र थे। प्रमाण-स्वरूप जब महावत खां बीजापुर क्षेत्र में काफी दूर तक घुस गया था, तो बीजापुर की एक सशक्त सेना ने गुप्तरूप से तेजी से लौट कर पुनः दौलताबाद पर छापा मारा। इस अचानक हमले ने दौलताबाद को आश्चर्य में डाल दिया, परन्तु यह हमला भी व्यर्थ कर दिया गया। इसी वर्ष के अन्त में शाहजादा शुजा की नियुक्त महावत खां के स्थान पर हो गई। यद्यपि तब भी वह सारे प्रबन्ध देखता था, परन्तु उसका स्थान अब पहले जैसा स्वतन्त्र न रहा। सेना का प्रधान सेनापति शुजा ही था। अतः इसके पश्चात् कोई भी लड़ाई महावत खां के सेनापतित्व में नहीं हुई। अगले ही साल शुजा और महावत खां को पुनः वापस बुला लिया गया। उनकी इस अचानक वापसी का कारण गढ़ पुरिन्दा पर उनकी बुरी तरह मिलने वाली पराजय थी। पुरिन्दा के किले पर न सिर्फ इनका आक्रमण व्यर्थ कर दिया गया वरन् इनको बुरहानपुर तक लौटने को मजबूर भी होना पड़ा था।

सन् १६३४]

दौलताबाद के समर्पण, फतेह खाँ के निष्कासन तथा उसके द्वारा बनाये गये शाहजादे की कैद के तुरन्त बाद शाहजी ने अपने आपको निजामशाही का संरक्षक घोषित किया एवम एक दूसरे शाहजादे को निजामशाही का सच्चा अधिकारी घोषित करके शासन कार्य देखना शुरू कर दिया। शासन कार्य में सहायता देने के लिये उसने कुछ ब्राह्मण सलाहकार रक्खे। नये सुल्तान के नाम से उसने चारों ओर से सेनायें एकत्रित करके अधिकांश किलों और जिलों पर अधिकार कर लिया। कोंकण का वह भाग, जो कभी अहमदनगर के शासन में था, के अलावा भी उसने अहमदनगर तक के अन्य जिलों पर कब्जा किया। कुछ किलों को जो सैनिकों से भरे हुये थे, अपवाद रूप में छोड़कर शाहजी ने दक्षिण में नीरा नदी के किनारे से लेकर उत्तर में चन्दौर की पहाड़ियों तक अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।*

पहले तो मुगलों ने सोचा था कि साधारण सेना के बल पर ही शाहजी को हराया जा सकता

---

† बीजापुर पान्डुलिपि—खफी खां ने लिखा है कि इस अवसर पर शाहजी की लड़की को भी छुड़ाया गया था, परन्तु मुझे अन्य कहीं शाहजी की किसी लड़की का प्रमाण नहीं मिला।

‡ शायद यह नागोजी धाटगे जुझार राव थे जो मुगलों के साथ हुई किसी लड़ाई में मारे गये थे। (धाटगे परिवार द्वारा दिया गया विवरण)

* इस कथन के प्रमाण में मराठा पान्डुलिपियों के अलावा खफी खाँ का कथन है कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि निजाम वंश में पतनोन्मुख राजकुमारों के संरक्षक के रूप में शाहजी ने इन स्थानों पर अधिकार किया।

है—परन्तु पुरिन्दा में मुगलों की हार से उनका यह भ्रम दूर हो गया। पुरिन्दा के युद्ध के बाद शाहजी ने अपनी शक्ति को और भी बढ़ा लिया।

शुजा के बाद उसके स्थान पर शाहजहाँ के तीसरे पुत्र औरंगजेब की नियुक्ति हुई! शाहजहाँ ने दक्षिण विजय का कार्यक्रम इतने भारी पैमाने पर किया था कि उसके संचालन के लिये शाही खान्दान का एक सदस्य ही विश्वस्त हो सकता था। औरंगजेब उस समय नवयुवक ही था। उसने दक्षिण के अल्पकालीन प्रबन्ध के लिये विजित भागों को दो भागों में बाँटा। मुगलों द्वारा अधिकृत खानदेश के जिले, गालन, तथा बरार का वह भाग जो बरार पाईन घाट के नाम से पुकारा जाता है, को मिला कर एक विभाग बनाया गया तथा बाद में लिये गये निजामशाही क्षेत्र के जिलों को दूसरा बिभाग बनाया गया। इन दोनों विभागों को खान दौरान तथा खान जुम्मन के अधिकार में दे दिया गया तथा उन्हें पश्चिमी जिलों और शाहजी के ऊपर अधिकार करने में सहायता देते रहने का आदेश दिया गया। यह अन्तिम निर्देश कठिन था, कारण शाहजी ने इस समय तक अच्छी खासी सेना एकत्रित कर ली थी तथा सहायकों के रूप में मोरारजी पंत के अलावा रनदुल्ला खाँ के साथ स्वयं बीजापुर का सुल्तान भी था।

दौलताबाद के पतन के बाद जिस दक्षिण को शाहजहाँ ने प्रायः विजित समझ लिया था वहीं जब मुगल सेनाओं को मुंह की खानी पड़ी तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। मुहम्मद आदिल शाह के प्रति वह पहले ही बहुत अधिक क्रोधित था अतः उसने अहमदनगर को शीघ्र जीत लेने के विचार से एक भारी सेना तैयार कर ली। उसने यह भी सोच लिया था कि अगर दक्षिण के अन्य सुल्तानों ने उसकी सेनाओं का विरोध किया तो वह उनको भी नहीं छोड़ेगा। उसके मन में दक्षिण के प्रति क्यों इतना अधिक क्रोध था, या दक्षिण के प्रति उसकी भावनायें उसकी न्याय बुद्धि से प्रभावित थीं या उसकी नीति से—कहना आसान नहीं है। परन्तु यह सच है, कि बीजापुर और गोलकुण्डा के बादशाहों के प्रति उसने हमेशा व्यक्तिगत क्रोध ही दिखाया था। इस अवसर पर सम्राट ने अपने एक राजदूत द्वारा बीजापुर के सुल्तान से उन किलों की माँग की जो उसने निजामशाही सल्तनत से लिये थे। किले के साथ-साथ उसने उन किलों से प्राप्त बन्दूकें और अस्त्रों, शस्त्रों, के अलावा 'मालिके' मैदान [†] नामक भारी तोप की भी माँग की जिसे पुरिन्दा के किले से बीजापुर ले जाया गया था। उस संवाद वाहक द्वारा सम्राट ने बीजापुर के सुल्तान के ऊपर यह जोर डलवाया कि वह शाहजी को सहायता व सुरक्षा देने से इन्कार कर दे तथा शाहजी के अलावा भी उन सभी लोगों को सुल्तान कोई सहायता न दे जो साम्राज्य विरोधी कार्य में व्यस्त हों। अपनी इन माँगों के अतिरिक्त उसी दूत के द्वारा यह वादा भी किया गया था कि इसके एवज में शोलापुर के किले तथा जिले के अतिरिक्त निजाम के कोंकण को भी उसे दे दिया जायगा। साथ ही साथ इन माँगों के न स्वीकार न करने पर तुरन्त ही भारी लड़ाई की धमकी दी गई थी। यह दोनों माँगें बीजापुर द्वारा अस्वीकृत होते ही शाहजहाँ ने अपनी इच्छानुसार, सेना को कई टुकड़ों में बाँट आक्रमण की तैयारी

[†] मालिके मैदान—इसका वृत्त ४ फीट आठ इन्च है। इसका भीतरी वृत्त या गोला निकलने का मार्ग २ फीट ४ इन्च है। इसको कान्सटीनोपल के हुसैन खाँ नामक कारीगर ने सन् १५४६ में ढाला था। अपने विजय के उपलक्ष में औरंगजेब ने इस पर १६८५ में कुछ खुदवा दिया जिससे लोगों को भ्रम होता है कि इसे उसी ने बनवाया है। स्मरणीय है कि सन् १८२३ में बाम्बे सरकार ने इसे इंगलैंड के सम्राट के पास भेजना चाहा था। इस कार्य के लिये वहाँ से एक इंजिनियर भी आया था परन्तु भारतीय सड़कों की दशा ऐसी न थी कि यह भारी तोप अपने स्थान से बम्बई लाई जा सकती।

शुरू कर दी। इस आक्रमण के लिये उसने अपनी ४८००० सवार सेना को चार टुकड़ों में बाँट दिया। इनमें से दो टुकड़ियाँ शाहजी से युद्ध के लिये भेजी गईं और दूसरी दो टुकड़ियाँ मुहम्मद आदिल शाह से। शाहजी के खिलाफ जाने वाली दो टुकड़ियों के सेनापति शाइस्ता खाँ तथा अलीवर्दी खाँ को बनाया गया। इन दोनों टुकड़ियों को चन्दोर, संगमनेर तथा नासिक पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। इसके साथ-साथ खान जुम्मन के अधीन दूसरी बीस हजार सवार सेना को शाहजी को मैदान से भगा देने के लिये भेजा गया। मीर जुम्मन खाँ को शाहजी को कोंकण स्थित शक्तिशाली किलों से भगाने के अतिरिक्त यह भी आदेश था कि उन्हें निजामशाही क्षेत्र में कहीं पाँव न जमाने दे। दूसरी दो टुकड़ियों में से एक (तीसरी टुकड़ी) को दौरान खाँ के साथ गोलकुण्डा के पास नन्दिरि नामक स्थान पर सतर्क रक्खा गया। सन्देह यह था कि शायद गोलकुण्डा का कुतुबशाह बीजापुर वालों का साथ देने की सोचे। परन्तु जैसे ही यह सन्देह खत्म हुआ और कुतुबशाह ने अपने हिस्से की सरकारी लगान को इस आक्रमण के पहले ही चुका दिया, तब दौरान खाँ की सेना किसी अन्य स्थान पर जाने को तैयार हो गई—चाहे शाहजी का सफाया करने का आदेश मिलता या बीजापुर पर आक्रमण करने का। चौथी टुकड़ी को पहले सैय्यद खाँन जहाँ के सेनापतित्व में सुरक्षित सेना के रूप में रक्खा गया था परन्तु पीछे उसे भी बीजापुर पर आक्रमण करने को भेज दिया गया था।

शाइस्ता खाँ के अधीन मुगल सेना की एक टुकड़ी ने अलीवर्दी खाँ कीं सिपहसालारी में चन्दौर और नासिक के आसपास के २५ किलों पर तेजी से अधिकार कर लिया। यद्यपि इन किलों में काफी मात्रा में सैनिक थे परन्तु मुगल सेनाओं को इन किलों पर अधिकार करने में बहुत कम लड़ाई लड़नी पड़ी।* शाइस्ता खाँ ने स्वयम बीजापुर की सीमा के आस-पास स्थित नलदुर्ग तथा शोलापुर और बीदर के बीच के जिलों पर अधिकार कर लिया परन्तु फिर भी त्र्यम्बक, शिवनेरी कोंडाना तथा कोंकण के काफी किले फिर भी शाहजी के सर्दारों के कब्जे में ही रहे।

शाहजी ने जुम्मन खाँन के साथ काफी समय तक छिटपुट लड़ाई जारी रक्खी—परन्तु अन्त में जुम्मन खाँन ने शाहजी को अहमदनगर, चमरगुन्डी तथा बारामती से सफलतापूर्वक खदेड़ दिया। शाहजी को नीरा नदी पार कर बीजापुर राज्य में मेरिच तथा कोल्हापुर तक चला जाना पड़ा। परन्तु कोल्हापुर में वह आदिलशाही सैनिकों के साथ रुक गया और लगातार अपने छुटपुट आक्रमणों द्वारा उसे परेशान करने लगा। वह निगाह छिपा-छिपा कर, सोती रातों में आक्रमण करके तथा मुगल सेना को लगातार अपने पीछे दौड़ा छुपा कर कर हैरान करने लगा। आखिर में तंग आकर जुम्मन खाँन को उसका पीछा छोड़ देना पड़ा। उसका पीछा छोड़ने पर वह उस क्षेत्र को बर्बाद करने लगा। कोल्हापुर, मेरीच तथा रायबाग के क्षेत्रों को तहस नहस करने के बाद शहरों को उजाड़ देने के बाद, आस-पास के लोगों को बन्दी बनाकर भेज देने के बाद, अचानक ही बीजापुर की

---

* खफी खाँ ने इन्हीं किलों में से एक में शाहजी के परिवार का पकड़ा जाना लिखा है। इसके समर्थन में मुझे कोई प्रमाण नहीं मिला। मैं समझता हूँ यह गलती से लिख गया है, शायद यह उनके परिवार की प्रथम कैद के लिये लिख गया हो। यही लेखक यह भी लिखता है कि शिवाजी इन्हीं किलों में से भागकर किसी समुद्री किले की ओर चले गये—यह भी शायद उसी प्रथम गिरफ्तारी के समय का वर्णन है। जीजाबाई अपनी प्रथम कैद के बाद कोन्डना और शिवनेरी में रही थीं और शायद सन् १६३३ से ३६ तक कभी-कभी कोंकण स्थित महोली के किले में भी रही थीं।

सेना के साथ पुनः उसकी सेना से मुठभेड़ हो गई—और तब खान जुम्मन पुनः शाहजी के पीछे पड़ गया।

इधर जब खान दौरान, खानदेश से नलदुर्ग होता बीजापुर की ओर बढ़ा तो वह आश्चर्य में पड़ गया और कई किलों पर कब्जा कर लिया। औद्योगिक नगरों में लूटपाट कर अपनी नृशंसता की सीमा पर पहुंचने का प्रमाण रखता गया। रास्ते में बीजापुर की कुछ सैनिक टुकड़ियों ने स्थान-स्थान पर साधारण ढंग से उस पर आक्रमण किया परन्तु वे उसको आगे बढ़ने से न रोक सके। जब वह बीजापुर के पास पहुंचा तो मुहम्मद आदिलशाह ने किले की वाहरी दीवारों व खाइयों पर पानी के बड़े-बड़े झीलों का रास्ता खोल दिया तथा बीजापुर के २० मील के घेरे के अन्दर के सारे खाद्यान्नों को या तो एकत्रित कर लिया था या उसे बर्बाद करवा दिया था। प्रतिरक्षात्मक कार्रवाइयों के वजह से खान दौरान राजधानी पर तो आक्रमण न कर सका—परन्तु आस-पास की जनता को लूटना पाटना फिर शुरू कर दिया। सईद खानजहाँ की सेना ने भी वही रास्ता अपनाया और मुगलों की सारी सेनाओं के अत्याचारों से सारा देश अत्याचार की लपट से, भविष्य की चिन्ता से झुलस गया।

बीजापुर की सेनाओं ने मुगलों से वीरतापूर्वक लड़ाई की। रनदुल्ला खाँ ने सईद खानजहाँ पर सफलतापूर्वक कई बार आक्रमण किया और उसे खान दौरान की टुकड़ी के पास तक हटने पर मजबूर किया। परन्तु तबाही और बर्बादी ने देश को आ घेरा था और इसी कारण मुहम्मद आदिल शाह को सन्धि करनी पड़ी और मुगलों ने मुहम्मद आदिलशाह की आशा के विपरीत बहुत ही नरम शर्तों के साथ समझौता कर लिया यद्यपि इस समझौते के पूर्ण विवरण की यहां विशेष आवश्यकता नहीं है परन्तु बंटवारे की इन शर्तों पर पाठकों को विशेष ध्यान रखना चाहिये। कारण शिवाजी के उत्थान में इस बंटवारे का बहुत महत्व है। समझौते के अनुसार पुरिन्दा और शोलापुर अपने जिलों के साथ मुहम्मद आदिल शाह को मिला। इनके अतिरिक्त शोलापुर के पूर्व का बीदर, नलदुर्ग तथा कल्यानी उसी के अधिकार में रहने दिया गया, और इस प्रकार आदिल शाह को पुरिन्दा का वह वैभवशालो इलाका मिल गया, जो अब भी उसी के पास है। इसी समझौते के अनुसार सम्राट ने शाहजी को क्षमा कर देने का आश्वासन भी इस बात पर दिया कि वह अपने समस्त किले, तोपखाना, बारुद तथा लड़ाई के अन्य सामानों •को मुगलों को सौंप दे परन्तु यदि वह सम्राट की यह शर्त न माने तो, उसे बीजापुर से निकाल दिया जाय तथा मुगलों और बीजापुर का समान रूप से शत्रु घोषित किया जाय।

शाहजी ने बीजापुर के बदले भाव देखे और वह कोंकण की ओर बढ़ चला, परन्तु चूँकि उसने शाहजहाँ का प्रस्ताव तुरन्त नहीं माना था, खान जुम्मन उसके पीछे पड़ा ही रहा। कुछ ही महीनों के भीतर त्र्यम्बक, शिवनेरी तथा कई अन्य किले के भी शाहजी के हाथ से निकल गये और उन्हों ने मुगलों से क्षमा प्रार्थना की और सम्राट की सेवा के लिये अपनी अर्जी पेश की। उनकी इस प्रार्थना के जवाब में सम्राट ने उन्हें बीजापुर के अधीन ही रह जाने की आज्ञा दी।

मलिक अम्बर खाँ और फतेह खाँ की ही तरह शाहजी के बनाये शाहजादे को खान जुम्मन ने कैद करके ग्वालियर के सरकारी कारागार में डलवा दिया। इस प्रकार अहमदनगर का राज्य समाप्त हो गया, और बहेरी सल्तन तभी खत्म हो गई।

चौथा अध्याय

शिवाजी का प्रारम्भिक जीवन

[१६३७-१६४८]

बीजापुर सरकार की नौकरी में शाहजी की उन्नति–उनकी दूसरी विजय–पहली स्त्री से उनके दो पुत्र, शिवाजी और संभाजी तथा एक पुत्र उनकी दूसरी स्त्री से वेंकोजी–शाहजी का कर्नाटक से हटना, अपनी पहली स्त्री तथा पुत्र शिवाजी को दादाजी कोणदेव के साथ अपनी जागीर पूना भेजना–बीजापुर और गोलकुंडा का राजनैतिक विवरण–दक्षिण में मुगलों की नई लगान-व्यवस्था तथा 'फसली' सदी का आरम्भ होना–दादाजी कोणदेव की लगान व्यवस्था–मावली लोग–उनके जीवन-यापन की सुविधाओं में विस्तार–शिवाजी की शिक्षा, प्रवृत्ति और प्रेरणायें–उनके प्रथम तीन सहायक–तोरण किले पर शिवाजी का अधिकार–न्याय प्रशासन विधि–उनके द्वारा राजगढ़ का निर्माण–दादाजी कोणदेव की मृत्यु, चाकण और कोन्डाना के किलेदारों पर शिवाजी का अधिकार–शिवाजी का पुरन्दर और सूपा पर स्वामित्व।

जब शाहजी को, विवश हो बीजापुर के यहाँ शरण लेनी ही पड़ी तो वे बीजापुर की ओर बढ़े। शाहजी की कार्य-कुशलता, उनका व्यवहार और उनकी राजनैतिक पटुता उनसे पहले ही वहाँ पहुंच चुकी थी। बीजापुर दर्बार में मोरारजी पन्त जैसे महत्वपूर्ण दरबारियों और मंत्रियों से उनका पूर्व परिचय था अतः जब वे बीजापुर पहुंचे तो उनको सम्मान के साथ पूना और सूपा * की जागीर दे दी गई। ये दोनों जिले शाहजी की पूर्व पारिवारिक जागीर के ही थे जो मुगलों से हुए पिछले समझौते के अनुसार बीजापुर में मिला दिये गये थे। इस समय मोरारजी पन्त की
१६३७] नियुक्ति नये समझौते के अनुसार मिले, भीमा और नीरा नदियों के बीच के क्षेत्र पर हो गई थी। ऐसा लगता है कि इस क्षेत्र के प्रशासन में शाहजी ने उनकी सहायता भी की थी। इसी सहायता कार्य से मोरारजी पन्त को शाहजी की योग्यता का विशेष परिचय मिला जिसके कारण वे स्वयम् उनकी योग्यता से प्रभावित हो गये और जोरदार शब्दों में उन्होंने सुल्तान से शाहजी की सिफारिश की।

---

* इस अध्याय के लिखने में मैंने प्रायः पान्डुलिपियों की सहायता ली है। कुछ पान्डुलिपियाँ निम्न हैं :—

१—शिवाजी का जीवन-चरित्र—लेखक हैं कृष्णआनंद सभासद, इस पान्डुलिपि को मैंने महाराजा कोल्हापुर के पुस्तकालय से लिया था, जो अब भी वहीं है। इसकी एक प्रति बम्बई की लिटरेरी सोसायटी के पास है।

२—मुलहर राम राव चिटनिस लिखित 'महाराजाओं की जीवनी तथा मराठों का इतिहास' जो आरंभ से पुस्तक लिखे समय तक का है। पर पुस्तक उनके पूर्वजों द्वारा लिखित पान्डुलिपियों के आधार पर थी। उनके पूर्वजों का रायगढ़, जिन्जी तथा सतारा में काफी आवागमन था। राव द्वारा लिखित शिवा जी की जीवनी यद्यपि बहुत विशाल है परन्तु तब भी मैं समझता हूँ, उनके पास के लिखित पत्रों प्रमाणों

इसी समय कर्नाटक के विरुद्ध बीजापुर की सेना तैयारी कर रही थी, इस लड़ाई के लिये शाहजी को सहायक सेनापति के रूप में प्रस्तावित किया गया, उनको द्वितीय सेनापति का पद मिला। प्रधान सेनापति शाहजी के पूर्व मित्र रनदुल्ला खाँ थे, इसी अवसर पर उन्हें उसी क्षेत्र के कोलार, बंगलोर, ओसकोटा और सेरा नामक जिले, जागीर में देने का वादा किया गया, जो पीछे पूरा भी कर दिया गया। परन्तु आदिलशाह को शाहजी पर अधिक विश्वास था और इसी कारण वह उनकी सहायता अपने शासन के अन्य अशान्त और उपद्रवी क्षेत्रों में भी चाहता था। अतः उसने उन्हें एक सरकारी या शाही वजीफा प्रदान किया, उसके अनुसार उन्हें कुरार † जिले में बाइस गाँवों की देशमुखी प्रदान की गई। यह देशमुखी उनकी जागीर के अतिरिक्त थी।

शाहजी का अपने सम्बन्धियों के साथ कभी भी सम्बन्ध प्रगाढ़ न हो सका, राजनैतिक संबन्ध तो था ही नहीं। सिन्दखेर के देशमुख यादव लोगों के साथ अपनी स्त्री के नाते जो कुछ सम्बन्ध था, मुगलों की नौकरी छोड़ने के बाद वह भी समाप्त हो गया था और इसी कारण जब मुगलों ने शाहजी पर आक्रमण किया तब जाधव राव यादव की सेना भी मुगलों के साथ थी। इससे हमें उस भ्रम में न रहना चाहिये कि यह मुगलों के प्रति नमक अदायगी थी। मराठों में राजपूतों का एक यही गुण नहीं था। ऐसा लगता है कि यह खिलाफत भी पारिवारिक दुश्मनी का ही रूप था। सन् १६३० में शाहजी ने मोहिते परिवार की एक स्त्री से अपना दूसरा विवाह कर लिया था, इससे उनकी पहली स्त्री जीजाबाई शाहजी से क्रुद्ध हो कर अपने उन्हीं सम्बन्धियों के यहाँ चली गई थी जहाँ वह सन् १६३७ तक रहीं। शायद यादव लोगों को इसी कारण विशेष चिढ़ रही हो।

जाधव राव की पुत्री जीजाबाई से शाहजी को दो पुत्र हुए, बड़े का नाम संभाजी रक्खा गया और छोटे का शिवाजी। संभाजी बचपन से ही पिता का प्रियपात्र रहा था और हमेशा उन्हीं के साथ रहता था परन्तु शिवाजी अपनी माता के ही पास रहे। सन् १६२७ मई को शिवनेरी के किले में उनका जन्म हुआ था। अपना सारा बचपन उन्होंने निष्कंटक बिताया। अराजकता के उस युग में हजारों मुसलमान दुश्मनों से उन्हें कुशलतापूर्वक बचाये रखने में उनकी माता का विशेष ध्यान रहा। इसका कुछ भी विवरण नहीं मिलता कि उन्होंने स्वयम् मुगलों की कैद में जाकर भी शिवाजी को कहाँ छिपा दिया था। हाँ इतना तो निश्चित है कि शिवाजी उस कैद से बच गये थे। जीजा बाई को इतनी आसानी से मुगलों ने कैसे मुक्ति दे दी यह भी आश्चर्यजनक ही है। परन्तु इसका मुख्य कारण शायद

और सूचनाओं का अच्छा प्रयोग किया जा सकता था परन्तु शिवाजी के अपने अधिकारियों को दिये गये आदेश और उनके शासन के विभागों का विवरण संतोषपूर्ण है। बालाजी आमोजी के हाथ की लिखित कुछ पान्डुलिपियां शिवाजी द्वारा दिये गये आदेशों की मूल प्रतियाँ हैं।

(३) जावली राज्य के वंशजों के यहां से प्राप्त शिवाजी की जीवनी।

(४) थामस कोट द्वारा किया गया 'शिवाजी का जीवन' नामक अनुवाद, जो अपूर्ण है।

(५) सर बेरी क्लोज द्वारा किया गया, अनुवाद 'शिवाजी का जीवन' जो अपूर्ण है।

(६) कोल्हार के कुलकर्णी से प्राप्त शिवाजी का जीवन चरित्र।

(७) कुतो देश के देशपान्डे लोगों का 'मराठों का इतिहास' जिसमें बीजापुर के सुल्तानों का भी विवरण है। मुगलों की ओर पहले फिर खफी खाँ को मैंने आधार माना है—लेखक

† कुरार—सतारा से ३० मील दक्षिण, वह बीजापुर वालों को कैसे मिला इसका पता नहीं, पर था यह उन्हीं के अधिकार में।

शाहजी की जीजा बाई के प्रति अनिच्छा ही प्रमुख थी। यह भी हो सकता है कि शाहजी के रिश्तेदार यादव तथा भोंसले लोगों ने मुगलों के प्रति अपनी सेवाओं का फायदा उठाया हो।

शाहजी द्वारा इस नये विवाह के परिणामस्वरूप जीजाबाई से हुए मनमुटाव के कारण शिवाजी ने अपने पिता को सात वर्षों तक देखा ही नहीं (१६३०-३६)। उनको अपने पिता का साक्षात्कार अपने विवाह के अवसर पर ही मिला, जब शाहजी मोरारजी पन्त के साथ बीजापुर आये तो जीजा बाई भी उनके यहाँ गईं परन्तु जैसे ही निम्बालकर की पुत्री सई बाई से शिवाजी का विवाहोत्सव समाप्त हुआ वे शिवाजी के साथ लौट गईं और शाहजी भी पुनः अपनी कर्नाटक की मुहिम पर चले गये। शिवाजी अपनी माता को साथ लेकर पूना रहने लगे।

अपनी दूसरी पत्नी तुकाबाई से भी शाहजी को एक पुत्र हुआ, इसका नाम वेंकोजी था। इसके अतिरिक्त एक वेश्या से भी शाहजी को एक लड़का था—उसका नाम सन्तोजी था।

प्राय सभी मराठा अधिकारी अपने पास कम से कम एक ब्राह्मण तो अवश्य ही रखता था। यह ब्राह्मण साधारणतः लिखने-पढ़ने, लेखा आदि कार्यों को करता था। उनका स्थान इन मराठा अधिकारी गण से ऊँचा होता था, यह बताना आसान नहीं। यह इन अधिकारियों के सभी प्रयोजनों पर उपस्थित होते, उनके आवश्यक कार्य करते—परन्तु अधिकारियों के वे पूज्य थे, प्रत्येक मराठा चाहे वह तीन घोड़ों का मनसबदार ही क्यों न हो, इस प्रकार का कम से कम एक ब्राह्मण अवश्य नियुक्त करता था। शाहजी के पास इन ब्राह्मणों का एक झुंड ही था, इनमें दो प्रकार के ब्राह्मण थे। एक तो वे ब्राह्मण थे जो उसके सुख-दुख के साथी थे। लड़ाई में इनके साथ जाते, शांति-काल में उनका प्रबन्ध-कार्य देखते और आवश्यकता पड़ने पर उसको आर्थिक सहयता भी पहुंचाते। दूसरे वे थे जो उसके पास सिर्फ आश्रय के लिये थे और उनकी जागीरदारी से मुगलों द्वारा विस्थापित कर दिये गये थे। इन ब्राह्मणों में से उनके विश्वासपात्र दो ब्राह्मण थे। प्रथम नारूपन्त हनुमंते तथा दादाजी कोण्डदेव। इसलिये शाहजी ने नारूपंत हनुमंते को कर्नाटक में मिली जागीर का भार सौंपा और दादाजी कोणदेव को अपने परिवार का संरक्षक बना पूना स्थित अपनी जागीर सौंप दी।

दादाजी कोणदेव एक योग्य लगान अधिकारी थे। उनके प्रबन्ध-काल में जागीर चमक उठी। खेतों का उत्पादन बढ़ गया। दादाजी की योग्यता को संपादित करने का अवसर भी मिल गया—शाहजी की शानदार, प्रशंसनीय सेवाओं से खुश हो सल्तनत ने उनकी जागीर में, पूना के पास की पहाड़ी घाटियों के साथ इन्दुपुर और बारामती के जिले भी मिला दिये। दादाजी ने अपने प्रबन्ध से उसे एक समृद्धि दी।

गोलकुंडा और बीजापुर में अपनी सीमा बढ़ाने का व्यर्थ महत्वहीन कार्य होता रहा—यद्यपि दोनों राज्यों में लड़ाई की कोई घोषणा नहीं थी, न उस क्षेत्र में सेनाओं का भारी जमाव ही होता था। छोटी-छोटी लड़ाइयों से सीमा-रेखा जीत-हार के साथ एक आध फर्लांग इधर-उधर होती रहती थी, परन्तु दोनों को स्वयम् अपनी स्थिति का ज्ञान नहीं था, दोनों ने आपस में मिल कर कभी भी मुगलों का सामना करने का प्रयत्न नहीं किया—संगठित सुरक्षा सेना बनाने का कोई प्रयास नहीं किया, और जैसा कि देश की सुरक्षा को खतरे में डाल कर भी द्वेष रखने वाला और बदला लेने वाले अक्सर करते आये हैं, उन्होंने ने भी किया है। इन दोनों को अपनी दोस्ती बढ़ाने का अवसर मिला था, जब बीजापुर के बादशाह ने कुतुबशाह की लड़की से ब्याह किया था (१६४१)।

मुहम्मद आदिलशाह व्यक्तिगत रूपसे युद्ध-प्रेमी नहीं था। उसने बहुत आवश्यक कार्यवश ही बीजापुर को बहुत अल्पकाल के लिये छोड़ा, पर कार्य पूरा होते ही पुनः तुरंत बीजापुर लौट आता था।

उसकी सारी सेना सेनापतियों के हाथ में रहती थी। हाँ, उसने बीजापुर की उन्नति में पूरा ध्यान लगवाया। उसकी सौन्दर्यप्रियता आज भी प्रशंसनीय इमारतों के खंडहर के रूप में दर्शनीय है। अपनी राजधानी में जल लाने के लिये उसने एक जल लाने वाली सुरंग बनवाई जो आज भी देखी जा सकती है। उसके बनवाये कई महल आज भी उसके कला-प्रेम के नमूने हैं।

सम्राट शाहजहाँ ने सन् १६३६ की शन्ति के बाद दक्षिण में विजित क्षेत्र के प्रबन्ध की ओर ध्यान देना शुरू किया। औरंगजेब द्वारा दो सरकारों के निर्माण को हमने पिछले अध्याय में देखा है, दोनों सरकारों का वायसराय औरंगजेब था, परन्तु वह अधिक काल तक न रह पाया। इस काल में विवरण योग्य कोई घटना नहीं घटी सिवा इसके कि मुगलों ने बुलगाना को भी जीत लिया, यद्यपि कुछ समय बाद ही उसे फिर छोड़ देना पड़ा।

इस अवधि में विजित महाराष्ट्र में 'टोडरमल लगान व्यवस्था' को शुरू किया गया था। टोडरमल मुगल इतिहास में एक प्रतिभाशाली राजनीतिज्ञ हिन्दू माने जाते हैं। इन्होंने अकबर के शासन-काल में अर्थव्यवस्था में कई सुधार किया। सिक्कों के निर्माण और प्रचलन में इनके किये कुछ सुधार आज के से वैज्ञानिक थे। इनका स्थान काफी ख्यातिसंपन्न राजपुरुषों में माना जाता है।

टोडरमल विधि से लगान निर्धारण करने के लिये पहले समान उपज वाले खेतों को अलग-अलग किया गया, खेतों को अलग-अलग भागों में बाँटने के लिये समान लागत से समान क्षेत्र की उपज को आधे से सातवें हिस्से तक उपज को नाप कर लगान निर्धारण किया जाता था। कुल उपज का चौथा हिस्सा सरकार लेती थी। यह लगान सिक्कों में दी जाती थीं। एक साल या दो साल की जाँच के बाद खेतों का लगान इसी आधार पर निश्चित हो गया। इस प्रकार की लगान व्यवस्था को सीमा के उत्तरी जिलों पर लागू किया गया। शाहजहां ने इस कार्य के लिये मुर्शिदकुली खां को नियुक्त किया था। मुर्शिदकली खां बहुत ही योग्य अधिकारी था। इस व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने में उसे बीस वर्ष अनवरत श्रम करना पड़ा।

लगान को वसूलने के लिए टोडरमल ने एक चांदी के सिक्के का प्रयोग किया जिसका नाम टंका था। इसी वजह से इस व्यवस्था का नाम टंका ही पड़ गया। इसके पूर्व साम्राज्य की लगान का हिसाब-किताब तथा वसूली 'तुखा' नामक जस्ते के सिक्के के रूप में होती थी। इसी वर्ष (१६३६-३७) के आस-पास महाराष्ट्र के इस क्षेत्र में फसली सदी को आरंभ किया गया।

दादाजी कोणदेव के जिले मुगलों के जिलों के पास ही थे परन्तु उन्होंने वही अंबर खान द्वारा प्रतिपादित लगान व्यवस्था चालू रक्खी। हर साल खेतों की उपज के अनुसार सरकारी लगान लिया जाता था। यह प्रायः खेत में उत्पन्न पदार्थ के ही रूप में होता था परन्तु यदि किसी कारणवश यह लगान न लिया जा पाता तो इसे द्रव्य के रूप में वसूला जाता था। यह लगान व्यवस्था स्थिर और निश्चित नहीं थी और टंका लगान व्यवस्था से कुछ अधिक ही लगान देने के अनेक उदाहरण मिले हैं। परन्तु ऐसा लगता है कि देश की उस अवस्था को इसी लगान व्यवस्था ने लाभ पहुंचाया। यही कारण हो सकता है उसे क्षेत्र की आर्थिक उन्नति और दादाजी कोणदेव की प्रसिद्धि का जो उन्हें जिलों के प्रबन्ध-कार्य में मिली। उनको पीछे मिली पहाड़ी घाटियों या मावल के रूप में एक उजाड़ खंड मात्र मिला था। इन पहाड़ियों पर रहने वाले बहुत ही गरीब और पिछड़े वर्ग के लोग रहते थे। बिचारे साल भर अनवरत श्रम करते परन्तु तब भी उनको खाने पीने भर की भी प्राप्ति न होती। दादाजी कोणदेव के प्रबन्ध से पूर्व वे लगभग समाप्त से हो गये थे। यद्यपि उनके पास जंगली जानवरों से बचने के लिये कुछ हथियार अवश्य थे परन्तु इसके अलावा और कुछ नहीं था। रहने को घास-फूस की

झोपड़ियाँ थीं जो किसी भी अवस्था में प्रकृति के निर्मम प्रहारों से उनको सुरक्षित नहीं रख सकती थीं। दादाजी कोणदेव ने सर्व प्रथम उनकी दशा के सुधार की ओर ध्यान लगाया। उन्होंने उन मावलें लोगों को बिना लगान की भूमि दी, उनको जागीर में नौकरियां दीं, जिनमें द्रव्य में वेतन के अतिरिक्त मोटे अन्न भी भोजन आदि को दिये जाते। लगान वसूली के कार्य में मदद देने के कार्य में ये मावले अधिक सहायक होते थे।

शाहजी का परिवार दादाजी कोणदेव के संरक्षण में पड़ा रहा। उन्होंने पूना में जीजा बाई के निवास के लिये एक विशाल भवन का निर्माण कराया तथा शिवाजी के शिक्षण का उचित प्रबन्ध किया। उनको प्रत्येक दिन वह शिक्षा मिली जो उनके योग्य थी। उस समय मराठों में लिखने-पढ़ने को सर्दारों की अयोग्यता माना जाता था। पढ़ाई लिखाई का जानना तो सिर्फ ब्राह्मणों का कार्य समझा जाता था। यही कारण है कि जहाँ शिवाजी ने अपना नाम भी लिखना नहीं सीखा वहीं अस्त्र-शस्त्र संचालन में उनकी कुशलता की सीमा नहीं थी। तलवार, कटार, भाले तथा युद्ध विद्या और तीरंदाजी में वे पूर्ण पारंगत थे। मराठे हमेशा अपनी घुड़सवारी के लिये प्रसिद्ध रहे हैं, जो शिवाजी को विरासत में मिली थी। अपने संरक्षक की निगरानी में वे हिन्दुओं में प्रचलित सभी धार्मिक क्रियाओं और अनुष्ठानों में सम्मिलित होते रहे। महाभारत, रामायण तथा भागवत की कथाओं से उनका मनोरंजन होता। महाभारत की लड़ाई को सुनना उनका प्रियतम कार्य था। धार्मिक कथाओं में उनकी इस श्रद्धा को उन्होने कष्ट पाने पर भी नहीं छोड़ा—कारण पीछे जब वह प्रसिद्ध हो गये और दुश्मनों की संख्या बढ़ गई तब भी वे किसी न किसी प्रकार कथा सुनने पहुंच जाते और परिणामस्वरूप खतरा हमेशा उनके पास रहता था।

हिन्दू धर्म के प्रति आस्था उनमें प्राकृतिक रूप से प्रतिस्थापित कर दी गई थी, परिणामस्वरूप उन्होंने मुसलमानों से जन्म से ही घृणा करना शुरू कर दिया। घृणा के इस भाव ने उनके अंदर देश-भक्ति की भावना कूट-कूट कर भर दिया। यद्यपि अपनी इस घृणा से उन्होंने कभी भी अत्याचार और अन्याय को प्रोत्साहन नहीं दिया, परन्तु उनकी अपनी साहसिकता को बढ़ाने और आत्मविश्वास को बढ़ाने में उनकी जाति, धर्म और देश-भक्ति का प्रमुख हाथ था। आगे चल कर उन्होंने अपनी सेना में देश-भक्ति के भाव को जागृत करने में अधिक ध्यान लगाया परन्तु मुसलमानों के प्रति अत्याचार को उन्होंने कभी सहन नहीं किया।

शिवाजी ने पहले अपनी सुविधाओं को उन्नत करने का प्रयास किया। अपने सत्रहवें वर्ष के अन्त तक उन्होंने असभ्य और जंगली लोगों के साथ उठना-बैठना तथा अपने स्वतन्त्र राज्य के निर्माण सम्बन्धी मंत्रणाओं को शुरु कर दिया। जब दादाजी कोण्डदेव के कानो में इन बातचीतों की भनक पड़ी तो उन्होंने शिवाजी को सावधान किया। परन्तु शिवाजी अपने कार्य में लगे रहे, हाँ अब उन्होंने अपने स्वतन्त्र राज्य निर्माण संबन्धी कार्यकलापों और बातचीतों को सावधानी पूर्वक दादाजी कोणदेव से छिपाना शुरू किया। अकसर ही वह दो-दो, तीन-तीन दिन कोंकण से गायब हो जाते थे। दादाजी कोंणदेव ने उनके इन कार्यों को देखा और उनको रोकने के लिये उन्होंने शिवाजी को घर पर ही उलझाये रखने के लिये जागीर का कार्य सौंपना शुरु कर दिया।

दादाजी कोणदेव के अधीनस्थ कई ब्राह्मण लेखकों और सहायकों से शिवाजी का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था। यही आगे चलकर शिवाजी के मुख्य सहायक और सलाहकार हुए। शिवाजी पूना के एक प्रमुख शक्ति के केन्द्र के रूप में आसपास के मराठा शासकों, राजाओं और जागीरदारों को अपने यहां बुलाते रहते थे और उनके यहाँ जाते रहते थे। अपने सरल स्वभाव और

मित्रभाव-प्राधान्य से शीघ्र ही लोगों में विख्यात हो गये। परन्तु कहीं कहीं लोगों में यह अफवाह भी फैली थी कि शाहजी का पुत्र शिवाजी डाकुओं के एक भारी दल का मुखिया है और लूट-पाट में उनसे हिस्सा बँटाता है।

शिवाजी ने शुरु से ही मावल लोगों पर विशेष स्नेह रखा। उन्होंने अनुभव किया कि वे देखने में चाहे जितने निकम्मे और मूर्ख दिखें, आस्था और विश्वास के पक्के हैं। एक बार जिस चीज को वे स्वीकार कर लेंगे उस पर मिट जायेंगे। विश्वासपात्र और स्वधर्म भक्ति की भावना तो उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी, इसी कारण उन्होंने मावल लोगों से अपना सम्बन्ध हमेशा बनाये रखा; विशेषकर उन मावलों से जो दादाजी कोन्डदेव की सेवा में थे। वे उनके साथ अपना अधिक से अधिक समय व्यतीत करते। हमेशा इन्हीं के साथ शिकार खेलने जाते। उन्हीं के साथ पहाड़ियों की सैर करते इसी कारण वे न सिर्फ अपने यहाँ नियुक्त मावलों में वरन सम्पूर्ण मावल जाति में प्रसिद्ध हो गये। वे कोंकण की मावल कही जाने वाली पहाड़ियों व घाटमाथा आदि घाटों में विचरते, नये-नये रास्तों और पगडंडियों को पहचानते तथा जंगली रास्तों के आस-पास स्थित दुर्गों को देख उनमें से किसी एक पर अपना अधिकार करने का विचार किया करते थे।

ये पहाड़ी दुर्ग मुसलमानों के हाथ में थे। इन किलों में सुल्तान का कोई किलेदार या मंत्री रहता था। इन किलों के ऊपर साधारण अवस्था में शायद ही ध्यान दिया जाता था। हाँ जब युद्ध की सम्भावना होती थी तब किले की सेना में कुछ अच्छी सेनायें रख-दी जाती थीं। यही कारण था कि इन किलों को साधारण मकसददारों, अमलदारों, जागीरदारों और देशमुखों के प्रबन्ध में ही छोड़ दिया जाता था। जिस जिले में दुर्ग होता था उसी जिले के उल्लखित पदाधिकारी उसका प्रबन्ध देखते रहते थे।

इन किलों में इतनी कम सुरक्षा का प्रमुख कारण था उनकी आवागमन हीनता। बर्सात में तो इन किलों में पहुंचना भी आसान न होता था। इन किलों में इसी असुविधा के कारण उनके महत्व के अनुरूप उन पर ध्यान नहीं दिया जा पाता था। जिस काल का हम वर्णन कर रहे हैं बीजापुर सरकार मुगलों के साथ शान्ति समझौते पर थी और उसकी सेना कर्नाटक में तहस-नहस करने में व्यस्त थी। सुल्तान ने सारी सेना को उसी तरफ भेज दिया था अतः इन पहाड़ी किलों में नाम मात्र की प्रतिरक्षा सेना थी। शाहजी की जागीर में इस प्रकार का एक भी पहाड़ी किला नहीं था। उनके आस-पास के जिलों में दो किले थे। कोन्डाना * जिसमें बीजापुर सुल्तान का नियुक्त एक मुसलमान किलेदार था तथा दूसरा पुरंदर का किला जिसमें मोरारजी पंत द्वारा नियुक्त एक ब्राह्मण प्रधान था। इन दोनों किलेदारों से शाहजी के परिवार से अच्छे सम्बन्ध थे, विशेषकर पुरन्दर के हिन्दू किलेदार से। इसका कारण यह था कि यह किलेदार वास्तव में निजामशाही के समय का नियुक्त था और उस नियुक्ति में शाहजी का प्रमुख हाथ रहा होगा। इस ब्राह्मण का नाम नीलकांत राव था।

मावल में रहने वाले लोगों में शिवा जी का सम्बन्ध तीन व्यक्तियों से अधिक घनिष्ठ था। यह थे--यशजी कंक, तानाजी मालसुरे तथा बाजी पासलकर। बाजी पसालकर मूसेखोरे के देशमुख थे, तथा अन्य दोनों इसी प्रकार के पुश्तैनी अधिकार पाये हुये थे। इन्हीं तीनों को शिवाजी के तीन प्रमुख समर्थक और सेनापतियों के नाम से जाना जाता है। उन्हीं तीनों की सहायता से शिवाजी ने

---

* कोन्डाना आज का सिंहगढ़ (मराठा पान्डुलिपि)

पूना से २० मील दक्षिण पूर्व स्थित तोरण किले को किलेदार से छीन लिया। किले पर किस प्रकार अधिकार हुआ, इसका पूर्ण विवरण नहीं मिलता।

यह घटना सन् १६४६ में घटी। किले पर अधिकार होते ही शिवाजी ने यह दिखाना शुरू किया कि वास्तव में किले को अधिकार में करके उन्होंने कोई सरकारी सहायता की है। उन्होंने अपने वकीलों द्वारा दर्बार को यह विश्वास दिलाया कि वास्तव में उस सुनसान इलाके के गढ़ पर अधिकार करके शक्तिशाली प्रतिरक्षा रखना बुद्धिमानी का कार्य है जो उन्होंने बीजापुर सल्तनत के स्वामिभक्त जागीरदार होने के नाते किया है। उनकी बात का महत्व तर्कसंगत था अतः मान लिया गया। किले के आस-पास की जमीन आदि को उन्होंने देशमुखों आदि के सिपुर्द कर दिया जिससे वे पूर्ववत रह सकें और विरोध न करें। अपनी बात के प्रमाणस्वरूप उन्होंने उस किले तथा संलग्न क्षेत्र पर पिछले दस वर्षों में दिये गये लगान से बहुत अधिक लगान देने को कहा। इन प्रार्थना-पत्रों के उत्तर अनावश्यक कारणों से शीघ्र नहीं दिये गये। शिवाजी यही तो चाहते भी थे। उन्हें तो समय ही चाहिये था। अपने इन कूटनीतिक प्रार्थनाओं के साथ-साथ उन्होंने दर्बारियों को लम्बी-चौड़ी धन राशि घूस में देकर मामला उलझाये रक्खा। इन्हीं कारणों से कई वर्षों तक उन पर ध्यान भी नहीं दिया गया।

जब शिवाजी के वकील बीजापुर वालों को व्यर्थ की बातों और आश्वासनों में उलझाये हुये थे, शिवाजी तेजी से मावल लोगों को सैनिकों में भरती कर रहे थे। अपनी शक्ति को बढ़ाने का तीव्र प्रयास कर रहे थे तथा तोरण किले की मरम्मत करवा रहे थे। जब वे किले के किसी क्षतिग्रस्त भाग की खुदाई करवा रहे थे, अचानक ही उन्हें वहाँ सोने की भारी राशि गड़ी हुई मिल गई जो शायद किले के किसी भूतकालीन अधिकारी द्वारा गाड़ी गई रही हो, अचानक मिली इस धनराशि से उनकी सारी समस्यायें आसान हो गईं। उनकी आराध्या देवी भवानी की इस सहायता से उनका साहस बढ़ गया। अस्त्र-शस्त्र और गोला बरूद वगैरह खरीदे गये। इस धनराशि से उन्होंने एक दूसरा किला बनवाना आरम्भ किया। इस कार्य के लिये उन्होंने ने मोरबुध नामक पहाड़ी को पसन्द किया। यह स्थान तोरण से तीन मील दक्षिण पूर्व है इसकी मजबूती पर उन्होंने पूरा ध्यान दिया। किले के निर्माण के बाद उसको राजगढ़ के नाम से पुकारा गया।

इस किले के निर्माण काल में प्रगति की सूचना दर्बार में समय-समय पर पहुंचती रहती थी। वहाँ से किले के निर्माण कार्य को रोकने का आदेश हुआ और कर्नाटक में शाहजी के पास विरोध पत्र भेज कर इन निर्माण कार्यों के लिये उचित उत्तर मांगे गये! शाहजी ने उसके उत्तर में लिखा कि यद्यपि शिवाजी ने उनसे इस निर्माण कार्य के बारे में कुछ सलाह नहीं ली थी परन्तु चूंकि उनका सारा परिवार बीजापुर सरकार की नौकरी करता है अतः निस्सन्देह शिवाजी किले का निर्माण जागीर की रक्षा और सल्तनत की उन्नति के विचार से कर रहा होगा। बीजापुर को जवाब देने के बाद शाह जी ने दादाजी कोंडदेव से पत्र लिख कर इस किले के निर्माण के कारण पूछे तथा निर्माण कार्य रोकने को कहा। दादाजी ने परिवार के भविष्य पर विचार कर सभी सम्भव उपायों से समझा कर भी शिवाजी के निश्चय को न डिगा सके। उन्होंने शिवाजी को निकट भविष्य के बीभत्स चित्रों से डिगाना चाहा, कार्य के औचित्य को चुनौती दी, उनके पिता द्वारा अर्जित ख्याति और सम्मान का हवाला दिया परन्तु सब व्यर्थ गया। यद्यपि शिवाजी दादाजी से मृदुतापूर्ण सम्भाषण करते रहे परन्तु दादाजी जान गये कि वह उन्हें डिगाने का व्यर्थ प्रयास कर रहे हैं। प्रथम तो अधिक उमर, रोगों द्वारा जर्जर उनका शरीर और उस पर भी जब अपने स्वामी के परिवार के भविष्य की चिन्ता भी सिर

पर आ पड़ी तो दादाजी टूट गये और अधिक दिन न जी सके। परन्तु अपने जीवन के अन्तिम समय में दादाजी कोंडदेव ने शिवाजी को अपने पास बुलाया और अपने स्वभाव के विपरीत उन्होंने शिवाजी को आत्म स्वतन्त्रता का पाठ दिया। मरते समय उनकी आत्मा को लगा कि शिवाजी का कार्य ही अधिक श्रेष्ठ है। दादाजी ने शिवाजी को हिन्दू जाति की मुसलमानों से रक्षा, धर्म स्थापन, मन्दिरों का विनाश रोकने तथा गोहत्या को रोकने का उपदेश दे कर आँखें मूंद लीं।

दादाजी कोंडदेव की इस आखिरी शिक्षा ने शिवाजी के इरादे को और भी पक्का कर दिया। उनके विचार पर सफलता की मोहर लगा दी। उनके इस विचार ने तथा उपदेश ने जागीर के अधीनस्थ कर्मचारियों की निगाह में शिवाजी की आज्ञा का महत्व स्पष्ट कर दिया। मरने से पूर्व दादा जी ने शिवाजी को ही जागीर का प्रबन्ध सौंप दिया था, इससे शिवाजी को अपनी आर्थिक दृढ़ता में कुछ कमी महसूस नहीं हुई, अन्यथा उनके इरादे शायद कुछ दिनों के लिये स्थगित हो जाते।

शिवाजी ने अपने पिता के नाम पर जागीर सम्भालना शुरू किया। जब शाहजी द्वारा एक दूत दादाजी कोंडदेव से लगान की वसूली का कुछ भाग माँगने आया तब शिवाजी ने उसी से दादा जी कोंडदेव की मृत्यु का समाचार पिता के पास भिजवा दिया। इसी प्रकार से कितने ही अवसरों पर शाहजी द्वारा धन की माँग पर उन्होंने उसे टाल दिया और अन्त में उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि जागींर की जनता का खर्च तथा प्रशासन व्यय इतना बढ़ गया है कि अब वह उन्हें कुछ भी देने में समर्थ नहीं हैं और उन्हें अपनी कर्नाटक में मिली समृद्धशाली जागीर पर गुजारा कर लेना चाहिये।

जागीर में दो पदाधिकारी ऐसे थे जिनको या तो फुसला कर मिला लेना या फिर जागीर से निकाल देना परम आवश्यक था, कारण इनमें से कोई भी शिवाजी के विचारों से सहमत नहीं था। प्रथम था चाकण का फिरंगोजी नरसल्ल तथा दूसरा, बाजी मोहिते। शाहजी की द्वितीय पत्नी का भाई, सूपा जिले का प्रबन्ध देखता था। शिवाजी की चाल फिरंगोजी को अपनी तरफ मिलाने में कामयाब हो गई उसने शिवाजी की अधीनता स्वीकार कर ली। परिणामस्वरूप उसे चाकण के प्रमुख सर्दार के पद पर स्थायी कर दिया गया। इसके अतिरिक्त उसे आस-पास के गाँवों में लगान व्यवस्था का पदाधिकारी बना दिया गया। परन्तु शर्त यह थी की वह दादाजी कोंडदेव की तरह लगान प्रबन्ध बनाये रखे।

इन सभी घटनाओं से प्रमुख और आश्चर्यजनक घटना तो शिवाजी के कोन्डाना पर अधिकार की थी। वहाँ के मुसलमान किलेदार को बहुत ही लम्बी राशि घूस में देकर किला अपने अधिकार में कर लिया गया और उसका नाम शिवाजी द्वारा सिंहगढ़ रखा गया जो आज भी यह इसी नाम से विख्यात है।

बाजी मोहिते के पास ३०० अच्छे घोड़े थे। वह सूपा पर अधिकार किये बैठा था। वह जागीरदारी के प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार तो रखता था परन्तु बिना शाहजी की अनुमति के लगान देने को तैयार नहीं होता था, अतः एक दिन आधीरात को शिवाजी ने मावलों को लेकर बाजी मोहिते को उनके दल सहित घेर लिया। मोहिते हक्काबक्का रह गया और शिवाजी के साथियों ने सभी को गिरफ्तार कर लिया। इन सभी कैदियों में से जिसने उनकी सेवा करने से इन्कार किया, बंदी हालत में अपने पिता के पास कर्नाटक भेज दिया, मोहिते भी इन्हीं में था।

इन्दुपुर और बारामती के लगान अधिकारियों ने बिना किसी परिबर्तन के पूर्ववत लगान की

वसूली की और दादाजी कोणदेव की मृत्यु के कुछ बाद उसे लाकर सरकारी खजाने में जमा कर दिया। उनको जागीर के अधिकार के प्रश्न से जरा भी लगाव नहीं था। परन्तु चूँकि ये जिले तथा सूपा का क्षेत्र दोनों पहाड़ियों से दूर पड़ते थे अतः शिवाजी को बहुत ही सावधानी से इनको अपनी कुशलता से मिलाये रखना पड़ता था।

पुरन्दर के किलेदार का पतन भी प्रायः दादाजी कोण्डदेव की मृत्यु के आस-पास हुआ था। उसके तीन लड़के थे। बड़े लड़के ने बिना बीजापुर की मान्यता मिले किले के सैनिकों का नेतृत्व ले लिया। अब बचे दो छोटे भाइयों ने भी किलेदारी में अपने बड़े भाई के साथ हिस्सा पाने के लिये प्रयत्न करना शुरू किया। उन्होंने शिवाजी से मध्यस्थता करवा कर अपने मतभेदों को दूर करना चाहा। शिवाजी ने इस मध्यस्थता में दिलचस्पी लेना शुरू किया, परन्तु गुप्त रूप से वे छोटे भाइयों के पक्ष का समर्थन करते थे।

एक दिन उचित अवसर पर सूपा जाने के बहाने शिवाजी ने पुरंदर की ओर प्रस्थान किया। जैसा कि उनका विचार था किले से उन्हें आमंत्रण मिला। अपने कुछ सहायकों के साथ वे किले में गये। वे बड़े भाई से वार्ता करने लगे। ज्यों ही वह आराम करने को कमरे से बाहर निकला बाकी दोनों भाइयों से उन्होंने बताया कि अधिकार पाने के लिये बड़े भाई को कैद कर लेने से ही सफलता मिल सकती है तथा उन्हें इस कार्य में अपना पूर्ण समर्थन तथा अपनी सेवा प्रदान करने का आश्वासन दिया। दोनों भाई तुरंत ही तैयार हो गये। परिणाम स्वरूप शिवाजी ने अपनी सेना के पास आदेश भेजा और दूसरे दिन सुबह होने से काफी पहले पुरन्दरगढ़ के ऊपरी और नीचे के सभी भागों पर मावली छाये हुए थे। किले की सेना, दोनों छोटे भाई तथा बंदी बड़ा भाई सब उसके अधिकार में थे। अपनी स्वतन्त्र सत्ता के लिये शिवाजी ने इस धूर्तता का भी सहारा लिया। उन सभी को किले से बाहर निकाल कर सब का उचित प्रबन्ध किया। उन तीनों भाइयों को अपनी नौकरी में रख लिया जहाँ उन्होंने कुछ दिनों में अपने लिये सम्मान सुरक्षित कर लिया।

इन सभी किलों पर शिवाजी का अधिकार बिना किसी खून-खराबी के हुआ था। सरकारी जिलों को कभी नहीं छेड़ा जाता था। मुहम्मद आदिलशाह बीजापुर के महलों के निर्माण में लगा था और उसकी सेना कर्नाटक-विजय में, अतः शाहजी की जागीर में होते इस परिवर्तन पर किसी का ध्यान नहीं था। होता भी क्यों, वे तो समझते थे कि जब जागीरदार स्वयम् हमारे अधिकार में है तो हमें परेशान होने की क्या आवश्यकता है।

इस प्रकार शिवाजी ने चाकण से लेकर नीरा नदी के क्षेत्र तक अपना अधिकार कायम कर लिया था। उन्होंने चीते की सी सावधानी से अपने पंजों में इन क्षेत्रों को जकड़ लिया था। वह तब तक पहाड़ियों में अपनी शक्ति इकट्ठी करते रहे जब तक उन्होंने यह नहीं समझ लिया कि अब मैं पूर्णरूप से सुरक्षित हूं। जब उनके उदय पर उनकी शक्ति का अंदाजा लगाया जाने लगा तब लोगों की समझ में आया कि शिवाजी ने इतनी शक्ति इकठ्ठा कर ली थी, जो किसी प्रकार के संकट का सामना करने में समर्थ थी।

पाँचवाँ अध्याय

शिवाजी का अभ्युदय और मुगलों की हलचल

[१६४८-१६५७]

शिवाजी के पडोस में बीजापुर सरकार के अधिकारी और किले--वारी के सामंत—जिंजीरा के सिद्दी—साहसिक लूटपाट--किले का आश्चर्यजनक अपहरण,—कल्याण प्रदेश के कुछ क्षेत्र पर अधिकार—शाहजी की गिरफ्तारी—शिवाजी द्वारा सम्राट शाहजहाँ से उनकी रिहाई की प्रार्थना—शिवाजी की गिरफ्तारी का निष्फल प्रयत्न—शाहजी की रिहाई—उनका कर्नाटक लौटना—उनके बड़े पुत्र संभाजी की हत्या—शिवाजी की प्रगति—जावली के राजा की हत्या तथा उनके राज्य पर शिवाजी का अधिकार—रुहेरा दुर्ग—प्रतापगढ़ का निर्माण—श्यामराज पंत का प्रथम मराठा पेशवा होना—मुगलों के जिलों के बारे में शिवाजी की राय—१६३६ के बाद दक्षिण में मुगलों का इतिहास—मीर जुमला--मुगलों का गोलकुन्डा पर आक्रमण— बीजापुर से युद्ध--शाहजहाँ का रोग ग्रस्त होना--उसके चारों लड़के--सबों का राज सिंहासन के लिये उलझना--औरंगजेब का चरित्र तथा प्रगति।

अभी हमने जिस अध्याय को पढ़ा है उससे पाठकों को दक्षिण तथा दक्षिण के राजाओं और शासकों का परिचय मिल चुका होगा, परन्तु आगे घटने वाली घटनाओं की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि हम शिवाजी के क्षेत्र के आस-पास के किलेदारों और अधिकारियों की पूरी जानकारी प्राप्त कर लें जो प्रायः सभी बीजापुर सुल्तान के द्वारा नियुक्त थे।

नीरा नदी के दक्षिणी किनारे से लेकर पूर्व में सिराउल तक तथा और दक्षिण में कृष्णा नदी के उत्तर स्थित पहाड़ियों की श्रेणियों तक मावलों के देशमुखों का अधिकार था। रुहेरा दुर्ग इन्हीं के अधिकार में था। शुरू से ही शिवाजी के प्रति जलन की भावना होने के कारण इसने अपने किले में सेना का भारी जमाव कर रक्खा था। इसने अपने पड़ोसी पुरन्दर के किले पर बराबर
१६४८] अपना ध्यान बनाये रखा। यह देशमुख यद्यपि मराठा था परन्तु यहाँ का देशपान्डे प्रभु था जिसको शिवाजी ने हमेशा प्रश्रय और सम्मान दिया। वाहवी में बीजापुर का एक मकसददार रहता था इसके अधीन पान्डुगढ़ कुम्मलगढ़ तथा अन्य कई किले थे।

कोल्हापुर का जिला तथा पास का पन्हालादुर्ग एक मराठा अधिकारी के अधिकार में था इसकी नियुक्ति बीजापुर दरबार द्वारा हुई थी।

बीजापुर के कोंकण क्षेत्र में बीजापुर ने अपवाद-स्वरूप कुछ बंदरगाहों को जैसे डाबुल, अजनील तथा रत्नागिरि को छोड़कर जो सीधे बीजापुर द्वारा नियुक्त अधिकारियों द्वारा शासित थे, अन्य क्षेत्र जागीरदारों, देशमुखों तथा देशपान्डे लोगों को अधिकार के साथ सौंप दिये गये थे। इन सामंतों या सर्दारों में वारी के सामन्त प्रमुख थे। ये शक्तिशाली क्षेत्र के देशमुख और जागीरदार थे। उनके साथ

हो पुर्तगालियों की सीमा लगी हुई थी। इनके अधीन के बन्दरगाह जलदस्युओं के प्रमुख अड्डे थे। इन्हीं जलदस्युओं को शुरू में कूलीस के नाम से जाना जाता था, इनके पश्चात दलवी लोगों का क्षेत्र था जिन्होंने विवादहीन क्षेत्र पर अधिकार पाकर जावली के राजा का सा स्वतन्त्र आचरण कर रहा था।

कल्याण का इलाका, जो पहले निजाम शाही के अधिकार में था और १६३६ की संधि के अनुसार बीजापुर को मिल गया था, इस समय दो भागों में विभाजित था। उत्तरी भाग जो भीमरी या भिवंडी से लेकर नागोतन या नागथाना तक विस्तृत था, एक सम्मानित मुसलमान अधिकारी के आधीन था जो कल्याण में रहता था। इसको बहुत विस्तृत अधिकार प्राप्त थे, जिनमें घाटों के ऊपरी और निचले दोनों स्थलों पर कई किले थे। परन्तु जैसा कि हम देख चुके हैं ये किले काफी तिरस्कृत, शक्तिहीन और अरक्षित थे। इलाके का दक्षिणी भाग एक अबीसीनियन* उमरा के हाथ में था जिसको इस शर्त के साथ प्रबंध सौंपा गया था कि वह व्यापार की रक्षा या सुविधा के लिये एक जलपोत का खर्च सभालता रहे तथा धार्मिक यात्रियों की लाल सागर की यात्रा का प्रबन्ध करता रहे। इसका अधिकार पुश्तैनी नहीं था वरन् यह पद सेना के योग्य अबीसीनियन अधिकारियों को दिया जाता था। उस प्रकार का चुना हुआ प्रधान वजीर के पद का कार्य करता समझा जाता था उसके अधीन जलपोतों में अधिकतर उसी के देश के मल्लाह कार्य करते थे, और इसी कारण कोंकण में उनकी एक छोटी-मोटी बस्ती ही आबाद हो चली थी। इनका समुद्री किनारे का भन्डार गृह डांडा राजपुर के बन्दरगाह में था जिसके बीच में ही जंजीरा† नामक प्रायद्वीप है। दक्षिण की साधारण बोलचाल की भाषा में सिद्दी अफ्रीका के आदमियों को कहा जाता है। इनका प्रधान फतेह खाँ था जो अपने पूर्व के प्रधानों द्वारा व्यवहृत सिद्दी के नाम से अपने को पुकारता था।‡ अपने इसी नाम से यह लोग पश्चिमी विद्वानों द्वारा जाने जाते हैं, सिद्दी के अधिकार में कई किले थे जिनमें से ताला, गोशाला, और रायरी का प्रबन्ध मराठों ८ के हाथ में ही था।

उनके पड़ोसियों के बाद हमें पुनः शिवाजी की ओर पलटना चाहिये जो गुप्त परन्तु सक्रियता से अपने विस्तार का कार्य पूर्ण करने के लिये भारी संख्या में मावले लोगों की भर्ती कर रहे थे, और उनके ब्राह्मण कोंकण में जासूसी तथा शिवाजी के विचारों का प्रसार कर रहे थे।

इसी समय उन्हें समाचार मिला कि कल्याण के गवर्नर, या सूबेदार द्वारा एक भारी धन राशि बीजापुर दर्बार में भेजी गई है। शिवाजी ने ३० सवारों के साथ, जिसमें उसके विश्वासपात्र सैनिकों के अलावा भारी संख्या में मावले थे, जाते हुए उस खजाने को लूट लिया। लूटा गया धन अपने सवारों में बाँट दिया गया, तथा राजगढ़ तक इसकी सूचना शीघ्रता से भिजवा दी गयी। इस साहसी डाके ने शिवाजी की स्थिति को, उनके विचार को और उनके उद्देश्य को एकदम सामने लाकर खड़ा कर दिया,

---

* इसके पूर्वजों को कब यह प्रबन्ध मिला था अज्ञात है परन्तु हुबुस खान तथा उमर सिद्दी दो प्रमुख अबसीनियन सेनापति थे, जिन्हें निजामशाही मे प्रमुख सम्मान प्राप्त था। यह अम्बर खाँ के प्रमुख सहायक थे, उसी काल में सिद्दी बाबुल नामक एक अबीसीनियन अधिकारी रामेरी का प्रधान था। (बीजापुर पान्डुलिपि)

† अरबी के जंजीराह का बिगड़ा रूप।

‡ अरबी भाषा के सैय्यद से बने इस नाम को अबसीनियन लोग अपने सम्मान का द्योतक समझते थे कारण इसका अर्थ होता है, मालिक या प्रधान।

× खफीखाँ, उरमी तथा पर्शियन पान्डुलिपि से।

परन्तु डाके वाला समाचार गुप्त रूप से दर्बार में पहुंचा और जब तक वे इस पर कुछ विचार कर सकें, उन्होंने आश्चर्य से सुना कि शिवाजी ने, कंगूरी, तुंग, तिकोना, भूरप, कोड़ी, लोगहर, और राज मन्छी किले पर अपना अधिकार कर लिया है, कोंकण को तहस-नहस कर दिया है और तब पहली बार मावलियों की वीरता को जाना गया।

परन्तु इतनी ही जीत से उनके कार्यक्रम की सीमा नहीं थी उनके पास दादाजी कोंडदेव के प्रमुख शिष्यों में से एक ब्राह्मण, आबाजी सोनदेव को इन प्राप्त किलों और जिलों का सूबेदार नियुक्त किया गया। आबाजी सोनदेव अपनी बुद्धिमानी और दृढ़ता से शिवाजी के प्रमुख विश्वासपात्रों में हो गये थे, जिसका प्रमाण उन्होंने कल्यानी किले को प्राप्त करके दिया था। वहाँ अचानक ही कल्यानी पर आक्रमण से आश्चर्यान्वित सूबेदार को कैद करके उस क्षेत्र के सभी किलों पर अधिकार कर लिया था। इस समाचार को सुन अपने अनुमान से अधिक कार्य और वीरता देखकर उनको आबाजी सोनदेव की योग्यता का परिचय मिला था। इन किलों तथा जागीरों की लगान आदि की व्यवस्था का कोई ध्यान नहीं दिया गया, प्रचलित विधियों को कार्य रूप में करके जो जिसके अधिकार में था वहीं छोड़कर अपनी शक्ति को बढ़ाने का प्रयत्न होने लगा। इसका कारण था, सिद्दी लोगों का पड़ोस। शिवाजी ने तुरन्त दो किले बनवाने का आदेश दिया। एक तो गोशाला के निकट बीरवारी में और दूसरा रायरी के पास लिंगनाथ गढ़।

आबाजी सोनदेव द्वारा बन्दी मौलाना अहमद के साथ शिवाजी ने काफी सम्मानपूर्ण व्यवहार किया। शिवाजी द्वारा सम्मानपूर्ण मुक्ति पाकर वह बीजापुर दर्बार चला गया जहाँ उसके किलों के अपहरण और उसकी गिरफ्तारी का समाचार पहले ही पहुंच गया था। इस कारण यद्यपि उसे कुछ कहा नहीं गया परन्तु फिर भी उसे किसी अन्य विश्वासयोग्य कार्य लायक नहीं समझा गया।

मौलाना अहमद वाले कांड से बीजापुर दर्बार में आतंक छा गया, परन्तु मुहम्मद आदिलशाह को ऐसा लगा कि शिवाजी की इन लूट-पाटों और किलों के अपहरण में गुप्त रूप से शाहजी का भी हाथ है। इसी कारण उन्होंने शिवाजी के विस्तार को शक्ति से रोकने का विचार त्याग दिया, कारण शिवाजी की शक्ति खुद ही इतनी बढ़ी-चढ़ी थी, ऊपर से कर्नाटक में शाहजी लगभग पूरे प्रान्त के सूबेदार के समान रह रहे थे। रिन्दुल्लाह खाँ के लौट आने पर सारी सेना पर उन्हीं का एक मात्र प्रभुत्व था। छोटी सी जागीर से आरम्भ करके शाहजी ने पुनः १६३६ के पहले के समान सत्ता प्राप्त कर ली थी, और उसी क्षेत्र में सूबेदारों का सा अधिकार भोग रहे थे।

अतः आदिलशाह ने शाहजी को ही गिरफ्तार करने का विचार किया। उन्होंने बाजी घोरपड़े को, जो उस समय शाहजी के साथ ही उस क्षेत्र में कार्य कर रहे थे व्यक्तिगत आदेश भेज कर शाहजी को कैद करने को कहा। घोरपड़े ने इस आदेश को धोखे से संपन्न किया। उन्होंने शाहजी को अपने यहाँ भोजन करने तथा मनोरंजन आयोजन में शरीक होने के लिये बुलाया और कैद कर लिया।

जब शाहजी को दर्बार में लाया गया तब उन्हें अपने लड़के की इन हरकतों को बन्द करवाने का आदेश दिया गया (१६४९) तथा शिवाजी से पत्र व्यवहार की सुविधा प्रदान की गई।

शाहजी ने दृढ़तापूर्वक शिवाजी के कार्यों से अपने को असम्बन्ध बताया और घोषणा की कि वे शिवाजी के उतने ही बड़े विरोधी हैं जितना स्वयं सुल्तान। उन्होंने यह भी प्रस्ताव किया कि शिवाजी के विरुद्ध सेना भेज कर उसको दबाने का प्रयत्न किया जाय; परन्तु लाख कहने पर भी मुहम्मद आदिलशाह को शाहजी की निर्दोषिता पर विश्वास न आया और जब उसने शाहजी को

शिवाजी से वार्ता करने से इन्कार करते देखा तो पत्थर के बने एक अंधेरे कारागृह में जो तहखाने में बना हुआ था कैद कर देने का आदेश दिया। कैद का दरवाजा चुनवा दिया गया था। जिसमें थोड़ा सा छेद खुला छोड़ दिया गया था और कह दिया गया था कि यदि कुछ निश्चित समय के भीतर शिवाजी आत्मसमर्पण नहीं करेंगे तो दरवाजा एक दम बन्द कर दिया जायेगा।

जब शिवाजी ने शाहजी की कैद का समाचार सुना तो उन्होंने पिता पर आये खतरे और कष्ट को देख, आत्मसमर्पण करने का निश्चय किया, परन्तु जब कभी भी उन्होंने गम्भीरता पूर्वक आत्म समर्पण की सोची, उनकी धर्म पत्नी सई बाई ने इसका कड़ा विरोध किया। उसने समझाया कि सुरक्षा के लिये वर्तमान शक्ति को बनाये रखना अधिक श्रेष्ठ है बजाय इसके कि उन मुसलमान, अत्याचारी शासकों को आत्म समर्पण किया जाय * और अपने भविष्य को उनकी दया पर छोड़ दिया जाय।

शाहजी की मुक्ति के लिये शिवाजी ने जो रास्ता निकाला इसमें उनकी प्रारम्भिक नीतियाँ स्पष्ट हो उठती हैं। अभी तक उन्होंने एक भी मुगल जिला, किला या क्षेत्र नही लिया था, कारण वे मुगलों की शक्ति जानते थे, अपनी इसी स्थिति से उन्होंने फायदा उठाया और बीजापुर दर्वार के अन्याय पूर्ण कार्य को दिखाते हुए मुगलों के पास जा पहुंचे, और अपने पिता की मुक्ति की बात चलाई।

इसी अवसर पर उन्होंने शाहजहाँ से इस विषय में पत्र व्यवहार आरम्भ कर दिया। शिवाजी ने अपने प्रस्ताव में क्या कहा था इसका विवरण प्राप्त नहीं है, परन्तु सम्राट ने शाहजी के पुराने अपराधों को माफ करके उन्हें पुनः साम्राज्य की नौकरी में ले लिया तथा शिवाजी को ५००० घोड़ों का मन्सब प्रदान किया। †

शायद यह सम्राट का प्रभाव और मोरार जी पंत ‡ का प्रयत्न ही था जिसने शाहजी को इस दर्दनाक मौत से बचा लिया। शाहजी को उस अंधेरी काल कठोरी से जमानत ले कर निकाल लिया गया, परन्तु तब भी उन्हें बीजापुर में चार वर्ष की कैद मिली। ×

अपने पिता की स्थिति में तात्कालिक सुधार की सुविधा पर शिवाजी ने अपने मुगलों के साथ हुये, समझौते को टालना शुरू किया। इसके लिये उन्होंने जून्नार और अहमदनगर की देशमुखी पर अपना पुश्तैनी हक बता, हक मांगना शुरू किया। इसके लिए उरहोंने अपना एक प्रतिनीधि दिल्ली दर्वार भेजा। शिवाजी का विस्वास था कि उनकी देशमुखी मान ली जायेगी परन्तु दूत ने लौट कर इसके विपरीत उत्तर सुनाया। हाँ शाहजहाँ ने इनकार भी नहीं किया था। उन्होंने इस कार्य के लिये एवम् शिवाजी को दर्वार में बुलाया था, । (१६५०)

चार वर्षों तक शाहजी को बीजापुर में कैद रखा गया, परिणाम स्वरूप शिवाजी ने अपना विस्तार कम से कम बीजापुर क्षेत्र में, स्तगित कर दिया और आदिलशाह ने उनको दबाने के लिये सेना नहीं भेजा, कारण उनको भय था कि सेना भेजने पर शिवाजी, अपना क्षेत्र मुगलों को न सौंप दें। वह यह भी जानते थे कि उन्होंने जो वार्षिक बाँधी रकम मुगलों को ठीक से नहीं भेजी है उस

---

* मराटा पान्डुलिपि।

† शाहजहाँ का पत्र शिवाजी के नाम।

‡ कर्नल वाल्स के अनुसार यह सहायक रिनदुल्ला खाँ था, परन्तु विवरणों से पता चलता है कि वह सन् १६४३ में ही मर गया था। उसके वंश में भी एक आदमी ने इसी नाम को अपनाया था परन्तु उसने कभी भी इतना प्रभावपूर्ण पद नहीं पाया था।

× मराठा पान्डलिपि।

कारण मुगलों को वह लेने से रोक भी नहीं सकते। हाँ उन्होंने शिवाजी को व्यक्तिगत रूप से बन्दी बनाने का प्रयत्न अवश्य किया। इस गिरफ्तारी का उत्तरदायित्व बाजी श्यामराज नामक हिन्दू को सौंपा गया, शिवाजी उन दिनों अधिकतर महर नामक नगर में रहा करते थे। यह स्थान कोंकण में है, श्यामराज अपने दल के साथ, चन्दरराव मोरे के क्षेत्र से होता हुआ पहाड़ घाट तक आ पहुंचा और मौके की तलाश करने लगा परन्तु अचानक ही रात में उन पर घाट के नीचे ही, आक्रमण कर दिया गया। श्यामराज पर उल्टावार पड़ा, और उसे अपने दल बल के साथ पास के जंगल में भाग कर अपनी एवम् अपने दल की प्राण रक्षा करनी पड़ी, (१६५१–५२)

शाहजी ने बीजापुर से अपनी जागीर पर लौट जाने की आज्ञा के लिये बार-बार व्यर्थ प्रयत्न किया। आदिलशाह ने उनकी एक न सुनी परन्तु जब कर्नाटक क्षेत्र में पुन स्थिति काबू के बाहर होने लगी तो उन्होंने शाहजी की रिहाई की ओर विवश हो कर ध्यान देना पड़ा परन्तु इस
१६५३] रिहाई के पहले उनको नाना प्रकार के वादों और समझौतों से विवश कर दिया गया, कि वे घोरपड़े मुधोल से बदला लेने का इरादा छोड़ दे। पिछली बातों को भूल जाने के लिये उनकी जागीरों और पैतृक देश को अदल-बदल कर दूर-दूर कर दिया गया, कर्नाटक में घोरपड़े की जागीर के बदले में उनको कुरार स्थिति भूमि दे दी गई।

परन्तु इन समझौतों का कुछ परिणाम न निकला, कारण इनका पालन ही नहीं किया गया। शाहजी ने आजादी पाते ही शिवाजी को पत्र लिखा, "यदि तुम मेरे पुत्र हो तो बाजी घोरपड़े मुधोल को उसकी करनी की सजा दो।" उनके इस पत्र से शिवाजी को अपने विस्तार कार्य में और बल मिला, और समय पाते ही शिवाजी ने उनकी इच्छा को पूरा किया।

इधर जब शाहजी कर्नाटक पहुंचे और उसकी दशा को देखा तब पता लगा कि इसकी जो सूचना बीजापुर में मिली थी वह अतिशयोक्ति नहीं थी। प्रत्येक प्रमुख अधिकारी ने अपनी शक्ति को बढ़ा लिया था, और अपने पड़ोस के क्षेत्र को तहस-नहस कर दिया था। उनकी अपनी जागीर भी इसी प्रकार की घटनाओं का गढ़ बन गई थी। इसी प्रकार के एक आक्रामक, कनकगिरि के किलेदार को दबाने के लिये उन्होंने अपने पुत्र संभाजी को भेजा। अपने इस प्रयास में संभाजी मारे गये और उनकी सेना को हारना पड़ा। तब शाहजी ने स्वयम आक्रमण करके कनकगिरि पर अधिकार करके सम्भाजी की मृत्यु का पूरा बदला लिया—परन्तु सम्भाजी की मृत्यु से उन्हें भारी आघात लगा, और इसी के साथ-साथ उनके कर्नाटक के प्रमुख ब्राह्मण सहायक और उमर खाँ का राजनैतिक शिष्य, जो उनके साथ बहुत दिनों से था, की मृत्यु हो गई। भाग्यवश मृत नारुपंत हनुमंते के योग्य पुत्र रघुनाथ नारायण ने उनके ही समान योग्यता से उनका कार्य सम्भाल लिया। इनकी योग्यता को हम भविष्य में देखेंगे। कर्नाटक की हालत दिनों-दिन गम्भीर होती गई, जिसके कारण बीजापुर का ध्यान शिवाजी से हट कर इधर आ लगा, जो अपने पिता की मुक्ति के बाद ही पुनः अपने विस्तार की योजनाओं में लग गया था। उसने सम्पूर्ण घाटमाथा तथा बचे हुये कोंकण को जीतने की योजना बनाना शुरू किया।

शिवाजी ने जावली नरेश को अपनी तरफ मिला कर बीजापुर के खिलाफ खड़ा करना चाहा। उसने यद्यपि शिवाजी के दूतों का यथेष्ट सम्मान किया और शिवाजी से लड़ने का कुछ भी प्रयत्न नहीं किया परन्तु श्यामराज और उसके दल को अपने क्षेत्र से जो रास्ता चन्दरराव ने दिया था उस आधार पर उस पर आक्रमण करने का बहाना मिल गया। परन्तु जावली नरेश स्वयम इतना शक्तिशाली था कि सामने की लड़ाई में उसे हराना आसान नहीं था। उसके पास लगभग शिवाजी के इतने

ही पैदल सैनिक थे जो शिवाजी के मावलियों के समान ही थे, उसके दो लड़के, भाई और मंत्री हेमंत राव सब के सब युद्ध में कुशल थे। उसकी सेना में मतभेद कराना भी सम्भव नहीं था।

इन्हीं परिस्थितियों में शिवाजी को चन्दर राव को हराना था। उन्होंने अपनी सेना को तैयार रहने का आदेश दिया और दो आदमियों को चन्दरराव का भेद लेने को भेज दिया। इनमें एक रघुबलाल ब्राह्मण और दूसरा सम्भाजी कावजी नाम का मराठा था। चन्दरराव की लड़की से शिवाजी के विवाह की बातचीत के बहाने से भेद लेने के लिए रघुबलाल २५ मावलियों के साथ जावली पहुंचे। वहाँ उनका सम्मान पूर्वक स्वागत किया गया। वहाँ रघुबलाल ने चन्दरराव के साथ कई बार मुलाकात की। इन्हीं मुलाकातों के दौरान में रघुबलाल ने चन्दरराव को अपने अंगरक्षकों से अलग पाकर मार डालने की योजना बनाई,कावजी भी इससे सहमत हो गये,फलत: शिवाजी को चन्दरराव और उसके भाई की हत्या के इस प्रस्ताव से अवगत कराया गया। स्वीकृत मिल गई। इस योजना की सफलता के लिए शिवाजी ने अपनी सेना को घाट की ओर भेज स्वयं शिवाजी कहीं अन्यत्र जाने का बहाना कर राजगढ़ से पुरन्दर किले की ओर बढ़े। यहाँ से रातों-रात वे महाबलेश्वर जाकर कृष्णा नदी के उदगम पर वे अपनी सेना से जा मिले जो पास के जंगल में, उन्हीं का इन्तजार कर रही थी। जब रघुबलाल को इन तैयारियों की सूचना मिल गई तब उन्होंने राजा चन्दरराव और उनके भाई से एकान्त में बातचीत करने की प्रार्थना की। जैसे ही राजा चन्दरराव अपने भाई के साथ एकान्त में पहुंचे रघुबलाल ने उनके हृदय तक कटार घुसेड़ दी, और कावजी ने उनके भाई को मार डाला, उनके साथ के आदमी तैयार थे ही, तुरन्त ये भाग निकले और शिवाजी से जा मिले, जो पूर्व नियोजित ढंग से आगे बढ़ते आ रहे थे।

जब तक जावली वाले इन हत्याओं की तह तक पहुंचे, जावली पर चारों ओर से आक्रमण हो गया, परन्तु राजा के लड़के और हेंमन्तराव, बिना किसी आश्चर्य से प्रभावित दृढ़तापूर्वक सामना करने लगे परन्तु हेमन्तराव के गिरते ही, उनके पाँव उखड़ गये और दोनों लड़के पकड़े गये।

शिवाजी ने विलम्ब किये बिना राजा चन्दरराव द्वारा अधिकृत क्षेत्र पर अधिकार करना शुरू किया। यह कार्य अत्यन्त अल्प काल में हुआ। वासोटा के शक्तिशाली किले तथा शिवपुर खोरा के अधिकार के साथ-साथ जावली विजय की योजना पूरी हो गई। चन्दरराव के लड़कों को मौत के घाट उतार दिया गया कारण वे गुप्त रूप से बीजापुर सरकार के साथ पत्र व्यवहार कर रहे थे। इनको मौत की सजा कब दी गई इसका दिन और तारीख नहीं जानी जा सकी।

शिवाजी ने इसी विजय के बाद तुरन्त ही एक रात रुहेरा पर चढ़ गये। वहाँ का देशमुख बन्दल सचेत होते ही मैदान में डट गया और यद्यपि उसकी सेना भारी संख्या में मारी गई थी परन्तु वे वीरता के साथ मैदान में डटे रहे परन्तु देशमुख के मरते ही उनकी हिम्मत पस्त हो गई और हथियार डाल दिये गये। इनके सर्दार बाजी प्रभु देशपान्डे थे। शिवाजी ने इनसे मित्रता पूर्वक बातचीत किया और उनको उनकी पहले की स्थिति में नियुक्ति दे दी। वह शिवाजी के दूर के सम्बन्धियों में से थे, पीछे उन्होंने शिवाजी की नौकरी में रहना स्वीकार किया और वहाँ उनकी स्थिति सम्मानपूर्ण होती गई, उनको उचित सेना का नेतृत्व सौंपा गया।

(१६५६) नीरा और कोयना नदियों के किनारे तक अधिकार की सरलता और पहाड़ घाट आदि विजित क्षेत्रों की प्रतिरक्षा के लिये शिवाजी ने कृष्णा के उद्गम,स्थान के समीप एक ऊँची पहाड़ी पर एक किले के निर्माण की आज्ञा दी। इस किले के निर्माण का कारभार मोरो पिंगले नामक ब्राह्मण को सौंपा गया। यह पुरन्दर किले के प्रमुख के रूप में कुछ दिन कार्य कर चुका था। यह ब्राह्मण

अपने किशोर काल में अपने पिता के साथ शाहजी की नौकरी में था। कर्नाटक से लौट कर वह महाराष्ट्र में ही १६५३ से शिवाजी के अधीन कार्य करने लगा। अपने कार्य में लगन और सफलता से उसके ऊपर शिवाजी का ध्यान गया। अतः जब उसे इस नये किले का निर्माण कार्य मिला तो उसने इसे भी सफलतापूर्वक पूरा किया। जिससे उसका सम्मान और बढ़ गया। इस नये किले का नाम प्रतापगढ़ रक्खा गया।

शिवाजी के प्रमुख मन्त्रियों में श्यामराव नीलकंठ का नाम अधिक प्रसिद्ध था। शिवाजी ने उन्हें पेशवा की उपाधि प्रदान की और मराठों में प्रचलित रिवाज के अनुसार उन्हें उनके पद के सम्मान के अनुसार सेना की कमान दे दी गई।

इस प्रकार शिवाजी ने बीजापुर के प्रति अपने दबे हुये क्रोध को उतार कर अपने पिता के साथ हुए अत्याचार का बदला लिया परन्तु परिस्थितियों ने उसे इतने पर ही नहीं रोका वरन् और भी
साहसिक कार्य की प्रेरणा दी। उन्होंने अपनी नीति में परिवर्तन किया और अपने विस्तार
१६५७] के लिये उसने मुगली इलाकों को भी जीतने की योजना बनाना आरम्भ कर दिया।
उन्होंने क्यों अपनी नीति में यह परिवर्तन किया इसको जानने से पहले हमें पुनः मुगलों की ओर पलटना चाहिये।

१६३६ की शान्ति के बाद मुगलों ने दक्षिण में शान्तिपूर्वक अपनी विजित धरती का उपभोग किया। उन्होंने उस क्षेत्र को सुधारना और उन्नत करना शुरू कर दिया। लगान व्यवस्था में सुधार का कार्यक्रम चलाया। मुगलों की सैन्य शक्ति से भयभीत किलों में इतना साहस नहीं था कि वहाँ की शाँति भंग करने का प्रयास करता।

शाहजादा औरंगजेब को कन्धार के आक्रमण के बाद दूसरी बार दक्षिण का वायसराय बनाया गया। कई वर्षों तक उसने साधारण कार्यों के अलावा कोई सक्रिय कदम नहीं उठाये। लगान व्यवस्था
को नियत करने तथा व्यापारियों और यात्रियों की सुरक्षा आदि का प्रबन्ध करने में ही
१६५०] उसने अपना समय लगाया। उसने अपनी राजधानी मलिक उमर के नगर खिड़की को
बनाया जिसे पीछे उसने अपने नाम के अनुसार औरंगाबाद कहकर पुकारा।

औरंगजेब चाहे शासन कार्यों में, जितना कुशल रहा हो परन्तु युद्ध का उसे चस्का सा लग गया था और वह हमेशा लड़ाई की बातों में ही लगा रहता था। अतः सन् १६५५ में उसने गोल-
कुण्डा पर चढ़ाई करने का बहाना खोज ही लिया! उसको पूरा विश्वास था कि सम्राट
१६५५] उसकी राय का पूरा समर्थन करेंगे। इस समय गोलकुण्डा का वजीर मीर जुमला था
जिसे इतिहास के विद्यार्थी भलीभाँति जानते हैं। उसने अपना सम्माननीय पद अपनी योग्यता और धन के कारण प्राप्त किया था। उसके अतिरिक्त वह काफी प्रभावपूर्ण आदमी था और एशिया के मुस्लिम दरबारों में उसकी पहुंच थी। वास्तव में वह हीरे जवाहिरातों का व्यापारी था। इसी कारण शाहजादों और उनके देशों से उसका इतना परिचय था। उसकी योग्यता, उसकी पहुंच और उसके व्यवहार के कारण कुतुबशाह की वजीरी के पहले से ही मुगल दर्बार उससे परिचित था।

उसका लड़का मुहम्मद अमीन बहुत दुश्चरित्र और गैर जिम्मेदार किस्म का आदमी था। उसे अपने पिता की शक्ति का गर्व था। इसी गर्व के वशीभूत उसने एक बार अब्दुल्लाह कुतुबशाह का या उनकी सत्ता का अपमान कर दिया। अतः कुतुब शाह ने उसको उचित सजा देना चाहा, परन्तु मीर जुमला की इस कार्य में अनिच्छा से उनमें मतभेद हो गया और परिणामस्वरूप कुतुब शाह के विरुद्ध

मीरजुमला ने मुगल सम्राट के यहाँ शिकायत की जिसे औरंगजेब ने मीरजुमला का समर्थन करके सम्राट के पास भेजा। औरंगजेब द्वारा इस कार्य के बाद मीरजुमला और औरंगजेब में मित्रता हो गई जिससे औरंगजेब को ऊँचा उठने में काफी सहायता मिली।

शाहजहाँ ने, औरंगजेब के अनुसार ही, मीरजुमला का समर्थन किया और इसी आशय का एक शाही फर्मान कुतुब शाह के पास भेजा। कुतुब शाह को अपने घरेलू मामलों में मुगल सम्राट का टाँग अड़ाना अच्छा न लगा अतः फर्मान देखते ही उसने मुहम्मद अमीन को तुरंत जेल में डाल कर मीरजुमला की सारी संपत्ति जब्त करवा लिया। इसी घटना को औरंगजेब ने नमक मिर्च लगा कर शाहजहाँ को लिख भेजा जिससे वह अपने फर्मान के अपमान पर जल उठा और बदला लेने के लिये उसने औरंगजेब को अपनी सेना को तैयार रखने का आदेश दिया जिससे मीरजुमला की सहायता की जा सके।

जब कुतुब शाह ने अपने घरेलू मामले में मुगलों की इस मध्यस्थता के अधिकार को अस्वीकार कर दिया तब औरंगजेब ने निश्चित दिन तक मीरजुमला के प्रति किये गये फरमान के पालन का इन्तजार किया। परन्तु जब कुतुब शाह ने उस पर कुछ भी ध्यान न दिया तब उसने बिना किसी पूर्व घोषणा के अपने बड़े लड़के सुल्तान मुहम्मद को हैदराबाद से बंगाल जाने की घोषणा के साथ आवश्यतानुसार सैनिकों सहित आगे भेज दिया। कहा यह गया कि वह अपने चचा सुल्तान शुजा की लड़की से शादी करने बंगाल जा रहा है। औरंगजेब स्वयम् मुख्य सेना के साथ था।

अब्दुल्लाह कुतुब शाह को इस छल का पता तब तक न चला जब तक कि शाहजहाँ अपनी सेना लेकर एकदम पास न पहुच गया। वे घबड़ा गये और अपने पड़ोसियों से सहायता की अपील की परन्तु तब तक मुगल सेना कावू के बाहर हो चुकी थी, उसने तुरंत ही गढ़ पर आक्रमण किया और हैदराबाद का नगर लूट लिया गया। कुतुब की अपील पर सहायतार्थ आई सेना को बीच में ही रोक दिया गया और इस प्रकार कुतुबशाह को औरंगजेब के हाथों बर्बाद होना पड़ा।

शाहजहाँ ने क्रोध के उबाल में आकर कुतुब शाह पर सेना तो चढ़ा दिया परन्तु अपने क्रोध के ठंडा होने पर उन्हें इसमें अपनी ही गल्ती लगी। इस समय तक हैदराबाद लुट चुका था—कुतुबशाह बर्बाद हो चुका था अतः शाहजहाँ ने अपनी सख्ती को नये फरमानों को भेज कर कम करना चाहा। इन फरमानों के अनुसार औरंगजेब को कुतुबशाह से नरमी से पेश आने और समझौता करने की आज्ञा दी गई थी परन्तु, भला अपने हाथ में अये हुए को औरंगजेब इतनी आसानी से कब छोड़ने लगा। अतः उसने उन फर्मानों की उपेक्षा करके कुतुबशाह को अत्यायाचारपूर्वक बहुत ही असम्मानपूर्ण आत्मसमर्पण करने को विवश कर दिया।

कुतुबशाह ने शहजादे के जाते ही प्रथम तो मुहम्मद अमीन को मुक्त कर दिया था, मीरजुमला की जब्त संपत्ति भी वापस कर दिया, परन्तु इतने से ही औरंगजेब की इच्छा पूरी न हुई। उसने कुतुबशाह को लड़की की शादी सुल्तान मुहम्मद से करने पर विवश किया और सभी बकाया लगान की मांग की। यह लगान औरंगजेब ने ही एक करोड़ रुपया वार्षिक लगाया था। शाहजहाँ ने इस पर अपनी सहमति देते समय २० लाख घटा कर अस्सी लाख सालाना कर दिया था।

मीरजुमला और औरंगजेब की योजना कुछ इस बात पर निर्भर करती थी कि इस प्रकार के आक्रमण हों। वे इस बात पर सहमत थे कि कुतुबशाह की इस पराजय से बीजापुर की विजय का मार्ग सरल हुआ है। वे सोचते थे कि धीरे धीरे इस प्रकार वे सारे उत्तरीय भाग पर अधिकार करने में सफल हो जायेंगे। दक्षिण में विजय की यह इच्छा औरंगजेब की धर्मान्धिता के कारण अधिक बलवती

हो उठी । उसे उस इलाके में इस्लाम के प्रचार की भारी आशा थी, कारण वहाँ के निवासी अधिकतर मूर्ख थे, उससे समृद्धि प्राप्त करने की लालच से नहीं । मीरजुमला को शाही दर्बार जाने का आमंत्रण मिला । जहाँ बाद में उसे वजीर का पद प्रदान किया गया । अपनी उपस्थिति से वह अपने व औरंगजेब द्वारा बनायी दक्षिण विजय की योजना की कड़ियाँ बैठाने की कोशिश में लगा रहा, कारण औरंगजेब की और अपने भविष्य की आशा उसकी इसी सफलवा से सम्बन्धित थी । कम से कम औरंगजेब और मीरजुमला तो यही समझते थे । इनको भाग्यवश इसका अवसर भी मिल गया । गोलकुंडा की घटना के कुछ दिन बाद ही बीजापुर का सुल्तान मुहम्मद आदिलशाह अपनी लंबी बीमारी नवम्बर १६५६] के दौरान में मर गया । इस मृत्यु से उत्पन्न परिस्थिति में मीरजुमला और औरंगजेब के सम्मिलित प्रयत्न से सम्राट ने दक्षिण विजय की योजना को मान्यता दे दी ।

बीजापुर का मृत बादशाह यद्यपि लगान को नियम से न देता था, परन्तु शाहजहाँ के दर्बार में उसने अपनी स्थिति अच्छी वना ली थी । उसके पक्ष में शाहजहाँ का प्रिय पुत्र दारा शाहजहाँ को शान्त किये रहता चूँकि इस समय सल्तनत के लिये लड़कों में आन्तरिक द्वेष था अतः दारा जिस पक्ष का समर्थन करता, औरंगजेब उसी से जलने लगता । परिणामस्वरूप जलन का यह उफान बीजापुर के ऊपर उबल पड़ा जो उसने दारा के प्रति व्यक्तिगत दुश्मनी के आधार पर किया था ।

मुहम्मद आदिल शाह के बाद उसका लड़का सुल्तान अली आदिलशाह द्वितीय अपनी उन्नीस वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठा । इस समय भी बीजापुर की स्थिति संतोषजनक थी, उसका खजाना भरा हुआ था । खेती के लिये उपजाऊ क्षेत्र उसके पास थे और अगर ध्यान दिया गया होता तो एक शक्तिशाली सेना भी उसके पास थी । यद्यपि उसकी सेना का भारी भाग कर्नाटक के विस्फोटक और क्रान्तिकारी जमींदारों को दबाने का प्रयत्न कर रही थी ।

सुल्तान अली आदिलशाह के गद्दी पर बैठने से पहले मुगल सम्राट से न तो राय ली गई और न उनको सूचना दी गई जिससे वह मुहम्मद आदिलशाह के बाद उसके लड़के को उनके स्थान पर मान्यता देता । अतः मुगलों ने सुल्तान अली आदिलशाह द्वितीय को यह कह कर मान्यता देने से इन्कार कर दिया कि वह मुहम्मद आदिलशाह का पुत्र नहीं है और मुगल सम्राट किसी दूसरे शहजादे को बीजापुर का उत्तराधिकारी नामांकित करेंगे । कुछ इसी प्रकार का विवरण उन दिनों भारत में आये पश्चिमी भ्रमणकारियों के विवरणों में मिलता है, परन्तु ऐसा लगवा है जैसे उन्होंने यह विवरण मुगलों द्वारा प्रचारित सामग्री से दिया है—कारण किसी भी बीजापुर पान्डुलिपि या मराठा पान्डुलिपि में इस प्रकार का कोई विवरण नहीं मिलता, परन्तु इतना तो सत्य है कि इस युद्ध से मुगलों को नीतिहीनता तथा वादा खिलाफी का ही परिचय मिलता है जो एशिया की अधिकतर सरकारों के लिये साधारण बात थी ।

कुछ कारणवश, सम्राट शाहजहाँ ने मीरजुमला की सिपहसालारी में बीजापुर के खिलाफ सेना भेजी । औरंगजेब को मीरजुमला का अधीनस्थ अधिकारी बनाया गया, औरंगजेब और मीरजुमला की साँठ-गाँठ पहले से ही थी, अतः यह समझना आसान है कि मीरजुमला नाम मात्र का प्रधान था जबकि औरंगजेब की शक्ति वास्तविक थी ।

मुगलों के इस असंभावित आगमन से बीजापुर में खलबली मच गई और तेजी से युद्ध की तैयारियाँ होने लगी । लाख प्रयत्न करने पर भी मुगलों का सामना करने योग्य सेना इकट्ठी न हो सकी तब उन्होंने सीमा पर के किलों में शक्तिशाली सेनाओं को इकट्ठा करके उनकी सहायता के लिये मुहम्मद खां को सवार सेना के साथ तैयार रखा । खान मुहम्मद बीजापुर का प्रधान मंत्री और प्रमुख सेना-

पति था । उसकी सहायता के लिये अन्य मुख्य मुसलमान सेना प्रमुखों के साथ-साथ सरजे राव धाटगे बाजी घोरपडे, निम्बलकर तथा अन्य मराठा सर्दार भी अपनी, सेनाओं के साथ आये ।

औरंगजेब ने मार्च १६५७ में आगे बढ़ना आरम्भ किया, और पूर्वी रास्ते से बीजापुर की सीमा की ओर बढ़ा, उसने पहुंचते ही अविलंब कल्यान का दुर्ग जीत लिया और बन्दर का किला अपने शक्तिशाली सैनिकों के कारण एक दिन की लड़ाई के बाद मुगलों के हाथ लगा । इसी के बारे में कहा जाता है कि एक बड़ी तोप के घटनावश, अनजाने में फट पड़ने के कारण ही दुर्ग पर मुगलों का अधिकार हो गया । इस अप्रत्याशित विजय से औरंगजेब और उत्साहित हो उठा, * और प्रत्येक संभव उपायों से उसने अपनी प्रगति बनाये रक्खी । गुलबर्गा पर आक्रमण करता, बिना अपना बढ़ाव रोके औरंगजेब आगे बढ़ता रहा । इसी समय मुहम्मद खाँ के अधीन, किलों की सहायक सेना के आक्रमण से औरंगजेब को वह अनुभव हुआ जो कभी नहीं हुआ था । उसने अन्त में खान मुहम्मद को अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया जिसमें उसे सफलता मिली । अब उसे बीजापुर के प्रधान मन्त्री और सेनापति, खान मुहम्मद का समर्थन प्राप्त हो गया, जिसने मुगलों के हित के लिए प्रत्येक उस उपाय की, हमले की उपेक्षा की जिससे मुगलों को आगे बढ़ने से रोका जा सकता था ।†

अधिकारियों में से कुछ ने प्रयास भर मुगलों को रोका, परन्तु सहायता के अभाव में उनको विवश हो मैदान छोड़ देना पड़ा । अतः मुगलों के लिये बीजापुर जाने की सड़क खुल गई । इस प्रकार राजधानी में जल-व्यवस्था तथा जानवरों के चारे आदि का प्रबन्ध होने से पूर्व मुगलों ने घेरा डाल दिया ।

किले पर प्रबल आक्रमण आरम्भ हो गया । आक्रमण की प्रबलता से घबरा कर सुल्तान ने सन्धि की प्रार्थना की । सन्धि में उन्होंने एक करोड़ रुपये नकद देने के अलावा, वह सब कुछ देने को तैयार हो गये, जो उनसे मांगा जाता अर्थात् वे किसी भी प्रकार सन्धि करने को आतुर हो उठे, परन्तु औरंगजेब मौके पर इस प्रकार की सन्धियाँ करना लाभकर नहीं समझता था । उसने इस सन्धि के प्रति अनिच्छा ही दिखाई परन्तु इसी समय उसे सम्राट शाहजहाँ की घातक बीमारी की सूचना मिली जो उसकी बहन रोशनआरा ने उसको गुप्त रूप से भेजा था । इस समाचार ने उसको आक्रमण रोक कर राजधानी लौटने को विवश कर दिया ।

सम्राट शाहजहाँ के चार लड़के थे । दारा उस समय शाहजहाँ के साथ ही आगरा रहता था । सुल्तान शुजा बंगाल का सूबेदार था, औरंगजेब को हम देख ही चुके हैं, तथा सुल्तान मुराद गुजरात का सूबेदार था । चूँकि सब के सब सम्राट होने को इच्छुक थे अतः सब ने शाहजहाँ की बीमारी सुनते ही अलग-अलग सेना इकट्ठा करना शुरू कर दिया । दारा शिकोह पिता की बीमारी में साम्राज्य का सारा कार्य देखता था । साम्राज्य की सारी शक्तियाँ पहले से ही उसके आदेश पर कार्य करती थीं उसी की आज्ञा से गोलकुण्डा का आक्रमण खत्म कर देना पड़ा था, और मीरजुमला को प्रधान सेनापति बना कर बीजापुर के मोर्चे पर भेजने में भी उसी की राय से हुआ था, वह अपने सभी भाइयों से उनकी साम्राज्य लिप्सा के कारण जलता था परन्तु औरंगजेब से वह भयभीत था, इसका कारण उसके मजहबी विचार, महत्वाकांक्षी चरित्र और लगन की अधिकता तथा उसकी धर्मान्धता को कई

---

* औरंगजेब का शिवाजी के नाम पत्र, में उसने लिखा है कि उसने बंदर के दुर्गदेश किले को जीत लिया है । जिसको जीतने की उसने साल भर में भी आशा न की थी वह एक दिन में जीत ली गई । (औरंगजेब का वास्तविक पत्र)

† बीजापुर पान्डुलिपि ।

शक्तिशाली मुगल सेनापतियों और ऊँचे मुसलमान अधिकारियों का समनर्थ प्राप्त था, परन्तु दारा इन विचारों का नहीं था । उसने अकबर के समय की नीति को अपनाया—जो उस समय के अनुरूप नहीं थी, और मुसलमान अधिकारियों को पसन्द नहीं थी । औरंगजेब ने इससे फायदा उठाया । उसने चारों तरफ अपने क़ुरान प्रेम, इस्लाम का प्रचार, और अपनी स्वार्थहीनता का प्रचार किया है । दारा ने सर्व प्रथम दक्षिण के सभी प्रमुख अधिकारियों को दक्षिण से वापस आने का आदेश भेजा । इससे उसकी बीजापुर के प्रति सद्भावना के साथ-साथ औरंगजेब के प्रति द्वेष का भी आभास मिला । मीर जुमला की सलाह पर औरंगजेब ने इस आदेश का पालन करने के दिखावे के साथ हृदय में साम्राज्य-लिप्सा की भावना लिये राजधानी की ओर बढ़ा । बीजापुर से घेरा हटाने के पहले उसने सुल्तान के द्वारा कहे हुये रुपयों को ले करके अपनी सुविधानुसार एक सन्धि प्रस्ताव को स्वीकृत किया । इससे उसके हाथ में नकद पूंजी आ गई, इसके बाद वह नर्बदा की ओर बढ़ चला । चूंकि मीर जुमला का परिवार आगरा में था जहाँ दारा का पूर्ण आधिपत्य था । अतः दिखाने के लिये औरंगजेब ने उसे दौलताबाद के किले में कैद कर दिया । यहीं पर स्वयम् औरंगजेब का भी परिवार था, जिसमें उसके छोटे बच्चे और बेगमें थीं । उसका दूसरा लड़का शाहजादा मुअज्जम उसकी अनुपस्थिति में औरंगाबाद का सूबेदार नियुक्त हुआ । औरंगजेब ने सर्वप्रथम अपने भाई मुराद बख्स को धोखा दिया । उसने मुराद बख्स को भरोसा दिलाया कि वह स्वयम् सिंहासन नहीं चाहता । उसके धार्मिक विचारों का सिंहासन और साम्राज्य-लिप्सा के लोभ से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । उसने मुराद को यह भी विश्वास दिलाया कि दारा से प्राण-रक्षा करने के लिये ही उसे हथियार उठाना पड़ा था । मुराद को सिंहासन दिलाने का आश्वासन देकर औरंगजेब ने उसे अपनी ओर मिला लिया । उनकी सम्मिलित सेनाओं ने शाही सेनाओं को दो बार हराया । दारा भाग निकला उसने फिर एक सेना इकत्रित की और लड़ाई शुरू की और वह फिर हार गया । अन्त में वह औरंगजेब के हाथों कैद होकर मारा गया, शाहजहाँ आशा के विपरीत स्वस्थ हो गया, उसने अपने पुत्रों को राजधानी की ओर बढ़ते सुना तो लगातार कई आदेश भेज कर उन्हें वापस अपने इलाकों में लौट जाने को कहा परन्तु इन आदेशों की उन्होंने कुछ भी परवाह न की; कारण वे समझते थे कि शाहजहां मर चुका है और ये आदेश दारा की चालबाजी के अलावा कुछ नहीं है । जैसे ही औरंगजेब ने अपने पिता को अपने अधिकार में किया, मुराद
१६५८] बख्स को भी कैद कर लिया, और उसकी सेना को अपनी ओर मिला लिया । शाहजहां को कैद करके वह सन् १६५८ में स्वयम् सिंहासन पर बैठा । मीर जुमला को दक्षिण से बुला कर उसने शुजा को परास्त करके आराकान भाग जाने को विवश किया जहां उसकी हत्या कर दी गई और मुगल सिंहासन पर अकेला औरंगजेब रह गया । *

---

* औरंगजेब के सिंहासन पाने की सही तारीख का पता नहीं लगता । कुछ लोगों का ख्याल है कि उसने १६५९ मे सिंहासन पर कब्जा किया था । खफी खाँ द्वारा साधारणतः एक-दो साल इधर-उधर लिखा मिलता है । ऐसा भी हो सकता है कि दारा की पराजय के बाद से ही, उसको सिंहासनारूढ़ मान लिया गया हो ।

छठाँ अध्याय

अनेक किलों पर शिवाजी का अधिकार

[१६५७ से १६६२]

शिवाजी का औरंगजेब के साथ पत्र व्यवहार—जुन्नार और अहमद नगर को लूटने के कारण मुगलों से दुश्मनी—शिवाजी की सवार सेना में वृद्धि—औरंगजेब और शिवाजी की राजनैतिक चालें—सेना में पठानों की नियुक्ति—बीजापुर की डांवाडोल स्थिति—खान मुहम्मद की नृशंसता पूर्ण हत्या—शामरजी पन्त की सिद्दी से पराजय—मोरो त्रिम्मुल का पेशवा बनाया जाना—शिवाजी के विरुद्ध तैय्यारी—शिवाजी द्वारा अफ़जल खाँ की हत्या—शिवाजी द्वारा पन्हाला पर अधिकार—रुस्तम जुम्मन की पराजय—बीजापुर के पास तक शिवाजी की सेना का तहस-नहस करना—बीजापुर से लगान वसूल करना—शिवाजी के खिलाफ सिद्दी जौहर द्वारा कूच—पन्हाला के अन्दर शिवाजी का घिरना—किले से कुशलता पूर्वक निकल जाना—उनकी पिछली सेनाका वीरतापूर्ण कार्य—बाजी प्रभु की वीरोचित मौत—शिवाजी द्वारा विजित अपने क्षेत्र पर पुनः अधिकार—पन्हाला पर पुनः अधिकार—शिवाजी द्वारा राजापुर पर अधिकार—सिगारपुर परा शिवाजी की विजय—डांडापुर के क्षेत्र पर अधिकार—घोरपड़े की हत्या—वारी की विजय—शाहजी शिवाजी का मिलाप—शिवाजी का राज्य और उनकी सेना—मुगलों का विवरण।

जिस समय औरंगजेब बीजापुर पर आक्रमण की तैयारी में व्यस्त था, शिवाजी ने उसके साथ पत्र व्यवहार शुरू किया, जिसमें उन्होंने स्वयम् को शाही आदमी मान कर बीजापुर की जीती हुई जमीन को अपने पास ही रहने देने की स्वीकृति प्राप्त कर लिया। औरंगजेब ने शिवाजी के विजित क्षेत्र पर उनके अधिकार का समर्थन किया। औरंगजेब को सम्राट का आदेश बीजापुर को जीतने का था। उनके इस कार्य में सहायता देने का भाव दर्शाते हुए शिवाजी ने औरंगजेब से डाबुल पर आक्रमण करने की योजना पर सहमति चाहीए औरंगजेब ने डाबुल तथा उसकी संलग्न समुद्री किनारे की जमीन पर शिवाजी के आक्रमण पर अपनी स्वीकृत प्रदान की।*

औरंगजेब शिवाजी से मिलने को बहुत ही उत्सुक था। वह उन्हें यह समझाना चाहता था कि उन दोनों के मिलाप से क्या-क्या फायदे होंगे † और उससे स्वयम् शिवाजी का कितना हित होगा। परन्तु शिवाजी को इस समय इतना अवकाश कहां था? वे पत्र लिख-लिखकर बार बार अपने को छोटा और महत्वहीन बता कर तथा औरंगजेब की विशालता की बातें कर मिलने की बात टाल देते और अपनी सेना से दूर न हटते। कारण कि यही उपयुक्त अवसर था जब लूट पाट कर अपनी सवार सेना की संख्या बढ़ा देते जिसकी संख्या उनकी सेना से बहुत कम थी। इसके दो कारण थे: प्रथम तो वह अपने देशवासियों का विश्वास चाहते थे दूसरे उनके पास इतने रुपये नहीं थे कि सिलेदार सैनिकों के स्तर पर सवारों की सेना सम्भाली जा सके।

---

* औरंगजेब का वास्तविक पत्र शिवाजी के नाम (मराठा पान्डुलिपि)

† औरंगजेब का पत्र शिवाजी के नाम।

शिवाजी ने मुगल क्षेत्र में पहला धावा मई १६५७ में जुन्नार पर मारा। वहां से तीन लाख पगोड़ा, २०० घोड़े तथा अन्य बहुमूल्य वस्त्र इत्यादि की लूट की। लूट के इस सामान को वह पूना लेकर आये जहां से एक दूसरा दल लेकर राजगढ़ चला गया। यह दल इसी कार्य के लिये नियुक्त था। स्वयम् शिवाजी टेढ़े-मेढ़े रास्तों से अहमदनगर की ओर बढ़े। उन्होंने सोचा था कि इस प्रकार वे पूर्ण सफल हो सकेंगे, परन्तु अपने इस प्रयास में वे आंशिक रूप से ही सफल रहे। जब उनके सैनिक लूट-पाट में व्यस्त थे उन पर आक्रमण किया गया, परन्तु फिर भी वे अपने साथ ७०० घोड़े और चार हाथी लेकर निकल जाने में सफल हो गये। उनके इस अभियान में काफी सैनिक मारे गये। इसका कारण यह था कि आक्रमण की सूचना मिलते ही किले से सेना की एक टुकड़ी को नगर की रक्षा के लिये भेज दिया गया था, जिससे शिवाजी के सैनिकों की मुठभेड़ हो गई।

पूना लौटते ही शिवाजी ने अपनी सवार सेना की उन्नति पर ध्यान दिया। चारों तरफ से घोड़े की खरीद होने लगी। घोड़े खरीद कर अपने आदमियों को सवारी के लिये दिये गये। इसी समय उन्होंने मराठा सिलेदार भी नियुक्त किये। अभी तक मन्कोजी दामाड़े नामक वृद्ध मराठा सर्दार की उपाधि से शिवाजी की छोटी सी सवार सेना की निगरानी कई वर्षों से कर रहा था। उसके मरने पर उन्होंने नेताजी पालकर नामक बहादुर और प्रभावपूर्ण आदमी को इस स्थान पर नियुक्त किया। नेताजी पालकर का विभिन्न भागों के सिलेदारों पर प्रभाव था, परन्तु सब कुछ मिला कर यह एक क्रूर और सिद्धान्तहीन आदमी था।

मुगलों की बीजापुर में प्राप्त आश्चर्यजनक सफलता और बीजापुर की दयनीय स्थिति ने शिवाजी को सावधान कर दिया। उन्होंने अपनी सेना में विस्तार करके आत्मरक्षा की पूरी तैयारी आरम्भ कर दिया। परन्तु प्रकट रूप से उन्होंने औरंगजेब से अत्यधिक दीन और अशक्तों सी भाषा में अपने जुन्नार कांड के लिये क्षमा याचना की और उसे बार-बार विश्वास दिलाया कि भविष्य में वे कभी ऐसी गल्ती नहीं करेंगे और मुगलों के साथ की पुरानी मैत्री बनाये रखेंगे। अपनी इन्हीं भावनाओं के सही निरूपण के लिये उन्होंने रघुनाथ पन्त को अपने वकील के रूप में औरंगजेब के पास भेजा।

परन्तु आगरा की सूचना से, बीजापुर की संधि से तथा औरंगजेब के उत्तर लौट जाने से सारा चित्र एकदम परिवर्तित हो गया। शिवाजी ने अपना दूसरा राजदूत उसके पास भेजा। कृष्णाजी भाष्कर ने रघुनाथ पंत की बातों को ध्यान में रख, पिछली अप्रिय घटनाओं पर क्षमा-प्रार्थना की बात कर, शिवाजी की सवार सेना का उल्लेख किया। उन्होंने औरंगजेब को उस स्थिति में सहायता का आवाशन भी दिया। इसके अतिरिक्त उसकी अनुपस्थिति में साम्राज्य के क्षेत्र की रक्षा का भी आश्वासन दिया। अपनी इन तमाम सेवाओं के एवज में उन्होंने शिवाजी की पुरानी देशमुखी के पुश्तैनी क्षेत्र की मांग की, जो मुगलों के क्षेत्र में आ पड़े थे। दूत को यह भी निर्देश दिया गया था कि वह कोंकण में आदिल खाँ के शासन की दुर्व्यवस्थाओं का वर्णन करके वह सम्पूर्ण क्षेत्र शिवाजी के शासन के लिये माँग ले।

इस समय औरंगजेब ऐसी स्थिति में न था कि शिवाजी की इन बढ़ी-चढ़ी माँगों पर ध्यान देता परन्तु इतना वह अवश्य जानता था कि यदि शिवाजी और बीजापुर आपस में उलझे रहेंगे तो मुगल क्षेत्र अवश्य ही सुरक्षित रहेगा। अतः उसने शिवाजी को, रघुनाथ और कृष्णजी की बातों को प्रायः स्वीकार करते हुए तथा उसके कोंकण पर आक्रमण का समर्थन करते हुए और उसके जुन्नार कांड को क्षमा करते हुए, एक मित्रतापूर्ण पत्र लिखा। इसमें उसने साफ-साफ बातें न कर शिवाजी को उनके

पैतृक अधिकारों के निर्णय के लिये सोना पन्डित (आपाजी सोनदेव) को भेजने को कहा। उसने यह भी कहा कि यदि आपाजी सोनदेव के साथ उसकी वार्ता सफल हो जायगी तब शिवाजी को ५०० घोड़ों की सेना को उसकी सेना में भेजना होगा और बाकी सेना से मुगल क्षेत्र में प्रशासन बनाये रखना होगा। *

(१६५८) इन वार्ताओं से किसी भी दल को घाटा या फायदा हुआ ऐसा नहीं लगता। कारण इसके बाद उभय पक्ष ने वार्ता में कोई रुचि नहीं ली। शिवाजी ने कोंकण पर आक्रमण करने के लिये अपनी सेना तैयार किया और कई उपेक्षित किनारों के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। उन्होंने इन किलों के पास नावों के बेड़े को जुटाना शुरू किया, इससे उनको विदेशी और मुस्लिम जलपोतों को लूटने में सहायता मिलती थी। इसी समय उनको बीजापुर सरकार के तिरस्कृत ७०० पठान सैनिकों की सहायता भी मिल गई जिन्हें उन्होंने अपनी सेना में नियुक्त कर लिया। आरम्भ में शिवाजी ने इन मुसलमानों को अपनी सेना में नियुक्त करने में हिचक जाहिर की परन्तु उनके नाना जाधव राव के यहाँ के अनुभवी और न्यायिक नायक गोमाजी के योग्यतापूर्ण तर्कों ने उनकी हिचक दूर कर दी। नायक गोमाजी ने उनकी माता की, रक्षा कई विपत्तियों में की थी अतः शिवाजी ने इस अवसर पर प्रथम बार अपनी सेना में मुसलमानों की नियुक्ति की। अल्पकाल में ही नायक गोमाजी की सलाह का महत्व स्पष्ट हो गया और इन पठानों के कारण ही मराठों को कितने ही स्थानों पर विजय मिली। ७०० पठानों की इस सेना पर सेनापति एक ब्राह्मण रघुबलाल को नियुक्त किया गया, जिसने चन्दर राव की हत्या की थी।

बीजापुर सरकार की हालत उसके प्रमुख सर्दारों की आपसी शत्रुता के कारण डांवाडोल थी। नवयुवक सुल्तान इन सर्दारों पर नियन्त्रण करने में असमर्थ था। जब औरंगजेब बीजापुर से हट गया उस समय बीजापुर का सर्वप्रथम कार्य शिवाजी के खिलाफ सेना भेजना चाहिये था परन्तु ऐसा न कर वहाँ के सर्दार आपस में ही एक-दूसरे को कुचलने और बर्बाद करने का प्रयास कर रहे थे। खान मुहम्मद जिसने सुल्तान के प्रति विश्वासघात किया था, बुरी मौत मारा गया। अपनी करनी का फल उसे उचित ही मिला पर जिस ढंग से मिला वह सल्तनत की अव्यवस्था का प्रमाण था। बजाय उसको दर्बार में लाने और सजा देने के उसे सम्मानपूर्ण ढंग से और प्राण-रक्षा के पूर्ण आस्वासन के साथ दर्बार में आने का निमंत्रण दिया गया। दर्बार में आते समय नगर द्वार पर उसके ऊपर कुछ लोगों ने हमला किया और उसीकी सवारी में प्रत्युक्त हाथी से कुचलवा कर उसकी नृशंस हत्या कर दी गई। खान मुहम्मद वास्तव में अबीसीनियन दास था जिसे इब्राहीम आदिल शाह ने अपने बेटे मुहम्मद को दिया था। यही कालांतर में मुहम्मद आदिल शाह का प्रधान मंत्री बना। इसी कारण नवयुवक सुल्तान ने उसकी जागीर और संपत्ति को जब्त नहीं किया, वरन् उसके लड़के खवास खाँ को सौंप दिया। परन्तु अपने पिता की दर्दनाक मौत से उसके दिल में क्रोध और दुःख की आग सुलग रही थी। उसके दिल ने कभी सुल्तान का विश्वास नहीं किया सिर्फ आवश्यकतावश ही दोनों अपनी मैत्री को बनाये हुए थे।

शिवाजी ने कोंकण विजय के लिये पेशवा शामरावजी पंत के साथ भारी सेना भेज दिया। सिद्दी के क्षेत्रपर अधिकार के इस कार्य के लिये पेशवा पंत पूर्णतः अयोग्य था। फतेह खां इस आक्रमण के लिये तैयार था। उसने आक्रमण का डट कर सामना किया। इस युद्ध में पेशवा की भारी पराजय हुई और भारी संख्या में उनके सैनिक मारे गये।

---

* औरंगजेब का वास्तविक पत्र।

शिवाजी के अनुभव में यह प्रथम बड़ी हार थी। उससे उन्हें काफी निराशा भी हुई परन्तु इस विपत्ति से हुए घाटे को पूरा करने का प्रयत्न किया गया। शिवाजी ने हारी हुई इस फौज को सहायता के लिये ताजी कुमुक भेजी। इस बार सेनापति के रूप में रघुनाथपंत को भेजा गया। शामराव नीलकंठ को वापस बुला लिया गया और अपमानपूर्वक पेशवा पद से हटा दिया गया। रिक्त पेशवा पद पर मोरो त्रिम्भुल पिंगले को नियुक्त किया गया। जब शामराव की पराजय हुई तो बारे के सामन्तों ने शिवाजी की भारी तैयारी का हाल अपनी स्वयं की शक्ति को जानते हुए उन्होंने शिवाजी से संधि वार्ता के लिये अपना वकील भेजा। शिवाजी ने आसानी से संधि को स्वीकार कर लिया। संधि के अनुसार यह निश्चय हुआ कि सामंन्तो के क्षेत्र की आधी लगान शिवाजी लेंगे और आधी लगान सामंतों को मिलेगी। इस बंटवारे में देशमुखी से प्राप्र लगान को नहीं सामिल किया गया था। यह भी शर्त थी कि शिवाजी आधी लगान अपने प्रतिनिधियों से वसूल करवायेंगे। देशमुखी के अधिकार में छूट की सुविधा के एवज में यह निश्चय किया गया कि ३००० पैंदल सेना सामन्तों के किलों में रहेंगी जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर अल्प सूचना पर ही शिवाजी की सहायता को जाना पड़ेगा, परन्तु कुछ समय बाद ही उन्होंने यह संधि तोड़ दी, यद्यपि उन्होंने उसके खिलाफ शिवाजी का कुछ विरोध नहीं किया परन्तु उन्होंने संधि के नियमों के पालन में कोई रुचि नहीं दिखाई, औंर कुछ ही दिनों पश्चात् उन्होंने पुनः बीजापुर से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया।

सिद्दी रघुनाथ पंत के साथ प्रबलता के साथ अड़ा रहा। वर्षाऋतु के आ जाने के कारण दोनों सेनाओं की लड़ाई स्थगित कर देनी पड़ी। वर्षा के इन्हीं दिनों में पेशवा और नेताजी पालकर के सम्मिलित नेतृत्व में एक भारी सेना तैय्यार हुई परन्तु वर्षा की अनवरत क्षति के कारण वे सिद्दी को न डिगा सके। उस प्रथम के अन्य प्रयत्न होते परन्तु इसी समय शिवाजी के ऊपर दूसरा शक्तिशाली दुश्मन आ चढ़ा जिसनें उनकी सारी शक्ति उसी ओर केन्द्रित हो गई।

अचानक ही बीजापुर सरकार को उतनी समझ आ गई कि शिवाजी को दबाने की ओर ध्यान देना आवश्यक है। ५००० सवार और ७००० पैंदल सैनिकों की भारी सेना के साथ तोपखाना और लड़ाई के कार्य में आने वाले अन्य सहायक उपकरणों के साथ भारी मात्रा में अगिन बाण, भंवर कड़ियों जो ऊटों पर लदी हुई थी तथा रसद सामग्री की पूरी तैय्यारी करके अफजल खाँ को इसका सेनापति बना कर शिवाजी के ऊपर आक्रमण करने की योजना बन गई। बीजापुर से प्रस्थान करते समय उसने जैसा कि अक्सर दक्षिणी मुसलमान सेनापति किया करते थे, अपने सामने के श्रोताओं को बड़े ही गर्व पूर्ण शब्दों में अफजल खाँ ने कहा था कि "मैं जाकर उस साधारण से शिवाजी को लाकर बीजापुर के सिंहासन के पायों में जंजीरों से बाँध दूँगा।"

बीजापुर से सीधे रास्ते पर पड़ने बाली आपत्तियों, सामानों को ले जाने की असुविधा तथा पहाड़ों में भारी वर्षा, जो अक्टूबर के अन्त तक अनवरत पड़ती रहती है, के भय से अफजल खाँ की सेना प्रथम पन्डरपुर गई फिर वहाँ से वाई की ओर मुड़ गई।

शिवाजी ने जब उसके आने का समाचार सुना तब वह प्रतापगढ के किले में चले आये वहाँ से उन्हों ने अफजल खाँ के पास अपने दूतों को भेज कर अत्यन्त नम्र शब्दों में सुलह की बात-चीत शुरु की दूतों से उन्होंने कहलाया कि वह अफजल खाँ जैसे बड़े सेनानी का मुकाबला करने की कोई हिम्मत नहीं कर सकते और यदि अफजल खाँ तैय्यार हो तो उसी के द्वारा वह बीजापुर की अधीनता स्वीकार कर लेंगे। उन्होंने यह भी कहा कि यद्यपि (मैं) उन्होंने इतना भारी अपराध किया है कि वह बीजापुर के

सुल्तान द्वारा क्षमा नहीं पा सकेंगे परन्तु यदि अफजल खाँ उन्हें आश्वाशन दे दे तो वह आत्म समर्पण भी करने को तैय्यार हो जायेंगे।

अफजल खाँ में मुसलमान सर्दार के सभी गुण वर्तमान थे। उनको अपने दुश्मन की स्थिति का पता था और वाई की सुबेदारी के अपने पुराने अनुभव से वह इस ऊबड़ खाबड़ क्षेत्र की दुर्गमता से परिचित था, अपने इसी अनुभव के कारण उसने अपना बढ़ाव रोक रक्खा।

इन्हीं विचारों से तथा शिवाजी की लगातार सुलह की प्रार्थनाओं के कारण उसने अपने अधीनस्थ कर्मचारी, ब्राह्मण गोपी नाथ पंतोजी को कुछ अन्य सहायकों के साथ सुलह वार्ता के लिये, प्रतापगढ़ भेजा। जब गोपीनाथ पंतोजी किले के समीप फार नामक गाँव में पहुंचे तो स्वयम् शिवाजी किले से उतर कर उनकी अगवानी को आये। उस ब्राह्मण ने शिवाजी से कहा कि उसका सेनापति खान और शाहजी घनिष्ट मित्र हैं अतः वह अपने मित्र के पुत्र के प्रति कभी भी दुश्मनी करना न चाहेंगे। इसके विपरीत वह शिवाजी को सुल्तान बीजापुर से क्षमा दिलवाने में उनकी मदद करेंगे, तथा जिस क्षेत्र को शिवाजी ने अपने अधिकार में कर लिया है, उस पर उन्हीं का अधिकार स्थिर करवा देंगे शिवाजी ने इन बातों को सुना। अपने यहाँ बैठी सभा में उन्होंने अपनी वाणी में दीनता नहीं आने दी जैसा उन्होंने अपने दूतों से कहलवाया था। उन्होंने कहा कि वे अपनी जागीर भर भी पायेंगे तो संतुष्ट हो जायेंगे, अपने आक्रमण द्वारा दरबार के कायदों का, तथा अपने आक्रमणों से अपने को स्वतन्त्र कहने वाले छोटे-छोटे जागीरदारों को समाप्त करके सल्तनत को भारी खतरे से बचाने का विवरण देते हुये उन्होंने अपने बीजापुर सरकार का नौकर मानकर अपने विजित क्षेत्र को सुल्तान की इच्छा के अनुसार रखने अथवा छोड़ देने का विश्वास दिलाया उनकी आपस की प्रथम बातचीत का क्रम कुछ इसी प्रकार का था।

शिवाजी ने आये हुये इस कूटनीतिक दल को ठहरने का प्रबन्ध किया परन्तु पंतोजी गोपीनाथ के रहने का प्रबन्ध उनके दल के अन्य सदस्यों से कुछ दूर पर रखा। आधीरात को शिवाजी ने गोपीनाथ पन्तजी से मुलाकात की। उन्होंने गोपीनाथ को ब्राह्मणों का सा आदर और सम्मान देकर इस प्रकार कहना शुरू किया। "मैंने आज तक जो कुछ भी किया है वह हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति की भलाई के लिये किया है, मुझे देवी पार्वती ने हिन्दू ब्राह्मणों, और गायों की रक्षा का आदेश दिया है, मैं मन्दिरों को तोड़ने वालों को, उनके देवताओं का अपमान करने वालों को तथा धर्म विरोधियों को समाप्त करने और दंड देने के कार्य में रत हूं, आपका भी ब्राह्मण होने के नाते यह कर्तव्य है कि आप भी देवी की इच्छा को पूरा करने का प्रयास करें। इस कार्य में सहायता करने के बाद आपको यहाँ अपने जाति वाले भाइयों के साथ रहने का प्रबन्ध हो जायेगा।" अपने इस कथन को उन्होंने कीमती उपहारों के साथ समाप्त किया। उन्होंने गोपीनाथ को दीवरा नामक एक गाँव इनाम में देने का भी वादा किया। इस गाँव पर उनके वंशजों भी अधिकार रहेगा। भला कौन ऐसा ब्राह्मण होगा जो ब्राह्मण भक्त शिवाजी की इस वार्ता के बाद इतने कीमती इनाम की अवहेलना करेगा। वे गदगद हो उठे और उन्होंने देवी भवानी की सौगंध खा कर शिवाजी की आजन्म सहायता का वचन दिया। दूत को मिलाने के बाद इस परिस्थिति से रक्षा के उपाय पर विचार विमर्ष हुआ। गोपीनाथ अफजल खां का स्वभाव जानता था। उसने शिवाजी और अफजल खां को मिलाकर, संधिवार्ता की व्यवहारिकता पर अधिक जोर दिया। शिवाजी ने तुरंत अपनी योजना बना ली। उन्होंने तुरंत कृष्णा जी भाष्कर को बुलाया और अपनी और राजदूत की बातों का विवरण देकर के आगामी व्यवस्था के प्रबन्ध का आदेश देकर गोपीनाथ से अलग हुये—ठीक उसी प्रकार जैसे मिलने आये थे।

उसके बाद दिखावटी तौर पर कुछ और बातें भी हुई और वार्ता की पूर्णता के लिये कृष्ण जी भाष्कर को गोपीनाथ पंतोजी के साथ अफजल खां के पास भेजा गया। कृष्णजी ने शिवाजी के वकील की हैसियत से अफजल खां को शिवाजी की सतर्कता से अवगत कराते हुये, विश्वास दिलाया कि यदि अफजल खां स्वयम् शिवाजी से मुलाकात करके उनके भय को समाप्त कर दें तो शिवाजी आत्मसमर्पण करने को आसानी से तैयार हो जायें। अफजल खां ने पंतोजी के ऊपर पूर्ण विश्वास करके उस पर अपनी स्वीकृति दे दी। मुलाकात की बात पक्की हो जाने पर बीजापुर की सेना बहुत ही श्रमपूर्वक जावली की ओर बढ़ी। शिवाजी ने अफजल खां से मुलाकात करने के लिये प्रतापगढ़ किले से नीचे एक स्थान तैयार करवाया। उन्होंने जंगल को कटवा कर खान के आने के लिये सड़क बनवा दिया, परंतु इस पर ध्यान रक्खा गया कि किले तक आने वाले सभी अन्य द्वार बंद कर दिये जांय, उन्होंने कोंकण से मोरो पंत और नेताजी पालकर को बुलवा लिया, जिनके साथ कई हजार मावली सैनिक भी आ गये। शिवाजी ने इन दोनों को तथा तानाजी मालसुरे से अपनी सारी योजना बता दिया। नेताजी को किले के कुछ पूर्व की ओर खड़ी झाड़ियों के पास नियुक्त किया गया। इस तरफ अफजल खां के साथ आई थोड़ी सेना के आगे बढ़ने का सन्देह हो सकता था। मोरो त्रिम्मुल पुराने चुने हुये कुशल सैनिकों के साथ बीजापुर की मुख्य सेना के पास जाकर छिप रहे। यह सेना जावली के निकट थी। उनको यह आदेश दिया गया कि जैसे ही प्रतापगढ़ से पाँच बार तोपों की आवाज सुनाई पड़े, वे बीजापुर की सेना पर अचानक हमला बोल दें, नेताजी पालकर को तोपों की आवाज सुनते ही शत्रुओं पर टूट पड़ने का आदेश दिया गया। प्रबन्ध ऐसा था कि शिवाजी मुलाकात के बाद जैसे ही किले में पहुंचे पांचों तोप दाग कर मोरो को सूचना दी जाय।

अफजल खां के साथ उसकी १५०० सेना भी प्रतापगढ़ के पास तक आई परन्तु गोपीनाथ ने शिवाजी से सावधान होने का भय दिखा उसे किले से कुछ पीछे ही रुकवा दिया। अफजल खां अपने झीने वस्त्रों में सिर्फ एक तलवार बाँधे हुये था। उसके साथ उसका एक अंगरक्षक मात्र था, कारण मुलाकाल की शर्तों में यह भी तय हुआ था कि एक अंगरक्षक से अधिक आदमी अपने साथ नहीं रक्खे जायेंगे। इसी अवस्था में अफजल खां अपनी पालकी पर सवार उस तम्बू में आया जो मुलाकात के लिये शिवाजी ने तैयार करवाया था यह चारो तरफ से खुला हुआ था।

शिवाजी, अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये मुलाकात की, मनोयोग पूर्वक तैयारी करने लगे, ऐसा नहीं प्रतीत होता था कि वे भयभीत किसी आतताई द्वारा दी जाने वाली सजा को सुनने को तैयार हो रहे हों। ऐसा लगता था जैसे कोई बहुत ही बुद्धिमानी और महत्वपूर्ण कार्य के लिये तैयारी कर रहे हों। पूरी कुशलता के साथ अपनी तैयारी करके उन्होंने माता के चरणों में सिर झुका विजय का आशीर्वाद मांगा। वहाँ से उठकर उन्होंने अपने पगडी के नीचे इस्पात की बनी टोपी लगा अपने ऊपरी पहनावे के नीचे जालीदार लोहे की पोशाक पहन कर विछुआ नाम की छोटी सी कटार अपने दाहिने हाथ की आस्तीन के नीचे डाल कर अपने बायें हाथ में जंजीर से कलाई में बंधा बघनखा फंसा, धीरे धीरे किले से नीचे उतरे। खान अफजल मिलने के स्थान पर उनसे पहले ही आ गया था। वह शिवाजी के विलम्ब पर झल्ला ही रहा था जब उसकी नजर निहत्थे शिवाजी पर पड़ी जो, शर्त के अनुसार सिर्फ एक अंगरक्षक ताना जी मालसुरे, के साथ सभा मन्डप की ओर बढ़े आ रहे थे। तानाजी मालसुरे को शिवाजी ने अपने अन्तरतम के विश्वास पात्रों में प्रथम श्रेणी का सहायक माना था। इसी कारण इस समय अपनी सुरक्षा की सारी जिम्मेदारी उन्होंने तानाजी को सौंप दिया था।

शिवाजी अफजल खां पर निगाह पड़ते ही थोड़ा ठिठके। शायद यह ठिठक उनके अफजल खां की तुलना में अपने शरीर, या शारीरिक लघुता के परिणाम स्वरूप ही रही हो। इस ठिठक से ऐसा भी प्रतीत हुआ जैसे वे सावधानी पूर्वक परिस्थिति का अनुभव कर रहे हों। उनके भय को समाप्त करने के विचार से अफजल खां ने अपने अंगरक्षक सैय्यद बन्दा को वहाँ से कुछ दूर हटा दिया। उसने स्वयम् शिवाजी के साथ आये तानाजी के हटाने का कोई प्रयत्न नहीं किया, यद्यपि उन्होंने अपने वस्त्रों के नीचे दो तलवारें छिपाई थीं। यह मराठों के चरित्र की विशेषता ही है कि वे, साधारण चीज को भी गंभीरता पूर्वक देखना पसन्द करते है। इसी कारण अफजल खां ने बिना संदेह किये अपने को इस प्रकार विपत्ति में फंसा लिया। उसने दो तीन कदम आगे बढ़ कर शिवाजी का परिचय प्राप्त किया और जैसे ही वह शिवाजी से गले मिला, उस मराठा ने अपने बघनखा को अफजल खां की अंतड़ियों में उलझाकर बाहर खींच लिया। अफजल खां ने तेजी से अपने आपको शिवाजी के कब्जे से छुड़ा लिया और अपनी तलवार निकालने के लिये मूठ पर हाथ रक्खा, परन्तु तब तक शिवाजी ने अपने बिछुआ से उस पर प्रहार आरंभ कर दिया था। अफजल खां अपनी तलवार निकालने में सफल हो गया और उसने शिवाजी पर उसका वार किया परन्तु उनके जालीदार वस्त्रों पर उसका कुछ भी असर न पड़ा, कुछ ही क्षणों में सारा काण्ड समाप्त हो गया। शिवाजी ने अफजल खां के हाथ से तलवार छीन ली, तब तक अफजल खां की पुकार पर उसके अंगरक्षक दौड़े आये। सैय्यद बन्दा किसी भी शर्त पर अपने प्राण बचाने को तैयार नहीं हुआ और तब तक इन दो तलवार बाजों से लड़ता रहा जब तक गिर न पड़ा। उसका नाम इतिहास के कुछ वफ़ादारों में एक है। जब सैय्यद बन्दा शिवाजी और तानाजी से उलझा हुआ था, अफजल खां के क़हारों ने उसे पालकी पर उठा ले जाने का प्रयत्न किया परन्तु तब तक शिवाजी के सर्दारों ने आ कर उसका सिर काट लिया और प्रतापगढ़ के किले में उठा ले गये। तब छिपे सैनिकों को पूर्व नियत संकेत दे दिये गये, उन संकेतों को पाते ही मावलियों की छिपी सेनाओं ने चारों तरफ से बीजापुर की सेनाओं पर जोरदार आक्रमण कर दिया। नेताजी पालकर ने तो किसी को नहीं छोड़ा परन्तु मोरो पंत को इस बात की सूचना दे दी गई कि वह आत्मसमर्पण करने वालों को कोई क्षति न पहुचावें। शिवाजी ने इन बन्दियों के प्रति तथा अन्य स्थानों पर भी जो मानवता का व्यवहार किया वह प्रसिद्ध है।* उनमें से काफी भागे हुये सैनिक जो किसी भी प्रकार उन घने जंगलों से पार पा सके, थके हारे, भूखे, आत्मसमर्पण करते रहे। आत्मसमर्पण का यह सिलसिला काफी दिनों तक चलता रहा। शिवाजी के व्यवहार से प्रभावित होकर कितने ही मराठा सैनिकों ने उनकी सेना में नौकरी स्वीकार कर लिया, इन कैदियों में जुझारराव घाटगे भी था। उसके पिता और शाहजी से घनिष्ट मित्रता थी। शिवाजी ने उन्हें अपनी ओर मिलाना चाहा परन्तु वे बीजापुर वालों का साथ छोड़ने को तैयार नहीं हुये, अतः शिवाजी ने उनके जाने की इच्छा सुनकर उन्हें मूल्यवान उपहार आदि देकर सम्मान पूर्वक विदा किया। अफजल खां का पुत्र और परिवार खन्दूजी काकरे के अधिकार में थे, परन्तु उसने काफी लम्बे घूस की लालच में उन्हें पहाड़ों से गुप्त और सुरक्षित रास्तों द्वारा कुयाना के किनारे कुरार तक छोड़ आने को तैयार हो गया—परन्तु इसका पता शिवाजी को चल गया और परिणाम स्वरूप काकरे को अपने सिर से हाथ धोना पड़ा, शिवाजी के पास विश्वासघातियों की यही प्रमुख सजा थीं।

शिवाजी की इस सफलता ने जनता में उनकी ख्याति बढ़ा दी। जनता को इससे कुछ मतलब

---

* शिवाजी ने सिर्फ उसी जगह पर अपनी क्रूरता नहीं छोड़ी जहाँ उन्हें धन लूटने से रोका गया अन्यथा वे अपनी मानवता के लिये बन्दनीय हैं।

नहीं कि सफलता मिली। किस प्रकार इस विजय का तात्कालिक फल ४००० घोड़े, कई हाथी, अनेकों ऊंट तथा उनके खिलाफ प्रत्युक्त होने वाली युद्ध सामग्री का भारी भन्डार के अतिरिक्त नकद रुपये भी प्राप्त हुए।

उस अवसर पर शिवाजी ने एक विराट आयोजन कर अपने घायल सिपाहियों को उनके वीरोचित कार्यों के लिये सम्मानित किया और उन्हें कड़े, हार और सोने की जंजीरे तथा चाँदी के रूप में उपहार प्रदान किया। इस प्रकार के कार्यों से उन्होंने अपने सैनिकों को अगले आक्रमणों के लिये उत्साहित किया। इनके इस उपहार वितरण से उनके इस विजय की काफी ख्याति फैली। अफजल खाँ की तलवार शिवाजी के वंसजों के शस्त्रागार में आज भी स्मृति के रूप में रक्खी हुई है। पन्तोजी गोपीनाथ को उन्होंने वादे के अनुसार गांव और इनाम दिया। कुछ काल बाद उनकी पदोन्नति करके अपनी नौकरी में अच्छे पद पर कार्य करने के लिये रख लिया। *

शिवाजी ने दिखावटी तौर पर सिद्दी के ऊपर अपनी पूरी शक्ति से आक्रमण करने की तैय्यारी शुरू की। जब अफजल खाँ बीजापुर की सेना लेकर शिवाजी के साथ उलझा पड़ा था, सिद्दी भी अपनी सेना के साथ 'ताला और गोसाला' को घेरने आ पहुंचा। परन्तु जैसे ही उसने अफजल खाँ के सेना की दुर्दशा का समाचार सुना, अपनी सेना को लेकर, घेरा खत्म करके वापस चला गया। उसी कारण प्रकट में उसी ओर, आक्रमण करने की तैय्यारी करके भी वे पन्हाला दुर्ग के किलेदार से वार्ता करने में संलग्न थे। वहाँ के किलेदार ने उस महत्वपूर्ण किले के समर्पण करने की इच्छा को उनसे पहले भी कह चुका था। † परन्तु शिवाजी को शंका थो की शायद बीजापुर सरकार द्वारा उन्हें कैद करने का षड़यन्त्र हो, अतः उन्होंने प्रति रक्षात्मक प्रबन्ध के साथ उस महत्वपूर्ण किले पर अधिकार की पूर्ण तैय्यारी के साथ अपने विश्वास पात्र सेना नायक अन्नाजी दत्तो को मावलियों की शक्तिशाली सेना के साथ आगे भेज स्वयम् गुप्तरूप से मुख्य सेना के साथ उनके पीछे चले। उनके साथ की सेना में पैदल और सवार दोनों ही थे जो किसी भी स्थिति के लिये तैय्यार थे।

अन्नाजी दत्तो अपने प्रयास में सफल रहे और उन्हें बिना प्रयास, पवनगढ़ और पन्हाला उनके अधिकार में आ गया। उस अधिकार से उत्साहित होकर शिवाजी ने बसन्तगढ़ को भी आश्चर्य में डाल अपने अधिकार में कर लिया और कृष्णा के किनारे तक लगान वसूला। यहां से उन्होंने अपने लगान वसूलने के अधिकारी के साथ कुछ सैनिकों को, मिट्टी के गढ़ में छोड़ा और पन्हालागढ़ की ओर बढ़ चले। वहाँ पहुंचते ही उन्होंने सेना भेज करके आस-पास के किलों पर अधिकार कर लिया। अधिकतर किलेदारों ने बिना किसी लड़ाई के किलों को सौंप दिया परन्तु रांगना और किलना के लिये उन्हें हल्की लड़ाई लड़नी पड़ी। किलना का नाम विशालगड़ रक्खा गया अपने इसी नाम से यह आज भी विख्यात है।

---

* मराठा और पर्शियन पान्डुलिपि तथा अंगरेजों के ईस्ट इन्डिया कम्पनी के रिकार्ड जो ईस्ट इन्डिया हाउस में सुरक्षित हैं।

† किस क़िलेदार ने इसका समर्पण किया, इसका ठीक से पता नहीं चलता। इस किले का किलेदार स्वयम् सुल्तान द्वारा नियुक्त होता था, परन्तु यह किला रुस्तम जुम्मन की जागीर में था। रुस्तम जुम्मन की जागीर उत्तरी घाटों में मेरिच और कोल्हापुर तथा कोंकण में कारवार और राजापुर तक थी। इस बात के प्रमाण हैं कि शुरू में ही रुस्तम जुम्मन को शिवाजी ने घूस दे दिया हो। वहाँ के अंगरेज व्यापारी भी भी इससे सहमत हैं कि रुस्तम जुम्मन ने अपने इलाकों को शिवाजी से लुटवा कर उससे हिस्सा लिया था।

रुस्तम जुम्मन बीजापुर का एक प्रमुख अधिकारी मेरिच से शिवाजी की इस प्रगति को रोकने को बढ़ा परन्तु अब काफी विलम्ब हो चुका था और कोल्हापुर जिले की रक्षा प्राय: असम्भव थी । उसके पास ३००० सवारों के साथ छोटी सी पैदल सेना थी जिसके सहारे उसे शिवाजी के खिलाफ जाने की आज्ञा मिली थी । जैसे ही वह पन्हाला के समीप आया स्वयम् शिवाजी ने अपनी सवार सेना के साथ उस पर आक्रमण किया और उसका सफाया कर डाला । * अब उन्होंने कृष्णा के पार भी अपने विस्तार का विचार किया । अन्नाजी को अपनी सारी अनावश्यक सेना को विशालगढ़ में एकत्रित करने का आदेश देकर शिवाजी अपने रास्ते आगे बढ़ गये । बीजापुर के समीप तक के गांवों को रौंद, नगरों और जिलों से कर वसूल कर शिवाजी महान सफलता के साथ वापस लौटे । ऐसा लगता था मानो वे असफलता को भी जीतने का साहस रखते हैं ।

विशालगढ़ में अपनी सेना से मिलते ही उन्होंने राजापुर पर आक्रमण करने की तैयारी की । राजापुर में इस आक्रमण की सूचना मिलने के कुछ ही घन्टे बाद में वहां आ पहुंचे । सन् १६६०] राजापुर से भी लगान तय करके उन्होंने उसी के अधीन डाबुल पर अधिकार प्राप्त किया । उसके संलग्न इलाकों पर अधिकार करके लूटपाट का भारी सामान राजगढ़ की ओर भेज दिया ।

अफजल खाँ काण्ड, रुस्तम जुम्मन की हार और शिवाजी का बीजापुर के आस-पास तक डाला गया छापा, बीजापुर वालों के सामने जीवन और मौत की समस्या के समान आकर खड़ा हो गया । इस छापे की गम्भीरता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि, बीजापुर के सर्दारों का दीर्घ कालीन मतभेद भी इस छापे के कारण खत्म हो गया । परन्तु अब यह समस्या इतनी गम्भीर हो चली थी कि शिवाजी के विरोध में भेजी जाने वाली सेना के सेनापति के रूप में किसी एक आदमी को प्रधान बना कर भेजना संकट का सही हल न लगा । निश्चय यह किया गया कि इस सेना का सेनापतित्व, स्वयम सुल्तान करें, परन्तु तभी अचानक अबीसीनियन अधिकारी सिद्दी जौहर पर दर्बार की नजर पड़ी । यह उस समय कर्नोल में सेनापति के पद पर कार्य करता था, तथा कर्नाटक में उपद्रवों के शान्त करने में अपनी युद्ध कुशलता का परिचय दे चुका था ।

सिद्दी जौहर बीजापुर के सर्दारों में से न था । इसी कारण जब इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये उसकी नियुक्ति हुई तो दोनों दलों को इससे कोई परीशानी नहीं हुई, कारण वह दर्बार की इन दोनों विरोधी पार्टियों में से किसी का सदस्य नहीं था । परन्तु अपनी इस स्थिति को वह अधिक काल तक न बनाये रख सका । उसने अफजल खाँ और उसके लड़के फजल खाँ से लगभग दूनी सेना तैयार की । अफजल खाँ का लड़का मुहम्मद फजिल खाँ अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने को पागल हो रहा था, अतः वह भी सिद्दी जौहर के साथ जाने को तैयार हुआ । यह निश्चय किया गया कि यह आक्रमण पन्हालागढ़ से शुरू किया जायगा । उधर सिद्दी फतेह खाँ ने भी जौहर के इस आक्रमण के साथ शिवाजी के कोंकण के क्षेत्र में आक्रमण करने की सूचना दी तथा बारे के देशमुखों ने भी शिवा-

---

* मराठा पान्डुलिपि राजापुर की इंगलिश फैक्टरी के एक पत्र के अनुसार रुस्तम जुम्मन को अफजल खां के पुत्र के साथ छोटी सी सेना के साथ शिवाजी के खिलाफ भेजा गया । जिसमें उसने अफजल खां के लड़के को शिवाजी के हवाले कर दिया था परन्तु और सूत्रों के अनुसार पर कथन असत्य प्रतीत होता है । यह पत्र स्वयं इस बात से अनजान सा है कि उसके लिखने का तात्पर्य क्या है परन्तु सही तारीखों के लिये इन पत्रों का भारी महत्व है ।

जी से जान बचाने का एक मौका आया देख जी जान से जौहर की सहायता की तैयारी करने लगे। युद्ध के लिये प्रस्थान करने से पूर्व सुल्तान ने उसे सलावत खाँ * की उपाधि प्रदान की।

उधर शिवाजी ने कोंकण की सुरक्षा का प्रबन्ध करना शुरू किया। रघुनाथ पन्त को फतेह खाँ का सामना करने का आदेश मिला। आबाजी सोनदेव को कल्यान भिवण्डी का किला और जिला बचाने का प्रबन्ध मिला और बाजीराव फसालकर को स्वर्णावत या वारी क्षेत्र के रक्षणार्थ पैदल सेना के प्रधान सेनापति का पद सौंपा गया। उपरी क्षेत्र में मोरोपन्त को सिंहगढ़, राजगढ़, प्रतापगढ़ तथा उसके आस-पास के क्षेत्र की रक्षा का कार्य सौंपा गया और पन्हाला गढ़ को उसकी सामरिक महत्ता के अनुसार स्वयम शिवाजी का सेनापतित्व प्राप्त हुआ। शिवाजी ने बीजापुर की सेना को, बिना किसी रोक-टोक के किले के पास तक चला आने दिया—परन्तु जैसे ही सेनाओं ने किले के पड़ोस में अपने खेमे गाड़े, नेताजी पालकर अपनी घुड़ सवार सेना के साथ उसके चारों तरफ के क्षेत्र को बर्वाद करने लगे। उन्होंने सेना की पूर्ति को एकदम बन्द कर दिया। इससे बीजापुर वालों की घुड़ सवार सेना और पैदल सेना को एक दूसरे की सहायता का पूरा अवसर न मिलता। इसके अतिरिक्त वे अपनी घुड़सवार सेना और साथ में कुछ पैदल सैनिकों को ले करके उनके ऊपर रात्रि के सूनसान प्रहरों में परेशान करने लगे। मावलियों के दल मटमैले आवरणों से अपने को छिपाये हुये उनके पड़ावों पर आ टूटते और असावधान सैनिकों को तलवार के घाट उतार देते और जो कहीं वे सावधान होते अग्निबाणों से उनको और उनके सामानों को बर्वाद कर देते।

इस प्रकार अपनी कम से कम हानि पर दुश्मनों के अधिक से अधिक हानि पहुंचाने का प्रयास चलता रहा, और भारी संख्या में बीजापुर के सैनिक मारे जाते रहे। सिद्दी जौहर ने इस प्रकार के आक्रमण के प्रत्येक सम्भव द्वारों की दिशाओं पर कड़ी निगरानी का आदेश दिया और स्वयम अपनी संरक्षकता में उसने काफी दूर तक के स्थानों तक अपना घेरा बढ़ाया और सावधानी पूर्वक क्षेत्र का निरीक्षण करके, कई महीनों के अपने इस पड़ाव को कम से कम हानिपूर्ण बनाने का शक्तिशाली प्रयत्न किया जो उसे खराब मौसम के वजह से काटने पड़े।

परन्तु यह युद्ध, कोंकण में सक्रिय था। फतेह खाँ ने अपने जलबेड़े की सहायता से किनारों के विभिन्न स्थानों में सन्तोष जनक सफलता प्राप्त की थी। अपने जलबेड़े की सहायता से कई स्थानों पर उसने रघुनाथ पन्त पर सफलता पाई थी। वारी में बाजीराव फसालकर ने देशमुखों से बराबरी का युद्ध किया। इस युद्ध में दोनों दलों के सेनापति मारे गये। बाजीराव शिवाजी के अन्तरतम सहायकों में थे।

पन्हाला का घेरा चार महीने तक स्थिर रहा, परन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी जौहर की सेना उसे कुछ भी क्षति न पहुंचा सकी। उसने किले का सम्बन्ध बाहरी दुनियाँ से एकदम खत्म कर देने में पूरी सफलता पाई और तब शिवाजी की समझ में अपनी भूल आई। वास्तव में अपने को किले में इस प्रकार कैद कर लेना, उनके जैसे सक्रिय व्यक्ति के लिये बहुत ही हानिकारक सिद्ध हुआ, वे न तो बाहर का समाचार पाते थे और न ही शासन के निर्देश दे पाते, अतः उन्होंने किले से निकलने की योजना बनानी शुरू की। जो योजना बनी उससे उनके साहसी प्रवृति की पुष्टि होती है।

---

* बीजापुर पान्डुलिपियों में इसका नाम सलावत खां लिखा है परन्तु मैंने इसे सिद्दी जौहर ही लिखा है। उसको जंजीरा के सिद्दियों से जोड़ना भ्रामक है, जिसमें काफी लोग फंस जाते हैं। मिस्टर ओर्म भी इसी प्रकार के एक हैं।

घेरा डालने वाली सेना को अपनी सफलता अवश्यम्भावी लग रही थी। अतः उन्होंने अपनी चौकसी बनाये रखी। शिवाजी ने प्रथम उनके पहरेदारों को हटाने का उपाय सोचा, अतः उन्होंने सुलह की बातचीत चलाई। वार्ता आरम्भ हुई और सिद्दी जौहर पर विश्वास * करके शिवाजी उसके तोप खाने के पास उससे मिलने के लिये किले से उतर कर आये। सिद्दी से मिलकर उन्होंने उसे जल्द ही इस बात का विश्वास लिया कि वास्तव में वे सुलह के इच्छुक हैं। अतः सिद्दी ने तोपों को बन्द करा दिया और वहाँ प्रत्येक चीज शान्ति के वातावरण में हो गई। सुलह की सारी शर्तें तय करके, शिवाजी ने चालाकी से अपना आखिरी निर्णय दूसरे दिन पर टाल दिया। अब तक शाम भी हो गई थी अतः शिवाजी ने किले में लौटने की इच्छा की और सिद्दी ने अपने पूर्व के वादे के अनुसार उन्हें चले जाने दिया। सारी सेना आसानी से मिली जीत की खुशी में मग्न हो गई। उसके पहरेदारों को भी अब उतना सावधान रहने की आवश्यकता न समझ में आई और वे सब किले में बेखबर सो रहे।

परन्तु जैसे ही रात की कालिमा ने सारे वातावरण को अपनी चादर से ढँक दिया, शिवाजी ने अपने साथ मावलियों की चुनी सेना के साथ किला छोड़ दिया। पहाड़ियों से उतर कर, बिना किसी पहरेदार की आंखों के सामने पड़े वे पूरी तेजी से रांगनागढ़ की ओर बढ़े। किसी को भी उस समय इस बात का पता न चला और जैसे ही इस रहस्य का पता लगा, फजल मुहम्मद खान और सिद्दी का बेटा सिद्दी अजीज ने घुड़सवार सेना के साथ उनका पीछा किया। उसके पीछे-पीछे पैदल सेना भी बढ़ चली, इन लोगों को शिवाजी तक पहुंचते-पहुंचते सुबह हो गई, और जब ये शिवा जी के पास पहुंचे, वे रांगना से छः मील दूर एक घाट को पार कर रहे थे। आने वालों को रोकने के लिये शिवाजी ने मावलियों की एक टुकड़ी को एक घाटी के मुहाने पर छोड़ दिया। इस टुकड़ी का सेनापति बनाया बाजी प्रभु देश पान्डे, एक समय का सिद्दि का दुश्मन। बाजी प्रभु को उन्होंने आदेश दिया कि वह रांगना किले से तोप की पांच आवाज सुनने तक शत्रुओं को आगे न बढ़ने दें। तोप की यह आवाज उनके रांगनागढ़ तक सुरक्षित पहुंच जाने की सूचना के रूप में था, और सचमुच बाजी प्रभु पर जो सम्माननीय और वीरता पूर्ण कार्य सौंपा गया था उसे उन्होंने पूरा किया। पीछे आने वाली सवार सेना को बाजी प्रभु से टकरा कर मुह की खानी पड़ी। वे किसी भी प्रकार आगे जाने में असमर्थ रहे। तब तक पीछे आने वाली पैदल सेना भी आ गई, इसने भी दो बार अपनी पूरी शक्ति लगा के आगे निकल जाना चाहा परन्तु इसे दोनों बार वापस लौटना पड़ा। बाजी प्रभु को काबू में करने के प्रयास में दो पहर निकल गई परन्तु उन पर तब तक काबू न पाया जा सका जब तक कि अफजल खाँ के लड़के के नेतृत्व में एकदम ताजी सेना ने उन पर अचानक धावा नही बोल दिया। इस हमले में आधे से अधिक मावले अपने सेनापति वीर देशपान्डे के साथ मारे गये, परन्तु मरने से पहले उन्होंने रांगना से तोपों की पाँच आवाजें सुन लिया था, उनके मावले साथियों ने उनकी वीरता के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित की और बचे खुचे मावले अपने नेता का मृत शरीर ले, अपने अचंभित शत्रुओं के सामने से भाग गये।

फजल खाँ ने रांगना के पास जाकर पड़ाव डाला परन्तु सिद्दी जौहर की सारी योजना ही अस्त व्यस्त हो गई। उसके समझ में नहीं आया कि वह रांगना पर घेरा डाले या पटघला पर ही घेरा

---

* ये सिद्दी लोग अपने वादे के पक्के होते हैं।

जनवरी १६६१]

पड़ा रहने दे । अली आदिल शाह की सारी आशायें मिट्टी में मिल गई । अपने क्रोध और निराशा की तीव्रता में उसने यह समझा कि सिद्दी को भी शिवाजी ने घूस देकर अपनी ओर मिला लिया है । जब सिद्दी को इस बात की सूचना मिली तो उसने अपने प्रति अविश्वाश और अपमान की भावना से प्रेरित हो कर इस अवस्था में सेनापतित्व के भार वहन से एकदम इन्कार कर दिया । परिणाम स्वरूप स्वयम अली आदिल शाह को मैदान में आना पड़ा । उसने आते ही कुठार की ओर कूच किया । उसके पड़ोस के अधिकारी गण, जिनमें से कुछ ने शिवाजी के आगे आत्मसमर्पण भी कर दिया था, उसके पड़ाव पर उसके पास आये और उसका सम्मान किया । सिद्दी जौहर ने यद्यपि सुल्तान से माफी मांग ली परन्तु उनके दर्बारियों की दुर्भावना से भयभीत होकर वह उसके सामने न गया और वहीं से अपनी जागीर कर्नोल चला गया ।

सुल्तान ने पुनः पन्हाला पर ही घेरा डाला । उन्होंने पन्हाला और पवनगढ़ पर अधिकार प्राप्त कर के शीघ्र ही उन किलों पर पुनः अधिकार प्राप्त कर लिया, जिन्हें पिछले कुछ वर्षों में शिवाजी ने हथिया लिया था, परन्तु रांगना और विशालगढ़ पर शिवाजी का ही अधिकार बना रहा । इसी समय वर्षा के कारण सुल्तान को पहाड़ियों की श्रेणियों से हटना पड़ा । उसने कृष्णा नदी के किनारे विमलगाम नामक स्थान पर अपना पड़ाव किया ।

इस समय यद्यपि शिवाजी ने सुल्तान से उलझने का कोई प्रयास नहीं किया परन्तु फिर भी निष्क्रिय नहीं बैठे रहे, और जैसे ही साल बीता, वे अपनी सेनाओं के साथ पुनः राजापुर पर छा गये, उस पर अधिकार कर के उन्होंने आस-पास तक के इलाकों को तहस-नहस किया । इस अवसर पर राजापुर के अंगरेजों को काफी हानि उठानी पड़ी, उनके कारखानों को बंद करवा दिया गया और उन्हें प्रायः दो वर्षों तक एक पहाड़ी किले में कैद रहना पड़ा, जहां से उन्हें भारी धनराशि देने पर ही छुटकारा मिला । उनके प्रति शिवाजी के क्रोध का कारण यह था कि उन्होंने जौहर सिद्दी को गोला तोप व बारूद दे कर पन्हाला दुर्ग पर आक्रमण करने में सहायता की थी । * राजापुर पर अधिकार के बाद शिवाजी ने स्वतन्त्र मराठा शासक दलवी की राजधानी, सिंगारपुर पर आक्रमण किया और शत्रुओं की बेख्याली से लाभ उठा करअधिकार करने में सफल रहे, परन्तु दलवी अपने सैनिकों के साथ मैदान में डटा रहा । अन्त में, शिवाजी के नेतृत्व में लड़ती सेना के हाथों मारा गया और इस लड़ाई का अंत हुआ । परन्तु जितनी ख्याति उनके मुसलमानों के साथ मिले जय को मिली उतनी इन हिन्दू शासकों, राम चन्दर राव और दलवी के ऊपर प्राप्त जय को कभी नहीं मिली । यद्यपि सिंगारपुर को जीतने में उन्होंने किसी भी छल का सहारा नहीं लिया परन्तु अपनी चालबाजी और विश्वासघात के लिये वे इतने अधिक प्रसिद्ध थे कि सिगारपुर के श्रेष्ठ हिन्दुओं ने सीमातिक्रमण करके सिद्दियों के शासन में रहने चले गये । उनको प्रभावित करने में शिवाजी को अपनी सारी शक्ति व्यय करनी पड़ी परन्तु, दलवी लोगों के प्रबन्धकों के एक परिवार सर्वे पर अपना प्रभाव स्थापित कर वे अपने इस प्रस्ताव में आंशिक रूप से सफल हुये । शिवाजी ने अपनी इस कुख्याति को समाप्त करने के लिये हिन्दू धर्म के धार्मिक अनुष्ठानों की ओर झुके । उनका यह धार्मिक झुकाव कोई राजनैतिक चाल नहीं समझी जा सकती । जितनी उनकी धार्मिक आस्था अभी तक उनको देवी भवानी का दर्शन करने तुलजापुर के मंदिर में जाना पड़ता था—उसमें क्रम भंग की संभावना के साथ-साथ सुरक्षात्मक असुविधायें भी थीं । इसी कारण वर्षा ऋतु में उन्होंने प्रतापगढ़ के मन्दिर में देवी भवानी की प्राण प्रतिष्ठा की, इस अवसर पर भारी उत्सव मनाया गया । इस समय से शिवाजी अपने धार्मिक कर्तव्यों का कठोरता पूर्वक पालन करते

---

* मराठा पान्डुलिपि और अंगरेजों का रिकार्ड, शिवाजी को इस सहायता का संदेह था । संदेह का कारण भी था परन्तु इसकी सत्यता जानने की उन्होंने कोशिश नहीं की ।

रहे। उन्होंने स्वामी रामदास को अपना धार्मिक गुरु बनाया और उनकी सलाह के अनुसार अपने जीवन को पवित्रता के सांचे में ढालना शुरू किया।

परन्तु अपने धार्मिक कार्यों से उन्होंने अपनी सेना की गतिविधियों में कोई व्यवधान नहीं आने दिया। वर्षा के समय में उनकी सारी शक्ति फतेह खाँ के विरोध में लगी हुई थी। उन्होंने अपनी पूरी शक्ति के साथ सिद्दी को भाग जाने को विवश किया और बीजापुर के सुल्तान या बारी के सामंतों को वर्षा ऋतु के बाद मैदान में आने से पहले ही राजापुर पर अधिकार कर लिया। उन्होंने जंजीरा पर गोला बारी शुरू की परन्तु अच्छे आग्नेयास्त्रों और उनको चलाने में कुशल सैनिकों के अभाव में उन्हें अपने इस प्रयास में कुछ भी सफलता न मिली। इसी समय उन्हें बीजापुर के सैनिकों के आक्रमणों की सूचना मिली और वे लौट गये।

चिम्मल गाँव में पड़ाव डालने के बाद सुल्तान ने सिद्दी जौहर को उसके प्रति अपने विश्वास और सुभाव का विश्वास दिला कर, कई बार अपने पास बुलाया जिससे वह कम से कम सुल्तान के सम्मान में, उनके खेमे में उपस्थित हुआ। शाही खेमे में उसका सम्मान पूर्वक स्वागत किया गया, परन्तु सुल्तान की अस्थिर भ्रांति पर उनके हृदय से विरोधी वजीर इब्राहिम खाँ के प्रभाव से भिज्ञ जौहर को उस पर विश्वास न हुआ, अतः उसने किसी भी प्रकार जल्दी से जल्दी अपनी जागीर में लौटना ही श्रेयष्कर समझा। इस समय उत्तरी कर्नाटक में पुनः कई शक्तिशाली विरोधी तैयार हो गये थे और सुल्तान स्वयम शिवाजी को परास्त करना चाहता था। अतः उसने कर्नाटक में इस विरोध के खिलाफ जौहर को भेजने का विचार किया, परन्तु जौहर ने इस ओर कोई उत्साह नहीं दिखाया, इससे यह अनुमान लगाया गया कि वह कर्नाटक के विरोधियों से मिला हुआ है और यह भी कि शिवाजी से भी उसका संबन्ध रहा हो।

इस अवसर पर सुल्तान के सलाहकारों के दो दल हो गये। एक तो शिवाजी के ऊपर आक्रमण करने के पक्ष में था दूसरा कर्नाटक में पुनः सुव्यवस्था कायम करने के पक्ष में था। जब सुल्तान इन्हीं उलझनों में फंसा था, वारी के सामंतों ने उसके पास एक प्रस्ताव भेजा। अपने इस प्रस्ताव में उन्होंने शिवाजी के खिलाफ युद्ध करने में सुल्तान से सहायता माँगी। समस्या के इस सुझाव से सुल्तान ने अपनी सहमति प्रकट की अतः सुल्तान ने कर्नाटक जाने का निश्चय किया और बहलोल खाँ तथा मधोले के बाजीराव घोरपड़े को सामंतों के साथ शिवाजी के खिलाफ सेना तैयार करने का आदेश हुआ। सुल्तान कर्नाटक की ओर चला गया और सामंतों का साथ देने के लिये फौज इकट्ठा होने लगीं। बाजीराव घोरपड़े भी इस युद्ध में तैयारी करने के लिये अपनी जागीर मधोल लौट गये। शिवाजी के दूतों ने विशालगढ़ में शिवाजी को उसकी सूचना दी और उन्होंने अपने पिता के प्रति किये गये विश्वासघात के बदले के लिये यही समय चुना। जब घोरपड़े अपने रक्षकों से एकदम दूर था, उन्होंने अपनी तीव्रगामी सेना के साथ तेजी से बढ़कर मघोल पर आक्रमण किया और घोरपड़े को उसके कई रिश्तेदारों समेत मार डाला एवम उसकी सारी जागीर को तहस-नहस करके मघोल का अग्नि दाह करके आश्चर्य जनक तेजी से वापस लौट आये।

घोरपड़े के रिक्त स्थान पर खवास खाँ को, बहलोल खाँ के साथ नियुक्त कर दिया गया, बहलोल खाँ के साथ इस सेना ने कोंकण में प्रवेश हीं किया था कि बीजापुर से उसे कर्नाटक की सेना को सहायता देने का आदेश मिला।

सन् १६६२ में सुल्तान ने रायपूर और तूरगुल की शक्ति को घटाना परम आवश्यक समझा। यह दोनों स्थान शत्रुओं से पटे हुये थे। इनके विरुद्ध लड़ने में सुल्तान ने स्वयम् बहुत बहादुरी दिखाई।

सिद्दी जौहर ने पहले सल्तनत से विद्रोह करने का विचार नहीं किया था, परन्तु जब उसने अपने ऊपर आते खतरे को देखा तो उसे अपनी रक्षा के लिये कुछ करना आवश्यक हो गया। ऐसे सुल्तान का क्या ठिकाना जो उस पर पूर्ण अबिश्वास करता हो। अतः उसने खुलकर सुल्तान का विरोध करना ही उचित समझा। जैसे ही जुझार राव और नायक पल्टन अपनी सेनाओं के साथ सुल्तान की सेना से दूर हुए, उसने उन पर आक्रमण कर दिया। वे पहले तो भ्रमित होकर सुल्तान की सेना के पास लौटने को विवश हो गये परन्तु तभी उनको बहलोल खां की सहायता मिल गई जिससे उत्साहित हो कर उन्होंने अपने साथ विश्वासघात करने वाली सेना पर पिल पड़े और तेजी से उनको हराने लगे। सिद्दी जौहर बहुत अल्पकाल तक ही इस सम्मिलित सेनाओं के आगे अड़ सका और अन्त में सुल्तान से क्षमा पाने की लालच में आये अपने ही विश्वासघाती समर्थकों द्वारा मार डाला गया। सुल्तान ने उसके लड़के को क्षमा कर दिया और कुछ समय बाद, अपने वजीर जब्दुल मुहम्मद की सिफारिश से पुनः अपनी सेना में नियुक्त कर लिया। यह अब्दुल मुहम्मद इब्राहीम खां के स्थान पर नियुक्त किया गया था। इन उपद्रवों को आसानी से दबाना संभव न हुआ। कारण विद्रोही अनेकों थे, परिणाम स्वरूप यहाँ का युद्ध काफी दिनों तक चलता रहा। पूरे दो वर्षों के अनवरत श्रम के बाद, सुन्दर राजा से लगान तय करने के बाद अली आदिल शाह अपनी योजनाओं में आंशिक सफलता प्राप्त कर अपनी राजधानी को लौटा।

बीजापुर की सारी सेनाओं के कर्नाटक में फंसी रहने के कारण शिवाजी को अपने विस्तार में खुली छूट मिल गई। पिछले युद्ध में वह भयानक रूप से हारे थे और अपनी अधिकतर स्थिति खो चुके थे परन्तु जैसे ही उन्हें बीजापुर की सेनाओं से अवकाश मिला उन्होंने अपनी पहले की अपेक्षा कहीं अधिक स्थिर स्थिति बना लिया। जैसे ही बहलोल खां और खवास खां को कर्नाटक जाने का आदेश मिला उन्होंने वारी के सामंतों पर हमला बोल दिया। अपने भाग्य के सहारे पड़े विचारे सामन्त शिवाजी का सामना किसी भी प्रकार न कर सकें। तेजी से उनके क्षेत्र पर अधिकार कर लिया गया। सामंत रामदलवी के साथ गोआ भाग गये। रामदलवी सिंगारपुर के स्वतन्त्र शासक दलवियों का कोई रिश्तेदार था। गोआ में पुर्तगाली सरकार ने प्रथम तो उनको शरण दिया परन्तु पीछे शिवाजी के भय से भयभीत हो कर उन्हें गोआ छोड़ने को विवश किया। पुर्तगाल वालों को भारतीयों के समान समझने का उन्हें दण्ड मिल गया।

सामंतों ने अपनी सजा हो जाने पर गोआ से भगाये जाने पर, अपने को शिवाजी की दया पर छोड़ दिया। शिवाजी ने उनको उनका देशमुखी का अधिकार वापस कर दिया। भविष्य में वे शिवाजी के स्वामिभक्त सेवक बने रहे। इसी प्रकार रामदलवी ने भी आत्मसमर्पण कर दिया। उनके संबन्धियों द्वारा किये गये विरोध को भूल कर शिवाजी ने उन्हें कोंकण के उत्तरी भाग की आमद का अधिकार सौंप दिया और उनके अधीन अपने कुछ सैनिकों व अधिकारियों को छोड़ दिया।

शिवाजी ने अपनी सेनाओं को सामंतों के अधिकार में दे उसकी सेनाओं को दूर हटा दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने रायरी और सिद्दी दुर्ग या मालवा का निर्माण कराया। सिद्दी के जलबेड़े के महत्व को उन्होंने भली प्रकार समझा और इसी कारण अवसर मिलते ही उन्होंने अपने जलबेड़े के निर्माण की ओर ध्यान लगाया। उन्होंने कोलाबा के दुर्ग को शक्तिशाली बना कर स्वर्णदुर्ग और विजयदुर्ग या घेरिया की मरम्मत करायी और इन सभी स्थानों पर अपने जलबेड़े को तैयार किया। उनके जलबेड़े का सबसे भारी केन्द्र कोलाबा था। यह बम्बई से २० मील दक्षिण में है। अपने जलबेड़े का सेनापतित्व उन्होंने दुरीयासागर और मयंक भण्डारी को सौंपा। अपने जलबेड़े से उन्होंने अपनी

सामुद्रिक लूट शुरू कर दी। पुर्तगालियों को इस लूट से बहुत हानि उठानी पड़ती थी अतः उन्होंने शिवाजी के पास अपना एक दूत भेजा और उनसे इस लूट को खतम करने की प्रार्थना की। शिवाजी ने उनकी प्रार्थना को एक शर्त पर स्वीकार कर लिया और वह थी उनकी बंदूकों तथा अन्य युद्ध सामग्री की मांग। पुर्तगालियों ने उसको स्वीकार कर लिया। उन्होंने उनकी इन मांगों को बनाये रक्खा, उसका अंदाजा तो हम खुद ही लगा सकते है।

सामंतों के पतन के बाद अली आदिलशाह के वजीर ने शिवाजी से एक गुप्त समझौता किया। इस संधि की शर्तों या जरियों के बारे में कुछ ज्ञात नहीं है। परन्तु इस समझौते को शाहजी द्वारा संपादित होने की संभावना भी कम नहीं है। इतना निश्चित है कि अपने शत्रु विश्वाशघाती घोरपड़े के मरते ही अपने दूसरे पुत्र वेन्कोजी के साथ कर्नाटक से शिवाजी के पास मिलने गये। अपने इस मिलन की अनुमति उन्होंने दर्बार से ली थी। शिवाजी ने अपने पिता का हार्दिक स्वागत किया। हिन्दुओं में प्रचलित पिता का सम्मान करने में उन्होंने कोई कमी नहीं की। उनसे मिलने वे कई मील आगे अगवानी के लिये आये। उन्होंने अपने पिता के चरणों में अपना सिर झुकाया और पालकी के साथ-साथ पैदल चलते रहे। उन्होंने तब तक आसन नहीं ग्रहण किया जब तक शाहजी ने बैठने के लिये उनको बार बार आदेश नहीं दिया। उन्होंने शिवाजी के यहाँ कुछ सप्ताह बिताये और उनके क्षेत्र का निरीक्षण किया। शिवाजी की प्रगति पर वे बहुत खुश हुए और वापस लौट आये। आते समय शिवाजी ने बीजापुर के सुल्तान के लिये ढेरों उपहार दिये, और शाहजी द्वारा कराये हुये इस गुप्त समझौते के पक्ष में शक्तिशाली प्रभाव यह है कि शाहजी की इस यात्रा के बाद ही शिवाजी और बीजापुर की शत्रुता समाप्त हो गई और जब तक शाहजी जीवित रहे उनका संबन्ध प्रायः मित्रतापूर्ण ही रहा। सिवाय इसके कि कभी-कभी शिवाजी बीजापुर की सीमा में अग्रसर हो जाते, परन्तु तब भी बीजापुर वाले प्रायः शांत रह जाते, और नयी सीमा शांतिपूर्वक निर्धारित कर ली जाती थी।

मराठों में एक धारणा यह भी है कि शिवाजी को राजगढ़ से हटा कर रायरी को अपनी राजधानी बनाने की सलाह शाहजी ने ही दी थी, परन्तु इतना निश्चित है कि उन्होंने इसी समय उसका नाम रायगढ़ रख दिया था। आबाजी सोनदेव को किले के भीतर ही नागरिक सुविधाओं के लायक भवन बनवाने का आदेश दिया गया। जनता के रहने योग्य आवासों के साथ साथ अपने प्रमुख प्रशासन अधिकारियों के लिये भी आवास स्थान बनवाने का प्रवन्ध हुआ। इन निर्माण कार्यो में काफी समय लगा। इसके अतिरिक्त किले की प्राकृतिक अगमता को और भी अगम और दुर्भेद्य बनवाने में काफी श्रम और समय लगाया गया।

अब शिवाजी के अधिकार में पूरा कोंकण क्षेत्र, कल्याण से लेकर गोआ तक का क्षेत्र घेरे हुये तथा कोंकण घाटमाथा की ओर सीमा से तराना तक का १६० मील लम्बा क्षेत्र था। उनकी राज्य सीमा चौड़ाई में, जंजीरा से लेकर सूपा तक का क्षेत्र-अँगरेजी मील के हिसाब से १०० मील से अधिक नहीं थी। उनकी सेना की संख्या उनके अधिकृत क्षेत्र की तुलना में अधिक थी, परन्तु जब हम उनके नाना प्रकार के साधनों के ऊपर देखें तो हमें सेना की अधिकता पर आश्चर्य नहीं होगा और हमें उनकी ५०००० पैदल और ७००० सवार सेना को अतिशयोक्ति समझना चाहिये।

सातवाँ अध्याय

मुगलों के साथ संघर्ष

[१६६२-१६६७]

मुगल क्षेत्रों पर शिवाजी का आक्रमण—शिवाजी को दबाने के लिए शाइस्ता खाँ का भेजा जाना—पूना तथा चाकन पर विजय—शाइस्ता खाँ की मदद के लिए जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह का भेजा जाना—शिवाजी का साहसिक प्रयास—शाइस्ता खाँ का वापस बुलाया जाना—दक्षिण में शहजादा मुअज्जम तथा जसवन्तसिंह की नियुक्ति—शिवाजी द्वारा सूरत में लूटपाट—शाहजी की मृत्यु—शिवाजी द्वारा राजा की पदवी ग्रहण करना एवं अपने नाम का सिक्का चलवाना—अहमदनगर में लूटपाट—दक्षिण के विषय में औरंगजेब का विचार और उसकी नीति—जयसिंह का आगे बढ़ना—शिवाजी सावधान और परेशान—पुरन्दर पर आक्रमण और बचाव—शिवाजी द्वारा हार मानना—बीजापुर से युद्ध—शिवाजी और वेंको जी एक दूसरे के विरुद्ध—शिवाजी का दिल्ली गमन और औरंगजेब द्वारा कैद किया जाना—शिवाजी का भाग कर दक्षिण पहुँचना—जयसिंह की प्रगति—दिल्ली लौटते समय जयसिंह की मृत्यु।

औरंगजेब से अलग होने बाद से शिवाजी बीजापुर से होने वाली लड़ाइयों में ही कुछ इस तरह उलझे रह गये कि वे मई १६६१ में हिन्दुस्तान में घटित होने वाली घटनाओं का तो लाभ न उठा सके साथ ही मुगलों द्वारा कल्याण पर अधिकार कर लेने पर भी वे अपनी परिस्थितियों के कारण उनका विरोध न कर सके। फिर भी उन्होंने अब तक काफी सेना एकत्रित कर ली थी। उनकी पैदल सेना मोरोपन्त के नेतृत्व में थी और घुड़सवार दल नेताजी पालकर के नेतृत्व में था। वर्षा ऋतु में ही मोरोपन्त ने जुन्नार के उत्तर के कई महत्वपूर्ण मोर्चों पर अधिकार कर लिया, परन्तु इनका कोई विस्तृत एवं सन्तोषजनक विवरण प्राप्त नहीं है। ज्योंही सड़कों की दशा कुछ ठीक हुई, नेताजी पालकर ने मुगलों के क्षेत्रों पर निर्दयता से आक्रमण कर नष्ट करना आरम्भ कर दिया। उसे गाँवों को लूटने तथा शहरों से कर वसूलने का आदेश ही प्राप्त था। परन्तु वह आदेशों से बहुत अधिक आगे बढ़ गया। उसने औरंगाबाद तक सम्पूर्ण क्षेत्र को रौंद डाला, सभी दिशाओं में आतंक फैला दिया और तूफान की तरह सभी दिशाओं को प्रकाशित करते हुए सुरक्षित और सफलता पूर्वक पूना लौट आया।

शाइस्ता खां* को अमीरुलउमरा का खिताब देकर दक्षिण के प्रतिनिधि के रूप में शाहजादा मुअज्जम के स्थान पर नियुक्त किया गया। उसे बादशाह द्वारा इन साहसिक उपद्रवियों को दबाने, शिवाजी के क्षेत्र में युद्ध मचाने तथा उसके किलों को ध्वस्त करने का हुक्म मिला।

इस आदेश को पा कर शाइस्ता खां ने एक बड़ी सेना सज्जित कर औरंगाबाद से कूच कर दिया। सेना के साथ वह अहमदनगर और पेरगांव होते हुए, पश्चिम घूमकर पूना की तरफ

---

* औरंगजेब का मामा तथा उस नूरमहल का भतीजा था जिसका नाम भारत के इतिहास की अपेक्षा मूर लिखित 'लालारुख' के द्वारा अधिक प्रचारित हुआ।

बढ़ने लगा। राह में ही उसने सूपा पर अधिकार करने के लिए एक टुकड़ी उधर भेज दिया और सिन्धखेड़ के देशमुख जादव राव को (जो कि शिवाजी का रिश्तेदार था) उन क्षेत्रों पर अधिकार रखने के लिए छोड़ दिया। मुगल सेना के पास पहुँच जाने पर शिवाजी ने राजगढ़ छोड़ दिया और सिंहगढ़ को अपना मुख्य निवासस्थल एवं केन्द्र बनाया। शाइस्ता खाँ ने पूना पर अधिकार कर लिया एवं कटरुज घाट तथा सेवापुर नामक गाँव पर अधिकार करने के लिये शक्तिशाली सेनाएँ भेजी। विभिन्न किलों की स्थिति तथा शक्ति का अनुमान लगाने के लिए हर दिशा में जासूसों के दल भेजे गए। जुन्नार के रास्ते में चाकन ही उसके लिए एक असुविधाजनक गढ़ था। शाइस्ता खाँ ने सोचा कि यह साधारण स्थान दखल कर लेने में कोई कठिनाई न होगी और दुर्गरक्षक एक भी हमला न सम्भाल सकेंगे और आत्मसमर्पण कर देंगे। यही सोच कर वह मुख्य सेना के साथ चाकन की तरफ बढ़ चला। परन्तु फिरंगोजी नरसल, जो १६४६ से ही चाकन का दुर्गरक्षक था, आत्मसमर्पण करने के इन्कार कर दिया और बड़ी वीरता एवं साहसपूर्वक दुर्ग की सुरक्षा में लग गया। लगभग दो महीने तक वे लोग बहादुरी से मुगल सेना का मुकाबला करते रहे। अन्त में घेरा डालने के ५६वें दिन उत्तरी-पूर्वी मोर्चे के पास अचानक एक खान में विस्फोट हो जाने के कारण दीवाल का एक बहुत बड़ा भाग उड़ गया और किले की काफी सेना विस्फोट से मृत्यु के मुँह में चली गई। मुगल सेना तो अवसर की ताक में थी ही, मुगल बडी तेजी से आगे बढ़े परन्तु किले की बची हुई सेना को लेकर उनके वीरनायक ने इतनी दृढ़ता से मुगलों की सेना का सामना किया कि मुगलों की एक न चली। किले की सेना शाम तक अपने स्थान पर डटी रही। रात्रि में युद्ध समाप्त हो गया और सुबह फिरंगोजी ने मुगलों से सन्धि कर ली। शाइस्ता खां ने उसके व्यवहार से प्रसन्न होकर उसका बहुत आदर किया और उसे शाही दरबार में सम्मिलित कर लेने के लिए बहुत प्रलोभन दिए; परन्तु फिरंगोजी ने अपनी पूर्व अर्जित कीर्ति पर धब्बा नहीं लगाया और इन प्रलोभनों से मुँह मोड़ लिया। शाइस्ता खां ने ससम्मान उसे मुक्त कर दिया और वह पुनः शिवाजी के पास पहुँच गया। शिवाजी ने उसकी बहुत प्रशंसा की एवं पुरस्कृत किया।

मुगलों के अपने अनुमान के अनुसार चाकन के घेरे में ९०० सैनिक हताहत हुए, फिरंगोजी की दृढ़ सुरक्षा के समक्ष यह संख्या कुछ अधिक नहीं है। परन्तु इस युद्ध से शाइस्ता खाँ के दिल में यह विचार दृढ़ हो गया कि पहाड़ी किलों पर अधिकार कर लेना बहुत ही कठिन और साहसिक कार्य है। इसके विपरीत औरंगजेब की नजर में पहाड़ी किलों को फतेह करना चुटकियों का खेल था, और वह सदैव ही मराठों को अपना महानतम शत्रु मानकर उनसे उलझा रहा। औरंगजेब ने जोधपुर के राजपूत राजा जसवन्त सिंह को नई ताकत के साथ शाइस्ता खाँ को सहायता पहुँचाने का हुक्म दिया। जब जसवन्त सिंह वहाँ पहुँचा, पूरी सेना पूना के पास निष्क्रिय पड़ी हुई थी, जब कि नेताजी पालकर ने फिर अहमदनगर और औरंगाबाद के जिलों को रौंदते हुए लूटपाट तथा अग्निकांड करना शुरू कर दिया।*

सन १६६३ ई०]

तुरन्त एक सैन्य दल नेताजी पालकर को रोकने के लिए भेज दिया गया, और इस बार शाही सेना कुछ मराठा सैनिकों को मृत्यु के घाट उतारने में सफल हो गई। उन्होंने नेताजी का पीछा करना जारी रखा और नेताजी स्वयं भी घायल हो गया, सम्भवतः वह मुगल सेना के

---

* मराठा पाण्डुलिपि और खफी खाँ।

हाथ में भी पड़ जाता यदि बीजापुर के सिपहसालार रुस्तम जमाँ ने भागने में उसकी मदद न की होती ।†

इस दौरान में शाइस्ता खाँ ने पूना में अपना डेरा डाल दिया और दादाजी कोणदेव द्वारा बनाए हुए मकान में रहने लगा । शिवाजी के पड़ोस में ही होने की आशंका से तथा उनकी छल-एवं कपटपूर्ण नीति से पूर्णतः परिचित होने के कारण शाइस्ता खाँ ने बहुत सावधानी से सब प्रबन्ध किया यद्यपि शिवाजी के लिए ऐसे घेरों का तोड़ना उनके बाएँ हाथ का खेल था । बिना अनुमति-पत्र के कोई भी सशस्त्र मराठा पूना में प्रवेश नहीं पा सकता था, और केवल उन्हीं मराठा घुड़सवारों पर विश्वास किया जाता था जो बादशाह द्वारा जागीर प्राप्त किए हुए किसी सरदार के अधीन होते थे ।

पूना में जो कुछ भी हो रहा था, शिवाजी को राई रत्ती खबर थी । उन्होंने शाइस्ता खाँ को आश्चर्यचकित कर देने की एक योजना बनाई । शहर में प्रवेश पाने के लिए आवश्यक कार्रवाई* करने के ध्येय से दो ब्राम्हणों को पहले ही शिवाजी ने पूना भेज दिया । सब तैयारी हो जाने पर, अप्रैल के महीने में एक दिन सूर्यास्त के कुछ समय बाद, कुछ पैदल सैनिकों को अपने साथ लेकर शिवाजी धीरे से सिंहगढ़ से बाहर निकले और सैनिकों को छोटी छोटी टुकड़ियों में बाँट कर सड़क के दोनों तरफ छिपा दिया । उनके साथ यशजी कंक, तानाजी मालसुरे और २५ मावली ही उनके साथ पूना शहर के भीतर गए । उनके भेजे हुए ब्राम्हणों ने शाइस्ता खाँ की सेना के एक मराठा सैनिक को अपनी ओर मिला लिया था । उस सैनिक ने शाइस्ता खाँ से एक ब्याह के सिलसिले में शहर भर में बारात घुमाने और बाजा बजवाने की अनुमति प्राप्त कर ली । उसने कुछ ऐसे साथियों के लिए भी अनुमति प्राप्त कर ली जो कभी भी शस्त्र त्याग नहीं करते थे । चूंकि पूना एक खुला हुआ नगर था तथा अनुमति भी मिल ही चुकी थी, अतः शिवाजी अपने दल के साथ गुप्त रूप से उसी भीड़ में मिल गए और साथियों सहित भीड़ के साथ आगे बढ़ चले ।

रात्रि के सन्नाटे में, शाइस्ता खाँ के निवास-गृह के एक एक मोड़ से पूर्व परिचित शिवाजी साथियों सहित हाथ में कुल्हाड़ियाँ लेकर बावर्चीखाने की तरफ बढ़े जहाँ कि एक ऊँची खिड़की बनी हुई थी । उन्होंने उसी खिड़की में से अपना रास्ता बनाया परन्तु शाइस्ता खां के हरम की कुछ औरतों ने उन्हें देख लिया और उन्होंने दौड़कर शाइस्ता खां को जगा दिया । शाइस्ता खां ने भागने की तैयारी की, परन्तु एक खिड़की से उतरते समय उसके हाथ पर वार किया गया जिससे उसकी एक उँगली कट गई । अपने प्रबल भाग्य से ही बिना किसी अन्य चोट के सुरक्षित निकल भागा परन्तु उसका बेटा अब्दुल फतह खां और उसके बहुत से रक्षक सैनिक मारे गए ।

शिवाजी अपने साथियों के साथ बिना किसी प्रतिरोध के वापस निकल आए और सड़क के आसपास छिपाए हुए सैनिकों को एकत्रित करके सिंहगढ़ की तरफ वापस लौट चले, लगभग तीन चार मील दूर निकल जाने के बाद उन्होंने पहले से ही तैयार की हुई मशाल जला लिया और इस प्रकार मुगल सेना को चुनौती देते हुए तथा उनका उपहास करते हुए वे मशालों के प्रकाश से मुगलसेना की आंखों को चौंधियाते हुए उनके सामने से सिंहगढ़ में प्रवेश कर गए ।

---

† मराठा पाण्डुलिपि और अंग्रेजी वृत्तान्त ।

* मराठा पाण्डुलिपि और १२ अप्रैल १६६३ को राजापुर में कैद अंग्रेज दूतों द्वारा लिखे पत्र के आधार पर ।

शिवाजी की यह साहसिक गाथा कितने गर्व से मराठों द्वारा गाई जाती है, उतने गर्व से कोई दूसरी नहीं। इस अपमान का बदला लेने के लिए दूसरे दिन प्रातःकाल मुगल घुड़सवारों के एक दल ने सिंहगढ़ पर धावा किया। मराठे तब तक शान्त रहे जब तक कि मुगल सैनिक बाजा बजाते और तलवारें चमकाते हुए किले के एकदम पास तक न आ गए। इसी समय अचानक गोलियों की बौछार आई और मुगल सैनिक घबराकर पीछे हट गए। शिवाजी की घुड़सवार सेना के एक दल का नायक सर्तोजी गूजर ने, जिसे नेताजी पालकर ने पीछे छोड़ रखा था, अवसर पाकर मुगल घुड़सवारों पर धावा बोल दिया; और यह हमला इतना भयानक और अचानक हुआ कि मुगल सैनिक सर पर पाँव रखकर भाग खड़े हुए। यह पहला ही अवसर था कि मराठों के हाथों मुगल सेना की इतनी बेइज्जती हुई और मराठों ने मुगल घुड़सवारों का दूर तक पीछा किया सर्तोजी गूजर ने, विजय से उत्साहित हो कर कई मुगल टुकड़ियों को काट डाला जिससे मुगलों को अपनी चौकियों को और शक्तिशाली बनाने के लिए मजबूर होना पड़ा।

इसी प्रकार की छोटी-छोटी घटनाओं से शाइस्ता खाँ, जो कि पहले से ही दुखी और मर्माहत था, हतोत्साहित हो गया। एक योग्य सिपहसालार की दृष्टि से परिस्थितियों का सामना करने के बजाय उसने सारा दोष जसवन्त सिंह की लापरवाही और उसकी सेना की अनुशासन हीनता पर मढ़ते हुए बादशाह औरंगजेब के पास यह शिकायत भी भेजी कि जसवन्त सिंह ने शिवाजी से घूस लेकर मराठों की मदद किया। जब शाइस्ता खाँ की विपत्ति एवं दुर्दशा और उसके तथा जसवन्तसिंह के बीच वैमनस्य एवं मतभेद की खबर औरंगजेब को मिली, उस समय वह काश्मीर की यात्रा के लिए तैयार था। उसने पहले तो दोनों व्यक्तियों को दक्षिण से बुलाकर शाहजादा मुअज्जम को दक्षिण का शाही प्रतिनिधि बनाकर भेज दिया, परन्तु बाद में उसने शाइस्ता खाँ को बंगाल का सूबेदार बना दिया और जसवन्तसिंह को शाहजादा मुअज्जम के मातहत कार्य करने के लिए फिर दक्षिण भेज दिया।

जसवन्तसिंह ने सिंहगढ़ पर घेरा डालने की एक योजना बनाई, पर कुछ कारणवश वह अपनी योजना पूरी न कर सका। काफी शक्तिशाली सेना जुन्नार और चाकन * में छोड़कर मुख्य सेना को लेकर वह औरंगाबाद वापस लौट गया और वहीं बैठकर योजनाएँ बनाता रहा।

शिवाजी प्रायः अपने इरादों के विषय में झूठी अफवाहें फैलाते रहते थे। कल्याण के पास तथा डान्डा राजेपुर के पास उन्होंने एक से एक बड़ी सेनाएँ एकत्रित कर रखा था। उन्होंने प्रचारित कर दिया था कि ये सेनाएँ बेसिन और चोल में पुर्तगालियों पर हमला करने के लिए और सिद्दी को ध्वस्त करने के लिए एकत्रित की गई हैं। परन्तु वास्तव में शिवाजी इन सेनाओं की सहायता से सूरत को लूटने का इरादा रखते थे जो कि उस समय के अत्यधिक समृद्ध नगरों में
से एक था। उनका विख्यात गुप्तचर बेहरजी नायक पहले से ही सूरत में आवश्यक
५ जनवरी] कार्रवाई करने के लिए जमा हुआ था। नासिक के पास एक देवालय में दर्शन करने
१६६४] तथा मोरो त्रिम्मल द्वारा हाल ही में जीते हुए किलों का निरीक्षण करने के बदले
शिवाजी उत्तर की तरफ चल पड़े। जब कि अपने कार्यक्रम के अनुसार उन्हें पूजा-

---

* इसी समय के लगभग, सेना के वापस हो जाने के बाद, शिवाजी चाकन की रक्षक सेना द्वारा गिरफ्तार होने से बाल-बाल बच गए जब कि वे तुकाराम द्वारा कही जाने वाली कथा सुनने के लिए पूना गये हुए थे। मराठा पाण्डुलिपि में भगवान पाण्डुरंग द्वारा शिवाजी की रक्षा किए जाने की चमत्कारी घटना का भी वर्णन है।

गृह में रहना चाहिए था, वे ४००० घुड़सवारों के साथ सरपट सूरत की ओर बढ़े जा रहे थे। सूरत के नगर-रक्षकों को चकित करते हुए शिवाजी ने पूरे दिन तक सूरत में लूट पाट मचाई, अपरिमित धन-सम्पत्ति प्राप्त की और निर्द्वन्द होकर सारा लूट का माल रायगढ़ भेज दिया जिसका निर्माण कार्य अब समाप्त हो गया था और जो शिवाजी का भावी शासन-केन्द्र बनने वाला था। सूरत में शिवाजी द्वारा की गई लूट पाठ एक बहुत ही साहसिक घटना थी और इसका महत्व अधिक बढ़ गया होता, यदि डचों और अंग्रेजों के कारखानों पर भी अधिकार कर लिया होता। परन्तु डच और अंग्रेज अपनी सुरक्षा के लिए पूर्णत: तत्पर थे, विशेषकर अंग्रेज, जिन्होंने न केवल अपनी, बल्कि आसपास के नागरिकों के जान-माल की भी रक्षा की। उस समय सूरत का प्रशासन सर जार्ज आरजेण्डन के हाथ में था। *

शिवाजी के लौटते ही उन्हें अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला। जनवरी १६६४ में में बेदनूर के निकट तुंगभद्रा नदी के तट पर बसे हुए बसूपट्टम गाँव में, जहाँ कि वे कुछ विद्रोही जमीदारों को दवाने में बीजापुर की सेना की सहायता करने के लिए गए थे, अचानक घोड़े से गिर जाने के कारण उनकी मृत्यु हो गई। अपनी मृत्यु के समय शाहजी के अधिकार में बीजापुर दरबार द्वारा दिए गए जिलों और जागीरों के अतिरिक्त अर्णी का किला, नोवो बन्दरगाह † और तन्जौर ‡ भी था। शाहजी अली आदिलशाह के प्रियपात्र थे इसलिए उनके द्वारा जीते हुए क्षेत्रों को अली आदिलशाह ने उन्हीं के अधिकार में रहने दिया।

अपने पिता के अंतिम संस्कार तथा क्रिया कर्म में ही, जो कि उन्होंने सिंहगढ़ में किया, शिवाजी कुछ दिनों तक व्यस्त रहे। क्रियाकर्म एवं श्राद्ध से निवृत्त हो जाने के बाद वे रायगढ़ चले आए। वहाँ अपने प्रधान सहयोगियों एवं मंत्रियों के साथ विभिन्न प्रशासकीय विभागों एवं कार्यों का कई महीनों तक निरीक्षण करते रहे और इसी अवसर पर उन्होंने राजा की पदवी ग्रहण की और अपने नाम का सिक्का ढलवाया एवं प्रचारित किया।

नेताजी पालकर नियमपूर्वक वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होते ही वापस लौट आए, उन्होंने काफी सफलता प्राप्त की थी। शिवाजी के जहाजी वेड़े ने भी कुछ स्थानों पर कब्जा करने में सफलता प्राप्त की थी। अन्य जहाजों के साथ उन्होंने मक्का जाने वाले कुछ मुगल जहाजों को भी रोक लिया था एवं हज करने के लिए जाने वाले धनी मुसाफिरों से धन भी वसूल किया था।

---

* इस अवसर पर सूरत पर मराठों के इस छापे का अंग्रेजी कारखाने के विवरण में बड़ी स्पष्टता से वर्णन है, अन्य लोगों की जान माल की रक्षा करने के लिए फलस्वरूप औरंगजेब ने सदैव के लिए सूरत में लाए जाने वाले सभी देशों के सामान पर लगने वाले महसूल का एक भाग अंग्रेजों के माल पर से हटा दिया गया। जब मराठे लूटमार कर रहे थे, शिवाजी शहर के बाहर ही खड़े थे। स्मिथ नाम के एक अंग्रेज को लोग बन्दी बनाकर शिवाजी के पास ले गए। इस अंग्रेज के बयान के अनुसार शिवाजी एक तम्बू में बैठ कर धन छिपा देने वाले व्यक्तियों का सर एवं हाथ काट लेने का आदेश दे रहा था। उस समय तक सूरत में कच्ची दीवालें बनती थीं। पर अब पक्की दीवालें बनने का हुक्म दिया गया।

† इंगलिश रिकार्डस में जुलाई १६६१ में शाहजी द्वारा पोर्ट नोवो पर किये जाने का वर्णन मिलता है।

‡ सभी मराठा पाण्डुलिपियों में शाहजी द्वारा तन्जौर विजय का वर्णन है।

अगस्त महीने में शिवाजी ने अहमदनगर के पेठ को लूटा और औरंगाबाद के पास तक लूटमार एवं बरबादी करते हुए निकल गये। उनकी अनुपस्थिति में दो सिपहसालारों के अधीन पन्हाला में टिकी हुई बीजापुर की सेना ने, सन्धि को तोड़ कर कोंकण को वापस ले लेने का प्रयत्न किया। उन्होंने कुछ स्थानों पर अधिकार भी कर लिया। जैसा कि उस समय के अंग्रेजों के संस्मरण से ज्ञात होता है, शिवाजी किसी भी स्थल पर किसी भी समय उपस्थित हो सकते थे और किसी भी संकट का सामना किसी भी अवसर पर कर सकते थे। अभी बीजापुर की सेना अधिक दूर तक नहीं बढ़ पाई थी कि अचानक एक बड़ी सेना के साथ स्वयं शिवाजी युद्ध-क्षेत्र में आ डटे। अचानक युद्ध हुआ और बीजापुर की सेना, असंख्य सिर कटा कर और हार कर भाग खड़ी हुई।* विंगोला, जहाँ के निवासियों ने सम्भवतः शिवाजी का विरोध किया था को, शिवाजी ने पूर्ण रूप से फुँकवा डाला। इसके बाद शिवाजी तुरन्त मुगलों की खोज-खबर लेने के लिए सिंहगढ़ की तरफ चल पड़े क्योंकि मुगलों की जुन्नार की छावनी में बहुत अधिक सेना एकत्रित हो जाने के कारण शिवाजी को मुगलों द्वारा किसी हमले की आशंका थी परन्तु यह पता लगने पर कि मुगल सेना अपनी तरफ से पहला आक्रमण नहीं करेगी, शिवाजी ने अपनी घुड़सवार सेना के एक भाग को बीजापुर में कृष्णा नदी के दक्षिण भाग में लूटमार करने के लिए भेज दिया। इसी बीच उन्होंने एक और खतरनाक साहसिक योजना बना डालीं। इस योजना को पूरी करने के लिए उन्होंने पहिले से ही हर तरफ लोगों में यह विश्वास जमा दिया कि उनका इरादा मुगलों को छकाने का है। जब कि यह अफवाह जोरों से फैली हुई थी।

१६६५]

शिवाजी ने एक तगड़ा जहाजी बेड़ा † तैयार किया। लगभग चार हजार सैनिकों के साथ समुद्र तट की ओर बढ़ चले। मंलवन से उन्होंने जलयात्रा प्रारम्भ की और गोआ से १३० मील दक्षिण में बार्सीलोर पर एक झपट्टा मारा और तुरन्त सभी सैनिकों के साथ गोकर्ण तक वापस चले आए। इधर लोगों को इस बात का भी निश्चय न था कि शिवाजी ने राजधानी छोड़ी भी या नहीं। शिवाजी ने उक्त स्थान पर बेड़े के अधिकांश लोगों को छोड़ दिया और पास ही के एक मन्दिर में प्रार्थना एवं पूजा की। तत्पश्चात अपने सैनिकों को छोटे-छोटे दलों में बाँटकर पूरे क्षेत्र में फैला दिया और आसपास के समृद्ध व्यापारिक नगरों से अपरिमित धन लूटा ‡ परन्तु कारवार के लोग मुकाबले के लिए तैयार हो गए। शिवाजी को धन उगाहने का केवल एक ही अवसर मिल पाया। इसके पश्चात अपनी टुकड़ियों को स्थलमार्ग से भेज दिया और स्वयं फिर जलमार्ग से रायगढ़ वापस लौट चले। ×

---

* कारवार और रायपुर में रहने वाले अंग्रेजी कारखानों के कर्मचारियों ने इस युद्ध में बीजापुर की सेना के ६००० से अधिक सैनिकों के मारे जाने का वर्णन किया है।

† कारवार फैक्टरी के एक पत्र के अनुसार इस बेड़े में ८५ छोटे लड़ाकू जहाज और ३ बड़े आकार के जहाज थे। छोटे जहाजों से पत्रलेख का मतलब शायद ३० से १५० टन तक के वजन वाली एक मस्तूल वाली नावों से है, जो मलाबार तट पर यदाकदा दिखाई पड़ती है।

‡ इस लूटपाट में अंग्रेजी कारखाने ने ११२ स्टर्लिंग दिया था।

× मराठा पाण्डुलिपि एवं इंगलिश रिकार्डस पहली के अनुसार इस यात्रा में शिवाजी ने हसनूर को लूटा जब कि दूसरी में बार्सीलोर के लूटे जाने का उल्लेख है। मराठों के अनुसार हसनूर (जिसकी स्थिति मैं नहीं जानता हूँ) गोआ क्षेत्र के बर्डिज में एक नगर है।

इस यात्रा में शिवाजी को आशा से अधिक समय लग गया। एक तगड़ी हवा ने उनको समुद्र से बहुत दूर कर दिया, साथ ही उत्तरी-पश्चिमी हवाओं ने भी उन्हें कई दिनों तक समुद्र पर ही फँसाए रखा। इस देरी का कारण ऐसा कहा जाता है कि उनकी आराध्या देवी भवानी का उनके ऊपर कोप था, और इस प्रकार से देवी भवानी ने इस यात्रा के लिए शिवाजी पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट की। यही केवल एक ऐसा समुद्रीय अभियान था जिसमें शिवाजी ने व्यक्तिगत रूप में भाग लिया था।

परन्तु शिवाजी के लिए इन पीछे ढकेलने वाली हवाओं तथा समुद्री बीमारी से भी अधिक बेचैन कर देने वाली विपत्ति उनकी वापसी की प्रतीक्षा कर रही थी। उनका स्वागत करने के लिए मिर्जा राजा जयसिंह और दिलेर खाँ एक दुर्जय सेना लेकर आगे बढ़े।

पहली दृष्टि में यह आश्चर्यजनक मालूम पड़ता है कि इस प्रकार घटनाओं के बावजूद भी शिवाजी के ऊपर भयंकर हमला करने में औरंगजेब ने अधिक उत्साह नहीं दिखाया, परन्तु सोचने पर इसके कुछ कारण मिल सकते हैं। उसने स्वयं भी पिता को कैद कर और भाइयों को मारकर बादशाहत प्राप्त किया था, अपनी स्वभावगत ईर्ष्या एवं अपहरण करने की प्रवृत्ति के फलस्वरूप वह अपनी स्थिति को अधिक सुरक्षित नहीं समझता था, वैसे भी वह किसी के ऊपर विश्वास नहीं करता था। साथ ही ईरान (फारस) दर्बार से भी कुछ मतभेद चल रहा था। औरंगजेब का विचार पूरे दक्षिण पर एक साथ अधिकार करने का था। यद्यपि औरंगजेब शिवाजी को घृणापूर्वक 'पहाड़ी चूहा' कहा करता था फिर भी सदा सतर्क रहा करता था।

शिवाजी द्वारा राजा की पदवी ग्रहण करने, अपने नाम का सिक्का ढलवाने, मुगलों पर किए गए हमलों तथा सूरत की लूटपाट से भी औरंगजेब उतना क्रोधित नहीं हुआ था, जितना कि हज करने के लिए मक्का जाने वाले खुदा के बन्दों के लूट लिए जाने पर हुआ। कट्टर मजहब परस्त तो औरंगजेब था ही, इस घटना को उसने अपने धर्म एवं बादशाहत का अपमान समझा और इन घटनाओं के लिए उत्तरदायी व्यक्ति को दण्ड देना उसने परमावश्यक समझा।

पहले मिर्जा राजा जयसिंह तथा दिलेर खाँ दारा के पक्ष में थे परन्तु औरंगजेब द्वारा पराजित हो जाने पर वे औरंगजेब के दरबार में सम्मिलित हो गये थे, जिसके लिए उन्होंने कई महत्वपूर्ण कार्य किए थे। बादशाह कभी भी जयसिंह का पूरा विश्वास नहीं करता था। दिलेर खाँ के भूतकालीन व्यवहार, उसके दृढ़ चरित्र और अपने देशवासियों का उसके प्रति विश्वास (जो कि अधिकांश शाही मुलालिम थे) आदि के कारण बादशाह उससे भी सशंकित ही रहता था। जिस स्थान पर वे अपनी जिम्मेदारी पूरी करने के लिए जा रहे थे, इस क्षेत्र एवं वहाँ के निवासियों के विषय में औरंगजेब तो पहले से ही जानता था परन्तु वे बिल्कुल अनभिज्ञ थे। इनके जिम्मे दो ही कार्य थे, शिवाजी पर किसी तरह काबू पाना और बीजापुर से पिछले वर्षों का अवशिष्ट कर वसूल करना। बीजापुर दरबार दिनोंदिन गरीब होता जा रहा था इसलिए अब युद्ध का बहाना ढूँढ़ने के लिए अवशिष्ट कर के तगाजें का सहारा लिया जाता था, ऐसी परिस्थितियों में बीजापुर से ही निपटना इन दोनों सरदारों को अधिक सुविधाजनक प्रतीत हुआ, जिन पर कि औरंगजेब विश्वास नहीं करता था, यद्यपि बादशाह यह बात अवश्य जानता रहा होगा कि जयसिंह के पास पर्याप्त साधन एवं शक्ति नहीं थी फिर भी उसने दिलेरखाँ और जयसिंह को, शिवाजी पर काबू पाने के बाद बीजापुर पर भी अधिकार कर लेने का आदेश दिया। औरंगजेब को किसी व्यक्ति

पर इतना विश्वास नहीं था कि वह उसके अधीन एक बड़ी सेना कर देता। साथ ही जब से वह बादशाह हुआ तभी से उसकी यही नीति थी कि दक्षिण की रियासतों पर छिटपुट आक्रमण करके उनकी नीव इतनी कमजोर कर दी जाय कि जब भी बादशाह चाहे, उन रियासतों को अपने अधीन कर ले।

जब इस सेना ने कूच किया तो राजा जयसिंह के बेटे रामसिंह को दिल्ली दरबार में ही रहने का आदेश हुआ। प्रकट में तो ऐसा उसके पिता के सम्मान के लिए किया गया था परन्तु औरंगजेब ने उसको पिता द्वारा होने वाले किसी विश्वासदायी कार्य के लिए एक तरह से बन्धक रखा था। सारी योजना इस प्रकार बनाई गई थी कि जब शिवाजी ने अपनी जलयात्रा प्रारम्भ किया तो उन्हें जयसिंह के आगमन के विषय में कुछ भी पता न था। मुगल सेना ने नर्मदा नदी को फरवरी में पार किया। जसवन्तसिह और शाहजादा मुअज्जम वापस बुला लिए गए, शाहजादे से मुलाकात करने के लिए जयसिंह ने औरंगाबाद जाने का अवसर भी निकाल लिया, और भेंट करके पूना की तरफ बढ़ चला। जब वह अप्रैल में पूना पहुँचा तो उसने अपने उत्तरदायित्व का कार्य तुरन्त आरम्भ कर दिया। सर्वप्रथम उसने पुरन्दर को घेर लिया, और दिलेरखां को इस घेरे की जिम्मेंदारी सौंप कर उसने स्वयं सिंहगढ़ की नाकेबन्दी कर ली और सेना के कुछ भाग को रायगढ़ तक भेज दिया।

शिवाजी इसी समय समुद्र-यात्रा से वापस आ गए और जयसिंह की कारवाइयों का समाचार पाकर वे शीघ्रतापूर्वक रायगढ़ पहुँचे और अपने जीवन में पहली बार उन्होंने मुख्य-मुख्य सरदारों की एक बैठक बुलवाई और उनके समक्ष सारी समस्या रखी। यद्यपि दुश्मनों की गतिविधियों का निरीक्षण करना ही नेताजी पालकर का प्रधान कर्तव्य था परंतु उस समय वह घुड़सवार सेना के एक प्रमुख भाग के साथ वहाँ से बहुत दूर निकल गया था। उसके कर्तव्य की इस अवहेलना के लिए यद्यपि शिवाजी ने उसके खिलाफ कोई कारवाई तो नहीं की पर उस अपराध के लिए नेताजी को उन्होंने कभी भी क्षमा नहीं किया*। सर्तोजी गूजर को अपनी वीरता दिखाने का एक और अवसर प्राप्त हुआ। यद्यपि उसे मुख्यतः जासूसी का कार्य ही सौंपा गया, फिर भी मुगल घुड़सवारों के लिए चारा आदि का प्रबन्ध करने वाले कई दलों को उसने काट डाला और महत्वपूर्ण समाचार एवं भेद शिवाजी को देता रहा।

जयसिंह † की प्रसिद्धि, उसके सेना की ताकत एवं मुगलों के अप्रत्याशित आक्रमण से शिवाजी विशेष चिन्तित एवं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए, जैसा कि रायगढ़ में मन्त्रियों एवं सरदारों की बैठक से स्पष्ट हो जाता है। उनके पक्ष में बोलने वाले उनके देशवासियों का कहना है कि देवी भवानी ने शिवाजी को स्वप्न में दर्शन देकर पहले ही चेतावनी दे दी थी कि वह इस हिन्दू राजा से नहीं जीत सकता। जहाँ तक अनुमान लाया जा सकता है, शिवाजी अधिक हतोत्साहित नहीं हुए थे, परन्तु यह सम्भव है कि इस देवी की चेतावनी के कारण इस संकट में उनका व्यवहार द्विविधापूर्ण एवं अनिश्चयात्मक हो गया था।

---

* पाण्डुलिपि के आधार पर कहना है कि नेताजी को जयसिंह ने घूस देकर मिला लिया था, यद्यपि अन्य मराठा पाण्डुलिपियों में उसका उल्लेख नहीं मिलता, फिर भी इस विचार को सामान्यतः माना जा सकता है।

† इसे उसकी राजधानी के नाम पर अम्बेर का राजा भी कहा जाता है। अम्बेर को अब जयपुर कहते हैं। सम्भवतः महान ज्योतिषी जयसिंह उसका प्रपौत्र था जो कि १६९३ में गद्दी पर बैठा।

परन्तु रायगढ़ की इस अनिश्चयात्मकता का पुरन्दर की रक्षा में सलंग्न मराठा सैनिकों की वीर भावना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । मावलियों और हटकड़ियों की सेना से सुसज्जित उस गढ़ का नायक महार का बाजी प्रभु ‡ नाम का एक देशपाण्डे था । वह अपनी स्थिति की सुरक्षा में बहादुरी और सतर्कता से व्यस्त रहा । उसने हर कदम पर आक्रमणकारियों का मुकाबला किया, परन्तु कुछ बाहरी मोर्चों पर शत्रु का अधिकार हो जाने पर निचले दुर्ग की एक मीनार के नीचे की चट्टान को उड़ा देने की योजना दिलेर खाँ ने बनाई । गढ़ की सेना ने कई बार चट्टान पर कारवाई करने वाले सैनिकों को पीछे टेल दिया, परन्तु अन्त मे मुगल सैनिक चट्टान की आड़ में स्थिर होकर कारवाई करने का अवसर पा ही गए । कई असफल प्रयत्नों के बाद मुगल सैनिक उस चट्टान को तथा अन्य मोर्चों को उड़ा देने में सफल हो गए और इस प्रकार उन्हें सीधा आक्रमण करने का मार्ग मिल गया । * उन्होंने निचले किले पर अधिकार कर लिया, परन्तु जब दुर्ग की सेना ऊपरी दुर्ग की रक्षा करने के लिए ऊपर की ओर जा रही थी, उसी समय हमलावर परिणाम की चिन्ता किए बगैर खुले क्षेत्र में बिखर गए और घरों में लूट-मार मचाने लगे । उन्हें खुले मैदान में पाकर ऊपर से हतकड़ी गोलन्दाजों ने गोलों की ऐसी वर्षा की कि आक्रमणकारी सर छिपाने की जगह ढूंढ़ने लगे और बहुतों ने भाग कर बड़ी चट्टान के पीछे शरण ली । उसी समय अपने नायक के साथ मावली मरने मारने के लिए तैयार निकल पड़े और हाथ में तलवार लेकर, जो भी सामने पडा उसे काटते हुए दिलेर खाँ की नजरों के सामने ही मुगल सैनिकों को पहाड़ी के नीचे खदेड़ दिया । उस समय दिलेर खाँ पहाड़ी की तलहटी से हाथी पर बैठा हुआ युद्ध की प्रगति देख रहा था । अपनी सेना को भागते देखकर, उसने अपना धनुष सम्भाला, पास की सुरक्षित पठानों की टुकडी को आगे बढ़ने का हुक्म दिया, और भागने वालों का उपहास करते हुए अपना हाथी आगे बढ़ाया । परन्तु मराठे तो सर पर कफन बाँध कर निकले थे और जीतने के लिए जान तक देने को तैयार थे । वे इतने भयानक ढंग से मारकाट कर रहे थे कि अफगानों के दांत भी खट्टे कर दिये और मावलियों की तलवारों के आगे पठानों की एक न चली । इसी समय दिलेर खाँ ने मराठों के नायक को लक्ष्य करके एक तीर छोड़ा जिससे उस वीर का उसी स्थल पर गिर कर प्राणान्त हो गया।नायक के आसपास की सारी दुर्गरक्षक सेना नायक को मृत देखकर तुरन्त भागी और उन्होंने ऊपरी किले पर जाकर ही दम लिया । मुगलों ने फिर निचले गढ़ पर अधिकार कर लिया परन्तु ऊपर से गोलों की वर्षा के कारण उन्हें वहाँ से भाग जाना ही पड़ा । इस असफल हमले के बाद दिलेर खाँ ने वज्रगढ़ (मरहाठों के अनुसार रुद्रमहल) पर जो कि पुरन्दर के उत्तरी-पूर्वी कोने पर स्थित है, सीढ़ियों द्वारा चढ़ने की योजना बनाई क्योंकि वहाँ से ऊपरी किले पर गोलाबारी की जा सकती थी । दिलेर खाँ ने विचार किया कि किले का उत्तरी भाग (जिस पर हमला हुआ था) अजेय है और इसे तोड़ा नहीं जा सकता, इसलिए उसने वज्रगढ़ वाली योजना बनाई । इस प्रयत्न में वह सफल हुआ और ऊपरी किले को ध्वस्त करने के लिए तोपें भी वज्रगढ़ पर चढ़ा ली गईं परन्तु इसी समय वर्षा प्रारम्भ हो गई जिससे तोपें कायदे से

---

‡ इस नायक का उस बाजी प्रभु से कोई सम्बन्ध नहीं है जिसने पन्हालगढ़ से लौटते समय शिवाजी की रक्षा में जान की बाजी लगा दी थी ।

* पुरन्दर का उच्चतम शिखर १७०० फीट उँचा है । यहां ऊपरी और निचला, दो दुर्ग है जो शिखर से ३००-४०० फीट नीचे हैं ।

काम नहीं कर सकीं। इस समय मुगलोंकी तोपों की व्यवस्था भी बहुत खराब थी। यद्यपि वे १३ सप्ताह तक गोलाबारी करते रहे पर दुर्ग की प्रतिरक्षात्मक शक्ति जरा भी कम न हुई। परन्तु दुर्ग रक्षक सेना कुछ हतोत्साहित सी हो गई थी और दुर्ग से सूचना भेजी गई कि वे अब अधिक समय तक नहीं लड़ सकते। वे किला भी खाली कर चुके होते यदि शिवाजी के बिना किसी सूचना के किला न छोड़ने का आदेश उन्हें न दिया गया होता।

युद्ध प्रारम्भ होने के पहिले से ही जयसिंह से पत्रों एवं सन्देशों द्वारा सम्पर्क स्थापित करके शिवाजी किसी तरह समझौता कर लेने के चक्कर में थे और जयसिंह ने उन्हीं का पक्ष ग्रहण करने का आश्वासन भी दिया था। परन्तु जयसिंह शिवाजी की नीति से खूब परिचित थे, इसलिए अपनी युद्ध की तैयारी में कोई शिथिलता न आने दी। शिवाजी ने मुगल दरबार में स्थान प्राप्त करने तथा जीते हुए क्षेत्रों में से कुछ भाग को वापस कर देने की अपनी पुरानी योजना के विषय में गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगे।

इसी विचार से उन्होंने न्यायशास्त्री रघुनाथ पन्त को जयसिंह के पास भेजा। जयसिंह ने उसकी बातें सुनीं उनको उत्तर दिया और शिवाजी के कुछ प्रस्तावों से सहमत भी हो गया। परन्तु उसे शिवाजी की बातों पर तब तक विश्वास नहीं आया जब तक कि ब्राम्हण (रघुनाथ-पन्त) ने जनेऊ छूकर उसे विश्वास न दिला दिया कि शिवाजी धोखा देने का इरादा नहीं रखते। इस पर जयसिंह ने रघुनाथ पन्त को शिवाजी को इस बात का पूर्ण विश्वास करा देने के लिए कहा कि वह बादशाह द्वारा शिवाजी को केवल क्षमा ही नहीं कर देगा बल्कि वह बादशाह की कृपा दृष्टि भी शिवाजी पर बनाए रखने का प्रयत्न करेगा। जब कि इधर समझौते की बात उलझी हुई थी उसी समय शिवाजी रायगढ़ से परतापगढ़ और फिर जावली चले गए, यह अज्ञात है कि उनका उद्देश्य क्या था—सम्भवतः अपने असली इरादे को अपनी सेना से छिपाने के लिए ही वे रायगढ़ से हट गए थे।

जुलाई महीने में कुछ इने गिने सहायकों के साथ शिवाजी ने पहाड़ियों को पार किया, सीधे जयसिंह की ओर बढ़े और अपना परिचय शिवाजी राजा कह कर दिया। जयसिंह ने एक व्यक्ति को उन्हें लाने के लिए भेजा और शिवाजी के पहुँचने पर वह अपने खेमे में से निकला और उनसे गले मिला। जयसिंह ने उन्हें अपने दाहिने आसन दिया, उनके साथ बड़ा सम्मानजनक व्यवहार किया और रघुनाथ पन्त को दिये गए आश्वासनोंको बार-बार दुहराया। जयसिंह से भेट करने के बाद वे दिलेर खाँ की तरफ चले जो कि अभी भी पुरन्दर गढ़ को घेरे बैठा था। । शिवाजी और जयसिंह के बीच हुई सन्धि वार्ता की खबर वह पा चुका था और इस बात पर जलाभुना बैठा था कि सन्धिवार्ता पहले उसी के साथ क्यों न की गई। उसने पुरन्दर को मिट्टी में मिला देने की और सभी मराठा सैनिकों को तलवार के घाट उतारने की धमकी दी, परन्तु यह केवल धमकी ही थी। शिवाजी की नीतिपूर्ण तथा शान्त ढंग से की गई बातों से उसका क्रोध धीरे धीरे समाप्त हो गया। शिवाजी ने अपने हाथ से किले के फाटक की कुंजी उसको सौपते हुंए कहा कि मेरे सब गढ़ और मेरा राज्य-क्षेत्र, सब आप ही के हैं, मुझे तो केवल क्षमा ही चाहिए। उन्होंने कहा कि मुगल सेनाओं का मुकाबला करके तथा उनकी वीरता का अनुभव प्राप्त करके वे औरगंजेब की इस महान और अजेय सेना का विरोध करने की अपनी गलती को स्वीकार करते हैं तथा अब उन्हें बादशाह की सेवा करने में ही गर्व होगा।

दिलेर खां की छावनी में शिवाजी के प्रवेश करते ही युद्ध स्थगित हो गया था और बादशाह के पास स्वीकृति के लिए भेजे जाने वाले सन्धि-पत्र में, कई बार की बैठकों के बाद, निम्न लिखित सुलह की शर्तें लिखी गईं, परन्तु यह सुलहनामा जयसिंह द्वारा उत्तरदायित्व लेने पर ही बनाया गया था क्योंकि बिना जयसिंह के शिवाजी मुगल सेना के बीच अपने को सुरक्षित नहीं समझ सकते थे। शिवाजी ने सन्धि-वार्ता प्रारम्भ करने के पहले ही नजराने के तौर पर वे सभी किले औरंगजेब को दे दिये जो कि उन्होंने मुगलों से छीन लिया था। निजामशाही क्षेत्र मे जिन किलों को उन्होंने जीत लिया था या जिन किलों को उन्होंने स्वयं बनवाया था, ऐसे ३२ किलों में से २० किले जयसिंह को दे दिये जिनमें पुरन्दर और सिंहगढ़ भी सम्मिलित थे। इन किलों से सम्बन्धित सभी गांव भी उन्होंने इसी समय समर्पित कर दिया। शेष १२ किलों * से सम्बन्धित क्षेत्र (जिनकी सालाना मालगुजारी १ लाख पैगोडा थी,) और उनके अधिकृत अन्य क्षेत्रों को शिवाजी ने अपनी जागीर में सम्मिलित करने तथा उस जागीर का बादशाह के अधीन रखने का प्रस्ताव रक्खा। धार के ऊपर कुछ किलों को भी बादशाह को देने का उन्होंने प्रस्ताव किया जिनकी चौथ या सरदेशमुखी (मालगुजारी का चौथा भाग या दसवाँ भाग)से प्राप्त आय अनुमानतः ५ लाख पैगोडा थी। इन जिलों की मालगुजारी वसूलने का उत्तरदायित्व भी अपने ही ऊपर रखा। शिवाजी औरंगजेब की कृपा तथा रक्खे गए अपने प्रस्तावों को बादशाह से स्वीकृत कराने के लिए इतने उत्सुक थे कि उन्होंने ३ लाख पैगोडा प्रति वर्ष के हिसाब से चालीस लाख पैगोडा बादशाह को ऊपर से देना भी स्वीकार किया और अपने लिए एक अच्छी सेना रखने की इजाजत भी चाही। †

औरंगजेब ने शिवाजी को लिखे हुए अपने लम्बे पत्र में पहले उन सभी शर्तों को जो पुरन्दर में तैयार की गई थीं, स्वीकृति प्रदान किया है, फिर १२ किलों के नाम गिनवाये हैं, और शिवाजी के पुत्र को ५ हजारी मनसब से सम्मानित करने का वादा भी किया है। पत्र में औरंगजेब ने चौथ और 'सरदेशमुखी' के विषय में कुछ विशेष नहीं लिखा है, शायद वह इन शब्दों या उनमें अन्तर्निहित बातों को नहीं समझ पाया। बादशाह स्वयं भी बीजापुर को अपने अधीन करना चाहता था और इसलिये उसने एक शर्त रख दिया कि वह शिवाजी के प्रस्तावों को तभी मानेगा जब शिवाजी बीजापुर को फतह करने के लिए अपनी सेना सहित जयसिंह का साथ दें और अन्त में वादा किए हुए धन की एक साल की किस्त ३ लाख पैगोडा भेज देने का हुक्म है।

इस सुलहनामे के अनुसार अपने २००० घुड़सवारों तथा ८००० पैदल सैनिकों के साथ शिवाजी जयसिंह से आ मिले। नवम्बर के महीने में उनकी सम्मिलित सेनाएं कूच कर पड़ीं और उनका पहला निशाना था बीजापुर का एक जागीरदार बजाजी नामक निम्बलकर जो शिवाजी का रिश्तेदार भी था। उन्होंने पल्टन किले को जीता जबकि तटोरा के किले पर शिवाजी के मावालियों ने सीढ़ी द्वारा किले पर चढ़ कर उस पर कब्जा कर लिया। इसी तरह रास्ते में जितने भी छोटे बड़े किले मिले उन सब पर उन्होंने अधिकार कर लिया।

---

* शेष १२ गढ़ में थे १-राजगढ़ २. तोरण ३. रायगढ़ ४. लिनगाना ५. महारगढ़ ६. बालागढ़ ७. गोसाला ८. ईश्वरी ९. पाली १०. भूरूप ११. के. डी. १२. उदयद्रुग.।

† शिवाजी का यह प्रस्ताव नियमानुसार प्रार्थनापत्र के रूप में बादशाह के पास भेजा गया था। जयसिंह की राय के अनुसार शिवाजी ने इस पत्र में बादशाह का दर्शन करने तथा शाही चौखट घूमने की इच्छा भी प्रकट किया था।

अली आदिलशाह ने मुकाबले के लिए सेना तो तैयार कर लिया था परन्तु पहले वह मुगलों की मांग पूर्ति करने का वादा भेज-भेज कर टरकाने का प्रयत्न करता रहा। जयसिंह भी अपनी सेना के साथ आगे बढ़ते ही गये। सबसे पहले मंगलबेड़ा के पास बीजापुर के घुड़सवारों के एक दस्ते ने बड़ी वीरता से उन्हें रोकने का प्रयत्न किया परन्तु उनकी संख्या इस सेना के समक्ष बहुत नगण्य थी। बीजापुर का वजीरे-आजम अब्दुल मुहम्मद ही वहाँ का प्रमुख सिपहसालार भी था, बीजापुर सेना के अन्य अधिकारी थे अब्दुल करीम, बहलोल खाँ, खवास खाँ, सैयद अजीज (सैयद जहुर का बेटा) और वेंकोजी राजा भोसले जो कि शिवाजी का सौतेला भाई था, बीजापुरी सेना के मराठों घुड़सवारों के दस्ते में बड़ी वीरता दिखाई।

मुगलों की तरफ से शिवाजी तथा नेताजी पालकर ने अप्रतिभ वीरता दिखाई, और विशेषकर ऐसे अवसर पर जब कि वे सेना की पिछली पंक्ति की रक्षा में संलग्न थे। कई अन्य शक्तिशाली मोर्चों पर भी शिवाजी की पैदल सेना ने बड़ी बहादुरी दिखाई और विजय प्राप्त की। उनकी इस वीरता की प्रशंसा करते हुए औरंगजेब ने शिवाजी को एक पत्र भेजा और उनका सम्मान करने के लिए उन्हें भेंट भी भेजी। एक दूसरे पत्र में उन्होंने शिवाजी को दिल्ली आने का निमत्रंण भी दिया। इस पत्र में बादशाह ने यह वादा किया कि वह शिवाजी को ऊँचा ओहदा देगा, उनका उचित सम्मान करेगा और उन्हें दक्षिण वापस लौटने की अनुमति मी प्रदान करेगा।* आपसी वार्ता से शिवाजी और जयसिंह परस्पर एक दूसरे के विश्वासपात्र हो गये थे। जयसिंह द्वारा किए गए आश्वासनों के आधार पर शिवाजी ने दिल्ली की यात्रा करने का निश्चय किया और अपने आने की सूचना बादशाह को देने के लिए रघुनाथ पन्त को दिल्ली भेज दिया। रघुनाथ पन्त को भेजने का गुप्त उद्देश्य यह भी था कि वह पहुँच कर शिवाजी के प्रति शाही दरबार की विचार धाराओं तथा भावनाओं के विषय में कुछ जानकारी भी प्राप्त कर सकेगा।† शिवाजी ने अपने सभी मुख्य अधिकारियों को रायगढ़ में विचार-विमर्श करने के लिए एकत्र होने का आदेश दिया। इसी बीच शिवाजी ने सभी किलों का चक्कर लगाया। प्रत्येक दुर्गरक्षक को पूर्ण सावधानी तथा सतर्कता से दुर्ग की रक्षा में तत्पर रहने का आदेश दिया और इतना कार्य निबट लेने के बाद वे अपने अधिकारियों, मंत्रियों तथा सरदारों की बैठक में सम्मिलित होने के लिए अपनी राजधानी (रायगढ़) में पहुँच गए।

रायगढ़ में उन्होंने मोरो त्रिम्मल पिंगले, आबाजी सोनदेव तथा आनाजी दत्तो को अपने अनुपस्थिति काल भर के लिए सारे अपने अधिकार सौंप दिए। साथ ही साथ उन्होंने बैठक में सम्मिलित होने वाले प्रत्येक व्यक्ति से स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि उनकी अनुपस्थिति में इन तीनों व्यक्तियों की आज्ञाओं का उसी तरह सम्मान किया जाना चाहिए जैसे कि वे आज्ञाएँ स्वयं शिवाजी द्वारा ही दी गई हों। अब उनका राज्यक्षेत्र भी

सन् १६६६]

---

* १६६५ ई० की घटनाओं के वर्णन का कुछ भाग खफी खाँ के आधार पर है, परन्तु मुख्यतः यह वर्णन मराठा पाण्डुलिपियों के आधार पर ही दिया गया है।

† नजर या भेंट किसी निम्न पद के व्यक्ति द्वारा उच्चपदीय व्यक्ति को दी जाती हैं, इस प्रकार नजर अधीनता और कृतज्ञता की अभिव्यक्ति करती है। ऐसे बहुत से उत्सव यहाँ होते हैं जिनमें नजर ली जाती और दी जाती हैं। भेंट के नाम पर नए नियुक्त हुए कर्मचारियों से या किसी पद या सम्पत्ति के उत्तराधिकारी द्वारा प्राप्त करने वाले लोगों से गहरी रकम वसूल कर ली जाती है।

बहुत कम ही रह गया था; कोंकण में उनका क्षेत्र चोल से लेकर चोन्ड के पास तक था और घाट-महल में नीरा नदी से रंगना नदी तक ही था। ५०० चुने हुए घुड़सवारों तथा १००० मावलियों को लेकर शिवाजी अपने बड़े बेटे सम्भाजी के साथ दिल्ली की तरफ रवाना हो गए। दिल्ली के नजदीक पहुँचने पर उनका स्वागत करने के लिए औरंगजेब ने केवल जयसिंह के लड़के रामसिंह तथा एक अन्य ओहदे के व्यक्ति को ही भेजा।

औरंगजेब के इस क्षुद्र व्यवहार पर शिवाजी को कुछ क्षोभ हुआ; परन्तु वे उसे सहन कर ले गए। जब उन्हें बादशाह के सम्मुख उपस्थित किया गया और वे बादशाह को नजर (भेंट) देने लगे तो उन्होंने देखा कि उनके लिए जो आसन निश्चित किया गया था वह पाँच हजारी मनसब वाले सरदारों की कतार में था। इस अपमान पर वे अधिक समय तक शान्त न रह सके; और इस व्यवहार के कारण पैदा हुए आक्रोश को उन्होंने पर्याप्त तेज आवाज में व्यक्त कर दिया। उनके आसपास बैठे लोगों ने उनकी बातों को बादशाह के सामने दुहरा दिया। जब दरबार समाप्त हो गया और शिवाजी अपने लिए निश्चित किए गए निवास-स्थान पर वापस आए तो उन्हें पता लगा कि दरबार में उनके द्वारा प्रयोग की हुई क्रोधपूर्ण भाषा से नाराज होकर बादशाह ने उन्हें फिर कभी भी दरबार में न आने की इजाजत देने का इरादा किया है। शिवाजी यह समाचार पाकर पूर्ण रूप से सतर्क हो गए, और कुछ दिनों बाद, बादशाह के दिल की थाह लेने के लिए उन्होंने एक प्रार्थना-पत्र के साथ रघुनाथ पन्त को बादशाह के पास भेजा। इस प्रार्थना-पत्र में उन्होंने अपने दिल्ली आने का उद्देश्य बादशाह द्वारा दिए गए निमत्रंण तथा वादों का, स्वयं द्वारा की गई बादशाह की सेवाओं का, तथा उन शर्तों का जिन पर औरंगजेब स्वीकृति दे चुका था, उल्लेख किया और साथ ही अपनी ओर से सन्धि की सभी शर्तों को मानने का तथा आदिलशाही या कुतुबशाही को दबाने में शाही सेना को हर प्रकार की सहायता देने का आश्वासन भी दिया। उन्होंने यह भी लिखा कि यदि बादशाह को उनकी सेवाओं की कोई आवश्यकता न हो तो उन्हें अपने साथियों सहित अपनी जागीर की ओर लौटने की इजाजत दे दी जाय क्योंकि हिन्दुस्तान की आबहवा उनके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, और उनके साथी सैनिक घर लौटने के लिए बेचैन हैं। औरंगजेब ने शिवाजी के इस पत्र का कुछ स्पष्ट उत्तर नहीं दिया, और कुछ ही दिनों बाद शहर कोतवाल को हुक्म मिला कि शिवाजी के निवास स्थान के चारों तरफ सख्त पाहरा लगा दिया जाय, शिवाजी के सम्बन्ध में पूर्ण सतर्कता बरती जाय और बिना उचित पहरे के उन्हें अपना निवास छोड़ने की अनुमति न दी जाय। शिवाजी ने इस नजरबन्दी का विरोध किया और बादशाह के पास इस व्यवहार की शिकायत भेजी और विशेषकर अपने साथियों को रोक रखने में होने वाली कठिनाई का वर्णन भी किया। औरंगजेब ने उनके साथ के आदमियों को दक्षिण वापस जाने की इजाजत दे दी और शिवाजी तथा सम्भाजी नजरबन्द ही रह गए। शिवाजी के साथ के सैनिकों के चले जाने पर औरंगजेब उन्हें बिल्कुल विवश तथा अपने अधिकार में समझने लगा, परन्तु अपने सहायकों के सुरक्षित रूप से मुक्त कर दिए जाने पर शिवाजी को स्वयं के भाग निकलने का प्रबन्ध करने में बहुत सुविधा प्राप्त हो गई। उन्होंने भाग निकलने के लिए जो उपाय निश्चित किया, उसमें रामसिंह की भी राय ली, रामसिंह ने भी अपने पिता द्वारा शिवाजी की सुरक्षा के लिए दिये गये वचन को निभाने के लिए भेद को अपने तक ही सीमित रखा।* शिवाजी के ऊपर इतना कड़ा पहरा नहीं था कि वे किसी से भेंट-मुलाकात भी न कर सकते। वह

---

* चिटनिस की पाण्डलिपि में यह बात दृढ़ता से लिखी है।

प्रायः दरबार के प्रमुख सरदारों तथा सामन्तों के यहाँ भेंट करने के लिए जाते और उनके पास कीमती चीजें भी भेंट के तौर पर भेजते इस प्रकार उन्होंने कुछ प्रमुख सामन्तों को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे जब शिवाजी के भाग निकलने की योजना पूरी करने की दृष्टि से उनका प्रमुख लोगों से गहरा सम्बन्ध हो गया तो उन्होंने बीमार होने का बहाना किया। उन्होने अपने इलाज के लिए वैद्यों और हकीमों को बुलाना प्रारम्भ किया, जिन्होंने कहा कि शिवाजी वास्तव में बहुत बीमार हैं। शिवाजी ने कई बड़ी-बड़ी टोकरियाँ बनवाईं जिनमें कि वे मिठाइयाँ और फल भर कर नित्य अपने परिचित सरदारों के पास तथा फकीरों में बाँटने के लिए अपने निवास-गृह से बाहर भेजने लगे। उन्होंने प्रचारित किया कि अब उनकी बीमारी ठीक हो रही है और इस खुशी में उन्होंने ब्राम्हणों को बहुत दान दिया तथा चिकित्सकों को इनाम बाँटा। यह दान का कार्यक्रम कई दिनों तक चलता रहा और एक दिन शाम को उन्होंने एक टोकरी में सम्भा जी को बैठाया और दूसरी टोकरी में स्वयं बैठ गए। उनके शुभचिन्तकों की सहायता से ये दोनों टोकरियाँ सुरक्षित रूप से एक ऐसे निर्जन स्थान पर पहुँचा दी गईं जहाँ किसी के द्वारा उनके देखे जाने का भय न था। टोकरी में से निकल कर वे दिल्ली के बाहर स्थित एक नगर में पहुँचे जहाँ उन्हें सजा सजाया घोड़ा तुरन्त मिल गया। वे घोड़े पर चढ़े, सम्भा जी को पीछे बैठाया और दूसरे दिन मथुरा पहुँच गए, जहाँ उनके हितचिन्तक कई ब्राम्हण तथा उनके विश्वास-पात्र मित्र तानाजी मालसुरे उनकी योजना के पूर्ण होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। वहाँ सारी योजना पहले ही बन चुकी थी। सम्भाजी को एक ब्राम्हण परिवार के संरक्षण में छोड़ दिया गया जो कि पूना देश का निवासी तथा मोरो त्रिम्मल पिंगले का दूर का रिश्तेदार था।* सम्भाजी कई महीनों तक इसी परिवार के संरक्षण में रहा और फिर बाद में उसे उनके द्वारा सुरक्षित रूप से दक्षिण पहुँचा दिया गया।

शिवाजी ने भागने के पहिले ही, एक व्यक्ति को अपने बिस्तर पर सोए रहने के लिए ठीक कर गए थे, इसलिए उनके भागने के दूसरे दिन काफी देर तक किसी को कोई शंका नहीं हुई, और जब उनके भाग निकलने का समाचार औरंगजेब को मिला तो इतनी देर हो चुकी थी कि पीछा करने से कुछ भी हाथ न आता। इस प्रकार शिवाजी अपने साथियों सहित बादशाह की गिरफ्त से निकल भागे और गोसाइयों के वेष में उन्होंने कई धार्मिक स्थानों का भ्रमण किया, परन्तु वे किस मार्ग से दक्षिण लौटे, इसका कोई निश्चित पता नहीं है। शिवाजी दिसम्बर १६६६ में ९ महीने की अनुपस्थिति के बाद रायगढ़ वापस पहुँचे और पहुँचने पर ही उन्होंने गोसाईं वेश को उतारा। †

---

* कृष्णाजी आनन्द सभासद की पाण्डुलिपि में लिखा गया है कि मोरो पन्त की बहन उस ब्राम्हण के एक पुत्र से ब्याही गई थी।

† शिवाजी की दिल्ली यात्रा, कैद किया जाना और उनका भाग निकलना ये सभी घटनाएँ मराठा पाण्डुलिपि, स्काट लिखित 'दक्षिण' और खफी खाँ के वर्णन पर आधारित हैं, शिवाजी के दक्षिण पहुँचने के पहले ही उनके भाग निकलने की खबर वहाँ पहुँच गई थीं। कारवार के किसी अंग्रेज ने २९ सितम्बर १६६६ की तारीख में एक पत्र लिखा है कि, 'यदि यह सत्य है कि शिवाजी भाग गए हैं, तो औरंगजेब जल्द ही दुःख के साथ शिवाजी की कार्रवाई को सुनेगा।

इसी बीच दक्षिण में परिस्थितियों ने कुछ इस तरह रंग बदल दिया था कि शिवाजी की आशा के प्रतिकूल सारी चीजें उन्हीं का पक्ष ग्रहण कर रही थीं। जयसिंह ने बीजापुर पर घेरा डाल दिया था परन्तु उस सिलसिले में कुछ आगे बढ़ने पर दक्षिण के घुड़सवारों ने उसकी प्रगति रोक दी। उसकी सेना के लिए बाहर से सामान आने का मार्ग बन्द हो चुका था, पिछले दिनों कुछ वर्षा भी हो गई थी। मुगल सेना में बीमारी फैली हुई थी और उनकी छावनी में पीने के पानी का भी बहुत अभाव था।

मुगलों की धीमी प्रगति से प्रोत्साहित होकर गोलकुण्डा के सुल्तान ने अपने विश्वस्त सेनापति नेकनाम खाँ के अधीन एक शक्तिशाली सेना बीजापुर की सहायता के लिए भेजा। कुतुबशाह के दरबार में नियुक्त औरंगजेब का कूटनीतिक दूत इस बात पर क्रुद्ध हुआ और उसने शाह को धमकी भी दी, पर जयसिंह को कोई भी मदद न भेजी गई। जयसिंह भी धीरे-धीरे यह अनुभव करने लगा कि अपने चरित्र तथा अपने बहादुर राजपूतों के जीवन का बलिदान कर देने पर भी बादशाह की दृष्टि में उसकी कुछ कीमत नहीं है और बादशाह उसके तथा राजपूत सेना के जीवन-मरण के प्रतिपूर्ण रूप से उदासीन है। ऐसी दशा में उसने औरंगाबाद की ओर वापस लौटने का निश्चय किया। यद्यपि यह वापसी निर्विघ्न नहीं हुई, फिर भी उतनी हानि नही हुई जितनी कि इस तरह लौटने के फलस्वरूप पहले कई बार हो चुकी थी। जयसिंह के पास अब इतना भी साधन नहीं रह गया था कि शिवाजी द्वारा समर्पित किए हुए या उनकी मदद से जीते हुए किलों की रक्षा के लिए रक्खी गई सेनाओं का व्यय वह सम्भाल सकता। इसलिए उसने बहादुर टुकड़ियों को लोहगढ़, सिंहगढ़, पुरन्दर तथा कोंकण में माहुली और करगला में रख दिया*। जहाँ के किलों में रसद का कुछ भन्डार था वहाँ भी कुछ सैनिक रख छोड़े गए। शेष किलों के फाटकों को उसने जलवा डाला और जिन प्रतिरक्षात्मक मोर्चों को जल्दी से नष्ट किया जा सकता था उन्हें उसने नष्ट करवा डाला।†

१६६७ ई.] इन किलों पर फिर से अधिकार कर लेने का अवसर पाने पर मराठों ने पूरा लाभ उठाया मोरो पन्त ने इनकी फिर से मरम्मत कराई। इन किलों में सेनाएँ एकत्रित किया, मुगलों को खदेड़ दिया, और कोंकण में शिवाजी के आगमन की घोषणा करा दिया। शिवाजी ने राह में ही कल्याण के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया। दिल्ली से शिवाजी के भाग निकलने पर औरंगजेब ने अपने को बहुत अपमानित महसूस किया, यद्यपि प्रकट में उसने यही कहा कि उसका-इरादा तो पहले से ही शिवाजी को आदर सहित विदा कर देने का था। उसने रामसिंह पर शिवाजी के भाग निकलने में सहायता देने का दोषारोपण किया और उसे दरबार से निष्कासित कर दिया। इधर जयसिंह ने अपने को बहुत थका महसूस कर बादशाह से शाहजादा मुअज्जम को भी दक्षिण भेजने के लिए लिखा। बादशाह नें शाहजादा मुअज्जम की मदद के लिए जसवन्तसिंह को भी भेजा। जयसिंह वहाँ से कार्यमुक्त हो गया और उसे औरंगजेब ने दरबार में वापस आने की आज्ञा दी। परन्तु जयसिंह की राह में ही मृत्यु हो गई और इस प्रकार बादशाह नें अपने सर्वोत्तम सेनापतियों एवं सलाहकारों में से एक को खो दिया। औरंगजेब के शासन के लिए यह एक अभिशाप हो गया था कि उसके जितने भी हितचिन्तक थे, जिन्होंने उसकी समृद्धि के लिए हर सम्भव प्रयत्न किया था, उन में से किसी पर उसने विश्वास नहीं किया। इसके बाद दिलेरखाँ कुछ ही समय तक दक्षिण में रहा, जहाँ से कुछ समय के लिये उसे मालवा भेज दिया गया। उस पर

---

* मराठा पाण्डुलिपि

† खफी खाँ

न तो शाहजादे की ही कृपा दृष्टि थी और न जसवन्तसिंह ही उसे अच्छी निगाह से देखते थे। इसीलिए उन लोगों के नजदीक ही, मालवा में दिलेर खाँ की उपस्थिति से औरंगजेब की ईर्ष्यात्मक प्रवृत्ति को सन्तुष्टि मिलती थी।

बादशाह ने बीजापुर को एक बार फिर घेरने की इच्छा अभिव्यक्त की, परन्तु उस समय साम्राज्य के उत्तरी क्षेत्रों में उसकी उपस्थिति अनिवार्य थी। अपने गर्व के कारण वह शाहजादे को यह कार्य सौंप कर उसका अपमान नहीं करना चाहता था क्योंकि जीतने की सम्भावना कम ही थी। साथ ही अपनी स्वभावगत ईर्ष्या के कारण वह किसी अन्य अधिकारी के अधीन कोई शक्तिशाली सेना नहीं भेज सकता था।

आठवाँ अध्याय

शिवाजी के राज्य की शासन व्यवस्था

[१६६७-१६६९]

शाहज़ादा मुअज्जम और जसवन्त सिंह—उनके चरित्र—उनके माध्यम से शिवाजी को सम्राट से प्राप्त छूटें—मुअज्जम के द्वारा अपने पिता के खिलाफ कथित विद्रोह की चर्चा पर औरंगज़ेब का विश्वास—बीजापुर और मुगलों का समझौता—बीजापुर और गोलकुन्डा द्वारा शिवाजी को वार्षिक कर देने का निश्चय—जंजीरा और गोआ के विरुद्ध शिवाजी का असफल अभियान—अपने प्रशासनिक और सैनिक सुधारों के करते समय शिवाजी के बारे में उठती अफवाहें शिवाजी के शासन की सुगठित संस्थायें:—उनका निर्माण—अनुशासन तथा आन्तरिक सैनिक अर्थ व्यवस्था—उनके किले—आर्थिक और न्यायिक विधियों में सुधार—उनके मुख्य प्रशासनिक अधिकारी और कार्यकर्ता।

शाहज़ादे मुअज्जम का पुनः दक्षिण का सूबेदार बनाया जाना और उसकी सहायता के लिये जसवंत सिंह का आना शिवाजी के लिये बहुत अनुकूल सिद्ध हुआ, कारण अपने दिल्ली के बंदी जीवन के दौरान में जसवन्तसिंह से मिलने के कई अवसर प्राप्त हुए थे। वह सन् १६६७] साधारण अच्छे चरित्र का व्यक्ति था पर जैसा कि राजपूतों में सामान्यतः देखा जाता है, धन का अधिक लोभी था। उसके अतिरिक्त यह एक कट्टर हिन्दू था। * औरंगजेब उन पर कभी विश्वास नहीं करता था, कारण दारा के विरुद्ध युद्ध में उसने दारा का पक्ष लिया था। शाहज़ादा मुअज्जम भी अच्छे स्वभाव का व्यक्ति था। परन्तु जहाँ उसमें उदारता, वीरता और आत्मविश्वास का आधिक्य था, वहीं वह विलासी और जल्दी ही किसी के प्रभाव में आ जाने वाला भी था। परिणाम स्वरूप वह प्रायः जसवन्त सिंह के कहने के अनुसार कार्य करता था।

शिवाजी ने उनके चरित्र को लक्ष्य करके अनुमान लगा लिया था कि उनको सोना देकर फुसलाना कठिन नहीं है और अपने इस अनुमान में उन्हें असफलता नहीं मिली। उन्होंने खुले हाथों इस साधन का उपयोग किया और परिणामस्वरूप शाहजादे के साथ उनकी वार्ता एक प्रार्थना पत्र के साथ आरम्भ हो गई। शिवाजी ने साम्राज्य के प्रति अपनी भक्ति का विश्वास दिलाते हुये अपने लिये औरंगजेब से सिफारिश करने के लिये शाहजादे से निवेदन किया, यद्यपि अपनी पूर्व सेवाओं का बदला उन्हें अच्छी तरह मिल चुका था। उनकी बात को दिल्ली दर्बार में रक्खा गया और सिफारिश के लिये यहाँ से शिवाजी का प्रतिनिधि गया। परिणामस्वरूप शाहजादे मुअज्जम के प्रयत्न से औरंगजेब ने शिवाजी को राजा की उपाधि प्रदान करते हुये सम्भा जी की मन्सब को

---

* जज़ियाकर के विरुद्ध में उसका औरंगजेब के नाम पत्र आज भी कोल्हापुर के राजा के पास सुरक्षित है।

पुनः स्वीकार करके उन्हें बरार में जागीर दिया। उतनी दूर मिली जागीर के प्रबन्ध के लिये रावजी सोमनाथ को जागीर के प्रबन्ध के लिये अन्य सहकारियों के साथ मकसददार बना कर भेजा गया। इसी अवसर पर पहली बार एक मराठा अधिकारी को लगान वसूलने के लिये मकसद्दारी मिली, सम्भाजी को यह जागीर उनके अहमदनगर और जुन्नार की अपनी पुस्तैनी जागीरदारी कीं माँग के पूर्ति के रूप में मिली थी। संभाजी घोड़ों की एक टुकड़ी के साथ मुगल-शाहजादे की सेना के साथ रहने के लिये औरंगाबाद पहुँचे-परन्तु उनकी किशोरावस्था को ध्यान में रखते हुए शाहजादे ने उन्हे वापस शिवाजी के पास भेज दिया और उनके स्थान पर सरतो जी गूजर को अपने घोड़े स्वर्णावत के साथ टुकड़ी के सेनापति के रूप में छोड़ दिया गया। गूजर को इसी समय शिवाजी द्वारा प्रतापराव की उपाधि मिली।* पूना, चाकण और सूपा, जिले भी पुनः शिवाजी को लौटा दिये गये परन्तु क्षेत्रीय सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण किले मुगलों के अधिकार में ही बने रहे जिनमें पुरन्दर और सिंह गढ़ के किले महत्वपूर्ण हैं।

सम्राट औरंगजेब द्वारा शिवाजी को प्रदान की गई सुविधाओं का कारण क्या हो सकता था यह ठीक-ठीक समझ में नहीं आता परन्तु मराठी पान्डुलिपियों में और अनुमान से भी उसका उद्देश्य शिवाजी को पुनः अपने प्रभाव में लाने का एक उपाय मात्र था। परन्तु शाहजादे मुअज्जम को औरंगजेब की इस चाल के बारे में कोई जानकारी नहीं थी, औरंगजेब ने एक तीर से तीन शिकार करने का विचार किया था, प्रथम उद्देश्य तो शिवाजी को फांसना था, दूसरा उद्देश्य अपने साथ के सरदारों की स्वामि भक्ति की परीक्षा लेना था और तीसरा उद्देश्य अपने शुभचिन्तकों के सामने अपने को सच्चा और ईमानदार बनाये रहना चाहता था।

साधारणतः उपर्युक्त स्थिति से हम यही परिणाम निकाल सकते हैं, कि औरँगजेब इस प्रकार की उच्चकोटि की कूटनीतिक चालों में कुशल था परन्तु गंभीरता से विचार करने पर हम देखते हैं कि इस प्रकार के षड़यंत्रों से अभीष्ट प्राप्ति के लिये अराजकता, मूर्खता और विभिन्न दलों में शक्ति का असंतुलन होना आवश्यक हैं।

उसी साल के मध्य में बीजापुर और औरंगजेब ने आगरे में संधि की। संधि के अनुसार बीजापुर को अपनी शान्ति और सुरक्षा की कीमत शोलापुर तथा १८००००० पगोडा की आमदनी वाले क्षेत्र देकर चुकानी पड़ी। यह संधि शाह अब्दुल हुसैन कमाना ने की थी। उस संधि की अन्य शर्तों के बारे में पूर्ण विवरण प्राप्त नहीं है, परन्तु इस संधि के बाद जैसा की स्वाभाविक था शिवाजी ने मुगलों की इस संधि का विरोध किया। जसवन्त सिंह से और शाहजादे से मिले तथा उनसे अपने और बीजापुर तथा गोलकुन्डा के बीच में न पड़ने की मांग की, कारण उन्हें बीजापुर से चौथ और देशमुखी वसूल करना था। अतः उन्होंने बीजापुर से अपनी मांग को दुहराया और वसूलने की तैयारी की परन्तु वहां के प्रधान मंत्री ने शिवाजी को तीन लाख रुपये सालाना देने का वादा करके

---

* गूजर का संरक्षक नेताजी पालकर को खफी खां ने लिखा है कि उसे जयसिंह बन्दी बनाकर दिल्ली ले गया। जहां औरंगजेब की आज्ञा से वह मुसलमान बनाया गया। तब सम्राट ने उसे मुहम्मद कूली खाँ का नाम देकर जागीर और मन्सब दिया। परन्तु वह पुनः हिन्दू होने के लिये शिवाजी के पास लौटा। परन्तु मराठों ने इसका कुछ वर्णन नहीं दिया है। संभव है वह आया भी हो, परन्तु मराठों में उसका वह सम्मान और स्थिति न रही हो।

अपनी जान बचाई, परन्तु अब्दुल मुहम्मद के कहने पर यह समझौता गुप्त रक्खा गया। इसका कारण यह था कि बीजापुर में अब भी इस प्रकार के मुसलमान थे जो हिन्दुओं को लगान देने में अपना अपमान समझते थे, परन्तु आपसी कलह और दरबार की फिजूलखर्ची खत्म कर अपनी प्रभुता बनाये रखने में अपने प्रधान मँत्री की सहायता नहीं करते थे। कुछ इसी प्रकार का समझौता गोलकुन्डा के कुतुबशाह के साथ भी हुआ और इसकी राशि पाँच लाख तय की गई। †

दक्षिण में अपनी स्थिति इस प्रकार सुस्थिर करके शिवाजी ने अपना पूरा ध्यान पूरे कोंकण को जीतने में लगाया। उन्होंने पहले जंजीरा और गोआ को जीतने का इरादा किया, परन्तु उन्होंने पुर्तगालियों पर अचानक ही आक्रमण की जो योजना बनाई थी, वह पुर्तगालियों को ज्ञात हो गई। ‡ परिणामस्वरूप वह योजना कार्यान्वित न हो सकी और जंजीरा विजय की उनकी साहसिक दौड़ असफल रही अतः उस ओर से निराश होकर उन्होंने सिद्दी को जा दबाया। उसने बम्बई के अंगरेज अधिकारियों से सहायता माँगी। अंगरेज अधिकारियों ने सूरत स्थित अपने सर्वोच्च अधिकारी को बम्बई के व्यापार के लिये जंजीरा का भारी महत्व बताते हुये संधिवार्ता चलाने की सलाह दी, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी वह बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह व्यथ ही गई।

सन् १६६८ और १६६९ का समय शिवाजी के जीवन के सर्वाधिक आराम के साल थे। उनकी इस निष्क्रियता से उनके समय के अधिकांश कूटनीतिज्ञों ने यह कल्पना की थी कि अब शायद शिवाजी अपने महत्व को खो देंगे। यद्यपि शिवाजी इस समय अपनी आन्तरिक सुरक्षा और प्रशासनिक सुधारों में लगे हुए थे। उन्हीं सुधारों को अब हमें अपने पाठकों के

सन् १६६९] सम्मुख रखना है। इसका अध्ययन एकाग्र चित्त से करने की आवश्यकता है, कारण इससे हमें मात्र शिवाजी की प्रशासनिक व्यवस्था के ऊपर ही ध्यान नहीं देना है वरन् ऐसी सुगठित शासन-व्यवस्था का अध्ययन करना है जिसके आधार पर बाद में सभी मराठा सरकारों ने अपनी शासन-व्यवस्था को बनाये रखा। शिवाजी के कानून धीरे-धीरे बने और उनका विकास और विस्तार होता गया। परन्तु कुछ निश्चित दिनों के बाद उन कानूनों को पुनः बदलने की आवश्यकता नहीं पड़ी। उनके इन कानूनों पर उनके राज्य-विस्तार का कुछ भी प्रभाव न पड़ा, और तब तक उसमें कुछ भी परिवर्तन न हुआ जब तक कि शिवाजी ने राजा की उपाधि धारण नहीं किया, और उसके बाद भी जो परिवर्तन इन कानूनों में किये गये वे उनके रूप परिवर्तन मात्र थे। उससे नियमों के उद्देश्य पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा था। मराठों के सीमातिक्रमण की योजनायें इस क्षेत्र में बहुत पहले से होती आयी हैं, उसी को शिवाजी ने भी अपनाया, परन्तु वह शिवाजी की दूरदर्शिता थी जिसने उनकी अधिकांश योजनाओं को सफलता प्रदान की, अवश्य ही इसमें शिवाजी द्वारा अपनी देशवासियों की छिपी शक्ति को प्रकाश में लाने की कला का भी विशेष हाथ था।

शिवाजी की शक्ति उनकी पैदल सेना थी। उसके द्वारा किलों को जीतने से उनके पास काफी क्षेत्र हो गया जहाँ उन्होंने अपनी कुशलता को प्रयुक्त किया। उनकी सवार सेना को हम देख चुके हैं। उसने अब तब अपने को मराठा सवार के रूप में कह कर अपना परिचय देना शुरू नहीं किया था। परन्तु अब हमें तुरंत ही मराठा सैनिकों के शासन-निर्माण, अनुशासन और उन पर किये

---

† स्काट का दक्षिण और मराठा पान्डुलिपि।

‡ मराठा पान्डुलिपि तथा अंगरेजों का रिकार्ड।

गये आर्थिक नियोजनों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। इसके अतिरिक्त उनके किलों सम्बन्धी नियम, न्याय, प्रबन्ध, लगान व्यवस्था तथा उनके मुख्य प्रशासनिक अधिकारियों के संम्बन्ध में जान लेना चाहिये।

शिवाजी के पैदल सैनिक अधिकतर कोंकण घाटमाथा के थे। घाटमाथा के सैनिकों का मावली तथा कोंकण के वाशिन्दों को हथकुरी के नाम से पुकारा जाता था। ये सैनिक अपने हथियार के साथ आते थे तथा लड़ाई के अन्य सामान जैसे गोला, बारुद इत्यादि राज्य द्वारा दिया जाता था। उनके वस्त्रों को वर्दी कभी नहीं कहा जा सकता। अधिकतर वे जांघों में कसे चड्ढियों के साथ कमर में कमरबन्द, पगड़ी तथा मिरजई का प्रयोग करते थे। कभी-कभी कमर के इर्द गिर्द वे दुपट्टा भी बाँधते और सूती छींटदार वस्त्र पहनते।

उन सैनिकों के पास अधिकतर तलवार, ढाल और फलीतेदार बन्दूकें होती थीं। कुछ हथकुरियों के पास जिनमें अधिकतर बारी के सावन्तों की पैदल सेना का भाग था, चकमक से विस्फोट करने वाली बन्दूकें भी थीं, जो उनको पुर्तगालियों से मिली थीं। सेना में हर टुकड़ी का दसवां आदमी अग्नेयास्त्रों के न होने पर धनुष और बाण अपने साथ रखता था, जो अंधेरे के आश्चर्यजनक आक्रमणों में बड़े काम का होता था। कारण अग्नेयास्त्रों को छोड़ने में तीव्र ध्वनि होती थी जिससे रात के सन्नाटे में चुपचाप कार्य लेना संभव नहीं होता था। हथकुरी सैनिक बड़े अच्छे तीरंदाज होते थे परन्तु शिवाजी के इन अचानक किये जाने वाले हमले में कदाचित ही जाते रहे हों, इस कार्य के लिये मावली सैनिक अधिक योग्य थे, परन्तु हथकुरियों में पहाड़ों पर चढ़ने की अभूतपूर्व क्षमता है जो अन्यथा किसी अन्य-जाति में देखने को नहीं मिलती। जिस सीधी चट्टान पर चढ़ कर साधारण सैनिकों को अपनी जान को भेंट चढ़ाना पड़ता था वहीं वे सैनिक आसानी से चढ़ जाते थे।

प्रत्येक दस सैनिकों के ऊपर एक अधिकारी होता था। जिसे नायक कहा जाता था। और प्रत्येक ५० पर हवलदार। १०० सिपाहियों के प्रधान को जूमलदार कहा जाता तथा २००० के प्रधान को हजारी की संज्ञा दी जाती थी। पंच हजारी भी होते थे परन्तु उनमें और सेनानायकों मे या स्वर्णावत के प्रधान में कुछ विशेष अन्तर नहीं होता था और न इस प्रकार का स्पष्ट पद विभाजन भी देखने को मिलता है।

सवार सेना के दो प्रकार के सैनिक थे, * सिलेदार और बारजीर, जिनका विवरण पहले दिया जा चुका है। सिर्फ शिवाजी के बारजीर सैनिकों को आधिकतर घोड़ों की सवारी मिलती थी जो कि राज्य की संपत्ति होते थे। शिवाजी द्वारा दिये गये सवार सिपाहियों को 'पाग' कहा जाता था, जिसको हम स्पष्ट शब्दों में व्यक्तिगत या खास सिपाही कह सकते हैं। इस प्रकार के सैनिकों पर शिवाजी का विश्वास सिलेदारों से अधिक था, इसी कारण पाग सैनिकों को शिवाजी ने अधिक स्वतन्त्रता प्रदान कर रक्खी थी, जो शिलेदार या किसी भी व्यक्तिगत घुड़सवार को नहीं मिलती थी। उपर्युक्त दोनों प्रकार के सवारों में शिवाजी की पाग सेना मिलीजुली थी इससे उनकी सेना मे अनु-

---

* सिलेदार सैनिक या उन सभी सैनिक जो शिवाजी की 'पाग' के अन्तरगत नहीं होते थे उनको बन्दूकों आदि के लिये बारूद या तीर आदि के प्रबन्ध स्वयम करना पड़ता था। इसमें शिवाजी के आर्थिक प्रबन्ध की कुशलता के साथ साथ पाग सैनिकों की प्रधानता बनी रहती थी।

शासन बनाये रखने, देश, विदेश मे जासूसी करने तथा सेना का सम्भावित विश्वासघात रोकने में सहायता मिलती थी।

मराठा सवार कसे हुये पायजामे की किस्म का वस्त्र धारण करते थे जो घुटनों के नीचे तक रहता था। अपने सिर पर ये पगड़ी बाँधते थे जिससे अपनी ठुड्डी के नीचे घुमाकर गर्दन को ढकेलते हुये सिर पर कसी रहती थी। इसके अतिरिक्त होती थी छींटदार कपड़ों की बनी मिरजई तथा कमर के इर्द गिर्द कसी कमरबन्द जिसमें वे अपनी तलवार को लटकाये रहते थे। † हथियार के नाम पर उनके पास तलवार ढाल और प्रत्येक टुकड़ी के साथ औसतन कुछ बन्दूक भी होती थी। इसके अतिरिक्त मराठों का अपना जातीय हथियार बर्छी उनके पास रहती थी इसके चलाने में मराठे बहुत ही कुशल होते हैं। ‡ घुड़सवारी और बर्छी चलाने की योग्यता उनके सम्मान और चतुराई में वृद्धि करते हैं। बर्छी चलाने वाले के पास अधिकतर ढाल और तलवार रहती थी जो बर्छी टूटने के बाद काम देते थे।

प्रत्येक पच्चीस सवार पर हललदार होता था। १२५ सैनिकों के प्रधान को जुम्मलदार तथा प्रत्येक पाँच जुम्मलदार पर सूबेदार का पद होता था। प्रत्येक सूबें में शिवाजी द्वारा नियुक्त आय व्यय का लेखा रखने वाला अधिकारी रहता था जो मुख्य रूप से ब्राम्हण या प्रभु होता था और इस प्रकार के प्रत्येक दस सूबे के ऊपर पंच हजारी होता था तथा इनके साथ भी एक ब्राम्हण मजिमदार या हिसाब किताब की जांच करने वाला तथा एक प्रभु जो आय व्यय का हिसाब रखता था। इसको अमीन कह कर पुकारा जाता था। सूबे में इनकी स्थिति बतौर सरकारी प्रतिनिधि की होती थी परन्तु इनके अलावा भी प्रत्येक उच्चाधिकारी के पास अपने कम से कम एक ब्राम्हण या व्यक्तिगत सहायक होते थे जिनको ये अपने पास से वेतन देते थे, कुछ सरकारी वेतन भी पाते थे।

सेनापति को छोड़ कर पंच-हजारी से बड़ा कोई अन्य सैनिक अधिकारी नहीं थे, शिवाजी की सेना में इस प्रकार के दो स्वर्णावत या सेनापति थे। एक घोड़ों या सवार सेना का प्रधान, दूसरा पैदल सेना का।

प्रत्येक जुमला, एक हजारी, पंच हजारी, तथा सूबेदार के पास अपने समाचार लेखक, भेदिया और गुप्त बौद्धिक समुदाय होता था, शिवाजी का अपना प्रमुख व्यक्तिगत गुप्तचर बीहर जी नायक नामक व्यक्ति था, जिसके बारे में उस समय के ब्राम्हणों का कहना था कि उसने देवी भवानी की दया से ही कई भेद पाये और उससे शिवाजी को लाभ पहुँचाया।

---

† गहने के नाम पर ये सैनिक सोने व चाँदी के कड़े, गले में मोटी जंजीर तथा कानों में बालियाँ पहनते थे। वैसे तो भारतवर्ष में मूछों का काफी प्रचलन है। परन्तु एक मराठा अगर किसी पुरुष को 'असाधारण' उपाधि देता है तो बस इसी प्रकार देता है कि वह आदमी खूब तनी ऐंठी हुई मूँछें रखता हो और गर्दन की ढंकती ठुड्डी के नीचे से कसी पगड़ी बाँधता है। ठुड्डी के नीचे से पाग बाँधना मराठा सवारों की अपनी परंपरा है।

‡ बर्छी चलाने में कुशल आदमी यदि दूर तक घुड़सवारी भी करना जानता था तो वह सम्मान पूर्ण माना जाता था। कुछ बन्दूकची और अधिकतर ब्राम्हण घुड़सवारी में बहुत अकुशल थे।

मराठों में ही नहीं, वरन् सजा या अधिकार पाने पर प्रायः भारतवासी आलसी और उदासीन हो जाते हैं। उनका यह आलस स्वयम् उनके अपने चरित्र की विशेषता होती है या फिर उन्हें बहकाने वाले लोगों से उनका परिचय हो जाता है। शिवाजी हमेशा अपने नये अधिकारी या सैनिक को अपने साथ रखकर उसका निरीक्षण करते थे। उन्हें हमेशा अपनी सेना के उन अधिकारियों से बचाये रखते जिनसे उन्हें अपने नये अधिकारी की स्वामिभक्ति या व्यवहार से बुरा प्रभाव पड़नेकी आशंका रहती। इस प्रकार इन भीतरी निरोधात्मक सचेष्टता का परिणाम यह हुआ कि प्रायः प्रत्येक अधिकारी या सैनिक अपने कुछ साथियों को कर्त्तव्यहीनता का उत्तरदायी होता था। इसी कारण अगर कभी किसी ने नियम भंग करने का प्रयास किया भी जिसके उदाहरणों की काफी संख्या है, तो मात्र इस लिये कि वे अपने कर्त्तव्य को सुगमता पूर्वक पूर्ण कर सकें—जिसकी छूट शिवाजी ने अपने अधिकारियों को दे रक्खी थी।

शिवाजी की सेना के मावली, कभी कभी मात्र भोज्यान्नों पर ही सेना में भर्ती हो जाते थे परन्तु साधारणतः उनके पैदल सेना का वेतन एक से तीन पगोडा, * बारजीर सैनिकों को दो से पाँच पगोडा तथा सिलेदार सैनिकों को छः से बारह पगोडा मासिक मिलता था, पैदल सेना के जुम्मलदार को सात पगोडा तथा सवार सेना के जुम्मलदार को २० पगोडा, सवार सेना के सूबेदार को ५० पगोडा और एक पालकी तथा पंच हजारी को २०० पगोडा, एक पालका और अफताबगीर दिया जाता था। लूटपाट के सामान और इनाम वगैरह सरकार की संपत्ति में शामिल होते थे। ये सामान शिवाजी के दरबार में या किसी जन-समुदाय के सामने जीत कर लाये हुए अधिकारी द्वारा राज्य को सौंप दिया जाता था। उनको अपने इस कार्य में कार्य पूर्ति के रूप में छोटी सी धनराशि दी जाती तथा उनके कार्यों के अनुसार उन्हें पद दिया जाता रहता था। आज भी मराठों में दुश्मनी निभाने का सही तरीका अपने दुश्मन को बुरी तरह लूटकर बर्बाद करने में ही माना जाता है।

शिवाजी के स्थिर शासन काल में उनकी घुड़सवार सेना अच्छे मौसम में तो युद्ध-कार्य करती और वर्षा ऋतु में उनको आराम करने का मौका दिया जाता था। प्रायः उन्हें खेतिहर मैदानों के पास के किलों में रख दिया जाता था। वे इस मौसम की घासों को काट करके खेतों में बीज डाल करके लड़ाई में चले जाते और जब वर्षा के बाद में आते तो अनाज की फसल तैयार मिलती, इसी कारण शिवाजी ने लगान रहित भूमि दे करके भी सैनिकों की नियुक्ति करना आरम्भ किया था। उनका यह तरीका इतना सफ रहा कि भविष्य में उनके शासन के अन्य नियमों में परिवर्तन होने पर भी उनका यह तरीका या प्रबन्ध चलता रहा और लगान हीन भूमि कि पाने के लिये उनकी सेना में भर्ती होती रही और इसकी सुविधा से जन सन्तोष में वृद्धि होती रही।

प्राचीन हिन्दू त्यौहारों में दशहरा मुख्य रूप से मनाया जाता था। शिवाजी इसको बड़ी धूम-धाम से मनाते थे। यह वर्षा ऋतु की समाप्ति के अवसर पर पड़ता है। इससे एक फायदा भी होता था कि लड़ाई पर जाने के पहले उनकी शक्ति की परीक्षा हो जाती थी। उस अवसर पर उनकी सेना इकट्ठी होती थी। उनका सावधानीपूर्वक निरीक्षण किया जाता था। प्रत्येक सैनिकों

---

* पगोडा या लगभग तीन या चार रुपये।

से उनके स्वास्थ्य आदि की कमजोरियों पर, घोड़ों की अवस्था पर, शस्त्रों की दशा पर सवाल किये जाते थे। अयोग्य घोड़ों को मार डाला जाता था तथा बीमारों की दवा करने का प्रबन्ध होता। अगर घोड़ों की मृत्यु सरकारी कार्यों में व्यस्त रहते समय हो जाती थी तो उनको राज्य की ओर से दूसरा घोड़ा प्रदान किया जाता था। परन्तु उनके पास अगर कोई ऐसी लूटपाट की वस्तु निकल आती जिसका उनके पास कोई कारण न होता, वह या तो जव्त कर ली जाती थी या फिर उसकी कीमत सैनिकों की तनख्वाह में से कट जाती। अगर किसी सैनिक को लूट में मिली कोई वस्तु पसन्द आ जाती तो वह ईमानदारी से उसको दिखा कर उसकी सही कीमत अदा करके अपने पास रख लेता था।

आय-व्यय का हिसाब सालाना रक्खा जाता था। साल के अन्त में सैनिकों का वेतन या वृत सरकार द्वारा नकद दे दिया जाता था या उन्हें हुन्डी दे दी जाती जो लगान वसूलने वाले अधिकारी के नाम होता था, जहाँ से वे जाकर रुपया ले लेते। उन्हें गाँवों से रकम वसूलने की आज्ञा कभी नहीं दी जाती थी।

शिवाजी की सेना द्वारा लूट मनमानी नहीं की जाती थी। शिवाजी ने उन्हें गोधन, किसान था स्त्रियों को लूटने पर कठोर नियन्त्रण रक्खा। गरीब मुसलमानों पर भी उनकी सेना अत्याचार नहीं करती थी। उनके शिकार बड़े-बड़े धनी हिन्दू मुसलमानों पर होते थे जिन्हें कैद करके भारी मात्रा में धनराशि वसूल करके छोड़ा जाता था। शिवाजी की सेना में किसी को भी स्त्रियाँ ले जाने का आदेश नहीं था। ऐसा करने वाले को प्राण दण्ड तक दिये जा सकते थे।

शिवाजी का गुप्तचर विभाग, उनके पास प्रत्येक घटना का विवरण देता रहता था। इससे उनके विरुद्ध षड़यन्त्रों का या तो जन्म ही नहीं होता था या फिर उनका उपचार हो जाता था। शिवाजी दण्ड के विषय में बहुत कठोर थे। उसके अतिरिक्त जो व्यक्ति उनके कार्य के लिये ईमानदारी से लगा रहता उसको वे सहृदयता से इनाम, क्षतिपूर्ति व ऊँचा पद देकर उसका सम्मान करते थे। शिवाजी जागीरदारी प्रथा को उचित नहीं समझते थे। यद्यपि उन्होंने कुछ जागीरदारियाँ कायम भी कीं परन्तु वे अपवादस्वरूप ही थीं या किलों की सुरक्षा के लिये कायम की गयी थी। उन्होंने शायद ही कभी किसी नये सैनिक जागीर को कायम किया हो। परन्तु उन्होंने बहुत ही कम व्यक्ति, अधिकार को प्रश्रय दिया हो। अपने विश्वासपात्रों को वे इनाम के तौर पर लगान रहित भूमि दिया करते थे। ये इनामी जागीरें अधिकतर ब्राह्मणों को दिये गये थे, कारण हिन्दू धर्म की मान्यता के अनुसार ब्राम्हणों को दिया गया दान भगवान द्वारा अधिक पवित्र और पुण्य कार्य माना जाता है।

शिवाजी ने अपने किलों में सैनिकों के अनुशासन पर विशेष ध्यान दिया। प्रत्येक सैनिक को अपने उच्च अधिकारियों की आज्ञा को अविलम्ब मानना पड़ता था। किलों के प्रधान अधिकारी को हवलदार कहा जाता था। उसके अधीन आवश्यकतानुसार एक या दो स्वर्णावत रहते थे। पुरन्दर, राजगढ़ और पन्हाला जैसे विशाल गढ़ों में एक-एक स्वर्णावत या सेनापति था। प्रत्येक किले में एक प्रधान मुँशी (क्लर्क) तथा भोज्य पदार्थों के भन्डार तथा अन्य युद्ध सामग्रियों का भन्डारों के निरीक्षण का अधिकारी रहता था। मुंशी जो ब्राम्हण होते थे सबर्नी कह कर पुकारे

जाते थे तथा दूसरे अधिकारी को जो साधारणतः प्रभु जाति का होता था, कारकानीस कह कर पुकारा जाता था। किले के अंदर आने तथा जाने, पहरेदारों का निरीक्षण, पहरेदारों की नियुक्ति, गोला बारूद का निरीक्षण तथा उनकी खरीद-फरोख्त आदि पर वहुत ध्यान दिया जाता था। इन कार्यों के लिये अलग अधिकारी होते थे। इन अधिकारियों की कार्य-सीमा, कार्य-विधि, साफ साफ बटी रहती थी और उस सीमा से बाहर जाने पर उनसे जवाब तलब किया जाता था। इन सभी प्रबन्धों में हमें शिवाजी की आर्थिक नियोजन क्षमता स्पष्ट रूप से दर्शित होती है।

किलों में रहने वाली सेना के साथ कभी साधारण पैदल सेना रख दी जाती थी--परन्तु अधिकतर पूरे किले का एक अपना अस्तित्व, संगठन होता था, उनके अपने अधिकारी एकदम निश्चित होते थे। एक क़िले के संगठन में, ब्राम्हण मराठे, रामूसी, महार तथा माँग लोग होते थे। पूरे संगठन को गढ़खरीस कहा जाता था। इन सभी लोगों को लगान हीन भूमि देकर नियुक्त कर लिया जाता था। इस भूमि का अधिकार अनुवंशिक होता था। यह जमीन प्रायः किले के पास की ही होती थी, जो किले के संरक्षण में सुरक्षित रहती थी। रामूसीज, महार और मांग, लोगों को वाहरी चौकसी के क्षेत्रों (आउट पोस्ट) में नियुक्त किया जाता था। इनका प्रमुख कार्य, शत्रुओं पर गुप्तचरी करना, उनको गलत रास्ते पर डाल देना, तथा सभी राहों की निगरानी करना था। शत्रुओं के छोटे-मोटे समूह का संबन्ध मुख्य सेना से काट देने के कार्य में वे अति कुशल थे। जब यह प्रथा अपनी पूरी शक्ति के साथ प्रचलन में थी, शिवाजी के शासन और उद्देश्य को उससे बहुत सुविधा मिलती थी, तथा देश के कुशल व्यक्तियों की योग्यता का उपयोग होता था। गढ़खरीस अपने को किले का प्रभु समझते थे, जो उनके जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करती थी। इसी कारण, इस योजना की तरह कोई अन्य योजना इतनी महत्वपूर्ण नहीं मानी जा सकती जो इतने कुशल और अनुभवी सैनिकों की सहायता हमेशा प्रदान किया करती रहती थी।

शिवाजी की लगान व्यवस्था, दादाजी कोंड देव के ही ढरें पर निर्धारित होती रही। फसल की अवस्थानुसार लगान कायम किया जाता था। सरकारी लगान कुल उपज का २।५ था और किसान को ३।६ हिसाब मिलता था। जैसे ही उन्हें किसी नये क्षेत्र का अधिकार मिलता उस क्षेत्र के समस्त सैनिक देय समाप्त कर दिये जाते। प्रचलित लगान व्यवस्था को रोक दिया जाता और शिवाजी द्वारा नियुक्त उनके प्रतिनिधि लगान वसूली का कार्य करने लगते।

प्रत्येक दो या तीन गाँव का निरीक्षण एक अधिकारी करता था जो ताल्लुकेदार या तरफदार के अधीन होता था। ताल्लुकेदार छोटे से जिले का प्रधान होता था। इस प्रकार के प्रत्येक ताल्लुकेदार के साथ एक हवलदार * नियुक्त रहता था। परन्तु भारी क्षेत्र का प्रबन्ध सूबेदार के हाथ में रहता था। उसको मामालितदार भी कहा जाता था। उसके पास एक या दो किले रहते थे, जिनमें वह लगान वसूली के धन और अन्न को सुरक्षित रूप से रखता था।

शिवाजी ने देशमुखों और देशपान्डे लोगों को कभी भी अपने शासन प्रबन्ध में हस्तक्षेप नहीं करने दिया। उनको अपने हिस्से की लगान भी वसूली के समय नहीं दी जाती थी। सारी लगान जमा हो जाने के बाद साल के अन्त में सरकार के आदेश से उनको अपना रुपया मिलता

---

* यह हवलदार सिविल या प्रशासनिक होता था सैनिक नहीं।

था। पटेल, खोट और कुलकर्णी लोगों पर कठोर निरीक्षण था। शिवाजी का शासन साधारण किसानों के लिये जितना सुविधाजनक था। जिला अधिकारियों के लिये उतना ही असुविधाजनक और कठोर था। शिवाजी हमेशा इनके पीछे पड़े रहते थे, कारण ये सेना से अधिक प्राप्त करके भी सेना का सा लाभ नहीं दे सकते थे।

मराठा सरकार के ब्राह्मण मंत्रियों द्वारा वेतन देने का तरीका शिवाजी के समय में लागू नहीं हुआ था, यह तरीका गाँव के लगान पर अधिकारियों और सैनिकों के हिस्से तय करके छोड़ दिये जाते थे, लगान की तरह अपना हिस्सा पा जाते थे, यह विधि जब शिवाजी के सामने लायी गयी तो उन्होंने उसको अस्वीकृत कर दिया। उनका कहना था कि इस प्रकार राज्य की शक्तियों का अनुचित रूप से विभाजन हो जायेगा, प्रत्येक अधिकारी लगान पर अधिकार पा कर मनमानी करेगा तथा किसानों पर उसका खराब असर पहुँचेगा। इन सब चीजों से उनकी सरकार बीजापुर की सरकार की तरह शक्तिहीन हो जायेगी, अपने इसी दृष्टिकोण के कारण उन्होंने गाँवों की घेरे बन्दी और किलेबन्दी को तुड़वा दिया और ऐसी किसी भी सुरक्षात्मक किलेबन्दी को समाप्त कर दिया जहाँ उनकी सेना का प्रवेश न हो।

धार्मिक भवनों की सुरक्षा का प्रबन्ध था, मन्दिरों के लिये यद्यपि कानूनन कोई राशि नहीं बँधी थी परन्तु उनको आवश्यकतानुसार सहायता दी जाती थी, जिनका हिसाब पन्डित या मन्दिर में नियुक्त ब्राम्हण से लिया जाता था। शिवाजी ने किसी भी मुसलमान शासक द्वारा दी गई जमीन या सुविधाओं को समाप्त नहीं किया था जो उनके मसजिद कब्रगाह या संतों, फकीरों के पालन-पोषण के लिये स्वीकृत थे।

शिवाजी के कानून एकदम सरल थे, कुछ अर्थों में न्यायपूर्ण भी परन्तु उनके संघर्ष को देखते हुए यह असंभव लगता है कि वे प्रशासनिक सुधारों की ओर इतना अधिक ध्यान दे पाये होंगे. या उनके प्रबन्ध से जनसंख्या में वृद्धि हुई होगी जैसा कि उनके देशवासी कहते फिरते हैं। उनके जिले हमेशा इधर-उधर होते रहते थे, विनाश कांडों की भरमार से उनकी उन्नति और सुरक्षा का प्रबन्ध जिस अवकाश, निरीक्षण व रक्षा की मांग करता है वह शिवाजी कभी नहीं दे पाये थे। मुसलमान लेखकों और एक अंग्रेज भ्रमणकारी ने उनके शासित क्षेत्र को विपन्नता की पराकाष्ठा पर बताया है। मुसलमान लेखकों ने तो उन्हें मात्र विनाशक और उपद्रवी की उपाधि दी है, परन्तु उन्होंने जिन जिलों को बीजापुर से छीना या प्राप्त किया था, जहाँ प्रबन्ध या तो किसानों के हाथ में था या सीधे सरकार के प्रतिनिधियों के हाथ में, वे इस परिवर्तन से खुशहाल हो गये।

जन-साधारण के न्याय के लिये शिवाजी ने पंचायतों को मान्यता प्रदान की—जो उस समय की प्रमुख प्रचलित न्याय-व्यवस्था थी, उनके सैनिकों के मुकद्दमे उच्च सैनिक अधिकारियों द्वारा सुलझाये जाते थे, अपराध के दन्ड के लिये उन्होंने शास्त्रों में दिये गये न्याय का प्रचलन किया परन्तु इसके पूर्व में मुसलमान शासकों द्वारा न्याय पद्धति कुरान के सिद्धान्तों पर आधारित होती थी अतः काफी समय तक व्यवहार में रहने के कारण समाज ने भी उसे व्यवहार रूप में मान्यता दे दी थी, इसी कारण आज भी हिन्दू ला (कानून) और मराठों में प्रचलित विधि में अन्तर दिखलाई पड़ता है।

अपनी प्रशासनिक और सैनिक व्यवस्थाओं के लिये शिवाजी ने आठ प्रमुख विभाग स्थापित किया उनके नाम उनके प्रधानों के साथ इस प्रकार है :—

१—पेशवा, प्रधान व्यवस्थापक या प्रधान मंत्री इस पद पर मोरोपंत या मोरेश्वर त्रिम्मल पिंगले थे।

२—मजीमदार—अर्थ-व्यवस्था लगान वसूली सरकारी आय-व्यय की जाँच आदि का कार्य इस पद के अधीन था। इसकी प्रशासनिक व्यवस्था का उन दिनों बहुत महत्व था इसके अधीन कर्मचारियों की भारी संख्या रहती थी, आबाजी सोनदेव, कल्याणी के जागीरदार और शिवाजी के मजीमदार थे।

३—सुरनीस या पत्र-व्यवहार और संधिपत्रों का प्रबन्ध व संरक्षण करने वाला सरकार के सभी कागज-पत्रों की देखभाल इसी के निदेशन में होती थी। प्रत्येक सन्धि वार्ता या आदेश प्रथम उसके पास आता था, इसकी स्वीकृति के बाद ही वह प्रभावपूर्ण हो पाता था। इस कार्यालय के प्रधान थे अन्नाजी दत्तो।

४—वांकनिस—इस विभाग में गुप्त और व्यक्तिगत पत्रों और लेखों तथा अभिलेखों की सुरक्षा का प्रबन्ध था।यहीं हर राज्य की अपनी सेना का हिसाब किताब रक्खा जाता था तथा इन सब प्रबन्धों में लगे कर्मचारियों के कार्यों का निरीक्षण किया जाता था। दत्ता जी पन्त इसके प्रधान थे।

५—सर्नाबत—सेना के प्रधान दो सर्नाबत थे, प्रताप राव गूजर सवार सेना के तथा यशजी कंक पैदल सेना के।

६—दर्बार या विदेश मंत्री—विदेशी मामलों की देखभाल तथा दूतों का बन्दोबस्त इसी के द्वारा होता था। सोमनांथ पंत इसके प्रधान थे।

७—न्यायाधीश—न्याय कार्य का प्रबन्ध इसी के अन्तर्गत होता था, नीराजी रावजी और गोमा जी नायक इसके प्रधान थें।

८—न्यायशास्त्री—यह हिन्दुओं के न्यायशास्त्रों का पंडित होता था तथा धार्मिक मामलों में अपराधों में और अपराध निरोधक उपायों की देखभाल इसके अधीन रहती थी। यह राज्य के कार्यों की धार्मिकता का भी निरीक्षण करता था, इस पद पर प्रथम सिम्भा उपाध्याय पुनः रघुनाथ पंत * को नियुक्त किया गया था।

न्यायशास्त्री और न्यायाधीश को छोड़ कर प्रायः सभी उपर्युक्त प्रधानों को सेना का सेनापति भी नियुक्त किया गया था, और बहुधा अपने लिये निर्धारित कर्तव्यों को पूर्ण भी नहीं कर पाते थे, अतः इन प्रधानों के सहायक जिन्हें कारबारी कह कर पुकारा जाता था इनके नाम पर कार्य किया करते थे, अपने प्रधानों की मुहर का उपयोग करके वे उनके सामान्य कार्यों को कर दिया करते थे। जब वे प्रधान के स्थान पर कार्य करते होते उन्हें मुताल्लिक कहा जाता था, प्रत्येक विभाग और प्रत्येक जिलों के प्रशासन प्रबन्ध के लिये आठ सहायक कर्मचारी होते थे।

१—कारबारी, दीवान, या मुताल्लिक

२—मजिमदार या एकाउन्टेन्ट

३—फर्नीस या फरनवीस, सहायक मजिमदार या सहायक लेखाधिकारी

---

* रघुनाथ पंत शिवाजी के गुरू से ही प्रधान सहायकों में थे, पहले ये प्रायः दूत कर्म करते थे, परन्तु इनको रघुनाथ-पंत हनुमंते समझने का भ्रम न होना चाहिये।

४—सबनीस या क्लर्क कभी-कभी इसे दफ्तरदार कह कर पुकरा जाता था

५—कारकानिस या अन्नभंडार का निरीक्षक

६—चिटनिस या पत्र-लेखक

७—जमादार या खजांची परन्तु नकद इसके अधीन नहीं रहता था, कीमती सामान आदि का प्रधान

८—पोतनीज या नकद जमा रखने वाला खजांची

शिवाजी के व्यक्तिगत सहायकों में खजांची, एक चिटनीस, एक फर्नीस तथा एक पर्शियन व्यक्तिगत सहायक था। उनके चिटनीस, प्रभु बालाजी आजी, की बुद्धिमानी अँगरेजी अभिलेखों में भरी पड़ी, हुई है, जो अँगरेज अधिकारियों ने उनके किसी कार्यवश बम्बई जाने पर अभिलिखित किया था।

शिवाजी के पिता के प्रधान प्रबन्धक के पुत्र बालकृष्ण हनुमन्ते उनके फर्नीस थे और उनके अपने खजांची के चुनाव में पुराने रिश्ते को दुहराया गया था। उनका खजांची, शेष विनायक पून्डे था। यह चमार गुन्डी का वही व्यक्ति था जिसको मालोजी ने शाहजी के विवाह के पहले अपनी सारी पूंजी सौंपी थी।

नवाँ अध्याय

शिवाजी का राज्याभिषेक और राज्य विस्तार

(१६७०-१६७६)

दक्षिण की शान्ति भग—सिंहगढ़ की विजय और तानाजी मालसुरे की मृत्यु—कई किलों का छीना जाना—सिद्दी का मुगल सेना में प्रवेश—शिवाजी द्वारा सूरत की लूट—मुगल सेना पर किया गया आक्रमण—उनकी पराजय—जलसेना का विकाश—खानदेश का दौरा और चौथ की वसूली—सालेर गढ़ की विजय—मराठों की भारी विजय—शिवाजी और पुर्तगालियों का युद्ध—चौकन्ने अंग्रेज—शिवाजी की गोलकुंडा यात्रा—सूरत और जंजीरा की सम्मिलित जल सेना द्वारा शिवाजी का अधिकृत किनारों पर आक्रमण—अली आदिलशाह की मृत्यु—खवास खाँ को बीजापुर का संरक्षक बनाया जाना—शिवाजी द्वारा पन्हाला पर पुनः अधिकार प्राप्त करना—शिवाजी द्वारा बीजापुर के साथ युद्ध—बीजापुर के सेना के प्रस्थान पर प्रताप राव द्वारा उस पर आक्रमण—प्रताप राव का लौटना—सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी यादव का सम्मान—आबाजी सानदेव की मृत्यु—पोन्डा का घेरा—शिवाजी द्वारा सिंहासन धारण करना तथा राज-तिलक करके राजा की उपाधि धारण करना—अंग्रेजों के साथ सधि—पुर्तगालियों द्वारा लगान—हम्मीर राव की वीरता—पोन्डा पर अधिकार—खवास खाँ की हत्या—शिवाजी द्वारा पन्हाला से सतारा तक किलों की श्रेणियों का निर्माण—सतारा में शिवाजी की बीमारी—शिवाजी द्वारा अति महत्वपूर्ण आक्रमण की योजना का बनाया जाना ।

शिवाजी की निष्क्रियता तथा बीजापुर और मुगलों के बीच चलती शांति को देखकर ऐसा लगता था जैसे, दक्षिण की अप्राप्य शांति शायद अब दूर नहीं । लोगों का विचार था कि शिवाजी जितना कुछ पा चुके हैं उसी से संतुष्ट हो गये हैं—या फिर उन्होंने मुगलों की सैनिक शक्ति के सामने अपनी शक्तिहीनता को समझ कर उनके सूबेदारों को बहुमूल्य उपहार
सन् १६७०] आदि देकर शांति बनाये रखना चाहते हैं । इतना तो सत्य है कि जसवंतसिंह तथा शाहजादा मुअज्जम दोनों ही शिवाजी से खूब उपहार वसूल करते थे । होते-होते इस आदान-प्रदान की सूचना इतनी साधारण हो गई कि औरंगजेब ने सुना । इस पर वह क्रोधित हो उठा–कहाँ वह शिवाजी को अपने अधिकार में देखना चाहता था और इधर शाहज़ादा उसी से मित्रता का व्यवहार कर रहा था । उसने आगरे से आगे मुअज्जम को कठोर आदेश भेजे और शिवाजी तथा उसके सर्दारों के विषय मे उसे कठोर आदेश भेजा । इस समय प्रतापराव गूजर भी संभाजी के स्थान पर वहीं था । शाहज़ादे को सम्राट के इस आदेश की भनक पहले ही मिल गई थी, अतः उसने

तुरंत ही प्रतापराव और उसकी सेना को इससे अवगत कर भाग जाने का पूर्ण अवसर प्रदान किया। प्रतापराव शिवाजी के दूत नीराजी रामजी के साथ अपनी सम्पूर्ण सवार सेना के साथ उसी रात निकल गया और सुरक्षित पूना पहुँच गया। औरंगजेब को दिखाने के लिये शहजादे ने एक टुकड़ी को प्रतापराव के खिलाफ भेजा जो निराश होकर लौट आया।

औरंगजेब के पिछले अन्यायपूर्ण और अपमानजनक व्यवहार को भूलाकर शिवाजी द्वारा मुगलों से मित्रता बनाये रखने की भावना से जिन लोगों ने उनके राजनैतिक भविष्य और निष्क्रियता का अनुमान लगाया था, उनको शिवाजी का अचानक अभियान बड़ा ही अद्भुत और विस्मयकारी लगा। इनके इस अभियान की सफलता और तीव्रता देख लोग उनकी पिछली सफलताओं को भूल गये। उनका पहला उद्देश्य था पुरंदर और सिंहगढ़ पर अधिकार करना। इन दोनों किलों के अभाव में उनका पूना और चाकण का मार्ग अवरुद्ध हो गया था। सिंहगढ़ के बारे में शिवाजी ने जो सोचा था वह ठीक ही समझा था। वास्तव में उसकी अपनी अगमता ही उसे आसानी से विजित नहीं होने देती थी। ऊपर से उसका राजपूत किलेदार उदयभानसिंह नामक एक प्रसिद्ध योद्धा था। अतः उसकी अगमता और भी दुरुह हो गई थी परन्तु किले की प्रतिरक्षात्मक तैयारियों ने किले के सैनिकों को असावधानी में डाल रक्खा था और उनकी इसी असावधानी का लाभ शिवाजी ने उठाया। उन्होंने तानाजी को बुला कर इस इरादे को पक्का किया। तानाजी मालसुरे ने उनकी योजना पर अपनी सम्मति देकर सिंहगढ़ विजय का भार अपने ऊपर लिया और अपने साथ अपने छोटे भाई के अतिरिक्त १००० चुने मावली सैनिकों को ले जाने की अनुमति प्राप्त करके तानाजी ने युद्ध की तैयारी की। इतिहास के किसी भी मराठी आक्रमण का विवरण इतनी हृदयस्पर्शी और वीरतापूर्ण नहीं है जितना इस अकेले सिंहगढ़ पर हुये आक्रमण का मिलता है। मराठी पाण्डुलिपियों में इस साहसिक और अद्भुत लडाई का विस्तृत विवरण है।

दक्षिण की पहाड़ी श्रेणियों के पूर्वी दौर पर जहाँ से पुरंदर की शाखायें दक्षिण की ओर घूम पड़ी हैं, सिंहगढ़ स्थित हैं। इन पहाड़ियों के कारण इस किले में आने जाने का मार्ग केवल पूर्व और पश्चिम से ही है, और वह भी संकरे दक्षिण और उत्तर में ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ सिर उठाये आसमान से बातें करती प्रतीत होती हैं। एक मील के घेरे में खड़ी पहाड़ियों में कहीं-कहीं तो इन पहाड़ियों की शकल समकोण सी है। इसकी ऊँचाई तक के हिस्सों से काली चट्टानें एकदम ढालू अवस्था में खड़ी हैं, जिनकी ऊचाई ४० फीट तक है। घाटमाथा की पहाड़ियों की बनावट ही ऐसी है, ४० फीट की इन ऊंची चट्टानों के बाद पत्थर की मोटी दीवारों से निर्मित सिंहगढ़ का किला है। किले की बनावट तिकोनी है जिसके अन्दर दो मील का घेरा है। जिसकी बाहरी दीवारों का घेरा पहाड़ियों से सुरक्षित है। अतः किले में जाने का मार्ग मुख्य द्वार से होकर ही है, किसी दूसरे मार्ग से अन्दर जाने का प्रयास मात्र कल्पना प्रतीत होती है। जब वातावरण साफ रहता है तब पूर्व में नीरा नदी की छोटी और सुरम्य घाटी दिखलाई पड़ती है तथा किले से उत्तर दृष्टिपात करने पर शिवाजी का प्रिय स्थान पूना सामने आता है। उस समय पूना इतना विस्तृत नहीं था परन्तु वह उस नये राजा की राजधानी बनाने की तैय्यारी कर रहा था और दक्षिण में पहाड़ी चोटियाँ आसमान से बातें करती अपनी अगम्यता दर्शाती झाँकती रहती थीं। इसी दिशा में रायगढ़ का किला था जहाँ तानाजी मालसुरे के साथ एक हजार मावली सिंहगढ़ पर आने को तैय्यार थे। वे कई टुकड़ियों में अलग-अलग रास्तों से, जिनका पता

सिर्फ उन्हीं को था, आगे बढ़े और एक स्थान पर आकर मिल गये। माघ महीने के (फरवरी) अन्धेरे पाख में, जब कि चन्द्रमा आधा प्रकाशमान रहता है, तानाजी के मावली सिंहगढ़ के पास रात के साये में अपने को काली चट्टानों में छिपाये सिंहगढ़ के पास आ खड़े हुए। तानाजी ने आधे आदमियों को कुछ दूरी पर आवश्यकता पड़ने पर आगे बढ़ने के लिये तैयार रहने का आदेश दे कर रोक दिया। आधे आदमियों को लेकर वे किले के नीचे आये, उन्होंने सबसे दुर्गम स्थान को अपनी चढ़ाई के लिये चुना—कारण इससे दुश्मनों को उनके प्रति जरा भी सन्देह नहीं होगा। उनके साथ के कुशल मावलियों ने आसानी से उन दुर्गम पहाड़ियों पर चढ़ कर सेना को जाने के लिये रस्सी की सीढ़ी तैयार कर दिया। अपने **दो सौ** सैनिक वहीं छोड़ कर सिर्फ ३०० मावलियों की सेना के साथ तानाजी ने रात के अंधेरे में किले में उतर गये। परन्तु इसी अवसर पर किसी प्रकार गढ़ के सैनिकों में से किसी को उनके द्वारा अपनाये गये हिस्से की ओर से कुछ संदेह हुआ। पता लगाने वह जैसे ही उनके पास आया, अंधेरे से निकल कर एक तीर ने उसको वेध दिया। गिरते-गिरते उसकी चीख ने किले के राजपूतों को सजग कर दिया। बढ़ती हुई सजगता और अस्त्रों-शस्त्रों की पुकार को देखकर तानाजी ने अपने को छिपाने का प्रयास त्याग दिया और मावलियों के तीर अंधेरे को चीर, बढ़ती हुई आवाजों की दिशा में छूटने लगे। कुछ देर में किले के सिपाहियों ने मसाल आदि जलाकर मावलियों को अंधेरे से बाहर खींचा। दोनों दलों में जमकर लड़ाई होती रही, परन्तु अचानक तानाजी को गिरते देख मावलियों में भगदड़ मच गई और वे वापस सीढ़ी की ओर बढ़े परन्तु तभी पीछे रुकी सेना के साथ तानाजी का भाई सूर्याजी आ गया। सारी स्थिति समझ कर उसने भागते मावलियों को ललकारा और कहा कि रण में सेनापति की लाश छोड़कर भागने वालों अपनी मावली जाति को कलंक मत लगाओ। चलो हम दिखादें कि हम शिवाजी के वीर मावली हैं। सूर्याजी की जोश भरी ललकार सुन मावले लौट पड़े और हर-हर महादेव के नारे के साथ राजपूतों पर टूट पड़े। सूर्याजी ने उन्हें यह भी बता दिया था कि जाने के लिये रस्सी की सीढ़ी भी खत्म हो गई है अतः उन्होंने जान लेने देने वाली लड़ाई लड़ी। परिणामस्वरूप सुबह होने से काफी पहले सिंहगढ़ पर मावलियों का अधिकार हो गया था। एक तिहाई मावले इस रण में काम आये और ५०० राजपूत, अपने नेता के साथ या तो मारे गये या घायल हुए। कुछ ने किले की दीवारों को फाँद कर भागने का प्रयास किया और अपने प्रयास में सफल हुए या पहाड़ियों से गिर कर चकना चूर हो गये। बचे हुये सैनिकों ने आत्म समर्पण कर दिया।

अपनी विजय की सूचना किले में एक ध्वस्त मकान को जलाकर दे दी गई, जिसका समाचार जानने को शिवाजी बहुत उत्सुक थे। विजय का समाचार प्राप्त कर वे प्रशन्न हो उठे, परन्तु जब उन्हें यह पता चला कि इस विजय को प्राप्त करने में तानाजी को अपने प्राण चढ़ाने पड़े हैं तो वह शोकाकुल हो गये। उन्होंने तानाजी की दाह क्रिया करते समय कहा 'गढ़ आला पर सिंह गेला, अर्थात 'सिंह तो चला गया पर गढ़ मिला है। हाय ! मैंने तानाजी मालसुरे को खो दिया।'

शिवाजी यद्यपि अपने सैनिकों को वेतन के अतिरिक्त अन्य उपहार नहीं देते थे, परन्तु इस अवसर पर उन्होंने सिंहगढ़ के अभियान में गये प्रत्येक सैनिक को चाँदी के तोड़े या कड़े उपहारस्वरूप दिया तथा उसी अनुपात में सेनापतियों तथा अन्य प्रधान सैनिक अधिकारियों को भी विभिन्न प्रकार के उपहारों से सम्मानित किया। सूर्याजी मालसुरे को सिंहगढ़ का किलेदार

नियुक्त किया। सिंहगढ़ पर अधिकार करने के एक महीने के भीतर ही पुरन्दर पर भी आक्रमण किया गया जो अल्प कालीन विरोध के बाद मराठों के अधिकार में आ गया। सूर्याजी भी इस चढ़ाई में सहायक थे।

कोंकण के माहुली किले को अधिकार में लाने ,के लिये मराठों को पुरंदर से भी गंभीर युद्ध करना पड़ा। मोरो पन्त को अपने प्रथम प्रयास में मुँह की खानी पड़ी तथा १००० मराठे भी मारे गये परन्तु वे उस पर घेरा डाले पड़े रहे और किले के सैनिक जुन्नार से सहायता पाने की आशा में डटे रहे। इन्होंने किले पर हुये दूसरे प्रबल आक्रमण को भी बेकार कर दिया। यह स्थिति दो महीनों तक बनी रही। परन्तु जुन्नार की सहायता से निराश होकर किले के अधिकारियों ने आत्म-समर्पण कर दिया। इसी प्रकार से कर्नाला को भी अधिकार में ले लिया गया। इस प्रकार जून के अन्त तक पूरा कल्याण क्षेत्र शिवाजी के अधिकार में आ गया। मगहर पर भी अचानक धावा करके ले लिया गया। परन्तु शिवनेरी को प्राप्त करने का प्रयास विफल हुआ। जिंजीरा पर स्वयं शिवाजी ने आक्रमण किया। प्रत्येक वर्ष शिवाजी ने अपने तोपखाने से इस पर तोपें दगवाई थीं परन्तु उनको कभी भी सफलता नहीं मिली। इस बार उन्होंने अपनी पूरी शक्ति से आक्रमण किया। वे अच्छे मौसम के आने से पहले ही उसको अपने अधिकार में कर लेना चाहते थे। अपनी शक्ति के अलावा भी उन्होंने फतेहखां को मिलाने का प्रयत्न किया। पहले तो फतेह खाँ ने उनके सभी प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया परन्तु अन्त में उसने आत्म-समर्पण करने और शिवाजी की प्रभुता व संरक्षण प्राप्त करने के पक्ष में निर्णय किया, परन्तु उसके अधीन तीन अन्य अबीसीनियन अधिकारी थे जो शिवाजी से चिढ़ते थे। वे पक्के मुसलमान होने के नाते मराठों से स्वभाव से ही जलन रखते थे। अतः उन्होंने फतेह खाँ के समर्पण करने पर भी विरोधी रहने की घोषणा की अपने उन्हीं विचारों को जनता में पहुँचा कर उन्होंने फतेह खाँ के विरुद्ध षड़यन्त्र किया और उचित समर्थन मिलते ही उन्होने फतेह खाँ को उठा कर जेल मे ठूस दिया। शिवाजी ने निराशा से देखा कि पुनः जिंजीरा की प्रतिरक्षा पूर्ववर्ती ढंग से होने लगी। उन तीनों ने सूरत के मुगल सूबेदार से सहायता माँगी और उन्हें मुगलों की सजा स्वीकार करने तथा बीजापुर के जल बेड़े को भी मुगलों को सौंपने का आश्वासन दिया। उन तीनों अबीसीनियनों का नाम क्रमशः सिद्दी सँभोले, सिद्दी याकूत तथा सिद्दी खकि या। खकि तथा याकूत ने संभोले को अपना प्रधान मानना स्वीकार कर लिया। इन लोगों का प्रस्ताव सूरत के सूबेदार ने स्वीकार कर लिया। औरंगजेब ने भी उस पर अपनी सहमति प्रदान कर दिया तथा सिद्दी संभोले को याकूत खां की उपाधि-प्रदान की।

अभी वर्षा ऋतु समाप्त भो नहीं हो पाई थी, जब शिवाजी १५००० सैनिकों के साथ सूरत के मुहाने पर आ डटे। उन्हें पता चला कि सूरत का सूबेदार मर गया है तथा शिवाजी के संभावित आक्रमण से रक्षा के लिए जो सेना किले में रक्खी गई थी वह भी जसवत सिंह तथा शहजादे द्वारा हटा ली गई है अतः मुश्किल से सौ सैनिकों से रक्षित इस नगर को तीन दिन तक खूब लूटा गया। कुछ लोगों का कहना है कि सूरत से सेना हटवाने में शिवाजी ने जसवंत सिंह से सहायता ली थी। परन्तु अधिक संभावना इसी बात की है कि असावधानी वश ही ऐसा हुआ। अंग्रेजों ने पहले की भांति ही अपने कारखानों और भवनों आदि की रक्षा की तथा कई मराठों को मार डाला। अंग्रेजों का नायकत्व मि० स्ट्रेघम कर रहे थे, डच लोगों की फैक्टरियाँ निर्जन में होने के कारण

सुरक्षित रहीं तथा फ्रांसीसियों ने उन्हें अपने कारखानों से होकर एक पुराने सुल्तान को लूटने में सहायता पहुँचा कर अपनी जान बचाई। यह सुल्तान हाल ही में मक्का से लौटा था * जिसकी संपत्ति की लूट में शिवाजी को ढेरों सोना, सोने की पलंग तथा अन्य कीमती फर्नीचर प्राप्त हुए।

तीसरे दिन के बाद बुरहानपुर से अपने गुप्तचरों द्वारा कोई समाचार पाकर शिवाजी अचानक ही अपनी सेना लेकर अपने क्षेत्र की ओर बढ़े, परन्तु सूरत छोड़ने से पहले उन्होंने वहाँ के निवासियों से १२ लाख साल का लिखित कर मांगा तथा उसके अभाव में हर साल सूरत को लूटने की धमकी भी देते गये। उन्होंने सन्हेहर की सड़क से सीधा अपने राज्य की ओर प्रस्थान किया। वे कंचन मंचन पार करने के बाद इन्दौर के पास पहुँचे थे जब दाउद खां नामक मुगल अधिकारी के साथ ५,००० मुगल सेना बिना किसी पूर्व जानकारी के एकदम पास आ पहुँची, परन्तु शिवाजी ने जल्दी ही भाप लिया कि कोई भारी सेना नासिक के दर्रे तथा उनके बीच में पड़ी हुई है, जिससे हो कर उन्होंने कोंकण जाने का विचार किया था, अतः दुश्मनों का ध्यान बटाने के लिये उन्होंने अपनी सेना को चार या पाँच विभागों में बाँट दिया। इनमें से एक भाग को उन्होंने मुख्य सेना पर आक्रमण करने का आदेश दिया तथा दो विभागों को उन्होंने प्रथम विभाग की सहायता करने के लिये छोड़ दिया। अब उन्होंने चौथे विभाग को लूट का सामान देकर सुरक्षित रायगढ़ पहुँचने के लिए घाटी से होते हुये कोंकण की ओर तेजी से बढ़ने का आदेश देकर उन्होंने दुश्मनों का ध्यान उधर से बँटाये रखा। शिवाजी को यदि अपनी लूट के छिन जाने का भय न होता तो वे किंचित यह लड़ाई न होने देते। परन्तु अब वे अपनी लूट का माल बचाये रखने के लिये एवं दुश्मनों को हराने के लिये विवश थे। दाउद खां अपनी सेना के साथ इनकी ओर बढ़ा। शिवाजी घूम पड़े और उस पर भारी प्रहार करके भगा दिया। तब अपने पीछे सुरक्षा के लिये एक टुकड़ी छोड़ वे मुख्य सेना पर टूट पड़े। उन्होंने शत्रुओं को एक झील के किनारे असावधान खड़े देख जोरदार हमला कर दिया। इस अचानक हुए हमले से वे घबरा गये और भाग खड़े हुये। इसी सेना के साथ एक टुकड़ी, माहूर के देशमुख की विधवा के अधीन मराठों की भी थी, उन्हें शिवाजी के आदमियों ने कैद कर लिया। पीछे उन्हें ससम्मान् उपहार दे कर शिवाजी ने वापस जाने दिया।

वापस लौटने पर शिवाजी ने अपनी पैदल सवार व जलसेना का तेजी से विस्तार किया, १०००० सवारों के साथ प्रतापराव गूजर तथा २०००० पैदल के साथ पेशवा ने उत्तर दिशा की ओर कदम बढ़ाये। इनकी सहायता के लिये १६० जलपोतों के बेड़े ने बम्बई को पार किया। इनका विचार बरौच पर आक्रमण करने का था, परन्तु जलसेना के लिये एक अन्य अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य के लिये वापस बुला लिया गया जो अपने साथ विशाल पुर्तगाली जहाज के साथ डाबुल लौटा। इसको उन्होंने दामन (डामन) से छीना था परन्तु शिवाजी के भी १२ जलपोत पुर्तगालियों के हाथ लगे, जिसे वे बसई ले जाने में सफल हुए।

खानदेश उन दिनों बहुत महत्वपूर्ण और समृद्धिशाली माना जाता था, जिसे शिवाजी ने अनुमानतः अरक्षित समझा था। उन्होंने प्रतापराव को खानदेश पर आक्रमण करने का आदेश दिया। शिवाजी का अनुमान सत्य था।

---

* अंग्रेज उन्हें कास्कर का भूतपूर्व शाह बताते हैं जो किसी कारणवश अपदस्थ कर दिये गये थे, शिवाजी ने स्वयं कहा है कि इस लूट से उन्हें सोना, चाँदी तथा और भी कीमती फर्नीचर भारी मात्रा में मिला है।

प्रतापराव ने बिना किसी विशेष विरोध के वहाँ से लगान वसूल किया तथा आसपास के नगरों की लुट-खसोट की, विशेष तौर पर करन्जा को। परन्तु इस बार के आक्रमण में एक विशेषता थी, शिवाजी ने गाँवों के सरदारों से यह लिखित प्रतिज्ञा करवा ली थी कि वे लगान का चौथा हिस्सा (चौथ) शिवाजी या उनके प्रतिनिधि को सालाना दिया करेंगे तथा इसके एवज में उन्होंने उन लोगों को सुरक्षा का आश्वासन दिया। यह पहला अवसर था जब कि शिवाजी ने मुगलों से चौथ वसूल किया ,यही नहीं वरन इस चौथ वसूली की रसीद भी किसानों को दिये जाने का प्रबन्ध किया।*

मोरो पंत ने अपनी पैदल सेना की सहायता से आसपास के कई किलों पर अधिकार कर लिया। उनमें से प्रमुख किले औढा, पट्टा तथा साले के थे। (सन् १६७१ जनवरी)

शिवाजी की इन सफलताओं के मध्य मुगलों की निष्क्रियता का मुख्य कारण उनके पास सेना की कमी था। जिस समय पेशवा माहुली पर घेरा डाले हुए थे, मुगलों के पास ५००० सेना सूरत तथा कुछ सेना जुन्नार में थी जब कि शिवाजी के पास मौका पड़ने पर ४०००० सेना तक आवश्यकता पड़ने पर इकट्ठी हो सकती थी। परन्तु सेना की कमी ही मुगलों की निष्क्रियता का कारण हो ऐसी भी बात नहीं थीं, जिससे शिवाजी की शक्ति बढ़ती रही। साधारण सूचना के अनुसार शहजादे और शिवाजी में एक गुप्त मित्रता भी काम करती थी। हमने स्वयं भी देखा है कि दोनों में काफी सम्बन्ध बना रहा है, जसवंत सिंह भी निश्चय ही शिवाजी का दुश्मन नहीं था। उसने कई बार अपनी सेना बढ़ाने के लिये औरंगजेब को लिखा, परन्तु वह यह भी जानता था कि औरंगजेब अपनी ईर्ष्यावश उसकी प्रार्थना पर कभी ध्यान नहीं देगा। यद्यपि हमें शहजादे के विद्रोह करने के बारे में कोई कथित प्रमाण भी नहीं मिलते, परन्तु इतना तो हो ही सकता है कि अपने पुश्तैनी इतिहास से भयभीत हो शिवाजी से अपना सम्बंध बनाये रखना चाह रहा हो, कारण सम्राट के मरने के वाद शहजादे के नसीव में या तो सिंहासन या फिर आजन्म कैद, मौत, ही तो होती है अतः शिवाजी जैसे समर्थ व्यक्ति से मित्रता वनाये रखना शहजादे के लिये असंभव नहीं था। इसीलिए उसने अपनी शक्ति का अपव्यय भी न करना चाहा हो। यह भी संभव है; कारण सिर्फ इसी प्रकार वह औरंगजेब को अपनी बात मानने को विवश कर सकता था, परन्तु उसकी सारी योजना मिट्टी में मिल गई। कारण जसवंत सिंह को वापस वुला लिया गया तथा उसके स्थान पर महावत खाँ के अधीन ४०००० सेना दक्षिण में भेजी गई। महावत खां जसवंत सिंह के समान नहीं था। इस कारण शहजादे की एक न चली, स्वयं उसके पास मुश्किल से एक हजार सेना छोड़ शेष को उसने अपने अधिकार में रक्खा।

महावत खां ने शिवाजी के गढ़ों को अपने अधिकार में करना शुरू किया परन्तु औंढ़ा और पट्टा को अपने अधिकार में करते-करते वर्षा आरंभ होने के कारण उसे वापस छावनी लौटना

---

* मराठा पाण्डुलिपि तथा अंग्रेजी अभिलेख, सूरत की लूट तथा करंजा की लूट में शायद स्वयं शिवाजी थे, जिन्होंने चौथ की माँग की तथा उन सभी को बाँध ले गये जिन्होंने इसका विरोध किया, अपनी जान बचाने के लिए लोग जनाने कपड़ों में छिप कर भाग गये। इससे पता चलता है कि औरतों की रक्षा के लिए शिवाजी के नियम कठोर थे।

पड़ा और वर्षा ऋतु के बाद उसने पुनः अपनी सेनाओं को मैदान में ला खड़ा किया।† आधी सेना
दिलेर खां के अधीन चाकण पर आक्रमण करने गई तथा शेष ने सालेर पर आक्रमण करने का
विचार किया। सालेर के महत्व को देखते हुए शिवाजी ने उसकी रक्षा करने का विचार किया, किले
की सेना किसी अज्ञात कारणवश किले में रसद पानी तथा अस्त्र शस्त्र का भंडार
सन् १६७२] इकट्ठा न कर सकी थी तथा उसके पड़ोस में ही पड़े शिवाजी के २००० बढ़िया घोड़े
भी शत्रुओं की पठान टुकड़ी द्वारा काट डाले गये, इसलिये इनके विरोध में शीघ्रता
की आवश्यकता थी अतः इस कार्य का भार पेशवा तथा प्रताप राव गूजर को सौंपा गया। इनको
२०००० घोड़ों के साथ मुगलों पर आक्रमण करने का आदेश मिला। जैसे ही मुगलों के सेनापति‡ ने
मराठों के आने का समाचार सुना, सेना के सबसे बड़े भाग के साथ इखलास खाँ को उनका
सामना करने का आदेश दिया। मराठों का नायक प्रतापराव था, उसने इखलास खां को आक्रमण
करने को उत्सुक जान कर इन्तजार करना ही अच्छा समझा। वह शान्त पड़ा रहा। मुगलों के
आक्रमण होते ही वह भाग चला परन्तु जैसे ही पीछा करने के लिये सेना ने अपना नियम तोड़ा
और इधर उधर हुई वह घुस गया और मोरो पंत की सेना के साथ उसने दृश्य ही पलट दिया और
मुगलों के हाथ की जाती बाजी पलटा खा गई। किसी प्रकार मुगलों ने पुनः अपने को स्थिर
किया परन्तु उन पर अचानक आक्रमण हुआ और अपनी वीरता के बावजूद उनको विजय श्री
खो देनी पड़ी उनकी भयानक क्षति हुई, २२ मुख्य मुख्य सर्दार खेत रहे तथा उनके प्रसिद्ध योद्धा
घायल हुए और बन्दी बना लिये गये। सूरराव काकरे नामक पंचहजारी तथा ५०० सैनिक मारे
गये या घायल हुए।

मुगलों पर सामने लड़कर मिली यह प्रथम विजय थी। इससे मराठों की शक्ति का पता लगा और उनको प्रसिद्धि मिली। इसका तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि घेरा उठा लिया गया तथा मुगल सेना औरंगाबाद लौट गई। बंदी सैनिक और अधिकारियों को उनके घाव अच्छे हो जाने पर सम्मानपूर्वक वापस जाने की अनुमांति प्रदान की गई। जिन बंदियों ने उनकी सेवा में रहना स्वीकार कर लिया उनको अपनी सेना में भर्ती कर लिया गया बीजापुर और मुगल सेना के काफी सनिक इसी प्रकार शिवाजी की सेना में आ मिले थे जो भगवे झंडे के साथ अपनी वीरता के लिये प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। यह भगवा झंडा शिवाजी के युद्ध का तथा उन्हीं का प्रतीक था।

वर्षा में ही शिवाजी ने कोंकण की उत्तरी सीमा के किलों पर अधिकार करना शुरू किया। ये किले अधिकतर कूली राजाओं के या फिर छोटे छोटे स्वतन्त्र सरदारों के थे, जिन्हें शिवाजी ने अपने अधीन होने के लिये विवश कर दिया। चूंकि शिवाजी और पुर्तगालियों में युद्ध चल रहा था। और शिवाजी उनको खदेड़ने को कटिबद्ध थे अतः राजाओं के किलों के हाथ में आते ही वहीं से डामन और बसई पर आक्रमण किये जाने की काफी संभावना थी। शिवाजी के सैनिकों द्वारा पुर्तगालियों के सलसटी नामक प्रायद्वीप के छोटे से किले गोराबदर पर एक असफल प्रयास किया गया, बम्बई के अंग्रेजों को इससे बहुत घबराहट हुई। उनको भय था कि कहीं उन पर भी शिवाजी

---

† मराठा पाण्डुलिपि

‡ मैं समझता हूँ यह महाव्रत खाँ ही रहा होगा। मराठा पाण्डुलिपि की यह कथा सत्य नहीं कि वह दिलेर खाँ के साथ चाकण में था।

आक्रमण न कर बैठें, अतः उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिये किले बंदी करना शुरू किया और शिवाजी के साथ शांति प्रस्ताव और समझौते का प्रयास होने लगा–कारण अगर उनमें सन्धि हो जाती तो उनकी पिछली अतिपूर्ति तथा पुनः नयी सुविधायें प्राप्त करने का रास्ता खुल जाता। यद्यपि अंग्रेजों को शिवाजी से कभी भी गंभीर क्षति नहीं पहुँची परन्तु फिर भी वे शिवाजी से मित्रता रखना चाहते थे कारण बम्बई एक प्रायद्वीप है जिसे अपनी आवश्यकताओं के लिये शेष देश पर आश्रित रहना पड़ता था तथा यदि अंग्रेजों ने मुगलों को अपने बन्दरगाह से होकर शिवाजी के किनारों पर आक्रमण करने का रास्ता दिया होता तो शिवाजी शायद टिक भी न पाते। तात्पर्य यह है कि दोनों एक दूसरे के पूरक थे अतः संधि का वातावरण दोनों के प्रतिकुल नहीं था, जब से शिवाजी ने राजापुर को ध्वस्त किया था अंग्रेज उनसे क्षतिपूर्ति की प्रार्थना कर रहे थे, उन्होंने अपनी क्षतिपूर्ति के लिये १०००० पगोडे की मांग की थी, शिवाजी ने भी उनकी मांग को देना स्वीकार किया परन्तु शर्त यहलगाई कि वे पुनः अपने कारखाने राजापुर में खोल लें, तथा जिंजीरा के विना उनकी सहायता करें, परन्तु अंग्रेजों ने अपने को सामान्य ही बनाये रखने का आश्वासन दिया। अपने को सिर्फ व्यापारी मानते हुये अपनी संपत्ति रक्षा के अतिरिक्त कहीं भी शस्त्र उठाने में अपनी असमर्थता जताई तथा राजापुर पहुंचने से पहले शिवाजी को अपने वादों को विश्वास योग्य बताने के लिये कुछ बतौर बन्धक के मांगा।

इसी समय मुगलों के प्रान्तों में कुछ उलट फेर भी हुआ, महावत खां तथा शहजादा मुअज्जम को वापस बुला लिया गया तथा उनके स्थान पर खान जंग बहादुर को गुजरात से हटा कर दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया। उसने यह अनुभव किया कि मुगलों की सेना प्रति रक्षात्मक कार्यों में अयोग्य है अतः उसने प्रतिरक्षात्मक तैय्यारियों के लिये घाटों पर स्थान-स्थान पर चौकियां स्थापित करने तथा आने जाने वाले दर्रों व घाटियों के मुहाने पर तोपखानों को तैयार रहने का आदेश कर मराठों के विरुद्ध प्रतिरक्षा की पूरी तैय्यारी करनी चाही। परन्तु उसके अधीनस्थ अधिकारी दिलेर खां ने इस योजना का विरोध किया। दिलेर खां ने हाल ही में चाकण पर अधिकार किया था अतः उसने इन प्रतिरक्षात्मक उपायों को असङ्गत बताते हुये अपनी समस्त सेना के साथ प्रमुख किलों पर आक्रमण करने का आदेश देने की सलाह दी। चाहे सेना कैसी भी हो, परन्तु उसकी बातों का कुछ भी असर बहादुर खां पर न पड़ा और जैसा कि इस प्रतिरक्षात्मक तैय्यारी के परिणामस्वरूप होना था। मराठे सवार खानदेश में जहाँबहदुर को तोप लगाये अपनी प्रतीक्षा में छोड़ औरंगाबाद और अहमदनगर की ओर जा निकले।‡ वायसराय या बहादुर खां ने उनके विरुद्ध अपने आदमी-अनेक दिशाओं में भेजे परन्तु उनका प्रयास व्यर्थ गया। अन्त में उसे अपनी दौड़ धूप समाप्त करके बीमा तथा परिगांव के पास अपना पड़ाव डाल देना पड़ा, कारण वर्षा आरम्भ हो गई थी। इस स्थान पर उसने एक किले का निर्माण करवाया जिसका नाम बहादुर गढ़ रक्खा गया।

जिस समय खान अपने किले के निर्माण में व्यस्त था शिवाजी ने अचानक ही गोलकुंडा पर धावा मार कर भारी धनराशि बतौर कर के वसूल किया, और सुरक्षित उसे रायगढ़ पहुंचवा

---

‡ स्काट का दक्षिण तथा अंग्रेजी अभिलेख

दिया । लौटते समय उसने अपने सवारी को इधर-उधर भेज कर मुगलों के नगरों और गांवों से लगान वसूल किया । इस प्रकार की लड़ाई में मुगलों और मराठों दोनों को सुविधा थी, अगरमुगल सेना सामने पड़ती तो मराठे भाग जाते और उनकी लूट उनके साथ चली जाती या छूट जाती तो मुगलों को मिलती जिसके लिये उस समय के घुड़सवार हमेशा लालायित रहते थे ।

शिवाजी को गोलकुंडा में या सूरत और जिंजीरा की सम्मिलित जल सेना ने भारी क्षति पहुँचाई । राजापुर स्थित मराठों के तोपखाने पर जोरदार हमला करके उसे जला दिया और रघुबरलाल, * जो तोपखाने का प्रधान अधिकारी था, मारा गया ।

परन्तु शिवाजी की गोलकुंडा विजय ने उनकी इस हानि को पूरा कर दिया । उनकी इन सफलताओं ने उनकी शक्ति और आय के साधनों को बहुत बढ़ा दिया था ।

१५ दिसंबर १६७२ में बीजापुर के सुल्तान पर पक्षाघात का आक्रमण हुआ । यद्यपि उपचार से वह कुछ दिनों जीता परन्तु अपनी शैंय्या कभी न छोड़ सका, परन्तु उसने इसी अवस्था में संरक्षक आदि का प्रबन्ध किया और मर गया ।

उस समय उसके पुत्र की अवस्था सिर्फ पांच वर्ष की थी । सुल्तान को कोई दूसरा पुत्र भी नहीं था । एक लड़की भर थी । बादशाह का प्रधान मंत्री अब्दुल मुहम्मद सम्मानित और भले स्वभाव का था परन्तु इस मार को सँभालने लायक समर्थन उसके पास नहीं था । बीजापुर के अन्य दूसरे प्रमुख सर्दार थे खवास खाँ, अब्दुल करीम बहलोल खां † तथा मुज्जफर खां ।

ये तीनों सर्दार अपने सहायकों के साथ राज्य की जनता की भलाई बुराई को ताक पर रक्खे अपनी शक्ति को ही बढ़ाने के प्रयास में तल्लीन थे । यद्यपि अब्दुल मुहम्मद स्वयं इस प्रकार के कार्यों से दूर था परन्तु उसमें वह योग्यता और परिपक्वता न थी जिससे वह उनको इनके बुरे इरादों से हटाकर सल्तनत को इस भारी विपत्ति से बचा लेता । बीजापुर की हालत इतनी सोचनीय कभी नहीं हुई थी । एक तरफ शिवाजी, दूसरी ओर मुगल और घर में इन तीनों की मनमानी इन सबके कारण बीजापुर का पाँव डगमगा उठा था ।

इस स्थिति में अब्दुल मुहम्मद ने खवास खां को संरक्षक बनाये जाने की सलाह दी तथा अन्य दोनों सर्दारों को सल्तनत के मुख्य स्थानों पर तैनात करने का विचार प्रगट किया, वह स्वयं कुलवर्ग तथा मुगलों की सीमा के स्थानों पर सुरक्षात्मक कार्य के लिये जाना चाहता था, अब्दुल करीम को मेरिच, पन्हाला, धारवार, सून्दा, बंदनौर और कोंकण तथा मुजफ्फर खाँ को बचे हुये कर्नाटक का सूबेदार बना कर भेजने को सुल्तान से कहा गया । सुल्तान यद्यपि इन प्रबन्धों को पसन्द नहीं करता था परन्तु अपनी अवस्था से विवश उसे मानना पड़ा । परिणाम स्वरूप खवास खां बीमार सुल्तान के पास संरक्षकता प्राप्त करने तथा उनके अंतिम आदेश और सलाह कार्य के लिये गया । उसने सुल्तान के आदेश को पूर्ण रूप से मानने का वादा किया, और

---

* जिसने जावली के राजा को मारा था ।

† खां जहां लोदी के सहायक बहलील खां का पुत्र जो निजामशाही में सेनापति रह चुका था । फतेह खाँ द्वारा मुर्तिजा निजाम खाँ की हत्या के बाद वह बीजापुर चले आये थे । फारसी में इनका पूरा नाम अब्दुल करीम बहोल खाँ है । (अंग्रेजी अभिलेख मराठा पाण्डुलिपि)

शहजादे का संरक्षण लेना स्वीकार कर लिया । परन्तु सुल्तान के मरते ही, तथा सल्तनत का प्रभुत्व पाते ही उसने अब्दुल करीम और अब्दुल मुहम्मद को बाहर भेजने का प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया । उसको भय था कि ये दोनों मुगलों से मिल जायेंगे। । मुजफ्फर खाँ को कर्नाटक भेज दिया गया । लोगों से अपने कार्य के अभिप्राय को छिपाने के लिये उसने अब्दुल करीम को सेना का भार सौंप दिया तथा मुहम्मद अली के साथ दिखावटी सम्मान का व्यवहार बनाये रक्खा । इन तीनों के पास इनके ब्राम्हण सहायक थे जो इनका समस्त प्रशासनिक कार्य किया करते थे । शिवाजी के गुप्तचर इन ब्राम्हणों के रिश्तेदारों आदि से मिल जुलकर इधर की स्थिति से शिवाजी को अवगत कराते रहते थे । उनका मुहम्मद अली के साथ किया गया समझौता सुल्तान के मरते ही खत्म हो गया था और अब वे राज्य की डांवाडोल स्थित से लाभ उठाने के लिये प्रयत्नशील थे । ‡

सन् १६७३ के मार्च में शिवाजी जी ने विशाल गढ़ में सेना का भारी जमाव किया इसी के एक भाग ने पन्हाला पर अचानक धावा बोल कर उसने पुनः अपने अधिकार में कर लिया परन्तु सेना के उस भारी जमाव का प्रधान उद्देश्य वस्त्र उद्योग के प्रमुख केन्द्र हुबली को लूटना था, इस कार्य का भार अन्ना जी दत्तो के ऊपर छोड़ा गया । यहां को लूट से प्राप्त धन राशि उस प्रकार की अन्य लूटों से अब तक मिली प्रत्येक राशि से अधिक थी, प्राप्त पान्डुलिपियों में उस राशि को वहुत भारी बताया गया है, कुछ न कुछ सत्य तो है ही । इन पान्डुलिपियों में हुबली में संसार के समस्त देशों के व्यापारी थे जिनको लूट लिया गया, मराठों से जो कुछ बचा उसे बीजापुर के रक्षक सैनिकों ने लूट लिया । अंग्रेज व्यापारियों को भी इस बार नहीं छोड़ा गया । अंग्रेजों की इस लूट तथा राजापुर की क्षतिपूर्ति के लिये शिवाजी से माँग की गई ।'शिवाजी ने हुबली में अंग्रेजों की लट को अस्वीकार करते हुये राजापुर की क्षति पूर्ति के लिये अपनी पुरानी शर्तें सामने रक्खीं । उन्होंने जिंजीरा पर आक्रमण करने में अंग्रेजों की मदद चाही । जिंजीरा के शासकों ने भी अंग्रेजों से सहायता माँगी थी । परन्तु अंग्रेज अपनी मध्यस्थता पर दृढ़ रहे, उन्होंने किसी की भी सहायता करने से इन्कार कर दिया । अपने इस दृढ़ निश्चय के लिये उनका काफी सम्मान हुआ । दोनों दलों ने उनके बुद्धिमतापूर्व निश्चय की सराहना की ।

सन् १६७३]

शिवाजी नें किनारों पर अपनी पूर्ण सत्ता के लिये बीजापुर के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया तथा अपने जल बेड़े को उन्होंने कारबार, अंकोला तथा अन्य स्थानों पर अधिकार करने को भेजा । जल बेड़े को उधर भेज कर स्वयम देशमुखों तथा मुसलमान थानों को अपने अधिकार में करने के लिये पिल पड़े । बेदौर का राणा हुबली की तबाही देखते ही चौकन्ना हो गया था और उसे बचाने के लिये उसने स्वयं जाकर मराठों से सुलह कर आया । सुलह के अनुसार उसने एक निश्चित सालाना लगान देना तथा अपने क्षेत्र में शिवाजी का एक वकील रखना स्वीकार किया ।

शिवाजी चाहते थे कि वे निर्विरोध बीजापुर पर आक्रमण करें, अतः उन्होंने सूबेदार खां जहां को बहकाने का पुनः प्रयास किया, उन्होंने सूबेदार से कहा कि अगर आप मुझे माफी दिला कर शाही नौकरी दिलवा दें तो मैं पुनः आत्मसमर्पण करने को तैय्यार हूँ । खाँ जहाँ बहादुर शिवाजी के चकमें में आ गया, या आने का उसने अभिनय किया । कारण इसका विश्वास नहीं होता कि खान जहाँ बहादुर दक्षिण आने के इतने अल्पकाल में ही शिवाजी की इच्छाओं का इतना अधिक

---

‡ बीजापुर पाण्डुलिपि

गुलाम हो जायेगा कि उनके द्वारा जीती भूमि को मुफ्त में पाने के अश्वाशन का विश्वाश कर लेगा।

मई में मावलियों के एक दल ने आगे बढ़ कर पुर्ली पर अधिकार कर लिया परन्तु इस कार्य की भनक पास के किले, सतारा में लग गई। सतारा का किला यूं भी बीजापुर सरकार का काफी शक्तिशाली किला था। उसमें काफी सेना, रसद तथा अन्य प्रतिरोधात्मक प्रबन्धों की भरमार थी अतः इसका घेरा कई महीनों तक पड़ा रहा, परन्तु सितम्बर के पहले उस पर अधिकार न किया जा सका। यह स्मरणीय है कि आदिलशाही शासन में यह उनके कारागार का काम देता था, परन्तु शिवाजी को उसे कारागार के रूप में रखना पसन्द नहीं आया।

वर्षा ऋतु आते आते शिवाजी ने चन्दन मदन सान्डगढ़, नंदगिरि और सतारा का नकल उनके हाथ में आ गया था।

पन्हाला पर अधिकार, हुबली की लूट, कारवार पर आक्रमण तथा इन किलों के हाथ से जाते ही खवास खाँ का धैर्य छूट गया और उसने अब्दुल करीम के अधीन अपनी सेना को बीच की ओर रवाना किया। अब्दुल करीम ने पन्हाला के पड़ोस तक के मैदानों को पुनः जीत लिया परन्तु इसी समय, शिवाजी के आदेश पर प्रतापराव गूजर बीजापुर के पास तक चला गया और बुरी तरह उस क्षेत्र को लूटा खसोटा। गूजरराव की इस लूट से संरक्षक को घबराकर अब्दुल करीम को वापस बुला लेना पड़ा, परन्तु प्रतापराव ने उसे मेरिच और बीजापुर के बीच वे ही जा पकड़ा। अब्दुल करीमकी सेना मराठों की सेना के सामने एकदम छोटी थी, अतः जैसे ही प्रतापराव की सेना ने आगे की ओर घेरा डाल कर पीछे से जोरदार आक्रमण किया। अब्दुल करीम को विवश होकर संधि प्रस्ताव करना पड़ा और तब कहीं वह सुरक्षित बीजापुर पहुँच सका। इस चन्द्रविराम की शर्तों का पता नहीं चलता, परन्तु इस समझौते के कारण शिवाजी प्रतापराव गूजर से अप्रशन्न हो गये। शिवाजी की अप्रशन्नता से मर्माहत होकर गूजर बिना किसी आदेश के बरार की ओर काफी दूर तक निकल गया। (शायद वह दक्षिण में अविजित भागों को जीत कर अपनी योग्यता और बहादुरी से पुनः शिवाजी का विश्वाश पाना चाह रहा हो।)

जब अब्दुल करीम को प्रतापराव के जाने का पता चला तब उसने पुनः पन्हाला को अपने अधिकार में करने की योजना बनानी शुरू की। बीजापुरकी सेना में भारी भर्ती हुई। शिवाजी को बीजापुर के इस इरादे की खबर लग चुकी थी परन्तु प्रतापराव की उपस्थिति के अभाव में वे उसको रोकने का कोई ऐसा प्रबन्ध न कर सके कि उनकी योजना पुर्ववर्ती ढंग से सुस्थिर रह सके।

फरवरी में जैसे ही बीजापुर की तैयारियाँ पूरी हुई* अब्दुल करीम, भारी सेना के साथ पन्हाला की ओर बढ़ा, परन्तु उसके पंन्हाला पहुँचते-पहुँचते प्रतापराव अपनी सवार सेना के साथ वापस आ गया। शिवाजी ने उसको संदेश भेजा—"मैं तुमसे बहुत अप्रसन्त हूँ, बिना
सन् १६७४] बीजापुर की सेना को बर्बाद किये मेरे सामने मत आना" यह संदेश प्रतापराव को
लड़ाई के मैदान में मिला, जब युद्ध आरम्भ होने वाला था। समाचार के पाते ही प्रतापराव ने अपना पुराना सुरक्षात्मक ढंग छोड़ दिया और शत्रु पर प्रबल आक्रमण करने को टूट

---

* बीजापुर पान्डुलिपि,

पड़ा † परन्तु अपनी जल्दी बाजी का फल उसे तुरंत मिल गया, जब वह अपने सैनिकों सहित काट डाला गया और उसकी सेना को बीजापुर की सेना के हाथों बुरी तरह पराजित होना पड़ा। अब्दुल करीम ने उसकी सेना का भयानक कत्ले आम किया और तब तक आगे बढ़ता गया जब तक कि भगोड़ी सेना पन्हाला गढ़ में लगी तोपों की मार के पीछे न छिप गयी। प्रतापराव गूजर की मुख्य सेना के साथ इस्सा जी मोहिते की सेना नहीं थी। यह मराठा पंच हजारी थे। जिस समय अब्दुल करीम प्रतापराव की पराजित सेना के पीछे-पीछे तेजी से बढ़ता आ रहा था। इस्सा जी की सेना ने उस पर अचानक आक्रमण करके पूरा दृश्य ही बदल दिया। छोटी से छोटी विजय पर अपनी भारी-भारी हानि को भूल जाने में मराठा सेना की तुलना अन्यत्र नहीं है। जैसे ही उनको इस्सा जी मोहिते की सहायता मिली वे घूम पड़े और क्षण भर में भगोड़ी सेना अपने शत्रुओं को भगा रही थी—हारने वाली सेना ने विजय प्राप्त कर लिया और अब्दुल करीम को एक बार पुनः बीजापुर को पराजय का कलंक लगा कर वापस लौटना पड़ा। इस्सा जी मोहिते की सेना के दो अधिकारियों ने इस युद्ध में बहुत बहादुरी दिखाई जिन्हें उनके बहादुरी के कारण पदोन्नति प्रदान की गई। इनका नाम क्रमशः सन्ता जी घोरपड़े तथा घना जी जाधव था। मराठी लोक कथाओं में इन दोनों के किस्से बहुत प्रचलित हैं। शिवाजी ने मोहिते के कार्यों की बहुत प्रशंसा की, तथा उन्हें हम्मीर राव की उपाधि देकर अपना स्वर्णावत या सेनापति नियुक्त किया। प्रतापराव गूजर को भी शिवाजी ने विस्मरण नहीं किया। उन्होंने गूजर की अन्त्येष्ठि क्रिया की, मरने का शोक मनाया, उनके नातेदारों और निर्भरों के भरण पोषण का उचित प्रबन्ध किया तथा उनकी लड़की से अपने छोटे पुत्र राजाराम का व्याह कर दिया। प्रतापराव की मृत्यु के बाद ही आबाजी सोनदेव की मौत हुई। शिवाजी ने पहले ही घोषणा कर दी थी कि उनकी सरकार का कोई भी पद अनुवंशिक नहीं होगा तथा अयोग्य उत्तराधिकारियों को नौकरी नहीं मिलेगी। परन्तु आबोजी सोनदेव का पुत्र रघुनाथ पन्त अपने पिता के रिक्त पद के योग्य होने के कारण उसी पद पर नियुक्त कर लिया गया।

पोन्डा का घेरा वर्षा ऋतु आने तक पड़ा रहा और तब उठा लिया गया। शिवाजी ने सूरत में फ़्रांसीसियों से तोप और गोला बारूद खरीदा था परन्तु उसका उपयोग वे न कर सके और घाटों की दुर्गमता के कारण तोपखाने के साथ की सवार सेना ने अपना वर्षाकालीन पड़ाव चिपलोन में डाला।‡

शिवाजी ने यद्यपि पहले से ही अपने नाम के सिक्के ढालने का प्रबन्ध किया था और राजा तथा महाराजा की उपाधि धारण की थी परन्तु उन्होंने अब पुनः पूर्ण शास्त्रीय ढंग से राज्य धारण तथा अपनी स्वतन्त्र सत्ता की घोषणा करने तथा उसी के साथ नयी सदी चलाने के लिये विद्वान ब्राम्हणों से सलाह मसविरा करना आरम्भ कर दिया था। इस शास्त्रीय विधि से

---

† पाठक अभी तक मोहिते के नाम से अधिक परिचित नहीं हैं इसलिये मैं आगे उनके इसी नाम में उनका परिचय दूँगा।

‡ मराठा पान्डुलिपि

राजतिलक के आचार्य के रूप में बनारस के प्रसिद्ध पन्डित गोगा भट्ट तथा अन्य ब्राम्हणों को नियुक्त किया गया। उत्सव का आरम्भ भवानी की पूजा के साथ आरम्भ हुआ। हवन और यज्ञों की पूर्ण श्रृंखला के बाद शिवाजी ने सिंहासन धारण किया परन्तु उसके दो सप्ताह बाद ही उनकी माता जीजा बाई का देहावसान हो गया। उनकी अन्तेष्ठि क्रिया के बाद वे पुनः सिंहासन पर दुबारा बैठे परन्तु उनकी चलाई सदी ज्येष्ठ सुदी पंचमी से ही आरम्भ माना गया, प्रथम राज्यारोहण उत्सव के समय मि० हेनरी ओक्सेडेन वहाँ उपस्थित थे। ६ अप्रैल को तत्सम्बन्धी दस्तावेजों पर शिवाजी के प्रतिनिधि ने हस्ताक्षर करके अंगरेजों के साथ सन्धि कर लिया। इस समझौते में २० विषय थे। उनको मराठा अधिकारियों ने चार भागों में विभाजित किया था :—

१—उनकी राजापुर की क्षतिपूर्ति तथा राजापुर, डाबुल, चोल, तथा कल्याण में कारखानों के निर्माण की अनुज्ञा तथा शिवाजी के पूरे राज्य में व्यापार करने की खुली छूट। खरीदने और बेचने के भाव को उन्हीं द्वारा निश्चित भाव पर खरीदने बेचने की पूरी स्वतन्त्रता :—

२—अपने सभी आयातों पर सरकार को २½ प्रतिशत कर देना आवश्यक था।

३—सिक्कों का विनिमय स्वतन्त्र।

४—अंग्रेजों के स्वस्थ या क्षतिपूर्ण जलपोतों को लौटा दिया जाय।

शिवाजी ने जिस ढंग से क्षतिपूर्ति स्वीकार किया उस ढंग को देखते हुये हमें उनकी व्यापाराना प्रवृति का पता चलता है। मराठा लोगों का चरित्रगत गुण भी यही है कि वे किसी भी सौदे में या समझौते में नकद देने से कतराते हैं। शिवाजी को अंगरेजों की क्षतिपूर्ति के लिये उन्हें १०००० पगोडा देना था अतः उन्होंने अंगरेजों से कहा कि वे शिवाजी से ५००० पगोडा का सामान प्रति वर्ष खरीदा करें और यही क्रम तीन साल तक चलता रहेगा—इस प्रकार तीन साल में अंगरेजों को २ हजार साल के हिसाब से तीन साल में ७५०० पगोडा मिला बाकी २५०० पगोडा के लिए उन्होंने, राजापुर आदि स्थानों पर खुले उनके कारखानों के उत्पादन पर तब तक कर न लेने का वादा किया जब तक कि क्षतिपूर्ति की शेष २५०० पगोडे पूरे न हो जायेंगे। सिक्कों तथा जलपोतों के बारे में शिवाजी ने बहुत मुश्किल से अपनी स्वीकृति दी। जलपोतों को वे अपने अधिकार क्षेत्र में रखना चाहते थे, परन्तु वह सभी जलपोत ··· इङ्गलेन्ड के राजा की सम्पत्ति माने जाते थे और शिवाजी उस अधिकार को मानते थे। सिक्कों के आदान प्रदान के बारे में भी उन्होंने समझ लिया कि उनके सिक्कों में काफी स्थिरता है, अतः उन्होंने अपनी स्वीकृत दे दी। इसके परिणाम स्वरूप भी ओक्सेडेन का आना अँगरेजों के लिये बहुत लाभकर हुआ। तथा इससे शिवाजी को अंगरेजों पर अच्छा खासा विश्वास हो गया परन्तु इतना तो महत्व देना ही पड़ेगा शिवाजी की बुद्धिमानी को कि राजापुर की फैक्टरियाँ पुनः स्थापित हो गईं। उत्पादन भी शुरू कर दिया, परन्तु वे अंगरेजों के लिये कभी भी लाभपूर्ण साबित नहीं हुईं और न ही वे क्षतिपूर्ति का अपना पैसा निकाल सके, परन्तु आगरे के उत्तराधिकार न तो उतने बुद्धिमान ही थे और न ही व्यवहार कुशल ही, जो उनके बनाये सम्बन्धों को निबाह सके।

शिवाजी के राज्यारोहण के बाद उनके कर्मचारियों और अधिकारियों के नाम फारसी से से बदल कर संस्कृत में रक्खे गये, शिवाजी की मृत्यु के बाद उनकी स्थापित इस नवीन परम्परा का अष्टप्रधानों का पद और कार्य स्थिर रहा। उनके अन्य सुधार और नियम तो प्राय: उनके मरते ही खत्म हो गये थे। इन आठों अधिकारियों के कार्य वही रहे, मात्र इसके कि अब सेना तथा घोड़ों या सवार सेना का एक ही प्रधान सेनापति बनाया गया था तथा न्यायाधीश और न्यायशास्त्री के पद दो अलग आदमियों को सौंपा गया। इन अधिकारियों के नाम उनके पदों के अनुसार निम्न प्रकार के थे :—

	नाम	पहले की उपाधि या पद	नई उपाधि या पद
१	मोरो पंत पिंगले	पेशवा	पन्त प्रधान
२	राम चन्दर बरेरकर	मजुमदार	अमात्य
३	अन्ना जी दत्तो	सुरनीस	सचिव
४	हम्मीर राव मोहिते	सरनौवत	सेनापति
५	जनार्दन पन्त हनुमन्ते	उबार	सुमन्त
६	बालाजी पन्त	न्यायाधीश	न्यायाधीश
७	दत्ताजी पन्त	वाकनीस	मंत्री
८	रघुनाथ पन्त	न्यायशास्त्री	पन्डित राव

शिवाजी को तराजू में सोने से तौला गया* तथा सोने को ब्राम्हणों में विभाजित कर दिया गया। इसके अतिरिक्त भी उन्होंने शास्त्रोचित ढंग से भारी मात्रा में दान पुण्य करके राजपूत † राजाओं में अपना प्रमुख स्थान बना लिया। अपने नाम के आगे पीछे उन्होंने लम्बी-लम्बी उपाधियाँ जोड़ लीं† जिनका कि उन दिनों बड़ा प्रचार था। पंडितों ने अपने शोध कार्यों से उनको राजपूत राजाओं का ही बाज बताया था। जन समुदाय में आने जाने का ढंग भी उनका राजाओं महाराजाओं जैसा हो गया था।

पुरन्दर पर विजय के बाद शिवाजी ने संपूर्ण कोंकण तथा बीजापुर के अनेक स्थानों पर अपने चौथ के अधिकार को बनाये रक्खा था ‡ अंगरेजों से इस प्रकार की चौथ वसूलने का कोई विवरण प्राप्त नहीं है परन्तु इस साल उन्होंने मोरोपन्त को पुर्तगालियों से चौथ वसूलने के लिये कल्यान भेजा, परन्तु वसूली किस प्रकार की गई इसका विवरण प्राप्त नहीं है। मराठा इतिहास में इसका विवरण नहीं मिलता कि पूर्तगालियों ने कभी शिवाजी को चौथ दिया। यद्यपि वे उनके द्वारा लगान देने के उदाहरण मिलते है—अतः ऐसा लगता है कि इस बार भी इसी प्रकार का कोई समझौता कर लिया गया रहा होगा।

शिवाजी के द्वारा सूबेदार जहाँ बहादुर के साथ हुये समझौते को तोड़ने के कारण दिलेर खां के सेनापतित्व में मुगलों ने कुछ जगह शिवाजी के क्षेत्र पर छुटपुट आक्रमण किया। इसी

---

* शिवाजी का वजन, डा० फेयर के हिसाब से १६००० पगोदा था।

† उपाधि यों थी—क्षत्री कुल बल्लभ श्री राजा शिवा छत्रपति।

‡ मराठा पान्डुलिपि।

कारण मोरोपन्त ने तेजी से बढ़कर औंढा और पट्टा दोनों किलों पर पुनः अपना
१६७५] अधिकार कर लिया और शिवनेरी पर भी एक विकल आक्रमण किया। शिवनेरी शिवाजी की जन्मभूमि थी, जिसपर उनका अधिकार कभी नहीं रह पाया। परन्तु मोरो पन्त की इस पराजय का बदला सेनापति हम्मीर राव ने सूरत के दर्रे से होकर पहली बार मराठा सेना को नर्वदा के पार उतार कर ले लिया। सूरत के दर्रे में उसने अपने सवारों को कई भागों में विभाजित करके बुरहान पुर तक के क्षेत्र की लूट खसोट की तथा वहाँ से बढ़कर माहोरे तक आ गया। उनकी सेना की एक टुकड़ी ने नर्वदा पार करके बरौच जिले से लगान वसूल किया। यह इस प्रकार की पहली मराठा सेना थी जिसने नर्वदा के पार जाकर लगान वसूल किया।

पन्हाला और तितौरा के बीच स्थानों पर पुनः अधिकार जमाने के बाद शिवाजी ने पोन्डा पर घेरा डाल रक्खा था, परन्तु शिवाजी को सारी अतिरिक्त सेना के साथ कोंकण में व्यस्त देख कर निम्बलकर और घाटगे पल्टन और मालारे के देशमुखों ने अचानक आक्रमण करके किलों के सैनिको को भगा विभिन्न थानों को तथा काफी खुले क्षेत्र को अपने अधिकार में करके बीजापुर के सुल्तान को सौंप दिया।

बरौंच से वापस आते समय गोदावरी पार करने के बाद ही हम्मीर राव की मुठभेड़ दिलेर खाँ से हो गई। बड़ी कठिनाई से वह लूट और लगान राशि सुरक्षित ला सका। मुगलों की एक सेना ने पूना में घुसकर लूटमार की। शिवाजी इस समय भी पोन्डा के आक्रमण में लगे हुए थे अचानक ही एक सुरंग के फटने से किले को क्षति पहुँची, परिणाम स्वरूप किलेदार को भारी प्रतिरक्षा के बाद आत्मसमर्पण करना पड़ा। उसके पश्चात शिवाजी और दक्षिण की ओर बढ़े, कोंकण से लगान वसूल किया। आसपास के कई स्थानों पर लूटपाट की, घाटों पर अपना अधिकार जमाया तथा सून्दा देश होते हुये रायगढ़ लौट आये।

मौसम साफ होते ही खाँ जहाँ बहादुर और दिलेर खाँ को दूसरी दिशा में व्यस्त देख हम्मीर राव ने मुगलों के क्षेत्र को भारी क्षति पहुँचाई।

बीजापुर के संरक्षक खवास खाँ को अपनी स्थिति डगमगाती सी जान पड़ी। इसका कारण यही था कि वे राज्य से अधिक अपने लाभ और भविष्य की बातें सोचा करते थे अतः उन्होंने खाँ जहाँ बहादुर से वार्ता करके बीजापुर को मुगलों का आश्रित राज्य बनाने के लिये अपनी स्वीकृति दे दी तथा सुल्तान की बहन पादशाह बीबी को औरंगजेब के एक पुत्र के साथ व्याह देने का वादा किया।

परन्तु जब इस वार्ता का पता दर्बार के अन्य सर्दारों को चला तब वे उससे बहुत क्रोधित हुये और अब्दुल करीम के अधीन उन्होंने खवास खाँ के विरुद्ध एक षडयन्त्र किया करीम शिरजा नामक व्यक्ति ने खवास खां की हत्या कर डाली। खवास खां की मृत्यु का शोक राज्य नहीं मनाया। इसका मुख्य कारण पादशाह बीबी को मुगलों से व्याहने का उसका निर्णय था, जिसके परिणाम स्वरूप बीजापुर की जनता भी उसके खिलाफ़ हो गई थी। अब्दुल करीम के आदेश से प्रतिरक्षात्मक कार्य होने लगा जिसमें जनता तथा सैनिकों ने अपना काम पूरा किया। जैसे ही खाँ जहाँ बहादुर बीजापुर की ओर बढ़ा अब्दुल करीम ने बीजापुर की सीमा के पास ही उसका सामना किया। कई बार उनमें आक्रमण प्रत्याक्रमण हुये अन्त में लड़ाई का फल बीजापुर

को मिला। दिलेर खाँ और अब्दुल करीम, एक ही देश के थे अतः आसानी से दोनों ने समझौता कर लिया, जिसे दिलेर खां की मध्यस्थता में साम्राज्य ने स्वीकार कर लिया।

शिवाजी ने तीसरी बार पन्हाला से तितौरा तक के क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। इन विजित क्षेत्रों पर पुनः जागीरदार के अधिकारों को रोकने के लिये उन्होंने उस क्षेत्र में एक किलों की लाइन बनाने का आदेश दिया। इन किलों का नाम उन्होंने वंदंग गढ़, १६७६] भूषण गढ़, स्वदेश गढ़, तथा मुछिन्दर गढ़ रखा, यद्यपि इन किलों में बहुत अधिक सैन्य संग्रह नहीं रक्खा गया परन्तु दूसरे की सहायता करके इनके द्वारा पास के अन्य किलों की सहायता तथा उस क्षेत्र की जिसकी उत्पादन शक्ति असीमित थी। रक्षा करने में इनका अपूर्व सहयोग मिल सकता था। इन्हीं प्रबन्धों में अत्यधिक व्यस्तता के कारण रोगों ने उनपर आक्रमण कर दिया। बिमारी क्या थी—इसका पता साफ साफ नहीं मिलता। परन्तु इसके चपेट में वे कई महीने सतारा से हिल नहीं सके। अपने रोगी जीवन में अत्यधिक धार्मिक भावना और शास्त्रीय धर्मार्थ कार्यों में व्यस्त रहे। परन्तु साथ साथ वे अत्यन्त साहसिक युद्ध की योजना भी बना रहे थे। दूसरी शक्तियों के साथ उनके सम्बन्ध विस्तार की योजना तथा योजनाओं की सफलता आदि का पूर्ण विवरण देने के लिये हमें एक अन्यत्र नया अध्याय ही देना पड़ेगा जो अगले ३० वर्षों की मुख्य घटनाओं के परिचय के रूप में होगा और हमें उस समय की देश की स्थिति का पूरा विवरण प्राप्त होगा।

दसवाँ अध्याय

मुगलों को दक्षिण विजय में असफलता

[१६७६ से १६८०]

शिवाजी के कर्नाटक अभियान के समय दक्षिण की राजनैतिक अवस्था-शिवाजी का अभियान--गोलकुण्डा के सुल्तान से हैदराबाद वार्ता और सन्धि—दक्षिण की ओर बढ़ाव—असाधारण लगन—गोलकुण्डा पर मुगलों और बीजापुर की सम्मिलित सेनाओं की विजय—उनका पीछे हटा दिया जाना—शिवाजी की वापसी--वैंको जी द्वारा शिवाजी पर आक्रमण—उसकी पराजय—बीजापुर सेना की एक मराठा टुकड़ी शिवाजी की सेना द्वारा पराजित--मोरो पंत की प्रगति--सुल्तान मुअज्जम पुनः दक्षिण के सूबेदार--दिलेर खां को पुनः बीजापुर पर आक्रमण करने का आदेश—२७ किलों पर अधिकार--मसूद खां द्वारा भविष्य में भी सहायता की याचना—सम्भाजी मुगलों की ओर—सम्भाजी का अपने पिता के पास लौट जाना—दिलेर खां द्वारा बीजापुर का घेरा—मुगलों की पराजय—शिवाजी द्वारा बीजापुर से सहायता की क्षति पूर्ति की मांग—शिवाजी की बुद्धिमत्ता पूर्ण सलाह--शिवाजी की मृत्यु--उनका चरित्र--उनके अधिकार क्षेत्र और संपत्ति--जनार्दन पंत पर अधिकार—मोरों पंत और हम्मीर राव सम्भाजी की ओर—रायगढ़ किले की सेना तथा अन्य सेनाओं का सम्भाजी की ओर मिलना।

यद्यपि औरंगजेब उत्तर के प्रबन्ध से तथा विद्रोहों से अवकाश न पा सका और अपने शासन काल में अधिकांशतः उसी प्रयत्न में व्यस्त रहा, परन्तु सम्पूर्ण दक्षिण को अपने अधीन करने की उसकी
इच्छा बनी रही। परन्तु जहाँ उसे साम्राज्य की अन्य झंझटों के कारण अवकाश नहीं
१६७६] मिलता था वहीं वह दक्षिण विजय के लिये किसी सेनापति के अधीन भारी सेना भेजने
के प्रति शंकालु था। अतः उसने बहुत ही कुशलता से यह योजना बनायी कि धीरे-धीरे दक्षिण की शक्तियाँ आपस में लड़-भिड़ कर शक्तिहीन हो जायें और तब वह एक भारी सेना के साथ बची-खुची सेना को काट कर दक्षिण को एकदम अपने अधिकार में कर लेगा और इस प्रकार दक्षिण में उसे निष्कंटक सफलता मिल जायगी।

खान जहाँ बहादुर इस योग्य नहीं था कि वह आक्रमण करके दक्षिण की रियासतों और राज्यों को समाप्त करने का प्रयास करता—परन्तु वह यदि इस योग्य होता भी तो उसके पास इस कार्य के योग्य सेना नहीं थी। मुगलों की इस कमजोरी ने तथा मराठों के द्वारा उनको मिली अनेकों बार की पराजय ने मुगलों के प्रति पुराने भय को समाप्त कर दिया था और इससे छोटी-छोटी शक्तियाँ भी मुगलों से टकराने को तत्पर रहने लगी। परन्तु बीजापुर और गोलकुण्डा की आन्तरिक फूट को देखकर तथा उनकी शासन सत्ता को अपने ही व्यक्तियों के हाथों में समझ औरंगजेब ने कुछ दूसरी ही प्रकार से देखा। अपने दूतों के द्वारा इन मुसलमानी दर्बारों के सर्दारों को फुसला कर लालच देकर तथा आवश्यकता पड़ने पर घूस देकर भी उनकी आपसी शत्रुता को बनाये रखने में प्रयत्नशील था

तथा वह इन दोनों को मिलकर इकट्ठा होने में भी बाधक था, कारण दोनों की सम्मिलित शक्तियाँ उसका सामना करने को खड़ी हो सकती थीं ।

यद्यपि शिवाजी के आक्रमणों को उनके साहस पूर्ण अभियानों और लूटपाट की लोगों पर धाक थी परन्तु औरंगजेब की निगाहों में अभी भी उनकी गणना साधारण जागीरदारों के समान ही थी । इसी कारण शिवाजी द्वारा गोलकुण्डा और बीजापुर पर किये गये किसी भी आक्रमण का उसने विरोध नहीं किया था——कारण शिवाजी के इन आक्रमणों से औरंगजेब की योजनाओं को बल मिल रहा था । खाँ जहां बहादुर के पिछले व्यवहारों को आश्रय सम्राट की इन्हीं भावनाओं या विचारों से मिला हो तो कोई आश्चर्य नहीं, कारण औरंगजेब को यह समझने में विलम्ब न लगता कि खां जहां बहादुर की चेतना तथा निर्णय पर शिवाजी का पूरा प्रभाव है, यदि खाँजहां बहादुर की अकर्मण्यता उसकी योजनाओं को पुष्ट न करती रही होती । यही कारण है कि खां जहां बहादुर को मुगल सम्राट का भरपूर विश्वास मिला, यद्यपि शिवाजी और अंगरेजों के समझौते से ही उसकी अयोग्यता का पता लग गया था ।

बीजापुर में अब्दुल करीम ने अल्पकालीन शान्ति स्थापित कर लिया था । खवास खाँ और मुगलों की चाल को समाप्त करने में मुख्य हाथ रखते हुये वह स्वयम् मुगलों से कोई आशा नहीं रखता था उसकी लालसा एक मात्र राज्य के कल्याण की थी-अपने स्वार्थ की नहीं, अतः यदि दिलेर खाँ तथा मुगल सेना के कुछ अन्य अफगान अधिकारियों ने उसे प्रभावित न किया होता तो वह मुगलों से सुलह करने की अपेक्षा शिवाजी की सहायता प्राप्त करके मुगलों का सामना करना अधिक पसन्द करता । बीजापुर में मुगलों के पिट्ठू संरक्षक से शत्रुता रखते थे । औरंगजेब ने इस सन्धि को ध्यान में रखते हुये अपना दूत मलिक बरखुरदार को बोजापुर भेजा । ऊपरी रूप से मित्रता को बनाये उसने चुपके-चुपके दर्बार के अन्य सर्दारों को मुगलों की ओर मिलाना शुरू किया, इससे संरक्षक को अपने प्रशासनिक कार्यों में पग-पग पर रुकावट पड़ने लगी, यद्यपि कश्मीर निवासी यह राजदूत करीम से हमेशा मित्रता का भाव रखता था ।

गोलकुण्डा पर मुगलों का प्रभाव काफी पहले से था और इसमें पहला व्यवधान १६७२ में सुल्तान कुतुब शाह की मृत्यु से पड़ा । औरंगजेब तथ्य से अवश्य ही परिचित रहा होगा । सुल्तान का नजदीकी रिश्तेदार आबू हुसैन, उसका दामाद उसका निर्विरोध उत्तराधिकारी हुआ । यह नया सुल्तान अपनी युवावस्था में ही अपनी दुराचारी प्रवृति के लिये विख्यात था । गद्दी पर आने के बाद यद्यपि इस निर्बल शासक ने अपने पद की मर्यादा को बनाये रखने का प्रयास किया परन्तु अपने प्रशासनिक कार्यों के लिये, दो भाइयों—मधुनाथ पंत तथा अकहाना पंत पर इतना अधिक निर्भर था कि इसका इस प्रकार का प्रत्येक प्रयास असफल रहा । इन दोनों भाइयों में मधुनाथ पंत बहुत विद्वान और योग्य व्यक्ति था, परन्तु उसमें भी नियमों के सैद्धान्तिक पहलू पर अधिक जोर देने की आदत थी जो ब्राह्मण राजनीतिज्ञों का प्रधान अवगुण है । इन दोनों के ऊपर शासन सत्ता छोड़ने वाले सुल्तान को प्रशासन कार्य के व्यावहारिक पहलू का परिचय कभी नहीं मिल पाता था । परिणामतः सारे राज्य में राजनैतिक व्यभिचार और अनाचार का बोल-बाला था । प्रत्येक अधिकारी भ्रम में था, प्रत्येक प्रजा भ्रम में थी और भ्रम का यह साया बढ़ता ही जा रहा था ।

दक्षिण की इसी राजनैतिक स्थिति में शिवाजी ने अपने कर्नाटक अभियान की योजना बनाई, इस योजना की सलाह सर्वप्रथम रघुनाथ नारायण हनुमन्ते जी ने दी थी जो शाह जी की जागीर, कर्नाटक

में अपने पिता नारु पंत के पद पर प्रबन्ध कार्य देख रहा था। रघुनाथनारायण हनुमन्ते एक योग्य और सुलझे हुये विचारों का बुद्धिमान अधिकारी था परन्तु शाह जी की मृत्यु के बाद वेंको जी के असम्मानजनक व्यवहार के कारण वह उनसे अप्रसन्न था, इस अप्रसन्नता का प्रधान कारण यह भी था कि युवक जागीरदार मंत्री के प्रबन्ध के मामलों में भी अपनी टांग अड़ाता रहता था, उन दोनों की इसी मानसिक जलन व द्वेष के परिणाम स्वरूप उनकी आपसी दूरी बढ़ती गई और अन्त में अपनी ग्यारह बारह साल की सेवाओं को ताक पर रख रघुनाथ नारायण कर्नाटक को छोड़ कर गोलकुंडा के सुल्तान आबू हुसैन के दर्बार में चले गये, जहां उन्होंने मधुनाथ पंत की मित्रता और विश्वाश को पाने का पूरा प्रयास किया, परन्तु उनका यह प्रयास अनायास ही था या उनके मन में इस मित्रता और विश्वाश का लाभ उठाने का भाव निहित था यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। गोलकुंडा से वे शिवाजी के पास चले गये जहाँ उनका शाह जी के स्वामिभक्त, अधिकारी तथा सामंत प्रधानों के भ्राता होने के कारण यथेष्ट सम्मान किया गया तथा रामचन्द्र को उनकी कम अवस्था के कारण अन्य जगह बदल कर उनकी जगह रघुनाथ नारायण हनुमंते को आमद् प्रधान (आठ प्रधानों में एक) का कार्य भार सौंपा गया, उसी के बाद हिन्दू शास्त्रों के अनुसार अपने पिता की जागीर पर उनके अपने अधिकार की चर्चा हुई और इस मिलने वाली आधी जागीर के कारण दक्षिण में राज्य विस्तार की सुविधाओं को ध्यान में रखते हुये, इसी साल की वर्षा ऋतु में कर्नाटक अभियान की योजना बनी—जब शिवाजी इस समय सतारा में रोगशैय्या पर थे।

समय इस अभिमान के पूर्ण अनुरूप था, बीजापुर और मुगलों के समझौते तथा दिलेर खाँ और संरक्षक के मित्रता पूर्ण सम्बंधों के अतिरिक्त दिलेर खाँ की गोलकुंडा के प्रति शत्रुतापूर्ण नीति से मधुनाथ पंत बहुत जलता था। इसके अतिरिक्त दिलेरखाँ शिवाजी के प्रति उसी प्रकार की शत्रुता रखता था।

शिवाजी के प्रति इस शत्रुतापूर्ण नीति का कारण यह था कि शिवाजी ने खान जहाँ को धन की भारी राशि सौंपी थी। इस राशि का एक भाग तो खुलेआम दिया गया था दूसरा भाग गुप्त रूप से। जो राशि खुलेआम दी गयी थी वह मुगलों को कर के रूप में दे दिया गया था और गुप्त रूप से पाई गई रकम खान जहाँ बहादुर ने अपने पास रख ली। इस प्रकार की लेन देन को देखने से पता चलता है कि शिवाजी स्वतंत्र राज्य के प्रभावशाली निर्माता के रूप में रहते हुए दूध देने वाली गाय की तरह मुगलों का बहुत ध्यान रखते थे। पूर्व दिशा की अधिकृत क्षेत्र की रक्षा के लिये किलों के निर्माण की उनकी योजना पूरी हो गयी थी। और उनके पूर्व अनुमान के अनुसार 'घाटगे' और निम्बलकर का मार्ग अवरुद्ध हो गया था। सिद्धियों से अपने किनारों की रक्षा के लिथे अन्नाजी दत्तो और पंच सचिव के साथ शक्तिशाली किले के सैनिकों के अलावा आवश्यकता पड़ने पर कहीं भी भेजी जा सकने वाली भारी सेना थी। कल्यान और पोण्डा के बीच में उनके कई किले थे जिन पर आक्रमण तब तक असम्भव था जब तक कि आक्रात्मक सेना को चारों दिशाओं से लगातार सहायता न मिलती रहे। इस क्षेत्र का ध्यान रखने के लिये सचिव को विशेष आदेश मिला था परंतु उनको यह भी निर्देश दिया गया था कि वे पेशवा मोरोपंत को उनके कार्य में सहायता दें और उनके आदेश को मानें। कारण शिवाजी की अनुपस्थिति में पेशवा ही उनके प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते थे, शिवाजी के इस प्रबंध से उनके प्रधानों में अदमनीय द्वेष उत्पन्न हो गया था।

सन् १६७६ के समाप्त होते होते तीस हजार और चालीस हजार सवार पैदल लेकर शिवाजी

गोलकुण्डा की ओर बढ़े। बीच में उनकी सेना बिना लूट-खसोट के लगातार नियमपूर्वक सन् १६७७] आगे बढ़ती गयी। न्यायाधीश प्रधान का पुत्र प्रह्लाद पंत शिवाजी के आगमन की सूचना के लिये आगे भेज दिया गया। मधुनाथपंत सम्भवतः उनके आने की सूचना पहले से ही जानता था, परिणाम-स्वरूप हैदराबाद में वह चौकन्ना था, मधुनाथ पंत शहर से काफी बाहर शिवाजी से मिलने आया और उनके गोलकुण्डा आगमन के दो तीन दिन बाद कुतबशाह से शिवाजी की मुलाकात हुई जिसमें उन्होंने दो तीन घण्टे बार्तालाप किया, काफी देर के विचार विमर्श के बाद शिवाजी शाह को यह विश्वास दिलाने में सफल हो पाये कि उनकी आपसी मित्रता, आवश्यक ही नहीं प्राकृतिक भी थी।

इस गुप्त समझौते के बारे में मराठों के पास कोई प्रामाणिक तथ्य नहीं है परंतु ऐसा लगता है कि यह समझौता शिवाजी द्वारा विजित उन क्षेत्रों के बटवारे के बारे में था जो उनके पिता शाहजी के जागीर में नहीं थे, इसके अतिरिक्त दोनों में यह भी समझौता हुआ कि प्रतिरक्षा और आक्रमणों में दोनों एक दूसरे को सैनिक सहायता का आदान प्रदान करते रहेंगे। विशेष रूपसे मुगलों और उनकी सहायक सेना के विरुद्ध।

हैदराबाद में एक महीने के करीब रुक कर, अपने समस्त प्रबन्ध कार्यों को पूर्ण कर शिवाजी ने दक्षिण की ओर कदम बढ़ाया। मार्च में कर्नोल से २५ मील और नीचे नीरावती के संगम पर उन्होंने कृष्णा को पार किया। उनकी सेना कड़प्पा के रास्ते धीरे-धीरे † आगे बढ़ी और स्वयम् शिवाजी अपने साथ छोटी सी सवार सेना के साथ पूर्व की ओर बढ़कर पुरुषोत्तम के मन्दिर की ओर बढ़ गये, वहां पर उन्होंने मन्दिर में भगवान की उपासना की। अपनी उपासना में वे इतने भावविभोर हो गये कि उन्होंने देवी को प्रसन्न करने के लिये अपना ही बलिदान करने का निश्चय किया जब कि (ऐसा कहा जाता है) स्वयम् देवी ने उनके सामने प्रकट होकर उनका हाथ थाम लिया। इसी अवसर पर शिवाजी ने अपने जीवन की अनेक भविष्यवाणियों में से एक को सुना। देवी ने उनको आत्म बलिदान से रोकते हुये कहा कि "अभी तुझे हिंदू जाति के लिये बहुत कुछ करना है जा कर्नाटक में विजय तेरा रास्ता देख रही है।"*

अपनी इसी अवस्था में उन्होंने बारह दिन व्यतीत करके अपनी सेना की ओर अपनी टुकडी को बढ़ने का आदेश दिया जो उस समय डामुलचेरीदर्रे के रास्ते कर्नाटक के पाइन× घाटों के पास पहुंच चुकी थी। उनके मस्तिष्क में दो प्रकार की योजनायें थीं अतः उन्होंने अपनी सेना के भारी हिस्से को पीछे छोड़ कर, सवार सेना और अपने मावलियों को तेजी से आगे बढ़ने का आदेश दिया। मई के प्रथम सप्ताह में उन्होंने मद्रास को पार किया और जिंजी के पड़ोस में आ गये। जिंजी पर बीजापुर के अधीन, अम्बर खां के पुत्र रूप खां का अधिकार था। जिंजी पर उन्होंने, रघुनाथ नरायण द्वारा किये गये पूर्व समझौते के अनुसार अधिकार कर लिया। रामजी नागले नामक अपने एक मावली प्रधान को वहाँ का हवलदार नियुक्त किया गया जहाँ पर महाराष्ट्र से दूर ६०० मील पर, वही नियम लागू किये गये जो महाराष्ट्र के प्रशासन के लिये प्रत्युक्त होते थे। विठ्ठल पीलदेव को उन्होंने आस पास के विजित जिलों में महाराष्ट्र की तरह लगान व्यवस्था लागू करने का भार सौंपा।

---

† मराठा पाण्डुलिपियों में इस बात के प्रमाण मिले हैं जिसमें यह सिद्ध किया गया है कि बीजापुर और मुगल गोलकुण्डा और शिवाजी के समान रूपसे दुश्मन थे।

* मराठा पान्डुलिपि

× उसको विन्कूमूमंगरी पास भी कहते थे।

बीजापुर सरकार का एक अधिकारी, शेर खाँ, जो त्रिन्नाभुल्ली जिले का अधिकारी था,५००० घोड़सवार सेना कें साथ शिवाजी का सामना करने आगे बढ़ा, परन्तु उसे चारों तरफ से घेर कर कैदी बना लिया गया और उसके घोड़ों को, अपनी पुरानी परिपाटी के अनुसार, अपनी सेना में मिला लिया गया। शिवाजी के भाई (वेश्या से उत्पन्न) ने इस अवसर से पहले ही उनकी सेवा में पदार्पण किया था, कुछ ही समय के भीतर उन्होंने अपने कार्यों से यह दिखा दिया कि उनमें भी अपने परिवार का खून यथेष्ट मात्रा में वर्तमान है।

इसी समय शिवाजी की पीछे की सेना ने, जिसे शिवाजी ने इसी उद्देश्य से पीछे छोड़ रक्खा था, आगे बढ़ कर वेलोर के शक्तिशाली किले पर अधिकार कर लिया। इस किले पर नीर हरी बलाल नामक ब्राह्मण अधिकारी ने घेरा डाला था, उसने किले के दो ओर ऊँची पहाड़ियों पर अपनी प्रमुख तोपों को चढ़वा दिया। इन दो पहाड़ियों का नाम उसने सजरा और गुजारा रक्खा। कुछ समय के व्यस्त घेरे के बाद, जिसका विवरण प्राप्त नहीं है, सितम्बर के आखिरी सप्ताह में किले का आत्म समर्पण हो गया।

वेलोर के घेरे के समय शिवाजी तंजोर विषयक योजनायें बनाने में व्यस्त थे। उन्होंने वेन्कोजी को त्रिवेदी में जागीर के बंटवारे के लिये बातचीत करने के लिये बुलवाया। वार्तालिप के विषय में अपनी असहमति समझ वेंकोजी ने प्रथम शिवाजी को शक्ति द्वारा रोकने का प्रबन्ध किया परन्तु मदुरा के नायक को रघुनाथ नारायण की ओर पलटते देख उन्होंने शिवाजी से मिलने का निश्चय किया। शिवाज ने उनका काफी आदर सम्मान किया परन्तु वे किसी भी प्रकार उन्हें जागीर के बंटवारे के लिये तैयारी न कर सके, जब कि शिवाजी अपने अधिकारों की मांग करते दूसरा उसको मानने से इन्कार कर देता था। शिवाजी ने प्रथम तो वेंकोजी को गिरफ्तार करके आधी जागीर, जिले खजाने, और जवाहिरातों पर अधिकार करने की बात सोची परन्तु पुनः उन्हें, अपनी मर्जी से मुलाकात करने आये हुए वेंकोजी को कैद करना, उनके अपने ही पथ के अनुसार, 'एक भाई और राजकुमार के लिये अशोभनीय लगा। अतः उन्होंने वेंकोजी को वापस जाने और तंजोर का फाटक खोल कर अपने लिये स्थान देने का आदेश दिया। यद्यपि उन्होंने इसी समय आक्रमण करके जागीर और जिलों के आधे भाग पर अधिकार करने का विचार बना लिया था परन्तु फिर भी उन्होंने वेंकोजी के पास अपना दूत भिजवा कर बिना किसी झगड़े के, तंजोर का जिला तथा दो या एक किले को बाट देने को कहा। उन्होंने अपने भाई को यह विश्वास दिलाया कि यदि यह सिर्फ जागीर के बंटवारे का सवाल होता तो वे शान्त हो जाते परन्तु यह बंटवारा तो उनके उत्तराधिकार का है जिसे वे किसी भी प्रकार छोड़ नहीं सकते।

भाई की मुलाकात के बाद शिवाजी बेलोर आये। उनके आने के पहले ही उस पर उनके सैनिकों का अधिकार हो चुका था। कर्नाटकगढ़ तथा दो और अन्य किलों पर इसके बाद ही अधिकार कर लिया गया। आर्नी जिले का प्रधान अधिकारी वेदोजी भाष्कर नामक एक ब्राह्मण था अपने इस पद पर वह शाहजी के समय से ही था, उसने किले की चाभियों को शिवाजी को सौंप दिया और उनकी सेवा में रहने की इच्छा प्रकट की। शिवाजी ने उसे उसके पूर्वपद पर ही मुस्तकिल कर दिया और दो पुत्रों को अपनी नौकरी में रख लिया। नये वर्ष के आगमन से पूर्व ही शाहजी की जागीर के,

कोल्हार, बंगलोर, असकोटा, बालापुर और शेरा के जिलों पर उनका अधिकार हो चुका था। शिवाजी के सवारों ने चौथ, सरदेशमुखी, आदि के रूपों में धन वसूल किया, जहाँ उनको इस प्रकार की वसूली में बाधा पहुंचाई गई, उन्होंने उन स्थानों को लूट पाट कर छिन्न भिन्न कर दिया। यह क्षेत्र बीजापुर सरकार का था।

शिवाजी और खां जहां बहादुर के समझौते को औरंगजेब ने स्वीकार नहीं किया। दिलेर खांने अब्दुल करीम की सहायता से गोलकुंडा विजय की योजना बनाई, इस आक्रमण में मुगल सेना के साथ बीजापुर की सेना भी सहायता देती, औरंगजेब की नीति भी यही चाहती थी अतः उसने खां जहां बहादुर को तुरंत वापस बुला लिया और दिलेर खां को अपनी योजना की पूर्ति के लिये अवसर और स्वीकृति प्रदान कर दिया।

दिलेर खां और अब्दुल करीम के पास अपने इस आक्रमण का बहाना भी था, वह यह कि कुतुबशाह ने शिवाजी के साथ समझौता क्यों किया। परन्तु रघुनाथ पन्त ने आती हुई इस सेना की भनक पा ली थी अतः उन्होंने ने सामना करने के लिये एक शक्तिशाली सेना भेजा। इस सेना ने आगे आती हुई सेना को पीछे हटने को वाध्य कर दिया। बीजापुर की सेना को भारी क्षति उठानी पड़ी बहुतायत से सैनिक मारे गये, बचे खुचे तितर बितर हो गये। उन विचारों को कई महीने से वेतन भी नहीं मिला था, अतः उनको इकट्ठा करके किसी भी प्रकार दुश्मनों के सामने न लाया जा सका।* दुर्भाग्यवश अब्दुल करीम इसी समय बीमार पड़ गया, उसकी मृत्यु के पहले दिलेर खां ने अबीसीनियन मसूद खां को उसके स्थान पर संरक्षक बनाने के लिये सहमति प्राप्ति कर ली थी। मसूद खां, सिद्दी जौहर का दामाद तथा अदोनी का जागीरदार था, १६७८ में अब्दुल करीम मर गया और उसके स्थान पर मसूद खां संरक्षक नियुक्त किया गया, मसूद खां को संरक्षक का पद अपनी व्यक्तिगति संपति के कारण मिला था। उसने दिलेर खां को उसके कर्जे की रकम चुकाने के अतिरिक्त सेना सन् १६७८] के वेतन के बाकी रुपये भी देने का वादा किया था।† उसने खवास खां द्वारा किये गये समझौते के अनुसार, शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखना, शिवाजी से कोई सम्बन्ध न रखना, दिलेर खां की सलाह मानना और पादशाह बीबी को मुगलों को सौंप देने का भी वादा किया। मसूद खां ने सेना के वेतन का कुछ भाग दे दिया परन्तु बीजापुर में अपनी शक्ति को जमा कर के उसने अपनी सवार सेना को एकदम कम कर दिया। वेतन के अभाव में सैनिक छावनियाँ छोड़ने लगे, इस सैनिक विघटन का लाभ मोरो पन्त ने उन्हें अपनी सेना में भर्ती करके लिया, बची खुची सेना मुगल सेना में शामिल हो गई। एक गंभीर असंतोष बीजापुर में व्याप्त हो गया पर पुनः संरक्षक के यह कहने पर कि वह पादशाह बीबी को मुगलों को नहीं व्याहेगा, उसे जनता का कुछ विश्वास प्राप्त हो गया।

मसूद खाँ से संधिवार्ता को पक्की करके दिलेर खाँ अपनी सेनाओं के साथ पीर गाँव की ओर बढ़ गया और इसी अवसर की ताक में शिवाजी ने कर्नाटक से प्रस्थान किया। उन्होंने अपने अमान्य भाई को जिंजी का भार सौंपा तथा रघुनाथ नरायण और सेनापति हम्मीर राव को कर्नाटक के प्रबन्ध कार्य में उनकी सहायता के लिये छोड़ दिया।

---

* स्काट का दक्षिण

† उसने यह सम्पत्ति इनायत उल्ला नामक धनी आदमी और अदोनी के जागीरदार से पाया था, जिसने मसूद खाँ को अपना उत्तराधिकारी बनाया।

जब शिवाजी ने अपनी इन बाद की अधिकृत, विजयों के बाद भी गोलकुंडा को कुछ भी नहीं दिया तब उन लोगों को पता चला कि शिवाजी ने उन लोगों के साथ छल किया । परन्तु फिर भी शिवाजी के रायगढ़ लौटने तक उनमें आपसी मित्रता का आदान-प्रदान, होता रहा ।

जब शिवाजी की सेना बलेरी के पड़ोस में पहुंची, तो किले के कुछ लोगों ने उनकी सेना के आगे जाने वाले कुछ सैनिकों को मार डाला, किले की प्रधान अधिकारणी देशाई की विधवा थी । इसी को बहाना बना कर उस पर घेरा डाल दिया गया । २७ दिनों के घेरे के बाद इस किले पर सेना का अधिकार हो गया । इसी के बाद शिवाजी ने कोपल पर घेरा डाल कर उसे अपने अधिकार में कर लिया । बहादुर बन्दा ने १५ दिनों में आत्म समर्पण कर दिया, जिसके तुरंत बाद आस-पास के क्षेत्र पर उनका अधिकार हो गया । शिवाजी के प्रधानों में से जनार्दन पंत सामंत को इस अधिकृत क्षेत्र का प्रबन्ध कार्य सौंपा गया और शिवाजी ने अपना बढ़ाव जारी रक्खा, परन्तु उन्होंने तुर्गुल आकर अपना बढ़ाव रोका । उन्हें कर्नाटक में अपनी सेना पर बेंकोजी द्वारा किये गये आक्रमण का समाचार मिला । बेंको जी का आक्रमण विफल कर दिया गया था और इसमें उसकी भारी क्षति हुई थी । अपने गुप्तचरों से इस समाचार के पाते ही शिवाजी ने बेंकोजी को एक लम्बा चौड़ा पत्र लिखा जिसमें उन्होंने शुरू से आखरि तक हुई घटनाओं का विवरण देते हुये, लिखा कि जो कुछ हुआ उसको रोकने में असमर्थ थे, और अब उन्हें अपने अधिकारियों को अपनी शक्ति के बल पर आगे बढ़ने का आदेश देने को मजबूर होना पड़ा है । उन्होंने लिखा कि, बेंकोजी की सेना के जिन मुसलमानों की जानें गईं हैं उनके लिये दुख करने की आवश्यकता नहीं है परन्तु इस प्रकार आपसी झगड़ों में मराठों की जानें जानें का उन्हें दुख है । शिवाजी ने अपने इस प्रपत्र में संगठन और शांति के महत्व को समझाने का प्रयास किया । उन्होंने अब पूरे कर्नाटक पर अपने अधिकार की मांग की तथा बेंकोजी को उनके हिस्से के बराबर क्षेत्र पन्हाला जिले में कुतुबशाह के क्षेत्र में से एक के देने का वादा किया, इस प्रकार के क्षेत्र की आमदनी उन्होंने तीन लाख पगोडा बताई ।

इस पत्र के पाने पर बेंको जी ने रघुनाथ नरायण से मिलने की इच्छा व्यक्त की, परन्तु उन्होंने यह कहते हुये, मुलाकात के इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया कि, अब वे शिवाजी के अधीन हैं और यदि शिवाजी इस मुलाकात की अनुमति प्रदान करेंगे तो उन्हें बेंकोजी से मिलने में प्रसन्नता होगी । शिवाजी ने उन्हें इस मुलाकात की अनुमति दे दी । बेंकोजी अंत में इस प्रस्ताव पर सहमत हो गये कि वे शिवाजी के हिस्से के रुपये, जवाहिरात और जागीर उनको सौंप देंगे, उनकी इस सहमति पर शिवाजी ने तंजोर और जागीर के जिले उनको वापस कर दिया । जब शिवाजी अपनी सेना के साथ तुरगुल में पड़े हुये थे, घाटगे और निम्बलकर ने अपनी सेना के साथ पन्हाला जिले पर आक्रमण किया और उसको तहस नहस करते हुये कुरार की तरफ बढ़ गये । शिवाजी की सेना की एक टुकड़ी ने नीराजी काटकरके नायकत्व में आक्रामकों को कुरली जाते हुए पकड़ लिया और उन पर अचानक आक्रमण करके लूटपाट की समस्त चीजों को छीन लिया और उनकी सेना को तितर-वितर कर दिया । लूटपाट की ये कीमती चीजें शिवाजी के प्रजा ही की थी अतः शिवाजी ने उन्हें उनके मालिकों को वापस लौटा दिया । जनार्दन पंत को बीजापुर की सवार सेना की एक टुकड़ी से परेशान होने का समाचार पा कर शिवाजी ने अपनी सेना की एक टुकड़ी उनकी सहायता के लिये भेजा और वे स्वयं पास की सेना के साथ दक्षिण-पूर्वी मानसून के शुरू होने के पहले ही, अठारह महीने की अनुपस्थिति के बाद रायगढ़ पहुंचे । कर्नाटक में बेंकोजी से समझौता होने के बाद हमीरराव ने अपनी सेना के साथ शीघ्रता से महाराष्ट्र की ओर प्रस्थान किया । जनार्दन पंत ने उनके आगमन से

प्रभावित होकर दोआब में बीजापुर की सेना पर सम्मिलित आक्रमण की योजना बनाई । योजना पूर्णतः सफल रही । पाँच सौ घोड़े पाँच हाथी और बीजापुर का नायक उनके अधिकार में आया । कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच का पूरा क्षेत्र तथा बिलारी के विद्रोही देशमुखों ने जिन्होंने बीजापुर सरकार को किसी भी प्रकार का लगान देने से इनकार कर दिया था, शिवाजी की अधीनता स्वीकार करने के लिये विवश हो गये । बीजापुर की पराजय की अवस्था, उसके पास सेना की कमी, नदियों के कटाव ने मसूद खाँ को शिवाजी द्वारा अधिकृति क्षेत्र को लेने से असमर्थ कर दिया । शिवाजी की अनुपस्थिति में पेशवा मोरोपंत ने अपनी बुद्धि और योग्यता से सुरक्षा का प्रबंध किया । सिद्दियों के साथ युद्ध हमेशा चलता रहा । उनके जलबेड़े मुगलों की सहायता से बहुत शक्तिशाली हो गये थे अतः दोनों दलों में शत्रुता बढ़ती ही रही । मराठा किनारों पर उनके छिटपुट आक्रमण, दोनों दलों द्वारा एक दूसरे के जलपोंतो पर आक्रमण, सिद्धियों के बेड़े को जलाने के प्रयास और जिजीरा पर एक साधारण मगर गम्भीर आक्रमण इसी प्रकार की छिटपुट लड़ाइयाँ होती रही थी । इस काल में महत्वपूर्ण बात यही थी कि सम्राट के आदेश से कासिम सिद्दी ने सिद्दी सम्भोले को दबाकर सत्ता अपने हाथ में ले ली । इस नये सत्ताधिकारी को याकूत खां की उपाधि दी गयी, इस अधिकारी के बारे में मराठा पाण्डुलिपियों में इसके गुणों का काफी वर्णन किया गया है ।

मुगलों और बीजापुर की हुई संधि के परिणाम स्वरूप बीजापुर की विघटित सेना को अपनी सेना में नियुक्त करके पेशवा मोरोपंत ने अपनी सेना बढ़ाली, इसका प्रमुख कारण यह था कि दिलेर खाँ के पीर गाँव लौट जाने पर भी उसके शत्रुता पूर्ण विचारों से वे अवगत और भयभीत थे परन्तु औरंगजेब दिलेर खाँ द्वारा किये गये इन प्रबंधों से बहुत नाराज़ हुआ और उसने दिलेर खाँ को उसके अपूर्ण प्रबंध की सूचना देते हुये लिखा कि उसे बीजापुर की सेना को वेतन दे करके बीजापुर की सरकार को शाही सेना के संरक्षण में कर लेना चाहिये था । सम्राट ने दिलेर खाँ को अपनी गल्ती सुधारने का आदेश दिया क्योंकि अभी अपनी परिस्थिति सम्भालने का मौका था कि वह सेनाओं को वेतन दे करके उच्च अधिकारियों को मुगल सेना में भरती कर लें । * इसी समय शाहजादे मुअज्जम को पुनः दक्षिण का सूबेदार बनाया गया परंतु युद्ध संचालन का भार और प्रभुता दिलेर खाँ के हाथ में ही रही । बीजापुर के अफगान अधिकारी आसानी से दिलेर खाँ की तरफ हो गये परंतु कुछ लोगों ने जो अब भी मुगल संरक्षण को अपमान-जनक समझते थे, इसका विरोध किया । मुगल दूतों ने कहा कि पादशाह बीबी को मुगलों के सौंपने पर ही बीजापुर का घेरा उठ सकना सम्भव है । मसूद खाँ ने इस माँग को ठुकरा दिया । मसूद खाँ विरोधी एक जत्थे ने सैयद मखतूम, जिन्हें मलिक वरखुरदार ने उभाड़ा था, शस्त्रों के साथ मुगल की माँग के पक्ष में निकल पड़े । इस समय मसूद खाँ अनुपस्थित था परंतु नगर के बीच में होने वाले इस युद्ध को स्वयं पादशाह बीबी ने मुगलों की छावनी में जाने की अपनी इच्छा की घोषणा करके रोक दिया । अपने इस बलिदान और त्याग के परिणाम स्वरूप उसने सोचा कि शायद उसके भाई का राज्य बच जाय । उसका सोचना निर्मूल था । बीजापुर के मुसलमान निवासी आज भी इस घटना का वर्णन करते हैं । इस क्षेत्र की बहुत सी लोक कथायें अपनी इस प्रिय और सहृदय राजकुमारी के बारे में कही जाती हैं ।

जिस समय पादशाह बीबी दिलेर खाँ की छावनी में पहुंची । मुगल सेना नगर पर आक्रमण करने के लिये बढ़ी आ रही थी, पादशाह बीबी को सुरक्षित ओरङ्गाबाद भेजने का प्रबन्ध कर दिया

---

* बीजापुर पाण्डुलिपि और स्काट का दक्षिण

गया परन्तु शाही सेना ने अपना बढ़ाव जारी रक्खा । मसूद खाँ इस पर घबरा गया और
१६७९] उसने शिवाजी से सहायता की याचना की । शिवाजी ने मसूद खाँ की सहायता करने की स्वीकृति दे दी । शिवाजी ने दिलेर खाँ पर आक्रमण करने या उसकी सेना का रुख बीजापुर से घुमा देने का वादा किया था । अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये पन्हाला में अपने घुड़सवारों को भारी संख्या में इकट्ठा किया, परन्तु आक्रामक सेना की शक्ति को परखने के बाद उन्होंने आक्रमण करने का इरादा छोड़ दिया, कारण दिलेर खाँ की अपनी सेना में भारी संख्या में पठान भरे पड़े थे । परन्तु उन्होंने आक्रमण करने का दिखावा बनाये रक्खा । इसी प्रकार धीरे-धीरे वे मुगल खेमे से २४ मील की दूरी तक चले आये, परन्तु तभी वे अचानक उत्तर की ओर मुड़कर, शीघ्रता से भीमा नदी को पार करके मुगल क्षेत्र पर टूट पड़े । उन्होंने मुगलों के क्षेत्र में हाहाकार मचा दिया, गाँव के गाँव उनके सैनिकों द्वारा तबाह कर दिये जाते, आग और तलवार का ताण्डव होता रहा, चारों तरफ राख के ढेर दिखलाई पड़ने लगे परन्तु दिलेर खाँ ने अपना विचार नहीं बदला, वह आगे बढ़ता रहा, और शिवाजी भी अपने सैनिकों के साथ मुगलों के क्षेत्रों को तबाह करते रहे । उन्होंने भीमा से लेकर गोदावरी तक के क्षेत्र को रौंदा और गोदावरी को पार करके जालना पर आक्रमण किया, पड़ोस में ही शहजादे मुअज्जम की उपस्थिति के बावजूद तीन दिनों तक नगर को लूटते रहे, जैसा कि मराठों का प्रचलन बन चुका था उन्होंने प्रत्येक धनी आदमी को ढूढ़ ढूढ़कर लूटा । उन्होंने नगर के प्रमुख आदमियों के अरक्षित घर को लूटा पाटा और अपने पिछले सिद्धान्तों के अनुसार लूटपाट में त्याज्य मुसलमान पीरों और मौलवियों तक को लूटा । * शिवाजी को लूट में मिली भारी सम्पत्ति को आंकते हुए लोगों ने अनुमान किया कि शायद वे अब सीधे रायगढ़ जायें अतः शहजादे ने उन्हें रोकने के लिये विभिन्न स्थानों से १०००० सवारों को रणमस्त खां के अधीन भेजा । इसने शीघ्र ही शिवाजी को जा पकड़ा जो अपनी सेना के साथ पत्ता की ओर बढ़े जा रहे थे । उनकी सेना के एक हिस्से को सेना की तीव्रता देखकर सन्ता जी घोरपड़े को भ्रम हो गया । शिवाजी की सेना का सिधो जी निम्बालकर नामक प्रमुख अधिकारी मारा गया । † परन्तु शिवाजी ने शत्रु पर जोरदार आक्रमण कर दिया । विजय श्री उन्हीं के हाथ लगी । मुगल सेना छिन्न-भिन्न हो कर भाग खड़ी हुई और शिवाजी अपने मार्ग पर बढ़ते रहे, परन्तु अभी वे अधिक दूर नहीं जा पाये थे जब कि मुगल सेना ने उन पर दुबारा आक्रमण किया । इनके मुगलों की सेना के साथ मिर्जा राजा जय सिंह का एक नाती, किसुन सिंह भी अपनी मजे की सेना के साथ आ मिला था । मुगलों की इस सम्मिलित सेना ने उन्हें उनके रास्ते से दूर ला फेंका । शिवाजी की सेना इस भारी सेना से उलझने में असमर्थ थी, परन्तु उनके एक पथ प्रदर्शक और जासूस की बुद्धिमानी ने उनको बचा लिया । उसने उन लोगों को पहाड़ों से होते हुए एक ऐसे रास्ते पर ला खड़ा किया जिसका पता मुगलों को नहीं था । कई घन्टे वे उसी मार्ग पर अनवरत् निर्विरोध बढ़ते रहे और सुरक्षित पट्ठा पहुंच गये । मुगल सेना औरङ्गाबाद लौट गई । शिवाजी ने पट्ठा के पास के २७ किलों को अपने अधिकार में करने का अच्छा अवसर पाया और अपनी इस योजना को पूरी करने के लिये उन्होंने कोंकण से काफी सेना को बुलवा कर मोरो पन्त के अधीन इन किलों को प्राप्त करने का कार्य भार सौंपा । कोंकण से आई भारी पैदल सेना के अतिरिक्त उन्होंने सवारों की अच्छी खासी सेना को भी पेशवा को सौंप दिया ।

---

* खफी खाँ के अनुसार एक फकीर की बददुआओं के परिणाम स्वरूप ही उनको शीघ्र काल कवलित होना पड़ा ।

† मराठा पान्डु लिपि ।

शिवाजी पट्ठा में ही पड़े रहे जब उन्हें मसूद खां के दूत से समाचार मिला जिसमें उसने उनसे शीघ्रतापूर्वक दक्षिण की ओर बढ़कर बीजापुर की रक्षा करने की प्रार्थना की थी। "दिलेर खां किले को दीवालों के पास तक पहुंच चुका था जिससे बीजापुर की रक्षा का एक मात्र सावन शिवाजी की तुरन्त सहायता के अतिरिक्त और किसी प्रकार नहीं हो सकती थी।" ‡ शिवाजी ने पुनः बीजापुर की ओर बढ़ने की तैयारी की जब उन्हें समाचार मिला कि उनका पुत्र भाग कर दिलेर खां से जा मिला है। उन्होंने अपनी सेना को हम्मीराव के अधीन अपने मार्ग पर बढ़ने का आदेश दिया और वे स्वयम् पन्हाला लौट पड़े, सम्भाजी को वापस बुलाने का प्रबन्ध करने के लिये।

अपने बड़े पुत्र सम्भाजी के इस आचरण से शिवाजी को बहुत दुख और क्षोभ हुआ। वास्तव में सम्भाजी ने एक विवाहित ब्राह्मणी के साथ बलात्कार किया था जिस पर क्रुद्ध होकर शिवाजी ने उन्हें कड़ी निगरानी में पन्हाला में कैद कर दिया था। कुछ दिन बाद छुटकारा मिलने पर शिवाजी की अनुपस्थिति से लाभ उठा कर भाग गया और मुगलों से जा मिला, दिलेर खां ने उसको काफी सम्मान के साथ अपने साथ रक्खा। ×

दिलेर खाँ ने सम्भा जी के आने का पूरा वृतान्त सम्राट को लिखते हुए, तथा मराठों की बढ़ी चढ़ी शक्तियों को रोकने के लिये संभाजी के अधीन सेना भेज कर शिवाजी के विरोध में खड़ा करने की सलाह दी, परन्तु सम्राट ने यह कहते हुए उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया कि इससे विस्फोटक शक्तियों का अधिक शीघ्रता से विकाश होगा। शिवाजी के जीवन में महत्व रखने वाले लोगों को औरंगजेब की इस दूरदर्शिता पर आश्चर्य होगा। यह सत्य है कि यदि औरंगजेब ने आरम्भ से ही इसी प्रकार की विस्तृत नीति अपनाई होती या दक्षिण की इन सल्तनतों को उसने अपना शिकार बनाने का प्रयास न किया होता तो मराठे कितने ही शक्तिशाली क्यों न होते उसे इस प्रकार उनसे भयभीत होने की कमी भी आवश्यकता न पड़ती और उसकी बुद्धिमत्तापूर्ण नीति की प्रशंसा उसकी प्रचलित कपट पूर्ण नीति से अधिक होती।

दिलेर खाँ ने सम्राट की स्वीकृति की यथेष्ट प्रतीक्षा किये बिना ही अपने प्रस्ताव पर आधारित योर्जना को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास करने लगे। उसने अपनी बीजापुर स्थित सेना में से कुछ टुकड़ियों को सम्भाजी के अधीन भोपालगढ़ पर आक्रमण करने को भेंजा। उसने संभाजी को मराठा राजा के नाम से अभियान का सेनापतित्व सौंपा, भोपालगढ़ शिवाजी के पूना क्षेत्र के एक दम बाहरी किनारों पर था, संभाजी अपने प्रयास में सफल रहे।

शिवाजी के आदेश से बीजापुर की ओर बढ़ते हम्मीर राव की मुठभेड़ रणमस्त खां के आठ नौ हजार सवारों से हो गई। यह वही अधिकारी है जिसे शाहजादे मुअज्जम के आदेश पर शिवाजी पर आक्रमण करते हम देख चुके हैं। इस बार भी वह हम्मीर राव के हाथों बुरी तरह पराजित हुआ।

मोरो पंत ने आहन्त और नहवागढ़ नामक दो शक्तिशाली गढ़ पर अधिकार कर के अपनी सेनाओं को समूचे खान देश में फैला दिया, जिसे सेनाओं ने खूब तहस नहस किया। हम्मीर राव ने दिलेर खां की सेना के चारों ओर चक्कर मारना शुरू किया और उधर मसूद खाँ के नायकत्व में किले के सैनिकों ने पूरी प्रतिरक्षा की। परिणामतः किले को अपने अधिकार में करने के प्रयत्न करने पर भी दिलेर खाँ को अपने प्रयास में सफलता न मिली। वह अपने घेरे में न तो तीव्रता ला सकता था और न

---

‡ शिवाजी का पत्र जिसमें उन्होंने मसूद खाँ के इन शब्दों को दुहराया है।

× मराठा पान्डुलिपि और स्काट का दक्षिण।

अधिक दिनों तक घेरे को कायम ही रख सकता था । कारण हम्मीर राव के कारण उसकी रसद एक दम बन्द हो गई थी । अन्त में किले पर अधिकार पाने की उसकी सारी आशा, व्यर्थ गई और वर्षा ऋतु समाप्त होते ही उसने अपनी शक्ति भर शीघ्रता से कृष्णा को पार किया । अपनी सेनाओं को कई टुकड़ों में बाँट कर कर्नाटक को तहस नहस कर रहा था । जब कि जनार्दन पंत ने ६००० सवारों के साथ उसके द्वारा संचालित टुकड़ी पर ही आक्रमण करके उसे बुरी तरह पराजित किया, सैनिकों को तितर बितर कर दिया और कितनों को काट कर फेंक दिया । दिलेर खाँ को बुरी तरह अपनी जान लेकर भाग जाना पड़ा ।

इस समय तक सम्राट का आदेश भी आ चुका था । अपने इस आदेश से उन्होंने शहजादे मुअज्जम को वापस बुला कर उनके स्थान पर पुनः खान जहाँ बहादुर को दक्षिण का सूबेदार तथा सेनाओं का प्रधान सेनापति नियुक्ति किया । दिलेर खां का संभाजी विषयक विचार अस्वीकृत करते हुये संभाजी को कैद कर के दिल्ली भेजने का आदेश दिया, परन्तु उसके पूर्व ही शिवाजी के जासूसों ने दिलेर खां से किसी प्रकार अनुमति प्राप्त कर के सम्भाजी को अपने अधिकार में कर लिया । दिलेर खाँ को इधर उधर करने के अलावा कुछ न बचा । शिवाजी ने संभाजी को अपने अधिकार में ला संतोष की सांस ली परन्तु उनके परिवर्तन के लिये उन्होंने संभाजी को पुनः पन्हाला किले में कैद कर दिया ।

शिवाजी ने बीजापुर को सहायता देने के उपलक्ष में कोपाउल और बालेरी पर अपने अधिकार की मांग की, इसके अतिरिक्त द्रावद तथा तंजोर के अतिरिक्त शाह जी की जागीर के जिलों पर बीजापुर के समस्त अधिकारों को छोड़ने को कहा । अपनी सभी माँगों के स्वीकार कर
१६८०] लिये जाने के बाद वे बीजापुर के पड़ोस में आये, जहाँ उन्होंने मसूद खाँ से साक्षात्कार किया तथा आपसी संबन्धों को बनाये रखने के लिये काफी विचार विमर्श हुआ ।

शिवाजी को बीजापुर द्वारा प्राप्त महत्व, वेंकोजी के असीम कष्ट का कारण हो गया । उनको अपनी स्वतन्त्र स्थिति अस्थिर सी जान पड़ने लगी । अभी तक वह रघुनाथ पंत से ही नही वरन् शिवाजी द्वारा बुरी तरह परेशान किये गये थे । परेशानी के अलावा जागीर के मुख्य भाग पर उन्होंने अपना अधिकार भी कर लिया था । वेंकोंजी 'अब अपनी सहन सीमा पार कर चुके थे अतः वे शिवाजी के इस नये सम्मान से इतने आहत हुए कि उन्होने जागीरदारी के समस्त कार्यों से अपना हाथ खींच लिया अपने आप को उपेक्षित रख कर उन्होंने अपनी सामान्य क्रियाओं में भी अरुचि दिखानी शुरू की । अपने धार्मिक संस्कारों में, व्रत और पूजा पाठ से भी उन्हें अरुचि हो गई । उनकी पहले की सक्रियता भी बदल गई थी । ऐसा लगता था मानों उन्होंने सन्यास ले लिया हो । उनकी इस दशा का समाचार पाकर शिवाजी ने उनको एक पत्र लिखा जो उत्साह और जीवनी शक्ति से पूर्ण था । यह पत्र शिवाजी द्वारा लिखवाया गया अन्तिम पत्र था । * जो उन्होंने अपने इस जीवन में लिखा । इसके बाद ही वे रायगढ़ में

---

* शिवाजी का पत्र वेंकोजी के नाम (अंग्रेजी का सही अनुवाद)

"कुशलोपरांत, बहुत दिन बीत गये तुम्हारा कोई पत्र न मिलने से मैं सुखी नहीं हूँ, रघुपंत का पत्र मिला है जिसमें उन्होंने लिखा है कि तुमने उदासी और निष्क्रियता को अपने पास बुला लिया है । तुम अपने शरीर की परवाह नहीं करते और न पहले जैसा जीवन ही व्यतीत कर रहे हो, तुम अपने धार्मिक संस्कारों में भी रुचि नहीं रखते । तुम्हारी सेना निष्क्रिय है और तुम राज्य के कार्यों में जरा भी दिलचस्पी नहीं रखते । तुम वैरागियों के से हो गये हो । एकान्त में बैठे-बैठे दिन व्यतीत करते हो, इसी प्रकार की बहुत सी बातें मेरे पास लिखकर भेजी गई है जिनसे मैं मर्माहित हूँ । मुझे

बीमार पड़ गये। उनकी बीमारी, घुटनों के जोड़ में तीव्र पीड़ा के साथ आरम्भ हुई। जो लगातार बढ़ती गई। इसी के कारण उनको तीव्र ज्वर चढ़ा, जिससे, बीमारी आरम्भ होने के सातवें दिन ५ अप्रैल सन् १६८० को उनकी मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय उनकी अवस्था ५० वर्ष की थी।

इस प्रकार शिवाजी का अन्त हुआ। परन्तु उनकी मृत्यु के पहले सिद्दियों के साथ हुए उनके कुछ युद्धों को हम छोड़ गये, उसके अध्ययन के लिये हमें एक बार पुनः लौटना पड़ेगा, कारण इन युद्धों के साथ उनके जीवन की कुछ विशेष घटनायें जुड़ी हैं, जिन्हें समझने के बाद हमें उनके जीवन अन्त विन्दु से पुनः पलट कर उनके चरित्र का गम्भीर अध्ययन करना है। शिवाजी वास्तव में एक महान् व्यक्ति थे, अपनी विलक्षण प्रतिभा एवम् बुद्धमत्ता पूर्ण कार्यों से उन्होंने इतिहास में अपना सर्वोच्च स्थान बना लिया है। उनके चरित्र की रूपरेखा बनाने के लिये हमें उनके उत्थान की अल्प कड़ियों से चलना पड़ेगा। उन्होंने अपने प्रगति का केन्द्र बनाया, जङ्गली इलाके के अर्धनग्न मावलियों से, जहाँ उन्होंने अपने आपको उनकी सहायता से सर्वप्रथम स्वतःप्रशासक बनने के स्वप्न देखे। परिस्थितियों की जटिलता उन्हें विचलित न कर सकी—विपरीत शक्तियों को अपने लिये सुविधा जनक बनाने में उनकी कुशलता देखते ही बनती है। असभ्य मावलियों के प्राणों में उत्साह कूट कूटकर भर कर अपने को शक्तिशाली बनाने का जो तरीका उन्होंने खोजा, वह नया था और उस परिस्थिति के अत्यन्त अनुकूल था। हमें उनके अत्यन्त युद्धरत जीवन में भी उनके प्रशासनिक विभागों और उनके प्रधानों का अध्ययन करना चाहिये, जो उनकी सफलता के प्रमाण हैं। अपने को विपत्तियों से बचाये रखने के लिये उनकी कौशल भरी नीतिया हमारे सामने हैं, उन्होंने चाहे खुले मैदान को अपने अधिकार में करने की योजना बनाई हो या किसी किले की, अपने सौ सवारों के नेतृत्व को सम्भाला हो या पूरे देश का, उनमें कहीं भी कमी नहीं दिखाई पड़ती, उनकी आर्थिक पटुता किसी भी राजनैतिक नेता के लिये अनुकरण की वस्तु है, जो उनके चरित्र की एक महान् सफलता का

आश्चर्य होता है कि तुम्हारे सामने पिताजी का आदर्श है—किस प्रकार वे विपत्तियों का सामना करते थे, बड़े-बड़े कार्यों को आसानी से कर डालते थे—बड़े-बड़े खतरों से अपनी सुरक्षा कर लेते थे—इस प्रकार उन्होंने बहुत धन और यश कमाया और उन्हें अन्त तक बनाये रक्खा—यह सब तुम्हें मालूम है। तुमको उनका सामीप्य मिला है—तुम्हें उनकी योग्यता और बुद्धिमानी को सीखने का अवसर मिला है, फिर क्या तुम्हें इस प्रकार अवसर प्राप्त होते बैराग लेना भला लगता है। क्या तुम चाहते हो कि लोग तुम्हारी सेना को पछाड़ दें—तुम्हारी संपत्ति छीन लें और तुम्हारे शरीर को भी क्षति पहुंचावें, यह कैसी बुद्धिमानी है—इसका अन्त क्या होगा मैं तुमसे बड़ा हूँ अतः तुम्हारी रक्षा करूँगा। मुझसे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। अतः तुम अपनी हालत को बदलो। देशपान्डे पद को उतार फेंको और कार्यों से अपना जीवन व्यतीत करो। मैंने भी तुम जानते हो किस प्रकार परिस्थितियों से लड़ करके यह राज्य स्थापित किया है। अपने छोटे भाई की कीर्ति और नाम सुनकर मुझे कितनी खुशी होगी—रघुनाथ पन्डित तुम्हारे लिये नये नहीं हैं। तुम उनसे सलाह लेकर अपना कार्य करो वे तुम्हें मेरे स्थान पर समझकर तुम्हारी सहायता करेंगे, मैंने उन पर पूरा विश्वास किया है तुम भी करो—उनकी सहायता से शीघ्र ही तुम्हें यश और कीर्ति प्राप्त होगी। अवसर से बिना कुछ प्राप्त किये मत जाने दो, यही समय है बड़े कार्य करने का, वृद्धावस्था बैरागी होने के लिये है। अपने को सम्भालो देखूं तुम क्या करते हो और क्या लिखूं।"

घोतक है। अपने जीवन की बड़ी से बड़ी लूट भी उनको कभी अपने बनाये हुये नियमों से विलग न कर सकी।

शिवाजी की योजनायें धैर्य पूर्वक बनायी जाती और बुद्धिमता पूर्ण होती थी एवम् उनके पालन में अत्यधिक तीव्रता-दृढ़ता और सुरक्षात्मक तत्व वर्तमान रहते थे। वे अपने मामले में विचार करते समय, छल का सहारा नहीं छोड़ सकते थे। हर पहलू के दोनों रूपों पर विचार किये बिना उनकी योजनायें पूर्ण नहीं होती थी। उनकी योजनायें चालाकी और होशियारी से भरी रहती थी और योजनाओं को व्यवहार में लाते समय यह इतनी अधिक स्पष्ट हो उठती थी कि, फिर उनसे बड़े चतुर आदमी की कल्पना भी असम्भव लगती थी। उत्कृष्ट अन्ध विश्वास, अत्याचारी स्वभाव और उनका कठोर नियम ही उनका अकेले साथ नहीं देते थे वरन् इन सभी को अपने हाथ में लेकर भी वे छल को नहीं त्याग सकते थे। परन्तु इन सभी को एक ओर रखकर हमें उनके कौशल, लचीलेपन और उनकी दीनता के साथ उनकी दृढ़ता, निश्चय और महत्वाकांक्षा की तुलना करनी चाहिये। अपने छोटे से छोटे लाभ को भी पूरा करते हुए दूसरे को अपनी बातों से और तर्कों से प्रभावित करने की अपूर्व क्षमता उनको प्राप्त थी। किसी भी सैनिक के अनुशासन हीन होते ही साहसिक नेता सी पटुता के साथ उसका सफाया, कुशल राजनीतिज्ञों की सी आर्थिक पटुता तथा अपनी योजनाओं की सफलता के उनके बुद्धिमत्ता पूर्ण उपाय, जिसने कुचली हिन्दू जाति को एक भरा पूरा साम्राज्य प्रदान किया, और जब यह उत्थान कार्य सम्पूर्ण हो गया, साम्राज्य का निर्माण करने वाला हाथ मिट्टी में मिल गया।

शिवाजी के देश के ही उनके प्रशंसकों का कहना है कि वे देवी भवानी के अंश थे और उन्होंने संसार के सामने बुद्धिमानी, धैर्य और दया का उदाहरण रखा। साधारणतया मराठों के विचार से हत्या अगर किसी भली आवश्यकता के वशीभूत की जाय तो वह निन्दनीय नहीं है। इसी कारण चन्दरराव और जावली नरेश की हत्या को शिवाजी की अपकीर्ति नहीं मानते, परन्तु इन मराठों में बहुत कम लोग यह मानते है कि शिवाजी ने अफजल खाँ की हत्या की। इनमें से अधिकांश का विश्वास यह है कि अफजल खाँ आक्रामक था और उसकी तीव्र आक्रामक सेनाओं के शिवाजी द्वारा विरोध किये जाने के परिणाम स्वरूप उसकी हत्या हुई, वे यह मानने से इनकार करते हैं कि यह एक छल पूर्वक किया गया नृशंस हत्याकाण्ड था, यद्यपि वे राजनीतिक हत्या को उचित और बुद्धिमत्ता पूर्ण मानते हैं।

शिवाजी के परिवारिक जीवन से उनके प्रफुल्ल स्वभाव और आकर्षित करने वाले व्यक्तित्व का पता चलता है। वे सीधी बात कहना चाहते थे परन्तु किसी से अधिक घनिष्टता नहीं रखते थे। अपनी योजनाओं और दुश्मनों के प्रति कठोर एवम् दृढ़ होते हुए अपने ऊपर निर्भर रहने वाले व्यक्तियों, परिवार और सम्बन्धियों के प्रति वे बहुत उदार थे, वे साधारण कद के शक्तिशाली परन्तु अत्यधिक सक्रिय मनुष्य थे। उनका चेहरा सुन्दर और बुद्धिमत्ता पूर्ण था। * उनकी बाहें औसतन

---

* मराठा पान्डुलिपि तथा शिवाजी व उनके प्रधानों के वंशजों द्वारा प्राप्त विवरण अली नामा में नसरत ने मराठों के लम्बे पैर और लम्बी बाहों का वर्णन किया है। कोल्हापुर और सतारा में रक्खी शिवाजी की तस्वीरों से इस प्रकार की पुष्टि नहीं होती, किसी भी यूरोपियन ने जिन्हें शिवाजी से साक्षात्कार प्राप्त करने का अवसर मिला था, इसको अभिलेखित नहीं किया है। उनका शव रायगढ़ में जलाया गया था जहां उनके अस्थियों को इकठ्ठा करके एक स्मारक बनवाया गया है, मालवान किले की एक इमारत में शिवाजी का स्मारक है। इस निर्माण का काल शिवाजी द्वारा निर्मित

लम्बी थी जो मराठों में असाधारण सुन्दरता की निशानी मानी जाती है। उनकी व्यवहृत तलवार † जिसका नाम अपनी देवी के नाम से 'भवानी' रखा था, आज भी सतारा के महाराज के यहाँ सुरक्षित और सम्मान के साथ रखी हुई है।

अपनी मृत्यु के समय गोआ, नीवी चोल, सिलसिट और बसई जो पुर्त्तगालियों के अधीन थे, को अपवाद-स्वरूप छोड़कर कोंकण के सम्पूर्ण क्षेत्र पर जो गाण्डवी से पोण्डा तक फैला हुआ था, शिवाजी के अधिकार में था।

जिंजीरा सिद्दियों के हाथ में था और बम्बई प्रायद्वीप अंगरेजों के। शिवाजी का अधिकार थाना, कारवार अंकोला और समुद्री किनारों के अन्य स्थानों पर था। किनारों के इन जिलों में वे देशमुखों के साथ हिस्सा बटाते थे। पोण्डा का प्रधान उनकी अधीनता मानता था और विन्दौर का राणा उनको सालाना कर देता था। वलेरी और कापुल तथा द्रविड़ का विजित क्षेत्र और कर्नाटक की जागीर तथा तंजोर के जिलों के अतिरिक्त शिवाजी का अधिकार दक्षिणी महाराष्ट्र की हरनाकशी नदी से लेकर उत्तर में इन्द्राणी नदी के पूना और जुन्नार के बीच का सम्पूर्ण क्षेत्र शिवाजी के अधिकार में था सूपा, वारामती और इन्दपुर के जिले उनके अधिकार में कभी नहीं रहे लेकिन वे उस पर अपनी पैतृक जागीर के रूप में अपना दावा मानते रहे। उनके द्वारा बनवाये हुए तातौरा और पन्हाला के बीच के किले उनकी पूर्वी सीमा को निर्धारित करते थे। इसके अतिरिक्त भी उनके पास कई क्षेत्र थे। सिंगापुर जहाँ कि महादेव का मन्दिर है, उनके वंशजों को इनाम में मिला हुआ गाँव था। * दामन के समीप परनेरा उनके पेशवा मोरोपन्त द्वारा पुनः निर्मित हुआ था तथा बलगाना, खानदेश और संगमौरी शक्तिशाली सैनिकों द्वारा अधिकृत थे, जहाँ पर उनके कई थाने और काफी सम्पत्ति थी। मराठा पाण्डुलिपियों में इस सम्पत्ति को बहुत बड़ी बताया गया है जो निस्संदेह रायगढ़ के विशाल खजाने ‡ को देखते हुए सत्य प्रतीत होता है। शिवाजी के साम्राज्य और उनके खजाने से मुसलमान उतने भयभीत और आक्रान्त नहीं हुए थे, जितना उनके द्वारा की गई हिन्दुओं में सम्मान और जागृति की भावना से शिवाजी के किसी भी उत्तराधिकारी ने उनकी जैसी वीरता, धीरता और बुद्धिमानी नहीं पाई; अक्सर ऐसा देखा जाता है कि राज्य का उत्थान और पतन अक्सर उन्हीं चीजों और परिस्थितियों से होता है जिनको लोग तुच्छ और नगण्य जान कर छोड़ देते हैं। राज्य के उत्थान में शिवाजी ने उन्हीं तुच्छ परिस्थितियों से लाभ उठाया था।

शिवाजी की चार स्त्रियाँ थीं। निम्बलाकर परिवार की सई बाई, सिरके परिवार की

किलों के समय का है, जिन्होंने पुजारियों को इस किले में पूजा इत्यादि के लिये नियुक्त किया था, जिसके परिणाम स्वरूप उनका विश्वास था कि न तो समुद्र और न दुश्मन किलों की दीवालों की ओर ताकने की हिम्मत कर सकता था। सम्भाजो ने इस भवन का विस्तार किया और रायगढ़ पतन के बाद रामजी ने शिवाजी के स्मारक के रूप में इसका उपयोग किया। आज भी इस भवन के ब्राह्मणों को वही पहले वाली सुविधा प्राप्त है। इसमें इन पुजारियों ने भी काफी अतिरिक्त निर्माण किया है, जो दर्शनार्थी लोगों द्वारा प्राप्त धन का परिणाम है। इसमें शिवाजी की एक मूर्ति और उनकी एक तलवार है। लोगों का विश्वास है कि शिवाजी की अन्त्येष्ठि यहीं पर सुरक्षित है।

† शिवाजी की तलवार शानदार जिनेवा इस्पात की बनी थी। परिवार की पान्डुलिपियों में इस तलवार के निर्माण की पूरी कथा लिखी है।

* यह गाँव शाहजी को घाटगे परिवार के किसी व्यक्ति ने दिया था।

‡ शिवाजी के खजाने में रुपयों के अलावा संसार के सभी देशों की मुद्रायें भारी संख्या में थीं।

सोयरा बाई, मोहिते परिवार की पुतली बाई तथा एक चौथी पत्नी जिसके कुल के नाम आदि का पूर्ण विवरण नहीं मिलता। इनमें से सोंयरा बाई तथा पुतली बाई शिवाजी के मरने के बाद बच रहीं। पुलती बाई ने अपने पति के मरने के एक सप्ताह बाद चिता में जल कर मर गई। शिवाजी के मरने की सूचना इसे एक सप्ताह बाद मिली थी। इसी कारण यह तुरन्त न मर सकी।

सम्भाजी की माता सई बाई सम्भाजी को दो वर्ष की अवस्था में छोड़ स्वर्ग सिधार गई थीं, सोयरा बाई राजाराम की माता थी। चालाक होने के कारण न सिर्फ शिवाजी वरन् उनके प्रधानों पर भी अपना प्रभाव बनाये रहती थी। अन्नाजी दत्तो पन्त सचिव पर उनका विशेष प्रभाव था। अपनी मृत्यु से पहले शिवाजी ने मोरो पन्त और अन्नाजी दत्तो तथा अन्य लोगों के सामने भी सम्भाजी के राजा होने पर राज्य की सम्भावित हानि पर दुख प्रकट किया था। उनकी मृत्यु के बाद उनकी कही इन्हीं बातों को दोहरा करके सोयरा बाई, तथा उसके सहायकों ने इस बात का प्रचार किया कि शिवाजी ने राजाराम को अपना उत्तराधिकारी बनाया है। राजाराम उस समय दस वर्ष का बालक था। पेशवा मोरो पन्त ने सचिव अन्नाजी दत्तो का जन्मजात विरोधी होने के बावजूद, सर्वप्रथम संरक्षकता के अधीन राजाराम के नाम शासन चलाने की योजना बनाई, अन्य प्रधानों ने भी इसमें अपनी स्वीकृति प्रदान की और इस योजना के अनुसार व्यवस्थात्मक कार्य होने लगा।

शिवाजी की मृत्यु के समाचार को सम्भाजी को पूर्ण रूप से अपने अधिकार में करने के पहले एकदम गुप्त रक्खा गया। परिवार के एक रिश्तेदार शाहजी भोंसले ने साधारण संस्कारों को एकदम गुप्त रूप से पूर्ण किया। जनार्दन पन्त सामन्त के अधीन एक सेना को पन्हाला की ओर भेजा गया, रायगढ़ के किले में सैनिकों की संख्या बढ़ा दी गई और १०००० हजार घोड़े पड़ोस के गाँव-पंचवार में छोड़ दिये गये। सेनापति हम्मीर राव को एक भारी सेना के साथ कुरुवार के समीप तैयार रहने का आदेश मिला। इन सब प्रबन्धों में कुछ समय लगता ही अतः पन्हाला में सम्भाजी के ऊपर नियुक्त अधिकारी * को सावधान रखने के लिये रायगढ़ से पत्र भेजा गया परन्तु शायद सम्भाजी को अपने पिता की मृत्यु की आशंका हो गई थी या फिर उनको किसी प्रकार इसकी सूचना मिल गई हो— कारण जैसे ही दूत रायगढ़ का पत्र लेकर पन्हाला पहुंचा, सम्भाजी ने उसको जा पकड़ा और प्राणों की धमकी देकर उस पत्र को प्राप्त कर लिया। इस प्रकार उनको सारी गुप्त बातें ज्ञात हो गई। हीरो जी फरजन्द कोंकण भाग गया। सम्भाजी ने किले का सेनापतित्व सम्भाला। किले की सेना ने उनका आदेश मानना स्वीकार कर लिया, परन्तु उसने इसके पहले ही दो प्रमुख अधिकारियों को मार डाला था। किस पर विश्वास करें, किस पर न करें इसी फेर में पड़े सम्भाजी ने किले के प्रतिरक्षा की तैयारी की और आगे घटने वाली घटनाओं का इन्तजार करने लगे। जनार्दन पन्त किले को सम्भाजी के अधिकार में या उस पर घेरा डालकर बैठ रहे। कुछ सप्ताह बाद किले की शान्ति से भ्रमित होकर वह अपने कुछ पहरेदारों को छोड़कर कोल्हापुर की ओर बढ़ गया।

मई में राजाराम सिंहासन पर बैठा और प्रधानों की देख-रेख में प्रशासनिक कार्य उसके नाम पर चलने लगा परन्तु पेशवा और सचिव पंत का आपसी मनमुटाव बढ़ता रहा और वे एक दूसरे के विरोधी बने रहे।

इसी अवसर पर जनार्दन पंत की सेना के एक हिस्से को अपने अधिकार में कर सम्भाजी ने किले के चुने हुये मावली सैनिकों के साथ जनार्दन पंत को कोल्हापुर में जा पकड़ा और उस पर

---

* हीरो जी फरजन्द।

अचानक आक्रमण करके कैदकर पुनः पन्हाला लौट गये । हम्मीरराव ने जब इस समाचार को सुना तो वे इसे शिवाजी के पुत्र के योग्य कार्य समझ कर बड़े प्रसन्न हुये और अपनीं सेनाओं को सम्भाजी के लिये अर्पित कर दिया । पेशवा मोरो पंत ने भी रायगढ़ से निकलते ही जनार्दन पंत कांड सुना और उसकी प्रतिरक्षा का उपाय करने के बदले में सम्भाजी से जा मिले और अपनी सेनाओं को उन्हें अर्पित कर दिया । सम्भाजी ने उन्हें पेशवा के पद पर कायम रक्खा परन्तु पेशवा को उन्होंने कभी भी अपना विश्वास पात्र नहीं समझा । हम्मीरराव ने अपनी सेनाओं के साथ बढ़कर सम्भाजी का सम्मान किया, और तब सम्भाजी पन्हाला छोड़कर रायगढ़ की ओर बढ़े । उनके पहुंचते ही किले के सैनिकों ने उनका स्वागत किया और सम्भाजी के विरोधी व्यक्तियों को कैद करके उन्हें सौंप दिया । पंचवार की सेना भी आकर सम्भा जी से मिल गई, इस प्रकार जून में सम्भाजी ने किले के अन्दर प्रवेश किया ।

ग्यारहवाँ अध्याय

दक्षिण में मराठों और मुगलों के संघर्ष

(सन् १६८०--१६८९)

अधिकार प्राप्त होने पर संभाजी द्वारा कठोर अत्याचार-सोयरा बाई को दण्ड-उसके शासन का शुभारम्भ-राजाराम के लिये संभाजी के खिलाफ षडयन्त्र-मोरो पंत की कैद-रघुनाथ नारायण हनुमंते-संभाजी द्वारा जिंजीरा पर आक्रमण-मुगलों का कर्नाटक क्षेत्र में अग्रसर होना-संभाजी द्वारा पुर्तगालियों पर आक्रमण-संभाजी का प्रधान मंत्री कुलुशा-शिवाजी द्वारा निर्मित संस्थाओं का पतन-सेना की दशा-खेतों पर बढ़ी लगान-औरंगजेब का आगमन-शाहजादे मुअज्जम को संभाजी पर, कोंकण पर आक्रमण करने का आदेश-जजिया कर की वसूली-दिलेर खाँ की मृत्यु-अहमदनगर में औरंगजेब का आगमन-बीजापुर और गोलकुंडा के प्रति प्रतिक्रिया-रघुनाथ पंत की हत्या-वर्तमान उजड़ी दशा का विवरण-गोलकुंडा का पतन-मराठों की प्रतिक्रिया-हम्मीरराव की मृत्यु-संभाजी की सेना की अनुशासन हीनता-औरंगजेब की दुर्नीति-दक्षिण की सरकारों के १२ वर्ष के बीच की अवस्था ।

शिवाजी के मरने के वाद से लेकर संभाजी के रायगढ़ प्रवेश के मध्य में, संभाजी के उग्र और परिवर्तित स्वभाव को लोगों ने, शिवाजी की मृत्यु के बाद घटी घटनाओं का परिणाम माना । अन्यथा यह परिवर्तन अति असंभाव्य दिखत । अगर संभाजी ने अधिकारियों के आत्म समर्पण
सन् १६८०] करने पर जनता को अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया होता तो शायद जनता उसके पिछले दुर्गुणों को भूल जाती । परन्तु अत्याचार और कठोरता ने तो जैसे उसके साथ ही रायगढ़ में अपना पांव रक्खा, अन्नाजी दत्तों के पांव में बेड़ी डाल कर कैद खाने में डाल दिया गया, राजाराम को भी जेल में डाल दिया गया, सोयरा बाई पकड़ कर संभाजी के सामने लाई गई जिसका उसने भद्दी गालियों और असभ्यता पूर्ण ढंग से सत्कार करते हुये उस पर शिवाजी को विष देने का अपराध लगाया, अन्त में उसे बहुत ही दर्दनाक ढंग से मारने की आज्ञा दी । उसकी सहायता करने वाले अधिकारियों को जान से मरवा डाला । इनमें एक को उसने रायगढ़ की ऊपरी चोटी से नीचे फिकवा दिया; उसके इस कठोर कार्यों से उसके अनेक घातक दुश्मन पैदा हो गये जिनमें प्रमुख रूप से सोयरा बाई के संबन्धी थे । उसकी इन्हीं क्रियाओं के कारण उसका सिंहासनारोहण बहुत अशुभ माना गया और अगस्त के प्रथम सप्ताह में जब उसने सिंहासन धारण किया, राज्य के अनेक भागों से अशुभ समाचार प्राप्त हुए ।

कर्नाटक के लिये प्रस्थान करते समय शिवाजी ने खान जहाँ से जो समझौता किया था, सिद्दियों ने उसको कोई महत्व नहीं दिया और कोंकण में उनके तथा मराठों के बीच छुटपुट लड़ाइयां चलती रहीं, शिवाजी के बाद संभाजी के शासनकाल में यह दुश्मनी बढ़ती ही गई ।

एक वृहत् पहाड़ी चट्टान, जिसका नाम हेनरी था, शिवाजी के अधिकार में था, १६७९ में उन्होंने इसकी किले बन्दी भी कर लिया था । हेनरी बम्बई बन्दरगाह के एकदम समीप था अतः अंगरेजों को शिवाजी द्वारा यह अधिकार अच्छा नहीं लगा था । उन्होंने सिद्दी से मिलकर उसको

अपने अधिकार में करने का असफल प्रयास किया परन्तु इसी प्रकार के दूसरे प्रायद्वीप केनरी नामक प्रायद्वीप पर सिद्दियों का अधिकार था। शाहजी ने इसको अपने अधिकार में करने का प्रयास किया था परन्तु असफल रहा। इस असफलता में अंगरेजों ने कोई रुचि या अरुचि नहीं दिखाई।

सन् १६८१

अपनी सेनाओं को इस प्रकार व्यस्त छोड़ संभाजी किसी कार्यवश पन्हाला चले गये। जाने का कारण ठीक-ठीक मालूम नही है परन्तु संभव है वें बीजापुर सरकार से किसी विषय में वार्ता करने गये रहे हों। वे वहाँ पर तब तक रुके रहे जब तक उन्हें रायगढ़ से बुलाने के लिये संदेश नहीं आया। औरंगजेब का चौथा लड़का शहजादा अकबर उनके यहाँ शरण लेने आया था। अपने पिता के साथ विद्रोह करने के प्रयास में उसका षड़यन्त्र पकड़ा गया और जान बचाने के लिये संभाजी के पास आया। यद्यपि औरंगजेब ने साम्राज्य के अधिकारियों को आदेश देकर उसे रास्ते में ही गिरफ्तार करने को कहा परन्तु वह किसी प्रकार रायगढ़ पहुंच गया।*

संभाजी जी ने अपने एक अधिकारी को भेज कर उनका स्वागत करने को कहा तथा दोदसे नामक गाँव को उनके निवास के लिये निश्चय किया, अपने अतिथि के सम्मान में उन्होंने उस गाँव का नाम बदल कर बादशाह पुर रख दिया, परन्तु कुछ अज्ञात कारणों से संभाजी को पन्हाला में कुछ और रुक जाना पड़ा जिससे वे शाहजादे से मुलाकात करने तुरंत बादशाह पुर न आ सके। इस बीच अन्नाजी दत्तो के पक्षपाती व्यक्तियों ने शाहजादे को रामजी के पक्ष में मिलाने का प्रयास किया। इस षड़यन्त्र की ताजी सूचना महार के देशपाण्डे, दादाजी रघुनाथ से संभाजी को मिली, जिससे संभाजी अपने इस शरणागत मेहमान के प्रति शंकालु हो उठे परन्तु जब शाहजादे ने स्वयम इन घटनाओं का विवरण अपने पत्र में लिख भेजा तो उनकी शंका दूर हो गई और संभाजी ने आकर अपने मेहमान का उचित सम्मान किया।

संभाजी को पता लगा कि अन्नाजी दत्तों और उनके समर्थकों को कोंकण में सिरके परिवार के सदस्यों द्वारा सहायता दी जा रही थी। इसका कारण यह था कि वे सोयरा बाई के मौत का बदला लेना चाहते थे। बालाजी चिटनिस नामक मराठा अधिकारी, जो स्वयम प्रभु जाति का था और जिसे शिवाजी ने ऊंचा सम्मान दिया था † तथा संभाजी ने भी उसे एक विश्वास पूर्ण कार्य के लिये बम्बई भेजा था, इस विरोधी गुट का प्रमुख व्यक्ति था, यह अधिकारी अपने पुत्र, अपने एक संबन्धी श्यामा जी तथा हीरोजी फरजन्द के अतिरिक्त सिरके परिवार के अनेक सन्देहपूर्ण व्यक्तियों को अन्नाजी दत्तो के साथ हाथी के पांव से कुचलवा कर मरवा डाला। सिरके परिवार के सदस्य अपनी जान लेकर भागे, कितनों ने जाकर मुगल सेना में नौकरी कर ली। संभाजी के इस कठोर व्यवहार ने जनता को उद्वेलित कर दिया। बालाजी आजी की हत्या को अगर उचित मान भी लिया जाय, यद्यपि उसके विरुद्ध कुछ भी प्रमाण नहीं था, फिर भी अन्नाजी दत्तो की हत्या किसी भी प्रकार उचित नहीं मानी जा सकती। उस बहादुर पंत सचिव ने शिवाजी के उदय काल से ही उनकी महान

---

* स्काट का दक्षिण, खफी खाँ, मराठा पान्डुलिपि, मुहम्मद अकबर का पत्र।

† शिवाजी के द्वारा प्रदत्त प्रमाण पत्र, शिवाजी ने इन्हें अपना प्रधान बनाना चाहा था परन्तु इन्होंने इन्कार कर दिया, आवाजी के हाथों लिखे अनेक प्रपत्रों को हमने इस इतिहास का आधार बनाया है।

सेवा की थी। उस अनुभवी आदमी को जान से मार डालना कभी भी उचित नहीं हो सकता, इतना ही नहीं अन्नाजी दत्तो ब्राह्मण थे, जिनको मारना हिन्दुओं में महान निन्दनीय कार्य-माना जाता है। अतः संभाजी द्वारा की गई इन हत्याओं से, जनता में उसके प्रति भय और विद्वेष की भावना फैल गई, जनता ने कहना शुरू किया कि अब उसके पतन के दिन आ गये हैं।

इसी प्रकार के कहने वालों में पेशवा मोरो पंत भी थे, उन्होंने अपने विरोधी अन्नाजी दत्तों की मौत पर खुश होने के बजाय इसको अनुचित और अनीति पूर्ण बताकर इसका घोर विरोध किया। कुलुशा नामक एक कनौजिया ब्राह्मण किसी प्रकार संभाजी के प्रियपात्रों में स्थान पा गया था, वह संभाजी का गुप्त सलाहकार भी था। उसने संभाजी को पेशवा को कैद कर लेने का परामर्श दिया और पेशवा को जेल में डाल दिया गया। अनुभव हीन संभाजी, उस अनुभवहीन ब्राह्मण की सहायता से राज्य कार्य देखने लगे।

स्वामी रामदास, शिवाजी के धार्मिक गुरु और निर्देशक जिन्होने अपनी विद्वत्ता से सारे देश में अपना सम्मान और महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था, ने अपनी मृत्यु से पहले सम्भाजी को एक नीति पूर्ण और ज्ञानवर्धक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने शिवाजी का उदाहरण देते हुए, उनके द्वारा हुई भूलों को सुधार कर सुशासन का उपदेश दिया था।

इसी समय कर्नाटक को राजा हरिजी के प्रबन्ध में छोड़कर रघुनाथ नारायण हनुमन्ते रायगढ़ आये। चूंकि आते समय वे कर्नाटक के लगान की संचित राशि भी रायगढ़ में जमा करने के लिये लाये थे तथा शिवाजी के अष्ट प्रधानों में होने के साथ ही अपने प्रभाव और कार्य में अद्वितीत्व थे अतः सम्भाजी ने उनका यथोचित सम्मान किया और इसके लिये अपने दर्बार का अतिरिक्त अधिवेशन किया। रघुनाथ नारायण हनुमन्ते ने अप्रत्याशित दर्बार का लाभ उठाया और समस्त दर्बारियों और प्रजा के सामने अनुभवी और स्वामिभक्त कर्मचारियों के प्रति अशोभनीय व्यवहार को अनुचित बताते हुए राज्य के भविष्य को विपत्तिपूर्ण व्यक्त किया। शिवाजी द्वारा निर्मित संस्थाओं और विभागों पर बल देते हुये उन्होंने उस अवसर पर एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा कही जाने योग्य बातों को व्यक्त किया और संभाजी के विचारों के परिवर्तन के अभाव में उनके पतन की आशा व्यक्त की।

यह कल्पना करना कि रघुनाथ नारायण की इच्छा क्या थी, असंभव प्रतीत होती है। विशेषतः इसलिये कि जनार्दन पंत उनका भाई अब भी सीखचों के अन्दर था। परन्तु संभाजी को किंचित इतनी समझ थी, जो उसने यह सोचा हो कि यदि रघुनाथ नारायण के प्रति कुछ भी अभद्र व्यवहार या शक्ति का प्रयोग किया गया तो कर्नाटक, वेंकों जी के अधिकार में चला जायगा। यह स्मरणीय है कि अत्यन्त क्रुद्ध मराठे भी सम्मनजनक सम्बोधन से शान्त हो जाते हैं। संभाजी ने अपनी त्रुटि स्वीकार की और मोरो पंत तथा जनार्दन पंत को छोड देने का वादा किया। रघुनाथ नारायण सुचित्त होकर कर्नाटक चले गये, परन्तु जिजी पहुंचते पहुंचते उनकी मृत्यु हो गई। संभाजी ने मोरो पंत और जनार्दन पंत को मात्र स्वतन्त्र ही नहीं किया वरन् जनार्दन पन्त को रघुनाथ नारायण के रिक्त पद पर नियुक्त किया और मोरो पंत के पुत्र नीलू पंत मोरेश्वर को जनार्दन पत का मुतालिक या प्रधान सचिव निमुक्त किया, परन्तु ये प्रबन्ध अल्पकालीन थे जो कुलूशा की कूट मंत्रणा के आगे टिक न सके।

मुहम्मद अकबर और संभाजी के मिलन पर बाहरी कूटनीतिज्ञों ने यह अनुमान लगाना शुरू किया कि राजपूत और मराठे मिलकर औरंगजेब को सिंहासन से हटाकर अकबर को सम्राट बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं, परन्तु यह निरा भ्रम था, कारण अहंकार और क्रोध साधारण मनुष्यों में

महत्वाकांक्षा और शौर्य की भावना से अधिक प्रभावशाली होते हैं अतः इस प्रकार की किसी भावना पर सम्भाजी जिंजीरा पर आक्रमण करने के अपने निश्चय को नहीं बदल सकता था। अपने इस आक्रमण और गाँवों में लूट पाट के कारण हुई अपनी मान हानि के अतिरिक्त यह भी दिखाना चाहता था कि उसने उस जिंजीरा को जीत लिया जिसे शिवाजी भी न जीत सके थे। इसी कारण जिंजीरा पर आक्रमण करने का उसका निश्चय दृढ़ था।

सम्भाजी ने अपने एक विश्वस्त आदमी खन्दू जी फर्जन्द को पहले ही गुप्त रूप से जिंजीरा भेज दिया। उसको उन्होंने जिंजीरा के कुछ आदमियों को घूस देकर मिला लेने का आदेश दिया, इन आदमियों द्वारा वे अपनी सेनाओं द्वारा किये जाने वाले आक्रमण के कुछ पहले ही किले के बारूद भंडार को उडवा देने की योजना बनाई। इस आक्रमण के लिये भारी संख्या में सेना इकट्ठी की गई और उसका सेनापतित्व दादा जी रघुनाथ देशपान्डें को सौंपा गया। दादा जी देशपान्डे को इस आक्रमण में विजय मिलने पर अष्ट प्रधानों में स्थान देने का वादा संभाजी ने किया था।

खन्दू जी फर्जन्द द्वारा किया गया षडयन्त्र एक गुलाम दासी द्वारा आक्रमण होने से पहले ही खुल गया, परिणाम स्वरूप फर्जन्द और उसके साथी मृत्यु के घाट उतार दिये गये।

अपने सैनिकों का उत्साह बढ़ाने के लिये संभाजी, मुहम्मद अकबर को लेकर राजापुर की ओर बढ़े, उन्होंने सेना के मार्ग में आई खाड़ी को मिट्टी और पत्थर के टुकड़ों से पाट कर आगे बढ़कर
आक्रमण करने का प्रस्ताव रक्खा। वह उसी कार्य में व्यस्त था जब अहमद नगर
सन् १६८२ से हुसैन अली खाँ के सेनापतित्व में चली सेना को रोकने के लिये हट जाना पड़ा।
हुसेन खाँ जून्नार के रास्ते आती सेना में घाटों से होकर पानवोल के उत्तर कल्याण जिले को तहश नहस कर रहा था। संभाजी ने सामने से उस पर आक्रमण किया और उसके दक्षिण के बढ़ाव को रोक दिया। संभाजी द्वारा उसकी रसद आदि बन्द हो जाने के कारण वर्षा ऋतु से पहले ही उसे वापस लौट जाना पड़ा।

जिंजीरा पर दादा जी रघुनाथ देशपान्डे ने आक्रमण चालू रक्खा। अगस्त के महीने में किले क प्रतिरक्षात्मक तोपों आदि के संचालन में ढीलापन देख नाव के सहारे आक्रमण करने का प्रयास किया गया। परन्तु चिकनी चट्टानों और तेज लहरों ने पाँव न थमने दिये और इस प्रकार यह आक्रमण भी विफल कर दिया गया, जिससे २०० मराठे खेत रहे, इस प्रकार जिंजीरा को अधिकार में लाने का प्रयास त्याग दिया गया।

घेरा उठाये जाने और आक्रमण कारी सेना के हटने के बाद ही सिद्दी ने पुनः संभाजी के क्षेत्रों में आकर उत्पात मचाना, गाँवों को लूटना, औरतों को उठा ले जाना और गायों की हत्य ाकरना शुरू कर दिया। उन्होंने महार तक घुस कर रघुनाथ देशपान्डे की स्त्री को अपनी कैद में डाल कर अपने ऊपर किये गये आक्रमण का सेनापतित्व करने का बदला लिया था।

इस प्रकार कीं घटनाओं से अपमानित संभाजी बहुत क्रुद्ध हुआ। वह अँगरेजों और पुर्तगालियों पर उनकी मध्यस्थ नीति के कारण अप्रसन्न हो उठा और उनकों दण्ड देने की बात सोचने लगा। मानी सून में उसने सिद्दियों के जलबे `पर आक्रमण करने की तैयारियाँ शुरू कर दी। अक्टूबर में उसके युद्धपोतों में प्रमुख नायकों के अधीन नागोयना नदी से सिद्दी जलबेड़े की ओर बढ़ा जो उस समय मझगाँव वंबई में लंगर डाले हुये था, मराठों के इस आगमन की सूचना की भनक पा करके सिद्दी ने अपने जलबेड़े को थाना नदी के मुहाने की ओर ला खड़ा किया और सुरक्षित स्थान पर लंगर डाल कर

मराठों की प्रतीक्षा करने लगा। सिद्दी संभोले का रिश्तेदार सिद्दी मिसरी संभाजी से जा मिला था उसी ने उस आक्रमण का नेतृत्व किया तथा अन्य मराठा अधिकारियों ने उसकी सहायता की। सिद्दी याकूत खाँ ने स्वयम अपनी सेना का सेनापतित्व संभाला और अपने १५ युद्ध पोतों से ही उसने संभाजी की ३० पोतों से संलग्न जलबेड़े को बुरी तरह हरा दिया। संभाजी के तीन पोत सिद्दी के हाथ लगे जिनमें, से एक में स्वयम् सिद्दी मिसरी अपनी मृतपाय घायल अवस्था में था जिसे सिद्दी के सैनिकों ने अपने अधिकार में ले लिया था। मराठा जलबेड़े के कुछ पोत अन्त तक अपनी रक्षा करते करते, समुद्र में डूब गये।

अपनी उस पराजय से संभाजी छुब्ध हो उठा और यूरोपियनों को दण्ड देने के अपने पुराने विचार को कार्यान्वित करने पर उतर आया। अपना यह अभियान उसने पुर्तगालियों के कुछ गावों की लूट पाट से आरम्भ किया था। बंबई के एलीफेन्टा द्वीप पर किले बन्दी की तैयारियाँ करने लगा। इस प्रकार उसने अंगरेजों को परेशान करने की सोची, इसके अतिरिक्त एलीफैन्टा की किले बन्दी से मझगांव में सिद्दी जलबेड़ा वर्षाऋतु में लंगर न डाल पाता, परन्तु अपने इस प्रयास में सफल होने से पूर्व ही अँगरेजों से मुगलों और सिद्दी के खिलाफ संधि प्रस्ताव करना पड़ा। इसका कारण यह था कि अपने गुप्तचरों द्वारा उसे औरंगजेब की भारी तैयारियाँ तथा शाहजादे मुअज्जम के चौथी बार दक्षिण में सूबेदार बनकर आने की सूचना मिलना था।

अपनी नीति में परिवर्तन आते ही संभाजी ने अपना एक दूत बंबई भेजा, इस राजदूत ने अंग्रेजी कौंसिल को, औरंगजेब द्वारा प्रायद्वीपों पर आक्रमण कर के अपने अधिकार में करने की सूचना देते हुए सिद्दी तथा मुगलों के खिलाफ संभाजी से सैनिक संधि करने का प्रस्ताव रक्खा। कौंसिल ने इस प्रस्ताव को सुना और अपने कारखानों के कुछ उत्पादनों पर कारोमडल के किनारों पर संभाजी के अधिकारियों द्वारा ली जाने वाली चुंगियों से छूट पाने के आश्वाशन पर अपनी स्वीकृति देने का विचार प्रकट किया। उस विषय में दोनों दलों की वार्ता काफी दिनों तक चलती रही परन्तु अन्त में किसी दल की इच्छा पूरी नहीं हुई और वार्ता भंग हो गई। *

कोंकण में मुगलों द्वारा किये गये सीमातिक्रमण ने संभाजी को एक बार पुनः मैदान में जाने को विवश किया। इस अतिक्रमण सेना का सेनानायक रणमस्त खां था। जिसकी सहायता एक दूसरा मुगल सेना नायक रुह उल्ला खां कर रहा था। शहजादे द्वारा भेजी गई यह सेना
१६८३ कल्याण भीवण्डी तक आयी और पिछली बार की तरह क्षेत्र की कुछ बर्बादी कर के वर्षा आरम्भ होने से पहले ही औरंगाबाद लौट गई, बिना किसी महत्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति के। †

पुर्तगालियों के विरुद्ध अपने अभियान के सिलसिले में संभाजी ने जून में चोल पर आक्रमण किया परन्तु पश्चिमी किले बन्दी पर उनके इस आक्रमण का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। गोआ के वायसराय ने अपने प्रतिरोधों को प्रतिरक्षात्मक परिधि तक ही नहीं रहने दिया बरन अक्टूबर में एक भारी सेना जुटाकर जिसमें १२०० यूरोपियन सैनिक थे, संभाजी के क्षेत्रों पर आक्रमण करके अपने अधिकार में कर लिया। पुर्तगालियों की उस सेना ने मराठा सैनिकों से भी कहीं अधिक बर्बरता दिखाई। उन्होंने प्रतिरक्षाहीन गांवों को आग लगाकर और शस्त्रहीन ग्रामीणों को मौत के घाट उतार कर ही सन्तोष नहीं किया

---

* मराठा पान्डुलिपि, ।

† स्काट, ओर्मी, मराठा पान्डु लिपि।

वरन् मन्दिरों को तोड़ने फोड़ने के साथ अपने बन्दियों को शक्ति के बल पर धर्म परिवर्तन करने पर भी विवश किया। *

वायसराय ने अपनी शक्ति भर संभाजी के क्षेत्रों पर अत्याचार किया, उसने संभाजी द्वारा आर्जा देव नामक प्रायद्वीप पर किले बंदी करवाने के विचार का बदला लिया और अपनी सुसज्जित जल सेना को संभाजी के जलबेड़े को तबाह कर देने तथा कारवार का व्यापार केन्द्र बर्बाद कर देने का आदेश दिया। वायसराय ने स्वयम सेना का नेतृत्व किया और पोन्डा पर घेरा डाल कर बैठ गया। संभाजी ने जिसे वीरता की विरासत अपने महान पिता से मिली हुई थी यद्यपि गुण वह नहीं प्राप्त कर सका था, आशक्ति सेना के साथ उनकी ओर बढ़ा। पोन्डा आते ही अपनी अल्प सेना की परवाह न कर वह पुर्तगालियो पर पीछे से टूट पड़ा।

पोन्डा का घेरा अत्यन्त प्रबल था। यदि थोड़ा प्रयास और किया गया होता तो शायद वह पुर्तगालियों को मिल भी जाता परन्तु वायसराय ने उसे पश्चिमी निगाह से देखा। भारतीय युद्ध में अनभ्यस्त वायसराय को अपने आने जाने वाले मार्ग के घिर जाने का भय हो गया और उन्होंने सोचा कि इस अवसर में गोआ पर आक्रमण हो सकता है। अतः उन्होंने सेनाओं को लौटने का आदेश दिया। वे वापस लौट जाने में सफल रहे परन्तु उनके खेमे बन्दूकें तथा अन्य युद्ध सामग्रियां संभाजी के हाथ लगीं तथा पुर्तगालियों के १२०० सैनिक खेत रहे जिनमें २०० यूरोपियन थे।

गोआ तथा पंजिम को मुख्य भूमि से पृथक करने वाले छिछले जल के किनारे आकर संभाजी ने पुर्तगालियों का पीछा छोड़ा, परन्तु वे उसी क्षण पुर्तगालियों को समाप्त करने पर तुल गये। पुर्तगालियों को इस छिछले जलक्षेत्र का अच्छा ज्ञान था और उन्होंने पहले से नावें और अपने सैनिकों को दूसरे किनारे पर एकत्रित कर लिया था अतः संभाजी द्वारा घोड़सवारों के साथ किया गया आक्रमण उन लोगों ने विफल कर दिया। संभाजी ने अपने आदमियों को पुनः उत्साहित किया और छिछले जल समूह को पार करने की आज्ञा दी, परन्तु यद्यपि स्वयम संभाजी ने इस प्रयास का नेतृत्व किया और स्वयम तब तक प्रयास में लगे रहे जब तक कि उनका घोड़ा तैरने में सफल होता रहा। परन्तु वर्षा ऋतु के असीम जल के थपेड़ों ने उसको अपने प्रयास में सफल नहीं होने दिया।

इस अवसर पर अपनी बहादुरी से संभाजी ने सब को आश्चर्य में डाल दिया। उनके पिता की व्यवहृत तलवार भवानी ने इस दिन की तरह कभी अपना जौहर नहीं दिखाया था, परन्तु अपनी मूढ़ता से उसने उसी क्षण प्रायद्वीप पर अधिकार करने की योजना बनाई और इस कार्य के लिये नावें लाने का आदेश दिया। उसके २०० आदमी इस प्रकार भेजे गये जब कि पुर्तगाली नावों ने उन्हें चारों ओर से आकर घेर लिया और मराठों के आने का मार्ग अवरुद्ध हो गया। वायसराय की हारी हुई और अपमानित सेना उन २०० मराठों पर टूट पड़ी। वे विचारे इस आक्रमण से घबरा गये और प्राण बचाने के फिराक में डूब कर मर गये या पुर्तगालियों के हाथों मारे गये। बहुत कम सैनिक इस अभियान में अपने प्राणों की रक्षा करने में समर्थ हुये।

चोल का घेरा बिना किसी विशेष सफलता के उसी प्रकार पड़ा रहा। परन्तु करंजा पर संभाजी का अधिकार हो गया और बराबर एक वर्ष तक वह मराठों के ही अधिकार में रहा। डामन और बसोंठ के बीच के अनेक पुर्तगाली क्षेत्रों पर आक्रमण करके उन्हें नष्ट कर दिया गया। इस प्रकार

---

* आर्म कहता है कि ये सब जाँच करने वाले सैनिकों ने जलाये थे, मराठे यद्यपि पुर्तगालियों की बर्बरता को बढ़ा कर कहते हैं परन्तु पुर्तगाली इसे स्वीकार नहीं करते।

मराठों से परेशान हो कर वायसराय ने संभाजी से शान्ति प्रस्ताव किया परन्तु संभाजी ने पाँच करोड़ पगोडा क्षतिपूर्ति के रूप में मांगा और वार्ता ततक्षण भंग हो गई।

कोंकण में व्यस्त अल्प मात्रा में सवार सैनिकों को छोड़कर हमेशा की तरह मराठा सवार सेना ऊपरी क्षेत्रों में लूट पाट के लिये तितर बितर हो गई थी, जो अच्छे मौसम में इसी प्रकार व्यस्त रही। सिर्फ एक बार औरंगाबाद की एक सेना ने व्यर्थ ही उसका पीछा करने का प्रयास किया।

इन सेनाओं के प्रत्येक आक्रमण और प्रत्याक्रमणों या हार जीत का विवरण देना संभव नहीं। कारण हम उस युग का इतिहास लिख रहे हैं जहां हमें उतने विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं हो पाये हैं कि हम इनको शृंखला बद्ध कर सकें। यह आवश्यक भी नहीं है अगर हम साधारण युद्धों के परिणाम और शक्ति केन्द्रों के विस्तार या पतन का विवरण दे सकें या विभिन्न प्रमुख आक्रमणों को श्रृंखला बद्ध कर के विजय श्री के परिणाम स्वरूप विस्तृत होने वाले साम्राज्य के साथ उसका संबन्ध स्थापित कर दें तो हमारे उद्देश्य की पूर्ति हो जायगी। दक्षिण के राज्यों के बारे में इसी प्रकार कुछ लिखा और समझा जा सकता है।

मोरों पंत के बंदी होने के समय से ही कुलूशा के हाथ में साम्राज्य का आंतरिक प्रबन्ध आ गया था, मोरो पंत के बंदी जीवन से मुक्ति पाने पर भी इस अधिकार में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। पेशवा मोरो पंत इसके बाद अधिक दिन जी भी नहीं सके, संभाजी या तो लड़ाई के मैदान में रहते थे या फिर अपने महल में लम्पटता की पूजा में व्यस्त। कुलूशा के अतिरिक्त किसी को भी कुछ अधिकार नहीं था। अगर कोई व्यक्ति बिना कुलूशा से पूछे उससे बात करना चाहता तो वह उस पर अत्यन्त क्रुद्ध हो कर दन्ड दे बैठता था। कूलूशा अत्यन्त धार्मिक चरित्र का व्यक्ति था अतः नियमतः उसे 'पण्डित राव' के अतिरिक्त किसी अन्य पद पर नियुक्त करके आठ प्रधानों में स्थान नहीं दिया जा सकता था। उस पद के अतिरिक्त उसे कवि कुलूशा * की उपाधि प्रदान की गई थी। यद्यपि मराठा पान्डुलिपियों में पन्डित कुलूशा को बहुत अपशब्द कहे गये हैं परन्तु वास्तव में संभाजी के अपराधों को कुलूशा के मत्थे मढ़ना भ्रामक है। इसके विपरीत ऐसा कहा जाता है कि वह एक विद्वान् सरल और उच्च कोटि का कवि था। हां इतना अवश्य है कि वह अपने उस पद के योग्य कदापि नहीं था जिस पर उसे संभाजी के ऊपर उसके अगाध प्रभाव ने ला बिठाया था। उसके द्वारा घटित विनाशकारी कार्य उसकी असावधानी और राज्य कार्य में उसकी अनुभवहीनता के द्योतक हैं, उसकी दुष्प्रवृत्तियों के नहीं यह मराठा पान्डुलिपियों से स्पष्ट प्रमाणित हो सकता है। संभाजी के ऊपर उसका अमिट प्रभाव उसके जादू का परिणाम बताया जाता है जिसमें वह अत्यन्त प्रवीण था।

शिवाजी के जिन विभागों को उनके योग्य कार्यपालक अधिकारी व्यवस्थित ढंग से संचालित करते थे, वे विभाग अपनी पतन की अवस्था में आ गये। सेना में इस पतन के लक्षण सर्वप्रथम दिखलाई पड़े, जहाँ शिवाजी द्वारा निर्धारित सैनिक अनुशासन के कठोर नियमों को भंग किया जाने लगा, घुड़सवारों की सेना में भ्रमणकारी साहसिक सवार भी लड़ाई के मैदान में जाने लगे। इनके लिये प्रमुख आकर्षण लूट पाट की सामग्रियां थीं। जिन्हें अब सरकार से छिपा लिया जाता था। शिवाजी के शासन में लड़ाई के मैदान में औरतों का ले जाया जाना महान अपराध था, ले जाने वाला अपनी जान से हाथ धो बैठता था, अब परन्तु औरतों का लड़ाई में ले जाना तो साधारण बात हो गई। दुश्मनों के

---

* कवि कुलूशा के आधार पर उसे कुलश या मुसलमान-कबलिश कान या मराठों द्वारा कविजी कहा जाता है।

इलाकों से औरतों को लूटपाट का माल समझ कर लाया जाने लगा जिन्हें, सुन्दरी होने पर रखेल बना लिया जाता या दासी के रूप में बेच दिया जाता।

अब सवारों में धन लोलुपता व्याप्त हो गई थी। लूट का माल वे अधिकतर बीच में ही मार बैठते थे अतः जो कुछ बची खुची लूट की रकम सरकार के हवाले की जाती वह सैनिकों के वेतन के लिये अल्प पड़ जाती। अतः उनको उसकी क्षति पूर्ति के लिये लगान वाले क्षेत्रों से धन वसूलने की स्वतन्त्रता होती। उनको लूट के धन में से कुछ हिस्सा अपने पास रखने की अनुमति से उनको शिवाजी द्वारा मिलने वाले वेतन और धनों की कमी न महसूस होती।

संभाजी अत्यधिक फिजूल खर्च वाला शासक था। उसने समझ लिया था की शिवाजी का समृद्ध खजाना कभी खाली न होगा। उसकी मनमानी को रोकने में उसका प्रिय मंत्री कुलूशा भी असमर्थ था, कारण वह उसके भयानक क्रोध से डरता था। शिवाजी के समय में जो सेना लूट पाट से उनके खजाने को भरे रहती थी वही अब अपने वेतन भर को भी धन सरकारी खजाने में जमा नहीं करती थी। रघुनाथ नारायण की मृत्यु के बाद कर्नाटक ने एक भी पैसा लगान रायगढ़ नहीं भेजा था, उसके जिले सिर्फ अपना खर्चा चला रहे थे। अन्त में खजाने को भरने के लिये कुलूशा को सबसे आसान तरीका लगान बढ़ाने का लगा, अतः किसानों के विभिन्न देय लगानों पर औसतन लगान बढ़ा दिया गया परन्तु जब उसने लगान वसूल करने का कार्य शुरू किया तो उसे पता लगा कि शिवाजी के समय से जितना लगान उसने अधिक बढ़ाया था उतना, वसूलने वाले अधिकारियों ने पहले से ही वसूलना शुरू कर दिया था, जिसे वे स्वयम खा जाते थे।

जिन-जिन अधिकारियों ने इस प्रकार धोखे से बढ़ी लगान वसूली थी उनको नौकरी से निकाल बाहर किया गया और लगान को नये सिरे से लगाया गया। इन्हीं सब कारणों से किसान संभाजी का राज्य छोड़ छोड़ कर भागने लगे और बर्बादी ने औरंगजेब के आगमन से पहले ही अपने पाँव जमाने शुरू किये। औरंगजेब अपनी भारी सेना के साथ बुरहानपुर तक, दक्षिण विजय की योजना को पूरी करने के लिये चढ़ आया था।

औरंगजेब की दक्षिण योजना में आने वाली बाधायें उसकी भारी तैयारियों को देखते हुए नगण्य प्रतीत होती थी। हैदराबाद की अवस्था इन दिनों अत्यन्त सोचनीय थी। वहाँ की जनता तथा राजा (सुल्तान) ने कई पुश्तों से शान्तिपूर्ण ढंग से रहकर अपनी आर्थिक उन्नति की थी। स्वयम् सुल्तान के पास हीरे जवाहिरातों और अलभ्य जेवरों का भन्डार था। राज्य का शासन प्रबन्ध मधुनाथ पन्त के हाथों में था, जिसे हिन्दू जनता में काफी ख्याति मिली थी, परन्तु मुसलमानों को एक हिन्दू मंत्री का प्रभाव इतना अच्छा न लगा। सुल्तान के कान भरे गये, परन्तु वह मधुनाथ पन्त की योग्यता से परिचित था अतः उसने इन बातों की ओर कुछ भी ध्यान न दिया, परिणामतः इन मुसलमान सर्दारों ने, अपनी द्वेषाग्नि को, औरंगजेब को आमंत्रण देकर पूरी की।

मलिक बरखुरदार ने, औरंगजेब के आदेश पर बीजापुर के प्रमुख सर्दारों और अधिकारियों को अपनी ओर मिलाना शुरू कर दिया था। अन्त में उसका अपना प्रभाव इतना बढ़ गया कि मसूद खाँ की शक्ति भी उससे भयभीत रहने लगी, और हार गई। उसकी चाल से मख्दूम खां नामक एक साधारण दर्बारी के अधीन एक गुट ने मसूद खाँ का विरोध किया। इस विरोधी गुट को, सिरजे खां नामक योग्य सेनाधिकारी का समर्थन मिला। मसूद खां द्वारा पैदल सेना के प्रति दिखाई गई प्राथमिकता से सिरजे खां बहुत नाखुश था। कारण इसी लिये सिरजे खां के अधीन रहने वाले कितने ही घोड़े हटा दिये गये और अवसर पड़ने पर बीजापुर को शिवाजी से सहायता लेनी पड़ी, जिसके कारण

सल्तनत के कुछ बहुत ही उपजाऊ जिले हाथ से निकल गये । यह विरोध इतने शक्तिशाली हो गये कि मसूद खां को, शिवाजी की मृत्यु के लगभग एक वर्ष पश्चात् ही बीजापुर की संरक्षकता छोड़ कर अपनी जागीर अदोनी वापस लौट जाना पड़ा । मसूद खां के बाद बीजापुर का शासन प्रबन्ध किसके अधीन हुआ इसका पूर्ण विवरण प्राप्त नहीं है * परन्तु ऐसा लगता है कि मलिक बरखुरदार के प्रभाव से, जिसने हमेशा औरंगजेब की ओर से, मराठों के प्रति उनको उभाड़ा था, बीजापुर की सेना ने सशक्त आक्रमण करके कृष्णा के किनारे के अत्यन्त उपजाऊ क्षेत्रों पर पुनः अधिकार कर लिया । यह जिले मसूद खां द्वारा क्षतिपूर्ति के रूप में शिवाजी को दिये गये थे । मेरिच पर भी बीजापुर की सेनाओं ने अपना अधिकार कर लिया, इसके परिणाम स्वरूप संभाजी और बींजापुर सरकार में जो अन्तर उत्पन्न हो गया वह कभी न मिट सका । इस समय की राजनीति यह कहती थी कि संभाजी और दोनों मुसलमान रियासतों में सुलह रहे; मधुनाथ पन्त ने इस दिशा में प्रयास भी किया, परन्तु, उनके दर्बारियों और अधिकारियोंने आपसी द्वेष और दुरावसे ऐसा नहीं होने दिया । ये अपनी शक्तियों का प्रयोग तो ठीक से कर नहीं पाते थे । संगठन द्वारा शक्ति पा कर क्या करते । अतः जब औरंगजेब के दूतों ने बीजापुर और हैदराबाद की सरकारों को मुगल साम्राज्य के संरक्षण में लेने का प्रस्ताव रक्खा तो विभिन्न लोगों पर विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियायें हुई । कमजोर सर्दारों ने भयभीत होकर हामी भर ली, औरंगजेब के द्वारा फोड़े हुये विश्वाशघातक सर्दारों ने उसी में राज्य की भलाई का समर्थन किया और जो औरंगजेब द्वारा बिछाई शतरंज की इस चाल को समझते थे, उन्होंने अपने को चारों ओर से अविश्वासी व्यक्तियों से घिरा हुआ पाकर शान्त हो रहे, कारण उचित मार्ग प्रदर्शन का एक सीधा सा परिणाम उनके सामने था हत्या या औरंगजेब से शत्रुता । जो हत्या से बढ़ कर घातक था । जब मसूद खां को अपनी सवार सेना को घटाने पर विवश होना पड़ा था तब उसके पास मराठा मन्सबदारों के अतिरिक्त बहुत साधारण सेना बच रही थी । ये मराठा मन्सबदार अब भी अपनी आनुवंशिक संपदाओं तथा जागीरों को छीने जाने के भय से भयभीत अपने को बीजापुर राज्य का सेवक मानते थे । कई मराठा जागीरदारों ने अपने को शिवाजी की ओर मिला लिया था जो संभाजी को अपना राजा मानते थे ।

निजामशाही के भूतपूर्व मन्सबदारों और जागीरदारों में से अधिकांश ने अपने को मुगल साम्राज्य की सेवा में लगा, मन्सबदारी और जागीरदारी पक्की करवा ली थी । यद्यपि इनके अनेकों रिश्तेदार संभाजी की सेना में नौकरी करते थे । इन जागीरदारों और इनामदारों में जब कभी अपने पैतृक अधिकार के बारे में झंझट उठ खड़ी होती थी, जैसा कि भारतवर्ष में बहुत साधारण बात है तो ये आपस में दल बना कर अपने विरोधी दल पर आक्रमण कर देते हैं । ये झगड़े और आक्रमण अधिकतर व्यक्तिगत स्वार्थ और जलन के परिणाम होते थे । जिनमें प्रत्येक दल अपने विरोधी को अपमानित और प्रताड़ित करने का अवसर खोजता रहता है । जो दल विजयी होता था वह पराजित व्यक्ति के इनाम और अधिकृत क्षेत्र अपने अधिकार में कर लेता और पराजित व्यक्ति पुनः आक्रमण की योजना बनाने लगता । कभी-कभी भाग्यवश ही दोनों दल, एक बार उलझने के बाद समझौते द्वारा अपना मतभेद शान्त कर पाते थे ।

औरंगजेब ने इसी अराजक स्थिति का लाभ उठाया । पाठक, इन दलबन्दियों के आघातों और प्रतिघातों की गंभीरता को, हिन्दुओं से परिचित होने के कारण जान सकते हैं कि यदि इन दोनों दलों

---

* बीजापुर पान्डुलिपियां तथा अन्य लोकोक्तियां इस विषय पर चुप हैं । मुझे तो संदेह है कि शायद मसूद खां के बाद वहां का कोई संरक्षक ही नहीं रहा ।

में एक हिन्दुओं का हो और दूसरा मुसलमानों का, तो फिर उलझन कितनी बढ़ जाती है। दोनों दल अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति इसी में समझते थे कि विरोधी को बुरी तरह अपमानित और बर्बाद कर दिया जाय। इन मुसलमानी रियासतों में हिन्दू मन्सबदारों की स्थिति बहुत अस्थिर थी। विचारों का सौभाग्य-अभाग्य में किसी भी क्षण परिवर्तित हो सकता था। कारण उनकी सरकार किसी भी क्षण जमीन से उठाकर आसमान पर बैठा देती थी और अचानक ही समस्त मान सम्मान को समाप्त करके रास्ते का भिखारी बना देती थी।

संभाजी के राज्यारोहण के प्रथम वर्ष की स्थितियों को जानने के लिये दक्षिण की राजनैतिक अवस्था का विस्तृत अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। खास कर गोलकुण्डा और बीजापुर के पतन तक के काल का विवरण अत्यन्त आवश्यक है। कारण इसके बाद नानाप्रकार की अड़चने और भ्रम उठ पड़ेंगे। इन क्षेत्रों के प्रशासन और प्रबन्ध के लिये परन्तु दक्षिण में होने वाले औरंगजेब के इस अभियान के पहले, जिसका नेतृत्व स्वयम् सम्राट ने किया, एक और महत्व पूर्ण घटना का विवरण देना आवश्यक है। यह घटना हमारे ही देशवासियों से संबन्धित है जो उन दिनों अपने अविकसित कारखानों के साथ पश्चिमी भारत में बसे हुये थे। वायसराय या गवर्नर, जो इस्ट इन्डिया कंपनी के इन पश्चिमी हिस्से में निर्मित कारखानों का प्रबन्ध देखता था, वह प्रबन्ध कार्य के लिये निर्मित कौंसिल का प्रधान या अध्यक्ष होता था, जो उसके प्रबन्ध कार्य में सहायता करती थी।

दिसम्बर सन् १६६३ में बंबई किले की सेना ने जिसका सेनापतित्व कैप्टन किंगविन कर रहे थे, सूरत के सहायक गवर्नर को कैद करके समूचे प्रायद्वीप को अपने हाथ में कर लिया। कैप्टेन किंगविन ने घोषणा की कि उन्होंने इंगलैंड के बादशाह के नाम पर उस क्षेत्र पर अधिकार किया है जिसकी आज्ञा लिये बिना वे उस प्रायद्वीप को किसी के लिये खाली नहीं करेंगे। कुशल यही था कि यह विरोध छोटे से क्षेत्र में सीमित था। कैप्टन किंगविन एक स्थिर वित्त का अधिकारी था जिसका आदेश उनके छोटे अधिकारी मानते थे। इसी कारण, बिना समझे कि वह अंगरेज जाति के हित के लिये कितना बुरा प्रभाव रख रहा है, उसने उन चीजों को प्रशन्नता से कर डाला जो वास्तव में बहुत भयानक और बर्बाद करने वाली थीं। परन्तु, पीछे सर थामस ग्रेन्थम द्वारा क्षमादान का वादा पा कर उसने अधिकृत क्षेत्र को उसके न्यायिक अधिकारियों को सौंप दिया। सर थामस ग्रन्थम बृटिश राज्य द्वारा निर्मित जांच आयोग में प्रधान गवर्नर की कौंसिल के प्रधान प्रतिनिधि के रूप में कार्य करने का भार स्वीकार कर चुके थे। समूचे प्रायद्वीप का यह आत्म समर्पण नवम्बर १६६४ में हुआ।

भारतीय क्षेत्र में हुए इस उपद्रव का मूल कारण इंगलैन्ड की दलबन्दी में निहित था। वहां पर व्यक्तिगत औद्योगिक साहसिकों तथा ईस्ट इडिया कंपनी के स्वार्थों का टक्कर चल रहा था। इस विषय में, ईस्ट इडिया कंपनी ने जो अब धीरे धीरे महत्वपूर्ण रूप में विस्तृत हो चुकी थी। नाना प्रकार की भ्रामक रिपोटों और प्रपत्रों का प्रचार करने लगी। इन असूझपूर्ण रिपोटों की भरमार का परिणाम कंपनी के उसके अधिकारियों और कर्मचारियों के ऊपर पड़ा, जिससे उनके मन में कंपनी के प्रति असम्मान की भावना फैल गई, जो अपने अधिकारियों को नियन्त्रण में रखने के लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

कंपनी के डाइरेक्टरों ने इसी अवसर पर कंपनी के असूझपूर्ण प्रचारों पर प्रतिक्रियात्मक निर्णय किया, जिसके अनुसार कम्पनी का प्रशासनिक व्यय घटाने के लिये सेनाओं के भत्ते आदि की कटौती करने का आदेश भेजा गया। सूरत के कौंसिल के प्रेसीडेन्ट ने तत्काल कठोरता और अशोभनीय ढंग से इस आदेश को प्रयोग में लाने का आदेश दे दिया। उस आदेश के अमौचित्य पर बृटिश प्रधान

मंत्री का भी ध्यान गया था। अतः इन आपत्तिजनक कटौतियों के परिणाम स्वरूप किसी भी स्वाभिमानी पुरुष का उसके विपरीत सशक्त व्यवहार स्वाभाविक है; अतः हम यह नहीं कह सकते कि मि० किगविन का अक्षम्य अपराध अनायास ही था।

भाग्यवश ही कौंसिल के प्रेसीडेन्ट या अध्यक्ष को मि० किगविन का सशक्त विरोध करने का साहस और शक्ति नहीं प्राप्त हो सकी। अन्यथा अंगरेजों को अपने स्वार्थ का सुनहरा उद्देश्य त्याग कर सूरत का प्रायद्वीप मराठों या मुगलों को सौंप देना पड़ता। कैप्टन किगविन का प्रबन्ध कई मामलों में काफी लाभप्रद रहा। प्रथम तो उसने शिवाजी द्वारा प्रदान की गई सुविधाओं पर संभाजी की स्वीकृति प्राप्ति कर लिया। द्वितीय उसने कादालोरी तथा त्रिविनापट्टम में कारखाने के निर्माण के लिये अनुदान प्राप्त किया। तीसरे कर्नाटक में लगने वाले कुछ करों से छुटकारा तथा शिवाजी द्वारा स्वीकृत पिछली क्षतिपूर्ति का बकाया भी वसूल कर लिया।

अब हम कम्पनी के झगड़ों से अधिक आवश्यक विषय पर आते हैं जिसका सम्बन्ध हमारे प्रमुख बिषय से तो है ही। अन्य प्रभावपूर्ण वक्तव्यों और घटनाओं से भी है जिनका सम्बन्ध भारत में अंगरेजी प्रभाव और सत्ता की वृद्धि पर विशेष रूप से पड़ा है।

औरंगजेब को हम बुरहानपुर तक आया हुआ देख चुके हैं। वह वहीं पर रुक कर अपने आर्थिक विभागों और समस्याओं को सुलझाने में व्यस्त रहा। अपने अगले अभियान की सफलता के लिये अपनी तैय्यारी की पूर्णता में लगा रहा। उसने सुल्तान शाहजादे मुअज्जम को अहमद नगर से आगे बढ़ कर संभाजी के दक्षिणी क्षेत्र को अपने अधिकार में कर लेने को कहा, दूसरी ओर शहजादा आजिम को खानदेश, बुलगाना तथा सङ्गमनेरी इत्यादि उत्तरी किलों पर आक्रमण करने का आदेश मिला। उसने अपने आक्रमण का आरम्भ सालेर के प्रसिद्ध किले से किया। जिस पर अधिकार कर के मोरो, पंत ने मराठों को खानदेश से होकर आने जाने का सुगम पथ तैय्यार कर दिया था। इसी प्रकार शहजादे मुअज्जम ने जिसे शाह आलम की उपाधि से हाल ही में विभूषित किया गया था, नासिक के निकट अम्बादर्रे घाट से होकर कोंकण में प्रवेश किया। कल्याण से होते दक्षिण की ओर बढ़ते हुये रायगढ़ से विंगोरला तक के स्थानों को बुरी तरह लूटा और जला डाला।

शाहजादे आजम ने अपनी सेना के साथ सालेर की ओर प्रस्थान किया, जहाँ प्रतिरक्षा की भारी सम्भावना थी। सालेर के पड़ोस मोल्हेर के मुगल किलेदार नेकनाम खाँ ने शाहजादे की सहायता के लिये अपनी सेना को भी उसकी सेना में मिला दिया। नेकनाम खां से सालेर के मराठा किलेदार ने मुगल सेना के आते हीं आत्म समर्पण कर देने का वादा किया था परन्तु जैसा कि उन दिनों विश्वास था कि ऐसे वादों को सन्देह पूर्ण ही समझना चाहिये, उसने भी नहीं किया था अतः इस विषय में उसने एकमात्र सम्राट को सूचना देने के किसी से कुछ नहीं कहा परन्तु जब मराठा किलेदार ने अपने वादे के अनुसार किले का आत्म समर्पण कर दिया। तब नवयुवक शहजादे की भावात्मक वीरता को ठेस लगा उसने आक्रमण कर सन्देउर पर अधिकार करके अपनी बहादुरी दिखाने की कल्पना की थी, अतः उसको इस प्रकार की प्रतिरोध हीन मुहिम पर भेजे जाने पर काफी दुःख हुआ। जल्दी ही सम्राट ने उसे वापस बुला लिया और बीजापुर के महत्वपूर्ण आक्रमण में उसे अपनी वीरता दिखाने का अवसर प्रदान करने का वादा किया। सहाबुद्दीन खाँ को शहजादे के स्थान पर बाकी किलों पर अधि-कार करने का आदेश मिला। परन्तु उसको किलेदार या हवलदार से कई बार वापस लौटना पड़ा। उसकी सङ्गठित प्रतिरक्षा के सामने सहाबुद्दीन की सेनाओं द्वारा किये गये

आक्रमणों की लगातार विफलता के कारण खान जहां बहादुर को किले पर अधिकार करने को भेजा गया और उसे भी अपने पूर्व के आक्रामकों की तरह अपमान के साथ वापस लौटना पड़ा।

शाहज़ादे मुअज्जम की सेना ने यद्यपि कोंकण का अधिकांश भाग रौंद डाला परन्तु उसने किसी भी किले पर घेरा नहीं डाला। इस प्रकार प्रधान शक्तिशाली किले और महत्वपूर्ण स्थान सम्भाजी के ही अधिकार में थे, जिसने मुअज्जम के उस आक्रमण के दौरान में अपनी सेना को ऊपरी क्षेत्रों में प्रतिरक्षा के लिये भेज दिया था और स्वयं शहज़ादे अकबर के साथ विशालगढ़ में आराम कर रहे थे। मुअज्जम की सेना ने आते समय आस पास के क्षेत्रों को जला डाला और अपनी लूटों और अत्याचारों से सारे क्षेत्र में हाहाकार मचा दिया। अपने सामने किसी प्रकार का विरोध न पाकर उसने मनमाने ढंग से अपनी सेनाओं का उपयोग किया। परिणामतः उसके दिन रात के धावों और लूटपाट से मुगल सेना थक गई। इसी समय उनकी सेना में आवश्यक सामानों का भण्डार प्रायः समाप्तप्राय हो गया था। रसद पूर्ति के स्थानों को उन्होंने पहले ही नष्ट कर दिया था। उनकी इसी अदूरदर्शिता का लाभ उठाकर सम्भाजी ने अपनी सेना को आदेश देकर रसद पूर्ति के मार्ग बन्द करवा दिया, आवागमन के लिये निर्मित मार्गों को कटवा दिया तथा अपनी सेनाओं द्वारा छुटपुट आक्रमण करवा के उनको परेशान करना आरम्भ किया। मराठा सवारों को तो घास और भोज्यान्न किलों में एकत्रित भंडारों से प्राप्त हो जाता था परन्तु निःसहाय मुगलों को कहां से प्राप्त होता। अतः जल्दी ही मुगलों के भोज्यान्न के अभाव में हाथ पाँव ठंडे हो गये और हजारों की संख्या में सैनिक, घोड़े और पशुओं को काल कवलित होना पड़ा।

औरंगजेब ने उस परिस्थिति को भांप लिया और अपनी सेनाओं को हार के अपयश से बचाने के लिये उसने शहाबुद्दीन खाँ को अपनी सेना के साथ अवरुद्ध आवागमन के मार्ग को साफ करने का आदेश दिया तथा सूरत स्थित अपने सूबेदार को डांडा राजापुर और विंगोरला को रसद पूर्ति का आदेश भेजा। आदेश के महत्व को समझ कर बिना पथ रक्षक जहाजी बेड़े का यथेष्ट प्रबन्ध किये ही पोतों पर रसद सामग्री को लाद कर रवाना कर दिया गया। सम्भाजी के जलबेड़े की रक्षार्थ शत्रु की टोह में घूमने वाले जंगी जहाजों ने उसका पता लगा कर उसके अधिकाँश भाग पर अपना अधिकार कर लिया। अतः बची खुची जो पूर्ति शाहज़ादे को मिली, उसके सहारे उसको अपनी स्थिति बनाये रखना असम्भव हो गया। अतः उसे विवश होकर अंबा घाट तक लौट आना पड़ा जिसे उसने पहले ही अपने अधिकार में कर लिया था। पुनः वर्षा आने पर अपनी सेना का पड़ाव वालवा के निकट कृष्णा नदी के किनारे डाला।

शाहज़ादे मुअज्जम की सहायतार्थ भेजी गयी शहाबुद्दीन की सेना रायगढ़ के पास निज़ामपुर तक आ पहुंची, जहां सम्भा जी ने उनका सामना किया। यह सामना साधारण कोटि का था जिसमें शहाबुद्दीन ने सम्भा जी को आंशिक रूप से हरा दिया। जैसा कि साधारणतः हारने वाली सेना की साधारण सी विजय पाने पर होता है। मुगल सेना ने इस पर अपार हर्ष प्रकट किया। इसके अतिरिक्त शहाबुद्दीन औरंगजेब के प्रिय सेनापतियों में से था तथा वह सम्राट की प्रिय मुगल तूरानी सैनिकों का सेनापतित्व कर रहा था। अतः सम्राट ने उसको गाजीउद्दीन की उपाधि प्रदान की। उसकी रामस जी की पराजय को भुला दिया गया। इस प्रकार की उपाधियां और हल्की सी विजय पर भारी से भारी गत पराजय को भुला दिया जाने का उदाहरण निज़ामशाही के सुल्तानों तथा अन्य राज्यों के इतिहास में बहुतायत से प्राप्त हो सकते हैं।

उसी अवसर पर सम्राट बुरहानपुर से हट कर औरंगाबाद आ गया। अपने बुरहानपुर के निवास काल में सम्राट ने जज़िया* कर वसूलने का आदेश प्रसारित कर दिया था। एक प्रकार का टेक्स था जो साम्राज्य के मुसलमान नागरिकों को छोड़ कर अन्य सभी जातियों पर लगाया जाता था। दक्षिण में भी उसकी वसूली साम्राज्य के उत्तरी क्षेत्रों की तरह कठोरता से हुई।

औरंगजेब के सुव्यवस्थित और बुद्धिमत्ता पूर्ण व्यक्तित्व के साथ जब हम उसके इस निम्नकोटि के आचरण का मिलान करते हैं तो हमें उसके इस कार्य के कारण पर यथेष्ट सन्तोष नहीं मिलता। सम्राट को जानें दें, हमें तो साधारण व्यक्ति द्वारा किये गये उपर्युक्त व्यवहार पर सन्तोष नहीं हो सकता परन्तु विधि का विधान इसी प्रकार पूर्ण होता है जिसमें बुद्धि कुंठित हो जाती है। अतः सम्भव है औरंगजेब ने इस कार्य में किसी दैवी सन्तुष्टि की कल्पना की हो। जिसने उसे दक्षिण की अपमानित जनता को पराजित अवस्था में इसी वसूली के निमित्त ला खड़ा किया था। इस प्रकार के कार्य के लिये कोई राजनैतिक कारण नहीं दिया जा सकता परंतु उसके प्रशंसक इतिहासकार उसकी रक्षा के लिये उसके द्वारा प्रचारित मुस्लिम धर्म रक्षा का तर्क रख सकते हैं। उसने इस प्रकार की भ्रमात्मक बातों का अपने बीजापुर तथा गोलकुंडा अभियान के समय प्रचार किया था कि उसके दक्षिण आने का प्रधान उद्देश्य मूर्तिपूजा को समाप्त करना है तथा इस्लाम धर्म और विश्वास को शक्तिशाली आधार स्तम्भ प्रदान करता है।

मुगल साम्राज्य को इसी समय दिलेर खाँ की मृत्यु से गहरा धक्का लगा। दिलेर खाँ को दक्षिण के युद्ध का विशेष अनुभव था। इसके अलावा उसने अन्य सहयोगी सेनापतियों की तुलना में मुगल साम्राज्य की अधिक सेवा भी की थी। अपने अनेक सफल अभियानों द्वारा उसने मुगल साम्राज्य में अपना स्थान बना लिया था। अपने जीवन के २६ वर्ष लड़ाइयों को भेंट चढ़ाने के बाद भी अपनी वृद्धावस्था में उसे कई बार औरङ्गजेब के सन्देह और उदासीनता का शिकार होना पड़ा। ठीक उसी प्रकार, जैसे उसने औरङ्गजेब की चाल में आकर सहृदय और अभागे दारा के साथ किया था।

सम्भाजी इस समय भी पुर्तगालियों के साथ युद्धरत थे। पुर्तगालियों ने अपनी कूटनीतिक चालों से सून्दा और कारवार के प्रधानों और देसाइयों की एकता को भङ्ग करने का प्रयास किया। वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर सम्भाजी ने अपनी कुछ सेना को उत्तरी कोंकण की ओर भेजा, जहाँ उसने पुर्तगाली क्षेत्रों को एक बार पुनः लूटा खसोटा और रौंद डाला। स्वयम् सम्भाजी शाहजादे मुअज्जम की गतिविधि देखने पन्हाला चले गये।

सम्राट की सैन्य-संख्या के बारे में मुगल इतिहासकारों द्वारा लिखित कोई विवरण प्राप्त नहीं है और मराठा लेखकों का विवरण विश्वास योग्य नहीं जान पड़ता। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सम्राट औरङ्गजेब के पहले इतनी अधिक सशक्त सेना ने कभी भी दक्षिण में पाँव नहीं रक्खा था। विदेशियों को छोड़कर उसकी सेना में काबुल, कान्धार, राजपूताना, मुल्तान, लाहौर के अतिरिक्त उसके विशाल साम्राज्य के सब कोनो के सैनिक इस अभियान में एकत्रित थे। उसकी सेना के पूर्व शस्त्रास्त्र सज्जित सैनिकों तथा नाना प्रकार के घोड़ों ने एक प्रकार का संकलन का सा दृष्य उपस्थित कर दिया था। जिनके सामने दक्षिण के निम्न कद और हल्के शस्त्रों से सज्जित सैनिकों के लड़ने की बात कल्पना से भी परे की बात लगती थी। उसकी पैदल सेना में बन्दूकची, मशालची, और तीरन्दाज अपनी पूरी तैयारी के साथ काफी बड़ी संख्या में थे। इसके अतिरिक्त पहाड़ी लड़ाइयों में मराठे मावलियों से कहीं अधिक युद्ध कुशल थे। इसके अतिरिक्त कर्नाटक तथा

---

* हिन्दुओं की प्रति २०००) की सम्पत्ति पर जजिया प्रायः १३) रु० होती थी।

अन्य स्थानों की व्यस्त टुकड़ियाँ भी शाही खेमे में शामिल हो गई थीं, हिन्दुस्तानी सैनिकों के साथ यूरोपियन तोपचियों के प्रबन्ध के अन्दर सैकड़ों तोपें थीं, जिसके साथ विभिन्न प्रकार के कुशल कारीगरों के साथ भारी संख्या में सुरङ्ग आदि खोदने में कुशल व्यक्तियों का पूरा जमाव पड़ा था। युद्ध कार्य में कुशल हाथियों की लम्बी पंक्ति के पीछे-पीछे औरङ्गजेब के हरम की मल्काओं को अपने पीठ के हौदों पर विठाये तथा औरङ्गजेब के विशाल खेमों को अपनी पीठ पर रक्खे सवारी में आने वाली हाथियों का विशाल जत्था था। ये सम्राट की व्यक्तिगत सवारी के लिये प्रयुक्त होते थे। उसकी सवारी के लिये अनेकों, उच्च कोटि के घोड़े शानदार उपकरणों से सज्जित, तैयार रहते थे। उसके खेमे के साथ बड़े-बड़े पिंजड़ों में विभिन्न प्रकार के जङ्गली जानवरों का संग्रह था, जिन्हें उनके निरीक्षक साहसिक बहुधा पकड़कर अन्य दर्बारियों के साथ सम्राट को दिखा कर उसको संतुष्ट करते रहते थे। वाज, शिकारी कुत्ते, चीते तथा हाथी इत्यादि युद्ध उपयोगी जानवर उसके लश्कर के साथ ही चलते हुये शाही सेना की समृद्धि में वृद्धि प्रदान करते थे। उसके खेमे के निवास का बाहरी घेरा १२०० गज की परिधि में था, जिसमें एक महल के अन्दर पायी जाने वाली समस्त सुविधायें प्राप्त थी। जनता के समक्ष खुले दर्बार तथा खास दर्बारियों के साथ बैठने का कमरा तथा उसके प्रत्येक दर्बारियों के अपने खास कमरे थे। यह सभी कमरे शानदार और कीमती उपकरणों से सज्जित थे। उन विशाल कमरों में सम्राट के बैठने के लिये ऊँचा सिंहासन रक्खा रहता था। उसके चारों ओर सोने का मुलम्मा चढ़े पतले खम्भों पर नाना प्रकार की उच्च कलाओं द्वारा सज्जित चंदोवा तना रहता था, जिसके कोर सुनहले और कीमती पच्चीकारी से भरपूर रहते थे। अलग-अलग तंबुओं में नमाज, दिशा स्थान, स्नान घर इत्यादि का प्रबन्ध रहता था। तीरन्दाजी तथा कसरत आदि के लिये भी तंबुओं में प्रबन्ध था। सम्राट का इन खेमों में बना हरम किसी भी प्रकार उसके दिल्ली के हरम से कम नहीं था। उसमें आराम और सौंदर्य के समस्त उपक्रम महलों के ही समान रहता था। फर्नीचर गलीचे, छींटदार कपड़े, तथा बेल बूटे कढ़े दीवालों पर लगाये जाने वाले कपड़े, यूरोपीय उम्दा वस्त्र, साटन, अन्य चौड़े वस्त्र तथा चीना सिल्क की उच्चतम कोटियों के वस्त्र तथा भारतीय तंजेब और मलमल से सज्जित खेमों का सौंदर्य निराला लगता था। शाही खेमों के ऊपर चमकदार कंगूरे लगे रहते थे। कनवास के बाहरी हिस्से अपने सजीव रङ्गाई और पच्चीकारी खेमों के महत्व को बढ़ाते से प्रतीत होते थे। खेमे का प्रवेशदार दो विशाल मण्डपों से होकर था, जिसके दोनों ओर तोपों की कतारें दूर तक विस्तृत थीं। जहां पर तोप की ये कतारे समाप्त होती थी, नौबतखाने वालों का खेमा होता था जिसमें नाना प्रकार के वाद्य यन्त्र और पटुवादकों का समूह रहता था। प्रवेश द्वार से थोड़ा हटकर सामने पहरेदारों के प्रधान अधिकारी का खेमा था। यह अधिकारी शहंशाह के सर्दारों में से प्रतिदिन नियुक्त किया जाता था, उपर्युक्त घेरे के दूसरी ओर सम्राट की शरीर रक्षक सेना, बिगुलदार इत्यादि लोगों के खेमे रहते थे। ठंडे पानी का खेमा, फल का खेमा, पान का खेमा, मिष्ठान का खेमा इत्यादि प्रकार के अनेकों खेमे एक ओर लगे रहते थे। खेमे के अन्दर घोड़ों का अस्तबल तथा अन्य इस प्रकार के उपकरणों की भरमार रहती थी। इतने विस्तृत और विलाश पूर्ण प्रबन्ध, हमें कल्पनात्मक लगते हैं, पर इतना ही नहीं, वरन् उपर के विवरण में प्रत्येक समस्त साधनों तथा प्रसाधनों के सामानों के जोड़े भी थे, जो बादशाह के एक कैंप या पड़ाव को छोड़ने से पहले ही अगले पड़ाव पर गड़ जाते थे। उसका आगमन एक जुलूस के समान होता था, और खेमे में आगमन होते ही पचास या साठ तोपों को छोड़कर उसको सलामी दी जाती थी। अपने इन खेमों में भी सम्राट अपने दैनिक योजनाओं और आयोजनाओं तथा मनोरंजनों को उसी प्रकार किया करता था जैसा दिल्ली में।

शाही खेमे के इन सरंजामों को देख कर हमें भ्रम होता है कि सम्राट बहुत विलासी और कला प्रेमी रहा होगा। परन्तु वास्तव में औरंगजेब इन सजावटों के विपरीत चरित्र का आदमी था। फिर भी वह महसूस करता था कि इस प्रकार की भव्यता से प्रजा पर अच्छा असर पड़ेगा, इसी कारण उसने अपने व्यक्तिगत जीवन में सादगी के अपनाने पर भी शाही ठाट बाट घटाने का प्रयास नहीं किया, परन्तु इसके परिणाम स्वरूप उसके सर्दार और दर्बारियों ने भी उसी प्रकार की सुविधाओं को वर्तना शुरू किया। शाही टीम टाम से उसकी सेना की प्रगति मारी जाती थी तथा इन आवागमनों का खर्च इतना अधिक था कि उसकी कई आवश्यक आर्थिक तथा सैनिक सम्बन्धी योजनायें खटाई में पड़ जाती थी।

मुगल खेमे के इस विवरण से हमें पता चलता है कि शहजादे मुअज्जम ने यदि कुछ मात्रा में भी इन उपकरणों और सज्जाओं का उपभोग किया होगा तो भी उसकी असुविधायें कितनी बढ़ गई रही होगी, विशेष कर उसके कोंकण अभियान में जिस समय वह वाल्वा में डेरा डाले पड़ा था, अवसर निकाल कर उसने अपनी शक्ति के अनुरूप स्थानों पर सम्राट के नाम पर अधिकार करके उसे अपने नाम से पुनः उन्हीं शासकों को या अपने अन्य अधिकारियों को सौंपता गया। ये पहले बीजापुर के मातहत थे। अक्टूबर में उसकी सेना को महामारी का सामना करना पड़ा जिसमें उसकी सेना के अधिकांश सैनिक काल के गाल में चले गये, इससे उसकी सेना को भारी हानि पहुंची। परन्तु जैसे ही उसे सम्राट द्वारा ऊपरी घाट के दक्षिण पश्चिमी जिलों पर आक्रमण करने का आदेश मिला उसने बिना किसी हिचक के तुरंत अपनी सेना को आगे बढ़ने का आदेश दिया। ये जिले बीजापुर सरकार द्वारा अधिकृत थे—पीछे शिवाजी ने इनको अपने अधिकार में कर लिया था। उधर शहजादे आजम ने अपने बीजापुर अभियान की साधारण सफलता के साथ उत्तर दिशा में बढ़कर शोलापुर पर घेरा डाल दिया था।

सम्भाजी की सेना ने हम्मीर राव के सेनापतित्व में कोंकण के खानदेश में पुनः शान्ति स्थापना की तथा चुपके-चुपके उसे और भी शक्तिशाली बनाया। अपनी इस सेना के साथ उत्तर की ओर बढ़ा। अचानक ही उसकी सेना बुरहानपुर में जा निकली। वहाँ पर कई दिनों की भारी लूटपाट के बाद लूट के माल के साथ अपनी पूरी शक्ति के साथ, तेजी से आग की लपट के समान नासिक की ओर बढ़ा (१६८५)।*

इस समाचार के मिलते ही खाँ जहाँ बहादुर ने अपनी सेना को औरंगाबाद से बढ़ने का आदेश दिया। परन्तु मराठों को रोकने के लिये चन्दौर की ओर बढ़ने के बजाय, वह अजन्ता दर्रे से होकर पहाड़ियों को पार करके बाईं दिशा में घूम गया और उसको मराठों की भनक तक नहीं मिली। काफी दूर तक उनका असफल पीछा करने के बाद, उसे जुन्नार और सिंहगढ़ के बीच में थाना कायम करने का आदेश मिला। बुरहानपुर की अराजकता को समाप्त करने का भार शहजादे बख्श को सौंपा गया।

खाँ जहाँबहादुर ने पूना तथा उसके आस-पास के क्षेत्र पर अधिकार करके खाकुर खाँ को उसका फौजदार नियुक्त किया और स्वयम सम्राट के आदेश से आजमशाह की सहायता के लिये आगे बढ़ा। अजामशाह ने शोलापुर पर अधिकार कर लिया था और अब बीजापुर की ओर बढ़ रहा था।

---

* यह तारीख मैंने ओर्मी के दक्षिण से लिया है, स्वयम उसने इसे खानदेश की एक फैक्टरी से प्राप्त किया था, मराठी तथा खफी खाँ के भी विवरण प्राप्त हैं।

परन्तु शहजादे ने सिरजे खाँ के सामने अपनी विजय अनिश्चित समझ कर पुनः भीमा नदी को पार किया जहाँ अचानक ही वह खान जहाँ बहादुर की सेना से जा मिला।†

इस बीच में शहजादे मुअज्जम ने गोकाक, हुबली तथा धारवार पर अपना आधिपत्य कायम कर लिया था। इन स्थानों पर उसे साधारण प्रतिरक्षात्मक अवरोधों का सामना करना पड़ा था। परन्तु महामारी, भुखमरी और सेना की अल्पता ने उसकी सेना की कार्य क्षमता तथा संख्या इतनी कम कर दी थी कि बीजापुर द्वारा अपने विरुद्ध भेजी गई सेना से वह कठिनतापूर्वक अपनी रक्षा कर सका। तुरंत ही रुहउल्ला खां को अपनी सेना के साथ शहजादे की सहायता करने का आदेश मिला। रुहउल्ला खाँ के पीछे-पीछे खाँ जहाँबहादुर को भी जाने का आदेश मिला। परन्तु इस सहायता के आने से पहले ही शहजादे की सेना असहाय सी हो चली थी। उसके घोड़े मर गये थे तथा सैनिक अधिकारियों तक को पैदल चलना तथा लड़ना पड़ता था, जब कि साधारण सवार सैनिक भी पैदल चलने में अपना अपमान समझता था। उसकी शक्तिशाली सेना मात्र अपने कंकाल को लेकर वापस अहमदनगर पहुंच सकी। ऐसा लगता था मानो किसी भारी लड़ाई में उसको करारी हार मिली हो, उसका सफाया कर दिया हो।‡

शहजादे को, उसकी बिखरी और उजड़ी सेना के साथ सुरक्षित सीमा तक पहुंचाकर खान जहाँ बहादुर तथा रुहउल्ला खाँ की सेना, ने बीजापुर के हुलमुल्ली नामक स्थान पर, वर्षा ऋतु बीतने तक के लिये अपना पड़ाव डाला। वर्षा ऋतु समाप्त होने पर इन दोनों अधिकारियों को बीजापुर पर अधिकार करने का आदेश मिला।

मघुनाथ पंत द्वारा मुगलों के विरुद्ध सैनिक संधियो के लिये किया गया प्रयास निष्फल गया। यधपि औरंगजेब का बीजापुर विजय का आशय एकदम स्पष्ट था। संभाजी ने बीजापुर की सहायता करने में अपनी रुचि नहीं दिखाई यधपि गोलकुंडा की सहायता करने को वह आसानी से तैय्यार हो गये। अपनी इस सहायता के बदले में उन्हें आबू हुसैन से एक लाख पगोड़ा मिलने का आश्वासन मिला। गोलकुंडा तथा संभाजी की यह सैनिक सन्धि तथा शर्तें औरंगजेब को मालूम हो गई। उसने तुरंत खान जहाँबहादुर को अपनी सेनाओं के साथ हैदराबाद पर आक्रमण करने का आदेश दिया। आक्रमण करने का कारण बकाया लगान की वसूली बताया गया। सआदत खाँ को इस सेना के साथ दूत के रूप में भेजा गया। उनको संभाजी के साथ हुए शमझौते पर मुगल प्रतिक्रिया की संतुष्टि के अलावा, गोलकुंडा और मुगलों के मनमुटाव और उलझन को किसी भी प्रकार बढ़ाने के गुप्त आदेश दिये गये थे।

गाजीउद्दीन के अधीन जुन्नार स्थित सैनिक टुकड़ी को अहमदनगर में नियुक्त कर औरंगजेब स्वयम् शोलापुर की ओर बढ़ा। मराठों ने पुनः इस स्थिति से लाभ उठाया और उत्तर दिशा की ओर शीघ्रता से बढ़कर ताप्ती और नर्मदा नदी को पार करके भड़ौच पर, अपने आने की सूचना किले वालों को मिलने के, कुछ ही घंटों बाद उस पर अधिकार कर लिया। ऐसा संभव है कि इस युद्ध में शहजादा अकबर ने भी अधिक या कम, भाग लिया हो। कोंकण में अपने भाई के साथ होने वाले युद्ध में उसने सक्रिय भाग लिया था।× इस अवसर पर मराठों ने उनको बादशाह कह कर संबोधित किया और आस-पास

---

† खफी खाँ, मराठा पान्डुलिपि तथा ओर्मी का दक्षिण इत्यादि।

‡ इसका विवरण, खफी खाँ, ओर्मी तथा अकबर द्वारा कुलूशा को लिखित पत्र।

× कलुशा के नाम वास्तविक पत्र

के क्षेत्रों की खूब-लूटपाट की तथा गुजरात के सूबेदार के आने तक वहीं डटे रहे, जिसने गुजरात के प्रत्येक कोने से सेना इकठ्ठी करके इनका विरोध करने का प्रयास किया।[†]

बुरहानपुर और भड़ौच की यह लूटपाट और पराजय, औरंगजेब की सैनिक प्रबन्ध की अक्षमता का अध्ययन करने में विशेष सहायक है, दक्षिण की मुसलमानी रियासतों को तबाह करने की धुन में औरंगजेब ने जनभावना की किंचित परवाह नहीं की और अपनी विजित भूमि की सुरक्षा का उत्तम प्रबन्ध किया। उसकी प्रारम्भिक महत्वाकांक्षा तथा वर्तमान असावधानी ने जनभावना को जानने का अवसर ही उसे नहीं दिया। अतः जनता के प्रति उसकी तिरस्कार पूर्ण वृत्ति उसकी भावी समृद्धि के लिये बहुत ही हानिकर सिद्ध हुई।

कुछ समय बाद उसने बीजापुर अभियान को पुनः प्रगति प्रदान किया। साल के अंत में आजम ने भारी सेना के साथ बीजापुर की राजधानी को जा घेरा। यद्यपि पिछले आक्रमण में बीजापुर के सैनिकों तथा अधिकारियों ने सीमा पर सफलता पूर्वक उनका सामना किया था, परन्तु इस बार उन्होंने हिम्मत छोड़ दी। यही सम्भावना भी थी। इस वर्ष वर्षा की कमी के कारण चारों तरफ अभाव ही अभाव का बोलबाला था। जो कुछ खाद्यान्न पैदा हुआ था, इकट्ठा करके बीजापुर किले में रख लिया गया था। उत्तर दिशा के औरङ्गाबाद जिले में पैदावार अच्छी हुई थी परन्तु फिर भी खाद्यान्नों का बाजार बहुत महंगा था। शोलापुर में तो यह मँहगाई और भी अधिक थी, कारण रसद आदि उत्तरी जिलों से ही मंगाये जाते थे अतः शोलापुर, सम्राट के शाही खेमे के पास आजम शाह पर आक्रमण करने में कोई फायदा नहीं था फिर भी उसे राजधानी तक बिना रोक-टोक के आने का अवसर प्रदान किया गया। परन्तु जैसे ही आजम शाह का शाही खेमे से सम्बन्ध कुछ कम हुआ, बीजापुर की सेना ने आवागमन के उनके साधनों में बाधा उत्पन्न कर दिया तथा छिटपुर आक्रमणों से उनकी सेना को परेशान करना आरम्भ किया। उनकी रसद पूर्ति को एकदम असम्भव कर दिया। परिणाम स्वरूप कुछ ही समय बाद आजम शाह की सेना में अभाव के साये स्पष्ट हो उठे। शोलापुर के शाही कैंप में भी इसी कमी का बोलबाला था। अतः औरङ्गजेब स्वयम् शोलापुर से कोई सहायता नहीं कर सकता था, परिणामतः उसने गाजीउद्दीन को २०,००० बैलगाड़ी खाद्यान्न आजम शाह की सेना के पास भेजने का आदेश दिया। शाही मुख्य सेना के दलपत राव की सहायता से रसद पूर्ति का यह कार्य पूरा करने का प्रयास हुआ। गाजीउद्दीन ने कुशलता पूर्वक इस आदेश का पालन किया। बीजापुर की सेना ने इस पूर्ति को रोकने का प्रयत्न किया परन्तु असफलता ही हाथ लगी। मुगल सेना ने उन्हें इस प्रयास से विरत कर दिया तथा आजमशाह के माथे पर पराजय का कलंक लगते-लगते बच गया, जो रसद की पूर्ति छिन्न-भिन्न होने के परिणाम स्वरूप अवश्यम्भावी था। इस अवसर पर शाहजादी जानी बेगम, आजमशाह की बीबी ने, जो आने वाली कुमुक के साथ अपने पति से मिलने आ रही थी, अपने हाथी पर सवार होकर अपने सैनिकों

[†] स्काट ने अपने दक्षिण के इतिहास में लिखा है कि शाहजादे अकबर ने मराठों के एक दल के साथ हिन्दुस्तान की ओर प्रस्थान किया था परन्तु चाकण के समीप उसे परास्त होना पड़ा था। परन्तु मेरे मत से यही युद्ध था जिसमें उसके शामिल होने की अधिकतम सम्भावना थी। उसके कुलुशा के नाम पत्रों से सिद्ध होता है कि उसने शाहजादे मुअज्जम के विरुद्ध कोंकण, पानी और भीमगढ़ अभियान में भाग लिया था।

का जोश बढ़ाया। औरङ्गजेब ने गाजीउद्दीन के इस कार्य द्वारा अपने पुत्र की रक्षा करने के प्रति कृतज्ञता प्रकट की जो उसने अपने किसी अन्य अधिकारी के प्रति कभी नहीं प्रकट की थी।

आदेश के अनुसार खानजहाँ बहादुर ने, हैदराबाद की ओर अपना बढ़ाव जारी रक्खा, परन्तु मधुनाथ पन्त ने आशा के विपरीत अपनी तैयारी पूर्ण कर लिया था। इब्राहीम खाँ, मधुनाथ का बहुचर्चित मित्र, अपनी ७०,००० सेना के साथ मलकैर नामक स्थान पर मुगलों से मिला। खानजहाँ बहादुर ने इस सेना से पार पाना असम्भव समझा तथा वापस लौटना अत्यधिक खतरनाक; अतः उसने प्रतिरोधी खाइयों आदि को ध्वस्त करने का कार्य आरम्भ करते हुए बादशाह को इस परिस्थिति से अवगत किया। शाहजादे मुअज्जम को तुरन्त एक सेना के साथ उनकी सहायता के लिये भेजा गया। शाहजादे के आगमन के पूर्व इब्राहीम खाँ ने खानजहाँ बहादुर पर आक्रमण करने का कोई प्रयास नहीं किया तथा उसके आगमन के बाद उसकी प्रगति के समय उसने विश्वासघातियों का सा आचरण किया। उसने मुगलों पर जो भी आक्रमण किये वे निर्बल तथा शक्तिहीन थे। अतः मुगल बिना किसी विशेष प्रतिरोध के हैदराबाद की ओर बढ़ते गये। सुल्तान ने विपत्ति निवारण में मधुनाथ पन्त की असफलता की सम्भावना देख, हैदराबाद को छोड़ दिया और गोलकुन्डा के किले में चले गये।

इसी समय इब्राहीम खाँ खुले आम मुगलों से जा मिला। परिणामतः हैदराबाद आसानी से मुगलों के हाथ लगा। शाहजादे के आदेश से हैदराबाद खूब लूटा गया। जन साधारण की विपत्ति में बुद्धिमान से बुद्धिमान मंत्री को भी तिरष्कृत और अपमानित होना पड़ा। मधुनाथ पन्त को भी सुल्तान की सास या अपने विरोधियों की मंत्रणा का शिकार होना पड़ा। षड़यंत्र करने वाले गिरोह में राजमाता या मुगलों में से किसी एक प्रमुख का हाथ था, जिसने जन भावना को मंत्री के विपरीत होने का लाभ उठा उसकी हत्या कर दी। सुल्तान आबू हुसैन में यद्यपि कई गुण थे, परन्तु इस परिस्थिति में उसे अपनी सुरक्षा का कोई पक्का आधार नहीं मिला। मधुनाथ पन्त की मृत्यु के बाद वह किसी से विश्वासपूर्वक सलाह भी नहीं ले सकता था। अतः उसने मुगलों से शान्ति समझौते का प्रस्ताव किया। औरंगजेब ने गोलकुन्डा को आशा के विपरीत सशक्त और समर्थ समझ तथा बीजापुर में प्रतिरोध की विशेष सम्भावना समझ इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। सन्धि की शर्तों के अनुसार आबू हुसैन को दो करोड़ रुपये नकद देना पड़ा, जिसको वसूलने के लिये शाहजादे मुअज्जम को वहीं छोड़ दिया गया। औरंगजेब, शाहजादा मुअज्जम तथा खान जहाँ बहादुर पर बहुत अप्रसन्न हुआ। इसका कारण यह था कि उसने इस आक्रमण से भारी लूटपाट तथा हीरे जवाहिरातों को शाही खजाने में लाये जाने की कल्पना की थी। उसका पिछला अनुभव इस विश्वास का आधार था परन्तु जब उसकी आशा के विपरीत परिणाम हुआ और सम्भावित शक्ति तथा सम्पत्ति उसके पास नहीं पहुंची तो उसने समझा कि मुअज्जम तथा खानजहाँ बहादुर मिलकर उसको धोखा दे रहे हैं तथा गुपचुप लूट का सारा माल हड़प कर लिया है, जैसा स्वयम् उसने अपने पिता शाहजहां के साथ किया था। इन दोनों व्यक्तियों के विरुद्ध उसकी दुर्भावना बढ़ गई। अतः उसने खाँ जहाँ बहादुर को लाहौर भेज दिया। यद्यपि कुछ दिनों के अनन्तर वह औरंगजेब के पास आया परन्तु उसने उसे कभी भी महत्वपूर्ण अभियान का भार नहीं सौंपा।

अब सम्राट बीजापुर की ओर घूमा। बीजापुर के किले की दीवालें काफी ऊँची तथा ६ मील के घेरे में विस्तृत थी। उस पर विजय प्राप्त करने के लिये बड़ी भारी सेना की आवश्यकता थी। अतः औरंगजेब ने कई स्थानों पर किले की दीवालों को तोड़ने के लिये भारी-भारी तोपें लगवा दिया। मुख्य तोपखाना किले की दक्षिण दिशा में तरबियत खां के कुशल प्रबन्ध में स्थापित किया गया।

नवयुवक सुल्तान सिकन्दर के अधीन शीराजी खां, अब्दुल रऊफ, सिद्दी जालिम और जमशेद जी आदि प्रमुख सर्दार, किले की प्रतिरक्षा कर रहे थे । किले में सैनिकों की संख्या कम थी, उनको वेतन भी कम ही मिलता था तथा उनकी युद्ध सज्जा भी मुगलों से अल्प थी । परन्तु अब भी उनमें पठानों का खून था । उन्होंने अत्यन्त साहस और वीरता के साथ मुगलों का सामना किया । औरंगजेब ने यह अनुमान तो लगा ही लिया था कि बीजापुर वालों को आत्म समर्पण करना पड़ेगा अतः उसने किले की दीवार में आवागमन योग्य मार्ग बन जाने पर भी अपने आक्रमण में तीव्रता नहीं आने दी । बादशाह ने इस अवसर पर अपनी बुद्धिमानी का परिचय दिया । वह समझ गया कि इस समय बीजापुर वालों को हल्के आक्रमणों द्वारा परेशान और निराश करना अधिक लाभप्रद होगा । उनको थका कर एवम् निराश करके आत्म समर्पण करवा लेना अधिक आसान था, परन्तु यदि उन्हें उसी समय तीव्र आक्रमण करके समर्पण करने को विवश किया जाता तो सम्भव था कि वे अपने जीवन से ही निराश हो अन्तिम क्षणों तक युद्ध करते और तब मुगलों की भी कितनी क्षति होती, यह भी वह समझता था ।

औरंगजेब को भीतरी किले कीं बाहरी किले से भी अधिक सशक्त दीवालों को देखकर भी अपने अभियान की सफलता का विश्वास था । इसका कारण था किले में सैनिकों की रसद तथा युद्ध सामग्री की कमी । अतः अक्टूबर १५ या इसके आसपास, किले वालों को आत्मसमर्पण कर देना पड़ा । सन्धि की शर्तें शीराजी खाँ ने गाजीउद्दीन खाँ की मध्यस्थता में तै किया जिसको बादशाह ने, अपनी प्रथानुसार नाम मात्र का सम्मान प्रदान करने के लिये, सन्धि वार्ता के लिए अपना प्रतिनिधि निश्चित किया ।*

राज्य के प्रधान सैनिक अधिकारियों को मुगल सेना में ले लिया गया तथा शीराजी खाँ को रुस्तम खाँ की उपाधि तथा पाँच हजारी मन्सब प्रदान किया गया । सिकन्दर शाह को मुगलों की कैद में तीन साल तक रहना पड़ा जहां अचानक उसकी मौत हो गई, सम्भावना यही अधिक है कि उसे भी औरंगजेब ने विष देकर मरवा डाला ।†

बीजापुर अब किसी की भी राजधानी नहीं रही । तराशे हुये पत्थर से चुनी गई इसकी ऊँची दीवालें, अपने भवनों के कलशों तथा मीनारों के साथ आज भी दर्शनीय है । अब एक प्रगतिशील नगर की शोभा तो इसकी रही नहीं परन्तु अपने गत वैभव के मजार के रूप में, निराशा और बर्बादी की प्रति मूर्ति के रूप में बीजापुर से खन्डहर मौन खड़े हैं । किले की दुहरी दीवालों के बाहर गहरी चौड़ी खाइयाँ, किले के भीतर निर्मित शानदार महलों के खन्डहर, बीजापुर दर्बार की समृद्धि के प्रमाण हैं । बीजापुर की विशाल मस्जिद अपनी भव्यता तथा इब्राहीम आदिलशाह का मकबरा अपनी कलापूर्ण शिल्प तथा कुशल निर्माण के लिये प्रसिद्ध है परन्तु सच्चा महत्व और सौंदर्य तो मुहम्मद अली आदिल शाह के चैत्य या मकबरे में निर्मित, 'गुम्बद का हैं । ‡ इस गुम्बद का सौन्दर्य किसी भी दिशा से दृष्टिपात करने पर स्पष्ट हो उठता है । इसकी सजावट में किसी भी आडम्बर के न होने पर भी, यह वृहद तथा असाधारण गुम्बद अपनी वृत्ताकार स्थिति और असाधारण सादगी से एक अजीब उदासी

---

* बीजापुर की पान्डुलिपि, स्काट तथा खफी खाँ ।

† बीजापुर पान्डुलिपियों के अनुसार उसके पक्ष में जनभावना तथा कुछ सक्रिय सहयोगियों को उटते देख, उसे मरवा डाला गया, उसको बीजापुर में दफनाया गया ।

‡ इस गुम्बद के वृत की परिधि १३० फीट है । यह रोम की पान्थियन से विशाल है । सेन्ट पाल लन्दन से [illegible] है तथा सेन्ट पीटर्स के गुम्बद से कुछ ही कम है ।

भरा वातावरण उत्पन्न कर लेती है। समुद्र के थपेड़े तथा इसकी एकान्त स्थिति उसकी इस उदासी में, साथ सा देते प्रतीत होते हैं। बीजापुर जिस स्थिति में बसा हुआ हैं, उस वातावरण में प्रकृति की ध्वंसात्मक प्रवृत्ति अपने पूरे जोर पर रहती है, और काफी दिनों तक उस प्रवृत्ति को प्रभाव हीन बनाने का किंचित भी प्रयास नहीं किया गया, परन्तु आज भी, नगर के खन्डहरों में हमें वह सौन्दर्य और कला दिखाई पड़ती है; जो यूरोप के किसी क्षेत्र में नहीं दीख पड़ती।

बीजापुर पर अधिकार कर लेने के बाद औरंगजेब ने गोलकुंण्डा पर आक्रमण करने की तैयारी आरम्भ कर दिया। परन्तु, शहजादे मुअज्जम द्वारा किये गये समझौते को तोड़ने से पहले उसने अपनी नीचता का एक और परिचय दिया। उसने सआदत खाँ को अपने प्रभाव से, अबुल हुसैन को धमका और बहका कर उसके पास के मूल्यवान जवाहिरात तथा अधिकतार खज़ाना, अपने अधिकार में कर लेने का आदेश दिया।

एक मुगल फौजदार * या नगर का सैनिक प्रधान बीजापुर का प्रबन्ध देखने के लिये नियुक्त कर दिया गया तथा एक दूसरे फौजदार, कासिम † खाँ को कृष्णा के पार के देशाई तथा जमीन्दारों की स्वतन्त्र सत्ता समाप्त करने के लिये, सेना की एक टुकड़ी के साथ भेज दिया गया। इस प्रकार के प्रयत्न मुगल अधिकारी प्रायः किया करते थे। इसका मुख्य कारण मुगल शक्ति का प्रदर्शन करना होता था। बीजापुर के शीराजी खाँ को संभाजी के जिलों को जीतने के लिये सतारा भेज दिया गया।

सन् १६८७]

एक प्रसिद्ध फकीर के मजार पर अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाने के बहाने, बादशाह गुलबर्गा की ओर बढ़ा। गाजीउद्दीन खाँ को बीजापुर से पूर्व तथा आंशिक रूप से दक्षिण की ओर बढ़ने का आदेश दिया गया था। इसका मुख्य कारण, सागर, अदौनी तथा कर्नाटक से गोलकुंडा के सहायतार्थ आने वाली सेना को बीच में ही रोक देने का विचार था। औरंगजेब के गुप्तचर हैदराबाद की सेना में, घूस आदि देकर, अधिकारियों को अपनी ओर मिलाने का प्रयास कर रहे थे। इन प्रयासों के परिणाम स्वरूप बीजापुर के कई अधिकारियों को अपनी ओर मिलाने के अतिरिक्त बड़ी आसानी से सुल्तान के ज़्वाहिरातों पर भी अधिकार कर लिया, यहाँ तक कि हरम की स्त्रियों के बदन पर जो आभूषण थे, उनको भी नहीं छोड़ा। सुल्तान आबू हुसैन ने इस अपमान भरे समझौते को भी यह सोच कर स्वीकार कर लिया कि शायद इन जेवरों और जवाहिरातों को पाकर ही औरंगजेब संतुष्ट हो जाय और गोलकुंडा विजय का अपना इरादा छोड़ दे। परन्तु दया-भावना ने औरंगजेब के मन को कभी भ्रमित नहीं किया, न अपनी आत्मा पर उसने इस प्रकार के बन्धन को माना। उसने आबू हुसैन को, उसके ब्राह्मण मंत्री की नियुक्ति तथा संभाजी के साथ हुए सैनिक समझौते के कारण अपनी मित्रता के अयोग्य करार देकर गोलकुंडा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दिया। औरंगजेब सरीखे धूर्त और चालबाज दुश्मन के इस अभियान से परेशान तथा अपने विश्वस्त अधिकारियों द्वारा किये गये विश्वासघात के परिणाम स्वरूप आबू हुसैन को अपने कुछ अब भी स्वामिभक्त कर्मचारियों, सैनिकों तथा सैनिक अधिकारियों के साथ गोलकुंडा के किले में चला जाना पड़ा। किले की शक्तिशाली प्रतिरक्षा, उसके सैनिकों की वीरता, तथा उसकी अपनी युद्ध

---

* मुगल प्रबन्ध में फौजदार से बड़ा अधिकारी नाजिम होता था, परन्तु मुगलों की दक्षिण विजय में इस अधिकारी का कोई विवरण नहीं मिलता।

† स्काट के दक्षिण भाग २ के पेज ७५ पेज के अनुसार कासिम खां को गोलकुण्डा विजय के बाद हैदराबाद का फौजदार नियुक्त किया गया था।

कुशलता तथा धैर्य, जो उसने अन्त तक बनाये रक्खा, दक्षिण के निवासियों के मुंह से आज भी सुना जा सकता है । उसकी अपनी सहनशीलता तथा धैर्य के कारण ही दक्षिण की जनता उसे तानाशाह के उपनाम से याद करती है । तानाशाह का अर्थ स्पष्ट नहीं है, परन्तु ऐसा लगता है कि यह नाम उसके शुभचिन्तक फकीर के नाम से पड़ा, जिसे आबू हुसैन अपने सत्तारोहण के पहले से ही बहुत मानता था ।

गोलकुण्डा का घेरा सात महीने तक पड़ा रहा । अन्त में विश्वासघात के परिणाम स्वरूप सितम्बर सन् १६८७ में इसका पतन हो गया । हैदराबाद आज भी एक समृद्धिशाली नगर है, और गोलकुंडा के पतन के बाद भी यह दक्षिण के सूबेदार की राजधानी बनी रही । यद्यपि बीजापुर के तुलना में इस राज्य का महत्व नही के बराबर था परन्तु शाही तथा राजवंश के निवास स्थान आदि के लिये उच्च कोटि के आवास स्थान निर्मित थे । हैदराबाद की मस्जिद अपने में एक पूर्व और प्रशंसनीय कृति थी । कुतुबशाही नरेशों के मकबरे अपने सुनहले और चमकदार कंगूरों के साथ, गोलकुंडा के किले, ये दर्शनीय हैं तथा इनको भारत के प्रमुख भ्रमण स्थलों में से एक होने का सौभाग्य प्राप्त है ।

यह स्मरणीय है कि इन्ही दिनों शहजादे मुअज्जम पर औरंगजेब को संदेह हो गया और उसने उसको अपनी कैद में डाल दिया । शहजादा अपने पिता की कैद में छः वर्ष तक रहा, जब उसे मुक्त करके काबुल का सूबेदार बना कर भेज दिया गया । उसका प्रथम और अन्तिम अपराध किंचित यही था कि उसने सम्राट के द्वारा आबू हुसैन के प्रति किये गये अन्याय के प्रति अपनी आवाज उठाई थी । अपने इसी विरोध के फलस्वरूप उसे उपरोयुक्त दण्ड सहन करना पड़ा तथा आबू हुसैन को अपने जीवन के शेष दिन दौलताबाद के किले में व्यतीत करने पड़े ।*

गोलकुंडा के पतन के बाद उनके क्षेत्रों को अपने प्रबन्ध के अधीन करने, तथा दक्षिण में नयी विजय की योजनाओं को प्रथम स्थान मिला । कर्नाटक में कासिम खाँ को नई कुमुक भेजी गई । इस कुमुक के भेजने के कारण इसका संबन्ध मराठों से हो गया जिसकी ओर हमें पलटना है ।

बेरुद जाति के एक प्रधान के अधिकार में सागर का किला था । गुलबर्गा तथा बीजापुर के बीच में स्थित इस किले पर अधिकार करने के लिये खान्जाद खाँ को भेजा गया । बेरुद जाति का कर्नाटक में प्रायः वह स्थान है जो रामूसो लोगों का महाराष्ट्र में । यह प्रधान अपने को स्वतन्त्र मानता था । उसके अधीन इसी की जाति के १२००० सैनिक थे । इस किले की स्थिति अति दुर्गम पहाड़ियों तथा जंगलों के बीच में थी परन्तु मुगलों से भयभीत, किले के प्रधान ने आत्म समर्पण कर दिया । औरंगजेब हमेशा उन व्यक्तियों से खुश रहता था जो बिना प्रतिरोध तथा प्रतिवाद किये उसकी सत्ता को मान लेते थे । अतः दर्बारियों ने आश्चर्य से देखा कि औरंगजेब ने इस नायक रामस जी को मुगल

---

* आबू हुसैन के बारे में एक कथा प्रचलित है जो किंचित सत्य ही है । इसको मैं हिन्दुस्तानी मुसलमानों की व्यावहारिकता का प्रमाण मानता हूँ । एक बार, सम्राट की कैद में ही, दौलताबाद जाने के पूर्व ही सम्राट के एक संगीत कार के गायन वादन पर प्रसन्न हो कर आबू हुसैन ने उसे एक लाख रुपया इनाम देने की इच्छा व्यक्त किया । इसकी सूचना मिलने पर औरंगजेब ने उसकी इच्छा पूरी करने का आदेश दिया ।

भारतीय निवासियों में संगीत की महान महत्ता मानी जाती रही है । इस प्रकार के महत्व की हल्की सूचना पश्चिमी विद्वानों को भी प्राप्त है, मेजर टाड ने राजपूती संगीत का विवरण लिखा है परन्तु उसके प्रभाव का अभाव उनकी रचनाओं में खटकता है । आबू हुसैन के बारे में प्रचलित इस कथा को हम प्रमाण स्वरूप मान सकते हैं ।

सेना में पंच हजारी का रुतबा दिया। परन्तु यह सम्मान उसके जीवन तक ही रहा। उसके मरते ही उसके पुत्र प्रेम नायक ने इसमें अपनी असुविधा समझ जंगल में, दीवालों से घिरे लेकिन खरे नामक गांव में अपने जाति के लोगों के साथ जा कर रहने लगा। सागर के निकट के इसी गांव से उसने आस-पास के क्षेत्रों पर आक्रमण करके तथा डाके डाल कर अपनी स्थिति को अत्यन्त शक्तिशाली बनाने में लगा रहा। २० वर्षों में इसने अपनी संख्या तथा शक्ति को इतना बढ़ा लिया कि स्वयम् औरंगजेब को वेरुद के इस नायक को हराने के लिये स्वयम् आना पड़ा।

अन्य सेनाओं के प्रस्थान करते ही आजम और गाजीउद्दीन ने अदौनी के ऊपर आक्रमण करने के लिये प्रस्थान किया। अदौनी अब भी, बीजापुर के भूतपूर्व संरक्षक मक्सूद खां के अधीन था। मक्सूद खां ने प्रतिरोध को अपनी शक्ति से बाहर समझ अदौनी से अपना अधिकार हटा लिया परन्तु शाही सेना में जाने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार उसने अल्पता परन्तु सम्मान में अपने जीवन यापन का प्रबन्ध किया। कुछ दिनों बाद इसी स्थिति में उसकी मृत्यु हो गई।

गोलकुंडा के पूर्वी भागों को भी अपने अधिकार में लाने का प्रयास किया गया। जिंजिम, राजमहेंद्री तथा मसलीपटट्म के बन्दरगाहों पर अधिकार कर लिया गया। * अभियान के लिये भेजी गई सेनायें अपने प्रयास में सफल रहीं तथा कुड़प्पा, कांजीवरम तथा पुण्य माली के सूबेदारों या सैनिक प्रधानों ने आत्म समर्पण कर दिया।

कर्नाटक तथा धारवार के वे क्षेत्र जों बीजापुर तथा गोलकुंडा के शासन के अन्तर्गत थे, को मुगलों ने कर्नाटक की संज्ञा दी थी। परन्तु जो क्षेत्र हमेशा बीजापुर के अन्तर्गत थे, उसे बीजापुर कर्नाटक के नाम से पुकारा जाता था और जो गोलकुंडा राज्य के प्रशासन के अन्तर्गत थे उनको हैदराबाद कर्नाटक के नाम से पुकारा जाता था। बीजापुर कर्नाटक का क्षेत्र मुख्य कर्नाटक या ऊपरी क्षेत्र कहलाता था परन्तु हैदराबाद कर्नाटक का क्षेत्र-गन्टूर से होते हुये कारोमन्डल तथा दक्षिण में मराठा क्षेत्र कोलरुन तक विस्तृत था। पाईं घाट का एक भी क्षेत्र बीजापुर शासन के अधीन नहीं था कारण इन सभी क्षेत्रों को शिवाजी ने अपने अधिकार में कर लिया था, परन्तु बाला घाट या मुख्य कर्नाटक के कितने ही स्थान हैदराबाद कर्नाटक के प्रशासन में थे। जिनमें अदौनी के निकट का गुरुमकोन्डा, गान्धी कोटा तथा सिधौता के जिले मुख्य थे।

गोलकुंडा पतन के बाद शाही खेमा बीजापुर की ओर बढ़ा और उसकी सैनिक टुकड़ियों ने आस-पास के अविजित क्षेत्रों पर अधिकार करने का कार्य आरम्भ कर दिया था। परन्तु इस सम्बन्ध में मराठों का विवरण देने के पहले इन अविजित क्षेत्रों पर मुगलों के अधिकार व प्रबन्ध के ढंग तथा विभिन्न केन्द्रों का साधारण वर्णन कर देना अधिक तर्क संगत है।

प्रत्येक जिले में फौजदार तथा खालसा दीवान नामक दो प्रधान अधिकारी थे। फौजदार एक सैनिक अधिकारी था जिसके अधीन सेना, पुलिस व अपने क्षेत्र की सुरक्षा का भार रहता था। उसकी शक्ति समयानुसार घटती बढ़ती रहती थी। जिले के प्रशासनिक व्यय के लिये उसे सरकारी लगान का २५ प्रतिशत रु० दिया जाता था। दीवान का पद पूर्णतया प्रशासनिक या सिविल होता था। उसका काम लगान की वसूली का प्रबन्ध रहता था, चाहे वह जागीरदार के अधीन कार्य करे या सीधे साम्राज्य की ओर से। मुगल सेनापतियों को उनकी सेना के व्यय के लिये, इन नये विजित क्षेत्रों में जो जागीरें दी जाती थीं वह मराठा मन्सबदारों को मिली जागीरों की तरह, स्थायी रूप में नहीं

---

* खफी खाँ

मिलती थीं। उनकी जागीरें कुछ खास समय के लिये मिलती थीं, समय बीत जाने पर उनको पुनः बदल कर दूसरी जगह जागीर दे दी जाती थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि फौजदार जागीरदारों की अपेक्षा सामंतो से अधिक मिलता जुलता था। कारण जागीरदारों को लगान मात्र वसूलने का कार्य करना पड़ता था परन्तु फौजदार सामंतों की तरह प्रशासनिक कार्य भी करता था। फौजदार तथा दीवान मिल कर जिलों को देशमुख तथा देसाइयों में विभाजित करते थे, जिनसे दीवान जिले का लगान वसूलता था। प्रत्येक सूबे में कई फौजदार होते थे। दक्षिण में मुगलों के अब तक कुल चार सूबे थे। बीजापुर तथा गोलकंडा के मिलने से अब इनकी संख्या छः हो गई।

मराठा लेखकों ने औरङ्गजेब की इन सफल अभियानों और विजयों के अवसर पर सम्भाजी की निष्क्रियता का वर्णन किया है। उन्होंने इसका मुख्य कारण उसके ऊपर कलुशा के सम्मोहक प्रभाव को माना है। परन्तु इसका वास्तविक कारण स्वयम् सम्भाजी की बिगड़ी आदतें थीं। आये दिन की प्रशासनिक गड़बड़ी का प्रधान कारण सम्भाजी की इन्द्रिय लोलुपता थी। इस अवसर पर भी यदि सम्भाजी ने चाहा होता तो अपने पिता के समय के बचे-खुचे योग्य अधिकारियों की सहायता लेकर आने वाली इस विपत्ति से अपनी जान बचा सकता था परन्तु न तो सम्भाजी ने उनसे इस प्रकार की सहायता की इच्छा ही व्यक्त की और न उन सर्दारों ने स्वयम् अपने स्वामी (राजा) की क्रूर प्रवृति और कवि या मंत्री कुलशा के प्रति अपनी जलन के परिणाम स्वरूप उसकी सहायता करने में अपनी विशेष रुचि ही दिखाई।*

बीजापुर के पतन के बाद उसके मराठा मन्सबदारों ने मुगल सम्राट को लगान देना स्वीकार करके उसकी अधीनता स्वीकार कर लिया परन्तु किसी ने उसकी सेना व प्रबन्ध सेना में शामिल होने की उत्कंठा प्रकट नहीं किया। अभी-अभी हमने देखा है कि मुगलों ने शिराजी खां को सम्भाजी के अधिकृत क्षेत्रों पर अपने अधिकार का भार सौंपा था। साथ ही साथ मराठा मन्सबदारों को भी शिराजी खां की सहायता करने का आदेश मिला। उन्होंने उस आदेश का पालन किया या नहीं इसका विवरण प्राप्त नहीं हैं। वाह्वी के पास तक के स्थानों पर अपना अधिकार जमाने के बाद उसे हम्मीर राव की सेना के हाथों परास्त होना पड़ा, परन्तु इस विजय की कीमत हम्मीरराव, मराठा सेनापति को युद्ध में घायल हो अपनी जान देकर चुकानी पड़ी। इस विजय से प्राप्त सुविधाओं को हम्मीर राव की मृत्यु के शोक में मराठों ने नहीं भुलाया। उनकी अनेकों टुकड़ियों ने आगे बढ़कर बीजापुर की ओर के खुले क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। मराठा सवार टुकड़ियों ने गोलकुण्डा की ओर भी अपना रुख किया, परन्तु उस समय वहां औरङ्गजेब अपना घेरा डाले पड़ा था अतः इन टुकड़ियों ने बिना किसी सशक्त विरोध के या औरङ्गजेब के घेरे को बिना कुछ हानि पहुंचाये पुनः अपने गन्तव्य स्थान पर लौट गये। इस काल में सम्भाजी ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि स्वर्गवासी पेशवा के भाई केशव पन्त पिंगले के सेनापतित्व में एक सेना कर्नाटक की ओर रवाना किया। पिंगले के प्रमुख सहायक के रूप में सन्ताजीघोर पड़े भी उनके साथ थे।†

केशव पन्त के साथ जाने वाली सेना का प्रधान उद्देश्य कर्नाटक में हीरजी राजा महारीक के साथ मिलकर ऊपर कर्नाटक के क्षेत्रों पर अधिकार करना था। यह क्षेत्र शिवाजी के पिता शाहजी के जागीर के जिले थे, जो अब भी बैंकों जी के अधिकार में थे तथा उसने सम्भाजी के सिंहासन पर

---

* मराठा पान्डुलिपि।

† ओर्मी ने केशव पन्त पिंगले को केशवा पन्तोलों लिखा है। इसका कारण विशुद्ध नाम का अशुद्ध उच्चारन।

आने के बाद लगान में शिवाजी का हिस्सा कभी नहीं दिया था। परन्तु सेना जिंजी• आते केशव पंत तथा उसके भतीजे नीलो पन्त में आपसी ईर्ष्या और मतभेद का बाजार गर्म हो गया। ऐसा समझा जाता है, जो आंशिक रूप से गुप्त पत्रों द्वारा भी प्रमाणित होता है कि केशव पंत ने गुप्त रूप से हीरजी राजा महारीक को अपदस्थ करने का आदेश पाया हुआ था। *

बेंको जी ने मराठों के इस अभियान की सूचना पा ली या उसने इसको पहले से ही समझ रक्खा हो, उसने मराठों के सामने अपनी अक्षमता को भांप लिया। अतः मैसूर के राजा चिकदेव राज से उसने बंगलौर की बिक्री के लिये वार्तालाप करना शुरू किया। परन्तु ऐसा लगता है कि मराठों को उसके इस इरादे की सूचना मिल गई अतः उन्होंने, बङ्गलौर को इस बिक्री के पहले ही अपने अधिकार में कर लेने का प्रयास किया। उधर मुगलों ने भी उसको अपने अधिकार में करने की योजना बना रक्खी थी। परन्तु जैसा कि आम मतभेदों में होता है, जिंजी स्थित मराठा सेना उचित समय पर न पहुंच सकी। कासिम मराठों से पहले ही आ गया। उसने बङ्गलोर पर अपना अधिकार कर लिया और तीन लाख रुपये में उसे मैसूर राज चिकदेव को बेच डाला। स्मरणीय है कि इसी भाव पर बैंको जी ने उसे बेचने की बातचीत तै की थी।

केशव पंत और सन्ताजी घोरपड़े ने अपने बङ्गलोर अभियान में मैसूर राज्य में घुस गये। अनेक स्थानों से लगान वसूल करने के साथ उन्होंने अनेक महत्वहीन स्थानों पर अपना आधिपत्य जमाया और कुछ महीने वहीं रहे। जैसे ही उन्हें मुगलों की प्रगति और गोलकुण्डा के पतन का समाचार मिला वे साल के अन्त तक वापस जिंजी लौटे।

हरिजी राजा मुगलों के आगमन और अपने पड़ोसियों के आत्म समर्पण को देख कर चौकन्ना
हो गया और केशव पंत से जा मिला। दोनों ने मिलकर अनेक स्थानों पर अपना
सन् १६८८] अधिकार कर लिया। परन्तु मुगलों की विशाल सेना के पड़ोस में आगमन तथा मराठों
की आत्मिक ईर्ष्या ने उनको अपने इस नवीन अधिकृत भू भागों को छोड़ने को विवश
कर दिया और वे अपनी जागीर की रक्षा के लिये अपने पलियार के दोनों ओर निर्मित किलों में
लौट आये।

मराठों द्वारा अधिकृत कर्नाटक का सबसे पुराना किला इस साल मराठोंके (वेंको जी) हाथ से निकल गया। मैसूर के राजा द्वारा लिये गये उस पुराने किले का नाम असकोटा था। इस किले की रक्षा संभाजी के सैनिक आसानी से कर सकते थे परन्तु इन मराठों के आपसी झगड़े और मनमुटाव होते, हुए यह आम आदत हैं कि अपने विरोधी की हानि के लिये वे अपनी पूरी शक्ति खर्च कर देते हैं और इस सिलसिले में अपनी भारी से भारी हानि को आसानी से सहन कर लेते हैं।

मराठों की शक्ति कर्नाटक में तेजी से समाप्त हो रही थी। यदि महाराष्ट्र में उनकी अव्यवस्था के बावजूद वे अपनी शक्ति को एक दम समाप्त होने से बचाये न रखते तो शायद औरंगजेब की दक्षिण योजना को हमें कल्पनात्मक कहने का साहस न होता और आज हमें मराठों के इतिहास को इन लाइनों के आगे लिखने की आवश्यकता ही न पड़ती। शायद मराठों का नाम पुनः पहले की भांति अतित्व की काली स्याही से रंग उठता।

संभाजी अपने साधारण राज कार्यों में बेपरवाह हो गया था। वह अपना अधिकांश समय पन्हाला और विजालगढ़ में बिताता था, या फिर अपने संगमेश्वर स्थित प्रिय बिहार भवन में। अपनी उस वर्तभान मूर्खता में उसने सिर्फ एक जगह अपना ध्यान लगाया, अपनी प्रारम्भिक विजयों के स्थान

---

* मराटा पान्डुलिपि।

गोआ पर। वह जब भी अवसर पाता गोआ की ओर चढ़-दौड़ता। अपने इन अनेकों प्रयत्नों के बावजूद गोआ पर उसका अधिकार न हो पाया। मराठा साम्राज्य की सारी सत्ता इस समय कलुशा के हाथ में थी जिसका अधिकांश समय अपने विलासी नरेश की विचित्र मनोरंजक इच्छाओं को पूरा करने में ही बीत जाता था—वह राज्य प्रबन्ध क्या करता, रही गंभीर प्रशांसानिक समस्यायें, उन पर ध्यान देने का अवकाश ही किसे था ? शाहजादे अकबर द्वारा इन गंभीर मसलों पर काफी सहायता मिलती थी परन्तु उसको भी अपनी स्थिति पर पर्याप्त संतोष नहीं था। बीजापुर और गोलकुन्डा के पतन के बाद वह अपनी सुरक्षा के प्रति शंकालु हो उठा। उसको भारत की किसी भी शक्ति का विश्वास नहीं था तथा औरंगजेब की विशाल बाहिनी का भारी भय था। अतः उसने संभाजी की आज्ञा लेकर राजापुर से एक जहाज किराये पर लिया और जाकर पर्शिया के दर्बार में शरणागत हुआ। उसको ले जाने वाले जहाज का नाविक प्रधान एक अंग्रेज था। पर्शिया में ही अपने २० वर्ष का शेष जीवन काटने के बाद उसकान में वहीं उसकी मृत्यु हो गई।

संभाजी की सेना में बढ़ती अनुशासनहीनता का वर्णन हमने पहले ही कर दिया है। शिवाजी के मरते ही मराठा सेना में अनुशासनहीनता शुरू हो गई थी जो धीरे धीरे निरंतर बढ़ती ही गई। यद्यपि मराठा सेना की यह अनुशासनहीनता संभाजी की सत्ता के लिये खतरनाक थीं परन्तु फिर भी उसने अपनी सेना द्वारा होने वाली लूट पाटों पर, जो निरंतर बढ़ती ही जाती थी, रोक लगाने का कोई प्रयास नहीं किया। उसकी सेना में बढ़ती लूट पाट का मुख्य कारण यह था कि उसके राज्य का प्रत्येक असभ्य और उजड्ड चाहे वह हिन्दू हो चाहे मुसलमान, अगर एक घोड़े और भाले का कुशल संचालक होता तो उसे मराठा सेना के साथ गैर सरकारी सेना में स्थान मिला जाता था। इन साहसिकों का संभाजी की सेना में आगमन अपने स्वार्थ के लिये होता था। कभी कभी तो वे एक दिन की लूट से ही मालामाल हो जाते थे। अतः अन्य कारणों से स्वतन्त्र, लूटपाट करने वालों के उत्साह की कल्पना की जा सकती है, यही उत्साह संभाजी की सेना में था। मराठों की भारी सवार सेना जो अपनी साहसिक लूटों से अपने भरण पोषण भर को कमा लेती थी, अब मराठा राज्य के ऊपर भार हो गई थी। उनके वेतन तथा भरण पोषण के अन्य साधन नहीं के बराबर थे। उसके विरुद्ध मुगल सेना बहुत भारी संख्या में थी। औरंगजेब की पूर्ण पोषित इस सेना ने दक्षिण भारत की विजयों से उत्पन्न हुई स्थिति पर काबू कर लिया होता, अगर मराठों में उपरोक्त उत्साह न होता। कारण उसके पास इस समय देश की चुनी हुई, पूर्णसज्जित सेना थी। योग्य अधिकारी थे तथा असंख्य युद्ध सामग्री। परन्तु शिवाजी की विजयों से उत्साहित, अपने किलों की अभेद्यता से परिचित, अपने अनेकों नेताओं के शौर्य और शक्ति में अपूर्व विश्वाश, ब्राम्हणों की बुद्धिमानी तथा उपदेश और औरंगजेब की 'जजिया' के अपमान से मराठा सेना उसके सामने जा अड़ी। जजिया ने हिन्दुओं के हृदय के सबसे कोमल स्थान पर आघात किया। जिसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न जन विरोध को दबाने के लिये विशाल सेना से अधिक विवेक की आवश्यकता थी।

औरंगजेब के पास विशाल सेना एवम् कोष था।। उसको दक्षिण का यथेष्ट ज्ञान भी था। वह भी अपने पूर्ववर्ती विजेताओं की भाँति स्थानीय जागीरदारों के वांशिक पदों को देता और छीन लेता था। मन्सब, जागीर तथा उपाधियां वितरित करता, वितरण के अधिक वादे करता। जागीरों और मन्सबों आदि के लिये वादे उसने किये। उसके पूर्ववर्ती विजेताओ ने कभी नहीं किये थे। परन्तु उसके शक्की स्वभाव, जलन तथा अदूरदर्शिता के कारण उसकी इन तमाम उदार नीतियों का परिणाम उतना लाभपूर्ण नहीं हुआ जितना होना चाहिये था। उसको मराठों की लूटखसोट करने

वाली सेना की शक्ति का पूर्ण ज्ञान नहीं था। इसी लिये उसने उनको साधरण विरोधी समझ कर अपनी नीति का सहारा लिया। इस कार्य में अपनी सेना और सरकार की सहायता न लेकर उसने स्थानीय प्रभाव शाली नेताओं को अपनी ओर मिलाया। मिलाने के लिये किये गये अपने वादों को पूरा न करने के कारण संभावित सहायता विपक्षी हो जाती। अपनी अधीनता स्वीकार करने वाली या आत्म समर्पण करने वाली सेना को अपने सैनिकों के साथ रख पाने में असमर्थ सम्राट ने उनको अपनी सेना से आपदथ कर दिया। परिणाम स्वरूप यह भारी निष्कासित सेना मैदान में उसके विपक्ष में जा मिली। वह चारो तरफ से जाने, अनजाने से शत्रुओं से घिर गया। दूसरी तरफ-अपने इन नये अधिकृत क्षेत्रों के बारे में भी वह भ्रम में था। वह समझता था कि इन विजित क्षेत्रों के प्रबन्ध के सभी विवरणों से वह परिचित है और प्रबन्ध की क्षमता भी उसे प्राप्त है। जब कि वास्तव में वह भूल में था। दक्षिणी भारत की जानकारी होते हुए भी उसकी अपनी कट्टरता ने अनुभव का लाभ उठाने न दिया। उसने अपने प्रतिनिधियों का कभी विश्वाश नहीं किया। इसके अतिरिक्त उसने प्रत्येक पद पर मुसलमान अधिकारियों की नियुक्ति की। यद्यपि अनेक स्थानों पर मानवता, राजनीति, और न्याय के अनुसार हिन्दू अधिकारियों की नियुक्ति आवश्यक थी। इन नियुक्तियों का परिणाम यह हुआ कि चारो तरफ अव्यवस्था तथा भ्रम का बोलबाला हो गया। जिसका निवारण औरंगजेब की शक्ति के बाहर था। कारण उसकी बुद्धिमत्ता उसके चापलूस दर्बारियों की बुद्धि में ही समाती और आदर पाती थी। मराठा विशेष कर ब्राह्मण उतने अदूरदर्शी और अस्थिर चित्त के नहीं थे जितने मुसलमान। परिणाम स्वरूप शीघ्र हो इन हिन्दुओं ने मुसलमान अधिकरियों की अशक्त नसों को पकड़ना शुरू किया।

जब औरंगजेब की सेनायें बीजापुर पर घेरा डाले पड़ी थीं, दर्बार के शक्तिशाली मांकुरी * घाटगे, मणि, निम्बालकर इत्यादि सर्दार शाही सेना के आस-पास भँडराते रहे। परन्तु जैसे ही बीजापुर का पतन हुआ, सभी सर्दार वापस अपनी जागीरों को लौट गये और अपने वकीलों को सम्राट के प्रति अपने कर्तव्यों का विश्वास दिला कर शाही दर्बार में भेजा। अवसर पड़ने पर वे स्वयम् भी दर्बार में उपस्थित होते। उधर तो सम्राट के पास अपनी सत्ता को बनाये रखने का प्रयास चालू था दूसरी ओर वे लूट-खसोट करने वाले मराठा दलों में शामिल होकर अपने ही देशवासियों को लूटने लगे या फिर शाही सेना के साथ यथा अवसर जा कर मिल गये। लुटेरों के ये दल अधिकतर संभा जी या किसी अन्य मांकुरी के अधीन संगठित रहते थे। इसका प्रमुख कारण यह था कि फोजदारों की सेना इन व्यक्तिगत या स्वतन्त्र लुटेरोंके मुकावलोंमें कहीं अधिक शक्तिशाली पड़ती थी, जो इनको दबाये रखती थी। अतः इन व्यक्तिगत लुटेरों की संख्या अत्यधिक कम थी। सिर्फ महाराष्ट्र तथा कर्नाटक की सीमा पर कुछ व्यक्तिगत लूटेरे थे जो मराठा लुटेरों या मांकुरी सर्दारो से अलग रह कर लूट पाट किया करते थे। इनको पिन्डारी † कहा जाता था। प्रत्येक उस दल को इसी नाम से पुकारा जाता था, जो मराठा लुटेरों से स्वतन्त्र रह कर अपना संचालन करते थे। इन लोगों ने बेदर

---

* मांकुरी अर्थात् बड़ा आदमी। पुरानी दक्षिणी दर्बारी में मन्सबदार इसी नाम से पुकारे जाते थे। अधिकतर यह उपाधि प्रत्येक मराठा सवार नायक अपने नाम के साथ लगाता था। दर्बारों से प्राप्त सुविधाओं पर, घमंडी सर्दारों द्वारा अधिकतर व्यवहृत होता था।

† कर्नाटक और महाराष्ट्र की सीमा पर रहने वाली जाति को पिन्डारी कहा जाता था। वे शांति काल में खेती करते और अराजकता के समय लूट-पाट। ये हिन्दुस्तानी बोलते तथा अपने को राजपूत वंशज मानते हैं।

के आसपास के क्षेत्र को अपना शिकार बनाया। परन्तु जल्दी ही इनको दबा कर, मराठों से जाकर मिलने के लिये विवश कर दिया गया। इस प्रकार के भगोड़े लुटेरों को मराठी सेना में कोई वेतन नहीं दिया जाता था, परन्तु उनको सेना के पड़ाव के पास ही किन्हीं मराठा सर्दार से संरक्षण में पड़ाव डालने का आदेश मिल जाता था। इस संरक्षण के एवज में इन लोगों को अपनी लूट का एक हिस्सा उस सर्दार या सेनापति को भी देना पड़ता था।

एक ओर तो मांकरी अपने वकीलों को शाही दर्बार में भेज अपनी सेवाओं की एवज को अपने ही अधिकार में बनाये रखने का प्रयास कर रदे थे। दूसरी ओर अपनी सेनाओं को मुगल क्षेत्रों में भेज कुरगल जिलों को लूटने में व्यस्त थे। यदि इन लूटपाटों की सूचना मुगल दर्बार को मिल जाती तो मांकुरी वकील किसी न किसी प्रकार अपने स्वामी की निर्दोषिता प्रमाणित करने का प्रयास करता था। अधिकतर उनको अपने इस प्रकार के प्रयासों में सफलता भी मिल जाती थी कारण ये जाते ही किसी प्रमुख दर्बारी को भारी घूस देकर अपनी ओर मिला लेते थे, जो दर्बार में मांकुरी सर्दारों के अधीन कर्मचारियों के ऊपर सात अपराध लगा उनको साफ-साफ बचा लेते थें। मुगल फौजदारों को इन मराठा प्रमुखों के साथ सद्व्यवहार रखने का आदेश मिला था, परन्तु इस शर्त पर कि वे मुगलों के सांमत के रूप में कार्य करते रहेंगे। येसर्दार फौजदारों से अपना सम्बन्ध बनाये हुये थे, उनके वकील दर्बार में चालें खेल रहे थे, स्वयम् उनकी जागीरें सुरक्षित थीं और उनके आदमी मराठा लुटेरों के आड़ में दूसरे हिस्सों को लूट रहे थे। जिन मुगल अधिकारियों को दक्षिण में जागीरें मिलीं, उन्होंने शीघ्र ही समझ लिया कि वे लगान को बहुत कम बढ़ा सकते हैं। अतः उनमें भ्रष्टाचार का बोलबाला हो गया। जो लुटेरे पहले फौजदारों को मिला कर अपनी सुरक्षा बनाये रखते थे। अब जमीदार को लूट का हिस्सा देने लगे।

अभी तक चले आते अनुवंशिक अधिकार और सुविधायें जो दक्षिणी शासकों द्वारा कुशलता पूर्वक प्रत्युक्त किये जा चुके थे, इस काल में अस्थिर और अस्थाई से प्रतीत होने लगे। उनकी सत्ता भ्रमात्मक सी प्रतीत होने लगी। बढ़ती अराजकता और कुप्रबन्ध का यही महत्व पूर्ण कारण था। झगड़े में पड़े अनुवंशिक अधिकार के झमेले इतने उलझे होते थे और इन जागीरों या मन्सबों के प्रबन्ध हिन्दू ब्राह्मण उनको इतना जटिल बना देते थे कि मुगल अधिकारियों को भारी भारी अपराधों को आसानी से माफ कर देना पड़ता था या फिर से भारी अन्याय पर अपनी स्वीकृति दे देनी पड़ती थी। इसका परिणाम यह होता था कि जागीर के सच्चे अधिकारी को अपनी जागीर से बंचित होने पर, अपनी सेनाओं को लूट मार वाले दलो में शामिल होकर अपना विरोध दिखलाने का अवसर मिल जाता था। यदि किसी प्रकार वे शाही सेना से परास्त भी हो जाते, आत्मसमर्पण भी करना पड़ता तो भी अपने साथ हुये पिछले अन्याय का हवाला देकर अपने विरोध को न्यायपूर्ण और उचित बताते।

यदि किसी मन्सबदार या जागीरदार का पद समाप्त किया जाता या रिक्त हो जाता तो मुगल अधिकारी किसी योग्य प्रत्याशी को चुन कर उसको उस स्थान पर नियुक्त कर देते थे परन्तु उससे उस जागीर की आमदनी, या लगान का कुछ प्रतिशत एक साल के अन्दर ही बतौर नजराने या अगला लगान के रूप में ले लिया जाता था। इस राशि का एक चौथाई नियुक्ति होते ही वसूल लिया जाता था। शेष रकम साल भर के अन्दर कई किश्तों में वसूलो की जाती थी। इसके अलावा भी शाही लेखकों और अधिकारियों द्वारा नाना प्रकार की फीसें और नजराने आदि वसूल किये जाते थे। परिणाम स्वरूप इस प्रकार उजड़ा, नया जागीरदार या मन्सबदार लोगों का सर्वस्व अपहरण करके तथा घूस लेकर नये अधिकारियों की नियुक्ति करके अपनी खिसियाहट दूसरों पर उतारता था। सम्राट कुछ

दिनों बाद ही अपनी इन आर्थिक योजनाओं और प्रबन्धों से ऊँचे उठ अधिक महत्वपूर्ण मसलों में व्यस्त हो गया था। उसके वजीर या मंत्रियों, तथा उनके सहायकों में भी पूर्ण भ्रष्टाचार व्याप्त था। अतः प्रायः ही ऐसा होता था कि कागजी कार्यवाई और नियुक्ति के सालों बाद उन पर अमल किया जाता। * इसी परिस्थिति में हमें इस काल की घटनाओं का विवरण देना है। कारण आगे आने वाली घटनाओं की जड़ भी इन्ही राजनैतिक अक्षमताओं और असुविधाओं पर निहित है। बीजापुर के पतन के बाद बारह वर्षों की सही तस्वीर यही है। इसी बारह वर्ष काल के अन्तिम दिनों में मुगलों के प्रबन्ध में त्रुटियों की संख्या इतनी बढ़ गई कि उनकी सत्ता अत्यन्त निर्बल हो गई। जिस प्रकार से पुराना वस्त्र अपनी चमक से दूसरे नये वस्त्रों को प्रभावहीन कर देता है, परन्तु शीघ्र ही फट जाता है उसी प्रकार मुगल शक्ति में भी वृद्धावस्था के अवगुण आ चले थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो कुछ काल में ही उसकी सत्ता भूमिसात हो जायेगी।

सम्राट ने एक साल से कुछ अधिक ही बीजापुर में अपना निवास बनाये रक्खा। इस अवधि में चारों ओर से सफलताओं ने उसके पाँव चूमे परन्तु संभाजी के ऊपरी क्षेत्र तथा कुछ शक्तिशाली

दुर्ग अब भी मुगलों के अधिकार से बाहर थे। मुगल सेनाओं ने तातोरा तथा शिवाजी सन् १६८९] द्वारा निर्मित, तातोरा से पन्हाला तक के किलों की श्रेणियों पर अपना अधिकार कर लिया था। अब औरंगजेब अपनी पूर्व आकांक्षित दक्षिण विजय के मार्ग में पड़ने वाले अविजित किलों पर आक्रमण करने की नियमित योजना बनाने लगा। परन्तु उसकी इस योजना को आंशिक रूप से, उसकी सेना में भयानक रोग फैलने के कारण धक्का पहुंचा। इस बीमारी में शाही खेमे के काफी सैनिक काल के गाल में चले गये। उसने अपना खेमा हटा कर नीरा के किनारे अकलूज नामक स्थान पर गाड़ा। इससे रोग शान्त हो गया।†

इसी समय के आसपास सम्राट का ध्यान अंगरेजों की ओर गया। व्यक्तिगत पैमाने पर होने वाली सामुहिक डकैतियों के सिलसिले में अनेक ईस्ट इंडिया कम्पनी के कारखानों पर आक्रमण हुआ। मुगल जलपोत पर आक्रमण होने या उसकी लूट की प्रतिक्रिया में औरंगजेब के इस आक्रमण में कोई नवीनता नही थी। उसने अनेकों बार सूरत के अध्यक्ष को जेल में डाल दिया था। इस अवसर पर सिद्दी को आदेश दिया गया कि वह अंगरेजों को बंबई के बाहर भगा दे। सिद्दी ने उस प्रायद्वीप पर आक्रमण करके मजगांव, शीव, तथा माहिम पर अधिकार कर लिया परन्तु किले पर उसका असर कुछ भी न पहुंच सका। आक्रमण जारी रहा। अन्त में अंगरेजों ने पुनः घूस आदि देकर तथा सम्राट के

---

* खफी खाँ, स्काट, मराठा पान्डुलिपि, तथा आदेशों की प्रतिलिपि।

† यह रोग कालरा या हैजा के समान था। यह रोग शाही खेमे में आने के पहले से ही दक्षिण में गुजरात आदि स्थानों में फैला हुआ था। खफी खां ने इसका विवरण जिस प्रकार दिया है उसको देख कर यह प्लेग या ताऊन के समान प्रतीत होता है। इसमें कान के ऊपर पुट्ठों पर आक्रमण होता था, आंखें लाल हो जाती थीं, तेज बुखार होता तथा रोगी घंटों में ही मर जाता था। यदि कोई बच भी जाता तो अन्धा या बहरा हो जाता था।

प्रतिरोधात्मक कार्रवाई में असमर्थ थी। शहजादे आजमशाह को एक सेना के साथ नासिक की ओर भेज कर औरंगजेब के वजीर असद खां के बेटे को अपनी सेना के साथ कोंकण अभियान के लिये तैय्यार होने का आदेश दिया गया। भाग्यहीन आबू हुसैन का ख्याति प्राप्त सैनिक अधिकारी तकरीब खां को सेना की एक टुकड़ी के साथ कोल्हापुर विजय के लिये भेजा गया। उसे कोल्हापुर का फौजदार भी नियुक्त किया गया था। उस क्षेत्र में खुले मैदानों पर मुगल सेना का अधिकार था परन्तु पन्हाला गढ़ शक्तिशाली सैनिकों व रण सामग्री से परिपूर्ण अब भी मराठों के अधिकार में था। तकरीब खाँ ने अपने को कोल्हापुर आगमन के साथ ही अपनी योजनायें बनाने में व्यस्त हो गया। उसने अपने जासूसों से पता लगाया कि संभाजी अपनी सुरक्षा से लापरवाह, संगमेश्वर में रह रहा है। इस सूचना पर उसने अपने पन्हाला अभियान के स्थान पर संभाजी के ऊपर अचानक आक्रमण करके संगमेस्वर में ही बंदी बनाने की निर्भीक योजना बनायी।

अपने जासूसों द्वारा पक्की सूचना पा करके तथा घाटों के मार्गों से पूर्ण परिचित पथप्रदर्शकों की सहायता का प्रबन्ध करने के बाद उसमे अपने साथ अभियान में सक्रिय भाग लेने के लिये चुने सवारों व पैदल सैनिकों का प्रबन्ध किया। अन्त में अपने बेटे इखलास खाँ को भी अपने साथ लेकर उसने अपनी योजना को पूर्ण करने के ध्येय से कूच किया। इसके इस अभियान की सूचना मराठा जासूसों को उसके संगमेश्वर के एकदम नजदीक पहुंचने पर लगी। उन्होंने ने तुरंत संगमेश्वर में संभाजी को इसकी सूचना दी परन्तु अपने बिहार भवन में नशे में चूर संभाजी ने उनको डाँट दिया। उसने कहा कि यदि पुनः उन्होंने मुसलमानों के आगमन की अपमान भरी बातों को दुहराने का प्रयास किया तो वह उनकी नाकें कटवा देगा।

इखलास खाँ ने मराठों के होशियार होने से पहले ही अपने साथ सवारों की एक टुकड़ी के साथ गढ़ी का फाटक पार कर गया। मराठों को फाटक बन्द करने का भी अवकाश नहीं मिला। इखलास खां ने सामने पड़ने वाले मराठों को मार-काट कर अपने पिता के आने के मार्ग को सुरक्षित कर लिया।

सम्भाजी के अधिकांश साथियों ने भाग कर अपने प्राणों की रक्षा। परन्तु कुछ स्वामिभक्त मराठों ने जिनके साथ कलुशा भी था, प्राणपन से उसकी रक्षा का प्रबन्ध किया। परन्तु कलुशा स्वयम् एक तीर से घायल हो गया। उसके घायल होते ही दल के अन्य सदस्यों पर आसानी से अधिकार कर लिया गया। सम्भाजी ने वेश बदल कर अपनी जान बचाने का प्रयास किया परन्तु अपने कीमती अलंकारों को बदहवासी या भूल के कारण उतार न सका। परिणामतः वह पहचान लिया गया और कलुशा के अतिरिक्त २४ अन्य मराठा प्रमुखों के साथ मुगलों के हाथों पड़ गया।*

तकरीव खां ने अपने कैदियों को सुरक्षा पूर्वक कोल्हापुर पहुंचाकर अपनी इस सफलता की सूचना बादशाह को भेजी। उसे कैदियों को पूर्ण सुरक्षा के साथ शाही खेमे में पहुंचाने का आदेश मिला जो इस समय तक भीमा नदी के पास तुलापुर † तक आ पहुंचा था।

सम्भाजी को छुड़ाने का कोई प्रयास नहीं किया गया। उसके स्वयम के समर्थकों को भी उसका

---

* खफी खां, मराठा पान्डुलिपि।

† पूना से १६ मील उत्तर पूर्व भीमा और इन्द्राणी के संगम के पास स्थित गांव। इसका पहला नाम नगरगांव था। यहीं पर शाहजी ने मुरार पंत के हाथी को नाव में बैठा कर तौला था। एक नाव पर हाथी बैठाकर, दबी नाव के सतह पर आये हुये पानी पर निशान लगा था। पुनः उसी स्तर तक उसे पत्थर से भर कर दबाया गया। इसी तौल के आधार पर गाँव का नाम तुलापुर पड़ा।

दुर्व्यवहार उसके पक्ष में कुछ भी करने से रोकता था। संभाजी की चारित्रिक कमजोरियों ने मराठा प्रजा की राजभक्ति को कम कर दिया था। इसके अतिरिक्त उसकी सेना ने भी उसकी रिहाई के लिये किसी युद्ध में पड़ने से रोका। इसका प्रमुख कारण कदाचित सेनाओं के ढीले नियन्त्रण और जीर्ण अवस्था के कारण उत्पन्न असमर्थता थी। वे मुगलों का मुकाबला करने में पूर्णतः असमर्थ थे।

कैदियों के शाही खेमे के पड़ोस मे आ जाने पर उन्हें ऊंट पर सवार कर के औरंगजेब के सामने लाया गया। जिस समय सम्भा जी औरंगजेब के सामने ऊंट पर सवार कर के लाया गया। न तो उसके सिर पर पगड़ी थी और न उसके साथ चलने वाले बाजे गाजे वालोंका झुण्ड ही। शाही खेमे में उसके आगमन पर चारों ओर से, झुंड के झुंड सैनिक उसे देखने आये जैसे वह राजा न होकर कोई तमाशा हो। उसे औरंगजेब ने कोई सजा देने से पहले कैंप में ही कैद करने का आदेश दिया।

कुछ मुगल सर्दारों ने संभाजी को जीवन दान दे कर मराठों अधिकृत किलों पर आसानी से अधिकार कर लेने की सलाह दी। स्वयम् औरंगजेब ने यही निर्णय किया। परन्तु उसने एक शर्त लगा दी। अब संभाजी को होश आ गया था। अपने पिछले कार्यों और व्यवहारों पर उसे शर्म आ रही थी। पश्चाताप की अग्नि में जलते हुये संभाजी ने बस मृत्यु की कामना की। अपने ऊपर देख भाल करने वाले पहरेदारों से उसने अनेकों बार अपनी जान ले लेने को कहा और जवाब में किसी प्रतिक्रिया की अनुपस्थित में उन्हें बुरी बुरी गालियाँ भी देता रहा। उसकी इसी मानसिक अवस्था में औरंगजेब ने कहलवाया यदि तुम्हें मुसलमान बनना स्वीकार हो तो तुम्हें छोड़ा जा सकता है।' संभाजी ने भी अनुचरों से कहा—'जा कर अपने बादशाह से कह दो यदि वे अपनी लड़की की शादी मेरे साथ करने को तैय्यार हों तो मैं भी मुसलमान बनने को तैय्यार हो जाऊंगा। एक मुसलमान वह भी हिन्द के सम्राट के प्रति इससे अधिक अपमान की बात और क्या हो सकती है। सम्राट इस अपमान से जल उठा और इस प्रकार के अपमान करने वालों को, भविष्य में सावधान करने के लिये संभाजी को दिये गये दण्ड को एक उदाहरण बनाने का निश्चय किया। उसने लोहे की लाल गर्म, सलाखों से उसकी आँखें जलाने, जीभ को काट डालने व सिर को शरीर से अलग करने का आदेश दिया।

सन् १६८९ के अगस्त की शुरूआत में ही, औरंगजेब के आदेश के अनुसार, संभाजी को जनता के सामने नृशंसता पूर्वक मार डाला गया। उसके साथ उसका विश्वाशपात्र मंत्री कलुशा भी था। इस ब्राह्मण के विरुद्ध मुसलमानों व कुछ विरोधी मराठों द्वारा लगाये गये सारे अपराध भ्रमात्मक प्रतीत होते हैं। उसने कभी भी अपने दाता को धोखा देने का प्रयास नहीं किया और अन्त तक उसी के साथ रहा।

संभाजी के चरित्र को हमें और लिखने की आवश्यकता नहीं है। उसने अपने पिता की वीरता तो प्राप्त की परन्तु प्रशासन की साधारण योग्यता भी उससे दूर ही रही। हां दुर्भाव, द्वेष, कठोरता, और क्रूरता ने उसका साथ कभी नहीं छोड़ा, जिसने उसके सद्गुणों को भी समाप्त कर दिया था। उसका और लंबा जीवन उसके अपराधों की सूची को विस्तृत ही करता। मराठा जनता ने उसके पिछले तीन साल के अत्यधिक क्रूर और अत्याचार को भुला कर मुगलों द्वारा दिये गये नृशंस हत्याकांड के प्रति अपना रोष प्रकट किया और बिना भयभीत हुए उन्होंने अपनी सुरक्षा और शक्ति को संगठित करने का प्रमास किया।

बारहवां अध्याय

दक्षिण में भारी असफलता के साथ औरंगजेब की मृत्यु

[१६९०-१७०७]

राजाराम—रायगढ़ में प्रमुख मराठा प्रधानों का सम्मेलन—प्रहलाद नीराजी का प्रमुख योगदान—रायगढ़ का घेरा और पतन —संभाजी की विधवा स्त्री और पुत्र का पकड़ा जाना—पन्हाला का पतन—सन्ताजी घोरपड़े और धनाजी जाधव का महाराष्ट्र भेजा जाना— राजाराम का राज्यारोहण—जुल्फ़िकार खां को जिंजी पर आक्रमण करने का आदेश—दक्षिण की घटनाओं का क्रम, कारण और अवस्था—रायगढ़ और पन्हाला पर पुनः अधिकार—औरंगजेब—पुर्तगाली और अँगरेज—मुगलों पर सफल आक्रमण—जिंजी का पुनः नवीन घेरा—जिंजी का पतन—सतारा मराठों की राजधानी—परिवर्तन और उन्नति—जुल्फिकार खां का राजाराम पर प्रभाव पूर्ण आक्रमण—राजराम की मृत्यु और चरित्र—उसकी विधवा ताराबाई का संरक्षक होना—धनाजी जाधव के अधीन मराठे—मुगलों की कमजोरी मराठों की शक्ति—औरंगजेब द्वारा पूना का पड़ोस छोड़कर पूर्व की ओर बढ़ना—मराठों द्वारा अपने किलों पर पुनः अधिकार— औरंगजेब की मृत्यु और चरित्र ।

सोयराबाई को यन्त्रणापूर्ण मौत देने के बाद संभाजी ने अपने सौतेले भाई राजाराम को रायगढ़ में ही कैद कर दिया था परन्तु यह सिर्फ उसी हद तक जहाँ तक उसकी अपनी सुरक्षा का सम्बन्ध था । उसे किले में स्वतन्त्र विचरण का अधिकार था । उसकी प्रथम स्त्री की मृत्यु पर संभाजी ने राजाराम के दो अन्य विवाह कर दिये थे । एक का नाम ताराबाई तथा दूसरी का नाम राजसबाई था । ताराबाई मोहिते परिवार की थी तथा राजसबाई कागुल के घाटगे परिवार की कन्या । राजाराम ने रायगढ़ में संभाजी की प्रिय पत्नी येसूबाई से अपना मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाये रक्खा था । वह अपने पुत्र शिवाजी के साथ रायगढ़ में ही रहती थी ।

सम्भाजी की मृत्यु का समाचार मिलते ही रायगढ़ में मराठा सर्दारों का सम्मेलन हुआ । उन्होंने येसूबाई को सलाह दिया कि वह अपने पुत्र शिवाजी की अल्पावस्था में राजाराम को संरक्षक घोषित कर दे । शिवाजी जिसे पीछे शाहू के नाम से जाना गया, इस समय सिर्फ छः वर्ष का बालक था । उपर्युक्त व्यक्तियों के अलावा इस सम्मेलन में जनार्दन पंत हनुमन्ते, प्रहलाद नीराजी, * रामचन्द्र पंत, बावरीकर खन्दू बल्लाल चिटनिस, भी उपस्थित थे ।

प्रहलाद नीराजी में विषय परिस्थिति पर काबू पाने की विलक्षण प्रतिभा थी । अपनी इसी कुशलता के परिणाम स्वरूप इस सम्मेलन में उन्होंने अपने सम्पूर्ण ज्ञान के कारण अपना प्रमुख स्थान बना लिया । उन्होंने अपनी योजनाओं को अपने साधनों के सामर्थ्य के अनुसार पूर्ण मतैक्य और बुद्धिमानी के साथ संपादित किया । उन्होंने औरंगजेब की शक्ति और सामर्थ्य का पूरा विश्लेषण किया और उससे अपनी शक्ति की तुलना की तथा अपने सीमित खजाने, अनुशासनहीनता, किलों में सुरक्षात्मक भंडार की कमी तथा उनके पतन की कल्पना तक करने के बाद अपनी स्थिति से जान

---

* यह स्वर्गवासी न्यायाधीश प्रधान का पुत्र था ।

बचाने की योजनाओं का रूप स्थिर किया। उनका पहला कार्य यह हुआ कि किलों में आवश्यक वस्तुओं के रिक्त भन्डार को भर दिया गया तथा उनमें सुरक्षात्मक दृष्टि से आवश्यक सेना के रक्खे जाने का प्रबन्ध किया गया। शिवाजी के समय मे क़िलों की सेना को, किले के आस-पास की भूमि पर जो पुश्तैनी अधिकार दिये गये थे उसका महत्व इसी समय पूर्णरूप से जाना गया, अतः इस नियम को सावधानी पूर्वक स्थिर रखने के लिए आदेश निकाले गये तथा किले के नायकों को अपनी निगरानी में किले में खाद्यान्नों को अधिकतम सम्भव मात्रा में जुटाने तथा किलों के आस-पास के संरक्षित चरागाहों से घोड़ों के लिये घासों को कटवा कर किले में सुरक्षित रखने के आदेश दिये गये। इस प्रबन्ध का मुख्य कारण यह था कि यदि घोड़ों के भोजन आदि का सामान किसी अड़चन के कारण न हो सके तो घोड़े मर न जायें। शिवाजी द्वारा प्रचालित सुरक्षा के इस साधन का महत्व संभाजी के काल में जाना जा चुका था।

यह निश्चय किया गया कि राजाराम को हर समय किसी एक किले में न रह कर इधर-उधर घूमते रहने देना चाहिये। इससे मुगलों का ध्यान बंटता रहेगा। यह भी निश्चय किया गया कि यदि उसकी सुरक्षा महाराष्ट्र में संभव न हो तो आवश्यकता पड़ने पर वह कारोमन्डल स्थित जिंजी को अपना आवास स्थान बनाये।

येसूबाई और शाहु रायगढ़ में रहे तथा राजाराम अपने परिवार के साथ विशालगढ़ को चला गया। अन्य मराठा सर्दारों को यथा अवसर कार्य करने का आदेश दे दिया गया परन्तु यह निर्देश दिया गया कि वे अपने सवारों के साथ राजाराम के आस-पास बने रहें और उससे अपना सम्बन्ध बनाये रक्खें।

मुगल सेना इतिकात खां के अधीन कोंकण अभियान वाली सेना बिना अच्छा मौसम आये वहां आक्रमण नहीं कर सकती थी, अतः उसने पहले रायगढ़ पर ही आक्रमण किया परन्तु, यथा साध्य सिद्दियों ने भी मुगलों की सहायता की, मुगल सेना महीनों अपने-अपने प्रयास में असफल रही। अपने इस प्रयास में इतिकात खां तब तक सफल न हो सका जब तक कि सूर्याजी पीसल नामक एक मराठा अधिकारी उनसे मिल नहीं गया। उसने मुगल सेनापति से वाई की अपनी पुश्तैनी देशमुखी वापस पाने का आश्वासन पाने पर मावलियो के एक दल के साथ उसकी सहायता करने का वादा किया। मुगल सेनापति की सहमति पर उसकी सहायता से रायगढ़ का पतन हुआ। * इसके पश्चात् सूर्याजी मुगल सेना से जा मिला। उसकी देशमुखी के अधिकांश क्षेत्र सिद्दी के अधिकार में थे जिन्हें उसने सूर्याजी को वापस लौटा दिये।

संभाजी की विधवा स्त्री अपने पुत्र के साथ इतिकात खां के हाथों आ पड़े, जिन्हें उसने शाही खेमे में पहुँचा दिया। अपनी इस सफलता से उसने बादशाह को खुश कर दिया, जिसने खुश हो कर उसे ज़ुल्फ़िक़ार खां की उपाधि प्रदान किया। येसूबाई को तथा उसके नन्हें शिशु शाहू को मुगल शाहजादी की मित्रता प्राप्त होगई तथा स्वयम् सम्राट भी संभाजी के नन्हें बेटे के प्रति उदार हो गया। उसने उसको शाहू या साव कह कर पुकारा जिसका अर्थ ईमान्दार होता है। अपने जीवन में शायद पहली बार बादशाह ने इस प्रकार की मानवोचित उदारता का परिचय दिया था।

---

* जी० यस० सरदेगाई के अनुसार सूर्याजी पीसल ने जो वाई का देशमुख था तथा शिवाजी की सेवा में कार्य करता था अपनी पुश्तैनी देशमुखी पाने की लालच में रायगढ़ किले का फाटक खोल दिया, जिसके कारण उसका पतन हुआ।

रायगढ़ के पतन के बाद मुगल सेना की टुकड़ियों ने मीरज और पन्हाला की ओर बढ़ना शुरू किया। उनके सामने इन किलों का समर्पण होते ही मराठा प्रधानों ने मुगलों को किसी प्रकार का संदेह होने से पूर्व ही राजाराम को जिंजी भाग जाने की सलाह दी। सत्ता प्राप्त करते ही राजाराम ने शिवाजी के समान ही अपने सरकार के विभागों का निर्धारण करने का प्रयास किया था। प्रहलाद नीराजी ने उनको इस प्रकार के विभाग निर्धारण की सलाह दिया था। उन्हीं की सलाह पर, जिंजी जाने से पूर्व मराठा साम्राज्य की सुरक्षा के लिये किसी को पेशवा के स्थान पर नियुक्त करने का निश्चय किया गया। परिणाम स्वरूप नीलूपन्त मोरेश्वर को शिवाजी काल के पेशवा के स्तर पर अधिकार के साथ नियुक्त किया गया। नीलूपन्त ने जिंजी को राजाराम के लिये सुरक्षित रखकर अपने लिये एक विशिष्ट स्थान बना लिया था। रामचन्द्र पंत को हुकूमत पनाह की उपाधि से विभूषित करके विशालगढ़, रांगना तथा उस तरफ के अन्य किलों और पुराने प्रान्तों का सम्पूर्ण प्रशासन प्रबन्ध तथा सुरक्षात्मक प्रबन्ध सौप दिया गया। रामचन्द्र पन्त की सहायता के लिये परशुराम—त्र्यम्बक नामक ब्राह्मण को नियुक्त किया गया। परशुराम कनई का कुलकर्णी था। कुलकर्णी से उच्चस्तरीय नेताओं के स्तर तक आने में उसकी बौद्धिक क्षमता का प्रमुख स्थान था। अपनी इस बौद्धिक क्षमता तथा प्रशासनिक योग्यता एवम् उत्साह का परिचय, उसने अनेक स्थानों पर दिया था। सिधो जी गूजर को सरखेल की उपाधि देकर मराठा जलबेड़े एवम् तटीय बन्दरगाहों का प्रधान बना दिया गया। उसको समुद्री किनारों की प्रतिरक्षा के सम्पूर्ण प्रबन्ध का अधिकार सौंप दिया गया। गूजर की सहायता के लिये कान्होजी आंग्रे को नियुक्त किया गया। कान्होजी के पिता ने शिवाजी के समय में मराठा जलबेड़े के अधिकारियों में अपना प्रमुख स्थान बना लिया था। बिखरे मराठा मान्कुरी लोगों के साथ औपचारिक वार्ता करके मुगलों के विरुद्ध सम्मिलित रूप से खड़ा करने का प्रयास करके अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया। यद्यपि उनके इस प्रयास का परिणाम तुरन्त तो कुछ नहीं हुआ परन्तु अन्त में मराठा सर्दारों को एक होने में नीराजी के इसी प्रयास का हाथ था। महादेव जी पन्सम्बल को सेनापति बना करके उसे महाराष्ट्र में ही छोड़ दिया गया। महादेव जी नायक का सिलेदारों में काफी सम्मानपूर्ण स्थान था। महादेवजी ने विभिन्न सर्दारों को अपने घुड़सवारों सहित महाराष्ट्र के गांवों में चले जाने का प्रस्ताव रक्खा। उनको आदेश दिया गया कि जब भी उन्हें भगवे झंडे को दिखाकर इकट्ठा करने का संकेत किया जाय वे अपनी-अपनी सेनाओं के साथ मौके पर इकट्ठे हो जायें। संकेत के लिए निशान क्या था इसका विवरण स्पष्ट नहीं है परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि भगवा झंडा फहरा कर उन्हें इकट्ठा करने का प्रबन्ध किया गया था।

अपने विभिन्न किलों में बार-बार आ-जाकर दुश्मनों को भ्रम में डालने के बाद नायक रांगना में आ गया। रांगनागढ़ में उसके कुछ विश्वस्त गुप्तचरों व मित्रों को पहले से ही इकट्ठा होने का आदेश मिला था उन्हे लेकर राजाराम जिंजी भागने को तैयार हुआ, अपने को बनियों के वेष में छिपाकर यह दल सूंड़ा की ओर आगे बढ़ा। आगे बढ़ कर सूंड़ा के विपरीत किनारे पर जा पहुँचे। राजाराम के इस दल में ७५ आदमी थे। दल के प्रमुख व्यक्तियों में प्रहलाद नीराजी, सन्ताजी धोरपड़े, धनाजी जाधव, तथा खन्डेराव दाभाड़े प्रमुख थे। यद्यपि राजाराम के इस जिंजी प्रयाण को अत्याधिक गुप्त रखने का प्रयास किया गया था परन्तु औरंगजेब के गुप्तचरों को इसका पता चल गया। सम्राट ने सूचना पाते ही बीजापुर कर्नाटक के फौजदार को तुरन्त, छत्रपति को पकड़ने का आदेश दिया गया। कासिम खां ने अपने सहायकों तथा मित्रों को भी अपने साथ ले लिया तथा सक्रियता से अपने प्रयास में लग गया। बंगलौर के पास तो राजाराम अच्छी खासी मुसीबत में पड़ गया था। किसी ने उसको अपने सेवक से

पांव धुलाते देख कर उस पर रोक किया । परिणामस्वरूप उनको गिरफ्तार करने का एक जाल बिछाया गया परन्तु खण्डो बल्लाल की पैनी दृष्टि ने इस जाल को देख लिया । मुगलों का जाल विफल कर देने के लिये खण्डो बल्लाल ने, राजाराम, सन्ताजी घोर पड़े तथा धनाजी जाधव को एक मार्ग से आगे भेज स्वयम् पूरे दल के साथ भोजन बनाने में व्यस्त हो गये । राजाराम को साथ के दोनो व्यक्तियों के साथ एक मार्ग से आगे भेजने के बाद ही प्रहलाद नीराजी तथा खन्डेराव दाभाड़े को दूसरे मार्ग से आगे बढ़ने का आदेश मिला ।

खण्डो बल्लाल का अनुमान सही निकला । शीघ्र ही वे मुगल सैनिकों से घिर गये । उनको सन्देह में पकड़ कर उनकी जांच की गई और मारा-पीटा भी गया । परन्तु खण्डो बल्लाल ने उनको पहले ही एक कहानी बता दिया था । विविध प्रकार के प्रयत्न करने पर भी जब सभी को एक प्रकार की कहानी सुनाया तथा किसी भी मराठी भगोड़े के प्रति अपनी अज्ञानता प्रकट किया तो मुगलों ने इन्हें छोड़ने का ही निश्चय किया । छूटते ही ये पुनः राजाराम से जा कर मिल गये जो सुरक्षित जिंजी पहुँच गया था ।

जिंजी पहुँचने पर महाराष्ट्र से जो प्रमुख महत्वपूर्ण समाचार मिला वह सेनापति महादेव जी नायक की मृत्यु का था । इस समाचार ने यद्यपि उन्हें काफी परेशानी में डाल दिया था । कारण उनके मरते ही सन्ताजी घोरपड़े को सेनापति के रूप में कार्य करने का अवसर मिला, जिसने अपनी योग्यता तथा रण कौशल से मराठों के हाथ से जाती श्री को वापस ला बैठाया ।

राजाराम ने अपने को सुरक्षित पाते ही अपने पिता द्वारा प्रचारित शासन पद्धति को पुनः जीवित करने का प्रयास किया । आरम्भ में तो यह प्रायः नहीं के समकक्ष ही रहा परन्तु अन्त में इसके सुपरिणाम स्पष्ट दीख पड़े । इसी के कारण मराठा छत्रपति के दर-बदर घूमते रहने पर भी महाराष्ट्र का प्रशासन डगमग न हो पाया । यही नहीं अष्ठ प्रधानों की बुनः स्थिति से जनता को शिवाजी की शासन-व्यवस्था के समान ही राजाराम की व्यवस्था भी लगी ।

राजाराम द्वारा नियुक्त प्रधानों के नाम निम्नलिखित है ।

१—नीलूपंत मोरेश्वर—पेशवा ।
२—जनार्दन पंत हनुमन्ते—अमात्य ।
३—सकराजी नारायण खण्डेकर—सचिव ।
४—रामचन्द्र त्र्यम्बक—मंत्री ।
५—सन्ताजी घोरपड़े—सेनापति ।
६—महादेवजी गदाधर—सामंत
७—नीराजी रावजी—न्यायाधीश
८—श्रीकशचार्य—पन्डित राव ।

पेशवा के पद पर मोरेश्वर की नियुक्ति कर दी गई परन्तु इन समस्त नियुक्तियों के प्रणेता प्रहलाद नीराजी को स्वयं इन समस्त पदों में से कोई पद नहीं मिला । उनकी सूझ और सुझाव के कारण मराठा साम्राज्य में उनका महत्व अत्याधिक बढ़ गया था । परिणामतः उनके कार्यों के अनुरूप ही एक नये पद का प्रबन्ध किया गया । उस नये पद को प्रतिनिधि के नाम से पुकारा गया । प्रतिनिधि छत्रपति की अनुपस्थिति में उनका प्रतिनिधित्व करता था । प्रहलाद जी उपाधियों को बहुत पसन्द करता था । शिवाजी के समय में भी उसे एक बार मराठा राजा का प्रतिनिधि बना कर भेजा गया था । उस समय उनको शिवाजी के प्रतिनिधि के रूप में जो विशाल अधिकार उन्हें प्राप्त हुये थे वे, अब भी याद थे । अतः अपने इस नये पद से उनकी मनोवांछित इच्छा पूरी हो गई । सन्ताजी घोरपड़े भी आपसी परिवार का सर्वाधिक वय प्राप्त सदस्य था अतः उसे भी सेनापति के पद के अतिरिक्त भी नाना प्रकार की उपाधियों से विभूषित किया गया । उसे हिन्दू राव मामलाकात की उपाधि मिली । सेनापति के लिए प्रयुक्त पताके में भी सुधार किया गया । सेनापति को दिया गया यह नवीन झंडा सुनहला व तिकोना

था । मुगल सेना के प्रधान सेनापतियों के समान ही उसे नौबतखाना, जिनमे भारी ढोलें व अन्य उच्चकोटि के सामरिक व सामाजिक महत्व के वाद्य यन्त्रों की भरमार रहती थी, रखने का आदेश मिला हुआ था । इसके अतिरिक्त भी सेनापति के पद के अनुरूप सुविधाओं का उपयोग करने की उसे पूर्ण स्वतंत्रता थी । धन्ना जी जाधव को जैसिंह राव की उपाधि प्रदान की गई । महादेव नायक की मृत्यु पर सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव को महाराष्ट्र भेज दिया गया । इन दोनों मराठा सेनानियों को मराठा सैनिकों को इकत्रित करके मुगल क्षेत्रों को लूटने खसोटने व तहस-नहस करने का आदेश मिला था ।

राजाराम ने नियमानुसार सिंहासन पर बैठना आरम्भ किया तथा उसकी नवनिर्मित सरकार ने पूर्ण कुशलता के साथ कार्य करना आरम्भ किया ।* अपने इस सुनियोजित प्रशासन के आरम्भ होते समय उसने अपने कर्मचारियों तथा प्रमुख हिन्दू सर्दारों व जागीरदारों में सोने के कड़े, वस्त्रालंकार, तथा इनाम और जागीरों का गुप्त रूप से वितरण किया गया । मजे की बात तो यह है कि इस अवसर पर दी जाने वाली जागीरों में वे जागीरें भी प्रदान की गई थी जो या तो मुगलों की थी या उनके अधिकार में थे । इन जागीरों पर आधिकार होने के बाद कुछ को उनके पूर्वनिर्देशित जागीरदारों को दे दिया गया तथा जिन जागीरदारों ने इन क्षेत्रों को हस्तगत करने में सहायता नहीं दी थी उन्हे इन अधिकृत जागीरों से वंचित कर दिया गया । इस प्रकार के इनाम और जागीर, यद्यपि हास्यास्पद प्रतीत होते हैं परन्तु मराठा राज्य के प्रसार के प्रति प्रमुख हिन्दू सर्दारों की रूचि बनाये रखने में बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुये । इसके अतिरिक्त भी जिंजी में सक्रिय सहयोग देने वाले व्यक्तियों में वृद्धि भी होती रहती थी ।

औरंगजेब के जासूस उसको राजाराम की इन प्रशासनिक व्यवस्थाओं के बारे में बताया करते थे । अतः जैसे ही उसने राजाराम के प्रशासन को शिवाजी के ढर्रे पर चलते देखा, उसके कान खड़े हो गये । उसने इतिकात खां या जुल्फिकार खां को भारी सेना के साथ राजाराम को समाप्त करने के उद्देश्य से भेजा । उसको इस बात का पूरा विश्वाश था कि जुल्फिकार खां अपने पिछले कारनामों में एक विजय और जोड़ लेगा । परन्तु उसका यह विश्वाश भ्रामक ही सिद्ध हुआ कारण मराठों में अब पुनः सांप की सी गति और कुशलता व्याप्त हो गई थी । इसी अवसर पर नासिक तथा बीदर में मराठा टुकड़ियां लूट पाट में व्यस्त थीं । मुगलों को मराठों का भ्रम हुआ, वास्तव में ये सैनिक सवार टुकड़ियां बीजापुर तथा गोलकुंडा के सुल्तानों की थी, जिन्हे सम्राट औरंगजेब ने अपने लिये अनावश्यक समझ कर मुअत्तल कर दिया था । दूसरी ओर शिवाजी के साथ के अनुभव प्राप्त मराठे सैनिक अपने घोड़ों के साथ सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव के पीछे आ जुटे । इन दिनों यह दोनों सेनापति मराठों के सर्वाधिक जनप्रिय नेता थे । पुराने स्तर पर सेना का संगठन करने के लिये सन्ता जी के सामने सबसे बड़ी समस्या आर्थिक समस्या थी । इस समस्या को दूर करने में सन्ता जी कभी भी पूर्ण सफल नहीं रहा । इस समस्या के समाधान में उसे रामचन्द्र पंत से विशेष सहायता मिली ।

सन् १६९१]

---

* कुछ मराठे जो शासन पर बड़े भाई के ही स्वत्वाधिकार के समर्थक हैं, राजाराम के सिंहासनाधीन होने की बात पर अस्वीकृति दर्शाते हैं । उनका कहना है कि दरअसल वह सिंहासन के समीप एक गद्दी पर बैठता था तथा वास्तव में, मुगलों के हाथों कैद साहू के संरक्षक के रूप में कार्य करता था ।

पाइनघाट की अरक्षित अवस्था में धनाजी तथा सन्ता जी के महाराष्ट्र में बने रहने का महत्व प्रहलाद जी समझते थे। उनका अनुमान था कि इस स्थिति में वे जिंजी की सहायता अति प्रभावपूर्ण ढंग से कर सकते थे। मुगलों का मार्ग अवरुद्ध करने के लिये नीराजी ने एक मुसलमान अधिकारी के साथ गठबन्धन किया। यह अधिकारी भूतपूर्व बीजापुर राज्य की सेना में था। उसने निर्देशित ढंग से मुगलों को रोकने का असफल प्रयास किया तथा अन्त में उन्हीं से मिल गया।

जुल्फिकार खां की सेना में मराठों की काफी सेना थी। मराठे पैदल व सवार दोनों थे। पैदल सेना के साथ रायगढ़ पतन में सहायक मावली थे * तथा सवार सेना में राजाराम के नजदीकी रिश्तेदार थे। सिरके वंश के दो व्यक्ति धनाजी तथा रानूजी जो संभाजी के अत्याचार से त्रस्त होकर मुगलों से जा मिले थे, इस समय जुल्फिकार खां की सेना के साथ थे। अपने अच्छे कार्यो के कारण उन्होंने सेना में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना रक्खा था। अन्नाजी दत्तो की मौत में वे मराठों पर बिगड़े हुये थे परन्तु अब राजाराम के शासक होने पर अवश्य ही उनमें कुछ सदभावनात्मक प्रवृतियों का विकाश हो चला था। जुल्फिकार का सहायक खान पन्नी दक्षिण का एक प्रसिद्ध सैन्य अधिकारी था जो अपनी शराब खोरी के लिये अधिक प्रसिद्ध था।† जिंजी का किला अनेकों पहाड़ियों के पड़ोस में पूर्ण किले बन्दी तथा युद्धसामग्री से परिपूर्ण था। इसकी परिधि या घेरा कई मीलों का है। मुगलों को इस किले की पूर्ण और सशक्त घेरे तथा संचारबन्दी के लिये बहुत भारी सेना की आवश्यकता थी जो उन्हे एक बार में कभी नहीं मिल सकी। अत: शीघ्र ही जुल्फिकार खां को पता चल गया कि अपनी इस सेना के साथ वह कभी जिंजी न प्राप्त कर सकेगा। अतः उसने अपनी सेना में पुनः नयी भर्ती की आवश्यकता मुगल सम्राट को लिख भेजी। थोड़ी सी सेना जिंजी पर ही छोड़ अपनी मुख्य सेना के साथ दक्षिण की ओर बढ़ गया तथा तंजौर व त्रिचनापल्ली के राजाओं से कर वसूल किया।

परन्तु जुल्फिकार खां की अधिक सैन्य की मांग को इतनी शीघ्रता से पूरा भी नहीं किया जा सकता था। इसका प्रमुख कारण दक्षिण की असाधारण स्थिति थी जिसने मुगलों की इस भारी सेना को बुरी तरह फंसा रक्खा था। सम्राट आसानी से सेना एक जगह से हटा कर जिंजी अभियान के लिये नहीं भेज सकता था, कारण इस अदल-वदल से, मुगलों की समस्त दक्षिणी विजयों पर पानी फिर सकता था। इसी अवसर पर काकिनखेड़ के नायक के विस्फोटक कार्यो से मुगलों का भारी अहित हो रहा था। अतः उसके विरोधी कार्यों को समाप्त करने के लिये सम्राट ने शाहजादे कामबख्श तथा रुहुल्ला खां को भेजा। नायक के नगर को बर्बाद करने का उनको स्पष्ट आदेश मिला था। परन्तु उनको आश्चर्य के साथ घेरा डालने पर विवश होना पड़ा। मुगलों ने सोचा था कि वे आसानी से नायक को पराजित करके अपनी मनोवांछित इच्छा पूर्ण कर लेंगे। इसी कारण उन्होंने अपनी तैयारी भी पूर्ण सावधानी के साथ नहीं किया। परिणाम स्वरूप उनको अपने विरोधी की प्रतिरक्षापंक्ति को तोड़ने में सफलता नहीं मिली।‡

महाराष्ट्र के लिये रामचन्द्र पंत की उपयोगिता उतनी ही थी जितनी जिंजी के लिये प्रतिनिधि

---

* वही मावली जिन्हे लेकर सूर्याजी इतिकाद खां से जा मिला था—अनुवादक

† मेरे अनुमान से यह कर्नोल के नवाब के बंश का था।

‡ खफी खां तथा स्काट

सन् १६९२]

प्रहलाद की । उसको परशुराम त्र्यम्बक के रूप में एक योग्य सहायक भी प्राप्त हो गया था। त्र्यम्बक द्वारा शिवाजी कालीन किलों की प्रबन्ध व्यवस्था को पुन: जीवन प्रदान करने तथा किलों में प्रशिक्षित सैनिकों या गैरिसन * की नियुक्त व प्रबन्ध में उनका महत्वपूर्ण हाथ है। उन प्रबन्धों के कारण सैनिकों व अधिकारियों में अवर्णनीय उत्साह व्याप्त हो गया। रामचन्द्र पंत हमेशा इधर-उधर घूमता रहता परन्तु सतारा को अपना केन्द्र बनाये रखता था। अपने मुख्य लेखक शंकरजी नारायण खण्डेकर के द्वारा उसने मराठा सेना की गतिविधियों पर ही नहीं, लगान व्यवस्था व आर्थिक समस्याओं को भी सुलझाने का प्रयास किया। इससे पंत की प्रशासनिक कुशलता का पता लगता है। उसकी इसी कुशलता ने परिणाम स्वरूप मराठों की अकर्मण्यकता को समाप्त प्राय कर दिया। उसने सन्ताजी तथा धनाजी के जिंजी से आगमन के पूर्व ही अपनी सैन्य संख्या को आवश्यकतानुसार बढ़ा लिया था तथा मुगलों की अनेकों शक्तिशाली टुकड़ियों को फोड़ लिया था। अत: जैसे ही सन्ताजी तथा धनाजी सतारा आये, रामचन्द्र पंत ने वाई के फौजदार के ऊपर अचानक हमला करके उसे अपने अधिकार में कर लेने का प्रस्ताव रक्खा। सन्ताजी ने सहर्ष इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तथा पंत की योजना को ध्यानपूर्वक सुन कर उसके अनुसार कार्य करने को तत्पर हो गया। सुनियोजित ढंग पर इस योजना को कार्यान्वित किया गया। आश्चर्य चकित फौजदार अपनी सेनाओं के साथ उनका बन्दी हुआ। सन्ताजी तथा धनाजी ने वहाँ पर मराठा थाना कायम किया। रामचन्द्र पंत सरीखे योजना निर्माता को सन्ताजी तथा धनाजी जैसे समर्थक तथा कर्मठ योद्धा मिले। रामचन्द्र ने लोगों को इन दो सेनापतियों का दृष्टान्त देकर, उनके साथ चलने की प्रेरणा दी तथा उन्हें अपनी सेनाओं के साथ मुगल क्षेत्रों से पूर्व निश्चित चौथ तथा सरदेशमुखी वसूलने का आदेश दिया। इस वसूली में सफलीभूत होकर मराठा अधिकारी उत्साह से भर उठे और उन्होंने अपने घोड़ों के लिये घास दाने के रूप में एक अन्य वसूली का सूत्रपात किया। जिसके पास घास दाना नहीं होता था उन्हें उसके एवज में रुपये देने पड़ते थे। इस प्रकार एक अनोखी सेना का सूत्रपात हुआ जिनके प्रमुख नेता पवार, थोराट तथा अतावले वंश के थे। मराठा दर्बार से सम्मान-जनक उपहार तथा उपाधियां इन तीनों सर्दारों को प्रदान की गई। पवार को विश्वास राव की उपाधि तथा थोराट को दिनकर राव व अतावले को शमशेर बहादुर की उपाधियां प्रदान की गई। वे मराठा सेना में भारी संख्या में काम करते थे। इनकी जाति के अनेक व्यक्तियों ने आगे चलकर मराठा साम्राज्य में अच्छा पद प्राप्त किया। उच्चपद प्राप्त करने वालों में से अधिकांश ने अपनी सेवा पंत के अधीन ही आरम्भ की थी।

शंकर जी नारायण जिनका वर्णन हमने अभी-अभी एक कुशल कारकून या सहायक के रूप में किया है, को वाई जिले का प्रधान बनाया गया। वाई का अधिकारी होते ही उन्होंने पुन: राजगढ़ पर अधिकार कर लिया। रायगढ़ के पतन के बाद राजगढ़ को मुगलों के हाथों आत्म-समर्पण कर देना पड़ा था। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य परशुराम त्र्यम्बक ने पन्हालागढ़ पर पुन: अधिकार प्राप्त करके किया।

इसी समय सन्ताजी ने मीरज के मुगल सैन्य अधिकारी के ऊपर आक्रमण किया। वाई के

---

* गैरिसन अंगरेजी शब्द है। इसका अर्थ किलों की रक्षा करने वाले सैनिक है। हिन्दी में एक शब्द में इसका अर्थ स्पष्ट नहीं होता। अतः इसे लिखने में मैं अनुचित नहीं समझता। पोलीगर के समान ही इसका प्रयोग उचित है—अनुवादक

समान ही वहाँ भी उसके आश्चर्य-जनक धावे का विरोध करने वाला कोई नहीं था, परिणामतः मीरज पर भी भगवा झंडा लहरा उठा। सन्ताजी घोरपड़े की इस विजय से खुश हो कर रामचन्द्र ने उसे वाई की देशमुखी सौंप दी। रामचन्द्र को इस प्रकार की जागीरें व इनाम आदि देने का अधिकार प्राप्त था। सन्ताजी तथा धनाजी ने अपनी सेना बढ़ाने का प्रयास किया। जैसे ही उनकी सेना आवश्यक स्तर तक आ पहुँची उन्होंने जिंजी की समस्याओं के समाधान की ओर ध्यान दिया। प्रथम समस्या थी मुगलों का ध्यान जिंजी से हटाना। इसलिये अपनी सेना के साथ वे गोदावरी के पास जा निकले। अराजकता के इस काल में गोदावरी का क्षेत्र ही ऐसा था जहाँ की जनता को किसी अल्पता का सामना नहीं करना पड़ रहा था। घोरपड़े तथा धनाजी की सेना ने इस धनधान्यपूर्ण क्षेत्र की लूटपाट शुरू कर दी। उन्होंने प्रत्येक संभव वस्तु को लूटा और प्रत्येक सुन्दर वस्तु को विध्वंश किया। दिल्ली से आनेवाली अनेकों कुमकों को उन्होंने काट डाला तथा सामग्रियों पर अपना अधिकार कर लिया। शीघ्र ही मुगल सम्राट को, इनके खिलाफ सेनायें भेजनी पड़ी। पहले तो सम्राट ने इन्हें साधारण लुटेरों का गिरोह समझा, इसी कारण उसने उनके विरुद्ध भारी सेना भेजने की आवश्यकता नहीं समझी। परन्तु जब उसकी एक नहीं तीन-तीन टुकड़ियों को मराठों से परास्त होकर वापस लौटना पड़ा तब उसे अपना विचार बदलना पड़ा। सम्राट द्वारा भेजी गई सेना की तीनों टुकड़ियों को पराजित करने के बाद उनके सेनापतियों को भी मराठों ने कैद कर लिया था, जिनकी स्वतन्त्रता के लिये सन्ताजी ने मुगलों से हरजाने के रूप में धन वसूल किया। सन्ताजी ने सेनापतियों को गिरफ्तार करके हरजाना वसूल करने के कारण मराठा सेनपतियों में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था। प्रमुख व्यक्तियों को बन्दी बना कर उनकी स्वतन्त्रता के मूल्य के रूप में भारी मात्रा में धन वसूल करना शिवाजी की नीति का एक प्रमुख अंग था। परन्तु इस नीति को व्यवहार में लाने का श्रेय सन्ताजी को ही मिला। शिवाजी के हाथों इस नीति के व्यावहारिक पक्ष को आंशिक सफलता ही मिल सकी। इस असफलता का प्रमुख कारण यह था कि शिवाजी प्रायः ही बड़े आदमियों को बन्दी बना कर उन्हें ससम्मान मुक्त कर देने में अपने को विशेष गौरवान्वित अनुभव करते थे परन्तु मध्यम वर्ग के बन्दियों से धन वसूल करने में उन्हें विशेष सिद्धहस्त समझा जाता था। सन्ताजी ने शिवाजी के समय के अनुशासनिक नियमों को पुनः व्यवहार में लाना शुरू किया। अपने इस प्रयास में वह काफी सीमा तक सफल भी हुआ। उसने अपने अधीन अधिकारियों तथा सैनिकों के अच्छे आचरण पर हमेशा ध्यान रखता था तथा मराठा वतनदार सैनिकों को हर क्षेत्र में प्राथमिकता प्रदान करने का प्रयास करता था। धनाजी सन्ताजी के समान कठोर न था, इसी कारण तथा कुछ अन्य कारणों से वह सन्ताजी के समान कुशल सेनापति भी न था। परन्तु अपने व्यवहार के कारण वह घोरपड़े से अधिक प्रसिद्ध था। *

सन् १६९३]

जिस समय उत्तरी क्षेत्रों में इस प्रकार की घटनायें घटित हो रहीं थीं सम्राट ने अपना खेमा भीमा नदी के किनारे ला खड़ा किया। उसने अपनी भविष्य की सारी योजनाओं को खटाई में डाल कर भी जिंजी अभियान में जुल्फिकार खाँ की सहायता करके जिंजी की शक्ति को समाप्त कर डालने का दृढ़ निश्चय किया। वज़ीरे आज़म की निगरानी में शाहजादे कामबख्श को जुल्फिकार खाँ की सहायता करने का आदेश मिला। शाहजादा इस समय रुहुउल्ला खाँ के साथ काकिनखेड़ में घेरा डाले पड़ा था। जिंजी जाने का आदेश पाते ही शाहजादा रुहुउल्ला खां को वहीं छोड़ जिंजी की ओर बढ़ा। काकिनखेड़

---

* खफी खां तथा स्काट का दक्षिण

का घेरा भी मुगलों को हटा लेना पड़ा। जिंजी के मार्ग में ही वजीर भी अपनी सेना के साथ-साथ शाहजादे से आ मिला। जब यह सेना पाइनघाट के पास पहुँची मराठा सवारों की टुकड़ियों ने उन पर छिटपुट आक्रमण करके उनकी प्रगति को निलम्बित करने का पूरा प्रयास किया। परन्तु वे मुगलों के बढ़ाव को रोकने में कृतसंकल्प नहीं हुये और अन्ततः पाइन घाट पर मुगलों का अधिकार हो गया।

सन् १६६४]

जुल्फिकार खां को शाहजादे के आगमन से कोई प्रसन्नता न हुई। इसका प्रमुख कारण शाहजादे द्वारा सेनापतित्व धारण करना। जुल्फिकार खां की बात दूर जाने दीजिये, स्वयम् वजीर असद खां को शाहजादे की यह प्रमुखता बुरी लगी। शाहजादे के प्रति, उसकी प्रमुखता के कारण वजीर की जलन का प्रमुख कारण यह था कि वजीर को इस वात का पूरा विश्वास था कि सम्राट ने अपनी प्रिय बेगम * के कहने में आकर शाहजादे को जिंजी अभियान की प्रमुखता सौंप दी थी। वजीर असद खां को पूरी आशा थी कि जिंजी अभियान में सम्राट उसी को अभियान की प्रमुखता सौंपेंगे, कारण हाल ही में उसके लड़के ने रायगढ़ विजय में सफलता पाई थी।

मराठा मंत्रियों में, प्रत्येक ब्राह्मण में पाई जाने वाली दूरदर्शिता वर्तमान थी। उन्होंने मुगल सेनापतियों के मनोभावों को समझने में भूल नहीं की और अवसर का पूरा लाभ उठाने को तत्पर हो गये। राजाराम के कूटनीतिक सहायकों ने वजीर असद खाँ तथा जुल्फिकार खां की द्वेष भावना को भड़का करके अपनी ओर मिलाने का प्रयास आरम्भ कर दिया। काफी प्रयत्न के बाद, अन्त में जुल्फिकार खां ने गुप्तरूप से राजाराम की आज्ञानुसार कार्य करने के लिये अपनी सहमति दे दी। उसने वादा किया कि या तो वह शाहजादे की अच्छी खासी योजनाओं का स्वयम् विरोध करेगा या जिंजी के सैन्य अधिकारियों को योजना से अवगत करा कर उचित कार्रवाई का मौका देगा। †

औरंगजेब ने शायद इस बात का अनुभव कर लिया कि मराठों को किसी प्रकार उत्तरी क्षेत्रों से हटा कर दक्षिणी क्षेत्र में आकर्षित करना आवश्यक है। अपने सेनापतियों को इस प्रकार के निर्देश शायद दिये हों, अतः अपने इस अनुभव को व्यवहारिक महत्व प्रदान करने के लिये सम्राट ने अपना खेमा गुलगुल्ला‡ नामक स्थान पर ले गया परन्तु सन्ताजी घोरपड़े अब भी उत्तरी क्षेत्रों में ही मँडराता रहा तथा रामचन्द्र के आदमी पूर्व में शोलापुर तक लगान वसूल करते रहे। औरंगजेब ने अपनी उपर्युक्त योजना में असफलता प्राप्त करने के बाद अपने साथ की भारी भीड़ के साथ पुनः ब्रह्मापुरी आया। यहीं पन्ढरपुर के कुछ नीचे भीमा नदी के किनारे अपनी छावनी का निर्माण किया तथा अपने सिविल प्रशासन दक्षिणी क्षेत्रों का युद्ध संचालन, उसके विशाल साम्राज्य की प्रबन्ध व्यवस्था तथा अन्य राज्यों के साथ की जाने वाली कूटनीतिक मन्त्रणाँयें, संचालित होती थी। x

---

* मैंने अपने पूर्ववर्ती लेखकों का अनुसरण कर के इस रानी का (बेगम) नाम उदयपुरी लिख दिया है परन्तु मेरे मित्र मेजर टाड ने बताया है कि वह वास्तव मे उदयपुर की राजकुमारी नही थी। वह किशनगढ़, की राजकुमारी थी जो उदयपुर के पड़ोस में है। वास्तव में उसे जोधपुरी के नाम से पुकारा जाता था। यह औरंगजेब की प्रिय रानी थी तथा शाहजादे काम बख्श की मां थी।

† मराठा पान्डु लिपि

‡ खफी खां तथा स्काट का 'दक्षिण'

x माराठा पान्डु लिपि, वास्तविक प्रपत्र, तथा स्काट का 'डक्कन'

पुर्तगाली तथा अंगरेज

इस काल तक पुर्तगालियों पर शहंशाह काफी नाखुश हो उठा और उनके रहने के प्रत्येक स्थान पर मुगलों का आक्रमण शुरू हो गया । प्रतिरक्षा हीन पुर्तगालियों पर भयानक अत्याचार शुरू हो गया । उत्तरी कोंकण के पुर्तगाली निवासियों पर तो यह अत्याचार सन् १६६५] असीमित के समकक्ष आ पहुँचा था ।* काफी संख्या में इन पुर्तगालियों ने डामन तथा बेसिन के किले में शरण लेकर अपने प्राणों की रक्षा की । अन्त में पुर्तगाली वायसराय ने बादशाह के कुछ दर्बारियों को घूस देकर अपनी ओर मिला लिया, जिन्होंने उसे भारतवर्ष में पुर्तगालियों के बने रहने से संभावित लाभों का विवरण देकर उसके क्रोध को शान्त कर दिया । औरंगजेब की अवस्था के साथ-साथ उसकी मूर्खता भी एक दम से बढ़ गई थी । दर्बारियों की चापलूसी से वह इतना विवश हो गया था कि वह अपनी जन्मजात कुटिलता और चालबाजियों को भी चापलूसी के प्रभाव में आकर भूलने लगा था । जिसका प्रयोग उसने हमेशा दूसरों पर किया था । दर्बारी शहंशाह की इस कमजोरी को समझ गये थे, अतः जैसे ही उन्होंने पुर्तगालियों के साथ शान्ति स्थापित करके उनकी तोपों को प्राप्त कर मराठा किलों को ध्वस्त करने की योजना रक्खी, औरंगजेब ने बिना किसी तर्क के मान लिया । अंगरेजों के प्रति भी शहंशाह को सदय बनाने के लिये प्रायः इसी प्रकार के प्रयत्न हुये । उनके द्वारा सामुद्रिक डाकों का संचालन होता रहा । बादशाह को इस बात का पूरा विश्वास हो चला था कि इन डाकों का संचालन एक या दोनों ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रबन्धकों की देखरेख में होता है । अतः यद्यपि उसे इन अंग्रेजी कम्पनियों के व्यापार पर मिलने वाली चुंगियों से भारी आय होती थी, वह उन्हें देश से बाहर भगा देता यदि उनके पास बम्बई का पूर्ण अस्त्र-शस्त्र, तथा आधुनिकतम तोपखाने से सज्जित किला नहीं होता । इसी किले में अंगरेज अपने को अजेय समझने लगते थे । वास्तव में उनका यह सोचना सत्य भी था । इसी समय मुगलों के एक जहाज पर जिसका नाम जंगसवाई था, अंगरेजों ने अपना अधिकार कर लिया । सन् १६६६] सूरत से मक्का हज करने के लिये यात्रियों से भरा वह मुगलों का सबसे बड़ा जलपोत था । इस धार्मिक यात्रियों से पूर्ण जलपोत पर हुए इस आक्रमण से औरंगजेब चिढ़ गया तथा उसने सूरत के प्रधान अँगरेज अधिकारी को अनेकों दूसरे अधिकारियों के साथ बन्दी बना लिया । ये तब तक उसके बन्दी रहे जब तक कि यह मामला सुलझ न गया ।

जिंजी के घटना चक्र

इस समय तक जिजी पर अधिकार पाने के लिये अनेकों साल के सारे प्रयत्न प्रायः विफल ही रहे । महाराष्ट्र में मुगलों की बिजयों की स्वप्न के समान क्षणिक बना, उनके क्षेत्रों को तहस-नहस करके, तथा सामने विरोध में आये प्रायः प्रत्येक सेनापति एवम् उसकी सेनाओं को परास्त करने एवम् भगा देने के बाद सन्ताजी घोरपड़े ने अपने दो सक्रिय सेनाधिकारियों को बरार तथा गंगोत्री में मराठों के उत्साह वर्द्धन के लिये नियुक्त कर दिया । ये दोनों अधिकारी शिवाजी के साथ कार्य कर चुके थे । इनका नाम क्रमशः परसोजी भोंसले तथा हैवत राव निम्बालकर था । † इसके पश्चात् २०,००० से

---

* पश्चिमी भारत में प्रचलित धारणा के अन्दर उत्तरी तथा दक्षिणी कोंकण से बम्बई के दक्षिण तथा बम्बई के उत्तर में कोंकण प्रदेश का बोध होता है ।

† वर्तमान नागपुर के राजाओं के पूर्वज शुरू में मात्र सिलेदार सैनिक थे । सतारा के

अधिक घुड़सवारों के साथ सन्ताजी घोरपड़े, शाही खेमे के पश्चिम दिशा में सतारा के रास्ते आगे बढ़ा। वहाँ से वह थोड़ा सा कर्नाटक की ओर बढ़ा तथा जब जिंजी से उसकी सेना की दूरी कम हो गई अपनी एक तिहाई सेना के साथ उसने धनाजी को आगे भेजा। धनाजी ने तेजी से आगे बढ़कर मुगलों द्वारा जिंजी किले के पड़ोस में बनी रक्षा चौकियों पर आक्रमण करके सर्वप्रथम सन्ताजी के साथ मराठों की सेना के आगमन का समाचार दिया। आस-पास बिखरी छोटी-छोटी मुगल टुकड़ियों को इस संकट के आगमन की सूचना दे दी गई तथा उन्हें इकट्ठी होकर मुगल मुख्य सेना के बायें तथा दाहिने पार्श्व में मराठों के प्रतिरोध का आदेश मिला। परन्तु जैसा कि मुगलों के स्वभाव से विदित है उनकी सेनाओं में आवश्यक आदेशों के अविलम्ब पालन की तत्परता नहीं थी तथा अपने शत्रु मराठों की असाधारण फुर्ती से भी वे प्राय: अनभिज्ञ थे। परिणाम स्वरूप जब तक कि मुगल प्रतिरक्षात्मक आदेशों का पालन करने की तैय्यारियां आरम्भ करने को प्रयत्नशील हुये, धनाजी ने किले के सैनिक व गुप्तचरों की सहायता से उन्हें बुरी तरह काटने में सफल हो गया।

सन्ताजी घोरपड़े मराठों की मुख्य सेना के साथ धीरे-धीरे आगे बढ़ा। सन्ताजी का सामना करने के लिए फौजदार मर्दान खां आगे आया परन्तु बावजूद भारी सेना के उसे सन्ताजी से बुरी तरह हार कर, अपनी जान बचाने के लिये मुगलों के जिंजी स्थित खेमें की ओर भागना पड़ा। परन्तु अपने इस प्रयास में वह सफल न हो सका। मराठों ने उसको बन्दी बना लिया तथा हरजाने या बतौर जुर्माने के भारी मात्रा में धन के भुगतान के बाद उसे मुक्त किया गया। उसकी सेना तो भागकर तितर-बितर हो गई परन्तु उसके खेमें तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र व रण सामग्री मराठों के हाथ लगी।

एक अदम्य उत्साह से, जो साधारण सी सफलता मात्र से उनमें कूट-कूट कर भर जाती है, मराठे मुगलों के प्रत्येक बाहरी रक्षा चौकियों पर टूट पड़े और उनको तितर-बितर करने या समाप्त कर देने में पूर्ण-रुपेण सफल रहे। उनके घोड़ों के लिये चारे तथा दाने को बुरी तरह नष्ट कर देने के उपरान्त मराठों ने मुगलों की संचार व्यवस्था को इतना अधिक अवरुद्ध कर दिया कि न तो मुगलों को रसद सामग्री मिल पाती और न; उनके जासूस ही उनकी सहायता कर पाने में समर्थ होते। मुगल सेना किसी प्रकार के संदेश व आदेश से रहित निरुपाय भ्रमित थी ही, ऊपर से मराठों ने औरंगजेब की बीमारी तथा मृत्यु का समाचार फैलाकर उन्हें और भी निरुत्साहित कर दिया था। समाचार के फैलने पर उन्होंने शाहजादे से अपना सम्बन्ध स्थापित किया तथा उसे सम्राट बनाने में सहायता देने की लालच दे कर उसका ध्यान बराबर बटाये रखने का प्रयास होने लगा। शाहजादे कामबख्श ने मराठों के प्रस्ताव को माना या नहीं, इसका कोई प्रामाणिक विवरण तो प्राप्त नहीं है, परन्तु असद खां तथा उसके लड़के के मन में यह बात बैठ गई कि शाहजादा मराठों से जा मिला है। अत: उन्होंने शाहजादे को नजरबन्द कर लिया तथा उसके कार्यों पर गिद्ध दृष्टि रक्खी जाने लगी। मुगलों के मतभेद से लाभ उठाने के लिये तत्पर मराठों को अब अपनी योजनाओं को व्यवहारिक महत्व देने का अवसर मिला। पूर्ण भ्रमित तथा प्रतिरक्षा से प्राय: उदासीन मुगल सेना पर नीति सफल और उत्साहित मराठों ने प्रबल आक्रमण आरम्भ कर दिये। शाहजादे की व्यक्तिगत सेना ने लड़ने से इन्कार कर दिया परिणामत: सेना की कमी को तोपों से पूरी करने का

निकट देऊर ग्राम के वतनदार थे। पूना के निकट हिंगूबरदी ग्राम के निवासी होने का भी विवरण मिलता है।

प्रयास किया गया। अतः गोला बारूद समाप्त होते ही स्वयम् वे, जो अब तक घेरा डाले पड़े थे, अब मराठो के घेरे में बुरी तरह आ पड़े।

मुगलों की इस संकट की गंभीर अवस्था में जब कि उनके संचार साधनों को एकदम अवरुद्ध कर दिया गया था, दोनों दलों के सम्मुख संधि प्रस्ताव आया। संधि का यह प्रस्ताव किस ओर से किया गया उसका सही विवरण प्राप्त नहीं है परन्तु परिस्थिति देखते इस बात की सहज सम्भावना स्पष्ट है कि यह प्रस्ताव मुगलों की ओर से आया रहा होगा। अन्त में सन्ताजी तथा असद खां के द्वारा संधि प्रस्ताव पर स्वीकृति का आदान-प्रदान हुआ। असद खां को वाण्डेवाश नामक स्थान तक निर्विरोध जाने की अनुमति मिल गई जहां पहुँच कर वह सम्राट के आदेश की प्रतीक्षा करने लगा। सम्राट के आदेशानुसार भविष्य की योजना में उसका दृढ़ विश्वास था।

औरंगजेब ने अनुमान लगा लिया कि इन सब फसादों की जड़ असद खां, तथा शाहजादे को अदूरदर्शितापूर्ण योजनायें एवम् मतभेद हैं। उसने तुरन्त इन दोनों को अपने पास बुला लिया। उसने अपना शाही आवास पुनः बीजापुर में स्थापित किया तथा जिंजी अभियान की सारी जिम्मेदारी पुनः जुल्फिकार खां को सौंप दी।

जिंजी का घटना चक्र

परन्तु जिंजी में तुरन्त ही लड़ाई शुरू नहीं की गई। पहले मराठों को सन्धि भंग करने का दोषी करार दिया गया। इस संधिभंग का कारण यह था कि मराठों ने बीजापुर कर्नाटक के फौजदार द्वारा भेजी गई रसद सामग्री को लूटने का असफल प्रयास किया। यह सामग्री शाही खेमे में आ रही थी जिसकी रक्षा फौजदार ने अपनी दूरदर्शिता तथा चालाकी से किया। इसके अतिरिक्त मराठों ने कई किलों पर अनधिकार पूर्वक अपना पुनः अधिकार कर लिया था अतः जुल्फिकार खाँ इस संधि भंग का दण्ड देने तथा इन विजित किलों पर अपना आधिपत्य जमाने के इरादे से दक्षिण की ओर बढ़ चला। अपने रास्ते पर वह आगे बढ़ता गया। उसने त्रिचनापल्ली के राजा के साथ गठबन्धन किया तथा तंजोर के राजा को त्रिचनापल्ली के राजा के किलों को वापस करने को विवश किया। तंजौर के राजा शिवाजी के अनुज वेन्कोजी के पुत्रों में से कोई था। तंजौर द्वारा त्रिचनापल्ली के क्षेत्रों के वापस करने के अलावा भी जुल्फिकार खां ने अपने लिये भी भारी रकम वसूली। इस प्रकार के प्रबन्धों के बाद जुल्फिकार खां पुनः आकर जिंजी के सामने बैठ रहा।

जुल्फिकार खां का राजाराम के साथ गुप्त सम्बन्ध अब भी बना हुआ था। जिंजी के ढीले-ढाले घेरे को देखकर यह संभावना असंम्भव प्रतीत नहीं होती कि वह सम्राट के मरते ही कर्नाटक में अपना स्वतन्त्र राज्य बनाने का स्वप्न देख रहा था।

जैसे ही जुल्फिकार खां तन्जौर से वापस जिंजी आया सन्ताजी घोरपड़े ने अपनी सेनाओं के साथ पहुँच कर बीजापुर कर्नाटक के क्षेत्र को अपनी पूरी शक्ति के साथ लूटा-खसोटा। जब औरंगजेब को इन घटनाओं का पता चला तो उसने कई सेनापतियों के अधीन मराठों को दबाने के लिये सेनाओं को भेजा। इस सेना से बीजापुर कर्नाटक के फौजदार कासिम की सेना भी आ मिली। अब कई सेनापतियों के अधीन यह सारी सेनायें सन्ताजी को समाप्त करने के उद्देश्य से आगे बढ़ने को तैयार हुईं परन्तु अभी इनके खेमें निर्देशित स्थान में गड़ भी नहीं पाये थे जब कि उन पर मराठों ने जोरदार हमला कर दिया तथा शीघ्र ही उनके रक्षकों को मार भगाया। मुगलों

के महान सेनापतियो को सजने तथा हाथी पर चढ़ने से पूर्व ही मराठों ने उनको चारों ओर से घेर लिया।

कासिम खाँ के प्रभुत्व को मात्र उसकी सेना के दूसरा कोई भी नहीं मानता था। दूसरे अन्य सेनापतिगण अपने प्राप्त शक्ति और सम्मान के अनुरूप अपनी बुद्धि के अनुसार ही कार्य करते थे। उन्होंने सिर्फ अपनी रक्षा का प्रबन्ध किया या अपने बूते ही योजनाओं का निर्धारण व निरूपण किया तथा अपनी पूरी शक्ति के साथ उन योजनाओं को पूरा करने का प्रयास किया। उनमें एकसूत्रता का पूर्ण अभाव था। जब कि मराठों को उनकी इस विलगाव स्थिति का पूरा लाभ प्राप्त हो रहा था। उन्होंने मुगलों को अपने छुटपुट, अचानक धावों से दिन के आक्रमणों तथा रात्रि को अग्निबाँणों से उनको परेशान करना जारी रक्खा। अन्त में तीसरे दिन मुगलों को गरही की दीवालों की शरण लेनी पड़ी। परन्तु शरण मिलने के बाद भी उनकी परेशानियों का अन्त नहीं हुआ। उनके पास की रसद सामग्री आदि प्रायः समाप्त हो चली थी। यद्यपि स्थानीय बनियों या व्यापारी वर्ग द्वारा, ऊँचे दामों पर खाद्यान्न गरही की दीवालों के ऊपर से गिराये जाते थे, परन्तु वे आवश्यकता के अनुसार काफी नहीं थी तथा उसके प्राप्त होते रहने की संभावना नहीं थी। मुगलों के लिये यह एकान्त तथा संचारहीन स्थिति असह्य हो उठी परन्तु वे हारे हुये अयोग्य सेनापतियों द्वारा संचालित आपत्तियों में पड़े सैनिक थे। वीरता पूर्वक लड़कर कर अपनी जान बचाने का रास्ता उनके लिये बन्द हो चुका था। इन घिरे मुगल सैनिकों के छुटकारे का एक प्रयत्न उनके लिये सहायक सेना भेज कर किया गया, परन्तु सहायतार्थ आने वाली सेना पर आक्रमण करके उसे रास्ते में ही परास्त कर देने में सन्ताजी को सफलता मिल गई। इन घिरे सैनिकों को आने वाली सेना की भनक भी न लगी। अतः इस परिस्थिति में मुगलों के सामने आत्म-समर्पण के अलावा कोई उपाय न बचा। यही उन्होंने किया भी। कासिम खां ने इस आत्म समर्पण का प्रतिनिधित्व किया, परन्तु वह मुगलों के इस कलंक को बर्दाश्त न कर सका तथा विषपान करके मर गया। दूसरे अधिकारियों को कोड़ों से मारने के बाद भी भारी मात्रा में धन देने पर ही मुक्त किया गया। जब ये प्रताड़ित तथा अपमानित अधिकारी औरंगजेब के पास वापस पहुँचे, इन्हें इनकी पदवियों व मन्सबों से अपदस्थ कर दिया गया तथा साम्राज्य के महत्वहीन स्थानों में तैनाती का आदेश मिला।*

इस अवसर पर मुगल सेना की सहायता करने के अभियान में असफल सेनानायक का नाम हिम्मत खां था। यह हमारे पूर्व परिचित खां जहाँ बहादुर का पुत्र था। मराठों से परास्त होने के बाद उसने अपनी सेना को पुनः बढ़ाने का अनुरोध किया। उसके अनुरोध के परिणाम स्वरूप मराठों की सेना के समकक्ष ही उसकी सेना को भी कर दिया गया। अपनी इस विशालवाहिनी सेना के साथ वह सन्ताजी घोरपड़े की खोज में निकला। उसकी सेना के साथ सन्ताजी की सेना की मुठभेड़ एक मैदानी क्षेत्र में हुई। मराठों को मैदान छोड़ कर भाग जाना पड़ा। हिम्मत खां ने इस भागती सेना के पीछे अपनी सेना को लगा दिया। अपनी विशिष्ट रण नीति के अनुसार मराठे एक ऊबड़-खावड़ भूमि में आ कर पलट पड़े और भ्रमित मुगल सेना को उन्होंने बुरी तरह काटना आरम्भ किया। जीती बाजी पलट गई। उन्होंने हिम्मत खां को मार डाला और उसके सैनिकों को बुरी तरह समाप्त कर डाला तथा उसकी सेना के साथ की सम्पूर्ण रण सामग्री पर अधिकार कर लिया।

जिंजी की ओर आते समय सन्ता जी की सेनाओं पर जुल्फिकार ने प्रबल आक्रमण किया।

---

*खफी खाँ, मराठा पाण्डुलिपि, तथा स्काट 'डक्कन' द्वारा आंशिक पुष्टि।

आक्रमण से आक्रान्त मराठा सेना मैदान छोड़ कर भाग चली। काफी दूर तक मराठों को भगाने के बाद जुल्फिकार खाँ पुनः जिंजी पर घेरा डाले रहने के विचार से लौट पड़ा। बस इसी अवसर की ताक में मराठों ने उसकी सेना के पिछले भाग पर आक्रमण किया। मराठों के ऐसे आक्रमणों से हम अपरिचित नहीं हैं। इस युद्ध से ऐसा संकेत मिलता है कि मराठों का यह सम्पूर्ण आक्रमण, प्रत्याक्रमण मात्र दिखावटी था। इसके कारण भी हो सकते हैं। जुल्फिकार खाँ तथा सन्ताजी में मित्रवत व्यवहारों का आदान-प्रदान होता था। इस मित्रता का विवरण हमें आगे मिलेगा जब सन्ताजी के विरोधियों ने सउदाहरण उसकी मित्रता का भन्डाफोड़ किया।

जिंजी का पतन

जिंजी का घेरा पुनः जुल्फिकाराना ढर्रे पर चलने लगा। बहुत सम्भव था कि इस घेरे में रक्तपात हुआ ही न होता यदि जुल्फिकार खाँ के पास उसका सहायक दाउद खां नहीं होता। दाउद खां जब खूब पी लेता था तब अपने आदमियों को रात में किले पर दो-चार गोले छुड़वा देता था। पहरे की चौकियों की निगरानी में उन्हें भेज देता। इसके परिणाम स्वरूप कभी-कभी मराठों से हल्की झड़प हो जाया करती थी। जुल्फिकार खाँ की इस उदासीनता से शहंशाह का सन्देह पुष्ट हो उठा। जुल्फिकार खाँ के शुभचिन्तक मित्रों ने उसको औरंगजेब के सन्देह से अवगत किया तथा यह भी स्पष्ट रूप से बता दिया कि यदि वह अपनी बर्बादी और सम्मान को बचाना चाहता है तो जल्दी से जल्दी जिंजी को अपने अधिकार में करके प्रमुख मराठा प्रधानों व राजाराम को बन्दी बना ले। जुल्फिकार खाँ ने अपनी इस जटिल स्थिति से राजाराम को अवगत किया। अपनी मजबूरी को बताते हुये जुल्फिकार खाँ ने राजाराम के सम्बन्धियों से उसको कुशल पूर्वक विशालगढ़ पहुँचवाने के बारे में बात-चीत की। सिरके लोगों ने जिंजी से राजाराम को कुशल पूर्वक गुप्तरूप से पहुँचवाने के एवज में कोंकण के डाबुल नगर तथा कुछ अन्य स्थानों के पुश्तैनी अधिकारों की मांग की। जब सिरकियों की समस्त मांगों को स्वीकार कर लिया गया तब उन्होंने राजाराम को मुगलों की सेना की लाइनों से सकुशल निकाल कर उन्हें वेलोर पहुँचा दिया जहाँ मराठा सेनापति माना जी मोरे अपनी सेना के साथ डटा हुआ था।

सन् १६९८]

राजाराज ने वेलोर में कुछ समय आराम किया। तत्पश्चात् अपने गुट के साथ आगे बढ़ा और दिसम्बर तक विशालगढ़ आ पहुँचा। जनवरी के प्रथम सप्ताह में जिंजी पर मुगलों का अधिकार हो गया। राजाराम के साथ उसका परिवार नहीं जा सका था अतः जब जिंजी पर नाम मात्र की दिखावटी लड़ाई के बाद उसे सुगलों ने अपने अधीन किया, राजाराम के परिवार को पूर्व नियोजित योजना के अनुसार उसके सम्बन्धी सिरके परिवार के लोगों के सुपुर्द कर दिया गया। परन्तु इस सुपुर्दगी पर भी आडम्बरपूर्ण मुलम्मा चढ़ाया गया। सिरकियों ने खुले आम यह बात जुल्किार खां के सामने रक्खी कि यदि राजाराम के परिवार की स्त्रियों के सम्मान में कुछ भी हानि हुई तो स्वयम् उनके सम्मान को भारी धक्का लगेगा। सिरके लोगों ने राजाराम की रानियों को किसी अन्य हिन्दू जाति के साथ रखने का भी विरोध किया। परिणाम स्वरूप उसका परिवार कुछ ही दिनों में सकुशल महाराष्ट्र पहुँचा दिया गया।

जुल्फिकार खाँ ने राजाराम के पक्ष के व्यक्तियों में से अनेकों को लम्बे बन्दी जीवन की सजायें दीं तथा नाना प्रकार के अभिनव अभिनयों द्वारा सम्राट के समक्ष अपनी स्वामिभक्ति को प्रदर्शित करना

चाहता था । अपनी इसी भावना के कारण वह अपनी सेनाओं को जिंजी की हल्की लूट करने से न रोक सका। इस प्रकार विपन्न तथा मुगलों के दिखावटी अत्याचार से वास्तविक रूप से पीड़ित व्यक्तियों में से प्रहलाद नीराजी के पुत्र नारु प्रहलाद भी थे, जिनको विद्रोही के रूप में यातनाओं को भोगना पड़ा । प्रतिनिधि का देहान्त जिंजी पतन से पूर्व ही चुका था ।

सतारा की हलचल

इस वर्ष के आरम्भ में मराठों की मुख्य सेना ने कुछ विशेष विवरण योग्य कार्य नहीं किया । प्रमुख विरोधी शत्रु मुगलों के विरुद्ध कोई प्रमुख मुठभेड़ नहीं हुई । परन्तु एक साधारण, परन्तु महत्वपूर्ण घटना ने मराठों के सामने एक गम्भीर समस्या ला खड़ी की । ऐसा लगा जैसे उनकी एकता को भारी धक्का लगेगा । घटना का सूत्रपात सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी के आपसी मनोमालिन्य तथा मतभेद से आरम्भ हुआ । बहुत सम्भव था कि दोनों अपनी बात रखने के लिये अपने समर्थकों के साथ मैदान की शरण लेते परन्तु प्रतिनिधि की बुद्धिमानी तथा राजाराम की तटस्थता तथा समभाव व्यवहार के कारण मराठों के अभ्युदय का यह ग्रह समाप्त हो गया । परन्तु प्रहलाद नीराजी की मृत्यु के बाद राजाराम के पास कोई ऐसा बुद्धिमान नहीं बचा जो अपनी बुद्धिमानी से इस प्रकार के होने वाले मतभेद को दूर किये रहता । प्रहलाद नीराजी की मृत्यु के बाद एक नवीन ग्रह मराठों के ऊपर आ लगा । अब तक प्रतिनिधि राजाराम के मन में, सन्ताजी घोरपड़े के विरुद्ध उपजी द्वेषाग्नि को शान्त करता रहा था । परन्तु अब सन्ताजी के विरुद्ध लोगों ने उसके कान भरना शुरू किया । स्वयम् उसके मन की द्वेषाग्नि को भी इस प्रकार की कुमन्त्रणाओं से बल मिला । परिणाम स्वरूप सन्ताजी घोरपड़े को राजाराम का शुभ चिन्तक मित्र बनने के स्थान पर शत्रु बनने के अवसर का सूत्रपात हुआ । धनाजी जाधव ने राजाराम का समर्थन प्राप्त करके सन्ताजी के विरुद्ध तीव्र घृणात्मक व द्वेषात्मक भाव धारण कर लिया । औरंगजेब ने भी मराठों में मतभेद उत्पन्न करने के उस सुनहले अवसर को हाथ से नहीं जाने दिया । उसने मराठों में से अनेक को फोड़कर अपनी ओर मिला लिया था जो द्वेषाग्नि से पीड़ित, लाभ हानि से विमुख प्रत्येक सूचनाओं को मुगल शहंशाह के पास पहुँचा दिया करते थे ।

सन्ताजी की सेना को पहले से ही, रिश्वत दे देकर फोड़ लिया गया था इसका पता घोरपड़े को तब चला जब धनाजी तथा उसके समर्थकों ने सेना के साथ उस पर अचानक आक्रमण कर दिया । आक्रकरण से किसी प्रकार बच कर अपने नाममात्र के समर्थकों के साथ भागने में सफल हो गया । सन्ताजी के ऊपर यह आक्रमण बीजापुर के पड़ोस में किया गया । आक्रमण उस समय हुआ जबकि मराठों की मुख्य सेना उस स्थल से दूर थी । आधी सेना के साथ धनाजी कर्नाटक की ओर चले गये । कर्नाटक में जुल्फिकार खां ने छोटी-छोटी मराठा टुकड़ियों को लगातार परास्त करने में सफलता प्राप्त की थी । उस क्षेत्र में मुगलों की विजय के चिन्हों को मिटाने के लिये धनाजी को वहां जाना पड़ा । एक और कारण था उसके इस प्रयाण का । जुल्फिकार खां वेलोर पर भी अधिकार करके उस क्षेत्र में उसे अपने प्रशासन का केन्द्र बनाने के फेर में था । मराठों की बची आधी सेना सतारा में राजाराम के पास चली गई । सतारा को रामचन्द्र पन्त की सलाह से मराठा साम्राज्य की राजधानी बना दिया गया ।

जनार्दन पन्त की मृत्यु के बाद उसके अमात्य के रिक्त पद पर रामचन्द्र पन्त को नियुक्त किया गया । रामचन्द्र पन्त शिवाजी के समय में ही इस पद पर नियुक्त थे परन्तु रघुनाथ पन्त हनुमन्ते के लिये अपने प्रशासन में स्थान बनाने के लिये रामचन्द्र को अपना पद छोड़ देना पड़ा था । यह घटना

१६७६ की है। अतः उनकी अब तक की सेवाओं के कारण उनका सम्मान बहुत बढ़ गया। उसके मुख्य कारकून शंकरजी नारायण को शंकरजी मुल्हर के रिक्त सचिव के पद पर, पदोन्नति करके नियुक्त कर दिया गया। जिंजी के घेरे के समय मुल्हर महाराष्ट्र से काशीवास करने चला गया था। शंकरजी नारायण को सचिव पद पर नियुक्ति परशुराम त्र्यम्बक को अच्छी नहीं लगी, कारण उस पद पर अपनी नियुक्ति की आशा उसने जाने कब से की थी।

मृत जनार्दन पन्त के पुत्र तिम्मोजी रघुनाथ हनुमन्ते ने अपनी नीति कुशलता से अपने को जिंजी के बन्दी जीवन से मुक्ति पाने में सफलता प्राप्त करके राजाराम से सतारा में जा मिला। उसकी पारिवारिक सेवाओं तथा नीतिनिपुणता ध्यान में रखते हुये प्रतिनिधि के पद पर नियुक्त किया गया।

इसी समय के लगभग सिधोजी गूजर की मृत्यु हो गई। गूजर अपनी आयु के अधिकांश भाग में सिद्दियों से लड़ता-झगड़ता रहा था। अपनी इस लगातार लड़ाई में उसने सफलता भी कम नहीं पाई थी परन्तु कान्होजी आंग्रे की सक्रियता से मराठा जलबेड़े ने महत्वपूर्ण श्री लाभ प्राप्त किया था। प्रायः प्रत्येक राष्ट्रों के पोतों पर उसने आक्रमण किये। सामुद्रिक किनारों पर लगातार आक्रमण किये। सामुद्रिक किनारों पर लगातार आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में बनाये रक्खा तथा कुछ ही सुरक्षा हीन नगरों को छोड़ उसने बम्बई से लेकर ट्रावनकोर के सम्पूर्ण जिलों, नगरों तथा व्यापारिक केन्द्रों को अपने आतंक से प्रभावित किये रक्खा। किनारों के अपने अधिकांश किलों पर मराठों ने अपना अधिकार बनाये रक्खा। उन्होंने अपने यौद्धिक केन्द्र को स्वर्णदुर्ग तथा विजयदुर्ग में स्थापित किये रक्खा परन्तु उनके बेड़े का महत्वपूर्ण केन्द्र शिवाजी के समय के अनुसार ही कोलाबा में ही रहा। वारी के देशमुख सामन्तों ने मुगलों द्वारा अपने जिलों के रौदे जाने के पूर्व तक राजाराम की प्रधानता को माना परन्तु कारबार के देशाइयों ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता को बनाये रक्खा और जैसा कि प्रत्येक स्वतन्त्र शासक करता है वे अपने को राजा कहते रहे।

सन्ताजी की हत्या

सन्ताजी को हमने विषय परिस्थिति में छोड़ रक्खा है। अपने व्यक्तिगत शत्रुओं से भयभीत विचारा शिकारी कुत्तों से भीत पशु के समान इधर-उधर फिर रहा था। उसने अपने कुशलता से पीछा करने वालों को परेशान कर डाला। अधिकाँश हताश हो लौट भी गये परन्तु मसवार का देशमुख नागोजी माने अपने व्यक्तिगत द्वेष के आवेश में पीछे अड़ा रहा और अन्त में उसने सन्ताजी को सुरक्षा विहीन अवस्था में पकड़ ही लियां। सन्ताजी ने अपने शत्रुओं को अधिक पीछे समझ एक स्थान पर स्नान करके अपने को ताजा करने का प्रयास किया जब कि माना ने अपने दल बल के साथ उसे जा घेरा। पूर्ण निरस्त्र सन्ताजी को इन लोगों ने घेर लिया तथा कत्ल कर दिया। उसके सिर को धड़ से अलग करके नागोजी शाही खेमें की ओर चला गया और सन्ताजी के कटे सिर को उसने औरंगजेब के पास भिजवा दिया। इस घटना के कुछ समय बाद ही नागो जी ने पुनः मुगल सेवा में स्थान पाने के लिये आवेदन किया। उसने भी अन्य मराठा मांकुरी लोगों की तरह मुगलों को छोड़ दिया था। छोड़ना तथा शामिल होना इस युग का विशेष लक्षण था। उसको अपने पिछले विरोधी कार्यों में माफी, ऊँची आर्थिक स्थिति तथा अन्य अतिरिक्त सम्मानों से उसे विभूषित किया गया। इससे उसके हत्या कार्य के महत्व का स्पष्ट मान होता है। सन्ताजी घोरपड़े मराठों का सर्वाधिक सैन्य अधिकारी था। अनेक लोक कथायें उसके वीरोचित कार्यों पर आज भी गौरवान्वित हैं। सात साल तक उसने दक्षिण में रणव्यस्त प्रत्येक मुगल सैनिक को आतंकित और भयभीत किये रक्खा।

सन्ताजी की मृत्यु तथा कत्ल की अपमान-जनक स्थिति ने उसके समर्थकों को हिला दिया। वे अपनी गल्ती समझ बहुत व्यथित हुये। सन्ताजी के पुत्र, रानू जी तथा पीरा जी व भतीजा सीदो जी धना जी के भय से भीत हो भाग पड़े थे। सन्ताजी के चेतना प्राप्त साथियों व समर्थकों ने इन तीनों के पास आकर अपने अपराधों पर पश्चाताप प्रकट किया और उन्हीं के साथ हो लिये। इस प्रकार इन लोगों की सहायता से सन्ताजी घोरपड़े के पुत्रों ने पुनः अपनी पारिवारिक महत्ता को प्राप्त कर लिया और स्वतन्त्र रूप से मुगल क्षेत्रों में, अपने लिये लूट-मार करने लगे।*

सन् १६६६]

राजाराम ने कुछ समय सतारा में बिताने के बाद अपनी सेना के साथ उत्तर दिशा की ओर बढ़ चला। आगे चलने पर उसके साथ परसोजी भोंसले, हैवतराव निम्बालकर, नीमाजी सीन्दिया, अतावली शमशेर बहादुर तथा अन्य सेनापति आ कर मिल गये। ये लोग कुछ समय से अपनी सेनाओं के साथ खानदेश तथा बरार में लूट-पाट कर रहे थे। अब राजाराम की सैन्य संख्या बहुत अधिक हो गई, उतनी जितनी शिवाजी के समय में भी कभी नहीं थी। अपनी इस विशालवाहिनी सेना के साथ, अपने पूर्व निर्णीत चौथ और सरदेशमुखी के अधिकार की घोषणा के साथ छत्रपति गंगोत्री के क्षेत्र में घुस पड़े। जिन ने राजाराम के इन अधिकारों के सन्मुख अपना समर्थन दिया उन्हें सुरक्षा प्रदान की गई, मुगल सैनिकों से भरे दृढ़ किलों को छोड़ दिया गया परन्तु जिन किलों या अधिकारियों ने उन्हें रोकने का असफल प्रयास किया उन्हें तलवार के घाट उतार दिया गया। इस अवसर पर जिस क्रमबद्धता से मराठों ने अपना अभियान स्थिर बनाये रक्खा वह पहले कभी देखने को नहीं मिली थी। चौथ तथा सरदेशमुखी की नकद अदायगी की असमर्थता में शिवाजी द्वारा प्रतिपादित बकाया वसूली के लिए पटेलों से इकरारनामें लिखवा लिये गये। इसी प्रकार वे नान्डेड़, बरार होते हुये खानदेश तक गये।

अपने इस अभियान के समाप्त होने पर राजाराम ने खन्डेराव दाभाड़े, नीमा जी सीन्दिया, परसोजी भोंसले तथा हैबतराव निम्बालकर को क्रमशः बगलाना, खानदेश, बरार तथा गंगोत्री की बकाया रकम वसूलने के लिये नियुक्त किया।

परसो जी भोंसले को इस वसूली कार्य पर पदस्थ करने के साथ-साथ सेना साहिब सूबा, तथा हैवतराव निम्बालकर को सर लश्कर की उपाधि प्रदान की गई। इन दोनों अधिकारियों को जरी पताका प्रदान किया गया।† अपनी वापसी में राजाराम ने जालना पर आक्रमण किया। जब वह अपनी सेनाओं के साथ जालना को लूटने में व्यस्त था अचानक ही मुगल सेना उनके ऊपर चढ़ आई। उन्होंने होहल्ले के साथ मराठों पर प्रबल आक्रमण किया। सम्भवतः यह आक्रमण मुगलों के दक्षिण में हुये कुछ प्रबल आक्रमणों की श्रेणी के बहुत दिनों बाद हुआ। इस प्रकार के हमलों को मुगल सेना भूल सी गई थी।‡ परन्तु इस आक्रमण के विषद वर्णन के लिये हमें औरंगजेब तथा जुल्फिकार खां की ओर पलटना पड़ेगा।

---

* मराठा पान्डुलिपि व घोरपड़े परिवार का पारिवारिक विवरण सर बारी क्लीस के लिये जसवन्त राव घोरपड़े द्वारा निर्मित।

† जिनका राज्य विशेष सम्मान करता था उन्हें सोने चांदी के तारों से काम किया गया पताका प्रदान करता था। अनुवादक

‡ मराठा पान्डुलिपि, तथा वास्तविक पत्र जो फारसी तथा मराठी में लिखे हैं।

नई योजनायें

कर्नाटक में धनाजी जाधव के अधीन मराठा सेनाएँ लाभजनक स्थिति और सम्मान नहीं पा रही थी। जुल्फिकार खां में स्वामिभक्ति की कमी, द्रोह तथा महत्वाकांक्षा का आधिक्य होते हुये भी एक सफल सेनापति के सभी गुण वर्तमान थे। इसी कारण ऐसा कहना अत्योक्ति नहीं होगा कि मराठों की प्रबल शक्ति के रास्ते में मुगलों के पास जुल्फिकार के अलावा कोई अन्य सेनानायक नहीं था, जिससे मराठों के बढ़ाव को रोका जा सके। उसने कर्नाटक में धनाजी को लगातार कई बार परास्त किया परन्तु अचानक ही उसे औरंगजेब का ब्रह्मपुरी की छावनी की मरम्मत करने का अत्यावश्यक आदेश मिला। औरंगजेब ने असद खां तथा अन्य सेनापतियों की सलाह से दक्षिण विजय की नई योजनाओं का निर्माण किया। इन योजनाओं के अनुसार मुगल सेना के दो मुख्य भाग किये गये। इनमें से एक भाग को महाराष्ट्र के मैदानों में लड़ने का कार्य करना था जब कि दूसरी का मुख्य कार्य सिर्फ मराठा किलों को अपने अधिकार में करना था। किलों पर अधिकार करने वाली सेना का नेतृत्व स्वयम् सम्राट ने अपने लिये चुना। आक्रमणकारी सेना का नायकत्व शाहजादे बेदर बख्त को दिया गया। यह आजम शाह का पुत्र था। बेदर बख्त की सहायता के लिये जुल्फिकार खां को नियुक्त किया गया। इसी जुल्फिकार खां के प्रयत्न के परिणाम स्वरूप राजाराम मुगल सेना से घिर उठा था जिसका वर्णन हमने अभी-अभी किया है।

शहंशाह की तैय्यारियों के पूरा होते ही ब्रह्मापुरी को खाली कर दिया गया। ब्रह्मपुरी छोड़ते समय मुगल सेनापतियों में से अनेकों को आत्मिक कष्ट हुआ। विचारों ने वहां अपने लिये विशाल भवनों का एवम् आमोद-प्रमोद के साधनों का प्रबन्ध कर रक्खा था जो अब छोड़ना पड़ रहा था। मछनूर की गरही के आड़ में एक यौद्धिक केन्द्र का निर्माण किया गया। छावनी की सुरक्षा के लिये शक्तिशाली रक्षकों को नियुक्त कर दिया गया। मछनूर की गरही छावनी की सीध में ही थी। औरंगजेब ने भीमा नदी से पश्चिम की ओर प्रस्थान किया। भीमा से प्रस्थान के बीसवें दिन मुगल सेना ने वसन्तगढ़ के नीचे अपने खेमें गाड़ दिये। किले पर आक्रमण करने के लिये तोपों को चढ़ा दिया गया। गोलाबारी की मार के आगे मराठों की एक न चली। परिणाम स्वरूप उन्हें मुगलों के सामने आत्मसमर्पण करना पड़ा। शहंशाह ने इस किले को कुलीद-ए-फ़तेह के नाम से पुकारा। इस शब्द के अर्थ होते हैं सफलता की कुंजी। वह अपनी इस सफलता से बहुत ही प्रसन्न हुआ। मराठों के सामने वसन्तगढ़ के पतन के बाद एक नई समस्या ने जन्म लिया। कुछ वर्षों पूर्व शाहज़ादे मुअज्जम के पुत्र मुइज्जुद्दीन ने मराठा दुर्ग पन्हाला पर असफल आक्रमण किया था। अतः मराठा नीतिज्ञों ने अनुमान लगाया कि वसन्तगढ़ के बाद मुगल सेना पन्हाला की ओर कूच करेगी। अतः उन्होंने अपने प्रत्येक सम्भव उपायों तथा साधनों द्वारा पन्हाला की प्रतिरक्षात्मक तैय्यारियों को पूर्ण किया। परन्तु चालाक औरंगजेब ने सीधे सतारा पर आक्रमण की योजना बनाई। उसका यह निर्णय मराठों की आशा के एकदम विपरीत था अतः सतारा दुर्ग में आवश्यक रण सामग्रियों तथा खाद्य सामग्री का प्रबन्ध उचित ढंग से न कर सके। किले का सामग्री भन्डार दो महीने से अधिक काल तक किले का साथ नहीं दे सकता था। मराठों की इस गैरजिम्मेदाराना हरकत ने उनके लिये खाईं सी खोद दी। इससे लोगों के मन में रामचन्द्र पन्त के प्रति सन्देह भी जागरित हो उठा। लोगों ने सोचा कि अवश्य ही उसने मुगलों से मिल कर जानबूझ कर किले में आवश्यक वस्तुओं के भन्डार को अपूर्ण रहने दिया। औरंगजेब को रामचन्द्र पन्त के विरुद्ध जब इस मनोभावना की सूचना मिली तो

उसने उसका लाभ उठाने का प्रयास किया। अतः जब घेरे के दौरान में ही, राजाराम की बीमारी के सिलसिले में रामचन्द्र पन्त सिंहगढ़ गये हुये थे, उसने रामचन्द्र के नाम एक पत्र लिखा * जिसमें शहंशाह ने भूतकालीन घटनाओं को लिखते हुये रामचन्द्र पन्त के घनिष्ट सम्बन्ध † का विवरण दिया था। यह पत्र परशुराम त्र्यम्बक के हाथों में पड़ा। उसने तुरन्त इस पत्र का सदुपयोग किया।

सतारा का घेरा

सतारा आने के बाद शहंशाह ने अपना खेमा किले के उत्तर दिशा में गाड़ा। जिस स्थान पर उसका खेमा गड़ा था उसको आजकल करंजा कहा जाता है। आजमशाह ने किले के पश्चिम एक गाँव के पास अपना डेरा डाला। तब से ही इस गाँव का नाम शाहपुर पड़ा है जो अब भी प्रचलित है। सिरजे खाँ ने दक्षिण की ओर अपना पड़ाव डाला तथा तरबीअत खां ने पूर्व की ओर अपना निवास स्थान स्थित किया। इन सभी दिशाओं के केन्द्रों से संचालित पहरा चौकियों की श्रृङ्खलाओं ने सतारा दुर्ग की संचार व्यवस्था को सम्पूर्ण रूप से अवरुद्ध कर दिया। सतारा दुर्ग पहाड़ियों की एक साधारण ऊँचाई वाली चोटी से सम्मिलित है। यद्यपि उसकी ऊँचाई साधारण है परन्तु वह एक दम ढालू है। यह चारों ओर ४० फीट ऊँची काले पत्थरों की दीवालों से घिरा है। इसके ऊपर पत्थर की दीवाल है। इस किले की प्रतिरक्षा प्रयागजी प्रभु नामक मराठा हवल्दार कर रहा था। शिवाजी के समय में इस हवलदार ने काफी श्रेय प्राप्त किया था। उसने वीरता पूर्वक मुगलों का सामना किया। चप्पे-चप्पे भूमि के लिये उसने जमकर युद्ध किया। जैसे ही मुगल पहाड़ी के किसी भाग पर अधिकार करने में सफल होते दिखाई पड़ते, प्रयागजी अपनी सेनाओं के साथ किले में इकट्ठे होकर मुगलों के ऊपर ढलुआ पहाड़ी से भारी-भारी पत्थर गिराने लगते। किले की ढलुआ दीवालों तथा चट्टानों से इन पत्थरों के गिराने का फल कुछ काल तक तोप के गोलों के समान होता था। परन्तु उनकी इस वीरता का परिणाम कुछ नहीं होने वाला था। इसका प्रमुख कारण यह था कि उनके पास खाद्यान्नों का अभाव था तथा मुगलों ने उनकी संचार व्यवस्था को एकदम स्थगित कर दिया था। परिणामतः अपनी शक्ति तथा वीरता के विपरीत, अन्नाभाव के कारण आत्म-समपर्ण करने को बाध्य ही हो गये होते, परन्तु परशुराम त्र्यम्बक ने किसी प्रकार आजमशाह को अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया और सफलता भी पाई। अतः आजमशाह के खेमें की निगरानी में किले वालों को आवश्यक खाद्य सामग्री मिल गई।

दक्षिण तथा पश्चिम की ओर से सैनिक कमानों ने तोपें चढ़वा दिया परन्तु मुख्य आक्रमण का केन्द्र पूर्वोत्तर दिशा में था। प्रमुख आक्रमण के केन्द्र उत्तर पूर्व के कोंण पर किले का रूप एक ऊँची मीनार का सा है। किले का यह सबसे अधिक सुरक्षित भाग है। ४२ फीट ऊँची बाहरी दीवाल के ऊपर २५ फीट ऊँची बुर्ज के कारण इसकी ऊँचाई ६७ फीट हो गई, इसी कारण उसकी अजेयता को चुनौती देना आसान प्रतीत नहीं होता था।

तरबीअत खां ने किले के इसी ६७ फीट ऊँचे स्थान पर सुरंग लगाने का प्रयत्न किया।

---

* पत्र की यथार्थ प्रतिलिपि, जो राजा कोल्हापुर के पास है।

† मराठा पान्डुलिपि।

सन् १७००]

साढ़े चार महीने के अन्दर उसने मीनार के नीचे दो सुरंगे लगाने में सफलता प्राप्त कर लिया। अपनी सफलता पर मुगलों को अपार हर्ष हुआ। अपनी सफलता के बारे में उन्हें पूरा विश्वास था। सुरंग लगाने वाले दल ने प्रायः सारी सेना को इस सुरंग का तमाशा दिखाने के लिये निमन्त्रित किया। सभी सैनिक किले वालों की मार से दूर एक पहाड़ी के साये में इकट्ठा हुये। औरंगजेब को विध्वंसात्मक सुरंग में आग लगाने के अवसर पर निमन्त्रित किया गया। योजना यह थी कि सम्राट की सवारी को अत्याधिक शानदार ढंग से इधर-उधर घुमाकर किले के समस्त रक्षक सैनिकों को उत्तरपूर्वी बुर्ज पर इकट्ठा कर लिया जाय और जैसे ही सैकड़ों मराठा रक्षकों के साथ स्वयम् दुर्गरक्षक प्रयागजी भी बुर्ज पर आये, सुरंग में आग लगा दी गई। पहली सुरंग का विस्फोट बहुत ही भयानक हुआ। पहाड़ियों में कई बार विस्फोटित इस प्रथम सुरंग के परिणाम स्वरूप किले की बुर्ज एक दम उड़ गई और उलट कर किले के अन्दर की ओर जा गिरी, जिसके परिणाम स्वरूप सैकड़ों मराठे रक्षकों के अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। सुरंग लगाने वाला दल अपनी प्रसन्नता तथा सफलता के आवेश में ध्वंस किले के पास चले गये। दूसरी सुरंग शृंखला की डोरी पर भी आग दिखा दी गई। यह सुरंग कई केन्द्रों में विभक्त प्रथम सुरंग से बड़ी और अधिक विस्फोटक थी। परन्तु इस सुरंग का निर्माण उचित स्तर पर नहीं किया गया, परिणामतः उसका विस्फोट किले के अन्दर होने की अपेक्षा बाहर की ओर हुआ और इसके फलस्वरूप २००० मुगल उसकी चपेट में आये जिनका तुरन्त अन्त हो गया। प्रयागजी प्रभु को भी प्रथम विस्फोट के आजाने के कारण अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा था। मराठों ने उन्हें प्रथम विस्फोट के ध्वंसावशेषों में भवानी के मन्दिर की बगल में गाड़ दिया जहाँ से वे पुनः जिवित निकाले गये। उनकी इस प्रकार हुई प्राणों की रक्षा से हिन्दू रक्षक सैनिकों कों अपनी प्रतिरक्षा बनाये रखने का उत्साह तथा बल प्राप्त हुआ। परन्तु उनके इस उत्साह का कुछ भी फलोत्पादक परिणाम नहीं निकल पा रहा था। इसका प्रमुख कारण था शाहजादे आजम की परिवर्तित नीति। उसने अब किसी भी प्रकार किले के सैनिकों के लिये भोज्य सामग्रियों को अन्दर न ले जाने दिया। अतः विवश मराठों ने आत्म-समर्पण के लिये उसी को अपना मध्यस्थ बनाया। परिणामस्वरूप मराठों द्वारा किये गये आत्म-समर्पण का सारा श्रेय शाहजादे आजम को मिला। उसकी दगाबाजी तथा देशद्रोह के कार्यों के परिणामस्वरूप उसे मिले सम्मान का महत्व इसी से पता लगता है कि औरंगजेब ने सतारा का नामकरण शाहजादे के नाम के आधार पर आजमतारा रक्खा।

सतारा का पतन आधे अप्रैल महीने तक हो गया। उसके तुरन्त बाद पर्ली पर आक्रमण किया गया। पर्ली का आक्रमण जून के प्रथम सप्ताह तक चला, अन्त में वीरतापूर्वक मुगलों का सामना करने के बाद मराठों ने दुर्ग को खाली कर दिया। इसी समय दक्षिणी पूर्वी मानसून का अपनी पूरी शक्ति के साथ आगमन हुआ। पहाड़ियों के बीच इस मानसून के कारण मुगल सेना भारी विपत्ति में पड़ गई। सैनिक शिविरों को पहाड़ से सकुशल हटाने में भारी कठिनाई का सामना करना पड़ा। जन-धन तथा रण सामग्री की भारी हानि के साथ मुगल सेना खवासपुर लौटी। यह स्थान मान नदी के किनारे स्थित है। इस स्थान पर दक्षिण पूर्वी मानसून का उत्पात अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा कम रहता है, इसी कारण मुगलों ने इसे सैनिक शिविरों के लिये उपयुक्त समझा।

राजाराम की मृत्यु

इन घटनाओं के दौरान में, महाराष्ट्र सरकार में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गये थे।

जब अमात्य—राजाराम को देखने गये हुये थे तो वह जालना की थका देने वाली भारी यात्रा से लौटा था। जुफिल्कार खां के सशक्त आक्रमण से वह और भी परेशान था। उसे खून की कै होने लगी थी। अपनी गत योजना की सफलता के लिये किये गये अत्यधिक प्रयत्नों के परिणामस्वरुप राजाराम के फेफड़ों में भी रक्त आने लगा था। लगभग ३० दिनों तक अपनी इसी बीमारी में छटपटाने के बाद उसकी मृत्यु का समय आ पहुँचा। सिंहगढ़ में लगभग १५ मार्च को, सतारा पतन के एक महीने पहले ही उसकी यह लीला समाप्त हो गई।

सन्ताजी घोरपड़े के विनाश में सहमति देने के कारण ही राजाराम के चरित्र में किसी धब्बे की कल्पना करनी पड़ती है, परन्तु वही उसका इतना भारी तथा अक्षम्य अपराध है कि उसे क्षमा नहीं किया जा सकता। संतोष के लिए उसके पक्ष में यह भी कहा जा सकता है कि राजाराम ने घोरपड़े के साथ जो भी व्यवहार किया वह सब सन्ता जी के विरोधियों के बहकावे में आकर किया परन्तु इस तर्क से हमें एक साधारण आदमी के चरित्र का बोध होता है। एक राजकुमार या शासक के लिये, किसी के बहकावे में आकर अपने सेनापति को, असाधारण कुशलता सम्पन्न सैनिक नेता के विरुद्ध कार्य करने को नीति कभी प्रोत्साहन नहीं दे सकती। हां, राजाराम ने अपने पिता से आंशिकरूप से उनकी रण कुशलता तथा सैनिक प्रबन्ध का पाठ बिरासत में पाया था। परन्तु अपने पिता की बौद्धिक कुशलता नाममात्र को भी नहीं पाई थी। नागरिक प्रशासन के पाठ भी उसने अपने पिता से नहीं सीखे थे। पर भाग्यवश ही उसे प्रहलाद जी नीराजी का साथ मिला, जिन्होंने अपने योग्य प्रबन्ध तथा नीति कुशलता से राजाराम जैसे अयोग्य राजा को आजन्म स्वाभिमान पूर्वक राज्य करने का मौका दिया। प्रहलादजी नीराजी एक असामान्य विद्वता के प्रीतक थे। प्रहलाद जी नीराजी मराठा ब्राह्मण राजनीतिज्ञों में सम्भवत: ऐसे प्रथम राज कर्मचारी थे जिन्होंने कभी भी अपने स्वार्थ के लिये कभी कोई कार्य नहीं किया। राजाराम प्रकृति से मृदु स्वभाव का था तथा उसके मनमें किसी के प्रति दुर्भावना नहीं थी। अपनी असाधारण उदारता के कारण अपने दर्बार में वह लोगों का सहज सम्मान पात्र था।

जब राजाराम की मृत्यु का समाचार मुगल शिविर में पहुँचा तो उनको अपार हर्ष हुआ। उहोंने अनुमान लगाया कि अब शायद महाराष्ट्र के प्रशासन में कोई कमी आ जाय और उनको अपना अभियान पूर्ण करने का अवसर मिल जाय। मृत राजाराम के दो पुत्र थे, जेष्ठ पुत्र का नाम शिवाजी था। वह मोहिते वंश की ताराबाई के गर्भ से पैदा हुआ था। राजाराम की मृत्यु के समय उसकी अवस्था दस वर्ष की थी। दूसरा पुत्र संभाजी घाटगे परिवार की राजसबाई से था, जिसकी अवस्था उस समय मात्र तीन वर्ष की थी।

तारा बाई ने रामचन्द्र पन्त अमात्य, धनाजी जाधव सेनापति तथा शंकर जी नारायण की सहमति से तुरन्त राज्य सत्ता को अपने हाथों में ले लिया। उपर्युक्त प्रधान पुरुषों की राय से शिवाजी को गद्दी पर बैठाने के बाद ताराबाई ने उन्हीं की सहमति के अनुसार राजसबाई को बन्दी बना लिया गया।

ताराबाई के प्रशासन ने शीघ्र ही तिम्मोजी रघुनाथ को प्रतिनिधि जैसे ऊँचे पद के अयोग्य समझा। परशुराम त्र्यम्बक की पदोन्नति करके उन्हें प्रतिनिधि के प्रबन्ध पूर्ण स्थान पर नियुक्त कर दिया गया। परिणाम स्वरूप उनके अधिकार में समस्त मराठा किलों का प्रबन्ध स्वयमेव आ गया। परशुराम त्र्यम्बक की इस सफलता से रामचन्द्र पन्त के मनमें द्वेषाग्नि प्रज्वलित हो उठी। परन्तु

ऐसा प्रतीत होता है कि रामचन्द्र पन्त को स्वयम् अपनी स्थिति का ज्ञान नहीं था। उसे यह पता नहीं था कि शासन कार्य में संलग्न अन्य प्रमुख व्यक्तियों के मनमें उसके प्रति सन्देह जागरित हो उठा है, अन्यथा वह किंचित अपनी द्वेषाग्नि का कारण समझ जाता और मात्र परशुराम त्र्यम्बक के प्रति वह अनुदार हीन न होता। परन्तु परशुराम की इस पदोन्नति का विरोध करने में ताराबाई की दृढ़ नीति तथा स्पष्ट व्यवहार ने कुछ भी प्रोत्साहन नहीं दिया। ताराबाई ने अपने निवासस्थान को किसी एक किले से निश्चित नहीं किया। समयानुसार वह अपना निवास एक किले से दूसरे किले में बदलती रही। धनाजी जाधव ने अब खुले मैदान का सहारा लिया। अपनी सेनाओं को किसी एक ओर ले जाने की अपेक्षा उन्हें छोटी-छोटी सवार सेना की टुकड़ियों में विभक्त करके देश के प्रत्येक प्रमुख स्थानों की ओर भेजा। इन विभक्त सवार तथा पैदल सेना की टुकड़ियों ने अनेक स्थानों में महत्वपूर्ण लड़ाइयां लड़ीं। निम्बालकर, भोंसले तथा दाभाड़े सरीखे सर्दारों ने अपने आचरण तथा कार्यों को पूर्ववत बनाये रक्खा। थोराट, चौहान, सिन्दिया, पवार तथा अतावले वंशो के पास भारी सैन्य टुकड़ियों का जमावड़ा रहा। विभिन्न दिशाओं में अपनी शक्तिशाली सैनिक टुकड़ियों के साथ चौथ, देशमुखी, घास दाना, तथा अन्य प्रकार की बकाया तथा नवीन, मालगुजारियों की वसूली में वे व्यस्त रहे। घास दाना की लगान साधारणतः लगान वसूली कराने वाले सर्दारों की अपनी व्यक्तिगत आय होती है। मुगल शिवरों तथा इन मराठे स्वतन्त्र सैनिकों * के रहन-सहन व खान-पान में महत्वपूर्ण भेद था। ये शिवाजी की पूर्णतः अनुशासित सेना से इनकी कोई तुलना नहीं की जा सकती परन्तु विध्वंशात्मक प्रवृति तथा तोड़-फोड़ के कामों में अवश्य ही इन मरठों से हीन रही होगी। जिस कोनें में भी हजारों की संख्या में इन लुटेरी टुकड़ियों का प्रवेश होता, वह क्षेत्र कराह उठता। अल्पअनुशासित, सिर्फ लूट की नियत से सर्दारों के साथ चलने वाली मुख्य सेना में इनका रहना भी सिर्फ इसी कारण से था कि विजय कार्य में मराठा सरकार की सेना का साथ देने की एवज में उन्हें विजित क्षेत्र को लूटने-पाटने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की जाती थी। उनके अभियान में उनके साथ कम्बल तथा कुछ अत्यन्त आवश्यक सामग्रियों के अतिरिक्त कुछ भी साथ न होता था। उनके घोड़े की जीनों में बनी थैलियों को खाली करके धर दिया जाता था और जब लम्बी यात्राओं के बाद लौटते तो ये थैलियाँ सोने चांदी के सिक्कों तथा जेवरातों से भरी रहती थी। अभियान के दौरान में अपने रात्रि कालीन विश्राम के लिये उन्हें मुगल सैनिकों की तरह टीमटाम की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। वे अपनें घोड़ों की लगाम हाथों में पकड़ कर सो जाते। दिन में जब उनके घोड़े आराम करने व घास आदि खा कर ताजे होते, वे साधारण सी छाया, जो प्रायः ही सब स्थानों में प्राप्त नहीं होती थी कड़ी धूप में, हल्का सा विश्राम कर लेते थे। यदि उन्हें कभी किसी झाड़ी में आश्रय मिल जाता तो हल्की सी झपकी ले लेते परन्तु तब भी उनके साथ बगल में खुली तलवार रक्खी रहती। इनका जीवन शेष मामलों में आधुनिक पिन्डारियों † जैसा ही है। अपनी सुरक्षा के लिये वे कितने सतर्क रहते थे इसका पता इसी से लगता है कि वे अपने भाले को जमीन में गाड़ कर घोड़ों को सिर झुका कर बांध देते थे जिससे कि

---

* यह राज्य से वेतन नहीं पाते थे। सर्दारों की सरकारी सेना के साथ चलते समय ये उनसे आज्ञा मांग लेते थे तथा आक्रमण में पूरा सहयोग देते। वदले में वे सिर्फ विजित स्थानों को लूटा करते। अनुवादक

† बंजारों के किस्म की जाति—अनुवादक

झाड़ियों के ऊपर अपनी उपस्थिति की सूचना किसी अन्य को न हो सके। जब कभी उन्हें किसी मैदानी इलाके में रुकने का आदेश मिलता तो वे चार-चार, पांच-पांच के झुंड में किसी जगह पड़ रहते थे। भालों की नोक पर कम्बलों को बांध कर उसके साये में सब अपने सिर को केन्द्र में रख कर एक वृत में अपनें पावों को फैलाकर सो जाते। सूर्य खिसकता रहता या फिर कम्बल आदि की छाया काफी न होती, परिणामतः कुछ ही समय बाद देखा जाता कि उनका सिर तो कम्बलों के साये में होता बाकी सारा शरीर धूप में पड़ा रहता था। इनके जीवन का प्रथम और अन्तिम उद्देश्य लूट-पाट करना ही होता था। इन लुटेरों के सर्दारगण उनकी लूट का भारी भाग प्रायः सरकार या राज्य के नाम ले लिया करते थे। राज्य के नाम वसूले गये इस लूट के धन का अधिकांश भाग वे स्वयम् अपने लिये रख लिया करते थे।

मांकुरी सैनिकों ने शिवाजी के वंशजों के प्रति अपनी स्वामिभक्ति को बनाये रक्खा। वे कभी तो मराठों के वेतन प्रात सैनिकों में शामिल हो जाते और कभी सेना से अलहदा रह कर आवश्यकता पड़ने पर आ जाया करते। परन्तु वे चाहे जिस स्थिति में सेना के साथ होते, अवसर मिलते ही लूट-पाट कर अपनी थैलियां भरने से बाज न आते। असन्तुष्ट घोरपड़ो ने महाराष्ट्र के पूर्वी सीमाओं को लूटने में कुछ भी कसर नहीं की। गोदावरी से लेकर कृष्णा तक उन्होंने अपने लूटमार के बाजार को गर्म रक्खा। दक्षिण से वसूल की जाने वाली लगान, औरंगजेब के शाहाना खर्चे तथा शानोशौकत के लिये न अँट पाते थे। दक्षिण में उसके सैनिकों की संख्या भी अच्छी खासी थी। परिणामतः अपने शाही स्तर को बनाये रखने के लिये उसे उत्तरी भारत से लगातार रुपये मँगाने पड़ते थे। सोने चांदी के सिक्कों से लदे, कारवाँ पर कारवाँ दक्षिण की ओर आते रहते थे। मराठों ने अवसर मिलने पर ऐसे कारवाँ पर अधिकार करने का हमेशा प्रयास किया। लूट-पाट के लिये कारवाँ पर हुये इन आक्रमणों में अक्सर ही मुगल सैनिकों तथा सैन्य अधिकारियों ने अपनी भीरुता का प्रदर्शन किया।

जुल्फिकार खां की सैन्य प्रबन्ध कुशलता की बड़ाई प्रायः ही अतिशयोक्ति ढंग से पर्शियन पान्डुलिपियों में देखने को मिलती है परन्तु इन विवरणों के भ्रामक सत्यों पर विश्वास करने का हमें कोई विशेष कारण नहीं दिखलाई पड़ता। हां अपने आक्रमण से दुश्मनों को लगातार युद्ध में फंसाये रखने तथा लगातार अथक युद्ध करते रहने में उसका मुकाबला कोई अन्य नहीं कर सकता। उसने उस समय की स्थिति को संभालकर अपने महत्व का परिचय दिया जब मराठों से उस पहाड़ी प्रदेश में लड़ने के लिये मुगलों के पास कोई कुशल सेनापति नहीं था। उनके प्रत्येक सेनापतियों को अपने नाम मात्र की सफलता के बाद मुँह की खानी पड़ी थी। इन सेनापतियों में जनभावना को जानने की अनिच्छा तथा प्रदेश के निवासियों के स्वभाव अध्ययन के अनुसार युद्ध नीति अपनानें की अयोग्यता स्पष्ट रूप से ज्ञात की जाती है। उनमें भ्रष्टाचार, घमन्ड तथा उदासीनता की भरमार थी। सेनापतियों में सामान्य रूप से बढ़ती अकर्मण्यता का प्रधान कारण था शहंशाह की बढ़ती अवस्था तथा उसी रफ्तार से बढ़ती मति की अस्थिरता। उसके पुत्रों के चरित्र का भी उसमें विशेष हाथ था। प्रत्येक व्यक्ति को आने वाला दिन मुसीबतों से परिपूर्ण प्रतीत होता था। ऐसा प्रतीत होता था मानों वे आने वाले प्रत्येक दिन नये मोड़, नये परिवर्तन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसी आने वाले परिवर्तन के विरुद्ध, प्रतिक्रिया करने के लिये अपनी शक्तियों को व्यर्थ लड़ाइयों में बर्बाद करने की अपेक्षा उसे अपने भविष्य के लिये तैयार रक्खे रहना चाहते थे।

औरंगजेब का शासन लोगों की आशा के विपरीत लम्बा होता गया। उसने अपनी वृद्धावस्था के विपरीत अपने जीवन को अधिकाधिक चिरायु बनाने का प्रयास किया। अपने जीवन की इस खींच-तान को उसने मराठों की स्वतन्त्रता को समाप्त करने में ही लगाया। सन् १७०१] अगले चार वर्षों तक उसने अपनी सम्पूर्ण सत्ता, कौशल तथा एकाग्रता से मराठों के अधीन किलों को परास्त करने एवम् अपने अधिकार में लाने का प्रयास करता रहा। अपने इस प्रयास से उसने आशातीत सफलता भी प्राप्त की। इस प्रयास में विजित किलों में, पन्हाला, विशालगढ़, सिंहगढ़, पुरन्दर, राजगढ़ तथा तोरण प्रमुख थे। * चन्दन, वन्दन तथा पान्डुगढ़ भी मुगलों के सामने आत्म समर्पित हो चुके थे। परन्तु उसी समय मराठों ने पुनः चारों ओर से अपनी प्रभुता में वृद्धि की। १७०२ में उन्होंने सूरत तथा बुरहानपुर तक लगान वसूल किया। उनकी यह सीमा प्रत्येक वर्ष आगे खिसकती चली आ रही थी। जिस किसी क्षेत्र में उनकी देशमुखी तथा चौथ की मांग को समर्थन प्राप्त हो जाता था, वहां वे सावधानी के साथ लूटपाट को स्थगित कर देते थे। १७०५ में शहंशाह ने अनेकों समाचार एक के बाद एक सुने। उन्हें पता लगा कि मराठों की भारी सेना ने नर्बदा पार करके मालवा तक को दहला दिया। सम्पूर्ण खानदेश तथा बरार में मराठों ने आतंक स्थापित कर लिया है तथा यह कि १५००० मराठों ने गुजरात में † घुस कर फौजदारों की सारी सेना को पराजित करके सारे क्षेत्र को वीरान सन् १७०५] कर दिया है। मारे-काटे गये सैनिकों की लाशों तथा खेतों की तैय्यार फसलों के जले हुये ढेरों तथा खडन्हरों के अलावा उन क्षेत्रों में मराठों ने कुछ भी नही छोड़ा।

इस समाचार के मिलते ही मुगल शिविर में हलचल मच गई। युद्ध की भारी तैय्यारियां की गईं। जुल्फिकार खाँ अपने साथ की सेना के साथ मालवा भेजा गया। गाजिउद्दीन को सूबेदार नियुक्त किया गया तथा आजमशाह को गुजरात का सूबेदार बनाकर अहमदाबाद जाने का आदेश मिला। इन प्रत्येक सेनानायकों एवम् पदाधिकारियों के साथ यथेष्ट संख्या में सैनिक भी थे अतः लोगों ने सहज ही में यह अनुमान लगाना आरम्भ किया कि अब इन स्थानों से मराठों का आतंक समाप्त हो जायेगा।

दक्षिण की राजनैतिक स्थिति

परन्तु शहंशाह के इन कुशल प्रयत्नों का कुछ भी फल नहीं हुआ। इसका प्रमुख कारण शायद यहीं था कि इन प्रबन्धों से जितनी तत्परता प्रकट होती थी उतनी वास्तव में थी नहीं। सेनाओं ने अपने स्थान परिवर्तन किये, उनके आने जाने से तत्परता तथा चेतना की एक लहर सी उठी परन्तु क्रियाशीलता क्षमता तथा उत्साह की कमी ने सेनाओं की तथा प्रशासन प्रबन्ध की वास्तविकता अपने आप में स्पष्ट हो उठी। सारे साम्राज्य में शिथिलता सी व्याप्त होती प्रतीत होती थी, उसके प्रशासनिक

---

* तोरण पर रात्रि में आक्रमण किया गया था। इन घेरों में अमानुल्लाह खां नामक व्यक्ति ने हाथों में तलवार लेकर आक्रमण कार्य में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। खफी खां के अनुसार शेष सभी किले-किलेदारों को घूस देकर खाली करवाये गये थे।

† खफी खां, स्काट, तथा मराठा पान्डुलिपि।

नियम ढीले हो चले थे तथा उसके कर्मचारी तथा पदाधिकारी भ्रष्टाचार की सीमा का भी उलंघन कर गये थे। वास्तव में यह आन्तरिक क्षय था जो स्पष्ट रूप से ऐसा दृष्टिगोचर प्रतीत होता था, जैसे मुगल साम्राज्य कटे वृक्ष की भांति गिरने वाला है। इसका कारण उसकी स्वयम् की कमजोरी तथा मराठों की शक्तियों का क्रमागत बढ़ाव तथा चैतन्यता। मूर्ख मराठों को मुसलमानों ने अपनी समस्त चालबाजियों को सिखा दिया था। इसी का परिणाम था कि वे इस काल तक इस कला के सर्वमान्य पट्टनायक माने जाने लगे थे। जिन मुसलमानों ने उत्तरी भागों में अपनी कूटनीतिक चालों से सारे देश में अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था, उन्हीं को दक्षिण में मराठों ने नाकों चने चबवाये। अगर देखा जाय तो मराठे संसार के किसी भाग विशेष के विजेताओं से कम नहीं थे परन्तु अपनी भयानक लूट-मारों के कारण ही वे अपने ही विजित क्षेत्रों में विजेताओं से प्रतीत नहीं होते थे। यद्यपि महाराष्ट्र के हिन्दू नागरिकों के मन में इन विजयों के प्रति एक भावनात्मक सम्बन्ध अवश्य था परन्तु वह भावनात्मक योग्यता इतनी अधिक सीमा तक नहीं जा पहुँची थी कि जनता हिन्दू साम्राज्य के निर्माण में तथा संगठन में सक्रिय सहयोग देती या फिर वे किसी प्रत्याशित विदेशी शासन को न बर्दाशत करने का संकल्प कर लेते। भावनात्मक एकता को हम यदि सद्भावना कहें तो मेरे ख्याल से अधिक उपयुक्त होगा। मराठा साम्राज्य के प्रति इसी सद्भावना के दर्शन हमें जनता की तत्कालीन प्रवृत्तियों में देखने को मिलती है परन्तु यह सद्भावना कर्म हीन थी। वे यह तो चाहते थे कि मराठों का साम्राज्य बना रहे पर यदि उनके क्षेत्र में मराठों की पराजय हो जाती तो वे विद्रोह करके आगन्तुक विजेता को अप्रसन्न नहीं होने देते थे। मराठों की सफलता तथा विजयों का श्रेय उनकी देश-भक्ति को देने की अपेक्षा लूट की प्रबल आकांक्षा को देना अधिक उपयुक्त था। इसके विपरीत जो मराठा सरदार मुगल सेना में महत्वपूर्ण क्षेत्रों में पड़े थे, वे अपने भविष्य के लिये नित नवीन योजनायें बना रहें थे। उनको मराठा साम्राज्य से सहानुभूति हो न हो, वे मात्र इसी कारण तूफ़ान आने से पहले की निस्तब्धता का प्रदर्शन कर रहे थे। उनको विश्वाश था कि शीघ्र ही उन्हें अपने लिये व्यक्तिगत स्वतन्त्र राज्य बनाने का अवसर प्राप्त होगा। अतः उनकी सामान्य इच्छा भी यही थी कि मुगलों का मराठों के साथ युद्ध लगातार चलता रहे, विजित क्षेत्रों में से अधिकांश क्षेत्र उनके प्रबन्ध में आता रहे एवं उनके स्वतन्त्र राज्य की कल्पना को पंख लगते रहें।

मुगल अधिकारियों में से अनेक ऐसे थे जो दिखावे के लिये तो मुगलों के सेवक थे परन्तु गुप्त रूप से मराठों से भी वेतन लिया करते थे। अतः उनके स्वार्थ के अनुसार भलाई इसी में थी कि उनकी स्थिति के बारे में लोगों को हमेशा भ्रम रहे। इसी योजना के साथ उनके इस काल के दिन बीत रहे थे। मुगलों के अधीनस्थ मराठा सरदार प्रायः ही इकट्ठे होकर अपने देशवासियों के साथ विल्पव करते, लूटपाट करते, साथ ही भोजों में सम्मिलित होते और चलते समय मुसलमानों के धार्मिक नारों तथा मुगल सम्राट आलमगीर की इकबाल बुलन्दी के नारे लगाकर मुसलमानों को अजीब से धार्मिक संकट तथा भ्रम में डाल देते। *

राजगढ़ तथा तोरण के पतन के बाद औरंगजेब ने वहाँ रहना अनावश्यक समझा। अतः

---

* मराठा पान्डुलिपि तथा पर्शियन वास्तविक पत्र। औरंगजेब ने आलमगीर की उपाधि धारण की थी। मैंने इस नाम को अन्य दक्षिण के इतिहासकारों के समान ही, त्याग सा दिया है। यूँ अलमगीर का अर्थ है, विश्व विजेता।

कुछ महीने जुन्नार में रहने के बाद उसने पूना का पड़ोस छोड़ ही दिया और बीजापुर की ओर बढ़ा। परन्तु पूना को छोड़ने से पहले उसने उसका नाम पूना से बदलकर मोचाबाद रख दिया।

संधिवार्ता

कुछ मुगल अधिकारी मराठों के साथ शान्तिपूर्ण समझौते के लिये उत्सुक थे। सम्राट का प्रिय पुत्र काम बख्श इस प्रयास में लगा हुआ था। उसने शुरू में ही बीजापुर को केन्द्र बना कर अपने लिये स्वतन्त्र राज्य निर्माण की योजना बनायी थी। मराठों के साथ शान्ति सम्बन्ध स्थापित करने की धुन में उसने उनकी अनेकों मांगों को स्वीकार भी कर लिया था और अब अपनी इन विचार धाराओं पर वह शहंशाह की सहमति प्राप्त करने का प्रयास कर रहा था। सम्राट की सहमति पाते ही धनाजी जाधव से कूटनीतिक वार्ता आरम्भ करने की योजना थी।

वार्तालाप का श्री गणेश संभाजी के पुत्र शाहू के मुक्ति के प्रस्ताव के साथ आरम्भ हुआ। वार्तालाप चलता रहा और अन्त में औरंगजेब ने दक्षिण के सभी छः सूबों की कुल वसूल लगान का दस प्रतिशत मराठों को बतौर सरदेशमुखी के देना स्वीकार किया। इसके एवज में मराठों को अपने सवारों की सहायता से मुगलों के क्षेत्र में सुशासन और व्यवस्था बनाये रखनी थी। इस समाचार के सुनते ही लुटेरे प्रकृति के मराठो में उत्साह व्याप्त हो गया। लगे हाथ उन्होंने अधिकतम माँगें पेश करने के लिये धनाजी पर दबाव डाला। ज्यों-ज्यों धनाजी के समर्थको की संख्या बढ़ती, मांगों का रूप भी बदल जाता। उनकी बातों का ढंग बराबरी के स्तर से उतर कर विजेताओं का सा हो गया। शाही खेमे से मराठो के बढ़ते सम्बन्ध तथा अपने प्रमुख ७० मराठा अधिकारियों के लिये सम्मानित परिधानों की मांग ने सम्राट के मन में सन्देह जाग्रित कर दिया। उसने सोचा कि, हो न हो, इसमें भी उनकी कोई चाल हो। इसके अलावा मराठों की इस अन्तिम मांग को अपने लिए शहंशाह ने अपमानजनक समझा। फलतः उसने इन वार्ताओं को समाप्त कर दिया तथा मराठों के पास से अपने दूत को वापस बुला भेजा। विचारे दूत पर मराठा शिविर छोड़ते ही आक्रमण किया गया। इस आक्रमण के परिणाम स्वरूप औरंगजेब को मराठों के प्रति जाग्रत सन्देह भावना को बल मिला। ऐसा लगता है की इसके पश्चात् औरंगजेब तेलंगाना और कर्नाटक की ओर बढ़ा, कारण इस बात की पूरी संभावना थी कि महाराष्ट्र की हवा इस ओर भी घूमेगी। परन्तु एक तरफ बेहद तथा दूसरी ओर पिन्डारियों के हल्के उपद्रवों के बावजूद यहां ऐसी-वैसी कोई घटना न घटी। इसका प्रमुख कारण शायद यही हो कि यहाँ की जनता मराठों की सी विस्फोटक और डकैत प्रकृति की नहीं है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाना चाहिये कि कर्नाटक निवासी कायर हैं, या युद्ध प्रिय नहीं हैं। अनेकों मुगल अधिकारी इसी क्षेत्र के थे तथा शाही सेना में भी इस क्षेत्र के सैनिक भारी संख्या में थे। शारीरिक दृष्टि से ये मराठों से किसी भांति निम्न नहीं माने जा सकते। फिलहाल, अनेकों क्षेत्रों में लूट पाट जोर-शोर से आरम्भ हो गई और इन लुटेरे दलों के प्रधानों की शक्ति शीघ्रता से बढ़ने लगी। उनकी शक्ति का अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि अनेक सर्दार अपने दलों द्वारा लूटी सामग्रियों को प्रदर्शनार्थ खुले आम ले जाया करते थे। स्वतन्त्र मराठा सर्दार, जिनमें घोरपड़े मुख्य हैं, काफी दिनों से बीजापुर, कुलबर्ग, तथा बेदर के आस-पास के क्षेत्र को लूटते रहे थे। काकिनखेड़ का नायक प्रेमनायक भी इस श्रेणी का एक प्रमुख लुटेरा था, यद्यपि लगातार उसे मुगल सैनिकों ने परास्त कर एवम् लम्बी-लम्बी रकमों के जूर्माने करके उसे अपनी हर्कतों से बाज आने को कहते, परन्तु वह जैसे ही मुगल सेनाओं के हस्तक्षेप करने की सीमा से

बाहर जाते देखता पुनः जुर्माने की रकम वसूल करने के लिये नवीन योजनायें आरम्भ कर देता। इस सर्दार से मराठों का सम्बन्ध घनिष्ट था। प्रमाण स्वरूप, जब औरंगजेब सह्याद्रि की पहाड़ियों में किले पर घेरा डाले पड़ा था धनाजी जाधव ने अपने परिवार को काकिनखेड़ में छोड़ रक्खा था। कारण दूसरे अन्य स्थानों से उसे अपने परिवार के लिये यह स्थान अधिक सुरक्षित तथा उपयुक्त लगा। काकिनखेड़ के नायक की शक्ति इतनी अधिक बढ़ गई थी कि उसे दबाने के लिये बीजापुर आते ही, स्वयम् औरंगजेब ने सेना के साथ जाना आवश्यक समझा। *

काकिनखेड़ घेरे में

काकिनखेड़ एक साधारण मोर्चा बन्दो युक्त नगर था परन्तु उसका घेरा कई महीनों तक पड़ा रहा। प्रेमनायक ने धैर्य के साथ अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध किया तथा मुगलों की बढ़ती अगली चौकियों पर सफल आक्रमण करके उन्हें वापस लौटने पर आशक्त कर दिया। दूसरी ओर धनाजी जाधव ने अपने छुटपुट आक्रमणों द्वारा उन्हें भयभीत किये रक्खा। मुगल अधिकारी इन आक्रमणों से इतने भीरु हो गये थे तथा उनके सैनिक इतने बेहया व बेशर्म हो गये थे कि धनाजी जादव की सेना के प्रकट होने से ही, विरोध का कोई प्रयास किये बिना ही भागने लगते। †

सर्वोत्तम मुगल सेनापति उस स्थल से काफी दूर थे। जुल्फिकार खां को शंहशाह ने काकिनखेड़ में सेना के साथ मिलने का निर्देश दिया। इसी प्रकार के आदेश दाऊद खां को कर्नाटक भेजे गये। जुल्फिकार खां इस समय तक औरंगाबाद लौट कर आ गया था। औरंगाबाद लौटने के पहले उसने नीमाजी सीन्दिया को मालवा से भगा दिया था। जैसा कि हम देख चुके हैं मराठों को अधिकतर उत्तरी भागों में ही उलझे रहना पड़ा था अतः कर्नाटक की ओर उनकी सेनायें नाम मात्र को ही थी, परिणामतः माना जी मोरे को वेलोर का महत्वपूर्ण किला मुगल सेनापति दाऊद खां के आगे, समर्पित कर देना पड़ा था। ‡ अपने इस समर्पण के लिये मोरे को मुगल सम्राट ने मन्सब भी प्रदान किया था परन्तु मोरे ने कभी उसकी मांग नहीं की और महाराष्ट्र जाकर पुनः अपने देशवासियों से मिल गया। दाऊद खां ने, सआदतउल्ला खां को दोनों कर्नाटकों में अपना प्रतिनिधि या सहायक सेनापति बना, औरंगजेब के आदेशानुसार उसके पास चला गया। जुल्फिकार खां के कुछ ही बाद वह भी शाही शिविर में पहुँच गया। ये दोनों अधिकारी वीर तथा अनुभवी थे। दोनों ने अपनी सम्मिलित सेनाओं के साथ काकिनखेड़ पर साहसिक धावा बोल दिया। नगर के उपबन्धों पर अधिकार होते ही नगर खाली कर दिया गया। दोनों तरफ से भारी जन हानियां हुईं और नगर पर मुगलों का अधिकार हो गया। x

इस समय मराठा प्रत्येक दिशा में खुले क्षेत्रों को लूटने खसोटने में व्यस्त थे। रामचन्द्र पन्त अमात्य ने भी पन्हाला तथा पवनगढ़ पर सशक्त आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में पुनः कर

---

* खफी खाँ, स्काट,

† "मुगलों के घोड़े जब नदी में पानी पीने से इन्कार करते तो मुगल मजाक करते कि क्या तूने धनाजी जाधव को देख लिया" सर देशाई ने इसी कथा को सन्ताजी घोरपड़े के लिये प्रत्युक्त किया है—अनुवादक

‡ खफी खां—स्काट

x औरंगजेब का वास्तविक फर्मान जो मोरे परिवार के पास सुरक्षित है।

लिया था। इस सफलता के कारण एक सेनापति के समकक्ष भी उनका सम्मान माना जाने लगा। तारा बाई ने पन्हाला को ही अपना स्थायी निवास स्थान बनाने का निश्चय किया। रामचन्द्र पन्त की पिछली सफलता से प्रभावित हो कर उसने उसके हाथों में और भी शक्तियां सौंप दीं। प्रतिनिधि परशुराम त्र्यम्बक ने वसन्तगढ़ तथा सतारा पर पुनः अधिकार कर लिया था। सतारा पर मिले अधिकार का श्रेय अन्नाजी दत्तो नामक एक मराठा ब्राह्मण को मिला। अन्नाजी ने किसी प्रकार जिंजी के जेल से छुटकारा पाने के बाद भिक्षुक का सा जीवन बिताने लगा। सतारा दुर्ग के सैनिकों को बदलने के लिये जाने वाले सैनिकों के एक दल के सम्पर्क में आने पर उसने अपनी वाक्पटुता तथा अपने चित्तानुरंजक स्वभाव के कारण उनकी मित्रता प्राप्त कर लिया। उन्होंने भी अन्नाजी को अपने मनोरंजन का साधन समझ करके अपने साथ ही रख लिया। परिणामतः वह उनके साथ किले में ही चला गया और वहीं रहने लगा। वह कहानियां सुना-सुना कर उनको प्रसन्न किये रहता और उससे इनाम आदि पाता रहता था। अन्नाजी दत्तो मराठों की मावली सेना में कारकून का कार्य कर चुका था। अतः शीघ्र ही उसने उस स्थान पर अचानक आक्रमण करके उस पर अधिकार करने की व्यावहारिकता को समझा। उसने सोचा कि यदि उसके साथ के कुछ पुराने साथियों की सहायता मिली तो आसानी से सतारा पर अधिकार किया जा सकता है। उसने अवसर का इन्तजार किया तथा परशुराम को इसकी सूचना दे दी। अपनी योजना के अनुसार कुछ मावलियों को किले में प्रविष्ठ करा के उसने किले के सारे सैनिकों को, सन्नाटे में, तलवार के घाट उतरवा दिया। उसे इस नृशंस हत्याकान्ड पर कुछ भी पश्चत्ताप नहीं हुआ (कारण उसने तो अपनी कैद का बदला लिया था)।

सचिव शंकर जी नारायण भी निष्क्रिय नहीं बैठे। जैसे ही उनके क्षेत्र से मुगलों का जमावड़ा हटा उसने सिंहगढ़, राजगढ़, तथा रोहिड़ा के अतिरिक्त भी अनेकों स्थानों पर पुनः अधिकार कर लिया। मुगलों के हाथों से उन किलों के इनत्ती आसानी से निकल जाने का यह कारण था, कि उन्होंने इन किलों में कर्नाटकी सैनिकों को रक्खा था। मराठों की ओर के मावलियों के सामने उनकी कोई समता नहीं थी। परिणामतः सभी किले एक के बाद एक, जैसे मुगलों को मिले थे उसी प्रकार निकल भी गये।

औरंगजेब

इन किलों के पतन से औरंगजेब परेशान हो उठा। उसकी हैरानी का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इन किलों के पतन का समाचार पाते ही वह बीमार हो गया तथा काफी दिनों की चिकित्सा के बाद ही पुनः स्वस्थ हो सका।

जुल्फिकार खाँ को शहंशाह ने पुनः सिंहगढ़ पर अधिकार करने के लिये भेजा। जाने से पहले शाहू को भी उसी के हाथों सौंप दिया गया। जुल्फिकार खाँ शाहजादे काम बख्श से द्वेष रखता था, उसी द्वेष के परिणाम स्वरूप उसने शाहजादे तथा मराठों के आपसी सम्बन्धों को समाप्त करने के लिये प्राणपण से जुट गया। औरंगजेब तो पहले ही संदेह कर रहा था। परिणामतः जुल्फिकार खाँ को अपने कार्यों के लिये सम्राट की सहमति अपने आप प्राप्त होती रहती थी। ऐसा लगता है कि औरंगजेब भी मराठों की शस्त्रों द्वारा होने वाली अपराजेयता को स्पष्ट समझ गया था इसी कारण उसने मराठों को मिलाने के लिये सर्वथा नवन योजनाओं का सहारा लिया। शाहू के नाम से अनेकों मराठों प्रधानों के नाम पत्र लिखवाये गये। इन पत्रों में शाहू को मराठों का शासक या छत्रपति

मानते हुये सर्दारों को मुगलों के सामने समर्पण की बात थी। शाहू को बन्दी जीवन से मुक्ति पाने की एक यही अवस्था थी। यदि इस समय औरंगजेब ने अपनी बुद्धि का इस्तेमाल किया होता और शाहू को मुक्त कर दिया होता तो किंचित उसकी अभिलाषा पूरी हो जाती, परन्तु वह तो शाहू को अपनी कैद में रक्खे-रक्खे ही मराठों को अपने सामने झुका देना चाहता था। परन्तु यद्यपि, निसन्देह कुछ मराठे शाहू की आज्ञा का पालन करने को तैय्यार बैठे थे, फिर भी वे औरंगजेब को भी भूले नहीं थे। उसकी प्रत्येक चालें मराठों के हृदय पर अंकित थीं, संभाजी की नृशंस हत्या तथा उनके साथ हुये अन्याय का घाव उनके दिलों पर ताजा था अतः औरंगजेब की यह अन्तिम चाल कभी भी बुद्धिमत्ता पूर्ण नहीं कही जा सकती और न तो इसका कुछ परिणाम ही हुआ।

ज़ुल्फिकार खाँ सिह गढ़ की संचार व्यवस्था तथा रसद आदि की नाकेबन्दी करके उसे पुनः अपने अधिकार में करने में सफल हो गया, परन्तु अभी वह वहाँ अपने सैनिकों को छोड़ कर हटा ही था कि शंकर नारायण सचिव ने उसे पुनः अपने अधिकार में कर लिया। मजे की बात यह कि जिस प्रकार संचार व्यवस्था पर नियन्त्रण करके मुगल सेनापति ने सिंहगढ़ पर अधिकार प्राप्त किया था उसी मार्ग को अपनाकर सचिव शंकर नरायण ने भी उस पर पुनः अपना अधिकार कर लिया। मुगलों की मुख्य सेना पर जब वह अहमद नगर की ओर बढ़ रही थी मराठों ने शक्तिशाली आक्रमण किया और उस सेना को अपने अनेक विभागों की पराजय देखनी पड़ी। अगर मराठों ने सभी प्राप्त साधनों तथा सुविधाओं का, जिनके कारण उन्होंने मुगल सेना को अंशतः पराजित किया था, पूरा उपयोग किया होता तो बहुत सम्भव था कि, मराठों का सबसे बड़ा शत्रु सम्राट आलमगीर औरंगजेब मराठों का बन्दी हो गया होता। मजेदार बात तो हमें मुगल लेखकों द्वारा किये गये इस युद्ध के वर्णन के तथ्यों से ही मालूम होती है। उन्होंने मुगल सेना की असफलता और पराजय को सफलता एवम् विजय के रूपों में उपस्थित किया है। अपने भाग्य की प्रबलता के परिणाम स्वरूप अपनी प्राण रक्षा में सफल मुलगों की वीरता का बर्णन पढ़ना कितना हास्यास्पद लगता है, इसकी कल्पना पाठकों को सहज ही हो सकती है। मुगल सेना के चरित्र में यदि कहीं चमक थी तो वह थी, सेनापति खान आलम की वीरतापूर्ण प्रतिरक्षा। खान आलम की पटुता से हम परिचित हैं। इखलास खाँ के नाम से इसी योग्य अधिकारी ने सफलता पूर्वक संभाजी को बन्दी बनाया था।

सन् १७०७]

औरंगजेब अपनी सेना के साथ अहमद नगर आया उसका शिविर पुनः उसी स्थान पर गड़ा जहां से उस दिन से २१ वर्ष पूर्व उसने अपने दक्षिण अभियान को आरम्भ किया था। जब प्रथम उसका शिविर गड़ा था तो उसके शिविर में उत्साह व्याप्त था, शाहाना ठाट से लोगों की आँखें चौंधियाती थीं परन्तु आज उसे ऐसा लग रहा था जैसे वह अपने जीवन की अन्तिम यात्रा से वापस लौटा हो। उसे अपना अन्त समीप प्रतीत होता था। इसी दिन से उसे अपने दक्षिण अभियान की समाप्ति दृष्टि गोचर हो रही थी। उसके अभियान के प्रथम चरण और अन्तिम चरण की विवेचना ध्यान देने योग्य है। परन्तु इस बीच घटित घटनाओं के सूक्ष्म अध्ययन से हमें इससे भी अधिक महत्वपूर्ण सत्य का पता लगता है। हमें औरंगजेब का विपन्न चित्र देखने को मिलता है परन्तु उसके जीवन का इतिहास हमें उस पर पश्चाताप करने की प्रेरणा नहीं प्रदान करता। उसकी लुटेरू प्रवृति के इतिहास का मनोरंजक विवरण हमारे सामने जैसे स्पष्ट हो जाता है, उसके विकास के चित्र व साधन हमारे सामने प्रकट हो उठते है, उसके पोषक तत्व हमारे सामने साकार हो उठते हैं, परन्तु पतन भी हमारे सामने ही है,

और तुलनात्मक विवरण करने की हमें पूरी सुविधा स्वयमेव प्राप्त हो जाती है। औरंगजेब के तीन पुत्र थे। शाहजादा मुअज्जम या शाहआलम जो काबुल में सूबेदार था और आजमशाह तथा काम बख्श। इस अवसर पर आजम अपने पिता के पास आया था। औरंगजेब ने उसे मालवा का सूबेदार बना कर भेज दिया। काम बख्श को भी बीजापुर का सूबेदार बना कर तुरन्त वहां भेज दिया गया।

इस अवसर पर जुल्फिकार खां मराठों से युद्धरत था। मराठों से लगातार उलझता हुआ वह कृष्णा के पार तक चला गया था। कृष्णा पार करने का उसका प्रमुख उद्देश्य था कि वह अपने पुराने शत्रु सन्ताजी घोरपड़े के पुत्रों को सहायता दे सके। घोरपड़े के पुत्रों के ऊपर धनाजी जाधव ने आक्रमण किया था। ताराबाई के कुछ जिलों की लूट पाट करने के बाद जुल्फिकार खाँ ने घोरपड़े को अपनी सहायता प्रदान की तथा दोनों के सम्मिलित प्रयास के परिणामस्वरूप धनाजी जाधव को भाग जाना पड़ा। इसी अवसर पर उसे पता चला कि शहंशाह औरंगजेब की मृत्यु २८ जीकाद हिजरी १११८ को हो गई (२१ फरवरी सन् १७०७)। परिणामतः उसने तुरन्त अपनी योजनाओं को स्थगित करके दक्षिणी सेना से मिलने के लिये प्रस्थान किया। यह सेना शाहजादे आजम के अधिकार में थी। इसका प्रमुख कारण कदाचित यही था कि औरंगजेब की मृत्यु के समय वह उसके सबसे नजदीक था।

औरंगजेब के चरित्र के सिलसिले में मराठों के अभ्युदय को सामने रखना अत्याधिक महत्वपूर्ण है। जिस दिन से वह सिहासन पर बैठा मराठों ने अपनी प्रगति आरम्भ की जब वह मरा तो मराठे अपनी सम्पूर्णता को प्राप्त कर चुके थे। इससे स्पष्ट है कि उसके चरित्र में कोई ऐसा महत्वपूर्ण कोई सत्य नहीं है जिस पर हमारा ध्यान जाय। विशिष्टता नामक कोई चीज उसके चरित्र में संलग्न नहीं थी। अपने राज्यारोहण के पहले उसने अपनी योग्यता का प्रदर्शन किया था, सफलता की धाक जमने लगी थी, उसकी समता करने वाला दिखलाई नहीं पड़ता था। परन्तु उसकी असीमित आकांक्षाओं को छल का सहारा लेना पड़ा तथा उसकी दृढ़ता को पाखन्ड ने हिला दिया। साम्राज्य प्राप्ति में उसकी सफलता अपने प्रमुख विरोधियों की समाप्ति में उसकी साहित्यिक प्रतिभा तथा अपने कार्यों के प्रति उसकी एकाग्रता ने उसमें कुछ गुणों को शुरू में ही स्पष्टता तथा विशिष्टता प्रदान करने का प्रयास किया था, परन्तु उसकी अन्य प्रवृतियों ने उसके इन गुणों को प्रायः समाप्त कर दिया था। परन्तु फिर भी उसके उपरयुक्त गुणों को पाठक भूल नहीं सकते। अपने शानदार दर्बार में अपनी सादगी और साधारण आदतों को बनाये रखने में उसको कितना परेशान होना पड़ा होगा इसको भी पाठक समझ सकते हैं। यह ज्ञान के क्षेत्र में भी महत्वाकांक्षी था परन्तु इस मार्ग में उसकी नीति हीनता तथा क्षुद्रता प्रमुख कमजोरी थी। उसकी सबसे महान राजनैतिक भूल यह थी कि उसने गोलकुन्डा तथा बीजापुर को असमय ही उखाड़ फेंका। चाहिये तो यह था कि इन दोनों मुस्लिम राज्यों को सहायता प्रदान करके मराठा लुटेरों को समाप्त करने का प्रयास किया होता, परन्तु यह न करके उसने उन्हीं को समाप्त कर दिया, परिणामतः असली शत्रु मराठों ने उसे आजीवन परेशान किया। उसका शंकालु हृदय, उसकी भ्रान्त मान्यतायें एवम् हठ ने मिल करके इन परेशानियों को और भी बढ़ा दिया जो उसी के छलपूर्ण कार्यों के परिणामस्वरूप में सामने आई थीं। इधर उसकी वैभव प्रदर्शन की आकांक्षा ने उसकी सैनिक कुशलता को कम कर दिया था और उसकी सल्तनत में आर्थिक विपन्नता उत्पन्न हो गई थी। इसीलिये वह अपने शासनकाल के बढ़े हुये युद्ध के खर्चों को संभाल नहीं पाया।

तेरहवां अध्याय

शाहू और पेशवा राज्य

[सन् १७०७ से १७२०]

शाहू मुगलों की कैद से मुक्त—अकलकोट के राजाओं का अभ्युदय—शाहू द्वारा सतारा पर अधिकार तथा सिंहासन पर बैठना—बालाजी विश्वनाथ—मुगलों की हलचल—शाहू की प्रगति—ताराबाई के साथ युद्ध—दाउद खाँ के साथ सन्धि—धनाजी जाधव की मृत्यु—संभाजी की प्रगति, ताराबाई का वन्दिनी बनाया जाना—मुगलों द्वारा सन्धि की उपेक्षा—निजामुल-मुल्क—मुगलों से लड़ाई तथा मराठों का वापस लौटना—सीदोजी घोरपड़े को कोल्हापुर का सेनापति बनाया जाना—सोनदुर्ग पर अधिकार—कान्होजी आंग्रे द्वारा पेशवा पन्त पिंगले की पराजय—बालाजी—पूना जिले में शान्ति व सुव्यवस्था स्थापित करना—मराठों की सुलझी स्थिति—शाहू का चरित्र—मुगल शहंशाह फार्रुखसियर तथा मराठे—हुसेन अली खाँ दक्षिण के सूबेदार—दाऊद खाँ द्वारा आपत्ति और उसकी हत्या—खन्डेराव दाभाड़े द्वारा पराजित जुल्फिकार बेग—शाहू व सूबेदार की संधि—मराठों की भारी सेना के साथ दिल्ली को प्रस्थान—बालाजी को चौथ सरदेशमुखी का अधिकार प्रदान किया जाना—लगान व्यवस्था विभाजन—कान्होजी आंग्रे—एक दूसरे के क्षेत्र में वसूली के अधिकार—पैतृक अधिकारों को प्राप्त करना।

सन् १७०७

इस बात का उल्लेख हमने पहले ही कर दिया है कि रायगढ़ के पतन होने पर सम्भाजी की विधवा और पुत्र भी बन्दी बना लिया गया था। उनको मुगल शिविर में ही बन्दी बना लिया गया था। उनको शाही शिविर में ही रक्खा गया। शहंशाह की पुत्री बेगम साहिबा ने शुरू से ही सम्भाजी की विधवा और पुत्र से आत्मीयता स्थापित कर चुकी थी, परिणामतः उसी के अनुरोध पर उन्हें उसी के खेमे के पास स्थान की व्यवस्था की गई। उसी शाहजादी की सहायता से इन दो मराठा बन्दियों के बुरे दिन कुशलता तथा सम्मानपूर्वक बीत गये। सम्भाजी के पुत्र के साथ शाहजादी की बनती आत्मीयता के परिणामस्वरूप वह प्रायः ही उसके साथ अपना समय बिताता, व खेल कूद में लगा रहता। अतः जब कभी औरंगजेब अपनी पुत्री से मुलाकात करने जाता, उस बालक पर भी उसकी दृष्टि पड़ती। सम्भाजी के पुत्र का वास्तविक नाम शिवाजी था परन्तु अपने जिस नाम से उसे पीछे प्रसिद्धि प्राप्त हुई वह औरंगजेब द्वारा प्रदान किया गया था। तभी से उसे शाहजादा के नाम से पुकारा जाने लगा। उसके नाम के इस परिवर्तन का कारण स्पष्टतया मनोवैज्ञानिक है। हम जानते हैं शिवाजी तथा सम्भाजी के प्रति औरंगजेब के मनमें क्या भाव थे। उन्हें प्रायः चोर, डाकू, लुटेरा इत्यादि नामों से ही सम्बोधित करता था। अतः बालक शिवाजी की बाल सुलभ चपलता से प्रभावित होकर उसे उनके बाप-दादाओं के घेरे से उठा अपने प्रेमपात्र स्तर तक उठाने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप उसको शाहू या साव, नाम से पुकारना शुरू किया। शाहू नाम की प्रसिद्धि इतनी हो गई

कि लोग उसका असली नाम भूल ही गये। यहाँ तक कि शाहू के बाद भी उसके परिवार के लोगों में अपने नाम के साथ शब्द जोड़ने की आदत बनी रही। बन्दी जीवन में उनके ऊपर निगरानी रखने वाले मुगल पहरेदारों को मुगल सेना में रहने वाले मराठे सैनिकों व अधिकारियों के पास आने-जाने की आज्ञा प्राप्त थी। परन्तु यह सुविधा शाहू, उसकी माँ, व उसके अवैधानिक भाई मदन सिंह को नहीं प्राप्त थी। विद्रोही मराठों के साथ किसी भी प्रकार सम्बन्ध रक्खे जाने की स्पष्टतया मनाही थी। विद्रोही मराठों से सम्बन्ध बनाये रखने की सुविधा भी नहीं थी।

येशूबाई एक दूरदर्शी महिला थी अतः उसने सावधानी पूर्वक प्रत्येक षड़यंत्रों से अपने को बचाये रक्खा। जब औरंगजेब ने शाहू को मुक्त करने का विचार किया तो उसने यह भी निश्चय किया कि वह अपने अधीन दो प्रमुख मराठा सर्दारों की लड़कियों से शाहू का ब्याह कर दें। इसका प्रमुख कारण यह था कि वह शाहू को किसी भी प्रकार अपनी ओर से आकर्षित किये रहना चाहता था। ये दोनों मराठे थे सिन्दखेड़ के जादव कनेड़खेड़ के पटेल सीन्दिया। जादव को रुस्तम राव की उपाधि प्रदान की गई थी तथा सीन्दिया पटेल भी अपनी कूटनीतिक चालबाजियों के लिये मराठों में प्रमुख मुगल सर्दार माना जाता था। शाहू की मां पहले से ही जादव वंश की थी अतः औरंगजेब के प्रस्ताव को न मानने का कोई कारण नहीं था। अतः शाहू के परिवार द्वारा इसे स्वीकार कर लिया गया। शाही शिविर के प्रबन्ध में ही यह ब्याह साधारण परन्तु राजकीय सम्मान से पूर्ण ढंग से संपादित हुआ। इस ब्याह में व्यर्थ की राजकीय दिखावटों तथा आमोद-प्रमोद पूर्ण जलसों का अवश्य ही अभाव था। इस विवाहोत्सव के उपलक्ष में बादशाह ने जादवों तथा सीन्दिया के पटेलों को इनाम व जागीर देने के बजाय शाहू को ही अकलकोट, इन्द्रपुर, सूपा तथा अनेक जिलों को बतौर जागीर प्रदान किया। इस अवसर पर अपने अन्य उपहारों के साथ औरंगजेब ने शाहू को अपनी तलवार भेंट में दी। इसके अतिरिक्त उसने रायगढ़ से प्राप्त दो तलवारें भी उसे वापस लौटा दिया। इनमें से एक का नाम भवानी था। जिसे शिवाजी अपने प्रयोग में रखते थे। उनके बाद सम्भाजी ने भी उसे अपने प्रयोग में रक्खा था। दूसरी तलवार बीजापुर के भृत सेनापति अफजल खां की थी। इन दोनों तलवारों को प्राप्त करने के लिये मराठों ने अनेक बार प्रयत्न किया था परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली थी।*

परन्तु अभी-अभी हमने देखा है कि ओरंगजेब अपनी योजना के अनुसार कुछ न कर सका और इसी प्रयास में उसकी मृत्यु भी हो गई। परिणामस्वरूप मुक्त होने के बदले वह पुनः शाही शिविर में ही आजम की कैद में आ गया। आजम का शिविर शीघ्रता से उत्तर की ओर बढ़ रहा था जहाँ आजम को लाहौर से सेना सहित आते अपने भाई मुअज्जम का सामना करना था। शहंशाह की मृत्यु की सूचना मिलते ही सिंहासन पाने की लालसा से वह दिल्ली की ओर बढ़ा आ रहा था। इस प्रकार शाहू आजम की सेना के साथ नर्वदा से काफी आगे निकल गया था।

ताराबाई तथा उसके मन्त्रियों ने अपनी स्थिति को अत्यधिक सुधार लिया था अतः जैसे ही उन्हें मुगलों की मुख्य सेना के दिल्ली की ओर प्रस्थान का समाचार मिला उन्होंने उसका लाभ उठाना शुरू कर दिया। धनाजो जाधव ने पूना के फौरदार लोदी खाँ को परास्त करके पुनः चाकण पर अधिकार कर लिया। मराठों ने चारों ओर लूट-पाट का बाजार गर्म कर दिया तथा मुगलों के क्षेत्र

---

* ये तीनो तलवारें आज भी सतारा के राजा के पास पाई जा सकती हैं।

पर शीघ्रता से अपना अधिकार करने लगे। इस परिस्थिति में जुल्फिकार खाँ ने शाहू को छोड़ने की सलाह दी। साथ ही उसने आजम को यह भी सलाह दिया कि शाहू की माँ तथा अवैधानिक भाई को शाहू की गतिविधियों को नियन्त्रण में रखने के लिये अपनी निगरानी में ही रहने दे। आजम ने जुल्फिकार खाँ की बात मान ली और शाहू को मुक्त कर दिया। उन्होंने शाहू को अश्वासन भी दिया कि यदि वह महाराष्ट्र में अपनी सत्ता स्थापित करने में सफल हो जायेगा तो उसे शिवाजी द्वारा बीजापुर का विजित क्षेत्र दे दिया जावेगा। इसके अतिरिक्त मुगलों के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने की दशा में भीमा और गोदावरी के बीच के विस्तृत क्षेत्र को भी शाहू को ही दिये जाने की बात थी।

शाहू ने अपने व्यक्तिगत सहायकों में से एक को परशोजी भोंसले व चिमणाजी दामोदर के पास भेजा। यह दूत इन दोनों मराठा सर्दारों को व्यक्तिगतरूप से जानता था। भोंसले छोटी सी मराठा सेना के साथ बरार में था तथा चिमणाजी खानदेश में सेना के साथ व्यस्त था। उसी दूत के द्वारा शाहू ने अपनी मुक्ति तथा भविष्य में सहायता की अपनी इच्छा प्रकट की थी। उपर्युक्त दोनों सर्दारों ने तुरन्त ही शाहू के पक्ष का समर्थन किया। इन दोनों की देखा-देखी अन्य सर्दारों ने भी इनका अनुशरण किया। इन नये मिलने वाले सर्दारों में हैबतराव निम्बालकर, नीमाजी सीन्दिया, मुख्य थे। अपने आगमन की सूचना शाहू ने पत्रों के माध्यम से ताराबाई को प्रेषित की। परन्तु चूँकि वह इतने दिनों की भोगी राज्यलक्ष्मी को इतनी आसानी से छोड़ने में असमर्थ थी अतः उसने शाहू की वास्तविकताओं में अपना सन्देह व्यक्त किया। उसने यह अफवाह उड़ाने का प्रयास किया कि यह शाहू सम्भाजी का असली पुत्र नहीं है। उसे तुरन्त अपने मन्त्रियों के सम्मेलन का आवाहन किया तथा अपने विचारों को उन पर स्पष्ट किया। सभी प्रमुख अधिकारी बुलाये गये और ताराबाई ने सबको भारी कसमें दिलवाकर अपने पुत्र के प्रति राजभक्ति के वादे करवाये। उन सब की सहमति पर उसने रामचन्द्र पन्त तथा नीलू पन्त को अपने प्रशासनिक कार्यों में सलाहकार के रूप ही नियुक्त किया। धना जी जाधव तथा परशुराम त्र्यम्बक को विशेष आवश्यक कार्य सौंपा गया। शंकर नारायणजी को घाटमाथा की सुरक्षा का प्रबन्ध सौंपा गया तथा कान्होजी आंग्रे को किनारों की रक्षा करने के लिये कहा गया। कान्होजी आंग्रे को सिधोजी गूजर की मृत्यु के बाद राजाराम ने ही मराठा जलबेड़े का प्रबन्धक नियुक्त किया था। वारी के सामन्त ने भी अपनी राजभक्ति को ताराबाई के प्रति ही बनाये रखने का निश्चय किया।

शाहू गोदावरी के किनारे ही अपनी छोटी सी सेना के साथ रुका रहा। वहीं से उसने ताराबाई द्वारा अपने प्रति किये गये वास्तविकता में सन्देह के प्रतिक्रिया स्वरूप उपजी जन भावना को जानने का प्रयास किया। उसे भ्रम था कि शायद सचमुच ही उसे नकली समझ लिया जाय और जनता उसे मुगलों की एक चाल समझ उसका वहिष्कार कर दे। परन्तु जैसे ही उसकी सैन्य संख्या १५००० हुई उसने परशोजी भोंसले की सलाह के अनुसार अविलम्ब आगे बढ़ने का निश्चय किया। धनाजी जाधव तथा प्रतिनिधि मराठा सेनाओं के साथ प्रतिरोध के लिये आगे बढ़े। ऐसा स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि देश की जनता ताराबाई के प्रति ही अधिक भक्ति प्रदर्शित कर रही थी, प्रमाण स्वरूप एक गांव के निवासियों ने उसकी सेनाओं को अग्नि में जला डालने का साहस दिखाया था। व्यर्थ ही अपने कुछ सैनिकों को मुफ्त मरता देख शाहू ने उस गांव पर आक्रमण किया व गाँव वालों की अपनी दृष्टता का फल बुरी तरह चखना पड़ा। गाँव पर जब आक्रमण हो रहा था, एक स्त्री अपनी बाहों में एक लड़के को लिये तेजी से आई व उसे शाहू के

पैरों पर सुला कर बोली कि "मैंने इस पुत्र को राजा की सेवा के निमित्त दान किया"। शाहू ने उस बालक की उठाया व अपनी प्रथम विजय के प्रमाण स्वरूप उसका नाम फतेह सिंह रक्खा। आगे चल कर उन्होंने उसको अपने जाति के नाम से फतेह सिंह भोंसले कह कर पुकारा। इस बालक को शाहू ने आजन्म अपने पुत्र के समान पाला पोसा। इस प्रकार अक्कलकोट के राज वंश का जन्म हुआ। यही बालक इस वंश का प्रथम नरेश था।

ज्यों-ज्यों शाहू तथा मराठा सेना की दूरी कम होती गई धनाजी जाधव व परशुराम त्र्यम्बक को ताराबाई के दल से विमुख करने के प्रयास में शीघ्रता आती गई। धनाजी जाधव को जैसे ही यह विश्वास हुआ कि शाहू वास्तविक सम्भाजी का पुत्र है वह उसकी ओर मिलने को राजी हो गये परन्तु प्रतिनिधि ताराबाई के प्रति दृढ़ प्रतिज्ञ बना रहा। अन्त में जब पूना से २२ मील उत्तर खेड़ नामक गाँव में हुई लड़ाई में प्रतिनिधि ने धनाजी जाधव को अपनी सहायता से विमुख पाया तो उसने अपनी सेनाओं को अलग कर लेना ही श्रेयष्कर समझा। अतः उसने अपनी सेना को सम्मिलित मराठा सेना से निकाल लिया और सतारा वापस भाग गया। धनाजी को अपनी ओर आ मिलने के कारण शाहू की शक्ति बढ़ गई थी। उसने जाधव की सहायता से आगे बढ़ कर चन्दन, बन्दन, पर आक्रमण किया तथा अल्पकालीन प्रयत्नों के ही परिणाम स्वरूप उस पर अधिकार कर किला। उसने अपने विरोधियों के परिवारों को अपने अधिकार में लेकर उसने शंकरजी नारायण पुरन्दर के किले को अपने लिये खाली कर देने का आदेश दिया। सचिव शंकर नारायण ने उस पर हाल ही में अधिकार किया था। परशुराम त्र्यम्बक, प्रतिनिधि को भी उसने सतारा सौंप देने के लिये लिखा। इन दोनों ने आज्ञापालन में कोई रुचि नहीं दिखाई परन्तु शेखमीर नामक मुस्लिम अधिकारी ने जो सतारा का किलेदार था, सतारा दुर्ग को शाहू के लिये खोल दिया तथा परशुराम त्र्यम्बक को कैद कर लिया।

सन् १७०८]

सतारा पर अधिकार प्राप्त कर के शाहू १७०८ की मार्च में सिंहासन पर बैठा। गदाधर प्रहलाद को उसने अपना प्रतिनिधि व बहिरोपंत पिंगले को अपना पेशवा नियुक्त किया। बहिरोपंत पिंगले का भाई नीलूपन्त मोरेश्वर, जो अब भी ताराबाई के पक्ष में ही था, प्रायः इसी समय रांगनागढ़ में मरा। धनाजी जाधव अपने पूर्व पद सेनापति पर ही स्थाई कर दिया गया तथा कुछ जिलों की वसूली का अधिकार भी उसी को सौंपा गया। यह वह काल था जब लगान वसूली का न तो कोई सिद्धान्त था और न कोई बंधी रकम। बसूल करने वाला अधिकारी यथावसर स्वविवेक से लगान निश्चित कर लेते थे। इसी प्रकार सरकारों की उगाही होती और उनका काम चलता रहता था। यदि जनता लगान द्रव्य में देती तो द्रव्य में लिया जाता, द्रव्य देने की असमर्थता में उनसे पैदावार को ही लगान के रूप में ले लिया जाता था। अपनी लगांन वसूली व्यवस्था के लेखे-जोखे व प्रबन्ध के लिये धनाजो ने दो कारकून नियुक्त किये थे। प्रथम का नाम आबाजी पुरन्द्री था वह सासूर का कुलकर्णी था। उसने एक और ब्राह्मण को अपने साथ ही नियुक्त करवाया। यह ब्राह्मण श्रीवर्धन का कुलकर्णी था। श्रीवर्धन चोल जिले में एक स्थान है। इस स्थान पर सिद्दी अपना अधिकार मानता था और मराठे अपना। परिणामतः एक बार जब दोनों सिद्दी तथा आँग्रे एक दूसरे से वहीं लड़ने को तैय्यारी कर रहे थे तो वह वहां से भाग कर सासूर चला आया, जहाँ आबाजी पुरन्द्री ने * धनाजी जाधव

---

* आधुनिक पुरन्द्री परिवार के पूर्वज

से सिफारिश करके अपने साथ ही कारकून के पद पर नियुक्त करवा दिया। इस कुलकर्णी का नाम बालाजी विश्वनाथ भट्ट था जिसने महाराष्ट्र में एक नवीन शक्ति को जन्म दिया। छत्रपति की शक्ति कठपुतली के समान होती चली गई और पेशवा की शक्ति असीमित होती चली गई, इन सब का श्रेय बालाजी विश्वनाथ को ही है। *

इसी बीच औरंगजेब के दोनों पुत्रों आजम और शाहजादे मुअज्जम ने आगरा में एक दूसरे से युद्ध किया। सिंहासन प्राप्ति के लिये हुये दो भाइयों में हुये इस युद्ध का परिणाम शाहजादे मुअज्जम के पक्ष में हुआ। शाहजादे आजम के अधीन दक्षिणी सेना को नाना प्रकार की असुविधाओं का सामना करना पड़ा। सबसे बड़ी असुविधा तो आजम की हठवादिता तथा अपने पर अत्याधिक विश्वास के कारण थी। उसके पास सैन्य संख्या का अभाव नहीं था परन्तु सिर्फ संख्या से क्या होता है, अपनी अन्य यौद्धिक तैय्यारियों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता ही नहीं समझी, परिणाम स्वरूप अपनी इसी जड़वादिता तथा गैरजिम्मेदारी की कीमत उसे अपने प्राणों से चुकानी पड़ी। उसी के साथ उसके दो पुत्र, तरबीअत खाँ, दलपतराव बुन्देला रामसिंह हाड़ा, तथा वीरखान आलम एवम् दक्षिणी रणभूमि के अनुभवी अन्य योग्य अधिकारी मारे गये।

औरंगजेब ने काम बख्श को बीजापुर सरकार का प्रधान बना कर वहाँ भेज दिया था। काम बख्श को हमने पहले ही दक्षिण में स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के लिये योजनायें बनाते देखा है। अतः जैसे ही उसे अपने पिता के मरने की सूचना मिली उसने अपने आप को बादशाह घोषित कर दिया। पहले तो कुछ लोगों द्वारा उसको मान्यता मिली परन्तु उसके चरित्र की अस्थिरता के परिणामस्वरूप अनेक अधिकारियों व सैनिकों ने उसका साथ छोड़ दिया। धीरे-धीरे उसकी आधी से अधिक सेना ने उसका साथ छोड़ दिया। एक बार तो उसने मराठा मान्कुरी सैनिकों को अपनी तरफ मिलाये रखने में सफलता प्राप्त कर ली परन्तु शीघ्र ही अपनी मूर्खता और शीलहीनता के कारण उनसे पुनः हाथ धो बैठा। आगरा में शाहजादे मुअज्जम ने आसानी से आजम को परास्त कर लिया। उसके बाद वह अपनी सेनाओं के साथ काम बख्श को दबाने के लिये दक्षिण की ओर बढ़ा आ रहा था। शाहजादे मुअज्जम ने इस अवसर पर अपनी उदारता का परिचय दिया। उसने काम बख्श को शान्तिपूर्वक बीजापुर व हैदराबाद की राजधानियों को लेकर विद्रोह समाप्त कर देने का प्रयास किया। परन्तु काम बख्श की हठवादिता के सामने उसकी एक न चली। काम बख्श सारे हिन्दुस्तान की सेना को इकट्ठा समाप्त करने के काल्पनिक अवसर को हाथ से न जाने दिया। फलतः अपने पूर्व कट्टर वैरी जुल्फिकार खाँ के द्वारा संवादित एक आक्रमण में, उसे अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। यह आक्रमण हैदराबाद के समीप किया गया था जिसमें शाहू द्वारा भेजी गई मराठा सेना ने भी नीमाजी सीन्दिया के अधीन भाग लिया था। †

काम बख्श के सम्बन्ध में मुगल शिविर की निराशा का अनुमान लगाने के लिये हमारे सामने अनेकों प्रमाण हैं। जब शाहजादे मुअज्जम द्वारा प्रदान की गई सुविधाओं व क्षेत्रों को लेने से उसने इन्कार कर दिया तो ऐसा लगा जैसे वह भी अपने चचा अकबर की तरह इस हिन्दुस्तान से निराश हो गया हो अतः यह भय होते ही कि वह भी अकबर की तरह पर्शिया भागने की कोशिस

---

* भट्ट तथा गृहस्थ दोनों ब्राह्मण होते थे। भट्ट बालाजी विश्वनाथ का जातिगत नाम था उसके कारण उसकी धार्मिक कृतियों पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था।

† खफी खाँ इरादत खाँ की कृतियाँ जुल्फिकार द्वारा शाहू को लिखे गये वास्तविक पत्र।

कर रहा है, प्रतिरक्षात्मक प्रबन्ध किये गये। सामुद्रिक किनारों तथा बन्दरगाहों के अधिकारियों को उसको जाते समय गिरफ्तार करने के आदेश भेजे गये। दो लाख रुपये का इनाम भी घोषित किया गया। बृटिश कंपनी को भी कामबख्श की गिरफ्तारी के उपलक्ष में सुविधायें प्रदान करने का बचन जुल्फिकार खाँ ने दिया। उस समय मि० पिट मद्रास के गवर्नर थे। उन्होने कामख्श को भरसक कैद करने का आश्वासन दिया परन्तु बदले में उन्होंने कुछ भी लेने से इन्कार कर दिया। *

जुल्फिकार खाँ शाहजादे आजम के साथ आगरा की लड़ाई में लड़ा। एक योग्य सेना नायक के रूप में उसने अपने कर्तव्य का पालन किया। पराजय का रुख देख किसी तरह भाग कर उसने अपने प्राणों की रक्षा की। अपने चतुर वजीर मोनाइम खाँ की सलाह से उसने जुल्फिकार खाँ को क्षमा दान कर अपनी ओर मिला लिया। अपनी ओर मिलाने के बाद उसने जुल्फिकार खाँ की पदोन्नति कर के उसे दक्षिण का वायसराय या सूबेदार नियुक्त किया। उसको इस अवसर पर अमीर उल-उमराव की उपाधि भी प्रदान की। जुल्फिकार खाँ तथा शाहू का सम्बन्ध धीरे-धीरे घनिष्ट होता जा रहा था। उसी की मध्यस्थता से मुअज्म तथा शाहू के आपसी सम्बन्ध भी स्वस्थ हो चले थे। मुगलों से स्वस्थ सम्बन्ध का प्रभाव शाहू की शक्ति को विकसित ही कर रहा था। अपने देशवासियों में उसका प्रभाव बढ़ता जा रहा था। इस प्रकार के आपसी सम्बन्धों के परिणामस्वरूप शाहू को आजम द्वारा प्रदान की गई सरदेशमुखी के अधिकारों पर मुअज्जम की स्वीकृति आसानी से मिल जाती, परन्तु ताराबाई के वकीलों ने उसके वजीर से मिलकर शाहू की आशाओं पर तुषारपात कर दिया। उन्होंने अपने तर्कों द्वारा मोनाइम खाँ को यह विश्वास दिलाने का प्रयास किया कि वास्तव में मराठों का राजा ताराबाई का लड़का ही है। ब्राह्मणों की राजनीति से अंजान विचारे वजीर को विश्वास हो गया कि ताराबाई का पुत्र ही महाराष्ट्र का वास्तविक छत्रपति है। जब जुल्फिकार खाँ को इस प्रगति की सूचना मिली तो उसने वजीर को शाहू के पक्ष की न्यायिकता से परिचित कराने का प्रयास किया। परन्तु वजीर के मनमें ताराबाई के पक्ष की बात बैठ गई थी अतः उसने जुल्फिकार खाँ की बात को अस्वीकार कर दिया। मुअज्जम ने भी अपने वजीर की बात का समर्थन किया। इसका प्रमुख कारण यह था कि प्रथम तो वह अपने वजीर को नाखुश नहीं करना चाहता था दूसरे यह कि ताराबाई के पक्ष का समर्थन करने से उसे अपने पूर्ववर्ती शासकों या प्रधान द्वारा शाहू को दिये गये वचनों को पूर्णतः निभाने की सम्भावना नहीं थी। अतः उसने ताराबाई के पुत्र शिवाजी को ही महाराष्ट्र के राजा के रूप मान्यता दी तथा सरदेशमुखी इत्यादि की सुविधाओं को उसी के नाम स्वीकृत किया। परन्तु साथ ही साथ मराठा राजनीति में किसी एक की प्रमुखता स्पष्ट होने के पहले इन सुविधाओं को स्थगित कर देने का भी निश्चय किया। प्रमुखता की पुष्टि दोनों प्रतिनिधियों द्वारा ठनी लड़ाइयों के परिणाम द्वारा की जाने वाली थी।

वर्षा ऋतु के आगमन के स्वरूप शाहू की सेना चन्दन वन्दन में पड़ी थी। वर्षा भर उसने अपनी शक्ति को बढ़ाने का प्रयास किया। इस विषय में उसने प्रत्येक सम्भव उपायों का सहारा लिया। अपने विरोधी को परास्त करने के लिये उसने बम्बई के गवर्नर सर निकोलस से भी, बन्दूक, गोलाबारूद, अंग्रेज सैनिक व धन द्वारा सहायता पाने का असफल प्रयास किया। दशहरा मना लेने के बाद ताराबाई के साथ युद्ध करने की तैयारियाँ शुरू हो गई। पन्हाला पर आक्रमण किया गया। आक्रमण की भीषणता तथा घेरे

सन् १७०९]

---

* मद्रास अभिलेख के वास्तविक पत्र

की सम्पूर्णता के परिणाम स्वरूप किलेदार को आत्मसमर्पण करने को बाध्य होना पड़ा। परन्तु आत्म समर्पण करने से पूर्व किलेदार ने शाहू से अपने पद की स्थिरता की प्रार्थना की। प्रार्थना मान ली गई और पन्हाला पर शाहू का अधिकार हो गया। किलेदार को उसी पद पर स्थिर कर दिया गया। उसी शर्त पर विशालगढ़ भी शाहू के हाथ आ लगा। विशालगढ़ का किलेदार परशुराम त्र्यम्बक का आदमी था। उस स्थल से शाहू ने अपनी सेनाओं के साथ रांगना की ओर प्रस्थान किया। उसे सूचना मिली कि ताराबाई उसी किले में है। परन्तु आती हुई इस सेना का पता ताराबाई को लग गया, अतः उसने रांगना से निकल मालवार को अपना निवास स्थान बनाया। रांगना के किलेदार ने किले का समर्पण करने से इन्कार कर दिया तथा वीरता पूर्वक उसने किले की रक्षा का प्रबन्ध किया। अधिकार के लिये किया गया प्रथम आक्रमण विफल कर दिया गया। प्रतिरक्षात्मक प्रबन्धों को देख शाहू ने समझ लिया कि इस पर इतनी जल्दी अधिकार नहीं किया जा सकता, दूसरी ओर वर्षा ऋतु पुनः उनके सिर पर आ चढ़ी थी अतः उसने किले का घेरा समाप्त कर दिया और अपनी सेनाओं के साथ कोल्हापूर लौट गया। कोल्हापुर में ही उसने अपनी सेनाओं के साथ वर्षा बिताने का निश्चय किया था।

अच्छे मौसम के आते ही शाहू ने पुनः ताराबाई के विरुद्ध युद्ध की तैय्यारियाँ आरम्भ कर दिया। परन्तु वह अपनी योजना को पूरी न कर सका। उसका कारण यह था कि उसके तथा मुगलों के बीच पुनः संधिवार्ता को बातों का सिलसिला जारी हो गया। सुल्तान मुअज्जम के दिल्ली लौट जाने के बाद जुल्फिकार खाँ अपने छः सूबों की प्रबन्ध व्यवस्था अपने सहायक दाउद खाँ पन्नी को सौंप कर स्वयम दिल्ली चला गया। दाउद खाँ पन्नी को उस कार्य के बदले बुरहानपुर का इलाका दे दिया गया। दाउद खाँ जुल्फिकार खाँ का सहायक व मित्र था। उससे शाहू व जुल्फिकार खाँ की मित्रता छिपी न थी, अतः उसने शाहू पक्ष के मराठा सर्दारो से, चौथ के अधिकार सम्बन्धी मसलों को हल करने के लिये इकट्ठा होने को कहा। अन्त में कुछ आवश्यक मदों को छोड़ कर शेष वसूल की गई लगानों का एक चौथाई पर मराठों के अधिकार को मान्यता दी। परन्तु लगान वसूली का कार्य उसने अपने हाथ में ही रखखा। वसूलने के बाद अपने प्रतिनिधियों के द्वारा ही मराठों का हिस्सा उन्हें देने का प्रबन्ध भी उसने अपने हाथों में रक्खा। इस निर्णय से ताराबाई के पक्ष को भारी धक्का लगा। दाउद खाँ का स्वयम का सम्बन्ध मराठा सर्दारों से था, इसके अतिरिक्त शाहू और जुल्फिकार खाँ की अपनी मित्रता थी ही अतः अपवाद स्वरूप कुछ घटनाओं को छोड़ कर जहाँ स्वतन्त्र मराठा लुटेरों ने कुछ उत्पात किया हो, उपर्युक्त निर्णयों पर इमानदारी के साथ यथासम्भव अमल किया गया।

वर्ष के अन्त में शाहू सतारा लौट आये और अपना दो विवाह और किया। इनमें से एक तो मोहिते परिवार की कन्या थी तथा दूसरी सिरके परिवार की। उसकी प्रथम दो स्त्रियाँ अब भी उसकी माँ के साथ दिल्ली में थी। वहाँ जाने के कुछ समय बाद ही सीन्दिया की लड़की शाहू की पत्नी मर गई। कोल्हापुर से आते समय, वारना के किनारे अपने पांव के पुराने घाव के फूटने के कारण तथा अपनी लम्बी रुग्णावस्था के परिणाम स्वरूप धनाजी जाधव की मृत्यु हो गई। धनाजी की इस यात्रा में उनका कारकून बालाजी विश्नाथ हमेशा उनके साथ रहा। जब बीमारी के कारण वे अपने राजकीय कार्यों को करने में असमर्थ हो गये तो बालाजी विश्वनाय ने ही उनका पूरा कार्य भार संभाल लिया था। बालाजी विश्वनाथ की इस कार्य तत्परता से धनाजी जाधव के पुत्र चन्द्रसेन जाधव को तथा उनके अधीन के अन्य ब्राह्मणों के मन में द्वेषाग्नि प्रज्वलित हो उठी।

सन् १७१०]

अभी मुश्किल से शाहू के साथ मराठा सेना सतारा पहुँची होगी जब ताराबाई ने कोल्हापुर को पुन; अपने अधिकार में करने के लिये अपनी सेना के साथ प्रस्थान किया । इस अभियान में पन्हाला के किलेदार ने उसको विशेष प्रोत्साहन दिया था । उसकी सेना के साथ वारी के सामन्तों की सेना भी थी कोल्हापुर पर अत्यन्त आसानी से अधिकार कर लिया गया । उसके साथियों ने उसकी विजय से प्रभावित होकर उसे कोल्हापुर में ही अपना दर्बार लगाने की सलाह दिया । इस कार्य के लिये पास पड़ोस के स्थानों को राजधानी के योग्य बनाने का विचार हुआ । रामचन्द्र पन्त अपनी पूरी सक्रियता से ताराबाई के दलवालों की रुचि के अनुसार कार्य करता रहा । शंकरजी नारायन भी अपनी पूरी तत्परता के साथ उसी के लिये कार्यरत रहा । शंकरजी नारायन के अन्तर्गत आने वाले किले मराठा साम्राज्य के अत्यधिक महत्वपूर्ण माने जाते थे । मराठा राज्य के प्रतिष्ठता शिवाजी ने सर्वप्रथम इन्हीं स्थानों पर अधिकार किया था । अत; शाहू ने भी पन्हाला पर अधिकार करने से पहले सचिव के चेत्र पर ही अधिकार करना अधिक उचित समझा । लगभग इसी समय शाहू ने अपनी राजधानी को सतारा से हटाकर अहमदनगर में लाने का विचार किया परन्तु उसके इस निश्चय से जुल्फिकार खाँ को कुछ कठिनाई का सामना करना पड़ता, अतः उसी की आपत्ति पर शाहू ने अपने इस इरादे को त्याग दिया ।

मराठों की एक सेना ने पूना की तरफ आगे बढ़कर राजगढ़ पर अधिकार कर लिया । परन्तु सचिव के अन्य किलों में रसद तथा युद्ध सामग्री प्रचुर मात्रा में इकट्ठी थी । प्रत्येक किले में मावली सैनिकों की यथेष्ट संख्या वर्तमान थी जिनके कारण वे दुर्ग अजेय से हो गये थे । इसी समय यह सुना गया कि सचिव ने जलसमाधि लेकर आत्महत्या कर ली है । इस समाचार का कारण यह था कि विचारे सचिव की स्थिति बड़ी भयावह हो गई थी । उसकी आत्मा राज्य के सच्चे छत्रपति शाहू की सेवा करने को प्रेरित कर रही थी परन्तु ताराबाई ने उससे अपनी ओर मिले रहने की सौगन्ध दिलायी थी । अतः अपनी आत्मा और सच्चे छत्रपति के विद्रोह के पश्चाताप में उसने जल समाधि ले ली * इस समाचार को सुनकर शाहू को अपनी विजय का भरोसा हो चला ।

सन् १७२२]

इसके तुरन्त बाद ही ताराबाई का पुत्र शिवाजी की मृत्यु हो गई । उसको चेचक हो गया था । यह राजकुमार मूर्ख था परन्तु फिर भी इसकी मृत्यु के परिणाम स्वरूप एक उथल-पुथल तो होनी ही थी । रामचंन्द्र पन्त को ताराबाई की सत्ता को समाप्त करने का अवसर प्राप्त हो गया । उसने राजाराम की दूसरी रानी के पुत्र सम्भाजी को गद्दी पर बैठा कर ताराबाई व उसकी गाभिणी पुत्रवधू भवानीबाई को बन्दी बना लिया । हिन्दू मान्यताओं के अनुसार यह परिवर्तन न्यायिक था अतः लोगों का सहज समर्थन पन्त को प्राप्त हो गया । ताराबाई के प्रभाव के समाप्त होते रामचन्द्र पन्त निरंकुश अपनी इच्छानुसार कार्य करने लगे।

दूसरी ओर दाउद खाँ पन्नी की प्रशासन व्यवस्था चलती रही साथ-साथ शाहू की प्रधानता भी पूर्बवत स्थिर रही । शाहू की प्रधानता के साथ-साथ उसके आस-पास अनुभवी तथा श्रेष्ठ पुरुषों की संख्या भी बढ़ती गई । उसके मन्त्रियों में भी इसी प्रकार के उत्तम व्यक्तियों का बाहुल्य था । सबसे

---

* लकड़ी के एक तख्ते में अपने शरीर को बांध कर, उसके पायों को मिट्टी के ऊँचे घड़ों से बांध कर उसे पानी में तैरा दिया जाता था । जब वह तख्ता गहरे पानी में पहुँचता उसके घड़ों में छेद कर दिया जाता जिससे उसमें पानी भर जाता और तख्ता अपने ऊपर बँधे व्यक्ति के साथ अथाह जल में डूब जाता था ।

महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि उसने अपने पिता के दुर्गुणों का पूर्णरूप से वहिष्कार किया था। जब वह दक्षिण को ओर आया तो ताराबाई के गुट ने जन भावना को मृत सम्भाजी के अत्याचार और कुविचारों का प्रचार करके विरुद्ध करने का प्रयास किया। उन्होंने आशंका प्रकट की कि शाहू ने भी अपने पिता के अवगुणों को विरासत में प्राप्त किया है परन्तु जब लोग शाहू के सम्पर्क में आये तो उसकी उदारता और मनुष्यता से मुग्ध से हो रहे। शंकरजी नारायण द्वारा की गई आत्महत्या सम्भवतः इसी के पश्चाताप का परिणाम रही हो, कुछ भी हो सचिव की आत्महत्या शाहू के विरोधियों के ऊपर बज्र के समान गिरी। दूसरी ओर सचिव की मृत्यु का समाचार पाते ही शाहू ने अपनी यथोचित उदारता दिखाकर सचिव के परिवार को अपनी ओर मिला लिया। उन्होंने सचिव के पुत्र नारु शंकर के लिये तुरन्त अधिकारीकरण का वस्त्र भेजकर उसके पिता की मृत्यु पर संवेदना प्रकट की। नारूपन्त उस समय दो वर्ष का बालक था अतः शाहू ने उसके लिये मुतालिक या संरक्षक की व्यवस्था की। शाहू की इस सहृद्यता के परिणाम स्वरूप उन्हें सचिव के दल का समर्थन प्राप्त हो गया जो आजीवन सुरक्षित रहा। परन्तु प्रतिनिधि परशुराम त्र्यम्बक के परिवार के सभी सदस्यों को अपनी ओर मिलाये रखने में शाहू को सचिव परिवार के समान सफलता न प्राप्त हो सकी।

सन् १७१३]

शाहू ने परशुराम त्र्यम्बक को मुक्त कर दिया और गदाधर प्रहलाद को प्रतिनिधि पद से हटा कर पुनः उस पद पर परशुराम को नियुक्त कर दिया। प्रतिनिधि पद पर नियुक्त करने के बाद उनको विशालगढ़ तथा उसके निर्भर जिलों को पुनः दे दिया गया। उन्होंने (प्रतिनिधि) अपने ज्येष्ठ पुत्र कृष्णाजी भाष्कर को विशालगढ़ व उसके निर्भर जिलों के प्रबन्ध का निर्देश देकर भेज दिया। कृष्णाजी ने विशालगढ़ को अपने अधिकार में पाते ही अपना रुख बदल दिया। उसने अपने आपको विरोधी दल का सेवक माना और उन्हीं के पास जाकर रहने लगा। कोल्हापुर दर्बार ने उसको अपने प्रतिनिधि के पद पर नियुक्त कर दिया। इस प्रगति की सूचना पा कर शाहू ने परशुराम को पुनः कैद में डाल दिया। उसको इस बात का विश्वास हो गया कि कृष्णाजी ने जो कुछ भी किया अपने पिता के आदेश से किया। इस बात पर वह इतना चिढ़ा कि उसने त्र्यम्बक को मृत्यु दण्ड देने का निश्चय किया। परन्तु अपने विज्ञ सलाहकारों के समझाने से उसने अपने इस निश्चय को त्याग दिया, परिणाम स्वरूप वह जन-भावना को ठेस पहुँचाते-पहुँचाते रुक गया अन्यथा लोग यही कहते, जैसा बाप वैसा बेटा।

मुगल ढर्रे में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप दाउद खाँ को दक्षिण से हटाकर गुजरात में नियुक्त कर दिया गया। उसके इस स्थानान्तरण के परिणाम स्वरूप मराठों और मुगलों का पिछला समझौता भंग हो गया।

बालाजी विश्वनाथ

धनाजी जाधव की मृत्यु के बाद उसके पुत्र चन्द्रसेन जाधव की नियुक्ति सेनापति के पद पर की गई। उसको यथेष्ट सेना के साथ, मुगल क्षेत्र में चौथ तथा सरदेशमुखी वसूलने के लिये भेजा गया। सतारा से ही उसके पिता द्वारा नियुक्त कारकून बालाजी विश्वनाथ भी उसके साथ भेजा गया। बालाजी विश्वनाथ को वसूल धनराशि में से राजा को मिलने वाली रकम को वसूलने व उसका हिसाब किताब रखने का कार्य मिला। यह कार्य अत्यन्त महत्व का माना जाता था। अतः इस कार्य के द्वारा विश्नाथ को मिलने वाली प्राथमिकता द्वेषी चन्द्रसेन को पसन्द नहीं आ रही थी। दोनों के

हृदयों में द्वेषाग्नि सुलगती रही, और एक दिन एक अत्यन्त ही साधारण से प्रश्न पर उनके दिल की भावनायें फट पड़ीं। बालाजी विश्वनाथ के एक सैनिक के घोड़े से हिरन दब जाने के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुये प्रश्न पर दोनों एक दूसरे से उलझ पड़े। बात इतनी आगे बढ़ गई कि बालाजी विश्वाथ को अपनी जान बचाने के लिये भाग जाना पड़ा। पहले वे सासूर गये, परन्तु वहाँ सचिव के प्रतिनिधि ने उनको शरण देना उचित नहीं समझा। यद्यपि विश्वनाथ बालाजी ने उससे अनेकों बार दीनता पूर्वक किले के फाटक खोलने की प्रार्थना की। उसके पीछे जाधव के सैनिक लगे देखकर भी उस कठोर हृदय किलेदार ने बालाजी को शरण देने से इन्कार कर दिया। बालाजी विश्वनाथ इस समय एक दम निरुपाय थे। उनके साथ थोड़े समर्थक थे जिनमें उनके दोनों पुत्र बाजीराव तथा चिमनाजी अप्पा भी सम्मिलित थे। पुरन्दर से निराश हो उन्होंने उसके विपरीत दूसरी घाटी पर स्थित पान्डुगढ़ में शरण लेने का विचार किया। अभी वे थोड़ी ही दूर गये थे जब उन्हें सूचना मिली कि जाधवों के सवार वहाँ पहले ही पहुँच गये हैं। चारों ओर चन्द्रसेन के सैनिकों से घिरे, वे अपने प्राणों की रक्षा तत्परता के साथ करते रहे कई दिनों के बाद उन्हें अपने दो सिलेदारों की सहायता प्राप्त हुई। इनमें से एक का नाम पिलाजी जादव तथा दूसरे का नाम धूमल था। इन्हीं दोनों ने अपने प्रभाव का उपयोग करके तथा अपने सम्बन्धियों की सहायता से एक छोटी सी सेना तैय्यार की और बालाजी विश्वनाथ को अपनी जान दे कर भी पान्डुगढ़ पहुँचाने का वादा किया। उसी रात बालाजी विश्वनाथ अपने इन्हीं सहायकों के साथ पान्डुगढ़ की माछी * की ओर रवाना हुये।

मराठा पान्डु लिपियों से प्राप्त विवरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि पान्डुगढ़ की माछी की ओर जाते समय वे इतने क्लान्त हो चुके थे कि वे अपने घोड़े पर भी भली प्रकार न बैठ पाते थे। † उनके उपर्युक्त दोनों सिलेदार सहायकों ने अपने वादे को पूरा किया। रास्ते में जादव की सैनिक टुकड़ियों से उनकी मुठभेड़ भी हुई परन्तु उन्होंने सफलता पूर्वक उनसे लोहा लिया और पान्डुगढ़ की माछी तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की। माछी पहुँचने पर गढ़ के किलेदार को सूचना भेजी गई। किलेदार के पास शाहू का आदेश आ चुका था जिसके अनुसार उसने तुरन्त बाला जी विश्वनाथ को अपने संरक्षण में ले लिया। चन्द्रसेन जाधव ने शाहू से विश्वनाथ को अपने हाथों में दिये जाने की मांग की। उसने यह भी कहा कि अगर बालाजी विश्वनाथ को उसके सुपुर्द नहीं किया गया तो वह शाहू से अपना सम्बन्ध हमेशा के लिये विच्छेद कर लेगा। शाहू उसकी इस धृष्टता से अत्यन्त क्रुद्ध हुआ परन्तु वह उसे इस ढिठाई की सजा देने के लिये असमर्थ था कारण उसने इस परिस्थिति की कल्पना ही नहीं की थी और सारी सेनाओं को यत्र-तत्र भे भेज दिया। शाहू ने इस घटना की प्रतिक्रिया के रूप में हैबतराव निम्बालकर, सरलसकर को तुरन्त सतारा आने का आदेश भेजा। हैबतराव उस समय अहमद नगर के पास पड़ा हुआ था। इधर बालाजी विश्वनाथ को पान्डुगढ़ में शरण तो मिल गई परन्तु अब सेनापति जाधव की सेनाओं ने सारे गढ़ पर अपना घेरा डाल दिया। हैबतराव के मनमें सेनापति बनने की आकांक्षा थी, जो मात्र चन्द्रसेन जाधव के कारण अतृप्त रही थी। इसके अतिरिक्त जादव के व्यवहार के कारण भी वह उससे जलता था। परिणाम स्वरूप उसके

---

* माछी पहाड़ी किलों से सम्बन्धी गाँवों को कहते हैं। ये पूर्णतः किले के संरक्षण में रहते हैं कभी-कभी इनकी मोर्चाबन्दी भी की जाती है।

† विश्वनाथ के जीवनी लेखक ने लिखा है कि वह अपनी शक्ति से घोड़े पर नहीं बैठ सकता था। उसको संभालने के लिये दोनों ओर से दो व्यक्ति सहारा देते रहते थे।

विरुद्ध लड़ने का अवसर पाते ही वह अपनी पूरी तैय्यारी के साथ आगे बढ़ा। चन्द्रसेन को जैसे ही हैबतराव के पल्टन तक आ पहुँचने की सूचना मिली उसने पान्डुगढ़ का घेरा समाप्त कर दिया और देऊर की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पर दोनों सेनाओं में जमकर युद्ध हुआ। जिसमें सेनापति जाधव की पराजय हुई। अपनी पराजित सेना के साथ वह कोल्हापुर की ओर बढ़ा। उसके साथ शिरजेराव घाटगे भी थे। संम्भाजी ने घाटगे के पैतृक अधिकारों को उसे पुनः प्रदान किया परन्तु वे दोनों वहाँ रुके नहीं। दोनों चिकलीज खाँ या निजामुल मुल्क से मिल गये जो प्रथम बार दक्षिण का सूबेदार बना कर भेजा गया था। उसने जादव को बेदर से २५ मील पूर्व में स्थित एक भारी इलाके को उसके सैनिकों के भरण-पोषण के निमित्त प्रदान किया। *

सुल्तान मुअज्जम की मृत्यु सन् १७१२ में हो गई। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्रों ने राज्य लिप्सा का पुराना नाटक पुनः खेल डाला। नाना प्रकार के विचार विमर्षों तथा मन्त्रणाओं और कुमन्त्रणाओं के बाद राज्यलक्ष्मी ने मुअज्जम के नाती फर्रुखसियर के कदम चूमे। जुल्फिकार खां के कठोर कार्यों और योजनाओं के परिणाम स्वरूप दक्षिण सरकार में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये, इस परिवर्तन के दो महत्वपूर्ण परिणाम हुये। प्रथम तो दाऊद खाँ पन्नी को दक्षिण से हटा कर गुजरात भेज दिया गया तथा उसके स्थान पर एक ऐसे आदमी की नियुक्ति की गई जो दक्षिणी मामलातों में अनुभव प्राप्त समझा जाता था। दक्षिण की घटनाओं को नया मोड़ देने वाले इस नये सूबेदार या वायसराय का नाम चिकलीज खाँ था। गाजिउद्दीन के इस पुत्र का वास्तविक नाम मीर कमरुद्दीन खाँ था। अपनी यौवनावस्था में ही उसने औरंगजेब द्वारा उपाधि तथा ५००० का मन्सब प्राप्त किया था। औरंगजेब के प्रशासन में उसने बीजापुर के सूबेदार के महत्वपूर्ण पद पर कार्य किया था। चिकलीज खाँ ने सैयद भाइयों की शक्ति प्राप्त अभियोजना में अपनी शक्ति भर सहायता किया था तथा इन्हीं दोनों भाइयों, अब्दुल्ला खाँ, तथा हुसेन अली की बहादुरी तथा प्रभाव के बल पर ही फार्रुखसियर ने राज्य सत्ता प्राप्त की थी। † परन्तु जैसा कि दो व्यक्तियों की मित्रता का परिणाम होता है, राज्यों तथा दर्बारियों की आपसी मित्रता का भी वही परिणाय होता है। जो जितने अधिक नजदीक होते हैं उनको उतना ही दूर हो जाना पड़ता है। इस बिलगाव का प्रमुख कारण यह होता है कि आपसी मित्रता तथा सामीप्य के कारण उनके स्वार्थ भी एक हो उठते हैं जिनमें टक्कर होते ही दो मित्र शत्रु हो जाते हैं। अतः जो चिकलीज खाँ, जुल्फिकार खाँ का सर्वमान्य शत्रु था, उसकी मृत्यु होते ही चिकलीज खाँ को उसके सूबे में नियुक्त कर दिया गया। दाऊद खाँ पन्नी को वहाँ से हटा कर गुजरात में भेज दिया गया।

---

* मराठा पान्डुलीपि। पर्शियन पान्डुलिपि 'हलीके आलम' निजामुल मुल्क के इतिहास का सर्वमान्य प्रमाण है। निजामुल मुल्क परिवार पर लिखित यह आधुनिकतम प्राप्त पान्डुलिपि है जिसे मुहम्मद तुहाब ने लिखा है। इसका समर्पण मीर आलम या निजाम अली के नाम किया गया है। यह पान्डुलिपि मुझे विलियम इरस्किन से प्राप्त हुआ था।

† खफी खाँ, खजान-ऐ-अमीर व मसीरुल-उमराह। अन्त की दो पुस्तकें पर्शियन भाषा की दो उत्तम पुस्तकें हैं जो इस विषय में प्रामाणिक सामग्री प्रदान करती हैं। खजाने अमीर को दक्षिण में ही, वेलग्राम निवाशी गुलामअली ने लिखा है। अवध निवासी इस व्यक्ति की ख्याति कवि तथा इतिहासकार के रूप में हैं। उसने सरे आजाद (Suroo Azad) नामक पुस्तक लिखी है। दक्षिण के मुसलमान उसका काफी सम्मान करते हैं। मसीरुल उमराह (मुगलों की जीवनी) को भी

यही वह समय था जब प्रताड़ित सेनापति चन्द्रसेन जाधव निजामुलमुल्क के पास पहुँचा। निजामुल मुल्क ने जिस सहृदयता तथा सम्मान के साथ व्यवहार किया वह भी हमसे छिपा नहीं है। सेनापति के साथ ही घाटगे, शिरजेराव व रम्भाजी निम्बालकर भी थे। रम्भाजी ने अपनी सेनाओं से मुगल सेना में एक स्थान बना लिया था जिससे प्रसन्न होकर मुगल सम्राट ने उसे रम्भाराव की उपाधि प्रदान की थी। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके वंशजों ने उस उपाधि को अपने साथ लगाये रखा। नियुक्ति के पश्चात् निजामुल मुल्क औरंगाबाद आया और आते ही उसने सम्भाजी के पक्ष को प्राथमिकता देना प्रारम्भ कर दिया। इस प्राथमिकता का कारण क्या था, कुछ कहा नहीं जा सकता परन्तु यदि हम सम्भाजी के प्रति किये गये प्राथमिकतापूर्ण व्यवहार से निजामुल मुल्क को होने वाली आय या स्वार्थपूर्ति को भूल जाँय तो शायद दक्षिण में मुगलों द्वारा निर्धारित कूटनीतिक नीतियों में सर्वाधिक सफल नीति थी। चन्द्रसेन जाधव बदले की आग में जल रहा था व निजाम-मुल-मुल्क शाहू के प्रभाव को समाप्त करने की चेष्ठा में था, अतः उन्होंने अपनी योजनाओं की सिद्धि के लिये एक सम्मिलित सेना गठित की। इस सेना को सर लश्कर सेना पर आक्रमण करने का आदेश दिया जो उस समय गोदावरी से भीमा के तट पर आ गया था। सर लश्कर की सहायता के लिये शाहु ने बालाजी विश्वनाथ के साथ एक सेना भेजी। बालाजी विश्वनाथ को उसने सेना कुर्त या सैन्य प्रमुख के पद पर नियुक्त कर दिया था। उस पद के अनुसार राजा का प्रतिनिधि होने के नाते उसे सेनापति के समकक्ष ही अधिकार मिले थे। बालाजी विश्वनाथ अपनी सेनाओं के साथ हैबतराव से जा मिले जो उन दिनों पुरन्दर के पड़ोस में पड़ा हुआ था। हैबतराव व विश्वनाथ ने मिल कर उसी स्थान पर युद्ध करने का निश्चय किया। परिणामतः उसी स्थान पर एक लड़ाई लड़ी गई थी। जिसमें मराठों की अपनी पूर्व ही सम्पादित रणनीति तथा मोर्चेबन्दी के परिणाम स्वरूप ही उन्हें यथेष्ट हानि नहीं पहुँची परन्तु इन विशेष सुविधाओं के बावजूद उन्हें सालपी घाट तक हट जाना पड़ा। मुगल से मराठों की टुकड़ी ने रम्भाजी निम्बालकर के साथ निकल कर पूना पर अधिकार कर लिया। उनकी इस विजय के चिन्ह के रूप में रम्भाजी निम्बालकर को पूना के पड़ोस में ही जागीर प्रदान किया गया। कुछ दिनों के बाद दोनों दलों में सन्धि हो गई जिसकी शर्तें अज्ञात हैं परन्तु इतना कुछ तो हुआ ही होगा कि दोनों का आपसी वैमनष्य समाप्त हो गया होगा। मुगल सेना औरंगाबाद लौट गई। जब तक मौसम अच्छा रहा निजामुलमुल्क ने अपनी सेनाओं को व्यस्त रखा और वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होते ही उन्हें छावनी में रहने को भेज दिया। जैसे ही उसकी सेनाओं ने छावनी में अपना पाँव रखा मराठों ने पुनः अपने नायकों के साथ छापेमारी और लूटममार प्रारम्भ कर दिया।

मुगल जिलों के सभी देशमुखों तथा देशपान्डे लोगों ने प्रत्येक गाँव में मोर्चेबन्दी करके अपनी प्रतिरक्षा के प्रति सजग से हो गये परन्तु उन्होंने अपने देशवासियों के दल से सम्बन्ध बनाये रखा। इस प्रकार की लूटमार करने वालों से सम्बन्ध बनाये रखने में कई कारण समवेग रूप से लगे हुये थे। कुछ तो अपनी रक्षा व प्रतिरक्षा की भावना से उनसे मिले रहते थे तथा अन्य अराजकता

दक्षिण में काफी सम्मान प्राप्त है। इसके लेखक का नाम शाहनवाज खान या शमसुदुल्लाह था जिसके सामाजिक चरित्र तथा महत्व से देश के निवासी भली-भाँति परिचित है। मि० ओर्मी, तथा कर्नल विक्स ने अपनी रचनाओं में उसका वर्णन किया है।

के इस काल में कमाई के इस शानदार धन्धे में अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनाये रखने के लिये इनसे अपना सम्बन्ध बनाये हुये थे।

मुहम्मद इब्राहीम तबरेजी के आधीन मुगलों का एक भारी खजाना सूरत से औरंगाबाद ले जाया जा रहा था। रास्ते में ही उस पर आक्रमण किया गया। सैनिकों को बुरी तरह समाप्त करने के बाद छापा डालने वालों ने सारा खजाना लूट लिया। ऐसा लगता है कि उस लूट में खन्डेराव दाभाड़े का प्रमुख हाथ था। कई वर्षों तक खन्डेराव दाभाड़े ने काठियावाड़ तथा गुजरात प्रान्त में अपने अधिकारियों तथा सैनिकों को तितर-बितर करके लगान वसूल किया था। वह शाहू को अपना प्रधान मानता था। जब दाऊद खाँ को दक्षिण की सूबेदारी से हटा कर गुजरात भेजा गया तो दाभाड़े अहमदाबाद के पड़ोस से हट कर नान्देद तथा राजपीपली के शक्तिशाली क्षेत्र में आ गया। किसी भी आक्रमण के लिये प्रतिरक्षात्मक तैय्यारियों के लिये इस परिवर्तन का अत्यधिक महत्व है। इस अवसर पर अपनी इस नियोजित स्थिति को पुष्ट करके उसने पहली बार अपनी रणनीति कुशलता का परिचय दिया।

निजामुलमुल्क द्वारा सम्भाजी का पक्ष लेने के कारण उसका पक्ष शक्तिशाली हो चला था। शाहू का प्रभाव कम होता जा रहा था। जिन मराठा अधिकारियों पर मुगलों का कुछ भी प्रभाव था या जिन मराठा सर्दारों के साथ उनके कुछ भी सम्बन्ध थे, उन अधिकारियों व सर्दारों को सम्भाजी का साथ देने को कहा गया। सन्ताजी घोरपड़े का भतीजा व प्रथम मुरारजी का छोटा भाई सिधोजी घोरपड़े ने सम्भाजी का समर्थन किया। परिणाम स्वरूप सम्भाजी की सरकार ने उसे सेनापति के पद पर नियुक्त किया। कापसी तथा मधोल, दोनों स्थानों के घोरपड़े परिवार के सदस्यों ने सम्भाजी के दल में सम्मिलित होना स्वीकार किया। कोल्हापुर सरकार ने इन सभी को योग्य स्थानों पर नियुक्त किया और सम्मानीय सुविधायें प्रदान किया। सिधोजी घोरपड़े ने सेनापति पद प्राप्त करने के बाद भी अपने मित्र सावनूर के नवाब के साथ लूटपाट की अपनी योजनाओं पर ही अधिक ध्यान दिया। कर्नाटक को अपनी इस धुन के आगे, वे लोग भूल ही गये। लगभग इसी समय सिधोजी ने सोनदुर्ग पर अधिकार कर लिया। बेलारी से २५ मील के घेरे में एक घाटी में स्थित इस किले में अधिकार प्राप्त करने का कारण सिधोजी को यथेष्ट सम्मान मिला।

मुगलों से प्रोत्साहन पा करके कृष्णाराव खटावकर ने महादेव पहाड़ियों के आसपास के क्षेत्र को बुरी तरह लूटा। अपनी इस लूट-पाट के सिलसिले में उसने किसी भी दल से सम्बन्ध स्थापित नहीं किया था। सारी लूट की उसकी अपनी योजनायें थीं और लूट में मिले सारे सामानों का उपयोग भी उसने अपने लिये ही किया। दम्माजी थोराट नामक मराठा सर्दार ने हिंगन गाँव की गरही की मोर्चे बन्दी करके उसकी शक्ति को बढ़ा लिया। इस अधिकारी ने काफी दिनों तक रामचन्द्र पन्त के अधीन कार्य किया था। पूना से ४० मील पूर्व पाटस के नजदीक अपनी शक्ति संगठित इस गरही को केन्द्र बना कर उसने ३० मील चारों ओर तक लगान वसूल किया। खटावकर अपने को कोल्हापुर दल से सम्बद्ध मानता था परन्तु सम्बद्धता सिर्फ इसलिये थी कि रामचन्द्र पन्त का कोल्हापुर दल के साथ सम्बद्ध था। खटावकर सिर्फ रामचन्द्र पन्त को अपना प्रधान मानता था कारण रामचन्द्र पन्त ने ही उसको विकसित होने का मौका एवम् जिंजी के आक्रकरण के समय, सूपा तथा पाटस की जागीरदारी उसको प्रदान किया। इसी कारण मराठा विचारकों की राय में भी वह एक अत्य न्तही

नीति हीन व निधिहीन व्यक्ति था। * रामचन्द्र पन्त के ही अधीन कार्य करने वाले एक अन्य अधिकारी उदाजी चौहान ने जो कि हन्ती का निवासी था। आगे बढ़कर बत्तीस सिराला की गरही को अपने अधिकार में कर लिया। कुछ ही समय में उसने अपनी शक्ति को इतना बढ़ा लिया कि शाहू ने उससे संधिवार्ता करना आवश्यक समझा। इस समझोते के अनुसार बत्तीस सिराला तथा कुरार की चौथ चौहान को देना, शाहू ने स्वीकार किया। चौथ की यह रकम व्यक्तिगत खर्च के लिये, चौहान को बहुत दिनों तक मिलती रही। इसी प्रकार के अनेकों छोटे-मोटे छापेमार इधर-उधर बिखरे पड़े थे। यह सभी अपने को सम्भाजी के अधीन घोषित करते परन्तु करते अपने मन की थे। इस प्रकार के छापेमारों में कान्होजी आँग्रे सबसे अधिक शक्तिशाली था। सावन्त बाड़ी से लेकर बम्जई तक के समुद्री किनारे पर उसका अविकल अधिकार था। कोंकण के कल्याणी प्रान्त पर भी अपने प्रभाव को पूर्णरुपेण कायम करने के प्रयत्न में वह लगा हुआ था।

इसी प्रकार की अराजकता के वातावरण में शाहू का प्रशासन फंसा हुआ था। परिस्थिति ऐसी थी, कि बिना शाहू के अप्रत्यासित भाग्य परिवर्तन या फिर उसके प्रशासन में असाधारण सुधार के, उसका राज्य स्थायी नहीं हो सकता था। मराठों पर उसका प्रभाव भी कम होता जा रहा था। राज्य की इस डाँवाडोल स्थिति में प्रशासन भार बालाजी विश्वनाथजी के कन्धे पर आया। उसने अपने सहायक मंत्रियों को प्रेरणा प्रदान की और जन कार्यों में उसकी प्रधानता सर्वसाधारण को मान्य होने लगी। उसने दम्माजी थोराट की सत्ता को समाप्त करने का प्रस्ताव रक्खा और स्वयम् कार्य सिद्धि के हेतु निकल पड़ा। परन्तु थोराट ने सन्धि करने का बहाना करके बालाजी विश्वनाथ से मुलाकात करने का प्रस्ताव रक्खा। किसी प्रकार विश्वासघात करके उसने बालाजी विश्वनाथ को बन्दी बना लिया। बालाजी विश्वनाथ के साथ उनके मित्र आवाजी पुरन्द्री, उनके दोनों पुत्र बाजीराव व चिमनाजी तथा अनेकों अन्य प्रमुख सर्दार भी पकड़े गये।

थोराट ने बालाजी विश्वनाथ के घोड़ों के साथ अत्यन्त अमानवीय अत्याचार कर के उन्हें डरवा दिया। पहले तो उसने घोड़ों को कई दिन कुछ भी खाने-पीने को नहीं दिया। जब वे भूख के मारे व्याकुल हो उठे तो उसने झोलों में राख बाँध कर घोड़ों के गले में बाँध दिया। इस क्रिया के कारण अनेक धोड़ों की मृत्यु भी हो गई। अपनी इन निम्न क्रियाओं को उसने तब तक चालू रक्खा जब तक की उसे बालाजी विश्वनाथ तथा उसके साथियों की मुक्ति के लिये अत्याधिक मात्रा में धन नहीं प्राप्त हुआ। प्रथम तो उसने इस मुक्ति के बदले में इतनी अधिक मांग सामने रक्खी कि शाहू ने देने से इन्कार कर दिया। होते-होते मामला कुछ कम पर तै हुआ जिसे देकर शाहू ने बालाजी को मुक्त करवा लिया। बालाजी को मुक्त करवा कर शाहू ने सचिव को थोराट की प्रगति को समाप्त करने का आदेश दिया। सचिव ने तुरन्त अपनी सेनाओं को तैयार किया और आगे बढ़ा परन्तु उसे थोराट से परास्त होना पड़ा। अपने मुताल्लिक के साथ उसे हींगनगाँव में बन्दी जीवन अपनाने को वाध्य होना पड़ा। †

---

* मराठा लोकोक्तियों में इस स्वतन्त्र छापे मार का विवरण बहुत ही उपेक्षाप्रद है। भारतीय बेलपत्र की कसम खाने के पश्चात् किसी कार्य को करना बहुत ही नीच कार्य समझते हैं, परन्तु इसने बेलपत्र की सौगन्ध खाने के बाद वालाजी विश्वनाथ को कैद करवा दिया था। पकड़वाने पर उसने कहा 'तो क्या हुआ बेलपत्र तो मैं रोजही खाता हूँ यह पेड़ की पत्ती के अलावा है ही क्या।'

† नारू पन्त सचवि उन दिनों छोटे से बालक थे। परन्तु हिन्दू मान्यताओं के आनुसार बच्चे

जिस समय सचिव थोराट को समाप्त करने का प्रयास कर रहा था, सतारा से भी दो नयी रण योजनायें क्रियान्वित की गई। पेशवा पन्त पिंगले के अधीन एक मराठा सेना को कोंकण में आंग्रे के विरुद्ध भेजा गया। दूसरी सेना बालाजी विश्वनाथ के अधीन कृष्णाराव खटावकर को समाप्त करने के उद्देश्य से भेजी गई। यह ब्राह्मण इतना शक्तिशाली तथा आत्म विश्वासी हो गया था कि वह अपनी सेनाओं के साथ औंध स्थान तक आया, उसका विचार शाहू की सेना को आगे ही रोक देना था। परन्तु वह शाहू की सेना से बुरी तरह पराजित हुआ। खटावकर की इस पराजय में प्रतिनिधि परशुराम त्र्यम्बक के दूसरे पुत्र श्रीपतराव का प्रधान हाथ था। प्रतिनिधि ने अपने इस पुत्र को सलाह दिया था कि वह कुछ ऐसा कार्य करे जिससे उसके बड़े भाई द्वारा अर्जित बदनामी को कुछ कम किया जा सके। हुआ भी ऐसा ही। शाहू ने एक बार फिर प्रतिनिधि को मुक्त कर दिया तथा पुनः उनको प्रतिनिधि पद पर नियुक्त कर दिया। कृष्णाराव खटावकर को, उसकी पूर्ण पराजय के बाद क्षमा कर दिया गया तथा कटाव नामक गाँव उसे इनाम के रूप में दिया गया। इस गाँव का अधिकार इस पुस्तक के लिखते समय तक इसी वंश के हाथ में रहा।

बालाजी विश्वनाथ को मिली इस सफलता को शाहू प्रशासन को बनाये रखने में महत्वपूर्ण हाथ है। परन्तु पेशवा पिंगले को आँग्रे के विरुद्ध प्राप्त असफलता का इस पर अत्याधिक प्रभाव पड़ा। इस पराजय के परिणाम स्वरूप लौहगढ़ का किला उसके हाथ समर्पण कर देना पड़ा। ऐसा भी पता लगा कि अपनी इन सफलताओं से उत्साहित हो उसने सतारा की ओर भी प्रस्थान कर दिया है। इस आशंका के परिणाम स्वरूप सारी सम्भव सेनाओं को सतारा में इकट्ठा किया गया। प्रतिरक्षा के लिये इकट्ठी इस सेना का नेता बालाजी विश्वनाथ को बनाया गया। बालाजी विश्वनाथ ने सेनापतित्व तो स्वीकार कर लिया परन्तु उसकी योजना लड़ाई करने की नहीं थी। अपने साथ आँग्रे के पुराने सम्बन्धों के बल पर उसे विश्वास था कि वह उसे अपनी ओर मिलाने में सफलता प्राप्त कर सकेगा। उसको पूर्ण विश्वास था कि आँग्रे से सुलह करने से जो सफलता प्राप्त होगी वह हमेशा उस सफलता से उत्तम होगी जो इस लड़ाई के अनिश्चित परिणाम के रूप में प्राप्त होगी। आँग्रे यदि परास्त भी होता तो भी मराठों की शक्ति का ह्रास होता, कारण आँग्रे एक योग्य और कर्मठ व्यक्ति था। यदि वह शाहू से आ मिलता तो शाहू की शक्ति प्रबल हो जाती। दूसरी बात यह थी कि बालाजी विश्वनाथ को यह भली-भाँति मालूम था कि आँग्रे की सम्पन्नता और विपन्नता में उसके अधिकृत जिलों की संख्या से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। कारण उसकी अधिकांश आय भारी सामुद्रिक लूटों पर आधारित थी। बालाजी अपने प्रयास में सफल हुये। सन्धि की शर्तों के अनुसार। आँग्रे को १० किले, १६ किलों से निम्नतर शक्ति वाले स्थान जिनकी मोर्चेबन्दी की हुई थी प्राप्त हुई। जलबेड़े का प्रधान पद तथा अपनी उपाधि सुरखेल पर स्थायी किये जाने के बाद आँग्रे ने अपनी अन्य विजयों या विजित क्षेत्रों को शाहू को सौंप दिया। संम्भाजी का पक्ष छोड़ कर उसने शाहू को अपना प्रधान माना परन्तु राजलक्ष्मी का किला उसने अपने पास ही रक्खा था।

इस सन्धि से सिद्दी काफी प्रभावित हुआ। जिन क्षेत्रों पर उसने पिछले २० वर्ष से लगान वसूल किया था वे अब गत सन्धि के अनुसार आँग्रे को प्राप्त हो गये थे। परिणामतः संधि के बाद ही सिद्दी तथा कान्होजी आँग्रे में ठन गई। बालाजी विश्वनाथ ने आँग्रे की सहायता की तथा सिद्दी को परास्त कर उन क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया।

संरक्षक को भी वही सम्मान व पद प्राप्त होता है जो अन्यथा उस बच्चे को प्राप्त होता।

बालाजी विश्वनाथ द्वारा सिद्दी के विरुद्ध प्राप्त सफलता तथा आँग्रे को अपने पक्ष में लाने के सफल प्रयास से शाहू अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अतः जब विजेता बालाजी विश्वनाथ सतारा पहुँचे तो वहाँ उनका शानदार स्वागत किया गया। जिस प्रयास में पेशवा भीरु पिंगले
सन् १७१४] को भारी असफलता का सामना करना पड़ा, उसी में बालाजी कृतसंकल्प हुये थे। इसी से प्रभावित होकर शाहू ने पिंगले को मुख्य प्रधान पद से विलग कर दिया तथा उनके स्थान पर बालाजी विश्वनाथ को पेशवा पद पर नियुक्त किया। बालाजी विश्वनाथ के मित्र आबाजी पुरन्दरी को उनका मुतालिक तथा रामजी पन्त भानू को उनका फरनवीस नियुक्त किया गया।

जब चन्द्रसेन जाधव ने शाहू पक्ष को छोड़ कर मुगलों से नाता जोड़ लिया तब सेनापति के रिक्त पद पर मानाजी मोरे को प्रतिष्ठित कर दिया गया था। यद्यपि उसका अभिषेक भी कर दिया गया था तथा सेनापति की पोशाक आदि भी उसको दे दिया जा चुका था, परन्तु उसने अपने पद के अनुरूप कार्य नहीं किया। अब शाहू ने उसको आदेश दिया कि वह हैबतराव निम्बालकर के साथ पूना जिले में दम्भाजी थोराट को दबाने के लिये विश्वनाथ बालाजी की सहायता करे। अब बालाजी विश्वनाथ के सामने प्रमुख समस्या बन्दी सचिव की थी। यदि वे थोराट पर सीधे आक्रमण करते तो सम्भव था वे सचिव को ही मार डालते अतः उन्होंने अपनी सेनाओं को रोक रक्खा। इसी समय सचिव की माँ यशबाई ने पेशवा को रोक कर सचिव को मुक्त करने के लिये थोराट से वार्ता आरम्भ की। उसे अपने प्रयास में सफलता मिली। यशबाई ने पेशवा विश्वनाथ की इस कृपा के बदले में (जो उसने सचिव की मुक्ति के पहले अपना आक्रमण स्थगित रक्खा) पूना जिले में प्राप्त सचिव के समस्त अधिकारों को पेशवा को प्रदान किया। यशबाई ने पेशवा के परिवार के लिये पुरन्दरगढ़ भी उसको दे दिया। बालाजी ने शाहू की आज्ञा मांगी, ताकि वह इन प्राप्त अधिकारों का उपभोग कर सके। शाहू ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। विचारा शाहू क्या जानता है कि इस स्वीकृति के कारण उसके आने वाली पीढ़ी की शक्ति, सत्ता, में रोग का सूत्रपात हो गया। धीरे-धीरे इस पेशवा वंश ने सारी शक्ति तथा सत्ता को अपने अधीन कर लिया। शासक स्वयम् कठपुतली का सा जीवन बिताने को बाध्य हुआ। स्थिति इतनी बिगड़ी की एक समय सिर्फ पेशवा ही सर्वेसर्वा हो गया, शासक समाप्त हो गये।

अब बालाजी विश्वनाथ के अधीन मराठा सेना जो पूना में इकट्ठी हो गई थी वह थोराट के लिये बहुत अधिक थी। उसे शीघ्र ही हींगनगाँव की गरही में शरण लेने को विवश कर दिया गया। गरही पर भी शीघ्र ही जोरदार हमला किया गया। दम्भाजी थोराट बन्दी बना लिया गया तथा गरही को ध्वंस कर दिया गया।

उधर सर लश्कर राजा से झगड़ा कर वापस गोदावरी की ओर लौटा। यह मतभेद इसलिये हुआ कि सर लश्कर को सेनापति नहीं बनाया गया। यह बात दोनों को हमेशा खटकती रही तथा मतभेद जीवन पर्यन्त चलता रहा। पूना जिले के मुगल प्रतिनिधि को पेशवा
सन् १७१५] ने अपनी ओर मिला लिया।* उस प्रतिनिधि को पेशवा ने आश्वासन दिया कि रम्भाजी निम्बालकर की जागीर को पुर्ववत बनाये रक्खा जायगा। उसने तुरन्त पूना जिले को अपने अधिकार में कर लिया। अब बालाजी विश्वनाथ ने मराठा साम्राज्य

---

* इस मराठा प्रधान का नाम बाजी कदम था। जी० यस० तामसकर के अनुसार यह रम्भाजी राव की पूना स्थिति जागीर का प्रबन्धक था।

में सुशासन व व्यवस्था की ओर ध्यान देना आरम्भ किया। कृषि की उन्नति के लिये उन्होंने लगान को अत्याधिक कम कर दिया। लगान की यह दर अधिक क्षेत्र पर कृषि करने वालों पर क्रमागत रूप से बढ़ती रहने का प्रबन्ध किया गया। *

इस काल में मराठों को प्रत्येक दिशा में सफलता प्राप्त हो रही थी। चारों ओर का वातावरण उनके अत्यन्त अनुकूल था। परन्तु नाना प्रकार के भ्रमों, मतभेदों व कठिनाइयों के होते हुये भी, शाहू के प्रशासन काल के इस उत्तरार्ध में मराठों का प्रसार इतनी शीघ्रता से बढ़ा कि यह एक अविश्वासनीय सत्य सा प्रतीत होने लगता है। परन्तु जब हम स्थिरचित्त हो प्रसार की परिस्थियों तथा कारणों का अध्ययन करते हैं तो हमें उसकी यथार्थता का परिचय मिलता है। जिन परिस्थितियों ने शाहू के साम्राज्य को इतना विस्तार प्रदान किया उनके अध्ययन की आवश्यकता है। विवरण योग्य तथ्य भी सुलभ हैं। इतना अवश्य है कि मराठा साम्राज्य के सीमातीत प्रसार के साथ-साथ उनके परिवारिक झगड़े भी बढ़ते रहे। यह झगड़े व मनमुटाव अधिकतर आपसी बँटवारे व पदों के हस्तान्तरण के कारण हुआ करते थे। इन झगड़ों को हम मराठों की लुटेरी प्रवृति की प्रतिक्रिया का परिणाम मात्र कह सकते हैं मराठा साम्राज्य के लिये यह काल वर्षा की बाढ़ के समान था जैसा वर्षा में हर तरफ नाले नालियों से पानी बह-बह कर नदियों में या समुद्र में जाता है उसी प्रकार चारों ओर से मराठों को सफलता ही सफलता मिल रही थी। जिस प्रकार बाद में पानी जब तक बहने का मार्ग नहीं पाता तब तक आस-पास के क्षेत्रों को विवश हो सींचता रहता है, उसी प्रकार चारों ओर से प्राप्त धन और ऐश्वर्य माराठा सर्दारों व जनता के उपयोग में आ रहा था।

बालाजी विश्वनाथ का महत्व उत्तरोत्तर बढ़ता गया। बिना उसकी सलाह के कोई भी महत्वपूर्ण मसला हल नहीं हो पाता था। बालाजी विश्वनाथ ने सर्दारों को सन्तुष्ट करने जिन योजनाओं को सामने रक्खा, शाहू ने उन पर अपनी स्वीकृति प्रदान किया। सम्भाजी के शासनकाल तक शिवाजी की योजनाओं पर चलने का पूर्ण प्रयत्न हुआ परन्तु उसके बाद क्रमशः प्रशासन ने उन योजनाओं को भूलना प्रारम्भ किया। सम्भाजी के समय से ही छत्रपति के हाथों में सम्पूर्ण शक्ति को केन्द्रित करने की आवश्यकता प्रतीत हो रही थी। स्वयम् छत्रपति को अपनी मर्जी से मराठा सर्दारों को जागीर देने व जागीर छीन लेने का अधिकार रहने देना राष्ट्र तथा प्रशासन के लिये अत्यन्त लाभकर था। शिवाजी विलक्षण पुरुष थे। उन्होंने इसीलिये किसी को भी मुस्तकिल जागीरें नहीं प्रदान की। शिवाजी के इस निर्णय से हजारों बाधाओं का अपने आप सफाया हो गया। किसी भी क्षेत्र पर नये जागीरदार की नियुक्ति से उठने वाली समस्याओं को जन्म ही नहीं मिलता था। शिवाजी की इस व्यवस्था लादी गई अन्य योजनाओं की चर्चा यथावसर करेंगे। यद्यपि इन नई व्यवस्थाओं के परिणाम स्पष्ट थे परन्तु फिर भी इस विनाशक योजना की आड़ में ब्राह्मण नीति की गहनतम योजना थी। इन योजनाओं से योजना निर्माताओं के धार्मिक विश्वासों का कुछ भी मेल नहीं है। शाहू प्रशासन ने अधिकतर पुराने अनुभवी व्यक्तियों को ही अपने मंत्रिमण्डल में स्थान दिया था। ये तो कोल्हापुर सरकार के मंत्रिमण्डल के अपदस्थ सदस्य थे या फिर उनके नजदीकी रिश्तेदार।

इस काल में संगठित मंत्रिमण्डल के सदस्यों के नाम, उनके पदों के अनुसार निम्न प्रकार के हैं।

---

* मराठा पान्डु लिपि।

प्रतिनिधि—परशुराम त्र्यम्बक।

(आठ प्रधान निम्न है)

१—पेशवा या मुख्य प्रधान	बालाजी विश्वनाथ।
२—अमात्य	अम्बाराव बापूराव हनुमन्ते।
३—सचिव	नारु शंकर।
४—सेनापति	मान सिंह मोरे।
५—सामन्त	आनन्द राव मोरे।
६—न्यायाधीश	रोनाजी आवन्त।
७—मंत्री	नारु राम सेतवी।
८—पंडित राव	मुद्गल भट्ट उपाध्याय।

परशोजी भोंसले तथा हैबतराव निम्बालकर की मृत्यु लगभग इसी समय हुई। परशोजी भोंसले के पुत्र कान्होजी भोंसले को शाहू ने उसके पिता को मिलने वाली समस्त सुविधायें प्रदान करते हुये भोंसले के रिक्त पद सेना साहिब सूबा की उपाधि भी सौंपी। इसके विपरीत सर लश्कर का पद, उससे सलग्न सुविधायें तथा प्राप्त आय को शाहू ने दौलशी समोसी को प्रदान किया। अपने पिता द्वारा अर्जित समस्त सुविधाओं तथा सम्मान से तिरष्कृत हैबतराव निम्बालकर के पुत्र ने शाहू की सेवा में रहने से इन्कार कर दिया और आकर चन्द्रसेन जाधव से जा मिला। चन्द्रसेन जाधव के पास पहुँचने पर उसे निजामुल मुल्क ने बारसी तथा कुछ अन्य जिलों को उसे बतौर जागीर प्रदान किया।

शाहू में साधारण प्रचलित मानवोचित गुणों का अभाव न था। वह एक उदार, धीर, सभी धार्मिक विश्वासों का पोषक तथा हिन्दू ब्राह्मणों का भक्त था। वह ब्राह्मणों को प्रायः ही दान देता रहता था। घाटमाथा तथा कोंकण की घाटियाँ उसके जन्म साथी थे, परन्तु शाहू ने अपने दादा शिवाजी का अनुसरण नहीं किया। उसने कभी भी उन सूनसान आबादियों को अपनाने का प्रयास नहीं किया। उसका सारा बचपन मुगल शहंशाह के साथ बीता था जहाँ का ऐश्वर्य और विलाश उसके जीवन में समा गया। इसमें आश्चर्य नहीं की उसने अपनी शाहाना आदतों को मुगलों के संसर्ग में ही सीखा। यदा-कदा उसने अपने मराठा स्वभाव की बीरता व दृढ़ता का भी परिचय दिया परन्तु साधारणतः वह आत्म-सम्मान से तुष्ट था। अपने प्रति अपने मंत्रियों के सम्मान को ही यथेष्ट समझ उसने अपना जीवन मनोरंजन, शिकार व मछली का शिकार आदि करने में ही लगा दिया था। उसने अपने राजकाज के प्रति प्रवृति को सुधारने का प्रयास नहीं किया। ज्यों-ज्यों मंत्रियों ने व बालाजी विश्वनाथ ने प्रशासन भार अपने ऊपर लेना शुरू किया, शाहू ने अपने को राजकार्य से विलग करना शुरू किया। अपनी इस स्वतन्त्र प्रियता की लालच में शाहू ने यह भी नहीं सोचा कि जिस पेशवा पद के कार्यों को वह इतना महत्व प्रदान करता जा रहा है, कहीं छत्रपति की मर्यादा को ही न समाप्त कर दे। इतना अवश्य सत्य है कि मराठा साम्राज्य के प्रधान के नाते मुगलों द्वारा उसका यथेष्ट सम्मान किया जाता था। अपने छत्रपति पद के कारण शाहू को जो सम्मान प्राप्त हुआ वह किसी अन्य प्रकार की प्रशासन व्यवस्था में अवश्य ही सम्भव नहीं होता। शिवाजी के प्रथम दो पुत्रों ने अपने पिता शिवाजी का ही अनुकरण किया परन्तु शाहू ने अपने को, अपने पिता व चाचा की तरह स्वतन्त्र शासक नहीं माना। अपने को हिन्दू नरेश मानते हुये भी शाहू ने हमेशा मुगलों को अपने से श्रेष्ठ माना। वे अपने को मुगल साम्राज्य का एक प्रधान देशमुख या जमीन्दार ही मानते रहे।

फर्रुखसियर ने सिंनासप्राप्तह करते ही दक्षिण की ओर ध्यान दिया। सालपी घाट की सन्धि

के अनुसार उसने शाहू को दसहज़ारी मन्सब प्रदान किया । इनके सत्रह महीने तक अर्थात् निजामुल मुल्क की प्रथम सरकार के बीच में सूबेदार ने मराठों की गतिविधियों पर नियन्त्रण रखने का पूर्ण प्रयास किया ।

फर्रुखसियर अपने प्रशासन काल के प्रारम्भ से ही सैय्यद बन्धुओं से द्वेष रखने लगा । यह द्वेषाग्नि प्रज्वलित होती रही । (स्मरणीय है कि इन्हीं सैय्यदों ने फर्रुखसियर को बादशाह बनाया था अत: वे स्वभावतः ही घमन्डी हो चले थे ।) शीघ्र ही दोनों दलों को एक दूसरे पर अविश्वास होने लगा । फर्रुखसियर ने सोचा कि यदि वह इन दो भाइयों को एक दूसरे से विलग कर सके तो सम्भवत: सैय्यदों की शक्ति कुछ कम हो सके । जब उनकी शक्ति कम हो जायगी तो उन्हें समाप्त करने में सुविधा रहेगी । परिणामतः उसने छोटे भाई हुसेन अली खाँ को दक्षिण का सूबेदार बना कर भेजा । अपनी इस नियुक्ति का प्रबन्ध करने के लिये हुसेन अली ने भी जुल्फिकार खाँ का अनुसरण करना चाहा । अपने किसी सहायक द्वारा दक्षिण की सूबेदारी व्यवस्था के लिये उसने सक्रियता दिखाई परन्तु शहंशाह से आश्वासन पाकर उसने दक्षिण को प्रस्थान किया । जाने से पहले उसने अपने भाई के विरुद्ध किसी भी होने वाले कार्य की सूचना पाते ही बीस दिनों के अन्दर राजधानी को घेर लेने की स्पष्ट घोषणा की । फर्रुखसियर प्रशासन ने दाऊद खाँ पन्नी को दक्षिण की नायब सूबेदारी से हटा कर गुजरात भेज दिया था । अब शहंशाह ने उसे एक गुप्त पत्र लिख कर भेजा । इस पत्र द्वारा दाऊद खाँ को नये वायसराय या सूबेदार का विरोध करने एवम् उसे समाप्त कर देने का आदेश मिला । सफलता प्राप्त करने पर सम्राट ने दाऊद खाँ को दक्षिण के छः सूबों की सूबेदारी देने का वादा किया था । दाऊद खाँ का मराठों पर प्रभाव था । वह दक्षिण की स्थिति से परिचित था । इसी कारण उसे इस कार्य के लिये सर्वाधिक उपयुक्त समझा गया । दाऊद खाँ ने भी सम्राट के इस आदेश का पालन करने में तत्परता दिखलाई । दाऊद खाँ द्वारा संचालित हुसेन अली के विरुद्ध अभियान में नीमाजी सींदिया अकेले मराठा सर्दार थे जिन्होंने उसको सहायता देने का वादा दिया । जब दाऊद खाँ दक्षिण में सूबेदार था उसने नीमाजी सींदिया को औरंगाबाद के पड़ोस में एक छोटी-सी जागीर दे दी थी । उसी जागीर से सन्तुष्ट नीमाजी ने दाऊद खाँ की सहायता करने का निश्चय किया । परन्तु नीमाजी हुसेन अली खाँ से भी मित्रता बनाये रखने को तत्पर था अत: जब हुसेन अली खाँ और
सन् १७१६] दाऊद खाँ की सेनाओं ने एक दूसरे पर आक्रमण किया, वह अपनी सेनाओं के साथ दूर खड़ा लड़ाई के परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा । जब उसने देखा कि दाऊद खाँ मारा गया और अब हुसैन अली खाँ की जीत निश्चित है वह उससे जा मिला । हुसेन अली खाँ को उसकी विजय पर बधाई दे कर उसने मुगल सूबेदार की अधीनता स्वीकार कर लिया । फर्रुखसियर को दाऊद खाँ की पराजय से भारी निराशा हुई । अब भी उसने अपने जटिल प्रयत्नों को बन्द नहीं किया । ऊपर से तो सैय्यदों से मित्रता प्रगट करता रहा पर गुप्त रूप से मराठों व अपने ही कर्मचारियों को उनके विरुद्ध प्रोत्साहन दिया करता था । दक्षिण में उसने मराठों को भी हुसेन अली खाँ के विरुद्ध उभाड़ने का प्रयत्न किया । उसने द्वेषाग्नि से प्रज्वलित हृदय के प्रभाव में आकर एक ऐसी नीति को अपनाया, जिसका परिणाम उसके प्रशासन को बर्बाद करने भर को काफी था ।

हुसेन अली खाँ ने मराठों के विरुद्ध अपना प्रथम अभियान सूरत से बुरहानपुर तक की संचार व्यवस्था को कंटक हीन करने के विचार से आरम्भ किया । इस मार्ग पर खण्डेराव दाभाड़े का प्रभाव था । स्थान-स्थान पर अपनी चौकियाँ स्थापित करके वह मार्ग से जाने वाले यात्रियों से चौथ

वसूल करता तथा यात्रा करने का अनुज्ञा पत्र आदि प्रदान करता था, हुसेन अली खाँ ने खण्डेराव को प्रभाव हीन करने के लिये जुल्फिकार वेग के अधीन आठ हजार सेना को प्रस्थान करने का आदेश दिया। खण्डेराव को जब इस अभियान की सूचना मिलो तो वह अपनी सेना के साथ उसके मार्ग में जा पड़ा। मुगल सेना के सामने आते ही वे भाग चले। मुगलों ने तेजी से उनका पीछा किया। जैसे ही मराठों को विश्वास हुआ कि विजय मद में चूर मुगलों का संगठन अस्त-व्यस्त हो गया है, उनकी पंक्तियाँ टूट गई हैं तथा उनमें प्रतिरक्षात्मक शक्ति का अभाव हो गया है, वह घूम पड़ो। मुगल सेना उस अप्रत्याशित आक्रमण के लिये तैयार नहीं थी, परिणाम स्वरूप उसे मराठों के हाथों से बुरी तरह पराजित होना पड़ा। मराठों ने जुल्फिकार खाँ को मार डाला और मुलग सेना के सभी सामान व वस्त्रों तक को लूट लिया। *

हुसेन अली के दीवान मौकूब सिंह ने चन्द्रसेन जाधव के साथ इस असम्मानपूर्ण पराजय का बदला लेने के लिये प्रस्थान किया। खण्डेराव ने उनका सामना करने के लिये सर लश्कर की सेना को भी अपनी सेना में मिला लिया और अहमद नगर के पास मुगल सेना का सामना किया। इस युद्ध में पराजय किसी की नहीं हुई। किसी बात पर मतभेद हो जाने के कारण दोनों दलों को अपनी-अपनी स्थिति अधिक शक्तिशाली प्रतीत होने लगी, परन्तु मुगल सेना ने लड़ाई स्थगित कर औरंगाबाद चले जाने का निश्चय किया। खण्डेराव इधर बहुत दिनों से दरबार में न जा सका था। मुगलों पर अपनी इन विजयों से उत्साहित होकर उसने सतारा जाने का निश्चय किया। सतारा जा कर उसने राजा शाहू के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया। शाहू ने उसकी सफलताओं से प्रभावित हो कर खण्डेराव को अपना सेनापति नियुक्त किया तथा मानाजी मोरे को अयोग्य समझ कर सेनापति के पद से हटा दिया।†

अपनी सफलताओं तथा बादशाह द्वारा प्राप्त प्रोत्साहन से प्रोत्साहित मराठों ने अपनी वसूली के क्षेत्र का विस्तार करना प्रारम्भ किया। दाऊद खाँ पन्नी द्वारा अपनी समस्त माँगों के बदले में प्राप्त चौथ वसूली के अधिकार के साथ-साथ अब उन्होंने सरदेशमुखी की भी माँग आरम्भ कर दिया।

हुसेन अली खाँ अजीब परिस्थिति में पड़ गया। एक तरफ तो उसे मराठे परेशान कर रहे थे, दूसरी ओर दर्बारी षड़यन्त्र उसे चैन नहीं लेने देते थे। अन्ततः अपनी इस परिस्थिति से ऊब कर उसने छत्रपति शाहू से कूटमोतिक सम्बन्ध स्थापित करने का विचार किया। इस कार्य के लिये उसने शंकरजी मुल्हर को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। यह शंकरजी मुल्हर शिवाजी महान् के प्रशासन में एक साधारण कारकून मात्र था। राजाराम ने उसे जिंजी में सचिव के पद पर नियुक्त किया था। जब जिंजी का पतन हुआ तो शंकर जी मुल्हर काशी वास करने चले गये। परन्तु काशी का निष्क्रिय जीवन उनके मन को न भाया। उन्होंने यद्यपि वे वृद्ध हो चुके थे, फिर भी पुनः सक्रिय जीवन अपनाने का विचार किया और लौट कर हुसेन अली के यहाँ कार्य करना आरम्भ कर दिया। अपनी कार्य पटुता से उसने शीघ्र ही हुसेन अली का विश्वास प्राप्त कर लिया। उसने बहुत पहले ही सतारा स्थिति अपने पूर्व परिचित मित्रों से पत्राचार आरम्भ कर दिया। शंकरजी ने हुसेन अली को समझाया कि यदि वो मराठों की सरदेशमुखी व चौथ की माँगों को स्वीकार कर ले तो वे अवश्य क्षेत्र की शान्ति और सुव्यवस्था को बनाये रखने का प्रयास करेंगे। इस प्रकार देश की समृद्धि बढ़ेगी तथा मराठों के रूप में हुसेन अली को अनमोल सहायक अनायास प्राप्त हो जायगें। इस प्रकार आप अपनी

---

* खफी खाँ मसीरुल उमराह तथा मराठा पाण्डुलिपि।

† मराठा पाण्डुलिपि।

प्रशासनिक व्यवस्था बनाये रख सकेगें और सम्राट द्वारा होने वाले विरोध का प्रतिरोध भी कर सकेंगे।

शंकरजी मुल्हर की इस राय का समर्थन अनवर खाँ ने भी किया। अनवर खाँ बुरहानपुर का मुगल प्रशासक व फौजदार था। हुसेन अली खाँ का यह एक प्रमुख विश्वास पात्र था। विचार विमर्श के बाद शंकर जी मुल्हर को मुगलों और मराठों के बीच में सन्धि स्थापित करने के प्रस्ताव के साथ सतारा भेजा गया।

मुगलों द्वारा किये गये उस सन्धि प्रस्ताव ने बालाजी विश्वनाथ की विस्तार वादी प्रकृति को मनोवांछित पृष्ठभूमि प्रदान किया, उन्होंने मुगलों की कमजोरी भाँप ली। उन्होंने सन्धि की शर्तों को अत्यधिक बढ़ा-चढ़ा कर सामने रक्खा, शाहू ने छः सूबों के अतिरिक्त बीजापुर, हैदराबाद व कर्नाटक में चौथ व सरदेशमुखी का अधिकार माँगा। इसके साथ त्रिचनापल्ली मैसोर तथा तंजोर जैसे कर देने वाले राज्यों को भी अपने में मिला लेने को कहा। यही नहीं शाहू ने खानदेश को छोड़कर शिवाजी द्वारा विजित समस्त क्षेत्र पर अपने अधिकार की माँग करते हुए शिवनेरी तथा त्र्यम्बक गढ़ को अपने अधिकार में दिये जाने की माँग की। खानदेश के बदले में पुराने जिलों के पड़ोस में स्थित पूर्व में पण्ढरपुर तक का क्षेत्र माँगा गया। कर्नाटक के पुराने जिलों तथा सेना साहिब सूबा द्वारा और कान्होजी भोंसले द्वारा विजित क्षेत्रों की माँग की गई। अन्तिम माँग के अनुसार शाहू के परिवार व उनकी माँ को जल्द से जल्द सतारा भेजने की थी।

उपयुक्त शर्तों के स्वीकार किये जाने पर अपने पुराने क्षेत्र पर शाहू ने दस लाख रुपये बतौर पेशकुश या कर के रुप में देने का वादा किया। अपने देशमुखी के अधिकार * की स्वीकृति पर उन्होंने क्षेत्र की रक्षा व प्रशासीनिय सुव्यवस्था करने का वादा किया। इस प्रशासनिक अवस्था के अन्तर्गत उन्होंने देशी लुटेरों का प्रतिरोध, चोरी किये गये सामान की क्षति पूर्ति व चोरों को दण्ड तथा प्रशासनिक क्षेत्र की कुल आय का ६५१ प्रतिशत शाही खजानों में जमा करते रहने का वादा किया। अपने चौथ के अनुदान की स्वीकृति पर शाहू ने पन्द्रह हजार मराठा सवारों को शाही सेना में शामिल करने का प्रबन्ध किया। यह सेनाएँ सूबेदार, फौजदार या किसी अन्य मुगल अधिकारी के अधीन रखी जा सकती थी। परन्तु चौथ की इस माँग की स्वीकृति पर किसी प्रकार का भी धन या रुपया पैसा देने की बात नहीं थी। इसके अतिरिक्त कर्नाटक तथा बीजापुर आदि सूबों में कोल्हापुर के राजा सम्भाजी के दल सर्दारों द्वारा संचालित लूटपाट तथा सूबे के निवासियों द्वारा की जानेवाली विस्फोटक तथा क्षति पूर्ण कार्यों को भी समाप्त करने का आश्वासन मुगलों को दिया गया, परन्तु तभी जब उन शर्तों को मान कर उसकी सनदें शाहू को प्रेषित कर दी जायँगी।

हमने पहले ही देखा है कि शंकरजी मुल्हार इस सन्धि के लिये मराठों को नाना
सन् १७१७] प्रकार से उत्साहित कर रहे थे। शाहू ने अपनी तरफ से उपर्युक्त शर्तों को उनके
सामने रक्खा। उन्होंने उसे हुसेन अली के सामने रक्खा जिसने उसें कुछ अपवादों के साथ स्वीकार कर लिया।

मुगल क्षेत्र के जो किले सूबेदार हुसेनअली के अधिकार **में** नहीं आ पा रहे थे, उसे शाहू के ऊपर छोड़ दिया गया। वह जब भी ठीक समझता उन पर अधिकार करता। इसी बीच दस हजार मराठा सैनिक सवार सूबेदार हुसेन अली के पास भेज दिये गये। मुगलों के पास जाने वाली इस सेना

---

* देशमुखी अर्थात् देश की सुरक्षा के वदले में प्राप्त लगान का दस प्रतिशत। चौथ अर्थात् लगान का चौथाई अथवा पच्चीस प्रतिशत (अनुवादक)

के साथ सन्ताजी परसोजी भोंसले, ऊदाजी पवार व विश्वास राव के साथ अनेकों अन्य सेना नायक भी सेना के साथ भेजे गये । सन्ताजी भोसले व परसोजी भोंसले सेना साहिब सूबा के सम्बन्धी थे । इसी समय प्रतिनिधि इन नये जिलों की स्थिति देखने तथा लगान वसूली के लिये भेजे गये । इस समय शाहू के ब्राह्मण मन्त्री लगान वसूली विधि तथा प्राप्त लगान में से अपने-अपने हिस्से की प्राप्ति के लिये विधान का निर्माण करने में व्यस्त थे ।

परन्तु जब ये शर्तें शहंशाह के सामने रक्खी गईं, तो उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया । इस १७१८] अस्वीकृति का एक मुख्य कारण यह था कि शाहंशाह अब किसी दूसरे सर्दार के परामर्शानुसार कार्य कर रहा था । उसने अब सैय्यदों को समाप्त कर डालने के लिये षड्यन्त्रों से अधिक विश्वास योग्य खुली लड़ाई की सुना जब हुसेन खां को इस बात की सूचना मिली तो उसने दिल्ली जाने का निश्चय किया । उसने अपने अभियान में शाहू से सहायता माँगी । * भाग्यवश मिले इस अवसर को व्यर्थ नहीं जाने दिया गया । शाहू ने सहायता देना स्वीकार किया तथा मराठों की भारी सेना के साथ बालाजी विश्वनाथ व खण्डे राव दामाड़े को हुसेन अली खाँ की सहायता के लिए भेजा । हुसेन अली खाँ ने मराठों की सेना के लिए दैनिक खर्च देना स्वीकार किया था । यह रकम नर्मदा पार करने के दिन से लेकर उनके महाराष्ट्र में वापसी वाले दिन तक के लिए दी जाने वाली थी । हुसेन अली खां ने शाहू से यह भी वादा किया था कि वह बादशाह द्वारा अस्वीकृत संधि को भी स्वीकृत करवा देगा तथा शाहू के परिवार को मुक्त कराके उसके अधिकारियों को सौंप देगा । प्रस्थान के पूर्व ही शाहू ने बालाजी विश्वनाथ को दौलताबाद का किला तथा गुजरात और मालवा पर चौथ वसूल करने का अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने की सलाह दी । मालवा तथा गुजरात पर मराठों ने इसके पहले भी चौथ वसूल किया था । मालवा तथा गुजरात पर चौथ वसूल करने के अधिकार की माँग शाहू इसलिए कर रहा था कि उन स्थानों पर चौथ वसूल करने वाले मराठा सरदारों को उलझाए रख सके, इसलिए कि वे मुगल क्षेत्र में लूटपाट कर अशान्ति बनाये रखें । शाहू ने इन्हीं शर्तों पर मुगल क्षेत्र में शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखने का वादा किया ।

दोनों सेनाओं ने सम्मिलित होकर दिल्ली की ओर प्रस्थान किया । दिल्ली पहुँचने पर फर्रुखसियर उनके सामने न टिक सका । अपने षड़यन्त्रों में वह जितना पटु था सामने की लड़ाई में इतना अयोग्य साबित हुआ । जो सरदार उसकी इस अवसर पर सहायता कर सकते थे, उन्हें अविश्वास करके उसने पहले ही समाप्त कर दिया था । अतः वह इस युद्ध में कोई सफलता न पा सका । उसकी यह कुटिलता आपस में प्रतिस्पर्धी साबित हुई । थोड़ी सी छिटपुट लड़ाई के बाद वह सैय्यदों के सन्मुख नत मस्तक हुआ । उन्होंने तख्त पर पुनः बैठा चुपके से मरवा डाला । शाही खान-दान के दो शहजादों को सैय्यद बन्धुओं ने एक के बाद एक तख्त पर बैठाया । सात महीने के अल्प काल में ही इन दोनों बादशाहों का निधन हो गया ।

अन्त में सुलतान मुअज्जम के पोते जहाँदार शाह के पुत्र रोशन इखत्यार को मुहम्मद शाह के नाम से सन् १७१९ में तख्त पर बैठाया गया । इन शहंशाहों को बनाने बिगाड़नें का सारा कार्य सैय्यद बन्धुओं द्वारा सम्पादित हो रहा था । पिछली घटना से अब सैय्यद बन्धुओं की सुबुद्धि आ गई

---

* मुगल इतिहासकारों के मतानुसार उसने शाहू से सुलतान मुहम्मद अकबर के पुत्र को भी दिल्ली ले जाने के लिये माँगा । यह शाहजादा मराठों के दरबार मे ही रहता था । मराठा पान्डुलिपियों में इस तथ्य का वर्णन नहीं है इसीलिये तर्क संगत होते हुये भी मैंने इसे नही लिखा ।

थी। उहोंने अब सम्राट से घनिष्टता प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील लोगों पर ध्यान रखना शुरू कर दिया। इस प्रकार के व्यक्तियों से अनायास ही सैय्यदों का कोप भाजन होना पड़ता था। परन्तु सैय्यद बन्धु इसलिये भी प्रयत्नशील थे कि वे दर्बार के महत्वपूर्ण और प्रभावशाली व्यक्तियों को अपने साथ बनाये रख सकें। इस प्रकार के सरदारों में एक निजामुल मुल्क भी था। सैय्यद उसे अपना शुभ चिन्तक समझते थे, परन्तु वह इनसे भीतर ही भीतर जला हुआ था। उसकी नाराजगी का मुख्य कारण यह था कि उसे हुसेन अली के लिये दक्षिण की सूबेदारी का अपना पद रिक्त करना पड़ा था। दक्षिण से बदल कर उसे मुरादाबाद भेज दिया गया था। वहाँ भी उसने अपना प्रभावपूर्ण स्थान लिया था। अपनी सक्रियता से उसने सूबे के कई विद्रोही जमींदारों को परास्त कर उन्हें भगा दिया। विचारों को भाग कर शिवालय की पहाड़ियों में शरण लेने को वाध्य होना पड़ा। बादशाह ने उसे मुरादाबाद से दिल्ली बुलवा लिया, जहाँ वह कुछ दिनों बेकार बैठा रहा। अन्त में बड़े सैय्यद की सलाह से उसे मालवा का राज्यपाल बनाकर मालवा जाने का आदेश दिया गया। यद्यपि निजामुल मुल्क साहसिक एवं महत्वाकांक्षी था, परन्तु उसने अपने पिता से जिस वस्तु का गुण विरासत में पाया था वह थी कूटनीतिज्ञता। इस बिरासत का उपयोग उसने अपने लिये कवच के रूप में किया। इसी कारण जब फर्रुखसियर सैय्यदों की कैद में था तथा सैय्यदों ने नये कठपुतली शाहजादों को तख्त पर बैठाया तो उसने तुरन्त उसका समर्थन किया। वह मालवा के सूबेदार के रूप में कार्य करता रहा और आने वाले तूफान का आगमन जोहता रहा। उसने अनुमान लगा लिया था कि मुगल सत्ता अब तब की मेहमान है। उसका इरादा था कि अवसर मिलते ही वह स्वयं अपने लिये साम्राज्य निर्माण कर सके।

बालाजी विश्वनाथ अपनी सेना के साथ दिल्ली में तब तक बने रहे जब तक कि मुहम्मद शाह गद्दी पर नहीं वैठ गया। सन्ताजी भोंसले (१७२०) व इनके १५०० सैनिक दिल्ली की सड़कों पर लड़ते हुए मारे मारे गये। * अन्त में फर्रुखसियर के कैद होने पर उपद्रव शान्त हुआ। हुसेन अली द्वारा किये वादे के अनुसार फौज का खर्च पूरा-पूरा चुका दिया गया। शाहू की माँ व उनके परिवार को मुक्त करके मराठों को सौंप दिया गया। जब बालाजी तथा सेनापति खण्डेराव ने दक्षिण जाने की उत्कट इच्छा प्रकट की, तो उन्हे वापस जाने की छुट्टी दे दी गई। चलते समय हुसेन अली द्वारा हुई सन्धि के समर्थन में उन्हें तीन शाही सनदें[1] प्रदान की गई। ये तीनों सनदें क्रमशः चौथ,[2] सरदेशमुखी[3] व स्वराजी[4] के लिये थी।

---

* मुताखरीन तथा मराठी पांडुलिपि, मराठी पान्डुलिपि में सन्ताजी की मृत्यु दूसरे ढंग से वर्णित की गई है। इस स्थल पर मुताखरीन अधिक विश्वास योग्य प्रतीत हीती है। मुताखरीन फारस का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसका अंग्रेजी अनुवाद मुस्तफा नाम के एक इतिसाहकार ने किया।

[1] १—वास्तविक सनदें इस समय सतारा के राजा के अधिकार में हैं। इन पर मुहम्मद शाह के हस्ताक्षर हैं। तारीख हिजरी १३३१ सन् १७१९, मुहमदशाह सन् १७२० से पहले तख्त पर बैटा था।

[2] २—चौथ के लिये दी गई सनद हिजरी १३३१ की २२ रबी उल आखीर को स्वीकृत की गई। इसके अनुसार शाहू को छः सूबों से वसूल होने वाली सम्पूर्ण आय का २५ प्रतिशत देने का आदेश था।

[3] ३—सरदेशमुखी की सनद पर चौथ वाली सनद से बारह दिन पीछे अर्थात् ४ जमादीउल

चौथ में मराठा लोगों के सम्बन्धित प्रान्त की समस्त लगान का चतुर्थांश मिलता था। इस सन्धि के अनुसार उन्हें दक्षिण के छः सूबों की चौथ का फर्मान मिला। इस क्षेत्र में हैदराबाद, बीजापुर, कर्नाटक तथा तंजोर, त्रिचनापल्ली और मैसूर की करद रियासतें भी सम्मिलित थीं। सरदेशमुखी में लगान का दस प्रतिशत मिला करता था। यह रकम चौथ की रकम के अतिरिक्त मिला करती थी। स्वराजी का मतलब होता था अपनी निज की संप्रभुता’। इसमें वे जिले सम्मिलित थे, जिन पर शिवाजी का अधिकार उनके मृत्यु काल में था। ये प्रदेश कालान्तर में शाहू को दे दिये गये थे। खानदेश का कुछ भाग, संलग्न क्षेत्रों सहित त्रिम्बक गढ़, वारधा तथा तुंगभद्रा के दक्षिण में स्थिति जिले अवश्य ही स्वराजी में शामिल नहीं किये गये थे। भीमा नदी के उत्तर में जिन जिलों पर मराठे अपना स्वत्व जताते थे, उनके बदले में ततोरा से माछेन्दरगढ़ तथा थोड़ा और पूर्व की ओर पंढरपुर के बीच के सभी किले शाहू को दे दिये गये थे। इनके अतिरिक्त शाहू के विवाह काल में स्वयम् बादशाह औरंगजेब ने जो जिले शाहू को दिये थे, वे भी इसी सनद में शामिल कर दिये गये थे। स्मरण रहे कि यह विवाह शाही खेमे में ही सम्पन्न हुआ था। मोन तथा नीरा नदियों के जल से सिंचित प्रदेश अपने उत्तम घोड़ों तथा कर्मठ सिपाहियों के लिये प्रख्यात था तथा इस भूभाग में कितने ही प्राचीन मराठे परिवार रहते थे। ये प्रदेश भी मराठों के ही अधिकार में दे दिये गये।

मराठों का तो ऐसा कहना है कि परसोजी एवम् कान्होजी भोंसले ने बरार के जिन भागों को जीत कर उनसे कर वसूल करने का अधिकार प्राप्त किया था, इस संधि द्वारा उन भूभागों पर उनके अधिकारों को भी मान्यता मिल गयी थी, साथ ही उन्हें गुजरात तथा मालवा से भी कर (लगान नहीं) वसूल करने का अधिकार भी मिल गया धा, परन्तु उपरोक्त संधिपत्र में कहीं भी इस प्रकार की चर्चा नहीं की गयी है। हो सकता है कि मौखिक रूप से उनके इस प्रकार के अधिकारों को मान्यता दे दी गयी रही हो। बालाजी विश्वनाथ ने इसी प्रकार के कार्यों के लिये (सनद प्राप्त करने के लिये) राजधानी में अपने वकील देवराव हिंगुनी को छोड़ दिया था। बाद की घटनायें मराठों द्वारा कथित बात की पुष्टि नहीं करतीं; बल्कि उनसे इस प्रकार की बातों की असत्यता ही होती है। किसी भी शाही प्रपत्र में इस प्रकार के किसी भी मान्यता की कोई भी चर्चा नहीं की गयी है। सरदेशमुखी के लिये जो सनद दी गयी थी, उसके पुश्त पर पुश्तैनी जागीरदारों पर लगाये गये शुल्क का विवरण दिया गया है परन्तु वे उनसे सर्वदा (पुश्त दर पुश्त) के लिये दे दी गयी थीं, इस प्रकार का कोई लेख उसमें नहीं है।

जिस समय् बालाजी विश्वनाथ दिल्ली के लिये रवाना हुये थे, उस समय पेशवा पद की मुद्रा उन्होंने अपने दीवान अब्बाजी पुरन्धरी को सौंप दिया था। उनकी अनुपस्थिति में दीवान ही के ऊपर पेशवा पद का सारा कार्य-भार था। परन्तु सारे कार्य होते थे बालाजी के ही नाम से। शाही सनदों को लेकर जब बालाजी सतारा लौटे तो उन्होंने लगान तथा कर वसूली की समूची व्यवस्था

औवल की तारीख पड़ी हुई है। सनद में जो रकम लिखी है, उसकी आय एक करोड़ सत्रह लाख उन्नीस हजार तीन सौ नब्बे रुपये आँकी गई थी

४—स्वराजी की सनद में निम्नलिखित जिले दिये गये थे :—पूना; सूपा; इन्दापुर; वाई; माकल; सतारा; कुरार काटोया; मोन; फुतम; मनकापुर; तरला; पन्हाला; अजेरा; जुनेर और कोल्हापुर; इनके अतिरिक्त भी तुंग भद्रा के उत्तर में स्थिति परभनी तथा कोंकण के सभी किले इस सनद में शामिल कर दिये गये थे।

का अध्ययन करके उसे ही फिर से चालू किया । पाठकों को स्मरण होगा कि इस व्यवस्था का संक्षिप्त परिचय पिछले पृष्ठों में दिया जा चुका है । इसके पूर्व यही व्यवस्था आंशिक रूप में प्रचलित थी, परन्तु पेशवा ने इस व्यवस्था को सार्वदेशिक बना दिया । यदि हम तनिक गम्भीर रूप से लगान तथा कर निर्धारण प्रणाली एवम् उनकी वसूली की व्यवस्था का अध्ययन करें तो हमें मराठों की चारित्रिक विशेषता का पता तो चल ही जायगा साथ ही ब्राह्मणों की प्रभुता-प्राप्ति की प्रवृत्ति का भी स्पष्ट परिचय मिल जायगा । इस व्यवस्था के दो गम्भीर परिणाम हो रहे थे । एक तो मराठा सर्दारों का इच्छनुसार मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत भूभागों पर अपना अधिकार जताने की स्वतंत्रता बनी रहती थी और दूसरे कम पढ़े लिखे मराठा सर्दार (प्रायः मराठे सर्दार कम पढ़े लिखे ही होते थे) धीरे-धीरे अपेक्षाकृत अधिक पढ़े लिखे ब्राह्मणों के हाथों कठपुतली से बनते जा रहे थे । कहने की आवश्यकता नहीं कि इस व्यवस्था को प्रचलित करने में दृष्टिकोण भी यही था और इस दृष्टिकोण को छिपा रखने का कोई प्रयत्न भी नहीं किया गया था ।

दक्षिण के छः सूबों की दस प्रतिशत वसूली को सरदेशमुखी कहा करते थे, परन्तु सरदेशमुखी के स्थान पर अब राज्य के मंत्रियों ने राजा का वतन (राज-भाग) कहना प्रारम्भ कर दिया । यह नाम परिवर्वतन प्रत्येक मराठा के कानों को प्रिय लगा, चाहे वह राजा रहा हो, या सर्दार या किसान ।

उस समय की परिस्थितियाँ ऐसी थी कि देश के अधिकांश आय-श्रोत शुष्क हो चले थे और इसीलिये जिन प्रदेशों पर सरदेशमुखी कर लग जाता था, वहाँ की वसूली अन्य प्रदेशों की तुलना में अवश्य ही अत्यधिक कम हो जाती थी, यद्यपि लगान की रकम ज्यों की त्यों बनी रहती थी । देश की दशा इस प्रकार की हो गयी थी कि अनुमानित तथा निश्चित लगान का चतुर्थांश भी वसूल कर पाना असम्भव हो रहा था, फिर भी मराठे अपनी चौथ की रकम किसी न किसी प्रकार वसूल ही कर लेते थे । यदि चौथ की वसूली न भी हो सकी तो मराठे सर्दार उसे अपना बकाया कह कर बनाये रखते थे जिससे विपरीत परिस्थितियों के आ जाने पर भी मुगल साम्राज्य उनसे पेश कश की रकम की मांग नहीं कर पाता था ।

मराठों की आन्तरिक नीति के लिये भी तथा वाह्य नीति के लिये भी सरदेशमुखी के दावे को अस्पष्ट एवम् अनिश्चित रखना ही अधिक सुविधाजनक होता था । वैसे सरदेशमुखी का मुख्य अभिप्राय ही यही माना जाता था कि अधिक से अधिक जितना हो सके वसूल कर लिया जाय । इस अस्पष्टता के कारण सरदेशमुखी की दर विभिन्न प्रान्तों में यथार्थ में (सिद्धान्ततः नहीं) विभिन्न हुआ करती थी ।

चौथ की वसूली के बाद पूरे लगान का पचहत्तर प्रतिशत ही मुगल साम्राज्य के लिये बचता था । उसका तृतीयांश अर्थात् कुल लगान की चौथाई प्रशासकीय परम्परा के अनुसार फौजदार को मिला करता था । शेष लगान कभी तो शाही खजाने में जमा हो जातीं थी और कभी जागीरदारों को मिल जाया करती थी । पिछले किसी अध्याय में बताया जा चुका है कि दक्षिण में मुगलों ने जितना कुछ भी जोता, उसे सैनिकों के पोषण के लिये जागीर रूप में उठा दिया था । ऐसी दशा में शायद ऐसा अवसर आ पाता था कि मुगल खजाने में दक्षिण से कोई रकम लगान के रूप में जमा होती रही हो । पेशवा तथा निजाम के बीच लड़े गये उत्तर कालीन युद्धों में हम देखते हैं कि बार-बार जागीरें दी जाती थीं, छीन ली जाती थी, हस्तान्तरित कर दी जाती थीं और कभी-कभी पूर्णतया राज्य का अंश बन जाया करती थीं । तनिक विचार करने से ही यह स्पष्ट हो जायगा कि इन क्षणिक और

बारम्बार परिवर्तनों के मूल में लगान वसूली तथा उसके बँटवारे की प्रणाली ही थी । कालांतर में जब महाराष्ट्र प्रान्त वृटिश शासन के अन्तर्गत हो गया तब भी स्थानीय कुलकर्णी लोग लगान का पचास प्रतिशत सरकारी खजाने में जमा करते थे और शेष पचास प्रतिशत अपने लिये रख लेते थे । जब वृटिश शासकों ने इसका कारण जानना चाहा तो कुलकर्णियों ने इतना ही बताया कि उनके पिता, पितामह के समय से ही ऐसा होता आ रहा था, इससे अधिक वे और कुछ भी न बता सके ।

स्वराजी की सनद में मूलतः तुंगभद्रा के उत्तर में स्थित वही भूभाग थे जिन पर शिवाजी ने अधिकार जमा लिया था तथा जो उनके मृत्यु काल में भी उन्हीं के अधिकार में थे । बालाजी विश्वनाथ के दिल्ली से लौटने पर इस सनद की शर्तों को इस प्रकार लागू किया गया कि सरदेशमुखी को छोड़कर मराठों द्वारा लगाये गये किसी भी कर से इसका महत्व अधिक हो गया । इस प्रकार की वसूलियों में से कुल वसूली का पचीस प्रतिशत राज्य भाग के रूप में लिया जाता था । यह पचीस प्रतिशत की रकम सरदेशमुखी की रकम के अतिरिक्त होती थी और उसे राजा की बाबती कहते थे । अवशिष्ट भाग को मोकासा कहते थे ।

मोकासा की रकम में भी सहोत्रा एवम् नरगोंडा नामक दो मद ऐसे होते थे, जिनका सर्वेसर्वा राजा ही होता था । सहोत्रा कुल स्वराजी का छः प्रतिशत होता था और नरगोंडा तीन प्रतिशत । इस प्रकार मोकासा में कुल ६६ प्रतिशत रकम ही शेष रह जाती थी । इसी में सरदेशमुखी की रमक भी आकर जुड़ जाती थी । शाहू ने सहोत्रा की रकम को पंत सचिव के व्यय के लिये दे दिया था और वह उसे आनुवंशिक रूप से मिलती रहती थी । मराठा अधिकृत प्रदेशों में इस मद की वसूली का भार भी पन्त सचिव पर ही था जो अपने एजेन्टों द्वारा इस कार्य को सम्पन्न करता था । सुदूरस्थ भूभागों में इस मद की वसूली राजा के निजी कलेक्टरों द्वारा की जाती थी । नरगोंडा के मद में जो रकम मिलती थी उसे राजा स्वेच्छापूर्वक अपने कर्मचारियों में वितरित कर दिया करता था ।

प्रधानों को राजकीय कोष से वेतन मिलता था, इसके अतिरिक्त उनमें से प्रायः प्रत्येक को इनामी गांव मिले रहते थे, जिनकी सम्पूर्ण आय स्वयम् उन्हीं के उपयोग में आती थी । इसी प्रकार बालाजी विश्वनाथ को वैयक्तिक जागीर के रूप में पूना तथा उसके पड़ोसी जिले मिले हुये थे जिनमें लगूर का किला भी शामिल था । राजा की बाबती को वसूली का भार प्रतिनिधि, पेशवा एवम् पन्त सचिव पर था । इस व्यवस्था के अनुसार विभिन्न करों की वसूली के लिये निश्चित कर्मचारी होते थे ।

मोकासा के मद की रकम फौजी जागीर के रूप में विभिन्न मराठा सर्दारों को दे दी गयी थी, जिनके जिम्मे यह कार्यभार होता था कि वे सदा ही राज्य के लिये सेना एवम् रुपयों का प्रबन्ध करते रहते थे । प्राचीन मराठा जागीरदारों के अधीनस्थ भूभागों से चौथ नहीं ली जाती थी । सरदेशमुखी उन्हें भी देनी पड़ती थी और उन्हें एक निश्चित संख्या में घुड़सवार रखने पड़ते थे । मराठों में एक विचित्र परम्परा यह भी थी किसी भी प्रदेश को विजित करने के पूर्व ही वे उसे जागीर रूप में उठा दिया करते थे । शाहू राजा ने इस प्रकार की कितनी ही ऐसी जागीरें दी थीं । स्मरण रखना चाहिये कि जागीरें प्रायः राज्य के सेवक को ही मिला करती थीं । राजा यदि ऐसे किसी व्यक्ति पर प्रसन्न हो गया जो राज्य का सेवक न हो तो उसे इनामी गाँव मिला करते थे । मराठों में राजा की सत्ता केवल कर वसूली के लिये ही आवश्यक मानी जाती थी । जिस प्रकार की सत्ता प्राप्ति के लिये वे मुगल दर्बार में प्रार्थना-पत्र भेजते रहते थे, वह तो एक प्रकार का अभिनय मात्र था । मराठा राज्य के ब्राह्मण कर्मचारियों ने शीघ्र ही शाही सनद का मनमाना अर्थ निकालना प्रारम्भ कर दिया और वे उन प्रदेशों से भी कर वसूल करने

लगे, जिनकी कोई भी चर्चा शाही सनदों में नहीं थी। जिस किसी भी क्षेत्र को वे एक बार लूट लेते थे, उसे अपना कहने लगते थे। इनके अतिरिक्त भूभागों में निरन्तर लूटपाट करने के अपने अधिकार को वे लोग मान्यता प्राप्त अधिकार मानते थे।

राज्य के बड़े-बड़े कर्मचारियों में से प्रत्येक को किसी न किसी प्रदेश का भाग विशेष जागीर रूप में मिला हुआ था। जहाँ तक पता चल सका है, जागीरों की व्यवस्था निम्नलिखित ढंग से की गयी थी :—पेशवा तथा सेनापति के जिम्मे राजा के अधीनस्थ रहने वाली निजी सेना के संचालन का भार दिया गया था। उनको आदेश दिया गया था, कि वे देश की साधारण एवम् सैनिक सुरक्षा की व्यवस्था करें। इन दोनों में से पेशवा को खानदेश तथा बालाघाट के एक भाग पर सरकारी कर लगाने एवम् वसूल करने का अधिकार दिया गया था। बगलाना प्रदेश में इसी प्रकार के अधिकार सेनापति को मिले हुये थे साथ ही गुजरात प्रदेश से पारस्परिक रूप से मिलने वाले कर की वसूली भी उसी के जिम्मे थी। कान्होजी भोसले (जिसे सेना साहब सूबा की पदवी मिली हुई थी) के अधिकार में बरार पाई घाट का भूभाग था साथ ही उसे यह सुविधा भी दी गयी थी कि वह गोंडवाना के पूर्व में स्थित भूभाग को बिजित करके वहाँ से कर वसूल करे। औरंगाबाद के कुछ भूभाग भी इसी प्रदेश में पड़ते थे। फतह सिंह भोंसले को कर्नाटक दिया गया था। प्रतिनिधि को नीरा से लेकर वर्ना तक के प्रदेश दिये गये थे। हैदराबाद तथा बीदर से करों की वसूली भी उसी के जिम्मे थी। राजा के निजी एजेन्टों पर भी इसी प्रकार के कार्यों का भार था। चिटनिस को कोंकण प्रदेश के कई जिलों का अधिकार मिला हुआ था। पन्त सचिव को सहोत्रा का पूरा मद ही उपभोग के लिये मिला हुआ था। इसके अतिरिक्त उसकी अपनी पुरानी जागीर भी थी। राजा के जो एजेन्ट उसकी निज की लगान बसूल करते थे, उन्हें नायब सरदेशमुखी कहा जाता था।

कोंकण के कुछ ज़िले कान्होजी आंग्रे के पास ही थे। इसके अतिरिक्त उधर के समूचे समुद्र तट की ओर आने वाले जहाज़ों को लूट लेने की भी सुविधा उसे मिली हुई थी। कान्होजी इस लूटपाट को चौथ की वसूली की संज्ञा देता था। इन जहाज़ों को लूटने में आंग्रे इस बात का कोई विवेक नहीं रखता था कि वे जहाज़ किस राष्ट्र वा जाति के हैं। कुछ दिनों तक आंग्रे ने अंग्रेजी जहाज़ों की लूटपाट करना बन्द रक्खा था, परन्तु सन् १७१७ ई० में उसने अंग्रेज़ों का 'सक्सेज' नामक जहाज़ छीन लिया। इस घटना से अंग्रेज़ों से उसकी खुली शत्रुता हो गयी। रामाकमाठी नाम के एक ब्राह्मण को बम्बई के गवंनर मि० चार्ल्स बून ने देशी सिपाहियों के एक दस्ते का नायकत्व नियुक्त किया था। आँग्रे ने इस ब्राह्मण को गुप्त रूप से अपनी ओर फोड़ लिया। इन दोनों के सम्मिलित षड़यंत्रों से बम्बई प्रदेश को भयंकर खतरा पैदा हो गया। इसी समय के आसपास मि० फिप्स काउँसिल के अध्यक्ष नियुक्त किये गये। उन्होंने इस ख़तरे को पूर्ण गम्भीरता से ग्रहण किया तथा लड़ाई को तेजी से आगे बढ़ाया। अंग्रेजों की लुटपाट की कार्यवाहियों को रोकने के लिये पुर्तगीज़ों से भी सहायता मांगी। उन्हें यह सहायता मिली थी, परन्तु ये दोनों मिलकर भी आंग्रे की कार्यवाहियों को न रोक सके। आंग्रे शाहू राजा को कर के रूप में बन्दूकें, सैन्य-सामान तथा गोलियां दिया करता था। योरप तथा चीन के जहाज़ों के लूट से मिली सुन्दर वस्तुओं की नज़र भी वह प्रायः राजा को दिया करत था। उसे एक विचित्र कर्तव्य का पालन भी करना पड़ता था। राज्य के दंडप्राप्त अपराधियों को प्राणदंड देना भी कभी-कभी आंग्रे के ही जिम्मे कर दिया जाता था।

मराठों को आपस में मिलने-जुलने का संयोग बराबर मिलता रहे तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों

में माधुर्य का अभाव न आने पावे, इस विशेष उद्देश्य को सम्मुख रखकर इस प्रकार की व्यवस्था की गयी थी कि एक कर्मचारी के अधीनस्थ प्रदेश के एक अल्पांश की या कभी-कभी एक समुचे गांव की पूरी की पूरी लागन ही किसी दूसरे कर्मचारी को दे दी जाया करती थी। यह प्रबन्ध इसलिये भी आवश्यक हो गया था कि मराठा सर्दारों में भी तथा उनके ब्राह्मण एजेन्टों में भी यह प्रवृत्ति विद्यमान थी कि वे अपने जन्म स्थान को अवश्य अपने अधिकार में रखना चाहते थे। इस प्रकार के अधिकार की उनकी इच्छा बड़ी ही तीव्र होती थी। इसके अतिरिक्त पटेल तथा कुलकर्णी के परिवार से सम्बन्धित होना भी विशेष सम्मानपूर्ण समझा जाता था। यदि किसी भी मराठा के पास पैत्रिक अधिकार-युक्त थोडी भी भूमि हुई (ऐसी भूमि को 'मीरास' या 'वतन' कहते थे) तो वे उसे छोड़ने को कभी तैयार नहीं हो सकते थे, भले ही उनकी अन्य प्रकार की समूची दौलत ही उनसे क्यों न छूट जाय। यहां इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिये कि मराठे सरदार या एजेन्ट शायद ही कभी किसी गांव के आन्तरिक प्रबन्ध में हस्तक्षेप करते थे। गांव में रहने वालों के अधिकारों और कर्तव्यों की व्याख्या सदैव स्वयम् गांव वालों को रिवाज व परम्परा के प्रकाश में ही होती थी; राजकीय कर्मचारी को कभी किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नही पड़ती थी।

बालाजी विश्वनाथ के दिल्ली से लौटने पर लगान-निर्धारण व वसूली की जो व्यवस्था की गयी थी, उसकी संक्षिप्त जानकारी ऊपर दी गयी है। आपसी सम्बन्धों में मधुरिमा बनाये रखने के लिये जो प्रबन्ध किया गया था, उसकी भी जानकारी ऊपर की पंक्तियों में दे दी गयी है। यह प्रबन्ध काफी दिनों तक अपने उद्देश्य को सफल करता रहा। राजा के चरित्र ने बालाजी विश्वनाथ तथा बाद में उसके पुत्रों (बाजीराव तथा चिम्मनाजी अप्पा) की योग्यता के संयोग से धीरे-धीरे एक ऐसा मार्ग प्रशस्त कर दिया, जिस पर चल कर बिना किसी विशेष झंझट के मराठा-राज्य की सारी सत्ता ही धीरे-धीरे पेशवाओं के हाथ में स्वयमेव चली गयी।

चौदहवाँ अध्याय

मराठा राज्य के मुख्य शासक—पेशवा

[१७२०-१७२६]

निजामुलमुल्क की महत्वाकांक्षा—बालापुर का युद्ध—हुसेन अली खाँ की हत्या—शाहपुर का युद्ध—सैयद अब्दुल्ला बन्दीगृह में—मराठा दरबार में कुछ रद्दोबदल—मराठा सरदारों कीर मृत्यु—श्रीपतराव तथा बाजीराव—दम्मा जी गायकवाड़ की मृत्यु—बड़ौदा के शासक—निजामुलमुल्क वजीर के रूप में—हैदर कुली खां का विद्रोह—निजामुलमुल्क वकील मुतल्लिक के रूप में—बाजीराव की कार्यवाहियाँ—होल्कर तथा सिंधिया का मूल वंश—ऊदा जी पवार—बाजीराव तथा मालवा—मुबारिज खाँ—शाकरखेड़ा का युद्ध—राजा गिरधर बहादुर की नियुक्ति मालवा के गवर्नर पद पर—सरबुलन्द खाँ गुजरात का गवर्नर—रुस्तम अली—कान्ता जी तथा पिला जी और गुजरात—शाहेबाग का युद्ध—बाजीराव तथा मालवा—कर्नाटक पर आक्रमण की नोटिस।

सैयद बन्धुओं ने इस समय जितने भी कदम उठाये वे सब शांति स्थापन के विपरीत जा पड़े। वास्तविकता यह थी कि जन-साधारण के हृदय में सैयद बन्धुओं के लिये पर्याप्त सम्मान था, परन्तु वे न तो दरबार के मुख्य व्यक्तियों की सहानुभूति ही प्राप्त कर सके और न निर्बल मुगल बादशाह की शुभाकांक्षा ही। यद्यपि इस समय (१७२० ई०) मुगल बादशाह की जो भी स्थिति थी, वह सैयद बन्धुओं के ही बल पर थी, फिर भी मुगल बादशाह की हार्दिक शुभ कामनायें कभी भी उनके साथ न रहीं। निजामुलमुल्क बड़ी गम्भीरता से परख रहा था। वह एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। अपने को और भी अधिक प्रभावपूर्ण बना लेने के अवसर की ताक में वह वर्षों से था। उसने मुगल दरबार के विरोधपूर्ण वातावरण को समझा और उससे लाभ उठाने की सोचा। उसके सौभाग्य से मुहम्मद शाह के कुछ विश्वस्त कर्मचारी भी उसकी मँत्रणा में आ गये। ऐसी परिस्थिति में निजामुलमुल्क ने सैयद बन्धुओं की अधीनता से अपने को मुक्त करना चाहा। इस कार्य के लिये उसने सोचा कि दक्षिण के साधनों का उपयोग किया जाय, क्योंकि सैयदों की सत्ता से टक्कर लेने के लिये पर्याप्त शक्ति की आवश्यकता थी। अपनी योजना तैयार करने में मु० रहमत खां नामक एक प्रतिभावान परन्तु सैंयदों से असन्तुष्ट अफसर से बड़ी सहायता ली। वास्तव में सैंयदों ने उसपर अविश्वास करके अपना शत्रु बना लिया था।

निजामुलमुल्क ने आसफजाह का खिताब लिया और बारह हजार सवारों की एक सेना लेकर दक्षिण की ओर रवाना हो गया। नर्मदा को पार कर उसने आसीरगढ़ के किलेदार को एक बड़ी सी रकम देकर उस किले पर कब्जा कर लिया। आसीरगढ़ से तालिब खां की देखा-देखी बुरहान पुर के शासक अनवर खां ने भी सारी सत्ता छोड़ दी। थोड़े ही दिनों के बाद पूरा

खानदेश उसकी अधीनता मानने लगा। अब निजामुलमुल्क एक महत्वपूर्ण व्यक्ति माना जाने लगा और राजा शाहू से असन्तुष्ट मराठे सरदार चन्द्रसेन जाघव, हैबत राव (कालान्तर में लश्कर) का पुत्र अम्बालकर तथा अन्य कितने ही लोग उसके झन्डे के नीचे आ गये ।

जिस समय का वर्णन ऊपर की पंक्तियों में किया गया है। उस समय सैयद बन्धुओं के समर्थन में दो सेनायें एक दूसरे के आस पास समीप ही पड़ी थीं। दिलावर अली खां अपनी सेना लेकर मालवा की सरहद पर पड़ा हुआ था। डिप्टी वाइसराय आलम अली खाँ (सैयदों का भतीजा) एक दूसरी सेना के साथ औरंगाबाद में पड़ा था। फर्रुखसियर को अपदस्थ करने के क्रम में जब हुसेन अली खां दिल्ली की ओर प्रस्थान करने लगा तो उसने आलम अली खां को ही प्रशासन का भार सौंपा था। चूँकि वर्षाकाल था अतः आसफजाह ने सोचा कि दिलावर खाँ की प्रगति को तो नर्मदा एवम ताप्ती अवश्य ही रोक लेगी और आलम अली विना हिन्दुस्तान से सैनिक सहायता पाये आगे बढ़ेगा नहीं, अतः इसी बीच वह दक्षिण में अपनी सत्ता स्थापित कर लेगा। दिलावर खां ने सम्भावना के विरुद्ध आचरण किया और नदियों के गम्य होने के पहले ही उन्हे पार कर लिया, परन्तु या तो उसने अपने बल का ठीक अनुमान न कर सका और इसीलिये उसने औरंगाबाद में पड़े सैन्य से मिलना व्यर्थ समझा, या उसमें शत्रु पर आक्रमण करने को इतनी अधिक उत्तेजना आ गई थी कि उसने आलम अली की सहायता प्राप्त करने के लिए समय को खोना मुनासिब नहीं समझा। वह सीधा बुरहान पुर की ओर झपटा। आसफजाह ने भी सामना करने की तैयारी की। वह दिलावर अली खां की तेजी से परिचित था, अतः उसने कौशल से काम लिया। यह कौशल दक्षिण के प्रायः सभी युद्धों में चल रहा है। उसने दिलावर अली को उत्तेजित करने के लिए सैनिकों का एक छोटा सा दस्ता उसके सामने भेजा दिलावर अली उसी दस्ते पर झपट पड़ा। वह दस्ता पराजय एवम पलायन का अभिनय करता हुआ निरंतर पीछे हटने लगा। अपनी जीत की उत्तेजना गें दिलावर अली अपने को संयत न रह सका और वह पीछे हटती हुई शत्रु सेना को निरंतर दबाते हुये शत्रु की ओर बढता गया। अन्त में दिलावर अली उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ निजामुलमुल्क का समूचा दस्ता ही छिपा हुआ था। इसी स्थान पर जो भयानक मारकाट हुई उसके परिणाम स्वरूप अपनी पराजय का परिणाम तक देख पाने को दिलावर अली जीवित न रह सका। युद्धस्थल पर ही मारा गया।

उधर आलम अली खां अपनी समूची सेना भी एकत्रित न कर सका था कि इस विपत्ति की सूचना उसे मिली। इस समय शंकर जी मुलहर शाहू के प्रतिनिधि के रूप में अली के साथ ही रह रहा था। इस पराजय की सूचना पाते ही सेना साहब सूवा कान्होंजी भोंसले के नायकत्व में शाहू राजा की सेना तथा हैबतराव निम्बालकर ससैन्य शंकरजी से आ मिले। खंडेराव दाभाड़े अभी दिल्ली से लौटा ही था कि एक घुड़सवार सेना का नायक बनाकर उसे सतारा के इस ओर रवाना किया गया। इस संयुक्त सैन्य के आगे आगे आलम अली खां बुरहान पुर की ओर वढ़ा। दूसरी ओर आने वाली सम्भावनाओं का सफल प्रतिरोध की तैयारी में आसफजाह दिन रात की नींद हराम किये हुये था। इस भावी युद्ध में दोनों ओर की सेनाओं में मराठे तथा मुगल दोनों थे। एक ओर तो आसफजाह सैनिक सज्जा में लगा था और दूसरी ओर वह शत्रु सेना में फूट डाल देने के प्रयत्न में लगा हुआ था। उसका प्रयत्न सफल होने की सम्भावनायें भी दीख रही थी। अपनी सेना के आगे आगे आसफजाह पूर्णा नदी की बाढ़ के सम्मुख गतिहीन हो उठा। थोड़े ही दिनों के अनन्तर उसके सहायकों ने एक ऐसा स्थान ढूंढ निकाला,

जहां से उस नदी की बाढ़ के समय भी पार किया जा सकता था। पूर्णा को पार कर उसने डरा डाल दिया। दोनों ओर के मराठा सैनिक प्रायः नित्य ही छोटा मोटा युद्ध कर लेते थे। दोनों ही सेनाएं आमने सामने आ गईं। युद्ध शुरू करने के पूर्व आसफजाह ने अपने मराठा सैनिकों को समीपस्थ एक गांव ने छिपा दिया। इस युद्ध में भी उसने पहले वाली रणनीति से ही काम लिया सभी प्रबन्ध पूर्ण करके उसने स्वयं शाही सेना पर भयानक हमला किया। बरारपाईं घाट में बालापुर नामक स्थान पर यह युद्ध लड़ा गया। पिछली लड़ाई की सी घटनायें इस युद्ध में ही घटित हुई। समूची शाही सेना शत्रु जाल में पड़कर तहस नहस हो गई। आलम अली की लाश शतशः मराठा अंगरक्षकों के बीच में पड़ी पाई गई। ऐसा प्रतीत होता था जैसे निर्णायक युद्ध के समय आलम अली पूरी तरह शत्रुओं से घिर गया था और उसके मराठा सैनिकों ने अपनी शक्ति भर उसे बचाया था, उनके मर खप जाने पर ही आलम अली के शरीर को छुआ जा सका था। मराठों में शंकर जी घायल होकर बन्दी हुआ। इसके अतिरिक्त किसी भी ख्याति प्राप्त मराठे की जान को कोई क्षति नहीं पहुंची।

इस द्वितीय बिजय को सैयद बन्धुओं ने अत्यन्त दुःख तथा बादशाह ने आन्तरिक प्रसन्नता के साथ ग्रहण किया। मुगल बादशाह को प्रसन्नता तो अवश्य हुई, पर उसमें इतना साहस नही था कि सैयद बन्धुओं के समक्ष उसको प्रगट कर सके। निजामुलमुल्क को इस द्वितीय बिजय का समाचार दिल्ली में जुलाई मास में पहुंचा। सैयद बन्धुओ ने इसके प्रतिकारके लिये एकाधिक योजनायें प्रस्तावित की, परन्तु अन्त में यह निश्चय किया गया कि बजाय इसके कि दक्षिण को आसफजाह के हाथ में रहने दिया जाय, यह अच्छा होगा कि सैयद हुसेन अली खां (सैयदों में छोटा भाई) बादशाह को भी साथ ले ले और एक पूर्ण सुसज्जित सेना का नायक बनकर निजामुलमुल्क के दमन के लिये स्वयं दक्षिण जाय। ऐसा ही हुआ भी।

उपरोक्त योजना के अनुसार हुसेन अली खाँ ने एक बड़ी सेना तैयार किया और बादशाह को साथ लेकर दक्षिण की ओर रवाना हुआ। उसकी सेना में कुछ तूरानी सरदार भी थे, जो निजामुलमुल्क को अपने फिरके के होने की वजह से अधिक चाहते थे। वे यह भी चाहते थे कि किसी तरह निजामुलमुल्क को इस सेना का सामना न करना पड़े। एक ओर तो आसफजाह की सफलता से वे लोग वैसे ही उत्साहित हो रहे थे, उधर उन लोगों ने यह भी देखा कि स्वयम् मुगल बादशाह निजामुलमुल्क से नाराज नहीं हैं। बादशाह की इस उदासीनता से उत्साहित होकर तीन सरदारों ने हुसेन अली खाँ की हत्या करने का एक षडयन्त्र किया। संयोग से उन्हीं में से एक के जिम्मे इस हत्या की जिम्मेदारी भी आ पड़ी, जिसने अपनी जान गँवाकर भी षडयन्त्र को पूरा कर दिया। हुसेन अली खाँ की हत्या के तुरन्त बाद ही अवशिष्ट दोनों षडयन्त्रकारी मुहम्मद अमीन खाँ तथा शहादत खाँ ने हैदर कुली खाँ की सहायता ली और बादशाह को ही उस सेना का सेनापति बनाया। षडयन्त्रकारियों ने घोषणा की कि वे बादशाह को सैयद बन्धुओं के हाथ से स्वतन्त्र करना चाहते हैं। थोड़े बहुत रक्तपात के बाद समूचे सैन्य दल पर षडयन्त्रकारियों का प्रभाव जम गया और समूचे फौजी कैम्प पर बादशाह का प्रभुत्व स्थापित हो गया। हुसेन अली के पक्के साथियों में से कुछ मारे गए तथा जो बचे उन्होंने शाह की अधीनता में काम करना स्वीकार कर लिया। इस स्वामित्व परिवर्तन से किसी को आश्चर्य न करना चाहिये, क्योंकि वे भारतीय सिपाही अपने सेनापति के मारे जाते ही झट से दूसरे सेनापति की नौकरी स्वीकार कर लेते हैं और अपने नये सेनापति की आज्ञा का पालन पूर्ण तत्परता से करने लगते हैं। वे

जिसका नमक खाते हैं, उसी की सेवा ईमानदारी से करने लगते हैं। नये सेनापति को यह विश्वास तक करना कठिन हो जाता है कि अभी कल ही ये लोग शत्रु सेना के सैनिक थे। इन सेनिकों की तो बात ही और थी। वे काम करते थे यद्यपि हुसेन अली के सेनापतित्व में, परन्तु उनकी भर्ती तो मुगल बादशाह के सैनिकों के ही रूप में की गई थी, अतः उन्हें इस प्रकार के परिवर्तन में कोई बड़ी नैतिक बाधा भी नहीं थी। सैयद बन्धुओं के मुख्य मुख्य विश्वस्त कर्मचारियों पर प्रभाव जमा लेने के पश्चात षडयन्त्रकारियों और अवशिष्ट सेनिकों को प्रभाव में लाने मे कोई कठिनाई नहीं उठानी पड़ी। शाही कैम्प उखाड़ दिया गया और बादशाह राजधानी की ओर लौटा। इस प्रकार के उलटफेर का समाचार जब दिल्ली में बड़े सैयद अब्दुल्ला खाँ को मिला तो उसने शाही खजाने के बल पर (क्योंकि वह तो वहाँ का सर्वेसर्वा था ही) एक बड़ी सी सेना खड़ी की, गद्दी पर एक नये बादशाह को बैठाकर मोहम्मद शाह का प्रतिद्वन्दी खड़ा किया और पुराने शाह को बागी करार देकर उससे लड़ने को तैयार हो गया। अपने भाई के हत्यारों को दंड देने के लिए वह इतना उतावला था कि वह आगे बढ़कर शाहपुर तक जा पहुँचा। इसी स्थान पर दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। गहरी एवम् लम्बी खून खराबी के पश्चात् युद्ध का परिणाम अब्दुल्ला पर जा पड़ा। वह युद्ध में घायल होकर बन्दी बना लिया गया।

उपरोक्त पंक्तियों में वर्णित परिवर्तनों के फलस्वरूप अपने जीवन में पहली बार मोहम्मद शाह ने अपनी स्वतन्त्रता की सांस ली। कृतज्ञता का भार कम करने के लिये उसने मोहम्मद अमीन खाँ की सेवाओं का भरपूर बदला लिया। वह एकदम से सल्तनत का वजीर बना दिया गया। खान दौरान को अमीरुल उमरा का खिताब दिया गया। अमीन खां का पुत्र कमरुद्दीन खाँ भी दरबार में विशेष रूप से सम्मानित किया गया। हैदर कुली खाँ तथा सआदत खां की भी तरक्की की गई। शाहपुर के युद्ध में जिसने भी तनिक ख्याति पाई, उसे ही बादशाह ने कृतकृत्य कर दिया। पूरी शान शौकत के साथ बादशाह ने राजधानी में प्रवेश किया। थोड़े दिनों तक तो राजधानी रागरँग में डूबी रही। चारों ओर से बधाई तथा राजभक्ति के पत्र आते रहे। आसफजाह निजामुलमुल्क ने बधाई का पत्र भेजा, शाहु राजा भी क्यों पीछे रहते, यूरोपियन फेक्ट्रीज के अध्यक्षों ने भो स्वामिभक्ति का विश्वास दिलाया। सभी ने बादशाह के चिरदिनों तक वैभवपूर्ण जीवन के लिये शुभकामनायें प्रगट किया।

उपरोक्त अवसर पर प्रगट की गई शुभाकांक्षायें बेकार नहीं गई। वास्तव में मुहम्मद शाह का शासन काफी स्थाई रहा। यह सत्य है कि साम्राज्य के स्वाभाविक क्षय की क्रिया भीतर ही भीतर चालू रही। फिर भी इस अवधि में साम्राज्य को तेजी से नष्टभ्रष्ट कर देने वाली कोई घटना नहीं हुई। मुगल राजधानी चिरकाल से अनेक प्रकार के मनोरंजनों के लिये प्रख्यात थी, फिर इस समय का क्या कहना। यद्यपि सभी जानते थे कि मुगल साम्राज्य मृतप्राय हो रहा है, दिल्ली शीघ्र ही श्री विहीन होने वाली है, फिर भौ वहां के निवासी रागरंग में मस्त थे। जितने भी सँदेश व पत्र आये थे, सबके समुचित उत्तर दिये गये। भेंट की सामग्रियों की तो मानों नवयुवक शाहंशाह पर वर्षा ही हो गई थी। बादशाह इन भेंट देने वालों को भी कैसे भूलता। निजामलमुल्क ने किया तो था बगावत ही, परन्तु चूँकि उसी के परिणाम स्वरूप बादशाह को मुक्ति मिली थी, अतः बादशाह ने उसका उपकार माना और प्रतिदिन स्वरूप उसको भारी सम्मान से सम्मानित किया। थोड़े ही दिनों बाद वजीर मुहम्मद अमीन खां की मृत्यु होने पर उसे समूचे मुगल साम्राज्य का वजीर बना दिया गया। मालवा के शासन का सर्वेसर्वा तो वह पहले से ही था, उसके शाही प्रतिनिधित्व के अधिकार को भी शाही मान्यता दे दी गई। इन सब

बातों के होते हुये भी दक्षिण तथा कर्नाटक के मामलों ने उसे इस प्रकार बांध लिया कि वह जनवरी सन् १७२२ के पहले मुगल दरबार में हाजिर ही न हो सका।

इस समय जो नियुक्तियाँ की गई, उनमें से गुजरात प्रदेश में हैदरकुली खां की नियुक्ति की चर्चा आवश्यक जान पड़ती है। हैदर कुली खां ने इस प्रान्त के शासक का आरम्भ अपने एक नायब के हाथों किया। सआदत खाँ को पहले आगरा में तथा बाद में अवध में नियुक्त किया गया। थोड़े दिनों तक तो आगरा का भी शासन शआदत खाँ के हाथों में रहा और अवध का भी। उसने आगरा में एक नायब मुकर्रर कर दिया और स्वयं राजधानी में रहने लगा। शआदत खाँ ने अपने ही शुभाकांक्षी एवं संरक्षक सैयदों के विरुद्ध जिस प्रकार षडयन्त्र का सृजन किया था, उसकी चर्चा पिछले पृष्ठों में की जा चुकी है, आगे चलकर भी उसके हाथों अनेक घटनाओं को जन्म मिला परन्तु उसकी ख्याति न तो अपने षडयन्त्र के कारण है और न तत्कालीन घटनाओं के कारण। वृटिश कालीन इतिहास के छात्र उसे प्रायः लखनऊ की नवाबी के आर्यपुरुष के ही रूप में अधिक जानते हैं।

इस नवीन शासन से चौकन्ना होने की आवश्कता की प्रतीति दिलाया सर्वप्रथम जोधपुर के राजपूत राजा अजीत सिंह ने, जिसने कुछ दिन पूर्व ही सैयद बन्धुओं के इशारे पर अजमेर को ले लिया था। अजीत सिंह वास्तव में सैयदों का पक्षपाती था अतः हैदर कुली खां तथा सआदत खां की राय हुई कि अजीत सिंह का दमन किया जाय और उसे शाहंशाह का आज्ञानुवर्ती बनाया जाय। इधर निज़ामुलमुल्क की अनुपस्थिति में खान दौरान ही तंजोर का कार्य कर रहा था। वह न तो अपने अधीन सैन्य का सेनापतित्व छोड़ना चाहता था और न युवक शाहंशाह को छोडकर कहीं दूर जाना ही। इनमें से एक भी बात को मान लेने पर उसके स्वयम् के अपदस्थ या कम से कम प्रभावहीन हो जाने का भय था। राजधानी में नित्य नये होते रहने वाले रागरंग को छोड़ कर कहीं दूर जाने की उसको इच्छा भी नहीं हो रही थी। उसने विवश होकर मुहम्मद अमीन के लड़के कमरुद्दीन ख़ां को अपकी सेना की कमान सौंपा। कमरुद्दीन ने इस सिलसिले में कुछ खास रियायतें चाहीं, जिन्हे स्वीकर करने को खान दौरान प्रस्तुत न हो सका। परिणामस्वरूप जोधपुर पर हमला करने का विचार ही बादशाह ने छोड़ दिया और अजीतसिंह से राजभक्ति की प्रतिज्ञा तथा क्षमा की प्रार्थना पाकर उससे सुलह करली गयी और उसे क्षमा कर दिया गया। विचित्रता यह थी कि न तो अजीत सिंह दर्बार में हाजिर ही हुआ था और न तो उसने कोई पत्र ही भेजा था। उसकी ओर से खान दौरान ने ही सारी कार्यवाही का निर्वाह किया। इतना ही नहीं, आगरे में सआदतखां के नायब की हत्या हो जाने पर, अजीत सिंह को ही वहां का शासक बना दिया गया। इस प्रकार बादशाह के एक दुश्मन को काबू में कर लिया गया।

उधर मराठा दर्बार में भी तेजी से घटनायें घटित हो रही थीं। तीन प्रसिद्ध मराठा मंत्रियों की मृत्यु हो गयी थी तथा परिणाम स्वरूप और भी अनेक परिवर्तनों की सम्भावनायें स्पष्टतर होती जा रही थीं। इन तीनो मंत्रियों के नाम थे:-परशुराम त्र्यम्बक, बाला जी विश्वनाथ तथा खण्डेराव दाभाड़े। परशुराम त्र्यम्बक प्रतिनिधि थे। उनका द्वितीय पुत्र श्रीपतराव बाला जी विश्वनाथ के दिल्ली से लौटने के पूर्व ही अपने पिता का सफल उत्तराधिकारी बन चुका था। दिल्ली जाने और वहां से वापस आने में बाला जी विश्वनाथ को जिन थकावटों को सहन करना पड़ा तथा लौटने के बाद शासन व्यवस्था को संगठित करने में जो दिनरात अनवरत श्रम कहना पड़ा, उन सबों ने मिल कर उसके स्वास्थ्य का दिवाला निकाल दिया। अत्यन्त निर्बल हो जाने पर उसने शाहू राजा से प्रर्थना की कि उसे कुछ दिनों का अवकाश लेकर ससूर में अपने परिवार के साथ

जाकर रहने की आज्ञा दी जाय। उसे स्वीकृति मिली, और अपने परिवार में रहने भी लगा परन्तु वहाँ भी वह अधिक दिनों तक जीवित न रह सका। उसका शरीर एकदम निर्बल पड़ गया था। अक्टूबर के महीने में उसका स्वर्गवास हो गया। उसके दो पुत्र थे—बाजीराव तथा चिमणा जी। दो लड़कियाँ भी थीं। पहली का नाम भिऊ बाई जो बारामुती के ख्याति प्राप्त बैंकर बाबू जी नायक के भाई आपा जी नायक को ब्याही थीं; तथा दूसरी का नाम अन्नू बाई जो नारायण राव घोरपड़े को ब्याही थीं। आगे चल कर हम देखेंगे कि इन विवाहों का आगे के मराठा इतिहास पर कितना अधिक प्रभाव पड़ा। अपने पिता की मृत्यु के सात माह बाद तक भी बाजीराव अपने पिता के पद को प्राप्त न कर सका था, यद्यपि इस आसाधारण विलम्ब के किसी कारण का पता नहीं चलता। हो सकता है कि मराठा दर्बार के प्रमुख सरदारों की अनुपस्थिति के कारण ही ऐसा हुआ हो या यह भी हो सकता है कि बालापुर के युद्ध के बाद बाजीराव (यदि वह सेना में रहा हो) को राजधानी पहुँचने में ही इतनी देरी लग गयी हो।

बालापुर के युद्ध में खण्डेराव दाभाड़े के रास्ते ने बड़ी वीरता दिखाई थी। उसके सेनापतित्व में दम्मा जी गायकवाड़ नाम का एक नायक था। उसके कई लड़के भी उसी सेना में थे। खण्डेराव पहले से भी दम्मा जी को बहुत मानता था, परन्तु बालापुर के युद्ध में गायकवाड़ परिवार ने जिस अद्भुत शौर्य का प्रदर्शन किया, उससे अत्यधिक प्रभावित होकर खण्डेराव ने शाहू राजा से उनकी इतनी अधिक प्रशंसा की कि राजा ने उसे (दम्मा जी को) शमशेर बहादुर की उपाधि से विभूषित करके खण्डेराव के ही अधीन सेनापति बना दिया और इस प्रकार बड़ौदा के शासक परिवार का जन्म हुआ। बालापुर के युद्ध से लौटने के थोड़े ही दिनों बाद खण्डेराव भी स्वर्गवासी हुआ और दम्माजी भी। खण्डेराव दाभाड़े का पुत्र था त्रयम्ककराव दाभाड़े। सन् १७२ की मई में उसे सेनापति की पोशाक दी गयी। इसी माह में बाजीराव को भी पेशवा की पोशाक देकर
पेशवा पद पर विभूषित किया गया। दम्माजी गायकवाड़ का उत्तराधिकारी हुआ
१७२१ ई०] उसका कर्मिष्ठ भतीजा, जिसका नाम था पिला जी गायकवाड़ जो जनको जी
गायकवाड़ का पुत्र था। बालाजी विश्वनाथ का द्वितीय पुत्र चिमणाजी को उसके भाई के ही आधीन सेनापति बना दिया गया। सूपा का जिला चिमणा जी को जागीर में दिया गया। आवाजी पन्त पुरन्धरी बालाजी विश्वनाथ के मुतल्लिक थे और जिन दिनों बालाजी विश्वनाथ दिल्ली गये थे, उन दिनों पेशवा का कार्यभार पुरन्धरी के ही ऊपर था। पेशवा की मृत्यु एवं नवीन पेशवा के पदस्थ होने के बीच की अवधि में भी पेशवा द्वारा किये जाने वाली सभी सामान्य कार्यों के कर्ताधर्ता आबाजी ही थे। राजा शाहू ने नियमों के अनुसार आवाजी पन्त पुरन्धरी को पुनः उसी पद पर अभिषिक्त कर दिया। इसके पूर्व पेशवा मुहर तो आबाजी के हाथ में रहती थी परन्तु महत्वपूर्ण कार्यों का भार आ पड़ा था खुंदू बल्लाल चिटनीस तथा श्रीपत राव प्रतिनिधि के हाथों में। चिटनीस के जिम्मे आंग्रे तथा सीदी सम्बन्धी कार्य तथा कर्नाटक सम्बन्धी कार्यवाहियां थी और श्रीपत राव–आनन्दराव सामन्त प्रधान की सहायता से निजामुल्मुल्क सम्बन्धी कार्यों को देखते थे।

बालापुर के युद्ध के बाद कुछ वर्षों में निजामुल्मुल्क का कार्य व्यापार चौंका देने वाला है। आनन्दराव का पुत्र मेहता जी शाहू राजा का वकील था। जिन दिनों हुसेन अली के आक्रमण की सम्भावना थी उन दिनों निजामुल्मुल्क न केवल कोलापुर के सम्भाजी के ही साथ वरन् स्वयम्

शाहू राजा के साथ भी पूर्ण मित्रता का व्यवहार करता रहा था। शाहू को उसने यह आश्वासन दिया कि मुगल बादशाह ने जो भी सनद शाहू को दिया है, उन पर वह स्वयं कभी उँगली नहीं उठावेगा, परन्तु ज्योंही उसे पता चला कि मुगल राजधानी में सैयदों का अन्त होकर उसके मित्र-मंडली की सत्ता स्थापित हो चुकी है, त्योंही उसके रंग ढंग बदल गये। उसी समय के आसपास हुई बाला जी विश्वनाथ की मृत्यु को भी उसने एक सुअवसर ही माना। अब धीरे धीरे वह राजा शाहू द्वारा नियुक्त अधिकारियों के मार्ग में न केवल रोड़े ही डालने लगा, वरन् प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप भी करने लगा, परन्तु बाला जी विश्वनाथ के सुप्रबन्ध ने शाहू राजा को अत्यन्त सुबिधा जनक स्थिति में ला दिया था। उसके अतिरिक्त मराठों को शाही सनद का समर्थन भी प्राप्त था। मराठों का वकील औरंगाबाद में ही था। सम्भव था कि उस वकील के तर्कों का निजामुलमुल्क पर कुछ भी प्रभाव न पड़ता, परन्तु इसी समय मराठों ने गुंथुरी नामक स्थान पर अपनी सैनिक हलचल बढ़ा दिया और एक विशाल वाहिनी वहाँ पर एकत्रित हो गयी। सर लश्कर इस सेना का सेनापति था। मुगल सैन्य को दो दो बार हरा देने वाले निजामुल्मुल्क में भी इतना साहस न था कि वह उन मराठों से शत्रुता मोल लेता। इस बिशाल सेना के भय ने उसे संत्रस्त कर दिया कि उसने न केवल मराठा अधिकारियों के साथ छेड़छाड़ ही बन्द कर दिया वरन् बाकायदा इस कार्य के लिये आदेश भी प्रचारित कर दिया। उसी समय मराठा वकील को दिल्ली में मुहम्मद शाह से एक ताजा फरमान प्राप्त हुआ, इसलिये निजामुलमुल्क का साहस इतना घट गया कि किसी भी प्रकार की गड़बड़ी करने की स्थिति में नही रह गया। फरमान में दी गयी आज्ञाओं एवम् स्वीकृतियों को उसने बिशेष तत्परता से माना।

मराठों से छेड़छाड़ प्रारम्भ करते समय निजामुलमुल्क को इस बात का पता नहीं चला था कि अपने जीवन काल में ही बाला जी विश्वनाथ अपने शासन प्रबन्ध को पूर्ण सुदृढ़ता प्रदान कर चुका था। निजाम की यह इच्छा तो थी कि किसी प्रकार मराठा सर्दार आपस में ही लड़ने लगे, परन्तु वह कदापि मराठों से स्वयम् उलझना नहीं चाहता था। मुगल दर्वार में पहुँच पाने की शीघ्रता का उसे निरन्तर ध्यान बना रहता था। मुगल दर्वार से यहाँ की शक्ति का अन्त होने से उसे स्वतंत्रता अवश्य मिल गयी थी, परन्तु मु० अमीन खाँ की मृत्यु के परिणामस्वरूप मिली हुई वजारत भी सोने की हँसिया बनी हुई थी। इस वजारत को वह हाथ से नहीं जाने देना चाहता था।

सम्राट मुहम्मद शाह द्वारा मराठों को दिये गये फरमान के प्रति निजामुलमुल्क द्वारा दिखाये गये आदर ने युवक बादशाह को अत्यधिक प्रभावित किया और वह उसके प्रति और भी कृतज्ञ हो उठा यद्यपि इस फरमान ने दक्षिण से प्राप्त होने वाली आय में आधे की कमी कर दी थी फिर भी निजामुल्मुल्क की इस तत्परता से उसे दुहरा लाभ हुआ। मुगल बादशाह तो प्रसन्न था ही, शाहू राजा भी अत्यन्त प्रसन्न हो उठा। प्रतिनिधि को खुशामद से तथा सामन्त को कुछ रिश्वत देकर प्रसन्न कर लिया गया।

वास्तविकता यह थी कि निजामुल्मुल्क को इस बात की शीघ्रता पड़ी हुई थी कि जल्दी से जल्दी दक्षिण के कामों से आश्वस्त होकर वह दिल्ली पहुँचकर वजारत ग्रहण कर ले, परन्तु दक्षिण में प्राप्त सत्ता को भी छोड़ने की उसकी इच्छा नहीं हो रही थी। इसीलिये उसने मराठों को प्रसन्न करने में कोई कसर बाकी न रक्खा। मराठों को इसलिये भी वह मिलाये रखना चाहता था कि यदि कभी दैवात मुगल दरबार की नजर उस पर फिरी तो मराठों की सहायता

उसके लिए बहुमूल्य सिद्ध होगी। कहने की आवश्यकता नहीं कि उस समय निजाम ने जिस ढंग से काम किया उसके कारण उसका दुतरफा प्रभाव सुरक्षित ही न रहा वरन् दिनों दिन बढ़ता भी गया।

निजामुल्मुल्क की पहली आवश्यकता यह थी कि वह युवक मुगल बादशाह एवम् उसके शासन की गतिविधि से परिचित होकर यह भाँप ले कि बादशाह की प्रसन्नता या नाराजी से उसका कितना कुछ बन या बिगड़ सकता है। बादशाह की आज मित्रता और आने वाली कल की शत्रुता के परिणाम को वह पहले से ही भांप लेने के फिराक़ में था। दक्षिण के कार्यों को निपटाकर अभी वह दिल्ली की ओर रवाना ही हुआ था कि बीजापुर कर्नाटक में उत्पन्न कुछ गड़बड़ियों ने उसे लौटने को बाध्य कर दिया। वहां की गड़बड़ियों को समाप्त कर उसने एक नये सूबेदार को नियुक्त किया और फिर दिल्ली की ओर रवाना हुआ, जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि सन् १७२२ के जनवरी मास में वह दिल्ली पहुँचा।

सन् १७२२ ई०]

वजीर का पद ग्रहण करते ही निजाम ने चाहा कि वह मुगल दर्बार में कुछ आवश्यक सुधार करें, परन्तु एक तो बादशाह में युवकोचित रागरंग का अनुराग पर्याप्त मात्रा में था; और दूसरे निरंतर मनोरंजन करते रहने वालों की संगति में रहते रहने के कारण बादशाह की चारित्रिक दृढ़ता में भी अत्यधिक कमी आ गयी थी और फल स्वरुप उसके व्यवहार में भी नित नये परिवर्तन परिलक्षित होते रहते थे। निजाम की सुधार की इच्छा का स्वागत न तो बादशाह ने ही किया और न दर्बारियों ने ही। दर्बार में नीच पुरुषों की कमी तो थी नहीं। वे सभी इस बात के प्रयत्न में लग गये कि वे अपने को निजामुल्मुल्क के प्रभाव से अछूता रक्खें। अभी निजामुल्मुल्क दिल्ली पहुँचा भी न था कि हैदर कुली खाँ अहमदाबाद के शासन की देख-रेख के लिए रवाना हो गया। वास्तव में हैदरकुली खां ने दर्बार में कुछ त्रुटियां कर दी थीं। दरबारियों ने उसे समझा दिया कि यदि वह शीघ्र दर्बार न छोड़ देगा तो नये वजीर से उसकी शिकायत करके उसे दंड दिलाया जायगा। इस भय से अभिभूत होकर हैदर कुली खां ने दो बार दर्बार के प्रति असम्मान एवम् घृष्टता भी प्रदर्शित कर दिया था। जोधपुर के अजीतसिंह वाले मामले को जिस ढंग से रफा-दफा कर दिया था, वह भी निजाम को पसन्द नहीं आया था। इसीलिए जब उसे गुजरात की सूबेदारी देकर हैदर कुली को आज्ञानुवर्ती बनाने का आदेश मिला तो उसने इसको प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। दर्बारियों का सोचना था कि या तो निजाम इस कार्य में उलझ कर चिर दिनों तक दर्बार से दूर रहेगा या लड़ाई में ही कहीं मारा जाकर सदा के लिए अलग हो जायगा।

हैदर कुली खां की अध्यक्षता में एक पूर्ण सुसज्जित और काफी बड़ी सेना थी वह स्वयम् भी सैनिक कार्यों के लिये प्रख्यात था। उसे निजामुल्मुल्क से भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं थी, परन्तु निजामुल्मुल्क ने अपने विश्वस्त अनुचर भेजकर हैदर कुली खां के सैनिकों को इस प्रकार भड़का दिया कि जिन सैनिकों पर हैदर कुली खाँ को नाज था, उनमें से अनेक उसे छोड़ कर चले गये। जब हैदर कुली को इस बात का पता चला तो वह इतना संत्रस्त हो उठा कि उसने पागल होने का बहाना किया और अपने शत्रु के बिना कोई हानि पहुँचाये और उसके हाथों में अपना सब कुछ छोड़कर स्वयम् राजधानी की ओर भागा। इस पलायन के समाचार से निजाम को महान प्रसन्नता हुई और जहाँ उसे यह समाचार मिला, वह वहीं (उज्जैन में ही)

रुक गया। गुजरात के प्रायः सभी प्रमुख कर्मचारियों ने उसका सम्मान करने के लिये उससे भेंट की। निजाम को जो कुछ भी प्रबन्ध करना था, उसने सब कुछ यहीं बैठ कर किया। उसे अहमदाबाद जाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। वहीं से बैठे-बैठे उसने अपनी सत्ता व अपने साधनों का विस्तार किया। यहीं से उसने समूचे देश के समाचारों को संग्रहीत किया। इस सूबे के पाँच सर्वाधिक उपजाऊ जिलों को उसने स्वयम् अपनी जागीर में ले लिया। इनके नाम थे—ढोलका, भड़ौच, जम्बूसीर, मकबूलाबाद तथा बुलसर। शाही जिलों में कितने ही अधिकारी नियुक्त किया, कितनों को ही स्थायित्व प्रदान किया। दक्षिण की उत्तरकालीन विजय के बाद औरंगजेब ने जिन जागीरदारों की नियुक्ति की थी और जिन एजेन्टों को काम पर लगाया था, वे लोग अपनी सुनिर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत ही रह कर पुलिस तथा लगान की देख-भाल करने के लिए स्थायी कर दिये गये।

अपने चाचा हामिद खाँ को अपना सहायक बना कर निजामुलमुल्क ने अहमदाबाद भेज दिया और अपने भतीजे अजीमुल्ला खाँ को मालवा का सहायक सूबेदार बनाकर भेजा। इन सब प्रबन्धों को पूर्ण करके वह स्वयम् दर्बार को लौट आया। उसकी अनुपस्थिति में दर्बारियों ने बादशाह को उसके विरुद्ध इतना भर दिया था कि वह निजाम के प्रति अपने विरोधी भाव को कठिनाई से ही दबा सका। निजाम भी बादशाह का समर्थक न हो सका था। उसे भी अपनी विरोधी भावना को गुप्त रखने के लिए पर्याप्त प्रयत्न करना पड़ा। इस प्रकार की कटुताओं का अन्त करने के लिये ही निजाम ने अपनी वजारत से इस्तीफा दे दिया और साम्राज्य के वकील-मुतलक (शाहंशाह का सर्वप्रधान सहायक) बनना स्वीकार कर लिया। इसके थोड़े ही दिनों के पश्चात् अक्टूबर सन् १७२३ ई० में शिकार खेलने के बहाने उसने दर्बार से छुट्टी ली तथा गुप्त रूप से अपने स्वनिर्मित राज्य दक्षिण की ओर रवाना हो गया। इसके बाद से यद्यपि वह बादशाह के प्रति सदैव ही वफादारी प्रगट करता रहा, यहाँ तक की स्वयम् शाही सेनाओं से युद्ध करते समय भी वह अपने को शाह का वफादार सेवक ही कहता रहा, फिर भी वह पूर्णरूपेण स्वतन्त्र हो गया। इस प्रकार नर्मदा के दक्षिण में स्थित जिन भूभागों को जीतने में मुगल शाहंशाहों को एक शताब्दी का समय देना पड़ा था तथा अपार धन जन की हानि उठानी पड़ी थी, वे ही दिल्ली के तख्त से सदा के लिए अलग हो गये। *

सन् १७२३ ई०]

जिस समय हिन्दुस्तान (उत्तरी भारत) में इस प्रकार की घटनायें हो रही थी, पेशवा पद पर अपनी नियुक्ति के तुरन्त बाद ही बाजीराव एक सेना लेकर खानदेश की ओर गया और अपनी मोकासा की रकम लोगों से वसूल की। इस काम में उसे थोड़े बहुत विरोध का सामना भी करना पड़ा लेकिन उसकी रकम सफलता पूर्वक वसूल हो गयीं। अपनी नियुक्ति के बाद से ही बाजीराव मराठा साम्राज्य की सीमाओं को और भी उत्तर की ओर विस्तृत करने के लिए कृतसंकल्प हो गया। सर्वप्रथम उसने मालवा को अपना निशाना बनाया। इधर मराठा राज्य की आन्तरिक दशा इस प्रकार की थी कि बाजीराव को प्रतिवर्ष सतारा तथा पूना की ओर आना पड़ता

---

* इस घटना की पुष्टि खजाने अमरा, हदीके आलम, सेरे मुताखरीन तथा मीराते अहमदी से होती है।

था। अतः सन् १७२४ ई० की वसन्त के पूर्व ही यद्यपि तीन-तीन बार उसने मालवा की ओर अपनी सेनायें भेजा, परन्तु इसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता कि स्वयं कभी सन् १७२४ ई०] नर्मदा पार किया हो। सन् १७२४ ई० के अन्त में इस प्रकार का लेख मिलता है। मालवा में वह कभी लम्बे समय तक के लिए न रुक सका। अपनी नियुक्ति के ग्यारह वर्षों के बाद ही उसे इस प्रकार का अवसर मिला। दक्षिण में भी उसकी पर्याप्त आवश्यकतायें थी, उधर निजामुल्मुल्क के षड्यंत्र उसे उलझाये हुए थे। इधर मराठा दर्बार की कूटनीति उसे दम नहीं लेने दे रही थी। इन्हीं सब झंझटों के कारण उसकी महत्वाकांक्षायें भी अपूर्ण रह गयीं और उसकी साहसिकता का भी कभी खुलकर प्रदर्शन नहीं हो सका।

सन् १७२४ ई० के पूर्व ही बाजीराव ने विभिन्न समयों पर बुरहान पुर के सूबेदार को तथा मालवा से अजीमुल्ला खाँ द्वारा भेजे गये दाऊद खाँ नामक एक अधिकारी को एकाधिक बार हरा चुका था। इन युद्धों में बाजीराव की दृष्टि दो नवीन सेनानायकों पर पडी। ये दोनों ही आगे चलकर उच्च पदों पर आसीन हुए। इनमें से पहला व्यक्ति था मल्हार राव होल्कर जो अपने निज के थोड़े से घुड़सारों का एक नायक तथा सिल्लीदार था। वह ढूगर जाति का मराठा था, जिनकी गणना शूद्रों में की जाती थी। उसका पिता नीरा नदी पर बसे होल नामक गाँव का छागला † था। वह कान्ता जी कदम भंडे के आधीन काम कर चुका था, जो शाहू राजा का कर्मचारी था। अपने इसी कार्य काल में उसने निजी घुड़सवारों का एक दस्ता तैयार कर लिया। द्वितीय कर्मचारी का नाम था रानो जी सिन्धिया, जो कुनीर खेड़ कामक गाँव का रहने वाला था। यह गाँव सतारा से पन्द्रह मील पूर्व को हटकर स्थित है। वहाँ की लोक कथाओं के अनुसार सिंधिया परिवार बहमनी बादशाहों के समय से प्रख्यात सिल्लीदार था। मराठों में सिंधिया नाम के दो परिवार हैं। उसमें से पहला परिवार कुनीरखेड़ के गांव से सम्बन्धित था और दूसरे परिवार के लोग अपने को रवि-राव कहते थे। दोनों ही अपने को राजपूतों का वंशज कहते हैं। कुनीरखेड़ का सिन्धिया परिवार औरंगजेब का मन्सबदार था। औरंगजेब के ही आदेशानुसार इसी परिवार की एक लड़की शाहू राजा को व्याही थी, जिसका देहान्त दिल्ली में ही हो गया था। सिन्धिया बादशाह औरंगजेब के प्रति अन्त तक वफादार बना रहा और चूंकि इस बात का पता नहीं चलता कि उसका अन्त कैसे और कहाँ हुआ, अतः यह अनुमान लगाया जाता है कि वह किसी दूर देश में लड़ता हुआ मारा गया। शायद सन १७०७ ई० में आगरा के अजीम शाह के साथ हुये युद्ध में वह खेत रहा हो। यह परिवार छिन्न-भिन्न हो गया था। इसके व्यक्ति भयानक गरीबी में अपना जीवन बिता रहे थे। वे लोग बारगीर का पेशा अपनाने को विवश हो गये थे। कहते हैं कि रानो जी सिन्धिया पेशवा के चप्पलों का रखवाला था। इसी तुच्छ पद के कार्यभार कों उसने जिस तत्परता से सँभाला, उसी के कारण वह बाजीराव का विश्वसनीय बन बैठा और उसे महत्व के कार्यों को भी करने का भी अवसर दिया जाने लगा।

इसी समय के आस पास एक और कर्मचारी को ख्याति मिलनी प्रारम्भ हुई। उसका नाम था ऊदा जी पवार विश्वास राव। जिस समय जिंजी पर अधिकार किया गया गया था, उस समय उस देश में रामचन्द्र पन्त अमात्य का शासन था। इसी अमात्य ने ऊदा जी को ऊँचा उठाया। वहाँ से जब इस व्यक्ति को शाहू राजा की निजी सेना में काम करने का अवसर मिला,

---

† पटेल का सहायक।

ता वह काफी बड़ी घुड़सवार सेना का नायक बना दिया गया था। इसके बाद उसे कई महत्वपूर्ण कार्यों पर लगाया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके वाद वह बराबर उन्नति पथ पर आगे बढ़ता गया। धीरे-धीरे चलते हुए वह कान्ता जी कदम, पिला जी गायकवाड़ तथा कान्हों जी भोंसले के समकक्ष में जा पहुँचा।उसने दूर दूर के देशों को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। प्रायः वह वहीं पर जा पहुँचता था, जहाँ उसके होने की कोई सम्भावना नहीं पायी जाती थी। उसने मालवा तथा गुजरात पर आक्रमण किया। गुजरात में तो लूनावाड़ा जिले तक जा पहुँचा और लूट पाट में भारी रकम प्राप्त किया। जिस समय वह मालवा में पहुँचा, उस समय वहाँ एक भी सैनिक न था। अतः वह उस प्रदेश में कुछ दिन तक ठहर गया और एकाधिक बार उसने शाहू राजा को लिखा कि यदि उसे थोड़ी सी सहायता दी जाय तो वह चारों दिशाओं से चौथ वसूल कर सकता है। वह कितने दिनों तक मालवा में रहा इसका कोई निश्चित पता नहीं चलता। सम्भावना इस बात की ही है कि उसे धार † से वापस आना पड़ा। जब वह इसी स्थान पर पड़ाव डाल कर पड़ा था, उसी समय गिरधर बहादुर की नियुक्ति इस प्रान्त में हुई। गिरधर बहादुर ने जिस शक्ति व कौशल से मालवा की रक्षा की, उसी के कारण बाजीराव की नियुक्ति के दश वर्षों बाद तक मराठों को मालवा में पाँव जमाने का अवसर न मिल सका।

इधर ऊदा जी पवार उन्नति पथ पर अग्रसर हो रहा था, कन्ता जी कदम तथा पीला जी गायकवाड़ गुजरात से सफलता पर सफलता के सन्देशे भेज रहे थे, उधर शाही दर्बार तथा निजामुल्मुल्क के आपसी बिगाड़ के समाचार लगातार बाजीराव को मिल रहे थे। इन सब समाचारों ने पेशवा को इस बात की प्रेरणा दी कि वह उत्तरी भारत में मराठा राज्य का प्रसार करे। पहले तो शाहू राजा ने हिन्दुस्तान की ओर हाथ गाँव फैलाने की योजना को अस्वीकृत कर दिया। बात यह थी कि कुछ तो अपनी कूटनीतिज्ञता तथा कुछ दलबन्दी के कारण। प्रतिनिधि श्रीपतराव लगातार इस योजना का विरोध कर रहा था। इस विरोध को स्पष्ट तया समझने के लिये हमें वर्तमान विवरण को छोड़ कर विषयांतर करना पड़ेगा।

ऊपर की पंक्तियों से पाठकों को निजामुल्मुल्क के चरित्र का स्पष्ट आभास मिल गया होगा। बाजीराव ही उसका सबसे बड़ा सहायक और वही सबसे बड़ा शत्रु भी था। उसी के कारण निजामुल्मुल्क की महत्वाकांक्षायें अधूरी रही जा रही थीं। जिस समय का वर्णन हम कर रहे हैं, उस समय का दक्षिण का इतिहास अनेक उलझनों से भरा हुआ है। दक्षिण में अनेकों शक्तियों की अनेकों योजनायें काम कर रही थीं। दक्षिण के इतिहास के नये रंग मंच पर एकाधिक प्रभावशाली अभिनेता अपना-अपना अभिनय प्रदर्शित कर रहे थे। कोई सत्ताधारी बन रहा था और कोई बर्बाद हो रहा था। इन अभिनेताओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण में था निजामुल्मुल्क तथा बाजीराव पेशवा।

बाला जी विश्वनाथ ने अपने जीवन काल में ही बाजीराव को पर्याप्त कौशल प्रदान कर दिया था। बाजीराव अपने पिता के साथ ही दिल्ली गया था। वहाँ पर जयपुर के राजा जयसिंह से उसके पिता की जितनी ही बार मुलाकातें हुईं तथा उनके बीच जो भी राजनैतिक चर्चायें हुईं उन सभी में बाजीराव उपस्थित था। इन संयोगों के कारण आगे चल कर इस सुप्रसिद्ध राजा के साथ बाजीराव का सद्भाव बना रहा। उसका पालन पोषण चूंकि एक सैनिक बालक

---

† मालवा के पश्चिम में धार नाम का एक नगर था, जहाँ एक बहुत प्राचीन दुर्ग था।

के ढंग पर हुआ था, अतः मराठों की साहसिकता, उनका उत्साह, तथा उनकी कष्ट-सहन-शक्ति तो उसमें थी ही, चूंकि वह काफी अर्से तक दिल्ली में रह कर वहाँ के प्रमुख व्यक्तियों को सम्पर्क प्राप्त कर चुका था, अतः मुगल दर्बार का सा उच्च शिष्टा-चार-युक्त व्यवहार तथा वाक्पटुता पर भी उसका पर्याप्त अधिकार हो गया था। कोंकण के ब्राम्हणों की वाणी-कौशल वैसे ही प्रशंसनीय होती है, उस पर मुगल दर्बार से सम्पर्क हो जाने पर उसमें और भी निखार आ गया था। अपने पिता की आर्थिक योजनाओं से भी वह सुपरिचित था। बाजीराव ने योजना के उस अंश को अधिक महत्व दिया जिसमें गराठों की लुटेरु प्रवृत्तियों को एक सुन्दर प्रवाह मिलता था और उनका आपसी सम्पर्क भी बिगड़ने नहीं पाता था तथा वे सभवेत रूप से एक ही झण्डे के नीचे रह कर कार्य करते रहते थे। इस दिशा में वह अपने पिता की योजना को उसकी महत्वाकांक्षा से भी आगे ले गया। ब्राम्हणों में प्रायः सोचने की ही शक्ति अधिक होती है, उनकी सोची हुई बातों को कार्यरूप में परिणत करने के लिये किसी अन्य शक्ति की आवश्यकता होती है; परन्तु बाजीराव ब्राम्हणों में अपवाद-स्वरूप था। उसमें योजना बनाने का मस्तिष्क तो था ही साथ ही कार्यान्वित करने की शक्ति और सामर्थ्य की भी उसमें कमी नहीं थी। उसमें अध्यवसाय भी था और सूक्ष्मनिरीक्षण की शक्ति भी थी। विभिन्न कार्यों एवम् योजनाओं में से अपनी अर्थ सिद्धि के लिये सर्वाधिक उत्तम और प्रयोजनीय योजना को चुन लेने की उसमें अद्भुत क्षमता थी। यही कारण है कि बाजीराव की पेशवाई में मराठा शक्ति उन्नति के शिखर पर जा पहुँची और मराठा राज्य की धाक उन प्रदेशों तक जा पहुँची, जहाँ तक शिवाजी की धाक भी नहीं पहुँच सकी थी।

बाजीराव के वाह्य शत्रु तो थे ही, स्वयम् उसके घर में भी एक प्रबल शत्रु था। यह शत्रु था प्रतिनिधि श्रीपतराव। जन साधारण में पेशवा की जो प्रतिष्ठा थी, उससे श्रीपतराव को विशेष जलन थी। ब्राह्मणों में एक विशेष प्रवृत्ति होती है कि वे अपने किसी भी स्वजातीय को किसी भी गौरवप्रद पद पर देख कर ईर्ष्या में अन्धे हो जाते हैं। वे उस ईर्ष्या पर न तो विजय ही प्राप्त कर सकते हैं और न उसे गुप्त रख सकते हैं। प्रायः सभी ब्राह्मणों की ऐसी ही गति होती है। यदि उच्चपदासीन व्यक्ति किसी अन्य गोत्र या परिवार का हुआ तो यह ईर्ष्या द्विगुणित हो उठती है। प्रतिनिधि होने के नाते श्रीपत राव का शाहू राजा पर विशेष नियन्त्रण था। बहुत दिनों तक उसने राजा की प्रमुखता को सुरक्षित रक्खा। यह सत्य है कि यदि श्रीपतराव जैसा प्रतिनिधि न होता तो राजा की प्रमुखता इतने अधिक दिनों तक सुरक्षित न रह पाती। इधर वह बाजीराव पेशवा एवम चिमणा जी अप्पा की महत्वाकांक्षाओं पर भी आवश्यकता से अधिक नियन्त्रण रक्खे रहता था। राजा पर इन दोनों भाइयों का भी कम नियन्त्रक न था। श्रीपतराव के विरोध के कारण ही बाजीराव को प्रति वर्ष लौट कर सतारा आना पड़ता था। इस आवागमन के कारण बाजीराव को सुदूर प्रान्तों की विजयों में पर्याप्त बाधा पड़ती थी। उधर निजामुल्मुल्क इस प्रकार के मत-भेदों को उत्तेजना दिया करता था। श्रीपतराव के विरोध के कारण बाजीराव की शक्ति कम कार्य कर पाती थी। उसे जितनी ही बाधायें मिलती थीं, निजामुल्मुल्क का रास्ता उतना ही अधिक सुविधापूर्ण होता जाता था।

पेशवा की प्राथमिक इच्छा थी कि मालवा को सम्पूर्ण रूप से अपने अधिकार में रखकर वहाँ से अपने लिये निर्धारित करों की वसूली कर ली जाया करे तथा और भी आगे बढ़कर हिन्दोस्तान में हाथ पांव फैलाया जाय। श्रीपत राव ने उस योजना का प्रबल विरोध किया और

उसका यह बिरोध काफी दिनों तक सफल भी रहा। श्रीपत राव का कहना था कि इस प्रकार के कार्य अबुद्धिमत्तापूर्ण तो होंगे ही, अविवेकपूर्ण भी कम न होंगे। उसका कहना था कि इस प्रकार के कार्यों से एक ओर तो उन्हें निजामुल्मुल्क का सामना करना पड़ेगा और दूसरी ओर समूचा मुगल साम्राज्य ही मराठा शक्ति के विरुद्ध उठ खड़ा होगा। उसकी राय में जर्जर होते हुये भी अभी मुगल साम्राज्य में इतना दम था कि वह समूचे मराठा राज्य को निगल सकता है। इन्हीं बातों को कहकर वह राजा को निरन्तर रोकता रहा कि वह बाजीराव को इस प्रकार के कार्यों की आज्ञा न दे। वह कहा करता था कि मराठा राज्य जितना विस्तृत हो चुका है, उतने की ही सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध नहीं हो पाया है। ऐसी दशा में पड़ोसी निजामुल्मुल्क की सत्ता को चुनौती देना अविवेक पूर्ण कार्य होगा। प्रतिनिधि श्रीपत राव का तर्क था कि पहले के जीते हुये प्रदेशों का आन्तरिक प्रबन्ध और वाह्य सुरक्षा का इस प्रकार से प्रबन्ध किया जाय कि सम्पूर्ण कर बिना किसी झंझट के वसूल हो जाया करे। इसके बाद क्षत्रपति शिवाजी द्वारा जीते गये प्रदेश कर्नाटक को अधिकार में लाना चाहिये। यद्यपि फतहसिंह भोंसले के पास इस बात की शाही सनद है कि वह कर्नाटक प्रदेश से मोकासा की वसूली कर लिया करे, परन्तु कोल्हापुर के सम्भाजी तथा उसके साथियों चौहान, घोरपड़े तथा सावनेर के नवाब की शक्ति के सामने उसका साहस नहीं है कि वह कृष्णा नदी को पार करके मोकासा की वसूली करे।

श्रीपत राव की राजनैतिक सूझ का वर्णन ऊपर हो चुका है, परन्तु बाजीराव की सूझ बूझ इससे कुछ ऊँचे दर्जे की थी। वह अपने लोगों की लुटेरू प्रवृत्ति का ज्ञान रखता था। उसका स्पष्ट विचार था कि उस समय की अराजकता की स्थिति में उस कार्य की सफलता निर्विवाद थी। मराठों के आपसी सम्बन्धों में माधुर्य बनाये रखने के लिए ही उसने मराठा प्रदेशों की लगान को विभिन्न सर्दारों में बांट रक्खा था। उसका यह भी विचार था और यह बिचार ठीक भी था कि वाहर के झगड़ों में मराठे जितने ही फँसे रहेगे, उनकी आन्तिरिक शान्ति उतनी ही अधिक सुरक्षित रहेगी। उसका कहना था कि यदि उसे दूर देशों पर हमला करने का आदेश मिले तो वह इतनी बड़ी सेना अपने सेनापतित्व में ही रख सकता है कि वह समूचे मुगल साम्राज्य की सेना से बड़ी हो जायगी। वह कहा करता था कि दक्षिण में जो घुड़सवार छोटे छोटे झुन्ड बना कर इतस्ततः लूटपाट करते हैं, वे किसी भी ऐसे व्यक्ति के आज्ञानुवर्ती बन जायँगे जो उनको नौकरी तो दे ही, साथ ही साथ बिभिन्न युद्धों में उन्हें लगाकर लूटपाट करने का अवसर देता रहे। उसकी राय थी कि सैनिकों की भर्ती जाति वंश इत्यादि का विवेक किये बिना ही होनी चाहिये।

श्रीपत राव के निरन्तर बिरोध करते रहने के कारण बाजीराव ने कुछ दिनों तक अपनी इच्छा को प्रगट ही नहीं किया। वह बराबर श्रीपत राव के तर्क के औचित्य को मानता सा रहा। परन्तु बाद में उसने अपनी प्रभाव पूर्ण वाणी का प्रयोग किया और शाहू राजा को छत्रपति शिवाजी की महानता एवम् उनकी विजयों का स्मरण दिला कर उसे उत्साहित किया। उसने राजा को उन बड़ी बड़ी शक्तियों की याद दिलाया, जिनसे अल्प साधन-युक्त शिवाजी ने सफलता पूर्वक संघर्ष किया था। बाजीराव ने शाहू राजा के समक्ष हिन्दुस्तान की दुर्दशाका बड़ाही करुणामय चित्र रक्खा। मुगल साम्राज्य की निर्बलता, मुगल दर्बार की ऐयाशी तथा नशाखोरी का नक्शा खींच कर मराठों की कर्मठता, उनकी सहन शक्ति उनका उत्साह एवम् उनकी साहसिकता का ऐसा सुन्दर वर्णन किया कि शाहू राजा के बाहु फड़कने लगे। बाजीराव ने बड़े ही उत्साह पूर्ण शब्दों में शाहू

राजा को सम्बोधित किया किया कि "यदि छत्रपति शिवाजी की राय उसी प्रकार की होती, जैसी श्रीपत राव की है तो उन्होंने कर्नाटक पर आक्रमण करने के पूर्व ही बीजापुर तथा गोल-कुन्डा की शक्ति को नष्ट करना आवश्यक समझा होता। जहां तक कृष्णा के उस पार के आपसी झगड़े का सम्बन्ध है, उसे हम बाद में भी निबटा सकते हैं। यह समय आपके अनुकूल है, अतः आप की सब इच्छायें पूर्ण होंगी।" एक लम्बा सा भाषण देते हुए बाजीराव ने आगे कहा कि "यही समय है, जब कि अपने देश से सभी विदेशियों को हटा देना चाहिए। यह देश हिन्दुओं का है, इसे हिन्दुओं के ही हाथ में होना चाहिए। इस कार्य को सम्पूर्णता तक पहुँचाकर आप अमर ख्याति उपलब्ध कर सकेंगे। यदि हम हिन्दुस्तान की ओर कदम बढ़ाये तो आपका झंडा कृष्णा नदी से अटक तक फहराया जा सकता है।' बाजीराव की बातों का उपस्थित सभी मर्यादा श्रेणी के लोगों पर पूरा प्रभाव पड़ा। शाहू राजा भी उत्साहित होकर चिल्ला उठा "तुम हमारा झन्डा हिमालय पर गाड़ दोगे, तुम योग्य पिता के योग्य पुत्र हो।"

बाजीराव ने शाहू राजा को समझाया कि "इस समय छोटी मोटी बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए।" मुगल साम्राज्य की चर्चा करते हुए उसने कहा कि "मुगल साम्राज्य पर प्रहार करने का यही समय है। तने को काट दो, डाल पात आप ही आप सूख जायँगे।"

बाजीराव की योजनाओं की कब स्वीकृति मिली तथा वास्तविक विजय यात्रा का आदेश कब मिला, उसका कोई पता नहीं चलता। जब भी कभी राजा द्वारा योजनाओं को इस प्रकार का अधिकार मिलता था तो उसे वे विशेष समारोह के साथ ग्रहण करते थे। इस प्रथा का वे तभी पालन करते थे जब वे अपनी शक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँच गए थे। ब्राम्हणों की सर्वदा से यही विशेषता रही है कि वे वास्तव में राज्य के सर्वेसर्वा होते हैं पर नाम के लिए वे कर्मचारी मात्र बने रहते हैं। जब शाहू राजा के हाथ में नाम मात्र का भी अधिकार नहीं रह गया तब भी वे उसे राजा बनाये रखने में अपनी पटुता समझते थे। अपने को राजा का प्रतिनिधि मान कर ही वे सदा कार्य करते थे।

मराठों की शक्ति वृद्धि एवम् क्षत को पूर्ण रूपेण हृदयंगम करने के लिए यह आवश्यक है कि उनकी गृह नीति पर उतना ही अधिक ध्यान दिया जाय, जितना देश की तत्कालीन परिस्थितियों पर। इसी लिये हम देखेंगे कि मराठों के इतिहास का वर्णन करने के लिए हमें बार बार मुगल साम्राज्य एवम् मुगल दर्बार की गतिविधियों पर दृष्टिपात करते रहना पड़ेगा।

दिल्ली से प्रस्थान करने में निजामुल्मुल्क ने जिस कौशल का आश्रय लिया था, उससे अविश्वास एवम् विश्वासघात की बू आती थी। इस विश्वासहीनता का कारण था बादशाह एवम् निजाम का मनोमालिन्य। निजाम के कौशल पर स्वाभाविक था कि शाहंशाह नाराज हो जाय। अतः उसने हैदराबाद के सूबेदार मुबारिज खां को गुप्त आदेश भेजा कि सैन्य संग्रह करके निजाम का विरोध किया जाय। बादशाह ने उसे एक फरमान देकर विश्वस्त किया था कि यदि वह इस काम में सफल हो गया तो उसे दक्षिण का वाइसराय बना दिया जायगा।

अपने इस नवीन प्रतिद्वन्दी का सामना करने के लिये निजाम ने शत्रु के कैम्प में फूट डाल देने के प्राचीन कौशल से काम लिया। मुबारिज खां का सामना करने के कुछ महीनों पूर्व से ही शत्रु सेना के विभिन्न व्यक्तियों के पास उसके अनेक गुप्तचरों का आवागमन जारी था। अन्ततः जुलाई सन् १७२४ ई० में वह औरंगाबाद पहुँचा और अनेक तर्क वितर्कों के बाद उसने युद्ध भूमि में उतरने का निश्चय किया। शाकरखेड़ा के युद्ध में (१ अक्तूबर सन् १७२४ ई०) मुबारिज खां की

पूर्ण पराजय हुई । मुबारिज खां की व्यक्तिगत वीरता का प्रभाव निजाम की पूरी सेना पर छा गया था, मगर अनेक सैनिकों ने घेर कर उसे मार डाला । मुबारिज खां के चार लड़के भी इस युद्ध में शामिल थे, जिनमें से दो तो उसी युद्ध में मारे गये और दो संघातिक रूप में घायल हो गये । निजाम ने मुबारिज खां का सर बादशाह के पास एक बधाई के पत्र के साथ भेज दिया । इस पत्र में भी उसने अपनी बिजय को बादशाह की ही बिजय मान कर बधाई भेजा था ।

जिस समय मुबारिज खाँ दक्षिण की ओर बढ़ रहा था, तो सैनिकों की एक पर्याप्त बड़ी संख्या सुसंगठित रूप में गोलकुंड़ा में छोड़ दिया था । उसका एक पुत्र ख्वाजा अाहूद उस सेना का नायक था, जिसे सन्दुल खाँ की सहायता प्राप्त थी । सन्दुल खाँ काफी दिनों तक गोलकुंडा का गवर्नर रह चुका था । आस पास के अन्य कितने ही किलों पर मुबारिज खाँ के ही समर्थक कर्मचारियों का नियंत्रण था । निजामुलमुल्क समझता था कि ये सभी गढ़रक्षक उसे एक बागी से कम नहीं समझते थे और इसीलिये मौका पड़ते ही उसके विरुद्ध हो जायँगे । अतः उसने समझा कि जितनी जल्दी हो सके इन किलों पर अधिकार कर लेना ही ठीक होगा । उसी उद्देश्य को लेकर वह हैंदराबाद की ओर बढ़ा, जहां उसने शांति पूर्ण उपायों द्वारा ही अपना मन्तव्य पूरा किया । शाहंशाह ने निजामुलमुल्क की शक्ति यथासम्भव कम करने के विचार से एक फर्मान जारी किया था, जिसके अनुसार निजाम के हाथों से गुजरात एवम् मालवा का शासन ले लिया गया था । गुजरात में सरबुलन्द खाँ की नियुक्ति हो गयी थी और मालवा में गिरधर बहादुर की । जिस समय मालवा में कार्य भार ग्रहण करने के लिये गिरधर बहादुर पहुँचा, उस समय एक एक सैनिक निजामुलमुस्क की सहायता के लिये वहां से जा चुका था, अतः गिरधर बहादुर ने बिना किसी विरोध के मालवा पर अपनी सत्ता स्थापित कर ली ।

सरबुलन्द खाँ ने शुजायत खाँ को गुजरात में अपना नायब मुकर्रर किया । निजामुलमुल्क की तरफ से उसका चचा हामिद खाँ गुजरात का शासक था । यद्यपि वह शुजायत खाँ को सत्ता स्थापित करने से रोक नहीं सका, फिर भी उसने इरादा किया कि बिना संघर्ष के वह गुजरात को नहीं छोड़ेगा । दोहर पहुँच कर उसने शाहू राजा के सेना नायक कान्ता जी कदम भंडे को निमंत्रित किया । कान्ता जी ने शर्त रक्खी कि यदि उसे गुजरात की चौथ का अधिकार दे दिया जाय तो वह उसका निमंत्रण स्वीकार कर सकता है । हामिद खाँ ने इस शर्त को मान लिया और कान्ता जी ने सहायता देना स्वीकार कर लिया । ये दोनों पहले कुमुरकुंज पहुँचे । यहां से हामिद खां ने अहमदाबाद स्थित दोस्तों के द्वारा शुजायत खाँ की गतिविधि से परिचय प्राप्त किया । सुअवसर देखकर उसने अहमदाबाद से कुछ मील की दूरी पर शुजायत खाँ पर हमला किया, हराया और उसे मार डाला । इस विजय से उस स्थान के आसपास हामिद खां की सत्ता पुनः स्थापित हो गयी । इस घटना की खबर सूरत के फौजदार तथा शुजायत खां के भाई रुस्तम अली को उस समय मिली जब सूरत के समीप ही वह पिला जी गायकवाड़ से उलझा हुआ था । यद्यपि वह इस युद्ध में सुविधाजनक स्थिति में था, फिर भी अपने भाई की पराजय व मृत्यु का प्रतिकार करने की उतावली में उसने पिला जी से इस शर्त पर सुलह कर लिया कि पिला जी उसे हामिद खां के विरुद्ध सहायता दे । पिला जी पहले से ही निजामुलमुल्क के दूतों से प्रतिज्ञा कर चुका था कि हामिद खाँ की सहायता करेगा, मगर उसने रुस्तम अली के प्रस्ताव को मान लिवा । वास्तव में वह यह तै कर लेना चाहता था कि अधिक लाभ किस ओर से मिलेगा । उसने रुस्तम अली

के साथ अहमदाबाद की ओर बढ़ा, फाजिलपुर में मैहीं नदी को पार किया । अरास नामक स्थान पर उसका एक छोटा सा अनिर्णीत युद्ध हामिद खां से हुआ, जिसमें रुस्तम अली के तोपखाने के कारण हामिद खां को पीछे हटना पड़ा । इस समय तक पिला जी गायकवाड़ निश्चय की स्थिति में पहुच गया था । उसने भीतर ही भीतर हामिद खाँ की सहायता करने का इरादा कर लिया था । उसने रुस्तम अली को सलाह दी कि वह अपने तोपखाने को पीछे छोड़ कर स्वयम् आगे बढ़ कर शत्रुओं पर आक्रमण करे । इस खतरनाक सलाह के अनुसार ज्योंही रुस्तम अली आगे बढ़ा त्योंही पिला जी ने तोपों को ढोने वाली गाड़ियों को उलट दिया और पीछे से स्वयम् उस पर टूट पड़ा । रुस्तम अली बड़ी ही वीरता से लड़ा । धोंरे धीरे उसके मित्रों की संख्या कम होती गयी । अन्त में जब उसने देखा कि किसी तरह भी बच पाना मुश्किल है तो उसने स्वयम् अपने को ही कटार मार ली; क्योंकि वह जानता था कि बन्दी होने पर उसका बड़ा अममान होगा और मुमकिन है उसे नाना प्रकार की यातनायें सहन करनी पड़े । वास्तव में पिला जी के विश्वासघात ने उसके सहायकों को ही नहीं उसे भी हतोत्साह कर दिया था और वह इतना निराश हो गया था कि उसे मानो इस विश्वासघात पूर्ण संसार में बने रहने की इच्छा ही नहीं रह गयी थी ।

अपने विश्वासघात के परिणाम स्वरूप पिला जी गायकवाड़ को कान्ता जी कदम के साथ ही गुजरात की चौथ मिली । दोनों का भाग बराबर रक्खा गया । दोनों साथ ही साथ अपना अपना भाग वसूल करने के लिये चले, परन्तु रुपयों के बँटवारे को लेकर दोनों १७२५ ई०] में प्रायः झगड़े होने लगे । बात यह थी कि पिला जी ढवारे सेनापति का एजेन्ट था और इसी लिये वह अपने को कान्ता जी से उच्चश्रेणी का समझता था । इधर कन्ता जी अपने को राजा का कर्मचारी कह कर पिला जी के गर्व से घृणा करता था । कुछ दिनों तक तो दोनों के झगड़ों का यह परिणाम होता रहा जिससे कि नगरों और कस्बों को उचित से अधिक लगान देनी पड़ती रही । इस प्रकार वसूली करते हुये वे दोनों कस्बे तक पहुचे और वहां लोगों को भयभीत करने के लिये उपनगर को जलाने लगे । वहां के निवासियों को दोनों के मतभेद का ज्ञान था और कान्ता जी को उच्चतर मानने का आडम्बर करते हुए उन्होंने पिला जी के पास अपना एक सन्देशवाहक भेजा और उसे कहलवाया कि वे लोग कान्ता जी को उच्च कर्मचारी मानते अवश्य हैं परन्तु फिर भी वे उसे बीस सहस्र रुपये दे देंगे यदि वह इस स्थान को छोड़ कर ससैन्य चला जाय । पिला जी यह सुनकर बड़ा क्रोधित हुआ और उसने सदेशवाहक को ही बन्दी बना लिया । उधर कान्ता की बार बार उसकी मुक्ति के लिये पिला जी पर दबाव डालने लगा । दोनों ही सर्दार अपने अपने अधिकार व पदगौरव रक्षित रखने में सचेष्ट थे अतः उन दोनों का विवाद वाणी विलास से हट कर हथियार तक जा पहुँचा । एक छोटी सी शस्त्रीय झड़प में पिला जी को पीछे हटना पड़ा और वह कैरा के समीपस्त गांव महतुर की ओर चला गया । विजयी सर्दार ने कस्बे के आसपास से कर वसूल किया और वहां की अंग्रेजी फैक्ट्री से पांच सौ रुपया मांगा । फैक्ट्री के एजेन्टों ने कहा कि उन लोगों को तो शाहू राजा की ओर से कर मुक्ति स्वीकार है, परन्तु कान्ता जी ने इस पर कोई कान नहीं दिया ।

हामिद खां ने देखा कि यदि उसके दोनों सहायक उसी भाँति लड़ते रहे तो एक न एक दिन उनमें से एक को अवश्य ही छोड़ देना पड़ेगा, अतः उसने स्वयम मध्यस्थता

ग्रहण करके दोनों को एक इकरारनामें पर हस्ताक्षर करने को विवश किया, जिसके अनुसार मैंही नदी के पूर्व के भाग से चौथ वसूल करने का अधिकार पिला जी को दे दिया, और पश्चिमी भाग से चौथ वसूलने का अधिकार कान्ता जी को दिया। अति प्रारम्भ से मराठों की यह परम्परा रही हैं कि साल भर लूट पाट करके वा युद्ध करके वे प्रत्येक वर्ष बरसात शुरू होने के पूर्व ही स्वदेश को लौट आया करते थे। अतः कम्बे की शस्त्र परीक्षा के बाद पिला जी गायक वाड़ सूरत के पास सोनगढ़ को लौट गया और कन्ता जी अपने खानदेश में अपनी जागीर को लौट गया।

सरबुलन्द खां के साथ ज्यादती करके बादशाह ने उसे काबुल से हटा दिया था। इस कठिनाई के समय बादशाह ने सरबुलन्द खाँ से कहा कि वह अपने सूबा गजरात को चला जाय और हामिद खां द्वारा की गयी बगावत को दबा दे बादशाह को तूरानी सर्दारों (निजाम वगैरह) को दबाने की इतनी जल्दी थी कि उसने सैयद अब्दुल्ला खाँ को कैद से मुक्त कर दिया। इसी अब्दुल्ला खाँ ने फर्रूखायरी को तख्त से उतारा था। इस समय के दर्बारी अब्दुल्ला से इतना अधिक विरोध मानते थे और इसी कारण वे इतना अधिक भयभीत रहते थे कि उन्होंने जहर के प्रयोग से अब्दुल्ला को मार डाला। सरबुलन्द खाँ एक प्रख्यात योद्धा था उसने गुजरात जाने के आदेश को सरमाथे पर रक्खा तो परन्तु कुछ सुविधायें भी मांगी। उसकी सभी माँगों को बादशाह ने स्वीकार कर लिया। सरबुलन्द खाँ की अधीनता में लड़ना सैनिकगण एक सौभाग्य मानते थे, अतः शीघ्र ही उसके चतुर्दिक एक विशाल वाहनी तैयार हो गयी। बादशाह ने कहा था कि वह भी सेना के साथ साथ गुजरात जायगा, अतः उसकी प्रतीक्षा में सदबुलन्द को थोड़ा रुक जाना पड़ा। थोड़ी प्रतीक्षा करने के बाद वह अकेला ही ससैन्य अहमदाबाद की ओर चल पड़ा। सरबुलन्द खाँ की योग्यता को निजाम भी जानता मानता था। अतः उसने अपने चाचा हामिद खाँ को लिखा कि वह सम्मानपूर्ण रीति से सूबे को यों ही छोड़कर चला आवे। उधर दो दो युद्धों का विजेता हामिद खाँ निजाम की बातों की क्यों चिन्ता करता। उसने सुरक्षात्मक युद्ध की तैयारी की। इस समय उसे मराठों से सहायता की आशा तो थी नहीं, अतः अहमदाबाद की सुरक्षा के लिये थोड़ी सी सेना छोड़कर वह सरबुलन्द खाँ के मुकावले से पीछे को हटने लगा। अभी वह महमूदाबाद तक ही आगे बढ़ा था कि उसे समाचार मिला कि मराठों की जो सेना उसकी सहायता के लिये आ रही है, उसने मैंही नदी को पार कर लिया है। इस समाचार को सुन कर वह वहीं रुक गया और मराठों के साथ में आ जाते ही वह अहमदाबाद की ओर लौट आया। इधर नगरनिवासियों के एक दल ने नये सूबेदार का स्वागत करने की तैयारी की और हामिद खाँ द्वारा सुरक्षा के लिये छोड़े गये सैनिकों को निरस्त्र करके नगर को अपने अधिकार में कर लिया और उन्हें शहर से बाहर निकाल दिया। हामिद खाँ ने शाहेबाग में डेरा डाला। उस दिन तक सरबुलन्द की सेना का अग्रगामी दल उदलेदजी तक आ चुका था। मुख्य सेना के साथ जो तोपों को ढोने वाली गाड़ियाँ थीं, उनकी मरम्मत हो रही थी और इसलिए मुख्य सेना की गति मन्द पड़ गयी थी। अग्रगामीदल इस आपदा से सुपरिचित था, अतः उसके मुखिया ने समझ लिया कि आवश्यक होने पर भी उन्हें (अग्रगामी दल को) मुख्य सेना की सहायता नहीं मिल सकेगी। इधर पास में ही हामिद खाँ के होने का समाचार भी उन्हें मिल चुका था अतः वे तुरन्त ही सावधान हो गये और उन्होंने सुरक्षात्मक खाइयाँ खोदनी शुरू कर दिया। उनकी इस सावधानी को देख कर मराठों को उत्साह मिला। उनके उत्साह को देख कर

हामिद खाँ ने भी उन्हें आक्रमण की आज्ञा दे दी। वह स्वयं भी मराठा सेना के साथ था। सरबुलन्द खाँ की सेना पूरी तरह से पराजित हुई परन्तु मराठों का भी बहुत नुकसान हुआ। अब वे दूसरे युद्ध के लिये प्रस्तुत नहीं थे अतः हामिद खाँ ने भी मराठों की युद्ध प्रणाली का अनुसरण करके लूटपाट का मार्ग पकड़ लिया। बड़े ही उत्साह के साथ नवीन फौजदारों की नियुक्ति की गयी, उधर कान्ता जी तथा पिला जी निरंतर बरसात के आरम्भ तक लूटपाट करते रहे। वर्षा का आरम्भ होने के पहले ही वे स्वदेश को लौट गये। वर्षा काल प्रारम्भ होते होते गुजरात में पूर्ण शान्ति छा गयी। लगातार होती रहने वाली वर्षा के कारण गुजरात की भूमि में वनस्पतियाँ लहराने लगीं। चारों ओर फैली हरियाली ने इंग्लैंड के अच्छे से अच्छे पार्कों को चुनौती सी देने लगी। चतुर्दिक वनस्पतियों का साम्राज्य फैल गया। गुजरात का प्राकृतिक सौन्दर्य अद्वितीय हो उठा। जिन स्थानों पर अभी कुछ ही दिन पूर्व युद्धों का नाद सुन पड़ता था, सैनिकों के पद चाप से शान्ति प्रिय नागरिकों के दिल दहल-दहल उठते थे, चारों ओर हत्या, आगजनी और लूटपाट मची रहती थी, उन्हीं स्थानों पर चहुं ओर अति का सुखद वातावरण हो गया। खाली पड़ गये गाँवों के लोग लौट लौट कर खेती बारी का काम काज करने लग गये।

इस समय अपनी राजधानी में बैठा हुआ बाजीराव मुगल दर्बार के मत भेद पूर्ण वातावरण को परख रहा था। वह सोच रहा था कि मालवा पर अभियान करने का सर्वाधिक उपयुक्त अवसर यही है। गिरधर बहादुर के मालवा में होने पर भी दो-दो बार वह सफलता पूर्वक मालवा पर लूटपाट एवम कर वसूली का अभियान कर चुका था, सम्भव है कि निजामुलमुल्क ने मालवा में पेशवा द्वारा की गयी इन कार्यवाहियों के प्रति स्वाभाविक उदासीनता ही दिखायी हो, क्योंकि इस बीच उनमें किसी ऐसे पत्र-व्यवहार का पता नहीं चलता, जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि मालवा की लूट उनकी मिली जुगत थी। शाहू ने पेशवा को जो अधिकार दिए थे, उन्हीं के बल पर उसने पवार, होकर तथा सिंधिया को उन समस्त प्रदेशों से चौथ व सरदेशमुखी वसूल करने तथा उनकी सेना के खर्च के लिए मोकासा का एक भाग अपने पास ही रख लेने का अधिकार दिया।

सन् १७२६ में फतहसिंह भोंसले की अध्यक्षता में एक सेना के साथ बाजीराव ने कर्नाटक के कई जिलों को लूटा और श्रीरंगपट्टम से कर वसूली की। इस अभियान का कोई लिखित वृत्तान्त
प्राप्य नहीं है। हाँ इस घटना के बारह तेरह वर्षों बाद बाजीराव द्वारा लिखे
१७२६ ई०] गये एक पत्र (चिमणा जी को लिखे गये) से प्रगट होता है कि इस अभियान
में मराठों को अत्यधिक हानि उठा कर भी सोचा हुआ लाभ न मिल सका।

इस अभियान से सतारा लौटने पर बाजीराव ने देखा कि श्रीपतराव बुरी तरह ऐंठा हुआ है। वास्तव में निजाम के दूतों ने उसे इस बुरी तरह भड़का दिया था कि यदि कहीं बाजीराव का सा व्यक्ति पेशवा-पद पर न होता तो मराठों को जोड़ कर रखने वाली श्रृंखला टुकड़े-टुकड़े हो गयी होती और दक्षिण के सभी हिन्दू सर्दारों की एकता भूमिसात् हो गयी होती। बाजीराव की शक्ति व दृढ़ता ने ही इस श्रृंखला की कड़ियों को तितर बितर हो जाने से रोका।

पन्द्रहवाँ अध्याय

बाजीराव पेशवा और निजाम

[१७२७ से १७३४]

निज़ामुल्मुल्क के दोहरे प्रयत्न—हैदराबाद के समीपस्थानों की चौथ—मुक्ति—युद्ध का वातावरण—बाजीराव की योग्यता से निजाम का विवश होना—सरबुलन्द खां तथा गुजरात से चौथ व सरदेशमुखी—कोल्हापुर का सम्भा जी—सतारा तथा कोल्हापुर में सन्धि—सेनापति तथा पेशवा—डभई के युद्ध में पेशवा की विजय – मिज़ामुल्मुल्क ने पेशवा को मुग़ल सम्राट की ओर फेर दिया—गुजरात के विषय में सेनापति तथा पेशवा के बीच समझौता—जोधपुर के राजा अभयसिंह की नियुक्ति सर बुलन्द खां के ऊपर—निज़ाम की नीति—बाजीराव का मालवा की ओर बढ़ाव—गुजरात में पिला जी गायकवाड़ तथा अभयसिंह का युद्ध—पिला जी की हत्या—बुन्देलखंन्ड में बाजीराव द्वारा चित्तौर के राजा को सहायता—मुगलों का बुन्देल खन्ड खाली कर देना—बाजीराव को बुन्देलखन्ड का मिलना—राजा जयसिंह की मालवा के सूबेदार पद पर नियुक्ति—बाजीराव तथा जयसिंह—जयसिंह ने मालवा का शासन बाजीराव को सौंप दिया।

निजामुलमुल्क के क्रिया कलापों के कारण समूचे मुग़ल साम्राज्य में एक भयानक अराजकता सी व्याप्त हो उठी। निज़ाम के मुख्य सहायक थे तूरानी सर्दार, जो निजाम को अपनी जाति का मुखिया मानते थे। मुगल बादशाह की ओर से जब निजाम को कोई

सन १७२७] ख़तरा बाकी न दिखाई पड़ा तो उसने अपनी सत्ता को संगठित करने के लिये चतुर्दिक दृष्टिपात् किया। मराठों की नित नवीन बढ़ती जाती रहने वाली पड़ोसी शक्ति को देखकर निज़ामुल्क चमत्कृत हो उठा। बात यह थी कि दक्षिणी, कर्नाटक तथा गुजरात से चौथ, सरदेशमुखी था मोकासा की वसूली के बाद जो कुछ भी बचता था, वह न निजाम के लिये पूरा पड़ता था और न मुगल साम्राज्य के लिये। इन कठिनाइयों से बचने के लिये उसने स्वयं अपनी ही सत्ता को सुसंगठित करने का विचार किया, परन्तु मराठों की शक्ति कम किये बिना उसकी निजी सत्ता सुसंगठित नहीं हो पा रही थी। चूँकि मराठों से वह खुला युद्ध छेड़ने की स्थिति में नहीं था अतः कौशल द्वारा उसने मराठों में फूट डालने की बात सोचा। उसने बड़े ही यत्न से विचार कर जो योजना बनाई, उसकी सफलता निर्विवाद थी, क्योंकि बाजीराव की नीति का सही मुल्यांकन वह न कर सका। बाजीराव अपनी योग्यता से न केवल निजाम की योजना को ही बेकार कर दिया वरन इसी के बल पर स्वयम अपनी स्थिति को और भी सुदृढ़ कर लिया।

साखरखेड़े के युद्ध के बाद से ही निजाम की आँखें हैदराबाद पर लगी हुई थीं, जो पुराने जमाने में कुतुबशाही परिवार की राजधानी रह चुका था। उसने सोचा था कि अपने द्वारा नव-निर्मित राज्य की राजधानी हैदराबाद ही रहे। इस कार्य सिद्धि के लिए आवश्यक था कि चाहे जैसे भी हो उस क्षेत्र से मराठा अधिकारियों को हटा दिया जाय। पहले निजाम ने शाही फर्मान को स्वयं भी शाहू के पास में स्वीकार कर लिया था, फिर भी उसने फर्मान में लिखित सभी इलाकों से

न तो अपनी सत्ता ही हटाया था और न मराठों को उन पर अधिकार ही करने दिया। कितने ही विवादग्रस्थ विषय अब भी निजाम व मराठों के बीच अनीर्णीत ही पड़े हुए थे। शाहू राजा ने जो लूटपाट रोक रखने का वचन दिया था, उसकी भी पूर्ति नहीं हो रही थी, उसके परिणामस्वरूप नित्य नए विवाद होते रहते थे। प्राचीन मराठा भूभाग के बारे में निजाम ने शाहू से समझौता किया था कि स्वयम् उसने मराठा लोगों को जो सुनिर्धारित जागीरें दे दी हैं, उनसे शाहू कभी चौथ की मांग न करेगा। रम्भा जी निम्बालकर शाहू के असंतुष्ट गुट में था। निजाम ने उसे पूना के निकटस्थ भूभाग को जागीर में दे दिया था, क्योंकि निम्बालकर ने उसका साथ पकड़ लिया था। अब उस जागीर को बदलकर उसे थोड़ा और पूर्व की ओर हट कर करगला के पास में जागीर दे दी गयी। शाहू राजा ने इस परिवर्तन पर आपत्ति नहीं की। इसके बाद प्रतिनिधि की मध्यस्थता में निजाम तथा शाहू राजा के बीच एक समझौता हुआ, जिसमें शाहू राजा ने स्वीकार किया कि वह हैदराबाद के समीप के स्थानों से चौथ व सरदेशमुखी नहीं वसूल करेगा। चौथ की रकम के बदले उतनी ही रकम प्रतिवर्ष निजाम दे दिया करेगा तथा सरदेशमुखी के बदले में निजाम ने इन्दापुर के समीप का प्रदेश जागीर रूप में दे दिया। शाहू राजा आनुवंशिक रूप से इन्दापुर जिले का सरदेशमुख ※ था। बरार प्रान्त में प्रतिनिधि को भी एक जागीर मिली। इस प्रकार अपने सत्ता संगठन के अनेक साधनों में से एक को तो निजाम ने शान्तिपूर्ण उपाय द्वारा ही पूरा कर लिया। बाजीराव ने इस समझौते का बड़ा प्रबल विरोध किया। वह आरम्भ से ही निजाम के प्रति शंकालु था और नहीं चाहता था कि पड़ोस में ही किसी प्रबल सत्ता का संगठन हो जाय। इस विषय को लेकर पेशवा तथा प्रतिनिधि में इतना विवाद बढ़ा कि निजाम यह सोचने लगा कि चन्द्रसेन जाधव वारसी के जागीरदार राव रम्भा निम्बालकर † तथा कोल्हापुर के राजा सम्भा जी की सहायता से उसकी कामना सिद्ध होने का अवसर आ गया है। इसी दृष्टिकोण से उसने सम्भा जी के पक्ष-समर्थन का प्रस्ताव किया। इस प्रस्ताव से निजाम का तात्पर्य था कि सम्भा जी एवम् शाहू के बीच एक निरन्तर चलते रहने योग्य संघर्ष की नींव पड़ जाय, जिससे शाहू राजा के सहायक फंसे भी रहें और उनमें फूट की सम्भावना भी बढ़ती रहे। इस उपाय से निजाम की योजना थी कि कांटे को कांटे से ही निकाल लिया जाय। दाभाड़े तथा पिला जी गायकवाड़ से उसका सम्पर्क, यह विचार कि राजा गिरधर राव की मदद से पेशवा के मालवा स्थित कर्मचारियों को नौकरियां दिलायी जा सकती हैं तथा अपनी सेना के ऊपर उसके उचित से अधिक विश्वास, इन सभी बातों ने उसे साहस प्रदान किया कि वह मराठों में गृह-युद्ध की व्यवस्था उत्पन्न कर दे।

निजामुलमुल्क ने अपनी योजना का कार्यान्वियन प्रारम्भ किया कोल्हापुर के राजा सम्भा जी के पक्ष की सभी बातों के सुनने से। सम्भा जी का दावा था कि उसे मराठा राज्य की वसूली पर उतना ही हक है जितना कि शाहू राजा को। अतः आधी लगान पाने का वह भी हकदार है। दक्षिण की यह विशेष परम्परा है कि किसी भी भूभाग के विवाद ग्रस्त होने पर विवाद के निर्णय

※ मु० आदिलशाह की सेना में जाने से पूर्व ही इस ज़िले की आधी सरदेशमुखी शाहजी ने ख़रीद ली थी।

† यह ध्यान रखना चाहिये कि वारसी का निम्बालकर परिवार करमला के निम्बालकर परिवार से भिन्न था।

काल तक उस भूमि पर राज्य का अधिकार हो सकता है। सम्भा जी एवम् शाहू को वादी, प्रतिवादी मानकर निजाम ने सभी मराठा अधिकारियों, सरदेशमुखों तथा मोकासादारों को यह कह कर हटा दिया कि जब सम्भा जी तथा शाहू के बीच चलने वाला विवाद निर्णीत हो जायगा तो विजयी को ये प्रदेश सौंप दिये जायंगे। इस प्रकार वह सम्भा जी एवम् शाहू के बीच स्वयम् ही यंत्र बन बैठा। इस सुविधाजनक स्थिति में बैठकर उसने सोचा था कि अलग अलग बैठकर मराठों के आपसी संघर्ष का मजा देखेंगे। उधर बाजीराव को जितना बुद्धिमान निजाम ने समझा था, वह उससे कुछ अधिक चतुर निकला। उसने निजाम द्वारा प्रस्तावित योजना को इस प्रकार काम में लिया कि जो हथियार उसकी शक्ति क्षय के लिये चलाया गया था, उसी से बाजीराव ने अपनी ही सत्ता को संगठित कर लिया। तुच्छातितुच्छ मराठे से लेकर मराठा राजाओं तक में यह जन्म जात प्रवृत्ति होती है कि वे अपने वतन के लिये सब कुछ यहाँ तक कि प्राण भी छोड़ देते हैं। शाहू भी इसका अपवाद न था। प्रतिनिधि के उल्टा पुल्टा समझा देने से शाहू निजाम का प्रशंसक बन गया था. परन्तु ज्योंही उसने निजाम द्वारा अनुचित एवम् अनधिकृत हस्तक्षेप का समाचार सुना वह आग बबूला हो उठा। उसके मन में निजाम को कुचल डालने की दुर्दमनीय कामना का उदय हुआ। वह उन सभी लोगों के प्रति क्षुभित हो उठा जो पिछले दिनों प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से निजाम के समर्थक थे। सभी को छोड़कर अब वह बाजीराव को ही विश्वासनीय मानने लगा. मानों उसके सिवा अन्य कोई भी निजाम से बदला लेने में सक्षम नहीं हैं। निजाम के प्रति उसका क्षोभ इतना प्रबल हो उठा कि उसके दमन के लिये अपनी जान तक देने को तैयार हो गया। निजाम के ही अनुचित हस्तक्षेप का यह परिणाम हुआ कि शाहू राजा ने निजाम से बदला लेने के लिये सारे अधिकार पेशवा को हस्तान्तरित कर दिया। वह स्वयम् भी सेनापति बन कर निजाम के विरुद्ध युद्ध यात्रा पर जाने को तैयार हो गया। परन्तु बाजीराव ने उसे समझाया कि ऐसा करने पर तो वह सम्भा जी का समकक्ष हो जायगा, जब कि मुगल शाहंशाह को छोड़कर कोई भी उसका समकक्ष नहीं हैं। इस युक्ति को मानकर शाहू राजा ने सारी शक्ति पेशवा में केन्द्रित कर दिया। राजा के इस कार्य का यह प्रभाव पड़ा कि मराठों में जितने भी असन्तुष्ट तथा विरोधी सर्दार व सिल्लीदार थे, सभी पेशवा की अपरिमित शक्ति से संत्रस्त होकर राष्ट्र के झंडे के नीचे आ खड़े हुये।

जब निजाम को अपने कृत्य के दुष्परिणाम का पूरा समाचार मिला तो वह यह देखकर बड़ा चमत्कृत हुआ कि किस कौशल से बाजीराव ने निजाम की चाल को अपने अनुकूल बना लिया। अब वह फिर से शाहू राजा को प्रसन्न करने की चिन्ता में पड़ा। बहुत कुछ सोच विचार कर उसने शाहू को एक पत्र लिखा। उसमें उसने अपने को राजा का शुभाकांक्षी सिद्ध करते हुये लिखा कि उसने जो कुछ किया है वह स्वयम् राजा के हित के लिये ही प्रेरित होकर किया है। वह नहीं चाहता कि राजा का राज्य कोंकनी ब्राम्हणों के हाथ में चला जाय, जिनके निजी आदमी राज्य के सभी पदों पर अधिकार किये हुए हैं। उसने लिखा कि मोकासादारों तथा कलेक्टरों के जितने भी पद थे, सब पर पेशवा के आदमी भरे पड़े थे अतः उसने उन सभों को निकाल कर उसके सम्बन्धी सम्भा जी के आदमियों को उन पर नियुक्त कर दिया है। सम्भा जी को उसका नायब नियुक्त कर दिया है और वह दक्षिण के छओं सूबों का सरदेशमुख बना दिया गया है। उसने यह भी आश्वासन दियां कि जब ब्राम्हणों के हाथों से स्वतंत्र हो जायगा तो वह उपरोक्त पदों पर फिर से अपने आदमियों को नियुक्त कर सकता है। इतना सोच विचार कर लिखा

गया कूटनीति पूर्ण यह पत्र भी निजाम की इच्छापूर्ति न कर सका। बाजीराव के कौशल व वाणी ने शाहू के मन में जो ज्वाला जला दी थी, उसका तनिक भी शमन इस पत्र द्वारा न हो सका। उल्टे इस पत्र ने आग में घी का ही काम किया। शाहू का क्रोध इतना अधिक बढ़ चुका था कि वह इन साधारण बातों से दूर होने वाला नहीं था। दोनों दलों ने अपनी अपनी तैयारियाँ शुरू कर दी और दोनों का युद्ध अनिवार्य हो गया। दोनों वर्षा के अन्त की प्रतीक्षा करने लगे ताकि वे घोड़ों के लिये पारगम्य हो सके।

निजाम अपने सहायकों के आने की प्रतीक्षा में रहने लगा। पूर्व इसके कि निजाम की सेना कुछ करने के लिये तैयार हो सके बाजीराव जालना तक पहुँच गया और सम्पूर्ण किले को तहसनहस कर दिया। नवम्बर मास के प्रारम्भ में एवज खाँ ने मराठों पर आक्रमण किया, उसके साथ निजाम की सेना का अग्रगामी दल था। बाजीराव ने कुछ समय तक उसे उलझाये रक्खा और फिर माहोर की ओर हट कर तेजी से औरंगाबाद की ओर पलट पड़ा। रास्ते में कहीं भी उसने लूटपाट का काम नहीं किया और न तो कहीं वह रुका। उसकी प्रगति तथा जल्दबाजी को देखकर दोस्त व दुश्मन सभी को भ्रम हो गया कि वह बुरहानपुर को जलाकर राख कर डालने की उतावली में भागा जा रहा है। इधर लोग इस भ्रम में थे, उधर बाजीराव खानदेश की ओर घूम गया और इस बार वह राह में पड़ने वाले पूरे देश को वीरान करता गया। आगे आगे एवज खां तथा पीछे पीछे स्वयम् निजाम ने बाजीराव का पीछा किया। पूर्व कथित भ्रम के कारण वे बुरहानपुर की ही सुरक्षा का ध्यान रख कर चल रहे थे। अपने पूरे साज सामान के साथ पीछा करने वाली सेना जब अजन्ताघाट को पार कर गयी, तो बाजीराव ने एक छोटा सा दस्ता तो भेज दिया बुरहानपुर की ओर और मुख्य सेना को लेकर वह बायें ओर को पलट कर गुजरात जा पहुँचा। गुजरात में अपनी दोरुखी चाल के कारण निजाम पहले से ही बदनाम था। सरबुलन्द खाँ का विरोध करने के कारण वह बागी के नाम से पहले से ही मशहूर था, इधर बाजीराव ने पहुँच कर एक ओर तो देश को लूटना खसोटना शुरू कियां और दूसरी ओर यह भी प्रचारित कर दिया कि यह लूटपाट निजाम की राय से हो रही है। अवसर ऐसा था कि इस झूठी सी अफवाह पर भी लोगों को विश्वास हो गया। लोगों के इस विश्वास को और भी बल इस बात से मिल गया कि बाजीराव के पीछे ही पीछे निजाम भी अपनी सेना के साथ सूरत के आसपास दिखायी पड़ा। बुरहानपुर की लूट के भ्रम में निजाम पहले वहीं पहुँचा और तब उसे अपनी भूल का पता चला, वह दक्षिण की ओर लौटा और चाहा कि पूना को बर्बाद कर दे। अभी वह अहमद नगर भी नहीं पहुँचा था कि बाजीराव ने करसरभारी घाट को पार कर उधर के इलाके को बर्बाद कर दिया। हार कर निजाम ने फिर गोदावरी पार किया और पेशवा के पीछे लग गया। छोटे मोटे युद्धों में उलझाते हुये बाजीराव उसे अपने मन चाहे स्थान पर ले आया। यहां तक ले आकर उसने जंगलों की समूची घास को जला दिया और इस प्रकार का प्रबन्ध कर दिया कि निजाम की सेना को रसद का कष्ट होने लगा। निजाम की तोपों ने मराठों का बहुत नुकसान किया, परन्तु मराठों ने अपना इतना छोटा छोटा दल बना लिया था कि बाद में चल कर तोपखाना भी बेकार हो गया। मराठों ने तोपों को खींचने वाले जानवरों को इधर उधर भंगा दिया। अन्त में मराठों ने निजाम को एक ऐसे स्थल पर ला फँसाया, जंहा मीलों तक पानी का नाम निशान तक न था। इसी स्थल पर मराठों ने निजाम की सेना को चारों ओर से घेर कर भयानक मार काट बचा लिया। निजाम की सेना

की गति पूर्ण रूप से अवरुद्ध हो गयी। उधर इस आफत से निजाम के निकल सकने के पूर्व ही रात्रि का अन्धकार भी कोढ़ में खाज के समान आ पहुँचा। निजाम जानता था कि मराठों के साथ युद्ध करने में ऐसे अवसर भी आ सकते है, परन्तु उसे आशा थी कि उसके सहायक लोग भी इसी प्रकार की रणनीति अपनायेंगे। उसने योजना यह बनायी थी कि वह तो स्वयं बाजीराव का पीछा करेगा और उसके सहायकों के आधीन छोटे-छोटे दस्ते मराठों की ही भाँति उपद्रव करते फिरेंगे। उसने अपने सहायकों के निरुत्साह होने की भर्त्सना की और उसने उनके सामने प्रस्ताव भी रक्खा कि वे लोग भी बाजीराव के ही पद चिन्हों पर चलें, परन्तु चन्द्रसेन जाधव ने कहा कि उसके अधीन सारी सेना मुसलमानों की है. और वे इस प्रकार के युद्ध में मँजे हुये नहीं हैं। सम्भा जी ने कहा कि केवल उसकी सेना छोटी ही नहीं है. वरन् उसे शक भी है कि उसके कारकुन शत्रु से मिले हुये हैं। इस विवरण से इन लोगों की गुट्टबाजी प्रकृति पर भी स्पष्ट प्रकाश पड़ता है और मराठों की चारित्रिक विशेषता पर भी। निजाम तथा सम्भा जी के बीच जब वार्तालाप समाप्त हो गया तो सम्भा जी ने निजाम को एकान्त में बुला कर कहा कि "मेरे कारकुनों को किसी भी प्रकार रूपया दिया जाय, नहीं तो वे सेना को धोका देकर सब रुपया खा जायँगे।" इधर ब्राम्हणों नें उसी प्रकार के एकान्त में निजाम से कहा कि "यदि सम्भा जी को रुपये दिये गये तो वह सब का सब नर्तकियों पर एवम् नशे बाजी में खर्च कर देगा, जिसके कारण हम लोगों को भूखों मरने की तथा सेना को विद्रोह तक करने की नौबत आ जायगी।"

अपने जीवन में मराठों का इतना बड़ा भरोसा निजाम ने कभी भी नहीं किया था। जिस प्रकार के हमले पर हमले वह सहन कर रहा था और जिस प्रकार से उसकी अपनी अकेली सेना फँस गयी थी, उन सभी बातों ने मिल कर उसे विवश कर दिया कि वह सुलह की बात चीत करे। बाजीराव ने ही एवजखाँ के माध्यम से सन्धि वार्ता प्रारम्भ की। निजाम पहले अपनी सेना को निकाल कर ऐसे स्थान पर ले आया जहाँ जल मिल सकता था। इसके बाद उसने पेशवा की माँगों को सुना। माँगें संक्षेप में इस प्रकार थीं। १—सम्भा जी को पेशवा के खेमे में भेज दिया जाय, २—मराठों को उनके उचित कर हमेशा मिलते रहेंगे, इस बात की जमानत के रूप में कुछ युद्ध के महत्व के स्थल मराठों कों दे दिये जायँ, ३—पिछला तमाम बकाया चुकता कर दिया जाय। सम्भा जी को मराठा कैम्प में भेज देने की माँग के अतिरिक्त निजाम ने पेशवा की सारी शर्तों को मान लिया। बाजीराव ने निजाम को समझाया कि सम्भा जी शाहू राजा के निकट सम्बन्धी हैं, इसलिये मराठा कैम्प में उनका सम्मान पूर्णरुपेण सुरक्षित रहेगा, परन्तु अन्त में इस बात पर समझौता हो गया कि निजाम सुरक्षा पूर्वक सम्भा जी को पन्हाला दुर्ग में पहुँचा देगा, इसके बाद शाहू को स्वतन्त्रता रहेगी कि वे अपना पारिवारिक झगड़ा चाहे जैसे निपटा लें।

एक दूसरे से नजर (भेंट) की अदला बदली होने पर जब बाजीराव और निजाम की पहली भेंट हुई, तो संधि पक्की हो जाने पर दोनों की सेंनायें लौट पड़ी। इस सन्धि के परिणाम दोनों के लिए ही लाभप्रद हुए, फिर भी बाजीराव को इससे अपार लाभ हुआ, क्योंकि इन्हीं दिनों वह गुजरात की चौथ व सरदेश-मुखी के बारे में सरबुलन्द खाँ से बातचीत चला रहा था। पहले तो सरबुलन्द खाँ ने मराठों के अभियानों को यथा शक्ति रोकने का प्रयत्न किया था, परन्तु बाद में वह अनुभव करने लगा कि यदि मराठों से सन्धि न की गयी तो सारा देश ही वीरान हो जायगा। इसी अनुभव के आधार पर वह बाजीराव के प्रस्तावों को सुनने को तैयार हो गया। बाजीराव के प्रस्ताव पर विचार करने के पूर्व उसने बार-बार मुगल दर्बार से

यह कह कर आर्थिक सहायता माँगी थी कि विस्तार लूट खसोट से यह प्रदेश इतना जर्जर हो गया है कि इस प्रदेश की आय के भरोसे कम से कम इस समय तो भरोसे लायक सेना खड़ी नहीं की जा सकती, मगर हर बार उसकी प्रार्थना बेकार गयी। मुगल दरबार से कोई भी सहायता प्राप्त नहीं हुई। इधर वह पिला जी गायकवाड़ तथा कान्ता जी से कहता रहा कि वे केवल चौथ भर ही वसूल करें, मगर वे लोग पूरी की पूरी ही लगान वसूल कर ले रहे थे। साथ ही प्रजा की सुरक्षा का उत्तरदायित्व भी वे अपने ऊपर नहीं ले रहे थे। बेचारा सरबुलन्द खाँ निरुपाय होकर अपने सूबे की बर्बादी देख ही रहा था कि चिमणा जी अप्पा एक बड़ी सी सेना लेकर आ पहुंचा और उसने पितलौद से भारी वसूली की और ढोलका को लूट लिया। बातचीत करने पर उसने अपने भाई बाजीराव पेशवा की ओर से यह शर्त रक्खी कि यदि समूचे प्रदेश की चौथ व सरदेशमुखी का अधिकार उसे दे दिया जाय तो वह लुटेरों के हाथों जनता की सुरक्षा की प्रतिज्ञा कर सकता है। हार कर सरबुलन्द खाँ ने पेशवा के प्रस्ताव को मान लिया।

उसने साहू राजा के मन्त्री तथा पेशवा के वकील शामराव को सन १७२९ में
१७२९ ई०] लिखित दस्तावेज दे दिया, जिसके अनुसार सूरत बन्दरगाह तथा जिलों को छोड़ कर समूचे प्रदेश की सरदेशमुखी (लगान का दस प्रति शत); सूरत को ही छोड़ कर समूचे प्रदेश की चौथ (२५ प्रति शत) और अहमदाबाद शहर की लगान का पाँच प्रतिशत देना तै हुआ।

इसी दस्तावेज में सरबुलन्द खाँ ने चर्चा की है कि मराठों को जो सुविधायें दी गयी हैं वे दक्षिण की बढ़ती हुई आबादी, छायी हुई जाति तथा देश की स्थिति में सुधार हो जाने के परिणामस्वरूप दी गई हैं। इस दस्तावेज में सरदेशमुखी की बातें तो साधारण सी ही हैं, परन्तु चौथ की शर्तें में कुछ विशेषतायें हैं जैसे :—लगान की केवल चौथाई रकम ही दी जाएगी, पच्चीस सौ घुड़सवार सेना सदैव इस देश में रहेंगी, एक जिले में मराठों के दो तीन से अधिक कलेक्टर नहीं रहेंगे, स्वीकृत रकमों के अतिरिक्त अन्य कोई भी रकम प्रजा से नहीं मांगी जायगी, और प्रदेश में शाही सत्ता बनाये रखने में हर प्रकार की मदद देनी होगी। इसी दस्तावेज में एक शर्त यह भी दी गई है कि शाहू राजा की ओर से बाजीराव पेशवा इस बात की प्रतिज्ञा करते हैं कि भविष्य में देश की शान्तिको भंग करने वाले असन्तुष्ट जमीदारों या सर्दारों को कोई भी मराठा सर्दार न तो कोई मदद देंगे और न कभी उनका साथ देंगे। यह एक ऐसी शर्त थी कि इसके पालन करने में बाजीराव को कान्ता जी कदम तथा त्रयम्बकराव दाभाड़े का विरोध करना ही पड़ता। ऐसा प्रतीत होता है कि दाभाड़े का एजेन्ट पिला जी गायकवाड़ देश के कोलियों तथा भीलों को मिलाये हुये था औरइसीलिये मुसलमानों के लिये भय का कारण बन गया था। इस दस्तावेज के मिल जाने पर दाभाड़े को मोकासा तथा सरदेशमुखी का एक भाग दे दिया गया। फिर भी गुजरात में बाजीराव के इस हस्तक्षेप के कारण दाभाड़े सदैव ही बाजीराव का शत्रु बना रहा।

जिस समय चिमणा जी को सहायता के लिये बाजीराव की उपस्थिति गुजरात में अनिवार्य हो रही थी, उन्हीं दिनों कोल्हापुर के राजा सम्भाजी शाहू के प्रस्तावों से नाराज होकर शेखी बघारते हुये वर्ना नदी के उत्तरी किनारे पर घेरा डालकर आसपास के प्रदेश को लूटने खसोटने लगा। वर्ना तट पर उनके सभी सामान व अनेक स्त्रियाँ उपस्थित थीं। प्रतिनिधि से इन दिनों शाहू कुछ रुष्ट सा रहता था। उसने देखा कि अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा प्राप्त करने का सुनहरा अवसर उपस्थित है। अतः एक दिन उसने अचानक सम्भाजी के डेरे पर छापा मारा और उन सभी

को पन्हाला तक खदेड़ दिया । इन दिनों सम्भाजी ऊदाजी चौहान की मन्त्रणा पर कार्य कर रहा था । सम्भाजी के साथ ही ऊदाजी को भी भागना पड़ा । डेरे की तमाम स्त्रियां, सारा सामान प्रतिनिधि के हाथ लगा । स्त्रियों में ताराबाई तथा उसकी पुत्रबधू राजस बाई भी थीं । अनेक बन्दियों एवं सारे सामान के साथ उन्हें भी सतारा लाया गया । राजस बाई कोल्हापुर के शिवाजी की विधवा पत्नी थी । उन दोनों सास पतोहू को पहरे में रखखा गया । प्रतिनिधि की इस विजय से कितने ही पुराने मामले निपट गये । कृष्णा नदी के दक्षिण तथा तुंगभद्रा के ऊपर वाला समस्त भूभाग, कुछ जिलों किलों को छोड़कर पूर्ण रूप से शाहू को मिल गये । रत्नागिरि को लेकर शाहू ने तुंगभद्रा के समीप स्थित कोपबल नामक स्थान को सम्भाजी के जिम्मे कर दिया । कोंकण का सालसत्ती से लेकर अंकोला तक का क्षेत्र कोल्हापुर के अन्तर्गत मान लिया गया ।

वर्ना नदी के दक्षिणी किनारे पर वरगाँव की गढ़ी थी, जिस पर ऊदा जी चौहान का अधिकार था । सीमावर्ती युद्धों में इस गढ़ी में कितनी ही जानें गयी थीं, इसीलिये आपसी समझौते के परिणाम स्वरूप यह गढ़ी मटियामेट कर दी गयी और ऊदा जी का उस गढ़ी का दावा अनिर्णीतावस्था में ही छोड़ दिया गया । मेरिच, तालगांव, टसनी तथा कृष्णा नदी के उत्तर के कितने ही अन्य गांव शाहू को मिल गये । बीजापुर जिले के कुछ मोर्चेबन्दी से युक्त स्थान भी शाहू को मिले । इस सन्धि में आक्रमणात्मक तथा सुरक्षात्मक धारायें भी दी गयी थीं । तुंगभद्रा के दक्षिण के देशों को यदि भविष्य में जीता गया तो उसके बँटवारे का आधार भी इसी सन्धि में तै करलिया गया । दोनों राजाओं ने अपने अपने आदमियों को जो इनाम व आनुवंशिक अधिकार दिये थे, उन्हें स्थायी बना दिया गया ।

यद्यपि ऐसे शत्रुओं की कमी नहीं थी जो पेशवा के महत्व को घटाना व उसके प्रतिद्वन्दियों की महत्ता को बढ़ाना चाहते थे, फिर भी प्रतिनिधि की उपरोक्त सफलता से बाजीराव की उस शक्ति पर या महत्ता पर तनिक भी प्रभाव न पड़ा, जो उसने पिछले दिनों एकत्रित की थी, परन्तु निजामुलमुल्क अब भी उसका विरोध करने पर तुला हुआ था । संयोग से उसे त्र्यम्बक राव दामाड़े भी मिल गया, जो बाजीराव से आन्तरिक ईर्ष्या रखता था । जब से बाजीराव ने सरबुलन्द खां से दस्तावेज प्राप्त किया था, उसी समय से दामाड़े अन्यान्य मराठा सर्दारों को गुपचुप बाजीराव के विरुद्ध एक कर रहा था और गुजरात में सैन्य-संग्रह कर रहा था । अन्त में जब उसके पास पैंतीस सहस्त्र से भी अधिक सैनिक हो गये तो वर्षा-काल की समाप्ति के बाद उसने दक्षिण की ओर जाने का निश्चय किया । बाजीराव को सेनापति के शत्रुभाव का पता था, परन्तु उसके सैन्यसंग्रह का ज्ञान रखते हुये भी वह तब तक नहीं चौंका जब तक कि उसे यह समाचार न मिला कि इस बार दक्षिण की यात्रा में निजाम भी दामाड़े का साथ देगा । इस समाचार को पाकर बाजीराव ने सोचा कि कूटनीति की इस दौड़ में उसे शत्रुओं से आगे रहना चाहिये, यद्यपि अपने सभी सहायकों को एकत्रित कर लेने के बाद भी उसके पास अपने प्रतिद्वन्दी की आधी सेना से भी अधिक सेना न तैयार हो सकी थी । सेनापति ने प्रचारित किया कि वह राजा के स्वत्व की रक्षा करने को जा रहा है । उसकी सहायता करने के लिये पिला जी गायकवाड़, कान्ता जी तथा रघू जी कदमभन्डे, ऊदा जी आनन्द राव पवार, चिमा जी पन्डित तथा अन्य कितने सर्दारों के साथ कुँवर बहादुर तत्पर थे । पर बाजीराव ने लोगों को यह समझाया कि दाभाड़े सेनापति निजामुल्मुल्क से मिल कर मराठा राज्य को दो टुकड़ों में बाँटना चाहता है, जो बुद्धिमत्ता तथा राजनीति के विरुद्ध तो है ही, साथ ही शास्त्र की पवित्र धाराओं के भी विरुद्ध है ।

पूना में बैठे-बैठे बाजीराव सभी प्रकार के समाचारों का संग्रह कर रहा था। निजाम द्वारा की जाने वाली तैयारियों के समाचार मिलने के कारण बाजारीवको शीघ्रता की आवश्यकता प्रतीत हुई। यद्यपि संख्या के हिसाब से उसकी सेना अपर्याप्त थी, परन्तु सैनिकों की उत्तमता के कारण उसका साहस कम नहीं हो रहा था। अपनी इस छोटी सी सेना के साथ वह तेजी से गुजरात की ओर बढ़ा। पूना छोड़ने के दिन से ही वह शत्रुपक्ष के सर्दारों से समझौते की वार्ता चलाता आ रहा था और आक्रमण के समय तक समझौते के प्रयत्न को चालू रक्खा। उसकी सेना का अग्रगामी दस्ता आवा जी कवड़े के सेनापतित्व में पिला जी गायकवाड़ के पुत्र दम्भा जी गायकवाड के नायकत्व में शत्रुसेना से उलझ गया था। नर्मदा पार करने के तुरन्त बाद ही कवड़े के ऊपर हमला हो गया और वह पूर्णतः पराजित हो गया। अपनी इस दुभाग्यपूर्ण पराजय के समाचार से भी बाजीराव हतोत्साहित नहीं हो सका। इस बार अपनी पूर्ण नीति को छोड़कर उसने तुरन्त आक्रमण कर दिया। पहले ही हमले में नये भर्ती किये हुए सैनिकों में भगदड़ पड गयी। इन्हीं भगोड़ों में कान्ता जी कदम भी भाग निकला। भागते समय वह अपने पुत्र को खंडेराव दाभाडे की सेना के संरक्षण में छोड़ दिया। त्र्यम्बक राव हाथी पर सवार था। अपनी सेना को भागते देखकर उसने अपने हाथी के चारों पैरों को जंजीर से बँधवा दिया ताकि हाथी भाग न सके। बाजीराव घोड़े पर था। वह अवसर की गम्भीरता के उपयुक्त ही शौर्य प्रदर्शन कर रहा था। युद्ध क्षेत्र में कहीं पर भी नाम मात्र को अनुशासन नहीं रह गया था और यह पता नहीं चलता था कि विजय किसको मिलेगी। इसी समय अचानक एक अलक्षित गोली त्रयम्बकराव को उस समय आ लगी, जब कि वह अपने धनुष पर बाण चढ़ा कर उसे खींच रहा था। उसकी मृत्यु होते ही पूर्ण क्षेत्र बाजीराव के हाथ में आ गया। इस विजय के बाद मराठों की सारी शक्ति ही बाजीराव के हाथ में आ गयी। शाहू राजा केवल नाम मात्र को ही सत्ताधारी बना रह गया।

यह युद्ध गुजरात में बड़ौदा तथा डभई के बीच में पहली अप्रैल को हुआ। इसमें जाव जी दाभाड़े, मुलो जी पवार तथा चिम्मा जी पडित बन्दी बना लिये गये। आनन्दराव पवार, पिला जी गायकवाड़ तथा कुँअर बहादुर गम्भीर रूप से घायल हुये परन्तु बचकर निकल भागे। डभई तथा बड़ौदा ये दोनों ही स्थान पिला जी गायकवाड़ के अधिकार में थे। बाद में बड़ौदा को मुगलों में ले लिया। सरबुलन्द खाँ की सलाह के मुताबिक बाजीराव की इच्छा हुई कि वह मुगलों के हाथ से उसे पुनः ले ले। अगस्त के महीने में किसी तरह एक सुलहनामा हो गया और मानसून के अन्त होने पर पेशवा सतारा को लौट गया। बाजीराव ने निजामुमुल्क को अवश्य ही दण्डित किये बिना न छोड़ा होता परन्तु निजाम एक ही कूटनीतिज्ञ था। यद्यपि उसकी एक चाल उल्टी पड़ गयी थी और उसकी तलवार स्वयं उसी के गले पर आ पड़ी थी, फिर भी उसने अति कौशल से पेशवा का ध्यान अपने ऊपर से हटाकर मुगल साम्राज्य की ओर फेर दिया और इस प्रकार वह बाजीराव के हाथों से अपना गला छुड़ा लेने में सफल हो गया।

बाजीराव प्रसन्नता से निजाम के दृष्टिकोण से सहमत हो गया। बात यह थी कि वह पहले से ही उसकी ओर बढ़ने की इच्छा रखता था। इससे एक लाभ भी था और वह यह कि ऐसे लोगों को इसी बहाने महाराष्ट्र से बाहर भेजा जा सकता था, जिनसे आन्तरिक उपद्रव की सम्भावना थी। बाजीराव अपने आन्तरिक प्रबन्ध को सुदृढ़ तथा स्थायी बनाना चाहता था और इसके लिये देश में

पूर्ण शान्ति की आवश्यकता थी। अतः सभी उपद्रवी लोगों को एक सेना में रख कर अपने भाई चिमणा जी के सेनापतित्व में पेशवा की ओर रवाना कर दिया और स्वयम् पूना तथा सतारा के आन्तरिक प्रबन्ध में लग गया। निजाम और बाजीराव के बीच इसी प्रकार के घात प्रतिघात चलते रहे और बीच-बीच में अनेक घटनायें होती रहीं। अन्त में दोनों में एक गुप्त समझौता हो गया, जिसके अनुसार निजाम ने पेशवा की श्रेष्ठता स्वीकार कर लिया और पेशवा ने निजाम को दक्षिण का अधीश्वर मान लिया।

दामाड़े से जो युद्ध हुआ था, उसका कुप्रभाव जन साधारण के मस्तिष्क पर वैसा ही पड़ा था, जैसा कि प्रायः प्रत्येक गृह युद्ध का पड़ा करता है। इस कुप्रभाव को लोगों के मस्तिष्क से हटाना सरल कार्य था भी नहीं। फिर भी पेशवा ने अपनी शक्ति लोगों को सन्तुष्ट करने का हर सम्भव प्रयत्न किया। पूना के निकट तुला गांव नाम का एक गाँव था। यह गाँव दामाड़े का इनामी गाँव था। दामाड़े प्रति वर्ष सहस्रों ब्राह्मणों को कई दिनों तक भोजन करा के उन्हें दक्षिणा दिया करता था। इस उदारता पूर्ण परम्परा को बाजीराव ने पूना में भी चालू किया। प्रति वर्ष दूर-दूर से शास्त्री और वेदपाठी ब्राम्हण इकट्ठे होते थे। कई दिनों तक ब्रह्म भोज होने के बाद सबको दक्षिणा देकर बिदा किया जाता था। धीरे-धीरे ऐसी परम्परा ही चल पड़ी।

मृत सेनापति के लड़के को सेनापति पद दे दिया गया और उसके सारे अधिकार उसके उत्तराधिकारी को ज्यों के त्यों दे दिये गये। चूंकि सेनापति का लड़का अभी बहुत ही बच्चा था अतः सेनापति की स्त्री प्रभाबाई को उसकी संरक्षिका बना दिया गया। उनका पुराना मुतल्लिक पिलाजी गायकवाड़ था। उसे ही उस पद पर स्थायी रूप से रख दिया गया।

पेशवा तथा सेनापति के बीच भविष्य में झगड़ा न हो इस लिये मध्यस्थ बन कर शाहू ने एक इकरारनामे पर दोनों को हस्ताक्षर करने पर विवश किया, जिसके अनुसार यह तै पाया गया कि गुजरात तथा मालवा में दोनों एक दूसरे के भूभाग में प्रवेश न करेंगे। गुजरात के सूबे का प्रबन्ध सेनापति के ही जिम्मे दिया गवा। यह भी तै पाया कि इस प्रान्त की आय का आधा भाग सेनापति पेशवा के द्वारा मराठा राज्य को दे दिया करेगा। सरबुलन्द खां के दस्तावेज में जिन स्थानों की चर्चा नहीं की गयी थी, यदि उन स्थानों से किसी प्रकार की वसूली हो तो वसूली का खर्च काट कर शेष रकम खजाने में जमा कर दी जाय।

सरबुलन्द खां ने मराठों को चौथ व सददेशमुखी का दस्तावेज लिखने के पहले मुगल दर्बार से प्रार्थना की थी कि यदि उसे सहायता न दी गयी तो गुजरात का सूबा ही हाथ से न निकल जायगा वरन् मुगल साम्राज्य की बदनामी होने के साथ-साथ अनेक प्रकार की आपत्तियां भी आ सकती हैं, परन्तु मुगल दर्बार के कान पर जूं नहीं रेंगी। हार कर ही सरबुलन्द खाँ ने दस्तावेज लिखा था, परन्तु जब इस दस्तावेज का समाचार मुगल दर्बार में पहुँचा तो मुगल बादशाह अत्यन्त अप्रसन्न हो उठा। उसने सरबुलन्द खां को नालायक मान कर जोधपुर के राजा अभय सिंह को गुजरात का सूबेदार बनाया। एक सेना साथ में लेकर अपना कार्यभार ग्रहण करने लिये अभयसिंह गुजरात की ओर चल पड़ा। कुछ समय तक सरबुलन्द खां ने अभय सिंह का विरोध किया, परन्तु आखिर में दोनों में समझौता हो गया और सरबुलन्द खाँ दिल्ली को चला गया, जहाँ उसके साथ जानबूझ कर बड़ा बुरा व्यवहार किया गया और उसे नाना प्रकार से अपमानित किया गया। प्रायः लोग ऐसा सोचते हैं कि यदि निजाम और बाजीराव में प्रतिद्वन्दिता की समाप्ति न हो गयी

होती तो निजाम के विरोधी सरबुलन्द खां का इतना अपमान न किया गया होता। निजामुल्मुल्क का व्यवहार परिचालित हो रहा था, मुगल दर्बार की गति विधियों से वह देख रहा था कि मराटों की शक्ति के शिखर पर था बाजीराव जैसा चतुर एवम् शक्तिशाली व्यक्ति। उसकी आंखों के सामने सरबुलन्द खाँ के ऊपर एक हिन्दू सूबेदार की नियुक्ति हो चुकी थी। बादशाह का पागलपन कोई छिपी हुई बात नहीं थी। उसके दर्बारियों का षड़यंत्र प्रेम तथा घूसपसन्द स्वभाव लोगों को ज्ञात ही थे। निजाम जानता था कि उसने बादशाह को बुरी तरह नाराज़ कर दिया है। ऐसी परिस्थिति में निजाम का यह भय स्वाभाविक ही था कि कहीं पेशवा को बादशाह दक्षिण का वाइसराय न बना दे। यदि कहीं ऐसा हो जाता तो निजाम की दक्षिण में स्वतंत्र राज्य स्थापन का स्वप्न स्वप्न ही रह जाता। इसीलिये निजाम ने बाजीराव को मुगल साम्राज्य के प्रदेशों की ओर बढ़ने को प्रेरित किया था। निजाम की चाल एक गम्भीर एवम अति उच्च स्तर की राजनैतिक चाल थी। मुगल साम्राज्य यदि बाजीराव को शत्रु मानता रहे तो उसके वाइसराय बनने का प्रश्न ही नहीं उठता था। दूसरे बाजीराव यदि हिन्दुस्तान में फँसा रहे तो उसके हाथों होने वाली दक्षिण की बर्बादी बची रहेगी और निजाम को अपनी शक्ति के संगठन का मौका मिलेगा। तीसरे यदि मुगल साम्राज्य से पेशवा की चखचख मची रहेगी तो शक्ति संतुलन निजाम के ही ऊपर निर्भर करेगा अर्थात् जिसकी ओर निजाम आ जायगा, उसी का पलडा भारी हो जायगा और इसी लिये दोनों ही उसकी सहायता के लिये लालायित रहेंगे तथा समय-समय पर उनसे मनमानी रियायतें प्राप्त की जा सकेंगी।

मालवा अभियान पर प्रस्थान करने के पूर्व बाजीराव ने निजामुलमुल्क से भेंट किया और दोनों में यह समझौता हुआ कि मालवा में जाते-आते समय पेशवा खानदेश के जिलों की रक्षा का ध्यान रक्खेगा तथा दक्षिण के छओं सूबों से पारस्परिक कर के अतिरिक्त और कुछ भी न वसूल करेगा।

पवार, होल्कर तथा सिंधिया अलग-अलग अभियानों में मालवा के विभिन्न भागों से कर वसूल कर चुके थे। प्रायः प्रत्येक बार राजा गिरधर बहादुर ने दृढ़ता से उनका मुकाबला किया था और एकाधिक बार उन्हें मार भी भगाया था।
१७३२ ई०] सन् १७२९ में चिम्मा जी पंडित तथा ऊदा जी पवार का मुक़ाबला करते समय गिरधर बहादुर मारा गया। उसके स्थान पर उसके सम्बन्धी दया बहादुर की नियुक्ति हुई। उसने बहादुरी के साथ मराठा आक्रमणों का मुकाबला किया और कई बार सफल भी हुआ परन्तु अन्त में पेशवा का भाई चिमणा जी अप्पा, पिला जी यादव तथा मल्हार राव होल्कर के सम्मिलित सैन्य का सामना करता हुआ दया बहादुर भी मारा गया। धार के समीप ताला नामक स्थान पर यह युद्ध हुआ था। नर्मदा को पार करके बाजीराव ने मालवा स्थित सेना का सेनापतित्व ग्रहण किया तथा चिमणा जी व पिला जी को इस निर्देश के साथ वापस भेज दिया कि वे दर्बार में उसके प्रभाव को बनाये रक्खें और कोकण में शान्ति स्थापित करने के लिये आवश्यक कार्यवाही करें।

उधर बाजीराव ने गुजरात छोड़ा, इधर अभयसिंह के फौजदार ने बड़ौदा पर अधिकार कर लिया, परन्तु पिला जी ने सफलता पर सफलता प्राप्त की और कितने ही युद्धों में विजयी होकर कितने ही मुख्य स्थानो को अधिकृत कर लिया था। उधर अभय सिंह के दूत सन्धि वार्ता के लिये

बराबर उसके पास आते-जाते रहते थे । सन्धि वार्ता के अन्तिम दौर के रूप में जो वार्ता हुई उसमें अभय सिंह की ओर से सन्धि की प्रारम्भिक बातों के तै होने की बात थी । ये दूत बराबर आया-जाया करते थे अतः मराठा सैन्य में इनके प्रति विश्वास व्याप्त हो चला था । अन्तिम बातचीत के दिन वे लोग सूर्यास्त तक बैठे रह गये और शाम के झुरमुटे में वे बिदा हुये । बाहर जाकर उनमें से एक व्यक्ति कुछ भूले हुये कागजों को लेने के बहाने पुनः पिला जी के डेरे में घुसा । उसने पिला जी से कहा कि वह कुछ ऐसी गुप्त बाते कहना चाहता है, जो कान में ही कही जा सकती हैं। कान में बात करने का दिखावा करते हुये उसने अपने फेंट से कटार निकाल कर पिला जी पर वार कर दिया । घाव गहरा लगा और पिला जी वहीं गिर कर मर गया । पिला जी के अंग रक्षकों ने उसी स्थान पर हत्यारे की भी हत्या कर डाली परन्तु अंधेरे में उसके अन्य सभी साथी भाग निकले । यह हत्या तोसरा नामक जिले के दकार नामक प्रसिद्ध गांव में हुई थी ।

पिला जी की हत्या के फल स्वरूप जिन सुविधाओं के मिलने की आशा अभय सिंह ने की थी, उसमें से किसी की भी पूर्ति नहीं हो सकी, क्यों कि पिला जी के मित्र बड़ौदा के समीपस्थ के देसाई ने प्रदेश के कोलियों एवम् भीलों को बहका कर समस्त प्रदेश में उपद्रव फैलवा दिया । इधर अभय सिंह ने अपनी सेना को इन उपद्रव कारियों के दमन को भेंजा और उधर उपयुक्त अवसर देख कर देसाई ने पिला जी गायकवाड़ के भाई महादजी गायकवाड़ को यहां की पूरी सूचनायें भेज दीं जो इस समय जम्बूसीर जिले का अधिकारी था । देसाई ने महादजी को बड़ौदा पर आक्रमण करने की राय दी । महादजी ने देसाई की राय पर अमल किया और बडौदा पर सन् १७३२ ई० में अधिकार कर लिया । यह समय करीब-करीब वही है, जब दया बहादुर मारा गया था । तब से लेकर अब तक यह स्थान गायकवाड परिवार के ही पास है । महादजी को जो सफलता मिली वह तो अलग की बात है, उधर पिला जी के अवशिष्ट पुत्रों में श्रेष्ठतम पुत्र दम्मा जी गायकवाड़ एक बड़ी सेना लेकर सोनगढ़ से चला और गुजरात के कई पूर्वी जिलों पर अधिकार करता हुआ, जोधपुर तक आक्रमण किया । यहाँ तक कि विवश होकर अभय सिंह ने गुजरात छोड दिया और वह अपनी पैत्रिक भूमि को सुरक्षित रखने के लिये जोधपुर चला गया ।

सन् १७३३]

मुहम्मद खाँ बंगश इलाहाबाद का सूबेदार था । अब उसकी नियुक्ति मालवा के सूबेदार पद पर हो गयी थी । मालवा में कार्यभार ग्रहण करने के कुछ ही समय बाद वह बुंदेल खंड में घुस गया और राजा छत्रशाल के राज्य में अपना प्रभाव विस्तार करने लगा । उसकी इस कार्यवाही के परिणाम स्वरूप राजा ने बाजीराव से मदद मांगी । बाजीराव ने तुरन्त मदद दिया । वह तेजी से बुन्देलखंड में घुसा और बंगश को घेर लिया । परिणामस्वरूप बंगश पास के एक किले में शरण लेने को बाध्य हुआ । उस किले में भी बाजीराव ने उसे दम न लेने दिया । अन्त में अफगानों की एक सेना लेकर मुहम्मद खां बंगश के पुत्र ने उसका उद्धार किया । मुसलमानों ने बुन्देलखंड को पूर्ण रूपेण खाली कर दिया और राजा छत्रशाल बाजीराव की सहायता से इतना सन्तुष्ट व प्रसन्न हुआ कि उसने झांसी के निकट में ही एक गढ़, तथा वह जिला भी उसे दे दिया जिसमे वह किला स्थित था । उस जायदाद की आमदनी सवा दो लाख रुपये सालाना थी । उसके अतिरिक्त उसने बाजीराव को गोदलिया हुआ पुत्र स्वीकार कर के यह वसीयत कर दी कि उसकी मृत्यु के बाद (जो वसीयतनामा लिखने के शीघ्र बाद ही हुई) बाजीराव को राजा द्वारा

अर्धाकृत सभी जिलों का तृतीयाँश मिलेगा और शेष दो तिहाई उसके आत्मजों में बंट जायगा। छत्रशाल का एक लड़का जगतराज जी देव कालपी का शासक हुआ और दूसरा लड़का बुन्देलखड का शासक हुआ। ऐसा प्रतीत हांता है कि यद्यपि ये लोग शासन अलग करते थे परन्तु उनमें सब कुछ सम्मिलित ही या यानी स्पष्ट बंटवारा नहीं हुआ था, केवल सुविधा के लिये इन लोगों ने अलग अलग प्रान्तों का शासन संभाल लिया था।

मुहम्मद खां वंगश की पराजय के बाद मुगल बादशाह ने जयपूर के राजा जयसिंह को आगरा तथा मालवा का संयुक्त सूबेदार नियुक्त किया। जयसिंह की यह नियुक्ति बाजीराव अनुकूल ही रही। अपने पिता बालाजी विश्वनाथ के साथ कितनी ही बार बाजीराव इनसे मिल चुका था। जयसिंह के सम्मुख विकट समस्या थी। एक ओर था उसका राजपूती गौरव और दूसरी ओर था मराठों से उसका सद्भाव। अपनी राजपूती शान की बात सोचते हुए राजा जयसिंह बहुत दिनों तक मराठों की मांगों पर टालमटोल करते रहे, परन्तु अन्त में उन्होंने वाजीराव के साथ एक समझौता कर ही लिया, जिसके अनुसार अगले वर्ष से उन्होंने वाजीराव के लिये मालवा का प्रशासन छोड़ दिया और थोड़े समय के लिये जयसिंह के समझाने बुझाने पर मुगल बादशाह ने भी इस समझौते की स्वीकार कर लिया।

सन् १७३४]

—०—

सोलहवाँ अध्याय

मुगल साम्राज्य की निर्बलता

[१७३४ से १७३९]

मराठों की स्थिति—रघू जी भोंसले की नयी नियुक्ति—कोंकण की स्थिति—आवन्त—आंग्रे—संधियों के विरुद्ध प्रतिनिधि के असफल अभियान—जंजीरा का विद्रोह—पेशवा की मालवा से वापसी—कोंकण में नया प्रबन्ध—वजीर खान दौरान की नीति--मुगल बादशाह द्वारा निजाम का सम्मान--मुजफ्फर खां का मराठा अभियान—होलकर के कारनामे—गुजरात के सूबेदार पद पर मोमिन खां की नियुक्ति—बाजीराव की आर्थिक विषमतायें तथा मुगल बादशाह-- निजाम का मराठों के विरुद्ध मुगल बादशाह की मदद करने का निश्चय—सआदत खां द्वारा मराठों का यमुना पार भगाया जाना—बाजी राव के कारनामे—आंग्रे समस्या तथा पुर्तगीजों से युद्ध—पेशवा तथा निजाम—अंग्रेजों का व्यवहार--मराठों की प्रगति—पेशवा तथा रघू जी भोंसले--नादिरशाह के अभिमान का समाचार—बेसीन का घेरा—नादिरशाह का लौटना।

पिछले कई अध्यायों में मैंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि मराठे गुजरात में कैसे फैले और कैसे उन्होंने मालवा में अपना पैर जमाया। मैंने उनकी गृह नीति का भी परिचय दिया है और बरार तथा कोंकण में मराठों के कारनामों का भी विवरण अब वांछित है। मालवा में मराठों के कारनामों का विवरण बाद में दिया जा सकता है। मराठों की महत्वपूर्ण कार्यवाहियों का विवरण प्रस्तुत करना ही इस अध्याय का विषय है।

कान्हो जी भोंसले सेना साहब सूबा के ऊपर पेशवा की अनुपस्थिति में ही यह अभियोग लगाया गया था कि उसने अनुशासन भंग किया है। इसी दोष में वह सतारा में नजरबन्द था और उसके स्थान पर कान्हों जी के चचेरे भाई का पुत्र रघू जी भोंसले को सेना साहब सूबा का पद दिया गया था। एक छोटी सी घुड़सवार सेना के नायक के रूप रघू जी ने कान्हो जी भोंसले के अधीन भी काम कर चुका था और कुछ दिनों तक गोंडवाना के मुसलमान शासकों के अधीन भी काम कर चुका था। उसका छोटा सा पद इस योग्य न था कि वह लोगों की नजरों में चढ़ता, परन्तु अपने छोटे से दायरे में हां उसने जिस सूझबूझ, कर्मठता, कार्यतत्परता एवम् उत्साह से काम किया था, उसीके बल पर वह मानों अपने सहकर्मियों से अलग दिखाई देने लगा। इस बात के रहस्य का पता नहीं चलता कि कान्हों जीने स्वयम् अनुशासन भंग किया था, या वह किसी षड़यंत्र का शिकार हो गया था, जिससे न केवल उसका पद ही, वरन् उसकी जागीर भी उससे छिन गयी थी। पूरी कहानी न मालूम होने पर ही इस आधार पर पेशवा को उससे अलग मान सकते है कि स्वयम् राजा शाहू की पसन्द से ही रघू जी भोंसले को उक्त पद पर बैठाया गया था।

चूंकि रघू जी एक साहसी शिकारी था और प्रायः शाहू के साथ शिकार यात्राओं में जाया करता था अतः उसने राजा की कृपा प्राप्त कर लिया और राजा के ऊपर उसका पर्याप्त प्रभाव हो गया शाहू ने उसका विवाह भी अपनी एक स्त्री की बहिन से करा दिया था । यह स्त्री शिरके परिवार की थी। सतारा एवम् नागपुर के भोंसले परिवारों के बीच एक मात्र यही सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त इन दोनों के बीच किसी भी सम्बन्ध का पता नहीं चला। सम्भव है किसी समय इन लोगों के आपस में सम्बन्ध रहे हो और एक ही गांव के पटेलगीरी के लिये एक दूसरे के प्रतिद्वम्दी रहे हों।

रघू जी भोंसले को जब बरार की सनद मिल गयी तो उसने एक प्रतिज्ञा-पत्र लिखा, जिसके अनुसार उसका वादा था कि वह राज्य की सेवा के लिये ५००० सवार रक्खेगा और आवश्यकता पड़ने पर वह दस हजार सवारों की सेना देगा एवं वह हमेशा पेशवा के साथ रहेगा या जहां भी जाने का आदेश पावेगा, वहाँ जायगा। इसके अतिरिक्त वह राजा को नौ लाख रुपया वार्षिक देगा। राजाराम के समय से ही सेना साहब सूबा को अधिकार था कि वह वसूल किये रुपयो को अपने उपभोग के लिये रख ले। रघू जी ने वह समूची रकम तथा साथ ही इनाम, नवीन जायदाद, वसूले गये करों का आधा राज्य के खजाने में जमा कर दिया करेगा।

जिस समय उपरोक्त प्रबन्ध किया गया था, उस समय श्रीपत राव प्रतिनिधि राजा के ही आदेश से कोंकण गया हुआ था। प्रतिनिधि से कान्हों जी भोंसले की विशेष मित्रता थी, अतः उसने इस बात का गम्भीर परन्तु असफल प्रयत्न किया कि कान्हो जी का दंड कुछ कम कर दिया जाय। उसने यह भी प्रस्ताव रक्खा कि बरार पाईं घाट में अकोला तथा बालापुर कान्हो जी को लौटा दिये जायं और इसके बदले में उससे दो सौ घोड़े राजा की सेवा के लिये रखने को कहा जाय। ऐसा नहीं मालूम होता कि प्रतिनिधि द्वारा प्रस्तावित प्रबन्ध माना गया था या उसके अनुसार कोई कार्यवाही हुई थी। कान्हो जी एक साहसी प्रवृत्ति का व्यक्ति था। गोंडवाना में उसने कई युद्ध जीता था और एक बार कटक पर भी आक्रमण किया था। कई वर्षों तक बन्दी जीवन बिताने के बाद सतारा में ही उतकी मृत्यु हो गयी।

मराठों में आपसी तनाव की स्थिति के समय निजाम ने कोई तैयारी की थी या नहीं, उसका पता नहीं चलता, परन्तु चिमणा जी अप्पा का विश्वास था या वह ऐसा विश्वास का भाव प्रदर्शित करता था कि मानो निजाम मराठा राज्य पर हमला करने वाला हो। इसीलिये उसने सतारा से चालीस मील पूर्व की ओर हट कर अपना डेरा डाला था। थोड़े से ही सवारों के साथ पिला जी जादव पेशवा की स्वार्थ रक्षा के लिये सतारा में रह रहा था।

जब बाजीराव मालवा में आगे बढ़ा तो उसने सोचा कि राजा के दिमाग को कोंकण के छोटे मोटे मामलों में उलझा दिया जाय। कोंकण अजीब अशान्त स्थिति में था। अधिकारों का बँटवारा, आपस में प्रायः लड़ती-भिड़ती रहने वाली अनेक पार्टियाँ, यहाँ के निवासियों की कलह-प्रवृत्ति, इन सब ने मिल कर गोआ से लेकर बम्बई तक के भूभाग को इतनी अधिक समस्याओं से भर दिया था कि कोई भी व्यक्ति आसानी से नहीं सुलझा सकता था। चूंकि इन पार्टियों का बहुत कुछ मतलब बम्बई सरकार से भी रहता था, अतः अपने (अंग्रेजों के) इतिहास के विवरण के रूप में इनकी गणना कर लेना ठीक ही होगा। वाड़ी के प्रमुख देशमुख सामन्त की पैत्रिक भूमि उसी क्षेत्र में थी, और वह उसी में रहता भी था। सतारा एवं कोल्हापुर के राजाओं

में जो सन्धि हुई थी, उसके पहले ही कान्हो जी आंग्रे ने इस पर आक्रमण कर दिया था, जिससे इनकी अत्यधिक हानि हुई थी। तभी से यह परिवार आंग्रे परिवार का शत्रु हो रहा था।

सन १७२८ के अन्त में कान्हो जी आंग्रे की मृत्यु हुई। उसके जीवन में उसकी शक्ति कम करने के जितने भी प्रयत्न किये गये, सभी असफल रहे। उसकी जलदस्युता से क्रुद्ध होकर, तथा बदजबानी से उत्तेजित होकर पुर्तगीजों से सन्धि करके अंग्रेजों ने कोलाबा पर आक्रमण कर दिया। पुर्तगीजों की स्थल सेना के साथ मैथ्यूज के सेनापतित्व में अंग्रेजों के तीन जहाजों ने कोलाबा को ध्वस्त कर देना चाहा, परन्तु पुर्तगीजों की कायरता के कारण यह सम्मिलित प्रयत्न भी असफल हो गया। यह अभियान सन १७२२ ई० में हुआ था। इसके दो वर्षों बाद डचों के सात जहाजों ने दो बममार जहाजों के साथ विजय दुर्ग (इसी दुर्ग को मुगल लोग घेरिया कहते हैं) पर आक्रमण किया। उनके साथ स्थल-सेना भी थी। वह प्रयत्न भी बेकार हो गया। आंग्रे ने कितने ही अंग्रेजी जहाजों को पकड़ लिया। अपनी मृत्यु के एक वर्ष पहले उसने अति धन-धान्य से लदे ईस्ट इंडिया कम्पनी के 'डरबी' नामक जहाज को पकड़ लिया। मराठों में एक यह सामान्य प्रवृति पायी जाती है कि सफलता प्राप्त करके वे अपने को अजेय समझने लगते हैं। आंग्रे के साथी मल्लाह भी आंग्रे के दुर्गों को अभेद्य समझने लगे थे।

कान्हों जी आंग्रे के पाँच पुत्र थे; दो विवाहित पत्नी से और तीन रखेल से। वैधानिक पुत्र ही समस्त चल-अचल सम्पत्ति के स्वामी हुये। बड़े लड़के का नाम था सक्का जी, जिसने कोलाबा को अपना निवास स्थान बनाया। छोटे लड़के का नाम था सम्माजी। वह स्वर्ण दुर्ग में रहता था। अपने पिता की मृत्यु के थोड़े ही दिनों बाद सक्का जी का भी देहान्त हो गया। सम्भाजी ने अपने सौतेले भाइयों में से बड़े को अपने पास रख लिया और शेष दोनों को कोलाबा की देख-रेख के लिये भेज दिया। मँझले भाई येसा जी के जिम्मे आन्तरिक प्रबन्ध था और छोटे भाई मन्ना जी के जिम्मे जहाजी और सैनिक व्यवस्था थी। कुछ ही दिनों बाद मन्ना जी का अपने परिवार से झगड़ा हो गया और वह पुर्तगीजों की शरण में चला गया। वहाँ से कुछ सैनिकों की सहायता लेकर वह गुपचुप सीढ़ियाँ लगा कर हाथ में तलवार लिये हुये कोलाबा दुर्ग में पहुँच गया और उसने भाई येसा जी की आँखें निकाल कर उसे कैद में डाल दिया। उधर उसके सहायक पुर्तगीज वापस गये और उधर सम्भा जी ने उस पर आक्रमण कर दिया। इधर मन्ना जी को बाजीराव की मदद मिल जाने से सम्भा जी को घेरा उठा लेना पड़ा। बाजीराव की सहायता के प्रतिदान में मन्ना जी ने कोटला तथा अन्य दुर्ग पेशवा को दे दिया।

इस समय जंजीरा का अधिपति एक सीदी था जिसे मुगल दरबार से याकूत खाँ की उपाधि मिली थी और पिछले कई वर्षों से यहाँ का अधिपति था। औरंगजेब ने कई जिलों को इसके संरक्षण में रख दिया था, जिनमें महार, रायगढ़, दबूल के जिले भी थे। याकूत खाँ ने मराठों को स्वरक्षित जिलों में कभी भी लूटपाट नहीं करने दिया, उल्टे मराठा आक्रमणों के बदले में प्रायः वह शाहू के ही राज्य पर आक्रमण करके मराठा रक्षित जिलों से कर वसूल कर लेता था। शक्ति के बल पर याकूत खाँ की पराजय को असम्भव समझ कर प्रतिनिधि, जीवा जी खण्डेराव चिटनीस तथा राजा के अन्य कई मंत्रियों ने षड़यंत्र द्वारा उसके विनाश का निश्चय किया। समुद्रतट पर डाका डालने वाले जलदस्युओं में याकूब खाँ नामक एक बड़ा ही दुःसाहसी डाकू था। उसे प्रायः लोग शेख जी के नाम से ही जानते थे। वह सिद्दी सर्दार याकूत का खां का पूर्ण विश्वस्त

था। शेख जी कोंकण के कोली राजाओं के परिवार से था और गोगढ़ पैत्रिक अधिकार युक्त पटेल था। सिद्दियों के ही आक्रमण में वह बचपन में ही बन्दी बना लिया गया था और मुसलमान बना डाला गया था। थोड़े ही दिनों में उसने अपने को ऊँचा उठा लिया और कालान्तर में जब उसे एक जहाज का कमान्डर बना दिया गया तो उसने वीरता एवम् रण-कौशल में समान ख्याति प्राप्त किया। प्रतिनिधि ने उसी शेखजी को अपना अस्त्र बनाया और उसके साथ एक गुप्त सन्धि किया, जिसके अनुसार सिद्दी सर्दार का पूरा जहाजी बेड़ा, कुछ किलों को छोड़कर सिद्दी के अधिकृत सभी भूभाग, इनाम में कई गाँव तथा पेन नदी से कोल्हापुर राज्य की सीमा तक समूचे कोंकण प्रदेश की लगान का सरगोंड़ा (२ प्रतिशत) देने का वादा किया। शेख याक़ूब के भाई को रायगढ़ में द्वितीय सेनापति बनाने का एवम् इस बगावत के सफल होने पर सिद्दी सैनिकों एवम् मल्लाहों के बीच बांटने के लिये एक लाख रुपये की स्वीकृति दी गयी।

इस योजना को सफल बनाने के लिये सन् १७३३ ई० में एक सेना कोंकण में भेज दी गयी। इस सेना के साथ थे प्रतिनिधि, उसके मुतालिक पेमाजी शिवदेव तथा ऊदाजी चौहान। यह षड़यंत्र विफल हो गया, परन्तु असफलता के कारणों का पता नहीं चलता। इसके परिणाम स्वरूप एक छोटे मोटे युद्ध की नौबत अवश्य आ गयी, जिसका दुष्परिणाम जन साधारण के ही मत्थे गया। सिद्दी सर्दार की शक्ति पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। प्रतिनिधि अवश्य ही चिन्तनीय स्थिति में पड़ गया। बात यह हुई कि चिपलूण में प्रतिनिधि डेरा डाले पड़ा था। पास में ही पर्याप्त सैनिकों से सुरक्षित गोलकोट का किला था। सर्दार ने अचानक आक्रमण करके उसे ले लिया और प्रतिनिधि के लिये कुछ न हो सका। राजा ने चिमणाजी अप्पा को बार बार प्रतिनिधि की सहायता भेजने के लिये आदेश दिया, परन्तु चिमणाजी ने कुछ भी नहीं किया। अप्रसन्नता के मारे बौखला कर राजा चिल्ला उठा कि "यदि तुम नहीं जाते तो मैं ही जाऊँगा।" अन्त में पिला जी जाधव को उधर भेजा गया, परन्तु प्रतिनिधि की मदद के लिये जाने को लोग तभी तैयार थे, जब जीते हुये भूभागों को उन्हें ही जागीर में देने का वादा किया जाय। निराश होकर बड़े ही अपमान के साथ अपनी सभी ख्याति गँवाकर प्रतिनिधि सतारा लौटा। उसी समय सिद्दी सर्दार की मृत्यु हो गयी। उसके कई लड़के थे, उनमें सबसे जेठे लड़के को (सिद्दी अब्दुल्ला को) उसके भाइयों ने कई षड़यंत्रकारियों के साथ मिल कर मार डाला ताकि सिद्दी रहमान (अब्दुल्ला के भाई) को गद्दी का वारिस बनाया जा सके। सिद्दी रहमान उस समय तक जंजीरा में नहीं था और न इस षड़यंत्र में उसका कोई हाथ ही था।

याकुब खाँ ने तुरन्त इस अवसर से लाभ उठाया और सिद्दी रहमान की सहायता को आ
गया और शाहू राजा ने भी सिद्दी रहमान की सहायता करने की प्रार्थना की, परन्तु बाजीराव की
वापसी के समय तक मराठा दर्बार कुछ भी न कर सका। इधर बाजीराव एक बड़ी
सन् १७३५ री घुड़सवार सेना के साथ होल्कर तथा सिंधिया को मालवा में छोड़कर दक्षिण को
लौटा और गोदावरी को पार करके उसने राजा को सूचित किया कि वह सीधे टुण्डा
राज पुर की ओर जा रहा है। जितनी भी सेना भेजी जा सकती थी, पेशवा का साथ देने के लिये
मालवा की ओर भेज दी गयी।

सिद्दी रहमान तथा याकूब खां बाजीराव से मिले, जिसने कुछ किलों पर आक्रमण करके
अपने अभियान का शुभारम्भ किया। फतहसिंह भोंसले तथा प्रतिनिधि बाजीराव से सहयोग करने
के लिये आगे बढ़े, परन्तु वे इतना ही कर सके कि उन्होंने शिवाजी की राजधानी को अधिकृत कर

लिया, जिसके सिल्लीदार को याकूब खाँ ने रिश्वत के बल पर पहले ही मिला लिया था। बाजीराव ने ताला तथा गोसला किलों पर अधिकार कर लिया, परन्तु उसकी प्रगति में बाधा पड़ी। सिद्दी रहमान के आगे बढ़ने के कारण, जो जंजीरा से एक पर्याप्त बड़ी सेना लेकर बाजीराव का सामना करने को बढ़ा चला आ रहा था, उसने बाजीराव पर आक्रमण किया, परन्तु मराठों की विशाल वाहिनी पर उस आक्रमण का कोई प्रभाव न पड़ा। सिद्दी रहमान मारा गया और उसकी सेना का पीछा मराठों ने राजापुर तक किया। जंजीरा के किले पर तोपें लगा दी गयीं और उधर मन्ना जी आंग्रे ने समुद्र की ओर से हमला किया।

जंजीरा को तोप दम करने का प्रयत्न प्रत्येक वर्ष मराठों द्वारा तब से किया जाता रहा था जब सम्भा जी गद्दी पर थे, और दुंडाराजेपुर मराठा शासन के अन्तर्गत था। बाजीराव ने देखा कि इस प्रकार कई महीनों में किला सर किया जा सकेगा। वह कोंकण में अधिक दिनों तक रुके रहने के दुष्परिणाम को भी समझ रहा था, अतः उसने घिरे हुये लोगों के प्रस्तावों को सुना और एक सन्धि हो गयी, जिसके अनुसार सिद्दी रहमान के अधिकारों को मान्यता देकर उसे ग्यारह महालों की लगान का आधा भाग दे दिया गया और रायगढ़, ताला, गोसला उचितगढ़ तथा बीर वाड़ी के किले मराठों को सौंप दिये गये।

इस प्रकार सिद्दी समस्या का सफल समाधान करके वर्द्धित शक्ति एवम् प्रभाव के साथ बाजीराव सतारा लौट आया और उधर का सूबेदार बना दिया गया।

बाजीराव की दक्षिण की वापसी के बाद मल्हारराव होल्कर की सेना ने आगरा से भी आगे तक आक्रमण किया, मुगल बादशाह के वजीर खान दौरान ने बजाय तलवार के कलम के जोर से मराठों की प्रगति रोकने का प्रयत्न किया। वह यह भूल गया कि यदि लुटेरू प्रवृत्ति वालों को बिना दण्ड दिये ही उनसे सुलह की वार्ता चलायी जाती है तो लुटेरों की लुटेरी प्रवृत्ति को बढ़ावा ही मिलता है और वे दुगुने उत्साह से लूटपाट करने लगते हैं। खान दौरान ने चाहा कि उसे निजाम से मदद भी न मांगनी पड़े और वह मराठों के विरुद्ध उसकी मदद भी कर दे, परन्तु बादशाह इतना उतावला हो गया था कि उसने खुल्लम खुल्ला निजाम से मदद माँगी। उधर निजाम अपने संगठन के साधनों के एकत्रीकरण में लगा था और उसके विचार से अभी वह समय नहीं आया था कि दिल्ली वाले उसे साम्राज्य रक्षक कह कर उसका स्वागत करें।

निजाम की सहायता प्राप्त करने का खान दौरान का प्रयत्न अति निर्बल था, मगर उसकी तैयारियां अवश्य ही शानदार थीं। जिस समय खान दौरान अपनी सेना के साथ दिल्ली से चला तो दिल्लीवासी अति प्रसन्न हुये थे मगर उसकी सारी तेजी का अन्त बड़े ही उपहासात्मक ढंग से हुआ। उसका भाई मुजफ्फर खाँ लुटेरों को भगाने के लिये आगे बढ़ा। उसने इरादा किया था कि वह इन लुटेरों को नर्मदा पार तक खदेड़ कर छोड़ेगा। होल्कर ने अपने हल्के फुल्के दस्तों को इस आदेश के साथ रवाना किया कि वह मुजफ्फर खाँ की सेना को दिन ही दिन में रास्ते में परेशान करें और रात को उसके खेमे में अग्निवाण फेंके। मुजफ्फर खाँ को इस तरह उलझा कर होल्कर कर वसूली करता रहा। उसे मराठा दर्बार को अदा करने के लिये रुपयों की बड़ी आवश्यकता थी, और वह इस काम में ढिलाई नहीं डाल सकता था, क्योंकि पेशवा की आर्थिक स्थिति इस समय डावाँडोल हो रही थी। मुजफ्फर खाँ सिरोंज तक आगे बढ़ा और फिर पीछे लौट आया। दिल्ली में उसका इस प्रकार स्वागत किया गया, जैसे वह बड़ी भारी विजय प्राप्त करके आया हो। उसके मित्रों से उसे बड़ा सम्मान प्राप्त हुआ यद्यपि उसके शत्रु उस पर हँसते

ही रहे। समूचा मालवा का सूबा तथा चम्बल के दक्षिण का समस्त क्षेत्र मराठों ने रौंद डाला। केवल कुछ किले ही शाही अधिकार में रह गये। कुछ किले मराठों के अधिकार में चले गये और कुछ को रुहेलों ने दबा लिया। एक वर्ष पूर्व दमा जी गायकवाड़ के कारण कान्ता जी कदम भंडे को गुजरात छोड़ना पड़ा था, अतः इस बार उसने होल्कर को राजी कर लिवा कि वह गुजरात की ओर चले। लोगों की आशा के विपरीत वे दोनों गुजरात में आ धमके और बनास नदी के किनारे तक के क्षेत्र से कर वसूल किया, अहमदाबाद के उत्तर में कई नगरों को लूटा, जिनमें ईडर और पालनपुर मुख्य थे और जितनी ही शीघ्रता से वे आये थे उतनी ही शीघ्रता से वे दोनों वापस लौट गये।

इसके शीघ्र बाद ही अभयसिंह से गुजरात का शासन ले लिया गया और उसका कार्यभार ग्रहण करने के लिये नजीबुद्दौला मोमिन खाँ को नियुक्त कया गया, परन्तु अभयसिंह का नायब अहमदाबाद छोड़ने को तैयार ही नहीं हुआ अतः उसे हटाने के लिये मोमिन खाँ को दमा जी से सुलह करनी पड़ी।

वाह्य देशों की विजय तथा आन्तरिक प्रतिद्वन्दियों को संत्रस्त बनाये रखने के लिये बाजीराव ने एक बहुत बड़ी सेना को आवश्यक समझता था। यथा शक्ति उसने सैनिकों की बहुत बड़ी संख्या रक्खी भी थी। इस बड़ी सेना का व्यय भार वहन करने में उसके ऊपर बड़ा भारी कर्ज हो गया था। उसके सैनिकों को कुछ दिनों से वेतन नहीं मिल पा रहा था। साहू-
१७३६ ई०] कारों का लाखों रुपया उसके ऊपर पहले से ही था, अतः उन लोगों ने और भी अधिक रुपया देने से इन्कार कर दिया। बकाया वेतन के प्रश्न को लेकर अक्सर उसकी सेना में नित्य ही छोटे-मोटे झगड़े हो जाया करते थे, जिनके कारण वह बहुत दुखी रहा करता था।* उसने प्राण पण से प्रयत्न किया कि उसकी आर्थिक स्थिति सुधर जाय, परन्तु उसके सुधरने की कोई राह नहीं दिखायी देती थी। उसने मालवा से चौथ व सरदेशमुखी की वसूली की, और जयसिंह के माध्यम से मुगल शाहंशाह के पास प्रार्थनापत्र भेजा कि मालवा उसे औपचारिक रूप से दे दिया जाय तथा सरबुलन्द खाँ द्वारा लिखे गये गुजरात सम्बन्धी दस्तावेज को शाही स्वीकृत मिल जाय। मुगल दर्बार के वजीरों में अधिक संख्या तूरानी मुगलों की थी। वे नहीं चाहते थे कि बाजीराव की शक्ति बढ़ने पावे। अतः वे बाजीराव की प्रार्थना मान लेने के प्रबल विरोधी थे। खान दौरान तथा मुगल बादशाह ने इन बातों की मौन स्वीकृति ही दी थी। अब जयसिंह ने उसको फिर समझाया कि बाजीराव की बात मान ली जाय। उन दोनों के राजी हो जाने के बाद, शर्तों को पेश करने के लिये बादशाह के वजीरों तथा पेशवा में बातों का जो आदान-प्रदान हुआ, उसमें दोनों ही पक्षों ने जो भूलें की, उसके परिणाम स्वरूप पेशवा का पक्ष निर्बल हो गया एवं निजाम तथा मुहम्मद शाह के बीच चल रही समझौता-वार्ता को अधिक बल मिल गया और जो बात महीनों में होने वाली थी, वह दिनों में पूरी हो गयी।

---

* बात यह थी कि उधर निजाम भी सैन्य संग्रह में जुटा हुआ थ. । सर्वाधिक शेष सैनिकों को आकर्षित करने के लिये उसने वेतन स्तर काफी ऊँचा रक्खा था। बाजीराव को भी उत्तम सैनिकों को उतनी ही आवश्यकता थी, जितनी निजाम का अतः उसे और भी ऊँचा वेतन स्तर रखना पड़ता था। इसी लिये उसकी आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ गयी थी।

पहले पहल बादशाह इस बात पर राजी हो गया कि आने वाली फसल के लिये चम्बल के दक्षिण के जिलों से मिलने वाली तेरह लाख रुपये की लगान को पेशवा के लिये छोड़ देगा। ये रुपया बाजीराव को निर्धारित समय पर तीन निर्धारित किश्तों में मिल जायगी। वह इस बात पर भी राजी हो गया था कि वह पेशवा को इस बात का अधिकार दे देगा कि वह बूंदी तथा कोटा की रियासतों से प्रति वर्ष चौथ के रूप में दस लाख साठ हजार रुपये वसूल कर सकेगा। खान दौरान का सोचना था कि इस प्रबन्ध से राजपूत राजाओं तथा मराठों में मनोमालिन्य पैदा हो जायेगा और सम्भव है कि ये आपस में ही कटने-मरने लगें। बादशाह का यह मंत्री अपने को राजनैतिक कार्यों में पेशवा से अधिक कुशल मान कर इस ढर्रे पर बातचीत चला रहा था। उसे चाहिये तो यह था कि वह बाजीराव को दंड देने की बात सोचता। राजा जयसिंह के माध्यम् से खान दौरान ने यादगार खां नामक अपने एक विशेष दूत को बाजीराव के पास इस मन्तव्य से भेजा कि वह बाजीराव से सभी आवश्यक बातें निश्चित कर ले। चौथ व सरदेशमुखी की सनदें गुप्त रूप से तैयार की गयीं और उस एजेन्ट को दे दी गयीं कि वह उन्हें सुरक्षित रक्खे। इधर पेशवा के वकील धुन्धूपन्त पुरन्धरी को (वह खान दौरान के साथ ही रहता था) इस गुप्त स्वीकृति का पता चल गया और उसने बाजीराव को इसकी सूचना दे दी। प्रत्येक सन्धिवार्ता में मराठे जितना चाहते हैं, उससे कई गुना अधिक मांगते हैं। यदि उन्हीं के प्रस्ताव को ज्यों का त्यों मान लिया जाता है तो वे अपने महत्व को और भी अधिक बढ़ा देते हैं और शिष्टाचार प्रदर्शन को ताक पर रख कर इतनी धृष्टता पर उतर आते हैं कि वह व्यक्ति उनके इस व्यवहार की कल्पना भी नहीं कर सकता, जिसने उन्हें अधीनता की ही अवस्था में देखा हो।

अपने वकील द्वारा दी गयी सूचना से बाजीराव की माँगें अत्यधिक बढ़ गयीं। वार्तालाप के क्रम में उसने कितनी ही बार समूचे मालवा प्रान्त को जागीर रूप में माँगा। उसने कहा कि जिन स्थानों पर रुहेलों का अधिकार है, वे स्थान भी रुहेलों को हटा कर उसे दे दिये जायँ। उसने मांडू, धार, रायसीन के किलों के साथ चम्बल के दक्षिण में स्थित सभी जिलों की फौजदारी व जागीर भी मांगी। उसने कहा कि या तो उसे पचास लाख रुपये वार्षिक शाही खजाने से दिये जायँ या इतने ही मूल्य की जागीर स्वरूप उसे बंगाल, इलाहाबाद, बनारस, गया और मथुरा दे दिया जाय और साथ ही साथ उसे दक्षिण के छओं सूबों का सरदेश पांडे बना दिया जाय और यह पद पीढ़ी दर पीढ़ी उसी के परिवार में रहे।

बाजीराव द्वारा मांगी गयी इन मांगों में से सबको अस्वीकृत करके बादशाह ने उसकी आखिरी माँग को इस शर्त पर मान लिया कि वह बाजीराव को शाही खजाने से छः लाख रुपया देगा। सरदेश पांडे का पद सरदेश मुखी के ही समान था। अन्तर केवल इतना ही था कि सरदेशमुखी में पूरी लगान का दस प्रतिशत मिलता था और सरदेश पाँडे गीरी में केवल पाँच प्रतिशत। खान दौरान ने निजामुल्मुल्क को आघात पहुँचाने के विचार से ही यह स्वीकृति दिलवायी थी। खान दौरान की चाल काम कर गयी और वस्तुत: निजाम मराठों से जलभुन उठा। उधर उसे मुहम्मद शाह द्वारा बार-बार प्रेरणा मिल रही थी कि वह दिल्ली आकर भग्नप्राय साम्राज्य की रक्षा करे। अतः निजाम मराठों को ही आघात पहुँचाने के विचार से अपनी कार्यप्रणाली परिवर्तित करने का विचार करने लगा। दूसरी ओर बाजीराव की अत्यधिक बढ़ी हुई मांगों की पूर्ति को बेवकूफी मान कर शाही दर्बार ने अत्यधिक वादविवाद के पश्चात् यह तै किया कि एक बहुत बड़ी

सेना तैयार की जाय। ऐसा मालूम होता है कि मुगलदर्बार का यह विचार था कि इस विशाल सेना को देखने मात्र से मराठे नष्ट भ्रष्ट हो जायँगे। राजधानी के चारों ओर के मैदानों में खेमें गड़ गये और भारी तैयारियाँ की जाने लगीं, परन्तु तैयारियों का आडम्बर जितना ही महान था, वास्तविकतायें उतनी स्वल्प थीं और उस सेना के कार्य भी उतने ही तुच्छ थे। पेशवा को जब यह समाचार मिला कि खान दौरान तथा कमरुद्दीन दोनों ही एक वड़ी सेना लेकर मथुरा की ओर आ रहे हैं, तो उसने साथ के भारी सामानों को अपने धर्मबन्धु जगतराज के पास बुन्देलखण्ड में छोड़ा और आगे बढ़ कर आगरा से चालीस मील दक्षिण यमुना तट पर आ गया। रास्ते में चूंकि बूंदावर के राजा ने वाजीराव की वात मानने से इनकार कर दिया अतः पेशवा ने उस राज्य पर आक्रमण किया तथा चारों दिशाओं से कर वसूल किया। उधर मल्हार राव होल्कर, पिला जी जाधव तथा विट्ठो जी बोले ने दोआव में भारी लूट मचा दी और तब तक लूटते रहे जब तक कि सआदत खाँ ने उन्हें यमुनापार तक न खदेड़ दिया। सआदत खाँ प्रबन्ध से चला तथा अचानक ही मराठों पर टूट पड़ा। उसने अपनी सफलता का बढ़ा चढ़ा वर्णन दर्बार को भेजा। उसने लिखा कि मल्हार राव घायल होकर भाग गया, विट्ठो जी मारा गया और तमाम मराठा सैन्य चम्बल भाग गई। दो हजार मराठे युद्ध में मारे गये तथा दो हजार यमुना मे डूब गये। सआदत खाँ के आगरा पहुंचने पर बाजीराव ने यमुना तट छोड़ दिया और थोड़ा दक्षिक्ष पूर्व को ओर हट कर खुले मैदान में आ गया, क्योंकि पहले स्थान पर बाईं ओर चम्बल नदी पड़ती थी, और उसके खेमों के बीच-बीच में सूखे नाले पड़ते थे जो उसकी रणनीति में घातक थे।

मुगल दर्बार में बहने वाले पेशवा के वकील ने सआदत खाँ द्वारा लिखित बातों की सूचना पेशवा को दी और मुहम्मद खां बंगश के साथ चल कर खान दौरान भी सआदत खाँ से मिल गया। यहाँ तक पहुँचने पर सआदत खाँ के कहने पर खान दौरान ने पेशवा के वकील को बर्खास्त कर दिया। बाजीराव का कहना था कि वह बादशाह को बता देना चाहता है कि सआदत खाँ झूठा है, मैं अब भी हिन्दुस्तान में ही हूँ और किसी भी वक्त मराठे दिल्ली के फाटक को जला सकते हैं।

जिस दिन खान दौरान सआदत खाँ से मिला, उसके छः दिन पूर्व ही बाजीराव दिल्ली की ओर चल पड़ा था, क्योंकि वह समझ गया था कि खान दौरान अवश्य ही सआदत खाँ से मिलेगा। चौड़े राज पथ को छोड़ कर वह मेवात की पहाड़ियों को लाँघता हुआ, चूड़ामणि जाट की सरहद पर होता हुआ तथा कमरुद्दीन के पड़ाव को चौदह मील से छोड़ता हुआ वह चालीस मील प्रतिदिन के हिसाब से भागा भाग जा रहा था। उस तरह की भाग दौड़ मचाते हुये उसने दिल्ली नगर के बाहर डेरा डाल दिया। नगर के बाहर आ रहे कुछ हाथियों और ऊँटों को पकड़ लिया गया और पूजन करने के लिये जाने वाले एक हिन्दू दल को भी घेर लिया गया। कुछ कारणों से बाजीराव लूट और आगजनी को इस बार तर्क कर दिया। पहले तो उसने सोचा कि यदि लूट पाट के परिणाम स्वरूप ज्यादा माल हाथ आ गया तो उसे लेकर तेजी से स्वदेश की ओर जाने में बाधा पड़ेगी। दूसरा कारण यह था कि वह समझ चुका था कि खान दौरान भी और बादशाह मुहम्मद शाह भी उसकी शर्तों में से अधिकांश को मान लेंगे, परन्तु यदि लूटपाट का बाजार गर्म किया गया तो बादशाह के नाराज होने से मागों की पूर्ति में बाधा पड़ सकती है। अतः लूटपाट के मार्ग को न अपनाकर उसने पत्र लिखा, एक वादशाह को तथा दूसरा राजा वख्तमल को। उन पत्रों में

क्या लिखा था इसका पता नहीं चलता, हां इतना पता अवश्य चलता है कि बादशाह ने कहला भेजा कि साक्षात्कार के लिये एक वकील भेज दिया जाय। बाजीराव ने यह कहकर वकील भेजने से इनकार कर दिया कि वकील तब तक नहीं भेजा जा सकता, जब तक कि एक रक्षक दल भेज कर बादशाह उसकी रक्षा का प्रबन्ध न करें। बाजीराव ने नम्रता पूर्वक एक अन्य सन्देश भेजा कि चूंकि उसे भय है कि अति समीप रहने से उसके सैनिक शहर में उपद्रव कर सकते हैं अतः वह थोड़ा हटकर झील तालाब के पास चला जा रहा है। बाजीराव की इस नम्रता को मुगल दर्बारियों ने उसकी कमजोरी माना और आठ सहस्त्र सैनिकों की एक सेना इसलिये शहर से बाहर निकली कि साहस पूर्वक वह मराठों पर हमला करे। इस फौज के आगे आगे थे मुजफ्फर खां, मीर हुसैन खां, कोका राजा शिव सिंह तथा अन्य दर्बारी। बाजीराव ने थोड़े से सिपाहियों के साथ सन्तो जी यादव को उनका मन्तव्य समझने और शक्ति आँकने को भेजा। सन्तो जी यादव के यह सूचित करने पर कि वे लोग हमला करने को आ रहे हैं, तो मल्हार जी होल्कर और उसके पीछे पीछे रानो जी सिंधिया ने बगल से घूम कर उन पर आक्रमण कर दिया और लगभग छः सौ आदमियों को घायल या मृत छोड़ कर हमलावर सेना शहर में भाग गयी। मराठों ने उनके दो हजार घोड़े भी छीन लिया, राजा शिव सिंह मारे गये और मीर हुसेन खाँ कोका गम्भीर रूप से घायल हो गय।। एक हाथी भी मराठों के हाथ लगा।

मराठों के बहुत थोड़े से आदमी मारे गये तथा एक अधिकारी * घायल हुआ। अभी यह युद्ध खतम हो हुआ था और मराठा सैनिक दम ही ले रहे थे कि कमरुद्दीन खां भी ससैन्य सामन आ पहुँचा। कमरुद्दीन खाँ की सेना से भी मराठों की एक झड़प हुई, परन्तु चूंकि इधर रात्रि का अन्धकार चला आ रहा था और उधर खान दौरान तथा सआदत खां भी आ ही पहुंचे थे, साथ ही शहर की सेना भी निकल कर कमरुद्दीन का बल बढ़ा रही थी, अतः बाजीराव ने पीछे हटने का निर्णय किया, उँजाला होने पर बाजीराव ने उस स्थल से आठ मील पश्चिम में पड़ाव डाल दिया। अगली शुबह सआदत खां– खान दौरान व कमरुद्दीन से आ मिले। बाजीराव रेवाड़ी और मन्दौर के रास्ते ग्वालियर की ओर बढ़ा और दोनों स्थानों को लूटता गया। न तो किसी ने उसे रोका और न किसी ने उसका पीछा ही किया बाजीराव की इच्छा थी कि यमुना नदी को पार करके दोआब को लूटा जाय, परन्तु उसे यह भी भय था कि कहीं निजाम उसकी मालवा की वसूली में बाधा न खड़ी कर दे। सोच विचार कर उसने भाई चिमणा जी अप्पा को लिखा कि "अगर निजामुलमुल्क नर्मदा को पार करे तो उसके पृष्ठ भाग पर टूट पड़ो और उसके पाँवों में पछाड़ी (घोड़ों के पिछले पैरों में लगाई जांने वाली रस्सी) लगा देना।"

बाजीराव को यमुना पार करने का अवसर नहीं मिला, क्योंकि दक्षिण में उसकी उपस्थिति अनिवार्य हो गयी थी। खान दौरान की इस बात पर कि बाजीराव को मालवा का प्रशासन तथा तेरह लाख रुपये दिये जायँगे, बाजीराव ने अपने वकील को तो भेजा खान दौरान की सेवा में और खुद सतारा लौट कर राजा के सामने सम्मान प्रदर्शित करके; तुरन्त कोंकण की ओर रवाना हो गया।

---

* रानोजी शिंधिया के दल का इन्द्रा जी घायल हुआ था।

कोलाबा को लेने में पुर्तगीजों ने भी मदद किया था। वादा यह था कि पुर्तगीजों को रेवादंड के पडोस के कुछ जिले मिलेंगे। चूँकि उनको ये जिले नहीं दिये गये, अतः अबकी बार वे लोग मन्ना जी के विरुद्ध सम्भा जी के सहायक बन कर अवतरित हुये। सम्भा जी ने कोलाबा पर आक्रमण कर दिया था। पेशवा को इसे व्यर्थ कर देने को भेजा गया। पेशवा उस कार्य में सफल हुआ। उसने मन्ना जी को अपनी शरण में ले लिया और शर्त यह निश्चित हुई कि वह प्रति वर्ष सात सहस्त्र रुपया नकद तथा योरप या चीन के बने तीन हजार रुपये का सामान राजा को दिया करेगा। चूंकि इस युद्ध में पुर्तगीज भी शामिल थे अतः सालसिट पर भी आक्रमण किया गया। पेशवा की सेवा में वीसा जी पन्त नाम का एक कारकुन था, उसने पुर्तगीजों की सेवा में रहने वाले देशी लोगों को मिला लिया था। मराठों ने पहले एक किले को ले लिया जो बेसीन के सामने नदी के दूसरे तट पर था। मराठों ने दुर्गरक्षक को सभी सैनिकों के साथ तलवार के घाट उतार
१७३७ ई०] दिया और नदी को अपने नियंत्रण में ले लिया, जिससे द्वीप के अन्य किलों को मिल सकने वाली सारी मदद का रास्ता बन्द हो गया। ७वीं अप्रैल को मराठों ने नदी को पार किया। उस समय तक ताना का किला पूरा नहीं हुआ था। अभी उसकी रक्षक दीवाल नहीं बन पायी थी। डॉन लोवेस सालसिट का गवर्नर था। वह वहीं पर मौजूद था। उसने स्वयम् किले की रक्षा न करके युद्ध समिति का आवाहन किया और निर्णय किया कि वह कारंजा चला जाय और कप्तान जान डि सूजा पेरीश किले की रक्षा करे। कप्तान जान डि सूजा बाँदरा स्थित सेना का सेनापतित्व करे। बाँदरा माहिम के सामने पड़ता था। पेरीश ने युद्ध की भावना से काम लिया तथा उसने मराठों को दो आक्रमणों में पीछे ढकेल दिया। दूसरे आक्रमण का सामना करते समय उसे सांघातिक चोटें लगी और उसके बाद जिस अफसर ने उसका कार्यभार सँभाला वह बौखला उठा और निर्लज्जों की तरह उस समय भाग निकला, जब कि सामने एक भी आक्रामक शेष न रह गया था। बाँदरा में कुछ स्वार्थ अंग्रेजों का भी था, अतः इसकी रक्षा के लिये अपने आदमी और शस्त्रास्त्र उन्होंने भेज दिया और शेष मामलों में वे निष्पक्ष बने रहे। अपनी इन विजयों को सुदृढ़ रखने के लिये और पुर्तगीजों के विरुद्ध निरन्तर युद्ध चलाते रहने के लिये कुछ अरब सैनिकों को सेवा में लिया और मावलियों की एक बड़ी पैदल सेना संगठित कर दिया। इसी समय दिल्ली से मिलने वाले समाचार के कारण उसे अपनी सेना के एक भाग सहित कोंकण छोड़कर चला आना पड़ा।

मुगल बादशाह ने अन्त में निजाम को दिल्ली लाकर साम्राज्य रक्षा के लिये राजी कर लिया। मालवा और गुजरात के सूबे उसे फिर से दे दिये गये, किन्तु अब की बार वे निजाम के पुत्र गाजीउद्दीन को दे दिये गये। इन सूबों को दिये जाने की शर्त यह थी कि वह मराठों को वहाँ से भगा दे। इसके अतिरिक्त निजाम को वे सभी प्रलोभन दिये गये, जिनके लालच में फँस कर वह शाही सेवा को पुनः स्वीकार कर ले।

निजाम को बादशाह ने पूरा-पूरा अधिकार दिया कि वह साम्राज्य के सभी राजाओं व सरदारों को अपने झंडे के नीचे एकत्र कर सके। इन सब लोगों के आ जाने पर निजाम युद्ध के लिये जिस समय प्रस्तुत हुआ, उस समय उसके सैनिकों की संख्या करीब चौतीस हजार थी, और हिन्दुस्तान का सर्वोत्तम तोपखाना उसके पास था। सआदत खाँ का भतीजा अबुल मंसूर खाँ

सफदर जंग* कोटा के राजा के साथ उसके पृष्ठ भाग की रक्षा को तत्पर था। पूरी सावधानी के साथ निजाम ने अपने युद्ध कार्य का मुहूर्त किया। वह दोआब में पहुँचा और यमुना नदी को अपने दाहिने रख कर कालपी में उसने फिर उस नदी को पार किया और बुन्देलखंड के राजा को अपना साथ देने के लिये विवश करता हुआ वह मालवा में दाखिल हुआ।

बाजीराव ने भी यथा शक्ति सैन्य संग्रह किया और जिस समय वह नर्मदा तट पर पहुँचा, उस समय उसके अधीनस्थ सैनिकों की संख्या अस्सी हजार † आंकी गयी। न तो भगवान राव दामाड़े ने ही और न उसके अधीनस्थ किसी कर्मचारी ने ही पेशवा का साथ दिया। रघू जी भोंसले ने यह कहकर पेशवा के आदेश को नहीं माना कि उसे डर था कि कहीं बरार पर आक्रमण न हो जाय।

जब बाजीराव ने नर्मदा पार किया, उस समय निजाम सिरोंज में था। जनवरी के महीने में सेनाओं का मुकाबला हुआ। मराठों पर प्रबल आक्रमण करने की जगह निजाम भोपाल के क़िले के पास एक सुरक्षित स्थान में अपनी सेना खड़ी किया। उसके पीछे एक विस्तृत तालाब तथा सामने एक छोटी सी नदी थी। निजाम को आवश्यकता से अधिक सावधानी ने युद्ध का पाँसा पलट दिया। मराठे चौकन्ने होकर सामने आये और जब उन्होंने शत्रु को आक्रमण करके सुरक्षित स्थान पर खड़ा देखा तो वे अपने को अधिक सशक्त समझने लगे और वास्तव में वे अधिक सशक्त हो भी गये। उन्होंने निजाम की बेइज्जती स्वयं उसकी पंक्तियों में घुस कर किया। निजाम दल की एक टुकड़ी ने युद्ध का साहस भी किया तो मराठों ने तेजी से आक्रमण करके उसे काट डाला। निजाम मन्डल के राजपूतों ने अवश्य वीरता दिखायी। राजपूत राजा जयसिंह के लड़के सेनापतित्व में कार्य कर रहे थे और बुन्देलखंड का राजा अन्य पड़ोसी राजाओं के साथ उनकी मदद कर रहा था। बूँदी के राजा को छोड़कर सभी राजा निजाम के झंडे तले आ गये थे। राजपूतों के पाँच सौ आदमी मारे गये और सात सौ घोड़ों की हानि हुई। मराठों की जो कुछ भी हानि हुई वह बिरोधी सेना के कारण नहीं बल्कि तोपों की मार के कारण हुई। स्वयं पेशवा के लेखानुसार उसके सौ आदमी मरे तथा तीन सौ घायल हुए। मराठा सैनिकों का संचालन राणोजी सिंधिया, पिला जी जाधव तथा सयाजी गूजर कर रहे थे। युद्ध के समय पेशवा निजाम के सुरक्षित स्थान से थोड़ी दूरी पर इस प्रतीक्षा में खड़ा था कि इधर निजाम अपने सुरक्षित स्थान से निकले और उधर पेशवा उसे धर दबोचे और उसे ससैन्य काट डाले, परन्तु वह प्रतीक्षा ही करता रह गया और निजाम अपनी ही जगह पर बना रह गया। उपरोक्त आक्रमण में निर्णय की स्थिति नहीं आ सकी। निजाम ने अपना समस्त सैन्य अपने चारों ओर कर दिया और खुद बीच में हो गया। इधर इतनी बड़ी सेना और उसके लिये पशुओं को रसद की कमी पड़ने लगी। सफदर जंग तथा कोटा के राजा के सेनापतित्व में एक सैन्य-दल रसद के प्रबन्ध में निकला, परन्तु मराठों ने उसे हरा कर बीच से ही वापस भेज दिया। इस दल के पन्द्रह सौ व्यक्ति मारे गये। यह विजय मल्हारराव होल्कर तथा यशवन्तराव पवार ने प्राप्त की। उधर सफदरगंज पीछे को लौटा और उधर मराठों ने सीधे भोपाल की ओर जाकर रसद का मार्ग ही बन्द कर दिया।

---

* यही आगे चलकर अवध का नवाब हुआ। यह प्रसिद्ध शुजाउद्दौला का पिता था।

† चिमणा जी ने अपने पत्र में लिखा है कि पेशवा ने ८०,००० सैनिकों के साथ नर्मदा को पार किया।

मराठों ने इस प्रकार की सरगर्मी प्रदर्शित की कि निजाम के सिपाही दिन रात युद्ध के लिये तैयार रहने लगे । उनको एक क्षण का भी विश्राम दूभर हो गया । इस प्रकार के रसद के अभाव तथा उबा देने वाली युद्ध तत्परता के कारण न केवल सिपाहियों का ही बल्कि सेनानायकों का भी जोश ठंडा पड़ने लगा । राजपूतों ने प्रयत्न किया कि यदि बाजीराव राजी हो तो वे निजाम का संग छोड़ कर चले जायँ, परन्तु पेशवा अच्छी तरह समझता था कि रसद के अभाव में सेना जितनी ही बड़ी रहेगी उतनी ही जल्दी प्रस्तुत रसद को समाप्त कर भूखो मरने लगेगी । इसीलिये वह किसी के भी इस प्रकार के प्रस्ताव पर कान नहीं दे रहा था । इस समय पेशवा की अभिलाषा थी कि उसकी यौद्धिक श्रेष्ठता की धाक समूचे हिन्दुस्तान में बैठ जाय । बाजीराव को आश्चर्य होता था कि किस प्रकार इतनी बुद्धिहीनता से निजाम ने अपने को उसके जाल में फांस दिया था । अपने भाई चिमणा जी को लिखे गये एक पत्र में उसने लिखा कि—"नवाब वृद्ध भी है और अनुभवी भी । उसने अपने को इस मुश्किलाहट में डाल लिया, यही समझ में नहीं आता । इस बार उसकी सारी धाक धूल में मिल जायगी और दिल्ली में उसकी सारी ख्याति बर्बाद हो जायगी ।"

निजाम को बचाने की तैयारियाँ हिन्दुस्तान में भी की गयीं और दक्षिण में भी । खान दौरान ने अपने प्रतिद्वन्दी की विपत्ति का समाचार आन्तरिक प्रसन्नता से सुना । बाजीराव को यह सूचना मिली कि बादशाह ने हुक्म दिया है कि जब तक वह (बादशाह) खुद न आ जाय, तब तक दिल्ली का एक सैनिक अपनी जगह से न हटे । इस समाचार को पाकर बाजीराव यह जानकर उत्तर की ओर से बेखटका हो गया कि अब उधर से कुछ होने वाला नहीं है । निजाम को दक्षिण से कुछ अवश्य आशा थी । हैदराबाद में भी और औरंगाबाद में भी सैन्य संग्रह किया गया । इधर आते समय निजाम ने अपने द्वितीय पुत्र नासिर जंग को अपना नायब बनाकर आया था । उसी ने दोनों स्थानों पर सैन्य संग्रह किया । निजाम ने अति गुप्त रूप से अपने लड़के के पास सन्देश भेजा कि जो कुछ भी मदद भेजी जा सके; शीघ्र ही भेजी जाय । इधर बाजीराब की युक्ति थी कि दक्षिण से कोई मदद न पहुँचने पावे । वह इस बात के लिये हर सम्भव प्रयत्न कर रहा था । उसने रघू जी भोंसले को लिखा, प्रार्थना किया, धमकी भी दी, परन्तु सब बेकार । वह टस से मस न हुआ । उसने राजा से प्रार्थना की कि वह सेनापति को मजबूर करे कि वह सूरत के समीप सोनागढ़ (जहाँ उन दिनों सेनापति रह रहा था) से निकल कर फौरन ही पेशवा से मिलकर उसकी मदद करे । राजा ने तुरन्त पेशवा के कहे अनुसार सेनापति को अत्यावश्यक आदेश दिया । चिमणा जी ने ताप्ती नदी पर डेरा डाला । उधर निजाम को सहायता पहुँचाने के लिये तैयार की गयी सेना औरंगाबाद के उत्तर में फूलगढ़ी नामक स्थान पर एकत्रित थी । पेशवा ने गम्भीरतम शब्दों में अपने भाई को एक-एक मराठा सैनिक को एकत्र करने को लिखा । उसने लिखा कि "फतहसिंह भोंसले, शम्भूसिंह यादव तथा सर लश्कर को दक्षिण से बुला लो । यदि दाभाड़े, गायकवाड़ तथा भंडे मुझसे मिलकर मेरी मदद नहीं कर सकते, तो वे तुम्हारे साथ ताप्ती तट पर ही रहें । हर एक मराठे को संगठित करके अपने पास रक्खो । यदि हम सब मिलकर एक महान प्रयत्न करें तो हम समूचे दक्षिण के स्वामी हो सकते हैं ।"

निजाम ने अपने स्थान से हटने की कोशिश की, परन्तु पास में भारी सामानों के होने के कारण उसे इस कार्य में असुविधा जान पड़ी, अतः प्रस्थान कर चुकने के बाद भी उसे वापस लौटना पड़ा । इसी समय मराठों के छिटपुट आक्रमण के कारण निजाम की वापस लौटती हुई सेना

भोपाल के किले की दीवारों के पास तक जा पहुँची। चूंकि बाजीराव के पास तोपें नहीं थी, परन्तु उसने अग्नि वाणों की करारी वर्षा की। इससे भी निजाम को बहुत क्षति हुई। घबराकर निजाम ने इस जाल से निकलने की आखिरी कोशिश करने की सोचा। उसने अपने भारी सामानों को भोपाल तथा इस्लाम गढ़ में जमा कर दिया। तोपखाने की छाया में निजाम की सेना ने प्रस्थान किया। मराठों ने भी तोपों को ले लेने की कोशिश की परन्तु वे सफल न हो सके। निजाम की सेना तीन मील प्रतिदिन के हिसाब से चली परन्तु मराठों के कारण सेना की प्रगति में बड़ी बाधा पड़ने लगी। आखिर में हार कर आक्रमण प्रारम्भ होने के चौबीसवें दिन* करीब ११ फरवरी को निजाम ने सिरोंज के पास दुराई सुराई नामक स्थान पर सन्धि वार्ता करने के लिये स्वहस्त लिखित पत्र भेजा, जिसमें उसने प्रतिज्ञा की थी कि वह बाजीराव को सम्पूर्ण मालवा, नर्मदा चम्बल के बीच का समूचा भूभाग सम्पूर्ण सत्ता सहित मुगल बादशाह से दिलवा देगा तथा उसे हर्जाना के रूप में पचास लाख रुपया भी दिलवा देगा। बाजीराव का कहना था कि "मैंने पूरा प्रयत्न किया कि निजाम कुछ अपने पास से दे, मगर वह अपने पास से कुछ देने को तैयार न होगा, यह मैं जानता था क्योंकि ६ वर्ष पूर्व ही मैं उसकी न दे सकने की प्रवृत्ति को भाँप गया था।"

पेशवा वहीं ठहर कर कुछ दिनों तक चम्बल के दक्षिण में स्थित क्षेत्र से रुपया वसूल करता रहा और मुगल दरबार से पत्राचार भी चलाता रहा। यहीं से उसे नादिरशाह सम्बन्धी समाचार मिले। उस समय वह कन्धार को घेरे पड़ा था। यद्यपि कुछ मुसलमान इतिहासकारों ने ऐसा लिखा है कि नादिरशाह के आक्रमण के समाचार के कारण ही निजाम ने मराठों से सन्धि कर ली, परन्तु यह सत्य नहीं प्रतीत होता, क्योंकि उस समय तक न तो दिल्ली निवासी ही चिन्तित थे और न मुगल दरबार ही। दिल्ली में सदैव की ही शाँति आमोद प्रमोद में मनाये जा रहे थे। दिल्ली वालों की यह प्रवृत्ति है कि वे आसन्न संकट के समय भी वे उतने ही मस्त रहते हैं, जितना कि संकटग्रस्त होने पर भयभीत होते हैं।

इन्हीं दिनों कोंकण में मराठों का पुर्तगीजों से युद्ध चल रहा था। पुर्तगीजों को उलझाये रखने के लिये घुड़सवारों का एक दस्ता गोआ की ओर भेज दिया गया था, जिसका अध्यक्ष था वेंकट राव नारायण घोरपड़े तथा खुन्दो जी मानकर। इन लोगों ने तारापुर के पास असीरी के किले को घेर लिया। उन दिनों पिछले गवंनर के स्थान पर डान अन्टोनियो कारडिम फामस काम कर रहा था। प्रबन्ध के मामले में उसकी बड़ी ख्याति थी। अपने खोये हुये स्थानों पर उसने फिर से अधिकार प्राप्त कर लेने में सफलता प्राप्त कर लिया था। पाँच सौ युरोपियन तथा चार हजार देशी सिपाहियों को लेकर कर्नल पेड्रों डी मेलो ने मानकर की सेना पर आक्रमण कर दिया। उसने मराठों के सारे प्रयत्नों को बेकार कर दिया और थाना के किले को पुनः हस्तगत करने की तैयारी में लग गया। उसके इस इरादे की खबर अँग्रेजों ने मराठों को दे दी और मराठों को पुर्तगीजों से सन्धि कर लेने की सलाह दी। अँग्रेज लोग मराठों के हाथ बारूद और गोलियाँ बेंचते रहे थे। इधर खुन्दो जी मानकर को नवीन सहायता भी मिल गयी। अपनी आँधी की सी गति से चलकर

---

* निजाम तीसरी रमजान से लेकर २६वीं रमजान तक घिरा रहा। आखिरी दिन ही सुलह की वार्ता शुरू हुई। इन वार्ताओं की एक प्रति सर जान मालकम को भेजी गयी थी, जब वह मालवा का विवरण लिख रहे थे।

मल्हारराव थाना तक आ पहुँचा। वह ठीक ऐसे समय से वहाँ पहुँचा कि पुर्तगीजों का आक्रमण बेकार किया जा सके। इस युद्ध में डान एन्टोनियो खुद शामिल था और इसी युद्ध में उसकी मृत्यु भी हुई।

यद्यपि बम्बई का महत्व उस समय तक कुछ भी नहीं था, परन्तु कालान्तर में यह अँग्रेजों की प्रमुख बस्ती के रूप में प्रसिद्ध हो गया। मराठों तथा पुर्तगीजों के युद्ध में बम्बई के गवर्नर ने पुर्तगीजों का भेद मराठों को बतला कर जो चतुरता दिखाई, वह व्यापारिक प्रतिद्वन्दिता तथा जातीय शत्रुता के कारण भले ही मान्य हो जाय, परन्तु हमारी राष्ट्रीय ख्याति का एक अमिट कलंक है।

पुर्तगालियों ने स्वाभाविक रूप से इस दोष को तिल का ताड़ बनाकर लोगों के सामने रक्खा। यद्यपि यह सही है कि पुर्तगालियों की शिकायत असत्य नहीं है, फिर भी उनकी यह बाता कदापि सत्य नहीं है कि अँग्रेजों ने मराठों की सहायना की और एक अँग्रेज की ही गोली से उनक कमान्डर मारा गया था। किसी भी तत्कालीन लेखक ने इस बात की पुष्टि नहीं की है। यद्यपि न्याय की मांग यह है कि हम इस शिकायत को ज्यों का त्यों मान लें, परन्तु यह कहे बिना भी ठीक नहीं होगा कि पुर्तगालियों के ही कदमों पर ही चलकर बम्बई के गवर्नर से उस प्रकार की त्रुटि हो गयी थी। सन् १६६१ में पुर्तगाल की राजकुमारी का व्याह अँग्रेज बादशाह चार्ल्स के साथ हुआ था। और उसी के दहेज में पुर्तगाल के शाह ने बम्बई का कस्बा अँग्रेजों को दे दिया था और चार्ल्स ने इसे ईस्ट इण्डिया कम्पनीं को दे दिया था। सन् १६६२ में जब अँग्रेजों ने पुर्तगालियों से बम्बई पर अधिकार माँगा तो उन्होंने यह कहकर कि सालसिट का टापू बम्बई में शामिल नहीं है, सालसिट् को बम्बई के साथ अँग्रेजों के हवाले नहीं किया। अँग्रेजों के पाँच सौ सिपाही भी इन पर अधिकार लेने के लिये आये थे, उन्हें अंजूदीव पर उतारा गया जहां की खराब जलवायु ने अधिकांश सिपाहियों को मार डाला। जो बच गये उन्होंने जिस किसी तरह भी हो सके अंजूदीव को छोड़ देना चाहिये। हारकर उन्होंने पुर्तगालियों की इच्छानुसार ही बम्बई पर अधिकार कर लिया। उसी सालसिट् को जब मराठों ने पुर्तगालियों से छीन लिया तो अँग्रेजो को एक प्रकार की खुशी ही हुई क्योंकि उन्हें यह आशा थी कि शायद कभी वे मराठों से इसे ले लेंगे।

वर्षाकाल की समाप्ति पर पेशवा का बहनोई बेंकटराव नारायण घोरपड़े गोआ के पड़ोस में अपनी सेना सहित आ गया, जबकि सिंधिया और होल्कर के चिमणा जी को कोंकण की ओर रवाना कर दिया गया। उसके साथ एक विशाल वाहिनी, बहुत सी तोपें तथा बड़ी संख्या में घुड़सवार थे। रानो जी सिंधिया ने अपने दस्ते को मुख्य सेना से अलग कर लिया और उसने जनवरी के प्रारम्भ में ही कुतुलवारी को हस्तगत कर लिया। फरवरी के पहले ही सीर- गांव को भी ले लिया और केलवा तथा तारापुर पर भी आक्रमण कर दिया। तारापुर का हमला जितना ही भयानक हुआ, उसकी रक्षा भी उतने ही भयानक रूप से की गयी। मराठों ने किले को उड़ाने के लिये चार सुरंगें खोदीं, जिनमें से दो सुरंगों ने काम किया और उन्होंने किलों को दो जगह से भेद्य बना दिया। दीवालों में बड़ी दरारें बन गयीं। अक्रामक सर्दारों में आगे

बढ़ने की होड़ सी लग गयी। रामचन्द्र हरी, यशवन्तराव पवार, तुकी जी पवार (तुका जी आंग्रे का कर्मचारी था) अपने अपने झंडे लेकर आगे बढ़ने लगे, किन्तु पुर्तगालियों ने भी हमले का करारा जवाब दिया और कुछ समय तक इस बात का पता लगाना कठिन हो गया कि जय लक्ष्मी की माला किसके गले में पड़ेगी। अन्त में रानो जी भोंसले ने खाईं को ऐसी जगह से पार कर लिया जिसके सामने कोई भी दरार न थी। उसने दौड़ कर किले की दीवार पर सीढ़ी लगा दी और हाथ में तलवार लेकर अन्दर कूद गया। इस आक्रमण का विवरण प्रस्तुत करते हुये चिमणा जी अप्पा ने लिखा है कि "पुर्तगालियों ने योरोपियन बहादुरों की तरह ही युद्ध किया।" और तब तक लड़ते रहे जब तक कि उनमें तनिक भी दम रहा। उनमें से जो जीवित रहे, शरण याचना की और उन्हें शरण दी भी गयी, पुर्तगाली सेनापति डॉन फ्रांसिडि अलारका भी इन्हीं शरण प्रार्थियों में था।

इधर पुर्तगालियों से भयंकर युद्ध लड़ा जा रहा था, उधर सेना साहब सूब रघूजी भोंसले के चाचा अमरावती के रानो जी भोंसले ने तारापुर में विजय प्राप्त की। उसके भतीजे ने मराठा साम्राज्य का विस्तार पूर्व की ओर किया। उसने कटक को लूटा और जिस समय बाजीराव निजाम को घेरे पड़ा था, रघू जी भोंसले ने इलाहाबाद तक धावा किया, वहाँ के सूबेदार गुजा खाँ को हराया और मार डाला एवं बड़े परिमाण में लूट का माल लेकर वापस लौटा। स्मरण रहे कि विभिन्न सर्दारों द्वारा किये थे विभिन्न धावे के बिना किसी अधिकारी के आदेश से ही किये गये थे, अतः बाजीराव ने इन पर प्रबल आपत्ति प्रदर्शित की। रघू जी भोंसले को दंडित करने के लिये वह पूना से चल पड़ा और आवा जी कावड़े को बरार को लूटने के लिये भेज दिया। रघू जी भोंसले ने उस पर आक्रमण करके पराजित किया और फरवरी के अन्त तक उसको बरार से भगा दिया। बाजीराव इस हानि का बदला लेने की तैयारी कर ही रहा था कि उसे नादिरशाह के आने का समाचार मिला। इस समाचार के साथ यह भी जुड़ा हुआ था कि मुहम्मदशाह पराजित हो गया, खान दौरान मारा गया, सआदत खाँ बन्दी कर लिया गया और वह फारसी विजेता दिल्ली के दरवाजे पड़ाव डाले दिल्ली की मुक्ति की शर्तें स्वेच्छानुसार तै कर रहा था। दिल्ली के मार्ग में नसीराबाद में बाजीराव को जो समाचार मिला, उसका सार यह था कि मुगल बादशाह बन्दी बना लिया गया है, दिल्ली को उजाड़ दिया गया है और सहस्त्रों की संख्या में दिल्ली वासी तलवार का पानी पी चुके हैं। इस समाचार से बाजीराव का दिल बैठ गया। पेशवा ने कहा कि रघू जी भोंसले के साथ का हमारा मतभेत इस नवीन आपत्ति के समक्ष तुच्छ है, नगण्य है, पुर्तगालियों का युद्ध कोई चीज ही नहीं है, इस समय हमारा एक ही दुश्मन है, जो फारस से आकर दिल्ली की छाती पर मूँग दल रहा है।" शायद बाजीराव को यह शक हो गया था कि नादिरशाह दिल्ली में जम कर बैठ जायगा और यहीं से अपने साम्राज्य की बागडोर सँभालेगा, परन्तु वह इस बात को भी सुनकर तनिक भी न घबराया था कि लाखों की संख्या में फारसी सिपाही दक्षिण की ओर चल पड़े हैं। इस समाचार को सुनकर बाजीराव ने कहा कि—"हिन्दू या मुसलमान के भेद भाव को भुलाकर समस्त दक्षिण देश को कन्धे से कन्धा मिला कर खड़ा होना है। केवल हमारी मराठा सेना ही नर्मदा से चम्बल तक छा जायगी।" उसने देश के उस शत्रु के खिलाफ नासिर जंग से सहायता माँगी। चिमणा जी को उसने लिखा कि कोंकण को जैसे भी हो वैसे ही छोड़ कर शीघ्र उससे मिले। पेशवा के आदेश-प्राप्ति के पूर्व ही चिमणा जी को

सेना के एक दस्ते ने खुन्दो जी नानकर के नायकत्व में वरसोवा के किलों को सर कर लिया था तथा पूरे सालसिट को पादा क्रान्त करके वेसीन पर घेरा डाल दिया था। १७ फरवरी को शंकर जी नारायण के अधीन एक और दस्ते ने इस पर आक्रमण कर दिया। किले का रक्षक नम्र होकर सामने आया और कर देने को तैयार हुआ और वादा किया कि जो कुछ जजीरा के सीदी सर्दार से मिला है, उसके सिवा पुर्तगाली जाति और कुछ नहीं चाहती। दुर्ग रक्षक का केवल भ्रम ही था कि वह विजयी ब्राम्हण इन बातों से ही मान जायगा। चिमणा जी की अभिलाषा थी कि इस महत्वपूर्ण दुर्ग को हस्तगत करके कोंकण की विजयों को स्थापित्व प्रदान कर दिया जाय, क्योंकि वह जान गया था कि इसी दुर्ग के सहारे पुर्तगाली लोग अपनी खोई शक्ति की पुन: प्राप्ति की चेष्टा में लगेंगे। इसके बल पर वे न केवल पहले से अधिकृत स्थानों पर ही पुनः अधिकार कर लेने में सफल हो जायँगे, वरन् घाट से लेकर समुद्र तक तथा डामन से बम्बई तक का कोंकण का समूचा प्रदेश ही उनके नियंत्रण में आ सकता है। इन्ही सब विचारों में पड़ कर पेशवा के इतने आवश्यक आदेश को पाकर भी उसने बेसीन को ले लेने का निश्चय किया। वह पूर्णतया समझता था कि असफल हो जाने की दशा में कितना भयानक परिणाम हो सकता है, अतः पूरे मार्च अप्रैल भर उसने घेरे के पूरे दबाव को बनाये रक्खा। खाइयों में कितने ही सिपाही रोज़ मर रहे थे, जहां ऊपर से गोलियों तथा पत्थर के बड़े बड़े ढोंको की बौछार चलती रहती थीं। अन्ततः किले की कई तोपों की गर्जना बन्द हो गयी और बाहरी दीवाल में एक दरार सा बन गया, फिर भी दरार से मराठा सेना कोई लाभ न उठा सकी। मराठे बराबर सुरंगे खोदते जा रहे थे। पांच सुरंगें तैयार तो हो गयी, परन्तु उनमें सुरंगों को खोदने में प्रयुक्त होने वाले कौशल का पूर्ण अभाव दिखायी पड़ा। सुरंग में तो आवश्यकता का आधा विस्फोट हो सका। तीन सुरंगें पास पास थी। उनमें आग लगाने पर केवल दो में ही विस्फोट हुआ। इन दोनों सुरंगों ने अवश्य कुछ चौंड़ा रास्ता बनाया, जिसमें से होकर मराठे सैनिक आगे बढ़ ही रहे थे कि पांचवीं सुरंग में भी विस्फोट हो गया और सैकड़ों की संख्या में आक्रमक सैनिक हवा में उड़कर छितरा गये। उनकी हड्डियाँ तक बिखर गयीं। पुर्तगालियों ने मराठों के ऊपर बड़ी संख्या में हथगोले फेंके और ऊपर पहुँचने वालों को संगीनो के बल पर नीचे गिरा दिया और मराठों को भारी हानि उठानी पड़ी। पुर्तगालियों ने बड़ी वीरता से दुर्ग की रक्षा की और मराठों को पीछे लौट आना पड़ा। मल्हारराव होल्कर ने एक सुरंग सेंट सेबेशिमन मीनार के नीचे अपनीं देख रेख में खुदवायी थी। उसमें आग लगायी गयी और गहरा धमाका हुआ। आधी के करीब दीवाल ध्वस्त हो गयी और उभड़ती हुई वेग तीन जलधांरा के समान मराठे अन्दर घुसने लगे। पुर्तगालियों ने एक एक इंच भूमि के लिये युद्ध किया, परन्तु मराठा सेना अन्दर धुस ही गयी। पुर्तगालियों ने नयी तोपें चढ़ाया और आग की वर्षा सी करने लगे परन्तु संख्या की कमी, रसद का अभाव, भारी थकान के कारण पुर्तगालियों को शस्त्र त्यागना पड़ा। पुर्तगामियों में ४० मरे तथा १३० घायल हुये जबकि मराठों के पांच सहस्त्र सैनिक या तो मारे गये या घायल हो गये। संधि की वार्ता कप्तान डि सूज़ पेरीशने की क्योंकि डिमेंज़ीज इसी युद्ध में काम आ गया था।

इस कार्य से फुर्सत पाकर होल्कर तथा सिंधिया पेशवा से मिलने को दौड़े, परन्तु बीच राह में

ही उन्हें समाचार मिल गया की मुहम्मदशाह को पुनः गद्दी पर बैठा कर नादिर शाह फारस को लौट गया * है । लौटते समय नादिरशाह ने सभी रजवाड़ों को पत्र लिख कर आदेश दिया कि भविष्य में कोई भी मुहम्मद शाह की आज्ञा न टाले नहीं तो उसे फिर लौट कर आना पड़ेगा । शाहू राजा तथा बाजीराव पेशवा को भी ऐसे पत्र मिले थे । बाजीराव को उसने लिखा था कि मैंने मुहम्मद शाह को फिर से बादशाह बनाया है । आप के पास इतनी बड़ी सेना थी पर आपने बादशाह की कोई मदद नहीं की. अबसे सभी को मुहम्मद शाह की आज्ञा का पालन करना चाहये, क्योंकि वह मेरा भाई है । यदि ऐसा न हुआ तो आदेश न मानने वालों को डंड देने के लिये मैं ससैन्य फिर लौटूंगा । †

---

* ईस्ट इण्डिया हाउस के बम्बई रिकार्ड के अनुसार ५ मई सन् १७३९ ई० को नादिरशाह ने प्रस्थान किया था ।

† नादिरशाह के बास्तविक पत्र का भाषानुवाद

—०—

सत्रहवाँ अध्याय

बाजीराव की मृत्यु और उसकी महानता

(१७३९ से १७४०)

निजाम की प्रतिज्ञा के अनुसार पेशवा को मालवा के बारे में सनद का न मिलना—दक्षिण के अभियान के पूर्व बाजीराव के कार्य कलाप—रघू जी भोंसले तथा कर्नाटक—पेशवा और नासिर जंग—पेशवा का उत्तर की ओर प्रस्थान-चिमणा जी तथा बाजीराव कोंकण में—बाजीराव की मृत्यु—मराठों के उदय व विकास पर एक दृष्टि—मुगल साम्राज्य तथा भारत की अन्य सत्तायें—शाही दर्बार—अवध का नवाब—राजपूत—जाटों का उदय—अलीवर्दी खां—रूहेले—दक्षिण और कर्नाटक—अर्काट—कुरनूल—सावनेर—तंजोर—अंग्रेज—फ्रांसीसी—पुर्तगीज—सूंड़ा के राजा—करवार के देसाई—मैसूर—मराठों की लगान व्यवस्था—बाजीराव का चरित्र—उसके पुत्र।

नादिर शाह के लौटने के शीघ्र बाद ही बाजीराव ने मुगल बादशाह को अपनी अधीनता प्रदर्शित करते हुये एक पत्र लिखा और साथ में एक सौ एक सोने की मुहरों की नजर भेजा। यह पत्र नजर के साथ ससम्मान ग्रहण किया गया और बाजीराव को एक शानदार खिलअत भेजी गयी। बादशाह ने बाजीराव को आश्वासन दिया कि वे १७३९ ई०] सभी पद, जागीरें, जिले और पैत्रिक अधिकार जो पूर्वकाल से ही उसे दिये गये हैं, वे सब के सब स्थायी कर दिये जायँगे और यदि वह अपनी राजभक्ति में दृढ़ रहा तो मुगल दर्बार में उसके सभी स्वार्थ न केवल सुरक्षित ही रहेंगे वरन् उनको बढ़ाया भी जायगा।

यद्यपि मालवा में न तो किसी नये सूबेदार की नियुक्ति ही हुई और न निजाम का कोई नायब ही नियुक्त हुआ, फिर भी मुगल दर्बार ने बाजीराव के पास मालवा के प्रशासन को देने की कोई सनद नहीं भेजा। बाजीराव ने उसे निजाम की अविश्वसनीयता के रूप में ग्रहण किया, परन्तु चूंकि निजाम की सेना अभी हिन्दुस्तान में ही थी और बाजीराव के कई कुशल सेनानायक कोंकण से लौट नहीं पाये थे इसलिये इसने अपनी मांगों को गम्भीर नहीं बनाया। वह अधिक उपयुक्त अवसर की ताक में लगा रहा। इस समय को उसने मालवा के प्रबन्ध को दुरुस्त करने में लगाया और पश्चिमांचल के उन राजपूत राजाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाने के उपाय में लगा रहा जो चम्बल के किनारे-किनारे कोटा से इलाहाबाद तक फैले हुये थे। विशेष रूप से उसने जगत देव तथा उसके भाई हरदेव शाह को अपना लक्ष्य बनाया। ये दोनों छत्रताल बुन्देला के बेटे थे और बाजीराव के परम मित्र थे उनके साथ बाजीराव ने एक विशेष समझौता गुप्त रूप से किया कि वे एक दूसरे की रक्षा में सहायक होंगे तथा मुसलमानों के विरोध में सदा एक रहेंगे।

दोनों दलों ने शपथ लेकर प्रतिज्ञा की । बुन्देलखंड के ये दोनों राजे इस बात पर राजी हो गये वे यमुना पर तथा चम्बल पार के हर अभियान में बाजीराव के संग रहेंगे । किसी भी विजय या उपलब्धि में उनके हिस्सों का अनुपात काम में लगे हुये सैनिकों का समानुपाती होगा । उन्होंने प्रतिज्ञा की कि यदि बाजीराव दक्षिण में युद्ध में फँस गया तो वे कम से कम दो मास तक बुन्देलखंड की रक्षा करेंगे और यदि इसके बाद भी मराठा मदद न पहुँची तो अपनी अस्थायी रूप से रक्षा करने के लिये वे किसी से भी समझौता कर लेंगे परन्तु मराठों की मदद के पहुँचते ही वे इस समझौते को भंग कर देंगे । राजा छत्रसाल ने जो भूभाग बाजीराव को दिया था, उसकी वार्षिक मूल्यांकन पांच लाख रुपया किया गया ।

पेशवा के लिये यह प्रबन्ध इसलिये अत्यावश्यक था कि उसे भय था कि दक्षिण में निजाम के साथ या कर्नाटक में उलझने पर वहीं कोई उत्तर से आक्रमण न कर बैठे और मराठे दो पाटों के बीच में पड़ जायँ । निजाम के विरुद्ध उसकी पिछली सफलता, निजाम की प्रतीज्ञा भंग, उसका बढ़ा हुआ वय, उसकी मृत्यु के बाद उसके लड़कों में संघर्ष की आशंका तथा उसकी समस्त दक्षिण विजय की अभिलाषा इत्यादि ऐसे कारण थे, जो पेशवा को निजाम से संघर्ष करने की प्रेरणा अवश्य दे रहे थे, परन्तु उसके साधनों की कमी एक ऐसी अड़चन थी जिसके कारण बाजीराव इतना बड़ा काम हाथ में लेने से हिचकिचा था । उधर यह सम्भावना कि शायद वह लूट पाट करके अपने कर्ज को पूरा कर सके, तथा आरकाट में कुछ अनुकूल वातावरण की सृष्टि इत्यादि ऐसे कारण थे जो उसे निरन्तर कर्नाटक की ओर आकर्षित करते रहते थे । बाजीराव की स्वयम् की स्थिति भी कुछ ऐसी उलझन पूर्ण थी कि वह दक्षिण को अपने अभिनय प्रदर्शन के हेतु एक उपयुक्त रंगमंच समझ रहा था । हर झगड़े का दल या दमाजी गायकवाड़ के दल (दमा जी उमाबाई का एजेन्ट था और बड़े होने पर भी यशवन्त राव की अयोग्यता के कारण उसका सारा काम दमा जी के हाथों में जा पड़ा था) के पास बड़े साधनों का अभाव न था । ये दोनों ही पूर्व उल्लिखित कारणों से बराबर पेशवा से शत्रुता रखते चले जा रहे थे ।

रघू जी भोंसले ब्राम्हणों की सत्ता का प्रबल विरोधी था । वह राजा को अपने हाथ में करके एक सफल क्रान्ति के सुनहरे स्वप्न में खोया हुआ था । उधर शाहू के कोई उत्तराधिकारी न होने की भी सम्भावनायें ही अधिक थीं । इसलिये भी रघू जी के सामने यह आशा भी थी कि शायद राजा उसे ही अपना उत्तराधिकारी बना ले । एक ही मराठा सरदार ऐसा था, जिसके उत्तराधिकारी बनाये जाने की आशा रघू जी से भी अधिक थी, परन्तु उसने सैनिक कार्यों में कोई भी योग्यता नहीं प्रदर्शित की थी । अपनी योजनाओं को सफल बनाने में रघू जी के भी सामने कठिनाइयाँ थीं । यद्यपि उसके सिवा दाभाड़े का दल भी पेशवा से शत्रुता रखता था, फिर भी राजा को हरदम घेरे रहने वाले आदमियों में पेशवा के ही आदमी भरे पड़े थे और यद्यपि उनका सम्पूर्ण नियन्त्रण राजा पर न था तो भी वे लोग उसके काम को पूर्ण नियन्त्रित किये हुये थे । सारा प्रबन्ध ऐसी कुशलता से बाजीराव ने किया था कि न तो रघू जी भोंसले ही और न दमा जी गायकवाड ही कोई काम बिना ब्राम्हणों के जाने न कर पा रहे थे । यदि बाजीराव उस स्थिति का त्याग भी कर देता, जो इन दोनों के भू भागों के बीच में पड़ता था, तो भी उनके संयुक्त होकर काम न कर पाने की ही सम्भावनायें अधिक थीं ।

पेशवा और रघू जी की शत्रुता का सूत्रपात हुआ था रघू जी द्वारा इलाहाबाद की लूट से

और इस कार्य में फँसकर बाजीराव की मदद न करने से। अपने पदग्रहण के पूर्व रघू जी ने प्रतिज्ञा की थी कि वह पेशवा के साथ हमेशा रहेगा और पेशवा के आदेशों का पालन करेगा, परन्तु जब निजाम को घेरने के समय पेशवा ने रघू जी को अपनी मदद के लिये बुलाया तब वह उपस्थित न हुआ। पेशवा का कहना था कि उसे नर्मदा से उतर कर वसूल करने का कोई अधिकार नहीं है। सन १७३८ में पूना से प्रस्थान करते समय पेशवा ने घोषित किया था कि कि सभी सरदारों के द्वारा जीते गये प्रदेश और लूटे हुए माल स्वयं उनके न होकर संयुक्त मराठा संघ के हैं। नादिरशाह के आक्रमण के कारण पेशवा की रघू जी को दंडित करने की अभिलाषा मन में दबा लेनी पड़ी थी, मगर वह अभिलाषा दबी ही थी उसका अन्त नहीं हुआ था। अब केवल एक यही बात उन लोगों को (पेशवा और रघू जी को) खुले युद्ध से रोके हुए थी कि वे दोनों डरते थे कि कहीं दो के संघर्ष में तीसरे की न बन आवे।

इस प्रकार की स्थिति के कारण मराठों का प्रभाव क्षेत्र विस्तृत तो होता रहा, परन्तु वह भी भी स्थायी न हो सका। हमारा दुर्भाग्य यही है कि इस उलझन का विवरण प्रस्तुत करने के लिये हमारे पास योग्य सामग्री का पूर्ण अभाव है। केवल इतना ही है कि वे दोनों आपस में मिलकर वैठें और किसी समझौते पर पहुँच गये।

जो कुछ कहा जा चुका है, उससे भी और आगे घटित होने वाली घटनाओं से भी इसी वात की पुष्टि होती है कि पेशवा ने रघू जी से सहयोग प्राप्त करने के लिये अवश्य ही अपनी योजना का यथा आवश्यक अंग उसे अवश्य ही बताया होगा। रघू जी की महत्वाकांक्षा को उकसाने के लिये पेशवा ने अवश्य ही दक्षिण विजय तथा बंगाल व हिन्दुस्तान के बँटवारे की वात चीत की होगी। शीघ्र ही मराठों के कर्नाटक में टूट पड़ने का कारण भी उनके इस सम्मिलन में ही छिपा हुआ है।

चूँकि निजाम हिन्दुस्तान में था अतः बाजीराव ने अपनी दक्षिण योजना का कार्यान्वयन नासिर जंग को घेर कर प्रारम्भ किया। यह कार्य उसी वर्ष के अन्त में हुआ। निजाम का द्वितीय- पुत्र नासिर जंग औरंगाबाद में दस हजार सैनिकों के साथ डेरा डाले पड़ा था। उसे शीघ्र ही अपनी दूसरी बड़ी तथा तोपखाने से युक्त सेना की सहायता भी प्राप्त हो जाने से नासिर जंग की शक्ति द्विगुणित हो उठी तथा उसने स्वयं बाजीराव की सेना पर आक्रमण कर दिया और मराठा सेना की तनिक भी पर्वाह न करते हुये गोदावरी को पार करके वह अहमदनगर की ओर बढ़ा और रास्ते में पड़ने वाले गाँवों को लूटता पाटता आगे बढ़ने लगा। इसी समय पेशवा के साथ चिमणा जी भी आकर मिल गवा। पेशवा ने नासिर जंग की आगे को बढ़ने वाली पर सेना तावड़तोड़ इसने आक्रमण किये कि विवश होकर नासिर जंग को पीछे हटना पड़ा और वह गोदावरी की ओर लौटा। कई महीनों तक शस्त्र परीक्षा चलते रहने के वाद इस अलाभकर युद्ध से मराठे ऊब से गये और मूँगीपट्टन में दोनों ने समझौता कर लिया कि वे शान्ति से रहेंगे तथा दक्षिण में कोई लूट पाट न होगी। हिंदिया तथा किरकी के जिले बाजीराव को जागीर में मिले और बिन, पूना और सतारा को लौटे हुये ही पेशवा ससैन्य हिन्दुस्तान की तरफचला गया। उधर पेशवा का बड़ा लड़का बाला जी कोंकण में युद्ध कर रहा था। चिमणा जी उसकी सहायता के लिये कोंकण की ओर चला गया।

सन् १७४०]

सम्भा जी आंग्रे ने अपने भाई मन्ना जी के हाथ से कोलाबा को प्राप्त कर लेने की आशा को तिलांजलि नहीं दिया था। मराठों को अन्यत्र फँसा हुआ देखकर उसने मन्ना जी के क्षेत्र पर फिर आक्रमण कर दिया और चूल, अलीबाग, थूल तथा सागरगढ़ को अधिकृत कर लेने के बाद उसने कोलाबा पर घेरा डाल दिया और किले में जाने वाले पानी के श्रोत को काट दिया। मन्ना जी ने बाजीराव से सहायता माँगी। वह इस समय सतारा में राजा के पास था। मन्ना जी की मदद के लिये पाँच सौ सैनिकों का एक दस्ता इस काम के लिये रवाना कर दिया गया और चिमणा जी को निर्देशित करने के लिये पत्र भेज दिया गया। चिमणा जी ने अपने भतीजे को कोलाबा जाने का आदेश दिया था और बम्बई के अंग्रेज गवर्नर को लिखा था कि वह किले में घिरे हुये लोगों की मदद करे और उन तक जल पहुँचा देने की व्यवस्था कर दे। आदेश पाने के पांचवें दिन बाला जी (बाजीराव का ज्येष्ठ पुत्र) कोलाबा पहुँच गया। सम्भा जी का एक सैनिक दस्ता हीराकोट की आड़ में पड़ा था। बालाजी ने पहले ही हल्ले में उस दस्ते को सम्भा जी के मुख्य कैम्प की ओर भगा दिया। उस दस्ते के पचीस तीस व्यक्ति मारे गये और सम्भा जी का सौतेला भाई तुजा जी आंग्रे बन्दी बना लिया गया। अंग्रेज बालाजी से पहले ही वहाँ पहुँच कर सम्भा जी को सुवर्ण दुर्ग की ओर हटा दिया था और उसे समुद्र तट के खेमों को हटा लें जाने को बाध्य कर दिया था। सम्भा जी ने अंग्रेजों से लिखित प्रार्थना की कि उसे सुवर्ण दुर्ग चले जाने दिया जाय परन्तु अंग्रेजों ने इस पर ध्यान ही नहीं दिया। इसके बाद सम्भा जी किस प्रकार बच निकला इसके विषय में मराठे प्रपत्र मौन हैं। चिमणा जी ने बाला जी से मिल कर रेवा दंड को हस्तगत करने के प्रयत्न में लगा ही था कि उन्हें बाजीराव की मृत्यु का समाचार मिला। बाजीराव की मृत्यु नर्मदा के किनारे कलमड़े नामक मौजे में २५ अप्रैल सन् १७४० में हुई। इस समाचार के पाते ही शंकर जी नारायण को कोंकण का सूबेदार बना दिया गया। वहाँ के सैनिक खुन्दो जी मानकर के आधीन कर दिये गये और तेरह दिन का अशौच मना कर चिमणा जी तथा बाला जी पूना आये और फिर सतारा चले गये।

मराठों के इतिहास में बाजीराव की मृत्यु एक ऐसी महत्वपूर्ण घटना है कि इस पर थोड़ा रुक जाने की आवश्यकता प्रतीत होती है। यह तो सर्व विदित है कि इस जाति का उदय ही रियासतों की बिगड़ी परिस्थितियों के ही कारण हुआ था, फिर भी जिन सत्ताओं से उनका संघर्ष हुआ, तथा जिन शक्तियों से उनकी मित्रता रही, एक बार उन सभी शक्तियों एवम सत्ताओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किये बिना यह विषय अधूरा सा लगेगा। पाठकों को यह तो मालूम ही हो गया है कि मराठे कौन थे, हाँ हमारे योरोपियन पाठकों का इनसे स्वल्प परिचय ही होगा, क्योंकि एक शताब्दी पूर्व के इतिहास में इनका नाम ही न था * फिर भी इन लोगों ने साम्राज्यों को उलट दिया और दिल्ली से मद्रास तथा बंगाल से बनास नदी तक के प्रदेश को पदा क्रान्त करके छिन्न-भिन्न तथा नष्ट भ्रष्ट कर दिया। यदि इनके कार्यों का संक्षिप्त परिचय नहीं दिया जाता तो पाठकों को इनकी विजयों का भारतीय इतिहास में क्या महत्व है, इसका परिचय पाठकों को न मिल पायेगा। सत्रहवीं शताब्दी में मुसलमानों के युद्ध, शिवाजी की योजनायें तथा विजय, शिवाजी की मृत्यु के उपरान्त

---

* राजाराम की मृत्यु के समय तक योरोप वालों को मराठा जाति के रूप में ये लोग अज्ञात थे। वे शिवाजी को जानते थे न कि मराठा जाति को।

दक्षिण की स्थिति, नियंत्रिका शक्ति के अभाव, असामाजिक तत्वों का उदय, मराठों की लुटेरु शक्ति का संगठन तथा उसके संचालन करने की शक्ति (जिसे औरंगजेब ने शाहू के हाथों में दे दिया था) ये सभी बातें मिलकर मराठों की उस महती शक्ति की जन्मदात्री है, जिसके बल पर दो सौ वर्षों तक भारत भूमि उनके घोड़ें के टापों की गूंज से गूँजती रही और रोते बालक मराठों का नाम लेकर चुप कराये जाये रहे। मराठों की शक्ति के उदय के अतिरिक्त और भी कारण थे, जिन्होंने मुगल साम्राज्य को ध्वस्त करके रख दिया। बाजीराव की मृत्यु के समय मुगल साम्राज्य तो ढह चुका था, अवलिष्ट रह गये थे केवल उसके ध्वंसावशेष, जिन पर रात दिन लूट खसोट मची रहती थी।

मुगल बादशाह मुहम्मद शाह की स्वतंत्रता और गद्दी एक निरंकुश विदेशी के हाथों में जाकर भी फिर वापस मिल गयी थीं। दिल्ली की लूट से परिणामस्वरूप ३० लाख पाउण्ड स्टर्लिंग का माल दिल्ली से निकल गया था, इसके सहस्त्रशः निवासी फारस के निर्दयी सिपाहियों के हाथों मौत के घाट उतर चुके थे तथा मुगल साम्राज्य के काबुल, ठठा तथा मुल्तान सूबों को नादिर शाह ने ले लिया था।

फारसियों के साथ जो छोटा सा युद्ध हुआ था, उसमें खान दौरान की मृत्यु हो चुकी थी अतः उसकी जगह पर कमरुद्दीन खाँ वजीर बनाया गया था। वह निजाम का मित्र था अतः यह कहना ठीक ही होगा कि दर्बार में तूरानी सर्दारों का ही बोलबाला था, यद्यपि बादशाह की इच्छा ऐसी नहीं थी। अमीरुलउमरा की उपाधि से बिभूषित निजाम कुछ दिन तक दिल्ली में ही बना रहा, परन्तु जब उसे समाचार मिला कि उधर दक्षिण में उसका द्वितीय पुत्र नासिर जंग बगावत की तैयारी कर रहा है तो अमीरुलउमरा का खिताब अपने ज्येष्ठतम् पुत्र गाजी उद्दीन को देकर वह दक्षिण की ओर चल पड़ा।

नादिरशाह के दिल्ली छोड़ने के पूर्व ही अवध के नवाब सआदत खाँ की मृत्यु हो चुकी थी और उसकी गद्दी पर उसका भतीजा और दामाद अब्दुल मंसूर खाँ सफदर जंग बैठ चुका था।

मुख्य राजपूत रजवाड़े अभी तक मुगल बादशाह को कर दिया करते थे। इनमें जयपुर, जोधपुर तथा उदयपुर मुख्य थे। जोधपुर तथा उदयपुर को तों मराठों की आंशिक लूट का सामना करना पड़ा था, परन्तु चूंकि जयसिंह एवम् बाजीराव में शुरु से ही मित्रता पूर्ण सम्पर्क था अतः जयपुर इस प्रकार की लूट से सर्वथा सुरक्षित रह गया।

जाट लोग सिंध तीर के थे और मूलरूप में शूद्र थे। औरंगजेब की मृत्यु के पूर्व से ही वे आगरा तथा जयपुर के बीच के भूभाग में बस गये थे। अशान्ति का लाभ उठा कर जाटों का सरदार चूड़ामन जाट ने शक्ति संग्रह कर लिया था और एक बार औरंगजेब की सेना के सामान को लूटकर इसी लूट के धन से भरतपुर का किला बनवा लिया था तथा उसकी पूरी मोर्चेबन्दी भी कर ली थी। यद्यपि मराठों और जाटों के निवासस्थलों के बीच पर्याप्त दूरी थी, फिर भी मराठों की शक्ति के फलस्वरूप ही जाटों की शक्ति उदित हुई थी। यही कारण था कि इन दोनों शक्तियों में प्रायः सर्वदा ही मित्रतापूर्ण सम्पर्क बना रहा।

इसी समय के आसपास बलापहारी अलीवर्दीखाँ ने बंगाल, विहार तथा उडीसा में अपनी सत्ता स्थापित करली। वह प्रारम्भ में बंगाल के नवाब शुजाउद्दीन खाँ के आधीन छोटी सी नौकरी पर था। बाद में उसे बिहार का नायब बना दिया गया। नवाब शुजाउद्दीन खाँ का वारिस

सरफराज खाँ ढाका में नियुक्त था, नवाब का दामाद मुर्शिद कुली खाँ उड़ीसा का नायब सूबेदार था और उसका दीवान था अरब निवासी मीर हबीब। नवाब की मृत्यु पर सरफराज खाँ नवाब बना, परन्तु अलीवर्दी खाँ ने विद्रोह करके सम्मुख युद्ध में उसे मार डाला। उसने मुर्शिद कुली खाँ को भी उड़ीसा से खदेड़ दिया। मीर हबीब पहले तो भागा मगर बाद में अलीवर्दी खाँ की सेवा में आ गया। अलीवर्दी खाँ ने सरफराज की बहुमूल्य दौलत का एक अंश मुगल बादशाह को नजर देकर अपनी नवाबी की स्वीकृति ले ली।

दिल्ली के पास पडोस में नवीन रियासतों का जन्म हुआ, इनमें से रुहेलों की रियासत मुख्य थी। इस रियासत की स्थापना एक अहीर के लड़के ने की, जिसे एक अफगान ने पाल पोस कर अहमद अली रूहेला का नाम दिया था। उसके इसी नाम के कारण उसके सभी साथी रुहेला कहलाये। उसने अपनी उन्नति शुरू की मुरादाबाद के नायब सूबेदार के अधीन एक अफगानी दस्ते के नायब के रूप में। ऊंची लगान अदा करने का लालच देकर नायब सूबेदार से उसने कुछ जमीन ले ली और उसे बढ़ाने लगा। जब उसके अनधिकृत बढ़ाव को रोकने की कोशिश की गयी तो उसने विद्रोह कर दिया और वजीर कमरुद्दीन के नायब को हरा दिया। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह स्थान वजीर की जागीर में था और राजधानी से सौ मील के भीतर ही था।

दक्षिण तथा कर्नाटक में निजाम और मराठे प्रबल थे और उधर की सारी आय का विभाजन आपस में किये हुये थे।

हाँ स्वराजी की जमीन से तथा जागीरी क्षेत्रों से निजाम को कुछ न मिलता था। शेष मामलों में निजाम अपने को मराठों की ही भाँत सर्वप्रभुता सम्पन्न शासक मानता था और पड़ोसी रियासतों से कर लेता था। तुंदभद्रा के दक्षिण में उसकी पूरी धाक थी।

सन् १७०६ ई० में दाऊद खां ने सआदत उल्ला को कर्नाटक पाईं घाट का नायब नियुक्त किया था। सआदत उल्ला का भतीजा था दोस्त अली, जिसने १७२२ ई० में अपने चाचा का पदग्रहण किया और इस काम के लिये न तो उसने निजाम की स्वीकृति माँगी और न मुगल बादशाह की।

समूचा देश छोटी-छोटी रियासतों में बँटा जा रहा था। करनूल, कुड़प्पा तथा सावनेर के नवाब तथा बीजापुर एवं अहमदनगर के शासकों के वंशज मराठों से घनिष्ठ सम्पर्क बनाये हुये थे और प्रायः वे सम्पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग करते रहते थे। प्रसिद्ध चन्दा साहब अर्काट के नवाब का दामाद था। उसने त्रिचनापल्ली को अधिकृत कर लिया था। उसका बहाना यह था कि राजा की विधवा की देखभाल, करेगा।

तंजौर का नाम मात्र का राजा शिवाजी के भाई वेंको जी का पौत्र था। वेंको जी के तीन पुत्रों में सबसे छोटे लड़के तुको जी के ही सन्तान थी, और इस समय उसके दो पुत्र जीवित थे। सयाजो उसका वैधानिक पुत्र था और प्रताप सिंह एक रखेल के गर्भ से था। शासन का काम सया जी के नाम से ही होता था, परन्तु राज्य की सारी शक्ति निहित थी एक मुसलिम अफसर के हाथ में, जो तुकोजी के समय से ही तंजौर के किले का रक्षक था। कुछ दिनों बाद इस अफसर ने सयाजी को अपदस्थ कर दिया और वह अंग्रेजों की मद्रास सरकार के संरक्षण में चला गया। उक्त अफसर ने सन १७४१ ई० में प्रतापसिंह को शासन का प्रमुख बनाया, परन्तु चूँकि प्रतापसिंह को अपने नियामक की अधीनता स्वीकार नहीं थी, अतः उक्त अफसर की हत्या करा के वह स्वतन्त्र बन बैठा।

आने वाले समय के सर्वाधिक परस्वत्वापहारियों में प्रमुख थे और भविष्य के रंगमंच के प्रमुखतम अभिनेता बने, वे अभी सुरक्षात्मक दृष्टिकोण ही अपनाये हुये थे, क्योंकि या तो उन्हें शक्ति का ज्ञान नहीं था या वे जानबूझ कर अपनी शक्ति को प्रदर्शित नहीं करना चाहते थे। इनमें से अंग्रेजों ने तो समय पड़ने पर दो एक बार शक्ति प्रदर्शन किया भी था, फिर अन्य यूरोपीय जातियों के ही गोल में रहकर वे बिनय की आड़ में अपनी व्यापार वृद्धि एवं सुबिधा प्राप्ति की साधना में लगे रहते थे। इस साधना के चक्कर में वे नजर एवं घूस लेना अनुचित नहीं समझते थे।

मराठों ने पुर्तगालियों को बुरी तरह दबा दिया था। बम्बई के अंग्रेज चिमणा जी अप्पा के माध्यम से पेशवा को प्रसन्न रख कर व्यापारिक सुविधायें बढ़वाते रहने की चेष्टा में रत थे। १७३९ में चिमणा जी के साथ बेसीन की सन्धि हो चुकी थी।

मराठों के विरुद्ध पुर्तगालियों के संघर्ष में राव सूँडा तथा कारवार के देसाई ने पुर्तगालियों की मदद की थी। बेदनूर का राणा निष्पक्ष ही रह गया था। मैसूर की रियासत यद्यपि घोषित नीति के अनुसार मुगलों की करद रियासत थी और बाद में शाहू की करद बन गयी थी तथापि पिछले बारह पन्द्रह वर्षों से वहाँ के कर्मचारियों की शक्ति एवं सावधानी के कारण समूचे भारत की स्थिति के विपरीत लूटपाट का क्षेत्र बने रहने से मुक्त थी।

इस महत्वपूर्ण समय में मुगल साम्राज्य की दशा का वर्णन हमने ऊपर कर दिया है। अब थोड़ा सा बाजीराव के शासन प्रबन्ध एवं व्यक्तित्व के बारे में कह देना वांछनीय होगा, क्योंकि पिछले अध्यायों के अध्ययन से पाठकों को मराठों की गृहनीति, तत्कालीन तथा घटनाओं का पता पाठकों को लग ही गया होगा।

मराठों की लगान बसूली की अस्वाभाविक प्रणाली के बारे में हम किसी अध्याय में लिख चुके हैं। इस अस्वाभाविक व्यवस्था ने अपना लक्ष्य कुछ दिनों तक पूरा किया और मराठों की एकता में कोई ऐसी दरार न दिखाई पड़ी, जिसे भरा न जा सका हो। मराठों की लुटेरू प्रवृत्ति को भी खुल खेलने का अवसर मिला। इसमें सन्देह नहीं कि यदि बाला जी विश्वनाथ तथा उसके पुत्र बाजीराव ने इस व्यवस्था को संगठित न किया होता तो इतनी अधिक विजयों का श्रेय अवश्य ही उन्हें नहीं मिलता। यह व्यवस्था सरदारों एवं जनसाधारण के मनोनुकूल थी अतः इसके परिणाम आशानुरूप ही हुए। इस स्थल पर यह भी याद रखना चाहिये कि यदि इस व्यवस्था के मूल दृष्टिकोण को समझने में तनिक सी भूल हो जाय तो मतभेद का जो क्रम चलेगा वह न केवल व्यवस्था को ही वरन सारे राष्ट्र में मतभेद फूट और संघर्ष के बीज बो देगा। बाजीराव को इस व्यवस्था को सुयोग्य ढंग से चला पाने एवं इसे समय की आवश्यकतानुसार पुनर्गठित करने का समय नहीं मिल सका। निरंतर भाग दौड़ में ही उसका जीवन बीत गया। बाजीराव के समय में सबसे बड़ी गड़बड़ी यह हुई कि प्रायः भैंस लाठीं वाले के हाथ में जा पड़ने लगी मुगल साम्राज्य के जिन भूभागों में सरदेशमुखी, नोकासा इत्यादि की वसूली का अधिकार मराठों को मिला उसका उपभोग न्याय के स्थान पर शक्ति ने किया। इस समय में शक्ति ही योग्यता का मपक बन गयी थी। यह एक घातक अवस्था थी।

जिन पहाड़ों में शिवाजी का उदय हुआ था, उनमें से अनेक स्थानों में शिवाजी द्वारा संचालित प्रणालियाँ अब भी जीवित हैं परन्तु सन् १७२० में जिस लगान व्यवस्था को जन्म दिया गया अब उसका स्थान केवल तत्कालीन इतिहास के पन्नों में ही रह गया है।

यदि हम बाजीराव के व्यक्तित्व पर विचार करना चाहें तो उसकी वाह्य एवं आन्तरिक

कठिनाइयों का ध्यान में रखना होगा। उसके पेशवा जीवन के प्रारम्भ से ही प्रशासन के हर विभाग में गड़बड़ियाँ फैल रही थीं बाजीराव को इतना समय ही नहीं मिला कि वह प्रशासन की गड़बड़ियों को दूर करता। कितने ही भारतीयों ने उसे लोभी माना है और कुछ का कहना है कि बाजीराव मूलतः सिपाही था न कि प्रशासक परन्तु उन सब बातों को यथावत् मान लेने से भी बाजीराव की महानता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि उसमें कुछ जातिगत बुराइयाँ थीं भी तो वह उन बुराइयों में भी धोखेबाजी को स्थान नहीं देता था। उसमें नीचता के दर्शन शायद ही हुये हों। वह अपने दोस्तों का शरणागतों का सदा सहायक रहा। पद व शक्ति पाकर ब्राह्मण जिस प्रकार मदमत्त हो विवेक खो बैठते हैं, बाजीराव वैसा नहीं था। यह सत्य है कि वह महत्वाकांक्षी था और इसीलिये दक्षिण विजय को अभिलाषा में उसने जमते साधनों का कम विचार किया, फिर भी इस दूरदर्शिता के अभाव को उसने शीघ्र ही सुधार लिया और दक्षिण विजय से उसने हाथ खींच लिया। जो परेशानियाँ, गृह-कलह और वाह्य संघर्ष उसे घेरे हुई थीं, वे किसी भी धैर्यवान को अधीर बना देने को पर्याप्त थीं, ऐसे में प्रायः सबका ही विवेक भ्रष्ट हो जाता है, परन्तु बाजीराव जैसा ही धैर्यवान था, वैसा ही विवेकशील। किसी अड़चन के आ जाने पर वह तुरन्त उसका हल निकाल लेता था। कठिन से कठिन परिस्थितियाँ भी उसे धैर्यच्युत नहीं कर सकीं। लुटेरू प्रवृत्ति के लोगों का वह अध्यक्ष था, अतः उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों के अनुकूल ही रहा। उसने काम किया और उनके नेतृत्व में उसने पूरी-पूरी सफलता प्राप्त की। वह वीर था, धीर था, वाणी कुशल था और उसका सबसे बड़ा गुण था कि यह कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी डटा रहता था। यह सत्य है कि वह कुशल प्रशासक कम था और मानव अधिक, फिर भी मराठा इतिहास के पृष्ठों में वह हमेशा ही आदर पाता रहेगा।

बाजीराव देखने में सुन्दर था, उसने यद्यपि मुगल दर्बार से बहुत कुछ सीखा था, फिर भी उसकी वाणी में सिपाहियाना ज्ञान अधिक थी और दर्बारी नम्रता कम। युद्ध के मैदान में वह अपनी स्थिति अति सामान्य सैनिकों से अधिक नहीं रखता था। उसके चरित्र को दर्शाने वाली एक कथा प्रचलित है, जिसके अनुसार निजाम ने जब बाजीराव को देखा भी नहीं था तब उसने एक चित्रकार को बाजीराव का चित्र बना लाने को सतारा भेजा, उस चित्रकार ने जो चित्र बनाया, उसमें पेशवा घोड़े पर चढ़ा हुआ था, घोड़े की अगाड़ी, पिछाड़ी उसी के तोबड़े में भरकर बगल में लटकाये था, उसका भाला उसके कन्धे पर था और वह ज्वार का भुट्टा खा रहा था।

बाजीराव के तीन पुत्र थे, बाला जी बाजीराव, पेशवा हुआ जो सब से जेठा था। उसका दूसरा पुत्र था रघुनाथ राव और तीसरा पुत्र था जनार्दन बाबा। उसकी एक मुसलमान स्त्री भी थी, जिससे शमशेर बहादुर नाम का एक पुत्र भी था, जिसका लालन पालन मुस्लिम रीत्यानुसार ही हुआ था।

—o—

अठारहवाँ अध्याय

बंगाल पर मराठोंके हमले और दक्षिणकी तत्कालीन अवस्था

[१७४०—१७४६ ई०]

कर्नाटक में मराठे—मालवा में नया गवर्नर—सदाशिव चिम्मन जी भाऊ—भास्कर पन्त का बङ्गाल पर आक्रमण—गायकवाड़ का मालवा पर आक्रमण—समूचे मुगल साम्राज्य से चौथ—रघु जी का बङ्गाल पर आक्रमण—पेशवा को मालवा की प्राप्ति। निजामुल्मुल्क के कारनामें—भास्कर पन्त की हत्या—अहमदशाह अब्दाली का उदय—हिन्दुस्तान पर आक्रमण तथा पराजय—महमूद शाह की मृत्यु—अहमदशाह का बादशाह होना—निजाम की मृत्यु—शाहू की बीमारी तथा सतारा में षड्यंत्रों की भरमार।

बाला जी बाजीराव

रघू जी भोंसले के सेनापतित्व में जिस सेना ने कर्नाटक में प्रवेश किया, उसमें राजा की सेनायें, प्रतिनिधि की सेनायें, फतहसिंह भोंसले की सेनायें तथा अन्य कितने ही छोटे-मोटे सर्दारों की सेनायें थीं। शाहू तथा पेशवा ने सन्दौर तथा गूटी के घोरपड़े परिवारों को भी इस सैन्य में शामिल होने का निमन्त्रण दिया था। अतः प्रसिद्ध सन्ताजी घोरपड़े के पोते मुराररराव ने प्रथम बार राष्ट्रीय झंडे के नीचे आना स्वीकार किया। इसे गूटी के मुरार राव ने गोद लेकर अपना पुत्र बना लिया था। झंडे के नीचे आते ही उसने सेनापतित्व की मांग की, परन्तु जब उसे यह आश्वासन मिल गया कि उसे तुङ्गभद्रा के पास के तीन जिले दे दिये जायँगे, तो वह शान्त हो गया। मराठा हस्तलेखों के अनुसार कर्नाटक में प्रवेश करने वाली सेना की कुल संख्या पचास हजार थी।* इस सेना ने एक ऐसे रास्ते से कर्नाटक में प्रवेश किया, जो आवागमन के लिये प्रायः बन्द ही रहती थी। यह सेना अकस्मात् दोस्त अली के पीछे जा पहुंची। डामलचेरी दर्रे के पास मराठों ने दोस्त अली पर हमला किया, उसे हराया तथा मार डाला और उसके दीवान मीर असूद को बन्दी बना लिया। अब मराठों ने समूचे प्रदेश पर कर लगाने तथा वसूल करने का कार्य आरम्भ कर दिया, परन्तु नवाब मरहूम (दिवंगत) के लड़के तथा उत्तराधिकारी सफदर अली ने समूचे प्रदेश की कीमत अदा कर दी। लौटने के पहले मराठों तथा सफदर अली में एक सुलहनामा हुआ जिसमें तै पाया गया कि मराठे फिर लौटेंगे तथा अब की बार चन्दा साहब को कुचल देंगे। त्रिचनापल्ली पर इस समय चन्दा साहब का आधपत्य था और उसकी लोकप्रियता के कारण सफदर अली तथा मीर असूद दोनों उससे जलते भी थे और भयभीत भी रहते थे। त्रिचनापल्ली पर मराठों की गृद्ध दृष्टि बहुत दिनों से लगी थी। इस सन्धि पत्र से मराठों की चिर संचित अभिलाषा पूर्ण होने का अवसर हाथ आ गया। मराठे लौटे अवश्य, परन्तु महाराष्ट्र के मार्ग पर केवल ढाई सौ मील चलकर वे रुक गये। इस प्रकार लौटने में मराठों का दोहरा उद्देश्य था। एक तो वे स्वयम् अपनी तैयारी पूर्ण करना चाहते थे

---

* अर्मी के अनुसार इस सेना के सिपाहियों की संख्या एक लाख थी। इससे प्रतीत होता है कि चाहे यह संख्या एक लाख से कम भी रही हो, परन्तु सेना अवश्य ही बहुत बड़ी थी।

और दूसरे वे चन्दा साहब की इस शंका को निर्मूल कर देना चाहते थे कि कहीं मराठे उस पर आक्रमण न कर दें।

सेना के मुख्य भाग ने तो शिवगंगा के किनारे डेरा डाला। रघू जी भोंसले सतारा लौट गया और वहाँ वह बारामती के बापू जी नायक * से मिलकर बालाजी बाजीराव को पेशवा पद पाने से रोकने का प्रयत्न करने लगा। बापू जी स्वर्गीय पेशवा का सम्बन्धी होते हुये भी उससे बड़ी शत्रुता मानता था। वह बड़ा धनी था। बाजीराव से उसकी शत्रुता अति सामान्य कारण से उठ खड़ी हुई थी। बापू जी ने बाजीराव को कुछ कर्ज दिया था, जिसे बाजीराव अदा नहीं कर सका था। केवल इसी कारण बापू जी बाजीराव का शत्रु बन बैठा था। रघू जी के दल ने इसी बापू जी को अपना हथियार बनाया। शाहू को बड़ी-बड़ी रकमें देने का वादा इस शर्त पर किया गया कि बापूजी को पेशवा के रिक्त पद पर अभिषिक्त कर दिया जाय।

प्रतिनिधि यद्यपि पेशवा के विरुद्ध था, परन्तु वह रघू जी के षड्यन्त्रों को भी नहीं पसन्द करता था, और इसीलिये वह रघू जी के षड्यन्त्रों में सम्मिलित भी नहीं हुआ। बालाजी बाजीराव के चाचा की मदद से बालाजी को अगस्त १७४० ई० में पेशवा पद [illegible] गया, परन्तु इससे उसकी कठिनाइयाँ कम नहीं हुई। एक नई कठिनाई उसके सामने यह भी आयी कि अपने पिता द्वारा ली गयी कर्ज की रकमों का वह देनदार था, और इधर बापूजी नायक ने अपने रुपयों के लिये सख्त तकाजा करना शुरू किया। कर्ज वसूल करने के जितने उचित तरीके थे, उन सब का प्रयोग उन्होंने शुरू कर दिया था। बालाजी ने अपने दीवान महादाजी पन्त पुरन्धरी की कोशिशों तथा उसकी जमानत के बल पर बापूजी से मुक्ति प्राप्त की। महादाजी के इस कार्य का आभार बाला जी ने यावज्जीवन माना। आने वाले समय में भी जब तब वह पुरन्धरी के इस कार्य की स्मृति से विह्वल हो उठता था।

पूरे प्रयत्नों के बावजूद भी रघू जी की सारी योजनायें असफल हो गयीं। निराश होकर वह बापूजी को कर्नाटक की ओर ले गया। उसने समझा कि सफदर अली के सङ्ग किये हुये सुलहनामे से लाभ उठाने का समय आ गया है। त्रिचनापल्ली के इस अभियान में श्रीपत राव, प्रतिनिधि तथा फतहसिंह भोंसले उसके साथ थे। इसके पश्चात् त्रिचनापल्ली में क्या घटनायें हुई, इसका विस्तृत वर्णन करने योग्य सामग्री किसी भी मराठा सम्बन्धी लेखमें नहीं मिलती। ऐसा प्रतीत होता है कि तंजोर के निवासियों ने अपने झगड़े की बात को भुला दिया और वे स्वदेशवासियों से मिल गये, परन्तु इस सहयोग के परिणाम का कुछ भी पता नहीं चलता। २६ मार्च सन् १७४१ ई० को त्रिचनापल्ली का पतन हो गया। चन्दा साहब † को बन्दी बनाकर सतारा ले आया गया, जहाँ उसे रघू जी भोंसले के एक एजेन्ट के नियन्त्रण में रक्खा गया। उसे सात वर्षों तक बन्दी रहना पड़ा और उसे सन् १७४८ ई० में मुक्ति मिली। मुरार राव घोरपड़े के हाथ में त्रिचनापल्ली का किला

---

* ब्राह्मण साहुकारों को नायक कहा जाता था।

† दक्षिण के लोग चन्दा साहब को उसके प्रसिद्ध नाम हुसेन दोस्त खाँ के नाम से जानते थे। उसे किसी जेलखाने में नहीं रक्खा गया था। उसे आराम से महल में रक्खा गया था, जहाँ उसके लिये रक्खे गये सेवक ही एक प्रकार से उसके ऊपर पहरा देने का भी कार्य करते थे। वह जहाँ कहीं भी जाता था, ये सेवक उसके पास रहते थे। यदि वास्तव में उसे कैद करके रक्खा गया होता तो डूप्ले को उसके साथ षड्यन्त्र करने का अवसर न मिला होता।

छोड़ दिया गया। मुरार राव की सेना में कुछ सैनिक पेशवाई सेना के भी थे। इन सैनिकों का व्यय शाहू के जिम्मे था। इसके अतिरिक्त यह भी तै पाया कि अर्काट के प्रदेश से जो कुछ भी कर जमा होगा, उसमें से बीस हजार रुपये प्रति वर्ष पेशवा को दिये जाते रहेंगे।

बाजीराव की मृत्यु के पश्चात् मालवा की सूबेदारी अजीमुल्ला खाँ को दे दी गयी, परन्तु यह नियुक्ति नाम मात्र की ही रही। नये पेशवा ने सबसे पहला काम यह किया कि उसने दिल्ली के बादशाह के पास एक प्रार्थना पत्र भेजा, जिसके द्वारा उसने उन तमाम अधिकारों को फिर से दिये जाने की प्रार्थना की जो उसके पूर्ववर्ती पेशवा को दिये गये थे या जिनके दिये जाने का वादा किया गया था। यह प्रार्थना पत्र निजामुलमुल्क के माध्यम से भेजा गया था। बालाजी को रुपयों की सख्त जरूरत थी। बादशाह की ओर से उसे पन्द्रह लाख रुपये का इनाम पेशवा पद के लिये मन्जूर किया गया था। सुलहनामे की शर्तें तैयार की गयीं तथा सुलहनामे में पेशवा के साथ चिमना जी अप्पा का भी नाम रक्खा गया, जिसमें दोनों ने सम्मिलित रूप से बादशाह से प्रार्थना की कि उन्हें मालवा का शासन प्रबन्ध सौंप दिया जाय। इस हस्तान्तरण के बदले में वे खुद बादशाह की खिदमत में हाजिर होकर बादशाह के प्रति सम्मान प्रगट करेंगे, किसी भी मराठा सर्दार को नर्मदा के उत्तर नहीं जाने देंगे, बाहदशाह की निजी सुरक्षा के लिये पांच सौ सवारों का एक दस्ता भेजा जावेगा, जिसका मुखिया एक सम्भ्रान्त व्यक्ति रहेगा। वे पन्द्रह लाख रुपये (जिसे देने का वादा हो चुका है) के बाद फिर कभी रुपया न मागेंगे; वे चार हजार सवारों का एक अलग जत्था इस कार्य के लिये राजधानी में भेज देंगे कि वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार विद्रोही जमींदारों को दबाया करेंगे और उन दोनों ने बादशाह को विश्वास दिलाया कि वे किसी भी कर मुक्त भूमि पर हाथ नहीं डालेंगे, किसी शाही जागीरदार को तङ्ग नहीं करेंगे तथा किसी भी वक्त में दी गयी जमीन को पाक समझ कर उससे दूर रहेंगे। कहने को यह एक प्रार्थना पत्र था, परन्तु शर्तों को देखकर ऐसा प्रतीत होता हैं जैसे यह एक धमकी भरी मांग हो। ऐसा प्रतीत होता है कि बादशाह ने उपरोक्त १७४१] प्रार्थनाओं पर ध्यान नहीं दिया। पेशवा शान्ति पूर्ण उपायों में विश्वास रखता था, साथ ही मालवा को प्राप्त करने की उसकी अभिलाषा भी कम प्रबल नहीं थी, क्योंकि उसके पूर्ववर्ती पेशवा को यह प्रान्त बादशाह से मिल चुका था और इसी लिये नासिर जङ्ग द्वारा किये गये विद्रोह का सामना करने के लिये जब निजामुलमुल्क दक्षिण को लौटने लगा तो पेशवा ने बड़ा सम्मान प्रदर्शित करके नर्मदा के किनारे उससे भेंट की और विद्रोह दमन के लिये सवारों का एक दस्ता भी उसके साथ कर दिया। परन्तु सन् १७४१ ई० के जनवरी के अन्त में बालाजी के चाचा चिमना जी अप्पा का स्वर्गवास हो गया। उसकी मृत्यु से पेशवा को बड़ा धक्का पहुंचा। चिमना जी की मृत्यु के केवल ग्यारह दिनों पहले कुन्दों जी मानकर ने चिमना जी की योजनानुसार रेवादण्ड पर अधिकार कर लिया था। गोआ और डामन के बीच में रेवादंड एक पुर्तगाली–उपनिवेश था। इस विजय के कारण चिमना जी की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी। चिमना जी अप्पा का खयाल था कि महाराष्ट्र की सेना में तोपों एवम् बन्दूकों का होना अत्यावश्यक है। उसके मरने पर उसका दस वर्षीय पुत्र उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसका नाम था सदाशिव चिमना जी भाऊ और हम उसे प्रायः सदाशिव राव भाऊ के नाम से जानते हैं। सदाशिव राव को भी अपने पिता की भाँति अपने सेनापतित्व पर आवश्यकता से अधिक विश्वास था और उसके इसी झूठे आत्मविश्वास ने अहमद शाह अव्दाली के मुकावले में मराठा शक्ति की जड़ हिला दी।

अपने चाचा की मृत्यु के अनन्तर पेशवा बाला जी प्रदेश से लौट कर पूना आ गया तथा एक पूरे वर्ष भर उसने पूना तथा सतारा में बिता कर प्रशासन का संगठन किया। इस बीच राजा के प्रति वह पूर्ण सम्मान प्रदर्शित करता रहा। इसी समय शाहू का एक फर्मान पेशवा को मिला जिसके अनुसार वे सभी प्रदेश उसको सौंप दिये गये थे जिन्हें पुर्तगालियों से जीता गया था। इसी के साथ गुजरात को छोड़ कर शेष उत्तरी भूभाग में कर लगाने की तथा लगान वसूल करने का एकाधिकार भी उसे दे दिया गया था।

तात्कालिक परिस्थितियों में इस प्रकार की अधिकार प्राप्ति एक महत्वपूर्ण घटना थी। १७४२ ई०] पिछले पृष्ठों में हम बंगाल में अलीबर्दी खां के उदय तथा उसकी शक्ति-प्राप्ति की बात पढ़ चुके हैं, मुर्शिदकुलो खां की पराजय तथा उसके दीवान मीरहबीब की कार्यबाहियों की भी चर्चा हो चुकी है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपने मालिक की पराजय के पश्चात् उसने भास्कर पन्त को निमंत्रण दिया था। भास्कर पन्त रघूजी भोंसले का दीवान था तथा कर्नाटक से उसके चले जाने पर बरार का प्रशासक था। मीरहबीब ने भास्कर पन्त से प्रार्थना की थी कि वह कटक पर आक्रमण करे। भास्कर पन्त को यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि वह आक्रमण के लिये रघूजी से आज्ञा प्राप्त कर ले, परन्तु जब तक उसे आवश्यक आज्ञा मिली, तब तक अलीवर्दी खां ने उस समूचे प्रदेश को जीत लिया था तथा मीरहबीब ने भी उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। परन्तु पूर्व की ओर अभियान करने का एक दूसरा अवसर भास्कर पन्त के हाथ आ गया। इधर भास्कर पन्त बंगाल की ओर बढ़ा, उधर पेशवा ने उत्तर की ओर कदम बढ़ाया। पेशवा की इच्छा थी कि जिन देशों पर राजा ने उसे अधिकार दिया है, उन पर पूर्णरूपेण आधिपत्य जमा लिया जाय। इसी इच्छा से वह हिन्दुस्तान की ओर बढ़ा। यद्यपि ऋतु प्रतिकूल थी। वर्षा का प्रारम्भ होने ही वाला था, फिर भी पेशवा ने आगे बढ़कर गढ़ तथा मंडला पर अधिकार कर लिया। उसे नर्मदा के किनारे ही खेमा डालना पड़ा, जहाँ बैठ कर उसने इलाहाबाद की ओर प्रस्थान करने की योजना बनानी शुरू की। अभी उसकी योजना बन भी न पायी थी कि उसे समाचार मिला कि दम्माजी गायकवाड़ तथा बाबूराव सदाशिव ने मालवा पर आक्रमण कर दिया है। अतः लाचार होकर उसे वापस लौटना पड़ा। उसे नये प्रदेशों को जीतने की इच्छा को त्याग कर मालवा पर अपना स्वामित्व दृढ़ करना अधिक आवश्यक जान षड़ा।

ऐसा प्रतीत होता है कि मालवा पर इस प्रकार के आक्रमण की प्रेरणा रघूजी ने ही दी थी, जिससे पेशवा बंगाल की ओर न बढ़ने पावे। इधर बालाजी मालवा में पहुंचा और उधर गुजरात की सेना वापस लौट गयी। आनन्द राव पनार से बालाजी की कभी भी नहीं बनी थी, क्योंकि आनन्द राव ने त्र्यम्वकराव दाभाड़े का साथ देना शुरू कर दिया था। इस बार बालाजी ने एक कूटनीतिक चाल चली। उसने आनन्दराव को अपने दर्बार में हाजिर होकर सम्मान प्रदर्शित करने का अवसर दिया एवम् इस अवसर पर उसने आनन्दराव को धार तथा उसके आस-पास के जिलों का भार सौंप दिया। इस प्रकार आनन्दराव पेशवा का मित्र भी हो गया तथा मालवा की पश्चिमी सीमा भी एक प्रकार से सुरक्षित हो गयी। फलतः गुजरात की ओर से मालवा को कोई भय न रह गया। जिस समय पेशवा ने मंडला पर अपना आधिपत्य स्थापित किया था तभी से मुगल बादशाह के साथ एक सन्धिपत्र लिखे जाने की बात हो रही थी। यह बातचीत राजा जयसिंह तथा निजामुउल्मुल्क के माध्यम से चल रही थी। इस सन्धि के द्वारा समूचे मुगल साम्राज्य से चौथ देने का वादा करके बादशाह ने पेशवा को इतनी शानदार खिलकत भेंट किया, जैसी अब तक किसी भी पेशवा को नहीं

मिली थी । ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार चौथ वसूल करने के लिये बादशाह ने कोई फर्मान नहीं निकाला था । उन दिनों इस प्रकार की अदायगी या तो नकद रुपयों में या सुविधापूर्ण जागीरों के द्वारा की जाती थी । अतः इस सन्धि से पेशवा का उद्देश्य यह था कि उसे मालवा पर आधिपत्य कायम रहने की सनद मिल जाय और मुगल दर्बार का यह उद्देश्य था कि एक आयी हुई आफत भी टल जाय और मालवा के लिये रघूजी तथा पेशवा बालाजी के बीच चलने वाली प्रतिद्वन्दिता भी जोर पकड़ ले ।

जिस समय उपरोक्त घटनायें हो रही थीं, उसी समय बिहार पर भास्कर पन्त का अभियान चल रहा था । कटक को जीतने के बाद अलीवर्दी खां ने अपने नाती को वहाँ का सूबेदार बना दिया था और खुद वापस लौट गया था । नये सूबेदार की ज्यादतियों से परेशान होकर वहाँ की जनता ने विद्रोह कर दिया था और इस विद्रोह के दमन के लिये अलीवर्दी खां को फिर कटक की ओर जाना पड़ा था । भास्कर पन्त ने सोचा था कि इस समय बिहार में या तो सैनिक होंगे ही नहीं या होंगे भी तो बहुत कम । यही सोचकर उसने बिहार पर आक्रमण किया । कटक के विद्रोह को शान्त करके अलीवर्दी खां मुर्शिदाबाद की ओर लौटने ही वाला था कि उसे भास्कर पन्त के आक्रमण का समाचार मिला । उसे पता चला कि रामगढ़ के समीपस्थ पहाड़ों एवम् जंगलों से निकल कर मराठों ने उस इलाके पर आक्रमण कर दिया था और अपने स्वभाव के अनुसार उस जिले में भयंकर लूटमार मचा रक्खा था ।

मराठा सेना में उस समय कोई दस बारह हजार सवार थे, परन्तु अफवाह थी कि उस सेना में चालीस पचास हजार सवार होंगे । अलीवर्दी खां के पास इस समय केवल तीन चार हजार सवार तथा चार हजार पैदल सेना थी, फिर भी उसने इसी छोटी सेना के बल पर मराठों का मुकाबला करने का इरादा किया । मराठों ने उस पर हमला किया, आसानी से उसकी सेना को घेर लिया, उसकी रसद लूट लिया और उसे एकदम लाचार कर दिया । उसके अधिकांश सैनिक या तो मारे गये या भाग गये और अब उसके पास कुल मिला कर तीन हजार से अधिक सैनिक न थे, फिर भी अलीवर्दी खां ने अपने जान की बाजी लगाकर मुकाबला करने का इरादा किया क्योंकि उसे मालूम था कि सुलह की बात उठाने पर मराठों की ओर से रक्खी गयी शर्तें इतनी कड़ी होंगी कि उनको मानने से अच्छा यही होगा कि युद्ध में प्राण दे दिये जायँ । कई दिनों तक निरन्तर परेशान किये जाने के बाद किसी प्रकार अलीवर्दी खाँ ने कोटाया पहुंच पाने का रास्ता बनाया, जहाँ पहुंच कर उसने आराम की साँस ली । इस युद्ध में भूतपूर्व नवाब मुर्शिदकुली खां का दीवान मीरहबीब भी अलीवर्दी खां की ओर से लड़ा था और मराठों ने उसे बन्दी बना लिया था । मीरहबीब की भास्कर पन्त से पहले की बातचीत तो थी ही, इस बन्दी जीवन में उसने भास्कर पन्त को प्रभावित करने का सफल प्रयास किया । वर्षा शुरू हो जाने के कारण भास्कर पन्त स्वदेश की ओर लौटना चाहता था मगर मीरहबीब ने इसका विरोध किया । चूँकि भास्कर पन्त उस प्रदेश में और अधिक रुकने को तैयार न था, इस लिये मीरहबीब ने प्रार्थना की कि उसे घुड़सवारों का एक छोटा सा दस्ता देकर स्वतंत्ररूप से कार्य करने की आज्ञा दी जाय । भास्कर पन्त ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसे सर्दार बना कर घुड़सवारों का एक दस्ता दे दिया गया, जिसे लेकर वह मुर्शिदाबाद की ओर रवाना हो गया । उसका भाई मुर्शिदाबाद में ही रहता था । अपने भाई की सुरक्षा का प्रबन्ध करके उसने जगतसेठ आलम चन्द के भंडार को लूट लिया । इस लूट में उसे तीन चार करोड़ रुपये का माल मिला । भागाभाग चल कर उसने फिर भास्करपन्त को जा पकड़ा और उसे इस बात का विश्वास दिला दिया कि उसके हक में

बंगाल में रुक जाना ही अधिक श्रेयस्कर होगा और इतने अधिक लाभ को छोड़ कर चले जाना ठीक न होगा । परिणाम स्वरूप वह घूम पड़ा और मीरहबीब की मंत्रणा पर अमल करके उसने छल पूर्वक हुगली कस्बे पर अधिकार कर लिया । काटोया तथा मिदनापुर के बीच के जितने भी महत्व-पूर्ण स्थान थे, सभी उनके हाथों में आ गये । अलीवर्दी खां का सौभाग्य था कि हुगली नदी में बाढ़ आ गयी थी, वरना भास्करपन्त ससैन्य मुर्शिदाबाद जिले में घुस गया होता । जिस समय इधर इस प्रकार की घटनायें घटित हो रही थी, उसी समय बादशाह की ओर के एक अफसर बादशाह की इस आज्ञा के साथ अलीवर्दी खाँ के पास आया कि शाही खिराज की जो कुछ भी रकम नवाब के जिम्में बाकी हो, फौरन अदा कर दी जाय । अलीवर्दी खाँ ने अपनी मुसीबतें उस अफसर के सामने रक्खीं और उस अफसर को अपनी विवशता समझाने की कोशिश की । बादशाह की माँग औचित्यपूर्ण होते हुये भी असामयिक थी और इस समय अलीवर्दी खाँ के लिये असम्भव था कि वह खिराज की रकम दे दें । जब तक मराठे बङ्गाल में बने थे, तब तक तो कुछ हो ही नहीं सकता था । उसने मराठों को बङ्गाल से निकालने में बादशाह से मदद भी माँगी । इधर अलीवर्दी खाँ ने पेशवा को भी लिखा क वह रघू जी के प्रदेश (बरार) पर हमला कर दे । इस कार्य के लिये उसने एक बड़ी रकम भि पेशवा के पास भेज दी, परन्तु अवध के नवाब सफदर जंग की लापरवाही के कारण वही रकम बीच में ही रुक गयी और पेशवा के पास तक न पहुंच सकी ।

एक ओर तो अलीवर्दी खाँ हर सम्भव दिशा से सहायता की याचना करता जा रहा था और दूसरी ओर अपनी निजी शक्ति बढ़ाने की भी भरपूर कोशिश कर रहा था । वह जानता था कि दूसरों के भरोसे पर सन्तोष कर लेना बुद्धिमत्तापूर्ण न होगा । उसने एक-एक आदमी को इकट्ठा किया और इस बात की तैयारी की कि काटोया में ठहरे हुये भास्कर पन्त पर आक्रमण किया जाय । वर्षा समाप्त होने के पूर्व ही उसने यथासम्भव तैयारी कर ली और अभी नदियों का पानी कम भी नहीं हुआ था कि उसने चढ़ाई की तैयारी कर दी । नावों के पुल का सहारा लेकर रातोरात उसने हुगली को पार किया और फिर उसने उसी पुल के सहारे नदी को पार करने की कोशिश की । इसी कोशिश के बीच नावों को संयोजित करने वाला रस्सा एक स्थान से टूट गया और जब तक यह खबर प्रचारित हो तब तक पन्द्रह सौ आदमी बढ़े दरिया की भेंट हो गये । मराठों को इस अभियान का पता तो था नहीं । अचानक इस हमले का समाचार पाकर वे पूर्व की ओर योजना पूर्वक हटे । उन्होंने नवाब का सामना नहीं किया । उनका पीछा करते-करते नवाब की सेना भयानक जङ्गलों में पथ भ्रष्ट हो गयी और उधर घूमकर मराठों की सेना मिदनापुर में घुस गयी और उधर लूट मार करने लगी । उधर अलीवर्दी खाँ ने रास्ता ढूंढ़ कर उनका पीछा किया । मराठे लोग शायद ही कभी मुठभेड़ करते थे । बालासोर नामक स्थान पर एक छोटा-मोटा युद्ध हुआ, जिसमें कुछ निर्णय नहीं हो सका । अन्त में अपनी विजय को असम्भव समझ कर मराठा सैन्य दल ने बङ्गाल छोड़ दिया और उड़ीसा प्रदेश से होते हुये वे बरार में आ गये । रघू जी भोंसले भी सेना सहित कर्नाटक से वापस आ चुका था । उसे जब भास्कर पन्त की असफलता का समाचार मिला तो उसने अपने दीवान द्वारा बङ्गाल में किये गये कपट-पूर्ण व्यवहार का मानों समर्थन करने के लिए वही रास्ता पकड़ा, जिस रास्ते से होकर उसका दीवान गया था ।

तब तक मुगल बादशाह को मराठों के इस कारनामे का पता चल चुका था और उसने अवध के नवाब सफदर जङ्ग को हुक्म दे दिया था कि वह भास्कर पन्त को बङ्गाल से निकाल दे । साथ ही उसने बालाजी को भी लिखा कि वह अवध के नवाब की मदद करे । इसके बदले में अजीमा-

बाद की बकाया पड़ गयी चौथ के बदले पेशवा को एक जागीर बादशाह ने दे दी तथा मालवा प्रान्त का प्रशासन भी सौंप देने का वादा किया।

पेशवा ने बादशाह के वादों को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया। उसकी मालवा प्राप्ति की चिर संचित अभिलाषा की पूर्ति जिस कार्य से होने की दृढ़ आशा थी, उसे पेशवा छोड़ने वाला नहीं था। तुरन्त ही उसने ससैन्य बङ्गाल के लिये कूच कर दिया और इलाहाबाद के सूबे से होता हुआ वह सीधा बागलीपुर की ओर चला। पेशवा नहीं चाहता था कि उसकी सेना की कार्यवाहियों से जनता को कष्ट पहुंचे, अतः वह उन रास्तों को छोड़कर चलने लगा, जिनके आस-पास कृषि कार्य होता था। परन्तु मराठों का नाम ही प्रजा को भयभीत करने के लिये काफी था। १७४३] मराठी सेना मात्र के नाम से घबराने का स्वभाव सा बन गया था, भले ही वे मित्र रूप में ही क्यों न आ रहे हों। पेशवा दिन रात चलता हुआ मुर्शिदाबाद पहुंच गया। पूर्व से शत्रु रूप में रघूजी भोंसले बढ़ा चला आ रहा था। उसके पास भी कम अथवा निर्बल सेना न थी। पेशवा जानता था कि ऐसे अवसरों पर लोग वादा करने में बड़ी तेजी दिखाते हैं परन्तु पत्थर के नीचे से हाथ निकलते ही लोग वादों को भूल जाना ही अधिक ठीक समझते हैं, अतः उसने कहलौं भेजा कि जब तक अलीवर्दी खां उसके सारे खर्च न दे देगा वह लड़ाई के मैदान में कदम नहा रक्खेगा। हार कर अलीवर्दी खां ने पेशवा की व्यय सम्बन्धी सारी शर्तें मान लीं। तब तक रघूजी कोटाया तथा बर्दवान के मध्य मार्ग तक आ पहुंचा था, परन्तु ज्योंही उसे इस बात का समाचारो मिला कि अलीवर्दी खां ने पेशवा की शर्तों को मान लिया है तथा अब वह युद्ध क्षेत्र में उतरने क एकदम तैयार है तो उसने अपने खेमों को उखड़वा दिया और पहाड़ियों की ओट में खिसकने लगा। पेशवा की राह पाकर अलीवर्दी खाँ ने रघूजी का पीछा करना शुरू किया। बालाजी अपनी शर्तों क पक्का था। उसने देखा कि नवाब किसी भी प्रकार रघूजी की सेना को पकड़ नहीं पावेगा। अता एक दूसरी सड़क से सीधा चलकर नवाब की सेना के आगे आ गया और कुछ ही दिनों में रघूजः को जा पकड़ा और सम्मुख युद्ध में उसे पराजित किया। भास्कर पन्त सुरक्षित सेना के अग्रभाग में था अतः वह शीघ्रता से उड़ीसा के बीच से होता हुआ वापस लौटा। पेशवा ने पीछा करना अनावश्यक समझा तथा वह शीघ्रता से मालवा पहुंचा और वहाँ के प्रशासन को सङ्गठित करने के प्रयत्न में-लग गया।

जिस ईमानदारी के साथ पेशवा ने बादशाह के हुक्म का पालन किया था, उसी प्रकार को ईमानदारी दिखाना बादशाह के लिये भी आवश्यक हो गया। अपने वादों को पूरा न करने का कोई बहाना उसके हाथ में न रह गया। राजा जयसिंह एवम् निजामुल्मुल्क ही इस मामले में मध्यस्थ थे अतः उन्हीं के मंत्रणा से बादशाह ने पेशवा को शाहजादा अहमद का सहायक बना कर मालवा प्रान्त का प्रशासन सौंप दिया।*

---

* मालवा का सहायक शासक मुकर्रर किये जाने के समय बादशाह की ओर से जो फर्मान दिया गया था, उसका अनुवाद निम्नलिखित है।—"बादशाह मुहम्मद शाह के शासन के चौवीसवें वर्ष में जमादि-उल-अव्वल मास की बाईस तारीख को बादशाह को ओर से फर्मान जारी किया गया कि चूंकि आप शाहजादा के सहायक रूप में मालवा के प्रशासक नियुक्त किये गये हैं और आपको उक्त पद के अनुरूप वेतन भी दिया जायगा, उस सूबे में आपको ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि रिआया वाजिब लगान वक्त तथा मुस्तैदी से दिया करे और हर हालत में शाही कर्मचारियों से सहयोग करते। हें रसाथ ही आपको ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि जितने लोग बुरे हैं तथा बुराई फैलाते हैं उनको

सन्धि के शेष भाग की कार्यवाही बहुत कुछ उसी ढङ्ग की है, जैसी कि बालाजी तथा उसके चाचा चिमना जी अप्पा के संयुक्त नाम से की गयी थी और जिसका वर्णन पिछली पंक्तियों में हो चुका है। चार हजार सवारों के स्थान पर पेशवा ने बारह हजार सवारों का दस्ता शाही खिदमत में भेजा और यह तै पाया कि शेष आठ हजार सवारों का व्यय बादशाह के जिम्मे रहेगा।

पेशवा पद-प्राप्ति के बाद बालाजी तथा राजा जयसिंह के बीच बड़े मधुर सम्बन्ध रहे। कितने ही लिखित प्रपत्र ऐसे मिले हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि दोनों ने ही एक दूसरे को आश्वस्त किया था कि वे हमेशा दोस्त बने रहेंगे तथा वक्त-जरूरत पर एक दूसरे की मदद करेंगे। पेशवा तथा बादशाह के बीच जो सुलहनामा हुआ था उसमें दोनों ओर के जमानतदार जयसिंह ही थे। इस सुलहनामे में एक और बात तै हुई थी, जो बादशाह के लिये विशेष रूप से फायदे की थी। मल्हारराव होल्कर, रानोजी सिन्धिया तथा पिलाजी यादव ने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि पेशवा इस सुलहनामे का आदर नहीं करेंगे तो वे लोग उसकी सेवा छोड़ देंगे। इन सेनानायकों द्वारा की गयी इन प्रतिज्ञाओं का क्या मूल्य था। बादशाह ने यह सन्धि की ही उन लोगों के साथ थी, सन्धि की शर्तों का निरादर करने में ही जिनका लाभ था। इस प्रकार की प्रतिज्ञायें उन लोगों को बाँध ही कैसे सकती थी, जब उन्हें तोड़ने के फलस्वरूप मिलने वाले दंड की किसी भी प्रकार की सम्भावना न थी। हाँ इससे बादशाह की दयनीय स्थिति का पता अवश्य लग जाता है कि उसमें इतना भी दम नहीं रह गया था कि वह पेशवा को सुलहनामे की शर्तों का आदर करने को वाध्य कर सके। जमानतों की इस योजना में कोई राजनीतिक दावपेंच हो सकती थी क्योंकि निर्वल सरकारें प्रायः कूटनीति का सहारा लेती हैं। मुगल दर्बार को मराठों की आपसी फूट का ही भरोसा था और इस फूट की खाईं को निरन्तर चौड़ी करते रहना ही मुगल बादशाहों का ध्येय बन गया था, परन्तु उन्हें इस बात का कतई खयाल नहीं रह गया था कि इस प्रकार की कूटनीतिक चालों से स्वयम् उनकी स्थिति भी बिगड़ती जा रही थी। बादशाह तथा उसके सलाहकार एकदम से भूल गये थे कि मुगल साम्राज्य का अन्त हुये बिना मराठों की आपसी अनबन एक अस्थायी स्थिति थी।

मालवा से लौटकर पेशवा सतारा आया और उसने निश्चित तालिका के अनुसार लगान का हिसाब राजा के सामने पेश किया। इस हिसाब को पेशवा ने खुद ही राजा की सेना की एक टुकड़ी के नायक के रूप में बनाया था। कुल वसूली कितनी हुई, उसमें से कितना कहाँ और कैसे खर्च किया गया तथा कितनी रकम बाकी बची इन सब का हिसाब यथा नियम बनाकर पेशवा ने राजा के सामने पेश किया। इस सम्बन्ध की सर्वाधिक विशेष बात यही है कि यद्यपि महाराष्ट्र के प्रशासन में राजा की शक्ति शून्यमात्र ही थी, फिर भी पेशवा प्रतिवर्ष नियमानुसार आमदनी तथा खर्च का ब्योरा राजा के सामने रखकर उसकी स्वीकृति लिया करता था।

बालाजी सतारा में था परन्तु कई महत्वपूर्ण विषय उसका ध्यान आकर्षित किये हुये थे।

बाकायदा सजायें दी जाती रहें। आपको मादक एवम् उत्तेजक द्रव्यों का सेवन बन्द करने की कोशिश करनी चाहिये और आपकी न्याय व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिये कि न्याय सबको सुलभ हो सके ताकि न तो सशक्त जन अशक्तों को दबा ही पावें और न सबलों का बोझ ही निर्बलों पर पड़ने पावे। आपके प्रशासन में इस प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिये कि किसी की भी जोर जबर्दस्ती को न तो सहन करने की नौबत आवे और न ऐसे लोग प्रोत्साहित ही हो।'' पूना के कागजात में पाया गया वास्तविक फर्मान।

अपनी पराजय के बाद रघूजी भोंसले ने अपने वकीलों को पेशवा की सेवा में यह सन्देश देकर भेजा कि वह पेशवा के साथ हर कीमत पर सुलह करना चाहता है, क्योंकि अब उसे विश्वास हो गया है कि बालाजी की योजनायें ही सर्वाधिक उपयोगी हैं और उन्हीं के अनुसार कार्य करने में मराठा जाति का भला हो सकता है। रघूजी के वकीलों ने पेशवा को अनेक प्रकार से आश्वस्त करने का प्रयास किया, परन्तु वाह्य रूप से प्रसन्नता दिखाते हुये भी पेशवा ने अपनी सावधानी को कम नहीं होने दिया, क्योंकि रघूजी भोंसले तेजी से सतारा की ओर बढ़ा आ रहा था। सावधानी की आवश्यकता इसलिये भी अधिक जान पड़ी कि दूसरी ओर से दम्मा जी गायकवाड़ भी सतारा की ओर बढ़ा चला आ रहा था। इधर बीमारी ने प्रतिनिधि को अशक्य बना दिया था और उसका मुतअलिक यम्माजी शिवदेव एक योग्य तथा कर्मप्रेमी व्यक्ति था। परन्तु हृदय से वह पेशवा का विरोधी था। यद्यपि पेशवा के विरोध में रघूजी से सहयोग नहीं किया था फिर भी दाभड़े के विवाद से वह पूर्णतया सम्बन्धित था। ऐसी परिस्थिति बालाजी के सम्मुख दो विकल्प थे। या तो वह बंगाल की सुरक्षा के लिए मराठा सर्दारों से युद्ध ठान ले या बंगाल को रघूजी भोंसले के हाथों में छोड़ दे। इन दो विकल्पों में से एक चुनाव उसे तुरन्त करना था। उसने मराठा सर्दारों से युद्ध करना श्रेयस्कर नहीं समझा, इसलिये उसने यही निर्णय किया कि बंगाल को रघूजी की दया पर छोड़ दिया जाय। एक अड़चन यह भी थी कि बादशाह के साथ हुये सुलहनामें के अनुसार नर्मदा तथा महानदी के उत्तर स्थित प्रदेशों की सुरक्षा के लिये वह बाध्य था, अतः राजा की मध्यस्थता में उसने रघू जी से एक गुप्त समझौता किया, जिसके अनुसार उन प्रदेशों पर कर लगाने का अधिकार उसी को सौंप दिया।

१७४४ ई०]

इस सन्धि का उद्देश्य यह नहीं था कि दोनों एक दूसरे के मित्र बन जाँय, बल्कि दोनों का उद्देश्य यही था कि उनका आपसी संघर्ष सम्भव न हो सके। इस स्थिति में राजा की सत्ता दोनों के लिये उपयोगी थी। पेशवा को एक सनद राजा की ओर से दी गयी, जिसके अनुसार स्वयम् उसके नाम तथा उसके पिता व पितामह के नाम जितनी जागीरें थीं, सब उसे दे दी गयीं, उसे मालवा तथा कोंकन का प्रशासन दे दिया गया, इलाहाबाद, आगरा, अजमेर, पटना के तीन तालुके की लगान की चौथ, अर्काट के सूबे से बीस हजार रुपये, तथा रघूजी के जिलों में से कुछ गाँव पेशवा को बख्श दिये गये। दूसरी ओर यह व्यवस्था की गयी कि लखनऊ, पटना, दक्षिणी बंगाल की लगान रघूजी वसूल करे। इसके अतिरिक्त रघूजी को बरार तथा कटक के मध्य में स्थित समूचे भूभाग से कर वसूल करने का अधिकार दिया गया।

यह भी समझौता हुआ कि दम्माजी गायकवाड़ ने मालवा से जो कुछ भी रकम कर-रूप में वसूल किया है, उसका हिसाब पेशवा को दें. परन्तु उनके जिम्मे बकाया की रकम इतनी ज्यादा थी कि इस निर्णय को तुरन्त ही दृढ़ता से लागू नहीं किया जा सका। उस समय दाभाड़े ही मालवा प्रशासन का प्रमुख था और सारी बकाया रकम उसी के जिम्मे थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस बकाया की वसूली के लिए कुछ नहीं किया गया। दम्माजी काफी दिनों तक दक्षिण में रह गया यद्यपि गुजरात में उसकी उपस्थिति अत्यावश्यक थी। पेशवा के राज्य का जो भाग हिन्दुस्तान में पड़ता था उसकी दक्षिणी सीमा नर्मदा नदी तथा पूर्वी सीमा सोन तथा गंगा नदियों से निर्धारित होती थी। अब उसे यह भी सनद दे दी गयी कि यदि वह चाहे और उसमें सामर्थ्य हो तो वह जितना बढ़ सके उत्तर की ओर बढ़े।

निजामुल्मुल्क

मराठों के इस घरेलू प्रबन्ध में निजामुल्मुल्क का कोई हाथ नहीं था। हम पहले ही कह चुके हैं कि अपने लड़के नासिरजंग द्वारा किये गये विद्रोह का समाचार सुनकर वह दिल्ली से चल पड़ा था। वह १७४१ ई० के प्रारम्भ में दक्षिण पहुंचा और वहां की स्थिति का अध्ययन करते रहने के साथ ही उसने इस बात की भी पूरी कोशिशें जारी रक्खीं कि बिना युद्ध के उसका लड़का आत्मसमर्पण कर दे। अन्त में नासिरजंग ने सुलह के लिये अपने प्रतिनिधियों को अपने पिता के पास भेजा। इस बात से उसके साथी इतना भयभीत हुये कि वे अलग-अलग निजाम के पास पहुंचने लगे। निजाम ने भी एक एक को अपनी ओर खींचना शुरू किया और अपने पुत्र को प्रेमपूर्ण सन्देश भी भेजता रहा। यहां तक कि निजामुल्मुल्क के प्रेमपूर्ण सन्देशों से पागल होकर नासिरजंग ने शीघ्रता से अपना तमाम तोपखाना अपने पिता के पास भेजवा दिया। नासिरजंग को आशा थी कि उसके इस प्रकार के व्यवहार से उसे बिना किसी शर्त के क्षमा मिल जायगी, परन्तु ज्योंही उसके पिता ने देखा कि लड़का शक्तिहीन हो गया है उसने लड़के को अपमानित करना शुरू कर दिया। नासिरजंग एक फकीर के वेश में दौलताबाद के समीप रौजा में रहने लगा, परन्तु उसके पिता के कटु व्यवहार में तनिक भी परिवर्तन नहीं आया। यहाँ तक कि नासिरजंग इतना परेशान हुआ कि उसने अपने साथी फतहयाब खां से फिर मंत्रणा करनी शुरू की। फतहयाब का कहना था कि वह अब भी शक्ति संचय कर के अपने पिता को विवश कर सकता है और उसे अपनी शर्तो पर सुलह करने को मजबूर कर सकता है।

इन्हीं सब बातों के बीच बर्सात आ गयी एवम् हमेशा की तरह निजाम की सेना टुकड़ियों में बँटकर स्थान-स्थान पर विश्राम करने लगी। निजाम की सेना का एक भाग औरंगाबाद में रहने लगा। और शेष सेना छोटी-छोटी टुकड़ियों में बँट कर विभिन्न नगरों में विश्राम करने लगी। ऐसे समय में फतहयाब खाँ ने नासिरजंग को मंत्रणा दी कि उसे किसी मजबूत किले को हाथ में लेना चाहिये। इस कार्य के लिये उसने मोल्हारे को पसन्द किया, जहां पर नासिरजंग का बहनोई मुतवस्सिल खाँ सूबेदार की हैसियत से रहता था। फतहयाब खां की योजना सफल हुई और मोल्हेर का किला उसके हाथ आगया। अब नासिरजंग भी उससे आ मिला। निजाम को इस प्रकार के किसी प्रयत्न की आशा नहीं थी और इसी लिये उसके प्रतिकार की कोई तैयारी उसकी ओर से नहीं हुई थी। अपनी कामयाबी से खुश होकर फतहयाब खां ने योजना बनाई कि औरंगाबाद पर हमला करके निजाम को चकित कर देना चाहिये। सात हजार घुड़सवार लेकर नासिरजंग मोल्हेर से चला और अभी इस अभियान की भनक भी निजाम को नहीं मिली थी कि वह दौलताबाद जा धमका। यदि वह इसी गति से आगे भी बढ़ता चला गया होता तो शायद वह अपने पिता को बन्दी भी बनाने में कामयाब हो गया होता। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे नासिरजंग के हृदय में अपने कार्य के प्रति उत्साह न होकर पछतावा ही अधिक था। इसी से उसकी शक्ति धीमी पड़ गयी। पास ही एक प्रख्यात साधु की कुटी में वह दिन भर प्रार्थना करता रहा। इधर ऊपर से शान्त तथा भीतर से अत्याधिक घबराया हुआ निजाम अपनी इतस्ततः फैली हुई टुकड़ियों को तेजी से इकट्ठा कर रहा था। उसके तोप खींचने वाले बैल दूर-दूर के चरागाहों में फैले हुये थे। उसके बहुत कम सैनिक युद्ध के लिये तैयार थे। फिर भी उसने यथाशीघ्र शहर के बाहर पड़ाव डाला और नासिरजंग के पहुंचने की प्रतीक्षा करने लगा। दूसरे दिन अर्थात् २३ जुलाई को सुबह तक निजाम की पर्याप्त सेना आ गयी तथा उसने उसे व्यवस्थित भी कर लिया। उसी दिन अपनी सेना के अग्रभाग में स्थित नासिरजंग भी आ पहुंचा मगर युद्ध में उसे पूर्ण पराजय ही हाथ लगी। जब नासिरजंग ने अपने दल को पीछे हटते हुये देखा तो उसने अपने भयंकर साहस का परिचय

दिया। उसने अपने पिता के झन्डे पर जोरदार हमला किया। वह स्वयम् निजाम के हाथी की ओर बढ़ा और एक-एक करके तीन अंगरक्षकों को उसने काट डाला। उसका स्वयम् का भी महावत मारा गया परन्तु नासिरजंग का साहस कम न हुआ। वह स्वयम् महावत के स्थान पर बैठकर युद्ध करने लगा। इसी समय नासिरजङ्ग के बहनोई मुतवस्सिल खां ने उसके पास पहुंचकर, नासिरजङ्ग के सर का निशाना लेकर अपने धनुष को कान तक खींचा। इस धनुष से छूटे हुये तीरने उसकी कपाल क्रिया ही कर दी होती परन्तु मुतवस्सिल खां का पुत्र हिदायत मुईउद्दीन खाँ भी अपने पिता के ही हाथी पर बैठा हुआ था। उसने अपने पिता का हाथ पकड़ लिया और वह तीर चल ही न पाया। इस प्रकार नासिरजङ्ग के प्राणों की रक्षा हो गयी। निजाम की सेना में सैयद लश्कर खां नाम का एक अफसर था जो नासिरजङ्ग को, उसकी वीरता तथा धीरता को एवम् उसके शौर्य व साहस को बखूबी जानता था। उसने अपना हाथी नासिरजङ्ग के हाथी के बगल में भिड़ाकर उसे सलाम किया और प्रार्थना की कि नासिरजङ्ग उसके हाथी पर आ जावे। मृदुस्वभाव के नासिरजङ्ग ने तुरन्त उसकी प्रार्थना मान ली और वह लश्कर खां के हाथी पर आ गया और इस प्रकार उसे गिरफ्तार करके औरंगाबाद ले जाया गया। उसके दो साथियों ने अन्त तक उसका साथ दिया और वे लड़ते ही रह गये। इनके नाम थे शाह नवाज खां तथा सूर लश्कर खाँ। वे भी मार ही डाले गये होते मगर निजाम की सेना के एक सुपरिचित अफसर ने कौशल से उनके लिये रास्ता बना दिया और वे दोनों बच निकले। दक्षिण भारत के इतिहास में इन दोनों ही सेनानायकों का महत्वपूर्ण स्थान है। शाहनवाज खां ने अपना सात वर्षों का जीवन छिप कर ही बिताया और यदि मआसिरुल-उमरा के लेखक ने इनके साथ इन्साफ न बरता होता तो शायद भारतीय इतिहास के पाठकों को इनके नाम तक का पता न चलता।

यद्यपि अपने पुत्र की जीवन रक्षा से निजाम अति प्रसन्न हुआ था, फिर भी उसने नासिरजङ्ग के साथियों को एक-एक करके जेल की यातनायें दी। नासिरजङ्ग को पूर्णतः क्षमा कर देने की इच्छा रखते हुये भी उसने थोड़े दिनों के लिये इसलिये जेल में रक्खा कि वह अपने किये गये कुकर्मों का फल पा जाय और उसे यह अनुभूति हो जाय कि अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह करके उसने एक ऐसा अपराध किया है, जिसका दण्ड उसे अवश्य भोगना है, भले ही वह निजाम का खुद का लड़का है। थोड़े दिनों तक जेल में रखने के बाद निजाम ने नासिरजङ्ग को मुक्त कर दिया क्योंकि परिस्थितियों का तकाजा था कि वह यथाशीघ्र दक्षिण की ओर रवाना हो जाय। अब हम यह बताना चाहेंगे कि दक्षिण में निजाम की क्या आवश्यकता थी।

जिस समय मराठों की शक्ति बंगाल में उलझी हुई थी, उसी समय से निजाम की दृष्टि कर्नाटक की ओर लगी हुई थी। इतने दिनों तक जो उसने दक्षिण की ओर रुख नहीं किया, उसका कारण यह हो सकता है कि बालाजी से उसकी मित्रता चल रही थी और पेशवा द्वारा मालवा के प्रशासन की प्राप्ति के मामले में वह स्वयम् मध्यस्थता का कार्य कर रहा था। सन् १७४२ ई० में अर्काट के नवाब सफदर अली की हत्या उसके सगे सम्बन्धी मुर्तजा खां ने की थी। मुगल साम्राज्य के कृष्णा नदी के दक्षिण वाले भूभाग में अराजकता सी फैली हुई थी। इस प्रकार निजाम के सामने सुनहरा मौका था कि वह दक्षिण में हस्तक्षेप करे तथा वहां शान्ति स्थापित करके अपना प्रभाव विस्तार करे। जनवरी सन् १७४३ में इसी लक्ष्य को सम्मुख रखकर वह हैदराबाद से चला। उसके साथ एक विशाल सेना थी। पूरे एक वर्ष तक उधर ही रह कर वह आवश्यक प्रबन्ध करवा रहा। उसकी राय में त्रिचनापल्ली पर अधिकार कर लेना एक महत्वपूर्ण बात थी, परन्तु इस पर अधिकार करने न जाकर उसे मराठों से उलझ जाना पड़ता। उधर मराठे भी त्रिचनापल्ली के ऊपर आधिपत्य बनाये रखने का

महत्व समझ चुके थे। महाराष्ट्र का घोड़े परिवार सन्ता जी की हत्या के बाद कभी भी महाराष्ट्र परिवारों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित न हो सका था। यह सही है कि युद्धों में प्रायः वे मराठों के ही साथ रहते थे परन्तु यह भी सही है कि यदि उन्हें लूटपाट की अपेक्षा अधिक सुविधा मिलने की आशा दिलाई जाती तो वे मुगलों या यूरोपियनों की ओर से भी लड़ सकते थे। निजामुलमुल्क ने मुराररराव को गूटी का सर्दार मान लिया तथा अगस्त में उसने अपनी समूची सेना के साथ कर्नाटक को छोड़कर दूसरी ओर कूच किया।

१७४४ ई० के शुरू में सतारा में जो मराठा सैन्य के ठट के ठट जमा हो रहे थे, निजाम को उसकी भी कम चिन्ता नहीं थी। इसीलिये उसने शीघ्रता से हैदराबाद की ओर प्रस्थान किया तथा अनवरुद्दीन की निजी प्रार्थना पर उसे कर्नाटक पाईं घाट के तथा इसके साथ ही अपने नाती हिदायत मुईउद्दीन खां को कर्नाटक वालाघाट (मुख्य कर्नाटक) के प्रशासन का प्रमुख बना दिया था। यही मुईउद्दीन मुजफ्फरजङ्ग के नाम से अधिक जाना जाता है। मुजफ्फरजङ्ग को अदोनी की जागीर दी गई थी तथा बीजापुर को उसका सदर मुकाम बना दिया गया था। उधर अनवरुद्दीन प्राचीन राजधानी अर्काट में ही रहता था। हैदराबाद लौटकर निजाम ने देखा कि मराठों से डरने का कोई कारण नहीं है अतः उसने अपने राज्य के आन्तरिक प्रबन्ध की ओर ध्यान दिया और कितने ही बलबाई किलेदारों को दबाया।

रघूजी भोंसले

इधर मराठे अपने निजी प्रबन्धों में ही इतने व्यस्त थे कि उन्हें इतनी फुरसत नहीं थी कि वे निजाम की अनुपस्थिति का फायदा उठाते या उठाने की बात भी सोच सकते। रघूजी भोंसले अपनी बंगाल में खोई हुई शक्ति को फिर से प्राप्त करने के मन्सूबे बाँध रहा था और पेशवा इसलिये दक्षिण में पड़ा था कि मुगल बादशाह यह न कह सके कि बंगाल में रघूजी की खिलाफत क्यों नहीं की गयी। वर्षाकाल में रघूजी बरार को लौट गया था। इधर वर्षाकाल समाप्त हुआ, उधर भास्कर पन्त, अली कुरुल तथा अन्य कितने ही प्रमुख सेना नायक, बीस सहस्र सवारों के साथ उड़ीसा के मार्ग से बंगाल भेज दिये गये। अलीवर्दी खां को ज्योंही इस अभियान का समाचार मिला, त्योंही उसने अपनी तैयारी प्रारम्भ कर दी और साथ ही सुलहनामे की बात भी चलाने लगा। एक दिन भास्कर पन्त तथा उसके बीस मुख्य सेना नायकों को अलीवर्दी खां ने दावत पर बुलाया और सब को वहीं पर मरवा डाला। अकेला रघूजी गायकवाड़ खेमों की रक्षा के लिये अध्यक्षरूप में छोड़ा गया था, केवल वही जीवित रहा। जिस रास्ते से वे लोग आये थे, उसी रास्ते से अपनी समूची सेना को वापस लाने की कोशिश गायकवाड़ ने की, परन्तु रास्ते में पड़ने वाले गांवों के किसानों ने कितने ही मराठा सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया।

शीघ्र ही मराठों के हाथ आक्रमण का नया मौका लग गया। स्वयम् अलीवर्दी खाँ के सिपाहियों ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया था और उसका समाचार पाकर अलीवर्दी खाँ को उड़ीसा छोड़ कर बंगाल की ओर चला जाना पड़ा था। इस प्रकार उड़ीसा का समूचा प्रदेश सैनिकों से खाली हो गया। रघूजी को ज्योंही अलीवर्दी खाँ की इस आपत्ति का समाचार मिला उसने उड़ीसा पर आक्रमण कर के कई जिलों पर अधिकार कर लिया। अब उसने अलीवर्दी खां के पास सन्देशा भेज कर कहलवाया कि यदि आप तीन करोड़ रुपये हर्जाना के रूप में दें तो मैं और आगे नहीं बढ़ूंगा, बल्कि यह प्रदेश छोड़ कर वापस चला जाऊँगा। उधर अलीवर्दी खां अपने सिपाहियों के विद्रोह को दबाने में लगा हुआ था और इधर वह रघूजी को भी बातों में उलझाये रहा। ज्योंही

विद्रोह को समाप्त करने में कामयाबी हासिल हुई त्योंही उसने रघूजी को ऐसा उत्तर भेजा कि सन्धि की सारी आशा व्यर्थ हो गयी। वर्षा ऋतु का अन्त होते ही छिटपुट संघर्ष होने लगे और काटोया के पास रघूजी की सेना अंशतः पराजित हुई। इधर गोंडवाना में देवगढ़ की गद्दी के लिये दो उत्तराधिकारियों में झगड़ा उठ खड़ा होने के कारण रघू जी को अपने प्रदेश की ओर लौटना आवश्यक हो गया था। देवगढ़ के राजा बुलन्द बख्त के दो तीन लड़के थे, जिन्हें औरंगजेब ने मुसलमान बना लिया था। इनके नाम थे वलीशाह, बुरहानशाह तथा अकबरशाह। वलीशाह ने शेष दोनों लड़कों को जेल में डाल दिया था और नीलकंठ शाह नामक स्वधर्म त्यागी चांदा के राजा की सहायता पाकर मराठों को चौथ या सर देशमुखी देने से इन्कार कर दिया था। अकबरशाह की इच्छा थी कि वह निजाम से सहायता की याचना करे परन्तु बुरहान शाह ने मराठों से लिखापढ़ी शुरू कर दिया था।

मराठों ने वलीशाह तथा नीलकंठ शाह की इस कार्यवाही को विद्रोह की संज्ञा दी तथा रघूजी ने देवगढ़ को भी और चांदा को भी अपने राज्य में मिला लिया। वलीशाह के भाई बुरहानशाह को रतनपुर की जागीर दे दी गयी जिससे उसके गुजर बसर भर की यथेष्ट आमदनी हो जाती थी। बुरहानशाह के वंशज अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक नागपुर के दर्बार में रहते थे और इस जागीर के कुछ अंश का उपभोग करते थे। अकबरशाह ने निजाम द्वारा दी गयी पेंशन पर जिन्दगी बसर की।

बालाजी (बाजीराव)

जिस समय रघूजी ने अफगान सिपाहियों द्वारा किये गये विद्रोह का लाभ उठा कर बंगाल में प्रवेश किया था, उसके फौरन बाद ही बालाजी ने भिलसा में पदार्पण किया। यह स्थान मालवा में है। यहीं से उसने बादशाह को पत्र लिखा, जिसमें उसने अपनी स्वामिभक्ति
१७४५] के प्रति बादशाह को पूर्णतया आश्वस्त किया था तथा उसमें कुछ कारण से दर्बार में हाजिरी न दे सकने के लिये क्षमा प्रार्थना की गयी थी, साथ ही रघूजी को बंगाल के बाहर न निकाल सकने के लिये अलीबर्दी खां की अकर्मण्यता पर आश्चर्य प्रगट किया गया था। उत्तर में बादशाह ने लिखा कि आपने योजना के अनुसार रघूजी के पीछे वाले घाटों को रोका ही नहीं। इधर पेशवा ने गुप्त रूप से रघूजी से भी समझौता किया था। इसलिये इस प्रश्न पर बादशाह के साथ व्यर्थ के तर्क वितर्क में न फंस कर पेशवा ने दक्षिण में आवश्यक कार्य होने का बहाना किया तथा वहां के आय व्यय का हिसाब देख कर पूना लौट आया। कर्नाटक में पेशवा के प्राचीन महाजन बापूजी नायक के कुछ थाने थे। वहां के कुछ देशमुखों ने थाने
१७४६ ई०] के कर्मचारियों को जबरन निकाल दिया था। पेशवा ने उन देशमुखों को दंड देने के लिये अगले वर्ष अपने चचेरे भाई सदाशिव राव जी भाऊ तथा महद जी पन्त पुरन्धरी के कारकुन सखाराम बापू को एक सेना के साथ कर्नाटक की ओर भेजा। बापू जी नायक ने रघूजी की मंत्रणा के अनुसार कृष्णा एवम् तुंगभद्रा नदियों के बीच के भूभाग की चौथ तथा सरदेशमुखी वसूल करने का ठेका सात लाख रुपये वार्षिक पर ले लिया था। यह ठेका राजा के द्वारा दिया गया था। चौथ तथा सरदेशमुखी की वसूली करने में समय-समय पर कितने ही विरोधों का सामना करना पड़ता था और इस कार्य के लिये उसे जो सेना रखनी पड़ती थी, उसके व्यय ने कुछ ही वर्षों में बापू जी की कमर तोड़ दी तथा वह आर्थिक बरबादी की सीमा पर जा पहुंचा।

उसकी सहायता के लिये पेशवा ने जो सेना भेजी, उसका व्यय भी वाध्य होकर उसे ही देना पड़ा। इससे उसकी परेशानी बहुत बढ़ गयी। फिर भी वह ठेका छोड़ने को तैयार न था, क्योंकि बात कुछ इस ढंग की हो रही थी कि यदि बापू जी ठेका छोड़ दें तो वही ठेका भाऊ को दे दिया जाय। बापू जी यह बात कभी सहन नहीं कर पा रहे थे कि ठेका भाऊ को दे दिया जाय। सदाशिव ने तुङ्गभद्रा के किनारे तक वसूली कर ली। उसने लगे हाथ भादरखेंडा के किले को भी सर कर लिया, जिसके लिये मराठा लोग बहुत दिनों से अपना दावा कर रहे थे। जब सदाशिव राव इस मुहिम से लौटा तो राजा ने उसे वे सभी पद और सुविधायें दे दीं, जो उसके पिता को मिली हुई थीं। चूँकि सदाशिव एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था अतः शीघ्र ही वह शक्तिशाली लोगों में गिना जाने लगा। उसने अपने कारकुन के रूप में नियुक्त किया बासुदेव जोशी तथा रघुनाथ हरी को, जिनकी योग्यता विख्यात थी तथा जिनका पालन-पोषण एवम् शिक्षा दीक्षा कान्हों जी आंग्रे की देख-रेख में हुई थी। इधर पेशवा ने बुन्देल खण्ड के रजवाड़ों से नये समझौते किये, जिनके परिणाम स्वरूप साढ़े सोलह लाख के करीब के भू-भाग उसे नये मिले। रेहली का जिला उसके पिता को पहले ही मिल चुका था। इसके साथ ही पन्ना स्थित हीरे के खान की आय का भी एक बड़ा भाग उसे मिल गया।

जिस समय दक्षिण में अपेक्षाकृत शान्ति विराज रही थी, उन दिनों पेशवा अपने राज्य की आन्तरिक उन्नति में लगा हुआ था। उसने राज्य की कृषि व्यवस्था में सुधार किया तथा कृषकों एवम् व्यापारियों को पूर्ण सुरक्षा का आश्वासन दिया। चारों ओर सुधार के संकेत दिखाई पड़ने लगे, परन्तु इसी समय हिन्दुस्तान, दक्षिण तथा कर्नाटक से कुछ ऐसे संकेत मिलने लग गये कि ऐसा प्रतीत होने लगा कि शीघ्र ही देश में नवीन आपत्तियाँ उठ खड़ी होंगी तथा चतुर्दिक क्रान्ति के दर्शन होने लगेंगे।

अहमद शाह अब्दाली

सन् १७४७ तथा ४८ के वर्ष हिन्दुस्तान के इतिहास मे सदा स्मरणीय रहेंगे, क्योंकि इसी अवधि में अहमहशाह अव्दाली का प्रथम आक्रमण इस देश पर हुआ। अब्दाली अफगान बादशाह था, जिसे हिन्दुस्तान में अब्दाली, दुर्रानी तथा गिल्जिया के नाम से लोग जानते हैं। अहमद अफगानों के एक फिरके के सरदार का लड़का था जो हिरात के सूबे में बस गया था। जिस समय नादिर शाह ने हिरात को जीता, उस समय अहमद भी कैद कर लिया गया। वहाँ जेल से मुक्त होकर वह नादिरशाह की नजरों में चढ़ गया और पूर्णरूप से उसके कदमों पर चलने लगा। तरक्की के रास्ते खुलते गये ओर धीरे-धीरे एक बड़े ओहदे पर पहुंच गया। नादिरशाह के कत्ल कर दिये जाने पर अपने समूचे फिरके के लोगों के साथ उसने फारसी सेना को छोड़ दिया और हिरात में लौटकर उसने वहाँ अपना आधिपत्य जमा लिया तथा धीरे-धीरे वह समूची अफगान जाति का बादशाह बन बैठा और धीरे-धीरे नादिरशाही साम्राज्य का पूर्वी भाग उसके प्रभाव में आ गया। अब वह अपने को अहमदशाह कहने लगा।

वजीर कमरुद्दीन का भतीजा लाहौर तथा मुल्तान का हाकिम था। वह अपने बड़े भाई से बड़ा द्वेष रखता था। अदीनाबेग खाँ नामक एक प्रपंची मुगल ने उसे सलाह दिया कि वह अहमद शाह अब्दाली से गंठबन्धन कर ले। अभी उस बेचारे ने गठबन्धन की योजना शुरू ही की थी कि छलिया अदीना वेग ने सारा हाल उसके चाचा से कह दिया। वह बेचारा बड़ा लज्जित हुआ और शीघ्र ही सीधे रास्ते पर आ गया। परन्तु अदीना वेग का षड्यंत्र काफी आगे तक जा चुका था और अहमदशाह अव्दाली लाहौर तथा मुल्तान के लिये कूच कर चुका था। वह आगे बढ़ता हुआ चला आया और

लाहौर तथा मुल्तान पर उसका अधिकार बेरोक-टोक हो गया। अब वह दिल्ली की ओर बढ़ा। मुगल बादशाह ने शाहजादा अहमद के सेनापतित्व में एक सेना भेजी, जिसके हाथों हार खाकर अफगान सेना काबुल को लौट गयी। चूँकि कमरुद्दीन खाँ मार डाला गया था अतः उसके पुत्र मीर मुन्नू को लाहौर तथा मुल्तान का प्रशासन सौंप दिया गया। इतना सब कर चुकने के बाद शाहजादा अहमद दिल्ली की ओर लौटा। अभी वह राजधानी में दाखिल भी न हुआ था कि मुगल बादशाह की मौत हो गयी। अहमद भाग कर दिल्ली आया तथा अहमद शाह के नाम से गद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठ कर उसने अवध के नवाब सफदर जंग को अपना वजीर बनाया। पहले उसने निजामुल्मुल्क को ही वजीर बनाना चाहा था। मगर निजाम ने अपनी बढ़ी हुई उम्र की बात कहकर वजीर बनने से इनकार कर दिया। बात सच भी थी। इसके दो माह बाद ही उसकी आयु के एक सौ चौथे वर्ष में १९ जून १७४८ को निजामुल्मुल्क का देहान्त हो गया।

निजामुलमुल्क के छः लड़के थे, जिनके क्रमशः नाम थे गाजीउद्दीन, नासिर जंग, सलावत जंग, निजाम अली मुहम्मद शरीफ तथा मीर मुगल। प्रथम दो पुत्र एक ही माँ से थे, शेष चारों अलग-अलग माताओं से थे। गाजीउद्दीन अमीरुलउमरा का खिताब पाकर दिल्ली में ही रहता था और वह अपने पिता की मृत्यु पर भी हाजिर न हो सका था, इसलिये नासिर जंग ने शासन-सूत्र सँभाला।

निजामुल्मुल्क की मृत्यु के कुछ दिनों बाद ही मुगलशाह ने नासिर जंग के पास स्वहस्त लिखित एक पत्र भेजा, जिसमें अनेक तरह से उसे दिल्ली बुलाया गया था। नासिर जंग ने फौरन ही दिल्ली के लिये कूच कर दिया, परन्तु अभी वह नर्मदातट तक ही पहुंच पाया था कि उसे समाचार दिया गया कि बादशाह ने अपना निमंत्रण-पत्र वापस ले लिया है। इस वापसी का कोई कारण भी उसे नहीं बताया गया था। चाहे जैसा भी हुआ हो, परन्तु निमंत्रण-पत्र की यह वापसी नासिरजंग के लिये वरदान ही सिद्ध हुई, क्योंकि चन्दा साहब एवम् फ्रांसीसियों की मदद से मुजफ्फर जंग ने नासिर जंग के खिलाफ बगावत कर दी थी। अभी नासिरजंग वापसी के रास्ते में ही था कि समाचार मिला कि अम्बर की लड़ाई में कर्नाटक पाईवाट के नवाब अनवरुद्दीन को हराकर मार डाला गया है। इस नवीन समाचार से संत्रस्त होकर नासिर जंग ने रघू जी भोंसले से सैनिक सहायता की माँग इस शर्त पर की कि इसके बदले में वह अपने राज्य का कुछ हिस्सा रघू जी को दे देगा। मुगल सल्तनत के अधीन जितने भी सरदार, किलेदार या सूबेदार थे सबको नासिर जंग ने इस मौके पर मदद के लिये बुलाया। यह सब करते हुये भी वह स्वयम् दक्षिण की ओर बढ़ता रहा। इस मौके पर जो लोग अपनी सेना सहित खुद आये या जिन्होंने अपनी सेना सहायतार्थ भेजा, उनमें गूटी के जागीरदार मुरारराव घोरपड़े, मैसूर के राजा, कुप्पा, करनूल तथा सावनेर के नवाब लोग अनवररुद्दीन का द्वितीय पुत्र मुहम्मद अली तथा मद्रास की अंग्रेज बस्तियों के अध्यक्ष मुख्य थे।

इस प्रकार समूचा दक्षिण देश सैनिकों से खाली हो गया। पेशवा के लिये यह बड़ा सुन्दर अवसर था परन्तु उसकी घरेलू परिस्थितियाँ † उसे सतारा से हिलने तक का अवसर न दे रही थीं। कुछ दिनों से राजा शाहू की मानसिक स्थिति बिगड़ गयी थी एवम् उन्माद की स्थिति आ गयी थी। कहते हैं कि उसकी सबसे छोटी स्त्री सगुणा बाई मोहिते की मृत्यु हो गयी थी और उस धक्के को

---

† कुछ दिनों के लिये अवश्य ही शाहू का मानसिक सन्तुलन खो गया था, परन्तु इससे किसी हानि की सम्भावना नही थी। एक बार एक कुत्ते ने शिकार में उसे व्याघ्र के हाथों में बँचाया था तभी वह इस कुत्ते को बहुत मानने लगा था। बीमारी की हालत में एक दिन दर्बार में उसने अपनी

राजा सम्भाल नहीं पा रहा था। धीरे-धीरे उसकी स्थिति सुधर रही थी और उसके तथा पेशवा के समीपस्थ जनों ने कहना प्रारम्भ किया कि राजा को किसी बालक को गोद ले लेना चाहिये। राजा का इकलौता बेटा उसकी मानसिक स्थिति बिगड़ने के थोड़ा पहले ही मर चुका था। पहले तो राजा ने बहुत टालमटोल किया, परन्तु बाद में उसने घोषित किया कि वह कोल्हापुर के राजा सम्भा जी को गोद ले लेगा यदि उसके कोई सन्तान हो। चूंकि सम्भाजी के भी कोई सन्तान नहीं थी अतः यह प्रस्तावित किया गया कि शाह जी के चाचा मालो जी के भाई विट्ठूजी के वंशजों में से किसी बालक की खोज की जाय। पूरी तलाश करने पर उस परिवार मे कोई लड़का न मिल सका। ऐसी दशा में यह सुझाव दिया गया कि पटेलों में से किसी सम्भ्रान्त सिलीदार के पुत्र को ढूँढ़ा जाय। राजा ने कई कारण बताकर इससे भी इन्कार कर दिया। अन्त में उसने महानन्द जी पन्त पुरन्धरी तथा गोबिन्द राव चिटनिस से बताया कि क्यों उसने किसी पटेल के लड़के को गोद ले लेने से इनकार कर दिया था। उसने कहा कि तारा बाई अब भी जीवित हैं और सतारा में ही रह रही हैं। उन्होंने अपने पौत्र राम राजा को कहीं छिपा कर रक्खा है। यह बालक राम राजा शिवा जी द्वितीय का पुत्र है, जो अपने पिता की मृत्यु के वाद सन् १७१२ में पैदा हुआ था। शाहू ने यह नहीं बताया कि यह भेद उसे कहां से मिला। खास करके जब कि राम राजा का जन्म भी रहस्यमय था और उसका पालन पोषण भी रहस्यमय ढंग से ही किया जा रहा था। पेशवा को राम राजा के वैध पुत्र होने का विश्वास तो हो गया, परन्तु बालक को मुख्यता न मिले, इसलिये उसने या तो स्वयम् इस बात का प्रचार किया या इसके प्रचार को जानबूझ कर नहीं रोका कि यह सारी कहानी कपोल कल्पित है। उसने बालक के नकली होने का प्रचार साधारण जनता में होने दिया। तारा बाई को जब यह मालूम हुआ कि कोल्हापुर के सम्भाजी को गोद लेने की चर्चा हो रही है तो उन्हें ऐसा कहते सुना गया कि वे इस कार्य को नहीं होने देंगी। जब उनसे गम्भीरतापूर्वक पूँछा गया तो उन्होंने घोषित किया कि मेरा पौत्र राम राजा जीवित है। शाहू की जीवित रानियों में सकवार बाई सबसे जेठी थीं। उन्होंने कल्पना का एक भव्य महल वना रक्खा था कि राजा की मृत्यु होने पर किसी नन्हे बालक को राज सिहासन पर बिठा कर उसकी संरक्षिका बन कर वे मराठा साम्राज्य की सर्वेसर्वा वनेगी। जब उन्होंने तारा बाई द्वारा की गयी घोषणा का समाचार सुना तो उन्हें अपना कल्पना जन्य महल धूलिसात् होता हुआ दिखाई पड़ा। फलतः उन्होंने तुरन्त सम्भाजी से सम्पर्क स्थापित किया और कहलवाया कि वे स्वयम् तारा बाई के इस तथा कथित पौत्र का विरोध करें। रानी ने स्वयम् ही उसे झूठा कहना शुरू कर दिया। सम्भाजी को पूर्ण सहायता देने का आश्वासन दिया गया। अपनी सहायता के लिये एक तो उन्होंने सम्भा जी शिवदेव को खड़ा किया और दूसरे श्रीपत राव के छोटे भाई जगजीवन को। सन् १७४७ ई० में पिछले प्रतिनिधि की मृत्यु हो जाने से श्रीपत राव की नियुक्ति प्रतिनिधि पद पर हुई थी। जगजीवन ने भी यथा सामर्थ्य रानी की सहायता करने की प्रतिज्ञा की थी। दभा जी गायकबाड़ को भी यह

राजसी पगड़ी उसी कुत्ते के सर पर रख कर अपनी मुक्ता-माल भी उसी के गले में डाल दिया था। उसने उस कुत्ते के नाम एक जागीर भी कर दी थी तथा वह उस पालकी में बैठाकर इधर-उधर ले जाया जाता था, परन्तु उसकी प्रतिभा ने अन्त तक उसका साथ नहीं छोड़ा था। इन्हीं दिनों राजा जय सिंह ने एक पत्र द्वारा पूँछा था कि आपने हिन्दू जाति के लिये क्या किया तथा कितना दान दिया। साहू ने उत्तर दिया था कि "रामेश्वर से दिल्ली तक की समस्त भूमि मुसलमानों से छीन कर मैंने ब्राह्मणों को दे दिया है।" यदि वह पागल हो गया होता तो वह इतना यथार्थ उत्तर कैसे दे पाता।

प्रस्ताव पसन्द आया। आपस में खूब मंत्रणा करके घाटमाथा तथा कोंकण की ओर दूत रवाना कर दिये गये। ये प्रदेश अपनी विद्रोहात्मक प्रवृत्ति के लिये प्रसिद्ध थे। इन दूतों को यह समझाकर भेजा गया था कि वे इन स्थानों में जाकर रहें और विद्रोह का वातावरण तैयार करें, ताकि उपयुक्त अवसर आते ही विद्रोह का झंडा ऊँचा किया जा सके। पेशवा बाला जी पैंतीस सहस्र सैनिक लेकर सतारा आये, परन्तु वे कोई भी ऐसा कार्य नहीं करना या होने देना चाहते थे कि जिससे मराठा जाति की भावना को किसी प्रकार की ठेस लगे या उनमें कोई उत्तेजना फैले। बात यह थी कि ब्राह्मणों की वृद्धिगत शक्ति को देख कर पहले से ही मराठा जाति जलती थी। इसीलिये पेशवा को अत्यन्त कौशल से काम लेने की आवश्यकता पड़ रही थी। सकवार बाई को निःशक्त करने के लिये उन्हें अपने पति से अलग करना अत्यावश्यक था, परन्तु जन-भावना को ध्यान में रखते हुये पेशवा को ऐसा करने का साहस नहीं हुआ। ऐसा करने से रानी के सगे सम्बन्धी लोग भी पेशवा से रुष्ट हो जा सकते थे। पेशवा रानी के समुचे षड्यंत्र को जानता था। उसमें लिप्त एक-एक व्यक्ति उसकी दृष्टि में थे। वह यह भी जानता था कि तनिक भी अवसर पा सकने पर रानी उसकी हत्या करा सकती हैं। मुश्किलाहट यह थी कि वह तारा बाई की ओर से भी सशंक था। पूर्ण विश्वास उधर से भी नहीं था। तारा बाई ने अपने पौत्र के छिपाने की कहानी ही इस बात का प्रमाण है कि तारा बाई तथा पेशवा में शत्रुता चल रही थी। शिवा जी द्वितीय की मृत्यु के समय उनकी स्त्री भवानी बाई के गर्भवती रहने का सर्वाधिक प्रबल खंडन किया था राजाराम की छोटी रानी राजस बाई ने। इसके पश्चात् तारा बाई के सभी प्रकार के प्रयत्नों का केन्द्र विन्दु यही रहा कि किसी भी प्रकार आने वाले बालक की हत्या न होने पावे। किसी प्रकार वे सद्यःजात बालक को पनाला के दुर्ग से बाहर निकाल ले गयीं तथा उसे भवानी बाई की बहन को सौंप दिया। वहाँ से वह बच्चा तुलजापुर ले जाया गया, जहाँ सब प्रकार से उसका वंशगत इतिहास सबसे छिपाकर उसका पालन-पोषण किया गया।

पेशवा की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करें। राजा की मृत्यु के तीन महीने पहले से ही वह सतारा में था और इस बीच वह महत्वाकांक्षा एवम् भय के बीच झूलता रहा। कभी तो वह सोचता था कि सबको अलग करके सारी सत्ता अपने हाथ में ले ले, फिर सोचता था कि तारा बाई का दावा न्याययुक्त है, अतः उनको सहायता देकर उनका प्राप्य उन्हें दिला देना चाहिये। ऊपरी मन से तथा सबको दिखाने के लिये वह तारा बाई का समर्थक था, उनका तथा उनके पौत्र का आदर भी करता था फिर भी वह उस अपवाद को रोकना नहीं चाहता था, जिसके अनुसार नवीन राजकुमार रामराजा के अस्तित्व की सारी कहानी ही झूठी थी। पेशवा अपनी शक्ति के शिखर पर था। यदि वह प्रयत्न करता तो राजा को ही अपने पथ में हटा सकता था परन्तु देश एवम् जाति की आवाज को भी वह पहचानता था। वह जानता था कि शिवाजी के नाम मात्र के वंशज के नाम पर भी कम से कम उस देश के सहस्रशः व्यक्ति उठ खड़े होंगे, जहां से जीवन प्रारम्भ करके शिवा जी छत्रपति शिवाजी बन गये थे। वह देश फिर किसी को छत्रपति बनाने की शक्ति रखता है।

अपनी षड्यंत्रपूर्ण योजनाओं को गुप्त रखने के लिये सवार बाई प्रायः यह कहा करती थीं कि पति के स्वर्गवासी होने की अवस्था में वे पति की चिता पर जल मरेंगी। उनकी यही बात उनकी बर्बादी का कारण बनी। चतुरपेशवा यद्यपि रानी के सारे कार्य व्यापार की गम्भीरता समझता था, फिर भी उसने ऐसा भाव प्रदर्शित किया मानो वह रानी की बात पर शब्दशः विश्वास करता था। इस बात का धीरे से जन साधारण में प्रचार हो गया और इस प्रकार यह प्रश्न न केवल उसकी निजकी एवम् श्वसुर कुल की ही वरन् पितृकुल की भी प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया। अब यदि रानी सती हो जाती है तो सम्भा जी की सहायता करने एवम् स्वयम् संरक्षिका बनने [illegible]

है और यदि वह सती नहीं होती तो सभो वर्ग के जन उसे मर्यादाभ्रष्टा मानकर उसकी कोई सहायता नहीं करते।

रानी ने ऐसा सुन्दर प्रबन्ध किया था कि वह हमेशा राजा के ही पास रहती थी एवम् किसी को भी उनसे अकेले बातचीत का अवसर ही नहीं मिल सकता था। पेशवा चाहता था कि यदि एक बार भी राजा से पूर्ण एकान्त में बातचीत का अवसर मिल पाता तो बहुत कुछ किया जा सकता था। उधर रानी भी इस बात के महत्व को पूर्णतया समझती थी। अतः वह भी सावधान रहती थी कि पेशवा को ऐसा अवसर न मिल पावे, परन्तु रानी के दुर्भाग्य से पेशवा को एक मौका मिल ही गया और इसी बीच में उसने अपना काम पूरा कर लिया। पेशवा ने राजा से एक दस्तावेज लिखवा लिया कि राजा की मृत्यु के बाद मराठा राज्य का समूचा शासन-सूत्र पेशवा के हाथ में ही रहेगा और इसकी एक ही शर्त होगी कि सब कामराज के ही नाम पर होगा और राजवंश की प्रतिष्ठा बनायी रक्खी जायगी एवं यह प्रतिष्ठा ताराबाई के पौत्र रामराजा के माध्यम से स्थापित रहेगी। इस प्रपत्र में यह भी लिखा गया था कि कोल्हापुर की रियासत सदा स्वतन्त्र ही रहेगी तथा राज्य की जो जागीरें जिनके नाम हैं वे उन्हीं के नाम स्थायी रूप से रहेंगी। पेशवा को केवल इतना अधिकार दिया गया था कि हिन्दुस्तान की भलाई के लिये वह इन जागीरों के प्रबन्ध में उलट फेर कर सकता था। किसानों की उन्नति के लिये, पवित्र स्थानों की विशेष कर मन्दिरों की पवित्रता की रक्षा के लिये या जो कुछ भी पवित्र हो उन सबकी रक्षा के लिये पेशवा चाहे जो कुछ कर लकता था।

अभी राजा ने अन्तिम श्वांस भी नहीं ली थी कि घुड़सवारों का एक दस्ता सतारा शहर में होकर निकला। उसने जाकर प्रतिनिधि का घर घेर लिया तथा उसे बन्दी बना लिया। उनके मुतअलिक यम्मा जी शिवदेव को भी गिरफ्तार कर लिया गया। उन दोनों को सींखचों के अन्दर कर दिया गया और सख्त पहरे में रखकर उन्हें दूर के पहाड़ी किलों में भेज दिया मया। शहर की हर गली में पेशवा के सैनिक दिखाई पड़ने लगें। किले में भी पेशवा के सैनिक छा गये। सैनिकों का एक दस्ता रामराजा को सुरक्षापूर्वक सतारा ले आने के लिए भेज दिया गया था।

रानी को पेशवा की इस चतुरता ने किंकर्तव्य विमूढ़ बना दिया था। उसकी सभी योजनायें प्रगट ही नहीं हो गयी थीं वरन् धूलिसात् भी हो गयी थीं। उसका पर्दाफाश हो चुका था और असफलता ने उसे क्रोधाभिभूत कर दिया था। ऐसी ही स्थिति में पेशवा का यह सन्देशा प्रार्थनारूप में मिला कि वह रानी से प्रार्थना करता है कि वे सती न हों और यह कि यदि वे सती न होंगी तो स्वयम् पेशवा तथा अन्य मराठा सामन्त उसकी आज्ञानुसार काम करने में अपने को गौरवान्वित समझेंगे। यह संदेश पाकर रानी और भी जल उठी। ऐसे ही समय में पेशवा ने रानी के भाई कुंअर जी सिरके को एक जागीर देने की प्रतिज्ञा करके रानी के पास इसलिये भेज दिया कि वह समझा बुझाकर रानी को सती न होने के लिये प्रस्तुत कर दे। कुँअर जी सिरके ने रानी को पतिकुल एवम् पितृकुल की मर्यादा तथा आन की बात कह कर उसे समझाया और तब तक समझाता रहा जब तल कि रानी सती हो जाने के लिये तैयार न हो गयी। इस प्रकार पेशवा ने अपने शत्रु का अन्त किया। पाठकों को इस भ्रम में नहीं पड़ जाना चाहिये कि अपने इस कार्य से पेशवा प्रशसा का भाजन बन गया। इसके विपरीत लोगों ने यह कहना शुरू कर दिया कि इससे तो अच्छा यही हुआ होता कि पेशवा ने स्वयम् ही रानी को तलवार के घाट उतार दिया होता। पेसवा के इस कार्य की समूचे महाराष्ट्र में निन्दा की गयी, परन्तुबाजी पेशवा के ही हाथ रही और वह राज्य का सर्वेसर्वा बन बैठा।

उन्नीसवाँ अध्याय

दक्षिण की परस्पर विरोधी शक्तियों में संघर्ष

[१७५० से १७५४]

पेशवा का रघूजी को मिला लेना—पूना मराठों की राजधानी—राजा की अन्तिम इच्छानुसार प्रबन्ध—यम्माजी का विद्रोह तथा दमन—पेशवा तथा भाऊ में मतभेद—रामचन्द्र बाबा सेनवी—पेशवा ने गाजीउद्दीन का पक्ष लिया—नासिरजंग की मृत्यु तथा उसका चरित्र—मुजफ्फरजंग का प्रभाव—राजा रघुनाथ दास तथा हैदरजंग—मुजफ्फरजंग की मृत्यु—पेशवा की प्रतिक्रिया—गायकवाड़ की गिरफ्तारी—पेशवा का सलावतजंग पर आक्रमण—महाराष्ट्र प्रदेश में युद्ध—मुगल-सैन्य तथा बुशी—सन्धि पत्र—राजा रघुनाथदास की हत्या—मीरहबीब की मृत्यु—मुगलदर्बार—अब्दाली—रुहेले—होल्कर दक्षिणमें—अब्दाली का अभियान—सलावतजंग के कार्यकलाप-लश्कर खाँ तथा शाहनवाज का प्रभाव—सतारा में—कर्नाटक तथा गुजरात का अभियान—रघूजी भोंसले की मृत्यु—तानोजी भोंसले—दिल्ली के क्रियाकलाप—मीर शहाबुद्दीन का मराठों से सहायता याचना—गाजीउद्दीन की वजीर रूप में नियुक्ति—जहांदार शाह का बादशाह बनाया जाना।

पेशवा एवम् प्रभुसत्ता

शाहू राजा की मृत्यु के पूर्व ही उसी के नाम पर यशवन्त राव दाभाड़े तथा रघूजी भोंसले को सतारा में उपस्थित होने का आदेश भेजा गया था। दाभाड़े को तो नशाखोरी ने एकदम बेकार बना दिया था, उसकी मानसिक स्थिति एकदम से असन्तुलित हो गयी थी। आदेश भेजते समय ही यह समझा गया था कि इनमें से कोई भी दरबार में उपस्थिति नहीं होगा। यह बात सच भी निकली कि न तो दाभाड़े स्वयम् ही आया और न उसने अपने सेनापति दमाजी गायकवाड़ को ही भेजा। दूसरे जागीरदारों में से अधिकांश उपस्थित थे। इनमें से यदि किसी के मन में पेशवा-विरोधी-भावना थी भी तो वे निष्क्रिय ही बने रहे। सभी लोग रघूजी भोंसले की प्रतीक्षा में थे कि वह क्या करता है। रघूजी की अवस्था इतनी अधिक हो गयी थी कि अब वह किसी ऐसे कार्य के लिये अयोग्य था, जिसमें शक्ति एवम् कर्मशीलता की निरन्तर आवश्यकता हो। अनुभवों ने भी उसे यही सिखाया था कि व्यर्थ ही पेशवा से विरोध रखने से कोई लाभ होने वाला नहीं है। उसकी प्रबल इच्छा थी कि बंगाल में वार्षिक आभियानों का क्रम चालू रक्खा जाय। उधर दस सहस्र सवारों के साथ उसका पुत्र जानोजी नासिर जंग के साथ कर्नाटक की ओर गया था। थोड़ी सी सेना उसके निजी प्रदेश के लिये आवश्यक थी ही। ऐसी दशा में केवल बारह हजार सवारों को लेकर वह सतारा आया था। यह बात जनवरी सन् १७५० की है। पेशवा की ओर उसकी मनोवृत्ति पूर्ण हो चुकी थी। हाँ रामराजा को स्वीकार करने में अवश्य ही वह आगा पीछा कर रहा था। उसने इस बात के लिये प्रमाण की आवश्यकता समझा कि रामराजा राजाराम का वास्तविक पौत्र है, इसलिये उसने सुझाव दिया कि यदि ताराबाई रामराजा के साथ-साथ ही एक चौके में बैठकर भोजन करले तो उसे सन्तोष हो जायगा कि रामराजा उनका पौत्र है। ताराबाई ने इस शर्त को पूरा कर दिया और रघूजी सन्तुष्ट हो गया। उससे इस विषय में

जहां कहीं भी सम्मति मांगी गयी, वहाँ उसने सब कुछ स्वीकार कर लिया। पेशवा तथा रघूजी के विरोधी रास्ते मिलकर इस प्रकार एक हो गये कि रामराजा को रघूजी के संरक्षण में छोड़कर पेशवा पूना चला गया और रघूजी को निर्देशित करता गया कि रामराजा की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखते हुये तमाम जागीरदारों को लेकर पूना चला आवे ताकि वहां चलकर राजा की अन्तिम इच्छाओं को साकार किया जा सके। इसी समय से पूना को समस्त मराठा राज्य की राजधानी का गौरव प्राप्त हो गया। पेशवा ने अपनी सफलता के मद में राजकाज में ताराबाई की उपेक्षा करनी शुरू कर दी। यद्यपि ताराबाई की अवस्था उस समय सत्तर वर्ष की थी फिर भी अपने कार्यों से उसने पेशवा को विश्वास दिला दिया कि किसी भी अवस्था में यदि उसकी उपेक्षा की गयी तो उसका परिणाम पेशवा के लिये बुरा भी हो सकता है। पेशवा को समझ आ गयी कि इस प्रकार की मनोवृत्ति वाली स्त्रियों को सन्तुष्ट रख कर चलना ही श्रेयस्कर होता है। उसके पति राजाराम की समाधि सिंहगढ़ में थी। समाधि का दर्शन करने के बहाने वह सिंहगढ़ गयी और वहां जाकर उसने पन्त सचिव को इस बात के लिये प्रेरित करना प्रारम्भ किया कि वह घोषित कर दे कि समूचे महाराष्ट्र साम्राज्य के राजकाज की प्रमुख कर्ता-धर्ता ताराबाई ही हैं। कितने ही प्रयत्नों के बाद पेशवा उन्हें पूना वापस लाने में सफल हुआ। पूना लाकर पेशवा ने रानी को इस बात का पूर्ण आश्वासन दिया कि बिना उनकी सम्मति लिये कोई भी काम नहीं होगा। रानी भी सन्तुष्ट हो गयी और उसके सन्तुष्ट होते ही रामराजा भी पेशवा के पूर्ण प्रभाव में आ गया। अब जाकर पेशवा को ऐसा अवसर मिला कि वह अपनी योजनाओं की पूर्ति में लगे।

रघूजी भोंसले को नयी सनदें दी गयीं, जिनके अनुसार उसे बरार, गोंडवाना तथा बंगाल के समूचे प्रदेशों पर अधिकार दिया गया। कुछ जागीरें भी उसके नाम कर दी गयीं जो पहले प्रतिनिधि के नाम से थीं। ये जागीरें बरार से मिली हुई थी। आधे गुजरात प्रान्त की सनद यशवन्त राव दाभाड़े को भेज दी गई यद्यपि दाभाड़े ने अभी पुरानी आय का हिसाब भी नहीं दिया था। इस बात से दमा जी गायकवाड़ ने अन्दाज लगाया कि पेशवा की बढ़ी हुई शक्ति से क्या आशा की जा सकती है। करीब-करीब इसी समय रानोजी सिंधिया की मृत्यु हो गयी। उसकी जागीर उसके ज्येष्ठतम पुत्र को दी गई। पूरे मालवा प्रान्त का मूल्यांकन एक करोड़ पचास लाख रुपया वार्षिक था। इसमें से चौहत्तर लाख पचास हजार मूल्यांकन का भूभाग होल्कर को तथा पैंसठ लाख पचास हजार वार्षिक आय का भूभाग सिंधिया को दे दिया गया। शेष दस लाख रुपये वार्षिक मूल्यांकन के भूभाग विभिन्न जागीरदारों के हाथ में थे। इन जागीरदारों में आनन्द राव पवार मुख्य था। इन जागीरदारों में सब के सब पेशवा के आज्ञानुवर्ती थे और उनसे पेशवा के विपरीत किसी प्रकार की भावना की कोई आशा नहीं की जा सकती थी।

शिवाजी कालीन अष्ट प्रधानों की योजना को कार्यान्वित करने का पेशवा का कोई इरादा नहीं था, फिर भी उसने आठ प्रधानों को स्थायित्व प्रदान कर दिया और थोड़े ही दिनों के लिये गंगाधर श्री निवास को प्रतिनिधि बना दिया। उपरोक्त प्रबन्ध पूर्ण हो जाने के बाद जब रघूजी पूना छोड़ने लगा तथा अन्य जागीरदार भी अपनी-अपनी जागीरों को लौटने लगे तो उन्होंने सम्मिलित रूप से एक प्रार्थना पत्र के द्वारा पेशवा से प्रार्थना की कि जगजीवन परशुराम को बन्दीगृह से निकाल कर मुक्त करके उसका प्राचीन पद व गौरव सौंप दिया जाय। उधर राजा की स्थिति बदल जाने से उसके बहुत से कर्मचारी व सेवक बेकार पड़ गये थे। उन्हें भी काम देना आवश्यक था। उन लोगों को जागीर देने के लिये प्रतिनिधि की जागीर का वह भाग सुरक्षित कर लिया गया, जो कुरार के पश्चिम में उर-

मुरी तथा वारना के बीच में पड़ता था। पेशवा को एक भय यह भी सताया करता था कि कहीं इस भूभाग के लोग कोल्हापुर के राजा के प्रभाव में आकर विद्रोह न कर दें। इस नये प्रबन्ध से अब इस बात की कोई सम्भावना न रह गयी।

शाहू का दत्तक पुत्र फतहसिंह भोंसले था। उसके नाम जो जागीर थी उसे स्थायित्व प्रदान कर दिया गया। और भी कई स्थानों की लगान में जो भाग उसे मिला करता था, उसे भी स्थायी बना दिया गया और उसकी 'अकलकोट का राजा' की पदवी भी स्थायी कर दी गई। इन सभी को उनके वंशज आज तक भोगते आरहे हैं। शाहू ने मंत्री के किसी सम्बन्धी को काम देने के लिये एक सर्वथा नये पद की सृष्टि की थी और उस पद का नाम रक्खा था 'अजहूत सरदेश मुख' और उस पद पर रहने वाले व्यक्ति का कर्त्तव्य था कि वह सरदेशमुखी की वसूली का प्रबन्ध करे। पेशवा ने इस पद को नाम मात्र के लिये बनाये रक्खा, परन्तु उस पद के साथ लगी हुई जागीरों को उन लोगों में बाँट दिया जो दक्षिण के छः सूबों से सरदेशमुखी की वसूली का काम करते थे।

लश्कर खाँ की जगह निम्बाजी नायक निम्बालकर को दे दी गई। उपरोक्त सभी परिवर्तन राजा के नाम से किये गये थे, परन्तु यह सभी को ज्ञात था कि इन सभी परिवर्तनों को पेशवा ने स्वेच्छा से ही किया था। पेशवा इस समय मराठा साम्राज्य में शक्ति शिखर पर था और वह जो कुछ भी कर रहा था, उसे लोग बिना किसी प्रकार का असन्तोष प्रगट किये माने ले रहे थे।

प्रतिनिधि की मुक्ति के साथ ही यम्माजी शिवदेव भी मुक्त कर दिये गये थे और अब वे पन्दरपुर के समीपस्थ दुर्ग संगोंला में रहने लगे थे। यहीं रहकर उन्होंने पेशवा के विरुद्ध विद्रोह का झंडा ऊंचा किया, परन्तु सदाशिव भाऊ ने उसे दबा दिया।

उपरोक्त जितने भी काम किये गये उन सबका अधिकांश श्रेय है पेशवा दीवान महादजी पंत को, जिनका प्रभाव बालाजी राव के ऊपर अत्याधिक था। यह भी कह सकते हैं कि सदाशिव को छोड़कर अन्य किसी का भी प्रभाव इताना अधिक नहीं था। जिस समय सदाशिव संगोंला का विद्रोह दमन करने गया था तो रामराजा भी उनके साथ थे, जिससे जन साधारण को पेशवा से किसी प्रकार की शिकायत न रहे और शिवदेव जनता की दृष्टि में वास्तविक राज्यद्रोही माना जाय। उसी अवधि में राजा इस बात पर राजी हो गये कि वे अपने सभी अधिकार त्याग देंगे और पेशवा द्वारा प्रस्तावित सभी बातों पर अपनी स्वीकृति की मुहर लगा दिया करेंगे, यदि सतारा के आस-पास का कुछ भाग स्वयम् उनके हाथों में रहें। पेशवा ने राजा की शर्तो को मान तो लिया परन्तु उसने उन शर्तों को पूरा कभी नहीं किया। सुदृढ़ पहरे में राजा सतारा वापस आये, परन्तु इसी बीच पेशवा एवम् सदाशिव में कुछ मतभेद पैदा हो गया। इस मतभेद ने पेशवा की उस समस्त प्रभाव को करीब-करीब डगमगा दिया, जिन्हें स्थापित करने में अबतक पेशवा ने इतना अधिक परिश्रम किया था।

इस समय तक सदाशिव राव भाऊ ने रामचन्दर बाबा सेनवी से अपना सम्पर्क बना लिया था। रामचन्दर बाबा का चरित्र असाधारण था। विशेष कर जिस ढंग से उन्होंने मराठा राज्य में शक्ति संचित कर ली थी, वह अद्भुत था। कई बातों में मराठा प्रदेश उनका ऋणी भी था। इस व्यक्ति का वास्तविक नाम था रामचन्दर मुलहर और वह असली गाँव में कुलकर्णी था। यह गांव वाड़ी के सामन्त के आधीन था। इस गांव की लगान के सम्बंध में गड़बड़ी करने के कारण वह सामन्त के अधिकार क्षेत्र से भाग गया था। भाग कर वह सतारा आ गया और वहाँ उसे कचेश्वर बाबा उत्तोकर की सेवा में ले लिया गया था। कचेश्वर बाबा की सिफारिश पर उसे पेशवा की सेना में स्थान मिल गया, जहाँ

उसे एक सैनिक रूप में भी ख्याति मिली और एक व्यवहारिक व्यक्ति के रूप में भी। बालाजीराव ने उसे रानोजी सिंधिया का दीवान बना दिया तथा बहुतों का विचार है कि उसी के कारनामों के कारण सिन्धिया इतना शीघ्र इतना गरीब बन गया कि उसकी गरीबी की कहावत बन गई, क्योंकि रामचन्दर की समृद्धि सिंधिया की गरीबी के क्रम की विलोमानुपाती थी। रानो जी की मृत्यु के बाद उसने पेशवा को इस बात के लिये रिश्वत तक दी कि वह रानोजी के पुत्र जयप्पा का भी दीवान बना रहे, किन्तु जयप्पा उसे तनिक भी पसन्द नहीं करता था और मल्हारराव होल्कर ने भी इस व्यवस्था का विरोध किया, इसलिये पेशवा ने उस पद से उसे हटा लिया। देखने में यह बात कुछ भी नहीं थी, परन्तु आगे चलकर इस बात ने अनेक बड़ी उलझनों को जन्म दिया। होल्कर तथा भाऊ के बीच मनोमालिन्य इसी व्यवस्था को लेकर हुआ। रामचन्द्र भी पेशवा से इसी बात पर रुष्ट हो गया। आगे चलकर सदा शिवराव ने उसे अपना दीवान बना लिया और उसी की राय से राव ने पेशवा को एक प्रार्थना-पत्र दिया, जिसमें यह प्रार्थना की गयी थी कि उसे वे सभी अधिकार दे दिया जाय जो उसके पिता चिमना जी अप्पा को मिले हुये थे। बालाजी ने इस प्रार्थना को अस्वीकृति कर दिया, क्योंकि उसे स्वीकार कर लेने से महदाजी पन्त फुबन्धरी के प्रभाव में कमी आ रही थी और महादजी के अनेक उपकार पेशवा के ऊपर थे। इस अस्वीकृति के पश्चात् वे सदाशिव राव के ही प्रस्ताव पर संगोला के अभियान के अनन्तर कोल्हापुर के राजा ने उसे अपना पेशवा बना लिया और उसे पारगढ़, कुलनिधि तथा चन्दगढ़ के किलों के साथ पांच हजार रुपये वार्षिक की एक जागीर भी दिया। इस नवीन व्यवस्था ने पेशवा तथा सदाशिव राव भाऊ (नवीन पेशवा) के बीच वैमनस्य का बीज बो दिया और यह बीज इतनी शीघ्रता से अंकुरित हुआ कि यह सम्भावना दिखाई पड़ने लगी कि कहीं वह युद्ध-वृक्ष के रूप में न हो जाय। महादजी पन्त ने एकबार फिर परिस्थिति को बिगड़ने से बचा लिया था। उसने स्वयमेव अपने पद से त्याग पत्र दे दिया और सदाशिव राव कोल्हापुर का पेशवा-पद छोड़ कर प्रधान मन्त्री पद पर नियुक्त होकर पूना वापस आया।

जैसा कि पिछली पंक्तियों में लिखा जा चुका है, नासिरजंग का निमंत्रण पाकर दक्षिण के अनेक किलेदार व सूबेदार हैदराबाद की ओर चले गये थे और समूचा दक्षिण सैनिको से इस प्रकार खाली हो गया था कि यदि मराठे चाहते तो सहज ही में अपना प्रभाव-विस्तार कर सकते थे, परन्तु वे सब के सब अपनी ही उलझनो में इतने फँसे हुये थे कि उन्हें दक्षिण की ओर आँख उठाने का अवसर ही नहीं मिल रहा था। निजामुलमुल्क के ज्येष्ठतम पुत्र गाजीउद्दीन ने मल्हारराव होल्कर की मध्यस्थता में बालाजी राव के साथ सुलहनामे की बातचीत शुरू की थी। पेशवा ने गाजीउद्दीन को मदद देना स्वीकार कर लिया था और मुगल बादशाह अहमदशाह को प्रार्थना के रूप में लिखा था कि चूंकि इस समय कर्नाटक में अव्यवस्था फेल गयी है तथा दक्षिण में सैनिकों की एकदम कमी पड़ गयी है और सम्भावना इस बात की अधिक हो गयी है कि स्वतंत्र रूप से लूटमार करने वाले कहीं जोर न पकड़ लें, इसलिये मेरी राय में यही बात ठीक होगी, कि गाजीउद्दीन को उसके पिता की जगह पर वाइसराय नियुक्त कर दिया जाय। बादशाह से इस प्रकार की प्रार्थना तो पेशवा ने की ही, साथ ही उसने अपनी सेना को भी तैयार कर लिया और औरंगाबाद की ओर कूच कर दिया। पूना छोड़ने के पूर्व उसने पन्त सचिव को इस बात के लिये राजी कर लिया कि वह तुंग और तिकोना किले को लेकर सिंहगढ़ को छोड़ दे। ताराबाई वृद्धा हो गयी थीं, परन्तु न तो उनकी कार्य शक्ति कम हुई थी और न षड्यंत्र करने की शक्ति। उन्हें भी संतुष्ट करना अत्यावश्यक था। पेशवा ने अपनी सतारा स्थिति सेना को सावधानी पूर्वक निकाला और सतारा का पूरा प्रबन्ध तारा बाई को सौंप दिया।

रामराजा सतारा में ही रह रहे थे। उनकी व्यवस्था अलग थी। स्वयम् उनके तथा उनके कर्मचारियों के लिये सम्पूर्ण व्यय के योग्य आय का पूरा प्रबन्ध पेशवा ने कर दिया था। रामराजा को सम्पूर्ण व्यवस्था में उस समय पैंसठ लाख रुपये की आमदनी की जागीर लगी हुई थी।

नासिरजंग

जिस समय शाहू की बीमारी के समय पेशवा सतारा में था, उसी समय के आस पास नासिर जंग ने अपना कर्नाटक का वह प्रसिद्ध अभियान शुरू किया था, जिसका परिणाम उसके लिये भयानक सिद्ध हुआ था। मुरार राव धोरपड़े तथा कुछ और मराठे सर्दार कर्नाटक पाईं घाट में बने रहे परन्तु रघूजी भोंसले के पुत्र जानो जी भोंसले ने मराटों का साथ या तो उस समय छोड़ दिया, जब मार्च सन् १७५० में मुजफ्फर जंग की हार हो गयी थी; या जिस समय शाहनवाज ने सलावत जंग का साथ छोड़ दिया था। जानोजी भोंसले उस समय औरंगाबाद की ओर चला गया था, जिस समय कर्नूल का घेरा पड़ा हुआ था। नासिरजंग के पतन के मूल में मुख्य व्यक्ति था फ्रांसीसी गवर्नर डूप्ले, जिसने रामदास नामक एक ब्राह्मण को मिला कर नासिरजंग की सेना पर उस समय हमला किया था, जिस समय रामदास ने उसकी सेना में पूरी तरह से फूट फैला दी थी। ५ सितम्बर सन् १७५० ई० को कुरपा के पठान नवाब ने नासिरजंग को गोली मार दी और इस प्रकार उस बेचारे का अन्त हुआ। नासिरजंग में अपने पिता की बुद्धिमत्ता का अभाव था। इसमें शक नहीं कि यदि वह कामयाब भी हो गया होता तो उसका अधिकांश समय अन्य मुसलमान नवाबों की तरह ऐयाशी में ही बीतता, परन्तु कुछ अर्थों में वह साधारण लोगों से कहीं ऊंचा मनुष्य था। उसकी शिक्षा यूरोपीय देशों में हुई थी और उसके अधिकांश गुण मध्यकालीन यूरोपीय सामन्तों (नाइट्स) के समान थे। वह एक सुसंस्कृत पुरुष था। उसकी बहादुरी एवम् उदारता की प्रशंसा उसके शत्रुओं ने भी की है। साहित्य में विशेष कर काव्य में उसकी बड़ी रुचि थी। यद्यपि वह कच्ची उम्र में ही मार डाला गया फिर भी दक्षिण के लोग आज भी उसे आदरपूर्वक स्मरण करते हैं। उसने स्वयम् भी वहुत कुछ लिखा है और उसके सम्बन्ध की अधिकाँश बातें उसके मित्र मीर गुलाम अलीबिलग्रामी की कृतियों में मिलती है।

दक्षिण के छहों सूबे का प्रबन्ध बादशाह के प्रतिनिधि की हैसियत से मुजफ्फर जंग करने लगा। इस प्रबन्ध में उसके मुख्य सहायक थे वे फ्रांसीसी कर्मचारी, जिनकी सहायता से मुजफ्फर जंग ने सफलता प्राप्त की थी। कपटी रामदास को डूप्लें ने छोड़ा नहीं। डूप्ले ने देखा कि भारत में फ्रांसीसी राज्य स्थापित करने की उसकी महत्वाकांक्षा की सिद्धि में रामदास जैसे व्यक्तियों की उसे बड़ी ही आवश्यकता थी। उसने रामदास को मुजफ्फर जंग का वजीरआजम बनवा दिया और उसे राजा रघुनाथ दास का खिताब दिया गया। इस अवसर पर यदि अब्दुल रहमान की चर्चा न की जाय, तो यह विवरण अधूरा ही रह जायगा। फ्रांसीसियों में एक अफसर था वुशी, जिसे दीवान को उसके खिताब हैदरजंग के नाम से जाना जाता है। अब्दुल रहमान को ही हैदरजंग का खिताब दिया गया था। इसके पिता ने निजामुलमुल्क के जमाने में मछलीपट्टम की लगान की रकम का अधिकांश गबन कर लिया था, परन्तु समय-समय पर वहां पर रहने वाले फ्राँसीसी व्यापारियों तथा कर्मचारियों के साथ उसने मित्रतापूर्ण व्यवहार भी किया था। इसी लिये गबन के अपराध में सजा पाने के डर से वह पाण्डुचेरी की फ्रांसीसी बस्तियों में भाग गया, जहां डूप्ले ने उसका बड़ा सामान किया और उसे आश्रय भी प्रदान किया। उसके लड़के अब्दुल रहमान ने शीघ्र ही फ्रेंच भाषा सीख ली और उसी के द्वारा डूप्ले का परिचय रामदास से हुआ था। डूप्ले रामदास-षड्यंत्र का मध्यस्थ अब्दुल रहमान ही था। नासिर जंग की मृत्यु के बाद जब मुजफ्फर जंग ने सत्ता ग्रहण की तो वुशी के साथ अब्दुल रहमान भी

वहाँ गया। वहाँ पर लोग उसे फ्रेंच दीवान के नाम से जानने लगे। नये नवाब ने ही इसे हैदर जंग का ख़िताब दिया दक्षिण के पठान नवाबों को आशा थी कि नासिर जंग के पतन तथा मुजफ्फर जंग की सफलता से उनको अत्यधिक लाभ होगा, परन्तु उनकी आशा का गतांश भी न पूरा हुआ अतः असन्तुष्ट होकर वे मुजफ्फर जङ्ग के विरुद्ध भी षड्यंत्र करने लगे। मुजफ्फर जङ्ग ने १७५१ ई०] इन षड्यंत्रों का भंडाफोड़ करके उसे छिन्न-भिन्न कर देने में तो सफलता प्राप्त कर ली, परन्तु इसी सफलता में उसकी मृत्यु भी छिपी हुई थी। सन् १७५१ के जनवरी माह के अन्त में मुजफ्फर जङ्ग मारा गया और निजामुलमुल्क के तृतीय पुत्र सलाका जङ्ग को गद्दी के अधिकारी के रूप में चुना गया।

पेशवा ने इस बहाने गाजीउद्दीन के गुप्त मित्र औरंगाबाद के सूबेदार सैयद लश्कर खाँ से कुछ रुपयों की याचना की, कि उसे गाजीउद्दीन की मदद करना है। सैयद लश्कर खाँ ने इस कार्य के लिये अपने इलाके से पन्द्रह लाख रुपये वसूल करके पेशवा को दे दिया। इस प्रकार की आर्थिक सहायता प्राप्त करके सलावत जंग का मुकाबला करने के लिये पेशवा कृष्णा नदी के किनारे की ओर बढ़ा। सलावत जंग की सहायता में एक फ्रांसीसी सेना थी, जिसका सेनापति था वुशी और वह हैदराबाद की ओर बढ़ रहा था। अभी दोनों सेनायें एक दूसरे के आमने सामने भी नहीं आ पायी थीं कि पेशवा को सतारा से कुछ ऐसा क्षोभजनक समाचार मिला कि उसे सतारा लौटना अत्यावश्यक जान पड़ा। परिणाम स्वरूप सलावत जंग के प्रथम प्रस्ताव पर ही पेशवा ने उससे सन्धि कर ली और यथा सम्भव शीघ्रता के साथ पश्चिम की ओर लौटा।

दमाजी गायकवाड़

जिस समय पेशवा औरंगाबाद की ओर बढ़ रहा था, प्रायः उसी समय ताराबाई ने रामराजा को उकसाया कि पेशवा ने उसके जिन अधिकारों को चाहे किसी भी प्रकार हस्तान्तरित करा लिया था, उन्हें वह स्वयम् अपने हाथ में ले ले। ताराबाई ने रामराजा को प्रेरणा तो दी, परन्तु यह समझ कर उसने गम्भीरता नहीं दिखाई कि रामराजा में सम्पूर्ण सत्ता ग्रहण करने की योग्यता भी नहीं थी। उसने दमाजी गायकवाड़ को एक दूत के द्वारा सन्देशा भेजा कि सतारा इस समय पूर्णतः अरक्षित है, इसलिये वह शीघ्र ही सतारा आकर राजा की तथा मराठा राज्य की रक्षा ब्रह्मणों के हाथों से करे। दमाजी ने रानी के इस सन्देशे को ध्यानपूर्वक सुना तथा वह इसके अनुसार कार्य करने को तत्पर हो गया। इधर गायकवाड़ द्वारा सतारा की ओर कूंच करने का समाचार पाकर ताराबाई ने रामराजा को सतारा के किले में बुलवा भेजा और उसे बन्दी बना लिया। उसकी अयोग्यता के लिये रानी ने उसकी बड़ी भर्त्सना की और कहा कि "अगर मैं जानती कि तुम इतने निकम्मे बनोगे, तो मैं तुमको लोगों की नजरों के सामने ही नहीं लाती। तुम्हारे जैसा नगण्य व्यक्ति न तो मेरा पौत्र ही कहलाने का अधिकारी है और न छत्रपति शिवाजी का वंशज ही। तुम जिस प्रकार छिपाकर पाले गये, उसी के योग्य हो। तुम न तो भोंसले की ही सन्तान हो और न मोहित्रे की ही। तुम अवश्य किसी नाचने गाने वाले की सन्तान हो। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस निम्नकुलीन व्यक्ति के घर में अपने पौत्र को मैंने छिपाया था, वहाँ किसी ने उसे बदल कर तुमको मेरा पौत्र कह कर प्रसिद्ध कर दिया। मैंने समूचे मराठा राज्य में अपना पौत्र कह कर तुम्हारा परिचय दिया है जो एक महान् सामाजिक अपराध है और इस अपराध का प्रायश्चित करने के लिये मैं कृष्णा तट पर उपासना करूँगी।" रामराजा की इस प्रकार भर्त्सना करने के उपरान्त रानी ने अपने हवलदार को हुक्म

दिया कि रामराजा के सेवकों को गोली मार दो। बेचारे सेवकों को तो पता था नहीं कि भीतर क्या हो रहा है अतः वे सब फाटक पर सिमटे खड़े थे। गोली चलने की आवाज पर वे चौकन्ने हुये और जिसकी सींग जहाँ समाई वह उसी ओर भाग गया। इसके बाद रानी ने आज्ञा दी कि गोलियाँ नगर के उस भाग में भी चलाई जायँ, जिधर कोंकनी ब्राह्मण लोग रहते थे। नगर के गण्यमान्य ब्राह्मण अर्थात् त्र्यम्बक पन्त, जिसे नाना पुरन्धरी कहते थे, गोविन्दराव विटनीस तथा पेशवा के अन्य सहायकों ने पहले तो इसे एक पागल एवम् वृद्धा रानी को बकवास ही समझा, परंतु जब उन्हें समाचार मिला कि सोनगढ़ से दमाजी गायकवाड़ भी ससैन्य सतारा की ओर बढ़ रहा है, तो उन्हें सावधान होने की आवश्यकता जान पड़ी। उन लोगों ने तुरन्त ही नगर छोड़ दिया और कृष्णा नदी के तट पर आली ग्राम के समीप अपने सैनिकों को जमा किया और गायकवाड़ की सेना की प्रतीक्षा करने लगे। उन्हें समाचार मिला कि गायकवाड़ सालपी घाट पर नदी पार कर रहा है। उन लोगों के पास बीस सहस्र सैनिक थे और गायकवाड़ के पास केवल पन्द्रह हजार सैनिक थे। इन लोगों ने गायकवाड़ की सेना पर आक्रमण किया, परन्तु उनमें उत्साह का अभाव था, अतः वे पीछे हटे और नींव नामक स्थान पर इकट्ठा हुये। गायकवाड़ ने उन्हें खदेड़ा और अगले दिन उन पर करारा आक्रमण किया। गायकवाड़ ने उन्हें पूर्ण रूप से पराजित करके तितर बितर कर दिया। विजय प्राप्त करने के तुरन्त बाद ही गायकवाड़ ताराबाई के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने गया और उसे आस-पास के कई दुर्गों की अधीश्वरी घोषित किया। सतारा में सैनिकों के लिये यथेष्ट खाद्य सामग्री एकत्रित कर ली गयी। प्रतिनिधि ने भी रानी को सहायता करने का वचन दिया। इन्हीं घटनाओं का समाचार पाकर पेशवा सलावत जंग के सामने से लौट पड़ा था। अभी पेशवा सतारा के मार्ग में ही था कि नाना पुरन्धरी ने अपनी खोयी हुई प्रतिष्ठा को फिर से प्राप्त करने का प्रयास किया। उसने दमाजी की सेना पर हमला किया तथा उसे विवश कर दिया कि वह पीछे हट कर जोर खोरा में शरण ले। गायकवाड़ ने सोचा था कि इसी स्थान पर प्रतिनिधि की सेना भी उसकी सेना से मिल जायगी और गुजरात से उसको स्वयम् की भी सेना को यहाँ आने में सुविधा होगी। परन्तु न तो दमा जी की योजना ही पूरी हुई और न उसकी आशा ही। इधर कोंकण का सूबेदार (शंकर जी पन्त) गायकवाड़ के पीछे वाले भू भाग में सैन्य संग्रह कर रहा था और उधर केवल तेरह दिनों में चार सौ मील की दूरी तै करके पेशवा भी सामने से आ पहुंचा था। गायकवाड़ दो पाटों के बीच में फँस गया। अब उसके लिये दो ही रास्ते थे। या तो वह अपनी ओर से पेशवा से किसी प्रकार सुलह करके गुजरात लौट जाय या सर्वस्व की बाजी लगा कर लड़ जाय। अपने सभी सलाहकारों से सलाह लेकर पेशवा ने पहले ही रास्ते को प्राथमिकता दी और बालाजी राव के पास अपना दूत भेज कर कहला भेजा कि वह गायकवाड़ की सारी शर्तें मानने को तैयार है। उसने गायकवाड़ को अपने पास ही खेमा डालने की प्रेरणा दी। उसके वहाँ स्थित हो जाने पर पेशवा ने देखा कि दमाजी एक दम से उसके हाथ में है। तब सहसा एक दिन पेशवा ने दमाजी से गुजरात प्रान्त की सारी आय का हिसाब देने तथा पिछली बकाया की तुरन्त पूरी अदायगी की मांग पेश की। दमाजी ने यह बहाना लेकर जान बचानी चाही कि वह स्वयम् तो दाभाड़ेजी का 'मुतल्लिक' मात्र है, वह एक आदेश प्राप्त सेनापति है अतः वह स्वतंत्र रूप से अर्थात् बिना दाभाड़ेजी के आदेश से पेशवा की मांगें कैसे पूरा कर सकता है। प्रसन्न तो पेशवा पहले से ही नहीं था, यह उत्तर पाकर वह जल उठा। जल कर उसने स्वहस्तलिखित आदेश दिया कि तुलागाँव में रहने वाले गायकवाड़ तथा दाभाड़े के परिवार के सदस्यों में से कुछ को पकड़ लिया जाय और उन्हें लगूर के किले में बन्द कर दिया जाय। एक निश्चित समय पर पेशवा ने धोखे से गायकवाड़ के खेमे को घेर कर हमला

कर दिया, सारी सामग्री लूट लिया और सख्त पहरे के अन्दर दमाजी गायकवाड़ को पूना भेज दिया। इसके बाद पेशवा ने रानी को समझा बुझा कर चाहा कि वे सतारा के किले को तथा रामराजा को छोड़ दें। उधर किले में ताराबाई ने अपने एक-एक व्यक्ति को इकट्ठा किया और उसने एक-एक व्यक्ति से अलग-अलग राय ली कि वे अन्त तक उसका साथ देंगे। रानी ने यह भी कहा कि जिस व्यक्ति को शपथ लेना स्वीकार या पसन्द न हो उसे यह स्वतंत्रता है कि वे बाहर चले जायँ। पेशवा के भी सिपाहियों पर इसका दोहरा विपरीत प्रभाव पड़ा। कुछ ने रानी को देवी का अवतार मानना शुरू कर दिया और कुछ लोगों ने उसे चुड़ैल का रूप समझना प्रारम्भ कर दिया। समूचे मराठा प्रदेश के लोगों का प्रबल विश्वास पहले से ही था कि ताराबाई ही वास्तविक संरक्षिका है। इन सब बातों ने मिलकर पेशवा को बाध्य कर दिया कि वह रानी के साथ किये जाने वाले व्यवहार में मृदुता लादे। उसे अपनी व्यवहार शैली बदलनी पड़ी। अब वह रानी को हैरान करने की नहीं बल्कि मनाने की इच्छा करने लगा उधर रानी के सैनिकों का विद्रोह केवल इसलिये रुका पड़ा था कि उन्हें कोई गण्यमान्य नेता नहीं मिल रहा था। पेशवा के सामने इस प्रकार की परिस्थिति आ गयी कि वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया। मगर उसका भाग्य प्रबल था। रानी ने अपने कार्यों से ही पेशवा को रास्ता दे दिया। धीरे-धीरे जनता का इस प्रकार का विश्वास दृढ़ता प्राप्त करता जा रहा था कि पेशवा ने नहीं बल्कि रानी ने ही रामराजा को बन्दी कर रक्खा है, उसे एक सीलन भरे कमरे में रक्खा गया है तथा खाने को मोटा झोटा अन्न दिया जा रहा है। जन साधारण के इस विश्वास ने पेशवा को शक्ति दी और वह ताराबाई को राह पर लाने में सफल हो सका।

सलावत जंग

दमाजी गायकवाड़ ही एक ऐसा व्यक्ति था, जिससे पेशवा भय खाता था और वह व्यक्ति इस समय पूना में नियंत्रित रूप से रह रहा था। अतः पेशवा ने अपनी उस योजना पर दृष्टिपात किया जिसे वह अधूरी छोड़ कर सतारा भाग आया था। वह औरंगाबाद को चल पड़ा ताकि अब वह गाजीउद्दीन की कुछ मदद कर सके उसने वहां भी अपना मराठा ढंग ही अपनाया। सलावत जंग का अधिकार जितने क्षेत्र पर था, उन सभी को लूटना तथा कर उगाहना ही उसने अपना काम बना लिया। इस समय जो भी मुगल सेना दक्षिण में थी वह पुर्णतया फ्रेंच आफिसर बुशों के मातहत थी। उसका पूर्ण नियंत्रण उसी के हाथों में था। इसके अतिरिक्त उसके आधीन पांच सौ सिपाहियों का एक यूरोपियन जत्था तथा पांच सहस्र नियमित सिपाहियों का एक हिन्दुस्तानी दस्ता भी था। उसने सलावत जंग से कहा कि एक बात में मराठे अवश्य भाग्यवान थे कि जितनी भी लड़ाइयां हो रही थी वे मराठा सीमा के बाहर ही होती थीं, अतः एकबार मराठों की सीमा में युद्ध करने की योजना बनानी चाहिये, जिससे कि हमारे राज्य में वे लूटमार न मचा सके। बुशी की राय से सलावत जंग अहमदनगर की ओर चला जहां पहुंचकर उसने अपने भारी सामानो को जमाकर दिया तथा खास सामग्री का यथेस्ट बड़ा भंडार एकत्रित कर लिया। इधर उसके दीवान राजा रघुनाथ दास ने ताराबाई से सम्पर्क स्थापित किया और कोल्हापुर के राजा सम्भाजी को भी उसने अपना मददगार बनाने का प्रयत्न किया। पेशवा ने इस प्रकार की योजना के विरुद्ध बचाव की बात ही नहीं सोची थी। अतः एकबार तो वह घबड़ाया। उसके कर्मचारी भी निराश हो उठे। अपनी तलवार अपने पर ही चलते देख वे सब के सब हताश हो उठे। अब तक वे सदा आक्रामक ही रहते आये थे। दूसरों के राज्य में लूटमार मचाकर तथा दूसरों की प्रजा पर जोरो जुल्म करके चौथ व सरदेशमुखी वसूल करने में ही उन्होंने युद्ध नीति की इतिश्री समझ ली थी। अब बुशी की मंत्रणा से सलावतजंग भी उसी रास्ते पर चल रहा था, जिस पर

अब तक वे लोग स्वयम् चलते आये थे। न तो पेशवा को ही इस प्रकार की आशा थी और न उसके अफसरों को ही। वास्तव में पेशवा को गाजीउद्दीन से कोई प्रेम नहीं था। उसकी इच्छा थी कि आवश्यकतानुसार कभी गाजीउद्दीन को और कभी सलावतजंग को मदद देकर दोनों को कमजोर कर दिया जाय और इस प्रकार समूचे दक्षिण पर मराठा ध्वज फहरा दिया जायगा इनमें से एक या दूसरे से बड़े-बड़े भूभाग ले लिये जायँ। सलावतजंग को शक्तिहीन करने के लिये पेशवा ने चालीस सहस्त्र सवारों को लेकर मुसलमानों की सेना को चारों ओर से घेर कर हमला किया। सलावतजंग की सेना में आठ दस फ्रांसीसी तोपें थीं, जिन्होंने मराठों के सारे उत्साह पर पानी फेर दिया। तोपखाने की अभूतपूर्व शक्ति पाकर सलावत पूना की ओर बढ़ा और ठीक मराठों की ही तरह राह में पड़ने वाले एक-एक गाँव को लूटता फूँकता वह आगे बढ़ने लगा। उनकी इस गति को देखकर पेशवा ने घबरा कर सुलह की बातचीत चलाने का प्रयत्न किया। सलावतजंग की निजी सेना के बड़-बड़े जितने भी अधिकारी थे वे सब के सब सलावतजंग की फ्रांसीसी परिचालित नीति से असन्तुष्ट थे। वे चाहते थे कि सलावतजंग बुशी के प्रभाव में न रह कर स्वतन्त्र रूप से या उन सब की मंत्रणा के अनुसार कार्य किया करे। पेशवा ने उनकी इस प्रवृत्ति को और भी भड़काया। बुशी भी सेनानायकों की इस प्रवृत्ति को जान चुका था। उसे इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि इन सेनानायकों की प्रवृत्ति से वह अपने व्यक्तित्व, स्वार्थ व शक्ति की रक्षा करे। उसने जो कुछ भी निश्चय किया, उसका दृढ़ता से पालन किया। उसने निश्चय किया कि एक बार मराठों के ऊपर जोरदार आक्रमण किया जाय। इस कार्य के लिये उसने २२ नवम्बर की रात निश्चित की। उस रात चन्द्रग्रहण लगा था, प्रत्येक हिन्दू लड़ाई की बात भूल कर पूजा अर्चना में लगा था, कि इतने में बुशी की मंत्रणा के अनुसार सलावतजंग की सेना ने जोरदार आक्रमण किया। समूची मराठा सेना अस्त-व्यस्त होकर मुसलमानों के आगे से भागने लगी। उनकी कितनी ही मूल्यवान वस्तुयें लुट गयीं, विशेष करके पेशवा के सभी प्रकार के स्वर्णपात्र लुट गये। यह हानि यद्यपि कुछ अधिक * न थी, फिर भी मराठों को बौखला देने के लिये पर्याप्त थी। इस अल्पकालीन विजय ने भारतीयों की दृष्टि में बुशी का गौरव अत्यधिक बढ़ा दिया। यद्यपि आगे चल कर उसने इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण सफलतायें प्राप्त की, परन्तु उसका गौरव बढ़ाने में जो सहायता इस विजय से मिली, वह किसी भी अन्य सफलता से नहीं।

अपनी इस पराजय से मराठे एक बार चकित तो हो उठे परन्तु शीघ्र ही उन लोगों ने अपने को सुसंयत कर लिया। अगले दिन वे पूर्ण चैतन्य हो उठे और उन्होंने हर प्रकार की स्थिति के लिये अपने को तैयार कर लिया मुसलमानों का आगे बढ़ना जारी ही रहा। आगे बढ़कर उन लोगों ने रंजन-गाँव को लूट लिया। और तूली गाँव को एकदम से तहसनहस कर डाला। आखीरकार २७ नवम्बर को उन लोगों ने मुसलमानों पर योजनाबद्ध आक्रमण किया और इसमें शक नहीं कि यदि फ्रांसीसी तोप-की मदद न होती तो उस दिन मुसलमानों की पूर्ण पराजय निश्चित थी। तोपखाने ने मराठों की निर्बाध गति में बाधा डाल दी और मुसलमान सेना पराजय के अपमान से बँच गयी। इस समय मराठों के सेनानायक थे भूतपूर्व दीवान महादजी पंत पुरन्धरी तथा उनके सहायक थे रानोजी सिंधिया

---

* मराठों की सेना राजापुर में पड़ाव डाल कर पड़ी थी। यह स्थान नदी के किनारे था। मेरे विचार से यह गांव गोर नदी के किनारे पर बसा हुआ है जहां बहुत दिनों तक बम्बई की पल्टन की छावनी थी। इस युद्ध में एक ही मुख्य आदमी के थोड़ा घायल होने का उल्लेख मिलता है इसका नाम था बाबू राव और जो रम्भाजी पन्त का लड़का था। उसके एक पैर में गोला लग गया था। अन्य छोटे-मोटे सैनिकों को अवश्य ही चोटें लगी थीं परन्तु मराठों की इतनी अधिक क्षति नहीं हुई थी कि वे

के दो पुत्र दत्ताजी तथा महादजी और त्र्यम्बक * एकबूती । त्र्यम्बक ने उस दिन अपने अपूर्व साहस का परिचय दिया और उसे उस दिन फख्रे मराठा का खिताब दिया गया । उसी दिन से उसे अपने घोड़े के पैर में चाँदी का कड़ा पहनाने का अधिकार दिया गया । इस प्रकार का अधिकार ग्रहण करने वाले लोगों के बारे में ऐसा विश्वास किया जाता है कि या तो वह विजय प्राप्त करेगा या मृत्यु को वरण करेगा । मराठों की इस विजय से भी सलावतजंग की गति अवरुद्ध न हो सकी । जब द्रुतगति से बढ़ती हुई मुसलमान सेना कोरीगांव तक पहुंच गई तब राजा रघुनाथ दास जी ने, पेशवा की रजामंदी से सदाशिव राव भाऊ से साक्षात्कार किया और इसके परिणाम स्वरूप सन्धि हो गई, परन्तु तब तक समाचार मिला कि एक मराठा अफसर ने त्रिंबक दुर्ग पर अधिकार कर लिया है । सलावतजंग ने चाहा कि मराठे इस किले को वापस कर दें, परन्तु पेशवा किसी भी प्रकार राजी न हो सका । सलावतजंग भी जिद पकड़ गया कि वह इस किले को लेकर ही रहेगा । मुसलमान सेना लौटकर अहमदनगर आई ताकि वह यहां से आवश्यक और भारी रण सज्जा से अपने को पूर्णतया सुसज्जित कर ले । अपने भारी तोपखाने को लेकर यह सेना फिर एक वार चली और जुन्नार की ओर बढ़ने लगी । रास्ते में मराठे उनको बराबर परेशान करते रहे । उत्तम सड़कों के अभाव में भारी तोपखाना बड़ी ही मुश्किल से आगे बढ़ रहा था । पग-पग पर कठिनाइयां थीं । उधर रघूजी भोंसले बराबर पूर्व को ओर बढ़ता जा रहा था । कुछ दूसरी भी परिस्थितियों के संयोग से सलावतजंग का अल्पकालीन शौर्य समाप्ति पर आने लगा और उसका सारा उत्साह ठंडा पड़ गया । सलावतजंग के सैनिकों का वेतन बकाया पड़ गया था और वे निरन्तर वेतन न पाने की जोरदार शिकायतें कर रहे थे । सैनिकों की आवश्यकता सलावतजंग के लिये जितनी ही अधिक होती जा रही थी, उतनी ही अधिक जोर से वे वेतन की माँग करते जारहे थे । उसके प्रमुख सैन्याधिकारी भी अनेक कारणों से उससे प्रसन्न नहीं थे । अतः बुशी की राय यह हुई कि इस समय किसी प्रकार युद्ध को टाल दिया जाय और इसी गरज से उसने पेशवा के प्रस्ताव को मान लेने की राय दी । सुलहनामा लिखा गया और सलावतजंग हैदराबाद की ओर लौटा । सैनिकों का असन्तोष बढ़ता ही जा रहा था । वे निरन्तर बकाया वेतन की माँग करते जा रहे थे । बालकी नामक स्थान पर पहुंच कर सैनिकों ने एक छोटा-मोटा झगड़ा ही खड़ा कर दिया, जिसमें ७ अप्रैल को राजा रघुनाथ दास को सैनिकों ने मौत के घाट उतार दिया ।

१७५२ ई]

रघूजी भोंसले

इधर पश्चिम में जब इस प्रकार की घटनायें घटित हो रही थीं, उसी समय रघूजी भोंसले पूर्व में सक्रिय हो रहा था । बंगाल एवम् विहार में किए गये कुछ कारनामों से हम पिछले पृष्ठों में

किसी प्रकार विवश हो जाते । उनकी शक्ति को कोई धक्का नहीं लगा था । हां वे लोग घबरा जरूर गये थे । यदि मुसलमान सेना पास पहुंच कर आक्रमण किये होती तो बन्दूकें भी चली होती जिससे हताहतों की संख्या काफी बड़ी हुई होती । आदमी भी मरे होते और घोड़े भी । परन्तु ऐसा कुछ भी न हो सका था । इससे प्रगट होता है कि यह आक्रमण केवल तोपों द्वारा ही किया गया था ।

* त्र्यम्बक सचमुच ही एक साहसी व्यक्ति था और उसके कारनामों का उल्लेख कई स्थानों पर किया गया है । एक दिन वह सदाशिव चिम्मनजी भाऊ के साथ खड़ा था कि किसी ने उसके माथे पर गोली मार दी और उसकी तत्काल मृत्यु हो गई (मई १७५६) उसके सम्बन्धियों को उसकी इस असामयिक मृत्यु की क्षति पूर्ति के रूप में बड़ी-बड़ी जागीरें दी गयी थीं ।

परिचित हो चुके हैं। इस अवधि में किये गये उसके कार्यों ने स्वदेश-वासियों के हृदय में उसके गौरव को अत्यधिक बढ़ा दिया था। सन् १७५० ई० में जो रघूजी ने पूना से बरार जाने की उतावली की थी, उसका कारण यह था, कि वह डरा हुआ था कि कहीं स्वयम् उसके राज्य में गड़बड़ी न उत्पन्न हो जाय। इसके अतिरिक्त वह अपनी योजना को फलती-फूलती भी देखना चाहता था। उसका पुत्र जानोजी जब नासिरजंग की सेना से वापस आया तो उसे कंटक भेज दिया गया ताकि वह मीरहबीब की सहायता कर सके और बंगाल पर आक्रमण कर सके। बंगाल का प्रान्त मराठों के अत्याचार से पूरे सालभर तक मुक्त रहा था। अब वे वर्धित उत्तेजना एवम् उत्साह के साथ सम्पूर्ण बकाया की वसूली के लिये कटिवद्ध होकर आये थे। अलीवर्दी खाँ अन्य कोई चारा न देखकर समूचा कटक का सूबा उन्हें देकर पीछा छुड़ाया। इस प्रदेश की उत्तरी सीमा बालासोर तक थी। कटक प्रदेश मीरहबीब के नाम से स्वीकृत किया गया था, जो नाममात्र के लिये अलीवर्दी खां का सहायक माना गया था, परन्तु वास्तविक रूप में वह रघूजी भोंसले का कर्मचारी मात्र था। इस प्रकार
१७५१ ई०] से प्राप्त अधिकार को मीरहबीब अधिक दिनों तक नहीं भोग सका। उसका मुख्य सहायक इस समय जानोजी था, जो उससे आन्तरिक ईर्ष्या रखता था। जानोजी ने उसे तब तक के लिये वन्दीगृह में डाल दिया, जब तक कि वह उस प्रदेश का पूरा हिसाब जानोजी को न दे दे। मीरहबीब इस अपमान को सहन न कर सका और वह अपने थोड़े से ही साथियों को लेकर अपने ऊपर रक्खे गये पहरेदारों पर टूट पड़ा और वहीं मारा गया। बंगाल तथा विहार की चौथ बारह लाख रुपये निश्चित की गयी। रघू जी भोंसले ने केवल बारह लाख पर ही क्यों सन्तोष कर लिया, यह जानने के लिये हमें उन घटनाओं पर विचार करना होगा, जो इस समय दक्षिण में घटित हो रही थीं। पेशवा और सलावत जंग ज्यों ही युद्ध क्षेत्र में उतरे, त्यों ही रघूजी भोंसले ने ग्वालगढ़ तथा नूरनाला के गढ़ों को जीत कर सब को चकित कर दिया। शीघ्र ही वह मानिक दुर्ग का भी स्वामी बन बैठा और किले के आस पास एवम् उसके संरक्षण में जो भी जिले थे, सब पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। जिस समय बुशी की मंत्रणा के अनुसार सलावत जंग पूना की ओर बढ़ रहा था, उसी समय रघूजी ने न केवल पयान गंगा एवम् गोदावरी के बीच के भूखंड से कर ही वसूल किया वरन् मुसलमानी थानों को हटा कर अपनी चौकियाँ भी स्थापित कर दीं।

रुहेले

दक्षिण में घटने वाली घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करने के पूर्व यह आवश्यक है कि निजामुल्मुल्क के ज्येष्ठ पुत्र के बारे में तथा मुगल दर्बार की उन घटनाओं पर विचार कर लें जिनसे मराठों का सम्बन्ध था और जिनमें वे भाग ले रहे थे। यद्यपि अपने पिता की मृत्यु के तुरन्त बाद ही गाजीउद्दीन दक्षिण को लौटने का इच्छुक था, परन्तु एक न एक झूठा कारण दिखा कर उसे दर्बार में ही रोका जा रहा था। गाजीउद्दीन ने जिस प्रकार मराठों से सम्पर्क स्थापित किया, उससे प्रतीत होता है कि उसके भाइयों ने मुगल दर्बार को इस बात के लिये रिश्वत दी थी कि गाजीउद्दीन को दिल्ली में ही रोक रक्खा जाय। उधर अहमदशाह के बादशाह होने के कुछ समय बाद ही एक अन्य उत्तेजनात्मक स्थिति पैदा हो गयी। बादशाह को सूचना मिली कि अहमदशाह अब्दाली फिर लौटकर बढ़ा चला आ रहा है। उस समय लाहौर तथा मुल्तान के सूबे भूतपूर्व वजीर स्वर्गीय कमरुद्दीन के बेटे मीर मुन्नू के आधीन थे। वही वहाँ का सूबेदार था। मीर मुन्नू ने चार जिलों की लगान अब्दाली को

देकर पीछा छुड़ाया। इधर अवध का नवाब तथा मुगल बादशाह का वजीर सफदर जंग रुहेलों के विनाश का तानाबाना बुनने में लगा था। अव्दाली के शान्त हो जाने पर उसे इस कार्य के लिये मौका मिल गया। रुहेलों की शक्ति भी दिनों-दिन बढ़ती जा रही थी और उनका प्रभाव भी। यहाँ तक कि सफदर जंग के मन में यह भय समा गया कि ऐसा न हो कि ये रुहेले कभी अवध पर ही चढ़ दौड़ें। उधर रुहेला सर्दार अलीमुहम्मद रुहेला की मृत्यु हुई और इधर सफदर जंग मुगल सल्तनत के वजीर बने। अपने पद का लाभ उठा कर वजीर ने अलीमुहम्मद के वारिसों में झगड़ा पैदा कर दिया और समस्त रुहेलखंड गृहयुद्ध की अग्नि में झुलसने लगा। अन्त में अलीमुहम्मद के तृतीय पुत्र सादुल्ला खाँ को सफलता मिली, परन्तु इस सफलता का अधिकांश श्रेय मिला हाफिज रहमत खाँ को, जो सादुल्ला खाँ का संरक्षक था। सादुल्ला खाँ के दो बड़े भाई अहमदशाह अव्दाली की कैद में थे। वहाँ से छूट कर जब वे दोनों आये तो गद्दी पर अपना अधिकार जताने लगे। परन्तु उनकी एक न चली और विजयी सादुल्ला खाँ ही गद्दी पर बना रह गया। जिस समय रुहेलखंड में गृहयुद्ध चल रहा था, उसी समय लाहौर तथा मुल्तान के सूबे अव्दाली के आक्रमण के भय से काँप रहे थे। उधर मीरमुन्नू ने शान्ति स्थापित की और इधर सफदर जंग ने रुहेलखंड पर दृष्टि डाली। वह स्वयम् रुहेलखंड पर चढ़ दौड़ा और उन्हें पराजित करके नवल राय नामक एक कायस्थ को वहां का सूबेदार बना कर लौट आया। उसके लौटते ही रुहेलों ने विद्रोह कर दिया और नवल राय को तलवार के घाट उतार कर फिर से अपने देश में अपना राज्य स्थापित कर लिया। इस विद्रोह की खबर जब सफदर जङ्ग को मिली तो उसे दबाने के लिये अपने सैन्य के साथ वह खुद आगे बढ़ा, परन्तु रुहेलों ने उसे पूर्णतया पराजित करके देश के बाहर खदेड़ दिया। इस पराजय-जनित अपमान से क्षुब्ध होकर सफदर जङ्ग ने मल्हारराव होल्कर, जयप्पा सिंधिया तथा जाट राजा सूरजमल से सहायता की याचना की जो स्वीकृत भी हो गयी। इन सहायकों के साथ सफदर जङ्ग ने समूचे रुहेलखंड को रौंद डाला। उनमें से अधिकांश कुमाऊँ की पहाड़ियों में भाग गये। सफदर जङ्ग ने युद्ध व्यय की पूर्ति के रूप में उस प्रदेश का अधिकांश होल्कर तथा सिंधिया को जागीर के रूप में दे दिया। इधर जब हिन्दुस्तान में मराठों का सितारा पूरी बलन्दी पर था, उसी समय उनकी स्वयम् की राजधानी सलावत जङ्ग की युद्ध नीति के कारण खतरे में पड़ी हुई थी। रघुनाथराव सूरत पर आक्रमण करने जा रहा था, उसे बीच से ही पेशवा ने बुला लिया। इसी समय मल्हारराव होल्कर को भी पेशवा का आवश्यक पत्र मिला कि वह अति शीघ्र दक्षिण की ओर कूच कर दे, चाहे गाजीउद्दीन साथ में रहे या न रहे। होल्कर उस समय कुमाऊँ की पहाड़ियों के समीप डेरा डाले पड़ा था, परन्तु पेशवा का पत्र पाते ही वह दक्षिण की ओर रवाना हो गया और बड़ी ही द्रुतगति से चलकर गंगा के दाहिने किनारे पर आ पहुंचा। इसी समय मुगल दर्बार तथा अवध के नवाब वजीर के द्वारा उसे सूचना मिली कि पेशवा तथा सलावत जङ्ग में सुलह हो गयी है। इस समाचार को पाकर होल्कर वहीं रुक गया और पेशवा को एक पत्र द्वारा सूचित किया कि वह पेशवा की मदद के लिये आगे बढ़ने को एकदम तैयार बैठा है, परन्तु जैसी सूचनायें उसे मिली हैं, उनके प्रकाश में वह आगे के आदेश की प्रतीक्षा में है। इसी समय नवाब वजीर सफदर जङ्ग को भी दिल्ली से बुलावा आ गया और वह उधर चला गया, क्योंकि सीमा पर अहमदशाह अव्दाली द्वारा फिर से आक्रमण किये जाने की सूचना मिली थी। इस बार उसने लाहौर तथा मुल्तान पर एकदम से आक्रमण कर उस पर कब्जा कर लिया था। बादशाह ने भी लाचार हो कर दोनों सूबे उसको दे दिये थे। जब तक सफदर जंग दिल्ली पहुंचे, उपरोक्त बातें समाप्त हो चुकी थीं। उधर होल्कर तथा सिंधिया भी रुहेलखंड की जागीरों से हटना चाह ही रहे थे, अतः अवध के नवाब ने यह योजना बनाई थी कि होल्कर तथा सिंधिया को भारी पुरस्कार का लालच देकर अव्दाली

को हटाने का प्रयत्न किया जाय, परन्तु बादशाह ने स्वयम् ही सभी रास्ते बन्द कर दिये थे। अतः बेचारा नवाब हाथ मल कर रह गया।

मराठों ने रुहेला प्रदेश छोड़ने का निश्चय कर लिया था अतः रुहेलों से पचास लाख रुपया पाने का * वादा लेकर वे उस प्रदेश को छोड़ कर स्वदेश की ओर चले।

गाजी उद्दीन

जिस समय सफदर जंग दिल्ली के पड़ोस में पहुंचा तो उसे बादशाह द्वारा दी गयी स्वीकृति का पता चला अतः अब वह इस परेशानी में पड़ा कि अब इन मराठा सहायकों को किस काम में लगाया जाय और उनका खर्च कहां से निकाला जाय। उधर पेशवा ने सलावत जंग के साथ जो सुलह की थी, उसका मतलब ही यही था कि उपयुक्त अवसर पाते ही इस सुलहनामें को ताक पर रख दिया जाय। अतः उसने होल्कर पर भी और सिंधिया पर भी बराबर जोर डालते रहना जारी रक्खा कि वे शीघ्र दक्षिण की ओर आवें। इसी बीच उसने गाजीउद्दीन से घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित किया। दिल्ली में स्वयम् पेशवा के भी वकील थे और होल्कर के भी। इन्ही वकीलों के द्वारा गाजीउद्दीन से बातचीत की गयी। अब सभी प्रकार की उलझनें एक ही प्रकार से सुलझ सकती थी कि गाजीउद्दीन को दक्षिण जाने की आज्ञा दे दी जाय और मराठा सैन्य को भी उसी के साथ जाने दिया जाय ताकि वह दक्षिण में जाकर अपनी किस्मत आजमा सके।

राजा रघुनाथदास की हत्या के बाद सलावत जंग ने सैयद लश्कर खाँ को हैदराबाद बुलवा भेजा। साथ ही उसने शाह नवाज को भी अपने पास बुलवाया। ये दोनों इस समय औरंगाबाद में रह रहे थे और सलावत जंग के कर्मचारियों में इन दोनों का सर्वाधिक मान था। ये दोनों ही फ्रांसीसियों से बड़ी जलन रखते थे। सैयद लश्कर खाँ तो अपनी फ्रेंच विरोधी मनोवृत्ति को छिपाकर ही रखता था परन्तु शाह नवाज खाँ खुल्लम-खुल्ला उनका विरोध करता था। कारण विशेषवश इन दोनों ने अभी पिछले ही दिनों वुशी की सदिच्छा प्राप्त करने की कोशिश की थी, क्योंकि सलावत जंग पर वुशी का प्रभाव अत्यधिक था। वुशी की सलाह पर ही सैयद लश्कर खाँ को दीवान बना दिया गया और शाह नवाज को हैदराबाद सूबे का सूबेदार नियुक्त किया गया। सैयद लश्कर खाँ मराठों से पूर्णतया परिचित भी था और सम्बन्धित भी। वह भीतर ही भीतर गाजीउद्दीन का पक्षपात भी करता था। सलावत जङ्ग को पक्का पता चल गया कि गाजीउद्दीन को दक्षिण आने की आज्ञा मिल गयी है तथा वह इधर के लिये पयान भी कर चुका है तो सैयद लश्कर खाँ ने वुशी तथा सलावत जङ्ग को समझाया कि वह यह प्रचारित करके मराठों के खेमे में चला जायगा कि उसने सलावत जङ्ग की नौकरी छोड़ दी है। ऐसा करने से यदि वह मराठा सर्दारों को सलावत जङ्ग की ओर न भी ला सका तो वे इस झगड़े से अलग तो रक्खे ही जा सकेंगे। वुशी ने यह राय मान लिया और शाह नवाज को दीवान बना कर सैयद लश्कर खाँ को छुट्टी दे दी और वह जानोजी निम्वालकर से मिलने करमला की ओर चल दिया। गाजीउद्दीन के आ जाने पर पेशवा ने बुरहानपुर की ओर कूच कर दिया। सैयद पेशवा से सलावत जङ्ग के जानोजी निम्बालकर के साथ सैयद लश्कर खाँ ने उससे भेंट की।

---

* उपरोक्त विवरण मि० फार्स्टर के यात्रा विवरण से लिया गया है। मराठों द्वारा लिखित कागजों में इस रकम का कोई जिक्र नहीं है। उनके अनुसार होल्कर ने अवध के नवाब तथा रुहेलों में सुलह करा दी और स्वदेश लौट आया। ऐसा प्रतीत होता है कि रुपयों की बात को अति सामान्य मान कर उसकी चर्चा नहीं की गयी।

राजदूत के रूप में मिला। उसने पेशवा से बतलाया कि सलावत जङ्ग को बादशाह का खत मिला है, जिसमें लिखा है कि गाजीउद्दीन सिर्फ औरंगाबाद तक जायगा, अपने नाम से प्रशासन की व्यवस्था करेगा, अपने भाई सलावत जङ्ग को अपना सहायक नियुक्त करके मुगल दर्बार में वापस लौट आयेगा। पेशवा ने यह तो समझ लिया कि सैयद गाजीउद्दीन की ओर आना चाहता है। पेशवा की इच्छा भी थी कि सैयद की सहायता उसे मिल जाय। पेशवा यह तो चाहता था कि हैदराबाद में उसका एक कुशल व्यक्ति रहे परन्तु उसे सैयद की महत्वकांक्षा का भी पता था। उसकी योग्यता की वह जितनी ही प्रशंसा करता था, उसकी महत्वकांक्षा से वह उतना ही घबराता भी था। उसे यह भी निश्चय नहीं हो पाया था कि सैयद की कार्यप्रणाली क्या होगी तथा वह अन्त में शक्ति पाकर किस ओर झुक जायगा। फिर भी उसने सैयद लश्कर खाँ द्वारा कही गयी बातों की चर्चा करते हुये गाजीउद्दीन को एक पत्र लिखा। यह पत्र गाजीउद्दीन के सलाहकारों, जैसे सैयद आशकार खां और मु० अनवर खाँ को दिखाया गया। मुहम्मद अनवर खाँ सैयद लश्कर खाँ को प्रतिद्वन्दी समझ कर उससे भयभीत रहता था, न कि शत्रु समझ कर। उसने राय दिया कि निम्बालकर के साथ सैयद लश्कर खाँ को भी रोक लिया जाय और उन्हें यहीं खेमे में लाया जाय। पेशवा अपनी सेना के साथ उन्हें लेकर वहीं आ गया। पर्याप्त बड़ी मुगल सेना उसके साथ थी ही, जब यह समूचा सैन्य बुरहानपुर के समीप इकट्ठा हो गया तो सैनिकों की कुल संख्या करीब एक लाख पचास हजार तक हो गई। ये सभी लोग गाजीउद्दीन को ही वास्तविक अधिकारी मानते थे। दोनों ओर से युद्ध की तैयारियाँ हो रही थीं। दोनों वर्षा ऋतु के खत्म होने की बाट देख रहे थे। इधर सलावतजंग की तरफ से सुलह की बातचीत भी शुरू कर दी गई थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जिस प्रकार ज्येष्ठ होने के नाते गाजीउद्दीन का हक सलावतजंग के मुकाबले में तगड़ा पड़ता था, उसी प्रकार दिल्ली दर्बार से मिला हुआ उसका खिताब भी सलावतजंग के मुकाबले में उसकी श्रेष्ठता सिद्ध कर रहा था। इसी बीच में पेशवा ने अपने लिये तथा अपने अफसरों के लिए गोदावरी एवम् ताप्ती के मध्य में तथा बरार के पश्चिम में स्थित समूचा भूभाग गाजीउद्दीन से ले लिया। इसी समय के आस-पास गाजीउद्दीन ने शहर में एक दावत कबूल कर ली, जिसमें निजाम अली की माँ ने उसे विषयुक्त भोजन खिला दिया और वह उसी रात तड़प-तड़प कर मर * गया। ऐसा मालूम होने लगा कि गाजीउद्दीन की मृत्यु ने दक्षिण के सभी झगड़ों का खात्मा कर दिया।

---

* आर्मी ने तो यही लिखा है कि स्वयम् उसकी माँ ने ही उसे जहर दिया था। आर्मी ने शायद इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि गाजीउद्दीन तथा नासिरजंग एक माँ के बेटे थे, तथा शेष चारों भाई अलग-अलग माताओं से थे। कर्नल विस्वास के अनुसार सलावतजंग की मां ने जहर दिया था। मि० मिल ने जहर दिये जाने की बात को ही ग़लत करार दे दिया है। मिल दिल्ली तथा औरंगाबाद की स्थितियों का महत्व नहीं समझ पाया था। मुताखरीन के लेखक को दोनों स्थानों की सही जानकारी अवश्य ही रही होगी। गाजीउद्दीन की मृत्यु से सलावतजंग को भी लाभ हुआ था, और फ्रांसीसियों को भी। अतः हो सकता है कि गाजीउद्दीन की मृत्यु के रहस्य की चाभी इन्हीं में से किसी के पास रही हो। फारसी भाषा में जो कागजात लिखे गये हैं, उनमें भी जहर की चर्चा नहीं है, परन्तु वे सभी प्रपत्र निजाम अली के शासनकाल में लिखे गये थे। फिर किसका सर भारी था कि निजाम अली की मां द्वारा जहर दिये जाने की चर्चा करता। मुताखरीन का लेखक निजाम अली के नियंत्रण से एकदम बाहर था। अतः उसे इस प्रकार का कोई भय नहीं था। मगर मीरगुलाम अली ने दक्षिण में ही रहकर समूचा विवरण लिखा था और मुताखरीन के लेखक ने प्रायः उन विवरणों का सहारा लिया है। हमने

अब तो सलावतजंग का विरोध करने वाला कोई भी नहीं था। उसने चाहा कि जिन भूभागों को पेशवा ने गाजीउद्दीन से ले लिया है, उन्हें फिर से वापस ले लिया जाय, परन्तु परिस्थितियाँ एक दम विपरीत थीं। गाजीउद्दीन ही वास्तविक अधिकारी माना गया था और उसी की स्वीकृति से पेशवा को ये भूभाग मिले थे। उधर मराठों की समूची शक्ति एकत्रित हो चुकी थी। ऐसी हालत में वे क्यों कुछ छोड़ने को तैयार होने लगे। मुहम्मद अनवर खां तथा बुरहानपुर के सभी सर्दार मराठों का साथ दे रहे थे। राजनैतिक परिस्थितियों ने इन सर्दारों को भी मराठों के साथ कर दिया था। ऐसी दशा में वुशी ने युद्ध का सहारा लेना श्रेयस्कर नहीं समझा। अतः सलावतजंग ने भी उन भूभागों को पेशवा के अधिकार में बने रहने की स्वीकृति दे दी और एकमात्र यही शर्त रक्खी कि रघूजी भोंसले अपनी सेना को लेकर पयानगंगा के उस पार चले जायें। कहने की आवश्यकता नहीं कि सलावतजंग की इस शर्त को तुरन्त ही मान लिया गया।

फ्रांसीसियों की सफलता

इस प्रकार की सुलह हो जाने पर मराठा सर्दार अपनी-अपनी सेनाओं के साथ विभिन्न दिशाओं में चले गये। पेशवा पूना लौट गया तथा होल्कर और सिंधिया हिन्दुस्तान की ओर चले। सैयद दीवान बना दिया गया और सलावतजंग हैदराबाद की ओर लौटा। हैदराबाद के
१७५३ ई०] रास्ते में ही वूशी बीमार पड़ गया और अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिये मछलीपट्टम को चला गया। सैयद लश्कर खाँ ने इस मौके से लाभ उठा कर सलावतजंग को वूशी के प्रभाव से निकालने की चेष्टा में मन लगाया। कुछ ही महीनों में उसने फ्रांसीसी दस्ते को अलग कर दिया और सलावतजंग को औरंगावाद ले जाने की कोशिश की ताकि वहां से वह समस्त यूरोपियनों को अपने राज्य से निकाल बाहर करने में कामयाब हो सके। वुशी की बीमारी गम्भीर थी। सम्भावना थी कि वह काफी दिनों तक चारपाई का सहारा छोड़ने योग्य न हो सकेगा, परन्तु ज्योंही वह थोड़ा स्वस्थ हुआ त्योंही उसने अपने सैनिकों को इकट्ठा किया और औरंगाबाद की ओर कूच कर दिया। औरंगाबाद पहुंच कर सबसे पहले उसने सैयद लश्कर खाँ को निकाल बाहर कर दिया और शाहनवाज को वजीर बना दिया।

फ्रांसीसी दस्ते को अलग करते समय यह बहाना किया गया था कि सरकारी कोष में रुपयों की बहुत कमी है। इसमें सत्यता भी थी। थोड़े दिनों बाद सलावतजंग ने पूर्वोघाट के इलाकों में से सिकाकोल, राजमहेंद्री तथा ईलौरके इलाके फ्रांसीसियों को इसलिये सौंप दिये कि उस भूभाग की आय से वे उन सैनिकों का खर्च चलावें जो फ्रांसीसी दस्ते के अन्तर्गत हैदराबाद में रहते थे। वुशी ने उक्त इलाके के प्रबन्ध के लिये एक सौ पचास यूरोपियनो तथा पांच सौ देशी सिपाहियों का एक दस्ता वहां पर नियुक्त कर दिया। बाद में फ्रांसीसियों ने उक्त इलाके का सरसरी तौर पर जब मूल्यांकन किया तो उसकी आय तीन करोड़ रुपये प्रतिवर्ष से ऊपर ऊपर थी। वुशी ने यह सारा इलाका बिजयराम राजे नामक एक देशमुख सीरदारी की बातों पर उठा दिया। इस व्यक्ति की प्रशासनिक योग्यता के ही कारण वुशी से उसका अच्छा परिचय हो गया था। इस प्रदेश की लगान की दर काफी कम थी पर लगान वसूली में हर प्रकार की सख्तियाँ की जाती थीं। समूचे प्रदेश का ठीक ठीक हिसाब तैयार किया गया। जितने भी ऐसे कर्मचारी थे, जो लगान देते थे, उन्हें उनकी अधिकृति भूमि का स्थायी

ऊपर जो विवरण दिया है वह मराठा पांडुलिपियों के आधार पर है, जिस पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं प्रतीत होता।

मालिक बना दिया गया। प्रबन्ध सम्बन्धी उपरोक्त सभी तथ्य * वुशी की योग्यता के प्रमाण हैं तथा उसकी एवमृ उसकी जाति की गौरववृद्धि करते हैं।

जो भी भूभाग पेशवा को गाजीउद्दीन से मिले थे, उसने शीघ्रता से उनके प्रशासन का पूर्ण प्रबन्ध किया : योग्यतानुसार अपने कर्मचारियों को स्थान-स्थान पर नियुक्त किया। इस काम से छुट्टी पाकर उसने कर्नाटक की ओर आँख फेरी। इस प्रान्त से कई वर्षो से कर की वसूली नहीं हो सकी थी। कारोमंडल के प्रसिद्ध युद्ध में मैसूर की सेनायें फ्रांसीसियो की ओर से लड़ रही थीं। अतएव पेशवा ने इस मौके से फायदा उठाने की सोचा और उसने एक बड़ी सेना तैयार की। पहले उसने गुजरात पर चढ़ाई करने को सोचा था, परन्तु कर्नाटक में सफलता की अधिक सम्भावना थी, अतः उसने गुजरात का ध्यान छोड़ दिया तथा कर्नाटक को ही अपना निशाना बनाया। कर्नाटक के लिये पयान करने से पहले ही पेशवा ने ताराबाई की तरफ से आश्वस्त हो लेना अधिक आवश्यक समझा। जिस समय पेशवा औरंगाबाद में था, उसी समय ताराबाई ने बाई तथा सतारा के जिलों को अपने अधिकार में ले लिया था। इस कार्य में उसने पांच छः हजार मराठों एवम् रमूसियों की सेवायें प्राप्त की थीं। इसलिये सतारा को वापस लेने के लिये एक बड़ी सी सेना भेजी गयी, जिसने सतारा को घेर कर रानी को या तो भूखों मर जाने की या आत्म समर्पण करने के लिये वाध्य कर देने की योजना बनायी। आनन्दराव यादव किले का हवलदार था। पेशवा की सेना से भिड़ने का कुपरिणाम वह समझ चुका था। उसने चाहा कि किसी प्रकार रामराजा को ताराबाई के नियंत्रण से निकाल ले जाय। रानी को यादव की इस मनोवृत्ति का पता चल गया और उसने उसका सर काट लेने की आज्ञा दी। स्वयम् उसके ही अधीनस्थ सैनिकों ने उसका सर काट लिया। इतिहास में ऐसी घटनायें तो मिलती हैं जहाँ विद्रोही होकर सिपाहियों ने अपने सेनापति को मार डाला हो, परन्तु ऐसी घटना तो शायद ही कहीं मिले जहाँ एक दूसरी शक्ति के आदेश पर सिपाहियों ने अपने अफसर का वध कर दिया हो। उसके बाद भी जिन-जिन लोगों को इस योजना में साम्मिलित पाया गया, उन्हें भी मौत के घाट उतार दिया गया। बाबू राव यादव नामका एक अन्य व्यक्ति हवलदार के पद पर नियुक्त किया गया। यादव नाम से यह न समझ लेना चाहिये कि यह व्यक्ति आनन्द राव का कोई सम्बन्धी था। कर्नाटक की ओर बढ़ते हुये पेशवा ने बीच रास्ते से ताराबाई को सन्देशा भेजा कि यदि वह आत्म समर्पण कर देती है, तो राजा के ऊपर उनका नियंत्रण बना रहने दिया जायगा, साथ ही राजा के लिये सुरक्षित भूभाग का प्रबन्ध भी उन्हीं के हाथ में रहने दिया जायगा ! रानी ने सन्देशा सुना तो उस पर विचार करने में उदासीनता ही प्रगट की। हाँ रानी ने यह शर्त रखी कि पेशवा की बात पर तभी विचार किया जा सकता है, जब वह स्वयम् सतारा आवे और कुछ बातों में रानी को आश्वस्त करे और साथ ही रानी के अधिकार को भी मान्यता दे।

१७५४ ई०]

पेशवाकृत कर्नाटक का अभियान पूर्णतया सफल तथा लाभप्रद रहा। जहाँ से भी पेशवा ने कर माँगा, वहीं से किसी प्रकार का हीलाहवाला किये बिना कर मिल गया। मराठों की कार्यप्रणाली यह थी कि वे जब लगान उगाहने के लिये अपनी सीमा से बाहर चलते थे और यदि किसी गांव के लोगों ने लगान देने में आना-कानी की तो झट उस गांव के कर्मचारियों को पकड़ लेते थे और उन्हें प्रायः नाना प्रकार की धमकियों से और कभी

---

* यह विवरण जेम्स ग्रान्ट डफ के "राजनैतिक विश्लेषण" के आधार पर लिखा गया है। भारतीय इतिहासकार इस तथ्य को नहीं स्वीकार करते। उनके अनुसार उत्तरी सरकार के इलाके का वैसा प्रबन्ध नहीं किया गया था, परन्तु जेम्स ग्रान्ट डफ के लेख पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं प्रतीत होता।—अनुवादक

असाध्य शारीरिक यंत्रणा से विवश करके लगान वसूल करने का प्रयत्न करते थे । उन दिनों इस प्रकार कर उगाहने को निकलना या लड़ाई पर निकलना दोनों ही समान अर्थ में ग्रहण किये जाते थे । नकद रुपये तो शायद ही कभी मिलते थे । उस समय के महाजन लोगों की लिखित जमानत ही इस विषय में काफी समझी जाती थी । इन महाजनों से प्रत्केक गांव के लोगों का व्यवहार रहता था । उनकी लिखी जमानतों पर भारतवर्ष भर में कहीं भी रुपया मिल सकता था यदि किसी गढ़ या गढ़ी के लोगों ने मराठों का असफल विरोध किया तो प्रायः सब के सब मौत के घाट उतार दिये जाते थे । इस प्रकार के अभियानों को मुल्कगीरी की संज्ञा दी गयी थी । पेशवा ने इस अभियान में हुलोओनोर पर कब्जा कर लिया और श्रीरंगपट्टम् पर किये जाने वाले आक्रमण से विरत होने के लिये उसे काफी बड़ी रकम दी गयी । अन्य स्थानों के लोगों ने कहीं तो अधीनता स्वीकार की, कहीं लोगों ने नकद रकमें दी और कई स्थान के लोगों ने भविष्य में नियमित रूप से कर देते रहने का वादा किया । अपनी इस प्रकार की सफलता से सन्तुष्ट होकर पेशवा पूना लौटा । जून का महीना था । उसका चचेरा भाई सदाशिव राव भाऊ उसके साथ था । उसका भाई रघुनाथ राव भी पूना में ही था । वर्षा का जोर जरा कम होते ही इन सभी लोगों ने दत्ताजी सिंधिया तथा सखाराम बापू को साथ लेकर पूना की ओर कूच कर दिया ।

गुजरात

गुजरात प्रान्त के इतिहास के विषय में पहले ही कहा जा चुका है कि मुगल बादशाह के फरमान के अनुसार नजीमुद्दौला मोमिन खां की नियुक्ति इस प्रान्त के शासनाध्यक्ष पद पर हुई थी, जब कि सन् १७३५ ई० में अभयसिंह को यहाँ से हटाया गया था । १७३७ ई० में निजामुलमुल्क यहाँ के दुबारा सूबेदार बनाये गये थे । परन्तु यह सारी नियुक्तियाँ नाम मात्र को ही थीं और केवल सम्मान देने के लिये की जाती थी, क्योंकि गुजरात में मुगल बादशाह का सोई प्रभाव शेष नहीं रह गया था । जिस समय हैदरकुली खां को पीछे ढकेल कर निजामुलमुल्क आगे बढ़ा था तभी उसने भड़ौंच के प्रदेश को अपनी व्यक्तिगत जागीर के रूप में सुरक्षित कर लिया था । इस समय एक फौजदार अब्दुल्ला वेग उस प्रदेश का कर्ता-धर्ता था । उस समय अब्दुल्लाबेग सरवुलन्द खां के मातहत काम करता था, जब उसे पीछे छोड़कर अभयसिंह ने उसके पद पर कब्जा कर लिया था । उसी समय में अब्दुल्लाबेग ने सरबुलन्द की नौकरी छोड़ दी तथा निजामुलमुल्क के मातहत काम करने लगा । निजाम ने उसे नेक आलम खां का खिताब दिया और गुजरात के प्रशासन के सम्बन्ध में न तो उसने अभयसिंह को ही स्वीकृति दी और न मराठों के किसी प्रकार के दावों को ही माना ।

इसी समय के आसपास एक ओर तो मोमिन खां अपने अधिकारों कों दृढ़ करने में लगा हुआ था और दूसरी ओर मारवाड़ निवासी रतनसिंह भण्डारी नाम का अभयसिंह का सहायक उसे अहमदाबाद पर अधिकार स्थापित नहीं करने दे रहा था । अन्त में हारकर मोमिन खां ने दम्माजी गायकवाड़ से मदद मांगी । दोनों आपस में पगड़ी बदलकर भाई बने और दम्माजी ने अपने सहायक सेनापति रंगाजी को एक सेना देकर मोमिन खां के साथ इसलिये भेजा कि वह रतनसिंह को निकाल बाहर कर दे । पहले तो रतनसिंह ने उन्हें करीब-करीब पराजित ही कर दिया, परन्तु बाद में मोमिन खाँ तथा रंगाजी को सफलता मिल गयी और उन्हें अहमदाबाद पर अधिकार मिल गया । २० मई सन् १७३७ को नगर उसके हाथ में आगया और इस प्रदेश का आधा भाग मुगलों एवम् मराठों में बँट गया, परन्तु यह प्रबन्ध कुछ ठीक नहीं हुआ, क्योंकि आगे चलकर इसी प्रश्न को लेकर दोनों हिस्सेदारों में समय-समय पर विवाद होते रहे ।

फर्वरी सन् १७४३ ई० में मोमिन खां की मृत्यु हो गयी और तब तक दम्माजी गायकवाड़ निर्विवाद रूप से इस प्रदेश से तथा काठियावाड़ से सभी प्रकार के कर वसूल करता रहा, जो साधारणतया मराठा जाति सभी स्थानों से वसूल किया करती थी। शाही फरमान के द्वारा अब्दुल अजीज खां नामक व्यक्ति की नियुक्ति मोमिन खां के स्थान पर की गयी। उस समय वह दक्षिण में औरंगाबाद में रह रहा था। उसने तुरन्त ही सैनिक जुटाना शुरू कर दिया। कुछ सहस्त्र सैनिक इकट्ठा कर लेने के बाद वह अपना कार्यभार संभालने अहमदाबाद की ओर चल पड़ा। सूरत के बगल से होता हुआ वह भड़ौंच पहुंचा, जहाँ पर या तो दम्माजी गायकवाड़ ने स्वयम् या उसके ही किसी सम्बन्धी ने उस पर आक्रमण करके उसके समूचे दल को तहस-नहस कर दिया। इसके बाद न तो किसी ने अब्दुल अजीज खाँ को देखा ही और न उसके विषय में आगे कभी कुछ सुना ही गया। मारे जाने वालों में फतहयाब खां भी था, जिसने हर प्रकार से नासिरजंग का साथ दिया था। सन् १७४४ ई० में इस प्रदेश का प्रशासन सँभालने के लिये फखरुद्दौला को दिल्ली से भेजा गया। उसी समय दम्माजी गायकवाड़ को आवश्यक कार्य के लिये सतारा की ओर जाना पड़ गया और उसे तब तक वहाँ रह जाना पड़ा, जब तक कि पेशवा एवम् रघूजी भोंसले के बीच चलने वाला विवाद समाप्त नहीं हो गया। दम्माजी गायकवाड़ तो सतारा में था, परन्तु उसके एजेन्ट रंगाजी ने कुछ सेना लेकर फखरुद्दौला का विरोध किया और उसे अधिकार स्थापित करने से रोका। इधर दम्माजी गायकवाड़ के भाई खुन्दी राव गायकवाड़ ने अपने भाई की अनुपस्थिति का लाभ उठा कर कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किया। उसने रंगाजी को अहमदाबाद से उठा दिया और उसके स्थान पर नया एजेन्ट रक्खा, जिसने फखरुद्दौला को मदद पहुचाना आरम्भ किया। इस समाचार को सुनकर दम्माजी ने शीघ्रता से प्रत्यावर्तन किया और खुन्दीजी द्वारा फखरुदौला को दी जाने वाली सहायता को रोक दिया एवं इस प्रकार मराठा-हितों को कोई आघात नहीं पहुंचने पाया। दम्माजी अपने भाई को भी प्रसन्न रखना चाहता था अतः उसने खुन्दीराव को बरसोठ का किला, नदियाद का उर्वर जिला और बड़ौदा में अपने सहायक का पद प्रदान किया। दम्माजी अपनी शक्ति को स्थायित्व प्रदान करता था। पारिवारिक विवाद इस प्रकार की स्थायित्व-प्राप्ति में बाधक हो सकते थे, अतएव दम्माजी ने अपनी पारिवारिक शान्ति बनाये रखने के लिये अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य के नाम पर कुछ भूभाग सुरक्षित कर दिया और इस प्रकार अपनी पारिवारिक व्यवस्था को शान्ति एवम् सुखपूर्ण बना कर उसने फखरुद्दौला की ओर ध्यान दिया। दम्माज़ी ने उसका समर्थन करके अपने दिवंगत मित्र मोमिन खां के पुत्र मोअताफिर खां तथा उसके भाई फिदाउद्दीन खां का समर्थन किया और उन्हें अधिकार दिलाने का प्रयत्न किया।

यह निश्चित नहीं किया जा सका कि दम्माजी गायकवाड़ ने भड़ौच के नगर तथा बन्दरगाह से कितने दिनों तक कर वसूल किया। १७४७ ई० में सूरत पर किसका अधिकार हो, इस बात को लेकर जब विवाद उठ खड़ा हुआ और उसके लिये कई प्रत्यासी उठ खड़े हुये, तब दम्माजी के चचेरे भाई केदारजी को भी बुलाकर उस विवाद में भाग लेने को कहा गया। प्रत्याशियों में से एक ने वादा किया कि यदि केदारजी उसकी मदद करेंगे तो वह उन्हें तीन लाख रुपये देगा। केदारजी ने इस शर्त पर सहायता देना स्वीकार कर लिया। परिस्थितियों का चक्र कुछ इस प्रकार घूमा कि केदारजी-समर्थित प्रत्याशी का उद्देश्य बिना उनकी सहायता के ही पूरा हो गया। केदारजी ने जब तीन लाख रुपये माँगा तो वह इस तर्क पर साफ मुकर गया कि उसने केदारजी की सहायता का उपयोग ही नहीं किया। अतः केदारजो ने पास पड़ोस के भूभागों को लूटना शुरू कर दिया। उक्त प्रत्याशी का नाम था सैयद अकीन। उसने जब देखा कि केदारजी को किसी भी प्रकार रोका नहीं जा सकता वो सोच

विचार कर उसने प्रस्ताव रक्खा कि केदारजी तब तक सूरत की लगान का तृतीयांश लेते रहें जब तक कि उनका तीन लाख रुपया पूरा नहीं हो जाता। दम्माजी की राय लेकर केदारजी ने उक्त प्रस्ताव को मान लिया। जिस समय दम्माजी गायकवाड़ पूना में बन्दी दशा में था, उस समय भी सूरत में अनेक चिन्तनीय घटनायें हो रही थीं। यही कारण था कि दम्माजी अपने छुटकारे के लिये इतना अधिक चिन्तित था। पेशवा चाहता था कि गुजरात का प्रशासन सामान्य स्थिति में आ जाय। इसी लिये दम्माजी के प्रस्तावों पर विचार करने के पूर्व ही उसने दम्माजी को सुदृढ़ बन्धनों व प्रतिज्ञाओं में बाँध लिया। उस समय तक दम्माजी के जिम्मे पन्द्रह लाख रुपयों की रकम बकाया पड़ गयी थी। पेशवा ने समूची रकम अदा करने की प्रतिज्ञा चाहा। यह मांग न तो अनुचित ही थी और न क ी ही। यह मांग इतनी उदारतापूर्ण इसलिये हो गयी कि दम्माजी ने स्वयम् अपने लिये तथा अपने स्वामी सदाशिव राव •भाऊ के लिये रामचन्द्र बाबा सेनवी को एक लाख रुपयों की रिसवत दी थी। गुजरात में गायकवाड़ परिवार के व्यक्तिगत अधिकार में जो दो जिले थे, उनके कुछ हिस्सों की भी माँग पेशवा ने की और इस कार्य के लिये लिखित प्रतिज्ञापत्र की मांग की। साथ ही उसने सभी भूभागों में अपना भाग मागा, जिन्हें गायकवाड़ भविष्य में जीतें। दम्माजी ने स्वीकार किया कि वह अपना आधा राज्य पेशवा के लिये छोड़ देगा तथा भविष्य मे भी लूट, चौथ, सरदेशमुखी तथा पुरस्कारादि द्वारा मिली रकमों में से अपना खर्च काटकर शेष का आधा वह पेशवा को दे सिया करेगा या उसका पूरा-पूरा हिसाब उसकी सेवा में प्रेषित कर दिया करेगा। दम्माजी ने दस सहस्र सवारों को रखने तथा आवश्यकता पड़ने पर उस सेना से पेशवा की सहायता करते रहने का वादा किया। इसके अतिरिक्त दामाड़े का मुतल्लिक होने के कारण वह इस सूबे के दामाड़े द्वारा अधिकृत भाग की आय में से पांच लाख पच्चीस हजार रुपये वार्षिक कर रूप में दिया करेगा। राजा की व्यवस्था के लिये भी वह कुछ रुपया दिया करेगा तथा इस सन्धिपत्र के द्वारा पेशवा को जिन भूभागों की प्राप्ति हुई है, उनमें आवश्यक सैन्य व्यवस्था करने में भी वह पेशवा की मदद करेगा। अन्तिम वादा यह था कि पेशवा की कर वसूली में भी दम्माजी उसकी मदद करेगा। जब तक उपरोक्त सभी शर्तों की पूर्ति नहीं हो गई, तब तक दम्माजी बन्दीगृह में तो नहीं रक्खा गया था, परन्तु नजरबन्दी की हालत में अवश्य ही रक्खा गया था और उसके ऊपर पेशवा के विश्वस्त सैनिकों का पहरा था*।

पश्चिमी भारत में सूरत के बन्दरगाह का बड़ा महत्व माना जाता था क्योंकि वह विदेशी व्यापार का मुख्य केन्द्र था। पेशवा की प्रबल इच्छा थी कि इस बन्दरगाह पर उसका पूर्ण अधिकार हो जाय। अंग्रेज व्यापारियों का स्वार्थ भी इस बन्दरगाह से बँधा हुआ था। इस लिए एक ओर तो पेशवा ने दम्मा जी से समझौता किया और दूसरी ओर उसने अंग्रेजों से भी इस सम्बन्ध में सम्पर्क स्थापित किया।

---

* दम्माजी द्वारा दिये गये रुपयों की बात मराठी हस्त लेखों में भी और फारसी के हस्त लेखों में भी मिलती है। उनमें एक करोड़ रुपये से कुछ अधिक ही देने की बात कही गयी है। हमने जो विवरण दिया है वह पूना के राजकीय लेखों के आधार पर है। पांच लाख पचीस हजार रुपये वार्षिक के अतिरिक्त ऐसा प्रतीत होता है कि दम्माजी ने अपने पूना निवास के समय सन् १७५२-५३ में एक लाख दस हजार रुपये दिया था। इसमें से एक लाख रुपया पेशवा, सदाशिव राव भाऊ, रामचन्द्र बाबा सेनवी तथा पेशवा की स्त्री गोपिकाबाई में बराबर-बराबर बँट गया था। पांच हजर रुपये पुरन्धरी को मिले और शायद शेष पांच सहस्र रुपये छोटे कर्मचारियों में बाँट दिये गये थे। अगले वष उसने कुल मिलाकर नव्वे हजार रुपये पेशवा को दिया।

इसी उद्देश्य को लेकर पेशवा ने बिना किसी सहायक की सहायता के ही सन् १७५१ ई० में रघुनाथ राव को सूरत की ओर रवाना किया, परन्तु जैसा कि पीछे कह चुके हैं, सलावत जंग से युद्ध छिड़ जाने के कारण उसे आधे रास्ते से ही वापस बुला लेना पड़ा था। पेशवा ने गुजरात पर दूसरा अभियान उस समय किया, जब कि वह दम्मा जी से पूरी तरह समझौता कर चुका था। उसने रघुनाथ राव को इसलिये गुजरात की ओर रवाना किया कि दम्माजी के साथ हुये समझौते में जो कुछ भी भूभाग उसे मिला है, उसमें प्रशासनिक संगठन करके सामान्य स्थिति में लादे। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके थोड़ा पहले ही दम्माजी को मुक्त कर दिया गया था।† क्योंकि इधर रघुनाथ राव गुजरात में घुसा, उधर गायकवाड़ भी पहुंच गया और दोनों साथ-साथ ही आगे बढ़े। सभी १७५५ ई०] स्थानों से कर वसूल करते हुये तथा रास्ते में पड़ने वाले सभी स्थानों में अपना अधिकार स्थापित करते हुये वे आगे बढ़ते चले गये। उनकी प्रगति में कहीं भी किसी प्रकार की बाधा नहीं आयी, जब तक कि वे अहमदाबाद न पहुंच गये। जिस समय दम्माजी वंदी की स्थिति में पूना में था, उसी समय स्वर्गीय मोमिन खां के भाई ने अहमदाबादा के मुगल अधिकृत भूभाग के प्रबन्धक के रूप में जवाँमर्द खाँ की नियुक्ति कर दिया था। जवांमर्द खाँ ने दम्माजी की अनुपस्थिति का लाभ उठा कर समूचे नगर एवम् पड़ोस के जिलों पर अपनी सत्ता स्थापित करली थी, परन्तु उसने दम्माजी के कलेक्टर को मराठों का भाग वसूल कर लेने की आज्ञा दे दी थी। जिस समय मराठा सैन्य अहमदाबाद पहुंची, जवांमर्द खाँ पालनपुर गया था। वह वहां से शीघ्र ही लौटा और ठीक समय पर अहमदाबाद पहुंच गया। उसके आजाने से उसके सैनिक उत्साहित हो उठे तथा अब मराठों द्वारा घेरे की व्यवस्था तथा जवांमर्द खाँ द्वारा रक्षा की व्यवस्था दृढ़ता से चलने लगीं। दोनों ओर पर्याप्र उत्साह था और शक्ति सन्तुलन भी बुरा नहीं था। विंचूर के सुप्रशिद्ध जागीरदारों के पूर्वज बिठ्ठल शिवदेव ने अपने अनुपम साहस का परिचय दिया। आक्रमणकारियों में नारुशंकर का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने ही खानदेश में मालीगांव का दुर्ग बनवाया था। उनके अधीनस्थ अरबी सवारों का एक दस्ता था। जवांमर्द खाँ के कौशल एवम् व्यवहार चातुर्य के कारण ही एक सम्मान प्रद समझौता सम्भव हो सका। उसने अहमदाबाद छोड़ दिया और उसे साबरमती एवम् बनास के बीच में तथा अहमदाबाद के उत्तर में स्थित पट्टन, बड़नगर, बीजापुर तथा अन्य कई जिले जागीर में दे दिये गये, परन्तु अगले दस वर्षों के बाद ही दम्माजी ने उपरोक्त जिलों का अधिकांश अपने हाथ में ले लिया।

अप्रैल सन् १७५५ ई०* में मराठों ने गुजरात की राजधानी अहमदाबाद पर पूरी तरह अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। निश्चित यह किया गया कि इस प्रान्त से जो भी लगान वसूल होगी,

---

† सामान्यतया ऐसा कहा जाता है कि जब तक गायकवाड़ ने दुबाय नामक स्थान को रघुनाथ राव के लिये नहीं छोड़ दिया, तब तक उसे मुक्ति नहीं दी गई। परन्तु सतारा निवासी मल्हार रामाराव चिटनीस के पास एक पत्र पाया गया है, जिससे पता चलता है कि जब रघुनाथ राव गुजरात पहुँचा तो अपनी सम्पूर्ण सैनिक तैयारी के साथ गायकवाड़ उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

* उपरोक्त विवरण मीरात अहमदी के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। उक्तकृति के अनुसार यह तिथि अप्रैल सन् १७५३ है, जो सही नहीं है। मैंने यह तिथि मराठों द्वारा लिखित विवरण से प्राप्त किया है। इसे लिख चुकने के बाद भी जिन तथ्यों पर प्रकाश पड़ा, उनसे इसीतिथि की पुष्टि होती है। बड़ौदा के रेजीडेन्ट जेनरल वाकर वाम्बे सरकार को भेजी जाने वाली सूचनाओं में बार-बार लिखा है कि रघुनाथ राव एवम् दम्माजी ने अहमदाबाद को १७५५ ई० में जीता।

वह पेशवा एवम् गायकवाड़ में आधी-अधी बँट जाया करेगी। समूचे गुजरात प्रान्त में रक्खे जाने वाले आवश्यक सैनिकों का व्यय-भार पेशवा के जिम्मे पड़ा। केवल एक रास्ते पर दम्माजी के सैनिक थे। पेशवा के जिम्मे जो भी सैनिक व्यय पड़ा था, उसकी आंशिक पूर्ति के लिये दम्माजी छः सहस्र रुपया प्रति वर्ष दिया करता था। पेशवा का एक एजेन्ट अहमदाबाद में रहने लगा, जिसका नाम श्रीपत राव था। रघुनाथ राव ने दम्माजी से बड़ौदा में ही बिदा ले लिया था और दत्ताजी सिंधिया को साथ लेकर हिन्दुस्तान की ओर चला गया था जहां मल्हार राव होलकर का इकलौता पुत्र खुन्दीराव भी उससे आ मिला। उन्होंने अजमेर को विजित किया और शाही इलाकों से भी चौथ व सरदेशमुखी वसूल किया। चाहे दोस्त हो या दुश्मन, उन्होंने छोड़ा किसी को भी नहीं। राजपूत रियासतों को भी बिवश हो कर चौथ देनी पड़ी। जाटों ने भी कर देना स्वीकर कर लिया यद्यपि पहले उन लोगों ने विरोध किया था और एक बार तो मराठों को पीछे ढकेल दिया था। मराठों ने जाट अधिकृत कुम्भीर के किले पर आक्रमण किया था। इसी युद्ध में खुन्दी राव होल्कर काम आया था और भराठों को पीछे हटना पड़ा था। रघुनाथ राव सन् १७५९ † तक दक्षिण की ओर नहीं लौटा।

बालाजी बाजी राव

समूचे उत्तरी भारत मे पेशवा को सफलता मिलती जा रही थी। नवम्बर सन् १७५४ ई० में कर्नाटक पर दूसरा अभियान शुरू किया गया। इस बार वेदनूर तक के इलाकों से सफलता पूर्वक चौथ वसूल की गयी। इसी सेना के साथ साथ पेशवा कृष्णा नदी के तटवर्ती एरुर स्थान पर पहुंचा, जहां से उसने महादजी पन्त पुरन्धरी को सेनापतित्व सौंप दिया और तीर्थयात्रा के लिये गोदावरी के उदगम पर आगया। हिन्दू लोगों का विश्वास है कि प्रति तेरहवें वर्ष यहां से गंगा जल की धारा प्रवाहित होती है और इसमें नहाने से जन्म जन्मातर के पाप नष्ट हो जाते हैं। दूर-दूर से सहस्रों हिन्दू यहाँ इकठ्ठा होकर स्नान करते हैं।

स्वभाव से ही बालाजी बाजीराव कोई कर्मठ व्यक्ति न था और इसीलिये अपने एजेन्टों पर उसे आवश्यकता से कुछ अधिक ही भरोसा रखने की आदत पड़ गयी थी। इसका परिणाम यह हुआ था कि वह स्वभावतः आलसी हो गया था। सैनिक व्यवस्था का मुख्य प्रबन्ध उसके भाई रघुनाथ राव के हाथ में था और नागरिक प्रशासन के प्रायः सभी कार्य सदाशिव राव भाऊ के हाथ में थे। ग्रामीण व्यवस्था बस इतनी ही अच्छी थी कि देश अराजकता की स्थिति में नहीं आने पाता था। इतना अवश्य था कि अभी कुछ ही दिनों पूर्व तक देश में जो भयंकर लूट मार मची रहती थी, उससे इस समय जनता बँची हुई थी। मराठा राज्य में जो कुछ भी व्यवस्था दिखाई पड़ती है उसका अधिकांश श्रेय है रामचन्द्र बाबा पर तथा उनकी मृत्यु के बाद सदाशिव राव भाऊ पर, जिसने बाबा द्वारा निर्देशित सुधारों को लागू करने में पूर्ण पटुता का प्रदर्शन किया।

दक्षिण में मराठा राज्य के पूर्वी अंचल में धटने वाली घटनाओं को यदि महत्ता के दृष्टिकोण से देखा जाय तो हमें पता चलेगा कि इस समय की सर्वाधित महत्पूर्ण घटना है रघूजी भोंसले की मृत्यु, जो सलावतजंग के साथ होने वाले युद्ध के बाद मार्च सन् १७५३ ई० में हुई। मृत्युकाल में उसने अपना समस्त राज्य अपने चारों लड़कों अर्थात् जानोजी, सबाजी, मूदाजी तथा बिम्बाजी में बाँट दिया था। दोनों बड़े लड़के छोटी स्त्री से तथा दोनों छोटे लड़के बड़ी रानी के गर्भ से पैदा हुये थे। मूदाजी

---

† गुजरात छोड़ देने के बाद रघुनाथ राव के अभियानों का विस्तृत एवम् क्रमपूर्ण वर्णन नहीं मिलता। मेरा विचार है कि इस सम्बन्ध में यदि कोई खोज करनी हो तो वह मालवा तथा हिन्दुस्तान में की जानी चाहिये।

तथा विम्वाजी सतारा की रानी सकवारबाई के भांजे थे। रघूजी ने जानोजी की ज्येष्ठता कायम रक्खा तथा ऐसी व्यवस्था करके मरा कि पेशवा की सेवा में जानोजी को सेना-साहिब-सूबा का पद मिल जाय। अपनी मृत्यु के समय रघूजी ने अपने पुत्रों को स्वयम् मिल जुलकर रहने तथा मराठों में संगठन बने रहने की उपयोगिता समझाया, परन्तु उन पर कोई तैयार नहीं हुआ। एक ही महीने के भीतर जानोजी इस बात के लिये विवश हो गया कि वह शस्त्र बल से मूदाजी को अपनी आज्ञा मानने पर विवश करे। इस काम में उसके समय का इतना अपव्यय हुआ कि वह समय पर पेशवा के पास पहुंच कर अपना खिताब व कार्यभार न ग्रहण कर सका। अब उसे तब तक प्रतीक्षा करनी पड़ी, जब तक कि पेशवा कर्नाटक के अभियान से वापस न आ जाय।

इधर जानोजी के पूना पहुंच जाने से रानी ताराबाई को कुछ उत्साह मिला और उधर पेशवा की ओर से आश्रय तथा सुरक्षा का आश्वासन मिला तो ताराबाई ने रामराजा को तो छोड़ा बाबूराव यादव के संरक्षण में, सतारा की अपनी सेना को छोड़ा सतारा में और स्वयम् जानोजी के सब से छोटे भाई बिम्बाजी भोंसले के साथ पेशवा की राजधानी पूना की ओर चल पड़ी। बिम्वाजी भोंसले ने ताराबाई की रिश्तेदारी में मोहिते परिवार की एक लड़की से ब्याह कर लिया था और आजकल रानी के दल में ही आ गया था। पूना में रानी का ऐसा स्वागत सम्मान किया गया कि वह प्रसन्न हो उठी और उसने पेशवा के तमाम पिछलें प्रस्तावों को इस शर्त पर मान लिया कि पेशवा स्वयम् रानी के साथ जजूरी के मन्दिर में जाय और उस मन्दिर में वह शपथ ले कि वह अपनी की हुई प्रतिज्ञाओं को यथा शीघ्र पूरी करेगा। पेशवा इस शर्त पर राजी हो गया कि बाबूराव यादव को पदच्युत कर दिया जाय। अनिच्छा पूर्वक ही सही, रानी ने इस शर्त को मान लिया। पेशवा रानी के हठी स्वभाव को जानता था। वह यह भी चाहता था कि रामराजा निरन्तर बन्दी ही बना रहे। इसी उद्देश्य को सम्मुख रख कर बार-बार उसने प्रार्थना की कि रामराजा को मुक्त कर दिया जाय। पेशवा ने जितनी ही अधिक प्रार्थना की रानी का रामराजा को मुक्त न करने का निश्चय उतना ही दृढ़ होता गया। इस प्रकार पेशवा ने अपनी धूर्तता से रामराजा के बन्दी जीवन को पूर्ण स्थायित्व प्रदान कर दिया।

कुछ भी हो परन्तु था तो रामराजा एक राजकुमार ही। यह सही है कि वह कितनी ही बातों में एकदम अयोग्य सिद्ध हुआ था। फिर भी राजकुमारों की सी सुकुमारता तो उसमें थी ही। इतने अधिक दिनों तक निरन्तर बन्दी जीवन बिताते रहने के कारण उसके स्वभाव एवम् स्वास्थ्य पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा था। उसका स्वाभाविक सौन्दर्य व तेज नष्ट हो गया था और वह निरन्तर रोगी रहने लगा था।

जानोजी भोंसले के पिता से पेशवा का जो समझौता हुआ था उसके अनुसार उसे आवश्यकता पड़ने पर दस हजार सवारों से मराठा राज्य की सहायता करनी पड़ती थी तथा रामराजा की व्यवस्था के व्यय के रूप में उसे प्रतिवर्ष नौ लाख रुपया देना पड़ता थ।। जानोजी ने भी उक्त समझौते को कायम रखना स्वीकार कर लिया और उसे सेना सहित सूबा का पद दे दिया गया। इसके अतिरिक्त अलीवर्दी खां से सन् १७५१ ई० में उड़ीसा के सम्बन्ध में जो समझौता हुआ था, उसकी भी शर्तें ज्यों की त्यों मान ली गयी। इसके बाद जानोजी भोंसले बरार से रवाना हुआ तथा अपने साथ उसने विम्वाजी को भी ले लिया, क्योंकि व्याह द्वारा मोहिते परिवार से ग्रथित हो जाने के कारण पूना दर्बार में विम्वाजी के अनेक गुप्त शत्रु पैदा हो गये थे। पूर्व की ओर बढ़ते हुये जानोजी ने मार्ग में पड़ने वाले सभी गांवों से धास, दाना कर वसूल किया, चाहें वे मराठा राज्य के थे या मुगल साम्राज्य के।

मराठों में तो कोई न बोला, परन्तु इस प्रकार की कर वसूली की बात सुनकर सलावतजंग जलभुन गया और उसने जानोजी के पास बड़ा कड़ा विरोध पत्र भेजा। सलावतजंग की इस बात से रुष्ट हो कर जानोजी ने उसके जिलों को लूटना तथा तहस नहस करना शुरू कर दिया। सलावतजंग की एक साधारण सी सेना ने उसके होश ठिकाने ला दिये। स्वयम् उसका दीवान बन्दी बना लिया गया। हार कर उसने तमाम लूटी हुई दौलत वपास कर दी और नागपुर को लौट गया।

हार के अपमान से अनुतप्त जानोजी भोंसले ने सिकाकोल तथा राज महेंन्द्री के पदच्युत सूबेदार जफ़ीर अली खां का इस बात का निमंत्रण स्वीकार कर लिया कि वह उन जिलों पर आक्रमण करे। जानोजी ने इन जिलों को लूटना-पाटना तथा तहस नहस करना शुरू कर दिया। उसका यह कार्य तब तक जारी रहा, जब तक कि उसे मार भगाने भर को सेना इकट्ठी हो गयी। रक्षकों के पहरे में उसने लूट का तमाम माल अपने राज्य में भेज दिया और ताकि यह माल सुरक्षा पूर्वक पहुंच जाय, इसलिये उसने विजयराम राजे को दोस्त बना लिया, जिसने फ्रांसीसी अफसर वुशी से इस इलाके को ठेके पर ले लिया था। विजयराम राजे की सहायता के लिये फ्रांसीसी सैनिकों का भी एक दस्ता रहता था, परन्तु जानोजी का उद्देश्य पूरा हो गया और उसका लूट का माल सुरक्षा पूर्वक उसके देश में पहुंच गया।

मुगल दर्बार

दिल्ली का मुगल दर्बार भी बहुत दिनों तक मराठों के हस्तक्षेप से स्वतंत्र न रह सका। मुगल दर्बार इस समय दबबन्दी के घोर दलदल में फँस गया था। ऐसा नहीं कि दिल्ली में दलबन्दियाँ पहले नहीं थी। दलबन्दी तो हमेशा ही बनी रहती थीं, परन्तु उससे व्यक्तियों का ही बनाव बिगाड़ सम्भव था। सशक्त केन्द्रीय सत्ता की उपस्थिति में इन दलबन्दियों से न तो कभी साम्राज्य की हानि होती थी और न वादशाह की। इस समय के मुगल बादशाहों में नाममात्र को भी शक्ति शेष न रह गयी थी। वे दर्बारियों के हाथों के खिलौने बन चुके थे। स्वर्गीय गाजीउद्दीन को पाठक भूले न होंगे। उसका लड़का था मीर शहाबुद्दीन। इस समय उसके षड्यंत्रों के कारण आजकल दिल्ली में अनेक जुर्म हो रहे थे और परेशानियों की बाढ़ सी आ गयी थी। इस नौजवान को जब अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला तो उसने अत्यधिक दुखी होने का इतना सफल ढोंग बनाया कि अनायास ही उसे वजीर की सहानुभूति एवम् कृपादृष्टि मिल गयी, जिसके सहारे उसे अपने पिता को मिले हुये सभी सम्मान, गाजीउद्दीन का खिताब तथा अमीरुल-उमराका पद अनायास ही प्राप्त हो गया। ज्यों ही उसका स्वार्थ पूरा हो गया, झट उसने पैंतरा बदला एवम् अपने उपकारक की ही बुराई चेतने लगा। अब वह इस प्रकार के प्रयास करने लगा कि वजीर को पदच्युत करके वह पद उसके फूफा इन्तिजामुद्दौला को के दिया जाय। इस प्रकार के प्रयासों का यह परिणाम हुआ कि स्वयम् मुगल बादशाह और उसके वजीर के ही बीच गृहयुद्ध की नौबत आ गयी। दिल्ली नगर में तथा समीपस्थ इलाकों में यह युद्ध छः महीने तक चलता रहा। इस प्रकार की कर्मप्रणाली से ऊबकर सफदरजंग झगड़े से अलग होगया तथा अपने राज्य अवध को चला गया।

इन झगड़ोंमें मीरशहाबुद्दीन ही मुख्य व्यक्ति था। उसने बादशाह की सहायताके लिये मल्हार राव होल्कर तथा जयप्पा सिंधिया को बुला भेजा था, परन्तु जब तक वे पहुंचे तब तक सफदरजंग जा चुका था और युद्ध की समाप्ति हो गयी थी। अतः मीरशहावुद्दीन ने सोचा कि इस आयी हुई सहायता का उपयोग जाट राजा सूरजमल को कुचलने में कर लिया जाय। सूरजमल से इतनी अधिक जलन उसे

इसलिये थी कि पिछले युद्ध में उसने वजीर का साथ दिया था। जाट राजा ने इस अभियान का समाचार पाकर अपने को किले में बन्द कर लिया। ऐसी स्थिति में मीरशहावुद्दीन ने मुगल बादशाह से प्रार्थना की कि जाट राजा के दुर्ग को तोड़ने के लिये उसे कुछ तोपें दे दी जाँय। इसी समय इन्तिजामुद्दौला ही बादशाह का वजीर था। यद्यपि वह शहावुद्दीन का सम्बन्धी था और उसी की सहायता से वह बजीर भी बन गया था, फिर भी वह शहावुद्दीन को उसकी धूर्तता को एवम् उसकी महत्वाकाँक्षा को भलीभाँति समझता था। उधर सूरजमल की ओर से भी शहावुद्दीन के खिलाफ जोरदार शिकायत आयी थी। अतः वजीर ने बादशाह को समझाया कि वह किसी भी कीमत पर पोपें न भेजे। प्रार्थना की स्वीकृति हो जाय, इसलिये शहावुद्दीन ने अपना एक एजेंट दिल्ली भेजा था। यहाँ आकर जब एजेन्ट ने देखा कि बादशाह वजीर के कहने में हैं और किसी भी प्रकार तोपें न देंगे, तो उसने तोपखाने के कुछ सिपाहियों को बहका कर अपने साथ ले लिया और दिल्ली के समीपस्थ इलाकों में लूटमार करने लगा। सूरजमल को इस आपत्ति काल में सहायता देने के विचार से बादशाह स्वयम् ही मीरशहावुद्दीन एवम् मराठों का सामना करने के लिये नगर के बाहर निकला। मल्हारराव होल्कर वयप्राप्र व्यक्ति था। वह जयप्पा सिंधिया तथा मीरशहावुद्दीन को एक बच्चा समझता था और उन्हें इस योग्य नहीं समझता था कि गम्भीर मामलों में उसकी मंत्रणा ली जाय। उसे उन लोगों की राय लेने या लेकर मानने की किसी प्रकार की बाध्यता भी नहीं थी। अतः बिना उन लोगों को किसी प्रकार की सूचना दिये, वह अकेला ही अपनी सेना लेकर चल पड़ा। बादशाह एक दम असावधानी की स्थिति में खेमा डाले पड़ा था कि अचानक होल्कर के दो एक तोप के गोले उसकी सेना पर पड़े। बादशाह की सेना घबराकर इधर उधर भाग निकली और बिजय की सारी सुविधायें अनायास ही होल्कर के हाथ आ गयीं। होल्कर ने बादशाह का सारा सामान लूट लिया। इस सफलता का समाचार पाकर मीरशाहावुद्दीन भी दिल्ली आया, उसने होल्कर से भेंट की और बादशाह को इस बात पर राजी किया कि वे खुद उसे ही अपना वजीर बना लें और इन्तिजामुद्दौला को निकाल बाहर किया जाय। यह हो जाने पर एक दिन उसने बादशाह को ही गद्दी से हटा दिया और जहाँदार शाह के एक पौत्र को बादशाह बना दिया और उसे आलमगीर द्वितीय का नाम दिया। यह घटना मई सन् १७५४ ई० की है। बेचारा अहमदशाह नजरबन्द कर दिया गया और उसकी आँखें भीं निकाल ली गयीं। इस परिवर्तन के थोड़े ही दिनों बाद लखनऊ में ही सफदरजंग का देहान्त हो गया और उसका लड़का शुजाउद्दौला उसकी गद्दी और उसके अवध राज्य का मालिक हुआ। हिन्दुस्तान में हिंसा, मार काट, लूटपाट और आराजकता का बोलवाला हो गया, परन्तु वह सब हमारे वर्तमान विषय के बाहर की बातें हैं। दक्षिण में इससे भी बढ़कर महत्व पूर्ण घटनायें हो रही थी, जिनसे मराठा इतिहास का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

बीसवां अध्याय

पेशवा, अंग्रेज और फ्रांसीसी

[१७५५ से १७५६]

पेशवा और अंग्रेज—सावनेर पर आक्रमण—पेशवा और शाहनवाज खां—पेशवा का अंग्रेजों से सम्बन्ध—अंगेरिया का अभियान—स्वर्णदुर्ग पर आधिपत्य—मराठी बेड़ा—अंगेरिया का द्वितीय अभियान—मराठों की सफलतायें—घेरिया का पतन—अँग्रेजों का व्यवहार—सावनेर का घेरा तथा पतन—सलावत जंग के यहाँ से सैनिक दस्ते का हटाया जाना—बुशी का मछलीपट्टम जाना—सलावत जंग के दर्बार में पुनर्नियुक्त तथा सम्मान प्राप्ति—१७५६ ई० में पेशवा और अंग्रेजों की सन्धि (पूना की सन्धि)।

मराठों की राजधानी का प्रशासन सदाशिवराव भाऊ की ही अध्यक्षता में चल रहा था। पेशवा करीब-करीब एक वर्ष तक पूना में रहा। इसी अवधि में अंग्रेजों की सहायता लेकर उसने आंग्रे के देश के कुछ भागों पर अपना आधिपत्य जमा लिया था, जिसमें स्वर्णदुर्ग भी सम्मिलित था। वर्षा काल की समाप्ति पर मराठों ने अपने सैनिकों की संख्या बढ़ाई। उन्हे यह भी आशा थी कि बम्बई की प्रेसिडेन्सी से उन्हें अभी और मदद मिलने वाली है। इधर जब पूना में इस प्रकार की तैयारियां हो रही थीं, तभी कर्नाटक से कुछ ऐसे समाचार मिले, जिनके अनुसार पेशवा को तुरन्त कर्नाटक चले जाने की आवश्यकता जान पड़ी। मुजफ्फर खां नाम का एक सेना नायक बुशी के अधीन रहने वाली हिन्दुस्तानी टुकड़ी का सर्वेसर्वा था। सन् १७५२ ई० में उसने बुशी का साथ छोड़ दिया था और अब पेशवा की मातहती में काम करना शुरू कर दिया था। पिछले वर्ष महादजी पन्त की अध्यक्षता में जो सेना कर्नाटक को भेजी गयी थी, मुजफ्फर खाँ भी उसी के साथ था। अपने अधीनस्थ दल के सैनिकों की हाजिरी के सम्बन्ध की कुछ बातें उसे अप्रिय लगीं और इसी पर पेशवा की सेना का साथ छोड़कर वह श्रीरंगपट्टम् की ओर चल दिया, परन्तु राह में ही सावनेर के नवाब के यहाँ रह गया। पेशवा की प्रार्थना करने पर भी नवाब मुजफ्फर खाँ को वापस करने को तैयार न हुआ, अतः पेशवा ने एक बड़ी सेना इकट्ठी की। नवाब की मदद पर गूटी के घोरपड़े लोग भी थे। पेशवा की एकत्रित की गयी सेना में जानोजी भोंसले के दस हजार सवारों की टुकड़ी भी आकर मिल गयी, पेशवा की समूची सेना ने कृष्णा नदी को पारकर बागलकोट को कब्जे में ले लिया और सावनेर पर आक्रमण करने को आगे बढ़ा। इस समय हैदराबाद में शाह नवाज खां वजीर आजम था। कुछ कारणों से उसने पेशवा से अपना गुप्त सम्पर्क बना रक्खा था। उसने जब मराठों की इस विशाल वाहिनी को देखा तो उसने सैनिकों का एक दस्ता इस लिये तैयार किया कि वह बराबर कृष्णा नदी की देखभाल तथा चौकसी किया करेगा। पेशवा ने औपचारिक ढंग से अपने वकील भेज कर शान्ति बनाये रहने की अपनी विशेष इच्छा प्रकट की और इस बात का प्रयत्न किया कि सावनेर के नवाब के विरूद्ध उसे मदद मिल

सन् १७५५]

जाय। सलावत जंग को कहलाया गया कि यद्यपि सावनेर का नवाब आपके आधीन है, फिर भी उसकी जात से स्वयम् उसके भी राज्य को खतरा है, मराठों के राज्य को तो खतरा है ही, पेशवा के वकीलों ने सलावत जंग के मन में यह बात बैठाल दी कि सावनेर का नवाब मराठों का भी विरोधी है, और उसका भी। यदि उसकी उठती हुई ताकत को अभी नहीं कुचल दिया जाता तो आगे चलकर उसके कारण कर्नाटक पर खतरा बढ़ सकता है। इस समय संयोग भी ऐसा था और परिस्थितियाँ भी कुछ ऐसी ही थीं कि बुशी और सलावत जंग दोनों मराठों को मदद देने के प्रश्न पर एक मत हो गये और उनकी एक सेना मराठों की सहायता के लिये चल पड़ी एवं दोनों ने सावनेर के दुर्ग पर घेरा डाल दिया। मराठों एवम् सलावत जंग की संयुक्त सेना को इस कार्य में लगे रहने देकर, हमारे लिये उचित होगा कि हम कोंकण की ओर दृष्टि प्राप्त करें और आंग्रे के ऊपर किये गये अभियानों की चर्चा करें। यद्यपि पश्चिमी घाट के देशों में घटने वाली घटनायें मराठों तथा मराठों के इतिहास के लिये कोई विशेषता नहीं रखती, फिर भी इनका ऐतिहासिक महत्व उस तथ्य में निहित है कि वे इस बात पर प्रकाश डालती हैं कि महाराष्ट्र प्रदेश में अंग्रेजों ने सर्वप्रथम इसी समय में कुछ पाया जिसके बल पर आगे चलकर न केवल ससूचा महाराष्ट्र प्रदेश ही वरन् समूचा भारत वर्ष ही राजनैतिक रूप से ग्रेट ब्रिटेन के नियन्त्रण में आ गया और समूची भारतीय जनता ही ग्रेट ब्रिटेन के अधीन हो गयी।

सन् १७५६]

२४ नवम्बर सन् १७५० ई० को मि० रिर्चाड बर्शियर ने पेशवा के सामने घोषित किया कि पिछले १७ नवम्बर को उसने बंम्बई तथा उसके अधीनस्थ इलाकों पर अधिकार कर लिया है और इस समय इनका शासन उसी के हाथो में है। इसी समय से आगे चलकर पेशवा, अन्य मराठा सर्दारों एवम् अंग्रेजों के बीच समाचारों के आदान-प्रदान का सिलसिला शुरू होता है। वास्तविकता यह थी कि अंग्रेजों तथा मराठों दोनों की आन्तरिक इच्छा थी कि सूरत को अपने कब्जे में लिया जाय और तुलाजी आंग्रे के अधिकारों को दबाया जाय। सन् १७४० में कोलाबा नामक स्थान पर अंग्रेजों ने मन्नाजी आंग्रे को मुक्ति दिलाने में जिस प्रकार के चारित्र्य का प्रदर्शन किया था, उसे पेशवा ने देखा था तथा वह इससे अत्यधिक प्रभावित भी हुआ था। कर्नाटक के युद्ध में अंग्रेजों की युद्ध नीति की प्रशंसा तो हुई ही उनके चरित्र की यह विशेषता भी भारतीयों की दृष्टि में चढ़ गयी कि अंग्रेज लोग अपने मालिक के प्रति पूर्ण सद्भावना रखते हैं तथा जिसकी ओर वे एक बार हो जाते हैं, अन्त तक उसका स्वार्थसाधन ही उनका ध्येय बना रह जाता है।

सन् १७५०]

पेशवा ने प्रारम्भ ही में मि० बर्शियर को आश्वासन दिया था कि वे सूरत में शान्ति एवम् सुव्यवस्था स्थापित करने में सहायता देंगे। बात यह थी कि मुगल साम्राज्य के केन्द्रीय शक्ति के अत्यधिक निर्बल हो जाने के कारण दमाजी गायकवाड़ के एजेंटों तथा इंगलिश फैक्टरी के अलावा भी वहाँ तीन-चार सत्तायें सक्रिय थीं। जंजीरा के सिद्दियों का एक अफसर मसूद सिद्दी उनकी उस स्थान में रहने वाली सेनाओं का नायक था, जिसका कर्तव्य था कि सूरत के व्यापार की रक्षा करे। इस कार्य के लिये उसे वहाँ की लगान का कुछ भाग भी मिला करता था। शहर में नित्यप्रति होती रहने वाली परेशानियों में से अधिकांश में उसी का हाथ रहता था। बम्बई में रहने वाले व्यापारी इन लोगों से सदैव ही मित्रता पूर्ण व्यवहार रखते थे क्योंकि आसपास में उन्हीं के हाथों में रहने वाले प्रदेश ही ऐसे थे जहाँ से अंग्रेज व्यापारी गौमांस की पूर्ति करते थे। मराठा रक्षित अन्य समुद्र तटों के प्रान्तों में गाय बैल अति पवित्र माने जाते थे। उनकी पवित्रता हिन्दू-मानस में इतनी बढ़ी-चढ़ी हुई है कि इस

देश में गौहत्या की बात का जितना प्रबल विरोध है, यूरोपीय देशों में नरहत्या की भावना के विरोध से भी उतनी प्रबलता नहीं सम्भव है। मसूद सूरत में वहाँ की अव्यवस्था का पूर्ण लाभ उठा रहा था। जंजीरा में भी जो गड़बड़ी फैल गयी थी, उसका लाभ उठा कर वह स्वतंत्र हो बैठा था और अफ्रीका वासियों के इस आदर्श का पालन कर रहा था कि शासक को शासितों के साथ अनन्यतम वर्बरता का व्यवहार ही करना चाहिये।

समुद्री तट पर समुद्री डाकुओं का आतंक इस जमाने में प्रबल था। यद्यपि सम्भाजी आंग्रे मर चुका था और मन्नाजी आंग्रे नाममात्र को ही पेशवा की सत्ता मानता था, पर वह कूटनीति का सहारा लेकर अंग्रेजों से शान्तिपूर्ण व्यवहार ही रखता था, फिर भी अपने सौतेले भाई सम्भाजी का उत्तराधिकारी तुलाजी ने पेशवा की सत्ता को एकदम अमान्य कर दिया था और इस समय वानकोट एवम् सावन्तवाड़ी के मध्य में रह रहा था। उसकी कार्यशैली यह थी कि जिन जहाजों को वह अपनी सामर्थ्य सीमा में समझता और जिनके पास उसका निजी पासपोर्ट नहीं होता था, उन्हें वह पकड़कर लूट लिया करता था। कोल्हापुर तथा सावन्तबाड़ी के राजाओं ने भी यही कार्यक्रम अपना लिया। इन सभी लोगों को अंग्रेज जाति वाले मालवन के नाम से पुकारते थे। उन्होंने यह नाम मालवन या सिदीदुर्ग नामक दुर्ग के नाम पर दिया था, क्योंकि इसी दुर्ग के सहारे उधर का समूचा समुद्रतट नियंत्रित होता था। यह दुर्ग राजा कोल्हापुर का था।

नासिरजंग की मृत्यु के बाद मराठा जाति सलावत जंग के साथ होने वाले युद्धों में बुरी तरह फँस गयी थी, जिसके कारण पेशवा सूरत की ओर ध्यान न दे सका। सलावत जंग के ही साथ होने वालै युद्ध के कारण गुजरात की ओर प्रस्थान किये हुये रघुनाथराव को बुला लिये जाने के बाद कोंकण के सर सूबेदार रामाजी पन्त की मध्यस्थता में अंग्रेजों से एक समझौता किया गया, जिसके अनुसार पेशवा ने सूरत के सम्बन्ध में अँग्रेजों को सहायता देना स्वीकार कर लिया था। इधर सलावत जंग के साथ युद्ध में फँस जाने के कारण पेशवा अंग्रेजों की कुछ भी सहायता न कर सका। इस विवशता से बम्बई के अंग्रेज बड़े निराश हुये। इस कार्य के लिये उन्होंने काफी रुपया खर्च करके तैयारी की थी। अपने इस व्यय को बेकार न जाने के लिये, मराठों से स्वतंत्र रह कर ही उन्होंने भड़ौच के नवाब नेक आलम खाँ से समझौता किया, परन्तु इस समझौते से किसी को भी कोई लाभ नहीं हुआ।

पेशवा इधर कई कामों में उलझा हुआ था। उसने गुजरात पर अधिकार कर लिया था, अहमदाबाद पर घेरा डाला था और कर्नाटक पर सफल अभियान किया था। इन्हीं सब कार्यों में फँस कर वह सूरत की ओर ध्यान न दे सका था और न आंग्रे विरोधी अभियान में ही सम्मिलित हो सका था। सन् १७५५ ईसवीं के प्रारम्भ में उसे कुछ फुरसत मिल सकी। इसी समय के आसपास मराठों को थोड़ा साँस लेने का अवसर मिला और मार्च के महीने में उन्होंने अंग्रेजों को सन्देशा दिया कि अब वे हर प्रकार के कार्यों के लिये तैयार है। बम्बई की अंग्रेजी सरकार की यद्यपि आन्तरिक इच्छा थी और उनके लिये आवश्यक भी था कि सूरत में कुछ किया जाय, परन्तु मराठों का सन्देश पाकर वे बाधायें उपस्थित करने लगे और कहने लगे कि अब तो बहुत देर हो गयी है। अंग्रेजों ने ये सारे टालमटोल केवल इसीलिये किया था कि मराठों की अभियान प्रवृति में और भी तीव्रता आ जाय। पेशवा ने कोंकण के सर सूबेदार रामजी महादेव फड़नवीस को इस कार्य के लिये नियुक्त किया कि वह अँगरेजों से मिलकर आक्रमण की सभी योजना तैयार करले और उनसे यथावश्यक समझौता करले। अँग्रेजों की बम्बई कौंसिल ने इस अभियान में उनका साथ देने का इरादा किया। यद्यपि उनके पास शाही बेड़े

का एक भी जहाज न था फिर भी उन्होंने चौवालिस तोपों से युक्त एक साधारण छोटा जहाज तैयार किया। उसके साथ दो बम मार जहाज भी तैयार कर लिये गये। इस जंगी बेड़े का नायक बनाया गया कमोडोर जेम्स को जो कम्पनीं के जहाजी बेड़े का ही एक अफसर था। सहायक दल ने भी कुछ जहाजों का प्रबन्ध कर लिया था। आंग्रे पर अभियान करने के पूर्व यह भी आवश्यक प्रतीत हुआ कि अभियान की सफलता की स्थिति में यदि लूटपाट में या और किसी ढंग से जो कुछ भी मिलेगा, उसका विभाजन विजेताओं में किस प्रकार होगा। एक समझौता के द्वारा यह तै कर लिया गया कि यदि आंग्रे के कुछ जहाज मिलेंगे, तो विजेतागण उन्हें बराबर-बराबर बाँट लेंगे, जितनी भी तोपें या खाद्य सामग्री मिलेंगी, वे सब की सब पेशवा की सम्पत्ति होगी, बानकोट के साथ साथ ही हिम्मतगढ़ का किला तथा जिस नदी पर यह किला स्थित है, उस नदी का पूर्ण स्वामित्व तथा समीपस्थ पांच गाँव अंग्रेजों को मिलेंगे। अंग्रेजों को ऐसा जान पड़ता था कि वे भारतीय राजनीति में गहरे घुसे जा रहे हैं। वैसे उनका वास्तविक उद्देश्य इतना हो था कि सूरत का बन्दरगाह उनके व्यापार के लिये हर प्रकार की बाधा से मुक्त रहे और आंग्रे के प्रभाव से सुवर्णदुर्ग तथा जयगढ़ के किले सुरक्षित रहें।

तुलाजी आंग्रे के पास जितने भी किले थे, उन सब में सुवर्ण दुर्ग तथा विजय दुर्ग सुदृढ़तम थे। इसी विजय दुर्ग को मुगल लोग घरिया कहा करते थे। उपरांक्त समझौतों एवम् प्रबन्धों में इतना अधिक समय लग गया कि वर्षाकाल सर पर आ पहुँचा और घरिया पर आक्रमण करना असम्भव सा जान पड़ा। बाईसवीं मार्च की शाम को कमोडोर जेम्स की अध्यक्षता में मराठों एवम् अंग्रेजों का संयुक्त बेड़ा बम्बई पहुँचा। मराठों की समुद्री सेना जानबूझ कर धीरे-धीरे चल रही थी, इसीलिये जेम्स के लिये सुवर्णदुर्ग के समीप में रहने वाले आंग्रे के जहाजों को पकड़ पाना असम्भव हो गया। जेम्स ने आंग्रे के जहाजों का पीछा जयगढ़ तक किया, परन्तु जब उसने देखा कि आंग्रे के जहाजों को पकड़ना असम्भव है तो वह सुवर्णदुर्ग को लौट आया और दूसरी अप्रैल को इस दुर्ग पर आक्रमण की कार्यवाही प्रारम्भ कर दी गयी। उसने अपने बेड़े को ऐसी सुरक्षित स्थिति में खड़ा किया कि किले पर से चलाई जाने वाली तोपों के गोले उसे कोई क्षति न पहुँचा सकें। सुवर्णदुर्ग में चार भिन्न किले बने हुये थे। जेम्स की कुशलता से एक भी सैनिक खोये बिना चार दिनों के भीतर ही इन चारों दुर्गों पर अधिकार कर लिया गया। आंग्रे की सुदृढ़ स्थिति एवम् दुर्ग की रचना को देखते हुये ऐसा समझा गया था कि इस दुर्ग को हस्तगत करने में अत्याधिक धनजन की हानि उठानी पड़ेगी, परन्तु इतनी सरलता से इस दुर्ग पर अधिकार हो जाने से वे लोग भी आश्चर्य चकित हो गये, जिन्होंने स्वयम् इस कार्य को पूरा किया था। इतनी सुविधा से इसे हस्तगत कर लेने की कल्पना भी असम्भव थी। इस सफलता का सम्पूर्ण श्रेय जेम्स की सूझबूझ एवम् उसके सैनिकों की दृढ़ता को दिया गया, जो उचित भी था। पेशवा का जहाजी बेड़ा गोलों की मार की सीमा के भीतर आया ही नहीं। इस बेड़े का सेनापति था नारूपन्त। यद्यपि वह स्थल युद्ध का ख्याति प्राप्त सेनानायक था, परन्तु उसे जल युद्ध का कभी का अनुभव नहीं था। अतः वह किंकर्तव्य विमूढ़ दूर-दूर ही खड़ा रहा। पेशवा का सौतेला भाई शमशेर बहादुर पूना से भेजा गया था ताकि वह रामाजी महादेव की कुछ मदद कर सके। उसने अलबत्ता सुवर्णदुर्ग के आसपास के कई किलों को सर कर लिया। इस सफलता से उत्साहित होकर मराठा सैन्य रत्नागिरी तक बढ़ गया। परन्तु समुद्री बेड़े को अप्रैल के अन्त में अपना स्थान छोड़ ही देना पड़ा। यद्यपि पेशवा की प्रबल इच्छा थी कि यह बेड़ा पन्द्रह मई तक वहीं बना रहे, उसने आदेश भी ऐसा ही दिया था, परन्तु वर्षा काल प्रारम्भ होने के एक पखवारा पहले से ही जो प्रबल दक्षिणी पवन उस भाग में चलने लगता है, उसके

चल पड़ने के कारण जहाजों को वहाँ से हटा ले जाना आवश्यक जान पड़ने लगा। १८ मई को कमोडोर जेम्स लौटकर बम्बई आ गया। सुवर्ण दुर्ग का अधिकार मराठों को सौंप दिया गया। बानकोट का हस्तान्तरण अक्टूबर के पहले सम्भव न हो सका। मि० वर्शियर ने पेशवा को आश्वस्त कर दिया कि यदि सहायता वह चाहेगा तो यह सहायता उसे पूर्णरूप से वर्षा काल के बाद मिल सकेगी, जब की पूर्वीघाट स्थित ऐडमिरल वाट्सन की अधीनता में रहने वाला बेड़ा भी पश्चिमी घाट के समुद्र में आ जायगा और उनकी स्थिति को और भी सुदृढ़ बना देगा।

मि० वर्शियर ने जिस समय तक पेशवा को सहायता देने का वादा किया था, उसके पूर्व ही यथोचित सहायता उसे मिल गयी। यूरोपियन सैनिकों का एक जत्था लेकर लेफ्टिनेंन्ट कर्नल क्लाइव बम्बई आ पहुँचा, जिससे उन लोगों की स्थिति को पर्याप्त सुदृढ़ता प्राप्त हो गयी। बात यह थी कि दक्षिण में रहने वाले फ्रांसीसियों की सफलता से इंगलैड में फ्रांसीसियों के प्रति ईर्ष्या की एक लहर सी व्याप्त हो गयी थी। इसीलिये एक योजना बनायी गयी थी कि फ्रांसीसियों के समान ही सफलता प्राप्त करने के लिये इंग्लैड से सैनिकों का एक दस्ता भारत को रवाना किया जाय जो अंग्रेजों की स्थिति को और भी मजबूत बना दे और वे सफलता पूर्वक भारत की राजनीति में हिस्सा ले सकें। इसी योजना के अनुसार क्लाइव को भारत भेजा गया था। अंग्रेजों की इच्छा थी कि मराठों से सन्धि करके इस प्रकार के प्रयत्न किये जायँ कि सम्पूर्ण दक्षिण से फ्रांसीसी निकाले जा सकें। इसी उद्देश्य से सलावत जंग को भी मिलाने का विचार किया गया, क्योंकि उसके यहां बुशी की स्थिति अति सुदृढ़ थी, और यह स्थिति अंग्रेजों को ईर्ष्या के मारे अन्धा किये डाल रही थी। बम्बई सरकार का विचार था कि पिछले वर्ष जो समझौता कारोमंडल तट पर मि० सान्डर्स तथा मानसियर गॉडरयू के बीच हुआ था, उसकी धाराओं के अनुसार इस नवागत सैन्य का उपयोग तब तक न होना चाहिये जब तक कि यूरोप से यह निश्चित न हो जाय कि उस समझौते की शर्तें मान ली गयीं या अमान्य ठहरा दी गयीं। मद्रास प्रेसीडेंसी के अंग्रेजों की राय उससे भिन्न थी। उनका कहना था कि उन्हें उसी रास्ते पर चलना चाहिये जिस पर फ्रांसीसी गवर्नर डूप्ले चला था।

बम्बई के गवर्नर ने ऐडमिरल वाट्सन तथा कर्नल क्लाइव से सलाह करके निश्चय किया कि यदि सौभाग्य से अपने पास इतना प्रबल सैन्य इकट्ठा हो गया है तो इसका उपयोग क्यों न कर लिया जाय और तुलाजी आंग्रे को वश में कर लिया जाय। अपनी कांउसिल की राय से बम्बई के गवर्नर ने मि० ऐडमिरल वाट्सन तथा कर्नल क्लाइव की त्रिसदस्यीय समिति को इस शर्त के साथ सारे सन्धि और युद्ध का सारा अधिकार सौंप दिया कि बम्बई सरकार से समय-समय पर प्राप्त होने वाले आदेशों के प्रकाश में वे सारी कार्यवाही स्वतन्त्रता पूर्वक करें। पचास तोपों से युक्त एक जहाज तथा चवालीस तोपों से युक्त एक दूसरा जहाज तथा बम्बई के बेड़े के कुछ छोटे जहाजों को मिलाकर एक सुदृढ़ बेड़ा तैयार हुआ। फरवरी के महीने में यह बेड़ा अपनी यात्रा पर रवाना हुआ। इस बेड़े में आठ सौ यूरोपियन सैनिक तथा एक हजार देशी सैनिक थे।

नवम्बर के महीने से ही पेशवा के सैनिकों का एक दस्ता खुन्दोजी मानकर की अध्यक्षता में आंग्रे के ऊपर आक्रमणात्मक कार्यवाहियाँ कर रहा था। उसे सफलता भी प्राप्त हो रही थी। विजय दुर्ग के अतिरिक्त आंग्रे के जितने भी किले समुद्रतट पर थे सभीपर इस दस्ते का अधिकार हो गया था। विशेषता यह थी कि इतनी अधिक सफलता प्राप्त कर लेने पर भी मराठा सैन्य को कहीं से कोई विशेष हानि भी न उठानी पड़ी थी। हाँ राजापुर पर कब्जा कर लेने के बाद उनको तीन सौ सैनिकों की भारी हानि उठानी पड़ी थी। बात यह हुई कि मराठे लोग अपनी बारुद को पर्याप्त असावधानी के

साथ रखते थे। एक दिन उसमें किसी प्रकार आग लग गयी और बारुद के भड़क जाने से तीन सौ सैनिक उड गये। जब अंग्रेजी सेना विजयदुर्ग से थोड़ीं दूर पर दिखाई पड़ी तो आंग्रे हारकर मराठा सैन्य में चला गया ताकि वह सम्मानजनक शर्तों पर उनसे सुलह कर सके। रामाजी पन्त तथा खुन्दोजी मानकर इस बात के लिये प्रयत्नशील थे कि आंग्रे उनके हाथों आत्मसमर्पण कर दे। अंग्रेज अधिकारियों ने कहा कि इस प्रकार का प्रयत्न उनके साथ किये गये पिछले साल के सुलहनागे की शर्तों के खिलाफ है। अंग्रेजी सैन्य ने चाहा कि किसी भी प्रकार कुछ ऐसा करना चाहिये कि मराठों का आधिपत्य विजयदुर्ग पर न होने पावे। इसी उद्देश्य से ऐडमिरल वाट्सन ने समुद्र तट की ओर से आक्रमण किया तथा कर्नल क्लाइव ने स्थल भाग से आक्रमण करके दुर्ग तथा मराठा सैन्य के बीच में अपना स्थान बना लिया ताकि मराठों तथा आंग्रे के बीच में किसी प्रकार भी समाचारों का आदान-प्रदान हो न सके। बारहवीं फरवरी को क्लाइव ने उभयपक्ष के बीच में स्थित होकर मराठों एवम् आंग्रे के बीच में होने वाले समाचारों के अदान-प्रदान को एकदम बन्द कर दिया। तत्कालीन घटनाओं के प्रकाश में यह असम्भव प्रतीत हो रहा था कि मराठों का आधिपत्य दुर्ग पर हो जायगा। यदि उनका आधिपत्य करने का प्रयत्न औचित्यपूर्ण कहा जा सकता है तो अंग्रेजों का प्रयत्न भी न्यायपूर्ण ही कहा जाना चाहिये। ऐडमिरल वाट्सन के पहुँचने पर रामाजी पन्त ने उसे सूचित किया था कि उनसे तथा आंग्रे से सुलह की बातचीत चल रही है। पन्त ने यह भी कहलवाया था कि वह कमिश्नरों की स्वीकृति प्राप्त करने के लिये स्वयंम् अंग्रेजी जहाज पर आने को तैयार है। उसे कमिश्नरों से साक्षात्कार करने का जो समय दिया गया था, उस समय पर वह पहुँच ही न सका। अलबत्ता उसके कारकुन ने मि० हो से इसलिये रिश्वत देने की बातचीत करनी शुरू की कि वह कर्नल वाट्सन को इस आक्रमण से विरत कर दे। चूंकि रामाजी पन्त ने वाट्सन से भेंट नहीं की अतः अपना आक्रमण चालू रखने में उसे कोई बाधा नहीं दिखाई पड़ी। मराठों को इस बात का भी पूरा पता था कि विजयदुर्ग में अत्यधिक दौलत संचित है, इसलिये वे भी चाहते थे कि अंग्रेज लोग अपने आक्रमण से विरत हो जायँ। इधर ऐडमिरल वाट्सन, कर्नल क्लाइव, ऐडमिरल पोकोक तथा मि० हो ने अन्य छः कर्मचारियों से एक समझौता कर लिया कि विजयदुर्ग में जो कुछ भी धन मिलेगा वह इन्हीं दस व्यक्तियों में बँट जायगा। यह समझौता बम्बई छोड़ने से पूर्व ही कर लिया गया था। उसमें किसी भी सहायक दल को कुछ देने की बात ही नहीं की गयी थी। यदि इस समझौते का पता मराठों को था तो उनका अंग्रेजों को आक्रमण से रोकने का प्रयत्न करना उचित ही था। रामाजी पन्त ने जब क्लाइव की स्थिति देखी तो फौरन उसकी चालबाजी को ताड़ लिया। अब उसने यह प्रयत्न करना शुरू किया कि किसी प्रकार उसके दो चार व्यक्ति किले में पहुँच जायँ। इसी उद्देश्य से उसने कप्तान ऐन्ड्रयू बुचनन को अस्सी हजार रुपये रिश्वत में देने का गुप्त प्रस्ताव किया ताकि वह स्वयम् उसे तथा उसके दो चार आदमियों को किले में दाखिल हो जाने दे। रामाजी पन्त की बात बुचनन ने तुरन्त ही अस्वीकृत कर दिया। इस अस्वीकृति से यह न समझ लेना चाहिये कि अंग्रेजों का चारित्र्य अत्यधिक ऊँचा था। वास्तविकता इसके विपरीत ही थी, क्योंकि बम्बई सरकार ने इस अस्वीकृति को एक असाधारण घटना समझकर कप्तान को सोने का तगमा प्रदान किया था।

अन्त में तेरह फरवरी की शाम कों विजयदुर्ग वाट्सन को समर्पित कर दिया गया। जिस समय किले पर बमबारी हो रही थी, उसी समय आंग्रे के जहाजी बेड़े पर अँग्रेजी सेना ने एक बम फेंका। आंग्रे का बेड़ा नदी में ऊपर की ओर कुछ दूरी पर खड़ा था। रेस्टोरेशन नाम का एक जंगी जहाज बम्बई सरकार से आंग्रे ने खरीदा था। वह बम जाकर उसी जहाजे पर फट पड़ा और परिणाम

स्वरूप वह समूचा जहाज ही आग की भेंट हो गया। आग की लपटों ने बढ़कर अन्य जहाजों को भी अपने लपेट में ले लिया और करीब एक ही घंटे में आंग्रे का सारा जहाजी बेड़ा ही जल कर खाक हो गया। दुर्ग के विजेताओं ने घोषित किया कि इस विजय में मिली हुई सामग्री पर मराठों का कोई अधिकार नहीं है। किले में लगभग दस लाख रुपये का सामान मिला, जिसे उपरोक्त दस अँग्रेज अफसरों ने आपस में बाँट लिया। तुलाजी आंग्रे का समूचा परिवार किले में ले जाया गया। आंग्रे को हथकड़ी बेड़ी डालकर रायगढ़ के समीप पेशवा के एक पहाड़ी किले में डाल दिया गया।

अंग्रेजों ने विजयदुर्ग पर अधिकार तो जमा लिया। अब उन्हें चाहिये था कि पेशवा से किये गये सुलहनामे के अनुसार वे इसे पेशवा के लिये खाली कर दें, परन्तु उन्हें अब इस किले से मोह हो गया था, और इसे पेशवा को दे देने में उन्हें आन्तरिक कष्ट हो रहा था। अंग्रेजों ने प्रस्ताव रक्खा कि पेशवा इस किले के बदले में बानकोट को ले ले, परन्तु पेशवा को यह प्रस्ताव पसन्द नहीं आया और उसने अंग्रेजों पर दबाव डाला कि सन्धि की धाराओं का अक्षरशः पालन किया जाय। अब अंग्रेजों ने बहाना खोजना शुरू किया। पेशवा ने मद्रास तथा बम्बई की सरकारों को एकाधिक बार प्रार्थनापत्र भेजा, परन्तु अंग्रेज लोग बेईमानी करने पर तुले हुये थे। वे किसी भी प्रकार किले को समर्पित करने को तैयार नहीं थे। उन्होंने यह तर्क देना शुरू किया कि मराठों ने स्वयम् ही सन्धि की धाराओं का उल्लंघन किया है। एक तो उन्होंने बानकोट का समर्पण पूर्णरूप से नहीं किया दूसरे उन्होंने तुलाजी आंग्रे को अंग्रेजों के हाथ में नहीं दिया और तीसरे उन लोगों ने डच व्यापारियों से कुछ सामान खरीदने के लिये अनुबन्ध किया है। सन् १७३९ में चिमनाजी अप्पा के माध्यम से राजा शाहू ने अंग्रेजों से एक समझौता किया था, जिसके अनुसार वे किसी भी अन्य यूरोपियन जाति से सामान न लेने का वादा किया था, परन्तु इस समझौते से रामाजी पन्त का कोई सम्बन्ध न था और न वह इसकी धाराओं को मानने के लिये बाध्य ही था। परन्तु अंग्रेजों ने उचितानुचित का कोई ध्यान थोड़े ही रक्खा था। उन्हें तो एक भला बुरा बहाना ही चाहिये था और वह उन्हें मिल भी गया था। मि० वर्शियर ने रामाजी पन्त के कारकुन को पांच हजार रुपयों की रिश्वत की लालच इसलिये देना चाहा कि वह रामाजी पन्त को इस बात पर राजी कर दे कि विजयदुर्ग के स्थान पर बानकोट को स्वीकार कर ले। अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये उन्होंने आंग्रे के प्रश्न को भी छोड़ देने का बचन दिया और कहा कि यदि मराठे अँग्रेजों को यह आश्वासन दे दें कि वे आंग्रे के साथ अच्छा वर्ताव करेंगे तथा समुद्रतट से चालीस मील के भीतर उसे कोई भूभाग नहीं दिया जायगा तो वे आंग्रे को मराठों के हाथों में ही पड़ा रहने देंगे। तुलाजी आँग्रे को अत्यधिक कष्टों के बीच सतारा के समीप बुनदुन के किले में रक्खा गया था। कुछ दिनों के बाद ही उसे हटाकर शोलापुर ले जाया गया, जहाँ उसकी मृत्यु हो गयी। बारह या चौदह वर्ष की कैद के बाद आंग्रे के दोनों लड़के मराठों की कैद से भाग निकले और तब अंग्रेजों ने अवश्य उनके साथ भला बर्ताव किया और बम्बई सरकार ने उन्हें पूर्ण संरक्षण प्रदान किया।

जिस समय रामाजी पन्त अंग्रेजों से इस प्रकार उलझा हुआ था, उस समय पेशवा सावनेर में व्यस्त था। एक ओर तो वह सलावत जंग को अपने साथ कर लेने के लिये प्रेरित करता रहा और दूसरी ओर बुशी को जलाने के लिये उसने मद्रास की अंग्रेजी सरकार से थोड़ी सी तोपें और तोपची माँगा। उस समय मद्रास सरकार को ठीक से यह भी पता न था कि पेशवा कौन है। मद्रास सरकार को इस विषय में जो भी सूचनायें मिली थीं, उनसे वे इतना समझ गये थे कि पेशवा ही मराठा जाति का मुख्यतम व्यक्ति है और इसी आधार पर उन्होंने पेशवा की मदद करने का इरादा किया और पेशवा को लिखा कि वह एक सैनिक दस्ता भेज दे, जिसके पहरे में उनका तोपखाना ले जाया जा

सके। * पेशवा ने अपनी तरफ की सारी बातें अपने पत्र में ही लिख दी थी। सलावतजंग की सेना मराठों का साथ देने के लिये पहुँच चुकी थी। परिस्थिति को देख कर तथा सभी आन्तरिक बातें समझ कर बुशी ने अपने को सँभाला और हर परिस्थिति का सामना करने के लिये तैयार हो गया। उसने अपना तोपखाना तैयार कर लिया और इस सफलता के साथ सावनेर के किले पर गोलाबारी शुरू किया कि स्वयम् घेरा डालने वाला सैन्य भी आश्चर्य में पड़ गया। इसके पूर्व ही अपने एक अफसर बलवन्त राव † मण्डली के माध्यम से पेशवा ने प्रयत्न किया था कि घोरपड़े लोग इस गुट से अलग हो जायें। ‡ उधर मुरार राव ने फ्रांसीसियों से अपने प्राचीन सम्बन्ध के बल पर बुशी को भी अपना सहायक बना लिया था और सलावतजंग की सरकार में अपनी स्थिति को दृढ़ कर लिया था। वैसे भी मुरार राव सलावतजंग के ही आधीन था। x एक साथ इतने अधिक शत्रुओं के सम्मुख बेचारा सावनेर का नवाब कर ही क्या सकता था। हार कर उसे सुलह करनी पड़ी। उसे अपने राज्य का कुछ भाग छोड़ देना पड़ा और उसने विधि पूर्वक पेशवा तथा सलावतजंग की अधीनता स्वीकार किया। मुजफ्फर खाँ को सलावतजंग की खिदमत में ले लिया गया और घोरपड़े मई के महीने में गूटी को लौट गया।

पिछली पंक्तियों में जिन स्थितियों की चर्चा की गयी हैं, वे सब की सब इसी उद्देश्य से उत्पन्न की गयी थीं कि फ्रांसीसी लोग दक्षिण से निकल जायँ। § पेशवा तथा शाहनवाज खाँ की यह योजना गुप्त रूप से ही कार्यान्वित की जा रही थी। सावनेर के पतन के थोड़े ही दिनों बाद बुशी को सूचित कर दिया गया कि दक्षिण के सूबेदार को उसकी सेवाओं की आवश्यकता अब नहीं रह गयी है और उसके अधीन सैनिक दस्तों की भी आवश्यकता नहीं है। इस सूचना को पा कर बुशी ने विरोधियों के समस्त जाल को समझ लिया और उसने शीघ्रता से निर्णय करके कौशल से काम लेना शुरू कर दिया। जिस प्रकार की कठिन परिस्थिति में इस समय बुशी फँस गया था, उससे अधिक कठिन परिस्थिति का सामना शायद ही किसी यूरोपियन अफसर को करना पड़ा हो। उसके सैन्य में दो सौ यूरोपियन सवार, छः सौ यूरोपियन पैदल तथा पाँच हजार देशी सिपाही थे। साथ में काफी उम्दा तोपखाना भी था। यदि बुशी चाहता तो इस सैन्य के बल पर सभी विरोधियों को आंटा दाल का भाव मालूम करा देता, परन्तु बुशी जानता था कि उसके कुछ पुराने सिपाहियों पर मुजफ्फर खाँ का

---

* मद्रास सरकार का पत्र दिनांक १४ अप्रैल १७५६

† किन्हीं हस्तलेखों के अनुसार घोरपड़े को तोड़ने का प्रयत्न होल्कर के माध्यम से किया गया था।

‡ यह विवरण मराठा हस्तलेख के अनुसार प्रस्तुत किया है। पूना-रिकार्ड्स में प्राप्त पेशवा द्वारा बलवन्त राव मण्डली को लिखे गये एक पत्र से भी इसकी पुष्टि होती है।

x त्रिचनापल्ली के पतन के बाद, निजामुल्मुल्क ने मुरारराव कों गूटी के जागीरदार के रूप में स्थापित्व प्रदान कर दिया था।

§ इस समय के थोड़े ही दिनों बाद मि० स्पेंसर नाम का अंग्रेज बम्बई सरकार के राजदूत के रूप में पूना में रहने लगा था। फ्रांसीसियों को दक्षिण से निकालने की यह योजना मराठा दर्बार में ही बनायी गयी थी और इस योजना को कार्यान्वित करने का सारा उत्तरदायित्व बलवन्त राव मण्डली के वकील अमृत राव पर था।

अत्यधिक प्रभाव है और इसीलिये वह उनकी वफादारी पर पूर्ण विश्वास भी न कर सकता था। उसके चारों ओर शत्रु ही शत्रु दिखाई पड़ रहे थे और इस विदेश में उसे अकेले ही सबसे निपटकर अपनी स्थिति को प्रतिष्ठा पूर्वक बचाना था। उसने तुरन्त ही अपनी योजना के अनुसार कार्यारम्भ किया ही था कि उसके सुपरिणाम दृष्टिगोचर होने लगे। उसके शत्रुओं में फूट पड़नी शुरू हो गयी। उसने सलावत जंग के सामने बर्खास्तगी को स्वीकार कर लिया और मछलीपट्टम चले जाने का आदेश चाहा। आदेश मिल जाने पर वह मछलीपट्टम की ओर न जाकर सीधा हैदराबाद चला गया और वहाँ कुछ सुदृढ़ इमारतों पर कब्जा करके अपने बँचाव की पूरी तैयारी करने में लग गया।

जून १४५७]

जब बुशी ने मराठा सैन्य का साथ छोड़ा था तभी से उसे अविश्वसनीय मानकर एक सैनिक दस्ता उसके पीछे लगा दिया गया था जिसमें सलावतजंग की सेना के छः हजार मराठा सैनिक थे और चन्द्रसेन यादव का लड़का रामचन्द्र तथा करमला का जानो जी निम्बालकर इसके सेनापति थे। फिर भी मामूली सी हानि सहते हुये बुशी ने अपना मन्तव्य पूरा कर लिया। बुशी को ज्यों ही अपने विरुद्ध किये जाने वाले षड्यन्त्र की गंध मिली, त्योंही उसने अपनी भयानक स्थिति की जानकारी मछलीपट्टम तथा पाँडीचेरी के फ्रांसीसी अफसरों को भेज दिया था। उन स्थानों के अफसरों ने पूरी कोशिश की कि किसी तरह बुशी के पास कुछ और सेना पहुँच जाय। थोड़े दिनों पहले ही सूरत में बुशीने छः सौ अरबों तथा अबीसीनियाँ निवासियों को अपनी सेना में भर्ती किया था। वे अभी तक उसके पास न पहुँच पाये थे। बुशी को आशा थी कि यह दल भी शीघ्र ही आकर उससे मिल जायगा, परन्तु उसकी यह आशा पूरी न हो सकी, क्योंकि निम्बालकर को ज्योंही इस दस्ते के आने का समाचार मिला, त्योंही उसने बीच में ही आक्रमण करके उसे तहस-नहस कर दिया। उनमें से पचास तो मार डाल गये और शेष को निम्वालकर ने बन्दी बना लिया।

जिस समय कर्नाटक में नासिरजंग की मृत्यु हुई, उस समय शाहनवाज उसके साथ ही था। यद्यपि उसने कारण विशेष अपनी फ्रेंच विरोधी भावना को दबा रक्खा था, फिर भी वह फ्रांसीसियों का मित्र कभी न बन सका। अंग्रेजों को वह फ्रांसीसियों से अच्छा समझता था और इसलिये उसने पेशवा को राय देकर बुशी को निकालने के लिये मद्रास के अंग्रेजों से मदद मँगवाई थी। पेशवा द्वारा मदद के लिये की गयी इस प्रार्थना से अंग्रेजों के तमाम मनसूबे पूरे हो जाने की आशा थी और इसीलिये वे उचित सहायता देने के लिये तैयार भी हो गये थे, परन्तु इसी समय उन्हें समाचार मिला कि अलीबर्दी खां के नाती, बंगाल के नवाब सिराजुदौला * ने २० जून को कलकत्ता पर अधिकार जमा लिया है। इस समाचार को सुनकर मद्रास वाले अंग्रेजों ने हर सम्भव शक्ति संचित करके बंगाल की ओर भेजना चाहा, जिससे नवाब से इसका पूरा-पूरा बदला लिया जा सके।

इस अवधि में बुशी ने हैदराबाद में अपनी स्थिति को कायम रक्खा। सलावत जंग की सेना उसकी स्थिति में तनिक भी अन्तर न ला सकी। इसी बीच बुशी ने रामचन्द्र यादव तथा जानोजी निम्बालकर को भी फोड़ लेने की कोशिश की। उन लोगों ने मछलीपट्टम से आने वाले फ्रेंच दस्ते के मार्ग में कोई रुकावट नहीं डाली। इस दस्ते को बुशी से न मिलने देने के अन्य सारे प्रयत्न बेकार गये और अगस्त † के मध्य में यह सेना बुशी से आ मिली।

---

* डफ ने शायद भूल से ही सिराजुद्दौला के स्थान पर शुजाउद्दौला लिख दिया है—अनुवादक

† जान बूझ कर मैंने इस विवरण को इतना विस्तार दे दिया है। बात यह है कि यह

इधर बुशी फिर से सलावतजंग का विश्वास पात्र बन बैठा और वह पहले से कहीं अधिक शक्ति का उपभोग करने लगा। सलावत जंग ने इतनी दृढ़ता अवश्य दिखलाई कि बुशी की लाख इच्छा होने पर भी उसने मुज़फ़्फ़र ख़ाँ को बुशी के हवाले नहीं कर दिया। मुज़फ़्फ़र ख़ाँ नौकरी से हटा दिया गया। थोड़े ही दिनो बाद वह पूना में दिखाई पड़ा, जहां पेशवा से उसने क्षमा प्रार्थना की और फल स्वरुप उसे पेशवा के यहाँ सम्मान मिलने लगा; यद्यथि उस रवैये को सदाशिवराव भाऊ ने क़तई नहीं पसन्द किया।

२० जुलाई को पेशवा पूना लौटा और उसने बम्बई सरकार को एक मित्रतापूर्ण पत्र लिखा, जिसमें बुशी के पुनः पर फैलाने का समाचार भी दिया और साथ ही यह आग्रह किया कि मि० वर्शियर कुछेक सभ्य जनो को इस लिये पूना भेजदें कि कुछ महत्वपूर्ण विषयों पर बिचार विनिमय कर लिया जाय। इसके साथ ही उसने यह भी प्रार्थना की थी फि विजयदुर्ग उसे मिल जाना चाहिये। उसने बम्बई के गवर्नर को यह भी सूचना दी कि पुर्तगाल वालों ने एक आक्रमण पोण्डा दुर्ग पर किया था और जो नाकामयाब रहा और उनका वाइसराय स्वयम् अपने ही सिपाहियों द्वारा मार डाला गया। बात यह थी कि पुर्तगीज़ डरते थे कि कहीं मराठे गोआ पर न आक्रमण करदें। इसी भय से होकर उन्होंने सोचा था कि पोंडा के हाथ में आ जाने पर गोआ की रक्षा करना सहज होगा। उनके दुर्भाग्य से ही उस किले पर उनका अधिकार न हो सका। मराठों के लिये गोआ पर चढ़ दौड़ना कुछ अधिक कठिन नहीं था, मगर उनके सामने और भी उलझने थीं जो गोआ अभि-यान से अधिक महत्व की थीं। उधर पेशवा के पत्रोउत्तर में मि० वर्शियर ने पेशवा को समझाना चाहा कि यदि आप विजयदुर्ग के बदले में बानकोट का किला ले लेते है तो आपको पुर्तगीजों की सीमा पर एक सुदृढ़ दुर्ग मिल जायगा और इसी की सहायता से आप पुर्तगीजो का सफल प्रतिरोध कर सकेंगे। बालाजी ने इस पत्र के उत्तर मे पुर्तगालियों

विवरण कुछ अंशों में आर्मी के विपरीत तो है ही, विल्क्स द्वारा दिये गये विवरण के एकदम विपरीत है। मै अपनी बात पाठकों के ही सामने रख कर चाहता हूँ कि वे स्वयम तथ्यातथ्य का निर्माण कर लें। कर्नल विल्क्स का कहना है कि "जिस दिन बुशी ने इन लोगों का साथ छोड़ा, उसके दूसरे ही दिन पेशवा ने बुशी के पास एक प्रस्ताव भेज कर मित्रता करना चाहा।" इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विल्क्स ने तर्क भी दिया है परन्तु साद्याभाव में इन तर्कों का मान्य नहीं कहा जा सकता। बम्बई सरकार के कागजों को देखने से ज्ञात होता है कि मद्रास के अँगरेजों को भय था कि कहीं पेशवा बुशी को अपनी सेवा में न लगा ले, परन्तु यह भय क्यों था, इसे कहीं भी नहीं बताया गया है। कर्नल विल्क्स का यह भी कहना है कि बुशी की रक्षा के लिये पेशवा ने एक दस्ता भेजा था। परन्तु यह बात निर्विवाद है कि बुशी के पीछे जो मराठा सैन्य गया था वह सलावतजंग की सेवा में था न कि पेशवा के। कर्नल विल्क्स ने यह भी कहा है कि विवश होकर ही बुशी ने हैदराबाद में आश्रय लिया। यदि यह बात सत्य हो तो बुशी की ख्याति को बड़ा धक्का पहुँचेगा। परन्तु हम देखते हैं कि अपनी कूटनीतिक कौशल से बुशी ने न केवल अपनी स्थिति ही हैदराबाद में बनाये रक्खा वरन् सहायता के लिये आने वाले सैन्य को भी उसने सफलतापूर्वक अपने पास बुला लिया। यदि उसने बाध्य होकर ही हैदराबाद में डेरा डाला था तो उसने मछलीपट्टम एवम पांडीचेरी से आने वाली सहायता को हैदराबाद में ही कैसे जाने को लिखा। यदि वह मछलीपट्टम जाना ही चाहता था तो किसने उसे बाध्य करके हैदराबाद की ओर घुमाया ? उपरोक्त प्रश्नों का सही उत्तर तब तक नहीं मिलेगा, जब तक कि यह न मान लिया जाय कि बुशी ने जानपूझ कर ही हैदराबाद की ओर पयान किया था।

के प्रति अपनी घृणा प्रदर्शित करते हुए लिखा कि यदि आपको हमारी इतनी अधिक चिन्ता है तो आप हमें एक बार मदद दे दीजिये और मैं इन पुर्तगालियों को एकदम समुद्रपार ही खदेड़ दूँ । *

ज्यों ही वर्षाकाल समाप्त हुआ और इधर-उधर आने-जाने के मार्ग खुल गये, त्यों ही मि० थामस वार्ड फल्डी तथा मि० जान स्पेसंर (ये दोनों ही बम्बई की कौंसिल के सभासद थे) पूना की ओर पेशवा से मिलने चल दिये । यद्यपि मि० वार्ड फील्ड बरिष्ठ कर्मचारी थे फिर भी इस द्विसदस्यीय कमीशन का मुखिया मि० स्पेंसर को ही बनाया गया था और इसमें शक नहीं कि उसने अपना काम योग्यता पूर्वक किया । स्पेंसर ने पेशवा से काफी देर तक बातचीत की । इस वातचीत के दौरान में रघुनाथराव तथा सदाशिवराव भाऊ भी उपस्थित थे ।† उस समय तक वुशी की सफलता का समाचार सब को मिल चुका था । पेशवा ने पूरी ईमानदारी के साथ कोशिश की कि एक अँग्रेजी सैनिक दस्ता उसके यहाँ भी रहे । इधर ईस्ट इंडिया कम्पनी के बोर्ड आफ डिरेक्टर्स ने बम्बई के गवर्नर को लिख भेजा था कि कर्नल क्लाइव के साथ जो सेना भेजी गयी है, उसका उपयोग अन्य किसी भी काम के लिये न किया जाय । अतः स्पेंसर पेशवा की उक्त बात को स्वीकार ही कैसे करता । स्पेंसर ने बालाजी से यह भी कहा कि फ्रांसीसियों को निकाल बाहर करने के लिये अँग्रेजी सैनिकों के एक दस्ते की माँग सलावतजंग ने भी मद्रास सरकार से की है । १२ अक्टूबर को पेशवा से पूना में ही अँग्रेजों ने एक सन्धि की । इस सन्धि में कुल अठारह धारायें थीं । इनके अनुसार तै पाया कि (१) मि० स्पेंसर के लौटने के चौबीस दिनों के बाद विजयदुर्ग समर्पित कर दिया जायगा, (२) मराठा राज्य के ब्यापार में डच लोग नहीं रहने पावेंगे तथा ईस्ट इंडिया कम्पनी को वानकोट नदी का स्वामित्व तथा दस गाँव मिले । पेशवा ने सन्धि के पूर्व का कोई भी दावा कम्पनी बहादुर के सामने न रखने का वचन दिया और यह भी वादा किया कि वह तटीय प्रदेश में आंग्रे को कोई भी प्रदेश नहीं देगा तथा अँगरेज कम्पनी के माल पर अतिरिक्त कर न लेगा । ‡

---

* बम्बई सरकार के कागजात में पाये गये मूल पत्र के अनुसार

† मि० स्पेंसर की रिपोर्ट जो उसने बम्बई सरकार को भेजा था ।

‡ अँगरेजों के रिकार्डस । कमेटी आव सीक्रेसी की पाँचवीं रिपोर्ट के परिशिष्ट में इस सुलह का ब्यौरा छपा था ।

इक्कीसवां अध्याय

मराठों के उत्कर्ष की चरम सीमा

[१७५६–१७६०]

रघुनाथराव का हिन्दुस्तान पर अभियान—अँगरेजों से किये गये सुलहनामे में पेशवा का उद्देश्य—कर्नाटक का अभियान—श्रीरंगपट्टम पर आक्रमण—सन्धि—पेशवा का पूना लौटना—कर्नाटक में बलवन्त राव भंडली के कार्य—कुड़ापा का युद्ध—मैसूर सरकार का व्यवहार तथा उस पर हैदरअली का प्रभाव—पेशवा और हैदराबाद—फ्रांसीसियों को निकालने का षड्यन्त्र—हैदरजंग की हत्या—शाहनवाज खाँ की मृत्यु—निजामअली का बुरहानपुर भागना—बुशी का पांडीचेरी बुलाया जाना—सूरत की गद्दी पर अँगरेजों का अधिकार—कर्नाटक में मराठे—निजामअली तथा जानोजी भोंसले—अँगरेजों द्वारा निजामअली की सहायता—सदाशिवराव भाऊ पेशवा का परिवार—मुजफ्फर खाँ का षड्यन्त्र एवम् प्राणदण्ड—सदाशिव प्रधान सेनापति एवम् रघुनाथराव प्रधान मन्त्री बने—दक्षिण की लडाइयाँ—हिन्दुस्तान में मराठे—हिन्दुस्तान के मामले।

वर्षा समाप्त होने के साथ ही रघुनाथ राव को हिन्दुन्तान की तरफ भेज दिया
सन् १७५६] गया जहाँ मल्हार राव होल्कर भी उससे मिल गया; सखाराम बापू भी पहले
की तरह ही, रघुनाथ राव के साथ, दीवान की हैसियत से गया। पेशवा ने
कर्नाटक की तरफ धावा करने के लिए एक काफी शक्तिशाली सेना का संगठन किया। इस सेना को
उसने अपने सेनापतित्व में हीं रक्खा। परन्तु सारी तैयारी पूरी कर लेने के
सन् १७५७] बाद भी पेशवा ने अगली फरवरी के पहले कृष्णा नदी को पार नहीं
किया।

बम्बई प्रेसीडेन्सी से सन्धिवार्ता करने में बालाजी राव का मुख्य उद्देश्य था विजयदुर्ग पर अपना अधिकार प्राप्त करना, जिसके मिल जाने पर वह खजाने, तथा उन सामानों को वापस पाने का दावा भी पेश करता जो कि आक्रमणों द्वारा लूट के माल के रूप में उठा ले जाए गए थे। उसने फिर सम्राट को सम्बोधित करके एक पत्र लिखा और मद्रास सरकार के जरिए सम्राट तक पहुँचाने के लिए प्रेसीडेन्सी को दे दिया। प्रेसीडेन्सी तथा इंगलैण्ड के सम्राट को लिखे गये पत्र इतने खुले और सहयोग पूर्ण मित्रता की भावना से भरे हुये नहीं थे जितना कि लोग मि० स्पेन्सर और बालाजी राव के बीच हुई आपसी वार्ता के आधार पर आशा कर सकते थे। यह परिवर्तन मराठों के व्यवहार पर अंग्रेजों की राजनीति के प्रभाव की तरफ प्रथम संकेत करता है। इस समय अवसर भी अंग्रेजों के कुछ प्रतिकूल था; मई महीने में ही इंगलैण्ड और फ्रांस के बीच फिर से युद्ध प्रारम्भ हो गया था तथा कलकत्ता की स्थिति पहले ही खराब हो चुकी थी, जो इस समय भी अनिश्चित ही चल रही थी। सम्भवतः मराठों ने यह नीति इसलिए नहीं अपनाई थी कि उन्हें अपना खोया क्षेत्र वापस लेना था, बल्कि वे इस तरह की वार्ताओं द्वारा, कर्नाटक तथा पाइंघाट के मुगल क्षेत्रों से चौथ और सरदेश

मुखी प्राप्त करने की भूमिका बाँध रहे थे, जबकि इन क्षेत्रों के घटनाक्रम में अंग्रेज प्रत्यक्ष रूप से दिलचस्पी ले रहे थे ।

मार्च में लगभग साठ हजार मराठों ने श्रीरंगपट्टम को घेर लिया और बकाया कर के रूप में बहुत अधिक धन की माँग की । जब ये मराठे श्रीरंगपट्टम की तरफ बढ़े तो नवाब के अतिरिक्त मार्ग में पड़ने वाले सभी नरेशों व सरदारों ने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली और घोड़पुरियों ने ६००० सवारों के साथ अपने देशवासियों की अभ्यर्थना की । इस समय मैसूर का प्रशासन वहाँ के मंत्री नुन्नराज के हाथ में था । जब उसने श्रीरंगपट्टम पर बकाया कर को अदा करने की असमर्थता प्रकट की तो मुजफ्फर खाँ के निर्देशन में सदाशिव राव भाऊ ने ३० तोपों द्वारा आक्रमण कर दिया । कुछ समय के लिए सन्धि वार्ता लगभग समाप्त हो चुकी पर अचानक ही एक गोले से रगां स्वामी के मन्दिर का कलश उड़ गया, और एक तोप के, बारुद की गर्मी से फट जाने के कारण उस तोप पर तैनात कई व्यक्ति मर गए । इन दो दुर्घटनाओं के कारण दोनों दलों ने इस युद्ध को अनुचित व अपशकुन से भरा हुआ महसूस करके आपस में एक समझौता कर लिया, जिसके अनुसार मराठों को ३२ लाख रुपया देने का वादा किया गया ।* यह रकम मराठों द्वारा पहले माँगी गई रकम से बहुत कम थी । जवाहरातों और नकद के रूप में ५ लाख रुपया तुरन्त अदा कर दिया गया और शेष रकम के लिए कुछ जिले मराठों को बन्धक के रूप में दे दिए गए । इसके पश्चात् पेशवा ने शेरा, बँगलोर, उसकोटा, बालापुर और कोलार के जिलों पर फिर से अधिकार कर लेने का इरादा किया । शाहजी के समय से ही इन जिलों पर मराठे अपने हक का दावा करते रहे थे, और वें को जी तथा उसके तंजौर के उत्तराधिकारी से इस सम्बन्ध में उलझते भी रहे थे । शेरा का जिला उनके अधिकार में आ गया परन्तु मानसून के प्रारम्भ हो जाने पर, पेशवा अपनी अधिकांश सेना के साथ पूना की तरफ चल पड़ा और बरसात के कारण उसे कृष्ण नदी को पार करने में काफी परेशानी उठानी पड़ी । उपरोक्त जिलों पर कब्जा करने के लिए, तथा अरकाट के नवाब से सरदेशमुखी और चौथ वसूलने के लिए पेशवा ने बलवन्त राव मण्डली को पर्याप्त सेना के साथ पीछे छोड़ दिया था । बलवन्त राव ने उसकोटा पर अधिकार जमा लिया जो कि कुड़ापा के नवाब के अधिकार में था, मूल वकील को छोड़ दिया गया । उसने कदनापट्टम पर भी अधिकार कर लिया और अरकाट के नवाब से बकाया चौथ की माँग की । काफी विवाद के पश्चात् नवाब ने दो लाख रुपया नकद दिया और २॥ लाख रुपए के बदले में कुछ जागीरें दे दी । मद्रास प्रेसीडेन्सी की सरकार ने इस समझौते को नाजायज करार देने का प्रयत्न किया । मद्रास सरकार के सदस्यों ने सर्वप्रथम सूबे की अव्यवस्था का विवरण दिखाया, उन्होंने यह भी बताने का प्रयत्न किया कि सूबे में शान्ति स्थापित तथा सुरक्षा के लिए कितना धन व्यय किया है; इसके अतिरिक्त, उनके अनुसार इस क्षेत्र की कम उपज के कारण मालगुजारी से प्राप्त धन भी बहुत कम था; इन सभी परिस्थितियों का हवाला देते हुए इन सदस्यों ने मराठों द्वारा वसूल किए गये इतने अधिक धन को अनुचित बताया । उन्होंने मराठों का ध्यान फ्रांसीसी जिलों की तरफ मोड़ने का प्रयत्न भी किया † परन्तु बलवन्त राव का दीवान अमृतराव अपनी माँग पर डटा रहा, और प्रस्तावित सारे धन को प्राप्त करने में सफल भी हुआ ।

---

* मराठा पान्डुलिपि के अनुसार यह रकम ३५ लाख की है, परन्तु यहाँ मैंने कर्नल विल्क्स का सहारा लिया है जिसके पास इस विषय पर काफी सरकारी कागजात हैं ।

† मद्रास के गवर्नर मि० पिगट द्वारा बलवन्त राव और पेशवा के नाम लिखे गए पत्र के आधार पर ।

जब वायदे के अनुसार इस जीते हुए किलों में से किसी भी किले को मुराररराव घोरपड़े के अधिकार में नहीं दिया गया तो वह गूटी की तरफ लौट गया। पेशवा ने बलवन्तराव को यह अधिकार दे दिया था कि यदि वह मुराररराव को विश्वास योग्य समझे तो उसे किसी किले का अधिकारी बना दे, * परन्तु मुरारजी ने अपने देशवासियों के विरुद्ध कुड़ापा, करनौल के नवाबों तथा कुछ अन्य लोगों को मिलाकर एक संघ बना लिया था जिसे अंग्रेजों की सहायता भी प्राप्त थी। शैन्य शक्ति के अभाव में मद्रास प्रेसीडेन्सी के पास कोई ऐसी शक्ति संगठित न हो सकी जिसकी मदद से वे मराठों की माँगों का विरोध करने का साहस कर सकते।

परन्तु इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता कि मुराररराव ने उस युद्ध में किसी भी दल की तरफ से सक्रिय भाग लिया था जो २४ सितम्बर की कुड़ापा के निकट मराठों तथा करनौल के नवाबों के बीच में हुआ था; इस युद्ध में बलवन्तराव मण्डली विजयी हुआ, नवाब मारा गया और उसकी राजधानी लूट ली गई। नवाब की मृत्यु के बाद भी उसका चचेरा भाई और उत्तराधिकारी अब्दुल नवी खाँ नगर की रक्षा में संलग्न रहे और मराठों का अनुमान से अधिक समय ले लिया। इसी बीच धीरे-धीरे प्रभावशाली होने वाले हैदरअली की सलाह से मराठों के साथ हुई। सन्धि को मैसूर सरकार ने तोड़ दिया, सन्धि द्वारा निर्धारित कर दिया, और कर वसूलने के लिए नियुक्त मराठों को निकाल बाहर किया। मैसूर पर हमला करने में बलवन्त राव की मदद करने के लिए पेशवा ने पूना में गोपाल हरी के अधीन एक सैन्यदल का संगठन किया, जिसके साथ-साथ पेशवा के बेटे विश्वास राव के सेनापतित्व में १०,००० मराठों की एक टुकड़ी भी थी, जिसका संगठन मानसून (वर्षा ऋतु) के अन्त में किया गया था। † परन्तु चूँकि गोपाल हरी नवम्बर के पहले कृष्णा नदी को पार नहीं कर सकता था और न तो समय पर विश्वास राव से उसकी भेंट ही हो सकती थी इसलिए पेशवा ने बलवन्तराव ‡ को वेदनोर पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। उसने बलवन्तराव को शीघ्रातिशीघ्र वेदनोर पहुँचने की आज्ञा दी क्योंकि वहाँ का राणा और उसका लड़का दोनों मर गए थे, इसलिए, गोपालहरी के पहुँचने के पहले ही वह किला उसके अधिकार में आ जाता और तत्पश्चात् उसके लिए गोपालहरी के साथ चित्तलद्रुग पर आक्रमण कर सकना सम्भव था।

यदि यह योजना उस समय क्रियान्वित हो सकती तो बहुत सम्भव था कि हैदरअली का प्रभाव बहुत कम हो जाता परन्तु बलवन्त राव कुड़ापा के जिलों में ही उलझा रह गया, और जब वह फरवरी में इधर से खाली हुआ तो हैदराबाद दरबार में कुछ ऐसी घटनाएँ घट रही थीं कि जिनके कारण बलवन्तराव को तुरन्त अपनी सेना सहित उत्तर की तरफ बढ़ जाना पड़ा और पेशवा का सम्पूर्ण ध्यान उधर ही आकर्षित हो गया।

सलावत जंग ने शाह नवाज खाँ की राय से अपने दोनों भाइयों—निजाम अली और बसालत जंग को क्रमशः बरार और बीजापुर का सूबेदार बना दिया था और ये दोनों १७५६ में ही अपना

---

* बालाजी राव द्वारा लिखा गया पत्र, सितम्बर १७५७।

† पेशवा ने अपने एक पत्र में एक नगर पर आक्रमण करने के लिए लिखा है, लेकिन इस शब्द को स्पष्टतः नहीं पढ़ा जा सकता, न तो इस नगर की स्थिति के विषय में कुछ निश्चित ज्ञान ही है और न यही पता है कि जब विश्वासराव ने इस पर हमला किया तो यह किसके अधिकार में था।

‡ पेशवा द्वारा बलवन्तराव गनपत मण्डली के नाम लिखे गये एक पत्र की मूल प्रतिलिपि के आधार पर।

स्थान ग्रहण कर चुके थे । उसी वर्ष के अन्त में अपने दीवान हैदरजंग के साथ पूरब की तरफ फ्रांसीसी बस्तियों की व्यवस्था के लिए हैदराबाद से चल पड़ा । इसी बीच कुछ कारणों से उसे उस भाग के कुछ अंग्रेजी कारखानों को नष्ट करने का अवसर भी मिल गया । इसी समय सलावत जंग भी मैदान में आ गया और साहनवाज खाँ की राय से उसने रामचन्द्र यादव के विरुद्ध कार्रवाई की; उसने रामचन्द्र पर यह आरोप लगाया कि उसके पास निर्धारित संख्या के अनुसार घोड़ों की पूरी संख्या नहीं थी; परन्तु वास्तविकता यह थी कि रामचन्द्र ने उन फ्रांसीसी टुकड़ियों के बिरुद्ध कोई कारवाई नही की थी जो हैदराबाद में बुशी से मिलने के लिए मछलीपट्टम से चलीं थी और इसीलिए सलावत जंग उस पर कुपित था । यादव की जागीर का अधिकांश भाग छीन लिया गया । सलावत जंग अपने भाई बसालत जंग के साथ बरसात भर विश्राम करता रहा; इसी बीच उसने दौलताबाद का प्रशासन वहाँ के किलेदार सआदत बोखारू के हाथ से छीनकर शाह नवाज खाँ के एक कृपापात्र के हाथ में दे दिया जब कि सआदत के पूर्वज, औरंगजेब के समय से ही दौलताबाद के किलेदार रहते आए थे । इसी समय एक भयानक षड़यंत्र प्रारम्भ हो रहा था जो कि किसी नाटक के दृश्यों की तरह ही घटनापूर्ण एवं रोमांच से भरा हुआ था । इस रहस्यपूर्ण कथानक के मुख्य अंश ये थे––सलावत जंग को दौलताबाद में ही कैद कर लेना; निजाम अली या बसालत के हाथ में शासन-सत्ता देना, और फ्रांसीसियों को दक्षिण से निकालना । सम्भवतः पेशवा इस षड़यंत्र के विषय में जानकारी रखता था,* और इस अभिसन्धि में सहयोग देने के उद्देश्य से ही शायद उसने विश्वास राव को गोदावरी की तरफ भेजा था । जैसा कि उसके द्वारा बलवन्त राव को दिए गए आदेशों से अनुमान लगाया जा सकता है; सितम्बर तक भी पेशवा को यह आशा नहीं थी कि इससे उसके कर्नाटक अभियान में कोई बाधा पड़ सकेगी ।

अगस्त माह में बकाया वेतन का बहाना लेकर औरंगाबाद में सैनिकों ने एक विद्रोह खड़ा कर दिया । उनके इस रवैये से शाहनवाज खाँ बहुत खीझ गया और उसने सैनिकों की माँग की पूर्ण उपेक्षा की । सैनिकों ने सलावत जंग के समय शाहनवाज खाँ को हटाकर उसके स्थान पर बसालत जंग की नियुक्ति की माँग की । यद्यपि सलावत जंग इसे नहीं चाहता था, फिर भी अपनी इच्छा के विपरीत उसने सैनिकों की माँग को स्वीकार कर लिया; लेकिन सैनिक केवल इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हुए और शाह नवाज खाँ को मजबूरन दौलताबाद में शरण लेनी पड़ी जहाँ वह इस अन्यायपूर्ण प्रति हिंसात्मक कार्रवाइयों से स्वयं को बचाने के यत्न में लग गया । ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि षड़यंत्रकारियों ने सोचा होगा कि सलावत जंग अपने मर्माहत एवं अपमानित वजीर के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए गढ़ी में जायगा, परन्तु सलाबत जंग के कुछ हितचिन्तक कृपापात्रों (सम्भवतः फ्रांसीसी रक्षक सेना के यूरोपियन अफसर) ने इस बात को जान लिया कि दाल में कुछ काला है और उन्होंने सलावत जंग को राय दी कि शाह नवाज खाँ को सुरक्षा का बचन दे दिया जाय, लेकिन इस शर्त पर कि वह नियंत्रित और अधीन हो कर रहे । लेकिन जब शाहनवाज खाँ से आत्म-समर्पण के लिए कहा गया, तो उसने जवाब में गोली चलाना प्रारम्भ कर दिया । इस घेरे में मदद करने के लिए बसालत जंग ने बरार से निजाम अली को भी बुलवा भेजा । शाहनबाज खाँ ने अपनी सहायता के लिए मराठों को निमंत्रित किया । सलावत जंग के किसी दूरदर्शी सलाहकार ने उसको निजाम अली को आगे बढ़ने से

---

* यह सम्भव है कि इस षड़यन्त्र को योजनाबद्ध एवं पूर्ण करने के प्रयत्न में पेशवा का भी पर्याप्त महत्वपूर्ण हाथ रहा हो यद्यपि इस बात का कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है ।

रोकने की राय दी। उधर निजाम अली केवल यही कहता रह गया कि वह एक अदना से वजीर के द्वारा अपने भाई के प्रति किया गया यह व्यवहार बर्दाश्त नहीं कर सकता; उसने सलावत जंग की सहायता करने में कोई शीघ्रता नहीं दिखाई। बसालत जंग ने सभी टुकड़ियों की विभिन्न स्थानों से बुलाकर एकत्रित करना प्रारम्भ कर दिया। षड़यन्त्रकारियों ने सलावत जंग को मारने की नहीं, बल्कि उसकी आजादी छीनने के लिए साजिस की। मराठों ने उस क्षेत्र में लूटपाट मचाना प्रारम्भ कर दिया, जिसके फलस्वरूप इस दल में एकता स्थापित करने के प्रयत्न होने लगे। शाहनवाज खाँ ने स्वेच्छा से अधीनता स्वीकार कर लिया। मराठों का सामना करने के लिए जोरों से तैयारियाँ होने लगी। निजाम अली जिसके लिए बसालत जंग ने वजीर का ओहदा छोड़ दिया था—ने लड़ाई की योजना और मार्ग-निर्धारण का कार्य प्रारम्भ कर दिया। शाह नवाज खां के जिम्मे लड़ाई के समय सभी सामानों की हिफाजत करने जैसा छोटा कार्य दिया गया। सेना का सम्पूर्ण भार अपने भाई पर छोड़ देने के कारण सलावत जंग के मित्रों ने उसकी बहुत आलोचना की, और अन्त में उसने निजाम अली से साफ कह दिया कि सेना का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उसे नहीं दिया जा सकता। पहले तो निजाम अली ने स्वयं को अपमानित प्रदर्शित किया परन्तु कुछ समय बाद ही उसने सलावतजंग को विश्वास दिला दिया कि उसका जीना और मरना दोनों सलाबत जंग की शान और इज्जत बचाने के लिए ही है। सलावत जंग उस पर फिर विश्वास करने लगा; उसने निजाम अली को केवल क्षमादान ही नहीं दिया, बल्कि उसे उसका पुराना ओहदा ग्रहण करने का हुक्म दिया और उसे निजाम-उल-मुल्क आसिफ जाह का खिताब भी दिया। इस आपसी समझौते के बहुत थोड़े समय बाद ही खबर मिली कि रामचन्द्र यादव जो कि सलावत जंग के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने तथा उसकी सहायता करने के लिए ससैन्य आ रहा था—राह में ही मराठों द्वारा आक्रान्त होकर सिन्धखेर नगर में पेशवा की सेना द्वारा घेर लिया गया है।* तुरन्त ही सेना को कूच करने का हुक्म दे दिया गया; परन्तु उसी चाल से जिससे कि सलावत जंग दुश्मनों के हाथ में पड़ने से बचता रहा था—फिर उसके शत्रुओं के षड़यन्त्र को विफल कर दिया वह अपनी जगह से हिला ही नहीं। निजाम अली सेना के साथ सिन्धखेर की तरफ बढ़ा, उसने रामचन्द्र यादव की मुक्त कराने, मराठों को हराने और उन्हें सन्धि के लिए मजबूर करने का झूठा नाटक खेला। यद्यपि मराठों ने, काफी तार्किक ढंग से बाद में विजयी होने का दावा किया, परन्तु पहले की नाम मात्र की पराजय बालाजी राव के लिए एक ऐसा तुच्छ अपमान था जिसके बदले में वह २५ लाख रुपये † से अधिक आय वाला भूक्षेत्र प्राप्त करके ही सन्तोष कर सकता था। किस तरह निजाम अली ने अपने भाई के सामने सन्धि की इस शर्त को प्रस्तुत किया और उसे राजी किया यह कहना मुश्किल है; केवल यही अनुमान लगाया जा सकता है कि उसने इस सन्धि-प्रस्ताव को गुप्त ही रखा। बाजी राव निजाम अली के साथ एक मित्र की तरह औरंगाबाद आया, परन्तु इसी समय बुसी २०० यूरोपियन घुड़सवार, ५०० यूरोपियन पैदल सैनिक, ५००० देशी सिपाहियों तथा सलावतजंग की विशेष टुकड़ी के साथ आ धमका। उसके साथ १० तोपें भी थीं। उसके इस प्रकार अचानक आ पहुँचने से सारा षड़यन्त्र गड़बड़ी में पड़ गया, और निर्लज्ज निजाम अली के अतिरिक्त अन्य सभी षड़यन्त्रकारी अस्त हो गए। सभी मुख्य षड़यन्त्रकारी सलावत जंग की अधीनता

---

* रामचन्द्र यादव पर हमला करने वाली टुकड़ी का सरदार महादजी सिन्धिया था, यद्यपि नई उम्र का ही था, परन्तु २७ नवम्बर १७५१ को कोड़ी गाँव और तुली गाँव के बीच के मैदान में हुए युद्ध में काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था (मराठा पान्डुलिपि)।

† यह रकम यथार्थ रूप में २,५०,८२२६ रुपया १३ आना था (पूना रिकार्ड्स)।

में आने की इच्छा करने लगे जिनमें सबसे आगे उसका भूतपूर्व मन्त्री शाह नवाज खाँ था। यद्यपि वह सलावत जंग के विरुद्ध काफी आगे बढ़ चुका था परन्तु निजाम अली के साथ इतने दिन तक रह लेने के कारण वह निजाम अली की करतूतों से नफरत भी करने लगा था। इतने दिनों के अनुभव से वह जान चुका था कि निजाम अली के मुकाबले में सलावत जंग कहीं अधिक योग्य आदमी है, उसने सच्चे दिल से प्रत्येक चीज को पुराने ढर्रे पर लाने की इच्छा प्रगट की लेकिन एक बार पाप की नाव पर सवार हो जाने के बाद यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि पाप के समुद्र की धाराएँ कहाँ तक बहाकर ले जा सकती हैं या उनकी भँवर में कौन डूब कर नष्ट हो सकता है।

जैसा कि बुसी का स्वभाव था, उसने इस भयानक परिस्थिति में नपे तुले ढंग से अपना कार्य प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम उसने सलावत जंग के समक्ष, उसको अपना मालिक मानते हुए, सम्मान प्रदर्शित किया; तत्पश्चात् उसने आधे रास्ते में ही एक पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार पेशवा से मुलाकात की; उसने निजाम अली से भी भेंट की लेकिन उसको एक ऐसा आदमी मानकर, जिसके इरादे सन्देहपूर्ण हों और जिसके साथ एक मजबूत सेना की शक्ति भी हो। उसने बसालत जंग की भी अगवानी और अभ्यर्थना की; लेकिन शाह नवाज खाँ के पास वह स्वयं नहीं गया बल्कि उसने अपने दीवान हैदरजंग को उसके पास भेजा। इसके दो कारण थे—पहला तो यह कि इससे शाहनवाज खाँ यह समझ लेगा कि उसके साथ किया गया व्यवहार अन्य षड़यन्त्रकारियों के साथ हुए व्यवहार से भिन्न है, और दूसरा यह कि समान पद एवं स्तर के होने के कारण उसके दीवान और शाहनवाज खाँ के बीच अधिक खुले ढंग से बातचीत हो सकेगी, जिससे शाहनवाज खाँ के इरादों का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

यहाँ तक तो बुशी का कार्य उचित ढंग से हुआ, क्योंकि अभी तक वह अपनी इच्छा से कार्य कर रहा था। परन्तु आगे चलकर उससे जो गलतियाँ हो गई उनका सर्व प्रमुख कारण यह था कि वह यूरोप निवासी था और अपने इरादे का चाहे जितना भी पक्का रहा हो परन्तु वह देशी लोगों के निर्देशन में कार्य कर रहा था, साथ ही वह सलावतजंग और उसके सलाहकारों के प्रति सम्मान भी प्रदर्शित करता और उनकी राय की कदर भी करता था, एक और मुख्य कारण यह था कि वह यहाँ की भाषा नहीं समझता था और देशी लोगों की बात समझने के लिये उसे यहाँ के निवासियों की ही सहायता ही लेनी पड़ती थी। आगे होने वाली घटनाओं में जो भी उचित अनुचित हुआ, उसकी बहुत कुछ जिम्मेदारी इन्हीं तथ्यों पर थी।

शाहनवाज खाँ ने हैदरजंग से सारी बात साफ-साफ कह दिया, परन्तु जैसा कि ऐसी परिस्थितियों में स्वाभाविक था, उसने सलावतजंग के खिलाफ साजिश करने के कारण फ्रांसीसियों के बढ़ते हुए प्रभाव के प्रति अपनी निजी ईर्ष्या को न बताकर सारा दोष सलावतजंग की कमजोरी को दिया। शाहनवाज खाँ के सभी मित्रों ने उसे हैदरजंग पर विश्वास न करने की राय दी थी।

जब बुशी को हैदरजंग के द्वारा सारे षड्यन्त्र का पता लग गया तो उसने शाहनवाज खाँ से झूठा वादा किया कि वह उसे क्षमादान दिलवाकर उसका मन्त्रिपद वापस दिला देगा। शाहनवाज खाँ को अपने साथ मिला लेना ही इस समय सर्वोत्तम उपाय था क्योंकि इस देश में लोग उसे सम्मान की दृष्टि से देखते थे, वह यहाँ के आर्थिक संसाधनों की पर्याप्त जानकारी रखता था और यदि धन के झूठे अभाव की स्थिति को जिसे स्वयं उसने ही पैदा किया था——छोड़ दिया जाय तो यह भी मानना पड़ेगा कि जिन क्षेत्रों में मालगुजारी का प्रबन्ध उसके हाथ में था, उनकी आय बढ़ती ही जाती थी। उसने फ्रांसीसियों कि अदमनीय शक्ति का अनुभव किया था, आपसी फूट और मतभेद की निरर्थकता

का अनुभव कर चुका था साथ ही निजाम अली के साहसिक मस्तिष्क में बसी हुई शैतानियत की इन्तिहा भी देख चुका था।

बुशी ने एक तरफ तो शाहनवाज खाँ को मन्त्रिपद वापस दिलाना बहुत असुविधाजनक पाया, परन्तु दूसरी तरफ छल कपट पर उतर आना आवश्यक हो जाने पर उसने बहाना ढूढ़ने की जरूरत भी नहीं समझा। उसे जो भी उचित और न्यायपूर्ण जँचता था वह वही करता था, उसकी भुजाओं में जितनी शक्ति थी और मस्तिष्क में जितनी बुद्धि थी, उसका प्रयोग वह अच्छे एवं कल्याणकारी कार्यों में ही करता था। परन्तु दुर्भाग्यवश एक एशिया निवासी के निर्देशन में कार्य करने के कारण उसे ऐसी कपटपूर्ण चालों का सहारा लेना पड़ा जो बुद्धिमानों और सचाई की राह पर चलने वालों को शोभा नहीं देता। इस समय ऐसा प्रतीत होता है—स्वयं उसके मस्तिष्क में किसी निश्चित उद्देश्य का अस्तित्व नहीं था, यद्यपि यह अनुमान लगाने के कई कारण हैं कि उसका दीवान सम्भवतः अपनी पदोन्नति के उपाय कर रहा था और दक्षिण में मुगलों के वजीर के पद पर नियुक्त होने के लिये काफी प्रयत्नशील था।

हैदरजंग ने जब दौलताबाद के किलेदार को घूस देकर अपनी तरफ मिला लिया तब उस योजना को पूरा करने का उत्तरदायित्व बुशी ने अपने ऊपर ले लिया, यद्यपि इस किले पर अधिकार कर लेने से उसे कोई विशेष सम्मान नहीं प्राप्त हुआ। शाहनवाज खाँ को कैद कर लिया गया, हैदरजंग ने लगभग ८ लाख रुपया घूस में देकर निजाम अली की अधिकांश सेना को भी अपनी तरफ मिला लिया। घूस द्वारा मिलाये जाने वाले प्रमुख सरदारों में से एक था इब्राहीम खाँ गर्दी, जो पहले बुशी के अधीन सिपाहियों की एक टुकड़ी का सरदार था, परन्तु अपने कर्मों से उसने बुशी को नाराज कर दिया था और अवसर पाकर बरार में निजामअली से पास चला गया था। पेशवा जो कि दौलताबाद को अपने अधिकार में करने के लिये बहुत उत्सुक था, औरंगाबाद के पश्चिम में ५० मील की दूरी पर स्थित अपनी छावनी से दौलताबाद की तरफ लौटा। उसने बुशी को हर तरह से फुसलाया बहकाया कि वह किले को मराठों के हाथ सौंप दे परन्तु उसकी एक भी चाल सफल नहीं हुई। निजाम अली ने पेशवा से किये गये पुराने समझौते के आधार पर यह आशा किया था कि पेशवा उससे मिल कर उसकी मदद करेगा, उसने पेशवा को यह प्रलोभन दिया कि वह उसे दौलताबाद का किला तथा कुछ अन्य क्षेत्र भी सौंप देगा यदि पेशवा उससे सहयोग करे और उसे दक्षिण का वायसराय बना दे परन्तु बाजीराव ने उसके द्वारा दिये गये इन प्रलोभनों में कोई भी आकर्षण नहीं देखा।

वसालतजंग ,जो कि उस समय मंत्रिपद पर था, यद्यपि स्वभाव से क्रूर या खतरानक नहीं था, परन्तु उसके चरित्र में स्थिरता और दृढ़ता भी नहीं थी। उसे आसानी से बहकाकर अच्छे या बुरे काम में लगाया जा सकता था। कुछ कारणों से, उसे पदच्युत करना अहितकर ही होता; निज़ाम अली की चरम सीमा पर पहुँची हुई निर्लज्जता और धृष्टता से बौखलाकर वह मनही मन में निज़ाम अली से शत्रुता भी रखता था। इधर जब तक निज़ाम अली आजाद रहता, तब तक हैदर जंग की योजनाएं भी सफलीभूत न हो पाती इसलिए उसने शाहनवाज़ खाँ के साथ साथ निज़ाम अली को भी कैद करने का उपाय सोचना प्रारम्भ कर दिया। पहले तो उसने उसे दौलताबाद में ही कैद करने की योजना बनाई परन्तु निज़ाम अली का भी प्रभाव दौलताबाद में कम नहीं था; यहाँ तक कि जो सिपाही उसकी नौकरी छोड़ चुके थे, वे मी अवसर पड़ने पर उसका साथ देने के लिए तैयार थे; साथ ही दौलताबाद बरार सूबे के निकट स्थित होने के कारण भी, शाहनवाज़ खाँ के लिए भले ही उचित कारागार सिद्ध हुआ, परन्तु उस किले में निज़ाम अली को कैद नहीं रक्खा जा सकता था। यह भी द्विविधापूर्ण था कि

बुसी हैदरजंग को अपने सोचे हुए उपायों को क्रियान्वित करने की अनुमति देता या नहीं ; यदि वह हैदरजंग को मनमानी करने के लिए आज़ाद कर देता तो यह असम्भव नहीं था कि वह अपनी महत्वाकांक्षा के लिए अपने फ्रांसीसी मित्रों को बलिदान कर देता। इस समय हैदरजंग और निज़ाम अली, दोनों छलपूर्ण योजनाए बनाने में व्यस्त थे, यद्यपि ऊपर से वे दोनों एक दूसरे के प्रति मित्रता का भाव बनाए हुए थे। हैदरजंग ने निज़ाम अली को हैदराबाद के प्रशासन को हथिया लेने की राय दी, इसमें उसकी यह साज़िश थी कि इस प्रकार निज़ाम अली गोलकुन्डा के निकट पहुँच जायगा जहाँ कि हैदरजंग उसे कैद करने का आयोजन कर चुका था। निज़ामअली ने उसके प्रस्ताव को काफी दिखावटी सन्तोष एवं गम्भीरता से ग्रहण किया; उन दोनों में इस सम्बन्ध में वार्ता प्रारम्भ हो गई और रवानगी की सारी तैयारी भी कर ली गई। निजाम अली के रवाना होने के पहले हैदरजंग उससे भेंट करने गया। निजाम अली ने भी बड़ी इज़्ज़त से उसकी अगवानी की, और अवसर पाकर अपने खेमें में ही उसकी हत्या कर दिया। इस घटना का प्रचार होने पर काफी हो हल्ला मचा; शाहनवाज खाँ,जो कि उस समय कैद में था—को हैदरजंग की हत्या की साजिश में साझीदार समझा गया; हैदरजंग अपने फ्रांसीसी तथा देशी सिपाहियों का वहुत प्रिय पात्र था, और सभी उसी के इशारे पर जाने के लिए तैयार रहते थे, उसकी हत्या के समाचार से उत्तेजित होकर, फ्रांसीसी सिपाहियों का एक सूबेदार * उस खेमें में घुस गया जिसमें शाहनवाज खाँ, उसका लड़का और यमीनउद्दौला कैद थे, और आवेश में इन तीनों को तलवार के घाट उतार दिया। निजाम अली उसी रात को बरहानपुर की तरफ भाग गया। † इस तरह इस दुःखान्त नाटक का पटाक्षेप ११ मई को हुआ। मराठा सेना के साथ पेशवा पूना की तरफ लौटा, इधर बुसी ने निजाम अली से हुए एक युद्ध में सलावत जंग को कोई प्रोत्साहन न देकर कुछ ही समय बाद हैदराबाद की राह ली। हैदराबाद पहुँचने के पहले ही उसे तत्काल वापस लौटने की अलघंनीय आज्ञा प्राप्त हुई जिसके कारण इधर उसने जो प्रभाव एकाएक जमा लिया था उसके लाभ से उसका राष्ट्र वंचित हो गया। मराठे यह समझ ही नहीं पाए कि उसके इस तरह के लौट जाने का क्या कारण हो सकता था। दौलताबाद से फ्रांसीसी सेना के निकलने तथा बुसी के पांडिचेरी की तरफ अचानक प्रस्थान करने के दृश्य को बाजीराव ने आश्चर्य मिश्रित आनन्द के साथ देखा। सलावत जंग की समझ में बुसी के इस तरह वापस लौट जाने की कोई वजह समझ में नहीं आई; उसके चले जाने से सलावत जंग को लगा कि उसकी आशा की आखिरी चिनगारी भी बुझ गई और जब तक उसे बुसी के फिर से लौटने की सम्भावना दिखाकर सात्वंना नहीं दी गई तब तक वह पूर्णतः निराशा की चिनगारियों पर ही बेचैनी से करवटें बदलता रहा।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि पेशवा औरंगाबाद से ५० मील पश्चिम से केवल इसलिए चल पड़ा था कि वह किसी तरह बुशी पर प्रभाव या जोर डालकर उससे दौलताबाद का किला हथिया

---

* इस सूबेदार का नाम लक्ष्मण था और एक मुगल लेखक के अनुसार सैयद का यह कातिलवाद में सीकाकोल में, सम्भवतः दिसम्बर में फोर्ड और कामफ़्लैंस के बीच हुए युद्ध में मारा गया।

† मैंने ऊपर की साजिश के वर्णन में निम्नलिखित लेखकों व पुस्तकों का सहारा लिया है—ओर्मे, विल्क्स, मराठा पाण्डुलिपियाँ, शाहनवाज खाँ की जीवनी, 'खजाना-ए-अमीर', 'हदीक-ए-आलम' आदि। ओर्मे और विल्क्स के अनुसार शाहनवाज खाँ सलावत जंग की एक फौजी टुकड़ी की कैद में था। यद्यपि कर्नल विल्क्स का मत ही अधिक सामान्य दिखता हो, परन्तु मुस्लिम लेखक उसके मत के विरुद्ध हैं।

सके; परन्तु अभी इस प्रश्न का उत्तर शेष ही है कि आखिर वह पश्चिम की तरफ़ किस उद्देश्य से गया था। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, बम्बई प्रेसीडेन्सी के सदस्य बहुत पहले से ही, सूरत में सुरक्षित और सम्मान पूर्ण ढंग से अपना व्यवसाय और व्यापार स्थापित करने के लिए पेशवा से सहयोग पाने का प्रयास कर रहे थे, परन्तु जब उन्होंने यह जान लिया कि पेशवा से किसी तरह का भी सहयोग पाना सम्भव नहीं है तो उन्होंने काफी सतर्कता से इस विषय में स्वयं प्रयास करना प्रारम्भ कर दिया। सूरत में स्थित उनके एजेन्ट मिस्टर एलिस ने बड़ी सावधानी से एक योजना बनाई जिसके सफलीभूत होने की काफी सम्भावना थी। पेशवा ने, जिसको कि हर चीज की खबर थी, कल्याण के सूबेदार शंकर जी पन्त को मिस्टर वार्शिपर के पास इसलिए भेजा कि यदि घटनाक्रम और परिस्थितियों को देखते हुए आवश्यक हो तो वह एक टुकड़ी सूरत की तरफ भेज दे; परन्तु शंकर जी पंत ने इस प्रसंग पर प्रेसीडेन्ट की उदासीनता तथा युद्ध की तैयारियों को देखकर यही अनुमान लगाया कि अंग्रेज इस कार्य को अपने ही बलपर करना चाहते है; यह समाचार पाकर बालाजी राव ने तुरन्त उनकी योजना को असफल कर देने का निर्णय किया, और तत्काल स्वयं प्रेसीडेन्सी पर ही आक्रमण करने की धमकी दी। इसी उद्देश्य से उसने पश्चिम की तरफ कई मंजिल तक सफर किया और पूना में अग्रेजों द्वारा नियुक्त हिन्दुस्तानी एजेन्ट के जरिए उसने अंग्रेजों को यह विश्वास दिला दिया कि वह अपनी सेना के साथ नासिक होते हुए बसईं की तरफ कूच करने ही वाला है। उसने इसी हिन्दुस्तानी एजेन्ट के जरिए उनके दिल में यह बात भी बैठा दिया कि मराठे बहुत धूर्त होते हैं और उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता इसलिए बम्बई के द्वीप की सुरक्षा के लिए काफी तगड़ा प्रबन्ध किया जाना चाहिए। इस खबर के मिलने पर गवर्नर और कौंसिल ने तुरन्त सूरत के लिए आयोजित अभियान को बल दिया, और साथ ही मिस्टर एलिस के पास भी सन्देश भेज दिया कि सारी सैन्य-शक्ति और जल-
१७५६] शक्ति को बम्बई की सुरक्षा के लिए भेज दिया जाय। इस तरह से मराठों की चाल में आ जाना तत्कालीन बम्बई सरकार को अनुभव हीनता का परिचायक है।* इस घटना के कुछ माह बाद अंग्रेजों ने किसी तरह सूरत के किले पर कब्जा कर लिया यद्यपि इस कार्य में उनके पर्याप्त सैनिक और अफसर मारे गए †

मौसम साफ होने पर सर्वप्रथम पेशवा ने गोपाल हरी के अधीन एक सैन्य दल मैसूर की ओर उन जिलों पर फिर से अधिकार करने के लिए भेजा जहाँ के मराठा एजेन्ट हैदरअली के परामर्श से, निकाल बाहर किए गए थे। गोपाल हरी ने कई स्थानों पर फिर से मराठा थानों की स्थापना की, सेनापट्टम पर आश्चर्यजनक ढंग से अधिकार कर लिया और बंगलौर पर घेरा डाल दिया। यहाँ पर मराठा सेना को मैसूर की सेना का मुकाबला करना पड़ा जिसका संचालन पहली बार उभरते हुए नेनापति हैदर अली के हाथ में था। अन्त में ३२ लाख रूपया पाने की शर्त पर मराठों ने युद्ध बन्द किया जिसका आधा तो स्वर्ण के रूप में अदा कर दिया गया तथा शेष आधा, महाजनों के नाम लिखी गई हुन्डियों के रूप में। तत्पश्चात गोपाल हरी डामलचेरी के दर्रे की तरफ बढ़ा, जबकि मद्रास फ्रांसीसी अंग्रेजों को घेरे हुए थे। यहाँ भी उसने दोनों लड़ाकू दलों से भी द्रव्य वसूल करने का साहस किया, यद्यपि इसी कारण से दोनों दस्तों के दिल उसके प्रति घृणा से भर उठे। फ्रांसीसियों से बदला लेने के ध्येय से उसने त्रिपट्टी के मन्दिर पर अधिकार कर लिया ताकि वह मन्दिर में चढ़ाए जाने वाले द्रव्य को हथिया सके परन्तु इसी समय उसे सेना के मुख्य भाग के साथ पूना वापस लोटने का आदेश मिला,

---

* बम्बई रिकार्ड्‌स।

† बम्बई रिकार्ड्‌स और ग्रीज का 'वायेज टु' द ईस्ट इन्डीज।

और जो टुकड़ी उसने मन्दिर में छोड़ दिया था उसे अरकाट के नवाब के आदमियों द्वारा खदेड़ दिया गया।

बुसी की राय से सलावत जंग ने बसालत जंग को अपना दीवान नियुक्त कर लिया था। सलावतजंग के शासन को कायम रखने तथा दरबार में होने वाले विरोधों एवं साजिशों का सामना करने के लिए इन दोनों भाइयों का मिलाप ही सर्वोत्तम तरीका था; परन्तु ज्योंही बुसी पाण्डिचेरी के लिए रवाना हुआ, निजाम अली फिर से प्रभाव शाली होने लगा, क्योंकि जो फ्रेंच टुकड़ियाँ छोड़ी भी गई थीं, वे दक्षिण में अधिकृत फ्रांसीसी जिलों की सुरक्षा में ही सलंग्न थी और उनका संचालन कॉनफ्लैन्स के हाथ में था।

बुरहानपुर पहुँचने के तुरन्त बाद ही निजाम अली ने उस नगर से पर्याप्त धन वसूल, किया और इस प्रकार जो धन प्राप्त हुआ उसकी मदद से उसने अपनी सेना का संगठित करना प्रारम्भ कर दिया। जब उसने बुरहानपुर छोड़कर, वहाँ से लगभग १०० मील दक्षिण की तरफ बसई नाम के नगर में डेरा डाला, उसी समय दलबल सहित इब्राहीम खाँ गर्दी भी उससे आ मिला। इसी समय दीवान बसालतजंग ने जानोजी भोंसले, सेना साहब सूबा, को अपने भाई निजाम अली पर हमला करने के लिए उकसाया जिसके अनुसार जानोजी भोंसले के एक अफसर बापू करौंदिया ने उस सारे तोपखाने को राह में ही छीन लिया जो बुरहानपुर से निजाम अली के पास जा रहा था। इस आक्रमण के फलस्वरूप निजाम अली ने अचानक अकोला की तरफ कूच कर दिया। उसने इस नगर में लूटपाट मचाना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु उसी समय जानोजी ने एक बहुत शक्तिशाली सेना के साथ उस पर आक्रमण कर दिया, जिस पर वह बुरहानपुर वापस लौट गया और इब्राहीम खाँ के लिए कुछ तोपों का प्रबन्ध करने में लग गया। जब उसने अपना तोपखाना तैयार कर लिया जो कि मराठों के लिए अजेय था—तो वापस लौट कर फिर आक्रमण कर दिया और इस बार जानोजी की सेना को पूर्णतः पराजित कर दिया। उसकी इस विजय से उसके मित्रों की संख्या फिर बढ़ने लगी; जानोजी ने उससे मैत्रीपूर्ण सन्धि कर ली, पेशवा द्वारा भी उसे प्रोत्साहन प्राप्त हुआ निजाम-उल-मुल्क के बेटे की हैसियत से उसने अंग्रेजों की मित्रता भी प्राप्त हुई। इसलिए, ज्योंही निजाम अली को खबर मिली कि सलाबत जंग ने हैदराबाद से मछलीपट्टम की तरफ कूच कर दिया, जिसे जहाँ कि अंग्रेजों ने घेर लिया था त्योंही, औरंगाबाद पर कब्जा करते हुए वह राजधानी की ओर बढ़ चला। *

निजामअली के तेजी से बढ़ते चले आने के कारण सलावतजंग और कर्नल फोर्ड के बीच हुए एक समझौते की बात भी सामने आ गई यद्यपि बसालतजंग फ्रांसीसियों का पक्षपाती था और उसने इस समझौते के अनुसार होने वाली व्यवस्था की राह में रोड़ा अटकाने का प्रयत्न भी किया। इस समझौते के अनुसार कर्नल फोर्ड द्वारा दी गई सहायता का उपयोग निजामअली के विरुद्ध नहीं किया जा सकता था, किसी भी प्रलोभन पर कर्नल फोर्ड निजामअली के विरुद्ध सलावतजंग की मदद के लिये तैयार नहीं हुआ था। सलावतजंग हैदराबाद वापस लौट आया जहाँ निजामअली के पहुँचने पर भाइयों में काफी मतभेद से भरी बातें हुईं, लेकिन सलावतजंग निजामअली को फिर से दीवान का पद वापस देने के लिये विवश हो गया और बसालतजंग अपने सूबे में वापस चला गया जिसका केन्द्र अदोनी था।

पूना दरबार में सभी प्रमुख प्रशासनिक कार्य सदाशिवराव भाऊ के निर्देशन में चलते रहे। उसका योग्य और बुद्धिमान सहायक रामचन्द्र बाबा चार पाँच वर्ष पहले ही मर चुका था जिसका अपार धन भाऊ के संरक्षण में ही पड़ा हुआ था। भाऊ ने उसके कुल धन का एक तिहाई भाग धार्मिक

---

* मराठा पाण्डुलिपियाँ, ओर्मे, 'खजाना-ए० अमीर', 'हदीक ए० आलम'।

कर्मों एवं दान-दक्षिणा में व्यय कर दिया तथा शेष धन को स्वयं अपने तथा अपने मृत सहायक के पुत्र के बीच बराबर-बराबर बाँट लिया। यद्यपि सदाशिवराव क्रोधी और लोभी था, परन्तु साथ ही वह बहुत उत्साहपूर्ण एवं क्रियाशील भी था। यद्यपि गर्व और न झुकने की प्रवृत्ति उसकी चरित्रगत विशेषताएँ थीं परन्तु साथ ही उसका अच्छा स्वभाव, व्यवहार और बुद्धि भी सराहनीय थे। वह भ्रष्टाचारी था, परन्तु अपने देशवासियों की नजर में नहीं, क्योंकि मराठों की विचारधारा के अनुसार किसी अच्छे तथा उचित कार्य को पूरा करने के लिये अनुचित तथा गलत ढंग से धन संग्रह करना बुरा नहीं माना जाता था। यह एक ऐसा सिद्धान्त था जिसके आधार पर किसी भी सरकारी विभाग में शीघ्रतिशीघ्र घूस, भ्रष्टाचार और कुशासन का पौधा पनप कर अपनी शाखाएँ चारों तरफ फैला सकता था।

उसके मित्र रामचन्द्र बाबा ने उसे पहले से ही सतर्क कर दिया था कि पेशवा की पत्नी गोपिका बाई उसके प्रति ईर्ष्या रखती है और ज्यों ही उसके लड़के बड़े और समर्थ हुए, वह खुलकर उसका विरोध करना शुरू कर देगी। इस विरोध तथा ईर्ष्या को समाप्त करने के ध्येय से सदाशिव राव भाऊ ने सर्वप्रथम यह प्रस्ताव किया कि पेशवा के सबसे बड़े लड़के विश्वासराव को कम उम्र में ही उत्तरदायी पद पर नियुक्त कर दिया जाय। उसने अपने चचेरे भाई के अन्य पुत्रों को भी उत्तरदायी एवं सम्मानजनक पदों पर कार्य करने के लिये पहले से ही प्रशासित करना प्रारम्भ कर दिया, वह सदैव उन्हें युद्ध सम्बन्धी शिक्षा और कारबार में ही लगाये रखने का प्रयास करता था जिससे कि वे कुछ व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करके अपने पदों के अनुरूप योग्यता के स्तर तक पहुँच सकें। सदाशिवराव के अचानक कोल्हापुर चले जाने से बालाजी राव को लगा कि सदाशिवराव उसे छोड़ने का प्रयास कर रहा है और इस विचार से सदाशिव के प्रति उसके हार्दिक प्रेम को गहरा धक्का लगा। सदाशिव राव के इस व्यवहार का वास्तविक अर्थ न समझ पाने के कारण गोपिका बाई ने समझा कि वह उसके लड़कों के प्रति तथा प्रशासन के प्रति उपेक्षा से काम ले रहा है और इसलिए उसके हृदय में भी सदाशिव के प्रति ईर्ष्या और घृणा का भाव बढ़ता गया यद्यपि सदाशिव के कार्यों से उसके दिल में ऐसी भावनाओं को नहीं पनपना चाहिये था। रामचन्द्र ने गोपिकाबाई के हृदय की इन भावनाओं को पहले ही परिष्कृत कर लिया था। इधर पेशवा में भी उतना उत्साह नहीं रह गया था और इसलिये सदाशिव के कार्य एवं उद्योग पेशवा को तिरस्कारपूर्ण प्रतीत होते थे। इसके अतिरिक्त यह तथ्य भी महत्वपूर्ण ही है कि जब एक बार विश्वास की जड़ हिल जाती है, तो ईर्ष्या के भाव न रहने पर भी शासक और उसके मंत्री में खटपट होने के प्रर्याप्त कारण उपस्थित होते रहते हैं; फिर जब उनके बीच द्वेष की आग भड़काने में एक औरत का प्रभाव भी रहता है तब तो यह विरोध अवश्यम्भावी हो जाता है।

फिर भी उनमें साधारण शिष्टाचार और सहयोग की भावना बनी रही। इसी समय रघुनाथराव (राघोवा) हिन्दुस्तान से लौटा। मंत्री सदाशिव ने उस पर इस अभियान से राज्य को कुछ धन प्राप्त कराने के बदले अत्यधिक धन व्यय कर देने का अरोप लगाया जिसके कारण कि राज्य पर अनुचित ऋण भार लद गया था। इस पर रघुनाथ राव ने कहा कि अगली बार तुम ही अभियान का नेतृत्व ले लेना। और इतना कह कर वह बड़े आवेश में बाहर निकल आया। उनके इस विवाद की चर्चा शीघ्र ही सारे पेशवा परिवार में फैल गई और शीघ्र ही यह सामान्य चर्चा का विषय बन गया। इसी समय मुजफ़्फर जंग ने जो कि सलाबत जंग द्वारा निकाला जा कर, पेशवा के यहाँ नियुक्त कर लिया गया था, सदाशिव राव की हत्या करने के लिए एक साजिश किया। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उसने इन दो प्रधान सरदारों में मतभेद से, या सदाशिव राव के प्रति अपनी निजी बदले की भावना से प्रेरित होकर यह षड़यन्त्र किया था।

जब बालाजी राव ने फिर से मुजफ्फरजंग को नियुक्त किया तो उसमे सदाशिवराव की सहमति नहीं थी। इधर निजाम अली ने सलावतजंग को प्रसन्न करने के विचार से इब्राहीम खाँ गर्दी की टुकड़ी को भी निकाल बाहर किया जिन्हें सदाशिवराव ने तुरन्त नियुक्त कर लिया। यद्यपि इब्राहीम खाँ मुजफ्फर खाँ से रक्त द्वारा सम्बन्धित था परन्तु मुजफ्फर खाँ ने, जो कि अभी अभी सूरत के निकटस्थ कुली राजा के अभियान से लौटा था, समझा कि सदाशिवराव द्वारा को गई इस नियुक्ति का ध्येय है उसका महत्व घटना; इसलिए उसके हृदय में बदले की भावना और अधिक गहरी हो गई। सदाशिवराव के कत्ल के लिए जो आदमी ठीक किया गया था वह मुजफ्फर खाँ की टुकड़ी का ही था। जबकि सार्वजनिक कारबार को निबटाने के लिए सदाशिवराव तम्बू में बैठा हुआ था तभी इस कातिल ने उस पर आक्रमण कर दिया; वह अपने कार्य में सफल भी हो गया होता पर उसी समय नागोजी गूजर नामक एक चुस्त सिलोदार ने जो कि भाऊ के पीछे खड़ा था, कातिल का हाथ यकायक थाम लिया, जिसकी वजह से प्रहार पूरा नहीं पड़ा और कटार उसकी पीठ का जरा सा भाग ही खरोंच पाई। उस आदमी को पकड़कर जब सताया गया तो उसने स्वीकार कर लिया कि उसे मुजफ्फर जंग द्वारा सदाशिवराव के मारने के लिए नियुक्त किया गया था। पर मुजफ्फरजंग को भी पकड़ मंगाया गया जिसने कि अपना अपराध स्वीकार कर लिया और बिना अधिक जाँच पड़ताल किए हुए उसका तथा उसके सहयोगी कातिल का सिर काट डाला गया * मुजफ्फर खाँ द्वारा रचे गए षड़यन्त्र में एक परभु भी सम्मिलित था जिसे एक पहाड़ी किले में फेंक दिया गया और फिर उसके विषय में कोई खबर नहीं सुनाई पड़ी। प्रायः मराठा राज्य में राजनैतिक बन्दियों को इसी प्रकार पहाड़ी किलों में फेंक कर मरने के लिए छोड़ दिया जाता था।

जब यह निश्चित हो गया कि आनेवाले मौसम मै सेनापति का कार्यभार सदाशिव राव भाऊ सम्भालेगा तथा प्रशासन का उत्तरदायित्व रघुनाथ राव के कन्धे पर रहेगा तब शीघ्रता से सैनिक एकत्र होने लगे और उत्तर की तरफ बढ़ने की तैयारियाँ की जाने लगी; परन्तु इसी समय अचानक यह समाचार मिला कि अहमदनगर के मुगल किलेदार कुवी जंग ने कुछ धन के बदले में सदाशिव राव द्वारा इसी कार्य के लिए नियुक्त ब्राह्मण एजेन्ट के हाथ में अहमदनगर के किले को समर्पित करना स्वीकार कर लिया है। हैदराबाद में तुरन्त युद्ध प्रारम्भ हो गया। सलावत जंग और निजाम अली इस अप्रत्याशित युद्ध के लिए तैयार नहीं थे; उनकी सेना बिखरी हुई और युद्ध के लिए तैयार नहीं थी; अभी कुछ समय पहले ही देशमुख सूर्य राव को दबाया गया था, और कुछ समय पहले हुई साजिशों को दबाने में भी उचित अनुचित रूप से राज्य के धन को बरबाद किया गया था और इस प्रकार राज्य की आर्थिक दशा भी खराब हो चली थी। परन्तु अब सोचविचार का अवसर न था। जिस हैदराबाद को दबाने के लिए लगभग डेढ़ शताब्दी पहले मुगलों का इतना अधिक रक्त बह चुका था, वहाँ के शासकों को बिना संघर्ष के आत्म समर्पण कर देना अपमानजनक प्रतीत हुआ। गर्व के सामने बुद्धि तथा नीति कमजोर पड़ गई और बिना किसी तैयारी के ही, परन्तु बहुत अधिक सामान तथा वजनी तोपों के साथ उनकी सेना बेदर होते हुए धारवार की तरफ बढ़ी। सलावतजंग और निजाम अली की सेना, जिसमें केवल ७-८ हजार सैनिक थे—उदगीर की तरफ बढ़ रही थी।

'पेशवा स्वयं एक बड़ी सेना लेकर अहमदनगर की तरफ चल पड़ा; उधर सदाशिव राव ने पूरब की तरफ से बढ़ते हुए बहादुरगढ़ पर कब्जा किया जो कि भीमा नदी के तट पर था' और मुगलों की सरहद तक पहुँच गया। इसी समय उसे दुश्मन की सही स्थिति एवं मोर्चों का पता लगा। उसने तुरन्त एक टुकड़ी को आगे भेज दिया, जब कि सलाबत जंग और निजाम अली ने अपने साथ के

---

* मराठा पाण्डुलिपियाँ।

तोपखाने को छोड़कर अपनी सेना के मुख्य भाग से मिल जाने के बजाय उदगीर में ही मोर्चा बना लिया और मराठों के साथ व्यर्थ की गोला बारी में अपना गोला बारूद बरवाद करने लगे। उनके उस अदूरदर्शी कार्य से सदाशिव को १४ हजार और सवारों को एकत्रित करके मोर्चे पर भेज देने का अवसर प्राप्त हो गया। यही नहीं, उनकी मदद के लिए ५००० नियमित पैदल सैनिकों तथा हल्के तोपखाने के साथ इब्राहीम खाँ गारदी भी पीछे-पीछे बढ़ रहा था।

१७६० ई]

इन दोनों भाइयो ने बहुत देर के बाद अपनी गलती महसूस की, परन्तु फिर भी वे उदगीर से इस आशा में चल पड़े कि वे मुख्य सेना में मिल जाएँगे या धारवार से उनकी सहायता के लिए और सेना भेजी जायगी परन्तु इनकी इन दो आशाओं में से एक भी पूर्ण न हुई। धारवार में पड़ी हुई टुकड़ियाँ तो केवल पेशवा की गतिविधियों का निरीक्षण करती रही, या उन्हें युद्ध की वास्तविक स्थिति का पता ही नहीं लगा; जो भी हो, उन्होने सलाबत जंग और निजाम अली को सहायता पहुँचाने का कुछ भी प्रयास नहीं किया। खुले मैदान में घोड़ों पर इधर-उधर दौड़ने वाले मराठों को मुगल तोपें कोई विशेष हानि न पहुँचा सकीं, यद्यपि लगातार गोलाबारो से मराठों की प्रगति रूकी रहीं। परन्तु कुछ ही दिनों में इब्राहीम खाँ गारदी, अपनी पैदल सेना तथा तोपखाने के साथ आ धमका। यूरोपियन ढंग से सज्जित उसके तोपखाने मुगल सवारों की जमात में आतंक पैदा कर दिया और भगदड़ मच गई-। उनकी रसद तथा घोड़ों के चारे के जरिए भी समाप्त कर दिए गए। निजाम अली ने सन्धि-वार्ता चलाने का प्रयत्न किया परन्तु सदाशिव राव उनसे आत्म समर्पण कराना चाहता था जो दोनों भाइयो में से किसी को भी गवारा न था क्योंकि वे आत्मसमर्पण करने को अपमान जनक समझते थे। निजाम अली की एक टुकड़ी ने इब्राहीम खाँ गर्दी पर अचानक आक्रमण करके उसकी पंक्तियों को तोड़ डाला और उसके ११ झन्ड़े छीन लिया एवं उसके बहुत से आदमियों को मार डाला; परन्तु यह सफलता क्षणिक ही थी; शौकत जंग के नेतृत्व में एक मराठा टुकड़ी ने दाहिने बाजू पर हमला करके लगभग २००० मुगलों कों काट डाला।

निजाम अली ने फिर से सन्धिवार्ता प्रारम्भ कर दिया, और उसने अपने दीवान की मुहर सदाशिवराव के पास भेजकर उसके ऊपर ही सन्धि की शर्तों का निर्धारण करना छोड़ दिया। सन्धि की शर्तों का एक मसविदा बनाया गया जिसके अनुसार दौलताबाद, असीरगढ़ और बीजापुर मराठों को दे दिए गए; अहमदनगर और बेदर के कुछ भाग पर उनका पूर्ण अधिकार मान लिया गया; साथ ही औरंगाबाद (नगर और सतारा परगनों को छोड़कर) भी मराठों के अधिकार में आ गया। इन सभी क्षेत्रों की मालगुजारी से होने वाली कुल अनुमानित आय ६२ लाख रुपए थी। पेशवाओं की पूर्व निर्धारित नीति के अनुसार इसमें से ४१ लाख रूपए की जागीरें उन अफसरों के नाम कर दी गई जो उस क्षेत्र के जीते जाने या हारने से लाभ या हानि उठाते थे। अब दक्षिण में मुगलों का शासन क्षेत्र अपमानजनक ढंग से सीमित हो गया था, और इस सीमित क्षेत्र के भी सुरक्षित रहने की सम्भावनाएँ बहुत कम थीं। इस प्रकार पेशवाओं की शक्ति और सम्पूर्णता की महत्ता सुरक्षित हो गई जिसके फलस्वरूप दक्षिण में ब्राह्मणों का शासन कुछ काल के लिए दृढ़ हो गया और दक्षिण के लगभग उस सारे क्षेत्र में हिन्दुओं का अधिकार हो गया जिसमें वे सदियों तक गुलामों की तरह रहे थे। मराठों ने जो महत्व प्राप्त कर लिया था वह प्रेरणादायक एवं गौरवपूर्ण थी। दक्षिण के अनेकों भागों से कर वसूलने का अधिकार मराठों को प्राप्त था और दक्षिणवासियों के घोड़े सिन्ध नदी तक अपनी प्यास बुझाने के लिए पहुँच जाते थे। अपने देशवासियों की विजय से मराठे स्वयं को गौरवान्वित अनुभव

करते थे; उद्योग, साहस और सम्पत्ति ने उन्हें उस पुराने स्तर से बहुत ऊपर उठा दिया जब कि वे विभिन्न मतों में बँटे हुए थे, एक ही व्यवसाय में, पैदा होते ही लग जाते थे, और वही व्यवसाय करते-करते मर जाते थे, और संसार के प्रति वही उदासीनता और बैराग्य दिखाते थे, जैसा कि इस उत्कर्ष से उनके असंख्य पूर्वज करते आए थे। अब यह बताना हमारा कार्य नही है कि इस उत्कर्ष से उनके मानसिक और सामाजिक स्तर में क्या प्रगति हुई; परन्तु मराठों द्वारा प्राप्त विजयों से राष्ट्रीयता के विकास में विशेष योग नहीं मिला; वे उस प्रकार की देशभक्ति की भावना से प्रेरित हो कर आगे नहीं बढ़े थे जो देशवासियों के कल्याण और गौरव के लिए प्रेरित करती है; उनके उत्कर्ष से हिन्दुओं को भी कोई विशेष स्वतंत्रता न मिली सिवाय विचार स्वातन्त्र्य न तो इससे सुरक्षा में ही वृद्धि हुई और न इससे लोगों की पुरानी व्यवहारिक या नैतिक आदतों में ही कोई सुधार हुआ। बरबादी, अपहरण, लूटमार, अत्याचार, दबाव आदि ही इन विजेताओं के चरित्रगत गुण थे; यद्यपि उन्हें साधारणतः खून का प्यासा नहीं माना जाता था फिर भी वे बहुत ही भावनाशून्य और अनुदार विजेता थे। वे मराठा परिवार, जो सेना, राजनीति और युद्धों से सम्बन्धित नहीं थे, प्रायः सन्तुष्ट जिन्दगी बसर करते थे, और पैतृक उत्तराधिकार से प्राप्त अधिकारों व खेतों में ही व्यस्त रहकर अपना सारा जीवन शान्ति से व्यतीत कर देते थे। परन्तु फिर भी उनमें एक जबर्दस्त दोष था—वे जब अपने लोगों से व्यवहार करते थे, तब तो वे बहुत ही नैतिकतापूर्ण, उदार, मानवतावादी और सहृदय रहते थे, परन्तु अन्य लोगों से व्यवहार करते समय वे सत्य को ताख पर रख देते थे।

बालाजी राव ने, अपने चचेरे भाई के उद्योग एवं परिश्रम से ऐसी विजय प्राप्त कर लिया था जिससे उसकी महत्वाकांक्षा को बहुत अधिक सन्तुष्टि मिल चुकी थी। परन्तु इस समय हिन्दुस्तान की ओर से गम्भीर उलट फेरों के समाचार प्राप्त होने लगे; अगले अध्याय में हम उस भाग में घटित होने वाली इन घटनाओं का अध्नयन करेंगे।

बाईसवाँ अध्याय

पानीपतकी तीसरी लड़ाईका मराठा राज्य पर बुरा प्रभाव

[१७६०—१७६१]

मुल्तान और लाहौर पर मीर शहाबुद्दीन का घेरा—अहमदशाह अब्दाली द्वारा उसका निष्कासन—बादशाह तथा नजीबुद्दौला के विरुद्ध मीर शहाबुद्दीन का रघुनाथ राव से मदद माँगना—रघुनाथ राव का मुल्तान और लाहौर पर अधिकार—अब्दाली का सामना करने के लिए रुहेलखण्ड से दत्ताजी को बुलाया जाना—मीर शहाबुद्दीन द्वारा आलमगीर द्वितीय का कत्ल—मुल्तान और लाहौर पर अब्दाली का अधिकार—दिल्ली की ओर बढ़ना—सिन्धियों की सेना पर आक्रमण—सदाशिव राव भाऊ का दिल्ली पर अधिकार करना—राजपूतों और जाटों का फूटना—कुंजपुर पर धावा—अहमदशाह का जमुना पार करना—अक्टूबर से जनवरी तक की घटनाएं—पानीपत की तीसरी लड़ाई—अफगानों की क्रूरता—बालाजी की मृत्यु—उसका चरित्र—उसके शासन काल में देश की परिस्थिति।

१७५८ ई०]

दिल्ली के अशांतिमय दरबार में हुए १७५४ के विद्रोह से उत्तरी भारत में बहुत गड़बड़ी और अव्यवस्था पैदा हो गई। नए बजीर * ने पर्याप्त साहस के साथ, और बहुत क्रूरता से विद्रोही सैनिकों का दमन करके उन पर नियत्रंण किया। तत्पश्चात आलमगीर द्वितीय को जिसे कि उसने स्वयं बादशाहत दिलाई थी राजधानी में छोड़कर उसके बेटे शाहजादा अली गौहर को साथ लेकर, लाहौर ओर मुल्तान को साम्राज्य में मिलाने के इरादे से वह पश्चिम की तरफ बढ़ा। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, वे क्षेत्र पहले ही अहमद शाह अब्दाली द्वारा जीत लिए गए थे और मीर मुन्नू ने जिसने कि पहले अब्दाली का मुकाबला किया था, अब्दाली की अधीनता स्वीकार कर लिया था। मीर मुन्नू की अचानक मृत्यु हो गई और उनका लड़का, जो अभी कम उम्र का ही था, अब्दाली द्वारा इस क्षेत्र का शासक बनाया गया और मीर मुन्नू की बिधवा पत्नी को उसका संरक्षक बना दिया गया। धीरे-धीरे इस क्षेत्र में काफी अव्यवस्था फैल गई; सामान्य लोग गरीब होने लगे और शेख सिख नाम की जाति के लोगों का प्रभाव बहुत तेजी से बढ़ने लगा जिससे देश में फैली हुई दुर्व्यवस्था और गड़बड़ी बढ़ती ही गई। मीर मुन्नू का लड़का भी मर गया, और तत्पश्चात् मीर मुन्नू की विधवा स्त्री ने शासन अधिकार पर स्वयं अपना दावा पेश किया; वह स्वयं अपने ही एक सरदार द्वारा कैद कर ली गई और अन्त में एक समझौते के अनुसार उसने तथा उस सरदार ने शासन-अधिकार को बराबर-बराबर बाँट लिया। इन्हीं परिस्थितियों में बजीर मीर शहाबुद्दीन ने निस्कर्ष निकाला कि इस देश पर कब्जा करना अधिक मुश्किल नहीं होगा, परन्तु उसने यह सोचने की दूरदर्शिता नहीं दिखाई कि यदि फिर अब्दाली इस क्षेत्र पर आक्रमण करेगा, तो किस प्रकार बचाव

---

* पाठकों को यह ध्यान दिलाना आवश्यक नहीं है कि यह बजीर, सहाबुद्दीन ही था, जो गाजीउद्दीन का बेटा और निजामुलमुल्क का नाती था। विभिन्न पुस्तकों और अंग्रेजी बृत्तान्तों में उसे गाजीउद्दीन द्वित्तीय लिखा गया है। मैंने गाजीउद्दीन द्वितीय के बदले उसका वास्तविक नाम शहाबुद्दीन ही प्रयोग किया है।

किया जायगा। कुछ ऐसा प्रमाण मिलता है कि मीर मुन्नू की एक लड़की से उस मीर शहाबुद्दीन की मँगनी हुई थी। अपनी योजना को पूरा करने के लिए पहले उसने अदीना बेग को मिलाया जिस की वजह से पिछली बार अब्दाली का आक्रमण हुआ था। अदीना बेग से परामर्श कर वह आगे बढ़ा और नजदीक पहुंचने पर उसने मीर मुन्नू की विधवा के पास सन्देश भेजा कि वह अपनी बीबी को लेने के लिए आया है। विधवा ने बड़ी प्रसनता पूर्वक उसका स्वागत किया। परन्तु शहाबुद्दीन ने छल से उसके मुल्क पर अधिकार कर लिया, मीर मुन्नू की विधवा बेगम को दिल्ली भेज दिया और वहां के प्रशासन का उत्तरदायित्व सम्भालने के लिए अदीना बेग को नियुक्त कर दिया।

इन घटनाओं की खबर पाकर अब्दाली बहुत क्रोधित हुआ। उसने तुरन्त एक बड़ी सेना के साथ अटक * पार किया। उसे मुल्तान और लाहौर पर कब्जा करने में अधिक कठिनाई नहीं उठानी पड़ी; क्योंकि वहाँ कोई भी प्रतिरक्षात्क प्रबन्ध नहीं किया गया था। तत्पश्चात् वह दिल्ली की तरफ बढ़ चला। शहाबुद्दीन उसके सम्मुख झुक गया और अब्दाली ने उसे माफ कर दिया; परन्तु उसने दिल्ली नगर को लूट लिया; फिर इस नगर के निवासियों की सम्पति तथा उनकी बहू बेटियों की इज्जत लूटी गई। मथुरा नगर को भी इसी विपत्ति का सामना करना पड़ा; परन्तु आगरा निवासी अधिक सौभाग्यशाली रहे, क्योंकि इसी समय अफगानों की छावनी में महामारी फैल गई जिसके प्रकोप से बचने के लिए अब्दाली तुरन्त ही ससैन्य काबुल की तरफ रवाना हो गया और उसे विजय एवं धन का लोभ भी यहाँ न रोक सका। परन्तु वह १७५६ के प्रारम्भ में ही फिर लौट आया। पिछली बार दिल्ली छोड़ने के पहले ही वह अपने बेटे तैमूरशाह को पंजाब का वाइसराय नियुक्त करके गया था। जिसके राज्य-क्षेत्र में मुल्तान और लाहौर भी सम्मिलित थे। यही नहीं, दिल्ली के शाही दरबार में भी उसने एक विश्वस्त रूहेला, नजीबुद्दौला को अमीर-उल-उमरा का खिताब दिलाकर, मीर बख्शी के पद पर नियुक्त करा दिया था। अब्दाली के आने से पहले ही नजीबुद्दौला ने शहाबुद्दीन से सम्बन्ध जोड़ना शुरू कर दिया परन्तु शहाबुद्दीन उससे जलता था क्योंकि बिना उसकी राय के नजीबुद्दौला को तरक्की देकर उसके प्रतिद्वन्दी के रूप में नियुक्त कर दिया गया। इसलिए अब्दाली के वापस जाते ही उसने नजीबुद्दौला का ओहदा छीन कर उसे निकाल बाहर किया और उसके स्थान पर अहमद खाँ बंगश को नियुक्त किया। इस समय नजीबुद्दौला बादशाह आलमगीर के साथ दिल्ली में था और वे एक दूसरे के सहयोगी बन गए थे। इसलिये शहाबुद्दीन ने दोनों का पराभव एक साथ करने का उपाय सोचना प्रारम्भ कर दिया। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उसने राघोबा † को अपना सहायक बनाया जो कि १७५६ के अन्त में मालवा की तरफ आया हुआ था। राघोबा की मदद से उसने शीघ्र ही दिल्ली पर अधिकार कर लिया और बादशाह की सुरक्षा का भार अपने ऊपर लिया। उसने नजीबुद्दौला को भी बन्दी बना लिया होता परन्तु मल्हार राव होल्कर ने जो कि रुहेलों का बहुत बड़ा सहायक था— उसकी रक्षा की, और उसे दिल्ली से निकाल कर अपने

---

* हिन्दुस्तान पर अब्दाली का यह चौथा आक्रमण था; परन्तु सम्भवतः वह नादिरशाह के हिन्दुस्तान पर आक्रमण करते समय वह उस सेना में भी रह चुका था, और यदि यह बात ठीक हो, तो अटक पार करने का यह उसका पाँचवा अवसर था।

† राघोबा, रघुनाथ का ही बहु प्रचलित नाम है, और पाठक इस प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति का उल्लेख प्रायः, इसी नाम से पायेंगे।

राज्य क्षेत्र में सुरक्षित रूप से भेज दिया जो कि दिल्ली के उत्तर पूर्व में लगभग ७० मील की दूरी पर ही था।

रघुनाथराव (राघोबा) कुछ समय तक दिल्ली के पास ही डेरा डाले पड़ा रहा, इसी समय अचानक एक ऐसे युद्ध के लिए वापस बुला लिया गया, जिसमें यद्यपि उसने शानदार विजय प्राप्त की; परन्तु इसी विजय से उस भयानक युद्ध का सूत्रपात हुआ जिसने मराठों के विकास पर रोक लगा दिया, और इसी दिन से मराठों की अवनति प्रारम्भ हो गई।

अहमदशाह अब्दाली ने अपने बेटे तैमूर को पंजाब का वाइसराय नियुक्त करने के पहले ही, उसके सलाहकार और वजीर के पद पर जहान खाँ को नियुक्त कर दिया था जो इस मुल्क के आर्थिक स्रोतों के विषय में अदीन बेग खाँ से कम जानकारी नहीं रखता था। उसने कुछ दिनों तक दूर के कुछ जिलों का बहुत अच्छा प्रबन्ध करके पर्याप्त लाभ किया। अदीन बेग को लाहौर आने का निमन्त्रण मिला, पर जहाँन खाँ की दुरभिसन्धि की भनक पाकर उसने लाहौर आने से इन्कार कर दिया और पहाड़ों की तरफ निकल गया। उसके आदेश न मानने के कारण उसे बागी करार दिया गया और उसको दबाने के लिए सैन्य दल भेजे गए जिनका उसने सफलतापूर्वक मुकाबिला किया इस मुकाबिले के लिए उसने सिक्खों की मदद ली जो अब तक धार्मिक और सधुक्कड़ी बाने को छोड़कर सिपाहियों का वेश धारण कर चुके थे। उसने मराठों को भी निमंत्रित किया। उस समय दिल्ली में पड़े हुए रघुनाथ राव ने भी इस निमन्त्रण से लाभ उठाया और अदीन बेग से मिलकर उसने सरहिन्द के अब्दाली सूबेदार को पूर्णतः पराजित किया, तेजी से उस समस्त क्षेत्र को रौंद डाला और मई १७५८ में लाहौर में विजेता के रूप में प्रवेश किया। उसने अदीन बेग को लाहौर और मुल्तान का सर–सूबेदार नियुक्त किया* और सिन्धिया के एक सम्बन्धी सबाजी को एक मराठा टुकड़ी के साथ कर के तत्पश्चात् रघुनाथराव पूना की तरफ लौटा, परन्तु उसके जीवन के अन्य अभियानों की तरह, उसकी अदूरदर्शिता के कारण इस बार भी निन्दा ही उसके हिस्से में पड़ी, क्योंकि इतनी विजयों के बाद भीं वह मराठा खजाने में कुछ भी जमा न कर सका, बल्कि स्वयं उससे राज्य की तरफ से ८० लाख रुपए इस अवसर पर वसूल किए गए। इस घटना के कारण उसके चचेरे भाई (पेशवा) ने उसका तिरस्कार किया जिससे उसके दिल में भी ईर्ष्या की वही जहरीली वेल बढ़ने लगी, जिसका शिकार सदाशिवराव भाऊ पहले ही हो चुका था।

हिन्दुस्तान छोड़ने के पहले ही, रघुनाथराव ने मल्हारराव होलकर और दत्ता जी सिन्धिया को मालवा में ही छोड़ दिया था; जयप्पा सिन्धिया का बेटा जनकोजी एक टुकड़ी के सरदार के रूप में दिल्ली में ही रह गया था जिससे कि वह राजपूत रियासतों से कर उगाह सके और आवश्यकता पड़ने पर लाहौर की टुकड़ी को भी मदद पहुंचा सके।†

महान पेशवा बाजीराव के समय में विख्यात मराठा सरदार रानोजी सिन्धिया के ३ जायज और २ नाजायज (रखेल से उत्पन्न) लड़के थे जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार थे (अ) जयप्पा, दत्ता जी और जोतीवा (ब) तुकाजी और महादजी। तुकाजी अपने पिता से पहले ही मर गया। रानोजी सिन्धिया भी शाहू के तुरन्त बाद ही मर गया। उसके बेटे दत्ता जी और महादजी प्रायः पेशवा के साथ ही सेना की टुकड़ियों का नेतृत्व करते थे और जयप्पा को हिन्दुस्तान में तैनात किया गया था।

---

* कहा जाता है कि अदीन बेग ने इन सूबों की आय के अनुसार ७५ लाख रुपया वार्षिक कर देना स्वीकार किया था।

† 'सीर मुताखरीन' और मराठा पाण्डुलिपियाँ

जोधपुर के राजा अभयसिंह की मृत्यु के बाद राज्य क्षेत्र के बँटवारे के सम्बन्ध में उसके दोनों बेटों--रामसिंह और विजयसिंह--में झगड़ा उठ खड़ा हुआ जिसके फलस्वरूप रामसिंह १७५६ ई०] ने इस झगड़े को निपटाने के लिए पेशवा से सहायता के लिए प्रार्थना की। पेशवा ने इस मामले को निपटाने तथा रामसिंह की मदद करने का भार जयप्पा पर ही छोड़ दिया। पहले तो वह विजयसिंह को कुछ समय तक पछाड़ता गया और उसे नागौर में घेर लिया। परन्तु विजयसिंह ने अपने पिता द्वारा पिलाजी गायकवाड़ के विरुद्ध रचे गए कुख्यात उदाहरण का अनुसरण करते हुए—दो व्यक्तियों को जागीर का लोभ देकर तैयार किया जिन्होंने सन्धि विषय ग्रहक के रूप में जयप्पा के पास पहुंच कर और अवसर पाकर जयप्पा का कत्ल कर दिया। इन कातिलों में से एक तो भाग निकला, जयप्पा की सेना वापस लौट आई। बाद में रघुनाथराव ने इस अभियान के उद्देश्य को पूरा कर दिया, उसने अजमेर पर अधिकार कर लिया और जोधपुर की रियासत के लिए भी कर की एक निश्चित रकम निर्धारित कर दिया।*

रानोजी सिंधिया के शेष पुत्रों में दत्ताजी और महादजी अधिक विख्यात हुआ। सर्वप्रथम १७५१ में फ्रांसीसियों तथा सलावतजंग की संयुक्त सेनाओं से युद्ध करते समय उनका नाम उल्लेखनीय रूप से प्रकाश में आया। इस समय दोनों भाई हिन्दुस्तान में ही थे; रघुनाथ राव की वापसी के कुछ समय बाद ही दत्ताजी, बेचैन वजीर शहाबुद्दीन के उसकाने पर एक बड़ी सैन्यशक्ति के साथ रूहेलों को दबाने के लिये चल पड़ा। सर्भप्रथम केवल नजीबुद्दौला के खिलाफ कार्रवाई ही की गई, जिसने इतनी बड़ी सेना का मुकाबिला करने के लिए स्वयं को असमर्थ समझकर गंगा के किनारे खाँइयाँ खोदकर मोर्चेबन्दी की। इसी समय शुजाउद्दौला भी उसकी मदद के लिए आ गया, जो यद्यपि भीतर ही भीतर, अपने पिता की तरह रूहेलों से घृणा करता था परन्तु साथ ही, मराठों का सामना करने के लिए रूहेलों को मिलाए रखना भी जरूरी था और एकता से ही स्वयं उसकी सुरक्षा सम्भव थी, इसलिए वह स्वयं मराठों के विरुद्ध आगे बढ़ आया। शुजाउद्दौला के इस प्रकार आगे बढ़ने पर, दत्ताजी ने गोविन्द पन्त बुन्देला को जो कि लुन्लखण्ड में पेशवा द्वारा अधिकृत भूभाग का सूबेदार था, आदेश दिया कि वह अपनी सेना के साथ आगे बढ़कर रूहेलों के समस्त क्षेत्र की मटियामेट कर दे। गोविन्द पन्त ने तुरन्त इस आज्ञा का पालन किया; उसने दोआब तथा गंगा के पूरब में भयानक आतंक पैदा करके समस्त सरदारों को कुमायूँ की पहाड़ियों की तरफ खदेड़ दिया। शुजाउद्दौला गोविन्द पन्त की तरफ बढ़ा और ज्योंही वह नजदीक पहुंचा, उसने गोसाइयों की एक टुकड़ी को गोविन्द पन्त पर धावा करने का हुक्म दिया। जिन्होंने मराठों की पंक्तियों में भयानक मारकाट मचा दिया और गोविन्द पन्त का दल अव्यवस्थित होकर नदी में कूद पड़ा और बहुत से सैनिक डूब कर मर गए।

इस घटना के बाद दत्ताजी के साथ सन्धिवार्ता प्रारम्भ हो गई; यद्यपि रूहेले बड़ी उत्सुकता से अब्दाली के आने की बाट जोह रहे थे, जिसके, मुल्तान और लाहौर पर पुनः कब्जा करने के ध्येय से आने की खबर सुनाई पड़ रही थी, फिर भी उन्होंने मराठों की तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ाने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई और इस मित्रता को उन्होंने कसम खा कर दृढ़ भी किया। उसी जोश के साथ शुजाउदौला भी आ मिला क्योंकि वह व्यक्तिगत रूप से अब्दाली से हार्दिक घृणा करता था; वह

---

* मराठा पान्डुलिपियाँ, तवारीख ए दक्खिन और मि० अर्सकिन की लाइब्रेरी में बुधसिंह द्वारा फारसी में लिखी हुई एक छोटी सी पान्डुलिपि, जिसका लेखक लाहौर का निवासी था। मुझे जयप्पा के कत्ल की सही तारीख का पता नहीं लग सका है, न तो सर जॉन मालकम की रिपोर्ट में ही तारीख का उल्लेख है।

अब्दाली के आक्रमण के प्रति भी उतना ही सशंक था जितना कि मराठों द्वारा सीमा अतिक्रमण के प्रति।

जब कि मराठे, रूहेलें और अवध का नवाब इस तरह व्यस्त थे तो, ऐसा कहा जाता है कि उधर अहमदशाह अब्दाली के परामर्श के फलस्वरूप शहाबुद्दीन ने बादशाह आलमगीर द्वितीय के साथ-साथ अपने एक रिश्तेदार इन्तिजामुद्दौला का भी कत्ल कर दिया गया था। औरंगजेब के सबसे छोटे लड़के काम बख्श को शाहजहाँ के नाम के गद्दी पर बैठा दिया। इस पर भूतपूर्व नाममात्र के बादशाह के बेटे अली गौहर या शाह आलम ने अपना हक पाने के लिए पेशवा के एक अफसर बिठ्ठल सदाशिव, और नजीबुद्दौला से मदद माँगी, जो उसे नहीं मिली; तत्पश्चात् चालाक शुजाउद्दौला ने उसका प्रयोग एक साधन के रूप में किया, उसने गौहर अली को बंगाल के मीर जाफर और अंग्रेजों का विरोध करने के लिए बनाए गए एक गुट का नाममात्र का सरदार बना दिया। इधर अपने निन्दनीय पापकर्मों से निवृत्त होने के बाद, मराठों तथा अब्दाली के बीच होंने वाले युद्ध के परिणाम की प्रतीक्षा करने के लिए मीर शहाबुद्दीन ने जाट राजा सूरजमल जाट के यहाँ शरण ली, जिसने उदारतापूर्वक अपने एक किले में उसके ठहरने की व्यवस्था करने की गलती कर दिया।

दत्ताजी और होल्कर की मदद पहुंचाने के पहले ही लाहौर का मराठा सरदार भाग निकलने पर मजबूर हो गया। अहमदशाह अब्दाली ने, रूहेलों को प्रोत्साहित करने तथा सुविधाजनक ढंग से रसद और चारे का प्रबन्ध कर लेने के दोहरे उद्देश्य से अपनी मुख्य सेना के साथ यमुना नदी को पार कर लिया। साथ ही उसकी आगे बढ़ी हुई फौज आगे बढ़ती गई और दत्ताजी इसी टुकड़ी को अब्दाली की मुख्य सेना समझकर छुटपुट लड़ाई लड़ते हुए पीछे लौटा। होल्कर, जो कि दत्ता से कुछ पीछे था, भी वापस लौट चला। उन दोनों की सेनाओं में कुल मिलाकर ३०,००० से अधिक सिपाही नहीं थे। होल्कर ने सूरजमल जाट से सहायता के लिये वार्ता प्रारम्भ की और उसने सहायता करना स्वीकार भी कर लिया लेकिन जब मराठे कमजोर पड़ने लगे तो उसने युद्धक्षेत्र में उनका साथ नहीं दिया।

इस तरह पीछे हटते-हटते वे जमुना के पश्चिमी किनारे तक चले आए। परन्तु उनकी अत्यधिक जबर्दस्ती और दुर्व्यवहार से सामान्य जन भी उनसे शत्रुता रखने लगे। जब कि मराठे अब्दाली की अगली पंक्ति से ही उलझे हुये थे, अहमदशाह ने अपने स्थानीय स्थिति-ज्ञान तथा नजीबुद्दौला की मदद से जमुना को दिल्ली के निकट पार कर लिया, दत्ताजी सिन्धिया की सेना पर बगल से धावा कर के उसे तहस-नहस कर दिया और मुश्किल से उसकी सेना के एक तिहाई सैनिक ही जान बचा कर भाग सके। इन भागने वालों में महादजी सिन्धिया और उसका भतीजा जयप्पा का बेटा जनकोजी भी थे, परन्तु दत्ताजी और जोतीबा इस संघर्ष में मारे गए।

इस दुःखपूर्ण घटना का समाचार पाकर होल्कर और अधिक गति से वापस लौटा जब तक कि वह आगरा न पहुंच गया। जब वह आगरा में सुस्ता रहा था तभी उसे अचानक खबर मिली कि अहमद खाँ बंगश की टुकड़ियाँ पर्याप्त मात्रा में रसद तथा अन्य आवश्यक सामग्रियों के साथ अब्दाली की छावनी की तरफ बढ़ रही हैं। यह खबर पाकर उसने तुरन्त जमुना पार करके इस दल पर आक्रमण कर दिया, अधिकांश सामग्री को छीन लिया या बरबाद कर दिया, और फिर जमुना के पूर्व और चम्बल के दक्षिण में स्थित सेखुन्द्रा तक फिर वापस लौट आया, जहाँ कि उसने अपने को सुरक्षित समझा। परन्तु फिर मुख्य सेना से अलग होकर अफगानों के एक सैन्य दल ने उसका पीछा किया और अन्ततः उसकी सेना में भयानक हत्याकांड मचा दिया। *

---

* मैंने फारसी और मराठी की प्रामाणित पुस्तकों की तुलतात्मक अध्ययन करने के बाद फारसी पुस्तकों के मत को गलत माना, जिनके अनुसार जब दत्ताजी पीछे लौटा, उस समय होल्कर जयपुर में

इन पराजयों का विवरण जब पेशवा को मिला तब वह एक सन्धि कर लेने के बाद मंजरा नदी के किनारे छावनी डाले पड़ा हुआ था; इस सन्धि के अनुसार दक्षिण का पर्याप्त भाग उसके राज्य-क्षेत्र में सम्मिलित हो गया था। सदाशिव राव ने अपनी पिछली विजय से उत्साहित होकर पेशवा से अनुमति माँगी कि उसे भी विश्वास राव के पास जाने दिया जाय ताकि वह हिन्दुस्तान में मराठों की खोई हुई प्रतिष्ठा को फिर से स्थापित कर सके और अफगानों को देश से बाहर खदेड़ सके। पेशवा उसके इस प्रस्ताव से तुरन्त सहमत हो गया। सदाशिव राव की हृदयगत पारिवारिक ईर्ष्या के कारण उसका स्वभाव हिन्सात्मक रूप से उग्र हो चुका था। पिछले अभियान और विजयों से उसका गर्व भी बढ़ गया था और एक प्रकार की युद्ध सम्बन्धी उत्साह की भावना ने जो किसी सेनानायक के लिए अत्यन्त हानिप्रद होती है—उसके मास्तिष्क पर पूर्ण रूप से अधिकार कर लिया था। पिछली सफलताओं से उसमें एक अन्धी आत्म विश्वास की भावना भर गई थी, जो छोटे-मोटे संघर्षों के लिए तो उचित थी, पर एक ऐसे निर्णयात्मक युद्ध में जिसमें कि पूरे देश का अहित निहित हो तो किसी सेनानायक में ऐसी भावना का प्राबल्य अत्यन्त दुर्भाग्य का प्रतीक होता है और उसके मिथ्या गर्व और गलत निर्णय पर हजारों जीवन व्यर्थ नष्ट हो सकते हैं।

सदाशिव राव के साथ जाने के लिए दक्षिण में जो सेना तैयार हुई, उसमें चुने हुये लगभग २०,००० सवार थे और साथ ही इब्राहीम खां गारदी के नेतृत्व में १०,००० अनुशासित पैदल सेना और तोपखाना भी था। सलावतजंग और निजाम अली के विरुद्ध हुई लड़ाई के बाद से इब्राहीम खां गारदी की सेना में सिपाहियों की संख्या दो गुनी कर दी गई थी। जिस ढंग से यह सेना सजी हुई थी, उतनी सुसज्जित मराठा सेना कभी भी युद्ध क्षेत्र में नहीं उतरी थी। * कैम्प की सामग्रियाँ, जो रघुनाथ राव द्वारा हिन्दुस्तान से लाई गई थीं, भी इस सेना की सज्जा में लगाई गई थीं। रेशमी चौड़े पट्टों वाले ऊँचे और चौड़े खेमों पर पतली सुनहली पर्तें चढ़ी हुई थी जिससे वे दूर से ही चमकते थे। प्रधान सरदारों के खेमों को चारों तरफ से घेरने के लिए विभिन्न-विभिन्न रंगों से सजी हुई जूट की बुनी हुई दीवालें लगी हुई थीं। अनगिनत हाथी, तरह तरह के झन्डे, सुन्दर ढंग से सजे हुए अच्छी नस्ल के स्वस्थ घोड़े और वे सभी अन्य चीजें, जो भारतीय सेना को भव्यता प्रदान करती हैं, भाऊ की इस छावनी में देखने को मिलती थीं। सरदारों के लिये सुनहली पोशाकें बनवाई गई थीं। हर तरफ की सजावट से और प्रत्येक सैनिक के रूआब में धन की चकाचौंध झलक रही थी। यह सजावट एक तरह मुगलों की उस समय की साज-सज्जा से टक्कर ले रही थी, जब कि उनका सितारा बुलन्दी पर था।

भाऊ की सेना के प्रमुख सरदार थे बलवन्त राव गनपत मण्डली, शमशेर बहादुर, नारो शंकर (राजे बहादुर), बिठ्ठल शिवदेव (बिंचूरकर) त्र्यम्बक सदाशिव (पुरन्दरे), इनके साथ ही दक्षिण

था, और होल्कर को दिल्ली के निकट सेकुन्द्रा में हराया गया था। तवारीख-ए-दक्षिण में बुधसिंह ने फारसी पान्डुलिपियों का ही अनुगमन किया है और लिखा है कि जब होल्कर दिल्ली के इतने पास था, उस समय अफगान जनकोजी का पीछा करते हुए नागौर की तरफ निकल गये थे। मैंने अपने विचार से पाठकों के समक्ष सही तथ्य ही उपस्थित किया है।

* उस समय में आबाजी देव नाम का एक वृद्ध ब्राह्मण रहता था। जब सदाशिव राव भाऊ का पाइरा में पड़ाव पड़ा था तो यह ब्राह्मण दो दिनों तक उसकी छावनी में रहा था। उसने इस छावनी की सजावट और शान का बड़ा सजीव चित्रण किया है।

के बहुत से पुराने मराठा परिवारों के सरदार भी थे । यद्यपि अब पेशवा राज्य तथा प्रशासन में ब्राह्मणों की प्रमुखता के कारण उनका महत्व पहले जैसा नहीं रह गया था ।

बालाजी राव के पास अब भी पर्याप्त सेना सुरक्षित पड़ी थी, लेकिन सभी मराठों सरदारों के पास सदाशिव राव के नेतृत्व में एकत्रित होने का आदेश भेज दिया गया था । जिसके अनुसार, सदाशिव के चम्बल नदी पार करने के पहले ही मल्हार राव होल्कर, जनकोजी सिन्धिया, दमाजी गायकवाड़, जसवन्त राव पँवार, अप्पाजी राव अटवारी, अन्ताजी मानकेश्वर, गोविन्द पन्त बुन्देले, तथा अन्य बहुत से छोटे-बड़े सरदार अपने सैन्यदलों के साथ सदाशिव के झन्डे के नीचे एकत्रित हो गये । अधिकांश राजपूत सरदारों और रजवाड़ों ने भी अपने घुड़सवारों के दल भेज दिये, पढांरी तथा अन्य विभिन्न वर्णों के लोग भी इस अभियान में सम्मिलित हो गये । सभी हिन्दू, इसे राष्ट्रीय अभियान मानकर यथायोग्य सहयोग देने के लिए तत्पर थे । होल्कर की प्रेरणा से सूरजमल भी ३०,००० सैनिकों के साथ इस अभियान में सम्मिलित हो गया था ।

अनुभवी जाट राजा सूरजमल ने पहले ही विचार कर लिया कि पैदल सेना की गति के साथ चलने वाले भारी तोपों और अन्य व्यर्थ के बोझ युद्ध में किसी भी काम में नहीं आएँगे, इसलिए उसने प्रस्ताव कि इन भारी साज सामानों को या तो ग्वालियर अथवा झाँसी में छोड़ दिया जाय ,या स्वयं उसके किसी किले में सुरक्षित रख दिया जाय, और इस बीच जाट और मराठा घुड़सवार अब्दाली के रसद और चारे की पूर्ति में बाधा पहुंचावें, और छिटपुट युद्धों द्वारा अफगान सरदारों को परेशान करें और इस प्रकार अब्दाली को वापस लौटने के लिए विवश कर दिया जाय । होलकर ने भी सूरजमल की योजना से सहमति प्रगट की परन्तु सदाशिव राव की होल्कर से पटती नहीं थी इसलिए सूरजमल जाट के प्रति भी वह मित्रभाव न रख सका । यूरोपियन युद्ध प्रणाली व स्त्रों की प्रशस्ति इस समय सर्वत्र फैली हुई थी; स्वयं सदाशिव राव ने फ्रांसीसियों के अनुशासित सैनिकों और तोपखाने के प्रशंसनीय प्रदर्शनों को देखा था; उसने इब्राहीम खाँ गारदी को नियुक्त करके भी काफी लाभ उठाया था । उसने इस योजना में असहमति प्रगट की जब कि यही एक उपाय था जिससे सफलता प्राप्त हो सकती थी ।[*] मराठा सेना मुगलों की राजधानी की ओर तेजी से बढ़ चली और तुरन्त ही किले पर हमला भी कर दिया । मराठों का एक दल एक मीनार पर चढ़ कर किले के भीतर पहुंच गया जब कि मुख्य सेना फाटक पर आक्रमण करने मे, तथा भीतर की घिरी हुई सेना फाटक की रक्षा करने में व्यस्त थी । लेकिन जो मराठे भीतर पहुंच चुके थे, उन्होंने किले पर अधिकार कायम रखने के लिए फाटक को खोलने की तरफ ध्यान ही नहीं दिया बल्कि लूट-पाट में लग गए । कुछ समय तक उन्हें किसी ने नहीं टोंका क्योंकि सभी प्रतिरक्षा में व्यस्त थे, परन्तु जब वे देख लिए गए तो पूरी टुकड़ी को केवल १३ आदमियों ने निहत्थी भीड़ की तरफ खदेड़ दिवा । इन्हीं लोगों द्वारा फाटक खोले जाने की प्रतीक्षा में बाहर से आक्रमण कुछ सुस्त हो गया था, अब तोपों की बाढ़ भी चालू हो गई, और कुछ ही समय में किले पर अधिकार हो गया । इस विजय के पश्चात् सदाशिव राव ने धिश्वास राव को सिंहासन पर वैठाने ओर शुजाउद्दौला को उसका वजीर बनाने का प्रस्ताव किया ।[†]

---

[*] मराठा पान्डुलिपि, एशियाटिक रिसर्च, सीर मुती खरान ।

[†] मल्हार राव होलकर ने इस अभियान का वर्णन करते हुए लिखा है कि भाऊ ने विश्वास राव को सिंहासन पर बैठा दिया था, परन्तु एशियाटिक रिसर्चेज में इस विषय पर दिये हुए वर्णन (जो कि शुजाउद्दौला द्वारा लिखित वर्णन पर आधारित बताया गया है , के अनुसार, भाऊ ने ऐसा करने का केवल इरादा हीं किया था, सम्भवतः होलकर का विवरण अतिशयोक्ति पूर्ण है ।

इस समय यमुना नदी को पार नहीं किया जा सकता था इसलिए सदाशिव भाऊ ने दिल्ली में ही शिविर बना लिया, वहां जो कुछ भी प्राप्य था, उसके सैनिक उपभोग करते गए, भण्डार के सभी सामान धीरे-धीरे कम होते गए, लेकिन जो अभाव भाऊ को सबसे अधिक खल रहा था, वह था खजाने का अभाव, यद्यपि बात यह नहीं थी कि वह बिल्कुल धनहीन था, दक्षिण से वह अपने साथ तीन करोड़ रुपए ले आया था और होलकर, सिन्धिया, गोविन्द पन्त, बुन्देले तथा राजपूतों से भी उसे तीन करोड़ रुपया प्राप्त हुआ था। परन्तु भविष्य में धनाभाव की आशंका से भाऊ ने शाही दरबार के भवन में लगे हुए स्वर्ण एवं आभूपणों को उखड़वा लिया तथा शाही सिंहासन को भी नष्ट कर दिया यद्यपि उन कृत्यों से उसे केवल सत्रह लाख रुपयों की प्राप्ति हुई।

उसके इस कृत्य को अनैतिक और बर्बर मानते हुए सूरजमल तथा होलकर ने इसका कड़ा विरोध किया, परन्तु सदाशिव राव ने उनके मत के प्रति उपेक्षा व घृणा प्रकट की। इस पर सूरजमल ने अपनी पूरी सेना के साथ, आवेश में मराठा शिविर में से निकल गया। राजपूत भी, मुस्लिम शिविर के युवत अपने मित्रों के बहकावे में आकर, मराठों का साथ छोड़कर चले गए।※

इसी बीच अहमद शाह अब्दाली का शिविर गंगा के किनारे अनूपशहर में लगा हुआ था; वह इस समय नजीबुद्दौला के जरिये शुजाउद्दौला को भी हिन्दुओं के खिलाफ भड़का कर अपनी तरफ खींचने का प्रयत्न कर रहा था। परन्तु शुजाउद्दौला को मराठों से कोई विरोध शत्रुता नहीं थी इसलिए सदाशिव राव सदा उसे मिलाए रखने का प्रयत्न करता रहा, और उसको यह महसूस कराने के लिए कि वह सदाशिव का विश्वासपात्र है, भाऊ ने मराठों तथा अब्दाली के बीच महीनों तक चलने वाली वार्ता में उसी को मध्यस्थ बनाया। हर तरह की गुप्त और खुली वार्ता को शुजाउद्दौला अपने मित्रों के समक्ष रखता था और उनकी राय को अब्दाली के सामने पेश करता था।

जब मानसून का जोर कम हुआ तो सदाशिव राव ने अनुपस्थित शाह-आलम के बेटे जवान-बख्त को सिंहासह पर बैठा कर, शुजाउद्दौला को उसका वजीर घोषित किया। तत्पश्चात् नारोशंकर (राजबहादुर) को एक सैन्यदल के साथ वहीं छोड़ कर वह स्वयं कुन्जपुर की तरफ बढ़ा जो प्रतिरोध के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम था, परन्तु सदाशिवराव के समक्ष कुंजपुर टिक न सका और ध्वस्त हो गया। अहमदशाह मराठों के हाथ से कुंजपुर को छीनने के लिए बहुत उत्सुक था, परन्तु यमुना नदी अभी भी पार करने योग्य नहीं हुई थी। फिर भी उसने यमुना नदी के किनारे अपना पड़ाव डाला और भाऊ को भी सन्धिजार्ता में उलझाए रखा और अन्त में पार करने योग्य एक उचित स्थान पाकर दिल्ली के लगभग २० मील ऊपर यमुना नदी को पार कर लिया। उसके काफी सैनिक पश्चिमी तट पर एकत्रित हो गए। जब कि भाऊ को यह समाचार प्रामाणिक रूप से मिला, † २५ वीं अक्टूबर तक सारी मुसलमान सेना यमुना के पार आ गई थी। दूसरे दिन दोनों सेनाओं के अग्रभाग एक दूसरे से भिड़ गए; परन्तु यह मुठभेड़ महत्वहीन थी। मराठों ने दूसरे दिन आक्रमण करने का निश्चय किया, यद्यपि

※ मराठा पान्डुलिपि होलकर का पत्र और सीर मुताखरीन। सूरजमल को नाराज करने का आरोप सभी मराठी विवरणों में, भाऊ के दुर्व्यवहार पर ही लगाया गया है। एशियाटिक रिसर्चेज के अनुसार ऐसा करने के लिए सूरजमल को मुसलमानों ने बहकाया था।

† मराठा पान्डुलिपि पेशवा के बकर नवी रघुनाथ यादव द्वारा लिखित एक विवरण के अनुसार नदी पार करते समय अब्दाली का विरोध किया गया था, परन्तु अन्य सभी प्रमाणिक विवरण उस मत के विरुद्ध हैं।

होलकर का मत अब भी यही था कि किसी तरह अब्दाली की सेना के रसद का मार्ग बन्द करने का प्रयत्न किया जाय। उसके द्वारा यह प्रस्ताव रक्खे जाने पर इब्राहीम खां गारदी बहुत उत्तेजित होकर उग्र वादाविवाद करने लगा; उसने कहा कि जो भी सवारों का दल इस मत के अनुसार कार्य करने के लिए चलेगा, उसी की ओर वह अपनी तोपों का मुंह घुमा देगा। किसी तरह इन आपसी विरोधों को दबाया गया, और इसी बीच मराठे छुटपुट युद्ध करते हुए पानीपत की ओर लौटे, यहीं इब्राहीम खाँ गारदी की राय से सदाशिवराव ने मोर्चेबन्दी की। पानीपत गांव और अपने शिविर के चारो ओर उसने ५० फीट चौड़ी और २० फीट गहरी खाईं खुदवाई और बीच मे एक दीवालनुमा आकार बनवा कर उस पर एक बड़ी तोप चढ़वा दिया। अहमदशाह ने भी दूसरी तरफ मोर्चेबन्दी प्रारम्भ कर दिया और अपनी सेना की सुरक्षा के लिए चारों तरफ कटे हुए पेड़ों से एक घेरा बना लिया।

मुसलमान सेना में ४१८०० घुड़सवार, ३८००० पैदल और लगभग ७० तोपें थीं, यह संख्या चुने हुए नियमित सैनिकों की है, अनियमित और ताजा भरती किए गए सिपाहियों की संख्या भी इससे कम नहीं थी। मराठा सेना में भी ५५००० घुड़सवार, १५.००० पैदल और लगभग २०० तोपें थीं; इसके अतिरिक्त पठारी तथा अन्य लोग भी थे जिनकी अनुमानित संख्या २००,००० मानी जाती है।

दोनों सेनाओं के अपने-अपने मोर्चे पर डट जाने के बाद सदाशिव राव ने दुश्मन की रसद का मार्ग रोकने के लिए गोविन्द पन्त को भेजा, जो इस कार्य में कुछ समय के लिए सफल भी रहा, परन्तु गोविन्द पन्त की कारवाई को रोकने के लिए तैनात वली खाँ ने एक अवसर पर गोविन्द पन्त को अचानक घेर लिया जबकि उसके साथ केवल १००० आदमी थे, और शेष लूटपाट में लगे हुये थे। उसने गोविन्द पन्त का सिर काट लिया और उसके कटे हुए सिर को अब्दाली के समक्ष पेश किया। गोविन्द पन्त की मृत्यु के पहले दोनों दलों में समझौते की कुछ सम्भावना थी और दोनों दलों के प्रमुख सरदार एक दूसरे से भेट मुलाकात कर रहे थे, परन्तु गोविन्द पन्त की मृत्यु की खबर मिलने पर सदाशिव ने घोषित किया कि वह केवल चारे की खोज में गया हुआ था और उसकी हत्या अब्दाली के आदमियों ने छलपूर्वक किया है। दोनों दलों की तरफ से इस प्रकार की चालबाजी के आरोप लगाए जाने लगे जिसके फलस्वरूप सन्धिवार्ता कुछ दिनों के लिए एकदम बन्द हो गई। गोविन्द पन्त की मृत्यु के बाद ही मराठा सेना को दुर्भाग्य की एक और चोट का सामना करना पड़ा। मराठा घुड़सवारों का एक दल एक खजाने की रक्षा करते हुए दिल्ली से आ रहा था, प्रत्येक सवार के हाथ में धन से भरे हुये थैले थे, रात हो जाने के कारण उन्होंने, अफगानों से उनका सारा धन छीन लिया और उन्हें काट डाला। * यद्यपि राजपूत मराठों से अलग हो गये थे फिर भी उन्होंने धन आदि से मराठों की मदद की। सूरजमल ने काफी बड़ी रकम सहायता के लिये भेजा जो सुरक्षित रूप से मराठो के शिविर में पहुंच गई। परन्तु फिर भी द्रव्य की कमी खलने लगी, इब्राहीम खाँ की सेना बकाया तनख्वाह के लिए शोर मचाने लगी। होल्कर ने प्रस्ताव रक्खा कि घुड़सवारों को लेकर आक्रमण कर दिया जाय और गारदियों (पैदल सैनिकों को उस समय गारदी ही कहा जाता था) को शिविर की रक्षा के लिये छोड़ दिया जाय। भाऊ ने अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करते हुए इस प्रस्ताव को मान लिया। यह आक्रमण २६ नवम्बर को अब्दाली की सेना के बाँए भाग पर किया गया जहाँ अब्दाली का वजीर वली खाँ तैनात था। मराठे जिनकी संख्या १५,००० थी सीधे अफगानों की पंक्तियों में घुस गये, यद्यपि अफगान भरसक खड़े रहे, परन्तु उनकी पंक्तियाँ टूट गई और लगभग २,००० अफगान मारे गये, अन्त में हर तरफ से अफगान वजीर की रक्षा के लिये दौड़े, और मराठे, लगभग १००० सैनिकों को खोकर

---

* एशियाटिक रिसर्चेज श्रौर तारीख-ए-दक्खिन।

वापस लौट आए। इस अवसर पर नेतृत्व होलकर के हाथ में था। इसी तरह रोज छिटपुट युद्ध होते रहे जिसमें मराठे व्यक्तिगत रूप से धावे करते रहे और अफगानों को हानि पहुंचाते रहे, * परन्तु २३ दिसम्बर के पहले कोई महत्वपूर्ण युद्ध न हुआ, जबकि सदाशिव राव भाऊ, विश्वास राव, होल्कर, बलवन्त राव गनपत मण्डली तथा कई अन्य सरदार शाह वली खाँ पर आक्रमण करने के लिए चढ़ दौड़े। उस समय वजीर कुछ घुड़सवारों के साथ मस्जिद में नमाज पढ़ने के लिए जा रहा था, वह मराठा सरदारों के इस दल द्वारा पूर्णतः घेर लिया गया। उसकी मदद के लिए नजीबुद्दौला तथा कई अन्य सरदार आगे बढ़ आए और युद्ध प्रारम्भ हो गया। नजीबुद्दौला अन्य लोगों से कुछ आगे बढ़ आया था; उसी समय बलवन्त राव ने जो उस समय भाऊ के दीवान के रूप में कार्य कर रहा था, और एक अनुभवी तथा साहसी योद्धा था तुरन्त इस अवसर से लाभ उठाया और नजीबुद्दौला पर भयंकर आक्रमण कर दिया। ३००० रूहेले मारे गए और नजीबुद्दौला भी लगभग गिरफ्त में आ गया था कि अचानक, विजय के अन्तिम क्षण में बलवन्त राव एक गोले से घायल होकर मर गया; यह देखकर भाऊ, उसकी मृत्यु से अत्यन्त दुखित होकर अपने मित्र के मृत शरीर के साथ अपने शिविर में वापस लौट गया। छिटपुट युद्ध नित्य ही होते रहते थे, और रूहेले तथा शुजाउद्दौला किसी निर्णयात्मक युद्ध के लिए प्रयत्नशील थे। परन्तु अहमदशाह ने दृढ़ता से उस समय युद्ध करने से इनकार कर दिया † और इस प्रकार उसने अपने को एक अच्छा सेनापति सिद्ध किया जो कि सिपाहियों के मस्तिष्क एवं युद्ध सम्बन्धी ज्ञान से भरा हुआ था। अपने शिविर में फैली हुई अधीरता, खलबली और कठिनाइयों से जो कि मराठा सेना की दशा के मुकाबले में अधिक नहीं थी, अब्दाली ने महसूस किया कि युद्ध जितनी ही देर में प्रारम्भ होगा, शिकार उतनी ही आसानी से हाथ आयेगा। मराठे एक प्रकार से भूखों मर रहे थे, वे बहुत पहले से अनुचित अपव्यय के आदती बन चुके थे जिस से वे बचा खुचा सब कुछ समाप्त कर चुके थे, और क्रियाहीनता के कारण हर पल अपनी दुर्दशा के विषय में ही सोचा करते थे। सदाशिव भाऊ ने भी अनुभव किया कि निर्णयात्मक युद्ध को प्रारम्भ होने से रोकना अब असम्भव हो चला है। यद्यपि वह अब भी प्रतीक्षा करने के प्रयत्न में था परन्तु स्वयं उसकी निर्णयात्मक बुद्धि ने उसे बता दिया कि अब अधिक प्रतीक्षा करना व्यर्थ था। भूख से व्याकुल, लापरवाह और दुस्साहसी हो गए उसके अनुयायियों ने बहुत अधिक संख्या में, भोजन प्राप्त करने के लिये रात को शिविर छोड़ दिया, परन्तु अफगानों ने उन्हें देख लिया और घेर कर बुरी तरह काट डाला। मराठों ने इस तरह भूख और क्रियाहीनता से मर जाने की अपेक्षा तलवार की धार पर मरना अधिक पसन्द किया। सरदारों ने भाऊ के समक्ष युद्ध का प्रस्ताव रक्खा; भाऊ ने भी इस प्रस्ताव से सहमति प्रकट की, और
१७६१ ई०] अपने स्वभावगत धैर्य तथा पूर्ण गम्भीरता से उसने इस परिषद के विगठित होते समय सरदारों में पान बांटा। ‡ सभी टुकड़ियों को युद्ध के लिए तैयारी करने का आदेश दे दिया गया। भण्डार में संग्रहीत सारी सामग्री को विभिन्न टुकड़ियों में वितरित कर दिया

---

* सुनी हुई खबर के आधार पर भाऊ ने दोनों दलों के बीच में एक रण खम्भ खड़ा करवा दिया था जहाँ दोनों दलों के सैनिक और सरदार एक दूसरे को चुनौती देकर अपना बल आजमाते थे।

† एशियाटिक रिसर्चेज।

‡ किसी भी सभा के विसर्जित होते समय, या किसी साधारण अतिथि को विदा करते समय भी गुलाब जल, इलायची, लवंग आदि वितरित किये जाते हैं और पान का बीड़ा विदाई का प्रतीक है।

गया जिससे वे कम से कम एक रात को पूर्ण भोजन कर के सन्तुष्ट हो सके । ७ वीं जनवरी को सूर्योदय के एक घन्टा पहले ही मराठा टुकड़ियां खाईं से बाहर निकल आई; उनका बाँया भाग आगे था; उनकी तोपें और शुतरनालें ऊँटों पर लदी हुई थीं । उनकी अग्निबाण (राकेट) वाली टुकड़ी आगे आगे चली, जिसके पीछे इब्राहीम गारदी था । उसके पश्चात् दमाजी गायकवाड़ की घुड़सवार सेना थी । उसके पीछे बिठ्ठल शिवदेव, सदाशिव भाऊ, विश्वास राव, जसवन्त राव पवार, शमशेर बहादुर, मल्हार राव होल्कर, ओर जनकोजी सिन्धिया थे ।

इसी क्रम से वे धीरे-धीरे अब्दाली के कैम्प की तरफ बढ़े, यद्यपि उनकी प्रगति के समय उनके मनोभावमें दृढ़ता की अपेक्षा निराशा ही अधिक थी । उनकी पगड़ियोंके छोर ढीले ढालेथे, उनके हाथों और चेहरों पर एक तरह की हल्दी का लेप था, * और उनका रंग ढंग यही गवाही दे रहा था कि वे निराश हो कर अन्तिम बलिदान के लिए आगे बढ़ रहे थे, न कि दृढ़ हो कर विजय प्राप्त करने के लिए । सदाशिवराव ने अपनी पत्नी सहित कुछ अन्य प्रमुख परिवारों को होलकर के विशेष संरक्षण में छोड़ दिया । सम्भवतः इसका कारण यह था कि मल्हारराव ही एक ऐसा सरदार था जो क्रूर नजीबुदौला से कुछ रियायत पाने की आशा कर सकता था और नजीबुद्दौला की राय पर ही अहमदशाह इस समय चल रहा था । इस प्रकार होलकर ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसके प्रभाव से उस समय इन मराठा परिवारों की सुरक्षा सम्भव थी । सदाशिवराव ने आगे बढ़ने से कुछ ही समय पहले शुजाउद्दौला के एक कारकून † के हाथ एक संक्षिप्त पत्र भेजा । यह कारकून उनके बीच की सन्धिवार्ता को चलाने के लिए ही नियुक्त किया गया था । इस छोटे से पत्र में उसने लिखा था कि प्याला अब ऊपर तक भर चुका है और इसमें अब एक बूंद भी नहीं आ सकता । उसने यह प्रार्थना भी की कि यदि शुजाउद्दौला मराठों की कोई भी मदद करने का इरादा रखता हो तो यही एक उचित अवसर है । जिस समय शुजाउद्दौला को यह पत्र मिला उसी समय उसके जासूसों ने उसे खबर दी कि मराठे अभियान प्रारम्भ कर चुके हैं । इस खबर के मिलते ही शुजाउदौला सीधे बादशाह के पास पहुंचा जो अपने खेमे में सोया पड़ा था और उसका घोड़ा सजा सजाया खेमे के प्रवेश द्वारपर बाँधा हुआ था । जब उसे जगाया गया तो उसने पूछा क्या बात है ? और जब उसे यह महत्वपूर्ण समाचार मिला, वह तुरन्त घोड़े पर सवार हुआ और अपने फौज की कतारों के आगे लगभग एक मील तक चलता रहा, परन्तु तभी उसे मराठों के आगे बढ़ने के समाचार की सत्यता में कुछ सन्देह हुआ । परन्तु इस समय तक मराठे अपने प्रारम्भिक क्रम में आगे बढ़ते ही चले आ रहे थे । उनकी फौज के बाएँ सिरे पर इब्राहीमखाँ और दाहिने सिरे पर जनकोजी सिन्धिया थे । उनका तोपखाना उनकी पंक्तियों के आगे स्थित था, मराठों के तोपों की गरज ने यह घोषित कर दिया कि वे युद्ध के लिए पूर्णतः तैयार हैं । तोपों की इस आवाज को सुन कर बादशाह ने बड़ी शान्ति पूर्वक शुजाउद्दौला से कहा, "तुम्हारे जासूस की खबर एकदम सच्ची मालूम पड़ती है ।" तत्पश्चात् उसने अपनी फौज को आगे बढ़ने का हुक्म दिया और तोपखाने को फौज के आगे रखने की व्यवस्था की । उसने अपने वजीरे आजम शाह बलीखाँ को अफगानों की टुकड़ी के साथ मध्य में तैनात किया, अहमदखाँ बंगश, हाफिज रहमत खां रुहेला, अमीर वेग और बरखुरदार खां ने मिलकर सेना के दाहिने अंग का उत्तरदायित्व लिया, वजीरे आजम

---

* ये विधियां इस बात की प्रतीक थीं कि योद्धा मरने के लिए ही निकले हैं ।

† काशी पन्त द्वारा लिखित इस अभियान के उस वर्णन के अधार पर, जो कि मिस्टर जेम्स द्वारा एशियाटिक रिसर्चेज में प्रकाशित किया गया है ।

की बाँई तरफ अवध के नवाब शुजाउद्दौला तथा नजीबुद्दौला रुहेला को तैनात किया गया। चुने हुये अफगान योद्धाओं के साथ शाह पसन्द खां ने सेना के एकदम बांए भाग को सम्भालने का जिम्मा लिया। इसी क्रम में, तोपों की गोलाबारी के साथ युद्ध प्रारम्भ हुआ और दोनों सेनाएँ एक दूसरे के निकट आती गईं। इब्राहीम खां और दभाजी गायकवाड़ ने अपनी दो बटेलियनों को पीछे घुमाकर दाहिने से काटते हुए, अमीर बेग और बरखुरदार खां के आक्रमण से अपनी सेना के बांए अंग की रक्षा की, और दृढ़ता से मुसलमान सेना के दाहिने भाग में स्थित रुहेलों की तरफ बढ़ चले। मराठा सेना के दाहिने भाग में स्थित जनकोजी सिन्धिया तुरन्त ही शाह पसन्द खां और नजीबुद्दौला से भिड़ गया। नजीबुद्दौला आगे बढ़ा, परन्तु साथ ही वह विभिन्न प्रकार की रोकों व आड़ों से अपनी पैदल सेना को टेकता गया ताकि, यदि मरने मारने पर उतारू मराठा सेना उसकी पंक्तियों को तोड़कर भीतर धँसने का प्रयास करे, तो प्रत्येक रोक व बाधा को हटाने में मराठों को इतना समय लग जाय कि मुस्लिम सेना फिर से व्यवस्थित हो सके। उसका यह भय निराधार नहीं था, क्योंकि मराठे सर पर कफन बाँध कर निकले थे; इसलिये उसने बड़े ही परिश्रम से इस श्रम साध्य कार्य को पूरा किया।

सदाशिव राव, उसके भतीजे तथा जसवन्त राव पवार का मुकाबिला वजीर शाह वली खां से पड़ा। राष्ट्र का प्रतीक विशाल भगवा ध्वज सेना के आगे फहरा रहा था और तीन पताकाएँ युद्धक्षेत्र में गड़ी हुई थीं। अहमदशाह अपनी सेना की पिछली पंक्तियों से कुछ दूरी पर था। दोनों सेनाओं के नायक अपने सामने की तोपों को लाँघ कर आगे बढ़ चुके थे; मराठों की 'हर-हरी, हर हरी' की ललकार से युद्धक्षेत्र भर उठा था। गम्भीर युद्ध प्रारम्भ हो गया और मुस्लिम सेना के मध्य भाग पर मराठों ने भयानक रूप से धावा बोल दिया, जहाँ कि वजीर शाह वली खाँ अपने १०,००० सवारों के साथ सन्नद्ध था। पर वजीर ने यह गलती कर दी कि वह इस धावे का सामना करने के लिये आगे नहीं बढ़ा। फल स्वरूप मराठे मुस्लिम सेना में धंस पड़े, परन्तु उनकी पंक्तियों के दोनों तरफ के सवार धराशायी होते गये। सारा युद्धक्षेत्र धूल और गर्द से भर उठा, यहां तक कि एक दूसरे से गुथे हुये सैनिक एक दूसरे को पहचान भी नहीं पाते थे। मुसलमानों की 'अल्ला हो अकबर' तथा 'दीन' और मराठों की 'हर हर महादेव' की जैजैकार से वे एक दूसरे को पहचान पाते थे। पूरी तरह जिरह बख्तर, झिलम आदि से सज्जित शाहवली खां अपने घोड़े से कूद पड़ा और उसके कुछ बहादुर सिपाहियों ने भी उसका अनुसरण किया, परन्तु बहुत से अफगानों के हौसले पस्त हो गए। "मेरे दोस्तों! हमारा वतन बहुत दूर है" वजीर ने उन्हें ललकारा, 'तुम भागकर कहां जाओगे?" परन्तु फिर भी कुछ समय तक उस की सेना के गिने चुने सैनिक ही उसके साथ रह गये थे। यद्यपि इब्राहीम खां गारदी के आधे से अधिक सैनिक मारे गये और वह स्वयं भी घायल हो गया, फिर भी अपने प्रयास में उसे सफलता मिली, लगभग ८००० रुहेले मृत अथवा घायल अवस्था में गिरे पड़े थे। परन्तु मुस्लिम सेना की बांयीं पंक्ति अब भी दृढ़ता से अपने स्थान पर डटी थी। दोपहर के समय, अहमदशाह को युद्ध की स्थिति का विवरण बताया गया। इस अवसर पर अहमदशाह ने असाधारण धैर्य एवं नेतृत्व की शक्ति का परिचय दिया। उसने प्रत्येक ऐसे सशस्त्र सैनिकों को बर्खास्त करने का हुक्म दिया जो अपने स्थान से भाग खड़े हुए थे; इस हुक्म का पालन तत्परता से किया गया। दाहिनी पंक्तियों की मदद करने के लिये तुरन्त टुकड़ियाँ भेजी गई और वजीरे आजम को मराठों की मध्य की पंक्तियों पर १०००० सैनिकों के साथ बार-बार आक्रमण करने का आदेश दिया गया। शाह पसन्द खाँ और नजीबुद्दौला ने भी यदाकदा इस तरफ अपना रुख घुमा कर वजीर की सहायता करते रहे। मराठे इन आक्रमणों का यथोचित उत्तर देते रहे; परन्तु

सघन और गुत्थमगुत्था वाले युद्ध में, लम्बे चौड़े और सशक्त अफगान, दक्षिणी भारत के, छोटे कद के इन हिन्दुओं से प्रबल पड़ने लगे। फिर भी, इस भयानक दिवस भर मराठे बीरता से लड़ते रहे, मल्हार राव होलकर के अतिरिक्त अन्य सभी सरदारों ने प्रशंसनीय बीरता दिखाई। यद्यपि मल्हार राव की बीरता के विषय में किसी को कोई सन्देह नहीं था, फिर भी उसने अपने पक्ष को प्रबल बनाने योग्य युद्ध नहीं किया। कुछ इतिहासकार तो उस पर विश्वासघात करने का आरोप तक लगाने में नहीं हिचकिचाते। तीसरे पहर, दो बजे के बाद विश्वास राव बुरी तरह घायल हो गया। यह देखकर सदाशिव राव भाऊ हाथी से नीचे उतर आया और, जैसा कि कुछ लोग कहते हैं होलकर के पास यह सन्देश भेजा कि जैसा उसने निश्चित किया था वैसा ही करे। तत्पश्चात् भाऊ, एक तेज अरबी घोड़े पर सवार होकर युद्धक्षेत्र के हो-हल्ले में अदृश्य हो गया। यदि सन्देश वाली बात सही है, तो उसी के फलस्वरूप होलकर एक तरफ चल दिया, दभाजी गायकवाड़ ने उसका अनुसरण किया और एक ही क्षण में, मराठों की तरफ से प्रतिरोध निर्बल पड़ गया। हर तरफ भगदड़ और गड़बड़ी मच गई। हजारों मराठे काट डाले गये और असंख्य सैनिक, अपने ही द्वारा बनाई खाइयों में गिर कर दम घुटने से मर गये। पुरुष, स्त्रियाँ एवं बच्चे भाग-भाग कर पानीपत के गाँव में शरण ढूंढने लगे, जहाँ कि रात भर अफगान उनको घेरे रहे। उस समय क्रूरतम व्यक्ति भी इन असहायों पर कुछ न कुछ तरस अवश्य खाता, परन्तु अफगानों ने जरा भी दया नहीं दिखाई। अपनी जातिगत बीरता, तथा पूरी मानवता के भाल पर कलंक का टीका लगाते हुए, सबेरे अफगानों ने इन असहाय और निर्दोष व्यक्तियों को बड़े ठन्डे दिमाग से, शान्तिपूर्वक गाँव से बाहर निकाला। उन्होंने स्त्रियों एवं बच्चों को, दास व दासी बनाने की नीयत से एक तरफ कर दिया। पुरुषों को उन्होंने एक पंक्ति में खड़ा कर दिया और बड़ी ही निर्दयता पूर्वक प्रसन्न भाव से उनका सिर काट डाला * और उन सिरों को, विजय के प्रतीक के रूप में अपने खेमों

---

* अफगानों ने इन लोगों को पंक्तियों में खड़ा कर दिया, प्रत्येक पुरुष की हथेली पर लावा के कुछ दाने रख दिए गए, एक भिश्ती ने उन सभी लोगों की हथेलियों पर पानी गिराया और तब उनका सिरच्छेदन किया गया। अरला का कुलकर्णी, नारों भगवन्त, जो कि इन लोगों के साथ ही खड़ा था, अपने भाग निकलने का वर्णन इस प्रकार करता है। जब भाऊ ने दक्षिण छोड़ा, तो नारो भगवन्त अफगानों की उस टुकड़ी का कारकून था जो भाऊ के तोपखाने में थी। जब मराठों ने अपने ही देशवासियों पर आक्रमण किया तो अफगानों के जमादार हुसेनखां ने भाऊ को खबर दी कि उसके साथ के लोग युद्ध से भयभीत हैं, क्योंकि रुहेलों और अब्दाली ने उन्हें विश्वास दिला दिया है कि यदि उन्होंने अपने ही शासक के विरुद्ध अस्त्र उठाया तो वे बाद में दण्डित किए जांयगे। नारो भगवन्त ने इसी आधार पर भाऊ से अपनी बर्खास्तगी हासिल की, परन्तु उसने सदाशिवराव को विश्बास दिलाया कि अवसर पाते ही वह वापस लौट आएगा, उसने भाऊ से कहा कि इस प्रकार छोड़कर जाने में उसे कष्ट हो रहा है क्योंकि उसने भाऊ का नमक खाया है। उसके बाद भी वह भाऊ से पत्र व्यवहार करता रहा। सब कैदियों की हथेलिवों पर पानी छिड़कने वाले भिश्ती ने कतार में भगवन्त को पहचान लिया, क्योंकि यह भिश्ती भी हुसेनखां के साथ ही रहता था। भिश्ती ने तुरन्त हुसेनखां के पास जाकर कहा, "हमारे साथ का वह बिरहमन भी कत्ल किया जाने वाला है।" हुसेनखां आगे आया और अपने देशवासियों से अपनी ही जुबान में सम्भवतः यह कहा कि वह स्वयं उस ब्राह्मण को अपना गुलाम बनाना चाहता है। इतना कहकर जमादार हुसेनखां नारो भगवन्त को कठोरता से खींचता हुआ कतार में से निकाल लाया, और एक दिन तक अपने खेमे में रक्खा। जमादार ने एक दुभाषिए को बीच में करके नारो से पूछा, "तुम मेरे साथ रहना पसन्द करोगे या दक्षिण जाना।" इस पर नारो ने कहा कि वह जमा-

के आगे सजा दिया । विश्वासराव का मृत शरीर भी उनके हाथ लगा । जब अहमदशाह ने उसके सिर को देखने के लिये मंगाया तो अफगान वहाँ पर आनन्दपूर्ण भाव से एकत्रित होकर चिल्लाने लगे, "यह काफिरों के बादशाह का सिर है, हम इसे सुखा कर और भूसा भरवा कर काबुल ले चलेंगे ।"

शुजाउद्दौला और रुहेले अहमदशाह से यह अनुमति प्राप्त करने का प्रयास करते थे रहे कि विश्वास राव का शरीर जलाने के लिए हिन्दुओं के हवाले कर दिया जाय । शुजाउद्दौला ने जनकोजी सिन्धिया और इब्राहीम खाँ गारदी को बचाने का प्रयत्न भी किया, जो कि घायल होने पर बन्दी बना लिए गए थे । परन्तु नजीबुद्दौला सिन्धिया का जानी दुश्मन था और इब्राहीम खाँ गारदी पर यह गम्भीर आरोप लगाया गया कि उसने खुदा के सच्चे और नेक बन्दों के विरुद्ध काफिरों का पक्ष लिया था । इस प्रकार उन दोनों का भाग्य पूर्व निश्चित था; उन दोनों को मृत्यु के घाट उतार दिया गया । लड़ाई के मैदान से कुछ दूरी पर मिले बिना सिर के एक धड़ को लोगों ने भाऊ का शरीर मान लिया; उसकी मृत्यु के विषय में शंका करने का कोई कारण तो नहीं है फिर भी उसके विषय में एकदम प्रमाणित समाचार कभी भी न मिला । जसवन्तराव पंवार भी युद्ध क्षेत्र में ही मारा गया परन्तु शमशेर बहादुर घायल होकर युद्ध क्षेत्र से भाग गया; बाद में पकड़े जाने पर अन्य लोगों के साथ उसे भी कत्ल कर दिया गया । बिठ्ठल शिवदेव (विन्चूरकर), दमाजी गायकवाड़ और नारो शंकर * दिल्ली में पड़ी हुई शेष मराठा सेना के साथ अपने देश लौट गए । लड़ने वाले सैनिकों में से लगभग एक चौथाई सैनिक ही जीवित भाग सके थे और लगभग इसी अनुपात में पीछे आने वाले लोग भी थे । इस प्रकार इस अभियान में लगभग २००,००० मराठा सैनिक मारे गए ।

सूरजमल ने भाग कर आए हुए शरणार्थियों के साथ बहुत उदारता का व्यवहार बरता और मराठा राष्ट्र उस अबसर की इस उदारता के लिए जाटों के प्रति आज भी कृतज्ञता प्रकट करता है ।

दार के साथ ही रहेगा । जमादार ने दुभाषिए से कहा, "उससे कह दो कि वह झूठ बोलता है ।" इसके थोड़ी देर बाद ही हुसेन खाँ ने उसे एक तरफ ले जाकर हिन्दुस्तानी में कहा कि उसके एक मित्र की रक्षकों की एक टोली उसे खेमे से २० कोस की दूरी तक सुरक्षित रूप से पहुँचा देगी । उस उदार अफगान जमादार ने उसे सोने की पांच मोहरें भी दीं, और उसे सतर्क कर दिया कि किसी भी रक्षक को यह पता लगने न पाये कि उसके पास सोने की मोहरें है । रक्षकों के साथ कुछ दूर तक जाने के बाद, अपने सहायक, जमादार की राय का ख्याल करके और इस भय से कि कहीं ये रक्षक उसकी तलाशी न लेने लगें । नारो ने मोहरों को अपने मुंह में रख लिया और जब वे उसे पहुंचा कर वापस लौट गए तो उसने अपने धन को सुरक्षित समझ लिया । परन्तु उन रक्षक सैनिकों में से एक ने नारो को मुंह में सोना रखते हुए देख लिया था । जब उसके साथी काफी दूर निकल गये तो वह मोहरें छीनने के लिए वापस लौट पड़ा । नारो अपनी पूरी ताकत से भागा जा रहा था कि उसने पीछे से 'ए-बिरहमन' की आवाज सुनी । उसने घूम कर देखा कि बड़ी-बड़ी आँखों तथा लम्बी दाढ़ी वाला एक अफगान पीछे-पीछे चला आ रहा है । वह डर कर खड़ा हो गया । अफगान ने टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी में कहा, "ए बिरहमन, तुमने अपने मुंह में क्या रक्खा है ।" उसने नारो को मोहरें देने पर मजबूर कर दिया और यह कह कर कि 'अब तुम जहन्नुम में जाओ,' वह सरपट घोड़ा दौड़ता हुआ लौट गया ।

मैं नारो भगवन्त द्वारा दिए गए इस विवरण को सत्य समझता हूँ । इस घटना के दो वर्ष बाद मैंने उन सभी विषयों पर उससे प्रश्न पूछे थे, जिनका वर्णन मैं पीछे कर चुका हूँ ।

* सीर मुताखरीन के लेखक के अनुसार वह अपनी सेना सहित नष्ट हो गया था, परन्तु यह गलत है ।

जिस समय सदाशिव राव अपनी खाईं में बन्द था, उसकी स्थिति के विषय में पेशवा के पास नित्य समाचार पहुंचता रहता था। नवम्बर महीने में पेशवा अहमदनगर होते हुए, गोदावरी की ओर चल पड़ा। दिसम्बर में और भयानक तथा कान खड़े कर देने वाले समाचार आने लगे। जानोजी भोंसले १०००० सैनिकों के साथ पेशवा से आ मिला। पेशवा पूरी सेना के साथ हिन्दुस्तान की ओर चल पड़ा। जनवरी के मध्य में, नर्मदा नदी को पार करते समय पेशवा को किसी साहूकार † का एक कासिद (पत्रवाहक, हरकारा) मिला जो पानीपत से औरंगाबाद कोई पत्र पहुंचाने जा रहा था, उसी से पता लगा कि पानीपत के युद्ध में मराठों की पराजय हो गई है। पेशवा ने उसका पत्र खोलकर उस भयानक समाचार को पढ़ा। पत्र में लिखा था, 'दो मोती गल गए, २० मोहरे खो गईं' और चांदी ताँबे की कुछ गणना ही नहीं है।'' इन शब्दों से सदाशिवराव, विश्वास राव, सरदारों तथा सेना के दुर्भाग्य का स्पष्ट समाचार मिल गया।

हारी हुई सेना से भागे हुए कुछ व्यक्ति जब पेशवा के पास पहुंचे तो उन्होंने इस समाचार की पूर्णतः पुष्टि की। इन भागे हुए लोगों में से सर्वप्रथम बाबूराव का भतीजा बालाजी जर्नादन पहुंचा जो बाद के इतिहास में नाना फड़नवीस के नाम से प्रसिद्ध है। उसकी माँ अफगानों की पकड़ में आ गई थी परन्तु उसकी पत्नी सकुशल भाग निकली थी। अभागे भाऊ की विधवा पार्वती बाई भी भाग कर वापस आ गई थी। सम्पूर्ण महाराष्ट्र उदासीनता और निराशा से भर उठा। असंख्य परिवार अपने मृत सम्बन्धियों के लिए शोकग्रस्त थे। पेशवा को इस भयानक पराजय से गहरा मानसिक आघात पहुंचा और वह मानसिक रूप से कभी भी स्वस्थ न हुआ। उसने धीरे-धीरे अपने कदम पूना की ओर मोड़े, परन्तु उसकी मानसिक शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गई थी, उसका स्वास्थ्य तेजी से गिरने लगा और जून के अन्त में (तामसकर के अनुसार २३ जून १७६१।) पूना के दक्षिणी भाग में स्वयं उसके ही द्वारा बनवाए गए पार्वती के मन्दिर में उसका प्राणान्त हो गया।

पानीपत की पराजय के दुःख के साथ साथ, कुसमय में पेशवा की मृत्यु हो जाने से, देश पर फैला हुआ उदासी का बादल और घना हो गया। बाला जी (बाजीराव उन शासकों में से एक था जो अपने सौभाग्य से, भूतकाल की नींव के अधार पर प्राप्त की हुई समृद्धि के कारण सम्मान प्राप्त करते हैं, विशेषकर उनके देशवासी देवता के समान उन्हें पूजते हैं, भले ही वे पूर्णरूप से उसके योग्य न हों। फिर भी बाला जी राव कुशल राजनीतिज्ञ तथा व्यवहार कुशल व्यक्ति था। उसके अधिकांश कार्य चालाकी और धूर्तता से परिपूर्ण हैं जिन्हें ब्राह्मण भूल से बुद्धिमत्ता से भरा हुआ मानते हैं। वह धोखेबाजी की सम्पूर्ण विधियों का ज्ञाता था तथा किसी भी प्रकार के षड़यंत्र की रचना करने में पारंगत था। बाला जी राव का व्यक्तिगत जीवन इन्द्रिय-लोलुपता से भरा हुआ था। परन्तु-यद्यपि वह धूर्त और विलासी था फिर भी अपने सम्बन्धियों तथा आश्रितों के प्रति उदार और दयालु था। ऊपरी हिंसा तथा अत्याचार का वह खुला दुश्मन था। उसके गुणों अवगुणों को मिला जुला कर, यह माना जा सकता है कि वह एक ब्राह्मण शासक का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है।

शाहू की मृत्यु के पहले प्रशासन में बहुत साधारण सुधार किए गये थे, परन्तु उस समय भी, बालाजी विश्वासनाथ के काल से ही, जितने क्षेत्र पेशवाओं के अधिकार के अन्तर्गत थे उनकी शासन व्यवस्था में यथा समय सुधार होते रहते थे, साथ ही पेशवाओं के क्षेत्र में मालगुजारी वसूल करने की

---

† भारत में सर्वप्रथम साहूकार ही धन के बाजार से सम्बधित हेरफेर का ज्ञान प्राप्त करते थे। जिस सांकेतिक भाषा में यह पत्र लिखा गया है (जो कि हम आगे देखेंगे), वह भारत में सामान्य नहीं है, विशेषकर ऐसे अवसरों पर जब कि सतर्कता आवश्यक है।

उस प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया था जिसके अनुसार जिले भर की अनुमानित आय खेतों से ही वसूल की जाती थी। उन्होंने कृषकों को इसके लिये भी प्रोत्साहित किया कि वे प्रत्येक छोटे-मोटे सरदार को चारा, अन्न या नकद रूप में भुगतान न करे बल्कि विशेष अधिकारी के हाथों में ही मालगुजारी दें। बालाजी राव ने कई जिलों के पीछे एक-एक मामिलतदार या सूबेदार की नियुक्ति की। ऐसे कई सूबों के पीछे एक सरसूबेदार होता था जिसके नीचे कई मामिलतदार होते थे। गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच के क्षेत्र के लिये कोई भी सर सूबेदार नियुक्त नहीं किया गया था। सम्पूर्ण मराठा प्रदेश में जो जिले सर्वाधिक सुरक्षित उत्पादक एवं समृद्ध थे वे पेशवा के विश्वासपात्रों तथा सामन्तों के हाथ में थे, जिनमें से कई, उसके सम्बन्धी भी थे। पुलिस, मालगुजारी तथा न्याय से सम्बन्धित सारे अधिकार उन्हीं के हाथ में रहते थे और अधिकांश मामलों में मृत्युदन्ड तथा क्षमादान का अधिकार भी उन्हीं के हाथ में था। वे नियमित ढंग से लेखा-विवरण प्रस्तुत करने के लिये नियमबद्ध थे. परन्तु वे प्रायः स्वयं इन सारे कार्यों का उत्तरदायित्व नहीं सम्भालते थे। वे अपने अधिकार के अन्तर्गत क्षेत्रों का प्रशासन अपने नायबों के उत्तरदायित्व पर चलाते थे, और वे स्वयं पेशवा के पास ही बने रहते थे, चाहे वह दरवार में रहे या युद्धक्षेत्र में।

मराठा शासन व्यवस्था में सुधार लाने का श्रेय पूर्णतः बाबा रामचन्द्र शेणवीं को दिया जाता है जिनकी मृत्यु के पश्चात् सदाशिवराव भाऊ ने भी उस आधार पर सुधार किये। बालाजी राव यह समझता था कि लगान वसूल करने वाले अधिकारियों पर नियत्रंण करने पर कितना लाभ हो सकता है, यद्यपि स्वयं उसमें इस कार्य को पूरा करने की सामर्थ्य व क्षमता नहीं थी, फिर भी उसने अपने चचेरे भाई द्वारा किए गये सुधारों का समर्थन किया। सौभाग्यवश, सदाशिवराव भाऊ को बालोबा जैसा योग्य व्यक्ति भी मिल गया जिसको उसने सभी सन्देहास्पद सूबेदारों एवं मामितलदारों का सरसूबेदार नियुक्त कर दिया। काफी विरोध एवं हो-हल्ले के बावजूद भी, उसने दृढ़ता से काम लिया, उसने इन सूबेदारों तथा मामिलतदारों को अपना हिसाब दिखाने के लिए मजबूर किया, उनमें से दो एक को निकाल बाहर किया और इस प्रकार उसके दृढ़ प्रयासों ने राज्य को पर्याप्त लाभ कराया। इस प्रकार शासन व्यवस्था के एक विभाग में सुधार के लिए पर्याप्त महत्वपूर्ण कदम उठाया गया। अन्य विभाग भी उपेक्षित नहीं किए गये। बालकृष्ण शास्त्री नामक एक विद्वान एवं सुयोग्य व्यक्ति को पूना न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया। पुलिस, जो कि अभी तक केवल खेमों की शोभा ही बढ़ाती थी, राजधानी में पर्याप्त समय एवं कार्यकुशल हो चली। पेशवा प्रशासनिक व्यवस्था करने की अपेक्षा कुटिल षड़यंत्रों की आयोजना तैयार करने में अधिक कुशल था। सदाशिवराव घूसखोर था। मराठों को शासन व्यवस्था में सुधार करने के लिए शान्ति एवं अवसर भी प्राप्त न हो सका। वे जब भी कोई व्यवस्था बनाने के लिये दत्तचित होते थे तो किसी न किसी तरफ से युद्ध की ललकार सुनाई पड़ जाती थी, या देश के भीतर ही विस्फोट हो जाता था। परन्तु बालाजी बाजीराव के शासन काल में पंचायतों ने विकास करना प्रारम्भ किया क्योंकि प्रशासन यदि इन पंचायतों द्वारा दिये गये दन्ड एवं जुर्मानों की जाँच नहीं करता था तो इन समुदायों के फैसलों के क्रियान्वित होने के तरीकों में दखल भी नहीं देता था। मराठा राज्य बालाजी (बाजीराव) के शासन काल में उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुंचा, और उसी के राज्यारोहण के बाद से असंख्य ब्राह्मण परिवारों की प्रगति का इतिहास प्रारम्भ हुआ। संक्षेप में, उसके समय में पूरे महाराष्ट्र क्षेत्र के निवासियों की दशा में सुधार हुआ और मराठा जन समुदाय उसी समय से नाना साहब पेशवा के शासनकाल का गुणगान करते हैं।

—o—

तेईसवां अध्याय

पेशवा, हैदरअली और अंग्रेज

[१७६१—१७६६]

माधवराव का पेशवा पद प्राप्त करना—ताराबाई की मृत्यु—निजाम अली से संघर्ष की योजना—संरक्षक की हैसियत से रघुनाथराव की अंग्रेजों से सन्धिवार्ता—मुगलों का पूना की ओर बढ़ना—सशक्त विरोध—सन्धि— रघुनाथराव और माधवराव में विवाद—माधवराव की पराजय—पूना में लूटपाट और अग्निकाण्ड—रघुनाथराव का हैदराबाद पर आक्रमण—मुगल सेना की भयंकर पराजय—औरंगाबाद में शान्ति—देशद्रोही जानोजी को माधवराव द्वारा दण्ड—हैदरअली का सिर उठाना—रघुनाथराव के उत्तरदायित्व पर सन्धि की शर्तें—जानोजी के विरुद्ध पेशवा और निजाम में आक्रामक सन्धि—भारत में अंग्रेजों की स्थिति—मराठों के कारण, कई प्रमुख घटनाओं से अंग्रेजों का शक्ति प्राप्त करना ।

सितम्बर के अन्त में, मृत पेशवा बालाजीराव का द्वितीय पुत्र माधवराव, जो उस समय १७ वर्ष का था, अपने चाचा रघुनाथराव के साथ सतारा पहुंचा और नाममात्र के राजा के हाथों द्वारा पेशवा का पद प्राप्त किया । राजा अब भी पहले ही की तरह ताराबाई की कैद
१७६१ ई०] था जब तक कि वह दिसम्बर में मर नहीं गई । मृत्यु के समय ताराबाई की अवस्था ८६ वर्ष की थी । अपने जीवन पर्यन्त वह बालाजीराव तथा सदाशिवराव का विरोध करती रही और मरते समय उसने कहा कि अब वह सन्तोष से मर सकेगी क्योंकि अपने जीवन काल में ही उसने उनके विनाश को देख सुन लिया है । ताराबाई की मृत्यु के, पश्चात् राजा की स्थिति में केवल इतना सुधार हुआ कि उसे किले में से निकाल कर सतारा में कैद रक्खा गया । कुछ समय बाद माधवराव ने उसे यह अनुमति अवश्य प्रदान कर दिया कि वह उत्तराधिकार से प्राप्त कुछ गांवों के पटेलों की व्यवस्था करे और अपनी पैतृक जागीर इन्दपुर के देशमुख की हैसियत से वहां की अन्य व्यवस्थाएँ करे ।

जब बालाजीराव की मृत्यु का समाचार मिला उस समय सलाबतजंग और निजाम अली बीदर में थे । निजाम अली यद्यपि दीवान के पद पर था, परन्तु उसने सारे प्रशासनिक अधिकार हड़प कर अपने हाथ में कर लिया था । बालाजी राव की मृत्यु तथा मराठा राज्य की दुर्व्यवस्था के कारण हारे हुए जिलों को प्राप्त करने का अच्छा अवसर समझ कर उसने विभिन्न बहाने बनाकर औरंगाबाद के पास बहुत अधिक संख्या में सैनिकों को एकत्रित करना आरम्भ कर दिया ।

रघुनाथराव प्रारम्भ से ही महत्वाकाँक्षी था । उसने इस समय माधवराव एवं उसके दल को निर्बल समझ कर, अपनी इच्छित आकांक्षा को पूरी करने का पूर्ण अवसर समझा । जब उसने निजाम अली को इस प्रकार की गम्भीर तयारियाँ करते देखा तो उसने अनुमान कर लिया कि अब निजाम अली और मुगलों के बीच कलह अवश्यम्भावी हैं । उसने सोचा कि इसी बीच वह बम्बई प्रेसीडेन्सी

तथा कोंकण के सूबेदार रामाजी पन्त के बीच हुए कुछ विवादों को निपटा दे। इन विवादों के उठने का कारण यह था कि अंग्रेजों ने अपने मित्र जंजीरा के सिद्दी को सुरक्षा प्रदान कर रक्खा था और सिद्दी पर रामाजी पन्त ने पिछली बरसात में पुर्तगालियों की मदद से आक्रमण कर दिया था। इस अवसर पर बम्बई सरकार ने उचित न्याय एवं उत्साह का प्रदर्शन किया। उन्होंने एक ऐसे सरदार को बचा लिया जिसने उन्हें समय समय पर तरह तरह की सुविधाएँ प्रदान की थी। उन्होंने उसके द्वीप को किसी अन्य यूरोपीय शक्ति के हाथ में जाने से बचा लिया और मराठों को जंजीरा पर फहराते हुए अंग्रेजी झण्डे का सम्मान करने के लिए विवश कर दिया जब कि रामाजी पन्त, किसी भी हालत में, जंजीरा पर कब्जा करने के लिए कटिबद्ध था। इस विवादपूर्ण अवसर पर मिस्टर क्रामलिन कौंसिल के प्रेसीडेन्ट थे और इस विवादपूर्ण स्थिति को समाप्त करने के लिए रघुनाथ राव के एक दूत के बम्बई पहुंचने पर बम्बई सरकार ने एक सन्धिनामा तैयार किया। पेशवा की तरफ से इस सन्धिवार्ता के लिए गोविन्द शिवराम भेजा गया था।* माधवराव के पिता की मृत्यु के समय भी अंग्रेजों की तरफ से शोक प्रकट करने के लिए एक व्यक्ति भेजा गया था, जो कि एक सामान्य शिष्टाचार के अनुकूल था। इस सन्धिपत्र में किसी विशेष शर्त का उल्लेख नहीं किया गया था बल्कि अंग्रेजों ने इसमें मराठों के प्रति मित्रता एवं सद्भावना का विश्वास ही दिलाया था परन्तु रघुनाथराव दूसरे ही फेर में था। वह मुगलों की तरफ से होने वाले आक्रमण के लिए बहुत मामूली रूप से तैयार था और उसकी इच्छा थी कि वह अंग्रेजों से कुछ यूरोपीय सैनिक व अस्त्र भी प्राप्त करले। इसी ध्येय से सन्धिवार्ता को और अधिक समय तक चालू रखने के लिए, उसने पिछले सन्धिपत्र में कुछ हेरफेर करने का बहाना लेकर फिर एक वकील को भेजा, परन्तु वास्तव में उसका उद्देश्य था सैनिक सहायता प्राप्त करना।

अंग्रेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी, अपने पुराने प्रतिद्वन्दी-डचों का मुकाबला करने के लिये प्रारम्भ में ही कुछ भू-क्षेत्र प्राप्त कर लेने की इच्छुक थी। इस अवसर से तथा अपने कर्मचारियों के पिछले २० वर्षो के प्रयासों के उत्साहित अंग्रेजों में सालसती द्वीप तथा बसई के किले पर अधिकार पाने की अभिलाषा बहुत उत्कट हो गई थी। इससे उन्हे केवल आर्थिक लाभ ही न मिलता, बल्कि बम्बई बन्दरगाह की प्रतिरक्षा को दृढ़ करने के लिये उचित क्षेत्र भी मिल जाता। इसीलिये अंग्रेजों ने रघुनाथ राव के सन्धि प्रस्ताव का स्वागत ही किया, यद्यपि रघुनाथ राव ने जम्बूसर में १ लाख ५० हजार की मालगुजारी बाला क्षेत्र तथा कुछ अन्य रियायतें देने का वादा किया, परन्तु अपने इच्छित सालसती द्वीप के सम्बन्ध में कोई चर्चा न उठने के कारण, सन्धिवार्ता असफल हो गई।

जब मुगलों के सम्भावित आक्रमण का आतंक बढ़ने लगा तो समझौते की बात फिर से प्रारम्भ की गई और मराठों ने सालसती द्वीप भी अंग्रेजों को दे देने का वादा किया। प्रेसीडेन्ट और कौंसिल के सदस्य अब अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये पूर्ण रूप से आशावित हो गये, विशेषकर ऐसे अवसर पर, जब कि प्रत्येक दिन उन्हें यह खबर मिल रही थी कि बिना अंग्रेजों की सहायता से मराठे पूर्णतः विध्वंस हो जायेंगे।

पिछले ४० वर्षो में, मुगलों को दक्षिण में अपना पुराना क्षेत्र वापस पा लेने के लिये इससे अच्छा अवसर कभी भी न मिला था। पानीपत के युद्ध में हुई हानि का सारा दोष मराठा सिले-

---

* इस सन्धिपत्र में सात या आठ बातें थी जिनमें से मुख्य शर्त थी कि मराठे सिद्दी से रामाजी पन्त द्वारा छीने गए क्षेत्र वापस कर दें। सिद्दी ने बाद में अंग्रेजों द्वारा प्रदत्त सुरक्षा का अनुचित लाभ उठाया और मराठा क्षेत्रों में जब तब मार काट मचाना प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेजों ने उसके इस दुष्कृत्य का गम्भीरता से विरोध किया था।

दारों ने ब्राह्मणों के दुर्व्यवहार पर मढ़ा। देश के ब्राह्मणों ने इस तथ्य को स्वीकार किया परन्तु साथ ही यह भी कहा कि सारा दोष उनके कोंकण स्थित भाइयों का है। जातीय भावना एवं सीमित भावनाओं के कारण मराठों के ढीले-ढाले सङ्गठन में भी यह दलबन्दी और जोर से फैली। इन परिस्थितियों में जब कि अधिकाँश मराठे दुर्भाग्य और कुशासन में भेद नहीं कर पा रहे थे—मतभेद तथा दलबन्दी होना स्वाभाविक ही था। निजाम अली अभी तक मराठों के इन आन्तरिक मतभेदों * से कोई भी लाभ न उठा सका था, परन्तु यदि उसे इस मतभेद की सच्ची खबर मिल भी जाती तो भी गोदावरी के तट पर स्थित टोका के मन्दिरों को तोड़ देने मात्र से हिन्दू इतने भड़क गये थे कि लाख मतभेद के बावजूद भी मराठों का कोई भी दल नेजाम अली का साथ न देता। फिर भी निजाम अली के इस निर्विरोध कृत्य में ही मुसलमान सिपाहियों ने अपनी विजय मान ली और जब निजाम अली पूना की तरफ बढ़ा तभी रामचन्द्र जादव ‡ और मुगल सेना में नियुक्त सभी मराठा सैनिक, अपने धर्म के इस अपमान से क्षुब्ध होकर पेशवा की तरफ आ गए, साथ ही निजामुलमुल्क के सब से छोटे बेटे मीर मुगल को भी अपने साथ फोड़ लाये।

यद्यपि मुगल आगे बढ़ते रहे, परन्तु उनका प्रतिरोध करने की भावना भी मराठों में बढ़ती गई और जब वे पूना से केवल १४ मील की दूरी पर थे, निजाम अली ने भी मराठों की सन्धिवार्ता का स्वागत किया और बाला जी राव द्वारा जीते गये समस्त मुगल क्षेत्रों को वापस लेने की अपनी मांग को ढीला कर दिया। एक वार्ता प्रारम्भ हो गई जिसके अनुसार रघुनाथ राव ने औरङ्गाबाद और बेदर में से २७ लाख रुपये की सलाना मालगुजारी वाले भू-भाग को, शान्ति-स्थापना के मूल्य के रूप में निजाम अली को देना स्वीकार किया। रामा जी पन्त के मूर्खतापूर्ण प्रस्तावों के कारण बम्बई सरकार से सैनिक सहायता सम्बन्धी सन्धिवार्ता भी अचानक समाप्त हो गई। निजाम अली से सन्धि हो जाने के बाद पेशवा, सदाशिव राव भाऊ के मामा त्र्यम्बक राव के साथ मालगुजारी वसूलने के लिये अपने राज्य क्षेत्र के दक्षिणी भाग में × गया †। निजाम अली बीदर की तरफ लौटा, उसने जुलाई के महीने में सलावजंग को कैद कर लिया और लगभग १५ महीने बाद, अपने एक और भाई को कत्ल करके अपने अधिकार को

सन् १६६२ ई०

---

* ऐसा प्रतीत होता है कि बम्बई सरकार भी इन मतभेदों के विषय में निजाम अली से कम भिज्ञ नहीं थी, हम अच्छी तरह जानते हैं, उनका कहना है, "कि निजाम अली पूना के निकट है और अपने अफसरों तथा महाजनों की कमजोरी के कारण ब्राह्मण उसका सफल प्रतिरोध नहीं कर सकते, और तारा बाई तथा सभी मराठे—ब्राह्मणों के विरुद्ध हैं, और उनका यह विरोध उचित अवसर पर प्रदर्शित होगा।"

‡ धन्ना जी जादव का वंशज। सिन्ध खेर का जादव अपने पूर्वज लुकजी जादव राव के मलिक अम्बर के बेटे द्वारा कत्ल किये जाने के बाद से ही मुगलों के मित्र बने हुये थे।

† मराठा पान्डुलिपि और पूना रिकार्ड्स कर्नाटक के इस अभियान का उल्लेख नहीं करता और इससे मैं यह निस्कर्ष निकालता हूँ कि माधवराव ने यदि कृष्णा नदी को पार किया भी था तो उससे आगे नहीं बढ़ा था।

× १४ वीं रबी हिजरी सन् ११७५ मुस्लिम विवरणों के आधार पर। मैंने इसी तारीख को माना है क्योंकि उसी समय सलावत जंग सेना के साथ पूना के पास था। अंग्रेजी लेखकों के अनुसार उसकी हत्या १८ जुलाई १७६१ को हुई थी।

सुरक्षित कर लिया,[*] यद्यपि उसका यह असमर्थ भाई किसी तरह भी उसका प्रतिद्वन्दी नहीं हो सकता था, जब कि उस बेचारे का कोई मददगार भी नहीं था ।

माधवराव के पूना से लौटने के बाद ही उसके तथा उसके चाचा में विवाद उत्पन्न हो गया जिसका कारण यह था कि माधवराव ने भी प्रशासन में भाग लेने की इच्छा व्यक्त की थी। रघुनाथराव, सखाराम बापू तथा कुछ अन्य मंत्री माधवराव के इस हठ से बहुत मर्माहत हुए । यह सोचकर, कि हमारी सहायता के बिना प्रशासन चल ही नहीं सकता, वे अपना कार्य छोड़-छोड़ कर घर बैठ गए । लेकिन सखाराम बापू ने अपने पद से त्याग पत्र दे दिया क्योंकि वह न तो रघुनाथराव का ही साथ छोड़ना चाहता था और न माधवराव का विरोध ही करना चाहता था; साथ ही वह समझौते का रास्ता भी खुला रखना चाहता था । माधवराव ने इस स्थिति में तेजी से कार्य किया; उसने त्र्यम्बकराव मामा से दीवान का पद ग्रहण करने का अनुरोध किया । त्र्यम्बकराव ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और अपनी सहायता के लिए मेरिच के जागीरदार गोपालराव गोविन्द पटवर्धन को नियुक्त कर लिया । माधवराव ने अन्य योग्य व्यक्तियों के चुनाव में भी उल्लेखनीय बुद्धिमता का परिचय दिया; उसने बालाजी जर्नादन भानू (जो बाद में नाना फड़नवीस के नाम से विख्यात हुआ) और हरी पन्त फड़के को अपना व्यक्तिगत कारकुन बनाया ।

त्र्यम्बकराव द्वारा दीवान का पद ग्रहण कर लेने पर सखाराम बापू के हृदय में उसके विरुद्ध ईर्ष्या की भावना बढ़ने लगी और रघुनाथराव भी उससे अदमनीय रूप से घृणा करने लगा । यह ईर्ष्या पूर्ण परिस्थिति पूर्ण रूप से खुली शत्रुता में बदल गई जब कि रघुनाथराव की विकट स्वभाव वाली पत्नी आनन्दीबाई तथा मृत पेशवा की विधवा व वर्तमान पेशवा की माँ गोपिकाबाई में गम्भीर कलह प्रारम्भ हो गया । रघुनाथराव अभी तक नासिक में पड़ा हुआ था, वहाँ से वह औरंगाबाद की ओर बढ़ा जहाँ के सूबेदार मुरार खाँ ने बड़े हर्ष से उसका स्वागत किया; उसे वहीं से मुगलों की मदद मिल गई और कुछ ही समय में मराठे भी पर्याप्त संख्या में उससे मिल गए । इस विशाल सेना के साथ वह पूना की ओर बढ़ा, तथा पूना और अहमदनगर के बीच में ही उसने अपने भतीजे की सेना पर आक्रमण कर दिया; माधवराव मुकावले में निर्बल पड रहा था इसलिए उसने अपनी हार मान ली । निजाम अली भी रघुनाथराव की मदद के लिए आगे बढ़ा आ रहा था । जानोजी भोसले भी, बिना किसी निश्चित उद्देश्य की घोषणा के बरार से चल पड़ा था; प्रत्येक घटना से यही सम्भावना प्रकट होती थी कि पूना सरकार में कोई बड़ी क्रान्ति होने ही वाली है । इन सब परिस्थितियों को देख कर, राज्य को विभाजित होने से बचाने के लिए माधवराव ने अपने को पूर्ण रूप से रघुनाथराव के अधिकार में समर्पित कर दिया । जब कि उसके साथी अपना सर छिपाने की जगह ढूंढ़ने में व्यस्त थे, माधवराव ने स्वयं को अपने चाचा के समक्ष प्रस्तुत किया और अपना उचित स्थान प्राप्त करने के लिए उसने विनम्र तर्क प्रस्तुत किए । यद्यपि रघुनाथराव ने उसें नजरबन्द कर दिया फिर भी उसे माधवराव को इतना सम्मान देना पड़ा जितना सम्मान अपनी अधिकतम समृद्धि के समय भी स्वयं उसे न मिल सका था । मुगलों द्वारा प्राप्त सहायता के बदले में उसने मुगलों को दौलताबाद, शिवनेर, असीरगढ़ और अहमदनगर के किले देने का वादा किया था जिनकी मालगुजारी कीं आय ५१ लाख रुपए थे । निजाम अली ने मराठों में समझौता होते देखकर बहुत संतोष व्यक्त किया । जब वह भीमा नदी पर स्थित पैरगाँव में पहुंचा तो उसके तथा मराठों के बीच शान्ति वार्ता हुई जिसके अनुसार मराठा सरकार ने निजाम अली से जीते गए क्षेत्रों को वापस करने का आदेश जारी किया परन्तु कुछ कारणवश (जिनकी

---

[*] ८ वीं रबी-उल अव्वल, हिजरी ११७७ ।

व्याख्या आगे की जायगी) बाद में ये आदेश रद्द कर दिए गए और वादा किए गये किलों में से दौलताबाद के अतिरिक्त कोई भी किला मराठों ने नहीं छोड़ा ।[*]

रघुनाथराव की शक्ति अब अनियंत्रित हो गई थी। उसने सखाराम बापू तथा नीलकंठ महादेव पुरन्दरे को अपना दीवान तथा मुख्य सहायक नियुक्त किया। उसने सखाराम बापू को ९ लाख की एक जागीर प्रदान की और नीलकंठ महादेव पुरन्दरे को पुरन्दर के किले का शासक बना दिया। जब से बालाजी विश्वासनाथ ने सर्वप्रथम इस किले पर अधिकार किया था तभी से यह किला पेशवा परिवार के हाथों में ही रहता था। रघुनाथराव का अगला कदम और भी धृष्टतापूर्ण था। जगजीवन प्रतिनिधि की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी हुआ उसका भतीजा श्री निवास गंगाधर, जो अपने प्रारम्भिक नाम-भुवन राव-से अधिक विख्यात है। परन्तु रघुनाथराव ने उसे पदच्युत करके अपने नाबालिग पुत्र भास्करराव को प्रतिनिधि के पद पर रख दिया और नारो शंकर राजा बहादुर) को मुतलिक का पद दे दिया। इस प्रकार एक तरह से उसी को प्रतिनिधि का पद प्रदान कर दिया। उसने रामचन्द्र जादव को सेनापति बना लिया जिसने कि पिछले वर्ष मुगलो का साथ छोड़ दिया था और जिसका दादा, विख्यात धनाजी पहले ही मराठों का सेनापति रह चुका था। परन्तु सेनापति के पद के साथ-साथ उसे गुजरात का प्रशासक बनाने का वादा भी किया गया था जिसके पूर्ण न किए जाने से निराश होकर उसने अवसर पाते ही निजाम अली से मित्रता कर लिया था। कान्होजी मोहिते को सर-लश्कर के पद पर नियुक्त किया गया और बिठ्ठल शिव देव (विंचूरकर[†]) को भी उच्च पद प्रदान किया गया। पेशवाओं के फड़नवीस होने का जो अधिकार बालाजी विश्वानाथ के समय से ही भानूके परिवारको मिला हुआ था, वह भी मोराबा बाबूराव से छीनकर चिन्तू विठ्ठलको दे दिया गया।

इन परिवर्तनों से काफी असन्तोष फैल गया, परन्तु जब रघुनाथराव ने गोपाल
सन् १७६३] राव पटवर्धन से अपना प्रतिशोध पूरा करने के लिए मेरिच पर आक्रमण करके किले को अपने अधिकार में कर लिया, तो बहुत से सरदारों के हृदय उसके प्रति घृणा से भर उठे, और इन लोगों में से अधिकांश व्यक्ति ऐसे थे जिन्होंने माधवराव के विरुद्ध उसका पक्ष मजबूत करने तथा उसकी सहायता करने का इरादा किया था। इधर गोपालराव तथा अन्य सरदार, जो रघुनाथराव द्वारा सताए गए थे, निजाम अली के वजीर विठ्ठल सुन्दर के साथ प्रीतिवार्ता में लगे हुए थे। निजाम अली का यह वजीर एक ब्राह्मण था। जिसे राजा प्रताप वंत का खिताब देकर दीवान के पद पर उसी समय नियुक्त किया गया था जब कि निजाम अली ने अपने भाई सलावतजङ्ग को कैद किया था। यह कहा जाता है कि मुराद खाँ द्वारा निश्चित योजना से द्वेष रखते हुए विठ्ठल सुन्दर ने निजाम अली को यह राय देना प्रारम्भ किया कि मराठों को पूर्णतः पराजित करने का यही सबसे उचित अवसर है। उसने कहा कि सर्वोत्तम नीति यही होगी कि कोंकण के ब्राह्मणों का शासन समाप्त करके जानोजी भोंसले को संरक्षक घोषित कर दिया जाय और ऐसी स्थिति में (चूंकि सतारा का राजा प्रशासन करने के अयोग्य है) यह बहाना बनाया जाय कि ताराबाई की मृत्यु से जानोजी ही न्यायोचित संरक्षक है। इस योजना से जानोजी प्रसन्नता पूर्वक सहमत हो गया, परन्तु इधर निजाम

---

[*] खजाना-ए-अमीन; हदींक-ए-आलम; मराठा पाण्डुलिपि।

[†] उसे 'पन्त राज के पद पर नियुक्त किया गया था। यह पद शाहू की सरकार के काल में मालगुजारी की पुनः व्यवस्था करते समय बनाया गया था। सर्वप्रथम यह पद, राजा के अधीन रह कर निरीक्षण एवं नियंत्रण के लिए बनाया गया था परन्तु कुछ समय बाद ही इसका कार्य महत्वहीन हो गया; इस रूप में यह पद आज भी चालू है।

अली (जो स्वभावतः एक साथ एक ही योजना पर दृढ़ नहीं रहता था) ने कोल्हापुर के राजा से भी, गुप्त रूप से वार्ता प्रारम्भ कर दिया जब कि उसका दीवान दूसरी तरफ वार्ता चला रहा था। निजाम अली का ध्येय यह था कि यदि जानोजी का दावा सही साबित करने में कोई असुविधा सामने आ पड़े तो उसका स्थान लेने के लिए कोई दूसरा दावेदार भी तैयार रहे।* उसे हर तरफ से सफलता की ही आशा दिखाई पड़ती थी; मीर मुगल भी रघुनाथराव द्वारा उपेक्षित होकर अपने भाई के पास लौट आया; बहुत से अन्य मराठा सरदार भी रघुनाथराव के अन्यायों से त्रस्त होकर मुगलों से आ मिले। ऐसे मराठा सरदारों में प्रमुख थे मोराबा फड़नवीस, सदाशिव रामचन्द्र (रामचन्द्र शेणवी का पुत्र), विस्थापित प्रतिनिधि भुवन राव, और गोपालराव पटवर्धन। पैरगाँव में पहले जो सन्धि हो चुकी थी, उसके अनुसार अभी तक वादा किए हुए जिले भी मुगलों को नहीं मिले थे, इससे वह सन्धि भी टूटी हुई मान ली गई। पुरानी शत्रुता फिर से ताजी हो गई। रघुनाथराव उस प्रकार के प्रबल शत्रु का सामना करने के लिए जरा भी तैयार नहीं था। उसने इस विपति में माधवराव को भी महत्व देकर उससे अधिकतम सम्भव सहायता प्राप्त की। यद्यपि माधव राव इस समय भी नजर बन्द ही था, परन्तु इस संकटकाल में उसने अपने चाचा के प्रति अपने हृदय के सारे वैरभाव को भूल गया। उसने अपनी सारी शक्ति व बुद्धि तथा अपने समस्त प्रभाव का प्रयोग अपने चाचा की सहायता के लिए किया ताकि इस धूर्त और प्रवल विदेशी शत्रु से देश को बचाया जा सके; इस विपति में माधवराव होल्कर और दभा जी गायकवाड़ भी रघुनाथराव का साथ दे रहे थे। परन्तु फिर भी रघुनाथराव की सेना इतनी अधिक नहीं थी कि निजामअली की विशाल संयुक्त सेना का सामना कर सके। रघुनाथराव के पक्ष में केवल एक बात थी और वह यह कि निजामअली की सेना में सैनिकों के पास वहुत हल्के अस्त्र ही थे। मल्हाराव होलकर का भी मत यही था कि अस्त्रों के मामले में वे अपने शत्रुओं से बढ़े चढ़े हैं। रघुनाथराव की सेना दिखावटी तौर पर युद्ध के लिए आगे बढ़ी, परन्तु उन्होंने कहीं भी युद्ध नहीं किया और मुगल सेना के बगल से गुजरते हुए रघुनाथराव, अपनी पूरी सेना के साथ औरंगाबाद की तरफ बढ़ चला। उसने औरंगाबाद पर अधिकार करने का प्रयत्न किया परन्तु उसका प्रयास सफल नहीं हुआ। इसी समय पीछे पीछे निजामअली भी आ पहुंचा परन्तु उसके पहुंचने से पहले ही रघुनाथराव सदलबल बरार की तरफ बढ़ गया। उसने जानोजी भोंसले के अधिकार क्षेत्र में घुसकर वहां लूट मार मचा दिया। तत्पश्चात् उसने मलकापुर से कर के रूप में ६० हजार रुपया वसूल किया। जब उसका फिर पीछा किया तो वह मूंगीपट्टन की तरफ वापस लौट आया। वहां से उसने दक्षिणपूर्व की ओर प्रयाण किया और मुगल क्षेत्रों में पर्याप्त आतंक स्थापित कर दिया। निजाम अली ने भी कुछ समय तक तो उनका पीछा किया, पर जब उसने देखा कि मराठों का पीछा करके उन्हें पकड़ना सम्भव नहीं है, तो उसने अपने विनाशकारी कदम पूना की तरफ बढ़ाए। पूना जाने में उसका उद्देश्य था पूना को लूटना। इस बात की खबर पाकर रघुनाथराव भी, बदला लेने की भावना से प्रेरित होकर हैदराबाद की तरफ बढ़ चला।

जब पूना के निवासियों को यह खबर मिली कि मुगल सेना पूना की तरफ बढ़ी चली आ रही है तो वे आतंकित हो गए। लोग अपनी सामर्थ्य भर, अपनी धन सम्पत्ति को इधर उधर हटा छिपाकर, शरण लेने के लिए या तो पहाड़ी किलों की ओर या कोंकण की तरफ भाग खड़े हुए। पेशवा के परि-

---

* मराठा पाण्डुलिपि; सुनी सुनाई बातें; हदीक-ए-आलम; तथा कोल्हापुर के राजा द्वारा प्रदत्त निजाम अली के मूल पत्र। ये पत्र शम्भू जी की विधवा जीजी वाई को सम्बोधित करके लिखे गए थे जो कि अपने दत्तक पुत्र शिवाजी के निर्बल होने के कारण उसकी सरंक्षिका बनी हुई थी।

व्याख्या आगे की जायगी) बाद में ये आदेश रद्द कर दिए गए और वादा किए गये किलों में से दौलताबाद के अतिरिक्त कोई भी किला मराठों ने नहीं छोड़ा ।*

रघुनाथराव की शक्ति अब अनियंत्रित हो गई थी । उसने सखाराम बापू तथा नीलकंठ महादेव पुरन्दरे को अपना दीवान तथा मुख्य सहायक नियुक्त किया । उसने सखाराम बापू को ९ लाख की एक जागीर प्रदान की और नीलकंठ महादेव पुरन्दरे को पुरन्दर के किले का शासक बना दिया । जब से बालाजी विश्वासनाथ ने सर्वप्रथम इस किले पर अधिकार किया था तभी से यह किला पेशवा परिवार के हाथों में ही रहता था । रघुनाथराव का अगला कदम और भी धृष्टतापूर्ण था । जगजीवन प्रतिनिधि की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी हुआ उसका भतीजा श्री निवास गंगाधर, जो अपने प्रारम्भिक नाम-भुवन राव-से अधिक विख्यात है । परन्तु रघुनाथराव ने उसे पदच्युत करके अपने नाबालिग पुत्र भास्करराव को प्रतिनिधि के पद पर रख दिया और नारो शंकर राजा बहादुर) को मुतलिक का पद दे दिया । इस प्रकार एक तरह से उसी को प्रतिनिधि का पद प्रदान कर दिया । उसने रामचन्द्र जादव को सेनापति बना लिया जिसने कि पिछले वर्ष मुगलो का साथ छोड़ दिया था और जिसका दादा, विख्यात धनाजी पहले ही मराठों का सेनापति रह चुका था । परन्तु सेनापति के पद के साथ-साथ उसे गुजरात का प्रशासक बनाने का वादा भी किया गया था जिसके पूर्ण न किए जाने से निराश होकर उसने अवसर पाते ही निजाम अली से मित्रता कर लिया था । कान्होजी मोहिते को सर-लश्कर के पद पर नियुक्त किया गया और बिठ्ठल शिव देव (विंचूरकर †) को भी उच्च पद प्रदान किया गया । पेशवाओं के फड़नवीस होने का जो अधिकार बालाजी विश्वानाथ के समय से ही भानूके परिवारको मिला हुआ था, वह भी मोराबा बाबूराव से छीनकर चिन्तू विठ्ठलको दे दिया गया ।

इन परिवर्तनों से काफी असन्तोष फैल गया, परन्तु जब रघुनाथराव ने गोपाल सन् १७६३] राव पटवर्धन से अपना प्रतिशोध पूरा करने के लिए मेरिच पर आक्रमण करके किले को अपने अधिकार में कर लिया, तो बहुत से सरदारों के हृदय उसके प्रति घृणा से भर उठे, और इन लोगों में से अधिकांश व्यक्ति ऐसे थे जिन्होंने माधवराव के विरुद्ध उसका पक्ष मजबूत करने तथा उसकी सहायता करने का इरादा किया था । इधर गोपालराव तथा अन्य सरदार, जो रघुनाथराव द्वारा सताए गए थे, निजाम अली के वजीर विठ्ठल सुन्दर के साथ प्रीतिवार्ता में लगे हुए थे । निजाम अली का यह वजीर एक ब्राह्मण था । जिसे राजा प्रताप वंत का खिताब देकर दीवान के पद पर उसी समय नियुक्त किया गया था जब कि निजाम अली ने अपने भाई सलावतजङ्ग को कैद किया था । यह कहा जाता है कि मुराद खाँ द्वारा निश्चित योजना से द्वेष रखते हुए विठ्ठल सुन्दर ने निजाम अली को यह राय देना प्रारम्भ किया कि मराठों को पूर्णतः पराजित करने का यही सबसे उचित अवसर है । उसने कहा कि सर्वोत्तम नीति यही होगी कि कोंकण के ब्राह्मणों का शासन समाप्त करके जानोजी भोंसले को सरंक्षक घोषित कर दिया जाय और ऐसी स्थिति में (चूंकि सतारा का राजा प्रशासन करने के अयोग्य है) यह बहाना बनाया जाय कि ताराबाई की मृत्यु से जानोजी ही न्यायोचित संरक्षक है । इस योजना से जानोजी प्रसन्नता पूर्वक सहमत हो गया, परन्तु इधर निजाम

---

* खजाना-ए-अमीन; हदीक-ए-आलम; मराठा पाण्डुलिपि ।

† उसे 'पन्त राज के पद पर नियुक्त किया गया था । यह पद शाहू की सरकार के काल में मालगुजारी की पुनः व्यवस्था करते समय बनाया गया था । सर्वप्रथम यह पद, राजा के अधीन रह कर निरीक्षण एवं नियंत्रण के लिए बनाया गया था परन्तु कुछ समय बाद ही इसका कार्य महत्वहीन हो गया; इस रूप में यह पद आज भी चालू है ।

अली (जो स्वभावतः एक साथ एक ही योजना पर दृढ़ नहीं रहता था) ने कोल्हापुर के राजा से भी, गुप्त रूप से वार्ता प्रारम्भ कर दिया जब कि उसका दीवान दूसरी तरफ वार्ता चला रहा था। निजाम अली का ध्येय यह था कि यदि जानोजी का दावा सही साबित करने में कोई असुविधा सामने आ पड़े तो उसका स्थान लेने के लिए कोई दूसरा दावेदार भी तैयार रहे।* उसे हर तरफ से सफलता की ही आशा दिखाई पड़ती थी; मीर मुगल भी रघुनाथराव द्वारा उपेक्षित होकर अपने भाई के पास लौट आया; बहुत से अन्य मराठा सरदार भी रघुनाथराव के अन्यायों से त्रस्त होकर मुगलों से आ मिले। ऐसे मराठा सरदारों में प्रमुख थे मोराबा फड़नवीस, सदाशिव रामचन्द्र (रामचन्द्र शेणवी का पुत्र), विस्थापित प्रतिनिधि भुवन राव, और गोपालराव पटवर्धन। पैरगांव में पहले जो सन्धि हो चुकी थी, उसके अनुसार अभी तक वादा किए हुए जिले भी मुगलों को नहीं मिले थे, इससे वह सन्धि भी टूटी हुई मान ली गई। पुरानी शत्रुता फिर से ताजी हो गई। रघुनाथराव उस प्रकार के प्रबल शत्रु का सामना करने के लिए जरा भी तैयार नहीं था। उसने इस विपति में माधवराव को भी महत्व देकर उससे अधिकतम सम्भव सहायता प्राप्त की। यद्यपि माधव राव इस समय भी नजर बन्द ही था, परन्तु इस संकटकाल में उसने अपने चाचा के प्रति अपने हृदय के सारे वैरभाव को भूल गया। उसने अपनी सारी शक्ति व बुद्धि तथा अपने समस्त प्रभाव का प्रयोग अपने चाचा की सहायता के लिए किया ताकि इस धूर्त और प्रवल विदेशी शत्रु से देश को बचाया जा सके : इस विपति में माधवराव होल्कर और दभा जी गायकवाड़ भी रघुनाथराव का साथ दे रहे थे। परन्तु फिर भी रघुनाथराव की सेना इतनी अधिक नहीं थी कि निजामअली की विशाल संयुक्त सेना का सामना कर सके। रघुनाथराव के पक्ष में केवल एक बात थी और वह यह कि निजामअली की सेना में सैनिकों के पास वहुत हल्के अस्त्र ही थे। मल्हाराव होलकर का भी मत यही था कि अस्त्रों के मामले में वे अपने शत्रुओं से बढ़े चढ़े हैं। रघुनाथराव की सेना दिखावटी तौर पर युद्ध के लिए आगे बढ़ी, परन्तु उन्होंने कहीं भी युद्ध नहीं किया और मुगल सेना के बगल से गुजरते हुए रघुनाथराव, अपनी पूरी सेना के साथ औरंगाबाद की तरफ बढ़ चला। उसने औरंगाबाद पर अधिकार करने का प्रयत्न किया परन्तु उसका प्रयास सफल नहीं हुआ। इसी समय पीछे पीछे निजामअली भी आ पहुंचा परन्तु उसके पहुंचने से पहले ही रघुनाथराव सदलबल बरार की तरफ बढ़ गया। उसने जानोजी भोंसले के अधिकार क्षेत्र में घुसकर वहां लूट मार मचा दिया। तत्पश्चात् उसने मलकापुर से कर के रूप में ३० हजार रुपया वसूल किया। जब उसका फिर पीछा किया तो वह मूंगीपट्टन की तरफ वापस लौट आया। वहां से उसने दक्षिणपूर्व की ओर प्रयाण किया और मुगल क्षेत्रों में पर्याप्त आतंक स्थापित कर दिया। निजाम अली ने भी कुछ समय तक तो उनका पीछा किया, पर जब उसने देखा कि मराठों का पीछा करके उन्हें पकड़ना सम्भव नहीं है, तो उसने अपने विनाशकारी कदम पूना की तरफ बढ़ाए। पूना जाने में उसका उद्देश्य था पूना को लूटना। इस बात की खबर पाकर रघुनाथराव भी, बदला लेने की भावना से प्रेरित होकर हैदराबाद की तरफ बढ़ चला।

जब पूना के निवासियों को यह खबर मिली कि मुगल सेना पूना की तरफ बढ़ी चली आ रही है तो वे आतंकित हो गए। लोग अपनी सामर्थ्य भर, अपनी धन सम्पत्ति को इधर उधर हटा छिपाकर, शरण लेने के लिए या तो पहाड़ी किलों की ओर या कोंकण की तरफ भाग खड़े हुए। पेशवा के परि-

---

* मराठा पाण्डुलिपि; सुनी सुनाई बातें; हदीक-ए-आलम; तथा कोल्हापुर के राजा द्वारा प्रदत्त निजाम अली के मूल पत्र। ये पत्र शम्भू जी की विधवा जीजी वाई को सम्बोधित करके लिखे गए थे जो कि अपने दत्तक पुत्र शिवाजी के निर्बल होने के कारण उसकी संरक्षिका बनी हुई थी।

वार के सदस्य तथा समस्त सरकारी कागजात सिंहगढ़ की तरफ भेज दिए गए। परन्तु इसी समय जानोजी भोंसले का एक अफसर-बाबू करोंदिया तेजी से पूना की तरफ बढ़ता चला आ रहा था। उसने पूना से भागते हुए कुछ भगोड़ों की धन सम्पत्ति छीन ली। उसके सैनिकों ने सिंहगढ़ किले के नीचे के गाँव में आग लगा दिया। यही नहीं, उसने बहुत से सरकारी और ऐतिहासिक कागजात तथा कुछ अमूल्य पाण्डुलिपियों को भी अग्नि की लपटों के हवाले कर दिया।

निजाम अली पूना नगर से कुछ दूरी पर डेरा डाले पड़ा हुआ था। उसने अपने सैनिकों को नगर में लूटमार मचाने की पूरी स्वतन्त्रता दे दी। उन्होंने सर्वत्र लूटमार मचाई, और जिन मकानों में उन्हें धन नहीं मिला उन्हें मुगल सैनिकों ने या तो ध्वस्त कर दिया या जला डाला। इस भयानक लूटमार तथा विध्वन्स के पश्चात् निजाम अली पुरन्दर की ओर बढ़ा। पुरन्दर से लेकर पूर्व की ओर भीमा नदी के किनारे तक के समस्त क्षेत्र को उसने लूटमार मचाकर तथा गिरा जला कर वीरान कर डाला। परन्तु इसी समय वर्षा ऋतु की प्रचंडता इतनी अधिक बढ़ गई कि निजाम अली किसी न किसी स्थान पर पड़ाव डाल कर वर्षा ऋतु के समाप्त हो जाने की प्रतीक्षा करना चाहता था। पड़ाव डालने के लिए उसने बीदर जाने का इरादा किया परन्तु जानोजी भोंसले की राय थी कि निजाम का पड़ाव बीदर के बदले औरंगवाद में ही पड़े तो अधिक उचित होगा।

इधर जब निजाम अली पड़ाव डालने के चक्कर में पड़ा हुआ था, उसी बीच में उसकी गतिविधियों का निरीक्षण करने के उद्देश्य से रघुनाथ राव भी उसी तरफ लौट आया। हैदराबाद चारों तरफ से ऊंची दीवालों द्वारा घिरा हुआ था, जिसके कारण रघुनाथ राव मुगलों की इस राजधानी को जरा भी हानि न पहुंचा सका * फिर भी उसने आसपास के देहाती इलाकों को घेर घार कर लगभग एक लाख अस्सी हजार रुपया कर के रूप में वसूल कर लिया †। इसके साथ ही साथ वह उन मराठा सरदारों को फोड़कर अपने साथ मिला लेने के लिए गुप्त रूप से वार्ताएं चला रहा था जो कुछ समय पहले उसी की कुचेष्टाओं से खीझ कर निजामअली से जा मिले थे। परन्तु इन सरदारों में से केवल जानोजी भोंसले ही उसकी तरफ कुछ आकर्षित हुआ। जानोजी ने तो केवल एक स्वार्थवश मुगलों का साथ पकड़ लिया था। वह समझता था कि केवल मुगलों की सहायता से ही उसकी महत्वाकांक्षाएं पूरी हो सकती हैं। परन्तु जब उसने देखा कि निजाम अली का दीवान राजा प्रतापवन्त दोहरी चाल खेल रहा है तो उसकी आशाएं धूल में मिल गई परन्तु साथ ही वह मुगलों से सतर्क भी हो गया। अतः ऐसी परिस्थिति में, जब रघुनाथराव ने दोस्ती का हाथ उसकी तरफ बढ़ाया तो वह केवल इसी शर्त पर उसका साथ देने के लिए तैयार हो गया कि उसे केवल ३२ लाख रुपए की मालगुजारी वाला भूक्षेत्र दे दिया जाय। उसकी यह मांग भी थी कि उसे वही क्षेत्र दिया जाय जिसे रघुनाथराव ने अपनी सहायता के बदले में पहले निजामअली को देने का वादा गिया था। उसने कहा कि यदि रघुनाथराव उसकी यह शर्त मान ले तो वह तुरन्त निजामअली का साथ छोड़ सकता है। इसी समय अचानक उसे एक बहुत अच्छा अवसर भी मिल गया।

इस समय मुगल सेना तेजी से औरंगाबाद के रास्ते पर चली जा रही थी। रघुनाथ राव भी उनके पीछे-पीछे कुछ दूरी पर उनका पीछा करता हुआ चला आरहा था। जब मुगल सेना गोदावरी नदी के किनारे पर पहुच गई तो निजाम अली, अपनी सेना के एक भाग के साथ नदी को पार कर गया। उसने अपने दीवान तथा सेना के शेष भाग को उसी पार छोड़ दिया और ताकीद कर दी कि जब तक फौज का पूरा सामान नदी से पार न पहुंच जाय, वे गोदावरी के दक्षिणी किनारे पर स्थित राक्षस-

---

* हदीक-ए- आलम और मराठा पांडुलिपि।

† मराठा पांडुलिपि।

भुवन में ही पड़े रहे। जब निजाम अली आगे निकल गया तो जानोजी ने अच्छा अवसर पाया, उसने दीवान से इसी बात पर झगड़ा कर लिया कि उसके सैनिकों का वेतन बाँटने के लिये उसे अभी तक धन नहीं मिला है और इसी बात को गम्भीर विवाद में परिणित करके उसने दीवान का साथ छोड़ दिया और कुछ दूरी पर अपना पड़ाव डाल दिया। उसका इस प्रकार अलग पड़ाव डाल लेना रघुनाथ राव को सूचित करने का एक संकेत मात्र था। इस सूचना के पाते ही रघुनाथ राव आँधी की तरह आगे बढ़ा और गाफिल मुगल सेना पर भूखे बाघ की तरह टूट पड़ा और पर्याप्त गम्भीर मुकाबले के पश्चात् उसने सारी मुगल सेना को भेड़ बकरी की तरह काटना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार उसका आगे का रास्ता साफ हो गया। निजाम अली का दीवान, राजा प्रतापवन्त भी राक्षस भुवन में हुए इस युद्ध में काम आया।[*] यह युद्ध लगातार दो दिनों तक चलता रहा। मुगल सेना ने भी काफी प्रबल प्रतिरोध किया। स्वयं रघुनाथ राव ने इस युद्ध में काफी पराक्रम दिखाया। वह प्रत्येक आक्रमण में अपनी सेना के आगे आगे रहता था जिससे उसके सैनिक भी सदा उत्साहित होते रहते थे। एक बार तो वह लगभग बिलकुल अकेला पड़ गया, मुगलों ने उसे चारो तरफ से घेर लिया और वह अपनी रक्षक टुकड़ी से बिलकुल अलग हो गया। परन्तु ऐसी परिस्थिति में भी उसने धैर्य नहीं छोड़ा तथा असाधारण वीरता दिखाई। उसके साथ ही अन्तरंग मित्र सखाराम हरी था जो उसकी बगल में ही अदम्य उत्साह से तलवार चला रहा था। सखाराम के शौर्य तथा स्वयं अपने पराक्रम से वह काफी देर तक अपनी रक्षा करता रहा, और इसी बीच उसके भतीजे माधव राव ने पहुंच कर इस घेरे को तोड़ा और उसकी जान बचाई। दो दिन के इस पूरे युद्ध[†] में युवा पेशवा ने दुश्मनों पर अपनी वीरता, धैर्य और पराक्रम का सिक्का जमा दिया। विभिन्न स्थलों पर अपने चाचा तथा अन्य घिरे हुये साथियों को उसने इसी प्रकार अपनी जान पर खेल करके बचाया। दोनों पक्षों को इस आकस्मिक युद्ध में बहुत हानि उठानी पड़ी। कहा जाता है कि इस भयंकर युद्ध में मुगल पक्ष के लगभग दस हजार आदमी काम आये थे।[‡]

जिस समय गोदावरी के दक्षिणी किनारे पर यह युद्ध हो रहा था, निजाम अली उस पार बैठा हाथ मल रहा था। उसने अपने दीवान की मदद करने के लिये उस पार से गोलाबारी प्रारम्भ कर दी, परन्तु युद्ध की स्थिति पर इस व्यर्थ की गोलाबरी का कोई असर न पड़ा। इस प्रकार निजाम अली नदी के उत्तरी किनारे से अपनी सेना के इस भयंकर विध्वन्स का दर्शक मात्र रह गया और उससे अपनी सेना की कोई भी मदद करते न बना। अब उसे यह भय हुआ कि कहीं मराठे नदी पार करके उसे भी घेर कर समाप्त न कर दें, अतः मराठों से अपनी जान बचाने के लिये उसे मजबूरन औरंगाबाद के किले में सर छुपाना पड़ा। इधर मराठों ने कुछ ही दिनों में नदी को उतरने योग्य पाकर गोदावरी को पार कर लिया और तेजी से औरंगाबाद की तरफ बढ़े। उन्होंने एक बार फिर नगर पर

---

[*] दुर्भाग्यवश वह अपने ही एक सैनिक के हाथों गलती से घायल हो गया, और तत्पश्चात् दमाजी गायकवाड़ के साथ मराठों के एक दल के हाथों उसकी मृत्यु हुई। कुछ लोग मुराद खाँ पर यह आरोप लगाते हैं कि उसी ने कुछ व्यक्तियों को दीवान को मारने के लिये नियुक्त किया था, परन्तु यह आरोप गलत प्रतीत होता है। होलकर की टुकड़ी के कुछ अफगान सैनिकों ने दीवान के सर को काटकर उसे भाले की नोक पर रखकर चारों तरफ घुमाया।

[†] मराठे इस युद्ध को टेन्डुला का युद्ध कहते हैं।

[‡] सभी मराठा पान्डुलिपियों के अनुसार मुगल हताहतों की यह संख्या न्यूनतम है। मुगल इतिहासकारों ने उस युद्ध में निजाम अली के मृत सैनिकों की संख्या दी ही नहीं है।

आक्रमण किया परन्तु वे इस प्रयास में फिर असफल रहे। इस प्रयास में मराठे पर्याप्त संख्या में हताहत भी हुये। इस घटना के तुरन्त बाद ही निजाम अली ने रघुनाथ राव से भेंट की। उसने इस अप्रत्याशित युद्ध पर बहुत खेद प्रकट किया और उसकी तरफ से जो भी त्रुटियाँ हुई थी उन सबका उत्तरदायी उसने अपने मृत दीवान को बताया। निजाम अली स्वभाव से ही धूर्त और कूटनीतिज्ञ था। उसने सारा दोष अपने मृत दीवान पर लादकर अपनी मीठी बातों से सीधे सादे और अच्छे स्वभाव वाले राघोवा (रघुनाथराव) को शीघ्र ही अपने पक्ष में कर लिया। राघोवा उसकी धूर्ततापूर्ण परन्तु कर्णप्रिय बातों से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने सारी बीती हुई बातों को नजर अन्दाज करके निज़ाम अली को क्षमा कर दिया। यही नहीं वह निजाम अली द्वारा विपत्ति में की गई अपनी सहायता को भी नहीं भूला। पैरगाँव में निजाम अली से हुई सन्धि के अनुसार ५१ लाख रुपये की मालगुजारी वाला जो क्षेत्र राघोवा ने उसे देने का वादा किया था, वह भी इसी प्रसन्नता में निजाम अली को दे डाला, उसने उस क्षेत्र में से वही क्षेत्र घटा दिया जो उसने जानोजी भोंसले को, उसके विश्वासघात के बदले में देने का वादा किया था। जानोजी को दिये जाने वाले क्षेत्र की वार्षिक आय ३२ लाख रुपया थी। राघोवा के मंत्रियों को इस तरह व्यर्थ में भूक्षेत्र निजाम अली को दे देना उचित नहीं मालूम हुआ और उन्होंने राघोवा पर इस बात के लिये दबाव डाला कि निजाम अली को केवल १० लाख रुपये सालाना मालगुजारी भर का क्षेत्र ही दिया जाय। इस प्रकार उनके प्रयास से प्रारम्भिक सन्धि में दी जानेवाली रकम में से ९ लाख रुपये * की बचत हुई, और निजाम अली को ५१ लाख रुपये के बदले में केवल १० लाख रुपये सालाना मालगुजारी वाला क्षेत्र ही मिल सका। अक्टूबर माह में निजाम अली के साथ राघोवा का एक नया सन्धि पत्र बनाया गया।

जिस समय जानोजी को अपने विश्वासघात की कीमत के रूप में मिले क्षेत्र से सम्बन्धित कागजात दिए जा रहे थे, माधवराव ने जानोजी भोंसले को दो नावों पर पैर रखकर चलने के लिए बहुत भला बुरा कहा। माधवराव ने उसके सिद्धान्तहीन और निन्दनीय उद्देश्यों के लिए बड़ी भर्त्सना की। अपने उसी गलत और दोहरी नीति के कारण वह एक ऐसे चक्कर में फंस गया था कि उसको उसी राज्य के विरोध में एक प्रमुख अस्त्र बनना पड़ा। जिस राज्य ने उसके पिता को इतने ऊंचे उठाया, और जिस राज्य ने हिन्दुओं को इतनी अधिक शक्ति प्रदान की। माधवराव की अधिकांश शिक्षा दीक्षा दरबार में ही हुई थी और उस तरह के वातावरण में पले एक युवा में इतनी सिद्धान्तवादिता और स्पष्टवक्तृता एक उल्लेखनीय बात है। यह बात और भी महत्वपूर्ण हो जाती है जब हम यह सोचते हैं कि यद्यपि माधवराव इस समय राघोवा के कड़े नियंत्रण में था फिर भी उसने राघोबा के एक अवसरवादो मित्र को उसकी दो राह पर चलने बाली नीति पर फटकारा। उस कठोर नियंत्रण के बावजूद भी उसकी सत्यप्रिता व न्यायप्रियता उभर ही आई, और यह नियंत्रण उसकी लोकप्रियता में अधिक समय तक बाधक न बन सका।

जिस समय निजाम अली और राघोवा के बीच समझौता पक्का हुआ उसी समय अचानक भास्कर राव की मृत्यु हो गई और प्रीतिनिधि का पद फिर रिक्त हो गया। इस बार राघोवा ने बिना किसी झन्झट के भुवनराव का पैतृक प्रीतिनिधि का पद उसे दे दिया। गोपाल राव को भी उसका

---

* मराठा पान्डुलिपि और पूना रिकार्डस। गराठा पान्डुलिपियों के अनुसार दिए जाने वाले क्षेत्र में ६ लाख की आय का क्षेत्र निकाल लिया गया। पूना रिकार्डस में दर्ज किए हुए मुस्लिम और मराठा वर्णनों की तुलना करने के बाद ही मैं किसी निस्कर्ष पर पहुँच सका हूँ, और सीधे सादे ढंग से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है, यद्यपि ये सन्धिपत्र बहुत उलझे हुए हैं।

मेरिच का किला वापस कर दिया गया और यद्यपि मोराबा फड़नवीस को तुरन्त उसके पैतृक पद में किसी प्रकार का अधिकार या भाग नहीं दिया गया, परन्तु बाद में यह पद उसके चचेरे भाई बालाजी जनार्दन को दिया गया। बालाजी जनार्दन को, इतिहास के विद्यार्थी नाना फड़नवीस के नाम से जानते हैं, आगे से मैं भी इसी नाम का प्रयोग करूँगा।

जिस समय मराठे दक्षिण में इस प्रकार के संघर्षों में उलझे हुए थे। उसी समय मैसूर के हिन्दू राज्यवंश के अवशेषों में से एक नई शक्ति का विकास हो रहा था, जिसका प्रणेता था हैदरअली खां। वह प्रारम्भ में एक नायक मात्र था परन्तु अपनी साहसिक प्रवृत्ति के कारण दिन ब दिन उसकी शक्ति बढ़ती ही जा रही थी। उसने प्रतिज्ञा की थी कि
१७६४] वह कुछ ही समय में मराठों के राज्य क्षेत्र को उनकी प्रारम्भिक सीमा तक सीमित कर देगा। उधर बसालत जंग भी इस बात की आशा रखता था कि एक दिन वह कर्नाटक में अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित करने में सफल हो सकेगा। जब उसने इस क्षेत्र में मराठों को अनुपस्थित पाया तो उसने इस अवसर का लाभ उठाकर मराठों के दक्षिणी जिले पर अधिकार करने की योजना बनाना शुरू कर दिया। उसने अपनी इस दुरभिसन्धि को पूरा करने की दृष्टि से हैदरअली की सहायता भी प्राप्त कर ली, साथ ही उसने हैदरअली को सेरा का नवाब भी बना दिया। परन्तु बसालत जंग द्वारा हैदरअली को सेरा की नवाबी देना कुछ उसी प्रकार का था जिस प्रकार कि राजा शाहू अपने अनधिकृत क्षेत्रों का अधिकार दूसरों को प्रदान कर देता था और जैसा कि विल्क्स ने कहा है, उसकी सत्ता व केवल ऐसे क्षेत्रों को दूसरों को समर्पित करने भर में ही दिखाई पड़ती थी, जब कि वास्तव में ऐसे क्षेत्रों पर स्वयं उसका अधिकार भी नहीं होता था। खैर, तो बसालतजंग ने अपने इस नए साथी के साथ अभियान प्रारम्भ कर दिया और १७६१ के अन्त तक उसने सेरा, उसकोटा और बड़ा बालापुर पर अधिकार कर लिया। इसी समय अचानक बसालतजंग को यह खबर मिली कि उसका भाई निजाम अली का इरादा उस पर आक्रमण करने का है। इसी भय से आशंकित होकर वह अपनी राजधानी अदोनी की तरफ लौट आया परन्तु हैदरअली वापस नहीं हुआ और विजय यात्रा पर बढ़ चला। १७६२ में उसने छोटा बालापुर, रायद्रुग और चित्तलद्रुग पर अपना अधिकार जमाया और कर वसूल किया। १७६३ में उसने बेदनोर पर विजय प्राप्त की और वहां की रानी तथा उसके दत्तक पुत्र को मुदगेरी के किले में कैद कर दिया। उसके एक अफसर फजल उल्ला खां ने सोण्डा तक धावा मारा। अगले वर्ष के प्रारम्भ होते होते हैदरअली ने सावनूर के नवाब को भी पराजित कर दिया। उसने फजल उल्लाखां को उसी क्षेत्र में छोड़ दिया और उसे आदेश दे दिया कि वह मराठों की भूमि पर, जितनी दूर तक सम्भव हो सके, अधिकार करले। वह स्वयं आगे बढ़ता परन्तु इसी समय किसी आवश्यक राज्य कार्य से उसे तुरन्त बेदनोर की ओर वापस लौटना पड़ा। हैदरअली के आदेशानुसार फजल उल्लाखां ने धारवाड़ पर हमला करके उसे अपने अधिकार में ले लिया। यही नहीं, उसने उत्तर में कृष्णा नदी तक हैदरअली की चौकियां स्थापित कर दिया। *

जिस समय हैदर अली इस प्रकार वायुगति से अपने पाँव फैला रहा था उस समय मराठे हैदर की प्रगति के दर्शक बन कर चुपचाप नहीं बैठे हुए थे। उसके तीव्र प्रसार का प्रतिरोध करने के लिए पूना में एक विशाल सेना एकात्रित की जा रही थी। माधवराव ने, अपने अधिकार का दावा प्रस्तुत करके इस सेना का नेतृत्व अपने हाथ में लिया। राघोवा प्रशासन का कार्य भार सम्भालने के लिए

---

* विल्क्स

राजधानी में ही रह गया। इस बार सखाराम बापू ने भी माधवराव के दावे का समर्थन किया और अन्त में मजबूर होकर रघुनाथराव (राघोवा) ने भी माधवराव के नेतृत्व के अधिकार को स्वीकार किया; परन्तु माधवराव की निरन्तर जिद के कारण वह जलभुन कर खाक हो गया और क्रोधोन्मत होकर उसने पूना छोड़ दिया और नासिक के निकट आनन्दवल्ली नामक स्थान में जाकर निवास करने लगा। † इतना सारा विवाद निपटाने में काफी समय लग गया, और जब सारी व्यवस्था ठीक हो गई तो मराठों को अभियान प्रारम्भ करने में पर्याप्त विलम्ब हो चुका था। गोपालराव पटवर्धन कुछ पहले ही चल पड़ा था। मराठा सेना की राह रेखते हुए वह धीरे-धीरे आगे बढ़ता रहा; यहां तक कि उसने कृष्णा नदी को पार भी कर लिया तब भी मराठा सेना नहीं दिखाई पड़ी। नदी पार करते ही अचानक फजल उल्ला खाँ ने उस पर आक्रमण कर दिया। गोपालराव की बुरी तरह पराजय हुई और उसे बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी। उधर मई माह के प्रारम्भ में माधवराव के नेतृत्व में मराठा सेना का अभियान प्रारम्भ हुआ। माधवराव बड़ी तेजी से कर्नाटक की तरफ बढ़ा। उसकी सेना में ३०,००० सवार और लगभग उतनी ही संख्या में पैदल सैनिक भी थे। इतनी विशाल मराठा सेना को देखकर फजलउल्ला खाँ ने धारवाड़ के किले में एक शक्तिशाली सेना रख दी और वह स्वयं हैदरअली से मिलने के लिए तेजी से पीछे लौटा। अब फजल उल्ला खां भी हैदर से आ मिला; इस समय हैदर अली की सेना में अनुमानतः २०,००० सवार और ४०,००० पैदल सिपाही थे। पैदल सिपाहियों में से लगभग आधे सैनिक पूर्णतः अनुशासित ढंग से प्रशिक्षित किए गए थे। इस प्रकार माधवराव हैदर अली की अपेक्षा सवारों की दृष्टि से प्रबल था; साथ ही शत्रुपक्ष के विषय में खुफिया खबरें भी उसे अधिक विस्तार में मिलती थीं। उसके लिए सबसे सुविधाजनक बात यह थी कि उसके साथ सखाराम बापू जैसा अनुभवी सहायक भी था। माधवराव और सखाराम ने यह निश्चय किया कि इस समय हैदर अली ने जिस स्थिति से मोर्चे बन्दी किया है उस स्थिति में उसकी संयुक्त फौज पर आक्रमण करना उचित नहीं होगा। उन्होंने यह अधिक उचित समझा कि विभिन्न टुकड़ियों को वरधा के उत्तर की ओर नगरों और गाँवों की रक्षक टुकड़ियों को खदेड़ने के लिए भेज दिया जाय, और यही किया गया। मराठों की इस कार्य पद्धति से पार पाने के लिए हैदर अली ने भी एक योजना बनाई। वह २०,००० सैनिकों के साथ मराठों को घेरने के लिए बढ़ा। उसका उद्देश्य यह था कि इस प्रकार लड़ते पीछे हटाते मराठों को उस स्थान पर हाँक कर लाया जाय जहाँ फजल उल्ला खाँ सम्पूर्ण सुरक्षित सेना के साथ मोर्चा बनाए हुए था। उसके द्वारा इस छिछले तथा बचकाने चाल का आश्रय लिए जाने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय हैदर अली सैन्य संचालन तथा युद्धनीति के विषय में कितना कम ज्ञान रखता था। मराठों ने अपनी पुरानी नीति का आश्रय लिया। वे छोटी छोटी टुकड़ियों में जगह-जगह दिखाई पड़ने लगे और हैदर अली उन्हें खदेड़ता चला गया। इसी तरह मार्ग में एक एक टुकड़ियाँ मिलती गई और मराठों की संख्या धीरे धीरे बढ़ती गई और इसी प्रकार हटते बढ़ते लगभग पूरी मराठा सेना उसके तथा उसके कैम्प के बीच में चक्कर काटने लगी। हैदर को अपने लौटने का मार्ग बदलने के लिए मजबूर होना पड़ा और उसे अपने कैम्प तक पहुंचने में पर्याप्त हानि उठानी पड़ी। दूसरे दिन उसकी सेना वहाँ से हट कर अमरावती * के खुदे हुए मोर्चे की तरफ वापस लौट लई। चूंकि बरसात प्रारम्भ हो गई थी, इसलिए माधवराव ने नरिन्द्रा ‡ को अपना केन्द्र बनाया जो कि वरधा के उत्तर में

---

† मराठा पाण्डुलिपि

* विल्क्स और मराठा पाण्डुलिपि।

‡ विल्क्स और मराठा पाण्डुलिपि।

स्थित है। उसके घुड़सवार बरसात से शरण पाने के लिए २० मील के घेरे में स्थित सभी गाँवों में फैल गए। हैदर अली की इस पराजय के पश्चात् अब्दुल मजीद खाँ और मुराररराव घोरपड़े भी पेशवा के पास पहुंच गए। इसी समय रामचन्द्र जाधव ने पुनः मराठों का साथ छोड़ कर निजाम अली से मेल कर लिया। जाधव के इस प्रकार चले जाने पर पेशवा के सेनापति का पद पुनः रिक्त हो गया। पेशवा ने इस रिक्त पद पर घोरपड़े परिवार के प्रतिनिधि के रूप में मुराररराव घोरपड़े को नियुक्त कर दिया। पेशवा का यह कार्य बहुत ही उचित एवं न्याय संगत था। मुराररराव सन्ताजी का वंशज था जो एक वीर योद्धा था। सन्ताजी अपने समय में मराठा सरकार की बहुत सेवा की थी परन्तु राजाराम के शासन काल में उसी सन्ताजी के वंशज मुराररराव को पर्याप्त कष्ट सहना पड़ा था।

अभी तक वर्षा ऋतु के कारण सारा कार्य बन्द हो गया था, परन्तु ज्योंही मौसम कुछ साफ हुआ, माधवराव ने धारवाड़ पर घेरा डाल दिया। कुछ समय के युद्ध के पश्चात् किले का एक भाग ध्वस्त हो गया, और किले के सैनिकों ने आत्मसमर्पण कर दिया। इस प्रकार इस वरधा के उत्तर का समस्त प्रदेश उसके अधिकार में था, केवल एक किला बच गया था मन्दोद गढ़ जिस पर निरन्तर वर्षा के कारण आक्रमण न किया जा सका। माधवराव मौसम के साफ होने की प्रतीक्षा करता रहा, और ज्योंहीं मौसम ने जरा सा अनुकूल अवसर दिया, उसने इस गढ़ पर भी अधिकार कर लिया। जब माधवराव ने देखा कि अब कोई गम्भीर युद्ध करना शेष नहीं रह गया है और शीघ्र ही युद्ध सफलतापूर्वक समाप्त हो जायगा तो उसने रघुनाथराव से अनुरोध किया कि वह भी इस अभियान में सम्मिलित हो जाय और सेना का नेतृत्व सम्भाले। यह एक युवक सैनिक के आत्म नियंत्रण का बहुत अच्छा उदाहरण है जिसका उद्देश्य था कि सफलता भी प्राप्त हो जाय और आपस में कोई मनमुटाव भी न रह जाय। उसके इस सम्मान पूर्ण अनुरोध को राघोवा ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। वह माधवराव से मिलने के लिए नासिक से तुरन्त चल पड़ा और माधवराव के पास तभी जा पहुंचा जब सेना वरधा नदी को पार ही करने वाली थी।‡

सन् १७६५]

पेशवा माधवराव ने इसी बीच सोचा कि यदि अमरावती को चारों तरफ से घेरे हुए सघन वनों को काट कर साफ कर डाला जाय तो वह आसानी से वेदनोर तथा हैदर अली के बीच में स्थित रहकर दोतरफा निरीक्षण करने में समर्थ हो सकेगा। उसके सैनिकों ने ज्योंही उसकी योजना के अनुसार वनों को काटना प्रारम्भ किया, यह देख कर हैदर अली बहुत त्रस्त हुआ और चुपके से भाग निकला। उस क्षेत्र में बस्ती इतनी सघन थी कि प्रारम्भ में दो दिनों तक उसका पीछा करते हुए मराठे उसकी सेना के पिछले भाग को ही परेशान कर सके। परन्तु इस प्रकार दो दिनों की भाग दौड़ के पश्चात् तीसरे दिन हैदरअली की सेना अपेक्षाकृत खुले क्षेत्र में जा पहुंची। अवसर पाते ही मराठा सेना की एक टुकड़ी हैदरअली तथा वेदनोर के बीच में जा डटी। ऐसी परिस्थिति में हैदरअली को विवश होकर रुक जाना पड़ा। मराठों ने उसकी सेना पर जोरों का धावा किया और उसके बहुत से सैनिक अपनी जान बचाने के लिए जंगलों की तरफ भाग खड़े हुए। जब हैदर अली किसी तरह वेदनोर पहुंचा तो उसकी लम्बी चौड़ी सेना में से केवल दो हजार पांच सौ घोड़े और दस हजार पैदल सैनिक उसके साथ पहुंचे। उसकी सेना का शेष भाग राह में ही अस्त व्यस्त हो गया और उसके कई हजार सैनिक बीच में ही मार डाले गए। इधर मराठे विजय गर्व से जिधर ही बढ़े, उनकी पहली ही ललकार पर सभी किलों की रक्षक सेनाओं ने आत्मसमर्पण कर दिया। केवल अनन्तपुर की सेना ने कुछ देर तक उनका मुकाबिला किया। इसी बीच

---

‡ मराठा पाण्डुलिपि।

हैदर अली की सेना के बिखरे हुए सैनिकों में कुछ सैनिक उसके पास लौट आए, परन्तु उसने अब मराठों से युद्ध करने में कोई लाभ नहीं देखा और राघोवा से सन्धि की बातचीत चलाना प्रारम्भ कर दिया। उसने सन्धि की शर्तों को निश्चित करने का भार रघुनाथराव पर ही छोड़ दिया [†] हैदर इस बात के लिए स्वयं तैयार हो गया कि वह उन सभी जिलों को मराठों के हाथ सौंप देगा जो उसने मुरारराव घोरपड़े से छीन लिया था, उसने वादा किया कि अब वह कभी सावनेर के नवाब को परेशान नहीं करेगा, और उसकी सत्ता को स्वीकार करेगा, साथ ही पेशवा को हर जाने के रूप में ३२ लाख रुपया भी देगा [‡] यद्यपि इन शर्तों से माधवराव को विशेष सन्तोष नहीं हुआ और न उसने अपनी स्वीकृति ही दी, परन्तु चूंकि वह सन्धि सम्बन्धी सारे अधिकार अपने चाचा को दे दिया था इसलिए उसने सभी शर्तों पर अपनी सहमति प्रदान कर दी। उसने किसी भी शर्त का विरोध नहीं किया क्योंकि उसे भय था कि विरोध करने पर उसके तथा रघुनाथराव के बीच कहीं फिर मनमुटाव पैदा न हो जाय और उनके सुधरे हुए सम्बन्ध कहीं फिर न बिगड़ जाँय। इस सन्धि के पश्चात् उसने कर्नाटक छोड़ दिया और फरवरी माह के अन्त में कृष्णा नदी को पार कर लिया।

पेशवा माधवराव इस बात के लिये बहुत इच्छुक था कि वह अपने चाचा के साथ अपना सम्बन्ध बनाये रक्खे, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने प्रशासकीय शक्ति का उतना ही भाग अपने पास रखने का इरादा किया जितना कि उसके सम्मान के तथा राज्य के प्रति उसके कर्तव्य के प्रतिकूल न हो। अपने इस इरादे को पूरा करने में उसे अपने दल का विरोध करना पड़ा, यहाँ तक कि उसकी मां गोपिका वाई भी उसके इस आत्म त्याग के इरादे से बहुत अधिक नाराज हो गई। अपने वेटे के प्रति उसकी इस नाराजगी का कारण स्पष्ट था, रघुनाथ राव की स्त्री आनन्दी वाई से उसकी पहले से ही नहीं पटती थी। आनन्दी वाई के बुरे स्वभाव तथा हिंस प्रवृत्ति के कारण माधवराव की माँ गोपिका बाई सदैव उस पर तथा उसके पति रघुनाथराव पर कुपित ही रहती थी। उसने अपने वेटे को निरन्तर यही सलाह देना प्रारम्भ किया कि आत्मरक्षा के लिये रघुनाथ राव की बढ़ती हुई शक्ति को नियंत्रित करना चादिये। रघुनाथ राव भी यद्यपि स्वभाव से ही उग्र तथा चालाक था, परन्तु उसकी इच्छा शक्ति अहुत प्रबल थी, वह जल्दी किसी के वश में नहीं होता था। लेकिन एक शक्ति ऐसी भी थी जो उस जैसे व्यक्ति का भी मार्ग बदल सकती थी। रघुनाथ राव स्वयं भी माधवराव की विनम्रता से प्रभावित था और चाहता था कि वह भी अपने भतीजे द्वारा दिखाये गये शान्तिमार्ग पर ही चले। परन्तु उसकी धूर्त और कुटिल पत्नी ने अपने जाल से उसकी आकांक्षाओं का मार्ग ही परिवर्तित कर दिया। रघुनाथ राव का मस्तिष्क इन दो बिपरीत प्रभावों के निरन्तर संघर्ष से डावाँडोल हो उठा। पेशवा माधवराव यह बात खूब समझ रहा था कि इस समय रघुनाथ राव अपनी इच्छानुसार निजाम अली से भी मदद ले सकता था और जानोजी भोंसले से भी। परिस्थितियां कुछ इस प्रकार बदल रही थीं कि इस समय वह चाहता तो इन दोनों की मदद उसे एक साथ भी मिल सकती थी। यद्यपि इस समय निजाम अली जानोजी पर बहुत कुपित था क्योंकि उसने निजाम अली के साथ दगाबाजी की थी परन्तु उन दोनों के एक ही प्रकार के स्वभाव के कारण उनके बीच कोई भी झगड़ा विरोध समाप्त हो सकता था यदि इससे उन दोनों को अपना स्वार्थ साधने में सहायता मिलती।

[†] मराठा पाण्डुलिपि

[‡] विल्क्स। केवल एक मराठा पाण्डुलिपि में मुझे इस सन्धि की शर्तों का उल्लेख मिला है जिसके अनुसार हैदर अली ने उपहार रूप में १५ लाख रुपया और युद्ध के समस्त व्यय को देगा स्वीकार किया था।

इसी वर्ष निजाम अली ने कृष्णा नदी के दक्षिण की ओर एक बहुत सफल अभियान किया था और अपने भाई बसालत जंग को पराजित करके उसे पूर्णता अपने नियंत्रण में ले लिया था, इस प्रकार बसालत जंग पूरी तौर पर निजाम अली का अनुगामी बनने के लिये विवश हो चुका था। कृष्णा नदी के दक्षिणी तरफ के इलाकों पर हैदरअली और अंग्रेजों की मदद से कर्नाटक के नवाब ने पहले ही अधिकार कर लिया था, और इस प्रकार निजाम अली उस तरफ अब अपने पैर नहीं पसार सकता था। यह क्षेत्र पहले औरङ्गजेब द्वारा जीता गया था और उसी के एक भाग के प्रशासन का अधिकार उसके पिता निजामुलमुल्क को मिला था। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात अपने दो भाइयों की हत्या करने के बाद निजाम अली ने इस अधिकार को हड़पा था।

ऐसी परिस्थिति में माधव राव, निजाम अली और जानोजी दोनों से आशंकित था। उसने काफी सोच विचार के पश्चात यही उचित समझा कि किसी भी कीमत पर इन दोनों में से एक को दूसरे के खिलाफ भड़काकर अपने पक्ष में कर लिया जाय। कुछ समय बाद ही माधव राब को इस बात का विश्वास हो गया कि निजाम अली प्रसन्नता पूर्वक जानोजी के खिलाफ उससे आक्रामक सन्धि कर लेगा। निजाम अली को मराठों से मित्रता करने में एक और लाभ की आशा थी। उसने सोचा कि यदि मराठे हैदर अली के विरुद्ध भी उसके साथ खड़े हो जायँगे तो वह कृष्णा नदी के दक्षिण के उन इलाकों पर भी अधिकार कर सकेगा जो इस समय हैदर के अधिकार में थे। अगले वर्ष के प्रारम्भ में ही इस सम्बन्ध में माधवराव तथा निजाम अली के बीच गुप्त सन्धिवार्ता आरम्भ हो गई। इस सन्धि के विषय में यदि कोई लिखित सन्धिपत्र रहा भी हो तो वह उपलब्ध नहीं है, फिर भी इस सन्धि के जो उद्देश्य थे, वे आगे घटने वाली विभिन्न घटनाओं से पर्याप्त मात्रा में स्पष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार की गुप्त सन्धि के कुछ समय पश्चात ही निजाम तथा पेशवा की संयुक्त सेनाओं ने बरार को घेर लिया, और जानोजी भोंसले को आगे भविष्य में सर न उठाने का बचन ले लिया। यही नहीं, उन्होंने जानोजी को इस बात के लिए भी मजबूर कर दिया कि वह उन जिलों के तीन चौथाई भाग को भी तुरन्त वापस * कर दे, जो उसने पिछले युद्ध में अपने दोहरे विश्वासघात के एवज में प्राप्त किया था। माधवराव ने इस प्रकार जानोजी के पास अब भी कुछ जिले छोड़ दिये जिन्हें बाद में छीना जा सके, परन्तु साथ ही उसने यह भी स्पष्ट कर दिया-जैसा कि आगे की घटनाओं से मालूम होगा–कि इस आक्रमण से मराठों को कोई लाभ नहीं हुआ है, बल्कि सारा लाभ मुगलों को ही मिला है। इस सन्धि के अनुसार जानोजी ने सम्बन्धित जिलों को ४ फरवरी को माधवराव तथा निजाम अली के हाथ सौंप दिया। इन वापस किये गये जिलों में से दो तिहाई जिले फरवरी माह की १६वीं तारीख को निजाम अली के अधिकार में दे दिए गये जिनकी सालाना मालगुजारी की आय लगभग पन्द्रह लाख रुपये थी। पूना सरकार के विवरण पत्र में लिखा गया कि ये क्षेत्र निजाम अली को इसलिये दिये गये हैं कि 'शान्ति और मित्रता की दृढ़ स्थापना' हो। यह बात सम्भाव्य कम है और सत्य अधिक, कि यह समझौता इस बात का संकेत करता था कि आगे आने वाले समय में कर्नाटक में भी इसी प्रकार साथ साथ धावा किया जायगा। जो भी हो, परन्तु इसी बीच परिस्थितियो ने कुछ इस प्रकार करवट बदली कि समझौते से सम्बन्धित शक्तियों की सापेक्ष स्थितियों में बहुत अधिक परिवर्तन ला दिया।

सन १६६६ ई०

अंग्रेजों की ईस्ट इन्डिया कम्पनी इस समय तक अपने विदेशी प्रतिद्वन्दी, फ्रांसीसियों से सफ-

---

* पूना रिकार्डस के अनुसार जो रकम लौटाई गई उसकी सही संख्या थी २४५०२६६ रुपये, १० आना १ पाई।

लता पूर्वक निपट चुके थे। इस सफलता के पश्चात् उन्हें यह सोचने के लिए समय मिला कि वे इतने ही कम समय में किस स्थिति में पहुंच गये हैं। उन्हें इस स्थिति में इतने शीघ्र पहुंचा देने का उत्तरदायित्व बहुत से कारणों पर था जिनमें से प्रमुख था, फ्रांसीसियोंके प्रति अंग्रेजों की राष्ट्रीय शत्रुता व प्रतिद्वन्दिता। इसके अतिरिक्त देशी शक्तियोंका अपने ही देशवाशियों के प्रति विश्वासाघात। ईस्ट इन्डिया कम्पनी के कर्मचारियों की महत्वाकांक्षा और अंग्रेजी सैनिकों की वीरता ने भी उनकी इस तीव्र प्रगति में यद्यपि योग दिया। वे जिस ऊँचाई तक पहुंच चुके थे, उसका अनुमान करके वे स्वयं ही आश्चर्य चकित हो गए और साथ ही अपनी स्थिति को बनाये रखने के लिए कुछ सतर्क भी हो उठे। यदि उन्हें अपने अधिकृत क्षेत्र के सुरक्षा की गारन्टी मिल जाती तो वे इस क्षेत्र का भी कुछ भाग छोड़ने के लिए सहर्ष तैयार हो जाते। परन्तु ऐसे अंग्रेज जो अपनी स्थिति के विषयमें पूर्ण जानकारी रखते थे, वे इस सम्बन्ध में पूर्णतः एक मत थे कि वे अब इतना आगे बढ़ चुके हैं कि पिछे लौटना सम्भव नहीं है। उनके मतानुसार अब अंग्रेजों को इस बात के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हो जाना चाहिए था कि वे अपने अधिकृति क्षेत्र में उपद्रव मचाने वालों का न केवल विरोध करेंगे, बल्कि अवसर पाने पर उन्हें दण्डित भी करेंगे।

हिन्दुस्तान की सभी रियासतें किसी भी राष्ट्र के यूरोपियनों के प्रति शत्रुभाव रखती थीं और उन्हें घृणा की दृष्टि से देखती थीं। जो रियासतें इन यूरोपियनों द्वारा सन्धि द्वारा बँधी भी रहती थी वे भी अवसर पाने पर अकृतज्ञता और विश्वासघात का ही प्रदर्शन करती थीं। इन राज्यों को सन्धि की जरा भी परवाह नहीं थी जब तक भय दिखाकर या उनके स्वार्थ के प्रति ही उन्हें लोभ दिखाकर उनपर नियंत्रण रखा जाता था तभी तक वे सन्धि का सम्मान करते थे। वे इन विदेशियों के प्रति इतनी अधिक घृणा और दुर्भाव रखते थे कि यदि उनका वश चलता तो वे अंग्रेजों को हिन्दुस्तान से खदेड़ कर ही दम लेते। परन्तु वे तो आपस में ही उलझे हुये थे इसलिये कभी-कभी स्वार्थवश उन्हें अंग्रेजों से भी मदद लेनी पड़ती थी। अब अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए अंग्रेजों के पास दो ही रास्ते थे। या तो वे इन रियासतों पर जब तब आक्रमण करके उनपर अपना आतंक जमाए रखते, या अपनी प्रतिरक्षात्मक तैयारी को मजबूत बनाए रखते। यदि वे प्रतिरक्षात्मक रुख अपनाते तो उन्हें बिलकुल अकेला रह जाना पड़ता और जो देशी रियासतें उनके अनुकूल थीं, उनसे भी वे कोई लाभ न उठा पाते। यही नहीं, उन्हें विवश होकर देशी राज्यों की संयुक्त सेनाओं का मुकाबिला करना पड़ता और इस प्रकार हिन्दुस्तान की बँटी हुई शक्तियों के साथ अलग-अलग निपटने का अवसर न मिल पाता। इस विरोध से अपनी जान बचाने का केवल एक तरीका था और वह यह कि अंग्रेज अपने सारे व्यापार सुविधाएं और अधिकृत क्षेत्र को छोड़कर बैठ जाते। कुछ मानवता वादियों का मत है कि यदि उस समय इतना त्याग कर देते तो भारतवासियों का भाग्य बना रह जाता, परन्तु ऐसे विचारकों को केवल एक ही उत्तर दिया जा सकता है कि ऐसा करने से भी उस अव्यवस्था तथा बरबादी की समाप्ति न होती जो हिन्दुस्तानियों के रक्तमाँस में मिली हुई है, और ऐसी दुर्व्यवस्थाओं के मेरे पास असंख्य लिखित प्रमाण पड़े हुए हैं जिनको एकत्रित करने के लिये ही मेरी नियुक्त हुई है।

भारत में अंग्रेजों के विकास के क्रम का वर्णन करना मेंरे विषय क्षेत्र से बाहर है, परन्तु फिर भी हमारे लिए इस सम्बन्ध में साधारण ज्ञान रखना आवश्यक है क्योंकि दक्षिणी क्षेत्र में, जिन घटनाओं के कारण अंग्रेजों की धाक बढ़ी वे मराठों के इतिहास से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित हैं। अब आगे मैं निष्पक्ष भाव से, बिना अपने राष्ट्र का पक्ष लिए, इन घटनाओं का वर्णन करूँगा।

मेरे विचार से, भारत में कम्पनी सरकार द्वारा एकत्रित किये गये ऐतिहासिक विवरण,

सम्भवतः समस्त विश्व के ऐतिहासिक विवरणों में सर्वश्रेष्ठ हैं। कम्पनी के विवरणों में इसे निम्नलिखित विशेषताएं मिलती हैं—(१) प्रत्येक योजना का कार्य कारण सहित वर्णन (२) व्यवहार के लिए दृढ़ नियम (३) कार्य या घटना के स्थान से तेज पत्र व्यवहार, (४) प्रत्येक घटना पर कौंसिल के विचार, (५) इस विवरण को बनाने वाले विभिन्न सदस्यों के स्वतन्त्र विचारों का उल्लेख और (६) उनका अन्तिम निर्णय। इसके अतिरिक्त इन विवरणों में इंग्लैंड के कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स द्वारा बनाई योजनाओं का उल्लेख रहता है, और कुछ समय बाद यह भी मिलान किया जाता है कि योजना क्या सोच कर और किस प्रतिफल के ध्येय से बनाई गई थी, और वह किस प्रकार कार्यान्वित हुई, इस बीच हिन्दुस्तान की घटनाओं ने कैसा मोड़ लिया और किन लोगों के मत तथा अनुमान घटनाओं द्वारा उचित सिद्ध हुये। कभी-कभी घर बैठे हुये डाइरेक्टरों के आदेशों तथा हिन्दुस्तान में उनकी सरकार के कार्यकलापों के बीच बहुत विरोधाभास दिखाई पड़ता है। ऐसा प्रायः इसलिये होता है कि परिस्थितियाँ कभी कभी ऐसा रूप धारण कर लेती हैं कि पूर्व निश्चित योजना के अनुसार कार्य करना सम्भव नहीं रह जाता। दूसरा मुख्य कारण यह है कि आदेश भेजने वाली शक्ति बहुत दूर से आदेश देती है, और विभिन्न प्रेसीडेन्सियों में ये आदेश सही रूप में नहीं पहुंचते। भारत में अंग्रेजी शक्ति के विकेन्द्रीकरण के कारण भी बहुत काल तक बुराइयाँ जन्म लेती रहीं और बढ़ती रहीं। यहाँ तक कि, जब पार्लियामेन्ट ने एक कानून पास करके बंगाल के प्रेसीडेन्ट और उसकी कौंसिल के हाथ में नियंत्रण शक्ति दे दिया तब भी ये बुराइयाँ तुरन्त समाप्त नहीं हुईं। क्योंकि किसी नये कानून के अनुसार कार्य विधि को ढालने तथा सुधार करने में समय तथा शक्ति की आवश्यकता पड़ती है।

जब तक ब्रिटिश संसद एवं राष्ट्र ने भारतवर्ष में होने वाली घटनाओं में रुचि प्रकट करना प्रारम्भ नहीं किया तब तक कम्पनी राज्य विशेष रूप से भ्रष्टाचार तथा अनाचार का अखाड़ा बना रहा। अन्य सरकारें अपने इस प्रकार के दोषों तथा अन्यायों का प्रचार न होने देने के लिये उनका कहीं उल्लेख ही नहीं करतीं, परन्तु कम्पनी राज्य में प्रत्येक घटना तथा विचारक्रम का विस्तृत विवरण विभिन्न प्रेसीडेन्सियों के पास सुरक्षित पड़ा है। यही नहीं, विवरण तैयार करने वालों ने सरकारी कर्मचारियों के प्रति अपनी व्यक्तिगत दुश्मनी के कारण उनकी छोटी मोटी गलतियों को भी बहुत गम्भीरता से प्रस्तुत किया हैं और कभी कभी, इसी कारणवश कुछ तथ्यों को बहुत गलत ढंग से प्रस्तुत कर डाला है। इसके विपरीत कुछ ऐसे कार्य हैं जिनके लिए बहुत अधिक सामर्थ्य की आवश्यकता नहीं थी, परन्तु उन कार्यों को पूरा करने वालों की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा कर डाली गई है। इसी प्रकार इन विवरणों में कुछ ऐसे अंश हैं जिनमें भारतीयों के सम्बन्ध में न्यायोचित बातों की अवहेलना की गई है और उनके श्रम, पौरुष तथा योग्यता पर परदा डाल दिया गया है।

चौबीसवां अध्याय

पेशवा माधवराव और राज्य की तत्कालीन अवस्था

[१७६६—१७७२]

अंग्रेजों की प्रगति—माधवराव का कर्नाटक अभियान—निजाम अली व अंग्रेजों में नई सन्धि—राघोबा का हिन्दुस्तान अभियान—होलकर की मृत्यु—राघोबा की माधवराव के प्रति ईर्ष्या और अविश्वास तथा विद्रोह—राघोबा कारागार में—जानोजी के विरुद्ध पेशवा और निजाम अली की सन्धि और हैदर पर माधवराव द्वारा प्रशासन में सुधार का प्रयास—मराठों द्वारा हैदर पर विजय—मुगल बादशाह का अंग्रेजों की शरण में जाना—नजीबुद्दौला और मराठों में सन्धि—नजीबुद्दौला की मृत्यु—मराठों द्वारा रुहेलखण्ड पर आक्रमण—माधवराव की मृत्यु—उसका शासन तथा आन्तरिक व्यवस्था।

सन् १६६६]

यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि विशाल साम्राज्य बहुत अधिक समय तक कायम नहीं रहते और शीघ्र ही उनका पतन प्रारम्भ हो जाता है; परन्तु लोग सदैव यह नहीं सोचते कि कुछ परिस्थितियों में, विजयक्रम बहुत तीव्र भी हो सकता है और बहुत धीमा भी। इस कथन के प्रमाण के रूप में इतिहास में कई उल्लेखनीय उदाहरण देखने में आते हैं; विशेषकर मराठों के इतिहास में से ऐसे कई उदाहरण दिए जा सकते हैं, विशेषकर पुर्तगालियों के पतन और मराठों के उत्कर्ष के सम्बन्ध में। परन्तु अंग्रेजों के विकास काल में उनका विजयक्रम न अधिक तेज था न बहुत सुस्त। उन्होंने बीच का मार्ग पकड़ा। उन्होंने पूर्व में जिस तरह धीरे-धीरे अपना क्षेत्र प्रशस्त किया और अपनी धाक बढ़ाई, उसका सारा श्रेय उन धैर्यशाली व्यक्तियों को दिया जाना चाहिए जिन्होंने समय-समय पर इतनी कुशलता के साथ अपनी कौंसिलों तथा सेनाओं का निर्देशन किया। इस विशाल सामाज्य के विस्तार का श्रेय उन मुट्ठी भर व्यापारियों की सतर्कता को दिया जाना चाहिए जो कुछ लाभ की प्राप्ति से ही प्रसन्न हो जाया करते थे, और अधिक खतरा उठाने से डरते थे; वे जो जब भी किसी नए संघर्ष में फँस जाते थे तो उन्हें यही भय लगा रहता था कि उन्होंने इतने दिनों तक अपने पौरुष और धीरता से जो कुछ भी अर्जित किया हैं, वह एक ही संघर्ष में सब का सब न समाप्त हो जाय।

लार्ड क्लाइव बंगाल सरकार के प्रशासन का निर्देशन करने के उद्देश्य से मई १७६५ में पुनः इंग्लैण्ड से भारत आया। भारत पहुँचकर यहाँ की परिस्थितियों का अध्ययन करने के पश्चात् क्लाइव ने भी यही अनुभव किया कि अब अंग्रेज इतना आगे बढ़ चुके हैं कि पीछे लौटना सम्भव नहीं है, बल्कि वह इस बात पर दृढ़ हो गया कि अपनी स्थिति को पूर्णरूप से सुरक्षित बनाने के लिए आगे बढ़ना अनिवार्य तथा श्रेयस्कर है। इस समय देश में तीन ही बड़ी शक्तियाँ प्रभावशालिनी थीं। मराठे, निजाम अली और हैदर अली। इनमें से मराठों को अजेय माना जाता था और उनसे निजाम अली तथा हैदरअली भी त्रस्त थे। जब १७६१ के अन्त में बालाजी राव पेशवा की मृत्यु हुई उस

समय मिस्टर बन्सीटार्ट बंगाल की कौंसिल का प्रेसीडेन्ट था। पेशवा की मृत्यु के कुछ समय बाद ही यह निश्चय किया गया कि जानोजी भोंसले को कटक से निस्काषित कर दिया जाय। यह प्रस्ताव केवल बम्बई और मद्रास प्रेसीडेन्सियों की सरकारों के पास ही नहीं भेजा गया, बल्कि मुगल बादशाह, निजाम अली और सलावत जंग * के पास भी इस प्रस्ताव को प्रेषित किया गया। बम्बई और मद्रास की सरकारों ने विभिन्न महत्वपूर्ण कारणों से इस प्रस्ताव का विरोध किया और अपनी असहमति प्रकट करने के बाद में बंगाल की कौंसिल ने इस प्रस्ताव को वापस ले लिया, परन्तु ऐसा इसलिए नहीं किया गया कि मद्रास और बम्बई की सरकारें इसके विरुद्ध थीं। वास्तव में बंगाल का नवाब इस प्रस्ताव से सहमत नहीं था, और उसी के अनुरोध पर ऐसा किया गया था।

कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स की यह उत्कठ अभिलाषा थी कि किसी भी तरह से मराठों की प्रगति रोक दी जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे मराठों के विरुद्ध अन्य देशी ताकतों का सहयोग प्राप्त करने में भी संकोच न करते। परन्तु अपनी दूरदर्शिता से उन्होंने यह भी अनुमान कर लिया कि अपने कर्मचारियों को इतना अधिक विचार स्वातंत्र्य देने का परिणाम लाभजनक न होगा और देशी ताकतों का सहयोग लेने पर अंग्रेजों की स्थिति केवल सहायकों और पिछलगुओं के समान ही रह जायगी एवं यह स्थिति अंग्रेजों के सम्मान के अनुकूल न होगी। उन्होंने अपने कर्मचारियों को केवल यही आदेश दिया कि वे किसी भी देशी शक्ति से भरसक अपनी तरफ से दुश्मनी मोल लेकर अपने को झन्झट में न डालें; विशेषकर तीनों बड़ी शक्तियों से दूर ही रहें, क्योंकि अनायास शत्रुता मोल लेने पर वे अपनी सुरक्षा के लिए कुछ भी न कर सकेंगे, । इस प्रकार देशी रियासतों के साथ अपने व्यवहार में अंग्रेजों ने प्रारम्भ से ही पर्याप्त सतर्कता से काम लिया। अपने को पूर्णरूप से सुरक्षित करने के लिए अंग्रेज दो चीजों को प्राप्त करना बहुत महत्वपूर्ण और आवश्यक समझते थे। इनमें से पहला मसला तो पुराना था जिससे मराठे घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित थे। अंग्रेज डचों से अपनी प्रतिद्वन्दिता को कायम रखने के लिए और उनका मुकाबिला करने के लिए सालसती द्वीप और करंजा पर अधिकार करना चाहते थे। ये सभी द्वीप बम्बई के पास ही थे। इन द्वीपों पर अधिकार करना प्रतिवर्ष अधिक आवश्यक होता जा रहा था। दूसरा मसला मद्रास प्रेसीडेन्सी के सम्बन्धित था। प्रायद्वीप के पूर्वी किनारे पर के जो पाँच जिले पहले फ्रांसीसियों के अधिकार में थे, उनको अपने अधिकार में करना भी अंग्रेज बहुत आवश्यक समझते थे। ये जिले उत्तरी सरकार के नाम से अधिक विख्यात हैं। जहाँ तक पहले मसले का सम्बन्ध था यद्यपि मराठे पहले अंग्रेजों की बिल्कुल कदर नहीं करते थे और एक अवसर पर उन्होंने अंग्रेजों की सहायता के बदले में सालसती द्वीप को अंग्रेजों के हवाले कर देने का वादा भी किया था, परन्तु इस समय अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर मराठें उनसे ईर्ष्या रखने लगे। कालान्तर में यह ईर्ष्या इतनी प्रबल हो गई कि वे वादे के बावजूद भी स्वेच्छा से इन द्वीपों को अंग्रेजों के हवाले करने के लिए तैयार नहीं हुए। इसके अतिरिक्त, इन स्थानों के लिए अंग्रेजों की प्रबल आकांक्षा को देखकर वे इन्हें बहुत अधिक महत्वपूर्ण समझने लगे; उन्होंने यह धारणा भी बना ली कि इस यूरोपियन शक्ति के मुकाबले में वे अपनी प्रबलता बनाए हुए हैं। जहाँ

---

* यह भी एक कारण है जिससे कुछ लोग मानते हैं कि सलावत जंग जुलाई १७६१ में नहीं कैद किया गया था; उनके अनुसार उसके बन्दी होने की तारीख देने में इतिसाहकारों ने एक वर्ष की भूल कर दी है। यह प्रस्ताव बम्बई सरकार को ११ दिसम्बर १७६१ को भेजा गया था और उस समय सलावत जंग अवश्य गद्दी पर रहा होगा अन्यथा उसके नाम का उल्लेख न किया गया होता।

तक उत्तरी सरकार का सम्बन्ध था, इन पाँच जिलों में से एक गन्टूर बसालतजंग को जागीर के रूप में मिला हुआ था। शेष चार जिले निजाम अली के अधिकार में थे और उसने इन जिलों को कुछ शर्तों प र, अरकाट के नवाब को देने का वादा किया था। अंग्रेजों ने अपने मन में सोचा कि निजाम अली उन्हीं शर्तों पर उन्हें ही इन चार जिलों में बसने की अनुमति दे दे। मद्रास सरकार इनके जिलों की उचित कीमत की छः गुना अधिक कीमत देने के लिए भी तैयार हो गई, परन्तु इतने पर भी निजाम अली ने इन जिलों को अंग्रेजों को देने से साफ इनकार कर दिया। निजाम अली की इस जिद से लार्ड क्लाइव बहुत कुपित हुआ और उसने भी मन ही मन दृढ़ प्रतिज्ञा कर लिया कि वह किसी भी कीमत पर इन जिलों पर अधिकार करके रहेगा। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने बादशाह से इन जिलों के लिए स्वीकृतिपत्र ले लिया। मद्रास सरकार ने इसी बीच सेना के बल पर राजमुन्दरी पर अधिकार कर लिया। यह-बात अधिक आश्चर्यजनक नहीं हैं कि निजाम अली ने अंग्रेजों के इस कार्य को उनकी धूर्तता ही समझता रहा हो, भले ही अंग्रेजों ने उसे हजार बार विश्वास दिलाया कि ऐसा वे केवल आत्मरक्षा को दृष्टि से कर रहे हैं। अभी तक अंग्रेज निजाम अली के समक्ष अपने प्रस्तावों को बड़ी विनम्रता से प्रस्तुत करते थे। उनकी इस विनम्रता से प्रोत्साहित होकर, साथ ही मराठों के बल का भरोसा करके, उसने अंग्रेजों को समूल नष्ट करने की धमकी दी। उसने हैदर अली को भी कर्नाटक पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित करने का प्रयत्न किया। उसकी तैयारियों को देखकर मद्रास प्रेसीडेन्सी के अंग्रेजों के कान खड़े हो गए। उन्होंने हैदर अली को अपनी तरफ मिलाने का भी प्रयत्न किया परन्तु हैदर अली ने उनके दूत से मुलाकात करने से भी इनकार कर दिया। इस प्रकार किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाने पर पर मद्रास के गवर्नर मिस्टर पार्क ने लार्ड क्लाइव के पास इस सम्बन्ध में सूचना भेजा। इस पर क्लाइव ने मद्रास प्रेसीडेन्सी को निजाम अली से ही सन्धि करने की स्वीकृति प्रदान कर दी, साथ ही निजाम अली को सन्धि की ओर आकर्षित करने के लिए उसने ये शर्तें भी स्वीकार कर लेने को कहा कि यदि निजाम अली चाहेगा तो अंग्रेज हैदर अली को भी पस्त करेंगे और मराठों की बढ़ती हुई शक्ति को नियंत्रित करने में भी उसकी मदद करेंगें।

अंग्रेजों का यह प्रस्ताव निजाम अली की योजनाओं के एकदम अनुकूल था। उसने पहले से ही यह सोच रक्खा था कि अवसर मिलते ही वह हैदर को पराजित करेगा तथा मराठों को भी एक सीमा में रखने का प्रयत्न करेगा। वह अंग्रेजों की नियमित और अनुशासित सेना की कार्यकुशलता से भली-भाँति परिचित था, इसलिए उसने अंग्रेजों के प्रस्ताव का बड़े उत्साह से स्वागत किया। परन्तु चूंकि वह मराठों से हैदर के विरुद्ध पहले ही समझौता कर चुका था, इसलिए उसने यही अधिक उचित और नीतिपूर्ण समझा कि जब तक हैदर अली को परास्त न कर लिया जाय, (जिसने कि मैसूर का सिंहासन हड़प लिया था) तब तक माधव राव से अपना सम्बन्ध न बिगाड़ा जाय। फिर भी, निजाम अली और अंग्रेजों में एक सन्धि हुई जिसके अनुसार मद्रास सरकार ने यह निश्चय किया कि वे उन चार जिलों के किराये के रूप में प्रति वर्ष सात लाख रुपया देंगे, और युद्ध के समय वे पैदल सेना की दो बटेलियनों तथा छ तोपों के साथ निजाम अली की मदद करेंगे और जब अवसर पड़ने पर निजाम को सैनिक सहायता दी जायगी तो किराए के सात लाख रुपए सैंन्य व्यय के लिए दे दिया जायगा।

इधर मराठे भी बेखबर नहीं बैठे थे। सम्भवतः उन्हें यह खबर लग गई कि निजाम अली ने अंग्रेजों से मेल कर लिया है, और इसीलिए माधवराव ने निजाम अली से हुई सन्धि के अनुसार उसकी प्रतीक्षा किए बिना जनवरी में कृष्णा नदी को पार कर लिया और मार्च महीने के समाप्त

सन् १७६७]

होने के पहले ही सेरा, उसकोटा और मूदगेरी पर अधिकार कर लिया एवं वेदनूर की रानी * तथा उसके दत्तक पुत्र को मुक्त कर दिया जो उस किले में कैद थे। उसने हैदरअली से भी कर के रूप में ३० लाख रुपया † वसूल किया और कर्नाटक के विभिन्न भागों से लगभग १९ लाख रुपया और वसूल किया। इतने ही समय में इतना अधिक कार्य निपटाकर निजाम अली के पहुँचने के पहले माधवराव महाराष्ट्र लौट आया। इधर निजाम अली और अंग्रेजों ने यह सुना कि माधवराव ने अपने इस अभियान से इतना रुपया वसूल किया है तो उन्होंने, केवल झगड़े के लिए बहाना ढूढ़ने के ध्येय से उससे इस धन में से अपना हिस्सा माँगने का निश्चय किया, परन्तु जब उनके राजदूत माधवराव के पास उनके इस सन्देश के साथ पहुँचे तो माधवराव ने उनके साथ बहुत उपहासपूर्ण ढंग से व्यवहार किया और टका सा जवाब दिया। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि माधवराव अंग्रेजों तथा निजाम अली के बीच हुई सन्धि के उद्देश्यों के सम्बन्ध में जानता था और न तो यही निश्चित रूप से ज्ञात है कि इस समय मराठों तथा निजाम अली के बीच समझौते की क्या स्थिति थी। परन्तु हमें अप्राभाणिक रूप से निजाम अली के एक मंत्री रुकनुद्दौला के बयान से जानकारी मिलती है कि मराठों ने अब की, तीसरी बार ‡ भी उसके मालिक, निजाम अली के साथ कपटपूर्ण व्यवहार किया था। जो भी हो, परन्तु इतना तो निश्चित है, कि माधवराव को इस बात का पता लगा जाना मुश्किल नहीं था कि हैदर के विरुद्ध युद्ध करने में अंग्रेजों ने दो मे से एक दल का साथ दिया था और हैदर की पराजय हो जाने के बाद अंग्रेजों की मदद से निजाम अली उसके अधिकृत क्षेत्रों को किसी भी प्रकार विभाजित कर सकता था, जैसा कि ऐसी परिस्थिति में पड़ जाने पर मराठे स्वयं करते। माधवराव ने कर्नाटक में जो जाकर धन एकत्रित किया और कुछ स्थानों पर अधिकार कर लिया, उसे मराठों की लूटमार की प्रवृति के अनुरूप ही माना जाता है x परन्तु वास्तव में माधवराव का यह कृत्य निजाम अली के कुविचार के अनुसार बहुत ही न्यायपूर्ण था; उसके इस कृत्य में एक गूढ़ राजनैतिक चाल छिपी हुई थी, और इससे उसके शत्रुओं की योजनाओं में व्याघात पहुँचने की सम्भावना थी। माधवराव ने कृष्णा नदी को फिर पार किया और मई के अन्त में महाराष्ट्र पहुँच गया; इसने यह देखने की आवश्यकता न समझी कि अंग्रेज और निजाम हैदर से किस प्रकार निपटते हैं; वह वास्तव में निजाम अली तथा हैदर के बीच संघर्ष में इस समय जरा भी दखल नहीं देना चाहता था।

इधर कुछ समय बाद ही निजाम अली ने अंग्रेजों से विश्वासघात किया और उनके विरुद्ध हैदर से सन्धि की, परन्तु बीच में कुछ ऐसे कारण आ गए कि उसने विश्वासघात की एक मन्जिल और पार की तथा हैदर अली का साथ छोड़कर वह पुन: एक नई सन्धि के अनुसार अंग्रेजों से आ मिला;। इस सम्वन्ध में विस्तृत वर्णन आपको एक अन्य पुस्तक § में मिलेगा क्योंकि ये घटनाएँ हमारे इस

---

* वह पूना जाते हुए राह में ही मर गई।

† पूना स्टेट एकाउन्ट्स कर्नल विल्क्स के अनुसार यह रकम ३५ लाख थी।

‡ विल्क्स, भाग २, पृष्ठ १५। पाठक यह आसानी से समझ सकते हैं कि, तीसरी बार शब्द का प्रयोग क्यों हुआ। पहली वार रघुनाथ राव के मामले में और दूसरी वार जानोजी भोंसले के विरुद्ध अभियान में जो हुआ था उसी की ओर रुकनुद्दौला ने संकेत किया था।

x विल्क्स—भाग २, पृ० ६

§ देखिए—कर्नल बिल्क्स लिखित 'सदर्न इन्डिया', भाग २।

इतिहास के चेत्र से बाहर हैं और मैने इस पुस्तक में इनका उल्लेख कर देना इसलिए आवश्यक समझा जिससे कि इनसे सम्बन्धित धटनाओं का तातपर्य न टूटने पावे। २३ फरवरी १७६८ में निजाम अली ने अंग्रेजों से एक नई सन्धि की। यद्यपि यह सन्धिपत्र भी उसी सन्धि के आधार पर तैयार किया गया था जो अंग्रेजों और निजाम के बीच १७६६ में हुई थी। परन्तु फिर भी इन दोनों सन्धियों में कुछ बहुत गम्भीर अन्तर थे। इनमें से सबसे उल्लेखनीय अन्तर यह था कि इस बार हैदर अली से छीने जाने वाले चेत्रों की व्यवस्था एवम् बँटवारा करने का अधिकार अंग्रेजों ने अपने ही हाथ में रक्खा। इस सन्धिपत्र द्वारा यह घोषित किया गया कि हैदर ने मैसूर को बलात् अपहृत कर लिया है। निजाम अली ने हैदर से कर्नाटक व बालाघाट छीन लिया जो कि दच्चिण में मुगलों के सूबेदार की हैसियत से इस कार्य में संलग्न हुआ। भविष्य में इस छीने गए चेत्र की व्यवस्था करने के लिए दीवान का पद कम्पनी को प्रदान किया गया जिसके बदले में अंग्रेजों ने कर के रूप में प्रतिवर्ष सात लाख रुपया देना मन्जूर किया। निजाम अलीं ने यह बात भी स्वीकार कर लिया कि वह गण्टूर भी अंग्रेजों को दे देगा, लेकिन तभी, जब कि उसके भाई बसालतजंग की मृत्यु हो जाय या वह कोई दुर्व्यवहार करे जिसका बहाना लेकर उत्तरी सरकार का यह शेष पाँचवा जिला उससे छीना जा सके। मराठों ने प्रारम्भ से ही निजाम-अली तथा अंग्रेजों के आपसी व्यवहार में कोई दिलचस्पी नहीं लिया था। फिर भी सन्धि की एक बिशेष धारा द्वारा मराठों को भी, इस प्रकार से प्राप्त होने वाले चेत्र से चौथ प्राप्त करने का अधिकार दे दिया गया। अंग्रेजों और हैदर के बीच, पिछले दिनों, काफी समय तक चलने वाले सघंर्ष में पेशवा ने न तो किसी का पच्च लिया और न हस्तच्चेप ही किया था। पेशवा इस समय जिस मार्ग पर चल रहा था (जिसका उल्लेख हम घटनाक्रम के साथ यथावसर करते रहेंगे) उस मार्ग का निर्धारण कुछ अंशों में तो उसकी व्यक्तिगत नीति द्वारा हुआ था परन्तु मुख्यत अपने साम्राज्य की आन्तरिक परिस्थितियों के कारण उसे ऐसे मार्ग का अनुसरण करना पड़ा था।

जानोजी भोसले के विरुद्ध, पिछले वर्ष में किए गए अभियान के पश्चात् रघुनाथ राव ने हिन्दुस्तान की तरफ प्रयाण कर दिया। उसके इस अभिमान में मल्हार राव होलकर भी उसके साथ था। इस अभिगान का उद्देश्य यह था कि उन स्थानों पर फिर से अधिकार किया जाय जो पहले मराठों के अधिकार में थे, परन्तु इस समय उनके हाथ से निकल गए थे; साथ ही उन स्थानों से कर वसूल किया जाय जो पहले मराठों की अधीनता मान चुके थे और उन्हें कर के रूप में कुछ धन प्रतिवर्ष दिया करते थे। परन्तु राह में ही मल्हार राव होल्कर की मृत्यु हो जाने से सारा पूर्व निश्चित कार्यक्रम अव्यवस्थित हो गया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पद अधिकार तथा सम्पत्ति का उत्तराधिकार उसके पौत्र माली राव को मिला। माली राव खण्डे राव का एकमात्र पुत्र था और अभी नाबालिक ही था। परन्तु उत्तराधिकार प्राप्त करने के कुछ समय बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् अधिकार के लिए मल्हार राव होलकर के दीवान गगांधर यशवन्त और खण्डे राव की विधवा पत्नी अहल्या बाई के बीच कलह होने लगा। नियमत: अब अहल्या बाई को ही उत्ताधिकार मिलना चाहिए था। दीवान गगांधर यशवन्त ने प्रस्ताव रक्खा कि अहल्या बाई अपने परिवार के किसी सम्बन्धी को ही गोद ले ले और स्वयं संरच्चिका बनी रहे। यद्यपि दीवान के इस प्रस्ताव का रघुनाथ राव ने भी समर्थन किया परन्तु अहल्या बाई किसी भी प्रकार अपना अधिकार छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुई। उसकी प्रजा तथा उसकी सेना ने भी उसी का समर्थन किया। अन्त में, पेशवा की

सहमति से तथा अपनी प्रजा और सेना के अनुरोध पर उसने तुकाजी होल्कर * को अपनी सेना पर नियंत्रण रखने के लिए नियुक्त कर लिया। तुका जी होल्कर एक बहुत ही अनुभवी सिलेदार था, साथ ही मृत मल्हार राव होलकर का प्रियपात्र भी था, परन्तु वह मल्हार राव के परिवार से सम्बन्धित नहीं था। अहल्याबाई ने अपने परिवार को मिली हुई लम्बी चौड़ी जागीर के प्रशासन की व्यवस्था को अपने ही हाथ में रक्खा। इस घटना के बाद हिन्दुस्तान अभियान में मराठे बहुत निष्क्रिय तथा उत्साह हीन रहे; † सम्भवतः ऐसा मल्हार राव की मृत्यु के कारण ही हुआ। उसी की मृत्यु से निरुत्साहित हो जाने के कारण रघुनाथ राव गोहद के राणा पर आक्रमण करके भी उसे पराजित करने में असफल रहा। गोहद का राणा जाटों की एक बस्ती का सरदार था। इस राणा के चाचा ने पेशवा बाजीराव द्वारा ही महत्व पाकर उन्नति किया था परन्तु पानीपत के मैदान में जब मराठे अहमदशाह द्वारा पराजित हो गए तो इस राणा ने मराठों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। रघुनाथ राव काफी समय तक गोहद को घेरे रहा, परन्तु अन्त में उसने, तीन लाख रुपया प्रतिवर्ष दिए जाने के प्रस्ताव को मानकर घेरा हटा लिया। इसके थोड़े ही समय पश्चात् वह फिर दक्षिण की ओर बढ़ चला। रघुनाथ राव अगस्त माह में दक्षिण पहुँचा; उसके पहुँचने से कुछ समय पहले ही पेशवा माधवराव कर्नाटक से वापस हो चुका था। रघुनाथराव के दक्षिण पहुँचने की खबर पाकर पेशवा ने इरादा किया कि वह अपने चाचा से टोका में भेंट करेगा, इधर उसके इस इरादे को सुनकर रघुनाथराव के हृदय में यह शंका जागी कि हो न हो, माधवराव उसको पकड़ कर कैद करने के लिए कोई जाल बिछा रहा है और उसे फँसाना चाहता है। वास्तविक तथ्यों से कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि आनन्दीबाई, ईर्ष्या से मतिभ्रष्ट होकर रघुनाथराव को निरन्तर प्रेरित करती रहती थी कि यह मराठा राज्य प्राशासन को विभजित करा के आधा भाग स्वयं ले ले और शेष आधा माधवराव के पास रहने दे। रघुनाथराव के मन में भी यह बात बैठ गई। जब उसे यह पता लगा कि माधवराव टोका में उससे भेंट करने के लिए आ रहा है तो उसे सन्देह हुआ कि शायद उसके दल संगठन को देखकर माधवराव ने उसके इरादों को समझ लिया हो और इसी सन्देह के कारण वह माधवराव से भेंट करने में हिचक रहा था। परन्तु वास्तव में माधवराव का इरादा था एक और प्रयास करके किसी भी तरह अपने तथा अपने चाचा के बीच के भेदभाव और सन्देह को समाप्त कर दे। उसने यह निवचय कर लिया था कि यदि रघुनाथराव चाहे तो वह प्रमुख प्रशासकीय अधिकार उसी को दे देगा, या देश के जिस भाग में भी वह चाहे, अपने रहने के लिये तथा अपना सम्मानजनक जीवन बिताने योग्य जागीर ले ले, परन्तु किसी भी प्रकार उनके बीच का यह मनमुटाव समाप्त हो जाय। माधव राव का इरादा यद्यपि स्पष्ट तथा न्यायपूर्ण था, परन्तु रघुनाथराव के दिल में जड़ जम कर बैठी हुई शंका को निकाल बाहर करना कोई आसान कार्य न था। पहले तो वह किसी तरह माधवराव से भेंट करने के लिए तैयार ही नहीं हुआ, परन्तु अन्त में गोविन्द शिवराम ‡ की मध्यस्थता में उन दोनों के मुलाकात की बात निश्चित हो गई।

---

* जब तुकाजी होलकर को मल्हार राव की सेना का सेनापति नियुक्त किया गया तो उसने पेशवा को १५,६२,००० रुपए नजर के रूप में दिया था (स्टेट एकाउन्ट्स; पूना रिकार्ड्स)।

† जो पाठक ब्रिटिश भारत के इतिहास से अच्छी तरह परिचित हैं उन्हें ज्ञात होगा कि जब रघुनाथ राव की सेना बुन्देलखण्ड पहुँची तो उस समय गम्भीर उथल-पुथल से अस्त-व्यस्त सनसनी फैल गई थी।

‡ मिस्टर मोस्टिन, ने जो कि पूना दरबार में अंग्रेजों का राजदूत था, गोविन्द शिवराम के

चाचा भतीजे की इस मुलाकात में रघुनाथ राव ने पहले तो माधवराव के सभी प्रस्तावों को अमान्य कर दिया और दृढ़ता से अपनी यह इच्छा व्यक्त की कि वह सारे झन्झटों से दूर रहकर काशीवास करना चाहता है। रघुनाथराव द्वारा यह इच्छा व्यक्त किए जाने पर माधवराव ने उत्तर दिया कि उसके विचार से यह प्रस्ताव एक दृष्टि से सर्वोत्तम है। उसने कहा कि समझौते के दो ही रास्ते हो सकते हैं या तो रघुनाथराव राज्य के अधिकार का बँटवारा कर ले (जैसा कि पेशवा पहले से ही प्रस्तावित करता आ रहा था,) या राज्य के प्रशासनिक कार्यों में बिलकुल हस्तक्षेप न करे। माधवराव ने यह प्रस्ताव ढ़द और निश्चयात्मक ढंग से रक्खा था; रघुनाथराव ने अपने को उसके अन्तिम प्रस्ताव से पूर्णत सहमत, सन्तुष्ट और प्रभावित प्रदाशिति किया और अपनी स्वीकृति प्रदान कर दिया। शिवनेर, अहमद नगर, असीरगढ़ और सतारा के किलों में उसके जितने भी अफसर और किलेदार थे उन सभी के पास आदिश भेज दिया कि भविष्य में वे माधवराव की ही आज्ञाओं का पालन करें। उसने घोषित किया कि सासंारिक माया ममता को छोड़ने के पहले उसकी एक ही इच्छा है कि उसकी सेना के सैनिकों का जितना भी वेतन बकाया है, वह उन्हें दे दिया जाय और उसके परिवार के सदस्यों तथा परिचारकों के निर्वाह का उचित प्रबन्ध कर दिया जाय। माधवराव ने स्वीकार किया कि बकाया वेतन को अदा करने के लिए तीन महीने के भीतर वह २५ लाख रुपए देगा; उसके परिवार के निर्वाह के लिए एक जागीर देगा जो गोदावरी नदी के उद्गम स्थान के समीप थी और जिसकी मालगुजरी की वार्बिक आय बारह या तेरह लाख रुपए थी। यही नहीं, उसने इस जागीर के साथ छः किले भी रघुनाथ राव के नाम कर देने का वादा किया जिनमें त्र्यम्बक, औंध और पट्टा भी सम्मिलित थे; * परन्तु रघुनाथ राव ने अब भी असन्तोष प्रकट किया। वास्तव में रघुनाथराव तो इस चक्कर में था कि अवसर मिलने पर पूरे मराठा राज्य के आधे भाग पर दावा करे।

इस समय माधवराव से मित्रता करने के लिए एक तरफ तो अंग्रेज और मुहम्मद अली सतत् प्रयास कर रहे थे और दूसरी तरफ निजामअली और हैदर भी समझौता करने के इच्छुक थे। बम्बई सरकार ने मि० मोस्टिन को राजदूत की हैसियत से पूना भेज दिया। मि० मोस्टिन को भेजने में उनका उद्देश्य यह था कि एक तरफ तो पेशवा को उनकी तरफ से निश्चिन्तता रहेगी और दूसरी तरफ

स्थान पर सखाराम वापू का नाम दिया है। (सीक्रेट डिसपैच्चेज, तारीख ५ दिसम्बर १७६७)।

सखाराम वापू प्रारम्भ से ही दो नावों पर पैर रखकर चलने वाला व्यक्ति था। वह दोनों दलों से उनके ही पक्ष की वात कहता था जिससे कि वह किसी भी हालत में अपनी स्थिति को सुरक्षित रख सके। वह उन दोनों के समझौते में कोई दखल नहीं देना चाहता था क्योंकि वह जानता था कि उन दोनों के वीच कोई भी समझौता स्थाई सिद्ध न होगा, और ऐसी स्थिति में उसका अस्तित्व खतरे में पड़ सकता था। मि० मोस्टिन ने लिखा है, "माधवराव, अपनी माता के प्रभाव के कारण, वास्तव में इस मुलाकात के अवसर पर अपने चाचा को पकड़कर कैद कर लेने का इरादा किया था।" वास्तव में मोस्टिन ने सुनी-सुनाई वात को तथ्य के रूप में लिख डाला है, और यह पकड़ने वाली वात भी गोपिका वाई ने तव कहा था जव कि रघुनाथराव पूना तक पहुँचा भी नहीं था। यद्यपि इन पारिवारिक सम्बन्धों में मोस्टिन के विवरण ही सही माने जाते है, परन्तु मैंने इस सम्बन्ध में वहाँ के निवासियों की बातों का ही अनुसरण किया जिनके अनुसार ऐसा कुविचार माधवराव की माँ गोपिका वाई का अवश्य था, परन्तु माधवराव के ने ऐसा विचार कभी व्यक्त ही नहीं किया था।

* मराठा पाण्डुलिपि और वम्वई रिकार्ड्स।

मोस्टिन हर सम्भव प्रयत्न करके, पेशवा के परिवार में ही मतभेद उत्पन्न करके, या अन्य किसी तरीके से मराठों को निजामअली तथा हैदर के साथ सन्धि करने से रोकने का यत्न करेगा। अंग्रेजों ने सोच रक्खा था कि जब तक विवश न हो जाना पड़े, मराठों के साथ कोई सन्धि न की जाय; परन्तु यदि सन्धि करना आवश्यक ही हो जाय तो मराठों को वेदनोर और सोएडा को जीतकर दे देने का वादा किया जाय और इस प्रकार मराठों की शक्ति को अपने स्वार्थ साधन में लगाया जाय। ये दोनों किले हैदर ही पहले जीत चुका था और मराठे उन्हें फिर से प्राप्त करने के लिए बहुत उत्सुक थे, इसलिए यह प्रलोभन उनके रुख को अंग्रेजो की तरफ मोड़ने की सम्भावना रखता था।

परन्तु मराठों ने इस अवसर पर कोई निश्चयात्मक कदम नहीं उठाया न किसी से कोई सन्धि करने की उत्सुकता ही प्रकाट की। उन्होंने अंग्रेजों के दूत को टालने के लिए उससे केवल यही कह दिया कि वे जैसा अवसर देखेंगे वैसा करेंगे। इधर पेशवा भी दक्षिण से नहीं लौट सन् १७६८] सका क्योंकि वह अपने चाचा के हृदयगत द्वेष से अभी तक निश्चिन्त नहीं हो सका था। उसे अब भी रघुनाथराव का व्यवहार शत्रुतापूर्ण ही प्रतीत हो रहा था। सखाराम बापू, जिसका व्यवहार सदैव रहस्यपूर्ण रहता था, इस समय भी दोनों मार्गो पर चल रहा था।

दूसरी तरफ उसका चाचा रघुनाथराव गुप्त रूप से विद्रोह की तैयारियां कर रहा था। शुष्क ऋतु के अन्त तक उसने लगभग १५००० सैनिकों को एकत्रित कर लिया था। उसे आशा थी कि जानोजी भोंसले भी अवश्य ही उसका साथ देगा, और इसी विश्वास के आधार पर, अपने १५००० सैनिकों के साथ आगे बढ़ते हुए सर्वप्रथम गोदावरी नदी के किनारे पड़ाव डाला और तत्पश्चात् घुरुप के किले के पास खेमा गाड़ा, (यह किला चन्दोर की श्रेणियों में स्थित है) इसी समय अपना कोई पुत्र न होने के कारण रघुनाथराव के हृदय में बहुत चिन्ता जागी, जिसको दूर करने के लिए अमृत राव नामक एक लड़के को गोद ले लिया। अमृत राव का जन्म एक कोंकण ब्राह्मण परिवार में हुआ था जिनका पारिवारक नाम भूसकूम था। रघुनाथराव इस विद्रोह के लिए अकेले ही तैयार नहीं हुआ था। उसके सहायकों में प्रमुख था दमाजी गायक बाड़। दमाजी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र गोविन्दराव के नेतृव में कुछ सेना रघुनाथराव के पास भेज दिया। राघोबा का दूसरा सहायक था होलकर का दीवान गंगाधर यशवन्त, जो पहले से ही रघुनाथराव का हार्दिक मित्र था, साथ ही पेशवा द्वारा किए गए अपने अपमान की एक घटना के कारण व्यक्तिगत रूप से भी माधवराव से द्वेष रखता था और बदला लेने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ था। उसके अपमान की यह घटना इस प्रकार थी: रघुनाथराव के द्वारा प्रशासन से सन्यास ले लेने के कुछ समय बाद पूना में एक बार आम दरबार किया गया। इस दरबार में गंगाधर यशवन्त भी उपस्थित था। किसी मसले पर विचार किए जाते समय उसने बहुत ही घृणापूर्वक कहा कि "वर्तमान अवसर पर उसकी अनुभवी आँखें यह अनुभव कर रही थीं कि सारे मामलों का निर्देशन एक ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जा रहा है जो सारी समस्याओं को अब भी बच्चों की आखों से देखता है और बचकानी हरकतें करता है।" उसकी इस बात को सुनते ही माधवराव बहुत ही उत्तेजित होकर मसनद से कूद पड़ा जिस पर कि वह बैठा हुआ था, और उसने दीवान के मुँह पर जोर से एक मुक्का मारा। उसके इस उत्तेजना पूर्ण व्यवहार से सारा दरबार स्तब्ध रह गया; मराठों के ब्राह्मण दरबार में ऐसा क्रोधपूर्ण प्रदर्शन कभी भी नहीं हुआ था, जबकि विशेष कर महाराष्ट्र के लगभग सभी सम्मानित पुरुष एकत्रित थे।

जब माधवराव ने अपने चाचा द्वारा आयोजित इस सुगठित तथा पूर्ण नियोजित विद्रोह के विषय में सुना और यह भी पता पाया कि राघोबा जानोजी भोंसले की सहायता प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है, तो वह सेना के साथ तुरन्त धुरुप की ओर रवाना हो गया। उसने एकदम से रघुनाथ राव की सेना पर आक्रमण करके उसे पराजित कर दिया। इस पराजय के फलस्वरूप रघुनाथ राव ने तुरन्त भाग कर किले में शरण लेने के लिये विवश हो गया। माधवराव ने अब भी उसकी जान नहीं छोड़ी और अन्त में राघोबा को मजबूरन आत्मसमर्पण करना पड़ा। पेशवा ने उसे कैद करके पूना भेज दिया और उसे अपने महल में बन्द करके उस पर कड़ा पहरा लगा दिया।

इसी समय बरसात आ गई जिसकी भयंकरता के कारण माधवराव उस समय जानोजी की उचित खबर न ले सका। उसने खुले रूप से निजामअली और हैदरअली से सन्धि वार्ता प्रारम्भ कर दिया। इस सन्धि वार्ता को उसने तीन उद्देश्यों से प्रारम्भ किया था। उसका प्रमुख उद्देश्य था जानोजी भोंसले को दण्ड देना और इसके लिये वह चाहता था कि निजामअली भी उसके साथ हो जाय। उसका दूसरा उद्देश्य था कि इस प्रकार वह मेरिच से गोपालराव की सेना को भेजे बिना ही हैदर से सालाना कर वसूल हो जायगा। उस समय हैदरअली पूरी शक्ति से अँगरेजों से निपटने में लगा हुआ था और ऐसे समय में उसके विरुद्ध सेना भेज देने से वह अँगरेजों से युद्ध करना छोड़ कर मराठों की सहायता के लिये प्रयास करने लगता, जो कि पेशवा नहीं चाहता था। इस सन्धि वार्ता द्वारा पेशवा का तीसरा उद्देश्य यह था कि वह बंगाल सरकार को जानोजी का साथ देने से रोक सके जिसके लिए जानोजी बड़े परिश्रम से प्रयास कर रहा था। अँगरेजों का उसका साथ देने से रोकने के लिये उसने बंगाल सरकार को धमकी दी कि माधवराव, निजामअली तथा हैदर की सहायता से कारोमण्डल तट से अङ्गरेजों के सारे कारबार ध्वस्त कर देगा।

यद्यपि उस समय पूना में नियुक्त अङ्गरेजों के एजेण्ट मि० ब्रोम ने माधव राव के इरादों के के विषय में वैसी ही रिपोर्ट भेजी जैसा कि माधवराव ने उसे विश्वास दिलाया था। बम्बई की कौंसिल और वहाँ के गवर्नर, जो यद्यपि इस विषय में मद्रास सरकार के समान सीधे रूप से सम्बन्धित नही थे, फिर भी सर्वप्रथम उन्होंने ही मराठों की इस सुनियोजित योजना की गम्भीरता का अनुभव किया। इधर जब हैदरअली ने देखा कि मराठों की सहायता प्राप्त करने के लिये कर देना आवश्यक है और उसने अपनी स्थिति के विषय में गौर करना प्रारम्भ किया तो उसने अपनी छलपूर्ण चाल में कुछ सुधार किया और उस समय उड़ती हुई अफवाहों से लाभ उठाते हुए उसने मद्रास प्रेसीडेन्सी से बातचीत शुरू कर दी और उन्हें अपनी तरफ मोड़ लिया। *

सन् १७६६]

माधव राव ने जब यह प्रचारित कर दिया कि कि वह सारी तैयारियाँ हैदर अली को मदद पहुँचाने के ध्येय से कर रहा है, तो उसने अपने वास्तविक इरादों पर परदा डालने की गरज से अपना जहाजी बेड़ा बम्बई बन्दरगाह की तरफ रवाना कर दिया। उनके जहाजी बेड़े को अपनी तरफ बढ़ते हुए देखकर कौंसिल तथा गवर्नर ने इस जहाजी बेड़े के संचालक, बसई के विसाजीपन्त को बुलाकर इसका कारण पूछा। उनके द्वारा जवाब तलब किए जाने पर विसाजी पन्त ने यह बहाना किया कि वह दो पुर्तगाली जहाजों का पीछा कर रहा है; उसने कौंसिल के प्रेसीडेन्टी को बार-बार

---

* कर्नल विल्क्स ने इस विषय में वम्बई के पत्रों को नजर अन्दाज कर दिया है, हैदर वास्तव में वहुत कुशल कूटनीतिज्ञ था; देखिए भाग २, पृ० ११७; विल्क्स लिखित सदर्न इन्डिया।

विश्वास दिलाया कि पेशवा अंग्रेजों से विरोध करने का कतई इरादा नहीं रखता। विसाजी द्वारा इस प्रकार विश्वास दिलाने के प्रयत्न से बम्बई कौंसिल के मत की पुष्टि हो गई और उनका विश्वास दृढ़तर हो गया। उन्हें इन हलचलों की खबर मिली कि जानोजो भोंसले गम्भीर तैयारियाँ कर रहा है और मराठों तथा मुगलों की संयुक्त सेनाएँ पेशवा तथा रुकनुद्दौला के नेतृत्व में नागपुर की तरफ बढ़ी चली आ रही हैं।

जानोजी ने पेशवा का मुकाबिला करने के लिए मराठों की पुरानी युद्धनीति का सहारा लिया और छोटी-छोटीं टुकड़ियों द्वारा अलग-अलग स्थानों पर पेशवा तथा मुगलों की संयुक्त सेना पर आक्रमण करने की योजना बनाई। इधर पेशवा को इस तरीके से युद्ध करने का विशेष अनुभव नहीं था और अर्धनियमित ढंग की प्रणाली की तरफ अधिक ध्यान दे रहा था। उसके तथा मुगल सेना के साथ युद्ध और कैम्प-सम्बन्धी बजनी सामान भी बहुत अधिक संख्या में थे। उनका तोपखाना आंशिक रूप से अनुशासित सेना, असंख्य खेमें तथा पेशवा और रुकनुद्दौला के भारी अस्त्र और सज्जाएँ इस प्रकार यत्र तत्र छोटी-छोटी टुकड़ियों में युद्ध करने के लिए बहुत असुविधाजनक थे, जबकि जानोजी ने इसी प्रकार युद्ध करने की योजना बनाई थी।

निजाम अली तथा माधवराव की संयुक्त सेनाएँ वसई और करंजा के मार्ग से बरार में घुसी। जानोजी की ओर से उस समय बरार में नारोपन्त सूबेदार की हैसियत से नियुक्त किया गया था। नारो पन्त ने इस संयुक्त सेना का मुकाबिला करके उन्हें रोकने का प्रयत्न किया परन्तु उसकी पराजय हुई और वह युद्ध में ही मारा गया। उसका भतीजा विट्ठल पन्त नागपुर की तरफ निकल गया। इस समय जानोजी भोंसले तथा मूदाजी अपने परिवार तथा अन्य सामग्री के साथ नागपुर में ही थे। जब पेशवा नागपुर की तरफ अग्रसर हुआ तो वे पश्चिम की तरफ खिसक गए। चूँकि उनका सम्बन्ध छिन्न भिन्न करने का कोई प्रयास नहीं किया गया था, इसलिए ज्योंही पेशवा उधर से होते हुए पूर्व की ओर बढ़ गया, जानोजी तथा मूदाजी ने अपने परिवारों तथा अन्य सामग्रियों को वहीं रख दिया। इसी समय में उनका भाई सूबा भी एक पर्याप्त बड़े सैन्यदल से साथ उनसे आ मिला। इधर माधवराव ने नागपुर को लूट लिया परन्तु जानोजी ने इस लूटपाट को रोकने का कुछ भी प्रयास नहीं किया, बल्कि वह रामटेक की ओर बढ़ चला जहाँ कि उसकी सारी सेना एकत्रित हो गई। इसी समय उसका चौथा भाई भी छत्तीसगढ़ से चलकर उससे आ मिला। इस प्रकार सारी शक्तियों के एकत्रित हो जाने पर जानोजी ने यह दिखावा किया कि उसका इरादा पेशवा के उत्तरी सीमावर्ती जिलों पर आक्रमण करने का है परन्तु पेशवा उसके बहकाने में नहीं आया और उसका पीछा नहीं किया। उसने विभिन्न जिलों में थानों और चौकियों को स्थापित कर दिया, उस पूरे चेत्र में कर मालगुजारी वसूल किया और चाँदा पर घेरा डाल दिया। इसी बीच जानोजी घूमकर पश्चिम की ओर मुड़ गया और असाधारण तीव्रता से बढ़ते हुए वह अहमदनगर को पार कर गया और रास्ते की बस्तियों को लूटते हुए वह पूना के मार्ग पर बढ़ चला। माधवराव ने कुछ समय पूर्व यह प्रस्ताव रक्खा था कि राजधानी को चारों तरफ से मजबूत दीवालों से घेर दिया जाय; ऐसा प्रस्ताव उसने निजामअली द्वारा पूना को विध्वन्स किए जाने के पश्चात् पुनः ऐसी घटना न घटने से रोंकने के लिए कर रक्खा था, परन्तु काफी सोच विचार के पश्चात् ही इस प्रस्ताव का विरोध किया गया क्योंकि इस प्रकार चारों तरफ से दीवाल का घेरा बना कर और इतना अधिक व्यय करके केवल ऐसी सम्पत्ति की रक्षा की जा सकती थी जो कि पहले से ही सिंहगढ़ तथा पुरन्दर के मजबूत पहाड़ी किलों द्वारा बहुत सक्षम ढंग से सुरक्षित था। इस प्रकार दीवाल बनवाना एक अपव्यय मात्र सिद्ध किया गया। जब पूनावासियों ने जानोजी के

आने की खबर पाई तो उन्होंने सदैव की तरह अपनी धन सम्पत्ति को किलों में भेज दिया। इधर जैसे ही माधवराव को जानोजी की कुचेष्टा का समाचार मिला उसने गोपालराव पटवर्धन तथा रामचन्द्र गनेश को जानोजी की खबर लेने के लिए रवाना कर दिया। गोपालराव एवं रामचन्द्र गनेश के साथ पेशवा ने ३०,००० घुड़सवारों की सेना भेजी। इसके पश्चात् पेशवा तथा रुकनुद्दौला ने चांदा पर से अपना घेरा उठा लिया। उधर से जानोजी गोदावरी की तरफ चल पड़ा; उसने गोपालराव तथा उसकी सेना को काफी पीछे छोड़ दिया था। उसने यह दिखाना शुरू किया कि वह गोपालराव पटवर्धन की अनुपस्थिति के कारण पेशवा को निर्बल समझकर उससे खुली लड़ाई लड़ने के इरादे से आगे बढ़ रहा है। परन्तु वास्तव में वह खुली लड़ाई के लिए उत्सुक नहीं था। माहूव के पास वह पेशवा की सेना से कुछ छेड़छाड़ किए बिना आगे निकल गया परन्तु उसने एक घुमावदार रास्ते से एक छोटी टुकड़ी के साथ बापू करौंदिया को पेशवा की सेना के पिछले भाग की ओर रवाना कर दिया। बापू करौंदिया ने अचानक पेशवा की युद्ध सामग्री ले जाने वाली टुकड़ी पर धावा कर दिया, और इन सामग्रियों का कुछ भाग छीनकर भागने में सफल हो गया। अब तक दोनों दल इस भागदौड़ और युद्ध से ऊब गए थे दोनों दल अब तक काफी हानि उठा चुके थे। यद्यपि जानोजी अभी तक अपनी योजना के अनुसार सफल हो रहा था, फिर भी उसे यह अनुभव होने लगा कि यदि यह युद्ध इसी प्रकार कुछ समय तक चलता रहा तो वह स्वयम् ही बरबाद हो जायगा। परन्तु उसके हताश होने का प्रमुख कारण यह था कि उसे अपने भाई मूदाजी द्वारा विश्वासघात किए जाने का सन्देह होने लगा था। इस प्रकार युद्ध तथा मतभेद से हतास हो जाने के कारण ज्योंही माधवराव ने उसके पास शान्ति रखने का प्रस्ताव भेजा, उसने तुरन्त स्वीकार कर लिया। इस प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने के बाद उन दोनों के बीच एक समझौता हुआ। इस सन्धिपत्र का अन्तिम मसविदा २३ मार्च * को तैयार हुआ था। इसमें जो शर्तें निश्चित की गई थीं वे पूर्णत: पेशवा के अनुकूल थीं। इसी सन्धि के ११ दिन बाद वह उल्लेखनीय सन्धि हुई जिसके अनुसार हैदर अली ने अंग्रेजों के साथ मद्रास में शान्ति कायम रखने का वादा किया था।

माधवराव पेशवा तथा जानोजी भोंसले सेना साहिब सूबा के बीच यह उल्लेखनीय सन्धि प्रह्लेश्वर के निकट भीमा नदी के किनारे पर स्थित कनकापुर नामक गाँव में सम्पन्न हुई। इस सन्धिपत्र में कुल १३ शर्तें थीं जिनके अनुखार जानोजो ने अपने पास बचे हुए उन सभी जिलों को वापस कर दिया जो उसने राक्षसभुवन में मुगलों के साथ विश्वासघात करने के उपलक्ष्य में मराठों द्वारा प्राप्त किया था। कुछ ऐसे क्षेत्रों से मालगुजारी वसूलने का अधिकार भी उसने त्याग दिया जो वास्तव में अकलकोट के राजा फतह सिंह भोंसले के अधिकार में थे। अभी तक जानोजी को सेना साहिब सूबा के पद के अनुसार पेशवा के औरंगाबाद के जिलों से घास दाना वसूलने का अधिकार मिला हुआ था, परन्तु इस सन्धि के अनुसार वह अधिकार भी उनसे छीन लिया गया। इसी सम्बन्ध में यह भी निश्चय किया गया कि यदि किसी अन्य जिले पर भी उनके घासदाना का अधिकार बाकी हो और वह जिला निजाम अली या पेशवा के अधिकार में हो तो उसके बदले में एक रकम निश्चय कर दी जायगी जो एक आदेश पाने पर मालगुजारी वसूलने वाले अधिकारी उस निश्चित रकम को अदा कर देंगे। परन्तु

---

* १४वीं जिलकद, सूर सन ११६६। बम्बई रिकार्ड्स के अनुसार यह सन्धि २३ अप्रैल को हुई थी; यदि मेरी गणना में कोई दोष नहीं है तो यह तारीख वास्तविक तारीख से एक महीना आगे है।

यदि मुगल इस रकम को अदा नहीं करते हैं तो सेना साहिब सूबा को यह अधिकार रहेगा कि उस रकम को जबर्दस्ती वसूल कर लें । इस सन्धिपत्र के अनुसार जानोजी बिना पेशवा की आज्ञा के न तो अपनी सेना को घटा सकता था और न बढ़ा सकता था और जब भी पेशवा को उसकी सेना की मदद की आवश्यकता पड़े तो पेशवा के पास उसकी उपस्थिति अनिवार्य थी । इसके साथ साथ उस पर निम्नलिखित अन्य बन्धन भी लगाए गए, वह मराठा दरबार से निकाले गए किसी जिलेदार को शरण न दे और न पेशवा की सेना को छोड़ कर भागने वाले किसी सैनिक को अपने यहाँ नियुक्त करे : दिल्ली के मुगल बादशाह, दक्षिण के सूबेदार, अंग्रेजों, रुहेलों और अवध के नवाब आदि से किसी भी प्रकार का राजनैतिक सम्बध न रक्खे । पेशवा ने जानोजी को यह सुविधा प्रदान की कि उसके एक-एक वकील उड़ीसा में अंग्रेजों के साथ और निजाम अली के दरबार में रह सकता है, परन्तु उसका कार्य केवल मालगुजारी सम्बन्धी मामलों की देखभाल करना ही होगा । जानोजी भोंसले ने यह भी स्वीकार किया कि वह पाँच सालाना किश्तों में पेशवा को ५ लाख रुपया भेंट के रूप में देगा ।* दूसरी तरफ पेशवा ने जानोजी को यह आश्वासन दिया कि वह हिन्दुस्तान की ओर अभियान करते समय कोई अनुचित रास्ता अख्तियार करके या किती भी अन्य प्रकार से उसके क्षेत्र में कोई गड़बड़ी या अत्याचार नहीं करेगा । पेशवा ने उसे यह अनुमति भी दी कि वह अंग्रेजों के विरुद्ध अपनी सेना भेज सकता है (जानोजी के अनुसार उड़ीसा में उसे काफी तंग करते थे) परन्तु तभी, जब कि पेशवा को राज्य की सेवा के लिए जानोजी के सेना की आवश्यकता न हो, इन शर्तों के अतिरिक्त इस सन्धिपत्र में अन्य बहुत सी शर्तें हैं, परन्तु उल्लेखनीय तथा महत्वपूर्ण शर्तों का उल्लेख ऊपर कर दिया गया है । इस सन्धिपत्र के एक सिरे से दूसरे सिरे तक यही भाव परिलक्षित होता है कि सेना साहब सूबा पूर्णतः पेशवा के अधीन रहेगा । परन्तु इस सन्धिपत्र में एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इसमें आक्रामक और प्रतिरक्षात्मक सन्धि के सामान्यतः प्रचलित शर्तों की अवहेलना की गई हैं, जिसके स्थान पर पेशवा, सेना साहिब सूबा के अनुरोध पर, केवल यह आश्वासन देता है कि जब कोई अन्य शक्ति जानोजी के क्षेत्र पर आक्रमण करेगी तो वह जानोजी की सहायता के लिए अपनी सेना को कुछ टुकड़ियों को भेज देगा ।

इस सन्धि द्वारा माधवराव को पर्याप्त लाभ हुआ जिनमें उसने निजाम अली को तीन लाख रुपए प्रतिवर्ष की मालगुजारी वसूलने का अधिकार प्रदान किया और उसके वजीर रुकनुदौला को पारितोषिक के रूप में पेशवा ने एक लाख रुपया दिवा । †

इस प्रकार बरार के राजा के विरुद्ध अपने सफल अभियान से लौटने के पश्चात् पेशवा ने अपनी सेना के एक भाग को मालवा की तरफ भेज दिया । इस सेना का नेतृत्व विसाजी किशन विनीवाला के हाथ में था; उसकी सहायता के लिए रामचन्द्र गनेश, तुकाजी होलकर और महादजी सिन्धिया भी उसके साथ कर दिए गए थे । अब इस अभियान का वर्णन करने के पहले कुछ अन्य मामलों की तरफ अपना ध्यान हटाना आवश्यक है इनमें से मुख्य है, महादजी सिन्धिया से सम्वन्धित कुछ परिस्थितियाँ, पूना में पारिवारिक सम्बन्ध तथा कर्नाटक से सम्बन्धित कार्रवाइयाँ ।

जब ज्ञनको जी सिन्धिया की मृत्यु हो गई तो इस बात पर काफी विवाद उठा कि अब

---

* इस समझौते में ५ लाख रुपया अदा की जाने वाली शर्त ही एक ऐसी शर्त है जिसके विषय में बम्बई सरकार को कुछ जानकारी थी । अन्य सभी शर्तें काफी गुप्त रक्खी गई थीं ।

† मराठा पाण्डुलिपि और पूना रिकार्ड्स में प्राप्त मूल सन्धिपत्र की प्रतिलिपियों के आधार पर ।

सिन्धिया परिवार की जागीर का उत्तराधिकारी कौन हो। महादजी सिन्धिया का जन्म अवैध ढंग से हुआ था इसलिए कुछ लोगों ने उसके उत्तराधिकारी होने का विरोध किया परन्तु अपने गुणों तथा राज्य के प्रति अपनी सेवाओं से उसने मराठा दरबार में इतना स्थान प्राप्त कर लिया था कि उसे पारिवारिक जागीर में का योग्य दावेदार माना गया। यदि उसके इस उचित ढंग पर विचार न किया जाता तो उसकी सेवाओं को देखते हुए यह दृष्टिकोण अन्यायपूर्ण तथा नीति के विरुद्ध होता। विशेष कर ऐसी परिस्थिति के जब कि रानो जी का कोई भी वैध वशंज जीवित नहीं था। रानोजी का अवैधपुत्र होने के कारण मराठा सिलेदार उसे बहुत सम्मानपूर्ण दृष्टि से नहीं देखते थे, और इसी हीन भाव से मर्माहत होकर सिन्धिया मुसलमानों और राजपूतों को अधिक महत्व देता था, साथ ही उसने अपनी सेना के विधान में भी परिवर्तन किया था। रघुनाथराव ने, बिना किसी स्पष्ट कारण के, * यह प्रस्ताव रक्खा था कि सिन्धिया परिवार की जागीर का उत्तराधिकारी उसके भतीजे, तुकाजी के ज्येठ पुत्र केदारजी सिन्धिया को मान लिया जाय और महादजी को उसका संरक्षक बना दिया जाय, परन्तु पेशवा ने इस प्रस्ताव को अमान्य कर दिया। इस प्रश्न पर मतभेद उत्पन्न हो जाने के कारण माधवराव तथा उसके चाचा के बीच की विरोध की खाई और चौड़ी हो गई, साथ ही इसके पश्चात् महादजी सिन्धिया भी इसके बाद सदैव ही नाना फड़नबीस, हरी पन्त फड़के तथा कुछ अन्य सरदारों की ओर झुका रहा, जो दिखावटी तौर पर तो कारकुन थे, परन्तु वास्तविक रूप में माधवराव के सलाहकार और मंत्री यही लोग थे।

जब हिन्दुस्तान की ओर के अभियान के लिए अन्तिम आदेश दिए गए तो सेना के साथ जाने वाले अफसरों में महादजी सिन्धिया का नाम भी था। सभी अफसर पेशवा से अपना अनुमति पत्र लेकर आगे बढ़ चुके थे परन्तु महादजी सिन्धिया, अपने प्रति दिखाई गई इस कृपा के उद्देश्य के विषय में तर्क वितर्क करता हुआ पूना के आस पास ही बना रहा। माधवराव अपने अफसरों में आज्ञा पालन के प्रति बहुत तत्परता की उपेक्षा करता था और विशेष कर इस अवसर पर वह चाहता था कि उसकी सेना पूर्ण तीव्रगति से आगे बढ़ कर शीघ्रातिशीघ्र नर्बदा नदी को पार करले अन्यथा दक्षिणी पश्चिमी मानसून के प्रारम्भ हो जाने पर नदियों में बाढ़ आ जायगी और तब नदी को पार करने में बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। परन्तु कूच का हुक्म दे देने के दो या तीन दिन पश्चात् जब वह पूना से १३ मील की दूरी पर स्थित अपने प्रिय गाँव की तरफ घोड़े से जा रहा था तो उसने देखा कि सिन्धिया का कैम्प अभी भी पड़ा हुआ था, उसमें जरा भी हलचल नहीं दिखाई पड़ रही थी और न कूच करने को कोई तैयारी ही नजर आती थी। पेशवा ने तुरन्त महादजी को बुला भेजा और अपनी आज्ञा की अवहेलना के लिए उसे बहुत फटकारा और आश्चर्य प्रकट किया। साथ ही उसने, बहुत कुपित होकर सिन्धिया से यह भी कहा कि यदि लौटते समय उसने महादजी का एक भी खेमा गड़ा पाया या उसकी एक सेना कहीं भी दिखाई पड़ी तो वह उसके सारे कैम्प की सारी सामग्री छीन लेगा और उसकी जागीर को वीरान कर डालेगा। उसकी इस धमकी को सुनकर महादजी सिन्धिया ने तुरन्त कूच कर दिया, परन्तु माधवराव के सम्बन्ध में यह प्रख्यात कहानी इसलिए और उल्लेखनीय है कि इसमें दिखाई पड़ने वाले विरोधाभास में महादजी सिन्धिया का उज्वल भविष्य छिपा हुआ था जो उसने बाद में पूना दरबार में अपना महत्व स्थापित करके प्राप्त किया।

---

* इस काल के कई वर्ष पश्चात् पूना के रेजीडेन्ट कर्नल पामर के ८ जून १७९८ के एक पत्र में यह उल्लेख मिलता है कि रघुनाथराव ने सिंधिया की जागीर को मन्ना जी को दे दिया था, परन्तु मराठा पाण्डुलिपियों में इस प्रकार के किसी परिवर्तन का कोई उल्लेख नहीं है।

पेशवा जब भी राजनैतिक विवादों से कुछ फुरसत पाता था तो वह अपना समय अपने राज्य के शासन प्रबन्ध के सुधार में लगाता था। इस प्रयत्न में उसे प्राय: आधारहीन पक्षपातों तथा सामान्य भ्रष्टाचारों से संघर्ष करना पड़ता था, परन्तु उसने अपने शासन प्रबन्ध में जो उल्लेखनीय सुधार किए उनकी प्रसन्सा आज भी की जाती है। वह बहुत प्रजावत्सल था और उसकी हार्दिक इच्छा थी कि उसकी प्रजा को, जहाँ तक सम्भव हो, कष्ट का सामना न करना पड़े। उसकी न्याय व्यवस्था में छोटे बड़े का कोई भेदभाव नहीं था और सभी को न्याय प्राप्त करने के लिए समान अवसर सुलभ थे। इन्हीं सब गुणों के कारण उसका शासन प्रबन्ध बहुत सराहनीय माना जाता है। उसके प्रयासों को वल देने वाला था रामशास्त्री, जिसका नाम मराठों कीं न्याय व्यवस्था के इतिहास में एक पवित्र तथा निष्पक्ष न्यायाधीश के रूप में आज ध्रुवतारे की भाँति प्रकाशित है। मराठा दरवार स्वार्थ, छल, कपट, द्वेष, भ्रष्टाचार और क्षुद्रता का अखाड़ा बना हुआ था और ऐसे वातावरण ऐसी परिस्थितियों में रामशास्त्री जेसे निष्कपट तथा पूर्ण पवित्र व्यक्तित्व का अस्तित्व बहुत ही आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। रामशास्त्री का जन्म सतारा के निकट स्थित माहोली ग्राम में हुआ था परन्तु वह बाल्यावस्था में ही बनारस चला आया था जहाँ उसने कई वर्षों तक गूढ़ अध्ययन किया और वाला कृष्ण शास्त्री के मृत्यु के पश्चात् (१७५९ के लगभग) वह पूना की सार्वजनिक संस्था में नियुक्ति के लिए चुना गया। बिना किसी सिफारिश या प्रयास के, वह दरबार के शास्त्रियों का प्रधान नियुक्त कर लिया गया। जब माधवराव ने प्रशासन का अधिकांश प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया तो रामशास्त्री ने बड़ी ही कठिनाई और परिश्रम से माधवराव को अपने विशेष शास्त्र (न्यायशास्त्र) के तथा प्रशासन के सामान्य व्यवहार के विषय में विस्तृत अध्ययन कराया। उन गुरु शिष्य के विषय में एक कथा प्रचलित है जो इन दोनों की व्यापक बुद्धि का परिचय देती है। कई विद्वान ब्राह्मणों की निरन्तर संगति एवं उनके प्रभाव के फल स्वरूप माधवराव कई रहस्यपूर्ण और विचित्र योगात्मक क्रियाओं का अभ्यास करने लगा। जो प्राचीन शास्त्रों के अनुकूल थे। रामशास्त्री ने ऐसे पाखण्डों में उसकी लगन देखकर अनुभव किया कि केवल तर्क वितर्क द्वारा माधवराव की इन क्रियाओं के औचित्य का खण्डन करने से इसके अलावा और कुछ नहीं होगा कि माधवराव और उसके अन्य साथी उसके विरोधी हो जाएँगे। एक बार संयोगवश रामशास्त्री किसी विशेष कार्य से जब पेशवा के पास पहुँचा तो पेशवा पद्मासन लगाए ध्यान में मग्न बैठा था; हिन्दू शास्त्रों में, ऐसा विधान है कि ध्यानावस्था में साधक को अपनी सारी इन्द्रियों को अचेतन मान लेना चाहिए और अपना ध्यान किसी भी तरफ नहीं बँटने देना चाहिए। रामशास्त्री पेशवा को ध्यानावस्थित देखकर वापस लौट गया। परन्तु दूसरे दिन कुछ आवश्यक कार्यों को निपटा कर रामशास्त्री बहुत शान्त भाव से पेशवा के पास गया और अपना त्याग पत्र प्रस्तुत करके कहा कि वह बनारस जाकर शान्त जीवन बिताना चाहता है। माधवराव तुरन्त सारी बात समझ गया। उसने अपने गुरु से कल के अनुचित व्यवहार के लिए क्षमा प्रार्थना की, और उसका कारण भी बताया, साथ ही यह भी कहा कि यदि वह ऐसे पवित्र कार्य में व्यस्त रहने के कारण वह गुरु का उचित सम्मान न कर सका तो उसके व्यवहार को क्षम्य तथा प्रशंसनीय माना जाना चाहिए। इस पर रामशास्त्री ने कहा, "यह व्यवहार तभी प्रशंसनीय माना जा सकता है जब साधक समस्त सासांरिक बन्धनों को त्याग चुका हो। अब यदि ब्राह्मणों ने अपने पुराने गुरुपद को छोड़कर राजपद ग्रहण कर लिया है, तो इस राजपद को हड़प लेने का एकमात्र और सर्वश्रेष्ठ प्रायश्चित यही है कि वे अपनी प्रजा की रक्षा के लिए शक्ति का प्रयोग करें। तुम्हें यह शोभा नहीं देता कि तुम प्रजा की भलाई की चिन्ता करने के बजाय योग का अभ्यास करो। अब तो तुम्हारा यही कर्तव्य है कि तुम अपनी प्रजा की भलाई करने में तत्परता

दिखाओ, अपना प्रशासन मजबूत करो या यदि तुम अपने इन कर्तव्यों के अनुसार अपने को ढाल नहीं सकते तो मसनद छोड़ दो, मेरा साथ पकड़ो और अपना सारा जीवन उन योगाभ्यासों के लिए अर्पित कर दो जो कि शास्त्र सम्मत है, और जिन पर मैं भी विश्वास और श्रद्धा रखता हूँ।" माधवराव ने अपने गुरु की इस फटकार के औचित्य का अनुभव किया और उन ब्राह्मणों तथा पुस्तकों का साथ छोड़ दिया जिन्होने उसे कर्मयोग के रास्ते से बहका दिया था।

रामशास्त्री ने अपने देशवासियों को जो भी लाभ पहुँचाए, उनको उसने पहले क्रियात्मक उदाहरणों द्वारा सिद्ध करके उनकी सत्यता एवं यथार्थता को जाँच लिया था। उसने विभिन्न समस्याओं के विषय में अपने विचारों को प्रस्तुत किया जिनकी गम्भीरता और गुरुता को देश के तत्कालीन विद्वानों ने एकमत से स्वीकार किया। रामशास्त्री के समय में न्याय सम्बन्धी सम्पूर्ण अधिकार पचांयतों के हाथ में थे और उस समय की पचांयतों के फैसले आज भी नजीर के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। उसके व्यवहार और कार्य सदैव अथक उत्साह एवं परिश्रम का प्रदर्शन करते थे, और उसके इस उत्साहपूर्ण व्यवहार के कारण विभिन्न पदों एवं श्रेणियों की सुधार की गति पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। अपने कार्य को कुशलतापूर्वक तथा निष्ठापूर्वक सम्पन्न करने वाले व्यक्तियों का वह हर प्रकार से संरक्षण करता था परन्तु जो अधिकारी कोई गलत कार्य कर डालते थे, वे सदैव इस भय से काँपा करते थे कि कहीं रामशास्त्री को उनके दुष्कृत्यों का पता न चल जाय; चाहे वे कितने ही ऊँचे पद पर क्यों न हों, परन्तु वे रामशास्त्री से सदैव आंतकित रहते थे। उच्च अधिकारी तथा सम्पत्तिशाली वर्ग में यद्यपि ऐसे लोग भी थे जो तरह-तरह के उपहारों तथा प्रलोभनों द्वारा रामशास्त्री को भ्रष्ट करने का दुस्साहस करने से बाज नहीं आते थे परन्तु एक बार रामशास्त्री द्वारा फटकारे जाने पर ऐसे लोगों के पास यह साहस नहीं रह जाता था कि वे फिर इस प्रयोग को दुहराएँ और उसके पवित्र भाल को कलंकित करने का प्रयास करते रहें। रामशास्त्री का रहन-सहन बहुत ही साधारण था। उसने एक यह दृढ़ नियम बना लिया था कि वह अपने घर में उतनी सामग्री से अधिक नहीं रक्खेगा जितने का उपभोग वह एक दिन में कर सके।

माधवराव ने, अपने सुधारों के सिलसिले में, सर्वप्रथम कार्य यह किया कि उसने बेगारी प्रथा का अन्त कर दिया जिसके अनुसार बिचारे ग्रामीणों को जबर्दस्ती जागीरदारों या उच्च अधिकारियों के सामानों को कुलियों की तरह ढोना पड़ता था। उस समय यह प्रथा महाराष्ट्र में ही नही, पूरे देश में सामान्यतः प्रचलित थी। जब माधवराव ने अपने राज्य क्षेत्र से इस प्रथा का अन्त करने के लिए नियम बना दिया तो इससे उच्चपदस्थ अधिकारियों एवं शक्तिशाली अधिकारियों में बहुत असंतोष फैला और कुछ ने तो, निषेध के बावजूद भी गुप्तरूप से बेगार लेना जारी रक्खा। परन्तु संयोगवश एक अवसर पर पेशवा को खबर मिली कि बसई के सूबेदार, विसाजी पन्त की काफी मूल्यवान सामग्रियाँ बेगारी में पकड़े गए किसानों द्वारा ढोई जा रही हैं। यह खबर पाते ही पेशवा ने तुरन्त इन सामग्रियों को अपने अधिकार में ले लिया और दण्ड के रूप ही में जब्त कर लिया। जो किसान बेगारी में पकड़े गए थे, उनको पेशवा ने उनके कृषिकार्य से सम्बन्धित हानि के लिए हरजाना दिया। उसी समय उसने फिर से नए आदेश जारी किए और उसके पश्चात् किसी ने भी इन आदेशों की अवज्ञा करने का साहस नहीं किया क्योंकि सभी माधवराव के दृढ़ स्वभाव से परिचित थे। *

आगे आने वाली शुष्क ऋतु में माधवराव ने अपने कार्यों से फुरसत पाने के बाद अपना ध्यान

---

* कुछ लोगों का कहना है कि माधवराव ने, इन किलों की सारी सम्पत्ति को जब्त कर लेने के साथ ही काफी जुरमाना भी वसूल किया।

सन् १७७०]

कर्नाटक की तरफ मोड़ने का अवसर पाया । हैदरअली ने इस बीच अंग्रेजों से शान्ति रखने का समझौता कर लिया था साथ ही अंग्रेजों ने अवसर पड़ने पर उसकी सहायता करने का वादा भी किया था इसलिए वह मराठों से युद्ध की आशंका के विषय में एकदम निश्चित था । जब मराठों ने पूर्व निश्चय के आधार पर उससे बकाया कर की माँग की तो उसने कर देने से स्पष्ट इनकार कर दिया, यही नहीं, उसने कुछ ऐसे पालीगरों से भी कर वसूल किया जो मराठो के अधीन थे । उसके ये धृष्ट व्यवहार मराठों को उत्तेजित कर देने के लिये पर्याप्त थे, विशेषकर माधवराव स्वभाव से ही ऐसी धृष्टता को सहलाने की प्रवृत्ति नहीं रखता था । हैदर अली के ऊपर अत्यन्त कुपित होकर पेशवा माधवराव ने नवम्बर माह में घुड़सवारों की एक विशाल सेना को आगे भेज दिया जिसको सम्भालने के लिए गोपाल राव पटवर्धन, मल्हार राव तथा गोपालराव के चचेरे भाई परेशराम भाऊ और नीलकन्ठ राव पटवर्धन रवाना हुए । उनके पीछे-पीछे पेशवा भी, पैंतीस हजार सैनिकों के साथ चल पड़ा । इन पैंतीस हजार सैनिकों में से १५,००० सैनिक पैदल थे । माधवराव ने काफी तेजी से चलकर छोटा तथा बड़ा बालापुर, कोल्हार, और नन्दीदुर्ग पर अधिकार कर लिया । तत्पश्चात् उसने हैदर अली के राज्यक्षेत्र की पूर्वी सीमा पर स्थित खुले क्षेत्र पर अधिकार किया जिसमें १६ किले भी सम्मिलित थे, यद्यपि ये किले अधिक महत्वपूर्ण नहीं थे, साथ ही मोर्चेबन्दी से घिरे हुए २५ गावों को भी अपने हाथ में ले लिया और इन गावों में बनाए गए अधिकांश प्रतिरक्षात्मक मोर्चों को भी नष्ट कर दिया । किले पर अधिकार करने का श्रेय घाटगे परिवार के बुध और मुलबागुल को मिला जिनमें परस्पर प्रतिद्वन्दिता चलती थी । इस किले पर हुए आक्रमण का नेतृत्व इसी परिवार के दोनों दलों के सरदारों ने किया था । इन दोनों में पारिवारिक उत्तराधिकार के विषय में बहमनी राजवंश के समय से ही विवाद चलता आ रहा था । पेशवा के दरबार में यह विवाद दो बार प्रस्तुत किया गया । पेशवा ने इसके निबटारे के लिए एक पचांयत का संगठन कर दिया जिसका निर्णय नागोजी राजा झुझारराव के पक्ष में हुआ । परन्तु घाटगे परिवार के दूसरे दल के नेता बाजी घाटगे ने उस निर्णय के प्रति असन्तोष व्यक्त किया । इस प्रकार इस निर्णय के सर्वमान्य न होने के कारण दोनों दलों ने पेशवा से प्रार्थना की कि उन्हें, इस विवाद को उनकी पारिवारिक प्रथा के अनुसार, 'भाले की नोक' पर तय कर लेने की अनुमति दी जाय । परन्तु दोनों दलों के इस बात पर एकमत हो जाने के बावजूद भी पेशवा ने अपनी अनुमति नहीं दी । इस बार, जब मुलबागुल पर आक्रमण करने की तैयारी की जा रही थी, अचानक यह प्रस्ताव रक्खा गया कि उन दोनों दलों में से जिसकी पताका पहले, किले के बाहर की खाई के पास पर फहराते हुए जरी पताका के सामने गड़ जायगी उसी को घाटगे परिवार को दी गई सुविधाओं एवं अधिकारों का स्वामी मान लिया जायगा । दोनों दलों ने इस निर्णय को मान लिया और अपना प्रयास आरम्भ कर दिया । बाजी घाटगे के दल का एक व्यक्ति अपने सरदार की पताका फहराते हुए आगे बढ़ा जा रहा था, परन्तु वह बीच में ही आहत होकर धराशायी ही गया । किले पर फहराते हुए जरी पताका की रक्षा के लिए जो व्यक्ति खड़ा था उसका नाम दमदेरी था, वह भी इस संघर्ष में घायल हो कर गिर गया । परन्तु उसके गिरते-गिरते नागोजी ने पताका पकड़ ली, और अपने हाथों से अपनी पताका को गाड़कर उसके सामने जरी पताका को फहरा दिया और सारी मराठा सेना जो इस दृष्य को देख रही थी, खुशी से चीत्कार कर उठी । दुर्भाग्यवश, इस वीरतापूर्ण कार्य का सारा आनन्द समाप्त हो गया क्योंकि किले की सारी रक्षक सेना काट डाली गई ।

इन स्थानों पर अधिकार कर लेने के पश्चात पेशवा, बिना रुके आगे बढ़ता गया । उसकी

प्रगति काफी समय के लिए निदेजीगल के प्रबल प्रतिरोध के कारण अवरुद्ध हो गई। यह किला प्रतिरक्षा की दृष्टि से बहुत मजबूत था। मराठों ने दो बार इस किले पर प्रबल आक्रमण किए और दोनों बार असफलता ही हाथ लगी। इनमें से पहले धावे में पेशवा का छोटा भाई नारायणराव, घायल भी हो गया।* अन्त में चित्तलदुर्ग के पालीगर † की सहायता से इस किले पर धावा करके इस पर विजय प्राप्त की गई। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, ऐसी श्रेणी के लोग हैं जिनके विषय में कहा जाता है वे प्रारम्भ में महाराष्ट्र के वर्ग में ही सम्मिलत थे।

जैसे-जैसे मराठे पूर्व की ओर धावे पर धावा करते पूर्व की ओर बढ़ते चले जा रहे थे, हैदरअली अपनी सेना के साथ पश्चिम की ओर हट रहा था। हटते-हटते वह ऐसे सघन क्षेत्र में पहुँच गया जहाँ मराठा घुड़सवारों की उसपर आक्रमण करने की सुविधा नहीं प्राप्त हो सकती थी। वह सदैव, माधवराव की सेना से बीस कोस की दूरी पर ही रहता था क्योंकि वह जानता था कि उसकी पैदल सेना, चारों तरफ से खुले विस्तृत मैदान में पेशवा की घुड़सवार सेना का सामना नहीं कर सकती थी। माधवराव ने उसकी खोज-खबर लेने के लिए तथा आसपास के क्षेत्रों का विध्वंस करने के लिए गोपालराव के साथ एक उड़ाका सैन्यदल रवाना किया। तीसरी या चौथी मार्च की रात को हैदरअली ने अचानक गोपालराव की हल्की टुकड़ी को घेर लिया और खदेड़ दिया। जब माधवराव ने उस तरकीब से भी कोई लाभ होते नहीं देखा तो उसने हैदरअली के क्षेत्र में लूटमार मचाना जारी रक्खा। हैदरअली को आशा थी कि इसी प्रकार लूटमार मचाकर दक्षिणी पश्चिमी मानसून के प्रारम्भ होते-होते, मराठे कृष्णा नदी के उत्तर की तरफ निकल जायेंगे। परन्तु उसकी आशा पूरी नहीं हुई। इसी समय माधवराव का स्वास्थ्य खराब होने लगा और जून के प्रारम्भ में ही वह पूना वापस जाने के लिए विवश हो गया। परन्तु माधवराव ने अपनी योजना में किसी प्रकार की अपूर्णता न आने दी। वह स्वयं तो लौट गया, परन्तु उसने अपनी पैदल सेना तथा बीस हजार घुड़सवारों को त्र्यम्बकराव मामा के नेतृत्व में वहीं छोड़ दिया जिससे कि अभियान चलता रहे। हैदरअली ने मराठों को हटते न देखकर चौथ देने के लिए तो तैयार हो गया परन्तु वह उस रकम को लौटाने के लिए तैयार न हुआ जो उसने पालीगरों से छीना था। उसका कहना था कि इन पालीगरों ने

---

* वह हाथ में गोली लग जाने से घायल हुआ था; मराठा पाण्डुलिपि।

† विल्क्स। कर्नल विल्क्स द्वारा दी गई एक कथा के अनुसार माधवराव ने इस किले में पकड़ी गई रक्षक सेना को नष्ट करवा डाला था, परन्तु महाराष्ट्र की पाण्डुलिपियों तथा प्रचलित लोककथाओं में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता; और अप्रामाणिक होने के कारण मैं इस कथा को दुहराने में कोई लाभ नहीं देखता यद्यपि यह कथा माधवराव के क्रोध, हिंसा और उदारता आदि चारित्रिक गुणों का पूर्ण प्रदर्शन करती है। परन्तु कर्नल विल्क्स ने एक और कथा दी है, (भाग २, पृ० १४) जिसका उल्लेख करना आवश्यक है। यह कथा अप्पाजीराम से सम्बन्धित है। यद्यपि यह कथा पूना दरबार की भ्रष्टाचारिता का उचित चित्रण करती है, परन्तु माधवराव के काल में ऐसी घटना के घटित होने का विश्वास मैं नहीं कर सकता। यदि वह कथा प्रमाणिक तथा सत्य भी हो (जैसा कि मुझे विश्वास नहीं है) तब भी यह भ्रामक ही है। माधवराव अपने दरबार में व्यवस्था के दोष अथवा अनुचित क्रोध प्रदर्शन को तो क्षमा कर भी सकता था, पर वह किसी भी परिस्थिति में भ्रष्टता तथा धृष्टता को नहीं सह सकता था।

१७६२ में ही उसकी अधीनता स्वीकार कर लिया था और इसलिए वह इन लोगों से कर वसूलने का हकदार था।*

माधवराव ने पूना जाते समय त्र्यम्बक राव मामा से कह गया था कि वह वर्षा ऋतु के समाप्त होते ही पुनः लौट आएगा। त्र्यम्बक राव ने, पेशवा के निश्चित समय पर लौटने के पहले ही कई लाभजनक कार्यों को सम्पन्न किया। उसने सुरुमकुन्डा के किले पर अधिकार कर लिया और कई अन्य छोटे-मोटे स्थानों को अपने अधिकार में कर लिया।

सन् १७७१]

इधर जैसे ही मौसम कुछ साफ हुआ, माधवराव ने नए उत्साह के साथ पूना से कूच कर दिया। उसका इरादा था कि वह शीघ्रताशीघ्र त्र्यम्बकराव से जा मिले, परन्तु वह राह में ही फिर बीमार पड़ गया, अतः विवश होकर उसने अप्पा बलवन्त के नेतृत्व में सेना को आगे भेज दिया। अप्पा बलवन्त वीर योद्धा बलवन्त राव का लड़का और पानीपत के एक युद्ध में उल्लेखनीय वीरता प्रदर्शित करके वह पेशवा का कृपापात्र हो गया था। जब अप्पा बलवन्त त्र्यम्बकराव से जा मिला उस समय मराठा सेना में कुल मिलाकर लगभग ४०००० सवार, दस हजार पैदल सैनिक और कुछ तोपें थीं। दूसरी तरफ हैदरअली के पास केवल १२००० सवार, २५००० पैदल सैनिक (जिनमें से १५००० सैनिक पूर्ण नियमित ढंग से शिक्षित थे) और चालीस † तोपें थीं। पहले हैदरअली ने मराठों को सेना के मुकाबले में इतनी कम फौज के साथ, मराठों पर आक्रमण करने का साहस ही नहीं किया। मराठे श्री रंगापट्टम से थोड़े ही दूर पर डेरा डाले पड़े थे। हैदर को उसकी स्थिति से हटने के लिए प्रलोभन देने के ध्येय से त्र्यम्बकराव ने अपनी सेना को उत्तर की तरफ कुछ और दूर तक लौटा लिया। हैदरअली सदैव कुछ मराठा अफसरों से पत्र-व्यवहार रक्खा करता था ‡ सम्भवतः उसने इन अफसरों द्वारा कोई गलत खबर पाया और उसी के अनुसार अपना लक्ष्य निर्धारित किया। उसने इस खबर के आधार पर अनुमान लगाया कि त्र्यम्बकराव की सेना का कुछ अधिक भाग पीछे हट गया है और कुछ भाग आगे ही रह गया है। x इसी अनुमान के अनुसार उसने मराठों की पिछड़ी हुई टुकड़ी से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। परन्तु उसे शीघ्र ही पता लग गया कि उसने धोखा खाया है और मराठों की सेना दो स्थानों में विभक्त नहीं है। वह चाहे मराठों द्वारा एक बार पहले ही बुरी तरह पराजित होने के कारण, या अपनी सेना में विश्वास के अभाव के कारण बहुत हतोत्साह हो गया यद्यपि ऐसी भावना एक ऐसे योद्धा तथा सेनानायक के लिए अशोभनीय थी जो ब्रिटिश सेनाओं के विरुद्ध इतनी कुशलता और वीरता के साथ लड़ चुका था। जो भी कारण रहा हो, परन्तु हैदरअली को मराठों से युद्ध करने का खतरा मोल लेने का साहस नहीं हुआ और अन्त में बड़े कायरतापूर्ण ढंग से भाग निकला और अपनी अव्यवस्थित सेना के साथ अपनी राजधानी की ओर निकल गया। उसकी सभी तोपें मराठों के हाथ लगीं तथा उसके कई हजार सैनिक तथा लगभग १५०० सवार मारे गए। तोपों के अतिरिक्त मराठों ने लूट के माल के रूप में २५ हाथी, कई हजार घोड़े और हैदरअली की सारी कैम्प सामग्री भी प्राप्त किया।

---

* मराठा पाण्डुलिपि; बम्बई रिकार्ड्स, विल्क्स।

† विल्क्स। माधवराव द्वारा बम्बई के गवर्नर को लिखे गये एक पत्र के अनुसार यह संख्या इस प्रकार थी—८ या १० हजार सवार और ४५ तोपें।

‡ उसके द्वारा बम्बई सरकार को लिखे गये पत्रों के आधार पर।

x मि० सिबेल्ड के पत्र के आधार पर।

मराठों ने सदैव की भाँति इस बार भी अपनी विजय की अपेक्षा इस लूट के माल को ही अधिक महत्व दिया।

हैदरअली को इतनी बुरी तरह पराजित करके भगा देने के पश्चात् त्र्यम्बकराव ने श्री रङ्गपट्टम पर भी घेरा डाल दिया। परन्तु मराठों के पास हैदरअली से छीनी गई शक्तिशाली तोपों को चलाने के लिए कुशल तोपची नहीं थे और उनकी हल्की तोपें इस मजबूत किले को ध्वस्त करने की क्षमता नहीं रखती थीं इसलिए उनका यह प्रयास अन्य घेरों की भाँति हास्यास्पद ही सिद्ध हुआ। माधवराव ने भी त्र्यम्बकराव की इस योजना का समर्थन नहीं किया। वास्तव में माधवराव का उद्देश्य यह था कि इसी शुष्क मौसम में वेदनोर और सोंडा पर अधिकार कर लिया जाय। त्र्यम्बकराव लगभग पाँच सप्ताह तक श्री रंगपट्टम पर घेरा डाले रहा और इतना समय नष्ट कर देने के बाद भी बिलकुल सफलता न पाने पर ऊब कर अप्रैल के मध्य में, वह तुरीघूरी * लौट आया, इसी बीच उसने बेल्लूर में काफी तगड़ी रक्षक सेना छोड़ दिया और आस-पास के विभिन्न भागों से कर के रूप में भारी रकम भी वसूल कर लिया।

वर्षा ऋतु के निकट आ जाने के कारण हैदरअली को यह भय हुआ कि यदि वर्षा प्रारम्भ हो गई और सड़कें खराब हो गई तो उसकी सोची हुई सारी योजना खटाई में पड़ जायँगी। इसलिए, काफी खतरा उठाकर उसने जून के प्रारम्भ में ही, युद्ध सामग्री और २० तोपों को बेदनोर से श्री रंगपट्टम के लिए रवाना कर दिया, परन्तु मराठों ने बीच में ही इस समस्त सामग्री तथा तोपों को, और उनके साथ जानेवाली रक्षक टुकड़ी को अपने अधिकार में कर लिया। अन्त में मराठों ने वेदनोर तथा श्री रंगपट्टम के बीच में इस तरह अपना जाल बिछा दिया कि हैदरअली के पास श्री रंगपट्टम और बेदनोर के बीच सम्बन्ध रखने का कोई साधन ही नहीं रह गया। यहाँ तक कि हैदरअली के हरकारों को बेदनोर तक पहुँचने के लिए कुर्ग राजा के क्षेत्र में से होकर मलाबार के पास घाट को पार करना पड़ता था, क्योंकि वेदनोर तक पहुँचने के लिए मराठों ने कोई सीधा रास्ता छोड़ा ही नहीं था। २४ अक्टूबर को मराठे बंगलोर की तरफ बढ़े। हैदरअली विभिन्न श्रेणियों के लगभग २०००० आदमियों के साथ चारों तरफ से मजबूती से घिरा हुआ श्रीरंगपट्टम में ही पड़ा रहा। इस पूरे मौसम भर में हैदरअली की सेनाओं को केवल एक बार सफलता मिली। अत्याधिक मात्रा में खाद्य सामग्री लादे हुए मराठों का एक दल मराठा कैम्प की तरफ जा रहा था। हैदर के लड़के टीपू ने बीच ही में हमला करके मराठों की सारों खाद्य-सामग्री को अपने अधिकार में कर लिया। इस एक साधारण सी सफलता के अतिरिक्त हैदरअली को इस वर्ष सर्वत्र हानि ही उठानी पड़ी। इस समय तक अंग्रेज समझ चुके थे कि हैदर की परिस्थिति बहुत नाजुक हो गई है और यदि मराठों ने हैदर की राजधानी पर भी कब्जा कर लिया तो मद्रास के अंग्रेजों पर धावा करने में मराठों की कोई रुकावट नहीं रह जायगी। ऐसी परिस्थिति में बम्बई सरकार ने हैदर अली को सहायता पहुँचाने के विषय में सोचना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु हैदरअली द्वारा संधि की आवश्यक शर्तों के रूप में माँगे गए क्षेत्रों † और आर्थिक सहायता तथा दूसरी ओर स्वयं हैदर द्वारा अंग्रेजों के पक्ष में मानी हुई शर्तों में कोई अनुपात नहीं था और अँगरेज घाटे में पड़ रहे थे; साथ ही हैदरअली ने प्रयास किया कि मराठों तथा अंग्रेजों के बीच सीधा युद्ध प्रारम्भ हो जाय और इस उद्देश्य की

---

* मि० सिवाल्ड्स की रिपोर्ट और मराठा पाण्डुलिपि।

† माँगे गये क्षेत्र थे, तट पर स्थित मंगलोर और पारगढ़

पूर्ति के लिए उसने अंग्रेजों को यह राय दी कि वे सालसत्ती पर आक्रमण करके मराठों का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित कर लें; परन्तु अंग्रेज उसकी चाल को समझ गए और उन्होंने तुरन्त हैदर के साथ की गई सन्धि से अपने को अलग घोषित कर दिया।

सन् १७७२

मद्रास प्रेसीडेन्सी की कौंसिल और गवर्नर ने भी हैदरअली को सहायता पहुँचाना अत्यन्त आवश्यक समझा, परन्तु उनके उस विचार का समर्थन न तो मुहम्मद अली ने किया और न इंग्लैंड के सम्राट के विशेष प्रतिनिधि मि० लिण्डसे ने ही इसकी राय दी। इन दोनों व्यक्तियों ने हैदर अली के साथ की हुई पिछली सन्धि के बावजूद भी मद्रास सरकार से अनुरोध किया कि वे मराठों के साथ सन्धि कर लें। * परन्तु इधर दिन प्रतिदिन माधवराव की बीमारी के गम्भीरतर होने के समाचार आने लगे और अन्त में मार्च महीने में यह समाचार मिला कि माधवराव की बीमारी काबू से बाहर हो गई है और अब उसका बचना असम्भव है। इस चिन्ताजनक समाचार से, जितने भी मराठा सरदार राजधानी के बाहर थे, सबके सब बहुत चिन्तित हुए। विशेषकर ऐसे लोग जिनके अस्तित्व का एकमात्र संरक्षक माधवराव ही था। अभी मराठों की योजना के अनुसार बिदनूर और सोण्डा पर अधिकार करने का कार्य शेष रह गया था और उसी की तैयारियाँ हो रही थी, परन्तु अब सारी योजनाएँ समाप्त कर दी गई। मराठा सिलेदार भी अब ऊब चुके थे और शीघ्रातिशीघ्र घर पहुँचने के लिए उत्सुक थे, साथ ही सभी दरबार भी पेशवा की गम्भीर बीमारी का समाचार सुनकर उत्साहीन हो गए थे। इन्हीं सब परिस्थितियों के कारण जैसे ही हैदरअली ने सन्धि का प्रस्ताव भेजा, त्र्यम्बकराव ने इसे स्वीकार कर लिया। अप्रैल के लगभग मध्य में सन्धिवार्ता प्रारम्भ हुई; उस समय मराठे बंगलोर के समीप ही थे। २ जून तक सन्धि की शर्तें निश्चित हो गई जिसके अनुसार मधुगिरि तथा सुरमकुण्डा के साथ-साथ कर्नाटक के जो क्षेत्र पहले शिवाजी के पिता के राज्य में सम्मिलित थे † मराठों को वापस मिल गए। इसके अतिरिक्त हैदर ने यह भी स्वीकार किया कि वह बकाया कर तथा युद्ध सम्बन्धी व्यय के रूप में ३६ लाख रुपया देगा और १४ लाख रुपया प्रतिवर्ष करके रूप में देगा जो कि वह भविष्य में अदा करता रहेगा। मराठों ने इतने पर ही हैदर की जान छोड़ दी और किसी अन्य शर्त के लिए आग्रह नहीं किया। ‡ इस सन्धि के पश्चात् मराठा सेना अपने देश की ओर वापस चल पड़ी।

यद्यपि माधवराव की बीमारी उसे भीतर से खोखला करती जा रही थी, परन्तु मानसून के प्रारम्भ होते के साथ उसके स्वास्थ्य में उल्लेखनीय सुधार दिखाई पड़ने लगा और लोगों की आशा होने लगी कि अब सम्भवतः पेशवा बच जायगा। उसके कुछ सरदार हिन्दुस्तान की तरफ भी गए

---

* मद्रास रिकर्ड्स।

† कोल्हार, बङ्गलोर, उसकोटा, बालापुर और सेरा।

‡ विल्क्स के अनुसार केवल ३० लाख रुपया (भाग २, पृ० १५१) देने की शर्त थी, जो सही हो सकती है। परन्तु मराठा पाण्डुलिपि में जो रकम दी गई है, उसका समर्थन मराठा राज्य का लेखा भी करता है, जिसके अनुसार माधवराव पेशवा की मृत्यु के समय हैदर अली के ऊपर मराठों का उनचास लाख पन्द्रह हजार रुपया बकाया था जिसके जमानत के रूप में हैदर अली ने कुछ सीमावर्ती क्षेत्र मराठों के पास बन्धक रख दिये थे।

हुए थे, जैसा कि हम पीछे कह चुके है। कर्नाटक अभियान से जितनी प्राप्ति त्र्यम्बकराव को मिली थी, उससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण कार्य इस दल के सरदारों ने किया।

विसाजी किशन के नेतृत्व में जिस सेना ने १७६९ में नर्वदा नदी को पार किया था, जब उसकी सारी टुकड़ियाँ मालवा में आकर एकत्रित हो गई तो उनके कुल सवारों की संख्या मिलाकर लगभग ५०००० हो गई थी। पिंडारियों को छोड़कर केवल विसाजी किशन और रामचन्द्र गनेश की अधीनता में २०००० सवार थे जिनमें से पन्द्रह हजार सवार पेशवा की विशेष सेना के थे। इनके अतिरिक्त महादजी सिन्धिया से साथ १५ हजार सवार थे और तुकाजी होलकर के पास भी लगभग इतनी ही सेना थी।* इन घुड़सवारों के अतिरिक्त इस सेना में विशाल तोपखाने† के साथ बहुत बड़ी संख्या में पैदल सैनिक भी थे जिनमें से अधिकांश हिन्दुस्तान और मालवा के निवासी थे; इस पैदल सेना में सभी जातियों के लोग सम्मिलित थे। इस सेना में सबसे कम अनुपात था अरबों, अबीसिनियनों और सिन्धियों का, परन्तु उन्हीं को इस पैदल सेना के सर्वश्रेष्ठ सैनिक होने का सम्मान प्राप्त था और ये मुख्यतः खम्भात और सूरत के बन्दरगाह से आकर इस सेना में सम्मिलित हो गये थे।

पानीपत की भयंकर और निर्णयात्मक लड़ाई के कुछ समय बाद तक, अपने पारिवारिक विवादों एवं संघर्षों में व्यस्त रहने तथा नर्वदा के दक्षिण के तरफ के युद्धों के कारण मराठों को अभी तक अवसर ही नहीं मिला था कि वे हिन्दुस्तान की राजनीति में हस्तक्षेप करते। १७६४ में केवल एक बार मल्हार राव होलकर ने दिल्ली पर घेरा डालते समय जाटों का साथ दिया था परन्तु उसने तुरन्त ही जाटों का साथ छोड़कर दक्षिण की ओर वापस लौट गया था।

बुन्देलखण्ड या मालवा में स्थित मराठों की एक टुकड़ी ने १७६५ में शुजाउद्दौला का साथ दिया था जब कि शुजाउद्दौला और अंग्रेजों के बीच युद्ध छिड़ा हुआ था। परन्तु केवल एक अपवाद के साथ, कि मल्हार राव होल्कर अस्थायी रूप से जाटों के साथ दिल्ली की ओर गया था जिसका उल्लेख ऊपर किया। इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि अगले आठ वर्षों में मराठों ने सेना के साथ कभी चम्बल नदी को पार किया था। अहमदशाह अब्दाली ने, पानीपत के मैदान में प्राप्त ऐतिहासिक विजय के पश्चात् मुगलों के सिंहासन पर शाहआलम को बैठा दिया था जो वास्तव में न्यायतः उचित हकदार था। परन्तु उस समय बादशाह शाहआलम अंग्रेजों तथा बंगाल के नवाब की संयुक्त शक्ति के विरुद्ध ऐतिहासिक युद्ध में फँसा हुआ था। अतः जब तक वह राजधानी से अनुपस्थित रहा, उसके प्रतिनिधि के रूप में उसका बेटा शाहजादा जवान बख्त दिल्ली की बादशाहत के सारे अधिकारों का उपभोग करता रहा। उसने अपनी सहायता के लिए अवध के नवाब शुजाउद्दौला को अपना वजीर नियुक्त किया। साथ ही उसने नजीबुद्दौला रुहेला को भी उसका पुराना अमीर-उल

---

* मराठा पाण्डुलिपि। यह वर्णन उस वर्णन से लगभग मिलता है जो नजीफ खाँ ने मई १७७३ में जनरल बार्कर के पास भेजा था; परन्तु उस समय तक रामचन्द्र गनेश पेशवा के घुड़सवारों के एक दल के साथ दक्षिण की तरफ लौट आया था और सम्भवतः मराठा सेना की वृद्धि पिंडारियों के सम्मिलित हो जाने के कारण हुई थीं; देखिये "सिक्रेसी कमिटी" की ५वीं रिपोर्ट की अपेन्डिक्स संख्या २१।

† मराठा पाण्डुलिपि।

उमरा का खिताब वापस देकर उसे सम्मानित किया। इन सब घटनाओं के पश्चात् अहमदशाह अब्दाली ने दिल्ली से कूच किया और पूर्ण सन्तोष तथा पर्याप्त धन के साथ अपने वतन की तरफ लौट चला।

अमीर-उल-उमरा नजीबुद्दौला रुहेला प्रायः युवा शाहजादे के साथ राजधानी में ही रहता था। शुजाउद्दौला, वजीर का पद प्राप्त करने के पश्चात् तुरन्त अवध लौट गया; वहाँ पहुँचने के पश्चात् उसने सभी मराठा कारकुनों को अपने राज्यक्षेत्र से निकाल बाहर किया जो अभी भी मालगुजारी वसूलने के लिए दोआबे में पड़े हुए थे। इसके पश्चात् वह बनारस की ओर चल पड़ा। वहाँ उसकी मुलाकात बादशाह शाहआलम से हुई। अब बादशाह और शुजाउद्दौला साथ-साथ बुन्देलखण्ड की ओर बढ़े और झाँसी * पर अधिकार कर लिया। सम्भवतः उनका इरादा था कि वे मराठों को बुन्देलखण्ड से भी निकाल बाहर करें; परन्तु इसी समय खबर मिली कि मीर कासिम बंगाल से भाग गया है। इस खबर से शुजाउद्दौला के दिल में खलबली उत्पन्न हो गई, और उसने स्वयम् को अंग्रेजों के विरुद्ध घोषित कर दिआ। उसकी इसी गलत नीति के फलस्वरूप २३ अक्टूबर १७६४ में बक्सर के युद्ध में उसकी पराजय हुई। इस बीच मुगल बादशाह शाहआलम ने कुछ समय के लिए अंग्रेजो का संरक्षण प्राप्त कर लिया। † १७६५ के अगस्त माह में शुजाउद्दौला के साथ हुई एक सन्धि के अनुसार शुजाउद्दौला को फिर से अवध की नवाबी मिल गई जिस पर कि अंग्रेजी फौजों ने हमला करके अपने अधीन कर लिया था। इसी के साथ-साथ उसे मुगल सम्राज्य के वजीर के पद का अधिकारी भी घोषित कर दिया गया और इस प्रकार शुजाउद्दौला कम्पनी सरकार के साथ मित्रता के सूत्र में बँध गया।

पाठकों को सम्भवतः यह याद होगा कि औरंगजेब के शासन में मुगल, किस प्रकार जब किसी जिले या सूबे को अपने अधिकार में ले लेते थे और किस प्रकार इन विजित क्षेत्रों के प्रशासन व अन्य क्रियाकलापों की व्यवस्था करते थे। औरंगजेब के काल में प्रत्येक जिले का प्रबन्ध करने के लिए फौजदार नियुक्त किया जाता था जो कि सेना का कोई उच्च अधिकारी होता था। यह फौजदार जिले की बाह्य तथा आन्तरिक सुरक्षा तथा शान्ति के लिए उत्तरदायी होता था। उसकी सहायता के लिए, तथा लगान वसूलने और आन्तरिक व्यवस्था का निरीक्षण करने के लिए एक दीवान भी रहता था। इसी आधार पर बड़े बड़े सूबों के प्रशासन की भी व्यवस्था की जाती थी। जिस प्रकार जिले का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व फौजदार पर होता था उसी प्रकार एक सूबे की आन्तरिक शान्ति तथा बाह्य सुरक्षा का सारा प्रबन्ध देखने के लिए एक सूबेदार की नियुक्ति की जाती थी। सूबेदार ही अपने सूबे की सेना का सिपहसालार (सेनापति) भी होता था। इन्हीं सूबेदारों के समकक्ष पद और अधिकार नाजिम के भी थे। इन दोनों की सहायता करने के लिए एक एक दीवान नियुक्त रहते थे। परन्तु इस प्रकार की शासन व्यवस्था में प्रत्येक जिले के फौजदार ही सक्रिय होकर व्यवस्था देखते थे और उससे श्रेष्ठ अधिकारी केवल निरीक्षण का कार्य करते थे। जब धीरे धीरे मुगलों के साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हुआ तो इन में से प्रभावशाली सूबेदारों ने स्वयम ही नवाब की पदवी धारण कर ली। जिन सूबेदारों ने स्वयम को नवाब कहना प्रारम्भ किया, वे अपने को स्वतंत्र सत्ताधारी मानने लगे यद्यपि अब भी वे शाही फरमानों का पालन अदब से करते थे और नाममात्र के बादशाह का सम्मान करते

---

* सीर मुताखरीन।

† मिल लिखित हिस्ट्री आव ब्रिटिश इन्डिया।

थे। जब मीर जाफर की मृत्यु हुई उस समय तक अंग्रेजों ने बगांल की राजनीति पर अपना स्वत्व जमा लिया था। स्वयम बादशाह भी अंग्रेजों के ही संरक्षण में था। मीर जाफर की मृत्यु के बाद फरवरी १७६५ * में उसके सबसे छोटे लड़के को बंगाल, बिहार और उड़ीसा के सूबों का सूबेदार बना दिया गया। ईस्ट इन्डिया कम्पनी को इन दोनों की सुरक्षा का उत्तरदायित्व मीर जाफर के समय से ही मिला हुआ था, अब इसी वर्ष के अगस्त मास में कम्पनी को ही इन सूबों का दीवान भी मान लिया गया। बादशाह शाह आलभ को अपना व्यय चलाने के लिए केवल इलाहाबाद और कड़ा के क्षेत्रों की मालगुजारी वसूलने का अधिकार मिला। शुजाउद्दौला द्वारा जीते गए समस्त क्षेत्रों में से केबल यह दो जिले हो बादशाह के अधिकार में थे; अंग्रेज भी इन दो जिलों को मुगल बादशाह के लिए पर्याप्त समझते थे। शाह आलम इसी प्रकार अंग्रेजों के संरक्षण में इन दो जिलों में ही सन्तोष करके पड़ा रहा और आशा करता रहा कि अंग्रेज कभी न कभी अवश्य ही अपनी सेना को सहायता से उसे उसके वशंजों के पुराने सिहाँसन पर बैठा देंगे।

इस सारे समय के दौरान में शाहजादा जवान बख्त अपने पिता के प्रतिनिधि के रूप में मुगल राजधानी में ही पड़ा हुआ था और नजीबुद्दौला प्रशासन से सम्वन्धित समस्त अधिकारों का उपमोग कर रहा था। इधर मुगलों को अत्यधिक निर्बल एवं असमर्थ जानकर भरतपुर के जाटों का राजा सूरजमल धीरे-धीरे अपनी शक्ति और अपने राज्य का विस्तार बढ़ाता जा रहा था। उसके प्रभाव से आतंकित होकर उस समय आगरा में स्थित मराठा अधिकारी † ने सूरजमल का संरक्षण स्वीकार कर लिया और उसने अपनी सेना में जाट की एक टुकड़ी को सम्मिलित करना भी स्वीकार कर लिया। सूरजमल ने रिवाड़ी को एक बिलूची (बिलोचिस्तान का निवासी) बन्जारे से छीन लिया जिसने कि इन क्षेत्रों को किसी प्रकार से जागीर के रून में प्रात कर लिया था। अन्त में उसने नजीबुद्दौला से प्रार्थना की कि उसे राजधानी क्षेत्र को फोजदार का पद दे दिया जाय। जाटों के ये धृष्टतापूर्ण कार्य इतने असहनीय थे कि नजीबुद्दौला को विवश होकर युद्ध का सहारा लेना पड़ा। युद्ध छिड़ने के कुछ समय बाद ही अचानक जाट राजा सूरज मल की मृत्यु हो गई जिसके फलस्वरूप जाट तथा मराठे निरुत्साहित हो गए और नजीबुद्दौला को बिना किसी प्रयास ही के, आसानी से विजय प्राप्त हो गई। सूरजमल लड़ई के शुरू होते हो, धावे में मारा गया ‡ जिसके कारण नजीबुद्दौला को अधिक समय तक युद्ध नहीं करना पड़ा। मल्हारराव होलकर १७६४ में थोड़े समय के लिए दक्षिण से हिन्दूस्तान की तरफ चला आया था। इसी समय के बीच होलकर की मदद कर के सूरजमल के लड़के ने दिल्ली को घेर लिया। नजीबुद्दौला और होलकर के बीच कभी बहुत अच्छे सम्वन्ध थे और अब भी उनकी मित्रता का सूत्र एकदम नहीं टूट गया था। उसने किसी प्रकार होलकर को समझा बुझा कर उसे इस बात के लिए तैयार कर लिया कि वह जाटों का साथ छोड़कर चला जाय; होलकर ने ऐसा ही किया फलतः जाट अकेले पड़ जाने के कारण वापस जौट गए। x

---

* मिल,

† मैं इस मराठा अधिकारी के नाम का पता नहीं लगा सका हूँ।

‡ सीर मुताखरीन

x इस मदद के लिए होलकर को कितना रुपया दिया गया था, यह अज्ञात है, परन्तु इस प्रकार प्राप्तधन का आधा भाग पेशवा को होलकर ने दिया था; पेशवा को इस रूप में साढ़े चार लाख रुपये से कुछ अधिक ही मिला था। (स्टेट एकाउन्ट्स पूना रिकार्ड्स)

सन् १७७०]

हिन्दुस्तान इन्हीं परिस्थितियों में से गुजर रहा था जब पेशवा द्वारा हिन्दुस्तान की ओर भेजी गई मराठा सेना ने १७६६ के अन्त में चम्बल नदी को पार किया। मराठों की इस सेना ने सर्वप्रथम राजपूत राजाओं की खबर लेने का कार्य प्रारम्भ किया और राजपूतों के क्षेत्र को रौंदकर उन्होंने लगभग १० लाख रुपया कर के रूप में वसूल किया जो इन राजपूत राजाओं के ऊपर बकाया था। राजपूतों से वसूल लेने के पश्चात् मराठों ने जाटों के राज्यक्षेत्र में प्रवेश किया। उस समय सूरजमल के पुत्रों के बीच उत्तराधिकार के लिए गंभीर विवाद चल रहा था। मराठों ने इन विवादग्रस्त भाइयों में से एक का पक्ष लेने का बहाना लेकर उनकी राजनीति में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया। भरतपुर के पास मराठों को जाटों से एक साधारण युद्ध लड़ना पड़ा जिसमें मराठे सहज ही में विजयी हुए। जाटों के सारे क्षेत्र को रौंद डालने के पश्चात् जाटों ने मराठों को ६५ लाख रुपया देना मन्जूर किया जिसमें से दस लाख तो उन्होंने तुरन्त अदा कर दिया और शेष पचपन लाख रुपया, उन्होंने किश्तों में अदा करने का वादा किया। इसी समय मानसून हवाओं का जोर प्रारम्भ हो गया और मराठों ने डीग पर पड़ाव डाल दिया। इधर नजीबुद्दौला मराठों को आगे बढ़ते देखकर पहले से ही त्रस्त हो गया था कि वे अपने भाइयों और बेटों के खून का बदला अवश्य लेंगे। उसने पहले से ही विसाजी किशन से सन्धिवार्ता प्रारम्भ कर दिया जिससे कि उसे मराठों की प्रतिहिंसात्मक भावनाओं का शिकार न होना पड़े।* मराठों का अनन्त पीढ़ियों से यह स्वभाव रहा है कि वे सदा ही भूतकाल के लाभों और हानियों को याद रखते हैं। यद्यपि यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि जो जीत जितनी ही कम सभ्य होती है उसमें प्रतिहिन्सा की भावना उतनी ही अधिक होती है। यह भी अधिकांश विद्वान मानते है कि मराठों में उस काल में सभ्यता का अधिक प्रसार नहीं हुआ था फिर भी मराठे अपनी भावना को इतनी वरीयता नहीं देते थे कि उससे उनके स्वार्थ की पूर्ति या नाम में बाधा पड़े। वे अपने हितों की पूर्ति के लिए प्रतिहिंसा की भावना को दबा भी सकते थे। मराठों की इसी स्वभावगत विशेषता के अनुरूप ही, विसाजी किशन ने काफी प्रसन्नता के साथ नजीबुद्दौला के सन्धि प्रस्ताव का स्वागत किया। परन्तु रामचद्र गनेश और महादजी सिन्धिया प्रतिदिन रुहेलों के विरुद्ध प्रतिहिन्सा की भावना से भरे हुए थे; उन्होंने इस प्रस्ताव का अनुमोदन नहीं किया। जब पेशवा के पास इस मतभेद का समाचार पहुँचा तो उसने कहा कि जहाँ तक रुहेलों की मित्रता का प्रश्न है, महादजी सिन्धिया का मत ही ठीक है, क्योंकि रुहेले कभी भी मराठों के साथ मित्रता निभा नहीं सकते; परन्तु जहाँ यदि राजनीति की दृष्टिकोण से देखा जाय तो विसाजी किशन का मत ही सहमति पाने के योग्य है। वास्तव में, इस अभियान द्वारा पेशवा का उद्देश्य यह था कि वह बादशाह शाह आलम को अंग्रेजो के संरक्षण से मुक्त करना चाहता था और इस कार्य में नजीबुद्दौला पर्याप्त सीमा तक उपयोगी सिद्ध होता, इसलिए पेशवा ने विसाजी किशन के मत का समर्थन किया।† मराठों और नजीबुद्दौला में सन्धिवार्ता चलती रही। इस सन्धि की शर्त के अनुसार नजीबुद्दौला ने अपने पुत्र जबेत खाँ को मराठों का साथ देने के लिए विसाजी किशन के पास भेज दिया। परन्तु इसी बीच अक्टूबर १७७० में,‡ जब कि नजीबुद्दौला नजीबगढ़ जा रहा था, राह में ही उसकी मृत्यु हो गई। अपने पिता की मृत्यु का समाचार पाते ही जबेत ख़ाँ ने राजधानी में पहुँचकर अपने पिता का पद एवं कार्यभार सम्भाल लिया।

---

* मराठा पाण्डुलिपि और बङ्गाल रिकार्ड्स।

† मराठा पाण्डुलिपि।

‡ मराठा पाण्डुलिपि, बङ्गाल रिकार्ड्स और फरिस्टर्स ट्रेवेल्स।

यद्यपि अंग्रेज इस बात से भलीभाँति भिज्ञ थे कि १७६६ में शाहआलम ने मराठों से सन्धि की थी परन्तु उन्हें इस बात का पूर्ण ज्ञान नहीं था कि शाहआलम ने उस पुरानी सन्धि का फिर से नवीनीकरण कर लिया है, इसीलिए जब उन्होंने यह समाचार पाया कि मराठों ने दिल्ली के फाटक तक पहुँच कर भी दिल्ली पर न तो आक्रमण ही किया और न कोई अन्य कार्रवाई ही की, बल्कि वे रुहेलखण्ड की ओर वापस चले गए, तो अंग्रेज मराठों के इस अतार्किक व्यवहार पर बहुत आश्चर्य चकित हुए। रुहेला सरदारों ने विशेष उत्साह का प्रदर्शन नहीं किया यद्यपि मराठे उनके क्षेत्र में घुस कर उपद्रव मचाते फिरते रहे थे। मराठों ने पूरे रुहेलखण्ड को रौंद डाला; इटावा के आस-पास के घने जंगल मराठों के अधिकार में आए। यही नहीं, मराठों ने फर्रुखाबाद को छोड़कर शेष पूरे दोआब को अपने अधिकार में कर लिया परन्तु कहीं भी उनका विरोध नहीं किया गया। मराठों के उपद्रवी हाथों से जबेत खाँ का क्षेत्र भी सुरक्षित नहीं रह सका। इन क्षेत्रों में उपद्रव मचा लेने के बाद भी मराठों ने मुगलों के विरुद्ध अपने अभियान को समाप्त नहीं किया। अब वे कड़ा की तरफ बढ़े और तोड़-फोड़ मचाया, और शुजाउद्दौला से भी उचित अनुचित माँग करना प्रारम्भ किया। अंग्रेज अभी तक तो मराठों के व्यवहार पर चकित ही थे, परन्तु अब उनके कान खड़े हो गए। उन्हें बंगाल प्रेसीडेन्सी की कौंसिल और गवर्नर को यह सम्भावना दिखाई पड़ने लगी कि मराठे उन पर भी धावा कर सकते हैं, इसलिए उन्होंने मराठों की बाढ़ को रोकने की तैयारियाँ करना आरम्भ कर दिया।

सन् १७७१]

शुजाउद्दौला इस सारे समय के बीच सदैव मराठों के साथ अपना सम्पर्क स्थापित किए रहा और उनका इरादा समझने का प्रयास करता रहा। अन्त में शुजाउद्दौला की राय से बादशाह ने खुले रूप से घोषित कर दिया कि उसने अब अपने आपको मराठों के संरक्षक में छोड़ दिया है। वर्षा ऋतु के आरम्भ होने के पहले ही बादशाह का निर्णय प्राप्त कर लेने के उपरान्त, मराठे रुहेलखण्ड से दिल्ली की ओर चल पड़े। दिल्ली पहुँच कर उन्होंने, किले को छोड़कर शेष सभी भागों को अपने अधिकार में ले लिया। किले में जवानबख्त के रहने के कारण मराठे ज्यादती न कर सके और उन्होने उसके साथ उदारतापूर्ण व्यवहार किया। सम्भव था कि मराठे जबेत खाँ को भी नजरबन्द रखते, परन्तु तुकाजी होलकर ने ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि वह पूर्ण सुरक्षित ढंग से नजीबगढ़ तक पहुँच सके। इधर बंगाल प्रेसीडेन्सी ने बादशाह के पास, मि० कार्टियर की अध्यक्षता में एक कूटनीतिक दल भेजा जिसका उद्देश्य बादशाह को यह समझाना था कि अंग्रेजों का संरक्षण छोड़कर मराठों की शरण लेना कोई बुद्धिमानी का कार्य नहीं है और इससे बादशाह का कोई हित नहीं होगा, बल्कि सम्भावना तो यही है कि मराठों का साथ पकड़ने पर वह खतरे में पड़ जायगा। अंग्रेज कूटनीतिज्ञ तो थे ही, उन्होंने बादशाह को हर तरह से समझाने का प्रयत्न किया परन्तु उसके अपनी इच्छा पर चलने के इरादे पर उन्होंने कोई दबाव नहीं डाला। शाहआलम ने अन्त तक, मराठों के ही संरक्षण में रहने का निर्णय किया। उसने काफी उत्साह के साथ अपने अंग्रेज मित्रों से बिदा ली और महादजी सिंधिया से आ मिला। महादजी सिन्धिया ने पूर्ण सम्मान के साथ उसे विसाजी किशन के पास पहुँचा दिया और विसाजी के साथ बादशाह ने अपनी राजधानी में प्रवेश किया और इस प्रकार १७७० के दिसम्बर माह के अन्त में वह दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।* बादशाह को सिंहासन पर बैठा देने के पश्चात मराठों ने निश्चय किया कि अब लगे हाथों नजीबुद्दौला के बेटे से बदला भी ले लिया जाय। उनकी

---

* बङ्गाल रिकार्ड्स; मराठा पाण्डुलिपि इत्यादि।

इस योजना का बादशाह ने भी पूर्ण समर्थन किया क्योंकि जबेत खाँ से ही स्वयं उसकी व्यक्तिगत शत्रुता थी। परन्तु रुहेलों से बदला लेने की सबसे प्रबल उत्कन्ठा महादजी सिन्धिया में थी। विसाजी से किसी विषय पर वादाविवाद हो जाने के फलस्वरूप रामचन्द्र गनेश रुष्ट होकर पूना वापस चला गया था और उसकी अनुपस्थिति में महादजी सिन्धिया ही विसाजी किशन की सलाहकार समिति का सबसे प्रभावशाली व्यक्ति था। अतः उसकी बदला लेने की प्रबल आकांक्षा को देखकर विसाजी भी तैयार हो गया। इधर शुजाउद्दौला भी सदैव की तरह मराठों के साथ अपना सम्पर्क स्थापित किए रहा यद्यपि वह व्यक्तिगत रूप से तब तक मुगल साम्राज्य के वजीर के पद को नहीं ग्रहण करना चाहता था जब तक कि मराठे शाही दरबार में अपनी श्रेष्ठता कायम किए हुए थे। शुजाउद्दौला के पिता की मरते वक्त तक यही अन्तिम अभिलाषा थी कि किसी प्रकार रुहेलखण्ड को अपने अधीन कर ले। शुजाउद्दौला भी अपने पिता की तरह, रुहेलों को अपनी अधीनता में देखने का इच्छुक था और अब भी नजीबुद्दौला की मृत्यु के पश्चात् इस कार्य को पूरा करने का समुचित अवसर भी हाथ में आ गया था। अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह स्वयम् चाहता था कि मराठे किसी प्रकार इन रुहेलों के विरुद्ध हो जाँय और उन पर आक्रमण करके उन्हें निर्बल बना दें, परन्तु वह यह भी चाहता था कि रुहेलों के निर्बल बन जाने पर वह स्वयं रुहेलखण्ड पर विजय प्राप्त करके अपने पिता की अन्तिम अभिलाषा को पूरा करे। उसने अपनी दूरदृष्टि से यह भी देख लिया था कि यदि मराठे रुहेलखण्ड पर पूर्ण विजय प्राप्त करके वहाँ स्थायी रूप से हो गए तो वे उसे भी बरबाद करके ही दम लेंगे। रुहेले शुजाउद्दौला के कुटिल स्वभाव से भलीभाँति परिचित थे। अवध की सरहद्द से सटे हुए जिलों का फौजदार था हाफिज रहमत। जब जबेत खाँ ने मराठों के सम्भावित आक्रमण के भय से अपनी सहायता के लिए उसे बुलाया तो हाफिज रहमत बहुत चिन्तित हुआ। उसे यह आशंका हुई कि उसकी अनुपस्थिति में शुजाउद्दौला विश्वास-घात करके उसके जिलों पर अधिकार कर लेगा। इसी भय से वह तब तक जबेत खाँ की सहायता करने के लिए तैयार नहीं हुआ जब तक कि, वजीर (शुजाउद्दौला) के क्षेत्र में पड़ी हुई अँग्रेजी सेना के सेनापति, ब्रिगेडियर जनरल सर राबर्ट बाकर ने उसे यह आश्वासन नहीं दे दिया कि अवध की सीमा पर उसकी अनुपस्थिति के काल में कोई अनुचित कार्य नहीं होने दिया जायगा और न उसकी अनुपस्थिति का अनुचित लाभ ही उठाया जायगा।*

इधर मराठे रुहेलखण्ड का पूर्ण विध्वन्स करने के ध्येय से चल पड़े। रास्ते में उन्होंने अनेक स्थानों पर अधिकार कर लिया। गंगा नदी को पार करने के पहले, एक स्थान पर महादजी और नजीफ खाँ को एक प्रभावहीन विरोध का सामना करना पड़ा, इस बाधा को उन्होंने देखते-देखते पार कर लिया। उसके पश्चात् ये रुहेलों की कई चौकियों को इस तरह उपेक्षित ढंग से पार करते चले गए कि रुहेलों ने समझा कि अब वे नदी को पार ही नहीं करेंगे। मराठे नदी के ऊपर की ओर बढ़ते ही चले गए, और अन्त में, जब कि रुहेले असावधान हो चुके थे, मराठे तीर की तरह पीछे लौटे। उन्होंने नदी को पार करने योग्य एक स्थान पाकर, घोड़ों को पूरी रफ्तार से सरपट दौड़ाते हुए नदी को एक झटके में पार कर लिया और गंगा के पार पहुँचकर भयंकर मार-काट मचा दिया। उनके इस आकस्मिक धावे से, ऐसा प्रतीत होता है कि रुहेले पूर्ण रूप से निरुत्साहित एवं आतंकित हो गए जिसके फलस्वरूप मराठों ने जबेत खाँ के सम्पूर्ण क्षेत्रों को अपने अधिकार में कर लिया परन्तु मुश्किल से ही एकाध स्थानों पर उसका प्रतिरोध किया गया। रुहेले इतना त्रस्त हो गए थे कि किसी मराठा

---

* देखिये हाउस आव कामन्स की कमिटी आव सीक्रेसी की पांचवीं रिपोर्ट की अपेन्डिक्स।

कारण वह अपनी शासन व्यवस्था में जो जब भी कोई परिवर्तन करना चाहता था। उसकी राह में बाधा डालने का प्रयत्न किया जाता था। जब तक उसने अपने चाचा रघुनाथराव को कैद नहीं कर लिया तब तक वह अपनी प्रजा के लिए एक अनजाना और अपरिचित व्यक्ति था। इस घटना के थोड़े ही समय वाद उसने एक दिन सखाराम बापू को बुलवाया और उससे गुप्तरूप से कहा कि "मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मेरे बहुत से आदेशों की उपेक्षा की जाती है और दरवार में मेरा महत्व एक शून्य के बराबर है; ऐसा मेरी अयोग्यता अथवा विनम्रता के कारण है, अथवा इसकी कोई अन्य वजह है। इसका यह मैं निर्णय कर पा रहा हूँ; कि अब मैं इस प्रश्न को आप जैसे अनुभवी व्यक्ति के समक्ष रख रहा हूं; कृपया मेरी इस अवहेलना का कारण, और उसे दूर करने का उपाय बताइये।" इसके इस विनम्र प्रश्न पर सखाराम बापू वे स्पष्टतः तुरन्त उत्तर दिया, "जब तक मैं दरबार में हूँ, तुम कभी भी अपना प्रभाव नहीं बढ़ा सकते। मुझे प्रशासन कार्य से मुक्त कर दो, और यदि अपना नियन्त्रण स्वयम् कर सको तो मोराबा फड़नवीस को अपना दीवान नियुक्त कर लों।"

माधवराव सखाराम बापू की अर्न्तदृष्टि से बहुत प्रभावित हुआ जिसने कि उसके हृदयागत विचारों को तुरन्त पकड़ लिया था। उसने सखाराम बापू के परामर्श के अनुसार उसकी जागीर का प्रबन्ध देखने के लिए भेज दिया। उसने मोराबा को स्पष्ट और दृढ़ आदेश दिया कि बिना उसके आदेश के कुछ भी न किया जाय। उसने गुप्तचरों की एक संस्था स्थापित की जिसके विषय में महाराष्ट्र में आज भी अतिशयोक्ति पूर्ण कहानियाँ प्रचलित हैं। इन कहानियों से यही सिद्ध होता है कि अपने देश में या विदेशों में जो भी घटनाए घटती थीं उनके विषय में अपने इन गुप्तचरों के सहारे माधवराव को तुरन्त पूरी जानकारी मिल जाती थी।

यदि हम केवल माधवराव की शासन व्यवस्था पर ही एक दृष्टि डाले तो उससे हमें उसके गुणों के विषय में ही जानकारी हो सकेगी; और उसके शासन की सुव्यवस्था के विषय में हमारी जानकारी अपूर्ण ही रह जायगी। इसलिए हमें उसकी शासन व्यवस्था से सम्बन्धित गुणदोषों का अध्ययन निम्नलिखित आधारों पर करना चाहिए। सर्वप्रथम हमें यह देखना चाहिए कि उसके शासन काल में मराठों की सामाजिक स्थिति क्या थी, फिर यह देखना चाहिए कि जब उसके देश की आन्तरिक व्यवस्था रघुनाथराव के कुचक्रों एवं षड़यन्त्रों के कारण डाँवाडोल थी और वह निरन्तर विदेशियों तथा पड़ोसियों से युद्ध करने में व्यस्त था, उस समय उसका व्यवहार कैसा था। तत्पश्चात हमें उसके पहले के शासकों की शासन व्यवस्था के साथ उसकी शासन व्यवस्था की तुलना करके देखना चाहिए कि उसके तथा उसके पूर्ववर्ती शासकों के शासन प्रबन्ध में क्या अन्तर था। नीचे माधवराव की शासन व्यवस्था के विषय में जो संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है, उसमें उसके पूर्ववर्ती शासकों के विषय में यत्र-तत्र ही प्रसंगवश संकेत किया गया है परन्तु उतने से ही यह पता लग सकता है कि आधुनिक काल के हिन्दू शासन में कौन सा युग ऐसा था जिसमें मराठों ने अत्यधिक सुव्यवस्था एवं आन्तरिक शान्ति और सुरक्षा का उपभोग किया।

आज भी महाराष्ट्र में जो व्यवस्थाएँ प्रचलित है, उन सबकी जड़ शिवाजी द्वारा प्रारम्भ की हुई संस्थाओं से प्रारम्भ होती है, भले ही समयानुसार उनमें कुछ परिवर्तन या सुधार कर दिया गया हो; चाहे कोई स्थान माही के किनारे हो अथवा या कृष्णा और तुगंभद्रा के किनारे बसा हो; प्रचलित व्यवस्थाओं की रूपरेखा एक ही प्रकार की है।

हम पहले ही देख चुके है शिवाजी ने अपने शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए आठ मंत्रियों की नियुक्त किया था। इन मंत्रियों ने धीरे-धीरे राज के अधिकारों के

साथ-साथ प्रधानों तथा प्रतिनिधियों आदि पदाधिकारियों का अपहरण कर लिया था। इन अधिकारियों के अधिकारों के साथ, उनके पदों के आधार पर उन्हें जो सम्मान के अवसर प्राप्त होते थे, वे बने रहे, परन्तु अब राज्य में उनका महत्व, उनकी पैतृक जागीरों के आकार एवं संसाधनों पर अधिक आधारित था; वीरता एवं पराक्रम से भी वे महत्व प्राप्त कर सकते थे। परन्तु वे इस सैनिक कार्य के लिए उतना वेतन नहीं पाते थे जितना कि उन्हें दूसरे स्थानों पर मिलता, फिर भी उनमें से अधिकांश लोग, अपने नेता के प्रति श्रद्धाभाव रखने के कारण, इसी व्यवसाय से चिपके हुए थे। इस प्रकार के सभी व्यक्तियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति था भुवनराव, जो कि माधवराव की मृत्यु के समय प्रीतिनिधि के पद पर था। वह अपनी जागीर की दृष्टि से भी उतना ही महत्वपूर्ण था जितना कि अपने शौर्य की दृष्टि से। हम पहले ही देख जुके है कि भुवनराव के स्वभाव का एक मुख्य अंग था, युद्ध के प्रति उसका उत्साह।

शिवाजी के शासन काल में, राज्य के प्रबन्ध के जितने भी विभाग थे जिनमें से प्रत्येक विभाग के अन्तर्गत जो अन्य संस्थाएँ बनाई जाती थीं उनमें मुख्य अफसरों की संख्या होती थी। ऐसे सभी अधिकारियों तथा उनसे उच्च अधिकारियों को दुरखदार कहा जाता था। जिस समय इन पदों पर नियुक्तियां की जाती, थी उस समय इन्हें वंशगत अधिकार नहीं दिया जाता था, परन्तु पारम्परिक हिन्दू व्यवस्था के अनुसार ये पद स्वमेव वंशगत हो जाते थे। ज्यों-ज्यों मराठा राज्य में अराजकता बढ़ती गयी, त्यों-त्यों ये वंशगत अधिकार भी दृढ़ होते गये। हाँ इतना अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि दृढ़ नियंत्रण के अभाव में शक्ति का ही विकास होता है और न्यायविधान को सदैव ही पृष्ठभूमि में ठेल दिया जाता है।

बालाजी विश्वनाथ ने मराठा प्रदेशों में लगान का जो विभाजन किया, वह शुद्ध राजनैतिक दृष्टिकोण से किया गया था, परन्तु इस व्यवस्था का प्रभाव हर एक गाँव की लगान व्यवस्था एवम् उसके हिसाब-किताब पर नहीं पड़ा था। बालाजी विश्वनाथ द्वारा प्रचलित इस व्यवस्था का संक्षिप्त परिचय पीछे दिया जा चुका है। सन् १७२० ई० में जब यह व्यवस्था संचालित की गयी थी, उस समय लगान के बँटवारे का प्रभाव राजकीय कोष पर भी कम नहीं पड़ा था। इस व्यवस्था में शक्ति के सिद्धान्त के कारण सम्पूर्ण एकरूपता कभी न आ सकी। ऐसा तो था नहीं कि चौथ, सरदेश मुखी के लिये सर्वदा अलग-अलग कलेक्टर नियुक्त किये जाते रहे हों, परन्तु आज भी मराठा प्रदेश में सरदेशमुखी तथा मोकासा बाबनी तथा मोकासा जैसी स्पष्ट मदें उनके विभिन्न अधिकारियों को दी जाती है, और इन विभाजनों के कारण मराठा राज्य का हिसाब अत्याधिक उलझा हुआ होता है। शिवाजी के समय से ही जिले बनाये गये थे और वे ही आवश्यक एवम् सामयिक हेरफेर के साथ अब भी हैं। शाहू के समय में जागीरदारों के जिलों में दुरखदारों की नियुक्ति राजा के जागीरदार को दिये स्वीकृति पत्र में हो लिख दी जाती थी। किसी भी कार्यालय के संचरण का अधिकार केवल पेशवा द्वारा कर ही दिया जाता था। इन संरक्षकों को फड़नवीस कहा जाता था, इसीलिये शाहू की मृत्यु के बाद पेशवा के जिलों के लेखा विभाग में फड़नवीस का पद सर्वदा ही मजुमदार के पद से वरिष्ठ होता है। यदि गम्भीरतापूर्वक देखा जाय तो पेशवा के शासन के अन्तर्गत फड़नवीस की स्थिति प्रायः वैसी ही थी, जैसी राजा शाहू के शासन में पन्त अमात्य की, दफ्तरदार और चिटनीस के समान ही, मजुमदार तथा दूरूखदार पद साथ-साथ ही चलते थे। दुरुखदारों को केवल राज्य ही हटा सकता था। बालाजी राव ने इन दुरुखदारों के अतिरिक्त बहुत से कारकुनों की नियुक्त की, जिनको जिले का ही उच्चाधिकारी हटा दे सकता था। लाभजनक तरफदार एवम् तालुकदार पररक्षित ही रहते थे।

कारण वह अपनी शासन व्यवस्था में जो जब भी कोई परिवर्तन करना चाहता था। उसकी राह में बाधा डालने का प्रयत्न किया जाता था । जब तक उसने अपने चाचा रघुनाथराव को कैद नहीं कर लिया तब तक वह अपनी प्रजा के लिए एक अनजाना और अपरिचित व्यक्ति था । इस घटना के थोड़े ही समय वाद उसने एक दिन सखाराम बापू को बुलवाया और उससे गुप्तरूप से कहा कि "मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मेरे बहुत से आदेशों की उपेक्षा की जाती है और दरबार में मेरा महत्व एक शून्य के बराबर है; ऐसा मेरी अयोग्यता अथवा विनम्रता के कारण है, अथवा इसकी कोई अन्य वजह है। इसका यह मैं निर्णय कर पा रहा हूँ; कि अब मैं इस प्रश्न को आप जैसे अनुभवी व्यक्ति के समक्ष रख रहा हूं; कृपया मेरी इस अवहेलना का कारण, और उसे दूर करने का उपाय बताइये ।" इसके इस विनम्र प्रश्न पर सखाराम बापू वे स्पष्टतः तुरन्त उत्तर दिया, "जब तक मैं दरबार में हूँ, तुम कभी भी अपना प्रभाव नहीं बढ़ा सकते । मुझे प्रशासन कार्य से मुक्त कर दो, और यदि अपना नियन्त्रण स्वयम् कर सको तो मोराबा फड़नवीस को अपना दीवान नियुक्त कर लों ।"

माधवराव सखाराम बापू की अर्न्तदृष्टि से बहुत प्रभावित हुआ जिसने कि उसके हृदयागत विचारों को तुरन्त पकड़ लिया था । उसने सखाराम बापू के परामर्श के अनुसार उसकी जागीर का प्रबन्ध देखने के लिए भेज दिया । उसने मोराबा को स्पष्ट और दृढ़ आदेश दिया कि बिना उसके आदेश के कुछ भी न किया जाय । उसने गुप्तचरों की एक संस्था स्थापित की जिसके विषय में महाराष्ट्र में आज भी अतिशयोक्ति पूर्ण कहानियाँ प्रचलित हैं । इन कहानियों से यही सिद्ध होता है कि अपने देश में या विदेशों में जो भी घटनाए घटती थीं उनके विषय में अपने इन गुप्तचरों के सहारे माधवराव को तुरन्त पूरी जानकारी मिल जाती थी ।

यदि हम केवल माधवराव की शासन व्यवस्था पर ही एक दृष्टि डाले तो उससे हमें उसके गुणों के विषय में ही जानकारी हो सकेगी; और उसके शासन की सुव्यवस्था के विषय में हमारी जानकारी अपूर्ण ही रह जायगी । इसलिए हमें उसकी शासन व्यवस्था से सम्बन्धित गुणदोषों का अध्ययन निम्नलिखित आधारों पर करना चाहिए । सर्वप्रथम हमें यह देखना चाहिए कि उसके शासन काल में मराठों की सामाजिक स्थिति क्या थी, फिर यह देखना चाहिए कि जब उसके देश की आन्तरिक व्यवस्था रघुनाथराव के कुचक्रों एवं षड़यन्त्रों के कारण डाँवाडोल थी और वह निरन्तर विदेशियों तथा पड़ोसियों से युद्ध करने में व्यस्त था, उस समय उसका व्यवहार कैसा था । तत्पश्चात हमें उसके पहले के शासकों की शासन व्यवस्था के साथ उसकी शासन व्यवस्था की तुलना करके देखना चाहिए कि उसके तथा उसके पूर्ववर्ती शासकों के शासन प्रबन्ध में क्या अन्तर था । नीचे माधवराव की शासन व्यवस्था के विषय में जो संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है, उसमें उसके पूर्ववर्ती शासकों के विषय में यत्र-तत्र ही प्रसंगवश संकेत किया गया है परन्तु उतने से ही यह पता लग सकता है कि आधुनिक काल के हिन्दू शासन में कौन सा युग ऐसा था जिसमें मराठों ने अत्यधिक सुव्यवस्था एवं आन्तरिक शान्ति और सुरक्षा का उपभोग किया ।

आज भी महाराष्ट्र में जो व्यवस्थाएँ प्रचलित है, उन सबकी जड़ शिवाजी द्वारा प्रारम्भ की हुई संस्थाओं से प्रारम्भ होती है, भले ही समयानुसार उनमें कुछ परिवर्तन या सुधार कर दिया गया हो; चाहे कोई स्थान माही के किनारे हो अथवा या कृष्णा और तुगंभद्रा के किनारे बसा हो; प्रचलित व्यवस्थाओं की रूपरेखा एक ही प्रकार की है ।

हम पहले ही देख चुके है शिवाजी ने अपने शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए आठ मंत्रियों की नियुक्त किया था । इन मंत्रियों ने धीरे-धीरे राज के अधिकारों के

साथ-साथ प्रधानों तथा प्रतिनिधियों आदि पदाधिकारियों का अपहरण कर लिया था । इन अधिकारियों के अधिकारों के साथ, उनके पदों के आधार पर उन्हें जो सम्मान के अवसर प्राप्त होते थे, वे बने रहे, परन्तु अब राज्य में उनका महत्व, उनकी पैतृक जागीरों के आकार एवं संसाधनों पर अधिक आधारित था; वीरता एवं पराक्रम से भी वे महत्व प्राप्त कर सकते थे । परन्तु वे इस सैनिक कार्य के लिए उतना वेतन नहीं पाते थे जितना कि उन्हें दूसरे स्थानों पर मिलता, फिर भी उनमें से अधिकांश लोग, अपने नेता के प्रति श्रद्धाभाव रखने के कारण, इसी व्यवसाय से चिपके हुए थे । इस प्रकार के समी व्यक्तियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति था भुवनराव, जो कि माधवराव की मृत्यु के समय प्रीतिनिधि के पद पर था । वह अपनी जागीर की दृष्टि से भी उतना ही महत्वपूर्ण था जितना कि अपने शौर्य की दृष्टि से । हम पहले ही देख चुके है कि भुवनराव के स्वभाव का एक मुख्य अंग था, युद्ध के प्रति उसका उत्साह ।

शिवाजी के शासन काल में, राज्य के प्रबन्ध के जितने भी विभाग थे जिनमें से प्रत्येक विभाग के अन्तर्गत जो अन्य संस्थाएँ बनाई जाती थीं उनमें मुख्य अफसरों की संख्या होती थी । ऐसे सभी अधिकारियों तथा उनसे उच्च अधिकारियों को दुरखदार कहा जाता था । जिस समय इन पदों पर नियुक्तियां की जाती, थी उस समय इन्हें वंशगत अधिकार नहीं दिया जाता था, परन्तु पारम्परिक हिन्दू व्यवस्था के अनुसार ये पद स्वमेव वंशगत हो जाते थे । ज्यों-ज्यों मराठा राज्य में अराजकता बढ़ती गयी, त्यों-त्यों ये वंशगत अधिकार भी दृढ़ होते गये । हाँ इतना अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि दृढ़ नियंत्रण के अभाव में शक्ति का ही विकास होता है और न्यायविधान को सदैव ही पृष्ठभूमि में ठेल दिया जाता है ।

बालाजी विश्वनाथ ने मराठा प्रदेशों में लगान का जो विभाजन किया, वह शुद्ध राजनैतिक दृष्टिकोण से किया गया था, परन्तु इस व्यवस्था का प्रभाव हर एक गाँव की लगान व्यवस्था एवम् उसके हिसाब-किताब पर नहीं पड़ा था । बालाजी विश्वनाथ द्वारा प्रचलित इस व्यवस्था का संक्षिप्त परिचय पीछे दिया जा चुका है । सन् १७२० ई० में जब यह व्यवस्था संचालित की गयी थी, उस समय लगान के बँटवारे का प्रभाव राजकीय कोष पर भी कम नहीं पड़ा था । इस व्यवस्था में शक्ति के सिंद्धान्त के कारण सम्पूर्ण एकरूपता कभी न आ सकी । ऐसा तो था नहीं कि चौथ, सरदेश मुखी के लिये सर्वदा अलग-अलग कलेक्टर नियुक्त किये जाते रहे हों, परन्तु आज भी मराठा प्रदेश में सरदेशमुखी तथा मोकासा बाबनी तथा मोकासा जैसी स्पष्ट मदें उनके विभिन्न अधिकारियों को दी जाती है, और इन विभाजनों के कारण मराठा राज्य का हिसाब अत्याधिक उलझा हुआ होता है। शिवाजी के समय से ही जिले बनाये गये थे और वे ही आवश्यक एवम् सामयिक हेरफेर के साथ अब भी हैं । शाहू के समय में जागीरदारों के जिलों में दुरखदारों की नियुक्ति राजा के जागीरदार को दिये स्वीकृति पत्र में हो लिख दी जाती थी। किसी भी कार्यालय के संचरण का अधिकार केवल पेशवा द्वारा कर ही दिया जाता था । इन संरक्षकों को फड़नवीस कहा जाता था, इसीलिये शाहू की मृत्यु के बाद पेशवा के जिलों के लेखा विभाग में फड़नवीस का पद सर्वदा ही मजुमदार के पद से वरिष्ठ होता है । यदि गम्भीरतापूर्वक देखा जाय तो पेशवा के शासन के अन्तर्गत फड़नवीस की स्थिति प्रायः वैसी ही थी, जैसी राजा शाहू के शासन में पन्त अमात्य की, दफ्तरदार और चिटनीस के समान ही, मजुमदार तथा दूरुखदार पद साथ-साथ ही चलते थे। दुरुखदारों को केवल राज्य ही हटा सकता था । बालाजी राव ने इन दुरुखदारों के अतिरिक्त बहुत से कारकुनों की नियुक्त की, जिनको जिले का ही उच्चाधिकारी हटा सकता था । लाभजनक तरफ़दार एवम् तालुकदार पररचित ही रहते थे ।

उपरोक्त विवरण इस लिये आवश्यक है कि मराठों की लगान वसूली की व्यवस्था ही नागरिक प्रशासन का आधार थी और यह बात आज भी सत्य है कि भारत में लगान निर्धारण प्रणाली तथा वसूली की व्यवस्था ही प्रशासन की अच्छाई या बुराई की निर्णायिका होती हैं।

माधवराव के समय में भी स्थिति वैसी ही बनी रही, जैसी उसके चाचा ने व्यवस्थित की थी। केवल नीरा तथा गोदावरी के मध्यस्थ भूभाग के सर सूबेदार की मृत्यु पर सदाशिवराव भाऊ ने उस पद पर किसी को भी नियुक्त नहीं किया वरन् उसने स्वयम् ही वहाँ की व्यवस्था में अनेक सुधार किया, नहीं तो कोंकण, कर्नाटक, खानदेश तथा गुजरात में ये नियुक्तियाँ यथावत् ही चालू रहतीं।

नियम यही था कि मामिलतदार को नियुक्ति एक वर्ष के ही लिये हो, परन्तु उस पद पर भी लोग प्राय: अधिक-अधिक दिनों तक बने रहते थे, यदि उनका व्यवहार अच्छा होता था। मामिलतदारों द्वारा की जाने वाली वसूली की रकम एक सी ही नहीं होती थी। लगान के प्रपत्रों को देखने से प्रतीत होता है कि एक मामिलतदार के जिम्मे पाँच लाख से अधिक तथा एक लाख रुपये से कम की वसूली का भार शायद ही कभी दिया जाता था। वसूली की प्रत्येक शुरुआत पर हर मामिलतदार को एक सरकारी विवरण-पत्र दे दिया जाता था, जिसमें वसूली के लिये आवश्यक आदेश वसूल की जाने वाली रकम की सम्भावित राशि, विभिन्न छूटें तथा खर्चों का ब्यौरा दिया रहता था। दिये हुये अनुमानित व्यय की रकम को बिना अति विशेष कारणों के बढ़ाना मामिलतदार के वश की बात नहीं थी। व्यय के ब्यौरे में राजकीय कर्मचारियों के वेतन, भोजन, वस्त्र तथा निवास का पूर्ण विवरण सम्मिलित था, जो उनके पद व उनकी योग्यता के अनुरुप ही हुआ करता था। प्राय: ऐसा भी होता था कि यदि कहीं का मामिलतदार दी हुई राशि से पाँच प्रतिशत अधिक भी वसूल करके उसका उपभोग स्वयम् ही कर लेता था तो राज्य उस पर ध्यान नहीं देता था, परन्तु इससे तनिक भी अधिक उगाहने वाले को राज्य का कोप भाजन हो जाना अनिवार्य था। इस ढंग से वेतन के अलावा प्रत्येक मामिलतदार को पांच हजार रुपये (वार्षिक से लेकर पचीस हजार रुपयों) की अतिरिक्त आय राज्य द्वारा क्षम्य मानी जाती थी। इस आय की सम्भावना ही लोगों को इस पद के लिये विशेष रुपेण आकर्षित करती थी, विशेष रूप से यह ढंग ब्राह्मणों की प्रतिभा एवम् स्वभाव से अत्याधिक मेल खाती थी, जो इस प्रकार गुप्त आय को चौगुनी प्रकट आय से उत्तम समझते थे।

लगान का व्यक्तिगत (प्रति व्यक्ति या यों कहें कि प्रति परिवार) निर्धारण ही किसानों, मामिलतदारों तथा जिले के उच्चाधिकारी के लिये अधिक सुविधापूर्ण था। माधवराव ने अतिरिक्त वसूली के अधिकार के दुरुपयोग को दृढ़ता से रोका और इसीलिये उसने यह नियम अपना लिया था कि वह सब कुछ छोड़कर किसानों की शिकायतों को अवश्य ही सुनता और उनको दूर करने का यथोचित् उपाय करने से कभी भी पीछे हटता न था। माधवराव का विश्वास था कि इन अधिकारियों की ईमानदारी बेईमानियों का पता इन्हीं शिकायतों की जांच द्वारा लग सकता है। यदि शिकायत साधारण कोटि की हुई तो उसकी जांच की कार्यवाही मामिलतलार को ही सौंप दी जाती थी। प्राय: ऐसा नियम ही होगया था कि शिकायतों के सही पाये जाने पर मुख्य अधिकारी ही दंडित होता था, परन्तु चूँकि यह सम्भावना भी बनी ही रहती थी कि कहीं लोग झूठी शिकायतें करके राजकीय कर्मचारियों का बहुमूल्य समय न खराब करें, इसलिये शिकायत करने वालों को शिकायत करने वालों के साथ साथ जमानत भी देनी पड़ती थी। यह कहा जा सकता है कि जिस शासन में पांच प्रतिशत अधिक वसूली को प्रच्छन्न भाव से न्यायानुमोदित माना गया हो उसमें दमन, अन्याय और भ्रष्टाचार का बोलबाला होना चाहिये, परन्तु उसी स्थल पर यह भी सोच लेना चाहिये कि इसका सर्वाधिक

दुष्प्रभाव राज्य पर ही पड़ता था न कि किसानों पर, क्योंकि भारत के अधिकांश प्रदेशों की तुलना में उस समय मराठा शासित प्रदेश ही सर्वाधिक उन्नत तथा सम्पन्न थे।

जिस समय मामिलतदार की नियुक्ति स्वीकृत हो जाती थी, उसी समय उसे राज्य के खजाने में निर्धारित वसूली का एक भाग जमा करके एक चालूखाता खोलना पड़ता था। इस जमा रुपये पर उनको दो या एक रुपये सैकड़े का सूद मिलता था। जब पूरी वसूली खजाने में आ जाती थी, वह रकम भी वापस मिल जाती थी। यह अग्रिम रुपया एक ओर तो जमानत का काम देता था और दूसरी ओर सरकार को सुविधा देता था। यह सारा काम होता था शाहूकारों की एक एजेंसी के द्वारा। कुछ लोग अपनी भूमिगत सम्पत्ति भी इस प्रकार की एजेंसी में लगा देते थे और ऐसी दशा में पूरी सट्टेबाजी मच जाती थी। खैरियत यही थी कि व्यापारियों में आजकल की सी साहसिकता नहीं थी, बल्कि वे लोग पूरी सावधानी से काम करते थे। इन एजेंसियों को थोड़ी सी ही लागत पर अच्छा लाभ हो जाता था और कोई भय भी नहीं होता था, क्योंकि उनके सर पर सरकार का वरद हस्त हरदम तैयार रहता था। इस प्रकार की अग्रिम रकम की राशि एक प्रकार से राष्ट्रनिधि का काम करती थी। इसमें यदि लगान कायदे से जमा होती रही तो राज्व को लाभ ही लाभ था और यदि लगान जमा होने में गड़बड़ी हुई तो उसकी परेशानी भी राज्य की होती थी।

वसूली की फसल के अन्त में जब मामिलतदारों के खाते बन्द हो जाते थे, तो जिले का फड़नवीस उन्हें पूना ले जाता था। वहाँ उसके सभी कागज पत्रों को जांचा जाता था और शुद्ध या त्रुटिपूर्ण होने पर आवश्यक कार्यवाही की जाती थी।

माधवराव ने मामिलतदारों को प्रेरणा दी कि वे तो स्वयम् सम्बन्धित जिलों में ही रहें, और पूना में अपना वकील रक्खें। जो मामिलतदार ऐसा नहीं कर पाता था, उसके जिलों का काम पूरे कौशल से जांचा जात था।

पुलिस का प्रबन्ध, दीवानी तथा फौजदारी के न्याय का कर्तव्य भी मामिलतदार के ही जिम्मे रहता था। पुलिस मैजिस्ट्रेट का कार्य या तो पटेल करता था या मामिलतदार और जहाँ सर सूबेदार का कार्यालय होता था, वहाँ सर सूबेदार ही इस कार्य को करता था। देशमुखों तथा देशपांडेयों का पद पैत्रिक होता था, परन्तु उनके प्राचीन काल से प्राप्त अधिकारों में अब काफी कमी आ गयी थी। वे लोग अपने जिम्मे की लगान व बकाया अब भी खुद ही वसूस करते थे मगर उनकी याद अब तभी की जाती थी, जब परम्परा के प्रश्न पर कोई विवाद खड़ा हो जाता था या जब कभी स्थानीय चलन पर बात आ फँसती थी। पूना को छोड़कर शेष सभी स्थानों की पुलिस व्यवस्था बस काम चलाऊ भर ही थी। आश्चर्य यह जानकर होता है कि जिस महाराष्ट्र में अधिकांश व्यक्ति सिपाहियाना प्रवृति के थे और जहाँ के लोगों की लूटेरु प्रवृत्ति ही सर्वाधिक उन्नत थी तथा जहां के सिपाहियों में नाम मात्र का भी अनुशासन नहीं रहता था, वहां के शान्तिप्रिय नागरिकों की जान व माल कैसे इतनी अधिक सुरक्षित रहती थी। मराठों में सैनिकों का विभाजन (समय की माँग के अनुसार) आश्चर्यजनक रूप से उत्तम था। प्रत्येक गांव में इतने अधिक सैनिक स्थायी रूप से रहते थे कि साधारण रक्षात्माक आवश्यकता बिना किसी बाहरी सहायता के ही पूरी हो जाती थी। गांव के असामाजिक तत्वों को सदैव ही अपने सम्बन्धियों का मत तथा स्वार्थ, तथा उनका स्वयम् का स्वार्थ असामाजिक कार्यों को करने से रोकता था। गाँव के मुखिया का भी भय सर्वदा लगता रहता कि न जाने कब वह क्रुद्ध होकर कानून को अपने हाथ में ले ले। प्रत्येक वर्षा के आरम्भ में सैनिक—अभियानों से चल कर घर वापस चले आने की परम्परा के कारण प्रत्येक सैनिक का सम्बन्ध अपने परिवार, गाँव व समाज वालों से बना ही रहता था। यह भी

एक कारण था जिससे गांव के असामाजिक तत्व उभड़ने का साहस नहीं होता था। यद्यपि इस परम्परा के कारण सत्ताधारियों, राजाओं तथा सर्दारों को असुविधा अवश्य होती थी, क्योंकि उनके कितने ही काम बिगड़ जाया करते थे, परन्तु इस परम्परा के कारण सैनिकों एवम् गृहस्थों में सदा ही मधुरभाव बना रहता था। जन्मभूमि के प्रति मराठों के इस प्रेम को पेशवा ने पहचाना था और उसका प्रयोग भी उसने पूरी बुद्धिमत्ता से किया था। गर्व-युक्त पैत्रिक अधिकार का दावा करने वालों को यथा सयय पद वृद्धि देकर उनकी जातीय भावना को बनाये रख कर, वह इस भावना का उपयोग देश को सुशासित रखने में करता था।

मराठों के देश में दो ही प्रकार के जुर्मों का बाहुल्य था--एक तो चोरी और दूसरी दल बांधकर डकैती। हत्या और आगजनी भी इसी के समकक्ष थी। चोरी और डकैती मराठे कम और खूसी तथा भील लोग अधिक करते थे। इन जुर्मों का दंड था अंगभंग या प्राणदण्ड। बदले की भावना से प्रेरित होकर की गयी हत्या को कुछ बहुत अधिक गम्भीर जुर्म नहीं माना जाता था। विशेषतया कौटुम्बिक प्रतिकार की भावना के कारण निज की जान का खतरा उठा कर की गयी हत्या तो प्रायः प्रशंसनीय ही समझी जाती थी। राज्य के साथ समझौता करने के लिये साधारण स्थिति के व्यक्ति के लिये आवश्यक था कि वह राज्य को तीन सौ पचास रुपये जुर्माने के दे। पुलिस की असमर्थता का एक कारण यह भी था कि प्रायः ऐसा होता था कि एक राज्य में अपराधी दण्ड के भय से दूसरे राज्य में जाकर स्वतन्त्र एवम् निर्भय रह कर निवास बना लेता था।

बड़े जुर्मों के लिये दंड देने का अधिकार केवल सूबेदार को ही होता था। ऐसे अपराध में दंड देने का अधिकार मामिलतदार को भी था, परन्तु पेशवा की पूर्व स्वीकृति आवश्यक थी। बड़े-बड़े जागीरदारों को अपने क्षेत्र में प्राणदंड तक देने का अधिकार था। ब्राह्मणों को दंडित किया ही नहीं जा सकता था राज्य के प्रति अपराध करने वालों को या तो जहर देकर मारा जाता था या अति हानिप्रद भोजन देकर, जो विष के समान ही होता था। ऐसे भोजनों में बराबर परिमाण में नमक तथा आँटे का मिश्रण सर्वाधिक पसन्द किया गया था। स्त्रियों को प्राणदंड न देकर, उन्हें अंगभङ्ग का दंड दिया जाता था। अपराध के निर्णय के लिये कोई सार्वदेशिक मान्य प्रणाली नहीं थी। अपराध स्वीकृति के लिये शारीरिक यंत्रणा देना सामान्य माना जाता था। अपराध स्वीकृति के बाद बिना किसी अन्य प्रमाण के भी प्राणदंड तक दिया जा सकता था। मुख्य न्यायाधिकारी संदेहास्पद मामलों में अपने अफसरों से भी राय लेता था। प्रतिनिधि और पेशवा के जिलों के कुछ मामिलतदारों ने अभियुक्तों के अपराध-निर्णय के लिये पंचायते बना रक्खी थीं परन्तु पंचायती निर्णय की इस प्रणाली का पता पेशवा के जीवन काल तक ही चलता है। यद्यपि यह प्रथा अनुकरणीय थी, पर सामान्य नहीं और आज भी मराठे इसकी उपादेयता को न तो मानते हैं और न इसकी प्रशंसा ही करते है।

दीवानी के मामलों के लिये पंचायते ही न्यायालय का सारा कार्य वहन करती थीं। रामशास्त्री के कारण इनके कार्यों में पूरा सुधार हो गया था। जहाँ पर रामशास्त्री की देखरेख नहीं हो पाती थी, वहां के पंचायतों के सदस्यों में भ्रष्टाचार का बोल बाला रहता था, तथा प्रत्येक सदस्य अपने पारिश्रमिक के रुपमें कुछ न कुछ पा लेने के प्रयास में लगा रहता था, जिसकी वजहसे पंचायते शायद ही कभी न्यायपूर्वक काम कर पाती रही हो। फिर भी यह कहा जा सकता है कि जो कुछ भी दोष थे उन लोगों में ही थे, न कि व्यवस्था में।

पूरे मराठा साम्राज्य की वास्ताविक लगान माधवराव को मृत्यु के समय पांच करोड़ रुपये थी परन्तु होल्कर सिंधिया, जानोजी भोंसले तथा दमाजी गायकबाड़ की जागीरों से जो रुपया आता

था और विभिन्न स्थानों से आये हुये करों, शुल्कों, जुर्मानों तथा परम्परागत वसूलियों को मिला कर यह रकम सवा सात करोड़ रुपये तक जा पहुँचती थी। इन सभी को किसी भी प्रकार नियमित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इनके स्रोतों या साधनों में घट बढ़ होते रहने से इनके परिमाण में भी घट बढ़ हो जाया करती थी। राज्य के हिसाबों में इन रकमों को अतिरिक्त आय * के खाते मे दिखाया जाता था। जो लगान पेशवा को मिलती थी, वह प्रायः उसके निजी क्षेत्रों से ही आती थी और करीब दो करोड़ अस्सी लाख † वार्षिक होती। इसका हिसाब सार्वजनिक हिसाब से अलग रक्खा जाता था। इसमें माधवराव के व्यक्तिगत क्षेत्रों की तीन लाख से ऊपर की रकम भी सम्मिलित थी। माधवराव की मृत्यु के समय उसकी निजी सम्पति चौबीस लाख रुपयों की थी, जो उसने अपने मरणकाल में मराठा राज्य को दे दिया था।

बालाजीराव के पास निजी क्षेत्रों का आधिक्य था। वह अनियंत्रित रूप से व्यय करता था। उसने बहुत सी जागीरें दी थीं। इनामी गांव पाने वालों की भी कमी नहीं थी। मराठों की यह निश्चिय राय है कि उसकी आय किसी भी पेशवा से अधिक थी, परन्तु उसकी व्यस्तता इतनी अधिक थी कि कितने ही नवविजित प्रदेशों से वसूली कर पाना उसके लिये असम्भव हो जाता था। यही कारण है कि माधवराव के समय की औसत आय अपने पिता बालाजी राव की औसत आय से अधिक थी। यह सत्य है कि सन् १७५१, ५२ में बालाजी ने करीब करीब तीन करोड़ साठ लाख रुपयों की वसूली की, परन्तु यह वसूली सामान्यता का अपवाद है, सामान्य नहीं। माधवराव के पदग्रहण के समय पेशवा के राज्य पर अत्यधिक ऋण भार था तथा पेशवा आपादमस्तक कर्ज में डूबा हुआ था। माधवराव ने बहुत से कर्जों को चुकता किया। यहाँ तक की उसके मृत्यु के समय वह पूर्ण कर्ज मुक्त होकर भी उसके पास पैसठ लाख रुपयों की बचत का हिसाब था, परन्तु उसकी मृत्यु के बाद वह रुपया खजाने में मिला नहीं। यदि पेशवावों का हिसाब पूरा देखा जाय तो पारिणाम यही निकलता है कि वे लोग हमेशा कर्जदार बने रहते थे या रुपयों की कमी उनको हमेशा ही बनी रहती थी। बाजी राव का सम्पर्क अँगरेजों से जिस समय से शुरु होता है. उस समय से आगे इस प्रकार की कठिनाइयाँ कम होती गयी। ‡

---

* गाँव के हिसाब में अतिरिक्त लगान उसको कहते थे जो भूमि की लगान से अलग होती थी। उदाहरण के लिये व्यापारियों पर लगाया गया कर, उत्पादकों द्वारा दिया जाने वाला कर (इन्हें महचरफा कहते थे।) इनाम में मिले हुये गाँवों से तिहाई लगान (इनाम तिजाई) ही मिलता था। चरागाहों पर भी नाम मात्र का कर था तथा लाभप्रद घास के मैदानों से भी काफी रुपया आता था। धार्मिक मेलों में यात्रियों द्वारा चढ़ायी जाने वाली रकम का भी एक भाग राज्य को मिलता था। इसी प्रकार की असंख्य मदें हैं, परन्तु वे सब परेशान करने वाली मदें हैं। राज्य को इनसे कोई अधिक लाभ नहीं होता था वरन् हिसाब रखने का झंझट ही पल्ले पड़ता था। गाँव की हिसाब बही में उनकी गणना होती थी, परन्तु वे एक ही मद (नुक्ताबाब) के अन्तर्गत जमा होते थे। गाँव के आयात निर्यात व्यापार पर लगाये गये कर का हिसाब गाँव की बही में ही रहता था, परन्तु वह सीधे राज्य को भेज दिया जाया करता था।

† यदि बंगाल के रुपये का मूल्य सौ पैसा होता तो मराठों के रुपये का मूल्य अट्ठासी पैसा मिलता था।

‡ अँगरेजों के सम्पर्क से पेशवा की आर्थिक स्थिति में पर्याप्त सुधार हो गया, परन्तु इससे यह

यदि होल्कर, सिंधियाँ, भोंसले तथा गायकवाड़ की सेनाओं को अलग कर दिया जाय, तो भी पेशबा की सेना में पचास हजार अच्छे घुड़सवार थे। उसके पास पैदल सैनिक भी कम थे तथा उसका तोपखाना भी मामूली सा ही था। आवश्यक स्थानों पर पैदल सैनिकों की आवश्यक संस्थाओं की नियुक्ति के बाद उसके पास मुश्किल से दस सहस्र पैदल सैनिक ही रहते थे, जिनमें आधे मुसलमान तथा, आधे अरबी थे। जिस समय पेशवा युद्ध चेत्र की ओर प्रयाण करता था तो उसके पास सैनिकों की एक विशाल वाहिनी रहती थी, परन्तु अभियान से लौटने के बाद अनावश्यक सिपाहियों को घर जाने की आज्ञा दे दी जाती थी। कोंकरणस्थ सैनिक हितकारी सैनिकों को मावली सैनिकों पर वरीयता दी जाती थी। इसका शायद यह भी कारण रहा हो की मावली शिवाजी * के परिवार के प्रति अधिक राजभक्त थे।

गायकवाड़ के पास जो सैनिक रहते थे और जो निश्चित संख्या आवश्यकता पड़ने पर पेशवा की सेवा में भेजनी पड़ती थी, उस हिसाब से उसके पास दस से पन्द्रह हजार तक सवार रहते थे। इसी प्रकार होल्कर तथा सिंधिया की सेना को संयुक्त कर दिया जाता तो उनके सम्मिलित सैनिकों की संख्या तीस हजार तक पहुँच जाती थी। तीन हजार सैनिक धार के पवार के पास रहते थे। इस प्रकार आकस्मिक आवश्यकता पड़ने पर बिना नवीन भर्ती के भी पेशवा एक लाख से ऊपर सैनिकों का सेनापतित्व ग्रहण कर सकता था। पिंडारियों की संख्या इनसे अलग थी।

समझ लेने की भूल न करना चाहिये कि अँगरेजों ने पेशवा को आर्थिक सहायता अपने कोष से दी। वात यह हुई थी कि पेशवा ने कुछ दिनों तक के लिये लेफिटनेंट जॉन मैक्लियोड को अपनी लगान व्यवस्था का प्रधान बना दिया था। उसके सहायकों में उस समय के योग्यतम ब्राह्मण लगाये गये थे। इन सब ने मिलकर पेशवा के राज्य की व्यवस्था इस प्रकार किया कि उसकी सारी लगान वसूल होने लगी। इस पूर्ण वसूली के कारण पेशवा की आर्थिक स्थिति सुधर गयी।

* एक राजकीय सूची के अनुसार माधवराव की सेना में कुल चार सौ नौ अफ़सर थे। इनमें ९३ ब्राह्मण थे, ८ राजपूत थे तथा ३०८ मराठे थे।

पच्चीसवाँ अध्याय

रघुनाथराव (राघोबा) द्वारा पेशवा नारायणराव की हत्या

[१७७२—१७७४]

माधवराव की मृत्यु के पश्चात् दलगत स्थिति -- रघुनाथ राव की मुक्ति और पुनः बन्दी बनना—नारायणराव का कर्नाटक अभियान—नारायण राव की हत्या—रघुनाथ राव का पेशवा पद ग्रहण करना—नारायण राव का चरित्र—जानोजी भोंसले की मृत्यु एवं उसके स्थान पर राघोजी भोंसले की नियुक्ति—निजाम अली से युद्ध—रघुनाथ राव का कर्नाटक की ओर बढ़ना—उसके विरुद्ध षड़यन्त्र—राघोवा द्वारा त्र्यम्बक राव की पराजय—माधव राव नारायण का जन्म—मराठा सरदारों में मतभेद और राघोवा के पक्षपातियों का दमन—हैदरअली द्वारा सेरा और गुरमकोण्डा पर अधिकार—बसालतजंग का सर उठाना—पूना में तैयारियाँ—रघुनाथराव द्वारा अंग्रेजों से पुनः सन्धि।

जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, माधवराव ने अपने चाचा रघुनाथ राव (राघोवा) के कुचक्रों से तंग आकर उसे नजरबन्द कर दिया था। माधवराव की मृत्यु के कुछ समय पहले से ही रघुनाथराव के ऊपर पहरा बहुत ढीला पड़ गया था। जैसे-जैसे माधवराव का स्वास्थ्य गिरने लगा, राघोबा (रघुनाथराव) अपने को लगभग स्वतन्त्र समझने लगा। माधवराव के
१७७२ ई०] जीवित न बचने की आशा देखकर रघुनाथराव ने पहले से ही, पूर्णरूप से मुक्त होकर, पेशवा का पद प्राप्त करने का स्वप्न देखने लगा। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने निजामअली और हैदरअली के साथ चुपके चुपके योजनाएं बनाना प्रारम्भ कर दिया।

परन्तु माधवराव के गम्भीर रूप से अस्वस्थ होने के बावजूद भी उसके मंत्री अपने कार्य में पूर्ण रूप से सतर्क थे। उन्होंने रघुनाथराव की दुरंगी सन्धि का पता लगा लिया; उसके तथा हैदर और निजाम अली के बीच का सम्पर्क तोड़ दिया गया और इस दुरंगी सन्धि में रघुनाथराव की सहायता पहुंचाने के अभियोग में लगभग उन्नीस व्यक्तियों को पहाड़ी किलों में बन्द कर दिया गया। यदि इन स्वामिभक्त मन्त्रियों का वश चलता तो वे रघुनाथराव पर और अधिक कड़ा पहरा लगा देते परन्तु माधवराव ने अपनी मृत्यु का समय निकट देखकर, अपने एक स्वजन के प्रति ऐसी कठोरता का बर्ताव करना उचित नहीं समझा और कहा कि रघुनाथराव द्वारा स्वयम् को मुक्त करने की चेष्टा स्वाभाविक ही है। अपनी स्वाभाविक बुद्धिमत्ता एवं दृष्टि से, उसने पहले से ही इस बातका अनुमान कर लिया कि यदि रघुनाथराव पर कठोर नियत्रंण न रक्खा गया या उससे कोई समझौता न कर लिया गया तो उसके कुचक्रों एवं षड़यंत्रों के कारण नारायणराव किसी भी प्रकार महाराष्ट्र पर सफलतापूर्वक एवम् शान्तिपूर्वक शासन न कर सकेगा। बहुत सोच विचार, तर्कबितर्क तथा मत्रंणा के पश्चात् उसने यही निर्णय किया कि दूसरा मार्ग ही अधिक लाभदायक है और रघुनाथराव से समझौता करके नारायणराव को उसके संरक्षण में छोड़ देना ही उचित होगा। परन्तु साथ ही साथ रघुनाथराव के प्रति अपने पक्षपातियों में व्याप्त विरोधाभाव से भी वह भलीभाँति परिचित था। वह स्वयम् भी अनुभव

कर चुका था कि यदि मन्त्रियों एवम् सरदारों में आपसी मतभेद रहता है तो सरकार कभी भी सफल नहीं हो सकती । इस सम्भावित मतभेद को समाप्त कर देने के उद्देश्य से उसने सर्वप्रथम कार्य यह किया कि सखाराम बापू को बुलवाकर उसे फिर से दीवान पद पर नियुक्त कर दिया । पाठक पिछले विवरणों से यह अनुमान लगा चुके होंगे कि सखाराम बापू को, मराठा मन्त्रिमन्डल के किसी भी मन्त्री की अपेक्षा, रघुनाथराव से अधिक लगाव रहता था । विभिन्न अभियानों में उसने दीवान की हैसियत से रघुनाथराव के साथ प्रयाण किया था, और समय समय पर अमूल्य परामर्श दिये थे और सहायता की थी । वह रघुनाथराव के पराक्रम एवं शौर्य के कारण उसका सम्मान करता था और अभी तक उसका अभिन्न मित्र एवम् विश्वासपात्र बना हुआ था । यद्यपि नाना फड़नबीस भी एक कुशल राजनीतिज्ञ और योग्य मन्त्री था परन्तु अभी तक माधवराव की अधीनता में उसने केवल आदेश पालन किया था और इसीलिये उसके अन्दर छिपी हुई योग्यताएँ एवम् विशेष गुण अभी तक प्रकाश में नहीं आये थे और न तो उसके गुणों का पूर्ण विकास ही हो पाया था । इस प्रकार सम्पूर्ण महाराष्ट्र साम्राज्य में सखाराम बापू ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसके कुशल हाथों में राज्य प्रशासन की पतवार दी जा सकती थी । जब माधवराव ऐसा प्रबन्ध करने में व्यस्त था कि उसकी मृत्यु के बाद भी महाराष्ट्र में सुव्यवस्था बनी रहे और नारायणराव सभी षड़यन्त्रों से मुक्त रहकर कुशलतापूर्वक राज्य का शासन प्रबन्ध सम्भाल सके, उसके बहुत पहले ही उसने यह निश्चय कर लिया था कि नाना साहब आन्तरिक प्रशासन के क्षेत्र में फड़नवीस का कार्य करेगा और उसका चचेरा भाई मोरोबा सैनिक व्यवस्था की देखभाल करेगा ।

अपने मस्तिष्क को पूर्णतः स्थिर कर लेने के बाद माधवरावने अपने चाचा को थेउर में बुलवाया जहाँ कि वह अपनी मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ था । रघुनाथराव के पहुंचने पर माधवराव ने उससे काफी देर तक बातचीत की और सुलह समझौता हुआ । अन्त में सखाराम बापू की उपस्थिति में माधवराव ने काफी विश्वास, पूर्ण एवम् प्रभावशाली ढंग से अपने भाई नारायणराव को अपने चाचा के संरक्षण में समर्पित कर दिया । अन्तिम रूप से यह प्रबन्ध करने के पहले उसने कई बार, विभिन्न अवसरों पर काफी धैर्य के साथ अपने चाचा और छोटे भाई के साथ विचार विमर्श करता रहा; उन्हें राज्य की विभिन्न समस्याओं के विषय में आवश्यक निर्देश देता रहा और उन्हें बार-बार समझाया कि राज्य की सुचारु व्यवस्था और सुरक्षा के लिए तथा स्वयम् को सम्मानपूर्ण स्थिति में रखने के लिए उन दोनों का परस्पर मतैक्य बहुत आवश्यक है ।

पेशवा माधवराव की मृत्यु के पश्चात लगभग एक माह तक नारायणराव * अपने भाई के दाह संस्कार और क्रिया कर्म आदि में ही व्यस्त रहा और दिसम्बर माह के आरम्भ में ही, वह सतारा पहुंच गया जहाँ राजा ने उसे पेशवा का पद ग्रहण करने की अनुमति दी । उसी के साथ सखाराम बापू को कारबारी (मुख्य मंत्री) के पद पर नियुक्त किया और उसके पद के अनुकूल उसे शानदार वस्त्र दिए गए । नाना फड़नवीस को अपने पैतृक पद पर बने रहने की स्वीकृति मिली तथा दीवान के पद पर बुजावा पुरन्दरे की नियुक्ति हुई । इस नए प्रशासनिक दल ने अपना स्थान ग्रहण करते ही
रायगढ़ पर अधिकार करने का निश्चय किया क्योंकि बहाँ का हवलदार माधवराव
१७७३ ई०] की मृत्यु के कुछ समय पहले से ही पेशवा की खिलाफत करता आ रहा था, और
अब खुले रूप से विद्रोह करने पर उतारू हो गया था । मराठों को गुप्त रूप से

---

* नारायणराव-बालाजी राव पेशवा के तीन पुत्रों में सबसे छोटा था ।

यह समाचार मिला कि रायगढ़ का हवलदार कुछ धन के बदले में इस किले को सिद्दी के हाथ में देने का इरादा कर रहा है । यह समाचार पाकर मराठों ने तुरन्त उसे घेर कर आत्म समर्पण कर देने के लिए कहा । इस पर रायगढ़ के हवलदार ने कहा कि वह इस किले पर सतारा के राजा की आज्ञा से पड़ा हुआ है और जब तक राजा को मुक्त नहीं किया जायगा, वह सदैव इस किले के संसाधनों का प्रयोग पेशवा के विरुद्ध करता रहेगा । परन्तु पेशवा ने रामराजा से इस किले को हाथ में लेने की अनुमति प्राप्त कर लिया और चालीस लाख रुपया देकर मार्च के महीने में उसने शिवाजी की पुरानी राजधानी को अपने हाथ में लिया ।

नया पेशवा और रघुनाथराव कुछ समय तक तो पूर्णतः एकमत होकर सुचारु रूप से शासन व्यवस्था चलाते रहे परन्तु यह मतैक्य अधिक समय तक नहीं बना रह सका । पेशवा की माँ और रघुनाथराव की पत्नी के बीच जो द्वेष की विषबेल पन चुकी थी, वह मुरझाने के बदले अब तक बढ़ती ही रही थी । पेशवा के मंत्रियों के बीच में भी परस्पर ईर्ष्या का अभाव न था । इन आपसी द्वेषात्मक भावनाओं के कारण समस्त वातावरण इतना दूषित हो गया था कि बहुत न्यायप्रिय व्यक्ति भी सहज ही में भटक सकते थे, फिर अनुभवहीन नारायणराव और धूर्त राघोबा क्यों न भटकते । अन्त में यह द्वेष इस सीभा तक बढ़ गया कि सभी मंत्रियों की राय से रघुनाथराव को फिर कैद में डाल दिया गया, यद्यपि सखाराम बापू सदैव बात को इस अन्तिम सीमा तक बढ़ जाने से रोकने का प्रयास करता रहा । यह घटना ११ वीं अप्रैल को घटी; रघुनाथराव को कैद करके पूना में स्थित उसी महल में डाल दिया गया जिसमें प्रायः नारायणराव स्वयम् निवास करता था ।*

नाना फड़नवीस, अपने बुद्धिमत्ता पूर्ण कार्यों से, पुनः पेशवा का विश्वास पात्र हो गया और पेशवा उसे सम्मान की दृष्टि से देखने लगा, परन्तु उसके प्रमुख सलाहकार और विश्वस्त मंत्री बुजावा पुरन्दरे और हरी पन्त फड़के ही थे । राज्य के प्रमुख कार्यों को निपटाने का उत्तरदायित्व सखाराम बापू पर ही था परन्तु जो लोग पेशवा के प्रिय पात्र थे, वे प्रशासन में सखाराम बापू की प्रधानता देख कर उससे ईर्ष्या करने लगे । नारायणराव सैनिक विजयों द्वारा अपना यश बढ़ाने के लिए बहुत उत्सुक था; और बड़ी अधीरता से अच्छे मौसम की प्रतीक्षा कर रहा था ताकि वह कर्नाटक की तरफ अभियान करने का इरादा पूरा कर सके । इस अभियान के लिए सेना को पूरी तरह से तैयार रहने का आदेश दिया जा चुका था और हिन्दुस्तान की ओर गई हुई सेना को वापस आने का आदेश भेज दिया गया था । परन्तु इसी बीच कुछ ऐसी परिस्थितियाँ सामने आ गईं जिनसे पेशवा को अपने ही राज्य में कुछ समय तक व्यस्त रहने की सम्भावना दिखाई पड़ने लगी ।

जिस समय माधवराव की मृत्यु हुई, जानोजी भोंसले थेउर में ही था । उसने पहले ही से, मूदाजी के ज्येष्ठ पुत्र राघो जी को अपना दत्तक पुत्र बनाने की अनुमति पेशवा से प्राप्त कर लिया । राघोजी, इस भोंसले परिवार के चार भाइयों में अकेला लड़का था । जानोजी के लड़के को गोद लेने के साथ उसी को, अपने होने वाले उत्तराधिकारी का संरक्षक बनाने का भी निश्चय किया । इसके कुछ ही समय बाद जानोजी, तुलजापुर में मई में मर गया । उसकी मृत्यु के पश्चात मूदाजी और साबाजी, दोनों भाइयों ने संरक्षक बनने का दावा प्रस्तुत किया । लेकिन जानोजी की विधवा पत्नी दुर्गाबाई ने दोनों के दावेदारों का विरोध किया, और सारे अधिकारों को अपने हाथ में कर लिया । उसने सावाजी को अपना सेनापति और दीवान नियुक्त किया । मूदाजी यह देख कर बहुत उत्तेजित हुआ । दुर्भाग्यवश, वह पहले से ही रघुनाथराव से सम्पर्क रक्खे हुए था; और माधवराव या उसके

---

*मराठा पाण्डुलिपि और बम्बई रिकार्ड्स ।

मंत्रियों ने* उसके दावे के औचित्य को स्वीकार नहीं किया तो विवश होकर उसने सैन्य संगठन प्रारम्भ कर दिया और बल प्रयोग द्वारा अपने अधिकार को प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय कर लिया । पेशवा ने उसे ऐसा न करने का परामर्श दिया परन्तु मूदाजी पेशवा के मत से सहमत नहीं हुआ । पर्याप्त संख्या में सैनिकों से अलग हो जाने के कारण मूदाजी का दल हतोत्साह हो गया । जो सैनिक अलग हो गए थे, वे सेना साहिब सूबा के विशेष दल के थे, जिनके साथ जरी पताका रहती थी । मूदाजी ने यह ख्याल नहीं किया कि जरी पताका दल के सैनिकों के अलग हो जाने से उसकी सेना का जोश कम हो गया है; उसने इसी सेना के साथ अकोला के पास कुम्वारी में अपने भाई साबाजी पर आक्रमण कर दिया । इस युद्ध में उसकी बुरी तरह हार हुई; उसे काफी हानि भी उठानी पड़ी और वह अन्त में जान लेकर भागने पर विवश हो गया । पेशवा के दलवालों ने किसी तरह उन दोनों की आपसी शत्रुता को पर्याप्त सीमा तक दूर कर दिया था कि इसी बीच फिर अस्थिर मति ने साबाजी का साथ छोड़कर मूदाजी को अपनी ओर मिला लिया † । दुर्गाबाई की सहायता पा जाने पर मूदाजी ने फिर से युद्ध प्रारम्भ कर दिया; इस बार उसे एलिचपुर के सूबेदार इस्माइल खाँ पठान की सहायता भी प्राप्त थी । मूदाजी के पुनः आक्रमण करने पर साबाजी निजामअली के पास इस विषय में एक प्रार्थना पत्र भेजा, साथ ही पेशवा से भी सहायता के लिए प्रार्थना की । रघुनाथराव ने पेशवा को प्रेरित किया कि वह अभी कुछ समय तक धैर्य रक्खे और इस मामले में हस्तक्षेप न करे । उधर निजामअली साबाजी का साथ देने के लिए तत्पर हो गया ‡ परन्तु इसी समय एक अत्यन्त दुखान्त घटना का समाचार पूरे भारतवर्ष में फैल गया और उपमहाद्वीप का ध्यान महाराष्ट्र की ओर आकर्षित हो गया, इस समाचार से देश का सारा राजनैतिक वातावरण कुछ समय के लिए स्तब्ध हो गया कि ३० अगस्त को नारायण राव पेशवा की हत्या कर डाली गई । ×

३० अगस्त की सुबह कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि पेशवा के अधीन नियमित पैदल सेना में काफी कोलाहल एवं विप्लव उत्पन्न हो गया है, दोपहर तक इस विप्लव ने उग्र रूप धारण कर लिया इसी समय कोलाद से नारायणराव के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए राघो जी आँग्रे नाम का एक व्यक्ति आया हुआ था । उससे भेंट कर लेने के पश्चात पेशवा ने, भोजन करने के लिए जाते समय हरी पन्त फड़के को निर्देश दिया कि यदि यह विप्लव अधिक गम्भीर एवं हिंसात्मक हो उठे तो वह महल की सुरक्षा के प्रति पूर्ण सतर्क रहे, और आवश्यक प्रबन्ध पहले से ही कर ले । हरी पन्त फड़के ने, विचार हीनता के कारण ऐसी आशंका को असम्भव समझ कर इस निर्देश का कोई महत्व नहीं समझा और न कोई प्रबन्ध ही किया, बल्कि वह भी पास ही में अपने एक मित्र के यहाँ भोजन करने चला गया । ‡

---

* पेशवा सरकार साबाजी को ही साहब सूबा मानती थी, जैसा कि एक समझौते से सिद्ध होता है जिसके अनुसार उससे उन शर्तों को पूरा करने के लिए कहा गया था जो पेशवा माधवराव और जानोजी द्वारा निर्धारित की गई थीं ।

† सम्भवतः दुर्गाबाई के साबाजी का साथ छोड़ने का कारण यह था कि उसे पता चल गया था कि सावाजी सेना साहब सूबा के पद पर है और ऐसी स्थिति में वह स्वयम् संरक्षक नहीं हो सकती थी ।

‡ मराठा पाण्डुलिपि ।

× मि० मोस्टिन की रिपोर्ट ।

‡ सम्भवतः पेशवा के निर्देशों की उपेक्षा करने के कारण ही हरी पन्त फड़के पर भी बाद में राघोबा का साथ देने का आरोप लगाया गया यद्यपि निश्चिन्त रूप से वह इस षड्यंत्र में सम्मिलित नहीं था ।

भोजन करने के बाद पेशवा नारायणराव अपने शयनकक्ष में विश्राम कर रहा था कि अचानक महल में कोलाहल सुनकर उसकी आंख खुल गई। यह कोलाहल पैदल सैनिकों का था जो अभी तक बकाया वेतन के लिए शोर गुल मचा रहे थे, और दो बजे तक उनमें काफी उत्तेजना आ गई और समर सिंह तथा मुहम्मद युसुफ के नेतृत्व में, बकाया वेतन की मांग करने के बहाने महल में घुस आए। उस समय महल के प्रवेश द्वार पर खड़ग सिंह पहरा दे रहा था, वह भी बिना कुछ सोचे विचारे उत्तेजना वश इन उपद्रवियों में सम्मिलित हो गया और उनके साथ ही महल में घुस गया। यद्यपि महल के उत्तरी तरफ एक विशाल प्रवेश द्वार था जिससे घुसने में कोई बाधा नहीं थी, परन्तु उपद्रवकारियों ने मुख्यद्वार से-प्रवेश करने के बजाय, एक अपूर्ण द्वार से प्रवेश किया जो कि पूर्व की दिशा में था। यह द्वार नया बनाया जा रहा था और इसीलिए पूर्व दिशा की चारदीवारी कुछ दूरी तक तोड़ दी गई थी और उसी स्थान पर यह द्वार बन रहा था और अभी तक पूरा नहीं हुआ था। जब इस कोलाहल से नारायणराव की नींद खुल गई तो न उसने छिपने का प्रयत्न किया और न अपनी रक्षा का कोई उपाय सोचा। वह बिस्तर से उठकर सीधे अपने चाचा के घर की ओर दौड़ा। समर सिंह भी नंगी तलवार लिए उसके पीछे-पीछे दौड़ा आ रहा था। नारायणराव जाकर अपने चाचा से चिपक गया और बड़े आर्तभाव से, समरसिंह से अपनी जान बचा लेने की प्रार्थना करने लगा। उसकी इस प्रार्थना से पिघल कर रघुनाथ राव ने एक बार हस्तक्षेप किया और समरसिंह से नारायणराव के जीवन की भिक्षा मांगने लगा। इस पर समरसिंह ने उत्तर दिया, "मैं इतना अधिक आगे इसलिए नहीं बढ़ा हूं कि इसकी जान छोड़कर अपने ही हाथों अपने को नष्ट कर डालूँ।' तुम उसे छोड़कर अलग हट जाओ नहीं तो तुम्हें भी उसी के साथ मरना होगा।" इस पर रघुनाथराव ने अपने भतीजे को मरने के लिए छोड़ दिया और स्वयम् अलग हट कर एक चबूतरे पर खड़ा हो गया। नारायणराव ने फिर अपने चाचा की तरफ भागने का प्रयत्न किया परन्तु इसी समय रघुनाथराव के एक आश्रित तुलाजी पवार ने जो कि सशस्त्र था—उसकी टाँग पकड़ लिया और खींचकर गिरा दिया। जिस समय नाराणराव भूमि पर गिरा पड़ा था, उसी समय उसका एक आश्रित चाछाजी तेलीकर दौड़ता हुआ आया परन्तु वह पूर्णरूप से निःशस्त्र था। उसने पेशवा की यह दुर्दशा देखकर उसकी तरफ दौड़ पड़ा और उसके दोनों हाथों को अपने गले में लपेट कर उसके ऊपर लेट गया और तुलाजी पवार ने उन दोनों को तलवार के एक ही वार में काट डाला। जब कि महल में यह सब उपद्रव हो रहा था, षड़यत्रंकारियों ने महल की पूरी बाहर की दीवाल को घेर रक्खा था कि किसी भी प्रकार की सहायता भीतर न पहुंच सके। शहर के लोग इस कोलाहल को सुनकर बहुत शंकित हो गए, सभी सड़कों पर सशस्त्र सैनिक दिखाई पड़ रहे थे। शहर की सारी दूकानें बन्द हो गई थी और नगरवासी बहुत घबराए हुए इधर उधर दौड़ रहे थे और इस कोलाहल के कारण पता लगाने के लिए उत्सुक थे। सखाराम बापू भी दौड़ता हुआ कोतवाल के दफ्तर में पहुंचा। इसी समय खबर मिली कि रघुनाथराव जीवित है, रघुनाथराव ने सखाराम बापू के पास अपनी कुशलता के समाचार के साथ साथ जनता के लिए यह आश्वासन भी भेजा कि अब महल में शान्ति स्थापित हो गई है। उसने कुछ प्रमुख व्यक्तियों को महल में आने का निमंत्रण भी दिया। यह सब समाचार पाने के बाद सखाराम बापू ने हरी पन्त फड़के को आदेश दिया कि वह सखाराम के नाम से रघुनाथराव को पत्र लिख दे। रघुनाथराव ने इस पत्र का जवाब अपने ही हाथ से लिखा और खबर दी कि कुछ गारदियों (पैदल सैनिकों) द्वारा उसके भतीजे नारायणराब की हत्या कर दी गई है। यह समाचार पाने पर हरीपन्त फड़के ने यह घोषित कर दिया कि रघुनाथराव के ऊपर उसकी जो शंका थी, वह अब पक्की हो गई। वह अपनी सुरक्षा के विषय में भी चिन्तित हो गया और तुरन्त बारामती की ओर भाग गया। सखाराम बापू ने किसी प्रकार उत्तेजित नगरवासियों के मस्तिष्क को शान्त

किया। उसने उन्हें घर जाने को कहा और शान्ति रखने की प्रार्थना की। उसी रात को बुजाबा पुरन्दरे और मालोजी घोरपड़े ने रघुनाथराव से काफी देर तक वार्ता की। त्र्यम्बकराव मामा महल में गया, और अभागे पेशवा का मृत शरीर उठा ले गया। उसने आर्द्र नेत्रों से, परन्तु उचित सम्मान के साथ नारातणराव का दाह संस्कार तथा क्रिया कर्म किया।

अब नगर निवासियों को महल में प्रवेश करने की अनुमति दे दी गई। अंग्रेजी राजदूत मि० मोस्टिन तथा अन्य राज्यों के प्रतिनिधियों ने मृत पेशवा के प्रति अपनी श्रद्धाँजलि अर्पित की। रघुनाथ राव को, उपद्रवी गारदियों ने दिखाने के लिए यह बहाना करके नजरबन्द कर लिया कि जब तक उनका बकाया वेतन नहीं चुका दिया जायगा, तब तक वे रघुनाथ राव को मुक्त नहीं करेंगे। लोगों ने इस उपदव तथा षड़्यंत के लिये रघुनाथ राव पर शंका की, परन्तु इस आरोप को सही सिद्ध करने का कोई प्रमाण न मिल सका। यह बात सर्वविदित थी कि अपने भतीजे से बहुत स्नेह रखता था। यद्यपि पेशवा के मंत्रियों में बहुत मतभेद रहता था और वे एक दूसरे के प्रति बहुत ईर्ष्या रखते थे, परन्तु इस विवादपूर्ण अवसर ने जो नीतिपूर्ण और गम्भीर प्रस्ताव पारित किया उसके लिए वे प्रशन्सा के पात्र हैं। इन सभी मंत्रियों का समान्वतः यही मत था कि जब तक रघुनाथ राव को पूर्ण प्रमाणों के साथ नारायण राव की हत्या का उत्तरदायी सिद्ध नहीं कर दिया जाता तब तक पेशवा के पद का उत्तराधिकारी उसी को मानना चाहिए। रामशास्त्री से भी इस विवादपूर्ण प्रश्न पर अपना मत प्रमट करने का अनुरोध किया गया; उसने सभी मंत्रियों के प्रस्ताव का समर्थन किया; परन्तु साथ ही यह भी कहा कि नारायणराव की हत्या से सम्बन्धित सभी मामलों की पूर्ण जाँच की जानी चाहिए। रामशास्त्री जोरों से सूत्रों की खोज में लग गया। इस घटना के लगभग छः सप्ताह के भीतर भीतर उसने रघुनाथ राव के विरुद्ध पर्याप्त प्रमाण एकत्रित कर लिया। इन प्रमाणो के साथ वह रघुनाथराव के महल में पहुंचा और उस पर आरोप लगाया कि नारायण राव की हत्या करने का आदेश सम सिंह तथा मुहम्मद युसुफ को उसी ने दिया था। कहा जाता है कि रघुनाथराव ने रामशास्त्री के समक्ष यह स्वीकार कर लिया था कि उसने इन व्यक्तियों के पास नारायणराव को पकड़ लेने का आदेश समरसिंह आदि को नहीं दिया था। सामन्यतः लोग मानते हैं कि रघुनाथराव की स्वीकारोक्ति बिल्कुल सही थी, और वास्तव में वह अपने भतीजे की हत्या कराना नहीं चाहता था। बाद में रामशास्त्री ने रघुनाथराव द्वारा समरसिंह आदि को इस सम्बन्ध में लिखे गए मूल आदेश पत्र को प्राप्त कर लिया था। उस पत्र में प्रारम्भिक लिखावट में एक स्थान पर 'धरावे' (पकड़ना) शब्द लिखा था, परन्तु बाद में काट कर उसके स्थान पर 'मरावे' (मारना) लिख दिया गया था। प्रायः सभी लोग यह विश्वास करते हैं कि यह शब्द परिवर्तन का दुष्कार्य रघुनाथराव की दुष्ट स्वभाव वाली पत्नी आनन्दीबाई द्वारा किया गया था। यद्यपि हत्या के अवसर पर रघुनाथराव ने नारायणराव के प्रार्थना करने पर उसकी रक्षा करने के लिए अपनी जान का मोह न करते हुए नारयणराव को बचाने का प्रयत्न किया था, परन्तु वाद में उसे मरने के जिए अकेला छोड़ दिया। उसके इस व्यवहार से इस सम्भावना पर विश्वास होने लगता है कि उसे इस वात की जानकारी थी कि उसके भतीजे की हत्या की जायगी; परन्तु अधिकाँश महाराष्ट्र वासियों का यही मत है कि रघुनाथराव वास्तव में नारायणराव की हत्या कराना नहीं चाहता था; वह अपने नजरबन्द किए जाने के कारण पहले ही क्षुब्ध था तथा अपनी रक्तपिपासु पत्नी के द्वारा निरन्तर भड़काए जाने के कारण उत्तेजित हो गया था। उसकी पत्नी आनन्दीबाई ही नारायण राव की हत्या के लिए उत्तरदायी थी उसके ऊपर यह आरोप भी लगाया जाता है कि उसी ने अपने आश्रित तुलाजी पवार को भी बहका फुसला नारायणराव की हत्या करने के लिए तैयार कर लिया था।

* जब रघुनाथराव ने रामशास्त्री के समक्ष यह स्वीकार कर लिया कि उसके भतीजे की हत्या में उसका कितना दोष था, तो उसने रामशास्त्री से पूछा कि अब वह अपने इस पाप कर्म का प्रायश्चित किस प्रकार करे जिससे कि उसकी परितप्त आत्मा को शान्ति मिले। उसके इस प्रश्न पर दृढ़ और विद्वान रामशास्त्री ने कहा, "अब चाहे तुम अपने जीवन का बलिदान ही क्यों न कर दो, तुम्हारी आत्मा को शान्ति न मिल सकेगी। भविष्य में न तो तुम्हीं शान्ति प्राप्त कर सकोगे, न तुम्हारा राज्य ही समृद्धिशाली हो सकेगा; जहाँ तक मेरा अपना प्रश्न है, न तो मैं राज्य में कोई नौकरी ही करूँगा और न पूना में पैर रक्खूंगा जब तक कि प्रशासन तुम्हारे हाथ में है।" उसने अपने इस वचन का पालन किया और जीवन पर्यन्त वाई के निकट के एक गाँव में एकान्तवास किया।

इसी बीच, गारदियों का बकाया वेतन चुका दिया गया और रघुनाथराव मुक्त हो गया। अपनी मुक्ति के पश्चात् उसने अपने दत्तक पुत्र अमृतराव को पुरन्दरे के साथ पेशवा की पोशाक प्राप्त करने के लिए सतारा भेज दिया। वस्त्रों के साथ उनके लौटने पर रघुनाथराव ने पेशवा का पद ग्रहण किया। उसने सखाराम बापू को अपना कारबारी नियुक्त किया, परन्तु पेशवा के नए मंत्रियों में से उसके सबसे विश्वस्त मंत्री थे चिन्तू विठ्ठल और बावा रामचन्द्र शेणवी का पुत्र सदाशिव रामचन्द्र।†

नारायणराव के चरित्र आदि के विषय में कुछ विशेष कहना आवश्यक नहीं है; परन्तु उसके ऊपर आरोपित कुछ मिथ्या दोषों का खण्डन करना आवश्यक है। जब उसकी हत्या की गई तो उसक आयु केवल अठारह वर्ष थी; उसमें जो दोष थे उनका कारण थी उसकी बालसुलभ अस्थिरता; परन्तु एक दल विशेष के स्वार्थों और हितों के कारण उसकी इन मूर्खताओं को गम्भीर रूप देकर उसके चरित्र पर कालिमा पोतने का प्रयास किया गया है। वह अपने सम्बन्धियों से बहुत स्नेह करता था ‡ और अपने समस्त आश्रितों के साथ उदारता का व्यवहार करता था। उसके शत्रुओं के अतिरिक्त अन्य सभी लोग उसे प्यार करते थे।

पूना में अल्पायु में ही मर जाने वाले दोनों भाइयों के विषय में एक कथा बहुत प्रचलित है, यद्यपि यह कथा माधवराव की प्रशंसा में कही जाती है, परन्तु इसी से यह भी पता लगता है कि माधव राव का नारायणराव के विषय में क्या मत था। माधवराव प्रायः कहा भी करता था कि उसका भाई भविष्य में एक महान और साहसी सेनानायक होगा। कथा इस प्रकार है कि एक बार नगर के समीप स्थिति गुलटीकरी की पहाड़ी के पास हाथियों के युद्ध का प्रदर्शन हो रहा था। इसी प्रदर्शन के दौरान में एक हाथी बहुत उत्तेजित होकर उसी ओर दौड़ा जहाँ माधवराव आदि बैठे हुए थे। उसकी उत्तेजित मुद्रा और तीव्रगति से अतर्तंकित होकर अधिकाँश सेवक और सभी प्रमुख सरदार, भय के कारण पेशवा की उपस्थिति का जरा भी लिहाज न करते हुए जिधर ही राह मिली, भाग खड़े हुये। नारायणराव भी मसनद से कूद पड़ा और अन्य लोगों के साथ भागने के लिए तैयार हो गया। उसके

---

* खोजबीन होने पर कहा गया कि तुलाजी पवार नारायणराव से व्यक्तिगत दुश्मनी रखता था क्योंकि एक बार पेशवा ने उसे सार्वजनिक रूप से शारीरिक दण्ड दिया था। नारायणराव की हत्या के कई वर्ष बाद नाना फड़नवीस ने उस पर नारायणराव की हत्या का मुकदमा चलाया था।

† मराठा पाण्डुलिपि और मि० मोस्टिन के पत्र।

‡ सदाशिव राव भाऊ की विधवा पत्नी को नारायणराव द्वारा लिखे गए कुछ पत्र प्राप्त हुए हैं जिनसे उसके इस गुण की पुष्टि होती है। ये पत्र मूल रूप में पूना रिकार्डस में संग्रहीत हैं।

इस आचरण पर माधवराव ने लपक कर उसे पकड़ लिया और कहा, "भाई ! भागने के पहले यह सोच लो कि तुम्हारे इस कायरतापूर्ण पर अखबार कैसा प्रचार करेंगे ।" इतना सुनते ही नारायणराव उछल कर मसनद पर चढ़ गया और आराम से बैठ गया । हाथी चिंघाड़ता हुआ काफी पास आ पहुंचा था कि इसी समय अप्पाजी राव पाटणकर नामक एक मराठा सिलेदार ने अप्रतिम वीरता दिखा कर उस भयानक जीव से इन दोनों भाइयों की जान बचा ली । उसने तेजी से कटार निकाल लिया और उछल कर पेशवा को आड़ में लेते हुए खड़ा हो गया, और उसकी सू ड़ पर कटार से चोट करते हुए उसे पीछे लौटने पर विवश कर दिया ।

जब रघुनाथ राव पेशवा पद पर आसीन हो गया, उसके कुछ समय पश्चात् विसाजी किशन, हिन्दुस्तान की तरफ गई हुई सेना के साथ दिल्ली से चल पड़ा । पीछे हम वर्णन कर चुके हैं कि बादशाह मराठों के दुर्व्यवहारों से तंग आ गया था और उनसे अपना गला छुड़ाने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करने के लिए तत्पर हो गया था । चूँकि महादजी सिन्धिया, जवीता खां के प्रति अपनी शत्रुता को नहीं भूल सका था, और इसीलिए मराठों तथा रुहेलों के बीच हुई सन्धि का समर्थन वह नहीं कर सका । उसका ध्यान दूसरी तरफ आकर्षित करने के लिए उसे पश्चिम की तरफ भेज दिया गया और जाटों तथा राजपूतों से कर बसूलने का कार्य उसके उत्तरदायित्व पर छोड़ दिया । विसाजी किशन और तुलाजी होलकर तीस हजार से अधिक सवारों के साथ रुहेलखण्ड में ही पड़े रहे । चूँकि मराठे दिल्ली से वापस लौट गये थे इसलिए बादशाह को भी अवसर मिल गया कि वह मराठों के चंगुल से छूटने के लिए प्रयत्न कर सके । उसने मराठो के विरुद्ध इतनी प्रबल तैयारी की जितनी कि मराठों ने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी । विसाजी ने इन तैयारियों की खबर पाकर, इस बात के लिए हर सम्भव प्रयत्न किया कि किसी तरह बादशाह से यह विरोध समाप्त हो जाय और समझौते द्वारा बादशाह को अपने पक्ष में ही रक्खा जाय, परन्तु नजीफ खाँ ने बादशाह का कान भरके उसे मराठों के विरुद्ध इस बुरी तरह भड़का दिया था कि मराठे सन्धि के प्रयत्न में असफल ही रहे । अन्त में दिल्ली की सीमा में ही १७७२ ई० की उन्नीसवीं दिसम्बर को मराठों तथा मुगलों के बीच एक भयंकर युद्ध हुआ, इस युद्ध में मराठों की विजय हुई । नजीफ खाँ ने काफी पराक्रम के साथ सवारों का संचालन किया फिर भी इन सवारों ने कोई उल्लेखनीय प्रतिरोध नहीं किया । बादशाह के गारदी सैनिकों ने काफी उत्साह का प्रदर्शन किमा, इन गारदियो में सब से अधिक उल्लेखनीय सघंर्ष दो बटेलियनों ने किया जिनको अंग्रेजों द्वारा प्रशिक्षित किया गया था, और इस युद्ध में इसका संचालन एक फ्रांसीसी नायक के हाथ में था । इस विजय के पश्चात् मराठों ने बादशाह के समक्ष सन्धि की जो शर्तें रक्खीं, वे बादशाह को बहुत अधिक दबाने की प्रवृत्ति रखती थीं । मराठों ने बादशाह को विवश किया कि वह पेशवा को अपना बख्शी (प्रधान सेनापति) बनाए और जवीताखाँ को बख्शी के पद पर मियुक्त पेशवा का सहायक नियुक्त करे। उन सभी शर्तों को पूरा करने का वादा करे जो पहले निश्चित की गई थी, साथ ही सिरामपुर को भी उनके हवाले कर दे । उन्होंने बादशाह से कड़ा को भी मराठों को सौंप देने की शर्त रक्खी, ये दोनो सूबे जमुना नदों के पूर्व की ओर थे और मराठों की बुन्देलखन्ड की सीमा से सटे हुये थे, बादशाह की मदद करने के बदले अंग्रेजों ने शुजाउद्दौला से ये सूबे तब तक्र के लिये ले लिये थे जब तक कि बादशाह उनके संरक्षण में रहता । परन्तु चूंकि बादशाह ने अंग्रेजों के असहमत होने के बावजूद भी स्वेच्छा से, अंग्रेजों से मिली हुई सहायता के समस्त लाभों को छोड़ दिया था, इसलिये अब इन सूबों पर से अपना अधिकार समाप्त कर लेने के लिये तैयार नहीं थे, और दृढ़ निश्चय कर चुके थे कि यदि मराठों ने इन सूबों पर अधिकार जमाने का प्रयत्न किया तो वे डटकर मराठों का

विरोध करेंगे। उन्होंने निश्चय किया कि वे प्रतिरक्षा के लिये सदैव तत्पर रहेंगे और अवध पर किये गये किसी भी आक्रमण का सामना करने में अपने मित्र सुजाउद्दौला की मदद करेंगे, क्योंकि यह सम्भावना दिखाई पड़ रही थी कि मराठे अवध पर भी आक्रमण करेंगे। परन्तु एक साधारण घेरे के बाद, मराठों ने मई के अन्त में * हिन्दुस्तान छोड़ दिया क्योंकि नारायण राव ने एक विशेष कार्य के कारण इस सेना को वापस लौटने का आदेश भेजा था, नारायण राव का, सेना को वापस बुलाने का क्या उद्देश्य था, इसका उल्लेख हम पीछे ही कर चुके हैं। विसाजी किशन, किसी भी तरह वर्षा ऋतु के समाप्त होने के पहले पूना न पहुंच सका।

हैदरअली को पूर्ण आशा थी कि मराठे अवसर पाते ही उस पर भी धावा कर बैठेंगे इसलिए वह उन परिस्थितियों से लाभ उठाने के लिए भी पूर्ण रूप से तत्पर था जिनसे कि इस समय मराठा दरबार गुजर रहा था। पिछले अभियान में मराठों ने हैदर अली के जिन क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया था, उनको वापस लेने के लिये उसने अपने लड़के टीपू के साथ एक मजबूत फौज को रवाना कर दिया। निजाम अली भी तैयारियाँ कर रहा था, और उसे आशा थी कि ब्राह्मणों के इस परस्पर विरोध द्वारा वह भी कुछ लाभ उठा सकेगा। उसने सोच रक्खा था कि वह भी इस अवसर पर मराठों की राजनीति में उसी ढंग से हस्तक्षेप करेगा जिस तरह मराठों ने स्वयम् उसके पारिवारिक झगड़ों में हस्तक्षेप करके लाभ उठाया था।

इसी बीच मुदाजी भोंसले, अपने पुत्र, तथा जानोजी की विधवा पत्नी के साथ रघुनाथ राव से आ मिला। इसी अवसर पर, राघोजी को, जानोजी भोंसले के दत्तक पुत्र की हैसियत से, उसका उत्तराधिकारी घोषित करके उसे सेना साहब सूबा का पद दिया गया। चूंकि इस परिवारिक प्रतिद्वन्दिता में सवाजी तगड़ा पड़ रहा था इसलिए मुदाजी ने पेशवा का आश्रय ग्रहण किए रहा, परन्तु राघोजी तथा दरियाबाई बरार की तरफ लौट पड़े। रघुनाथराव ने दृढ़ निश्चय किया कि वह निजाम अली का डट कर विरोध करेगा और उसकी दुस्साहसी प्रवृत्ति का दमन करके ही दम लेगा। उसने सोचा कि यदि वह निजाम का सर कुचले बिना कृष्णा नदी को पार कर गया तो स्वयम् उसका क्षेत्र अरक्षित छूट जायगा और निजाम अली उसके क्षेत्र में खुली लूटपाट मचाने का अवसर पा जायगा, और ऐसे अवसर पर सबाजी भोंसले भी उसका साथ देने से बाज नहीं आएगा।

इसी नाजुक अवसर पर जब कि सेना कूच कर चुकी थी और रघुनाथ राव भी रात बिताकर दूसरे दिन पूना से प्रस्थान करने वाला था, रामशास्त्री ने अचानक पहुंचकर उससे नारायण राव की हत्या की सफल योजना बनाने का अपराध स्वीकार करा लिया जिसका उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं। उसका यह अपराध सिद्ध हो जाने पर भी अन्य मन्त्रियों ने उसके प्रति विशेष विरोध भाव नहीं प्रदर्शित किया। परन्तु रघुनाथ राव ने अपनी अपराधी वृत्ति के कारण उन सभी योग्य मंत्रियों को सन्देह और अविश्वास की नजर से देखने लगा जिनमें उसके प्रशासन को सुचारुरूप से चलाने की योग्यता एवम् सामर्थ्य थी। इस सन्देह के फलस्वरूप उसने सभी ऐसे योग्य मन्त्रियों के परामर्श से स्वयम् को वंचित कर लिया और उनसे दूर दूर रहने लगा। उसने इन योग्य मन्त्रियों के स्थान पर जिन लोगों की सहायता लेना प्रारम्भ किया वे सबके सब किसी भी तरह उन मंत्रियों का स्थान पूर्ण करने की योग्यता

---

* कमिटी आफ सीक्रेसी की पाँचवी रिपोर्ट की अपेन्डिक्स, बम्बई रिकार्डस और मराठा पान्डुलिपि। सीर मुताखरीन ने दिल्ली में होने वाले इस घटना क्रम का बहुत उलझा हुआ विवरण दिया है, जो ऊपर दिए हुए विवरणों में से किसी से भी मेल नहीं खाता]।

नहीं रखते थे। इस अवसर पर उसके प्रमुख सलाहकार थे सदाशिव रामचन्द्र, चिन्तू विठ्ठल, आबाजी महादेव. और सखाराम हरी, जिनमें से कोई भी इतना नीतिवान नहीं था जो मराठों की डगमगाती नाव को उचित दिशा में निर्देशित कर सके। नवम्बर माह में, रघुनाथ राव की सेना अचानक, असावधान निजाम अली पर धावा कर बैठी जो इस आकस्मिक आक्रमण का सामना करने के लिए जरा भी तैयार नहीं था। फलस्वरूप उसे विवश होकर भागना पड़ा और उसे बेदर में शरण लेनी पड़ी। लगातार तीन सप्ताहों तक मराठों तथा मुगलों में छिटपुट युद्ध होते रहे, और अधिकांश मुठभेड़ों में सफलता मराठों के ही हाथ लगी। जब मुगल बहुत पस्त हो गये तो अन्त में उन्हें बेदर में स्थित तोपों का निर्माण करने वाले कारखाने की शरण लेनी पड़ी। अब मराठों ने कभी-कभी तोपों से गोलाबारी करना भी शुरू कर दिया परन्तु वे रोज निराश होकर अपने पड़ाव की तरफ लौट जाते थे, * इस अवसर पर उनका पड़ाव मन्जरा नदी के किनारे पड़ा हुआ था। बेदर के आस-पास के सभी कुएं बेदर के किले के इतने नजदीक थे कि कभी भी किले की दीवालों से इन कुओं तक गोलाबारी की जा सकती थी, इस लिये. जल की सुविधा के लिए मन्जरा नदी के किनारे पड़ाव डालना पड़ा।

निजाम अली के विरुद्ध रघुनाथराव के इस आक्रमण के विषय में जितने लिखित्त वर्णन प्राप्त हैं उन सब में रघुनाथराव की घटती हुई लोकप्रियता का विवरण ही मिलता है। इन वर्णनों के अनुसार इस युद्ध में रघुनाथराव बार-बार पराजित होता था, घायल होता था, और एक बार तो वह मृत्यु के बहुत निकट तक पहुंच गया था † परन्तु कुछ समय बाद ही मुगल सेना निरन्तर युद्ध करते

---

* रघुनाथ राव ने इस अवसर पर 'महाकाली' नामक एक विशाल पीतल की तोप का प्रयोग किया था, यह तोप इस समय पूना में है।

† मिस्टर मोस्टिन के एक पत्र का निम्नलिखित अंश इस दिन के युद्ध का विवरण प्रस्तुत करता है, वह लिखता है : 'मुझे पता लगा है कि निजाम की पैदल सेना का एक दल छिपे छिपे रात में राघोवा के खेमे के पास तक पहुँच गया। जब उन्होंने भीतर घुसने का प्रयत्न किया तो राघोवा के कुछ सेवकों ने उन्हें देख लिया और शोर मचा कर सब को सतर्क कर दिया जिसके फलस्वरूप उनको सर पर पैर रखकर भागना पड़ा, परन्तु किसी तरह लुकते छिपते एक मुगल सैनिक राघोबा के खेमे को काटकर भीतर घुस गया और राघोवा पर तलवार चला दी जिससे उसके दाहिने कन्धे के बिल्कुल नीचे, उसकी बांह में चार इंच तक और हड्डी में भी आधा इंच तक कट गया। उसके पश्चात् गोली चलना भी प्रारम्भ हो गया और बन्दूक की एक गोली उसकी बांयी बांह में लग गई, इस प्रकार राघोंवा की दोनों भुजाएं घायल हो गई हैं, उसे बुखार हो आया है और उसके घुटने में कई विषैले फोड़े हो गए। जरी पताका वाले हाथी को मुगल भगा ले गए हैं, इस घटना को मराठे अपशकुन की दृष्टि से देख रहे हैं।' मिस्टर मोस्टिन ने इस घटना की सत्यता पर पूर्ण रूप से विश्वास कर लिया था, क्योंकि वह उस समय तक मराठों की कपटपूर्ण राजनीति के विषय में लगभग अनभिज्ञ था। यदि उसने बुद्धि से काम लिया होता तो वह 'चार इंच' वाले घाव का विश्वास कभी न करता और इसके बदले में, सुनी सुनाई बातों को महत्व न देकर अधिक कीमती सबूतों को एकत्रित किया होता और खबर देने वाले व्यक्ति की उक्तियों में औचित्य ढूंढ़ने का प्रयत्न किया होता। यद्यपि यह बात विचित्र लगती है, परन्तु सत्य है, कि मिस्टर मोस्टिन के इसी पत्र के आधार पर बम्बई सरकार ने यह योजना बनाई कि रघुनाथ राव के मर जाने या निर्बल पड़ जाने पर वे बलपूर्वक सालसती तथा अन्य द्वीपों पर अधिकार कर लेंगे। मेरे विचार से, इसी पत्र के आधार पर मि० टेलर का बंगाल सरकार के नाम ६ अक्टूबर १७७५ का पत्र सही खबर नहीं देता, इसी प्रकार विल्क्स और मिल भी गलत राह पर चले गए हैं : वास्तव में राघोबा पराजित नहीं हुआ था।

करते ऊब गई । निजाम अली को युद्ध सामग्री और रसद आदि बाहर से मगाने में बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता था; क्योंकि मराठे प्रातः धावा करके इन सामग्रियों को मुगलों से छीन लिया करते थे । इस प्रकार हर तरह से परेशान होकर निजाम अली ने सन्धि करना ही अधिक उचित समझा और अन्त में ६ दिसम्बर को निजाम अली ने स्वीकार किया कि वह मराठों को युद्ध बन्द करने के लिये बीस लाख रुपये की सालाना आय वाला क्षेत्र मराठों के हाथ सौंप देगा । निजाम अली द्वारा स्वेच्छा से समर्पित किये गये इस क्षेत्र को यदि रघुनाथराव ने अपने सरदारों में यथोचित एवम् न्यायपूर्ण ढंग से बाँट दिया होता तो महाराष्ट्र में एक बार फिर उसकी धाक जम जाती, और वह अपना खोया हुआ सम्मान वापस पा लेता । परन्तु रघुनाथ राव की स्वभावगत कमजोरी निजाम अली की कपट पूर्ण बातों के प्रभाव से प्रदर्शित हो गई । जब सन्धि की सारी बातें निश्चित हो गई तो निजाम अली, ने काफी खुले हृदय के साथ, रघुनाथ राव के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिये उससे मुलाकात की । इस भेंट में उस अपने तथा उसके बीच के पुराने मित्र भाव की बात उठाई । जिस प्रकार की परिस्थितियों से इस समय रघुनाथ राव गुजर रहा था, उनके विषय में निजाम अली को पूर्ण जानकारी थी, इसलिए सहानुभूति का प्रदर्शन करते हुए उसने रघुनाथ राव को विश्वास दिलाया कि वह भविष्य में हर विपत्ति में राघोबा की निरन्तर सहायता करेगा । इसके पश्चात् उसने राघोबा की चापलूसी करके उसकी कमजोरी को उभाड़ना शुरू किया । उसने राघोबा की प्रशासनिक बुद्धिमता की प्रशंसा की और कहा कि ऐसे महान और नीतिवान प्रशासक की अधीनता स्वीकार करके उसने स्वयं को बहुत अधिक सम्मानित महसूस किया है । उसने रघुनाथ राव की उदारता की बार-बार प्रशंसा की । उसने अपना दीनभाव प्रदर्शित करने के लिए अपनी शाही मुहर को उसके हाथ में दे दिया और कहा कि रघुनाथ राव यदि चाहे तो वह २० लाख वार्षिक आय वाले क्षेत्र के साथ-साथ अन्य क्षेत्र भी देने के लिए तैयार है । इस प्रकार हर सम्भव प्रयत्न करके और चापलूसी करके उसने रघुनाथ राव को इतना अधिक फुला दिया कि वह अपना हित अहित कुछ भी न सोच सका ।

इस प्रकार अत्यधिक चापलूसी से प्रभावित होकर रघुनाथ राव में जो उदारता प्रदर्शित की उससे उसके घरेलू शत्रु अत्यन्त ही प्रसन्न हुए, उसने उदारता की उत्तेजना में २० लाख वार्षिक आय वाला क्षेत्र भी निजाम अली को वापस कर दिया । यद्यपि कपटी निजाम के फेंके हुए जाल से उसके इस प्रकार फंस जाने का कोई तार्किक कारण नहीं दिया जा सकता, परन्तु इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि उसके स्वभाव में उतनी क्रूरता नहीं थी, जितनी कि इच्छा शक्ति की कमी थी । वह जल्द ही दूसरों की बातों से प्रभावित होकर विवेकेहीन हो जाता था ।

मुगलों के साथ मराठों की यह सन्धि होने के पश्चात् रघुनाथ राव कुछ समय तक कुलवर्ग में ही डेरा डाले पड़ा रहा । उसने त्र्यम्बक राव मामा के साथ एक टुकड़ी को सबाजी भोंसले की गतिविधियों का निरीक्षण करने के लिए रवाना कर दिया । इस समय सबाजी भोंसले औरंगाबाद में जमा हुआ था, और राघोबा के विरुद्ध भयानक तैयारियाँ कर रहा था । इस समय रघुनाथ राव जिस राहों पर चल रहा था उससे उसके शत्रुओं को बहुत प्रसन्नता हो रही थी, उन्होंने यह देखकर गुप्त संतोष प्राप्त किया कि रघुनाथ राव कर्नाटक की ओर अभियान करने की योजना तैयार कर रहा है । रघुनाथ राव के इस अभियान का उद्देश्य दो मुखी था । वह चाहता था कि पहले हैदर से उन क्षेत्रों को खाल करा ले जो मराठों के अधिकार क्षेत्र में थे और जिन पर हैदर ने अधिकार कर लिया था, दूसरी तरफ मुहम्मद अली और अंग्रेजों ने तंजौर * को अपने अधिकार में कर लिया था, और रघुनाथ राव उनके

---

* अंग्रेजों और मुहम्मद अली ने सितम्बर १७७३ में तंजौर पर अचानक धावा करके अधि-

इस कार्य के लिए उन्हें दण्डित करना चाहता था। अपने इन उद्देश्यों की पूर्ती के लिए बनाई गया योजना के अनुसार वह कृष्णा नदी की ओर बढ़ चला, परन्तु इसी बीच, उसके विरुद्ध एक षड़यत्र की योजना बनाई जा रही थी, जिसके फलस्रूप तुरन्त ही रघुनाथ राव की प्रगति अवरुद्ध हो गई।

धीरे-धीरे रघुनाथ राव की सेना के प्रमुख सरदारों ने कोई न कोई बहाना बना कर, पूर्व निश्चित योजना के अनुसार पूना की ओर लौटने लगे। सर्वप्रथम सखाराम बापू और नाना फड़नवीस ने अलग अलग बहाने बना कर रघुनाथ राव का साथ छोड़ दिया और पूना की ओर चल पड़े। उन दोनों महत्वपूर्ण सरदारों के जाने के पश्चात् गनपतराव रस्तिया, बाबाजी नायक [*] बारामती कर तथा कई अन्य सरदारों ने भी उनका अनुसरण किया। मोराबा फड़नवीस, राघोवा के पुराने मंत्रियों में से अन्तिम व्यक्ति था जिसने उसका खेमा छोड़ा। अब पुराने लोगों में से केवल बुजावा पुरन्दरे ही राघोबा का साथ देने के लिए रुका रहा।

रघुनाथ राव तथा उसके साथ अन्य जितने भी लोग थे; उनमें से किसी को भी इस दुरभिसन्धि के विषय में कुछ भी खबर नहीं मिल सकी थी, परन्तु उनके अतिरिक्त अन्य सभी लोग जान चुके थे; कि राघोबा के विरुद्ध जोरशोर से षड़यंत्र किया जा रहा है। इस समय पूना मंत्रिमंडल के प्रमुख सदस्य थे सखाराम बापू, त्र्यम्बक राव मामा, नाना फड़नवोस मोरबा फड़नवीस, बुजाबा पुरन्दरे, आनन्द राव जो बाजी [†] और हरी पन्त फड़के [‡] इन सभी व्यक्तियों की उन्नति वर्तमान पेशवापरिवार के प्रोत्साहन से ही हुई थो, और वे अधिकार की दृष्टि से शिवाजी और शाहू द्वारा नियोजित आठ प्रधानों से बहुत भिन्न थे।

इस समय महाराष्ट्र में क्रान्ति की जो योजना तैयार हो रही थीं उसके विषय में लोगों को कुछ नश्चित पता नहीं था और देश भर में तरह तरह के अनुमान लगाए जा रहे थे। कुछ लोगों का अनुमान था कि अब ये मंत्री मिलकर राजा को मुक्त करने की योजना बना रहे हैं, अन्य लोगों का कहना था कि अहमद नगर के किले में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति को कैदी बना कर रक्खा गया है, जिसने अपना नाम सदाशिव राव भाऊ रख लिया है, और मंत्री लोग रघुनाथ राव के स्थान पर उसी को पेशवा बनाने की अभिसन्धि कर रहे हैं। सदाशिव राव भाऊ का वास्तविक नाम था सदाबा, यह हिन्दुस्तान की तरफ के एक कन्नौजिया ब्राह्मण के परिवार में पैदा हुआ था अफवाह थी कि उसने पहले ही रघुनाथ राव के विरुद्ध विद्रोहकर दिया था, परन्तु उसके कैद कर लिए जाने से इस विद्रोह का दमन हो गया था और उसके सारे सहायक विखर गए थे। इस अफवाह को उड़ाने वाले लोगों ने दक्षिण में काफी विश्वास प्राप्त कर लिया था; और अब भी बहुत से लोगों का यह विश्वास था कि वास्तविक भाऊ

कार कर लिया था। (मद्रास रिकार्डर्स)

[*] वापूजी नायक वारामती कर का भतीजा या पौत्र, वापूजी नायक का विवाह बालाजी वाजी राव की बुआ से हुआ था, उसने १७४० में राघोजी भोंसले की सहायता से पेशवा का पद प्राप्त करने का प्रयत्न किया था।

[†] आनन्द राव जीवाजी सामान्यतः खासगी वाला के नाम से विख्यात है क्योंकि पेशवा के सारे व्यक्तिगत मामलों का विवरण रखना उसी का कार्य था। वह गोविन्द शिवराम का पुत्र था जिसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।

[‡] हरी पन्त फड़के वहुत ही निम्न श्रेणी के परिवार में पैदा हुआ था। वह पूना में निवास करने वाले एक महाजन या सहूकार त्र्यम्बकराव दीक्षित के परिवार में एक साधारण आश्रित के रूप में रहता था।

साहब को जिन्हें राजकीय कारणों से कैद कर लिया गया था, अब मुक्त कर दिया जायेगा और अलोक प्रिय दादा साहब के स्थान पर उसी को पेशवा बनाया जायगा।[*]

परन्तु इन अनुमानों में से किसी में भी यथार्थता का जरा भी अंश नही था और मंत्रियों की योजना की प्रगति ने इस प्रकार के सभी अटकलों का अन्त कर दिया। जब इन मंत्रियों को यह पता लग गया कि नारायणराव की विधवा पत्नी गंगाबाई गर्भवती है, तो उन्होंने उसे एक सुरक्षित स्थान पर रखने का बहाना लेकर उसे पुरन्दर के किले में ले जाकर रख देने का निश्चय किया। परन्तु सामन्यतः यह माना जाता है कि ऐसा उन्होंने अपने मुख्य उद्देश्य पर परदा डालने के लिए किया था। मन्त्रियों ने सोच रक्खा था कि यदि गंगाबाई ने पुत्र को जन्म दिया तब तो कोई समस्या ही नहीं रहेंगी परन्तु यदि संयोगवश पुत्र के स्थान पर पुत्री पैदा होगी तो उसके स्थान पर किसी नवजात लड़के को रखकर उसी को गंगाबाई का पुत्र घोषित कर दिया जायगा। अपनी इस योजना को सफलता प्रदान करने के लिए उन्होंने कई ब्राह्मण स्त्रियों को, जो कि गर्भवती थी, गंगाबाई के साथ ही पुरन्दर के किले में पहुंचा दिया था ऐसा कहा जाता है। ३० जनवरी को स्वयम् नाना फड़नबीस और हरीपन्त फड़के गंगाबाई को पूना से अपने संरक्षण में ले गए और उसके वहाँ से हटाए जाने के कारण को सर्वजनिक रूप से घोषित करवा दिया गया। गंगाबाई के साथ सदाशिवराव की भाऊ की विधवा पत्नी पार्वती बाई भी गई थी जिसे महाराष्ट्र के लोग बहुत सम्मान की दृष्टि से देखते थे। सभी मंत्रियों ने आपस में सलाह मशिवरा करके यह निश्चित कर लिया था कि वे मंत्रिमण्डल को गंगाबाई का संरक्षक घोषित करके, उसके नाम से, स्वयम् महाराष्ट्र का शासन भार सम्भालेंगे। इस समय दरबार तथा सेना में जितने भी लोग रघुनाथराव के पक्ष में थे, उन सबको पकड़ कर कैद में डाल दिया गया। साथ ही साथ इन मंत्रियों ने निजाम अली तथा सवाजी भोंसले से भी सन्धिवार्ता प्रारम्भ कर दिया। ये दोनों ही व्यक्तियों ने नारायणराव की विधवा पत्नी के अधिकारों की रक्षा के लिए मंत्रिमंडल का साथ देना स्वीकार कर लिया। उधर वे रघुनाथराव के कैम्प में भी इन षड़यन्त्रकारियों का एक आदमी कृपाराव बलवन्त–उसकी सेना में भी बिद्रोह की ज्वाला सुलगाता फिर रहा था और यह ज्वाला इतनी भड़क चुकी थी, कि ज्यों ही पूना के षड़यंत्रकारियों का जरा सा इशारा मिलता, तुरन्त ही राघोबा की सेना उसी के बिरुद्ध बिद्रोह कर देती।[†]

१६३४ ई०

उस बीच रघुनाथराव बेल्लारी से भी आगे बढ़ चुका था। उसने हैदरअली से भी समझौता कर लिया था। इस समय उसकी तत्कालिक विपत्ति इतनी भयंकर हो गई थी कि हैदरअली से कुछ लाख रुपया नकद तथा सब मिलाकर २५ लाख रुपया देने का वादा लेकर ही रघुनाथराव ने अपने मराठा जिलों में से तीन जिलों पर से अपना अधिकार बिलकुल समाप्त कर दिया, और ये जिले पूर्णतः हैदरअली के अधिकार में आ गए। हैदर अली ने सम्भवतः अपनी दूरदृष्टि से यह देख लिया था कि उस क्षेत्र में स्थित मराठों के अन्य जिले भी, कुछ ही समय में उसके हाथ में आ जायेंगे। कुछ ही दिनों पश्चात् रघुनाथराव ने पूना में तेजी से घटने वाली घटनाओं का समाचार पाया तो वह स्तब्ध रह गया।

---

[*] राघोवा और दादा साहब स्वयम् रघुनाथराव के घरेलू नाम थे, इसी प्रकार सदाबा और भाऊ साहब, सदाशिवराव के घरेलू नाम थे मि० मोस्टिन के अनुसार सदाशिवराव दौलतावाद में कैद था, परन्तु यह गलत है, वह अहमदनगर में कैद था जहां से बाद में हटाकर रतनगिरि में रख दिया गया। यथावसर इस सम्बन्ध में भी आगे लिखा जायगा।

[†] मराठा पाण्डुलिपि और मि० मोस्टिन के पत्र।

इस समय रघुनाथराव अरकाट के सूबे से कर वसूलने के लिए बढ़ा जा रहा था, परन्तु इस षड़यंत्र की खबर पाने पर उसे विवश होकर अपने इस विचार को स्थगित करना पड़ा। उसने कल्याणदुर्ग में हैदर अली से एक कूटनीतिक सन्धि की जिसके अनुसार हैदरअली ने उसको पेशवा पद का वास्तविक उत्तराधिकारी माना और प्रतिवर्ष कर के रूप में ६ लाख रुपया देना स्वीकार किया। *

अपने कैम्प में पूना में होने वाली क्रान्ति के विषय में पूरी जानकारी सबसे पहले रघुनाथराव को ही मिली, और उसके किसी अन्य सरदार को इस सम्बन्ध में कोई ज्ञान हो सके इसके पहले ही उसने आत्मरक्षा की पूर्ण तैयारी कर ली, क्योंकि उसे अपने कई सरदारों विशेष कर भुवनराव प्रतिनिधि पर सन्देह था कि वे अवसर पाते ही उसके विरुद्ध विद्रोह में सम्मिलित हो जायँगे। वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया था और समझ नहीं पा रहा था कि किस तरह इस स्थिति का सामान करे। इस विपत्तिकाल में उसका मस्तिष्क ऐसे कार्य करने लगा, जिन्हें बुद्धिमता पूर्ण नहीं कहा जा सकता था। उदाहरण के लिए भुवनराव प्रतिनिधि को अपनी जागीर की आय के अनुसार केवल तीन सौ घोड़े रखना चाहिए था परन्तु इस समय वह लगभग चार हजार सवारों का सरदार था। इसी बहाने को लेकर रघुनाथराव ने इस असीमित वृद्धि के लिए उससे जवाब तलब किया। प्रतिनिधि ने इस प्रकार के मूर्खतापूर्ण प्रश्न का कोई भी उत्तर न देना ही उचित समझा। इस पर रघुनाथराव ने उस पर आक्रमण करने की धमकी दी, फिर भी भुवनराव के दृढ़ रहने पर उसने अपने सेनापति मुराररराव घोरपड़े को आज्ञा दी कि वह भुवनराव की टुकड़ी की सारी सामग्रियों को छीन ले। इस बे सिर पैर के आदेश को सुनकर घोरपड़े बहुत धर्म संकट में पड़ा; अन्त में उसने दृढ़ होकर कहा कि यदि उसे राज्य के किसी शत्रु पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया होता तो वह अवश्य अपना शौर्य प्रदर्शित करता, परन्तु चूंकि यह एक घरेलू झगड़ा था इसलिए उसने इस विवाद में भाग लेना स्वीकार नहीं किया। रघुनाथराव ने प्रत्येक सरदार को यही आदेश दिया, परन्तु सभी सरदारों से उसे इसी प्रकार के प्रत्युत्तर मिले। इस पर अत्यन्त क्षुब्ध होकर रघुनाथराव ने अपनी निजी टुकड़ी को तैयार होने का आदेश दिया, और तोपों का मुँह घुमा कर भुवनराव के खेमे की ओर करवा दिया. उसने धमकी दी कि यदि अब भी प्रतिनिधि ने उत्तर नहीं दिया, तो वह स्वयम् युद्ध प्रारम्भ कर देगा। परन्तु जब उसने देखा कि भुवनराव अब भी पूर्णतः दृढ़ है, और उसके अधिकांश सरदार एवं साथी भी प्रतिनिधि के साथ ही मरने मारने के लिए तैयार हैं तो वह बड़े चक्कर में पड़ा। अन्त में वह स्वयम् भुवनराव के पास पहुंचा और उसके पास सन्देश भेजा कि वह उससे भेंट करना चाहता है। प्रीतिनिधि ने बड़े सम्मान पूर्वक रघुनाथराव पेशवा का स्वागत किया, लेकिन जब दोनों वार्ता के लिए आसन ग्रहण करने लगे तो भुवनराव ने अपने तथा पेशवा के बीच में अपनी तलवार रख दिया। वह उसे देखकर बहुत आश्चर्यचकित हुआ और उसने प्रीतिनिधि से इस प्रकार की सतर्कता बर्तने का कारण पूछा। भुवनराव ने कहा; 'यह मैंने इसलिए रख दिया है ताकि पन्त प्रधान यह भूल न जाय कि वह प्रतिनिधि से बात कर रहा है।'' इसके पश्चात दोनों के बीच मैत्री पूर्ण वार्ता हुई, दोनों तरफ से एक दूसरे को आश्वासन दिए गए; अन्त में रघुनाथ की इस भेंट का निस्कर्ष यह निकला कि रधुनाथराव

---

* मैंने इस विषय में पूर्णतः मराठा पाण्डुलिपियों तथा अशंतः मि० मोस्टिन के पत्रों का अनुसरण किया है जिनके अनुसार जब हैदरअली ने यह रुपया अदा किया तो राघोबा को क्रान्ति के विषय में कुछ भी नहीं मालूम था।

ने प्रीतिनिधि को कुछ धन देना स्वीकार किया और रघुनाथराव के हृदय में अपने सरदारों को दबाने की जरा भी इच्छा शेष नहीं रह गई !*

अब पेशवा रघुनाथराव ने पूना की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया, और उसी ओर चल पड़ा। मुरारराव घोरपड़े और भुवनराव प्रीतिनिधि ने भी रघुनाथराव का ही पक्ष ग्रहण किया और साथ ही चल पडे। इन लोगों के अतिरिक्त, जो लोग पेशवा का साथ छोड़कर मन्त्रिमंडलीय दल के पक्ष में थे, उन सबको एकत्रित करके वामनराव, पेशवा की सेना से अलग हो गया। वह भी इस विद्रोही सेना को लेकर पेशवा की सेना की बाँई टुकड़ी से कुछ दूरी पर पड़ाव डालता बढ़ता चला रहा था। उसे भय था कि कहीं पेशवा की सेना बीच में ही आक्रमण करके उनका सफाया न करदे। इस भय से वामनराव सदैव एक मंजिल आगे या पीछे पड़ाव डालता था। वामनराव की इस टुकड़ी की मदद करने के लिए तीन तरफ से सेनाएँ बढ़ी आ रही थीं, और जब तक ये तीनों सहायक सेनाएँ पहुंच नहीं गईं तब तक उसने रघुनाथराव की सेना से मुठभेड़ होने से अपने को बचाए रक्खा। पुरिन्दा से शिवाजी भोंसले और त्र्यम्बकराव मामा रवाना हो चुके थे; पूना से चली हुई सेना का नेतृत्व करते हुए हरीपन्त फड़के लगभग आधी दूरी तय कर चुका था, और अस्थिरमति निजाम अली कुल वर्ग को पार करता हुआ बढ़ता चला आ रहा था। यद्यपि ऊपर से अब भी रघुनाथराव के सहायक के रूप में ही बढ़ रहा था, परन्तु उसने सोच रक्खा था, कि मराठों के दो विरोधी दलों में से जिस भी दल की भेंट पहले हो गई, वह उसी का साथ देने के लिए तैयार हो जायगा। रघुनाथराव एक पराक्रमी एवम् वीर सिपाही होने के लिए विख्यात था, और इसी कारण अम्बकराव मामा बहुत पहले से ही उसके प्रति ईर्ष्याभाव रखना था। उसकी एक आकांक्षा यह भी थी वह अकेले ही रघुनाथराव को पराजित करने का सम्मान प्राप्त करे। जब उसने देखा कि सवाजी भोंसले भी अकेले ही राघोबा को पराजित करने के ध्येय से तेजी से बढ़ता जा रहा है, तो वह अपनी सेना के आगे-आगे अत्यन्त तीव्र गति से बढ़ चला; उसने चौथी मार्च को पढ़रपुर के निकट भीमा नदी को पार किया। इस समय पेशवा रघुनाथराव का पड़ाव उसी क्षेत्र में कहीं नजदीक ही पड़ा हुआ था। राघोबा ने उसे उपस्थित देख कर और अपनी दांव की मार में पाकर अचानक उस पर आक्रमण कर दिया। यह युद्ध कासी गाँव और पढ़रपुर के बीच एक खुले हुए मैदान में लड़ा गया था। यद्यपि त्र्यम्बकराव के मुकाबले में रघुनाथराव की सेना बहुत कमजोर थी परन्तु आकस्मिकता के कारण पेशवा ने बीस मिनट से भी कम समय में त्र्यम्बकराव मामा को परास्त किया, और घायल त्र्यम्बकराव को बन्दी बना लिया।

मार्च

रघुनाथराव ने एक धावे में अकेले ही, काफी शौर्य का प्रदर्शन किया। इस धावे में उसने केवल अपनी निजी सेना की सहायता ली जिसमें लगभग १०,००० सवार थे। इस धावे का सामना करना पड़ा त्र्यम्बकराव की सेना के द्वितीय सेनापति गंगाधरराव रस्तिया को जो इस युद्ध में यद्यपि घायल हो गया परन्तु भाग गया और उसे बन्दी न बनाया जा सका।† यद्यपि प्रीतिनिधि और मुरार

---

* मैंने यह कथा आपाजी कोणदेव से सुनी है जो इस अवसर पर उस स्थान पर उपस्थित थे।

† मि० मोस्टिन ने अपने एक पत्र में, इस अवसर पर राघोबा द्वारा प्रयोग की हुई एक कपट पूर्ण चाल का वर्णन किया है परन्तु किसी भी मराठा पाण्डु लिपि में इसका वर्णन नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त जिस मैदान में यह युद्ध हुआ था, वह चारों तरफ से खुला हुआ एक वनस्पतिरहित खुला मैदान है, जिसमें जंगल या वृक्षों का नाम भी कभी रहा होगा—ऐसी सम्भावना नहीं है। मि० मोस्टिन

राव घोर पड़े, दोनो ही रघुनाथराव के साथ थे, परन्तु इस धावे में उसकी सहायता करने की उत्सुकता, दोनों में से किसी ने भी प्रदर्शित नहीं की। भुवनराव प्रीतिनिधि पीछे ही रह गया, और कुछ ही समय बाद हरीपन्त फड़के से जा मिला। घोर पड़े ने भी इस अव्यवस्थापूर्ण परिस्थिति से लाभ उठाया और गूटी की अपनी जागीर में लौट गया और फिर कृष्णा नदी को पार नहीं किया। प्रीतिनिधि के आ मिलने के पश्चात् हरीपन्त फड़के ने तुरन्त, बिना समय खोये, संभाजी भोंसले और निजामअली से भी सम्पर्क स्थापित कर लिया, परन्तु इन दोनों में से कोई भी, किसी प्रकार के निर्णयात्मक युद्ध को, शीघ्रता से प्रारम्भ कर देने के लिए तैयार नहीं था।

इस प्रकार मंत्रिदलीय सेना पर दो बार विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् राघोबा के पराजित एवं गिरे हुए मनोभाव को क्षणिक जीवन मिल गया। उसने पंढरपुर में कुछ कर वसूल लिया, तथा कुछ हीरों जवाहरतों को बेच कर पर्याप्त धन संग्रह कर लिया। ये हीरे जवाहरात विसाजी किसन हिन्दुस्तान से लौटते समय ले आया था। उसने लौटने पर, पुरानी मराठा परम्परा के अनुसार इन सभी मूल्यवान रत्नों को नजर के रूप में राघोबा को दे दिया था क्योंकि वही इस समय मराठा सरकार का प्रधान कर्ता धर्ता था।

पूना में भयानक आतंक व्याप्त हो गया। आतंक के समय नगर को छोड़ कर छिपने के योग्य स्थानों में चले जाने का स्वभाव इधर के सभी निवासियों की जन्मजात प्रवृत्ति सी बन गयी थी। ऐसे समय में वे शत्रुओं से तो डरते ही थे, मित्रों से भी डरने लगते जिसकी सींग जहाँ समा सकती थी, वह उसी स्थान के लिये भाग निकलता था। पूना के निवासी भी अपना सामान बाँध बूंध कर सुरक्षा के लिये किले की ओर या छिपने के लिये उजड़े गाँवों की ओर भागने लगे। राघोबा के झंडे के नीचे सैनिक आ आकर एकत्रित होने लगे। कुछ दिनों तक वह राजधानी की राह पर चलता रहा, परन्तु इतनी बड़ी सेना को आवश्यक खर्च देने के लिये उसके पास निधि की कमी थी। उसकी सेना में अब तीस चालीस हजार सैनिक हो गये थे। राघोबा को यह भी सन्देह था कि इनमें से कितने ही सैनिक आवश्यकता के समय विरोधी दल में भी चले जा सकते हैं। इस पूरे समय में वह होल्कर, सिंधिया तथा अँगरेजों से सहायता के लिये पत्र व्यहार भी करता रहा और इनमें से प्रत्येक से मदद पाने की उसको आशा थी। अतः राज़धानी के मार्ग में चलते-चलते वह बुरहानपुर के मार्ग पर घूम गया। इधर पूना में राजधानी में मंत्रियों की यह स्थिति थी कि वे राघोबा से अत्यधिक भयभीत हो रहे थे, क्योंकि न तो वे सवाजी भोंसले का ही मन्तव्य समझ पा रहे थे और न निजामअली का ही। कितने ही मराठे सरदार मंत्रियों से असन्तुष्ट थे तथा कितने ही निष्पक्ष रह गये थे। राजधानी की ओर राघोबा की प्रगति का समाचार सुनकर वे भय त्रस्त थे। असन्तुष्ट एवम् निष्पक्ष मराठा सरदारों को अपनी ओर करने का एक मात्र उपाय इन लोगों की राय में यह था कि राजा को स्वतत्र कर दिया जाय। वे लोग राजा को कैद से निकालने ही वाले थे कि उनको समाचार मिला कि राघोबा बुरहानपुर की ओर घूम गया है। अभागा राजा जेल का जेल में ही पड़ा रह गया। अब सतारा के राजा को छोड़ने का विचार भी समाप्त हो गया। पचास हजार की संयुक्त सेना के साथ हरीपन्त फड़के सवाजी भोंसले तथा निजाम का पीछा किया। मंत्रियों ने निजामअली से वादा किया था कि राघोबा से विश्वासघात करने पर वे उसको कुछ क्षेत्र देंगे। राघोबा का पीछा करने में निजामअली जानबूझ कर इसलिये देरी करने लगा कि मंत्रियों ने अभी तक अपना वादा पूरा नहीं किया था। इस प्रकार की देरी के कारण

ने जिस चाल और मोर्चे बन्दी का वर्णन किया है वह इस प्रकार की प्राकृतिक परिस्थितियों में, मेरे विचार से, शंकांजनक है।

राघोबा को यह अवसर मिल गया कि वह यत्र तत्र रुक कर रुपये भी वसूल करता हुआ आगे बढ़ने लगा। इसी तरह की भाग दौड़ में व्यर्थ समय खोते हुये राघोबा को समाचार मिला कि गत १८ अप्रैल को पेशवा को पुत्र प्राप्ति हुई है, जिसका नाम रक्खा गया है माधवराव नारायण। इस समाचार ने राघोबा की महत्वाकाँक्षाओं की कमर तोड़ दी। अब उसे किसी भी दिन तथा किसी भी परिस्थिति में पेशवा बन पाने की अल्पतम् आशा को भी तिलांजलि दे देनी पड़ी। यद्यपि पेशवा के राज्य तथा उसकी सम्पत्ति को हड़प जाने की कामना करने वाले तथा तदर्थ बनायी गयी योजना को कार्यान्वित करने वालों ने यही प्रचार किया कि यह पुत्र स्वर्गीय नारायणराव का नहीं है, फिर भी इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि वह पुत्र स्वर्गीय नारायणराव का ही था।

श्रीमती गंगाबाई ने सखाराम बापू तथा नाना फड़नवीस को इसलिये भेजा कि वे लोग उसके पुत्र के लिये पेशवा की पोशाक ले आवें। राजा ने सतारा से पेशवा पद के कपड़ों को माधवराव नीलकंठ पुरन्दरी के हाथों भेजा और इस प्रकार वह चालीस दिन का बच्चा पेशवा पद पर प्रतिष्ठित कर दिया गया। उस समय प्रशासन में जितने भी मंत्री थे, उन सबका पहला काम यह हुआ कि जानोजी भोंसले के दत्तक पुत्र रघूजी भोंसले को सेना-साहब-सूबा के पद से हटाकर वह पद उन लोगों ने अपने विश्वस्त मित्र सवाजी को दे दिया।

रघुनाथराव थोड़े समय तक बुरहानपुर में रहा और वहाँ रुकने में उसे यह आशा थी कि होल्कर तथा सिंधिया उससे यहीं पर शायद मिल जायँ, परन्तु अन्त में अपने मित्रों की राय के विपरीत उसने नर्मदा को पार किया। इसी समय मूदा जी भोंसले तथा उसके सभी साथियों ने राघोबा का साथ छोड़ दिया। अब उसके पास केवल सात हजार मात्र घुड़सवार ही रह गये। उसके इन्दौर पहुंचने पर उसके दो साथी उससे आकर मिल गये। इनमें से एक था ससैन्य सिंधिया तथा दूसरा था ससैन्य तुकाजी होल्कर। उन दोनों सरदारों ने राघोबा का भरपूर स्वागत किया और सर्व में तथा अधिकारी वर्ग में यह बात साधारण रूप से प्रचारित हो गयी कि ये दोनों ही प्रसिद्ध सर्दार राघोबा के पक्ष में रहेंगे। यह भी कहा जाता है कि गोविन्दराव तथा फतहसिंह गायकवाड़ दोनों भाइयों ने होल्कर तथा सिन्धिया को आपसी झगड़े का पंच मान लिए। आगे चलकर यह बताया जायगा कि किस प्रकार ये दोनों भाई गुजरात पर अधिकार करने के लिए झगड़ रहे थे। इन दोनों भाइयों ने अपने पंचों से यह प्रतिज्ञा भी की थी कि वे दोनों ही अपना झगड़ा निपट जाने के बाद राघोबा की मदद करेंगे। इन अफवाहों को सुनकर तथा मंत्रियों को प्रतिज्ञाभंग करने को तत्पर पाकर निजामअली का निश्चय भी डावाँडोल होगया। अब वह जिस किसी से भी उचित मूल्य पा जाय उसी के हाथ अपने को बेचने को तैयार हो गया था। वह वर्षाकाल में बसूम में पड़ाव डालकर पड़ रहा ताकि यहीं से वह मंत्रियों से प्रतिज्ञा पूर्ति स्वरूप निश्चित भूभाग देने का तकाजा भी करता रहे और इधर राघोबा के दल से भी यथा आवश्यक वार्तालाप करता रहे। हरी पन्त फड़के बुरहानपुर के पड़ोस में ही डेराडाल कर पड़ रहा।

मन्त्रियों में शीघ्र ही आपसी मनमुटाव भी व्याप्त हो गया। वे आपस में ही एक दूसरे से ईर्ष्या करने लगे। नाना फड़नवीस इतनी अधिक सावधानी से कार्य कर रहा था कि उसने एक ऐसे राज्य का सर्वेसर्वा बनकर काम करने से बचने का प्रयास करने लगा, जिसका मुख्य एक बच्चा हो। क्रान्ति के फलस्वरूप जिन व्यक्तियों का उदय होता है वे प्रायः पहले पृष्ठभूमि में ही बने रहते हैं और शायद ही कभी प्रत्यक्ष रूप से प्रगट होते हैं। इसी नियम के अनुसार नाना फड़नबीस ने सखाराम बापू का समर्थन प्रारम्भ किया; क्योंकि जन-सामान्य की दृष्टि में बापू का बड़ा सम्मान था और सभी उनकी

बात को श्रद्धा से मानते थे। नाना फड़नबीस का यह मार्ग उसकी अति बुद्धिमत्ता का धोतक है। सखाराम बापू एक बृद्ध, सावधान यथा अवसर को पहचान कर तदनुरूप कार्य करने वाले व्यक्ति थे। निस्सन्देह, साहस उनमें नाना फड़नवीस से अधिक था। वे यह नहीं समझ पाये थे कि उनका जो सहयोगी एवम् पथानुयायी है वही उनका सफल प्रतिद्वन्दी भी हो सकता है और सम्भव है कि थोड़ा और आगे चलकर वह उनके प्रबलतम शत्रु के रूप में सामने आवे। नाना को यह भय था और उसके इस भय में सत्यता भी थी कि यदि सखाराम बापू मंत्रियों का साथ छोड़ दे तो फिर इनका दल न केवल छिन्न-भिन्न ही हो जाय वरन् निरुपाय भी हो जायगा; क्योंकि साधारण जनता पर बापू का अनन्यतम् दवाव था। नाना फड़नवीस की महत्वाकांक्षा का मूल था कि उसने पेशवा की संरक्षिका गंगावाई की कृपा प्राप्त कर लिया था और यह वात न तो बापू को ज्ञात थी और न सर्वसाधारण को। इसी साधन से वह गंगावाई को ऐसे उपाय बताया करता था, जिससे बृद्ध मन्त्री को नियंत्रित रक्खा जा सके।

नाना का भतीजा मोरेबा माधव राव का प्रधान मन्त्री रह चुका था। वह इसलिए असन्तुष्ट था कि उसके सलाहकार को कोई सम्मान नहीं दिया था। वह इतना असन्तुष्ट हो गया था कि यदि उसकी सुरक्षा का कोई उपाय होता तो वह अब तक राघोबा के पास चला गया होता और अपनी प्राचीन शक्ति को निश्चित रूप से प्राप्त कर लिया होता। शीघ्र ही इस प्रकार के मंत्रियों ने अपना एक गुट बना लिया जो सखाराम अथवा नाना की अधीनता में काम नहीं करना चाहते थे। वास्तव में इस समय मन्त्रियों के स्पष्ट दो गुट हो गए थे। इस विभाजन को प्रायः सभी लोग जान गए। एक पत्र के प्रगट हो जाने से जो मोरेबा, बूजाबा और बाबाजी नायक ने भूतपूर्व पेशवा के साथ किया था। इन पत्रों को रोक लिया था हरी पन्त फड़के ने और ऐसा प्रतीत होता है कि इन लोगों ने सखाराम पाबू, नाना भड़नबीस, गंगाबाई तथा उसके पुत्र को पकड़ने की एक योजना बनायी थी। पहाड़ी किलों में वर्षाकाल में भयंकार सर्दी पड़ती है, उससे घबराकर ये सभी पुरन्धर के किले से निकलकर पड़ोस के मैदानी गाँव से दूर में आकर रहने लगे थे। ३० जून को उन्हें इस षड्यंत्र का समाचार मिला। वे लोग बिना थोड़ी घबराहट का प्रर्दशन किए वहाँ से हट कर किले में चले गये।

हरीपन्त फड़के ने अपनी सेना का एक भाग बुरहानपुर में छोड़ा और अपनी मुख्य सेना लेकर पुरन्धर की ओर चल दिया। कृष्णराव मंत्रियों के एजेन्ट की हैसियत से निजामअली के साथ रहता था। उसने निजामअली को लालच दिया कि यदि वह मंत्रियों के पक्ष में रह कर उनकी सहायता करेगा तो उसे तेरह लाख रुपये के मूल्य की जागीर तुरन्त दी जा सकती है और आगे चल कर उसे और उपालब्धियां भी दी जा सकती हे। निजामअली को १३ लाख की जागीर तुरन्त ही मिल गयी और कृष्णराव ने उसे औरंगाबाद की ओर चल पड़ने की सलाह दी, जहां जाकर वह मंत्रियों के भले का काम करता। इसी बीच षड़यंत्र का भंडाफोड़ हो गया तथा हरीपन्त फड़के को आदेश मिला कि वह अजन्ता घाट में ही रुक जाय।

इधर इस मतभेद के समाचारों को सुनकर हैदरअली ने भी अपनी योजनायें बनायीं। उसकी चिरसंचित अभिलाषा थी कि तुंग भद्रा के दक्षिण में पड़ने वाले मराठा प्रदशों को हस्तगत कर लिया जाय। उसने स्वयम् सेरा पर आक्रमण कर दिया और उसके लड़के टीपू ने गुरमकोंडा को घेर लिया। उधर एडोनी के रास्ते बसालत जंग भी मराठा प्रदेश में घुस गया और उसने हटनी तथा मेरिव तक के प्रदेशों से कर वसूल किया। सेरा तथा गुरमकोंडा को बचाने का कोई प्रयास नहीं किया जा सका और वे दोनों ही शत्रु के हाथों जा पड़े। वामनराव गोविन्द पटवर्द्धन तथा आनन्दराव रस्तिया को आदेश दिया गया कि वे जाकर अपने जिलों की रक्षा करें। उन्होंने तेजी से जाकर बसालतजंग को

वापस जाने के लिये विवश कर दिया। इन सरदारों को आदेश मिला था कि अपना काम करके शीघ्रातिशीघ्र राजधानी को लौट आयें। इश्वर भिऊराव यशवन्त पंगिया रामचन्द्र गनेश, वीसाजी किशन तथा भुवनराव प्रतिनिधि को यह काम दिया गया कि वे लोग विभिन्न जिलों में जाकर योग्य आदमियों को इकट्ठा करें और दशहरा तक राजधानी में आ जायँ। समूचे देश में इस काम के लिये एजेन्ट भेजे गये कि वे जनता में राघोबा के काले कारनामों का प्रचार करके उसे इतना बदनाम कर दें कि लोगों से उसे कोई सहानुभूति न मिले और वे सखाराम बापू के पक्ष को बढ़ावा दें। असन्तुष्ट मंत्री गण चुपचाप बैठे थे और अपने संगठन को बनाये हुये थे। बापू का गुट राघोबा को पूर्णतया नियंत्रित करना चाहता था। उनके कारनामे बता रहे थे कि वे लोग शान्ति स्थापन के हेतु कृतसंकल्प हैं और उन्हें उनकी सफलता निश्चित जान पड़ती है।

राघोबा के पास सिंधिया तथा होल्कर की सेना को मिला कर तीस सहस्र घुड़सवार थे। ये सवार अधिक इन्ही दोनों सरदारों के थे। वह इन्दौर से ताप्ती तट की ओर बढ़ा। यहीं उसे मूदाजी भोंसले गोविन्द गायकवाड़ के मिलने की आशा थी। इस स्थिति में उसने अंगरेजों के साथ छोड़ी हुई सन्धि वार्ता को फिर से चालू किया।

छब्बीसवाँ अध्याय

अंग्रेजों और राघोबा के बीच सन्धि

[१७७२—१७७५]

ईस्ट इंडिया कम्पनी के कोर्ट आव डाइरेक्टर्स का पूना दर्बार में एक रीजेडेन्ट रखने का आदेश—इस आदेश का उद्देश्य—भड़ौच पर अधिकार— निजाम अली के विरुद्ध राघोबा की सैनिक कार्यवाही तथा उस पर बम्बई सरकार की प्रतिक्रिया—राघोवा से सन्धिवार्ता—उसे मदद देने का बम्वई सरकार का प्रस्ताव—अगरेजों की शर्तों को मानने से राघोवा का इनकार—थाना पर अधिकार—सिंधिया तथा होल्कर का राघोबा को छोड़ देना—राघोबा की बम्बई सरकार से पुनः सन्धिवार्ता—दमाजी गायकवाड़ की मृत्यु तथा तदनन्तर उसके परिवार की दशा—अंगरेजों तथा राघोबा के बीच सन्धि ।

पहली अप्रैल सन् १७७२ ई० को ईस्ट इन्डिया कम्पनी के कोर्ट आव डावरेक्टर्स ने बम्बई को अंगरेजी सरकार को एक पत्र भेजा, जिसमें बम्बई सरकार को आदेश दिया गया था कि वह पूना स्थित पेशवा के दर्बार में अपना एक राजदूत नियुक्त कर दें । कोर्ट आव डाइरेक्टर्स ने इस पद के लिये मि० मोरिस्टन का नाम भी भेजा था । मि० मोस्टिन पहले भी मि० प्राइस के साथ उस मिशन के मुख्य सहायक के रूप में काम कर चुके थे ।

इस राजदूत की नियुक्ति का घोषित उद्देश्य यह था कि वे दर्बार में रहकर सुरक्षित तथा
सम्मानपूर्ण शर्तों पर अपने व्यापार के लिये सुविधा तथा अपने अधिकृत प्रदेशों के लिए सुरक्षा प्राप्त
करने को व्यवस्था करें । उनका यह भी उद्देश्य था कि वे इस प्रकार की सुविधा
१ ७ २ ई०] और सुरक्षा के लिए सभी देशी रजवाड़ों से मित्रतापूर्ण बातचीत की जाय, परन्तु वे
किसी भी देशी शक्ति के साथ सन्धिवार्ता में न सम्मिलित हों । इस रेजिडेंट को
यह आदेश दिया गया था कि वे जो कुछ भी समाचार संग्रह कर सकें उसे सीधे बंगाल व मद्रास की अंगरेजी सरकारों को भेज दिया करें, जिससे उन पर सरकारों को मराठों के आंतरिक मन्तव्यों का पता लगता रहे । वैसे इस नियुक्ति के आन्तरिक उद्देश्य कुछ और ही थे । अंगरेजों की चिरसंचित अभिलाषा थी कि उनको किसी भी प्रकार भले या बुरे रास्ते से सालसिट, वेसीन, कनारी एलिफैन्टा तथा क.रंजा के छोटे-छोटे द्वीपों पर अधिकार मिल जाय । इसी आन्तरिक उद्देश्य की सिद्धि के लिये इस राजदूत को नियुक्त किया गया था । अंगरेजों ने इन स्थानों पर अधिकार पा सकने के वास्तविक महत्व को भाँप लिया था । वे जानते थे कि जिन लोगों का अधिकार इन स्थानों पर होगा. वे ही लोग बम्बई पर साधिकार नियंत्रण रख सकेंगे । बम्बई इस समय भारत का वृहत्तम वन्दरगाह हो रहा था । अपने सर्वोत्तम डाँक के लिए भी यह प्रसिद्धि प्राप्त कर रहा था । अंगरेज जानते थे कि बम्बई को पूर्णरूपेण नियन्त्रित रखने से न केवल पश्चिमी भारत से ही व्यापार करने में सुविधा होगी, वरन् चीन, फारसतट, अरब तथा लालसागर के व्यापार पर भी नियंत्रण स्थापित किया जा सकेगा । सालसिट का टापू महाराष्ट्र प्रदेशों का मुख्यतम प्रदेश द्वार था और इंग्लैन्ड के ऊनी तथा अन्य प्रकार के कपड़ों की अच्छी खपत महाराष्ट्र प्रदेश में हो रही थी । प्रति वर्ष चौदह लाख रुपयों के कपड़े उन दिनों

महाराष्ट्र में खप रहे थे। इस समय बम्बई सरकार का व्यय आय से कहीं ज्यादा हो रहा था। अंगरेजों को आशा थी कि अगर इन स्थानों के साथ सूरत में मराठों को मिलने वाली लगान भी उन्हें मिल जाय तो शायद उनका आयव्यय का व्यौरा बराबर हो जाय।

माधवराव ने अंगरेजों की राजदूत नियुक्त की योजना को स्वीकार कर लिया। मि० मोस्टिन पेशवा की मृत्यु से कुछ दिनों पूर्व ही पूना पहुंच गया। मि० मोस्टिन का कहना था कि यदि यह स्वीकृति माधवराव द्वारा न मिल गयी होती तो अगली सरकार कदापि ऐसी अनुमति न देती।

पूर्व इसके की ईस्ट इंडिया कम्पनी के मनोतुकूल कोई घटना घटित हो, काफी समय बीत गया। भड़ौच के नवाब के ऊपर बम्बई सरकार के कुछ दावे थे। अंगरेजों का कहना था कि उन्हें चूंकि सूरत पर हर प्रकार का प्रभुतायुक्त अधिकार प्राप्त है इसलिये भड़ौच के नवाब के जिम्मे उनकी वह रकम बाकी है। अपने दावे को सबल बनाने के लिये सन् १७७१ में वर्षाकाल प्रारम्भ के थोड़ा पहले ही अंगरेजों ने अपना एक सैनिक दस्ता भड़ौच के नवाब को विनाश करने के लिये भेज दिया। अंगरेजों का यह अभियान बुरी तरह असफल हो गया। अब अंगरेजों ने वर्षाकाल के बाद ही दूसरे अभियान की तैयारियाँ शुरू कर दीं। इन तैयारियों में कुछ नर्मी आ गयी, क्योंकि भड़ौच का नवाब स्वतः ही बम्बई आ गया। ऐसा प्रतीत होता है कि वह अंगरेजों की उदारता पर विश्वास करने की भूल करके उनकी तैयारियों को रोकने आया था। उसे भ्रम था कि शायद अंगरेज उसका कहना मान लें और या तो अपना दावा ही छोड़ दें या उसे इतना समय ही दे दें कि वह गायकवाड़ से अपने मतभेद को दूर करके उससे समझौता कर लें। ३० नवम्बर को बम्बई में एक सन्धि हो गयी, परन्तु चूंकि इस सन्धि से नवाब की आकांक्षायें पूर्ण नहीं हुई, इसलिये भड़ौच फैक्ट्री के अंगरेज प्रमुख को नवाब ने बुरी तरह अपमानित किया, जिसकी वजह से उसे सूरत बुला लिया गया। अभियान की जो तैयारी ३० नवम्बर की सन्धि के कारण रोक दी गयी थी, उसे फिर से प्रारम्भ कर दिया गया। १८ नवम्बर सन् १७७२ को अंगरेजों ने जोरदार आक्रमण करके अपने जनरल डेविड वेडरबर्न की आहुति देकर भड़ौच को अपने अधिकार में ले लिया। संयोग से यह वही दिन है जिस दिन माधवराव की मृत्यु हुई।

पूना में रहने वाले रेजिडेन्ट को पेशवा के दर्बार में भड़ौच के प्रश्न पर बुलाया गया। नये पेशवा ने खुद बातचीत की कि भड़ौच के बदले में मराठों को क्या मिलेगा। इस प्रश्न का कोई समाधान उस समय नहीं हो सका। और भी किसी महत्वपूर्ण विषय पर कोई बातचीत नहीं हुई।

नारायण राव की हत्या के बाद जिस समय राघोवा बीदर के पड़ोस में ही निजाम अली के साथ युद्धरत था, उसी समय राघोवा के शत्रुओं ने यह अफवाह उड़ा दी कि राघोवा मर गया है। कहीं कहीं पर लोग यह कहते हुये सुने जाने लगे कि राघोबा को पूर्णतया अपदस्थ कर दिया गया है। इन गरम अफवाहों को सुनकर अंगरेज इस चिन्ता में पड़ गये कि अब आगे उनका सम्बन्ध मराठों के साथ कैसा रहेगा। उन्होंने यह परिणाम निकाला था कि राघोबा की मृत्यु से पेशवा बंश ही निर्मूल हो जायगा और पेशवा ही एक मात्र ऐसा अधिकारी था, जिसके साथ अंगरेजों के सभी समझौते हुये थे। उन्होंने यह भी मान लिया कि पेशवा के साथ की गयी संधियों का पालन तभी तक होना चाहिये जब तक कि पेशवा वंश का ही कोई मराठा राज्य का प्रधान हो। इन सब मान्यताओं के प्रकाश में अंगरेजों ने यह निश्चय किया कि राघोबा मर गया होगा तो भी या अपदस्थ हो गया होगा तो भी वे शस्त्र के बल पर सालसिट के टापू पर अधिकार कर लेंगे और पेशवा के साथ की गयी सभी संधियों को वे बालाये-ताक रख देंगे। बम्बई में इन अफवाहों को शीघ्र ही तथ्य रूप में ग्रहण कर लिया गया, उसका कारण ही यही था कि अंगरेजों को सालसिट का दूसरे के अधिकार में रहना बहुत ही खल रहा था।

जिस समय पूना के मार्ग पर साहस के साथ चलते हुये राघोबा ने अपना मार्ग उत्तर की ओर मोड़ दिया था, तभी प्रायः सभी निष्पक्ष व्यक्तियों के समक्ष साथ ही बम्बई की सरकार के समक्ष उसकी निर्बल स्थिति स्पष्ट हो गई थी। पूना के अंगरेज रेजीडेन्ट की भी यही राय थी कि शक्तिहीनता के कारण ही राघोबा उत्तर की ओर मुड़ गया है। अभी वह इन बातों पर विचार कर ही रहा था कि राघोवा का एजेन्ट उससे मिलने के लिए आ पहुंचा। यदि राघोबा की दयनीय स्थिति के विषय में थोड़ा बहुत सन्देह रेजीडेन्ट के मन में रहा भी हो तो उसके एजेन्ट से बातचीत करने के बाद वह सन्देह पूर्णतया निर्मूल हो गया; क्योंकि एजेन्ट ने रेजीडेन्ट से बताया कि राघोबा को धन की सख्त जरूरत है और वह चाहता है कि यह धन उसे अंगरेजों से ही मिल जाय, यद्यपि स्वयम् एजेन्ट भी यह न समझा सका कि राघोबा इस धन को किन शर्तों पर लेना चाहता है। धन की विवशता ने राघोबा को यह कदम उठाने पर मजबूर कर दिया था पर स्वयम् वह भी कोई ऐसी स्पष्ट रूपरेखा नहीं बन पाया था कि वह किस बल पर अंगरेजों से रुपया माँग रहा है।

बम्बई सरकार की यह आन्तरिक इच्छा अवश्य थी कि वे राघोबा की मदद करें, परन्तु उसे सैनिक सहायता अधिक पसन्द थी न कि आर्थिक सहायता। उसके लिए भी उनकी अपनी शर्तें थी, परन्तु चूंकि राघोबा उत्तर की ओर मुड़कर काफी दूर निकल गया था अतः पूना स्थित रेजीडेन्ट मि० मोस्टिन इस सहायता वार्ता को अधिक न चला सके। राघोबा ने मालवा तक अपने पयान को जारी रक्खा। उस स्थान से आवश्यक सैनिकों की भर्ती करके उसका इरादा था कि वह फिर नर्मदा को पार करके आगे की ओर चले। अपने इसी इरादे के फलस्वरूप वह ताप्ती के किनारे तक आ पहुंचा और जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सूरत के स्थानापन्न चीफ या नागरिक गवर्नर मि० राबर्ट गैम्बियर की मध्यस्थता में उसने फिर से सन्धिवार्ता प्रारम्भ किया। राघोबा के एजेन्ट ने मि० गैम्बियर से कहा कि राघोबा इसलिए सन्धि करना चाहता है कि उसे इतनी शक्ति मिल जाय कि वह उसके भरोसे पूना तक जा सके और वहाँ के प्रशासन में सम्मिलित हो सके। एजेन्ट ने यह भी कहा कि इस सहायता के लिए अंग्रेजी सेना का सारा व्यय वहन करेगा और बम्बई की कौंसिल की राय से गवर्नर जो भी शर्त रक्खेगा, वे सभी उसको मान्य होगी। यह अंग्रेजों द्वारा स्वीकृत किये जाने योग्य प्रस्ताव बम्बई सरकार को ६ सितम्बर को प्राप्त हुआ। बम्बई के गवर्नर तथा काउंसिल इस बात पर एक मत हो गये कि जितनी भी सेना आवश्यकता के अतिरिक्त वह सब की सब राघोबा की मदद को भेज दी जाय और इस सेना के साथ एक तोपखाना भी रहे। इस सेना में पचीस सौ सैनिक होंगे। सहायता की शर्त यह रक्खी गयी कि राघोबा पन्द्रह बीस लाख रुपया अग्रिम दे दे और यदि वह पूना के प्रशासन में व्यवस्थित हो जाय तो वह कम्पनी बहादुर को सालसिट का टापू और साथ ही साथ बम्बई के पास के छोटे छोटे द्वीप दे दे तथा बेसीन को उसकी लघु आवादियों के साथ कम्पनी के जिम्मे कर दे। सूरत से मराठों को मिलने वाली लगान और यदि सम्भव हो तो भड़ौंच भी अंग्रेजों को मिल जाय। बंगाल में मराठे आक्रमण न करे तथा कर्नाटक के नवाब पर कभी भी आक्रमण न करे।

उपरोक्त प्रस्तावों की मूल प्राप्ति पर गर्वनर तथा प्रेसीडेन्ट मि० विलियम हार्नबी सिविल विंग के दो सदस्यों मि० डैनियेल ड्रेपर, तथा मि० विलियम टेलर और बम्बई के जहाजी बेड़े के कमोडोर मि० जान वाटसन के हस्ताक्षर हैं। इस स्मरणीय अवसर पर काउंसिल के यही सदस्य उपस्थित थे। प्रस्तावों के प्रारूप पर होने वाले तर्क वितर्क के क्रम में एक प्रश्न यह भी सामने आया कि बिना काउंसिल सहित गर्वनर जनरल के आदेश के बिना बम्बई सरकार किसी से शन्धि कर सकती है या नहीं। इन दिनो इंगलैण्ड में १७७३ ई० का पार्लियामेंट ऐक्ट पास हो चुका था और पहली अगस्त से ही भारत में चालू होने वाला था, परन्तु चूंकि अभी बम्बई सरकार को इस बात की औप-

चारिक सूचना नहीं मिली थी कि काउंसिल के जिन सदस्यों की नियुक्ति यूरोप में ही कर ली गयी थी, वे आ पहुंचे हैं कि नहीं। उन सदस्यों के बिना भारत में सर्वोच्च पार्लियामेंटरी काउंसिल बनायी ही नहीं जा सकती थी। इन परिस्थितियों से बम्बई काउंसिल ने यही निश्चय किया कि यदि राघोबा के साथ संधि कर ली गयी तो इसमें हस्तक्षेप नहीं होगा।

जब समय पर राघोबा ने इन प्रस्तावों का जो उत्तर भेजा, उसे अध्ययन करने के बाद बम्बई सरकार को बड़ी निराशा हुई, क्योंकि जितनी आशा की गयी थी, उतने के एक अल्पांश की पूर्ति राघोबा के उत्तर से नहीं हो रही थी। सालसीट को देने से तो उसने विशेष रूप से इनकार किया था। इस इनकार से मि० गैम्बियर को इतनी निराशा पूर्ण उत्तेजना मिली कि बिना तनिक भी विलम्ब किये ही उन्होंने बिना बम्बई की सरकार की राय माँगे ही अपनी सीमित शक्ति के अंतर्गत जो कुछ भी लिख सकते थे, उसे लिख कर राघोबा के पास भेज दिया। बाद में काउंसिल सहित गर्वनर ने भी मि० गैम्बियर की बातों को ज्यों की त्यों स्वीकार कर लिया। सालसिट और बेसीन न छोड़ने की अपनी पुरानी जिद पर ही राघोबा अड़ा रह गया। अग्रिमरूप में मांगा गया इतना रुपये दे सकने की अपनी असमर्थता भी राघोबा ने अंग्रेजों को बता दिया। इनके बदले में वह इनसे भी अधिक मूल्य के जिले गुजरात में देने को वह राजी था। गुजरात के इन जिलों की लगान [illegible]रह लाख रुपया वार्षिक थी। अग्रिम रकम के रूप में वह सिर्फ [illegible] लाख देने को राजी हुआ साथ ही उसका यह भी वादा था कि प्रति एक हजार यूरोपियन सैनिक, दो हजार देशी सैनिक तथा पन्द्रह तोपों के व्यय के रूप में वह डेढ़ लाख रुपया मासिक दिया करेगा। बम्बई की सरकार राघोबा के प्रस्तावों के एक भाग पर राजी हो गयी। वे तो यहां तक राजी हो गये कि यदि ग्यारह लाख रुपये को बढ़ा कर साढ़े अठारह लाख करदे, तो वे सालसीट की मांग को छोड़ देंगे। अभी बात चल ही रही थी कि गोआ स्थित अंग्रेज दूत ने समाचार भेजा कि पुर्तगाल से लड़ाकू सैनिकों का एक जहाजी बेड़ा भारत को आ रहा है और वह आते ही सालसिट तथा अन्य ऐसे स्थानों को लेने का प्रयास करेगा, जो पिछले दिनों उसके हाथ से निकल गये हैं।

उस समय थाना का किला मराठों के अधिकार में था। वहाँ के दुर्ग रक्षक ने बम्बई सरकार के सामने एक प्रस्ताव रक्खा कि यदि उसे ढाई लाख रुपये मिल जायं तो वह किला अंग्रेजों के लिए छोड़ देगा। यह प्रस्ताव मि० हार्नबी के सामने रक्खा गया। यह फरवरी या मार्च का महीना था और इस समय पूना में बड़ी गड़बड़ी मची हुई थी। अपनी काउंसिल की सलाह से मि० हार्नबी ने एक लाख पर बात तै करना चाहा। मराठा अधिकारी ढाई लाख से एक लाख बीस हजार रुपये की माँग पर उतर आये। बम्बई सरकार ने यह रुपया देकर थाना पर अधिकार कर ही लिया होता, परन्तु मराठा राज्य की गड़बड़ियों को देख कर उनका साहस नहीं हो रहा था। असल में अंग्रेज यह सोच रहे थे कि यदि पूना की गड़बड़ियां ऐसी ही रही तो वे थान किले पर वैसे ही अधिकार कर लेंगे, फिर ऐसी अवस्था में इतना रुपया क्यों दिया जाय। जब उन्हे यह समाचार मिला कि पुर्तगाली बेड़ा सालसिट इत्यादि को लेने के विचार से आ रहा है तब थाना किले के महत्व को समझ कर अंग्रेजों ने फिर से वार्तालाप चलाया। पूना के ऐजेण्ट मि० मोस्टिन को लिख दिया गया कि वे मंत्रियों को यह समझाने का प्रयास करें कि चूंकि पुर्तगाल वालों के आक्रमण का भय है, अतः सुरक्षा के विचार से यह कदम उठाया गया है कि कहीं पुर्तगाली ही इस किले पर अधिकार न कर लें। राघोबा को भी इसी प्रकार के आश्वासन दिए गए। पूना में भी गोआ में होने वाली तैयारियों का पता चल गया था।

और इसके परिणाम स्वरूप पांच सौ सैनिकों का एक दस्ता थाना को भेज दिया गया था। पुर्तगाली आक्रमण की आशंका से किले की रखवाली रात दिन चलने लगी और इस निरन्तर चलती रहने वाली सावधानी के कारण थाना किले का हस्तांतरण ही रुक गया। हस्तान्तरित करने का प्रस्ताव रखने वाले दल का साहस ही इस काम के लिए न पड़ा।

थाना के हस्तान्तरित न हो सकने पर अंग्रेजों की निराशा की सीमा पार कर गयी। शस्त्र के बल पर इस किले को हस्तगत करने को कठिनाइयाँ भी बढ़ गयी थीं अतः प्रेसीडेन्ट तथा गवर्नर ने अपनी काउंसिल में इस विषय को ६ दिसम्बर के दिन पुनः विचारार्थ उपस्थित किया। काउंसिल सहित प्रेसीडेंट ने यह निश्चय किया कि इस कार्य में उन्हें पुर्तगालियों से आगे रह कर ही काम करना चाहिये, परिणाम चाहे जो हो। एक सैनिक अभियान की तैयारी की गयी, जिसमें तोपखाने के सहित छः सौ बीस यूरोपियन, एक सौ देशी सिपाही तथा दो सौ हल्की तोपें थीं। ब्रिगेडियर जनरल राबर्ट गार्डन इसके सेनापति बनाये गये। यद्यपि थाना की स्थिति ऐसी नहीं थी कि ईस्ट इंडिया कम्पनी के जंगी जहाजों की आवश्यकता पड़ती, परन्तु चूंकि गवर्नर ने यह राय दी थी कि कमोडोर वाटसन इस अभियान के जलीय भाग का निरीक्षण करें और गार्डन के समान ही अधिकार ग्रहण करें, अतः वाटसन ने प्रसन्नता से इस काम को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार से हर प्रकार की पूरी तैयारी कर लेने के पश्चात् अंग्रेजों का यह जहाजी बेड़ा तथा स्थल सेना १२ दिसम्बर को रवाना हुई। अगले ही दिन पुर्तगालियों का एक जहाज बम्बई द्वार में आया और उसने प्रतिवाद किया कि अंग्रेजी जहाज वहां पर कैसे ठहरा हुआ है। अंग्रेज गवर्नर ने अपने कार्य के औचित्य को सिद्ध करने के लिए अनेक तर्क दिया और घोषित कर दिया कि वे कदापि पीछे न हटेंगे। २० दिसम्बर को अंग्रेजी तोपखाना थाना के किले पर गोलाबारी करने लगा। आठवें दिन की गोलाबारी में किले की दीवार एक जगह से ध्वस्त हो गयी, परन्तु प्रवेश करने के उद्देश्य से आगे बढ़ने के पहले सामने खाई को भी पाटना आवश्यक था। उन्होंने २७ दिसम्बर की रात्रि को इस काम को प्रारम्भ किया, परन्तु किले के भीतर वाले सैनिकों के हाथों मार खा कर वे पीछे हटने को विवश हो गये। इस काम में घायल एवम् मृत यूरोपियनों की संख्या सौ तक जा पहुंची। अगली सुबह अंग्रेजों ने भयानक हमला किया और किले को सर कर लिया। मारे गए यूरोपियनो की मृत्यु से अति दुखी व क्रोधाभिभूत अंग्रेजों ने किले के प्रत्येक व्यक्ति को मौत के घाट उतार दिया। थाना के अभियान में कमोडोर जान वाटसन भी मारा गया। वह एक योग्य और अनुभवी अफसर था तथा वह तीसरे दिन के युद्ध में ही साँघातिक रूप से घायल हो गया था।*

लेफ्टिनेण्ट कर्नल कीटिंग के सेनापतित्व में अंग्रेजों का एक फौजी दस्ता सालसिट टापू के उत्तरी सिरे पर स्थित वरसोवा के किले को लेने के लिए भेजा गया था। कारंजा टापू भी अंग्रेजों के हाथ में आ गया और पहली जनवरी के पूर्व ही समूचा सालसिट अंग्रेजों के हाथों में आ गया।

इधर तो अंग्रेज इस प्रकार के कार्य कर रहे थे और उधर राघोबा से सन्धिवार्ता भी चला रहे थे। मराठा राज्य के मंत्रियों ने होल्कर तथा सिंधिया को अपनी ओर फोड़ लिया था और उन लोगों ने राघोबा को परास्त करने के लिए तीस सहस्त्र सवारों की एक सेना भी तैयार कर लिया था। यह सेना २७ नवम्बर को पुरन्दर छोड़ ताप्ती की ओर चल पड़ी। राघोबा को समय से ही होल्कर

---

* वाटसन के समीप ही बालू में एक गोला आकर गिरा। गोले के फटने के परिणाम स्वरूप बालू के असंख्यकण इतनी तेजी से उड़े कि वे वाटसन के कपड़ों को छेदते हुये लाखों की संख्या में उसके शरीर में घुस गये। इसीलिए अति भयंकर पीड़ा से उसकी मृत्यु हो गयी।

तथा सिंधिया के पक्ष त्याग की सूचना मिल गयी थी और इस सूचना के परिणाम स्वरूप इस सेना से घेर लिये जाने के पूर्व ही वह उस स्थान से हट गया। तालनेर में अपनी एक तगड़ी सेना छोड़ कर वह स्वयं गुजरात की ओर चला गया। उस समय राघोबा की स्त्री गर्भवती थी और उसका प्रसवकाल समीप आ गया था। उसने अपनी स्त्री आनन्दो बाई को धार के किले में छोड़ दिया, जहां उसके एक पुत्र पैदा हुआ जो आगे चल कर बाजी राव रघुनाथ के नाम से अंतिम पेशवा हुआ।

राघोबा बड़ौदा की ओर बढ़ता रहा और ३ जनवरी को वहां पहुंच गया। उस समय उसके पास केवल तीन हजार सवार तथा चार सौ पैदल सैनिक थे। तालनेर को सर कर लेने के बाद हरी पन्त फड़के को राघोबा का पीछा करने के लिए रवाना कर दिया गया था और सखाराम बापू तथा नाना फड़नवीस पुरन्दर के किले में लौट आये। गुजरात की ओर जाने में राघोबा का तात्पर्य था कि वह अंग्रेजों से समझौता वार्ता चलाये और पिछली सन्धिवार्ता को पूर्णतः तक पहुंचा दे। उसने यह भी सोचा था कि गुजरात में पहुंच जाने से उसे गोविन्द राव गायकवाड़ की सहायता मिल जायगी। उस समय गोविन्द राव गायकवाड़ बड़ौदा के किले में अपने भाई फतहसिंह को घेरे पड़ा था और नदियाद का जागीरदार उसका चाचा खांडेराव गायकवाड़ उसकी मदद कर रहा था।

पाठकों को याद होगा कि दमा जी गायकवाड़ ने सन् १७६८ के विद्रोह में अपने पुत्र गोविन्द राव गायकवाड़ को माधवराव के विरुद्ध राघोबा की सहायता करने के लिए भेजा था। इस विद्रोह के दमन कर दिये जाने के थोड़े ही दिनो बाद दमा जी गायकवाड़ की मृत्यु हो गयीं। उसके चार लड़के थे सयाजी, गोविन्द राव, मानिकजी तथा फतहसिंह। मानिक जी व फतहसिंह छोटे थे और दमाजी की तीसरी स्त्री से पैदा हुए थे। सयाजी सबसे बड़ा था परन्तु वह दमाजी की दूसरी स्त्री से था। दूसरा लड़का गोविन्दराव था तो सयाजी से छोटा, परन्तु वह प्रथम विवाहिता स्त्री का पुत्र था। अब प्रश्न यह था कि समाजी राव तथा गोविन्द राव में से कौन अपने पिता पद का वास्तविक उत्तराधिकारी है। मराठों की परम्परा में दोनों के समर्थन करने वाले पूर्व विवरण मौजूद थे। इस प्रकार के उत्तराधिकार के प्रश्न का निर्णय करना बड़ा उलझन पूर्ण होता है। न्यायकर्ता चाहे जिसके उत्तराधिकार को प्राचीन उदाहरणों तथा तर्कों द्वारा सिद्ध कर देता है। अपने पिता की मृत्यु के समय विद्रोह में राघोबा की सहायता करने के अपराध में बन्दीगृह में था। ऐसा प्रतीत होता था कि अपने पिता के पद तथा सेना खास-खेल की पदवी के उत्तराधिकार में गोविंद राव का कोई प्रतिद्वन्दी नहीं होगा। तेईस लाख रुपये का जुर्माना, इक्कीस लाख रुपयों की नजर तथा अन्य कई खर्चों को मिला कर गोविन्द राव को साढ़े पचास लाख से कुछ ऊपर ही रुपये देने पड़े। उसने यह भी वादा किया कि वह सात लाख उन्यासी हजार रुपये प्रतिवर्षकर रूप में दिया करेगा तथा उसके तीन हजार घोड़े हमेशा के लिये पेशवा की सेवा में पूना में रहेंगे यह संख्या तीन हजार से चार हजार हो जायगी यदि पेशवा कहीं युद्ध में फँस गया तो इतना सब कर देने के पश्चात् उसे अपने पिता का पद भी दे दिया जायगा और पदवी भी।

ज्येष्ठतम पुत्र सयाजी मूर्ख प्रकृति का था, परन्तु सब से छोटे पुत्र फतहसिंह ने सयाजीराव के उत्तराधिकारी होने के दावे को आगे बढ़ाया। सन् १७७१ ई० में फतहसिंह पेशवा के दर्बार में उपस्थित हुआ, जहाँ उसने सयाजी के पक्ष में अनेक तर्क दिए और अन्त में उसे सफलता भी मिल गयी। कहा जाता है कि प्रसिद्ध पंडित रामशास्त्री ने सयाजी राव के पक्ष में निर्णय दिया। पिछले विद्रोह में इस परिवार ने राघोबा को सहायता दी थी, इसलिये माधवराव की भी इच्छा थी कि इस परिवार की शक्ति को सीमित कर दिया जाय। इसी आन्तरिक उद्देश्य से प्रेरित होकर ही शायद) उसने रामशास्त्री के निर्णय को उचित मानकर (क्योंकि गायकवाड़ परिवार की समाप्ति उसके बाहर की बात थी) सयाजीराव को दमाजी गायकवाड़ का उत्तराधिकारी तथा फतहसिंह को उसका मुतालिक

नियुक्त कर दिया। इस नवीन निर्णय तथा इसके परिणाम स्वरूप की गयी नवीन व्यवस्था ने गायकवाड़ परिवार में निरन्तर चलते रहने वाले संघर्ष की सृष्टि कर दी। मुतालिक का पद पा जाने पर फतहसिंह ने प्रार्थना की कि यदि उसकी सारी शक्ति उसके पास ही न रहेगी तो सम्भव है कि गोविन्दराव तथा उसके समर्थक उसे परेशान करें, इसलिये उसे यह आज्ञा दी जाय कि वह राजधानी में रहने वाले तीन सहस्त्र घोड़ों को अपने साथ ले जाय। कहने की आवश्यकया नहीं कि उसकी यह शर्त भी मान ली गई और इसके बदले में फतहसिंह ने वादा किया कि जितने दिन उसके घोड़े राजधानी में नहीं रहेंगे, उतने दिन तक वह छः लाख पचहत्तर हजार रुपये प्रतिवर्ष दिया करेगा। फतहसिंह की यह योजना अवश्य थी कि सयाजीराव की सहायता की जाय, परन्तु उसे मुतालिक बनाकर पेशवा ने जो कूटनीति-पूर्ण दृष्टिकोण रक्खा था, फतहसिंह को उसे भाँप लेने में देरी न लगी। उसने भी तै कर लिया कि वह अपने को इतना शक्तिशाली बना लेगा कि पेशवा की कोई भी चाल उसके विरुद्ध नहीं लगेगी। इसी उद्देश्य से उसने सन् १७७२ के प्रारम्भिक महीनों में ही बम्बई सरकार के सामने प्रस्ताव रक्खा कि वे दोनों आपस में आक्रमणात्मक तथा सुरक्षात्मक संधि करलें। वह इस पर भी तैयार हो गया था कि सन्धि की शर्तें कम्पनी ही निश्चय करे, परन्तु बम्बई की सरकार ने ऐसे किसी भी संधिपत्र को कोर्ट आव डाइरेक्टर्स के आदेश के विरुद्ध होने की बात कहकर उसके प्रस्ताव पर वार्तालाप करने से भी इन्कार कर दिया। हाँ मि० प्राइस ने एक छोटा सा इकरारनामा फतहसिंह के साथ कर लिया जिसके अनुसार भड़ौच के लगान का विभाजन ठीक उसी ढंग से होता रहा, जैसा नवाब के रहने पर होता रहता था। इसके अतिरिक्त ईस्ट इन्डिया कम्पनी से उसका कोई भी समझौता नहीं था।

नारायणराव की हत्या तथा राघोबा के पेशवा बनने के बाद गोविन्दराव के उत्तराधिकार के दावे को फिर से बल मिला। राघोबा ने सयाजी एवम् उसके मुतालिक फतहसिंह को अपदस्थ करके गोविन्दराव को ही वास्तविक उत्तराधिकारी होने का निर्णय दिया। गोविन्दराव को फिर से सेना-खास-खेल की उपाधि दी गयी। गोविन्दराव तुरन्त गुजरात में जा पहुंचा ताकि वह फतहसिंह के हाथों से प्रशासन छीन ले। चारों ओर से भागता दौड़ता राघोबा जब अंगरेजों से समझौता वार्ता चलाने की जल्दी में गुजरात पहुंचा तो जैसा पहले कहा जा चुका है, उसने पाया कि गोविन्दराव फतहसिंह को बड़ौदा में घेरे पड़ा था।

ज्योंही राघोबा गुजरात में पहुंचा त्योंही उसने मि० गैम्बियर से सन्धिवार्ता प्रारम्भ कर दिया। इस सन्धिवार्ता में एक अस्थायी बाधा थोड़े दिन के लिये यह आ गयी कि उसके एजेन्ट नरोत्तमदास को फतहसिंह की सेना ने बन्दी बना लिया, जब कि वह सूरत के दक्षिण में लगान वसूल करता हुआ गोविन्दराव की सेना के साथ चल रहा था। दोनों ओर से सन्धि से कितने ही प्रारूप तैयार किए गये और सन्धि की सूक्ष्म बातों को ठीक-ठीक तै करने में बहुत सा समय बेकार चला गया। कुछ लोगों का कहना था कि बम्बई सरकार इस बात का निर्णय ही नहीं कर पा रही थी कि सन्धि की जाय अथवा नहीं, परंतु यह बात सत्य नहीं है। सन्धिपत्र जब ६ मार्च को हर तरह से तैयार हो गया तो उसमें सोलह धारायें थीं। इन धाराओं के अनुसार यह तै हुआ कि - अंगरेजों तथा मराठा राज्य में जितनी भी सन्धियां की गयी थीं; उन्हें पक्का कर दिया गया; कोई भी एक दूसरे के शत्रु को किसी प्रकार की सहायता नहीं देगा; बम्बई सरकार ने प्रतिज्ञा की कि वह तुरन्त पाँच सौ यूरोपियन, एक हजार देशी सैनिकों को आवश्यक तोपखाने के साथ भेजेगी, और मद्रास से सैनिकों के आजाने पर वह इस संख्या को और भी बढ़ा देगी, जिससे राघोबा की सहायक सेना में सात या आठ सौ यूरोपियन, सत्रह सौ देशी सैनिक, आवश्यक तोपखाना तथा अन्य आवश्यक युद्ध के आदमी तथा सामान रहेंगे, अर्थात् कुल मिलाकर तीन

हजार सैनिक रहेंगे, राघोबा ने प्रतिज्ञा की कि वह प्रति ढाई हजार सैनिकों के बदले डेढ़ लाख रुपया मासिक दिया करेगा तथा आदमियों में घटबढ़ के अनुसार इस रुपए में घटबढ़ होती रहेगी, इन रुपये को वह नियमानुसार देता रहेगा, इस बात की जमानत के रूप में उसने अस्थायी रूप से आमोद, हंसाट, बरसौल तथा ओकलासेर के कुछ भाग दे दिया। कृतज्ञता स्वरूप उसने बेसीन तथा उसकी उप आबादियों को अंगरेजों के हवाले कर दिया; सालसिट का टापू तथा समीप के अन्य टापू साथ में जम्बूसेर व ऊलपार के जिले दे दिया; पचहत्तर हजार मूल्य की जागीरदारी अंगरेजों को मिली, अर्थात् सब मिलाकर उन्नीस लाख पचीस हजार रुपयों के मूल्य का स्थायी भूभाग बम्बई सरकार को मिला; राघोबा ने प्रतिज्ञा की कि भड़ौच की आय का गायकवाड़ वाला भाग अंगरेजों को दे देगा तथा दिये हुए स्थानों को अधिकृत करने में जो व्यय होगा वह राघोबा ही देगा; चूंकि राघोबा के पास रुपये थे नहीं अतः छः लाख की कीमत के हीरे * उसने अंनेरेजों के हाथ गिरो रख दिया; बंगाल में कम्पनी द्वारा अधिकृत भूभाग की सुरक्षा की जायगी तथा जब तक अर्काट का नवाब मराठों से मेल रक्खेगा, तब तक मराठे उसके देश पर आक्रमण न करेंगे; जो भी बृटिश जहाज व बृटिश झन्डे लगाये हुए जहाज मराठा तट पर डूब जायंगे या किसी के द्वारा डुबा दिये जायंगे। उनका माल पाये जाने पर कम्पनी को दे दिया जाया करेगा साथ में डूबते समय जो सामान बचाया जायगा उस पर भी कम्पनी का अधिकार होगा।

बम्बई सरकार तथा राघोबा के बीच जो संधिपत्र लिखा गया उसका प्रारूप बहुत कुछ उपरोक्त प्रकार का ही था। इस सन्धिपत्र के विषय में भारत में भी और यूरोप में भी अंगरेजों में बहुत वाद विवाद हुआ था, क्योंकि इसी के परिणाम स्वरूप वह युद्ध हुआ जिसे हम मराठों के प्रथम युद्ध के नाम से याद करते हैं।

---

* करीब २८ वर्ष बाद बाजीराव की पद प्राप्ति के समय १८०३ ई० में ये हीरे कम्पनी बहादुर ने बिना रुपये लिये ही पेशवा को वापस कर दिया।

सत्ताईसवां अध्याय

राघोबा और अंगरेजों की सन्धि से मराठों की हार

[सन् १७७५ ई०]

कीटिंग के सेनापतित्व में सेना को गुजरात को रवानगी—राघोबा की हार—उसका सूरत को पलायन—कीटिंग से सम्मिलन—कैम्बे में उतरना—बम्बई सरकार की स्वीकृति—मि० ड्रेपर का विरोध—कर्नल कीटिंग को निर्देश—राघोबा की सेना से कीटिंग की सेना का सम्मिलन—नदियाद को प्रस्थान—युद्ध की प्रगति—कर्नल कीटिंग की सन्धिवार्ता—उसके दूत का अपमान—रघुनाथ राव को दक्षिण जाने की सलाह—अरास का युद्ध—फतहसिंह से सन्धि।

सन्धिपत्र पर पूरी तरह हस्ताक्षर करने के पूर्व ही बम्बई सरकार ने तोपखाने के अस्सी यूरोपियन सिपाहियों, तीन सौ पचास यूरोपियन पैदल सैनिकों, आठ सौ देशी सिपाहियों तथा एक सौ आठ बन्दूकधारी पूर्वी सैनिकों को एकदम तैयारी में रक्खा था। इस सेना में पूरक अफसरों तथा कमीशंड अफसरों को मिलाकर पन्द्रह सौ आदमी एक क्षण की सूचना पर तैयार हो सकते थे। यह सोचा गया था कि मद्रास की कुमुक पहुँच जाने पर इस सेना की संख्या को बढ़ा दिया जायगा।

१७७५ ई०]

लेफ्टिनेण्ट कर्नल थामस कीटिंग तोपखाना के कमाण्डेण्ट तथा बम्बई प्रेसीडेन्सी के इंजीनियर थे। इस सेना के सेनापतित्व का भार इन्हीं को दिया गया। यद्यपि यह अधिकार कर्नल इजरटन को मिलना चाहिये था क्योंकि जनरल गॉईन के बाद उन्हीं का नम्बर था, परन्तु चूँकि उनका स्वास्थ्य कुछ खराब हो रहा था, अतः कीटिंग पर ही यह भार रक्खा गया।

ले० कर्नल कीटिंग की अध्यक्षता में यह सेना फरवरी के अन्त में बम्बई से जहाज द्वारा रवाना हुई, इसी समय के आस पास ही होल्कर तथा सिंधिया की तीस सहस्र सवारों के सेनापति रूप में हरीपन्त फड़के राघोबा का पीछा करता हुआ गुजरात में आ पहुँचा। इस आकस्मिक आगमन के कारण राघोबा एवम् गोविन्दराव को विवश हो कर घेरा उठा कर हट जाना पड़ा। बड़ौदा से रटकर वे मैही नदी के उस पार चले गये क्योंकि उप क्षेत्र में वसूद गांव के समीप राघोबा का डेरा पड़ा था। यहीं से उसे हरीपन्त फड़के के आने की सूचना मिली थी।

फतहसिंह के स्थानीय नाम पर आश्रित होकर एक योजना यह बनायी गयी थी। उसी योजना के अनुसार मंत्रिदलीय सेना ने उसी दिन तीसरे पहर तीन स्थानों से नदी पार किया। अभी राघोबा की सेना बीच वाली सेना को ही देख पा रही थी और इसी के प्रतिकार की तैयारी कर रही थीं कि सहसा दाहिने बायें की ओर से मंत्रि दलीय सेना टूट पड़ी और फलस्वरूप राघोबा की सेना तीन पाटों के बीच में आ गयी। उस स्थान से थोड़ी ही दूर पीछे गोविन्दराव तथा खण्डे राव गायकवाड राघोबा की सहायतार्थं डेरा डाले पड़े थे। उनको किसी प्रकार का सन्देश मिले और वे राघोबा की सहायता के लिये आवें, इसके पूर्व ही राघोबा तीन ओर से घिर गया था ; राघोबा की सेना में कुछ अरब सिपाही थे, ऐन वक्त

पर उन्होंने बकाया तनखाह की मांग शुरू कर दी और इस बात पर अड़ गये कि बिना वेतन पाये वे लड़ेगें ही नहीं। इन सिपाहियों को राघोबा ने अभी हाल में ही भर्ती किया था। राघोबा के दो सुयोग्यतम अफसर मानाजी तथा सखाराम हरी प्रारम्भ में ही गम्भीर रूप से घायल हो गये। युद्ध भूमि सीमित ही थी, चारों ओर गड़बड़ी मच गयी। राघोबा ने देखा कि यदि वह निकल नहीं जाता तो स्वयम् ही गिरफ्तार हो जायगा। अचानक ही एक हजार सवार लेकर कैम्बे को भाग गया। कैम्बे के नवाब ने कुछ दिन पूर्व राघोबा के पक्ष में आने की इच्छा की थी, परन्तु अब परिस्थितियाँ बदल गयीं थी। नवाब अच्छी तरह समझता था कि राघोबा हारा हुआ विद्रोही है और उसको शरण देने से उसे मराठा राज्य का कोप भाजन बनना पड़ेगा, अतः उसकी अनिच्छा देखकर राघोबा ने अँगरेजी फैक्ट्री के प्रधान मि० मैलेट से शरण देने की प्रार्थना की। मि० मैलेट को इतना ही पता था कि कुछ दिन पूर्व राघोबा की सन्धि वार्ता बम्बई सरकार से चल रही थी। सन्धि की बात उन्हें नहीं मालूम थी। फिर भी उसने राघोबा को अपने यहाँ शरण दे दिया और उसे भावनगर तक पहुँचने में सहायता दिया। भावनगर से वह जहाज द्वारा सूरत चला गया। राघोबा चार दिन तक सूरत में रहा। इसके बाद पांचवें दिन अर्थात् २७ फरवरी को मि० कीटिंग का बेड़ा पहुंच गया। इसी अवधि में राघोबा की हारी हुई सेना के साथ गोविन्दराव और खंडेराव गायकभाड़, सदाशिव रामचन्द्र, मानाजी फखे तथा सखाराम हरी वहाँ से हट कर कपरपुंज तथा वहाँ से पालनपुर को चले आये। इस सेना से मिलने के उद्देश्य से यह प्रस्ताव किया गया कि अँगरेजी सेना बजाय सूरत के कैम्बे में उतरे। बम्बई सरकार के सदस्य इस बात पर सहमत हो गये। केवल मि० ड्रेपर ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। मि० ड्रेपर बम्बई की काँउसिल के सदस्य थे। ७ मार्च को जो सलाह मशविरा हुआ, उसमें उन्होंने कहा कि राघोबा से जो सन्धि हुई है, उसमें न तो कोई परिवर्तन हुआ है और न कुछ बढ़ाया गया है। उनकी राय में इस प्रस्ताव को मान लेने से परिस्थितियों में बड़ा भारी परिवर्तन हो जायगा तथा उस परिवर्तन का समना करने में कठिनाई पड़ सकती है। मि० ड्रेपर ने आगे कहा कि हमें यह भी पता नहीं है कि राघोबा की कितनी सेना फिर से एकत्रित हुई है और उसका व्यय भार वहन करने के राघोबा की आय के श्रोत क्या हैं। हमें यह भी नहीं पता है कि हमें बंगाल व मद्रास से कितनी आर्थिक सहायता मिल रही है। मि० ड्रेपर ने सुझाव दिया कि अँगरेजी सेना को राघोबा के साथ सूरत में ही रहना चाहिये। इससे राघोबा को हमारा विश्वास भी बना रहेगा तथा हम सूरत तथा भड़ौच की रक्षा भी कर सकेंगे और राघोबा की राय से जिन जिलों को हमारे अधिकार में आना है, उनसे लगान की वसूली भी कर सकेंगे।

घटना कुछ इस प्रकार से हुई कि राघोबा ने ६ मार्च को सूरत में सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर किया। अगले ही दिन मि० ड्रेपर ने सूरत से कैम्बे जाने की योजना का विरोध किया, परन्तु कांउसिल के प्रेसीडेंट तथा अन्य सदस्यों ने निश्चय किया कि आगे बढ़ना ही बुद्धिमानी की बात होगी। उन लोगों का तर्क था कि स्थिर होकर बैठ रहने से तो यह मालूम होगा जैसे हमने राघोबा के पक्ष को ही त्याग दिया है और यह बात राजनीति की दृष्टि से अदूरदर्शिता पूर्ण होंगी तथा हमारी भावना के विरुद्ध होगी। मि० हार्नबी को मानो ऐसा विश्वास हो गया था कि उनकी पन्द्रह सौ सैनिकों की सेना मराठों की सारी सेना पर भारी पड़ेगी। मि० कीटिंग के विश्वास तथा अनुभव हीनता का भी ऐसा ही विश्वास प्रतीत होता है। मि० कीटिंग ने जब राघोबा को सूरत में एकदम अशक्त दशा में पाया तो अति प्रसन्न होकर उन्होंने बम्बई सरकार को इस बात के लिये बधाई दी कि भगवान का लाख-लाख शुक्र है कि राघोबा एकदम से बेसहारा होकर हमारे पास आया है और हमारे सिवा उसको सफलता दिलाने वाला

अब कोई नहीं है। राघोबा को साथ लेकर अँगरेजी सेना कैम्बे की ओर चली, जहाँ वह १७वी मार्च को उतरी। सूरत छोड़ने के पूर्व ही मि० कीटिंग ने मंत्रिदलीय सेना की एक टुकड़ी पर आक्रमण करके युद्ध का श्री गणेश कर दिया था। शायद अपने नये साथी (राघोबा) को वह अपना युद्ध कौशल दिखाने की जल्दी में था, क्योंकि इस आक्रमण से और किसी भी लाभ की आशा नहीं की जा सकती थी। मराठे पीछे हट गये और अंगरेजी सेना के भूमि पर उतरने की प्रतीक्षा करने लगे। इसी प्रतीक्षा की अवधि में अँगरेजों से सहानुभूति एवम् मित्रता रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उन्होंने लूट लिया।

कर्नल कीटिंग ने अपनी सेना को जो निर्देश दिया था, उसमें पर्याप्त अस्पष्टता थी, परन्तु वे आदेश थे एकदम फौजी प्रकृति के। अपने निर्देशों के पहले उन्होंने अभियान के मूल उद्देश्य को संक्षिप्त शब्दों में दुहराया। उसने कहा कि "मुझे राघोबा के सभी शत्रुओं के विरुद्ध राघोबा की मदद करने को भेजा गया है। इन शत्रुओं में पूना के मंत्रियों का दल है तथा उनके अनुगामी जन का। मुझे उसकी सेना के साथ चलने का आदेश मिला है और हमें वह सब करना है जिससे शीघ्रता पूर्वक युद्ध का परिणाम हमारे अनुकूल हो। राघोबा की इच्छानुसार ही हमें भी परिणाम को देखना है। कीटिंग का कहना था कि बम्बई सरकार का निर्देश है कि हम दृढ़ अनुशासन में रहें, देशी लोगों के पक्षपात पूर्ण भावना को न भूले तथा अपनी, अपने मित्र एवम् शत्रु का समाचार उसे देते रहें।

मि० कीटिंगं को इतना ही आदेश भी था। उन्हें यह अधिकार नहीं दिया गया था कि वे किसी भी प्रकार राजनीतिक दाँव पेच खेलें। वे युद्ध सम्बन्धी आदेशों के बाहर नहीं जा सकते थे, परन्तु उनके अविवेकपूर्ण तथा अत्यधिक उत्साह ने उनमें यह महत्वाकांक्षा जगा दिया था कि वे सेनापति के रूप में तो प्रख्यात थे हो, कूटनीतिज्ञ के रूप में भी उन्हें ख्याति मिली। ख्याति की यह प्रवृत्ति स्वयम् अपने लिये भी घातक होती है तथा आश्रित जनो के लिये भी। मि० कीटिगं ने कूटनीतिज्ञता के चक्कर में कैम्बे में उतरने के शीघ्र बाद ही फतह सिंह से पत्राचार शुरु कर दिया। उसका लक्ष्य था कि वह किसी प्रकार फतह सिंह को फोड़ ले। इस लक्ष्य प्राप्ति के लिये वह यह समझाना चाहता था कि अगरेजों का साथ देने में उसे उसी का भला है, परन्तु उसे इतना भी नहीं पता था कि यदि किसी के मन में किसी भी सुविधा या असुविधाकी बात पहले से होवे तो और दुश्मन द्वारा वही सुविधा या असुविधा समझायी जाय तो सुनने वाला का भी उस बात के महत्व को नहीं मानता। शत्रु का कोई भी तर्क उनको विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता, उस मनोवैज्ञानिक सत्य का ज्ञान शायद कीटिगं को था ही नहीं। उसे फतह सिहं की प्रकृति का अभी ज्ञान नहीं था, उसकी ओर से कभी कोई प्रस्ताव भी नहीं किया गया था और न वृटिश सैन्य ने अभी कोई विजय या ख्याति ही अर्जित की थी। ऐसी दशा में केवल तर्कवितर्कों से क्या आशा की जा सकती थी। विशेष कर मराठा जाति से ऐसी दशा में कुछ भी आशा नहीं करनी चाहिये। ऐसी दशा में मराठा जाति को फोड़ने की कोशिश से निराशा एवम् अप्रतिष्टा ही हाथ लगती है। कैम्बे छोड़ने के पहले ही मि० कीटिगं को यूरोपियन बमवाज सैनिकों के दो दस्तों की और भी मदद मिल गयी थी एक दस्ता देशी सिपाहियों का भी आ गया था। ये तीनों दस्ते मद्रास सरकार ने भेजा था। इस तरह अब कौटिग के सेनापतित्व में संधिपत्र के अनुसर ढाई सौ सैनिक हो गये थे। १६वीं अप्रैल को यह सेना दरमुज नामक गावं में राघोबा की सेना से जा मिली, जो कैम्बे से ग्यारह मील उत्तर पूर्व में स्थित है। यहां पर राघोबा की सेना जुट गयी थी, परन्तु ऐसा प्रतीत होता था, जैसे वे सब अपना बकाया वेतन वसूलने आये थे न कि लड़ने को। माना जी फखे तथा सखाराम हरी ख्याति प्राप्त सेनापति थे और वे राघोबा के प्रति वफादार भी थे, परन्तु उनके अधीनस्थ छः या आठ हजार सैनिकों की तनखाहें नहीं मिली थीं, अतः उनमें विरोध या यों कहें कि विद्रोह की भावना भर गयी

थी । वहाँ पर सैनिकों का जो जमावड़ा हुआ, उसकी संख्या बीस हजार से ऊपर थी, परन्तु वे सब बेकार थे । उस वैभवपूर्ण दृश्य को देख कर कीटिंग बहुत प्रसन्न हुआ । उस मैदान में खेमो एवम् झंडोंका अपूर्व जमघट (मि० कीट्स के विचार से) हो गया था । मि० कीटिंग ने स्वयम अपने को तथा बम्बई सरकार को आन्तरिक बधाई दी । परन्तु बम्बई सरकार को भेजे गये उसी बधाई के पत्र में उसने गम्भीरता से रुपयों की माँग की । उसने लिखा कि उस स्थान पर एकत्रित उस विशाल वाहिनी का मन न टूट जाय, इस विचार से अपने पास का सारा रुपया उसने उन फौजों को दे दिया ।

इधर मंत्रिदल भी जोड़ तोड़ में लगा था । वह खंडेराव गायकवाड़ को तो अपने पक्ष में कर लेने में सफल हो गया, परन्तु होलकर तथा सिंधिया उनका संग छोड़कर चले गये और उनके साथ उनके बारह सहस्र सवार भी मालवा की ओर चले गये । वे लोग मंत्रिदल को छोड़कर क्यों चले गये, इसका उत्तर किसी भी मराठा प्रपत्र में संतोषजनक रीति से नहीं लिखा गया है । उधर इस त्याग का राघोबा के दल ने यह अर्थ लगाया कि इन लोगों ने राघोबा का पक्ष ग्रहण करने के लिये ही इस प्रकार मंत्रियों के पक्ष का त्याग किया है । यह अर्थ लगाने का कारण यह था कि सिंधिया को सखाराम बापू ने बुला कर पेशवा की बकाया रकम उससे माँगी थी । यह एक ऐसी बात हो गयी कि उसी के कारण सिंधिया जीवन पर्यन्त सखाराम बापू का शत्रु बना रहा, परन्तु इससे सिन्धिया की नीति में कोई अन्तर नहीं आया, क्योंकि कुछ ही महीनो बाद होल्कर तथा सिंधिया दोनों ही पूना में आ गये थे ।

राघोबा के दल को यह निश्चय हो गया कि सिंधिया का इरादा इस दल में आने का है और यह भी कि होल्कर किसी भी दशा में सिंधिया के विरुद्ध नहीं जा सकता । उधर फतह सिंह के मिल जाने से हरी पन्त की सैनिक संख्या पचीस हजार तक जा पहुंची थी, जिसमेंसे पांच हजार पैदल थे । ऐसे समय में जब कि लगान वसूली के दिन थे और अगले डेढ़ महीने में वर्षा शुरु होने वाली थी, हरी पन्त ने पूर्ण बुद्धिमानी से काम लिया और राजधानी से इतनी दूरी पर शत्रु की सब सेनाओं को एकत्रित होने दिया । उसने इनके सम्मिलन को रोकने का कोई प्रयास नहीं किया ।

२३ वीं अप्रैल को राघोबा की इस सेना ने दरमुज से नरसुरा और वहां से साबरमती को प्रस्थान किया । इस सेना की सारी शक्ति अंगरेजी दस्ते में ही निहित थी । साबरमती से वह सेना कैरा की ओर चली परन्तु किसी भी प्रकार कैम्बे से तीस मील उत्तर में स्थित महतुर गाँव तक तीसरी मई से पहले न पहुंच सकी । यह धीमी प्रगति अनिवार्य थी क्योंकि कुमुक अभी पीछे थी, बम्बई की सेना का तथा परिवहन विभाग अत्यधिक त्रुटिपूर्ण था । कितनी ही बैल गाड़ियाँ, भारी सामानों तथा सेना की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले बाजार के कारण सेना की गति बहुत धीमी पड़ गयी थी । उस धीमी गति में सेनापति का त्रुटिपूर्ण प्रबन्ध भी एक मुख्य कारण था । सबसे मुख्य कारण यह था कि राघोबा चाहता था कि वह इस सेना को अहमदाबाद ले जाय और पूरा वर्षा काल गुजरात में बितावे । इधर बम्बई सरकार की सख्त सिफारिश थी कि समूची सेना पूरी गति से पूना की ही ओर अग्रसर हो ।

पूर्व इसके कि यह वाहिनी महतुर तक पहुँचे, हरीपन्त की सेना के साथ दो छोटे मोटे संघर्ष हो गये । पहला संघर्ष २८वीं अप्रैल को असामली गांव के पास हुआ तथा दूसरा संघर्ष इसके चार दिन बाद हुआ । मराठों के प्रथम संघर्ष में अँगरेजों ने अपनी स्थिति को ठीक-ठीक सँभाला और उनको बहुत ही कम हानि हुई । दूसरे संघर्ष में राघोबा के पचास साठ लोग मारे गये या घायल हो गये । यह एक ऐसा नुकसान था, जिसके कारण राघोबा की सेना प्रायः हतोत्साहित रहने लगी । इसी संघर्ष में अँगरेजी दस्ते के बायें पक्ष पर भी मराठों ने आक्रमण कर दिया था, परन्तु वे पीछे ढकेल दिये गये थे ।

अन्त में बम्बई से कर्नल कीटिंग को सख्त आदेश मिला कि सारी बातों को यथावत् छोड़कर वह पूना की ओर ही बढ़े। इस आदेश के अनुशार पांच मई को इस सेना ने पूना का मार्ग अपनाया और आठ मई को नदियाद पहुँच गयी। इस बीच मराठों से दो टक्कर और हुये। पहली टक्कर तो मराठों के ही अनुरूप घुड़सवारों ने राघोबा के सवारों पर ही किया परन्तु दूसरी टक्कर में आक्रमण ने बन्दूकों का भी प्रयोग किया। नदियाद एक बड़ा कस्बा था और खंडेराव गायकवाड़ के अधिकार में था अतः खंडेराव के पक्षत्याग को विश्वासघात की संज्ञा देकर राघोबा ने नदियाद से दंडस्वरूप साठ हजार रुपयों की मांग की। इन रुपयों के लिये वह एक सप्ताह तक रुका रहा, परन्तु इसे चालीस हजार से अधिक न मिल सका। १४वीं तारीख को यह सेना केवल तीन मील और पश्चिम की ओर बढ़ सकी। राघोबा को विश्वास था कि मैही तट पर कोई निर्णायक युद्ध होगा, क्योंकि उसे समाचार मिला कि पूना से हरी पन्त फड़के को आदेश दिया गया है कि यदि राघोबा मैही नदी को पार करने का प्रयास करे तो उस पर हमला कर दो।

इस पूरे समय में कर्नल कीटिंग का फतह सिंह के साथ पत्राचार चालू था। यद्यपि कर्नल कीटिंग को यह भी पता चल गया था कि हरी पन्त फड़के को उनके पत्राचार का पता चल गया है, फिर भी कूटनीतिज्ञता का भूत उसे चुप नहीं रहने दे रहा था। कर्नल कीटिंग को अपनी तर्क शक्ति पर घना विश्वास था। वह सोचता था कि एक न एक दिन फतह सिंह को अपनी ओर फोड़ ही लेगा। मामला यहाँ तक बढ़ा कि फतह सिंह से सन्धि की बात भी पक्की हो गयी। फतहसिंह के विश्वास देने पर कि यह सन्धि वार्ता अभी गुप्त ही है, कर्नल कीटिंग ने भी इसे गुप्त मान लिया। फतह सिंह ने कीटिंग को इतना विश्वास दिलाया कि उसने लेफ्टिनेंट जार्ज लवीवान्ड को अपना एजेन्ट बना कर फतह सिंह के डेरे में भेज दिया ताकि वह सन्धि की शर्तें तै कर ले। उस एजेन्ट की बड़ी ही अप्रतिष्ठा हुई। यह निश्चय है कि मराठा कथाओं एवम् अखबारों में इस एजेन्ट की पूरी छीछालेदर हुई होगी, परन्तु कर्नल कीटिंग को मराठा चरित्र का इतना कम ज्ञान था कि वह इस बात को समझ ही नहीं पा रहा था कि मराठे उसे किस प्रकार मूर्ख वना रहे है तथा उसकी कूटनीति उसे किस प्रकार उपहास का पात्र बना रही है। इस एजेन्ट ने क्या किया इसकी तो चर्चा ही व्यर्थ है। उसके साथ कैसा बर्ताव किया गया, यह अवश्य ही मनोरंजक है। फतहसिंह का वकील एजेन्ट के साथ था। उसने एजेन्ट को हरीपन्त के खेमे में पहुँचा दिया। एजेन्ट वेचारा सामने हरीपन्त को देखकर घबरा उठा और वकील से यहाँ ले आये जाने का कारण पूछा। वकील ने जवाब दिया कि उसका स्वामी भी इसी में शामिल है। शाम को हरीपन्त फड़के तथा फतह सिंह के नौकर चाकर इस बृटिश दूत से मिलने गये। अगली सुबह को वकील ने लेफ्टिनेंट साहब को समझाया कि उनके स्वागत के लिये एक अलग तम्बू खड़ा किया गया है, वहीं पर मिलकर फतहसिंह तथा उसके दीवान सन्धि की शर्तों को अन्तिम रूप देंगे। वह दिनभर उसी खेमें में पड़ा रहा। बार-वार उसने अपनी अधीरता प्रदर्शित की। मराठों को इस मजाक का आधा ही मजा मिल सका क्योंकि मराठों को आशा थी कि थोड़ी ही देर तक प्रतीक्षा करने के पश्चात् एजेन्ट आग बबूला होकर निकलेगा और खूब बकझक करेगा। इधर बेचारा एजेन्ट अपने उबलते क्रोध को पीता हुआ शान्त बैठा था, अन्त में शाम को पाँच बजे एक अकेला सवार खेमे के द्वार पर उपस्थित हुआ और उसे संदेशा दिया कि वह उसी सेना के साथ दुभौर तक चले। जब वह वेचारा पालकी में बैठ कर रवाना हुआ तो हरीपन्त के घुड़सवार उसके चारों ओर घेर कर चलने लगे, जिससे यह प्रतीत हुआ कि मानो वे उसे गिरफ्तार करके ले जा रहे हों। मराठों की सारी सेना इस दृश्य को देख-देखकर हँसती रही। इसी समय गम्भीर मुँह बनाये हुये वकील आ पहुँचा

और उसने लेफ़्टिनेट लावीवाण्ड को सूचित किया कि वह कैद कर लिया गया है । उसने वास्तव में उस एजेन्ट से प्रार्थना की कि वह उसके स्वामी की रक्षा करने के लिये सन्धि के कागजों एवम् अपने परिचय पत्रों को नष्ट कर दे क्योंकि उनकी सन्धि योजना प्रगट हो गयी है । लेफ़्टिनेन्ट बेचारा सीधासादा आदमी था और कर्नल कीटिंग की नासमझी से मराठों का उपहास भाजन बना हुआ था । उसने सचमुच ही सभी कागज पत्रों को नष्ट कर डाला । इसके बाद घुड़सवारों ने उसे लाकर बीच बाजार में फतहसिंह के पड़ाव के बीच में खड़ा किया । थोड़ी ही देर के बाद वकील ने कहा कि हाथ आये हुए अवसर को छोड़ना नहीं चाहिये, अत; वह फतहसिंह से मिल ले । इसके बाद वह एजेन्ट को दीवान के खेमे में ले जाया गया, जहाँ एक घण्टे की प्रतीक्षा के वाद फतहसिंह के दर्शन हो सके । फतहसिंह ने कागजों को नष्ट करके उसकी जान बँचाने के लिये बड़ी कृतज्ञता प्रगट की और यह कह कर सन्धि वार्ता चलाने से विवशता प्रगट की कि उसकी योजना पर बड़े काइयाँ लोगों की दृष्टि पड़ चुकी है । उसने यह भी कहा कि इन उच्चाधिकारियों को ज्योंही भ्रम में डाल सकेगा, त्योंही फिर से सन्धिवार्ता को चालू कर लेगा तथा अब की बार वह इन अधिकारियों की आँख में धूल झोंककर बड़ौदा आकर ही इस काम को करेगा । इस प्रकार उसे समझा बुझाकर वापस कर दिया । बम्बई सरकार ने कीटिंग के इस रवैये को सख्त नामसन्द किया तथा मि० मोस्टिन को आदेश दिया कि वह सेना के साथ रहे तथा अवसर पड़ने पर राजनैतिक अथवा कूटनीतिक बातों पर देखरेख रक्खे, मगर कर्नल कीटिंग की यह सेना इतनी आगे निकल चुकी थी कि शत्रुओं से भरे देश में मि० मोस्टिन के लिये सम्भव नहीं था कि वे उसकी संगति में पहुँच पाते ।

नदियाद को पीछे छोड़कर यह सेना मैही की ओर बढ़ी और नप्पार नामक स्थान पर १७वीं मई को पहुँच गयी । नदियाद से आगे चलने पर यह रास्ता कृषि प्रधान क्षेत्रों से जाता है, जिसके दोनों ओर कँटीली झाड़ियों की दीवाल सी बनी रहती है । यह रास्ता सँकरा है, बालुकामय है तथा इस पर होकर केवल एक ही बैलगाड़ी एक बार आगे बढ़ सकती है । रास्ते के दोनों ओर उँची झाड़ियाँ है । रास्ते के चारों ओर बड़े खेत हैं जिनमें से प्रत्येक की मेड़ों पर ऊँचे-ऊँचे नीम, इमली महुआ या आम के पेड़ लगे हैं । गुजरात प्रदेश में बरिया तथा गोदरा से कटिवार तक का प्रदेश समतल है । नदियाद से मैही तक का प्रदेश साधारण ऊँचा नीचा है, जिससे देश का सौन्दर्य कई गुना बढ़ गया है, परन्तु सैनिक आवागमन के लिये यह देश एकदम अनुपयुक्त है । इस प्रदेश के रास्ते भी एक ही बैलगाड़ी के चलने भर को होते हैं । नप्पार से एक या डेढ़ मील आगे जाने पर बड़े सुन्दर मैदान पड़ते हैं, जिसमें स्थान-स्थान पर लगे पेड़ों के झुरमुटों ने इन मैदानों को सुनियोजित उपवन का सा रूप दे रक्खा है और यह मैदान अरास से लेकर नदी तट तक फैला है, जिसमें स्थान-स्थान पर बड़े-बड़े सूखे नाले हैं ।

राघोबा की सवार सेना पहले ही संघर्ष के बाद इतनी भय कातर हो गयी थी कि वह बगल से चलकर सामान की रक्षा करते रहने के स्थान पर बार बार उन सामानों के ले जाने वालों में ही मिल जुल जाती थी । मराठों की ऐसी प्रकृति ही होती है कि भयत्रस्त होने पर वे एकदम से सिमटकर भेड़िया धसान कर देते हैं तथा सभी प्रकार की व्यवस्था को भंग कर दिया जहाँ भी उन्हें तनिक भी भय का आभास होता था, वे सिमट कर अँगरेजी दस्ते के काम में भी रुकावट डालने लगते थे । राघोबा की इच्छा से उनके सैनिकों में थोड़ा विश्वास भरने के विचार से रक्षकों के दल तैयार किये गये । इनमें से प्रत्येक दल में दो सौ सैनिक देशी सौ यूरोपियन और दो-दो हल्की तोपें थीं, इन में से एक तो सेना के पृष्ठ भाग की रक्षा करने को नियुक्त था और दूसरा पूरी सेना से बगल में खड़ी पंक्तियों में चलने लगा । इन सुरक्षा दलों में यूरोपियन बमबाज़ भी थे । इन लोगों को आदेश यह था कि यदि बगल से आक्रमण हो तो, पिछला

सुरक्षा दल आगे बढ़ कर इसकी मदद करे और बमबाज सिपाही उनका स्थान ग्रहण कर लें, परन्तु यदि पिछले सुरक्षा दल पर ही आक्रमण हो जाय तो बममार दस्ता पलट कर उसकी मदद करे।

१८ मई को प्रातः काल में जब यह सेना उपरोक्त योजनानुसार चली जा रही थी और मैही तट के मार्ग पर नप्पार से डेढ़ मील दूर जा चुकी थी, उसी समय बाई ओर के झुरमुटों से गोलों की एक बौछार पिछले सुरक्षा दल पर पड़ी। इन गोलों को फेंकने वाली छः तोपें थी। घूमकर देखने से मालुम हुआ कि शत्रुओं की एक बड़ी संख्या उधर से चली आ रही है। कीटिंग ने तुरन्त सेना को रुकने का आदेश दिया, अपने घोड़े को दौड़ाकर पीछे वहाँ पर पहुँच कर देखा कि बममार दस्ते के कमाण्डर मि० मायर्स अपने अधीनस्थ दस्ते को पूर्वनिर्देशानुसार ही परिचालित कर रहे हैं। मि० मायर्स एक बड़ी तोप को तथा ऊँचाई पर गोला फेंकने वाली एक छोटी तोप की नाल नीची करने का प्रबन्ध कर रहे थे। इन तोपों के एक ही बार से शत्रु को तोपें चुप हो गयीं थी, और आगे बढ़ती हुई शत्रु सेना पीछे पीछे की ओर चल पड़ी थी। लौटते समय वे लोग किसी भी कारण से दो तोपों को नहीं ले जा सके थे। कुछ अन्य अफसरों की राय से मि० मायर्स ने प्रस्ताव किया कि इन तोपों पर अधिकार कर लिया जाय मि० कीटिंग ने भी उनके इस प्रस्ताव को मान लिया। उन्होंने दूसरे बममार दस्तों को अपने सामने बुलाया। तोपें एक चतुर्दिक पेड़ों से घिरे हुये एक खेत में थीं। उस खेत को जाने वाले सँकरे रास्ते की वैसी ही स्थिति थी, जैसी हम पहले लिख चुके हैं। इसके दोनों ओर ऊँची कँटीली झाड़ियाँ थीं। ज्योंही पिछला सुरक्षा दल तथा बममार दस्ते के सैनिक पंक्तिबद्ध होकर खड़े हुये त्योंही उन्हें क्रम एवम् व्यवस्था पूर्वक आगे बढ़ कर तोपों पर अधिकार कर लेने का आदेश हुआ। कप्तान मायर्स तेज चलते हुये तोपों के पास तक पहुँचे। वहाँ पहुँच कर एक बार दोनों दस्तों को फिर से क्रम बद्ध करके आक्रमण की तैयारी की गयी। अभी यह सब हो ही रहा था कि मराठों ने हल्ला बोलकर धावा कर दिया, परन्तु तोपखाने की भयानक मार ने उन्हे पीछे हटा दिया। कर्नल कीटिंग स्वयम् तोपखाने को परिचालित कर रहे थे। अपने कुछ आदमियों को खोकर शत्रु सेना पीछे हट गयी। अभी अँग्रेजी दस्ते अपने को आक्रमण करने योग्य क्रम बद्ध रूप में खड़ा भी न कर पाया था कि मराठों ने दूसरा आक्रमण कर दिया और यह आक्रमण पहले से अधिक भयंकर था। इन आक्रमणकारियों को भी पीछे ढकेल दिया, यद्यपि मराठों ने कितने ही बममारों को काट डाला। इन्हीं मारे गये लोगों में कैम्टेन मायर्स तथा सरले भी थे। यही वह समय है, जब कि हार या जीत का निर्णय होता है। कर्नल कीटिंग ने तोपखाने का संचालन तो पूर्ण योग्यता से किया, परन्तु सेनापति की हैसियत से उनसे एक भूल हो गयी। उन्होंने अपने लड़ते हुये चकित सैनिकों को मदद नहीं भेजा। मराठों ने सेनापति द्वारा की गयी इस भूल का फल उठाया। उन्होंने सँकरे रास्ते को रोकने के लिये दो हाथी खड़े कर दिये और राघोबा की सेना के एक विश्वासघाती कारबुन की सहायता से उत्साहित होकर अँग्रेजों के पृष्ठ भाग पर आक्रमण कर दिया, जो मुख्य सेना से काफी अलग जा पड़ा था। इस मार से भी अँगरेजी सेना घबरायी नहीं और जम कर युद्ध करके उसने बलपूर्वक मराठों को पीछे हटा दिया। इस समय राघोबा की सेना के कुछ अरबी सिंधी सैनिक बिना किसी क्रम के इधर-उधर आ जा रहे थे, इधर उसकी घुड़सवार सेना, मुख्य सेना तथा लड़ने वाली सेना के बीच में आकर भ्रम पैदा करने लगी। अब दोस्त व दुश्मन को पहचान पाना भी कठिन जान पड़ने लगा और भयानक गड़बड़ी मच गयी। इस समय शत्रु का आक्रमण बन्द हो गया था। सहसा यूरोपियन सैनिकों का एक दस्ता दाहिनी ओर को मुड़कर तेजी से आगे बढ़ा। उस दस्ते के उस कार्य का कोई कारण नहीं था। बाद में जाँच कमेटी के जाँच करने के क्रम में पता चला कि टोली के नायक के 'दायें ओर को घूमों' आदेश

को 'दाहिने होते हुये पीछे घूमो' समझा और इसका यह मतलब लगाया कि युद्ध में अँगरेजों की हार हो गयी है और सैनिकों को भाग कर जान बचाने का आदेश दिया गया है। उनको इस प्रकार द्रुतगति से युद्धभूमि से दूर जाते हुये देखकर देशी सिपाहियों ने सचमुच यह समझा कि युद्ध में हारकर ये सैनिक भागे जा रहे हैं। वे भी भाग चले। बिना कर्नल कीटिंग के आदेश के ही युद्धभूमि छोड़ देना अक्षम्य अपराध था और इसका परिणाम भी बड़ा भयंकर हुआ। सभी सैनिकों ने अपनी-अपनी पंक्तियाँ छोड़ दी। दस्तों के नायकों ने सिपाहियों को रोकने का भरपूर प्रयास किया, परन्तु सैनिक घबरा चुके थे। अभी तक जो लोग योग्यतम् बहादुरों की भांति लड़ रहे थे वे कायरों की भांति पीठ दिखाकर भागने लगे। पीछे से मराठे खदेड़ने लगे और उन्होंने कितनों को ही काट डाला। कर्नल कीटिंग ने भरपूर कोशिश की, कि कम से कम बममार दस्ते को रोक कर पंक्तिबद्ध कर ले, मगर उसकी सारी कोशिश बेकार गयी। खैरियत यह हुई कि सभी सिपाही रक्षापंक्ति की ओर ही भागे थे और वहाँ पहुँच कर स्थिति का पर्यवेक्षण करने के लिये मानो एकबार वे घूमकर खड़े हो गये। शत्रु सेना तोपखाने पर भी अधिकार से सिर्फ चालीस गज की दूरी पर रह गयी थी और यह निश्चय था कि मराठे हल्ला बोलकर तोपखाने पर भी अधिकार कर लेते, परन्तु इसी समय तोपों की नालें नीचीं हुई और मैदान में चारों ओर धुआँ ही धुआँ दिखाई पड़ने लगा। तोपों की गर्जना से कान के पर्दे फटने लगे। तोपों ने आग उगलना शुरू कर दिया था और शत्रु सेना बुरी तरह नष्ट हो रही थी। शत्रु सेना थोड़ी देर तक तो चीखती चिल्लाती आगे बढ़ती रही, परन्तु अँगरेजी तोपखाने ने केवल उनकी गीत को ही नहीं रोक दिया, वरन् उन्हें पीछे हटने को भी विवश-कर दिया। युद्ध क्षेत्र से एक बार भाग कर भी अँगरेज विजयी हुये और एक बार विजयमाल पहन कर भी मराठों को करारी हार का मुँह देखना पड़ा। ऐसा विचित्र युद्ध था अरास का, जिसका समूचा वर्णन यद्यपि कीटिंग के लेखानुसार ही किया गया, परन्तु जिसकी पुष्टि मराठी कागजातों से भी होती है। अंगरेजों ने इस युद्ध में भारी हानि उठाया। केवल कीटिंग के आधीन दस्ते के दो सौ बाईस आदमी मारे गये, जिसमें छियासी यूरोपियन थे और उनमें ग्यारह अफसर थे।

२९ मई को कर्नल कीटिंग भड़ौंच पहुँचा, जहाँ उसने अपने घायलों को औषधोपचार के लिए छोड़ दिया। ८ जून को नर्मदा पार करने के इरादे से वह पुनः चल पड़ा, परन्तु चूँकि निर्धारित घाट से नर्मदा को पार करना असम्भव था, १० मई को वह नदी के बहाव के विरुद्ध की दिशा में बहूपीर की ओर चल पड़ा। करीब बीस मील तक चलने के पश्चात् शाम को पांच बजे कर्नल कीटिंग को समाचार मिला कि हरी पन्त अब भी नर्मदा के उत्तर में आठ दस मील की दूरी पर पड़ाव डाले पड़ा है। अब कर्नल कीटिंग के दिलोदिमाग में मराठों का कोई भय न रह गया था और उसने मराठों के इस साधारण रहस्य को समझ लिया था कि 'आक्रमण पहले ही करो' अतः कर्नल ने निश्चय किया कि अपने सैनिकों को थोड़ा आराम देने के पश्चात् वह आगे ही बढ़ेगा। थोड़ा-सा आराम कर लेने के पश्चात् वह रात्रि के एक बजे ही चल पड़ा। राघोबा को भड़ौंच फैक्ट्री के प्रमुख अँगरेज अधिकारी ने कुछ रुपया दे दिया था। उस रुपये से इसने अपनी सेना का आर्थिक वेतन चुका दिया था। इसलिए उसकी सेना में थोड़ी जागृति सी आ गयी थी। उसके अतिरिक्त इन सैनिकों को यह भी आशा बँध गयी थी कि अगले युद्ध में लूट मार करने का अवसर मिलेगा। उस सम्भावना से भी उनमें उत्साह की लहर-सी दौड़ रही थी। जिस समय कर्नल कीटिंग की सेना आगे बढ़ी तो राघोबा की बाकी सेना भी अतिरिक्त उत्साह के साथ आगे बढ़ने लगी। मगर दोनों सेनाओं के आगे बढ़ने के ढंग में महान् अन्तर था। अँगरेजी सेना पंक्तिबद्ध रूप में पूर्ण अनुशासन में चल रही थी, जब कि दूसरी सेना पंक्ति का कोई ख्याल न करते हुए अव्यवस्थित रूप से आगे बढ़ रही थी। राघोबा की

सेना की अव्यवस्था उत्साहाधिक्य के कारण इतनी बढ़ गयी कि अँगरेजी सेना की प्रगति में विघ्न डालने लग गयी। कई स्थानों पर उनके द्वारा सड़क ही रुक गयी और विवश हो कर कीटिंग की सेना को भी रुक जाना पड़ा और अन्त में कीटिंग एक दम से रुक गया और प्रातःकाल की प्रतीक्षा करने लगा। इसका परिमाण यह हुआ कि प्रातःकाल होते ही वे शत्रुओं की नजर में पड़ गये और हरीपन्त को इतना समय मिल गया कि इस सेना के पहुँच सकने के पूर्व ही, उसने सारा सामान बाँध-बूँध कर वहाँ से प्रस्थान के पहले भारी सामानो को नर्मदा पार भेज दिया और कितनी हो तोपों को नदी के हवाले कर दिया। वह शीघ्रता से नदी के उत्तरी किनारे के समानान्तर आगे बढ़ गया केवल एक हाथी तथा थोड़े से ऊँटों को राघोबा के सैनिकों ने अपने कब्जे में कर लिया। प्रस्थान की शीघ्रता में हरी पन्त इनको साथ नदी ले जा सका था।

बम्बई सरकार से बार-बार आदेश मिलता रहा था कि कर्नल कीटिंग को बराबर दक्षिण की ही ओर बढ़ना चाहिये, परन्तु राघोबा के कहने के अनुसार इस योजना को बदल दिया गया और बाद को बम्बई सरकार ने भी इस परिवर्तन को स्वीकार कर लिया। राघोबा ने यह राय सैनिक सुविधाओं के आधार पर दी थी। उस सलाह के अनुसार यह निर्णय किया गया कि कर्नल कीटिंग की सेना तो बड़ौदा उन्नीस मील दक्षिणपूर्व डभोई को चली जाय, और अपनी सेना के साथ राघोबा दधूर नदी के किनारे भीलापुर नामक स्थान पर पड़ाव डाले। यह स्थान बड़ौदा तथा डभोई के बीच में पड़ता था।

गोविन्दराव के बार-बार कहने पर बम्बई सरकार को लिखा गया कि उसकी राय में यदि वर्षा का प्रकोप घटते ही बड़ौदा को अधिकृत कर लिया जाय तो अति उत्तम होगा। बम्बई सरकार ने उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। बम्बई सरकार भी इस प्रयास में रत थी कि जितनी जल्दी हो सके, कर्नल कीटिंग को कुछ सैनिक सहायता अवश्य भेजी जाय, उनको और कारतूस भेज दिये जायें तथा उनकी रसद की कमी को भी दूर कर दिया जाय।

अब फतह सिंह भी गम्भीरता से सोचने लगा था कि उसे बम्बई सरकार से सन्धि कर लेनी चाहिये। अतः उसने कर्नल कीटिंग के यहाँ सन्धि का प्रस्ताव भेजा। सभी बातों पर विचार करके कर्नल उस निर्णय पर पहुँचा कि यदि फतह सिंह को पराजित न करके उसे अपने पक्ष में कर लिया जाय तो अति उत्तभ होगा। यह निर्णय करके उसने राघोबा को समझाया कि वह सन्धि को कुछ ऐसी शर्तें तैयार करे जिससे फतह सिंह अपने पक्ष में हो जाय, गोविन्द राव को सन्तुष्टि मिल जाय तथा स्वयम् उसके (राघोबा के) व्यय के लिए भी कुछ रुपया मिल जाय।

फतह सिंह इस बात पर राजी हो गया कि वह राघोबा की सेवा में हमेशा तीन हजार अपने सवार रखेगा; परन्तु यदि राघोबा को आवश्यकता पड़ी तो वह इस संख्या को बढ़ा कर पांच हजार कर देगा, परन्तु इस अतिरिक्त दो सहस्र सवारों का वेतन राघोबा को ही देना पड़ेगा; माधव राव बल्लाल के साथ फतह सिंह का जो समझौता हुआ था उसके अनुसार फतह सिंह के लिए आवश्यक था कि वह तीन लाख सालाना की एक जागीर गुजरात में अपने भाई गोविन्द राव के लिये सुरक्षित रक्खेगा, उस समझौते को मानने की अब कोई जरूरत नहीं रह गयीं थी, इसके बदले में दस लाख आय की एक जागीर गोविन्द राव को राघोबा दक्षिण में दे देगा; इकसठ दिनों के अन्दर वह राघोबा को छब्बीस लाख रुपये दे देगा और चूंकि ईस्ट इंडिया कम्पनी ने दोनों दलों अर्थात् फतह सिंह और राघोबा के बीच जमानतदार एवम् मध्यस्थ का काम किया है अतः उसे भड़ौंच की लागन का गायकवाड़ वाला भाग तथा कई गांव मिलेंगे, जिनकी कुल कीमत करीब दो लाख तेरह हजार रुपये थी।

इस बार कर्नल कीटिंग ने जो समझौता राघोबा तथा फतह सिंह के बीच कराया; वह राजनैतिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण था, क्योंकि यद्यपि आगे चलकर गोविन्द राव उस समझौते पर कायम नहीं रहा, फिर भी इस समय तो वह संतुष्ट हो ही गया।

गुजरात के जिस युद्ध का वर्णन ऊपर की ‚यंक्तियों में किया गया है, उस युद्ध का कुछ अंश समुद्र पर भी लड़ा गया था। मंत्रियों के पक्ष में जो यौद्धिक जलवेड़ा था, लड़ाई प्रारम्भ होने के समय उसकी शक्ति पर्याप्त बड़ी चढ़ी थी। उस वेड़े में कुल छः जहाज़ थे, जिसमें से एक में छियालीस, एक में अड़तीस, एक में बत्तीस तथा दो में वे प्रत्येक में छब्बीस तोपें लगी हुई थीं। साथ ही दस छोटे-छोटे लड़ाकू जहाज भी थे, जिनमें दो रुखी मार करने वाली तोपों के अतिरिक्त दो से नौ तक तोपें चढ़ी हुई थी। इसे वेड़े का मुकाबला हुआ अँगरेजों के रिवेंज ‘तथा ब्रम्बई’ नामक जहाजों से। अँगरेज़ी वेड़े का कमोडोर था जाँन मूर, जो रिवेंज नामक लड़ाकू जहाज में था। देखने में मराठी बेड़ा अमराजेय मालूम पड़ता था, फिर भी जांन मूर ने साहस को हाथ से नहीं जाने दिया। उसने इस बेड़े पर आक्रमण की पूरी तैयारी की। मराठी जहाजों में प्रत्येक की पालें चढ़ी हुई थीं, जब कि अँगरेजी जहाजों की पालें उतार दी गयी थीं। जाँन मूर ने सर्वाधिक वड़े अर्थात् छियालीस तोपों वाले जहाज शमशेर जंग को अपना निशाना बनाया। दोनों ही अँगरेजी जहाजों ने इसका पीछा किया और अन्त में अँगरेजों के बम्बई नामक जहाज ने उसे रोक लिया। रिवेंज भी बम्बई की मदद के लिये आ पहुँचा और तीन घन्टे के युद्ध परीक्षा के बाद शमशेरजंग से आग की लपटे निकलने लगीं। उस जहाज का सेनाध्यक्ष अपने सभी साथियों के साथ या तो जल कर या डूब कर मर गया और जहाज पूरी तरह बर्बाद हो गया।

अब जिधर ही दृष्टि जाती थी, उधर ही परिस्थितियाँ राघोबा के अनुकूल ही दिखायी पड़ती थीं। अपने मित्रों की साहसपूर्ण सफलता से अत्यधिक प्रसन्न हो कर राघोबा ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को इंसाट् तथा अमोड़ के जिलों को स्थायी रूप से दे दिया। इनकी वार्षिक लगान उन दिनों दो लाख सतहत्तर हजार रुपये थीं। इस युद्ध से बम्बई सरकार को जिन स्थानों पर अधिकार मिला, उनका मूल्य फतह सिंह द्वारा दिये गये भूभागों को मिला कर और वेसीन तथा उसके उपद्वीपों को छोड़ कर चौबीस लाख पन्द्रह हजार रुपये था

युवक पेशवा का भाग्य अच्छा नहीं दिखायी पड़ रहा था। बड़्पीर की घटना के बाद हरीपन्त फड़केने गणेश पन्त वीरे के सेनापतित्व में एक सेना अहमदाबाद की रक्षा के लिये छोड़ दिया तथा जहाँ से उसका सामान पार हुआ था वहाँ से एक सौ मील पश्चिम में नर्मदा पार करके दक्षिण की ओर लौट गया। इस पराजय की बात सुनकर सखाराम बापू तथा नाना फड़नवीस बहुत दुखी हुए और उन परिणामों से भयभीत होने लगे जो भारत में ऐसी आपत्तियों के पश्चात् भारत में अफसर हुआ करते हैं। वे डरने लगे कि कहीं उनके अन्य सहायक भी उन्हें न छोड़ जायँ। कुछ ही महीनो पहले मूँदा जी भोंसले ने अपने भाई सभा जी भोंसले को स्ववश में कर लिया था और जब राघोबा गुजरात में शरणार्थी के रूप में घूम रहा था तभी उसने नाना फड़नवीस के माध्यम से अपने पुत्र रघू जी के लिये सेना साहब सूबा का पद तथा उसका सम्मान पेशवा से प्राप्त किया था, साथ ही अपने लिये भी उसने वे सभी सुविधायें प्राप्त कर ली थीं, जो सेना साहब सूबा के संरक्षक को मिलनी चाहिये। फिर भी मंत्रिदल को भय था कि राघोबा की शक्ति को देख कर कहीं बरार का राजा उसी ओर न लुढ़क जाय। कितने ही महत्वपूर्ण व्यक्तियों ने राघोबा की ओर देखना शुरू भी कर दिया था। इधर निजाम अली इस घात में लगा कि इस आपत्ति काल में उसे किसी भी तरफ से

कुछ मिल जाय या पहले उसे जो कुछ मिल चुका है, वही स्थायी हो जाय। इसी दृष्टिकोण से उसने राघोबा के पास अपना दूत भेजा। इस समाचार को सुनकर मंत्री लोग बहुत घबराये। उधर रुकनुद्दौला की मृत्यु हो जाने से मंत्रियों को यह भी पता नहीं चल पा रहा था कि इनके बारे में मुगल सम्राट् के क्या विचार हैं। निजाम अली ने अपने विरोध का प्रारम्भ यह कहना शुरू करके किया कि उसे माधव राव नारायण की वैधानिकता में ही सन्देह है और इसीलिए सर्वोत्तम समाधान यह होगा कि राघोबा द्वारा गोद लिये गये लड़के अमृतराव को पेशवा बना दिया जाय। इस प्रकार पेशवा की गद्दी का एक नया हकदार खड़ा करके निजाम अली ने मंत्रिदल से वार्षिक अट्ठारह लाख की लगान का एक भूभाग हस्तगत कर लिया। सिंधिया तथा होल्कर से भी बड़े-बड़े वादे किये गये। उस समय पूना के ब्राह्मण शासकों के लिये कुछ भी और किसी को भी दे देना कुछ अधिक नहीं प्रतीत हो रहा था। पहले तो राघोबा का पक्ष पर्याप्त निर्बल था। महाराष्ट्र के प्रायः सभी ब्राह्मण राघोबा को अपने भतीजे की हत्या से सम्बद्ध होने के कारण बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे। माधव राव का भी निरन्तर विरोध करते रहने के कारण वह लोगों की घृणा का पात्र बन गया था। राघोबा के कारण मराठा साम्राज्य का प्रभाव निरन्तर गिर रहा था, इस लिये भी लोग उसे सर्वनाशी कहते थे। अब इस बार उसने अति अपवित्र म्लेच्छों से मेल कर के मराठा राज्य के जिन महत्त्वपूर्ण अंगों को काट डाला था, उनकी स्मृति मात्र से लोग छी छी करने लगे थे। ऐसे भी लोग थे जो इन सारी बातों को निष्पक्ष एवं उदासीन भाव से देखते थे, वे भी राघोबा को एक अभागा व्यक्ति मानते थे और यह मानते थे कि ऐसे व्यक्ति से किसी भी प्रकार का सम्पर्क रखना ठीक नहीं है। इतना सब होते हुए भी जिस समय हरी पन्त फड़के की पराजय का समाचार प्रचारित हुआ और साथ ही लोगों ने यह भी सुना कि राघोबा के एक अफसर अमीन खाँ के हाथों फड़के का नायब गणेशपन्त को भी नीचा देखना पड़ा तथा उसी अफसर ने अहमदनगर को भी घेर लिया और अँगरेज लोग राघोबा के पक्ष में भारी तैयारी कर रहे हैं, तो लोगों के मस्तिष्क डावाँडोल होने लगे। उस पर माधव राव की वैधानिकता का प्रश्न लोगों के मन में कोढ़ की खाज का काम करने लगा। उधर प्रायः सभी लोग ब्राह्मणों की सत्ता से मुक्त होने के इच्छुक थे। इन सब बातों के संयोग से प्रायः सभी लोगों को क्रान्ति के स्वप्न दिखायी पड़ने लगे और सभी का चित्त व्यग्र हो उठा। वास्तव में इस समय महाराष्ट्र की स्थिति ऐसी हो रही थी कि यदि अरास की एक सफलता और मिल जाती तो राघोबा का पेशवा पद पक्का हो जाता। यदि अँगरेजों की दृष्टि में भी माधव राव की और सतासिद्ध हो जाती तो भी राघोबा का संरक्षक बनना तो निश्चय ही था, परन्तु महाराष्ट्र का दूर्दैव अपनी लेखनी को किसी और ही दिशा में चला रहा था।

अट्ठाईसवां अध्याय

अंगरेजों और मराठों में सुलहनामें की बातचीत

[१७७४ से १७७८]

बंगाल की सुप्रीम कांउसिल को सामान्य प्रशासन का काम अपने हाथ में लेना—बम्बई सरकार के साथ पत्र व्यवहार—राघोवा के साथ की गयी सन्धि अस्वीकृत—सभाजी भोंसले की मृत्यु—बवन्ई सरकार के कार्यों की कटु आलोचना—लेफ्टिनेन्ट कर्नल अप्टन की राजदूत पद पर नियुक्ति—बम्बई सरकार के तर्क—मि० हेस्टिंग्ज की सम्मति—सखाराम बापू को लिखा गया पत्र—कर्नल अप्टन की विफलता तथा बंगाल की प्रतिक्रिया—पुरन्दर का सन्धिपत्र—कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स द्वारा बन्बई सरकार का समर्थन—मि० ड्रेपर का मतभेद—मि० मोस्टिन की पुनर्नियुक्ति—पूना में फ्रेंच दूत का सत्कार—कोंकण में शान्ति—हैदरअली की विजय—कोल्हापुर का इतिहास—हैदरअली की उन्नति—हरीपन्त फड़के—राम राजा की मृत्यु—प्रतिनिधि की मृत्यु—मूदाजी भोंसले—फतहसिंह गायकवाड़—राजा के रूप में त्र्यम्बक जी राजा भोंसले के पुत्र का चुनाव—ब्राह्मणों की विचित्रता।

२० अक्टूबर सन् १७७४ ई० को बंगाल में नव नियोजित सुप्रीम कांउसिल ने वृटिश भारत के सामान्य प्रशासन का कार्य भार ग्रहण किया। अगले ही महीने उसने बम्बई सरकार को एक पत्र लिखा, जिसके द्वारा बम्वई प्रेसीडेन्सी की स्थिति का विवरण मांगा गया था। यह पत्र बम्बई सरकार को ७ दिसम्बर को मिला। चूँकि उस समय बम्बई सरकार या यों कहें कि बम्बई प्रेसीडेन्सी का प्रेसीडेन्ट तथा उसकी कांउसिल सालसिट के ऊपर किये जाने वाले सैनिक अभियान की तैयारियो में अत्यधिक व्यस्त थी अतः उन्होंने सुप्रीम कांउसिल के पत्र का जवाब देना उस समय तक के लिये स्थगित कर दिया जब कि उक्त अभियान के लिये सैन्य प्रस्थान न हो जाय।

तीन महीने बाद अर्थात् ३१ मार्च को बम्बई सरकार ने उक्त पत्र का उत्तर भेजा, जिसमें भेजे जाने की तिथि तक की स्थिति का पूर्ण विवरण दिया गया था। इधर फरवरी के प्रारम्भ में ही सुप्रीम कांउसिल को थाना के घेरे का समाचार मिल गया। यह समाचार टेलीचेरी से मद्रास होता हुआ बंगाल तक पहुँचा था। उस समय तक भी बम्बई सरकार का पत्र सुप्रीम कांउसिल को नहीं मिला था। बंगाल की सुप्रीम कांउसिल के दिमाग में आया कि बम्बई सरकार जान बूझकर पत्रोत्तर में विलम्ब कर रही है। नव अधिकार प्राप्त संस्था प्रायः ही अपने अधिकारों के प्रति अधिक सजग तथा अधीनस्थों के कार्य कलाप के विषय में अधिक शंकालु होती हैं। अतः ३ फरवरी को उक्त कांउसिल ने बम्बई सरकार के पास एक अन्य पत्र भेजा, जिसमें उसने बम्बई सरकार के द्वारा मराठा युद्ध में भाग लेने की सम्पूर्ण कार्यवाही की आलोचना की और तुरन्त ही उस युद्ध में भाग ले १७७५ ई०] लेने के उद्देश्य तथा कारणों का विस्तृत विवरण माँगा और यह भी पूछा कि बम्बई की सरकार ने क्या-क्या किया है। २१ मई को बम्बई सरकार को उसके ३१ दिसम्बर को भेजे गये पत्र का जवाब मिला, जिसमें सालसिट के सफल सैनिक अभियान

के विषय में सुप्रीम कांउसिल ने कोई राय नहीं दी थी परन्तु राघोबा का साथ देने की कार्यवाही के औचित्य को स्वीकार नहीं किया था। यह अस्वीकृति इसलिये नहीं थी, कि राघोबा ने पूना के स्थापित एवम् विधिविहित शासन के विरुद्ध युद्ध ठाना था, अस्वीकृति का कारण यह भी नहीं बताया गया था कि राघोबा एक बदनाम व्यक्ति है और बम्बई सरकार ने एक ऐसे व्यक्ति के पक्ष का समर्थन किया है, जो अपने भतीजे की हीं हत्या का अपराधी है। बंगाल कांउसिल का इतना ही कहना था, और उनका यह कहना न्यायपूर्ण भी था कि इस सहायता कार्य की बातों से सुप्रीम कांउसिल को परिचित नहीं कराया गया था और कांउसिल ने लिखा था कि "आप लोगों ने पूना राज्य के साथ अब तक जो वादे किये थे, आपका कार्य उनके अनुकूल नहीं है।" बंगाल की कांउसिल को यह भी भय था कि यदि भारत में अँगरेजों ने देशी नरेशों से इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित किया और एक का पक्ष लेकर दूसरे से लड़ते रहे तो उन्हें यहाँ के अन्य नरेशों से विरोध का सामना करना पड़ेगा, जैसे इस मामले में ही उन्हें सभाजी भोंसले द्वारा विरोध की सम्भावना है, जो राघोबा का पड़ोसी तथा उसका शत्रु है। इस पत्र के जवाव में बम्बई सरकार ने लिखा कि अतीत में उन्होंने पेशवा की सरकार से कभी भी और कोई भी वार्ता नहीं की है, और सुप्रीम कांउसिल को सभाजी भोंसले के सम्बन्ध में तनिक भी भयभीत होने की आवश्यकता इस लिये नहीं है कि वह मूदाजी के हाथों एक युद्ध में मारा जा चुका है और मूदाजी राघोबा का मित्र ही है और वही बरार का शासक रघूजी का स्वीकृत संरक्षक है। बम्बई सरकार की यह बातें सत्य भी थीं, क्योंकि मूदाजी और सभाजी के बीच जो शस्त्रपरीक्षा हुई थी, उसमें सभाजी की विजय इतनी निश्चित हो गयी थी कि उसने अपमें हाथो को मूदाजी के एक दम सामने ले जाकर उससे आत्मसमर्पण कर देने को कहा। मूदाजी के पास भरी पिस्तौल थी। सभाजी की बात का जवाब उसने इसी पिस्तौल के दिया, और सभाजी अपने हाथी के हौदे में ही गिरा और मर गया। इस मृत्यु के कारण मूदाजी का संरक्षक पद निर्विवाद हो गया। स्मरण रहे कि रघूजी मूदाजी भोंसले का ही पुत्र था।

बम्बई सरकार ने अपने ३१ मार्च वाले पत्र का उत्तर १२ अगस्त को पाया, मई की तिथि दी गयी थी। उस समय के पर्यात पूर्व से ही सुप्रीम कांउसिल के प्रेसीडेन्ट तथा उसके सदस्य अत्यधिक उत्तेजना की स्थिति में थे, क्योंकि वारेन हेस्टिंग्ज तथा उसकी कांउसिल के बीच वह अत्युग्र मतभेद उत्पन्न हो गया था, जिसके कारण कालान्तर में बृटिश पार्लियामेंट का बहुत समय बर्बाद हुआ। प्रसन्नता की बात यही थी कि वम्बई सरकार द्वारा किये गये कार्यों की कटुतम आलोचना एवम् तीव्रतम निन्दा की गयी। उन्होंने राघोबा के साथ की गयी सन्धि कोअस्तीकृत कर दिया और बम्बई सरकार को आदेश दिया कि आपकी फौज जहाँ तथा जिस किसी भी दशा में हो, उसे वहीं से तुरन्त वापस बुला लीजिये। यदि फौरन पीछे हटने में सैनिकों के जान व माल का खतरा न हो"। बंगाल कांउसिल ने वम्बई सरकार को यह भी आदेश दिया कि अति शीघ्र ही बम्बई से एक दूत पूना को भेजा जाय जो वहाँ जाकर मराठा राज्य के वैधानिक एवम् सत्ताधारी दल के साथ आवश्यक वार्तालाप करे। गवर्नर जनरल का यह भी आदेश था कि सालसिट् तथा बेसीन को अपने ही अधिकार में रक्खा जाय मगर किसी भी देशी राज्य से न तो कोई सन्धि की जाय न सन्धि वार्ता।

इस पत्र के उत्तर में बम्बई सरकार ने लिखा कि जब इस वार्ता एवम् सन्धि का प्रारम्भ हुआ था तो बंगाल की सुप्रीम कांउसिल का जन्म ही नहीं हुआ था। बम्बई की सरकार ने यह भी कहा कि उस समय जो स्थिति थी, उसके अनुसार तुरन्त कार्यवाही करने की आवश्यकता थी। उन्होंने उन सारी स्थितियों का पूर्ण विश्लेषण करके यह सिद्ध किया कि उन्होंने जो कुछ किया, केवल वही किया

जा सकता था और वह सब कुछ अपने कर्तव्य पालन के रूप में किया था क्योंकि सालसिट् पर पराया अधिकार होने से हमारे व्यापार को भारी धक्का पहुँचने की काफी सम्भावनायें थी। अपने मालिकों की भलाई को ध्यान में रखकर किये गये कार्य के लिये उनकी भर्त्सना क्यों जानी चाहिये। राघोबा के साथ जो सन्धि की गयी तथा उसके कारण जो युद्ध लड़ा गया, उसके कारण ईस्ट इंडिया कम्पनी को पर्याप्त लाभ भी हुआ है और पश्चिमी किनारे पर उसको सुविधाओं में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। कम्पनी की स्थिति को सुदृढ़तम् बनाने का कार्य बम्बई सरकार ने किया है। बम्बई सरकार ने आगे लिखा कि यदि वे इस परिस्थिति में पीछे हट जाते हैं, तो न केवल उनके लिये वरन् सारी अँगरेज जाति के लिये यह अत्यन्त अप्रतिष्ठा एवम् विश्वासघात की बात होगी। बम्बई सरकार ने मि० विलियम टेलर को अपना विशेष दूत बनाकर इसलिये बंगाल भेजा कि वह गवर्नर जनरल तथा उसकी कांउसिल के समक्ष बम्बई सरकार के न्यायपूर्ण पक्ष को रक्खे। मि० विलियम टेलर ने ६ अक्टूबर सन् १७७५ को अपनी जो रिपोर्ट लिखी है वह तत्कालीन मराठा इतिहास एवम् मराठों के चरित्र भावपूर्ण विश्लेषण करती है और इस दृष्टि से वह पर्याप्त महत्वपूर्ण है।

इन सब तर्कों के बावजूद भी बँगाल की सुप्रीम कांउसिल अपनी इस बात पर दृढ़ रही कि कि उनके पिछले आदेश का पालन किया जाय तथा मोर्चे पर लड़ती हुई सेना को यथाशीघ्र वापस बुला लिया जाय। मि० हेंस्टिग्ज ने बंगाल सरकार के कर्मचारी लेफ्टिनेंट कर्नल जान अप्टन को पूना में सत्तासम्पन्न राजदूत का कार्य करने के लिये चुना। उसे तुरन्त ही पूना जाने का आदेश देकर निर्देश दिया गया कि वह पूरी कोशिश करके बम्बई सरकार तथा मराठा स्टेट के बीच सन्धि स्थापित कर दे। चूँकि इस कार्य में बम्बई की कौंसिल तथा प्रेसीडेंट से इस विषय में कोई राय नहीं ली गयी थी; अतः उन लोगों ने इसके विरुद्ध यह कह कर बड़ा वावेला मचाया कि इस प्रकार के कार्यों से उनकी बड़ी अप्रतिष्ठा होगी तथा उनके अधिकार को पूरी चुनौती हो जायगी। उधर उनके बंगाल स्थिति दूत मि० टेलर ने बड़े ही जोरदार शब्दों में बम्बई सरकार के कार्यों का समर्थन किया। उसने कहाकि "कांउसिल के माननीय सदस्यों को मालूम होना चाहिये कि जिस समय पालियामेंट ने बुद्धिमतापूर्वक यह सोचा और निर्णय किया कि आप के हाथों मे भारत स्थित प्रेसीन्डेसियाँ आप लोगों के सहानुभूतिपूर्ण नियन्त्रण में दे दी जाय, तो पालियामेंट का यह तात्पर्य कदापि न रहा होगा कि प्रेसीडेन्सी के अधिकारियों को इस प्रकार अप्रतिष्ठा का पात्र बना दे। आप लोग विश्वास रक्खें कि यदि आप लोग मराठों से प्रस्तावित सन्धि में बम्बई के अधिकारियों की राय नहीं लेते या इस सन्धि विषयक कार्य को बम्बई सरकार के हाथों में नहीं सौंप देते तो देशी नरेशों की दृष्टि में उन लोगों की सारी प्रतिष्ठा धूलिसात हो जायगी।

"हमारे माननीय नियुक्तिकर्ता तथा हमारे पूरे अंगरेजी राष्ट्र के लिए यही स्वाभाविक होगा कि ऐसी स्थिति में हम सभी लोगों को (बम्बई सरकार के सभी अधिकारियों को) अयोग्य एवम् बेईमान समझेंगे, जो हमारे लिए सब से खराब बात होगी। यदि हमारे स्वामियों ने तथा हमारे राष्ट्र ने हम सब के सम्बन्ध में इस प्रकार का मत स्थापित कर लिया तो हमारे लिये डूब मरने की बात होगी। मैं आप लोगों को विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि इस सन्धि में जिन अधिकारियों का हाथ लगा है, उनमें से प्रत्येक के हृदय में कर्तव्य निष्ठा का ही भाव सर्वप्रधान था। हम सभी लोगों ने यही समझ कर राघोबा से सन्धि की है कि इससे हमारे स्वामियों को, हमारे व्यापार को ही नहीं वरन् हमारे समूचे राष्ट्र का भला होगा।"

जिस प्रकार की भाषा में बम्बई सरकार ने अपने पक्ष का समर्थन किया, उसमें उनकी

ईमानदारी एवम् उनके कर्तव्य प्रेम का स्पष्ट पुट था। जहाँ तक हम लोगों ने बम्बई सरकार के कार्यकलापों का अध्ययन किया है और उनके कार्यों को उनकी सफलता के प्रकाश में देखा है, वहाँ तक बम्वई सरकार की सभी बातें युक्ति युक्त जान पड़ती हैं। यह ध्यान रखना चाहिये कि राघोबा से समझौता वार्ता प्रारम्भ होने के समय से लेकर तत्ससम्बन्धी सभी कार्यवाहियों के समय तक बम्बई सरकार का दृढ़ विश्वास था कि अपने भतीजे की हत्या के विषय में राघोबा पूर्ण निर्दोष है। हमारे कितने ही देशवासी दक्षिण में चिरकाल से रहते थे। बंगाल की सुप्रीम कौंसिल तथा बम्बई कांउसिल के मतभेद को जान गये थे। नारायण राव की हत्या सम्बन्धी भी सभी बातों का उन्हें पता था, यद्यपि इस घटना का वर्णन चारों ओर बड़े ही अतिशयोक्ति पूर्ण शब्दों में किया जा रहा था। केवल दोनों कांउसिलों के मतभेद की बात से ही वे लोग मि० हार्नबी तथा उनकी कौंसिल के सदस्यों की निष्ठा के विषय में शंका करने लगे थे और इसके फलस्वरूप उनके हृदयों में जिस अदम्य अविश्वास ने जन्म ले लिया था उसके कारण वे लोग खुले आम यह सोचने तथा विभिन्न अवसरों पर कहने भी लगे थे कि बम्बई सरकार का यह कार्य अँगरेज जाति के सर पर एक कलंक हो गया है। भारतीय भी अवश्य ही सोचने लगे थे कि अँगरेज जाति अपना स्वार्थ साधने के लिए कुछ भी कर सकती है। लोग ऐसा सोच रहे थे, फिर भी यह सोच लेने की भूल न करनी चाहिये कि बम्बई सरकार ने वही किया, जो उसे करना चाहिये था या जो वह कर सकती थी। नारायण राव के विरुद्ध जो षड़यन्त्र हुआ था उसमें राघोबा का हाथ था, परन्तु योजना का मूलप्रस्तावक सखाराम बापू ही था। यह सही है कि बापू केवल कैद का ही प्रस्तावक था न कि हत्या का। हत्या के बाद भी मंत्रिदल ने ऐसा प्रयास किया था कि हत्या के सम्बन्ध में राघोबा का नाम प्रचारित न होने वाले और इनमें भी सखाराम का प्रभाव तथा स्वभाव सर्वाधिक था। मंत्रियों का षड़यंत्र कैद से बढ़कर उनकी इच्छा के विरुद्ध हत्या तक जा पहुँचा, इस लिए अपने को निर्दोष बनाने के लिए मंत्रियों के लिए आवश्यक था कि वे राघोबा को भी निर्दोष सिद्ध करें। बम्बई के सदस्यों ने अपने पूना स्थित दूत द्वारा ऐसा ही समाचार प्राप्त किया था कि नारायण राव की हत्या हो गयी है, परन्तु उसमें राघोबा का कोई दोष नहीं है। पूर्व इसके कि यह निश्चय कर पाते कि सत्य क्या है, मंत्रियों ने उन्हें राघोबा का सहायक मानना शुरू कर दिया था राघोबा एवम् मंत्रिदल का मतभेद प्रचारित हो गया था और उस समय की स्थिति यह थी कि मंत्रिदल का स्वार्थ इस बात में था कि राघोबा ही हत्यारा सिद्ध हो तथा अँगरेजों का स्वार्थ इसमें था कि वह निर्दोष सिद्ध हो। न्याय एवम् औचित्य के स्थान पर राजनीति आ गयी थी। प्रत्येक देश की राजनीति प्रायः राजनीति में काम करने वालों को सत्यपथ से हटाकर असत्य के प्रचार की ओर ले जाती है। खासकर भारत के लोगों की यह तो प्रकृति ही है कि उनकी गवाही में प्रत्येक बात ऐसी ही निकलती है जो उनके मालिकों के पक्ष का समर्थन करे। इसी प्रकार के कारणों से यह भी प्रचारित होने लगा था कि माधव राव नारायण अवैध है।

बंगाल प्रशासन का सम्पर्क मराठों से जो कुछ भी था, वह सभा जी भोंसले तथा उसके व्यक्तियों से था और सभा जी मंत्रिदल के पक्ष में था। अतः स्वाभाविक था कि तोड़े-मरोड़े सत्य से ही उनका परिचय हुआ था। इधर बंगाल प्रशासन इस बात से अत्यधिक नाराज था कि बम्बई सरकार ने आज्ञापालन नहीं किया है, इसीलिए उसे और भी विकृति दिखाई पड़ती थी। बम्बई सरकार के इस कार्य को बंगाल प्रशासन ने मानहानि के रूप में ग्रहण किया। मानव स्वभाव है कि ऐसी स्थिति में वह भावनाओं से संचालित होने लगता है, जब कि उसे न्याय को पथप्रदर्शक मानना चाहिये। उन्होंने भारत में अपनी महत्वाकांक्षा को प्रगट रूप से प्रदर्शित करने की बुराइयों को भी

समझ लिया था। वे पार्लियामेंट की उस बुद्धिमत्ता को भी समझ रहे थे, जिससे प्रेरित हो कर उसने बंगाल प्रशासन को निर्णय का कार्य सौंपा था। वास्तव में पार्लियामेंट की इच्छा थी अँगरेजों को भारत में अनुचित साहसिकता का प्रदर्शन नहीं करना चाहिये। एक और भी बात थी कि पार्लियामेंट के सम्बन्धित ऐक्ट में कांउसिलों के अधिकारों को निश्चित करने वाली धारा स्पष्ट नहीं थी। वास्तव में इस सुदूरस्थ भारत में तीन कोनों में स्थित अँगरेजों द्वारा शासित विभिन्न प्रेसीडेंसियों में सन्धि एवम् विग्रह की नीतियों में एक रुपता लाने के लिए यह आवश्यक था कि सुप्रीम कांउसिल के हाथ में स्पष्ट रूप में सर्वोच्च सत्ता दी गयी होती, परन्तु ऐक्ट में उनकी सत्ता सीमा निर्देशन अस्पष्ट एवम् भ्रामक रूप में किया गया था। बंगाल की कांउसिल के सदस्यों को भी यह समझ लेना चाहिये था कि वास्ताविक नियंत्रण रखने के लिये उन्हें अपनी शक्ति का प्रयोग सुदृढ़ किन्तु शान्त रूप में ही करना होगा और इसी प्रकार वे वास्तविक नियंत्रण स्थापित कर सकते थे। बंगाल की कांउसिल ने अपनी सत्ता का उपयोग भी अधिक विस्तृत रूप में किया। उन्होंने निर्देश के स्थान पर आदेश देना प्रारम्भ कर दिया। चुनी गयी एवम् अनुभव हीन सत्ताओं की यही चारित्रिक विशेषता होती है कि वे कभी मध्यम मार्ग नहीं ग्रहण करते, उन्हें सीमा ही प्रिय होती है और इस प्रकार कीं सीमा प्रियता से सत्ता बढ़ती तो कभी नहीं हाँ घटती अवश्य है।

मि० हार्नबी तथा उनकी कांउसिल के सदस्य भी सर्वथा निर्दोष नहीं थे। ऊपर हमने जो कुछ कहने का प्रयास किया है उसके होते हुये भी यदि बम्बई सरकार ने ही विवेक से कार्य लिया होता तो दोनों कांउसिलों का विरोध इतना तीव्र नहीं हुआ होता। हमें यह भी नहीं भूल जाना चाहिये कि गवर्नर जनरल तथा उसकी कांउसिल का बम्बई सरकार के कार्यों में हस्तक्षेप यदि सफल हो गया होता तो उसका परिणाम इंग्लैंड के स्वार्थों के अत्यधिक विपरीत हुआ होता। उस समय तक अमरीका हमारे हाथ से निकल चुका था। खैरियत यही थी कि हमारा प्रतिद्वन्दी फ्रांस जर्जर हो रहा था, नहीं तो समूचे ग्रेट ब्रिटेन को जो धक्का लगता वह कल्पना से परे की बात होती। बम्बई सरकार तथा मराठा राज्य की सीमाओं को देखने मात्र से ही पता चल जाता है कि मराठा राज्य सदा ही बम्बई प्रेसीडेंसी को दबाये रहता था, बम्बई के राजनैतिक महत्व को कम किये रहता था और अपनी अतुलनीय स्थिति के कारण तथा जहाज रानी के कार्यों के सर्वाधिक उपयुक्त होने के कारण बम्बई की उन्नति जितनी होनी चाहिये थी, उतनी हो नहीं पा रही थी। बंगाल सरकार ने न केवल पेशवा के मंत्रियों का हाथ ही मजबूत कर दिया वरन् लड़खड़ाते हुए मराठा मण्डल को फिर कुछ दिनों तक के लिये खड़ा कर दिया।

बंगाल से चले हुये ३१ मई के आदेश के अनुसार बम्बई की कांउसिल तथा उसके प्रेसीडेंट ने तुरन्त ही सैनिक कार्यवाहियों को बन्द करने का आदेश भेज दिया, और ज्यों ही सड़कें सैनिक आवागमन के योग्य हुई, त्यों ही कर्नल कीटिंग राघोबा को साथ लेकर सूरत की ओर लौट चला। रास्ते में राघोबा के गम्भीर अनुरोध के कारण कर्नल कीटिंग ने निर्धारित मार्ग छोड़ दिया और सूरत से पचीस मील पूर्व करोद में डेरा डाल दिया। बाद में बम्बई सरकार ने भी ऐसा ही आदेश दे दिया था। यह पत्र परिवर्तन यद्यपि सुप्रीम कांउसिल के आदेश के विरुद्ध था, परन्तु आगे चलकर बंगाल कांउसिल ने भी उसे उचित ही नहीं बुद्धिमत्ता पूर्ण भी माना, क्योंकि यहाँ रह कर पुरन्धर स्थिति मंत्रियों से सन्धि वार्ता चलाने में अधिक सूविधा थी। कर्नल अप्टन भी २८ दिसम्बर को यहाँ पहुँच गया।

हेस्टिंगज अनुभव कर रहा था कि बंगाल की कांउसिल ने बम्बई सरकार के कार्यों में जो हस्तक्षेप किया था, वह उचित होते हुये भी अनावश्यक रूप से उत्तेजनापूर्ण हो गया था, परन्तु ऐक्ट

बनते समय वही सर्वप्रथम व्यक्ति था, जिसने भारत में एक नियंत्रण संस्था की आवश्यकता पर सर्वप्रथम एवम् सर्वाधिक जोर दिया था। उसके विचार से भारत जैसे सुदूरस्थ देश में विभिन्न प्रशासनों के बीच नीति-साम्य रखने के लिए इस प्रकार की एक सत्ता अत्यंत आवश्यक एवम् महत्वपूर्ण थी। बंगाल की कांउसिल का आदेश अब वापस नहीं लिया जा सकता था। गवर्नर जनरल ने सखाराम बापू को एक पत्र लिख कर बता दिया था कि बम्बई सरकार के कार्य ईस्ट इंडिया कम्पनी के आदेशों के विरुद्ध हैं, क्योंकि कम्पनी का सख्त आदेश है कि उसके कर्मचारी न तो किसी युद्ध में और न किसी झगड़े में भाग ले। मेरे स्वामी, इंग्लैंड के बादशाह का आदेश है कि भारत में कम्पनी के जितने भी गवर्नर है, वे किसी भी सन्धि या युद्ध में सम्मिलित होने के पहले मेरी तथा मेरी कांउसिल की आज्ञा प्राप्त कर लें, क्योंकि मैं बादशाह का गवर्नर हूँ। उसने लिखा था कि इसीलिए उसने सभी सम्बन्धित कर्मचारियों को लिख दिया है कि वे युद्ध से विरत हो कर मराठा राज्य के मंत्रियों के यहाँ दूत भेज कर सन्धि कर लें। उस समय की स्थिति यह थी कि यदि बृटिश भारत का गवर्नर जनरल बलपूर्वक एकांगी सन्धि करने पर ही जोर दिये होता तो भी सखाराम बापू तथा नाना फड़नवीस ने उसे प्रसन्नता पूर्वक मान लिया होता।

प्रथम बार के पत्रों को भेज देने के बाद बंगाल की कांउसिल के लिये यह एक सम्मान का प्रश्न बन गया कि चाहे वह अपने हस्तक्षेप की तीव्रता के अनौचित्य को समझ भी गयी हो तब भी बम्बई की सरकार को आज्ञा पालन पर विवश करे और स्वयम् भी उन्हीं पत्रों के मन्तव्य के अनुसार कार्वानुसरण करे। गुजरात की सफलताओं के समाचार से यह सम्भावना हो गयी थी कि शायद पूना में कर्नल अप्टन के पहुँचने के पूर्व ही क्रान्ति हो गयी हो। ऐसी दशा में जिस न्यायपूर्ण सिद्धान्त पर वे चलना प्रारम्भ कर चुके थे, उसी रास्ते पर उन्होंने आगे बढ़ने का निश्चव किया। उन्होंने यह सोच लिया कि उनको पूना को सत्ता से मतलब है, चाहे वह किसी के भी हाथ में हो। इसी निश्चय के अनुसार कर्नल अप्टन को आदेश दिया गया कि पूना में जिस किसी के भी हाथ में सत्ता हो, उसी से सन्धि वार्ता चलायी जाय। वास्तव में स्थिति ऐसी आ पड़ी थी कि बम्बई सरकार तथा गवर्नर जनरल दो विरोधी दलों की तरह काम करने को बाध्य हो गये थे। गवर्नर जनरल एवम् उसकी कांउसिल मंत्रिदल के पक्ष में आ गयी तथा वम्बई सरकार विरोधी दल में जा पड़े। बम्बई सरकार अनुभव करती थी और उसने कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स को यही पत्र भी लिखा और उनका यह लिखना न्यायानुमोदित भी था कि "उन लोगों ने (गवर्नर जनरल तथा उसकी कांउसिल के सदस्यों ने) विना उसकी जांच किये कि मंत्रियों का पक्ष किस सीमा तक उचित है, उनके दल को वैधानिक मान कर काम करना प्रारम्भ किया है।"

इधर मराठा राज्य के मंत्रियों ने तुरन्त ताड़ लिया कि अँग्रेजों की कांउसिलों के मतभेद ने उनके हाथ में कितनी अधिक शक्ति दे दी है। ब्राह्मणों की ऐसी प्रवृत्ति है कि वे हर सहिष्णुता को भ्रमजनित ही मानकर काम करते हैं तथा वे सहिष्णुता के मूल में किसी भी अन्य कारण के होने पर विश्वास ही नहीं करते। वे दी गयी प्रत्येक सुविधा को पराजय का ही परिणाम मानते हैं अतः सन्धि-वार्ता के प्रारम्भ होने पर उन्होंने ऐसी माँगें रखनी आरम्भ कर दिया जो अत्यधिक तो थी ही, अँग्रेजों के लिये अप्रतिष्ठाजनक भी थीं। मराठों की प्रकृति से अनजान बेचारे कर्नल अप्टन ने वही अर्थ लगाया कि मंत्रि दल यही माँगे रख रहा है, जो वह चाहता है। सुप्रीम काउंसिल को यह भ्रम था कि सालसिट और बेसीन बम्बई सरकार के अधिकार में है। कर्नल अप्टन को यह आदेश दिया गया कि वह सालसिट एवम् बेसीन के वैधानिक हस्तान्तरण की मांग करे, साथ ही बम्बई हारबर के

अन्य संलग्न टापुओं को प्राप्त करने का प्रयास करे। उसे यह भी आदेश दिया गया कि भड़ौच की लगान का मराठों वाले भाग के साथ, वह कम्पनी के लिये जिन सुविधाओं की प्राप्ति ऐसी परिस्थितियों में सम्भव हो, सभी की माँग उपस्थित करे।

कर्नल अप्टन के पत्र व्यवहार को देखने से पता चलता है कि उसके शब्दों में निष्ठा एवम् सहिष्णुता का पूर्ण समावेश था किन्तु उसकी सम्पूर्ण योग्यता मराठा ब्राह्मणों के साथ सन्धिवार्ता चलाने के लिये बेकार थी। मराठों ने गवर्नर जनरल की सदाशयता को एकदम भ्रान्त रूप से ग्रहण किया था। जिस सदुद्देश्य से प्रेरित होकर गवर्नर जनरल ने कर्नल अप्टन को सन्धि के लिये प्रेषित किया था, उसका एकदम गलत अर्थ लगाकर मंत्री दल ने अपनी बढ़ी हुई माँगों को बढ़ी हुई धृष्टता के साथ ही दूत के सामने रक्खा। जिस समय कर्नल अप्टन ने सालसिट को अँग्रेजों के अधिकार में बने रहने एवम् वेसीन को भी उनके हाथ में दे देने की बात चलायी तो मंत्री लोग कहने लगे कि यह माँग तो एकदम अनधिकृत एवम् अनुचित है, 'एक ओर तो गवर्नर जनरल बम्बई सरकार के कामों को न्याय विरुद्ध कहता है और दूसरी उसी अन्यायपूर्ण काम के परिणाम को प्राप्त करना चाहता है।' इसका एकमात्र सीधा उत्तर यह था कि सालसिट को इसलिये लिया गया है कि अँग्रेज लोग बम्बई को सुरक्षा के लिये तथा अपने व्यापार वृद्धि के लिये इसकी प्राप्ति को बहुत दिनों से आवश्यक समझते रहे थे। मंत्रिदल भी अपनी बात पर दृढ़ रहा और कहने लगा कि 'हमने युद्ध को इसलिये नहीं बन्द कर दिया कि हम अँग्रेजों से डर गये थे; वरन् इसलिये बन्द कर दिया था कि हमें गवर्नर जनरल की बातों पर पूर्ण विश्वास हो गया था। इस युद्ध के लिये हमने जो विशाल सेना तैयार की है और जो व्यर्थ ही पड़ी हुई है, उसके बल पर हमने अब तक कभी उस मामले को खत्म कर लिया होता।' इस तर्क के साथ उन्होंने कर्नल अप्टन के सामने ये माँगें प्रस्तुत कीं कि १—विद्रोही राघोबा को तुरन्त मराठों को सौंप दिया जाय, २—युद्ध के दौरान में जिन स्थानों पर बम्बई सरकार ने अधिकार कर लिया है, वे सभी मराठों को वापस कर दिये जायँ। इसके बदले में गवर्नर को सदाशयता के कृतज्ञता स्वरूप वे बम्बई सरकार द्वारा किये गये खर्च के रूप में बारह लाख रुपये दे देंगे। अपने तर्कों के समर्थन में धमकी देना शुरू कर दिया और कर्नल अप्टन की सज्जनतापूर्ण बातों को उत्साह हीनता मान लिया। कर्नल ने समझा कि इस प्रकार तो सन्धि होना असम्भव है, और गवर्नर जनरल को लिखे गये अपने ७ फरवरी के पत्र में यहाँ की स्थिति एवम् अपने विचार का पूर्ण परिचय दे दिया। इस पत्र को पाते ही गवर्नर जनरल एवम् उसकी काउंसिल ने तुरन्त ही निश्चय किया कि राघोबा को पूरी मदद दी जाय। सैनिकों को रवाना होने की तैयारी के लिये आदेश दे दिया गया। बम्बई के लिये आवश्यक खर्चों के लिये खजाना भेजने की तैयारी की गयी। मद्रास सरकार को बम्बई के लिये सेना रवाना होने का आदेश भेज दिया गया। राघोबा को आवश्यक सन्देश भेज कर निजाम अली तथा हैदर अली को भी आवश्यकतानुसार पत्र लिखे गये। मूँदाजी भोंसले, महादजी सिंधिया तथा तुकाजी होल्कर को भी पत्र लिखकर प्रार्थना की गयी कि यदि वे राघोबा का पक्ष किन्हीं कारणों से न ले सकें तो कम से कम वे आगामी युद्ध में निष्पक्ष ही रह जायँ।

बंगाल के प्रेसीडेंट तथा उसकी काउंसिल के निश्चय का पता राघोबा को भी करीब-करीब उसी समय मिला, जिस समय बम्बई सरकार को। इस समाचार ने उसे अत्यधिक उत्साह प्रदान किया। इधर मंत्रिदल ने देखा कि उनकी अत्यधिक माँगों पर दृढ़ रहने का परिणाम भयंकर हो सकता हैं, तो वे झट से कर्नल अप्टन द्वारा प्रस्तावित माँगो पर राजी हो गये, और जब तक सन्धिवार्ता के भंग होने का समाचार ले जाने वाला पत्र कलकत्ता पहुँचे, उसके पहले ही पुरन्धर में दोनों दलों ने

सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिया। इस सन्धिपत्र पर पहली मार्च को हस्ताक्षर हुआ। इसमें उन्नीस धारायें थी, जिनमें उभय पक्ष की सम्मति से बाद में एक निकाल दी गयीं तथा एक अन्य धारा जोड़ दी गयी। गवर्नर जनरल की ओर से कर्नल अप्टन ने तथा मराठा राज्य की ओर से सखाराम बापू तथा नाना फड़नवीस ने सन्धि की। सन्धिपत्र में उक्त दो मंत्रियों के नाम न लिखे जाकर 'राव-पंडित-प्रधान' लिखा गया तथा उसमें पेशवा का नाम कहीं भी नहीं आया।

इस सन्धि का मुख्य उद्देश्य था कि ईस्ट इंडिया कम्पनी एवम् मराठों के बीच पूर्ण शान्ति एवम् सौजन्य बना रहे। सालसिट को छोड़ देना या अपने अधिकार में बनाये रखना गवर्नर जनरल की इच्छा पर छोड़ दिया गया परन्तु यह निश्चय हो गया कि यदि गवर्नर जनरल ने सालसिट छोड़ दिया तो पेशवा की सरकार उसके बदले में तीन लाख वार्षिक लगान का भूभाग अँग्रेजों को दे देगा। यह सम्भावना तो थी नहीं कि गवर्नर जनरल तीन लाख वार्षिक के बदले में सालसिट छोड़ देगा। गवर्नर जनरल द्वारा सालसिट को न छोड़ने का फैसला कर दिये जाने पर नाना फड़नवीस को बहुत दुःख हुआ और उसने बड़ी ही निराशापूर्वक कहा कि 'मि० हेस्टिंग्ज के इस फैसले से उनकी न्याय-निष्ठा के प्रति हमारे विश्वास को बहुत आघात पहुँचा है। हमने काउंसिल तथा गवर्नर जनरल के सद्विवेक पर पूरा विश्वास रख कर ही इस मामले को उनके पास भेजा था।' सन्धिपत्र में लिखा गया है कि 'ईस्ट इंडिया कम्पनी को अपना दोस्त मानकर भड़ौंच नगर तथा समीपस्थ भूभागों पर मराठों के समस्त स्वत्व को हमने उनके हक में छोड़ दिया, जिसकी आय लगभग तीन लाख रुपये वार्षिक है।' मराठों ने अँग्रेजों को १२ लाख रुपये दिये जिससे युद्ध में किया गया बम्बई सरकार का खर्च पूरा हो जाय। यदि यह सिद्ध हो जाय कि फतहसिंह को बिना पेशवा की आज्ञा के उसे हस्तान्तरित करने का कोई अधिकार न था वे सभी भूभाग मराठों को लौटा दिये जायँ, जो अँगरेजों को फतह सिंह भोंसले द्वारा दिये गये थे। बम्बई सरकार तथा राघोबा के बीच हुये सन्धिपत्र को गलत ठहरा दिया गया। अँगरेजी सेना को अपने स्थान से हटा लेने एवम् एक मास के भीतर ही राघोबा की सेना को भंग कर देने का निश्चय किया गया और यदि राघोबा अपनी सेना को भग करना स्वीकार न करे तो अँगरेज उसे कोई मदद न दें। यदि राघोबा सन्धि की शर्तो के अनुसार काम करे तो पेशवा की सरकार उसके लिये एक हजार सवार तथा दो सौ घरेलू कर्मचारियों की व्यवस्था कर देगी और उसके दूसरे खर्चों के लिये पचीस हजार रुपया मासिक दिया करेगी परन्तु वह रहेगा गोदावरी तट पर स्थित कोपरगाँव में। यह विशेष रूप से निश्चय किया गया कि भविष्य में अँगरेजी सरकार न तो राघोबा को न अन्य किसी ऐसे मराठा सर्दार को कोई मदद देगी, जो कभी मराठा राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने का प्रयास करे। सन् १७३९ एवम् १७५६ की शर्तों को पक्का कर दिया गया। यह भी निश्चय किया गया कि यदि इन दोनों पक्षों के समुद्र तट पर दोनों में से किसी का जहाज डूबे, तो उसके बचाये गये यात्रियों व सामनों को वास्तविक मालिक को सौप दिया जायगा। राघोबा के चार ऐसे साथियों को छोड़कर सभी को क्षमा कर दिया गया, जो नारायण राव की हत्या में शामिल होने के दोषी माने जाते थे।

पुरन्धर की सन्धि की धाराओं का समाचार जानकर बम्बई सरकार की निराशा सीमा पार कर गयी। उनको लगा कि शक्ति की स्पर्द्धा में पड़ कर सुप्रीम कौंसिल ने उसके स्वार्थ एवम् सम्मान पर करारा आघात किया है। प्रतिवाद करने का कोई अधिकार नहीं। इसलिये उनके सामने एक ही रास्ता खुला था कि वे अपने कार्यालय के प्रपत्रों में में अपनी भावना को स्पष्ट रूप से रक्षित कर दें। इस प्रकार के कार्य से उनका यह उद्देश्य भी पूर्ण होता था कि वे कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के

समक्ष अपनी आपत्तियों को रख सकें। जिस प्रकार से उसके कार्यों की निन्दा की गयी थी, उससे उनका आक्रोश स्वाभाविक ही था। उनको सत्ता को जिस प्रकार स्थागित कर दिया था, उस पर उनका क्रोध स्वाभाविक ही था। वे भी सन्धि की प्रत्येक धारा पर आपत्ति करने को तुल गये। उन्होंने यह भी कहना शुरू कर दिया कि मराठों ने शारीरिक यातना का भय दिखाकर कर्नल अप्टन से सारी बातों को मनवा लिया है अन्यथा अँगरेजों के स्वार्थ की इतनी अधिक उपेक्षा वह कदापि न करता। उनकी प्रश्नावली इस प्रकार थी :—यह राव पंडित प्रधान कौन है? उसका नाम क्यों नहीं दिया गया? यदि कर्नल अप्टन को उस शिशु पेशवा की वैधानिकता पर विश्वास था, जिसे नारायणराव का पुत्र कहा जाता है, तो उसने अपने विश्वास के कारणों पर क्यों प्रकाश नहीं डाला? यदि उसकी वैधता में पूर्ण विश्वास नहीं था तो राघोबा को पेशवा पन से सर्वथा क्यों हटा दिया गया?

अति प्रारम्भ काल से ही राघोबा के समझ में ही नहीं आ रहा था कि आखिरकार गवर्नर जनरल ने उसके मामले में ही हस्तक्षेप क्यों किया। बहुत कुछ सोचने पर भी हस्तक्षेप का वास्तविक कारण उसकी समझ में ही नहीं आया। अन्त में उसकी सभझ में यही आया कि सूरत के सन्धिपत्र के अनुसार अँगरेजों को जो कुछ उसकी ओर से दिया था, वह इतना कम था कि उससे गवर्नर जनरल की सन्तुष्टि नहीं हो सकी, और इसीलिये उसने हस्तक्षेप किया। यह मानकर उसने बँगाल के गवर्नर जनरल तथा उसकी काँउसिल के सम्मुख एक नया प्रस्ताव रक्खा। उसके नये प्रस्ताव में इस प्रकार की शर्तेथी कि सूरत की सन्धि से अँगरेजों को जो कुछ मिला है, उसे तो अँगरेज अपने अधिकार में रक्खें ही साथ ही, वह इस नये प्रस्ताव के अनुसार विजयदुर्ग (धेरिया) को छोड़कर समूचा कोकण प्रदेश दे देगा तथा घाट के दर्रों में से एक दर्रे पर अँगरेजो को फौज रखने की स्वीकृति दे देगा कम्पनी से दस लाख रुपये वार्षिक का ऊनी कपड़ा तथा अन्य सामान खरीदेगा और उस माल की पूरी लागत का पन्द्रह प्रतिशत मूल्य वह अग्रिम रुप में दे दिया करेगा, वे दोनो मिल कर निजाम अली को परास्त करेंगे। इस प्रकार उसने अनेक सुविधाओं को गिनाया था परन्तु चूँकि यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया गया था अतः उनकी गणना करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। हाँ एक बात ऐसी है जिसको बताना आवश्यक है और वह यह कि राघोबा ने प्रस्ताव किया था कि वह महाराष्ट्र में भी तथा दक्षिण में भी जितनी जागीरें हैं उन सब के लगान का यहाँ तक कि होल्कर सिंधिया तथा गायकवाड़ की हिन्दुस्तान एवम् गुजरात प्रदेश की जागीरों को भी लगान का दस प्रतिशत वह अँगरेजों को दे दिया करेगा। इस प्रस्ताव को मान लेने से अँगरेजों की स्थिति इन जागीरदारों के समक्ष सरदेशमुख की हो जाती।

पुरन्धर की सन्धि का समाचार सुनकर राघोबा ने प्रचारित किया कि इस संधि की अपने व्यक्तित्व से सम्बन्धित धाराओं को मानने के बजाय वह अपने बल पर ही युद्ध चलाना अधिक पसन्द करेगा। उसने भूठमूठ ही यह भी प्रचारित किया कि उसके पास प्रतिनिधि भुवन राव तथा धौंसा * के पास से सन्धि प्रस्ताव आरहे हैं। महादजी सिंधिया वास्तव में उसके पास प्रायः दूत भेज रहा था और राघोबा का साथ देने की बातें कर रहा था। सिंधिया राघोबा का कोई मित्र नहीं था। उसके इस प्रकार के व्यवहार के दो कारण थे। पहला यह कि वह सखाराम बापू से शत्रुता मानता था और इसिलिये उसे नीचा दिखाना चाहता था। दूसरा कारण यह था कि राघोबा को निरन्तर

---

* निजाम का एक अफसर था, जिसका नाम था इब्राहीम वेग, जफरुद्दौला साबित जंग। इसी अफसर का उपनाम था 'धौंसा'

उभाड़े रहकर वह दोनों ब्राह्मणो के झगड़े में अपनी स्थिति मध्यस्थ की सी बनाना चाहता था। दोनों के बीच में मध्यस्थ बनने की आकांक्षा सिधिया के मन में चिरदिनों से थी। पुरन्दर की सन्धि की धाराओं के लागू हो जाने के बाद उसने राधोबा से नियमित बार्ता शुरु की। इसी बात में केवल इसलिये रत था कि वह सखाराम बापू को घबड़वा देना चाहता था। राधोबा ने बातें तो सबकी सुना किन्तु अबकी बार उसने धोखा नहीं खाया क्योंकि वह बराबर देख रहा था कि हैदरअली के अतिरिक्त उसके किसी भी भारतीय मित्र से उस संकट के समय उसकी कोई सहायता नहीं की थी। केवल हैदरअली ने भेंट के तौर पर अस्सी हजार रुपया उसके पास भेजा था। †

बम्बई सरकार अपने दृष्टिकोण को आगे बढ़ाने वाली तथा उसके द्वारा कही गई बातों को प्रमाणित करने वाली बातों की खोज में निरन्तर रहती थी। अपनी जातिगत सहयोग की भावना को त्याग कर बम्बई सरकार ने दूसरा ही रास्ता पकड़ा। बजाय इसके कि वे सुप्रिम कांउसिल के आदेश की आन्तरिक भावना को समझकर उसके मन्तव्य के अनुसार काम करते और अपने से श्रेष्ठ अधिकारी के आदेश को मान्य समझते, उन्होंने वही रास्ता पकड़ा जिससे उनकी अप्रतिष्ठा करने वालों की बातों की असारता तथा उनकी भ्रान्त धारणाओं का भंडाफोड़ हो जाय। पुरन्धर की सांधे की धाराओं को लागू होने में जितनी ही कठिनाइयाँ सामने आतीं, उतनी ही प्रसन्नता बम्बई सरकार के अधिकारियों को होती। अपनी इस प्रकार की भावनाओं को वे प्रकट तो नहीं कर पाते थे, परन्तु उन्हें छिपाने का भी कोई विशेष प्रयास नहीं करते थे।

पानीपत के युद्ध के आठ नौ वर्षो के बाद एक व्यक्ति प्रगट हुआ था और वह लोगों से कहने लगा था कि वह सदाशिवराव भाऊ है। माधवराव के जीवन काल में ही उसे बन्दी बना लिया था और थोड़े थोड़े दिनों के लिये कई स्थानो में रक्खा जाकर अन्त में रामचन्द्र नामक परांजपे को सुपुर्द कर दिया गया जों कोंकण में रत्नागिरी का सूबेदार था। जिस समय पूना में मतभेद का जन्म हुआ पेशवा राज्य के मुखियों में दो दल हो गये, उसी समय से पराजपे ने भी अपनी स्वतंत्र स्थित बना लेने के का स्वप्न देखना शुरू कर दिया था। उस स्वप्न पूर्ति के साधन रुप में उसका पहला कदम यह हुआ कि उसने सदाशिवराव के छद्मवेशी को छोड़ दिया और स्वयं भी यही प्रचारित करना प्रारम्भ कर दिया कि वह वास्तव में सदाशिव राव भाऊ ही हैं जिसे विद्रोही मंत्रियो ने अपने प्रभाव को बनाये रखने के लिये बन्द कर दिया था। ऐसा कहा जाता है कि वह व्यक्ति हिन्दुस्तान का कनौजिया ब्राह्मण था और सम्भा जी के दरबार में रहने वाले कवि कलुशा का वंशज था। उसकी कहानी का लोगों पर विश्वास पड़ने लगा। उसने बम्बई सरकार को अपना वकील भेजा और पत्र द्वारा उसके पास कुछ प्रस्ताब भी भेजा। बम्बई सरकार ने उसकी बातों पर विश्वाश कर लिया उसे ही वास्तविक सदाबा (सदाशिव को अङ्गरेज इसी नाम से पुकारते थे) मानकर प्रेम पूर्वक उसके प्रस्तावों को सुना क्योंकि उन्हें आशा थी कि शायद शदाबा के ही विद्रोह से उनकी इच्छायें पूर्ण हो सकें।

---

† कहा जाता है कि राघोवा की मदद के लिये हैदरअली ने काफी रुपया भेजा था, परन्तु बम्बई सरकार के कागजात में केवल ८०,००. रुपये पाने की बात कही गयी है उस कठिन परिस्थिति में राघोवा को हैदरअली ने अगर और भी रुपया दिया होता तो असम्भव था कि बम्बई सरकार को उसका पता न चलता, क्योंकि उन दिनों बम्बई सरकार ही राघोवा की एक मात्र मित्र थी।

सन्धि के दिन से राघोबा को कहा जा रहा था कि एक मास के अन्दर ही अपनी सेना को भंग कर दे। यह समय बाद में बढ़ाया भी गया, परन्तु जब राघोबा ने देखा कि गवर्नर जनरल अपनी अस्वीकृति पर ही दृढ़ है, तो उसने बम्बई सरकार से शरण की मांग की। अंगरेजों ने अपनी रक्षा में उसे सूरत में रहने को कहा, जहाँ अपने निजी सामान तथा दो सौ घरेलू सदस्यों व कर्मचारियों के साथ जाकर वह रहने लगा। सूरत से ही उसने इंगलैंड स्थित कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के पास अपील भेजा और जिस प्रकार बाजी राव ने मुगल बादशाह को पत्र लिखा था, उसी प्रकार उसने भी इंग्लैंड के बादशाह को पत्र लिखा। कर्नल अप्टन ने एक आपत्ति उपस्थित की कि राघोबा को शरण देना पुरन्धर की सन्धि की धाराओं के विरुद्ध है। बम्दई सरकार ने कहा कि इससे और पुरन्धर की सन्धि से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। उन्होंने पिछले अक्टूबर में भेजे गये बंगाल कांउसिल के पत्र का हवाला दे कर अपने कार्य के औचित्य को सिद्ध किया, जिसमें आवश्यक होने पर राघोबा को शरण देने का निर्देश था। आवश्यकता का तात्पर्य था कि यदि राघोबा की जान को कोई खतरा हो। बम्बई सरकार ने बड़े ही दृढ़ शब्दों में कहा कि शायद ही कोई ऐसी बड़ी विवशेता आ सकती है, जिसमें हम राघोबा को उसके निर्दयी शत्रुओं के हाथों छोड़ सकें। उन्होंने यह भी लिखा कि कर्नल अप्टन को एशियाई मंत्रियों का हाल ज्ञात नहीं है। वे जब तक राघोबा को मार नहीं लेंगे, उनका भय दूर नहीं होगा। बम्बई सरकार का कहना था कि सामान्य मानवता के नाम पर, राष्ट्रों के कानून के नाम पर और नैतिकता के नाम पर हमने राघोबा को शरण देना उचित माना है, भले ही हमें बंगाल से ऐसी आज्ञा न मिले।

राघोबा को सेना के भंग किये जाने के लिए जो अवधि निर्धारित की गई थी, उसके कुछ दिन बाद उसकी सेना ने पड़ाव डाला और कहने लगे कि वे सब राघोबा से अपना पिछला वेतन लेने आये हैं। हरीपन्त फड़केने पूना को एक पत्र लिखा जिसमें उसने लिखा कि उसका इरादा था कि राघोबा को सेना पर आक्रमण कर दे, परन्तु वह सेना ऐसे ढंग से पड़ी है, कि प्रतीत होता है कि आवश्यकता पड़ने पर अंगरेज उसकी मदद करेंगे। बम्बई सरकार ने भी मराठा सेना के पास में ही होने का बहाना करके अपनी क्षेत्रीय सेना को सूरत तथा भड़ौंच में निवास दे दिया।

इस विषय में कर्नल अप्टन की शिकायत तथा पेशवा राज्य के मंत्रियों की धमकी भी बम्बई सरकार को अपने रास्ते से न हटा सकी। कर्नल अप्टन की शिकायतों पर तो उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया और मंत्रियों की धमकी को उन्होंने सारहीन समझा। उन्होंने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि गवर्नर जनरल का अंगरेज राजदूत मंत्रियों को धमकियाँ सुन रहा है कि पुनः युद्ध शुरू होने की स्थिति में मराठा सेना कम्पनी–शासित सभी स्थानों को जलाकर खाक कर देगी। इस प्रकार की सहन शक्ति न केवल अप्टन वरन् ससूची अंगरेज जाति के लिये अपमान जनक है। बम्वई सरकार का कहना था कि कर्नल अप्टन की भूल के कारण ही मंत्रियों को यह कहने का हौसला हुआ है कि जिस सदाशयता के साथ अंगरेजों ने सन्धि की थी, उसी सदाशयता के साथ वे उसका पालन शुरू से ही नहीं कर रहे हैं।

बम्बई सरकार ने जिस भाषा में अपने राघोबा को शरण देने के कार्य का समर्थन किया था वह सर्वथा प्रशंसनीय थी। बम्बई सरकार द्वारा की गई कार्यवाहियों के समर्थक कांउसिल में भी थे, परन्तु कांउसिल का बहुमत बम्बई सरकार के इस कार्य का भी आलोचक था और उसके उस ढंग का भी, जिसके कारण वह बंगाल की सुप्रीम कांउसिल के विरोध में खड़ी हो गयी थी।

मि० हेस्टिग्ज ने अपने दूत के क्रिया कलापों का तो समर्थन किया, पर उसने पुरन्धर की

सन्धि को स्वीकार नहीं किया। उसकी राय थी कि सन्धि पत्र में उससे भी अच्छी धाराओं को समाविष्ट किया जा सकता था। उसकी कितनी ही धारायें अस्पष्ट थीं। यद्यपि मराठा दर्बार के मंत्रियों ने उन अस्पष्ट धाराओं का तात्पर्य समझाने के लिये कितनी ऐसी भी बातें डालीं, जो उनके तात्पर्य की विरोधी थीं, फिर भी गवर्नर जनरल ने सन्धि को स्वीकार नहीं किया। इसका परिणाम यह हुआ कि यदापि युद्ध चालू नहीं हुआ, परन्तु सन्धि पक्की न हो सकी।

जिस समय मराठों एवम् अंगरेजों के बीच इस प्रकार की अनिश्चय की स्थिति वर्तमान थी, उसी बम्बई सरकार को इंग्लैंड से २० अगस्त को कोर्ट आव डाइरेक्टर्स का एक पत्र मिला, जिस पर ५ अप्रैल सन् १७७६ ई० को तिथि पड़ी हुई थी। इस पत्र में कोई आव डाइरेक्टर्स ने सूरत की सन्धि को ही मान्य ठहराया था और लिखा था कि हर हालत में बम्बई सरकार द्वारा प्राप्त जिलों को अपने अधिकार में रक्खा जाय। यह भी पता भारत के अंगरेजों को था कि इस पत्र के भेजने के पूर्व ही मंत्रिदल से सन्धि करने के लिए कर्नल अप्टन की नियुक्ति का पता भी डाइरेक्टरों को लग चुका था, बंगाल के प्रेसीडेंट तथा उसकी कांउसिल ने एक प्रस्ताव पास किया कि जिन जिलों का अधिकार हस्तान्तरित नहीं किया गया है, उन पर अधिकार किये रहना चाहिये। कांउसिल का यह प्रस्ताव एक प्रकार से युद्ध के पुन: प्रारम्भ कर देने की घोषणा ही था। कांउसिल के भी बहुत से सदस्यों ने कहा कि इस प्रस्ताव की स्वीकृति से काफी गड़बड़ी मचने की सम्भावना है, जिसमें अपनी ही सुरक्षा के विचार से अंगरेजों को भी भाग लेना ही पड़ेगा। उन्होंने कहा कि यह अच्छा ही हुआ कि इंग्लैंड से हमारे द्वारा किये गये कामों की स्वीकृति मिल गयी है। प्रस्ताव में कहा गया कि इस बार पूर्ण तैयारी के साथ काम करना चाहिये। जिस समय पहली बार इस विषय पर बातचीत हुई थी, उस दिन मि० ड्रेपर कांउसिल में उपस्थित नहीं थे। उन्होंने कोर्ट आव डाइरेक्टर्स के पत्र का एक अलग अर्थ ही लगाया और सरकार को समझा बुझा कर अपने प्रस्ताव को बदल देने को राजी करना चाहा। मि० ड्रेपर का कहना था कि कोर्ट आव डाइरेक्टर्स का यह मत था कि जब तक कर्नल अप्टन सन्धि वार्ता करते रहें तब तक इन जिलों पर अधिकार रक्खा जाय, परन्तु जब एक बार सन्धि (पुरन्धर) हो चुकी और वह सन्धि गवर्नर जनरल तथा उसके आदेश से की गई हो तो इसका कोई अर्थ नहीं होता कि सन्धि की शर्तों को पूरा न किया जाय।

कोर्ट आव डाइरेक्टर्स को भारत में एक सर्वोच्च सत्ता युक्त कांउसिल के महत्व का पूर्ण ज्ञान था, वे इसकी सुविधाओं को भी जानते थे, परन्तु पार्लियामेंट के नये कानून द्वारा जो उन पर नियंत्रण रखने का विधान रक्खा गया था उसका भी पर्याप्त प्रभाव डाइरेक्टरों के मस्तिष्क पर पड़ा था। वास्तव में सूरत की सन्धि द्वारा मिले हुये जिलों को देखकर तथा उसके मूल्य को देख कर डाइरेक्टर्स मतिभ्रम हो गया था, और वे नहीं जान पा रहे थे कि बम्बई सरकार की तरह देशी रजवाड़ों के मामले में टाँग अड़ाने से ईस्ट इन्डिया कम्पनी को किस प्रकार के झगड़े में फँस जाना पड़ेगा। वास्तव में कोर्ट आव डाइरेक्टर्स को सुप्रीम कांउसिल का पक्ष लेना चाहिये था। इसके बदले में उन्होंने बम्बई सरकार का पक्ष लिया और उन्हें उनके अवैधानिक कार्यवाही के प्रति और भी उत्साहित कर दिया। इस प्रकार के कार्यों से ही अनुशासन हीनता को प्रोत्साहन मिलता है।

वर्षा काल का अन्त होते होते नकली सदाबा के साथ बीस सहस्र व्यक्ति हो गये और उसने कोंकण के बीस किलों पर अधिकार कर लिया। मराठों में से कितने ही असामाजिक तत्वों ने उसे वास्तविक सदाशिव राव भाऊ ही मानने लगे। बम्बई सरकार भी इसी प्रकार उसे वास्तविक मानने लगी। उसने कई प्रकार से इस व्यक्ति को प्रोत्साहन दिया। यद्यपि बम्बई सरकार ने उसके द्वारा किये

गये विद्रोह में कोई भाग नहीं लिया, फिर भी उन्होंने अपने यहाँ के डाक्टरों में से एक को आज्ञा दे दी कि वह हमेशा सदाबा के साथ रहे और फोर्ट विक्टोरिया के व्यापारिक अध्यक्ष मि० डिक ने उसके सामने आकर सम्मान प्रदर्शित किया। कोंकण के अधिकांश किलों पर अधिकार करके अक्टूबर के महीने में वह घाट के इस पार आया। भोर घाट पर उसे रोका गया और अस्थायी तौर पर उसे रुक जाना पड़ा। परन्तु तुरन्त बाद ही उसने दर्रे पर हमला करके अधिकार कर लिया। शीघ्र ही राजमाछी के किलेदार ने अधीनता स्वीकृति का प्रस्ताव किया। मंत्रियों ने भी एक झूठा सन्धि का प्रस्ताव उसके पास भेजा। इस समाचार को प्राप्त कर नकली सदावा बहुत चमत्कृत हुआ। अभी उसका आश्चर्य शान्त भी न हुआ था कि सिंधिया के एक अफसर रामजी पटेल तथा भिऊ राव फाँसे ने राजमाछी के समीप उस पर अचानक आक्रमण कर दिया और उसकी सारी सेना कोंकण में लौट जाने को वाध्य हो गयी एवं सिंधिया की सेना ने वहाँ भी उसका पीछा किया। विद्रोहियों में से कुछ ने थाना के किले की दीवाल के पास शरण लिया और वह स्वयम् वालापुर में जहाज पर बैठ कर बम्बई भाग गया। वहाँ उसे उतरने की आज्ञा मिल गयी होती, परन्तु चूँकि मि० हार्नबी इस समय सालसिट में थे और वह भी चाहता था कि अपनी सेना को छोड़ने के पूर्व वह एक प्रयास और कर ले, इसीलिए उसने म्वयम् ही बम्बई में उतरने से क्षमा माँग लिया और कोलावा की ओर चला गया एवं अंगरेजों से कह गया कि वह लौटती वार बम्बई में उतरेगा। कोलाबा पहुँचने पर रघू जी आँग्रे ने उसे पकड़ लिया। बम्बई सरकार ने एक प्रार्थना पत्र भेज कर उसे छुड़ाना चाहा मगर उसे सफलता नहीं मिली। आंग्रे उसे वन्दी वना कर पूना ले गया जहाँ उसे हाथी के पैरों तले कुचलवा कर मार डाला गया। *

वम्बई सरकार ने नकली सदाशिव के साथ जो मित्रता पूर्ण व्यवहार किया था, पेशवा के मंत्रियों ने उसके विरुद्ध आवाज उठाया था, परन्तु जब उन्हें यह भी समाचार मिल गया कि ११ नवम्बर को रघुनाथ राव बम्बई पहुँच गया है और अंगरेजों ने उसे दस हजार रुपये मासिक की पेंशन दी है तो उन्होंने बम्बई सरकार के इस काम का प्रबल विरोध किया। अगस्त के महीने में कर्नल अप्टन के माध्यम से राघोबा के सामने यह प्रस्ताव रक्खा गया था कि वह पाँच लाख का सालीना पेंशन लेकर बनारस में रहे मगर राघोबा ने उस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया था ऐसा प्रतीत होता

---

* पूना के ब्राह्मणों में इस सम्बन्ध में दो कहानियाँ बताते हैं और इन दोनों कहानियों की सृष्टि इसलिये की गयी है कि वे जनता की राय में ब्राह्मण के दोषी न बनें। एक का कहना है कि नकली सदाशिवराव ब्राह्मण होकर पेशे से स्वर्णकार था इसलिये ब्राह्मण का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरी कहानी के अनुसार कैदखाने में ही अल्प परिमाण में तथा अस्वास्थ्यकर भोजन करने से नकली सदाशिव की मृत्यु हो गयी और तव जनता को भ्रम में डालने के लिये बन्दीगृह में पड़े हुए एक स्वर्णकार को निकाला गया और उसी को नकली सदाशिवराव कह कर उसे हाथी के पैरों से कुचलवा कर मरवा डाला गया। कहते हैं कि महाराष्ट्र में ब्राह्मण हत्या का दोष अमिट है। भवानी ने शिवाजी को वरदान दिया था कि उसका राज्य सत्ताईस पीढ़ियों तक चलेगा। एक बार दो ब्राह्मणों को शिवाजी के सामने लाकर कहा गया कि ये शत्रु के गुप्तचर थे। शिवाजी ने अपने अचूक निशाने के बल पर उनके माथे पर लगे हुए तिलक पर ही निशाना लगा कर उन्हें मार डाला। कहते हैं कि इन्हीं ब्रह्म-हत्याओं के दोष से भवानी ने अपने द्वारा दिये गये वरदान की शक्ति को कम कर दिया और शिवाजी का राज्य स्थायी न हो सका।

है कि उसने सूरत केवल इस विचार से छोड़ा था कि वह किसी भांति नकली सदाशिव से मिल जाय और नये सिरे से फिर विद्रोह का संगठन करे, परन्तु बाध्य हो कर उसे तारापुर के किले में शरण लेनी पड़ी और तब हार कर।उसने कम्पनी के एक लड़ाकू जहाज के कमाण्डर से प्रार्थना किया कि वह उसे बम्बई पहुँचा दे। कमाण्डर ने उसकी प्रार्थना को मानना ही ठीक समझ कर उसे बम्बई पहुंचा दिया।

अन्त में कर्नल अप्टन को बंगाल लौटने का आदेश हुआ और बम्बई सरकार को लिखा गया कि वह पूना दर्बार में अपना दूत भेज दे। बम्बई सरकार ने मि० मोस्टिन को इस काम के लिये चुना। पूना वालों ने मि० मॉस्टिन की नियुक्ति का विरोध किया, क्योंकि उनकी राय थी कि इसी व्यक्ति की प्रेरणां से सालसिट पर अधिकार किया गया था और इसीलिए वह मराठों का शत्रु था। मंत्रियों के विरोध की कुछ भी पर्वाह न करते हुये मि० मॉस्टिन को पूना भेज दिया गया।

सन् १७७७ ई०

मि० मोस्टिन की राय थी कि पूना के मंत्रियों में इतनी सामर्थ्य थी कि वे पूना में अपना शासन चला सकते थे अतः वृटिश सरकार का यही प्रयास होना चाहिये कि वह तब तक इनके साथ निर्वाह करती रहती जब तक वे सत्ता संभालने में समर्थ न बने रहते। ऐसा प्रतीत होता है कि मोस्टिन की दृढ़ इच्छा थी कि सन्धि की सभी शर्तें उचित रूप से कार्यान्वित कर ली जायँ, परन्तु मराठा मंत्री पहले से हो उसके प्रति दुर्भावना रखते थे। उधर मोस्टिन भी अपने पद की प्रतिष्ठा बनाये रहने को कृत संकल्प था। वह मार्च के मध्य में पूना पहुँचा और तुरन्त ही सन्धि की विभिन्न धाराओं पर वार्तालाप प्रारम्भ कर दिया। ये धारायें सन्धि पर हस्ताक्षर होने के समय से ही ज्यों की त्यों पड़ी थी।

सन्धिपत्र में लिखा गया था कि "पूरे तीन लाख रुपयों का प्रदेश" अंग्रेजों को दे दिया जायगा। अंग्रेजों ने उसका यह अर्थ लगाया था कि उन्हें जो भी भूभाग मिलेगा, उसकी वार्षिक लगान तीन लाख रुपये होगी। 'पूरे' अर्थ को प्रगट करने के लिये फार्सी भाषा के 'कमाल' शब्द को व्यवहृत किया गया था। कमाल लगान सम्बन्धी विषय का एक पारिभाषिक शब्द है, जिसके कई अर्थों में से एक यह भी है कि किसी भी भूमि पर पिछले वर्षों में लगायी गयी उच्चतम लगान। मंत्रिदल कमाल शब्द के इसी अर्थ पर दृढ़ था। उधर बम्बई सरकार चाहती थी कि उसे कुछ वर्षों की लगान का औसत तीन लाख रुपये की लगान का भूभाग चाहिये।

एक धारा फतह सिंह गायकवाड़ के मामले से भी सम्बन्धित थी। मंत्रियों ने फतह सिंह को समझा-बुझाकर यह धोषित करने पर राजी करना चाहा कि वह न केवल पेशवा के आधीन ही था, वरन् उसकी पूर्व आज्ञा के बिना उसे कुछ भी हस्तान्तरित करने का अधिकार नहीं था। वह मुख प्रधान की अनुमति के बिना किसी से सन्धि भी नहीं कर सकता था। फतह सिंह ने अधीनता तो स्वीकार कर लिया, परन्तु मंत्रियों के प्रति थोड़ा अविश्वास होने से वह शेष बातों पर चुप हो गया। उसने बम्बई सरकार से अपने द्वारा दिये गये क्षेत्रों की वापसी की मांग की, परन्तु मंत्रियों की इच्छा के कारण नहीं, बल्कि इस कारण कि राघोबा ने सन्धि का पूर्ण पालन नहीं किया था। कुछ अन्य धारायें भी विवादग्रस्त बनी रहीं। इसी समय मंत्रियों ने राघोबा को पांच लाख वार्षिक की पेंशन लेकर वनारस में रहने को कहा, परन्तु आगे और भी बाधायें सम्मुख आ गयीं।

पुरन्धर की सन्धि से पेशवा के मंत्रियों की स्थिति पर्याप्त सुविधापूर्ण हो गयी थी। नकली

१७७६ ई०]

सदाशिव राव भाऊ द्वारा किये गये विद्रोह को दबा देने के बाद उनकी स्थिति को और बल मिला। अब उनकी स्थिति पर्याप्त स्थिरता पर आ गयी थी। उन्होंने भिऊराव यशवन्त फांसे के अधीन एक सेना कोंकण की ओर भेजा, जिसने शीघ्र ही उन सब दुर्गों पर अधिकार जमा लिया, जिन पर नकली सदाबा का अधिकार हो गया था। मराठों की स्थिति दक्षिण में अवश्य ही खराब हो रही थी। तुंगभद्रा के दक्षिण मे स्थित पेशवा के सभी जिलों को हैदरअली ने ले लिया था। वेलारी पहले वसालत जंग के अधिकार में था, उससे मराठों ने ले लिया था। हैदरअली ने षड्यंत्र करके इसे भी ले लिया। मुराव राव घोरपड़े को अपमानित करके हैदरअली ने गूती पर भी अधिकार कर लिया। मुराव राव एक अस्वास्थ्य कर पहाड़ी स्थान में चला गया और वहीं मर गया। राघोबा का समर्थन करने का बहाना लेकर हैदर अली कृष्णा नदी के दक्षिण के सभी मराठा क्षेत्रों को ले लेना चाहता था। सन् १७७६ ई० तक उसने सावनेर तक का भूभाग ले भी लिया था, परन्तु वर्षा काल के आ जाने के कारण उसने अपनी सेना के अधिकांश भाग को तुंगभद्रा के उस पार उतार ले गया। मंत्रियों ने कुणीर पन्त पटवर्द्धन के साथ हैदर अली को भगा देने के लिये एक सेना भेजा, जो हैदर अली के मुकाबले में हार गयी और उप सेनापति पांडुरंग पटवर्द्धन हैदर अली के कर्मचारी मु० अली तथा हैदर अली के पास रहने वाले राघोबा के एजेन्ट बाजी पन्त बरवे के हाथों बन्दी हो गया। बाजी पन्त बरवे के अधीन एक सैनिक दस्ता भी रहता था, जो हैदर अली के सहयोग में काम करता था। मानसून के अन्त में निजाम अली की सेना उसके अफसर इब्राहीम वेग (धौंसा) के सेनापतित्व में तथा पूना की सेना परशुराम भाऊ पटवर्द्धन की अध्यक्षता में हैदर अली के मुकाबले के लिए संयुक्त रूप से चलीं। धौंसा को हैदर अली ने रिश्वत देकर मिला लिया और विवश हो कर परशुराम भाऊ फिर कृष्णा नदी पार करके उत्तर की ओर चला आया। सन् १७७७ ई० के मानसून के बाद एक सेना हरीपन्त फड़के के सेनापतित्व में कर्णाटक को भेजी गयी, परन्तु उसे भी कोई सफलता न मिली। सूरत में राघोबा की सेना के भंग कर दिये जाने के बाद माना जी फखे ने पूना के मंत्रियों की सेना में काम कर लिया था। बाजीपन्त बरवे ने उसे हैदर अली के पक्ष में फोड़ लिया। अन्य बहुत से मराठा सरदारों ने उसका साथ देने को कहा था, परन्तु हरीपन्त फड़के ने उसकी सेना में फूट फैला कर उसकी योजना के एक अंग को चौपट कर दिया। इसके थोड़े ही दिनों बाद मसवर के देशमुख यशवन्त राव माने को पकड़ लिया और उसे तोप के मुँह पर रखवा कर उड़वा दिया। हैदर अली के विरुद्ध युद्ध संचालित करते रहने के अतिरिक्त मंत्रियों के ध्यान को आकर्षित करने वाली और भी बातें दक्षिण में हो रही थीं।

दिसम्बर १७६० ई० में शिवाजी के वंश का अन्तिम पुरुष कोल्हापुर का राजा निःसन्तान मर गया। इसके दो वर्ष बाद उसकी पत्नी विधवा जीजी बाई ने अपने पति के उत्तराधिकारी के रूप में कनौत के पटेल शाहजी भोंसले के शिवाजी नामक पुत्र को गोद ले लिया। कनौत इन्दापुर जिले में एक गाँव है। उसी बालक को मसनद पर आसीन करके उसी के नाम से स्वयमू शासन चलाने लगीं। अल्पवयस्क शिवाजी के शासन काल में कोल्हापुर राज्य में स्थल पर भी और समुद्र पर भी अत्यधिक गड़बड़ियाँ होने लगीं। समुद्रतट के जलदस्युओ ने अभूतपूर्व उत्पात मचाया, जिससे परेशान एवम् विवश होकर अंग्रेजों ने एक सेना भेजी, जिसने मालवान एवम् रायरी के किलों पर कब्जा कर लिया। सालवान दुर्ग कोल्हापुर की रियासत में था और रायरी सावन्तवाड़ी का था। पेशवा माधवराव बल्लाल कई कारणों से कोल्हापुर के विरुद्ध था। एक तो कोल्हापुरी दस्यु उसके राज्य में घुस कर उत्पात मचाते और खतरा देखते ही कोल्हापुर में प्रवेश करके सुरक्षित हो जाते थे

और दूसरे कोल्हापुर का राज्य पुश्त-दरपुश्त निजाम का सहायक हो रहा था। कोल्हापुर की शक्ति को कम करने और उसके दस्युओं को दंड देने के लिये उसने राजा के कई जिलों पर से उसका अधिकार हटा दिया था और उन्हें अपने सम्बन्धियों की जागीरों में मिला दिया था। पिछली गड़बड़ियों में राघोबा का साथ देकर राजा कोल्हापुर ने उन जिलों को फिर से वापस ले लिया था उन जिलों को फिर से लेने के प्रयत्न में लगे हुए पेशवा के एक सरदार रामचन्द्र हरी को राजा के एक अफसर येसाजी सिंधिया ने हरा दिया। इसलिए रामचन्द्र हरी की सहायता के लिए महादजी सिंधिया को भेजा गया, जिसने वहाँ जाकर शान्ति स्थापित कर दी।

१७७८ ई०

इसी समय के आस-पास हैदर अली ने कोपबल पर अधिकार कर लिया और बहादुर बेंडा ने धारबाड़ को घेर लिवा। हरीपन्त मेरिच की ओर बढ़ा। प्रगट रूप से उसने यह प्रदर्शित किया कि वह कोल्हापुर में सिंधिया से मिल कर हैदर अली पर आक्रमण करेगा। नानाफड़नवीस, महादजी सिंधिया तथा हरीपन्त को छोड़ कर सब ने उपरोक्त योजना को ही सत्य माना। हैदर अली ने भी इसी बात पर विश्वास कर लिया। इस समय हरीपन्त की सेना विशाल थी और हैदर अली ने सोचा कि मराठा सेनापतियों के बढ़ते ही उसे तुंगभद्रा के उस पार चला जाना पड़ेगा। अतः उसने पूरी कोशिश की कि मराठों से उसकी सन्धि हो जाय। हरीपन्त ने ऐसा प्रदर्शित किया कि वह इस सन्धि के लिए एकदम तैयार नहीं है जब तक हैदर अली ने उसे शांति क्रय करने के लिए एक भारी रकम नहीं दे दिया। मराठे रुपया लेकर अपने देश को लौट गये। हरीपन्त के इस कदम ने पेशवाई मंत्रियों की एक बहुत बड़ी आवश्यकता को पूरा कर दिया और इस बार हैदर अली वेवकूफ बन कर रह गया।

पूना के मंत्रियों की राय में इस बार हरीपन्त ने बड़ा भारी मैदान मारा था, जिसका महत्व हम आगे के पृष्ठों में देख सकेंगे। परन्तु अन्य मराठा अधिकारियों को दृष्टिगत रखने के लिए तथा अधिक मनोरजक धटनाओं का वर्णन करने के लिए यहाँ यह बता देना ठीक ही होगा कि कठपुतली नरेश रामराजा आपदाधिक्य के कारण सतारा में १२ दिसम्बर सन् १७७७ को मर गया। इसी समय के आस-पास भुवनराव प्रतिनिधि का भी देहान्त हो गया। उसी दिन उसके पुत्र भी उत्पन्न हुआ, जिसका नाम रक्खा गया परशुराम श्री निवास और जो अपने जन्म दिन से प्रतिनिधि कहा जाने लगा।

बरार के मामलों के विषय में इतना तो बताया ही जा चुका है कि सभाजी भोंसले की मृत्यु के बाद मूँदाजी का संरक्षक स्वीकार कर लिया गया था। इब्राहीम वेग उपनाम धौंसा सभाजी का मित्र था। निजाम अली ने इस बहाने से एक सेना धौंसा के सेनापतित्व में भेजा कि वह सभाजी की हत्या का बदला लेना चाहता है। वह इस समय मूँदाजी से प्रबल पड़ रहा था अतः मूँदाजी गावलगढ़, नूरनाला मानिकदुर्ग तथा चन्दश्धुर के किले देकर अपना पीछा छुड़ाया। थोड़े ही दिनों बाद जब निजाम अली एलिचपुर में आया और मूँदाजी ने उस अवसर पर अत्यधिक अधीनता और विनम्रता प्रदर्शित की तो उसने इन किलों को वापस कर दिया। उस समय मूँदाजी के साथ उसका लड़का रघू जी सेना साहब सूबा भी था। मूँदाजी ने प्रतिज्ञा की कि वह सर्वदा निजाम अली के साथ सहयोग करेगा तथा गोंडों के उपत्रव को दबा देगा। गोंड लोग उस समय निजाम अली के जिलों में बड़ा उपद्रव मचा रहे थे। मूँदाजी ने इसी प्रकार की अधीनता पूना दरबार में भी दिखाया और दस लाख रुपया देने का प्रतिज्ञा पत्र लिख कर अपने संरक्षक पद को स्थायी बनाया। यह सारा काम नाना फड़नवीस के माध्यम से हुआ था। सभाजी भोंसले का यह नियम था कि कटक में अपने अधिकृत क्षेत्रों की

सुरक्षा की दृष्टि से वह अपना एक वकील हमेशा बंगाल में गवर्नर जनरल के पास रखता था। मूँदाजी ने भी उस नियम को बनाये रक्खा। इस नियम ने गवर्नर जनरल के मस्तिष्क में दो भ्रान्तियाँ उपस्थित कीं। प्रथम तो यह कि गवर्नर जनरल की राय में मूँदाजी की आपेक्षिक महत्ता अत्यधिक बढ गयी और दूसरे यह कि गवर्नर जनरल ने समझा कि मूँदाजी की शक्ति अत्यधिक है।

फरवरी १७७८ ई० में फतह सिंह भोंसले ने साढ़े दस लाख रुपया बकाया के रूप में चुकता किया, एक लाख रुपया सखाराम बापू तथा नाना फड़नवीस को भेंट में दिया तथा मराठा राज्य को पांच लाख रुपया दिया। इन सबके बदले में उसे सेना-खास खेल के पद पर नियुक्ति मिल गयी।

छत्रपति शिवाजी के पिता शाहजी भोंसले के चाचा थे मालो जी। मालो जी के भाई बिठोजी भोंसले के वंश में एक व्यक्ति हुए बाई गांव के पटेल त्र्यम्बकजी राजा भोंसले। अपनी मृत्यु के थोड़े ही दिनों पूर्व रामराजा ने इन्हीं के पुत्र को गोद ले लिया था। त्र्यम्बक जी राजा के पास दो सौ सवारों का एक दास्ता था, जिसके नायक के रूप में उनका पुत्र सिल्लीदार का कर्तव्य पालन करता था। गोद लिया जाकर वह गद्दी का अधिकारी तथा बन्दीगृह का निवासी बना। बाजीराव के समय में बड़े ही कौशल पूर्वक यह बात लोगों से मनवा ली गयी थी कि महाराष्ट्र में ऐसे बहुत ही कम परिवार हैं (प्राचीन परन्तु निर्बल) जिनमें राज परिवार वालों का ब्याह हो सकता है। आज भी सतारा के राजा के वंशज निम्भालकरों या जाधवों की लड़की से ब्याह करके अपने को प्रतिष्ठा च्युत मानते हैं, यद्यपि मातृपक्ष से छत्रपति इसी वंश के थे। बाजीराव ने उपाध्यायों एवम् शास्त्रियों को घूस देकर यह व्यवस्था दिलवा दी होगी। इसी से इस बात का भी पता लग जाता है कि शाहू तथा सिंधिया की पुत्री के ब्याह के कारण का पता क्यों नहीं चलता।

उन्तीसवाँ अध्याय

मराठों और अँग्रेजों के दाँवपेंच

[१७७७-१७७८]

मराठों के विषय में मि० हार्नबी का विवरण—फ्रांस का राजदूत सेंट लूविन—पूना में उसके कार्य कोर्ट आव डाइरेक्टर्स का पत्र – मंत्रियों में फूट – मोरोबा फड़नवीस—बंगाल की सेना का महाराष्ट्र के लिये प्रस्थान बम्बई सरकार की शर्तें - नाना फड़नवीस का कौशल—मोरोबा की भूल—सखाराम हरी—बम्बई सरकार के लक्ष्य—नाना फड़नवीस की तैयारियाँ – मि० कार्नक का उत्साह—मि० ड्रेपर की सलाह—क्षेत्रीय समिति का संगठन एवम् उसकी नियुक्ति—मोरघाट पर अधिकार —राघोबा—पनवेल में सेना का उतरना—मराठों के कार्य—अँग्रेजों के कार्य—मि० कार्नक तथा कर्नल काकबर्न का अपदस्थ किया जाना—बम्बई सरकार की परेशानियाँ-हार्नबी की दृढ़ता-कर्नल लेस्ली के साथ से सेनापतित्व का भार ले लेना-कर्नल-गोडार्ड—भोपाल के नवाब की उदारता मि० हार्नबी की योजना बङ्गाल सरकार का व्यवहार-गोडार्ड का ब्रिगेडियर जनरल बनाया जाना—महाद जी सिन्धा की नीति - राघोबा का पलायन-नाना फड़नवीस—सखाराम बापू की मृत्यु।

१७७७ ई०]

१० अक्टूबर सन् १७७७ को मि० हार्नबी ने कांउसिल के कार्यों का विवरण प्रस्तुत करते हुये कहा कि "मराठे बड़ी ही शीघ्रता से उस समय की ओर चले जा रहे हैं, जब कि हम अँग्रेजों को अत्यन्त विवशता की अवस्था में या तो के कार्य कलापों में विरोधी या मित्र की हैसियत से क्रियात्मक भाग लेना पड़ेगा या भारत के पश्चिमी तट पर अपनी स्थिति को सुधारने की आशा छोड़ देनी होगी।" मि० हार्नबी ने बंगाल सरकार के उस नियंत्रण एवम् तज्जनित हस्तक्षेप पर दुःख प्रगट करते हुए बताया कि उस हस्तक्षेप के कारण बम्बई सरकार की प्रगति अत्यधिक रुक गयी है। मराठों के बीच अप्रकट मतभेद की भी चर्चा हार्नबी ने की, सिंधिया तथा होल्कर के दृष्टिकोण का भी परिचय दिया। उनके विवरण के क्रम में हैदरअली की सफलता, मराठा सर्दारों का विभाजन तथा शिशु पेशवा की माता की आत्म हत्या * की भी चर्चा है।

बाद में पता लगा कि फ्रांसीसी राजदूत का अभिनव करने वाला व्यक्ति सेंट लूविन था। वह एक साहसिक था। उसने पहले मद्रास सरकार को भी प्रभावित किया था और तदनन्तर फ्रांस को लौट गया था। वहाँ फ्रांस के मंत्रियों से उसने इस प्रकार से झूठी बातों का तूमार खड़ा किया कि उन लोगों ने उसे पूना जाकर यह निश्चय करने का आदेश दिया कि मराठों से सन्धि कर

---

* यह बात सत्य है कि नाना फड़नवीस का गङ्गा बाई से अनुचित सम्बन्ध था। परिणाम स्वरूप गर्भ गिराने की दवा खाने से गङ्गा बाई की मृत्यु हो गयी।

कर लेने पर क्या-क्या सुविधायें प्राप्त हो सकती थीं। मराठा दर्बार पहुँच कर उसने पहले तो नाना फड़नवीस को यह लालच दिया कि वह मंत्रियों की सहायता के लिये पच्चीस सौ यूरोपियन सैनिकों की एक सज्जित सेना लावेगा तथा देश से दस सहस्त्र सैनिक चुन कर उन्हे यूरोपियन ढंग की शिक्षा देगा और सैनिक एवम् जलयुद्ध सम्बन्धी अनेक सामान बड़े परिमाण में देगा। राघोबा के साथ अँग्रेजों के सम्मिलन को खतरनाक बता कर उसने फ्रांसीसियों के लिये चोल का बन्दरगाह एवम् रेवादंड का किला माँगा। फ्रांस में उसने विशेष रूप से कुछ तस्वीरों को भरे दर्बार में खुद प्रदर्शित किया था। इनको देखकर कितने ही दर्शकों की आखों में आँसू आगये थे और कितनो ने उसे अविश्वास एवम् घृणा की दृष्टि से देखा। मराठों के लिये यूरोपियन धोखेबाज एक सर्वथा नवीन प्रसङ्ग था। इतना सब करके भी फड़वीस की पैनी बुद्धि को भ्रमित नहीं कर सका था। सेंट लूबिन की बातों का नाना पर इतना ही प्रभाव पड़ा कि अपने कार्य के प्रतिफल की गम्भीरता को जाने विना ही उसने बृटिश राजदूत के प्रति कुछ अवज्ञा प्रदर्शित की थी, सो भी केवल इस लिये कि अँग्रेजों को जलन हो। वास्तव में नाना फड़नवीस हर यूरोप निवासी का शत्रु था। सेंट लूबिन की लम्बी -चौड़ी व्यर्थ की बातों के कारण स्वयम् नाना की दृष्टि में और अन्य मराठा सर्दारों की दृष्टि में फ्रांसीसियों की प्रतिष्ठा में ह्रास ही हुआ न कि वर्द्धन। मि० बोल्ट्स पहले बङ्गाल में ईस्ट इंडिया कम्पनी का काम करता था, उस समय हाउस आव आस्ट्रिया के एजेएट के रूप में पूना में ही रह रहा था उसका स्वागत उस ढंग का नहीं हुआ था। शायद नाना फड़नवीस ताड़ गया था कि लूबिन को अधिक सुगमता से खेला जा सकता है। मि० बोल्ट्स का कर्तव्य समाप्त हो चुका था। उसने भी नाना के इन कार्यों को देख कर उसके चरित्र का अनुमान लगाया होगा। उस समय यूरोप में भारत के विषय में अनेक भ्रामक बातों का प्रचार हो रहा था। सेंट लूबिन के बात-चीत करने के अपूर्व कौशल ने अनेक फ्रांसीसियों को आकर्षित किया था। उनमें से अनेक अच्छे घराने के सदस्य थे। एक अँग्रेज भी उसके वाणी विलास में फँस गया था। लूबिन ने उन सभी को अपनी साहसिकता में भागीदार बनाया। प्रकृति का नियम है कि साहसिक व्यक्ति चाहे अपने को कितना बुद्धिमान क्यों न समझे उसमें कुछ ऐसी बातें आही जाती हैं, जो उनकी वास्तविकता को नंगा कर के रख देती हैं। मि० लूबिन ने भी उसकी वास्तविकता से दूर वाली बातें तथा उसकी चिड़चिड़ी प्रकृति की ऐसी बातें थी, जिन्होंने उसकी वास्तविकता को प्रदर्शित कर दिया।

धीरे-धीरे उसके सभी साथी उससे अलग होते गये। आपसी सन्देहों ने झगड़ों को जन्म देना शुरू कर दिया। यदि लूबिन का वश चलता तो अपनी वास्तविकता को न खुलने देने के लिये उनकी हत्या भी कर डालता क्योंकि उनके कारण फ्रांस से मिलने वाली सुविधाओं से भी वह वंचित हुआ जा रहा था। उसके साथियों ने मि० मोस्टिन के सहायक मि० लेविस से शरण की प्रार्थना की मि० मोस्टिन उस समय बम्बई में था, फिर भी उसके सहायक ने उन्हें शरण प्रदान कर दिया।

नाना फड़नबीस के द्वारा सेंट लूबिन को जो उत्साह दिया जा रहा था, वह बम्बई सरकार को चौंका देने के लिये पर्याप्त था और जिस आधीनता की परिस्थिति में वह पड़ गयी थी, उसके कारण उसने पुरन्धर की सन्धि की शर्तों को मराठा मंत्रियों की इच्छानुसार ही मान लिया होता अगर कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने सूरत की सन्धि को मान्यता प्रदान न कर दिया होता। १६ अप्रैल सन् १७७७ ई० को एक पत्र इंग्लैंड से चल कर सात मास बाद बम्बई पहुँचा। यह पत्र उस पत्र

का प्रतिरूप था जो थोड़े दिनों पूर्व ही बंगाल सरकार को भेजा गया था। उसमें बम्बई सरकार के कार्यों की मान्यता को दुहरा कर लिखा गया था और इस बात के लिये दुःख प्रगट किया गया था कि पुरन्धर की सन्धि के कारण अनेक उलझनें तथा अशोभनीय बातें सामने आयीं। इस पत्र में सभी बातों को स्पष्ट रूप से लिख दिया गया था। दृढ़ निश्चय के रूप में सन्धि की शर्तों को पूर्णतया मानने का आदेश उस पत्र में दुहरा कर लिखा गया था और बम्बई सरकार को आदेश दिया गया था कि यदि पेशवा के मंत्रिगण सन्धि पालन में आनाकानी करें तो सूरत की सन्धि के अनुसार राघोबा को फिर से मदद दी जाय। डाइरेक्टर्स ने लिखा था कि वे कम्पनी के लाभ की भावना से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि कम्पनी के सम्मान की भावना से प्रेरित होकर ऐसा लिख रहे थे।

इस अवधि में पूना के मंत्रियों का आपसी मतभेद बढ़ता ही जा रहा थ। नाना फड़नवीस अपने चचेरे भाई मोरोबा फड़नवीस की योग्यताओं से ईर्ष्या करने लग गया था, परन्तु उस ईर्ष्या में ब्राह्मण सुलभ सावधानी मिली हुई थी। वह शत्रुता को कम परन्तु उसके प्रति अपनी घृणा को छिपाने का अधिक प्रयास करता था। राघोबा के तमाम साथी मोरोबा के सहायक थे। इनमें बच्चा वा पुरन्धरी सखाराम हरी, चिन्तू विट्ठल तथा विष्णु नरहरी प्रधान थे। इस दल ने तुकाजी होल्कर को भी अपनी ओर मिला लिया और उसका फूटना उस समय और भी स्पष्ट होगया, जब उसने कर्नाटक में हरीपन्त फड़के कोसहायता देने के आदेश पर क्षमा याचना कर ली। अँग्रेजी दूत ने इतने पर भी नाना को पूर्ण आश्वस्त देखा तो उसने समझा कि फ्रांस के राजदूत से सहायता प्राप्ति के आश्वासन पर ही नाना इतने इत्मीनान से बैठा है। अब तक सखाराम बापू नाना फड़नवीस को एक सहायक ही समझ कर काम कर रहे थे, परन्तु अब वे नाना को एक प्रतिद्वन्दी के रूप में मानने लगे और इसलिये अति गुप्त रूप से वे इस बात का प्रयास करने लगे कि राघोबा को फिर से पदस्थ किया जाय। मोरोबा ने इस प्रस्ताव को बम्बई सरकार के सामने रक्खा और और प्रार्थना किया कि राघोबा को तुरन्त पूना ले आया जाय। मोरोबा के प्रस्ताव को सुप्रीम कांउसिल ने भी मान लिया और बंगाल में यह निश्चय किया गया कि पश्चिमी भारत के जिस युद्ध में सम्मिलित होने वे लोग जा रहे थे और जिस क्षेत्र में फ्रांसीसियों से भी संघर्ष होने की आशंका थी, उसमें बम्बई सरकार की मदद के लिये बंगाल से सिपाहियों के ६ः दस्ते भेजे जाँय, जिसके साथ में आवश्यक तोपखाना भी रहे, बाद को इस संख्या में कुछ घुड़सवार भी जोड़ दिये गये। इस सेना को जमुना तट पर कालपी के सामने एकत्रित होने का आदेश दिया गया और इसका सेनापतित्व सौंपा गया कर्नल लेस्ली को। उसे आदेश दिया गया कि वह स्थल के रास्ते ही समूचे देश को पार करता हुआ बम्बई पहुँचे और बम्बई सरकार की आज्ञाओं का पालन करे।

बम्बई सरकार ने मोरोबा की योजना को स्वीकार तो कर लिया, वह इसके अनुसार काम करने को भी तैयार हो गयी परन्तु उसने कहा कि चूँकि पुरन्धर की सन्धि में सखाराम बापू एक प्रमुख व्यक्ति थे अतः वे यदि बम्बई सरकार को लिखित आमंत्रण दें तभी यह काम हो सकता है। अपने हीं दुर्भाग्य बश सखाराम बापू ने ऐसा लिखने से इन्कार कर दिया और समूची योजना धरी हो रह गई, परन्तु बम्बई सरकार ने समझ लिया था और उसकी यह दृढ़ इच्छा थी कि अपनी सुरक्षा के विचार से पूना के शासन में परिवर्तन होना ही चाहिये। इस विकट परिस्थिति में नाना फड़नवीस ने कूटनीतिक चालों का जो ताना बाना बुना था उसमें थोड़ी सी चूक रह गई और वह यह कि नाना का भय समय से थोड़ा पहले प्रकट हो गया और मोरोबा चुपके से पूना से खिसक

गया। कूटनीति के इस भंडा फोड़ से अधिकांश व्यक्ति हतबुद्धि हो जाते, परन्तु नाना में विकट परिस्थितियों को सुलझाने की शक्ति का अभाव तो था नहीं। उसने सखाराम बापू के द्वारा अपने चचेरे भाई को पूना वापस आने को तैयार कर लिया और यह प्रस्ताव किया गया कि एक नया मन्त्रिमंडल बनाना चाहिये, जिसमें मोरोबा भी रहें तथा बच्चा वा पुरन्धरी भी रहें परन्तु बच्चा बा इतनी सरलता से मानने वाला नहीं था और सखाराम हरी ने बड़े ही अभिमान से घोषित किया कि उसके जिस मालिक ने उसकी अति युवावस्था से अब तक हमारी देख भाल की तथा तथा हर प्रकार से हमारी रक्षा की, उस दयालु स्वामी का पक्ष वह कभी भी नहीं छोड़ेगा। उसके अनुसार राघोबा एक सैनिक था और नाना फड़ननीस केवल एक कपटाचारी एवम् कायर दरबारी था।

होल्कर की सेना की सहायता से मोरोबा का दल पूर्ण शक्ति सम्पन्न हो गया और नाना को विवश होकर पुरन्धर चला जाना पड़ा। वहाँ से उसने यह प्रचारित किया कि यदि उसकी जान व उसके माल की सुरक्षा की प्रतिज्ञा की जाय तो वह राघोबा के पुनः पदस्थ होने पर परम प्रसन्न हैं। बम्बई सरकार को पुनः तैयार होने की सूचना दे दी गयी, परन्तु अल्पज्ञ मोरोबा ने समझा कि उसका उद्देश्य सिद्ध हो गया है। अब वह पूना सरकार का प्रमुख होने के हवाई महल बनाने लगा। नाना ने कहा कि ज्योंही उसे सखाराम बापू की राय मिल जायेगी त्योंही वह अपनी सहमति दे देगा। राघोबा को पुनः पदस्थ करने के प्रश्न पर मशविरा शुरु हुआ और अब मोरोबा ने देखा कि नाना की आपत्तियाँ कितनी शक्तिमयी थीं। उसे बार-बार यही और केवल यही याद आने लगा कि जब राघोबा अधिकार सम्पन्न था तो वह सर्वदा फूट, बर्बादी या असम्मान जनक कार्य ही किया करता था। इन बातों को सोच सोच कर इसकी ओर से उदासीन हो गया कि राघोबा के हाथ में फिर शक्ति दी जाय। इस बात के लिये जब बम्बई सरकार उस पर दबाव भी डालती थी, तब भी वह ढील देने लगा।

बम्बई सरकार के अधिकांश सद्रस्यों ने जब देखा कि मोरोबा की पार्टी से उनका कोई काम बनने वाला नहीं है, उधर फ्रांस से इंगलैन्ड की सन्धि भी हो गई है तथा अब वे मोरोबा के द्वारा पूना दरबार में फ़्रांसीसियों की प्रभाव वृद्धि को रोक सकते हैं तो २० अप्रैल को उन्होंने एक प्रस्ताव पास करके कर्नल लेस्ली की सेना को लौटने का आदेश दे दिया, परन्तु अगले मास की ३ तारीख को ही अपने पहले प्रस्ताव को रद्द करके (इसका कारण आगे लिखा जायेगा) लेस्ली को फिरसे आगे बढ़ने की आज्ञा दी।

मोरोबा ने मि० मोंस्टिन को आश्वासन दिया था कि सेंट लूबिन को दर्बार से हटा दिया जायगा, परन्तु उसे विदा करने का दिन एक एक दिन करके आगे ही बढ़ता गया और इसी समय यह समाचार भी मिला कि सेंट लूबिन ने नाना के द्वारा मोरोबा को अपने पक्ष में कर लिया है। परन्तु वास्तविकता यह थी कि जब तक किसी बहुत बड़े खतरे का भय न होता तब तक यह सोचना भी बुद्धिमानी से परे था कि नाना फड़नवीस फ्रांसीसियों के बहकावे में आ जाता। विशेषकर मराठा राज्य में तो उनका पांव शक्ति भर चलते वह नहीं जमने दे सकता था। वह यूरोप निवासियों से इतनी आन्तरिक जलन रखता था कि यदि उसे यह निश्चय भी हो जाता कि फ्रांसीसी अँग्रेजों को बम्बई से निकाल ही देंगे, तब भी वह फ्रांसीसी सेना को मराठा भूमि पर तब तक पैर न रखने देता, जब तक कि उसे यह विश्वास न हो जाता कि बाद में वह फ्रांसीसियों को कुचल सकेगा। नाना फड़ननीस को कभी भी ऐसा विश्वास न हुआ था कि सेंट लूबिन सेना भी ला सकता है। नाना

को विश्वास दिलाने के लिये ही लूबिन ने गोआ और डामन की सरकारों को लिखा था कि वे अपने क्षेत्र से फ्रांसीसी सेना के दो दस्तों को आज्ञा दे दें। इसका भी नाना पर कोई असर नहीं पड़ा हां अँगरेजों पर इसका अत्याधिक प्रभाव अवश्य पड़ा, जिन्होंने इन पत्रों को बीच से ही पकड़ लिया था।

ऊपर की पंक्तियों में जिन घटनाओं का विस्तृत विवरण उपस्थित किया गया है, वे सभी उस समय तक घटित हो चुकी थीं, जिस समय हरीपन्त फड़के और महादजी सिंधिया मेरिच में मिले थे। ये दोनों ही सरदर नाना फड़नवीस के पक्ष में थे। इन दोनों सरदारों के सम्मेलन से न केवल हैदरअली ही धोखा खा गया था, वरन् मोरोबा भी आतंकित हो गया था। उस समय भी मोरोबा अपने स्वप्न में ही मस्त था, जिस समय विभिन्न रास्तों से आकर हरीपन्त फड़के तथा महादजी सिंधिया दोनों ८ जून को पुरन्धर में जाकर मिले। नाना फड़नवीस ने अपना प्राचीन प्रभाव फिर से प्राप्त कर लिया था। पहाड़ों व दर्रों में से प्रत्येक पर नाना समर्थक सेनाओं का अधिकार हो गया था। सिंधिया ने अपने प्रभाव में नौ लाख रुपये मिलाकर होल्कर को भी मोरोबा-मण्डल से अलग कर लिया था। मोरोबा ने एक बार फिर अँगरेजों से सहायता याचना करने का प्रयत्न किया (जिसके विवरण विशेष ध्यान देने लायक हैं) परन्तु समय बीत चुका था और लोहा ठंडा हो चुका था। ११वीं जुलाई को सिंधिया के एक घुड़सवार दस्ते ने मोरोबा को पकड़ लिया और शीघ्र ही उसे नानाफड़नवीस के हाथों में सुपुर्द कर दिया। नाना ने उसे अहमदनगर के किले में कैद कर दिया। सखाराम बापू को छोड़कर मोरोबा दल के सभी प्रमुख व्यक्ति पकड़ लिये गये। सखाराम बापू * को केवल इसी लिये छोड़ दिया गया था कि पुरन्धर को सन्धि के कारण उसका स्वतन्त्र बने रहना अत्यन्त आवश्यक था। बच्चा वा पुरन्धरी को बुन्दन के किले में कैद कर दिया गया तथा दूसरे सर्दारों को अलग अलग किलों में बन्दी कर दिया गया। सखाराम हरी राघोबा का पक्का समर्थक था अतएव उसका भाग्य औरों से कुछ भिन्न रहा। सखाराम हरी बड़े ही विशाल शरीर और अत्यधिक शक्ति का स्वामी था, परन्तु उसे पहनायी गयी लौह शृंखलाओं का वजन इतना अधिक था कि उससे उठाये न उठती थीं। उसका भोजन और उसे दिया जाने वाला जल इतना अपर्याप्त होता था कि न तो उसकी भूख ही शान्त हो पाती थी और न उसकी प्यास ही बुझ सकती थी। फिर भी वह चौदह महीने जीवित रहा और जब अत्यधिक शरीर की निर्बलता के कारण उसमें उठने की भी शक्ति न रह गयी तो भी उसने अत्यन्त उत्साह से जीवन के अन्तिम समय में यही कहा कि मेरी वाणी भी चुप हो जायगी, सांस भी रुद्ध हो जायगी, फिर भी मेरे मांस रहित सूखी हड्डियों से रघुनाथ राव, रघुनाथ राव की ही ध्वनि निकलेगी।

अपनी विलक्षण एवं सफल कूटनीति से नाना फड़नवीस अपने देश वासियों के विरुद्ध तो सफल हो गया, मगर उसे अभी अँगरेजों का सामना करना था जो अपनी बुद्धिमत्ता एवम् शक्ति दोनों के लिये समान रूप से विख्यात् थे। नाना फड़नवीस ने जिस जातीय वैमनस्य का प्रदर्शन कर दिया था, वह इतने भयावह रूप में उठा कि नाना भयभीत हो गया। पूर्व से अँगरेजों की जो सेना बम्बई से आ रही थी, उसे मराठा प्रदेश से होकर आना था। पूना के अँग्रेज रेजिडेन्ट ने पूना दरबार, सिंधिया तथा होल्कर के पास प्रार्थना किया कि इस सेना को मराठा प्रदेशों से होकर आने की आज्ञा दी जाय। प्रार्थना पत्र में यह भी लिखा था कि फ्रांसीसियों से

---

* सखाराम हरी ब्राह्मण न होकर प्रभू जाति का था, उसकी लड़की अब भी सतारा में जीवित है।

अँग्रेजों को जो भय है, उसी के कारण यह सेना बुलायी जा रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे मराठा सर्दारों एवम् मन्त्रियों ने इस प्रार्थना पत्र को धमकी के रूप में ग्रहण किया। उन्होंने सोचा कि अगर बङ्गाल से बम्बई को सेना भेजना ही था तो उसे समुद्र के जरिये भेजने में अधिक शीघ्रता व सुगमता होती। यह सोचना ठीक भी था और स्वयं हमारे देश के कितने ही बुद्धिमानों ने इस कार्य के औचित्य को समझने में भूल कर दी, परन्तु उन लोगों ने यह नहीं ध्यान दिया कि एक तो मौसम प्रतिकूल था, दूसरे जहाजों पर देशी सिपाहियों के लिये छायाकार जगह नहीं थी, साथ ही दो एक बार उनके साथ अच्छा व्यवहार भी नहीं किया गया था। इन सब कारणों के अतिरिक्त मि० हेस्टिंग्ज ने सोच रक्खा था कि इधर से जाने पर मूदा जी भोंसले को प्रभावित करके उससे मनमानी सन्धि भी की जा सकेगी। इन्हीं सब कारणों को सोचकर हेंस्टिंग्ज ने स्थल मार्ग से सैनिकों को रवाना किया था †।

यद्यपि हेस्टिंग्ज द्वारा किया गया सैन्य मार्ग का यह चुनाव अत्यधिक शङ्का एवं आशङ्काजनक था और मूदा जी से सैनिक साहायता पाने की आशा में सन्धि करने की इच्छा में भी कोई औचित्य नहीं दिखायी पड़ता था, फिर भी इनका राजनैतिक महत्व अत्यधिक था। यदि कारो (पूर्वीघाट की पहाड़ियाँ) तट की ही भाँति दक्षिण में भी फ्रांस के साथ होने वाले युद्ध की चिनगारी छिटक पड़ती, तो यह स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होता। एक तो अंग्रेजों को मित्र बनाने में सहायता मिलती और साथ ही साथ समूचे दक्षिण में उनकी शक्ति की चर्चा भी हो जाती, जो उनके भारतीय जीवन के लिये आवश्यक थी। इंगलैन्ड में इसे प्रसन्नता पूर्वक लोगों ने "मि० हेस्टिंग्ज का सनक-पूर्ण सैनिक कदम" कहा। भारत में कई अवसर ऐसे आये हैं जबकि समूची कांउसिल के विरुद्ध एक आदमी की बात मानी जाती है और वह राय तत्कालीन विचारकों की राय के प्रतिकूल थी। यदि ऐसा न हुआ होता तो आज भारत में बृटिश साम्राज्य का नामोनिशान न होता। ऐसी दशा में यह भी सम्भव था कि हम अपना सब कुछ गँवा कर अपने यूरोपियन प्रतिद्वन्दी को उन्नति के शिखर पर बैठा हुआ पाते और अपनी त्रुटियों पर सर धुनने के सिवा हमारे पास कोई चारा न रहता।

जिस समय बम्बई के प्रेसीडेंट तथा उसकी कांउसिल ने मोरोबादल के निमंत्रण को मान लिया था, तो बंगाल की सुप्रीम काउंसिल ने भी उसे मान्यता प्रदान कर दी थी, क्योंकि पुरन्धर की सन्धि में मुख्य भाग लेने वालों में से एक व्यक्ति का हाथ भी इस प्रार्थना पत्र में था। स्मरणीय है कि पुरन्धर के सन्धि पत्र की धाराओं का पालन * अभी तक न किया था। इधर नाना फड़नवीस न केवल सन्धि पालन में ही अड़चन डाल रहा था, वरन् ऐसा सुना जा रहा था कि उसने फ्रांसीसियों के साथ गठ बन्धन भी कर लिया था। यह स्थिति कम्पनी की सुरक्षा के

---

† वास्तविक बात यह थी कि यदि बम्बई को आधार बना कर महाराष्ट्र पर आक्रमण किया जाय तो पश्चिमी घाट की पहाड़ियों के कारण मराठों को हराना प्रायः असम्भव ही था। इसीलिये पूर्व के खुले मैदानों की ओर से आना भी सुगम था और लड़ना भी, क्योंकि उधर से छायामय युद्ध की सम्भावना नहीं के बराबर थी। अनुवादक

*यह विचित्रता भी ध्यान देने योग्य है कि एक ओर वारेन हेस्टिंग्ज ने पुरन्धर के सन्धि पत्र को स्वयं भी स्वीकार नहीं किया था, कोर्ट आव डाइरेक्टर्स ने भी सूरत की सन्धि को मान्यता दी थी और दूसरी ओर मराठों पर दबाव डाला जा रहा था कि वे सन्धि की शर्तों को पूरा कर। अनुवादक—

लिये अत्यधिक भयावह थी। कम से कम पश्चिमी भारत में स्थित कम्पनी-अधिकृत स्थानों के के लिये भयंकर खतरा उपस्थित हो गया था। इन परिस्थितियों में २३ मार्च के पत्र द्वारा बंगाल के प्रेसीडेंट तथा उसकी कांउसिल ने बम्बई के प्रेसीडेंट तथा उसकी कांउसिल को अधिकार दे दिया कि वे मराठा राज्य के अंतर्गत उठते हुए मतभेद को शान्त कर दें।" उन्होंने निर्देशित किया था कि पूना का शासन चाहे जिस तरह से चले परन्तु राघोबा की जीवन रक्षा होनी ही चाहिये और यदि किसी भी प्रकार के सैनिक अभिमान की आवश्यकता पड़े तो उसका व्यय मराठों से ही वसूल किया जाना चाहिये। भड़ौच को देकर बेसीन तथा उसके समीपस्थ स्थानों की मांग करनी चाहिये। उधर फ्रांसीसियों को दबाने के लिये ऐसी व्यवस्था अवश्य ही होनी चाहिये कि जब तक सुप्रीम कांउसिल की स्वीकृति न हो तब तक किसी भी यूरोपियन जाति को मराठा राज्य में जगह न दी जाय। इसके आगे उन्होंने यह भी लिख दिया था यदि बम्बई सरकार के मार्ग में फ्रांसीसी किसी भी प्रकार का रोड़ा अटकावें तो बम्बई सरकार कर्नल लेस्ली की सहायता प्राप्त करें।

जैसा कि हम पिछली पंक्तियों में देख चुके हैं कि पूना के मंत्रियों में समझौता हो जाने के कारण अँग्रेजों की प्रथम योजना धूल में मिल गयी थी और बम्बई सरकार ने अपने कार्यवाही को को स्थगित कर दिया था, परन्तु २३ मार्च वाले पत्र को पाकर उन्होंने मान लिया कि अब वे सर्व सत्ता सम्पन्न होकर काम कर सकते हैं ऐसी दशा में उन्होंने अपने को इसका अधिकारी मान लिया कि वे मराठा राज्य से पूँछ सकते थे कि मराठा राज्य अपने को पुरन्धर की सन्धि से बाधित समझता है या नहीं और वह इसकी शर्तों का पालन करेगा या नहीं। उन्होंने अपने दूत को निर्देशित कर दिया कि वह इन प्रसंगों का स्पष्ट एवं सुनिश्चित् उत्तर प्राप्त करे। उन्होंने अपने दूत को यह भी लिखा कि वह सेंट लूबिन को हटाने के लिये यथा शक्ति प्रयत्न करे। नाना फड़नवीस ने देखा कि अँग्रेजों से प्रतिज्ञा करने में वह अपनी इच्छा के विरुद्ध सीमापार कर गया है और अब वहाँ से वापस लौटना आपत्ति जनक है। उधर राघोबा से उसकी शत्रुता इतनी बढ़ गयी थी कि उससे या उसके मित्रों से फिर से सन्धि कर पाना भी असम्भव हो गया था। जुलाई के प्रारम्भ में ही सेंट लूबिन को बिदा कर दिया गया। यह बात मोरोबा के कैद किये जाने के पहले की है। जिस समय सेंट लूबिन जा रहा था, उस समय यद्यपि नाना फड़नवीस ने उससे कोई समझौता नहीं किया था, परन्तु उसे इस बात का पूर्ण एवम् निश्चित् आश्वासन दिया था कि यदि वह उसकी सहायता के लिये फ्रेंच सैनिक लाता है तो उसे मराठा राज्य में आवश्यक स्थान दे दिया जायगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि नाना फड़नवीस ने यह आश्वासन सच्चे हृदय से ही दिया था।

जैसा कि हेस्टिंग्ज ने पहले ही कह दिया था, होल्कर तथा सिंधिया ने अँगरेजी सेना को अपने राज्य से गुजरने की आज्ञा दे दी। इस आज्ञा-प्रदान का कारण यह था कि चूँकि वे स्वयम् अपने क्षेत्र से बाहर थे अतएव उन्होंने यही ठीक समझा कि यदि अँग्रेजी सेना को गुजरना ही है, तो वह मित्र सेना की ही भाँति गुजरे। मंत्रियों ने मि० मोस्टिन से कहा कि यह सेना फ्रांसीसियों के भय के कारण आ रही थी और चूँकि उन्होंने फ्रांसीसी राजदूत को हटा दिया था अतः उस सेना के आने की आवश्यकता नहीं थी और इसीलिये अपने राज्य से गुजरने देने की आज्ञा की भी आवश्यकता नहीं थी। मंत्रियों की राय थी कि चूँकि फ्रांसीसियों के भय का कोई कारण नहीं था अतः उस सेना को वापस लौट जाना चाहिये। इसी समय नाना ने चारों ओर बुंदेल

खंड के राजाओं तथा मराठा सरदारों को गुप्त आदेश भेज दिया था कि अँग्रेजी सेना की प्रगति का यथा सम्भव विरोध करें ।

इसी समय के आस पास मोरोबा के दल ने विशेष प्रार्थना पत्र मि० मोस्टिन को दिया, जिसकी महत्ता को भाँप कर उसने उसे स्वयम् ही बम्बई ले जाना स्वीकार कर लिया । मोरोबा दल की भी यही इच्छा थी कि मि० मोस्टिन स्वयम् इस प्रार्थना पत्र को बम्बई पहुँचा दें, परन्तु उसे इसलिये रुक जाना पड़ा कि उसने बंगाल सरकार के आदेशानुसार मराठा राज्य के कुछ प्रश्नों का उत्तर माँगा था, और उनके शीघ्र ही मिल जाने की सम्भावना थी । मोरोबा के प्रार्थना पत्र में उन सभी बातों का आश्वासन दिया गया था, जिन्हें अँग्रेज चाहते थे । जो कुछ हो रहा था उन सब को नाना फड़नवीस की आँखें स्पष्ट रुप से देख रही थीं, इसीलिये उसने मराठा राज्य की सर्वमान्य कार्यकारिणी का उत्तर मोस्टिन को देने में इतनी देर कर दिया कि हारकर ६ जुलाई को मोस्टिन बम्बई के लिये रवाना हो गया । इसके बाद नाना ने मोस्टिन के सहायक को अपना उत्तर दिया जो तुरन्त ही बम्बई भेज दिया गया ।

नाना फड़नवीस ने जो उत्तर दिया था, उसमें इस बात को दृढ़ता से अस्वीकार किया था कि मराठा राज्य ने फ्रांसीसियों से किसी प्रकार का समझौता किया था । आगे उन्हीं तर्कों का संक्षिप्त रूप था जो वह प्रायः पुरन्धर की सन्धि का पालन करने के विषय पर बात-चीत होने पर कहा करता था । मोस्टिन ने यह पूँछा था कि मराठा राज्य अपने की पुरन्धर को सन्धि की पालन करने के लिये बाध्य समझता है या नहीं । इसके उत्तर में नाना ने लिखा कि "पहले अँग्रेजों को उस सन्धि का पालन सच्चाई से करना चाहिये और तब हम भी उस सन्धि का पालन करेंगे ।"

जिस समय बम्बई में नाना फड़नवीस का यह टाल मटोल भरा उत्तर प्राप्त हुआ, उसी समय के करीब यूरोप से यह समाचार भी आया कि वहाँ अँग्रेजों और फ्रांसीसियों में युद्ध छिड़ गया है । उस समय मोरोबा का प्रार्थना पत्र भी कांउसिल के सामने था और नाना का उत्तर भी । दोनों पर विचार करके कांउसिल ने निर्णय किया कि नाना का उत्तर पुरन्धर की सन्धि के एकदम विरुद्ध है । ऐसी दशा में सुप्रीम कांउसिल के २३ मार्च वाले पत्र का उन्होंने यह अर्थ लगाया कि उन्हें यह अधिकार दे दिया गया है कि वे ऐसा मार्ग अपना सकते हैं जो पूना के ऐसे शासन को बदल दे जो निश्चयपूर्वक अँग्रेज राष्ट्र के विरुद्ध हो और इसीलिये पुरन्धर के सन्धि-पत्र में दी गयी धाराओं का पालन न करती हो और सदा ही अँग्रेजी स्वार्थों का विरोध करती हो तथा पश्चिमी भारत में फ्रांसीसियों के व्यवस्थित होने में सहायता प्रदान करती हो ।

इसलिये बम्बई सरकार ने निश्चय किया कि वे बलपूर्वक राघोवा को पेशवा का संरक्षक बनावेंगे मगर उस बात की दृढ़ व्यवस्था करेंगे कि पेशवा के वयस्क * होने पर सारे अधिकार उसे सौंप दिये जायें तथा उसकी अल्प वयस्कता की अवधि में भी राघोवा सारा काम पेशवा के ही नाम पर करेगा । यह निश्चय कियां गया कि इस निश्चय को तब तक गुप्त रक्खा जायँगा जब तक वर्षा काल समाप्त न हो जाय और वर्षा का अन्त होते ही वे पूरी शक्ति के साथ योजना के कार्यान्वयन में लग जायेंगे । इसके पूर्व लेस्ली को आदेश दिया कि वह सूरत की ओर बढ़े, मगर अब आदेश दिया गया कि वह जुन्नार की ओर चले ।

अभी वे लोग इस प्रस्ताव पर हस्ताक्षर भी न कर पाये थे कि उन्हें समाचार मिला कि

---

*हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार वयस्कता की सीमा १६ वर्ष है तथा मराठा परम्पराओं के अनुसार १६ से २० वर्ष ।

मोरोबा तथा उसके सभी साथियों को जेल में डाल दिया गया है और होल्कर भी नाना फड़नवीस से मिल गया है। इस प्रकार राघोवा के तमाम समर्थक जेलों में डाल दिये गये थे। फिर भी बम्बई सरकार ने अपने निश्चय को नहीं बदला। तमाम आपत्तियों के विरुद्ध भी उन्होंने अपनी योजना को कार्यान्वित करने का ही दृढ़ निश्चय किया।

पूना में बैठा हुआ नाना फड़नवीस इन सभी बादलों को घनी भूत होते हुए देख रहा था, किन्तु इस क्षेत्र में भी वह अंग्रेजों को करारी मात दे गया। अभी बम्बई में केवल बातें हो रही थीं, तर्क वितर्क किये जा रहे थे और स्वीकृत तत्वों को योजना का जामा ही पहनाया जा रहा था कि इधर नाना फड़नवीस ने पूरी सरगर्मी के साथ तैयारियाँ शुरू कर दी। वह इनसे कई कदम आगे भाग रहा था। सखाराम बापू से उसको थोड़ा भय था कि कहीं ऐन वक्त पर वह शत्रुओं के पक्ष में न चला जाय, अतः उसने उनके शरीर और मकान पर सिंधिया के सैनिकों का कड़ा पहरा बैठा दिया यद्यपि वह यह भी कहता रहा कि स्वयम् वह भी तथा सिंधिया भी सखाराम बापू की ही राय से सारा काम कर रहे थे। उसका बहाना यह था कि चूँकि बापू की अवस्था अधिक हो गयी है, इसीलिये उसको संरक्षण की विशेष आवश्यकता है। चारों ओर के सिल्लीदारों को आदेश भेज दिया गया था कि वे यथा सम्भव अधिक सेना लेकर दशहरे के अवसर पर पूना में उपस्थित हों। विभिन्न बन्दरगाहों में बड़े जहाजों की मरम्मत हो गयी थी तथा विभिन्न किलों की मरम्मत कराके उनमें आवश्यक सैनिकों एवम् सामग्री से सुसज्जित कर दिया गया था। मि० लेस्ली की राह में पड़ने वाले क्षेत्रों के सरदारों को सन्देश भेज दया गया था कि वे हर प्रकार से लेस्ली की प्रगति का प्रतिरोध करें परन्तु यह न प्रगट होने दें कि वे पूना के आदेश पर ऐसा कर रहे हैं। बम्बई सरकार को भुलावा देने के लिये उसने अपना एक दूत भी बम्बई भेज रक्खा था, परन्तु मि० मोस्टिन के सहायक मि० लेविस को इन सब बातों का पता था और सम्पूर्ण समाचारों से बम्बई सरकार को अवगत कर दिया था।

अगस्त मास के अन्त में गवर्नर जनरल तथा उसकी कांउसिल का एक सामान्य निर्देश बम्बई सरकार को मिला, जिसमें कहा गया था कि मूदा जी भोंसले के साथ सन्धि करली जाय और यदि सुरक्षा की दृष्टि से अत्यावश्यक न हो तो पूना के शासन के विरुद्ध कोई भी असन्तोष जनक कार्यवाही न की जाय। इस निर्देश को पाने पर एक बार तो बम्बई का प्रेसीडेंट अपनी कांउसिल के सदस्यों के साथ किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गया, मगर फिर उन्होंने निश्चय किया कि राघोवा को संरक्षक बनाने से मूदा जी से की जाने वाली सन्धि का कोई सम्बन्ध नहीं है, अतः वे एक साथ ही मूदा जी से समझौता भी कर सकते हैं और राघोवा को संरक्षक बनाने का प्रयत्न भी चालू रख सकते हैं और इस निर्देश का योजना पर कोई असर नहीं पड़ना चाहिये। इन्हीं तर्क वितर्कों में पड़कर २२ अक्टूबर तक भी बम्बई सरकार अपनी तैयारियों को प्रारम्भ न कर सकी। यह निश्चय था कि मि० हार्नबी के हटने पर मि० जान कर्नाक ही गवर्नर तथा प्रेसीडेंट बनेंगे। उसने इस अनावश्यक विलम्ब को देखकर कांउसिल के सामने एक विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने जोरदार तैयारी की माँग की और विलम्ब के कारण होने वाली अनेक बुराइयों पर प्रकाश डाला। पश्चिमी भारत के लोग मि० कार्नाक को उनकी प्रशासनिक योग्यता के ही कारण जानते हैं, परन्तु प्रारम्भ में वह बंगाल प्रशासन के अन्तर्गत एक सैनिक था और उन्नति करते-करते ब्रिगेडियर जनरल के पद पर पहुँच चुका था। मि० ड्रेपर ने अपने सद्विवेक एवम् निर्णय के आधार पर कार्नाक के प्रस्ताव का विरोध किया, क्योंकि उनके कहने के अनुसार यह असम्भव

ही था कि गवर्नर जनरल के वास्तविक मन्तव्य को समझा जा सके। वह क्यों मूदा जी से सन्धि करना चाहते हैं, यह जाने बिना कोई निर्णय नहीं करना चाहिये। ड्रेपर इस बात से सहमत था कि नाना फड़नवीस को हटा दिया जाय, परन्तु ऐसा तभी किया जाना चाहिये जब सफलता निश्चित हो। मि० ड्रेपर ने कहा कि प्रथम प्रस्ताव के समय से अब तक पूना में अनेक परिवर्तन हो चुके हैं, जिनके कारण इस समस्या पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है। मि० ड्रेपर की राय थी कि उनकी यूरोपियन सेना अति निर्बल थी और लेस्ली की सेना अभी काफी दूरी पर थी अतः उन्हें कम से कम दो मास तक और प्रतीक्षा करनी चाहिये। मि० ड्रेपर के तर्क अकाट्य थे और उन पर तर्क-वितर्क करना बेकार था, फिर भी बम्बई की कांउसिल के अधिकांश सदस्यों ने राघोवा वाली योजना के कार्यान्वयन में पीछे हटने से इनकार कर दिया। मि० हेस्टिंग्ज ने इसी बात पर कहा था कि 'राघोवा के पक्ष को बम्बई सरकार ने अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया है। चूँकि जान कार्नाक मि० ड्रेपर के ऊपर (नौकरी के विषय में) जाने वाला था, अतः उसके शब्दों में विनय एवम् विवेक के पुट की आवश्यकता थी परन्तु उसने मि० ड्रेपर के विरुद्ध अपनी भावना को छिपाने का तनिक भी प्रयास नहीं किया और उसने गवर्नर मि० हार्नबी के प्रस्ताव का प्रबल समर्थन किया। बहुमत की यही राय हुई कि बिना समय खोये काम में लग जाना चाहिये। बहुमत ने कहा कि देरी करने से सम्भव है कि फ्रांसीसी आकर हमारी योजना में विघ्न डाल दें। इस बात को भी मि० ड्रेपर ने व्यंगात्मक ढंग से ही स्वीकार करते हुए कहा कि हाँ फ्रांसीसी आ सकते हैं और आप सारी सेना बाहर भेज कर हमें फ्रांसीसियों की दया पर छोड़ देंगे।" उस समय कांउसिल के सारे सदस्य इतनी अधिक उत्तेजना में थे कि उन्होंने मि० ड्रेपर की बातों की गम्भीरता को एकदम नहीं माना और कार्नाक की बातों को ही मान्य समझा उसके उत्साह का पहला फल यह हुआ कि एक कमेटी बना कर उसे उसका प्रेसीडेंट बना दिया गया और राघोवा से प्रारम्भिक बातें करने का अधिकार उस कमेटी को दे दिया।

जनरल राबर्ट गार्डन की मृत्यु हो जाने से बम्बई सरकार का एक प्रमुख सलाहकार उठ गया। वह उस समय बम्बई सरकार की सेना का कमांडिंग अफसर था। उसका पद कर्नल चार्ल्स इजरटन को दे दिया गया। चार्ल्स इजरटन का पालन-पोषण इंग्लैन्ड में सैनिक छाया में ही हुआ था और यूरोप में उसकी सैनिक सेवा का उपभोग किया जा चुका था। वह अत्यन्त दुर्बल शरीर का व्यक्ति था और प्रायः बीमार रहा करता था। वह न तो भारत से परिचित था न यहाँ के निवासियों से और न यहाँ के युद्ध कौशल से। एक बार चूँकि कर्नल कीटिंग के मुकाबले में उसकी उपेक्षा की जा चुकी थी अतः इस बार उसका मन रखने के लिये उसे सेनापतित्व का भार दे दिया गया। दैनन्दिनी सेवा में किसी व्यक्ति का काम पद की प्रतिष्ठा से चल सकता है परन्तु युद्ध काल में ऐसे कमजोर व्यक्ति के हाथ में सेना का भाग्य सौंप देना भारी भूल का काम है। ऐसी अवस्था में यदि योजना असफल हो जाय और सेना को पराजय एवम् अप्रतिष्ठा का सामना करना पड़ जाय तो उसे उस अफसर की भूल न मान कर नियुक्ता की भूल माननी चाहिये।

उस समय कम्पनी की सैनिक सेवा में नित्य नये अफसर आ रहे थे जिनमें अनेक अधिक आयु के होते थे और वे पद, प्रतिष्ठा व नाम कमाने के चक्कर में नहीं वरन् भले-बुरे रास्ते से धन कमाने की लालच में भारत में आते थे। उनकी तनख्वाहें थोड़ी होती थी, और उस समय सैनिक रसद की पूर्ति, सज्जा और सवारी इत्यादि के काम की कोई सुनियोजित व्यवस्था नहीं होती थी जिसका परिणाम यह होता था कि नाना प्रकार के अप्रतिष्ठा एवम् लज्जाजनक भ्रष्टाचार

एवम् गबन का बोलबाला रहता था। उस भ्रष्टाचार के कारण न कमा पाने वाले प्रशासनिक अधिकारियों को जलन तो होती थी, परन्तु वे इन्हें रोकने का कोई उपाय ही न सोच पाते थे और न सद्भावना का वातावरण ही निर्मित कर पाते थे।

इसी ईर्ष्या के प्रतिफल स्वरूप इस अवसर पर भी कांउसिल के दो मेम्बरों की एक समिति बनायी गयी थी जो कमान्डर के सहयोग में काम करती थी और जिसके हाथ में सारे राजनैतिक अधिकार सौंप कर उन्हें ही यह अधिकार भी दे दिया गया था कि वे राघोवा को पूना पहुँचाने का पूरा प्रबन्ध करें। सेना के उच्च अफसरों को केवल प्रस्थान सम्बन्धी साधारण कार्यों का ही भार दिया गया।

इस कमेटी के प्रथम प्रस्ताव पर पहले तो कर्नल इजरटन ने सहमति दे दी। उसने सोचा था कि उसे केवल राघोवा से प्रारम्भिक वार्ता ही करना होगा, परन्तु जब सारा मामला उसकी समझ में आया तो उसने कितनी आपत्तियाँ प्रस्तुत करते हुए विरोध किया और कहा कि यह कोर्ट कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स की आज्ञा के विरुद्ध है और एक कमांडिग अफसर की प्रतिष्ठा को कम करने वाला है तथा हद्द दर्जे का अपमानजनक है।

इस बार रघुनाथ राव (राघोबा) से जो समझौता किया गया वह जहां तक कम्पनी का सम्बन्ध था सूरत की सन्धि से थोड़ा ही भिन्न था, परन्तु इसके जिस भाग से राघोबा का सम्बन्ध था उसमें स्पष्ट रूप से लिख दिया गया था कि अँग्रेज लोग पूना में उसे ऐजेन्ट के पद पर रखदेंगे और उसके बाद की जो शर्तें थी वह बंगाल सरकार के निर्देशानुसार ही थीं। चूँकि बम्बई सरकार ने मि० ड्रेपर की राय के विरुद्ध भी उस प्रस्ताव को स्वीकार किया था, इस लिये यह सोचा जा सकता है कि बम्बई सरकार ने तुरन्त ही सेना भेज दी होगी, परन्तु बात ऐसी नहीं थी। उसकी तैयारियों में ही अत्यधिक देर हो गयी। अन्त में विभिन्न रास्तों से देशी सैनिक लेकर सेनां की छः टुकड़िया अग्रगामी सेना के रूप में तैयार की गयी जिनके साथ थोड़ी सी हल्की तोपें भी दी गयी थीं। यह अग्रगामी दल २२ नवम्बर को जहाज द्वारा बम्बई से रवाना हुआ। यह दस्ता आप्टी में उतर कर जेम्स स्टेवार्ट के सेनापतित्व में आगे बढ़ा और बिना किसी विरोध के ही भोर घाट को अधिकृत कर लिया और कांदला नामक गाँव में पड़ाव डाल कर बढ़ने लगा। सन्धि पर हस्ताक्षर होने के पूर्व ही अग्रगामी दस्ता चल पड़ा था इसी समय राघोबा की विचित्र जिद के कारण थोड़ी देर और भी होगयी। राघोबा ने देखा कि अब बम्बई सरकार काफी आगे जा चुकी है और उसके सहयोग के बिना वह आगे नहीं बढ़ सकती। उसके पीछे हटना भी असम्भव है अतः उसने अनेक आपत्तियाँ उठायीं जिनमें से अनेक को विवश होकर बम्बई सरकार को स्वीकार करना पड़ा। जिन दोस्तों ने राघोबा के मदद में इतनी परेशानियाँ उठायी थीं, उन्हीं को परेशान करके सुविधा प्राप्त करने के कारण बम्बई सरकार बड़ी चिन्ता में पड़ गयी, परन्तु परिस्थिति की जटिलता के कारण बम्बई सरकार उसे भी टाल गयी, क्योंकि सफल होने के परिणाम स्वरूप अनेक सुविधाओं के स्वप्न उनके सामने थे।

२३ नवम्बर को बम्बई की सेना जहाज से पनवेल के लिये रवाना हुई और सामने वेलापुर के एक छोटे से दुर्गपर अधिकार कर लिया और २५ नवम्बर को पनवेल में उतरी। अग्रगामी दल और बेलापुर में छोड़े गये सैनिकों को मिला कर इस सेना में इस समय पाँच सौ इक्यानवे यूरोपियन, दो हजार दो सौ अठहत्तर देशी सिपाही, पाँच सौ पूर्वी भारत के बन्दूक चलाने वाले सैनिक तथा अन्य अफसरों से संयुक्त तीन हजार नौ सौ व्यक्ति थे। पनवेल से आगे जाने की

तैयारियों में ही कई दिन बीत गये, परन्तु बाद में सड़क बनाने के काम में तथा विभिन्न रस्मों के कारण जो देरी की गयी वह सर्वथा अक्षम्य थी।

एक घोषणा पत्र प्रचारित किया गया, जिसमें कहा गया था कि राघोबा के सम्बन्ध में ही यह अभियान किया जा रहा है। यह घोषणा पत्र राघोबा के आदमियों से ही प्रचारित कराया गया। जब इस सेना ने पहले-पहल पनवेल में प्रवेश किया तो उस गाँव में रहने वाला मंत्रिदल का कारकुन गाँव छोड़कर चला गया। कर्नल इजरटन ने तुरन्त उसके मकान पर अधिकार कर लिया और उसी में डेरा डाल दिया। राघोबा के घोषणा पत्र की दो प्रतिलिपियाँ उसके पास थीं। गाँव के निवासियों को इकट्ठा करके उसने उनके सामने उन्हीं को पढ़ना शुरू किया। उसका कहना था कि शासन परिवर्तन के नाम पर गाँव में खुशी की लहर दौड़ गयी थी। थोड़ी देर बाद ही उसे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि इस बात का समाचार बम्बई पहुँच गया है और उसके विरुद्ध एक शिकायत की गयी है कि उसने एक ब्राह्मण के घर पर अधिकार कर लिया है और उसे अपवित्र कर डाला है। कर्नल इजरटन ने यह कहकर छुट्टी पाया कि वह राजकीय भवन में ठहरा हुआ है और उसे नहीं मालूम था कि उसमें कोई ब्राह्मण रहता था। वास्तव में यह बात बड़ी विचित्र सी लगती है कि कर्नल इजरटन तथा मि० कारनक के इतने छोटे-छोटे झगड़ों के विवरण को सरकारी प्रपत्रों में स्थान मिले। मि० कारनक के एक और झगड़े को प्रयोग में स्थान मिला है। एक बार उसने कहा कि उसे सैनिक सलामी नहीं दी जाती। अँग्रेजों के दुर्भाग्य से मि० मोस्टिन बीमार पड़ गया। उसी पर इस अभियान के मार्ग प्रदर्शन का भार था। एक बार भी समिति में उपस्थित हुए बिना भी वह बम्बई लौट गया, जहाँ १ जनवरी को उसका देहान्त हो गया। मि० कारनक को होने वाली हानि का पूरा ज्ञान था। शीघ्र ही उसने यह राय प्रगट किया कि यदि अब भी अँग्रेज राघोबा की सहायता में आगे बढ़ते हैं तो उन्हें भारी विपत्ति का सामना करना पड़ेगा, क्योंकि उनका पथप्रदर्शक ही नहीं रह गया।

मि० मोस्टिन के बीमार होने पर कर्नल इजरटन ने कहा कि चूँकि त्रिसदस्यीय समिति का एक सदस्य अनुपस्थित है अतः समिति की सत्ता को स्थगित समझना चाहिये, परन्तु उसकी आपत्ति को बम्बई सरकार ने नहीं माना। बम्बई सरकार के उस रवैये के कारण मि० कारनक की स्थिति एकदम सेनाध्यक्ष की हो गयी, क्योंकि वह द्विसदस्यीय समिति का प्रेसीडेंट था और उसके पास एक अतिरिक्त वोट भी था जिसके बल पर वह सदा ही अपने राय को मान्य बना सकता था।

राघोबा तथा उसका गोद लिया हुआ पुत्र अमृतराव कुछ छिटपुट सवारों की एक सेना के साथ २३ दिसम्बर को पश्चिमी घाट की पहाड़ियों पर चढ़ा। इस समय तक कर्नल स्टेवर्ट की सेना का छिटपुट संघर्ष शत्रु के सवारों से हो चुका था जिनमें देशी सिपाहियों ने बड़ा उत्साह दिखाया था। कर्नल इजरटन ने पहाड़ की ऊँचाई पर जाकर अपनी सेना को दो भागों में बाँट दिया। एकसेना का पति बनाया लेफ्टिनेंट कर्नल को और दूसरे विभाग का सेनापतित्व दिया लेफ्टिनेंट कर्नल कार्कबर्न को। कैप्टेन स्टेवार्ट के जिम्मे अग्रगामी दस्ता था ही। ये तीनों ही दस्ते एक के बाद एक पौन मील प्रतिदिन के हिसाब से आगे बढ़ने लगे। शायद ही कभी २ मील से अधिक ये लोग बढ़े हों। जब एक दस्ता पहुँच जाता था तभी दूसरा दस्ता आगे बढ़ता था। जिस स्थान को पहले स्टेवर्ट ने पहले-पहल अधिकृत किया था उससे ८ मील दूर कार्लों नामक स्थान पर ये लोग ग्यरह दिन में पहूँचे। बाद में सेनापति ने बताया कि पूर्ति विभाग ने रसद

तथा गाड़ियों का समुचित प्रबन्ध नहीं किया था। मि० कारनक के अनुसार इस धीमी प्रगति से शत्रुओं का साहस बढ़ रहा था और वे पैदल सेना को सामने ला रहे थे। उनकी (मराठों की) तोपों तथा अग्निवाण उन लोगों को परेशान करने के काम में लाये जा रहे थे। फिर भी मराठों के हर आक्रमण को विफल करके उन्हें भगा दिया जाता था। कांदला से प्रस्थान करने के बाद ३१ दिसम्बर को कर्नल एक अग्निवाण का निशाना बन गया। इस युद्ध में भी और इसके पूर्व लड़े गये अनेक युद्धों में कैप्टेन स्टेवर्ट ने बड़ी सूझबूझ एवम् वीरता पदर्शित की थी। ४ जनवरी को कार्ली नामक गाँव में एक गोला उसे लग गया और वह तत्क्षण ही मर गया। उसके मरने पर सेना ने बड़ी गमी मनाई। बम्बई सरकार के अनुसार वह कर्मठ, बहादुर और विवेक पूर्ण सैनिक था, और उसमें युद्ध सैनिक भावनायें थी।" यह भी स्मरणीय है कि महाराष्ट्र प्रान्त में मराठा लोग स्टेवर्ट को आज भी 'फख्र' की उपाधि से विभूषित करते हैं। फख्र फारसी का शब्द है, जिसके अर्थ होते हैं 'गौरव'। वास्तव में सैनिकों के लिये इससे बड़ा सम्मान कुछ भी नहीं है कि उसके शत्रु उसके मरने के बाद भी इतने दिनों तक उसका सम्मान करते रहें।

बम्बई सरकार द्वारा तैयारियों में लगाये गये अत्यधिक समय के कारण नाना फड़नवीस तथा सिंधिया को पर्यात समय मिल गया कि वे अपने मतलब भर सेना इकट्ठी करलें। इस सैन्य संग्रह में सखाराम बापू बहुत कुछ अड़चन डालते रहते थे। उनको यह खयाल था कि वे पुरन्धर की सन्धि के नियमों से बँधे हुये हैं एवम् इसलिये उन्हें अँग्रेजों के विरुद्ध सैनिक तैयारी नहीं करनी चाहिये। अतः उनको समझा-बुझा कर उन्हें फिर से पद ग्रहण करने को राजी किया गया। सैन्य संग्रह एवम् विभाजन के कार्य सिंधिया के जिम्मे थे, जिसमे हरीपन्त फड़के तथा तुका जी होल्कर भी लगे हुये थे। नाना को हरदम यह डर सताया करता था और उसका भय ठीक भी था कि कहीं होल्कर राघोबा से न मिल जाय, इसी लिये उसे प्रायः ऐसी स्थिति में रखना पड़ता था कि उसे किसी प्रकार का शक भी न हो और वह राघोबा से थोड़ी दूर ही रहे। अँग्रेजों के पहुँचने पर सारा मराठा सैन्य तुलीगाँव की ओर चल पड़ा। बम्बई सेना का सामना करने के लिये यशवन्त राव कांसे को सात तोपें चार हजार पैदल और पाँच हजार सवार लेकर आगे भेज दिया गया था और आज तक जितने भी संघर्ष अँग्रेजी सेना से हुए थे वे सब के सब कांसे की इसी टुकड़ी से हुए थे। इधर कर्नल इजरटन का स्वास्थ्य !इतना खराब हो गया था

६ जनवरी]

कि उसने सेना की अध्यक्षता के कार्य से इस्तीफा दे दिया और ६ जनवरी को सेनापतित्व का भार आ पड़ा कर्नल काकबर्न के कधों पर। इजरटन कमेटी का सदस्य बना रहा क्योकि शत्रु सेना के एक घुड़सवार ने बम्बई से पत्र व्यवहार का रास्ता बन्द कर दिया और वहाँ से किसी प्रकार के आदेश की प्राति असम्भव थी।

अँग्रेजों की सेना ६ जनवरी को तुलीगाँव पहुँची, जहाँ मराठों ने मुकाबला करने का केवल आडम्बर मात्र किया और जब अँग्रेजी सेना मुकाबले के लिये आगे बढ़ी तो मराठे पीछे हट गये। नाना फड़नवीस के आदेश से गाँव को बर्वाद कर दिया गया था और कमेटी को यह समाचार मिला कि इसी प्रकार चिंचूर तथा पूना को भी नष्ट कर देने का आदेश दिया गया है जिसमें शत्रु-सेना चारा पानी न पा सके। तुलीगाँव तथा राजधानी में केवल अठारह मील का फासला था परन्तु अँग्रेजी सेना शत्रु की कार्यवाही से इतनी अधिक चौकन्नी हो गयी थी कि उसे आगे बढ़ने का साहस नहीं हो रहा था। इधर राघोबा बराबर कह रहा था कि जब तक एकाध बार सैनिक सफलता नहीं मिल जाती तब तक कोई भी मराठा उसे स्वीकार करने पर तैयार नहीं होगा।

ऐसी स्थिति में अँग्रेजों की निराशा की सीमा न रही। उनके पास पूरी सेना के लिये केवल अठारह दिन की रसद थी। अतः दो प्रस्ताव माने गये। पहले के अनुसार उन्हें किसी न किसी मराठा सर्दार मिलाने का प्रयास करना था और दूसरे के अनुसार किसी न किसी प्रकार लौटने का बन्दोबस्त करना था। मि० लिविस इस पूरे समय में पूना में बना रहा था तथा हाल में ही बम्बई चला गया था और अब सेना के साथ था। उसने कमेटी को सुझाव दिया कि घुड़सवारों का एक दल मोरोबा का है जो इस समय कोकण में है तथा वह किसी भी समय आकर अँग्रेजी सेना से मिल सकता है, परन्तु किसी ने उसकी बात को मूल्यवान नहीं माना। जिस समय मि० कार्नक ने मि० कर्नल कॉकबर्न के सामने वापस होने का प्रस्ताव रक्खा तो उस समय नागरिक एवम् सैनिक प्रशासन का देशमुख अधिकारी मि० होम्स तथा कैप्टेन हार्टले भी उपस्थित थे। इन दोनों व्यक्तियों ने साहस पूर्वक सुझाव दिया कि वे जहाँ हैं वहीं रुक कर समझौते की प्रतीक्षा करें। कर्नल कॉकबर्न की भी राय माँगी गयी, तो उसने कहा कि इसमें कोई शक नहीं कि वह सेना के साथ पूना तक जा सकता है, परन्तु उसे भय था कि कहीं उसके सैनिक सामान न लुट जायँ। उसके पास पर्याप्त मात्रा में भारी तोपें थीं, रसद थी और उन्नीस हजार तो केवल बैल ही थे। इन सब कठिनाइयों के बावजूद कमेटी ने निर्णय किया कि उन्हें लौटना ही चाहिये। इस समय राघोबा की राय को भी बड़ा महत्व दिया जाना चाहिये था और दिया भी जा रहा था। उसने कमेटी से प्रार्थना की कि वह अपने प्रस्ताव के कार्यान्वयन को स्थगित कर दे। समय का फेर था कि कभी जो व्यक्ति पचास हजार सवारों का सर्वे-सर्वा होकर नर्मदा से अटक तक कारनामें दिखाया करता था आज उसी के देश वाले उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे और उसके संगी-साथी उसकी राय को नगण्य मानते थे। कमेटी अपने लौटने के प्रस्ताव को एक दिन भी स्थगित करने को तैयार न थी। ग्यारहवीं जनवरी को रात में ग्यारह बजे भारी तोपों को एक तालाब में डुबा दिया गया, कितनी ही अनावश्यक या कम आवश्यक सामग्री जला दी गयी और अँग्रेजी सेना के छब्बीस सौ सिपाहियों ने पीछे हटना प्रारम्भ किया। उन लोगों ने यही समझा था कि समीप में पड़ी हुई माराठों की पचास हजार सेना उनके पीछे हटने से बेखबर है।

अँग्रेजों की कल्पना थी कि कम से कम एक मार्च आगे निकल जाने पर मराठों को उनके पीछे हटने की खबर मिल सकेगी, परन्तु अर्द्धरात्रि के बाद जब दो बजे कैप्टन गॉरडन की अध्यक्षता में पीछे हटते हुए अग्रगामी दस्ते पर तोपों की बौछार पड़ी तो उनका स्वप्न टूट गया। वे जान गये कि शत्रुओं क उनकी खबर लग चुकी है। उस समय भी बेचारे राघोबा को ही दोषी बनाया गया। कॉकबर्न को विश्वास था कि मराठों को यह समाचार राघोबा ने ही दिया था। जैसा हम पहले ही देख चुके हैं कि इस सेना को दो भागों में बाँट दिया गया था। इसके अतिरिक्त देशी बमबाजी सिपाहियों की सेना अलग सुरक्षित रूप से रक्खी गयी थी। इस अवसर पर कर्नल कॉक बर्न के सेनापतित्व में दोनों भाग मिल गये थे। आगे आगे कैप्टेन गॉरडन के सेनापतित्व में अग्रगामी दल जा रहा था और देशी सिपाहियों के बमबाज देशी सैनिकों की छः कम्पनियाँ और दो तोपें पृष्ठ भाग में थीं।

कैप्टेन स्टेवर्ट की मृत्यु के बाद सुरक्षित सैन्य के संचालन का भार कैप्टेन जेम्स हार्टले को दिया गया। कैप्टेन हार्टले एक नवयुवक सैनिक था जो कम्पनी की सेना में पिछले चौदह वर्ष से कार्य कर रहा था। देशी सिपाहियों में वह विशेष श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था। यहाँ एक बात कह देना अप्रासंगिक न होगा कि देशी सिपाही अपने अफसर को परखने म

अद्वितीय होते हैं। विभिन्न सेनापतियों के साथ उनके कार्य व्यवहार व क्रियाकलाप भी भिन्न होते हैं। भारतीय सैनिकों की विशेषता है कि वे सब कुछ भूल सकते हैं, परन्तु अपने अफसर की उदारता को वे कभी नहीं भूलते और आवश्यकता के समय उसका पूरा मूल्य चुकाते हैं। यदि वे जान जायँ कि उनका अफसर उनके विश्वास का उपयुक्त पात्र है तो शायद ही कभी उनका व्यवहार अनुचित हो। छोटी से छोटी स्थिति का अफसर भी जब भारतीय सिपाहियों का संचालन भार ग्रहण करता है, तो उसे इस जाति गत विशेषता का ध्यान रखना पड़ता है। बृटिश सेवा के किसी भी अन्य विभाग में इस प्रकार की कठिनाई नहीं पड़ती। भारत की सेना में काम करने वाले अफसर को अपना कर्त्तव्य ही नहीं पूरा करना होता वरन् उन्हें भारतीय सिपाहियों की मन स्थिति का भी पूरा ध्यान रखना पड़ता है और जब किसी भी कारण उनमें निराशा या असंतुष्टि के भाव भर जाते हैं तो उनके इन भावों को हटाने की पूरी कोशिश करनी पड़ती है।

कर्नल कॉकबर्न ने ज्योंही सामने तोपों की आवाज सुनी त्योंही उसने मेजर फ्रेडरिक को आदेश दिया कि वे यूरोपियन सैनिकों के दो दस्ते लेकर कैप्टेन गॉरडन की सहायता करें, फिर भी सैनिक सज्जा का काफी अधिक सामान मराठों ने लूट लिया और थोड़ी ही देर बाद अँगरेजी सेना के पृष्ठ भाग पर भी आक्रमण कर किया। बड़ी ही कठिनाइयों को सहन करती हुई समस्त सेना दिन निकलते तक बढ़ती गयी। दिन निकलने पर उन्होंने देखा कि वे पूरी तरह से घिर गये हैं और मराठों के झुन्ड उनके चारों ओर इस प्रकार मँडराने लगे जैसे वे अँग्रेजी सेना के मुख्य भाग पर ही आक्रमण करने ही वाले हों। अँग्रेजी सेना को रुक जाने का आदेश दिया गया तथा सैनिक पंक्ति वद्ध होकर खड़े हो गये। अँगरेजों के समय के बहुत पहले अर्थात् शाहजहाँ के समय से ही मराठों की युद्ध शैली यही रही है कि वे सर्वदा पृष्ट भाग पर ही आमक्रण करते हैं। इस बार भी ऐसा ही हुआ। हार्टले के सिपाहियों ने इस आमक्रण का सामना बड़े ही उत्साह एवम् मुस्तैदी से किया। मराठों को तेजी से पीछे हटना पड़ा और अगर अफसरों ने पल भर रोका न होंता तो वे मराठों को खदेड़ने भी लगते। सूर्योदय के थोड़ी ही देर बाद मराठों की मुख्य सेना ने फिर से अँग्रेजों के पृष्ठ भाग पर नयी शक्ति के साथ आकमण किया। आक्रामक सेना में पैदल और सवार दोनों ही थे। अबकी सराठों के पास तोपें भी थीं और वे खुलकर उसका उपयोग करने लगे थे, परन्तु तोपों की मुख्य मार पृष्ठ भाग पर ही पड़ रही थी। भारतीय सैनिकों के दस्ते यद्यपि बुरी तरह से दवे हुए थे मगर उनके अफसर चूँकि उनके मन के थे, अतः वे पूरी सामर्थ्य एवम् उत्साह के साथ लड़ रहे थे।

कैप्टेन हार्टले ने कर्नल कॉकबर्न की सेवा में एक अफसर के द्वारा यह प्रार्थना भेजा कि उसकी सहायता के लिये मुख्य सेना के सैनिकों को भेजा जाय, परन्तु कॉकबर्न ने इस प्रार्थना पर आपत्ति प्रकट की कि और कहा कि उसे शत्रु इस प्रकार से घेरे हुए हैं कि यदि उसने तनिक भी स्थिति परिवर्तन किया तो उसके वाम भाग पर आक्रमण हो जायगा। इस समिति के होते हुए भी उसने यूरोपियन सैनिकों की पाँच तथा देशी सिपाहियों की दो टुकड़ियों को कैप्टेन हार्टले की सहायता के लिये भेज दिया। कैप्टेन हार्टले एक ऊँची जगह पर स्थित था। इन नवीन सैनिकों की सहायता से उसने मराठों के नित नवीन होने वाले आक्रमणों से अपनी रक्षा मुस्तैदी से करना आरम्भ कर दिया। उसके निजी सैनिकों में भी इस मदद के कारण एक नवीन उत्साह की लहर व्याप्त हो गयी थी। दिन के दस बजे कर्नल कॉकबर्न ने कैप्टेन हार्टले के पास तुरन्त पीछे हटने का अत्यावश्यक आदेश भेजा, परन्तु सौभाग्य से आदेश वाहक की भेंट लेफ्टिनेन्ट रट्टे से हो गयी

और उसने रट्रे को ही आदेश पहुँचाने का भार दे दिया जो कैप्टेन हार्टले का विश्वस्त आदमी था। दोनों ने आपस में राय की और वे इस बात पर सहमत हो गये कि यदि इस आदेश का यथावत् पालन किया गया तो वे महान आपत्ति में पड़ जायेंगे। रट्रे ने इस आदेश को अपने तक ही रोक लेने का दुस्साहस किया और कैप्टेन हार्टले की ओर उसी आदेश वाहक के द्वारा यह समझाने का सफल प्रयास किया कि आदेश का तत्क्षण पालन करने में बड़ा भारी खतरा है अतः कैप्टेन हार्टले को अनुमति दी जाय कि वे उचित समय की प्रतीक्षा करें और भय की सम्भावना टलने पर ही पीछे हटें। कर्नल कॉकबर्न ने इस सुझाव को मान लिया। दोपहर के पहले ही उसने मेजर फ्रेडरिक को अग्रगामी दल से हटाकर पृष्ठ भाग में इस आदेश के साथ भेज दिया कि उधर के सैन्य संचालन का भार वह स्वयम् ले ले, परन्तु कैप्टेन हार्टले की उस राय की अवहेलना न करे जो उसने कैप्टेन डासन के द्वारा भेजा था।

इस युद्ध की अवधि में मुख्य सेना को साधारण आक्रमणों का ही सामना करना पड़ा था। मुख्य सेना जब तब मराठों की तोपों का जवाब देती रही या उन सवारों को गोलियों का निशाना बनाती रही जो दुस्साहस पूर्वक उनकी मार के भीतर आ जाते थे। यदि कैप्टेन हार्टले के दल की बात को छोड़ दिया जाय तो अँग्रेजी सेना की अभी तक बहुत थोड़ी ही हानि हुई थी और अब मराठों का तोपखाना भी ढीला पड़ गया था। दिन के एक बजे मेजर फ्रेडरिक को मुख्य सेना में चले आने का आदेश मिला, जिसे उसने प्रशंसनीय ढंग से पूरा किया और समूची मुख्य सेना अग्रगामी दल की ओर चल पड़ी, जो इस समय बड़गाँव में ठहरी हुई थी।

सफलता की स्थिति में सामान, बाजार तथा खेमे भारतीय सैनिकों की सुविधाओं में अतिवृद्धि करते हैं परन्तु आपत्ति की स्थिति में वे उतना ही असुविधा जनक भी हो जाते हैं। इस समय सेना के साथ इन चीजों का अनुपात अत्यधिक बढ़ गया था। पीछे चलने वालों ने अपनी पंक्तियाँ तोड़ दी थीं। बङ्गाल को छोड़ कर वे भीड़भड़क्के के साथ सेना के केन्द्र भाग में आ गये थे और इस अव्यवस्था के कारण पीछे हटने की प्रगति में बड़ी बाधा पड़ रही थी। तीसरे पहर तीन बजे के करीब जब यह सेना गाँव के समीप पहुँची तो पीछे वाली पंक्तियों के सैनिक शरणस्थल प्राप्त कर लेने की आशा में पंक्ति छोड़ कर दौड़ पड़े क्योंकि इस सेना के पृष्ठ भाग पर मराठों की तोपें लगातार गोले बरसा रही थीं। इस तरह अँग्रेजी सेना में भारी भगदड़ मच गयी और इसका लाभ उठा कर शत्रुओं ने मनमाना मारकाट की। बड़गाँव में घुसते घुसते मुख्य सेना को काफी हानि उठानी पड़ी। बाद में मराठा सवारों को पीछे ढकेल दिया गया क्योंकि अँगरेजी सेना ने अपनी तोपों को ठिकाने से लगा लिया था। दिन के चार बजे के करीब इस सेना को थोड़ा आराम की साँस लेने का अवसर मिला। अगले दिन १३ जनवरी को सुबह से ही मराठों ने गाँव पर तोपों की मार शुरु कर दिया और पैदल सैनिकों का एक दस्ता गाँव पर आक्रमण करने के लिये आगे आया। इस आक्रमण को तो किसी तरह बेकार कर दिया गया, परन्तु अफसरों ने सूचना दी कि सैनिकों का उत्साह समाप्त हो चला है। उनको यह शङ्का हो चली थी कि पीछे हटना असंभव है। कमांडिंग अफसर का कर्त्तव्य है कि यदि उसे इस प्रकार के मनोभाव की सूचना मिले तो वह ऐसी भावना को हटाने या कम से कम दबाने का हर सम्भव प्रयास करे परन्तु कमांडिंग अफसर को स्वयं ही सैनिकों के इस मनोभाव की छूत लग गई थी। कुछ सैनिक तो अपना स्थान छोड़कर भाग निकले थे और इस प्रकार की सूचनायें मिल रही थी कि कितने ही अन्य सैनिक भी भाग

जाने की बातें कर रहे हैं। यही ऐसा समय होता है जब कि देशी सिपाहियों के अफसरों की योग्यता की परख होती है। ऐसा भी समय होता है जब अफसर का काम अफसर ही बने रहने से अधिक अच्छी तरह होता है, परन्तु ऐसे अवसर भी आते हैं जिन्हें अफसरी बाना उतारकर साधारण सैनिकों के बीच एवं भिन्न रूप में सामने आना पड़ता है। कैप्टेन अपने सैनिकों से व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से मिला, उन्हें मित्रतापूर्वक समझाया। सैनिक हार्टले को श्रद्धा की भी दृष्टि से देखते थे और प्यार की दृष्टि से भी उसने उन्हें समझाया, अन्य अफसरों ने भी। उसकी बातों का समर्थन किया और इसका प्रभाव हुआ कि सैनिकों का भागना बन्द हो गया। १३ जनवरी को सैनिकों की गणना की गयी तो युद्ध करने वाले सैनिकों में तीन सौ बावन सैनिक हो गये थे जिनमें छप्पन तो मारे जा चुके थे, एक सौ इक्यावन घायल पड़े थे और एक सौ पचपन गायब थे, जिनके बारे में यह शक किया जाता था कि वे भाग गये हैं। मारे गये एवम् घायल हुए लोगों में पन्द्रह यूरोपियन अफसर थे। सफलता के अवसर पर भी इन अफसरों की उपस्थिति महत्वपूर्ण मानी जाती थी। फिर ऐसी आपत्ति के समय उनकी अनुपस्थिति के मूल्य की सहज ही कल्पना की जा सकती है।

अब इससे भी अधिक पीछे हटना असम्भव जान पड़ने लगा। कमेटी के सेक्रेटरी मि० फारमर को मन्त्रियों से समझौता करने के लिये भेजा गया। उनकी पहली शर्त हुई कि राघोबा को बिना शर्त उनके हवाले कर दिया जाय। यह एक ऐसा प्रस्ताव था कि साधारण परिस्थितियों में अँगरेज इस प्रस्ताव पर विचार करने से भी इनकार कर देते, परन्तु इस समय परिस्थिति ऐसी थी कि अँगरेज लोग इस शर्त को भी मानने पर विवश थे, परन्तु राघोबा ने उन्हें इस कलंक से बचा लिया। उसने सिंधिया से स्वयं बात चीत की और उसी के हाथ अपने को समर्पित कर दिया। सिंधिया की हार्दिक अभिलाषा थी कि वह नाना के ऊपर भी अपना प्रभाव रख सके और नाना फड़नवीस की आन्तरिक इच्छा थी कि सिंधिया उसका कहा मानने को हर दम विवश बना रहे। इतना होने पर भी उस समय दोनों को एक दूसरे की इतनी आवश्यकता थी कि यद्यपि दोनों के साध्य विभिन्न थे पर उनके साधन एक ही थे।

पूना के शासक दल में नाना फड़नवीस तथा सिंधिया, ये दो ही व्यक्ति मुख्य थे। इन दोनो ने ही एक मत से प्रस्तावित किया कि बम्बई सरकार तमाम इलाके छोड़ दे, जो उसने माधव राव बल्लाल की मृत्यु के बाद अधिकृत कर लिया है, तथा इसके साथ ही सूरत से तथा भड़ौंच से मिलने वाला कम्पनी का भाग भी छोड़ दे। कहने की आवश्यकता नहीं कि भड़ौंच तथा सूरत की आय पर मराठों का कभी कोई अधिकार न था चूँकि मि० फॉमर जो कुछ भी सन्देश किसी को देना चाहते थे वह नाना के ही हाथों से बाहर भेजा था। अतः उन्होंने रहस्य पूर्णढंग से बम्बई सरकार को लिखा कि उस समय मराठे अपने को उसी स्थिति में समझ रहे थे जिस स्थिति में पीटर प्रथम के समुन्ख तुर्किस्तान के वजीर ने अपने को समझा था, जब सम्राज्ञी ने अपने तमाम जवाहरात नजीर की सेवा में प्रेषित कर दिया था। ऐसी स्थिति में लेफ्टिनेन्ट कर्नल कॉकबर्न की लिखित राय माँगी गई। उसने घोषित किया कि किसी भी प्रकार वापसी असम्भव है और वह इतना बड़ा काम अपनी जिम्मेदारी पर नहीं कर सकता। जिस समय कॉकबर्न ने अपनी राय दी, उस समय कैप्टेन हार्टले भी उपस्थित था। उसने कर्नल कॉकबर्न की राय से असहमति ही नहीं प्रगट किया, वरन् उसने एक ऐसी योजना बनाई जिससे सफलता पूर्वक पीछे हटना सम्भव नहीं वरन् सुनिश्चित् भी था, फिर भी कॉकबर्न अपनी राय पर कायम रहा। बाद में मि० कार्नक ने सिद्ध किया कि उस समय उसने भी यही राय दिया था कि सफलता पूर्वक

पीछे हटा जा सकता है और बजाय इसके कि मराठों द्वारा प्रस्तुत की गई अपमान जनक शर्तों पर विचार किया जाय, यही अच्छा होगा कि पीछे हटने का प्रयास करके देख लिया जाय। मि० कार्नक ने कहा कि उसने दुविधा वश अपने मत को दृढ़ता पूर्वक अवश्य ही नहीं व्यक्त किया था। चूँकि मि० कार्नक का मत इस प्रकार का था, इस लिये फौजी अधिकारियों की राय की कीमत वैसी भी कम हो गई थी। एक बार जब मि० कार्नक ने तुलीगाँव से लौटने का आदेश दे दिया था, तो उन्हें उस पर हर स्थिति में दृढ़ रहना चाहिये था। इस दृढ़ता के कारण चाहे कितना ही नुकसान हुआ होता पर वह किसी भी व्यक्ति या जाति की दृष्टि में अप्रतिष्ठा जनक न होता। बाद में अधिक से अधिक यही कहा जा सकता था कि मि० कार्नक का आदेश अविवेक पूर्ण था। कमेटी ने मि० फार्मर के पत्र के उत्तर में लिखा कि वह मंत्रियों से कहे कि विना सुप्रीम काँउसिल की आज्ञा के वे लोग किसी प्रकार सन्धि कर ही नहीं सकते। मि० फार्मर द्वारा इस उत्तर को पाकर सिंधिया आग बबूला हो उठा और चिल्ला उठा कि "तब आप मुझे वह आज्ञापत्र दिखावें, जिसके बल पर आप लोगों ने कर्नल अप्टन द्वारा की गयी सन्धि को तोड़ने का साहस किया है"।

उपरोक्त उत्तर के भेज देने के थोड़ी ही देर बाद कमेटी ने मि० होम्स को महादजी सिन्धिया के पास सन्धि करने के पूर्ण अधिकार से संयुक्त करके भेजा। कहने की आवश्यकता नहीं कि मि० फार्मर के पत्र के उत्तर में भेजा गया सम्वाद धोखाधड़ी से परे था और पूर्ण रूप से सत्य था। लोगों द्वारा इस विरोधभास का कारण पूछने पर मि० कार्नक ने समझाया कि अगर मंत्री दल के लोग हमारे चकमे में आ जाँय, तो यह उनकी बेवकूफी ही होगी। वास्तव में मि० होम्स का भेजा जाना सरासर कपट पूर्ण था। बाद में मि० कार्नक ने स्वीकार किया कि मि० होम्स को दिये गये अधिकारों में न सत्यता ही थी और न वैधानिकता ही, केवल मराठा मंत्रियों को मूर्ख बनकर काम निकालने के लिये ही यह जाल रचा गया था।

अँग्रेजों ने सिन्धिया से अलग से जो सन्धि की वार्ता चलायी, इससे उसको बड़ी संतुष्टि हुई। अँग्रेजों का इस प्रकार का व्यवहार उसकी आन्तरिक योजना के अत्यधिक अनुकूल था, परन्तु इस कार्य से उसकी अहमन्यता को चाहे जितना सन्तोष मिला हो, परन्तु अँग्रेजों के सम्मुख जो सुविधा जनक स्थिति उसके हाथ में आ गई, उसका पूरा-पूरा लाभ उठाने में वह किसी भी प्रकार नहीं चूका। एक तरफ तो उसने अँग्रेजों को कस कर दबाया और दूसरी ओर उसने नाना के ऊपर अपने पूर्व स्थापित प्रभाव को भी बढ़ा लिया। मि० होम्स ने सिंधिया से यह समझौता किया कि अँग्रेज अपनी १७७३ ई० की स्थिति में आ जायँगे और इसके बाद के अधिकृत किये हुये सभी भूभाग व सभी सुविधायें मराठों को सौंप देंगे। कमेटी को तत्क्षण ही एक पत्र लिखना पड़ा जिसमें बंगाल से आने वाले सैन्य को लौट जाने का आदेश दिया गया था। सिंधिया की कृपा प्राप्ति के लिये कम्पनी को भड़ौंच की आय को सिंधिया के लिये छोड़ना पड़ा तथा सिंधिया के कर्मचारियों को भेंट देने के लिये इकतालिस हजार रुपये नकद देने की बात माननी पड़ी। कमेटी इतनी अप्रतिष्ठा जनक स्थिति में फँस गई थी कि उसने इतने पर भी सिंधिया का आभार उस कृपा के लिये माना जो उसने अँग्रेजी सेना को सकुशल लौट जाने की अनुमति दे दी। उन्हें शर्तों की पूर्ति के जमानत के रूप में दो अफसरों अर्थात् मि० विलियम गैमल फारमर तथा लेफ्टिनेन्ट चार्ल्स स्टेवर्ट को मराठों की ही छावनी में छोड़ देना पड़ा। इतने पर भी घाट की पहाड़ियों से उतरते ही अँग्रेजों ने पहला काम यह किया कि बंगाल सैन्य को लौट

जाने का निर्देश देने वाले पत्र को उन्होंने दूसरा पत्र भेज कर स्थगित कर दिया अर्थात् इस दूसरे पत्र में लिख दिया कि बंगाल सैन्य पीछे लौटने के बजाय आगे ही बढ़ती चली जावे।

जब यह पूरी सेना बम्बई पहुँच गई तो बम्बई सरकार ने पहला काम यह हाथ में लिया कि दोषियों को पूरा दंड दिया। कर्नल इजरटन तथा लेफ्टिनेन्ट कर्नल कॉकबर्न की सेवायें स्थगित कर दी गईं। मि० कार्नक की सेवाओं पर उस समय न तो कोई टिप्पणी ही की गयी और न उस पर उस समय कोई आघात ही पहुँचाया गया, परन्तु बाद के घटना क्रम में जब इस दुर्गति की पूरी जानकारी कोर्ट आव डाइरेक्टर्स को भेजी गयी और यहाँ की घटनाओं के पूर्ण विवरण पर वहाँ विचार किया गया तो बम्बई सरकार को एक पत्र भेजा गया जिसमें युद्ध में भाग लेने वाले सभी प्रमुख कर्मचारियों का गुण-दोषों का पूर्ण विवेचन करने के पश्चात् अन्तिम आदेश के रूप में लिखा गया था कि कर्नल इजरटन तथा मि० कार्नक की सेवाओं को कम्पनी समाप्त करती है। उन्होंने मि० कॉकबर्न को भी अपदस्थ कर दिया, जो किसी भी दशा में अनुचित नहीं था और भविष्य में उदाहरण स्वरूप रखने के लिये जिसकी अत्यधिक आवश्यकता थी। फिर भी हमें कॉकबर्न की उन त्रुटियों के लिये महान दुःख है, जिनके कारण उसका सुन्दर अतीत सभी को विस्मृत हो गया। अभी केवल चार वर्ष पूर्व ही कर्नल गार्डन ने उसकी चरित्र पुस्तिका में निम्नलिखित शब्दों को लिखा था। "शान्त, स्पष्ट, दृढ़ और एक अफसर समान ही दृढ़निश्चय,। उसने पिछले दो वर्षों में दो अभियानों का संचालन किया और इन दोनों में ही उसने अपने लिये तथा अपने सैनिकों के लिये सम्मानार्जन किया और हमारे मालिकों को काफी सुविधायें दिलवायी। दस्ते के नायक के रूप में वह सर्व श्रेष्ठ है"।

इस युद्ध के कारण बम्बई सरकार की स्थिति बड़ी विभिन्न एवम् दयनीय हो गयी थी। उनका काल असीम अराजनैतिक एवं बुद्धिमताहीन सिद्ध हुआ था। उनकी योजना भी त्रुटिपूर्ण थी और उसका कार्यान्वियन भी। राजनीतिज्ञों की महान् भूलों का परिमार्जन उनकी सफलता से ही होता है, और बम्बई सरकार के हाथ असफलता लगी थी। बम्बई सरकार की बहुत दिनों से शिकायत थी कि सुप्रीम कांउसिल उन्हें खुल कर काम नहीं दे रही है। इस बार उन्हें काउंसिल ने पूर्ण स्वतंत्रता दे दी थी और उन्होंने अपने अधिकार का भरपूर प्रयोग किया था। पुरन्धर की संधि के समय से ही बम्बई कांउसिल तथा उसके प्रेसीडेन्ट बराबर बड़बड़ा रहे थे कि सुप्रीम काउंसिल के अनुचित हस्तक्षेप के कारण उनकी योजनायें मिट्टी में मिली जा रही हैं। उनका कहना था कि यदि वे एक बार भी स्वतन्त्र होकर काम कर सकते तो अँगरेज जाति, साम्राज्य तथा ईस्ट इन्डिया कम्पनी का भला तो होता ही साथ ही बम्बई सरकार की भी गौरव वृद्धि होती, मगर जब उन्हे स्वतन्त्रता दी गयी तो उन्होंने उसका उपयोग जितनी असावधानी एवम् अयोग्यता से किया उसने उनके मुख पर कालिमा पोत दी। कोर्ट आव डायरेक्टर्स एवम् सुप्रीम काउंसिल को ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे जातीय मान एवम् सामूहिक प्रतिष्ठा का विचार न करके बम्बई सरकार के विभिन्न व्यक्तियों में व्यक्तिगत स्वार्थ की बात पर अधिक ध्यान दिया गया था।

गल्तियाँ सभी से होती है, बंगाल सरकार ने भी गलती किया था, परन्तु जब गलती की मूल में व्यक्तिगत रुचि, अभिमान एवं स्वार्थ को स्थान मिल जाता है तो वही बेइमानी का रूप धारण कर लेती है। बङ्गाल सरकार के कार्यों में क्रियात्मक भूल पायी जा सकती है परन्तु विवेकात्मक भूल से इस मामले में परे रहे। उन्होंने जो कुछ किया था, वह बम्बई सरकार के बार बार कहने से जातिगत स्वार्थ के लिये किया था तथा उसमें उनके व्यक्तिगत स्वार्थ व रुचि का लेश

भी न था । इधर बम्बई में व्यापारिक साहसिकता की बात केवल वार्तालाप में ही सुन पड़ती थी । उन्होंने राघोबा के पक्ष को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर सोचना प्रारम्भ कर दिया था । वे वही काम करने की सोच रहे थे, जिसमें राघोबा का भला हो । जातिगत स्वार्थ का प्रश्न द्वितीय स्तर पर चला गया । अपने सैनिक अभियान को भैजने में जैसे वे यह दिखा देना चाहते थे कि कोर्ट आव डाइरेक्टर्स तथा समूची अँगरेज राष्ट्र यह देख ले कि बङ्गाल की सहायता के बिना वे क्या कर सकते हैं । बाद में बम्बई सरकार ने यह बहाना अवश्य किया कि उन्होंने बङ्गाल-सैन्य के बल पर काम किया था और वह सेना समय पर पहुँची ही नहीं परन्तु यह तो केवल बहाना ही था । वास्तव में अभियान की योजना के विविध अंगों पर विचार करते समय बंगल-सैन्य का ध्यान ही किसी को नहीं आया था, यदि आया होता तो वे मि० ड्रेपर के कथनानुसार दो महीने तक अवश्य प्रतीक्षा कर लेते । वास्ताविकता यह थी कि बंगाल सैन्य की आवश्यकता का अनुभय बम्बई सरकार को तब हुआ जब उसकी सेनायें युद्ध रत हो चुकी थीं । सत्य यह है की बम्बई सरकारने अवसर की उपेक्षा की, परस्थितियों के परिवर्तन पर ध्यान नहीं दिया उन्होंने मराठा साम्राज्य की सुविशाल वाहिनी के समक्ष अपने छुटपुट आदमियों को भेज दिया और एक प्रकार की विचित्र एवम् सूझबूझ हीन साहसिकता का परिचय दिया । वे जानते थे कि उनका नाम मात्र सुनकर मराठे मैदान छोड़ देगें । उनकी सेना बुरी तरह पराजित होकर लौटी थी उनका खज़ाना ख़ाली हो गया था, उनकी साख मारी गयी थी और उनकी ख्याति धूलिसात हो गयी थी, किन्तु इस विपरीतावस्था में भी गवर्नर हार्नबी की दृड़ता, योग्यता और उत्साह का प्रदर्शन प्रशंसनीय था । अतीत को सोचने से कोई सन्तोष नहीं मिलने वाला था, वर्तमान अप्रतिष्ठा का मूल कारण दायित्व हीनता थी और अब अतीत के प्रति पछतावा और भविष्य के प्रति अनागत भय की आशंका ही शेष थी । मि० हार्नबी ने दृडता पूर्वक अपने सहायकों को बतलाया कि उन्हें साहस के साथ आलोचनाओं एवं फल स्वरूप मिलने वाले दण्ड की प्रतीक्षा करते हुए आगे के काम को देखना चाहिये और भयिष्य का सामना करने के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये तथा जिन आने वाले भयों की आशंका है; उनका सामना करने के लिये और हो सके तो उनपर विजय प्रात्य करने के लिये आवश्यक प्रयास काना चहिये । उन्होंने अपनी कांउसिल तथा प्रशासन के अधिकारियों करो सम्बोधित करते हुए कहा कि "यह सत्य है कि हमारे काम की मर्यादा विगड़ गयी हैं फिर भी हमें सन्तोष है और हमें सन्तोष करना चाहिये कि हमने अपनी जातिगत विशेषता एवम् दृढ़ता के साथ काम किया है, अतः वह आलोचना के योग्य भले ही हो, घृणा के योग्य कदापि नहीं है । यदि अब भी हम अपनी दृढ़ता को बनाये रक्खें तो हम अपनी कठिनाइयो प्र विजय प्राप्त करके अपनी कालिमा को सरलता से धो सकते हैं" । उन्होंने कहा कि "यद्यपि कार्नक ने अपनी महत्ता को बढ़ाने के लिये नाना फड़नवीस से यह कहकर सन्धि किया है कि उन्हें वैसी सन्धि करने का पूर्ण अधिकार है, परन्तु वास्तव में बड़गाँव में हुए समझौते से हम किसी तरह भी वाध्य नहीं है, क्योंकि मि० कार्नक को समझौता करने का का कोई अधिकार ही नहीं था ।" हार्नबी ने कहा कि उक्त समझौते में जो कुछ हमारी ओर से दिया गया है हम उसे कदापि नहीं देंगे, परन्तु चूँकि इन तमाम बातों की जानकरी बङ्गाल की काउंसिल को दी जा चुकी है अतः अभी हमें मराठों के प्रति किसी प्रकार के विद्वेष प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं है । इन तमाम सावधानियों के होते हुए भी बम्बई काउंसिल के इरादों का स्पष्ट पता मराठों को उन तैयारियों से लग गया, जिनमें बम्बई सरकार युद्ध के शीघ्र बाद से ही लग गई थी ।

उसी मास में १६ तारीख (फरवरी) को मि० हार्नबी ने अपनी कांउसिल के समक्ष एक विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने मराठा राजनीति कीं विस्तृत समीक्षा की थी और अपने कर्मचारियों के लिये एक निश्चित कार्य प्रणाली को अपनाने की योजना भी प्रस्तुत की थी। अपने इस विवरण के उन्होंने दो उद्देश्य रक्खा था, एक तो यह कि मराठों के साम्राज्य में फ्रांसीसी प्रभाव स्थापित न हो सके और दूसरा यह कि अब तक जो इलाके बम्बई सरकार के पास थे, उन्हें यथा शक्ति सुरक्षित किया जा सके। उन्होंने कांउसिल को बताया कि अपने कितने ही व्यवहारों से सिंधिया फ्रांसीसियों के प्रति अपनी हार्दिक घृणा को व्यक्त कर चुका है तथा यह भी तै है कि उसका झुकाव मित्ररूप में भी और शत्रुरूप में भी अँग्रेजों के प्रति अधिक है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि, मि० हार्नबी की दोनों मान्यतायें सर्वांश में सत्य थी, क्योंकि नाना फड़नवीस की शक्ति चाहे जैसे बढ़ती, परन्तु सिंधिया को तो अँग्रेजों की ही ओर आना था क्योंकि नाना की शक्ति का मुकाबला करके उसके ऊपर अपने प्रभाव को बनाये रखने के लिये सिंधिया के लिये भी आवश्यक था कि वह अपनी शक्ति को बढ़ावे परन्तु जब तक शासन की बागडोर नाना के हाथो में (सिंधिया के बल पर ही सही) थी तब तक अपने प्रभाव को बनाये रखने के लिये उसके लिये भी आवश्यक था कि वह नाना के हाथों को शक्ति प्रदान करता रहे, क्योंकि नाना का विरोध करते ही वह भी विद्रोही की स्थिति में आ जाता और तब उसे राघोबा की तरह जन सामान्य की घृणा का पात्र बन जाना पड़ता। गवर्नर हार्नबी ने राय दिया कि प्रतिज्ञा के अनुसार इकतालीस हजार रुपया सिंधिया को दिया ही जाना चाहिये तथा हमारी सेनाओं को सकुशल लौटने की जो आज्ञा दी थी, उसके बदले में उसे भड़ौंच भी दे देना चाहिये। ये तमाम सुझाव बंगाल की सुप्रीम कांउसिल के पास भेज दिये गये थे, परन्तु अपने में शक्ति संचार के उनके अनुभव करने का मुख्य कारण था बंगाल सैन्य, जो पूरी तेजी से चलता हुआ बम्बई के समीप आ पहुँचा था। अब हमें एक बार बंगाल सैन्य का भी विवरण प्राप्त कर लेने का प्रयास करना चाहिये।

मई सन् १७७८ ई० में कर्नल लेस्ली ने जमुना नदी को पार किया। इसमें शक नहीं कि तब मराठा युद्ध का प्रारम्भ नहीं हुआ था और मराठों ने अँगरेजों का दोस्त बने रहने की प्रतिज्ञा की थी, फिर भी कर्नल लेस्ली का पथ एवम् उसकी प्रगति पग-पग पर बाधित होने लगी। जिसके कारण उसको कालपी के दुर्ग पर धावा करना पड़ा। उसने कालपी के गढ़ पर अधिकार कर लिया। बंगाल की सरकार ने सेना भेजते समय अपनी मान्यताओं के बल सैन्य प्रगति की जो कल्पना की थी उसके अनुसार उसे वर्षा काल प्रारम्भ होने के पूर्व ही नर्मदा को पार कर लेना चाहिये था, परन्तु नाना के निदेशों का पालन करते हुए बुन्देलखन्ड के राजाओं ने उनकी रसद पूर्ति को प्रभावित करने का प्रयास किया, उसके एक अफसर को मार डाला तथा कितने ही चारे की खोज में कर्मचारियों को तलवार के घाट उतार दिया। कर्नल लेस्ली ने अविरामगति से आगे बढ़ने के बजाय इन राजाओं का दमन करना चाहा। फलतः उसे कई युद्ध करने पड़े, छोटे-मोटे झगड़ों से निपटना पड़ा तथा सरदारों से बातें करनी पड़ी। इस प्रकार लेस्ली ऐसे कामों में फँस पड़ा जो जितने ही अशेष थे उतने ही अलाभकर। उसने छतरपुर के तीन कोस पश्चिम मऊ नामक स्थान को थोड़ी ही कठिनाई के बाद अधिकृत कर लिया तथा केन तट पर के रक्षकों को मारकर भगा दिया। यद्यपि उसे बंगाल से बार-बार आदेश मिल रहे थे कि वह केवल आगे ही बढ़े, फिर भी उसने समूचा वर्षा काल इन छोटे-मोटे झगड़ों में ही बिता दिया। फलस्वरूप उसकी प्रगति इतनी धामी रही कि पाँच महीने में वह कठिनाई से एक सौ बीस मील जा सका। इधर

उसकी सेना के व्यय का यह हाल था कि केवल चौथे महीने में ही उसकी सेना का खर्च (महीने भर का) बारह लाख रुपया हुआ था।

इन असफलताओं के बावजूद भी मि० हेस्टिंग्ज ने कर्नल लेस्ली के प्रति अपने विश्वास को नहीं खोया, परन्तु अन्त में हारकर उसे स्वीकार करना पड़ा कि कर्नल लेस्ली का व्यवहार अक्षम्य था, अतः उसे वापस बुलाने का आदेश देना पड़ा और उसके स्थान पर लेफ्टिनेन्ट कर्नल गोडार्ड को नियुक्त किया गया, परन्तु लेस्ली भी कम भाग्यमान् न था। इस वापसी के आदेश के पूर्व ही ३ अक्टूबर संन् १७७८ को बुखार से उसका देहान्त हो चुका था।

कर्नल गोडार्ड ने तुरन्त अपने पद का भार सँभाल लिया और थोड़े ही दिनों बाद उसने राजगढ़ से प्रस्थान कर दिया। बुंदेलखंड के इस भाग से उसने नर्मदा नदी की ओर का रास्ता पकड़ा। उसका रास्ता मुल्तान, खेमलसा, भिलसा भोपाल तथा होशंगाबाद से होकर था। होशंगाबाद में ही पूरी दिसम्बर को नर्मदा पार किया। जिस समय गोडार्ड ने बुन्देलखण्ड का क्षेत्र छोड़ा था; उसके पहले ही सागर स्थित मराठा सरदार बालाजी पन्त ने गोडार्ड की दोस्ती का बादा किया था। स्मरणीय हैं कि इसी सरदार ने लेस्ली की शह में प्रथम बाधा डाली थी। बाला जी ने अचानक अँगरेजी सेना पर आक्रमण कर दिया और सामान को लूटने का प्रयास किया, परन्तु उसे आसानी से भगा दिया गया। भोपाल के नवाब ने मराठा सरदार के विपरीत आचरण किया। उसने पूरी तत्परता से अँग्रेजी सेना की आवभगत की, उन्हें हर प्रकार की मदद दी एवम् आवश्यक रसद का प्रबन्ध कर दिया। यद्यपि उसके इस कार्य से मराठों की नाराजगी का उसे पूरा भय था, फिर भी उसने अँग्रेजों की पूरी मदद की। अँग्रेज नवाब की सहृदयता को कभी न भूले और इसी समय से दोनों के बीच मित्रता की जो नींव पड़ी, वह आज तक ज्यों की त्यों सुदृढ़ है।

नर्मदा पार करके गोडार्ड ने उसी के तट पर पड़ाव डाला और अपने भविष्य की योजना के सम्बन्ध में मूदाजी भोंसले से समाचार पाने की प्रतीक्षा करता रहा। सामान्य रूप से बरार के शासक से मित्रता स्थापित कर लेने की सलाह अगस्त के महीने में ही सुप्रीम कांउसिल ने बम्बई सरकार को दे दी थी। इस कार्य को करने का जिम्मा दिया गया था मि० इलियट को जो दूत कार्य में विशेष निपुण था, परन्तु इस कार्य की योजना ही त्रुटि पूर्ण थी और इस त्रुटि का कारण यह था कि जिस सूचना को आधार बनाकर यह योजना बनायी गयी थी, वह सूचना ही गलत थी। उसमें इस बात की योजना की गयी थी कि पूना के शासन के विरुद्ध मूदाजी भोंसले से संधि की जाय ताकि कम्पनी अधिकृत भूभागों की स्थायी रूप से सुरक्षा का निश्चय हो जाय तथा उसके साथ फ्रांसीसियों के प्रभाव को जमने ही न दिया जाय। इसके लिये सोचा यह गया था कि मूदाजी को ही सम्पूर्ण महाराष्ट्र का राजा बना दिया जाय। निजाम अली का एक मंत्री था विट्ठल सुन्दर। उसी के सुझाव पर हेस्टिंग्ज के दिमाग में यह बात आयी थी, परन्तु हेस्टिंग्ज को यह पता नहीं था कि मूदाजी का कोई दावा मराठा गद्दी पर नहीं पहुँचता था। यदि ऐसा हो भी जाता तो भी एक दृष्टि से अन्याय होता दूसरी दृष्टि से अनियमित क्योंकि एक ही साथ राघोबा को संरक्षक भी मानना और दूसरी ओर मूदाजी को राजा भी मानना असम्भव था, यदि आदि से अन्त तक इस सन्धि की बातों पर ध्यान दिया जाय तो ये सभी इतनी उलझी हुई एवम अन्याय पूर्ण थीं। यदि छत्रपति शिवाजी की गद्दी पर मूदाजी का कोई स्वत्व होता भी तब भी उसे राजा बनाने के उद्देश्य से किया गया कोई भी कार्य राजनैतिक दृष्टि से अनुचित था; क्योंकि इतने बड़े मराठा साम्राज्य

को एक में संगठित कर देने का एक कुपरिणाम यह भी होता कि एक इतनी बड़ी शक्ति संगठित हो जाती कि वह तमाम भारत में तहलका मचा देती। डगमगाती महाराष्ट्र साम्राज्य की नौका को कील-काँटे से दुरुस्त कर देना एक महान् राजनैतिक भूल होती। इस योजना में पहली अड़चन पड़ी मि० इलियट की मृत्यु से। उसका देहान्त १२वीं सितम्बर को हुआ जब कि वह नागपुर के रास्ते पर था। इस घटना के परिणाम स्वरूप आदेश दिया कि एतत् सम्बन्धी सभी कागज पत्र कर्नल गोडार्ड को दे दिये जायँ, जिसको हेस्टिंग्ज ने आदेश दिया था कि वह कांउसिल के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए संधि का प्रयास करें। ऐसी दशा में कर्नल गोडार्ड के लिये आवश्यक था कि उसे दो-दो मालिको का आदेश न मानना पड़े अत. बम्बई सरकार को लिख दिया गया कि वह कर्नल गोडार्ड को कोई आदेश न दे। इसका कारण बम्बई सरकार को यह बताया गया था कि चूँकि जिस योजना के लिये ऐसा आदेश दिया गया था, उसमें अत्यधिक परिवर्तन हो चुके हैं। यह भी निश्चय किया गया कि कर्नल गोडार्ड की सैन्य शक्ति में वृद्धि करने के लिये देशी सैनिकों की दो टुकड़ियाँ मेजर जेकब कैमाक की अध्यक्षता में और भेज दी जायँ।

विचार करने से प्रथम दृष्टि में तो ऐसा मालूम पड़ा कि मूदाजी गवर्नर जनरल के दृष्टिकोण से सहमत हो जायगा परन्तु पूर्व उसके कि मूदाजी को सारी बातें समझायी जा सकें, उसे उस समझौते का समाचार मिल गया था, जो बम्बई सरकार ने राघोबा के साथ किया था। उसे मराठों द्वारा की जाने वाली भारी तैयारियों का भी पता लग चुका था। ये दोनों ही बातें उसे अँगरेज़ों से समझौता करने से रोक रही थीं। कर्नल गोडार्ड ने मूदाजी से बातचीत करने के लिये लेफ्टिनेन्ट वेदर स्टोन को नियुक्त किया था। मूदाजी ने कहा कि अपनी महत्वकांक्षाओं की पूर्ति के लिये उसे अँगरेजों से सन्धि करनी ही है, परन्तु वह इनके लिये उचित अवसर की प्रतीक्षा करना उत्तम जान पड़ता है। यद्यपि वह सन्धि करने को तैयार था पर तुरन्त ही नहीं। मूदाजी की वास्तविक इच्छा का पता बाद को लगा। उसकी इच्छाओं की संगति हेस्टिंग्ज की इच्छाओं से बैठ नहीं रही थी। १७४० ई० में बाजीराव की मृत्यु के बाद राघोबा के मन में जिस प्रकार की इच्छाओं का उदय हुआ था, वर्तमान स्थिति में वैसी ही इच्छाओं का जन्म मूदाजी के मन में भी हुआ था। उसकी इच्छा-पूर्ति * की सम्भावनाएँ भी कम न थीं। मूदाजी जानता था कि यदि उसने छत्रपति शिवाजी की गद्दी पर दावा किया तो उसका प्रबल विरोध होगा, इस लिये उसने सोचा था कि यदि वह राजा का रक्षक बन सके तो एक तो विरोध भी नहीं के बराबर होगा और दूसरे ब्राह्मणों की शक्ति का खातमा भी किया जा सकेगा। आखिर बरार से भी तो वह सेना-साहब-सूबा का संरक्षक ही था। वह यह घोषणा करने की योजना बना रहा था कि वह केवल राजा को उसका अधिकार दिला देना चाहता है और जो कुछ भी कर रहा है, वह राजा की ही भलाई के लिये न कि अपनी भलाई के लिये।

जिस समय वेदरस्टोन ने मूदाजी की मनःस्थिति का परिचय कर्नल गोडार्ड को दिया, उसी समय बम्बई सरकार के दो प्रार्थना-पत्र मिले जिन में से एक पर ६ दिसम्बर और दूसरी पर १६ दिस० की तारीखें पड़ी थीं और जिसमें उस बात का प्रबल आग्रह किया गया था कि वह

---

* मूदा जी ने प्रस्ताव रक्खा था कि—महाराज छत्रपति शिवा जी का वंशज सतारा राज्य की मसनद पर रहे, परन्तु उसके पहले राज्य की शक्ति को पूर्णरूपेण सुगठित कर लिया जाय (कमेटी आव सिक्रेसी की ५वीं रिपोर्ट का परिशिष्ट नं० १६१)

जितना शीघ्र सम्भव हो और जितनी द्रुतगति से हो सके बम्बई आ कर बम्बई सरकार की सेना की मदद करे, जो राघोबा के पक्ष में युद्ध-क्षेत्र में हैं।

यह सत्य है कि उन प्रार्थना पत्रों के पहुँचने के पूर्व कर्नल गोडार्ड को यह आदेश मिल चुका था कि वह बम्बई सरकार की आज्ञाओं का पालन करने के लिये बाध्य नहीं है, फिर भी उसने देखा कि बम्बई सरकार की प्रार्थना जातीय-प्रतिष्ठा की सुरक्षा के रूप में है और यदि वह बम्बई सरकार की मदद नहीं करता और बम्बई सरकार की अप्रतिष्टा हो जाती है, तो इससे केवल बम्बई सरकार का ही नहीं वरन् सारी अँगरेज जाति की अप्रतिष्ठा होगी। यह सोचकर उसने निश्चय किया कि वह बम्बई की ओर अवश्य ही जायगा। उसका यह निश्चय वस्तुतः महत्वपूर्ण था क्योंकि बम्बई पहुँचने के लिये यत्र तत्र बिखरी हुई मराठा सेनाओं से लड़ते भिड़ते रास्ता बचाते हुये चलना ही था, परन्तु उसने केवल आत्म विवेक के बल पर (क्योंकि किसी उच्चाधिकारी के आदेश का पालन तो वह कर नहीं रहा था) इतनी बड़ी जिम्मेदारी उसने अपने सर पर ले ली थी कि यदि कहीं असफल हो जाता तो अपने सम्पूर्ण अर्थ सहित विनाश के दर्शन उसे करने पड़ते। यदि वह बम्बई सरकार की प्रार्थना पर विचार न करके केवल होशंगाबाद में ही पड़ा रह गया होता तो उसे किसी का भी कोपभाजन न बनना पड़ता। .परन्तु गोडार्ड के विवेक ने उसे यह उत्तरदायित्व उठाने को विवश कर दिया। अपने ही विवेक के अनुसार उसने २६ जनवरी को होशंगाबाद से प्रस्थान किया और ३० जनवरी को वह बुरहानपुर पहुँच गया। पहले मराठों के दबाव के कारण कमेटी ने गोडार्ड की फौज को लौट जाने का आदेश दिया था, परन्तु मराठों के पंजों से गला छूट जाने पर उसने उक्त आदेश को रद्द कर दिया था। परस्पर विरोधी आदेशों में किसी को भी किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना देने की शक्ति थी, क्योंकि इनमें केवल आदेश मात्र थे, स्थिति की विवेचना नहीं, परन्तु उस स्थिति में भी गोडार्ड ने अपनी प्रगति को थोड़ा तेज ही किया, सुस्त नहीं। ५ फरवरी तक अपने सैनिकों को आराम कर लेने देकर उसने ६ फरवरी को पुनः प्रस्थान किया और २० दिनों में सूरत पहुँच गया। अर्थात् इन दिनों वह पन्द्रह मील प्रतिदिन के हिसाब से आगे बढ़ा। पूना से बीस हजार सवारों का एक दस्ता इस सेना की प्रगति को बाधित करने को भेजा गया था, परन्तु गोडार्ड इस सावधानी और तेजी से आगे भाग रहा था कि मराठी दस्ते से उसकी भेंट ही नहीं हुई।

कर्नल गोडार्ड ने बम्बई सरकार की प्रार्थना का जिस प्रकार समादर किया था और उसे स्वीकृत करके जिस तत्परता से पालन किया था, उसके लिये बम्बई सरकार ने आभार प्रगट किया और कृतज्ञता प्रकाश के रूप में उसे अपनी काउंसिल में स्थान दिया और सिफारिस किया कि कर्नल गोडार्ड को बम्बई की सेना का मुख्य सेनापति बना दिया जाय। कर्नल गोडार्ड स्वयम् भी बम्बई गया और सैनिक आदर के साथ बम्बई सरकार के अधिकारियों की अभ्यर्थना की।

मि० इलियट को गवर्नर जनरल का जो आदेश भेजा गया था उसकी प्रति प्रथम बार बम्बई सरकार को वहाँ १०वीं मार्च को मिली। गोडार्ड को यह प्रति पहले मिल चुकी थी। बंगाल से नवम्बर में इसी आशय का जो पत्र चला था वह बीच में ही कहीं खो गया था। मूदाजी से समझौता वार्ता का जों परिणाम निकला था. उसका समाचार बम्बई सरकार को गोडार्ड के द्वारा ही मिला था, जिसकी अब की यही राय थी कि मूदा जी से सन्धि का हो जाना ही अधिक सम्भव है। बम्बई सरकार ने उस समझोते के प्रति कोई गम्भीर दृष्टिकोण नहीं रक्खा। मि० हार्नबी ने अपने द्वारा प्रस्तुत किये बिवरण में कहा था कि सिंधिया अँगरेजों के पक्ष में आना चाहता है। यह

बात भी आकाश कुसुम ही प्रतीत हुई। इन परिस्थितियों में बम्बई सरकार को जान पड़ा कि इस बार के युद्ध में उन्हें स्वयंम् ही उतरना पड़ेगा न कि किसी के सहायक या मित्र के रूप में। उस रूप में युद्ध करने के लिये उसे जितने रुपयों को आवश्यकता पड़ सकती थी उसका अल्पांश भी बम्बई सरकार के कोष में नहीं था। आर्थिक अभाव ही उसकी गाड़ी के आगे अचल काठ की तरह पड़ गया था।

३० मार्च को मि० हार्नबी ने कांउसिल के सामने एक दूसरा विवरण-पत्र प्रस्तुत किया, जिसमें प्रथम विवरण पत्र में की गयी गलतियों को निर्देशित किया गया था और एक नवीन कार्य-प्रणाली को अपनाने का सुझाव दिया गया था जो उस समय की स्थिति के अनुसार सर्वाधिक बुद्धिगण पूर्ण था। उसने सुझाया कि शत्रु को परेशान करने के लिये एक तो अँगरेजों को गायकवाड़ से मित्रता करना चाहिये और दूसरे उसके राज्य में घुसकर लगान बसूल कर लेना चाहिये। गायकवाड़ से मित्रता उन्हीं शर्तों पर कर ली जानी चाहिये जो १७७२ ई० में फतहसिंह द्वारा प्रस्तुत की गयी थीं। उन दोनों भाइयों में मेल करा दिया जाय तथा उनके द्वारा पूना शासन को दिया जाने वाला कर बन्द दिया जाय तथा गुजरात में पेशवा का जो भी क्षेत्र हो, उसे कम्पनी के शासन में ले लिया जाय। इस सुझाव में भी एक भारी त्रुटि यह थी अँगरेजो को सर्वदा परमुखापेक्षी रहकर ही कार्य करना पड़ता और सर्वदा गवर्नर जनरल के सुदृढ़ नियंत्रण में रहकर ही आगे बढ़ना पड़ता।

बड़गाँव सम्मेलन का समाचार पाने के पूर्व जब बंगाल सरकार को पता लगा कि बम्बई सरकार की सेना युद्ध-क्षेत्र में उतर चुकी है, तो उसने निश्चय किया कि कर्नल गोडार्ड को बम्बई सरकार की मदद के लिये भेजा तो जाय, परन्तु उसकी सेना का अधिकार बंगाल की सरकार के ही हाथ में रहे। बड़गाँव के सम्मेलन के पूर्व ही कर्नल गोडार्ड को दो अधिकार सौंप दिये गये थे, एक यह कि उसकी अधीनस्थ सेना बम्बई सरकार के अधीन नहीं रहेगी और दूसरे पूना से संधि करने के लिये सभी आवश्यक अर्हताओं से संयुक्त कर दिया गया। आगे के समाचारों को को प्राप्त करने के बाद गोडार्ड के कार्यों के परिणाम को सूचना की प्रतीक्षा किये बिना ही गवर्नर जनरल ने गोडार्ड के कार्यों की प्रशंसा कर दी और समर्थन भी कर दिया और उसके कार्यों की स्वीकृति दे दी। कुछ भी हो वास्तव में बंगाल सरकार द्वारा उठाये गये सभी कदम युक्ति-युक्त थे और प्रशंसा की बात यह है कि अपने सारे मतभेद को भुलाकर कांउसिल के सभी सदस्य एक मत होकर काम कर रहे थे। बम्बई सरकार के युद्ध में लिप्त हो जाने का समाचार सुनकर न तो उन्हें चिन्ता ही हुई न उन्होंने किसी चंचलता का ही प्रदर्शन किया, क्योंकि उनको भय था कि यदि कहीं देशी रजवाड़ों को पता चल गया गया कि अँग्रेज घबरा गये है तो बहुत सम्भव था कि वे भी उपद्रव की सृष्टि करना प्रारम्भ कर देते। गुप-चुप ही उन्होंने आक्रमण ताक एवम् सुरक्षा ताक दोनों ही प्रकार की तैयारियाँ कर लीं। सुसज्जित सैनिकों का एक दस्ता जमुना तट पर नियुक्त कर दिया गया। अँगरेजी अधिकृत क्षेत्र की पश्चिमोत्तोर सीमा से ही आक्रमण की सर्वाधिक सम्भावना थी। प्रधान सेनापति सर आयरकूट ने स्वयं अपनी आँखों देख कर उक्त सेना की सुरक्षा के लिये सुदृढ़ व्यवस्था की। मि० हेस्टिंग्ज ने आगे चलकर अपनी पिछली त्रुटियों का परिमार्जन कर लिया। उसकी कठिनाइयों ने उसे निस्तेज बनाने के बदले उसे उत्साहित ही किया और उसने इस अवसर पर अपने-व्यक्तित्व के सभी उत्कृष्ट गुणों का प्रदर्शन किया। उसने न तो फ्रांस की चिरकाल से चली आती शत्रुता का ख्याल किया और न सर आयर कूट की आलोचनाओं की।

ये दोनों ही अधिकारी बम्बई सरकार के पिछले कारनामो से अत्यधिक असन्तुष्ट थे। सामान्य प्रशासन के लिये मनुष्य की प्रवृत्तियों की जानकारी अत्यावश्यक है, और हेस्टिंग्ज ने अपने उसी ज्ञान का उपयोग किया। सौभाग्य से कांउसिल में उसे मि० बारवेल का पूर्ण समर्थन मिल गया अतः वहाँ भी उसका बहुमत हो गया था क्योंकि प्रेसीडेंट के अतिरिक्त वोट का अधिकारी वह था ही। पिछली भूलों से उसने जो कुछ सीखा था, उसका उपयोग उसने इस बार पूरी तरह किया। इस बार उसने जो कुछ किया या कहा वह पिछली बार के वचन व कर्म के प्रतिकूल पड़ता था, फिर भी उसने साफ बात कह कर प्रकारान्तर से अपनी भूल को मान लिया। उसने कहा कि यदि हम बम्बई कांउसिल के कार्यों के प्रति अपना विश्वास प्रगट नहीं करते तो प्रतिक्रिया स्वरूप हमारे प्रति उन लोगों का भी विश्वास नहीं रह जायगा। यदि हम उनके कार्यों के लिये उनकी भर्त्सना करते हैं तो वे कार्य से न सही कम से कम मन से तो हमारे विद्रोही हो ही जायेंगे और भविष्य में हमारे कार्य अधूरे मन से करने लगेंगे। यदि हम कठोर आदेशों द्वारा उनके कार्यों एवम इच्छाओं का दमन करना प्रारम्भ कर देंगे तो उनका आत्मविश्वास ही नष्ट हो जायगा और भविष्य में प्राप्त सुविधाओं का भी उपभोग करने को विश्वास उनमें नहीं रह जायगा और हमें विश्वास है कि मराठा राज्य में एवं भविष्य में स्वाभाविक रूप से होने वाली गड़बड़ियों के परिणाम स्वरूप उन्हें ऐसी सुविधाएँ अवश्य ही मिलेंगी। निश्चय है कि हमारे आदेश हर स्थिति में उनका मार्ग प्रदर्शन न कर सकेंगे। मुख्य बात तो यह है कि मानव प्रवृत्तियों को उत्तेजित करने का कार्य करते समय या उनकी त्रुटियों की सार्वजनिक निन्दा करने के पहले हमें यह जान लेना चाहिये कि मानव दुर्बलताओं का पुतला है, प्रत्येक मनुष्य में कुछ स्वाभाविक कमजोरियाँ होती हैं और उन्हीं के झोंक में आकर वह कुछ गलत काम भी कर जाता है। यदि हम यह भूल जाते हैं तो अपने ही लोग अपने प्रति विद्रोही होकर अपना ही काम बिगाड़ दे सकते हैं। फलस्वरूप हमारे सभी ऐसे काम बिगड़ने लग जायेंगे जो केवल उन्हीं के माध्यम से हो सकते हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि भर्त्सना करने के स्थान पर उन्हें उत्साहित करें ताकि वे अपनी पुरानी भूलों को सुधारने में तत्पर हो जायँ और उन्हें ऐसी सुविधाएँ दे देवें जो उनकी उद्देश्य सिद्धि में सहायक हों। जहाँ आवश्यक हो वहाँ नियंत्रण और जहाँ आवश्यक हो, हमें प्रेरणा देने को सदैव प्रस्तुत रहना चाहिये।

कर्नल गोर्डाड को ब्रिगेडियर जनरल बना दिया गया, परन्तु बंगाल सरकार ने यह पद-वृद्धि केवल उसी कार्य के लिये किया जिसके लिये उसे भेजा गया था। बम्बई सरकार के उस प्रस्ताव को अनुकूल संस्तुति के साथ कोर्ट आव डाइरेक्टर्स के पास इंलैंड भेज दिया गया जिसमें गोडार्ड को कमाण्डर इन चीफ बनाने को कहा गया था। बम्बई सरकार ने गोडार्ड को दिये गये सम्मान का हार्दिक समर्थन करते हुए भी इस लिये उसका प्रतिवाद किया कि यह सम्मान बम्बई सरकार के माध्यम से नहीं दिय गया था और पूना से सन्धि करने का उसे सीधा अधिकार दिया गया था। उन्होंने इस बात का भी प्रतिवाद किया कि उनकी सीमा में किसी ऐसी सेना (चाहे वह अपनी ही क्यों न हो) की स्थिति असह्य है, जो उनके आदेशों का पालन करने के लिये बाध्य न हो। उनकी राय में उस प्रकार की सेना का स्थिति से उनके ही अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत उनके अधिकारों का हनन होता था, जो असह्य एवम् पूर्णतया अवैधानिक था। फिर भी चूँकि मि० होस्टिंग्ज ने उनकी भावनाओं का पर्याप्त आदर किया था और गोर्डाड ने भी बम्बई में उपस्थित होकर उन्हें सम्मानित किया था, अतः इन आपत्तियों को प्रस्तुत कर देने पर भी

बम्बई सरकार ने सुप्रीम कांउसिल के दृष्टिकोण के प्रति न केवल सहानुभूति प्रदर्शित किया, वरन् उसकी योजना को आगे बढ़ने में जी-जान से लग गये।

१५ वीं अप्रैल को गोडार्ड को निर्देश किया गया कि वह पुरन्धर की सन्धि से की गई शर्तों के समान शर्तों पर ही पूना दर्बार से सन्धि की बात-चीत करे परन्तु उसमें इतना अनिवार्य रूप से जुड़ा रहे कि मराठा अधिकृत प्रदेश में कहीं भी और किसी भी स्थिति में फ्रांसीसी नहीं बसने पावेंगे। जब कि मई मास में मि० हार्नबी द्वारा फर्वरी एवम् मार्च में प्रस्तुत विवरण सुप्रीम काउसिल के पास पहुँचे तो उन्होने मि० गोडार्ड के पथ प्रदर्शन के लिये और भी विस्तृत निर्देश भेजा और यह भी लिख दिया कि यदि समुचित शर्तों पर पूना दर्बार से सन्धि की आशा का हर प्रकार से अन्त हो जाय और यदि उचित और व सुविधाजनक समझा जाय तो मि० हार्नबी के प्रस्ताव के प्रकाश में गायकवाड़ से सन्धि कर ली जाय, परन्तु ऐसी स्थिति में गोडार्ड को चाहिये कि बम्बई सरकार की राय से उन्ही के कर्मचारी के रूप में सन्धि वार्ता करे न कि गवर्नर-जनरल के एजेंट के रूप में और यह भी ध्यान रक्खा जाय कि कहीं गायकवाड़ बन्धुओं के संघर्ष में अँग्रेज प्रतिपक्षी न बन जाँय। फतह सिंह गायकवाड़ ही बड़ौदा स्टेट का सर्वेसर्वा था अतः उसी से सन्धि वार्ता करने का निर्देश भी दिया गया था और यह भी निश्चित रूप से निर्देशित कर दिया गया था कि बम्बई सरकार ऐसा जिम्मा कदापि न ले कि वह दोनों भाइयों में मेल करा देगी।

उपरोक्त निर्देशों का मूदाजी से की जाने वाली सन्धि वार्ता पर कोई असर नहीं पड़ने वाला था, क्योंकि रघूजी भोंसले (मूदा जी का पिता) एवम् दमा जी गायकवाड़ के बीच जो राजनैतिक सम्बन्ध था, उसकी भी कुछ सहायता इन दोनों (मूदा जी फतह सिंह) के सम्मिलन में ली जा सकती थी। बड़गाँव की दुःखद घटना के बाद पूरा विचार करने पर होस्टिंग्ज इस परिणाम पर पहुँचा कि मित्र रूप में मूदा जी का भरोसा नहीं किया जाना चाहिये। अधिक से अधिक विवेक पूर्वक कार्य करने से शायद उसे निष्पक्ष रक्खा जा सकता है। गवर्नर जेनरल ने यह सोचा था कि यदि मूदा जी बराबर टालमटोल ही करता रहे तो भी अँग्रेजों को वाधित न होना पड़े। अतः उसने गोडार्ड को निर्देशित कर दिया था कि मूदा जी के समक्ष शर्तों को स्पष्ट रूप में रख दिया जाय और यदि वह इनको मानने से इन्कार करे या टालमटोल करे तो गोडार्ड अविलम्ब ही सन्धि वार्ता के भंग होने की घोषणा कर के आगे का काम देखें।

जहाँ तक सिंधिया से सन्धि करने का प्रश्न था, गवर्नर जनरल भी मि० हार्नबी की इस राय से सहमत था कि सिंधिया का गुप्तरूप रूप से यह मन्तव्य अवश्य ही था कि वह अँग्रेजों से मेल कर ले। इसी आशा में सिंधिया की इच्छानुसार वह भड़ौंच छोड़ने को तैयार हो गया था, परन्तु सिंधिया का इधर का व्यवाहार कुछ ऐसा हो चला था कि उनकी आशा धूलिस्सात् सी होती हुई दिखाई पड़ने लगी। फिर भी गोडार्ड को यह निर्देश मिला हुआ था कि यदि वह देखे कि सिंधिया का झुकाव इधर है तो वह उससे अलग से सन्धि करे।' किन्तु परिस्थितियाँ विपरीत जा रही थीं। इधर बम्बई में सिंधिया का वकील बम्बई सरकार को बारबार विश्वास दिला रहा था कि उसका स्वामी अँगरेजों से निश्चित रूप से स्थायी सन्धि करना चाहता है और उधर नाना फड़नवीस के कहने पर सिंधिया ने वानकोट पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण का केवल इतना हो उद्देश्य प्रतीत होता था कि उत्तोजित होकर अँगरेज़ झगड़े पर उतार हो जायँ। वास्तव

में युद्ध की आशंका ने नाना और सिंधिया को एक दूसरे को मुखापेक्ष बना दिया था।

सिंधिया का नाना पर जो प्रभाव था उसके बल पर उसने बुंदेलखंड में बारह लाख रुपयों की एक जागीर राघोबा के नाम स्वीकृत कराया और खुद उस बात के लिये राघोबा का जामिन भी हो गया कि भविष्य में वह मराठा राज्य को परेशानी में डालने वाला कोई भी काम न करेगा। इस प्रकार सिंधिया ने रघुनाथ राव को भी अपने प्रभाव में ले लिया। परन्तु राघोबा जन साधारण में भी और मराठा सर्दारों में भी वह इतना अधिक बदनाम था कि लोग उसकी आज्ञा पालन के बदले उससे घृणा करना ही अधिक पसन्द करते थे, अतः राघोबा को मिलाने से न तो उसका प्रभाव ही बढ़ा और न उसकी शक्ति ही बढ़ी। सिंधिया को ऐसे कुख्यात व्यक्ति का साथ देते हुए देख कर नाना फड़नवीस को प्रसन्नता ही हुई जो विदेशियों के हाथ की कठपुतली तो था ही, किसी राजनैतिक साधन के भी एक दम अयोग्य था। शीघ्र ही इस बात का प्रबन्ध कर दिया गया कि राघोबा को बुन्देलखण्ड भेज दिया जाय। नाना का विश्वास था कि सिंधिया राघोबा को ले जा कर झाँसी के किले में बन्द कर देगा और जब उचित समझेगा, उसे छोड़ देगा। सिंधिया का एक सैनिक रस्ता राघोबा को ले कर नर्मदा की ओर चला। भूल यह हुई और नाना का तथा अन्य कितनों का विश्वास है कि यह भूल जान-बूझ कर की गई थी कि राघोबा के निजी अंगरक्षक भी साथ में ही थे और उनके पास बन्दूकें भी थीं। उनकी संख्या भी सिंधिया के सैनिकों से कम नहीं थी। इधर राघोबा को इस बात की उड़ती खबर भी मिल गई कि सिंधिया उसे झाँसी के किले में बन्द करने ले जा रहा था। अतः जिस समय राघोबा नर्मदा के किनारे पहुँचे उससे थोड़ी देर पहले ही उसके सैनिकों ने विद्रोह कर दिया, सिंधिया की सैनिक टुकड़ों के नायक को गम्भीर रूप से घायल कर दिया और सैनिकों को तितर-वितर करके अपनी पूरी गति से राघोबा ने भड़ौंच की ओर भागना शुरू किया ताकि वहाँ पहुँच कर वह अपने दोस्त अँग्रेजों के पैर पर गिर पड़े। उसे पैर पर ही गिरना था क्योंकि इसकी आशा नहीं थी कि अँग्रेज लोग उससे भुजा पसार कर मिलेंगे।

इधर नाना फड़नवीस को आवश्यकता थी कि सखाराम बापू इस संसार में न रहें, क्योंकि उनके बने रहने पर व्यर्थ की सावधानी हरदम रखनी पड़ती थी। चिन्तू विट्ठल कभी राघोबा का मन्त्री रह चुका था। वह भी नाना की आँखों का काँटा हो रहा था। सिंधिया ने इन दोनों को नाना के हवाले कर दिया ताकि राघोबा के पलायन के सम्बन्ध में नाना उस पर शङ्का न करे, परन्तु नाना ने इसका उल्टा ही अर्थ लगया। उसने इस समर्पण को सिंधिया के अपराधी होने के गवाह के रूप में ग्रहण किया। सखाराम बापू को सिंहगढ़ ले जाया गया और वहाँ से चुपके से उन्हें प्रतापगढ़ भेज दिया गया। बापू के लिये यह परिस्थिति असहय हो गयी थी। इस व्यक्ति ने जीवन के प्रत्येक उतार चढ़ाव को देखा था, अपनी अतीत का वैभव और वर्तमान की दुर्दशा पर वह बराबर विचार करते रहे। इस किले की चारदीवारी के भीतर वह न तो किसी से मिल पाते थे और न उस स्थान के सिवा कुछ देख ही पाते थे, मरे नहीं। नाना उन्हें बराबर गुप्तरूप से एक गढ़ से दूसरे गढ़ में घुमाता रहा और अन्त में रायगढ़ के किले में उन्होंने अपनी जीवन यात्रा समाप्त की।

तीसवां अध्याय

सालबाई की सन्धि

[सन् १७७६--१७८२]

कृष्णा के दक्षिणास्थ मराठा अधिकृत प्रदेशों पर हैदर अली का अधिकार कर लेना—अँगरेजों पर पश्चिम भारत में फ्रेंच आक्रमण की सम्भावना--राघोबा का स्वागत—अँगरेजों के विरुद्ध सम्मेलन का समाचार--वृटिश शासन की सीधे पूना दर्बार से सन्धि वार्ता--युद्ध की घोषणा—फतहसिंह गायकवाड़ से सन्धि--अहमदाबाद का पतन—होल्कर और सिन्धिया की नीति--गुजरात में लम्बा युद्ध और उसके कारण--ले० कर्नल हार्टले कोंकण में—बम्बई सरकार की परेशानियाँ—हैदरअली से युद्ध--गवर्नर हार्नबी का प्रशंसनीय व्यवहार—बेसीन का घेरा--दुगौर का युद्ध—अँगरेज विरोधी मण्डल का विस्तार--पूना से सन्धि का प्रयत्न—गोडार्ड का पनवेल की ओर लौटना—बंगाल सरकार की कार्यवाहियाँ--मूदाजी की सेना कटक में—हेस्टिंग्ज द्वारा घूस देकर मूदाजी को फोड़ लेना--सिंधिया से सन्धि--सालबाई की सन्धि।

यद्यपि सिन्धिया तथा फड़के ने हैदरअली को काफी डरवा कर बेवकूफ बना दिया था, फिर भी जब उधर की आवश्यकताओं ने दोनों सर्दारों को १७७८ ई० की मई के अन्त में उधर खींच लिया तो हैदरअली को सुनहरा मौका हाथ लग गया। उसने धारवाड़ को ले लिया और कृष्णा नदी तक के प्रदेश उसकी छत्र छाया में आ गये। उसने चीतल दुर्ग पर भी अधिकार कर लिया और अपनी विजय को पूर्व में कुड़ापा तक बढ़ा लिया। जिन दिनों हैदरअली पूर्वी इलाकों में था उसी समय मानजर लैली नाम का एक फ्रेंच साहसिक उससे मिला, जो पहले अदोनी में बसालतजंग की सेवा में, फिर निजामअली की सेना में था और अब अपने सैनिकों सहित हैदरअली की सेना में आया था।

१७७६ ई०]

लैली के आगमन के पूर्व से ही हैदरअली अँगरेजों को बड़ी ईर्ष्यापूर्ण नजरों से देखता रहा था और यदि मराठों के आक्रमण का भय न होता तो अब तक वह अँगरेजों से युद्ध ठान चुका होता और फ्रांसीसियों को अपना मित्र घोषित कर दिया होता। पिछले कुछ दिनों से हैदरअली ने फ्रांसीसियों से घनिष्ठ सम्पर्क बना लिया था और आवश्यकता पड़ने पर वह उनसे शस्त्र सामान तथा मारीशस टापू से लाये गये सैनिकों को भी लिया करता था। १८ अक्टूबर सन् १७७८ ई० को पांडीचेरी पर अँगरेजों द्वारा अधिकार कर लिये जाने का हैदरअली को बड़ा दुःख हुआ और जब उसने सुना कि अँगरेज लोग माही को लेने की योजना बना रहे हैं तो उसने यह कहकर उनका प्रबल प्रतिवाद किया कि माही उसके राज्य में है इसलिये उसके संरक्षण में है और माही पर आक्रमण स्वयम् उसी के ऊपर आक्रमण माना जायगा। वास्तविकता यह थी कि इसी बन्दरगाह से हैदर की रसद पूर्ति होती थी। अँगरेज जब इस स्थान को लेने चले तो हैदरअली भी फ्रासीसियों के कन्धे से कन्धा भिड़ा कर खड़ा हुआ, परन्तु मद्रास की सेना ने कर्नल ब्रेथवेट की अधीनता में इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इधर

जब गवर्नर जेनरल तथा उसकी कांउसिल को इस बात की सूचना मिली कि फ्रांसीसियों का विचार पश्चिमी भारत में युद्ध छेड़ने का है तो उन्होंने झट मद्रास सरकार को लिखा कि मद्रास से एक सेना बम्बई सरकार की मदद को भेज दी जाय तथा कर्नल ब्रेथवेट को भी उधर ही ससैन्य भेज दिया जाय। माही की किलेबन्दी को तोड़ताड़ कर यह सेना बम्बई सरकार के अधिकार में आ गयी और इस बात की प्रतीक्षा करने लगी कि यदि आवश्यक हो तो वर्षाकाल के पश्चात् यह सेना कर्नल गोडार्ड की सेना से संयुक्त हो जाय।

शरणार्थी राघोबा को अँगरेजों ने शरण मात्र दे दी। १२ जून १७७० ई० को वह अपने पुत्रों अमृतराव तथा बाजीराव (आयु ४ वर्ष) को लेकर गोडार्ड के ही खेमें में उसने भेंट किया और गोडार्ड ने पचास हजार रुपये की एक मासिक वृत्ति उसके लिये स्वीकृति कर दी, १२ जून १७७६ ई०] परन्तु बाद में गवर्नर जेनरल तथा उसकी कांउसिल ने यह कह कर इस वृत्ति को अस्वीकृत कर दिया कि यह अपव्यय किसी भी दृष्ठि से उचित नहीं है। खैरियत यही थी कि कर्नल गोडार्ड ने राघोबा से कुछ विशेष वादे नहीं किये थे। गवर्नर जनरल तथा कांउसिल का विचार था कि किसी ऐसे व्यक्ति को सबल शक्ति के बल पर शासन में प्रतिष्ठापित करना श्रेयस्कर नहीं हैं। सारी जाति की भावनाएँ जिसके विपरीत हो तथा जिससे सारी जाति ही घृणा करती हो। इसलिये यदि सारी बातों को छोड़ भी दिया जाय तो भी उनकों मुख्य पक्ष के रूप में मराठों से युद्ध तो करना ही पड़ता।

नाना फड़नवीस तथा कर्नल गोडार्ड के बीच कई महीनों तक सन्धि वार्ता होती रही, परन्तु मानसून के अन्त में कर्नल गोडार्ड ने बम्बई सरकार को एक समाचार भेजा कि अँगरेजों के विरुद्ध हैदरअलीं, निजामअली तथा मराठों ने एक मंडल बना लिया है और वे अंग्रेजों की तीनों प्रेसीडेंसियों पर आक्रमण का इरादा कर रहे हैं। इस सूचना को पाने के पहले ही गोडार्ड ने कुछ बातों का स्पष्ट उत्तर माँगा था। उसे वे उत्तर आशा से भी अधिक शीघ्र प्राप्त हो गये, जिनके अनुसार नाना का कहना था कि सन्धि की कोई भी बात करने के पहले राघोबा और सालसिट् के हस्तान्तरण की प्रतिज्ञा आवश्यक है और यदि यह प्रतिज्ञा नहीं की जाती तो मराठा राज्य और अँगरेजों के बीच किसी भी सन्धि की सम्भालना पर ही विचार करने की आवश्यकता नहीं है। गोडार्ड द्वारा दिये गये समाचार को पाते ही बम्बई सरकार ने सर्वप्रथम कार्य यही किया कि उन्होंने कर्नल ब्रेथवेट् की अधीनस्थ सेना के लिये मांग उपस्थित कर दिया मगर उधर हैदरअली की प्रेरणा से नायर सर्दारों ने माही तथा तेलीचेरी पर आक्रमण कर दिया था अतः ब्रेथवेट की सेना उधर ही फँस गयी थी। इस स्थिति में मद्रास सरकार ने यह सोचकर लेफ्टिनेण्ट कर्नल ब्राउन की अध्यक्षता में एक सेना तैयार की जिससे कि मद्रास प्रेसीडेंसी को उस समय कोई भय नहीं था। इस सेना में एक सौ तोपची; पांच सौ यूरोपियन तथा देशी सिपाहियों का एक दस्ता शामिल था, परन्तृ जब यह सेना मद्रास से चलकर गोडार्ड से मिली तो युद्ध की ऋतु बीत रही थी अर्थात् वर्षाकाल समीप था।

नाना फड़नवीस की स्पष्ट मांगों का उत्तर देने में गोडार्ड ने कुछ टालमटोल किया और वह बम्बई को चल दिया जहां वह पहली नवम्बर को पहुँचा और उसने तुरन्त बम्बई सरकार से फतहसिंह गायकवाड़ से प्रस्तावित सन्धि के विषय में आवश्यक बातें कीं और यह भी निश्चय किया कि भविष्य में उसे किस प्रकार बात करनी चाहिये। वास्तव में वह इतनी तत्परता से इन छोटे कामों के लिये भाग कर बम्बई नहीं आया था वरन् उसके इस प्रकार आने का कारण था कि वह बम्बई सरकार को सावधान कर देना चाहता था कि उसे जहाँ से भी सेना मँगाना हो मँगा ले और अपनी सेना को

जिस प्रकार चाहे तैयार कर ले। यद्यपि बम्बई सरकार की यह इच्छा थी कि युद्ध जितनी देर से हो उतना ही अच्छा है, फिर भी उसने कर्नल हार्टले की अधीनता में एक सौ यूरोपियन तोपची, दो सौ यूरोपियन पैदल, देशी सिपाहियों के दो दस्ते जिसमें विभिन्न दस्तों से लिये गये साधारण व बमवाज सिपाही थे, तुरन्त ही जहाज द्वारा गुजरात की ओर जहाज से रवाना कर दिये गये।

उधर बंगाल में दो हजार सिपाहियों का एक दस्ता उस मार्ग पर चल पड़ने को तैयार खड़ा था, जिधर से गोडार्ड गया था, परन्तु यह समाचार पाकर कि युद्ध अवश्यम्भावी है और शायद इस सेना के पहुँचने के पूर्व ही प्रारम्भ भी हो गया हो, उस सेना का सूरत का प्रस्थान रोक दिया गया। शायद मि० हेस्टिंग्ज की यह इच्छा थी की ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी जाय, जिससे मराठों को एकाधिक विद्रोहों का सामना करना पड़े। इसी लक्ष्य को दृष्टि में रखकर उसने गोहद के राना से सन्धि की।

उधर जब जनरल गोडार्ड सूरत को लौटा तो उसने नाना के वकीलों को छुट्टी दे दी, अपने सेना को हरदम तैयार रहने का हुक्म दिया और फतहसिंह गायकवाड़ से सन्धि वार्ता प्रराम्भ कर दिया। इसी समय गोडार्ड के सैनिकों ने एक पत्र पकड़कर यह मालूम किया कि सूरत में रहने वाले डचों के प्रधान वैण्डरग्राफ तथा नाना के बीच एक अभिसन्धि थी, जिसके अनुसार वे सूरत के अँगरेजों के ऊपर अचानक आक्रमण करने की योजना बना रहे थे। इस बात को जानकर सूरत के अँगरेज प्रमुख मि० बोडम ने इस निन्दनीय आक्रमण को रोकने का पूर्ण प्रबन्ध कर लिया।

फतहसिंह को जब गोडार्ड द्वारा भेजे गये सन्धि के प्रस्ताव मिले तो उसने एक बार टालमटोल कर देने का निश्चय किया और उसने सब प्रकार से इसी मनोवृत्ति का प्रदर्शन किया कि उस हालत में वह अंगरेजों के साथ किसी समझौते में बँधना नहीं चाहता था। अतः गोडार्ड ने अपनी सेना को परिचालित किया, पहली जनवरी को ताप्ती पार किया और बहुत धीरे-धीरे उत्तर की ओर बढ़ा। जब भड़ौच से चला हुआ उसका सैनिक सज्जा का सामान आ गया, तो वह दुभोई पर आक्रमण करने के लिए बढ़ा। दुभोई उस समय पेशवा के अधिकार में था और उसमें २००० सैनिक थे। इधर गोडार्ड इस ओर बढ़ रहा था, उधर मि० बोडम ने पेशवा अधिकृत सूरत के समीपस्थ जिलों पर अधिकार करने लगा। मि० राबर्ट गैम्बियर तथा अन्य नागरिक प्रशासन के भड़ौंच के अधिकारियों ने भी थोड़ी सीं अनियमित सेना की भर्ती करके जनरल गोडार्ड के पड़ोस में होने का फायदा उठाने लगे। पेशवा के थानों को हटाकर अपना थाना स्थापित करने लगे और इस प्रकार अकलसीर, हंसाट्, दसबोरा तथा अमोड पर पूरा अधिकार कर लिया। बम्बई सरकार जम्बूसीर को वापस नहीं ले सकी थी।

१८ जनवरी को जनरल गोडार्ड की सेना दुभोई के सम्मुख जा पहुँची। ब्राह्मण दुर्गरक्षक को जब दुर्ग को समर्पित कर देने का सन्देश दिया गया तो उसने अपनी तोपों में बत्ती लगा कर इस सन्देश का उत्तर दिया और दूसरे दिन तक लगातार अँगरेजी सेना पर आग की वर्षा करता रहा परन्तु एक आदमी के घायल होने के सिवा अँगरेजों का कोई विशेष नुकसान नहीं हुआ। इस व्यक्ति का नाम था लेफ्टिनेण्ट चार्ल्स रेनाल्ड्स जो बाद में सर्वेयर जनरल हो गया।

२० जनवरी की सुबह होने के समय तक अँगरेजों ने ३८ पौण्ड का गोला फेंकने वाली तोप लगा दिया, परन्तु किले वालों ने रात को ही खाली कर दिया था और नागरिक प्रशासन के कर्मचारी मि० जेम्स फोर्बस को नव अधिकृत दुर्ग का भार दे दिया गया और उसके पास थोड़ी ही अनियमित सेना रख दी गयी। अँगरेजों को इस सुविधाजनक स्थिति में देखकर अब फतहसिंह ने गम्भीरतापूर्वक सन्धि

का प्रस्ताव किया। वह जनरल गोडार्ड से मिला और पूरी गम्भीरता एवम् कौशल से उसने आक्रमणात्मक एवम् सुरक्षात्मक सन्धि कर लिया, जिस पर २६ जनवरी को दस्तखत हो गया। यह सन्धि मि० हार्नबी द्वारा प्रस्तावित शर्तों पर हुई थी और इसे शीघ्र ही सुप्रीम कांउसिल की स्वीकृति भी मिल गयी।

मैही नदी के उत्तर में पेशवा अधिकृत जितना भी क्षेत्र था, वह सब फतहसिंह को दे दिया गया, जिसके बदले में ताप्ती के दक्षिण के इलाकों की लगान अँगरेजों को फतहसिंह ने दे दिया। इन जिलों को अट्ठावीसी (२८) महाद्वीप कहते थे। इसके अतिरिक्त फतहसिंह ने भड़ौच की आय का अपना भाग, नर्मदा तट का सिन्नूर जिला और भड़ौच के अन्तर्गत जो भी गाँव उसके हिस्से में थे, सब अँगरेजों को दे दिया। फतहसिंह पेशवा को जो लगान देता था उससे भी उसे मुक्ति दे दी गयी और इसके बदले में फतहसिंह ने गोडार्ड के साथ तीन हजार सवार हर लड़ाई के समय देने का वादा किया। यह भी निश्चय किया गया कि जिस दिन से फतहसिंह का अधिकार हो जायगा उसी दिन से फतहसिंह द्वारा दिये गये भूभागों पर कम्पनी अपना अधिकार कर लेगी। इसी शर्त के अनुसार अहमदाबाद पर आक्रमण करने के लिये अपनी सेना के आगे-आगे १० फरवरी को जनरल गोडार्ड चला। अहमदाबाद के किले की दीवारें बहुत चौड़ी तथा सुदृढ़ थीं और इतने बड़े शहर को घेरने वाली दीवाल में कहीं भी दृढ़ता का अभाव नहीं था। यद्यपि इस प्राचीन शहर के अधिकांश निवासी इसे छोड़ चुके थे और वह प्रायः निर्जन अवस्था में पड़ा था, फिर भी इसमें एक लाख लोगों का निवास था। पूना राज्य की ओर से एक ब्राह्मण इसका रक्षक था। उसे जब यह सन्देश दिया गया कि वह किले को समर्पित कर दे तो उसने कहलवा भेजा कि वह किला सौंप देने को तैयार है, परन्तु अधीनस्थ सैनिकों को समझा बुझा कर तैयार करने के लिये उसे कुछ समय दिया जाय। उस समय उस किले में छः हजार अपनी और सिन्धी सिपाहियों की सेना थी और दो हजार मराठे सवार थे। मराठों में यह प्रवृत्ति पायी जाती है कि वे इस प्रकार का टालमटोल भरा मधुर उत्तर तभी देते हैं, जब वे मुकाबले के लिये पूर्ण कटिबद्ध होते है, परन्तु बाद में जनरल गोडार्ड को मालूम हुआ कि ब्राह्मण सर्दार ने सत्य ही कहा था।

दूसरे दिन अँगरेजी सेना के कुछ सैनिक झूठे साहस के प्रदर्शन की भावना से किले की दीवाल के अत्यधिक समीप चले गये। फल स्वरूप उन्हें इस थोथे साहस की अच्छी सजा मिली और अनेकों के साथ सेकेन्ड कमाडिंग अफसर लेफ्टिनेण्ट कर्नल को भी चोटें आ गयीं। क्रुद्ध होकर गोडार्ड ने १२ फरवरी की सुबह से ही किले पर गोलाबारी शुरू कर दिया। इस गोलाबारी से दीवाल में एक सन्धि दिखायी पड़ी जो १३ ता० की शाम तक प्रवेश के लायक हो गयी। मानवता का खयाल करके और यह सोचकर कि बलात् प्रवेश करने से शहर में खून खराबी हो सकती है अगले दिन काफी देर तक तोपों की मार को इसलिये स्थगित रक्खा गया कि शायद किले वाले आत्मसमर्पण कर दें। परन्तु यह आशा फलवती नहीं हुई। परिणाम स्वरूप किले पर हल्ला बोल कर सन्धि द्वारा प्रवेश करने के लिये एक अलग दल का निर्माण किया गया और लेफ्टिनेण्ट कर्नल हार्टले के संचालन में १५ फरवरी को आक्रमण की तैयारी की गयी। अग्रगामी दल में बम्बई डिवीजन के सैनिक थे। दो अभागे नवयुवकों को पिछले युद्ध में कायरता दिखाने के दण्ड स्वरूप अपदस्थ कर दिया गया था। इस अवसर पर वे दोनों (फ्रेजर तथा क्लैंसी) जनरल गोडार्ड के समक्ष उपस्थित हुए और आक्रामक दस्ते के साथ जाने की आज्ञा माँगी। गोडार्ड ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। इन दोनों युवकों ने इस युद्ध में इस प्रकार वीरोचित कार्य किया कि उनकी सेवाएँ फिर से ग्रहण कर ली गयीं। इस दल का संचालन

सौंपा गया बम्बई यूरोपियन रेजीमेण्ट के सारजन्ट फ्रिज को। यह रेजिमेण्ट इस प्रकार के कार्यों में खूब ख्याति प्राप्त हो चुकी थी। बम्बई डिवीजन के बमबाजों ने इस अग्रगामी दस्ते का अनुसरण किया। इस दस्ते में भी सेना के चुने हुए लोगों को रक्खा गया था। निर्धारित संकेत को पाते ही यह समूचा दल द्रुतगति से किले की ओर दौड़ा और खाई तक पहुँच गया, जिसके उस पार किले के रक्षक मुकाबले के लिये डटे थे। थोड़ी देर तक तो उन्होंने अँगरेंजी आक्रमण का दृढ़ता से सामना किया परन्तु जब उनमें के करीब तीन सौ सैनिक मारे जा जा चुके तो रक्षा में शिथिलता आ गयी। इस अभियान में सर्वाधिक प्रशंसनीय कार्य रहा अंगरेजी सेना के सिपाहियों का वह वीरोचित व्यवहार जो उन्होंने युद्ध के समय प्रदर्शित किया। कोई भी अशोभनीय घटना नहीं हुई और असैनिक लोगों में केवल दो मारे गये। अंगरेजी सेना में एक सौ छः आदमी मारे गये, दस यूरोपियन अफसर घायल हुए तथा चार घायल यूरोपियन सैनिकों में तीन की मृत्यु हो गयी।

अभी गुजरात की राजधानी पर पूरा अधिकार भी न हो पाया था कि जनरल गोडार्ड को समाचार मिला कि पन्द्रह हजार सवारों के साथ महादजी सिंधिया तथा तुकाजी होल्कर तेजी से बढ़े चले आ रहे हैं, और उनके साथ उन सात हजार सवारों के मिलने की भी पूरी सम्भावना है जो उस समय भड़ौंच के पड़ोसी गांवों में लूटपाट कर रहे थे।

राघोबा के पलायन कर जाने के लाद सिन्धिया में तथा मंत्रियों में कुछ मनमुटाव सा हो गया था, परन्तु परिस्थितियों ने शीघ्र ही इस मनमुटाव को दूर कर दिया और यद्यपि सिन्धिया की इच्छा नहीं थी कि वह राजधानी छोड़कर कहीं जाय, परन्तु चूँकि सिन्धिया ने अपने ही व्यवहारों से नाना के मन में यह भय उत्पन्न कर दिया था कि कहीं वह अंगरेजों के पक्ष में न चला जाय, अतः वह नाना के कहने पर गुजरात में गोडार्ड का बिरोध करने पर तैयार हो गया। यहाँ पाठकों को यह समझ लेना चाहिये कि नाना फड़नवीस को सिन्धिया की एकएक चाल का पता था। चारों ओर एक अफवाह भी प्रचारित हो गयी कि नाना तथा सिन्धिया के अलग हो जाने की आशंका है। साथ ही यह अफवाह भी उड़ी की राघोबा को पकड़ने के लिये सिन्धिया सूरत पर आक्रमण करने वाला है।

जनरल गोडार्ड ने समझा बुझा कर रघुनाथराव (राघोंबा) को राजी कर लिया था कि जब तक अङ्गरेजी सेनाएँ युद्ध क्षेत्र में रहेंगी तब तक वह उस शहर को छोड़ कर कहीं भी न जायगा। उस समय तक भी सिंधिया के समझ में यह बात नहीं आयी थी कि इस बार अङ्गरेज मुख्य प्रतिपक्षी के रूप में युद्ध क्षेत्र में उतरे हैं न कि राघोबा के सहायक हो कर। ऐसी दशा में सिंधिया ने यही सोचा था कि युद्ध भूमि में राघोंबा से अवश्य भेंट होगी। इस भ्रान्त धारणा के कारण उसकी योजना के भंग होने के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। सिंधिया के सम्भावित आक्रमण के कारण सूरत में लोगों पर जो आतंक छाया था, उसका अधिकांश इस कारण से दूर हो गया कि मद्रास की सेना सूरत में उसी समय पहुँच गयी थी जब कि मराठे अभी खानदेश तक ही पहुँच पाये थे।

सिन्धिया तथा होल्कर ने २६ फरवरी को नर्मदा नदी को पार किया। उस समय उनके पास बीस सहस्र से भी अधिक सवार थे। अपनी इस विशाल वाहिनी के साथ वे बड़ौदा की ओर चले, जहाँ पहुँच कर उन्होंने डेरा डाल दिया था। जनरल गोडार्ड ने ६ मार्च को फाजिल पुर के पास मैही नदी को पार किया और उनके सामने के लिये आगे बढ़ा। इधर उनका सामना करने के लिये गोडार्ड बड़ौदा की ओर बढ़ा, उधर वे घूम कर पवनगढ़ की ओर चले गये। वास्तव में सिंधिया इस लिये गोडार्ड के सम्मुख नहीं हो रहा था कि उसकी वास्तविक इच्छा थी कि वह अंग्रेजों से मित्रता स्थापित कर ले। उसके यहाँ मि० फार्मर तथा लेफ्टिनेण्ट स्टेवर्ट नामक दो अंग्रेज जमानत रूप में

पड़े हुए थे। वे अब भी उसी के कैम्प में थे और उनकी पूरी आवभगत हो रही थी। सिंधिया ने उन्हें ९ मार्च को छोड़ दिया और वे दोनों जाकर ९ मार्च की शाम को गोडार्ड से मिले। उस कृपापूर्ण कार्यवाही के बाद ही सिंधिया का वकील आबाजी शाबजी अंग्रेजों से मिला और उसने अपने मालिक के विषय में उनको पूर्ण आश्वासन दिया कि वह उनसे मित्रता स्थापित करने की आन्तरिक इच्छा रखता है। उसने अंग्रेजों से कहा कि नाना फड़नवीस ने सिंधिया के साथ बड़ी ही कृतघ्नता की है। जनरल गोडार्ड ने सन्धि वार्ता तो नहीं की परन्तु उसने भी वकील को आश्वस्त कर दिया कि अंग्रेज सिंधिया के साथ पूर्ण मित्रता का व्यवहार करेंगे। सन्धि की शर्तों को निश्चित करने का भार उसने सिंधिया पर ही छोड़ दिया। उसका कहना था कि सिंधिया को जिस किसी भी प्रकार सुविधा जान पड़े उसी प्रकार संधि कर ले, क्योंकि अंग्रेजों के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यही है कि किसी प्रकार स्थायी शांति स्थापित हो जाय। इस लिये सिंधिया जो भी स्वीकार एवम् सुरक्षापूर्ण शर्तें रक्खेगा, अंग्रेज उन्हें ही मान लेंगे।

वास्तव में सिंधिया की इच्छा थी कि इस प्रकार सन्धि वार्ता चलाते हुए कुछ समय बिता दिया जाय और गोडार्ड थोड़ा असावधान हो जाय और इस प्रकार युद्ध योग्य समय बीत जाय, परन्तु भारतीयों के कपट का यूरोपियनों की ईमानदारी से कोई तुलना ही नहीं हो सकती। गोडार्ड ने सिंधिया की सन्धि की इच्छा को सही मान लिया, परन्तु वह तो थोड़ा समय निकालना चाहता था। गोडार्ड ने सिंधिया के वकील के अंग्रेजी कैम्प छोड़ने के दिन से तीन दिन का समय दिया कि इन्हीं दिनों में वह सन्धि की शर्तों को निश्चित कर ले। इसी के अनुसार १९ मार्च को सिंधिया का वकील अंग्रेजी कैम्प को लौट आया और उसने सन्धि के लिये निम्नलिखित शर्तें पेश की "कि जब राघोबा तुलीगाँव में था और अंग्रेजी सेना बम्बई को लौट आयी थी, तो सिंधिया और राघोबा में यह लिखित समझौता हुआ था कि (१) राघोबा १२ लाख रुपयों की पेंशन लेकर झाँसी में रहने लगेगा और पेशवा या पेशवा के पद से अपने को सर्वदा अलग रक्खेगा, (२) सिक्के बराबर शिशु पेशवा के नाम के ही चलते रहेंगे, (३) राघोबा का पुत्र बाजीराव पेशवा का दीवान बना दिया जायगा, परन्तु चूँकि बाजीराव की आयु अभी चार ही वर्ष की है अत: उसके नाम से सारा कार्यभार सिंधिया के जिम्मे रहेगा। इस समझौते के आधार पर उसने प्रस्ताव किया कि राघोबा झांसी को लौट जाय और शिशु बाजीराव सिंधिया के साथ जाकर पूना में रहे"।

सिंधिया के वकील ने अपनी शर्तें उपरोक्त प्रकार से पेश किया और अंग्रेजों द्वारा रक्खी जाने वाली शर्तों को एकदम गोडार्ड के लिये ही छोड़ दिया, परन्तु गोडार्ड ने इतना ही कहा कि चूंकि राघोबा ने अंग्रेजों की शरण ग्रहण किया है अत: यदि वह स्वेच्छया झांसी जाना चाहता है तो अंग्रेज कोई वाधा नहीं उपस्थित करेंगे, किन्तु यदि वह झाँसी जाने की इच्छा नहीं करता तो उस पर कोई दबाव नहीं डाला जायगा। गोडार्ड ने आगे कहा कि यदि अंग्रेज सिंधिया को पेशवा सरकार की सर्वोच्च सत्ता ग्रहण करने में सहायता देने को तैयार भी हो जायँ तो भी वे चाहेंगे कि अंग्रेजों के स्वार्थों को सुरक्षित रखने वाली कुछ बातों पर समझौता हो जाय और चूँकि अंग्रेजों का राघोबा सम्बन्धी युद्ध में पर्याप्त व्यय हुआ है अत: सिंधिया को चाहिये कि वह इसका कुछ अंश तो अवश्य ही पूरा कर दें। सात दिन इन्हीं सब बातों में बीत गये। सिंधिया तो चाहता था कि इन सब बातों में कुछ महीने बीत जायँ और इस प्रकार ब्राह्मणों की शक्ति को अंग्रेजों की शक्ति से सन्तुलित कर दिया जाय।

महाद जी सिंधिया अंग्रेजों को अपनी मित्रता का आश्वासन देता रहा, परन्तु जब उसने देख लिया कि गोडार्ड को मूर्ख नहीं बनाया जा सकता तो उसने गोविन्द राव गायकवाड़ से सन्धि वार्ता

चलाना प्रारम्भ किया और उसे यह लोभ दिया कि वह उसे गुजरात का मालिक बना देगा। इस प्रकार जब सिंधिया बराबर युद्ध को टाल जाने के प्रयास में लगा था तो गोडार्ड के मन में युद्ध करने के सिवा अन्य कोई भावना स्थान ही नहीं पा रही थी। सिंधिया को भी गोडार्ड की ओर से आशंका हुई और इसीलिए उसने अपने भारी सामानों को पवनगढ़ के पहाड़ी किले में सुरक्षापूर्वक भेज दिया। तब तक पवनगढ़ पर उसी का अधिकार था। उसने एक कौशल और भी किया कि अपनी सेना को अनेक छोटी-छोटी टुकड़ियों में बाँट कर इस ढंग से यत्र-तत्र बिखेर दिया कि आवश्यकता पड़ने पर वे तुरन्त इकट्ठे हो सकें और किसी भी अचानक आक्रमण का सफलता पूर्वक सामना कर सकें।

इस प्रकार का प्रबन्ध करके उसने अपने को पर्याप्त सुरक्षित समझ लिया। बृटिश सेना २७ मार्च को सिंधिया की सेना के मुख्य अङ्ग से ६ मील की दूरी तक आकर ठहर गयी, परन्तु सिंधिया चुपचाप पड़ा रहा। दोनों सेनायें एक दूसरी को पूर्ण सावधानी से देखती हुई एक सप्ताह तक पड़ी रहीं। इसके बाद गोडार्ड ने २ अप्रैल की शाम को बमबाज सिपाहियों के दस दस्ते बनाये, जिनके आगे यूरोपियन बमबाजों के दो दस्ते थे। ये दोनों दस्ते बम्बई रेजिमेण्ट के थे और इस स्थान से पूर्णपरिचित थे। इस अग्रगामी यूरोपियन दल के साथ दो बटालियन बंगाल सेना के तथा एक पैदल बटालियन बम्बई के देशी सिपाहियों की थी। साथ में अवध के नवाब द्वारा भेजी गयी एक घुड़सवार सेना थी। इन सब की रक्षा में बारह तोपें चल रही थीं। यह समूची सेना दो पंक्तियों में चली। पहली पंक्ति के संचालन का भार दिया गया कर्नल बेली को तथा दूसरे का भार दिया गया मेजर हॉपकिन्स को। ३री अप्रैल को सुबह से पहले २ बजे ही यह सेना चुपचाप चल पड़ी जब कि सिंधिया की सेना के पहरेदार सुबह की पुरवा हवा के झोंको का आनन्द ले रहे थे। वे पहरे पर थे, पर उनके शरीर ही वहाँ थे, मन तो झपकियों की गोद विश्राम ले रहा था। इस समूचा सेना का संचालन गोडार्ड स्वयम् ही कर रहा था। लेफ्टिनेण्ट कर्नल हार्टले कैम्प की सेना का भार सँभाले हुए था। अंग्रेजी सेना मराठों की वाह्य रक्षा पंक्ति को पार कर गयी, परन्तु किसी को इसकी खबर न हुई। गोडार्ड अब मराठों की मुख्य सेना के समीप पहुँच रहा था। इस मुख्य सेना में कई हजार सिपाही थे। सिंधिया का खेमा अब भी डेढ़ मील की दूरी पर था। अंग्रेजी सेना उसी ओर बढ़ी। अब तक एक भी गोली चलाने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी और न एक भी आदमी मरा था। अब सूरज निकल रहा था और मराठा सैन्य में जागरण के लक्षण प्रतीत होने लगे थे। उनमें से कितनों ने ही इस सेना को देख लिया था और वे चुपके-चुपके अपने साथियों को सावधान करने लगे थे। क्षण मात्र में मुख्य सेना के सिपाही अपने-अपने घोड़ों पर चढ़ कर युद्ध के लिये प्रस्तुत हो गये। थोड़ी देर तक तो वह मुख्य सेना खड़ी रही फिर थोड़ा आगे बढ़ी और ऐसा मालूम हुआ कि अब यह आक्रमण करने ही वाली है, परन्तु इसी समय अंग्रेजी तोपों की एक बौछार उन पर पड़ी और वे उलट कर भागे और तोपों की मार के बाहर हो गये। अवध के नवाब के कन्धारी सैनिकों ने मराठों के एक अङ्ग पर जोरदार आक्रमण किया और उन्हें बलपूर्वक पीछे हटा दिया।

अंग्रेजों की नियमित सेना के किसी भी सिपाही का बदन तक नहीं छुआ गया, परन्तु कन्धारी सैनिकों में से पन्द्रह मारे गये थे। ऐसा सोचा गया कि मराठों की अत्यधिक हानि हुई है। गोडार्ड यह सोच कर बड़ा प्रसन्न हुआ कि उसे विजय मिली है, परन्तु अभी वह लौट कर अपने खेमे तक भी न पहुँचा था कि मराठे लौट कर अपनी पूर्व स्थिति में आ गये। अब मराठे भी दिन-रात चौकन्ने रहने लगे थे, इस लिये अचानक आक्रमण का अवसर अब नहीं रह गया था। १४ वीं अप्रैल की मद्रास

सरकार द्वारा भेजी गयी कर्नल ब्राउन की अधीनस्थ सेना भी गोडार्ड से आ मिली और १६ अप्रैल को गोडार्ड ने एक बार फिर मराठा कैम्प पर धावा किया। मराठे खड़े-खड़े अंग्रेजी सेना की प्रगति को देखते रहे और जब वे काफी समीप आ गये तो अग्निवाणों की एक बौछार सी फेंक कर वे फिर पीछे हट गये।

जनरल गोडार्ड के साथ लड़ने में मराठों ने जो शैली अपनाया उसके कारण अँगरेजों का अत्यधिक समय नष्ट होने लगा और उस असाधारण विलम्ब के कारण बम्बई सरकार का धैर्य छूटने लगा क्योंकि उनका सोचना था कि इस प्रकार के युद्ध में फँसने की जगह यदि वह सेना का बेसीन को अधिकृत करने में उपयोग किया गया होता तो उन्हें अधिक लाभ हुआ होता। अँगरेजों की दृष्टि में बेसीन का बड़ा महत्व था, परन्तु गोडार्ड जो कुछ कर रहा था, उसे वही करना पड़ रहा था। एक तो उसके पास इतना समय नहीं था कि वह बेसीन का घेरा डाल सके। उधर बह गुजरात से भी नहीं आ सकता था, क्योंकि ऐसा करते ही उनका मित्र फतहसिंह शत्रुओं के पंजों में अकेला पड़ जाता। यह तो स्पष्ट ही था कि सिन्धिया का उद्देश्य था कि युद्ध को अधिक से अधिक लम्बा किया जाय। यद्यपि गोडार्ड ने सिन्धिया को या होल्कर को पराजित नहीं किया था, फिर भी वे सामने से भाग चुके थे। यह पलायन इस लिये महत्वपूर्ण था कि इससे पास पड़ोस में अँगरेजों की शक्ति का सिक्का जमता जा रहा था। बम्बई सरकार की प्रार्थना पर लें० कर्नल हार्टले को बम्बई भेज दिया गया। उसने बड़ौदाके समीप ८ मई को गोडार्ड का संग छोड़ा। हार्टले के दस्ते की उपस्थिति कोंकण में अत्यावश्यक हो गयी थी।

बम्बई के निवासियों के लिये खाने पीने का जो भी सामान लगता था, उसका अधिकांश इन शत्रुओं में बाहर से ही आता था। मराठों ने इस रसद की पूर्ति को आंशिक रूप से बन्द कर दिया था, अतः यह आवश्यक था कि बम्बई निवासिवों को भूखों मरने से बँचाने के लिये उन रास्तों पर से मराठों का अधिकार हटाया जाय, जिनसे हो कर रसद आती थी। इसके लिए सालसिट से भी और बम्बई से भी सेनायें भेजी गयीं। इन सेनाओं ने कई स्थानों पर अधिकार कर लिया और इसी सेना के एक अङ्ग ने एक दर्रे पर अधिकार जमा कर वहाँ अपनी चौकी स्थापित कर दी और उक्त स्थान पर तीन तोपें लगा दीं। इसके शीघ्र बाद ही वहाँ एक छोटा-सा तोपखाना और भी आ गया। इससे भी बड़ा काम यह हुआ कि उस सेना ने कल्यान के कस्बे पर अपना अधिकार करके कैप्टेन रिचार्ड कैम्पबेल की अध्यचता में एक चौकी वहाँ पर भी स्थापित कर दी। नाना फड़नवीस के विचार से कल्यान का बड़ा महत्व था और उसने इस स्थान को पुनः हस्तगत करने के लिये एक बड़ी सेना इकट्ठी की और सोचा कि इस सेना की सहायता से अँगरेजों को मराठा के प्रदेशों से निकाल दिया जाय। इस विशाल सेना की तैयारी की बात सुनकर अँगरेजों ने चाहा वे कि अपनी चौकी उठा लें। परन्तु अभी वे अपना सामान मी न उठा पाये थे कि मराठा सेना आ धमकी। इस चौकी पर रहने वाले सभी सैनिक या तो काट डाले गये या भाग गये और उसकी तोपें भी मराठों ने छीन लिया। तीन अफसर मारे गये तथा एक को बन्दी बना लिया गया। इस सफलता से उत्साह पाकर मराठे कल्यान की ओर बढ़े और उन्होंने अँगरेजी सेना को सन्देशा दिया कि यदि वे मुकाबला करने का साहस करेंगे तो उन्हें काट डाला जायगा। जिस अफसर को पिछले युद्ध में बन्दी किया गया था उसका नाम था इनसाइन फाइफ। मराठों ने उसे मजबूर किया कि वह कैप्टेन रिचार्ड कैम्पबेल

को लिखे कि यदि वे कस्बे को समर्पित नहीं कर देते तो उसे मौत के घाट उतार दिया जागया।* कैम्पबेल ने उस पत्र के उत्तर में कहा कि—'मराठे खुशी से ऐसा कर सकते हैं, और वे यदि उस को ले लेते हैं तो हम उनका स्वागत करेंगे।'' सचमुच उसने वीरोचित साहस एवम् कौशल के साथ कल्यान की रक्षा की। सौभाग्य से इसी समय गुजरात से कर्नल हार्टले आ गया। यदि हार्टले न आ गया होता तो २५ मई की सुबह ही मराठों का आक्रमण हो गया होता, परन्तु २० मई की रात को ही हार्टले ने अचानक मराठा कैम्प पर छापा मारा, उन्हें कई मील तक खदेड़ा अनेकों को काट डाला, परन्तु एक भी तोप उसके कब्जे में न आ सकी। मराठे कोंकण से लौट गये और शेष समय के लिये अर्थात् वर्षा काल तक के लिए कोंकण में अँगरेजों की स्थिति आपत्तिरहित हो गयी।

उधर गुजरात में चारे की कमी का अनुभव करते हुए गोडार्ड ने एक टुकड़ी को चारे का प्रबन्ध करने के लिए भेजा। इस दल के साथ सुरक्षार्थ सैनिक भी भेजे गये, जिनके ऊपर मराठों ने आक्रमण कर दिया, परन्तु वे भगा दिये गये। इसके शीघ्र बाद ही गोडार्ड नर्मदा की ओर हट गया ताकि वहाँ वर्षा काल में सुविधापूर्वक रह सके।

इसी स्थान पर उसे बम्बई सरकार का एक आग्रहपूर्ण प्रार्थना पत्र मिला, जिसमें प्रार्थना की गयी थी कि वह डामन से पन्द्रह मील उत्तर में स्थित परनेरा नामक स्थान को हस्तगत कर ले। छत्रपति शिवा जी के समय में मोरो पन्त पिंगले ने इस स्थान की मोर्चे बन्दी की थी। परन्तु अँजरेजों की इस चाल का पता मराठों को चल गया। कोंकण स्थित मराठा सर्दार गणेश पन्त ने कोंकण को छोड़ा और उन भूभागों को लूटने लगा जो पेशवा दर्बार की अधीनता को स्वीकार नहीं करते थे। अट्ठावीसी महाल को लूटता हुआ वह सूरत के समीप तक पहुँच गया और सूरत के पड़ोस के भूभागों को तहस-नहस करके रख दिया। सूरत के नागरिक प्रशासन के अधिकारियों ने गोडार्ड से सहायता मांगी, जिसने बंगाल कैवेलरी के अफसर लेफ्टिनेण्ट वेल्श को सवारों के एक दस्ते तथा एक

---

* फाइफ द्वारा लिखे गये पत्र का अनुवाद :—

प्रिय महाशय,

मैं इस समय मराठा कैम्प में कैदी हूँ हमारे साथ सात यूरोपियन तोपची, एक सूबेदार, दो जमादार तथा पन्द्रह सिपाही और कैद हैं। मराठे इस समय कल्यान के समीप ही छावनी डाले पड़े हैं और उनके साथ सोलह या अठारह हजार लड़ाकू सैनिक हैं। उनके पास आठ सामान्य तोपें तथा एक ऊँचाई पर मार करने वाली छोटी तोप है। अधिक से अधिक मैं इतना ही विवरण आपको दे सकता हूँ। मैं यह पत्र उन्हीं के आदेश पर लिख रहा हूँ। उनका आदेश है कि मैं आपको लिखूँ कि आप तुरन्त कल्यान तथा बालाबुर को मराठों के सुपुर्द कर दें अन्यथा वे धमका रहे हैं कि वे हम सब को मार डालेंगे तथा दोनों स्थानों पर आक्रमण करके एक-एक व्यक्ति को तलवार के घाट उतार देंगे। आप चाहे जो करें, परन्तु पत्र वाहक को अवश्य ही सकुशल वापस भेज दें, क्योंकि मैंने अपने सर की जमानत देकर पत्रवाहक को भेजा है। अतएव आप शीघ्र ही इस पत्र का उत्तर दें। हमारी स्थिति कुछ बहुत अच्छी नहीं है। चूँकि मेरे पास कपड़े नहीं हैं अतः यदि मैकलीन महाशय कुछ कपड़े भेज दें तो कृतज्ञ हूँगा।

कल्याण के समीप का कैम्प मैं हूँ, आपका आज्ञा पालक एवम् विनीत सेवक
१२–५–१७८० "थामस फाइफ"
"कैम्पबेल की सेवा में"

पैदल दस्ते के साथ तुरन्त ही उस ओर भेजा। वेल्श २३ अप्रैल की रात को छापा मार कर सैकड़ों मराठों को काट डाला, गणेशपन्त को गम्भीर रूप से घायल किया, तीन तोपें छीन ली तथा उनका सारा सामान लूट लिया। उस सफलता के बाद वेल्श और भी दक्षिण की ओर बढ़ा और उसने परनेरा, बगबाग, तथा इन्द्रगढ़ के किलों को ले लिया। ये सभी किले डामन के पास पड़ोस में थे, अतः इनका सामरिक महत्व अत्यधिक था और इसी लिये बम्बई सरकार इन्हें लेना चाह रही थी। इधर बंगाल के सिपाहियों की एक टुकड़ी ने सिन्धिया की एक टुकड़ी को नर्मदा तट पर सिन्नूर नामक स्थान पर हराया। इन विजयों के फल स्वरुप कम से कम वर्षा काल तक के लिए अँगरेजों का अधिकार गुजरात में नव अधिकृत स्थानों पर स्थायी हो गया।

इस बार एक नवीन बात यह हुई कि वर्षा काल में भी मराठों की सैनिक कार्यवाही को स्थगित नहीं किया गया। कोंकण में वर्षा का जोर बढ़ते ही मराठा सैनिकों की छोटी-छोटी टोलियाँ अँगरेजी चौकियों पर नियुक्त सैनिकों को परेशान करने के लिये निकल पड़ीं, परन्तु मेजर हार्पकिंस तथा कैप्टेन एबिंगटन की अध्यक्षता में कल्यान की सुरक्षा में नियुक्त आठवीं तथा नवीं बटालियनों ने कल्यान की सुरक्षा को यथावत् रक्खा।

यो तो बंगाल की कांउसिल के सदस्य प्रायः ही गवर्नर जनरल का विरोध करते रहते थे परन्तु इस बार गोहद के राना के साथ की गयी सन्धि के विषय में उनकी आपत्तियों का औचित्य युक्ति युक्त था। वास्तव में यह सन्धि एक ऐसे राना के साथ की गयी थी, जिसके पास न तो सेना थी, न साधन थे और न वह कोई सुप्रसिद्ध व्यक्ति था। अँगरेजों के लिये सहायक होने के स्थान पर वह भार स्वरूप ही था। अत्यावश्यक होने पर वह केवल रसद की सहायता दे सकता था और वह भी तभी तक जब तक कि अँगरेजी सेना उसकी सीमा के अन्तर्गत रहती। जनरल गोडार्ड तथा सर आयरकूट ने एक बात यह पसन्द की थी कि गोहद से हो कर मालवा के पूर्वोत्तर भाग पर आक्रमण किया जाय, परन्तु सर आयर कूट का कहना था कि इस अभियान में छोटी सी सेना से काम न चलेगा और जब राना की प्रार्थना पर कैप्टेन पोफम ने जमुना को पार किया तो सर आयर कूट ने कहा कि मालवा अभियान के लिए उठाया गया यह कदम अविवेकपूर्ण है।

कैप्टेन विलियम पोफम के अधीन जो सेना थी, उसके सैनिकों की भर्ती वास्तव में बंगाल की उस सेना के लिये की गयी थी, जो इस समय जनरल गोडार्ड के साथ युद्ध क्षेत्र में थी, परन्तु चूँकि युद्ध शुरू हो चुका था अतः यह सोचा गया कि ऐसी स्थिति में सेना को दो हजार मील दूर स्थल मार्ग से भेजना ठीक न होगा। अतः इस सेना को कैप्टेन पोफम के सेनापतित्व में दे दिया गया। इस सेना में कुल मिलाकर चौबीस सौ आदमी थे। इनमें आठ-आठ सौ व्यक्तियों की तीन तथा थोड़ी सी घुड़सवार सेना भी थी, छोटा-सा तोप-खाना भी था और ऊँचाई पर मार करने वाली हल्की तोपें भी थीं। कैप्टेन पोफम ने फर्वरी मास में जमुना को पार किया और तुरन्त ही मराठों की एक ऐसी टुकड़ी पर आक्रमण किया जो गोहद के समीपस्थ क्षेत्रों में लूट खसोट कर रही थी। पोफम ने उन्हें उस क्षेत्र से दूर खदेड़ दिया। गोहद के राना की प्रार्थना पर पोफम ने लाहर नामक स्थान पर आक्रमण किया। यह स्थान पूरी तरह से मोर्चे बन्द था तथा कालपी से पचास मील पश्चिम की ओर था और मराठों के अधिकार में था। इस स्थान के रक्षक को आत्मसमर्पण का आदेश दिया गया परन्तु रक्षक ने इनकार कर दिया। अतः विवश होकर पोफम को आक्रमण करना ही पड़ा, परन्तु उसने देखा कि वहाँ की मोर्चेबन्दी आशा के विपरीत अत्यधिक सुदृढ़ थी और बिना भारी तोपों के उस पर अधिकार करना असम्भव था, परन्तु दृढ़ निश्चयी सैनिकों की कर्मठता ने असम्भव

को भी सम्भव कर दिया । छोटी तोपों ने किले की दीवालों को यत्र-तत्र तोड़ दिया था, परन्तु उनमें से प्रवेश करना उचित तथा सुगम न था । कैप्टेन पोफम ने देखा कि छोटी तोपें किले को तोड़ने में असमर्थ हो रही थीं । ऐसी दशा में उसने किले पर हल्ला बोलने का निश्चय किया । लेफ्टिनेएट लोगन तथा कॉर्नेट गार्डिनर ने अग्रगामी दस्ते का सचालन भार लिया परन्तु दोनों ही खाई के युद्ध में मारे गये । मि० ओडेल नामक एक स्वमम् सेवक ने आगे दौड़कर उनका स्थान ले लिया । वह भाग कर बाहरी दीवारों पर चढ़ गया । उसका दल भी पीछे ही पीछे था । घमासान युद्ध के बाद किले पर कब्जा तो हो गया परन्तु आक्रामकों में से एक सौ पचीस सिपाही मारे गये । सर आयर कूट ने इस प्रकार की सफलता की कल्पना तक नहीं किया था । उन्होंने जब से सुना था कि दुर्ग भेदक तोपों के बिना ही दुर्ग पर आक्रमण कर लिया गया तभी से वे केवल विपत्ति के समाचार सुनने की ही कल्पना कर रहे थे और इसीलिए मेजर जेकब कैमाक की अधीनता में चार नियमित सैनिकों के चार दस्ते दुर्ग भेदक तोपों के साथ जमुना पार करने के लिये तैयार खड़े थे । इधर लाहर का पतन तो आशा के विरुद्ध था ही, उधर बिना एक भी सैनिक की आहुति दिए ही ग्वालियर पर कर लिया गया अधिकार सोने में सुहागा हो गया । लाहर को अधिकृत कर लेने के पश्चात् जब पोफम लौटा तो उसने ग्वालियर के शानदार किले से पांच मील की दूरी पर वर्षा कालीन पड़ाव डाला और सोचा कि ज्यों ही ऋतु अनुकूल होगी, उसे छुट्टी हो जायगी और वह पुनः बंगाल लौट जायगा । ग्वालियर का किला महादजी सिन्धिया के अधिकार में था । हिन्दुस्तान में दक्षिण के समान सुदृढ़, दुर्गम एवम् दुर्भेद्य किले तो हैं नहीं अतः यह ग्वालियर का किला ही सर्वाधिक दुर्भेद्य माना जाता था । हिन्दुस्तान के लोगों का विचार था कि ग्वाजियर का किला न केवल हिन्दुस्तान में वरन् समूचे एशिया के सुदृढ़तम् किलों में से एक था ।

अपने पूर्ण साहस एवम् कौशल का सहारा लेकर पोफम दो मास तक अपनी योजनायें बनाता रहा । राना गोहद ने कुछ भेदिये भी उसकी सेना में प्रेषित कर दिया था । उन्हीं की सहायता के बल पर उसने अपनी योजना के कार्यान्वियन का निश्चय किया । उसने सम्पूर्ण रहस्यमय ढग से अनेक प्रकार की तैयारियाँ की । तीसरी अगस्त की रात को उसने एक अलग दल का संगठन किया । अग्रगामी दल का सेनापतित्व कैप्टेन ब्रूस को दिया गया । जमुना पार करते ही उस सेना की जो शस्त्र परीक्षा मराठा टुकड़ी से हुई थी, उसमें ब्रूस ने पर्याप्त प्रतिष्ठा अर्जित की थी । इस अवसर पर अग्रगामी दल में देशी सिपाहियों की दो कम्पनियाँ, चुने हुये बमबाजों एवम् हल्की तोपों के साथ थीं । इसके संचालन का भार तीन लेफ्टिनेएटों के जिम्मे था, जिनके नाम थे, विल्सन, एलेन तथा पैटरसन् । इस अग्रगामी दस्ते के पीछे बीस यूरोपियन सैनिक थे, ताकि अवसर पड़ने पर वे युद्ध का संचालन कर सकें । उनके पीछे फिर से देशी सिपाहियों की दो कम्पनियाँ थी । किले की सोलह फीट ऊँची दीवार पर सुगमता से सीढ़ियाँ लग गयों तथा उससे भी अधिक सुगमता से सैनिक दीवाल पर जा पहुँचे । उस दीवाल से उन्हें दूसरी दीवाल की नींव पर जाना था । दूसरी दीवाल की नींव पहली दीवाल के सिरे से चालीस गज ऊँची थी और इसी चढ़ाई पर सैनिकों को जाना था । यह दीवाल भी ३० फीट ऊँची थी । सबसे पहले भेदिये चढ़े और उन्होंने अनेक मजबूत रस्सियाँ मजबूती से बाँध कर लटका दीं । इन्हीं रस्सियों से होकर सैनिक चढ़ने लगे । जो भी सैनिक ऊपर पहुँच जाता था वह ऐंड़ियों के बल बैठ जाया करता था । कैप्टेन ब्रूस के सहित बीस सिपाहियों ने किले के अन्दर प्रवेश किया ही था कि उनमें से दो तीन सिपाही बुरी तरह उत्तेजित हो उठे और इसी उत्तेजना के वशीभूत हो उन्होंने सोये हुये सिपाहियों को ही गोली मार दिया । सिपाहियों के इस अविवेक पूर्ण कार्य से

किले के लोगों में हलचल मच गयी और सब के सब जग गये, परन्तु आक्रामकों ने साहस नहीं खोया। उधर पीछे से उनके साथी भी चढ़े चले आ रहे थे। किले की रक्षक सेना संत्रस्त हो गयी और ४ अगस्त का सूर्य उदित भी नहीं हो सका था कि किले पर आक्रामकों का अधिकार स्थापित हो गया। एक प्रकार से यह स्थापन निर्विरोध ही रहा।

तीसरी अगस्त की ही रात को भारत के पश्चिमी भाग में भी इसी प्रकार का एक और प्रयत्न किया गया। कैप्टेन एविग्रंटन को अभी तक कोई ख्याति नहीं मिली थी। आगे चल कर तेली चेरी की सुरक्षा में उसने पर्याप्त ख्याति अर्जित की। एविंग्टन ने भी इसी प्रकार अचानक आक्रमण करके मूलनगढ़ को लेने की कोशिश की। यह किला बम्बई टापू के पूर्व में स्थित था तथा अपने आस पास के प्राकृतिक सैन्दर्य के लिये प्रख्यात था। कैप्टेन एबिंग्टन ने निचली पहाड़ी को तो ले लिया, परन्तु अभी अँगरेज सेना दूर ही थी कि किले वाले जाग पड़े और वे लोग बिना लड़े ही अविलम्ब ऊँची पहाड़ी पर चढ़ गये। आक्रामकों के लिये इन रक्षकों की मार का सामना करते हुए इस लम्बवत् पहाड़ी पर चढ़ना असम्भव ही था।

वर्षा काल में बम्बई सरकार को इस काम के लिये पूरा समय मिला कि वह अपने कार्यों का पूरी तरह निरीक्षण कर सके और उसकी भलाई और बुराई का विचार कर सकें। उनकी सबसे बड़ी कमी यह थी कि उनके पास रुपयों की बेहद कमी थी। रुपयों की कमी को दूर करने के लिये वे बंगाल का मुँह देखते थे। उधर बंगाल वालों का विश्वास था कि हैदर अली शीघ्र ही अर्काट में युद्ध शुरु कर देगा। मद्रास सरकार का विश्वास इसके विपरीत था। यह आक्रमण जुलाई में हुआ और वृटिश शक्ति को जैसी शक्तिशालिनी सेना का सामना इस युद्ध में करना पड़ा, वैसी सेना का सामना उसे भारत में कभी भी नहीं करना पड़ा था। इस नवीन कठिनाई ने उनकी परेशानियों को और भी बढ़ा दिया और इसीलिये सुप्रीम कांउसिल को घोषित करना पड़ा कि वह बम्बई प्रेसीडेंसी को कोई आर्थिक सहायता नहीं दे सकती। अपने पहले अगस्त के विवरण में गवर्नर हार्नवी ने कहा था कि "हमारे आर्थिक साधन नष्ट हो गये हैं और हमें अब अपने ही प्रयासों से नये साधन बनाने हैं"। इसमें सन्देह नहीं कि हार्नबी ने आर्थिक कठिनाई को हल करने का जो रहस्य निर्देशित किया था, वह सर्वथा उपयुक्त था और उसमें एक ही पत्थर से दो चिड़ियाँ मरती थीं। बम्बई सरकार की आर्थिक-विपन्नता उन्हीं रास्तों से प्रगट होती हैं, जो इस विपन्नता को दूर करने के लिये अपनाये गये थे। बम्बई सरकार के पास दस बारह लाख रुपये का ताँबा था। उसे ऊँची से ऊँची बोली बोलने वाले के नाम नीलाम कर दिया गया। यह प्रस्ताव भी किया गया कि बंगाल सरकार अपने क्षेत्र में बम्बई सरकार की जमानत पर ऋण ले लेवे तथा मराठा प्रदेशों में आगे ही पहुँच कर लगान की वसूली कर ली जाय।

जनरल गोडार्ड का इरादा था कि वर्षा काल का अन्त होते ही बेसीन पर घेरा डाल दिया जाय। उसकी सेना में जो यूरोपियन सैनिक थे; उन्हें समुद्र के रास्ते सालसिट भेज दिया गया। बम्बई में दुर्ग भेदी तोपें तैयार की जाने लगीं और तै किया गया कि देशी सिपाही स्थल मार्ग से जायँगे। अक्टूबर मास के प्रारम्भ में ही बम्बई की समूची बाहर भेजी जाने वाली सेना के साथ पास-पड़ोस की सेना भी मिला दी गयी और इस प्रकार पाँच बटालियन सेना को हार्टले के सेनापतित्व में दे दिया गया और उसे आदेश दिया गया कि वह मराठों की अधिक से अधिक चौकियों को हटा कर अपनी चौकियाँ स्थापित करे तथा अपनी सेना की सुविधा का ध्यान रखते हुए कोंकण के अधिक से अधिक क्षेत्र में बिखेर दे और इस प्रकार अधिकांश कोंकण को अपनी छाया में ले ले, ताकि बम्बई सरकार के एजेन्ट उन स्थानों से लगान वसूल कर ले सकें और अपनी रसद के लिये चावल को पर्याप्त मात्रा

में इकट्ठा कर ले सकें। आर्थिक विपन्नता को दूर करने के लिये अपनाये गये उनके मार्गों में से उपरोक्त मार्ग ही इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि बम्बई सरकार कितनी विषम आर्थिक स्थितियों से गुजर रही थी। अपने सैनिकों के वेतन की उतनी चिन्ता हार्नबी को नहीं थी, क्योंकि वह कहता है कि "युद्धरत सैनिकों का वैतन यदि बकाया भी रह जाय तो वे सहन कर लेंगे।" बृटिश सरकार की सफलता का मूलमंत्र ही यह रहा है कि युद्धकाल में वे अपने को प्रजा का रक्षक मानते हैं, चाहे वह प्रजा अपनी हो या शत्रु की। हमारी जाति केवल इसी एक गुण के सहारे इतनी अधिक उन्नति कर गयी है। जब गोडार्ड बेसीन पर आक्रमण करने के लिये बढ़ा तो यह निश्चय किया किया गया कि कैप्टेन हार्टले अपनी सेना के साथ बेसीन के किले से थोड़ी दूर पूर्व की ओर स्थित होकर मराठों के आगमन को रोके ताकि वे उधर से आक्रमण करके घेरा उठाने पर विवश न कर दें।

पहले तो हार्टले को आदेश मिला था कि वह कैप्टेन एविंग्टन की सहायता करे। एविंग्टन अब भी मूलनगढ़ की निचली पहाड़ियों पर अधिकार जमाये हुए डटा था, परन्तु शत्रु के तीन चार हजार पैदल सैनिकों ने कल्यान से उसका सम्बन्ध भंग कर दिया था। इस प्रकार एक ओर तो उसे ऊपर से रक्षकों की मार सहन करनी पड़ रही थी और दूसरी ओर शत्रुओं की पैदल सेना से घिर गया था। कर्नल हार्टले ने इस कार्य को बिना हानि उठाये ही पहली अक्टूबर को पूरा कर लिया और कैप्टेन जेम्सन के सेनापतित्व में एक सेना आकर मूलनगढ़ में एविंग्टन से मिल गयी। इस प्रकार मूलनगढ़ के दल में मेजर हॉपकिंस की अधीनता में दूसरी और आठवी बटालियेन भी हो गयीं। शत्रु सेना के पास भी बराबर मदद पहुँचती जा रही थी। उन्होंने दूसरे दिन पहाड़ी के दक्षिण पूर्व में पड़ाव डाला और समीपस्थ क्षेत्र को लूटने-खसोटने लगे। कर्नल हार्टले ने तुरन्त आक्रमण की तैयारी की और इस काम लिये कल्यान से चल पड़ा। इस समय उसके साथ बम्बई की यूरोपियन रेजिमेंट तथा देशी सैनिकों की पहली बटालियन थी। उसने मेजर हॉपकिस को निर्देशित किया कि वह कैप्टेन जेम्सन के संचालन में ८वीं बटालियन को आक्रमण में सहायता करने के लिये भेज दे। मराठों को कर्नल हार्टले के आने का समाचार मिल गया अतः वे उससे पहाड़ी के मूलभाग में ही मिल गये। वहाँ से वे धीरे-धीरे अपने पड़ाव की ओर लौटने लगे। सुरक्षा की सम्पूर्ण भावना के साथ मराठों के खेमें वैसे ही खड़े थे। मराठे पीछे लौटते भी जाते थे और युद्ध भी करते जाते थे। ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे वे अंग्रेजी सेना को किसी पूर्व निर्धारित जाल में लिये जा रहे थे, किन्तु अचानक ही कैप्टेन जेम्सन की सेना पहाड़ी से उतर कर उनके मुख्य भाग पर आ गयी और शेष सेना के आगमन की प्रतीक्षा न करके तुरन्त आक्रमण कर दिया और कर्नल हार्टले के शब्दों में "अकथ उत्साह एवम् वीरता से उन्हें उनके खेमे तक खदेड़ ले गया और खेमों पर अधिकार जमा लिया। तब तक शेष सेना भी पहुँच गयी।" इस यशपूर्ण सफलता के कारण अंग्रेजी सेना का उत्साह और अधिक बढ़ गया, क्योंकि इस युद्ध में केवल आठवीं बटालियन के थोड़े से सैनिक ही मारे गये थे। हार्टले ने इस उत्साह का लाभ उठाया। उसने तेजी से शत्रुसेना का पीछा किया और उन्हें कोंकण के बाहर भगा कर ही दम लिया एवं मोरघाट से थोंड़ी दूर पर स्थित एक महत्वपूर्ण स्थान पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार बम्बई सरकार को थोड़े दिनों तक के लिये लगान वसूल करने का पूरा अवसर मिल गया।

जनरल गोडार्ड ने यूरोपियन सैनिकों को पहले ही जहाज से भेज दिया था। १६ अक्टूबर को वह स्वयम् सूरत से चला। गुजरात की रक्षा के लिये उसने बंगाल सैन्य की दो कम्पनियाँ तथा बम्बई सैन्य की दो कम्पनियों को वहीं छोड़ दिया था। ये सेनाएँ फतहसिंह के साथ थीं, जिससे कह दिया गया था कि वह अहमदाबाद के रक्षक दल को सुदृढ़तर बना ले। उस समय तक के लिये ये सभी

कम्पनियाँ वहीं छोड़ दी गयीं। बड़ौदा में फतहसिंह गायकवाड़ की अपनी निजी विशाल सेना थी और हर प्रकार के आक्रमणों से दभोई सुरक्षित था। बिना घेरा डाले उसको हस्तगत करना किसी के भी लिये कठिन था। बंगाल सैन्य की दो बटालियन नर्मदा तट पर नियुक्ति थीं। बम्बई के देशी दो बटालियनों में से एक सूरत में थी तथा दूसरी भड़ौच में। इनको आदेश था कि आवश्यकतानुसार वे अलग-अलग भी काम कर सकती है और संयुक्त होकर भी। उनके संचालन का भार दिया गया बंगाल सैन्य के ख्याति प्राप्त अफसर मेजर फोर्बस को। उसे यह आदेश दिया गया था कि वह यत्नपूर्वक समूचे गुजरात की रक्षा करे और आवश्यक समझे तो सन्धि के अनुसार फतहसिंह गायकवाड़ से तीन सहस्त्र सवार भी मँगा ले।

१३ नवम्बर को गोडार्ड बेसीन के सम्मुख पहुँचा और काफी देर के निरीक्षण के बाद उसे पता लगा कि उत्तर ही एक ऐसी दिशा है, जिधर से आक्रमण करने में सुविधा हो सकती है। उसने यह भी समझ लिया था कि चूँकि मोर्चे बन्दी दृढ़ है अतः समय भी अधिक ही लगेगा। सब कुछ समझ बूझ कर आक्रमणार्थ उसने उत्तर दिशा को ही चुना।

अपनी निर्धारित योजना के अनुसार जनरल गोडार्ड ने खाईं खोदवाने का कार्य आरम्भ कर दिया और २८ नवम्बर को उसने तोप रखने योग्य प्रथम स्थान को तैयार कर लिया। यह स्थान किले से करीब नौ सौ गज की दूरी पर था। तोपों को रखने के लिये दो स्थान और बनाये गये जो क्रमशः आठ सौ और पाँच सौ गज की दूरी पर थे। गोडार्ड के पास बड़ा प्रबल तोपखाना था, विशेष कर उसकी चौबीस पौंड के गोले फेंकने वाली तोपें तो विकट थीं और उनके साथ ऊँचाई पर मार करने वाली बीस छोटी तोपें थीं। ये तोपें पांच सौ गज की दूरी पर लगायी गयी थीं। इन्होंने बड़ा काम किया।

इसी अवधि में कोंकण को लौटा लेने के लिये नाना फड़नवीस तथा हरीपन्त फड़के हर प्रकार की तैयारियाँ कर रहे थे। वे बेसीन के घेरे को भी उठा देने की सोच रहे थे। उनकी सेना दशहरा के पूर्व एकत्रित ही नहीं हो पा रही थीं। सिंधिया द्वारा दी गयी विभिन्न तोपें भी अभी इस हालत में नहीं आ पायी थीं कि उन्हें युद्ध क्षेत्र में लाया जा सकता। रामचन्द्र गणेश, परशुराम भाऊ, आनन्दराव रास्तेया तथा अन्य कई अफसरों को युद्ध क्षेत्र के लिये भेज दिया गया था और ज्यों ज्यों सैनिक इकट्ठे होते जा रहे थे, त्यों त्यों उन्हें कोकण की ओर रवाना किया जा रहा था।

हार्टले की अधीनस्थ सेना प्रायः एक महीने तक छोटे मोटे युद्धों में फँसी रही। उनकी गोलियाँ समाप्ति पर थीं, और बीमारों तथा घायलों की संख्या छः सौ तक पहुँच गयी थी। अतः उसकी सेना में मुश्किल से दो हजार से ऊपर काम के लायक सिपाही रह गये थे। ऐसे समय में हार्टले को समाचार मिला कि शत्रु घिरे हुए सैनिकों को मदद पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं और चाहते हैं कि उसकी सेना का सम्बन्ध बेसीन से विच्छिन्न हो जाय। ऐसी दशा में वह विवेक पूर्वक ८ दिसम्बर को तितवाला को चला गया और वहाँ से दुगौर की ओर प्रस्थान किया जो बेसीन से नौ मील पूर्व में है। उधर बम्बई सरकार लगान वसूली के लिये चिन्तातुर थी, अतः उसने हार्टले के भोर घाट के पास से हटने को स्वीकार नहीं किया, परन्तु उन्हे मराठों की उस शक्ति का पता न था, जो हार्टले को कोकण से हटाने के लिये आरही थी और न उनको रामचन्द्र गणेश की बीरता एवम् युद्ध कुशलता का अनुभव था। मराठों ने देखा कि गोडार्ड की सावधानियों के आगे बेसीन के घिरे हुए लोगों को सहायता पहुँचाना असम्भव है अतः वे गोडार्ड की रक्षक सेना को ही संत्रस्त करने लगे। १० दिसम्बर को मराठों की बीस हजा से ऊपर संभुक्त सेना ने बम्बई डिवीजन के अग्रभाग एवम् पृष्ठभाग पर तीन हमले किये,

मगर बम्बई डिवीज ने तीनो आक्रमणों को व्यर्थ कर दिया। मराठों के पांच हजार सवारों ने हार्टले की बाई बगल पर करारा आक्रमण किया, मगर हार्टले की सेना ने ऐसी स्थिरता से इसका सामना किया कि इस आक्रमण का कोई प्रभाव ही उन पर परिलक्षित न हुआ और उनको बहुत साधरण हानि हुई। इस युद्ध में केवल अठारह व्यक्ति मारे गये, जिनमें दो अफसर लोफ्टिनेएट ड्रिड तथा कूपर भी थे। अगले दिन मराठों का फिर प्रबल आक्रमण हुआ। मराठे सवारों ने तो आक्रमण नहीं किया, मगर उनके तोपखाने ने भयानक मार की और अँगरेजी सेना के दो लेफ्टिनेएट कवान तथा पियरसन मारे गये। क़रीव एक सौ सिपाही भी मारे गये। अँगरेजी सेना के सिपाही पिछले छः हफ्ते से लड़ते लड़ते थक चुके थे। कितने ही सैनिकों के मारे जाने के कारण उनकी शक्ति कम हो गयी थी, वे परेशान भी कम नहीं थे फिर भी उन्होंने अपना सारा काम पूरी दृढ़ता से किया और कैप्टेन हार्टले ने उनके विषय में कहा कि "अपने सैनिकों के बारे में मेरी जैसी अच्छी राय बनी हुई थी, उसमें कुछ वृद्धि ही हुई है।"

कर्नल हार्टले की सेना जहाँ पर स्थित थी, उस स्थान के दाहिनी ओर बाईं ओर भी थोड़ी ऊँची भूमि थी। यदि उनको पूर्ण रुप से रक्षित कर लिया जाता तो युद्ध क्षेत्र की रक्षा स्वयमेव हो जाती, क्योंकि इन ऊँचाइयों की ओर से ही उसके बगल पर शत्रु के आक्रमण हो रहे थे। ऊँचाइयों पर सैनिक आग्रह पूर्वक डटे हुए थे। ११ वीं दिसम्बर के युद्ध में कर्नक हार्टले ने देखा था कि मराठे सैनिक दाहिनी ओर की ऊँचाई के अत्यधिक समीप तक आ गये थे। सोच विचार कर उसने क्षेत्रीय इंजीनियर को आदेश दिया कि इस स्थान पर सीने की ऊचाई बराबर मिट्टी फिकवा दी जाय। इतना हो जाने पर दोनों ओर की ऊंचाइयों पर एक एक तोप रख दी गयी। कहने को आवश्यकता नहीं कि अपने इन्हीं प्रकार के सूझ बूझ पूर्ण कार्यों के कारण भारतीय सिपाहियों में कर्नल हार्टले के प्रति इतना विश्वास था। मराठा सेनापति रामचन्द्र गणेश भी इन स्थानों पर अधिकार कर लेने के बाद की सुविधाओं को समझ चुका था, परन्तु उसे यह पता नहीं था कि हार्टले ने इन के लिये अच्छी व्यवस्था कर दी है। उसने इरादा किया कि अगले ही दिन वह दाहिनी ओर के टीले पर आक्रमण करेगा। हार्टले इस बात को पहले ही समझ चुका था। रामचन्द्र गणेश ने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि वे आगे की ओर से भी और पीछे की ओर से भी बढ़ कर चक्कर काटते हुए इस टीले पर दोरुखा हमाला करें। सिगन्योर नोरोना नाम का एक पुर्तगाली भी पेशवा की सेना में था। उसके संचालन में कुछ अरबी पैदल सैनिक तथा कुछ अन्य पैदल सैनिक थे। इनको लेकर वह भी टीले की ही ओर बढ़ा। सर्वाधिक उत्तम सवार इनके पृष्ठ भाग की रक्षा में नियुक्त थे। रामचन्द्र ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि या तो वह इस स्थान को अधिकृत कर लेगा या अपनी जान ही गँवाँ देगा। सबेरे के कुहांसे का लाभ उठा कर मराठा सेना अँगरेजो सैनिकों के समीप तक आ पहुंची, परन्तु इसी समय कुहरा हट गया और सूरज चमकने लगा। दोंनो सेनाएँ एकदम से एक दूसरे की सामने देख कर स्तब्ध रह गयीं और थोड़ी देर के लिये निश्चल हो गयी। अचानक मराठों की तोपें आग उगलने लगीं और अँगरेजों का विनाश होने लगा। आक्रमणकारी दल पूर्ण उत्साह से आगे की ओर झपटा। अँग्रेजों की दाहिनी ओर की तोपे सामने लायी गयी और उन्होंने आक्रामकों को भूनना शुरु कर दिया। घुड़सवार मराठी सेना का विनाश तो बहुत हुआ मगर वे अड़े रह गये, परन्तु अचानक ही उनका गोला बारी धीमी पड़ने लगी और यह देखा गया कि सैनिक गण अग्रभाग से किसी शरीर को उठाये हुए पृष्ठ भाग की ओर जा रहे थे। यह शरीर रामचन्द्र गणेश का था जिसने अप्रतिभ वीरता का प्रदर्शन करने के बाद वीरत्व के सर्वश्रेष्ठ मार्ग को अपनाया था और विजय देवी के स्थान पर मृत्यु को वरण किया था। नोरोना

को भी भयंकर चोटें लगी थीं। इसी प्रकार समूची मराठा सेना नेता विहीन और परिणाम स्वरुप उत्साह विहीन हो गयी और भारी हानि उठा कर पीछे हट गयी। १२ वीं तारीख के युद्ध में बम्बई की सेना को बहुत कम हानि उठानी पड़ी थी। उनके कार्य की प्रशंसा कपम्नी ने तो की ही, मराठों ने भी किया। यह एक कठोर सत्य है कि भारत में फौजी सेना की उत्तमता युद्ध की सफलता से ही आँकी जाती है न कि सनिकों के दृढ़ कर्तव्य पालन से। यही कारण है कि इस युद्ध में रत अँगरेजी सेना की बीरता तथा उत्कट कर्तव्य प्रेम की बात का वर्णन स्वयम् उन लोगों ने भी नहीं किया, जिन्होंने इस युद्ध में भाग लिया था।

बेसीन का आत्म समर्पण ११ दिसम्बर को किया गया और इसके बाद जब गोडार्ड को पता चला कि मराठों की समूची सेना ने बम्बई की सेना पर आक्रमण कर दिया है तो वह स्वयम् सवारों के आगे-आगे चल पड़ा। उसके साथ में बंगाल तथा मद्रास के बमबाज सेनिक भी थे। वह हार्टले के कैम्प पर १३ दिसम्बर को पहुँचा। स्थान के चुनाव के बारे में उसने हार्टले की भरपूर प्रशंशा की और सेना की सामयिक दृढ़ता की सराहना की। उसने इस बात की विशेष सराहना की कि यद्यपि सैनिकों को वेतन नहीं मिला था फिर भी वे किसी प्रकार की असन्तुष्टि का प्रदर्शन नहीं कर रहे थे; बल्कि इसके विपरीत सभी के चेहरों से उल्लास फूटा पड़ रहा था। अब यह पूरी सेना एक हो गयी और सीधे जनरल गोडार्ड के सेनापतित्व में आ गयी। इसी समय दुर्भाग्य से इंगलैण्ड से कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स का वह पत्र आ पहुँचा, जिसके अनुसार हार्टले की पदवृद्धि एवम् वेतन वृद्धि को रोक दिया गया था और जिसका विवरण हम पिछले पृष्ठों में दे चुके हैं। कर्नल हार्टले का स्थान मद्रास सरकार के अफ़सर लेफ्टिनेण्ठ कर्नल बेली को दिया गया था और यह कहा जा सकता है कि बेली भी इस पद के सर्वथा योग्य था। उसने तुरन्त अपने अधिकार की मांग की और तत्क्षण वह हार्टले का उच्चाधिकारी हो गया। हार्टले ने इस अपमानपूर्ण रवैये की अपील की मगर कोर्ट आव डाइरेक्टर्स ने अपने आदेश को वापस नहीं लिया। परिणाम स्वरूप हार्टले ने सैनिक सेवा को ही छोड़ दिया और इंगलैन्ड चला गया, जहां उसने अपने मामले को कोर्ट आव डाइरेक्टर्स के सामने रक्खा। डाइरेक्टरो ने उसकी सेवा की सराहना की, उसकी योग्यता का बखान किया मगर अपनी विवशता भी प्रगट की कि वे कम्पनी के सेवा सम्बन्धी विधान को नहीं बदल सकते। फिर भी डाइरेक्टरों ने इतना किया कि शाही सेवा के लिये उसकी शिफारिस कर दी और वह ७३वीं रेजिमेण्ट में लेफ़्टिनेण्ट कर्नल के पद पर नियुक्त हो गया। इसके बाद यद्यपि मराठा युद्ध-क्रम से उसका सम्बन्ध भंग हो गया, फिर भी भारत के अन्य भागों में उसने विशेष ख्याति अर्जित की। यद्यपि बाद में उन्नति करते-करते वह मेजर जनरल के पद पर पहुँच गया मगर भारतीय फौजी सेवा के इतिहास में उस समय का भी विशेष महत्व है जब वह देशी सिपाहियों की सेना का कैप्टेन था,

बेसीन के समर्पण तथा कोंकण में अपनी सेना के हार जाने के समाचार से नाना फड़नवीस बड़ा दुखी हुआ। गोडार्ड की विवेकपूर्ण योजना के कारण ही बेसीन का पतन सम्भव हुआ था। आश्चर्य की बात है कि बेसीन के घेरे में अँगरेजी सेना के कुल तेरह व्यक्ति मारे गये थे और इन्ही व्यक्तियों में लेफ़्टिनेण्ट सर जान गार्डन भी था जो घावों से भरा था। बेसीन के पतन के पश्चात् जिस दिन जनरल गोडार्ड कर्नल हार्टले से मिला, उसी दिन बंगाल से बम्बई सरकार को एक पत्र मिला, जिस पर ६ अक्टूबर की मुहर थी। इस पत्र में कहा गया था कि बम्बई सरकार को चाहिये कि वह शीघ्रतिशीघ्र मराठों से सन्धि कर ले। उस पत्र का आदेश था कि ज्योंही पेशवा ने इस आशय का समाचार बम्बई की कांउसिल को भेजे कि समस्त मराठा सर्दारों को युद्ध रोकने का आदेश दे दिया गया है त्योंही

बम्बई सरकार को भी युद्ध रोक देना चाहिये, परन्तु जब तक उक्त आशय का सन्देश पेशवा की ओर से न मिले तब तक युद्ध को पूरी शक्ति से चालू रक्खा जाय। इसी प्रकार के निर्देश जनरल गोडार्ड को भी भेजे गये थे।

बंगाल की कांउसिल के उक्त आदेश के कारणों को समझने के लिये यह आवश्यक है कि उस समय की परिस्थिति को समझ लिया जाय। उस समय केवल फतहसिंह गायकवाड़ ही अँगरेजों का मित्र था और इस मित्रता के परिणामस्वरूप गायकवाड़ का सम्पर्क मराठों से खत्म ही हो गया था। फतहसिंह गायकवाड़ के स्वार्थ की प्रबल मांग थी कि वह अँगरेजों से मिला रहे। उधर सुप्रीम कांउसिल को सूचना मिली कि अगरेजों के विरोध में हैदरअली, निजाम अली तथा मराठों ने एक संघ बना लिया है और यद्यपि निजामअली शान्त था फिर भी यह संघ उसी के प्रयत्नों का फल है। अगरेजों से निजामअली की शत्रुता का तत्कालिक कारण यह था कि मद्रास सरकार ने अप्रैल १७७९ ई० में नाजिम अली के भाई बसालत जंग से एक संधि कर लिया था। बसालत जंग एदोनी में जागीरदार था। अँग्रेजों ने उसे अपनी रक्षा में ले लिया और इसके बदले में बसालत जंग से उन्होंने यह समझौता किया था कि वह गन्टूर जिले की लगान अँगरेजों को दे देगा और उसकी मृत्यु के बाद यह भूभाग स्थायी रूप से अँगरेजों का हो जायगा। इस समझौते को सुनकर निजाम अली को बड़ी चिन्ता हुई क्योंकि बसालत जंग से उसे स्वाभाविक ईर्ष्या थी। उधर हैदर अली को अपने राज्य का एक भाग समझता था। उसे यह कैसे पसन्द होता कि गन्टूर को अँगरेज ले लें, अतः युद्ध घोषणा के पूर्व ही उसने अँगरेजों की प्रगति का विरोध किया। बसालत जंग के साथ किया गया मद्रास सरकार का यह समझौता नियमानुमोदित नहीं था, क्योंकि इस समझौते को सुप्रीम कांउसिल सहित गवर्नर जनरल ने न तो पुष्ट ही किया और न इसे स्वीकार ही किया। फरवरी सन् १७८० ई० में यह समझौता सुप्रीम काउंसिल द्वारा अस्वीकृत कर दिया। इस अस्वीकृति से निजाम अली का असन्तोष स्वाभाविक रूप से कम हो गया था, परन्तु बड़गाँव के सम्मेलन के बाद से निजाम अली के व्यवहार में आकाश पाताल का अन्तर आ गया था। उसकी हठपूर्ण वाणी असह्य सी होती जा रही थी। अभी तक वृटिशजनों के साथ ऐसा व्यवहार करने का उसे साहस ही नहीं होता था। अँगरेज विरोधी संघ में शामिल होने का एक और भी कारण था। निजाम अली ने एक बार उत्तर की ओर बढ़कर कृष्णा नदी तक के भूभाग को जीत लिया था और बाद में रघुनाथ राव ने उसे इन क्षेत्रों का स्वामी मान लिया था। अपने इसी स्वत्व को बनाये रखने के लिये वह दिखावे के रूप में अब भी रघुनाथ राव को ही पेशवा मानता था। अतः इस संघ में सम्मिलित होने के लिये उसकी पहली शर्त यही थी कि उक्त क्षेत्र पर उसके स्वत्व को मान लिया जाय। पूना दरबार के मंत्रियों ने उसकी इस माँग को मान लिया था और यह वादा किया था कि इस प्रदेश के कर रूप में उसे ग्यारह लाख रुपये वार्षिक मिला करेंगे।

यद्यपि अंगरेज विरोधी इस संघ से मूदाजी भी सहमत था, फिर भी हेस्टिंग्ज यह आशा करता रहा कि किसी न किसी समय ऐसा अवसर आवेगा जब मराठों से उसकी सन्धि हो जायगी, परन्तु उस समय का घटनाक्रम जिस जटिल परिस्थिति की ओर संकेत कर रहा था, उससे उसे यह शंका होने लगी थी कि क्या इन विपरीत परिस्थितियों में भी मूदाजी की निष्पक्षता स्थिर रह सकेगी। गवर्नर जनरल को इस बात का पता था कि यद्यपि मूदाजी में तथा निजाम अली में पूरी शत्रुता थी, परन्तु फिर भी मूदाजी के दीवान दिवाकर पन्त के माध्यम से निजाम अली का मूदाजी पर पूरा प्रभाव था, क्योंकि दिवाकर पन्त की सहमति बिना किसी भी राजनैतिक प्रश्न का निर्णय मूदाजी

नहीं करता था। इधर दिवाकर पन्त पूरी तरह निजाम अली के प्रभाव में था। हैदर अली की शक्ति ऐसी थी कि उसके विरोध में बृटिश सत्ता को बनाये रखने के लिये मराठों की मित्रता आवश्यक थी, परन्तु विरोधी परिस्थितियों के कारण यह सम्भव नहीं दिखायी पड़ा था कि अँग्रेजों एवम् मराठों के बीच होने वाली सन्धि वार्ता में मूदाजी मध्यस्थ बनने को तैयार हो जायेगा। इन परिस्थितियों में अक्टूबर के प्रारम्भ में ही होस्टिंग्ज ने निम्नलिखित शर्तों पर पेशवा दरबार से सन्धि करने का प्रस्ताव मूदाजी के माध्यम से भेजा :—(१) अहमदबाद फतह सिंह के पास रहेगा, (२) ग्वालियर राना गोहद के अधिकार में रहेगा, (३) यदि वेसीन सन्धि के समय भी कम्पनी के ही अधिकार में रहे तो वह कम्पनी के ही हाथों में रहेगा, (४) पहली जनवरी सन् १७७६ के बाद जिन अन्य क्षेत्रों पर पर अधिकार किया गया है, वे लौटा दिये जायँगे, (५) रघुनाथ राव के जीवन भर के लिए एक समुचित वृत्ति निश्चित कर दी जायगी और बम्बई से दूर किसी भी मनचाहे स्थान में रह कर वह वृत्ति का उपभोग करेगा तथा बृटिश सरकार आगे से रघुनाथ राव को किसी भी प्रकार की सहायता नहीं देगी। यदि पेशवा दरबार आक्रमणात्मक तथा सुरक्षात्मक सन्धि का इच्छुक होता तो उसके सामने उपरोक्त शर्तें थीं। यह भी तै था कि यह सन्धि हैदर अली तथा फ्रांसीसियों के विरोध में हो रही थी। यदि मराठा दरबार ऐसी सन्धि करने का इच्छुक न हो तो इस शर्त पर शान्ति समझौता हो जाय कि जिसने जो जीत लिया है, वह उसी के अधिकार में बना रहे, परन्तु आपस में युद्ध न हो। इसका भी निश्चय कर लिया था कि मूदाजी ही उभय पक्ष के मध्यस्थ भी होंगे और जमानतदार भी। बृटिश सत्ता के अन्तर्गत जितने भी देशी विदेशी लोग थे उन्हें यह आदेश दे दिया जाने वाला था कि चूँकि पेशवा ने अपने तमाम सरदारों को युद्ध रोकने का आदेश दे दिया है, अतः वे भी युद्ध से अलग हो जायँ। अभी ये प्रस्ताव नागपुर के रास्ते में ही थे कि समाचार मिला कि हैदर अली ने कर्नल बेली की समूची सेना को तहस-नहस करके रख दिया। यह घटना प्राप्त समाचार के अनुसार १० सितम्बर को कांजीवरम् के समीप हुई थी। इस समाचार को पाकर मूदाजी ने परिणाम निकाला कि कम्पनी की स्थिति निराशा जनक है अतः वह मध्यस्थता करने में हिचकिचाने लगा। उसने सोच लिया कि वह तभी मध्यस्थ बनेगा जब ऐसी शर्तें रक्खी जायँ, जिन्हें गवर्नर जनरल तथा उसकी काउंसिल स्वीकार ही न करे।

बंगाल से भेजे गये प्रस्तावों का उत्तर दो माह तक मूदाजी ने नहीं दिया, परन्तु पिछले पृष्ठ में बंगाल से आये हुए जिन आदेशों की चर्चा की जा चुकी है, वे इन्हीं प्रस्तावों के परिणाम स्वरूप भेजे गये थे और जो बम्बई सरकार को दिसम्बर में मिले थे। बंगाल सरकार ने असम्भावित रूप से कुछ रुपया बम्बई सरकार को भेज दिया था, जिसकी वजह से उसकी आर्थिक स्थिति कुछ सँभल गयी थी। अतः बम्बई सरकार इन आदेशों को पाकर संतुष्ट ही हुई, भले ही उसके जीते हुए कुछ क्षेत्रों के हाथ से निकल जाने की सम्भावना थी; परन्तु चूँकि पेशवा की ओर से आने वाली सूचना अभी प्राप्त नहीं हुई थी अतः यह निश्चय किया गया कि कोंकण पर दृढ़ अधिकार बनाये रख कर तथा दो एक किलों को और ले लेने के बाद जब तक युद्ध चले सुरक्षात्मक नीति का ही पालन किया जाय।

अरनौल के दुर्ग को अधिकृत करने में जनरल गोडार्ड को कुछ रुकना पड़ा। यह दुर्ग बेसीन के उत्तर में १० मील दूर एक द्वीप पर स्थित था। जब तक गोडार्ड की सारी सेना किले के सामने न पहुँच गयी तब तक वहाँ का किलेदार समर्पण करने से इनकार ही करता रहा। उसने २८ जनवरी को किला समर्पित कर दिया। गोडार्ड ने सोचा कि यदि थोड़ा और आगे बढ़ कर पूना पर आक्रमण

का भय उपस्थित कर दिया जाय तो सम्भव है कि गवर्नर जनरल द्वारा किये गये प्रस्तावों पर सन्धि करने में आसानी हो जाय। छोटे-छोटे दुर्भेद्य पहाड़ी किलों को हस्तगत करने के स्थान पर पूना की ओर बढ़ना ही उसे अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण प्रतीत हुआ। विशेषकर ऐसी दशा में जब कि इन पहाड़ी दुर्गों में से अधिकांश अभेद्य से दिखायी दे रहे थे। कोर्ट आव डाइरेक्टर्स के आदेश से गोडार्ड को बम्बई की सेना का कमाण्डर-इन-चीफ बना दिया गया था परन्तु बंगाल सरकार द्वारा दिया गया वह अधिकार उससे लिया नहीं गया था, जिसके अनुसार वह अपनी स्वतंत्र योजना के अनुसार निबोध रूप से काम कर सकता था। यद्यपि बंगाल से प्राप्त आदेश में कहा गया था कि जब तक पेशवा से अनुकूल सूचना न मिले, तब तक युद्ध को चालू ही रक्खा जाय, फिर भी इसने उन सहायक अफसरों को डावाँडोल मन:स्थिति में डाल दिया, जिनके सहयोग की गोडार्ड को विशेष आवश्यकता थी। विशेषकर मद्रास सरकार तो बारबार जोर देने लगी कि मराठों से सन्धि करके मलावार तट पर हैदर अधिकृत स्थानों पर आक्रमण किया जाय। मद्रास सरकार की पहले से ही ऐसी मनोवृत्ति हो गयी थी कि प्रत्येक विपरीत परिस्थिति के मूल में वह अपने ही शब्दों में 'दादा राघोबा का एवम् मराठा-युद्ध' को ही देखती थी। बाहर से जितने भी पत्र बम्बई को आ रहे थे, उन सब में एक ही बात दुहरायी जा रही थी कि मराठों से सन्धि कर ली जानी चाहिये।

इन परिस्थितियों में गोडार्ड ने ऐसी धमकियों का सहारा लेना शुरू किया, जिनके कार्यान्वयन की उसे तनिक भी इच्छा नहीं थी। सर्वदा सफलता के मार्ग पर चलने वाले इस लब्ध प्रतिष्ठ अधिकारी ने इसी अवसर पर एक ऐसी भूल कर दी। वह एक ऐसे नियम से हटकर चलने लगा जो सामान्य जीवन का सामान्य निरीक्षण करने से ही समझ में आ जाता है। वह पहाड़ियों के दर्रों की ओर बढ़ा। उस समय हरी पन्त फड़के कोंकण में था, परन्तु वह पूना की ओर चला गया, परन्तु भोरघाट की रक्षा का प्रबन्ध करता गया। ८ फरवरी की रात को बंगाल सैन्य के अग्रगामी दल ने कर्नल पार्कर के संचालन में भोरघाट के रक्षकों पर छापा मारा। उसने सरलता से दर्रे पर अधिकार कर लिया और अपनी सेना सहित कांधला में पड़ाव डाला। पार्कर का पड़ाव भी संयोग से उसी भूमि पर पड़ा, जिस पर तीन वर्ष पूर्व कैप्टेन स्टेवार्ट ने अधिकार कर लिया था। उसकी सेना का अधिकांश उसी स्थान पर आ गया। कर्नल गोडार्ड अपनी मुख्य सेना के साथ पहाड़ों के मूल में स्थित काम्पोली नामक गाँव में पड़ाव डाले पड़ा था।

उनके इस स्थान पर उपस्थिति हो जाने से नाना फड़नवीस को तनिक भी घबराहट न हुई, क्योंकि उसके राजनैतिक साहस तथा उसकी साहस हीनता (कायरता) में असामान्य विरोधाभास था। भारत के प्राय: सभी ब्राह्मण कुशल राजनीतिज्ञ होने के साथ साथ युद्ध के विषय में काफी साहसहीन होते हैं। अँगरेजी सेना के आ जाने से उसकी कार्यप्रणाली में इतना ही अन्तर आया कि उसने सैनिक तैयारियों में थोड़ी तेजी कर दिया। उसने अँगरेजी सेना के सम्भावित मार्ग में पड़ने वाले समस्त क्षेत्र को उजाड़ बना देने तथा पूना को निर्जन कर देने की योजना पर गम्भीर विचार किया और तदर्थ आवश्यक तैयारी भी कर लिया। जनरल गोडार्ड को भुलावा देने के लिये उसने एक अनधिकृत दूत भी सन्धि वार्ता करने के लिये भेज दिया। गोडार्ड की इच्छा हुई और उसने नाना को संदेश दिया कि गवर्नर जनरल द्वारा प्रस्तावित शर्तों पर सन्धि वार्ता चलायी जाय। नाना ने कहलवाया कि उसे इन शर्तों का कोई ज्ञान ही नहीं था। गोडार्ड ने शर्तों की एक प्रति नाना के पास भेज दी और ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी कि बिना स्पष्ट उत्तर दिये बँचत ही नहीं होती थी, परन्तु नाना की भी प्रतिभा साधारण नहीं थी। उसने झट उत्तर प्रस्तुत किया कि ये

प्रस्ताव गवर्नर जनरल द्वारा मूदा जी के माध्यम से भेजे गये थे और चूँकि मूदाजी ने मध्यस्थ बनने से इनकार कर दिया हैं अतः इन पर तभी विचार किया जा सकता है जब यह मूदा जी द्वारा प्रस्तुत किया जाय और किन्हीं भी शर्तों पर तभी विचार किया जा सकता है, जब उसमें हैदर अली को भी शामिल किया गया हो, क्योंकि वह उसका मित्र है। सम्भव था कि स्वविवेक के आधार पर ही गोडार्ड इन शर्तों को तुरन्त ही अमान्य कर दिया होता, परन्तु मद्रास से सर आयर कूट के पत्र आ रहे थे कि सन्धि वार्ता को खत्म किया जाय। अक्टूबर १७८० ई० में गवर्नर जनरल ने सर आयर कूट से प्रार्थना की कि वह बंगाल से मद्रास तक के समुद्र तट का सम्यक् निरीक्षण कर के उसकी मोर्चेंबन्दी के लिये ऐसे सुझाव दे कि जाति का मान सुरक्षित रहे। इसी जातीय भाग्य तथा जातीय सम्मान की रक्षार्थ सर आयरकूट इन दिनों मद्रास में थे और उसकी इस यात्रा के लिये गवर्नर जनरल भी कृतज्ञ था और फोर्ट सेंट जार्ज में रहने वाली सैन्य भी।

पेशवा कौ आयु इस समय सात वर्ष की थी। नाना ने उसे पुरन्धर के किले में भेज दिया था। हरी पन्त फड़के तथा तुका जी होल्कर मुख्य सेना के सेनापति थे। इसी सेना के साथ नाना फड़नवीस स्वयम् ही घाट की ओर चला और परशुराम भाऊ पटवर्द्धन को कोंकण की ओर भेजा गया और उसके साथ बारह हजार सैनिक इस लिए दिये गये थे कि वह गोडार्ड द्वारा भेजे हुए दस्ते को परेशान करे और बम्बई से उसका सम्बन्ध भंग कर दे। पटवर्द्धन को शीघ्र ही अवसर भी मिल गया। बम्बई की पहली वटालियन तथा बंगाल की ५ वीं बटालियन के सैनिक कैप्टेन मैके की अध्यक्षता में उस टुकड़ी के रक्षक रूप में पनवेल से आ रहे थे, जो सेना के उपयोग के लिये रसद ला रही थी। परशुराम भाऊ ने उन पर करारा हमला कर दिया। १५ मार्च की रात को कैप्टेन मैके अपने दल को १२ मील लाया था और चौकी नामक गाँव तक पहुँच गया था। उसी स्थान पर १६ वीं मार्च को प्रातःकाल ही पटवर्द्धन की समूची सेना ने अचानक ही उस पर धावा कर दिया। मैके ने उस आक्रमण को विफल तो कर दिया परन्तु उसे काफी कठिनाई भी उठानी पड़ी। तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर नुकसान आक्रामकों का ही अधिक हुआ। अँगरेजी सेना की दोनों बटालियनों ने वीरता पूर्वक आक्रमण का सामना किया, विशेष कर बंगाल के सैनिक तो इतनी वीरता से कभी नहीं लड़े थे। इस सेना की एक कम्पनी अपनी संगीनों के बल पर आक्रामक सवारों पर टूट पड़ी और उसे पीछे ढकेलती चली गयी और अन्त में भागते हुए मराठों के पीछे पड़ गयी। थोड़ी दूर ही भाग कर मराठे घूम कर खड़े हो गये और उस कम्पनी को अशक्त कर दिया। सौभाग्यतः उनकी पंक्ति नहीं टूटी नहीं तो पूरी कम्पनी ही मारी जाती। घाट की पहाड़ियों के मूल में पहुँचने के लिये मैके को और भी बारह मील चलना था। कोंकण की भूमि का परिचय पहले दिया जा चुका है। यद्यपि सड़क काफी अच्छी थी फिर भी वह एक चौड़ी पगडंडी के ही समान थी और जिस क्षेत्र से हो कर गयी थी, वह रास्ता पर्याप्त ऊँचा नीचा तथा नालों एवम् टीलों से भरा हुआ था। दाहिने बायें ऊँचे तथा घने पेड़ों वाले जंगल थे और कहीं-कहीं ऊँची पहाड़ियाँ खड़ी थीं, जिन पर खड़े हो कर थोड़े से आदमी ही पूरी सेना को भून कर रख दे सकते थे। ज्यों ही शाम का अँधेरा हुआ कैप्टेन मैके अपने रास्ते पर चल पड़ा और सुबह होते कम्पोली से कुछ मीलों की दूरी तक आ पहुँचा। तब तक गोडार्ड ने एक सेना उसकी सहायता के लिये भेज दिया तथा साथ में घायलों को लाने के लिए सवारी का भी प्रबन्ध कर दिया और तब मैके किसी तरह गोडार्ड के पास पहुँच सका।

गोडार्ड ने सोचा था कि घाट को ओर बढ़ने का अत्यधिक राजनैतिक मूल्य होगा, परन्तु उसका सोचना ठीक नहीं उतरा। बम्बई सरकार ने सन्धि वार्ता के खत्म हो जाने का दुःख इसलिए

नहीं किया कि उनको गुजरात तथा कोंकण पर अधिकार तो मिल ही गया था। मि० हेस्टिंग्ज ने भी इस बात को दुर्भाग्य सूचक नहीं माना। अब कहीं जा कर गोडार्ड को इस बात का अवसर मिला कि बम्बई सरकार के निर्देशानुसार वह मद्रास सैन्य को मद्रास प्रेसीडेंसी की रक्षा के लिये वापस भेज दे। इधर वह अपनी सुरक्षा व्यवस्था को भी सुदृढ़ बनाना चाहता था, अतः उसने बम्बई सरकार को राय दिया कि भोरघाट की पूरी मोर्चे बन्दी कर के वहाँ एक सुसज्जित रक्षक सेना रख दी जाय, परन्तु गवर्नर हार्नबी उसकी इस योजना से सहमत नहीं हुआ। उसका तर्क यह था कि तब तक के अनुभव से उसे इस बात की सिद्ध हुई थी कि मराठों के लिये भोरघाट पर कभी भी अधिकार कर लेना सरल कार्य है अतः उस योजना को पूर्ति में लगायां गया धन व्यर्थ ही जायगा। इसमें शक नहीं कि हार्नबी का तर्क भी गलत नहीं था। हार्नबी का कहना था कि भोर घाट के उत्तर में करीब ही राजमाछी का दुर्ग है। उसे अधिकृत करना भी अपेक्षा कृत सरल था। यदि उसे हस्तगत कर लिया गया होता तो वह रक्षा के काम में भी आता और उसमें सुरक्षित बैठ कर शत्रु को परेशान भी किया जा सकता था।

थोड़े तर्क वितर्क के बाद यह निश्चित् किया गया कि वर्षा काल में ससूची सेना लौट आवे तथा बम्बई व कल्यान में पड़ाव डाले, और मद्रास की सेना को मद्रास वापस भेज दिया जाय और बम्बई सैन्य की दो बटालियन तेली-चेरी की सुरक्षा में योग देने के लिये भेजी जाय, परन्तु इन दोनों बटालियनों को भेजने के लिए रुपयों की आवश्यकता थी और रुपये इस समय बम्बई सरकार के पास थे नहीं अतः यह निश्चय कियां गया कि ज्यों ही बंगाल से आर्थिक सहायता आ जायगी, त्यों ही उन दस्तों को भेज दिया जायगा। बम्बई सरकार का दृढ़ निश्चय था कि तेलो-चेरी को अवश्य बँचाया जाय, क्योंकि यह स्थान चिर दिनों से अँगरेजों के अधिकार में था। इतना सब कुछ तै हो जाने के बाद जब सेना के प्रस्थान करने का समय आया तो जनरल गोडार्ड ने देखा कि अपने सामानों एवम् सज्जा की सामग्रियों का अधिकांश छोड़े या बर्बाद किये बिना सेना का प्रस्थान असम्भव है। पहली अप्रैल को उसने देशी सिपाहियों की तीन बटालियन सेना, दस तोपें तथा पूरी घुड़सवार सेना को इस लिये पनवेल भेज दिया था कि उधर से रसद लेकर आने वाली टोली की वह रक्षा करे। इस सेना का संचालक था लेफ्टिनेण्ट कर्नल ब्राउन। पनवेल जाने वाली सड़क पर ही परशुराम भाऊ ने उस सेना पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि रक्षक सेना ने आक्रमण को रोकने का पूरा प्रयास किया परन्तु मराठे अधिकांश पशुओं को हाँक ले गये। क्योंकि पशुओं को भगा ले जाने में उनका कौशल अद्वितीय है। सुरक्षा दल में इतनी शक्ति थी कि वह परशुराम भाऊ के दल को चीर कर निकल आ सकता था परन्तु उधर से नाना फड़नवीस ने भाऊ की शक्ति वृद्धि के लिये होल्कर को भेज दिया था। अतः ब्राउन ने तै किया कि मराठों की विशाल सेना की उपस्थिति में वह तब तक आगे न बढ़ेगा, जब तक कि उसे और मदद न मिलेगी। उसके इस निश्चय को गोडार्ड का भी समर्थन प्राप्त हो गया। गोडार्ड का दुर्भाग्य यह था कि उसने अधिकांश पशुओं को रसद लाने के लिये भेज दिया था अतः वह उस स्थान को छोड़ कर हिल भी नहीं सकता था। यदि वह ऐसा करता भी तो उसे बहुत-सी सामग्री को नष्ट कर देना पड़ता और बम्बई सरकार की बिगड़ी आर्थिक परिस्थिति में ऐसा कदम उठाया नहीं जा सकता था। अगर वह कुछ सामग्री वही छोड़ कर आगे चला जाता तो सैनिक दृष्टि से यह महान् भूल हुई होती, क्योंकि ऐसी दशा में इस सामग्री का उपयोग शत्रु सेना करती। इस जटिल परिस्थिति में फँस कर उसने बम्बई सरकार को लिखा कि इस समय बम्बई में स्थिति रक्षक दल के जितने भी सैनिक भेजे जा सकें उन्हें भेज कर ब्राउन की मदद की जाय। कहने की आवश्यकता नहीं कि बम्बई

सरकार ने तुरन्त आवश्यक कार्यवाही की और एक दस्ता तुरन्त हीं रवाना कर दिया गया। मराठा सेना में उस समय पचीस हजार से कुछ अधिक ही सवार थे। इसके अतिरिक्त अग्निवाण चलाने वाले भी थे और काफी संख्या में पैदल सैनिक भी थे। फिर भी ब्राउन के कौशल के कारण उन्हें धार-बार पीछे हटना पड़ा। इस युद्ध में कर्नल ब्राउन ने बड़ी ही योग्यता का परिचय दिया।

कर्नल ब्राउन के लौट आने के कारण अब गोडार्ड इस योग्य हो गया कि वह वापस लौट सके। १९ अप्रैल को उसने अपने भारी सामानों को भोरघाट की ओर रवाना ,कर दिया। उसने सोचा था कि उसका यह कार्य मराठे जान नहीं पाये हैं। परन्तु मराठों को गोडार्ड द्वारा किये जाने वाले एक-एक काम का पता था और वे चुपचाप आने वाले अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। बिना किसी अतिरिक्त सामान के पन्द्रह हजार सवारों के साथ तुका जी होल्कर कुसूरघाट की तलहटी में खड़ा था। बारह हजार सवारों के साथ परशुराम भाऊ घाट के निम्न भाग में भीमा शंकर के समीप चौकन्ना था। कौंधला तथा कार्ली के बीच में पचीस हजार सवारों के साथ हरी पन्त फड़के अवसर की प्रतीक्षा में था। उसके साथ चार हजार पैदल तथा कुछ छोटी तोपें भी थीं। जनरल गोडार्ड को जो सूचना मिली थी, उसके अनुसार होल्कर तथा भाऊ दोनों ही घाट के चढ़ावों पर थे। इधर २० अप्रैल को गोडार्ड ने कूच किया और उधर फड़के की सेना कोंकण में घुस गयी और उसके सैनिक सामानों को लूट लिया। इन सामानों में खेमे, गोलियों से भरे बक्से तथा दो हजार तोप के गोले थे। २० अप्रैल को गोडार्ड कालापुर में रुका और २१ को ही फिर चल पड़ा। अभी उसकी सेना का पृष्ठ भाग मुश्किल से कुछ कदम चल पाया होगा कि हरीपन्त की तोपों का एक गोला बारूद भरी गाड़ी पर पड़ा और फल स्वरूप बड़ा भयंकर विस्फोट हुआ। यद्यपि इससे अँगरेजी सेना की बहुत कम हानि हुई, फिर भी इस घटना से मराठों का साहस अत्यधिक बढ़ गया और वे तब तक इस सेना को तंग करते रहे, जब तक कि वह चौकी तक नही पहुँच गयी। मराठों को क्षेत्रीय सुविधा भी मिल रही थी, क्योंकि गोलों तथा अग्नि वाणो की मार करने के लिए उन्हें हर समय झाड़ी, शिला, पेड़, टीला नाला इत्यादि की सुविधा हरदम मिल जाया करती थी और वे वहीं से छिप कर अँगरेजी सेना पर वार करते थे। उसी दिन प्रात; ६ बजे परशुराम भाऊ तथा तुका जी होल्कर अँगरेजी सेना के जाने की दिशा में आगे प्रगट हुए। तीसरे पहर एक बजे जब गोडार्ड के सैनिकों के खेमे गड़ चुके तो शत्रु सेना लौट गयी। हरीपन्त तो कालापुर चला गया और भाऊ तथा होल्कर वृटिश सेना के दक्षिण भाग के पीछे की दिशा में चले गये। २१ अप्रैल को जो कुछ भी हानि उठानी पड़ी थी, उसका अधिकांश भाग बंगाल के देशी सिपाहियों की संख्या पर पड़ा क्योंकि वे ही पृष्ठ भाग में थे और वीरता पूर्वक लड़ रहे थे। २२ अप्रैल को जनरल गोडार्ड रुका और २३ तारीख को फिर आगे बढ़ा। उसी दिन उस पर फिर से आक्रमण किये गये, परन्तु चूँकि भारी सामानों को २ बजे रात में ही आगे भेज दिया गया था अतः शत्रुओं के आने के पहले वह काफी दूर तक चला गया था। मराठों ने पृष्ठ भाग पर इस समय जो आक्रमण किया वह पूर्ण निश्चय के साथ किया गया था तथा बंगाल की ६वीं और बम्बई की तेहरवीं बटालियन ने लेफ्टिनेन्ट कर्नल पार्कर के संचालन में बड़ी वीरता दिखायीं। बेचारा पार्कर इस युद्ध में काम आया। इन तमाम युद्धों की घटनाओं पर विचार करने पर गोडार्ड को मालूम हुआ कि मराठों के आक्रमण सदा उसी समय हुए हैं जब वह पड़ाव डाल कर खेमे के अन्दर चला गया है। अतः दूसरे दिन उसने झूठे ही पड़ाव डालने का दिखावा किया और इसमें शक नहीं कि यह कार्य विवेक पूर्ण रहा। २३ अप्रैल की शाम को उसकी सेना पनवेल पहुँच गयी और राह में किसी ने उससे छेड़छाड़ नहीं की। अँगरेज गोडार्ड के इस कार्य को वापसी यात्रा की संज्ञा देते हैं,

और मराठे उसे गोडार्ड का यलायन तथा अपनी विजय कहते हैं। सत्य तो यह है कि इस वापसी में जनरल गोडार्ड को अत्यधिक हानि उठानी पड़ी। इसमें मृतकों एवम् घायलों की संख्या चार सौ छाछठ (४६६) थी, जिनमें से अठारह तो यूरोपियव अफसर ही थे।

इसमें सन्देह नहीं कि मराठा सेना ने, विशेष कर पैदल सेना तथा परशुराम के संचालन में काम करने वाली घुड़सवार सेना ने इस युद्ध में पूरी वीरता से युद्ध किया और उनका आचार भी अच्छा रहा, परन्तु उनमें सैनिक प्रवृत्ति के ह्रास का स्पष्ट पता चलता है, क्योंकि इस अवसर पर हरी पन्त द्वारा भेजे गये पत्रों में मराठों की वीरता का वर्णन सैनिक प्रवृत्ति के अनेक स्थानों पर अतिशयोक्तियों से काम लिया गया है और इस प्रकार का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन सैनिक प्रवृत्ति के एक दम विरुद्ध है। उसके पहले के ब्राह्मणों में यह प्रवृत्ति नाम मात्र को भी नहीं थी और यदि थी भी तो बहुत ही कम। हाँ मराठा या मुसलमान लेखकों का तो अतिशयोक्ति के बिना काम ही नहीं चलता था। मराठों ने अनुमान लगाया कि अँगरेजों के पन्द्रह सौ आदमी मारे गये, एक तोप और गोले बारूद की कई गाड़ियाँ छीनी गयीं और उनके सामान का एक बड़ा भाग लुट गया। हरीपन्त फड़के तथा नाना फड़नवीस दोनों ने स्वीकार किया कि स्वयम् उनके भी सैनिकों एवम् घोड़ों की कम हानि नहीं हुई।

पूर्वकृत निश्चय के अनुसार तेली-चेरी के लिये सेनायें रवाना कर दी गयीं, परन्तु व्यक्तिगत यूरोपियव सैनिकों को बम्बई की सेना में खींच लिया गया। मद्रास सरकार को बम्बई सरकार का यह कार्य अच्छा नहीं लगा। शेष सेना कुछ दिनों तक पनबेल में पड़ी रही और कल्यान को चली गयी, जहाँ उसने वर्षा काल भर के लिये पड़ाव डाल दिया। वहाँ इस सेना का संचालक वेली था। दस हजार मराठों को गुजरात भेजा गया जिनका सेनापति माधव राव राम चन्द्र था। कोंकण के सैनिकों की संख्या बढ़ा दी गयी और सदा की तरह पेशवा की मुख्य सेना के।सैनिक अपने-अपने घरों को लौट गये।

जिस समय भारत के पश्चिमी भाग में इस प्रकार की घटनाओं का दौर दौरा था, उस समय बंगाल में गवर्नर जनरल तथा उनकी कांउसिल का यह मन हो रहा था कि सिन्धिया के निजी चेत्रों में अशान्ति पैदा की जाय। वे बम्बई सरकार की रचात्मक नीति की भी आलोचना करते थे। सिंधिया के विषय में उनका मत था कि मराठा अँगरेज संघर्ष में सिन्धिया ही मुख्य पात्र था, इस लिये युद्ध में उसी की हानि भी सर्वाधिक होनी चाहिए। इसी अवधि में मि० हेस्टिंग्ज इस प्रयास में भी लगे रहे कि किसी भी प्रकार अँगरेज विरोधी मण्डल में से मूदा जी भोंसले को अलग कर लेना चाहिए।

हम यह पहले ही बता चुके हैं कि सिपाहियों का एक दस्ता गोहद के राना की सहायता के लिये मेजर कैमाक के सेनापतित्व में तैयार किया गया था। मेजर कैमाक की पद वृद्धि हो गयी थी और अब वह लेफ्टिनेण्ट कर्नल बना दिया गया था। उधर कैप्टेन पोफम को अपनी शानदार सफलता के लिये मेजर बना दिया गया। कर्नल कैमाक ने मालवा पर आक्रमण किया। सीपरी को हस्तगत करता हुआ वह सिरौंज की ओर बढ़ा। उसका सामना करने के जिये स्वयम् महाद जी सिन्धिया पूर्व की ओर से चला आ रहा था। वह भी पोफम के साथ ही साथ सिरौंज के समीप आ गया। कर्नल कैमाक ने खामोशी से डेरा डाल दिया जहां वह १६ फर्वरी को पहुँचा था। सिंधिया भी उसी समय वहाँ आ गया तथा चुपके-चुपके वह पोफम के चतुर्दिक सैन्य जाल बुनने लगा। कर्नल कैमाक को सिंघिया के सब समाचार मिलते रहे, परन्तु उसने अँगुली तक नहीं हिलाया और चुपचाप बैठ कर कराठों की घेर लेने की क्रिया का अध्ययन करता रहा। वास्तव में उसके पास न तो सैनिकों के लिये

रसद थी और न जानवरों के लिये चारा। अब वह बड़ी परेशानी में पड़ा और अब उसे अपने को घेर लिये जाने के समय की खामोशी की भूल मालूम हुई। अब वहां रुके रहने में भयंकर खतरा था और वापस लौटने में उससे भी बड़ा खतरा था। उसने कर्नल मोर्गन के पास बड़ा आग्रहपूर्ण पत्र लिखा कि वह उसके लिये आवश्यक सहायता भेजे। मोर्गन ने अपनी सेना में से एक दस्ता अलग किया और लेफ्टिनेण्ट कर्नल मूर को उसका संचालन सौंप कर शीघ्रता से सिरींज को रवाना किया। इस दस्ते में तीन बटालियन पैदल सैनिकों की, दो बटालियन सवारों की तथा एक कम्पनी तोप चलाने वालों की शामिल थी। मोर्गन इस समय अवध में था, वहाँ से यथा शीघ्र उसने मूर को रवाना कर दिया। इधर सिंधिया ने कैमाक पर हमला कर दिया था और लगातार सात दिनों तक उसकी तोपें अँगरेजी सेना पर आग की वर्षा सी करती रहीं, और तब विवश हो कर कैमाक ने निश्चय किया कि चाहे जिस परिस्थिति का सामना करना पड़े, परन्तु वह अवश्यमेव लौट जायगा। मोर्च को आधी रात के समय उसने अपनी वापसी की यात्रा शुरू की और दिन निकलने के समय तक मराठों की दृष्टि में नहीं आया मगर ८वीं और नवीं मार्च को मराठों के बार-बार के आक्रमणों से वह बहुत ही परेशान हुआ। अन्त में वह किसी प्रकार महावतपुर पहुँच गया और वहाँ के निवासियों को विवश कर के उसने अपनी सेना के लिये रसद का प्रबन्ध किया और तब घूम कर वह पीछा करने वालों के सामने जा पहुँचा। सिंधिया ने नियम सा बना रक्खा था कि वृटिश सैनिकों से पांच छः मील दूरी पर वह डेरा डालता था और इस प्रकार सावधान रहता था कि उसके सैनिक आवश्यकतानुसार क्षण भर में ही युद्ध करने को तैयार हो जायँ। वह अपने भारी सामानों को अपने से भी पांच छः मील पीछे रक्खा था और इस प्रकार हल्का बना रहता था। अचानक धावे से सुरक्षित रहने की सावधानी दोनों दलों में बराबर चलती रही, परन्तु एक दिन सिंधिया की सेना ने तनिक असावधानी की, कैमाक को इसका समाचार मिल गया और इस असावधानी का अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिये २४ मार्च की रात को ही मराठा सैन्य पर छापा मार दिया। वह सिंधिया के खेमे में घुस गया, उसकी सेना को काट कूट कर तितर २ कर दिया। सिंधिया की १३ तोपें; तीन हाथी, उसका मुख्य ध्वज, २१ ऊँट तथा कितने ही घोड़े कैमाक के हाथ लगे। जिस कैप्टेन ब्रूस ने अपने कौशल मात्र से ग्वालियर के किले को अधिकृत कर लिया था, उसी ने इस रात्रि अभियान की योजना बनायी थी और इस योजना के एक-एक अङ्ग उसकी नियोजन की कुशलता का परिचायक था। इससे एक ओर तो वृटिश सैन्य की ख्याति बढ़ी और दूसरी ओर सिंधिया की ग्लानि की सीमा न रही। उधर होल्कर ब्राह्मण मंत्रियों की राय से चल कर गोडार्ड पर विजय प्राप्त कर चुका था। कर्नल मूर के साथ आई हुई सेना कैमाक की सेना से इसके बाद ४ अप्रैल को आ कर मिली। आते ही सेना का संचालन भार मूर ने सँभाल लिया और दोनों की संयुक्त सेना शत्रु देश में ही वर्षा कालीन पड़ाव डाल कर रहने लगी। आगे निकट भविष्य में उस सेना ने कोई और काम नहीं किया, सिंधिया की सेना भी आस पास मँडराती रही। अँगरेज सेनापतियों ने यथाशक्ति प्रयास किया कि मराठों के विरुद्ध उन्हें राजपूत राजाओं की सहायता मिल जाय, परन्तु इस प्रकार के सभी प्रयत्नों को असफलता का ही मुँह देखना पड़ा। ग्वालियर का किला गोहद के राना को दे दिया गया। ऐसा इस लिये किया गया था कि इन दिनों राना कुछ कुछ सिंधिया की ओर झुकने लगा था। इतना पाने के बाद भी राना ने वृटिश सैन्य को रसद नहीं दी, यद्यपि उसके भण्डार में उसकी कमी नहीं थी। अगस्त मास में सिंधिया ने स्वतः आगे बढ़ कर कर्नल मूर के सामने सन्धि का प्रस्ताव किया। उधर होस्टिंग्ज छोटे-मोटे रजवाड़ों द्वारा मराठा राज्य में उपद्रव खड़ा कर के उन्हें परेशान

तो न कर सका परन्तु बरार के राजा के साथ सन्धि हो जाने से हेस्टिंग्ज की निराशा में पर्याप्त कमी आ गयी।

अँगरेज विरोधी मंडल को प्रसन्न करने के लिये मूदाजी भोसले ने तीन हजार सवारों की एक सेना को कटक की ओर भेजा था। यह महीना अक्टूबर का था, जब वर्षा का समय समाप्त हो जाता है। उसका द्वितीय पुत्र चिमणा जी इस सेना का नायक था। वास्तव में अपने विचार से मूदाजी ने दोरुखी चाल के बल पर एक ओर अँगरेज विरोधी मण्डल को और दूसरी ओर अँगरेजों को प्रसन्न रखना चाहता था। चिमणा जी ने हेस्टिंग्ज को आश्वस्त किया कि यद्यपि उसके पास पर्याप्त सेना है, परन्तु वह उसे परेशान करने नहीं आया है और उसके पिता का रुख अंगरेजो की ओर एक दम मित्रता पूर्ण है। चिमणा जी ने हेस्टिंग्ज को समझाया कि यदि वह मराठों की सहायता भी करना चाहे तो वह इतनी दूर है कि न तो मालवा ही पहुँच सकता है और न कोंकण ही। इतने अधिक तर्क वितर्क के बाद भी हेस्टिंग्ज उसका पूरी तरह विश्वास न कर सका और इसी लिये उसने अपनी सुरक्षा की व्यवस्था में तनिक भी ढिलाई नहीं की और न तनिक भी असावधान हुआ। जिस समय अर्काट पर हैदर के आक्रमण का समाचार बंगाल सरकार को मिला तो कलकत्ता में निश्चय किया गया कि हैदर के विरुद्ध अर्काट की सहायतार्थ बंगाल से छः बटालियन सेना भेजी जाय और ज्यों ही रास्ता आवागमन के योग्य हो जाय त्योंही समुद्रतट के सहारे वह सेना कनार्टक पाई धाट की ओर चल पड़े। इस सेना को अक्टूबर में जमा होना था और लेफ्टिनेण्ट कर्नल पियर्स इसका सेनापति नियुक्त किया गया था। उसी समय यह आशा भी की गयी थी कि शायद मूदाजी अँगरेजों की सहायता करने के लिये कुछ सवार दे दे, परन्तु चूंकि चिमणा जी की सेना अभी रास्ते में ही थी अतः यह सोचा गया कि मूदाजी का उत्तर आ जाने पर ही पियर्स प्रस्थान करे।

जब ६ जनवरी को मूदाजी का उत्तर मिल गया तो पियर्स को इस निर्देश के साथ रवाना कर दिया गया कि वरार में से गुजरते समय वह अपनी सेना को प्रजा के साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार न करे तथा हर प्रकार से ऐसा ही व्यवहार करे जैसे वह एक मित्र के क्षेत्र से गुजर रहा हो और यह मित्रतापूर्ण व्यवहार तब तक चालू रहे जब तक कि स्वयम् मूदाजी उसकी प्रगति में वाधा न खड़ी करने लगे। उसे यह भी निर्देश था कि यदि मूदाजी किसी प्रकार से अंगरेजी सेना के बढ़ाव को रोकने का या वाधित करने का प्रयास करे तो वह बलपूर्वक उस बाधा को दूर करके आगे बढ़े। अपनी सेना को बरार से गुजरने की मित्रतापूर्ण स्वीकृति प्राप्त करने के लिये गवर्नर जनरल ने मि० डैविड ऐन्डरसन को अपना एजेन्ट बना कर कटक भेजा। इस एजेन्ट को निर्देशित किया गया था कि वह भोसला को समझा बुझा कर सेना को उस के क्षेत्र से होकर निकल जाने की स्वीकृति तो प्राप्त कर ही ले और यदि सम्भव हो तो उससे दो हजार घुड़सवारों को सहायता के रुप में प्राप्त करले। मि० एण्डर्सन अभी वालासोर पहुँचा भी न था कि अपनी सेना के साथ चिमणा जी धिकनाल के किले पर चढ़ाई करने के लिये चल दिया था क्योंकि वहां के राजा ने पिछला और नया कर चुकाने से इनकार कर दिया मि० ऐण्डर्सन वहां से कटक को चला और वहां से कलकत्ता चला गगा। चिमणा जी अब पहाड़ियों को छोड़कर मैदान में आ गया था। कर्नल पियर्स को न केवल शान्तिपूर्वक जाने की ही आज्ञा प्राप्त हो गयी थी वरन् समूची उड़ीसा प्रदेश की यात्रा में उसके लिये रसद का भी प्रबन्ध हो गया था और चिमणा जी ने पूरी मित्रता निभाने का वादा किया था। इतने आश्वासनों के बावजूद भी चिमणा जी की स्थिति से कलकत्ता में भय एवम् आशंका का बातावरण छा गया था। बरार राज्य ने गोडार्ड के साथ उत्तम व्यवहार किया था और कर्नल पियर्स की रसद का प्रबन्ध कर दिया था, परन्तु मूदाजी की

स्थिति ही ऐसी थी कि या तो उसे अँगरेजों से या फिर अँगरेज विरोधी मण्डल से मित्रता स्थापित कर लेनी चाहिये थी । अंगरेजों के साथ मित्रता करने के लिये साहस एवम् उदारता की आवश्यकता थी जो प्राय: मराठा साहसिकों में नहीं होता गवर्नर जनरल ने गुप्त रूप से वादा किया था कि यदि मूदाजी उसके सहायक हों तो वह उन्हें सोलह लाख रुपये देगा । उस साहयता के रुप में या तो वह अँगरेजों से स्वयम् सन्धि कर लेगा या मध्यस्थ बन कर पेशवा से सन्धि करा देगा । अब वह चिमणाजी को इसलिये भी बारह लाख रुपये देने पर तैयार हो गया कि वह नागपुर लौट जाय, पर साथ ही साथ उसे यह भी समझा दिया गया कि यह रुपया केवल एक बार ही दिया जायगा अर्थात् चिमणाजी को यह न समझ लेना चाहिये कि उसे प्रति वर्ष बारह लाख रुपये मिला करेंगे । उसे ये रुपये दो कामों के लिये दिये गये थे । एक तो इसलिये कि वह उनका मित्र है और दूसरे यह कि हैदरअली के विरुद्ध वह उनकी सहायता करेगा । इस समय हैदरअली के बारे में यह कहा जा रहा था कि मुगल बादशाह ने उसे एक सनद के द्वारा समस्त दक्षिण का स्वामी बना दिया है और इसीलिये वह इस बात के लिये प्रयासशील है कि वह समूचे दक्षिण को अपने शासनाधिकार में ले ले । ऐसी स्थिति में चिमणा जी ने कहा कि यदि उसे पचास लाख रुपये दिये जायें तो वह बृटिश सरकार की अपनी मित्रता का प्रमाण दे देगा अर्थात् वह नागपुर लौट जायगा और यदि यह प्रमाणित हो गया कि मुगल बादशाह ने सचमुच हैदरअली को सनद दे दिया है तो वह उसके खिलाफ अँगरेजों को मदद भी करेगा । सनद की इस झूठी बात पर उस समय विश्वास तो सभी ने किया मगर इसका प्रभाव सर्वाधिक परिलक्षित हुआ निजामअली पर, क्योंकि वह स्वयम् अपने को दक्षिण का अधिकारी समझता था । एक तो वह स्वयम् भी फितरती दिमाग का आदमी था और दूसरे स्वजातीय हैदरअली को मराठों से बढ़कर अपना प्रतिद्वन्दी समझता था और साथ ही उससे भयभीत भी रहता था ।

अपनी सम्पूर्ण वाक्पटुता का प्रयोग करके मि० एण्डर्सन ने चिमणा जी को केवल इतने पर तैयार कर सका कि १९ लाख रुपये के बारे में उसे केवल ६ लाख मिला था और यदि उसे शेष तेरह लाख भी तुरन्त मिल जाय तो वह अपने स्थान को लौट जायगा और हैदरअली के विरुद्ध अभियान में वह पचास हजार रुपये मासिक के बदले दो हजार घुड़सवार कर्नल पियर्स की सेवा में भेज देगा, परन्तु इतना गवर्नर जनरल को और करना पड़ेगा कि वह बंगाल से दस लाख रुपये का कर्ज़ उसे दिला दे और गढ़मण्डला को अधिकृत करने में उसकी मदद करे । पाठकों को स्मरण होगा कि इस प्रदेश को बालाजी वाजीराव ने सन् १७४२ में ले लिया था और जिसके कारण बरार के भोंसले बराबर पेशवा से शत्रुता करते आ रहे थे । परिस्थितियों की जटिलता के कारण इतनी आपत्ति पूर्ण शर्तें भी मान ली गयीं, क्योंकि इससे एक तो अँगरेज विरोधी मण्डल से एक सशक्त सदस्य अलग हो गया और दूसरे तीस हजार सवारों की उपस्थिति से छाया हुआ आतंकमय वातावरण शान्त हो गया । इसमें सन्देह नहीं कि यदि चिमणा जी इस समय चाहता तो पूर्व के सभी बृटिश अधिकृत क्षेत्रों को जला कर राख कर देता । इस समझौते की कोई लिखा पढ़ी न तो मूदाजी ने माँगा और न दिया । इसके शीघ्र बाद ही गवर्नर जनरल को उन पत्रों की प्रतिलिपियाँ मिली, जिन्हें नाना फड़नवीस ने मूदाजी को लिखा था और जिनका संक्षिप्त तात्पर्य वह था कि पंजिम में मराठों ने गोडार्ड को हरा कर भगा दिया है और यदि मूदाजी मंडल से अलग हो जाता है तो उससे भयानक बदला लिया जायगा । साथ ही यदि वह मराठा राजा की राजभक्ति से विमुख होता है तो सम्भावित परिणम का वह स्वयम् जिम्मेदार होगा । इन धमकियों के प्रकाश में मूदाजी का साहस नहीं था कि वह गवर्नर जनरल के साथ किये गये समझौते को पूर्णतया स्वीकार करता, फिर भी उसने एक रास्ता निकाला । उसने चाहा कि मराठों

और अँगरेजों में सन्धि करा दें और हैदरअली के विरोध में एक संघ की सृष्टि करा दें। इसी दृष्टिसे उसने अपने दीवान दिवाकर पन्त को पूना भेजने की इच्छा की, परन्तु परिस्थिति जाल ने उसे विवश कर दिया कि दिवाकर पन्त पहले गवर्नर जनरल से मिल ले। यह तो हुआ कि वह बनारस जाकर हेस्टिंग्ज से साक्षात्कार करेगा, परन्तु इसी समय सुप्रीम सरकार का इस आशय का आदेश जनरल गोडार्ड को मिला कि जो शर्तें पहले प्रस्तावित की जा चुकी हैं, उन्हीं शर्तों पर सन्धि कर ली जाय और बेसीन को लिये रहने का प्रयास किया जाय परन्तु यदि इसी के कारण सन्धि में बाधा पड़ती हो तो बेसीन को भी मराठों के हवाले कर दिया जाय और सारी सन्धि का सर्वोपरि लक्ष्य यही रक्खा जाय कि इस बार की सन्धि सम्पूर्ण और चिरस्थायी हो।

उपरोक्त आदेशों की प्राप्ति जनरल गोडार्ड को अगस्त के पहले न हो सकी। बम्बई में इसी अवधि में कई योजनाएँ प्रस्तावित की गयीं। जनरल गोडार्ड ने प्रस्ताव किया कि देशी पैदल सिपाहियों की आठ बटालियन खड़ी की जायँ, और नये सिपाहियों को आन्तरिक सुरक्षा का भार देकर प्रशिक्षित सिपाहियों को बाहर ले जाया जाय, फतहसिंह गायकबाड़ तथा सूरत और कैम्बे के नवाबों को लिखा जाय कि वे अपने समस्त प्राप्य साधनो से सहायता करे, रघुनाथ राव को आज्ञा दे दी जाय कि वह एक घुड़सवार सेना तैयार करे, कर्नल मूर की सेना को मालवा से बुलाया जाय और मेरी सेना में मिला दी जाय और तब पहले दक्षिण के केन्द्र भाग में फिर मैसूर में युद्ध किया जाय; किन्तु इस योजना के लिये अत्यधिक धन की आवश्यकता थी, क्योंकि इस प्रकार से संचालन का कम से कम अनुमानित व्यय सात लाख रुपये मासिक हो रहा था और बम्बई सरकार के पास रुपया था नहीं। एक तो बम्बई सरकार वैसे हो दिवालिया हो रही थी, तिस पर यह नवीन झंझट भी सामने था। गोडार्ड को आशा थी कि उसे बंगाल से कुछ आर्थिक सहायता मिल जायगी अतः वह गुजरात की ओर चल पड़ा ताकि वह फतहसिंह तथा राघोबा से सलाह कर सके। आगामी युद्ध काल के लिये कई योजनाओ पर विचार विमर्ष हुआ परन्तु एक योजना ऐसी थी कि उसका परिचय दे देना यहाँ पर आवश्यक जान पड़ता है। गोडार्ड ने गुजरात में मित्रों से राय करके बम्बई सरकार को लिखा कि उस प्रदेश में कुछ ऐसे मराठा देशमुख हैं जो मुस्लिम शासन काल में देशमुख थे, परन्तु मराठों द्वारा अपदस्थ कर दिये गयें थे। ऐसे देशमुख उसके पास आये थे और प्रस्तावित किया था कि यदि बृटिश सरकार यह प्रतिज्ञा करे कि उनकी सत्ता स्थापित होने पर वह उनके प्राचीन अधिकारों को मान्यता देगी तो वे समस्त कोंकण और सह्याद्रि पर्वत माला के सब गढ़ों पर अँगरेजों का अधिकार करा देंगे। इस प्रतिज्ञा की दूसरी शर्त यह थी कि प्रत्येक अधिकृत बड़े गढ़ों के लिये पचास हजार रुपया तथा छोटे गढ़ के लिये दस सहस्र रुपये लेंगे। इसके साथ ही साथ लूट पाट में वे जो भी माल पावेंगे वह उन्हीं का होगा——परन्तु सैनिक उपयोग की सामग्री (घोड़ों को छोड़कर) वे अँगरेजों के हवाले कर देंगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि गम्भीर वाद विवाद के बाद इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया गया।

वर्षा काल के व्यतीत हो जाने पर गोडार्ड गुजरात से लौटा। वहां फतह सिंह ने उसे पूरा आश्वासन दिया था और प्रतिज्ञा किया था कि वह पांच हजार अच्छे सवार अँगरेजों को देगा। गोडार्ड का कहना था कि यदि लगान वसूल करने का ही दृष्टि कोण मुख्य हो तो कोकण की अपेक्षा गुजरात की सुरक्षा पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये, परन्तु पहले इसका निश्चय हो जाना चाहिये कि मालवा की सेना उनकी मदद को आ सकेगी या नहीं अर्थात् बंगाल सरकार उसे भेजेगी या नहीं और इसका निश्चय होने तक की अवधि में यथा सामर्थ्य कोंकण के अधिक से अधिक भाग को अपने हाथ में रखना चाहिये। नवम्बर के प्रारम्भ में बम्बई सरकार को समाचार मिला कि कर्नल मूर तथा

महादजी सिंधिया के बीच एक स्वतंत्र सन्धि १३ वीं अक्टूबर सन् १७८१ को हो गयी है, जिसके अनुसार सिंधिया उज्जैन को लौट जायगा तथा मूर जमुना पार चला जायगा; जमुना के पश्चिम की सिंधिया अधिकृत तथा बाद में मूर द्वारा विजित प्रदेश सिंधिया को लौटाल दिया जायगा; ग्वालियर का किला तब तक गोहद के राना के पास ही रहेगा जब तक उसका व्यवहार सन्तोष जनक रहेगा और जितने भी युद्ध रत मराठा सर्दार हैं सबके साथ अँगरेजों की सन्धि करा देगा परन्तु इन सबमें सिंधिया निष्पक्ष ही रहेगा। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि कर्नल मूर द्वारा लूटे जाने के बाद सिन्धिया ने यह सोच कर स्वयम् ही सन्धि का प्रस्ताव किया था कि इस तरह स्वयम् अपने ही क्षेत्र में युद्ध करने पर हर तरह से उसी की हानि होगी। वह यह सोचकर भी भयभीत हो गया कि कहीं ऐसा न हो जाय कि युद्ध में सब कुछ हार कर उसे एक शरणार्थी के रूप में नर्मदा पार चला जाना पड़े। और ऐसी दशा में तब उसके पास न मित्र होंगे न भूमि तथा उसके पूना स्थित प्रतिद्वन्दियों को तो इस बात की महती आन्तरिक प्रसन्नता प्राप्त होगी।

मि० हेस्टिंग्ज भी सन्धि की इस नयी राह के खुल जाने पर परम प्रसन्न हुआ, क्योंकि उससे मिल पाने के पहले ही दिवाकर पन्त की मृत्यु हो गयी थी और इसलिये मूदाजी के माध्यम से हो सकने वाली शर्त का रास्ता कुछ दिनों तक के लिये बन्द हो गया था। बाद मूदाजी ने जनरल गोडार्ड को लिखा कि अँगरेजों एवम् पेशवा के बीच सम्मानजनक सन्धि करा देने के लिये वह हर सम्भव प्रयत्न करने को तथा आवश्यकता आ पड़े तो इस कार्य के लिये पूना तक जाने को तैयार है। करीब-करीब इसी समय मैकफर्सन मद्रास पहुँचा। उसके वहाँ पहुँचने के बाद ११ सितम्बर सन् १७८१ को एक पत्र पेशवा को लिखा गया, जिसमें प्रेषक के स्थान पर लार्ड मैकार्टने, सर आयरकूट, एडवर्ड ह्यूज तथा मैकफर्सन के नाम थे। पूना में मुहमद अली का एक वकील रहा करता था। उसी वकील को यह पत्र पेशवा के समक्ष रखने के लिये प्रेषित किया गया था। इस पत्र में लेखकों ने पेशवा को इसके द्वारा यह सन्देश भेजा था कि वे उससे सन्धि करने के इच्छुक हैं। उन्होंने उस पत्र में जो कुछ लिखा था, उसका उद्देश्य था कि कम्पनी ने सहिष्णुता की नीति अपनाने का निश्चय किया है, तथा समूची बृटिश जाति की इच्छा है कि एक ऐसी स्थायी सन्धि मराठों से हो जाय, जिसे तोड़ने का साहस व सामर्थ्य कम्पनी के किसी भी कर्मचारी में न हो। उन्होंने अपने सम्मान, अँगरेज सम्राट के सम्मान, कम्पनी के सम्मान तथा बृटिश सम्मान की आन लेकर यह इच्छा प्रकट किया था कि एक ऐसी सन्धि हो जाय जिससे सभी को सन्तोष मिले।

ऊपर कुछ ऐसे लोगों के नाम दिये गये हैं जिन्हें कम्पनी ने अधिकार दिया था कि वे मराठों से उसकी सन्धि करा दें। इनके अतिरिक्त जनरल गोडार्ड भी था जिसका विचार था कि एक बार गवर्नर जनरल ने उसे मराठों से सन्धि करने के लिये नियुक्त किया था और उसके बाद उस नियुक्ति को कभी रद्द नहीं किया था अतः वह अब भी उस नियुक्ति का उपयोग कर सकता है, अतः उसने भी सिंधिया से बातचीत करके एक समझौता किया कि सिंधिया अपने समूचे प्रभाव का उपयोग इस कार्य के लिये करेगा कि जब तक प्रस्तावित सन्धि शर्तें निश्चित नहीं हो जाती तब तक मराठा सर्दार कहीं कोई भी उपद्रव न करें। कहने की आवश्यकता नहीं कि कर्नल मूर ने भी इस विषय को इसी भांति तै किया था किन्तु सन्धि में यह बात नहीं आयी थी।

पेशवा से सन्धि वार्ता करने के लिये जनवरी मास में कैप्टेन वेदरस्टोन की नियुक्ति की गयी परन्तु उसके पूना पहुँचने के तुरन्त वाद ही अधिकृत समाचार मिला कि जिस कार्य के लिये कैप्टेन वेदरस्टोन को भेजा गया था, उसी काम को करने के लिये गवर्नर जनरल ने मि० डेविड एण्डर्सन को पूना के

लिये अपना एजैएट नियुक्त किया है और उसे मराठों से सन्धि करने के लिये सभी आवश्यक अधिकार दिये गये हैं। इसी कार्य के लिये मि० ऐएडर्सन को सिंधिया के कैम्प में भेजा गया है। इस समाचार को सुनकर बम्बई सरकार ने बेदरस्टोन को वापस बुला लिया। इस रद्दोबदल से नाना फड़नवीस भी दुखी हुआ और हरीपन्त फड़के भी, क्योंकि यद्यपि वे पूर्ण सन्धि करने को तैयार नहीं थे, तो भी वे शान्ति स्थापन के लिये आवश्यक समझौता तो कर ही लेते, परन्तु वे ऐसा नहीं चाहते थे कि वह समझौता सिंधिया की मध्यस्थता से हो। जिन शर्तों पर मि० एएडर्सन ने सन्धि का प्रस्ताव किया वे पहली शर्तों से थोड़ी ही भिन्न थी। पहला अन्तर तो यह आ गया था कि गोहद का राना अपने व्यवहार के कारण सन्धि का लाभ उठाने के योग्य नहीं रह गया था। उसने यह भी कह दिया था कि वह सिंधिया से अलग से सन्धि करेगा अतः यह आवश्यक था कि उसे सन्धि की शर्तों में सम्मिलित न किया जाय; और यही किया भी गया था। दूसरी बाधा यह थी कि जब अँगरेजों ने फतहसिंह गायकवाड़ से सन्धि किया था तो अँगरेजों ने उससे कहा था कि वह पेशवा को पारम्परिक कर न दिया करे। इसके बदले में अँगरेजों ने भी गायकवाड़ की कुछ भूमि लिया। अब जब पेशवा से सन्धि करने का समय आया तो गायकवाड़ की कर युक्ति एक समस्या बन गयी। काफी विचार विनिमय के बाद सभी कठिनाइयाँ हल हो गयी और १७ मई सन् १७८२ को सालबाई नामक स्थान पर मराठों और अँग्रेजों में सन्धि हो ही गयी। इस सन्धि का कर्ताधर्ता गवर्नर की ओर से डैविड ऐएडर्सन था और पेशवा। नाना फड़नवीस तथा समस्त मराठा सरदारों की ओर से महादजी सिंधिया था। सिंधिया उस समय पेशवा की ओर से सर्वाधिकार युक्त प्रतिनिधि भी था तथा सन्धि के दोनों दलों की ओर से एक दूसरे के प्रति इस बात का जमानतदार भी था कि दोनों ही दल एक दूसरे के के प्रति की गयी प्रतिज्ञाओं का सविधि पालन करेंगे। इस सन्धि पत्र में सत्रह धाराएँ थीं, जिनके अनुसार यह तै पाया था कि:—(१) पुरन्धर की सन्धि के बाद जिसने जितने भी क्षेत्र जीते हैं, वे लौटा दिये जायँगे यहाँ तक कि भड़ौंच के आस-पास के क्षेत्रों से होने वाली तीन लाख की वार्षिक आय भी लौटा दी जायगी; (२) गायकवाड़ का क्षेत्र तथा समस्त गुजरात प्रदेश उसी स्थिति में आ जायगा, जिसमें वह सन् १७७५ के युद्ध के पूर्व था; उसके परिणाम स्वरूप पेशवा की अत्यधिक रकम जो वकाया कर के रूप में फतहसिंह के जिम्मे निकल रही थी, इसके लिये पेशवा ने प्रतिज्ञा की कि वह बकाया रकम की माँग नहीं करेगा; (३) रघुनाथ राव को पचीस हजार रुपये मासिक की पेन्शन दी गयी तथा उससे कह दिया गया कि वह मन चाहे स्थान पर रहे। हैदर अली के विषय में यह तै किया गया कि हाल ही में उसने अँगरेजों एवम् अर्काट के नवाब से जो क्षेत्र जीता है उसे छोड़ देगा। अगली ६ जून को कलकत्ता में भी इस सन्धि को स्वीकार कर लिया गया, परन्तु नाना फड़नवीस द्वारा डाली गयी जिन बाधाओं के कारण पेशवा की ओर से शर्तों के पालन में देरी हुई, उनकी चर्चा आगे के पृष्ठों में की जायगी। इन्हीं कारणों से सन्धि की कुल शर्तों का पालन २४ फरवरी सन् १७८३ के पहले नहीं किया जा सका।

सन्धि होने के बाद तथा कलकत्ता में उसके स्वीकार किये जाने के पहले वाले समय में ही गवर्नर जनरल तथा उसकी कौंसिल के सदस्य इस बात पर सहमत हो गये कि भड़ौंच को मराठों के हाथ में दे दिया जाय। महादजी ने बड़गाँव से कुशल पूर्वक अँगरेजी फौज को चली जाने दिया था, जमानत में रक्खे गये अँगरेज अफसरों को मुक्त कर दिया तथा सालबाई की सन्धि कराने में उसने जो पर्याप्त श्रम किया था, इन्हीं सब सेवाओं के बदले में उसे भड़ौंच दे दिया गया।

इकतीसवां अध्याय

मुगल दर्बार पर मराठों का प्रभाव

[१७८२—१७८५]

मुगल दर्बार—नजीफ खाँ—शुजाउद्दौला—उसका उत्तराधिकारी—नजीफ खां का प्रतिद्वन्दी—नजीफ खां के उत्तराधिकारी—महादजी सिन्धिया तथा नाना फड़नवीस—उनके दृष्टि कोण—हैदर अली—बंगाल पर आक्रमण का प्रस्ताव—अँगरेजों से मित्रता स्थापन के पक्ष में सिन्धिया के तर्क—नाना फड़नवीस की नीति—हैदर अली की मृत्यु—सन्धि का स्वीकार किया जाना—पेशवा का जल सेनाध्यक्ष—टीपू के युद्ध—महाद जी सिन्धिया की धमकी—अँगरेजों की टीपू से सन्धि—हैदराबाद तथा पूना के दृष्टिकोण—सम्मेलन—दावों पर तर्क वितर्क—जंजीरा का सीदी—टीपू द्वारा निजाम अली का अपमान—युद्ध की सम्भावना—राघोबा की मृत्यु—महाद जी सिन्धिया। मुगल दर्बार की दलबन्दी—मिर्जा जवाँ बख्त का पलायन—सालवाई की संधि के बाद का सिन्धिया—पूना दर्बार पर प्रभाव—अँगरेजों का पूना दर्बार में दूत भेजने का निश्चय—सिन्धिया को आपत्ति—दक्षिण के कार्यकलाप।

१७८२ ई०]

जिन वर्षों में मराठा लोग अपने घरेलू संघर्षों में फँसे हुए थे या अंगरेजों के साथ होने वाले युद्धों में व्यस्त थे, उन वर्षों में मुगल दर्बार मराठों द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले झंझटों से मुक्त रहा। आगे चल कर चूंकि मुगल दर्बार में घटने वाली घटनाओं का प्रभाव महाराष्ट्र मण्डल पर भी पड़ा अतः वहाँ की मुख्य घटनाओं का विवेचन समयोचित होगा।

सन् १७७३ ई० में मराठों के लौट जाने के बाद नजीफ खाँ ने मुगल दर्बार में अपनी खोयी हुई प्रतिष्ठा एवम् शक्ति को फिर प्राप्त कर लिया और मराठा रक्षकों को अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया। नजीफ खाँ का प्रतिद्वन्दी था हशमुद्दौला जो गुप्त रूप से मराठों से मिला हुआ था। शक्ति प्राप्त करते ही नजीफ खाँ ने पहला काम किया कि उसने हशमुद्दौला को अपदस्थ कर दिया। इसी प्रकार मराठों के लौटने का लाभ शुजाउद्दौला ने भी उठाया। उसने भी अपने क्षेत्र से मराठा थानों को हटाना प्रारम्भ कर दिया और इटावा को अधिकृत कर के नजीफ खाँ की मदद करने के लिये आगरे की ओर चल पड़ा, क्योंकि नजीफ खाँ आगरे को घेरे हुए पड़ा था। आगरा को हस्तगत कर लेने के बाद उसने अपने ही एक खास आदमी मुहम्मद बेग हमदानी को दुर्ग रक्षकों का अधिपति बना दिया। नजीफ खां को कृतज्ञता पाश में बांधने के लिये नवाब वजीर ने उसे अपना नावब बना दिया एवम् अवध की ओर चला गया। अवध का नवाब वजीर नजीफ खां की सम्मिलित शक्ति मराठों के लिए एक बड़ी बाधा बन कर खड़ी हो सकती थी और इनके सम्मिलन का यह भी प्रभाव हो सकता था कि मराठों की प्रगति हिन्दुस्तान में एक दम ठप्प ही हो जाती, मगर मराठों का सौभाग्य ही था कि

आगरा से लौट कर शुजाउद्दौला रुहेला युद्ध में फँस गया और वहां से छुट्टी पाते ही मृत्यु के कराल दाढ़ों ने उसकी सभी योजनाओं को यथावत् छोड़ दिया। उसकी मृत्यु सन् १७७५ ई० में हुई और उसके बाद उसका बेटा आसफुद्दौला उसकी गद्दी पर बैठा और कुछ महीनों बाद ही मुगल दर्बार से भी उसके उत्तराधिकार की स्वीकृति आ गयी। इस उत्तराधिकार के प्रश्न पर प्रारम्भ में मुगल बादशाह ने कुछ ऐसा रुख अपनाया था कि मालूम होता था कि वह आसफुद्दौला के राज्यारोहण की स्वीकृति ही नहीं देगा।

नजीफ खां ने स्वयम् ही अनेक सैनिक अभियानों का संचालन किया था और प्रायः सभी में वह सफल भी हुआ। मुगल बादशाह को यह पसन्द नहीं था कि नजीफ खाँ स्वयम् सैनिक आभियानों का नेतृत्व ग्रहण करे, परन्तु नजीफ खाँ बराबर बाहर जाता रहा। रुहेला युद्ध में उसने नवाब वजीर का साथ दिया था और बाद में जाटों पर भी सफलता उसे मिली थी। नजीफ खाँ की सैनिक कार्यवाहियों से एक बार फिर लोग शाही तलवार का भय खाने लगे और पूरा आगरा सूबा उसके आदेश के अनुसार कार्य करने लगा। इन लगातार किये जाने वाले आक्रमणों एवम् होने वाले युद्धों का यह परिणाम हुआ कि नजीफ खाँ को अकसर राजधानी से बाहर रहना पड़ा। इधर दर्बार में उसका एक ऐसा प्रतिद्वन्दी पैदा हो गया, जो हर प्रकार से नजीफ का ही आदमी था, उसका अनेक प्रकार से कृतज्ञ था और जिसके लिये नजीफ खाँ को स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि वह भी उसकी प्रतिद्वन्दिता कर सकता है। उसने अब्दुल अहद खाँ को अपनी अनुपस्थिति में दर्बार व राजधानी की देख रेख तथा नागरिक प्रशासन का काम करने के लिये अपना नायब नियुक्त किया था। वह और भी कई प्रकार से नजीफ खां के प्रति कृतज्ञ था। इसको शीघ्र ही भजदुद्दौला की उपाधि मिल गयी, परन्तु अपनी शक्ति का प्रथम उपयोग उसने इस ढंग से किया कि मुगल बादशाह के अव्यवस्थित चित्त पर से नजीफ खां के प्रभाव को एक दम खत्म कर दिया और उसे पूरी तरह अपने प्रभाव में ले लिया एवं अपने ही संरक्षक के प्रति वादशाह के मन में दुर्भाव पैदा कर दिया। धीरे-धीरे नजीफ खां को भी इस विरोध का पता चल गया और अपने विरुद्ध किये जाने वाले षड्यंत्र की एक एक बात उसके पास पहुँचने लगी। फिर भी राजधानी में आने की उतावली न दिखा कर वह युद्ध क्षेत्र में ही डटा रह गया और हाथ के काम को समस्त शक्ति लगा कर पूरा किया। नजीफ खां की सफलता के मूल में थी वह पैदल सेना जो उस समय अँगरेजों द्वारा प्रशिक्षित की गयी थी, जब बादशाह उनके संरक्षण में इलाहाबाद में रहता था, किन्तु अब उसकी अधीनता में दो सेनाएँ हो गयी थीं जिसमें से एक का संचालन जर्मनी निवासी अफसर समरू के जिम्में तथा दूसरी का संचालन मेडाँक नामक एक फ्रांसीसी के जिम्मे था।

सैनिक अभियानों में मजदुद्दौला को कोई सफलता नहीं मिली। उसे एक ओर तो जाबिता खां ने परेशान किया और दूसरी ओर सिक्खों द्वारा अपनायी गयी लूटपाट की प्रणाली ने, जिन्होंने समीपस्थ प्रदेशों को वीरान कर दिया था। उसने देखा कि अपनी सामरिक सफलताओं के कारण नजीफ खां की शक्ति दिन दूनी रात चौगुनी होती जा रही थी। अतः उसने ऐसी योजना बनायी कि नजीफ खां राजपूतों से लड़ कर खत्म हो जाय, परन्तु राजपूतों के साथ किये गये युद्ध का जो परिणाम हुआ वह उसके द्वारा सोचे गये परिणाम के एक दम विपरीत जा पड़ा। यद्यपि युद्ध की समाप्ति शीघ्र न हुई फिर भी उसकी सामयिक उपलब्धियों से बादशाह की सुविधा और नजीफ खां की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। ऐसी परिस्थिति में मजदुद्दौला महाद जी सिंधिया से सन्धि वार्ता चलाने लगा और यह विचार किया कि सिंधिया की सहायता पा जाने पर वह समस्त कठिनाइयों पर विजय पा सकेगा और नजीफ

खां को बरबाद करके दर्बार का समूचा नियन्त्रण अपने हाथों में कर लेगा। सिंधिया ने उससे कहा था कि ज्यों ही वह इधर ने फुरसत पावेगा, त्यों ही बंगाल पर चढ़ाई करेगा और मजदुद्दौला ने सोचा था कि बंगाल आक्रमण में शाही सैन्य की सहायता सिंधिया को दे कर वह उसके कृतज्ञता पाश से मुक्त हो जायगा। उधर नजीफ खां ने बादशाह की सहमति प्राप्त कर के मजदुद्दौला को अपदस्त कर दिया और उसकी योजना का महल धराशायी हो गया। इस बार मुगल दर्बार में तथा मुगल साम्राज्य में नजीफ खां की जिस उच्च शक्ति का संगठन हुआ, न तो उसकी चमता करने वाली और न प्रतिद्वन्दिता कर सकने वाली कोई शक्ति न रह गयी। उसे जुल्फिकार खां की उपाधि मिली और अमीरुल उमरा का पद, ये दोनों ही मृत्युपर्यन्त उसके साथ रहे। अपने मृत्यु दिवस अर्थात् २२ अप्रैल १७८२ ई० तक उसने पूर्ण न्याय, योग्यता एवम् दृढ़ता के साथ बादशाह पर भी और उसके देश पर भी शासन किया। पहले उसके गोद लिये हुए बेटे अफ्रेसियाब खां को उसका उत्तराधिकारी माना गया, परन्तु उसने थोड़े दिनों के लिये स्वयमेव अपना अधिकार छोड़ दिया अपने एक सम्बन्धी मिर्जा शफी के पत्त में, परन्तु मिर्जा शफी का विरोध किया मुहम्मद बेग हमदानी ने जो आगरा में नजीफ खां का नायब था और वहां का सूबेदार था।

आपस के इन विरोधों के कारण बादशाह को इस बात का एक सुनहरा अवसर हाथ आया जान पड़ा कि वह अपने को हर प्रकार की दलबन्दी से ऊँचा उठा कर स्वतंत्र सत्ता का उपभोग करे, परन्तु उसके अव्यवस्थित मस्तिष्क के कारण हाथ में आया अवसर निकल गया और उसके साथ हाथ बँटाने वालो को बड़ी विपत्तियों का सामना करना पड़ा। विविध प्रकार के प्रतिद्वन्दियों के बीच संघर्ष एवम् षड्यंत्र का बाजार गर्म हो उठा। इस्माइल ने मिर्जा शफी की हत्या कर दी। इसलिए नजीफ खां के उत्तराधिकारी के रूप में अब केवल अफ्रेसियाब खां ही रह गया।

जिन दिनों दिल्ली दर्बार में इस प्रकार की घटनाएँ हो रही थीं, उन दिनों सालबाई की सन्धि हो चुकी थी परन्तु उसकी स्वीकृति न तो पेशवा द्वारा ही और न गवर्नर जनरल द्वारा ही मिली थो। अत: स्वीकृति में लगाये गये इस असाधारण विलम्ब के कारणों को ठीक से समझने के लिये मराठा दर्बार के उन विभिन्न व्यक्तियों की मनोवृत्तियों से परिचित होना आवश्यक है, जो सालबाई की सन्धि में मुख्य पात्रों के रूप में अवतरित हुए थे। इस परिस्थिति में अगली पंक्तियों में इन्हीं बातों पर बिचार किया जायगा।

पिछले अध्यायों में कई बार इस बात का स्पष्ट संकेत दिया गया है कि यद्यपि नानाफड़नवीस तथा महादजी सिंधिया में आन्तरिक ईर्ष्या सीमा को पार कर रही थी, फिर भी सिंधिया की हार्दिक अभिलाषा थी कि वह एक ऐसे राज्य की स्थापना कर ले जो किसी भी प्रकार के नियन्त्रण से पूर्ण स्वतन्त्र हो। नानाफड़नवीस और सिंधिया दोनों की इच्छा थी कि मराठा मण्डल में सर्वोच्च सत्ता अपने हाथ में रहे। सत्ता प्राप्ति की इस घुड़दौड़ में वे दोनों ही एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी थे परन्तु दोनों ही आन्तरिक रूप से इस तथ्य पर विश्वास करते थे कि दोनों की संयुक्त सत्ता के लिये भी और अलग-अलग व्यक्तिगत सत्ता के लिये भी यह अत्यावश्यक है कि मराठा मण्डल अविभाज्य रूप में ही शक्ति सम्पन्न बना रहे। अँग्रेजों के साथ मराठों का जो युद्ध हुआ था, उसमें नानाफड़नवीस की प्रतिष्ठा, शक्ति व ख्याति वर्द्धित हुई थी और सिंधिया की शक्ति, प्रतिष्ठा व ख्याति उसी अनुपात में घट गयी थी। फिर भी सालबाई की सन्धि से यद्यपि सिंधिया का भाग्य पतनोन्मुखी दिखायी पड़ता था तथापि एक बात में उसकी नीति इस प्रकार पूर्णतया सफल हुई थी कि वह मराठा मण्डल को संगठित रखने वाले सूत्र को तोड़े बिना ही उसकी स्थिति एक स्वतन्त्र शासक की सी हो गयी थी। नानाफड़नवीस

तथा सिंधिया दोनों की ही इच्छा थी कि किसी भी प्रकार एक सन्धि हो जाय परन्तु दोनों ही अति गुप्त-रीति से इस बात की ताक में थे कि उचित तथा अनुकूल अवसर पाते ही वे सन्धि को ताक पर रख दें और दोनों की इस प्रवृत्ति के भी अलग-अलग कारण थे। उन दोनों की दशा उन दो सहयात्रियों के समान थी जो एक दूसरे के मित्र तो न थे, परन्तु इस भय से साथ चले जा रहे थे कि कहीं अकेला पा कर कोई उसे दबोच न ले। नाना की इच्छा थी कि नर्मदा के दक्षिण जिस किसी भी भू-भाग पर किसी भी समय मराठों का आधिपत्य रहा हो, वे सब के सब मराठा राज्य में ले लिये जाँय। उधर सिंधिया सोचता था कि दक्षिण के व्यर्थ के झंझटों को छोड़ कर हिन्दूस्तान की ओर हाथ पाँव मारा जाय। सालबाई की सन्धि की शर्तें यद्यपि मराठों के अत्याधिक अनुकूल थी; फिर भी नाना केवल इसलिये असन्तुष्ट था कि वह सन्धि सिंधिया के माध्यम से हुई थी। साथ ही उसे यह भी आशा थी समुचित ढंग से टालमटोल एवम् वार्ता करने पर सम्भव है कि अंग्रेज सालसिट को भी मराठों के हाथ में दे दें। अतः बृटिश सदस्यों के साथ उसका जो भी पत्र व्यवहार होता था उसमें वह सदैव ही यही प्रदर्शित किया करता था कि वह हैदरअली के साथ किये गये समझौते के प्रति भी अपने को वाधित समझता है जब कि हैदरअली के दूतों पर वह बराबर यही प्रकट किया करता था कि उसे सालबाई की सन्धि से उसे पूर्ण सन्तोष है। उन दूतों को वह समझाया करता था कि यदि हैदरअली यह चाहता है कि पेशवा सालबाई की सन्धि को अस्वीकृत कर दे तो उसे चाहिये कि कृष्णा नदी के दक्षिण में मराठा अधिकृत प्रदेशों को तुरन्त छोड़कर अपनी मित्रता का परिचय दे। उसका कहना था कि ऐसा करने से हैदरअली को निश्चय ही मराठों का हार्दिक सहयोग प्राप्त होगा और यदि ऐसा नहीं होता तब तो मराठे हैदरअली के विरुद्ध अँगरेजों का साथ देंगे ही। इस प्रकार हम देखते हैं कि वास्तव में नाना फड़नवीस आन्तरिक रूप से हैदरअली के विरुद्ध था क्योंकि थोड़ा ही समय बीतने पर इस मैसूर राज्य पहारी व्यक्ति के विरुद्ध नाना ने निजामअली से एक समझौता किया। इस समझौते में उसने सावधानी पूर्वक अँगरेजों को सम्मिलित नहीं किया।

अब यदि हम यह जानना चाहें कि ऐसी क्या बात थी जिसके कारण अँगरेज इतने उदासीन हो गये और सिंधिया को शक्ति को हिन्दुस्तान में इतना बढ़ जाने दिया एवं सिन्धिया को किसी भी प्रकार की मनमानी करने से नहीं रोका तो, हमें यह भी जान लेना चाहिये कि गुजरात में गोडार्ड से जो युद्ध हुआ था उसके काफी दिनों पहले सिंधिया ने सुझाव दिया था कि बंगाल के अँगरेजों पर आक्रमण करना चाहिए और जब अँगरेजों ने स्वयम् उसी के क्षेत्र में युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया तब भी उसने पेशवा को राय दी थी कि तुका जी होल्कर को बंगाल पर आक्रमण करने के लिये भेज दिया जाय। इधर नाना फड़नवीस अति प्रारम्भ से ही सिंधिया की योजना पर आपत्ति प्रगट किया करता था, परन्तु जब गोडार्ड को वापस बुला लिया गया तब उसने सिंधिया की योजना में विश्वास तो प्रगट किया परन्तु उसको इसलिये कार्यान्वित नहीं किया कि वह होल्कर को पेशवा से अलग नहीं करना चाहता था, क्योंकि उसे भय था कि सिंधिया की जो ईर्ष्या होल्कर के प्रति है कहीं उचित अवसर पा कर स्वयम् (नाना के ही) पर ही न आ जाय और उसको निज की सुरक्षा ही कहीं खतरे में न पड़ जाय। अतः सिंधिया की योजना के प्रति पूर्ण विश्वास प्रगट करते हुए भी उसने सिंधिया को समझाया कि बंगाल की ओर होल्कर को भेजने से अच्छा तो यह होगा कि वह स्वयम् (सिंधिया ही) बंगाल की ओर जाय और इस कार्य के लिये वह मराठा सिल्लीदारों की एक विशाल सेना संगठित कर ले। नाना इस बात पर भी तैयार था कि इस कार्य के लिये किये जाने वाले सैन्यसंग्रह में वह खुद सिंधिया की पूरी सहायता करेगा। सिंधिया ने इस प्रस्ताव को मानने से विवशता प्रगट

की ओर अपनी इस विवशता के कारणों को भी बताया इन कारणों में से सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण उसके अनुसार यह था कि चूँकि नजीफ खां ने मजदुद्दौला को अवस्थ कर दिया है और नजीफ खां मराठों का जानी दुश्मन है अतः अब बंगाल अभियान में मुगल दर्बार की सहायता नहीं मिलेगी। उधर हैदर अली को भी सिंधिया के बंगाल अभियान सम्बन्धी इरादों का पता लग चुका था। अतः जब अँगरेजों से उसका बिगाड़ हुआ तो उसने प्रयत्न किया कि वह भी सिंधिया की सहायता से बंगाल पर आक्रमण करे, परन्तु उस समय सिंधिया की अंगरेजों से सन्धि वार्ता चल रही थी और उधर नजीफ खां की मृत्यु हो जाने से एवम् उसके फलस्वरूप मुगल दर्बार में दल बन्दी हो जाने से सिंधिया को प्रतीत हुआ कि अब उसकी हिन्दुस्तान सम्बन्धी निश्चित अभिलाषाओं की पूर्ति का अवसर आ गया है। अतः उसने बंगाल अभियान की बात को एक दम से छोड़ कर दिल्ली की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया। उसने यह भी सोचा कि अपनी अभिलाषा पूर्ति के लिये उसे अँगरेजों की मित्रता चाहिये न कि शत्रुता। इधर मि० होर्स्टिग्ज का यह हाल था कि यदि उसकी कांउसिल ने सहमति प्रगट की होती तो वह स्वयम् दिल्ली में कम्पनी के भाग्य की परीक्षा करता और सिंधिया के पूर्व ही दिल्ली की ओर बढ़ गया होता। कांउसिल के सदस्यों की राय थी कि एक तो उन्हें देशी रजवाड़ों के झगड़ों में नहीं पड़ना चाहिये और दूसरे अभी उनकी निज की स्थिति भी आपत्तिरहित नहीं हो सकी थी। हैदर अली उनका कट्टर शत्रु था, निजाम अली किसी भी समय अँगरेजों का विरोध कर सकता था और मराठों का कोई भरोसा नहीं था कि कब वे सन्धि पत्र के विपरीत आचरण करने लगेंगे। अतः सर्वस्व जाते देख कर होर्स्टिग्ज ने इस परिस्थिति से इतना ही लाभ उठाया कि उसने सिंधिया से यह कह कर उसकी सहानुभूति प्राप्त कर ली कि वह दिल्ली में चाहे जो करे अँगरेज उस सम्बन्ध में कोई भी आपत्ति प्रगट नहीं करेंगे। (हेस्टिंग्ज के इस कार्य से उसे दो लाभ हुए) एक तो सालबाई की सन्धि को पक्की कराने के लिये सिंधिया और भी तत्पर हो गया और दूसरे सिंधिया उसे सोने का लोभ करने से मुक्त हो गया, जो अँगरेजों का विरोध करने के लिये उसे हैदर अली की ओर से दिया जाने वाला था। सालबाई की सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद पूना दर्बार ने हैदर अली के दूत को सिंधिया के कैम्प में जाने की अनुमति दे दी और नाना फड़नवीस ने सालसिट पाने के उद्देश्य से यह प्रचारित करना आरम्भ किया कि पेशवा ने हैदर अली से एक सन्धि किया है, जिसमें फ्रांसीसी भी शामिल हैं। इसी बीच ७ दिसम्बर सन् १७८२ को हैदर अली का देहान्त हो गया और इसका तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि साल बाई की सन्धि तुरन्त ही पेशवा द्वारा स्वीकृत हो गयी और .अँगरेजों का एक बड़ा सरदर्द हट गया। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं कि पेशवा ने २० दिसम्बर सन् १७८२ को सालबाई की सन्धि को स्वीकार किया था परन्तु सन्धि पत्रों का आदान प्रदान २४ फरवरी सन् १७८६ ई० को हुआ था और यह शर्त
१७८३ ई० थी कि बम्बई के समीपस्थ जिलों का हस्तान्तरण २४ अप्रैल तक कर दिया जायगा परन्तु अभी २४ अप्रैल दूर ही थी कि मराठों की ओर से एक ऐसा कार्य हो गया कि यदि यह कार्य ऐसे समय में हुआ होता जब कि अँगरेजों की शान्ति स्थापन की इतनी अधिक .आवश्यकता न थी तो अवश्य ही युद्ध का नवीनी करण हो जाता। बात यह थी कि बम्बई सरकार का रेंजर नाम का एक छोटा सा जहाज बम्बई से कालीकट जा रहा था और उस पर कितने ही उच्च फौजी कर्मचारी यात्री के रूप में जा रहे थे। पेशवा के ऐडमिरल आनन्द राव दुलुप ने अचानक ही उस पर आक्रमण कर दिया। अँगरेज यात्रियों ने जहाज की रक्षा का पूरा प्रयास किया और इस प्रयास में सभी घायल हो गये और कितने ही मारे भी गये परन्तु अन्त

में आनन्द राव ने जहाज को अधिकार में ले लिया और उसे विजय दुर्ग ले गया। मारे जाने वालों में कर्नल हैम्बर्स्टन तथा मेजर शाँ भी थे और इनके अतिरिक्त जहाज का सेनापति लेफ्टिनेन्ट प्रून, के साथ साथ तीन अन्य यात्री भी गम्भीर रूप से घायल हो गये थे। इन तीनों में से एक थे कर्नल नारमन मौक्वियाड, जिसकी एक बांह बेकार हो गयी थी केवल एक बांह से शत्रु से हाथों हाथ लड़ रहा था, कि इतने में एक गोली उसके शरीर के आर पार हो गयी और इस सांघातिक चोट के कारण वह वहीं पर गिर पड़ा। सभी बन्दियों के साथ वह भी विजय दुर्ग में ले जाया गया, जहां यद्यपि डाक्टर नहीं था और न दवा दारू का ही प्रबन्ध था फिर भी तीनों घायल मौत के मुँह से बँच कर निकल आये। वृटिश सरकार ने आनन्द राव के इस कार्य के प्रति बड़ा कड़ा रुख अपनाया और अति गम्भीर विरोध पत्र भेजा और पेशवा के हाथ जिलों का हस्तान्तरण रोक दिया परन्तु बाद में इस कार्य के लिये मराठों की ओर से दुःख प्रगट किया गया, क्षमा मांगी गयी, और जहाज को लौटा दिया गया इसके बाद सन्धि की शर्तों के पालन करने कराने का समय आया।

यह समझ लेने की भूल कदापि नहीं करनी चाहिये कि हैदरअली की मृत्यु से युद्ध टल गया था। नहीं, उसके लड़के टीपू सुल्तान ने उतनी ही तीव्रता से युद्ध चालू रक्खा। मराठों से तो उसने कहा कि वह सालबाई को सन्धि से बड़ा प्रसन्न है परन्तु अंगरेजों से खुराफात करना उसने नहीं छोड़ा। महादजी सिन्धिया ने उसे ऐसे कार्यों से अलग रहने को कहा और धमकी दी कि यदि वह अंगरेज विरोधी कार्यवाहियों को नहीं रोकता तो अँगरेज और मराठे मिल कर उसके ऊपर आक्रमण कर देंगे। यद्यपि सिन्धिया ने पूरी गम्भीरता के साथ धमकी दी थी, परन्तु टीपू ने उस पर कोई भी ध्यान नहीं दिया। फलस्वरूप सिन्धिया ने अंगरेजों से एक नवीन सन्धि इसलिये की कि टीपू को दबा दिया जाय। नाना फड़नवीस की भी यही इच्छा थी और सिन्धिया की भी कि टीपू सालबाई की सन्धि को मान लेता कि भारत के और रजवाड़ों को ऐसा प्रतीत हो कि टीपू मराठों की अधीनता में है और उनका करद है। परन्तु नाना और सिन्धिया की परस्पर ईर्ष्या के कारण ही वे जम कर काम नहीं कर पा रहे थे। इसके अलावा नाना जो समझौता निजामअली से करने वाला था उसके कारण भी टीपू के साथ बातचीत करने में अड़चन पड़ रही थी। इसी समय बिना किसी अन्य दल
१७८४ ई०] के प्रयास के ही टीपू एवम् मद्रास सरकार में सन्धि हो गयी। गवर्नर ने मद्रास प्रेसीडेंसी को आदेश दिया था कि सालबाई की शर्तों के ही आधार पर टीपू से सुलह कर ली जाय, परन्तु मद्रास सरकार टीपू के साथ युद्ध में फँस कर इतनी परेशानी का अनुभव कर रही थी कि उसने गवर्नर जनरल के आदेश पर बिना कुछ भी ध्यान दिये उचित अथवा अनुचित जो कुछ भी बन पड़ा उन्हीं शर्तों पर सुलह कर लिया। इस सन्धि वार्ता के क्रम में टीपू ने अंगरेजी दूत को अपमानित किया तथा एकाधिक उनकी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल व्यवहार किया, जैसे समस्त अंगरेज जाति सन्धि याचना के लिये उसके चरण चूम रही हो। अन्त में ११ मार्च सन् १७८४ को मंगलौर में सन्धि हो गयी, जिसमें सालबाई की सन्धि को आधार मान कर चलने की बात तो दूर रही, उसकी चर्चा तक भी नहीं की गयी थी। चर्चा के इस अभाव को टीपू ने तो बड़ी आत्मश्लाघा के रूप में ग्रहण किया परन्तु मराठों को यह बात बुरी लगी थी। गवर्नर जनरल ने इस कार्य की तथा सन्धि की अन्य कई बातों की कटु आलोचना की। वह तो इस सन्धि को अवश्य ही अमान्य कर देता परन्तु तब तक मद्रास सरकार ने कितनी ही शर्तो का पालन भी कर दिया था। अतः विवश होकर उसने भी इस सन्धि को स्वीकार कर लिया। पूना सरकार ने पहले तो इस सन्धि की चर्चा का विश्वास ही नहीं किया, परन्तु जब गवर्नर जनरल ने भी स्वीकार कर लिया, तब उन्हें इस पर अमल करना ही पड़ा। मराठों

को ऐसा विश्वास था कि टीपू के साथ किसी प्रकार की सन्धि किये जाने के पूर्व उनकी भी राय अवश्य ली जायगी अतः उन्होंने घोषित किया कि मंगलौर की सन्धि सालबाई की सन्धि का उल्लघंन है। उस पर गवर्नर जनरल ने समझाया और यह बात सत्य भी थी कि उसने महादजी सिन्धिया को अपने निश्चय की पूर्व सूचना दे दी थी और मद्रास सरकार उसके आदेश भंग की दोषी है, परन्तु चूंकि सन्धि की कितनी ही शर्तों का पालन हो चुका है अतः अब इसे अस्वीकृत करने का मतलब होगा कि टीपू से फिर युद्ध किया जाय, परन्तु मद्रास सरकार युद्ध के लिये तनिक भी तैयार नहीं है।

पारस्परिक ईर्ष्या ने उन्हें इतना निर्बल कर दिया था कि वे गवर्नर जनरल की बात मानने को बाध्य थे और गवर्नर जनरल द्वारा स्वीकृति पा लेने पर तो वह सन्धि, अस्थायी रूप से ही सही, पक्की हो चुकी थी अतः अब उस पर तर्क वितर्क करना भी व्यर्थ जान पड़ रहा था। टीपू के सम्बन्ध में जो भी योजना नाना फड़नवीस के मस्तिष्क में रही हो परन्तु अपने कार्यान्वियन का प्रारम्भ उसने टीपू से वह रकम मांगकर किया जो पिछले कर के रूप में मैसूर राज्य के ऊपर बकाया पड़ी हुई थी। टीपू ने मांग के औचित्य को तो स्वीकार कर लिया परन्तु उसको फौरन न दे सकने के अनेक बहाने बनाये। उधर नाना ने निजामअली के पास भी एक प्रार्थनापत्र भेजा और उसके द्वारा उससे पिछले वर्षों की चौथ व सरदेशमुखी की मांग की परन्तु पूना दर्बार में एवम् हैदराबाद दर्बार में एक गुप्त समझौता हुआ था। उनमें पूर्ण मित्रता थी और यह मित्रता इस हद तक पहुँची हुई थी कि अभी कुछ ही दिन पहले निजामअली के राज्य में नीरमूल के जागीरदार इहतिशाम जंग ने विद्रोह कर दिया थां तो उसे दबाने में नाना ने उसकी पूरी सहायता की थी। पहले के समझौते के आधार पर इस प्रार्थनापत्र के उत्तर में निजामअली ने प्रस्ताव रक्खा कि पूना के मंत्री सीमा के किसी स्थान पर मिलकर इस समस्या को हल कर लें। इस प्रस्ताव के अनुसार दोनों ही पूरी सजधज के साथ अपनी-अपनी राजधानी से चले और जून के मास में इडगीर नामक स्थान पर मिले जहाँ पर भीमा और कृष्णा का संगम है। वहां दोनों ने अनेक समस्याओं पर विचार किया और यह तै पाया कि सन् १७७४ ई० के बाद निजामअली ने मराठों के जिन थानों को हटा दिया था, उन्हें फिर से स्थापित कर दे और पिछले दो साल के बकाया रकम को देने का क्रम शुरू कर दें। इस सम्मेलन का प्रकाशित विषय तो इतना ही था, परन्तु गुप्त रूप से दोनों ने यह समझौता किया कि दोनों के जिन जिलों को हैदरअली ने हड़प लिया था, उन्हें वापस पाने के लिये दोनों सम्मिलित प्रयत्न करें। निजामअली ने मराठों से कहा कि अहमद नगर तथा बीजापुर उसे मिल जाना चाहिये। इस पर नाना फड़नवीस ने कहा कि तुंगभद्रा के उत्तरस्थ प्रदेशों को हस्तगत करते ही वह बीजापुर को छोड़ देगा। काफी विचार विनिमय के बाद भी इस आदान-प्रदान के विषय में दोनों एकमत न हो सके तो दोनों ने सामान्य शांति स्थापन की सन्धि पर हस्ताक्षर किया और अपनी-अपनी राजधानी को लौट गये। अब नाना फड़नवीस को अवसर मिला कि वह जंजीरा के टापू को हस्तगत करने का प्रयत्न आरम्भ करे, परन्तु अँगरेजों की मध्यस्थता ने उसे जंजीरा पर आक्रमण करने से रोक दिया और उसके बाद शीघ्र ही अधिक महत्वपूर्ण विषयों ने नाना का ध्यान आकर्षित कर लिया और एक प्रकार से जंजीरा की समस्या पर विचार करने का समय ही नहीं रह गया।

जिस समय नाना तथा निजामअली सीमा पर बैठकर विचार विनिमय कर रहे थे, उन दिनों की उनकी एक-एक बात का पता शायद टीपू को लगता जा रहा था। अतः अभी निजामअली अपनी राजधानी में पहुँचा ही था कि कि किसी पुरानी बात का हवाला देकर टीपू ने बीजापुर पर अपना स्वत्व प्रकट किया और निजाम अली से माँग की कि वह भी अपने राज्य में वही बाँट व पैमाने प्रचलित

करे जो मैसूर में प्रचलित थे। निजामअली ने चाहा कि टीपू इन मांगों के आधार को स्पष्ट कर दे, तब तक अक्टूबर में निजाम अली को समाचार मिला कि टीपू युद्ध क्षेत्र में आ चुका है और मुगल साम्राज्य के उन क्षेत्रों पर आक्रमण करना चाहता है जो कृष्णा नदी के दक्षिण में पड़ते थे। हैदराबाद से तुरन्त ही एक दूत टीपू के कैम्प में भेजा गया कि वह उन्हें राजी करने का प्रयत्न करें। एक दूत पूना दर्बार को भी इस सन्देश के साथ भेजा गया कि समझौते के अनुसार आक्रात्मक कार्यवाही में शीघ्रता की जानी चाहिये। एक तो नाना फड़नवीस एकदम असावधान था और इसीलिये उसने कोई तैयारी नहीं की थी दूसरे उसके घर की ही कुछ समस्याओं ने उसे ऐसा उलझा दिया था कि वह अपने मित्र की सहायता करने को नहीं पहुँच सकता था। अतः निजामअली के दूत ने किसी प्रकार श्री रंगपट्टम में टीपू के साथ एक समझौता कर लिया, जिसमें टीपू की उदारता का कोई हाथ नहीं था। इस समझौते का मुख्य कारण यही था कि निजामअली युद्ध के लिये एकदम अप्रस्तुत था, अन्यथा युद्ध अनिवार्य ही था।

जिन घरेलू परिस्थितियों के कारण नाना फड़नवीस निजाम अली की सहायता के लिये नहीं जा सका था, वह यह था कि नाना को समाचार मिला था कि कुछ लोग इस उद्देश्य से एक षड़यंत्र कर रहे है जो माधवाराव नारायण को अपदस्थ करके स्वर्गीय राघोबा के पुत्र बाजीराव को पेशवा के मसनद पर बैठाना चाहते थे। सालवाई की सन्धि के उभय पक्ष से स्वीकृत हो जाने के बाद रघुनाथ (राघोबा) राव ने जब देखा कि अब कोई ऐसा रास्ता नहीं रह गया जिस पर भाग्य परीक्षा की जा सके तो उसने सन्धि में निर्धारित राह पर ही चलना श्रेयस्कर समझा। उसने पचीस हजार रुपये मासिक की वृति को स्वीकार किया और गोदावरी तट पर स्थित कोपरगाँव को अपना निवास स्थान बनाया। अपने अपमान को सहने के लिये वह कुछ महीने ही जीवित रहा। उसकी मृत्यु के समय उसकी पत्नी आनन्दी बाई गर्भवती थी और विधवा होने के थोड़े ही दिनों बाद उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम रक्खा गया चिमणा जी अप्पा (अप्रैल १७८४)। अपने पिता की मृत्यु के समय बाजीराव की अवस्था कठिनाई से ६ वर्ष की थी, परन्तु राघोवा के साथी तथा अन्य कितने ही लोग वर्तमान मराठा शासन से पूर्णतया असन्तुष्ट थे। ऐसे सभी लोगों ने बाजीराव के पक्ष में एक सुदृढ़ दल बनाने की तैयारी करना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु नाना फड़नवीस की आँखो से कुछ भी न छिप सका। उसने सरलता से इस षड़यंत्र को खत्म कर दिया परन्तु राघोबा के परिवार के ऊपर उसने कोई कठोर नियन्त्रण नहीं लागू किया, फिर भी नाना तथा राघोबा के पुत्रों के बीच अविश्वास एवम् घृणा का बीज तो बो ही उठा। लोगों ने कहना शुरु कि था की बाजीराव को इस षड्यन्त्र के उकसाने के लिये महादजी ही जवाबदेह है। वैसे भी सिंधिया यह चाहता था कि नाना को हरदम घबराहट में ड़ाले रहे, इस लिये भी लोगों की बात को इस हद तक सत्य माना जा सकता है कि षड़यंत्र की बात को जानकर भी उसने उदासीनता दिखाया हो, परन्तु यह सोचना ठीक होगा कि सिंधिया ही इस षड़यंत्र का जन्म दाता था। इस प्रकार की दलबन्दी अब उसके लिये तुच्छ हो चुकी थी, क्योंकि अब उसके सामने दिल्ली, दिल्ली दर्बार तथा मुगलबादशाह के सपने थे और उसकी चिरपोषित अभिलाषाओं के पूर्ण होने का समय आ गया था।

ऊपर में मुगल दर्बार की दलबन्दियों का विवरण प्रस्तुत करते समय हम अफ्रेसियाब खां तथा मुंहम्मद बेग हमदानी को नजीफ खां का उत्तराधिकारी बनने की प्रतिद्वन्दिता का वर्णन कर रहे थे। पहले अवश्य ही अफ्रेसियाब खां को सफलता मिली; क्योंकि बादशाह पर उसका पर्याप्त

१७८४ ई०]

प्रभाव था, परन्तु उसने देखा कि उस समय जितनी शक्ति व जितने भी साधन उसके पास थे, उनके भरोसे वह अपने प्रतिद्वन्दी का अन्त नहीं कर सकता था अतः उसने विचार किया कि उसे पड़ोसी राज्यों से मदद लेनी चाहिये। अतः उसने अवध के नवाब वजीर, बंगाल के अँगरेज तथा मराठों पर दृष्टि डाली। अभी वह इस बात का निर्णय भी नहीं कर पाया कि किससे साहाय्य–याचना करे, कि मुगल शाहजादा मिर्जा जमां बख्त दिल्ली से निकल भागा और लखनऊ पहुँचा। गवर्नर जनरल उस समय लखनऊ में ही था अतः मिर्जा ने अपने को उसी को समर्पित कर दिया तथा नवाब वजीर से भी शरण याचना की। उसे शरण देने की प्रतिज्ञा दोनों ने की। यद्यपि उसने इन लोगों से सहायता अपने पिता के नाम पर मांगी थी, फिर भी शरण देने की प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहते हुए भी गवर्नर जनरल ने किसी अन्य प्रकार की सहायता देने से इनकार कर दिया। उधर शाहजादे के पलायन से अफ्रेसियाब गम्भीर रूप से चिन्तित हो गया था। उसने मुगल बादशाह को आश्वासन दिया कि वह जैसा चाहेगा वैसा प्रबन्ध उसके लिये कर दिया जायगा। उसने इसी प्रकार का वादा नवाब वजीर तथा गवर्नर जनरल से भी किया कि वे दोनों जैसा भी कहेंगे वैसा ही प्रवन्ध बादशाह के लिये कर दिया जायगा परन्तु मुहम्मद बेग हमदानी के विद्रोह को कुचलने के लिए उन लोगों को उसे सैनिक सहायता देनी होगी। नवाब वजीर ने भी तथा गवर्नर जनरल ने भी इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया, तब उसने महाद जी सिंधिया से सहायता की याचना की।

सालबाई की सन्धि के उभय पक्ष के स्वीकृत हो जाने के पश्चात् सिंधिया को पर्याप्त सुविधाएँ मिल गयी थी। मालवा से सम्बन्धित प्रायः सभी राजपूत राजाओं ने एक बार फिर से मराठों का करद बनना स्वीकार किया। थोड़े ही दिनों के घेरे के बाद ग्वालियर का किला भी गोहद के राना ने छोड़ दिया। सिंधिया के इस मौखिक वादे पर राना ने स्वयम् को भी समर्पित कर दिया था कि उसकी सुरक्षा एवं जीवन यापन की सुमुचित व्यवस्था हो जायगी। सैनिकों का एक दल बुंदेलखण्ड को भेजा गया ताकि वह उसे हस्तगत करने का प्रयास करे। यह सेना अप्पा खण्डे राव के संचालन में थी। खण्डे राव के पास पैदल सैनिकों का एक ऐसा भी दल था जिसे डी वाइन नामक यूरोपियन ने एकत्रित और प्रशिक्षित किया था। इन सब कार्यों का संचालन करते रहते हुए भी सिंधिया की दृष्टि बराबर मुगल दर्बार की ओर लगी हुई थी। वह दिल्ली की दलबन्दियों एवम् उनमें लिप्त विभिन्न व्यक्तियों एवम् दलों का गम्भीर अध्ययन कर रहा था। अफ्रेसियाब खां का निमंत्रण भी मिल चुका था और हमदानी का भी किन्तु चूंकि अफ्रेसियाब खां का निमंत्रण पत्र मुगल बादशाह के नाम से लिखा गया था अतः सिंधिया ने उसी को स्वीकार करना अधिक पसन्द किया। चूंकि मुगल दर्बार उस समय आगरा के मार्ग पर था अतः सिंधिया ने आगरे की ही ओर प्रस्थान किया। २२ अक्टूबर को उसने मुगल बादशाह से भेंट किया परन्तु उसके पहुँचने के शीघ्र बाद ही स्वर्गीय मिर्जा शफी के भाई ने अफ्रेसियाब की हत्या कर दी, क्योंकि उसका विचार था और सम्भवतः इसमें सच्चाई भी थी कि मिर्जा शफी को अफ्रेसियाब ने ही मरवाया था। चूंकि अफ्रेसियाब की मृत्यु से सर्वाधिक सुविधा सिंधिया को ही मिली थी और उसके हत्यारे ने सिंधिया के ही कैम्प में शरण लिया था, अतः लोग यह सन्देह भी करने लगे कि यदि मूल रूप में नहीं तो सहायक के रूप में तो सिंधिया अवश्य ही अफ्रेसियाब की हत्या में शामिल था, परन्तु जो महाद जी को तथा उसके स्वभाव को निकट से जानते थे, उनका विश्वास था कि वह ऐसे घृणित व्यापार में लिप्त हो ही नहीं सकता था। सत्य चाहे जो भी रहा हो, परन्तु अफ्रेसियाब के मरते ही दिल्ली की समस्त शक्ति स्वयमेव ही सिंधिया के हाथों में आ गयी। अपनी जिस प्रकार की स्थिति बनाने की

कल्पना सिंधिया ने की थी और सोचा कि यदि भाग्य अनुकूल रहा तो चिरकाल के बाद वह वैसी स्थिति बनाने में सफल होगा, उसकी इसी प्रकार की स्थिति बिना उँगली हिलायें बन गयी। उसे अमीरुल उमरा का पद दिया गया, परन्तु उसने उसे स्वीकार नहीं किया हाँ अपनी बुद्धि से जोड़-तोड़ कर पेशवा के लिये उसने वकील—ए—मुतलक अर्थात् मुगल बादशाह का सर्वप्रधान नायब का पद स्वीकार कर लिया। यह पद मुहम्मद शाह का बनाया हुआ था और पहले पहल आसफ जाह निजामुल्मुल्क को मिला था। अपने लिये कुछ न लेकर पेशवा के लिये उक्त पद की स्वीकृति लेकर सिंधिया ने ब्राह्मणों का भी कान काट लिया, जो सर्वदा इसी प्रयत्न में रहते थे कि अधिकार उनके हाथ में रहे और नाम दूसरे का रहे। अब उसने अपने को पेशवा का नायब बनवाया। इन विचित्र पदों एवम् तज्जन्य स्थितियों के कारण उसकी स्थिति अति सुदृढ़ हो गयी, क्योंकि मुगल बादशाह का वकील–ए–मुतलक था पेशवा, जो पूना में था और अवयस्क भी था। उसका नायब था सिंधिया जो दिल्ली में बादशाह की सेना में था, अत: स्वाभाविक रूप से हिन्दुस्तान में वकीले मुतलक का काम सिंधिया के ही हाथों में आया। इसके अतिरिक्त यदि वह चाहेगा तो दक्षिण में जा कर कभी भी पूना के सभी मंत्रियों के ऊपर होने का दावा भी रख सकेगा। सोने में सुहागा ऐसे मिल गया कि मुगल बादशाह ने उसे मुगल सैन्य का प्रधान सेनापति भी बना दिया। अब वह नागरिक प्रशासन के साथ सैनिक प्रशासन का भी सर्वे सर्वा बन गया। शीघ्र ही बादशाह ने उसे दिल्ली तथा आगरा सूबों का प्रशासन भी सौंप दिया। उपरोक्त तमाम कृपाओं के बदले में सिंधिया मुगल बादशाह को केवल महल के खर्च के लिये पैंसठ हजार रुपया मासिक देता था और यह वादा किया था कि ज्यों-ज्यों दिल्ली तथा आगरा सूबों की सम्पन्नता में वृद्धि होती जायगी, त्यों-त्यों वह इस रकम को बढ़ाता जायगा।

इधर सिंधिया मुगल सैन्य का प्रधान सेनापति बना और उधर सारे मुगल सर्दार उसके चरण चूमने को तैयार हो गये। मुहम्मद बेग हमदानी की सेना में काम करने वाले कितने ही अफसरों ने उससे सम्बन्ध तोड़ लिया और सम्मान प्रदर्शन के लिये सिंधिया की सेना
१७८५ ई० में उपस्थित हुए। विवश हो कर हमदानी भी सिंधिया के अधिकार को मानने लगा। सिंधिया ने उसके संचालन में एक सेना दे कर राघव गढ़ पर अधिकार जमाने के लिये भेज दिया। हमदानी ने शीघ्र ही इस काम को पूरा कर लिया। सिंधिया ने दोआब के जिलों पर शीघ्र ही मुगल आधिपत्य स्थापित कर दिया और राव जी पटेल को आगरा पर घेरा डालने को भेज दिया। आगरा के सूबेदार ने पहले तो किला समर्पित करने से इनकार कर दिया परन्तु २७ मार्च को उसने किले को समर्पित कर दिया। मुगल शाहजादा अकबर को इस सूबे का सूबेदार बनाया गया, परन्तु सारे अधिकार सिंधिया के ही हाथ में रहे। राय जी पटेल को किले का प्रबन्धक बनाया गया। स्वर्गीय अफ्रासियाब खां की विधवा पत्नी तथा उसका (अफ्रासियाब का) भाई अलीगढ़ के किले में रहते थे। उन लोगो ने भी पहले तो किला समर्पित करने से इनकार किया मगर जब सिंधिया ने घेरा डलवा दिया तो नवम्बर के मध्य में वह किला भी समर्पित कर दिया गया।

पूना के लोगों ने सिंधिया की इस प्रकार की सफलताओं के समाचारों को आनन्द मिश्रित आश्चर्य के साथ सुना। राजकीय समर्थन के रूप में पेशवा की सेना का एक दल सिंधिया की सेवा में भेज दिया गया, ताकि लोग यह समझें कि सिंधिया अब भी पेशवा की ही अधीनता में काम कर रहा है और सिंधिया द्वारा अर्जित प्रतिष्ठा केवल उसी की प्रतिष्ठा नहीं वरन् समूचे मराठा मण्डल की प्रतिष्ठा है किन्तु होल्कर और नाना फड़नवीस को सिंधिया की इस अनुपम उन्नति से बड़ी ईर्ष्या हुई

उधर सिंधिया इस समय ऐसी स्थिति में था कि अब उसे होल्कर एवम् नाना जैसे लोगों की ईर्ष्या नगण्य सी मालूम होती थी। अपनी असम्भावित सफलता से सिंधिया ने इस प्रकार सोचने की शक्ति खो दी और वह इस प्रकार उद्दंड हो गया कि उसने बंगाल के अँगरेजों से चौथ व सरदेशमुखी मांगी। शायद यह सोच कर ही उसे यह साहस हुआ था कि मि० हेस्टिंग्ज तो अब इंगलैंड चला गया था और उसकी जगह मैक्फर्सन स्थानापन्न गवर्नर जनरल बन कर काम कर रहा था। मि० मैकफर्सन ने केवल स्वयम् ही इस क्षेत्र को नहीं अस्वीकृत किया बल्कि सिंधिया को भी दृढ़ता पूर्वक लिखा कि वह स्वयम् भी इस मांग के औचित्य को अस्वीकार करे। सिंधिया ने जब देखा कि मैकफर्सन दृढ़ है तो उसने भी इसे अनुचित कह कर अस्वीकार कर दिया। मैकफर्सन ने देखा कि अब समय आ गया है जब सिंधिया की उद्दण्डता पर थोड़ा रोक लगनी चाहिये। उधर मराठा सर्दार सिंधिया की सफलता पर ईर्ष्या के मारे जले जा रहे थे। मैकफर्सन ने उन्हें और भी उत्तेजित किया। जिस समय बंगाल से चौथ व सरदेशमुखी की मांग की गयी थी, मूदा जी भोंसले पूना में था। मैकफर्सन के आदेश से बम्बई सरकार ने उधर विशेष ध्यान दिया। इस प्रकार के विशेष ध्यान से मूदा जी प्रसन्न हुआ और सिंधिया चौंका। नाना फड़नवीस इधर कुछ दिनों से सोच रहा था कि पूना में एक अँगरेज रेजीडेंट रहा करे। बम्बई सरकार ने उसके इस इरादे को उत्साहित किया और रेजिडेण्ट पद के लिये मि० मैलेट का नाम चुना गया। सालबाई की सन्धि में तो कोई बात ऐसी थी नहीं जिससे पूना के दर्बार में वृटिश रेजिडेंट रक्खा जा सकता। यह सोच कर कि यदि सिंधिया ही रेजिडेण्ट पद की सिफारिश करे तो अधिक अच्छा होगा। मि० मैलेट को सीधा सिंधिया के कैम्प में रवाना किया गया, परन्तु सिंधिया इतना कम चतुर नहीं था कि वृटिश रेजिडेण्ट के पूना में रहने से अँगरेजों और मराठों का जो सम्मिलन होता उससे वह चौकन्ना नहीं होता। सिंधिया ने तर्क दिया कि गत तीन वर्षों से पूना दर्बार अंगरेजों के स्वार्थ कीं रक्षा करता आ रहा है और अब यदि ऐसी दशा में वहाँ रेजिडेण्ट की नियुक्ति होती है तो दक्षिण की अन्य रियासतें यही समझेंगी कि अँगरेजों एवम् मराठों के बीच अवश्य कोई गड़बड़ी पड़ गयी है और अब मराठा दर्बार में अँगरेजों का विश्वास नहीं रह गया है। परन्तु इन सब बातों का प्रभाव मैकफर्सन पर नहीं के बराबर पड़ा क्योंकि वह इस बात पर दृढ़प्रतिज्ञ था। अतः यह निश्चय किया गया कि मि० मैलेट को सीधा पूना भेज दिया जाय। अभी यह सब बातों तक ही सीमित था कि दक्षिण में कुछ ऐसी घननाएँ घटीं कि दक्षिण में वृटिश स्वार्थों को सुरक्षित रखने के लिये रोजिडेण्ट की नियुक्ति अनिवार्य हो उठी।

बत्तीसवां अध्याय

मराठों और टीपू में संघर्ष

[१७८४—१७८७]

टीपू—नलगोंड़ा—नलगोंडा से सम्बन्धित विवाद—टीपू का विश्वास घात—वलात् धर्म परिवर्तन—अंगरेजों से सन्धि करने के लिये नाना का प्रस्ताव—अँगरेजों की उदासीनता—पुर्तगीजों से सन्धि का प्रस्ताव—पूना में अँगरेज रोजिडेण्ट भेजनै का आदेश—मराठा सैन्य का प्रयाण—मूदाजी भोंसले का पूना दर्बार से घनिष्ट सम्पर्क—आक्रमण की योजना—वदामी पर अधिकार—एडोनी पर टीपू का आक्रमण—होल्कर का सावनेर को प्रयाण—बुरहानुद्दीन का आक्रमण—हरीपन्त के युद्ध—टीपू का तुंगभद्रा को पार करना—मराठों द्वारा सावनेर का त्याग—टीपू द्वारा सन्धि का प्रस्ताव—सिंधिया।

टीपू को सन्देह था कि निजाम अली तथा मराठों ने उसके विरुद्ध एक गुट का निर्माण किया है। वह इस गुट को दिखा देना चाहता था कि वह उनकी सम्मिलित शक्ति का सामना करने की शक्ति रखता है। उसकी यह इच्छा थी कि मराठे तथा निजाम अली यह जान जायँ कि वे लोग जिस तत्परता से उपद्रव मचाने की आकांक्षा रखते हैं, उन्हें दबाने के लिये टीपू भी उतना ही कटिबद्ध है। केवल इसी दिखावे को पूरा करने के लिये उसने बीजापुर पर भी अपना अधिकार जताया तथा साथ ही निजाम के राज्य पर आक्रमण करने की भी धमकी दी। इधर निजाम अली तथा मराठों में जो समझौता हुआ था, उसके अस्थायी होने का ज्ञान दोनों ही दलों को था। टीपू दुगुने उत्साह से सैन्य प्रशिक्षण एवम् दुर्गों के दृढ़ीकरण में लगा हुआ था। ज्यों ज्यों समय बीतता जाता था, टीपू की तैयारियों में वृद्धि होती जा रही थी।

मलपुरवा से १२ मील दक्षिण की ओर नलगोंडा का जिला व किला था। यह दुर्ग एक देसाई के अधिकार में था और सन् १७७८ ई० में जब हैदर अली ने कृष्णा नदी के दक्षिणस्थ भूभाग को पादाक्रान्त किया था, तभी से यह दुर्ग भी उसकी अधीनता में चला गया था, परन्तु देसाई के कर्तव्यों में केबल इतना ही परिवर्तन हुआ था कि पहले वह जितना कर मराठों को दिया करता था, उसी के समान अथवा कुछ न्यूनाधिक कर अब वह टीपू को देने लगा था। वास्तव में आक्रमण काल में देसाई ने जिस सुन्दर व्यवहार के साथ किले को हैदर अली कों समर्पित कर दिया था, उससे हैदर अली को बहुत प्रसन्नता हुई थी और नाम मात्र का कर भार देकर ही उसने देसाई की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण ही रक्खा था। अपने पिता की मृत्यु के शीघ्र बाद ही टीपू ने उक्त देसाई का कर भार बढ़ा दिया, जिसे पूरा करने से देसाई ने इनकार कर दिया। चूंकि वह जानता था कि अस्वीकृति का समाचार पाकर टीपू बलपूर्वक अपनी मांग को पूरा करने का प्रयास करेगा अतः उसने अति गुप्त रुप से पेशवा का संरक्षण प्राप्त करने का प्रयत्न किया और पेशवा के सामने यह तर्क रक्खा कि चूंकि वह सदासे ही मराठों का करद स्वयम् रक्षित रहा है अतः उसकी रक्षा करना पेशवा का कर्तव्य है।

उसकी सेवा में एक अँगरेज भी था । गुप्त रुप से ही उसने इस अँगरेज के माध्यम से बम्बई सरकार के पास इस आशय का एक प्रार्थना पत्र भेजा कि वह उसकी सहायतार्थ कुछ सेना भेज दे । बम्बई सरकार के सामने उसने यह तर्क रक्खा कि चूंकि वह एक स्वतंत्र राजा है अतः वह अंगरेजों की सहायता से टीपू के राज्य पर आक्रमण करना चाहता है । यह प्रार्थना पत्र जिस सयम बम्बई पहुँचा था, उस समय तक मंगलौर की सन्धि नहीं हुई थी, परन्तु चूंकि अँगरेजों ने उसके प्रार्थना पत्र को गम्भीर रुप नहीं दिया अतः देसाई ने पेशवा द्वारा रक्षण प्राप्त करने के प्रयास में कोई कभी नहीं की । साथ ही साथ वह ब्राह्मणों में प्रमुख परिवार पटवर्द्धनों की मित्रता प्राप्त कर सकने का भी प्रयास करता रहा । इन्हीं प्रयासों के परिणामस्वरूप जब देसाई पर टीपू ने अतिरिक्त माँग की पूर्ति के लिये दबाव डाला तो नाना फड़नवीस ने हस्तक्षेप किया और टीपू को सन्देशा दिया कि वह साधारण कर से अधिक और कुछ भी माँगने का अधिकारी नहीं है । उसका कहना था कि दुर्गों के हस्तान्तरण के वाद किसी भी दुर्गपति का कर भार नहीं बढ़ाया जा सकता और सदा से ही स्वस्थानियों * के अधिकारों को सादर सुरक्षित किया जाता रहा है, जब तक कि वे राजद्रोह का अपराध न करें । † टीपू ने उत्तर भेजा कि जो भी किले या सर्दार उसकी अधीनता में हैं उन पर वह स्वेच्छा पूर्वक न्यूनाधिक कर लगाने को स्वतंत्र है । शीघ्र ही उसने दो सैनिक दस्तों को नलगोंडा की ओर भेजा और उसे इतना अधिक कर वसूलने का आदेश दिया जो कि देसाई के सामर्थ्य से सर्वथा परे था और जिसका तात्पर्य यह होता था कि वह सेना कर वसूलने के बदले किले को ही अधिकार में लेले ।

[१७८५ ई०]

टीपू की सेना ने मार्च के महीने में किले पर घेरा डाल दिया । उधर गणेश पन्त बाहरी तथा परशुराम भाऊ के नायकत्व में दो सेनाएँ देसाई के उद्धार के लिये चल पड़ी । टीपू के वकील अभी तक पूना में थे और नाना फड़नवीस ने मराठा सेनापतियों को आदेश दिया था कि वे टीपू की सेना से युद्ध करने के लिये तैयार तो रहें परन्तु युद्ध छेड़ने में शीघ्रता न करें । मराठा सेनाएँ जिस समय नलगोंडा के पड़ोस में पहुँची उस समय तक पानी (पीने का) की कठिनाइयों के कारण टीपू की सेना ने विवश होकर घेरा उठा लिया था और थोड़ी दूरी पर पड़ाव डाल दिया था । उन्होंने मराठा सेना नायकों के पास एक यंगात्मक सन्देश भेजा कि पेशवा की सेना के सम्मान में ही उन्होंने घेरा उठा लिया है । मराठे इस व्यंग से जल उठे और उन्होंने तत्क्षण टीपू की सेना के पड़ाव पर हल्ला बोल दिया । उन्होंने उनके थानों को उजाड़ दिया और तब तक टीपू की सेना को दबाते गये जब तक टीपू द्वारा भेजी गयी दो ताजी सेनाएँ न आ पहुँची । उन दोनो दस्तों के आ जाने के बाद मराठे अपने बीस आदमियों तथा एक हाथी गँवा कर लौट आये । इसमें सन्देह नहीं कि यह मराठों का आक्रमण नाना के आदेशों के विरुद्ध था, फिर भी इस युद्ध का समाचार पाते ही उसने सन्धि और विग्रह के दो कार्य एक साथ सम्पादित किये । एक ओर तो उसने तुका जी होल्कर को आदेश दिया कि वह एक बड़ी सेना लेकर उक्त क्षेत्र में गणेश पन्त को सहायता पहुँचावे और दूसरी ओर उसने टीपू को सन्धि के लिये आवश्यक सन्देश दिया । इसमें भी सन्देह नहीं कि नाना ने दोनो ही कार्यों को हृदय की समस्त ईमानदारी के साथ किया था, परन्तु टीपू ने ऐसी परिस्थिति में एक भयानक जाल की रचना की । ऊपरी तौर पर उसने सन्धि के लिये बड़ी तत्परता दिखायी और वह यहां तक प्रस्तुत हो गया कि यदि नलगोंडा पर उसके स्वामित्व को मान्यता दे दी जाय तो वह दो वर्ष का कर भी

---

* वंशानुगत जागीरदार ब्राह्मणों को स्वस्थानी कहा जाता था ।

† मराठा प्रतिलिपियों के अनुसार

चुकता कर दे सकता है। नाजिम अली ने भी नाना फड़नवीस को समझाया कि देसाई को आधीनता मात्र तो स्वीकार करना है और फल स्वरुप नाना भी टीपू के प्रस्ताव पर राजी हो गया। रुपये की अदागयी तो तै हो गयी परन्तु यह न तै हुआ कि यह रुपया दिया कैसे जा यगा। शेष सभी बातें तै हो गयीं और अदायगी के ढंग को तै करने के लिये सत्ताइस दिन की अवधि रक्खीं गयी। इतना सब हो जाने के बाद मराठा सेना ने कृष्णा नदी को पार किया और बेचारे देसाई को एक मात्र टीपू की दया पर छोड़ दिया गया। टीपू ने शुरु से ही कपट का सहारा लिया था और नाना जैसा नीति कुशल व्यक्ति भी उसके कौशल से धोका खा गया। मराठों की सेना ज्यों ही कृष्णा पार गयी, ज्यों ही टीपू ने देसाई तथा उसके समूचे परिवार को पकड़वा लिया, उसकी लड़की को अपने हरम में डाल लिया और शेष को काबुलदुर्ग में बन्दी कर दिया, जहाँ वे सब के सब मर गये। किलूर का दुर्ग भी एक करद देसाई के ही अधिकार में था। उस पर भी टीपू ने अधिकार जमा लिया। वर्षा काल समाप्त होने के काफी पहले ही टीपू ने इन दुर्गों में अपनी स्थिति सुदृढ़ बना ली।

जैसा कि पहले कहा चुका है कि टीपू की प्रबल इच्छा थी कि मराठों पर उसकी शक्ति का इतना आतंक छा जाय कि वे कभी उसके विरुद्ध शस्त्र न उठा सकें; इसीलिये उसने कृष्णा नदी के दक्षिण में रहने वाले हिन्दुओं विशेष कर ब्राह्मणों को धर्म-परिवर्तन के लिये वाध्य करना शुरू किया। उक्त क्षेत्र में श्री शंकराचार्य के सम्प्रदाय के अनेक परिवार रहते थे। उनमें से, प्रायः दो सहस्र ब्राह्मण परिवारों ने अपने को मृत्यु की कराल दाढ़ों को में समर्पित कर दिया, क्योंकि धर्मान्तर में जा कर जीना उन्हें श्रेयस्कर न समझ पड़ा।

शीघ्र ही नाना फड़नवीस को पता लग गया कि टीपू ने उसे किस प्रकार मूर्ख बनाया था। मुसलमान सुल्तान की यह धर्मान्धता देख कर अब उसे निजाम अली पर भी भरोसा न रहा। पिछले युद्ध में नाना फड़नवीस को दो बातें विशेष रूप से खटकी थीं। उसने देखा था कि टीपू की सेना की व्यवस्था में प्रशिक्षण की पूर्ण सफलता परिलक्षित हो रही थी, जब कि निजाम अली के सैनिक मानो अव्यवस्था की प्रतिमूर्ति से दिखायी पड़ रहे थे। इन दोनों ही बातों ने उसकी चिन्ता में वृद्धि की थी। इसी समय नाना को यह समाचार भी मिला कि इन दिनों टीपू एवम् फ्रांसीसियों की गाढ़ी छन रही थी। इन तमाम परिस्थितियों का सामना करने का एक मात्र उपाय यही दिखायी पड़ रहा था कि नाना अङ्गरेजों से साहाय्य याचना करे और उसने यही किया भी। यद्यपि अङ्गरेजों के प्रति उसकी घृणा का पार नहीं था, परन्तु परिस्थितियों की जटिलता के कारण वह उस घृणा को दबा कर काम करने को वाध्य था। नाना यह भी सोचता था कि टीपू के विरुद्ध किसी भी सन्धि प्रस्ताव का अङ्गरेज स्वागत ही करेंगे, इसीलिये उसने अपने सन्धि प्रस्ताव में अपनी ओर से की गयी प्रतिज्ञाओं की न तो संख्या ही बढ़ायी और न सीमा ही। अति सावधानी के साथ उसने बम्बई के गवर्नर मि० बोडम के समक्ष टीपू के विरुद्ध आक्रामक सन्धि का प्रस्ताव प्रेषित किया। जुलाई मास में नाना का एजेण्ट बम्बई पहुँचा और उसने पेशवा की तरफ से बम्बई सरकार को यह सन्देश दिया कि विजय की दशा में टीपू के राज्य के बन्दरगाहों में से कोई भी दो अङ्गरेजों को दे दिये जायँगे। उसके बदले में टीपू के राज्य को विजित करने में अङ्गरेजों को सैनिक सहायता देनी होगी। बम्बई के गवर्नर मि० बोडम ने सन्धि की शर्तों की अपर्याप्तता पर तनिक भी आश्चर्य नहीं किया और नाना के प्रस्ताव को सुप्रीम कांउसिल के पास आदेशार्थ प्रेषित कर दिया, परन्तु प्रस्ताव की सुप्रीम कांउसिल की सेवा में अग्रसरित करने में गवर्नर ने इतनी अधिक उदासीनता दिखायी कि वह पेशवा के एजेन्ट की दृष्टि में आ गयी और उसने गवर्नर की उदासीनता का यथार्थ विवरण नाना को प्रेषित कर दिया। ऐसी

परिस्थिति में नाना को रास्ता बदलने पर वाध्य होना पड़ा । अब उसे अङ्गरेजों पर भी विश्वास न रह गया । इस उदासीनता को देखते हुए भी नाना ने अपने एक एजेण्ट को कलकत्ता भेजा, यद्यपि पूना में अङ्गरेजों के रेजिडेण्ट के न होने की स्थिति में उसे सिंधिया के माध्यम से बात चलाना चाहिये था । उस समय जेम्स ऐण्डर्सन नाम का अङ्गरेज सिंधिया के कैम्प में रेजिडेण्ट के दूत की स्थिति में रह रहा था । सिंधिया ने उसके माध्यम से गवर्नर जनरल को लिखा कि—"चूंकि पेशवा और टीपू में संघर्ष की स्थिति आ गयी है और सालबाई की सन्धि के अनुसार मराठे और अङ्गरेज प्रतिज्ञावद्ध हैं कि वे एक दूसरे के शत्रु को शत्रु और मित्र को मित्र मानेंगे, अतः उस समय अङ्गरेजों का धर्म है कि वे टीपू के विरुद्ध मराठों की सहायता करें ।" उसने यह भी लिखा कि निजाम अली निश्चित रूप से मराठों की सहायता कर रहा है और पेशवा तथा निजाम अली में समझौता हो चुका है कि टीपू को हरा कर वे दोनों अपने उन क्षेत्रों को ले लेंगे जो निजामअली द्वारा उनसे जीत लिये गये थे और शेष उपलब्धियों को वे समान दो भागों में बाँट लेंगे । सिंधिया की बातों के उत्तर में मैकफर्सन ने कहा कि सालबाई की सन्धि में यह नहीं कहा गया था कि वे दोनों एक दूसरे के शत्रु व मित्र को अपना भी शत्रु व मित्र ही समझेंगे, बल्कि उस शर्त का तात्पर्य यह था कि वे एक दूसरे के शत्रु को किसी भी प्रकार की सहायता न देंगे । गवर्नर जनरल ने यह भी कहा कि वह टीपू के साथ भी मंगलौर की सन्धि से इस बात में बँधा हुआ है कि वह टीपू के किसी भी शत्रु को सहायता नही दे सकता । एक ओर तो मैकफर्सन ने वाग्जाल का सहारा ले कर मराठों की कोई भी सहायता करने से इनकार कर दिया और दूसरी ओर लच्छेदार शब्दों में मराठों का सर्वश्रेष्ठ मित्र होने का भी विश्वास दिलाया । साथ ही उसने उसी पत्र में यत्र-तत्र ऐसा भी संकेत किया कि अँगरेजों के पास टीपू से असन्तुष्ट होने के कारणों की कमी नहीं है क्योंकि उसने मंगलौर सन्धि की शर्तों को अभी तक पूरा नहीं किया है । पत्र के अन्त में सिंधिया को यह भी विश्वास दिलाया गया था कि अन्ततोगत्वा यदि यह तै पाया गया कि मराठे हार रहे हैं तो अङ्गरेज चुप न बैठे रहेंगे । ऐसी दशा में वे अवश्य ही मराठों की मदद को आ जायँगे ।

मराठों की सहायता करने में गवर्नर जनरल जितनी ही अधिक आना-कानी करने लगा । नाना की सहायता प्राप्ति की अभिलाषा जनित योजना भी उतनी ही दृढ़ होती गयी । वह अङ्गरेजों का सहयोग पाने के लिये व्यग्र सा हो उठा । उसकी यह व्यग्रता भी अकारण नहीं थी । उसे ऐसा समाचार मिला था कि टीपू और फ्रांसीसियों में एक नवीन सन्धि हो गयी है । ऐसी दशा में या तो अंगरेजों की ओर से निराश हो कर या उन्हें एक प्रकार से विवश करने के लिये नाना ने पूर्तगालियों से साहाय्य-याचना की जो उसे मिल भी गयी । यह निश्चय है कि नाना को टीपू और फ्राँसीसियों की सन्धि का दृढ़ विश्वास हो गया था, क्योंकि मराठों के पांडिचेरी स्थित दूत ने फ्रांसीसी गवर्नर के समक्ष स्पष्ठ रूप से निवेदन किया था कि टीपू के साथ फ्रांसीसियों की सन्धि फ्रांस के बादशाह द्वारा दिये गये उन आश्वासनों का उल्लंघन है जों उसने पेशवा को दिये थे । उसने गवर्नर पर इस बात का आरोप भी लगाया था कि उसने फ्रेंच बादशाह के आश्वासनों के प्रतिकूल आचरण किया है । फ्रेंच गवर्नर ने इस प्रकार की किसी भी सन्धि से इनकार किया था और मराठा दूत को आश्वस्त करने के लिये ही पेशवा दर्बार से सम्पर्क बढ़ाने का प्रस्ताव किया था । यह भी सत्य है कि एक तो टीपू फ्रांसीसियों की मनमानी से वैसे ही चिढ़ा हुआ था, तिस पर इस नवीन प्रस्ताव की सूचना पा कर वह जल भुन गया । पूना दर्बार स्थित फ्रेंच दूत की ओर भी नाना ने अधिक ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया और अङ्गरेजों को तो यहाँ तक विश्वास हो गया कि पेशवा ने फ्रांसीसियों से यह प्रतिज्ञा भी

कर ली है कि यदि वे टीपू की सहायता न करेंगे तो उन्हें रेवादण्ड दे दिया जायगा। नाना की व्यग्रता अब अङ्गरेजों के सर पर आ गयी थी, क्योंकि उन्हें यह पसन्द नहीं था कि पश्चिमी समुद्रतट पर किसी भी अन्य यूरोपीय जाति का पंजा जम जाय।

उपरोक्त परिस्थितियों में अब अङ्गरेजों के लिये यह सर्वाधिक आवश्यक जान पड़ने लगा कि उनका एक रेजिडेण्ट पूना दर्बार में रहे। मैलेट उस समय कलकत्ता में था। उसे आदेश हुआ कि वह तुरन्त बम्बई जाय और वहां रह कर पेशवा के निमंत्रण की प्रतीक्षा करे।

इधर तो ये दावपेंच चल रहे थे और उधर टीपू पर आक्रमण करने के लिये विभिन्न सेनाएँ पूना में एकत्रित हो रही थी। विवश हो कर मि० मैकफर्सन ने तीन बटालियन सैनिक इस शर्त के साथ भेजा कि उनका उपयोग केवल मराठा राज्य की सुरक्षा के लिये किया जायगा न कि टीपू पर आक्रमण करने के लिये। गवर्नर जनरल का आदेश था कि किसी भी दशा में इनका उपयोग टीपू के क्षेत्र में न किया जाय। नाना को चूँकि इस समय सुरक्षा की उतनी अधिक आवश्यकता नहीं थी, अत: उसने गवर्नर जनरल के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया।

इस वर्ष का वर्षा काल असाधारण रूप से लम्बा हो गया और हरी पन्त फड़के की सेना पहली दिसम्बर से पूर्व पूना से बाहर न निकल सकी। गराठों की विशाल वाहिनी सीधे टीपू के राज्य की ओर न जा कर उसकी पूर्वी सीमा की ओर चली ताकि उधर मूदा जी भोंसले तथा निजाम अली की सेना से उसका साथ हो जाय।

जिस समय का विवरण हम प्रस्तुत करने जा रहे हैं, उसके पिछले वर्ष में मूदा जी भोंसले पूना गया था। उसने उस समय यह प्रगट किया था कि उसकी आन्तरिक अभिलाषा है कि मराठा मण्डल के मुखिया से उसका मेल जोल बना रहे। अपने पुत्र रघू जी भोंसले के नाम पर उसने पूना दर्बार के साथ एक नया समझौता किया था, जिसमें उसने अपने को उन सभी शर्तों को मानने के लिये वाध्य माना था, जो सन् १७६६ ई० में माधव राव तथा जानो जी के बीच हुई थीं। इस बार उसने विशेष रूप से प्रतिज्ञा की कि वह पेशवा के विरुद्ध किसी भी दशा में अँगरेजों की सहायता नहीं करेगा और टीपू के साथ होने वाले आगामी युद्ध में वह पूरी तरह पेशवा का साथ देगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसी प्रतिज्ञा पूर्ति के फलस्वरूप वह अपनी सेना सहित आगे बढ़ रहा था।

१७८६ ई०

नाना फड़नवीस को निजाम अली से कुछ बातें करनी थीं अत: उसने भी इस सेना के पीछे ही पीछे प्रयण किया और पण्ढ़रपुर तक पहुँचते पहुँचते उसने हरी पन्त फड़के को जा पकड़ा। वहां से भीमा नदी के दाहिने किनारे कर सहारा लेते हुए वे आगे बढ़ा। पिछले वर्ष जिस स्थान पर नाना तथा निजाम की भेंट हुई थी, उसी स्थान पर इस वर्ष भी दोनों आ मिले, नाना तथा निजाम अली ने यह निश्चय कर लिया कि टीपू के समस्त राज्य को जीत कर उसके छः भाग कर लिये जायँगे, जिनमें से दो भाग निजाम, दो भाग पेशवा व एक एक भाग सिंधिया एवम् होल्कर को मिलेंगे। यह भी निश्चय किया गया कि सर्व प्रथम यही चेष्टा की जायगी कि कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच के उन स्थानों को अधिकृत किया जायगा जो पहले मराठों के अधिकार में थे और बाद में जिन्हें हैदर अली ने जीत लिया था। टीपू का सेनापति बुरहानुद्दीन इस समय कित्तूर के पास पड़ा था। तुका जी होल्कर तथा गणेश पन्त को पचीस हजार सवारों की एक सेना दे कर उस पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। इनको यह भी आदेश दिया गया कि वे न केवल कित्तूर को ले लें, वरन् वे बुरहानुद्दीन को उस

जिले से ही निकाल दें। पेशवा एवम् निजाम अली की सेनाएँ बदामी की ओर चलीं। जब ये सेनाएँ बदामी के निकट पहुँची तो उन्हें सूचना मिली कि टीपू अपने समूचे सैन्य के साथ उसी ओर चल पड़ा है। अब इन लोगों ने तै किया कि यदि यह सूचना सत्य हो तो बदामी पर घेरा न डाला जाय और बदामी के समीपस्थ किसी स्थान पर पड़ाव डाल कर तब तक प्रतीक्षा की जाय जब तक वर्षा प्रारम्भ न हो जाय। उन्हें आशा थी कि वर्षा के फल स्वरूप नदियों में जो बाढ़ आयेगी, उसके कारण उनकी स्थिति बाधारहित हो जायगी और वे हर प्रकार की मनमानी करने को स्वतंत्र हो जायँगे।

वर्षा काल में शत्रु पर आक्रमण करने की बात को निजाम अली ने इतना नापसन्द किया कि उसने इस योजना पर अपनी स्वीकृति तो दे दी परन्तु उसने यह इच्छा प्रगट की कि अपने सेनापति तहव्वर जंग के अधीन पचीस हजार सवार सेना को हरीपन्त फड़के के आदेश में छोड़ कर वह हैदराबाद की ओर चला जायगा। मराठों ने निजाम के इस प्रस्ताव का प्रसन्नता पूर्वक स्वागत किया, क्योंकि निजाम अली कीं उपस्थिति के कारण वे नाना प्रकार की औपचारिक कार्यवाहियों से दबे रहते थे।

इधर निजाम अली ने अपनी राजधानी की ओर प्रस्थान किया और उधर सूचना मिली की टीपू ने बंगलौर से अपनी सेना के एक अंग को उधर भेज दिया है और स्वयम् श्री रंगपट्टम की ओर लौट गया हैं। इस सूचना को पाते ही मराठों ने अपनी घेरा डालने की पूर्व योजना को कार्यान्वित करने का निश्चय किया। घेरे की कार्यवाही पहली मई को प्रारम्भ की गई। बदामी नगर मैदान में स्थित था और उसकी सुरक्षा के लिए सुदृढ़ मोर्चाबन्दी की गयी थी, और बीच में एक गढ़ी का निर्माण किया गया था, जिसके दोनों ओर छोटी-छोटी दो पहाड़ियाँ थी जो उस गढ़ी की रक्षा में निर्भीक अचल प्रहरी की भांति खड़ी थीं। मराठों ने नगर पनाह पर तीन सप्ताह तक गोला बारी की परन्तु बे उसे तनिक भी क्षतिग्रस्त न कर सके। अतः उन्होंने हल्ला बोल कर गढ़ी में प्रवेश करने का निश्चय किया। २० मई को आक्रामकों के बीस सहस्र पैदल सिपाही इस कार्य के लिये तैयार हुए। गढ़ी में पैंतीस सौ के करीब रक्षक सैनिक थे। उन्होंने भी सुरक्षा के लिये दीवालों की मोर्चे बन्दी की तथा प्रत्येक आवश्यक स्थान पर यथा आवश्यक सैनिक नियुक्त कर दिये गये। आक्रामकों ने पूरे निश्चय एवम् दृढ़ विश्वास के साथ कार्यारम्भ किया। रक्षक सेना भी उतनी ही दृढ़ थी और पूरा प्रतिरोध करने को प्रस्तुत थी। दोनों सेनाओं के बीच में जो स्थान था और विशेष कर उस क्षेत्र में जहाँ से हो कर आक्रामक सेना आ सकती थी, रक्षक सेना ने स्थान-स्थान पर भयंकर सुरंगे बिछा रक्खी थी। छोटे गढ़े खोद कर इन विस्फोटक सुरंगों को इन्हीं में छुपा दिया गया था। ये विस्फोटक पदार्थ डबर * (कुप्पी) में भर कर रखये गये थे। जब इनमें आग लगी तो अति भयंकर विस्फोटों का ताँता लग गया। इससे आक्रामकों ।को अत्यधिक हानि उठानी पड़ी, परन्तु गढी में प्रवेश कर पाने की जो प्रतिद्वन्दिता मराठा सैनिकों एवम् निजाम के सैनिकों में उठ खड़ी हुई थी, उसने उन्हें निरन्तर आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा दी। वे हल्ला करते हुए तीव्र गति से आगे बढ़े, गढ़ी के दीवाल पर सीढ़ियाँ लगा दी गयीं और कई स्थानों से वे दीवाल पर चढ़ गये और शीघ्र ही उन्होंने सभी रक्षकों

---

* डबर एक प्रकार का बड़ा बर्तन होता है जिसका आकार फूले हुए गुब्बारे की भाँति होता हैं इसके अनेक प्रयोग हैं, परन्तु प्रायः इसमें घी तेल रक्खा जाता है। डबर खाल का बना होता है और बहुत मोटा सी तह के यह बहुत मजबूत होता है, और सौ वर्ष में भी खराब नहीं होता।

को निरस्त्र कर दिया। रक्षक सेना मुख्य गढ़ी की ओर भागी। आक्रामकों ने भी पीछा किया अवश्य परन्तु वे रक्षकों के साथ किले में प्रवेश न कर सके। अतः वे थोड़ा घूम कर फिर पहाड़ी दीवाल पर ही चढ़ने की कोशिश करने लगे। ऊपर से रक्षक सेना बड़े बड़े पत्थरों को लुढ़का रही थी, छोटी तोपों के गोलों की मार हो रही थी। आक्रामक सेना की संख्या क्षीण होती जा रही थी, फिर भी उनके दुस्साहसपूर्ण आक्रमण को देख कर रक्षकों का हौसला पस्त होता जा रहा था और उन्होंने अन्त में आत्म समर्पण का प्रस्ताव किया और केवल एक ही शर्त रक्खी कि उनको सकुशल बना रहने दिया जाय। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनका प्रस्ताव तुरन्त ही स्वीकार कर लिया गया।

बदामी के पतन के पश्चात् नाना फड़नवीस पूना को लौट गया और युद्ध संचालन का भार हरीपन्त पर छोड़ दिया। मूदाजी भोंसले ने अपनी सेना का अधिकांश फड़के के नायकत्व में छोड़कर तथा यह कह कर नागपुर की ओर प्रयाण किया कि शीघ्र ही वह ताजी सेना लेकर लौटेगा। इधर मुख्य सेना उपरोक्त कार्य में रत थी और उधर होल्कर के संग भेजी गयी सेना ने समस्त कित्तूर जिले को हस्तगत कर लिया परन्तु कित्तूर के किले को लेने में उन्हें असफलता का सामना करना पड़ रहा था।

युद्ध से थोड़ा अवसर पाकर हरीपन्त फड़के ने पहला काम यह किया कि तमाम घायल सैनिकों को बदामी से हटा दिया। इसके पश्चात् वह गजेन्द्रगढ़ की ओर हट गया। सीर्ती नाम का एक छोटा सा दुर्ग इस राह में पड़ता था अतः उसने आक्रमण करके उसकी दीवालों को नष्ट भ्रष्ट कर डाला। अभी वह उस कार्य से खाली भी नहीं हुआ था कि उसे सूचना मिली कि टीपू उसका सामना करने को बढ़ा चला आ रहा है। मराठा जासूसों की दक्षता असन्दिग्ध थी, परन्तु उनकी दक्षता वहाँ पर असफल हो हो जाती थी जहां मराठों के अतिरिक्त अन्य भाषा बोली जाती थी। टीपू के सेना नायक इस कुशलता और सावधानी से आगे बढ़ रहे थे कि मराठा जासूस उनकी गतिविधि का सच्चा इतिवृत्त न पा सके। जिस समय फड़के को अन्तिम सही सूचना मिली उस समय टीपू एडोनी पर करारा आक्रमण करने के लिये एकदम प्रस्तुत था। एडोनी पर इस समय निजामअली के भतीजे सलावतजंग का अधिकार था। वह वेचारा विल्कुल निश्चिन्त था। उसे इस नवीन विपत्ति की न तो सूचना थी और न वह किसी आक्रमण का सामना करने कों तैयार ही था। स्वयम् उसका और उसके लड़कों का हरम किले में ही था। इस आक्रमण का समाचार पाकर उसने निजामअली से प्रार्थना की कि उसके सम्मान की रक्षा की जाय। हरीपन्त के पास भी उसने आग्रह पूर्ण पत्र भेजा। हरीपन्त ने निजाम की समस्त सेना को तहव्वर जंग के सेनापतित्व में एडोनी की ओर रवाना किया और बीस सहस्र मराठा सवारों को भी कृष्णराव बलवन्त एवम् रघुनाथराव नीलकण्ठ के संचालन में उसके साथ रवाना किया। अभी यह सेना रास्ते में ही थी कि समाचार मिला कि हैदराबाद की समस्त सेना निजामअली के आदेशानुसार रायचूर की ओर जा रही है। तहव्वरजंग की सेना ने मराठों की सेना के साथ रास्ता बदला और बन्नूर नामक स्थान पर जाकर निजामअली की सेना से मिल गयी। अब यह संयुक्त वाहिनी एडोनी की ओर चली। इस समय इस सेना में साठ सहस्र सैनिक हो गये थे। अभी यह संयुक्त वाहिनी एडोनी की राह में ही थी कि टीपू ने एडोनी पर अपना अधिकार जमाने का प्रयास किया। मुहब्बतजंग ने टीपू के प्रथम आक्रमण को विफल कर दिया। तब तक सहायक सेना के आ पहुँचने का समाचार प्रचारित हो गया और विवश होकर टीपू ने घेरा उठा लिया। वहां से थोड़ा दक्षिण हटकर टीपू ने पड़ाव डाल दिया। तुंगभद्रा को पार करने में सहायक सेना को बड़ी कठिनायों का सामना करना पड़ा था। चूँकि तुंगभद्रा के दक्षिण के सभी क्षेत्रों पर टीपू का अधिकार था और कृष्णा तथा तुंगभद्रा के बीच के क्षेत्र से भी रसद और चारे का प्रबन्ध सुविधापूर्वक नहीं हो सकता था क्योंकि यह क्षेत्र भी

विवादग्रस्त था; अतः सहायक सेना के नायकों ने फिर से तुंगभद्रा को पार कर जाने की बुद्धिमानी की और साथ में वे एडोनी की रक्षक सेना को भी लेते गये, परन्तु उन्होंने एक भारी भूल कर दी कि उन्होंने किले को एकदम अरक्षित दशा में छोड़ दिया और उसमें जितनी भी तोपें थीं, उन्हें ज्यों की त्यों छोड़ दिया। कुशलता तो इसमें थी कि वे या तो तोपों को भी ले जाते और यदि छोड़ना ही था तो उन्हें बेकार करके छोड़ते। यदि सहायक सेना के नायकों ने इतना और कर लिया होता तो उनकी बुद्धिमानी अत्याधिक प्रशंसनीय होती।

हैदराबाद से आयी हुई सेना हैदरावाद को लौट गयी और शेष सेना गजेन्द्रगढ़ पहुँचकर हरीपन्त से मिल गयी। गजेन्द्रगढ़ के किलेदार को घूस देकर फड़के ने इस पर अधिकार कर लिया था। होल्कर अब भी कित्तूर दुर्ग के सामने पड़ा था। उसे देखते से ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह एकदम निश्चेष्ट हो, परन्तु अचानक एक दिन उसने खेमा उखाड़ और अति द्रुत गति से चल कर साठ मील दूर सावनेर जा पहुँचा। सावनेर के नवाब से होल्कर पिछले कुछ दिनों से लिखा पढ़ी कर रहा था। वास्तव में इस अचानक प्रस्थान एवम् वायुवेग का तात्पर्य यह था कि होल्कर टीपू के प्रमुख साहूकार राघवेन्द्र नायक को पकड़ कर रुपया वसूल करना चाहता था, परन्तु चाहे जैसे भी हो राघवेन्द्र होल्कर के पहुँचने के पूर्व ही सावनेर को छोड़ कर चला गया था और इस प्रकार होल्कर को बड़ी निराशा हुई। अपनी असफलता से खीझकर होल्कर ने नगर के दो तीन छोटे साहूकारों को पकड़ा और उनसे दो लाख रुपया वसूल किया। इसी बीच बुरहानुद्दीन की फौज ने उस पर आक्रमण कर दिया, परन्तु सावनेर के नवाब की सहायता से होल्कर ने उन्हें भगा दिया। अगली रात को बुरहानुद्दीन जिरियान बुटी की ओर हट गया जो वर्धा के तट पर सावनेर से तीस मील दक्षिण में स्थित है।

सन् १७७९ ई० में टीपू की बहन का ब्याह सावनेर के नवाब से हुआ था। उस समय अपने द्वारा जीत लिये गये उन बारहों जिलों को सावनेर के नवाब को सुपुर्द कर दिया था जिन पर पहले नवाब का ही अधिकार था। इस समर्पण के समय यह शर्त रक्खी गयी थी कि नवाब मैसूर राज्य की सेवा के लिये दो हजार पठान सवार रक्खेगा। टीपू बचपन से ही अपने बहनोई से शत्रुता रखता था। अपने पिता की मृत्यु के बाद टीपू को आवश्यक शक्ति एवम् स्वतन्त्रता भी मिल गयी और उसने ठान लिया कि वह नवाब का नाश करके रहेगा। उसे शीघ्र ही अवसर भी मिल गया। उसे सूचना मिली कि नवाब आवश्यक संख्या में सवार नहीं रख रहा है। एक सुविचारित योजना के अनुसार टीपू ने नवाब को भी लूटा और उसके सर्दारों को भी। ऐसी परिस्थिति में नवाब के सामने एक ही रास्ता रह गया कि वह मराठों की शरण में चला जाय। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस बात का प्रथम अवसर पाते ही नवाब मराठों की शरण में चला गया।

गजेन्द्रगढ़ पर अधिकार कर लेने के बाद हरी पन्त फड़के ने बहादूर बेंड़ा तथा कोपबल की ओर दृष्टिपात किया। बहादुर बेंड़ा उसे समर्पित कर दिया गया था और कोपबल के लिये सन्धि की बातें हो रही थीं। ऐसे ही समय में उसे सूचना मिली कि तिनकों की नावें बनवा कर टीपू ने अपनी समूची सेना के साथ तुङ्गभद्रा को पार कर लिया है और उसी की ओर बढ़ता चला आ रहा है। हरी पन्त फड़के भी टीपू की प्रगति को रोकने के विचार से बढ़ा, परन्तु उसने देखा कि भूमि के अत्यधिक नम और फिसलन भरी होने के कारण उसके सवारों की गति बाधित हो रही थी। अतः केवल दस मील आगे बढ़ कर ही उसने पड़ाव डाल दिया। इस पड़ाव पर टीपू ने दो असफल आक्रमण किये। हरी पन्त फड़के भी धीरे-धीरे सावनेर की ओर बढ़ा। उधर बढ़ने में उसके दो उद्देश्य थे। एक तो वह टीपू को मैदान में घसीट लाना चाहता था और दूसरे उधर चारे एवम् रसद की भी सुविधा थी। टीपू

ने फड़के का पीछा किया परन्तु उसने कृष्णा तट को नहीं छोड़ा। अन्त में सावनेर पहुँच कर उसने भी पड़ाव डाल दिया। फड़के के पड़ाव से उसका पड़ाव छः मील की दूरी पर था और दोनों के बीच में सावनेर का नगर पड़ता था। सामरिक दृष्टिकोण से टीपू की स्थिति अधिक सुविधाजनक थी। दोनों सेनाएँ इसी स्थिति में पन्द्रह दिनों तक पड़ी रहीं। पहली अक्टूबर को सूर्य निकलने में अभी दो घण्टों की देरी थी कि तोप के गोले का एक भयानक धमाका सुन कर सारी मराठा सेना चंचल हो उठी। जवाब में मराठा तोपें भी गरजने लगीं। उस आक्रमण का नेतृत्व स्वयम् टीपू कर रहा था। उसे स्पष्ट पता चल गया था कि मराठों को तोपों की स्थिति कहाँ पर थी और इन्हीं तोपों पर अधिकार करने की योजना को ध्यान में रख कर उसने कार्यारम्भ किया था, परन्तु मराठों की भी दक्षता प्रशंसनीय थीं। उन्होंने सूर्योदय तक पूर्ण दृढ़ता से अपनी तोपों की रक्षा की और दिन होते ही ये तोपें शत्रु के ऊपर भयंकर रुप से गोले बरसाने लगीं। मराठों ने पडाव डालने के लिये स्थान चुनने में भूल की थी और इसी कारण मराठों की स्थिति असुविधा पूर्ण हो रही थी। दोनो खेमों के बीच की जमीन टीपू की ओर नालों से पूर्ण थी और टीपू ने जानबूझ कर इन नालों को पार नहीं किया था और मराठा घोड़ों के लिये इन नालों को फाँद कर टीपू के पड़ाव पर आक्रमण करना कठिन हो रहा था। खैरियत यही हुई कि थोड़ी ही देर की गोला वारी के बाद टीपू ने युद्ध बन्द कर दिया और अपने खेमों की ओर लौट गया।

मराठा खेमों में चारे की बेहद कमी थी। शत्रु की सुविधापूर्ण स्थिति की तुलना में मराठे भयंकर-स्थिति में ही थे, अतः सावनेर में अब और अधिक रुकना उन्हें श्रेयस्कर न जान पड़ा। हरी पन्त ने निश्चय किया कि वह पीछे को लौटेगा परन्तु इस निश्चय पर पहुँचने के पूर्व उसने यह नहीं सोचा कि उसके मित्र सावनेर के नवाब की क्या स्थिति होगी। विवश होकर सावनेर का नवाब भी हरी पन्त के साथ दस मील तक गया जहाँ हरी पन्त फड़के ने नया पड़ाव डाला। उधर टीपू ने नगर पर अधिकार तो कर लिया, परन्तु वह मराठा सैन्य के पीछे नहीं पड़ा। मुहर्रम तक वह निश्चेष्ट होकर सावनेर में पड़ा रहा। त्यौहार मनाने के लिये मुहर्रम के अवसर पर टीपू बंकापुर चला गया और अब उसने मानो हरी पन्त् पड़के को इस बात की स्वीकृति ही दे दी कि वह सरहद्दी के मोर्चेबन्द नगर पर आक्रमण कर के ले ले। यह कस्बा सामरिक दृष्टि से पूर्णतया सुरक्षित था तथा सावनेर से बीस मील उत्तरपूर्व में था। मुहर्रम के बाद अपने भारी सामानों को वहीं छोड़ कर टीपू ने प्रस्थान किया। वह जानता था कि शत्रु सेना के सवार सैनिकों के आक्रमण की दशा में उसकी स्थिति निर्बल हो जाती है, अतः वह बुद्धिमत्तापूर्वक वर्धा एवम् तुङ्गभद्रा के किनारों का सहारा लेकर ही आगे बढ़ा। नदियों के किनारे-किनारे ही चल कर वह बहादुर बेंड़ा तथा कोपबल के बीच में पहुँचा और वहीं पड़ाव डाल दिया और वहीं से उसने फिर से बहादुर बेंड़ा को हस्तगत कर लिया। मराठों ने उसका पीछा किया और उसकी रसद पूर्ति को छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न चालू रखा। मराठों को एक परेशानी यह हो रही थी कि उन्हें चारे का प्रबन्ध काफी दूर के स्थानों से करना पड़ता था, जब कि टीपू के लिये अपने राज्य से ही रसद प्राप्त करना अति सरल हो रहा था। अतः हार कर मराठों ने रसदपूर्ति को छिन्न करने का प्रयास करना बन्द कर दिया। टीपू ने फिर दो एक बार अचानक छापा मारने की कोशिश की और एक बार तो तहव्वर जंग की सेना का बहुत सा सामान भी लूट ले गया।*

---

* ठीक इसी समय के करीब मराठा कैम्प में हैजा की बीमारी भी फैल गयी थी स्वयम् अपने हाथों हरी पन्त ने पेशवा को लिखा था कि हैजे की भयंकर बीमारी के कारण हमारे सेना की अत्यधिक हानि हो रही हैं। उदारता पूर्वक औषधियां बितरित की जा रही हैं कुछ अच्छे भी हो रहे है परन्तु अधिकांश बीमार मरते ही जा रहे हैं।

१७८७ ई]

ऊपर पंक्तियों में जिस प्रकार के युद्ध का विवरण प्रस्तुत किया गया है, उससे किसी भी दल को कोई लाभ होने की सम्भावना नहीं थी और कोई लाभ हो भी नहीं रहा था। ऐसी ही परिस्थितियों में जब टीपू की ओर से सन्धि का आग्रह पूर्ण सन्देश आया तो मराठा सेनानायक चमत्कृत हो उठे और उनकी समझ में ही नहीं आया कि आखिर इस आग्रह का कारण क्या है। यद्यपि टीपू की ओर से दो विशिष्ट अधिकारी बदरुज्जमां खां तथा अली रजां खां मराठा कैम्प में आकर तुकाजी होल्कर तथा गंगाधर रस्तिया के माध्यम से बातचीत कर रहे थे, फिर भी हरीपन्त फड़के यही सोचता रहा कि अवश्य ही टीपू किसी गम्भीर सामरिक चाल की सृष्टि कर रहा है। अपने इसी सन्देह के कारण वह सन्धि वार्ता को अनावश्यक रुप से बढ़ाने लगा। यद्यपि शान्ति स्थापन समझौता दस फर्वरी को ही हो गया था, परन्तु सन्धि अप्रैल के पूर्व न हो सकी। इस सन्धि के अनुसार नलगोंडा, कित्तूर तथा बदामी मराठों को मिल गये तथा शेष सभी स्थान टीपू को लौटा दिये गये। टीपू ने पैतालीस लाख कर देना स्वीकार किया, जिसमें से तीस लाख तुरन्त ही दे दिया और शेष के लिये एक साल का अवसर मांगा जो उसे मिल भी गया। एडोनी उसके पूर्वाधिकारी को वापस कर दिया गयापरन्तु टीपू ने जो तोपें उठवा लिया था तथा किले को जो नष्ट भ्रष्ट कर दिया था उसके बदले में उसे कुछ भी न देना पड़ा। सावनेर के नवाब के संग यह तै हुआ कि उसे वे तमाम क्षेत्र लौटा दिये जायेंगे जो हैदर अली का दामाद बनने से पूर्व उसके अधिकार में थे। सावनेर का नवाब टीपू से और विशेष तथा उसके षड्यंत्रो से अत्यधिक डरता था, अतः उसे सावनेर में जाकर रहने का साहस न हुआ। वह अपने मराठा मित्रों के साथ पूना में ही रहने लगा।

सितम्बर १७८६]

लोग ऐसा सोचते हैं कि सुविधा जनक स्थितियों में होते हुए भी टीपु ने जो इस प्रकार की सन्धि को मान लिया उसका एक मात्र कारण यह था कि उसे इस बात का पक्का विश्वास हो गया कि मराठों की ओर से अँगरेज भी युद्ध क्षेत्र में उतरने ही वाले हैं। बम्बई स्थित मि० मैलेट को पूना दर्बार में रहने का निमंत्रण तो पेशवा की ओर के मिला ही, साथ ही उससे यह भी प्रार्थना की गयी थी कि वह बदामी में ही जाकर नाना से मिल ले और ऐसा ही हुआ भी बदामी में मि० मैलेट की उपस्थिति का पता टीपू को चल गया और उसने समझा कि मराठों एवम् अँगरेजों में पक्की गुटबन्दी हो गयी है। उधर मैकफर्सन का केवल इतना ही तात्पर्य था कि टीपू थोड़ा चौंक जाय। कहने की आवश्यकता नहीं कि मैकफर्सन की नीति पूर्णतया सफल हुई और सचमुच टीपू इतना चौंक गया कि वह जिस किसी भी शर्त पर मराठों से सन्धि कर लेने को उतावला हो उठा। इसके थोड़े ही दिनों बाद सितम्बर सन् १७८६ में लार्ड कार्नवालिस ने गवर्नर जनरल पद का भार ग्रहण किया और तुरन्त ही उसने निजाम अली तथा पेशवा को पत्र भेज दिया कि विरोधी किसी भी अभियान में अँगरेज हिस्सा नहीं लेगे। वह समय ऐसा था कि अपनी स्थिति को केवल बनाये रखने के लिये भी अँगरेजों के लिये वह आवश्यक था कि वे तीनों प्रेसीडेन्सियों में यथेष्ट सामरिक शक्ति रक्खें, क्योंकि इन तीनों ही प्रान्तों की स्थिति एक दूसरे से इतनी अलग और दूर थी कि आवश्यकता आ पड़ने पर एक प्रेसीडेन्सी की सेना दूसरे प्रेसीडेन्सी तक कई महीनो में ही पहुंच सकती थी। गवर्नर जनरल द्वारा की जाने वाली प्रान्तीय स्तर की तैयारियों का समाचार पाकर टीपू ने यही समझा कि अँगरेज उसी को नष्ट करने के लिये ये तैयारियाँ कर रहे हैं अतः यह सुन कर वह स्वयम् ऐसे काम करने लगा जो आगे चल कर उसी के लिये हानि

कारक सिद्ध हुए । वह इस लिये कमर कस कर तैयार होने लगा कि वह इस बार न केवल मद्रास से वरन समूचे भारत से ही अँगरेजों को उखाड़ फेंकेगा ।

पूना में रेजिडेण्ट की नियुक्ति हो जाने से टीपू तो आतंकित हुआ मगर सिंधिया की भी ईर्ष्या की सीमा न रही। मन मार कर ही उसने इस प्रस्ताव पर अपनी सहमति दी । उसे प्रसन्न करने के लिये गवर्नर जनरल ने मि० मैलेट को निर्देशित किया कि गवर्नर जनरल को कोई भी कागज भेजना हो तो उस पर सिंधिया की सम्मति ले ली जाय, परन्तु सिंधिया अपनी हिन्दुस्तान सम्बन्धी महत्वकांक्षाओं के कार्यान्वियन में आगे चल कर इतना पस्त हुआ कि उसे ध्यान ही न रह गया कि वह पूना में नित्य प्रति बढ़ते हुए अँगरेजों के प्राभव को रोकने की चेष्टा करे या दक्षिण के क्रिया कलापों का ही अध्ययन करे, उसके कार्यान्वियन की चर्चा ही अगले अध्याय का विषय होगा ।

तेंतीसवां अध्याय

महादजी सिंधिया और राजपूतों में संघर्ष

[१७८५--१७९०]

सिंधिया की परेशानियाँ—उसकी भूलें--मुसलमान सर्दारों से उसकी अनबन—मु० बेग हमदानी—सिंधिया द्वारा राजपूतों से कर वसूली--राजपूतों से उसका संघर्ष—सिंधिया की बिकट परिस्थितियाँ—राजपूतों से सन्धि का विफल प्रयास--मु० बेग का विश्वासघात—राजपूतों की विजय—शाही सेना का विलगाव--सिंधिया की चारित्रिक दृढ़ता का प्रदर्शन--नाना फड़नवीस का दृष्टिकोण--भरतपुर के समीप युद्ध—मराठों एवम् जाटों का पराभव--मराठों की प्रगति—सिंधिया पुनः प्रतिष्ठित-उसकी स्थिति—सिंधिया का दृष्टिकोण—दक्षिण के कार्यकलाप।

हिन्दुस्तान में जिन क्षेत्रों को सिंधिया ने जीता था, वे क्षेत्रफल के हिसाब से तो अवश्य ही बड़े महत्व पूर्ण थे, परन्तु आर्थिक दृष्टि से वे इतने साधन सम्पन्न नहीं थे कि उनको जीतने में सिंधिया का जो कुछ भी व्यय हुआ था, उसकी पूर्ति कर देते। इस कार्य के लिये उसे अतिरिक्त सेना रखनी पड़ी थी और उस पर अतिरिक्त बेतन भार भी अत्यधिक बढ़ गया था। अपने इस वृद्धिगत व्यय की पूर्ति के लिये सिंधिया ने कुछ ऐसे काम किये जो राजनीति के सिद्धान्तों के प्रतिकूल तो थे ही, अनुचित भी कम नहीं थे। उसने जो नयी शक्ति प्राप्त की थी, उससे वह विदेशी शत्रुओं को तो सुविधा से दबा सकता था परन्तु घरेलू शत्रुओं की संख्या बढ़ जाने से उसकी कठिनाइयों में भी वृद्धि होती गयी। उसके आन्तरिक शत्रु भी कम प्रबल नही थे। सिंधिया ने कितने ही मुस्लिम सर्दारों से उनकी जागीरें छीन ली थी। फलतः वे सब उसके घोर शत्रु हो रहे थे। शेष मुसलमान सर्दार भी निरन्तर इस भय से आशंकित रहते थे कि न जाने कब उनकी जागीर छीन ली जाय। अतः वे सब भी दिल से सिंधिया का पराभव चाहते थे। इन आशंकाग्रस्त व्यक्तियों में मु० बेग हमदानी एक प्रमुख व्यक्ति था, जिसे सिंधिया ने राघवगढ़ से दिल्ली बुला लिया था और उसे आदेश दिया था कि वह अपनी सेना के एक अंग को एकदम से विसर्जित कर दे, परन्तु उसकी आज्ञा का पालन नहीं हुआ था। यद्यपि मुहम्मद बेग हमदानी ने सिंधिया के आदेश का पालन नहीं किया था, परतु वह मन ही मन डर रहा था कि अवसर पाते ही सिंधिया बल पूर्वक उससे अपना आदेश मनवाने का प्रयास करेगा। इस भय से आंतकित हो कर वह प्रति दिन, प्रतिक्षण सिंधिया के पराभव की कामना करता रहता था। शीघ्र ही ऐसा अवसर भी आ गया कि उसे अपनी गुप्त शत्रुता कों सर्व साधारण के समक्ष भी और स्वयम् सिंधिया के समक्ष भी प्रगट ही कर देना पड़ा।

१७८५ ई०]

इस समय पेशवा बादशाह का वकील ए मुतलक था और सिंधिया मुगल दर्बार में उसका प्रतिनिधि था, अतः यह उसका कर्तव्य था कि जिन क्षेत्रों से लगान व कर की वसूली नहीं हुई थी, उन क्षेत्रों से वसूली का प्रबन्ध करता। सिंधिया ने राजस्थान के रजवाड़ों से इस प्रकार की कर वसूली

का प्रयत्न किया। अपनी सेना के साथ शाही सेना को भी मिला कर वह स्वयम् उस सेना के सेनापति के रूप में जयपुर के द्वार पर जा खड़ा हुआ और कर स्वरूप साठ लाख रुपयों की माँग की। जयपुर राज्य ने इस मांग कि आँशिक पूर्ति कर दी और शेष को शीघ्र ही देने का वादा किया। जितने समय में रुपये देने का वादा था, उतना समय बीत जाने पर सिंधिया ने रायजी पटेल को उसकी वसूली के लिये भेजा। अब तक राजपूतों ने सामरिक तैयारी कर ली थी और उन्हें मुहम्मद बेग हमदानी तथा अन्य असन्तुष्ट सर्दारों से मदद का पूरा आश्वासन मिल चुका था। सिंधिया ने स्वयम् आ कर जब साठ लाख रुपयों की मांग की थी, तब की परिस्थितियाँ दूसरी थीं, परन्तु अब परिस्थितियाँ राजपूतों के अधिक अनुकूल हो गयी थीं अतः उन्होंने कर चुकाने से इनकार कर दिया, राय जी पटेल को अनेक प्रकार से चिढ़ाया और उस पर आक्रमण कर के उसे भगा भी दिया। मुगल दर्बार में सिंधिया विरोधी दल को राजपूतों के इस विद्रोह से बहुत बल मिला। बादशाह को कुछ दिनों से उसकी वृत्ति नियमित रूप से नहीं मिल रही थी। मराठा सर्दारों के अमर्यादित व्यवहार एवम् शिष्टाचार से भी उसे शिकायत थी। उसका कहना था कि स्वयम् सिंधिया भी ऐसे कार्य व व्यवहार करता था, जो उसकी अधिकार सीमा के बाहर थे। अब तक भी चुपचाप सब कुछ देख रहा था परन्तु सिंधिया विरोधी दल की प्रबलता इस सीमा तक परिलक्षित होने लगी कि पागल कहे जाने वाले बादशाह को भी इसका पता चल गया और वह खुले शब्दों में सिंधिया के कार्य व्यवहार के विरुद्ध शिकायतें करने लग गया। वास्तव में मुगल बादशाह में शक्ति व सामर्थ्य की इतनी कमीं हो गयी थी कि वह उसी दल व व्यक्ति की हाँ में हाँ मिलाने लगता था, जिसे वह अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली देखता था। सिंधिया इन तमाम परिवर्तनों को स्पष्ट देख रहा था, वह एक एक व्यक्ति का अध्ययन कर रहा था और हर एक की चालो से वह पूर्ण परिचित हो चुका था। उसका निजी कोष रिक्त था, स्वयम् उसकी सेना का भी और शाही सेना का वेतन बकाया पड़ गया था और ऐसे समय में उसका भाग्य अवलम्बित था एक ऐसे अभियान पर जिसकी सफलता संदिग्ध थी। फिर भी, इन विपरीत परिस्थियों में भी उसने युद्ध क्षेत्र में प्रवेश किया या यों कहें कि उसे प्रवेश करना पड़ा। उसका फ्रेंच सेनापति डी वाइन अभी बुंदेल खण्ड से लौटा था। इस सेना के साथ अप्पा खण्डे राव की भी सेना मिला कर इन्हें सिंधिया ने अपनी सेना के साथ संयुक्त कर लिया। अब उसके पास पर्याप्त संख्या में सैनिक हो गये थे, परन्तु उसका दुर्भाग्य भी कम नहीं था। इसी समय उसे समाचार मिला कि उत्तर में सिक्खों ने उपद्रव कर दिया है अतः विवश हो कर इसी सेना में दो दस्ते निकाल कर उन्हें हैबतराव फाल्के तथा अम्बा जी इंगलिया के सेनापतित्व में उत्तर की ओर भेजना पड़ा।

इन विपरीत परिस्थितियों में भी सिंधिया जयपुर पहुँचा और चाहा कि राजपूतों से उसकी सन्धि हो जाय, परन्तु बदली हुई परिस्थितियों से पूर्ण परिचित राजपूत भला इस समय सन्धि वार्ता
पर क्यों कान देते। उन्होंने ऐसा व्यवहार किया मानो उनसे सन्धि वार्ता ही
१७८७ ई०] न हो रही हो। इस समय राजा प्रताप सिंह जयपुर की गद्दी पर था। जोधपुर
के राजा ने * अन्य कई नरेशों को साथ ले कर प्रतापसिंह का साथ दिया।
जयपुर का राजा प्रताप सिंह उसी जय सिंह का उत्तराधिकारी था। इस प्रकार के

---

* सिंधिया के इस आक्रमण का समाचार पाकर प्रताप सिंह ने मारवाड़ के राजा विजय सिंह को एक पत्र लिखा था कि "मराठों के अत्याचार से आप भी परिचित हैं। इनके अत्याचारों को देख कर मुझे दारुण वेदना होती है और मैं किसी भी अवस्था में इनका दमन करना आवश्यक समझता हूँ। इसके लिए आवश्यक है कि सभी राजपूत एक होकर मराठा शक्ति के विनाश में योगदान करें।

संयोग एवम् सम्मिलिन से प्रताप सिंह की शक्ति अत्यधिक बढ़ गयी थी, सिंधिया के साथ इस बार एक कठिनाई और थी । अब तक उसके साथ मराठा सैनिक रहते थे जो घोड़ों की पीठ पर ही सो लेते थे और अवसर पड़ने पर चना चबेना से भी काम चला लेते थे । इस बार उसके साथ शाही सेना भी थी जो लड़ने में कम परन्तु खान पान, रागरंग और नाना प्रकार की विलासिताओं की अभ्यस्त थी । ऐसी सेना के लिये रसद पूर्ति की समस्या वैसे ही जटिल थी, उस पर राजपूतों द्वारा निरन्तर पहुँचायी जाने वाली बाधाओं के कारण यह समस्या जटिलतर होती गयी । सैनिकों की यह प्रवृत्ति होती है कि जब भी उन्हें कोई कष्ट होता है तो वे सेना नायक पर ही बिगड़ उठते हैं । सिंधिया की सेना में रसद का कष्ट तो था ही, इधर मुहम्मद बेग हमदानी तथा उसके भतीजे इस्माइल बेग ने इसी समय उसका साथ छोड़ कर राजपूतों से मिल जाने का निर्णय कर लिया और तत्क्षण वे दोनों चले भी गये । सिंधिया को भी उनके इस कार्य की भनक लग गयी और वह डरने लगा कि कहीं यह छूत समूची शाही सेना में न फैल जाय । इसे रोकने का सर्वोत्तम उपाय उसकी समझ में यही आया कि सैनिकों को युद्ध में व्यस्त कर दिया जाय और उसने यही किया भी । युद्ध का प्रारम्भ बड़े ही आकस्मिक ढंग से हुआ और प्रारम्भ में ही तोप के एक गोले ने हमदानी का काम तमाम कर दिया । उसके मरने पर उसकी सेना युद्ध क्षेत्र से भागने को ही थी कि इस्माइल बेग ने उसका नेतृत्व ग्रहण कर लिया और किसी प्रकार उस दिन का युद्ध बिना किसी निर्णय के समाप्त हो गया । इस्माइल बेग की युद्ध कुशलता के ही कारण उस दिन मराठों को पीछे लौटना पड़ा । अभी सिंधिया फिर से युद्ध प्रारम्भ करने की योजना बना ही रहा था कि युद्ध के तीसरे दिन समूची शाही सेना इस्माइल से जा मिली और अपने साथ अस्सी तोपों को भी लेती गयी ।*

सिन्धिया विकट परिस्थिति में फँस गया परन्तु इस अवसर पर उसमें जिस चारित्रिक दृढ़ता का प्रदर्शन हुआ, वैसी दृढ़ता उसमें कभी भी नहीं देखी गयी ।† उसने अपने अधिकांश साथियों एवम् भारी सामानों को ग्वालियर के किले में भेज दिया और उन लोगों को कुशलगढ़ से होते हुए जाने का आदेश दिया । इसके बाद वह तेजी से डीग की ओर चला । उत्तर की ओर गयी हुई सैनिक टुकड़ियों को वापस बुलाकर उसने डीग पर अधिकार कर लिया और जाटों को कई स्थान दे दिये । उसने सोचा था कि कहीं जाट भी इस असमय में राजपूतों के साधन न हो जायँ अतः उसे ये कदम उठाने पड़े । उसने अपनी बड़ी तोपों को भरतपुर के किले में रक्खा और अलीगढ़ एवम् आगरे के किलों की रक्षक सेना को और भी मजबूत किया ।

सिन्धिया को इन सब प्रबन्धों को पूर्ण करने के लिये थोड़े समय की आवश्यकता थी और यदि राजपूत इस समय सिन्धिया को निरन्तर दबाने का प्रयास बन्द नहीं कर देते तो शायद सिन्धिया चम्बल के दक्षिणी किनारे पर ही जाकर दम लेने का अवसर पाता, परन्तु राजपूतों की सदैव ही से ऐसी प्रकृति रही है कि वे केबल शत्रुओं का मानमर्द नहीं पसन्द करते हैं । किसी भी शत्रु को स्वदेश

मैं स्वयम् अपनी सेना के साथ युद्ध क्षेत्र में जाऊँगा… यदि आप हमारी सहायता करें तो राजस्थान के सभी राजाओं की स्वतन्त्रता सदा के लिए सुरक्षित हो जाय ।" इसी पत्र के उत्तर में विजय सिंह युद्ध में शामिल हुआ था । यह युद्ध तुङ्गा नामक स्थान पर हुआ था जिसमें सिंधिया को पीछे हटना पड़ा था । कृपया देखें टाड कृत राजस्थान नामक ग्रन्थ में "जयपुर का इतिहास" नामक खण्ड—अनुवादक

* मराठा हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर।

† डी० बाइन की मौखिक स्वीकारोक्ति ।

से बाहर खदेड़ देने में ही वे अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। शत्रु को दूर तक खदेड़ना उन्हें पसन्द नहीं होता। यह सत्य है कि राजपूतों में यदि यह बात होती तो न जाने भारत का इतिहास आज क्या होता, परन्तु देश का दुर्भाग्य है कि इस देश के लोगों ने इतिहास की उपलब्धियों से कभी कुछ नहीं सीखा। राजपूत सिन्धिया का मानमर्दन करना चाहते थे और उन्होंने उसे कर दिखाया। चूँकि उसका सर्वनाश उनकी प्रकृति के विरुद्ध था अतः उसके लिये उन्होंने कोई प्रयत्न नहीं किया। वास्तव में दिल्ली दर्बार में मराठों के नित्यप्रति वर्तमान प्रभाव को देखकर राजपूत भी प्रसन्न थे और ने नहीं चाहते थे कि मुगल दर्बार से सिन्धिया का प्रभाव ही समाप्त हो जाय। अतः सिन्धिया के पीछे हटते ही विभिन्न राजपूत राजे विभिन्न राजधानियों को चले गये और उन्होंने इस काम का भार इस्माइल बेग पर छोड़ दिया कि वह सिंधिया के हाथों से शाही क्षेत्रों को मुक्त करने का प्रयास करे। सिन्धिया अभी भी आगरा के आसपास मँडरा रहा था अतः इस्माइल बेग ने उसी ओर को प्रयाण किया; वैसे वह नहीं चाहता था कि सिन्धिया से उसका सीधा सामना हो जाय। इस्लाइल बेग की सेना में और सिन्धिया की सेना में प्रायः आठ दिन नित नयी झड़पें होती रहीं और एक ही गाँव को कभी इस सेना ने हस्तगत कर लिया और कभी उस सेना ने। अभी दोनों सेनाएँ इन छोटी छोटी शस्त्र परीक्षाओं में ही फँसी थी कि सिन्धिया को सूचना मिली कि जाबिता खाँ रुहेला का लड़का गुलाम कादिर एक बड़ी सेना के साथ इस्माइल बेग की मदद करने के लिये बढ़ा चला आ रहा था। इस सूचना को पाते ही बड़ी तेजी से सिन्धिया ग्वालियर की ओर लौटा। इस लौटने की तेजी में उसके कितने ही सैनिकों ने यमुना के कछार के नालों एवम् भरकों में फँस कर अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी। इन दिनों सिन्धिया बार-बार पेशवा से साहाय्य याचना कर रहा था, एक से बढ़कर एक करुणा तर्क एवम् आग्रहपूर्ण पत्र लिखता रहा। उधर से निराश होकर उसने नाना फड़नवीस को एक करुणापूर्ण पत्र लिखा, जिसमें उसने लिखा कि 'यद्यपि उसकी स्थिति अत्याधिक निराशापूर्ण नहीं है, फिर भी चूँकि उसे इस बात का भय है कि कहीं अँगरेज लोग राजपूतों या मुगल दर्बार के साथ गुटबन्दी न कर लें और चूँकि उसका विश्वास था कि इस प्रकार के प्रयत्न चल रहे हैं अतः उसे (नाना को) यह समझ लेना चाहिये कि यदि ऐसा गँठबन्धन हो गया तो वह मराठा मण्डल के लिये कितना विनाशकारी होगा। एक बार भी अँगरेजों के चरण हिन्दुस्तान में जम गये तो उन्हें उखाड़ पाना किसी के भी वश के बाहर की बार हो जायगी।' उसने लिखा कि यदि एक बार अँगरेजों की शक्ति को मुगल बाददशाह की सत्ता का सहारा मिल गया तो अगरेजों की सफलता में चार चाँद लग जायँगे और वैसी दशा में न मराठे ही रह जायँगे और न मुगल बादशाह ही। उसने नाना को आगे लिखा—'कि उसके मन में न तो नाना के प्रति कोई ईर्ष्या है और न किसी अन्य मराठा सर्दार के प्रति और यदि नाना के मन में कोई ईर्ष्या हो तो उसे इस समय हटा दें और होल्कर, हरीपन्त फड़के तथा परशुराम भाऊ से पूँछ देखें कि क्या कभी सिन्धिया ने मराठा हितों के दृष्टिकोण नहीं अपनाया है और क्या उसके अधिकांश कार्यों से मराठों की शक्ति व प्रतिष्ठा नहीं बढ़ी है? सिन्धिया ने लिखा था कि "हम सब का स्वामी एक है अतः हम सब के प्रयत्नों का लक्ष्य भी एक ही होने दें। यदि आप यह समझते हैं कि मैं आप से ईर्ष्या करता हुँ तो आप अपने से ही पूछें कि मोरोबा के विरुद्ध किसने आप की सहायता की थी और, किसने आपके विकट प्रतिद्वन्दी सखाराम बापू को आपके नियन्त्रण में कर दिया था और नकली सदाशिवराव भाऊ द्वारा उठाये गये विद्रोह को किसने शान्त किया था। ताले गाँव में अगरेजों से सन्धि किसके बल पर हुई थी। आप मेरी भूत कालीन सेवाओं का ध्यान करें, सन्देह के बीज को हृदय से निकाल फेंकें, मतभेद पैदा करने वालों का मुँह तोड़ दें। आइये हम सब

मिलकर हिन्दुस्ताम में मराठों की पताका फहराएँ और अपने मण्डल को भग्न होने एवम् अपदस्थ होने से बचा लें।" *

यद्यपि यह सत्य नहीं है कि अँगरेजों के मन में बादशाह से किसी प्रकार की मैत्री करने का विचार था, फिर भी पत्र की अधिकांश बातें सत्य थीं और नाना फड़नवीस भी यह चाहता था कि मराठा शक्ति का विकास हो और उसका प्रभाव क्षेत्र बढ़े, परन्तु वह यह भी चाहता था कि पेशवा ही पेशवा मण्डल का प्रधान बना रहे। उधर सिंधिया के प्रत्येक कार्य से यही ध्वनि निकल रही थी कि वह एक स्वतंत्र राज्य बनाना चाहता है या स्वयम् मराठा मण्डल का प्रधान व्यक्ति हो जाना चाहता है। नाना यह भी चाहता था कि पूरा हिन्दुस्तान मराठा प्रभाव क्षेत्र में रहे, परन्तु वह यह नहीं चाहता था कि सैनिक सहायता देकर सिंधिया को इतना अधिक शक्तिशाली बना दे कि वह मराठा मण्डल के कानून के बाहर हो जाय।

पूना में एक सेना इसी के लिये तैयार खड़ी थी कि सिंधिया के तुंगा के युद्ध में पराभव के पूर्व ही अली बहादुर † के संचालन में भेजी जाय परन्तु नाना की आन्तरिक इच्छा यह थी कि राजपूतों से पेशवा के नाम पर एक ऐसी सन्धि भी हो जाय जो मराठों के प्रभाव क्षेत्र को तो बढ़ा दे परन्तु उसके प्रबल प्रतिद्वन्दी सिंधिया के प्रभाव को न बढ़ने दे। वह वास्तव में सिंधिया की महत्वाकाँक्षाओं से डरता था। मराठों में कुछ लोगों का विश्वास था कि नाना का जयपुर के राजा के साथ कुछ इसी प्रकार का पत्राचार चल रहा था और इसी पत्राचार के कारण पराभवोपरान्त सिंधिया का पीछा राजपूतों ने नहीं किया था। नाना चाहता था किसी भी प्रकार समूचा हिन्दुस्तान व समूचा दक्षिण हिन्दुओं के प्रभाव क्षेत्र में आ जाय और अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह राजा जयपुर से पत्र व्यवहार करता रहा होगा, परन्तु नाना के सम्मुख अपने उद्देश्य की पूर्ति का कोई रास्ता नहीं दिखायी पड़ रहा था। इधर तो नाना इन राजनैतिक उलझनों में फँसा था और उधर टीपू की ओर से नित नयी तैयारियों की सूचना मिल रही थी। इसलिये भी नाना सिंधिया की सहायता में कोई सेना नहीं ले आ सकता था। इधर सिंधिया भीं सोच रहा था कि सम्भव है की नाना भी किसी प्रकार की मदद न भेजना चाहे या चाह कर भी न भेज सके। अतः अपने ही बल पर वह इन कठिनाइयों का सामना करना चाहता था और इसी लिये वह नाना की सहायता की प्रतीक्षा में हाथ पर हाथ रख कर बैठने के बदले निजी साधनों का ही पूर्ण उपयोग कर रहा था। उसका प्रबलतम् शत्रु था इस्माइल बेग जो राजस्थान से हट कर आगरा को आतंकित कर रहा था। शेनवी कुटुम्ब लखवा दादा नामक मराठा ब्राह्मण आगरा दुर्ग की रक्षा में व्यस्त था। सन् १७८५ ई० में जाबिता खाँ की मृत्यु होने के बाद उसका लड़का गुलाम कादिर जागीर का मालिक हुआ था। कुछ ही दिनों के बाद वह भी एक सेना लेकर इस्माइल बेग से आ मिला था। सिंधिया उसका पैत्रिक शत्रु था और अब तक गुलाम कादिर

---

* नाना के नाम महादजी सिंधिया के द्वारा भेजे गये मूल पत्र का अनुवाद।

† पेशवा बाजी राव मस्तानी नामक एक कंचनी (वेश्या) के प्रेम में फँस गया था और सर्व साधारण के जानते हुए भी उसे पत्नी के समान रक्खा था। उससे एक पुत्र भी हुआ था, जिसका ब्राह्मण के समान ही यज्ञोपवीत संस्कार कराने का उसने असफल प्रयत्न किया था। हार कर उसका लालन-पालन मुसलमान की तरह ही होने दिया। उसका नाम रक्खा गया था शमशेर सिंह। अली बहादुर इसी शमशेर का बुत्र था। देखिये सर देसाई कृत मराठों का नवीन इतिहास भाग दो में बाजी राव का चरित्र—अनुवादक

को साहस नहीं हो पा रहा था कि वह सिंधिया के प्रतिकूल कुछ करे परन्तु इधर सिंधिया को विपरीत परिस्थितियों में फँसा देख कर वह भी विरोध पक्ष में आ जुटा था। गुलाम कादिर में जन्म जात क्रूरता एवम् नृशंसता कूट कूट कर भरी हुई थी। उसने देखा कि इस समय एक ही तीर से दो चिड़ियां मारी जा सकती हैं। एक ओर तो इस्माइल बेग की शुभेच्छा प्राप्त की जा सकती है और दूसरी ओर उसके घोर शत्रु सिंधिया की पराभव। ऐसी सूचना मिली थी कि गुलाम कादिर पहले इस्माइल बेग से ही मिलेगा, परन्तु इसके विपरीत वह दिल्ली के थानों से मराठा सैनिकों को निकालकर अपनी चौकियाँ स्थापित करने लगा। शाही महल के चारो ओर भी उसी के सैनिक फैल गये। उस वक्त उसने बादशाह के साथ कोई क्रूरता नहीं दिखायी। इसके बाद उसने अलीगढ़ पर घेरा डाला और उसे सर कर लिया तब कहीं वह इस्माइल बेग की सहायता करने के लिये आगरा की ओर बढ़ा जो अब भी आगरा को घेरे पड़ा था। यदि इस्माइल बेग ने चतुरता से काम किया होता और जाटों
१७८८ ई०] को जो स्थान सिंधिया ने दिये थे, उन्हों को ज्यों का ज्यों रहने दिया होता तो शायद जाट उसकी सहायता करने लग जाते या कम से कम निष्पक्ष ही रह जाते। परन्तु इस्माइल बेग ने इसके विपरीत आचरण किया और जाटों को भी अपना शत्रु बना लिया। फल स्वरुप जाट लोग भी उसके काम में बाधा डालने लगे। कुछ दिनों बाद ही सिंधिया ने भी अपनी स्थिति सँभाल ली और उसने आगरा में घिरे हुए लखवा दादा की सहायता करने का निश्चय किया। इस क्रम के लिये उसने अपने सेनापति रन्ने खाँ * को आगरा की ओर भेजा। उसके साथ अपनी घुड़सवार सेना के साथ अप्पा खण्डेराव भी था तथा डी बाइन के संचालन में पैदल सैनिक की दो बटालियन भी थीं। चूंकि जब ये सेनाएँ ग्वालियर से चलीं उसके पहले ही यह समाचार मिल गया था कि गुलाम कादिर इस्माइल बेग के साथ मिल गया है अतः इतनी अपर्याप्त सहायता भेजना ठीक नहीं था। यह सेना भरतपुर में जा कर जाट सेना से मिली और तब संयुक्त रुप में आगरा की ओर चली। अभी वे केवल सोलह मील ही चल पाये थे कि उन्हें इस्माइल बेग सामने ललकारता दिखायी पड़ा जो इस सेना के आने का समाचार पाकर अपने घेरे को उठा कर इनका सामना करने को चल पड़ा था और जिसके साथ गुलाम कादिर भी था।

जाटों की सवार सेना शिव सिंह फौजदार द्वारा संचालित हो रही थी। उनके पैदल सैनिकों में नियमित सैनिक ही अधिक थे, जिनका परिचालन लिसनों नामक एक फ्रांसीसी कर रहा था और दो मुसलमान अफसर भी उसके साथ थे। प्रत्येक के आधीन अगल-अलग दस्ते थे। इन मुसलमान सर्दारों में एक का नाम जहांगीर खाँ था, उसने एक भी गोला छुटने के पहले ही मराठा सेना को छोड़ कर इस्माइल बेग का पक्ष ले लिया। इस्माइल बेग के गोलों की मार से युद्ध का श्री गणेश हुआ। मराठा सेना के दायें पक्ष में जाट सेना थी और बाम पक्ष में मराठा सेना थी। दक्षिण की

---

* सर जान मालकम प्रदत्त सूचना के अनुसार रन्ने खाँ एक भिश्ती था और उसने सिंधिया की प्राण रक्षा की थीं। जब वह पानीपत के युद्ध में सब कुछ गँवा कर वापस लौटा था। सिंधिया घायल था और शत्रु पक्ष के सैनिक उसके पीछे थे। ऐसी स्थिति में रन्ने खाँ ही उसे उठा कर ले गया था। इस उपकार के बदले में सिंधिया ने उसे अपनी सेना में उच्च पद प्रदान किया था और उसने भी अपने को इस प्रतिष्ठा के योग्य सिद्ध किया था। वैसे लोगों का विश्वास है कि सिंधिया की रक्षा त्र्यम्बकजी उंगलिया के हाथों हुई थीं, जो उसे अपने ही घोड़े पर पीछे बैठाल कर लाया था। उंगलिया एक सिलीदार था।

पैदल सेना पर गुलाम कादिर ने करारा आक्रमण किया और उन्हें पीछे हटने को विवश कर दिया। केवल वही सैनिक मैदान में अड़े रहे जो लिसनों के संचालन में थे। इस सेना ने थोड़ी देर तक गुलाम कादिर के आक्रमण को रोका। इस्माइल बेग मराठों के बाम पक्ष के सामने था। उसने पूरी वीरता के साथ अपने सामने वाले पक्ष पर आक्रमण किया परन्तु उसके सामने डी वाइन की सेना थी जो अपूर्व दक्षता के साथ युद्ध कर रही थी। उसकी युद्ध कुशलता के सामने इस्माइल बेग की एक नहीं चली। युद्ध क्षेत्र में सभी की यह राय हुई कि यदि लिसनों तथा डी वाइन को सवार सेना की यथोचित सहायता मिली होती तो युद्ध का परिणाम कुछ और ही हुआ होता। अत्यधिक भारो हानि उठा कर नियमित सेना को पीछे हटना पड़ा और रात के अन्धेरे की सुविधा उठा कर समूची सेना भरतपुर को लौट गयी। इस्माइल बेग तथा गुलाम कादिर ने जाट सर्दार रणजीत सिंह को सन्देश भेजा कि बह मराठों से अपना सम्पर्क तोड़ दे अन्यथा वे आगरा को सर करने के पश्चात् भरतपुर को ही घेरेंगे। परन्तु स्वयम् उन दोनों का संगठन ही इतना अधिक अस्थायी रहा कि किसी को उनसे भय करने की आवश्यकता ही नहीं रह गयो। आगरा का दुर्गरक्षक लखवादादा ने वीरता पूर्वक अपने किले की रक्षा की और उन दोनों की दाल वहाँ न गल सकी। थोड़े ही दिनों के बाद इन दोनों सर्दारों में ही मतभेद पैदा हो गया। उधर रन्ने खाँ को समाचार मिला कि गुलाम कादिर की जागीर के पड़ोस में सिक्खों ने उपद्रव कर दिया है। उसने झट थोड़े से मराठा और जाट सैनिकों को इस निर्देश के साथ सिक्खों से मिल जाने के लिये भेज दिया कि वे उन्हें भड़का कर गुलाम कादिर की जागीर पर आक्रमण करा दें। रन्ने खाँ की यह चाल काम कर गयी। गुलाम कादिर तुरन्त ही बलवाइयों को दंड देने के लिये अपनी जागीर की ओर चल पड़ा। उधर सिंधिया ने थोड़ी सी सहायता दे कर रन्ने खाँ को सशक्त कर दिया और अब एक बार फिर मराठों एवम् जाटों की संयुक्त सेना ने आगरा की ओर प्रयाण किया। इस स्थान पर एक भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें डी वाइन की बटालियनों ने बड़ी वीरता का प्रदर्शन किया। इस्माइल बेग की सेना पूरी जून १८] तरह से पराजित हो कर तितर बितर हो गयी। स्वयम् इस्माइल बेग भी गम्भीर रूप से घायल हो गया और अपने तेज घोड़े के कारण युद्ध क्षेत्र से भागने में सफल हो गया। घोड़े सहित वह यमुना में कूद पड़ा और किसी तरह उस पार पहुँच कर गुलाम कादिर के खेमे में जा पहुँचा जहाँ पर गुलाम कादिर ने उसे हाथों हाथ लिया। उसके सैनिक तितर बितर हो गये थे। धीरे-धीरे वे सब दिल्ली में जुटने लगे। इस समाचार को पा कर इस्माइल बेग भी दिल्ली की ओर चला और गुलाम कादिर भी उसके साथ ही गया। यहाँ पर बादशाह ने न तो गुलाम कादिर को शहर में घुसने की इजाजत दी और न इस्माइल बेग को। गुलाम कादिर को भी अपनी चालों पर पूरा भरोसा था। उसने बादशाह के एक परम विश्वस्त कर्मचारी को भारी लालच दे कर मिला लिया। उसके द्वारा वह न केवल किले में दाखिल ही हुआ वरन् उसने शाही महल के एक एक कोने को अपने अधिकार में ले लिया और सभी प्रमुख स्थानों पर उसके सैनिक नियुक्त हो गये। अब अपनी सम्पूर्ण जाग्रत पशुता के सहारे वह बादशाह को परेशान ब अपमानित करने लगा। इस अवसर पर गुलाम कादिर ने जिन अमानवीय अत्याचारों का प्रदर्शन किया, उसकी तुलना संसार के इतिहास में नहीं मिल सकती। यह नृशंशता दो मास तक चलती रही और इस समय तक बादबाह गुलाग कदिर के खंजर की चौट खा कर अन्धा हो चुका था, उसके पास का एक एक सामान लूट लिया गया था, उसके हरम की असूर्यम्पश्या रमणियाँ नाना प्रकार से अपमानित हो चुकी थीं और स्वयम् दीन, हीन, अशक्त, अन्धा बादशाह गद्दी से उतारा जा चुका था और उसके

कितने ही कुटुम्बी भूख की ज्वाला से तड़प तड़प कर प्राण दे चुके थे। विचित्रता तो यह है कि एक मुसलमान के हाथों ही एक मुसलमान की इतनी दुर्गति हुई थी। शाहजादे और शाहजादियां, बादशाह और उसकी बेगमें असह्य यंत्रणा पा कर उसके आदी हो चुके थे। ऐसे समय में मराठा सेना दिल्ली की ओर चली। इसमें सन्देह नहीं कि पहले इस्माइल बेग ने भी राय दी थी कि अपने बढ़े हुये व्यय को पूरा करने के लिये शाही महल को लूट लिया जाय परन्तु जब उसने अपने साथी क्रूरताओं को देखा तो वह उससे अप्रसन्न हो उठा और एक जागीर पाने की प्रतीक्षा पर वह मराठा सैन्य के साथ हो गया। वास्तव में गुलाम कादिर की क्रूरता एवम् पाशविकता को देख कर इस्माइल बेग उससे घृणा करने लग गया था और इसी घृणा के कारण वह अपने साथी का ही विरोधी बन बैठा। इस सेना के आगमन का समाचार पा कर गुलाम कादिर दिल्ली से बाहर निकल गया और अपने साथ शाहजादा बेदार बख्त को भी लेता गया, जिसे उसने शाहआलम को गद्दी से उतारने के बाद बादशाह बनाया था।

दिल्ली प्रयाण में इतना अधिक विलम्ब करने के कारण सिंधिया की पर्याप्त आलोचना हुई और लोग कहने लगे थे कि यदि दिल्ली की ओर बढ़ने में सिंधिया इतना विलम्ब न करता तो शायद बादशाह की इतनी दुर्दशा नहीं हुई होती, परन्तु सिंधिया जानता था कि यदि कुछ दिनों तक इस्माइल बेग व गुलाम कादिर को स्वतंत्र छोड़ दिया जाय तो उनमें अवश्य ही मतभेद उत्पन्न हो जायगा और उनमें से एक अवश्य उसका साथी बन जायगा। सिंधिया का विचार एक दम सत्य हुआ और वास्तव में दो मास के भीतर ही उसे इस्माइल बेग का साथ प्राप्त हो गया। इसके अतिरिक्त उसके समक्ष कुछ अन्य बातें भी थीं। उसे सूचना मिली थी कि उसकी सहायता के लिये अली बहादुर तथा तुका जी होल्कर पूना से चल चुके हैं। नाना ने इन सेनाओं को इस शर्त के साथ भेजा था कि चम्बल के उत्तर में जो कुछ भी प्राप्त होगा, उसे पेशवा, होल्कर तथा सिंधिया में बराबर-बराबर बांट लिया जायगा।

इस प्रकार आगरा से जो सैन्य दिल्ली की ओर चले उसमें तीन सेनापति थे, रन्ने खाँ, अली बहादुर तथा अप्पा खण्डे राव और डी बाइन की दो बटालियनें भी थीं। इनमें से रन्ने खाँ प्रधान सेनापति था। उन सब को वहाँ पहुँचने की ही देर थी क्योंकि गुलाम कादिर तो पहले ही वहाँ से जा चुका था। दिल्ली में प्रवेश करना ही मानों उस पर अधिकार करना था। महलों में पहुँच कर रन्ने खाँ जो कुछ भी कर सकता था बादशाह का दुःख दूर करने के लिये वही किया। उसने बादशाह के साथ जो व्यवहार किया उसने न केवल बादशाह का वरन् समस्त शाही महल का दिल हरा हो गया। समूची दिल्ली ने इस बार दिल खोल कर मराठों का स्वागत किया। एक बड़ी सेना गुलाम कादिर के पीछे भेजी गयी, जिसने मेरठ में शरण लिया था। थोड़े दिनों तक तो उसने मराठा सेना को रोका, परन्तु जब उसने जान लिया कि किले का पतन भी अनिवार्य है और उसका पकड़ा जाना भी, तो एक दिन वह चुपके से अकेला ही एक तेज घोड़े पर निकल भागा। थोड़ी ही दूर जाने पर उसका घोड़ा ठोकर खा कर गिर गया और गुलाम कादिर बेहोश हो कर वहीं पड़ रहा। सवेरे एक किसान ने उसे पहचाना और उसे उठाकर मराठा कैम्प में ले गया। वहाँ उसे सख्त पहरे में रक्खा गया और सिंधिया के आदेशानुसार उसे इतनी शारीरिक यंत्रणा दी गयी कि वह मर गया। शाहजादा बेदार बख्त को मेरठ में ही कैद रक्खा गया और बाद में शाह आलम की आज्ञा से मार डाला गया।

महाद जी सिंधिया भी कुछ दिनों बाद ही दिल्ली पहुँच गया। उसने पूरे ठाटबाट के साथ

फिर से शाह आलम को गद्दी पर बैठाया। पेशवा को पहले से ही दिया गया वकील मुतकल का पद पक्का कर दिया गया और सिंधिया का पेशवा—सहायक—पद भी पक्का कर दिया गया। इस प्रकार एक बार फिर से सिंधिया में मुगल दर्बार में अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को प्राप्त कर लिया। १७८९ ई०]

गुलाम कादिर की जागीर को अधिकृत कर लिया गया। दोआब का अधिकांश भाग दिल्ली और आगरा के सूबे के साथ मराठा साम्राज्य में शामिल कर दिया गया। यह सब तो हो गया मगर सिंधिया की स्थिति अभी तक सुरक्षित नहीं हो सकी थी। कुछ समय तक तो उसे अब्दाली के आक्रमण का भय बना रहा जो अपने बादशाह तैमूरशाह के नायकत्व में अपनी समूची शक्ति के साथ युद्ध क्षेत्र में डटा था। सिंधिया को भय था कि अब्दाली के आते ही दिल्ली की समूची मुस्लिम शक्ति उसके साथ हो जा सकती है। इस्माइल वेग को मेवात में मनचाही जागीर मिल गयी थी, परन्तु अब्दाली के आक्रमण की स्थिति में उसका भी कोई भरोसा नहीं था। राजस्थान में भी उसके शत्रुओं का अभाव नहीं था और न उन शत्रुओं में शक्ति व सामर्थ्य की कमी थी। होल्कर तथा अली बहादुर विजित क्षेत्रों में से अपना भाग लेने के लिये अधिक लालायित थे न कि सिंधिया के पक्ष को प्रबल बनाने के लिये। इसी समय एक और परेशानी यह खड़ी हो गयी कि एक शाहजादा दिल्ली से निकल भागा और हैदराबाद में निजाम अली के पास जा पहुँचा। इस प्रकार सिंधिया को यह भी आशंका हो गयी कि कहीं शाहजादा निजाम अली की सहायता से उधर से उपद्रव की सृष्टि न करे। वह तो खैरियत हुई कि निजाम अली ने शाहजादा की बातों पर ध्यान नहीं दिया। वहाँ से निराश हो कर शाहजादा पूना दर्बार में पहुँचा, जहाँ उसकी अच्छी आवभगत हुई। इसमें तनिक भी शक नहीं कि शाहजादे का यह सम्मान केवल सिंधिया को चिढ़ाने के लिये किया गया था न कि शाहजादे के ऊपर अनुग्रह करने के लिये।

यद्यपि पिछले अनुच्छेद में वर्णित कठिनाइयाँ सिंधिया के समक्ष थीं, फिर भी वह अपनी स्वातंत्र्य योजना के कार्यान्वियन में लगा था। उसकी राजनैतिक योजनाओं तथा उनकी प्रगतियों का वर्णन करते समय हमें सिंधिया कृत उन कार्यों को नहीं भूलना चाहिये, जो उसने सैन्य सुधार के क्रम में किये थे। छोटे-छोटे परिवर्तनों में उसने सब से पहला काम किया कि अपनी सेना में मराठों की तुलना में उसने राजपूतों एवम् मुसलमानों की भर्ती अधिक की और अपने यहाँ के सवारों की वर्दी को भी परिवर्तित कर दिया। अब तक मराठा सवारों को छोटी-छोटी ब्रिचेज दी जाती थीं परन्तु अब से उन्हें एँड़ियों तक को टँक लेने वाले पैजामें दिये जाने लगे। अभी तक गोसाईं जाति के लोग सेना में कम ही भर्ती होते थे, परन्तु सिंधिया ने उनकी एक बड़ी संख्या को अपनी सेना में स्थान दिया। सिंधिया की सेना में भी गोसाइयों की स्थिति शेष सैनिकों से अलग रक्खी जाती थी। ये गोसाईं लोग अधिकांशतः अम्बा जी उँगलिया के संचालन में अपने ही स्वजातीय सर्दार हिम्मत बहादुर के नायकत्व में रहते थे, जो इनका सेनानायक भी था और उनका आध्यात्मिक पद प्रदर्शक भी। मेरा विचार है कि इस व्यक्ति के इतिहास को जानने के लिये थोड़ा सा विषयान्तर कर देना अनुचित न होगा।

जिस समय सन् १७८४ ई० में सिंधिया दिल्ली की ओर जा रहा था तो हिम्मत बहादुर उसके साथ था। मथुरा से जब सिंधिया ने ग्वालियर की ओर प्रस्थान किया तो मथुरा नगर को उसी के हाथों में छोड़ दिया। जिस समय इस्माइल बेग एवम् गुलाम कादिर का जोर बढ़ा तो उसने दोनों से गुप्त रूप से समझौता कर के अपनी जान बँचायी। सिंधिया को शीघ्र ही पता चल गया कि हिम्मत

बहादुर का हार्दिक मन्तव्य इतना ही है कि संघर्षशील दलों में से किसी के द्वारा उसे एक जागीर मिल जाय। अतः गोसाइयों के कुछ अनुचित आचरण करने पर सिंधिया ने उसे अपदस्थ कर दिया परन्तु शीघ्र ही सद्व्यवहार की प्रतिज्ञा पाने पर उसे उसी पद पर पुनः प्रतिष्ठित कर दिया और उसके अनुगामियों के भरण पोषण के लिये दी गयी भूमि को भी वापस कर दिया। जब वह दुबारा मथुरा में आया तो उसने ऊपर से तो गोसाइयों के प्रति पूर्ण सन्तोष का प्रदर्शन किया परन्तु मन ही मन निश्चित किया कि वह हिम्मत बहादुर को अपनी सेना से अवश्य ही अलग कर देगा। अब वह उसके लिये बहाना ढूंढ़ने लगा। सिंधिया की इस अप्रसन्नता का मूल कारण यह था कि उसे सूचना मिल गयी थी और जिसमें सत्यता भी थी कि हिम्मत बहादुर गुप्त रूप से होल्कर व अली बहादुर से पत्र व्यवहार कर रहा था जो नाना फड़नवीस के विश्वस्त जन थे। एक बार सिंधिया के भय से ही भाग कर हिम्मत बहादुर ने अवध के नवाब वजीर के यहाँ शरण लिया था और अब भी सिंधिया की इच्छा के विरुद्ध उसने सम्पर्क बनाये हुए था। अन्त में सिंधिया ने यह बहाना निकाला कि गोसाईं उसकी जान लेने के लिये कुछ जादू टोने का प्रयोग कर रहा है। इसी बहाने के बल पर उसने हिम्मत बहादुर को पकड़ लाने के लिये एक सैनिक टुकड़ी भेज दी। हिम्मत बहादुर कौ बन्दी बना कर जब यह टुकड़ी उसे सिंधिया के पास ला रही थी तो रास्ते के बगल में ही अली बहादुर का पड़ाव देखा। किसी प्राकर उस टुकड़ी को धोखा दे कर हिम्मत बहादुर भाग निकला और पुनः पकड़े जाने के पूर्व ही अली वहादुर के खेमे में पहुँच गया। सिंधिया ने सारा समाचार जान कर अली बहादुर से प्रार्थना की कि हिम्मत बहादुर को लौटाल दिया जाय परन्तु अली बहादुर ने उत्तर में घोषित किया कि बिना पेशवा की आज्ञा मिले वह हिम्मत वहादुर को छोड़ ही नहीं सकता परन्तु जब तक पेशवा का आदेश पूना से प्राप्त हो, उसके पूर्व ही उसे इस बात का अवसर दे दिया गया कि वह भाग कर लखनऊ चला जाय।

हिम्मत बहादुर के भाग जाने पर भी सिंधिया के गोसाईं सैनिक स्वामिभक्त बने रहे। यदि यही घटना थोड़े दिन पूर्व ही घटित हुई होती तो शायद एक एक गोसाईं सिंधिया का साथ छोड़ कर चल दिये होता, परन्तु अब समय बदल गया था और गोसाइयों को हिम्मत बहादुर की धूर्तता का पूरा समाचार मिल चुका था और इसीलिये अपने आध्यात्मिक पथप्रदर्शक के भाग जाने पर भी एक भी गोसाईं सिंधिया की सेना से अलग नहीं हुआ। धीरे-धीरे वे सब के सब मराठों की पैदल अनियमित सेना में घुल मिल गये।

सिंधिया के सैनिक सुधारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह था कि उसने एक पूर्ण नियमित सेना रखने की योजना को कार्यान्वित किया। सब से पहले उसने डी बाइन की दोनों बटालियनों को सदा के लिये स्वायी रूप से रख लिया और उन्हें ब्रिगेड का रूप दे दिया। समय समय पर इसी को तीन ब्रिगेडों का रूप दे दिया जाता था। एक ब्रिगेड में आठ बटालियानों की योजना की गयी और प्रत्येक बटालियन में सात सौ सैनिक रक्खे गये। प्रत्येक ब्रिगेड के साथ पांच सौ घोड़ों की भी व्यवस्था रक्खी गयी और उसके साथ पांच तोपें रक्खी गई जिनमें दो छः पौंड वाली तोपें थी और एक छोटी तोप थी। इस नियमित सेना के व्यय भार को वहन करने के लिये डी बाइन को जागीर दी गयी। वह इस दिये हुए चेत्र की समूचौ लगान का २ प्रतिशत लेता था और इसके अतिरिक्त उसे दस हजार रुपया नकद प्रति मास वेतन मिलता था। एक अनियमित पैदल सेना भी डी बाइन के साथ रहती थी। धीरे-धीरे डी बाइन की देख रेख में इस व्ययस्था का विकास होता गया और अन्त में तो उसके पास विभिन्न शक्तियों की दो सौ तोपें हो गयी थीं। मि० सैंग्स्टर नामक एक यूरोपियम पहले गोहद

के राना की सेना में था परन्तु कालान्तर में उसने सिंधिया के यहाँ नौकरी कर ली और डी बाइन के आदेश में काम करने लगा। तोपों के चलने की कला का वह मर्मज्ञ था और ये सभी तोपें उसी की ढाली हुई थीं। सिंधिया की सेना में प्रत्येक जाति के यूरोपियन अफसर थे और उनमें से कितने ही उच्च कुलोत्पन्न, उच्च शिक्षा प्राप्त एवम् सर्वप्रकारेण सम्माननीय अँगरेज भी थे।

१७९० ई०]

सन् १७९० के प्रारम्भ में सिंधिया के पास केवल एक नियमित ब्रिगेड था। उसका लक्ष्य था कि किसी भी प्रकार अली बहादुर एवम् होल्कर की सहायता प्राप्त करके वह सिक्खों के उपद्रव को शान्त कर दे और राजपूतों को अपने वश में कर ले जो प्रारम्भ से ही उसकी सत्ता का विरोध कर रहे थे, एवम इस्माइल बेग को पूर्णतया अपने काबू में कर ले, क्योंकि इस प्रकार की सूचनाएँ मिल रही थीं कि एक बार फिर इस्माइल बेग राजपूतों से मिल जाने के प्रयास में लगा हुआ है। इस्माइल बेग के इस पक्ष परिवर्तन की मनोवृत्ति का कारण था होल्कर जिसने सिंधिया और इस्माइल बेग में मतभेद पैदा करने के लिये इस्माइल बेग की जागीर के कुछ भागों को लूट लिया था। यद्यपि यह घटना सिंधिया के अनजान में भी हुई थी और उसकी इच्छा के विरुद्ध भी, फिर भी इस्माइल बेग ने यही समझा कि यह सब सिंधिया की ही चाल थी और इस प्रकार होल्कर का मन्तव्य पूरा हो गया। इस समय हम हिन्दुस्तान में मराठों के कार्यकलाप के विवरण को यहीं छोड़ कर हम दक्षिण की स्थिति का विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

चौतीसवाँ अध्याय

मराठे, अंगरेज और निजामअली की संयुक्त सेना से टीपू की पराजय

[१७८७ से १७९२]

टीपू और पेशवा के बीच की संधि का भंग होना—उसकी तैयारियाँ—अँगरेजों की शंका—नाना द्वारा अँगरेजों से सुरक्षा सन्धि का प्रस्ताव और गवर्नर जनरल द्वारा इनकार—अँगरेज और निजामअली—निजामअली की टीपू से सन्धि वार्ता—टीपू के विरुद्ध अँगरेज, निजाम एवम् मराठों का सम्मिलन—मराठों का कृष्णा को पार करना—कोपवल तथा बहादुरबेड़ा पर घेरा डालने का प्रयास—धारवाड़ का घेरा—धारवाड़ का समर्पण—लार्ड कार्नवालिस का सेनापतित्व—बंगलौर पर अधिकार—मराठा सेनापति का पूना से प्रयाण—मराठा सेना श्रीरंगपट्टम की ओर—वृटिश सेना की परेशानी—कमरुद्दीन द्वारा युद्ध—वेदनूर को जीतने को परशुराम भाऊ की योजना—सिमोगा का युद्ध—श्रीरंगट्टम का युद्ध—टीपू से सन्धि ।

जिस समय सिन्धिया ग्वालियर की ओर लौटा और नाना फड़नवीस से साहाय्य याचना के लिये उसने पत्र लिखा था, उस सहायता भेजने की कई बाधाओं में से नाना के सामने यह बाधा भी थी कि उसे टीपू की ओर से निरन्तर अशान्ति की आशंका बनी हुई थी। १७८७ ई०] वास्तविकता यह थी कि अभी हरीपन्त फड़के ने मुश्किल से कृष्णा नदी को पार किया था कि टीपू ने कित्तूर को फिर के अपने अधिकार में ले लिया। शीघ्र ही बेदनूर में एक विशाल सैन्य संग्रह किया और ऐसा प्रतीत होने लगा मानो वह कोंकणस्थ मराठा क्षेत्रों पर आक्रमण करने वाला हो । भारतीय राजाओं एवम् नवाबों की उच्छृंखल प्रकृति से ही ऐसे कारनामों की संगति बैठायी जा सकती है कि अभी तो अनतिदूर अतीत में टीपू ने किसी भी शर्त पर सन्धि कर लेने की व्यग्रता दिखायी थी और अब वह उसी सन्धि को तोड़ने में कोई कसर नहीं लगा रहा था। किसी भी विवेकशील पुरुष की बातों और उसके कार्यों में इतनी असंगति नहीं हो सकती। उस समय अनेक ऐसी अफवाहें फैल रही थीं, जिनके आधार पर अँगरेज यह सोचने को वाध्य थे कि टीपू और मराठों की सन्धि और यह विग्रह केवल छलना मात्र थे और अँगरेजों को भ्रम में डालकर उनके विरुद्ध टीपू, निजाम, मराठे और फ्रांसिसीयों का एक गुट बनाने के लिये नाना फढ़नवीस तथा टीपू ने मिलकर इस छलना की सृष्टि की थी। मराठों की ओर से तो ऐसी किसी आशंका का आधार ही नहीं था, परन्तु टीपू और फ्रांसीसियों की ओर से तो ऐसी आशंका के ठोस आधार थे। अँगरेज यह भी जानते थे कि टीपू मराठों का उतना शत्रु नहीं है, जितना अँगरेजों का, परन्तु वह अपने शत्रुभाव को तब तक दबाये रहना चाहता है जब कि उसकी तैयारियाँ पूर्ण न हो जायँ और वह फ्रांसिसियों से प्रभावपूर्ण सहायता न पा जाय। उधर नाना फड़नवीस को भय था कि

कहीं टीपू मराठा राज्य पर ही न टूट पड़े। निजामअली भी इसी प्रकार की आशंका में ग्रस्त था। सारांश यह कि अकेला टीपू दक्षिण की शेष तीनों शक्तियों को व्यग्र व विह्वल किये हुये था। चैन किसी को भी न थी। सन् १७८७ के अन्त में मि० मैलेट के माध्यम से वृटिश गवर्नर जनरल लार्ड कार्नवालिस के समक्ष पेशवा एवम् अँगरेजों के बीच सुरक्षात्मक सन्धि का प्रस्ताव रक्खा गया, जिससे टीपू की उच्छृंखलता जनित महत्वाकांक्षा को नियंत्रित किया जा सके। इसमें सन्देह नहीं कि लार्ड कार्नवालिस भी वही सोच रहा था, जो नाना फड़नवीस। वह इस प्रस्ताव की महत्ता को भी समझ रहा था। उसकी भी समझ में एक ऐसी सन्धि की आवश्यकता थी और वह समझ रहा था कि वृटिश भारत की सुरक्षा की दृष्टि से यह सन्धि हो ही जानी चाहिये, परन्तु इंग्लैड की पार्लियामेंट में पास हुए नये कानून के प्रकाश में वह कुछ भी नहीं कर सकता था, जब तक कि टीपू स्वयम् पिछली सन्धि की शर्तों को तोड़ नहीं देता या कोई ऐसा कार्य नहीं कर देता जिससे उसका विरोध करना आवश्यक हो जाय। अतः उसने नाना के प्रस्ताव को तो अस्वीकृत कर दिया मगर उसने मि० मैलेट को निर्देश दे दिया कि वह नाना को इस बात का पूर्ण आश्वासन दे दे कि गवर्नर जनरल की हार्दिक इच्छा है कि वृटिश पेशवा मैत्री दृढ़ बनी रहे।

टीपू कृत उपद्रवों के समाचार सन् १७८७ के प्रारम्भ होते होते कम हो गये अतः गवर्नर जनरल ने सोचा कि यही उपयुक्त समय है जब उसे निजामअली से गुण्टूर की माँग कर देनी चाहिये।

१७८८ ई०]

सन् १७६८ में निजामअली ने अँगरेजों से जो सन्धि की थी, उसके अनुसार बसालतजंग की मृत्यु के बाद गुण्टूर का जिला अँगरेजों को मिल जाना चाहिये था, क्योंकि बसालत जंग की मृत्यु सन् १७८२ ई० में हो चुकी थी। कलकत्ते में कैप्टेन केनावे को इस जिले का कार्य भार ग्रहण करने के लिये गवर्नर जनरल का एजेन्ट बनाया गया था, परन्तु यह सारी बातें तब तक गुप्त रक्खी जाने को थी जब तक कि वह हैदराबाद न पहुँच जाय और मद्रास सरकार परिस्थितियों को सँभालने एवम् अपनी मांग को जोरदार शब्दों में रखने की तैयारी न कर ले। कैप्टेन केनावे के कलकत्ता से प्रस्थान कर जाने के बाद फिर ऐसी सूचनाएँ मिलने लगीं, जिनसे यह परिणाम निकाला जा सकता था कि टीपू फिर से आक्रमण या उपद्रव करने की इच्छा कर रहा था। कलकत्ता में यह समाचार भी प्रचारित हो गया कि चिरका के राजा ने जो तेलीचेरी पर आक्रमण किया था, वह टीपू की ही प्रेरणा का परिणाम था। यह सूचना भी मिलने लगी कि टीपू की इच्छा है कि वह त्रावनकोर के राजा के क्षेत्रों कों अपने प्रभाव में ले ले। स्मरणीय है कि त्रावनकोर का राज्य ही अँगरेजों की भारत विजय का प्रथम चरण था, अतएव अँगरेज इस छोटे से राज्य और वहाँ के राजा की मित्रता को अत्याधिक महत्व देते थे। इन सूचनाओं की प्राप्ति के फलस्वरूप कैप्टेन केनावे को नवीन आदेश दिया गया कि वह गुण्टूर की माँग को स्थागित कर दे और निजामअली को यह आश्वासन दे दे कि गवर्नर जनरल की इच्छा है कि निजाम अली से उसका दृढ़ मैत्रीभाव बना रहे और उनके बीच जो भी विवादास्पद विषय हों वे सभी समझौता वार्ता द्वारा तै कर लिये जायँ। अभी कैप्टेन केनावे एवम् निजामअली के बीच आश्वासनों का आदान प्रदान पूरा ही हुआ था कि यह देखकर कि टीपू की ओर से किसी अशान्ति की अशंका नहीं है, तुरन्त ही निजामअली ने गुण्टूर का तत्क्षण समर्पण स्वीकार भी कर लिया। यह सत्य है कि गुण्टूर की मांग को स्वीकार करने में निजामअली तनिक भी न हिचका था, परन्तु यह भी सत्य है कि उसके दुःख व ग्लानि की सीमा न रही; क्योंकि यदि वह निर्बल न होता तो उसे गुण्टूर का त्याग कदापि न करना पड़ा होता। इसी समय उसने अनुभव किया कि दक्षिण की चार शक्तियों में यद्यपि उसकी

गणना थी फिर वह इनमें सर्वाधिक निर्दल था। उसने इसी समय यह भी तै किया कि शक्ति बढ़ाने का एक ही मार्ग है और वह है शेष तीन शक्तियों में से किसी एक से मैत्री स्थापित कर लेना। उसने स्पष्ट जान लिया कि यदि वह शीघ्र ही किसी एक शक्ति का हाथ नहीं पकड़ लेता तो उसकी सत्ता किसी अन्य सत्ता में विलीन हो जायगी। मराठों के विषय में उसके जो अनुभव थे, उनके कारण वह उनकी विचित्र नीतियों से अत्यधिक डरता था। व्यक्तिगत रूप से वह मैसूर के मुसलमान शासक टीपू से मिल जाने की अभिलाषा रखता था, परन्तु उसका मन्त्री मीर अब्दुल कासिम इस मैत्री के एकदम विरुद्ध था और अपने मन्त्री में निजामअली की गम्भीर निष्ठा थी। मीर अब्दुल कासिम का कहना था कि अँगरेजों से मित्रता की जाय उसका तर्क था कि चूँकि अभी निकट अतीत में उसने अँगरेजों के साथ मधुर व्यहार किया है, अतः उसी को साधन बनाकर अँगरेजों की मैत्री प्राप्ति का प्रयास किया जाय। उसने निजाम अली को सुझाया कि चूँकि अँगरेजों को गुण्टूर हस्तान्तरित कर दिया गया है, अतः अब अँगरेजों से कहना चाहिये कि वे सन् १७६८ को सन्धि की उस धारा का पालन करें, जिसमें उन्होंने हैदराबाद राज्य की सेना के लिये तथा टीपू के क्षेत्रों को अधिकृत करने के लिये अपनी सेना की दो बटालियन तथा छः तोपें देने की प्रतिज्ञा की थी और साथ ही कुछ कर भी देने का वादा किया था। निजामअली ने मीर अब्दुल कासिम की बातों के सत्य को समझा और तुरन्त ही उसे कलकत्ता की ओर रवाना कर दिया जिससे वह अपनी वाक्चातुरी से गवर्नर जनरल को सहमत कर सके। निजामअली का स्वभाव था कि वह सदैव ही दो निशाने लगाता था। उधर तो उसने अपने मंत्री को गवर्नर जनरल की सेवा में भेजा और इधर एक दूत टीपू की सेवा में भी सन्धि प्रस्ताव के साथ भेजा। उसने टीपू को सन्देश दिया कि दक्षिण की दोनों मुसलमान रियासतों को एक अटूट मैत्री में बँधकर कार्य करना चाहिये। टीपू ने इस प्रस्ताव का सहर्ष स्वागत किया और कहा कि निजान अली द्वारा प्रस्तावित उद्देश्य को पूरा करने का सवोत्तम उपाय यह होगा कि मैसूर राज्य और हैदराबाद राज्य दोनों ही वैवाहिक बन्धन में बँध जावें। चूँकि निजामअली को यह शर्त पसन्द नहीं आयी, इसलिये यह सन्धि वार्ता यहीं पर भंग हो गयी।

उधर मीर अब्दुल कासिम ने कलकत्ता में जब अपना प्रस्ताव गवर्नर जनरल के समक्ष रक्खा तो अँगरेजों को काफी परेशानी हुई। सन् १७६८ के बाद अँगरेजों एवम् निजामअली में कोई नया समझौता नहीं हुआ था। सन् १७६९ ई० में अँगरेजों एवम् हैदरअली में
१७८९ ई०] मद्रास की सन्धि एवम् टीपू के साथ सन् १७८४ ई० में मंगलौर की सन्धि हो चुकी थी। इन दोनों ही सन्धियों में अँगरेजों ने मैसूर राज्य में हैदरअली को भी और टीपू को भी संप्रभुता युक्त राजा की स्थिति में स्वीकार किया था। इधर जब सन् १७६८ ई० में निजामअली से अँगरेजों का समझौता हुआ था तो उसमें हैदरअली बलापहारी माना गया था और इसीलिये उसके क्षेत्रों को हड़पने की योजना की गयी थी, परन्तु मद्रास एवम् मंगलौर की सन्धियों ने बाप को भी और बेटे की भी स्थिति में महान् परिवर्तन ला दिया था। एक बार उन्हें वैधानिक राजा मान लेने पर उनके क्षेत्रों को हड़पने के लिये निजामअली को सैनिक सहायता देना उन सन्धियों का स्पष्ट उल्लंघन होता। बृटिश पार्लियामेंट के नये कानून में स्पष्टतया निर्देशित किया गया था कि बिना कोर्ट आव डाइरेक्टर्स के आदेश के गवनर्नर जनरल कहीं भी कोई नयी सन्धि नहीं कर सकता था। गवर्नर जनरल को इस बात की स्पष्ट आवश्यकता प्रतीत हो रही थी कि वह निजामअली एवम् मराठों से सन्धि कर ले, क्योंकि टीपू ने आड़ में ही रहकर बावनकोट को अपने प्रभावक्षेत्र में लाने का प्रयास चालू कर दिया था। मराठों के सन्धि प्रस्ताव को भी गवर्नर जनरल ने विवशतः अस्वीकृत कर

दिया था परन्तु इधर ऐसी घटनाएँ घटित होने लगी थीं कि गवर्नर जनरल को अत्यधिक आपत्तिपूर्ण (कोर्ट आव डाइरेक्टर्स के दृष्टि कोण से) कदम उठाने की आवश्यकता पड़ रही थी। मीर अब्दुल कासिम के प्रार्थनापत्र के उत्तर में गवर्नर जनरल ने टीपू के राज्य को हड़पने के लिये सैनिक सहायता देने से असमर्थता प्रगट की और असमर्थता का कारण भी समझा दिया, परन्तु उसने निजामअली को एक व्यक्तिगत पत्र लिखा जिसमें कहा गया था कि इसमें दी हुई शर्तों के लिये बृटिश सरकार उतनी ही वाध्य होगी, जितनी किसी सन्धि की शर्तों के लिये। उस पत्र में गवर्नर जनरल ने प्रतिज्ञा की थी कि यदि कभी भविष्य में टीपू के राज्य के उन क्षेत्रों पर बृटिश सरकार का अधिकार हुआ तो वह निजामअली को भी और मराठों को भी उसमें भाग देगी। थोड़ी गम्भीरता से विचार करने पर स्पष्ट हो जायगा कि गवर्नर जनरल की इस प्रतिज्ञा में ही टीपू पर आक्रमण करके उसका राज्य छीन लेने का भाव छिपा हुआ था। यह बात सन् १७६८ की सन्धि की उस धारा का अध्ययन करने से और भी स्पष्ट हो जायगी, जिसमें अँगरेजों ने दो बटालियन सैनिक देना स्वीकार किया था। सन्धि में यह बात कही गयी थी कि जब भी वे भेज सकेंगे सेना भेज देंगे, परन्तु पत्र में कहा गया था कि निजाम अली को जब जरुरत होगी, सेना भेज दी जायगी। इस सेना के व्यय भार की बात सन्धि में भी एवम् पत्र में भी यही थी कि ये सेनाएँ जितने व्यय पर कम्पनी की सेवा करती थीं, उतने ही व्यय पर निजामअली की भी सेवा करेंगी। इस सेना को भेजने की एक मात्र शर्त यही थी कि यह सेना किसी भी ऐसे राज्य या राजा के विरुद्ध उपयोग में नहीं लायी जायगी जो अँगरेजों के मित्र हों। इन मित्रों की गणना में मराठों नाम दिया गया था, किन्तु टीपू का नाम छोड़ दिया गया था।

इस पत्र की तथा इसमें की गयी प्रतिज्ञाओं की सूचना टीपू को भी मिल गयी। इसने समझ लिया और ठीक ही समझ लिया कि यह पत्र एक प्रकार का आक्रमणात्मक सन्धि पत्र ही है। अब टीपू के लिये यह आवश्यक नहीं रह गया कि वह अपनी आक्रामक इच्छाओं को गुप्त रक्खे। अतः स्ववम् त्रावनकोर की सीमा पर उपस्थित हो कर जो उसने आक्रमण किया, वह मानो उसकी ओर से एक प्रकार से युद्ध घोषणा ही थी। नाना फड़नवीस को ज्यों ही इस आक्रमण का समाचार मिला, उसने झट गवर्नर जनरल के पास एक विशेष प्रस्ताव भेजा। यह मि० मैलेट के माध्यम से एवम् निजाम अली तथा नाना फड़नवीस के स्वामी के नाम से भेजा गया था। थोड़े से नगण्य सुधारों के साथ यह प्रस्ताव ज्यों का त्यों मान लिया गया। २९ मार्च को एक सामान्य समझौता पत्र प्रस्तुत किया गया और पूना में पहली जून को उस पर आवश्यक लोगों के हस्ताक्षर हो गये। मि० मैलेट ने कम्पनी की ओर से तथा नाना ने पेशवा एवम् निजाम अली की ओर १७९० ई०] से हस्ताक्षर किया। इस सन्धि पत्र के द्वारा इन भारतीय रजवाड़ों ने निश्चय किया कि वर्षा काल के पूर्व और वर्षा काल में इनकी पचीस हजार सवार सेना टीपू के राज्य के उत्तरी भाग पर आक्रमण करे और इस बीच यथा सम्भव अधिक से अधिक स्थानों को अधिकृत कर ले। वर्षा काल समाप्त होने पर वे समूची शक्ति को टीपू के पराभव में लगा दे और यदि गवर्नर जनरल उस कार्य के लिये उनकी सहायता मांगे तो माँग के एक मास के भीतर ही वे दस हजार सवार उसकी सेवा में भेज दें। इस सहायक सेना के लिये यह निश्चय किया गया कि इसका सारा व्यय भार कम्पनी ही वहन करेगी। अँगरेजों ने दोनों राज्यों को दो-दो बटालियनें देने का वादा किया जिनका खर्च उन्हीं राज्यों के जिम्मे रहा। यह हो गया कि इन बटालियनों का खर्च उसी दर से दिया जायगा, जिस दर से कम्पनी देती है। बँटवारे के प्रश्न पर भी पहले ही विचार कर लिया गया। इस विषय में यह तै हो गया कि चूंकि बृटिश सेना सब से पहले

युद्ध में प्रवेश कर रही थी, इस लिये जिन क्षेत्रों को वह अकेले जीतेगी, उन पर कम्पनी का ही अधिकार होगा। सभी सेनाओं के युद्ध में सम्मिलित हो जाने के बाद जो प्रदेश जीते जायँगे, उन्हें तीनों आपस में बराबर बाँट लेंगे। नव अधिकृत क्षेत्र में जिन पालीगरों या जमीन्दारों का स्थल हैदर अली या टीपू ने छीन लिया होगा वे यदि नजर की रकम दे देंगे तो उनका स्वत्व उन्हें ही लौटाल दिया जायगा और स्वत्व हरण के पूर्व वे जिसके स्वामित्व में थे, उसी के स्वामित्व में दे दिये जायँगे, परन्तु नजर में मिली रकम तीनों जागीरदारों में समान रूप से बँट जायगी। इसी समय यह भी निर्णय किया गया कि यदि इस युद्ध के बाद टीपू से सन्धि हो जायगी और फिर टीपू इन तीनों में से किसी पर हमला करेगा तो प्रत्येक भागीदार उसकी सहायता करेगा।

निजाम अली बराबर टालमटोल करता रहा और अन्त में उसने ४ जुलाई को सन्धि की सारी बातें मान लीं। उसे आशा थी कि इस प्रकार टालमटोल करने से अङ्गरेज यह प्रतिज्ञा कर लेंगे कि युद्ध काल में निजाम अली की सेना के बाहर चले जाने पर मराठों द्वारा उसके राज्य की रक्षा की जायगी। वह यह भी चाहता था कि मराठों की जो रकम उसके ऊपर निकलती थी, उससे मुक्ति दिलाने में अङ्गरेज उसकी सहायता करें, क्योंकि वह जानता था कि वह समय दूर नहीं था, जब कि मराठे उससे बकाया रकम की मांग अवश्य ही करेगा। निजाम अली की न तो इच्छा ही थी और न वह इस योग्य ही था कि मराठों की बकाया रकम दे सके। जिन साधारण शब्दों में निजाम अली ने अपना यह प्रस्ताव रक्खा था, उसे उन पर ध्यान देने से लार्ड कार्नवालिस के लिये यह तो असम्भव था कि वह मराठों का ध्यान किये बिना ही उसको किसी प्रकार का आश्वासन दे देता, हाँ उसने इतना आश्वासन अवश्य ही दिया कि वह यथा शक्ति प्रयत्न करेगा कि भविष्य में दोनों राज्यों के बीच का सम्वन्ध प्रेम पूर्ण बना रहे। गवर्नर जनरल ने यह भी कहा कि यह प्रेम पूर्ण सम्बन्ध तभी तक बना रह सकता है जब तक कि उनमें आपस में एक को दूसरे का विश्वास रहे और एक दूसरे से अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न न करे।

इस युद्ध में अङ्गरेजी सेना का संचालन जनरल मीडोज के सेनापतित्व से आरम्भ हुआ। युद्ध का श्री गणेश २६ मई सन् १७९० ई० को हुआ और इसका अन्त २७ जनवरी सन् १७९१ ई० को हुआ जब कि अङ्गरेजी सेनाएँ अपने स्थान को वापस लौट गयीं। इस युद्ध से अङ्गरेजों को जो लाभ हुआ वह किसी भांति कम नहीं था फिर भी जितना सोचा गया था, उतना लाभ नहीं हुआ। मद्रास सरकार की सेना ले कर जनरल मीडोज ने टीपू के राज्य के दक्षिणी भाग पर आक्रमण किया और करुर, डिण्डीगल, कोयम्बटूर तथा पालघाट को अधिकृत कर लिया। उधर बम्बई सरकार की एक सैनिक टुकड़ी ले कर कैप्टेन हार्टले ने पश्चिमी भाग पर आक्रमण किया तथा बड़ी ही वीरता पूर्वक कालीकट के आस-पास के इलाकों से टीपू की सेना को बाहर भगा दिया। इसी समय जनरल सर राबर्ट एबरक्राम्बी के सेनापतित्व में बम्बई से एक सहायक सेना भी आ पहुँची और समूची सेना का संचालन सर एबरक्राम्बी के हाथों में आ गया। इस सेना ने थोड़े ही दिनों में समूचे मलाबार प्रान्त से टीपू के एक एक सैनिक को निकाल बाहर कर दिया।

१७९० ई०]

जनरल मीडोज के प्रस्थान करने के पूर्व ही मराठों एवम् निजाम अली ने घोषित किया था कि उनकी सेनाएँ युद्ध क्षेत्र के लिये प्रयाण करने को एक दम तैयार खड़ी थीं, परन्तु जैसा कि हम

देख चुके हैं कि ४ जुलाई तक निजाम अली सन्धि को पूर्णतः माना ही नहीं था। इधर परशुराम भाऊ पटवर्द्धन को इस सेना के सेनापतित्व का कार्य दिया गया था परन्तु ५ मई के पूर्व तक उसे सेना तेयार करने का आदेश ही नहीं मिला था। ५ मई] ५ मई को ही उसे उक्त प्रकार का आदेश मिला और उसी दिन पेशवा ने उसकी छुट्टी भी स्वीकार कर ली। इसलिये वह सारा काम ज्यों का त्यों छोड़ कर अपनी जागीर तासगाँव का प्रबन्ध करने को चल पड़ा। मराठों की सहायता के लिये जिन दो बटालियनों को देने की प्रतिज्ञा की गयी थी, वे जहाज द्वारा बम्बई से २० मई को चल पड़ीं और २६ मई को संगमेश्वर में उतरीं। मई २०-२६] यह वही स्थान था जहाँ प्रायः सौ वर्ष पूर्व सम्भा जी को मुगलों ने बन्दी बनाया था। वे दोनों बटालियनें १० जून को अम्बा घाट पहाड़ी पर चढ़ीं। वर्षा का प्रारम्भ हो चुका था और पहाड़ी पर चढ़ कर दर्रे को पार करने की कठिनाइयाँ बढ़ गयी थीं, फिर भी अँगरेजी सेना उस दर्रे को पार कर गयीं। १८ जून को ये सेनाएँ कूम्टा नामक स्थान पर पहुँचीं जो तासगाँव से कुछ ही मीलों की दूरी पर था। जून १०-१८] पास पहुँच कर अङ्गरेज सेनापति कैप्टेन लिटिल को सूचना मिली कि अभी तक मराठों के दो हजार से अधिक सवार इकट्ठे नहीं हुए थे। इस सेना से मिल कर इसका मार्ग प्रदर्शन करने के लिये मराठों के दो कारकुन भेजे गये थे ताकि वे पश्चिमी घाट से अङ्गरेजी सेनाओं को नियुक्त स्थान तक ले आवें। इन ब्राह्मण कारकुनों ने रास्ते में जान बूझ कर असामान्य रूप से देर करना प्रारम्भ कर दिया ताकि अङ्गरेजी सेनापति को यह पता न चल पावे कि मराठों द्वारा तब तक कोई तैयारी नहीं की गयी थी। मराठों का यह बिलम्ब अङ्गरेजों की समझ में नहीं आ रहा था। विशेष रूप से उनका आश्चर्य तब और भी बढ़ गया जब उन्हें पता चला कि टीपू के वकील तब तक भी पूना में ही बने हुए थे। वास्तव में मराठों को यह आशा थी कि शायद उनकी निष्पक्षता कम करने के लिये टीपू की ओर से कुछ रुपये मिल जायँ। यद्यपि मराठों की तनिक भी इच्छा न थी कि अङ्गरेजों एवम् निजाम अली के संग की गयी सन्धि का किसी भी प्रकार उल्लंघन किया जाय, फिर भी जिस राज्य के ऊपर उनका बीसों लाख रुपया बाकी था, उससे जो कुछ भी हो सके पा लेने को वे अनुचित नहीं मानते थे। ५ वीं अगस्त को इन वकीलों को बर्खास्त कर दिया, फिर भी ११ वीं अगस्त के पूर्व परशुराम भाऊ कृष्णा नदी को पार नहीं कर सका। अगस्त ५-११] उस समय बृटिश सेना के अतिरिक्त भाऊ के पास अपने केवल पांच हजार ही सवार थे और करीब सोलह सत्रह सौ पैदल सिपाही। थोड़े दिनों के बाद प्रतिनिधि का भेजा हुआ एक सवारों का दल भी उनमें मिल गया, जिसका संचालन कर रहा था प्रतिनिधि का ही एक अफसर धुन्धू पन्त गोकला। गोकला इसके पूर्व विजय दुर्ग स्थित जहाजी बेड़े की देख रेख का काम करता था। प्रस्ताव के अनुसार उसका दस्ता अङ्गरेजों के साथ नहीं चला। वास्तव में प्रतिनिधि ने गोकला को इस कार्य पर इसलिये नियुक्त किया था कि वह अङ्गरेजों से मेल जोल बढ़ा सके। आगे चल कर अङ्गरेजों से सम्पर्क रखने के कारण ही बापू गोकला को (धुन्धू पन्त का भतीजा) पेशवा दर्बार में उच्च पद मिल गया था और जो बाद में अङ्गरेजों का कट्टर शत्रु सिद्ध हुआ।

मराठों ने टीपू के विरुद्ध युद्ध का शुभारम्भ २५ अगस्त को किया जब कि उन्होंने एक सैन्य रक्षित गाँव पर आक्रमण कर के रक्षक सैनिकों को बिना कोई विशेष हानि पहुँचाये भगा दिया। इसके अनन्तर वे ज्यों ज्यों आगे बढ़ते गये त्यों त्यों अपना अधिकार जमाते गये। स्वयम् उन क्षेत्रों के

निवासियों ने टीपू के कर्मचारियों को भगाना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु भारतीय कर्मचारियों की यह प्रवृत्ति होती है कि शीघ्र ही नये स्वामी की सेवा सच्चे हृदय से करने लगते हैं अतः उन सभों ने परशुराम का कर्मचारी बन कर काम करना स्वीकार कर लिया और बकाया लगान वसूली में उसकी सहायता करने लगे। मराठा सेना में नित नई सैनिक टुकड़ियाँ आ कर मिलने लगीं और शीघ्र ही उसमें दस हजार सवार एवम् तीन हजार पैदल हो गये। इसके अतिरिक्त कैप्टेन लिटिल की भी सेना उनके साथ थी। इस सेना के साथ परशुराम भाऊ १८ सितम्बर
सितम्बर १८] की प्रातः बेला में धारवाड़ के सामने आ पहुँचा। उसने व्यर्थ ही बहुत सा समय उस स्थान के पर्यवेक्षण में खो दिया और बड़ी दूर से एक गोला किले पर छोड़ कर मानो धारवाड़ के घेरे का श्री गणेश किया परन्तु रात को उसने अपनी समूची सेना समेट ली। अङ्गरेजों के लिये यह बात समझ में आने लायक नहीं थी, परन्तु मराठों के युद्ध कौशल में तो प्रायः ही ऐसा होता है।

कर्नाटक में तुंगभद्रा के दक्षिण टीपू के दो सेनापति बदरुज्जमाँ और कुतुबुद्दीन अपने सैनिकों के साथ जमे थे, उनके साथ कुल पांच हजार सैनिक थे, जिनमें थोड़े से सवार और अधिकांश पैदल थे। जब मराठों की सेना भी धारवाड़ की ओर बढ़ रही थी, उस समय निजाम अली की सेना को घेरने की योजना बना कर पनगल से चल कर कृष्णा नदी को पार करने के प्रयत्न में लगी थी। बहादुरबेंड़ा भी उनके लक्ष्य में था। अपने कुल सवारों एवम् थोड़ी सी पैदल सेना को साथ में ले कुतुबुद्दीन निजाम अली की सेना की गतिविधि को दूर-दूर ही रह कर परख रहा था और बदरुज्जमां ने अपने को धारवाड़ में बन्द कर लिया था। धारवाड़ के किले की रक्षा पंक्ति मिट्टी की बनी हुई थी। अब तो वे स्थान-स्थान से टूट-फूट गयी हैं, परन्तु तब वे अच्छी स्थिति में थी और उनकी सुदृढ़ता सर्वज्ञात थी, यह किला एक मैदान में निर्मित था जिसके भीतर की ओर भी और बाहर के ओर भी २५ से ३० फीट तक चौड़ी और इतनी ही गहरी दो खाइयाँ थी। किले के दक्षिण की ओर उससे मिली हुई एक पेठ (बाजार) थी, जिसके चारों ओर मिट्टी की ही कुछ नीची दीवालें बनी हुइ थीं और इस दीवाल के चारों ओर एक मामूली सी खाईं भी थी। रक्षक सेना में कुल मिला कर उस समय सात हजार नियमित एवम् तीन हजार अनियमित सैनिक थे। एक दिन किले के अन्दर से सैनिकों का एक दस्ता न जाने क्यों बाहर निकल आया। निजाम अली की सेना ने उसी दस्ते पर आक्रमण कर के युद्ध का श्री गणेश किया और उन्हें मार कर उनसे तीन तोपें छीन लीं। निजाम अली के साथ जो वृटिश सेना थी, उनके गोलों की मार से शत्रु सेना के बहुत से सैनिक हताहत हुए। उन्हीं की योजना और शक्ति से पेठ पर आक्रयण कर के उसे अधिकृत कर लिया गया। दीवाल पर चढ़ने वालों में कैप्टेन लिटिल एवम् लेफ्टिनेण्ट फार्स्टर सर्व प्रथम थे, जिनमें से एक गम्भीर रूप से आहत हुआ और दूसरा सांघातिक रूप से। इस विजय में वृटिश सेना के हताहतों की संख्या ६२ रही। वह नगर परशुराम भाऊ के लड़के अप्पा साहब की देख रेख में छोड़ दिया गया और नगर की रक्षा के लिये उसे मराठों की एक सेना दे दी गयी। अभी वृटिश सेना को लौटे कुछ भी समय न बीता था कि नगर रक्षकों ने एकत्रित हो कर मराठा सेना पर आक्रमण कर दिया और पांच सौ मराठों को काट डाला, यद्यपि उनके भी हताहतों की संख्या कुछ कम न रही। यद्यपि अप्पा साहिब की स्थिति तब तक भी रक्षक सेना की तुलना में अधिक सुविधा पूर्ण थी, फिर भी वह नगर छोड़ कर सेना की छावनी में वापस आ गया और मानो रक्षक सेना को आज्ञा दे दिया कि वह नगर को अधिकृत कर

दिसम्बर १८]

ले । इसके बाद उतनी देर के लिये एक युद्ध वन्दी का समझौता हो गया, जितनी देर में मृतकों का अन्तिम संस्कार हो सके । मराठा सैनिक इस बात पर अत्यधिक लज्जित थे कि जिस पेठ को बृटिश सेना ने केवल ६२ सैनिक गँवा कर अधिकृत कर लिया था, उसी पेठ की रक्षा वे पांच सौ सिपाहियों की आहुति देकर कर सके । अतः उन्होंने स्वयम् अपने दल पर आक्रमण किया और पेठ को पुनः अपने अधिकार में ले लिया । वैसे तो मराठों का युद्ध कौशल यों भी विचित्र एवम् निर्बल होता हैं, परन्तु उस अवसर पर मराठों ने जिस विचित्रता एवम् निर्बलता का प्रदर्शन किया वह अतुलनीय थी । यह उन लोगों की भूल थी जिन्होंने बम्बई या पूना से इन सेनाओं को भेजा था परन्तु इनके साथ दुर्ग भेदक तोपें नहीं भेजा था । कम से कम बम्बई सरकार की यह भूल अक्षम्य थी । इसमें शक नहीं कि यदि इस समय मराठों को दुर्गभेदक तोपों की सहायता मिल गयी होती तो उनकी विजय अधिक सरलता से होती । यह भूल तब क्षम्य थी जब तक इसका निश्चय नहीं हुआ था कि धारवाड़ पर घेरा डाला जायगा, परन्तु ज्यों ही घेरा डालने का निश्चय किया गया, त्यों ही बड़ी तोपों का उपयुक्त प्रबन्ध अत्यावश्यक हो गया था । कैप्टेन लिटिल ने पहले ही जोर दे कर कहा था कि यदि बृटिश सेना की प्रतिष्ठा रक्षा करनी हो और यदि अपने मित्रों अर्थात् मराठों और निजाम अली को सहायता पहुँचाना आवश्यक हो तो वड़ी तोपों का प्रबन्ध करना ही चाहिये । इतना सब होने पर भी दुर्गभेदक तोपों की व्यवस्था नहीं की गयी । कैप्टेन लिटिल के कहने का इतना ही असर हुआ कि लेफ्टिनेण्ट कर्नल के सेनापतित्व में एक यूरोपियन सैनिकों का दस्ता एक देशी सैनिकों के दस्ते के साथ युद्ध क्षेत्र की ओर रवाना कर दिया गया, जो धारवाड़ की बृटिश छावनी में उपयुक्त अवसर पर पहुँच गया । इस दस्ते के पहुँचने पर २८ दिसम्बर को संचालन का कार्य फ्रेडरिक के हाथों में चला गया ।

१७९० ई०]

कर्नल फ्रेडरिक ने हर सम्भव प्रयत्न किया । परशुराम भाऊ के तोपखाने में यूरोपियन तोपची काम कर रहे थे, किन्तु उस की तोपें इतनी पुरानी, भद्दी एवम् अनुपयुक्त थीं और साथ ही गोलों और बारुद की पूर्ति इतनी अपर्याप्त थी कि कभी-कभी तो दिन-दिन भर तोपें चुप ही पड़ी रह जाती थीं और इस बीच किले की रक्षक सेना अपने भग्न स्थलों की मरम्मत कर लेती थी । अन्त में भारी मात्रा में बारुद मँगायी गयी, परन्तु कर्नल फ्रेडरिक ने सोचा कि यदि यह बारुद भी समाप्त हो गयी तो क्या होगा । इन सभी बातों पर विचार कर के उसने निश्चय किया कि भले ही किले की दीवाल में कोई प्रवेश योग्य दरार न हो, पर उन्हें आक्रमण अवश्य करना है । इसमें शक नहीं कि फ्रेडरिक की योजना का आधार ठीक था और शायद वह सफल भी हो गयी होती, परन्तु ज्यों ही आक्रामक सेना खाइयों को पार करने लगी त्यों ही रक्षकों ने खाई में फेके गये काठकबाड़ में आग लगा दिया और इतनी तेजी और प्रबलता से जली कि आक्रामक सेना को अपनी रक्षा पंक्ति को लौट आना पड़ा । इस प्रयत्न में बृटिश सेना के पचासी आदमी मारे गये । एक तो अपनी असफलता पर फ्रेडरिक अत्यधिक दुःखी था, दूसरे उसकी दी हुई आज्ञाओं के पालन में असाधारण विलम्ब हो रहा था और तीसरे उसकी शारीरिक स्थिति पहले भी ठीक नहीं थी । इन्ही सब कारणों से १३वीं मार्च को उसका देहान्त हो गया और उसकीमृत्यु के बाद मेजर सारटोरियस सेनापति बना । तोपखानों की आवश्यकता पूर्ति इतनी अपर्याप्त थी कि उससे कोई आशा नहीं की जा सकती थी, परन्तु इस बार मराठों ने अपना कौशल प्रदर्शित किया । उन्होंने किले की दीवालों के नीचे तक खाइयां बना डालीं और उड़ाने वाली सुरंगें खोद दी ।

किले की रक्षक सेना भी चुप नहीं बैठी थी, वह भी यथा अवसर आक्रामकों के प्रयत्नों को बेकार बनाती रहती थी। इस प्रकार की खींचातानी में यह घेरा २९ सप्ताह तक चलता रहा, परन्तु जब बदरुज्जमाँ ने देखा कि मराठा और अङ्गरेजों के संयुक्त कौशल एवम् युद्ध से किले की रक्षा असम्भव है तो उसने आत्मसमर्पण करने का निश्चय किया। ४ अप्रैल को संयुक्त दल ने किले पर अधिकार कर लिया और रक्षक सेना को पूर्ण सैनिक सम्मान के साथ दुर्ग छोड़ कर चला जाने दिया गया। अभी किले से निकल कर रक्षक सेना थोड़ी ही दूर गयी थी कि मराठा सेना ने उस पर आक्रमण कर दिया, उनके अधिकांश सैनिकों को तितर बितर कर दिया और उनके नायक को घायल एवम् विवश कर के कितने ही सैनिकों के साथ बन्दी बना लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि आत्मसमर्पण के समझौते में बदरुज्जमां ने वादा किया था कि वह किले की तोपों को ज्यों की त्यों मराठों को अर्पित कर देगा तथा किले एवम् उसके भण्डार को कुछ भी हानि नहीं पहुँचायेगा, परन्तु उनके चले जाने के बाद मराठों ने पाया कि समझौते की बातें तै हो जाने के बाद सभी तोपें नष्ट-भ्रष्ट कर दी गयी थीं, अतः बदरुज्जमां के पास पहुँच कर उन्होंने हैदर, टीपू तथा स्वयम् उसको विश्वासघाती तथा कपटी कहा और उस पर यह आक्षेप किया कि वह सदा से समझौते के विरुद्ध काम करने वाला रहा है और विशेष कर गूटी तथा नलगोंडा के सम्बन्ध में भी उसने यही किया था। यह सत्य है कि मराठों द्वारा किये आक्षेप सत्य थे, परन्तु सत्य और विशेष कर अप्रिय सत्य को सुन कर क्रोध न आवे ऐसा नियम तो है नहीं। अपने इस प्रकार खुले अपमान से बदरुज्जमां क्रोधित हो उठा और उसने तुरन्त तलवार निकाल ली। उसके सैनिकों ने भी उसी का अनुसरण किया और परिणाम जो कुछ हुआ वह ऊपर लिखा जा चुका है। यद्यपि परिस्थितियों को देखते हुए परशुराम भाऊ के कार्यों को अनुचित नहीं कहा जा सकता, फिर भी उसने बदरुज्जमाँ और उसके साथियों को जो कारागार में डाल दिया, वह काम अवश्य ही निन्दनीय था।

धारवाड़ के पतन के कुछ दिनों बाद तक भी बृटिश सेना युद्ध क्षेत्र में पड़ी रही। जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं टीपू विरोधी प्रथम बृटिश अभियान की समाप्ति २७ जनवरी को हुई थी। उसी मास की २९ तारीख को लार्ड कार्नवालिस ने बृटिश सेना का सेनापतित्व अपने हाथ में लिया और ५ फरवरी को निलूर की दिशा में प्रस्थान किया। निलूर में अपनी समस्त शक्ति को संगठित कर के वह बंगलौर की ओर बढ़ा और आगे बढ़कर ५ मार्च को उसने बंगलौर पर हमला कर दिया। २१ मार्च को रात्रि को हल्ला बोलकर उसने उसे सर कर लिया। कार्नवालिस की इस सफलता से शत्रु का उत्साह मारा गया और उसके (अँगरेजों के) सहायकों को इससे बड़ा बल मिला। इसमें सन्देह नहीं कि बंगलौर का पतन हो जाने के कारण ही धारवाड़ का समर्पण सरलता से हो गया था। उधर निजामअली की सेना कोपवल को घेरे पड़ी थी। बंगलौर एवम् धारवाड़ के पतन का प्रभाव वहां के भी रक्षकों पर पड़ा और कुछ ही दिनों बाद रक्षकों ने उसे भी छोड़ दिया। बहादुरबेड़ा की भी यही दशा हुई। सन्धि के अनुसार निजामअली की सेना के साथ मद्रास के देशी पैदल सेना की दो बटालियनें भी थी। बम्बई सरकार की दो बटालियन सेना मराठों के साथ थी ही। तीस सहस्र मराठों की एक सेना जनवरी को पूना से चली, जिसमें पचीस हजार सवार तथा पांच हजार पैदल थे। हरीपन्त फड़के इस सेना का सेनापति था। वह पंढरपुर एवम् सोरापुर के रास्ते से आगे बढ़ा तथा कृष्णा व भीमा के संगम पर उसने कृष्णा नदी को पार किया। वहां से उसने अपनी मुख्य सेना को तो कुरनूल की ओर रवाना कर दिया और स्वयम् दो हजार सवारों की रक्षक सेना लेकर पनगल की ओर इसलिये चला कि वह

१७९१ ई०]

निजामअली से साक्षात्कार कर ले। निजामअली का दर्बार उस समय राज्य की सीमा पर था, जहां से वह (अपने ही कथनानुसार) अपनी सेना को समय समय पर आवश्यक निर्देश दे सकता था और नित्य के युद्ध का समाचार प्राप्त कर सकता था। निजामअली तथा हरीपन्त फड़के ने लम्बी वार्ता के बाद निश्चय किया कि वे लोग तभी तक अँगरेजों का साथ देते रहेंगे जब तक टीपू का केवल मानमर्दन होता रहेगा, परन्तु टीपू के सर्वनाश में वे कदापि सहायक न होंगे। इस निश्चय के बाद फड़के अपनी सेना से जा मिला। वहां वह तब तक पड़ा रहा जब तक उसे बंगलौर के पतन का समाचार न मिल गया। बंगलौर के पतन का समाचार पाकर उसने दस सहस्र सवारों की एक सेना लार्ड कार्नवालिस की सेना से संयुक्त हो जाने के लिये भेजा। निजामअली इस प्रकार के कार्य में मराठों से आगे निकल गया, क्योंकि उसकी इसी प्रकार की सेना मराठा सेना के आगमन के पूर्व १३वीं अप्रैल को ही लार्ड कार्नवालिस की सेना में पहुँच चुकी थी। वास्तव में कुतुबुद्दीन के दल को हराकर तितर-बितर करने वाली सेना ही उसके बाद निजामअली की आज्ञानुसार तत्क्षण ही कार्नवालिस की सेवा में उपस्थित होने के लिये चल पडी। कुछ दिनों से बाद फड़के द्वारा भेजी गयी सेना जब अनन्तपुर पहुँची तो उसे समाचार मिला कि लार्ड कार्नवालिस ससैन्य श्रीरंगपट्टम् की ओर चला जा चुका था। अतः वह मराठा सेना तब तक के लिये वहीं ठहर गयी जब तक कि अपनी मुख्य सेना के साथ हरीपन्त फड़के भी वहीं न पहुँच गया। फड़के के आ जाने पर यह समूचा सैन्य सीरा की ओर चला। सीरा के पास पहुँचकर केवल यह देखने के लिये कि उधर से क्या उत्तर आता है, किलेदार को संदेश दिया गया कि किला उसे सुपुर्द कर दिया जाय और उसे यह जानकर परमाश्चर्य हुआ कि सीरा के गढ़पति ने सचमुच ही अपने दुर्ग का समर्पण स्वीकार कर लिया। यह दुर्ग सैनिक सामग्रियों से भरा पूरा था और इसकी सुरक्षा योजना भी अच्छी दशा में थी। इस असम्भावित घटना से उत्साहित होकर फड़के ने एक सैनिक दस्ते को तलब करके मुद्गिरी पर घेरा डालने को भेज दिया, जो सीरा दुर्ग से बीस मील पूर्व की ओर था। इसके पश्चात् सीरा की सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध करके वह श्रीरंगपट्टम् में पड़ी हुई सेना से मिलने चल दिया। पहले ही कह चुके हैं कि मराठों की एक सेना टीपू के राज्य के पश्चिमोत्तर भाग में युद्ध रत थी। वह सेना भी फड़के का आदेश पाकर श्रीरंगपट्टम् की ओर ही बढ़ रही थी। धारवाड़ का घेरा समाप्त हो जाने पर अँगरेजी सेना के एक भाग को बम्बई बुला लिया गया था। कैप्टेन लिटिल अपनी तीन देशी पल्टनों के साथ परशुराम भाऊ का साथ दे रहा था। इन तीन पल्टनों में दो पल्टनें वे भी थीं, जो शुरू से ही युद्धरत रहने के कारण काफी क्षीण हो गयी थीं, क्योंकि उसके बहुत से सैनिक हताहत हो चुके थे। इधर धारवाड़ को अधिकृत किया गया और उधर निजामअली की सेना ने कुछ किलों को ले लिया अतः कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच के क्षेत्र में इस संघ की स्थिति सुदृढ़ हो गयी। कितने ही छोटे छोटे किले तो ऐसे भी थे, जिनके रक्षकों ने समर्पण के प्रथम संदेश पर ही किलों को परशुराम भाऊ को समर्पित कर दिया। इन लगातार विजयों के कारण संघ के पास काफी बड़ा क्षेत्र ऐसा हो गया था, जिससे लगान की वसूली की जा सकती थी। लगान वसूली का यह कार्य मराठा सेनापति को इतना अधिक लाभजनक लगा कि वह निजी लाभ के लोभ में संघ के लाभों के प्रति उदासीन होने लगा। परशुराम भाऊ को सुझाव दिया गया था कि वह उस अँगरेजी सेना से जाकर मिले जो जनरल एबरक्राम्बी के सेनापतित्व में आगे बढ़ रही थी और इसके बाद वह बृटिश सरकार के मित्र दुर्ग के राजा के क्षेत्र में से होते हुये मलाबार से आगे बढ़े। धारवाड़ के घेरे के समय परशुराम भाऊ के अधीन सैनिकों की संख्या बहुत बढ़ गयी थी। उसने २२वीं अप्रैल को तुंगभद्रा पार किया किया और उसी मास की २६वीं तारीख तक को चीतलदुर्ग से २४ मील की दूरी तक जा पहुँचा।

रास्ते में तथा पास पड़ोस में स्थित कितने ही दुर्गों के रक्षकों ने बिना किसी प्रकार का विरोध किये ही किलों को समर्पित कर दिया। उसकी सेना के एक दस्ते ने माईकोंडा पर घेरा डाला। जब भी कैप्टेन लिटिल उसे एबरक्रम्बी से मिलने के लिये शीघ्रता करने को कहता तभी वह यह कर पुनः लगान वसूली में लग जाता कि इस प्रकार की यात्रा सुरक्षापूर्ण नहीं है। वह उस स्थान से तभी चला जब उसे हरीपन्त का आदेश श्रीरंगपट्टम् की ओर बढ़ने के लिये मिला। जिस समय हरीपन्त फड़के दक्षिण पश्चिम की ओर बढ़ रहा था, उसी समय भाऊ दक्षिण पूर्व की ओर बढ़ा। उन दोनों की सेनाएँ २४वीं मई को नागमंगलभ् में मिली और दूसरे दिन उन्होंने संयुक्त रूप से मेलकोटा की ओर प्रयाण किया। अब वे लोग राजधानी (श्रीरंगपट्टम) के समीप पहुँच चुके थे। उधर लार्ड कार्नवालिस भी पास में ही था, परन्तु टीपू के सवार जासूस इतनी मुस्तैदी से कार्य कर रहे थे कि हरीपन्त को इतना भी अवसर नहीं मिला कि वह अपनी उपस्थिति की सूचना भी लार्ड कार्नवालिस को दे सके। दो एक बार फड़के ने प्रयास भी किया मगर हरबार उसका पत्र यथास्थान पहुँचने के पूर्व ही जासूसों द्वारा पकड़ लिया गया। फड़के एवम् भाऊ की इस प्रकार असमर्थता की निन्दा स्वयम् उसके देशवासियों ने भी की है। लार्ड कार्नवालिस को इस बात की भनक भी नहीं थीं कि इतनी सशक्त मित्रसेना उसके पास में ही पड़ी हुई थी। बाद में जब गवर्नर जनरल को तथ्यों का पता लगा तो उसे अत्याधिक दुःख हुआ, क्योंकि इस सेना की उपस्थिति-ज्ञान के अभाव में वह अपनी सोची हुई योजना को उस सुनियोजित ढंग से कार्यान्वित न कर सका जैसी उसकी इच्छा थी।

निजाम अली की सेना के आ जाने के बाद लार्ड कार्नवालिस ने निश्चय किया कि श्री रंगपट्टम् पर घेरा डालने का शुभारम्भ कर दिया जाय। अतः उसने एबरक्राम्बी को आदेश दिया कि वह पश्चिम की ओर से आगे बढ़े और उसे श्री रंगपट्टम् में ही मिले। इधर संघ की विशाल वाहिनी उत्तर की ओर से चली, उधर टीपू के आदेश से रास्ते में तथा पास पड़ोस में स्थित सभी गांवों को खाली करा के जला दिया गया। वहाँ से निवासियों तथा उनके पशुओं को उस स्थान से हटा कर अन्यत्र भेज दिया गया। टीपू की इस योजना के कारण वे सभी स्थान रेगिस्तान की भांति निर्जल व हरियाली रहित हो गये। रसद की कमी नहीं थी, परन्तु अँगरेजी सेना पशुओं के चारे के अभाव में अत्यधिक कष्ट पाने लगी। टीपू की योजना लामकारी हुई और संघ सेना की प्रगति में बाधाएँ पड़ने लगीं। १५ मई को टीपू ने आरीकेरा में पड़ाव डाला। अँगरेजी सेना से एक छोटा सा युद्ध हुआ, जिसमें टीपू की पूर्ण पराजय हुई। १६ वीं मई को लार्डकार्नवालिस की सेना ने कनियाम बड्डी में पड़ाव डाला। यह स्थान श्री रंगपट्टम के पश्चिम में था। यह बात सही है कि १५ वीं मई के युद्ध में संघ सेना विजयिनी हुई थी। यह भी सही है कि श्री रंगपट्टम के फाटक के पास होने से उनकी स्थिति अधिक सुविधा पूर्ण हो गयी थी, परन्तु चारे के अभाव ने उनकी सभी सुविधाओं को तुरन्त उलट दिया। साथ ही अब रसद की कमी भी कम चिन्ताजनक नहीं थी। यह स्थिति और भी बिगड़ती जा रही थी। इधर समय भी तेजी से बीत रहा था और वर्षा काल समीप आता जा रहा था। अतः ऐसी स्थिति में लार्ड कार्नवालिस के विचार में यह बात असम्भव सी दीख पड़ने लगी कि वर्षा प्रारम्भ के पहले ही श्री रंगपट्टम को सर किया जा सके। इसीलिये उसने जनरल एबरक्राम्बी को आदेश दिया कि वह मलाबार को लौट जाय। उसने स्वयम् अपनी दुर्गभेदक तोपों एवम् भारी सामानों को नष्ट कर दिया और घेरा उठा कर मालकोट की ओर प्रस्थान कर दिया। उसी दिन अर्थात् २६ मई को ही मराठा सेना भी मालकोट से श्री रंगपट्टम् की ओर चल पड़ी थी। लार्ड कार्नवालिस अपनी सेना के साथ ही था। अभी यह सेना

कुछ ही आगे बढ़ी थी कि सामने से सवारों की एक विशाल वाहिनी दृष्टि पथ में पड़ी । यद्यपि लार्ड कार्नवालिस की सेना सावधान थी, शृंखलाबद्ध थी, पर चूंकि उसे स्वप्न में भी अनुमान नहीं था कि इधर भी कोई शत्रु सेना हो सकती है, अतः किसी भी प्रकार के युद्ध के लिये एक दम अप्रस्तुत थी । सामने से आती हुई विशाल वाहिनी को देख कर सभी के होश उड़ गये । उन्होंने यही समझा कि सामने आती हुई सेना शत्रु की ही है और ज्यों ही यह सेना उन लोगों पर सामने से आक्रमण करेगी, त्यों ही श्री रंगपट्टम् से निकल कर टीपू उन्हें पीछे से दबोचेगा और इस प्रकार वे चक्की के दो पाटों के बीच पिस जायेंगे । इस प्रकार की घबराहट पूर्ण स्थिति में भी साहस ने उनका साथ न छोड़ा और वे अतिशीघ्रता से जम कर युद्ध की तैयारी करने लगे । अभी वे पूरी तरह तैयार भी न हो पाये थे कि उन्हें पता चल गया कि सामने से मित्र सेना आ रही है । अभी तक लार्ड कार्नवालिस आसन्न युद्ध की तैयारियों में एवम् सुरक्षा की योजना में अचिन्त्य रूप से व्यस्त था परन्तु ज्यों ही उसने जाना कि सामने से हरीपन्त फड़के की सेना आ रही है तो उसे एक अपूर्व हर्ष मिश्रित दुःख हुआ । यदि उसे मालूम होता कि इतनी बड़ी मित्र वाहिनी इतनी ही दूरी पर है तो वह घेरा ही क्यों उठाता । जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि टीपू के जासूसों की दक्षता के कारण ही हरीपन्त की उपस्थिति की भनक भी लार्ड कार्नवालिस को न लग सकी थी । अपूर्व विषाद मिश्रित उल्लास के बीच दोनों सेनाओं का सम्मिलन हुआ और लार्ड कार्नवालिस की सेना को यह जान कर अपूर्व प्रसन्नता हुई कि नवागत सैन्य के फौजी बाजार में रसद की कोई कमी नहीं थी । लार्ड कार्नवालिस की सेना में अकाल की सी स्थिति व्याप्त हो रही थी । मराठा सेना के रसद विभाग में खाद्य सामग्री की पर्याप्तता देख कर अँगरेजी सेना का जी हरा हो गया । उस समय मराठा सेनापतियों का व्यवहार प्रशंसनीय रूप से उत्तम रहा । उन सभी ने एक स्वर से फौजी बाजार को आदेश दिया कि सेना की सभी मांगें उसी तरह पूरी की जायँ, जैसे अब तक मराठा सैन्य की मांगों की पूर्ति होती रही है । यह दूसरी बात है कि मांग के अत्यधिक बढ़ जाने के कारण बाजार वालों ने वस्तुओं के मूल्य को ऊँचा कर दिया, परन्तु इससे मराठा सेनापतियों की सदाशयता में कोई कमी नहीं मानी जानी चाहिये । हमें यह भी नहीं भूलने का प्रयास करना चाहिये कि अँगरेजी सेना के प्रति इस प्रकार के व्यवहार के कारण स्वयम् उनकी सेना भी अभाव की स्थिति में आ गयी, मगर उन लोगों ने अपनी उदारता को कम करने की आवश्यकता नहीं समझा । हरीपन्त के तत्कालीन पत्रों को देखने से स्पष्ट पता चलता है कि वह अपने मित्रों की आवश्यकता पूर्ति के लिये कितना चिन्तित था । दोनों सेनाओं का यह सम्मिलन उसी स्थान पर हुआ था, जिस स्थान पर राव मामा ने सन् १७७१ ई० में हैदर अली के सम्मुख युद्ध में प्रशंसनीय सफलता प्राप्त की थी । इस स्थान का सम्मिलन बड़ा ही शुभसूचक माना गया ।

श्री रंगपट्टम् के पड़ोस में संघ सेना दस दिनों तक पड़ी रही । बिलम्बीकरण का कारण यह था कि सेना के लिये आवश्यक रसद का प्रबन्ध करना था । यहाँ पहुँचने के पूर्व ही मराठों ने रसद मँगाने के लिये अपने सैनिकों को रवाना कर दिया था और इन दिनों वे उसी सैनिक दल के आ जाने के पश्चात् यह निश्चित हो गया कि अब उनके पास पर्याप्त खाद्य सामग्री हो गयी है । अतएव यह संयुक्त सैन्य अब धीरे-धीरे नाग मंडलम् की ओर रवाना हुआ । हरीपन्त का प्रस्ताव था कि उन्हें सीरा दुर्ग की ओर चलना चाहिये और सीरा तथा कृष्णा नदी के बीच के प्रदेश पर अधिकार स्थापित कर लेना चाहिये । वास्तव में उसकी यह इच्छा थी कि यदि थोड़े दिनों के लिये उक्त भूभाग में पहुंच कर रुक जाते तो वहाँ से काफी बड़ी मात्रा में लगान वसूली की जा सकती थी । इधर कार्नवालिस की समझ से यह बात महत्वपूर्ण थी कि बारह मुहाल पर अधिकार कर लिया जाय और साथ ही

साथ बंगलोर के समीपस्थ क्षेत्र को भी पादाक्रांत किया जाय। इस योजना से लार्ड कार्नवालिस का यह उद्देश्य था कि मद्रास की ओर से रसद तथा सूचना पाने का रास्ता साफ हो जाय। निजाम अली की सेना के नायक ने हरीपन्त के प्रस्ताव का समर्थन किया क्योंकि उसके प्रस्ताव के मूल में भी यही बात थी, परन्तु चूँकि पूरी सेना ही अँगरेजों की ही तोपों का भरोसा करती थी अतः उन दोनों को लार्ड कार्नवालिस की ही बात माननी पड़ी। चूँकि अँगरेज़ी सेना एवम् हैदराबाद की सेना के पशु बहुत ही थके हुए तथा निर्बल थे, अतः सेना बड़ी धीमी गति से आगे की ओर चली। इसी का संग देने में मराठों को भी अपनी प्रगति को सीमित रखना पड़ा। इस सेना के आगमन का समाचार सुन कर उसूर का दुर्ग खाली कर दिया गया। परशुराम भाऊ एवम् कैप्टेन लिटिल को सीरा की ओर जाने का आदेश दिया गया और उनसे कहा गया कि उक्त क्षेत्र को शत्रु विहीन करके उत्तर की ओर से सूचना एवम् रसद पा सकने का मार्ग साफ कर लें और जिस देश को वे एक बार पहले ही जीत चुके हैं उस पर अपने शासन का भय स्थापित कर दें। निदजीगल के गढ़पति ने परशुराम भाऊ के लिये अपना दुर्ग खाली कर दिया और देवराय दुर्ग के किलेदार ने प्रतिज्ञा की कि यदि अँगरेजी सेना किले का अधिकार ग्रहण करने के लिये आवे तो वह किले को खाली कर देगा, परन्तु वादे के अनुसार जब अँगरेजी सेना किले की ओर अग्रसर हुई तो किले से गोले चलाये जाने लगे। हार कर अँगरेजी सेना को वापस आना पड़ा। चूँकि इस किले को तोड़ने का साधन परशुराम भाऊ के पास नहीं था अतः किलेदार के प्रतिज्ञा भंग का बदला उसने इस रूप में लिया कि समूची पेठ को ही जला कर खाक कर दिया और अपनी सेना को सौरा की ओर बढ़ने का आदेश दिया। चूँकि उसकी इच्छा थी कि उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र में पहुँचा जाय, अतः उसने कैप्टेन लिटिल को समझाया कि उक्त क्षेत्र की ओर जाने से पशुओं के लिये चारे की प्रभाव पूर्ण प्राप्ति हों सकती है। उसे इस प्रकार समझा बुझाकर वह अति तीव्रगति से चीलत दुर्ग की ओर मुड़ा और आश्चर्य जनक शीघ्रता से पहुँच कर बाहर पड़ी हुई तीन सौ सैनिकों की एक टोली को समूची ही काट डाला। यह टोली पूर्णतया असावधानी से किले के बाहर ही पड़ी थी और इसने किले में शरण लेने में अत्यधिक विलम्ब कर दिया था। किले के रक्षकों को घूस दे कर मिलाने का एवम् उनकी सहायता से किले को अधिकृत करने का परशुराम भाऊ ने अत्यधिक प्रयत्न किया, परन्तु उसे किसी भी प्रकार की सफलता न मिली। इसी बीच उसने पास के कितने ही सुरक्षित स्थानों को अपने अधिकार में ले लिया। चीलत दुर्ग के उठे हुए मस्तक को धूलिसात् न कर सकने का विषाद उसके मन में बना ही रह गया।

बलवन्त राव सूबा को भी मुख्य सेना से अलग कर के दूसरी ओर भेज दिया गया था। उसे आदेश दिया गया था कि वह मुङ्गिरी के दुर्ग पर घेरा डाल दे। बलवन्त राव को इस किले पर अधिकार करने में सफलता नहीं मिली। उसने अपनो सेना के एक भाग को उक्त क्षेत्र में छोड़ दिया और स्वयम् सेना का मुख्य भाग लेकर माकली दुर्ग की ओर जा निकला। इस किले को सर करने के बाद उसने रत्नागिरि को भी अपने अधिकार में कर लिया। निजाम अली की सेना बृटिश सेना के दोनों बटालियनों के साथ उत्तर की दिशा में कार्य रत थी। उसने पेन्नर नदी के तट पर स्थित गांडीकोटा को अपने अधिकार में कर के गरमकेंडा पर घेरा डाल दिया।

श्री रंगपट्टम् से वापस आने के पश्चात् लार्ड कार्नवालिस ने तब तक बारह महाल को कार्य क्षेत्र बनाये रक्खा जब तक ऋतु की अनुकूलता मिलती रही। इस क्षेत्र में उसे पर्याप्त सफलता मिली और कृष्णागिरि के पहाड़ी दुर्ग को छोड़ कर उसने समस्त क्षेत्र को सर कर लिया। लार्ड कार्नवालिस की इच्छा थी कि कृष्णागिरि की अच्छी प्रकार से नाके बन्दी कर दी जाय परन्तु इसी समय उसे यह

समाचार मिला कि कमरुद्दीन ने अचानक प्रगट हो कर परशुराम भाऊ को बुरी तरह हरा दिया और उसकी समूची सेना को नष्ट भ्रष्ट कर दिया है। यह समाचार अत्यधिक अतिरंजित रूप में प्राप्त हुआ था। वास्तव में कमरुद्दीन के हाथों परशुराम भाऊ की सेना का वही अंग पराजित हुआ था जिसे अपने मुदिगीरी में छोड़ दिया था। इस अतिरजित समाचार को सुन कर लार्ड कार्नवालिस थोड़ा अस्थिर हुआ और कृष्णागिरि के नाके बन्दी की योजना को समाप्त कर के वह स्वयम् तेजी से बंगलोर की ओर बढ़ा। आगे चल कर उसे वास्तविकता का पता चल गया। अतः उसने निश्चय किया कि गरमकोंडा तथा बंगलोर के मध्य भाग में स्थित दुर्गों को अधिकृत कर लिया जाय। पाठकों को स्मरण होगा कि निजाम अली की सेना गरमकोंडा पर घेरा डाले हुए पड़ी थी। कार्ड लार्नवालिस के आ जाने से यह समूचा क्षेत्र संघ के प्रभाव में आ गया। इस क्षेत्र में कई छोटे दुर्गों में बन्दी दुर्ग प्रमुख था। इसे सर कर लेने के पश्चात् सारी की सारी दुर्ग भेदक तोपों को गरमकोंडा की ओर भेज दिया गया और बाद में सवार सेना भी उसी ओर रवाना कर दी गयी। इस प्रकार सवार सेना के आ जाने से तथा दुर्ग भेदक तोपों के पा जाने से घेरा डालने वालों को पर्याप्त बल मिल गया।

दिसम्बर मास का प्रारम्भ होते-होते लार्ड कार्नवालिस का सारा सैन्य बंगलोर के पड़ोस में एकत्रित हो गया। लार्ड कार्नवालिस की इच्छा थी कि तुरन्त ही श्री रंगपट्टम् को चल देना चाहिये, परन्तु बम्बई की सेना को इस स्थान तक पहुँचने के लिये बड़े ही कष्ट पूर्ण मार्ग से आना पड़ा था अतः उसे विश्राम की आवश्यकता थी। परशुराम भाऊ को आदेश था कि वह बम्बई की सेना को सहायता के लिये तैयार हो कर उसे रास्ते में ही मिल जाय, परन्तु तब तक वह बीमारी का बहाना कर के चीतल दुर्ग के ही पास पड़ा था। निजाम अली की सेना अभी तक गरमकोंडा के आस पास ही चक्कर काट रही थी और यद्यपि हरीपन्त फड़के स्वयम् लार्ड कार्नवालिस के ही साथ था पर उसकी अधिकांश सेना किसी न किसी कार्य के बहाने इधर-उधर छिटकी हुई थी। वास्तव में हरीपन्त के सैनिक छोटी-छोटी संख्या में इधर के सभी जिलों में फैल गये थे और यथा सम्भव अधिक से अधिक लगान वसूल कर लेने के चक्कर में पड़ गये थे। चूंकि इन अड़चनों के कारण लार्ड कार्नवालिस इस योग्य नहीं रह गया था कि वह टीपू की राजधानी को घेर कर उसे सर कर सके अतः उसने रास्ते में पड़ने वाले किलों को ही अधिकृत करने में मन लगाया। इस कार्य में उसे आशातीत सफलता मिली और सवनदुर्ग, रामगिरि, शिविगिरि तथा हुलिया दुर्ग उसके आधिपत्य में आ गये।

निजाम अली की सेना कई महीने तक गरमकोंडा को घेरे पड़ी रही और यदा-कदा- निर्बल आक्रमणों की योजना करती रही। इन योजनाओं में उसे कभी भी और कोई भी सफलता नहीं मिली। अन्त में कैप्टेन रीड के साहस पूर्ण आक्रमण के बल पर किसी तरह दुर्ग की रक्षक दीवालों पर इन लोगों का अधिकार हो गया और दुर्ग के निचले भाग पर इनका नियंत्रण स्थापित हो गया। इस सेना को अब कोई आशा नहीं रह गयी थी कि वह किसी भी दिन इस दुर्ग पर अधिकार कर सकेगी। इसे यह भी चिन्ता लगी हुई थी कि यथा शीघ्र वह इस कार्य से अवसर निकाल कर लार्ड कार्नवालिस से मिले एवम् श्री रंगपट्टम् के घेरे में भाग ले। कम से कम वह इतना तो चाहती ही थी कि वह लार्ड कार्मवालिस के पास पहुँच कर अपनी इस इच्छा की सिद्ध कर दे। अतः ऐसा प्रबन्ध किया गया कि इस सेना के दो भाग कर लिये गये। एक भाग को तो इस किले के अधिकृत स्थान में छोड़ दिया गया और मुख्य भाग को श्री रंगपट्टम् की ओर रवाना कर दिया गया। जो सेना इस किले के लिये छोड़ी गयी थी उसके भी दो भाग किये गये। एक भाग तो हाफिज फरीदुद्दीन के आदेशानुसार

कार्य करने के लिये अधिकृत स्थान में डट गयी और दूसरे भाग ने नवाब कुरनूल के पुत्र आजम खाँ के संचालन में तथा एक फ्रेंच अफसर की अध्यक्षता में किले से थोड़ी दूर हट कर पड़ाव डाला। इस इस फ्रेंच अधिकारी ने अपना नाम स्थिम रख लिया था। इस प्रबन्ध को पूर्णता तक पहुँचा कर मुख्य सेना लार्ड कार्नवालिस से मिलने के लिये चल पड़ी परन्तु थोड़ी ही दूर जाने पर उस सेना को पीछे लौटना पड़ा, क्योंकि उसके हटते ही किले की रक्षक सेना ने नाके बन्दी करने वाली सेना पर अचानक आक्रमण किया और उनमें से अधिकांश को वहीं काट डाला। हाफिज फरीदुद्दीन को कैद कर लिया गया और बदले की भावना से उत्तेजित हो कर उसे खत्म कर दिया गया। हाफिज फरीदुद्दीन ही वह व्यक्ति था, जिसके माध्यम से निजाम अली ने अपना सन्धि प्रस्ताव भेजा था। फ्रांसीसी अधिकारी स्मिथ भी पकड़ा गया और उसे मौत के घाट उतार दिया गया। टीपू का ज्येष्ठतम पुत्र रक्षक सेना का सेनापतित्व कर रहा था और जब उसे यह सूचना मिली कि मुख्य सेना लौटी आ रही थी तो वह तुरन्त किले में वापस लौट गया और उन्हें एक प्रकार की स्वतंत्रन्ता दे दी कि वह उस स्थान को फिर से अधिकृत कर ले और अपनी नाकेबन्दी को सुदृढ़ बना लें। थोड़ी सी सेना को फिर वहीं छोड़ कर मुख्य भाग फिर श्री रंगपट्टम् की ओर चला और २५ जनवरी सन् १७९२ को उदा दुर्ग के पास लार्ड कार्नविलिस से जा मिला।

पिछली पंक्तियों में हम देख चुके हैं कि यद्यपि हरीपन्त फड़के लार्ड कार्नवालिस के साथ में ही था परन्तु उसकी सेना कई भागों में विभाज़ित होकर विभिन्न जिलों की लगान वसूली में व्यस्त थी। इस प्रकार लार्ड कार्नवालिस को श्रीरंगपट्टम पर अधिकार करने में लगातार देरी होती जा रही थी। हरीपन्त फड़के का इतना ही विचार था कि वेदनूर को लूट लिया जाय, परन्तु परशुराम भाऊ की इच्छा थी कि वेदनूर दुर्ग एवम् उस जिले को सविधि अधिकृत कर लिया जाय। वास्तव में परशुराम भाऊ को बृटिश सैनिकों की सहायता प्राप्त थी और वह चाहता था कि इस सहायता का पूरा लाभ उठाकर वह वेदनूर को तो अधिकृत ही कर ले यद्यपि उसे लार्ड कार्नवालिस की योजना अज्ञात न थी। वह यह भी जानता था कि इस योजना का मुख्य भाग है श्रीरंगपट्टम् को सर करने का प्रबन्ध करना और उससे प्रार्थना भी की गयी थी कि वह अतिशीघ्र कार्नवालिस से मिल जाय, फिर भी ज्योंही उसने देखा कि लार्ड कार्नवालिस ने होलियार दुर्ग पर घेरा डाल दिया त्योंही वह तेजी से वेदनूर की ओर मुड़ गया बृटिश सेना ने हुलीउन्नूर पर आक्रमण किया और उसे सर कर लिया, फिर भी भाऊ ने तुंगभद्रा का बाँया किनारा नहीं छोड़ा। उसकी योजना थी कि थोड़ा और आगे बढ़ कर वह सिमोगा के दुर्ग को सर कर ले। सिमोगा के दुर्ग में टीपू का रजा साहब नाम का एक सम्बन्धी था, जिसके संचालन में दस बड़ी तोपें, आठ सौ सवार तथा सात हजार पैदल सैनिक थे। रजा साहब को जब मराठों के आने की सूचना मिली तो उसने किले का त्याग कर दिया और किले के दक्षिण पश्चिम स्थित घनघोर जंगल में ससैन्य जा घुसा, जिससे वहाँ छिपा रह कर वह उपयुक्त अवसर पर मराठों पर अचानक छापा मार सके। जंगल में जिस स्थान पर रजा साहब ने डेरा डाला था, वह प्रकृति द्वारा पूर्ण रूपेण रक्षित था। तुंगभद्रा नदी उसकी बायीं ओर बह रही थी। उसके बाम भाग में एक ढलुआ पहाड़ी सीधी खड़ी थी, जिस पर उगे हुए अगम्य जङ्गलों के कारण उधर से किसी भी आक्रामक दल का आना किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं था। उसके सामने एक भयंकर नाला था जिसमें असंख्य वृक्ष उगे हुए थे। इन वृक्षों के बीच-बीच में मोटे बाँसों का घना जाल सा लगा हुआ था। पाठकों को निश्चित रूप से इसे जान लेना चाहिये कि मोर्चे बन्दी के लिये बासों से बढ़कर अन्य कोई भी पेड़ नहीं होते, क्योंकि बांस के झाड़ों को वेध देना तोप के गोलों

के भी बस की भी बात नहीं है, अन्य अस्त्रों की तो बात ही क्या है। सामने के यह जंगल दुहरी सुविधा प्रदान कर रहे थे। एक तो वे रजासाहब की पूरी सेना को छिपाये हुए थे और दूसरी ओर किसी भी आक्रामक सेना के लिये अगम्य थे। इस स्थान पर पहुँचने के लिये एक ही रास्ता था जो इतना संकरा था कि इस पर चार सैनिक भी अगल-बगल हो कर एक साथ आगे नहीं बढ़ सकते थे। थोड़ा आगे चल कर यह रास्ता सड़क के रूप में अवश्य हो गया था, परन्तु इस चौड़ाई की सुविधा रजा साहब की ही सेना को मिल सकती थी, न कि किसी भी आक्रमणकारी सेना को। २६वीं दिसम्बर को प्रातः यह किला परशुराम भाऊ के दृष्टिपथ में आया। उसने किले पर आक्रमण करने की कोई उत्सुकता नहीं दिखायी। वह पूरा चक्कर दे कर ठीक उसी स्थान की ओर बढ़ने लगा, जिस स्थान में रजासाहब ससैन्य छिपा था। उस स्थान के एकदम पास में पहुँच कर परशुराम भाऊ की मुख्य सेना ने तो पड़ाव डाल दिया, परन्तु एक सवार सैनिकों का एक दस्ता ले कर अप्पासाहब ने ठीक उसी दिशा में प्रयाण कर दिया, जिधर रजासाहब उनकी प्रतीक्षा में छिपा पड़ा था। परशुराम भाऊ ने कैप्टैन लिटिल से प्रार्थना की कि वह बृटिश सैनिकों की आठ कम्पनियों को पड़ाव की रक्षा के लिये छोड़ दे और अपनी शेष सेना लेकर वह उसके (परशुराम भाऊ के) पुत्र (अप्पा साहब) की सहायता के लिये चला जाय। कैप्टेन लिटिल ने उसकी बात मान ली और अपनी सेना को आवश्यक आदेश देकर वह स्वयम् अप्पा साहब के पीछे चल पड़ा। उस स्थान की स्थिति ऐसी थी और पेड़ इतने घने थे कि सवार सेना का तो उसमें प्रवेश ही असम्भव था। कैप्टेन लिटिल की तीनों बटालियन को वायोनेट्स (संगीनों) का भी सहारा था, जिनकी संख्या आठ सौ थी। यद्यपि कैप्टेन लिटिल के सैनिकों की संख्या अपर्याप्त थी फिर भी बह जंगलों में रास्ता बनाता हुआ सीधा उसी स्थान की ओर चला, जहाँ रजासाहब की सेना पड़ी थी। मराठों की अनियमित पैदल सेना उसके पीछे पीछे चली। कैप्टेन लिटिल को यह पता लगाना था कि वास्तव में शत्रु की स्थिति कैसी थी। वह यह भी चाहता था कि उसकी समूची शक्ति एक साथ ही कार्यरत न हो वरन् थोड़ी सी सेना को आवश्यक कार्यों के लिये सुरक्षित रक्खा जाय। एक बटालियन लेकर वह स्वयम् सामने की ओर बढ़ा, दो कम्पनियों को उसने आदेश दिया कि वह बढ़कर शत्रु के दाएँ बाएँ भाग पर आक्रमण करें और बाएँ भाग पर आक्रमण करने के लिये दूसरी दो कम्पनियों को आदेश दिया। इन दाएँ बाएँ भाग पर आक्रमण करने वाली कम्पनियों के रवाना हो जाने पर कैप्टेन लिटिल अपनी शेष सेना लेकर सामने की ओर चला। कैप्टेन लिटिल ने देखा कि उसकी प्रगति को रोकने की पूरी चेष्टा शत्रु द्वारा की जा रही है। उसने यह भी देखा कि शत्रु के दक्षिण भाग पर हमला करने में कुछ आसानी हो सकती है अगर अपने उस पक्ष को शत्रु ने अत्याधिक पुष्ट बना रक्खा है। अतः उसने दक्षिण पार्श्व पर आक्रमण करने वाली दो कम्पनियों को सहायता करने के लिये दो कम्पनियाँ और भेजा। दो अँगरेज अफसर इन कम्पनियों का संचालन कर रहे थे। इनके नाम ये लेफ्टिनेण्ट डुलन एवम् बेथ्यूम। ये दोनों ही एक के बाद एक घायल हो गये। लेफ्टिनेण्ट मूर के संचालन में बमबाज दस्ता भी उनकी सहायता के लिये भेजा गया। लेफ्टिनेण्ट मूर की भी वही गति हुई। वह भी घायल होकर युद्ध के लिये असमर्थ हो गया। तब ग्यारहवीं बटालियन की छः कम्पनियों को युद्ध क्षेत्र में बुला लिया गया। इन कम्पनियों का कमाण्डर था मेजर रॉस, जो युद्ध क्षेत्र में पहुँचते ही मारा गया। देशी सिपाही लगातार जंगल में घुसते जा रहे थे। जब भी कभी थोड़ा सा भी अवसर मिलता था तो मराठा सैनिक पागलपन की सी स्थिति में अव्यवस्थित रूप से आवश्यकता से अधिक आगे तक निकल जाते थे परन्तु दुश्मनों की मार खाकर वे पीछे फिर भाग आते थे। इस भाग दौड़ में मराठा सैनिकों में हताहतों

की संख्या भी बढ़ती जा रही थी और अँगरेजों की सेना की प्रगति में अन्त में कैप्टेन लिटिल ने पूरी सुरक्षित सेना को भी आगे बढ़ने का आदेश दे दिया। सुरक्षित सेना के आ जाने से पहले से युद्धरत सैनिकों का भी उत्साह बढ़ा और ये सम्मिलित रूप से जंगलों को चीरते फाड़ते तथा शत्रु सेना को रोकने की चेष्टा को विफल करते हुए थोड़े से सैनिक शत्रु के कैम्प तक पहुँच ही गये। कैप्टेन लिटिल ने तुरन्त ही इस सुविधा को स्थायी बनाने के लिये उन्हीं के पीछे और सैनिकों को भी आगे बढ़ाया। इन सैनिकों के आगे-आगे वह स्वयम् था। अग्रगामी दल (जो दल शत्रु कैम्प तक पहुँच चुका था) का मुखिया मारा जा चुका था और वे हतोत्साह हो कर पीछे हटने की चेष्टा करने ही वाले थे और कितने ही खदेड़ते हुए शत्रु के आगे-आगे भागे भी आ रहे थे कि कैप्टेन लिटिल की उत्साहपूर्ण गर्जना उनके कानों में पड़ी और वे सब के सब घूमकर अपना पीछा करने वालों पर टूट पड़े। शत्रु सेना इस अचानक आघात से अचकचा गयी और उसका धैर्य जवाब देने लगा। अब समूची अँग्रेजी सेना पूरे उत्साह के आगे बढ़ी। कैप्टेन थाम्सन तोपखाने का प्रधान था। कुछ अन्य यूरोपियन अफसर भी अभी तक युद्ध की गतिविधि का अनुमान लगा रहे थे। अपने सेनापति की अतुलनीय वीरता देखकर वे सब के सब एक साथ ही शत्रु सेना पर टूट पड़े, अपने सेनापति के उनके एक एक स्थान को उनसे छीन लिया और इस स्मरणीय युद्ध में स्मरणीय विजय प्राप्त किया। अब लूटने पाटने का अवसर सामने देखकर मराठा सैन्य भी दौड़ पडी और भागते हुए शत्रु सैनिकों को मारने काटने लगी। कैप्टेन लिटिल ने अन्तिम सैनिक तक का पीछा करने का आदेश दे दिया था। इस प्रकार शत्रु का पूरा का पूरा तोपखाना ही उसके हाथ में आ गया। इस विजय ने अंगरेजों एवम् मराठों की सेना को जितना ही लाभ एवम् उत्साह प्रदान किया उतनी ही हानि एवम् उत्साहहीनता शत्रुओं को मिली। टीपू एवम् उसके विरोध में वने हुए संघ के बीच जितने भी युद्ध लड़े गये, उनमें यह युद्ध अपनी भयंकरता के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा।

१७९२ ई०]

मुख्य रक्षक सेना के इस प्रकार हार जाने पर सिमोगागढ़ की रक्षा अधिक दिनों तक न की जा सकी और यह किला भी २ जनवरी सन् १७९२ ई० को कैप्टेन लिटिल के हाथों समर्पित कर दिया गया। इस मौके पर कैप्टेन लिटिल को इस बात पर बड़ा खेद हुआ कि किले के मुख्य व्यक्तियों को परशुराम भाऊ के हाथों में दे देना पड़ा, जिसने समर्पण की शर्तों को भुलाकर उन सभी लोगों को उसी प्रकार बन्दी बना कर रक्खा जैसे उसने बदरुज्जमा खाँ को रखा था।

इस विजय के पश्चात् उनका काफी समय इसी में लग गया कि शिमोगा के विजित गढ़ तथा उसके आस पास के क्षेत्र नियंत्रण की व्यवस्था किस प्रकार की जाय। परन्तु परशुराम भाऊ तो पहले से ही एक निश्चित योजना बना कर चला था। अपनी पूर्वनिश्चित योजना को पूरा करने के लिए, जनबरी के लगभग मध्य में वह बेदनोर की ओर चल पड़ा। मार्ग में उसे अनेक घने बनों को पार करना पड़ा। तेजी से सफर करते हुए वह २८ जनवरी तक बेदनोर पहुँच गया। वह अभी बेदनोर पर अधिकार करने की योजना बना ही रहा था कि कुछ विशेष कारणों से (जिनका वर्णन नीचे किया जायगा) परशुराम भाऊ को अचानक, धावे का इरादा छोड़कर, तुरन्त वापस लौट पड़ने का निर्णय करने के लिए मजबूर होना पड़ा। वापस लौट कर शिमोगा पहुँचने के पश्चात् उसने श्रीरंगपट्टम जाने के लिए सीधा मार्ग पकड़ा। इसी समय टीपू सुल्तान और उसके विरोधी संघ के बीच एक मुठभेड़ और हुई। लार्ड कार्नवालिस ने, हरीपन्त तथा निजामअली के लड़के सिकन्दर जाह की संयुक्त सेनाओं के साथ ५ फरवरी को टीपू की राजधानी पर घेरा डाल दिया। दूसरे दिन, अर्थात् ६ फरवरी को अंग्रेजी

सैन्यदल ने टीपू सुल्तान के कैम्प पर बहुत ही सुसंगठित एवम् प्रभावशाली ढंग से, चारों और फैले हुए घने बनों को पार करके, सफल आक्रमण किया। उनके इस सफल आक्रमण से, उनके सहायक, मराठों और मुसलमानों मे सम्पूर्ण बाहरी हिस्सों को अपने अधिकार में ले लिया। साथ ही टीपू पर घेरा डालने के लिए गम्भीरता से तैयारियाँ की जाने लगीं। कुछ ही दिन बाद, १६ फरवरी को जनरल एबरक्राम्बी भी एक डिवीजन सेना के साथ लॉर्ड कार्नवालिस से मिला, और आगे की कार्रवाई में इसने काफी सहायता पहुँचाई। टीपू सुल्तान ने २२ फरवरी को अँगेजों की अगली पंक्तियों पर बड़ा भयानक आक्रमण किया, परन्तु जनरल एवरक्राम्बी के युद्धकौशल के कारण टीपू अपने इस दुस्साहस; पूर्ण प्रयास में असफल ही रहा।

अब टीपू जल्द से जल्द सन्धि करके इस विपत्ति को टालने के लिए छटपटाने लगा। उसने लार्ड कार्नवालिस के पास बार-बार सन्धि प्रस्ताव भेजा, परन्तु प्रारम्भ में अंग्रेजों ने इन प्रस्तावों की शर्तों को ध्यान देने योग्य नहीं समझा। परन्तु अन्त में, जब टीपू सुल्तान के प्रस्तावों की भाषा कुछ अधिक विनम्र हो गई और शर्तें अधिक आकर्षक हो गईं और साथ ही अंग्रेजों के सहायकों-विशेषकर हरीपन्त के अनुरोध पर गुलामअली और अलीरजा नामक टीपू के दो वकीलों को शिविर में आने की अनुमति दी गई तो २४ फरवरी से सन्धिवार्ता प्रारम्भ करने का निश्चय कर लिया गया। परन्तु इस निश्चिय से युद्ध विराम न हुआ, और न तो युद्ध कालीन परिस्थितियों में ही कोई अन्तर आया। आक्रमण और प्रतिरचात्मक कार्रवाइयाँ पूर्ववत चलती रहीं, जैसे कि सन्धि की कोई सम्भावना ही न हो। इस सन्धिवार्ता के लिए संघ में तीनो सेनानायकों ने अपने अपने प्रतिनिधि चुन कर भेजे, जिन को सन्धि प्रस्ताव पर टीपू के उपरोक्त दोनों वकीलों से वार्ता करने का कार्य सौंपा गया था था। लार्ड कार्नवालिस ने अपना प्रतिनिधि बनाया सर जॉन केन्नवे को, तथा हरीपन्त ने अपनी तरफ से बात करने के लिए बच्चा जी रघुनाथ को भेजा। इस सन्धिवार्ता के लिये सिकन्दरजाह ने मीर अब्दुल कासिम (या मीर आलम) को अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा था। सन्धिवार्ता के दौरान में हो दोनों दलों में किस प्रकार युद्ध होते रहते थे इसका एक प्रत्यच्च उदाहरण है टीपू सुल्तान का वह असफल आक्रमण, जो उसने २२ फरवरी को एबरक्राम्बी के डिवीजन पर किया था, और मजे की वात यह है, कि उस समय तक सन्धि की शर्तें लगभग निश्चित हो चुकी थी। काफी वादविवाद के पश्चात् उपरोक्त तीनों प्रतिनिधियों तथा टीपू सुल्तान के दोनों वकीलों के बीच सन्धि की जो शर्तें निश्चित की गई, उनका अन्तिम निष्कर्ष टीपू के इस असफल आक्रमण के दूसरे दिन, अर्थात् २३ फरवरी को सामने आया। ये शर्तें टीपू के लिए अत्यन्त ही घाटे की थीं। इन शर्तों के अनुसार यह निश्चित किया गया कि युद्ध के पूर्व टीपू के अधिकार में जितने भी चेत्र थे, उनका आधा भाग वह अपने विरोधी, संयुक्त संघ को सौंप देगा; दूसरी शर्त थी कि वह अपने शत्रुओं को, सन्धि तथा युद्ध विराम के एवज में ३ करोड़ ३० हजार रुपए देगा, जिसकी आधी रकम वह तुरन्त चुकता कर देगा, और शेष आधी रकम को एक वर्ष के भीतर तीन किश्तों में अदा करेगा। टीपू की तरफ से यह वादा भी किया गया कि वह उन समस्त राजनैतिक कैदियों को मुक्त कर देगा, जो हैदरअली के समय से लेकर अब तक कैदी बनाए गए हैं; साथ ही वह अपने दो लड़कों को अंग्रेजों के हाथ में बन्धक के रूप में रक्खेगा जिससे उन्हें यह विश्वास रहे कि वह सन्धि की इन तमाम शर्तों को पूरा करने में कोई चाल या दगा न करेगा। सन्धि की इन शर्तों के निश्चित हो जाने पर दो दिनों तक पूर्ण युद्धविराम रहा, और टीपू के दो लड़के बन्धक के रूप में अंग्रेजों के पास पहुँच गये। शर्त के अनुसार टीपू सुल्तान ने एक करोड़ से अधिक रुपया चुकता भी कर दिया। अब यह लगभग निश्चित हो चला था कि टीपू सन्धि की अन्य शर्तों को

भी पूरा कर देगा । ऐसा प्रतीत होता है कि अब तक टीपू ने परिस्थितियों पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया था, और न यही अनुमान किया कि उसके कौन-कौन से इलाके उसके हाथ से निकल जायँगे । जब उसने इस सम्बन्ध में कागजात पर दृष्टि डाली और देखा कि ऐसे क्षेत्रों में कुर्ग का अधिकांश भाग भी सम्मिलित है तो यह देखकर टीपू बहुत उत्तेजित हो गया । उसकी दृष्टि से, कुर्ग शत्रुओं के हाथ में चला गया तो एक तरह से वे श्रीरंगपट्टम के एक फाटक पर अधिकार प्राप्त कर लेंगे । टीपू ने क्रोधपूर्वक कहा कि कुर्ग को अंग्रेजों के हाथे में दे देना श्रीरंगपट्टम के एक फाटक को उनके अधिकार में दे देने के समान है । उसकी उत्तेजना से कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि टीपू इसी बात पर सन्धि को तोड़ बैठेगा और फिर से युद्ध प्रारम्भ कर देगा । उस पर लॉर्ड कार्नवालिस फिर सतर्क हो गया और उसने चटपट इस स्थिति का समाना करने के लिए आवश्यक कार्रवाइयों की और उसने फिर से घेरा प्रराम्भ कर कर देने के लिए कमर कस ली । इसके साथ ही उसके दृढ़ संकल्प से टीपू को भी अपनी परिस्थिति पर गौर करने केलिए मजबूर हो जाना था । अन्त में, काफी मजबूर एवम् निराश होकर उसे सन्धि की इन हानिप्रद शर्तों से भरे प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करना की पड़ा ।

इस सन्धिपत्र में पेशवा अथवा निजामअली के पूर्ववर्ती आश्रितों का कोई भी उल्लेख नहीं किया गया था, और न तो उस धारा का ही अनुकरण किया था जिसके अनुसार युद्ध में आगे रहने वाले दल को, युद्ध से रहने वाले लाभों का, अनुपात में अधिक भाग मिलेगा । इस सन्धिपत्र द्वारा प्राप्त हांने वाले इलाकों को तीनों सहायकों में बराबर-बराबर बाँट दिया गया । इन इलाकों से प्रत्येक को प्रतिवर्ष मिलने वाली आय चालीस लाख रुपये थी ।

टीपू के साथ हुई सन्धि के अनुसार मराठों को जो क्षेत्र मिला, वह मुख्यतः वर्धा और कृष्णा नदियों के बीच में स्थित था । उन्हें मिलने वाले क्षेत्रों में वेल्लारी के निकट स्थित सन्दूर की घाटी भी सम्मिलित थी, जो अब भी धोर पड़े परिवार के अधिकार में थी । निजामअली को इस सन्धि के अनुसार कुर्पा और गूटी के क्षेत्र मिले, जिनके साथ कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों के बीच के जिले भी सम्मिलित भी थे । उसे प्राप्त होने वालें इलाकों की पश्चिमी सरहद बनती थी मुदगल, कनकगिरी और कोपवल के जिलों से; परन्तु इन्हीं जिलों के पास तजगोदी के निकट का एक जिला टीपू ने अपने ही हाथ में रख छोड़ा था । डिण्डीगल, बारह महाल, कुर्ग और मलाबार के इलाके अंग्रेजों के हाथ में पड़े ।

अब हम परशुराम भाऊ की गतिविधियों की तरफ अपने पाठकों का ध्यान अर्कषित करना चाहते हैं । ऊपर हम देख चुके हैं कि वह जगंलों को पार करके २८ जनवरी तक बेदनोर के पास तक पहुँच गया था, पर अचानक वह वहीं से शिमोगा की ओर लौट पड़ा था और सीधे श्रीरंगट्टपम की ओर चल पढ़ा था । उक्त स्थल पर हमने उसकी इस अचानक वापसी का कोई कारण नहीं दिया था । वास्तव में उसके इस प्रकार अचानक लौट पड़ने का कारण यह था कि उसे किसी प्रकार यह समाचार मिल गया था कि जंगल में उसे घेर कर कबजे में कर लेने के इरादे से कमरुद्दीन ने एक विशाल पैदल सेना के साथ श्रीरंगपट्टम से कूच कर दिया है । यह समाचार पाने पर भाऊ बहुत चक्कर में पड़ गया । उसने सोचा कि यदि वह कमरुद्दीन से युद्ध करके उसे पराजित कर देगा तो पूना दरबार में उसकी गतिविधियों के विषय में कोई भी टीका टिप्पणी नही की जायगी, बल्कि उसे वाह वाही ही मिलेगी, परन्तु यदि युद्ध का परिणाम उसके प्रतिकूल हुआ और वह कमरुद्दीन के जाल में

पड़ गया तो वह अपनी जान से तो हाथ धोही बैठेगा, साथ ही उस की सेना भी विनष्ट हो जायगी। इधर पूना में बहुत समय तक तो फड़नवीस ने यह पता लगाने का प्रयत्न नहीं किया कि परशुराम भाऊ की इन गतिविधियों का क्या मतलब है। परन्तु ज्योंही उसने अनुभव किया कि भाऊ का उद्देश्य सम्भवतः स्पष्ट हो गया है, उसने तुरन्त भाऊ के पास यह आदेश भेजा कि वह सारे कार्यों को ठप करके तुरन्त श्रीरंगपट्टम की तरफ कूच कर दे। इधर जब कार्न वालिस ने श्रीरंगपट्टम पर घेरा डाला, तभी उसने परशुराम भाऊ के पास इस सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी भेज दी थी, साथ ही काफी विस्तार पूर्वक यह भी लिख दिया कि किस तरीके से वह अपने घुड़सवारों के साथ किले के दक्षिण भाग के सामने मोर्चाबन्दी कर ले तो किले पर अधिकार करने में बहुत अधिक सुविधा प्राप्त हो गी। परन्तु परशुराम भाऊ ने लार्ड कार्नवालिस के इस अनुरोध पर जरा भी ध्यान नहीं दिया और न अँग्रेजों को सहायता पहुँचाने में कोई तत्परता दिखाई, जब तक कि उसे नाना फड़नवीस द्वारा भेजा गया वह आदेश नहीं मिल गया जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। नाना फड़नवीस का आदेश मिलने पर परशुराम भाऊ ने श्री रंगपट्टम की तरफ कूच कर दिया, परन्तु उसकी गति इतनी धीमी थी कि वह जिस समय तक श्री रंगपट्टम पहुँचा उस समय तक युद्ध समाप्त हो गया था और सन्धि पत्र पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर हो चुके थे। यद्यपि परशुराम भाऊ का यह व्यवहार विश्वासघातपूर्ण था, फिर भी लॉर्ड कार्नवालिस ने न तो उस पर कुछ ध्यान ही दिया और न परशुराम भाऊ से ही कोई शिकवा शिकायत की। परन्तु इससे ही परशुराम भाऊ की यह गद्दारी हल्की नहीं हो जाती, और इस सम्बन्ध में उसकी जो आलोचना की जाती है वह उचित ही है। यदि इस विषय में और विस्तार से जाँच किया जाय तो हम देखेंगे कि भाऊ के इस विश्वासघात पूर्ण व्यवहार के लिए कुछ अंशों में नाना फड़नवीस को भी दोष दिया जा सकता है। जिस समय भाऊ चक्कर में स्थिर पड़ा हुआ था, तो मिस्टर मैलेट ने नाना फड़नवीस से यह अनुरोध किया था कि यह भाऊ को पूर्ण गति से राजधानी (श्रीरंगापट्टम) की ओर बढ़ने का आदेश दे, परन्तु नाना फड़नवीस इस विषय में टालमटोल करने लगा और तरह तरह की कठिनाइयों का वर्णन करते हुए बहाने बाजी करने लगा। उसने मिस्टर मैलेट को सन्तोष दिलाने के लिये यह भी कहा भी वह श्रीरंगपट्टम के विरूद्ध विजय प्राप्त करने के समाचार का खुले दिल से स्वागत करेगा, क्यों कि उसके पुराने स्वामी, पेशवा माधवराव प्रथम की यह हार्दिक इच्छा थी कि श्रीरंगपट्टम को धूल में मिला दिया जाय। उसने कहा कि यद्यपि वह मजबूरी के कारण इच्छित सहयोग नहीं दे पा रहा है, फिर भी उसकी सह भावनाएँ उनके साथ हैं।

इस सन्धि के कुछ दिनों पश्चात्, मार्च माह में औपचारिक ढ़ंग से भविष्य में भी इसी प्रकार परस्पर सहयोग का बादा करने के पश्चात् तीनों मित्र सेनाएँ एक दूसरे से अलग हुई और अपने अपने क्षेत्रों के लिए रवाना हो गईं। हरी पन्त ने अपनी सेना के साथ पूर्व की ओर का मार्ग पकड़ा और पूना की ओर चल पड़ा और पड़ाव पर पड़ाब मारते हुए २५ मई तक पूना पहुँच गया। परन्तु परशुराम भाऊ अपने भारी तथा विशाल मात्रा में एकत्रित सामानों के साथ पीछे ही पड़ा रह गया। उसका अपना भारी तोपखाना, उसके साथ ही १७ बड़ी तोपें और भी थीं जिन्हें लार्ड कार्नवालिस ने पेशवा को उपहारस्वरूप भेंट किया था। इस वजनी तोपखाने के कारण भाऊ की प्रगति और भी धीभी पड़ गईं। उसकी सेना ने रसद और पशुओं के चारे का इतना अपव्यय किया कि स्वयम् उनके लिए ही इन सामग्रियों जा अभाव हो गया। मौसम भी इतना शुष्क और गर्म था कि भाऊ के सैनिकों को अपार कष्टों का सामना करना पड़ा। यद्यपि अब शान्ति स्थापित हो गई थी, फिर भी टीपू

के बेरूदों और पढारियों ने उन्हें बहुत परेशान किया और श्रीरंगापट्टम से तुगंभद्रा नदी तक के मार्ग में भाऊ के सैनिकों को इतनी अधिक विपत्तियाँ झेलनी पड़ी, कि मराठों ने शायद ही कभी इतनी अधिक कठिनाई का सामना किया था । कैप्टेन लिटिल की टुकड़ी को उन कष्टों का सामना नहीं करना पड़ा जिन से मराठों का मार्ग चलना ही दूभर हो गया था। इसकी वजह यह थी कि उसने जनरल एवर क्राम्बी का साथ पकड़ लिया था जो कि सीधे मलाबार की तरफ चल पड़ा था । वे आसानी से कनानोर होते हुए बाम्बई पहुँच गये ।

पैंतीसवां अध्याय

पेशवा दर्बार में महादजी सिन्धिया

[१७९२—१७९४]

टीपू के राज्यक्षेत्र पर अधिकार के विषय में मराठा मंत्रियों की राय—हिन्दुस्तान की ओर महादजी सिन्धिया की गतिविधि—पाटन का युद्ध—इस्माइल बेग की पराजय—मेड़ता का युद्ध—राजपूतों के साथ सन्धि—हिम्मत बहादुर की मदद से अली बहादुर का बुन्देलखन्ड में धाक जमाना—सिन्धिया का पूना की ओर बढ़ना—सिन्धिया द्वारा युवा पेशवा का विश्वास प्राप्त करने के प्रयत्न—सिन्धिया और होलकर की सेनाओं के बीच परस्पर शत्रुता—हिन्दुस्तान में सिन्धिया की धाक— नाना और पेशवा के बीच उल्लेखनीय विवाद—महादजी सिन्धिया का मत—सिन्धिया की मृत्यु।

प्रायः यह प्रश्न उठता है कि लार्ड कार्नवालिस ने अवसर पाने पर भी टीपू के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र को क्यों हस्तगत नहीं कर लिया। उसने ऐसा क्यों नहीं किया, इस सम्बन्ध में कारणों की खोज करना या उनकी जाँच करना इस पुस्तक के विषय क्षेत्र के बाहर की चीज है और मराठों के इतिहास से इस प्रश्न का कोई सम्बन्ध नहीं है। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि यद्यपि नाना फड़नवीस और परशुराम भाऊ तथा अधिकांश मराठा सरदार मैसूर राज्य के जानी दुश्मन थे, फिर भी स्वयं उनका भी यह विचार नहीं था कि मैसूर राज्य को समूल उखाड़ फेंका जाय। यहां तक कि महाद जी सिन्धिया इस मत के इतना विरुद्ध था कि अवसर पड़ने पर यह सम्भावना थी कि वह इस प्रकार की किसी कार्रवाई का सशस्त्र विरोध करता। मराठों को इस विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं थी कि भारतवर्ष में अंग्रेज जो भी कार्य करते थे या जो भी नीति अख्तियार करते थे उस पर इंगलैण्ड की सामान्य जनता के जनमत का बहुत असर पड़ता था, और यहाँ के अंग्रेज अधिकारी प्रायः कोई ऐसा कार्य नहीं करते थे; जिसके विषय में उन्हें यह सम्भावना रहती थी कि इंगलैण्ड की जनता उनका विरोध करेगी। मराठे अब भी यही विश्वास करते हैं कि गवर्नर जनरल ने हरी पन्त फड़के के अनुरोध पर ही मैसूर रियासत के प्रति इतनी उदारता बरती थी, उनका मत है कि चूंकि मराठे ऐसा नही चाहते थे, इसलिए उनके अनुरोध पर अंग्रेजों ने मैसूर राज्य के साथ इतनी उदारता का व्यवहार किया था। *

जिस समय लार्ड कार्नवालिस टीपू का सर कुचलने के लिए उसके विरुद्ध एक संघ बनाने के प्रयत्न में जी जान से लगा हुआ था, उस समय सिन्धिया के पास, अंग्रेजों के रेजिडेन्ट के पद पर मिस्टर पामर नियुक्त था। उसने मि० पामर के पास यह निर्देश भेजा था कि वह सिन्धिया और होलकर पर इस बात के लिए नम्रता से जोर डाले कि वे पूना दरबार में अपने प्रभाव का उपभोग करें और इस बात के लिए प्रयास करें कि पेशवा और ब्रिटिश सरकार में प्रेमपूर्ण सम्बन्ध बना रहे और मराठे अंग्रेजों की सहायता करते रहें। सिन्धिया ने मिस्टर पामर के अनुरोध पर, टीपू से व्यक्तिगत तथा जातिगत शत्रुता के कारण टीपू के विरुद्ध कार्नवालिस द्वारा बनाये जाने वाले संघ में

---

* मराठा पाण्डुलिपि, और हरीपन्त के पत्र।

सम्मिलित होने के लिए तैयार हो गया। बशर्ते कि अपनी सेना में से दो टालियनों को लार्ड कार्नवालिस उसके पास भेज दे। उसने स्वयं इस संयुक्त सेना के साथ दक्षिण की ओर बढ़ने का प्रस्ताव भी रक्खा। उसने ब्रिटिश सरकार से इस सहायता से बदले में, यह वचन भी ले लिया कि वह जब तक अपने इलाके से अनुपस्थित रहेगा, अंग्रेज उसके राज्य क्षेत्र की सुरक्षा का उत्तरदायित्व अपने हाथ में रक्खेंगे। अंग्रेजों ने उसकी इन शर्तों को उचित नही समझा जिसके फलस्वरूप उसने पूना में हुई सन्धि में सम्मिलित होने से स्पष्ट इनकार कर दिया।

हम पीछे देख चुके हैं कि १७६० में महादजी सिन्धिया विभिन्न विवादों और उद्देश्यों में उलझा हुआ था। उसे सर्वप्रथम अपने सहायक सरदारों को संगठित करना था। तत्पश्चात् उसने सोच रक्खा था कि अवसर पाते ही वह राजपूतों का दमन करने का प्रयत्न करेगा। साथ ही वह इस्माइल बेग से भी जला भुना हुआ था, और उसपर काबू पाने की योजनाएँ बना रहा था। सिक्खों की तरफ से भी वह निश्चिन्त नही था और उसे भय लगा हुआ था कि न जाने कब सिक्खों के आक्रमण का सामना करना पड़ जाय। इस्माइल बेग को दबाने के लिए उसने होलकर और अली बहादुर के साथ एक अस्थायी व्यवस्था की और उन्हीं के जोर पर उसे कुचलने की योजना बनाई। इस्माइल बेग भी चुपचाप नहीं बैठा था। वह भी सिन्धिया के इरादे की भनक पा चुका था और उसका सामना करने की तैयारियों में व्यस्त था। उधर जयपुर तथा जोधपुर के राजपूत राजा भी इस्माइल बेग को सिन्धिया के विरुद्ध प्रोत्साहित कर रहे थे। ऐसी परिस्थिति में सिन्धिया ने तुरन्त युद्ध छेड़ना उचित नहीं समझा। उसने इस्माइल बेग की सेना की चुनी टुकड़ियों को घूस तथा अन्य प्रलोभन देकर फोड़ लेने का प्रयत्न किया और इस प्रयास में उसे कुछ सफलता भी मिली। अन्त में, अपने प्रबन्ध से पूर्णतः सन्तुष्ट हो जाने के पश्चात् उसने गोपालराव भाऊ, लखवा दादा आदि सरदारों को यह आदेश दिया कि वे पाटन के पास इस्माइल बेग के शिविर पर आक्रमण कर दे। इस स्थान पर इस्माइल बेग का मोर्चा एकदम प्रभाव हीन और अरक्षित था क्योंकि जो टुकड़ी इस स्थान पर तैनात की गई थी उसे सिन्धिया ने अपनी तरफ मिला लिया था। परन्तु सिन्धिया के अफसरों को इसका ज्ञान नहीं था, बल्कि वे भयंकर युद्ध की आशंका से, पहले से हीं निराश हो गये थे, परन्तु जब उसके अफसरों ने देखा कि होलकर इस कार्य में जरा भी रुचि नहीं ले रहा है, बल्कि हाथ बाँधे चुपचाप एक तरफ खड़ा है, तों उनकी निराशा और बढ़ गई, और उन्होंने समझ लिया कि उन्हें प्राणपण से युद्ध करके, अपने ही बाजुओं के बल पर बिजय प्राप्त करना है। इस युद्ध में इस्माइल बेग ने सदैव की तरह ही, बड़ी बीरता के युद्ध किया, और अथक शौर्य का प्रदर्शन किया। उसके पठानों की एक टुकड़ी ने भी बहुत बहादुरी के साथ युद्ध किया। ये पठान तीन बार मुगलों की पैदल सेना को चीरते हुए उनके तोपखाने तक जा पहुचे और तोपचियों को काट डाला। इस अवसर पर डी वाइन ने अप्रतिम पराक्रम और साहस का परिचय दिया, और यदि वास्तव में देखा जाय तो इस भयंकर तथा जोड़ के युद्ध में सिन्धिया को जो विजय प्राप्त हुई उसका श्रेय डी वाइन के व्यक्तिगत शौर्य तथा उसकी प्रशिक्षित सैनिकों के अनुशाशित व्यवहार को दिया जाना चाहिये। यदि उसकी टुकड़ी ने, उसके शौर्य से उत्साहित होकर, पूर्ण अनुशासित ढंग से युद्ध न किया होता तो इस युद्ध में विजय प्राप्त करने में सिन्धिया को नाकों चने चबाना पड़ता। दोनों ही पक्षों के बहुत अधिक संख्या में सैनिक हताहत हुए, * परन्तु इस्माइल बेग की सेना लगभग पूर्णतः विनष्ट हो गई और युद्ध से जीवित बचे इनेगिने सैनिकों के साथ वह युद्ध क्षेत्र छोड़कर जयपुर

---

* बंगाल रिकार्डस में दिये गये एक देशी अखबार के अनुवाद के अनुसार इस युद्ध में ११ या १२ हजार मराठे मारे गये थे।

की दिशा में भाग निकला। उसकी सभी तोपें लड़ाई के मैदान में ही छूट गई जिन पर मराठों ने अधिकार कर लिया। इस्माइल की १० बटालियन ने पराजय की आशंका देखकर हथियार डाल दिया और आत्मसमर्पण कर दिया।

इस्माइल बेग के बुरी तरह से पराजित हो जाने के बाद भी राजपूतों ने साहस नहीं खोया, वे अब भी युद्ध में तत्पर ही रहे और शीघ्र ही मराठों और राजपूतों में एक और युद्ध हुआ। इस बार दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई जोधपुर के राज्य क्षेत्र में स्थित मेड़ता में, राजपूतों पर मराठों तथा डी बाइन ने अत्यन्त ही भयंकर आक्रमण किया और १२ वीं सितम्बर को, सूर्योदय के साथ ही डी बाइन ने अचानक राजपूतों पर धावा करके उन्हें परास्त कर दिया। इसी समय केवल चार सौ राठौर सवारों ने अचानक युद्ध क्षेत्र में ललकारते हुए प्रवेश किया ताकि अन्य राजपूत सैनिक भी अपनी स्थिथि को पुनः सम्भाल कर युद्ध का पाँसा पलट सके, परन्तु राजपूत सेना में इतनी अधिक अव्यवस्था फैल गई थी कि वे फिर से पैर जमाकर लड़ने में समर्थ न हो सके। सिन्धिया राजपूतों से बुरी तरह जला भुना हुआ था, और सामान्यतः यह अनुमान लगाया जा रहा था कि अब इस अवसर पर सिन्धिया नहीं चूकेगा और राजपूतों को पूर्णतः अपनी मुठ्ठी में कर लेगा, परन्तु वह ऐसा नही कर सका क्योंकि स्वयम् सिन्धिया के प्रमुख सहायक होलकर और अली बहादुर ने उसके इस विचार का बहुत बड़ा और प्रभावपूर्ण विरोध किया जिसके फलस्वरूप सिन्धिया ने केवल इसी शर्त पर शान्ति कायम रखने का वादा कर लिया कि वे प्रतिवर्ष कर के रूप में, एक निश्चित रकम सिन्धिया को देते रहेंगे।[†]

डी बाइन के सेना की संख्या बढ़ते-बढ़ते अब काफी अधिक हो गयी थी। इस समय उसके पास १८००० प्रशिक्षित पैदल सैनिक, ६००० अनियमित सैनिक, (जिनमें नजीब और रुहेले अधिक थे) २००० अनियमित घुड़सवार, और ६०० फारसी सवार थे। इन ६०० फारसी सवारों की टुकड़ी के वस्त्रों, अस्त-शस्त्रों तथा प्रशिक्षण आदि की पूर्ण व्यवस्था का एकमात्र मालिक स्वयं डी बाइन ही था। टुकड़ी के अधिकार में जितने भी घोड़े थे, वे डी बाइन की निजी सम्पति थे। अपने सेना के भरण पोषण आदि के लिये उसे दोआब में स्थित कुछ जिले दे दिए गये थे। जिनकी मालगुजारी से होने वाली नकद आमदनी २२ लाख रुपया प्रतिवर्ष थी। छोटे अग्निशस्त्रों तथा बड़ी तोपों आदि को सुरक्षित रूप से अपने पास रखने के लिए उसे आगरा का किला भी दे दिया गया था। उस समय डी वाइन से पास युद्ध में प्रयोग किये जाने योग्य बहुत सक्षम एवम् शक्तिशाली तोपें संग्रहीत थीं। जिनकी संख्या कुल मिलाकर लगभग २०० थीं। वास्तव में सिन्धिया ने डी वाइन के अधीन इस सुसंगठित सेना को अपनी सेना के अंग के रूप में नहीं रक्खा था, वह दिखावे के तौर पर यह प्रचार किए हुए था कि यह सेना शाही सेना का एक अंग है। यही नहीं. वह इस प्रशिक्षित सेना को शाही सेना के नाम से पुकारता भी था। यद्यपि सिन्धिया ने बहुत ही गुप्त रूप से डी बाइन के अधीन, आधुनिक ढंग पर इस सेना को सगठित किया था; फिर भी उसके प्रतिद्वन्दी उसकी इस चाल से बेखबर नहीं थे और 'शाही सेना' का आवरण उनकी दृष्टि से इस सेना के महत्व को छुपा रखने में समर्थ न हो सका। उसके प्रतिद्वन्दियों में प्रमुख था होलकर, जो सिन्धिया की प्रत्येक गतिविध पर हमेशा नजर रखता था। वह सिन्धिया की इस सैनिक प्रगति तथा बढ़ती हुई शक्ति को देखकर मन ही मन उससे जलन रखता था। सिन्धिया की देखादेखी होलकर ने भी ऐसो ही कुछ टुकड़ियों को संगठित करने की योजना वनाई। अपनी योजना को पूरा करने के लिए वह एक योग्य प्रशिक्षक की खोज में लग गया,

---

[†] मराठी भाषा में लिखित पत्र एवम् पाण्डुलिपियाँ, पामर के पत्र हिन्दुस्तानी अखबार, और जनरल डी वाइन द्वारा दिया गया विवरण।

और अन्त में चम्बल के पार उसकी मुलाकात कैवेलियर दद्रेनेक नामक एक फ्रान्सीसी सैनिक से हुई। होलकर ने उसीके कन्धे पर यह भार रक्खा। इस फ्रान्सीसी सैनिक ने काफी प्रयत्न तथा परिश्रम के पश्चात् आधुनिक ढंग से प्रशिक्षित और अनुशासित चार बटालियनों का संगठन किया। होलकर राज्य में इस प्रकार सैन्यदल का संगठम उसके पूर्व कभी भी नहीं किया गया था और होलकर के लिए ये बटालियन अपने ढंग की अकेली ही थी।

इधर अली बहादुर तथा हिम्मत बहादुर दूसरी ही योजना बनाने में व्यस्त थे। अन्त में हिम्मत बहादुर की राय तथा सहमति पर अली बहादुर ने बुन्देलखण्ड पर अधिकार करने का इरादा किया। अपनी योजना के अनुसार वे काफी समय तक बुन्देलखण्ड में युद्ध करते हुए डटे रहे, एक लम्बे संघर्ष के बाद यद्यपि इस क्षेत्र में उनकी धाक तो जम गई परन्तु वे कहीं भी स्थिर होकर पैर न जमा सके। वे बुन्देलखण्ड के किसी भी भाग पर पूर्ण अधिकार न प्राप्त कर सके। उन्हें प्रायः अचानक धावों का सामना करना पड़ता था और जब तब उन पर घेरा भी पड़ जाया करता था।

इस बीच सिन्धिया अपने सहयोगी सरदारों के साथ तरह तरह के विवादों में उलझा हुआ था। इन सरदारों को अपने काबू से रखने के लिए वह प्रायः उन्हे धमकाता रहता था कि पूना जाकर वह सभी सरदारों को दरबार में उपस्थित होने का आदेश जारी करा देगा। परन्तु इससे उनपर सिन्धिया की धाक कुछ अधिक न जम सकी क्योंकि प्रायः सभी लोग नाना फड़नवीस की नीति को अच्छी तरह जानते थे। प्रायः सभी मराठा सरदारों को यह ज्ञात था कि इस समय पूना दरबार में होलकर की अधिक इज्जत है; और नाना फड़नवीस प्रायः प्रत्येक बात में होलकर का ही पक्ष लेता था। वह सिन्धिया को बहुत ही सन्देह की दृष्टि से देखता था, क्योंकि सिन्धिया इस समय पूना से बहुत अधिक दूरी पर था और उसकी गतिविधियाँ बहुत ही सन्देहजनक तथा रहस्यपूर्ण थीं। इसीलिए जब सिन्धिया उज्जैन की तरफ बढ़ा, तो वास्तव में उसका उद्देश्य था उज्जैन होते हुए पहुंचना, परन्तु उपरोक्त कारणों से उसकी इस यात्रा के विभिन्न उद्देश्यों के विषय में तरह तरह के अनुमान लगाये जाने लगे। कुछ लोगों ने विचार किया कि वह पूना दरबार में अंग्रेजों के बढ़ते हुये प्रभाव को पसन्द नहीं करता, साथ ही हैदराबाद और पूना में उनकी निरन्तर बढ़ती हुई शक्ति से जलन रखता है। ऐसे लोगों का मत था कि अंग्रेजों के प्रति इसी ईर्ष्या के कारण तथा उनके प्रभाव को पूना दरबार से सभाप्त करने के लिये वह स्वयम् दरबार में अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है। अभी तक की घटनाओं को देखते हुये यह असम्भव नहीं था कि अंग्रेज पूना में अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हो जाते, विशेष कर ऐसी स्थिति में जब कि टीपू का समस्त राज्य क्षेत्र भी जीता जाकर अंग्रेजों और मराठों में वंट जाता, अंग्रेजों के लिए यह कार्य और भी आसान हो जाता। अतः अंग्रेजों के प्रभुत्व को समाप्त करना ही सिन्धिया की इस प्रगति का उद्देश्य है, ऐसा कुछ लोगों का विचार था। कुछ अन्य लोग यह अनुमान लगा रहे थे कि सिन्धिया की आँख निजाम अली पर गड़ी हुई है, और वह उसी के क्षेत्रों पर आक्रमण करेगा। इसके विपरीत कुछ लोग यह भी विश्वास करते थे कि सिन्धिया ने हिन्दुस्तान में हाल ही में कुछ क्षेत्रों पर अधिकार प्राप्त किया था, और उसे भय था कि कहीं होलकर उसके इन क्षेत्रों में हस्तक्षेप करके अशान्ति न पैदा कर दे, इसीलिये वह होलकर के किसी अनुचित हस्तक्षेप को रोकने के उद्देश्य से आगे बढ़ रहा था। सिन्धिया की गतिविधि में इसी प्रकार के अन्य अटकल भी लगाये जा रहे थे।

वास्तव में इस प्रकार के अनुमान निराधार ही नहीं थे। एक निश्चित आधार के कारण ही तरह-तरह की सम्भावनाएँ प्रगट की जा रही थी। यह बात तो पूर्णरूप से सत्य है कि वह दरबार में ब्राह्मणों के प्रभाव से सन्तुष्ट नहीं था, वह इस प्रभाव को नियंत्रित करना चाहता था, और ऐसा वह [illegible] लगी और

दरबार में उसकी धाक जम जाय। सन् १७९० के जून माह में, पाटन के युद्ध का निपटारा हो जाने के पश्चात् मुगल बादशास द्वारा उसे तीसरी बार एक आदेश पत्र मिला जिसके अनुसार पेशवा को बादशाह का वकील-ए-मुतलक नियुक्त किया गया था, साथ ही उसका यह पद वंशानुगत बना दिया गया था। परन्तु पेशवा को यह सम्मानपूर्ण पद दिये जाने के साथ इस आदेश पत्र में यह भी उल्लेख किया गया था कि ऐसा इसी शर्त पर किया जायगा कि पेशवा सिन्धिया को ही अपना नायक बनाये और सिन्धिय के इस पद को पैतृक कर दिया जाय, अर्थात् उसके बाद सिन्धिया परिवार का उत्तराधिकारी ही पेशवा के नायक के पद पर नियुक्त किया जाय। मुगल बादशाह ने इस बात के लिये पूरा प्रयत्न किया था कि सिन्धिया द्वारा तैमूर के शाही खानदान के ऊपर मराठों का प्रभाव पूर्णतः स्पष्ट हो जाय। जो व्यक्ति मुगलों के शाही परिवार पर इस तरह का प्रभाव जमाने में समर्थ होता था उसे मराठे बहुत ही सम्मानपूर्ण दृष्टि से देखते थे। बादशाह ने सिन्धिया को यह भी अधिकार दिया था कि अपने पुत्रों में से वह किसी को भी अपना उत्ताराधिकारी नियुक्त कर सकता है। इस आदेशपत्र के द्वारा हिन्दुओं की धार्मिक भावना को भी सन्तुष्ट करने का प्रयास किया गया था और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने यह आदेश भी सम्मिलित कर दिया था कि सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य में कहीं भी गोबध नहीं होगा न बैलों को ही काटा जायगा।

सिन्धिया दक्षिण की तरफ बढ़ता रहा, परन्तु उसकी यात्रा की गति बहुत ही धीमी थी और प्रायः ऐसा प्रतीत होता था कि वह अपने राज्य क्षेत्र को छोड़कर इतनी लम्बी यात्रा करने में हिचकिचा रहा है और अपनी बर्तमान स्थिति के प्रति सशंकित है। उसने इस तथ्य की स्पष्ट घोषणा कर दिया कि वह बादशाह के आदेश से पूना की यात्रा कर रहा है और उसकी इस यात्रा का उद्देश्य है पेशवा को वे सनदें समर्पित करना जिनके अनुसार पेशवा को बादशाह का वकील-ए-मुतलक नियुक्त किया गया था। जब वह बादशाह द्वारा दिये गये इन कागजातों के साथ गोदावरी नदी के निकट स्थित भीर नामक स्थान पर पहुंचा तो उसने निजाम अली के समक्ष कुछ मांगे रक्खी, यह नहीं पता कि उसने क्या चीजे माँगी थीं, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उसने निजाम अली पर यह जोर डाला कि वह भीर के उपजाऊ जिले को स्वयम् उसे समर्पित कर दे और औरंगाबाद का किला पेशवा को दे दे। निजाम अली ने दो में से एक भी प्रस्ताव को मानने से स्पष्ट इनकार कर दिया जिससे, सिन्धिया ने ऐसा प्रदर्शित किया मानो वह निजाम अली के इस अभद्रतापूर्ण व्यवहार से बहुत ही अपमानित हुआ है।

नाना फड़नवीस एक लम्बे अरसे तक इसी सन्देह में रहा कि सिन्धिया के आने की खबर महज एक अफवाह है और वास्तव में सिन्धिया दक्षिण की तरफ आ ही नहीं रहा है। परन्तु कुछ समय बाद ही उसके जासूसों ने उसे पक्की खबर दी कि सिन्धिया पूना की ही तरफ आ रहा है और इस समय तक वह बुरहानपुर से आगे आ चुका है। यह खबर मिलते ही नाना फड़नवीस चिन्तित हो गया और उसने तुरन्त हरी पन्त फड़के को लार्ड कार्नवालिस के पास यह अनुरोध करने के लिए भेजा कि वह कैप्टेन लिटिल तथा उसके सैन्यदल को स्थायी रूप से पूना में रख दे तो पेशवा उसका बहुन कृतज्ञ होगा। परन्तु गवर्नर जनरल ने काफी सोच विचार के पश्चात् विभिन्न कारणों से इस प्रस्ताव पर सहमति प्रदान करने की कोई प्रवृत्ति नहीं दिखाई।

सिन्धिया को पहले से ही अशंका थी कि उसका विरोध करने के लिए नाना फड़नवीस अंग्रेजों की सहायता ले सकता है। उसे यह ज्ञात था कि नाना उसकी प्रशिक्षित सैन्यदलों से ईर्ष्या रखता है, इसलिए उसे सशंकित न करने के उद्देश्य से वह अपने साथ इस प्रशिक्षित सेना की बहुत छोटी सी टुकड़ी ले आया; उसकी इस दुकड़ी का कमाण्डर एक बहुत ही चरित्रवान अंग्रेज था जिसका नाम हेरसिंग था। इसके साथ ही उसके साथ एक बटालियन प्रशिक्षित सेना और भी थी। इस सैन्य का कमा-

ण्डर माइकेल नाम का एक व्यक्ति था जो कि अशिक्षित, चरित्रहीन तथा अत्यन्त ही निम्न कोटि का व्यक्ति था। परन्तु उसमें कुछ विशेषताएं थी, सर्वप्रथम तो वह बहुत ही चलतापुर्जा और होशियार था. दूसरे वह बात चीत करने में अत्यन्त ही प्रवीण था। सिन्धिया ११ जून को अपने दल बल के साथ पूना पहुंच गया। उसने मूला नदी के संगम के निकट अपना पड़ाव डाल दिया।

जब गवर्नर जनरल लार्ड कार्नवालिसने कैप्टेन लिटिल के सम्बन्ध में नाना फड़नवीस का प्रस्ताव स्वीकार नही किया तो नाना ने दूसरे ही तरीके से सिन्धिया को नीचा दिखाने के लिए प्रयत्न करना शुरू कर दिया। उसने अपनी शक्ति भर, विभिन्न ढंगों से तर्क दे देकर पेशवा को इस बात के लिये तेयार करने की चेष्टा की कि वह बादशाह द्वारा भेजी गई सनदों और ओहदे को स्वीकार ही न करे। नाना ने पेशवा को समझाया कि इन सनदों में कुछ ऐसी पदवियां पेशवा को प्रदान की गई हैं कि उन्हे धारण करने से मराठों के हृदयगत भावनाओं को बहुत धक्का पहुंचेगा। उदाहरण के लिये बादशाह ने एक सनद द्वारा पेशवा को 'महाराजाधिराज' की पदवी ग्रहण करने का अधिकार दिया था। पेशवा को नानाने सुझाया कि उसके द्वारा यह पदवी ग्रहण किये जाने पर मराठा साम्राज्य के बर्तमान सरकार के संविधान की धाराओं का अपमान होने की संभावना है परन्तु सिन्धिया भी अपनी तरफ से प्रयत्न करता रहा और अन्त में औपचारिक रूप से उसने सतारा के राजा से अनुमति प्राप्त कर लिया कि पेशवा उन सभी सम्मानों एवम ओहदों को धारण कर सकता है जिन्हें बादशाह ने उसे सम्मानित करने के लिये भेजा है। सिन्धिया के पूना पहुचने के नौ दिन पश्चात नाना फड़नवीस स्वयम सिन्धिया से मुलाकात करने के लिए उसके कैम्प में गया। सिन्धिया ने अत्यन्त ही औपचारिक तथा विनीत भाव से नाना का स्वागत किया और उसे अपने शिविर में ले गया। उसके उच्चपद के प्रति आदर दिखाते हुये सिन्धिया ने उसकी उपस्थिति में मसनद पर बैठना भी स्वीकार नहीं किया और नाना के सामने हाथ बाँधे खड़ा रहा, उसने नाना का हर प्रकार से आदर सत्कार किया और उसे अपनी तरफ से सन्तुष्ट करने का प्रयास किया। नाना से भेंट होने के दूसरे दिन पेशवा के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिये उसे उनके पास पहुंचाया गया। वह युवा पेशवा को भेंट देने लिये अपने साथ हिन्दुस्तान से लाई हुई दुर्लभ और अजीब गरीब चीजे भी ले गया था। पेशवा ने निश्चित किया कि वह दूसरे दिन एक समारोह करेगा, जिसमें वह पूरी धूमधाम के साथ वकील ए मुतलक की पदवी को तथा उन समस्त सनदों और प्रतीकों को भी ग्रहण करेगा, जो सिन्धिया के हाथों बादशाह द्वारा उसके पास भेजी गई थी। सिन्धिया ने भी अपनीसामर्थ्य भर पेशवा को उत्साहित किया कि यह समारोह काफी धूमधाम से किया जाय। इस समारोह के लिये जो स्थान चुना गया वह सिंधिया के निजी कैम्प से कुछ ही दूरी पर था। उस स्थान पर काफी कीमती और शानदार शिविर गाड़े गये। दूसरे दिन निश्चित समय पर पेशवा बड़े धूम धड़ाके के साथ राजसी वस्त्रों से सुसज्जित होकर अपने दल बल के साथ इस नये कैम्प की ओर वढ़ा। इस शानदार कैम्प के प्रारम्भ मे ही एक शिविर को भली भाँति शाही रुबाब से सजाया गया था, और उसे मुगल बादशाह के शाही कक्ष का रूप दे दिया गया। बादशाह के शासन को प्रदर्शित करने के लिए एक ऊंचा सिंहासन बना दिया गया था। इसी सिंहासन पर पेशवा को वकील एमुतलक बनाए जाने से सम्बन्धित शाही फरमान, इस पद के लिए बादशाह द्वारा भेजीं गई खिलअत और मुख्य सनदे तथा शाह सम्मान के प्रतीक चिन्ह आदि सजा कर रख दिए गये थे। जब पेशवा इस स्थान पर पहुंचा तो उसने मुगल बादशाह के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने करने के लिए खाली सिंहासन के सामने पहुंच कर तीन बार अदब से सिर झुका करसलाम किया। तत्पश्चात् उसने बादशाह को पेश की जाने वाली नजर के रूप में सोने की एक सौ एक मुहरों

को वाकायदा इस शाही तख्त के प्रतीक के ऊपर रख दिया और इस सिंहासन की बांयी तरफ रक्खे हुए आसन पर निहायत ही अदब के साथ बैठ गया। इसके पश्चात् सिन्धिया के साथ आया हुआ उसका फारसी सेक्रेटरी उठा और उसने पूर्ण औपचारिक ढंग से इन शाही फरमानों को जोरों से पढ़ा। इन्हीं फरमानो में वह फरमान भी सम्मिलित था जिसमें बादशाह ने सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य में गोवध और बैलों को काटने के निषेध का आदेश जारी किया था। इन फरमानोंके पढ़े जाने के पश्चात् पेशवा ने खिलअत ग्रहण किया,और फिर सिंहासन के सामने झुक कर बाकायदे तीन बार सलामी दिया। इस खिलअत में पहनने के लिए पाँच कीमती वस्त्र थे, हीरे जवाहिरातों तथा परों से बने हुए पाँच बेश कीमती अभूषण थे, तथा साथ में निम्न लिखित वस्तुएं भी सम्मिलित थीं, एक तलवार, एक डाल, एक कीमती कलमदान, वकील ए मुतलक की मुहर, मयूर पंखों से वने हुने शाही पंखे एक नालकी, एक पालकी, एक घोड़ा और एक हाथी। इन वस्तुओं के अतिरिक्त ६ हाथी भी थे जिन पर शाही पताका लहरा रही थी, साथ ही दो अर्धचन्द्र, दो सितारे, मछली और सूर्य आदि जरी से बने हुए प्रतीक भी पेशवा के समक्ष उपस्थित किये गये। इन सब उपहारों का अवलोकन करने के पश्चात् पेशवा इस शिविर से ही सटे हुए एक दूसरे शिविर में चला गया जहां उसने बादशाह द्वारा भेजी गई खिलअत को धारण किया और फिर बाहर आकर अपने लिए सुनिश्चित आसन को ग्रहण किया। पेशवा द्वारा आसन ग्रहण किए जाने के पश्चात् सर्वप्रथम नाना फड़नवीस आगे बढ़ा और पूर्ण सम्मान के साथ उसने पेशवा के समक्ष अपनी नजर पेश की। उसके पश्चात् सिन्धिया तथा अन्य उपस्थित मराठा सरदारों तथा अफसरों ने भी अपनी-अपनी नजरें पेश की। इस समारोह के विधिपूर्वक समाप्त हो जाने के पश्चात् जब पेशवा अपने महल की ओर वापस लौटने लगा तो उसकी एक तरफ हरी पन्त फड़के तथा दूसरी तरफ स्वयं सिन्धिया हो गए तथा शाही पंखे द्वारा उसे हवा करते हुए साथ-साथ चलने लगे। उसने नालकी पर सवार होकर पूना में प्रवेश किया, शाही खिलअत से सम्मानित नालकी में बैठे हुए पेशवा का दर्शन करने के लिए पूना की सड़कों पर नर नारियों की अपार भीड़ उमड़ पड़ी, इस अवसर पर कहीं भी तिल रखने की जगह नहीं बची थी। जिस शान शौकत और धूम-धाम से इस समय पेशवा का जुलूस जा रहा था, उस तरह की सजावट और उस तरह के उच्च श्रेणी के राज पुरुषों का जमाव देखने का अवसर सम्भवतः पूना वासियों को इसके पहले कभी भी नहीं मिला था।

महल में पहुंचने के तुरन्त बाद ही पेशवा ने शाही फरमान की दूसरी शर्त को भी पूरा करने का आयोजन किया। उसने पूर्ण समारोह के साथ महादजी सिन्धिया को वर्तमान वकील–ए मुतलक (अर्थात् स्वयं) नायब बनाने की घोषणा कर दी। सिन्धिया ने इस अवसर पर भी अन्य अवसरों की ही तरह अत्यधिक विनम्रता का प्रदर्शन किया और वह उसका यह प्रदर्शन इतना अतिरंजित हो गया कि लोगोंको दाल में कुछ काला मालूम पड़ने लगा। उदाहरण के लिए, जब पेशवा ने वकील ए मुतलक की हैसियत से उसे अपना नायब घोषित किया तो सिन्धिया ने अत्यन्त ही विनम्रता पूर्वक कहा कि वह केवल यही चाहता है कि उसे पेशवा के खानदानी दास के रूप में ही रक्खा जाय और वह इसी अधिकार पर ही पूर्ण रूप से सन्तुष्ट रहेगा, यदि उसे पेशवा के जूते उठाने का भी कार्य सौंप दिया जाय तो वह परम प्रसन्न रहेगा। वकीलए मुतलक का नायब बनाए जाने के विषय में उसने कहा कि उसे ऊँचे ओहदे की कोई लालसा नहीं है, और वह तो चाहता है कि उसे केवल पटेल के नाम से ही पुकारा जाय और इस छोटे से ओहदे के लिए ही वह स्वयं को पेशवा का दासानुदास समझेगा। यद्यपि उसकी यह औपचरिक विनम्रता उस समय की दरबारी औपचारिकता के अनुरूप ही थी, फिर भी वह इन विनम्र अभिव्यक्तियों द्वारा मराठों के हृदय में उतना प्रभाव पैदा न कर सका जितना कि वह चाहता था। इतना ही नहीं, पटेल के नाम से पुकारे जाने की उसकी लालसा ने तमाम वयोवृद्ध और सामाजिक बन्धनों से बंधे मराठों

की दृष्टि में उसे नीचे गिरा दिया। किसी भी विद्वान मराठा ब्राह्मण ने सिन्धिया की इस निम्न कोटि की आत्म विनम्रता और चापलूसी को पसन्द नहीं किया। यह बात तो सर्वविदित थी ही कि महादजी सिन्धिया एक रखेल का लड़का था और सामाजिक मापदण्ड के अनुसार उसे हेय समझा जाता था, साथ ही लोगों की दृष्टि में सिन्धिया परिवार को उत्तराधिकार से प्राप्त होने वाले किसी भी अधिकार अथवा पद पर महादजी सिन्धिया कोई भी दावा करने का हकदार नहीं था। यद्यपि महादजी ने दक्षिण में काफी धन व्यय करके कुछ पारिवारिक अधिकार प्राप्त कर लिए थे, फिर भी वयोवृद्ध मराठे उसे सिन्धिया परिवार का एक सदस्य मानने के लिए किसी भी तरह तैयार नही थे। एक दल ऐसा भी था जो नहीं चाहता था कि पेशवा बादशाह द्वारा दिए गये इस ओहदे को स्वीकार करे। ये लोग पहले सतारा के राजा के अधीन अफसर रह चुके थे, उन्होंने पेशवा के साथ उस शिविर में प्रवेश करने से इनकार कर दिया जिसे शाही शिविर की तरह सजाया गया था। यही नहीं, उन्होंने वकीलए-मुतलक के लिबास में सजे हुए पेशवा को नजर देना भी कबूल नहीं किया। जब सिन्धिया इस समारोह के पश्चात संगम पर पड़े हुए अपने शिविर में वापस लौटा तो उसके अफसरों ने, वकील ए मुतलक के नायब की हैसियत से उसे बधाई दी और नजरें पेश कीं। परन्तु उसके विषय मे उसके देशवासियों में जो दुर्भावना फैलती जा रही थी, वह इतनी साधारण नहीं थी कि सिन्धिया इसे महसूस न कर पाता। उसने निश्चय कर लिया कि ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में अपनी अभिसन्धियों को पूर्णरूप से कार्यान्वित करने के लिए बहुत अधिक सतर्कता से काम लेना आवश्यक है।

पूना आने में, सिन्धिया का प्रमुख उद्देश्य था, किसी भी तरह से युवा पेशवा का विश्वास पात्र बनना तथा नाना फड़नवीस के प्रभुत्व को समाप्त करना। इसमें से पहले उद्देश्य की पूर्ति का मार्ग उन दुर्लभ और अमूल्य उपहारों से कुछ सुगम हो गया जिन्हें वह हिन्दुस्तान से केवल इसी लिए ले आया था। उसकी सफलता का मार्ग और भी सुगम हो गया जो खिलअत व वकीले ए मुतलक के ओहदे से, उसने अपने बुद्धि कौशल के बल पर पेशवा को प्रसन्न करने के लिए मुगल बादशाह द्वारा प्राप्त किया था। सिन्धिया ने पेशवा से एकदम खुला और दोस्ताना व्यवहार करना प्रारम्भ किया। पेशवा अभी कम उम्र का ही था और इस आयु में जो चीजें युवकों को प्रिय होती है, सिन्धिया ऐसी ही चीजों के विषय में पेशवा से वार्तालाप करता था। उसके तथा पेशवा के बीच से छोटे-बड़े की दीवार हट गई थी। सिन्धिया प्रायः उससे शिकार आदि की बातें किया करता था। धीरे-धीरे वह पेशवा को अपने साथ जब तब शिकार खेलने के लिये भी निमंत्रित करने लगा। अभी तक पेशवा को नाना फड़नवीस से तरह तरह की नसीहतें ही सुनने को मिलती थीं और उसकी गम्भीर तथा अनुभव से भरी हुई दबा देने वाली बातों के मुकाबिले में सिन्धिया की हल्की-फुल्की बातें और युवकोचित व्यवहार पेशवा को अधिक आकर्षक प्रतीत हुये, जिसके फलस्वरूप कुछ ही दिनों में सिन्धिया का हर पल का साथी बन गया। सिन्धिया समय-समय पर पूना के अड़ोस-पड़ोस के गाँवों में दावतों तथा मनोरंजक कार्यक्रमों का आयोजन करने लगा और पेशवा को इन कार्यक्रमों में शरीक होने के लिए निमंत्रित करने लगा। नाना ने भी इसमें बाधा देना उचित नहीं समझा, क्योंकि वह समझता था कि अधिक सतर्कता बरतने पर सम्भव है कि पेशवा हाथ से निकल जाय। यद्यपि उसकी अनुभवी और दूरद्रष्टा आँखों से सिन्धिया की इन आयोजनाओं का उद्देश्य छिपा नहीं था, फिर भी वह देखी को अनदेखी करता रहा। परन्तु उसने अपनी तरफ से सावधानी रखने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी। वह सिन्धिया की प्रत्येक गतिविधि पर कागदृष्टि लगाये हुए था, और उसके गुप्तचर जाल की तरह सिन्धिया के चारों ओर फैले हुये थे नाना फड़नवीस के इस कड़े प्रबन्ध के कारण सिन्धिया को ऐसे अवसर कभी-कभी ही मिल पाते थे कि वह नाना के विरुद्ध पेशवा के कान भर सके।

परन्तु जब भी कभी उसे पेशवा से खुलकर बात करने का अवसर मिल पाता था, तो वह सदैव पेशवा के दिमाग में यही बात जमाने का प्रयास करता था कि नाना फड़नवीस सारी शासन शक्ति अपने हाथ में केन्द्रित करके उसे (पेशवा को) सदैव पुतला ही बनाये रखना चाहता है; जिसके नाम पर वह मनमानी कर सके । साथ ही वह पेशवा को यह विश्वास भी दिलाने का प्रयत्न करता था कि उसकी यह दृढ़ इच्छा है कि वह उसे नाना फड़नवीस के चंगुल से मुक्त करके उसे उसका स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान करे, साथ ही वह पेशवा को यह भरोसा भी देता था कि अपनी इस इच्छा को पूरी करने के लिये वह हर तरह से साधन सम्पन्न एवम् सक्षम है । परन्तु सिन्धिया के इन बहकाने वाली बातों से पेशवा के हृदय में नाना फड़नवीस के लिये जो सम्मान था वह जरा भी कम न हो सका । यद्यपि पेशवा सिन्धिया के प्रत्येक कार्यक्रम में सम्मिलित होता था और प्रायः सिन्धिया इसी विषय में बाते करता था परन्तु उसकी सद्भावनाएँ और निर्णय करने की शक्ति अभी उसका साथ नहीं छोड़ सकी थी, और उसके दिल में नाना फड़नवीस के विश्वास की जो जड़ जम चुकी थी, उसे उखाड़ फेंकना या आहत करना कोई आसान कार्य नहीं था । प्रारम्भ में तो प्रायः वह सिन्धिया की इन बातों पर उत्तेजित हो उठता था और बहुत गर्म होकर सिन्धिया के तर्कों का खण्डन करता था, परन्तु धीरे-धीरे सिन्धिया के सतत् प्रयत्नों का इतना परिणाम अवश्य हुआ कि प्रारम्भ में नाना फड़नवीस द्वारा लगाए गए जिन उपयोगी निषेधों एवम् बन्धनों को पेशवा पहले अनुभव भी नहीं करता था, वे अब उसे कष्टदायक और कभी कभी अपमानजनक भी प्रतीव होने लगे और दिन-ब-दिन सिन्धियाके साथ उसकी मित्रता बढ़ती ही गई ।

दरबार में सिधिन्या ने जो भी वार्ताएँ की या जिन समस्याओं पर विवाद किया वे मुख्यतः हिन्दुस्तान की व्यवस्था के सम्बन्ध में थी। सर्वप्रथम उसने बताया कि हिन्दुस्तान में साम्राज्य का विस्तार करने में उसे बहुत अधिक धन व्यय करना पड़ा है, साथ ही मुगल बादशाह से पेशवा के लिए ओहदा और खिलअत आदि प्राप्त करने में भी कम धन खर्च नहीं हुआ है । उसने दरबार से प्रार्थना की कि उसके इन कार्यो से पूना दरबार के सम्मान में वृद्धि हुई है, इसलिए उसे वह सारा खर्च दिया जाय । उसने यह प्रार्थना भी कि हिन्दुस्तान की राजनीति और व्यवस्था का भार उसी को दे दिया जाय, जिसमें किसी अन्य सरदार अथवा मंत्री को हस्तक्षेप करने का अधिकार न रहे । सबसे अन्त में उसने प्रस्ताव रक्खा कि तुका जी होलकर तथा अली बहादुर को हिन्दुस्तान से वापस बुला लिया जाय । उसकी इन प्रार्थनाओं का नाना फड़नवीस ने बहुत ही कड़ा उत्तर दिया । सिन्धिया की प्रथम माँग के बारे में उसने कहा कि सिन्धिया को हिन्दुस्तान में व्यय हुए धन का एक एक पैसा दिया जायगा, लेकिन पहले वह उस आय का पूरा विवरण दरबार में प्रस्तुत करे जो उसे ऐसे क्षेत्रों से, वर्षों से प्राप्त होती रही है, जिन्हें उसने स्वयं जीता है, और उनसे कर लेता है । नाना ने कहा कि दरबार को बिल्कुल पता नहीं है कि इन क्षेत्रों से सिन्धिया को क्या आय होती है. अतः पहले वह हिसाब दे ले, तब अपना अतिरिक्त व्यय प्राप्त करने का हकदार होगा । अन्य विषयों पर भी, दरबार में सिन्धिया तथा नाना फड़नवीस के बीच लगभग रोज ही नोक झोंक होती रही, और इसी बीच ऐसी अनेक परिस्थितियाँ सामने आईं जिनके कारण उनके बीच परस्पर ईर्ष्या द्वेष की जो चिनगारी पहले से ही सुलग रही थी, वह अब ज्वाला का रूप धारण कर के हर तरफ लपटें फैलाने का प्रयत्न करने लगी । परन्तु फिर भी कुछ समय तक दोनो ही प्रतिद्वन्दियों ने अपनी हृदयगत भावनाओं को दिल में ही रक्खा और सार्वजनिक या परस्पर व्यवहार में, शिष्टाचार का दामन नहीं छोड़ा । परन्तु उन दोनों के ही सैन्यदल जो हिन्दुस्तान और राजपूतों के क्षेत्र में एक ही साथ सब कार्य कर रहे थे, इन परिस्थितियों से अनभिज्ञ न रहे, उनमें परस्पर इतना विरोध पैदा हो गया कि दोनों दलों में खुला युद्ध हो पड़ने की आशंका दिखाई पड़ने लगी ।

इस्माइल वेग शान्ति से बैठने वाला व्यक्ति नहीं था। कोई खुराफात मचाने के लिए उसके हाथ पैर में फिर खुजली होने लगी। सिन्धिया से मोल ली हुई दुश्मनी भी उसे चैन से नहीं बैठने दे रही थी। इस प्रकार सिन्धिया की अनुपस्थिति में हिन्दुस्तान के शान्त वातावरण को उद्वेलित करने का मुख्य साधन बना इस्माइल वेग। सिन्धिया के हिन्दुस्तान छोड़ने के कुछ समय बाद ही वह गुप्त रूप से तुका जी होलकर की बैठकों में सम्मिलित होने लगा और उसकी दुरभिसन्धियों में सक्रिय सहयोग देने के लिए राजी हो गया। धीरे धीरे इस्माइल बेग ने अपनी सेना का विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु कुछ समय बाद ही होने वाले युद्ध में दुर्भाग्य ने उसे इस प्रकार घेरा कि उसका सैनिक जीवन अप्रत्याशित रूप से सदैव के लिए समाप्त हो गया।

सिन्धिया के अफसरों ने कनोद के किले को अपने हाथ में लेने का इरादा किया, यह किला उस समय नजीफ खाँ की विधवा बेगम के हाथ में था, जिसने मराठों के हाथ किला सौंप देने से इनकार कर दिया। इस पर डी वाइन ने अपने सहकारी मांश्यूर पेरां के सेनापतित्व में इस किले पर अधिकार करने के लिए एक सैन्यदल को रवाना कर दिया। सिन्धिया की फौज से इस तरह युद्ध करने का सुअवसर देखकर इस्माइल बेग से नहीं रहा गया वह भी तुरन्त दलबल के साथ नजीफ खाँ की विधवा बेगम की सहायता के लिए चल पड़ा। परन्तु वह किले के भीतर भी न पहुंच पाया था कि अचानक पेरां से उसकी मुठभेड़ हो गई। इस मुठभेड़ में इस्माइल बेग पराजित हुआ, परन्तु किसी तरह जान बचाकर अपने दलबल के साथ किले में प्रवेश कर गया। भीतर पहुंचकर उसने किले की प्रतिरक्षा के लिए बहुत ही कुशल तथा सक्षम प्रबन्ध किया, जिससे आक्रमणकारी किले को कोई भी हानि न पहुंचा सके। परन्तु इसी समय पत्थर के एक गोले की चोट से बेगम की मृत्यु हो गई। इस दुर्घटना से किले की रक्षक सेना हतोत्साहित हो गई और वे आत्मसमर्पण करने का इरादा करने लगे। इस्माइल बेग का इरादा था सिन्धिया की इस फौज से डटकर लोहा लेना, अतः उसने इस रक्षक सेना को समझा बुझा कर युद्ध के लिए तैयार करने का प्रयत्न किया। परन्तु रक्षक सेना ने उसकी एक न सुनी और सैनिकों से उचित शर्तों पर सन्धि हो जाने के लोभ से, इस्माइल बेग से दगा करके, आत्मसमर्पण कर देने की योजना बनाई। यह सब देख सुन कर उसने ऐसी नौबत ही न आने दी और स्वयम् को पेरां के हवाले कर दिया। पेराँ ने, अपने मुख्य सेनानायक डी वाइन की तरफ से वादा किया कि इस्माइल बेग की जान सलामत रहेगी और उसकी हत्या नहीं की जायगी। इस शर्त का पालन तो डी० वाइन ने अवश्य किया परन्तु उसने इस्माइल बेग को जीवन भर के लिए आगरा के किले में कैद कर दिया जहाँ १७९९ में उसकी मृत्यु हो गई।

कनोद के किले पर जिस समय पेराँ ने अधिकार किया उस समय तक सिन्धिया पूना नहीं पहुंच पाया था। अभी तक सिन्धिया तथा होलकर की सेनाओं में कोई खुला विरोध होने की नौबत नहीं आ पाई थी और दोनों ही की सेनाएँ एक साथ राजपूताना की विभिन्न रियासतों से कर वसूलने का कार्य पूरा करने में लगी हुई थी। उन्होंने परस्पर सहयोग से दो किलों को भी जीत लिया था परन्तु इसी समय लूटपाट में मिले माल के उचित बँटवारे के प्रश्न पर दोनों दलों में वादाववाद प्रारम्भ हो गया जिसने बाद में इतना गम्भीर रूप धारण कर लिया कि उनकी परस्पर ईर्ष्या द्वेष की भावनाएँ जो अभी तक छिपी हुई थीं, अचानक उत्तेजित हो उठा और वे खुल कर युद्ध करने के लिए तत्पर हो गए। सिन्धिया और होलकर की सेनाओं के बीच यह उल्लेखनीय युद्ध लखापरी में हुआ जो कि अजमेर के निकट स्थित है। इस युद्ध में होलकर की सेना में ३०,००० सवार थे और द्रदेनेक द्वारा प्रशिक्षित चार बटालियन थीं। इस युद्ध में सिन्धिया की सेना का संचालन गोपाल राव माऊ स, लखवा दादा और डो बाइन कर रहे थे। इस सेना में २०,००० सवार तथा ६००० पैदल सैनिक सम्मिलित थे। आक्र-

मरण पहले सिन्धिया की सेना द्वारा किया गया जिसकी योजना डी बाइन ने बनाई थी। यह युद्ध अत्यंत ही विकट हुआ और डी बाइन ने कहा कि ऐसा भयंकर युद्ध करने का अवसर उसे कभी नहीं मिला था। अन्त में इस युद्ध में होलकर की सेना पराजित हुई। युद्ध के मैंदान में ही, गोले बारूद से भरी हुई १२ गाड़ियों में अचानक विस्फोट हो जाने से डी बाइन की सेना कुछ समय के लिए अचकचा गई और पूर्ण रूप से अव्यवस्थित हो गई, परन्तु इस अवसर पर होलकर की सेना घने जंगल में मोर्चा बाँधे हुई थी इसलिये उसके सवार इस अवसर से कुछ भी लाभ न उठा सके। दद्रेनेक की सेना तब तक युद्ध करती ही रही जब तक कि उसके लगभग सभी सैनिकों का सफाया नहीं हो गया। सिन्धिया के फौज के हाथ होलकर की ३८ तोपें लगीं। होलकर के बचे खुचे सैनिक बचते भागते किसी प्रकार मालवा पहुंचे। होलकर इस समय मालवा में ही था, अपनी इस बुरी तरह से पराजय का समाचार पाने पर वह क्रोध से आगबबूला हो उठा और इस क्रोध के आवेश में उसने सिन्धिया की राजधानी उज्जैन को घेर लिया।

जब हिन्दुस्तान में सिन्धिया और होलकर की सेनाओं के बीच हुए इस युद्ध की खबर पूना पहुंची तो एक बार फिर दरबार तथा सिन्धिया के सौम्य तथा शिष्ट व्यवहार के बीच एक अदृश्य दीवाल सी खड़ी हो गई। पूना में भी लोगों का हृदय एक और सम्भावित युद्ध की कल्पना से सशंकित हो उठा और भीतर हो भीतर सिन्धिया तथा नाना फड़ननवीस, अपनी अपनी सुरक्षा की तैयारियों में व्यस्त हो गए। नाना फड़नवीस ने अपनी सहायता के लिए परशुराम भाऊ को पूना पहुंचने का आदेश भेज दिया जिसके फलस्वरूप कुछ ही दिनों पश्चात् भाऊ अपने चुने हुए २००० सवारों के साथ नाना के पास उपस्थित हो गया। जब सिन्धिया ने इस प्रकार नाना फड़नवीस को अपनी शक्ति बढ़ाने में व्यस्त देखा तो वह भी अपनी सेना की वृद्धि करने में लग गया। उसके साथ उसके दों विदेशी सेनानायक हेसिंग और फाइलोज आए हुए थे। सर्वप्रथम सिन्धिया ने इन दोनों को अपनी अपनी सैनिक संख्या में वृद्धि करने का आदेश दिया। तत्पश्चात् उसने हिन्दुस्तान में स्थित डी० बाइन के पास आदेश भेजा कि वह शीघ्रातिशीघ्र अपनी एक बटालियन सेना को पूना पहुंचाने की व्यवस्था करे। डी० बाइन ने तुरन्त अपने सहकारी मांश्यूर पेरां के नेतृत्व में एक बटालियन को पूना की ओर रवाना कर दिया। इस प्रकार यद्यपि दोनों ही दल अपनी सैन्यशक्ति बढ़ाने में जोरों से लगे हुए थे, परन्तु उनमें से किसी की भी इच्छा नही थी, कि उनके बीच विवाद एवम् मतभेद का निपटारा तलवार द्वारा किया जाय। उन्होंने राजधानी में इस प्रकार की शान्ति रखने का प्रयास करने के अतिरक्त अपने उन सेनानायको और अफसरों को भी शान्त रहने और युद्ध न करने का आदेश भेज दिया, जो राजधानी से दूर थे, औंर दरबार की गतिविधियों को देख कर आपस में भी उलझे रहते थे। वास्तव में वे दोनों ही पेशवा पर भरोसा रक्खे हुए थे औंर दोनों ने यह लगभग मान लिया था कि पेशवा उसी का पक्ष ग्रहण करेगा। नाना फड़नवीस को अपनी देशभक्ति और स्वमिभक्ति पर भरोसा था और सिन्धिया को भरोसा था अपनी कूट नीति परजो भी हो, परन्तु दोनों प्रतिद्वन्दी पेशवा के फैसले की प्रतीक्षा में ही चुपचाप पड़े हुए थे।

हिन्दुस्तान में हुए युद्ध से यह तो स्पष्ट हो गया कि सिन्धिया कम से कम हिन्दुस्तान में तो अजेय ही है। सिन्धिया को अपनी सेना की तरफ से कोई चिन्ता नहीं थी, वह तो इस बात से परेशान था कि अपने जन्म दोष के कारण वह महाराष्ट्र में न तो लोकप्रियता ही प्राप्त कर पा रहा था और न समर्थन ही। वह इसी प्रयत्न में लगा हुआ था कि कोई उचित अवसर पाते ही वह मराठों के हृदय में आने के लिए स्थान बनाने का यत्न करे। संयोग से शीघ्र ही उसके हाथ एक अवसर आ गया। यह मामला था गोविन्दराव गायकवाड़ के प्रति नाना फड़नवीस द्वारा किए गए अन्याय का, जिस में

सिन्धिया ने गायकवाड़ का पक्ष लिया था ; यह मामला विस्तार में आगे बताया जायगा। इसी प्रकार एक अवसर पर उसने फिर नाना का विरोध किया और सफलता प्राप्त की। बात यह हुई कि पन्त सचिव एक जागीर का मालिक था। नाना फड़नवीस उस जागीर को उससे छीन कर दूसरे को देना चाहता था। पन्त सचिव का पक्ष दरबार में निर्बल देखकर नाना फड़नवीस ने उसकी जागीर के समस्त अधिकार उससे छीन लिए। सिन्धिया ने यह पता लगा लिया था कि जनमत नाना की इस कार्रवाई के विरुद्ध है; अतः महाराष्ट्र की जनता को प्रसन्न करने के लिए उसने तुरन्त पन्त सचिव का पक्ष लेकर नाना फड़नवीस के विरुद्ध एक विवाद खड़ा कर दिया। उसने सचिव को पूना बुलवा लिया और दरबार में नाना के खिलाफ मुकदमा कायम करवा दिया। अन्त में पन्त सचिव जीता और उसे उसकी जागीर फिर वापस मिल गई। नाना ने सचिव के स्थान पर बाजीराव मोरेश्वर नामक व्यक्ति को नियुक्त कर दिया था जिसे इस निर्णय के पश्चात् बरखास्त कर दिया गया। सिन्धिया के इस साहसपूर्ण और सफल हस्तक्षेप से पूना दरबार में एक गम्भीर विवाद उत्पन्न हो गया जिसे शान्त करना असम्भव प्रतीत होने लगा, परन्तु हरी पन्त फड़के की मध्यस्थता से किसी प्रकार यह विवाद कुछ दब गया। इस सफलता से उत्साहित होकर सिन्धिया ने युवा पेशवा को अपने संरक्षण में लेने का प्रयास आरम्भ कर दिया जिसके परिणाम स्वरूप उसके तथा नाना के बीच फिर एक गम्भीर विवाद उत्पन्न हो गया। इस सम्बन्ध में उसने पेशवा को फुसलाना बहकाना शुरू किया, और ऐसे ही एक अवसर पर जब कि लोह गाँव के निकट पेशवा और सिन्धिया में, नाव पर बैठे बैठे इस सम्बन्ध में गम्भीर वार्ता हो रही थी, संयोग से नाना फड़नवीस के किसी जासूस ने उन दोनों की बातचीत सुन लिया और नाना को यह खबर दिया। ज्योंही पेशवा वापस अपने महल में पहुंचा, नाना फड़नवीस आखिरी फैसले के लिए उसके पास पहुंच गया। उसने पेशवा की भावनाओं और न्याय-बुद्धि की दुहाई देते हुए राज्य के प्रति की गई अपनी असंख्य सेवाओं का स्मरण कराया, साथ ही उसने पेशवा से यह न भूलने का आग्रह किया कि उसने कितनी कुशलता एवम् परिश्रम से उसका संरक्षण किया है तथा किस अनन्य राजभक्ति के साथ उसकी सेवा की है। इसके पश्चात उसने सिन्धिया की बढ़ती हुई ज्यादती और हस्तक्षेप तथा उसके प्रति पेशवा के बढ़ते हुए विश्वास के प्रति चिन्ता प्रकट किया। उसने पेशवा को यह भी ध्यान में रखने को कहा कि सिन्धिया किस उद्देश्य से अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाता चला जा रहा है और यूरोपीय ढंग पर बटालियनों का संगठन कर रहा है। उसने पेशवा को समझाया कि सिन्धिया मराठों के रीति रिवाजों से न केवल घृणा करता है बल्कि वह स्वयम् को उनसे अलग भी समझता है और यही नहीं, वह वर्तमान ब्राह्मण राज्य के प्रति द्वेष रखता है और उसका इरादा, ब्राह्मणों के आधिपत्य को समाप्त करके अपना एकाधिकार स्थापित करना है। पेशवा को ये बातें समझा लेने के पश्चात् उसने अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों का वर्णन करते हुए कहा कि यदि पेशवा की तरफ से उचित प्रोत्साहन न मिल सका तो वह न तो शासन भार सम्भाल सकेगा, और न सिन्धिया की कुचेष्टाओं का ही समुचित उत्तर दे सकेगा। अन्त में अत्यन्त भावुकता के आवेश में, आँखों में आँसू भर कर, भरे हुए कण्ठ से गलत और बहकाने वाली सलाहों से भटके हुए पेशवा के भविष्य के प्रति चिन्ता प्रकट करते हुए उसने पेशवा के समक्ष अपना त्याग पत्र प्रस्तुत किया और कहा कि वह अब सब सांसारिक बन्धनों को तोड़कर काशी वास करना चाहता है। नाना फड़नवीस के इस भावुकतापूर्ण और मर्मस्पर्शी आत्म निवेदन से पेशवा के नेत्र भी गीले हो गए और उसने बहुत अनुताप का अनुभव किया। उसने अत्यन्त कातर स्वर में नाना फड़नवीस से क्षमायाचना की तथा उससे आग्रह किया कि वह पूना को इस प्रकार अनाथ करके कहीं न जाय। उसने सच्चे दिल से प्रतिज्ञा की कि भविष्य में वह सदैव उसी के परामर्शों पर चलेगा और कभी भी गुमराह नहीं होगा।

उधर सिन्धिया अपनी विजय की खुशी में फूला हुआ था। उसने कल्पना भी नहीं की थी कि पेशवा अब उसके प्रभाव से निकल कर पुनः उसके प्रतिद्वन्दी के संरक्षण में चला जायगा। सिन्धिया के पास अब इतनी शक्ति एकत्रित हो गई थी, कि अब वह नाना फड़नवीस का पांसा पलट सकता था, परन्तु पेशवा के अचानक हृदय परिवर्तन से यह वात अब उतनी आसान नहीं रह गई थी। वैसे भी नाना फड़नवीस के पास सहायकों का अभाव नहीं था। हरीं पन्त फड़के अपनी पूरी शक्ति के साथ उसके लिए जान तक देने के लिए तैयार था, रस्तिया और पटवर्धन परिवारों के साथ नाना की अच्छी पटती थी, कुछ अन्य पुराने जागीरदार भी उसी के पक्ष में थे और सबसे अलग, पूरे महाराष्ट्र की सद्भावनाएँ उसके साथ थी। इतनी सारी शक्तियों के विरोध में रहते हुये, महादजी सिन्धिया को अपना इरादा पूरा करने में नाको चने चबाने पड़ते। परन्तु सौभाग्यवश, दोनों प्रतिद्वन्दियों की शक्ति परीक्षा की यह घड़ी न आ पाई और अपनी महात्वकांक्षापूर्ण योजनाओं को क्रियान्वित करने से पहले ही, सिंधिया को भयंकर ज्वर ने घेर लिया जिसके घातक प्रभाव ने कुछ ही दिनों में उसके अस्तित्व को समाप्त कर दिया और मराठा राज्य को एक भयंकर विपत्ति की सम्भावना से मुक्त कर दिया। महादजी सिन्धिया ने पूना के पास, बनोली गांव में १२ फरवरी १७६४ को दम तोड़ दिया।

छत्तीसवाँ अध्याय

महादजी सिन्धिया और जिंजीरा के सिद्दी

[१७९४ ई०]

महादजी सिन्धिया की मृत्यु का प्रभाव—उसकी नीति और उसका चरित्र—उसके पौत्र दौलत राव का उत्तराधिकारी होता—सिन्धिया की प्रशिक्षित पैदल सेना—नागपुर और बड़ौदा की गतिविधियाँ—गोविन्द राव गायकवाड़ की रीजेन्ट के पद पर नियुक्ति—महाराष्ट्र के समुद्र तट की घटनाएँ—पेशवा का जहाजी बेड़ा—कोलाबा का आंग्रे—जिन्जीरा के सिद्दी—जिन्जीरा का घटना चक्र।

१७९४ ई०]

महाद जी सिन्धिया की यह आकस्मिक मृत्यु राजनैतिक दृष्टि से एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना सिद्ध हुई। उसकी मृत्यु का प्रभाव केवल मराठा साम्राज्य पर ही नहीं पड़ा, भारत की अन्य रियासतें भी उसकी मृत्यु से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित हुईं। उसकी मृत्यु से पहले जिन पैंतीस वर्षों के इतिहास का हम पीछे अध्ययन कर चुके हैं। उससे सिन्धियां के चरित्र एवं उसकी मान्यताओं तथा विचारधाराओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। परन्तु हमारा कार्य इतने से ही समाप्त नहीं हो जाता। हमें यह भी देखना है कि उस समय जो छोटी-छोटी विभिन्न मराठा शक्तियां थीं, उनकी परिस्थिति क्या थी, साथ ही इस बात की जानकारी भी जरूरी है कि जब तक अंग्रेजों के पैर इस क्षेत्र में ठीक से नहीं जम पाये थे, उस समय महाराष्ट्र के तट पर स्थित छोटे-मोटे राजाओं की गतिविधियां किस प्रकार की थीं। इन सब तथ्यों की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि इस छोटे से अध्याय में सिन्धिया की नीतियों का एक बार पुनः संक्षिप्त अध्ययन करें तथा उसके चरित्रगत दोषों एवम् गुणों पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। साथ ही मराठा इतिहास के पूर्ण अध्ययन के लिए यह भी आवश्यक है कि हम कुछ अन्य छोटे-मोटे सरदारों के व्यवहारों एवं गतिविधियों पर विहंगम दृष्टि डालें तथा उन राजाओं व सरदारों तथा अंग्रेजों के बीच जिस तरह के सम्बन्ध थे, उनकी व्याख्या करें। इतनी जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् हमारे लिए उन कारणों को समझना आसान हो जायगा जिनके फलस्वरूप बाद में चलकर दक्षिण में मराठों और मुगलों के बीच विकट संघर्ष हुआ।

जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं, प्रारम्भ में महादजी सिन्धिया ने जिन योजनाओं को क्रियान्वित करने का प्रयास किया उनसे स्पष्ट है कि वास्तव में उसका उद्देश्य था एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना करना। परन्तु साथ ही वह यह भी चाहता था कि वह अन्य मराठा नरेशों एवं सरदारों के सहयोग एवं सद्भावनाओं से वंचित भी न हो, उसकी यह हार्दिक इच्छा थी कि अवसर पाते ही वह समस्त मराठा शक्तियों को एक झण्डे के नीचे लाकर सम्पूर्ण शक्ति से सारी विदेशी शक्तियों का विरोध करे और इस दृष्टि से वह मराठा साम्राज्य के सरदारों में संगठन एवं एकता को बहुत महत्व देता था। इस समय महाराष्ट्र में ब्राम्हणों का ही आधिपत्य था और सिन्धिया इसे पसन्द नहीं करता था, तत्कालीन शासन व्यवस्था से वह मुख्यतः इसीलिए द्वेष रखता था। जब उसने अपना राजनैतिक जीवन प्रारम्भ किया तो उसका यही काम हो गया था कि वह एक ब्राह्मण

सरदार को दूसरे ब्राह्मण के खिलाफ उत्तेजित करके, उसकी मदद करने लगता और बाद में उस ब्राह्मण को डराने धमकाने लगता जिसकी सहायता करके उसने उसे महत्वपूर्ण बनाया होता। इस बीच अनेक ऐसी घटनायें हो गईं जिनसे यह अनुमान लगाया जाने लगा कि अब सिन्धिया का पतन अवश्यम्भावी है। ऐसी घटनाओं में से प्रमुख निम्नलिखित हैं—पूना से उसका हट जाना, गुजरात में स्थित गोड़ार्ड के विरुद्ध उसका अभियान, मजबूर होकर पुनः मालवा में स्थित अपनी जागीर में पहुँचने की आवश्यकता का अनुभव करना, कार्नाक द्वारा उसका बुरी तरह पराजित होना, और उस महत्वपूर्ण अभियान की उल्लेखनीय सफलता जो ब्राम्हण दल ने गोड़ार्ड के विरुद्ध प्रारम्भ किया था। इन सब घटनाओं से सिन्धिया क्रमशः निर्बल पड़ता गया और उसके प्रतिद्वन्दियों की प्रबलता स्पष्ट होती गई। परन्तु इसी के पश्चात् घटनाचक्र कुछ इस प्रकार घूमा कि सिन्धिया का प्रभाव पुनः जोरों से बढ़ने लगा। उसका प्रभाव बढ़ाने में सबसे प्रमुख भाग लिया सालबाई की सन्धि ने। इसी समय सिन्धिया के सतत प्रयत्न से तथा तत्कालीन राजनैतिक उलझनों से, ब्रिटिश सरकार ने उसे एक स्वतन्त्र राजा होने की मान्यता भी प्रदान कर दी। अब वह एक ऐसी स्थिति में पहुँच गया था जहाँ से वह सभी प्रमुख शक्तियों का मध्यस्थ बना हुआ था, उसे शान्ति का दूत माना जाता था और एक सम्मानित मराठा राजा के रूप में सभी प्रमुख शक्तियां उसका आदर करती थीं। इस प्रकार अवनति के गर्त से निकलकर सिन्धिया एक बार फिर शक्ति तथा प्रभाव के मार्ग पर तीव्र गति से चल पड़ा। अपने हाथों में पर्याप्त सैन्यशक्ति एकत्रित कर लेने के पश्चात् उसने हिन्दुस्तान में अपने प्रभाव तथा राज्य क्षेत्र में वृद्धि करने का प्रयास प्रारम्भ किया। उसकी यह प्रबल महत्वाकांक्षा उसके समकालीन राजनीतिज्ञों के लिए आलोचना का विषय बन गई। इन लोगों का मत था कि सिन्धिया में इतना कलेजा ही नहीं कि वह कोई महत्वपूर्ण कार्य कर सके। और उनकी दृष्टि में यह बात जैसे स्वयम् सिद्ध हो चुकी थी कि सिन्धिया की यह प्रबल महत्वाकांक्षा ही उसे ले डूबेगी। परन्तु धीरे-धीरे प्रत्येक कदम को जमाकर रखते हुए सिन्धिया ने उन समस्त विघ्न बाधाओं को पार कर डाला जो उसका मार्ग रोके खड़ी थी। उसने अपना एक स्वतन्त्र राज्य तो स्थापित कर ही लिया. परन्तु इससे भी महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय उपलब्धि थी उसकी आधुनिक ढंग से संगठित, प्रशिक्षित और अनुशासित सैन्य शक्ति, जिसमें पूरे मराठा साम्राज्य के सक्षम रूप से नियन्त्रित करने की सामर्थ्य थी। परन्तु जब उसने अपनी इन उपलब्धियों के फलस्वरूप नाना फड़नवीस के हृदय में उत्पन्न होती हुई ईर्ष्या और जलन का अनुभव किया तो एक प्रबल प्रतिद्वन्दी के पैदा होने की आशंका से वह चिन्तित हो उठा। उसे सबसे अधिक भय इस बात से लगा कि कहीं उसके मार्ग में रोड़ा अटकाने के लिए या उसकी उन्नति की गति को अवरुद्ध करने के लिए नाना फड़नवीस किसी अन्य शक्ति (मुख्यतः अंग्रेजों) का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न न करें, ऐसी स्थिति आ जाने पर दो बातें अवश्यम्भावी थीं, अंग्रेज मराठों से मिलकर मराठों का ही हनन करते, ऐसा सिन्धिया नहीं चाहता था, साथ ही इस सहयोग के बदले में अंग्रेज मराठों से अधिकाधिक लाभ उठाने का प्रयास करते। कुछ वर्ष पहले मराठा साम्राज्य को बहुत निर्बल समझा जाने लगा था, और ऐसा प्रतीत होता था कि उनकी शक्ति के सारे स्रोत समाप्त हो चुके हैं, परन्तु पिछले युद्ध में मराठा सेनाओं ने जितने उत्साह और वीरता से शत्रु सेनाओं का सामना किया, उसे देखकर अनुभवी राजनीतिज्ञों ने भली भाँति अनुभव कर लिया कि मराठा सेना, अपने पिछले इतिहास में कभी भी इतनी सुसंगठित और शक्तिशाली नहीं हो पाई थी। सिन्धिया यह नहीं चाहता था वीर मराठों द्वारा उपार्जित यह प्रतिष्ठा फिर से धूल में मिल जाय। सिन्धिया यह

अनुभव कर चुका था कि तत्कालीन मराठा साम्राज्य की सेना में इतनी शक्ति थी कि उसकी मदद से पूरे भारत को जीता जा सकता था। जब संयुक्त सेना ने टीपू पर आक्रमण किया था, तो उन लोगों में सिन्धिया एक प्रमुख व्यक्ति था जिनका यह मत था कि टीपू के राज्य को समूल नष्ट कर देना राजनैतिक दृष्टि से गलत होता। सिन्धिया यह भली भाँति जानता था कि टीपू के बीच में न रहने पर अंग्रेजों का अगला लक्ष्य होगा मराठों का विनाश करना। वास्तव में टीपू के राज्य का पतन हो जाने से सबसे अधिक अहित मराठा राज्य का ही होता। परन्तु एक बात यहाँ उल्लेखनीय है, और वह यह कि जब तक यह युद्ध चलता रहा, सिन्धिया ने अंग्रेजों से निपटने के सम्बन्ध में सम्भवतः कभी गम्भीरता से विचार नहीं किया। यद्यपि वह यह देखकर चिढ़ा हुआ था कि अंग्रेज दिन-ब-दिन पूना दरबार में अपना प्रभाव बढ़ाये चले जा रहे हैं, और दरबार के अधिकांश ब्राह्मण मन्त्रियों से उनकी अच्छी पट रही है, फिर भी उसने इस बीच अंग्रेजों और दरबार के बीच तीव्रता से बढ़ते हुए सम्बन्ध को रोकने या बीच में रोड़ा अटकाने की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। इसकी भी वजह थी, उसने पूना दरबार से ब्राह्मणों का आधिपत्य समाप्त करने के लिए जो योजना तैयार की थी, वह बहुत ही क्रान्तिकारी थी और इस योजना के अनुसार उसके पास ऐसे उपाय थे कि जरा से प्रयत्न से ही वह अंग्रेजों को दरबार का दुश्मन या दोस्त बना सकता था, इसीलिए वह इस तरफ से निश्चिन्त था।

सिन्धिया के हृदय में ब्रिटिश सरकार तथा भारत में निरन्तर प्रभावशाली होते हुए अंग्रेजों के प्रति चाहे जो भी भावनाएं रही हों, परन्तु उसके किसी भी कार्य या व्यवहार से यह निश्चित रूप से नहीं जाना जा सकता था कि वह अंग्रेजों से किसी भी प्रकार की शत्रुता रखता था। फिर भी कुछ ऐसी बातें और घटनाएं होती रहीं जिनसे अंग्रेज अप्रत्यक्ष रूप से सिन्धिया के इरादों से सशंकित रहते थे; ऐसी बातों में से प्रमुख थीं; सिन्धिया का प्रभाव और उसकी उच्च और महत्वाकांक्षी प्रकृति, सिन्धिया का अपनी अधिकांश शक्ति के साथ पूना की ओर बढ़ना और सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण था सिन्धिया के इरादों के प्रति स्वयम् उसके देशवासियों के शंकाजनक विचार। अंग्रेज उससे सशंकित थे, यह एक वास्तविक तथ्य है जैसा कि उनके उन विवरणों से स्पष्ट हो जाता है जिनमें सिन्धिया की प्रत्येक गतिविधि की सूक्ष्म जानकारी दी गई हैं।

अब हमारे लिए उचित होगा कि हम महादजी सिन्धिया के व्यक्तिगत और राजनैतिक, दृष्टि से महत्वपूर्ण चरित्रगत विशेषताओं का संक्षिप्त अध्ययन करें। यद्यपि उसने अपने जीवनकाल में जितना भी राजनैतिक सफलताएँ प्राप्त की थीं, उनका श्रेय उसकी कूटनीतिक सूझबूझ की अपेक्षा परिस्थितियों एवम् संयोगों के उचित सहयोग को ही अधिक दिया जाना चाहिए, फिर भी हमें यह तो मानना ही पड़ेगा कि राजनैतिक दृष्टिकोण से सिन्धिया की सूझबूझ प्रशंसनीय थी। वह एक प्रतिभावान व्यक्ति था, तथा सदैव उत्साह से भरा रहता था तरह-तरह की चालें सोचने और उन्हें क्रियान्वित करने में वह अत्यन्त कुशल था। उसकी महत्वाकांक्षाएँ उसे कभी चैन से नहीं बैठने देती थीं, साथ ही उसमें अपने प्रति किए गए अपमानों का बदला लेने की प्रवृत्ति भी बहुत प्रबल थी। यद्यपि उसमें गुणों तथा नीति कुशलता का अभाव नहीं था, फिर भी वह संयोगवश प्रायः ऐसे स्थानों पर असफल हो जाया करता था जहाँ कि इन्हीं गुणों पर सफलता निर्भर करती थी। उसकी एक वजह थी, वह बहुत शीघ्र ही उत्तेजित और क्रोधित हो जाता था और क्रोध के आवेश में वह प्रायः ऐसी बातें भी कह डालता था जो बहुत गुप्त होती थी और जिन्हें वह किसी के सामने भी प्रकट करना नहीं चाहता था। यही कारण था कि उसकी गुप्त से गुप्त योजनाएं भी उसके

विरोधियों के समक्ष प्रकट हो जाती थीं, और उसकी सारी योजना धरी की धरी रह जाती थी। अपने चेहरे से सिन्धिया बहुत ही प्रसन्नचित्त और विनोदपूर्ण व्यक्ति प्रतीत होता था; उसका रंग सांवला था और उसका शरीर स्थूलकाय था। पानीपत के भयंकर युद्ध में उसके एक पैर में कुछ चोट आ गई थी जिसके फलस्वरूप वह कुछ भचककर चलता था। उसकी आदतें और रहन-सहन के तरीकें अत्यन्त साधारण स्तर के थे, वह प्रायः अपने आश्रितों के साथ उदारता का व्यवहार करता था, तथा सबके साथ खुल कर बातचीत करता था। परन्तु कभी-कभी उत्तेजित हो जाने पर उसका व्यवहार अत्यन्त अभद्र एवम् कठोर हो जाता था और वह गरजने तरजने लगता था, एवम् ऐसी मनोदशा में वह आत्मश्लाघा भी करने लगता था। उसके सभी आश्रित भी उससे बहुत प्रेम करते थे और अवसर पड़ने पर उसके लिए जान तक देने को तैयार रहते थे। वह अपनी सैनिकों को जागीरें बांटने में बहुत अधिक उदारता का प्रदर्शन करता था पर जब खजाने से नकद रुपयों में सिपाहियों का वेतन बांटने का प्रश्न आता था तो वह बगलें झांकने लगता था। वास्तव में यह दोष केवल सिन्धिया में ही नहीं था; प्रायः सभी मराठा सरदार यहां तक कि यदाकदा पेशवा भी इस दोष के शिकार थे। महादजी सिन्धिया स्वभाव से क्रूर नहीं था, परन्तु अपराधियों के लिए उसके पास क्षमा नहीं थी, वह ऐसे लोगों को बहुत कठोर दण्ड दिया करता था। उसमें कुछ विशेष गुण भी थे जो उसके समकालीन अधिकांश सरदारों में नहीं थे। वह न केवल लिख सकता था बल्कि हिसाब किताब रखने में भी बहुत कुशल था और उसका।यही गुण उसे अन्य मराठा सरकारों से अलग करता है। वह लगान आदि के मामलों एवम् हिसाबों को भली भांति समझता था और अवसर पाने पर इस विभाग के कार्यों की जांच भी करता था। उसकी इस विशेषता के प्रमाण हैं उसकी जागीर मालवा के जिले, जिनकी मालगुजारी की व्यवस्था अत्यन्त ही न्यायपूर्ण और सन्तोषप्रद थी, यद्यपि इस बात का श्रेय उसे नहीं, बल्कि उसके कुशल एवम् सच्चरित्र कर्मचारियों को देना चाहिए, परन्तु ऐसे श्रेष्ठ कर्मचारियों को चुनने के योग्य होने का श्रेय तो उसे देना ही पड़ेगा। वास्तव में, अन्य मराठा सरदारों की तरह वह युद्ध अथवा राजनीतिक दांव पेंचों में इस बुरी तरह उलझा रहता था कि उसे अन्य किसी ओर देखने की फुरसत ही नहीं मिलती थी और न वह देश के आन्तरिक प्रशासन में सहयोग दे पाता था।[❀] उसके कोई भी लड़का नहीं था।

महादजी सिन्धिया का भाई तुकाजी सिन्धिया पानीपत के भयानक युद्ध में मारा गया था। उसके तीन लड़के थे जिनके नाम थे केदार जी, रावल जी और आनन्द राव। तुकाजी के तीनों लड़के अपने चाचा महादजी की सेना में ही नियुक्त हो गए थे। केदार जी सिन्धिया कम आयु में और निःसन्तान ही मर गया। उसके छोटे भाई रावलजी सिन्धिया के दो लड़के थे। परन्तु महादजी सिन्धिया इन दो में से किसी को भी अपना उत्तराधिकारी बनाने के योग्य नहीं समझता था। उसके सबसे छोटे भतीजे आनन्द राव का लड़का दौलतराव, महादजी सिन्धिया को बहुत प्रिय था। अन्ततोगत्वा उसने दौलतराव को ही अपना उत्तराधिकारी बनाने का निर्णय कर लिया। यद्यपि महादजी सिन्धिया को यह अवसर प्राप्त न हो सका कि वह पूर्ण समारोहपूर्वक तथा विधिपूर्वक दौलतराव को दत्तक पुत्र के रूप में ग्रहण कर सके, परन्तु वह अनेक बार यह घोषणा कर

[❀] मराठा पाण्डुलिपि और पत्र, बम्बई रिकार्डस; सिन्धिया के एक चित्र के आधार पर जो मेरे पास है, जनरल काउन्ट डी वाइन द्वारा दिया गया वर्णन; सर जान मेलकम इत्यादि।

चुका था कि उसके पश्चात उसका उत्तराधिकारी दौलतराव ही होगा। महादजी सिन्धिया की मृत्यु के पश्चात् जब उत्तराधिकार का प्रश्न उठा तो प्रायः सभी लोगों ने दौलतराव का पक्ष लिया, परन्तु महादजी की विधवा पत्नी लक्ष्मीबाई ने कुछ अज्ञात कारणों से दौलतराव द्वारा उत्तराधिकार ग्रहण किए जाने का विरोध किया। उसके विरोध के बावजूद भी दौलतराव को महादजी सिन्धिया का उत्तराधिकारी घोषित किया गया क्योंकि स्वयम् नानाफड़नवीस भी दौलतराव के पक्ष में ही था। तुकाजी होलकर पहला प्रमुख व्यक्ति था जिसने दौलतराव सिन्धिया को महादजी सिन्धिया का वास्तविक उत्तराधिकारी मानते हुए उसे अपनी तरफ से मान्यता प्रदान की। सिन्धिया परिवार के सभी आत्मिकजनों तथा महाराष्ट्र के अन्य प्रमुख सरदारों तथा अधिकारियों ने इस अवसर पर दौलतराव के पास बधाई के सन्देश भेजे। इस प्रकार बिना किसी विशेष विरोध या बाधा के दौलतराव सिन्धिया मुश्किल से पन्द्रह वर्ष की आयु में ही उस विशाल राज्य के उत्तराधिकारी के रूप में सिंहासन पर बैठा जिसे सिन्धिया ने अपनी सूझबूझ और अपने सैन्य बल पर अर्जित और विस्तृत किया था।

सिन्धिया की नियमित और प्रशिक्षित सेना तथा तत्कालीन सैन्य संगठन पर उसके प्रभाव का अध्ययन भी आवश्यक प्रतीत होता है। सिन्धिया की इस प्रशिक्षित सेना ने डी वाइन जैसे प्रतिभाशाली और उत्साही नायक के नेतृत्व में विभिन्न स्थलों पर जितनी सफलता प्राप्त की उससे अनेकानेक मराठा सरदार और राजे-महाराजे बहुत प्रभावित हुए और अधिकांश मराठा राज्यों ने अपनी सेनाओं के एक अंग के रूप में नियमित और प्रशिक्षित बटालियनों का संगठन भी प्रारम्भ कर दिया। सिन्धिया की डी वाइन के नेतृत्व में संगठित और प्रशिक्षित सेना का उदाहरण सामने होते हुए भी कुछ अनुभवी और रूढ़िवादी मराठे अपनी प्राचीन सैन्य संगठन की विधि एवम् परम्परा को त्यागने के पक्ष में नहीं थे। उनका मत था कि पुरानी लीक को छोड़ देने से मराठों का अमंगल और विनाश छोड़, लाभ नहीं होगा। उनका कहना था कि इस प्रकार की पैदल सेनाओं का मुख्य शस्त्र है तोप जिसे एक बार एक दिशा में स्थित करने के पश्चात्, ऐसे विपत्ति काल में भी युद्ध करने के लिए मजबूर होना,पड़ता है, जबकि भागना अधिक श्रेयस्कर होता। इस तरह का एक बहुत ही कड़ुवा अनुभव मराठों को हुआ था पानीपत के विनाशकारी युद्ध में। इस मत के समर्थकों का यह भी कहना था कि यदि इन सेनाओं और अस्त्र-शस्त्र के बल पर यदि कभी यूरोपियनों से कोई महत्वपूर्ण युद्ध करना पड़ा तो मराठों की इतनी भयानक पराजय होगी कि वे उसके सामने पानीपत के युद्ध की भयङ्करता एवं पराजय को महत्वहीन समझेंगे।[❀] सिन्धिया के सफल प्रयोग का अनुभव करने के पश्चात् भी तुकाजी होलकर बहुत समय तक इस प्रकार की बटालियनों का संगठन करने में हिचकिचाता रहा; परन्तु कुछ समय पश्चात् उसने देखा कि यदि डी वाइन की बटालियनों की सहायता न मिलती तो सिन्धिया में इतना दम और जोर नहीं था कि वह सिर्फ अपने सवारों के बूते पर राजपूताना के सुदृढ़ और सुरक्षित किलों पर अधिकार कर लेने में सफल हो जाता। यद्यपि उसने दद्रेनेक के संरक्षण में आधुनिक ढंग की चार बटालियनों को प्रशिक्षित कराया था, परन्तु लखापरी के युद्ध में उसने अनुभव किया कि यदि दद्रेनेक की बटालियने न

[❀] नाना फड़नवीस इसी विचार का समर्थक था (मराठा पाण्डुलिपि) अब भी बहुत से वयोवृद्ध अनुभवी मराठों का मत है कि यदि महाराष्ट्र में प्रशिक्षित पैदल सेना और तोपखाने को प्रमुखता न दी गई होती तो मराठा साम्राज्य का पतन इतने शीघ्र न होता।

होता तो भी उसकी अपनी पुरानी सेना इन दस्तों के अभाव का अनुभव न करती और इसकी वजह थी कि दद्रे नेक में डी वाइन के सम्मान नेतृत्व एवम् प्रशिक्षण के गुण नहीं थे। तुकाजी होलकर को सिन्धिया की सफलता से प्रशिक्षित दस्तों में इतनी आस्था हो गई थी कि लखापरी के युद्ध के कटु अनुभव के बाद भी उसने एक बार फिर दद्रे नेक को आदेश दिया कि वह पुनः उसी ढङ्ग की चार बटालियनों को संगटित एवम् प्रशिक्षित करे।

उस समय नागपुर का राज्य रघू जी भोंसले के अधिकार में था। यद्यपि उसने देखा कि अनेक राजे-महाराजे और सरदार इस प्रकार के सैन्य दलों का संगठन करने में लगे हुए थे, फिर भी उसने इस कार्य में अन्य लोगों का अनुकरण नहीं किया। उसके पिता मूदाजी भोंसले की मृत्यु १७८८ में हुई थी। मुदाजी के तीन लड़के थे जिनमें से रघू जी सबसे बड़ा था। राघो जी के अन्य दो भाइयों के नाम थे खण्डू जी और वेणका जी या मुल्या बापू! राघो जी के इन दोनों भाइयों को भी कुछ जिले मिले हुए थे, खण्डू जी के अधिकार में उत्तरी जिलों का प्रबन्ध था और वेणका जी को दक्षिणी जिलों की व्यवस्था का उत्तरदायित्व दिया गया था। जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं. रघू जो अपने चाचा जानोजी भोंसले का.उत्तराधिकारी घोषित किया गया था और इस प्रकार वह सम्पूर्ण मराठा साम्राज्य का सेना साहब सूबा हो गया था, यद्यपि उसके पिता मूदाजी भोंसले की मृत्यु के पूर्व, उसे बरार के शासक के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता था। जब टीपू का दमन करने के लिए अंग्रेजों, मराठों तथा निजाम अली ने संयुक्त संघ बनाया तो पेशवा ने अपने अनुगामी सरदारों को शीघ्रातिशीघ्र पूना पहुँचने का आदेश भेज दिया। इस सम्बन्ध में सेना साहब सूबा रघू जी भोंसले को भी निमन्त्रित किया गया था। रघू जी अपना इलाका छोड़ना नहीं चाहता था क्यों कि उसे अपने भाई खण्डू जी की तरफ से विश्वासघात की आशंका थी, परन्तु पेशवा का आदेश होने के कारण पूना पहुँचना भी उतना ही आवश्यक था। वहाँ पहुँचने पर उसे इस होने वाले युद्ध में सम्मिलित होने का आदेश मिला। परन्तु इस समय तो वह अपने राज्य को छोड़कर अन्यत्र जाना ही नहीं चाहता था, अतः उसने बहाना किया 'कि वह किसी ऐसे अभियान में सम्मिलित होने में जरा भी उत्साह अनुभव नहीं करता जिसका संचालन स्वयम् पेशवा न कर रहा हो, इसलिए उसे इस अभियान में सम्मिलित न हो सकने के लिए क्षमा किया जाय। उसने इस समय अपने को दूसरी विपत्ति में खिंचने से बचाने के लिए कई अन्य बे सिर-पैर के बहाने किये परन्तु पेशवा उसे छोड़ने के लिए तैयार न हुआ। अन्त में वह नाना फड़नवीस की शरण में गया और अत्यन्त ही गुप्त रूप से उससे यह भेद बताया कि उसे भय है कि अधिक समय तक राज्य से उसके अनुपस्थित रहने पर उसका भाई खण्डू जी कहीं उसकी राजसत्ता का अपहरण न कर ले। उसने अनेकानेक तर्क और कारण देकर नाना फड़नवीस को स्थिति पर विचार करने के लिए तैयार कर लिया। अन्त में नाना फड़नवीस ने उसे इस अभियान से मुक्त कर देने का निर्णय कर लिया, पर इस शर्त के साथ कि रघू जी इस अभियान के व्यय-भार में उचित सहयोग देने के लिए पेशवा को दस लाख रुपये देगा। रघू जी इस बात पर तैयार हो गया और पूना से नागपुर लौट गया। उसके नागपुर लौटने के कुछ दिनों पश्चात् ही उसके भाई खण्डू जी की संयोगवश अचानक मृत्यु हो गई। इस प्रकार रघू जी का प्रतिद्वन्द्वी स्वयम् ही समाप्त हो गया और उसके मार्ग का काँटा खुद ब खुद साफ हो गया। खण्डूजी की मृत्यु के पश्चात् अपने तीसरे भाई वेणका जी का समर्थन प्राप्त करने के लिए उसने बाँदा और छत्तीसगढ़ के जिलों को, जागीर के रूप में वेणका जी को दे डाला। महाराष्ट्र के पूर्व में जो मराठा रियासतें थी, उनमें महाद जी सिन्धिया की मृत्यु तक, ऊपर की घटनाओं को छोड़कर कोई अन्य

महत्वपूर्ण घटना नहीं घटी और न कोई परिवर्तन ही हुआ। पश्चिमी दिशा में बड़ौदा रियासत और गायकवाड़ परिवार में जो महत्वपूर्ण घटनाएं घटित हुई, उनका संक्षिप्त विवरण आवश्यक है और अब हम इसी तरफ अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे।

फतह सिंह गायकवाड़ १७८६ तक बड़ौदा रियासत का संरक्षक (रीजेन्ट) था। परन्तु अपने निवास स्थान की ऊपरी मन्जिल से नीचे गिर पड़ने के कारण २१ दिसम्बर १७८६ को उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु का समाचार पाते ही, उसके छोटे भाई मन्ना जी राव, ने जो कि उस समय बड़ौदा में ही उपस्थित था, चटपट बिना देर किए रूपा जी की सरकार तथा रूपाजी का बड़ा भाई स्त्रयम् उसके संरक्षण का उत्तरदायित्व अपने हाथ में ले लिया। दूसरा गोविन्दराव उस समय पूना के पास ही एक गाँव में गुमनाम होकर गुप्त रूप से रह रहा था। गोविन्दराव से सम्बन्धित कुछ घटनाओं का उल्लेख पीछे भी किया जा चुका है, और शायद पाठक उसका नाम भूले नहीं होंगे। उसने बड़ौदा में हुए उलटफेरों का समाचार पाकर तथा मन्ना जी राव द्वारा रीजेन्ट का पद ग्रहण किए जाने की खबर सुनकर नाना फड़नवीस के पास इस सम्बन्ध में एक पार्थाना पत्र रवाना कर दिया, जिसमें उसने प्रार्थना की थी कि पेशवा इस मामले की जाँच करके यदि गोविन्दराव के दावे को उचित समझें तो गायकवाड़-राज्य के संरक्षक (रीजेन्ट) के रूप में उसे मान्यता प्रदान करने की कृपा करें। वास्तव में गोविन्दराव ही रीजेन्ट के पद का असली हकदार था, परन्तु मन्नाजी राव बड़ा चलता पुर्जा व्यक्ति भी था। वह भी झटपट पूना पहुँच गया और पेशवा को नजर के रूप में तेंतीस लाख, तेरह हजार एक रुपये दिये। यही नहीं, उसने पेशवा को सन्तुष्ट करने के लिए यह वादा भी किया कि फतहसिंह के समय से ही मालगुजारी अथवा कर की जो रकम बकाया है, (यह रकम कुल मिलाकर ६० लाख रुपये थी) उसे भी वह शीघ्र ही जमा कर देगा। इस प्रकार मन्नाजी राव ने पेशवा को हर तरह से सन्तुष्ट करके अपहृत पद पर अपना अधिकार एक तरह से पक्का कर लिया। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, इस समय सिन्धिया किसी ऐसे मामले की खोज में था जिससे वह दक्षिण में लोकप्रियता प्राप्त कर सके। गोविन्दराव के मामले की झलक पाते ही सिन्धिया ने उसका पक्ष ले लिया और अन्त में पेशवा से मन्ना जी राव की बरखास्तगी और गोविन्द राव की नियुक्ति का हुक्म लेकर ही चैन से बैठा। यह खबर पाकर मन्नाजी बहुत घबराया और उसकी भयभीत दृष्टि किसी दूसरे सहायक की खोज में लग गई। इसी समय उसे उस सन्धि की याद आई जो परस्पर सहयोग के वादे पर फतहसिंह और जनरल गोडार्ड के बीच हुई थी। मन्ना जी ने सारी बातों का विस्तृत विवरण देते हुए तथा गोडार्ड और फतहसिंह के बीच हुई सन्धि का उल्लेख देकर बम्बई सरकार से इस मामले में सहायता के लिए प्रार्थना की। परन्तु बम्बई सरकार ने कहा कि सालबाई की सन्धि हो जाने के कारण उक्त सन्धि का महत्व समाप्त हो गया है, इसलिये इस मामले में उक्त सन्धि का हवाला देकर किसी प्रकार से हस्तक्षेप करना या सहायता करना न तो उनके लिए उचित है और न न्यायसंगत ही। मन्नाजी राव ने इस सम्बन्ध में वार्ता करने के लिए जिस दूत को बम्बई भेजा था वह बहुत ही चतुर और नीतिकुशल था। उसका नाम था गुलाबराई। उसके निरन्तर प्रयासों तथा सिफारिशों पर बम्बई सरकार ने मिस्टर मेलेट की मध्यस्थता से यह मान लिया कि वे देश तथा दोनों सम्बन्धित दलों के लाभ के लिए किसी न किसी प्रकार गोविन्द राव और मन्नाजो राव में मित्रतापूर्ण समझौता करा देने का भरसक प्रयत्न करेंगे। अंग्रेजों ने गोविन्दराव को निर्बल और असहाय समझ कर ही यह जिम्मा लिया था और सोचते थे गोविन्द राव को जो भी दे दिया जायगा, वह उतने से ही सन्तोष कर

लेगा। नाना फड़नवीस ने भी अंग्रेजों के सोचे हुए तरीके से इस विवाद को निपटाने का समर्थन किया। परन्तु महादजी सिन्धिया तथा गोविन्द राव के पक्ष के अन्य सरदारों को तो इस समय शक्ति-परीक्षा का अच्छा सुयोग प्राप्त हो गया था। उन्होंने किसी भी प्रकार के समझौते का समर्थन करने से इनकार कर दिया। इसी समय अचानक पहली अगस्त १७९३ को मन्नाजी राव की मृत्यु हो गई और सारा विवाद स्वयं ही समाप्त हो गया। परन्तु अब भी पूना छोड़ने के लिए अनुमति प्राप्त करने में गोविन्द राव को कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। यद्यपि गोविन्दराव के ऊपर तरह-तरह की ज्यादतियाँ की जा चुकी थी फिर भी पेशवा के मन्त्रियों को अभी सन्तोष नहीं हो पाया था। इन मन्त्रियों ने गोविन्दराव तथा उसके परिवार से तरह तरह के बहानों से पर्याप्त धन भी वसूल किया था। अब उन्होंने गोविन्द राव से पहिले तो पुरानी सन्धि कर पत्रों पर हस्ताक्षर करवाया, तत्पश्चात् उन्होंने इस बात के लिए मजबूर करना शुरू किया कि ताप्ती नदी के दक्षिण में गायकवाड़ के जितने भी जिले हैं, उन्हें पेशवा को दे दे; ये जिले १७८० में कम्पनी के हवाले कर दिये गए थे। इसके साथ ही गोविन्द राव से कहा गया कि वह सूरत की बन्दरगाह से प्राप्त होने वाली आय का अपना भाग भी पेशवा को दे दे। इधर जब अंग्रेजों ने इन शर्तों को सुना तो उन्होंने ताप्ती के दक्षिण के जिलों के सम्बन्ध में सालबाई के सन्धि का हवाला देते हुए इन मंत्रियों के प्रस्ताव का विरोध किया। उन्होंने यह तर्क दिया कि यदि पेशवा ने गायकवाड़ की कोई सहायता की होती तो वह मँगाने का हकदार भी था; उसने तो किसी तरह से केवल इतना किया है कि गोविन्द राव को बड़ोदा के रीजेन्ट के रूप में मान्यता प्रदान की है, जिसका की वह असली हकदार था। अंग्रेजों द्वारा यह विरोध प्रस्तुत किए जाने पर नाना फड़नवीस ने भी तुरन्त अपने साथियों द्वारा की गई गलती को स्वीकार कर लिया और गोविन्द राव के सर से सारी बलाएँ टल गई। अन्त में निर्विवाद रूप से बड़ौदा का रीजेन्ट घोषित कर दिए जाने पर गोविन्द राव १९ दिसम्बर १७९३ को अपना कार्य भार सभालने के लिए बदौड़ा की तरफ चल पड़ा।

महाराष्ट्र के समुद्र तट की कुछ घटनाएँ भी ध्यान देने योग्य हैं जिनमें सबसे प्रमुख हैं जल दस्युओं का उपद्रव, जो न तो शान्ति काल में बन्द रहता था और न युद्धकाल में। जलदस्युओं का कार्य क्षेत्र गोआ और बम्बई के बीच में फैला हुआ हुआ था।

कोलाबा का मन्नाजी आंग्रे अपनी मृत्यु पर्यन्त पेशवा के निमंत्रण को स्वीकार करता रहा और पेशवा की सभी आज्ञाओं को तत्परता से पालन करता रहा। मन्नाजी आंग्रे की मृत्यु १७५९ में हुई। उसका उत्तराधिकारी हुआ रघूजी आंग्रे। रघूजी भी अपने पिता की ही भाँति पेशवा के प्रभुत्व को स्वीकार करता रहा, परन्तु वह पेशवा की सभी आज्ञाओं का पालन नहीं करता था, यदि उसे किसी आदेश का पालन करने में विशेष असुविधा या हानि की आशंका नहीं रहती थी तो वह उसे पूरा कर दिया करता अन्यथा उपेक्षां कर दिया करता था। अंग्रेजी व्यापारियोंके जहाजों के साथ वह भी उसी प्रकार का दुहरा व्यवहार करता था जिस प्रकार कि पेशवा। वह जैसा अवसर देखता था, उसी के अनुसार अंग्रेजी जहाजों को लूट लेता था, या छोड़ देता था। रघूजी आंग्रे की मृत्यु १७९३ में हुई। उसकी मृत्यु हो जाने के पाश्चात्, पूना दरबार से कोई सम्पर्क स्थापित किए बिना ही जयसिंह आंग्रे ने रघूजी के नाबालिग लड़के मन्नाजी आंग्रे को राघोजी का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया और स्वयम् उसका संरक्षक बनकर उसने सारी राज्य सत्ता का अपहरण कर लिया। जयसिंह, अंग्रेज तथा मन्नाजी के इस कार्य की सर्वत्र निन्दा की गई और चूंकि उन्होंने इस कार्य के लिए पेशवा से अनुमति नहीं लीं थी, इसलिए पूना दरबार भी खुले रूप से उनका

शत्रु बन बैठा। इस परिस्थिति से महादजी सिन्धिया के उत्तराधिकारी दौलतराव सिन्धिया ने कालान्तर में लाभ उठाया। उसने आंग्रे परिवार के ही एक सदस्य को रघूजी का वास्तविक उत्तराधिकारी घोषित किया जो कि उसी का सहगामी था। उसने इस नए दावेदार को कोलाबा का वास्तविक अधिकारी मानकर उसे उसके पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयास करना प्रारम्भ कर दिया। इस परिवर्तन से अंग्रेजों ने किसी भी प्रकार का असन्तोष प्रकट नहीं किया क्योंकि इस समय कोलाबा के वर्तमान के शासकों जयसिंह आंग्रे और मन्नाजी ने अंग्रेजों से जरा भी सम्बन्ध नहीं रखा था, यही नहीं बल्कि उन्होंने अंग्रेजों के कई एक जहाजों को लूट भी लिया था। इस कारण अंग्रेज उनसे पहले से ही असन्तुष्ट थे, फलस्वरूप उन्होंने अधिकार परिवर्तन की इस व्यवस्था का एक तरह से स्वागत ही किया।

आंग्रे के पश्चात जल-दस्युओं में दूसरा स्थाल था जिन्जीरा के सिदियों का। ये लोग सभी विदेशी राष्ट्रों के जहाजों को लूटने में जरा भी हिचकिचाहट नही दिखाते थे। उनकी इस लूटपाट से अगर कोई जहाज सुरक्षित बचते थे तो अंग्रेजी जहाज, अन्यथा सभी जहाज इन समुद्री डाकुओं के शिकार होते थे। कभी-कभी वे अंग्रेजी जहाजों पर भी हाथ साफ कर बैठते थे। जिन्जीरा के छोटे से क्षेत्र में अनेक बार गम्भीर उलटफेर हो चुके थे। सन् १७६२ ई० में यहाँ उत्तराधिकार के सम्बन्ध में कुछ विवाद उत्पन्न हुआ। उस समय वहाँ कारीजेन्ट (संरक्षक) सीदी इब्राहीम नामक सरदार था। वहाँ की जनता तथा कुछ अन्य व्यक्तियों की दृष्टि में सबसे नजदीकी वारिस था सीदी अब्दुल रहीम, परन्तु इब्राहीम के प्रभाव से सीदी याकूत ने वहाँ का शासन भार सम्भाला। इसी बात पर अब्दुल रहीम, इब्राहीम तथा याकूत के प्रति ईर्ष्याभाव रखने लगा। अन्त में कुछ शक्ति एकत्रित कर लेने के पश्चात् अब्दुल रहीम ने बलपूर्वक अपना अधिकार प्राप्त करने का प्रयास किया। इस प्रयास में मराठों ने भी गुप्त रूप से उसे सहायता पहुँचा कर उसे प्रोत्साहित किया। अंग्रेज पहले से ही इब्राहीम तथा याकूत के पक्ष में थे। युद्ध की नौबत आ जाने पर उन्होंने दोनों दल में शान्तिपूर्वक समझौता कराने का प्रयास किया परन्तु अन्त में युद्ध को अवश्यम्भावी देखकर उन्होंने शासनारूढ़ दल की सहायता की। युद्ध हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप अब्दुल रहीम पराजित हुआ और अपनी जान लेकर पूना भाग आया। जब याकूत को यह खबर मिली तो वह डरा कि कहीं पेशवा अब्दुल रहीम का पक्ष लेकर उस पर चढ़ाई न कर दे, अतः उसने सन्धि वार्ता प्रारम्भ की। उसने वादा किया कि वह राजापूर का इलाका अब्दुल रहीम को सौंप देगा और उसकी मृत्यु के पश्चात अब्दुल रहीम ही उसका वारिस होगा। पेशवा ने इस सम्बन्ध में अब्दुल रहीम की राय ली और उसकी सहमति पाकर याकूत के प्रस्ताव को मान लिया। अब्दुल रहीम, इस सन्धि के अनुसार प्राप्त इलाके में चला गया। कुछ समय पश्चात अपनी मृत्यु को निकट जान कर सीदी याकूत ने जो वसीयत नामा बनाया उसमें उसने अब्दुल रहीम की मृत्यु के पश्चात् उसके दूसरे लड़के को जिन्जीरा का उत्तराधिकारी बनाने की घोषणा की। उसने यह भी व्यवस्था कर दी यदि अपने पिता की मृत्यु के समय वह नाबालिग रहेगा तो उसके संरक्षक के रूप में सीदी जौहर शासन-भार सम्भालेगा। जौहर, याकूत का जिगरी दोस्त था, साथ ही जिन्जीरा का प्रमुख सेनापति भी था। वास्तव में याकूत की योजना थी कि संरक्षक की हैसियत से जौहर जिन्जीरा का शासक बन जाय। अब्दुल रहीम भी याकूत के पश्चात् अधिक दिनों तक शासन न कर सका और १७८४ में ही उसकी मृत्यु हो गई। मरने से पहले उसने जो वसीयतनामा तैयार कराया उसमें याकूत के वसीयतनामे का कोई भी जिक्र नहीं किया गया। उसने

अपने बड़े लड़के अब्दुल करीम खाँ को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया जिसे लोग प्रायः बल्लू मियाँ के नाम से पुकारते थे। अब्दुल रहीम की मृत्यु के पश्चात् दो विभिन्न वसीयतनामों के कारण विवाद उत्पन्न हो गए और दोनों पक्ष अपने को सही रास्ते का मुसाफिर मानने लगे। याकूत के वसीयतनामें का सहारा लेकर जौहर ने अब्दुल रहीम के दूसरे लड़के को वारिस बनाने का प्रयास किया और बल्लू मियाँ उर्फ अब्दुल करीम खाँ को कैदी करने की योजना बनाने लगा। परन्तु करीम खाँ को जौहर के योजना की भनक मिल गई और उसने भाग कर पूना का मार्ग पकड़ा। अपने साथ वह अपने छोटे भाई को भी लेता गया जिसकी आड़ में जौहर ने स्वयम् जिन्जीरा का शासक होने की योजना बनाई थी। इधर नाना फड़नवीस बहुत समय से इस प्रतीक्षा में था कि कोई अवसर मिलते ही वह जिन्जीरा को हथिया ले। वह इस बात का प्रण किए बैठा था कि अपने जीते जी वह जिन्जीरा के द्वीप को मराठा साम्राज्य में मिलाकर ही छोड़ेगा। अब जिन्जीरा के दोनों उत्तराधिकारियों को अपना शरणागत् पाकर वह परम प्रसन्न हुआ। उसने अब्दुल करीम खाँ को हर तरह से सान्त्वना प्रदान करके उसकी सहायता करने का वादा किया। इधर सीदी जौहर ने अंग्रेजों से सम्पर्क स्थापित किया और बम्बई सरकार से इस सम्बन्ध में वार्ता की। जौहर ने बम्बई सरकार से सहायता की याचना की, साथ ही यह बचन भी दिया कि उत्तराधिकार से सम्बन्धित कोई उचित निर्णय हो जिसे कि जिन्जीरावासी भी पसन्द करें तो वह वैसा ही करेगा। परन्तु जौहर ने यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि वह किसी भी प्रकार मराठों अथवा बल्लू मियाँ को पुनः जिन्जीरा में प्रवेश नहीं करने देगा। उसने खुली घोषणा की कि 'जब तक जिन्जीरा में एक भी चट्टान सुरक्षित रहेगी और उसका साथ देने के लिए एक भी आदमी उसके बगल में खड़ा रहेगा तब तक वह मराठों और बल्लू मियाँ को जिन्जीरा में कदम न रखने देगा। बम्बई सरकार ने इस सम्बन्ध में नाना फड़नवीस से भी सम्पर्क स्थापित किया। उनके अनुरोध पर नाना फड़नवीस ने उनके इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया कि वह इस सम्बन्ध में तब तक कोई कार्रवाई नहीं करेगा जब तक कि इस विषय पर लार्ड कार्नवालिस का मत नहीं मिल जायगा। उस समय गवर्नर जनरल लार्ड कार्नवालिस की नीति का प्रमुख उद्देश्य यही था कि किसी भी प्रकार से पूना दरबार से मित्रतापूर्ण व्यवहार बना रहे और मराठे अंग्रेजों से असन्तुष्ट होने का अवसर न पाएँ। वह यह भी जानता था कि जौहर की इन सारी खुराफातों का एकमात्र उद्देश्य यही था कि वह किसी भी प्रकार अब्दुल रहीम के दूसरे लड़के को अपने कब्जे में पा जाय जिसकी आड़ में वह जिन्जीरा की राजसत्ता का अपहरण करने में समर्थ हो सके। काफी तर्क वितर्क के पश्चात् लार्ड कार्नवालिस ने अन्त में यही तय किया कि इस विवाद में जौहर का पक्ष न लिया जाय, और उसने बम्बई सरकार को भी अपने इस निर्णय की सूचना भेज दी। लार्ड कार्नवालिस ने पेशवा को यह परामर्श दिया कि यदि वह उचित समझे तो देश के किसी भी भाग में अब्दुल करीम खाँ और उसके परिवार के सम्मानपूर्वक निर्वाह के लिए एक जागीर देकर उन्हें अपनी तरफ मिलाए रक्खे और अवसर आने पर वह जिन्जीरा को अपने अधिकार में ले लेने का प्रयास करे। मराठों ने लार्ड कार्नवालिस के इस परामर्श पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया और न अब्दुल करीम के परिवार के लिए ही कुछ उचित प्रबन्ध किया बल्कि उन्होंने कपट-पूर्वक चुपचाप जिन्जीरा के द्वीप को हथिया लेने की योजना बनाना शुरू कर दिया। जब गवर्नर जनरल के कानों में मराठों की इस कपटपूर्ण योजना की भनक पहुँची तो उसने इस मामले में से अपना हाथ खींच लिया। मराठों ने भी अपनी योजना पर उसी समय अमल नहीं किया। अन्त में जब टीपू सुल्तान का दमन

करने के लिए अंग्रेजों ने निजाम अली और मराठों को मिलाकर एक संगठन बनाया तो पेशवा ने बल्लू मियाँ और उसके छोटे भाई को सूरत के पास के एक क्षेत्र को जागीर के रूप में दे दिया और अंग्रेजों ने भी इस कार्य में पेशवा का समर्थन किया। पेशवा ने जो जागीर बल्लू मियाँ को दिया था उसकी कुल वार्षिक आय लगभग ७५ हजार रुपए थी। इसके साथ ही पेशवा ने नकद के रूप में उन दोनों भाइयों को कुल मिला कर ४० हजार रुपए और दिए। बल्लू मियाँ और उसके छोटे भाई ने इस छोटी सी जागीर पर ही सन्तोष कर लिया और पेशवा के पक्ष में, जिन्जीरा द्वीप के समस्त अधिकारों का त्याग कर दिया। इस सम्बन्ध में एक सुलहनामा तैयार किया गया जिस पर दोनों पक्षों ने ६ जून १७९१ को हस्ताक्षर कर दिया। परन्तु विधि का विधान कुछ ऐसा है कि प्रायः बड़े-बड़े किले ढह जाते हैं परन्तु झोपड़े खड़े रहते हैं और धूल धूसरित किले के अवशेषों पर हँसते रहते हैं। जब जिन्जीरा के वास्तविक उत्तराधिकारियों ने अपने समस्त अधिकारों का त्याग कर दिया तो मराठों ने सोचा कि अब जिन्जीरा उनका है, और इच्छा मात्र से ही वे इस द्वीप को हथिया लेंगे। परन्तु घटनाओं का क्रम कुछ इस प्रकार से पलटा कि पेशवा लोगों की सत्ता तो महाराष्ट्र से समाप्त हो गई परन्तु जिन्जीरा का द्वीप फिर भी स्वतंत्र ही रहा और मराठों के हाथ न आ सका।

सैंतीसवाँ अध्याय

कुर्दला में मराठों द्वारा निजामअली की पराजय

[१७९४—१७९५ ई०]

इस काल में मराठों की सैनिक परिस्थिति—मराठों और निजामअली के बीच युद्ध के पूर्व अंग्रेजों की नीति—पूना और हैदराबाद के शासकों में विवाद—युद्ध की घोषणा—कुर्दला का युद्ध—निजाम अली की पराजय—अंग्रेजों की तटस्थता पर निजाम अली का मर्माहत होना—शाहजादा आलीजाह का अप्रत्याशित विद्रोह और अंग्रेजों की प्रतिक्रिया—एम. रेमण्ड द्वारा विद्रोह का दमन—मराठों की गतिविधियाँ, शक्ति की चोटी पर खड़े नाना फड़नवीस पर आकस्मिक विपत्ति।

१७९४ ई०] सम्भव है कि पिछले अध्याय के विस्तृत विवरणों तथा आगे के घटनाक्रम के संकेत से पाठक कुछ ऊब से गये हों, परन्तु हमारे आगे के विषय को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए इन विवरणों का प्रस्तुतीकरण आवश्यक था, साथ ही इन विवरणों से पाठकों को इस बात पर न्यायपूर्वक विचार करने के लिए पर्याप्त सामग्री मिलेगी कि इस काल में मराठों की शक्ति कितने भागों में बँटी हुई थी और वे किस प्रकार अपने स्वार्थों को पूरा करने में व्यस्त होकर मराठा साम्राज्य की एकता की भावना को चोट पहुँचा रहे थे। शिवाजी द्वारा स्थापित किया हुआ सामाज्य अब काफी विस्तृत हो चुका था और यदि किसी प्रकार मराठों की शक्ति को एक सूत्र में पिरोना सम्भव होता, यदि मराठों की स्वभावगत विशेषताओं तथा चारित्रिक गुणों को उपयुक्त दिशा में निर्देशित किया गया होता तथा विभिन्न सरदारों में बिखरी हुई शक्ति यदि केन्द्र के वशीभूत होकर राष्ट्र के विकास में लगाई जाती तो शायद तत्कालीन परिस्थितियों में मराठा साम्राज्य का विस्तार काफी दूर तक किया जा सकता था। यदि मराठे इस अवसर पर दूरदर्शिता और कूटनीति पर आधारित युद्ध कला का आश्रय लेते तो शायद भारत में अंग्रेजी राज्य की नींव इतनी तीव्र गति से पक्की न की जा सकती। परन्तु मराठों में इतना अधिक अलगाव आ गया और उनकी शक्ति इस सीमा तक विकेन्द्रित हो उठी कि उन्होंने अपने पराये का भेद छोड़ दिया और आपस में एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास करने लगे। सिन्धिया और होलकर एवं सिन्धिया तथा नाना फड़नवीस के बीच हुए विवाद और संघर्ष इस तथ्य के ज्वलन्त उदाहरण हैं। वे अपने स्वार्थों के पीछे इस सीमा तक दीवाने हो गये कि उन्हें शिवाजी द्वारा स्थापित किए गये शक्तिशाली मराठा साम्राज्य के हितों की रंचमात्र भी चिन्ता न रह गई। उनमें अपना साम्राज्य का विस्तार करने की भावना रह ही न गई और न तो उनके बीच कोई ऐसा शक्ति सम्पन्न सरदार उत्पन्न हुआ जिसमें इन बिखरे नरेशों को एक झण्डे के नीचे ले आने की, या किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सारी शक्तियों का केन्द्रीकरण करके संगठित प्रयास करने की सामर्थ्य होती। अब अधिकांश मराठा सरदारों ने अपने अलग राज्य स्थापित कर लिए थे और अपने शासन-क्षेत्र में उनका प्रशा-

सन कार्य बहुत ढीला-ढाला रहता था। वातावरण ी कुछ इस प्रकार बन गया था कि प्रशासक चाहे जितना भी सख्त और क्रूर क्यों न हो; उसके अ थ प्रशासन शान्ति एवम् सुरक्षा के लिए नियुक्त कर्मचारी कभी भी अनुशासित ढङ्ग से कार्य करते थे, फिर उनमें इतनी शक्ति और सामर्थ्य भी नहीं रहती थी कि वे किसी प्रकार की सख्ती र सकते। अच्छे और अनुशासित ढङ्ग से संगठित छोटे-छोटे राज्यों में भी इतनी शक्ति तो रहती ही है कि आवश्यकता पड़ने पर राज्य के सभी साधनों का संगठन करके अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उनका समुचित उपयोग कर सकें, परन्तु इन मराठा नरेशों में इतनी सामर्थ्य भी नहीं रह गई थी कि वे अचानक विपत्ति आ पड़ने पर अपनी सारी शक्ति का संगठित प्रयोग करके ऐसी विपत्तियों का सामना करने के लिए खड़े हो सकें। मराठे अब भी मुख्य रूप से एक लड़ाकू जाति के रूप में विख्यात थे। प्रत्येक परिवार के दो चार सदस्य सैनिक व्यवसाय में लगे हुये थे और कभी-कभी गाँव की आबादी का चौथा-पाँचवा भाग तक हथियारों तथा सेना के ऊपर ही आश्रित होता था। जो व्यक्ति एक बार सेना में प्रवेश कर जाते थे. वे सेवा मुक्त हो जाने के पश्चात् भी, अवसर तथा आवश्यकता आ पड़ने पर अस्त्र उठा लेते थे। परन्तु एक स्थान पर जमकर युद्ध करना और युद्ध में उचित अनुशासन और नियम के अन्तर्गत रह कर कार्य करना उनकी युद्ध नीति के विरुद्ध था। जब मराठों ने अनुशासित तथा आधुनिक ढङ्ग पर संगठित पैदल सैन्य दलों के प्रयोग का श्रीगणेश किया और मराठा सवार पैदल सेना और तोपखाने की व्यवस्था के अनुसार युद्ध करने के लिए विवश किए गये तो उनमें वह उत्साह नहीं रह गया जिसके बल पर वे रात-रात भर यात्रा करके शत्रुओं को आश्चर्यजनक ढङ्ग से पराजित करते थे और लम्बे-लम्बे अभियानों पर चल देने का साहस रखते थे। शिवाजी के काल से ही मराठे अपने साहस और युद्धप्रियता के लिए विख्यात थे और वीरता तथा साहस को उनका राष्ट्रीय गुण माना जाता था, परन्तु धीरे-धीरे उनके ये गुण सामान्य स्तर से भी नीचे गिर गये। जब महाद जी सिंधिया ने डी० बाइन के अधीन आधुनिक ढङ्ग की बटालियनों का संगठन किया तो अनेकानेक लोगों ने सिन्धिया के इस बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयोग के लिए उसकी प्रशंसा की और इन अनुशासित बटालियनों तथा तोपखाने से होने वाले अनेक विशेषताओं और लाभों की गणना की, परन्तु जैसा कि हम पीछे भी कह चुके हैं, महाराष्ट्र में ऐसे भी बहुत लोग थे जो इस नूतन प्रयोग के विरुद्ध थे और कालान्तर में उन्होंने यह भविष्यवाणी भी की कि अपनी पुरानी युद्धनीति का त्याग करके अंग्रेजों की नकल करने पर अन्ततोगत्वा शिवाजी द्वारा स्थापित यह हिन्दू साम्राज्य शीघ्र ही पतन की गर्त में जा गिरेगा और इतिहास इस बात का साक्षी है कि उनकी यह भविष्यवाणी शत-प्रतिशत ठीक थी। वास्तव में यह अनुशासित युद्धनीति मराठों के स्वभाव के अनुकूल ही नहीं थी।

परन्तु इसी समय अचानक एक ऐसा अवसर आ पड़ा कि कुछ समय के लिए मराठों की समस्त बिखरी शक्तियाँ अस्थायी तौर पर एकत्रित हो उठी। इस अवसर पर मुख्य प्रश्न था भारत में पेशवा की प्रमुखता को सुरक्षित रखना, साथ ही मराठों की स्वभावगत सक्रियता द्वारा महाराष्ट्र की प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करना, साथ ही इस अवसर पर इन सरदारों को अपनी स्वार्थ सिद्धि की भी कुछ सम्भावना थी। यद्यपि विचार करने पर इस बात की सम्भावना कम ही थी कि ये मराठा सरदार कभी एक उद्देश्य के लिए संगठित हो सकेंगे, परन्तु उपरोक्त भावनाओं ने सम्मिलित होकर इस कार्य को बड़ी तत्परता से कर दिखाया। मराठा सरदारों के इस आकस्मिक संगठन-कार्य को पूरा करने का श्रेय दिया जा सकता है निजाम अली के विरुद्ध अभियान की योजना को, जिसका उद्देश्य था निजाम अली द्वारा बकाया रकम को वसूल करना। इस बकाया रकम के वसूल हो जाने

पर सभी प्रमुख सरदारों को कुछ न कुछ प्राप्ति की आशा थी। बीच में ही अचानक सन् १७९४ में ही सिन्धिया की मृत्यु हो जाने से इस कार्य को सफलतापूर्वक पूर्ण करने का भार एकमात्र नाना फड़नवीस के कन्धों पर आ पड़ा। इस अवसर पर अंग्रेजों ने तटस्थता की नीति धारण कर ली और चुपचाप बैठे तमाशा देखते रहे।

१७९१ ई०]

इस बात का उल्लेख पहले भी कर चुके हैं कि निजाम अली किस प्रकार मराठों का कर्जदार था। निजाम अली ने बहुत पहले मराठों को सरदेशमुखी और चौथ देना स्वीकार किया था। और इधर लगातार कई वर्षों से उसने मराठों को सरदेशमुखी और चौथ के रूप में एक पैसा भी नहीं दिया था। लगभग १० वर्षों से उसके तथा मराठों के बीच इस सम्बन्ध में लगातार विवाद चलते रहे थे। परन्तु इसी समय टीपू का दमन करने के लिए जो संयुक्त सङ्घ बनाया गया उसमें अंग्रेजों और मराठों के साथ साथ निजाम अली को भी सम्मिलित कर लिया गया। अब एक दल में हो जाने के कारण निजामअली को सरदेशमुखी और चौथ देने के प्रश्न पर मिट्टी डालने का अवसर मिल गया और मराठों ने भी सङ्गठन को बनाये रखने के ध्येय से इस प्रश्न को बहुत समय तक नहीं छेड़ा। उस समय हैदराबाद दरबार में पेशवा के दो राजदूत रहते थे—गोविन्द राव काले और गोविन्द राव पिंगले। १७९१ ई० में उन्होंने निजाम अली से काफी शिष्टता के साथ इस प्रश्न पर वार्तालाप किया और उससे अनुरोध किया कि वह किसी उत्तरदायी व्यक्ति को नियुक्त करके यह जांच करा ले कि उसके जिम्मे पेशवा की कितनी रकम शेष है और बकाया रकम को चुकता करने का प्रबन्ध करे। काफी समय तक इस सम्बन्ध में गम्भीर विवाद होता रहा, अन्त में अपनी तरफ से कोई जाच पड़ताल करने के बदले निजाम अली ने ३४ शीर्षकों के अन्तर्गत एक मांगपत्र तैयार करके इन राजदूतों को सौंप दिया। यह मांगपत्र एक प्रकार का विरोध पत्र था जिसमें उन करों का हवाला दिया गया था तथा विभिन्न स्थान की मालगुजारियों का उल्लेख किया गया था जिन्हें मराठों ने अनुचित और अन्यायपूर्ण ढंग से निजाम अली के क्षेत्र से वसूल किया था। उसने उन पंढारियों की लूटपाट के लिए भी पेशवा से मुआवजा मांगा जो मराठा राज्य तथा निजाम अली के राज्य क्षेत्र के सरहद के पास के निवासी थे और पेशवा की प्रजा थे। नाना फड़नवीस ने इस विरोध पत्र को प्राप्त करने के पश्चात् तुरन्त पूर्ण स्पष्टता और योग्यता से निजाम अली द्वारा लगाए गए प्रत्येक आरोप का समुचित तथा सन्तोषजनक उत्तर भेज दिया, साथ ही २८ शीर्षकों में एक प्रपत्र और भेजा। जिसमें निजाम अली के ऊपर पेशवा की जो रकम बकाया थी, उसकी जांच कराकर उसके सम्बन्ध में समुचित व्यवस्था करने का अनुरोध किया गया था, नाना ने सिद्ध किया था कि इसमें से कुछ रकम सन् १७७४ से ही बकाया चली आ रही हैं। नाना फड़नवीस की तत्परता से निजाम अली को भी स्वीकार करना पड़ा कि इनमें से कुछ बातें सही है, परन्तु अन्य बातों की उसने पूर्ण रूप से उपेक्षा कर दी। फिर भी नाना की लगातार जिद से अपनी जान छुड़ाने के लिए उसने वादा किया कि वह शीघ्र ही कुछ जिम्मेदार व्यक्तियों की सहायता से मराठों के औचित्य की जांच करा के सारा हिसाब साफ कर देगा, परन्तु ऐसा तभी सम्भव हो सकेगा जब कि टीपू के साथ छिड़े युद्ध का निपटारा हो जाय। निजाम अली ने यह वादा इस उम्मीद पर किया था कि शायद वह युद्ध के समाप्त होने तक इस सम्बन्ध में अंग्रेजों का सहयोग प्राप्त कर सके।❁

टीपू के साथ हुए युद्ध का निपटारा हो जाने के पश्चात् गवर्नर जनरल लार्ड कार्नवालिस ने

❁मराठा पांडुलिपि और पत्र।

अब तक के सहयोगियों (अर्थात् पेशवा और निजाम अली) को सदैव एक गुट में रहने की गारन्टी करने के ध्येय से एक और प्रस्ताव तैयार किया जो पिछली सन्धि की इस धारा पर आधारित था कि जब भी टीपू इन तीन सहयोगियों में से किसी एक पर भी आक्रमण करेगा तो अन्य दोनों सहयोगी टीपू के खिलाफ अपने तीसरे विपत्ति ग्रस्त साथी की सहायता करने में असमंजस प्रकट नहीं करेंगे।

१७९२ ई०]

वास्तव में इस प्रकार के सन्धि प्रस्ताव से लार्ड कार्नवालिस का उद्देश्य था कि इस प्रकार तीनों ही दल विपत्ति में एक दूसरे के सहायक होंगे और तीनों को लाभ पहुँचेगा, साथ ही इस प्रकार से शक्ति के संतुलित हो जाने पर भारत में शान्ति भी बनी रहेगी। परन्तु यह कहना मुश्किल है कि अन्य दो सहयोगियों—निजाम अली और पेशवा ने भी इस संबंध में इसी दृष्टिकोण से विचार किया। जैसा कि प्रतीत होता है, जब लार्ड कार्नवालिस का यह नया प्रस्ताव हैदराबाद और पूना दरबारों में पहुँचा तो दोनों पक्षों ने अपने हितों और स्वार्थों के अनुसार इस प्रस्ताव का अलग-अलग अर्थ लगाया। निजामअली ने इस प्रस्ताव से यह अर्थ निकाला कि अंग्रेज उसकी तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ाने की प्रवृत्ति दिखा रहे हैं और तदनुसार वह अपनी उस योजना को अन्तिम रूप देने में व्यस्त हो गया जिसका उद्देश्य था किसी प्रकार स्वयं अपने तथा मराठों के बीच भेद विभेद की एक दीवार खड़ी करना ताकि वह अंग्रेजों की मदद से न केवल भविष्य में मराठों के राज्य विस्तार के मार्ग में रोड़ा अटका सके बल्कि इसी बहाने मराठों की चौथ और सरदेशमुखी के रूप में बकाया रकम के दावे को भी टरकाते चलने में समर्थ हो सके। उसने अपनी इस योजना पर काफी तर्क वितर्क किया और अन्त में निष्कर्ष निकाला कि उसकी योजना बिलकुल ठोस है और अब वह उसी तरह मराठों के पिछले बकाए से मुक्त हो जायगा जिस प्रकार कुछ वर्ष पहले हैदरअली ने मराठों से छुटकारा पाया था, अर्थात् आगे से वह कर के रूप में प्रतिवर्ष कुछ निश्चित रकम मराठों को देता जायगा और पिछले बकाये से मुक्ति पा जायगा। इसके विपरीत इस प्रस्ताव के प्राप्त होने पर मराठों ने यह सोचा कि स्वयं को भारत में शान्ति बनाए रखने का ठीकेदार समझकर इस प्रस्ताव द्वारा अंग्रेजों ने अपनी शक्ति का गर्वपूर्ण प्रदर्शन किया है और वे स्वयं को ही भारत की सबसे प्रमुख शक्ति मानते हैं। इस प्रस्ताव का यह अर्थ लगाने पर मराठों के हृदय ईर्ष्या और जलन से भर उठे, जिसके दो कारण थे—एक तरफ तो उन्होंने यह विचार किया कि इस प्रकार निजाम अली के साथ मराठों को सहयोग की भावना से बाँधने का प्रयास करके इस प्रस्ताव दारा कार्नवालिस ने उनके दावे की बात में हस्तक्षेप करने का प्रयत्न किया हैं तथा दूसरी तरफ उन्हें ऐसा लगा कि उसने अप्रत्यक्ष रूप से पूना दरबार तथा पेशवा की प्रमुखता और श्रेष्ठता को चुनौती दिया है। अंग्रेजों के इस अहङ्कार का दमन करने के लिए तथा उसे मराठों तथा निजाम अली के बीच टाँग अड़ाने से रोकने के विषय में तो नाना फड़नवीस और महादजी सिन्धिया दोनों ही एक दूसरे से सहमत थे परन्तु उन दोनों में इस बात को लेकर मतभेद था कि वास्तव में अंग्रेजों का इरादा क्या है और वे किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस प्रकार की पृष्ठ भूमि तैयार कर रहे हैं। सिन्धिया ने जो अनुमान लगाया था उसके अनुसार अंग्रेजों की योजना यह थी कि वे निजाम अली को अपने साथ मिला लें और उसके पश्चात् जब उन्हे निजाम अली का विश्वास प्राप्त हो जाय वे निजाम के धन और सेना को अपने उपयोग में लाने की अनुमति प्राप्त कर ले और उसी शक्ति को मराठों के विरुद्ध उभाड़ कर मराठों का दमन करने का प्रयत्न करें। अपने इसी अनुमान के फलस्वरूप ऐसी परिस्थिति के पैदा हो जाने पर निजाम अली और अंग्रेजों का मुँहतोड़ जवाब देने के उद्देश्य से महादजी सिन्धियाँ ने

अपनी मृत्यु के कुछ पहले टीपू सुल्तान के साथ मित्रवत् पत्र व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया था। यद्यपि नाना फड़नवीस ने भी लार्ड कार्नवालिस के इस प्रस्ताव में निहित शाँति सम्बन्धी उद्देश्य को पूर्णरूप से नहीं समझ पाया, फिर भी सिन्धियाँ के मुकाबिले में उसका अनुमान सत्य से कहीं अधिक नजदीक था। उसका विचार था कि भले ही अंग्रेजों में यह आकाँक्षा है कि वे इस देश की प्रमुख शक्ति के रूप में सम्मान प्राप्त करें, पर वे तब तक मराठों से सीधे भिड़ने का खतरा मोल नहीं लेगें जब तक उन्हें यह दृढ़ विश्वास न हो जाय कि पेशवा हैदरबाद रियासत के अस्तित्व को ही मिटा डालना चाहता हैं और यह विश्वास हो जाने पर वे जी जान से निजाम अली और उसकी रियासत को मराठों के हाथ से बचाने का यत्न करेंगे। परन्तु हैदराबाद रियासत के अस्तित्व को समाप्त कर देने की योजना को नाना फड़नवीस कभी प्रश्रय दे ही नहीं सकता था और न तो उसने इस बारे में कभी कल्पना ही की थी। इस प्रकार इस सम्बन्ध में सिन्धिया और फड़नवीस में बहुत अधिक विचार वैभिन्य था अतः जब कार्नवालिस का गारन्टी का प्रस्ताव पूना दरबार में पेश किया गया, तो उसे पढ़ते ही सिन्धिया इतना उत्तेजित हुआ कि यदि उसका वश चलता तो वह तुरन्त इस प्रस्ताव पर विचार करने से ही इनकार कर देता। यद्यपि नाना फड़नवीस को भी यह प्रस्ताव अप्रत्यक्ष रूप से कटु ही लगा, फिर भी उसने तुरन्त कोई जवाब नहीं दिया। वह सिन्धिया पर अंकुश रखना भी आवश्यक समझता था; साथ ही साथ वह अंग्रेजों से बिगाड़ भी नहीं करना चाहता था और इस प्रकार दोनों दृष्टियों से ही अंग्रेजों के प्रस्ताव को तुरन्त अस्वीकृत कर देना उसने उचित नहीं समझा। अतः उसने टालमटोल करने के उद्देश्य से इस सम्बन्ध में कार्नवालिस से बार्ता जाती रक्खा, यद्यपि उसके दिल में इस प्रस्ताव को स्वीकार करने की ईच्छा थी ही नहीं।

१७९३ ई०]

इस समय अचानक अगस्त सन् १७९३ में लार्ड मारक्विस कार्नवालिस, गवर्नर जनरल को इंलैण्ड वापस बुला लिया गया और उसके स्थान पर सर जान शोर को ब्रिटिश सरकार ने गवर्नर जनरल के पद पर नियुक्त करके भारत भेज दिया गया। लार्ड कार्नवालिस जिस तत्परता से गारण्टी वाली सन्धि को सफल बनाने के लिए तुला हुआ था उससे निजाम अली को पर्याप्त मात्रा में अपनी योजना की सफलता की उम्मीद हो चली थी और वह अन्तिम निर्णय के लिए काफी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था। नाना फड़नवीस ने भी अभी तक स्पष्ट रूप से असहमति नहीं प्रकट की थी अतः निजाम अली को अब भी पूना दरबार से इस सन्धि का समर्थन किए जाने की आशा लगी हुई थी। पर ज्योंहो लार्ड कार्नवालिस भारत से इंग्लैण्ड लौटा, पेशवा की तरफ से स्पष्ट असहमति का आभास मिलने लगा और अन्त में पूना दरबार ने निजाम की आशा पर पानी फेर दिया। इस प्रकार मराठों के इस प्रस्ताव पर असहमति प्रकट करने के पश्चात् निजाम अली ने अंग्रेजों के यहाँ बहुत हाथ पाँव मारा और इस बात के लिए अपनी सामर्थ्य भर प्रयत्न किया कि नया गवर्नर जनरल केवल उसकी सुरक्षा की गारन्टी ही ले ले। पेशवा का इस प्रस्ताव पर समर्थन प्राप्त न होने के पश्चात् सर जान शोर ने यह उचित नहीं समझा कि वह मराठों पर इस बात के लिए दबाव डाले कि वे निजाम अली से होने वाले किसी विवाद में गवर्नर जनरल को मध्यस्थ माने। उसने यही उचित समझा कि मराठों तथा निजाम अली को आपस में निपट लेने दिया जाय और अपने इसी विचार के अनुसार उसने तटस्थता की नीति का अश्रय लिया। उसकी इस तटस्थता को नीति के बहुत से अन्य कारण भी थे, परन्तु अपने विषय क्षेत्र की दृष्टि से इन कारणों का विवरण देना आवश्यक नहीं है।

यहाँ पर इस सम्बन्ध में मैं इनता ही कहना आवश्यक समझता हूँ कि यदि निजाम अली की बात में आकर गवर्नर जनरल ने पेशवा और निजाम के बीच में हस्तक्षेप कर दिया होता और निजाम अली किसी प्रकार, उसकी मदद से पेशवा के बकाया रकम के दावे को पचा जाता तो इससे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से गवर्नर जनरल को भले ही कुछ लाभ मिल जाता; परन्तु इतिहासकार मराठों के प्रति होने वाले इस अन्याय पूर्ण व्यवहार के लिए उसे अवश्य दोषी ठहराते।

जिस समय कार्नवालिस ने गारण्टी वाला सन्धि प्रस्ताव तैयार करके पेशवा और निजाम अली के पास विचारार्थ भेजा था, उसी समय से मराठों ने फिर से निजाम अली से बकाया रकम को चुका देने की माँग करना प्रारम्भ कर दिया था। यद्यपि निजाम अली को यह आशंका नहीं थी कि उनकी यह माँग कभी गम्भीर रूप धारण कर सकती है और विवाद का निर्णय तलवार के बल पर किए जाने का अवसर भी आ सकता है, फिर भी वह निरन्तर अपनी सैन्य शक्ति को बढ़ाता ही चला जा रहा था। जिस समय टीपू के साथ युद्ध चल रहा था उस समय निजाम की सेना में आधुनिक ढंग पर प्रशिक्षित दो बटालियन फौज भी सम्मिलित थी जिनका संचालन रेमण्ड नामक एक उच्च खानदान के फ्रांसीसी के हाथ में था। अब धीरे-धीरे इन बटालियनों की संख्या २३ तक पहुँच गई थी। महादजी सिन्धिया की मृत्यु के पश्चात् निजाम अली की सैनिक संख्या बहुत अधिक हो गई थी और अब भी निरतन्र बढ़ती ही जा रही थी। इस समय तक निजाम अली ने अपनी सैन्यशक्ति इतनी अधिक बढ़ा ली थी कि उसके बल पर वह मराठों का सामना करने में स्वयम् को समर्थ महसूस का रहा था। अब उसे उम्मीद हो चली थी कि यदि वह मराठों के विरुद्ध अंग्रेजों का सहयोग न प्राप्त कर सका, तो भी अवसर आ पड़ने पर वह अपनी ही सेना के बल पर मराठों का सफल प्रतिरोध कर सकेगा। एक बार हैदराबाद में स्थित पेशवा के राजदूत गोविन्द राव काले ने, अपने स्वामी की तरफ से निजाम अली के सामने बकाया रकम की माँग को दुहराया, साथ ही उसने नाना फड़नवीस द्वारा भेजा हुआ वह पत्र भी प्रस्तुत किया जिसके अनुसार निजाम के पास बकाया के रूप में पेशवा का दो करोड़ साठ लाख रुपया पड़ा हुआ था। गोविन्द राव ने निजाम से शीघ्र ही हिसाब को साफ कर देने अनुरोध किया। इस हिसाब के विषय में पेशवा के राजदूत तथा मुशीरुलमुल्क में बहुत गरमागरम बहस हुई और धीरे-धीरे इस विवाद ने गम्भीर रूप धारण कर लिया। अन्त में, अत्यन्त उद्दण्डता से मुशीरुलमुल्क ने भी दरबार में गोविन्द राव काले से कहा कि नाना फड़नवीस ने इस हिसाब में जो मदें दिखाई है वे इतनी उलझी हुई हैं और झूठ हैं कि उनका स्पष्टीकरण करने के लिए नाना का हैदराबाद दरबार में हाजिर होना जरूरी है और जब तक नाना फड़नवीस हैदराबाद नहीं आते, इस विषय में कोई बात नहीं हो सकती। इस पर गोविन्द राव* ने उत्तर दिया, 'नाना फड़नवीस अपनी ही समस्याओं को सुलझाने में व्यस्त हैं, वे यहाँ कैसे आ सकते हैं?' इस पर मुशीरुलमुल्क ने अत्यन्त उत्तेजित होकर उपसाहात्मक स्वर में कहा, 'कैसे आ सकते हैं? मैं जल्दी ही दिखा दूंगा कि उसे किस तरह इस दरबार में लाकर पेश किया जायगा।' मुशीरुमुल्क के इस धृष्टतापूर्ण व्यवहार को मराठों ने युद्ध की घोषणा के रूप में ग्रहण किया। यद्यपि इस घटना के बाद भी और युद्ध प्रारम्भ होने के समय तक दोनों पक्षों में बीच वार्ताएं चलती ही रहीं, परन्तु अब निजाम और पेशवा दोनों ने समझ लिया कि मामला शान्तिपूर्वक नहीं हल होगा और युद्ध एक ऐसा मार्ग है जिससे यह विवाद मिटाया जा सकता है और तदनुसार दोनों पक्ष अपनी तैयारियाँ करते रहे।

---

*जब मैंने जनवरी १८२३ में भारत छोड़ा, उस समय यह राजदूत जीवित था।

यद्यपि अभी तक खुले युद्ध की घोषणा किसी पक्ष द्वारा भी नहीं की गई थी और न यह आशा ही थी, फिर भी हैदराबाद के सिपाही उत्साह से उबले पड़ रहे थे और युद्ध के लिए एकदम तत्पर हो गए थे। मि० रेमन्ड के संचालन में जो २३ प्रशिक्षित बटालियनें थीं, उनको निजाम अली के आदेश पर बीडर में एकत्रित कर लिया गया और निजाम अली ने इन बटालियनों का संचालन भार अपने ही हाथ में रखने का निर्णय किया। मुगलों का कैम्प इस दल समय उत्साहपूर्ण वातावरण से घिरा हुआ था और हर तरफ युद्ध की ही बात सुनाई पड़ रही थी। निजाम अली की, पुराने ढंग पर संगठित सेना के सिपाही सबसे अधिक उत्साह का प्रदर्शन कर रहे थे, यद्यपि उनमें उतना दम नहीं था जितने कि वे डींगे मार रहे थे। वे रह रह कर कसम खाते थे कि वे पूना को जलाकर खाक कर देंगे और इमारतों की ईंट से ईंट बजा देंगे। उनके शिविरों में नित्य नर्तकियों के नृत्य गीत की आयोजना की जाती थी जिनमें मुगलों की विजय के गीत गाए जाते थे। कहने का अर्थ यह कि हर तरह से हैदराबाद के सैनिकों का यह नवजागृत उत्साह मराठों का विनाश करने का दृढ़ संकल्प कर रहा था। यहाँ तक कि एक ऐसे ही आयोजन पर हैदराबाद के वजीरे आजम ने कहा कि समय आ गया है कि अब 'मुगल, मराठों के निरन्तर हस्तक्षेप और ज्यादती से पूर्णतः मुक्त हो जायँगे; वे तब तक युद्ध जारी रक्खेंगे जब तक कि मराठे बीजापुर और खानदेश के इलाके उन्हें वापस न कर दें और पेशवा के समस्त वैभव को वे इस प्रकार समाप्त कर देंगे कि अन्त में वह पूना छोड़कर वाराणसी का रास्ता पकड़ें, उसके शरीर पर एक लगोट के अलावा अन्य कोई भी वस्त्र न रहें, उसके हाथ में केवल एक मिट्टी का मात्र भर रहें और वह भिक्षा मांग कर अपना निर्वाह करता हुआ गङ्गा के तट पर मोक्ष पाने के लिए प्रयत्न करे।[*] मुगलों के विभिन्न शिविरों में इसी प्रकार के हवाई किले बनाए जा रहे थे और सिपाही अपनी काल्पनिक विजयगर्व का आनन्द ले रहे थे।

उधर मराठे भी शांत नहीं पड़े थे। नाना फड़नवीस ने हर तरफ से मराठा सैनिकों को निमंत्रित करना शुरू कर दिया और पूना में दल के दल सैनिक आकर एकत्रित होने लगे। महाद जी सिधिन्या की मृत्यु के पश्चात् कोई ऐसी घटना नहीं घटी थी कि विभिन्न मराठा सरदारों में कोई प्रत्यक्ष विरोध होता। इधर नाना फड़नवीस को भी अधिकांश सरदारों का समर्थन प्राप्त था और पूना दरबार में उसका पूर्ण प्रभुत्व था। निजाम अली के साथ सम्भावित युद्ध में सभी सरदारों और मराठा नरेशों के लिए तरह-तरह के आकर्षण थे और उनमें से सभी को कुछ न कुछ प्राप्त होने की आशा थी। इन्हीं कारणों से मराठा साम्राज्य के हर कोने से सरदार और सिपाही नाना फड़नवीस के झण्डे के नीचे आ खड़े हुए। ऐसी एकता अनेक वर्षों से देखने से नहीं आयी थी। महाद जी सिधिन्या का उत्तराधिकारी दौलराव सिन्धिया तथा तुकाजी होलकर पहले से ही पूना में डटे हुए थे। बरार का राजा भी इस अभियान में सम्मिलित होने के लिए अपनी राजधानी से कूचकर चुका था। गोविन्द राव गायकवाड़ यद्यपि स्वयम् पूना नहीं पहुँच सका परन्तु उसने अपनी सेना को नाना फड़नवीस के पास भेज दिया। दक्षिण के अन्यान्य जागीरदार तथा सरदार भी उस शक्ति परीक्षा में पेशवा का साथ देने में नहीं चूके। दक्षिण की ओर से पटवर्धन और रस्तिया परिवारों के सरदार, माली गाँव और विन्चूर के, ब्राह्मण जागीरदार, प्रतिनिधि और पन्त सचिव आदि ने नाना के इस उत्साह पूर्ण आह्वान का उत्तर दिया। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि यह अन्तिम अवसर

---

[*] फारसी और मराठा पाण्डुलिपियाँ।

था जबकि मराठा साम्राज्य के सभी सरदार पेशवा की सम्मान रक्षा के लिए और पूरे भारत में पेशवा की प्रमुखता को सिद्ध करने के लिए अपनी पूर्ण शक्ति के साथ एक झण्डे के नीचे एकत्रित हुए थे।

युद्ध प्रारम्भ करने की दिशा में पहला कदम उठाया था निजाम अली ने, क्योंकि उसे पूर्ण निश्चय था कि विजय उसी की होगी। उसने पूरी सेना के साथ बीडर से प्रस्थान कर दिया, और मन्जरा नदी के तट के ऊपर से बढ़ते हुए मराठों की सरहद की दिशा का मार्ग पकड़ लिया। पेशवा ने भी, निजाम के बढ़ने का समाचार पाकर जनवरी माह में पूना से प्रस्थान कर दिया। उसने पशुओं के चारे के सुभीते की दृष्टि से अपनी सेना को कई भागों में बांट दिये और ये टुकड़ियां अलग-अलग रास्तों से एक ही लक्ष्य की ओर बढ़ चलीं। पेशवा की सेना में कुल मिलाकर १,३०,००० से अधिक सबार और पैदल सैनिक थे, साथ ही १०,००० पठारी भी थे। इन सैनिकों में से आधे से अधिक का वेतन या तो पेशवा के खजाने से दिया जाता था, या वे जागीरदारों की टुकड़ियों के सैनिक संख्या वाली फौज थी दौलत राव सिन्धिया की, जिसके सैनिक अच्छी तरह प्रशिक्षित थे तथा उनके पास अच्छे और अधिक उपयोगी अस्त्र शस्त्र थे। जितनी सेना वह अपने साथ पूना ले आया था, उससे कहीं अधिक सैनिक अब भी हिन्दुस्तान और मालवा में पड़े हुए थे। दौलतराव सिन्धिया का सहायक सेनापति जूबा बख्शी था, जो कुछ दिन ही पहले, पर्याप्त सैनिकों के साथ उससे आ मिला था। अब सिन्धिया की कुल सैनिक संख्या २५.००० तक पहुँच गई थी। इसमें से १०,००० सैनिक प्रशिक्षित बटालियनों के के अन्तर्गत थे जिनका संचालन फ्रेंच अफसर डी वाइन के सेनानायक एम. पेरा के साथ में था। राघो जी भोंसले के साथ आई हुई सेना में पैदल और सवारों की कुल संख्या को मिला कर लगभग १५००० सैनिक थे। तुकाजी होलकर अपने साथ केवल १०००० सैनिक ले आया था। जिसमें वे प्रशिक्षित बटालियनें भी सम्मिलित थीं जिन्हें दद्रेनेक ने तैयार किया था और इस युद्ध में उसे ही इनका संचालन भी करना था। जो १०००० के लगभग पंढारी सेना के साथ चल रहे थे उनमें से अधिकांश होलकर के ही अनुयायी थे। परशुराम भाऊ के साथ के कुल सैनिकों की संख्या केवल सात हजार थी।

दिसम्बर १७६५]

सभी सरदारों के, निश्चित स्थान पर एकत्रित हो जाने के पश्चात् नाना फड़नवीस ने युद्ध की आयोजना एवं व्यवस्था के सम्बन्ध में सभी प्रमुख सरदारों से अलग-अलग वार्ता की। ※ अन्त में सारी बातें निश्चित हो जाने के पश्चात् उसने परशुराम भाऊ को सम्पूर्ण मराठा सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त किया। इसके पश्चात् नाना फड़नवीस ने सेना के साथ आये हुए पंढारियों तथा कुछ अन्य सवारों की टुकड़ियों को अनुमति दे दिया कि वे जहां भी अवसर पाएँ, मुगल शिविर में तथा उनके कैम्प के आस-पास लूट-मार मचायें तथा आंतक और अशांति फैलायें। उन्होंने इस लुटेरी टुकड़ी को यह निर्देश भी दिया कि दांव पाने पर वे शत्रु सेना के रसद और चारे की व्यवस्था में भी गड़बड़ी पैदा करें या नष्ट कर दें। इस व्यवस्था के पश्चात् यह निश्चित किया गया कि सेना के विभिन्न अंग किस क्रम से आगे बढ़ेंगे। सभी भारी सामान को, सुरक्षा के पूर्ण तथा उचित प्रबन्ध क

※ विभिन्न सरदारों के मतों का जो विवरण नाना फड़नवीस ने अपनी ही लिखावट में तैयार किया था, उसे पूना रिकार्डस में देखा जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस युद्ध में जूबा बख्शी और तुकाजी होलकर की योजनाओं पर अमल किया गया था।

साथ एक पड़ाव पीछे छोड़ दिया गया और एक मजबूत टुकड़ी इन सामग्रियों के साथ कर दी गई। निजामअली पर आक्रमण करने के लिए प्रशिक्षित पैदल सैनिकों को चुनी हुई बटालियनों को रवाना कर दिया गया जिनके आक्रमण कार्य में सहायता पहुँचाने के लिए सर्वोत्तम सवारों की एक टुकड़ी तथा १५० की संख्या में शक्तिशाली तोपें भी उनके साथ कर दी गई। निजामअली भी युद्ध के लिए पूर्ण रूप से तैयार होकर बढ़ा चला आ रहा था और इस समय उसकी यात्रा का लक्ष्य कुर्दला था, इस समय उसकी सेना के पैदलों और सवारों को मिलाकर कुल एक लाख दस हजार सैनिक थे।

११ मार्च] जब वह मोहड़ी घाट से नीचे उतर रहा था, उसी समय बाबा राव अपनी टुकड़ी के साथ उधर आ निकला। बाबा राव, मृत हरीपन्त फड़के का लड़का था और इस समय वह पेशवा के निजी रक्षक सेना की कुछ टुकड़ियों का नेतृत्व कर रहा था। यद्यपि उसके पास बहुत कम सैनिक थे, फिर भी वह निजामअली पर पहली चोट करने के लोभ का संवरण न कर सका। उसने घाट से उतरती हुई मुगल सेना पर पूरे जोर से धावा कर दिया। निजाम अली के विशाल सेना को कुछ देर तक उलझाये रखने के पश्चात् बाबा राव भाग निकला। इस नगण्य सी टुकड़ी को भगा देने पर ही मुगल सेना खुशी से फूल उठी। उसी शाम को निजाम अली ने एक दरबार किया और इस विजय पर उसके सरदारों ने उसे बधाई दिया और नजरें पेश की। दूसरे दिन सुबह-सुबह मुगल सेना कुर्दला से रवाना होकर पुरिन्दा की ओर तीव्रगति के साथ बढ़ चली।

इसी समय मराठे थोड़ी संख्या में इस बढ़ती हुई मुगल सेना की दाहिनी तरफ दिखाई पड़े और निजामअली के देखते-देखते उनकी संख्या बढ़ती गई। उनकी संख्या को निरन्तर बढ़ते देखकर निजाम अली ने अपने हाथी को तुरन्त रोक लिया। उसने अपनी सारी सामग्रियों को अपनी सेना की बाईं तरफ करवा दिया और तब अपनी सेना का रुख दाहिनी ओर मोड़ दिया। उसने असद अली खाँ को, कुशल सवारों की एक तगड़ी टुकड़ी के साथ मराठों पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया। उसे सहायता पहुँचाने के लिए निजामअली ने रेमण्ड द्वारा उसकी प्रशिक्षित बटालियनों के साथ रेमण्ड को भी साथ ही रवाना कर दिया। उनको बढ़ते देखकर परशुराम भाऊ भी अपने सवारों के साथ मुगल सवारों का समुचित स्वागत करने के लिए सन्नद्ध हो गया। उसने अपने साथ पेशवा तथा तुकाजी होलकर की सेनाओं को रक्खा और प्रधान सेनापति के अधिकार के साथ उसने सेना के मध्य में स्वयम् को स्थित किया। उसकी दाहिनी तरफ, दाहिनी रक्षक पंक्ति के रूप में राघोजी भोंसले अपने सैनिकों के साथ खड़ा हो गया। दौलतराव सिन्धिया अपनी सेना के साथ भाऊ की बाईं ओर चला गया। इस तरह से सारी व्यवस्था कर लेने के पश्चात् परशुराम भाऊ अपने सवारों के साथ मुगलों पर आक्रमण करने के लिए बढ़ा। इस समय उसके साथ बाबाराव फड़के, तथा तुकाजी होलकर का लड़का काशीराव भी थे। अभी वह मुश्किल से ही कुछ दूर बढ़ पाया था कि अचानक पठानों की एक टुकड़ी ने विद्युत गति से भाऊ पर हमला बोल दिया। पठानों की इस टुकड़ी का नायक था लाल खाँ जो कि बलूचिस्तान का निवासी था। उसने इस धावे में अप्रतिभ वीरता का प्रदर्शन किया तथा अनेक मराठों को तलवार के घाट उतार दिया। मार-काट कर अपना रास्ता बनाते हुए वह परशुराम भाऊ के सामने जा पहुँचा और एक ही बार में भाऊ को घोड़े से नीचे उतार फेंका और घायल कर दिया। परन्तु उसी समय परशुराम भाऊ के ज्येष्ठ लड़के हरी पन्त पटवर्धन की नजर इस द्वन्द युद्ध पर पड़ गई। ज्योंही उसने अपने पिता को घोड़े से नीचे गिरते देखा, वह विद्युत गति से लाल खाँ पर टूट पड़ा और उसे उसी स्थान पर सदा के लिए सुला

दिया। परन्तु लाल खाँ के मारे जाने के पश्चात् भी पठानों का उत्साह कम नहीं हुआ। करनाल के नवाब का लड़का आलिफ खाँ तथा एलिचपुर के नवाब इस्माइल खाँ का लड़का सलाबत खाँ भी पठानों की पीठ पर ही थे और उन्हें प्रोत्साहित कर रहे थे। इस नई शक्ति को देखकर पठान और भी खूंखार हो उठे और उन्होंने मराठों की प्रथम रक्षक पंक्ति पर इतना प्रचण्ड आक्रमण किया कि मराठों की एक न चली। अन्त में मराठा सेना की अगली पंक्तियाँ तितर-बितर हो उठी और पठान उनकी सेना में धँस पड़े। मराठे इतनी घबराहट और बौखलाहट में पीछे हटे कि उनकी सेना का अधिकांश भाग अव्यवस्थित हो गया। हजारों मराठा सैनिक इस गढ़बड़ी से भयभीत होकर युद्ध क्षेत्र से भाग निकले। यद्यपि बाबाराव फड़के के हाथ में ही सारी पताका थी, फिर भी उसने इस पताका के सम्मान की जरा भी परवाह न करते हुये इन भगोड़ों में ही सम्मिलित होने की प्रवृत्ति दिखाई, परन्तु संयोगवश इसी समय जूबा बख्शी उधर आ निकला और उसने बाबाराव को भागने के लिए तैयार पाया। जूबा बख्शी ने उसे कायर कहकर लज्जित किया और उसे परामर्श दिया कि यदि वह अपनी जान ही बचाना चाहता है तो युद्ध क्षेत्र से न भागे, बल्कि सिन्धिया की सेना के पीछे चला जाय।

इस समय तक दोनों ही पक्षों की प्रशिक्षित पैदल बटालियनें एक दूसरे के इतने नजदीक पहुँच चुकी थीं कि दोनों ही पक्ष एक दूसरे की बन्दूकों की मार के अन्दर थे। मुगल सवार मरने या मारने के दृढ़ संकल्प के साथ अपनी पैदल सेना की रक्षा और सहायता के लिए आगे बढ़े आ रहे थे। इसी समय राघोजी भोंसले ने मुगल सेना पर अग्निबाणों (राकेट) की बौछार करना आरम्भ कर दिया। इसी समय पेशवा ने ३५ तोपों से एक साथ मुगलों पर गोलों की एक बाढ़ छोड़ी। पेशवा ने पहले से ही एक अत्यन्त सुविधापूर्ण स्थान पर इन तोपों को रखवा दिया था। अग्निबाणों (राकेटों) और तोप के गोलों की सम्मिलित मार से मुगल सवारों के कदम पूर्ण रूप से उखड़ गये, परन्तु उनके भाग जाने पर भी रेमन्ड की बटालियनें अपने स्थान पर ही डटी रहीं। इन बटालियनों का मुकाबला एम पेरताँ कर रहा था। परन्तु रेमन्ड के सामने वह कुछ निर्बल पड़ रहा था और सम्भव था कि रेमन्ड उसे दबा बैठता परन्तु इस समय तक निजाम अली पीछे हट चुका था और कुर्दला की तरफ लौट रहा था। उसने बार-बार रेमन्ड को पीछे लौटने का आदेश भेजा और अन्त में इच्छा न रहने पर भी उसे पीछे हटकर निजाम अली का अनुकरण करना पड़ा। मुगलों की छोटी बड़ी टुकड़ियाँ अब भी इधर-उधर मराठों से उलझी हुई थी, परन्तु धीरे-धीरे अपने आदमियों से मैदान को खाली होते देखकर उन्होंने भी अपने नेता के इरादे का अनुमान कर लिया और वे भी पीछे लौटने का उपक्रम करने लगा। इस समय तक सूर्यास्त हो गया था। धीरे २ अन्धेरा फैलने लगा और अन्धकार ने दोनों पक्षों के सैनिकों को अस्त-व्यस्त कर दिया। रात्रि हो जाने पर भी विभिन्न दिशाओं में दोनों पक्ष बन्दूकें चलाते रहे। और इधर-उधर भाग दौड़ करते रहें। इस समय सैनिक इतनी बुरी तरह बिखर गये थे कि वे अपनी टुकड़ी का भी पता नहीं लगा पा रहे थे। केवल रेमन्ड की अर्ध-अनुशासित सेना ही एक गुट में रह गई थी, शेष सभी टुकड़ियों के सरदारों और सिपाहियों में एकदम संबंध विच्छेद हो गया था। अन्त में दिन भर के परिश्रम तथा चोटों से परेशान सिपाहियों ने जहां ही जगह पाई, पैर पसार कर पड़ गये और पड़े-पड़े सुबह होने की प्रतीक्षा करने लगे। परन्तु इसी समय अचानक एक ऐसी घटना हो गई कि थकावट से परेशान बेचारे मुगल चैन से विश्राम भी न कर पाये। रात्रि के भयानक सन्नाटे में रात्रि कालीन पहरे पर तैनात कुछ मराठा सैनिक, अपने घोड़ों के लिये पानी की तलाश में इधर-उधर भटक रहे थे। खोजते

खोजते, वे एक छोटे से नाले के पास पहुँचे। लेकिन तभी उनकी नजर कुछ मुगल सैनिकों पर पड़ी, जो वहीं विश्राम कर रहे थे। मुगलों ने ज्योंही मराठों को पहचाना, तुरन्त ही उन पर गोली चलाना प्रारम्भ कर दिया। रेमन्ड की बटालियनें भी पास ही विश्राम कर रही थीं और उसके सन्तरी गश्त लगा रहे थे। पास ही में गोली चलने की आवाज सुनकर उन्होंने भी बिना सोचे समझे बन्दूक चलाना शुरू कर दिया। संतरियों द्वारा चलाई हुई गोलियों की आवाज सुनकर इन बटालियनों के सभी सैनिक जग पड़े। जब वे युद्ध से लौट रहे थे, तभी उन्होंने मार्ग में ही अपनी बन्दूकों को भर लिया था, और रात में भी वे भरी हुई बन्दूकों के साथ ही सोये पड़े थे। इस शोरगुल को सुनकर ज्योंही उनकी आंखें खुली, उन्होंने अपनी बन्दूकें उठाई और बिला किसी तरफ देखे एक साथ गोलियों की बाढ़ छोड़ी। उस समय मुगल सेना जितनी परेशान और थकी हारी पड़ी थी और जिस बिखरी हुई स्थिति में पड़ी थी, उससे अनुमान किया जा सकता है कि रात्रि के सन्नाटे में इस प्रकार अचानक असंख्य बन्दूकों के चलने से उनकी क्या दशा हुई होगी। धीरे-धीरे जैसे अन्य टुकड़ियां जागती गई शोरगुल बढ़ता गया और भाग दौड़ होती रही। सभी मुगल सैनिक एक बार फिर अस्त-व्यस्त हो गए। यहां तक कि रेमन्ड की प्रशिक्षित सेना के कुछ सिपाही और अफसर भी इस धमा चौकड़ी में अपना अपना स्थान छोड़कर इधर-उधर दौड़ते हुए सैनिकों की भीड़ में जा मिले। काफी देर तक इसी प्रकार गुलगपाड़ा मचे रहने के पश्चात् आकाश में चन्द्रमा उदय हुआ। और धरती पर प्रकाश की किरणें बिखरीं। अपने सैनिकों के अशिष्ठ और अनुशासनहीन व्यवहार से घबरा कर निजाम अली ने अपना शिविर छोड़ दिया और भागकर कुर्दला की दीवालों के भीतर शरण लिया। यह एक बहुत छोटी गढ़ी थी, परन्तु पहाडियों से घिरी होने के कारण कुछ सुरक्षित थी। उधर उसके अधिकांश सिपाही भाग निकले, परन्तु खाली हाथ नहीं भागे। रास्ते में उन्हें अपनी ही सेना के अस्त-व्यस्त शिविरों में जो भी सामग्रियाँ हाथ लगी, लेकर विभिन्न दिशाओं में चल पड़े। परन्तु इस प्रकार अपने मालिक के प्रति दुहरा अपराध करके ये सैनिक लूटपाट के इन सामानों का उपभोग न कर सके। दूसरे दिन मराठा पंढारियों ने मार्ग में ही उन्हे जा घेरा और उनके पास जो कुछ भी था सब का सब छीन लिया। किसी भी मुगल सैनिक ने जरा भी चीं-चपड़ नहीं किया और जिसने जरा सा विरोध किया, पंढारियों ने तुरन्त उसे मौत के घाट उतार दिया। इस प्रकार यह रात मुगल सेना के लिए बहुत ही दुखदाई सिद्ध हुई।

सबेरा होने पर मराठों ने फिर युद्ध की तैयारी शुरू कर दी। परन्तु शत्रु पक्ष का एक भी सिपाही उन्हें युद्ध क्षेत्र में नहीं दिखाई पड़ा। वे और आगे बढ़े और तब तक उन्हें तोपें, बन्दूकें गोला बारूद तथा भागी हुई सेना की अन्य सामग्रियां इधर-उधर बिखरी दिखाई पड़ी। मराठे सारे सामानों को अपने अधिकार में लेते हुए निजाम अली की खोज खबर लेने के लिए आगे बढ़ते रहे और उन्हें जब यह मालूम हुआ कि इस समय निजाम अली कुर्दला के किले को भीतर से बन्द करके उसी में पड़ा हुआ है तो उन्हें उसके इस मूर्खता कार्य पर बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने देखा कि अब निजाम की कुल सेना का लगभग दसवां भाग ही रह गया है और उसके सैनिक किले के चारों ओर बिखरे पड़े हैं। ऐसे अवसरों पर भारत में कोई भी ऐसी जाति नहीं है जो उत्साह और सक्रियता से मराठों से होड़ ले सके। उनकी दूर-दूर तक बिखरी हुई टुकड़ियों में विद्युत गति से यह खबर फैल गई कि निजाम अली कुर्दला के किले में असहाय पड़ा हुआ है। मराठे इस उल्लासपूर्ण समाचार को सुनकर हर्ष से उछल पड़े। अब क्या था, वे चारों तरफ से मुगलों की सेना में लूट-पाट मचाने के ध्येय से तीव्र गति से कुर्दला के पास एकत्रित होने लगे और दिन

बीतते-बीतते उन्होंने मुगल सेना सहित कुर्दला की गढ़ी को चारों तरफ से घेर लिया। दूसरे दिन उन्होंने तोपों से गोलाबारी करना शुरू कर दिया। तोपें कुछ इस प्रकार लगाई गई थी कि न तो मुगल सेना और न कुर्दला की गढ़ी ही मराठा तोपों के निशाने से बाहर थी। निजाम अली ने इस असहाय तथा निराशा-पूर्ण स्थिति में किसी प्रकार दो दिन बिताए, परन्तु तीसरे दिन, अर्थात् १५ मार्च की सुबह को उसने मराठों से युद्ध बन्द कर देने का अनुरोध किया और अपने पक्ष के सैनिकों का हथियार डाल देने का आदेश दिया। मराठों ने अपनी तरफ से पहली माँग पेश करते हुए निजाम अली से कहा कि वह मुशीरुलमुल्क को उनके हवाले कर दे ताकि उसे नानाफड़नवीस को पकड़ मँगाने तथा पेशवा के प्रति अपमानजनक शब्दों के प्रयोग करने का मजा चखाया जा सके। इसके पश्चात् मराठों ने जो दूसरी माँग पेश की वह सरहदों से सम्बन्धित थी—उन्होंने कहा कि अब मराठा राज्य की सरहद दक्षिण में पुरिन्दा जिले से प्रारम्भ होकर उत्तर में ताप्ती नदी के किनारे तक मानी जायगी। मराठों की शर्त्त के अनुसार दौलताबाद का किला तथा कुछ अन्य ऐसे क्षेत्र भी इस सीमा के अन्तर्गत आ जाते थे जिन्हें सदाशिवराव भाऊ ने सन् १७६० में जीता था, परन्तु बाद में पुनः निजाम अली को लौटा दिया गया था। चौथ और सरदेशमुखी के पुराने बकाये, तथा युद्ध के हरजाने के रूप में निजाम अली ने पेशवा को तीन करोड़ रुपया देने का वादा किया। इसी समय राघोजी भोंसले ने अपने घास दाना की बात उठाई। गंगथरी में वह सेना साहब सूबा की हैसियत से सदैव घास-दाना वसूल करता जिससे उसे प्रतिवर्ष लगभग साढ़े तीन लाख रुपए की आय होती थी। परन्तु इधर कई वर्षों से निजाम ने उक्त क्षेत्र में भोंसले को घास-दाना नहीं वसूल करने दिया था। बात उठने पर निजाम अली ने वह घास-दाना वसूल करने के अधिकार के एवज में अपना एक क्षेत्र ही भोंसले के अधीन कर देना स्वीकार किया जिसकी वार्षिक आय तीन लाख १८ हजार रुपए थी। यही नहीं, इसी शर्तनामें में उसने राघोजी भोंसले को, घास-दाना के पिछली बकाए के रूप में २९ लाख रुपया देना भी मन्जूर किया। निजाम अली ने यह शर्त भी मान ली कि पहले की हो तरह अब भी भोंसले बरार के कुछ निश्चित क्षेत्रों में मालगुजारी वसूल कर सकेगा। राघोजी भोंसले के साथ निजाम ने जो वादे किए थे, उसको पूरा कराने की गारण्टी पेशवा ने अपने ऊपर ली, जिसे भोंसले और निजाम, दोनों ने स्वीकार किया।

मराठों की हर शर्त को स्वीकार करने में निजाम अली जरा भी नहीं हिचकिचाया, परन्तु मुशारुलमुल्क को मराठों के हाथ सौंप देने के प्रश्न पर वह बड़ी मुश्किल से राजी हुआ, वास्तव में वह मुशीरुलमुल्क से बहुत ही स्नेह करता था और उसके बिना अपना शासन कार्य चलाने की कल्पना तक नहीं कर सकता था। सारी परिस्थितियों को देखते हुए मुशीरुलमुल्क ने स्वयम् उस पर जोर डाला कि उसे मराठों के हाथ सौंप दिया जाय, जो तकदीर में होगा सो तो भोगना ही पड़ेगा। साथ ही मुशीरुलमुल्क ने अनुभव किया कि मराठों ने सन्धि की जिन शर्तों को निर्धारित किया है वे उतनी कड़ी नहीं है जितने की आशा की जाती थी, अतः उचित यही होगा कि उसे मराठों के हवाले ही कर दिया जाय। अन्त में मुशीरुलमुल्क के बार-बार जिद करने पर निजाम अली ने इसी उद्देश्य से भेजे गए २०० मराठा सैनिकों के दल के हवाले कर दिया, जो पेशवा के शिविर तक सम्मान के साथ ले गए। शिविर के बाहर ही पेशवा से मुसीरुलमुल्क की भेंट हुई और पेशवा ने बात व्यवहार में उसके पद के योग्य उसका उचित सम्मान किया परन्तु मुशीरुलउलमुल्क को पेशवा के आदेश से कड़े पहरे में रक्खा गया। मराठा सरदार और सैनिक अपनी इस शानदार

विजय पर फूले नहीं समा रहे थे और बढ़ बढ़कर शेखी मार रहे थे। परन्तु पेशवा को इतनी सस्ती विजय पर भी व्यर्थ की डींग मारना पसन्द नहीं आया। नाना फड़नवीस को भय था कि कहीं मराठे क्रोध में मुशीरुलमुल्क को मार न डालें, इसलिए उसने उसको जिम्मेदार व्यक्तियों के सिपुर्द कर दिया था। इस अवसर पर पेशाव ने स्वयम् अपनी सेना तथा मुगल सेना के प्रति एक उल्लेखनीय वाक्य कहा जो जितना ही उचित है उतना ही दिलचस्प भी। जब पेशवा ने मुशीरुलमुल्क को लाए जाते हुए देखा तो वह स्वयं बहुत उदास हो गया और उसका चेहरा उसकी इस उदासी को छिपा न सका, इस पर नाना ने उससे उसके अचानक उदास हो जाने का कारण पूछा। पेशवा ने कहा, 'मुझे दोनों ही पक्षों के मानसिक स्तर को इतना नीचे गिरा हुआ देखकर बहुत दुख पहुँचा है, एक तरफ तो मुगलों ने बिना युद्ध किए इस तरह मुंह में तिनका दाब कर अपमान पूर्ण आत्म समर्पण कर दिया और दूसरी तरफ हमारे अपने सैनिक एक ऐसी विजय की खुशी में मतवाले हो रहें हैं जिसके लिए उन्हें कोई विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ा।' पेशवा की यह उक्ति अत्यन्त ही तथ्यपूर्ण है। वास्तव में, पहले दिन के युद्ध में, उन दोनों विशाल सेनाओं की मुठभेड़ के फलस्वरूप केवल दो सौ सिपाही मारे गए थे—इस संख्या में दोनों पक्षों के मृत सैनिक सम्मिलित थे।

जिस समय मराठे और मुगल इस प्रकार परस्पर संघर्षरत थे, उस समय हैदराबाद और पूना के दरबारों में स्थित अंग्रेजों के राजदूत कुर्दला के आस-पास ही से दोनों पक्षों के संघर्ष का अवलोकन कर रहे थे। अंग्रेजों की इस तटस्थता के कारण निजाम अली उन पर बे तरह जला हुआ था। उसके हृदय में यह बात अच्छी तरह बैठ गई थी कि अंग्रेजों ने उससे मित्रता का वादा करके अवसर पड़ने पर उस के साथ विश्वासघात किया है। जब कुर्दला के युद्ध में बुरी तरह पराजित होकर हैदराबाद वापस लौटा, तो पहुँचते ही उसने पहला काम यह किया कि अंग्रजों की उन दो बटालियनों को चलता कर दिया जो हैदराबाद में पड़ी हुई थी और जिनका खर्च उसी के मत्थे पड़ता था। तत्पश्चात उसने सिन्धिया के द्वारा प्रस्तुत उदाहरण का अनुकरण करते हुए मांस्चूर रेमण्ड को एक पर्याप्त आय वाली जागीर दे दिया, साथ ही उसे आदेश किया कि वह अपनी बटालियनों की संख्या जितना भी बढ़ा सकें, बढ़ाने का प्रयत्न करे। मुशीरुलमुल्क के मराठों के हाथ पड़ जाने के कारण भी हैदराबाद दरबार से कुछ समय के लिए अंग्रेजो का डेरा डन्डा उखड़ गया, क्योंकि वह अंग्रेजों का बहुत बड़ा मित्र था, और निजाम अली तथा अंग्रेजों में मित्रता पूर्ण सम्बन्ध बनाए हुए था। परन्तु उसके न रहने पर हैदराबाद में एक तो कोई उनका सहायक नहीं रह गया, दूसरे निजामअली अंग्रेजों से रुष्ठ भी था, अतः उनकी बटालियनों को निजाम अली ने वापस कर दिया। सम्भव था कि अब हैदराबाद में फ्रांसीसियों के बढ़ते हुए प्रभाव के वशीफुत होकर निजाम उनकी बातों पर ही कान देने लगता, परन्तु इसी समय अचानक ऐसी आकस्मिक विपत्ति निजाम के ऊपर मंडरा उठी कि उसे मजबूर होकर पुनः अंग्रेजी बटालियनों को वापस बुलाना पड़ा और अंग्रेजों के साथ उसका जो सन्धि विच्छेद हो गया, उसे फिर से मित्रता में बदलने के प्रयत्न किए जाने लगे। ऊपर जिस आकस्मिक घटना की ओर संकेत किया गया है, इह इस प्रकार है। इधर जब से निजामअली कुर्दला के युद्ध में उलझा हुआ था। उसी समय से उसका बड़ा लड़का आलीजाह उसके विरुद्ध बगावत करने की तैयारियों में व्यस्त था। उसके पक्ष में हैदराबाद के अनेकानेक प्रमुख सरदार भी सम्मिलित थे, जो मुशीसलमुल्क तथा दरबार में अंग्रेजों के बढ़ते हुए प्रभाव से डाह रखते थे।

२८ जून् की रात्रि को पूर्व निश्चित योजना के अनुसार आलीजाह ने चुपचाप हैदराबाद छोड़ दिया और अपनी कार्य सिद्धि के लिए उसने अपने सहयोगियों द्वारा यह अफवाह फैलवा दिया कि सदाशिव राव रेड्डी नामक एक मराठा सरदार ने बलात उसका अपहरण कर लिया ताकि वह शाहजादे के नाम का सहारा लेकर उसी के नाम से बगावत के रूप में हैदराबाद पर घेरा डाल सके उसके भाग निकलने के पश्चात् ही उसके अन्य सहयोगी भी बारी-बारी से हैंदराबाद से चल पड़े और शीघ्र ही उससे आ मिले। अपने पक्ष के समस्त सरदारों के एकत्रित हो जाने के पश्चात् शाहजादा आलीजाह ने बीदर की तरफ कूच कर दिया। सर्वप्रथम उसने बीदर के किले पर आक्रमण किया और उसे अपने कब्जे में ले लिया। तत्पश्चात् उसने कम महत्व के कुछ अन्य छोटे-मोटे इलाकों पर कब्जा कर लिया। उस साल मौसम भी उसके ही प्रतिकूल था और उसे अधिक सफलता का आशा नहीं थी, पर इसी बीच इधर-उधर बेकार घूमते हुए सवार बहुत अधिक संख्या में उसकी सेना में आ मिले। ये वे सवार थे, जो कुर्दला के युद्ध से भाग आये थे जिसके फलस्वरूप रुष्ठ होकर निजामअली ने एक ही साथ उन सबको बर्खास्त कर दिया था। इन भगोड़े तथा बर्खास्त सैनिकों की संख्या कुल मिलाकर लगभग ५० हजार थी। इतनी बड़ी सेना के एकत्रित हो जाने पर आलीजाह बहुत अधिक उत्साहित हुआ और उधर निजामअली के कान भी खड़े हो गये क्योंकि अनेक प्रभावशाली सरदार और अधिकारी शाहजादे का साथ दे रहे थे और जैसा कि बाद में सुना गया, टीपू ने भी इस बगावत में उसको सहायता देने का वादा किया था। निजामअली ने तुरन्त इस बगावत को दबाने का प्रबन्ध शुरू कर दिया।

आलीजाह तथा अन्य सरदारों द्वारा की गई बगावत को कुचल डालने का उत्तर दायित्व मान्स्यूर रेमण्ड को दिया गया। उसने बीदर तक शाहजादे का पीछा किया, इस पर आलीजाह भागकर औरंगाबाद चला गया परन्तु रेमण्ड ने तब भी उसका पीछा न छोड़ा। औरंगाबाद में ही वह आलीजाह को कैद करने में सफल हो गया और उसे साथ लेकर उसने हैदराबाद का मार्ग पकड़ा। परन्तु आलीजाह आत्म ग्लानि एवम् लज्जा की भावना से इतना अभिभूत हो गया कि उसमें अपने पिता का सामना करने का साहस न रह गया। अभी रेमण्ड उसे लेकर हैदराबाद नहीं पहुँच पाया था कि बीच में ही, अवसर पाकर आलीजाह ने जहर खा लिया और अपने अस्तित्व को समाप्त कर दिया।

इस समय नाना फड़नवीस अपने प्रभाव; लोकप्रियता एवम् समृद्धि की चोटी पर था। बिना किसी विदेशी शक्ति का सहारा लिए उसने अपनी प्रत्येक महत्वाकांक्षा को सम्मानपूर्वक पूर्ण किया। जब तक महादजी सिन्धिया जीवित था, वह सदैव नाना फड़नवीस को नीचा दिखाने के प्रयत्न में ही रहता था, परन्तु दौलतराव सिन्धिया नाना फड़नवीस का आदर करता था और प्रत्येक मामले में उससे सहयोग रखता था। उसके नीचे जितने मन्त्री और कर्मचारी थे, वे सभी इस प्रयास में रहते थे कि किस प्रकार युवा पेशवा के प्रशासन में सुधार किया जाय और उसे देश में लोकप्रिय बनाया जाय। मराठा दरबार की आलोचना करना उसके लिए उतना महत्वपूर्ण नहीं रह गया था, जितना कि उसके सुधार के लिए अपना परामर्श देना। तुकाजी होलकर तन मन से पूर्णरूपेण शान्त हो गया था और उसके समस्त अधिकारी नाना फड़नवीस का अदब करते थे। राघोजी भोंसले प्रत्यक्ष रूप से उसका अनुगामी बन चुका था, सभी प्रमुख ब्राह्मण जागीरदार तो पहले से ही उसके पक्ष में थे। पेशवा तथा नाना फड़नवीस के इतने समर्थकों के रहते हुए अब मराठों को यह आशा हो चली थी कि मराठा साम्राज्य एक बार पुनः उतना ही समृद्धिशाली और प्रभावशाली होने में समर्थ हो

सकेगा जितना कि महान् पेशवा माधवराव के समय में था। परन्तु इसी समय घटनाक्रम ने कुछ इतना भयानक और विपरीत मोड़ लिया कि मराठा साम्राज्य की जड़ें एक वार फिर से हिल उठी। नाना फड़नवीस ने यद्यपि अब तक पर्याप्त प्रभाव स्थापित कर लिया था, फिर भी अभी उसे सन्तोष नहीं था। साथ ही वह ऐसी योजनायें बनाने में व्यस्त हो गया कि उसके जीवन भर उसका अधिकार एवम् प्रमुत्व उसी प्रकार बना रहे। अपने सधिकार को अक्षुण्ण रखने की चिन्ता से इतना अभिभूत हो गया कि उसकी प्रतिष्ठा निरन्तर घटती ही चली गई, उसके जीवन भर का सारा परिश्रम मटियामेट हो गया और उसका शेष जीवन विपत्तियों और कष्टों में बीता। इस प्रकार उसकी प्रबल महत्वाकांक्षाएँ ही उसे पतन के गर्त की ओर खींच ले गई।

अड़तीसवां अध्याय

बाजीराव (द्वितीय) का पेशवा पद प्राप्त करना

[१७९५ से १७९६]

नाना फड़नवीस—पेशवा माधवराव (द्वितीय) के साथ उसका व्यवहार—सतारा का राजा—मृत रघुनाथ राव के परिवार का विवरण—बाजीराव—नाना के विरुद्ध बाजीराव की कार्रवाइयाँ—बाजीराब का पेशवा पद प्राप्त करने के लिये प्रयत्न—नाना फड़नवीस का सिंधिया को फोड़ने का प्रयत्न और सफलता—बाजीराव कैद में—चिम्मणा जी अप्पा के पेशवा होने की घोषणा—नाना की दुःख पूर्ण परिस्थितियाँ—बालाजी कूँजर की उन्नति—शीराजी राव घाटगे का उत्कर्ष—बाजीराव का हिन्दुस्तान की ओर प्रयाण—पूना में घटना क्रम—नाना फड़नवीस की योजनाएँ परिपक्व—महार की सन्धि—राघोजी भोंसले के साथ सुलह—बाजीराव का पेशवा बनना—चिमणा जी अप्पा की गुजरात में नियुक्ति।

इस समय माधवराव पेशवा (द्वितीय) की आयु २१ वर्ष की हो चुकी थी और अब उसकी भी बुद्धि उत्तरदायित्व के कारण परिपक्व हो चली थी फिर भी नाना फड़नबीस ने उसके प्रति अपने गुरु पद के अनुकूल व्यवहार को परिवर्तित नहीं किया। वह पेशवा को अब भी उसी तरह उपदेश देता रहा, मानो वह एक अबोध बच्चा हो। वह वयोवृद्ध मन्त्री सदा इसी ताक में रहने लगा कि कहीं उसका कोई पुराना शत्रु फिर से उभर कर पेशवा को उसके विरुद्ध भड़का कर उसे पथ भ्रष्ट न कर दे। जितने राजनैतिक बन्दी थे, उनमें से कुछ ऐसे भी थे जीं मुक्त हो जाने पर उसकी ही जड़को खोदने लगते। अतः ऐसे खतरनाक व्यक्तियों से भी वह सचेत हो गया और इसो प्रयत्न में रहने लगा कि बे किसी प्रकार मुक्त न हो जायँ। उसे वह बात याद थी कि जब सिन्धिया ने पूना दरबार से ब्राह्मणों की सत्ता को उलटने के लिए योजना बनाई थी, तो उसमें सतारा के राजा को भी सम्मिलित किया था। अब सिन्धिया तो रह नहीं गया था, परन्तु सतारा का राजा अब भी उसकी आँख में खटक रहा था। अतः अपने इस पुराने शत्रु के हौसले को पस्त करने के लिए नाना ने उसे तरह-तरह से परेशान करना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम उसने राजा की वार्षिक पेन्शन की रकम को कम कर दिया, साथ ही उसे अपने रिश्तेदारों और मित्रों से भेंट मुलाकात करने का निषेध कर दिया। वे बहुत ही प्रयत्न और सिफारिश के बाद ही राजा से भेंट करने के लिए किले में जा सकते थे। सन् १७८७ ई० तक रघुनाथ राव के परिवार को कोपरगांव नाभक स्थान में रक्खा गया था। परन्तु इसी समय मृत रघुनाथ राव की विधवा पत्नी का स्बास्थ्य गिरने लगा, अतः चिकित्सकों की राय पर समूचे परिवार को कोवरगाँव से हटाकर नासिक के पास स्थित आनन्दबल्ली नामक स्थान में रख दिया गया जहां की जलवायु आनन्दी बाई के अनुकूल पड़ती थी। १७९४ ई० के अप्रैल में लम्बे अर्से से बीमार, आनन्दी बाई की मृत्यु हो गई। राघोवा

१७९५ ई०]

के दो लड़के थे, बाजीराव और चिमणा जी अप्पा तथा राघोवा का दत्तक पुत्र अमृतराव , ये तीनों ही, अपनी माँ की मृत्यु के पश्चात भी आनन्दवल्ली में ही पड़े रहे । जब निजाम अली से मराठों की खुली शत्रुता का प्रारम्भ हुआ और युद्ध के लक्षण दिखाई पड़ने लगे तो नाना फड़नबीस ने इन तीनों भाइयों को आनन्दबल्ली से हटा कर शिवनेरी के पहाड़ी किले में सुरक्षित रूप से उनके निवास की व्यवस्था करा दी । निजाम अली के साथ युद्ध समाप्त हो जाने के पश्चात् भीं नाना फड़नबीस ने उन्हें शिवनेरी के किले से बाहर आने की अनुमति नहीं दी, बल्कि उल्टे उन पर कड़ा पहरा भी लगा दिया तथा अपने दो विश्वासपात्र अधिकारियों—राघोपन्त गोखले और बलवन्त राव को इन तीनों पर सतर्क दृष्टि रखने के लिए तैनात कर दिया ।

इन तीनों बालकों के ऊपर की गई इन ज्यादतियों ने उनके प्रति लोगों की सहानुभूति की भावना को आकर्षित किया और नाना फड़नबीस की निन्दा की जाने लगी । जो लोग राघोबा के पुराने विरोघी थे, उन्हें भी नाना का यह कार्य अन्यायपूर्ण तथा निन्दनीय प्रतीत हुआ । महाराष्ट्र की जनता ने भी इन अभागे बालकों के ऊपर किए जाने वाले अत्याचारों के लिए नाना फड़नबीस की आलोचना शुरू कर दी तथा उसके व्यवहार को अत्यन्त क्रूरतापूर्ण, निन्दनीय तथा अन्यायपूर्ण समझा, साथ ही रघुनाथ राव के तीनों लड़कों के प्रति उनकी सहानुभूति बढ़ने लगी । परन्तु अपने प्रति जनता का वह रुख देख कर, नाना फड़नबीस ने इन बन्दियों के साथ कोई रियायत नहीं की, उल्टे वह उनके ऊपर और जिद खा गया । इस समय रघुनग्थ राव का सगा बड़ा लड़का बाजीराब दिन ब दिन मराठा जनता में लोकप्रियता प्राप्त करता जा रहा था । यद्यपि वह इस समय बहुत ही दीन हीन अवस्था में अपने भाइयों के साथ नाना की सख्त कैद में पड़ा हुआ था, फिर भी उसके प्रति नाना के हृदय में डाह और जलन घटी नहीं, बल्कि बढ़ती ही गई । बाजीराव का शरीर सुगठित और सुडौल था, उसके चेहरे पर राजसी तेज चमकता था और उसका व्यक्तित्व कुछ इतना आकर्षक, मोहक और प्रभावशाली था कि आवश्यकता पड़ जाने पर कम ही सरदार ऐसे थे जो ललकारे जाने पर उसकी सहायता करने से इनकार कर देते । बाजीराव अपने व्यवहार में बहुत कुशल था और सबके साथ बिनम्र व्यवहार ही करता था । उसने इतनी कम उम्र में कड़े शारीरिक और मानसिक गुण भी अर्जित कर लिया था । उसकी बातचीत का तरीका इतना मोहक और आकर्षक था कि उससे बातचीत करने वाले व्यक्तियों की सद्भावनाएँ उसे सहज ही प्राप्त हो जाती थी । अपने अनेक स्वाभाविक गुणों के कारण ही कैदमें रहते हुए भी बाजीराव की लोकप्रियता मराठों में दिन ब दिन बढ़ती ही जा रही थी ।

यद्यपि नाना फड़नबीस वाजीराव के इन गुणों के कारण उससे बहुत जलता था, क्योंकि वह शंकालु होने के कारण प्रत्येक योग्य व्यक्ति से भय खाने लगा था, परन्तु पेशवा अपने चचेरे भाई के इन गुणों के कारण उससे डाह के बदले बहुत स्नेह करता था तथा उसकी प्रशंसा सुनकर अत्यन्त प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होता था । पेशवा (द्वितीय) प्रायः सोचता था कि यदि नाना फड़नबीस उसे कैद से मुक्त कर देता तो बहुत अच्छा होता । वह बाजीराव को अपना मित्र सहायक बनाने के लिए बहुत उत्सुक था । बाजीराव के प्रति पेशवा का यह स्नेहपूर्ण झुकाव नाना को बहुत खटकता था और वह प्रायः पेशवा को बाजीराव से सतर्क रहने का उपदेश देता रहता था और यह कहकर उसे भड़काया करता था कि बाजीराव चाहे जितना भी गुणी क्यों नहो परन्तु है तो वह कपटी राघोवा और क्रूर आनन्दी बाई की सन्तान ही । अतः इस साँप के बच्चे के मोहक आकर्षण से बचे रहना ही श्रेयकर होगा । नाना पेशवा पर, बाजीराव का साथ छोड़ने के लिए उस पर जितना ही बन्धन लगाता

गया, पेशवा उतना ही अपने चचेरे भाई की ओर झुकता गया। अब नाना फड़नबीस उसके इस बढ़ते हुए परस्पर प्रेम से चिन्तित हो गया, उसने पेशवा के पीछे अपने विश्वस्त जासूसों को लगा दिया जो हर क्षण उस पर नजर रखते थे, उसने बाजीराव पर पहरा और कड़ा कर दिया। जब बाजीराव को यह पूर्ण रूप से विश्वास हो गया कि पेशवा उसी के पक्ष में है और उसका सुभाकांक्षी भी है तो उसने धीरे-धीरे प्रयत्न करके नाना फड़नबीस के एक विश्वास पात्र अधिकारी बलवन्त राव नागीनाथ को फोड़ लिया और उसी के हाथ से पेशवाके पास एक गुप्त सन्देश भेजा। इस पत्र में उसने पेशवा की बहुत प्रशंसा को और उसे हर तरह से सहायता देने का दृढ़ संकल्प कट किया, तत्पपश्चात उसने पेशवा को उकसाने के लिए लिखा कि, "वह स्वयम् नाना फड़नबीस की कृपा से शिवनेरी किले के कारागार में पड़ा हुआ है और पेशवा पूर्ण रूप से नाना के ही नियन्त्रण में है,। इस प्रकार कैदियों के रूप में उन दोनों की परिस्थिति एक ही समान हैं और उन्हें कैद में रखने वाला व्यक्ति भी नाना फड़नबीस ही है।" उसने लिखा कि इस कैद की स्थिति में उनके दिल तो स्वतन्त्र ही हैं और उन्हें एक दूसरे से प्रेम करने से दुनियाँ की कोई शक्ति नहीं रोक सकती और परिस्थितियों से लड़ने के लिए उनके परस्पर प्रेम का बना रहना ही श्रेयस्कर होगा। उसने पेशवा को याद दिलाया कि उनके पूर्वजों ने भारत में बड़े-बड़े काम किसे थे और यश कमाया था, इसलिए वे आज भी अमर है। उसने पेशवा को विश्वास दिलाया कि अब वह समय दूर नहीं हैं जब ये दोनों चचेरे भाई भी अपने इन महान पूर्वजों के पदा चिन्हों पर चलते हुए बड़े-बड़े यशपूर्ण कार्य करेगे और अपने नाम को अमर करते हुए हर तरफ से सम्मान प्राप्त करेंगे।" इसी सन्देश से पेशवा और बाजीराव में घनिष्ठ सम्बन्ध बढ़ने लगा, यह पत्र व्यवहार पेशवा के पूना वापस आ जाने के कुछ समय बाद ही प्रारम्भ किया गया था। कुछ समय तक दोनों चचेरों भाइयों के बीच गुप्त पत्रव्यवहार चलता रहा और दोनों दिन ब दिन एक दूसरे के प्रति धनिष्ठ रूप से आकर्षित होने लगे। परन्तु कुछ समय बाद ही नाना फड़नवीस को इस पत्र व्यवहार का पता लग गया; जिससे वह अत्यन्त ही क्रोधित हो उठा और उसके ऊपर उसकी बहुत गम्भीर प्रतिक्रिया हुई। सबसे पहला दोषी उसकी दृष्टि में बलवन्त राब नागोनाथ था जिसे दण्ड देने में उसने एक पल की भी देर नहीं की। उसने तुरन्त उसके हाथ पैर में लोहे के वजनी छल्ले पहना कर दूर के एक पहाड़ी किले में कैद कर दिया। तत्पश्चात पेशवा माधवरात्र की बारी आई। नाना ने इस अनुचित कर्म के लिए पेशवा कों खूब अड़े हाथों लिया, और उसे बहुत डाँटा फटकारा। इसके पश्चात उसने बाजीराव पर अपना क्रोध उतारा। उसने बाजींराव पर अत्यन्त ही कड़ा पहरा लगा दिया और पहरे पर अपने अत्यन्त ही विश्वस्त आदमियों कों तैंनात किया। माधवराव नाना फड़नवीस के प्रभुत्वपूर्ण बन्धनों से पहले ही ऊबा हुआ था; इस बार की डांट फटकार ने अग्नि पर घी का काम दिया; अपने चचेरे भाई के स्नेहपूर्ण पत्रों तथा नाना द्वारा उसके साथ किए गए दुर्व्यवहारों के कारण वह पहले से ही नाना फड़नवीस के ऊपर कुपित हुआ बैठा था, उसका क्रोध अब और भड़क उठा, तथा अपने बन्धनों का अनुभव करके निराशा तथा दुःख कीं भावनाओं से अभिभूत हो गया। वह कई दिनों तक अपने कक्ष से बाहर नहीं निकला और न कभी दरबार में बैठा।

उसका मस्तिष्क उदासी और विराग से उद्वेलित हो उठा था तथा अपना अस्तित्व ही उसे व्यर्थ सा प्रतीत होने लगा था। अन्त में ऐसे जीवन से पूर्णत: ऊब कर २५ अक्टूबर को, निराशा व दुःख के आवेग में वह अपने महल के ऊपरी हिस्से की छत से से जानबूझ कर नीचे कूद पड़ा। उसके हाथ पैर टूट गए। वह एक फौव्वारे की लोहे की नली पर गिरा था जिससे उसे बहुत गम्भीर चोट लगी और उसके जीवन की आशा समाप्त हो गई। अन्त में, दो दिन और जीवित रहने के

पश्चात् उसने बाबा राव फड़के के काँपते हाथों में दम तोड़ दिया। मरने से पहले पेशवा ने फड़के तथा अन्य उपस्थित व्यक्तियों के समक्ष अपनी यह हार्दिक और अन्तिम इच्छा प्रकट की कि बाजी राव को ही उसकी मसनद का उत्तराधिकारी बनाया जाय।

नाना फड़नवीस पेशवा की इस अचानक मृत्यु तथा उसकी आखिरी वसीयत से स्तब्ध रह गया। वह अपने भविष्य के राजनैतिक जीवन और प्रभुत्व के प्रति सशंकित हो गया, पेशवा की मृत्यु का दुःख भी उसे कम नहीं था, परन्तु परिस्थितियों को अपने प्रतिकूल होते देख कर वह सारा दुःख भूल कर पुनः कर्मक्षेत्र में कूद पड़ने का निश्चय किया। अपने महत्वाकांक्षी युवा पेशवा की इस असामायिक मृत्यु से उसे इतना धक्का लगा कि वह कुछ समय तक, इरादा करने पर, किंकर्तव्य विमूढ़ता की स्थिति में पड़ा रहा। परन्तु इसी समय उसे पेशवा की रिक्त मसनद के लिए उत्तराधिकारी चुनने का ध्यान आया और साथ ही उसके दिमाग में बाजी राव बिजली की तरह कौंध गया जो पेशवा की अन्तिम इच्छा के अनुसार पेशवा पद के लिए न्यायपूर्ण उत्तराधिकारी था। अब नाना फड़नवीस इस बात से बहुत चिन्तित हुआ और उसे भय लगा कि यदि बाजी राव मसनद पर किसी तरह बैठ गया तो उसे अपने प्रभुत्व से ही, बल्कि सम्भवतः अपनी स्वतंत्रता तथा अपने जीवन से भी हाथ धोना पड़ेगा। इसी भय से उसने ऐसी योजनाएँ बनाना प्रारम्भ किया कि बाजीराव किसी भी प्रकार उत्तराधिकार न प्राप्त कर सके। सारी परिस्थितियों पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर लेने के पश्चात नाना फड़नवीस ने अपने प्रमुख सहायकों को तुरन्त पूना बुला लिया।

उसकी योजना यह थी कि मृत माधवराव की पत्नी यशोदा बाई, जो कि अभी तक स्वयम् भी बालिग नहीं हुई है, किसी सम्बन्धी या परिवार के लड़के को ही गोद ले ले, जिसके संरक्षक के रूप में नाना फड़नवीस पहले की ही तरह शासन-प्रबन्ध करता रहे। सिन्धिया के एक मंत्री, बालोबा तात्या ने नाना के प्रस्ताव के कुछ अंशों का विरोध करना चाहा परन्तु उसके साथ आए हुए जूबा बख्शी ने उसे ऐसा करने से रोक दिया। जूबा बख्शी ने उससे कहा कि उनके स्वामी दौलत राव सिन्धिया की बुद्धि अभी इतनी परिपक्व नहीं है, कि इन मामलों में वह कोई स्वतंत्र मत दे सके। सिन्धिया ने भी यही उचित समझा कि जैसा अन्य वयोवृद्ध सरदारों का मत है, उसी का अनुसरण वह भी करे, अन्त में उसने भी तुकाजी होलकर का अनुकरण करते हुए नाना के विचार का
[१७७६] समर्थन कर दिया। कुछ समय तक अन्य पहलुओं पर विचार विमर्श तथा वादविवाद करने के पश्चात् सभी सरदारों ने लिखित रूप में अपना जो अन्तिम निर्णय दे दिया वह नाना के प्रस्ताव के अनुकूल ही था। इस महत्वपूर्ण प्रश्न को सुलझा देने के पश्चात् सभी सरदार जनवरी में पूना से अपने क्षेत्रों की ओर रवाना हो गए।

इधर नाना फड़नवीस शीघ्राति शीघ्र गोद लेने के उपलक्ष्य में समारोह सम्पन्न करने के प्रबन्ध में लगा हुआ था; परन्तु इधर शिवनेरी के किले में बन्द बाजीराव भी आँख कान बन्द करके नहीं बैठा था। उसे मराठा सरदारों की बैठक में हुई वार्ता तथा विभिन्न सरदारों के मतों के विषय में राई रत्ती मालूम हो चुका था। वह समझ चुका था कि नाना फड़नवीस और होलकर की राय से ही उसका इतना बड़ा अधिकार छीनने की चेष्टा की जा रही है। उसे ज्यों ही पता लगा कि सिन्धिया की ओर से आये हुए बालोबा तात्या ने नाना के प्रस्ताव का विरोध किया था; त्यों ही उसने तात्या से पत्र व्यवहार करना शुरू कर दिया और षड़यंत्र के क्षेत्र में भी, अपनी असाधारण बुद्धि का प्रयोग करते हुए उसने बालोवा तात्या को मिला लिया। इस कार्य में उसे कुछ ही महीने लगे। यह मिलाप बाजीराव के हित में एक और दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था। यद्यपि जूबा बख्शी ने सिन्धिया की तरफ से

नाना फड़नवीस के, यशोदाबाई द्वारा गोद लिए जाने के प्रस्ताव का समर्थन कर दिया था, परन्तु बाद में उसे बहुत ग्लानि हुई। इसी समय वह अचानक बीमार भी पड़ गया और जब उसे अपनी मृत्यु नजदीक दिखाई पड़ने लगी तो उसने दौलतराव सिन्धिया को नाना फड़नवीस के प्रस्ताव का समर्थन करने की राय दिया। उसने कहा कि जब तक बालाजी विश्वनाथ का एक भी वशंज जीवित है, तब तक पेशवा की मसनद पर किसी दत्तकपुत्र को बैठाना अत्यन्त ही अन्याय पूर्ण होगा; उसने सिन्धिया को राय दी कि जैसे भी हो, वह बाजीराव को उसका हक दिलाने का प्रयत्न करे। इधर सिन्धिया के दीवान बालोबा तात्या को अपनी तरफ मिला लेने के पश्चात् बाजीराव ने स्वयम् सिन्धिया से ही, बालोबा के माध्यम से वार्ता प्रारम्भ कर दी। उसने सिन्धिया को चार लाख रुपए वार्षिक आयका क्षेत्र देने का वादा करते हुए उसने सिन्धिया से अनुरोध किया कि उसे अपना उचित अधिकार प्राप्त करने में सहायता दे। उसने यह भी वादा किया कि इस कार्य में जितने समय तक सिधिन्या की सेना व्यस्त रहेगी, उतने समय तक सेना का समस्त व्यय भार वह स्वयम् वहन करेगा। कुछ जूबा बख्शी के आखिरी परामर्श से, कुछ तात्या के जोर डालने से, तथा कुछ अपनी इच्छा से भी प्रभावित होकर सिन्धिया ने बाजीराव को सहायता देना स्वीकार कर लिया; दोनों के बीच एक सन्धि पत्र तैयार किया गया और उन्होंने इस सम्बन्ध में योजनाएँ बनाना प्रारम्भ कर दिया।

परन्तु अभी उनकी योजनाएँ बन भी नहीं पाई थीं कि इसी बीच नाना फड़नवीस ने उनकी चेष्टाओं को प्रारम्भ में ही समाप्त करने के लिए परशुराम भाऊ को तुरन्त पूना पहुँचने का आदेश भेजा तथा पत्र में ही सारी बातें लिख दिया और आवश्यक कार्रवाई करने का आदेश दिया। परशुराम भाऊ तुरन्त सवारो की टुकड़ी के साथ तीव्रगति से चल पड़ा और ४८ घंटों में ही १२० मील की दूरी तय करके पूना पहुँच गया। उन दोनों में कुछ समय तक विचार बिमर्श होता रहा। अन्त में उन्होंने तय किया कि सिन्धिया की योजना के पूरा होने से पहले ही बाजीराव को मुक्त कर दिया जाय और उसे ही पेशवा घोषित कर दिया जाय ताकि सिन्धिया के साथ युद्ध की नौबत न आवे। इस निर्णय के अनुसार परशुराम भाऊ ने शिवनेरी के किले की ओर प्रस्थान कर दिया और बाजीराव के समक्ष नाना फड़नवीस का प्रस्ताव रक्खा। अमृतराव ने अपने भाई को राय दी कि वह नाना के प्रस्ताव पर सहमति न प्रकट करे, क्योंकि उसे शंका थी कि सिन्धिया द्वारा खिलाफत होने के भय से ही नाना फड़नवीस ऐसा कर रहा है और हो सकता है कि बाद में चाल खेल जाय। बाजीराव अपना भला बुरा खूब समझता था औह वह किसी भी पक्ष के मात्र आश्वासनों पर विश्वास नहीं करता था। वह जानता था कि जो भी उसकी सहायता करने का प्रयत्न करेगा, वह बिना निःस्वार्थ भाव से ऐसा न करेगा। यदि बाजीराव को नाना पर विश्वास होता और उसके द्वारा उसे अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में सहायता की आशा होतीं तो वह नाना का प्रस्ताव मानने में जरा भी हिचकिचाह न प्रकट करता। जो भी हो, उसने इस प्रस्ताव की सत्यता के विषय में परशुराम भाऊ से विवाद किया परन्तु भाऊ ने उसे हर बिषय में पूर्ण आश्वासन दिया। अन्त में परशुराम भाऊ के प्रयत्नों से उसने नाना के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, परन्तु इससे पहले उसने भाऊ से कहा कि वह गोमाता की पूछ पर हाथ रखकर तथा पवित्र गोदावरी नदी की शपथ लेकर कहे कि बाद में उसके साथ चालबाजी नहीं की जायगी। भाऊ ने विधिपूर्वक शपथ ग्रहण करके बाजीराव को आश्वस्त किया। बाजीराव अब शिवनेरी के किले से बाहर निकला और अपने भाई चिमणा यी के साथ अपनी भावी राजधानी, पूना की ओर प्रस्थान किया।

जैसे ही बाजीराव अपने भाई त्रिमणा जी अप्पा के साथ पूना पहुँचा, नाना फड़नवीस ने उससे

बात करने के लिए उसे बुला भेजा। इस वार्तालाप के दौरान में दोनों ने ही यह वादा किया कि इतने दिनों तक उनमें जो विरोध होता आया था, उसे वे सदैव के लिए भूल जायेंगे। जब नाना फड़नवीस ने उसको यह पक्का वादा कर दिया कि पेंशवा की मसनद का उत्तराधिकारी वही होगा, तो इस पर पेशवा ने भी वादा किया कि मराठा सरकार के मंत्रिमण्डल के सर्वोच्च अधिकारी के रूप में वह नाना फड़नवीस की मान्यता प्रदान करेगा और सदा उसी के बताए मार्ग पर चलने का प्रयत्न करेगा। इसी शर्त पर नाना फडनवीस और बाजीराव ने एक दूसरे की बात रखने का वादा किया और दोनों पक्षों ने इस सुलह को लिखित रूप में * अपने-अपने पास रख लिया।

बालोबा तात्या को जब यह खबर मिली कि नाना फड़नवीस के कहने में आकर बाजीराव ने उससे या सिन्धिया से राय तक न ली और चुपचाप पूना चला गया, तो उसे बहुत ही विस्मय तथा क्षोभ हुआ। परन्तु उसने तो दृढ़ संकल्प कर लिया था कि वह किसी भी कीमत पर नाना फड़नवीस की योजनाओं को असफल बनाने का प्रयत्न करेगा। उस समय दौलतराव सिन्धिया गोदावरी नदी के तट की ओर चला गया था। बालोबा तात्या ने वहाँ पहुँचकर सिन्धिया को उकसाया कि वह अपनी पूरी शक्ति के साथ पूना पर चढ़ दौड़े। सिन्धिया ने उसकी बात मान ली और पूना की ओर बढ़ने की तैयारी करने लगा। यह खबर सुनकर नाना फड़नवीस भय एवम् आश्चर्य से स्तम्भित रह गया। परशुराम भाऊ ने उसे परिस्थितियों का उठकर मुकाबिला करने के लिए प्रोत्साहित किया और राय दी कि सेना को एकत्रित करके सिन्धिया से निपट लिया जाय। परन्तु नाना फड़नवीस में व्यक्तिगत साहस का बहुत अभाव था और वह युद्ध से बहुत कतराता था। उसे इस बात से चिन्ता भी थी कि सिन्धिया की सेना उसकी सेना के मुकाबिले में बहुत तगड़ी है, अतः युद्ध में असफलता तथा पराजय का मुँह देखना पड़ेगा। उसे बाजीराव पर जरा भी विश्वास नहीं था और उसे भय था कि कहीं वह भी युद्ध में सिन्धिया का पक्ष न ग्रहण कर ले। वह इस विचार से भयभीत था कि यदि बालोबा तात्या ने इस युद्ध में कहीं उसे बन्दी बना लिया तो उसके जान की खैर नहीं है; ऐसी स्थिति में बालोबा अवश्य ही उसका अस्तित्व समाप्त कर देगा। अन्त में उसने स्वयम् ही पूना छोड़ देने का निर्णय किया। उसने बाजीराव से कहा कि बालोबा और सिन्धिया की शत्रुता केवल उसी (नाना) से ही है और उसी के विरोध में वह ससैन्य पूना की ओर बढ़ा आ रहा है, अतः यह उचित नहीं होगा कि वह केवल अपने कारण राजधानी में अपने देसवासियो का रक्तपात कराए। उसने बाजीराव से

---

* बाजीराव ने नाना फड़नवीस को जो वादा लिखकर दिया था, उसका अनुवाद इस प्रकार है "ईश्वर को सर्वव्यापी जानकर तथा अपने हृदय के अन्तस्तल के आदेश से मैं सारी पुरानी शत्रुता को एकदम भूल गया हूं; आप भी आगे से विश्वास तथा प्रेम के सिद्धान्त पदप्रदान कार्यों को अधारित कीजिए। मैं कभी भी वचन तथा कर्म से, या अपने किसी कार्य से आपको अनहित न करूँगा और न किसी दूसरे को ऐसा करने दूँगा। इस बात पर मैं दृढ़ हूं और इस सम्बन्ध में मैं किसी भी व्यक्ति के विरोधपूर्ण परामर्श को महत्व नहीं दूँगा। मैं किसी भी तरह से आपकी अप्रतिष्ठा को सहन न करूँगा और यदि कोई व्यक्ति मेरे हृदय में आपके विरुद्ध कोई बात बैठाना चाहेगा तो मैं तुरन्त उस व्यक्ति को आपके हवाले कर दूँगा। मैं बिना आपकी राय के किसी भी बन्दी को मुक्त नहीं करूँगा, सभी राजनैतिक विवादों का निर्णय हम दोनों की सहमति से ही किया जायगा। आज के दिन से आप द्वारा किए गए सभी कार्य मेरा प्रतिनिधित्व करेंगे; मेरे हृदय में अब आपके प्रति कोई भी शंका या विरोध भाव नहीं है।"

कहा कि अब इस युद्ध से देश को बचाने का एक ही तरीका है कि वह (अर्थात् नाना) प्रशासन कार्य से अपने को अलग कर ले तथा राजधानी छोड़कर कहीं अन्यत्र चला जाय। अन्त में इसी योजना के अनुसार परशुराम भाऊ तथा बाजीराव राव के ऊपर पूना का सारा कारबार सौंपकर उसने राजधानी से प्रस्थान कर दिया। वह पूना से पहले पुरन्दर गया और फिर वहाँ से सतारा चला गया। सिन्धिया अपने दलबल के साथ पूना के नजदीक आ पहुँचा और अपना कैम्प डाल दिया। तत्पश्चात उसने बाजी राव से मुलाकात की और काफी मित्रतापूर्ण वातावरण में उन दोनों की बात चीत हुई, परन्तु बालोबा तात्या का क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ था। यद्यपि बाजीराव से वार्तालाप करते समय उसने बड़ी शिष्टता तथा घनिष्ठता का प्रदर्शन किया परन्तु वह अभी तक बाजीराव के पुराने व्यवहार को नहीं भूल सका था। बालोबा तात्या गुप्त रूप से बाजीराव के विरोध में योजनाएँ बनाने लगा और अन्त में उसने निर्णय कर लिया कि वह जैसे भी हो, बाजीराव को पेशवा नही बनने देगा और अपनी ही मर्जी से किन्हीं अन्य व्यक्तियों को पेशवा तथा दीवान के पद पर नियुक्त करेगा, जो उसकी बात का आदर करें। अतः अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपने योजना की एक रूपरेखा तैयार कर ली जिसके अनुसार उसने भैरो पन्त मंडली के माध्यम से परशुराम भाऊ को अपना राजदार बनाया। उसने भाऊ के समक्ष वह प्रस्ताव रक्खा कि मृत माधवराव पेशवा की विधवा पत्नी यशोदाबाई चिमणा जी अप्पा को दत्तक पुत्र के रूप में ग्रहण कर लें तथा बाजीराव को बन्दी बना लिया जाय। उसने परशुराम भाऊ को यह प्रलोभन भी दिया कि चिमणाजी अप्पा के संरक्षण के रूप में वह खुद शासन की बागडोर सम्भाले और सारा राज्य-प्रबन्ध देखे। यद्यपि नानाफड़नवीस के प्रति अब परशुराम भाऊ के हृदय में उसके कायरतापूर्ण व्यवहार के कारण घृणा जागृत होने लगी थी, फिर भी वह वह नाना की कूटनीतिक बुद्धि का प्रशंसक था, अतः उसने इस सम्बन्ध में नाना की राय ले लेना आवश्यक समझा। नाना फड़नवीस ने उसे राय दी कि वह बालोबा तात्या के प्रस्तावों को स्वीकार कर ले परन्तु इसका ध्यान रक्खे कि बाजीराव उसी की निगरानी में कैद रहे। यद्यपि नाना की राय का दूसरा अंश अत्यन्त ही महत्वपूर्ण था, परन्तु परशुराम भाऊ ने न तो इसका महत्व समझा और न इस बात पर कोई ध्यान ही दिया। अपनी योजना को पूर्णतः सफल बनाने के लिए अब बालोबा तात्या ने नाना फड़नवीस को भी अपनी तरफ मिला लेना उचित समझा। अतः उसने ऐसा प्रदर्शित किया, मानो वह नाना के परामर्शों का बहुत सम्मान करता हैं। उसे भय था कि कहीं नाना फड़नवीस, अनुभवहीन दौलतराव सिन्धिया के विरुद्ध उन सरदारों का संघ न बना ले, जो सिन्धिया परिवार के सदैव के शत्रु थे। अतः बालोबा ने नाना को सन्तुष्ट रखना आवश्यक समझा। जब परशु राम भाऊ ने बालोवा के प्रस्तावों पर नाना फड़नवीस का समर्थन प्राप्त कर लिया तो उसने तात्या के अनुरोध पर नाना फड़नवीस तथा उसके बीच मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करने लगा। नाना फड़नवीस भी इस प्रकार मराठा साम्राज्य की राजनीति से प्रत्यक्ष रूप से अलग हो जाने के कारण बेचैन हो उठा था, अतः उसने भी बालोबा के सुलह के प्रयत्नों से कोई विरोध नहीं प्रकट किया।

इस बीच नाना फड़नवीस सतारा में क्या कर रहा था, इस पर भी ध्यान देना आवश्यक प्रतीत होता है। जिस समय से नाना ने पूना छोड़ा उसी समय से उसके मस्तिष्क में एक दूसरे ही प्रकार की योजना चक्कर काट रही थी। अपनी इसी योजना की अन्य कड़ियों को जोड़ने के लिए वह पुरन्दर से सतारा आया था। उसने पेशवा के नियंत्रण की कमजोरी तथा सरदारों की मनमानी से मराठा साम्राज्य को बचाने के लिए यह योजना बनाई थी, जिसके अनुसार वह चाहता था कि सतारा राजा के उत्साह को जगाया जाय; और एक बार फिर राज्य व्यवस्था उसी तरीके से चलाई

जाय, जिस तरह से छत्रपति शिवाजी ने अपने व्यवस्थापित राज्य का कुशल प्रबन्ध किया था। नाना का इरादा था कि यदि सतारा का राजा साहस दिखाए, तो वह उसे मराठा राज्य के राजा के रूप में प्रतिष्ठित करवाने का प्रयत्न करेगा। इस समय पूना में उत्तराधिकार के विषय में जो विवाद और षड़यंत्र चल रहे थे, भविष्य में आशा थी कि उनमें वृद्धि ही होती जायगी और नाना का विचार था कि एक शक्तिशाली राज्य, यदि मराठा सरकार पर अपना प्रभुत्व रक्खें तो यह विवाद खड़ा होने की नौबत ही नहीं आएगी। परन्तु इस योजना की सिद्धि के लिए किए गये दो ही चार दिनों के प्रयत्नों के पश्चात् नाना को प्रतीत हुआ कि यह योजना पूरी न हो सकेगी। अब तक सतारा के राजा शाहू के साथ पूना दरबार तथा नाना फड़नवीस ने जैसा व्यवहार किया था उससे राजा शाहू में नाना पर विश्वास करने का साहस ही नहीं रह गया था। यदि नाना फड़नवीस किसी प्रकार राजा को अपनी योजना के अनुसार चलने के लिए तैयार कर पाता, तो उसे सहायता का अभाव न पड़ता। अब भी शिवा जी महाराज के वंशज के नाम पर महाराष्ट्र के हर कोने से पुराने युद्ध-प्रिय परिवार राजा शाहू के झण्डे के नीचे क्षण भर में एकत्रित हो सकते थे और राजा को एक बार फिर उसी पुराने आसन पर प्रतिष्ठित कर सकते थे, जब कि इस समय राजा मवालियों और खोरों के साथ किसी प्रकार अपने दिन बिता रहे थे। यद्यपि राजा शाहू में यह योग्यता नहीं थी कि शासन प्रबन्ध पर अधिक ध्यान रख सके, परन्तु उसमें व्यक्तिगत साहस का कतई अभाव नहीं था और उसके अनेक सम्बन्धी ऐसे थे, जो उसे राज्य प्राप्त कराने तथा उसके शासन प्रबन्ध को सुचारु रूप से चलाने में समर्थ और योग्य थे। परन्तु नाना फड़नवीस एक ऐसे व्यक्ति को राजा के पद पर प्रतिस्थापित करना चाहता था जिसमें व्यक्तिगत प्रभाव हो ताकि वह साम्राज्य के असंख्य सरदारों के ऊपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर सके, तथा उन्हें कठोर नियंत्रण में रखने की सामर्थ्य रखता हो। वह किसी ऐसे व्यक्ति को सिंहासन पर नहीं बैठाना चाहता था जो स्वयम् सरदारों के हाथ का खिलौना बन जाय। राजा शाहू से दो चार बार उसने गम्भीर वार्ताएँ कीं, परन्तु उसे राजा शाहू के सहयोग से, अपना प्रश्न हल होता नहीं प्रतीत हुआ। अन्त में शाहू की तरफ से निराश हो कर उसने सतारा छोड़ दिया, और पास ही के वाई नामक नगर में चला गया। उसकी इस योजना से राजा शाहू को केवल यही लाभ हुआ कि अब उसे अपने कार्यों और व्यवहारों में कुछ और स्वतंत्रता प्राप्त हो गई तथा पूना दरबार की ओर से भी उसके साथ उदार एवम् सम्मानजनक व्यवहार किया जाने लगा।

जब नाना फड़नवीस ने यशोदा बाई द्वारा चिमणा जी अप्पा को गोद लिए जाने से सम्बन्धित बालोबा तात्या के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, तो नए पेशवा के लिए सतारा के राजा से खिलअत लेना आवश्यक हो गया अतः नाना फड़नवीस फिर सतारा गया। जब उसने राजा शाहू से खिलअत प्राप्त कर लिया तो उसने राजा से वादा किया कि भविष्य में कभी उचित और अनुकूल अवसर प्राप्त होने पर बहुत पहले राम राजा और बालाजी बाजी राव के बीच हुई सन्धि की शर्तों को पूरा करने का प्रयत्न करेगा और उन सभी क्षेत्रों को राजा के अधिकार में दे देगा जिनके लिए सांगोला की उक्त सन्धि में वादा किया गया था।

अब नाना फड़नवीस ने खिलअत के साथ पूना जाने की तैयारी की और प्रस्थान करने ही वाला था कि अचानक उसे यह खबर मिली कि परशुराम भाऊ ने उसके परामर्श को न मान कर बाजी राव को सिन्धिया के दीवान बालोबा तात्या के हवाले कर दिया है; वह इस खबर को पाकर धोखे की आशंका से शंकित हो उठा। उसका शंका करना अतार्किक और कारणहीन नहीं था। उसने अनुमान लगाया कि उसे अपने जाल में फँसाने के लिए यह चाल बालोबा तात्या ने खेला है और

परशुराम भी सम्भवतः उसका साथ दे रहा है। इसी आशंका से अभिभूत होकर नाना फड़नवीस ने नए पेशवा के लिए खिलअत तो भेज दिया, परन्तु उसने स्वयम् पूना जाना उचित न समझा और अपनी यात्रा को स्थगित कर दिया। खिलअत भेजने के बाद वह सतारा के राजा से विदा लेकर पुनः वाई चला गया।

बाजी राव अभी तक यही समझे बैठा था कि अब उसका कार्य पूरा हो गया है और सिन्धिया परशुराम भाऊ तथा नाना फड़नवीस आदि उसके सहायक ही हैं। उसे अब तक इसका कोई ज्ञान नहीं था कि उसके विरुद्ध उसके ये कथित सहायक कैसी दुरभिसंधि कर रहे हैं। जिस तरीके से उसे इस अभिसन्धि से परिचित कराया गया, उससे पूना दरबार की कष्टपूर्ण योजनाओं और चालबाजियों पर पूरा प्रकाश पड़ता है। केवल इसी काल में नहीं, बल्कि इसके पहले और इसके बाद भविष्य में भी, पूना दरबार का इतिहास इस प्रकार की चालबाजियों से भरा हुआ है। सर्वप्रथम अपनी सहायता और व्यय के बदले में सिन्धिया ने बाजी राव से; उचित से पर्याप्त अधिक धन की माँग की; इस पर बाजी राव ने इतनी बड़ी रकम देने में अपनी असमर्थता प्रकट की। उसके इनकार करने पर सिन्धिया ने कुछ और कड़ा रुख अपनाया और अन्त में उसने दिखावटी तौर पर प्रकट किवा कि बाजी राव के इनकार करने से उसने स्वयम् को बहुत अपमानित महसूस किया है और उसने रुष्ट होकर बाजीराव से हिन्दुस्तान वापस जाने की अनुमति माँगी। सिन्धिया को स्वयम् अपने व्यवहार से रुष्ट समझ कर बाजी राव व्यक्तिगत रूप से बात करके उसे सन्तुष्ट करने के लिए उसके कैम्प में गया; वहाँ वह बड़ी देर तक सिन्धिया से विचार विमर्श करता रहा और जब चलने के लिए तैयार हुआ तो रात हो चुकी थी। इसी समय अचानक खबर मिली कि परशुराम भाऊ ने उसके छोटे भाई चिमणा जी अप्पा का बलात् अपहरण कर लिया है; सिन्धिया तथा अन्य लोगों में से सभी ने इस विषय में अज्ञानता तथा आश्चर्य प्रकट किया और दिखावटी तौर पर तरह तरह का अनुमान लगाने लगे कि चिमणाजी अप्पा को कहाँ और किस लिए ले जाया गया है, परन्तु प्रायः सभी ने इस अनुमान से सहमति प्रकट किया कि सम्भवतः परशुराम भाऊ उसे सतारा ले गया है। इस आकस्मिक दुर्घटना पर बाजी राव स्तम्भित रह गया और अत्यन्त चिन्तातुर हो कर उसने सिन्धिया से परशुराम भाऊ का पीछा करके अपने भाई चिमणा जी अप्पा को मुक्त कराने का आग्रह किया। परन्तु सिन्धिया तरह तरह के बहाने बनाना शुरू किया, पहले तो उसने कहा कि जब यही ज्ञात नहीं है कि वह किस तरफ गया है, तो किस दिशा में उसका पीछा किया जाय, फिर उसने कहा कि परशुराम भाऊ की सेना बहुत तगड़ी है और उससे लोहा लेना आसान नहीं है। अन्त में उसने यह कह कर अपनी अनिच्छा प्रकट की कि रात बहुत अँधेरी है और ऐसे समय में भाऊ का पीछा करना अत्यन्त कठिन है। बाजी राव चिमणा जी अप्पा के आकस्मिक अपहरण से अत्यन्त भयभीत हो गया था, अतः उसने सिन्धिया से अनुरोध किया कि वह उसे अपने कैम्प में ही रात बिताने की व्यवस्था कर दे; सिन्धिया ने उसके इस अनुरोध को सहर्ष स्वीकार कर लिया और वाजी राव वह रात सिन्धिया के कैम्प ही में गुजारी। परन्तु सवेरे जब वह उठा तो उसे ज्ञात हो गया कि अब वह अपने शत्रुओं के जाल में स्वयम् ही फँस गया है और अब यहां से निकल पाना अत्यन्त ही कठिन है। जब उसने जाने की अनुमति माँगी तो सिन्धिया ने उसे परामर्श दिया कि वह अब कुछ दिनों तक वहीं पड़ा रहे, क्योंकि घटनाएँ जिस प्रकार से मोड़ ले रही हैं, उन पर विचार करने से स्पष्ट है कि अब सिन्धिया के कैम्प के बाहर कहीं भी, उसका सुरक्षित बचा रहना बहुत मुश्किल है। सिन्धिया ने उससे दिखावटी तौर पर कहा कि वह उसकी सुरक्षा के लिए अत्यन्त चिन्तित है और इसीलिए वह उसे अपने ही कैम्प में रखना चाहता है। बाजी राव सिन्धिया की सारी चाल समझ गया, परन्तु वह कर ही क्या सकता था।

इस बीच परशुराम भाऊ और बाबाराव फड़के चिमणा जी अप्पा को लेकर पूना पहुँच गए, और चिमणा जी के सामने उसके अपहरण के उद्देश्य का रहस्योद्घाटन किया। चिमणा जी अप्पा ने उनके प्रस्ताव को सुनकर, उसके अनुसार कार्य करने से साफ इनकार कर दिया। उसने उत्तेजित होकर कहा कि वह किसी भी तरह अपने बड़े भाई के उचित अधिकार को छीनने की योजना में सहयोग नहीं देगा। उसने कहा कि जबर्दस्ती उससे चाहे जो करा लिया जाय, परन्तु स्वेच्छा से वह बाजीराव के विरुद्ध बनाई गई किसी योजना का समर्थन नहीं करेगा। अन्त में जबर्दस्ती हो यशोदा बाई ने उसे दत्तक पुत्र के रूप में ग्रहण किया और उसका नया नाम रक्खा गया। २६ मई को औपचारिक ढंग से चिमणाजी माधवराव के नाम से उसे पेशवा बनाने का समारोह सम्पन्न हुआ।

सिन्धिया ने अपनी कमजोर सेना सम्बन्धी जो बहाना बाजीराव से किया था, वह धीरे-धीरे सत्य सिद्ध होने लगा। परशुराम भाऊ ने वादा किया था कि पेशवा का दीवान बन जाने पर वह सिन्धिया को कुछ धन देगा और इसी उद्देश्य से, उसने निजाम अली के वजीर मुशीरुलमुल्क को मुक्त कर देने का इरादा किया। उसने मुशीरुलमुल्क के सामने यह शर्त रक्खी कि यदि कुर्दला की सन्धि के अनुसार निजाम अली के ऊपर मराठों का जो तीन करोड़ रुपया बकाया निकला है, यदि उसमें से कुछ धन उसे दे दिया जाय तो वह उसे मुक्त कर देगा। मुशीरुलमुल्क ने कहा कि वह निश्चित वादा तो नहीं कर सकता, पर वह ऐसा करने का भरसक प्रयत्न करेगा; अन्त में इसी वादे पर परशुराम भाऊ ने उसे मुक्त कर दिया, परन्तु उसे हैदराबाद नहीं जाने दिया गया। पेशवा की अनुमति से मुशीरुलमुल्क ने पूना के इलाके में ही कैम्प डाल कर रहना प्रारम्भ कर दिया। कुछ ही समय में धीरे-धीरे उसके पास पर्याप्त सैनिक एकत्रित हो गए।

चिमणा जी के पेशवा होने की घोषणा के दूसरे दिन परशुराम भाऊ ने नाना फड़नवीस के पास सन्देश भेजा कि वह पूना चला आए तथा बालोबा तात्या से मिल कर तथा बातचीत करके उससे सुलह कर लेने का प्रयत्न करे तथा इसके पश्चात वह अपनी मर्जी से नए पेशवा के नाम से सरकार का संगठन करके प्रशासन की सारी व्यवस्था सँभाले। उसने नाना को लिखा कि सेना की व्ययस्था तथा सभी तरह की सैनिक व्यवस्था को वह स्वयम् अपने हाथ में रक्खेगा, परन्तु सारे प्रशासनिक अधिकारों को नाना के हाथ में ही दिया जायगा। परन्तु नाना फड़नवीस परशुराम भाऊ के ऊपर रंचमात्र भी विश्वास नहीं करता था, अतः उसने इस प्रकार पूना जाना उचित नहीं समझा। वास्तव में वह भाऊ के इस प्रस्ताव को कपटपूर्ण समझा और उसका ऐसा सोचना अनुचित नहीं था। अतः उसने परशुराम भाऊ के पत्र का उत्तर देते हुए लिखा कि वह अपने लड़के हरी पन्त को उसी के पास वाई भेज दे, जिससे कि वह हरी पन्त से इस सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सके तथा भाऊ की योजनाओं और उसके इरादों के सम्बन्ध में सारी बातें स्पष्ट रूप से हो सकें; ऐसा किए जाने पर ही वह सोच समझ कर अपना निर्णय दे सकेगा परशुराम भाऊ ने अपने लड़के हरी पन्त को भेजा तो जरूर, परन्तु एक दूत की तरह नहीं। हरी पन्त ने अपने साथ चार-पाँच हजार चुने सवारों को लिया और वाई की तरफ रवाना हो गया। जब उसने नीरा नदी को पार कर लिया तो नाना फड़नवीस को यह खबर मिल गई कि हरी पन्त इतनी तैयारी के साथ आ रहा है नाना का सशंकित हो उठना स्वाभाविक ही था। इसी ससय बाबाराव फड़के द्वारा गुप्त रूप से भेजा हुआ पत्र भी उसे प्राप्त हो गया जिसमें बाबाराव ने भाऊ के इरादों को शंकाजनक बताते हुए उसे राय दी थी कि बिना एक पल की भी देर किए वह अपनी सुरक्षा का कोई प्रबन्ध कर ले अन्यथा भाऊ के जाल से बच निकलना

असम्भव हो जायगा। अब नाना का सन्देह बिलकुल पक्का हो गया और वह अपनी सुरक्षा के प्रबन्ध में लग गया।

परिस्थितियाँ जिस प्रकार से नाना फड़नवीस के प्रतिकूल होती जा रही थीं, उससे यह अनुमान लगाना मुश्किल नहीं था कि अब नाना के बुरे दिन आ गए हैं। स्वयम् वह भी अब अपनी स्थिति के दिन ब दिन कमज़ोर होते जाने का अनुभव कर रहा था। उसके सभी कार्य अधूरे ही टूटते जा रहे थे और वह अन्धेरे में इस कदर भटक चुका था कि उसे कही भी न तो रोशनी दिखाई देती थी और न कोई सुरक्षित मार्ग ही। कठिन से कठिन अवसरों पर उसकी तीव्र निर्णयात्मक, तात्कालिक बुद्धि, उसके द्वारा बनाई गई असंख्य योजनाओं की सफलता, महाराष्ट्र के हर कोने में फैला हुआ उसका प्रभाव, तथा संकट पड़ने तर, छिटपुर विरोधी शक्तियों को अपने पक्ष में संगठित करके संकट का सामना करना तथा इसी प्रकार के अन्य गुणों से पूरा भारत आश्चर्य चकित हो उठा था। उसके समकालीन यूरोपियनों ने उसके इन्हीं गुणों पर मुग्ध होकर उसे 'मराठा मैकियावेल' की पदवी दिया था क्योंकि मैकियावेल की तरह ही नाना ने शक्ति तथा प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए जितनी भी योजनाएँ बनाई, अधिकांश में सफलता ने उसके कदम चूमे; परन्तु अब उसके बुरे नक्षत्र आ गए थे और उसे हर तरफ निराशा ही निराशा दिखाई पड़ रही थी, परन्तु फिर भी उसने साहस नहीं छोड़ा।

इधर शक्ति के लिए पूना में जो उलटफेर हो रहे थे, उनसे नाना फड़नवीस और बाजी राव, दोनों एक किनारे आ पड़े, अतः धीरे धीरे उन दोनों में सुलहवार्ता प्रारम्भ हो गई। उनके बीच उन गुप्त तथा महत्वपूर्ण वार्ताओं का माध्यम बना एक ऐसा व्यक्ति जिसने कुछ दिन बाद चल कर काफी प्रसिद्धि प्राप्त की। इस व्यक्ति का कुछ परिचय दे देना आवश्यक प्रतीत होता है। नाना पुरन्दरे नामक मराठा सरदार की सेवा में एक सिलीदार था जो कि वंगापुर (पुरन्दर के पास) के पटेल की किसी रखेल स्त्री से पैदा हुआ था। जिस समय बाजी राव अपने दोनों भाइयों के साथ शिवनेरी के किले में कैद था, उस समय यह सिलीदार वहीं तैनात था। इस सिलीदार का नाम था—बालाजी कुंजर। बाजी राव के कैद के दौरान में ही बाला जी की बाजी राव से काफी पटने लगी थी। जब बाजी राव कैद से मुक्त हो गया, तो नाना पुरन्दरे की अनुमति ले कर उसने बाजी राव की सेना में ही नौकरी कर लिया। बाजी राव को इस प्रकार सिन्धिया के कब्जे में देख कर वह बहुत चिन्तित हुआ। चूंकि उसे इतना अवसर न मिल सका कि वह अपने स्वामी से अनुमति ले कर अपना कर्तव्य निर्धारित कर सकता इसलिए उसने अपनी ही विवेक बुद्धि से, नाना फड़नवीस से इस सम्बन्ध में बात करने के लिए प्रस्थान कर दिया। नाना से उसकी मुलाकात महार में हुई। उसने बाजी राव के प्रतिनिधि की हैसियत से नाना फड़नवीस से सन्धि वार्ता शुरू की। बाजी राव की ओर से उसने नाना को तरह तरह के आश्वासन दिए और उससे अनुरोध किया कि ऐसे विपत्तिपूर्ण अवसर में जब तक वे दोनों एक गुट नहीं बनाएँगे, तब तक न तो बाजी राव को मसनद प्राप्त कर सकने में सफलता मिल सकेगी और न नाना फड़नवीस ही इस विपत्तिपूर्ण स्थिति से छुटकारा पा सकेगा। नाना फड़नवीस कई योजनाओं का संचालन एक साथ कर रहा था, क्योंकि अबकी बार उसने दृढ़ संकल्प कर लिया था कि वह अपने विरोधियों को काबू में करके छोड़ेगा। उसकी योजनाओं में सहायता पहुँचाने वालों की सूची में बाजी राव का माम और जुड़ गया। पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त करने के लिए नाना फड़नवीस बहुत सतर्कता से कार्य कर रहा था और फूंक फूक कर कदम रख रहा था। इस समय तक उसके समस्त साधन पूर्ण शक्ति से उसका कार्य पूर्ण करने के प्रयास में लगे हुए थे। बाबा राव फड़के, जो इस समय पूना में पेशवा की निजी सेना के सेनाध्यक्ष के पद पर नियुक्त था,

उसने वादा किया था कि उसकी यह सेना ही अवसर पड़ने पर सबसे पहले उसकी सहायता में आगे बढ़ेगी। नाना फड़नवीस का दूसरा सहायक था तुकाजी होलकर; वह नाना के संकेत मात्र पर अपनी पूरी शक्ति के साथ पूना पर टूट पड़ने के लिए ससैन्य तैयार बैठा था। इसी बीच नाना ने अपने प्रमुख प्रतिद्वन्दी बालोबा तात्या के एक शत्रु को भी ढूंढ़ निकाला था, जिसका नाम था रायजी पटेल। इसी व्यक्ति के माध्यम से नाना फड़मवीस ने दौलत राव सिन्धिया के साथ सन्धि वार्ता शुरू कर दी। उसे यह खबर थी कि इस समय सिन्धिया और बालोबा तात्या के बीच बहुत सम्बन्ध नहीं हैं, अतः सिन्धिया शायद उसकी मदद के लिए तैयार हो जाय। उसने सिन्धिया से वादा किया कि सफल हो जाने पर वह उसे परशुराम भाऊ की जागीर, अहमदनगर का किला तथा १० लाख रुपये वार्षिक आय वाला क्षेत्र देने का वादा किया और शर्त यह रक्खी कि वह बालोबा तात्या को कैद में डाल दे, बाजी राव को पेशवा बनाने का प्रयत्न करे और बाजी राव के पेशवा हो जाने के पश्चात् वह अपनी सेना के साथ हिन्दुस्तान वापस लौट जाय। इस प्रकार अब तक जितनी योजनाएँ नाना फड़नवीस ने बनाई थी तथा वे जिस तरह से कार्य कर रही थीं, उन सबके विषय में नाना ने इतनी सब बातें बाला जी कुंजर को बताईं। उसने कहा कि वह तो स्वयम् ही बाजी राव को पेशवा बनाने के लिए इतनी चालें खेल रहा है। बाजी राव के लिए नाना का मित्रतापूर्ण सन्देश तथा उसकी योजनाओं का ज्ञान प्राप्त कर बाला जी कुंजर पूना लौट गया।

इस समय के राजनैतिक उलटफेर के फलस्वरूप बहुत से व्यक्तियों का नाम ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण एवम् उल्लेखनीय समझा जाने लगा, यद्यपि ऐसे लोगों में बाला जी कुंजर ही एक ऐसा व्यक्ति था, जिसका नाम इसके पहले इने गिने व्यक्ति ही जानते थे। ऐसे अन्य लोगों में एक व्यक्ति का नाम बहुत अधिक प्रकाश में आया जिसको नाना फड़नवीस ने राय जी पटेल के साथ वार्ता करने के लिए नियुक्त किया था, जिसका उद्देश्य था सिन्धिया को अपने पक्ष में मिलाना। इस व्यक्ति का नाम था सुकाराम घाटगे; वह कागुल परिवार का एक सदस्य था और जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, उसकी पारिवारिक पदवी थी शीराजी राव।

जब नाना फड़नवीस पूना छोड़ कर चला गया तो सुकाराम घाटगे ने दौलत राव सिन्धिया की सेना में नियुक्ति प्राप्त की। यहाँ भी उसे सौ सवारों का नायक बना दिया गया। वह बहुत ही चुस्त, सक्रिय एवम् साहसी व्यक्ति था तथा चालबाजी और धूर्तता की कला में भी पारंगत था। बात-व्यवहार में भी वह अत्यन्त कुशल था और अपने इसी गुण के बल पर वह रायजी पटेल का विश्वास-पात्र बन गया था। इस समय दौलत राव सिन्धिया भी सुकाराम घाटगे का बहुत आदर सम्मान करता था।

चूंकि सुकाराम घाटगे पहले नाना फड़नवीस की सेना में रह चुका था और इस समय सिन्धिया भी उसकी आवभगत कर रहा था, अतः नाना ने सिन्धिया का रुख अपनी तरफ मोड़ने के लिए घाटगे को ही माध्यम बनाने का निश्चय किया। उसने पूना में स्थित बाबा राव फड़के तथा अपने अन्य सहयोगियों को भी सूचित कर दिया कि उसने सिन्धिया को अपनी तरफ मिलाने का प्रयास आरम्भ कर दिया है और उसे सफलता मिलने की आशा है। इस सूचना से फड़के आदि आश्वस्त हो गए और उनकी सतर्कता भी कुछ कम हो गई क्योंकि वे सिन्धिया से ही अधिक भयभीत थे। बाजी राव अभी तक सिन्धिया के कैम्प में ही विवश हो कर पड़ा हुआ था। इसी समय अचानक उसे मन्ना जी*

---

* मन्ना जी राव फड़के 'एक अत्यन्त योग्य एवम् विख्यात सैनिक अधिकारी था और उसका

फड़के के रूप में एक वयोवृद्ध तथा अत्यन्त कुशल सहायक मिल गया, जिसकी मदद से उसने एक सेना का संगठन करना शुरू कर दिया। इस कार्य के लिए नाना फड़नवीस ने उसे पर्याप्त धन दिया था। परन्तु नाना फड़नवीस, बाजी राव तथा सुकाराम घाटगे आदि की ये अभिसन्धियाँ अधिक समय तक गुप्त न रह सकीं, शीघ्र ही बालोबा तात्या को इस सम्बन्ध में जानकारी मिल गई। खबर पाते ही उसने अपनीं कार्रवाइयों को प्रारम्भ कर दिया। सर्वप्रथम उसने बाबा राव फड़के पर धावा किया और उसे बंदी बना लिया और चाकन के किले में बन्द कर दिया, परंतु बावा राव फड़के का कारकुन नारू पन्त चक्रदेव, जो कि एक बहुत ही साहसी, सक्रिय एवम् चालाक अफसर था---बालोबा तात्या के हाथ न आ सका। वह भाग कर मुशीरुलमुल्क के कैम्प में छिप गया। तात्या के विरुद्ध बनाई गई योजना में उसके दो अन्य सहायकों नीलकंठ राव प्रभु और मालीजी घोरपड़े पर भी बालोबा तात्या ने धावा किया, इन दोनों को अपने बचाव की तैयारी करने के लिए कुछ ही चरणों का अवसर मिल गया, परन्तु इतनी ही तैयारी उनके लिए पर्याप्त थी। जो सेना उन पर आक्रमण करने के लिए भेजी गई थी, उसे वे सहज ही में पीछे ढकेल कर अपना मार्ग बना ले गए और अपने थोड़े से आदमियों के साथ पूना से निकल भागने में सफल हो गए और नीरा नदी के दक्षिण तरफ की पहाड़ी श्रेणियों में शरण ली।

सिन्धिया के कैम्प में जिस तरफ बाजीराव का शिविर लगा हुआ था, उस जगह को भी चारों ओर से घेर लिया गया और उसके शिविर की व्यवस्था को अवरुद्ध कर दिया गया। उसने इतने दिनों के प्रयास से जितने सैन्यदलों का संगठन किया था, उन सबको वहाँ से चुपचाप चले जाने की अनुमति मिल गई। मन्नाजी राव फकड़े भी इन दलों के साथ निकल आने में सफल हो गया और जाते जाते बाजीराव से कहता गया कि वह इन सैनिकों के साथ वाई जाकर नानाफड़नवीस के पास रहेगा और उचित अवसर पर सहायता करेगा। ये सभी सैनिक अलग अलग टुकड़ियों में नियत स्थान पर एकत्रित होने लगे। इसी बीच नीलकण्ठराव और मालोजी घोरपड़े भी मन्नाजीराव से आ मिले। उनके निर्वाह के लिए नाना फड़नवीस ने उन्हें पर्याप्त धन दिया। नाना फडनवीस का एक मित्र था भुजाबा सिरूलकर जो सल्वी घाट पर रहता था। नाना ने इन तीनों सरदारों को भी अपने इसी मित्र के पास रहने तथा सैन्य संग्रह करने के लिए भेज दिया। सल्वी घाट में भुजाबा सिरूलकर के सहयोग से मन्नाजीराव तथा उसके अन्य साथियों ने लगभग १०,००० सैनिकों को एकत्र कर लिया और इसी शक्ति के बल पर वे बाजीराव के पक्ष में लड़ने के लिए तैयार हो गए।

वालोबा तात्या ने पूना में चल रहे षड्यंत्रों की खबर तो पा ली और यथाशक्ति अपने विरोधियों को छिन्न भिन्न भी कर दिया परन्तु उसे अभी तक यह ज्ञान नहीं था कि वाई में बेठा हुआ नाना फड़नवीस ही इतनी दूर से उसको चारो तरफ से जाल में घेरने के लिए कितनी बुद्धि, धन एवम् श्रम का प्रयोग कर रहा है। इस समय उसका ध्यान नाना फड़नवीस की गतिविधियी पर गया ही नहीं; उसने समझा कि सारी खुराफात की जड़ बाजीराव ही है और इन समस्त योजनाओं के पीछे उसी का

सारा अंग चोटों से इतना छिन्न भिन्न हो चुका था कि वह मनुष्य की भाँति दिखाई नहीं पड़ता था। आज भी मन्ना जो के समय के जो वयोवृद्ध सिलीदार हैं, उनका मत है कि मन्ना जी आखिरी मराठा बहादुर था जो अपने घोड़े के पैर में छल्ला पहना सकने के सम्मान का अधिकारी था, क्योंकि उसने कभी भी युद्ध में दुश्मनों को पीठ नहीं दिखाई थी। स्मरण रहे कि मन्ना जी राव, बाजी राव के पिता रघुनाथ राव का अंतरंग मित्र था।

हाथ है। उसने सोचा कि जब तक बाजीराव पूना में रहेगा, खुराफात करने से बाज न आएगा अतः उसे पूना से हटा देना ही अधिक उचित होगा। इसी विचारानुसार उसने बाजीराव को कैदी के रूप में हिन्दुस्तान भेज देने का निश्चय किया। अन्त में उसने ऐसा ही किया और बाजीराव के साथ जाने वाली रक्षक टुकड़ी का नायक सुकाराम घाटगे को बना दिया गया। बाजीराव यह जान चुका था कि सिन्धिया घाटगे की लड़की पर मोहित है और यदि घाटगे को इस सम्बन्ध के लिए किसी प्रकार तैयार कर लिया जाय तो सिन्धिया शायद उसकी (बाजीराव जी) तरफ पलट जाय। अपने इस अनुमान के अनुसार अपनी सारी व्यावहारिक बुद्धि से घाटगे को इस प्रस्ताव पर तैयार कराने में लग गया कि वह अपनी लड़की का विवाह सिन्धिया से कर दे तो उसे लाभ छोड़ हानि तो होगी ही नहीं। बाजीराव चाहता था कि सुकाराम घाटगे सिन्धिया के साथ अपनी लड़की की शादी करने के लिए सिन्धिया के सामने ये दो शर्तें रक्खे (१) कि सिन्धिया अपने प्रयत्नों द्वारा बाजीराव को पेशवा की मसनद पर बैठाएगा और (२) सिन्धिया किसी भी तरह बाजीराव को दक्षिण के बाहर नहीं जाने देगा (जब कि बालोबा तात्या उसे हिन्दुस्तान भेजना चाहता था) क्योंकि यदि उसे पूना में न रहने दिया गया तो हो सकता है कि सफलता प्राप्त कर लेने पर भी नाना फड़नवीस उसकी अनुपस्थिति से लाभ उठा कर उसे पेशवा के अधिकार से च्युत कर सकता है। पहले तो सुकाराम घाटगे ने बाजीराव के प्रस्ताव को सुनकर आनाकानी प्रकट करते हुए कहा कि वह किसी भी तरह सिन्धिया के साथ अपनी लड़की का ब्याह नहीं करेगा; पर अन्त में यह प्रदर्शित करते हुए कि वह बाजीराव के कहने से ही ऐसा कार्य कर रहा है, उसने बाजीराव के प्रस्ताव के अनुसार सिन्धिया के साथ अपनी लड़की का ब्याह करना स्वीकार कर लिया, परन्तु इसके बदले में उसने बाजीराव के समक्ष निम्नलिखित शर्तें रक्खी—(१) पेशवा बन जाने पर बाजीराव चाहे जैसे भी हो सुकाराम घाटगे को सिन्धिया के दीवान के पद पर नियुक्त करा देगा; (२) वह इस बात के लिए घाटगे को पूरा अधिकार दे कि वह सिन्धिया से वादा कर सके, कि बाजीराव के पेशवा हो जाने पर उसे (अर्थात् सिन्धिया को) दो करोड़ रुपया दिया जायगा (३) वह पेशवा हो जाने पर कागुल गाँव को सुकाराम घाटगे को इनाम के रूप में दिलवा देगा। बाजीराव ने सहर्ष इन सभी शर्तों को पूरा करने का वादा किया। इस प्रकार दोनों के बीच सुलह हो जाने पर बाजीराव ने यह बहाना किया कि वह बीमार होने की वजह से इस समय और यात्रा करने में असमर्थ है और इसी बहाने को लेकर सुकाराम घाटगे ने बाजीराव के साथ पाइरा नदी के किनारे पड़ाव डाल कर यात्रा को स्थागित कर दिया।

पूना में परशुराम भाऊ भी गम्भीरता से तैयारियों में लगा हुआ था। उसने मुशीरुलमुल्क को अधिकाधिक सैनिकों को एकत्रित करने की अनुमति दे दिया था क्योंकि मुशीरुलमुल्क ने परशुराम को सहयोग देकर नाना फड़नवीस तथा उसके उन सहयोगियों को पराजित करने का वादा किया था जो बाजीराव को पेशवा बनाने के पक्ष में थे। वास्तव में मुशीरुलमुल्क का भाऊ की सहायता करने का जरा भी इरादा न था, परन्तु इसी बहाने से उसे सैन्य संगठन करने का अवसर प्राप्त हो गया। भाऊ समझता था कि सिन्धिया, होल्कर और पेशवा की रक्षक सेना, सभी उसके पक्ष में हैं, अतः उसने इन सभी से कूँच करने के लिए तैयार हो जाने का अनुरोध किया। दशहरा के बाद, अर्थात् लगभग मध्य अक्टूबर में, पेशवा की प्रशिक्षित बटालियनों ने मिस्टर ब्वायड के नेतृत्व में नीरा नदी के पुल की ओर प्रस्थान कर दिया; सिन्धिया ने भी अपनी प्रशिक्षित सेना के एक ब्रिगेड को रायगढ़ की तरफ रवाना कर दिया। यद्यपि ये सभी कार्रवाइयाँ परशुराम भाऊ के परामर्श से की जा रही थीं, परन्तु इन सबके लिए उसके विरुद्ध षड़यंत्र करने वालों ने उसके समक्ष प्रस्ताव रक्खे थे, जिससे कि भाऊ को यह शंका

भी न हो सके कि उसके तथा बालोबा तात्या के साथ कोई चाल खेली जाने वाली है। भाऊ ने भी उत्साह में, किसी भी प्रकार की सतर्कता न बरती।

नाना फड़नवीस की सभी योजनाएँ एवम् अभिसन्धियाँ अब तक परिपक्व हो चुकी थी और और वह उत्सुकता से इस होने वाले रोमांचकारी नाटक के पटाक्षेप की प्रतीक्षा कर रहा था। ऊपर उसकी प्रमुख योजनाओं का वर्णन किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त कोल्हा पुर का राजा भी नाना फड़नवीस के ही पक्ष में था। उसने नाना के परामर्श से परशुराम भाऊ के क्षेत्र में आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। इसी बीच नाना ने मुशीरुलमुल्क के माध्यम से निजाम अली के साथ एक और सुलह की थी जिसकी मूल प्रतिलिपि नाना के ही पास थी। इस सन्धि पत्र पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर ८ अक्टूबर को हो गए थे। इस सन्धि का मुख्य आधार था बाजीराव का पेशवा का पद प्राप्त करना, अर्थात पेशबा के मसनद पर बाजीराव का अधिकार होने पर ही इस सलाह की शर्तें मान्य हो सकती थी। दूसरा आधार था नाना फड़नवीस का पेशवा के दीवान के पद कर नियुक्त किया जाना। इन दोनों कार्यों में सहायता मिलने पर, नाना ने निजाम अली से वादा किया कि कुर्दला की सन्धि के अनुसार जो क्षेत्र निजाम अली से पेशवा के नाम पर ले लिए गए हैं उन्हें लौटा दिया जायगा; साथ ही जो तीन करोड़ रुपया निजाम के ऊपर बकाया है उसे भी छोड़ दिया जायगा। निजाम अली ने उचित अवसर देखकर यह प्रयत्न भी किया कि बीदर को चौथ से सदैव के लिए मुक्त कर दिया जाय परन्तु इस प्रस्ताव पर नाना फड़नवीस ने सहमति प्रकट करना उचित न समझा। उसने उत्तर दिया कि यह मानना उसके अधिकार के बाहर की बात है, केवल पेशवा ही अपने अधिकार से ऐसा कर सकता है, अतः बाजीराव से पूछ लेने के बाद ही इस सम्बन्ध में अन्तिम उत्तर दिया जा सकता है। वास्तव में इस नई सन्धि में नाना फड़नवीस ने निजाम अली को जो भी रियायतें देने की बात किया था, उनमें से एक पर भी विचार करने का अधिकार उसे नहीं था।

निजाम अली के अतिरिक्त नाना ने अपने पक्ष को मजबूत बनाने के लिए राघो जी भोंसले के साथ भी एक महत्वपूर्ण सन्धि की। उस सन्धि के अनुसार नाना फड़नवीस ने वादा किया कि वह राघोजी भोंसले को सेना से सम्बन्धित व्ययों के लिए १५ लाख रुपया देगा तथा सहायता के बदले में मण्डला और चौरियागढ़ तथा उन किलों से सम्बन्धित क्षेत्रों को राघोजी भोंसले के अधिकार में देगा। इन उपलब्धियों के बदले में राघो जी भोंसले ने वादा किया कि जब भी नाना फड़नवीस कहेगा, वह उसकी सहायता के लिए ३००० सवार देगा। अब केवल नाना के संकेत मात्र से ये ३००० सवार उसके अभियान में सम्मिलित होने के लिए तुरन्त पहुँच सकते थे। राघोजी ने कुछ अन्य सुविधाएँ देने का भी वादा किया और दृढ़ प्रतिज्ञा की कि वह किसी भी स्थिति में नाना की सहायता करने से मुख न मोड़ेगा।

इस प्रकार देश की समस्त प्रमुख शक्तियों को नाना फड़नवीस ने अपनी ओर मिला लिया। अंग्रेजों ने सहायता देने का तो नहीं, परन्तु तटस्थ रहने का वादा किया फिर भी उन्होंने बाजीराव के पेशवा की मसनद पर अधिकार की बात का समर्थन अवश्य किया। अन्त में जब नाना फड़नवीस की योजनानुसार उसके सभी सहायक सक्रिय होने के लिए तैयार हो गये और समस्त आवश्यक प्रबन्ध किए जा चुके तो २७ अक्टूबर को दौलतराव सिन्धिया ने बालोबा तात्या को कैद कर लिया। अब बचा परशुराम भाऊ। उसको बन्दी बनाने के लिए सिन्धिया ने अपनी सेना की कुछ टुकड़ियों को रवाना कर दिया जिनके साथ मुशीरुलमुल्क की कुछ टुकड़ियाँ भी गई। उन दोनों ही के सैन्य दलों का संचालन और निर्देशन का अधिकार नारो पन्त चक्रदेव के हाथ में था। नारो पन्त की एक जरा सी असावधानी

के कारण इस कार्य की पूर्ति में जरा सा विलम्ब हो गया। वह अपने एक सहयोगी को बड़े सरदारों की दृष्टि में चढ़ाना चाहता था, जिसका नाम था परशुराम पन्त व्याध और इसी उद्देश्य से उसने परशुराम भाऊ को कैद करने का श्रेय उसी को दिलाना चाहा। अतः उसने पहले से ही अपने इस सहयोगी के नाम एक पत्र भेज दिया जिसमें इस योजना से सम्बिन्ध की सभी आवश्यक बातें लिखी हुई थी। दुर्भाग्यवश यह पत्र गलती से परशुराम पन्त व्याध के बदले परशुराम पन्त पटवर्धन के हाथ पड़ गया। अपने खिलाफ नाना की इस योजना का ज्ञान होते ही वह चटपट जान बचाकर भागने की तैयारी में लग गया। उसने अपने साथ चुने हुए सवारों की एक टुकड़ी ली और चिमणा जी अप्पा को भी अपने साथ लेकर पूर्ण वेग से घोड़ा दौड़ाते हुए पूना से निकल भागा और शिवनेरी का रास्ता पकड़ा, क्योंकि वह इस किले में कुछ देर तक अपनी रक्षा कर सकना सम्भव समझता था। परन्तु नारोपन्त ने उसे इतना अवसर नहीं दिया कि वह सर छुपाने की जगह पा सके। उसके भाग निकलने की खबर मिलते ही उसने पूर्ण गति से भाऊ का पीछा किया और मार्ग में ही उसे जा पकड़ा। पहले तो परशुराम भाऊ ने भिड़ने का इरादा किया, परन्तु नारों पन्त के साथ आई हुई सैन्य को देख कर उसका साहस जाता रहा और उसने चुपचाप आत्मसमर्पण कर दिया। उसे बन्दी बना कर आनन्द राव रस्तिया के हवाले कर दिया गया जो उसे पूर्ण सतर्कता के साथ सिन्धिया के कैम्प में ले गया।

अभी तक बाजीराव सुकाराम घादगे के साथ पाइरा नदी के किनारे ही बीमारी का बहाना करके पड़ा हुआ था। अब इधर का मार्ग साफ हो जाने पर वाजीराव को वापस ले आया गया और पूना से १८ मील पहले ही भीमानदी के किनारे स्थित कोरीगाँव में उसका कैम्प लगाया गया। अमृतराव और बाबाराव फड़के, जो अभी तक कैद में ही थे, अब मुक्त कर दिए गये। उधर साल्वी घाट पर मन्नाजी राव फड़के नाना फड़नवीस के आदेशानुसार रुके हुए थे। इसी समय मांश्पूर ब्रायड के साथ भेजी हुई बटालियनें भी वहीं पहुँच गई। नाना फड़नवीस उन दोनों सेनाओं के साथ मराठा साम्राज्य की राजधानी कीं ओर बढ़ा। परन्तु मार्ग में ही उसे बाजीराव का एक पत्र मिला जिसमें उसने नाना फड़नवीस के उचित समय पर कठिवाईं करने में विलम्ब और लापरवाही के प्रति उलाहना दिया था। बाजीराव द्वारा कृतज्ञता प्रकट करने के बदले में उलाहने से भरे इस पन को पाकर नाना के हृदय में कुछ शंका जागी और उसने अपनी यात्रा को वहीं स्थागित कर दिया। उसने बाजीराव को लिखा कि जब तक उसे बाजीराव द्वारा लिखित रूप में यह घोषणा न मिल जायगी कि वह उसके साथ विश्वासघात नही करेगा तथा उसे दीवान के पद पर ही रक्खा जायगा, तब तक वह पूना में कदम नहीं रक्खेगा और यदि बाजीराव ऐसी प्रतिज्ञा नहीं करता तो तब किसी ऐसे स्थान पर जाकर बस जायगा जहाँ वह अपने जानमाल की सुरक्षा के प्रति निश्चिन्त हो सके। नाना फड़नवीस की हृदयगत शंका का समाचार मिलते ही सिन्धिया और निजामअली ने सम्मिलित रूप से एक गारन्टी लिख भेजी जिसमें उन्होने लिखा कि वे वाजीराव को पेशवा की मसनद पर बैठाएँगे और नाना फड़नवीस को उसके पुराने, दीवान के पद पर प्रतिष्ठित कराएँगे। परन्तु इसके साथ ही उन्होंने यह शर्त भी रक्खी कि ऐसा तभी किया जायगा जब वह उनके साथ की गई सन्धियों को पूरा करेगा। इस शर्त से ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः सिन्धिया ने बिना विचार किए ही एक महत्व-पूर्ण तथ्य को नजर अन्दाज कर दिया था, वह यह तो जानता नहीं था कि नाना फड़नवीस और निजामअली के बीच जो सन्धि हुई है उसकी प्रमुख शर्तें क्या है, और न तो उसे यही ज्ञात था कि यदि नाना फड़नबीस ने सन्धि के अनुसार निजाम अली के ऊपर बकाया चौथ और सरदेशमुखी की रकम को माफ कर देता है और कुर्दला की सन्धि द्वारा प्राप्त क्षेत्रों को निजाम अली को वापस कर देता है,

तो स्वयम् उसे कितनी हानि उठानी पड़ेगी, क्योंकि सरदेशमुखी और चौथ की रकम में उसका भी हिस्सा लगता और कुर्दला की सन्धि के द्वारा प्राप्त निजाम अली के क्षेत्रों से होनेवाली आय में वह भी एक हिस्सेदार होता। लगता है कि नाना फड़नवीस को किसी भी प्रकार सन्तुष्ट रखना ही उसका इस समय उसका प्रमुख उद्देश्य था, जिसकी पूर्ति के लिए उसने आर्थिक लाभ हानि के प्रश्न को एक तरफ रख दिया था, या यह सम्भव है कि निजाम अली के साथ हुई सन्धि की शर्तों का उसे पता ही न रहा हो। इन प्रारम्भिक करिवाइयों के निबट जाने के पश्चात् नाना फढ़नवीस ने पूना में प्रवेश किया। जहाँ उसने २५वीं नवम्बर को दीवान के पद पर आसीन होकर अपना कार्यभार सम्भला। सतारा के राजा के यहाँ से पेशवा की पोशाक और प्रतीक चिन्ह तो नाना फड़नवीस पहले ही ले चुका था, अतः बिना किसी विलम्ब किए चार दिसम्बर १७९६ को बाजीराव पेशवा की मसनद पर आसीन हुआ। शास्त्रियों की एक सभा में यह घोषित किया गया कि माधवराव की विधवा पत्नी, यशोदाबाई अपने श्वसुर के चाचा की सन्तानों को पुत्र के रूप में नहीं ग्रहण कर सकती, चूंकि माधवराव रघुनाथ राव का भतीजा था, इसलिए राघोवा के लड़कों में से किसी भी एक का यशोंदाबाई द्वारा गोद लिया जाना अवैध माना गया। जिन शास्त्रियों की व्यवस्था के अनुसार यह गोद लिया जाने वाली किया सम्पन्न कराई गई, उन्हें शास्त्रियों की सभा निष्कासित कर दिया गया। यद्यपि चिमणा जी अप्पा ने स्वेच्छा से इन कुचेष्टाओं में भाग नही लिया था फिर भी उसे कुछ-न-कुछ दण्ड का भागी समझा गया, परन्तु कुछ समय बाद ही बाजीराव ने दण्ड मुक्त करके उसे गुजरात का प्रशासक नियुक्त कर दिया, यद्यपि वह नाम मात्र का ही प्रशासक रहा क्योंकि वहाँ का सारा कार्य भार उसका सहकारी आवा शेलूकर सम्भालता था।*

---

* यह अध्याय लगभग पूरा का पूरा निम्नलिखित स्रोतों पर आधारित है, मराठा पत्र और कागजात, बम्बई रिकर्डस मराठा माण्डुलिपियाँ, और उस अध्याय के कुछ जीवित पात्रों से वार्ता।

उन्तालीसवां अध्याय

पूना में अशान्ति और अव्यवस्था

[१७९७— १७९८]

नया प्रशासन—सेना की दुर्व्यवस्था—सिन्धिया तथा भोंसले के साथ की गई सन्धि की शर्तों का नाना द्वारा पूरा किया जाना—मुशीरुलमुल्क का पूना से प्रस्थान—बाजी राव की नीति—तुका जी होलकर की मृत्यु—सिन्धिया का व्यवहार—बाजी राव की लोकप्रियता—बाजी राव द्वारा सिन्धिया और नाना फड़नवीस में फूट डालने का प्रयत्न—नाना फड़नवीस कारागार में - उनकी सम्पत्ति की लूटपाट - अमृत राव का प्रधान मंत्री (दीवान) बनाया जाना—घाटगे की लड़की से सिन्धिया का ब्याह—अमृत राव द्वारा सिन्धिया को कैद करने का प्रस्ताव—बाजी राव द्वारा समर्थन—बाजी राव के सामने सिन्धिया की पेशी—बाजी राव की कमजोरियां—सतारा की गति विधियां—बाजी राव की सेना द्वारा विद्रोह—परशुराम भाऊ का मुक्त किया जाना—सैन्य संगठन—सतारा के राजा पर धावा और विजय।

१७९७ ई०]

प्रधान मंत्री (दीवान) नाना फड़नवीस के सहायक के रूप में त्र्यम्बक राव परसूरी को नियुक्त किया गया। सेना को नियंत्रण एवम् संगठन से सम्बन्धित समस्त अधिकार पेशवा बाजीराव ने नारो पन्त चक्रदेव के हाथ में दे दिया। पिछले वर्ष की अराजकता की स्थिति के कारण सेना में भी पर्याप्त मात्रा में दुर्व्यवस्था फैली हुई थी और सेना का कोई भी अंग सुगठित नहीं था। इसी समय अचानक पूना की सड़कों पर एक और उपद्रव हो गया जिससे नागरिक जीवन आतंकित एवम् अस्तव्यस्त हो उठा। ऐसा हुआ कि सड़क पर ही दिन दहाड़े मिस्टर व्वायड के साथ के सैनिकों और कुछ अरबी सैनिकों में मुठभेड़ हो गई तथा सौ से भी अधिक आदमी मारे गए। शोर गुल और होहल्ले के बीच बाजार की अनेक समृद्धिशाली दूकानें लूट ली गईं; और शहर भर इस घटना के कारण कुछ समय के लिए आतंकित एवम् स्तब्ध हो उठा।

१३ जुलाई]

वादे के अनुसार अहमदनगर का किला, तथा किले से सम्बन्धित क्षेत्र दौलतराव सिन्धिया के हाथ में दे दिया गया। उसे इस विषय में पूरी आजादी दे दी गई कि वह परशुराम भाऊ की जागीर पर, उचित अवसर आते ही, धावा करके अपना अधिकार में कर ले, उसके कार्य में नाना फड़नवीस और पेशवा ने जरा भी हस्तक्षेप न करने का वादा किया। नाना फड़नवीस ने राघो जी भोंसले से जिन शर्तों पर सन्धि की थी, उन्हें भी बिना किसी हिचकिचाहट के पूरा कर दिया गया और राघो जी भोंसले पूर्णतः सन्तुष्ट हो कर पेशवा की अनुमति से नागपुर के लिए रवाना हो गया। अब रह गया निजाम अली और उसके साथ महार की सन्धि के अनुसार तय की गई शर्तें, जो बाजीराव को बहुत मेंहगी लगीं। उसने कहा इन शर्तों द्वारा तय की गई मांगों को जब तक कुछ कम न किया

जायगा, तब तक वह उन्हें पूरा करने पर विचार ही नहीं करेगा। मुशीरुलमुल्क अभी तक रुपया और शर्त द्वारा वापस किए जाने वाले क्षेत्रों से सम्बन्धित सनद को प्राप्त करने के लिए ही पूना में पड़ा हुआ था; परन्तु उसने जब पेशवा को आनाकानी करते देखा तो वह चुपचाप पूना से चल पड़ा। उसने क्रोधवश पेशवा से पूना छोड़ कर जाने की अनुमति भी नहीं ली और अत्यन्त ही मर्माहत एवम् उत्तेजित भाव से हैदराबाद पहुँचा। इस समय हैदराबाद में मराठों का कोई भी राजदूत उपस्थित नहीं था; गोविन्द राव पिंगले इस समय पूना में ही था; परन्तु उसका एक प्रतिनिधि अब भी निजाम के दरबार में रहता था जिसका नाम था सदाशिव राव माणिकेश्वर। आगे के विवरणों में स्थान-स्थान पर इस व्यक्ति का नाम आएगा। गोविन्द राव पिंगले ने सदाशिव राव को निजाम दरबार में महज एक अखबारनवीस की हैसियत से प्रवेश कराया था। गोविन्द राव पिंगले ने नाना फड़नवीस से कहा कि इस समय उत्तेजित मुशीरुलमुल्क की उत्तेजना को शान्त करने में केवल एक व्यक्ति सफल हो सकता है और वह व्यक्ति है सदाशिव राव माणिकेश्वर। किसी तरह यह विरोध वाली बात कुछ समय के लिए दब गई और नाना ने चैन की साँस ली क्योंकि वह नहीं चाहता था कि सन्धि की शर्तों के पूरा न करने के विषय में कोई प्रचार होने पावे, अन्यथा पूना दरबार की प्रतिष्ठा में धब्बा लग जाता।

इस प्रकार की गई शर्तों को न पूरा करने से निजाम अली तथा पूना दरबार के सम्बन्धों में जो अन्तर पड़ गया था, बाजीराव ने किसी भी तरह इस अन्तर को समाप्त करने के लिए विचार तक करने का कष्ट नहीं किया। इस प्रकार पेशवा ने नाना फड़नवीस द्वारा बनाए गए शक्तिशाली संघ को कमजोर करना शुरु कर दिया। नाना फड़नवीस ने अपने बुद्धिबल से जिन शक्तियों को एक सूत्र में बांधा था, उसमें फिर एक जोरदार धक्का लगा, तुका जी होलकर की मृत्यु से। होलकर का बल ही नाना का आधा बल था, क्योंकि इधर वह सदैव ही नाना का अन्धानुकरण करता था। होलकर के कुल चार लड़के थे जिनमें से दो लड़के वैध थे; बड़े का नाम था काशी राव, और छोटे का मल्हार राव; अन्य दो लड़के जसवन्त राव और विट्ठो जी एक रखैल से पैदा हुए थे। काशी राव जितना ही दुर्बल था, उतना ही अल्पमति और बुद्धिहीन भी था, जब कि मल्हार राव हर तरह से अपनी पैत्रिक सम्पत्ति एवं अधिकारों को बनाए रखने में समर्थ था। शीघ्र ही उत्तराधिकार के लिए दोनों भाइयों के बीच विवाद उत्पन्न होने लगे. इस विवाद में तुका जी होलकर के दोनों अवैध पुत्रों—जसवन्त राव और विट्ठो जी ने मल्हार राव का ही पक्ष लिया। कुछ ही दिन बाद, मल्हार राव ने अपने मृत पिता का कैम्प छोड़ दिया और सेना की एक छोटी सी टुकड़ी के साथ उसने बम्बूरी नामक स्थान पर डेरा डाला। यह स्थान पूना के पास ही था, और नाना फड़नवीस भी गुप्त रूप से मल्हार राव की सहायता में तत्पर था। सिन्धिया की होलकर से पहले से ही नहीं पटती थी, अब उसकी मृत्यु के बाद जब उत्तराधिकार के सम्बन्ध में संघर्ष होने लगा तो सिन्धिया की बन आई, क्योंकि वह ऐसे ही किसी अवसर की ताक में लगा हुआ था। ज्योंही काशी राव ने सिन्धिया से, सहायता देने तथा उसका अधिकार दिलाने के लिए उससे अनुरोध किया, सिन्धिया तुरन्त तैयार हो गया। मल्हार राव को वश में करने के लिए काशी राव सेना एकत्रित कर ही रहा था, सिन्धिया ने भी अपनी सेना की एक टुकड़ी को, इस कार्य में सहयोग देने के लिए भेज दिया। काशी राव ने मल्हार राव को घेर लिया और उससे आत्मसमर्पण कर देने को कहा, पर मल्हार राव ने आत्मसमर्पण करना स्वीकार नहीं किया। इस पर काशी राव ने अपने छोटे भाई पर आक्रमण कर दिया। मल्हार राव ने इस आक्रमण का प्रबल प्रतिरोध किया, परन्तु अन्त में वीरतापूर्वक लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुआ। उसके दोनों

अवैध भाई--मैदान छोड़ कर भाग निकले; जसवन्त राव ने नागपुर का मार्ग पकड़ा और विट्ठो जी कोल्हापुर की तरफ निकल गया। मल्हार राव के अत्यन्त सहयोगी इस युद्ध में उसके साथ ही मारे गए; इन मृत लोगों में से एक सैनिक ने बहुत ही वीरता प्रदर्शित किया; उसका नाम था रवी राव और वह लोनी का निवासी था। उसकी मृत्यु इस कारण से और भी उल्लेखनीय हो गई कि जैसे ही उसकी पत्नी को उसकी मृत्यु का समाचार सुनाया गया, वह तुरन्त उसी स्थान पर अचेत हो कर गिर पड़ी और सदैव के लिए सो गई।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, काशीराव तन और मन दोनों से हीन था, न उसमें बुद्धि थी, और न बल; इस प्रकार के चरित्र वाले काशराव की सहायता भी सीधिया ने इसीलिए की थी, क्योंकि वह जांनता था कि काशीराव कों जितना भी चूसा जाय, वह उसके खिलाफ सर उठाने का साहस भी नहीं करेगा और उसका अनुमान सच ही था। काशीराव को अपने उपकार के बोझ से दबाकर सिन्धिया होल्कर परिवार के ऊपर कुछ समय के लिए बुरी तरह आ गया और एक तरह से उनका संरक्षक बन बैठा। इस प्रकार सिन्धिया और होलकर परिवारों के एक हो जाने से नाना फड़नबीस की टूटती हुई शक्ति में एक और धक्का लगा। सिन्धिया ने मल्हार राव के ना-बालिग लड़के खण्डे राव को भी कड़ी निगरानी में रखवा दिया ताकि उसे वहाँ से भगा कर कहीं ले न जाया जा सके। अब बचा केवल काशीराव, जो कि सिन्धिया के हाथों में कठपुतली की तरह नाचता था।

सिन्धिया पूना के राजकीय मामलो में भी जब तब हस्तक्षेप करता रहा; बाजीराव ने भी इस सम्बन्ध में दूरदर्शिता से काम नहीं लिया। बाजीराव ने नाना फड़नबीस के प्रति जलन के कारण, सिन्धिया के हस्तक्षेप को रोकने का प्रयास करने के बजाय उलटे गुप्त रूप से उसे गुप्त प्रोत्साहित ही करता रहा। धीरे-धीरे सिन्धिया की, हस्तक्षेप करने की आदत इस सीमा तक बढ़ गई कि वह स्वयम् को ही मराठा साम्राज्य का भाग्य विधाता समझने लगा। उसके द्वारा किए गए कुछ कार्यों ने तो इस प्रकार पेशवा की सत्ता एवम् उसके अधिकार का अपमान किया, जैसा कि पेशवाओं के राज्य में कभी हुआ ही नहीं था। उदाहरण के लिए दौलतराव सिन्धिया द्वारा, बिना पेशवा की अनुमति के किए गए कुछ कार्य निम्नलिखित थे—कोलाबा के किले को अपने अधिकार में करना, मन्ना जी आंग्रे को कैद में डाल देना और उसके राज्य क्षेत्र को अपने एक निकट के सम्बन्धी बाबूराव आंग्रे के अधिकार में दे देना। सिन्धिया के ये कार्य वास्तव में पेशबा के अधिकार को चुनौती देने के समान थे। बाजीराव ने भी कभी उसे इस तरह अपने अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप करने से नहीं रोका क्योंकि वह सिन्धिया को अपना शुभचिन्तक समझता था।

सिन्धिया द्वारा किए गए क्रूर तथा पक्षपातपूर्ण कार्यों का दोष अब भी बाजीराव को नहीं दिया जाता था, क्योंकि जनता बाजीराव को अच्छी दृष्टि-से देखती थी और समझती थी कि दरबार में सिन्धिया की अपेक्षा उसका प्रभाव कम होने के कारण ही ऐसे अन्यायपूर्ण कार्य हो रहे हैं। बाजीराव की विद्वता, उसका करुण चेहरा और उसके पिछले दुर्भाग्य और दुःख के कारण जनता उससे सहानुभूति रखती थी और समझती थी कि उसका उदार और प्रेमपूर्ण स्वभाव उसकी सरलता तथा नाना फड़नबीस और दौलतराव सिन्धिया के निरन्तर नियंत्रण के कारण दब गया है। उस समय पूना में ब्रिटिश सरकार का रीजेन्ट था मिस्टर यूराफ। उसने प्रारम्भ में ही, यह अनुमान लगा लिया था कि बाजीराव वास्तव में किस चरित्र का व्यक्ति है। उसके अनुसार बाजीराव हद दर्जे का चालाक था और अपनी चालाकियों पर पर्दा डालने के लिए तथा जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए वह भोलाभाला और निर्बल बना हुआ था। उसकी चालाकी और धूर्तता का सबसे प्रबल प्रभाव है सभी

के प्रति उसका अविश्वास। किसी पर भी विश्वास न करता और सबको धोखा देना, जैसे उसकी प्रवृति का एक प्रगुख अंग बन गया था और प्रायः प्रभावशाली सरदारों में फूट के बीज डालना उसकी प्रमुख नीति बन गई थी। वास्तव में इस समय उसका एक ही लक्ष्य केन्द्र था, दोलतराव सिन्धिया और नाना फड़नबीस के नियंत्रण से मुक्ति पाना। वह प्रायः सोचा करता था कि वह कुछ ही समय में इतना समर्थ हो जायगा कि वह दौलतराव सिन्धिया को पूना छोड़कर हिन्दुस्तान चले जाने पर मजबूर कर सके, अब उसकी दृष्टि में सिन्धिया के हस्तक्षेपों को रोकना अत्यन्त आसान था और वह कार्य कभी भी किया जा सकता था, परन्तु नाना फड़नबीस के प्रति वह बहुत आशंकित रहता था, क्योंकि वह जानता था कि जब तक नाना दीवान के पद पर आसीन है तक तब तक उसके नियंत्रण से उसे मुक्ति नहीं मिल सकती। अपनी मुक्ति के लिए उसने सर्वप्रथम नाना के विनाश को अत्यन्त आवश्यक समझा। उसकी इस अभिसन्धि में अमृतराव गोविन्द राव काले तथा कुछ अन्य सरदार भी सम्मिलित थे, और बहुत पहले से इस सम्बन्ध में अपना कर्तव्य स्थिर किए हुए बैठे थे। इस योजना की पूरा करने कें लिए उसने सुकाराम घाटगे को अपना माध्यम बनाया। घाटगे इस समय तक अपने पारिवारिक नाम शीरजी राव के नाम से विख्यात हो गया था। उसने अभी तक दौलतराव सिन्धिया के साथ अपनी लड़की की सगाई भर किया था, अभी तक यह विवाहोत्सव सम्पन्न न हो पाया था। इस समय दौलतराव सिन्धिया पर शीरजीराव था प्रभाव ही सबसे अधिक था और सिन्धिया को नाना फड़नबीस के विरुद्ध भड़काने के लिए उससे अच्छा साधन कोई दूसरा नहीं हो सकता था। बाजीराव ने अपनी योजना की सफलता के लिए सबसे पहले शीरजी राव को ही नाना फडनबीस के विरुद्ध तैयार करने का निश्चय कर लिया। अब उसने शीरजी राव के दिल में यह बात धीरे-धीरे बैठानी शुरू की कि यदि वह अपने भावी दामाद दौलत राव सिन्धिया के दीवान के पद पर निगुक्त होना चाहता है तो सबसे पहले उसे नाना फड़नबीस से ही निपट लेना चाहिए, क्योंकि नाना उसके विरुद्ध है, और जब तक नाना के हाथ में शक्ति रहेगी तब तक वह घाटगे के दीवान बनने के प्रयत्न में, रोडा अटकाता रहेगा। धीरे-धीरे शीरजी राव के मस्तिष्क में यह बात जम कर बैठ गई, और नाना के विरुद्ध योजना बनाने में उसने भी बाजीराव पेशवा तथा कुछ अन्य सरदारों के साथ सहयोग किया। ३१ दिसम्बर को, योजनानुसार, नाना फड़नबीस को कुछ लोगो ने परामर्श दिया कि चूंकि सिन्धिया एक बार उससे मिलने आया था—इसलिए नाना का भी यह कर्तव्य हो जाता है कि वह भी सिन्धिया की मुलाक़ात के बदले में, सिन्धिया के कैम्प में जाकर उससे औपचारिक वार्ता करे। पहले तो नाना फड़नबीस शंका के मारे तैयार ही नहीं हो रहा था, परन्तु अन्त में यद्यपि काफी सतर्कता के साथ उसने सिन्धिया से मुलाकात करने को तैयारी की, परन्तु बीच ही में मिचेल फाइलीज ने उसे पकड़ लिया। मिचेल फाइलोज महाद जी सिन्धिया के साथ सन् १७९२ में दक्षिण आ चुका था और नाना फड़नवीस से अच्छी तरह परिचित हो चुका था। इस समय वह दौलतराव सिन्धिया के अंतर्गत आठ बटालियनों का कमाण्डर था। जब पकड़े जाने पर नाना फड़नबीस ने शोर-गुल मचाना चाहा तो फाइलोज ने अपने सम्मान की शपथ लेकर यह गारन्टी दी थी कि वह नाना को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाएगा और कुछ समय बाद उसे सम्मान पूर्वक उसके घर पहुँचवा देगा। परन्तु फाइलीज ने बचन देकर भी सभी के सामने नाना का जो असम्मानपूर्ण व्यवहार किया, उसके लिए वह समस्त पूना के निन्दा का पात्र हो गया। विशेष कर उन यूरोपियन अफसरों ने उसके इस कार्य से अपनी पूरी जाति को अपमानित समझा, जो विभिन्न देशी राज्यों और सरदारो के अधीन नौकरी करते थे। यद्यपि देशी सरदारों और शासकों के यहाँ उनकी संख्या कोई अधिक नही थी, ये लोग तो अपने देश से अपने भाग्य की परीक्षा

करने के लिए भारत आए थे, फिर भी वे अपने दो गुणों के कारण सम्मान के योग्य समझे जाते थे—पहला, कि वे विश्वास घात नहीं करते थे व अपने बचन को पूरा करते थे और दूसरा कि साहसिक प्रयासों व कार्यों में वे बहुत रुचि रखते थे। यूरोपियनों के इन सम्मान गुणों के आधार पर ही नाना फड़नबीस ने फाइलोज की बातों पर विश्वास कर लिया था और उससे कोई वादा भी नही करवाया था * क्योंकि वह यूरोपीयनों को अपने बचन पर दृढ़ रहने वाला समझता था। इस अवसर पर नाना फड़नबीस अकेला नहीं था, उसके साथ आवा शेलूकर, मुजावा शेलूकर, नारोपत व्याध आदि अनेक सरदार भी सिन्धिया से मुलाकात करने के लिए जा रहे थे, परन्तु फाइलोज ने नाना फड़नबीस के साथ उन सरदारों को भी बन्दी बना लिया। उनके साथ १००० सैनिकों की जो रक्षक सेना चल रही थी। उसे भी तंग किया, कुछ सैनिकों को मार डाला गया और शेष को भगा दिया गया। नाना फड़नबीस के कैद हो जाने पर शीरजी राव घाटगे का पराक्रम जागा। उसने तुरन्त अपने सैनिको के दल के दल नाना तथा उसके अन्य सहयोगियों के घरों में लूट-पाट मचाने के लिए भेज दिया। अब खुला प्रोत्साहन पाकर सैनिकों ने इस महान वीरतापूर्ण कार्य में अपूर्व पराक्रम दिखाया और पूना शहर त्राहि-त्राहि कर उठा। कुछ लोगों ने अपने दरवाजों को मजबूती से बन्द कर लिया, तथा खिड़कियों और छतों पर से ईंट पत्थर फेंक कर किसी प्रकार अपनी जाने बचाईं। ऐसा लग रहा था जैसा कि पूना में कोई भयंकर तूफान आया हुआ हो और पूरे शहर को उजाड़े डाल रहा हो। रात भर शीरजी राव के सैनिक गोली चलाते रहे और रक्त भरे हाथों से लूट-पाट करते रहे। दूसरे दिन उनका यह अनाचार न रुक सका। शहर की सभी मुख्य सड़कों पर उन सैनिकों ने नाकेबन्दी कर लिया था और कोई भी व्यक्ति किसी भी तरफ भागकर नहीं जा सकता था। सड़कें और गलियाँ रक्त के गर्म छींटों से लाल हो उठी, और असंख्य समृद्ध परिवारों का अटूट धन इन लुटेरे सैनिकों के हाथ लगा। इस अन्यायपूर्ण लूट-पाट एवम् हत्याकाण्ड की खबर बहुत दूर तक फैली और कुछ स्थानों से पूना निवासियों की रक्षा के लिए सैनिक भी चल पड़े। जैसा कि एक दर्शक ने जो उस अवसर पर वहाँ उपस्थित तथा, कहता है—ये मित्र सैनिक भी कई छोटे छोटे भागों में बँट कर आतताइयों से न पटने के लिए चल पड़े। ये एक हाथ में ढाल और दूसरे में तलवार पकड़े हुए दृढ़तासे आगे बढ़ रहे थे, और आततायों को दण्ड देने का दृढ़ संकल्प उन्हें में प्रेरणा दे रहा था।

जिस समय फाइलोज़ ने नाना फड़नवीस को कैद करके सिंधिया के कैम्प में गया, उस समय बाजीराव ने नाना के सहायक मंत्रियों और उनके पक्ष के महत्वपूर्ण लोगों को परामर्श करने के बहाने से दरबार में बुलवाया और कपटपूर्वक उनको भी पकड़वा कर कैद में डलवा दिया। इस प्रकार कैद किए

---

* फाइलोज के इस विश्वासघात के लिए उसे निर्दोष बताते हुए, मराठे उसकी सफाई में कहते हैं कि उसे वास्तव में यह पता नहीं था कि सिन्धिया का इरादा नाना फड़नवीस को कैद में डालना था। उसने किसी पूर्व निश्चित योजना के अनुसार इस तरह का धोखा नहीं दिया था। उसे तो अचानक शीरजीराव घाटगे का धमकी से भरा आदेश मीर असद अली वहीद नामक एक व्यक्ति के माध्यम से मिला था, वह बिना सोचे विचारे चल पड़ा और आदेश का पालन किया। यूरोपियन चरित्र की महानता का एक यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि स्वयम् मराठों ने ही फाइलोज को निर्दोष सिद्ध करने का प्रयास किया। यदि उनके किसी देशवासी ने ऐसा विश्वासघात किया होता तो उसकी निर्दोषिता की जाँच भी न की जाती और वह विश्वासघाती के रूप में कुख्यात हो जाता; परन्तु यूरोपियन होने के नाते ही फाइलोज को निर्दोष सिद्ध करने का प्रयत्न यहाँ के देशवासियों ने ही किया।

जाने वाले लोगों में से प्रमुख लोग ये थे—बाबा राव फड़के अप्पा बलवन्त, नारोपन्त चक्रदेव, नारो नीलकण्ठ मजुमदार और गोविन्द राव पिंगले। कुछ दिनों तक सिंधिया के कैम्प में पड़े रहने के पश्चात् नाना फड़नवीस को अहमद नगर किले के कैदखाने में बन्द करा दिया गया तथा अत्यन्त कड़ा पहरा लगा दिया गया। अब नाना फड़नवीस से बदला ले लेने के पश्चात् पेशवा बाजीराव ने अपने भाई अमृतराव को अपना दीवान (प्रधानमंत्री) बनाया। दीवान के सहायक मंत्रियों के पद पर उसने गोविन्द राव काले और शिवराम नारायण को नियुक्त किया। सेना के संचालन का भार बाजीराव ने बालाजी पन्त पटवर्धन नामक एक ऐसे व्यक्ति को दे दिया जिसे न तो सैन्य संचालन का अनुभव ही था, न योग्यता ही थी।

इस प्रकार अपने प्रशासन में निरन्तर हस्तक्षेप करने वाले दो गुप्त शत्रुओं में से एक, नाना फड़नवीस को लगभग पूर्णतः कुचल डालने, एवम् उसके नियंत्रण का जुआ गले से निकाल कर फेंक देने के पश्चात् अब बाजीराव के समक्ष एक ही प्रबल लक्ष्य रह गया, महाबली सिन्धिया! अब वह किसी भी प्रकार सिन्धिया पर काबू पाने के लिए योजनाएँ बनाने लगा। परन्तु इस समय सिन्धिया से बिगाड़ करना किसी भी प्रकार से उसके लिये हितकर न होता और वर्तमान परिस्थितियों में वह सिन्धिया से मित्रता पूर्ण सम्बन्ध बनाए रखने के लिए विवश था अतः हर सम्भव प्रयत्नों से वह सिन्धिया को सन्तुष्ट रखने और मिलाए रहने के प्रयत्न में ही रहा। शीरजी राव घाटगे भी इस समय उसके और सिन्धिया के बीच की एक महत्पूर्ण कड़ी था, अतः इस कड़ी को मजबूत बनाए रखने का भी उसने प्रयत्न किया। उसे आशा थी कि उनसे सहयोग बनाए रखने पर ही उसकी योजनाओं की सफलता प्राप्त होगी।

सन् १७९८

इसी वर्ष के मार्च माह में दौलतराव सिन्धिया के साथ शीरजीराव घाटगे की पुत्री का विवाहोत्सव सम्पन्न हुआ। यह विवाह बहुत ही धूमधाम से हुआ तथा दोनों पक्षों ने इस अवसर पर बहुत अधिक धन व्यय किया। इस समय सिन्धिया की जितनी सेना पूना में थी, उसका मासिक वेतन बीस लाख रुपए से भी अधिक था, जब कि इधर सिन्धिया को उधर कहीं से कोई आमदनी नहीं हो रही थी। विवाह में भी अत्यधिक धन व्यय हो जाने के कारण दौलतराव सिन्धिया शीघ्र ही आर्थिक समस्याओं से बुरी तरह ग्रसित हो गया। बाजीराव ने अपनी सहायता के बदले में सिन्धिया को दो करोड़ रुपया देने का वादा किया था, जिसे देने का वह नाम ही नहीं ले रहा था और न सिन्धिया ने कभी माँगा ही था। अब आर्थिक कठिनाइयों से परेशान होने पर सिन्धिया पेशवा पर उन दो करोड़ रुपये को चुकाने के लिए दबाव डालने लगा। इस पर बाजीराव ने उत्तर दिया कि इस समय इतने रुपयों का प्रबन्ध कर सकना उसके लिए असम्भव है, परन्तु यदि सिन्धिया को धन की बहुत अधिक आवश्यकता हो तो वह शीरजी राव घाटगे को अपना दीवान नियुक्त कर ले। बाजीराव ने कहा कि दीवान हो जाने पर, बालाजी कुंजर से सूचनाएँ प्राप्त करके शीरजीराव उक्त धन को पूना के धनी व्यापारियो से वसूल करके सिन्धिया को दे सकता है, परन्तु ऐसा तभी हो सकेगा जब उसे सिन्धिया अपना दीवान बना कर उसे सन्तुष्ट कर दे। सिन्धिया ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और इस प्रकार बाजीराव ने शीर जी राव घाटगे के साथ, उसे सिन्धिया का दीवान नियुक्त करा देने का वादा पूरा किया। उसके वादे को पूरा करने के लिए पूना निवासियों को जिन अत्याचारों का सामना करना पड़ा वह अवर्णनीय है। बाजीराव ने अपने स्वार्थ के वशीभूत हो कर अपनी प्रजा को एक ऐसे भूखे दैत्य के हाथों में, (बिना किसी विवशता या विरोध के) सौंप दिया जिसकी हिंसकवृत्ति ने पूना में अनाचार का नंगा नृत्य प्रदर्शित किया। घाटगे ने उन पर इतने अत्याचार किए कि जब तक पूना शहर

का अस्तित्व रहेगा तब तक इस राक्षस का नाम भय और घृणा के साथ याद किया जायगा। पूनावासियों से अधिकतम धन वसूल करने के उद्देश्य को पूर्ण करते के लिए शीरजीराव घाटगे सर्व प्रथम पेशवा बाजीराव के महल की ओर बढ़ा, जहाँ हाल ही में पूना सरकार के भूतपूर्व दीवान नाना फड़नवीस के सहयोगियों को कैद करके रक्खा गया था। अत्याचार की इस प्रतिमूर्ति ने उन सम्मानित पुरुषों को कारागार की कोठरियों से घसीट घसीट कर बाहर खिंचवाया और उन्हें तब तक ताड़ना देता रहा जब तक कि उन्होंने यह नहीं बताया कि उन्होंने अपना धन कहाँ रक्खा है और मँगवा कर दे न दिया। इसके पश्चात् घाटगे ने पूना के उन समस्त व्यक्तियों को पकड़ मँगवाया जो सामान्यतः समृद्ध माने जाते थे। इस दल में व्यापारी, दूकानदार, महाजन तथा अन्य श्रेणियों के लोग सम्मिलित थे। उनसे धन प्राप्त करने के लिए घाटगे ने उनको असहनीय ताड़ना दी जिसके फलस्वरूप कितने ही व्यक्तियों ने तड़प कर दम तोड़ दिया। ऐसे लोगों में गंगाधर पन्त भानु नामक एक व्यक्ति था जो नाना फड़नवीस का एक रिश्तेदार था। घाटगे ने उससे धन प्राप्त करने के लिए उसे एक तपी हुई तोप के नाल पर बँधवा दिया जिसके कड़े उत्ताप से ही उसकी मृत्यु हो गई; ताड़ना के इस ढंग का अविष्कार स्वयम् शीरजी राव घाटगे ने ही किया था; उसने ताड़ना के अन्य अनेक तरीकों का भी प्रयोग किया जिनका उल्लेख मानवता को कलंकित करता है और बाजीराव पेशवा के मस्तक पर कलंक का एक अमिट दाग लगा देता है।

इतना अधिक अत्याचार सहने पर भी बाजीराव की सहृदयता पर से पूनावासियों का विश्वास अभी तक नहीं डिगा था और न वे यही समझते थे कि इन अनाचारों और अत्याचारों का एक मात्र कारण वही है। बाजीराव भी अभी तक परिस्थितियों की गम्भीरता के कारण कान में उँगली डाले बैठा था; परन्तु इस बार के अत्याचार के कारण भूंजने वाली चीखों-पुकारों ने सीधे उसके हृदय पर प्रभाव डाला। अब बाजीराव के आँख और कान दोनों खुल गए—और उसे पश्चाताप होने लगा कि यह उसने क्या कर डाला? वास्तव में उसने कल्पना भी नहीं किया था कि शीरजीराव इतना नृशंस और बर्बर हो सकता है। उसने सोचा था कि दस पाँच बड़े महाजनों से वह दो करोड़ रुपया आसानी से वसूल कर लेगा और थोड़ा बहुत शोरगुल होकर वातावरण पुनः शान्त हो जायगा। परन्तु शीरजीराव की लोभ वृत्ति इतने से ही कैसे सन्तुष्ट होती। अन्त में उसके लोभवृत्ति और हिंसकवृत्ति के फलस्वरूप उत्पन्न हुई कराहटों ने बाजीराव को इस अन्याय का विरोध करने के लिए विवश कर दिया। इसने घटगे के अत्याचारों के विषय में सिन्धिया से विरोध प्रकट किया परन्तु सिन्धिया ने उसके इस विरोध को, प्रजा वत्सलता का ढोंगमात्र समझ कर, उसकी शिकायतों पर जरा भी ध्यान न दिया। अमृत राव को अब तक न तो सिन्धिया और बाजीराव के बीच हुई दो करोड़ रुपये की सुलह का ही पता था और न उसने यही कल्पना की थी कि प्रजा पर यह सारा अत्याचार उसके ही भाई की राय से, उक्त रकम वसूल करने के लिए किया जा रहा है। प्रजा के प्रति घाटगे के दुर्व्यवहारों से वह बुरी तरह चिढ़ गया था। जब उसने देखा कि हर तरफ से लोग सिन्धिया और घाटगे की निन्दा कर रहे हैं और उसके नाम पर थूक रहे हैं तो वह और भी उत्तेजित, साथ ही प्रोत्साहित हो गया। उसने अपने भाई बाजीराव के सामने एक योजना रक्खी जिसके अनुसार उसने तय किया था कि जब भी सिन्धिया अकेले किसी तरफ भ्रमण के लिए निकले तो उसे कैद कर लिया जाय। बाजीराव तो सिन्धिया से जला ही हुआ था, उसने तुरन्त इस प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति दे दिया और शीघ्र ही शीघ्र इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए उसकी उत्सुकता बढ़ती गई। इस परामर्श के कुछ पहले ही बाजीराव ने अमृतराव को राय दिया था कि वह भी आधुनिक प्रशिक्षित आंग पर कुछ बदा-

लियनों का संगठन करा ले ताकि इस दृष्टि से वे निजाम और सिन्धिया के मुकाबिले में कमजोर न रह सकें। पेशवा की सेना में एक यही अभाव था जिसे पूरा करने के लिए बाजीराव व्यग्र था। क्योंकि प्रशिक्षित सेवाओं के कारण ही सिन्धिया अपने को सर्वशक्तिशाली समझता था। सवार सेना की दृष्टि से तो वह साधारण-सा प्रयत्न करने पर ही निजाम अली और सिन्धिया दोनों से ही बहुत आगे बढ़ सकता था। अमृतराव का पिता राघोबा अंग्रेजों के साथ बहुत समय तक रहा था, और अंग्रेजों के साथ कई अभियानों में अमृत राव भी गया था; इस काल में अमृतराव ने अंग्रेजों की वीरता और नीति के जो दृष्टान्त देखे थे, उनके अनुसार वह अंग्रेजों को किसी भी अन्य यूरोपीय देशवासियों की अपेक्षा अधिक ऊँचे स्तर पर रखता था तथा उनकी युद्ध कुशलता एवम् नेतृत्व शक्ति का लोहा मानता था। अतः प्रशिक्षित बटालियनों के संगठन के लिए उसने मिस्टर डब्ल्यू० एच० टोन नामक एक अँग्रेज को ही चुना; जिसने प्रारम्भ में ही एक ब्रिगेड सैनिकों के प्रशिक्षण की योजना बनाई। यह निश्चित कर लिया गया था कि इस ब्रिगेड के सभी अफसर अंग्रेज ही होंगे। इस योजना पर सिन्धिया का मत एवम् समर्थन प्राप्त करने के लिए अमृत राव ने उससे कहा, कि निजाम अली के साथ पूना दरबार के सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं इसलिए इस प्रकार की सेना का संगठन भी आवश्यक है। उसने सिन्धिया को आश्वस्त करने के लिए उसके समक्ष यह प्रस्ताव भी रक्खा कि पेशवा और सिन्धिया की संयुक्त शक्ति के साथ निजाम अली पर एक बार फिर आक्रमण किया जाय, क्योंकि निजाम अली न तो चौथ और सरदेश मुखी की बकाया रकम ही अदा करने की कोई चेष्टा कर रहा है और न कुर्दला की सन्धि के अनुसार निश्चित क्षेत्रों को ही पेशवा के अधिकार में दे रहा है। यद्यपि नाना फड़नवीस ने उक्त दोनों दावों को, हाल में की गई सन्धि के अनुसार वापस ले लिया था, परन्तु इस सन्धि के विषय में न तो पेशवा की ही अनुमति ली गई थी, और न सिन्धिया को ही इस विषय में कुछ पता था। जैसा कि पाठक पीछे देख चुके हैं; अतः अमृतराव ने नाना फड़नबीस द्वारा वापस लिए गए इन दावों को अवैध मानते हुए, सिन्धिया के समक्ष इस सम्बन्ध में सम्मिलित कार्रवाई करने का प्रस्ताव रक्खा और इसी बहाने प्रशिक्षित सेना के संगठन के लिए सिन्धिया से सहमति भी माँगी। दौलतराव सिन्धिया ने इन दोनों ही प्रस्तावों को सहर्ष स्वीकार कर लिया। १६ फरवरी को पूना दरबार द्वारा ब्रिटिश सरकार के पास सेना के संगठन के सम्बन्ध में सूचना भी भेज दी गई। परन्तु पेशवा में अधिकार के अन्तर्गत कभी भी प्रशिक्षित ब्रिगेड का संगठन न किया जा सका। यही नहीं, जो कुछ सेना पेशवा के पास थी भी, उसकी कार्यक्षमता भी दिन व दिन कम होती गई जिसके कई कारण थे। इन कारणों में सर्वप्रमुख कारण यह था कि बाजीराव, अमृतराव के बढ़ते हुए प्रभाव से आशंकित हो उठा था, और उसके प्रति ईर्ष्या-भाव रखने लगा था; दूसरे वह स्वयम् सेना के नियत्रंण के विषय से एकदम अनभिज्ञ था और इस विषय में उसे कोई अनुभव भी नही था। अन्तिम, परन्तु अत्यधिक प्रभावशाली कारण था कि सेनापति का चुनाव करने में उसने दूरदर्शिता से काम नहीं लिया था। इन सब कारणों से सैनिकों ने उच्च पदाधिकारियों को अपनी तरफ से उदासीन देखकर स्ववम् भी निष्क्रियता एवम् उदासीनता को अपना लिया; उनमें जैसे उत्साह ही नहीं रह गया। यद्यपि बाजीराव की सैनिक तैयारी अधिक शक्तिशाली होने के बजाय दिन ब दिन कमजोर ही पड़ती जा रही थी, परन्तु इससे उसके उत्साह में तनिक भी कमी नहीं आई, और सिन्धिया के विरुद्ध योजनाएँ बनाने में तनिक भी कमी नहीं आई। इधर सिन्धिया के कैम्प में भी, सैनिकों का वेतन ठीक से न मिल पाने के कारण अनुशासनहीनता बढ़ती जा रही थी, जिसे देख कर पेशवा के विचारों को प्रोत्साहन ही मिल रहा था; अब उसे धीरे-धीरे आशा हो चली थी कि यदि सिन्धिया की सेना में व्याप्त अनुशासहीनता और अव्यवस्था की

जरा-सा प्रोत्साहन दे दिया जाय तो सिन्धिया और उसके सहयोगी पेशवा का ही मुँह देखेंगे और उसके ही अनुगामी बने रहेंगे। परन्तु आगे ही घटना क्रम ने तीव्र गति से मोड़ लिया और सारी परिस्थितियों ने एक बार फिर नया रूप धारण कर लिया तथा सिद्ध कर दिया कि बाजीराव वास्तव में एक बहुत ही दुर्बल हृदय का व्यक्ति था।

इस समय दिन ब दिन सिन्धिया की लोकप्रियता घटती ही जा रही थी और पूना वासी अपने शहर में उसकी उपस्थिति तक से घृणा करने लगे थे। अमृत राव जल्द से जल्द सिन्धिया को कैद करके सारा झगड़ा समाप्त करने के लिए व्यग्र था, अतः उसने इस सम्बन्ध में बाजी राव की अन्तिम अनुमति प्राप्त कर लेने के पश्चात आबा काले नामक एक सरदार को इस कार्य के लिए तैयार कर लिया। आबा काले पेशवा की निजी स्थायी टुकड़ियों में से एफ का नायक था। अमृत राव ने उसे सारी योजना बताते हुए समझाया कि जब भी उसे एक पूर्व निश्चित इशारा दिया जाय, वह तुरन्त ही सिन्धिया को कैद कर ले। सारी बातें ठीक हो जाने पर बाजी राव पेशवा ने दौलत राव सिन्धिया को अपने महल में निमंत्रित किया, परन्तु सिन्धिया ने इस निमंत्रण को स्वीकार नहीं किया; उस पर पेशबा ने लिखित रूप में सिन्धिया को अपने सामने उपस्थित होने का आदेश भेजा। सिन्धिया ने इस आदेश का पालन किया और पेशवा के सामने उपस्थित हो गया। उसने अभी आसन ग्रहण किया ही था कि वाजी राव ने उससे बता दिया कि इधर कुछ दिनों से राजधानी में उसके आदमियों के द्वारा जो खुराफातें की गई हैं उन्हीं के सम्बन्ध में उससे जवाब तलब करने के लिए उसे बुलाया गया है। इसके पश्चात, उसने बहुत ही उत्तेजित, परन्तु अधिकारपूर्ण स्वर में सिन्धिया से पूछा कि वह अपने को क्या समझता है, जो हर क्षेत्र में हस्तक्षेप करता फिरता है, वह पेशवा का दास है अथवा पेशवा ही उसका दास है? सिन्धिया ने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि बाजी राव कभी इतने अधिकार के साथ भी बोल सकता है, न वह इस अप्रत्याशित जवाबतलबी के लिये तैयार ही था। फिर भी उसने अपने को नियंत्रण में रक्खा और अत्यन्त हीं विनीत हो कर उत्तर दिया कि वह अपने को पेशवा का दासानुदास समझता है और पेशवा के आदेश पर कोई भी कार्य कर सकता है पेशवा जब चाहे, उसकी आज्ञापालकता की परीक्षा ले सकता है। इस पर बाजी राव ने उसे याद दिलाया कि उसके आदमियों और सेवकों ने उसकी प्रजा के साथ कितना अनुचित और अपमान-व्यवहार किया है, केवल प्रजा पर ही नहीं, उन्होंने स्वयम् उसके महल में जाँकर उद्दंडता का व्यवहार किया है और इस सम्बन्ध में अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। पेशवा ने उत्तेजनावश जोर से कहा, "इस प्रकार से जिस तरह उसके व्यक्तित्व एवम् अधिकार के प्रति असम्मान प्रकट किया गया है और उसके अधिकार को चुनौती दी गई है, उसे अब वह और अधिक समय तक बर्दाश्त नहीं कर सकता, इसलिए सिन्धिया को पूना छोड़ कर जामगांव चले जाने का आदेश दिया जाता है।" दौलत राव ने बहुत ही विनम्रता से पेशवा के आरोपों को स्वीकार किया' और उसने पेशवा की आज्ञा के अनुसार तुरन्त पूना छोड़ने की इच्छा भी प्रकट की, किन्तु उसने अपनी कठिनाइयों का उल्लेख किया जिनके कारण वह तुरन्त प्रस्थान करने में असमर्थ था। उसकी सर्वप्रमुख कठिनाई यह थी कि उसके कोष में अब विलकुल धन नहीं रह गया था; इसलिए वह अपनी सेना का वेतन नहीं दे पा रहा था। उसने कहा कि—"बाजी राव को पेशवा की मसनद पर बैठाने के लिए उसे कई स्थानों से बहुत अधिक रकम उधार लेना पड़ा था, जिनको अदा करना सम्माननीय पेशवा के ऊपर ही निर्भर करता है। जब भी पेशवा महोदय उक्त रकम को अदा करने की कृपा करेंगे, 'वह उसी समय पूना छोड़ देगा'। इसी वार्तालाप के दौरान में अमृत राव ने संकेत में ही अपने भाई से पूछा कि क्या अब आबा जी काले

को सिन्धिया को कैद करने का इशारा कर दिया जाय ? परन्तु इस समय तक पेशवा के हृदय में इतना साहस नहीं रह गया था कि वह अपने षड़यंत्र को पूरा किए जाने की अनुमति दे सके,—चाहे वह सिन्धिया की विनम्रता से उसका संकल्प गल गया हो, या अपनी स्वाभाविक निर्बलता के कारण वह अपनी योजना को पूरा करने से डरता रहा हो—परन्तु उसने अमृस राव के संकेतात्मक प्रश्न के उत्तर में सिर हिला कर इनकार कर दिया और सारी योजना धरी की धरी रह गई। उसने अपने इस अनिश्चयात्मक व्यवहार से अपने मित्रों और सहायकों के समक्ष यह प्रकट कर दिया कि वह हृदय से कितना निर्बल है, जिसकी वजह से प्रारम्भ से ही उसका जीवन दुःखमय रहा है। भविष्य में भी, इसी स्वभाव के कारण, कभी चैन की सांस न ले सका। अस्तु, इस वार्तालाप के पश्चात् सिन्धिया ने पेशवा के प्रति अत्यन्त सम्मान प्रकट करते हुए जाने की अनुमति माँगी, परन्तु अब उसका मस्तिष्क बाजी राव के प्रति सन्देह और अविश्वास से भर उठा था। बाजी राव ने अभी तक तो केवल एक कमज़ोरी ही प्रदर्शित की थी, परन्तु कुछ ही समय बाद वह नीचता पर उतर आया और उसने सिन्धिया से बता दिया कि अमृत राव ने उसे कैद करने के लिए ही षड़यंत्र रचा था और बाजी राव की कृपा से ही वह बचा हुआ था अन्यथा अमृत राव तो उसके खून का प्यासा है। उसने सिन्धिया को यह परामर्श भी दिया कि भविष्य में वह अमृत राव के खूनी इरादों से स्वयम् को बचाने के लिए पूर्ण रूप से सतर्क रहे।*

जिस प्रकार सिन्धिया की सेना को बहुत दिनों से वेतन नहीं दिया गया था, उसी तरह बाजी राव पेशवा के सैनिक कई महीनों से वेतन न पाने के कारण बौखलाए हुए थे। इस समय सतारा में जिस तरह से कार्रवाइयाँ हो रही थीं (जिनका वर्णन अभी किया जायगा) उसे देखते हुए शीघ्र ही सेना की आवश्यकता पड़ सकती थी। परन्तु जब सेना को तैयार रहने का आदेश दिया गया तो उन्होंने बकाया वेतन की माँग की। इसी प्रश्न पर अन्त में एक गम्भीर विवाद उठ खड़ा हुआ जिस पर नियंत्रण पाना सेनापति बाला जी पन्त पटवर्धन की शक्ति के बाहर हो गया। बाला जी कुंजर को विश्वास था कि वह सेना को नियंत्रित कर सकेगा और इसी विश्वास के साथ वह सैनिकों के सम्मुख गया और उन्हें समझाने का प्रयत्न किया परन्तु सैनिकों ने उसका मजाक उड़ाना शुरू कर दिया और उसके हस्तक्षेप से चिढ़ कर उन्होंने बाला जी कुंजर की पगड़ी उतार ली और पगड़ी को पैरों से ठोकर मार मार कर सड़कों पर और गलियों में नचाते फिरे। यद्यपि गोविन्द राव पिंगले को भी पेशवा ने कैद में डाल दिया था, फिर भी वह पेशवा तथा मराठा राज्य का शुभचिन्तक ही था। सेना को इस प्रकार बगावत पर उतारू देख कर उसने कारागार में से ही पेशवा के पास एक गुप्त पत्र भेज कर उसे राय दी कि वह नारोपन्त चन्द्रदेव को मुक्त करके उसी को सेना के नियंत्रण का भार सौंप दें, क्योंकि उस समय वही एक व्यक्ति ऐसा है जो इस अशान्तिपूर्ण वातावरण को शान्त कर पेशवा को भयंकर विपत्ति से बचा सकता है। उस समय की संकटपूर्ण स्थिति में बाजी राव ने उस परामर्श को सहर्ष स्वीकार कर लिया और न केवल नारोपन्त को बल्कि पिंगले को भी कारागार से मुक्त कर दिया। यद्यपि वह भी नाना फड़नवीस के मंत्रिमंडल में का एक सदस्य था, परन्तु नाना फड़नवीस से उसकी बहुत पटती नहीं थी।

---

* सिन्धिया और पेशवा के बीच हुए वार्तालाप का विस्तृत विवरण कर्नल पामर के पत्रों में दिया गया है,

चूँकि नारोपन्त चक्रदेव एक अनुभवी और लोक प्रिय सेना नायक था और सैनिक उस पर बहुत अधिक विश्वास करते थे, अतः उसे इस विद्रोहपूर्ण स्थिति पर काबू पाने में एक दिन भी न लगा और सैनिक पूर्ण रूप से शान्त एवम् सुव्यवस्थित हो गए। परन्तु बाजीराव के पास इस समय न तो पूना में अधिक सेना ही थी और न वह अपनी सेना के अधिकांश भाग के साथ सतारा की तरफ गए हुए नए सेनापति पर विश्वास ही करता था, इसलिए कारागार से एक और महत्वपूर्ण व्यक्ति को, अपनी सहायता के लिए मुक्त करना उसे आवश्य जान पड़ा और यह व्यक्ति था, परशुराम भाऊ।

जब बाजीराव नाना फड़नबीस को अपदस्थ करके उसके नियत्रन्ण से छुटकारा पाने का प्रयत्न कर रहा था तो उसने सतारा के राजा को भी अपने षड़तंत्र का भागीदार बनाया था। उस समय नाना फड़नबीस का एक सहयोगी, बाबू राव किशन सतारा में राजदूत था और वहाँ की गुप्त खबरें नाना के पास पहुँचाता रहता था। बाजीराव ने सतारा के राजा को परामर्श दिया था कि वह बाबूराव किशन को कैद में डाल कर सतारा के किले को पूर्णतः अपने अधिकार में ले ले। उसने राजा को विश्वास दिलाया था कि वह पुनः पुराने ढंग की सरकार बना कर शिवा जी महाराज के वशंज को एक बार फिर पुराने स्थान पर स्थापित करना चाहता है तथा उसी प्रकार स्वामिभक्ति के साथ उसकी सेवा करना चाहता है जिस प्रकार पेशवा बाजीराव प्रथम ने किया था। उतना प्रलोभन और प्रोत्साहन सतारा के राजा को पेशवा की तरफ खींचने के लिए पर्याप्त था। उसने एकमात्र कंटक बाबू राव को कैद में डालकर, किले पर पूर्ण अधिकार कर लिया। परन्तु बाजीराव का उपरोक्त आश्वासन मात्र आश्वासन ही सिद्ध हुआ। ज्यों ही उसने नाना फड़नवीस तथा उसके सहयोगियों से निपट कर फुरसत पाई, अपने एक सरदार शिवराम नारायण को सतारा के राजा से समस्त अधिकार अपने हाथ में लेने के उद्देश्य से, अपना प्रतिनिधि बना कर भेज दिया। जब शिवराम नारायण ने यह आदेशपत्र सतारा के राजा के सम्मुख रक्खा तो वह क्रोध से जलभुन गया। उसने शिवराम से कहा कि वह किले की देखभाल खुद कर लेगा और आशा प्रकट की कि उसका अनुगत पेशवा, शीघ्र ही अपने इरादों और वादों को पूरा करेगा। सतारा के राजा का यह उत्तर सुन कर पेशवा ने अनुभव किया कि अपने फैलाए हुए जाल में वह स्वयम् फँस गया है और उसे राजा से ऐसा वादा नहीं करना चाहिए था। परन्तु अब तो स्थिति का सामना करना ही था, अतः उसने माधवराव रस्तिया को सतारा की ओर जाने का आदेश दिया और समझा दिया कि वह किसी भी प्रकार राजा से अपनी सेना को किले के भीतर ले आने की अनुमति प्राप्त कर ले। उसने सोचा कि यदि सेना किसी प्रकार किले में पहुँच जाती है, तो आगे का कार्य आसान हो जायगा—उसने रस्तिया के साथ एक विशाल तथा पूर्णतः सज्जित सेना को रवाना कर दिया। परन्तु इस समय तक सतारा का राजा, शिवराम नारायण की वापसी से ही, सतर्क हो गया था क्योंकि वह पेशवा की तरफ से जोर जबर्दस्ती की सम्भावना से आशंकित था। इतने दिनों की पराधीनता के पश्चोत् अब उसमें भी स्वतंत्र होने की आकांक्षा जाग पड़ी थी। अब वह पेशवा के समक्ष झुकने के लिए जरा भी तैयार न था। वह भीतर ही भीतर पेशवा का सामना करने की तैयारी में लगा हुआ था तथा अपने समस्त सम्बन्धियों एवम् सहयोगियों को एकत्रित कर चुका था। जब माधवराव रस्तिया अपनी विशाल वाहिनी के साथ सतारा के पास पहुँचा तो राजा ने किले के फाटक को बन्द करवा दिया। रस्तिया ने हर सम्भव प्रयत्न किया कि सेना के साथ किले के भीतर जा सके, परन्तु राजा न तो उसकी धमकियों से ही भयभीत हुआ, न किसी प्रकार की सन्धिवार्ता के लिए ही तैयार हुआ। इसी समय दौलतराव सिन्धिया का ध्यान भी सतारा की तरफ आकर्षित हुआ। उसे तुरन्त सन्देह हो गया कि पेशवा ने सतारा के राजा के साथ जो

चालचली थी, उसका एक मात्र उद्देश्य था, स्वयम् अपनी शक्ति में वृद्धि करना; सिन्धिया तो चाहता ही था कि किसी प्रकार भी, पेशवा की शक्ति क्षीण होती जाय, अतः उसने गुप्त रूप से सतारा के राजा के साथ वार्ता प्रारम्भ कर दिया। उसने राजा को प्रोत्सासित किया कि वह किसी भी तरह पेशवा की सेना को किले के भीतर न जाने दे और दृढ़तापूर्वक किले को अपने अधिकार में बनाए रखने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करे। उसने राजा को आश्वासन दिया कि ब्राह्मणों के शासनरूपी जुए को उतार फेंकने में उसको सहायता करेगा। इसी उद्देश्य से उसने अपनी पाँच बटालियनों और तोपखाने सतारा भेजने की तैयारी करने लगा।*

सतारा के राजा ने, सिन्धिया का प्रोत्साहन पाकर और जोर से सैन्य शक्ति बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। जब माधवराव रस्तिया को इस विषय में सारा समाचार मिला तो उसने पहले तो राजा के इन प्रयत्नों में हस्तक्षेप करके, उसे पेशवा की ललकारने से रोकने का प्रयास किया, परन्तु राजा के किसी भी तरह न मानने पर तथा युद्ध के लिए उसे उतारू देखकर माधवराव रस्तिया ने उस पर आक्रमण कर देने की धमकी दी, परन्तु यह धमकी पहुँचते पहुँचते राजा की तरफ से उस पर आक्रमण कर दिया गया और उसे मजबूर होकर पीछे लौटना पड़ा। उसने कुछ पीछे लौट कर मालेगाँव में पड़ाव डाला। उसके पीछे हटने का समाचार पाकर पेशवा बहुत परेशान हो उठा; वह पूना में स्थित सेना के अशान्तिपूर्ण व्यवहार के कारण वैसे ही चिन्तित था, अब सतारा के राजा की इस बढ़ी हुई शक्ति का प्रमाण पाकर वह अत्यन्त ही चिन्तित हो उठा।

जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं, परशुराम भाऊ पटवर्धन इधर कुछ समय से क़ैद में पड़ा हुआ था; उसको क़ैद किया था माधवराव रस्तिया के भाई आनन्दराब ने। भाऊ को इस समय तक भण्डगाँव में रक्खा गया था परन्तु इसी समय उसे वहाँ से हटा कर वाई में रख दिया गया। परशुराम भाऊ कौ अपने प्रभाव पर अब भी विश्वास था, अतः उसने पेशवा से अनुरोध किया कि सेना सम्बन्धित कठिनाइयों को हल करने तथा सतारा के किले पर अधिकार करने के लिए वह पेशवा को अपनी सेवाएँ अर्पित करने का इच्छुक है बशर्ते कि उसे इस उद्देश्य के लिए सेना को संगठन करने की अनुमति दे दी जाय। पेशवा इस नए आश्रय स्तम्भ को पाकर मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ और उसकी चिन्ता पर्याप्त सीमा तक घट गई। उसने परशुराम भाऊ के इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। पेशवा की अनुमति से परशूराम भाऊ को मुक्त कर दिया गया और उसने कुछ ही समय में एक पर्याप्त शक्तिशाली सेना का संगठन करके दिखा दिया। उसने इस सेना को वाई में ही तैयार किया था।

अब हम पाठकों का ध्यान सतारा की स्थिति की तरफ आकर्षित करते हैं। यह नगर किले के अन्दर ही, काफ़ी गहरे स्थान पर स्थित है, जिसके तीन तरफ़ प्राकृतिक रक्षकों के रूप में पर्वतीय श्रेणियाँ फैली हुई हैं। पश्चिम तरफ़ सह्याद्रि की श्रेणियाँ इसे उधर की बस्तियों से एकदम अलग कर देती है, तथा मेना, कृष्णा, व ऊरमूरी नदियाँ इसे हर दिशा की बस्तियों से अलग करती हैं,

---

* बापू खन्नू द्वारा तत्कालीन इतिहास। बापू खन्नू सतारा के राजा का दूत था और उसी के माध्यम से सिन्धिया और राजा के बीच उक्त वार्ता हुई थी। इस अवसर पर शीरज़ीराव घाटगे तथा सीदोजी राव निम्बालकर भी उपस्थित थे।

इस समय राजा की सेना के दस्ते नगर में ही कैम्प डाले पड़े हुए थे। वर्षा का मौसम था और बारिश जोरों से हो रही थी और हर तरफ जल ही जल दिखाई पड़ता था। इस समय नदी में इतना अधिक पानी भरा हुआ था कि उसको पार करने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। अतः राजा की सेना ने अपने लिए इससे अधिक सुरक्षित कोई दूसरा स्थान नहीं पाया; वे अपनी सुरक्षा के प्रति इतने निश्चिन्त और असावधान हो गए कि उन्होंने पेशवा की सेना की खबर लेना भी महत्वपूर्ण नहीं समझा क्योंकि उन्हें आशा ही नहीं थी कि पेशवा की सेना इतना मयानक रूप धारण किए हुए नदी को पार करके उनके ऊपर आक्रमण भी कर सकती है परन्तु परशुराम भाऊ एक अनुभवी सेना नायक था। वह सतारा में घुसने के लिए मार्ग ढूढ़ता रहा और अन्त में उसने एक ऐसे स्थान ढूँढ पाने में सफलता प्राप्त ही कर ली जहाँ से मेना नदी को पार किया जा सकता था। वह सतारा की सेना को पता लगने से पहले पहले लगभग १०००० सैनिकों के साथ नदी को पार करके सतारा की ओर बढ़ चला। इधर जैसे ही राजा और उसकी सेना को भाऊ के बढ़ने की खबर मिली, वे किंकर्तव्य विमूढ़ हो गए। वैसे भी राजा की सेना भाऊ के मुकाबिले में बहुत कम थी। उसके कुल सैनिकों की संख्या लगभग २५०० थी, दूसरे उन्हें किसी खतरे या आक्रमण की स्वप्न में भी आशा नहीं थी। राजा ने किसी प्रकार भाग कर किले में सर छुपाया; उसके सैनिक भी इंधर उधर भागने का रास्ता ढूंढने लगे, परन्तु राजा के कुछ सम्बन्धियों—चेलो जी, सेना जी मोहिते, कुशाबा राजा और दुर्गाजी राजा महरीक आदि ने किसी प्रकार भागते हुए सैनिकों को रोका। इन्हीं उत्साही लोगों के दल में राजा का छोटा भाई चित्तौर सिंह भी सम्मिलित हो आया, जो कि इस दल की जान और प्रेरणा-स्रोत था। जैसे ही उन्होंने सैनिकों के एक छोटे से दल को एकत्रित कर लिया, वैसे ही वे शहर की बाहरी सीमा पर परशुराम भाऊ के नेतृत्व में बढ़ी आ रही पेशबा की सेना को रोकने के इरादे से, उसी दिशा में चल पड़े। उन्होंने कुछ देर तक भाऊ की सेना की प्रबल बाढ़ को रोक रक्खा, परन्तु वे मुट्ठी भर आदमी कितनी देर तक टिक ही सकते थे; फिर भी वे कुछ क्षणों तक अडिग पर्वत श्रेणियों की भाँति अपने स्थान पर डटे रहकर प्रबल प्रतिरोध करते रहे। कुछ ही देर के युद्ध के पश्चात चेलो जी मोहिते मारा गया और कुशाबा जी तथा दुर्गाजी राजा महकरी बुरी तरह घायल हो गए। अब अपनी सेना को हताश तथा निरुत्साहित देखकर चित्तौर सिंह ने उन्हें वापस लौट चलने का आदेश दिया। परन्तु उसके सतत प्रयासों के बाद भी, चेलो जी की मृत्यु का बदला लेने के जोश में सेना जी मोहिते शत्रुओं को पीठ दिखाने से इनकार कर दिया। उसके लक्ष्य का एकमत्र केन्द्र था माधव जी रस्तिया और वह किसी तरह उसी से भिड़ना चाहता था। अन्त में उसे अवसर मिल हो गया और उसने माधवराव पर वार कर दिया, जब कि वह चारों तरफ से अपने सैनिकों से घिरा हुआ घा। माधवराव ने वार बचा लिया और शीघ्र ही सेना जी मोहिते के टुकड़े टुकड़े कर दिए गए।

अब इस विजयी सेना ने सतारा में प्रवेश किया और लूट-मार का बाजार गर्म हो गया। भाऊ की सेना की एक टुकड़ी ने भागते हुए चित्तौरसिंह का पीछा किया, परन्तु वह अपने कुछ साथियों के साथ भाग कर किला पर पहुँचने में समर्थ हो गया जहाँ उसे शरण प्राप्त होने में किसी विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा।

अब अन्त में राजा ने स्वयं को भाऊ के समक्ष बहुत निर्बल महसूस कर लिया तथा आत्म समर्पण कर दिया। इस प्रकार अपने उद्देश्य को पूरा कर लेने के बाद शर्त के अनुसार भाऊ को अपनी सेना को विघटित कर देना चाहिए था परन्तु उसने यह बहाना बनाया कि उसके पास इतना धन नहीं

है कि वह सैनिकों का बकाया वेतन चुका सकने में समर्थ हो सके और सैनिक विना वेतन लिए विदा होगे नहीं। साथ ही उसने शपथ ली कि अब वह बाजीराब को ही अपना वास्तविक स्वामी जानकर उसकी हर आज्ञा का पालन तत्परता से करेगा; अन्त में बाजीराव पेशवा ने परशुराम भाऊ पटवर्धन को चमा प्रदान कर देने का वादा किया, परन्तु साथ ही उसकी पिछली कार्रवाइयों के दण्डस्वरूप पेशवा ने उस पर १० लाख रुपया का जुर्माना भी लगा दिया।

चालीसवां अध्याय

मराठा राज्य की गिरती हालत

[१७६८--१८००]

पूना की अव्यवस्थाओं में वृद्धि—महादजी सिन्धिया की विधवाएँ—अमृत राव पर कपटपूर्ण आक्रमण--पेशवा और सिन्धिया के बीच मतभेद और विवाद--नाना फड़नवीस की मुक्ति--सिन्धिया और पेशवा में पुनः मेल--सिन्धिया की आज्ञा से शीरजी राव घाटगे को कैद किया जाना—अँग्रेजों की नीति से पेशवा और सिन्धिया के संगठन का शक्तिशाली होना—फिर से प्रशासन सम्हालने के लिए नाना से अनुरोध—बाजी राव का कपटपूर्ण व्यवहार—नाना का व्यवहार—निजाम अली और अँग्रेजों में नई सन्धि--टीपू के क्षेत्र का वँटवारा—अँग्रेजों और निजाम के बीच फिर नई सन्धि—सिन्धिया की गतिविधियाँ--महादजी सिन्धिया की विधवाओं के उपद्रवों को दबाने के लिए बालोबा तात्या की पुनः नियुक्ति—कोलापुर के राजा के साथ युद्ध की स्थिति—परशुराम भाऊ की पराजय और मृत्यु—कोल्हापुर का घेरा।

पूना दरबार की परिस्थितियाँ दिन ब दिन खराब ही होती जा रही थीं, विशेषकर इस समय तक अव्यवस्था अपनी चरम सीमा तक पहुँच गई थी। इसी समय सिन्धिया के ऊपर एक विपत्ति के बादल छाए थे। यह विपत्ति मृत महादजी सिन्धिया की विधवाओं द्वारा खड़ी की गई थी क्योंकि वे दौलत राव सिन्धिया के चरित्र और व्यवहार, दोनों से ही जली भुनी बैठी थीं।

जब महाद जी सिन्धिया की मृत्यु हुई, तो उसकी तीन पत्नियाँ थीं। इनमें से जो सबसे छोटी थी उसका नाम था भागीरथी बाई। वह अभी बहुत कम आयु की ही थी, साथ ही साथ अपूर्व सुन्दरी भी थी। जब महाद जी सिन्धिया ने उसे गोद लेकर अपना उत्तराधिकारी बनाने का निर्णय कर लिया, तो उसने दौलत राव को आदेश दिया कि उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी विधवाओं से अच्छा व्यवहार किया जाना चाहिए जिससे उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो। दौलत राव ने वादा किया कि वह इन सम्माननीय महिलाओं के सुख सुविधा के लिए उत्तम से उत्तम व्यवस्था करेगा। परन्तु गद्दी पर बैठने के बाद उसने उनके सुख दुख पर कभी ध्यान ही न दिया और वे उसी प्रकार उसके कैम्प में ही पड़ी रह गइं। न तो दौलत राव ने उनके निवास की कोई उचित व्यवस्था की और न उनके सम्मानजनक निर्वाह के लिये आय का कोई साधन ही उनके हाथ में दिया। धीरे धीरे सिन्धिया के कैम्प की सैनिक व्यवस्थाओं से ये विधवाएँ एक दम ऊब गई, साथ ही साथ जो सुविधाएँ उन्हें मिली भी थीं, वे भी धीरे धीरे सीमित ही होती जा रही थीं। परन्तु वे भी अभी तक सन्तोष किए चुपचाप बैठी थीं और दौलत राव के पास उन्होंने अपने कष्टों के विषय में अभी तक कोई भी शिकायत नहीं पहुँचाया था। परन्तु इसी समय चाहे सत्य हो चाहे इन विधवाओं की खुराफात, आयु में बड़ी दोनो ज्येष्ठा विधवाओं ने कुछ दिनों बाद यह शोर मचाया कि दौलत राव तथा छोटी रानो भागीरथी बाई के बीच अनैतिक सम्बन्ध

१७९८ ई०]

स्थापित है । उन्होंने इस दोषारोपण के साथ इस अनैतिक सम्बन्ध पर खुल कर घृणा व्यक्त की । उन दोनों ही विधवाओं ने दौलत राव की अत्यधिक निन्दा एवम् भर्त्सना करते हुए खुली घोषणा की कि वे दौलत राव जैसे व्यक्ति को कभी भी अपना पुत्र नहीं समझ सकतीं, उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति अपनी धर्म माता के साथ अनैतिक सम्बन्ध रखता है, उसका मुँह भी देखना पाप है । इस चारित्रिक दोषारोपण से सिन्धिया किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया । उसे अत्यधिक परेशान और दुखी देख कर शीरजीराव घाटगे ने विधवाओं को समझा कर शान्त करने का प्रयत्न किया, परन्तु उन दोनों विधवाओं ने उसे अपने शिविर में घुसने की अनुमति ही नहीं दी और अपमानजनक ढंग से उसे लौट जाने का आदेश दिया । इस पर घाटगे जबर्दस्ती उनके शिविर के घेरे में घुस गया, उन्हें इस तरह की गन्दी अफवाहों को फैलाने से रोकने के लिए तरह तरह से डराया धमकाया और उनके साथ अत्यन्त असभ्यतापूर्ण तथा अपमानपूर्ण व्यवहार किया, जिससे इन विधवाओं में बदला लेने की भावना ने और जोर पकड़ा। उन्होंने राज्य के धर्मविशारदों तक इस विवाद को पहुँचा दिया, साथ ही घाटगे की शिकायत भी खूब बढ़ा चढ़ा कर की गई । उस समय सिन्धिया राज्य में शेणवी ब्राह्मणों का प्रभाव था । उसकी सरकार के ऊँचे ऊँचे पदों पर शेणवी ही थे । इन पदाधिकारियों में से अनेक लोग एक दूसरे से विवाह सम्बन्धों द्वारा एक दूसरे के साथ बँधे हुए, साथ ही जाति की एकता के कारण उनमें परस्पर अत्यधिक मेल एवम् संगठन था । इन समस्त शेणवी ब्राह्मणों का नेता था बालोबा तात्या, परन्तु उसके कैद कर दिए जाने के कारण उनमें कुछ असन्तोष व्याप्त था । अतः उन्होंने यह अवसर पाकर इस बार घटगे के विरुद्ध दोनों विधवाओं का पक्ष ग्रहण किया । इस विषय पर एक लम्बे अरसे तक विरोध और वादा विवाद चलता रहा । अन्त में दौलत राव सिन्धिया इन विधवाओं द्वारा पैदा किए गए अशान्त वातावरण से बिलकुल परेशान हो उठा और उसने उनको कहीं नजरबन्द कर देने का इरादा किया, क्योंकि वह जानता था कि जब तक उनका मुँह खुला रहेगा, तब तक उनकी जबान कभी भी चुप नहीं रहेगी । अन्ततः उसने उनके विवाद का निर्णय करते हुए घोषणा की कि अब ये विधवाएँ बुरहानपुर में ही स्थायी रूप से निवास करेंगी तथा अपने जीवन को सम्मानजनक ढंग से बिताने के लिए उन्हें कुछ क्षेत्रों की मालगुजारी की आय उनके नाम कर दी जायगी और उन्हें अलग से भी एक निश्चित रकम दी जायगी ।

सिन्धिया के इस निर्णय के अनुसार विधवाओं ने झटपट तैयारी कर ली और पूना से चल पड़ी, परन्तु उनके साथ सिन्धिया ने जो रक्षक दल भेजा था, उसे भली भाँति मालूम था कि इन विधवाओं को कहाँ ले जाना है । पूना में ही सिन्धिया ने उन्हें अपनी योजना समझा दिया था और आदेश दिया था कि इन्हें अहमद ननर के किले में सम्मान के साथ, परन्तु पहरे में रक्खा जाय । अतः उक्त आदेशानुसार उन्होंने बुरहानपुर के बजाय चुपचाप अहमदनगर का मार्ग पकड़ा । परन्तु सिन्धिया की इस योजना का भण्डाफोड़ इन रक्षकों में से ही किसी ने कैम्प में कर दिया था और कुछ लोगों को पता लग गया था कि सिन्धिया अपने चाचा की इन विधावाओं के साथ कैसा व्यवहार कर रहा है । ऐसे लोगों में मुजफ्धर खाँ नामक एक पठान सरदार भी था जिसकी, सिन्धिया के शेणवी ब्राह्मण पदाधिकारियों से अच्छी पटती थी । वह सिन्धिया की सेना के चुने हुए सवारों की एक टुकड़ी का सरदार था । वह सिन्धिया के इस नीचतापूर्ण व्यवहार से बहुत ही उत्तेजित हुआ और इन दोनों महिलाओं की रक्षा के लिए वह अपने कुछ चुने हुए सवारों के साथ अहमद नगर की तरफ रवाना हो गया । अभी वह रक्षक दल महादजी की विधवाओं के साथ भीमा नदी को पार ही कर रहा था कि तब तक मुजफ़्फ़र खाँ अपने सवारों के साथ उनके ऊपर आ धमका । उसने इस रक्षक दल पर आक्रमण कर

दिया और कुछ देर के साधारण संघर्ष के पश्चात् वह इन महिलाओं को रक्षक दल से छीन लेने में सफल हो गया। वह इन विधवाओं के साथ सिन्धिया के कैम्प की तरफ वापस चल पड़ा और कैम्प से कुछ पहले ही वह उनके साथ रुक गया। जब सिन्धिया को मुजफ्फर खाँ के इस हस्तक्षेप का समाचार मिला तो वह क्रोध से आगबबूला हो गया। पहले तो उसने इस दुस्साहसपूर्ण कार्य के लिए उसे दण्डित करने का इरादा किया परन्तु फिर वह असमंजस में पड़ गया। वह जानता था कि उसकी सेना के बहुत सरदार इन विधवाओं के पक्ष में हैं और उनके द्वारा मुजफ्फर खाँ को यदि कोई दण्ड दिया गया तो सम्भव है इन सरदारों के हृदय में असन्तोष की आग सुलग उठे। फिर उसे यह भय था कि यदि उसने इन पठान सवारों को दण्डित करने का प्रयास किया तो वे मरने मारने पर उतारू हो जायँगे और यदि कहीं इस संघर्ष में इन महिलाओं में से किसी की मृत्यु हो जाय जो सम्बन्ध में उसकी माताएँ थीं और दुर्भाग्यवश यदि ऐसा हो ही गया तो व्यर्थ ही में उसके माथे पर मातृघाती होने का अमिट कलंक लग जायगा जिससे कि देश भर में उसके इस महान पाप की चर्चा फैल जायगी और वह कहीं मुँह दिखाने के योग्य भी न रहेगा। सिन्धिया की अनिच्छा के बावजूद भी शीरजी राव घाटगे निरन्तर उस पर दबाव डालता रहा कि मुजफ्फर खाँ की उस बेहूदगी पर उसे दण्डित न करना, उसकी उद्दंडता को प्रोत्साहित ही करना होगा। सिन्धिया कई कारणों से ऐसा नहीं चाहता था, जिनमें से एक प्रमुख कारण यह था कि इस षड़यंत्र में उसकी दोनों ज्येष्ठा धर्ममाताएँ भी सम्मिलित थीं, परन्तु घाटगे की जिद के कारण वह भी इस विरोध एवम् षड़यंत्र को प्रारम्भ में ही कुचल देने के लिए तैयार हो गया और उसने शीरज़ी राव घाटगे को अनुमति दे दिया, कि वह जिस तरह चाहें, उनके खिलाफ कार्रवाई करे। परन्तु मुजफ्फर खाँ इतना दुस्साहस पूर्ण कार्य करने के बाद चुपचाप नहीं बैठा था। उसे सिन्धिया और घाटगे की दुरभिसन्धि के विषय में राई रत्ती खबर थी। उसने भी पेशवा के भाई अमृतराव का आश्रय ग्रहण करने का निश्चय कर लिया और भीतर ही भीतर सारी तैयारी कर लिया। इस समय अमृतराव जुन्नार की यात्रा पर निकला हुआ था और भीमा नदी के किनारे पड़ाव डालकर विश्राम कर रहा था। घाटगे की तरफ से खतरे का आभास पाते ही मुजफ्फर खाँ ने अपनी योजनानुसार सिन्धिया परिवार की दोनों विधवाओं के साथ अमृतराव के कैम्प की ओर प्रस्थान कर दिया। अमृतराव ने उसकी सारी बात तथा विधवाओं के संकट का समाचार सुनकर प्रसन्नता से उन्हें संरक्षण प्रदान किया तथा अपने आश्रय में रख लिया। उधर मुजफ्फर खाँ के रवाना होते ही शीरजीराव घाटगे ने एक सशक्त टुकड़ी के साथ उसका पीछा किया, परन्तु मार्ग में वह उसे नहीं पा सका। मुजफ्फर खाँ को खबर थी कि उसका पीछा किया जा रहा है, अतः दोनों विधवाओं को अमृतराव के आश्रय में सौंप देने के पश्चात् वह अपनी टुकड़ी के साथ घाटगे को सबक देने के लिए पीछे लौट गया और अपने पीछा करने वालों पर जोरदार आक्रमण कर दिया। घाटगे की टुकड़ी उसके उत्साह के समक्ष एक पल भी न टिक सकी और थोड़ी ही देर में तितर बितर हो गई। उनको पराजित करने के पश्चात वह विजय गर्व से भरा हुआ, पुनः अमृतराव के कैम्प में चला आया।

अब सिन्धिया ने अपनी विधवा धर्ममाताओं को अपने अधिकार में करने के अतिरिक अमृतराव को भी इस हस्तक्षेप के लिए, दण्ड देने की योजना बनाई जिसके अनुसार सातवीं जून की रात को अमृतराव के कैम्प का विनाश करने के लिए तथा विधवाओं को कैद करने के लिए दौलतराव सिन्धिया ने अपनी प्रशिक्षित सेना की पाँच पलटनों को रवाना कर दिया। इन पलटनों की कमान डु प्रैट नामक एक फ्रांसीसी अफसर के हाथ में थी। यद्यपि डु प्रैट ने अमृतराव के कैम्प पर प्रबल आक्रमण किया, परन्तु अमृतराव असावधान नहीं था उसने भी उतना ही प्रबल प्रतिरोध किया और अन्त में डु प्रैट

को काफी हानि उठाकर पीछे लौटने पर विबश होना पड़ा। सिन्धिया की इस पराजय के पश्चात दोनों पक्षों में सन्धिवार्ता प्रारम्भ हुई; सिन्धिया ने फिर वादा किया कि दोनों विधवाओं को रहने के लिए वही स्थान दिया जायगा. जिसे वे पसन्द करें तथा सम्मानपूर्ण ढंग से जीवन निर्वाह करने के लिए वह उन्हें पर्याप्त धन भी प्रतिवर्ष दिया करेगा। अमृतराव को सिन्धिवा की नीयत पर जरा मी अविश्वास नहीं हुआ और न किसी धूर्तता की गन्ध आई अतः उसने सिन्धिया के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और भीमा नदी के किनारे से अपना कैम्प उखाड़ कर वह पूना की ओर चल पड़ा जहाँ कि सिन्धिया अभी तक टिका हुआ था। पूना के पास पहुँचने पर उसने सिन्धिया के कैम्प से कुछ ही दूरी पर खिड़की पुल के पास अपना कैम्प गाड़ दिया। उसने विधवाओं को अपने साथ नहीं रक्खा था, वल्कि इस समय वे विट्ठलवाड़ी के आश्रम में निवास कर रही थीं। कुछ समय तक तो सिन्धिया अमृतराव से मित्रवत व्यवहार करता रहा और उसे अपने भयानक इरादे के प्रति जरा भी आशंकित नहीं होने दिया। अमृतराव सिन्धिया के इस व्यवहार से बहला रहा और धीरे धीरे अपनी सुरक्षा के प्रति लापरवाह होता गया। इसी समय मुहर्रम का त्योहार आ गया। बड़ी धूम धाम से ताजिए निकले और वातावरण बहुत उल्लासपूर्ण हो उठा। ग्यारहवी मुहर्रम को, जब ताजियों को नदी में डुबौने के लिए लम्बे चौड़े जुलूस के साथ लोग नदी के किनारे एकात्रित हुए, तो शीरजी राव घाटगे ने इस कोलाहलपूर्ण वातावरण से लाभ उठाया। वह अपने कुछ दस्तों के साथ जुलूस में शान्ति और सुव्यवस्था बनाए रखने के बहाने से नदी के पास पहुँच गया, उसके साथ दो ब्रिगेड प्रशिक्षित पैदल सैनिकों के साथ माश्यूर ड्रजन नामक एक फ्रांसीसी अफसर भी था। वे अपने साथ कुछ तोपें भी ले आए थे अमृतराव का कैम्प नदी पर बने खिड़की पुल के पास ही पड़ा हुआ था, जो कि घाटगे की वर्तमान स्थिति से कुछ ही दूरी पर था। अवसर पाते ही शीरजी राव घाटगे की २५ तोपें अमृतराव के कैम्प की ओर मुँह घुमाकर एकसाथ आग उगलने लगी। उधर अमृत राव के सैनिक निःशंक भाव से पड़े गपशप कर रहे थे। इस अचानक गोलाबारी से वे घबरा उठे। शीरजी राव अपने दस्तों के साथ आगे बढ़ा और अमृत राव के कैम्प पर धावा बोल दिया। ड्रजन के दोनों ब्रिगेडो ने भी पूर्ण शक्ति से अमृत राव के सैनिकों को गोलियों से भूनना शुरू कर दिया और कैम्प को तहस नहस करने लगे। अमृतराव के सैनिक तितर बितर हो गये और जिसे जिधर ही रास्ता मिला उधर ही भाग निकला। शीरजी राव के सैनिकों ने अमृतराव के कैम्प के मनमानी लूट-पाट मचाई। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, इस समय दोनों विधवाएँ बिट्ठलबाड़ी के आश्रम में थीं, अतः सिन्धिया के इस आक्रमण को पेशवा के भाई के ऊपर प्रत्यक्ष आक्रमण की संज्ञा दी गई और सिन्धिया के इस कार्य को पेशवा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा समझा गया। अब पेशवा सिन्धिया से निपटने के लिए तैयारियाँ करने लगा और अपने विभिन्न सहयोगियों को तुरन्त उपस्थित होने का आदेश भेज दिया। काशीराव होलकर तुरन्त अमृतराव से आ मिला। काफी संख्या में लोग अमृतराव के झण्डे के नीचे एकत्रित हो गए। पेशवा ने निजाम अली के साथ आक्रमण और प्रतिरक्षात्मक सन्धि करने के लिए उससे सन्धिवार्ता प्रारम्भ कर दी। नाना के साथ हुई म्हाड़ की सन्धि में निजाम अली के साथ की गई शर्तों को पूरा नहीं किया गया था अतः निजाम अली पेशवासे असन्तुष्ट था, उसे सन्धि के लिए तैयार करने में पेशवा को काफी हानिप्रद शर्तों पर राजी होना पड़ा। यह सारी सन्धि वार्ता निजाम अली के पूना स्थित राजदूतो के माध्यम से हुई थी। अन्त में निम्नलिखित शर्तों पर निजाम अली ने सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर किया। म्हांड़ की सन्धि में नाना फड़नवीस ने निजाम अली के साथ जो शर्तें तै की थी और पेशवा के हस्तक्षेप के कारण ये शर्तें पूरी नहीं की गई थीं, पेशवा ने उन सबको पूरा करने का वादा किया। उसने यह वादा भी किया कि भविष्य में वह बीदर के

इलाके से चौथ नहीं वसूल करेगा। सिन्धिया के विरुद्ध पेशवा की सहायता करने के बदले में पेशवा ने वादा किया कि वह निजामअली को अलग से एक इलाका सदैव के लिए दे देगा, जिसकी वार्षिक आय लगभग ८ लाख रुपया होगी। इन उपलब्धियों के बदले में निज़ाम अली ने वादा किया कि भविष्य में जब कभी भूतपूर्व दीवान नाना फड़नवीस पेशवा के अधिकारों में हस्तक्षेप करने का प्रयत्न करेगा तो वह उसके विरुद्ध पेशवा की हर सम्भव सहायता करेगा, परन्तु उसने पेंशवा से यह वादा भी करा लिया कि यदि सिन्धिया किसी तरह नाना फड़नवीस को उसकी कैद से छुड़ाने में सफल हो गया तो पेशवा नाना फड़नवीस को एक लाख रुपया प्रतिवर्ष पेंशन के रूप में देगा। पेशवा ने राघोजी भोंसले के समक्ष भी यह प्रस्ताव रक्खा कि यदि वह जाहे तो वह भी इस शन्धि में सम्मिलित हो सकता है। उसने वादा किया यदि राघोजी भोंसले, दौलतराव सिन्धिया के विरुद्ध उसकी मदद करेगा, तो उसे गढ़ मंडला पर पूर्ण अधिकार प्रदान किया जायगा।

पेशवा की इन लम्बी चौड़ी तैयारियों को देखकर सिन्धिया के कान खड़े हो गए और वह अब किसी तरह सुलह कर लेने के लिए व्यग्र हो उठा। अब विपत्ति में पड़ जाने पर इस विवाद को अंग्रेज सरकार की मध्यस्थतां में निर्णीत कराने के लिए वह स्वयम् उत्सुक हो उठा। कर्नल पामर ने सुलह के लिए उसके समक्ष जो शर्तें रक्खी उनमें से प्रमुख ये थीं—(१) वह अपने सभी मंत्रियों को बरखास्त कर दे; (२) विधवाओं के निर्वाह के लिए उनके नाम एक जागीर लगा दे, तथा (३) पेशवा की अधीनता स्वीकार करके पूना दरबार का आज्ञापालक बना रहे। सिन्धिया कर्नल पामर के परामर्श से सहमत होता नहीं प्रतीत हुआ। परन्तु जब दोनों विधवाओं ने निर्णय के लिए अत्यधिक हठ पकड़ लिया और उसे परेशान करने लगीं तो सिन्धिया कान में तेल डाले चुपचाप न पड़ा रह सका और उसे कुछ न कुछ करने की योजना बनाने के लिए विवश होना पड़ा। वह अब गम्भीरता पूर्वक पूना से हिन्दुस्तान लौट जाने के लिए अत्यधिक उत्सुक था, परन्तु कठिनाई यह थी कि उसके कोष में अब कुछ भी नहीं रह गया था, जब कि उसके सैनिकों का कई महीनों का वेतन बकाया पड़ा था और सैनिक अपने वेतन के लिए असन्तोष प्रकट कर रहे थे।

बाजीराव और निजाम अली की सन्धि की खबर पाकर सिन्धिया नें भी किसी ऐसी शक्ति से सन्धि करने का विचार किया ताकि हाल में ही सन्धिबद्ध पेशवा और निजाम जल्दी उस पर आक्रमण करने का साहस न कर सकें। इसी उद्देश्य से उसने टीपू सुल्तान के पास अपने एक दूत के हाथ सन्धि प्रस्ताव भेजा। सिन्धिया के इस कार्य की भनक पाकर गोविन्द राव काले ने पेशवा को राय दी कि वह भी टीपू के पास अपना दूत भेजे जिससे कि टीपू यदि उसकी सहायता न करे तो विरोध भी न करे। बाजीराव ने उसके परामर्श से सहमति प्रकट की और टीपू के पास इस आशय का एक प्रस्ताव भेज दिया। इधर सिन्धिया ने बाजीराव को कुछ और त्रस्त करने के लिए नाना फड़नयीस को मुक्त करने की योजना बनाई। नाना को मुक्त कराने से उसे एक और लाभ होने की आशा थी। वर्तमान अर्थ संकट कुछ सीमा तक दूर हो जायगा। सिन्धिया इस सम्बन्ध में प्रयत्न करने लगा और उसको मुक्त कराने में सफल भी हुआ। इसके बदले में नाना फड़नवीस ने दौलत राव सिन्धिया को दस लाख रुपया दिया।

यद्यपि नाना फड़नबीस का स्वतन्त्र हो जाना बाजीराव पेशवा के लिए एक चिन्ताजनक बात थी, परन्तु पेशवा नाना को कैद कराने के तुरन्त बाद ही; यह जान गया था कि उसे अधिक समय तक कैद में नहीं रक्खा जा सकता और वह जल्द ही किसी न किसी प्रकार मुक्त हो जायगा। अतः नाना के स्वतंत्र हो जाने पर उसे कोई अधिक आश्चर्य नहीं हुआ और न वह अचानक भयभीत ही

ही हुआ। उसे चिन्ता थी तो इस बात की कि निजाम से हाल ही में हुई सुलह के तुरन्त बाद नाना का मुक्त हो जाना केवल संयोग ही है अथवा इसके पीछे कोई भेद ही। उधर यद्यपि वह निजाम अली से सन्धि कर चुका था फिर भी उसके वजीर मुशीरउल-मुल्क की अनिश्चयात्मक एवम् दोहरी नीति के कारण वह पूरी तरह विश्वस्त नहीं था कि निजाम उसे सहायता देगा ही। इस प्रकार सिन्धिया और पेशवा दोनों एक दूसरे को अधिक शक्तिशाली समझ कर युद्ध की परिस्थितियों से बचने का प्रयत्न कर रहे थे। नाना फड़नबीस के मुक्त हो जाने पर, पेशवा ने अधिक तर्कवितर्क में समय नहीं खोया और तुरन्त नाना तथा सिन्धिया से सन्धिवार्ता प्रारम्भ कर दिया। सिन्धिया भी यद्यपि सन्धि के लिए सहमत तो हो गया परन्तु उसे भय लगा हुआ था कि शायद, अवसर पाकर पेशवा और निजाम की संयुक्त सेनाएँ उस पर हमला न कर दे। उधर हिन्दुस्तान में उसकी जितनी सेना पड़ी हुई थी, उसके विषय में भी असन्तोषजनक खबरें मिल रही थीं, अतः सिन्धिया ने यही निश्चय किया कि यदि कुछ समय के लिये भी सन्धि करके यदि वह इस तरफ से निश्चिन्त हो सके तो अपनी सेना को सन्तुष्ट एवम् सुव्यवस्थित करने का प्रयन्न करे। उसने सोचा कि यदि नाना फड़नबीस पुनः दीवान के पद पर नियुक्त हो जाता है, तो वह पेशवा को मेरा विरोध करने से रोक सकेगा, अतः उसने पेशवा पर निरन्तर दबाव डालना प्रारम्भ किया कि वह पुनः नाना फड़नबीस को उसका पुराना पद वापस कर दे।

जब तक भारत में लार्ड जान शोर रहा, उसके प्रशासन काल में अधिकांश मामलों में तटस्थता की नीति ही अपनाई गई; परन्तु इसी समय लार्ड शोर को इंगलैण्ड वापस बुला लिया गया और उसके स्थान पर लार्ड मानिंगटन गवर्नर जनरल का कार्य-भार सम्भालने के लिए भेजा गया। यह बात है २६ अप्रैल १७९८ की। यही लार्ड मानिंगटन कालान्तर में मार्क्विस वेल्सली के नाम से विख्यात हुआ। लार्ड वेल्सली तटस्थता की नीति का अनुयायी नहीं था, अतः उसने आते ही विभिन्न देशी रियासतों के प्रशासन में छलबल से हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया। उसने सर्वप्रथम हैदराबाद और पूना दरबारों को फिलहाल अपना दोस्त बनाए रखने का निर्णय किया। वह चाहता था कि लार्ड कार्नवालिस के समय में जिस तरह मराठों और निजाम अली ने टीपू के मामले में अंग्रेजो का साथ किया था उसी तरह के सम्बन्ध की पुनर्स्थापना फिर हो जाय। अतः उसने हैदराबाद और पूना के दरबारों में ही रियासतों को अँग्रेजों की तरफ मिलाए रखने के लिए तथा उनमें परस्पर भी युद्ध न होने देने लिए प्रत्येक सम्भव प्रयत्न करें। वेल्सली चाहता था कि ऐसी परिस्थिति ही न आने दी जाय कि भारत की ये दो प्रमुख रूप से शक्तिशाली रियासतें अंग्रेजो के विरुद्ध अपने शक्ति प्रदर्शन का अवसर पावें। अंग्रेजों को तो टीपू सरीखे एक ही दुश्मन से पार पाने में नाकों चनै चबाने पड़े और यदि उसी की तरह दो दुश्मन और बढ़ जाते तो अंग्रेजों का पाँव जमाए रखना असम्भव हो जाता। अतः जिस प्रकार फ्रान्सीसियों और टीपू का राजनैतिक गठबन्धन हो गया था,* उसी प्रकार वेल्सली भी निजाम अली और पेशवा से ही मित्रता और सद्भावना प्राप्त करने का इच्छुक था। इस सम्बन्ध में उसने दोनों रियासतों के अंग्रेजी रीजेन्टों को अपनी नीति से सूचित कर दिया।

---

* अनेक इतिहासकारों का मत है कि फ्रांसीसियों और टीपू में कभी कोई प्रत्यक्ष सन्धि नहीं हुई थी, जिससे अंग्रेजों को कोई हानि नहीं पहुँच सकती। परन्तु जब १७९९ में वेल्सली ने टीपू के राज्य को समाप्त ही कर देने का निश्चय कर लिया तो उसने टीपू पर यही मुख्य आरोप लगाया था कि टीपू फ्रान्सीसियों के सहयोग से अंग्रेजों को नष्ट कर देने की योजना बना रहा है।

इस समय अंग्रेजों का सबसे बड़ा शत्रु मैसूर का टीपू सुल्तान था जिसको फ्रांसीसी भी सहायता दे रहे थे। परन्तु वेल्सली को अपने प्रतिद्वन्दियों--फ्रांसीसियों से कोई भय नहीं था। उसे भय था तो इसी बात का कि कहीं अन्य देशी रियासतें भी टीपू के साथ सहयोग न करने लगें। उसका यह भय निराधार नहीं था। प्रायः अधिकांश देशी रियासतें अब निर्बल पड़ती जा रही थी और यह एक स्वयम् सिद्ध तथ्य है कि एक शक्तिशाली राज्य ही गम्भीर एवम् स्थायी नीति पर चल सकता है जब कि निर्बल राज्य जिधर ही सहारा पाते हैं, उधर ही उसके साथ हो जाते हैं, अतः उनकी नीति के विषय में बहुत निश्चिन्त नहीं कहा जा सकता। या यों कहना चाहिए कि एक गम्भीर नीति पर चलने के बजाय वे षड़यंत्रों और अभिसन्धियों को ही अधिक लेते हैं कुछ उसी प्रकार की नीति उस समय मराठा दरबार की थी; परन्तु अब निजाम अली और मराठों की, विशेषकर दौलतराव सिन्धिया के सैन्य संगठन में महान परिवर्तन हो चुके थे। उन्होंने प्रशिक्षित और अनुशासित पैदल पलटनों का संगठन प्रांरम्भ कर दिया था और इस समय तक इस दृष्टि से सुदृढ़ हो चुके थे। सिन्धिया की अधिकांश सेना इस समय आधुनिक पलटनों के रूप में हो परिवर्तित हो चुकी थी। निजाम अली के पास भी उस प्रकार की अनेक वटालियनें थी। अंग्रेजों को निजाम और मराठा सेनाओं से उतना भय नहीं था, जितना इस बात से कि उन सभी बटालियनों एवं ब्रिगेडों के मुख्य अधिकारी और सेनापति तक फ्रान्सोसी ही थे और फ्रांसीसियों तथा अंग्रेजों से बीच जिस तरह सम्बन्ध बिगड़े हुए थे, उससे पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि अंग्रेजों को देशी रियासतों की सेनाओं पर फ्रान्सीसियों का अधिकार कितना खलता रहा होगा।

उपर्युक्त कारणों से मारविक्स वेल्सली, निजाम अली तथा पेशवा से किसी भी प्रकार मित्रता बनाए रखना चाहता था, परन्तु उसकी इस नीति के मार्ग में एक भयंकर रोड़ा था दौलताराव सिन्धिया, जो अंग्रेजों की सारी नीति को समझता था और यह नहीं चाहता था कि पेशवा अंग्रेजों के साथ सहयोग करने के लिए तैयार हों। लार्ड वेस्सली और उसके रीजेन्ट को निरन्तर पेशवा को अंग्रेजों की ओर आकर्षित करने के प्रयत्नों को देख कर सिन्धिया और सतर्क हो गया तथा हिन्दुस्तान जाने के विचार को उसने अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया। उसके सामने पेशवा दरबार में अंग्रेजों की एक न चली। अब वेल्सली इस प्रयत्न में लगा कि जैसे भीं हो सके सिन्धिया को पूना से हिन्दुस्तान की ओर जाने के लिए विवश किया जाय। अंग्रेजों को सिन्धिया के पूना में बने रहने से दो असुविधा हो रही थी जिनमें से एक थी सिन्धिया की विशाल सेना, जिसके दक्षिण में पड़े रहने से उस क्षेत्र में कहीं भी उनकी दाल न गली। दूसरी असुविधा यह थी कि सिन्धिया किसी भी कीमत पर अंग्रेजों तथा पेशवा का गठबन्ध नहीं होने देना चाहता था और ऐसा वह किसी स्वार्थवश नहीं परन्तु कुटिल अंग्रेजों से पेशवा राज्य की रक्षा की भावना से ही ऐसा कर रहा था। अंग्रेजो के प्रभाव से पेशवा को बचाने के लिए वह उसी तरह पेशवा को घेरे रहता था जिस तरह से साँप अपने मणि के चारों

वेल्सली ने एक पत्र में टीपू को साफ साफ लिखा था—"आप यह गुमान न करें कि मेरे देश के शत्रुओं (अर्थात् फ्रान्सीसियों) और आपके बीच जो बातें हुई हैं, कि उनकी ओर से मैं उदासीन रह सकता हूँ" (८ नवम्बर १७९८)। यद्यपि नेल्सन ने मिश्र के उत्तर में फ्रान्सीसी जहाजी बेड़े को नष्ट कर डाला था और फ्रान्सीसियों द्वारा भारत पर जिस आक्रमण की थोड़ी बहुत सम्भावना थी, वह भी जाती रही फिर भी वेल्सली ने टीपू पर आक्रमण करने के लिए उसी बहाने से छेड़ छाड़ की थी कि वह फ्रान्सीसियों की अंग्रेजों के विरुद्ध मदद कर रहा है—अनुवादक

ओर कुण्डली मार कर उसकी रचा करता हैं। पेशवा भी सिन्धिया के प्रभाव में था और इस समय प्राय: उसके परामर्शों को महत्व देता था। अंग्रेजों ने हर सम्भव प्रयत्न करके देख लिया, परन्तु पेशवा को अपनी तरफ मिला सकने में असमर्थ रहे। अन्ततः उन्होंने निश्चय किया कि सिन्धिया को ही किसी प्रकार पूना से हटने के लिए विवश किया जा सके तो सम्भव है कि अस्थिर मत का बाजीराव पेशना उनकी मित्रता के जाल में फँस जाय।

अपने इस कार्य की सिद्धि के लिए पहले तो अँग्रेजों ने उसके राज्यचेत्र में अनेक प्रकार के छोटे मोटे उपद्रव कराए, परन्तु इन उपद्रवों को शान्त करने का प्रबन्ध दूरदर्शी सिन्धिया ने पूना में ही बैठ कर कर लिया। अँग्रेजों ने इस तरह सिन्धिया को पूना से हटाने में असफल रहने पर, यह अफवाह उड़ाई कि काबुल के बादशाह अहमद शाह अब्दाली का प्रपौत्र बादशाह जमान शाह पुनः हिन्दुस्तान को लूटने के लिए आ रहा है। अहमद शाह अब्दाली के नाम से मराठे काँपते थे, अतः अँग्रेजी दलालों ने सोचा शायद इस अफवाह पर विश्वास करके दौलत राव सिन्धिया, अपने राज्यचेत्र को बचाने के लिए हिन्दुस्तान की तरफ चल दे। उसी बीच उन्होंने पेशवा के समच भी यह प्रस्ताव रक्खा कि वह अपने शरीर तथा अधिकार की रचा के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सेना की एक पलटन रख ले, जिसकी मदद से वह अपनी शासन व्यवस्था को सुधार कर फिर पहले की तरह अपनी समस्त शक्तियों को एकत्रित करने में समर्थ हो सकेगा। वेल्सली के इस प्रस्ताव के कुछ समय पहले ही बाजी राव पेशवा ने ब्रिटिश सरकार के नाम इस आशय का एक प्रार्थनापत्र भेजा था कि उसकी सुरचा की व्यवस्था के लिए कोई उचित प्रबन्ध कर दिया जाय, परन्तु उस समय अँग्रेजों की नीति कुछ दूसरी ही दिशा में चल रही थी, साथ ही इंग्लैंड की पार्लियामेंट के ऐक्ट के अनुसार भी गवर्नर जनरल इस प्रकार का कोई प्रबन्ध कर सकने में असमर्थ था, अतः उस समय पेशवा के इस अनुरोध पर कोई ध्यान नहीं दिया था। मारक्विस वेल्सली के गवर्नर जनरल होते ही, अँग्रेज सरकार की नीति बदल गई थी और अब वे तटस्थता की नीति छोड़ कर विभिन्न भारतीय नरेशों से सम्बन्ध जोड़ने लगे थे। इसी समय वेल्सली ने कई एक प्रस्ताव इस आशय के रक्खे कि बाजी राव पेशवा को कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि नाना फड़नवीस अँग्रेजों से मिल कर उसकी जड़ खोदने का प्रयत्न कर रहा है। वेल्सली का पहला प्रस्ताव था कि पेशवा अपनी सुरचा के लिए अँग्रेजी पल्टन रख सकता है, जिसका समस्त व्यय उसी को देना होगा। पेशवा तो पहले से ही यह इच्छा प्रगट कर चुका था, अतः इस पर उसे कोई शंका नहीं हुई। गवर्नर जनरल का दूसरा प्रस्ताव था कि नाना फड़नवीस को पुनः उसके पुराने पद पर नियुक्त कर दिया जाय और तीसरा प्रस्ताव यह था कि जिस तरह भी हो सिन्धिया को पूना से हटा कर हिन्दुस्तान भेज दिया जाय। पेशवा की जानकारी के स्रोत बहुत सीमित थे और उसे किसी भी विषय में सन्तोषजनक समाचार नहीं मिल पाता था। उसकी समझ में यह नहीं आया कि नाना फड़नवीस को दीवान बनाने तथा सिन्धिया को पूना से हटाने की जिद अँग्रेज क्यों कर रहे हैं और इससे उनका क्या हित या लाभ हो सकने की सम्भावना है। अन्त में अपनी अदूरदर्शिता के कारण उसे इन सारे प्रस्तावों के पीछे नाना का ही हाथ दिखाई पड़ा, फलत वह नाना फड़नवीस से न केवल घृणा करने लगा, बल्कि उसके इरादों को भयानक समझ कर सतर्क एवम् भयभीत हो गया।

इधर जमान शाह के आक्रमण के विषय में अँग्रेजों द्वारा उड़ाई गई अफवाहों से दौलत राव को यह महसूस होने लगा कि इस अफवाह का उद्देश्य केवल यही है कि वह किसी तरह पूना से वापस लौट जाय ताकि अंग्रेजों को यह अवसर मिल जाय कि वे पेशवा को मनमाना नाच नचा सकें। यद्यपि सिन्धिया अनेक बार हिन्दुस्तान जाने की घोषणा कर चुका था। ऐसा करना वह आवश्यक भी समझ

रहा था तथा वापस लौटने के लिए गम्भीरतापूर्वक प्रयत्न कर रहा था, परन्तु अँग्रेजों की चालबाजी पर उसे शक हो गया और उसने कुछ समय तक पूना ही में रहने का निश्चय कर लिया। इधर एक समारोह में उसने एक तरफ तो नाना फड़नवीस से तथा दूसरी तरफ बाजी राव पेशवा से समझौते की घोषणा की और कहा कि मराठा मण्डल की एकता को सुदृढ़ करने के लिए वह यह आवश्यक समझता है कि मण्डल के सभी प्रमुख सदस्यों में सहयोग की भावना बनी रहे। इस समारोह के पश्चात् पेशवा ने एक गुप्त बैठक में उसने सिन्धिया से कहा—कि उसे भय है कि कहीं नाना फड़नवीस पूना को अँग्रेजी कूटनीति का अड्डा न बना दे, अतः उसके विचार से अँग्रेजों के प्रभाव को रोकने के लिए सिन्धिया का पूना में ही रुका रहना आवश्यक है। परन्तु पेशवा का मस्तिष्क इस समय एक साथ ही, दो मार्गों पर दौड़ रहा था। इधर तो उसने नाना फड़नवीस के इरादों के प्रति सिन्धिया के समक्ष शंका प्रगट की, धीरे धीरे वह अपनी सामर्थ्य भर यह प्रयत्न कर रहा था कि नाना फड़नवीस पुनः उस पर विश्वास करने लगे।और उसके खिलाफ कोई कार्रवाई करने का इरादा ही उसके दिल से निकल जाय। उसने बार बार नाना फड़नवीस पर दबाव डालना शुरू किया कि वह सिन्धिया का कैम्प छोड़ दे और दरबार में सम्मिलित हो कर प्रशासन कार्य सम्भाले, क्योंकि उसके अभाव में कोई भी प्रबन्ध ठीक से नहीं हो पा रहा है। पेशवा के सतत् प्रयत्नों एवम् अनुरोध से अन्त में नाना फड़नवीस सिन्धिया के कैम्प से पूना चला तो आया, परन्तु प्रशासन कार्य में उसने हाथ नहीं डाला। उसका कहना था कि जब तक निजाम अली और ब्रिटिश सरकार उसे यह गारंटी नहीं दे देती कि उसकी जान और सम्पत्ति पर कोई खतरा नहीं किया जायगा तब तक वह बाजी राव के प्रशासनिक या व्यक्तिगत मामलों में कोई दखल नहीं देगा। अभी उसके ऊपर एक और विकट विवाद को सुलझाने का भार पड़ा हुआ था, यह विवाद था सिन्धिया के परिवार—विशेष कर महादजी सिन्धिया की विधवा रानियों को पुनः एक सूत्र में बाँधना और दौलत राव तथा विधवा रानियों के बीच सुलह कराना, ताकि सिन्धिया हिन्दुस्तान की ओर जाने के लिए स्वतंत्र हो सके। नाना के विचार से सिन्धिया पारिवारिक समस्याओं के कारण ही पूना में पड़ा हुआ था। उसने पेशवा को आशा दिलाई कि इन विवादों के समाप्त हो जाने तथा निजाम अली और अँग्रेजों से अपनी जान माल की सुरक्षा की गारण्टी मिल जाने पर ही वह प्रशासन कार्य में दखल देगा। वह सिन्धिया को पूना से बिदा करने के प्रयत्नों में लगा हुआ था। सिन्धिया ने उससे कहा कि वह पूना से जाना तो चाहता था, परन्तु धनाभाव के कारण वह ऐसा करने के विचार को क्रियान्वित नहीं कर पा रहा है। नाना अपनी मुक्ति की कीमत के रूप में १० लाख रुपया पहले ही सिन्धिया को दे चुका था, परन्तु वह सिन्धिया को पूना से विदा करने के लिए इतना व्यग्र हो चुका था कि उसने बिना किसी शर्त के मार्ग व्यय के रूप में उसे १५ लाख रुपया और दिया। यह रुपया उसने अपने अपने व्यक्तिगत खजाने में से दिया था।

अभी तक तो पेशवा, नाना फड़नवीस के प्रति आधारहीन शंका के कारण सिंधिया को रोकने का प्रयास कर रहा था, सिंधिया भी अँग्रेजों की कूटनीति के जाल से मराठा-साम्राज्य को बचाने लिए रुकने का इरादा कर रहा था, परन्तु अब नाना फड़नवीस के दबाव पड़ने पर उसका रुकने का इरादा फिर कमजोर पड़ने लगा। अब जब पेशवा ने देखा कि सिंधिया वास्तव में अब गम्भीरता पूर्वक हिन्दुस्तान को लौट जाने का संकल्प कर रहा है, तो उसने नाना फड़नवीस को ही किसी तरह अपने पक्ष में रखने का विचार किया। इस उद्देश्य से उसने योजना बनायी कि वह वेष बदल कर गुप्त रूप से नाना फड़नवीस से भेंट करे—जिससे कि सिंधिया को इस विषय में भनक भी न मिल सके और नाना फड़नवीस का विश्वास प्राप्त करने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करे। अर्धरात्रि के समय, रात्रि के

सन्नाटे में, अपनी योजनानुसार पेशवा केवल एक सेवक को साथ लेकर, छद्मवेश में पूर्ण सतर्कता के साथ स्वयम् को छुपाता हुआ, वह नाना फड़नवीस के घर पहुँचा। पहले उसने वृद्ध मंत्री को यह विश्वास दिलाने का प्रयास किया कि उसकी गिरफ्तारी और अपमान कराने में उसका जरा भी हाथ नहीं था और उसकी अपनी चातुर्यपूर्ण तर्क बुद्धि से कुछ समय के लिए नाना फड़नवीस को भी अपने कैद होने के सम्बन्ध में पेशवा के निर्दोष होने का विश्वास हो गया। जब नाना फड़नवीस ने अपने अन्य सहयोगी मंत्रियों के कैद किए जाने का कारण पूछा तो पेशवा ने कहा कि उसे भय था कि कहीं सिंधिया के दुष्ट और क्रूर दलाल उनका सफाया न कर दें, अतः उनकी सुरक्षा की दृष्टि से उसने उन्हें कैद में डाल दिया था। इस सम्बन्ध में उसने घाटगे अदि के दुष्कृत्यों को उल्लेख भी किया और बताया कि उन मंत्रियों से धन प्राप्त करने के लिए कारागार में भी घाटगे ने उनके कैद रहने पर भी उनके प्रति कितना निन्दनीय और निर्दय व्यवहार किया था। इस प्रकार उसने नाना फड़नवीस के समक्ष ऐसे ऐसे तर्क प्रस्तुत किए कि नाना फड़नवीस धोखा खा गया और उसे निर्दोष समझने लगा। कर्नल पामर का मत है कि नाना फड़नवीस को बाजीराव की वार्ता से कतई धोखा नहीं हुआ था, परन्तु इस वार्ता का जों परिचय निकला, वह पामर की बात का पूर्णतः खण्डन करता है। वैसे भी, बाजीराव बहुत वाक्यपटु था और ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते है जब कि उसने अपनी बातचीत द्वारा ही ऐसे ऐसे व्यक्तियों को धोखा देने में सफल हो गया था जिन्हें पहले से जानकारी रहती थी कि वह उन्हें अवश्य देगा, परन्तु पूर्ण सतर्क रहने पर भी वे धोखा खा ही गए थे। वास्तव में बाजीराव की बातचीत का ढंग, और उसका विनय व्यवहार इतना प्रभावोत्पदक और मोहक था, कि चतुर से चतुर व्यक्ति भी उसके वाग्जाल में फँस कर उसकी बातों पर विश्वास करने के लिए विवश हो जाता था। परन्तु: इस अवसर पर जब बाजीराव ने देखा कि अब उसके शब्दजाल नाना फड़नवीस के विचारों को बाँध चुके हैं और नाना की विचार शक्ति पर उसकी वार्ता का रंग चढ़ चुका है तो उसने अत्यन्त कातर तथा दीन हीन भाव से नाना फड़नवीस के पाँवों पर अपना सिर रख दिया और उसके चरणों की सौगन्ध खा कर उसने कहा कि आप मेरे पिता के समान है और आपने ही इतनें दिनों तक मेरा पथ प्रदर्शन किया है; और आपके परामर्शों का सम्मान न करने के कारण ही मेरी इतनी दुर्दशा हो रही है, अतः मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब से आप मुझे जिस मार्ग पर भी चलने का आदेश देंगे, मैं उसी मार्ग पर चलूँगा और सदैव आपके परामर्शों का सम्मान करूँगा। अन्त में भावावेश में आँखों में आँसू भरकर उसने भरे हुए गले से उसनें नाना फड़नवीस से आग्रह एवम् अनुरोध किया कि वह इस ब्राह्मण राज्यसत्ता से मुख न मोड़े और इसे मझधार में न छोड़े, क्योंकि इस समय मराठा नरेशों और सरदारों के बीच पारस्परिक फूट एवम् कलह तथा अंग्रेजो की महत्वाकांक्षा के कारण पेशवाओं का यह साम्राज्य एक बिना पतवार की नाव की तरह डगमगा रही थी।

पेशवा की इस करुण और दीनतापूर्ण अभिव्यक्ति के कारण नाना फड़नवीस का अपमान जर्जरित हृदय द्रवित हो गया और बाजीराव पेशवा के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए फिर से दीवान का पद ग्रहण किया।

यह काल राजनैतिक दृष्टि से अत्यन्त ही महत्वपूर्ण था। पुरानी सन्धि के अतिरिक्त निजाम अली और अंग्रेजों के सम्बन्धों को और घनिष्ठ बनाने के लिए एक और सन्धि की गई। उस सन्धि पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर पहली नवम्बर सन् १७९८ ई० को हुए। इस सन्धि में, निजाम अली ने अंग्रेजों से वादा किया कि वह भविष्य में किसी भी फ्रान्सीसी को अपनी सेना में नियुक्त नहीं करेगा तथा उस समय तक उसकी सेना में जितने भी फ्रान्सीसी अफसर वर्तमान है, उन सबको बरर्दास्त कर देगा। अंग्रेजों

ने उससे यह वादा भी करा लिया कि वह उन तमाम प्रशिक्षित पलटनों को विघटित कर देगा जिन्हें रेमण्ड की देखरेख में तैयार किया गया था और इसके बदले में, अपनी सुरक्षा एवम् शक्ति को कायम रखने के लिए अंग्रेजी सिपाहियों की ६ बटालियनों को हैदराबाद में रक्खेगा उनमें से प्रत्येक बटालियन एक हजार सैनिकों की होगी। उन ६ बटालियनों के साथ उसी अनुपात में अंग्रेजी तोपखाना रखने की सुविधा भी उसे दी गई। उन सुविधाओं के बदले में निजाम अली ने ब्रिटिश सरकार को प्रतिवर्ष २४१७१०० रुपया देना स्वीकार किया। इस सन्धि की एक शर्त के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने इस बात का वादा किया कि यदि पेशवा और निजाम अली के बीच कोई विवाद उत्पन्न हो गया तो अंग्रेज सरकार मध्यस्थता ग्रहण करके विवाद के सुलझाने का प्रयास करेगी और यदि यह विवाद अधिक गम्भीर हो गया तो पेशवा को निजाम अली के साथ मित्रवत् व्यवहार करने के लिए विवश भी करेंगे।

इस प्रकार इस सन्धि द्वारा निजाम अली अपनी सुरक्षा के लिए पूर्ण रूप से अंग्रेजों का आश्रित हो गया था और उसके हाथ में कोई विशेष अधिकार नहीं रह गया था। अतः स्वाभाविक था कि मराठे इस सन्धि से डाह करते क्योंकि निजाम अली अब उनके हाथ से निकल गया था। अंग्रेजों ने अनेक बार पेशवा को भी इस तरह की सन्धि द्वारा फँसाने के लिए उसको तरह तरह से समझाता रहा कि इससे आपकी सुरक्षा का प्रश्न हल हो जायगा और किसी भी आक्रमणकारी के विरुद्ध आपकी सहायता की जायगी। परन्तु पेशवा अंग्रेजों से टालमटोल करता रहा। उसने अंग्रेजों को आश्वासन दिया कि पिछली सन्धि में उसने जिन शर्तों को पूरा करने का वादा किया है उन्हीं शर्तों का पालन करते रहने में सफल हो सकूँ, मेरी यही अभिलाषा है, फिर नई सन्धि से कोई विशेष लाभ भी नहीं होने वाला है। पेशवा ने यह वादा किया कि यदि टीपू सुल्तान और अंग्रेजों के बीच युद्ध की कोई सम्भावना हुई तो मैं अंग्रेजों की सहायता अवश्य करूँगा। बाजीराव ने अंग्रेजों के साथ की गई इस वार्ता में नाना फड़नवीस के परामर्श और मत का ही अनुपालन किया था। नाना फड़नबीस चाहता था कि किसी भी प्रकार अंग्रेज बटालियनों का पैर मराठा साम्राज्य में न पड़ें तभी कुशल है। अन्य देश के अन्य भागों में इस बात के उदाहरण बिखरे पड़े थे कि जहां भी अंग्रेजों ने अपनी सेना को सम्बन्धित क्षेत्र में रख दिया, वहाँ का राज्य अंग्रेजों की कूटनीति से जर्जरित गया और राज्य सत्ता नाम मात्र को रह गई, अतः उसने पेशवा को सही परामर्श दिया कि अंग्रेजों से भले मित्रता बनाए रक्खा जाय, परन्तु उनके एक भी सिपाही मराठा क्षेत्र में कदम न रखने पाएँ। यद्यपि नाना फड़नबीस अंग्रेज़ों के साथ हुई पिछली सन्धि की शर्तों को पूरा करने के पक्ष में था, परन्तु पेशवा भी इस जुए को उतार कर फेंकनें के लिए अत्यन्त उत्सुक था। नाना ने उसे उपदेश दिया कि सच्चाई के मार्ग से हटजाने पर सफलता कभी हाथ नहीं आती, अतः जब तक अंग्रेज अपनी तरफ से गड़बड़ी न करें तो आपको भी पहले नहीं करना चाहिए और जब तक सम्भव हो, ईमानदारो के साथ सन्धि की शर्तों का पालन कीजिये तभी मराठा साम्राज्य अपनी सुरक्षा और सम्मान को बनाए रख सकेगा। पेशवा ने नाना के सम्मुख प्रस्ताव रक्खा कि अँग्रेजों की मदद के लिए जो सेना हमें भेजना है, उसे अभी ही मुख्य सेना से अलग कर दिया जाय और उसका संचालन भार परशुराम भाऊ के लड़के अप्पा साहिब के हाथ सौंप दिया जाय। इस सहायक सेना के संगठन के सम्बन्ध में पेशवा का मत था कि धुन्धू पन्त गोखलें, (जो कि कर्नाटक का सर सूबेदार था) रस्तिया और विंचूरकर तथा अन्य दक्षिणी जागीरदारों से कुछ संख्या में सैनिक माँग लिए जाँय और उन्हें आदेश दे दिया जाय कि वे पूना के लिए, जितने भी सवार एकत्रित कर सकें, उन सबको पूना भेज दिया जाय

यद्यपि इस समय भी पूना में पेशवा के पास सेना कम नहीं थी, परन्तु अंग्रेजों और टीपू के बीच सम्भावित युद्ध में अंग्रेजों की सहायता के लिए यदि सेना भेजना पड़ता तो पेशवा की सैन्य संख्या पर्याप्त कम हो जाती जो कि वह चाहता नहीं था; राज्य की सुरक्षा के लिए एक पर्याप्त शक्तिशाली सेना को राजधानी में ही रखना चाहिए, ऐसा उसका विचार था। सिन्धिया क्या चाहता है यह पेशवा समझ ही नहीं पा रहा था। जब पेशवा ने कुछ दिन पहले उससे रुकने के लिए अनुरोध किया तो सिन्धिया ने कहा कि अब उसका जाना अति आवश्यक है। नाना ने भी उसी ससय १५ लाख और रुपया दिया ताकि सिन्धिया शीघ्र से शीघ्र चला जाय परन्तु अब सबको उसके हिन्दुस्तान-प्रस्थान की आशा हो गई, तो सिधिन्या ने जाने का नाम लेना हो छोड़ दिया। इसी वजह से पेशवा ने राजधानी में एक सशक्त सेना बनाए रखना और अँग्रेजों की सहायता के लिए एक दूसरी ही सेना का सगठन करना आवश्यक समझा, क्योंकि सिन्धिया का इरादा उसे अनिश्चयात्मक प्रतीत हो रहा था।

पीछे संकेत किया गया है कि अंग्रेजों की सहायता के लिए संगठित की जाने वाली सेना का सेनापति अप्पा साहेब को बनाने का इरादा किया गया था, परन्तु अप्पा साहिब ने साफ इनकार कर दिया। अब नाना फड़नवीस और परशुराम भाऊ के बीच सुलह के लिए बातचीत होने लगी और नाना ने शीघ्र ही उसे पुन: अपना समर्थक बना लिया। अब परशुराम भाऊ ने इस सहायक सेना का सेनापतित्व अपने ही हाथ में लिया, परन्तु इसके लिए उसने पेशवा के समक्ष एक शर्त रक्खा कि उसके ऊपर जो अर्थदण्ड लगाया गया है, उसे माफ कर दिया जाय। साथ ही उसने धारवाड़ तथा कर्नाटक के अन्य अनेक स्थानों को जागीर के रूप में माँगा। नाना के प्रबन्धानुसार एक अंग्रेजी टुकड़ी, पहले से ही परशुराम भाऊ की सेना में मिलने के लिए उसकी प्रतीक्षा कर रही थी, परन्तु बाजीराव ने एक बार फिर नाना फड़नवीस के समस्त उद्योगों को मटियामेट कर दिया। इस समय पेशवा ने पुन: सिन्धिया के प्रभाव में आकर अँग्रेजों से मित्रता बनाए रखने के बदले, उल्टे शत्रुता करना प्रारम्भ कर दिया। इस समय अंग्रेजों ने तरह तरह के बहानों से टीपू पर आक्रमण करने की पूरी योजना बना लिया था और हर तरफ से मैसूर की सरहदों पर फौजें एकत्रित कर रहे थे। परन्तु इतने पर भी, अंग्रेजों के साथ हुई सन्धि की उपेक्षा करके पेशवा टीपू के राजदूत और वकीलों का सार्वजनिक रूप से स्वागत कर रहा था। रेजीडेन्ट पामर ने कई बार इस व्यवहार का विरोध किया परन्तु फिर भी पेशवा बाज न आया, वैसे पामर को सन्तोष देने के लिए उसने १६ मार्च को वकीलों को दरबार से हटा दिया और पामर को इसकी सूचना भी दे दिया, परन्तु टीपू के वकील पूना के क्षेत्र से बाहर नहीं गए, अपितु पूना से लगभग २५ मील दक्षिण में स्थित कड़वी नामक गाँव में पड़े रहे। कर्नल पामर ने प्रारम्भ में यही समझा कि वकीलों को रोक रखने में पेशवा का यह उद्देश्य है कि तटस्थता अथवा टीपू की सहायता का झूठा वादा करके टीपू से कुछ धन प्राप्त किया जाय। ब्रिटिश रेजिडेन्ट पामर को यह सूचना भी मिल चुकी थी कि टीपू सुल्तान ने मराठों की सहायता प्राप्त करने के लिए १३ लाख रुपया पेशवा के पास भेजा था जिसमें सिन्धिया भी साझीदार था। परन्तु नाना फड़नवीस को सिन्धिया और पेशवा की इस अभिसन्धि के विषय में कोई जानकारी नहीं थी। इसी समय गवर्नर जनरल मारक्विस बेल्सली ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि जो अंग्रेजी टुकड़ी अभी तक परशुराम भाऊ की प्रतीक्षा में थी, अभी तक भाऊ की-सेना की हवा तक उसे न मिली। गवर्नर जनरल ने इस सम्बन्ध में नाना फड़नवीस से पूछ ताछ की, तो नाना की समझ में स्वयम् ही इस कार्य का कोई उचित कारण समझ में नहीं आया।

इस समय बाजीराव पेशवा दोहरी चाल खेल रहा था। एक तरफ तो उसने परशुराम भाऊ

को अर्थदण्ड से मुक्त करके तथा अन्य सुविधाएँ प्रदान करके उसे अपनी तरफ मिलाए रखने का प्रयत्न किया और दूसरी तरफ उसने टीपू की सन्धिवार्ता को भी प्रोत्साहित किया, परन्तु वह अभी तक भी कोई निश्चित योजना नहीं बना पाया था और सोच रहा था, कि इन दोनों व्यक्तियों अर्थात् परशुराम भाऊ और टीपू सुल्तान को उलझाए रखकर वह अपना निर्णय करने के लिए उचित अवसर की प्रतीक्षा करेगा और परिस्थितियों के आधार पर ही वह या तो भाऊ के जरिए अंग्रेजों का पक्ष ग्रहण करेगा या टीपू सुल्तान का। और यह आधार भी था कि उसे किस पक्ष की सहायता करने पर अधिक लाभ मिल सकेगा। यद्यपि उसमें शुरू से अन्त तक किसी योजना को पूरा कर लेने की सामर्थ्य शंकाजनक रूप में ही उपस्थित थी, फिर भी उसका झुकाव इस समय टीपू की ओर ही अधिक था। इस सम्बन्ध में सिन्धिया ही उसका प्रमुख परामर्शदाता था। रेजिडेन्ट पामर को पेशवा और सिन्धिया दोनों पर सन्देह हो चुका था कि वे भरसक टीपू की ही सहायता करेंगे। अस्तु, सिन्धिया के सहयोग से पेशवा ने निजाम अली पर आक्रमण करने की एक योजना बनाई; उन दोनों को इस बात की आशा थी कि राघोजी भोंसले भी निजाम अली के विरुद्ध उनकी सहायता करने के लिए तैयार हो जायगा। पिछली बार कुर्दला के युद्ध में सन्धि के बावजूद भी अंग्रेजों ने निजाम की सहायता करने से साफ इनकार कर दिया था, परन्तु इस बार पेशवा और सिन्धिया को आशा थी कि हाल ही में निजाम के साथ ही सन्धि के कारण अंग्रेज अवश्य ही निजाम अली को सहयोग देने का प्रयत्न करेंगे और ऐसा होने पर पेशवा टीपू सुल्तान की सहायता करने की खुली घोषणा कर देगा। पामर को इस योजना की खबर भी मिल चुकी थी और उसने वेल्सली को इस सम्बन्ध में सूचना भी प्रेषित किया था। मारक्विस बेल्सली को जब पूना दरबार के इरादों के विषय में पूरी खबर मिल गई तो उसने तुरन्त मराठों के इरादे को धूल में मिला देने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। इस प्रयास में उसने सर्व प्रथम राघोजी भोंसले को फोड़कर अपनी तरफ मिलाने के लिए चाल चलना शुरू कर दिया। उसने निजाम के साथ हुई सन्धि का हवाला देकर राघोजी भोंसले को निजाम अली की सहायता करने के लिए प्रेरित किया।

परन्तु पेशवा और सिन्धिया अपनी योजनाओं और तैयारियों में लगे रहे। उचित अवसर की प्रतीक्षा ही कर रहे थे, परन्तु उन्हें इस बात की खबर भी न लगी कि कब वेल्सली ने मैसूर पर आक्रमण करके टीपू को पराजित कर दिया अतः जब उन्हें यह खबर लगी की कि अंग्रेजों ने श्रीरंगपट्टम पर अधिकार कर लिया, युद्ध में टीपू मारा गया और उसके राज्य का पतन हो गया तो वे स्तब्ध रह गए।

टीपू के सम्बन्ध में अंग्रेजों ने जितनी चालाकी, चुस्ती और तीव्र गति से अभियान करके श्रीरंगपट्टम का पतन किया, वह इस बात का भारत में प्रथम उदाहरण था कि ब्रिटिश सरकार की कुटनीति कितनी सक्षम और शक्तिशाली थी। बाद के यूरोपीय युद्धों में ब्रिटिश सरकार और सेनाओं ने अपने इन गुणों का पूर्ण परिचय दिया था और अन्य यूरोपीय देशों पर अपनी युद्ध नीति और युद्ध कुशलता का सिक्का जमा दिया था।

इस समय तक समस्त प्रशासनिक अधिकार ब्रिटिश सरकार के हाथ में आ गए थे और टीपू के साथ हुए युद्ध में गवर्नर जनरल मारक्विस वेल्सली से निजाम अली के समस्त स्रोतों का भरपूर प्रयोग किया था। निजाम अली द्वारा सहायता के लिए भेजी गई सेना ने उसके संरक्षण में पिछले युद्ध की अपेक्षा कहीं अधिक अनुशासन एवम् युद्ध कौशल का परिचय दिया था। निजामअली के सैनिकों में इस प्रकार क्षमता की जो वृद्धि हुई उसका समस्त श्रेय कैप्टन मैलकम की योग्यता एवम् उसके प्रशिक्षण शक्ति को दिया जाना चाहिए। कैप्टन मैलकम (बाट में सरजान मैलकम) गवर्नर जनरल का पीलिटिकल एजेन्ट था।

श्रीरंगपट्टम के पतन के फलस्वरूप जो इलाके अंग्रेजों के हाथ लगे उनका बँटवारा बहुत ही न्यायपूर्ण एवम् उदार ढंग से किया गया । निजाम अली, गवर्नर जनरल मारक्विस वेल्सली की न्याय-प्रियता पर बहुत विश्वास करता था और उसने इस बँटवारे के विषय में वेल्सली को ही समस्त अधिकार देते हुए, उसके द्वारा किए गए बँटवारे को उचित मान कर उससे सहमत होने का वादा कर किया था । वेल्सली ने टीपू के इलाकों और उनसे प्राप्त होने वाली आय का बंटवारा तथा मैसूर के राज्य-शासन का प्रबन्ध निम्न लिखित ढंग से किया था ।

सर्वप्रथम प्रश्न था कि भविष्य में टीपू के राज्य का प्रशासन किस आधार पर किया जाय । गवर्नर जनरल ने भविष्य में राज्य क्षेत्र में शान्ति तथा सुरक्षा कायम रखने तथा कम्पनी की नवीन उपलब्धियों और सम्पत्ति को कायम रखने के लिए यह निश्चय किया कि मैसूर के सिंहासन पर टीपू के ही किसी पुत्र को बैठाया जाय ताकि जनता असन्तुष्ट न हो सके । इस समय भी मैसूर के पुराने राजा का वंशज जिसके हाथ से हैदरअली ने उनके अधिकार का अपहरण कर लिया था—कारागार में पड़े
हुए अपना दिन बिता रहा था, मसनद पर फिर से बैठा दिया गया । इन
२२ जून] दो महत्वपूर्ण कार्यों को निबटा लेने के पश्चात् ब्रिटिश सरकार, निजामअली
और नव-स्थापित राजा के बीच टीपू के अधिकृत क्षेत्रों के आय का बँटवारा
किया गया जो इस प्रकार था :—

टीपू के सम्पूर्ण राज्यक्षेत्र की मालगुजारी से प्राप्त होने वाली आमदनी अनुमानतः ३०, ४०,००० पैगोदा थी ;

इसमें से नए राजा को	१३, ६०, ००० पैगोदा की आय का क्षेत्र दिया गया ।
निजामअली को	५, ३०, ००० ... ...
ईस्ट इन्डिया कम्पनी को	५, ३७, ०००
हैदर और टीपू के परिवार के	
निर्वाह के लिए, जिनका भार	२, ४०, ०००
ब्रिटिश सरकार ने लिया था	७०, ०००
कमरुद्दीन खाँ और उसके परिवार के निर्वाह के लिए ।	
योग	२७३७ ००० पैगोदा

अब शेष रह गया ३, ६३, ००० पैगोदा की आय का इलाका । यद्यपि पेशवा ने टीपू के साथ हुए युद्ध में वेल्सली और पामर के अनुसार बहुत लापरवाही बरती थी और कोई सहयोग नहीं किया था, फिर भी गवर्नर जनरल ने इस विचार को अत्यन्त नीतिपूर्ण समझा कि पेशवा को भी इस विजित क्षेत्र में से कुछ हिस्सा दे दिया जाय, परन्तु साथ ही उसने यह शर्त भी लगा दिया कि पेशवा भी उसी प्रकार की एक सन्धि अंग्रेज़ों से कर ले । अपने क्षेत्र में अपने ही व्ययसे अंग्रेजी सेना की कुछ बटालियनों को रखने के लिए तैयार हो जाय, जैसा कि निजामअली ने किया था । टीपू से प्राप्त क्षेत्र के बँटवारे से जो ५६३००० पैगोदा की आय वाला क्षेत्र शेष बचा था वह पेशवा की दक्षिणी सरहद पर स्थित था और गवर्नर जनरल ने उसे पेशवा के लिए ही सुरक्षित रख छोड़ा था । उसने उपरोक्त शर्तों पर यह क्षेत्र पेशवा के अधिकार में देने का प्रस्ताव पेशवा के समक्ष रक्खा ।

इस प्रस्ताव के विषय में पूना दरबार में काफी विवाद उत्पन्न हो गया । न तो पेशवा और सिन्धिया और न नाना फड़नबीस ही इस पक्ष में थे कि उनके राज्यक्षेत्र में अंग्रेजी सेना रक्खी जाय,

साथ ही वे अपनी सरहद से मिले हुए इस क्षेत्र को अंग्रेजों या निजामअली के हाथ में भी नहीं जाने देना चाहते थे क्योंकि यह क्षेत्र सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। इस प्रकार वे अत्यन्त धर्मसंकट में पड़ गए। न तो गवर्नर जनरल के इस प्रस्ताव पर उनसे इनकार ही करते बन रहा था और न इसे स्वीकार करने में ही वे अपनी कुशल समझते थे। वे जानते थे कि उनके इनकार करते ही अंग्रेजों को एक बहाना मिल जायगा और जैसा कि तय हुआ था, वे इस क्षेत्र का दो तिहाई भाग निजाम को दे देते और एक तिहाई कम्पनी के नाम कर देते। यदि मराठे इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेते तो उनकी अपनी स्थिति कमजोर पड़ जाती क्योंकि उनके सिर पर निरन्तर अंग्रेजी सेना सवार रहती और उनकी स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप किया जाने लगता। *

इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में जो वार्ताएँ हुई उनसे नाना फड़नवीस की योग्यता और बुद्धिमत्ता का पूर्ण परिचय मिलता है। सर्वप्रथम उसने बेल्सली के दो आरोपों पर विचार किया जो इस प्रकार थे (१) गवर्नर जनरल से पेशवा ने टीपू के विरुद्ध छेड़े जाने वाले युद्ध में अपनी सेना भेजने का वादा किया था परन्तु उसमें अनुचित देर की गई और जो सेना वह परशुराम भाऊ के नेतृत्व में भेजने वाला था, उसके पास अच्छे ढंग के आवश्यक अस्त्र-शस्त्र भी नहीं थे। (२) जब पूना दरबार को यह ज्ञात था कि टीपू और अंग्रेजों में छेड़छाड़ चल रही है, तब भी उन्होंने टीपू के वकीलों और राजदूतों को पूना में रहने और दरबार में बैठने की अनुमति क्यों दी। नाना फड़नवीस ने इन दोनों आरोपों का बहुत समुचित एवम् तर्कपूर्ण उत्तर दिया, जैसी कि उससे आशा की जा सकती थी। पहले आरोप के उत्तर में उसने कहा कि इस समय मराठा राज्य इतना शक्तिहीन एवम् कलह पूर्ण हो गया है कि एक व्यक्ति के विचार मात्र से ही आवश्यक निर्णय नहीं किए जा सकते और न मराठा राज्य सैनिक दृष्टि से इतना शक्तिशाली रह गया है कि कुछ ही दिनों में इतनी बड़ी और सक्षम सेना का संगठन किया जा सके। दूसरे आरोप के उत्तर में नाना फड़नवीस ने मार्क्विस बेल्सली को सूचित किया कि भारतीय नरेशों में यह प्रथा प्रचलित थी कि युद्ध के समय भी दो विरोधी नरेशों के दूत एक दूसरे के दरबार में रहते थे। * अंग्रेजों ने भविष्य के लिए मराठों पर कुछ प्रतिबन्ध भी लगाए थे जिनमें से प्रमुख यह था कि मराठे मैसूर के नए महाराज के क्षेत्र में उपद्रव करने का प्रयत्न नहीं करेंगे और न उसके किसी क्षेत्र पर आक्रमण ही करेंगे। इस पर पेशवा ने उत्तर दिया कि यदि उसे दक्षिण सरहद पर स्थित टीपू के राज्य का भाग मिल जाता है, तो उसे उस चौथ के बराबर समझा जायगा, क्योंकि मराठों को भूत टीपू सुल्तान के पूरे राज्य क्षेत्र में चौथ वसूल करने का अधिकार प्राप्त था, यह उनके हक का प्रश्न है। अतः इस इलाके पर कब्जा मिल जाने के पश्चात वे भविष्य में फिर कभी टीपू के वितरित इलाकों के शासकों से चौथ नहीं बसूल करेंगे। पेशवा ने यह वादा भी किया कि यदि कभी फ्रांसीसी भारत पर आक्रमण करेंगे, तो उनको मार भगाने में मराठे अंग्रेजों की मदद करेंगे; परन्तु पेशवा अंग्रेजों की इस बात पर राजी नहीं हुआ कि उसकी सेना में जो फ्रांसीसी नियुक्त है उन्हें

---

* बाजीराव पेशवा द्वारा बेल्सली के प्रस्ताव का विरोध किए जाने का कारण स्पष्ट था। निजाम का उदाहरण उसके सामने था, वह देख चुका था कि अँग्रेजों की मित्रता की उसे बहुत मँहगी कीमत चुकानी पड़ी थी। सन् १७९८ में उसे अपने राज्य का एक भाग अँग्रेजों को देना पड़ा और सन् १८०० में उसके राज्य का और बड़ा इलाका अँग्रेजों के हाथ में चला गया। निजाम की स्वतन्त्रता भी समाप्त हो गई थी और वह अँग्रेजों के हाथ की एक कठपुतली मात्र रह गया था—अनुवादक।

निकाल दिया जाय। पेशवा ने अँग्रेजों की दो बटालियन सेना अपने यहाँ रखना स्वीकार कर लिया, परन्तु इसके साथ उसने यह शर्त भी लगा दी कि वह ऐसा तभी करेगा जब वे बटालियनों को उन लोगों के विरुद्ध प्रयोग किया जा सके जो पेशवा के देनदार है, परन्तु समय पर बकाया रकम नहीं चुकाते, साथ ही उसने इन बटालियनों के बल पर जिन्जीरा पर अधिकार करने की शर्त भी लगाई। परन्तु इस समय पेशवा और निजामअली में कुर्दला की सन्धि के अनुसार चौथ की बकाया रकम के विषय में जो विवाद चल रहा था, उसमें उसने अँग्रेजों की मध्यस्थता के प्रस्ताव को किसी प्रकार भी स्वीकृत नहीं किया। पेशवा ने भविष्य में की जाने वाली सन्धि के लिए राधोजी भोंसले के पास जो पत्र भेजा था, उसमें उसने लिखा था कि भोंसले ही इस सन्धि का प्रमुख भागीदार है। अन्त में जब पेशवा दरबार में बहुमत से कोई निर्णय न हो सका तो वह सुरक्षित क्षेत्र पुनः दो भागों में बाँट लिया, जिसमें से सन्धि की शर्तों के अनुसार दो तिहाई भाग निज़ामअली के हाथ लगा और शेष एक तिहाई अँग्रेजों को मिला। इस विभाजन के निपट जाने के पश्चात सन् १८०० के अक्टूबर माह में निजाम अली और अँग्रेजों के बीच फिर एक सन्धि हुई जिसके अनुसार बाहरी शत्रुओं के आक्रमण से अपने मित्र निजाम अली के राज्य-क्षेत्र का समस्त प्रबन्ध अपने हाथों में ले लिया। निजामअली को अपनी सुरक्षा के लिए देशी सिपाहियों की बटालियनें पहले ही अँग्रेजों द्वारा प्रदान की गई थीं और निजाम को इन बटालियनों को रखना ही पड़ा था। अब देशी सिपाहियों की दो और बटालियनें भी निजाम अली के पास आ पहुँची जिसके साथ एक रेजीमेंट देशी सवारों की टुकड़ी भी थी।* यह सारा प्रबन्ध अँग्रेज अपने मित्र निजाम अली की सुरक्षा के लिए कर रहे थे, परन्तु इसके लिए निजाम को मँहगी कीमत चुकानी पड़ी; अँग्रेजों द्वारा भेजी गई इस सेना के व्यय के लिए निजाम अली को वे समस्त क्षेत्र अँग्रेज सरकार को दे देने पड़े जो १७९२ और १७९९ के युद्धों से, टीपू के राज्यक्षेत्र के बँटवारे के फलस्वरूप उसे दिए गए थे। इस प्रकार, १७९२ से १७९९ तक अँग्रेजों ने इस बात में तो मित्रता निभाई, कि प्राप्त क्षेत्रों में निजाम अली का हिस्सा भी लगाया; परन्तु सुरक्षा तथा सेना के व्यय के नाम पर गवर्नर जनरल ने उसका कुछ भाग तो सन् १७९२ में ही अपने हाथ में लिया था शेष भागों तथा १७९९ के मैसूर युद्ध से प्राप्त भू क्षेत्र में भी पहले तो निज़ाम का सबसे बड़ा हिस्सा लगा दिया और फिर कुछ सेना सिजाम अली के पास भेजकर फिर से प्राप्त समस्त इलाकों को, सेना व्यय के नाम पर अँग्रेजों ने निजाम से ले लिया।

इस समय सिन्धिया हर तरफ से चिन्ताओं से घिरा हुआ था और अधिकांश मामले ऐसे उलझ गए थे जिन्हें सुलझाने में उसे कोई सफलता नहीं मिल पा रही थी। कुछ समय पहले, जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है, शीरजी राव घाटगे ने धोखे से अमृतराव के कैम्प पर जो अचानक धावा कर दिया था उसके फलस्वरूप इधर से निराश होकर महादजी सिन्धिया की दोनों विधवाओं ने कोल्हापुर का मार्ग पकड़ा और राज़ा के यहाँ आश्रय ग्राहण किया। इस समय भी कोल्हापुर के राजा और पेशवा के बीच युद्ध चल ही रहा था। विधवा रानियों के कोल्हापुर पहुँचने की खबर पाते ही सिन्धिया की खिलाफत करने वाले कुछ सरदार भी धीरे-धीरे पास आकर एकत्रित होने लगे; इनमें सबसे पहले आया

---

* इस सम्बन्ध में यह तथ्या उल्लेखनीय है कि पहले मैसूर युद्ध में भी टीपू के वकील इसी प्रकार पूना में रहे, जबकि मराठों ने पूरे दिल से अँग्रेजों का साथ दिया था, परन्तु उस समय अँग्रेजों ने इस पर कोई एतराज नहीं किया था। स्पष्ट है कि इन व्यर्थ के अरोपों द्वारा, टीपू के विरुद्ध युद्ध में पेशवा की सेना को न बुलाने की चाल को उचित सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे थे। अनुवादक।

नारायण राव बख्शी तत्पश्चात, अनेक प्रमुख शिवनेरी ब्राह्मण भी विधवा रानियों के पास आ जुटे। अत्यधिक संख्या में उनके झण्डे के नीचे मराठा सवार एकत्रित होने लगे। जब उनकी सेना पर्याप्त शक्तिशाली हो गई तो वे मद में भरे हुए पुनः उत्तर की तरफ चल पड़े। उन्होंने कृष्णा नदी से लेकर गोदावरी नदी के बीच में प्रत्येक गाँव में बुरी तरह लूट पाट मचाई जो कि सिन्धिया के इलाके में पडता था और जहाँ के निवासी सिन्धिया का बहुत सम्मान करते थे। यही नहीं कि वे लूटमार द्वारा ही अपना विरोध प्रकट नहीं किया बल्कि उन्होंने हर प्रकार से सिन्धिया का अपमान करने का प्रयास किया। उन्होंने सिन्धिया की सेना में ही उसका अपमान (यद्यपि अप्रत्यक्ष) नहीं किया बल्कि पूना शहर के समस्त प्रमुख भागों और सड़कों को भी घेर लिया। सर्वप्रथम सिन्धिया की सवार सेना ने इन विद्रोहियों को रोकने का प्रयत्न किया परन्तु विद्रोही इतनी अधिक संख्या में थे कि इन सवारों से कुछ भी करते धरते न बन पड़ा। दो चार बार इग सवारों और विद्रोहियों से छिटपुट युद्ध हुए परन्तु इन मुठ भेड़ में सिन्धिया पक्ष के सवारों को बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी और बिना पैदल बटालियनों की सहायता लिए, वे आगे बढ़ने से हिचकने लगे। परन्तु इस के पहले कि ये बटालियनें विद्रोहियों से लोहा लेने के लिए तैयार हुई तब तक विधवा रानियों की सेना फिर कुछ पीछे हट गई। कुछ दूर तक उनका पीछा करने के बाद सिन्धिया की सेना फिर अपने कैम्प की तरफ वापस जाने लगी तो विद्रोही फिर घूम कर इन बटालियनों की तरफ चल पड़ जिस तरह से पेशवा की राजधानी में, स्वयम् पेशवा की अनुपस्थिति में उपद्रव हो रहे थे, उस तरह के उदाहरण शायद ही एकाध मिल सकें। ऐसा कभी नहीं सुना गया कि एक राजा के खिलाफ ऐसी हालत में विद्रोह किए जा रहे हो जब कि वह अपने राज्य में न होकर एक दूसरे की राजधानी में टिका रहा हो और उससे भी महत्वपूर्ण बाद यह कि जब दोनो ही पक्ष अर्थात विद्रोही और उनका राज दोनों ही इस सम्वन्धित राज्य के शासक की अधीनता में हों। पेशवा मराठा देश का प्रधान था और उसी के क्षेत्र में सिन्धिया और रानियों की सेनाएँ इस प्रकार संघर्ष कर रहीं थी और पेशवा उन पर नियन्त्रण रखने का जरा भी प्रयास नहीं कर पा रहा था—यह एक ऐसी घटना है, जिसके टक्कर की दूसरी घटना इतिहास के पन्नों में शायद ही कहीं मिल सके। मराठा—शासक बाजीराव पेशवा की इस निर्बलता एवम् अक्षमता के कारण पूरे महाराष्ट्र में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गई होगी पाठक इसकी कल्पना आसानी से कर सकते है। पूरा देश सवार सैनिकों से भर गया और यद्यपि उन्होंने कहीं अधिक बड़े पैमाने पर लूटपाट नहीं मचाई, परन्तु फिर भी यह अराजकता की स्थिति बहुत हानिकारक सिद्ध हुई और। देश की बहुत हानि और बरबादी हुई। अराजकता और अव्यवस्था की यह ज्वाला दक्षिण तक ही सीमित न रह गई, इस की लपटे हिन्दुस्तान तक पहुँचीं। इस समय सिन्धिया की अनुपस्थिति तथा बालोबा तात्या के अभाव में हिन्दुस्तान का सारा कारबार और शासन प्रबन्ध लखवा दादा के हाथ में था, जो कि इस समय सिन्धिया के दीवान के पद पर था। उसके ऊपर सन्देह किया गया कि बालोबा तात्या का साथी होने के कारण उसका भी इन उपद्रवों में हाथ है और सिन्धिया के साथ विश्वासघात कर रहा है, इसी सन्देह के आधार पर उसे दीवान पद से हटा दिया गया। जब उसने देखा कि उसके व्यवहारों को सन्दिग्ध माना जा रहा है, तो वह अन्य सिन्धिया विरोधी सर्दारों के दल में सम्मिलित हो गया और उनकी मदद से उसने एक काफी बड़ी सेना का संगठन कर लिया। उसके विद्रोहपूर्ण प्रयत्नों को दबाने के लिया सिन्धिया की राजधानी से दो बार सेनाएँ भेजी गईं, परन्तु इसके सामने सिन्धिया की सेना को दो बार पराजय का मुख देखना पड़ा और इसी बीच लखवा

फरवरी]

दादा ने अपनी शक्तिशाली सैन्य के बल पर उज्जैन से लेकर सिरौंज तक के सारे क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया । *

अभी तक सिन्धिया अपने विरुद्ध की साजिशों को दबाने का प्रयत्न कर ही रहा था कि जसवन्त राव होलकर ने भी एक तरफ से विपत्ति खड़ा करना प्रारम्भ करा दिया । जसवन्तराव का भाई विट्ठोजी होलकर पूना में ही मारा जा चुका था । अपने भाई की मृत्यु के पश्चात जसवन्तराव होलकर भाग कर नागपुर चला गया था, जहाँ सिन्धिया के प्रयत्नों से उसे कैद में डाल दिया गया था । वहाँ से वह किसी तरह भाग निकला और मालवा पहुँच गया, वहाँ उसने एक छोटी मोटी सेना का संगठन कर लिया और आस पास के क्षेत्र में लूटपाट और उत्पात मचाना प्रारम्भ कर दिया ।

उधर मालवा में जसवन्तराव की लूटपाट दिन ब दिन बढ़ती ही जा रही थी । पेशँ ने इस सम्बन्ध में सिन्धिया के पास दो बार सूचना भेजी कि वह किसी भी तरह जसवन्तराव के उपद्रवों को शान्त करने का प्रबन्ध करे ।

अपने राज्य में होने वाले इन उपद्रवों का समाचार पा कर सिन्धिया चिन्तित हो उठा और विधवा रानियों से सन्धि करने के लिए व्यग्र हो गया ताकि कम से कम इस झन्झट से उसका गला दूर जायं । परन्तु अब बात बहुत बढ़ चुकी थी और रानियों की माँग अन्तिम सीमा तक पहुँच गई थी। उनका कहना था कि महादजी सिन्धिया के समस्त राज्य पर उन्हीं का हक है और सुलह तभी हो सकती है जब कि दौलतराव, रानियों को सिन्धिया राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी घोबित करे और स्वयम् उनके नाम पर प्रशासन कार्य सम्भाले । दौलतराव इस पर किसी भी तरह तैयार नहीं था कि अपने चाचा द्वारा राज्य प्राप्त करने के पश्चात इस प्रकार अपना सारा अधिकार छोड़ दे । रानियों की एक और शर्त थी कि बालोबा तात्या को कारागार से मुक्त कर दिया जाय । स्पष्ठ है कि इन शर्तों पर सुलह होना सम्भव नहीं था ।

सिन्धिया बहुत पसोपेश में पड़ा कि इस स्थिति पर किस तरह नियन्त्रण पाया जाय । अपने परामर्शदाताओं से भी उसने इस सम्बन्ध में विचार विमर्श किया । उसके योग्य मंत्रियो आवा चिटनीस और रायजी पटेल ने उसे राय दी कि ऐसी स्थिति में बालोबा तात्या को मुक्त करके उसे पुनः प्रधान मंत्री के पद पर नियुक्त कर दिया जाय तो सम्भव है कि परिस्थिति कुछ सुलझ सके । सिन्धिया ने उनका मत स्वोकार कर लिया और बालोबा तात्या को मुक्त करने पुनः अपना दीवान बना लिया । इस कार्य की लाभदायक प्रतिक्रया तुरन्त होनी शुरू हो गई । उसके दीवान बनाए जाते ही उसका प्रभाव पुनः सिन्धिया से फूटे हुए सरदारों को राजधानी की तरफ आकर्षित करने लगा । अब हर गया रानियों का मामला, सो उन्होने भी इस बात पर सहमति प्रकट की कि उनके और दौलतराव के बीच विरोध को समाप्त करने के लिए बालोबा तात्या को मध्यस्थ वना दिया जाय तो वे किसी भी निर्णय को

---

* कुछ इतिहासकारों का कथन है कि सिन्धिया के राज्य में उसके प्रति असन्तोष पैदा करने में अँग्रेजों का बहुत बड़ा हाथ था । वे पेशवा 'सब्सीडियरी' सन्धि (अर्थात पूना में अँग्रेजी सेना रखने) के लिये सिन्धिया का पूना से हट जाना आवश्यक समझते थे, पहले उन्होंने काबुल के शाह जमानशाह के सम्भावित आक्रमण की अफवाह फैलाई परन्तु फिर भी जब सिन्धिया पूना से नहीं हटा तो अँग्रेजों ने सिन्धिया के राज्य में उसके विरुद्ध लोगों को भड़का कर झगड़े और विद्रोह शुरू कराने का प्रयत्न किया ताकि उन्हें दबाने के लिये सिन्धिया हिन्दुस्तान की ओर चला जाय, परन्तु उनकी यह योजना भी सफल न हो सकी और वह पूना में ही बना रहा— अनुवादक ।

स्वीकार कर लेंगी। अन्त में यह निश्चिय हुआ कि महाद जी की विधवा रानियों को असीर गढ़ और बुरहानपुर, साथ में ११ लाख की जागीर भी दी जायगी। बालोबा तात्या के दीवान हो जाने पर लखवा दादा ने भी सिन्धिया राज्य के विरुद्ध हथियार डाल देने का निर्णय किया। इस समय मालवा में लखवा दादा और अम्बा जी इंगिलया के बीच संघर्ष चल रहा था, लखवा दादा ने व्यक्तिगत रूप से उससे भेंट की और युद्ध बन्दी का प्रस्ताव रक्खा। अब ऐसा प्रतीत हो रहा था कि सिन्धिया के विरुद्ध सारी प्रतिकूल परिस्थितियाँ सुधर जायँगी और सिन्धिया राज्य में पुनः शान्ति स्थापित हो जायगी। विधवा रानियाँ भी उपरोक्त निर्णय से सन्तुष्ट हो गई थी, सिन्धिया के कब्जे में उनके जितने भी आभूषण, वस्त्र और अन्य निजी सम्पत्तियाँ थीं, वे उनको वापस कर दी गईं। वे पूना की ओर रवाना हो गईं और जिजूरी के निकट स्थित राजवाड़ी नामक स्थान तक पहुँच गई थीं कि अचानक उनके पक्ष के एक आदमी पर हमला कर के उसे काट डाला गया, इससे उन्हें कुछ सन्देह हो गया और वे आधे मार्ग से ही वापस लौट पड़ीं और पटारपुर की ओर चल पड़ीं, जहाँ से उनके सैनिकों ने पुनः सिन्धिया के क्षेत्र में लूट मार प्रारम्भ कर दिया।

इस समय विभिन्न राजनैतिक मतभेदों एवम् विवादों के कारण मराठा साम्राज्य का दक्षिणी भाग बहुत ही अव्यवस्थित हो गया। कोल्हापुर का राजा अभी भी शान्ति स्थापना के पक्ष में नही था, और पेशवा के विरुद्ध युद्ध छेड़े हुए था। सतारा के राजा की पराजय के पश्चात चित्तौर सिंह भी अपने सैनिकों के साथ कोल्हापुर के राजा से मिल गया और इस प्रकार अपनी शक्ति बढ़ जाने से कोल्हापुर का राजा और भी प्रोत्साहित हो गया तथा उसके प्रयत्नों में नया उत्साह आ गया। जब चित्तौर सिंह सतारा की पराजय के पश्चात् भागा तो रस्तिया की सेना की एक टुकड़ी ने काफी दूर तक उसका पीछा किया था, जो भागते हुए चित्तौर सिंह का पीछा कर रही थी, बीच में ही प्रीतिनिधि की सेना का सहयोग भी था और चित्तौर सिंह को कोल्हापुर तक खदेड़ देने के बाद दोनों सैन्य दलों ने एक साथ वरुणा नदी के किनारे कैम्प डाल दिया। इसी बीच सतारा की पराजय के बाद वहाँ की सेना के विघटित कर दिए जाने पर लगभग ५०० सवार अपने सरदार चित्तौर सिंह की खोज में निकले और यह पता पाने पर कि वह कोल्हापुर में है, उन्होंने उससे पूछा कि अब हम लोगों के लिए आप का क्या आदेश हैं; चित्तौर सिंह ने उन्हें राय दी कि तुम लोग अभी कुछ दिनों तक आस पास की पहाड़ियों में छुप कर पड़े रहो; मै कोशिश कर रहा हूँ कि मुझे कोल्हापुर से थोड़ी बहुत सहायता मिल जाय; जैसे ही मैं अपने इस प्रयास में सफल हुआ, मैं तुरन्त तुम लोगों को साथ लेकर, हमारा पीछा करने वाली इस टुकड़ी के एक-एक सैनिकों को काट कर नदी में बहा दिया जायगा। उसे ऐसा अवसर भी शीघ्र ही मिल गया और उसने सुनियोजित ढंग से रस्तिया और प्रतिनिधि के सैनिकों पर आक्रमण कर दिया और इतना भयानक हत्याकाण्ड मचाया कि शायद ही कोई शत्रु सैनिक अपनी जान बचाने में सफल हो गया। इस घटना के कुछ ही दिनों बाद एक बार उसको मुठभेड़ परशुराम भाऊ की सेना के एक दस्ते से, अचानक ही हो गई और इस टुकड़ी का भी वही हाल हुआ था, अर्थात् कोई भी सैनिक जीता बच कर नहीं जा पाया। सभी तक परशुराम भाऊ की उपस्थिति सतारा में होने से वह कुछ डरा हुआ था, परन्तु जब उसे खबर मिली कि परशुराम भाऊ सतारा से चला बया है और इस समय केवल रस्तिया ही रह गया है जो दो-तीन हजार सैनिकों और कुछ तोपों के साथ सतारा के पास हीं पड़ाव डाले पड़ा है तो उसने दृढ़ संकल्प किया कि वह सतारा की पिछली पराजय का बदला इस टिकी हुई सेना से लेकर ही रहेगा। अपनी इस प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए उसने एक चातुर्यपूर्ण योजना बनाई जिसके अनुसार वह केवल ६०० पैदल सैनिकों के

साथ घाटियों और पहाड़ियों में छिपता हुआ, पाल नामक गाँव के पास पहुँच गया। इस प्रकार पूर्ण रूप से तैयार होकर इन ६०० जवानों ने गुरु गम्भीर स्वर से अपने नायक के साथ दृढ़ प्रतिज्ञा किया कि आज के युद्ध में हम विजय प्राप्त करेंगे, या अपने प्राणों की आहुति दे देंगे। इस विजय या मृत्यु के संकल्प के साथ वे रस्तिया के कैम्प की ओर घने अंधकार में चल पड़े। रस्तिया की सेना भी झपकी नहीं ले रही थी, बल्कि पूर्ण रूप से सतर्क और तैयार थी। उन्होंने चित्तौर सिंह के आदमियों को देखते ही गोलियाँ चलाना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु वे मुश्किल से गोलियाँ की दो चार बाढ़ ही छोड़ सके थे कि चित्तौर सिंह के जवानों ने हाथ में तलवार लिए हुए, सिंहनाद कर के भूखे बाघों की तरह रस्तिया की सेना पर टूट पड़े और विद्युत गति से उनकी तोपों को छीन कर नष्ट कर दिया। कुछ ही क्षणों में, रस्तिया के दो तीन हजार सैनिक इन छः सौ जवानों की तलवारों की चोट से व्याकुल हो कर तितर-वितर हो गये और जहाँ सींग समाई, जा छुपें, या भाग खड़े हुए। इसके पहले कि चित्तौर सिंह को रोकने का कोई प्रयत्न किया जा सके, वह अपने बचे खुचे साथियों के साथ अत्यन्त तीव्र गति से वरूणा नदी के तट की ओर लौट गया। उसके इस दुस्साहस पूर्ण अभियान और अनुपम शौर्य की गाथा कुछ ही समय में पूरे महाराष्ट्र में फैल गई और सभी ओर उसकी धाक जम गई। अब उसके पास सैनिकों का अभाव न रह गया और दूर-दूर से वीर सैनिक उसके झण्डे के नीचे आने लगे। कुछ ही दिनों में उसके पास एक अच्छी सेना संगठित हो गई, जिसकी सैनिक संख्या में दिन-ब-दिन वृद्धि होती ही जा रही थी। परन्तु चित्तौर सिंह इतना साधन सम्पन्न नहीं था कि अपने अधीन बहुत बड़ी सेना रख सकता, परन्तु अपनी सामान्य सी सेना और सीमित आर्थिक साधनों के वल पर ही वह रस्तिया के सात हजार सैनिकों को नीरा और वरूणा नदी के बीच में, काफी समय तक मनमाना नाच नचाता रहा। इस बीच कई स्थानों पर उसे रस्तिया की सेना से पराजित भी होना पड़ा, परन्तु वह किसी तरह फिर शक्ति संगठित कर रस्तिया के सैनिकों को तंग करता ही रहा। एक बार, जब कि इसके पास केवल पाँच सौ सैनिक थे अचानक रस्तिया के ५००० सैनिकों ने बहुत बुरी तरह उसे चारों ओर से घेर लिया। इतने पर भी वह हिम्मत न हारा, और अपने से दसगुनी बड़ी सेना के बीच से मार काट कर अपना रास्ता बनाता हुआ वह सकुशल भाग निकला, यद्यपि इस युद्ध में उसकी टुकड़ी के लगभग आधे सैनिक खेत रहे। अपनी कुछ विशेषताओं के कारण वह शीघ्र ही सारे महाराष्ट्र में बहुत लोक प्रिय हो गया। उसकी सर्व प्रमुख विशेषता थी, उसका दुस्साहस पूर्ण स्वभाव और कठिन से कठिन घेरों को प्रशंसनीय ढंग से तोड़ कर निकल जाना, जिसके कारण उसका शत्रुओं के हाथ में पड़ जाना असम्भव की सीमा तक कठिन था। ।उसकी लोक प्रियता का दूसरा कारण था उसका सदुद्देश्य; वह सतारा के उस राजा की स्वतंत्रता के विरोधियों से संघर्षरत था जो छत्रपति शिवा जी महाराज का वंशज था। वह सामान्य जनों और निम्नश्रेणी के लोगों पर बहुत विश्वास रखता था और उनसे अपना व्यवहार बनाए रखता था, जिसके कारण गाँव-गाँव में उसे सम्मानित दृष्टि से देखा जाता था और उसकी समुचित सहायता भी की जाती थी। सम्पूर्ण महाराष्ट्र में अपनी इन वीरोचित विशेषताओं के कारण वह अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त कर चुका था।

इस समय तक चित्तौर सिंह की कार्यवाइयों से पेशवा सरकार के नाको दम हो गया था और वे लोग समझ रहे थे कि उसकी सारी गतिविधियों के पीछे कोल्हापुर के राजा का हाथ है, क्योंकि वह सतारा से भाग कर सीधे कोल्हापुर ही गया था और रस्तिया की सेना पर उसका प्रथम आक्रमण भी कोल्हापुर के सैनिकों की मदद से ही हुआ था; चित्तौर सिंह को इस प्रकार के व्यवहार के लिए विवश करने के दोषी बाजीराव पेशवा और नाना फड़नवीस ही थे।

जिस समय रस्तिया ने सतारा को घेर रक्खा था और जब कि चित्तौर सिंह वरुणा नदी के तट के पास रस्तिया की सेना को परेशान कर रहा था, उस समय कोल्हापुर का राजा भी पेशवा के विरुद्ध अभिसन्धियों को पूरा करने में व्यस्त था। सर्व प्रथम उसने परशुराम भाऊ भास्कर और धूंन्धू पन्त गोखले की खबर लेने का निश्चय किया। परशुराम की जागीर की राजधानी तासगाँव में थीं, एक दिन अचानक कोल्हापुर के राजा के सैनिकों ने तासगाँव को बुरी तरह लूटा; भाऊ ने बहुत अधिक धन व्यय कर के अपने लिए एक बहुत ही आलीशान महल बनवाया था, कोल्हापुर के सैनिकों ने भाऊ के इस महल में भी आग लगा दिया और जलाकर राख कर दिया। उन्होंने पूरे कर्नाटक चेत्र से कर वसूल किया। यद्यपि धूंन्धू पन्त को एक बहुत ही वीर और सक्रिय सैनिक अधिकारी माना जाता था, परन्तु कोल्हापुर के सैनिकों के हाथों उसे दो बार पराजय का मुँह देखना पड़ा। इस समय हम जिस काल के घटनाक्रम का अध्ययन कर रहे हैं, उस समय कोल्हापुर के राजा और पेशवा बाजीराव के बीच इसी रूप में शत्रुता चल रही थी और कोल्हापुर की युद्ध नीति भी छिटपुर रूप में आक्रमण करने की ही थी, अभी तक कोई महत्वपूर्ण और निर्णायक युद्ध उनके बीच में नहीं हुआ था।

अब पेशवा दरबार की घटनाओं की तरफ ध्यान देना भी आवश्यक प्रतीत होता है। अगस्त माह में, जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं, सिधिन्या ने अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों से तंग आ कर और बालोबा तात्या को ही एकमात्र उचित परामर्शदाता समझ कर उसे अगस्त माह में मुक्त कर दिया था। मुक्त होते ही बालोबा तात्या ने नाना फड़नवीस से मुलाकात कर के उससे सुलह कर लिया। पिछले दिनों में अँग्रेजों और निजाम अली से पेशवा दरबार और अन्य मराठा सरदारों के किस प्रकार के व्यवहार चल रहे थे और भविष्य में उनके सम्बन्ध में किस प्रकार की नीति अपनाई जाय, इस सम्बन्ध में दोनों अनुभवी कुटनीतिज्ञ गुप्त और गूढ़ रूप से विचार विमर्श किया, परन्तु इस समय दोनों ही व्यक्तियों ने एकमत हो कर यह तय किया कि सर्व प्रथम, दक्षिण की ओर हो रहे उपद्रवों को दबाना अत्यावश्यक है। उनके विचार में ऐसा किए बिना अन्य किसी भी सम्बन्ध में कोई नीति निर्धारित कर के उसे पूर्ण कर लेना अत्यन्त ही कठिन सिद्ध होगा।

अतः इस निश्चय के अनुसार कोल्हापुर के राजा की दुष्टता का उसे मजा चखाने के लिए सर्व प्रथम प्रश्न उठा कि सेना कहाँ से भेजी जाय। नाना फड़नवीस ने राय दी कि टीपू के विरुद्ध अँग्रेजों की मदद करने के लिए जो सेना परशुराम के नेतृत्व में तैयार की गई थी उसी को इस अभियान की और शक्ति प्रदान करने के लिए भेज दिया जाय। इस सेना में कई केन्द्रों से सैनिक एकत्रित किए गये थे जिसमें से प्रमुख थे दौलतराव सिन्धिया, पेशवा तथा अन्यान्य छोटे बड़े जागीरदारों के थोड़े अधिक सैनिक सम्मिलित थे और इस प्रकार एकत्रित किये हुये कुल सैनिकों की संख्या लगभग ३६००० हो गई, जिसमें से ३०००० तो सवार थे और शेष ६००० पैदल सैनिक थे। परन्तु अभी परिस्थितियाँ कुछ ऐसी थीं कि यह सेना दशहरे के पहले नहीं तैयार हो सकती थी और उधर कोल्हापुर के राजा के दुष्टतापूर्ण कार्यों का प्रतिकार करना आवश्यक प्रतीत होने लगा। अतः परशुराम भाऊ को अपने थोड़े ही आदमियों के साथ कोल्हापुर के राजा पर निरन्तर नजर रखने का आदेश दिया गया तथा जैसे भी, उसकी प्रतिकूल करिवाइयों का भरसक रोकने का निर्देश भी कर दिया गया। यद्यपि परशुराम भाऊ इस समय बहुत बीमार था पर अपनी जागीर में और अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति के साथ कोल्हापुर के राजा की इन हरकतों को सुन कर वह पहले से उत्तेजित हो कर दाँव ढूंढ़ रहा था। अब पेशवा का आदेश मिलते ही, वह अपने मुट्ठी भर सैनिकों के साथ तुरन्त दक्षिण की ओर

बढ़ चला और बरसात भर कोल्हापुर की सेनाओं पर छिटपुट आक्रमण कर के उसे परेशान करने लगा। धीरे-धीरे अपने सीमित साधनों के बल पर ही उसने पूरवा नदी के बीच कोल्हापुर की कई सैनिक टुकड़ियों को स्थान स्थान पर पराजित किया। सितम्बर के प्रारम्भ में, वह कोल्हापुर की ओर से चल पड़ा। यद्यपि नाना फड़नवीस ने उसे राय दिया था कि दशहरा तक किसी प्रकार शत्रुओं को उलझाए रक्खे और दशहरा के बाद पूरी सेना संगठित हो जाने पर कोल्हापुर पर खुला आक्रमण कर देना, परन्तु परशुराम भाऊ के हृदय में तो प्रतिहिंसा की ज्वाला जल रही थी। उससे चुप नहीं बैठा गया और बिना पूना की सेना की प्रतीक्षा किये हुए ही वह कोल्हापुर की ओर चला गया। उसने सोचा कि कोल्हापुर के राजा से वह अकेले निपट लेगा। वह कोल्हापुर की ओर तीव्रगति से बढ़ा जा रहा था कि बीच में पाटन कुण्डी नामक गाँव के पास कोल्हापुर के राजा और चित्तौर सिंह से उसकी मुठभेड़ हो गई, जिनकी विशाल संयुक्त वाहिनी के आगे भाऊ के इने-गिने में सैनिक अधिक समय तक न टिक सके। कुछ देर के युद्ध के पश्चात् परशुराम भाऊ को, बुरी तरह घायल हो जाने के पश्चात् उसे कैद कर लिया गया और उसकी सेना बुरी तरह पटाजित होकर भाग निकली।

परशुराम भाऊ की दुर्भाग्य पूर्ण असफलता का समाचार पूना पहुँचने पर नाना फड़नवीस ने तुरन्त कोल्हापुर के राजा के खिलाफ गम्भीर कर्रवाई प्रारम्भ कर दी। नाना और बालोबा तात्या ने विंचूरकर और प्रीतिनिधि की सेनाओं के साथ दौलतराव सिन्धिया की प्रशिक्षित सेना की ५ बटलियनों को अविलम्ब कोल्हापुर की तरफ रवाना कर दिया और इस विषय में परशुराम भाऊ के लड़के अप्पा साहब के पास सूचना भेजते हुए उसे आदेश दिया कि कोल्हापुर के राजा से अपने पिता का बदला लेने के लिए और उसका दर्प चूर्ण करने के लिए तुरन्त करिवाई प्रारम्भ कर दी जाय।

इतनी विशाल सेना की सहायता पा कर, प्रतिहिंसा की भावना से पागल अप्पा साहब का उत्साह द्विगुणित हो उठा और वह कोल्हापुर पर चढ़ दौड़ा। कोल्हापुर का राजा अपने ऊपर इतनी बड़ी सेना के आक्रमण की खबर पा कर चिन्तित हो उठा और उसे युद्ध करने का साहस भी न हुआ। वह चुपके से किले से भाग निकला और जा कर पन्हाला में शरण लिया। परन्तु मात्र उसके भाग जाने से ही अप्पा साहब का क्रोध शान्त न हुआ। उसने कोल्हापुर की सेना का विनाश करना प्रारम्भ कर दिया। कोल्हापुर की सेना के कुछ सैनिकों को पीछे ढकेलते हुए वह किले के फाटक तक पहुंच गया। सेना के अधिकांश भाग ने पहले से ही कोल्हापुर में शरण ले

१८००] रक्खी थी। कुछ ही देर में कोल्हापुर में पेशवा की सेना ने कोल्हापुर पर

और कड़ा पहरा बैठा दिया। अब सम्भावना ही चली थी कि यह किला शीघ्र ही आत्म समर्पण कर देगा, परन्तु इसी समय पूना में कुछ इतनी क्रान्तिकारी घटना हुई कि सारी परिस्थितियों ने नया मोड़ ले लिया जिसके कारण कोल्हापुर नष्ट होने से वच गया। यदि उक्त घटनाओं और परिवर्तनों ने हस्तक्षेप न किया होता तो अधिक सम्भावना यही थी कि यह किला नष्ट-भ्रष्ट हो जाता या कम से कम भविष्य में वह सदेव के लिए पेशवा सरकार के अधीन हो जाता। अब हम अगले अध्याय में इन क्रान्तिकारी घटनाओं का अध्ययन एवम् बिलेषण करेंगे जिनके कारण कोल्हापुर नष्ट होते-होते बच गया।

इकतालीसवां अध्याय

सिन्धिया और होल्कर में भयानक संघर्ष

[१८००—१८०२]

नाना फड़नवीस की मृत्यु—चरित्र—सिन्धिया और पेशवा में पुनः विवाद—धुन्देवा और नारायण राव बख्शी की भयानक कार्रवाइयाँ—अराजकता एवम् अव्यवस्था की स्थिति—धूड़िया बाघ के उपद्रव—अंगरेजी सेना द्वारा उसका दमन—पूना की गतिविधियाँ—बाजीराव की स्थिति और उसके विचार—मालवा में सिन्धिया की नाजुक स्थिति—जसवन्त राव होलकर का उदय और उत्कर्ष—सिन्धिया की प्रतिरक्षात्मक निर्बलता—हिन्दुस्तान की तरफ प्रयाण—सिन्धिया के दो सैनिक दस्तों का होलकर द्वारा विनाश—मेजर ब्राउनरिंग से हार कर पीछे लौटना—पूना की गतिविधियाँ—विट्ठो जी होलकर—इन्दौर में जसवन्त राव होलकर की पराजय—जसवन्त राव द्वारा दक्षिण की तरफ युद्ध—सफलता उसके विरुद्ध—सदाशिव भाऊ भास्कर को भेजा जाना—पेशवा का व्यवहार—पूना का युद्ध—होलकर की विजय—पेशवा का वसई की तरफ बढ़ना—गुजरात में घटना क्रम ।

जिस समय के इतिहास का वर्णन हम अब करने जा रहे हैं; उसमें समय एवम् महत्व की दृष्टि से सर्व प्रमुख, एवम् उल्लेखनीय घटना है नाना फड़नवीस की मृत्यु, जो कि पेशवा-राज्य के लिए अत्यन्त ही घातक सिद्ध हुई, जैसा कि हम आगे देखेंगे । नाना फड़नवीस का स्वास्थ्य बहुत दिनों से गड़बड़ चल रहा था, और इधर एक लम्बे समय से दिन ब दिन उसका स्वास्थ्य १८०० ई०] गिरता ही जा रहा था । परन्तु गम्भीर रूप से अस्वस्थ रहने पर भी नाना फड़नवीस ने अपने कर्तव्य के प्रति जरा भी लापरवाही नहीं प्रगट किया था । वह निरन्तर दरबार आता रहा और राजनैतिक मामलों में पेशवा को आवश्वयक सहयोग एवम् मंत्रणा देता रहा । अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक, अपने स्वाभाविक उत्साह एवम् पूर्ण नियमित ढंगसे वह शासन कार्यदेखता रहा । अन्त में काम करते करते ही नाना फड़नवीस ने १३ मार्च को अन्तिम साँस ली । उसकी मृत्यु की खबर गवर्नर जनरल को देते हुए रेजीडेन्ट कर्नल पामर ने अन्तिम साँस ली । उसकी मृत्यु की खबर गवर्नर जनरल को देते हुए रेजीडेन्ट कर्नल पामर ने यह लिखकर उस महान कूट-नीतिज्ञ एवम् देशभक्त को अपनो श्रद्धाँजलि अर्पित की थी कि उसकी मृत्यु के साथ ही मराठा सरकार की समस्त बुद्धिमता एवम् उदारता भी समाप्त हो गई । यदि उस नाना फड़नवीस के सम्पूर्ण जीवन को सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो हम यह मानने से इनकार नहीं कर सकेंगे कि वास्तव में नाना फड़नवीस अपने समय का सर्वश्रेष्ठ कूटनीतिक एवम् राजनैतिक महत्व का व्यक्ति था । यदि हम उसके चरित्रगत दोषों की खोज करें, तो हमें उसके दो प्रमुख दोष दिखाई पड़ेंगे; जिनके कारण उसे अपने राजनैतिक जीवन में अनेकानेक कष्टों एवम् विपत्तियो का सामना करना पड़ा । उसका पहला दोष था कि उसमें व्यक्तिगत साहस का बहुत अभाव था और दाँव आ पड़ने पर उसका साहस जवाब दे जाता था । उसमें दूसरा दोष था उसकी उच्च महत्वाकांक्षाएं, जिन्हें पूर्ण करने के लिए वह अपने सिद्धान्तों तक को विलाँजलि दे बैठता था । उसके जीवन के अन्तिम वर्ष बहुत कष्ट एवम् विपत्ति में गुजरे, परन्तु इस बीच उसने जो कार्य किये और मराठा राज्य के हित के लिए जो प्रयत्न किए; उनके आधार पर हम

बिना झिझक या सन्देह के कह सकते हैं कि वह एक महान देशभक्त था, इस सम्बन्ध में केवल मराठा लेखकों ने ही नहीं, बल्कि अंग्रेजी लेखकों ने भी उसकी बहुत प्रशसा की है। इस अवधि के उसके समस्त विचार एवम् कार्य देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत थे। वह सदैव बाजीराव को ऐसी मंत्रणाएं एवम् परामर्श ही देता था, जिनको वह देश एवम् राज्य के लिए हितकारी समझता था, भले ही उसका परिणाम कुछ भी हो। वह स्वयं कर्म में विश्वास करता था और जानता था कि यदि कर्म श्रमपूर्वक किया जायगा, तो परिणाम भी अनुकूल ही होगा। मारक्विस वेल्सली निरन्तर इसी प्रयत्न में था कि पेशवा किसी भी प्रकार अपनी राजधानी में अंग्रेजों की सब्सिडियरी (सहायक) सेना रखने के प्रस्वात को स्वीकार कर ले, परन्तु नाना फड़नवीस निश्चित रूप से इस पक्ष में नहीं था कि एक स्वतंत्र एवं साधन सम्पन्न राज्य में कोई विदेशी सेना रहे और शासन कार्य एवं राजनीति में हस्तक्षेप करे, विशेषकर ऐसी स्थिति में जब कि बिना इस प्रकार की सहायता के ही राज्यकार्य सुचारु ढंग से चलता जा रहा हो। वह अंग्रेजों का सम्मान करता था, उनकी ईमानदारी और नीति कुशलता की कदर करता था, एवं उनके शासन प्रबन्ध की ठोस नींव की प्रसन्सा करता था, परन्तु राजनैतिक दृष्टि से वह अंग्रेजों का परम शत्रु था और वह उनके प्रति इतनी ईर्ष्या रखता था, जितनी कि कोई अन्य व्यक्ति नहीं रखता था। ईर्ष्या भाव रखने से साथ ही, वह अंग्रेजों की चालों से बचने के लिए सतर्क भी बहुत रहता था। नाना फड़नवीस के जीवन को हम सार्वजनिक जोवन की संज्ञा दे सकते हैं जिसके एक एक कार्य, व्यवहार एवं विचार का पूरा-पूरा प्रतिविम्ब जनता के सामने स्पष्ट रहता था। उसके उद्देश्यों, उसके सम्बन्धित व्यवहारों एवं विचारों तथा जीवन की प्रमुख घटनाओं का इतना विस्तृत विवरण देखने को मिलता है कि उसके चरित्र के विषय में विशेप विवरण देना अनावश्यक प्रतीत होता है। अपने व्यक्तिगत जीवन में वह अत्यन्त ही सत्यप्रिय, भावुक, उदार और दानी व्यक्ति था। उसके समस्त कार्य नियमित ढंग से होते थे, उसका जीवन संयम के मजबूत धागों से बंधा हुआ था और वह अकेले ही प्रतिदिन जितना कार्य करता था, उसका विवरण प्रस्तुत किए जाने पर, हम उस पर सहज ही में विश्वास ही नहीं कर सकते। जहाँ तक देश की आन्तरिक व्यवस्था एवम् प्रशासन का सम्बन्ध है, जब तक नाना फड़नवीस के हाथ में शक्ति बनी रही, वह सदैव माधव राव बल्लाल के पद चिन्हों पर चल कर सुशासन एवम् सुप्रबन्ध कायम रखना चाहता था और उसी व्यवस्था को पुर्नजीवित रखने के लिये वह सदैव तत्पर रहना था तथा इस सम्बन्ध में योजनाएं बनाने एवम् उनको पूरा करने का प्रयत्न करता था। परन्तु इस कार्य में वह अपनी इच्छानुसार चलने एवम् निर्णय करने का अवसर नहीं पाता था। बीच बीच में ऐसी ऐसी उलझनें आ पड़ती थीं जिनके कारण प्रायः उसे अपना उद्देश्य पथ छोड़ देना पड़ता था, यह उसकी परिस्थितियों की विवशता ही थी, कि उसकी सूक्ष्म कूटनीतिक बुद्धि का समुचित सहयोग, मराठा साम्रज्य को न मिल सका, जिसमें हम पेशवा की अदूरदर्शिता को भी एक महत्वपूर्ण कारण मान सकते हैं।

शारीरिक रचना की दृष्टि से नाना फड़नवीस एक लम्बा एवम् दुबला पतला व्यक्ति था। उसका रंग कुछ साँवला था और चेहरे के हाव भाव से वह अत्यन्त ही गम्भीर एवं विचारपूर्ण व्यक्ति प्रतीत होता था। उसकी दृष्टि बहुत ही तीव्र बुद्धिमतापूर्ण और चीजों की तह तक पहुंचने वाली थी। वह अत्यन्त ही दूरदर्शी तथा सोच विचार कर कार्य करने वाला व्यक्ति था, परन्तु उसकी प्रबल महत्वाकांक्षा कभी उसकी दूरदर्शिता को मात दे जाती थी। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके परिवार में केवल उसकी युवा विधवा पत्नी भर बची। नाना फड़नवीस निःसन्तान ही मरा।

पेशवा के रूप में बाजीराव में बदला लेने की प्रवृत्ति बहुत ही बलवती थी। यदि यह प्रवृत्ति

उसमें न होती तो सम्भवतः उसे अपने जीवन में इतनी असफलताएँ न मिलतीं। नाना फड़नवीस जब तक रहा, बाजीराव उसके विरुद्ध षड़यन्त्र ही करता रहा, अब उसके न रहने पर उसकी वक्र दृष्टि नाना के परिवार; आश्रितों और सहयोगियों पर पड़ी। उसने अब उनको मिटाने का संकल्प भी कर लिया। केवल नाना के ही नहीं, परशुराम भाऊ पटवर्धन के परिवार पर भी पेशवा की कुदृष्टि थी और वह उनको मिटा डालने पर उतारू था। कुछ स्वार्थवश सिन्धिया ने भी इन कुचक्रों में उसका साथ देने का बचन दिया। सर्वप्रथम उसने नाना फड़नवीश के परिवार के विरुद्ध कार्यवाई शुरू की। पेशवा, नाना की पत्नी द्वारा दत्तक पुत्र ग्रहण किए जाने के प्रस्ताव का विरोध कर रहा था, परन्तु अपनी योजनानुसार उसने अब इस बात की स्वीकृति दे दी और अप्रत्यक्ष रूप से इस कार्य के लिए नाना की विधवा पत्नी को प्रोत्साहित भी किया। अन्त में नाना फड़नबीस के सभी सहयोगियों को एक साथ जाल में फँसाने के लिए पेशवा ने अपने महल में ही नाना की विधवा द्वारा गोद लिए जाने के विषय में विचार विमर्श करने के लिए एक बैठक की आयोजना की, जिसमें उसने ऐसे सभी लोगों को निमंत्रित किया जो नाना फड़नवीस के समर्थक थे। जब सभी लोग एकत्रित हो गये, तभी अचानक पेशवा ने अत्यन्त उत्तेजित स्वर में उन उपस्थित व्यक्तियों पर आरोप लगाते हुए कहा कि आप लोग मेरे विरुद्ध विश्वासघातपूर्ण षड़यन्त्र कर रहे हैं और नाना की विधवा द्वारा गोद लिए जाने वाले व्यक्ति को पेशवा की मसनद पर बैठाने की योजनाएँ बना रहे हैं। पेशवा की इन बातों को सुनकर सभी उपस्थित व्यक्ति सन्नाटे में आ गये और अभी प्रतिवाद में कुछ कह भी न पाये थे कि पेशवा के आदेश पर महल के रक्षक सैनिकों ने उन्हें कैद कर लिया और उनको दूर के पहाड़ी किलों में कैदी के रूप में भेज दिया गया। नाना फड़नवीस के मित्रों एवम् सहयोगियों से निपट लेने के बाद पेशवा की प्रतिहिन्सा की भावना का शिकार हुआ परशुराम भाऊ पटवर्धन का परिवार; इस विनाश-कार्य के लिए सिन्धिया पूर्ण रूप से सहायता करने को तैयार था, क्योंकि भाऊ की उपजाऊ और समृद्ध जागीर पर उसकी ललचाई हुई आँखें बहुत दिनों से गड़ी हुई थीं और वह जैसे भी हो, इसे हथिया लेने के लिये व्यग्र था। इस समय अप्पा साहब, पेशवा की सेना के साथ कोल्हापुर में राजा के विरुद्ध घेरा डाले पड़ा था, परन्तु ज्योंही उसे पेशवा-सिन्धिया की इस सम्मिलित दुरभिसन्धि के विषय में अप्पा साहब के कान में भनक पड़ी, उसने कोल्हापुर की लगभग प्राप्त विजय के सुन्दर अवसर को छोड़ दिया तथा धुन्धू पन्त गोखले तथा अपने अन्य सहयोगियों के साथ कर्नाटक में धस पड़ा। इधर शीरजी राव का जाल हर तरफ फैला ही हुआ था। इस समय तक कोल्हापुर के राजा की भी घाटगे के साथ खूब पटने लगी थी। उसी घाटगे के ही प्रयत्नों से सिंधिया की मदद के लिए कोल्हापुर का राजा भी तैयार हो गया। सीदों जी निम्बलकर की अधीनता में सिंधिया की कुछ बटालियनों को परशुराम भाऊ पटवर्धन के क्षेत्र पर आक्रमण करने के लिये रवाना कर दिया गया; यद्यपि इस रवानगी के पश्चात् ही मेजर ब्राउनरिंग को सिंधिया ने वापस बुलवा लिया था, परन्तु शीरजी राव घाटगे अपने सवारों के एक दस्ते के साथ मृत परशुराम भाऊ के क्षेत्र में लूट पाट मचाता रहा और मेरिच से लेकर बीजापुर तक हर जगह उसने लूट मार किया और क्षेत्र को बरबाद कर दिया।

इस प्रकार जिधर भी देखा जाय इधर ही अराजकता एवम् अव्यवस्था फैली हुई थी। पाठकों को याद होगा, कि मराठा सेना के हाथों पराजित होने पर टीपू का अनन्य सहायक एवम् आजादी का दीवाना धूँड़िया बाघ इस समय कोल्हापुर के राजा की सेना में नियुक्त था; परन्तु इस अव्यवस्थाओं से लाभ उठाने के लिए उसने कोल्हापुर की सेना का साथ छोड़ दिया और कर्नाटक में घुसकर क्षेत्रों में लूटपाट मचाने लगा, जिन पर हाल ही में अंग्रेजों का अधिकार हो चुका था। इस समय गोखले की

सेना भी पेशवा सिन्धिया अभिसन्धि के कारण उत्पन्न अव्यवस्थाओं एवम् विवादों में उलझे रहने के कारण कर्नाटक में अनुपस्थित थी अतः घूँड़िया ब.घ को खुला मौका हाथ लगा; कर्नाटक के अनेक जिलों से उसने कर भी वसूल किया। इस पर ब्रिटिश सरकार ने पेशवा से अनुरोध किया कि घूँड़िया बाघ के उपद्रवों को रोकना अति आवश्यक है अतः ब्रिटिश सेना को मराठा राज्य के क्षेत्रों में से होकर घूँड़िया बाघ का पीछा करने की अनुमति दी जाय। बाजीराव पेशवा ने इस अनुरोध को मान लिया। अभी ब्रिटिश सेना मराठा सरहद में नहीं घुसी थी, इसी बीच विपत्ति का मारा घुन्धू पन्त गोखले कर्नाटक आ पहुंचा। उसके आने की खबर पाकर घूँड़िया बाघ प्रतिहिंसा की भावना से विदग्ध हो गया। उसने अपने सभी आदमियों के सामने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि या तो मैं अपना जीवन उत्सर्ग कर दूँगा या धुन्धू पन्त के हृदय के रक्त से अपनी मूँछों को रंगूगा। जब उसे पक्की खबर मिल गई कि धुन्धू पन्त नजदीक आ पहुंचा है, तो उसने जंगल में एक स्थान पर अपना छिपा हुआ मोर्चा बना लिया और अवसर की ताक में लगा रहा कि कब धुन्धूपन्त अपनी मुख्य सेना से अलग हो ओर वह उसे धर दबोचे। ऐसा अवसर उसे शीघ्र ही मिल भी गया। एक दिन जब कि धुन्धूपन्त गोखले, अपनी मुख्य सेना से अलग होकर केवल एक छोटे से दस्ते के साथ उधर से गुजर रहा था, घूँड़िया बा। ने बढ़िया अवसर देखकर उस पर अचानक धावा कर दिया। गोखले अपने बचाव के लिए कुछ करने का प्रयास कर सके इसके पहले ही घूड़िया बाध ने उसे मार डाला और उसके हृदय के रक्त से अपनी मुंछों को रंग कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। इस मुठभेड़ में गोखले के पक्ष के अनेक व्यक्ति मारे गए; इन मारे गए लोगों में, धुन्धूपन्त गोखले का ज्येष्ठ भतीजा भी था। उसका छोटा भतीजा, बापू गोखले, जिसका उल्लेख आगे स्थान-स्थान पर किया जायगा, घूंड़िया बाघ के खूनी हाथों से किसी प्रकार बच निकला, परन्तु उसकी एक आँख जाती रही। चिंतामणि राव पटवर्धन भी इस मुटभेड़ में थोड़ा घायल हो गया, परंतु उसकी भी जान बच गई। ये दोनों व्यवित, अपने बचे खुचे सैनिकों के साथ भागते-भागते आश्रय की खोज में एक स्थान पर पहुंचे। जहाँ इस समय ब्रिटिश फौज का एक दस्ता पड़ा हुआ था। अंग्रेजों ने प्रेमपूर्वक उनका स्वागत किया और घूंड़िया बाघ से उसकी जान बचाई। *

घूंड़िया बाघ का पीछा करने के लिए जो सेना गवर्नर जनरल द्वारा भेजी गई थी उसका सेनापति का मेजर जनरल आर्थर वेल्सली, जो गवर्नर जनरल मार्क्विस वेल सली का सगा भाई था। जब उसने अपनी विशाल सेना के साथ कर्नाटक में प्रवेश किया तो उससे कतिपय मराठा सरदार भी आ मिले जिनमे प्रमुख थे गनपत राव धन्नासे, बापू गोरखा और चिन्तामणि राव पटवर्धन। ये मराठा सहायक ब्रिटिश फौजों के लिए, उनकी कार्य वाही के सम्बन्ध मे अधिक उपयोगी नहीं सिद्ध हुए। ब्रिटिश फौजें काफी समय तक घूंड़िया बाध, उर्फ म लक जहान खां का पीछा करती रही, अन्त में उसे
घेर पाने में वेल्सली को सफलता प्राप्त हुई। कोण्डगुल नामक गाँव के पास
१० सितम्बर] अंग्रेजी सेनाओं ने उसे बुरी तरह घेर लिया। इस समय घूंड़िया बाध के पास
५००० सवार थे। अंग्रेजी फौज ने उस पर भयानक आक्रमण कर दिया और उसके सारे सवार तितर बितर हो गए। घूंड़िया बाधने इस अवसर पर असीम उत्साह एवम् अतुलनीय पराक्रम का प्रदर्शन किया और इतनी विशाल सेना से लड़ते हुए भी वह जरा सा भी हतोत्साहित नहीं हुआ। उसके शौर्य को देखकर शत्रुओं को भी दातों तले उंगली दबानी पड़ी। अन्त में १९ वीं ड्रैगून्स ने भयानक धावा करके मृत्यु पर्यन्त पूर्ण उत्साह के साथ लड़ते हुए इस बीर को टुकड़ा टुकड़ा कर डाला।

---

* मराठा पाण्डुलिपियाँ

पेशवा ने अंग्रेजी सेना को मराठा राज्य में घुसने और हर जगह जाने की अनुमति देने में सिन्धिया से परामर्श नहीं लिया और वास्तव में ऐसा करके उसने अपने ही उत्तरदायित्व के प्रति लापरवाही बरती थी, दौलतराव सिन्धिया बहुत ही दूरदर्शी एवम् नीतिपूर्ण व्यक्ति था। उसे इस प्रकार मराठा राज्यक्षेत्र में खुलकर घूमना उचित नहीं लगा और मन ही मन वह बहुत असन्तुष्ट हुआ। इस समय बाजीराव पेशवा पूर्णतः दौलतराव सिन्धिया के अधिकार में था। सिन्धिया को आशंका हुई कि सम्भवतः बाजीराव पूना से भागकर अंग्रेजों की शरण में जाने का इरादा कर रहा है, वह जानता था कि बाजीराव के अंग्रेजों के हाथ में पड़ जाने से कितनी विपत्तियाँ सामने आ सकती है, * अतः उसने कुछ समय के लिए पेशवा के महल पर कड़े पहरे की व्यवस्था कर दिया। इन सब परिस्थितियों से घिर कर बाजीराव पेशवा ने देखा कि नानाफड़नवीस की मृत्यु से उसे जो अपनी स्थिति में सुधार की आशा थी, वह व्यर्थ सिद्ध हो गई और अब वह पहले से भी अधिक विवश हो गया है एवं सिन्धिया के प्रभाव के सामने उसके हाथ पाँव जैसे बँध गए हैं। अपने जीवन के प्रारम्भ से ही जिन परिस्थितियों में उसकी इतनी उम्र गुजरी थी, उनके अध्ययन से यह बात स्वाभाविक ही प्रतीत होती है कि उसका मस्तिष्क सदैव षड़यंत्रों एवम् दुरभिसन्धियों में लिप्त रहता था। इतनी बुरी तरह बन्धनों में जकड़ जाने पर भी उसका आत्म विश्वास शिथिल नहीं हुआ था और वह अब भी अपनी बुद्धि पर उतना ही विश्वास करता था। उसे विश्वास था कि वह शीघ्र ही सिन्धिया के सारे जाल को काट फेंकेगा और एक बार फिर स्वतंत्र होकर अपने मामलों को अपनी ही बुद्धि से सुलझाने में समर्थ हो सकेगा। यद्यपि पेशवा के दिल में दौलतराव के उद्दण्ड व्यवहारों के तथा उसकी बढ़ती हुई शक्ति के प्रति अपार घृणा और ईर्ष्या भरी हुई थी, फिर भी वह ऊपर से सिन्धिया के समक्ष अपने हृदयगत भावों को अव्यक्त नहीं करता था। उसके विपरीत वह सदैव सिन्धिया के प्रति, अपनी सुरक्षा के लिए कृतज्ञता ही प्रकट किया करता था और सदैव यही प्रदर्शित करता था कि वह सिन्धिया के स्नेह और उपकारों के बोझ तले दबा हुआ है। परन्तु उसके हृदय के अन्तर्गत में सदैव से यह लालसा पलती रही थी कि किस तरह शीघ्रातिशीघ्र सिन्धिया की शक्ति समाप्त हो, एवम् वह विनाश को प्राप्त हो। इधर अंग्रेजों की कृपा से हिन्दुस्तान में सिन्धिया के राज्यक्षेत्र में उपद्रव निरन्तर बढ़ते ही जा रहे थे और दौलतराव सिन्धिया को भी अब ऐसा प्रतीत हो रहा था कि अब वह पूना में बैठे-बैठे ही अपने राज्य का संचालन नहीं कर पाएगा और उसे हिन्दुस्तान जाना ही पड़ेगा। इस समय दो ही आशंकाएँ उसे पूना में रोके हुई थी, पहले तो उसे यह भय था कि कहीं अपने ऊपर लगाए गए बंधनों से क्षुब्ध होकर पेशवा पूना से भाग न निकले और दूसरे, उसे इससे भी बड़ा भय यह था कि उसके न रहने पर पेशवा सबसीडियरी सन्धि को स्वीकार कर लेगा और अपनी राजधानी में अंग्रेजी सेना को रखने के लिए तैयार हो जायगा। पेशवा भीतर से तो चाहता ही था कि सिन्धिया हिन्दुस्तान चला जाय परन्तु दिखावे के लिए, उसके पूना छोड़ने का विचार सुनकर पेशवा ने उससे रुके रहने की प्रार्थना की और कहा कि बिना आपके परामर्श एवम् संरक्षण के मुझसे यह राज्य न सम्भलेगा। यही नहीं, उसने

---

* मराठे एक बार अनुभव कर चुके थे कि इस समय से लगभग १५ वर्ष पहले राघोबा जब भागकर अंग्रेजो की शरण में पहुँचा था तो उसका परिणाम कितना भयानक एवम् घातक हुआ था। अंग्रेजी रेजिडेन्ट निरन्तर इस प्रयास मे लगा हुआ था कि बाजीराव या तो पूना से भाग जाय या सब्सिडियरी सन्धि को मानकर अपने ही राज्य में अंग्रेजी सेना रखना स्वीकार कर ले। वह उसे दौलतराव सिन्धिया के खिलाफ उकसाने का प्रयत्न करता रहा, परन्तु दौलतराव की शक्ति एवम् उसका प्रभाव बहुत अधिक था और वह अंग्रेजों की चालों की ओर से पूर्णरूप से सतर्क था—अनुवादक।

सिन्धिया को रोकने के इरादे का प्रदर्शन करने के लिए उसके मार्ग में, कुछ बाधाएँ भी उपस्थित कीं, परन्तु भीतर ही भीतर वह जसवन्त राव होलकर की बढ़ती हुई शक्ति तथा उसके और सिन्धिया के बीच बढ़ते हुए वैंमनस्य को देखकर वह एक गुप्त एवम् अव्यक्त प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था। वह सोच रहा था कि यदि सिन्धिया और होलकर आपस में ही लड़भिड़कर निर्बल पड़ जाँय तो वह बिना अंग्रेजों या किसी अन्य शक्ति की सहायता के ही; वह पुनः अपने राज्य पर पूर्ण नियत्रंण पाने में सफल हो जायगा और राज्य की समस्त शक्तियां उसके हाथों में केन्द्रित हो जायगी। उसे अपनी हीनता का भी ज्ञान था और वह जानता था कि राधोबा जैसे देशद्रोही और विश्वासघाती पति का पुत्र होने के नाते महाराष्ट्र की जनता उसे हेय दृष्टि से देखती है और वह इधर अपने कर्मो से भी अपनी लोकप्रियता प्राप्त करने में असमर्थ रहा है। उसकी यह हार्दिक इच्छा थी कि अंग्रेजों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाए रक्खा जाय। वास्तव में, वह प्रायः विवादों में अंग्रेजों का पक्ष भी लेता था और उनकी जब तब प्रशंसा भी किया करता था, परन्तु वह अंग्रेजोकी चालबाजीसे कम भय भी नहीं खाता था। यदि उसे सिन्धिया या अंग्रेजोमें से किसी एक का आश्रय चुननेको कहा जाता,तो वह अब भी सिन्धिया के ही संरक्षाण में रहना अधिक पसन्द करता, क्योंकि वह अपने इतने दिनों के राजनैतिक जीवन के आधार पर यह अनुभव कर चुका था कि यदि एक बार वह अंग्रेजो के चंगुल में पड़ गया तो फिर उम्र भर छुटकारा न हो सकेगा और पेन्शनयाफता कैदी की तरह ही सारी उम्र गुजारनी पड़ेगी। निजाम अली का दृष्टान्त उसकी आंखों के सामने था। यद्यपि वह पूरे दिल से अंग्रेजों की सब्सीडियरी सन्धि के लिए स्वयम् को तैयार नहीं कर पा रहा था, परन्तु कुछ दृष्टिकोणों से वह इस प्रकार की सन्धि को अपने लिए आवश्यक भी समझ रहा था। वह स्वयम् अपनी प्रजा और अपने विरोधी सरदारों से सदैव इतना आँशकित रहता था कि उन पर नियत्रंण रखने के लिए तथा स्वयम् अपनी सुरक्षा के लिए वह स्वयम् ही अंग्रेजो से सहायता की याचना, करता था जैसा कि उसने एक बार किया भी था। परन्तु अंग्रेजो ने उस बार उसकी प्रार्थना पर, अपनी तटस्थता की नीति के कारण ध्यान नहीं दिया। अब जब बेल्सली को उसकी आवश्यकता महसूस हुई तो उसने यह प्रयत्न नहीं किया कि पेशवा मजबूर होकर उसकी मदद माँगे, बल्कि जल्दबाजी के कारण वह इस सब्सीडियरी सन्धि को पेशवा के सिर पर लादने का प्रयास करने लगा। गवर्नर जनरल ने जितनी ही जल्दबाजी से अपना मतलब साधने का प्रयत्न किया, पूना—दरबार में वह काम उतना ही पिछड़ता गया। कर्नल पामर ने बेल्सली के आदेश से पेशवा पर इस सन्धि के लिए जितना ही जोर डालने लगा, पेशवा उतना ही आंशकित होता गया। बाजीराव को तो खुद ही सहायता की आवश्यकता थी, परन्तु इस प्रकार जबर्दस्ती सहायता लादे जाने की व्यग्रता को देखकर उसे दाल में काला दिखाई पड़ने लगा और वह टालमटोल करता गया अन्त में सतत् प्रयत्नों के बावजूद भी सफलता न मिल सकी तो रेजिडेन्ट कर्नल पामर ने वेल्सली को स्पष्ट लिख दिया कि पेशवा तब तक सब्सीडियरी सन्धि के लिए राजी न होगा जब तक कि उसे अपने सर पर कोई भयंकर विपत्ति मंडराती न दिखाई पड़े, या उसके सामने उसके सम्भावित विनाश का चित्र न खड़ा कर जाय•दिया।

पिछले अध्याय में हम जसवन्तराव होलकर को मालवा में उपद्रव करते हुए छोड़ आए हैं जिसे दबाने का अवसर न पाने पर पेराँ ने सिन्धिया का ध्यान इस तरफ आकर्षित किया था। जिस समय के धटना क्रम का हम वर्णन कर रहे हैं, उस समय मालवा में जसवन्तराव ने सिन्धिया की स्थिति को बहुत नाजुक बना दिया था। इस सभय तक जसवन्तराव अनेक महत्वपूर्ण हमलों में सफलता प्राप्त कर चुका था और उसकी शक्ति इस तरह दिन ब दिन बढ़ती जा रही थी कि सिन्धिया को भय होने लगा कि कहीं पूरा का पूरा मालवा ही उसके हाथ से निकल कर जसवन्तराव के अधिकार में न चला

जाय, क्योंकि अब तक उसने सिन्धिया के इस सूबे के अधिकाँश भाग पर या तो अधिकार कर लिया था, या उसका विध्वंस कर चुका था । उसका प्रभाव दिन व दिन बढ़ता ही जा रहा था और उसका उत्कर्ष अत्यन्त तीव्रगति से हो रहा था । नागपुर से भागने के पश्चात् उसने धार का मार्ग पकड़ा, जहाँ आनन्द राव पंवार ने अत्यन्त प्रेम और सम्मान के साथ उसका हार्दिक स्वागत किया । परन्तु जब दौलतराव को यह खबर मिल गई कि जसवन्तराब भागकर धार की तरफ गया है, तो आनन्द राव बहुत घबराया । वह सिन्धिया की शक्ति को जानता था और यह अनुभव कर रहा था कि उसके विरुद्ध जसवन्तराव को अपने आश्रय में रखना उसकी शक्ति के बाहर है, अतः उसने सारी परिस्थिति स्पष्ट करते हुए जसवन्त राव को परामर्श दिया कि उसकी सुरक्षा की दृष्टि से उसका धार से चला जाना ही उचित होगा । होलकर ने परिस्थितियों के दबाव का अनुभव करके धार से प्रस्थान करने की तैयारी कर ली ! आनन्दराव पँवार ने विदा करते समय उसे यथाशक्ति धन तथा कुछ सवार दे दिये । इन सैनिकों की सहायता से यत्र तत्र लूटपाट करते हुए उसने कुछ समय में पर्याप्त धन एकत्रित कर लिया, और उसके पास लुटेरों का एक अच्छा खासा दल भी एकत्रित हो गया । संयोगवश इसी समय उसकी मुलाकात अमीर खाँ नामक एक साहसिक पठान से हुई और वह भी उसके साथ सहयोग करने के लिए तैयार हो गया । अमीर खाँ के पास बहादुर और दुस्साहसी पठान सवारों का एक शक्तिशाली दस्ता भी था । अमीर खां की प्रकृति और आदतें कुछ इस प्रकार की थी, कि उसका सहयोग होलकर ने अपने लिए अत्यन्त सौभाग्यपूर्ण समझा । इस समय वह जिस प्रकार की योजनाएँ, भविष्य के लिए बना रहे थे, उन्हें पूरा करने के लिए उसे अमीर खां जैसे सहयोगी की ही आवश्यकता थी ।

इधर काशीराव होलकर की स्थिति भी अत्यन्त चिन्ताजनक हो चुकी थी । उसकी निर्बलता, कायर और अदूरदर्शिता के कारण उसके अनेकानेक शत्रु बन गए थे जिन्होंने अपना यह निश्चय स्पष्ट रूप से प्रकट किया था कि काशीराव होलकर, तुकाजी होलकर के सिंहासन के योग्य नहीं है, अतः उसका सिंहासन पर न रहना ही उचित है । यह हम पहले ही लिख चुके हैं कि मल्हारराव के मारे जाने के बाद ही सिन्धिया ने निर्बल काशीराव की आड़ में होलकर राज्य पर अपना पंजा जमाए रखने के, ध्येय से मल्हारराव के लड़के खण्डीराव को कैद करा दिया था, ताकि काशीराव का मार्ग निष्कण्टक हो सके । अब तक जसवन्तराव की शक्ति काफी बढ़ चुकी थी परन्तु दासी पुत्र होने के कारण वह होलकर के सिंहासन पर अपना दावा प्रकट नहीं कर सकता था, अतः उसने सत्ता को हाथ में रखने के लिए एक अप्रत्यक्ष मार्ग पकड़ा । उसने घोषणा की कि काशीराव की अयोग्यता के कारण अब उसका भतीजा खण्डीराव ही तुकाजी होलकर के सिंहासन का वास्तविक अधिकारी है, जो कि इस समय पूना में कैद है अतः मैं उसके प्रतिनिधि एवम् संरक्षक के रूप में शासन भार सम्भालूँगा । उसने होलकर परिवार के अन्य आश्रितों से नम्रतापूर्वक अनुरोध किया कि वे उसके प्रस्ताव पर गम्भीरता से विचार करें तथा खण्डीराव को ही राजा मान कर उसे अनुमति दें कि वह, होलकर परिवार के सहयोग से उन क्षेत्रों पर पुनः अधिकार कर ले जो काशीराव की निर्बलता के कारण होलकर-राज्य से निकल गए थे । साथ ही उसने होलकर-परिवार और राज्य पर छाए हुए दौलतराव सिन्धिया के प्रभाव की तरफ उनका ध्यान आकर्षित किया और दृढ़ संकल्प प्रकट किया कि यदि होलकर-परिवार उसे सहयोग दे तो वह सिन्धिया के भयानक पंजों से होलकर राज्य को मुक्त करने का हर सम्भव प्रयत्न करेगा । अपने इन प्रस्तावों पर होलकर-परिवार को विचार करने के लिए समय देकर वह नर्वदा के तट की ओर बढ़ गया, जहाँ उसने सिन्धिया के राज्य-क्षेत्र के गाँवों पर आक्रमण करके लूटपाट करना और कर वसूल करना प्रारम्भ कर दिया । इसी समय उसके सम्भावित भयानक इरादों को क्रियात्मक रूप में परिणत होने से रोकने के लिए केवेलियर दद्रेनेक ने काशीराव की

प्रशिक्षित सेना का एक दस्ता उसके विरुद्ध भेजा, परन्तु जसवन्तराव ने इस बटालियन को पराजित कर दिया; काशीराव के ऊपर प्राप्त इस विजय से उसकी ख्याति और भी बढ़ गई। दद्रेनेक से सन्धि वार्ता प्रारम्भ हुई और अन्त में अपनी बटालियनों और तोपखाने के साथ वह जसवन्तराव होलकर की सेना में सम्मिलित हो गया। इस सन्धि का दूसरा महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि जसवन्तराव को खण्डीराव का न्यायपूर्ण प्रतिनिधि होने की मान्यता मिल गई और उसी रूप में सर्वत्र उसका सम्मान भी किया जाने लगा। इस महत्वपूर्ण अधिकार की प्राप्ति के कुछ समय बाद ही, उसकी निजी सेना को होल्कर-राज्य की सेना का एक अंग मान लिया गया और उसकी तनख्वाह का प्रबन्ध भी राज्य-कोष से हो गया। अभी तक उसकी युद्ध नीति छुटपुट मुठभेड़ों और लूटपाट पर ही आधारित थी; जिसका आश्रय उसने अब भी न छोड़ा। उसके इन उत्पातों और उपद्रवों का मुख्य केन्द्र था सिन्धिया-राज्य। दौलतराव के क्षेत्र में, विशेषकर मालवा सूबे में उसने लूटपाट मचाने और आतंक फैलाने का कार्य जारी रक्खा। सिन्धिया अपनी ही समस्याओं में उलझा हुआ था और उसका फ्रांसीसी सेनापति मान्श्यूर पेराँ आगरा के घेरे में फँसा हुआ था, अतः न तो स्वयम् सिन्धिया ही, और न पेराँ ही, जसवन्तराव होलकर के उत्पातों एवम् हस्तक्षेपों को दबाने का प्रयत्न कर सका। अन्त में जब सिन्धिया ने होलकर को दबाने के लिए कमर कसी, उस समय तक जसवन्तराव आधे मालवा का विनाश कर चुका था।

अभी तक हम दौलतराव की प्रकृति के सम्बन्ध में जितनी जानकारी प्राप्त कर सके हैं, उसके अनुसार जसवन्तराव की कुचेष्टाओं पर सिन्धिया द्वारा ध्यान न दिया जाना हमें अत्यन्त अस्वाभाविक प्रतीत हो सकता है; परन्तु वास्तव में इसके पीछे भी एक महत्वपूर्ण कारण कार्य कर रहा था और वह था सिन्धिया के दरबार के विभिन्न दलों में मतभेद। सिन्धिया तो अंग्रेजों के जाल से पूना दरबार को बचाने के लिए पूना में ही पड़ा हुआ था, परन्तु उधर उसके दरबार में दलबन्दी के कारण जसवन्त राव होलकर का दमन करने के लिए कोई शक्तिशाली कदम नहीं उठाया गया। प्रारम्भ में सिन्धिया के मंत्रियों ने केवल धमकी-घुड़की द्वारा जसवन्तराव को भयभीत करने का प्रयत्न किया, परन्तु यह चाल असफल रही, और जसवन्तराव अपनी हरकतों से बाज न आया। अब सिन्धिया दरबार ने उसे सन्धिवार्ता द्वारा बहकाने का प्रयत्न किया। अन्त में दोनों पक्षों में इस शर्त पर सुलह हुई कि यदि दौलतराव सिन्धिया यह वादा करे कि वह होलकर राज्य के सिंहासन पर आसीन, वर्तमान राजा काशीराव होलकर के विरुद्ध जसवन्तराव की सहायता करेगा, तो इसके बदले में जसवन्तराव विधवा रानियों को कैद करके सिन्धिया के हाथों सौंप देगा। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि जसवन्तराव होलकर ने अपने उत्कर्ष के प्रारम्भिक काल में ही इन रानियों के साथ मित्रवत व्यवहार करने तथा उनके हितों की रक्षा करने का वचन दिया था। सिन्धिया-दरबार से इस आशय की सन्धि हो जाने पर, जसवन्तराव ने अपनी तरफ से शर्त को पूरा करने के लिए महादजी सिन्धिया की विधवा रानियों की सेना पर आक्रमण कर दिया और उन्हें बुरहानपुर तक खदेड़ ले गया। बुरहानपुर में उसने रानियों को बुरी तरह से घेर लिया, परन्तु संयोगवश, वे होलकर के हाथ न आ सकीं। इस अवसर पर लखवा दादा का विश्वस्त सहयोगी जग्गू बापू भी रानियों के साथ था, जिसकी मदद से वे मेवाड़ की ओर भाग निकलने में सफल हो गईं। जब सिन्धिया को जसवन्तराव की इस असफलता का समाचार मिला तो उसने उस पर दोहरी धोखेबाजी का आरोप लगाया और कहा कि उसी की दुरभिसन्धि से रानियाँ भागने में सफल हो गईं, यदि जसवन्तराव ने उन्हें अवसर न दिया होता तो अब तक वे कैद में होतीं। अब चाहे दौलतराव सिन्धिया द्वारा जसवन्तराव के ऊपर किया गया यह दोषारोपण ठोस कारणों एवम् तर्कों पर आधारित हो अथवा केवल उसकी कल्पना की उपज हो,

परन्तु इसका परिणाम जसवन्तराव के प्रतिकूल ही हुआ। उसने रानियों के साथ विश्वासघात करके उन पर जो आक्रमण किया उसका कोई भी प्रतिफल नहीं मिला। इस दोहरी असफलता से खीझ कर जसवन्तराव पुनः सिन्धिया की प्रजा को आतंकित करने लगा। अब सिन्धिया भी महसूस करने लगा था कि पूना में पड़े रहना उसके अपने राज्य के लिए हानिकारक सिद्ध हो रहा है और उत्तर की ओर प्रस्थान कर देना उसके राज्य की, या कम से कम मालवा सूबे की रक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इधर बाजीराव की अदूरदर्शिता एवम् निर्बलता के कारण पूना से हटना भी उसे अत्यन्त शंकाजनक प्रतीत हो रहा था। अन्त में काफी सोच विचार के पश्चात् उसने यही निश्चय किया कि वह अपनी विशाल सेना के कुछ भाग को पूना में ही छोड़ दे और शेष सेना के साथ हिन्दुस्तान की तरफ प्रस्थान कर दे। अब उसके सामने दूसरी विकट समस्या थी द्रव्याभाव की। अब उसने पेशवा से द्रव्य के लिए तगादा करना प्रारम्भ कर दिया। अन्त में जाते-जाते उसने पेशवा के कोष से ४७ लाख रुपए की हुण्डियाँ* भुनाईं। पूना से प्रस्थान करने के पहले ही, अपनी योजनानुसार उसने पेशवा की गतिविधियों पर नजर रखने तथा आवश्यकता पड़ने पर उसकी रक्षा करने के लिए अपनी सेना के ५ प्रशिक्षित बटालियनों एवम् १०,००० सवारों को पूना में ही छोड़ दिया। इतना सारा प्रबन्ध कर लेने के पश्चात् उसने अपने कदम हिन्दुस्तान की तरफ बढ़ाए. परन्तु उसकी यात्रा की गति, उसकी प्रतिकूल परिस्थितियों को देखते हुए. अत्यन्त ही धीमी थी। उधर जसवन्तराव होलकर पूरे
१८०१] मालवा सूबे में घूम घूम कर लूटपाट मचाए हुए था और समस्त प्रजा उसके अत्याचार एवम् आतंक से त्राहि-त्राहि कर उठी थी। जब उसे यह समाचार मिला कि दौलतराव सिन्धिया एक विशाल सेना के साथ उस पर आक्रमण करने के इरादे से, पूना से प्रस्थान कर चुका है तो उसने भी अपनी तैयारी प्रारम्भ कर दी। उसने अपनी सारी फौजों को हर तरफ से बुला कर एक स्थान पर एकत्रित कर लिया और अपनी समस्त शक्ति के साथ उज्जैन के पास में पड़ाव डाल दिया; साथ ही उसने उज्जैन नगर को लूटने का भी निश्चय कर लिया। परन्तु इस अवधि के बीच में, दोनों पक्षों में युद्धात्मक प्रवृत्ति कुछ शान्त हो चली थी; जसवन्तराव भी चुपचाप सारी शक्ति केन्द्रित एकत्रित करके उज्जैन में पड़ा हुआ था और उधर सिन्धिया, बिना किसी प्रकार की धमकी दिए धीरे-धीरे चला आ रहा था। इसी बीच सिन्धियाँ ने किसी अप्रत्याशित विपत्ति से अपनी राजधानी को सुरक्षित रखने के लिए अपनी चार प्रशिक्षित बटालियनों को कर्नल जान हेसिंग के नेतृत्व में अपनी राजधानी की तरफ रवाना कर दिया। इस समय उसका कैम्प बुरहानपुर में पड़ा हुआ था, और वहीं से इन चार बटालियनों को अलग किया गया था। हेसिंग को रवाना कर देने के पश्चात् दौलतराव सिन्धिया ने उसकी मदद पहुंचाने के इरादे से कैप्टेन एमिन्टायर को भी रवाना कर दिया जिसके दो बटालियनों और ६ कम्पनियां थीं। अब जसवन्तराव होलकर ने अनुभव किया कि अब अधिक समय तक शान्त रहने से लाभ के बदले हानि की ही आंशका है और अब सिन्धिया की सेनाओं से बिना प्रत्यक्ष युद्ध किए, कोई काम नहीं बनने का। उसने सोचा कि जब युद्ध अवश्यम्भावी ही है, तो पहला धावा अपनी ही तरफ से किया जाय। इसी निश्चय के अनुसार उसने दिखावटी तौर पर पहले हेसिंग को युद्ध में उलझाया और लड़ते हटते उसे उज्जैन तक खींच ले आया, जहाँ उसकी समस्त शक्ति केन्द्रित थी। वहां पहुंचकर हेसिंग को उलझाए रखने के लिए उसने अपने कुछ दस्तों को वहीं

---

* इसमें २५ लाख की हुँडियाँ पूना के महाजनों के नाम थीं, १० लाख की एक हुण्डी गायकवाड़ के नाम थी और १२ लाख रुपए की एक हुण्डी, हाल ही में सिन्धिया को प्राप्त बुन्देलखन्ड के इलाके के नाम था—मराठा पाण्डुलिपि, कर्नल पामर के पत्र।

छोड़ दिया और अपनी सेना के मुख्य भाग के साथ वह कैप्टेन एमिन्टायर की सेना की खबर लेने के लिए चल पड़ा। सिन्धिया की इस प्रशिक्षित सेना पर जसवन्तराव होलकर ने अत्यन्त भयानक आक्रमण किया जिसके सामने ये प्रशिक्षित सैनिक अधिक समय तक न टिक सके। कुछ देर तक तो उन्होंने भी होलकर के आक्रमण का उत्तर दिया परन्तु अन्त में विवश होकर नेवड़ी में उन्हें अस्त्र रख देना पड़ा। इस प्रशिक्षित सेना को हरा लेने पर जसवन्तराव होलकर के सैनिकों का उत्साह द्विगुणित हो गया और वे जोश से भरे हुए, हेसिंग द्वारा जमाए गए भयानक मोर्चे को नष्ट भ्रष्ट करने के इरादे से उज्जैन की तरफ बढ़ चले। इस युद्ध में उनके न पहुंचने तक हेसिंग ही प्रबल पड़ रहा था। होलकर के पहुंच जाने पर भी हेसिंग की बटालियनें निरुत्साहित नहीं हुईं, यद्यपि इतना तो उन्होंने समझ ही लिया था कि अब होलकर की सेना से पार पा जाने, का अर्थ है, असम्भव को सम्भव कर दिखाना। हेसिंग के सैनिक जी जान से लड़े, और तब तक इसी तरह लड़ते रह गए जब तक कि वे पूर्णतः पस्त न हो गए। अन्त में जसवन्तराव होलकर की शक्तिशाली सेना के समक्ष हेसिंग की बटालियनें न टिक सकीं, और बुरी तरह पराजित हुईं। हेसिंग के नेतृत्व में जिन चार बटालियनों को भेजा गया था, उनमें कुल ११ यूरोपियन अफसर थे, जिनमें से अधिकाँश अंग्रेज ही थे। इस भयानक युद्ध में सिन्धिया की तरफ के सात विदेशी सैनिक अफसर मारे गए तीन को कैद कर लिया गया। इस भयानक युद्ध में जीवित बचा केवल एक अफसर जिसकी जान बच पाई और वह था स्वयम् हेसिंग, शेष सभीको या तो मार डाला गया या कैद कर लिया गया। इस तरह सिन्धिया और होलकर के बीच प्रथम प्रत्यक्ष युद्ध समाप्त हुआ जिसमें होलकर की विजय हुई हेसिंग की सेना का लगभग पूर्णतः विनाश हो गया। कहा जाता है कि इस युद्ध में हेसिंग के साथ आई हुई बटालियनों का ४/५ भाग सैनिक या तो मारे गए या बुरी तरह घायल होकर तितर-बितर हो गये।[*]

हेसिंग को हरा लेने के पश्चात् जसवन्तराव ने पुनः अपनी सेना को उज्जैन से बुरी तरह कर वसूलने का आदेश दे दिया और इस प्रकार पर्याप्त धन एकत्रित कर लेने के पश्चात् होलकर ने अब की बार दौलतराव के शानदार और शक्तिशाली तोपखाने पर आक्रमण करके उसे नष्ट करने की योजना बनाईं। इस समय सिन्धिया का तोपखाना नर्बदा नदी को पार कर चुका था। इस तोपखाने के साथ, इसकी सुरक्षा के लिए मेजर ब्राउनरिग के अधीन चार बटालियन सैनिक तथा चुने हुए सवारों एक दस्ता भेजा गया था। इस समय तक सिन्धिया का कैम्प बुरहानपुर में पड़ा हुआ था और शीघ्र ही सिन्धिया रवाना होकर तोपखाने के पास पहुंचने की तैयारी कर रहा था। मेजर ब्राउनरिग अपने तोपखाने के साथ नर्बदा नदी के पार एक स्थान पर पड़ाव डालकर बुरहानपुर से चली हुई सेना के आ मिलने की प्रतीक्षा कर रहा था, जिसके आ पहुंचने की उम्मीद वह बहुत जल्दी कर रहा था। इधर जसवन्तराव होलकर तेजी से तोपखाने को बरबाद करने के इरादे से बढ़ता ही चला आ रहा था। जब मेजर ब्राउनरिग को होलकर की प्रगति और उसके भयानक इरादे की भनक मिली तो उसने भी उससे युद्ध करने की तैयारी शुरू कर दी। उसने अपने मोर्चे के लिए एक उचित स्थान का चुनाव किया और कुशलता के साथ अपनी तोपों को स्थित करके होलकर का स्वागत करने के लिए तैयार हो गया। जसवन्तराव ने मेजर ब्राउनरिग के तोपखाने पर अत्यन्त भयानक आक्रमण किया परन्तु मेजर ब्राउनरिग ने इतनी तत्परता और कुशलता से उसका सामना किया कि लाख सर पटकने पर भी जसवन्तराव होलकर उसके तोपों को कुछ भी हानि न पहुंचा सका।[†]

---

[*] फर्डिनेण्ड न्यूइस स्मिथ।

[†] इस संघर्ष में मेजर ब्राउनरिग की सेना के केवल तीन सौ सैनिक मारे गए जिनमें दो अफसर

मेजर ब्राउनरिग द्वारा होलकर के भयानक आक्रमण के सशक्त सफल प्रतिरोध से जहाँ एक तरफ जसवन्तराव के तीव्र उत्कर्ष पर कुछ समय के लिए रोक लग गई, वहीं दूसरी तरफ उसकी यह पराजय दौलतराव सिन्धिया के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण एवम् लाभदायक सिद्ध हुई। वह इस पूरे समय के बीच बुरहानपुर में ही पड़ा रहा था और होलकर तथा ब्राउनरिग के बीच हो रहें युद्ध के निर्णय की बहुत चिन्तित होकर व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रहा था ; अपनी सेना की विजय का समाचार पाकर उसे अपार हर्ष हुआ, परन्तु साथ ही अपनी निष्क्रियता पर उसे खीझ भी आई। अब उसने तत्परता से अपनी शेष सेना को भी नर्बदा नदी के पार पहुंचाने की तैयारी शुरू कर दिया। राघोवा भोंसले ने भी इस कार्य में उसे पर्याप्त सहायता पहुंचाई और सिन्धिया की सेना पूर्ण गति से उत्तर की तरफ रवाना हो गई। *

इस समय सिन्धिया के चले आने के बाद से ही पूना में जिस प्रकार घटनाक्रम चल रहा था उसकी तरफ ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है और वह भी विशेष कर इसलिए, कि वहाँ के घटनाक्रम पर उत्तर की ओर से मिले हुए संघर्षों के समाचारों का पर्याप्त प्रभाव पड़ रहा था। यद्यपि बाजीराव पेशवा की स्थिति अभी भी पूर्णरूप से सन्तोषजनक नहीं हो पाई थी और न उसके गुप्त शत्रुओं का ही पूना में अभाव था। उसका दरबार अभी भी दलबन्दी का अखाड़ा बना हुआ था। ऐसी स्थिति में पेशवा को चाहिये था कि सर्वप्रथम वह विभिन्न दलों में सुलह करा कर पूना दरबार की शक्ति को संगठित करने का प्रयास करता, परन्तु उसकी अदूरदर्शिता और प्रतिहिंसा की प्रबल भावना ने इसी नाजुक परिस्थिति में एक नया रास्ता अख्तियार किया। अब उसने ऐसे बड़े परिवारों एवम् सरदारों को परेशान करना शुरू किया जिन पर उसे सन्देह था कि उन्होंने कभी उसके पिता या स्वयम् उसका कभी विरोध किया था। उसके पिता राघोबा और स्वयम् उसके विरोधी परिवारों की कमी तो थी नहीं, परन्तु इस समय वे शान्त पड़े थे। पेशवा की प्रबल प्रतिहिंसात्मक प्रवृत्ति ने उबाल खाया और इन परिवारों को त्रस्त एवम् पस्त करने के लिए कटिबद्ध हो गया। जब भी अवसर मिला, उसने उनकी जागीरों में लूटपाट मचवाई और उनका पूर्ण विनाश करने का प्रयास किया। वास्तव में प्रारम्भ से ही ईर्ष्या और प्रतिहिंसा की भावनाएँ ही उसके जीवन को संचालित करती आ रही थीं और इन्हीं के प्रबल वेग में बहते हुये उसने स्वयम् को ही निर्बल बना डाला। अपने शत्रुओं एवम् विरोधियों की बृद्धि को प्रोत्साहित करता रहा था और प्रारम्भ से ही ईर्ष्या और प्रतिहिंसा उसकी राजनीति का अभिन्न अंग बन चुकी थी। उसके जीवन के अन्त तक विनाशकारी भावनाएँ उसकी अवगति और अन्त में उसके पतन का कारण बनी। इस समय जो परिवार उसकी प्रतिहिंसात्मक कार्रवाइयों के केन्द्र बने हुये थे, उनमें सर्वप्रथम था रस्तिया परिवार, जिसने हाल में पेशवा दरबार की काफी सेवा की थी, परन्तु पेशवा के पुराने बैरभाव को अपने दिल से नहीं निकाल सकता था, जैसा कि उसके समान व्यक्ति के लिए स्वाभाविक ही था। एक दिन उसने माधवराव रस्तिया को बड़े प्रेमभाव के साथ अपने महल में निमंत्रित किया, जहाँ धोके से उसे कैद कर लिया गया। पेशवा ने तुरन्त उसे रायगढ़ भिजवा कर कड़े पहरे के अन्दर कैद कर दिया। इस कपटपूर्ण कार्य से मराठों में बहुत असन्तोष फैल गया और यह सर्वत्र अनुभव किया जाने लगा कि बाजीराव पेशवा अपने अंतःकरण से अत्यंत ही धूर्त, कपटाचारी और अन्यायी

भी सम्मिलित थे—देवाजी गोखले और लेफ्टिनेंट रावाथम, परन्तु होलकर की सेना में इसके लगभग तीन गुने सैनिक खेत रहे।

* फर्डिनेण्ड ल्यूइस स्मिथ, बम्बई रिकार्ड और सर जान मेलकम]।

है, भले ही बाहर से उसका व्यवहार इतना मधुर है। अभी तक राजधानी में जितने भी अन्याय होते थे या हुये थे, उनसे बाजीराव की प्रतिष्ठा को कोई हानि नहीं पहुंची थी क्योंकि जनता यह महसूस करती थी कि बेचारा पेशवा निर्बल है और अन्य शक्तियों जैसे सिंधिया या नाना फड़नवीस के प्रभाव से ही अनुचित कार्यों के लिए विवश हो जाता है, अतः इस मनोविश्लेषण के आधार पर वे पेशवा को कृपा का नहीं, बल्कि दया का पात्र समझते थे। परन्तु अब उसकी गलतियों एवम् अनाचारों को आड़ की तरह झेलने के लिए न तो नाना फड़नवीस ही जीवित रह गया और न सिन्धिया ही पूना में रह गया था। अब जब कि जनता पेशवा को बाहरी प्रभावों से मुक्त समझ कर शान्ति एवम् सुरक्षा का अनुभव कर रही थी, उसी समय पेशवा द्वारा माधवराव रस्तिया को छलपूर्वक कैद करके रायगढ़ भेज दिये जाने से जनता के हृदय में उसके प्रति अविश्वास, असन्तोष एवम् आक्रोश के भाव जागृत होने लगे। बाजी राव ने रस्तिया को कैद करके ही सन्तोष नहीं किया, उसने इसी प्रकृति के परन्तु कुछ कम महत्वपूर्ण कार्य और भी किए जिनसे जनता का एक बहुत बड़ा भाग उसका विरोधी बन गया, दिन ब दिन बाजी राव की लोकप्रियता एवम् सामाजिक तथा राजनैतिक प्रतिष्ठा कम होती गई और पेशवा सरकार तथा प्रशासन पर से जनता का विश्वास उठता गया, जिसके फलस्वरूप सर्वत्र ही असन्तोष व्याप्त हो गया। सम्पूर्ण पेशवा राज्य में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गई और जनता की शांति एवम् सुरक्षा खतरे में पड़ गई। उद्दण्ड और अनुशासनहीन सवार सैनिक देश भर में घूम-घूम कर उत्पात और लूट मार करने लगे और समस्त वातावरण आतंकमय हो गया। ऐसा ही एक दल था बालकिशन गंगाधर का, जो सुसंगठित दल के साथ लूटपाट मचाए हुए था। अन्त में गणपतराव फणसे के प्रयत्नों से उसका दमन किया गया। तुकाजी होलकर का दासीपुत्र और जसवन्तराव होलकर का भाई विठोजी होलकर भी, जो कि इस समय पूना में ही था, पीछे नहीं रहा और अवसर देखकर उसने भी खुलकर लूटपाट शुरू कर दिया। वह भी बालकिशन गंगाधर के दस्यु दल से सम्बन्धित था। गणपतराव फणसे ने, बालकिशन के विरुद्ध कार्रवाई करते समय विठोजी होलकर को कैद कर लिया। पेशवा
१ अप्रैल] तो समस्त होलकर परिवार से ही द्वेष भाव रखता था, अतः उसने तुरन्त विठोजी को प्राणदण्ड दिये जाने का निर्णय किया और अत्यन्त ही निर्दयता पूर्वक उसको मरवा डाला गया।

बाजीराव पेशवा ने अपने इस क्रूरतापूर्ण कृत्य से दोहरा सन्तोष प्राप्त किया, एक तरफ तो उस प्रकार उसने तुकाजी होलकर की पुरानी दुश्मनी से उत्पन्न अपनी प्रतिहिंसा की भावना को संतुष्ट किया और दूसरी तरफ उसे यह भी संतोष था कि विठोजी को समाप्त करके उसने सिन्धिया के प्रति उपकार किया है। परन्तु जसवन्तराव होलकर ने जब अपने भाई की इस भयानक मौत का समाचार सुना तो उसका खून खौल उठा। वह अपने भाई से अत्यन्त स्नेह रखता था, अतः उसकी बर्बर हत्या से उत्तेजित होकर, क्रोधजनित आवेश में उसने प्रतिज्ञा की कि वह अपने भाई के हत्यारों को कभी भी चैन की साँस न लेने देगा। अभी हाल ही में जसवन्तराव ने सिन्धिया के यूरोपियन सेनापति हेसिंग को बुरी तरह पराजित किया था, अतः उसकी धाक चारों तरफ जमी हुई थी। पेशवा बाजीराव तो स्वभाव से निर्बल एवम् कायर था ही, जब उसने जसवन्त राव द्वारा किए गये प्रतिहिंसा के संकल्प की भनक पाई तो उसके हाथ पाँव फूल गए, वह अनुभव कर रहा था कि इस समय होलकर की शक्ति बहुत अधिक बढ़ी चढ़ी है और उसके आक्रमण कर देने पर जान बचाना मुश्किल हो जायगा। होलकर के प्रति अपने भय पर वह जीवन भर बिजय नहीं पा सका। अस्तु; युद्ध की आशंका को समाप्त करने के लिए उसने तुरन्त जसवन्तराव से सन्धिवार्ता प्रारम्भ कर दिया। पेशवा ने वादा किया कि

वह जसवन्तराव को तुकाजी होलकर का वास्तविक उत्तराधिकारी होने की मान्यता प्रदान कर देगा, परन्तु एक शर्त पर, कि, होलकर अपने उन क्षेत्रों को पेशवा को सौंप दे जो दक्षिण में स्थित है और जो प्रारम्भ में, जागीर के रूप में होलकर परिवार को प्राप्त हुए थे। पेशवा द्वारा माँगे गए क्षेत्रों की वार्षिक अनुमानित आय २५ लाख रुपए थी। पेशवा ने उसे यह भी प्रोत्साहन दिया कि इस समय होलकर राज्य के जिन क्षेत्रों पर कब्जा करके शीरजी राव घाटगे साँप की तरह कुण्डली मारे बैठा है, उन्हें उससे बलात छीन लिया जाय। पेशवा ने जसवन्तराव को समझाया कि चूंकि इस समय दौलतराव सिन्धिया हिन्दुस्तान में अपनी झंझटों में व्यस्त है अतः वह इस मामले में न तो हस्तक्षेप ही कर सकेगा और न उसके विरुद्ध शीरजीराव घाटगे को कोई सहायता ही पहुंचा सकेगा। वास्तव में पेशवा शीरजीराव घाटगे के उद्दण्ड व्यवहारों से आजिज आ चुका था और वह उसके लिए दर्दे सर बना हुआ था। सिन्धिया तो एक लम्बी विशाल एवम् शक्तिशाली सेना के साथ घाटगे को यह कहकर पूना में छोड़ गया था, कि उसकी उपस्थिति में पूना पर कोई संकट न आ सकेगा और यदि कहीं से कोई आक्रमण हुआ भी तो घाटगे इस सेना की सहायता से पेशवा एवम् उसकी राजधानी की रक्षा करेगा। परन्तु व्यवहार रूप में शीरजीराव रक्षक के बदले भक्षक ही बना हुआ था। उपद्रवों एवम् उत्पातों को रोकने के बदले वह स्वयम् उपद्रवियों एवम् आँतकवादियों का नेता बना हुआ था। जब भी उसे धन की आवश्यकता पड़ती थी तो वह किसी भी दिशा में बढ़कर लूटपाट द्वारा अपना कार्य चलाता था, और पेशवा पर धन की पूर्ति के लिए उद्दण्डतापूर्वक दबाव डालता था। पेशवा उसके इस व्यवहार से दुखी होकर उससे छुटकारा पाने का उपाय सोचने लगा। परिस्थितियों के दबाव से यह बला उसके सर से खुद ब खुद टल गई। हिन्दुस्तान की तरफ में निरन्तर समाचार आ रहे थे कि मालवा में सिन्धिया को जगह जगह असफलता का मुँह देखना पड़ रहा है और स्थिति काबू से बाहर हो गई है इसी समय दौलतराव सिन्धिया ने शीरजीराव घाटगे के पास यह आदेश भेजा कि तुम अपनी पूरी शक्ति के साथ तुरन्त मालवा चले आओ और जसवन्तराव होलकर का दमन करने का कार्य भार स्वंयम सम्भालो। शीरजी राव घाटगे इस स्पष्ट आदेश की अवहेलना करने का साहस न कर सका और तुरन्त अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ मालवा की ओर रवाना हो गया। इस तरह, किसी प्रकार से इस उद्धत और उद्दण्ड व्यक्ति से बाजीराव पेशवा का गला छूटा।

जिस समय शीरजोराव अपनी सेना के साथ, दौलतराव सिन्धिया से मिला उस समय सिन्धिया की सेना नर्वदा नदी को पार कर चुकी थी। सिन्धिया जसवन्तराव द्वारा उज्जैन में की गई लूटमार से खीझा तो हुआ ही था, उसने तुरन्त घाटगे को आदेश दिया कि वह तत्काल जसवन्तराव होलकर की राजधानी इन्दौर पर धावा करके मनमानी लूट मचाकर उज्जैन की लूटमार का बदला चुकावे। शीरजीराव की सहायता के लिए दौलतराव ने १०,००० सवार तो दिए ही, साथ में कर्नल सदरलैंण्ड के अधीन प्रशिक्षित सेना की १४ बटालियनों को भी इन्दौर की तरफ रवाना कर दिया। शीरजीराव के इन्दौर की तरफ बढ़ने का समाचार पाकर जसवन्तराव होलकर भी अपनी राजधानी की रक्षा करने के लिए बढ़ चला। इस समय उसके पास गलभग ५००० पैदल सेना थी, तथा लगभग २५,००० सवार थे। उसके साथ कुछ प्रशिक्षित बटालियनें भी थीं, परन्तु उनका नेतृत्व एवम् उचित संचालन करने के लिए कोई यूरोपियन अफसर न था। कुछ दिनों तक तो दोनो पक्षों में छिटपुट युद्ध ही होते रहे और उनका कोई परिणाम न सिकला। अन्त में, ऊब कर जसवन्तराव ने ही सिन्धिया की सेना पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि इस आक्रमण की योजना बहुत ठोस बनाई गई थी परन्तु युद्धक्षेत्र में होलकर की सेना को अनुशासित ढंग से संचालित नहीं किया जा सका। कुछ देर के युद्ध के बाद ही होलकर के

सैनिकों के कदम उखड़ गए और उसकी पराजय हो गई । इस युद्ध में होलकर की ५८ तोपें शीरजीराव के हाथ लगी । इस विजय के पश्चात् शीरजीराव घाटगे ने विजयगर्व से उसकी राजधानी में प्रवेश किया जहां उसकी हिसंक प्रवृत्ति और स्वाभाविक क्रूरता ने खुलकर अपना प्रदर्शन किया । पूरा का पूरा इन्दौर नगर लूट लिया गया और प्रत्येक हस्तक्षेप करने वाले ब्यक्ति को तुरन्त मौत के घाट उतार दिया गया । शीरजीराव घटगे ने जिस तरह इन्दौर में अपनी रक्त-पिपासा शान्त की और जिस प्रकार के अत्याचार और बलात्कार किए, उनके वर्णन मात्र से मानवता सिहर उठती है । हमें इस प्रकार के अत्याचारों के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं ।

इस समय जसवन्तराव होलकर का पक्ष बहुत निर्बल पड़ गया था, परन्तु उसका दम नहीं टूटा था । यदि इसी समय दौलतराव सिन्धिया ने होलकर की शक्ति को एक धक्का और दिया होता, तो इस पराजय से हतोत्साहित जसवन्तराव के उपद्रवों की इतिश्री हो जाती और वह भविष्य में पुनः सिर उठाने के योग्य न रह जाता: परन्तु सिन्धिया पहले ही से यह सोचकर बैठ गया कि अब जसवन्तराव की शक्ति निःशेष हो चुकी है और वह अब पूर्णरूप से उसी के अधीन रहेगा । उसके कुछ मंत्रियों एवं परामर्शदाताओं ने भी उसे राय दी कि अब वह निर्बल जसवन्तराव को और अधिक परेशान न करके उसे होलकर परिवार का संरक्षक होने की मान्यता प्रदान कर दे । सिन्धिया भी उनकी राय से सहमत हो गया, क्योंकि वह जल्द से जल्द इन झंझटों को निपटा कर अन्य समस्याओं को सुलझाने के लिए समय निकालना चाहता था । उसने इस सम्बन्ध में जसवन्तराव होलकर से वार्ता की और उसे अपने प्रस्ताव पर राजी करने के लिए सिन्धिया ने काशीराव को अपने कैम्प से बहिष्कृत भी कर दिया और इस प्रकार विवश होकर काशीराव को अपने सौतेले भाई के कैम्प में शरण लेना पड़ा । यद्यपि सिन्धिया ने अपनी तरफ से ही सन्धिवार्ता की शुरुआत की थी, परन्तु पराजित एवम् निर्बल होने पर भी उल्टे जसवन्तराव ने अपनी तरफ से अनेक महत्वपूर्ण शर्तें प्रस्तुत कीं और इस सन्धि से स्वयम् अधिकतम लाभ लेने का प्रयत्न किया । इसका एक कारण तो यह हो सकता है कि बाजीराव पेशवा के बहकावे एवम् प्रोत्साहन में आकर जसवन्तराव को सिन्धिया के इरादे और नीयत पर शंका हो गई हो और वह सन्धि से बचने के लिए उल्टी सीधी शर्तें लगाकर टाल मटोल करता रहा हो या उसे अपने भाग्य के प्रति इतना विश्वास रहा हो कि वह अब भी अपने ही पक्ष को प्रबल समझता रहा हो; जो भी कारण रहा हो, जसवन्तराव अपनी माँगें बढ़ाता ही रहा । अपनी पराजय के पश्चात् अब जसवन्तराव के पास अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं रह गया था कि वह इधर-उधर लूटपाट करे । उसकी साहसिक प्रवृति एवम् वीरता के कारण उसके पास सैनिकों का अभाव नहीं था और साहसी सैनिक हर तरफ से आकर उसकी सेना में सम्मिलित होते रहते थे । स्वयम् दौलतराव सिन्धिया की सेना के कुछ सैनिक दस्ते, जसवन्तराव की धाक से प्रभावित होकर, सिन्धिया की सेना को छोड़कर, उसी की सेना में जा मिले । इस प्रकार इतनी भयानक पराजय और द्रव्याभाव की स्थिति में भी जसवन्तराव होलकर की सैनिक संख्या घटने के बजाय बढ़ती ही गई । परन्तु ऐसी स्थिति में भी एक दल था जो होलकर को दगा देकर दौलतराव सिन्धिया की सेना में मिल जाने के लिए तैयार था क्योंकि इस दल को आशा हो चली थी कि अब जसवन्तराव का उत्कर्ष असम्भव है । इस दल का मुखिया था दद्रेनेक, जिसने तुकाजी होलकर के समय से ही होलकर राज्य की प्रशिक्षित सेनाओं का संचालन किया था । परन्तु
१८०२ ई०] किसी तरह यह भेद उसके अधीनस्थ सैनिकों के समक्ष खुल गया जो कि अपने सेनापति की अपेक्षा कहीं अधिक स्वामिभक्त थे । जब उन्होंने देखा कि दद्रेनेक अपनी पूरी सेना सहित सिन्धिया की फौज में जा मिलने के लिए तैयार हो चुका है, तो अलग-अलग टुकड़ियों में

बारी-बारी से दद्रेनेक का कैम्प छोड़कर, बाद में एक दल के रूप में संगठित होकर अपने राजा जसवन्तराव होलकर से जा मिले जो कि इस समय पास ही में कैम्प डाले पड़ा था। अब सिन्धिया से सफलता पूर्वक निपटने के लिए होलकर ने एक नई योजना बनाई, जिसके अनुसार उसने निश्चय किया कि अब किसी तरह हिन्दुस्तान की तरफ से हटकर, दक्षिण को युद्ध क्षेत्र बनाया जाय। इस योजना को क्रियान्वित करने के लिए उसने फतहसिंह मन्ने नामक सरदार को एक टुकड़ी के साथ पेशवा के इलाके में लूटमार करने के लिए रवाना कर दिया और तत्पश्चात अपनी प्रशिक्षित पैदल दस्तों को मोहसिर में स्थित कर दिया। इस प्रकार दो दलों को दो प्रकार की व्यवस्थाएँ सौंप कर वह पेशवा-सिन्धिया आदि की नजरों में शंका न होने देने के लिए स्वयम् थोड़ी सी सेना के साथ उत्तर की ओर बढ़ गया और मालवा तथा राजपूताना तक पहले की तरह ही लूटमार करता रहा। उसकी योजना यह थी कि सिन्धिया के सैनिक उसके उपद्रवों को दबाने के लिए उसका पीछा अवश्य करेंगे और इस प्रकार जब सिन्धिया उत्तर की तरफ अपनी सेना सहित बढ़ आएगा तो उसकी योजना की सफलता में पर्याप्त आसानी हो जायगी। जसवन्तराव होलकर ने इन क्षेत्रों में काफी लूटमार की और पर्याप्त धन एकत्रित कर लिया पर उसकी आशा पूरी न हो सकी। उसकी आशा के विपरीत सिन्धिया ने स्वयम् उसका पीछा नहीं किया बल्कि केवल कुछ दस्तों को उसे रोकने के लिए भेज दिया। यह छोटी सी सेना जसवन्तराव होलकर का कुछ भी नही बिगाड़ सकती थी और उसे मालवा आदि में खुलकर लूटमार करने का पर्याप्त अवसर मिल गया। परन्तु वह इस अवसर से लाभ न उठा सका, क्योंकि उसे खबर मिली कि पेशवा ने खानदेश में स्थित उसके कुछ जिलों पर अधिकार कर लिया है। यह समाचार मिलते ही होलकर पूर्ण गति से दक्षिण की तरफ चल पड़ा, ताकि उन जिलों को पेशवा के कब्जे से वापस छीना जा सके। उसकी कुछ सेना पहले ही दक्षिण पहुंच चुकी थी; पेशवा द्वारा होलकर के इलाकों पर कब्जा किए जाने के तुरन्त बाद ही इस सेना ने पेशवा की सैन्य पर आक्रमण कर दिया और जसवन्तराव के दक्षिण पहुंचने के पहले ही इस सेना ने पेशवा के सेनापति धूंधू पन्त गोखले को पराजित करके उक्त जिलों पर पुनः अधिकार कर लिया और पेशवा की सेना को खदेड़ दिया।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है होलकर ने अपनी प्रशिक्षित सेना को मोहसिर में ही छोड़ दिया; अब उसने इस सेना को भी खानदेश पहुंचने का आदेश भेज दिया और ज्योंही यह सेना आकर जलवन्तराव से मिली, उसने खानदेश में स्थित सिन्धिया-अधिकृत क्षेत्रों पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ा। इन जिलों पर आक्रमण करके होलकर ने उन्हें बुरी तरह लूटा खसोटा और अत्यन्त निर्दयतापूर्वक बस्तियों का विनाश करने लगा। इसी समय उसने अपना यह इरादा भी प्रकट किया कि वह शीघ्र ही पूना जायगा और पेशवा से अनुरोध करेगा कि पेशवा उसकी रक्षा का प्रबन्ध करे क्योंकि वह होलकर परिवार का मुखिया है और दौलतराव उसकी और उसके परिवार की सम्पत्ति का अपहरण करके उनके साथ अन्याय कर रहा है। चूंकि पेशवा मराठा मण्डल का प्रधान था इसलिए वह इन दोनों नरेशों के बीच हस्तक्षेप करने का अधिकार रखता था।

परन्तु फतहसिंह मन्ने ने इन परिस्थितियों पर कुछ भी ध्यान न देते हुए पेशवा के क्षेत्रों में आंतक फैलाता रहा। एक तरफ तो जसवन्त राव होलकर, दौलतराव सिन्धिया के अनाचारों से बचने के लिए पेशवा का संरक्षण प्राप्त कर रहा था, जब कि दूसरी तरफ उसका सेनापति फतहसिंह मन्ने, पेशवा के क्षेत्र में ही लूटमार करता फिर रहा था। उसने कर वसूल कर तथा लूटपाट द्वारा गादावरी नदी के निकट बसे गाँवों पर कहर बरसा दिया और ये गांव एक तरह से जनशून्य ही गये।

इसी प्रकार के कार्यों एवम् उत्पातों के लिए होलकर ने अपने एक अन्य सरदार शाह अहमद खाँ को भी एक दिशा में रवाना कर दिया था। वह लूटपाट करता और रास्ते की बस्तियों को बीरान करता हुआ पेशवा की राजधानी के पास तक जा पहुंचा। पूना के पास पहुंच जाने पर भी जब उसका उपद्रव समाप्त नहीं हुआ तो विन्चूर के जागीरदार नरसिंह खण्डीराव ने, १५०० सवारों की एक टुकड़ी के साथ शाह अहमद खाँ की प्रबल सेना को रोकने का प्रयास किया। कुछ देर तक अत्यन्त भयानक युद्ध हुआ परन्तु १५०० सवार, शाह अहमद खाँ को विशाल सेना से कब तक लड़ते कुछ ही समय में नरसिह खण्डीराव का एक-एक सवार मार डाला गया।

इस प्रकार एक तरफ फतहसिंह मन्नो के उपद्रव से तथा दूसरी तरफ शाह अहमद खाँ के सिर पर आ पहुंचने से पूना में बहुत आतंक फैल गया। बाजीराव के पास इतनी शक्ति तो थी नहीं कि होलकर की सेनाओं का वह सशस्त्र एवम् सशक्त विरोध कर सके। अतः इन भयानक विपत्तियों से बचने के लिए उसने पुनः अंग्रेजों से सहायता के लिए बात करना शुरू कर दिया। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि मारक्विस वेल्सली पेशवा को 'सब्सीडियरी' सन्धि में निजाम अली की ही तरह पेशवा को भी फांसने के लिए कितना व्यग्र था। उधर सिन्धिया के पूना में पड़े रहने से अंग्रेजों की दाल नहीं गली थी और रेजीडेन्ट पामर हर सम्भव प्रयत्न करने के पश्चात् गवर्नर जनरल को लिख चुका था कि जब तक सम्भावित विनाश की आशंका पेशवा के सामने नहीं आ जायगी, तब तक 'सब्सीडियरी' सन्धि के जाल में न फँस सकेगा। इस समय भी, पेशवा द्वारा सहायता के लिए अनुरोध किए जाने पर रेजिडेन्ट ने एक बार पुनः प्रयास किया कि पेशवा अब भी अपनी राजधानी में अंग्रेजी सेना रखने के लिए राजी हो जाय परन्तु पेशवा ने कहा कि इस समय उसे अंग्रेजों से केवल सैनिक सहायता की ही आश्वयकता है, परन्तु वह कार्य निकल जाने पर इस सेना को एक क्षण भी अपने राज्य क्षेत्र में न रहने देगा। इसी प्रकार कुछ अन्य शर्तें भी लगाकर उसने अंग्रेजों की सब्सीडियरी सन्धि में सम्मिलित होने से अप्रत्यक्ष रूप से असहमति प्रकट की। वह न तो म्हाड़ में नाना फड़नवीस और निजाम अली के बीच हुई सन्धि की शर्तों को मानने के लिए तैयार हुआ और न तो यही स्वीकार किया कि निजाम अली पर मराठों के जो दावे हैं उनमें परिवर्तन के लिए ब्रिटिश सरकार किसी भी प्रकार से मध्यस्थता अथवा हस्तक्षेप करें।

जब दौलतराव सिन्धिया और बरार के राजा राघोजी भोंसले ने होलकर से आतंकित होकर पेसवा को अंग्रेजों से मदद माँगते देखा तो उन्हें अत्यन्त चिन्ता हुई। वे किसी भी प्रकार से पेशवा और अंग्रेजों में कोई सन्धि हो, ऐसा नहीं चाहते थे। क्योंकि वे जानते थे कि ऐसा हो जाने पर मराठा राज्य को स्वतंत्रता का अपहरण होने से बचाया न जा सकेगा, अतः उन्होंने हर तरह से इस होने वाली सन्धि में बाधा पहुंचने के लिए हर सम्भव प्रयत्न किये। सिन्धिया इस समय स्वयम् ब्रिटिश सरकार के साथ सन्धि वार्ता जारी रक्खे हुए था, यद्यपि उसे अंग्रेजों की सहायता से किसी कार्य को सफलतापूर्वक पूर्ण कर लेने की आशा न थी। वह तो अपनी तरफ से अंग्रेजों को संतुष्ट रखना चाहता था, ताकि इस समय वे उसके खिलाफ कोई कदम न उठावें। अंग्रेजों के साथ गम्भीरता पूर्वक कोई संधि करने का इरादा न तो कभी दौलत राव सिन्धिया का ही था और न राघो जी भोंसले ही इस पक्ष में था। वे दोनों तो केवल अंग्रेजों को अटकाये रखने का प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु पेशवा के दिमाग में यह बैठाने के लिए कि वह भी पेशवा के अनुरूप ही कार्य कर रहा है, सिन्धिया ने भी अपने दरबार में एक ब्रिटिश राजदूत को नियुक्त कर देने के लिए ब्रिटिश सरकार से अनुरोध करना शुरू कर दिया। इसमें सिन्धिया की एक चाल यह भी थी, कि उसके दरबार में अंग्रेजों का रेजिडेन्ट रहने पर अंग्रेज उसकी तरफ से निश्चिन्त रहेंगे और उसके विरुद्ध शीघ्र कोई कार्रवाई करना उचित नहीं समझेंगे।

अब तक हम देख चुके हैं कि जसवन्तराव स्थान-स्थान पर सिन्धिया के क्षेत्रों में उत्पात मचाता जा रहा था और सिन्धिया राज्य में उसने एक प्रकार से आतंक द्वारा अराजकता की स्थिति उत्पन्न कर दिया था, फिर भी सिन्धिया ने उसे रोकने के लिए कोई प्रत्यक्ष एवम् ठोस प्रयत्न नहीं किया। होलकर उपद्रवों के प्रति दौलतराव की इस निष्क्रियता और उदासीनता का कोई विशेष कारण हमारी समझ में नहीं आता। डी वाइन के चले जाने के बाद से ही सिन्धया की प्रशिक्षित सेनाओं का मुख्य सेनापति था पेरां, परन्तु इधर कुछ समय से सिन्धिया उसकी गतिबिधियों के कारण उस पर सन्देह करता था और धीरे-धीरे उस पर से उसका विश्वास उठता जा रहा था। उसे सन्देह था कि पेरां अंग्रेजो से मिला हुआ है। इसी समय उसके विरोधी सरदार लखवा दादा की मृत्यु हो गई जिससे सिन्धिया के दिल से एक कांटा निकल गया। इस बीच अम्बाजी इंग्लिया ने सिन्धिया के प्रतिनिधि के रूप में महादजी सिन्धिया की विधवा रानियों से वार्ता करके, उनका मामला भी निपटा दिया था। इस प्रकार हिन्दुस्तान की जिन समस्याओं को हल करने के लिए उसे पूना छोड़ना पड़ा था उनमें से एक को छोड़कर लगभग सभी समस्याएँ सुलझाई जा चुकी थीं और अब कोई ऐसा कारण न रह गया था जिससे दौलतराव सिन्धिया का हिन्दुस्तान में ही पड़ा रहना आवश्यक होता एवं अपने राज्य से हटने पर उसे किसी हानि की आशंका होती। अब हर तरफ से निश्चिन्त होकर सिन्धियाने जसवन्तराव होलकर की तरफ अपना ध्यान केन्द्रित किया, जो कि एक लम्वे समय से निर्विरोध उपद्रव करता घूम रहा था। उसने सदाशिव भाऊ-भास्कर को जसवन्तराव होलकर का दमन करने के लिए कूच कर देने का आदेश दिया। इस अभियान के लिए सदाशिव भाऊ भास्कर को चुने हुए सवारों की एक विशाल सेना का सेनापति बनाया गया और उसकी सहायता के लिए कैप्टेन डावे के अधीन प्रशिक्षित सेना की दस बटालियनों को भी भेज दिया गया। यह सेना पूर्णगति से आगे बढ़ी और बिना किसी रोकटोक के सदाशिव भाऊ भास्कर ने ससैन्य नर्वदा नदी को पार कर लिया। परन्तु जब वह बुरहानपुर पहुंचा तो उसकी सेना के सैनिकों ने अपने कदम अड़ा दिए। उनका काफी वेतन बकाया पड़ा था, उन्होंने धमकी दी कि जब तक उनकी पीछे की सारी बकाया तनख्वाह न मिल जायगी, तब तक वे एक कदम भी आगे नहीं बढ़ाएगें। जब कुछ दिनों में यह विवाद शान्त हुआ उस समय तक ताप्ती नदी में बाढ़ आ चुकी थी और अब इसके सिवाय कोई चारा नहीं था कि नदी के किनारे पड़ाव डाल कर नदी के घटने की प्रतीक्षा की जाय। सिन्धिया की सेना का उसके विरुद्ध अभियान का समाचार पाकर जसवन्तराव होलकर तैयार तो था ही, वह यह प्रदर्शित करते हुए आगे बढ़ा कि नदी के दक्षिणी किनारे पर सदाशिव भाऊ भास्कर पर आक्रमण करेगा, परन्तु तुरन्त ही (यदि वास्तव में उसका ऐसा इरादा रहा हो) उसने अपना इरादा बदल दिया और घूम कर पुनः पूना की ओर रवाना हो गया। अब तक तो होलकर और सिन्धिया के बीच युद्ध की सम्भावना से कुछ निश्चिन्त हो गया था परन्तु जब फिर जसवन्तराव होलकर पूना की ओर वापस लौटा तो पेशवा पुनः चिन्ता में पड़ गया। पेशवा ने उसकी प्रगति को अवरुद्ध करने का हर सम्भव प्रयत्न किया। पेशवा ने उससे कहलाया कि वह जो कुछ भी मांगना चाहता हो माँग ले, इस समय उसकी हर मांग पर विचार किया जायगा। पेशवा ने अपने दूत द्वारा यह भी सन्देश भेज दिया कि यदि होलकर गोदावरी नदी के उत्तर तरफ ही रुका रह जाय तो मैं वादा करता हूं कि होलकर के साथ समस्त भूतकालीन विरोधों को भूलकर होलकर परिवार के प्रधान के रूप में उसका यथोचित सम्मान करूँगा। इस पर जसवन्तराव ने उत्तर भेजा—"मेरा सगा भाई विठोजी मर चुका है, वह तो मुझे वापस मिल नहीं सकता, परन्तु कृपा करके मेरे भतीजे खण्डेराव को मुक्त कर

दें और हमारे परिवारिक अधिकारों को वापस कर दें ।" बाजीराव पेशवा ने ऊपरी तौर पर होलकर की इन शर्तों को स्वीकार करने का वादा किया और उसे विश्वास दिलाया कि उसने खण्डेराव को मुक्त कर देने का आदेश सम्बन्धित अधिकारियों के पास भेज दिया है परन्तु वास्तव में उसने ऐसा नहीं किया, उसे मुक्त करने के बदले में उसने सदाशिव भाऊ भास्कर से अनुरोध किया, कि जब तक मैं जसवन्तराव को सन्धिवार्ता में उलझाए हुए हूं, इस बीच तुम तीव्रगति से आगे बढ़कर होलकर को पीछे से रगेदो, इधर से मैं भी तुम्हारी सहायता करूँगा । दूसरी तरफ खण्डेराव की स्थति में केवल इतना परिवर्तन किया गया कि उसे पूना से हटाकर असीरगढ़ किले के कारागार में डाल दिया गया और कड़े पहरे की व्यवस्था कर दी गई ।

इसके कुछ समय बाद ही पेशवा ने फतहसिंह मन्ने के उपद्रवों को रोकने के लिए भी एक प्रयास किया । उसने पाण्डूजी कुँजर के नेतृत्व में फतहसिह का दमन करने के लिए एक सेना भेजी, परन्तु फतहसिंह मन्ने के मुकाबिले में यह सेना बहुत निर्बल थी । पाण्डूजी कूँजर ने गदून में फतहसिंह के ऊपर आक्रमण किया परन्तु उसके आगे पाण्डूजी की एक न चली और उसकी सेना पराजित होकर, तथा अपनी काफी युद्ध सामग्रियाँ युद्ध क्षेत्र में ही छोड़कर भाग चली । उनको हरा कर ही फतहसिंह मन्ने संतुष्ट न हुआ, उसने उस भागती हुई सेना का पीछा किया और बीच में ही पेशवा की सेना के एक अन्य कैम्प पर भी आक्रमण कर दिया । यह कैम्प बारामती में पड़ा हुआ था तथा इसमें नाना पुरन्दरे और गणपतराव फणसे की सेनाएँ पड़ाव डाले हुए थीं । फतहसिंह मन्ने ने इन दोनों सरदारों की टुकडियों को बुरी तरह पराजित किया और उनकी सभी तोपों को अपने अधिकार में कर लिया । इस समय यदि पेशवा के दक्षिणी इलाकों के जागीरदार चाहते तो जसवन्तराव होलकर की प्रगति को अवरुद्ध कर सकते थे, परन्तु उनमें से अधिकाँश जागीरदार पेशवा के विरोधी थे, कि जिनमें से प्रमुख थे पटवर्धन । माधवराव रस्तिया के कैद किए जाने से दक्षिण के अधिकांश जागीरदार पेशवा के विरुद्ध हो गए थे, अतः उनमें से एक जागीरदार को छोड़कर और किसी ने भी उसकी प्रगति में बाधा पहुंचाने की चेष्टा नहीं की । केवल चिन्तामणिराव ने उसे रोकने का साधारण सा प्रयत्न किया जिसका कोई विशेष महत्व नहीं था । चिन्तामणिराव को छोड़कर पटवर्धनों में से किसी ने भी जसवन्तराव होलकर के विरुद्ध पेशवा की सहायता नहीं की और चिन्तामणिराव ने भी अवसर पाते ही तुरन्त पेशवा का पक्ष छोड़कर तटस्थ नीति का आश्रय लिया ।

जसवन्तराव होलकर के पूना की तरफ बढ़ जाने पर सदाशिव भाऊ भास्कर भी अपनी सेना के साथ आगे बढ़ चला । मार्ग में ही उसे फिर होलकर के पड़ाव का अन्देशा हुआ अतः उसने सीधे मार्ग से पूना की तरफ न बढ़कर एक घुमावदार रास्ते से अपने लक्ष की तरफ चला और भीर होते हुए पूना पहुंच गया । वहाँ उसने पेशवा से होलकर के दमन के सम्बन्ध में वार्ता की और यह निश्चित हुआ कि उसकी और पेशवा की सेनाएँ सम्मिलित रूप से जसवन्तराव होलकर की शक्तिशाली सेना का मुकाबिला करें । इस समय जसवन्तराव की सेना अली के दर्रे के पास से गुजर रही थीं । पेशवा और सदाशिव भाऊ भास्कर ने संयुक्त सेना द्वारा इसी स्थान पर होलकर को घेरने की योजना बनाई और इस सम्बन्ध में आवश्यक तैयारियां की जाने लगीं । परन्तु उनकी इस योजना की भनक जसवन्तराव को लग गई । वह यह भली भाँति जानता था कि इस समय उसके विरोधियों की सेना तगड़ी है और यदि इस स्थान पर वह शत्रुओं की संयुक्त सेना से घिर गया तो अत्यन्त विपत्ति में पड़ जायगा । अतः इस सम्भावित विपत्ति से बचने के लिए उसने अपना मार्ग बदल दिया और पूरब की ओर घूमकर चक्करदार मार्ग से, पूर्ण गति के साथ अहमदनगर पहुंचा । यहाँ पर पहुंचने के पश्चात् उसने तत्काल

भविष्य के लिए अपनी योजना निश्चित की और जीजौरी की तरफ चल पड़ा। इस समय फतहसिंह मन्ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ जीजौरी में ही पड़ा हुआ था। जसवन्तराव ने यहाँ से फतहसिंह मन्ने को भी अपने साथ ले लिया और राजवाड़ी के दर्रे को पार करके श्रेणियों से नीचे उतर कर २३ अक्टूबर को पूना के पड़ोस में ही एक स्थान पर उसने अपना कैम्प डाल दिया जो लोनी के बीच में स्थित था। पेशवा तथा सदाशिव भाऊ की सेना लगभग आठ दिन पहले ही अली के दर्रे तक जाकर वापस लौट आई थी। होलकर के नए पड़ाव की स्थिति के अनुसार यह आवश्यक समझा गया कि यह सयुक्त सेना पूना के आस-पास ही कहीं अपनी स्थिति कायम करे। इस संयुक्त सेना ने पेशवा की राजधानी के समीप ही एक उचित और सुविधाजनक स्थान पर मोर्चे बन्दी की, जहाँ कि आजकल ब्रिटिश फौजों की छावनी है। दोनों सेनाओं का पड़ाव पड़ जाने के पश्चात दो दिन तो बैठे बिठाए ही बीत गए और सिवाय दोनों पक्षों के बीच व्यर्थ की सन्धिवार्ता के और कुछ भी नहीं किया जा सका। सर्वप्रथम पेशवा बाजीराव ने जसवन्तराव होलकर से इस सम्बन्ध में जवाब तलब किया कि इस प्रकार अपनी समस्त सेना के साथ शत्रुभाव से और युद्ध की पूर्ण तैयारी के साथ पेशवा की राजधानी के इतने समीप कैम्प क्यों डाला गया और इसमें उसका क्या उद्देश्य निहित है। इसी के साथ पेशवा ने जसवन्तराव होलकर को पूर्ण अधिकार के साथ आदेश दिया कि वह राजधानी की सीमा से तुरन्त बाहर चला जाय। होलकर ने इस आरोप का उत्तर पूर्ण नम्रता के साथ देते हुए लिखा कि माननीय पेशवा द्वारा मुझे जो भी आदेश दिया जायगा, उसे मैं सहर्ष मानूंगा, परन्तु यदि पेशवा सिन्धिया के प्रभाव में आकर या उसका पक्ष लेकर कोई अनुचित कार्य करेंगे तो मैं उसे मानने को बाध्य नहीं हूं। उसने आगे लिखा कि दौलतराव सिन्धिया ने स्वयम् पेशवा के आदेशों की अवहेलना करके उसकी राज्यसत्ता का अपमान किया है; पेशवा द्वारा यह आदेश दे दिये जाने पर भी, कि खण्डेराव को मुक्त कर दिया जाय, सिन्धिया ने उसे मुक्त करने के बजाय उसके ऊपर और कड़ा पहरा लगा दिया। साथ ही पेशवा ने मेरे तथा सिन्धिया के बीच मध्यस्थता करके विवाद को निपटाने से सम्बन्धित जिस प्रस्ताव को मान लिया था, अब उस कार्य को पूर्ण होने से रोकने के लिए दौलतराव सिन्धिया ने अपनी सेना को पूना की सरहद पर जमा दिया है। ऐसी परिस्थिति में अपने अधिकारों की रक्षा के लिए मैं पूना की सरहद से बाहर चले जाने का आदेश वापस ले लेने की प्रार्थना करता हूं। अन्त में उसने यह भी लिख दिया कि यदि पेशवा मुझे अनुमति दें तो मैं कहूंगा कि उनकी राजसत्ता का अपमान करने वाला विद्रोही मैं नहीं हूं बल्कि सिन्धिया है और यदि मुझे आदेश मिले तो मैं शीघ्रातिशीघ्र इस विद्रोही को पेशवा के चरणों में उपस्थित करके उसे पेशवा की सर्वोच्च राजसत्ता का असम्मान करने का मजा चखा दूँ।

इस प्रकार पेशवा और होलकर में जो बार्ता हुई उसका कोई भी परिणाम न निकल सका, बल्कि वातावरण कुछ और कटु हो उठा। अब यह निश्चित रूप से मान लिया गया कि बिना युद्ध के कोई भी निर्णय होना असम्भव है। अन्त में होलकर द्वारा पूना के पास पड़ाव डाले जाने के तीसरे दिन, अर्थात २५ अक्टूबर को दोनों सेनाएँ युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर युद्ध क्षेत्र की ओर चल पड़ी। होलकर के पास प्रशिक्षित सेना की कुल १४ बटालियनें थीं; इनमें से ६ बटालियनों का संचालन भार कर्नल विकर्स के हाथ में था; चार बटालियनों को मेजर हार्डिंग्ज सम्भाले हुए था और शेष चार बटालियनें मेजर आर्मस्ट्रांग के अधीन थीं। इन १४ बटालियनों के अतिरिक्त उसके पास ५००० हजार साधारण पैदल सेना थी और २५००० सवार थे। यद्यपि सिन्धिया की पैदल सेना जसवन्तराव के मुकाबले में काफी कमजोर थी, फिर भी सदाशिव भाऊ भास्कर को अपनी सेना की निर्बलता का कोई

भय नहीं था और वह पूर्ण आत्मविश्वास के साथ वीरोचित भाव से युद्ध क्षेत्र में खड़ा था। कैप्टेन डावे भी उत्साह से भरा हुआ सदाशिव भाऊ भास्कर को बढ़ावा दे रहा था और प्रोत्साहित कर रहा था। सदाशिव भाऊ भास्कर की अपनी सवार सेना और साधारण पैदल सैनिक तथा पेशवा के सैनिकों को मिलाकर इस समय पेशवा सिन्धिया की संयुक्त सेना के सैनिकों की संख्या होलकर की सेना से किसी तरह कम नहीं थी। दोनों पक्षों के बीच युद्ध प्रारम्भ होने की घोषणा लगभग साढ़े नौ बजे तोपों की गर्जना से हुई। लगातार ढाई घन्टों तक दोनों पक्षों के तोपखाने एक दूसरे की तरफ भयंकर अग्नि वर्षा करते रहे। दोपहर के लगभग दोनों सेनाओं के विभिन्न दस्तों ने उचित अवसर पाने पर एक दूसरे पर धावा करने लगे। इस प्रकार के धावा का पहले हुआ होलकर के पक्ष की तरफ से। होलकर की सेना के पठान सवारों के एक दल ने सदाशिव भाऊ भास्कर की सेना की तरफ रुख किया और अपने सामने, लक्ष्य पर खड़े विंचूर के जागीरदार के सवारों पर प्रबल और सफल धावा किया तथा विंचूर के सवारों को पीछे हटना पड़ा। पठानों के इस धावे को देखकर फतहसिंह मन्ने को भी जोश आया और उसने भी पठानों की तरह से ही पेशवा के "हुजरात पाग" (निजी सेना) पर जोरों का धावा किया परन्तु इस टुकड़ी ने उसके इस आक्रमण का प्रबल प्रतिरोध किया; फतहसिंह मन्ने को इस मुठभेड़ में काफी हानि उठानी पड़ी, साथ ही पीछे भी लौटना पड़ा। उसे पीछे हटते देखकर सिन्धिया के सवारों ने इस अनुकूल स्थिति से लाभ उठाया और भागते हुए फतहसिंह के पीछे-पीछे होलकर की सेना मे घुस गए और उसकी सेना की पंक्तियों को तोड़कर उन्हें तितर-बितर कर दिया। सिन्धिया के सवारों की भयंकर मार से त्रस्त होकर होलकर के सैनिक भागने लगे और कुछ समय के लिए ऐसी अव्यवस्था और भगदड़ मच गई कि होलकर अपनी पराजय की आशंका से अभिभूत हो उठा तथा सिन्धिया के सवारों ने भी सोचा कि अब मैदान मार लिया; परन्तु इसी समय यकायक जसवन्तराव होलकर ने अपनी पराजय को बचाने के लिए अन्तिम प्रयास किया। इस समय होलकर अपनी सेना के पिछले भाग में था। वह हाथ में नंगी तलवार लिए हुए अपने घोड़े को सरपट आगे की ओर दौड़ाते हुए उसने ललकारा, "जिसे जसवन्तराव का साथ देना हो आए, या फिर कभी मुझे अपना मुँह न दिखाए।" उसकी इस वीरोचित ललकार से भागते हुए सैनिकों के पाँव बँध गए और वे पुनः युद्ध क्षेत्र की ओर वापस लौटने लगे। कुछ ही समय में जसवन्तराव होलकर के पास वीर एवम् चुने हुए सवार बहुत अधिक संख्या में एकत्रित हो गए। इन्हीं सवारों के साथ वह सिन्धिया के सवारों पर प्रबल वेग से टूट पड़ा और उन्हें वापस उनकी सेना तक खदेड़ ले गया। जसवन्तराव के इस शौर्य पूर्ण कार्य से उसकी सेना पुनः जोश से भर उठी, दूने उत्साह से मारकाट करना प्रारम्भ कर दिया।

इस बीच दोनों पक्षों की प्रशिक्षित सेनाओं में युद्ध जारी था। सिन्धिया की ६ बटालियनें युद्ध क्षेत्र में डटी हुई थीं, परन्तु उनका संचालन भार किसी यूरोपीय अफसर के हाथ में न था। इन बटालियनों का मुकाबिला पड़ा था होलकर की विकर्स के अधीन बटालियनों से। विकर्स के कुशल संचालन से होलकर की पलटनें प्रबल पड़ रही थीं, फलस्वरूप कुछ ही समय में सिन्धिया की इन छः पल्टनों की कतारें तितर बितर हो गई और विकर्स को आगे बढ़ने का अवसर मिल गया। इनके बाद सिन्धिया की जो चार बटालियनें खड़ी थीं, वे पुरानी और अनुभवी थीं तथा उनको डि बाइन जैसे कुशल अफसर द्वारा प्रशिक्षित किया गया था। यद्यपि इस युद्ध में इन चार बटालियनों का संचालन भार केवल चार यूरोयीय अफसरों पर था, परन्तु फिर भी इन सैनिकों ने आसाधारण धैर्य और अनुशासन प्रियता दिखाई। प्रबल आक्रमण होने पर भी वे अपने स्थान पर दृढ़ता से खड़े

रहे और यथाशक्ति शत्रुओं से सामना करते रहे। इस समय तक होलकर, सिन्धिया के सवारों के कदम उखड़ चुके थे अतः अवकाश पाकर अब उसने सिन्धिया की पैदल सेना पर भी आक्रमण कर दिया उसने सिन्धिया की पैंदल सेना के अधिकांश तोपचियों को काट डाला और बुरी तरह से पैंदल सैनिकों का विनाश करने लगा। अब पैदल सेना का साहस जवाब देने लगा। इस भयंकर युद्ध में, सिन्धिया के चार यूरोपियन अफसरो में तीन मारे और चौथे को कैद कर लिया गया। अपने अफसरों के मारे जाने पर उक्त चार बटालियनें पूर्ण अनुशासित ढंग से वीरतापूर्वक युद्ध करती रहीं। परन्तु होलकर ने भी अपना क्रम ढीला नहीं किया। उसके सवार धावे पर धावा करते हुए इन बटालियनों को पदाक्रान्त करते रहे और अन्त में सिन्धिया की पैदल सेना को मैदान छोड़ना ही पड़ा* इस प्रकार अपने व्यक्तिगत साहस एवम् शौर्य से होलकर ने, प्रारम्भ में अपनी पराजय के लक्षण दिखाई पड़ने पर भी अन्त में इस नाजुक युद्ध का पाँसा पलट दिया और उसे सिन्धिया की सेना पर पूर्ण विजय प्राप्त हुई। विजय का पूर्णश्रेय जसवन्तराव के समयोचित साहस एवम् प्रशंसनीय नेतृत्व शक्ति को दिया जाना जाना चाहिए। इस युद्ध में विजय प्राप्त करने के साथ साथ होलकर को बहुत लाभ भी हुआ। सिन्धिया के पास बहुत ही सशक्त तोपखाना था, जो कि युद्ध क्षेत्र में ही छूट गया था, ये सारी तोपें होलकर के हाथ लग गई। तोपखाने के अलावा अन्य युद्ध सामाग्रियाँ तथा शस्त्र होलकर की सेना के हाथ लगे, क्योंकि शत्रुपक्ष समस्त सैनिक युद्ध क्षेत्र से खदेड़ दिए गए थे। इस विजय के पश्चात् जसवन्तराव ने पूनावासियों की प्रशंसा एवम् सद्भावना प्राप्त करने के लिए, अपने उतने दिन के सैनिक जीवन में पहली बार लूट पाट से मुख मोड़ा जो कि मराठों की स्वाभाविक प्रवृत्ति के प्रतिकूल था। मराठों के लिए सैनिक जीवन का एकमात्र आकर्षण था लूटपाट; परन्तु इस अवसर थर जसवन्तराव ने ऐसा नहीं किया। युद्धक्षेत्र में पड़े सामानों पर अधिकार कर लेने के पश्चात् उसने अपने सैनिकों को कैम्प में वापस चलने का आदेश दिया। उन्हें शहर में न घुसने के लिये कड़ा आदेश दिया गया, परन्तु उन सैनिकों ने इस आज्ञा को न मानने की प्रवृत्ति दिखाई क्योंकि युद्ध में विजय के पश्चात् लूटपाट मचाने की उनकी आदत पड़ चुकी थी। जब होलकर ने देखा कि उसकी सेना उसकी आज्ञा की अवहेलना करने पर उतारू है तो उसने अपनी तोपों का मुँह अपनी सेना की ओर ही घुमवा दिया और घोषणा कर दी कि यदि किसी भी सैनिक ने बिना आदेश के कैम्प छोड़ने का साहस किया तो उसे भूनकर रख दिया जायजा।

इधर, जब युद्ध शुरू हुआ तो बाजीराव पेशवा को यह विश्वास था कि उसी का पक्ष विजय करेगा, अतः उसने युद्ध में सम्मिलित होने के लिए अपनी अंगरक्षक सेना के साथ अपने महल से निकल कर युद्धस्थल की तरफ प्रस्थान कर दिया, परन्तु बीच मार्ग में ही, जब उसने तोपों की भयानक गर्जना सुनी, तो उसकी हिम्मत जबाव दे गई और वह युद्ध में सम्मिलित होने का साहस न कर सका। वह वहाँ से लौटकर सन्देह एवम् भय के मारे महल में भी वापस जाने में हिचका और नगर के दक्षिण की तरफ बढ़कर एक स्थान पर बैठकर युद्ध के परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा। जब उसे अपनी और पेशवा की संयुक्त सेना की पराजय का निश्चित समाचार मिल गया तब उसने होलकर के भय से पूना

---

* कुछ इतिहासकारों का मत है कि इस युद्ध में सिन्धिया पेशवा की संयुक्त सेना की पराजय का मुख्य कारण था, सिन्धिया के यूरोपियन सेनापति फाइलाँस की दगाबाजी, जो कि नाजुक मौके पर, सम्भवतः वेलसली के इसारे पर होलकर से मिल गया। वैसे भी अप्रत्यक्ष रूप से। अंग्रेजों ने इस युद्ध में जसवन्तराव होलकर की काफी सहायता की थी ताकि पेशवा अंग्रेजों की सेना अपने पास रखने के लिए विवश हो सके।

—अनुवादक

जाना उचित नहीं समझा। इस समय उसके पास कुल ७००० सैनिक थे। यदि वह इन सैनिकों को लेकर युद्ध में सम्मिलित हुआ होता तो सम्भव था कि युद्ध का परिणाम कुछ दूसरा ही होता। अस्तु, वह अपने सात हजार सैनिकों के साथ तेजो से चलते हुए सिंहगढ़ पहुंचा और वहीं से अंग्रेजों की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा। इस समय पूना में ब्रिटिश रेजिडेन्ट था कर्नल क्लोज।* पामर को १८०२ में ही वापस बुला लिया गया था। पेंशवा ने कर्नल क्लोज के पास पत्र भेजा कि वह अंग्रेजों के साथ सब्सिडियरी सन्धि के लिए तैयार है। उसने अंग्रेज सेना की ६ बटालियनों को अपने पास रखना स्वीकार किया और इन पल्टनों के खर्च के लिये अपने राज्यक्षेत्र में से २५ लाख रुपया वार्षिक आय वाला क्षेत्र उनके नाम कर देने के प्रस्ताव पर भी राजी हो गया। अभी तक सब्सीडियरी सन्धि के विषय में बाजीराव और मारक्विस वेल्सली में केवल एक बात पर मतैक्य नहीं था; पेशवाँ यह नहीं चाहता था कि ब्रिटिश सेना उसके राज्य क्षेत्र में स्थायी तौर पर रहें; यद्यपि वह अंग्रेजों की सहायता लेने के विरोध में नहीं था, परन्तु उसका विचार था कि उसी के खर्च से ब्रिटिश सेना की कुछ पल्टनें उसकी सहायता के लिए उसके राज्क्षेत्र से बाहर ही रक्खी जांय और आवश्यकता पड़ने पर ही उन्हें अपने राज्य में घुसने की अनुमति दी जाय। इसके विपरीत पेशवा को पूर्णतः वश में रखने के लिये † वेल्सली इन पलटनों को पेशवा के राज्य में ही रखे जाने की जिद कर रहा था। अन्त में अपने सामने 'असन्दिग्ध नारा' को खड़ा देखकर बाजीराव पेशवा ने इस सेना को अपने ही राज्य में रखना स्वीकार कर लिया, ‡ और इस प्रकार वेल्सली का इरादा हर पहलू से पूरा हो गया।

जिस समय सिन्धिया और होलकर के बीच पूना में हुआ यह युद्ध लगभग समाप्त पर था, दोनों पक्षों के सवार लड़ते-लड़ते ब्रिटिश रेजिडेन्सी (जो कि संगम के पास स्थित था) के बहुत पास

---

* अभी पाठकों के सामने कर्नल क्लोज का नाम पहली बार आया है, अतः उसके गुणों का संक्षिप्त परिचय आवश्यक है। कर्नल क्लोज बहुत ही कुशल कूटनीतिज्ञ था और अपने शत्रुओं के आदमियों को फोड़ लेने में सिद्धहस्त था। टीपू के साथ हुए अंग्रेजों के अन्तिम युद्ध के पूर्व टीपू के आदमियों और अफसरों को उसके विरुद्ध फोड़ने का श्रेय प्राप्त कर चुका था; नये मैसूर राज्य में भी वह कुछ समय तक रेजिडेन्ट रह चुका था और अब पेशवा दरबार में फूट डालने के लिए उसे पूना भेज दिया गया था, क्योंकि उसे इस क्षेत्र में माहिर माना जाता था। —अनुवादक

† इस सम्बन्ध में वेल्सली के सेक्रेटरी एडमाँस्टन ने करनल क्लोज को लिखा था—"जब कोई राज्य ...... एक बार किसी विदेशी ताकत की मदद के सहारे अपने को सुरक्षित समझने लगता है तो फिर उसकी सावधानी एवम् सतर्कता में सुस्ती आने लगती है। इसी तरह की सन्धि ...... का एक फल यह भी होगा कि पूना दरबार मराठा साम्राज्य के दूसरे सदस्यों से फूट जायगा जिससे ब्रिटिश सरकार के प्रति पेशवा की पराधीनता और भी तीव्रगति से बढ़ती जायगी।"

उसने आगे लिखा था—"...... मराठा साम्राज्य की किसी एक शक्ति से इस तरह का पृथक सम्बन्ध कायम कर लेने से ..... मजबूर होकर उस साम्राज्य के अन्तर्गत दूसरे राज्यों को भी हमारे साथ इसी तरह की सन्धि करनी पड़ेगी, (२२ जून, १८०२) यह थी अंग्रेजों की नीति। —अनुवादक

‡ इस सन्धि के अनुसार पेशवा ने अंग्रेजी सेना से स्थायी रूप से निवास करने से लिए तुंगभद्रा नदी के पास का एक जिला तथा सेना के व्यय के लिए २५ लाख रुपया सालाना आमदनी का एक क्षेत्र करनाटक में खाली कर देना स्वीकार किया था।

आ गए थे। कर्नल क्लोज को आशंका हुई कि कहीं इस युद्ध की लपेट में रेजिडेन्सी भी न आ जाय; अतः कर्नल क्लोज ने अपनी स्थिति की सूचना देने के लिए रेजिडेन्सी के ऊँचे भागों पर अंग्रेजी झण्डे फहरा दिए थे ताकि दोनों पक्ष गलत फहमी में कहीं रेजिडेन्सी का ही विनाश न कर दें। उसकी इस सतर्कता से आशातीत लाभ हुआ; दोनों पक्षों ने ब्रिटिश झण्डे का सम्मान किया और रेजिडेन्सी के नजदीक नहीं गए।

इस महत्वपूर्ण विजय के दूसरे दिन भविष्य की व्यवस्थाओं के विषय में विचार विमर्श करने के लिए जसवन्तराव होलकर ने रेजिडेन्ट कर्नल क्लोज को अपने कैम्प में निमंत्रित किया। कर्नल क्लोज ने होलकर के इस निमंत्रण का असम्मान करना अनुचित तथा नीति विरुद्ध समझ कर, उसे स्वीकार कर लिया और निश्चित समय पर उससे भेंट करने के लिए तैयार हो गया। जब वह होलकर के शिविर में पहुंचा तो उसने होलकर को अत्यन्त अस्त व्यस्त दशा में देखा। इस महत्वपूर्ण युद्ध के विजेता जसवन्तराव होलकर के पाँव कीचड़ में सने हुए थे, उसके शरीर पर भाले की चोट का स्पष्ट निशान दिखाई पड़ रहा था; उसके सिर में भी एक स्थान पर कटार की चोट लगी हुई थी, जो कि सिन्धिया के तोपखाने पर धावा करते वक्त लगी थी। कर्नल क्लोज के साथ उसने बहुत शिष्टाचार पूर्वक तथा प्रसन्नचित्त होकर वार्तालाप किया। उसने कर्नल क्लोज के समक्ष अपनी हार्दिक इच्छा प्रकट की कि वह रेजिडेन्ट की कृपा दृष्टि का आकांक्षी है, और ब्रिटिश सरकार से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाए रखना चाहता है। उसने रेजिडेन्ट कर्नल क्लोज से यह भी अनुरोध किया कि पेशवा और सिन्धिया तथा मेरे बीच जो शत्रुतापूर्ण एवम् कटु वातावरण बन गया है, उसे दूर करने में वह (रेजिडेन्ट) मध्यस्थ बनकर मेरी सहायता करें। उसने कर्नल क्लोज को अत्यन्त आदर एवम् सम्मान के साथ पूरे एक माह तक पूना में रोक रक्खा और उससे बार-बार अनुरोध करता रहा कि वह इस मामले में हस्तक्षेप करके मराठा साम्राज्य में छाए हुए इस विवाद पूर्ण वातावरण को शान्त बनाने के प्रयत्न में उसको सहयोग दें!

पेशवा-सिन्धिया के विरुद्ध प्राप्त इस विजय के पश्चात् कुछ समय के लिए होलकर ने पूना वासियों की शान्ति एवम् सुरक्षा के लिए हर सम्भव प्रयत्न किया और किसी भी तरह अराजकता की स्थिति नहीं पैदा होने दिया। उसने नगर की सुव्यवस्था एवम् सुरक्षा के लिए चारों तरफ रक्षकों को तैनात कर दिया और पेशवा के समस्त आश्रितों के साथ अत्यन्त उदारता एवम् सम्मान का बर्ताव किया। इसके साथ ही उसने इस बात के लिए कई बार प्रयास किया कि पेशवा वापस पूना आकर पूर्ववत अपना कार्य-भार सम्भाले * परन्तु ऐसा न हो सका। बाजीराव पेशवा पूना से भागने के पश्चात तीन दिनों तक सिंहगढ़ में पड़े-पड़े आगे की योजनाएँ बनाने में व्यस्त रहा; इसके पश्चात एक निश्चित निर्णय पर पहुंच जाने पर वह रायगढ़ की तरफ चल पड़ा। रायगढ़ पहुंच कर उसने माधवराव

---

* वास्तव में जसवन्त राव चाहता था कि पेशवा पुनः मराठा मण्डल के प्रधान के रूप में कायम रहे और पेशवा के साथ उसका वैसा ही सम्बन्ध बना रहे जैसा कि मराठा मण्डल के अन्य सदस्यों का था (मिल भाग दूसरा ६ अध्याय) परन्तु उनके बीच किसी भी प्रकार का मेल मिलाप अंग्रेजों के लिए हितकर सिद्ध न होता अतः अंग्रेजो ने पेशवा को बहका कर महाराष्ट्र से भगा ले जाना ही श्रेयस्कर समझा। इस समय अंग्रेज, होलकर एवम् पेशवा दोनों को एक साथ नचा रहे थे। इधर तो वे बाजीराव को भगाकर ले गए, उधर कर्नल क्लोज होलकर के पास रहकर पेशवा के सम्पूर्ण बिनाश का चित्र बनाने में तत्पर था ताकि पेशवा अंग्रेजो के साथ सन्धि करने में किसी भी शर्त को मानने से इनकार न कर सके—अनुवादक।

रस्तिया को मुक्त कर दिया जो एक लम्बे अरसे से इसी किले में कैद होकर पड़ा था । पेशवा ने उसे मुक्त करने के पश्चात उसकी जागीर पर उसका अधिकार पुनः वापस देकर उसे आदेश दिया कि वह उसकी सहायता एवम् सेवा के लिए सैन्य-संगठन करे ।

रायगढ़ में इतना कार्य निपटा लेने के पश्चात पेशवा वहाँ से भी चल पड़ा और अब उसने म्हाड़ का मार्ग पकड़ा । म्हाड़ से उसने सारी परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए एक पत्र द्वारा बम्बई सरकार से अनुरोध किया कि वह बम्बई आना चाहता है, अतः उसे तथा उसके साथियों को ले जाने के लिए अंग्रेजी जहाज भेज दिए जायँ ताकि वह सुरक्षित रूप से अपनी यात्रा पूर्ण कर सके । पेशवा के इस पत्र का उत्तर मिलने से पहले ही बसई के सर सूबेदार खण्डेराव रस्तिया ने बचन में ही आकर पेशवा से मुलाकात किया और यथा शक्ति उसकी सहायता करने का बचन दिया । इसी समय समाचार मिला कि पेशवा की खोज में जसवन्तराव होलकर की सेना म्हाड़ की तरफ ही आ रही हैं, जिससे पेशवा भयभीत होकर म्हाड़ से भी रवाना हो गया और सुवर्णदुर्ग में शरण लिया । वह कुछ समय तक सुवर्णदुर्ग में ही पड़ा रहा और अंग्रेजी जहाजों की प्रतीक्षा करता रहा । इसी समय एक अन्य समाचार ने उसे पुनः चिन्ता पूर्ण परिस्थिति में डाल दिया । अमीर खाँ इस समय अपनी सेना के साथ इसी इलाके में उत्पात कर रहा था और पेशवा उससे वहुत डरता था, अतः वह सुवर्णदुर्ग में निश्चिन्त होकर न बैठ सका । वहाँ से वह सदलबल रेवाडूँडा चला गया और वहीं से, पहले से ही तैयार खड़े एक जहाज में बैठ कर खण्डेराव रस्तिया के साथ रवाना हो गया और ६ दिसम्बर को बसई पहुंच गया ।

पूना के घटनाक्रम, बसई की सन्धि एवम् होलकर की गतिविधियों का वर्णन करने से पहले यह आवश्यक प्रतीत होता है कि गुजरात में धटी कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं का अध्ययन कर लिया जाय तथा उन कारणों का विश्लेषण कर लिया जाय जिनके प्रभाव से गायकवाड़ और अंग्रेजो के बीच सम्वन्ध स्थापित हुआ । उनके बीच १८०५ में हुई महत्वपूर्ण सन्धि एवम् उसके परिणाम स्वरूप हुई अन्य ब्यवस्थाओं का वर्णन यथास्थान घटनाक्रम के अनुसार किया जायगा ।

बयालीसवां अध्याय

गुजरात की घटनाएँ

[१७९३ १८०३ ई]

बड़ौदा की परिस्थिति—गोविन्दराव गायकवाड़ एवम् आबा शेलूकर में युद्ध—सूरत की नवाबी और अंग्रेज—गायकबाड़ द्वारा आबा शेलूकर पर विजय—गोविन्दराव गायकवाड़ की मृत्यु—उसके ज्येष्ठ पुत्र आनान्दराव गायकवाड़ का सिंहासन पर बैठना—दरबार में रावजी अप्पाजी तथा कान्होजी राव गायकवाड़ के नेतृत्व में दो परस्पर विरोधी दलों का संगठन—अंग्रेजो का रावजी अप्पाजी का पक्ष ग्रहण करना—अंग्रेजी सहायक टुकड़ी पर मल्हारराव गायकवाड़ का आक्रमण—मल्हारराव की पराजय—बड़ौदा में अंग्रेजों की सब्सीडियरी सेना—नाजुक आर्थिक स्थिति—अरबी व्यापारियों द्वारा नए सुधारों की योजना का विरोध—बड़ौदा का घेरा और आत्मसमर्पण—कान्होजी राव गायकवाड़ द्वारा वर्तमान सरकार का विरोध—सावरी में घटनाक्रम—मेजर होम्स का वीरोचित व्यवहार।

पीछे लिखा जा चुका है कि गोविन्दराव गायकवाड़ ने बड़ौदा राज्य की सरकार के संचालन का भार दिसम्बर १७९३ में अपने हाथों में लिया। पाठक यह बात भूले नहीं होंगे कि गुजरात का जो भाग पेशवा के हिस्से में था; इस सूबे को नायब सूबेदार के रूप में पेशवा
१७९३ ई०] ने आबा शेलूकर को नियुक्त किया था। जब मिचेल फाइलाँस ने कपटपूर्वक नाना फड़नवीस को कैद किया था, उस समय उसके साथ अनेक अन्य सरदार भी कैद में डाल दिए गये थे जिनमें से आबा शेलूकर भी एक था। इस प्रकार सिन्धिया के कैम्प में अप्रत्याशित रूप से कैद कर लिए जाने पर आबा शेलकूर अपनी मुक्ति के लिए तदवीरें सोचने लगा। अन्त में दौलतराव सिन्धिया से उसने इस विषय में वार्ता करके उसे अपने अनुकूल कर लिया। अपनी मुक्ति की कीमत के रूप में आबा शेलूकर ने सिन्धिया को १० लाख
१७९८ ई०] रुपया देने का लिखित वचन दिया; मुक्त हो जाने के पश्चात उसने सिन्धिया से गुजरात जाने की अनुमति भी प्राप्त कर ली। वह जैसे ही गुजरात पहुँचा, उसने झटपट अपना नायब सूबेदार का कार्य भार ग्रहण कर लिया और अहमदाबाद में रहकर अपना शासन प्रबन्ध देखने लगा। परन्तु आवा शेलूकर अधिक समय तक बाजीराव पेशवा की प्रतिहिंसाग्नि की लपटों से बचा न रहा सका। चूंकि नाना फड़नवीस और बाजीराव में सदैव शत्रु भाव और वैमनस्य रहता था और पेशवा ने अपने व्यक्तिगत शत्रुओं के सहायकों और मित्रों को क्षमा करना नहीं सीखा था अतः अब वह आबा शेलूकर के पीछे पड़ गया जो कि फड़नवीस नाना का मित्र था। बाजीराव ने आवा शेलूकर को परेशान करने के लिए गोविन्दराव गायकवाड़ को उसके विरुद्ध उकसाना शुरू कर दिया। इधर आबा शेलूकर ने अपनी मुक्ति के बदले में दौलतराव सिन्धिया को जो १० लाख रुपया देने का वादा किया था, उसे वसूल करने के लिए सिन्धिया ने उस पर जोर डालना शुरू किया। इस

रकम को अदा करना आवश्यक समझ कर जनता से निश्चित से अधिक मालगुजारी तो वसूल की ही, साथ ही गायकवाड़ राज्य के कुछ गाँवों से भी मालगुजारी वसूल कर ली गई। आबाजी शेलूकर की इस अनाधिकार चेष्टा के कारण शीघ्र ही गोविन्द राव गायकवाड़ और उसके बीच मनमुटाव पैदा हो गया, जो धीरे धीरे बढ़ता ही गया। अन्त में यहाँ तक नौबत आ पहुँची कि आबाजी शेलूकर ने गायकवाड़ के क्षेत्र में लूटपाट मचाना भी शुरू कर दिया। काफी समय तक गोविन्दराव गायकवाड़ ने आबा शेलूकर की इन कुचेष्टाओं को रोकने का प्रयत्न करता रहा परन्तु सफल न हो सका।

अब हम अपने पाठकों का ध्यान सूरत की तरफ आकर्षित करना चाहते हैं। जनवरी १७९९ में सूरतके तत्कालीन नवाब की मृत्यु हो गई। नवाब के एक ही लड़का था, अपने पिता की मृत्यु के एक माह बाद ही वह भी मर गया। मृत नवाब का छोटा भाई नसीरुद्दीन ही अब सूरत की गद्दी का वास्तविक उत्तराधिकारी था। इसी समय गायकवाड़ राज्य एवम् गुजरात में वातावरण अत्यन्त अशान्त हो गया था, जिसका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। नवाब की
१७९९ ई०]
मृत्यु के पश्चात् फौरन ही गवर्नर जनरल वेल्सली ने बम्बई के गवर्नर को हुक्म दिया कि आप सूरत जा कर बलात् नवाब की सत्ता का अपहरण कर लें और न्याय उत्तराधिकारी, नवाब के भाई को अपनी नवाबी का समस्त अधिकार त्याग कर सालाना पेन्शन पर राजी होने के लिए विवश करें। इस समय जोनाथन डंकन बम्बई का गवर्नर था। वास्तव में वेल्सली का इरादा था कि सूरत की नवाबी को एक दम से खत्म कर दिया जाय * तथा नसीरुद्दीन को नाम मात्र का नवाब बना रहने दिया जाय। सूरत के कुछ भागों से गायकवाड़ को चौथ वसूल करने का अधिकार भी मिला हुआ था; पेशवा को भी इस चौथ में कुछ हिस्सा मिलता था। गवर्नर जनरल मारक्विस वेल्सली ने जोनाथन डंकन को यह निर्देश भी दिया कि जिस तरह भी सम्भव हो, आप गायकवाड़ के चौथ वसूल करने के अधिकार को भी समाप्त कर देने का प्रयत्न करें। पेशवा के हिस्से के लिए वेल्सली ने पेशवा से बात करने की कोई आवश्यकता नहीं समझी और न बम्बई के गवर्नर को ही इस सम्बन्ध में कोई निर्देश दिया। गवर्नर जनरल के उक्त आदेश के अनुसार गवर्नर डंकन ने पहले अपने कुछ सैनिक दस्तों तथा तोपखाने को सूरत की तरफ रवाना कर दिया तत्पश्चात् वह स्वयम् सूरत के लिए चल पड़ा। उसके सूरत पहुँचने की खबर पाकर गोविन्द राव गायकवाड़ ने अपनी तरफ से उसके प्रति सद्भावना प्रकट करने के लिए उसकी सेवा में अपने दो वकीलों को बम्बई के गवर्नर के पास भेजा। डंकन तो वेल्सली के निर्देशानुसार सूरत की चौथ की माफी का प्रस्ताव गायकवाड़ के सम्मुख रखने का अवसर तलाश ही रहा था। उसने इन वकीलों का आदर सम्मान किया तथा उन्हीं के जरिए गोविन्दराव गायकवाड़ को इस स्नेह प्रदर्शन के लिए धन्यवाद देते हुए उसने यह अनुरोध किया कि चूँकि ब्रिटिश सरकार सूरत को

---

* इस सम्बन्ध में वेल्सली ने बम्बई के गवर्नर डंकन को १८ फरवरी सन १८०० में जो गुप्त पत्र भेजा था उसका मुख्य अंश इस प्रकार है। "...मैं पक्का इरादा कर चुका हूँ कि नसीरुद्दीन को उस समय तक नवाब नहीं मानूँगा जब तक कि वह अपने और अपने परिवार के निर्वाह के योग्य वार्षिक पेंशन लेकर—जो कि कम्पनी द्वारा सूरत से होने वाली आय में से उसे प्रति वर्ष दे दिया जाया करेगा—सूरत की दीवानी और फौजदारी के समस्त अधिकार और सूरत का लगान से प्राप्त होने वाली सारी आय कम्पनी के हाथों में दे देना स्वीकार न कर ले।" ('वेल्सलीज डिस्पैचेज,' भाग २, पृ० २२२-२२३)।

अपने शासन में लेने का इरादा कर रही है, अतः आप उन हिस्सों की चौथ को माफ कर दें जिनसे आपको चौथ वसूल करने का अधिकार है। इस प्रस्ताव के साथ ही डंकन ने अपनी तरफ से विनम्रतापूर्वक एक माँग और की कि चौरासी का जिला भी जो सूरत के चारों ओर फैला हुआ है, अँग्रेजों के अधिकार में दे दिया जाय तो सूरत का शासन प्रबन्ध करने में कम्पनी सरकार को काफी सुविधा प्राप्त हो सकेगी। गोविन्द राव गायकवाड़ ने सहर्ष दोनों प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया और इन उपकारों के बदले में उसने गवर्नर के सामने कोई शर्त भी नहीं रक्खी। चूंकि इन प्रस्तावों में सूरत की चौथ में पेशवा को मिलने वाले हिस्से का कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया था, अतः गोविन्दराव गायकवाड़ ने विचार किया कि इस सम्बन्ध में पेशवा की अनुमति प्राप्त करने के लिए कम्पनी स्वतः प्रयत्न करेगी और शायद उसकी अनुमति प्राप्त कर सकने में कम्पनी असफल भी हो जाय। उसका यह पिछला विचार कारणहीन एवम् निराधार नहीं था। यदि बाजीराव पेशवा की राजसत्ता स्वतंत्र रही होती और अँग्रेजों की नीति जाल से उसके हाथ पाँव बँधे न होते तो पेशवा सूरत की चौथ की माफी के विषय में अडंगा अवश्य लगाता। इसके दो कारण थे—पूना दरबार सूरत के आर्थिक एवम् राजनैतिक महत्व को समझता था, इसलिए पेशवा बहुत उत्सुक एवम् व्यग्र था कि सूरत पर उसका जितना अधिकार है वह बना रहे, पूना दरबार को सूरत के कुछ क्षेत्रों से चौथ वसूल करने का अधिकार बहुत पहले ही मुगल बादशाह द्वारा प्रदान किया गया था और वे अपने इस अधिकार को त्यागने के लिए जल्दी तैयार न होते। दूसरा कारण चौरासी के जिले को अँग्रेजों के अधिकार में देने से सम्बन्धित था। गोविन्द राव गायकवाड़ के राज्यारोहण के समय चौरासी के जिले के सम्बन्ध में अंग्रेजों ने जो विरोध किया था और जिसे नाना फड़नवीस ने भी स्वीकार किया था, विरोध पूर्ण बातें इस समय भी लागू हो रही थीं * और इसलिए पूना दरबार इस जिले को अंग्रेजों को दिए जाने के प्रस्ताव पर आनाकानी करता। अब हमें देखना है कि क्या कारण था कि गोविन्द राव गायकवाड़ ने बिना किसी शर्त के बम्बई के गवर्नर मिस्टर जोनाथन डंकन के उक्त दोनों प्रस्तावों पर सहर्ष अपनी सहमति प्रकट कर दिया और अपना हक छोड़ देने के लिए तैयार हो गया। इसका कारण भी कुछ ही समय पश्चात् स्वयमेव स्पष्ट हो गया। वास्तव में आबा शेलूकर की अनधिकार चेष्टाओं से वह बहुत परेशान हो गया था और चाहता था कि आबा शेलूकर के विरुद्ध अँग्रेज उसे मदद दें। इसी वजह से अँग्रेजों को सन्तुष्ट रखने के लिए उसने इन प्रस्तावों को, हानि की आशंका होने पर भी स्वीकार कर लिया था। परन्तु इतना करने पर भी गवर्नर डंकन ने उसकी

---

* बम्बई के गवर्नर द्वारा की गई इस सौदेबाजी के विषय में कम्पनी के कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स में निम्नलिखित विचार प्रकट किये गये—"सूरत के नबाब की मृत्यु के पश्चात् वर्तमान नबाब के साथ जिस प्रकार का समझौता किया गया है, उसके अनुसार सूरत के समान महत्वपूर्ण क्षेत्र का प्राप्त हो जाना चाहे जितना भी लाभजनक क्यों न प्रतीत हो, परन्तु इस कार्य को मान्यता नहीं दी जानी चाहिये थी जिसकी कीमत है पेशवा के साथ विश्वासघात और फलस्वरूप उत्पन्न पेशवा का क्षोभ, जिसके साथ हमने संगठन कायम रखने के लिये पारिवारिक अनुबन्धन किया था।"

फिर भी बसई की सन्धि की १४वीं धारा में यह पढ़ कर हमें पर्याप्त सन्तोष हुआ है कि पेशवा ने पहले ही आनन्द राव गायकवाड़ के साथ इस सम्बन्ध में अपनी सहमति प्रकट कर दी थी, अन्यथा हम यही उचित समझते कि इन सम्बन्धित क्षेत्रों को गायकवाड़ सरकार को वापस कर दिया गया।

सहायता करने के लिए किसी भी तरह का आश्वासन नहीं दिया। परन्तु इसके कुछ समय बाद ही अहमदाबाद पर अधिकार कर के आबा शेलूकर को कैद कर लिया गया। गुजरात के जितने भाग की मालगुजारी पेशवा को मिलती थी, उसे वसूल करने का अधिकार केवल ५ वर्ष के लिए पेशवा ने बड़ौदा सरकार को दे दिया था और इसके बदले में गायकवाड़ ने प्रतिवर्ष पाँच लाख रुपया देना स्वीकार किया। पेशवा तथा गायकवाड़ के बीच यह सन्धि सन् १८०० के अक्टूबर माह में हुई। परन्तु इसी समय गोविन्द राव गायकवाड़ की मृत्यु हो गई जिससे गुजरात सूबे की व्यवस्था फिर बिगड़ गई और नित्य नये उपद्रव होने लगे।

गोविन्द राव गायकवाड़ अपने पीछे एक लम्बा-चौड़ा परिवार छोड़ गया था। उसके कुल ११ लड़के थे जिनमें से सात तो अवैध सन्तानें थीं और चार उसकी पत्नियों से पैदा हुए थे। इन लड़कों के अतिरिक्त उसकी लड़कियाँ भी थीं। उसका वैध-ज्येष्ठ पुत्र था आनन्द राव गायकवाड़, जो कि सिंहासन का वास्तविक उत्तराधिकारी था। राज्य के प्रमुख मंत्रियों, सरदारों एवम् अधिकारियों ने उसके अधिकार को स्वीकार किया और सर्व सम्मति से उसे बड़ौदा के सिंहासन पर बिठाया गया। परन्तु आनन्द राव गायकवाड़ में प्रशासनिक योग्यता नाम मात्र को ही थी; साथ ही नेतृत्व एवम् नियन्त्रण शक्ति का भी उसमें अभाव था। आनन्दराव गायकवाड़ की इन कमजोरियों का फल यह हुआ कि उसका दरबार दलबन्दी का अखाड़ा बन गया और विभिन्न दलों ने गायकवाड़-राज्य के प्रशासनिक अधिकारों को अपनी मुट्ठी में रखने के लिए प्रयत्न करना शुरू कर दिया। गोविन्द राव गायकवाड़ के अवैध पुत्रों में सब से बड़ा था कान्हो जी राव, जो कि बहुत ही साहसी, वीर तथा महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। वह अपने बचपन से ही बहुत ही उपद्रवी था और अपने अशिष्ट व्यवहारों के कारण अपने पिता के जीवन काल में ही उसे कैद में डाल दिया गया था। गोविन्द राव की मृत्यु के पश्चात् उसने अपने भाई राजा आनन्दराव के हृदय में अपने प्रति सदभावना उत्पन्न की, कुछ अन्य सैनिक अधिकारियों से भी उसकी अच्छी पटती थी, अतः अथक प्रयत्न कर के किसी तरह अपने को स्वतंत्र करा लिया। मुक्त होते ही उसने बड़ौदा की राजसत्ता का अपहरण करने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। सर्वप्रथम उसने राजा आनन्दराव पर दबाव डाल कर दीवान का पद हासिल किया और तत्पश्चात् उसने एक के बाद एक-एक करके राज्य के समस्त प्रशासनिक अधिकारों को अपने हाथ में केन्द्रित कर लिया। इस प्रकार बड़ौदा की राजसत्ता अपहृत कर के कान्होजी राव ने कुछ महीनों तक बड़ौदा पर एकछत्र राज्य किया; परन्तु उसका यह उत्कर्ष अधिक समय तक निर्विरोध रूप से अक्षुण्ण न रह सका। अब दरबार में रावजी अप्पा जी के नेतृत्व में एक अन्य दल ने कान्होजी राव के एकाधिकार के विरुद्ध सिर उठाना प्रारम्भ किया। गोविन्द राव गाथकवाड़ के समय में राव जी अप्पा जी उसका दीवान रह चुका था। शीघ्र ही उसने कान्होजी राव गायकवाड़ से बड़ौदा राज्य के प्रशासनिक अधिकारों को छीन लिया। अब दोनों ही व्यक्तियों—वर्तमान दीवान राव जी अप्पा जी, और अनधिकृत तथा पदच्युत अधिकारी कान्होजी राव—ने इस विवाद को समाप्त करने के लिए बम्बई सरकार की सहायता के लिए प्रयत्न किया। राव जी अप्पा जी ने अँग्रेजों की सहायता पाने के बदले में वादा किया कि गोविन्द राव गायकवाड़ के समय में जिन क्षेत्रों को बम्बई सरकार के अधिकार में दे दिया गया था, उन पर उनका अधिकार बना रहने दिया जायगा। परन्तु कान्होजी राव ने प्रलोभन को और बढ़ाया तथा वादा किया कि यदि अँग्रेज दीवान पद पर पुनः आसीन होने में उसकी मदद करेंगे तो वह पहले के क्षेत्रों के अतिरिक्त चिकली का जिला भी अँग्रेजों के

१८०६ ई०]

अधिकार में दे देगा। इस समय बड़ौदा में राव जी अप्पा जी के पक्ष में अधिकांश जनता थी और उसी का पक्ष प्रबल पड़ रहा था। राव जी अप्पा जी का भाई बाबा जी ही इस समय गायकवाड़ राज्य की सवार सेना का सेनापति था, जो अपने भाई के हितों का ही समर्थन कर रहा था। इस समय बड़ौदा नगर में व्यापारी भी बहुत अधिक संख्या में थे जिनमें से अधिकांश राव जी अप्पा जी के पक्ष में ही थे। इन अरबी व्यापारियों की संख्या लगभग सात हजार थी। यद्यपि वे अप्रत्यक्ष रूप से, एक ही देश धर्म के होने के कारण एकता के सूत्र में बँधे थे, फिर भी व्यापारिक दृष्टि से प्रत्यक्ष रूप से दो विभिन्न दलों में बँटे हुए थे। इन दोनों दलों के मुखिया थे दो बड़े साहूकार* या महाजन जिनमें से एक का नाम था मंगल पारिख और दूसरे का सामल। इन दोनों के पास अथाह सम्पत्ति थी और अब इनका एक मात्र व्यवसाय था बहुत ऊँची व्याज की दरों पर धन उधार देना और अधिकतम ब्याज वसूल कर अपने धन की वृद्धि करना। इन्हीं दोनों बड़े साहूकारों की इच्छा मात्र से गायकवाड़ राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी और जब तब इन्हीं के कारण राज्य कंगाल हो जाता था। राज्य के अरबी व्यापारी इन्हीं दोनों साहूकारों के इशारे पर चलते थे। इस समय इन दोनों में से कोई भी कान्होजी राव गायकवाड़ के पक्ष में न थे और उसका खुला विरोध कर रहे थे। इस प्रकार इस अत्यन्त महत्व पूर्ण एवम् प्रबल संगठन का सहयोग भी राव जी अप्पा जी को प्राप्त था, अतः तत्कालीन परिस्थितियों में कान्होजी राव की अपेक्षा राव जी अप्पा जी का पक्ष ही प्रबल प्रतीत हो रहा था। परन्तु इसी समय कान्होजी राव गायकवाड़ के पक्ष में भी एक प्रबल शक्ति खड़ी हो गई। इस शक्ति का भूर्तिमान स्वरूप था मल्हार राव गायकवाड़। वह बड़ौदा के भूतपूर्व राजा गोविन्दराव गायकवाड़ का चचेरा भाई था। उसके पिता का नाम था खण्डेराव गायकवाड़ और वह मल्हारराव के पूर्व कुर्री का जागीरदार था। मल्हारराव होलकर अत्यन्त ही दूरदर्शी, बुद्धिमान तथा दुस्साहसी व्यक्ति था। इससे पूर्व वह कान्होजी राव का प्रबल विरोधी था और उसी के प्रयत्नों से कान्होजी राव को अपने पिता के समय में ही कैद भोगना पड़ा था। इस समय अपना पक्ष निर्बल पड़ते देख कान्होजी राव ने मल्हारराव गायकवाड़ को अपनी तरफ मिलाने का प्रयत्न किया। कान्होजी ने उससे वादा कि यदि वह इस विपत्ति में उसका पक्ष ग्रहण करे तो कार्य में सफलता मिल जाने पर उस सारी रकम के दाबे को रद्द कर दिया जायगा, जो कल्हार राव की जागीर पर बकाए के रूप में पड़ी हुई है और भविष्य में भी उक्त जागीर से कर नहीं वसूल किया जायगा। मल्हार राव गायकवाड़ ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और कान्होजी राव की सहायता करने के लिए तैयार हो गया। एक पर्याप्त बड़ी सेना के साथ, कान्होजी की सहायता के रूप में उसने उन विभिन्न किलों पर आक्रमण करना और अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया जो आनन्दराव के अधिकार में थे और जिनकी सुरक्षा का भार राव जी अप्पा जो ने अपने हाथों में ले रक्खा था। अकेले कान्होजी गायकवाड़ को दबाने के लिए तो वह पूर्ण रूप से सतर्क था, परन्तु

---

* विभिन्न स्थलों पर सेना के वेतन सम्बन्धी विवादों को पढ़ कर पाठकों ने अनुमान लगा लिया होगा कि उस समय सेनाओं का वेतन कितने अनियमित एवम् अनिश्चित ढंग से दिया जाता था जिसके फलस्वरूप बेचारे सैनिक आर्थिक दृष्टि से सदैव परेशान रहते थे। उनकी इस अवस्था का लाभ उठाते थे, ये साहूकार और महाजन, जो ऊँचे दरों पर इन सैनिकों को सूदी रुपया बाँटा करते थे और जब उन्हें खबर मिलती थी कि सैनिकों का वेतन बाँटा जा रहा है तो वे अपने गुमाश्तों को भेज कर ब्याज सहित पूरा धन वसूल कर लेते थे।

मल्हार राव के सम्मिलित हो जाने से, उसकी शक्ति जवाब देती जा रही थी। अन्त में हर तरफ से निराश हो कर उसने बम्बई सरकार से अनुरोध किया कि मल्हार राव गायकवाड़ के विद्रोह को दबाने के लिए यदि पाँच अँग्रेजी बटालियनें भेज दी जायँ तो बड़ी कृपा हो। अँग्रेजों की सहायता प्राप्त करने के लिए उसने अँग्रेजों के हित में अनेक वादे किये जिनके आकर्षणों की उपेक्षा बम्बई का गवर्नर जोनाथन डंकन न कर सका। यह स्वयम् तो राव जी अप्पा जी को सहायता देने के पक्ष में था ही, परन्तु उसने इस सम्बन्ध में गवर्नर जनरल का मत जान लेना आवश्यक समझा। इस सम्बन्ध में उसने गवर्नर जनरल से अनेकों बार सम्पर्क स्थापित किया, परन्तु जब उधर से उसे कोई निश्चित आदेश या निर्देश प्राप्त नहीं हुआ तो गवर्नर मिस्टर डंकन ने अपनी ही बुद्धि के अनुसार कार्य करने का निश्चय किया, जो कि तत्कालीन परिस्थितियों में उचित भी था। काफी विचार विमर्श के पश्चात् उसने राव जी अप्पा जी की सहायता के लिए केवल १६०० चुने हुए सैनिकों को बड़ौदा भेजने का निश्चय किया। मिस्टर डंकन ने मेजर अलेकजेण्डर वाकर को इस टुकड़ी का नायक बनाया और उसे निर्देश दिया कि यदि सम्भव हो, तो वह दोनों पक्षों के बीच मध्यस्थ के रूप में सुलह कराने का प्रयत्न करे और भरसक युद्ध को रोकने का प्रबन्ध करे और यदि युद्ध आवश्यम्भावी प्रतीत हो तो वह गायकवाड़-राज्य के सवार सेनापति बाबा जी के साथ विचार-विमर्श कर के विद्रोही मल्हार राव गायकवाड़ का दमन करने में राव जी अप्पा जी की सहायता करे। गवर्नर मिस्टर डंकन के इन निर्देशों के साथ मेजर अलेकजेन्डर वाकर अपने साथ १६०० सैनिकों की एक टुकड़ी को ले कर बम्बई रवाना हो गया और सन् १८०२ ई० के फरवरी माह के अन्त में बड़ौदा पहुँच कर गायकवाड़ 'राज्य की सेना में सम्मिलित हो गया। अब बाबा जी तथा मेजर वाकर की संयुक्त सेनाएँ कुर्री की तरफ बढ़ चलीं। इन सेनाओं को अपनी जागीर की तरफ बढ़ते देख कर मल्हार राव गायकवाड़ चिन्तित हो उठा। प्रकट रूप में उसने अपने द्वारा किये गये अपराध तथा राजद्रोह के लिए बहुत पश्चात्ताप प्रगट किया। उसने मेजर वाकर से कहा कि गायकवाड़ राज्य के जिन स्थानों पर उसने अधिकार कर लिया है, वे स्थान बड़ौदा राज्य को वापस कर दिए जाएँगे, साथ ही उसने अपनी तरफ से शान्ति बनाये रखने की हार्दिक इच्छा प्रकट की। प्रारम्भ में तो मेजर वाकर और बाबा जी मल्हार राव के बहकाने में आ गए और उन्होंने समझा कि वह सच्चे हृदय से शान्ति रखने के पक्ष में है, परन्तु यह कपटजाल अधिक समय तक उनकी आँखों पर परदा न डाल सका और बाबा जी व मेजर वाकर को विश्वास हो गया कि वे अभी तक बहकाये जा रहे थे। अतः मल्हार राव के इस कपट पूर्ण व्यवहार से अत्यन्त उत्तेजित हो कर दोनों सेना नायक फिर आगे बढ़ चले। यद्यपि मल्हार राव अब भी सुलह की बात किये जा रहा था परन्तु वह भीतर ही भीतर इस संयुक्त सेना पर आक्रमण करने की योजना तैयार कर चुका था जिसके अनुसार अचानक अत्यन्त कपट पूर्ण एवम् धूर्तता पूर्ण ढंग से उसने इस संयुक्त सेना पर धावा कर दिया, परन्तु अकेले मेजर वाकर की टुकड़ी ने वीरतापूर्वक लड़कर उसके इस आकस्मिक धावे को असफल कर दिया और उसे पीछे लौटने के लिए विवश कर दिया। इस मुठभेड़ में बम्बई की अंग्रेजी टुकड़ी के कुल पचास सैनिक मारे गये। परन्तु इस विजय के कुछ समय पश्चात् ही मेजर वाकर को यह पता लग गया कि गायकवाड़ की सेना के कुछ सरदारों को मल्हार राव ने फोड़ लिया है और वे किसी भी समय दगा दे सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में मेजर वाकर आगे अपनी सफलता के विषय में आंशकित हो गया और उसकी अवस्था बहुत नाजुक हो गई। अन्त में उसने सारी परिस्थिति का विवरण गवर्नर डंकन को भेज कर उसने और सैनिक सहायता की माँग की। गवर्नर ने परिस्थिति

की गम्भीरता का अनुभव किया और कर्नल सर विलियम क्लार्क के अधीन बम्बई और गोआ से कई टुकड़ियाँ रवाना कर दी गईं। यह सेना १२ वीं अप्रैल को खम्भात के बन्दरगाह पर उतरी और दो दिन विश्राम करने के पश्चात् पूना १४ अप्रैल को रवाना हो गई और शीघ्र ही मेजर वाकर की टुकड़ी से जा मिली। मेजर वाकर ने सारी परिस्थितियों को देखते हुए १७ मार्च के युद्ध के पश्चात् अभी तक मल्हार राव पर आक्रमण करने का प्रयास नहीं किया था और केवल प्रतिरक्षात्मक रूख अपनाये हुए था। कर्नल क्लार्क ने पहुँच कर सर्व प्रथम दुश्मन की स्थिति का पता लगाया और पाया कि इस समय मल्हार राव की सेना नगर की मजबूत दीवारों के भीतर दृढ़ता पूर्वक मोर्चे बांधे हुए है। निश्चय किया गया कि अविलम्ब इस घेरे को नष्ट कर देना
३० अप्रेल] चाहिए ताकि खुला युद्ध हो सके। ३० अप्रैल को सुबह होते ही अँग्रेजी सेना ने नगर की दीवालों पर जोरों का धावा किया और बड़ी बहादुरी से कुछ ही समय में घेरे को तोड़ कर मल्हार राव के सारे मोर्चो को नष्ट कर डाला। साहस पूर्ण प्रयास में कर्नल क्लार्क के १६३ सैनिक मारे गये या घायल हुए।* घेरा टूट जाने के बाद बहुत थोड़े समय तक युद्ध हुआ और अन्त में अपनी विजय के प्रति पूर्ण रूप से निराश हो कर हतोत्साहित मल्हार राव गायकवाड़ ने कर्नल क्लार्क के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। पूरा कुर्री नगर खाली करा लिया गया और गायकवाड़ सरकार के अधिकार में दे दिया गया परन्तु इस गढ़ी की रक्षा के लिए एक अँग्रेज अफसर के अधीन अंग्रेजी सिपाहियों की दो बटेलियनों को कर्नल क्लार्क ने वहीं छोड़ दिया। कर्नल क्लार्क के साथ आई हुई सेना का कुछ भाग उसके साथ वापस बम्बई चला गया और शेष सैनिक लेफ्टिनेन्ट कर्नल वूडिंगटन के साथ बड़ौदा में ही रह गये; इन्ही में मेजर वाकर के साथ आये हुए सैनिक भी सम्मिलित थे। गवर्नर डंकन के निर्देशानुसार मेंजर वाकर को बड़ौदा दरबार में पालिटिकल रेजिडेन्ट के पद पर नियुक्त कर दिया गया।

मल्हार राव गायकवाड़ की जागीर को बड़ौदा राज्य में मिला देने के पश्चात उसके निवास एवम् निर्वाह के लिए नदियाद नगर दे दिया गया। इस जिले की मालगुजारी से आने वाली वार्षिक आय लगभग १२५००० रुपए थी; इस आय को मल्हारराव के निर्वाह के लिए उसके नाम कर दिया गया, साथ ही उससे यह वादा भी करा लिया गया कि यदि भविष्य में वह कोई अन्य उपद्रव नहीं करेगा और अपनी तरफ से शान्ति बनाए रखेगा तो आवश्यकता नुसार उसके निर्वाह के लिए इस रकम को बढ़ा भी दिया जायगा बशर्ते कि बड़ौदा राज्य का मौजूदा आर्थिक संकट समाप्त हो जाय और राज्य उसकी पेनशन को बढ़ाने की स्थिति में आ सके।

---

* इस हमले के दौरान में ७५वीं रेजिमेन्ट के लेफ्टिनेन्ट एम कोल की वीरता के विषय में एक घटना उल्लेखनीय है। जिस समय लेफ्टिनेन्ट एम कोल किले की दीवारों के टूटने के बाद अपने सैनिकों के साथ (जिनके पास हथगोले थे) खाई को पार करने का प्रयत्न कर रहा था उसी समय उसने एक पठान को अपनी ओर बन्दूक का निशाना साधते देखा। यह देख कर उसने अपने पैरों के पास संयोग से ही पड़ा हुआ एक गोला उठा लिया और उसे पूरी ताकत से अपने ऊपर निशाना साधने वाले पठान की तरफ फेंका जिसकी चोट से वह वहीं गिर कर मर गया और लेफ्टिनेन्ट एम कोल की जान बच गई। इस अवसर पर उसने जिस फुर्ती और शक्ति का परिचय दिया, वह उल्लेखनीय ही है, परन्तु यह बहादुर अफसर अधिक समय तक जीवित नहीं रह सका। बड़ौदा पहुँचने पर अचानक गुजरात के मौसमी बुखार ने उसे जकड़ लिया और कुछ ही घन्टों की बीमारी में उसकी मृत्यु हो गई।

इस समय बड़ौदा राज्य की आर्थिक स्थिति अत्यन्त ही शोचनीय थी; राज्य का कोष इधर के उपद्रवों एवम् अपव्यय के कारण रिक्त हो चुका था और प्रशासनिक अधिकारियों की चिन्ता एवम् परेशानी आखिरी हद तक बढ़ चुकी थी। ऐसा प्रतीत होता था कि यदि शीघ्र ही कहीं से आर्थिक सहायता प्राप्त न हुई तो गायकवाड़ राज्य को विनष्ट होने से बचाना पूर्णतः असम्भव हो जयगा। इस नाज़ुक स्थिति में वृटिश रेजिडेन्ट मेजर वाकर ने पर्याप्त बुद्धिमत्ता एवम् प्रशासनिक योग्यता का परिचय देते हुए, बड़ौदा राज्य के आर्थिक प्रबन्ध में तरह तरह के सुधारों का सूत्रपात किया। यद्यपि रावजी अप्पा जी प्रशासनिक अधिकारों को अपने ही हाथ में रखने के लिए अत्यधिक व्यग्र था और किसी अन्य शक्ति का हस्तक्षेप उसे पसन्द नहीं था, फिर भी राज्य की माली हालत देखते हुए उसने मेजर वाकर द्वारा प्रस्तावित सुधारों का सहर्ष स्वागत किया। जब किसी तरह से विद्रोह का समाचार मिलता तो वह तुरन्त मेजर वाकर से परामर्श करता। सरकार को शक्तिशाली बनाने के लिए रेजिडेन्ट ने ससे अनेक अमूलय सुझाव दिए जिन्हें उसने स्वीकार किया। इसी प्रकार राज्य की आय किस प्रकार बढ़ाई जाय, व्यय को किस तरह कम किया जाय और राज्य पर लदे हुए ऋण भार से कैसे मुक्ति पाई जाय आदि तथा इसी तरह की अन्य समस्याओं को हल करने में वह सदैव मेजर वाकर के परामर्शों का सम्मान करता था।

परन्तु इस समय आर्थिक संकट से भी महत्वपूर्ण एक और समस्या सर उठाये बड़ौदा राज्य को चुनौती दे रही थी और इस समस्या का जन्मदाता था गनपत राव जो कि गायकवाड़ परिवार का ही सम्बन्धी था। वह बड़ौदा के पास ही स्थित सनखेरा का मामिलतदार था। मल्हार राव के द्वारा आत्म समर्पण कर दिये जाने पर भी गनपत राव, उसी के नाम से उत्पात कर रहा था और मल्हार राव के प्रतिनिधि के रूप में इस किले पर अपना अधिकार जमाए हुए था। इसी समय मृत गोविन्दराव गायकवाड़ का एक अवैध लड़का मुरार राव भी विद्रोही गनपत राव से जा मिला। मेजर वाकर के परामर्श से बड़ौदा में स्थित ब्रिटिश सब्सीडियरी सेना की कुछ बटालियनों को सनखेरा के किले पर अधिकार करने के लिए रवाना कर दिया गया। यह सेना शीघ्र ही अपने प्रयास में सफल हो गई और सनखेरा किले की रक्षक सेना ने आत्म समर्पण कर दिया परन्तु यह विजय अधूरी रही क्योंकि गनपत राव और मुरार राव दोनों ही किसी तरह से भाग निकले। वे ब्रिटिश सब्सीडियरी सेना के हाथ में न आ सके और भाग कर उन्होंने धार के पवारों के यहाँ शरण ली।

१८०२ ई०]

आर्थिक संकट का सामना करने के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता थी राज्व के व्यय को घटाने की और राज्य के व्यय की सर्वप्रमुख मद थी सेना; अतः मैजर बाकर के मतानुसार व्यय घटाने के लिए सेना के आकार को कम करना अति आवश्यक था। परन्तु रेजिडेन्ट द्वारा प्रस्तावित इस सुधार के रास्ते में अनेक बाधाएँ दिखाई पड़ीं। सबसे पहली बाधा उपस्थित की अरबी व्यारियों ने, जो अपने धन के बल पर बड़ौदा राज्य के प्रशासन को काफी समय से प्रभावित किए हुए थे। उनमें से कितने ही अरबी सेना में भी नौकरी करते थे। जब उन्होंने सुना कि सेना का आकार घटाया जाने वाला है, तो सर्व प्रथम उन्हें अपने अस्तित्व के प्रति खतरा दिखाई पड़ा। अतः इस योजना के मार्ग में अड़ङ्गा डालने के लिए उन अरबी सैनिकों ने प्रारम्भ में अपने बकाया वेतन की माँग की। इस सम्बन्ध में काफी वाद विवाद बढ़ा और वातावरण अत्यन्त ही उत्तेजनापूर्ण हो गया। अन्त में इस प्रकार इस विवाद

को न निपटते देख कर अरबो ने राजा आनन्द राव गायकवाड़ को कैद कर लिया कि वे उसे तब तक नहीं मुक्त करेंगे जब तक कि उनका पिछला बकाया अदा नहीं कर दिया जायगा। उन्होने आनन्द राव को ही कैद नहीं किया बल्कि उसके प्रमुख विरोधी कान्होजी राव गायकवाड़ को भागने में भी सहायता पहुँचाई। इसी समय अकस्मात मल्हार राव गायकवाड़ भी नदियाद नगर से अदृश्य हो गया। बड़ोदा राज्य की सेना में हुई छँटनी के फलस्वरूप बहुत से सैनिक बेकार हो गए थे, मल्हार राव गायकवाड़ की पराजित सेना भी तितर बितर हो गई थी और दल के दल सैनिक बेकारी का कष्ट भोग रहे थे। वैसे भी गुजरात में बेकार सैनिकों की संख्या कभी कम नहीं रही। जब सैनिक इतनी अधिक संख्या में बेकार हो गए तो अपने जीवन-निर्वाह के लिए उन्होंने दल बाँध बाँध कर इधर उधर लूटपाट तथा उपद्रव मचाना आरम्भ कर दिया। सारे राज्य में अराजकता की स्थिति पैदा हो गई थी जो कि स्वाभाविक ही था, क्योंकि राजा अरबों की कैद में था और सैनिक बेकारी काट रहे थे। मेजर बाकर वास्तव में इस बात के लिए प्रयत्न कर रहा था कि किसी प्रकार इन लोगों से सुलह कर ली जाय और बम्बई से अतिरिक्त सेना मँगाने के बजाय वर्तमान सीमित-साधनों द्वारा ही बड़ोदा एवम् गुजरात में शान्ति और सुव्यवस्था कायम रखने में सफलता प्राप्त की जाय। परन्तु हर सम्भव प्रयास करके भी असफल ही रह जाने पर उसे अतिरिक्त ब्रिटिश फौज की आवश्यकता गम्भीरतापूर्वक महसूस होने लगी, अतः उसने बम्बई से एक यूरोपियन रेजिमेन्ट भेज देने के लिए गवर्नर डंकन से अनुरोध किया। जब बम्बई से यह सेना बड़ौदा पहुँच गई और वहाँ पहले से ही स्थित सब्सीडिपरी सेना से जा मिली तो कर्नल बूडिगंटन ने पूरी शक्ति के साथ बड़ौदा पर घेरा डाल दिया, जिसमें अरबी सैनिक राजा आनन्द राव को कैद करके मोर्चा बनाए हुए थे। यह घेरा १० दिन तक पड़ा रहा और इस अवधि में अरबों ने मकानों और दीवालों की आड़ ले कर ब्रिटिश सेना के बहुत से सिपाहियों को मार डाला और अनेक अफसरों को कैद कर लिया। परन्तु इसी समय नगर की दीवाल में एक स्थान पर बहुत बड़ा छेद हो गया और ब्रिटिश सेना को नगर में प्रवेश करने का मार्ग मिल गया, जिससे भयभीत होकर अरबों ने युद्ध बन्द करके स्वयं ही आत्मसमर्पण कर दिया। किले को समर्पित करने के लिए यह स्वीकार किया गया कि उन लोगों का तमाम समुचित बकाया दे दिया जायगा। इसके बदले में उन लोगों ने स्वीकार किया कि वे लोग इस देश के बाहर चले जायेंगे। हिसाब करने पर बकाया की रकम सत्रह लाख पचास हजार रुपये हुई और दे दी गयी। अरब सरदारों में से अधिकांश ने वादे के अनुसार कार्य किया परन्तु कुछ सर्दारों ने वादाखिलाफी की जिनमें से मुख्य था अबूद जमादार जिसने निश्चित शर्तों के विरुद्ध वचन भंग करके, एक विशाल सैन्य के साथ पूर्व निश्चित दिशा के विपरीत दिशा में प्रयाण कर दिया। वास्तव में उसका इरादा था कान्होजी गायकवाड़ के साथ सहयोग करने का। अबूद जमादार के इस सन्धि विरोधी आचरण को नियंत्रित करने के उद्देश्य से कर्नल बूडिगटन को उसके पीछे भेज दिया गया। उसने कुछ ही दूर तक अबूद जमादार का पीछा करने के पश्चात् उसे जा पकड़ा और उसके कैम्प को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया। अबूद जमादार की समस्त सेना बिखर गई, परन्तु फिर भी अधिकांश सैनिकों को भाग निकलने का अवसर प्राप्त हो गया और उन्होंने भाग कर कान्होजी गायकवाड़ की सेना में प्रवेश पा लिया। पीछे हम देख चुके हैं कि कान्होजी बड़ौदा से भाग गया था, जिसके पश्चात् उसने राजपिप्पली को अपना केन्द्र बनाया। यह पहाड़ी महाराष्ट्र की उत्तरी सीमा के पास स्थित है इस पहाड़ी नगर में उसने सैन्य एकत्रित करना प्रारम्भ कर दिया और कुछ ही समय में उसने पर्याप्त सैनिक एकत्रित कर लिए। इस प्रकार अपनी स्थिति को दृढ़ कर लेने के पश्चात् वह पुनः गुजरात की ओर लौट पड़ा;

यह घटना उस समय की है जब कि बड़ौदा पर घेरा पड़ा हुआ था। इसी समय उसने बाबाजी राव की सेना की एक टुकड़ी का विनाश कर दिया; तत्पश्चात् वह सदल वल धड़ौदा की ओर बढ़ चला।

सन् १८०३]

बड़ौदा के आत्मसमर्पण के पाँच दिन पश्चात् कान्होजी के उपद्रवों का दमन करने के उद्देश्य से मेजर होम्स को उसका पीछा करने का आदेश दिया गया। इस कार्य के लिए उसके अधीन एक पूरी रेजिमेन्ट और सिपाहियों की एक बटालिसन कर दी गई। कान्होजी के उपद्रव दिन ब दिन बढ़ते ही जा रहे थे; वह गुजरात भर में चक्कर लगाता फिर रहा था तथा सैनिक संख्या बढ़ाता जा रहा था। उसने कई स्थानों से बलात् कर भी वसूल कर लिया था और उसकी शक्ति बढ़ती ही जा रही थी। उसने बड़ौदा स्थित एक दल को भी अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया, जिसमें उसे कुछ न कुछ सफलता ही मिली। मेजर होम्स ने लगातार एक महीने तक कान्होजी का पीछा किया, परन्तु वह उसे किसी भी प्रकार हानि न पहुँचा सका और न उसके उपद्रवों को ही शान्त करने में कुछ सफलतां प्राप्त कर सका। मेजर होम्स की असफलता एवम् उसके प्रयत्नों की व्यर्थता को देख कर उसकी सहायता के लिए और सैन्य भेजना उचित समझा गया, जिसके अनुसार ३५० प्रशिक्षित सैनिक उसके पास फिर भेजे गए जिनमें से २५० यूरोपियन और १०० देशी सिपाही थे। इस नई शक्ति के साथ एक बार पुनः नवीन उत्साह के साथ मेजर होम्स ने कान्होजी का पीछा किया और उसे घेरने का प्रयत्न किया। अन्त में परिस्थिति को देखते हुए कान्होजी को कोई उचित स्थान ढूँढ़ कर मोर्चा बन्दी करना आवश्यक प्रतीत हुआ ताकि अंग्रेजी सेना से निपटारा हो जाय। इस निश्चय के अनुसार उसने सावरी गाँव से पाँच छः मील दूर स्थित एक सुदृढ़ पहाड़ी दर्रे में मोर्चा बाँधा। उसने अपनी समस्त सेना को इस पहाड़ी दर्रे तथा ऊबड़ खाबड़ पहाड़ी इलाके में छिपा दिया। वे तब तक शान्त एवम् चुपचाप बैठे रहे जब तक कि मेजर होम्स की सेना का अगला भाग उनकी बन्दूकों की मार में नहीं आ गया। जब अंग्रेजी रेजिमेन्ट का अगला भाग उनके मोर्चेबन्द क्षेत्र में काफी दूर तक धँस गया तो कान्होजी गायकवाड़ के अरब और मराठा सैनिकों ने पूर्ण शांति से अंग्रेजी रेजिमेन्ट पर गोलियाँ बरसाना प्रारम्भ कर दिया। गोलियों की यह आकस्मिक एवम् तीव्र बौछार इतनी प्रभावशाली सिद्ध हुई कि अंग्रेजी रेजिमेन्ट कुछ क्षणों के लिए स्तम्भित एवम् किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई और सैनिकों में अव्यवस्था व्याप्त हो गई। उनको इस मूढ़ता की स्थिति में पहुँचा देने के पश्चात् अरब सरदार और सैनिक हाथ में नङ्गी तलवारें ले कर अपने छिपाव के स्थान से बाहर निकल आए और इस रेजिमेंन्ट की अगली पंक्तियों पर धावा बोल दिया। अरबों के प्रबल धावे से अंग्रेजी सेना का यह भाग पस्त हो गया और अत्यन्त उत्साह एवम् साहस के साथ अरबी सैनिकों की टुकड़ी अंग्रेजी सेना को पीछे ढकेलने लगी। बिजली की तरह लपलपाती, रक्तरंजित अरबी सैनिकों की तलवारों ने अंग्रेजी रेजिमेन्ट की प्रथम रक्षक पंक्ति के छक्के छुड़ा दिये। मैजर होम्स ने परिस्थिति का निरीक्षण किया और चटपट आगे की युद्ध-प्रणाली का निर्णय कर लिया। वह तुरन्त अपने थोड़े से उतर पड़ा; अपनीं रेजिभेन्ट के ग्रिनेडियर्स (बमबाजों) के आगे आगे वह पूर्ण उत्साह के साथ अरबों की तरफ लपका। इन ग्रिनेडियर्स के पीछे रेजिमेन्ट का शेष भाग तथा देशी सिपाहियों की बटालियन थी। उसकी पूरी सेना ने, अपने सेनानायक के अनुरूप ही आचरण किया एवम् प्रशंसनीय शौर्य का प्रदर्शन किया जिसके फलस्वरूप कुछ ही समय में कान्होजी के सहायक अरबी सैनिकों के कदम उखड़ गये और विजयश्री मेजर होम्स को प्राप्त हुई। इस मुठभेड़ में अंग्रेजी सेना को पर्याप्त हानि उठानी पड़ी, गुत्थमगुत्था युद्ध के फलस्वरूप मेजर होम्स की सेना के लगभग १०० सैनिक मारे गए या घायल हुए, जिनमें पाँच अफसर भी सम्मिलित थे। इस अवसर पर, अरबों के प्रबल आक्रमण को देखते हुए, यह

मानना पड़ेगा कि यदि उचित अवसर पर मेजर होम्स ने अप्रतिम शौर्य का प्रदर्शन न किया होता तो सम्भवतः युद्ध का परिणाम अंग्रेजों के प्रतिकूल ही होता। जब युद्ध चरमसीमा पर था, तभी मेजर होम्स की मुठभेड़ एक विशालकाय अरब सरदार से हुई, जिसके साथ मेजर होम्स कुछ समय द्वन्द युद्ध करता रहा और अन्त में तलवार के एक भरपूर वार से उसने अपने स्थूलकाय प्रतिद्वन्दी की जीवन लीला को समाप्त कर दिया।*

इस पराजय के पश्चात् भी, कान्होजी लगभग एक माह तक गुजरात में रहा और छिटपुट उपद्रव करता रहा। कुपरविंग में उसने एक बार फिर दृढ़ मोर्चेबन्दी करके अंग्रेजों से लोहा लेने का प्रयास किया परन्तु इस बार मेजर होम्स ने उसके कैम्प को पूर्णतः नष्ट कर दिया और उसके समस्त सैनिक बिखर गए। स्वयम कान्होजी भागकर उज्जैन चला गया।†

---

* इस द्वन्द युद्ध से विषय में पूर्ण विवरण मुझे अपने सहयोगी अफसर स्वर्गीय मेजर एडवर्ड टैन्डी द्वारा मिला था, जिसने इस द्वन्द युद्ध को अपनी आँखों देखा था। स्वर्गीय मेजर जनरल सर जार्ज होम्स जो उस समय केवल मेजर था, एक विशालकाय एवम् शक्तिशाली व्यक्ति था। उसके द्वारा लड़े गये अनेक द्वन्द युद्धों के विवरण प्राप्त होते हैं जिनमें वह कभी पराजित नहीं हुआ। वह अपने याथ एक मोटा चौड़ा डंडा भी रखता था और तलवार से युद्ध करते समय इस डंडे का प्रयोग ढाल की तरह करता था।

† मेजर टैन्डी का निजी जरनल बम्बई रिकार्ड्स और मौखिक सूचनाएँ।

तैंतालीसवाँ अध्याय

अंग्रेजोंके साथ युद्धमें सिन्धिया और भोंसलेका पतन

[१८०२—१८०३]

पूना में घटनाक्रम—होलकर द्वारा अमृतराव के लड़के विनायकराव का पेशवा बनाया जाना—बसई सन्धि—सन्धि की शर्तों के विरुद्ध सिन्धिया और रघुजी भोंसले का मतैक्य—ब्रिटिश सैन्य की प्रगति—पेशवा की पूना में वापसी—युद्ध की तैयारियाँ—युद्ध घोषणा—अहमदनगर पर अधिकार—बुरहान—पुर—असीरगढ़—भड़ौच और पवनगढ़ पर अधिकार—हिन्दुस्तान की सामरिक परिस्थिति—दक्षिण में युद्ध—अरगाँव का युद्ध—राजपूतों, जाटों और अम्बाजी इंग्लिया के साथ सन्धि—गाबिलगढ़ पर घेरा और विजय—संधिवार्ता—देव गाँव की संधि।

इस प्रकार पिछले इतिहास का अध्ययन कर लेने के पश्चात हम पुनः इस स्थिति में पहुँच गए हैं कि आगे की घटनाओं का स्वाभाविक-क्रम से अध्ययन कर सकें। बाजीराव के बसई पहुँच जाने के पश्चात् उसके तथा अंग्रेजों के बीच जो महत्वपूर्ण एवम्
१८०२ ई०] ऐतिहासिक सन्धि हुई, उसका वर्णन करने के पूर्व, पूना में हो रहे घटना क्रम का अध्ययन करना अधिक आवश्यक प्रतीत होता है।

हम पीछे देख चुके हैं कि पूना में अपना प्रभाव जमा लेने के पश्चात् जसवन्तराव होलकर ने पेशवा के परिवार के सदस्यों एवम् उसके आश्रितों के साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया था, तथा पूनावासियों के साथ भी कोई अनाचार या दुर्व्यवहार नहीं किया था। वास्तव में उसका यह सद्भावनापूर्ण व्यवहार एक प्रकार की आड़ या छलावा थी जिसका आश्रय लेकर होलकर भागे हुए बाजीराव को पुनः पूना वापस लौट आने के लिए प्रलोभन देने का प्रयत्न कर रहा था। पूना में इतने दिनों तक शान्तिपूर्वक रह लेने के पश्चात् अब जसवन्तराव होलकर को धनाभाव कष्टदायी प्रतीत होने लगा। बहुत समय से वह अपनी सेना को वेतन नहीं दे सका था जिससे उसके सैनिकों में असन्तोष फैलना प्रारम्भ हो गया था। अन्त में अपने सैनिकों की माँगों के प्रति वह अधिक समय तक उदासीन भाव धारण करने में समर्थ न हो सका और उसे उनके असन्तोष को समाप्त करने का उपाय ढूंढ़ने के लिए विवश होना पड़ा। इस अत्यावश्यक कार्य को निबटाने के लिए प्रचुर धन की आवश्यकता थी, जिसे प्राप्त करने का उसके पास केवल एक साधन था, बलात् कर वसूल करना और उसने इसी साधन का उपयोग किया। पूनावासियों को कर देने के लिए विवश होना पड़ा, परन्तु जसवन्तराव होलकर ने यहाँ भी सतर्कता एवम् नीति का आश्रय नहीं छोड़ा। उसने अपने आदमियों द्वारा यह कर वसूल नहीं कराया, बल्कि पेशवा के ही दो मंत्रियों को इस कार्य के लिए तैनात कर दिया जिनके नाम थे चिन्तू पन्त देशमुख और बैजूनाथ पन्त मामा। जब बाजीराव ने सिंहगढ़ से कोकण की तरफ प्रस्थान किया था तो उसने अपने इन दोनों

मंत्रियों को होलकर के साथ वार्ता करने के लिए पूना भेज दिया था, परन्तु न तो उसने ही उन्हें कुछ बताया था कि किस विषय में क्या बात करना है और न तो ये दोनों मंत्री ही जानते थे कि वास्तव में पेशवा बाजीराव का भविष्य का कार्यक्रम क्या है; वे केवल पेशवा के आदेश से पूना चले आए थे। होलकर ने सन्धिवार्ता के दौरान में अपनी सारी परिस्थिति उनके समक्ष स्पष्ट कर दी और उनके ही ऊपर यथोचित धन के प्रबन्ध करने का भार रख दिया। इन दोनों मंत्रियों ने सोचा कि यदि किसी प्रकार धन का प्रबन्ध कर दिया जाय तो होलकर द्वारा पूनावासियों पर कोई अत्याचार न किया जायगा और न नगर में लूटपाट ही होगी। पूना में शान्ति एवम् सुव्यवस्था बनाए रखने की झूठी आशा में उन्होंने सच्चे दिल से होलकर के सैनिकों के वेतन भर का धन एकत्रित करने का प्रयास किया। पूनावासियों पर उनका इतना प्रभाव था कि बात की बात में आवश्यकता से अधिक धन वसूल हो गया : पूनावसियों ने भी, पेशवा के मंत्रियों द्वारा कर वसूले जाने के कारण कर अदा करने में कोई आनाकानी न की और भविष्य के प्रति निश्चिन्त हो गए।

जब हर सम्भव प्रयत्न के पश्चात् जसवन्तराव होलकर के हृदय में यह बात दृढ़ हो गई कि अब बाजीराव पेशवा निकट भविष्य में पूना वापस नहीं लौटेगा तो उसने अमृतराव के हाथ में पूना की सरकार को सौंपने का इरादा किया। इस समय अमृतराव जुन्नार में पड़ा था, अतः उसको पूना वापस बुलाने के लिए होलकर ने अपनी एक टुकड़ी को जुन्नार भेज दिया और पूना का प्रशासन भार सम्भालने के लिए अमृतराव को निमंत्रित किया। अमृतराव जसवन्तराव होलकर की चाल-पेंच और कूटनीति से बहुत घबराता था तथा उसकी नीयत के विषय में सदैव सशंकित रहता था; अतः उसने अनेक प्रकार के बहाने बना कर प्रारम्भ में होलकर के प्रस्ताव को टालने का प्रयास किया और कई दिनों तक टालमटोल करता रहा। परन्तु होलकर द्वारा बहुत जोर दिए जाने पर अन्त में, बिना कोई स्पष्ट उत्तर दिए अमृतराव १२ नवम्बर को पूना पहुँच गया। पूना पहुँचने पर उसके ऊपर प्रशासन भार को ग्रहण करने का दबाव डाला जाने लगा। नाना फड़नवीस के सहयोगियों और अनुयाइयों, जैसे मोरब फड़नवीस, बाबाराव फड़के तथा अन्य अनेक सरदारों ने भी अपनी तरफ से उस पर प्रभाव डाला, परन्तु अमृतराव किसी भी प्रकार पेशवा की मसनद पर बैठने के लिए तैयार नहीं हुआ। पूना नगर के बाहरी छोर पर बम्बूरी नामक गाँव में उसने अपने शिविर गाड़े और वहीं उसका दरबार लगने लगा। जब होलकर अमृतराव को पेशवा बनाने में सफल न हो पाया तो उसने अमृतराव के लड़के विनायक राव को पेशवा के पद पर आसीन करने की इच्छा प्रकट की, परन्तु प्रारम्भ में अमृतराव इसके लिए भी शीघ्र तैयार नहीं हुआ। परन्तु जब बाजीराव ने म्हाड़ से भी प्रयाण कर दिया और बसई पहुँच कर स्वयम् को पूर्णरूपेण अंग्रेजों के संरक्षण में छोड़ दिया, तो अमृतराव की हिचकिचाहट काफी सीमा तक समाप्त हो गई। अमृतराव ने दिखावटी तौर पर इसका यह अर्थ लगाना प्रारम्भ किया कि बाजीराव ने पेशवा का पद त्याग दिया। जब अन्य मराठा सरदारों के हृदय में उसने इस विचार को जमा दिया कि अब बाजीराव पेशवा के रूप में पूना नहीं लौटेगा, तो उसने विनायक राव के मसनद पर बैठाए जाने से सम्बन्धित होलकर के प्रस्ताव से सहमति प्रकट की। इस प्रकार जसवन्त राव होलकर और अमृतराव तथा अन्यान्य मराठा सरदारों की सहमति से पेशवा की रिक्त मसनद पर अमृतराव के लड़के विनायक राव को आसीन करने का निर्णय कर लिया और सतारा के राजा से औपचारिक आज्ञा प्राप्त करने के लिए, इस निर्णय की सूचना

भेज दी गई। प्रारम्भ में तो सतारा के राजा ने दृढ़तापूर्वक उनके इस निर्णय का विरोध किया और अपनी तरफ से तत्सम्बन्धित आदेश देने के लिए तैयार हो नहीं हुआ। परन्तु उसका भाई चित्तूर सिंह होलकर का पक्षपाती था, वह कुछ समय तक जसवन्तराव होलकर की सेना में फतहसिंह मन्ने की टुकड़ी में रह भी चुका था, अतः उसने सतारा के राजा पर इस निर्णय को मान्यता प्रदान करने के लिए दबाव डालने लगा और अन्त में उसके आगे सतारा के राजा की जिद अधिक समय तक न रह सकी एवम् होलकर के निर्णय की राजा द्वारा मान्यता प्राप्त हो गई।

अभी तक न जाने किस प्रकार जसवन्तराव होलकर विनम्रता एवम् सद्व्यवहार की मूर्ति बना बैठा था और अपनी हिंसक तथा आतंकवादी प्रकृति के प्रतिकूल आचरण करता रहा था। परन्तु अब एक तरफ से निश्चिन्त हो जाने के पश्चात् उसकी पाशविक प्रवृत्ति पुनः उस पर हावी हो गई; उसने शान्ति और सुव्यवस्था का छद्म व्यवहार एक तरफ रख दिया और अपनी हिंसक प्रकृति के अनुकूल ही पूनावासियों पर तरह-तरह के अत्याचार करने लगा और लूटपाट करना शुरू कर दिया। अब बाजीराव के दोनों मंत्रियों चिन्तू पन्त और बैजूनाथ पन्त को होलकर के लिए कर वसूलने से सम्बन्धित अपने पिछले प्रयत्नों की व्यर्थता का स्मरण हुआ और वे मन ही मन पश्चाताप से भर उठे। जिस लूटपाट से जनता को बचाने के लिए उन्होंने जनता को समझा बुझा कर होलकर की सेना के लिए धन वसूल किया था, अन्त में वह टल न सकी और जसवन्तराव होलकर की वास्तविक प्रकृति पूनावसियों के समक्ष स्पष्ट हो गई। दोनों मंत्रियों ने इस अन्याय के विषय में होलकर से वार्ता करने का प्रयत्न किया, परन्तु उनके प्रयत्नों का कोई परिणाम निकलने के पूर्व ही जसवन्तराव होलकर ने उन दोनों को ही कैद कर लिया और उन्हें हरी पन्त भावे तथा हरीनाथ नामक दो ब्राह्मणों के हवाले कर दिया गया। ये दोनों ब्राह्मण थे परन्तु क्रूरता और अनाचार में अप्रतिभ थे। शीरजीराव घाटगे की क्रूरता इन दोनों की तुलना में कुछ भी नहीं थी और लोभ में तो घाटगे उनके पासंगा बराबर भी नहीं था। बाजीराव के इन दोनों मंत्रियों से अधिकाधिक धन प्राप्त करने के लिए इन क्रूर ब्राह्मणों ने उनको अनेक प्रकार की यातानाएँ और ताड़नाएँ दीं। पूना में कोई भी परिवार ऐसा नहीं था जिसके पास धन हो, और उसे सताया न गया हो। ये दोनों ब्राह्मण सरदार प्रत्येक ऐसे परिवार के स्वामी को पकड़ ले जाते थे और जिस तरह से भी सम्भव होता, अधिकतम धन प्राप्त करके ही उनकी जान बख्शते थे। हरी पन्त भावे और हरीनाथ द्वारा दी गई ताड़नाओं और यातनाओं के कारण कितने ही पूनावासियों ने तड़पते-तड़पते दम तोड़ दिया। इस अन्याय और अनाचार के लिए होलकर ही एकमात्र उत्तरदायी नहीं था, अमृतराव भी इस नारकीय कार्य में होलकर का सहयोगी था और पूनावासियों की विपत्तियों के लिए उतना ही दोषी था जितना कि होलकर। २५ अक्टूबर के युद्ध के पूर्व ही पूनावासियों को नगर छोड़कर भागने से रोकने के लिए बाजीराव ने पूना की चारों सीमाओं पर सशस्त्र रक्षक बिठा दिए थे, इसलिए पूनावासी और भी विपत्ति में पड़ गए थे; वे न तो नगर की सीमा से भाग कर ही जान बचा सकते थे और न नगर में ही। पूना पर अधिकार प्राप्त कर लेने के पश्चात् ही जसवन्तराव ने भी नगर की सीमाओं पर, किसी अन्य उद्देश्य से ही, सशस्त्र पहरे की व्यवस्था कर दी थी, अतः न तो युद्ध के पूर्व और न पश्चात् ही, पूनावासी अपने जीवन की सुरक्षा के लिए कोई प्रयत्न कर पाए।

जिस समय होलकर के सैनिकों ने पूना में इस प्रकार से लूट-पाट मचाना शुरू किया उस

समय कर्नल क्लोज भी पूना में ही था। कुछ ही समय बाद कर्नल क्लोज ने उनसे बम्बई जाने की अनुमति माँगी। अपने-अपने स्वार्थवश जसवन्तराव होलकर तथा अमृतराव, दोनों ने ही कर्नल क्लोज को पूना में कुछ समय तक और रोकने का प्रयास किया। अभी पेशवा और सिन्धिया के साथ उनके सम्बन्ध स्थिर नहीं हुए थे जिसे निश्चित करने के लिए रेजिडेन्ट कर्नल क्लोज की उपस्थिति को वे अत्यन्त महत्वपूर्ण समझते थे। साथ ही कर्नल क्लोज के पूना में बने रहने पर, उन्हें यह आशा या कम से कम सम्भावना ही थी कि उसके प्रयत्नों से शायद ब्रिटिश सरकार बाजीराव के अपहृत पद के लिए अमृतराव या विनायकराव को पेशवा की मान्यता प्रदान कर दे। उन्होंने इस सम्बन्ध में कर्नल क्लोज पर तरह-तरह से प्रभाव डालने का प्रयास किया, परन्तु जब उन दोनों ने देखा कि उनके किसी भी प्रयास से कर्नल क्लोज के विचारों एवम् पूर्व निश्चित निर्णयों में कोई अंतर नहीं पड़ने वाला है, तो वे शान्त हो गये और शीघ्र ही कर्नल क्लोज को बम्बई जाने की अनुमति मिल गई। वह २० नवम्बर को पूना से रवाना हुआ और दिसम्बर माह की तीसरी तारीख को बम्बई पहुँच गया। जिस दिन बाजीराव पेशवा अंग्रेजी जहाज से बसई में उतरा, उसी दिन शाम को कर्नल क्लोज ने भी उससे मुलाकात किया और भविष्य की योजनाओं के विषय में वार्ता करने के लिए बसई पहुँच गया। जब बाजीराव ने पूना छोड़ने की तैयारी की थी तभी इस होने वाली सन्धि की प्रस्तावना अंग्रेजों के एक एजेन्ट द्वारा उसे प्राप्त हो चुकी थी। कर्नल क्लोज ने इसी प्रस्तावना का हवाला देकर सन्धि के विषय में ही पेशवा से प्रारम्भिक वार्ता की। अन्त में सन्धि की शर्तों का निर्धारण तथा उन पर विस्तृत रूप से वार्ता करने के लिए १८ दिसम्बर का दिन निर्धारित किया गया। संधि की शर्तें निर्धारित की गई और १५ दिन पश्चात् अर्थात् ३१ दिसम्बर को इस सन्धि पत्र पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर हो गये। यही सन्धि बसई की सन्धि के नाम से विख्यात है, जिसका उल्लेख पीछे के पृष्ठों में एकाधिक स्थानों पर किया जा चुका है। इस सन्धि के अनुसार यह निश्चित किया गया कि दोनों ही पक्ष एक दूसरे के ऊपर होने वाले आक्रमणों का मिलकर सामना करेंगे और पेशवा, ईस्ट इंडिया कम्पनी तथा उनके मित्रों के राज्य क्षेत्रों की सुरक्षा का उत्तरदायित्व समान रूप से दोनों पक्षों पर रहेगा। इस उद्देश्य को पूर्ति के लिए तथा पेशवा को सैनिक दृष्टि से सुदृढ़ बनाने के लिए यह व्यवस्था की गई कि अंग्रेजी सेना की कम से कम ६००० पैदल सेना की एक टुकड़ी पेशवा अपने पास रक्खेगा और इस सब्सिडियरी सेना के साथ सैनिक संख्या के अनुपात में आवश्यक तोपखाना और यूरोपियन तोपची भी पेशवा के आधीन रहेंगे। इस सब्सिडियरी (सहायक) सेना के स्थायी निवास के लिए अपने ही राज्य क्षेत्र में स्थान देने का भार पेशवा पर रक्खा गया। युद्धकाल में पेशवा की स्थिति को संकटहीन बनाने के लिए यह व्यवस्था की गई कि आपदकाल में कम से कम दो बटालियन सेना पेशवा की निजी सुरक्षा के लिए उसके पास रहेगी और बटालियन में कम से कम १००० सैनिक रहेंगे। पेशवा को अपनी तरफ से ६००० पैदल सेना तथा १०००० सवार रखने की अनुमति मिली, जो कि युद्धकाल में ६००० अंग्रेजी सैनिकों की टुकड़ी के साथ विपक्षियों का सामना करने के लिए या जैसी भी परिस्थिति होगी, पेशवा की मदद करेंगे। इसके पश्चात् दूसरी शर्त यह थी कि पेशवा किसी भी ऐसे यूरोपियन को अपनी सेवा में नहीं रक्खेगा जो कि अंग्रेजों के शत्रु-देश का निवासी हो। सब्सिडियरी सेना के निर्वाह एवं अन्य व्ययों के लिए पेशवा के समक्ष यह शर्त रक्खी गई कि वह २६ लाख रुपये की वार्षिक आय का कोई भी क्षेत्र सब्सिडियरी सेना के नाम से अलग करदे जिसकी आय से इन सैनिकों का वेतन आदि दिया जा सके। एक अन्य शर्त यह रक्खी गई कि इस सब्सिडियरी सेना के प्रयोग के लिए जो आव-

श्यक वस्तुएँ कम्पनी द्वारा पेशवा के राज्य में भेजी जायेंगी, उन पर पेशवा किसी भी प्रकार की चुङ्गी या महसूल वसूल न करेगा। इस सन्धि के अनुसार पेशवा ने सूरत से सम्बन्धित अपने समस्त अधिकारों का त्याग कर दिया, साथ ही गायकवाड़ राज्य तथा निजामअली के साथ उसके जो भेद और विवाद थे, उनको सुलझाने एवम् निपटाने का भार अंग्रेजों पर छोड़ दिया गया और बिना उनकी अनुमति के पेशवा ने अपनी तरफ से गायकवाड़ या निजामअली पर कोई भी दावा न करने का वादा किया। जहाँ तक निजामअली के साथ सम्बन्ध का प्रश्न था, पेशवा ने म्हाड़ की सन्धि के शर्तों के पालन करने का आश्वासन दिया। गायकवाड़ राज्य के सम्बन्ध में उसने अपनी तरफ से उस व्यवस्था को मान्यता प्रदान की जो अंग्रेजों और आनन्दराव गायकवाड़ की परस्पर सहमति से निश्चित की गई थी। इन शर्तों को स्वीकार करने के अतिरिक्त पेशवा को यह वादा भी करना पड़ा कि बिना अंग्रेजों की अनुमति के वह किसी भी राज्य से शत्रुता मोल नहीं लेगा तथा किसी भी रियासत पर आक्रमण नहीं करेगा और जब तक इस सम्बन्ध में अंग्रेजों से विचार विमर्श न हो जाय, वह भारतवर्ष की किसी भी शक्ति के पास न तो केवल अपनी इच्छा से सन्धि प्रस्ताव ही भेजेगा और न किसी दूसरी शक्ति द्वारा भेजे गये सन्धि प्रस्ताव पर विचार ही करेगा।❀

बसई की सन्धि को प्रमुख शर्तें संक्षेप में यही थीं; जिनके अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि पेशवा को अंग्रेजों का संरक्षण प्राप्त करने के मूल्य के रूप में अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता का बलिदान कर देना पड़ा। यदि वह पूना में रहा होता तो शायद ही वह इतनी पराधीनतापूर्ण शर्तों पर सन्धि करने के लिए तैयार होता, परन्तु इस समय तो वह पूर्णत: अंग्रेजों की कृपा पर था। अंग्रेजों का संरक्षण प्राप्त करने के अतिरिक्त उसके पास अपने को विपत्तिपूर्ण परिस्थितियों एवम् असंदिग्ध विनाश से बच सकने का अन्य कोई मार्ग ही नहीं था। जिस प्रकार पूना में विभिन्न प्रभावशाली सरदार अपना प्रभुत्व स्थापित करने के प्रयास में संग्लन थे, उससे स्पष्ट था कि पेशवा को किसी न किसी सरदार की कृपा पर अपना अस्तित्व बचाना पड़ता। एक तरफ तो सिन्धिया प्रारम्भ से ही उसकी सत्ता पर दांत गड़ाये बैठा था, दूसरी तरफ जसवन्तराव होलकर सिन्धिया से भी प्रबल पड़ रहा था और पेशवा की सत्ता उसके अधिकार में आ गई थी। अब बाजीराव के लिए दो ही मार्ग शेष थे, या तो वह होलकर अथवा सिन्धिया के हाथ की कठपुतली बनता या अंग्रेजों का संरक्षण प्राप्त करके अपने अधिकार को पुन प्राप्त करता, अन्त में जैसा कि हम देख चुके हैं. परिस्थितियों के दबाव से उसे दूसरा मार्ग ही अपनाने के लिए विवश होना पड़ा। परन्तु वह इस मार्ग का अवलम्बन करके भी संतुष्ट न हो सका। बसई के सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर करने के कुछ समय बाद ही बाजीराव

❀ जिस विवशतापूर्ण परिस्थिति में बाजीराव पेशवा ने इन शर्तों को स्वीकार किया, इसका उल्लेख एक अंग्रेज लेखक ने इस प्रकार किया है :—"बाजीराव जानता था कि विदेशियों के साथ इस सन्धि को स्वीकार करने का परिणाम यह होगा कि उसकी राजनैतिक स्वतन्त्रता का सर्वथा अंत हो जायगा। टीपू की दुर्दशा और कम्पनी की सब्सिडियरी सन्धि में बँधकर होने वाला निजाम का अपमान तथा उसकी पराधीनता सदैव उसके कल्पना तथा कानों के पर्दों पर गूँजती रहती थी और इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उसने अपनी इच्छा के विरुद्ध विवशतः बसई की सन्धि को स्वीकार किया।" "ओरिजिन आव द पिण्डारीज" ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक अफसर द्वारा १८१८ में लिखित।

अपने किए पर पश्चताप करने लगा। भविष्य के लिए वह कोई सुनिश्चित योजना नहीं बना पा रहा था। अपनी परिस्थितियों से विवश होकर वह ऐसी शर्तों में बंध गया था जो उसकी विचारधारा के एकदम प्रतिकूल थी। अंग्रेजों के सहयोग से भविष्य के लिए जो नीति और योजनाएं निर्धारित की गई थी वे स्वयम् बाजीराव के लिए पश्चात्त एवम् असमंजस का कारण बन गई। उसे सबसे बड़ा अनुताप सम्भवतः इसी बात पर था कि दौलतराव सिन्धिया से इस सन्धि के विषय में विचार विमर्श करने का रंचमात्र अवसर भी उसे प्राप्त न हो सका। वह अपने अन्तस्तल से बसई की सन्धि की उन शर्तों पर पश्चाताप एवम् हल्का सा विरोध प्रकट कर रहा था, जिसके कारण उसकी राजनैतिक स्वतन्त्रता लगभग समाप्त हो चुकी थी और वह भी निजाम अली की श्रेणी में पहुँच चुका था। इसके अतिरिक्त, जिन धाराओं के अनुसार निजाम अली और गायकवाड़ राज्य पर से उनके दावों को समाप्त कर दिया गया था, वे उसके लिए अपनी स्वतन्त्रता के लोप हो जाने से भी अधिक शोक एवम् परिताप का कारण बन गई थी। इन दावों के त्याग के रूप में उसने जो महान् बलिदान किया था, उसे सम्भवतः अंग्रेज कभी भी समझ न पाए और न उन्होंने इस आत्म त्याग के लिए कभी बाजीराव को कोई श्रेय दिया। उनकी दृष्टि में वह एक साधारण बात थी, परन्तु पेशवा के ऊपर इस राजनैतिक असम्मान के फलस्वरूप जो बीत रही थी, उसे केवल वही जानता था। अन्त में, उसने मराठा साम्राज्य के दो प्रमुख स्तम्भों, दौलताराव
१८०३ ई०] सिन्धिया तथा रघू जी भोंसले को सन्धि की उन शर्तों से अवगत करा देना आवश्यक
समझा, जिनमें परिस्थितियों से विवश होकर वह फंस गया था। इस उद्देश्व से उसने सिंधिया के पास बाला जी कुंजर तथा रघू जी भोंसले के पास नारायणराव वैद्य को दूत के रूप में भेजा। इस सन्धि के विषय में वह सिन्धिया और भोंसले के विचारों का स्पष्ट अनुमान कर सकता था, वह जानता था कि वे कभी इस संन्धि का समर्थन न करेगें और न इसमें सम्मिलित होने के लिए तैयार होंगे। वास्तव में वह उन दोनों से सम्पर्क स्थापित करके अपने इस व्यवहार के लिए, अपनी विवशता को प्रकट करना चाहता था कि किस प्रकार उनकी अनुपस्थिति में जसवन्तराय होलकर से पराजित होकर उसे भागना पड़ा और अपनी सुरक्षा के प्रति निश्चिन्त होने के लिए उसे यूरोपियनों का संरक्षण प्राप्त करने के लिए विवश होना पड़ा। इस प्रकार सिन्धिया और भोंसले के साथ सम्पर्क स्थापित करने में उसके दो उद्देश्य निहित थे—पहला उनकी दृष्टि में, बसई की अपमानजनक सन्धि के लिए स्वयम् को निर्दोष सिद्ध करना और इस सन्धि का विरोध करने के लिए उन्हें उकसाना। उसने इन दूतों के हाथ सिन्धिया भोंसले के पास बसई के सन्धि पत्र की कोई नकल नहीं भेजी थीं, उसने पत्र द्वारा दोनों नरेशों से अनुरोध किया थाकि होलकर के अन्यायों और अत्याचारों से पूनावासियों को बचाने के लिए शीघ्रातिशीघ्र पूना की ओर बढ़े और विद्रोही होलकर को दण्ड देने की व्यवस्था करें। उसने इन पत्रों में अंग्रेजों का विरोध करने के विषय में कुछ भी संकेत नहीं दिया था। सम्भवतः उसे आशा थी कि बसई की सन्धि की शर्तों को पूरा करने से रोकने के लिए सिन्धिया और भोंसले स्वयम् संयुक्त प्रयत्न करेंगे। वह सम्भवतः यह निश्चित नहीं कर पा रहा था कि यदि भविष्य में इस बात को लेकर अंग्रेजों और मराठों में युद्ध छिड़ गया तो उसका परिणाम क्या होगा। अपने स्वभाव एवम् अपनी नीति के अनुरूप ही, वह दोनों मार्गों पर एक साथ चल रहा था। एक तरफ तो वह अंग्रेजों से सब्सिडियरी सन्धि किए बैठा था और दूसरी तरफ सिन्धिया और भोंसले से आशा कर रहा था कि वे मिलकर बसई की सन्धि का विरोध करेगे और अंग्रेजों के हाथ से उसे मुक्त कराएंगे, । परन्तु वास्तव में पूर्णरूपेण वह किसी भी पक्ष में नहीं था और अवसर

पड़ने पर दोनों ही पक्षों के साथ विश्वासघात कर सकता था। उसके पिछले इतिहास से स्पष्ट है कि ऐसा व्यवहार उसके लिए असम्भव नही था। जो भी हो, इस समय वह दोनो पक्षों के साथ मित्रता पूर्ण सम्बन्ध बनाए हुए था।

गवर्नर जनरल वेलसली भी सिन्धिया की तरफ से निश्चिन्त नहीं था और बसई की संधि का विरोध करने से सिन्धिया को रोकने के लिए उसने पूर्ण विश्वास तथा आशा के साथ प्रयत्न करना प्रारम्भ किया। इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के लिए उसने सिन्धिया को भी प्रतिरक्षात्मक सन्धि में बाँधने का निर्णय किया। पूना युद्ध के पश्चात् ही उसने दौलतराव सिन्धिया के साथ इस प्रकार की सन्धि करने के लिए एक प्रयास किया परन्तु सिन्धिया प्रारम्भ से ही अंग्रेजों से दूर भागता था, उसने उस समय वेलसली के सन्धि प्रस्ताव को स्वीकार करने की प्रवृत्ति नहीं दिखाई और वेलसली को निराश होना पड़ा। तत्पश्चात् बाजीराव ने बसई पहुँचने पर जब अंग्रेजों की शर्तो को स्वीकार कर लिया तो वेलसली ने एक बार पुन: सिन्धिया को इस सन्धि में सम्मिलित होने का निमत्रंण दिया , परन्तु सिन्धिया ने इस बार भी वेल्सली के निमत्रंण को ठुकरा दिया यद्यपि उस संकटपूर्ण अवसर पर सिंधिया अंग्रेजी फौजों द्वारा अपनी सहायता किए जाने पर प्रसन्न होता जब कि उसकी सेना जसवन्त राव होल्कर द्वारा पराजित हुई थी। यदि उसी समय ब्रिटिश सेना बाजीराव पेशवा कों सिंधिया की सहायता से पुनर्स्थापित करने में उसके साथ सहयोग किया होता, तो शायद दौलतराव वेल्सली के प्रस्तावों पर कुछ ध्यान देता। परन्तु जिस समय पेशवा की प्रतिष्ठा को बचाने तथा अपनी प्रतिद्वन्दी, एवम् विद्रोही जसवन्तराव होलकर से बदला लेने के लिए आकुल था, उस समय उसे अंग्रेजों से कोंई मदद न मिली, उलटे अंग्रेजों द्वारा पेशवा के भगा लिए जाने से मराठा साम्राज्य की अप्रतिष्ठा हुई। ऐसी जली भुनी मानसिक दशा में जब उसे बसई की संधि तथा पेशवा द्वारा अंग्रेजों का संरक्षण ग्रहण किए जाने का समाचार प्राप्त हुआ तो उसे मर्मान्तक वेदना हुई। पेशवा को अपने संरक्षण में लेने की महत्वाकांक्षा महाद जी सिंधिया के समय से ही सिन्धिया परिवार में ही थी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए महादजी सिन्धिया ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में अथक प्रयत्न किया था। परन्तु नाना फड़नवीस के प्रभाव के कारण वह अन्त तक कृतकार्य न हो सका। उसकी मृत्यु के पश्चात् दौलतराव सिन्धिया ने भी उसी उद्देश्य को अपने सामने रख छोड़ा था और कुछ अर्थों में सफल भी हुआ था। परन्तु इस समाचार से उसके स्वर्गीय चाचा और स्वयम् उसकी योजनाएँ धूल में मिल गईं और अब पेशवा सरकार को अपने नियन्त्रण में रखने के सारे मसूबों पर पानी फिर गया। पेशवा के अंग्रेजों के संरक्षण में चले जाने और बसई की सन्धि को स्वीकार कर लेने से सिन्धिया को केवल यही चिन्ता नहीं हुई, बल्कि इससे भी अधिक दुश्चिन्तापूर्ण भय सिन्धिया को त्रस्त करने लगा। अब उसके अपनी स्वतन्त्रता पर भी संकट स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा। पेशवा के अंग्रेजों के वश में हो जाने पर सिन्धिया अपनी स्थिति के प्रति निश्चिन्त नहीं रह सकता था। क्योकि पेशवा की एक ऐसी शक्ति का सहयोग एवम् संरक्षण प्राप्त हो गया था जिसका मुख्य उद्देश्य ही था कि इस प्रकार से एक-एक मराठा शक्ति को अपने वश में करके मराठा साम्राज्य का विनाश करना। सिन्धिया ने अनुभव किया कि जिस ढंग से मुगल क्षेत्रों से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करते-करते उसके पूर्ववर्ती मराठा सरदारों ने मुगल साम्राज्य की जड़ें खोखली कर डाली थीं, उसी प्रकार सूरत और गायकवाड़ राज्य की आर्थिक एवम् राजनैतिक स्वतन्त्रता पर इस समय अंग्रेज डाका डाल रहे थे और ऐसी स्थिति में मराठा साम्राज्य अधिक समय तक अंग्रेजों के कूटनीतिक व्यवहारों के विरुद्ध स्थिर नहीं रह सकता

था। दूरदर्शी सिन्धिया ने समझ लिया था कि यदि ऐसी ही स्थिति रही तो मराठा राज्य शीघ्र ही विनाश के गर्त में चला जायगा। विशेष कर अब जब कि पेशवा भी अंग्रेजों के वश में हो गया था, सिन्धिया बहुत फूंक फूंक कर कदम रख रहा था।

रघू जी भोंसले भी अंग्रेजों से उतना ही चिढ़ा हुआ था जितना की सिन्धिया। यह बात सर्वविदित थी कि पेशवा का अंग्रेजों से सम्बन्ध रखना रघू जी भोंसले को बिल्कुल पसन्द नहीं था, जब पेशवा के दूत के रूप में नारायण राव बसईं की सन्धि का बिवरण तथा पेशवा का पत्र लेकर उसके पास पहुँचा तो भोंसले बहुत चिन्तित हुआ। इस अवसर पर उसके भी सोचने का ढंग वही था जो सिन्धिया का। परन्तु उसने बिना सिन्धिया से विचार विमर्श किए कोई योजना बनाना उचित न समझा। उधर सिन्धिया भी रघू जी भोंसले के साथ मत्रंणा करने की आवश्यकता का अनुभव कर रहा। उन दोनों का इस समय एक ही शत्रु था, जिसके विरुद्ध एक होकर प्रयत्न किए बिना सफलता की कोई आशा परिलक्षित नहीं हो रही थी। अतः पेशवा के पत्र तथा बसईं की सन्धि के विषय पर रघू जी भोंसले से विचार विमर्श करने के लिए दौलतराव ने अपने दीवान यादव राव भास्कर को भोंसले के पास भेजा, ताकि अपने इस शत्रु का मुकाबला करने के लिए मराठा सरदारों को संगठित किया जा सके। इस समय सिन्धिया होलकर से निपटने की तैयारी करने में संग्लन था। जब उसकी सेना पूर्णरूप से संगठित हो गई तो वह पूना की तरफ चल पड़ा। एक विशाल वाहिनी के साथ उसने ४ फरवरी को नर्बदा नदी को पार किया और लगातार यात्रा करते हुए २३ फरवरी को बुरहानपुर पहुँच गया। बुरहानपुर में ही उसने पड़ाव डाल दिया और अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। इसके कुछ दिनों पश्चात् ही गवर्नर जनरल के दूत के रूप में कर्नल कालिन्स भी बुरहानपुर पहुँचा और सिन्धिया से भेंट की। उसने पुनः सिन्धिया को अंग्रेजों के साथ प्रतिरक्षात्मक सन्धि करने का निमन्त्रण दिया, साथ ही पेशवा के साथ हुई बसईं की सन्धि की धाराओं को पूरा करने में उसने अंग्रेजों के साथ सहयोग करने का अनुरोध किया। सिन्धिया ने कालिन्स को तुरन्त कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया और टालमटोल करने लगा। इस विषय पर विचार करने के लिए समय प्राप्त करने के उद्देश्य से उसने कुछ समय तक कालिन्स से कोई स्पष्ट वार्ता नहीं की, परन्तु कर्नल कालिन्स शीघ्र ही कोई स्पष्ट उत्तर प्राप्त करने के लिए उतावला हो उठा और उसने इस सम्बन्ध में सिन्धिया पर दबाव डालने लगा। अन्त में ऊब कर, सिन्धिया ने अंग्रेजों के साथ भी किसी भी प्रकार की प्रतिरक्षात्मक सन्धि में सम्मिलित न होने का निश्चय किया, परन्तु साथ ही उसने कर्नल कालिन्स को यह आश्वासन भी दिया कि वह बसईं की सन्धि की शर्तों के क्रियान्वयन में वह अपनी तरफ से किसी भी प्रकार की बाधा नहीं उपस्थित करेगा। उसने उलाहना के तौर पर कालिन्स से यह भी कहा कि सालबाई की सन्धि के अनुसार पेशवा के साथ इस प्रकार की सन्धि करने, तथा नई व्यवस्थाओं को जन्म देने से पूर्व उससे भी परामर्श लिया जाना चाहिये था, परन्तु उसने फिर भी हर प्रकार से अंग्रेजों का मित्र बने रहने की दृढ़ इच्छा प्रकट की। सिंधिया ने कालिन्स को आश्वस्त तो कर दिया, परन्तु अब अंग्रेजों के साथ मित्रता बनाए रखने के लिए रंचमात्र भी इच्छुक नहीं था और प्रारम्भ से ही अंग्रेजों को धोखा देने का निश्चय कर लिया था। इधर सिन्धिया और उधर भोंसले, दोनों ही जोर शोर से युद्ध की तैयारियाँ कर रहे थे। इधर पेशवा भी गुप्त रूप से इन दोनों मराठा नरेशों के साथ पत्र व्यवहार कर रहा था और भीतर ही भीतर अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध छेड़ देने के लिए उन्हें प्रोत्साहित भी कर रहा था।

इस बीच गवर्नर जनरल वेल्सली बाजीराव को पुनः पेशवा की मसनद पर बैठाने की योजना

बना रहा था और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए हर पहलू से परिस्थितियों पर विचार कर रहा था। अन्त में उसने चारों तरफ से पूना को घेर लेने का निश्चय किया। पेशवा राज्य की पूर्वी सीमा पर अपना मोर्चा जमाने के लिए उसने सीमा के निकटवर्ती पुरिन्दा को चुना। इस मोर्चे को संभालने का उत्तरदायित्व कर्नल स्टीवेन्सन पर डाला गया। उसकी मदद के लिए हैदराबाद की सब्सिडियरी सेना उसके अधीन कर दी गई। इस सेना में ६ बटालियन पैदल सैनिक थे, जिनमें से प्रत्येक बटालियन में १००० से अधिक ही सैनिक थे, इस पैदल सेना के साथ देशी सवारों के दो रेजिमेन्ट थे, यही नहीं, निजामअली की निजी सेना के १५०० सैनिक भी कर्नल स्टीवेन्सन की सहायता के लिए पुरिन्दा के मोर्चे पर आ डटे। इस समय आनरेबुल मेजर जनरल वेल्सली मद्रास में था, जो गवर्नर जनरल के आदेश से मद्रास की अंग्रेजी सेना की एक टुकड़ी के साथ मैसूर की उत्तरी सीमा पर आ पहुँचा। इस समय उसके पास ८००० पैदल सैनिक तथा १७०० सवार थे, जिनके साथ बाजीराव को पुनः पेशवा की मसनद पर बैठाने में कर्नल स्टीवेन्सन की सहायता करने के लिए गवर्नर जनरल के निर्देशानुसार वह पूना की ओर चल पड़ा। जब जनरल वेल्सली अपनी सैन्य के साथ कृष्णा नदी के तट पर पहुँचा तो उसने दक्षिण के मराठा जागीरदारों का सहयोग प्राप्त करने का भी प्रयत्न किया। उसने उनके समक्ष घोषणा की कि उसके इस अभियान का उद्देश्य है, न्याय्य अधिकारी बाजीराव को पुनः पेशवा के पद पर प्रतिष्ठित कराना तथा होलकर और अमृतराव को दण्ड देना। होलकर के अत्याचारों से मराठे उसके विरुद्ध तो थे ही, फिर बाजीराव के पुनर्भिषेक की बात का भी इन जागीरदारों पर बहुत प्रभाव पड़ा और अधिकांश जागीरदार वेल्सली के साथ सहयोग करने के लिए तैयार हो गये। जिनमें से प्रमुख थे अप्पा साहब और चिन्तामणिराव पटवर्धन, बापू गनेश गोकला, अप्पा देसाई, नेपणकर और पारणकर परिवार, विंचूर के जागीरदार और विट्ठल शिवदेव के पौत्र ने भी अन्य जागीरदारों का अनुकरण करते हुए ब्रिटिश सेना का साथ दिया। बाजीराव ने दक्षिण के जागीरदारों के पास लिखित आदेश भी भेजे थे कि इस अभियान में वे अंग्रेजों के साथ भरसक सहयोग करें और उन्हें हर सम्भव सुविधा प्रदान करें। अंग्रेजी सेना के पुनीत उद्देश्य तथा बाजीराव के आदेश-पत्र के कारण इस अवसर पर दक्षिण के समस्त जागीरदारों ने ब्रिटिश सरकार के साथ अत्यन्त ही मित्रतापूर्ण एवम् सद्भावनापूर्ण व्यवहार किया तथा ब्रिटिश सेना को सब तरह की सुविधा प्रदान की, विशेषकर पटवर्धनों के परिवार ने अंग्रेजों के साथ अत्यन्त मधुर सम्बन्ध रक्खा। होलकर के सैनिक इस समय भीमा और कृष्णा नदियों के बीच लूटपाट मचा रहे थे और जनता को कष्ट दे रहे थे। इन सैनिकों के नायक थे अमीर खां और फतहसिंह मन्ने, उनके सवारों ने इस क्षेत्र में आतंकपूर्ण परिस्थिति पैदा कर दी थीं और लोगों का जीवन संकटमय हो गया था। परन्तु जब अंग्रेजी सेना के आगे बढ़ने का समाचार मिला तो वे पूना की तरफ लौट पड़े। भीमा नदी को पार करते-करते फतहसिंह मन्ने की गतिविधियों को देखते हुए अमीर खां उसके इरादों के प्रति आशंकित हो गया, उसे शंका हुई कि सम्भवतः वह पेशवा बाजीराव के पक्ष में सम्मिलित होने का इरादा कर रहा है, अतः उसने फतहसिंह मन्ने को कैद कर लिया और उसकी सेना का विसर्जन कर दिया।

जब जनरल वेल्सली पूना के निकट पहुँचा तो उसने अपनी यात्रा की गति को अत्यन्त तीव्र कर दिया और केवल ३२ घन्टों में ६० मील की यात्रा करके अपने सवारों के साथ २० अप्रैल को पूना नगर की सीमा में पहुँच गया। पूर्व निश्चित योजना के अनुसार कर्नल स्टीवेन्सन भी इसी बीच पुरिन्दा से पूना की ओर प्रयाण कर चुका था और जनरल वेल्सली के लगभग साथ ही अपनी सेना सहित भीमा नदी पर स्थित गरट्टून नामक स्थान पर पहुँच गया। जनरल वेल्सली

को किसी प्रकार यह सूचना मिल गई थी कि अमृतराव पूना नगर को जलाकर खाक कर देना चाहता है, अतः पूना को विनष्ट होने से बचाने के लिए ही उसने इतनी तीव्रगति से यात्रा की थी, परन्तु अमृतराव को जब जनरल वेल्सली के आने का समाचार मिला तो वह अंग्रेजी सेना के पूना पहुँचने के कई घन्टे पहले ही पूना की सरहद से बाहर चला गया। जसवन्तराव होलकर ने भी अंग्रेजी सेना का सामना करने का साहस नहीं किया और सदलबल मालवा की तरफ निकल गया। परन्तु मार्ग में ही होलकर ने औरंगाबाद में लूट खसोट की और कर वसूल किया तथा निजाम के राज्य क्षेत्र के कुछ अन्य गाँवों को लूट भी लिया। जब कर्नल स्टीवेन्सन को जसवन्तराव होलकर की इन कुचेष्टाओं का समाचार मिला तो, निजाम अली के क्षेत्र की सुरक्षा के लिए वह अपनी सेना के साथ गोदावरी की तरफ चल पड़ा।

जब अमृतराव ने अंग्रेजी सेना के आगमन की खबर पाकर पूना से प्रस्थान किया तो उसके साथ हरीपन्त भावे भी था। अमृतराव और हरीपन्त भावे, पूना छोड़ने के पश्चात् सुनगुमरी की तरफ चल पड़े और मार्ग में जो भी गाँव और नगर पड़े, उनमें लूट-पाट मचाई। इसके पश्चात् अमृतराव का ध्यान नासिक की तरफ आकृष्ट हुआ, उसने नासिक पर आक्रमण कर दिया और वहाँ स्थित सेना की एक टुकड़ी को पराजित किया, जो कि बाजीराव पेशवा के पक्ष की थी और जिसका नेतृत्व राजा बहादुर कर रहा था। राजा बहादुर को पराजित करने के पश्चात् उसकी सेना ने नासिक में भी उसी बर्बर ढंग से लूट-पाट और हत्याओं का बाजार गरम कर दिया, जैसा कि वे कुछ समय पूर्व में पूना में कर चुके थे। इस विजय एवम् लूट-पाट के पश्चात् अमृतराव कुछ समय तक नासिक के पास ही एक स्थान पर पडाव डाले पड़ा रहा। आगे के पृष्ठों में हमें अमृतराव के नाम का उल्लेख करने का अवसर नहीं मिल सकेगा, इसलिए यहाँ इस तथ्य की तरफ संकेत का देना आवश्यक प्रतीत होता है, कि इस बीच अमृतराव ने बाजीराव से अपना मतभेद समाप्त करने के लिए दूतों के सहारे वार्ताएँ की और पत्र व्यवहार किया, परन्तु बाजीराव के हृदय में उसके प्रति इतनी दुर्भावना बैठ चुकी थी कि पेशवा ने हर बार अमृतराव के प्रस्तावों को अनसुना कर दिया और भविष्य में उससे किसी भी प्रकार का सम्बन्ध रखने से स्पष्ट इनकार कर दिया। इस समय अमृतराव एक तरह से बाजीराव की आंख का काँटा बना हुआ था क्योंकि वह उसे होलकर का सहयोगी समझता था और पूना में उसकी अनुपस्थिति की अवधि में उसके पद का जो अपहरण किया गया था, उसके लिए वह मुख्य रूप से अमृतराव को ही दोषी मानता था। अतः जब भी अमृतराव ने बाजीराव का विश्वास प्राप्त करने का प्रयत्न किया, बाजीराव को उसमें कपट की गन्ध ही मिली और अमृतराव के मेल-मिलाप के समस्त प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए। जब अमृतराव प्रत्यक्ष रूप से पेशवा का विश्वास न प्राप्त कर सका तो उसने एक दूसरा ही मार्ग पकड़ा। उसने सीधे जनरल वेल्सली से बात करने का निश्चय किया और कुछ समय बाद जब युद्ध प्रारम्भ हो गया तो वह अपने सवारों की टुकड़ी के साथ अंग्रेजी सेना में सम्मिलित हो गया। उसने पूर्ण ईमानदरी और दृढ़ता के साथ अंग्रेजों का साथ दिया और किसी भी अवसर पर उसका आचरण सन्देहात्मक सिद्ध नहीं हुआ। यद्यपि उसने ब्रिटिश सरकार की कोई विशेष सेवा नहीं परन्तु कभी विश्वासघात् भी नहीं किया और अन्त में ब्रिटिश सरकार ने उसे आठ लाख रुपया प्रतिवर्ष पेंशन के रूप में देना स्वीकार किया; पेन्शन प्राप्त करने के पश्चात् अमृतराव बनारस चला गया और मृत्यु पर्यन्त काशीवास करता रहा।

इस प्रकार जब अंग्रेजी सेना के साथ मेजर जनरल वेल्सली पूना पहुँचा तो उसका विरोध

करने वाला कोई न रह गया। अब पेशवा भी बसई से पूना की तरफ रवाना हो गया। उसके साथ कुल २३०० पैदल सैनिक थे जिनमें से १२०० यूरोपियन थे। पूना पहुँचने पर १३ मई को वह पुन: धूमधाम से मसनद पर आसीन हुआ।* दौलतराव सिन्धिया अभी बुरहानपुर में ही पड़ाव डाले पड़ा हुआ था। रघू जी भोंसले भी शीघ्राति शीघ्र सिंधिया से आ मिलने की तैयारियाँ करने में लगा हुआ था। उन दोनों ने जब होलकर को अंग्रेजों के भय से भागते देखा तो उसे भी अंग्रेजों के विरुद्ध अपने संघ में मिला लेने के लिए उन्होंने हर सम्भव प्रयत्न किया। यद्यपि सिन्धिया और होलकर एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी थे, फिर भी इस अवसर पर दूरदर्शी सिन्धिया ने होलकर को भी अपने पक्ष में कर लेना ही उचित समझा। सिन्धिया और होलकर के बीच की खाईं को पाटने के लिए रघू जी भोंसले ने मध्यस्थ के रूप में कार्य किया। परन्तु जसवन्तराव होलकर ने उन्हें कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। उधर उसने सिन्धिया-भोंसले के साथ-साथ पेशवा से भी कर्नल क्लोज के माध्यम से सन्धि-वार्ता करता रहा। सिन्धिया और भोंसले के साथ होने वाली वार्ता से लाभ उठाने में भी वह नहीं चूका। सर्वप्रथम उसने सिन्धिया की कैद से अपने भतीजे खण्डेराव को मुक्त करा लिया, तत्पश्चात् उनके संघ में सम्मिलित होने का आश्वासन देकर उसने मालवा सूबे के अन्तर्गत स्थित होलकर परिवार के पुराने अधिकृत क्षेत्र को सिन्धिया से वापस माँग लिया। यही नहीं, उसने सिन्धिया-भोंसले से यह वादा भी करा लिया कि हिन्दुस्तान से सम्बन्धित उसके परिवार के समस्त अधिकारों को पुन: मान्यता प्रदान कर दी जायगी।

इस समय अंग्रेज होलकर की गतिविधियों के प्रति बहुत सशंकित थे और अपने हित साधन के लिए उसे अपने पक्ष में मिलाना उन्हें अत्यन्त आवश्यक प्रतीत हो रहा था। उन्हें भय था कि कहीं होलकर सिन्धिया-भोंसले गुट में सम्मिलित होकर उसे और सशक्त न बना दे, अतः उन्होंने होलकर के, अंग्रेजों के विरुद्ध किए गए कार्यों को नजर अन्दाज करना और तरह देना प्रारम्भ किया और इस बात के लिए यथाशक्ति प्रयत्न किया कि होलकर को अंग्रेजों के विरुद्ध जाने का कोई अवसर न मिल सके। उन्होंने पेशवा तथा होलकर के बीच मेल-मिलाप कराने के लिए मध्यस्थता करने का प्रयत्न किया परन्तु पेशवा होलकर से इतना अधिक चिढ़ा हुआ था कि वह होलकर के पक्ष में अंग्रेजों से भी, एक भी शब्द सुनने के लिए तैयार नहीं था, मेल मिलाप होना तो दूर रहा। यद्यपि सिन्धिया और भोंसले को होलकर से कोई स्पष्ट उत्तर नहीं मिला था फिर भी वे उसे अपने गुट में सम्मिलित करने के लिए निरन्तर प्रयत्न किए जा रहे

---

* इस सम्बन्ध में मेजर बी० डी० बसु लिखता है—'महाराष्ट्र अथवा पूना में बहुत कम लोग ऐसे थे जिन्होंने इस कार्रवाई में वास्तविक उत्साह का अनुभव किया हो अथवा इस कार्य को मराठा साम्राज्य के लिए अपमानजनक और भविष्य के लिए अशुभ सूचक न समझा हो।'

मेजर बसु ने इस सम्बन्ध में मिल के इतिहास में से भी एक अंश उद्धृत किया है, मिल लिखता है—'शायद मानव प्रकृति के साथ इससे घोरतर अपराध नहीं हो सकता कि विदेशी सेनाओं के बल पर और विदेशी शासकों की इच्छा अथवा उनके लाभ के लिए किसी राष्ट्र के ऊपर बलात् कोई ऐसी सरकार लाद दी जाय जिसमें इस तरह के कर्मचारी, अथवा आधारभूत सिद्धान्त हों जिन्हें वह राष्ट्र अपने अनुभव से बुरा समझ कर त्याग चुका है या जिन्हें वह इसलिए पसन्द नहीं करता कि उसे उनसे अच्छे मनुष्यों व सिद्धान्तों का अनुभव प्राप्त हो चुका है अथवा उसे किसी श्रेष्ठतर प्रशासन की आशा है।' भाग ६ अध्याय २, पृ० २८६-८७। अनुवादक

थे। उन्होंने बार-बार होलकर से अनुरोध किया कि वह भी दक्षिण में स्थित उनकी सेना में सम्मिलित हो जाय परन्तु होलकर ने तरह-तरह के बहाने बनाते हुए अन्त में यह कहकर कि हिन्दुस्तान स्थित क्षेत्रों की देखभाल करना भी आवश्यक है, वह मालवा की तरफ बढ़ गया। वास्तव में उसके मालवा जाने का कारण यह था कि वह कुछ निश्चय नहीं कर पा रहा था। पेशवा की जिद एवम् चिढ़ के फलस्वरूप वह अंग्रेजो के साथ गठबन्धन न कर पा रहा था, और इधर अपने प्रबल प्रतिद्वन्द्वी दौलतराव सिन्धिया के प्रति ईर्ष्या एवम् दुर्भावना के कारण ब्रिटिश विरोधी गुट में भी सम्मिलित नहीं हो पा रहा था। अतः उसने मालवा में ही पड़े-पड़े घटना क्रम का निरीक्षण करने तथा उचित अवसर की प्रतीक्षा करने का निर्णय किया।

यद्यपि अंग्रेज विरोधी-सिन्धिया-भोंसले-गुट अपनी समस्त योजनाओं को अत्यन्त गुप्त रक्खे हुए था और उनकी किसी योजना का सही-सहीं ज्ञान विरोधियों को नहीं हो पाता था, फिर भी उनके शत्रुतापूर्ण इरादों की खबर, अफवाह के रूप में देश भर में फैल गई थी। अन्त में इस गुट की चुप्पी सर्वत्र प्रचारित अफवाहों से आशंकित होकर वास्तविक स्थिति का अनुमान लगाने के उद्देश्य से गवर्नर जनरल वेल्सली ने इरादा किया कि स्पष्ट रूप से सिन्धिया से पूछा जाय कि उसकी इस प्रकार की तैयारियों का क्या अर्थ है और वास्तव में उसका इरादा क्या है। इसके साथ ही उसने कपम्नी-अधिकृत समस्त क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर सामरिक तैयारियां भी कर डाली जिससे कि जिस स्थान से भी विद्रोह प्रारम्भ हो उसी स्थान पर विद्रोहियों का सर कुचल दिया जाय। जब रेज़िडेन्ट ने गवर्नर जनरल के निर्देश के अनुसार दौलतराव सिन्धिया पर भविष्य में अंग्रेजों के प्रति उसकी निर्धारित नीति के विषय में स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से दबाव डालना प्रारम्भ किया, तो दौलतराव ने उससे साफ-साफ कह दिया कि इस विषय में तब तक कोई स्पष्ट और सन्तोषजनक उत्तर देना असम्भव है जब तक कि वह इस सम्बन्ध में बरार के राजा से विचार विमार्श न कर ले। उसने रेज़िडेन्ट को आश्वासन दिया कि भोंसले से परामर्श कर लेने के पश्चात उसे सूचना दे दी जायगी कि वे शान्ति चाहते हैं या युद्ध।

रेजिडेन्ट के साथ इस प्रकार की वार्ता करने के पश्चात् सिन्धिया ने रघूजी के साथ आगे की कार्रवाइयों के विषय मे विचार विमर्श किया और उन दोनों की संयुक्त सेनाएँ निजामअली की सरहद की ओर बढ़ चलीं। दोनों नरेशों ने आस-पास ही अपने शिविर स्थापित किए। कर्नल स्टीवेन्सन ने अपनी अधीनस्थ सेना के साथ नर्वदा नदी को पार करके उत्तर की ओर चल पड़ा। उधर मेजर जनरल वेल्सली ने भी अहमद नगर के पास एक उपयुक्त स्थान पर मोर्चेबन्दी कर डाली। वे शीघ्र ही सिन्धिया और भोंसले से युद्ध या शान्ति की घोषणा सुनने के लिए व्यग्र थे, परन्तु दोनों मराठा नरेशों ने परस्पर विचार-विमर्श के बहाने से बहुत समय नष्ट किया और टालमटोल करते रहे। अन्त में उन्होंने घोषणा की ब्रिटिश सरकार के प्रति उनके हृदय में कोई भी दुर्भाव या वैरभाव नहीं है और न पेशवा तथा अंग्रेजों के बीच बसई में हुई सन्धि की शर्तों के पूरा किए जाने के मार्ग में वे किसी प्रकार का अवरोध ही उत्पन्न करेंगे। परन्तु साथ ही वे अंग्रेजों को यह याद दिलाना भी न भूलेंगे कि पेशवा ने उनके पास बसई की सन्धि की कोई प्रतिलिपि नहीं भेजी थी। इस वार्ता के दौरान में सिन्धिया एवम् भोंसले ने कहा कि बसई की सन्धि में कुछ बातें और शर्तें इस प्रकार की है जिन पर अभी भी विवाद खड़ा हो सकता है क्योंकि इन सम्बन्धित मामलों के विषय में पेशवा को तब तक हस्ताक्षर नहीं करना चाहिये था जब तक कि पेशवा उन दोनों से इन शर्तों के विषय में परामर्श करके उनकी सहमति न प्राप्त कर ले। इस प्रकार सिन्धिया और भोंसले

ने अंग्रेजों के दिल में यह बात जमा देने का प्रयत्न किया कि केवल बाजीराव के हस्ताक्षर से ही बसई की सन्धि पूर्ण नहीं मानी जायगी, जब तक कि उस पर सिन्धिया और भोंसले के हस्ताक्षर भी न हो जायें। परन्तु इस प्रकार की वार्ता के साथ ही उन्होंने अंग्रेजों का विरोध न करने की इच्छा भी प्रकट की। इस प्रकार मित्रतापूर्ण वार्ताओं और आश्वासनों में अंग्रेजों को उलझाये रखकर वास्तव में सिन्धिया और भोंसले केवल समय बिता रहे थे, क्योंकि उनके विचार में अंग्रेजों से युद्ध छेड़ने का अवसर अभी नहीं आया था। उन्हें अब भी आशा थी कि शायद जसवन्तराव होलकर अब भी अपनी अनिश्चयात्मक मनोभावना को त्याग कर अंग्रेजों के विरुद्ध उनके गुट में सम्मिलित हो जाय और इसके लिए वे निरन्तर प्रयत्न करते रहे। वास्तव में वे जसवन्तराव होलकर की प्रतीक्षा में ही युद्ध को टाले जा रहे थे। इन कोरे आश्वासनों के अतिरिक्त उनका प्रत्येक आचरण शत्रुतापूर्ण ही था, हर तरफ अंग्रेजों और मराठों के बीच सम्भावित युद्ध, चर्चा का महत्वपूर्ण विषय बना हुआ था, जिस प्रकार से सिन्धिया और भोंसले मोर्चा बन्दी किए हुए थे और जिस ढंग से सामरिक तैयारियाँ कर रहे थे, उसे देखते हुए अंग्रेजों की सतर्कता और उनका प्रतिरक्षात्मक प्रबन्ध कर लेना उचित और न्यायपूर्ण ही था। इस समय मारक्विस वेलसली ने मेजर जनरल आर्थर वेलसली को अपना पोलिटिकल एजेन्ट नियुक्त कर लिया था और मराठा राज्य के साथ व्यवहार से सम्बन्धित समस्त अधिकार उसे प्रदान कर दिया था। इसके अतिरिक्त वह दक्षिण में स्थित समस्त ब्रिटिश सेना का प्रमुख सेनापति भी था। वह सिन्धिया भोंसले गुट की निष्क्रियता और टालमटोल वाली निति से ऊब उठा और अन्तमें उसने इन दोनों मराठा नरेशों से स्पष्ट उत्तर तथा उनके इरादों की जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से उनके समक्ष एक प्रस्ताव उपस्थित किया। उस प्रस्ताव से यदि वास्तव में उनके इरादे नेक हों और वे कम्पनी सरकार से बैर-भाव न रखते हों तो वे अपनी इस गुटबन्दी को तोड़कर अपनी सेनाओं को इस क्षेत्र से हटा लें; जिसके पश्चात् सिन्धिया हिन्दुस्तान में स्थित अपने राज्य क्षेत्र में चला जाय, तथा रघूजी भोंसले भी अपनी सेना सहित बरार चला जाय। उसने वादा किया, कि यदि दोनों मराठा नरेश अपने-अपने राज्य में चले जायेंगे तो वह भी ब्रिटिश सेना को कम्पनी अधिकृत क्षेत्र में भेज देगा और पूना का समस्त पुनर्भिविषक्त बाजीराव पेशवा के ऊपर ही छोड़ दिया जायगा। यह प्रस्ताव आर्थर वेलसली की नीति नैपुण्य का एक बहुत अच्छा प्रमाण था, यद्यपि इस प्रस्ताव का प्रत्येक पहलू, प्रत्येक दृष्टि से स्पष्ट था, फिर भी इस प्रस्ताव को सुनते ही दोनों मराठा नरेश अचकचा गये। उन्होंने समझ लिया कि अब अनिश्चयात्मक अवस्था को त्याग कर कोई न कोई निर्णय करना ही पड़ेगा। भोंसले और सिन्धिया ने इस विषय पर पर्याप्त तर्क-वितर्क विचार विमर्श किया और अन्त में उन्होंने जो निर्णय किया, कि उससे उनका वैर-भाव स्पष्ट हो गया। दोनों मराठा नरेशों ने संयुक्त रूप से मेजर जनरल वेलसली के प्रस्ताव को अमान्य कर दिया और अपने राज्य को लौट जाने के लिए तैयार नहीं हुए। अभी तक ब्रिटिश सरकार का रेजिडेन्ट अन्तिम निर्णय के लिए उनके शिविर में ही पड़ा हुआ था। अन्त में स्पष्ट उत्तर पा जाने पर वह ३ अगस्त को उनके कैम्प से निकला, जिसे अंग्रेजों ने युद्ध की स्पष्ट घोषणा का प्रतीक समझा।

गवर्नर जनरल वेलसली यद्यपि सिन्धिया भोंसले को भी सन्धिसूत्र में बाँधने के प्रयास में व्यस्त था, परन्तु उनकी गतिविधियों से आशंकित होकर सन्धि वार्ता के साथ-साथ वह गम्भीरतापूर्वक सामरिक तैयारियाँ भी करता जा रहा था। अब जब उसने देखा कि युद्ध अवश्यम्भावी है, तो उसने मराठों को पहली बार ही चारों तरफ से प्रबल धावा करके, उनको पस्त कर देने का निर्णय किया।

उसकी योजना थी कि इन दोनों नरेशों के राज्य क्षेत्रों के विभिन्न सूबों और जिलों पर एक साथ आक्रमण कर दिया जाय, ताकि वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो जायं और यह निश्चय न कर सकें कि कहाँ-कहाँ अंग्रेजों को सम्भाला जाय। गवर्नर जनरल की यह योजना पूर्वनिश्चित थी और उसने इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए समस्त प्रबन्ध कर डाला था, इस अवसर पर ब्रिटिश सरकार की सामरिक तैयारियां बहुत बड़े पैमाने पर की गई थी। इससे पूर्व किसी भी अन्य युद्ध के लिए सम्भवतः इतनी नीतिपूर्ण योजना कभी नहीं बनाई गई थी, न इतने सतर्क ढंग से तैयारियाँ ही की गई थीं, इस समय सम्भावित युद्ध के लिए तैयार ब्रिटिश सेना से जितनी दक्षता एवम् कुशलता की आशा की जा रही थी, वह सामान्य स्तर से कहीं अधिक थी। गवर्नर जनरल ने अपने उदार-व्यवहार, सेनानायकों और एजेन्टों के उचित और कुशल चुनाव तथा पूरी सेना में आत्मविश्वास की भावना भर कर अपने सैनिकों में बहुत उत्साह भर दिया था। जिस समय अंग्रेज प्रथम बार पूरब में आये, उसी समय से लेकर अब तक हिन्दुस्तानी सैनिकों में भी इतना उत्साह कभी नहीं देखा गया था।

ब्रिटिश सेना देश के प्रत्येक कोने में पहुँच चुकी थी और व्यग्रता से गवर्नर जनरल के आदेश की प्रतीक्षा कर रही थी। विभिन्न दिशाओं में फैली हुई इन सेनाओं की कुल सैनिक संख्या लगभग ५०,००० थी।

दक्षिण और गुजरात में इन सैनिकों की आधी से अधिक संख्या डटी हुई थी, इन क्षेत्रों में इनकी संख्या कुल मिलाकर ३५,५९६ थी। इन सैनिकों में से ३,५९५ सैनिकों को पूना और हैदराबाद की सुरक्षा के लिए तैनात कर दिया गया था। जनरल स्टुअर्ट के नेतृत्व में ७८२६ सैनिक दिये गये थे और उसके कन्धों पर कृष्णा और तुङ्गभद्रा नदियों के बीच के क्षेत्र में अंग्रेजी सेना की सुरक्षा का भार रख दिया गया था। जो सेना जनरल वेल्सली के साथ इस अभियान का तेतृत्व कर रही थी उसमें ८,९३० सैनिक थे, जिनका संचालन स्वयम् जनरल वेल्सली ही कर रहा था। उसके साथ ही कर्नल स्टीवेन्सन भी था, जिसके अधीन ७,९२० सैनिक थे। गुजरात में अंग्रेजी सेना के कुल ७९५२ सैनिक थे, जिनमें से कुछ को किलों तथा महत्वपूर्ण सामरिक मोर्चों की सुरक्षा के लिए तैनात कर दिया गया था और शेष ४,२८१ सैनिक युद्ध क्षेत्र में सेना का साथ देने के लिए सुरक्षित थे। गुजरात स्थित इन सैनिकों को कर्नल मरे की कमान में रक्खा गया था और कमाण्डर सहित यह पूरी सेना जनरल वेल्सली के प्रत्यक्ष नियंत्रण में थी।

दौलतराव सिंधिया तथा रघूजी भोंसले के सम्मिलित सैनिकों की संख्या करीब एक लाख थी जिसमें से पचास हजार सवार थे और नियमित सैनिकों को संख्या भी तीस हजार के करीब थी। इसके अतिरिक्त यूरोपियन अफसरों की देखरेख में एक विशाल तोपखाना भी था। शेष बीस हजार में से अधिकांश सामयिक सैनिक थे जो रघूजी भोंसले की सेना में देशी अफसरों के नियंत्रण मे थे। कुछ बन्दूकधारी भी थे। उनके पास सैकड़ों की संख्या में छोटी-छोटी तोपे थीं। इस समय लोगों के अनुमान के अनुसार सिंधिया का तोपखाना पर्याप्त रूप से विशाल तथा प्रभावपूर्ण था। नियमित सैनिकों में दस या बारह हजार सैनिक सिंधिया के साथ दक्षिण में थे और चार या पाँच हजार सैनिक एक यूरोपियन अफसर की अध्यक्षता में हिन्दुस्तान की सेना की मदद को भेजे जा चुके थे। हिन्दुस्तान में सिंधिया की सेनाएं मिस्टर पेरॉं की आधीनता में थीं, जो डि बाइन का उत्तराधिकारी था। जिन दिनों दक्षिण से भेजे गये सैनिक हिन्दुस्तान स्थित सैनिकों से नहीं मिले थे, उन दिनों भी पेरॉं के सेनापतित्व में सोलह या सत्रह हजार नियमित पैदल तथा

पन्द्रह से बीस हजार तक घोड़े थे जिनमें चार या पाँच हजार नियमित सवार सैनिक थे। बुन्देलखण्ड में शमशेर बहादुर के सैनिक इनके अतिरिक्त थे। स्मरणीय है कि शमशेर बहादुर भो इसी मंडल में सम्मिलित था। शमशेर बहादुर उसा अली बहादुर का लड़का था जिसने गोसाईं हिम्मत बहादुर की संगति में बुन्देलखण्ड जोतने का प्रयास किया था। उस समय बुन्देलखण्ड के जिन जिलों को वे जोत सके थे, उन्हें पेशवा के नाम से ही अपने अधिकार में रक्खा था। इन अधिकृत जिलों में से कुछ पर तो उसका काफी पहले दिनों से ही स्वामित्व था और शेष को उसने जागीर के नाम रख छोड़ा था। शमशेर बहादुर प्रायः स्थानीय सरदारों के छोटे-मोटे विद्रोहों को दबाने में लगा रहता था। अतएव उसे पेशवा के पास कुछ न भेजने का एक सुन्दर बहाना भी मिल गया था। उसी बहाने के बल पर वह उन जिलों के समस्त आय का उपभोग करता था परन्तु वह अपने को सदा पेशवा का सेवक ही कहता था। सन् १८०२ ई० में अलीबहादुर की मृत्यु हुई और औपचारिक रूप से पेशवा ने उसकी जागीर को अपने प्रत्यक्ष नियंत्रण में ले लिया परन्तु पेशवा इस समय तक इतना शक्ति हीन हो गया था कि वह उक्त जागीर को प्रत्यक्ष नियंत्रण में लाने से असमर्थ ही रहा। अतएव यथार्थ रूप से उस प्रदेश का नियन्त्रण अलीबहादुर के पुत्र शमशेर बहादुर के हो हाथ में रह गया था और इस समय अंग्रेजों के विरूद्ध वह मराठा मण्डल को सहायता कर रहा था और उसके सेनापतित्व में इस समय दस या बारह सहस्र सैनिक थे।

६ अगस्त सन् १८०२ को हैदराबाद में निजामअली की चिर प्रतिक्षित मृत्यु हुई। इस मृत्यु से हैदराबाद में इतना ही परिवर्तन हुआ कि उसके स्थान पर उसका पुत्र मिर्जा सिकन्दर जाह दक्षिण का सूबेदार हुआ। उधर ६ अगस्त को ही जेनरल वेल्सली को यह समाचार मिला की मराठा मण्डल से चलने वाली संधि वार्ता असफल होकर भंग हो गई है।

उस समय जेनरल वेल्सली अहमद नगर से आठ मील दक्षिण में वलकी नामक गाँव के पास पड़ाव डाल कर पड़ा था। वर्षा के तेजी के कारण वह किले पर आक्रमण करने की स्थिति में नहीं था। आठ अगस्त को उचित अवसर देख कर उसने तीन सैनिक दस्तों को बाजार पर आक्रमण करने के लिये रवाना कर दिया। अहमद नगर के चारों ओर मिट्टी की एक मोटी सी दीवाल बनाई गई थी। उसकी सुरक्षा के लिये अरबों की टुकड़ी नियुक्त थी एवम् सिंधिया के नियमित सैनिकों की एक टुकड़ी उसके सहयोग में कार्यरत थी। सवारों का एक दस्ता बाजार तथा किले के बीच में स्थिति था। आंक्रामकों का दुस्साहस एवम् उनकी प्रगति ने रक्षकों को विस्मित कर दिया। रक्षकों की प्रत्येक पंक्ति को छिन्न-भिन्न करते हुये आक्रामक जिस तेजी से आगे बढ़े उसकी सराहना शत्रुओं ने भी की। आक्रामक सेना की हानि तो कम नहीं हुई किन्तु नगर पर अधिकार हो जाने से उनकी क्षतिपूर्ति हो गई। आक्रामकों में अट्ठाइस सैनिक मारे गये तथा बाइस घायल हुए जिनमें छः यूरोपियन अफसर थे। रक्षकों की हताहत-संख्या का विवरण प्राप्य नहीं हो सका। १० अगस्त की सुबह को अंग्रेजी सेना ने किले पर गोलाबारी शुरू की। प्रारंभ में किलेदार को
अगस्त १२] किला सर्मपित कर देने का आदेश दिया गया था परन्तु किलेदार के आनाकानी
करने पर यह गोलाबारी शुरू की गई थी। यह किला चाँदबीबी के समय से ही अभेद्य माना जाता रहा था। दो दिन की गोलाबारी भी किले को कोईःहानि नहीं पहुँचा सकी थी, किन्तु १२वीं अगस्त को किलेदार ने सहसा किला सर्मपित कर दिया और अपने १,५०० सैनिकों के साथ अपनी वैयक्तिक सम्पत्ति लेकर किले के बाहर चला गया। यह नगर कभी निजामशाही बादशाहों की राजधानी रह चुका था और वास्तव में इस प्रकार दुर्भेद्य था कि किलेदार के इस

समर्पण को मराठा मण्डल ने विश्वासघात की संज्ञा दी और उस किलेदार की इस कार्य के लिए बड़ी निन्दा हुई।

वेल्सली जो कुछ भी कर रहा था उसके पीछे एक निश्चित योजना थी, परन्तु भोंसले और सिंधिया के जितने भी काम हो रहे थे, उनके पीछे न तो कोई योजना ही थी और न उनसे यह प्रतीत होता था कि वे किसी अनुभवी मनुष्य द्वारा किये जा रहे थे। कभी तो सिंधिया केवल स्वविवेक पर काम करने लगता था और कभी वह भोंसले के विवेक का सहारा लेने लगता था। भोंसले के मन में भी कोई सुसम्बद्ध योजना नहीं थी। वास्तविकता यह थी कि इन दोनों के कार्यों की प्रभावहीनता अंग्रेजों पर पूरी तरह स्पष्ट हो गयी थी और इस स्पष्टता का वे पूरा लाभ उठा रहे थे। वेल्सली के गोदावरी के बाम तट की ओर बढ़ने का समाचार पाकर वे उत्तर की ओर मुड़े और उधर कर्नल स्टीवेंसन ने जालना को अधिकृत करके ९वीं सितम्बर की रात को अचानक उनके पड़ाव पर छापा मार दिया। यद्यपि यह छापा प्रभावहीन ही रहा फिर भी उस छापे से अंग्रेजों की सैनिक योजना का पूर्ण परिचय मिल जाता है। उधर गोदावरी तट पर रुक कर वेलसली स्टुअर्ट द्वारा भेजी गई रसद की प्रतीक्षा करने लगा और इधर स्टीवेंसन ने जालना की रक्षा व्यवस्था सुदृढ़ कर ली। इस समय मराठा सैन्य में नियमित पैदल सैनिकों की सोलह बटालियनें और आकर मिल गई थीं और यह समस्त सेना इस समय जाफराबाद के पास पड़ाव डाले पड़ी थीं। इसी समय जेनरल वेल्सली और कर्नल स्टीवेंसन बदनापुर नामक गाँव के पास मिले और उसी समय निर्णय किया गया कि दोनों सेनायें अलग-अलग ही रहें और दो ओर से मराठा सेना पर आक्रमण किया जाय। इस निर्णय के पश्चात् २२ सितम्बर को दोनों सेनाएँ अपने-अपने स्थान से आगे बढ़ीं। कर्नल स्टीवेंसन पश्चिमी रास्ते से एवम् वेल्सली पूर्वी रास्ते से चला। २३वीं सितम्बर को वेल्सली नालनी नामक गाँव के पास पहुँचा जहाँ उसके भेदियों ने उसे समाचार दिया कि मराठा सेना उनसे केवल छः मील की दूरी पर पड़ी हुई है।

सितम्बर ९]

इस स्थान पर पहुँच कर वेलसली ने अपने सहायक कैप्टेन बार्स्ले को आदेश दिया कि वह समूची सेना का कुल सामान व रसद उसी गाँव में रख दे, उसकी रक्षा के लिए देशी सैनिकों का एक बड़ा दस्ता नियुक्त कर दे और हल्के सामानों के साथ शेष सैनिक युद्ध के लिए प्रस्तुत रहे। बार्स्ले को इस प्रकार का आदेश देकर वेलसली स्वयम् एक सैनिक टुकड़ी के साथ स्थानीय पर्यवेक्षण के लिये रवाना हुआ। थोड़ी देर बाद ही वह एक भीठे पर चढ़ा; जहाँ से मराठों की सेना का समूचा पड़ाव दिखायी पड़ रहा था। उसने अनुमान किया कि मराठों की शैन्य-शक्ति अवश्य ही पचास हजार के करीब होगी, जिसमें तीस हजार तो सवार ही रहे होंगे और एक सौ के करीब तोपें भी रही होंगी। इस विशाल सैन्य की तुलना में वेलसली के पास केवल ४५०० सैनिक थे। परन्तु अपने सेना नायक की तरह उन सभी का विश्वास था कि मराठे उनसे बचकर नहीं जा सकते। इन मुट्ठी भर सैनिकों को लेकर वेल्सली मराठों पर चढ़ दौड़ा। जिस समय यह सेना मराठा सैन्य के समीप पहुँची तो वेलसली ने देखा कि मराठों के दक्षिण पार्श्व केवल सवार ही थे और पूरा का पूरा तोपखाना तथा उसके पूरे पैदल सैनिक बाम पार्श्व में असो गाँव के समीप थे। वेल्सली का इरादा था कि जिस किसी भी तरह हो मराठों का तोपखाना नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जाय। इस विचार से वह थोड़ा घूमा और शत्रु सेना के वामपार्श्व को छोड़ता हुआ कैलाश नदी पर जा पहुँचा और चुपचाप उसने नदी को पार कर लिया। पार करके उसने अपने सैनिकों को दो

पंक्ति में खड़ा किया। अपने सवारों को उसने एक तीसरी पंक्ति में सुरक्षित रक्खा। अपना दक्षिण पार्श्व उसने जुवा नदी की ओर रक्खा और कैलना नदी उसके बाम पार्श्व को रक्षित किए रही। राजा मैसूर तथा पेशवा के सवार कैलना के उस पार पंक्तिबद्ध हो गये किन्तु इस युद्ध में उन्होंने कोई विशेष भाग नहीं लिया। वेलसली की यह मोर्चेंबन्दी कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण थी। एक तो उनके दोनों पार्श्व सुरक्षित थे। सामने से भी शत्रु का आक्रमण नहीं हो सकता था और यहाँ से शत्रु सैन्य पर मनमाना गोलाबारी की जा सकती थी। ब्रिटिश व्यूह को देखकर मराठों ने भी अपनी मोर्चेबन्दी बदल दी। अब वे भी दो पंक्तियों में खड़े हो गये थे। एक पंक्ति तो ब्रिटिश सेना के सामने खड़ी थी और दूसरी पंक्ति पहली पंक्ति से समकोण बनाती हुई असी गाँव को घेरकर खड़ी थी। मराठों की मोर्चेबन्दी इस प्रकार थी कि वह गाँव दोनों पंक्तियों के वाम पार्श्व पर पड़ रहा था। अभी अंग्रेजों की मोर्चाबन्दी पूरी भी न हुई थी कि मराठों की तोपें गोला उगलने लगीं। सभी लोग मानते हैं कि इस गोलाबारी से ब्रिटिश सेना की अत्यधिक हानि हुई। खास कर दायें पार्श्व में स्थित ७४वीं रेजिमेन्ट का बड़ा नुकसान हुआ और कुछ समय के लिए उनके सारे काम ही रुक गये। जब ७४वीं रेजिमेन्ट के अफसरों को आगे बढ़ने का आदेश दिया गया तो उन्होंने सन्देश दिया कि उनकी सभी तोपें बेकार हो गयी हैं तथा अधिकांश बैल मारे जा चुके हैं। इस सङ्कटभय समाचार को जनरल वेल्जली ने अत्यन्त ही धैर्य पूर्वक सुना और स्थिर तथा दृढ़ स्वर से कहा, "कोई बात नहीं, उनसे कह दो कि तोपों को वहीं छोड़कर आगे बढ़ें।" उधर मराठा तोपें निरन्तर अग्नि वर्षा कर रही थीं और उनका आगे बढ़ सकना सम्भव नहीं था। तोपखाना विहीन ७४ वीं रेजिमेन्ट अपनी छाती पर मराठों के तोपों के गोले को झेल रही थी। कुछ ही समय में लाशों और घायल शरीरों के ढेर लग गये और ७४वीं रेजिमेन्ट की पंक्तियां झीनी पड़ने लगी। इसी समय मराठा सवारों की एक टुकड़ी ने उन पर धावा बोल दिया। मराठा सवारों को इस प्रकार अचानक धावा करते देख कर बिटिश सवारों के दस्ते को भी आगे बढ़ने का आदेश दिया गया। उक्त आदेश के अनुसार १९वीं लाइट डैगून्स टुकड़ी इन मराठा सवारों का सामना करने के लिए बढ़ी जिसमें केवल ३७० सवार थे। उन्होंने एक जोर की ललकार मारते हुए हाथों में नंगी लपलपाती तलवारें लिए हुए अपने घोड़ों को सरपट दौड़ाया। इस दस्ते के साथ ही चौथी देशी सवारों की टुकड़ी भी आगे बढ़ी जिन्होंने कि उस दिन के भयङ्कर युद्ध में अप्रतिम सौर्य का प्रदर्शन किया था। यद्यपि ७४वीं रेजिमेंट की सैनिक संख्या अत्यल्प हो गई थी फिर भी वे अभी तक पूर्ण अनुसासित ढङ्ग से अपने स्थान पर डटे थे। १९वीं लाइट डेगून्स के सवार पूर्ण वेग से ७४वीं रेजिमेंट की कतारों के बीच में से घोड़ा दौड़ाते हुए मराठा सेना की ओर झपटे; ७४वीं रेजिमेंट के समस्त जवानों ने उन्हें ललकार कर प्रोत्साहित किया। इन ब्रिटिश सवारों ने मराठा सवारों की बाढ़ को रोक लिया और उन्हें काटते-पीटते ही पैदल सेना की ओर बढ़ चले और उनकी तोपों को नष्ट कर देने का दृढ़ संकल्प किया एवं जिन्होने ७४वीं रेजिमेंट का बुरी तरह विनाश किया था। इससे पूर्व बिटिश सवारों ने कभी भी इतने रण कौशल का प्रदर्शन नहीं किया था और न कभी किसी युद्ध में विजय प्राप्त करने में इतना अधिक सहयोग दिया था! इन सवारों को इस प्रकार मारते काटते हुए आगे बढ़ते देखकर अंग्रेजी बिटिश सेना का दलित उत्साह पुनः जागृत हो उठा और उन्होंने भी आगे बढना प्रारम्भ कर दिया। पैदल सेना तथा सवारों के सम्मिलित आक्रमण को मराठों की प्रथम पंक्ति न संभाल पाई और वे पीछे की ओर दबने लगे जिनके दबाव से दूसरी पंक्ति को भी पीछे कदम हटाना

पड़ा। अब बिटिश सेना के पैदल सैनिकों ने संगीनें चढ़ा ली और संगीनों की नोंक पर ही उन्होंने मराठा सेना की दोनों पक्तियों को ढ़केलते हुए नदी में उतार दिया। अब मराठा सेना भागने पर विवश हो गई और जैसे तैसे गिरते पड़ते उन्होंने नदी को पार किया। उस पार चले जाने पर भी अंग्रेजी सेना उनका पीछा करती ही गई। ब्रिटिश सवारों ने बार-बार मराठा सेना पर धावे किए और उनकी पंक्तियों को वितर-वितर कर दिया। परन्तु कुछ ही क्षणों में मराठों की कतिपय टुकड़ियाँ पुनः पंक्तिबद्ध हो गईं, और अनुशासित ढंग से पीछे हटने लगीं। इस प्रकार की एक पूर्ण व्यवस्थित विशाल टुकड़ी का ब्रिटिश सवारों ने पीछा किया और उन्हें तहस-नहस कर डाला। ब्रिटिश अश्वारोहियों के इस दल का संचालन कर्नल मैक्सवेल कर रहा था, जो इस संघर्ष में मारा गया। ब्रिटिश सेना ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती गई, उन्हें रास्ते में शत्रु पक्ष के सैनिक घायल या मृतप्राय अवस्था में मिलते गए जिन्हें उन्होंने कोई हानि नहीं पहुँचाई। परन्तु जब ब्रिटिश सेना इन सैनिकों की उपेक्षा करती हुई आगे निकल गई तो इन सैनिकों ने एक अन्तिम प्रयास और किया। वे अपना स्थान छोड़कर खड़े हो गए और पड़ी हुई तोपों का मुँह घुमाकर जाती हुई ब्रिटिश सेना की पिछली पंक्तियों की ओर कर दिया। अंग्रेजी सेना विजयोन्मत्त आगे बढ़ी जा रही थी, अतः अपने पीठ पीछे होने वाली इस खुराफात का रंचमात्र आभास भी उन्हें नहीं हुआ। अचानक जब उनकी पीठ पर तोप के गोले गिरने लगे तो वे अवाक रह गए। परन्तु शीघ्र ही सारी परिस्थिति उनकी समझ में आ गई, यद्यपि इस गोलन्दाजी को समाप्त करने में कुछ समय लगा। अब भी कुछ मराठा सवार इधर-उधर मंडरा रहे थे, परन्तु उनसे ब्रिटिश सेना को कोई हानि पहुँचने की सम्भावना नहीं थी, अतः उनकी तरफ कोई भी ध्यान नहीं दिया गया। अन्त में, पीछा करते-करते मराठों की पैदल सेना की आखिरी टुकड़ी को भी अंग्रेजी सेना ने बिखरा दिया और युद्ध पूर्णतः समाप्त हो गया। इस युद्ध के फलस्वरूप सिन्धिया की ९८ बढ़िया तोपें विजयी अंग्रेजों के हाथ लगीं। इस युद्ध में अंग्रेजी सेना को अत्यधिक हानि उठानी पड़ी। समूची ब्रिटिश सेना के लगभग एक तिहाई से अधिक सैनिक इस युद्ध में मारे गए या घायल हुए। परन्तु जिन भयंकर परिस्थितियों में से होकर ब्रिटिश सेना को गुजरना पड़ा था उन्हें देखते हुए निःसंकोच रूप से यह कहा जा सकता है कि उन्होंने एक ऐसी महान विजय प्राप्त की थी, जिसकी तुलना में दक्षिण के इतिहास का कोई भी युद्ध नहीं ठहर नहीं सकता। उस दिन तक इतनी गौरवपूर्ण विजय दक्षिण में भी किसी भी सेना को प्राप्त नहीं हुई थी।

इस भयानक युद्ध में मराठा सेना के बारह सौ सैनिक मारे गए थे, और घायलों की संख्या तो इतनी अधिक थी कि युद्धस्थल के निकट स्थित सभी गाँव घायल मराठा सैनिकों से भर उठे थे। दौलतराव सिन्धिया का दीवान यादवराव भास्कर भी इस युद्ध में मारा गया था। जब युद्ध अपनी चरम सीमा पर पहुँचा और ब्रिटिश अश्वारोहियों ने प्रबल आक्रमण किया, तभी रघूजी भोंसले युद्ध क्षेत्र से भाग निकला। उसके युद्धस्थल छोड़ने के बाद दौलतराव सिन्धिया कुछ समय तक तो डटा रहा, परन्तु जब उसने देखा कि अब विजय प्राप्त करना असम्भव है; तो उसने भी अपने सहयोगी रघूजी भोंसले का अनुकरण किया। इस युद्ध में मराठा सवारों ने कोई प्रशंसनीय कार्य नहीं किया, बल्कि भागने में ही उन्होंने अपनी कुशलता का प्रदर्शन किया। यद्यपि विभिन्न क्षमता और विभिन्न प्रकार की टुकड़ियों के असमान संगठन के कारण मराठा सेना पराजित हुई, परन्तु सिन्धिया की नवीन ढंग पर प्रशिक्षित टुकड़ियों ने अपने पुराने गौरव की रक्षा की और शीघ्र मैदान नहीं छोड़ा। उसके तोपखाने के सैनिक अन्तिम क्षण तक अपनी-अपनी तोपों

पर डटे रहे। डिबाइन द्वारा प्रशिक्षित सिन्धिया की पुरानी आठ बटालियनों ने दृढ़ता धैर्य, और वीरता से युद्ध किया। सिन्धिया की पराजय का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण कारण यह था कि उसके कुशल और अनुभवी यूरोपियन सेना नायकों ने युद्ध शुरू होते ही उसका साथ छोड़ दिया और अंग्रेजों से जा मिले जिसके फलस्वरूप, कुशल अफसरों के अभाव में उसकी बटालियनों को पर्याप्त असुविधा का सामना करना पड़ा। इस प्रकार, युद्ध प्रारम्भ होते ही, सिन्धिया का साथ छोड़ने वाले अफसरों में से अधिकांश अंग्रेज ही थे। असाई के भयानक संग्राम के प्रारम्भ होने के पूर्व ही ब्रिटिश सरकार ने एक खुली घोषणा की थी जिसमें यूरोपियनों और देशी अफसरों को सम्बोधित करते हुए कहा गया था कि यदि वे सिन्धिया का पक्ष छोड़कर ब्रिटिश सेना में सम्मिलित हो जायेंगे तो उन्हें ब्रिटिश सरकार द्वारा भी उतना ही वेतन दिया जायगा, जितना कि वे दौलतराव सिन्धिया की सेना में प्राप्त करते हैं। इस घोषणा में समस्त यूरोपियनों को सम्मिलित कर लिया गया था और जहाँ तक अंग्रेज अफसरों का सम्बन्ध है, ब्रिटिश सरकार की इस घोषणा के अनुसार सिन्धिया के अंग्रेज अफसरों का ब्रिटिश सेना में सम्मिलित हो जाना उचित एवम् न्यायपूर्ण ही था।*

असाई के इस निर्णायक युद्ध के प्रारम्भ होने तक भी, विभिन्न समस्याओं में उलझे रहने के कारण कर्नल स्टीवेन्सन ब्रिटिश सेना में सम्मिलित होने का अवसर न पा सका। अत्यधिक जल्दबाजी करने पर भी वह २४ तारीख की शाम के पूर्व जनरल वेलसली के पास न पहुँच सका। वह जब ब्रिटिश कैम्प में पहुँचा उस समय मराठों के कदम लगभग उखड़ चुके थे। जनरल वेलसली के आदेश पर स्टीवेन्सन तुरन्त शत्रुपक्ष की पैदल सेना का पीछा करने के लिए रवाना हो गया। इस अनियमित मराठा पैदल सेना ने उसका सामना न करने के ध्येय से नर्वदा नदी को पार कर लिया, परन्तु कर्नल स्टीवेन्सन ने उनका पीछा करना नहीं छोड़ा। परन्तु वास्तव में सिन्धिया भोंसले गुट की सेना को मुख्य भाग ने पश्चिम दिशा की ओर प्रयाण कर दिया था और जैसा कि अंग्रेज अनुमान लगा रहे थे, उनका इरादा कक्षरंबरी घाट से होते हुए पूना जाने का था। अपने इसी अनुमान के फलस्वरूप जनरल वेलसली अजन्ता घाट के दक्षिण की ओर ही रुका रह गया, साथ ही उसने कर्नल स्टीवेन्सन को बुरहानपुर के नगर को अपने अधिकार में कर लेने का आदेश दिया। जनरल वेलजली की इच्छा थी कि इसी झटके में असीरगढ़ के मजबूत किले को भी ध्वस्त कर दिया जाय और उसने कर्नल स्टीवेन्सन को इस सम्बन्ध में भी आवश्यक निर्देश दिया। उसके आदेशानुसार कर्नल स्टीवेन्सन ने इन दोनों किलों की तरफ प्रयाण किया। सर्वप्रथम उसने बुरहानपुर पर हमला किया और बड़ी आसानी से इस पर अधिकार प्राप्त कर लिया। इस समृद्धिशाली शहर को स्टीवेन्सन ने खूब लूटा, तत्पश्चात् वह असीरगढ़ की तरफ बढ़ा और २१ अक्टूबर को इस मजबूत किले पर भी अधिकार कर लिया। इस किले पर अधिकार करने में भी उसे अधिक

---

* सिन्धिया की सेना के विश्वासघातक यूरोपियन अफसरों के विषय में मेजर बी० डी० बसु लिखता है 'माधोजी सिन्धिया ने वारेन हेस्टिंग्ज के कहने में आकर कुछ यूरोपियन अफसरों को···अपनी सेना में उच्च पदों पर नियुक्त कर रक्खा था × × × माधोजी सिन्धिया के उत्तराधिकार को अपने पितामह की गलती का फल भुगतना पड़ा।

'× × × ये सब केवल धन के उपासक थे × × × इन यूरोपियन कर्मचारियों की कुसमय की विश्वासघातकता ने दौलतराव सिन्धिया को सबसे सबसे अधिक धक्का पहुँचाया'।

हानि नहीं उठानी पड़ी। खानदेश के जिले भी इन विजयों के परिणाम स्वरूप अंग्रेजों के हाथ लग गए जिनका शासन प्रबन्ध अस्थायी तौर पर हैदराबाद राज्य के राजस्व अधिकारियों के हाथ में छोड़ दिया गया।

तत्पश्चात् सिन्धिया के गुजरात स्थित क्षेत्रों पर आक्रमण करने की योजना बनाई जाने लगी। गुजरात पर आक्रमण करने के लिए जो सेना तैनात की गई थी, वह प्रत्यक्ष रूप से जनरल वेल्सली के संचालन में थी। उसके निर्देशानुसार कर्नल मरे ने लेफ्टीनेन्ट कर्नल बूडिंगटन के नेतृत्व में एक शक्तिशाली सैनिक दस्ते को सिन्धिया के गुजरात स्थित क्षेत्रों पर अधिकार करने के लिए भेज दिया। कर्नल बूडिंगटन ने सर्वप्रथम भड़ौच के सुरक्षित नगर पर आक्रमण किया और २९ अगस्त को इस नगर पर अधिकार कर लिया। भड़ौच पर अधिकार कर लेने के पश्चात् बूडिंगटन ने पवनगढ़ के पहाड़ी तथा शक्तिशाली किले की ओर प्रयाण किया। पहले उसने इस किले से जुड़े हुए चम्पानेर नगर पर आक्रमण किया और उसे अपने अधिकार में कर लिया तत्पश्चात् उसने पवनगढ़ पर आक्रमण किया। इस किले की रक्षक सेना ने अधिक समय तक बूडिंगटन का मुकाबिला नहीं किया और १७ सितम्बर को आत्मसमर्पण कर दिया।

जिस समय भारतवर्ष के पश्चिमी भाग में ब्रिटिश सेनाओं को सफलता पर सफलता प्राप्त होती जा रही थी और सिन्धिया के एक-एक किले पर उनका अधिकार होता जा रहा था, उसी समय भारत के उत्तरी और पूर्वी भाग में भी इससे कम महत्त्वपूर्ण घटनाएँ नहीं घटित हो रही थीं। महादजी सिन्धिया ने जिस समय उत्तर भारत में अपने राज्य का विस्तार कर रहा था और अनेक महत्त्वपूर्ण स्थानों एवम् किलों पर अधिकार कर लिया था उसी समय से अंग्रेज इन स्थानों के महत्व को समझे बैठे थे तथा इन स्थानों को अपने अधिकार में कर लेने में व्यग्र थे, परन्तु अभी तक इसके लिए उन्हें कोई उचित अवसर न मिल सका था। ये स्थान इतने निरापद और सामरिक दृष्टि से इतने अन्य सुरक्षित थे कि इन्हीं के बल पर महादजी सिन्धिया ने आधुनिक ढंग की प्रशिक्षित सेनाओं का संगठन एवम् विकास किया। यद्यपि भारत में ब्रिटिश सरकार के अस्तित्व को बनए रखने के लिए अंग्रेजों को सिन्धिया की इन प्रशिक्षित बटालियनों से उतने आतंकित नहीं थे जितना कि फैली हुई मराठा नरेशों की विशाल सेनाओं से उन्हें भय था। परन्तु फिर भी एक दृष्टि से अंग्रेज सिन्धिया की इन बटालियनों को खतरनाक समझते थे और वह यह था कि महादजी सिन्धिया ने इन बटालियनों को संचालन का भार फ्रांसीसियों पर छोड़ दिया था एवं उसके अधिकांश सैनिक अधिकारी भी फ्रांसीसी ही थे। अंग्रेजों को आशंका थी कि ये फ्रांसीसी अधिकारी देशभक्ति की भावना से उबाल खा कर कभी भी अपने देशवासियों को निमंत्रित करके उन्हें पूर्व विजय के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं और उनके अस्तित्व को खतरा पहुँचा सकते हैं। ऐसी हालत में सिन्धिया की सेना में नियुक्त ये फ्रासीसी नागरिक अपने अपने देशवासियों को काफी मदद पहुँचा सकते थे क्योंकि उनके हाथ में सिन्धिया की समस्त शक्तिशाली तोपें और एक काफी शक्तिशाली सेना थी।

अब हम दक्षिण की ओर लौटेंगे और देश के इस भाग में परस्पर संघर्षरत सेनाओं का विवरण देने का प्रयत्न करेंगे।

जब सिन्धिया-भोंसले दल ने देखा कि जनरल वेल्सली ने घाट को पार नहीं किया है बल्कि वह अपनी पूरी सेना सहित दक्षिण दिशा की ओर रुख किए औरङ्गाबाद की ओर बढ़ता चला जा रहा है और इसके साथ-साथ कर्नल स्टीफेन्सन ने भी बुरहानपुर के विरुद्ध कूच कर दिया है

तो उन्होंने तुरन्त आगे बढ़कर उनके मार्ग को अवरुद्ध करके उनकी योजना को असफल बना देने का निश्चय किया और अंग्रेजों का पीछा करने की तैयारियाँ की जाने लगीं। जब जनरल वेलसली को मराठों की इस योजना के विषय में जानकारी प्राप्त हुई तो उसने तुरन्त अपना मार्ग परिवर्तित कर दिया और औरङ्गाबाद की दिशा में जाने के बजाय उत्तर की ओर लौट पड़ा और अजन्ता घाट को श्रेणियों से नीचे उतर आया। जब दौलतराव सिन्धिया को जनरल वेलसली की वापसी का समाचार प्राप्त हुआ तो उसने अपनी यात्रा स्थगित कर दी। इसके पहले अंग्रेजों से युद्ध होने से लेकर अब तक सिन्धिया और भोंसले की सेना ने कन्धे से कन्धा मिलाकर शत्रुओं से मोर्चा लिया था, परन्तु अब उन्होंने अलग होने का निश्चय कर लिया था। अतः दौलतराव सिन्धिया के रुक जाने पर भी रघूजी भोंसले आगे बढ़ता हो गया। अंकी टंकी नामक दर्रे को पार करते हुए भोंसले की सेना ने दक्षिण की तरफ बढ़ना जारी रक्खा। जनरल वेलसली ने उसे इस प्रकार ताबड़तोड़ दक्षिण की ओर बढ़ते देखकर अनुमान लगाया कि सम्भवतः निज़ाम अली के राज्य में लूटपाट मचाना ही उसके इस अभियान का उद्देश्य हैं। चूंकि निज़ाम अली अपनी सुरक्षा के लिए एकमात्र ब्रिटिश सरकार पर ही निर्भर था, अब इस ज़िम्मेदारी के कारण, निज़ाम-अली के क्षेत्र की सुरक्षा को खतरे में देखकर जनरल वेलसली को चिन्ता हुई और इस संकट को टालने के उद्देश्य से वह पुनः अजन्ता घाट की श्रेणियों पर चढ़ा। वह औरङ्गाबाद को पार करता हुआ दक्षिण की ओर रघूजी भोंसले का पीछा करने के उद्देश्य से बढ़ता ही चला गया और शीघ्र ही उस स्थान के निकट पहुँच गया जहाँ कि रघूजी भोंसले का कैम्प पड़ा हुआ था। जनरल वेलसली को अपने इतने समीप देखकर रघूजो भोंसले बहुत ही भयभीत हुआ। उसे वेलसली द्वारा अपने ऊपर रात्रिकालीन आक्रमण किए जाने की इतनी अधिक आशंका हो गई कि उसने केवल ४८ घन्टों में पाँच बार अपने कैम्प के स्थानों का परित्याग करके दूसरे स्थानों पर कैम्प लगाया। इसी समय रघूजी भोंसले को पता लगा कि देशी सिपाहियों की तीन कम्पनियों तथा मैसूर के अश्वारोहियो की एक टुकड़ी संरक्षण में खाद्य सामग्री से लदे हुए १४०० बैल इसी क्षेत्र से गुज़र रहे हैं। ३१ अक्टूबर को उसने इन बैलों को मार कर खाद्य सामग्री को लूट लेने के उद्देश्य से अपने पाँच हज़ार अश्वारोहियों को रवाना किया। खाद्य सामग्री के साथ चलने वाले दल की कमान कैप्टेन बेनेस के हाथ में थी। अम्बेर नामक गाँव के पास इन दोनों दलों की मुठभेड़ हुई। कैप्टेन बेनेस ने अत्यन्त वीरतापूर्वक इन मराठा सवारों का सामना किया और उन्हें भगा देने में सफल हुआ जिसके फलस्वरूप उसके संरक्षण में रवाना किया गया सारा सामान सुरक्षित रूप से अंग्रेजों के कैम्प में पहुँच गया; इस मुठभेड़ में कैप्टेन बेनेस के दो सौ बैल काट डाले गए। इस घटना के कुछ ही समय बाद जनरल वेलसली ने देखा कि अब रघूजी भोंसले अपने राज्य क्षेत्र की ओर वापस जाने का इरादा कर रहा है तो उसने भी कोई छेड़छाड़ नहीं की और उसका पीछा छोड़ दिया। उसने एक बार पुनः उत्तर की ओर अपने कदम बढ़ाये और घाट को श्रेणियों को पार करता हुआ राजुश नामक स्थान पर वह श्रेणियों से नीचे उतरा। इस समय उसके आदेशानुसार कर्नल स्टोवेन्सन सिन्धिया के अधीनस्थ गाविलगढ़ किले पर घेरा डालने के प्रयत्न में था। अब उसकी सहायता करने के उद्देश्य से, जनरल वेलसली ने भी अपनी सेना के साथ गाविलगढ़ की ओर कूच कर दिया।

यद्यपि सिन्धिया और अंग्रेजों के बीच युद्ध छिड़ा हुआ था, परन्तु असाई के युद्ध के बाद से ही सिन्धिया के नाम युद्धबन्दी के अनेक प्रस्ताव आते रहे थे, परन्तु जनरल वेलसलो ने इन

शान्ति प्रस्तावों के प्रति उदासीन भाव ग्रहण कर लिया था। इन शान्ति प्रस्तावों को सिन्धिया के नाम से भेजने वाला व्यक्ति या बालाजी कुन्जर जो पेशवा का अन्यतम सहायक और अत्यन्त विश्वास पात्र एजेन्ट था। सिन्धिया के पक्ष व्याप्त युद्धलिप्सा के विषय में अनभिज्ञ बालाजी कुन्जर ने असाई-संग्राम के पन्द्रह दिन बाद ही ब्रिटिश सरकार के नाम एक शान्ति प्रस्ताव भेजा जिसमें उसने अनुरोध किया था कि संधि की शर्तों को निश्चित करने के लिए दौलतराव सिंधिया के कैम्प में ब्रिटिश सरकार तथा निजाम अली के एक-एक प्रतिनिधियों को भेज दिया जाय। परन्तु इस शांति प्रस्ताव पर विचार करने में कई ऐसी बाधाएँ और भावनाएं ब्रिटिश सरकार के समक्ष उपस्थित हुईं कि इस प्रस्ताव को अमान्य कर दिया गया। सर्वप्रथम कारण यह था कि बालाजी कुजंर कोई आधिकारिक और विधिसम्मत एजेन्ट नहीं था जिसके प्रस्ताव को गम्भीरता से ग्रहण किया जाता। इसके अतिरिक्त एक और जबरदस्त बाधा थी, अंग्रेजों के अनुसार शान्ति प्रस्ताव पर विचार करने के लिए सिन्धिया के कैम्प में ब्रिटिश प्रतिनिधि के जाने का अर्थ यह है कि अंग्रेज ही मराठों के सामने निर्बल पड़कर युद्धबन्दी का प्रस्ताव रख रहे हैं और मराठे अपने स्वभावानुसार इस प्रकार की अफवाह फैला देने में जरा भी कोर कसर नहीं लगायेंगे कि अंग्रेजों ने उनके सामने घुटने टेक दिये। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी थे जिससे कि जनरल वेलसली ने बाला जी कुन्जर के शान्ति प्रस्तावों पर बिलकुल विचार ही नहीं किया, उसने इतना अवश्य कहलवा दिया कि सन्धि या युद्धबन्दी के सम्बन्ध में यदि सिन्धिया भोंसले पक्ष उसके पास अपने दूत भेजेंगे तो यह सहर्ष उनका स्वागत करेगा और उनकी बातों पर विचार करेगा। इसके पश्चात् दूसरा शान्ति प्रस्ताव भेजा गया। अप्पा देसाई नेपणकर के मध्यम से जो कि पेशवा के निजी सेवकों में एक था। इस सन्धि प्रस्ताव के फलस्वरूप दौलतराव सिन्धिया के पक्ष से सन्धि की शर्तों को निश्चित करने के उद्देश्य से जसवन्तराव घोरपड़े, और न रूपन्त नामक एक ब्राह्मण मेजर जनरल वेलसली के कैम्प में पहुँचे। परन्तु चूंकि इस बार भी इन दूतों के पास कोई प्रामाणिक परिचय पत्र नहीं था अतः उनकी प्रामाणिकता पर शंका प्रकट करने का बहाना लेकर वेलसली ने उन्हें उल्टे पाँव वापस लौटा दिया, उन्हें भविष्य में सिन्धिया के हस्ताक्षर और मुहर युक्त सनद के बिना इस प्रकार का प्रस्ताव लेकर न आने का निर्देश भी दिया। इसी समय दौलतराव सिन्धिया ने एक पत्र द्वारा जनरल वेलसली को सूचित किया कि उसने अपनी तरफ से जसवन्सराव घोरपड़े को राजदूत के रूप में सन्धि वार्ता के लिए नहीं भेजा है। परन्तु सिन्धिया द्वारा अप्पा देसाई नेपणकर के नाम लिखे गये एक पत्र को दिखाकर अप्पा देसाई ने वेलसली को यह विश्वास करा दिया कि जसवन्तराव घोरपड़े और नरू पन्त वास्तव में सिन्धिया द्वारा ही सन्धि वार्ता के लिए भेजे गये हैं। अप्पा देसाई की बात पर विश्वास करके जनरल वेलसली ने उनको अपने कैम्प में ठहरने की अनुमति दे दी, परन्तु वह उस समय तक उनसे सन्धिवार्ता करने के लिए तैयार नहीं हुआ जब तक कि जसवन्तराव घोरपड़े द्वारा अधिकार पत्र के सम्बन्ध में सिन्धिया को लिखे गये पत्र का सन्तोषजनक उत्तर नहीं आ जाय। सन्धिवार्ता के लिए निश्चित समय से कुछ घन्टे बाद ही सिन्धिया का प्रामाणिक पत्र आ पहुँचा जिसमें जसवन्तराव घोरपड़े और नरूपन्त को सिन्धिया का राजदूत स्वीकार किया गया था। परन्तु सन्धिवार्ता के मार्ग में एक बाधा पुनः खड़ी हो गई। इस अधिकार पत्र में दोनों राजदूतों को यह अधिकार नहीं दिया गया था कि वे हरजाने के रूप में सिन्धिया राज्य का कोई इलाका अंग्रेजों को देने का वादा करें, जबकि ब्रिटिश सरकार ने सुलह तथा शान्ति की आधारभूत शर्तं यही रक्खी थी कि पहले सिंधिया युद्ध में हुई हानियों की क्षति पूर्ति के रूप में अपना कोई इलाका अंग्रेजों को सौंप दें और तब सन्धि की बात

करें। अब जसवन्तराव घोरपड़े ने इस सम्बन्ध में पुनः दौलतराव सिन्धिया को पत्र लिखा, परन्तु इस पत्र का उत्तर आने के पूर्व ही घोरपड़े ने वेलसली से इन दोनों मराठा नरेशों (सिंधिया व भोंसले) के साथ युद्ध विराम की स्थिति को बनाये रखने का अनुरोध किया। सिन्धिया के सम्बन्ध में २३ नवम्बर को युद्धविराम के अनुरोध को स्वीकार कर लिया गया, परन्तु इसके लिए अंग्रेजों की तरफ से यह शर्त रक्खी गई कि दौलतराव सिंधिया अपनी सेना को एलिचपुर से कम से कम २० कोस पूरब की ओर ही रक्खे रहे और अपने घोड़ों के लिए चारे का प्रबन्ध इससे भी पूरबवर्ती क्षेत्र की ओर से करे। रघूजी भोंसले के साथ युद्धविराम के प्रस्ताव को अंग्रेजों ने स्वीकार नहीं किया क्योंकि इस कार्य के लिए उसने न तो अपने राजदूतों को ही भेजा था और न युद्धविराम के लिए कोई इच्छा ही प्रकट की थी।

जसवन्तराव घोरपड़े के साथ जनरल वेलजली ने जिन शर्तों पर युद्धविराम की स्थिति को बनाये रखना स्वीकार किया था, उनमें से एक भी शर्त का पालन सिंधिया ने नहीं किया और अपनी सेना के साथ उसी स्थान पर कैम्प डाले पड़ा रहा। इस समय रघूजी भोंसले का कैम्प अरगांव में पड़ा हुआ था जो कि गाविलगढ़ के निकट स्थित था। रघूजी भोंसले की सेना का संचालन भार इस समय उसके भाई वेणका जी मन्या बापू के हाथ में था। दौलतराव सिंधिया की अश्वारोही सेना भोंसले की सेना से केवल पांच मील की दूरी पर स्थित सिरसौली नामक गाँव में पड़ी हुई थी। मेणकाजी के पास न केवल अपने भाई की अश्वारोही सेना थी, बल्कि भोंसले की समस्त पैदल सेना भी उसी के हाथ में थी। यही नहीं, उसके पास तोपें भी काफी संख्या में थी। इधर जनरल वेलसली के साथ ब्रिटिश सेना इस संयुक्त सेना पर आक्रमण करने के लिए बढ़ी चली आ रही थी। सिन्धिया के राजदूत घोरपड़े और नरूपन्त ने बारम्बार जनरल वेलसली के इरादे को बदलने का प्रयत्न किया परन्तु जनरल वेलसली ने स्पष्ट कह दिया कि रघूजी से भोंसले के साथ ब्रिटिश सरकार ने युद्ध विराम की घोषणा की ही नहीं है और जहाँ तक सिंधिया का सम्बन्ध है, ब्रिटिश सरकार स्वयम् को किसी भी संधि से बन्धा नहीं समझती क्योंकि सिंधिया ने युद्धविराम की एक भी शर्त को पूरा नहीं किया है। इस समय तक कर्नल स्टीवेन्सन इन दोनों मराठा सहगामियों के बहुत नजदीक आ पहुँचा था। २८ नवम्बर को उनके एकदम समीप पहुँचकर स्टीवेन्सन जनरल वेलसली की बाट देखने लगा ताकि दोनों के सेनाओं को संयुक्त करके सिन्धिया भोंसले पक्ष की सेना पर प्रबल आक्रमण किया जा सके। दूसरे ही दिन जनरल वेलसली के आ जाने के बाद स्टीवेन्सन और वेलसली को सेनाओं ने संयुक्त रूप से मराठा सेना पर आक्रमण करने के इरादे से मराठों के कैम्प की ओर चल पड़ी। जब मराठों ने ब्रिटिश सेना के आगे बढ़ने का समाचार सुना तो उन्होंने अपने वर्तमान कैम्प के शिविरों को उखाड़ डाला और अन्यत्र मोर्चेबन्दी की। जब जनरल वेलसली मराठों द्वारा छोड़े गये स्थान पर पहुँचा उस समय भी मराठा सेना की कुछ टुकड़ियाँ वहाँ पड़ी रह गई थीं। ये मराठा टुकड़ियाँ ब्रिटिश सेना से मोर्चा लेने के लिए बढ़ीं, उनके इस साधारण आक्रमण को मैसूर की अश्वारोही टुकड़ी ने झेला और उन्हें पुनः पीछे लौटने पर विवश कर दिया। जनरल वेलसली ने भागते हुए मराठा सैनिकों का पीछा करना उचित नहीं समझा और काफी दूर तक आगे की ओर बढ़ता चला गया। अन्त में एक उपयुक्त स्थान को देखकर उसने कैम्प डालने का विचार किया और अपनी सेना को तत्सम्बन्धी निर्देश दे दिए। परन्तु अभी शिविरों को गाड़ना प्रारम्भ ही किया गया था कि इसी समय मराठा अश्वारोहियों की एक जबरदस्त टुकड़ी सामने से आती हुई दिखाई पड़ी। इस बार मराठे अधिक संख्या में थे। मैसूर के अश्वारोहियों ने पुनः आगे बढ़कर मराठों की गति को

अवरुद्ध करने का प्रयत्न किया, परन्तु इस बार मराठों के वेग को रोक सकना अकेले मैसूर के अश्वारोहियों के बूते के बाहर की बात थी। वेलसली ने परिस्थिति का सूक्ष्म अध्ययन किया और मैसूर के सवारों को और मदद पहुँचाना उसे आवश्यक प्रतीत हुआ। जनरल वेलसली स्वयम् अपने नेतृत्व में कुछ टुकड़ियों को लेकर अपने सवारों की सहायता के लिए आगे बड़ा। जनरल वेलसली के अनुसार इस समय सिंधिया तथा भोंसले की संयुक्त सेनाएँ एक लम्बे-चौड़े और खुले मैदान में पंक्तिबद्ध होकर खड़ी थी। इस समय उनकी स्थिति अरगांव के बिल्कुल सामने थी। यद्यपि अब दिन का अधिकाँश भाग और संध्या घिरी आ रही थी, फिर भी जनरल वेलसली ने मराठा सेना पर निर्णायक आक्रमण करने का निश्चय किया। वह जब तक मराठा सैन्य के पास नहीं पहुँचा तब तक उसकी सेना कई पंक्तियों में चलती रही, परन्तु शत्रु सैन्य के निकट पहुँचते ही उसने अपनी सेना को दो पंक्तियों में स्थित कर लिया, पहली पंक्ति पैदल सैनिकों की बनी और दूसरी पंक्ति में अश्वारोही खड़े हुए। शत्रु के एकदम समीप पहुँचकर सेना को इस प्रकार पंक्ति बद्ध करने की क्रिया से कुछ समय के लिए अव्यवस्था अवश्य उत्पन्न हो गई, क्योंकि इसी समय ब्रिटिश सेना को पंक्ति बद्ध होने की क्रिया में उनकी क्षणिक अव्यवस्थित परिस्थिति को देखकर मराठों की तोपों ने आग उगलना प्रारंभ कर दिया था, परन्तु शीघ्र ही पंक्तिबद्ध होने के साथ ही ब्रिटिश सेना का आत्मविश्वास पुनः लौट आया और वे पूर्ण व्यवस्थित एवम् अनुशासिस ढङ्ग से दृढ़तापूर्वक मराठों की ओर बढ़ चले। मराठा सैन्य के ५०० सैनिकों के एक दस्ते ने जिसमें से अधिकांश सैनिक सम्भवतः परशियन थे—७४वीं और ७८वीं रेजिमेन्ट पर प्रबल धावा किया, यद्यपि इन रेजिमेंटों के सम्मुख उनकी संख्या नगण्य थी परिणाम स्वरूप इन ५०० जवानों में से सम्भवतः एक भी जीवित न बचा। सिंधिया के अश्वारोही सैनिकों का नेतृत्व गोपालराव भाऊ कर रहा था। उसने मद्रास के सिपाहियों की छठी रेजीमेन्ट की पहली बटालियन पर आक्रमण किया, परन्तु उसका यह आक्रमण असफल रहा, सिंधिया के अश्वारोहियों को पीछे हटना पड़ा और उनका नायक गोपालराव भाऊ बुरी तरह से घायल हो गया। घुड़सवारों के पीछे हटने तथा गोपालराव भाऊ के घायल होने से मराठा सैन्य में अव्यवस्था फैल गई और वे धक्कम-धुक्की करते हुए इधर-उधर भागने लगे। मराठों को भागते देखकर ब्रिटिश अश्वारोहियों ने उनका पीछा किया। इस कार्य में मैसूर के अश्वारोहियों तथा मुगल सवारों ने भी उनका साथ दिया। इस थोड़ी ही देर के युद्ध में ब्रिटिश सेना के ३४६ सैनिक काम आये घायल हुए या लापता हो गए। मराठों की सेना के हताहतों की संख्या का कहीं भी कोई उल्लेख नहीं किया गया है; परन्तु फिर भी कहा जाता है कि अरगांव के युद्ध में पर्याप्त मराठा सैनिक खेत रहे।

अरगाँव के युद्ध में मराठा सेना को पराजित करने के पश्चात् ब्रिटिश सेना ने गाविलगढ़ की तरफ से कूच कर दिया। गाविलगढ़ पर आक्रमण करने का भार मुख्यतः कर्नल स्टीवेन्सन की डिवीजन को सौंपा गया। कर्नल स्टीवेन्सन ने किले के उत्तरी तरफ से आक्रमण किया। इस किले पर घेरा डालने और तोपों को उपयुक्त स्थान पर स्थिति करने में उसके डिवीजन को बहुत अधिक श्रम करना पड़ा। कई दिनों तक लगातार प्रयत्न किए जाने के पश्चात् उसकी डिवीजन ने १४ तारीख को किले के बाहरी दीवाल को ध्वस्त करने में सफलता प्राप्त की और दूसरे दिन किले का बाहरी भाग पूर्णतः ब्रिटिश सेना के अधिकार में आ गया। तत्पश्चात् किले के भीतरी भाग में प्रवेश करने के लिए प्रयत्न किए जाने लगे। ९४ वी बटालियन की लाइट कम्पनी का नेतृत्व कैप्टेन कैम्पवेल कर रहा था। इस कम्पनी के सैनिकों ने किले के भीतरी भाग में प्रवेश करते ही फाटक

को खोल दिया। बाहर रुकी हुई शेष टुकड़ियाँ भी किले के भीतर पहुँच गईं और किला पूर्णतः उनके अधिकार में आ गया।

इस संघर्ष के दौरान में ही दो एक दिनों का अन्तर देकर पन्द्रह दिनों में कई बार मराठों ने जनरल वेल्सली के पास सन्धि प्रस्ताव भेजे और शीघ्र ही युद्ध विराम के लिए कामना प्रकट की। रघू जी भोंसले ने अपने वकील की हैसियत से यशवन्तराव रामचन्द्र नामक व्यक्ति को जनरल वेल्सली के पास भेजा। यशवन्तराव रामचन्द्र के समक्ष यह सिद्ध करने का सतत प्रयत्न किया गया कि ब्रिटिश मराठा के सूत्रपात करने में रघूजी भोंसले ने कोई भाग नहीं लिया था 'और संयोगवश ही इस संघर्ष में खिंच गया था। रघूजी भोंसले के वकील ने, अपने राज की सफाई पेश करते हुए जनरल वेल्सली से कहा कि अंग्रेजों के साथ वेसीन में पेशवा ने जो सन्धि कर ली थी, वह मराठों की परम्परा एवम् उनके विधान के सर्वथा विपरीत थी। क्योंकि मराठा मण्डल के प्रमुख स्तम्भों, अर्थात् सिंधिया, भोंसले, होलकर और गायकवाड़ के परामर्श के बिना इस प्रकार की सन्धि कर लेने का अधिकार पेशवा को नहीं था यशवन्तराव रामचन्द्र ने आगे कहा है कि रघू जी भोंसले के हृदय में अंग्रेजों के प्रति कोई वैरभाव नहीं था और उसने अपने राज्यक्षेत्र को इसलिये नहीं छोड़ा था या सिंधिया से इसलिये नहीं मिला था कि वह अंग्रेजों का विरोध करना चाहता था और सिंधिया के साथ मिलकर अंग्रेजों के प्रभाव को समाप्त नहीं करना चाहता था, वल्कि वास्तव में वह होलकर और सिंधिया के बीच बढ़ते हुए विरोध को मध्यस्थता द्वारा समाप्त करने के इरादे से सेना के साथ अपनी राजधानी से निकला था। उसने यह भी कहा कि तत्कालीन परिस्थितियों में जसवन्तराव होलकर के मुकाबले में दौलतराव सिंधिया निर्बल पड़ रहा था और यदि भोंसले ने सिंधिया की इस अवसर पर सहायता न की होती तो होलकर सिंधिया को पीस डालता। यशवन्त राव रामचन्द्र द्वारा प्रस्तुत की गई भोंसले के व्यवहारों की इस सफाई पर जनरल वेल्जली ने भोंसले के कुछ ब्रिटिश विरोधी कार्यों का उल्लेख किया 'जिनमें से मुख्य था, निजाम अली की सरहद पर अपनी सैनिकों को एकत्रित करना, जबकि भोंसले भली-भाँति जानता था कि निजाम अली अंग्रेजों का मित्र है और उसकी सुरक्षा का भार ब्रिटिश सरकार पर है। इस आरोप के पश्चात् जनरल वेल्जली ने इस तथ्य का उल्लेख भी किया कि जब सिंधिया और भोंसले की सेनाएं संयुक्त होकर युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व पड़ाव डाले पड़ी थीं तो उसने उनसे अपने-अपने राज्यक्षेत्र में लौट जाने का अनुरोध किया था, परन्तु सिंधिया के साथ साथ रघू जी भोंसले ने भी उसके प्रस्ताव को अमान्य कर दिया था। वेल्सली ने यशवन्तराव रामचन्द्र की इस बात का भी खण्डन किया कि अपने प्रमुख सरदारों के परामर्श के बिना पेशवा को किसी प्रकार का सन्धि का अधिकार नहीं है। यशवन्तराव रामचन्द्र के इस बात के उत्तर में, कि रघू जी भोंसले ने सिंधिया तथा होलकर के परस्पर कार्यों में इसलिए हस्तक्षेप किया था कि होलकर के मुकाबिले में सिंधिया कमजोर पड़ रहा था, उपहासपूर्ण शब्दों में जनरल वेल्सली ने कहा कि निर्बल सिंधिया को सबल बनाने और होलकर की शक्ति को कमजोर करने के लिए होलकर के परिवार के समस्त क्षेत्रों को सिंधिया के हाथ में दे देना वास्तव में मध्यस्थता करने का एक असाधारण और आद्वतीय उदाहरण है। संक्षेप में, इस युद्ध और उसके परिणाम के सम्बन्ध में जनरल वेल्सली में काफी देर तक और काफी विस्तार में बाद विवाद हुआ, तत्पश्चात् युद्ध विराम और सन्धि के शर्तों के विषय में और भी अधिक समय तक बाद विवाद हुआ और अन्त में १७ दिसम्बर को सन्धि की शर्तें निश्चित हो गई जिनके अनुसार रघू जी भोंसले, सेना साहब सूबा को, अपने निम्नलिखित क्षेत्रों एवम् अधिकारों को ब्रिटिश सरकार एवम् उसके

मित्रों के हवाले कर देने को कहा गया था—कटक प्रान्त तथा बालाशोर, वर्धा नदी के पश्चिम और नरनला तथा गविलगढ़ के पास स्थित पहाड़ियों के दक्षिण की ओर स्थित समस्त क्षेत्र और उनकी मालगुजारी में से भोंसले को मिलने वाला भाग। नरनला और गाविलगढ़ के किले को रघूजी भोंसलें के ही अधिकार में रहने देने का निश्चय किया गया, साथ ही इन किलों के दक्षिण ओर स्थित जिलों को भी भोंसले के ही अधिकार में दे दिया गया, जिसकी मालगुजारी से प्राप्त होने वाली वार्षिक आय अनुमानतः चार लाख रुपए थी। अब तक घास दाना और चौथ आदि के रूप में सेना साहब सूबा की जितनी रकम निजाम अली के पास बकाया थी, उसके दावे को भी समाप्त कर दिया गया। इस सन्धि पत्र की एक शर्त के अनुसार पेशवा, निजाम अली तथा सेना साहब सूबा के बीच उत्पन्न होने वाले किसी भी विवादास्पद मामले का निपटारा करने के अधिकार को ब्रिटिश सरकार के हाथ में ही रखने का निश्चय किया गया। एक दूसरी शर्त के अनुसार बिना ब्रिटिश सरकार की आज्ञा के रघूजी भोंसले किसी ऐसे यूरोपियन या अमेरिकन या अंग्रेज इंग्लैण्ड की प्रजा को अपने यहाँ आश्रय नहीं दे सकता था जिसके देश के साथ अंग्रेज संघर्षरत हों, या जिसको ब्रिटिश सरकार अपने हितों का विरोधी समझती हो। देवगाँव में यशवन्तराव रामचन्द्र तथा वेल्जली के माध्यम से ब्रिटिश सरकार और रघूजी भोंसलें के बीच जो सन्धिपत्र तैयार किया गया था उसकी प्रमुख शर्तें यही थीं। दोनों पक्षों के राजदूतों के एक दूसरे के दरबारों में रहने की व्यवस्था की गई। उस समय जनरल वेल्सली की सेना में एम० एलफिन्सटन फारसी के दुभाषिये के कार्य में सिद्धहस्त था। रघूजी भोंसले की राजधानी नागपुर में रेजिडेन्ट के रूप में उसी को नियुक्त किया गया।

रघूजी भोंसले के साथ तो इस प्रकार अंग्रेजों की सन्धि हो गई परन्तु सिंधिया के साथ चल रही सन्धिवार्ता का निपटारा होना इतना आसान नहीं था। रघूजी भोंसले की तरह सिंधिया अपने इलाकों को ब्रिटिश सरकार के हाथों सौंप देने के लिए तैयार नहीं था अतः युद्ध विराम तथा सन्धिवार्ता में वह अंग्रेजों को वह अधिक से अधिक समय तक उलझाये रखना चाहता था। अन्त में उसकी टाल मटोल से ऊब कर ब्रिटिश सरकार द्वारा उसे धमकी दी गई कि यदि वह अंग्रेजों द्वारा निर्धारित की हुई शर्तों पर संधि करने के लिए तैयार नहीं होता तो उसके सम्पूर्ण राज्य को बलात् छीन लिया जायगा। इस समय दौलतराव सिन्धिया की स्थिति बहुत निर्बल हो गई थी और वह किसी भी प्रकार से अंग्रेजों की प्रबल सैन्यशक्ति का सामना करने में समर्थ नहीं था, अतः अन्ततः उसे अंग्रेजों के प्रस्तावों को मानने के लिए विवश होना पड़ा। सिन्धिया तथा ब्रिटिश सरकार के बीच सरजी अंजंन गाँव में ३० दिसम्बर को सन्धि की समस्त शर्तें निशिचत कर ली गईं और सिंधिया ने सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर दिया, जिसकी शर्तों से उसका राजनैतिक प्रभाव लगभग समाप्त हो गया। इस सन्धि की शर्तों के अनुसार सिन्धिया ने गगा और यमुना नदियों के बीच के समस्त क्षेत्र, तथा राजस्थान में जयपुर, जोधपुर और गोहद के उत्तर की ओर स्थिति समस्त क्षेत्रों को ब्रिटिश सरकार एवम् उसके मित्रों को हवाले कर दिया परन्तु जयपुर के दक्षिण की ओर के इलाके तथा जयपुर और जोधपुर के बीच के क्षेत्रों को सिन्धिया ने अपने ही अधिकार में रखा। सिंधिया ने अहमदनगर तथा भड़ौच तथा उनसे जुड़े हुए जिलों पर से भी अपने दावे को समाप्त कर दिया। अजन्ता घाट और गोदावरी नदी के बीच स्थिति सिन्धिया का समस्त क्षेत्र भी इस सन्धि के अनुसार अंग्रेजों के हाथ में चला गया। यही नहीं, मुगल बादशाह, ब्रिटिश सरकार एवम् उसके मित्रों, पेशवा, गायकवाड़

तथा निजाम अली पर सिन्धिया के जो दावे थे, उसे उनका भी त्याग कर देना पड़ा। इसके अतिरिक्त उसने ऐसे राजाओं और जागीरदारों को भी अपने दावों से एवम् अधिकार से मुक्त कर दिया जो कि युद्ध की अवधि में ब्रिटिश सरकार के सहायक, मित्र एवम् अनुगामी हो गये थे, या भविष्य में हो जाने की आशा थी; ऐसे सभी राजाओं को उसने अपनी अधीनता से स्वतन्त्र कर देने की घोषणा की। जिस प्रकार बिना ब्रिटिश सरकार की आज्ञा के किसी भी यूरोपियन या अमरीकन को अपने राज्य में आश्रय न देने का वादा रघूजी भोंसले को करना पड़ा था, उसी आशय की प्रतिज्ञा दौलत राव सिन्धिया से भी कराई गई। उसको भी रघूजी भोंसले की तरह ही अपने दरबार में ब्रिटिश रेजिडेन्ट को रखने के लिए तैयार होना पड़ा। उसके दरबार में मेजर मैलकम को रेजीडेन्ट बना कर भेजा गया। युद्ध काल में ब्रिटिश सेना ने बुरहानपुर नगर, असीरगढ़, पवनगढ़ और दोहद किलों तथा उनसे सम्बन्धित जिलों पर अधिकार कर लिया था, अब इस सन्धि के अनुसार ये नगर, किले और जिले सिन्धिया को वापस कर दिए गए। इसके अतिरिक्त निर्धारित सीमा की उत्तर की तरफ स्थित धौलपुरबारी और राजकड़ा के जो जिले सिन्धिया को मुगल बादशाह द्वारा पारितोषिक रूप में दिए गए थे उन पर उसके अधिकार को पूर्ववत बना रहने दिया गया। कुछ जागीरें, जो सिन्धिया की पैतृक सम्पत्ति थी, या जो जागीरें उस पेशवा के आश्रितों के नाम लगा दी गई थी, उनको भी सिन्धिया के अधिकार में दे दिया गया। ब्रिटिश सरकार ने कुछ अन्य व्यक्तियों को भी जागीरें, या उनके बदले में पेन्शन के रूप में पन्द्रह लाख रुपया प्रतिवर्ष देने का वादा भी किया जो कि सिन्धिया की सेवा में नियुक्त थे। सिन्धिया या उसके पूर्वजों को इनाम में प्राप्त सभी गाँवों, जमीनों और क्षेत्रों को पुनः सिन्धिया तथा अन्य वास्तविक अधिकारियों को लौटा दिया गया, भले ही ऐसे क्षेत्र उस इलाके में स्थिति रहे हों जिन्हें सिन्धिया ने सन्धि के अनुसार अंग्रेजों को सौंप दिया था, परन्तु इसके साथ ही यह शर्त भी लगा दी गई कि ऐसी किसी भी जागीर या गाँव में किसी भी प्रकार का सैन्यदल नहीं रक्खा जा सकता, चाहे वह जागीर या क्षेत्र सिन्धिया के निजी राज्य क्षेत्र के उत्तर में स्थिति हो या दक्षिण में। इस संधिपत्र में ब्रिटिश सरकार ने प्रतिरक्षात्मक सन्धिव्यस्था को सिन्धिया की स्वेच्छा पर छोड़ दिया था, अर्थात् यदि सिन्धिया चाहता तो अपने राज्य में अंग्रेजों की सहायक सेना को रख सकता था जिसका व्यय उसके ऊपर न पड़ कर उन्हीं क्षेत्रों की आय में से दिया जाता जो सिंधियों के हाथ से ब्रिटिश सरकार के हाथ में चले गए थे। सुरजी अजन गाँव की इसी सन्धि के आधार पर, तथा इन्हीं शर्तों के साथ २७ फरवरी १८०४ ई. को बुरहानपुर में एक नई सन्धि की गई जिसमें जनरल वेल्सली ने रेजिडेन्ट मेजर मैलकन को ब्रिटिश सरकार के सर्वाधिकार सम्पन्न प्रतिनिधि बनाकर उसी को इस नवीन सन्धि का माध्यम बनाया था। इस सन्धि के अनुसार दौलतराव सिन्धिया को भी ब्रिटिश सरकार की सब्सीडियरी संधि में सम्मिलित कर लिया गया। अब सहायक सेना के रूप में ब्रिटिश सेना के ६००० सैनिक, आवश्यक तोपखाने के साथ सिंधिया के राज्य के समीप स्थायी रूप से रहने लगे, इस सहायक सेना के स्थायी निवास के लिए सिंधिया के राज्य की सीमा पर एक स्थान निश्चित किया गया जो कि ब्रिटिश राज्यक्षेत्र में स्थित था। इस प्रकार होलकर को छोड़कर मराठा मण्डल के सभी स्तम्भों ने बारी-बारी से ब्रिटिश सरकार के समक्ष घुटने टेक दिए।

सिन्धिया और भोसले की संयुक्त सेनाओं के साथ इतने लम्बे संग्राम तथा सन्धि के

फलस्वरूप जो क्षेत्र प्राप्त हुए, उन्हें ब्रिटिश सरकार तथा उस सहायकों में विभाजित कर डाला गया था। यह विभाजन उस सन्धि के अनुसार किया गया जो टीपू के विरुद्ध संघ बनाते समय की गई थी और जिसमें निजाम अली तथा पेशवा सम्मिलित थे। इसमें सबसे अधिक भाग मिला ब्रिटिश सरकार को क्यों कि इन युद्धों में ब्रिटिश सेना ने ही प्रमुख भाग लिया था।

हिन्दुस्तान में होने वाले युद्धों के दौरान में अनेक राजाओं और सरदारों ने जनरल लेक के साथ सन्धि कर लिया था, और इस प्रकार ब्रिटिश सरकार के मित्रों की सूची में सम्मिलित हो गए थे। ऐसे राजाओं में मुख्य थे, जयपुर, जोधपुर, बूँदी और महेरी के राजा, भरतपुर का जाट राजा, गोहद का राणा और मराठा सेनानायक अम्बाजी इंग्लिया। राजपूत राजाओं और भरतपुर के जाट राजा के साथ जो सन्धियाँ हुईं उनके अनुसार ब्रिटिश सरकार ने विदेशी या बाहरी आक्रामकों से उनके राज्यों की सुरक्षा की गारन्टी ली, उन्हें करो से मुक्त कर दिया, जिसके बदले में इन राजाओ ने वादा किया कि यदि अंग्रेजो द्वारा हाल ही में जीते गए क्षेत्रो पर किसी शक्ति ने आक्रमण किया तो वे अपनी सेनाओं द्वारा ब्रिटिश सरकार को ऐसे आक्रमणकारी का सामना करने में सहायता पहुँचाएँगे. उन्होने यह भी वादा किया कि बिना ब्रिटिश सरकार की अनुमति के वे किसी भी यूरोपियन को अपनी सेवा में नियुक्त नहीं करेंगे। इन राजपूत राजाओ तथा भरतपुर के राजा के साथ-साथ गोहद के राणा और अम्बाजी इग्लिया के साथ भी ब्रिटिश सरकार ने सन्धि किया था। पाठको को याद होगा कि सन् १७८४ ई० में महादजी सिन्धिया ने गोहाद के राणा पर विजय प्राप्त की थी और उसी समय से यह राज्य महादजी सिन्धिया और तत्पश्चात् दौलतराव सिन्धिया के अधिकार में बना रहा था। अम्बाजी इंगलिया के इतिहास से पाठक पूर्व परिचित हैं और उन्हें स्मरण होगा कि जब पैराँ पर से सिन्धिया का विश्वास उठ गया तो उसने अम्बाजी इंगलिया को पैराँ के स्थान पर अपना मुख्य सेनापति नियुक्त कर दिया था। अम्बाजी इंगलिया ही गोहद राज्य का मामिलतदार भी था। जब उसने देखा कि ब्रिटिश सेना हिन्दुस्तान में विजय पर विजय प्राप्त करती जा रही है तो उसने समझ लिया कि अब दौलतराव सिन्धिया का प्रभाव अधिक समय तक टिकने वाला नहीं है। सिन्धिया के पतन को अवश्यम्भावी समझ कर उसने इस भयानक विपत्ति में भी अपने स्वामी के साथ विश्वासघात किया, या विश्वासघात करने का दिखावा किया और अंग्रेजों के साथ गठबन्धन कर लिया। इस विश्वासघात के परितोषिक के रूप में, ब्रिटिश सरकार के साथ हुई संधि के अनुसार गोहद के प्रान्त में उसे भी हिस्सा मिला, इस प्रकार गोहद का राज्य दो भागों में विभाजित हो गया, और राणा तथा अम्बाजी इंगलिया को एक-एक भाग मिला, परन्तु ग्वालियर का किला उनमें से किसी के हाथ न लगा क्योंकि गोहद के राणा ने पहले ही इस किले को अंग्रेजों के हवाले कर दिया था। ब्रिटिश सरकार और अम्बाजी इंगलिया तथा गोहद के राणा के बीच जो संधि हुई उसकी सभी शर्तें उसी प्रकार की थीं, जैसी कि राजपूत राजाओं और भरतपुर के जाट राजा के साथ की गई थी। परन्तु एक अन्तर था कि गोहद के राणा को अपने राज्य में ब्रिटिश सेना की तीन बटालिनों को सहायक सेना के रूप में रखने के लिए तैयार होना पड़ा जिस पर उसे प्रतिमाह ७५,००० रुपया व्यय करना पड़ता था। परन्तु ऊपर जिन अन्तिम दो सन्धियों का उल्लेख किया गया है, वे शीघ्र ही महत्वहीन हो गईं, जिसका कारण हमारे आगे के वर्णन क्रम में यथा स्थान पाठकों को मिल जायगा।

चवालीसवाँ अध्याय

अंग्रेजोंके साथ युद्धमें होल्करकी पराजय

[सन् १८०४ ई०]

पिछले युद्धों पर कुछ विचार—जसवन्त राव होलकर के इरादे—सन्धि वार्ता—होलकर के विरुद्ध लार्ड लेक का अभियान—होलकर का चम्बल की ओर लौटना—अमीरखाँ बुन्देलखण्ड में—कर्नल मान्सन का आगे बढ़ना—हिंगलेशगढ़ पर अधिकार—होलकर का चम्बल पार करना—मान्सन की हिचकिचाहट—होलकर और मान्सन में मुठभेड़—मान्सन का पीछे हटाना—होलकर द्वारा हिन्दुस्तान पर आक्रमण—मथुरा विजय —दिल्ली में असफलता—शामली में कर्नल वर्न द्वारा दृढ़ प्रतिरक्षा—होलकर दो आब में—लार्ड लेक द्वारा उसका पीछा—डीग का युद्ध—दक्षिण में होलकर के क्षेत्रों पर विजय—इन्दौर विजय—लार्ड लेक द्वारा भरतपुर को घेरने का निश्चय— जाट राजा का निश्चय।

१८०४ ई०]

जिस तीव्रता से ब्रिटिश सेना ने स्थान स्थान पर मराठों को परास्त करके उनके क्षेत्रों पर अधिकार किया और जिस शीघ्रता से इस युद्ध की सफल समाप्ति हुई, उसे देख कर सारे भारतवर्ष ने दांतो तले उंगली दबाई। इन आश्चर्यजनक सफलताओं को देख कर यह अनुमान लगाना स्वभाविक ही था कि उस समय भारत की जो भी शक्ति अंग्रेजों के विरुद्ध शस्त्र परीक्षा में उतरती उसी को उस समय नीचा देखना पड़ा होता, परन्तु एशिया निवासियों का स्वभाव ही ऐसा होता है कि उनकी प्रवृत्तियों का अध्ययन करके उनके किसी भी कार्य की अग्रिम रूपरेखा बना लेना सहज नहीं है।

पैत्रिक उत्तराधिकार एवं पारिवारिक प्रतिस्पर्द्धा में दो ऐसी बातें हैं, जो किसी भी बड़े या छोटे मराठे के मस्तिक में भरी रहती हैं। कोई भी बड़ा से बड़ा व्यक्ति, परिवार या समाज ऐसा नहीं है जिसमें किसी न किसी प्रकार का विषाद न हो। सिन्धिया ने यशवन्त राव होलकर को मराठा मण्डल में मिलने के लिये अत्यधिक प्रयत्न किया और समय समय पर उसे इस कार्य में प्रवृत्त करने के लिये पर्याप्त त्याग भी दिखाया, परन्तु यशवन्त राव को अपनी पिछली पराजय की बात को भूलना असम्भव हो गया और उसका यह विश्वास बना रहा कि यदि सिन्धिया किसी तरह अंगरेजों की शक्ति का नाश करके पूना में फिर अपना राज्य स्थापित कर लेता है तो सर्व प्रथम वह ऐसी ही चेष्टाएँ करेगा जिससे उसकी (यशवन्त राव) की शक्ति का सर्वनाश हो जाय। दूसरी ओर उसका यह भी विश्वास था कि यदि अंगरेजों से लड़कर सिन्धिया की बढ़ी हुई शक्ति का विनाश हो जाय और शक्ति संतुलन में वह स्वय उसके समकक्ष आ जाय तो वह (होलकर) फिर से अपने प्रभाव विस्तार की चेष्टा कर सकता है। यों तो पूरा होलकर परिवार ही लूटपाट पूर्ण युद्धनीति का प्रेमी था परन्तु होलकर की महत्वाकांक्षाएँ उन सबसे अधिक थीं और वह दिन रात अपने प्रभाव विस्तार की बात ही सोचा करता था। उसका यह भी विश्वास था कि यदि उनकी पैदल सेना किलों में सुरक्षित बनी रह सकती है तो वे सुगमता से अपने सवारों की सहायता से अंगरेजी सेना की रसद एवं युद्ध सामग्री को लूटपाट कर अपना सारा काम चला सकते थे।

जिन दिनों भारत में अंगरेजों एवं मराठों का पूर्व अध्याय में वर्णित युद्ध चल रहा था, उन दिनों होलकर मालवा में बना रहा और बिना शत्रु मित्र का विचार किये हुये नाना प्रकार की वसूलियाँ * करता रहा। यही कारण था कि वह अंगरेजों की इन विस्मय जनक सफलताओं के परिणाम को स्पष्टतया नहीं देख सका। यदि कभी उसे इन विजयों का समाचार भी मिला तो उसे रुपयों की वसूली के उन्माद ने इतना अवसर ही नहीं दिया कि वह उन पर गम्भीरता से विचार कर सकता। अपने वसूली के कार्य से खाली होने पर जब वह सचेत हुआ तो अत्यधिक विलम्ब हो चुका था और तब तक अंगरेजों की शक्ति इतनी बढ़ चुकी थी कि अकेला होलकर उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता था। मराठों में उसका साथ देने वाला कोई बचा नहीं था, इसलिये वह राजस्थानी राजपूतों, भरतपुर के जाट राजा, रुहेलों एवं सिक्खों से मदद लेने की बात सोचने लगा और उधर की ओर प्रस्थान भी कर दिया। सिंधिया की अंगरेजों से सधि हो चुकी थी परन्तु होलकर के दूत सिंधिया के पास भी इस उद्देश्य से पहुंचे कि वह अंगरेजों के साथ की गई संधि को तोड़ दे और फिर से युद्ध छेड़ दे, परन्तु सिंधिया होलकर की पिछली असहयोग की भावनाओं से इतना निराश हो चुका था कि बजाय होलकर की सहायता करने के उसने तमाम बातों की सूचना अंगरेजों को दे दी और वे भी होलकर के प्रति सचेष्ट हो गये। सिंधिया के कुछ मंत्री विशेषकर उसका श्वसुर सिरजीराव घाटगे का विश्वास होलकर में अत्यधिक था और उन्होंने सिंधिया को राय दी कि भले ही वह अंगरेजों को सूचना दे चुका है फिर भी वह यशवंत राव होलकर की सेना में अपने वकील को भेज कर उससे आवश्यक बातचीत करले, जिससे कम से कम उसके कार्यक्रम या उसकी अभिलाषाओं एवं योजनाओं का पता तो चल जाय। वास्तविकता यह थी कि सिंधिया के पतन के पश्चात् पूरे महाराष्ट्र में यशवन्त राव होलकर ही ऐसा व्यक्ति था जिसके ऊपर सारे महाराष्ट्र को विश्वास था और जिसकी ओर सभी के आशापूर्ण नेत्र लगे हुये थे। प्रायः सभी लोग सोचने लगे थे कि शायद यशवन्त राव के हाथों ही मराठा शक्ति फिर से पनप सके।

पिछले युद्ध की समाप्ति के पश्चात् ब्रिटिश सेनाओं का अधिकांश भाग दक्षिण की ओर आ गया था। ब्रिटिश सेनाओं का एक डिवीजन जाफराबाद में इस उद्देश्य से पड़ा था कि आस पास के क्षेत्रों में शान्ति बनी रहे और निजाम के राज्य में किसी प्रकार का उपद्रव न हो सके। उसका दूसरा डिवीजन पूना में पेशवा के साथ नियुक्त था, जिसके राज्य में साहसिकों एवम् लुटेरों का बाहुल्य हो गया था। भारत में इस बात का रिवाज सा हो गया है कि जब भी किसी लड़ाई की समाप्ति होती है तो इस प्रकार के साहसिकों एवम् लुटेरों की संख्या बढ़ जाती है। वास्तविकता यह है कि युद्ध के अन्त में सेना के अनियमित सैनिकों को नौकरी से जवाब मिल जाता है और रोजी छूट जाने की स्थिति में वे निरबलम्ब हो जाते हैं। उनके पास शस्त्रादि तो रहते ही हैं, झटपट वे दल बाँध कर इधर उधर लूट-पाट करने लगते हैं।

लेक की सेना अभी होलकर की गतिविधि को परखने के लिये युद्ध क्षेत्र मे ही थी। इन दिनों कई बातों से अंग्रेजों को होलकर की ओर से चौकन्ना रहने की आवश्यकता पड़ रही थी। एक तो होल्कर की स्थिति ऐसो थी कि वह जब चाहता तभी अशांति कीं सृष्टि कर सकता था। दूसरी बात यह थी कि होलकर की अंग्रेजों से जो भी बातचीत होती थी, उसमें होलकर या उसके वकील इतना निर्द्वन्द होकर बोलते थे कि अंग्रेजों के मन में उसकी तरफ से हरदम शंका बनी रहती थी। तीसरी बात यह थी कि होलकर ने ऐसे तीन अफसरों को मरवा डाला था जो सिंधिया के पतन का समाचार

---

* सर जान मालकम के अनुसार अकेले मन्दसोर नगर से उसने एक करोड़ की वसूली की थी।

पाकर तथा गवर्नर जनरल वेल्सली की घोषणा को सुनकर उसकी सेवाएँ छोड़कर अंगरेजों की ओर जाना चाहते थे । इन्हीं सब बातों के प्रकाश में अंगरेजों को यह खटका सदैव ही लगा रहता था कि किसी भी समय होलकर युद्ध छेड़ सकता है । इसी बीच होलकर के कुछ ऐसे * पत्र भी अँगरेजो के हाथ लगे जिनसे उनकी घबराहट का बढ़ जाना स्वाभाविक ही था । इन पत्रों द्वारा अंगरेजों को पता चला कि अंगरेजों का विनाश करने के लिये होल्कर राजपूतों रुहेलो, जाटों एवम् सिक्खों से पत्रव्यवहार कर रहा था । यद्यपि अंगरेजों को यह बिश्वास नहीं था कि होल्कर फिर से युद्ध की शुरूआत कर सकता है फिर भी इन पत्रों के प्रकाश से उनका सावधान रहना आवश्यक हो गया था । अंगरेजों की हर स्थिति में यही इच्छा थी कि होलकर के साथ सभी आवश्यक बातों का निपटारा शान्ति पूर्ण ढंग से ही हो जाय तथा युद्ध के बिना ही सभी बातें ठीक-ठीक निर्णीत हो जांय । वैसे मराठों का स्वभाव ऐसा होता है कि उनके पत्रों या उनकी बातों से उनकी योजनाओं एवम् मंतव्यों का पता लगाना कठिन होता है । वे जब भी बातें करते हैं तो उनके बात करने का ढंग ऐसा होता है कि उनसे किसी बात का ठीक ठीक पता लगा लेना मुश्किल ही नहीं असम्भव हो जाता है । होल्कर ने जनरल लेक को भी जो पत्र लिखे थे, उससे कोई भी बात स्पष्ट नहीं होती थी । अपने प्रथम पत्र में उसने जनरल लेक को लिखा था कि वह स्वयम् न तो कोई अनुचित बात कहता है और न कोई अनुचित कार्य करने का इरादा है, फिर भी वह चाहता है कि जनरल लेक अपनी सेना को लेकर आगरे की ओर चला जाय क्योंकि उक्त क्षेत्र में उसकी विजयिनी सेनाओं के बने रहने से ही वहां के लोगों में व्यर्थ की घबराहट फैल रही है । अपने द्वितीय पत्र में उसने लिखा कि वह अपने किसी भी पत्र में दोस्ती के शब्दों के अतिरिक्त अन्यथा कुछ भी नही लिखेगा । हाँ यदि अँगरेज ही अभिन्नतापूर्ण शब्दों का व्यवहार करेंगे तो लाचारी है । जनरल लेक ऐसी दुविधा में फँसा हुआ था कि वह स्वयम् अपना कर्तव्य निर्द्धारित नहीं कर पा रहा था । उसके लिये यह आवश्यक हो गया था कि वह होल्कर सम्बन्धी दुविधा का अन्त कर दे । अन्त में गवर्नर जनरल ने जनरल लेक को निर्देशित किया कि वह अपनी सेना को ऐसे किसी भी राज्य की सीमा पर न रक्खे जो अँगरेजों का मित्र या सहायक हो । राजस्थान के राजपूतों के विरुद्ध होल्कर के कुछ दावे थे । अँगरेजों ने उन दावों पर विचार करना अस्वीकृत कर दिया । हाँ, अँगरेज इस बात पर राजी हो गये थे कि पेशवा की राय से वे यशवन्तराव होल्कर तथा उसके भाई कासीराव के विवाद में मध्यस्थ का कार्य कर सकते हैं और वह भी केवल न्यायानुमोदित ढंग पर । इसी आधार पर अँगरेजों ने यशवन्तराव को भी निमंत्रित किया कि वह अपने वकीलों को बृटिश कैम्प में भेज सकता है । इस निमंत्रण के उत्तर स्वरूप होल्कर ने भी प्रतिज्ञा की कि वह बृटिश सीमाओं से अपनी सेना को दूर हटा ले जायगा । मार्च के मध्य में उसने अपने वकीलों को जनरल लेक की सेवा में प्रेषित कर दिया । उन दिनों जनरल लेक ससैन्य रामगढ़ में पड़ाव डालकर पड़ा था । इन वकीलों ने होल्कर द्वारा प्रेषित पत्र जनरल लेक को दिया । इस पत्र में सभी बातें बड़ी ही मित्रतापूर्ण शब्दावली में लिखी हुई थीं । उसके लिखने का तात्पर्य था कि यदि जनरल लेक उसके प्रस्तावों को मान्यता नहीं देता तो ' उसकी (होलकर की) तमाम सम्पत्ति उसका तमाम राज्य घोड़े की पीठ पर ही है । वह जिधर भी निकल जायगा, उसी तरफ के देश उसके बहादुर

---

* बड़े ही आश्चर्य की बात है कि जब कभी भी अँगरेज किसी भारतीय राजा को वर्बाद करने पर तुलते थे तो उनके हाथों में उस राजा के कुछ ऐसे पत्र आ जाते थे जिनमें अंगरेजों के विरुद्ध षडयंत्र किया गया होता था । ऐसे पत्रों की पोल देखने के लिये मेजर वी.डी.वसु द्वारा लिखित "राइज आवदि क्रिश्चियन पावर इन इंडिया" देखिये —अनुवादक

योद्धाओं की वीरता से उसके वश में हो जायेंगे।" होलकर के वकीलों ने लेक के सम्मुख निम्नलिखित प्रस्ताव रक्खें। (१) होलकर को इस बात का अधिकार होना चाहिये कि वह अपने पूर्व वर्तियों की ही भांति यथापूर्व प्रदेशों से चौथ की वसूली कर सके। (२) इटावा तथा गंगा जमुना के बीच बुन्देलखण्ड के वे बारहों जिले उसके अधिकार में दे दिये जांय जो इसके पूर्व उसके परिवार वालों के शासन में थे। (३) हरियाना का प्रदेश उसके परिवार वालों के शासन में था, वह उसे फिर से दे दिया जाय। (४) जो प्रदेश उसके अधिकार में उस समय थे वे उसके अधिकार में रहें और सिंधिया के समान ही उससे संधि कर ली जाय।" ये मांगे अत्यधिक थीं और जनरल लेक ने उनको इन्हीं अर्थों में ग्रहण किया। द्वितीय तृतीय प्रस्तावों में जिन प्रदेशों की मांग की गयी थी वे सबके सब सिंधिया से जीते गये थे। जिस समय शुजाउद्दौला ने मराठों की रक्षक सेना को इटावा से निकाल दिया था तब से लेकर उस समय तक उस स्थान पर मराठों का अधिकार कभी भी न रहा था। शुजाउद्दौला ने सन्१७७३ई०में इटावा पर अधिकार किया था और सन् १८०१ ई० में अवध के वजीर नवाब ने यह इलाका ईस्ट इंडिया कम्पनी को समर्पित कर दिया था। होलकर के वकीलों ने बड़ी ही दृढ़ता से अपने प्रस्तावों को जनरल लेक के सामने रक्खा और होलकर की शक्ति का बड़ा ही अतिरंजित वर्णन किया। वकीलों ने जनरल लेक पर यह भी प्रगट किया कि यदि अंगरेजों ने होलकर के विरुद्ध युद्ध छेड़ा तो उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि भारत के किन-किन राजाओं से उनके स्वामी की मित्रता है। जनरल लेक ने इन प्रस्तावों के उत्तर में होलकर को लिखा—"आपकी मांगे बे बुनियाद हैं और आपको यह मालूम होना चाहिये कि अंगरेज सरकार ने हिन्दुस्तान या दक्खिन की किसी भी रियासत के साथ अपने राजनैतिक सम्बन्धों में इस तरह की माँगे कभी भी मंजूर नहीं की और इस तरह की माँगे सुनना भी अंगरेज सरकार की ताकत व उसके शान के खिलाफ हैं।" जनरल लेक ने, होलकर के वकीलों से वार्ता करते समय इस बात का भी उल्लेख किया कि जिस भाषा और स्वर में और जिस प्रकार के प्रस्तावों को उन्होंने प्रस्तुत किया था उनकी प्रकृति जसवन्तराव होलकर के पत्रों से रंचमात्र भी मेल नही खाती थी और होलकर तथा उसके प्रस्तावों में सामञ्जस्य का इतना अभाव था कि इन परस्पर विरोधी प्रस्तावों से जनरल को होलकर की वास्तविक इच्छाओं एवम् उसके इरादों का सही ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका। अतः वह उस दिन इन वकीलों को स्पष्ट उत्तर न दे सका। दूसरे दिन होलकर के वकील पुनः होलकर के पत्र का कोई स्पष्ट उत्तर प्राप्त करने के लिये उपस्थित हुये। इस दिन के वार्तालाप में इन वकीलों ने पुनः विजित क्षेत्रों को वापस कर दिये जाने अथवा, क्षेत्र के बदले में प्रतिवर्ष उपयुक्त धन देने का प्रस्ताव जनरल लेक के समक्ष प्रस्तुत किया। उन्होंने जनरल लेक से साफ-साफ पूँछा कि होलकर को उदयपुर और कोटा की रियासतों से पूर्ववत कर वसूलने के अधिकार को स्वीकार करने के लिए ब्रिटिश सरकार तैयार है या नहीं। इन सभी प्रस्तावों के उत्तर में जनरल लेक ने और न कुछ कह कर केवल इतना ही कहा कि सर्वप्रथम यशवन्तराव होलकर अपने आचरण एवम् व्यवहार द्वारा स्वयम् को ब्रिटिश सरकार का मित्र सिद्ध करने के लिये अपने वादे के अनुसार अपनी सेना को ब्रिटिश क्षेत्र से हटा कर अपने राज्य में चला जाय, तभी ब्रिटिश सरकार उसके साथ सन्धिवार्ता अथवा शर्तों एवम् उसके दावों पर विचार करने के लिए तैयार हो सकती है।

जनरल लेक के पास सन्धिवार्ता तथा अपनी माँगों को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से अपने वकीलों कों रायगढ भेजने के पाँच छः सप्ताह पूर्व ही यशवन्तराव होलकर ने जनरल वेलसली को सम्बोधित कर के एक पत्र लिखा था। इस पत्र में उसने जनरल वेलसली से युद्धविराम की शर्त के रूप में दक्षिण स्थित कुछ ऐसे क्षेत्रों को वापस कर देने की माँग की थी जो होलकर परिवार की सम्पत्ति में सम्मिलित थे।

अपने इस माँगपत्र को समाप्त करते हुये उसने अत्यन्त धृष्टतापूर्ण भाषा में जनरल वेल्सली को धमकी दिया था कि यदि उसकी माँग पर अनुकूल विचार न किया गया और उसके क्षेत्रों को वापस न किया गया तो विवश होकर उसे पुनः अंग्रेजों के विरुद्ध शस्त्र उठाना पड़ेगा ।

अप्रैल मास के प्रारम्भ में यशवन्तराब होलकर भगवान् का दर्शन करने के बहाने अजमेर की ओर बढ़ गया । इस समय अजमेर का किला दौलतराव सिन्धिया के अधिकार में था । होलकर ने अजमेर निवासियों से करके रूप में पर्याप्त धन वसूल किया और किले को अपने अधिकार में करने के लिए भी एक असफल प्रयत्न किया । जब सिंधिया के राजदूत ने होलकर के इस कार्य पर एतराज किया तो होलकर ने उसे यह समझा कर चुप कर दिया कि अंग्रेजों से युद्ध छेड़ने के लिये तथा मराठा शक्ति के पुनर्जागरण के लिए इस प्रकार की छेड़छाड़ जरूरी है और इससे सिंधिया के साथ हुई सन्धि के अनुसार अंग्रेज उसके क्षेत्र की रक्षा करने के लिए अवश्य सामने आंएगे । उसकी सेना का एक बड़ा भाग जयपुर रियासत की सरहद पर ही पड़ा रह गया था, होलकर के इन सैनिकों ने इस क्षेत्र में लूटपाट भी मचाई ।

इस बीच जनरल वेल्सली और जनरल लेक ने होलकर के व्यवहार एवम् आचरण के सम्बन्ध में गवर्नर जनरल वेल्सली के पास विस्तृत रिर्पोट भेजी जिन्हें पढ़कर मारक्विस बेलसली बहुत उत्तेजित हुआ । उसने महसूस किया कि यदि इसी समय यशवन्तराव होलकर के बढ़ते हुए प्रभाव का दमन तुरन्त न किया गया तो अंग्रेजों के राजनैतिक प्रभाव पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा और अन्य नरेश व सरदार भी विद्रोह करने के लिये प्रोत्साहित होंगे ! अतः उसका पूर्ण दमन करने का निश्चय करके गवर्नर जनरल ने उत्तर में स्थित जनरल लेक और दक्षिण में स्थित जनरल वेल्सली, दोनों को प्रत्येक दिशा से यशवन्यराव होलकर के क्षेत्रों और उसकी सेनाओं पर आक्रमण करके उसके प्रभाव एवम् गर्व को नष्ट कर देने का आदेश दिया; इसके साथ ही गवर्नर जनरल ने यह घोत्रणा भी की कि होलकर के साथ होने वाले युद्ध के फलस्वरूप होलकर के जिन क्षेत्रों पर ब्रिटिश सेनाएं अधिकार कर लेंगी उनको ब्रिटिश सरकार अपने अधिकार में न रखकर, अपने मित्रों एवम् सहायकों में उनके सहयोग के अनुपात में विभाजित कर देगी ।

इस समय जनरल वेल्सली बम्वई में पड़ा हुआ था । इसी समय वर्षा के अभाव में दक्षिण में सारी कृषि नष्ट हो गई और अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गई । दक्षिण में वैसे भी सदैव अराजकता और तबाही की स्थिति रहती थी और सैनिकों तथा लुटेरों के दल इधर-उधर लूटपाट मचाते रहते थे जिसके कारण दक्षिण की आर्थिक स्थिति बहुत चिन्ताजनक रहती थी । ऊपर से इस अकाल ने दक्षिणवासियों की कमर हीं तोड़ दी और खाद्य सामग्रियों का एकदम अभाव हो गया था । ऐसी परिस्थिति में, खाद्यपदार्थों की कमी के कारण इस समय यशवन्तराव होलकर के विरुद्ध कोई सशक्त कदम उठाना सम्भव न था, अतः जनरल वेल्सली ने उस समय तक के लिये होलकर के विरुद्ध अभियान की योजना को स्थगित कर दिया जब तक कि वर्षा न हो जाय । परन्तु जनरल वेल्सली ने गुजरात में स्थित कर्नल मरे को गुजरात से होलकर पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया, और उसकी राजधानी मालवा को भी अधिकृत कर लेने का निर्देश दिया । दौलतराव सिन्धिया को भी होलकर के विरुद्ध कर्नल मरे के अभियान की सूचना दे दी गई; सिन्धिया ने भी अंग्रेजों को आश्वासन दिया कि यशवन्तराव होलकर को पराभुत करने में वह अपनी सामर्थ्य भर ब्रिटिश सेना को सहयोग प्रदान करेगा ।

गवर्नर जनरल का आदेश प्राप्त करने के दो दिन पश्चात् ही जनरल लेक ने यशवन्तराव होलकर पर आक्रमण करने की योजना बनाना प्रारम्भ कर दिया । उसने १८ अप्रैल को ही कर्नल मान्सन

१८–२३ अप्रैल

के अधीन देशी सिपाहियों की तीन बटेलियनों को जयपुर की तरफ रवाना कर दिया। हम पीछे देख चुके हैं कि इस समय यशवन्तराव होलकर की सेनाएँ राजपूत-रियासतों में ही इधर-उधर लूटमार करने में व्यस्त थीं। जब होलकर को कर्नल मान्सन के रवाना हो जाने का समाचार प्राप्त हुआ तो उसने तीव्रगति से दक्षिण की ओर लौटना प्रारम्भ किया। यूरोपियन अफसरों के नेतृत्व में अनियमित अश्वारोहियों के दस्ते ने होलकर का पीछा करना प्रारम्भ किया। उन्होंने होलकर की सेना पर सतर्क दृष्टि रक्खी और जहाँ-तहाँ उसकी सेना को परेशान भी किया। होलकर ने मार्ग में ही दो दिनों के लिये पड़ाव डाल दिया और आगे के लिये योजनाएं बनाता रहा। इसी बीच अवसर पाकर जनरल लेक यशवन्तराव होलकर के अत्यन्त समीप पहुंच गया, कर्नल मान्सन के साथ भेजी हुई तीनों बटालियनें उससे कुछ पहले ही पहुंच गई थीं। ब्रिटिश सेना के इस प्रकार सर पर आ पहुंचने पर, होलकर ने उनका साममा करने का साहस नहीं किया और पुनः तेजी से पीछे हटना प्रारम्भ कर दिया। वह तब तक दक्षिण की ही तरफ हटता चला गया जब तक कि वह अपनी सीमा में नहीं पहुंच गया और चम्बल नदी को पार नहीं कर लिया। अपने राज्यक्षेत्र की ओर भागते समम यशवन्तराव होलकर ने पुनः जनरल लेक के पास सन्धि प्रस्ताव भेजा, परन्तु अब जनरल लेक ने उसकी किसी भी बात पर विचार न करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। यूरोपियन अफसरों के अधीन अनियमित अश्वारोही और लेफ्टिनेन्ट कर्नल मान्सन लगातार उसका पीछा करते रहे और शेष सेना के साथ जनरल लेक उनके पीछे पीछे चलता रहा। जनरल लेक की सेना में से लेफ्टिनेन्ट कर्नल डांन के नेतृत्व में एक टुकड़ी ने टोंक-रामपुर के किले पर आक्रमण कर दिया और वीरतापूर्ण प्रयत्नों द्वारा किले के मजबूत फाटक को तोड़ डाला। किले का फाटक टूटते ही यह टुकड़ी किले के भीतर घुस गई और उस पर अपना अधिकार कर लिया।

होलकर के विरुद्ध ब्रिटिश सेना द्वारा छेड़े गये युद्ध में होलकर के ऊपर अंग्रेजों की इस प्रथम विजय के पश्चात् ही बुन्देलखण्ड की ओर से अशान्ति एवम् विद्रोह का समाचार मिला जिससे होलकर का पीछा करने वाली, जनरल लेक की सेना की गति कुछ समय के लिये अवरुद्ध हो गई। बुन्देलखण्ड के कुछ प्रभावशाली सरदारों ने अंग्रेजों के साथ सन्धि कर लने के पश्चात् भी, ब्रिटिश सरकार की शर्त के अनुसार अपनी सेना का विघटन नहीं किया था और यत्र-तत्र उपद्रव खड़ा किए रहते थे। इसी प्रकार के एक विद्रोही किलेदार को दण्ड देने तथा उसके छोटे से किले को अपने अधिकार में करने के लिये लेफ्टिनेन्ट कर्नल फासेट ने देशी सैनिकों की सात कम्पनियों को, आवश्यक तोपखाने के साथ रवाना कर दिया। जब इन कम्पनियों ने उस छोटे से किले पर आक्रमण कर दिया तो किलेदार ने उनके पास सन्देश भेजा कि यदि ब्रिटिश सैनिक गोलाबारी करना बन्द कर दें तो वह दूसरे दिन सुबह आत्मसमर्पण कर देगा। ब्रिटिश टुकड़ी ने उसके इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और आक्रमण समाप्त कर दिया गया। परन्तु वास्तव में किलेदार का इरादा आत्मसमर्पण करने का नहीं था; उसने रातोरात होलकर के सेनाध्यक्ष अमीर खाँ को सारी परिस्थिति की सूचना भेज दी और उससे अनुरोध किया कि वह सूर्योदय होते-होते ब्रिटिश कम्पनियों पर आक्रमण करके उन्हें नष्ट कर दे। अमीर खाँ को भी यह योजना पसन्द आई और उसने इसी योजना के अनुसार ब्रिटिश दस्तों पर आक्रमण करके आंशिक सफलता प्राप्त की। छिपे ही छिपे अश्वारोही सैनिक भोर के धुंधलके में ब्रिटिश दस्तों के तोपखाने तक पहुंच गये और ब्रिटिश सेना के दस्तों को काटना प्रारम्भ कर दिया। थोड़ी ही देर में उन्होंने ५० तोपचियों, सिपाहियों की दो कम्पनियों, उनके अफसरों और तोपों का सफाया कर दिया। शेष बची हुई पाँच कम्पनियों ने

कैप्टेन स्मिथ के नेतृत्व में, साबित दस्तूर बची केवल एक तोपके सहारे लड़ते बचते अपनी जान बचाई और किसी प्रकार अपने हेडक्वार्टर में अर्थात् लेफ्टिनेन्ट कर्नल फासेट के पास पहुंच गये । इस साधारण सी विजय से अमीर खाँ बहुत प्रोत्साहित हुआ और उसने कालपी पर भी आक्रमण कर दिया । कालपी पर अधिकार कर लेने के पश्चात् उसने नदी को पार करके दोआब में लूटपाट करने की योजना बनाई, परन्तु नदी के दूसरे तट पर स्थित छावनी में उपस्थित सिपाहियों की दो कम्पनियों के बाधा डालने से वह यमुना नदी को पार करने के प्रयास में कृतकार्य न हो सका । इसी समय अम्बाजी इंगलिया के अधीनस्थ अश्वारोहियों के एक दल तथा पैदल सेना की बटालियन ने अमीर खाँ पर आक्रमण कर दिया और उसकी सेना को तितर-बितर कर दिया (अमीर खाँ के ऊपर आक्रमण करने वाले इस दस्ते का सारा व्यय ब्रिटिश सरकार उठाती थी, परन्तु स्थायी तौर पर यह दस्ता अम्बाजी इंग्लिया के साथ रहता था, जो अंग्रेजों की कृपा से इस समय गोहद राज्य के आधे भाग का मालिक बना बैठा था ।) इस पराजय तथा अपार क्षति के पश्चात् भी अमीर खाँ कुछ समय तक बुन्देलखण्ड में इधर-उधर उत्पात करता रहा और इस कार्य में बुन्देलखण्ड के अनेक जमीदारों ने धन जन के साथ उसकी सहायया करके अंग्रेजी सेनाओं के साथ छिनपुट युद्ध करने में उसे प्रोत्साहित करते रहे ।

इसी बीच दक्षिण में भी, जलवृष्टि हुई और चारे आदि का संकट कुछ सीमा तक समाप्त हो गया । जनरल लेक ने विचार किया कि गुजरात में जितनी संख्या में ब्रिटिश सैनिक हैं, वे सिन्धिया के सहयोग से वर्षा ऋतु में होलकर के क्षेत्रों पर सफलतापूर्वक आक्रमण कर सकने के लिए पर्याप्त हैं और अब गुजरात में उसके पड़े रहने की कोई आवश्यकता नहीं है । इसी विचार के अनुसार टोंक-रायपुर के किले को अपने अधिकार में कर लेने के पश्चात्, अपनी सेना के मुख्य भाग के साथ जनरल लेक ने अपनी छावनी की तरफ प्रस्थान कर दिया, परन्तु यशवन्तराव होल्कर पर सतर्क दृष्टि रखने और आवश्यकता आ पड़ने पर उसे रोकने के उद्देश्य से उसने लेफ्टिनेन्ट कर्नल मान्सन को टोंक-रायपुर में ही छोड़ दिया । कर्नल मान्सन की अधीनता में जनरल लेक ने पाँच बटेलियन देशी सैनिकों और लगभग ३००० अनियमित सवार सैनिकों को रख दिया । अश्वारोही सेना को दो भागों में विभाजित कर दिया, जिसमें से एक भाग का सेनापति, सिन्धिया की सेना के अफसर बापूजी सिन्धिया को बनाया गया और दूसरे भाग को लेफ्टिनेन्ट ल्यूकन की कमान में दे दिया गया । जनरल लेक की वापसी के बाद कर्नल मान्सन ने गुजरात में स्थित कर्नल मरे की सेना के साथ संयुक्त होने के इरादे से मोकुन्द्र दर्रे से होते हुए यशवन्तराव होलकर के क्षेत्र में प्रवेश किया । इसी समय अवसर पाकर उसकी सेना के एक दस्ते ने हिंगलेशगढ़ के पहाड़ी किले पर आक्रमण कर दिया और सीढ़ियों द्वारा किले की दीवारों को फाँदकर किले को अपने अधिकार में ले लिया । यद्यपि उसके पास अपनी डिवीजन की अवश्यकता भर की खाद्य सामग्री नहीं रह गई थी, फिर भी सातवीं जुलाई तक वह लगातार चम्बल नदी की ओर बढ़ता ही चला गया । इसी समय उसे सूचना मिली कि चम्बल के उस पार से यशवन्तराव होलकर अपनी समस्त शक्ति के साथ उस पर आक्रमण करने के इरादे से तीव्रगति के साथ बढ़ा आ रहा है । मान्सन (जिसे हाल ही में ब्रिटिश सेनाध्यक्ष द्वारा अस्थायी तौर पर ब्रिगेडियर जनरल के पद पर नियुक्त कर दिया गया था ।) ने पहले तो होलकर का सामना करने के इरादे से अपनी डिवीजन को आगे बढ़ाया क्योंकि उसे आशा थी कि जब होलकर की सेना चम्बल नदी के पार आने लगेगी तो उसकी अव्यवस्थित-परिस्थिति से लाभ उठाया जा सकेगा । परन्तु इसी समय जब उसे समाचार मिला कि कर्नल मरे गुजरात में ही अधिक व्यस्त होने के कारण उसकी सहायता को न पहुंच सकेगा तो वह चिन्तित हो उठा, जिसके कई कारण थे । उसके पास इस समय

अपनी डिवीजन के लिए केवल दो दिन तक की खाद्य सामग्री और बची थी, जब कि कई अन्य ब्रिटिश दस्ते भी होल्कर का सामना करने में उसकी सहायता के लिए उसके कैम्प की ओर रवाना हो चुके थे। मान्सन को आशा थी कि कर्नल मरे अपने साथ पर्याप्त खाद्य सामग्री लेकर आएगा, परन्तु अब कर्नल मरे की सहायता के स्थगित हो जाने से, वह मौजूदा हालत में अधिक समय तक होलकर की साधन-सम्पन्न सेना का सामना करने में असमर्थ था। अन्त में, खाद्यान्न के अभाव में उसने पीछे लौटने का निश्चय किया और मोकुन्द्र दर्रे तक लौट आया। अंग्रेज अपने अब तक के अनुभवों से यह जान चुके थे कि मराठा सेना पर एक साथ प्रबल आक्रमण कर देने पर मराठा सेना तितर-बितर हो जाती है और आसानी से विजय प्राप्त हो जाती है परन्तु जब मराठे अपने शत्रुओं को असंमजस में फंसा देखते हैं तो उनका उत्साह द्विगुणित हो जाता है और वे युद्ध करने पर उतारू हो जाते हैं जब कि उनके ऊपर अचानक सशक्त आक्रमण होने पर वे भागने में ही अधिक कुशलता का प्रदर्शन करते हैं। वे यह भी जानते थे कि जब मराठों के सामने शत्रु सेना निरन्तर काफी समय तक पीछे ही हटती जाती है तो उसकी विपत्तियों की सीमा नहीं रहती क्योंकि ऐसी स्थिति में मराठे निरन्तर उसका पीछा करते ही जाते हैं। केवल एक बार लेफ्टिनेन्ट जनरल जेकब कैमक के अधीनस्थ ब्रिटिश सेना को पीछे हटते समय इस प्रकार की कोई विपत्ति नहीं उठानी पड़ी थी; इस एक अपवाद के अतिरिक्त जब भी ब्रिटिश सेना मराठों के सामने से अनिश्चय की अवस्था में पीछे हटी, तब तब मराठों द्वारा अपार क्षति उठानी पड़ी।

मराठों की युद्ध नीति सम्बन्धी इन अनुभवों की जानकारी के बावजूद भी ब्रिगेडियर जनरल मांसन के पास पीछे लौटने के अतिरिक्त कोई अन्य चारा न रहा और दुर्भाग्यवश विवश होकर उसे पीछे ही लौटना पड़ा। ८ जुलाई को प्रातःकाल ब्रिगेडियर जनरल मान्सन ने चार बजे से ही अपनी कैम्प सामग्रियों और तोपों को पीछे भेजना शुरू कर दिया। चार पाँच घन्टे तक उसे शत्रु सेना का कोई भी चिन्ह नहीं दिखाई पड़ा अतः लगभग ९ बजे पैदल सेना ने भी पीछे की ओर प्रस्थान कर दिया। अब रह गए अश्वारोही दस्ते, जिन्हें आदेश दिया गया कि आधे घन्टे तक शत्रु सेना की टोह लेने के पश्चात्, होलकर की सेना की प्रगति के सम्बन्ध में अधिकतम जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् वे भी पीछे की ओर लौट पड़ें। इन घुड़सवारों के साथ लेफ्टिनेन्ट ल्यूकन भी पीछे ही रह गया था। ब्रिगेडियर जनरल मान्सन जब अपनी पैदल सेना के साथ लगभग ६ कोस निकल गया तब उसे यह समाचार मिला कि होलकर की सेना ने ब्रिटिश सेना के पीछे छोड़ दिए गए अश्वारोहियों पर आक्रमण करके उन्हें परास्त कर दिया है और लेफ्टिनेन्ट ल्यूकन * को कैद कर लिया है। उस बात का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि इस आक्रमण एवम् पराजय का समाचार सिन्धिया के सेनानायक बापू जी सिन्धिया द्वारा लाया गया था जो कि युद्ध के दौरान में ही लेफ्टिनेन्ट ल्यूकन का साथ छोड़कर भाग आया था। वास्तव में बापूजी सिन्धिया, होलकर से मिला हुआ था और यह तथ्य पूर्णतः सिद्ध हो गया जब कि कुछ ही दिनों बाद बापू जी सिन्धिया ब्रिटिश सेना का साथ छोड़कर यशवन्तराव होलकर से जा मिला। अस्तु, इस पराजय का समाचार प्राप्त करने के दूसरे ही दिन मान्सन ने मोकुन्द्र दर्रे के सामने सुदृढ़ मोर्चेबन्दी

---

* बन्दी हो जाने के पश्चात् लेफ्टिनेण्ट ल्यूकन का कोई समाचार न मिल सका। कुछ लोगों का कहना था कि उसे जहर देकर मार डाला गया, परन्तु १८०८ में कैप्टेन वैलेस द्वारा कैद कर लिए जाने पर होलकर के एक सेना नायक मुहम्मद खां बंगश ने बताया कि किसी रोग से पीड़ित होने के कारण उसकी मृत्यु हो गई थी।

करके अपनी सेना को उचित मोर्चों पर स्थित कर दिया। इस मोर्चेबन्दी के दूसरे दिन, १० जुलाई को मराठों की अश्वारोही सेना के चिन्ह दिखाई पड़े, परन्तु उस दिन उन्होंने ब्रिटिश डिवीजन के साथ किसी प्रकार की छेड़छाड़ नहीं की। दूसरे दिन सुबह होलकर की लगभग समस्त अश्वारोही सेना एकत्रित हो गई और होलकर ने ब्रिगेडियर जनरल मान्सन के पास सन्देश भेजा कि यदि ब्रिटिश डिवीजन तुरन्त शस्त्र नहीं रख देती तो उसके एक एक सैनिक का सफाया कर दिया जायगा। परन्तु हर तरह की असुविधाओं और प्रतिकूल परिस्थितियों से घिरे होने पर भी मान्सन ने आत्म समर्पण करने से इनकार कर दिया। अब होलकर ने ब्रिटिश डिवीजन पर आक्रमण करने की योजमा बनाना प्रारम्भ कर दिया। उसने अपने अश्वारोहियों को तीन भागों में बाँट दिया जिन्होंने तीन तरफ से, अर्थात् सामने से दाहिने और बाँएँ पार्श्वों से अंग्रेजी सेना पर आक्रमण कर दिया। परन्तु कई बार आक्रमण करने के बावजूद भी वे ब्रिटिश सेना के भीतर धंसने में सफल न हो सके और अन्त में शाम हो जाने पर होलकर ने अपने अश्वारोहियों को पीछे लौटा लिया और ब्रिटिश सेना से लगभग दो कोस की दूरी पर रात्रिकालीन पड़ाव डाल उसी रात को उसकी पैदल सेना, तथा तोपखाना भी उससे आ मिला। मान्सन ने अनुमान लगाया कि समस्त शक्ति और तोपखाना एकत्रित हो जाने के कारण होलकर दूसरे दिन सुबह अवश्य आक्रमण करेगा। उसने अपनी वर्तमान स्थिति की निर्बलता का अनुभव किया; उसे यह भी शंका हुई कि शायद होलकर उसके पीछे हटने के मार्ग को भी अवरुद्ध करने का प्रयत्न करे, अतः उसने अपनी वर्तमान स्थिति को परिवर्तित करना ही श्रेयस्कर समझा और रातोरात वहाँ से पीछे की ओर लौट पड़ा और बीच में दो बार पड़ाव डालते हुए वह कोटा के राज-राणा के यहाँ पहुंच गया यद्यपि मार्ग में अविरल जलवृष्टि और मराठों के छिटपुट आक्रमणों से उसे अपार विपत्ति का सामना करना पड़ा। जब ब्रिटिश सेना के साथ मान्सन कोटा के राज-राणा यहाँ शरणार्थी के रूप में पहुंचा तो राज राणा ने उसके प्रति रचमात्र भी सहानुभूति प्रकट नहीं की; उसने न तो मान्सन को कोटा नगर में घुसने दिया और न खाद्य-सामग्री से ही उसकी मदद की।* राज-राणा के इस कटु व्यवहार से विवश होकर ब्रिगेडियर जनरल मान्सन ने पीछे हटना जारी रक्खा और रोमंच घाट के पास चम्बल नदी को पार करने का इरादा किया। यद्यपि वह घाट कोटा से केवल सात मील की दूरी पर स्थित था परन्तु अनवरत जल वृष्टि तथा चिपचिपी मिट्टी के कारण उनकी यात्रा में बहुत बाधा पड़ी और दूसरे दिन सुबह के पूर्व वह रोमंच घाट तक नहीं पहुंच सका। उस समय चम्बल नदी बाढ़ पर थी और उसको उसी समय पार करना सम्भव नहीं प्रतीत हो रहा था। नदी को घटने के लिए दो एक दिन तक प्रतीक्षा करना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त, एक अन्य महान कठिनाई थी खाद्य पदार्थों के अभाव की, अतः आस पास के क्षेत्रों

---

* ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रकाशित मान्सन के वर्णन के आधार पर। बाद में जवाब तलब किए जाने पर कोटा के राज राणा ने यह मानने से इनकार किया कि उसने ब्रिटिश सेना के भोजन का प्रवन्ध नहीं किया था; राज राणा जालिम सिंह ने कहा कि उसने ब्रिटिश सेना के विश्राम के लिए किले के वाहर एक इमारत खाली करा देने का प्रस्ताव भी रक्खा था। कर्नल मान्सन ने भी इस दूसरी वात की पुष्टि की, परन्तु इस प्रस्ताव को अमान्य करने का कारण बताते हुए कहा कि वह अपनी सेना को इस प्रकार खुले स्थान में रख कर दुतरफा आक्रमण का सामना करने का साहस न कर सका क्योंकि उसे जालिम सिंह पर भी शंका हो गई थी। जो हो इतनी वात तो प्रामाणिक रूप से ज्ञात है कि कोटा में मान्सन के कुछ देर तक रुके रहने के कारण होलकर ने जालिम सिंह से १० लाख रुपया जुर्माना वसूल किया था।

से कुछ खाद्य सामग्री एकत्रित करने के इरादे से १४ जुलाई को ब्रिगेडियर जनरल मान्सन को नदी के किनारे ही पड़ाव डालना पड़ा। १४ तारीख को रात भर मूसलाधार वर्षा होती रही और ब्रिटिश सेना के कष्टों की सीमा न रही। १५ जुलाई को प्रातःकाल मान्सन ने पुनः अपनी सेना को कूच करने का आदेश दिया; परन्तु वर्षा के कारण मार्ग में इतना कींचड़ हो गया था कि तोपें काफी गहई तक कीचड़ में धंस गईं और उनको उभारना असम्भव हो गया। ब्रिटिश सेना अजीब पसोपेश में पड़ गई। तोपों को छोड़ कर आगे बढ़ना उन्हे जंच नहीं रहा था और रूके रहने पर उन्हें भूखों मरना पड़ता क्योंकि आस पास के गाँवों में पिछले अकाल के कारण खाद्य पदार्थों का एक दम अभाव था। स्वयं को भुखमरी से बचाने के लिए पीछे लौटना आवश्यक प्रतीत हो रहा था, अतः उन्होंने अपने सारे गोला बारूद के भण्डार को नष्ट कर दिया तथा तोपों को वेकाम कर दिया ताकि वे शत्रुओं के हाथ में पड़ने पर भी उनके किसी काम न आ सकें। परन्तु इसी समय डूबते को तिनके का सहारा मिला। बूंदी के राजपूत राजा ने यद्यपि उनकी तोपों को बचाने का तो कोई प्रयत्न न कर पाया; लेकिन काफी साहस का परिचय देकर ब्रिटिश सरकार के साथ हुई सन्धि का सम्मान करते हुये मान्सन और उसकी विपत्ति ग्रस्त सेना को अपने यहाँ आश्रय दिया, यद्यपि वह जानता था कि एक विशाल सैन्य के साथ होलकर मान्सन का पीछा कर रहा है। कुछ समय तक बूंदी में विश्राम करने के पश्चात् मान्सन ने अपनी यात्रा पुनः प्रारम्भ कर दी और १७ जुलाई को चम्बल नामक नदी के किनारे पहुंचा। अतिवृष्टि के कारण यह छोटी सी नदी भी बाढ़ पर थी और उसको पार करना अत्यन्त कठिन प्रतीत हो रहा था परन्तु फिर भी मान्सन ने साहस करके दूसरे दिन इस बढ़ी हुई नदी पार करने की योजना बना ली। सर्वप्रथम उसने हाथियों की पीठ पर बैठा कर अपने तोपखाने को उस पार भेज दिया और उन्हें शीघ्रातिशीघ्र रामपुर पहुंचने का आदेश दिया अपनी समूची सेना को नदी पार पहुंचाने में ब्रिगेडियर जनरल मान्सन को १० दिन लगे। कुछ दस्तों को हाथियों द्वारा पार कराया गया, कुछ सैनिकों ने लकड़ियों के बेड़े द्वारा नदी को पार किया और कुछ दस्तों को एक घाट से नदी पार का निर्देश दिया गया जहाँ कि नदी की गहराई अपेक्षा कृत कम थी। इस भाग दौड़ के बीच उन्होंने अपने को भरसक गुप्त रखने का प्रयास किया फिर भी अनेक बार उन्हें होलकर के अश्वारीहियों का सामना करना पड़ा, जिनके कारण मौसम के प्रहारों के साथ साथ उन्हें अनेकवित्तियाँ भी उठानी पड़ी। कभी कभी तो होलकर के सवार इतनी अधिक संख्या में आक्रमण कर बैठते थे कि ब्रिटिश सेना अपने जीवन के प्रति निराश हो जाती थी; परन्तु प्रत्येक अवसर प इन अश्वारीहियों के आक्रमण को मान्सन कुशल संचालन से विफल कर दिया गया। मार्ग में ही २१ जुलाई को शत्रु पक्ष की एक पर्याप्त बड़ी टुकड़ी का कैम्प दिखाई पड़ा। कैप्टेन ओ डोनेल ने अपने अधीनस्थ पार्श्ववर्सी कम्पनियों के साथ इस कैम्प पर प्रबल आक्रमण किया और उनको मार भगाने में सफलता प्राप्त की। उफनती हुई चम्बली नदी को पार करने के प्रयास में बहुत से सैनिक डूब कर मर गये। इन सैनिकों ने इतनी लम्बी भागदौड़ में अनेकानेक संकटों का कामना किया था; परन्तु इसी समय जो नृशंस दृश्य उपस्थित हुआ उसने उनकी आत्मा को दहला दिया। यद्यपि सैनिक तो नदी के इस पार पहुंच गये थे परन्तु उनमें से स्त्री बच्चे उसी तरफ रह गए थे क्योंकि उनको अन्त में पार कराने की योजना बनाई गई थी। निकटस्थ पहाड़ियों में रहने वाले, होलकर के सहायक, भीलों ने अत्यंत ही नृशंसतापूर्वक, इन सैनिकों की आँखों के सामने ही उनके स्त्री बच्चों को मार डाला और बेचारे सैनिक इस पार से, असहाय अपने स्त्री वच्चों की चीखों को सुनते रहे और इस नृशंस हत्याकाण्ड को देखते रहे।

२१ जुलाई]

२६ जुलाई तक, अपार कष्ट उठाने के बाद, ब्रिगेडियर जनरल मान्सन के साथ के सभी सैनिक दस्ते रामपुर पहुंच गये। उनके वहाँ पहुंच जाने पर दो बटालियन सेनाएं उनकी सहायता के लिए आ पहुंची जिनके साथ चार तोपें और खाद्य सामग्रियों का पर्याप्त भण्डार था, इन बटालियनों के साथ अनियमित सवारों का एक दस्ता भी था। ज्योंही जनरल लेक को यह समाचार मिला था कि मान्सन मोकुन्द्र दर्रे के पास बुरी तरह फंस गया है, उसने उसी समय इन बटालियनों को उसकी सहायता करने के लिये कूंच कर देने का आदेश दे दिया था, परन्तु ये वटालियने उपयुक्त समय पर न पहुंच सकीं। इन बटालियनों के साथ जितनी सामग्रियाँ भेजी गई थी, वे ब्रिगेडियर जनरल मान्सन की दृष्टि में अपर्याप्त थीं अत उसने कुशलगढ़ की ओर बढ़ने की योजना बनाई, जहाँ से उसे पर्याप्त मात्रा में खाद्य सामग्रियों के मिलने की आशा थी। इस समय सदाशिव राव भाऊ भास्कर दौलतराव सिन्धिया की ६ बटालियनों और इक्कीस तोपों के साथ कुशलगढ़ में ही पड़ा हुआ था, अतः उससे मिलने की उत्कण्ठा भी मान्सन के हृदय में थी। कुछ शक्तिशाली तोपों के साथ अपने साथ की एक सशक्त टुकड़ी को रामपुर की सुरक्षा के लिए वहीं छोड़ दिया और अपने डिवीजन की पाँच बटालियनों तथा बंगाल के सिपाहियों की ६ कम्पनियों के साथ २२ अगस्त को प्रातःकाल बनास नदी के तट पर पहुंच गया। यह नदी भी इस समय इतनी बढ़ी हुई थी कि ऊंचे से ऊंचे हाथी भी शायद ही इस नदी को पार कर सकता था। किसी तरह से मान्सन ने तीन नावों का प्रबन्ध किया जिसके द्वारा डिवीजन के साथ के खजाने को तथा उसकी सुरक्षा के लिये कैप्टेन निकल के नेतृत्व ने २१ वीं रेजिमेंट की ६ कम्पनियों को उस पार भेज दिया गया और ये कम्पनियाँ खजाने के साथ कुशलगढ़ की ओर रवाना हो गई। अभी शेष सेना इसी पार थी कि इसी बीच २३ अगस्त को होलकर के अश्वारोही पुनः दृष्टिगोचर हुए परन्तु इस समय उन्होंने किसी प्रकार से छेड़छाड़ करने की प्रवृत्ति नहीं दिखाई। २४ अगस्त को ब्रिगेडियर जनरल मान्सन ने अपनी कैम्प सामग्रियों और एक बटालियन सैनिकों को उस पार भेजने का प्रबन्ध किया। इसी समय यशवन्तराव होलकर ने मान्सन की स्थिति के दाहिने तरफ स्थित एक गाँव पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लिया परन्तु थोड़ी ही देर में मान्सन ने पुनः उनको उस गाँव से निकाल बाहर किया। इस समय तक बनास नदी भी काफी घट गई गई थी, अतः सिन्धिया के मराठा सैनिकों ने आसानी से दाहिने और बाँएँ पाश्वों से नदी को पार करने में सफलता प्राप्त कर ली; अब तक मान्सन का प्रायः समस्त सामान नदी के पार पहुंच गया था, अतः उसकी सेना के मुख्य भाग, अर्थात् तीन बटेलियनों ने एक छोटी तोप के साथ माराठा सैनिकों का अनुसरण किया। पीछे बचे हुए सामानों तथा कैम्प परिचारकों को सुरक्षित रूप से पार पहुंचाने के लिए मेजर जेम्स सिनक्लेयर को दूसरी रेजिमेन्ट दूसरी बटालियन के साथ उसी पार छोड़ दिया गया। चार बजते बजते होलकर की समस्त पैदल सेना, तोपखाने के साथ आ धमकी और उसकी तोपों ने आग उगलना प्रारम्भ कर दिया। अब मेजर सिनक्लेयर बड़ी परेशानी में पड़ा, फिर भी उसने धैर्य नहीं छोड़ा। अपने साथ इसी पार रह गए छोटे से दस्ते के साथ उसने होलकर की सेना पर धावा कर दिया और उसकी कई तोपों पर अधिकार कर लिया। कुछ क्षणों के लिए वह होलकर पर हावी हो गया जिसके फलस्वरूप होलकर को पीछे हटना पड़ा, परन्तु इसी समय यशवन्तराव होलकर ने; सदैव की तरह सेना के आगे होकर अपने सैनिकों को ललकारा; उसके सैनिकों में उत्साह की नवीन लहर दौड़ गई और उसके विभिन्न दस्तों ने बारी बारी से मेजर सिनक्लेयर की बटालियन पर धावा करना शुरु कर दिया। मेजर सिनक्लेयर के मुट्ठी भर सैनिक इस विशालवाहिनी के सम्मुख कर ही क्या सकते थे, धीरे धीरे उनकी संख्या कम होती गई और उनके अनेक अफसर मारे गए;

मेंजर सिनक्लेयर तथा अन्य १२ यूरोपियन अफसरों की मृत्यु के पश्चात् बचे खुचे सैनिकों ने भाग कर उस पार पहुंचने का प्रयत्न किया जहाँ से उनकी शेष सेना होलकर की सैन्य पर गोलाबारी कर रही थी। मराठों की यह प्रवृत्ति है कि जब भी वे सफल होते हैं तो उनको बीरता एवम् भयंकरता वढ़ जाती है, परन्तु हार का लक्षण मात्र देख कर वे परम कायरों की भांति भागने लगते हैं। इस समय वृटिश सैनिकों की विरत्ति देख कर उनका उत्साह द्विगुणित हो उठा था। उन्होंने युद्ध में प्राप्त उस सुविधा का पूरा लाभ उठाने का निश्चय किया और मानसन को विवश होकर अपना सामान छोड़कर पीछे हटना पड़ा। इन सैनिक सामानों को विजय स्मारक समझ कर मराठों ने लूट लिया। उधर वृटिश सैन्य का वह दस्ता मानो कृतसंकल्प था कि वह पराजय को स्वीकार नहीं करेगा। इसी संकल्प के बल पर वे हर आक्रमण का करारा जवाब दे रहे थे। इधर कर्नल मानसन २५ वीं अगस्त को रात में कुशलगढ़ पहुंच गया। इस स्थान पर उसे एक पूर्णतया असम्भावित दृश्य दिखायी पड़ा। बजाय इसके कि सदाशिव भाऊ मित्रता प्रदर्शित करे उसने कैप्टेन निकोल पर आक्रमण कर दिया था, जिसने बड़ी वीरता से अपनी चौकी की रक्षा की थी और कुशलगढ़ को शत्रु के हाथों में जाने से बचाया था। कुशलगढ़ का नगर राजा जयपुर के शासन में था। २६ वीं अगस्त को मराठा सेना ने इस भांति पड़ाव डाला कि समूची वृटिश सेना चारो ओर से घिर उठी। इसी समय चौदहवीं रेजिमेण्ट को पहली बटालियन से सम्बन्धित देशी सिपाहियों की दो कम्पनियाँ होलकर के बहकावे में आकर वृटिश छावनी को छोड़ कर चली गयीं और होलकर की सेना में शामिल हो गयी। किसी भी कागज में इस बात का पता नहीं चलता कि सेना में यह असन्तोष किस कारण से पैदा हुआ, परन्तु थोड़े से सिपाहियों को इस नमकहरामी की पूरी क्षतिपूर्ति शेष सैनिकों की नमकहलाली से हो गयी। दुर्भाग्य ही ऐसा था कि ब्रिगेडियर जेनरल मानसन अपने सैनिकों से पूर्णतया परिचित नहीं थी। न तो उसका विश्वास सैनिकों पर था और न सैनिकों का विश्वास उस पर था। इसी पारस्परिक विश्वास हीनता की छाया में अपनी अवशिष्ट छोटी तोपों को खूंटों से बांधकर (क्योंकि अधिकांश तोपें तो बनास के किनारे ही छिन चुकी थीं) मानसन कुशलगढ़ से बाहर निकला और आगरे की ओर बढ़ा। २७ वीं अगस्त की रात को अपने थके सिपाहियों को थोड़ा आराम देने की इच्छा से हिपडोन के नष्ट भ्रष्ट किले के साये में थोड़ी देर के लिये रुका। यहाँ तक पहुंचने के पूर्व मराठा सवारों ने कितनी ही बार उस सेना पर आक्रमण किया परन्तु मानसन के सिपाहियों की प्रगति में कोई भी बाधा नही पड़ी। अर्द्धरात्रि के एक घंटा बाद ही मानसन ने फिर प्रस्थान कर दिया। ज्यों ही वह पहाड़ी खड्डों के बाहर निकला त्यों ही माराठा सवारों के तीन विभिन्न दस्तों ने एक साथ ही उस पर हमला कर दिया। मानसन के सिपाही तब तक प्रतीक्षा करते रहे जब तक मराठासवार तोपों की मार में न आ गये। तोपों की मार की सीमा में आते ही मानसन के तोपचियों ने एक ही बौछार इस प्रकार फेंका कि शत्रु सवार चारो ओर भागने लगे। इसके शीध्र वाद ही वृटिश सैनिकों ने संगीनों की इतनी भयंकर मार की कि शत्रु शवारों को तितर-बितर होने के लिये राह खोजनी पड़ी। मानसन के सिपाही भूख व थकावट से एकदम बेहाल हो गये थे। वे सूर्यास्त के समय तक बीना दर्रे के पास पहुंच गये। ब्रिगेडियर जनरल मानसन ने इरादा किया कि इस स्थान पर थोड़ा रुक कर आराम ले ले परन्तु मराठा सेना भी चूकने वाली न थी। उसने अब की बार अपनी छोटी तोपों को लेकर इतनी भयानक गोलाबारी की कि मानसन को रुकने की इच्छा का त्याग करके आगे बढ़ने को विवश होना पड़ा। यह सेना इतनी बुरी तरह थकी हुई थी ही, ऊपर से सैनिक सामान को साथ लेकर चलना कोढ़ में खाज हो रहा था। धोर अँधेरे ने उनकी परेशानियों को और भी बढ़ा दिया था। ऐसी स्थिति

में इतना अधिक साभान लेकर चलना एकदम असम्भव मालूम पड़ने लगा। हार कर उन सभी सामानों को भयंकर गड़बड़ी की स्थिति में छोड़कर आगे की ओर बढ़ना पड़ा। इस प्रकार की परेशानियों, भूख और थकावट से घबरा कर वह सेना तेजी से आगरे की ओर बढ़ चली। इस समय यदि शत्रु चाहता तो घेर कर इस भूखी, थकी एवम् हतोत्साह सेना का सत्यानाश कर सकता था, परन्तु भाग्य-वश उनकी संख्या पर्याप्त न थी और वे यदा-कदा ही कोई आक्रमण कर सकने से अधिक कुछ कर पाने में समर्थ नहीं थे। शत्रुओं की झपट से बारम्बार बचती हुई यह सेना किसी तरह शत्रुओं को धोखा देती हुई ३१ वीं अगस्त को आगरे पहुंची और तब जाकर उनकी जान में जान आयी। इस सेना के हारे थके सिपाही आगरे में शरण प्राप्त करके मानो नया जीवन पा गये।

इस प्रकार ब्रिगेडियर जनरल मानसन को बुरी तरह पराजित करने के पश्चात विजयोन्मत यशवन्त राव होलकर ६०,००० अश्वारोहियों * तथा १५००० पैदल सेना तथा १९२ शक्तिशाली तोपों के साथ मथुरा की ओर बढ़ चला। इस समय तक ब्रिटिश सेना उसके नाम से इस तरह कांपने लगी थी कि उसके मथुरा पहुंचने के पूर्व ही ब्रिटिश सेना मथुरा से हट गई। मथुरा होते हुए मराठा सवारों के दस्तों ने यमुना नदी को पार करके आगे बढ़ना प्रारम्भ किया। परन्तु धैर्यवान और उत्साही जनरल लेक ने पिछली विपत्तियों से सबक लेकर, मराठों से उसका बदला चुकाने के लिए पहले से ही तैयारी कर ली थी। जब मराठा अश्वारोहियो ने यमुना नदी को पार करके उस पार कदम रक्खे, जनरल लेक ने उनको तुरन्त वापस खदेड़ दिया। अब होलकर ने अपनी सेना को पूर्ण गति से आगरा की ओर कूच करने का आदेश दिया और एक ही माह में ब्रिटिश सेना ने पुनः मराठा सैन्य की ओर बढ़ना प्रारम्भ कर दिया। थोड़े ही दिनों पश्चात् मराठों ने अपनी पुरानी लड़ने बचने और भागने की नीति का आश्रय ले लिया और खुले युद्ध से यथा शक्ति बचने लगे। वे छोटे-छोटे दस्तों में यत्रतत्र दृष्टि गोचर होते थे, और फिर धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ने लगती थी। जब ब्रिटिश अश्वारोहियों को उनका पीछा करने का आदेश दिया जाता था तो ये मराठा सवार भाग निकलते थे और उन्हें प्रत्यक्ष युद्ध के लिए रंचमात्र भी अवसर नहीं देते थे। जब ब्रिटिश अश्वारोही उनका पीछा करते करते ऊब जाते थे और थक कर वापस लौटने लगते थे, तो उनके पीठ फेरते ही मराठे उन पर चढ़ दौड़ते थे और बन्दूकें चलाते हुए तथा भाले फेंकते हुए उनको खिझाते थे। कभी-कभी वे लुकते छिपते ब्रिटिश सेना के दाहिने या बाँएँ पार्श्वों की पिछली पंक्तियों तक जा पहुंचते थे और खाद्य सामग्री तथा अन्य सामानों को छीन कर भाग जाते थे; संक्षेप में यही मराठों की रणनीति थी। इन छिटपुट मुठभेड़ों में ब्रिटिश पक्ष के जो सैनिक और अफसर यशवन्तराव होलकर के हाथ पड़ जाते थे उन्हें वह असह्य यातनाएँ देता था और अत्यन्त क्रूरता पूर्ण व्यवहार करता था। सम्भवतः यह कहा जा सकता है कि एक स्थान पर कैम्प डाल कर मराठा सवारों के खुले युद्ध में आने की प्रतीक्षा करने और उनके साथ महत्वहीन छेड़छाड़ करने के बजाय जनरल लेक के लिए यह अधिक श्रेयस्कर था कि वह यशवन्तराव होलकर की पैदल सेना और तोपखाने पर आक्रमण करके अपने अधिकार में करने का प्रयत्न करता, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वह होलकर के विरुद्ध निर्णायक युद्ध छेड़ने के पूर्व पर्याप्त मात्रा में खाद्य पदार्थों को संग्रह करने के उद्देश्य से मथुरा में रुका हुआ था जिससे कि होलकर उसकी तरफ से निश्चिन्त होकर अन्य साहसिक योजनाएँ बनाने लगा। जनरल लेक की तरफ से आक्रमण का कोई आभास न पाने पर यशवन्तराव होलकर ने मुगल बादशाह को अंग्रेजों के हाथ से निकाल कर अपने

---

* सर जान मालकन के आधार पर सिन्धिया और भोंसले की सेनाओं के छाटे गये सैनिकों का पिण्डारियों भरती के कारण होलकर की सेना इतनी विशाल हो गई थी।

संरक्षण में लेने का निश्चय किया । उसने इस योजना को अत्यन्त ही बुद्धिमत्तापूर्ण एवम् सुनियोजित ढंग से तैयार किया था परन्तु दिल्ली में स्थित ब्रिटिश रेजिडेन्ट लेफ्निन्ट कर्नल आक्टरलोनी की सतर्कता एवम् वीरता, तथा सेनाध्यक्ष, लेफ्टिनेन्ट कर्नल वर्न के अवसरानुकूल सहयोग से होलकर के सारे मन्सूबों पर पानी फिर गया । होलकर की समस्त पैंदल सेना ने, अपनी १९२ तोपों के साथ ८ वीं अक्टूबर को दिल्ली पर आक्रमण किया और किले को घेर लिया । यह घेरा पूरे आठ दिनों तक, अर्थात चौदह अक्टूबर तक पड़ा रहा । यद्यपि किले के भीतर स्थित रक्षक सेना के एक अंग ने ब्रिटिश सेना का साथ छोड़ दिया; फिर भी सिपाहियों की एक छोटी सी टुकड़ी के कुशल संचालन में* अत्यन्त ही कुशलता पूर्वक किले की रक्षा की गई, और मराठों के एक प्रबल आक्रमण को विफल कर दिया गया । रनवरतश्रम के फलस्वरूप बुरी तरह थक जाने के बाद भी दस मील के घेरे में फैले हुए इस लम्बे चौड़े नगर की दीवालों को कहीं से टूटने नही दिया और आठ दिनों तक मराठों की पैंदल सेना को उलझाए रक्खा ।

जब जनरल लेक को होलकर द्वारा दिल्ली पर किए गए इस प्रवल आक्रमण का समाचार प्राप्त हुआ, तो उसने अविलम्ब होलकर को परास्त करने के लिए जोर शोर से तैयारी करना आरम्भ कर दिया और राजधानी को मराठों के घेरे से मुक्त करने के लिए चल पड़ा । तीव्रतम गतिसे मंजिलें तोड़ते हुए जनरल लेक १८ अक्टूबर को दिल्ली पहुंचा परन्तु होलकर की रण-पद्धति ही विचित्र थी; वह नहीं चाहता था कि जनरल लेक से उसे सीधे भिड़ना पड़े, अतः जनरल के आगमन के पाँच दिन पूर्व ही यशवन्तराव ने घेरा उठा लिया और अपनी सेना को भरतपुर की ओर रवाना कर दिया । यद्यपि ब्रिटिश सरकार के शत्रुओं से सम्पर्क न रखने के लिए भरतपुर का जाट राजा प्रतिज्ञावद्ध था और ब्रिटिश सरकार के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध में उसको लाभ ही हो रहा था, परन्तु मराठे उसके पुराने मित्र थे और विशेष कर होलकर परिवार के प्रति तो उसके हृदय में बहुत ही श्रद्धा थी अतः इस समय होलकर की सहायता करने के लिए उसने ब्रिटिश सरकार के सन्धि रूपी जुए को अपने कन्धों पर से उतारफेंका । होलकर के कुछ हजार अश्वारोही उसकी पैंदल सेना के साथ भरतपुर चले गए थे, परन्तु शेष सवार पर्याप्त समय तक निरन्तर दिल्ली के चारो ओर मँडराते रहे और अनुकूल अवसर पा जाने पर यदा कदा ब्रिटिश सेना को हानि भी पहुंचाते रहे । परन्तु अक्टूबर माह की २९वीं तारीख को इन अश्वारोहियों ने अचानक पानीपत के जरा सा और नीचे के एक घाट से जमुना नदी को पार कर लिया और लेफ्टिनेन्ट कर्नल बर्न पर आक्रमण करने का इरादा किया । जिस समय होलकर ने दिल्ली पर घेरा डाला था उस समय दिल्ली की रक्षा के लिये लेफ्टिनेन्ट करनल बर्न को भी भेज दिया गया था । इस समय वह दिल्ली से सहारनपुरमें स्थित अपने पढ़ाव पर जा रहा था, उसके पास देशी सैनिकों की केवल एक बटालियन थी जिसके साथ कुछ बन्दूकची भी थे । दिल्ली और सहारनपुर के बीच स्थित शामली में यशवन्तराव होलकर ने इस लौटती हुई बटालियन के ऊपर आक्रमण कर दिया । करनल बर्न ने अपने कैम्प को आयताकार व्यवस्थित करके अपने अधीनस्थ सैनिकों को एक-एक दिशा की ओर किये जाने वाले आक्रमण का सामर्थ्य भर सामना करने का निर्देश दिया, परन्तु बहुसंख्या मराठा

---

* देशी सेनाओं का व्यवहार प्रायः अपने अफसरों की नेतृत्व शक्ति पर आधारित होता है । अफसरों को यह समझ लेना चाहिए कि यदि उनके अधीनस्थ सैनिक उन पर विश्वास नहीं करते तो इसके लिए वह अफसर ही दोषी माना जायगा । इस अवसर पर सैनिकों को प्रोत्साहित करने के लिए कर्नल अक्टरलोनी ने समय-समय पर उनके बीच मिठाइयाँ वितरित कीं और उनसे वादा किया कि मराठों को भगा देने पर उन्हें १५ दिन का बेतन अधिक दिया जायगा ।

अश्वारोहियों के समक्ष ये मुट्ठी भर सैनिक कुछ भी न कर सके। शाम तक होलकर ने तीनों दिशाओं से उसकी सेना को बुरी तरह घेर लिया। बर्न ने रात होने तक किसी प्रकार होलकर को उलझाये रक्खा, परन्तु रात में अनुकूल अवसर पाकर उसने उस स्थान से अपना कैम्प उखड़वा दिया और सहारनपुर को जाने वाले राजमार्ग को पकड़ लिया। उसने निश्चय कर लिया कि यदि होलकर ने उसका पीछा किया तो वह अपने सैनिकों को किसी गढ़ी में डाल देगा और आवश्यक खाद्य सामग्रियों को इकठ्ठा कर स्वयम् भी गढ़ी के भीतर बन्द हो जायगा और होलकर का अपनी सामर्थ्य भर सामना करेगा, परन्तु यदि उसे अपनी जरूरत भर की खाद्य सामग्री न मिल सकी तो वह होलकर से लड़ते-भिड़ते पुनः दिल्ली की ओर रवाना हो जायगा। जब होलकर ने उसे शामली में घेरा था तो शामली वासियों ने अंग्रेजों का विरोध किया था और उस पर आक्रमण करने में होलकर को पर्याप्त सहायता पहुंचाई थी। अतः जनता के अपने विरोध में हो जाने के कारण उसे पर्याप्त खाद्य सामग्री के एकत्रित कर सकना अत्यन्त कठिन है, अतः उसने दिल्ली की ओर ही लौटने का दृढ़ निश्चय कर लिया। परन्तु इसी समय लेफ्टिनेन्ट करनल को समाचार मिला कि होलकर के हाथों से उसको मुक्त करने के लिए जनरल लेक हिन्दुस्तानी अश्वारोहियों की तीन रेजिमेंट, तोपखाना तथा कर्नल डान के नेतृत्व में पैदल सेना के पूरे एक ब्रिगेड सैनिकों के साथ दिल्ली से चल पड़ा है; यह हठपूर्ण समाचार सुनकर लेफ्टिनेट कर्नल बर्न के जान में जान आयी। जनरल लेक ३ नवम्बर को शामली पहुंच गया था। सदैव की तरह ही जनरल लेक के पहुंचने के पहले होलकर ने बर्न का पीछा करना छोड़ दिया और पीछे लौट गया। उसने कुछ समय पहले एक बार जनरल वेल्सली को धमकी दिया था कि यदि उसके क्षेत्र को वापस न किया गया तो वह ब्रिटिश क्षेत्र को अग्नि और तलवार द्वारा वीरान कर देगा, अब होलकर ने इस धमकी को पूरा करने की योजना बनाना शुरू किया। जनरल लेक को यशवन्तराव होलकर के नृशंस इरादों की खबर थी अतः उसने निश्चय किया कि वह होलकर को इतना अवसर ही नहीं देगा कि वह अपने इरादों को कार्य रूप में परिणत कर सके। शामली पहुंचने के दो दिन बाद, अर्थात् ५ नवम्बर को जनरल लेक ने होलकर का पीछा करना प्रारम्भ कर दिया। होलकर दोआब में से होते हुये सीधे दक्षिण की ओर लौटने लगा और मार्ग में उसने अनेक अरक्षित गाँवों को अग्नि के लपटों के हवाले कर दिया।

जब होलकर के पीछे जनरल लेक ने भी यमुना नदी को पार कर लिया तो उसने कर्नल डान के अधीनस्थ पैदल ब्रिगेड के अतिरिक्त उसने अश्वारोहियों के दो रेजिमेंट के साथ समूची ब्रिटिश पैदल सेना को होलकर की पैदल सेना तथा तोपखाने का पीछा करने के लिये भेज दिया जो कि इस समय डीग के गढ़ में मोर्चाबन्दी किए बैठा था। डीग का किला भरतपुर के जाट राजा के अधिकार में था, परन्तु अंग्रेजों के साथ की गई सन्धि को तोड़ कर उसने इस किले में यसवन्त राव होलकर को आश्रय दिया था। उ। समूची ब्रिटिश पैदल सेना का संचालन भार मेजर जनरल फ्रेजर के हाथ में था। मेजर जनरल फ्रेजर १२ नवम्बर को डीग के अत्यंत समीप पहुंच गया। होलकर की पैदल सेना एक विस्तृत दलदली क्षेत्र और एक गसरे तालाब के पीछे कैम्प डाले हुए पड़ी थी। उनके बाएं पार्श्व में एक मोर्चा बन्द गाँव और दाहिने पार्श्व पर डीग का किला था. जिसकी सुरक्षा के लिए थोड़े थोड़े अन्तर पर तोपें पंक्ति बद्ध करके लगा दी गई थीं और मराठों के विचारानुसार इस व्यूह को तोड़ सकना लगभग असम्भव था। उस दिन ब्रिटिश सेना ने चुपचाप विश्राम किया और आक्रमण की योजना बनाते रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल ही ब्रिटिश सेना को दो पंक्तियों में विभाजित कर दिया और इसी व्यवस्था के अनुसार ब्रिटिश सेना होलकर पर आक्रमण करने के लिए बढ़ी। सर्व प्रथम, उत्साह से भरी हुई ७६ वीं रेजिमेंट ने मराठा सेना के बाएं पार्श्व में स्थित मोर्चेबन्द गाँव पर संगीनों से साथ

आक्रमण किया और गाँव में काफी दूर तक धंस गये। इसी समय इस गाँव की सुर के लिये लगी हुई पंक्तिबद्ध तोपों ने आग उगलना प्रारम्भ कर दिया रन्तु इस रेजिमेंट के बहादुर शिपाहियों ने गोलों कोई परवाह न करते हुए, अपना कार्य जारी रक्खा। ७६ वीं रेजिमेंट को कुछ निर्बल पड़ते देख कर प्रथम बंगाल यूरोपियन रेजिमेंन्ट के सैनिकों तथा उनके बाद देशी सिपाहियों ने तीव्र गति से आगे बढ़ कर ७६ वीं रेजीमेंट को पीछे से सहारा दिया। ब्रिटिश सेना के प्रबल आक्रमण से मस्त होकर होलकर की पैदल सेना ने तोपों की प्रथम पंक्ति की आड़ का परित्याग कर दिया और दूसरी पंक्ति का आश्रय ग्रहण किया। परन्तु उनके पीछे हटते ही जनरल फ्रेजर ने उतनी तीव्र गति से तोपों की द्वितीय पंक्ति पर भी आक्रमण किया परन्तु इस दुस्साहसिक प्रयास में वह सांघातिक रूप से घायल होकर गिर पड़ा जिससे ब्रिटिश सेना को अपार कष्ट हुआ। फ्रेजर के घायल हो जाने के पश्चात् युद्ध संचालन भार ब्रिगेडियर जनरल मान्सन के हाथ में आ गया, जिसके संचालन के कारण अन्त में ब्रिटिश सेना के हाथ विजय श्री लगी। मराठे ब्रिटिश सेना के तीव्र धावों के कारण तोपों की पंक्ति पर पंक्ति छोड़ते हुए प्रीछे हटते गये और अन्त में ब्रिटिश सेना ने बलात् उन्हें किले के भीतर कर दिया। किले का फाटक खुलते ही ब्रिटिश सेना को गोलियों की यंकर बौछार का सामना करना पड़ा। थोड़ी देर के युद्ध के उपराँत होलकर के अश्वारोहियों ने एक बार पुनः तोपों की प्रथम पंक्ति तक अंग्रेजी सेना को हटा दिया और कुछ समय तक ब्रिटिश सेना की पिछली पंक्तियों पर गोले भी फेंके गये परन्तु ७६ वीं रेजिमेंट के २८ सैनिकों के प्रयत्न से इन तोपों को पुनः मराठों से छीन लिया गया। इन २८ सैनिकों का नेतृत्व नारफर्ड कर रहा था जो कि इस दुस्साहसिक प्रयास में मारा गया। इस युद्ध में ब्रिटिश सैन्य को पर्याप्त क्षति उठानी पड़ी। डीग के युद्ध में कुल ६४३ सैनिक और अफसर हताहत हुए जिनमें यूरोपियन अफसरों की संख्या तेरह थी। परन्तु होलकर की सेना को जितनी हानि उठानी पड़ी उसके समक्ष ब्रिटिश सेना के हताहतों के आंकड़े महत्वहीन प्रतीत होते हैं। होलकर के पक्ष के लगभग दो हजार सैनिक हताहत हुये और उसकी ८७ तोपें अंग्रेजों के हाथ लगी। मान्सन को यह देखकर अत्यधिक सन्तोष हुआ कि इन तोपों में से १४ तोपें स्वयं उसी की थीं जिन्हें वह वर्षा ऋतु में होलकर के भय तथा खाद्य पदार्थों के अभाव के कारण भागते समय कीचड़ में धंस जाने पर छोड़ कर भाग आया था।

डीग पर विजय प्राप्त हो जाने के चार दिन पश्चात् १७ नवम्बर को प्रातःकाल, होलकर के अश्वारोहियों का पीछा करता पूर्ण रूप से थके जनरल लेक ने होलकर की सवार सेना के लगभग साथ ही वह भी फर्रुखाबाद पहुंचा। उसने अवसर पाकर अचानक मराठा सेना अश्वारोहियों पर आक्रमण कर दिया और बात की बात में होलकर के तीन हजार सैनिकों को तलवार के घाट उतार दिया। ३१ वीं अक्टूबर को जनरल लेक ने अनुमान लगाया कि पिछले दिनों वह प्रति दिन २३ मील के हिसाब से आगे बढ़ता रहा है तथा यह हमला करने के पूर्व उसने दिन रात मिलाकर २४ घन्टे से भी कम समय में ७० मील की दूरी तै की थी।

जिस समय जनरल लेक की सेना मराठों के पास पहुंच चुकी थी, उसी समय उसकी सेना में स्वयं उसी का एक एक गोला फट गया जिसके भमानक धड़ाके को सुनकर होलकर अपनी मुख्य सेना से मिलने के लिये तेजी से अपने सवारों को लेकर डीग की ओर लौटा क्योंकि अपनी इस सेना की अपमान जनक पराजय का समाचार उसे मिल चुका था। जनर लेक का निश्चय था कि वह डीग की गढ़ी को घेर कर समाप्त कर दे, इसी से उसने आगरे से दुर्ग भेदी तोपों को भेजवाया था जो १३ वीं दिसम्बर को ही उसके पास पहुंची और उसी दिन उसने तोपों के लिये आवश्यक खाइयों की व्यवस्था करली। दस

दिन की भयंकर एवं निरन्तर गोलबारी के पश्चात् दुर्ग की चहादीवारी एक जगह से टूट गयी, परन्तु जनरल लेक ने देखा कि नगर का वह कोना होलकर के सैनिकों से पूर्णतया राक्षेत था। करीब आधीरात के समय लेक ने उसी भग्न स्थान पर आक्रमण किया और उसे अपने अधिकार में ले लिया परन्तु इस रात्रिकालीन आक्रमण में उसके दो सौ सत्ताईस व्यक्ति मारे गये अथवा धावल हो गये। अगले दिन तथा उस रात में होलकर के सैनिकों ने किले को खाली कर दिया और भरतपुर के लिये चल पड़े। होलकर की समूची पैदल सेना भी भरतपुर की ही ओर चल रही थी।

डीग की पराजय के परिणाम स्वरूप भरतपुर राज्य का काफी बड़ा क्षेत्र अंगरेजों के हाथ आ गया था और इससे होलकर को बड़ा धक्का लगा। दक्षिण में गालना तथा चन्दौर के सहित उसके सभी किले अंगरेजों के हाथ मं जा चुके थे। अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह में कर्नल वालेस ने थोड़े ही संघर्ष के पश्चात् उपरोक्त दोनों किलों को हस्तगत कर दिया था। मालवा में भी होलकर के जितने मुख्य गढ़ थे, सब के सब ब्रिटिश सेना के अधिकार में जा चुके थे। बम्बई की सेना का जो दस्ता गुजरात से आया था, उसने बिना किसी विरोध के ही होलकर की राजधानी ग्वालियर को अपने अधिकार में ले चुका था। बम्बई की उस सेना को आदेश मिला था कि वह आगे बढ़ कर होलकर को मालवा की ओर जाने से रोके। उसी आदेश के अनुसार वह सेना भी तेजी से चलकर दिसम्बर के अन्त तक कोटा पहुंच गयी थी। अब इस समय अंग्रेजों को इस बात की आवश्यकता जान पड़ी कि वे भरतपुर को भी अधिकृत कर लें ताकि होलकर के एक मात्र शरणस्थल को भी नष्ट कर दिया जा सके। इस किले को लेने के बाद होलकर एकदम निराश्रित हो जाता तथा उसकी स्थिति एक दम से शरणार्थी की सी हो जाती और इस हालत में या तो वह कैद ही हो जाता या पूरी तरह नगराय ही हो जाता।

यद्यपि पिछले दिनों होलकर को भारी हानियां उठानी पड़ी थीं फिर भी उसका भाग्य अभी तक इतना नहीं बिगड़ा था कि उसका सत्यानाश ही कर दिया जाता। भरतपुर का राजा उसका मित्र था और उससे भी अधिक दृढ़ता से मरने मारने को तैयार था। मराठा सरदार के समान ही उसकी एवम् उसका समूचा राज्य घोड़ों को पीठ पर ही थी। भरतपुर के राजा ने निश्चय पूर्वक घोषणा की थी कि या तो उसका किला सम्पूर्णरूपेण रक्षित रहेगा या वह अपनी जान दे देगा। *

———

---

* उपरोक्त वर्णन के लिए अंगरेजी रिकार्डस को छोड़कर अन्य कोई अधिकृत प्रपत्र नहीं मिल सके।

पैंतालीसवां अध्याय

भरतपुर का संग्राम

[१८०५—१८०६]

भरतपुर के घेरे का प्रारम्भ—होलकर तथा अमीर खाँ द्वारा प्रतिरोध—अमीर खाँ का रुहेलखंड की ओर जाना—जेनरल स्मिथ द्वारा उसका पीछा करना—अमीर खाँ का विवश होकर भरतपुर की ओर लौटना—अंग्रेजों के चार आक्रमण जाटों द्वारा विफल—राजा द्वारा सन्धि का प्रयत्न—उसके द्वारा रक्खी गयी शर्तों की स्वीकृति—सिंधिया से विवाद—लार्ड कार्नवालिस का गवर्नर जनरल बन कर भारत आना—उसका दृष्टिकोण—उसकी मृत्यु—सर जार्ज बार्लो का गवर्नर जनरल बनना—होलकर पंजाब के रास्ते पर—लार्ड लेक द्वारा उसका पीछा—सर जार्ज बार्लो की नीति—अंगरेजों की राजपूत संबंधी नीति—गायकवाड़ से सन्धि ।

दूसरी जनवरी को बंगाल की सेना भरतपुर के सामने आ पहुंची । जनरल लेक का स्वभाव था कि वह अपनी रक्षा का विशेष यत्न किये विना ही युद्ध छेड़ देता था । अब तक उसके इस स्वभाव के कारण उसे कभी हानि भी नहीं उठानी पड़ी थी । इस बार भी उसने पेड़ों के एक झुरमुट के पीछे शरण लेकर लेक ने भरतपुर का घेरा डाल दिया । भरतपुर का पूरा नगर ही पूर्ण रूप से रक्षित था । उसका घेरा करीब आठ मील था और यह समूचा घेरा मिट्टी के एक ऊंचे ढूह से घिरा हुआ था । यह दीवालनुमा ढूह काफी ऊंचा और मजबूत था और इस पर स्थान-स्थान पर बड़ी-बड़ी तोपें लगी हुई थीं । इस दीवार के चारो ओर काफी चौड़ी और गहरी खाई थी जिसे कहीं से पार कर पाना असम्भव था । इस सुदृढ़ दुर्ग की रक्षा में राजा भरतपुर की समूची सेना नियुक्त थी और होलकर की अवशिष्ट पैदल सेना भी इसी दुर्ग की रक्षा में लगी हुई थो । भरतपुर के आसपास जाटों की ही बस्ती थी । राजा ने उन सभी लोगों से विशेषरूप से प्रार्थना करके उन्हें किले के भीतर लेकर किले की मरम्मत का काम करने को राजी कर लिया था । उसके पास कोष तो पर्याप्त था ही, उसे तीन ओर से रसद भी बराबर मिलती जा रही थी,जिसे रोकने का कोई भी उपाय अंगरेजों के पास न था । बाहर से होलकर की सवार सेना घेरा डालने वालों पर छापे मार-मार कर हैरान करती रहती थी । राजा भरतपुर के पास सुरक्षा के पर्याप्त साधन भी थे और वह उनका उपयोग करने पर दृढ़ प्रतिज्ञ था । बाहर से छापा मारने के लिये केवल होलकर की सवार सेना ही नहीं थी बल्कि अमीर खाँ भी था, जिसे बुन्देलखण्ड से इसी काम के लिये बुलवाया गया था । अंगरेजों के लिये रसद ले जाने वाली सेना पर उसने कई असफल किन्तु करारे आक्रमण किये थे, जिनमें उसके काफी सैनिक हताहत हुये थे । इसके बाद उसने सहसा अपना रास्ता बदल दिया और जमुना के बाद गंगा को पार करके कम्पनी अधिकृत रुहेलखण्ड के जिले पर टूट पड़ा । उसका पीछा करने के लिये जनरल लेक ने तुरन्त ही सवारों का एक दस्ता जेनरल स्मिथ की अधीनता में रवाना किया । यह सवार सेना इतनी शीघ्रता से रुहेलखण्ड में जा पहुंची कि अमीर खाँ को अधिक विनाश का मौका ही न मिल सका । जनरल स्मिथ बराबर अमीर खाँ का पीछा करता रहा । अन्त में पहली मार्च को वह तेजी से चलकर अमीर खाँ के सामने आ गया । थोड़ी ही देर के घन-

घोर युद्ध के पश्चात् अमीर खाँ की सेना के पांव उखड़ गये। कम्पनी के सवारों की इस जीत से उस क्षेत्र के लोगों में भी अमीर खाँ का प्रतिरोध कर सकने का साहस पैदा हो गया। बार-बार की पराजयों से तंग आकर अमीर खाँ के सैनक भी धीरे-धीरे उसका संग छोड़ने लगे। अमीर खाँ थक भी चुका था और उसने देखा कि इन छोटे-मोटे युद्धों से कोई लाभ भी नहीं है। इसलिये वह २०वीं मार्च को भरतपुर को लौट गया। जनरल लेक के सम्पूर्ण विध्वंस प्रयत्नों का उपहास करता हुआ भरतपुर का सुदृढ़ दुर्ग सर ऊंचा किये खड़ा था। हार कर जनरल लेक सोच रहा था कि वह तब तक के लिये हरेक विध्वंसक कार्यवाही को स्थगित कर दे जब तक उसके पास और भी सैनिक सामान तथा और भी विशाल तोपखाना आ न जाय। कम्पनी की सेना के चार आक्रमण बेकार किये जा चुके थे। प्रथम आक्रमण कर्नल जेट्लेण्ड की आधीनता में ९ जनवरी को हुआ था। जिसमें कर्नल अपने प्राणों की आहुति देकर भी सफल न हो सका था। इस असफलता के अनेक कारण बवाये गये जिनमें से मुख्य कारण ये थे कि यह युद्धस्थल बहुत हो ऊबड़-खाबड़ था जिसके साथ घनघोर अंधकार ने गठबन्धन कर के प्रारम्भ में ही ब्रिटिश सेना के मस्तिष्क को असन्तुलित कर दिया, और अनेक सैनिक मार्ग छोड़कर इधर-उधर बहक गये। किले के पास की खांई भी बहुत गहरी थी जिसे पार करने म भी काफी समय और श्रम लगा, किले के एक हिस्से को उन्होंने ध्वस्त अवश्य कर दिया था, परन्तु इस प्रकार से बनाया गया मार्ग इतना संकरा था और शत्रु इतनी तत्परता और बीरता से इस सकरे मार्ग की सुरक्षा में डट हुए थे कि ब्रिटिश सेना से कुछ करते-धरते न बन पड़ा। इस विफलता के पश्चात जनरल लेक को पता लगा कि भरतपुर के किले का ध्वस्त सकरा मार्ग और अधिक चौड़ा हो गया है, जिससे प्रेरित होकर दूसरी बार वह स्वयम् उसी महीने की २१वाँ तारीख को भरतपुर पर अधिकार करने के इरादे से चल पड़ा, परन्तु इस बार किले की खांई में पानी इतना गहरा * था कि उसको पार न किया जा सका। किले के ध्वस्त भाग के विषय न पता लगाने तथा खांई एवम् मार्गों का निरीक्षण करने के उद्देश्य से जनरल लेक ने आक्रमण करने के बहाने बंगालके देशी सवारों को भेजा। वे हो हल्ला करते हुए खांई के अत्यन्त समीप चले गये, खांइयों में से उन पर खाली कारतूसें चलाये गये, जिससे उनका कोई हानि नहीं हुई परन्तु वास्तव में आक्रमण करनेके लिए तो उन्हें भेजा नहीं गया था, अतः भरतपुर के किले की स्थिति के सम्बन्ध में अनुकूल जानकारी प्राप्त करके वापस लौट आये। अमीर खां ने किले के ध्वस्त भाग को शत्रुओं की दृष्टि से छिपाने के लिए ध्वस्त भाग के सामने खाई के पास एक पर्याप्त लम्बा बांध बना दिया था जिससे आक्रमण को अत्यधिक शौर्य प्रदर्शन का अवसर मिला परन्तु कोई लाभ न हुआ और किला भी नष्ट होने से बचा रहा। १० फरवरी को मेजर जनरल जोन्स की अधीनता में बम्बई की डिवीजन भी भरतपुर के घेरे में बंगाल की सेना की सहायता करने क उद्देश्य से आ मिली। भरतपुर पर अनियमित ढंग से धावे का कार्य चल ही रहा था। फरवरी माह की बीसवीं तारीख का

---

* इस विषय में जनरल लेक द्वारा गवर्नर जनरल को लिखे गये पत्र का अनुवाद श्री सुन्दरलाल ने अपनी पुस्तक (भारत में अंग्रेजी राज) में इस प्रकार दिया है "× × × मुझे यह लिखते हुये दुख होता है कि खांई इतनी अधिक गहरी और चौड़ी निकली कि उस पार करने के लिये किया गया हमारा हर प्रयत्न बेकार गया और हमारी सेना को बिना अपना उद्देश्य पूरा किये हुये अपनी खन्दकों में लौट आना पड़ा।"

"हमारी सेना ने सदा की भांति दृढ़ता से काम लिया किन्तु इतनी देर तक और इतने पक्के निशानों के साथ हमारे ऊपर गोले चलाये जा रहे थे कि मुझे डर है कि हमारा नुकसान बहुत अधिक हुआ है।"

—अनुवादक

एक बार पुनः भरतपुर पर एक संगठित आक्रमण किया, परन्तु पिछले आक्रमण से अधिक सफलता इस बार भी न मिल सकी जिसका कारण यह था कि दो यूरोपियन रेजिमेंटों ने (जिनमें से एक बहादुर ६वीं रेजिमेंट भी थी) अपने अफसरोंके आदेश को मानने से इनकार कर दिया और इस प्रकार केवल बंगाल की १२वीं रेजीमेंटके सैनिको को इस आक्रमण का उत्तरदायित्व अकेले अपने ही कन्धों पर लेना पड़ा। २२वीं पैदली रेजिमेंट के अनुकरणीय पद चिन्हों पर चलते हुये तथा उनके अपरिमित शौर्य का स्मरण करके प्रेरित होते हुये बंगाल की २२वीं रेजीमेंट के सैनिक अत्यन्त सतर्कतापूर्वक तथा दृढ़ संकल्प के साथ आगे बढ़े और अपने दुर्ग के बारजों पर अपना झंडा फहरा दिया और इस वीरत्व के कार्य के बाद यह मान लिया गया कि यदि ७५वीं तथा ७६वीं रेजिमेंट के सैनिक भी उसी प्रकार का साहस दिखाते तो उस दिन के युद्ध का निर्णय निश्चिय ही अंगरेजों के पक्ष में होता। अगले दिन जनरल लेक ने इन दोनों रेजीमेंट के सैनिकों की भर्त्सना की और वे भी बड़े लज्जित हुये। लेकके बाद में उत्साहित करने पर वे इस बात पर राजी हो गये कि वे स्वेच्छापूर्वक किले के आक्रवण में भाग लेंगे। इस प्रकार चौथा अन्तिम प्रयत्न २१वीं फरवरी को किया गया। लज्जामिश्रित उत्साह से लेक के सैनिक अन्धे हो रहे थे और वे अपने हताहत भाइयों के शरीरों का रौंदते हुये आगे बढ़ रहे थे। किले की खाई तथा उसका प्लान बृटिश सैनिकों की लाशों से पट गये थे, फिर भी शेष सैनिक सफलता का दृढ़ संकल्प लिये हुये तथा प्राणों को हथेली पर लिये आगे बढ़ते आ रहे थे। उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति व प्रगति इतनी प्रबल थी कि वे किसी भी दुःसाध्य रुकावट को लांघ सकते थे। सदा की भांति इस युद्ध में भी कम्पनी के सैनिकों ने पूरा साहस दिखाया और प्रयत्न में किसी प्रकार की कमी नहीं आने पायी। उनका यह प्रयत्न तब तक चालू रहा जब तक उन्हें रुकने का आदेश मिला। अब या तो वे खाई की दीवारों पर या बारजों पर सीढ़ियों द्वारा चढ़ने का प्रयास करने लगे, परन्तु वे सीढ़ियां लगा भी न पाते थे कि शत्रु बड़े-बड़े लठ्ठों से उन्हें धकेल देते थे या ऊपर के सिपाही उन्हें तलवारों के घाट उतार देते थे। रक्षकों की वीरता भी सराहनीय थी और उनका निरन्तर श्रम भी प्रशंसनीय था। दिन में यदि किले की दीवार में कोई दरार होती भी थी तो रात्रि में उसे गीली मिट्टी से भर दिया जाता था। उनकी तोपें मोटे-मोटे खूटों से बँधी थीं ताकि वे लुड़क न जायं। पूरे आक्रमण काल में इन तोपों से गोलों, मिट्टी के तेल में भिगोये हुए प्रज्वलित रुई के गालों एवम् भयंकर विषबुझे छोटे-छोटे हाथियारों से संयुक्त गोले बृटिश सैन्य पर अविराम गति से बरसाये जाते रहे थे और बृटिश सेना की भयभीत कराहों से मैदान गून्जता रहा। इन महान प्रयत्नों में अंगरेजों की ओर के बत्तीस सौ सिपाही हताहत हुये, जिन में एक सौ तीन यूरोपियन अफसर थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी कीं सेनाओं का सर्वाधिक दुःखप्रद परिणाम यह हुआ कि वे अपने घायलों को भी युद्ध भूमि में ही छोड़कर वापस आ गये। कहने की आवश्यकता नहीं कि रक्षकों ने इन सभी को मौत के घाट उतार दिया।

घेरे की आक्रमणात्मक कार्यवाही में बाधा पहुंचाने के लिये मराठा सवारों के आक्रमण भी होते ही रहते थे। आक्रमणों के समय वे भी रक्षकों की सहायता भी किया करते थे। जिस समय जनरल स्मिथ अमीर खाँ का पीछा कर रहा था उस समय भी इन सवारों ने पूरी तरह हैरान किया था। इन सवारों का काम था कि वे जानवरों को लूट लेते थे। चारा इकठ्ठा करने वालों पर आक्रमण करके उन्हें मार डालते थे। चारे की खोज में चारा दल को दूर तक जाना ही पड़ता था, ऐसी दशा में वे इन सवारों के हाथ पड़ जाते थे। इन सब कारणों से अंगरेजी सेना के कार्य में बड़ी बाधा पड़ती रही थी। अमीर खाँ के प्रयत्नों का वर्णन किया ही जा चुका है, इसके अतिरिक्त होलकर के साथ मिलकर एक बार उसने रसद वाहक दल पर करारा आक्रमण करके उस दल को अत्यधिक हानि पहुंचायी थी। इस

आक्रमण में जाट सवारों ने भी मराठों का साथ दिया था। सौभाग्य से इस अवसर पर एक दस्ता कम्पनी का आ पहुंचा और सारी रसद लूटने से बच गयी। रुहेलखण्ड में अमीर खाँ का पीछा करने वाली सवारों की टुकड़ी जब वापस लौटी तो जनरल लेक ने दो बार प्रयत्न किया कि होलकर पर अचानक आक्रमण करे। प्रथम प्रयास तो एक दम बेकार गया था परन्तु दूसरे प्रयन्त में अवश्य कुछ सफलता मिली थी। द्वितीय प्रयास में एक हजार मराठे मारे गये थे और अनेक मराठा सवारों ने त्रस्त होकर अपने नायक का साथ छोड़ दिया था। मराठों के ये सवार इस प्रकार त्रस्त हो गये थे कि उनमें अपनी जोवन रक्षा के लिये भी लड़ने का साहस नहीं रह गया गा। इसी निराशा का परिणाम यह हुआ था कि अंगरेजों की ओर का एक भी सवार नहीं मारा गया। इसके थोड़े ही दिनों बाद कैप्टेन रायल ने होलकर की बैठी हुई पैदल सेना को घेर कर तहस नहस कर दिया।

होलकर का दुर्भाग्य जैसे अभी पूरा नहीं हुआ था। मानों उसको पूरा करने के लिये भरतपुर के राजा ने भी अंत्रेजों से सन्धि की कामना प्रगट की और साथ ही सन्धि की शर्तें भी प्रस्तावित कर दी। अभी अंग्रेज नवीन हमले की तैयारी कर ही रहे थे कि भरतपुर के राजा का संधि प्रस्ताव आ पहुंचा और बहुत कुछ समझ बूझ कर जनरल लेक ने उसे स्वीकार भी कर लिया, यद्यपि तमाम घटनाओं के प्रकाश में इस घेरे में अंग्रेजों की असफलता स्पष्ट हो गयी। भरतपुर के जाट राजा ने हरजाने के रूप में ब्रिटिश सरकार को दस लाख रुपया दिया और प्रतिज्ञा की भविष्य में वह न तो ब्रिटिश सरकार के शत्रुओं के साथ कभी सन्धि करेगा और न उन्हें अपने राज्यक्षेत्र में अश्रित के रूप में रक्खेगा। इसके साथ ही जनरल (अब लार्ड) लेक के साथ कीं गई पिछली सन्धि के अनुसार जो सुविधाएँ और लाभ उसे प्राप्त थे, इस बार उसने इनपर से भी अपने दावों को उठा लिया। ब्रिटिश सरकार की ओर से वादा किया गया कि यदि निकट भविष्य में जंग्रेजो को उसकी ईमानदारी और मित्रता पर विश्वास हो गया तो डीग का किला पुनः उसके अधिकार में दे दिया जायगा।

भरतपुर के राजा के साथ इतनी आसान शर्तों पर सन्धि करने तथा उसके साथ कोई अन्य दुर्व्यबहार न किए जाने का एक प्रमुख कारण वह था, कि अब दौलतराव सिन्धिया ने ब्रिटिश सरकार के व्यवहारों एवम् अनधिकार चेष्टाओं के बिरुद्ध असन्तोष प्रकट करना शुरू कर दिया और यह बहुत मुश्किल नहीं था कि वह भी शीघ्र ही अंग्रेजो के साथ युद्ध की घोषणा कर देता अतः ऐसी स्थिति में अंग्रेजो ने अपने शत्रुओं की संख्यो में बृद्धि करना उचित न समझा और सन्धि के विरोधी आचरण के बावजूद भी उन्होंने भरतपुर के राजा को क्षमा कर दिया। सिन्धिया के हृदय में ब्रिटिश सरकार के प्रति असन्तोष के अनेक कारण थे। ब्रिटिश सरकार के साथ सब्सिडियरी सन्धि पर हस्ताक्षर करने के कई दिन पूर्व ही उस सन्धि का गम्भीरता पूर्वक विरोध किया था जिसके अनुसार ब्रिटिश सरकार ने गोहद के राजा को उसके समस्त पुराने परिवारिक अधिकारों को वापस करके उसे एक स्वतंत्र नरेश की मन्यता प्रदान की थी, जबकि अनेक वर्ष पूर्व ही गोहद के राजा की स्वतंत्र सत्ताको समाप्त किया जा चुका था और वह उसी संमय से सिन्धिया के अधीन एक सामन्त मात्र रह गया था। उसे अब किसी भी शक्ति से सन्धि करने का अधिकार नहीं था क्योंकि उसकी सत्ता का वास्तविक अधिकारी सिन्धिया था। अतः सिन्धिया के विचार से सिन्धिया के इस तथाकथित सामन्त को पुनः उसके पैतृक अधिकारों एवम् स्वतंत्र सत्ता को वापस कर देने का ब्रिटिश सरकार को कोई अधिकार न था और ब्रिटिश सरकार द्वारा सिन्धिया और गोहद के राजा के निजी मामले में हस्तक्षेप करना अन्यायपूर्ण था। इस प्रकार इस सन्धि को गलत और अन्यायपूर्ण मानते हुए सिन्धिया ने यह भी कहा कि अंग्रेजों द्वारा पुनस्थापित राजा को कोई अधिकार नहीं था कि वह ग्वालियर का किला कम्पनी के हवाले कर दे।

यद्यपि सिन्धिया के इन तर्कों, आक्षेपों और आरोपों की अतार्किकता और व्यर्थता को आसानी से प्रमाणित किया जा सकता था परन्तु सिन्धिया के मंत्रियों को इन बातों से ही हल्ला करने और ब्रिटिश सरकार की आलोचना एवम् निन्दा करने का प्रर्याप्र मसाला मिल गया जिनका मुख्य उद्देश्य था किसी भी प्रकार से ब्रिटिश सरकार के साथ विवाद का कारण पैदा करके सिन्धिया और ब्रिटिश सरकार के बीच की साधारण सी खांईं को और चौड़ा करना, फिर भी जब तब अवसर पाकर वे ब्रिटिश सरकार के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाए रखने और सन्धि के अनुकूल आचरण करने का विश्वास दिलाते रहते थे।

अम्बाजी इंगलिया ने यद्यपि सिन्धिया से विश्वासघात करके अंग्रेजों का पक्ष ग्रहण कर लिया था, फिर भी अंग्रेजों को उसका आचरण एवम् व्यवहार सन्दिग्ध और अविश्वासनीय ही प्रतीत होता था। इसका कारण भी था, दौलतराव सिन्धिया ने अम्बाजी इंगलिया के साथ कभी भो वैसा व्यवहार नहीं किया जैसा कि एक विश्वासघाती के साथ किया जाना चाहिए था, सिन्धिया ने उन जिलों को भी अम्बाजी से नहीं छीना जो कि उसने उसे जागीर के रूप में प्रदान किया था। कहा जाता है कि गोहद के राणा के अधिकारों की वापसी के मामले में उसी ने दौलतराव सिन्धिया के हृदय में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध असन्तोष एवम् विरोध की भावनाओं को उत्तेजित किया था। दौलतराव सिन्धिया और जशवन्तराव होलकर के बीच की खाँई को पाटने के लिए अम्बाजी इंगलिया जिस तरह से प्रयत्न कर रहा था, उससे उसे शीरजीराव धाटगे जैसे कूटनीतिज्ञों की श्रेणी में रखा जा सकता है। गवर्नर जनरल मार्क्विस वेल्सली ने इस विषय में चाहे जो भी मत निर्धारित किया हो, परन्तु किसी भी मराठा के हृदय में कोई शंका नहीं है कि निःसन्देह दौलतराव सिन्धिया के ही इशारे पर बापूजी सिन्धिया और सदाशिव भाऊ भास्कर ने अन्ततः अंग्रेजों का साथ छोड़ दिया था और यशवन्तराव होलकर की सेना में जा मिले थे। चूँकि उस समय तक ब्रिटिश सरकार ने प्रत्यक्ष रूप से दौलतराव सिन्धिया के आचरण को सन्दिग्ध और विश्वासघातकता पूर्ण नहीं घोषित किया था, अतः सिन्धिया से ऊपरी सम्पर्क बनाए रखने के उद्देश्य से उस पर कोई आरोप नहीं लगाया गया। अन्त में जब जनरल लेक को निश्चित रूप से यह पता लग गया कि बापूजी सिन्धिया और सदाशिव भाऊ भास्कर ने एक निश्चित योजना के अनुसार ब्रिटिश सरकार का साथ छोड़कर होलकर का पक्ष ग्रहण किया अतो उसने सिन्धिया को इस सम्बन्ध में सूचित करते हुए उससे इन विश्वासघातियों के व्यवहार पर बिचार करने और उसका कोर्टमार्शल करने का अनुरोध किया। साथ ही जोर देकर यह भी कहा कि उनके लिए न भी दण्ड निर्धारित किया जाय, तो उसका समुचित पालन कराया जाय। जनरल लेक के इस पत्र के उत्तर में सिन्धिया ने ब्रिटिश गवर्नर जनरल को सम्बोधित करते हुए १२ अक्टूबर १८०४ को तर्कहीन और अनुचित शिकायतों से भरे एक लम्बे पत्र में लिखा कि अपने अधीनस्थ इन सेनानायकों द्वारा ब्रिटिश सेना का साथ छोड़ देने और उचित सहयोग न देने के कारण, उसे बहुत मानसिक कष्ट है, परन्तु उनके व्यवहारों का दोंष उनकी विवशता और अर्थहीनता पर लादते हुए सिन्धिया ने उनको निर्दोष सिद्ध किया और कहा कि वह इस समय बहुत ही आर्थिक संकट में था और ब्रिटिश सरकार ने भी उसे किसी प्रकार की आर्थिक सहायता नहीं दी जिससे कि वह यशवन्तराब होलकर के विरुद्ध ब्रिटिश सरकार की सहायता के लिए उचित प्रबन्ध न कर सका। युद्धकाल में भी उसकी सेना के भोजन आदि का उचित प्रबन्ध ब्रिटिश सरकार ने नहीं किया, अतः मुखभरी की स्थिति उत्पन्न हो जाने पर, उसकी सेना ने होलकर से मिल जाने का बहाना मात्र किया ताकि होलकर के कैम्प में उनको कम से कम जीवन निर्वाह का साधन प्राप्व हो सके।

जिस समय दौलतराव सिन्धिया ने गवर्नर जनरल के नाम उक्त पत्र को भेजा, उस समय उसने बुरहानपुर से मालवा की दिशा में प्रस्थान कर दिया था और प्रकट रूप में अपने उद्देश्य की धोषणा करते हुये उसने कहा था कि वह अपनी राजधानी उज्जैन जा रहा है, जहाँ से वह ब्रिटिश सरकार की अधिक सहायता करने में समर्थ हो सकेगा परन्तु वास्तव में उज्जैन जाने में सिन्धिया का अभिप्राय कुछ और ही था। इस समय तक शीरजी राव घाटगे ने निरन्तर प्रयत्नों द्वारा सिन्धिया का विश्वास पुनः प्राप्त कर लिया था और सिन्धिया का प्रमुख परामर्श दाता बना हुआ था। यह तो हम बहुत पहले ही देख चुके हैं कि शीरजी राव घाटगे होलकर का बहुत बड़ा हिमायती था और प्रारम्भ से ही सिन्धिया और होलकर की शक्तियों को एक सूत्र में पिरोने के लिए प्रयत्नशील था। घाटगे के अनवरत प्रयत्नों से अब दौलत राव सिन्धिया होलकर के साथ सहयोग करने के लिये दृढ़संकल्प हो चुका था। अब तक उसने अनेक स्थानों पर ब्रिटिश सरकार तथा उसके मित्रों के हितों को अनेक बार क्षति पहुंचाया था और ब्रिटिश सरकार से उसका विरोध बढ़ता ही जा रहा था। इसी समय उसने प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश शासन को चुनौती देने के रूप में ब्रिटिश रेजिडेन्ट मिस्टर जेनकिन्स की निजी सम्पत्ति पर आक्रमण किया और लूटपाट की। जब उसके दरबार में नियुक्त ब्रिटिश रेजीडेंट मिस्टर जेनकिंस ने उसके इस शत्रुतापूर्ण कार्यों का विरोध किया तो सिन्धिया ने उस पर रुष्ट हो कर उसे अपने कैम्प में ही कैद कर दिया। *

अभी भरतपुर का घेरा समाप्त नहीं हुआ था। इस घेरे में ब्रिटिश सेना को सहायता पहुंचाने के उद्देश्य से बुन्देलखण्ड में स्थित एक डिवीजन सेना को कर्नल मार्टिन्डेल के नेत्रित्व में भरतपुर की ओर रवाना होने का आदेश दे दिया था और यह सेना अब तक ग्वालियर पहुंच चुकी थी। परन्तु जब कर्नल मार्टिण्डेल को दौलतराव सिन्घिा के शत्रुता पूर्ण व्यवहारों का समाचार मिला तो उसे शंका हुई कि कहीं इसी झटके में सिन्धिया कम्पनी के इलाकों पर हमला न कर दे, अतः उसने अपनी यात्रा को स्थगित करके झाँसी में ही पड़ाव डाल दिया ताकि सिन्धिया के इस प्रकार की किसी योजना को विफल किया जा सके। उसके रुक जाने का एक कारण यह भी था कि इस समय ब्रिटिश सेना का अधिक भाग होलकर के पीछे लगा हुआ था और कालपी से लेकर कलकत्ता तक, कम्पनी का समस्त राज्यक्षेत्र लगभग अरक्षित पड़ा था। परन्तु सिन्धिया ने ऐसा कुछ नहीं किया और कर्नल मार्टिण्जेल की धारणा को निर्मूल सिद्ध करते हुए धीरे-धीरे उत्तर की ओर बढ़ता रहा। परन्तु जब वह बढ़ते बढ़ते चम्बल नदी के समीप तक पहुंच गया तो नजरबन्द ब्रिटिश रेजिडेंट ने एक बार पुनः सिन्धिया के कम्पनी के क्षेत्र में प्रवेश करने का प्रबल विरोध किया। उसके इस विरोध को निर्मूल बताते हुये सिन्धिया ने घोषित किया कि कम्पनी के क्षेत्र पर आक्रमण करने का उसका कोई इरादा नहीं है, उसने कहा कि इस समय उसकी आर्थिक स्थिति इतनी चिन्ताजनक है कि अपने राज्य की समस्याओं को हल करने के लिये वह अपनी राजधानी उज्जैन तक पहुंचाने में असमर्थ है, अतः इस समय वह होलकर तथा अंग्रेजों के बीच सन्धि कराने का प्रयत्न करने के उद्देश्य से भरतपुर की ओर जा रहा है। उसने ब्रिटिश रेजिडेंट से यह प्रतिज्ञा भी की कि यदि इस समय ब्रिटिश सरकार, आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त करने में उसकी सहायता करे तो वह भरतपुर की यात्रा को स्थगित करके दक्षिण की ओर लौट जायगा और

---

* सुन्दरलाल ने भारत में अंग्रेजो राज (दूसरी जिल्द, पृ० ७८४) में जेनकिन्स के कैद किये जाने का कारण देते हुए लिखा है—"जेनकिन्स का व्यवहार भी महाराजा सिन्धिया के साथ उतना ही खराब रहा जितना कि मि०वेब (भूतपूर्व रेजिडेन्ट) का रह चुका था। यहां तक कि विवश होकर दौलत राव सिन्धिया ने जेनकिन्स को अपने यहां कैद कर लिया" —अनुवादक।

ब्रिटिश सरकार की इच्छा एवं राय के अनुसार ही अपने आचरण को निर्धारित करेगा। उसने यह भी वादा किया कि उसने रेजिडेंट की सम्पत्ति पर जो आक्रमण किया था, उसका यथोचित हरजाना भी देगा। जिस समय ब्रिटिश रेजिडेंट के साथ दौलतराव सिन्धिया के बीच यह वार्ता हो रही थी औ सिन्धिया उसे उपरोक्त आश्वासन दे रहा था, उस समय उसका तथा उसके मंत्रियों का व्यवहार और वार्ता का ढंग अत्यन्त ही मित्रतापूर्ण तथा सदभावनासे भरा हुआ था और कुछ समय पहले के शत्रुतापूर्ण व्यवहार से बहुत भिन्न था। अंग्रेजों को इस समय यह भय भी लगा हुआ था कि कहीं दौलतराव सिन्धिया, होलकर की सहायता करने के अभिप्राय से भरतपुर न पहुंच जाय। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाने पर अंग्रेजी सेना दो चक्की के पाटों के बीच बुरी तरह पिस उठती, अतः सिन्धिया के हृदय से इस प्रकार के इरादे को नष्ट कर देने के उद्देश्य से गवर्नर जनरल ने सिन्धिया के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और ब्रिटिश प्रतिनिधि के साथ इस प्रकार का दुर्व्यवहार करने के लिए उससे कोई जवाब तलब नहीं किया। गवर्नर जनरल ने सिन्धिया को आर्थिक सहायता देने का वचन भी दिया; परन्तु एक शर्त पर, कि वह वापस लौटकर होलकर के मालवा स्थित अरक्षित क्षेत्रों को अपने अधिकार में कर लेने का प्रयत्न करे। सिन्धिया इस समय होलकर के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करना चाहता था, परन्तु गवर्नर जनरल के समक्ष अपने व्यवहार को असन्दिग्ध सिद्ध करने के लिए उसने बाहरी तौर पर उसके प्रस्ताव से सहमत होने का प्रयत्न किया और अपनी सेना के साथ आठ मील पीछे लौटकर सबलगढ़ में पड़ाव डाल दिया। वह स्वयं तो सवलगढ़ में पड़ा रह गया, परन्तु अंग्रेजों तथा होलकर के बीच शान्ति स्थापित करने के बहाने से उसने अपने अश्वारोहियों के एक सबल दस्ते तथा सभी पिण्डारी सैनिकों को भरतपुर के लिए रवाना कर दिया सिन्धिया की भरतपुर जाने वाली सेना ने मार्ग अनावश्यक विलम्ब कर दिया और उनके पहुंचने के पूर्व ही होलकर तथा अंग्रेजों के बीच सन्धि हो गई। भरतपुर के राजा सिन्धिया के वकील से मुलाकात करने से इनकार कर दिया और सिन्धिया की सेना, यशवन्त राव होलकर तथा उसके बचे खुचे सवारों के साथ सिन्धिया के कैम्प की ओर चल पड़ी, जहाँ पहुंचने पर दौलतराव सिन्धिया ने होलकर का बहुत आदर सत्कार किया, होलकर ने भी खुले दिल से सिन्धिया को गले लगाया, बापू जी सिन्धिया और अमीरखाँ भी सिन्धियासे अत्यन्त सम्मान के साथ मिले। होलकर के साथ इस प्रकार के प्रेम व्यवहार एवं मिलाप से ब्रिटिश सरकार उसके ऊपर शंका न करने लगे, ऐसा सोच कर, इस प्रकार की शंका के निवारण के लिये सिन्धिया ने ब्रिटिश रेजिडेन्ट को सूचित किया कि होलकर ने ब्रिटिश क्षेत्र में पुनः लूटपाट मचाने का निश्चय कर लिया था, परन्तु उसके अनुरोध करने पर अब उसने इस विचार का परित्याग कर दिया है और ब्रिटिश सरकार के साथ शान्ति पूर्ण समझौते के लिए उसको मध्यस्थ मान लिया है। *

जब लार्ड लेक को सिन्धिया और होलकर के इस सम्मिलन का समाचार प्राप्त हुआ तो उसने रेजिडेन्ट को सिन्धिया के कैम्प से चले आने का आदेश दिया और अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ, उन पर आक्रमण करने के इरादे से, भरतपुर से सिन्धिया के कैम्प की ओर चल पड़ा। यद्यपि जनरल लेक की इच्छा थी कि रेजीडेण्ट तुरन्त ही सिन्धिया के कैम्प से चला आवे, परन्तु किसी न किसी बहाने उसे रोक रक्खा गया इधर जनरल लेक के आने का समाचार सुनकर दोनों सर्दार उत्तर पश्चिम में कोटा की ओर तेजी से चल पड़े। उनकी सेना में ५००० पैदल, १४० तोपें, बारह हजार सिलीदारों के सवार तथा बारह हजार पिण्डारी सवार थे। चूंकि मौसम अनुकूल नहीं था अतः जनरल लेक (जो अब तक लार्ड लेक हो चुका था) ने उचित नहीं समझा और अपनी सेना को वर्षाकालीन पड़

---

* मिल लिखित हिस्ट्री आव ब्रिटिश इण्डिया।

डालने का आदेश दिया। जेनरल जोन्स के सेनापतित्व में बम्बई की सेना ने टोंक-रामपुरा के पास एक विषमस्थल को अधिकृत कर लिया। कर्नल मार्टिन्डेल की अधीनस्थ सेना बुन्देलखण्ड की ओर लौट गयी। सैनिकों के एक दस्ते को गोहद में रख दिया गया और बंगाल की मुख्य सेना आगरा तथा मथुरा में पड़ाव डाल कर रुक गयी।

सिंधिया तथा होलकर कोटा पहुच गये और बाद में अजमेर की ओर चले गये। होलकर हर कीमत पर युद्ध छेड़ने का पक्षपाती था। शिरजीराव भी पूरी दृढ़ता से उसका समर्थन कर रहा था। इधर शिरजीराव अपने दामाद के मंत्रियों के ऊपर प्रभाव बनाये हुए था और उधर सिंधिया के समूचे प्रशासन यंत्र में होल्कर का दबदबा था, परन्तु शिरजीराव के अनुचित शक्ति प्रयोग ने ही उसका तख्त उलट दिया और होल्कर ने उसे हटाकर अम्बा जी इंग्लिया को प्रशासन का प्रमुख बनाया। इसके पूर्व ही सिंधिया की उदासीनता से लाभ उठाकर होल्कर ने अम्बाजी को बन्दी बना लिया था, परन्तु बाद में वह दण्ड स्वरूप भारी रकम लेकर होल्कर ने उसे प्रशासन का प्रमुख बनाया था। होल्कर का मन्तव्य था कि अम्बाजी के रूप में उसे एक योग्य सहायक मिल जायगा साथ ही दूसरे लोगों को भी आशा थी कि वह शिरजीराव की अपेक्षा अधिक योग्यता दिखला सकेगा। अम्बाजी की नीति यह थी कि विभिन्न वार्ताओं में अंगरेजों को फँसाकर काफी समय प्राप्त करके, पूरी तरह तैयारी कर के तब युद्ध छेड़ा जाय। इधर होल्कर एवम् सिंधिया की मित्रता में फिर से प्रतिद्वन्दिता की भावना घुसने लगी और अन्त में दोनों सर्दारों के खेमे अलग-अलग हो गये। इन सबसे अलग सिंधिया एक विचित्र प्रकार के भ्रम में फँस गया था। उसे यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि उसके लोग वृटिश शासन में ही सन्तुष्ट रह सकेंगे। इधर दूसरी ओर अँगरेजों की ओर भी प्रशासन में परिवर्तन हो गया था। इन तमाम बातों ने मिलकर सन्धि का मार्ग प्रशस्त कर दिया था।

इस समय भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की जो स्थिति❀ थी, उसमें सन्धि करना अत्यावश्यक हो गया था। मराठा सर्दारों की शक्ति पूर्णतया भंग हो चुकी थी। पेशवा भीतर ही भीतर अँगरजों का शत्रु था मगर उसके हाथ में कोई अधिकार नहीं था। मार्क्विस वेल्सली इस स्थिति में अवश्य था कि प्राप्त सुविधाओं का त्याग किये बिना ही यदि वह चाहता तो स्थायी नहीं तो अस्थायी शान्ति अवश्य ही स्थापित कर सकता था, परन्तु इङ्गलैण्ड में भारत में लम्बी लड़ी जाने वाली लड़ाइयों एवम् उनमें किये गये भारी व्यय † की कटुतम आलोचनाएँ हो रही थीं, क्योंकि इधर भरतपुर के मुकाबले अँगरेजों की जिल्लत भी हुई थी और उधर कम्पनी के ऊपर अत्यधिक ऋण भार लद गया

❀ कम्पनी की आर्थिक स्थिति एकदम बिगड़ गयी थी। × × × लखनऊ, बनारस इत्यादि से भारी-भारी रकमें वेल्जली ने कर्ज लिया था। अकेले लखनऊ के नवाब वजीर ने बीस लाख रुपये का कर्ज दिया था। × × × पाँच लाख रुपये मासिक केवल लेक की सेना का खर्च था। × × + छः लाख रुपये मासिक के हिसाब से लेक ने गुप्त उपायों (रिश्वत आदि) में खर्च किया था। सेना का वेतन कई महीनों से बाकी था।" (देखिये श्री सुन्दर लालजी लिखित "भारत में अंगरेजी राज" भाग २ पृष्ठ ८०१)—अनुवादक

† २५ फर्वरी सन् १८०६ को पार्लियामेण्ट सदस्य ने पार्लियामेण्ट को बताया कि कानूनन कम्पनी को हर खर्च काटकर प्रतिवर्ष दस लाख पौण्ड मुनाफा होना चाहिये। × × × १७९८ के बाद कम्पनी ने कोई रकम नहीं भेजा"। जेम्स मिल ने अपने भारत के इतिहास में लिखा है कि "इंगलैंड को हिन्दुस्तान से तभी लाभ है जब कि हिन्दुस्तान की आमदनी में से बचाकर आधा इंगलैण्ड भेजा जा सके"

था। इन सब बातों ने मिलकर वेल्सली को उसके घर में ही बदनाम करना शुरू किया और उसकी योग्यता के विषय में लोगों के मत बदल चुके थे। केवल कम्पनी के डाइरेक्टर्स ही नहीं वरन् इङ्गलैंड की कैबिनेट के मन्त्री भी उससे असन्तुष्ट हो चुके थे। इसी लिये कार्नवालिस को भारी अधिकार देकर भारत का गवर्नर जनरल बनाकर दुबारा भेजा गया। इङ्गलैण्ड के लोगों ने यही सोचा था कि कार्नवालिस के जाते ही तमाम गड़बड़ियाँ दूर हो जायेगी। ३०वीं जुलाई को वह कलकत्ता में पहुंचा और उसी दिन उसने कार्यभार ग्रहण कर लिया। अपने प्रथम प्रशासकीय कार्य से ही उसने प्रदर्शित कर दिया कि उसे सहायक संधि की नीति एकदम नापसन्द है। उसने होल्कर से लड़े जाने वाले युद्ध की समाप्ति के लिये अपनी दृढ़ता प्रगट की। उधर सिंधिया तथा अँगरेजों के बीच के मतभेद को भी समाप्त करने की इच्छा उसने दिखलायी। इस नीति का परिणाम यह हुआ कि मराठा सर्दारों की शक्तियों का नाश कुछ समय के लिये टल गया। यह भी सम्भव था कि इन नीतियों के फलस्वरूप मराठा सर्दारों के उपद्रव और भी बढ़ जाते और काफी लम्बे समय तक चलते रहते। सिंधिधा ने बृटिश रोजेडेण्ट को परेशान किया था, उसे भी कार्नवालिस ने भुला दिया और उसकी इच्छा थी कि सिंधिया की राजधानी तथा उसके समस्त जीते गये प्रदेश उसे वापस दे दिये जायँ तथा गोहद के राना के जीवन यापन के लिये जमुना के पास के कुछ क्षेत्र दे दिये जायँ। होल्कर से उसने प्रस्ताव किया कि गत युद्ध में उसके जितने भी क्षेत्र जीते गये हैं, लौटा दिये जायँ। जोधपुर, जयपुर भरतपुर, माछेरी तथा बूंदी के राजाओं के साथ की गयी सन्धियों की उसने निन्दा की। राजा जोधपुर के साथ लेने क जो सन्धि किया था, उसे एकदम से अस्वीकृत कर दिया गया, परिणाम स्वरूप जोधपुर से अँगरेजों का कोई सम्बन्ध न रह गया। जयपुर के राजा ने सन्धि के शर्तों की पूर्ति अभी तक नही की थी। उसे भी लिख दिया गया कि उसके साथ जो सन्धि हुई थी रद कर दी गयी। इस राजा के बाद के आचरण ने उसकी पिछली भूलों का परिमार्जन कर दिया। अन्य तीन राज्यों अर्थात् भरतपुर, माछेरी और बूंदी के साथ की हुई सन्धि को रद करने के लिए इन सम्बन्धित राजाओं को प्रेरित करने के ध्येय से नए गवर्नर जनरल ने प्रस्तावित किया कि दिल्ली के दक्षिण और यमुना नदी के पश्चिम में स्थित क्षेत्रों को (जिन्हें सिन्धिया से जीता गया था) वापस लौटा दिया जाय; उसका विचार था कि यमुना नदी ही कम्पनी के अधिकृत क्षेत्र की दक्षिणी पश्चिमी सीमा बनाई जाय ताकि यदि सिन्धिया या अन्य कोई राजा यमुना नदी के उस पार के क्षेत्रों पर हमला करे तो उसकी सुरक्षा के लिए ब्रिटिश सरकार उत्तरदायित्व से मुक्त रहे और सम्बन्धित शासक अपने-अपने क्षेत्रों की सुरक्षा के लिए ब्रिटिश सरकार का मुँह न जोहकर अपनी सुरक्षा का भार स्वयम् अपने कन्धों पर लें। इस प्रकार गवर्नर जनरल ने इन देशी राज्यों के सम्बन्ध में जो महत्वपूर्ण निर्णय किए उनके विषय में १९वीं सितम्बर को जनरल लेक के पास निर्देश भेज दिए गए। परन्तु जनरल लेक ने इस समय गवर्नर जनरल की, देशी राज्यों के सम्बन्ध में निर्धारित की गई नई नीति के विषय में पूरी जानकारी रखते हुए भी, स्वेच्छा से काम लिया, और इन निर्देशों के अनुसार तत्काल सत्ता-परिवर्तन नहीं किया। इसी समय दौलतराव सिन्धिया ने शिरजी राव घाटगे की सेवाओं को समाप्त करके उसके स्थान पर शासन प्रबन्ध के लिए अम्बाजी इंग्लिया को नियुक्त कर लिया था। लेक ने इस परिवर्तन का लाभ उठा कर सिन्धिया से कुछ अत्यधिक सुविधाजनक प्रस्ताव तो प्राप्त कर लिया। परन्तु उसने कहा कि वह तब तक इन प्रस्तावों पर ध्यान नहीं देगा, जब तक कि रेजिडेण्ट को मुक्त नहीं कर दिया जायगा। सिंधिया ने तुरन्त ही उसे मुक्त कर दिया। इसके परिवर्तन के आधार पर लेक ने गवर्नर जनरल का आदेश पाने के पूर्व ही सिंधिया के साथ अँगरेजों के मतभेद को दूर करने का प्रयत्न किया। इन अनुकूल परिस्थि-

तियों में लेक ने उन बुराइयों को सोच लिया था जो इन छोटे राजाओं से सम्बन्ध विच्छेद करने के परिणाम स्वरूप होने वाली थीं। वह यह भी जानता था कि यदि उत्तरी जिलों में मराठों को पैर जमाने का अवसर दे दिया गया तो उसके भी गम्भीर परिणाम निकल सकते हैं। इसी लिये उसने गवर्नर जनरल के आदेशों का तुरन्त ही पालन न करके उसके पास इन कारणों एवम् परिणामों की विस्तृत सूचना भेजी और गवर्नर जनरल के आदेशों के विरोध में अपना पक्ष प्रतिपादित किया।

परन्तु इसके पूर्व कि जनरल लेक के कार्यों एवम् योजनाओं के विषय में गवर्नर जनरल कार्नवालिस की कोई जानकारी प्राप्त हो सके, वह साधांतिक रूप से बीमार पड़ गया जिसके कारण वह प्रशासनिक कार्यों की देख-रेख करने अथवा उस पर विचार करने में असमर्थ हो गया। अन्त में ५ अक्टूबर को उसकी मृत्यु हो गई, तथा उसकी मृत्यु के पश्चात् भारत में ब्रिटिश प्रशासन का भार, बंगाल कौंसिल के सबसे वरिष्ठ सदस्य सर जार्ज बार्लो के हाथ में आया। ५ अक्टूबर]

इस बीच यशवन्तराव होलकर ने जब देखा कि सिन्धिया की राजनीति में परिवर्तन होता जा रहा है और इस आपत्तिकालीन समय में सिन्धिया से किसीं प्रकार की सहायता की आशा करना व्यर्थ है, तो उसने सितम्बर के प्रारम्भ में अजमेर से प्रस्थान कर दिया। इस समय उसके पास लगभग बारह हजार सवार, दो या तीन हजार पैदल सेना और तीस तोपें थीं जिनके साथ उसने पंजाब का मार्ग पकड़ा क्योंकि उसे अपनी कार्य सिद्धि के प्रयास में सिक्खों और अफगानों से सहायता प्राप्त होने की आशा थी। उसके पंजाब की ओर बढ़ने का समाचार पाकर अंग्रेजों ने उसके मार्ग को अवरुद्ध कर उसे पंजाब जाने से रोकने के लिए, दो डिवीजन सेनाओं को उसे घेरने का आदेश दिया गया, इनमें से एक डिवीजन सेना रामपुर की थी और जनरल जोन्स के नेतृत्व में थी तथा दूसरी डिवीजन कर्नल बाल के अधीन थी। इन दोनों डिवीजनों ने होलकर पर अनेक आक्रमण किये, परन्तु होलकर ने उनके द्वारा किये गये प्रत्येक आक्रमण को विफल कर दिया। इस पर जनरल लेक ने उसे पीछे लौटने से रोकने के लिये कई डिवीजन सेनाओं को तैनात कर दिया अश्वारोहियों के पाँच रेजीमेंटों तथा चार बटालियन पैदल सेना के साथ स्वयम् होलकर के पीछे-पीछे चल पड़ा।

यद्यपि होलकर से सम्बन्धित इन विवादों के कारण जनरल लेक का ध्यान दूसरी ओर आकर्षित हो गया था, फिर भी सिन्धिया के साथ जो वार्ता चल रही थी उसमें कोई व्यवधान नहीं पड़ा और अन्त में लॉर्ड (जनरल) लेक के निर्देशानुसार २२ नवम्बर को इस नई सन्धि की सभी शर्तें निश्चित कर ली गईं। सन्धि की इस नई सन्धिवार्ता में कम्पनी के प्रतिनिधि के रूप में लेफ्टिनेन्ट कर्नल मालकम था तथा दौलतराव सिन्धिया की तरफ से मुन्शी कमलनयन था।

इस नई सन्धि के अनुसार यह निश्चय किया गया कि जिन क्षेत्रों की व्यवस्था में परिवर्तन करने की आवश्यकता समझी गई थी उनको छोड़कर शेष सभी भागों के सम्बन्ध में सुर्जी अर्जुन गांव की सन्धि की शर्तों का पालन किया जायगा। मारक्विस वेल्सली के साथ गोहद के राणा की जो सन्धि हुई थी, उसके अनुसार कार्य संचालित करना अत्यधिक असुविधा जनक प्रतीत हो रहा था, या जैसा कि ब्रिटिश सरकार द्वारा घोषित किया गया, कि गोहद के राणा में इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि वह एक स्वतन्त्र राज्य का शासन प्रबन्ध सुचारु रूप से चलाने का प्रबन्ध कर सके। अतः राणा ओर मारक्विस वेल्सली के बीच हुई सन्धि को रद्द कर दिया गया और ग्वालियर के किले के साथ-साथ गोहद सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र को पुनः दौलतराव सिन्धिया के हाथों में सौंप दिया गया। अब प्रश्न उपस्थित हुआ गोहद के राणा के निर्वाह की कौनसी व्यवस्था की जाय। अन्त में ब्रिटिश सरकार की ओर से यह स्वीकार

किया गया कि राणा के निर्वाह के लिये जागीर का प्रबन्ध कर दिया जायगा। इससे पूर्व गोहद के राणा के अधीन जो मुख्य अधिकारी थे उनके लिये दौलतराव सिन्धिया ने पेशवा के रूप में १५ लाख रुपया देने का वादा किया साथ ही उनके व्यय को सम्भालने के लिए, उसने बहुत पहले इनाम में प्राप्त धौलतुर बारी राजकड़ा पर से भी अपना अधिकार समाप्त कर दिया जो कि सुर्जी अर्जुन गांव की सन्धि के ही अधिकार में रह गये थे। पश्चिम में कोटा से लेकर पूरब में गोहद तक चम्बल नदी को ब्रिटिश राज्य एवम् सिन्धिया राज्य की सीमा घोषित किया गया और इस सीमा निर्धारण से ब्रिटिश राज्य को जो लाभ होने की आशा थी उसके बदले में ब्रिटिश सरकार ने दौलतराव सिन्धिया को प्रति वर्ष चार लाख रुपया देने का वादा किया साथ ही सिन्धिया की पत्नी और पुत्री के लिए भी जागीरों का प्रबन्ध करना स्वीकार किया गया जिनकी वार्षिक आय क्रमशः दो लाख और एक लाख रुपया थी। यमुना नदी के दाहिने किनारे पर, चम्बल नदी के दक्षिण ओर स्थित दो छोटे-छोटे जिलों भादेत और सूसपरेरा को कम्पनी के राज्यक्षेत्र को सीमा की समुचित सुरक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक समझा गया अतः सिन्धिया ने इन दोनों जिलों को ब्रिटिश सरकार के अधिकार में दे दिया। दौलतराव सिन्धिया ने बून्दी के राजा या चम्बल नदी के उत्तर और कोटा के पूर्व में स्थित किसी भी राज्य से कर वसूलने अपने अधिकार का परित्याग कर दिया। ब्रिटिश सरकार की तरफ से यह वादा किया गया कि अंग्रेज उदयपुर के राणा, जोधपुर तथा कोटा के राजाओं तथा अन्य सरदारों तथा मालवा, मेवाड़ और मारवाड़ के (जो कि सिन्धिया को कर देते थे) शासकों के साथ किसी प्रकार की भी सन्धि नहीं करेंगे और न सिन्धिया तथा उपरोक्त रियासतों के बीच के आपसी सम्बन्धों में हस्तक्षेप ही करेगे। ब्रिटिश सरकार की ओर से यह प्रतिज्ञा भी की गई कि यदि कम्पनी तथा होलकर के बीच कभी कोई सन्धि हुई तो ताप्ती और चम्बल नदियों के बीच स्थित होलकर के जिन जिलों पर सिन्धिया ने अधिकार कर लिया है, उनको होलकर के हवाले कर देने के लिये ब्रिटिश सरकार द्वारा सिन्धिया पर किसी भी प्रकार का दबाव नहीं डाला जायगा और न तो उनके बीच उत्पन्न होने वाले विवादों सन्धियों अथवा युद्धों में ही किसी प्रकार का हस्तक्षेप किया जायभा। सिन्धिया ने क्षणिक उत्तेजनावश ब्रिटिश रेजिडेन्सी की जिन सरकारी या व्यक्तिगत सम्पत्तियों को हानि पहुंचाई थी, उसकी क्षतिपूर्ति करने का वादा किया। चूंकि यह बात सर्वत्र प्रचारित हो गई थी कि उसको ब्रिटिश रेजिडेन्ट के विरुद्ध उत्तेजित करने में शीरजी राव घाटगे का हाथ था, तथा उसने सदैव ही, अपनी पूर्ण शक्ति के साथ ब्रिटिश सरकार के हितों को हानि पहुंचाने का प्रयत्न किया था, अत; सिन्धिया को वादा करना पड़ा कि वह भविष्य में भी शीरजी राव घाटगे को अपने दरबार में बैठने का अधिकार प्रदान न करेगा और न उससे परामर्श लेगा। इन सन्धि वार्ता तथा शर्तों के निर्धारण के कारण लार्ड लेक ने होलकर का पीछा करने में कोई ढील नहीं पड़ने दिया। लार्ड लेक जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया, विभिन्न दिशाओं से विभिन्न सैनिक दस्ता आकर उसकी सेना में संयुक्त होते रहे और वह अपनी बढ़ती हुई सेना के साथ पूर्ण गति से पंजाब की ओर अनवरत रूप से बढ़ता रहा। यशवन्तराव होलकर पंजाब पहुंच तो गया, परन्तु यदि वह इस आशा के साथ पंजाब की ओर गया था (जैसा कि उसने पंजाब की ओर जारे समय स्वयम् घोषित किया था), तो उसे सिक्खों के तटस्थ व्यवहार के कारण निराश होना पड़ा। अब अपनी इस एकमात्र आशा के टूट जाने पर, होलकर के पास ब्रिटिश शक्ति के साथ युद्ध करने का न तो साहस रह गया और न साधन ही। तटस्थ नीति धारण करने पर भी, सिक्खों ने अंग्रेजों तथा होलकर के बीच सुलह कराने का प्रयत्न करने में पर्याप्त उत्साह दिखाया। अन्त में होलकर ने भी, हर तरफ से संकटों से घिर जाने पर सन्धि वार्ता के लिए लार्ड लेक के कैम्प में अपने एजेन्टों को भेज दिया, लार्ड लेक का कैम्प इस समय बीह

नदी के तट पर पड़ा हुआ था। चूंकि अब भी भूतपूर्व गवर्नर जनरल मारक्विस कार्नवालिस के आदेश सर जार्ज बार्लो के अधिकार के अन्तर्गत थे, अतः पाठक यह कल्पना कर सकते हैं कि जिस प्रकार अन्य देशी नरेशों के क्षेत्र उनको वापस कर दिये गये थे, उसी प्रकार इस सन्धि द्वाराभी होलकर को वे क्षेत्र वापस मिल गये हों जिन पर से उसने अपना अधिकार खो दिया था। परन्तु पूर्णतः ऐसा नहीं हुआ। यशवन्तराव होलकर को वादा करना पड़ा कि वह टोंकरामपुर, बूंदी तथा बूंदी की पहाड़ियों के ऊपर स्थित अन्य क्षेत्रों पर से अपना अधिकार समाप्त कर देगा और बुन्देलखण्ड सूबे तथा ब्रिटिश सरकार एवम् उसके मित्रों पर उसके जो दावे हैं, उन्हें भी वापस ले लेगा। होलकर ने इस सन्धि में यह प्रतिज्ञा भी की कि किसी भी यूरोपियन को वह अपनी सेवा में नियुक्त नहीं करेगा, और न कभी शीरजीराव धाटगे को अपने दरबार में रक्खेगा या उसको आश्रय देगा। उसे लार्ड लेक के इस प्रस्ताव को भी विवश होकर मानना पड़ा कि वह लेक द्वारा निर्धारित मार्ग से ही मालवा की ओर लौटेगा। ब्रिटिश सरकार की ओर से लॉर्ड लेक ने प्रतिज्ञा की कि चम्बल नदीके दक्षिण स्थित होलकर के अधिकृत क्षेत्रोंके सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जायगा, और चन्दौर तथा उसके सम्बन्धित क्षेत्र अम्बेर और शिवगांव के जिलों को छोड़कर दक्षिण के जो किले और जिले पहले होलकर परिवार के राज्य के अंग थे, उनको पुनः होलकर के अधिकार में दे दिया जायगा परन्तु यदि भविष्य में होलकर के आचरण तथा ब्रिटिश सरकार के प्रति उसके मित्रतापूर्ण सम्बन्धों पर अंग्रेजों को विश्वास हो गया, तो चन्दौर, अम्बेर और शिवगांवके क्षेत्रों को भी होकर के हवाले
दिसम्बर २४] कर दिया जायगा। ब्रिटिश सरकार की ओर से बुन्देलखण्ड में स्थित कूंच के जिले
को यशवन्तराव होलकर की पुत्री को दो वर्ष के भीतर, जागीर के रूप में देने का वादा किया गया। इस महत्वपूर्ण सन्धि पर २४ दिसम्बर १८०५ को दोनों पक्षों के हस्ताक्षर हुये, और उसी दिन से १८ महीनों के भीतर, होलकर के आचरण की असन्दिग्धता और ब्रिटिश सरकार के प्रति उसके मित्रतापूर्ण सम्बन्धों की प्रामणिकता के आधार पर उपरोक्त जिलों (चन्दौर, अम्बेर और शिवगांव) को होलकर के अधिकार में दिये जाने का वादा किया गया।

इस समय ब्रिटिश सरकार की तरफ से सन्धियों को स्थायित्व एवम् मान्यता प्रदान करने का अधिकार स्थानापन्न अधिकारी सर जार्ज बार्लो के हाथ में निहित था। उसने अपने अधिकार का प्रयोग करके होलकर के साथ हुई इस सन्धि, तथा हाल ही में कार्नवालिस तथा सिन्धिया
१८०६ ई०] के बीच हुई सन्धि में कुछ परिवर्तन कर दिया। सर जार्ज बार्लो का बिचार था कि
चम्बल नदी के उत्तर की ओर स्थित छोटे-छोटे इलाकों को अपने अधिकार में रखने और उनके साथ ब्रिटिश सरकार का सम्बन्ध रखने के लिए लार्ड लेक ने जो कारण प्रस्तुत किये थे, उनकी अपेक्षा उन क्षेत्रों को अपने अधिकार क्षेत्र से बाद कर देने में ब्रिटिश सरकार को अधिक राजनैतिक लाभ प्राप्त हो सकते थे। लॉर्ड लेक ने इन क्षेत्रों को ब्रिटिश सरकार के प्रभावान्तर्गत रखने के लिए तर्क देते हुये कहा था कि इससे मराठा नरेशों को ब्रिटिश क्षेत्र में, पांव पसारने से रोकने में सहायता मिल सकेगी, इसके अतिरिक्त लेक के अनुसार भारत में ब्रिटिश सरकार के सम्मान एवम् प्रभाव को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए यह आवश्यक था कि विभिन्न रियासतों के साथ जो सन्धिया की गई थीं; उनका पालन किया जाय जब तक कि वे रियासतें स्वयम् ही उक्त सन्धियों के अनुसार आचरण करने से अनिच्छा प्रकट न करें या उनमें कोई परिवर्तन करने का आग्रह न करें। लार्ड लेक के विचारों का विरोध करते हुये सर जार्ज बार्लो ने कहा कि ब्रिटिश सरकार के सामने भारत में अपनी स्थिति की सुरक्षा कायम रखने के केवल दो ही रास्ते हैं; पहला वह कि भारतवर्ष की समस्त रियासतों को अपने

अधिकार में कर लिया जाय उनके प्रत्येक मामले पर नियंत्रण रक्खा जाय। और दूसरा यह कि इन रियासतों को उनके हाल पर ही छोड़ दिया जाय ऐसा करने पर स्वाभाविक है कि इन रियासतों में परस्पर विवाद एवं संघर्ष उठ खड़े होंगे और वे आपस में ही लड़कर निर्बल पड़ जायंगे। सर जार्ज बार्लो ने इस दूसरे मार्ग को ब्रिटिश सरकार के स्थापित्व के लिये अत्यन्त लाभदायक सिद्ध करते हुए कहा कि यदि ब्रिटिश सरकार इन रियासतों और छोटे-छोटे इलाकों पर से अपना दावा समाप्त कर देती है, तो इन पर निरन्तर होने वाले छोटे-बड़े आक्रमणों से उनको सुरक्षित रखने के उत्तरदायित्व से भी बच जायगी। यह बात स्पष्ट नहीं है कि तत्कालीन परिस्थितियों में, सर जार्ज बार्लो ने बूंदी के अतिरिक्त अन्य रियासतों के सम्बन्ध में किस तरीके से इस द्वितीय मार्ग को ग्रहण करने की योजना बनाई थी, परन्तु जहाँ तक इस द्वितीय मार्ग के प्रारम्भिक, विभिन्न रियासतों के परस्पर संघर्ष के विचार से सम्बन्धित भाग का सम्बन्ध है, लार्ड लेक वहुत पहले ही इस अभिमत को व्यक्त कर चुका था कि यदि इन राज्यों को नियंत्रण मुक्त कर दिया जाय तो निश्चय वे आपस में विवाद एवम् संघर्ष करेंगे; अपने अपने पक्षों को प्रबल करने के लिये वे अन्य देशी रियासतों को अपनी ओर खीचने का प्रयत्न करेंगे। ऐसी स्थिति में ब्रिटिश राज्य के सर्वाधिक उर्बरा और सम्पन्न सरहदी क्षेत्र में विभिन्न राज्यों की रियासते संघर्षरत रहेंगी, जिसका प्रभाव इन सीमान्त ब्रिटिश क्षेत्रों पर अवश्य पड़ेगा; यही नहीं, उनको ब्रिटिश क्षेत्र में पांव पसारने अथवा उपद्रव मचाने से रोकने के लिए दक्षिणी सीमा पर सदैव एक शक्तिशाली तथा सन्नद्ध सेना को तैनात करना आवश्यक हो जायगा। यदि लार्ड लेक उतने लम्बे समय तक जीवित रहता, जितने समय तक स्वाभाविक रुप से उसके जीवित रहने की आशा की जाती थी, तो उसने अपने ही सामने न केवल अपनी इस भविष्य वाणीको अक्षरः सत्य सिद्ध होते देखता, बल्कि यह भी अनुभव प्राप्त कर लेता यदि सीमा पर स्थित कोई सैन्य सदैव प्रतिरक्षा आधार पर ही सन्नद्ध रहे तो उन डाकुओं और लुटेरों के दल के उपद्रवों से सीमा की रक्षा कर सकने में असफल ही सिद्ध होती है ,जिन्हें इस प्रकार की रियासतें देकर प्रोत्साहित किया गया हो।

सर जार्ज बार्लो ने देशी रियासतों के प्रति जो नीति निर्धारित किया था, उसी के अनुसार आचरण करते हुए, उसने सिन्धिया और होलकर के साथ हाल ही में हुई सन्धियों में कुछ और धाराएँ जोड़ने की घोषणा की। सिन्धिया के साथ हुई सन्धि में चम्बल के उत्तर और कोटा से और यमुना नदी के बीच स्थित क्षेत्रों पर किसी प्रकार आक्रमण होने पर उनकी रक्षा के लिए ब्रिटिश सरकार उत्तरदायी थी, परन्तु सर जार्ज बार्लो ने इस उत्तरदायित्व से ब्रिटिश सरकार के मुक्त हो जाने की घोषणा की और उनकी व्यवस्था का पूरा भार सिन्धिया पर छोड़ दिया। होलकर के साथ हुई सन्धि में सर जार्ज बार्लो ने जो परिवर्तन किया उसके फलस्वरूप टोंक-रामपुर और बूंदी की पहाड़ियों के उत्तर में स्थित समस्त क्षेत्र होलकर को वापस कर दिये गए। इस प्रकार की व्यवस्था के फलस्वरूप बूंदी का राजा अधर में ही लटका रह गया, क्योंकि अब ब्रिटिश सरकार ने स्वयम् को बूंदी की रक्षा करने के उत्तरदायित्व से मुक्त कर लिया था, यद्यपि बूंदी के राजा ने सन्धि की शर्तों के अनुसार ही आचरण करने में कोई प्रमाद नहीं किया था।

जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है, जयपुर के राजा द्वारा केवल एक बार सन्धि के अनुसार आचरण न किए जाने से लाभ उठा कर कार्नवालिस अपनी योजना को पूरा करने का अवसर प्राप्त कर चुका था, जिसके अनुसार उसने ब्रिटिश सरकार तथा जयपुर के राजा के बीच हुई सन्धि के रद कर दिए जाने की घोपणा की। इस घोषणा से क्षुब्ध होकर लार्ड लेक ने लार्ड कार्नवालिस पर हर सम्भव दबाव डाला कि इस घोषणा को वापस ले लिया जाय क्योंकि उस समय जयपुर का राजा

ऐसी स्थिति में था कि अंग्रेजों के मित्र बने रहने पर ब्रिटिश सरकार को जितनी सहायता प्रदान कर सकता था, इस घोषणा के फलस्वरूप असन्तुष्ट होकर वह ब्रिटिश सरकार के हितों को कहीं अधिक हानि पहुंचा सकने की सामर्थ्य रखता था, साथ ही सन्धि के बाद से ही उसने मराठों के विरुद्ध ब्रिटिश सरकार की इतनी अमूल्य सेवाएँ की थीं कि वह सिन्धिया और होलकर की नाक का बाल हो गया था। अतः ब्रिटिश सरकार का संरक्षण समाप्त होने की स्थिति में सिन्धिया और होलकर के सामने जयपुर के राजा से अपना बदला चुकाने का मार्ग साफ हो जायगा। परन्तु क्षुब्ध जयपुर के राजा के पक्ष में लार्ड लेक द्वारा की गई इन सिफारिशों, तथा स्वयम् जयपुर के राजा के मित्रतापूर्ण व्यवहार के बावजूद भी स्थानापन्न अधिकारी सर जार्ज बार्लो, लार्ड कार्नवालिस द्वारा निर्धारित नीति के आधार पर किए गए अपने निर्णय पर अड़ा रहा और लार्ड कार्नवालिस की घोषणा को रद्द नहीं किया। यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि जब तक सिन्धिया और होलकर के साथ हुई सन्धियों में किए गए परिवर्तनों की घोषणा नहीं कर दी गई, तब तक जयपुर के राजा पर नई घोषणा को लागू नहीं किया गया जिससे, सिन्धिया एवम् होलकर के साथ तय की जाने वाली व्यवस्थाओं के दौरान में भी, ब्रिटिश सरकार यदि उचित समझे तो जयपुर के राजा के संरक्षण के समय में वृद्धि कर सकने के लिए स्वतंत्र रहे।

यद्यपि भूतपूर्व गवर्नर जनरल लार्ड कार्नवालिस की यह हार्दिक इच्छा थी कि भरतपुर और मच्हिरी राज्यों के साथ भी ब्रिटिश सरकार अपने सम्बन्धों का विच्छेद करके उन्हें स्वतंत्र छोड़ दे, परन्तु फिर भी, उसकी यह इच्छा पूरी न हो सकी और इन राज्यों के साथ ब्रिटिश सरकार की सन्धि कायम रह गई।

१७ दिसम्बर १८०३ को देवगाँव में रघूजी भोंसले तथा ब्रिटिश सरकार के बीच जो सन्धि हुई थी, उसे भी रद नहीं किया गया, फिर भी कुछ ही समय बाद सन्धि में एक नई धारा जोड़कर २४ अगस्त १८०६ ई० को पटवा और सम्बलपुर के इलाके रघूजी भोंसले को वापस कर दिए गए।

सिन्धिया के साथ हुई सन्धि के अनुसार गोहद का क्षेत्र दौलतराव सिन्धिया को दे दिया गया था अतः गोहद के राणा को पुनर्स्थापित करने का प्रश्न ब्रिटिश सरकार के सम्मुख आया। उसके निर्वाह के लिए धौलपुरबारी और राजकड़ा के इलाके गोहद के राणा को जागीर के रूप में दे दिए गए जिसका उल्लेख सिन्धिया के साथ हुई सन्धि में ही किया जा चुका था।

२१ अप्रैल १८०५ को गायकवाड़ के साथ एक सामान्य सुरक्षात्माक सन्धि पर दोनो पक्षों के हस्ताक्षर हो चुके थे जिसका उद्देश्य था; मार्च, जून और जुलाई १८०२ में उसके साथ हुई तीन विभिन्न सन्धियों की शर्तों का समन्वय करना तथा उसमें कुछ और धाराएं जोड़ना और कुछ परिवर्तन करना, जो कि ब्रिटिश सरकार के दृटिकोण से उचित एवम् आवश्यक समझे गये। पिछली सन्धियों के अनुसार पहले से ही सब्सिडियरी (सहायक) सेना के रूप में, गायकवाड़ राज्य की सीमा में ब्रिटिश सेना के दो हजार सैनिक स्थायी रूप से रहते थे, जिनके वेतन की व्यवस्था का भार गायकवाड़ पर ही था अब इस नवीन सन्धि के अनुसार इस सब्सिडियरी सेना की संख्या बढ़ाकर तीन हजार कर दी गई और तोपखाने की एक कम्पनी भी जोड़ दी गई, जिनके स्थायी निवास की व्यवस्था गायकवाड़ के राज्य क्षेत्र में ही की गई परन्तु केवल विशेष महत्वपूर्ण अवसरों पर ही इस सहायक सेना का उपयोग किया जा सकता था। इस समूची सहायक सैन्य के व्यय के लिए ११०००० रुपये के वार्षिक आय

के इलाके * अलग कर लिए गए। चौरासी, चिकली और कैरा के जिले तथा सूरत की चौथ में से गायकवाड़ का हिस्सा, कम्पनी के हवाले कर दिये गये। अब तक, गायकवाड़ राज्य की चिन्तनीय आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए ब्रिटिश सरकार अपनी जमातन पर गायकवाड़ सरकार को ४१½ लाख रुपये ऋण के रूप में दिला चुकी थी। इस ऋण के परिशोध के लिये ब्रिटिश सरकार ने १४ लाख रुपये की वार्षिक आय के क्षेत्र भी गायकवाड़ राज्य से अलग कर लिया। गायकवाड़ ने वादा किया कि उसके तथा पेशवा के बीच जो आर्थिक सम्बन्ध और और ऋण आदि के लेनदेन का हिसाब है, उसे वह निरीक्षण और परामर्श के लिए ब्रिटिश सरकार के समक्ष प्रस्तुत करता रहेगा, किसी भी यूरोपियन को अपनी सेवा में नियुक्त नहीं करेगा और ब्रिटिश सरकार की अनुमति के बिना किसीअन्य राज्य के मामलों में न तो हस्तक्षेप करेगा, न किसी से शत्रुता ही मोल लेगा।

२१ अप्रैल १८०५ को बड़ौदा सरकार तथा ब्रिटिश सरकार के बीच जो सन्धि हुई उसकी समस्त शर्तों का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। इस सन्धिवार्ता में ब्रिटिश सरकार का प्रतिनिधित्व मेजर वाकर ने किया था, जिसने गायकवाड़ के साथ हुई सन्धि को बसीन (बसई) की सन्धि के अनुरूप ही ढालने का प्रयत्न किया था। †

———

---

* सब्सिडियरी सेना के व्यय के लिए निम्नलिखित इलाके अलग किये गये थेः—

इलाकों के नाम	उनकी वार्षिक आय
ढोलका	४५०,००० रुपया
नदियाद	१७५,००० ,,
बीजापुर	१३०,००० ,,
महतूर	१,३०,००० ,,
मूँदा	१,१०,००० ,,
कड़ी का घाट	२५,००० ,,
खीमकटोडरा	५०,००० ,,
काठियावाड़ का इलाका	१०,००,०० ,,
योग	११,७०,०००

† इस अध्याय के स्रोत भी वे ही हैं जो पिछले अध्याय के थे।

छियालीसवां अध्याय

मराठा मण्डल की आपसी फूट से राज्य की दुर्दशा

[१८०६—१८१४]

मराठों के विभिन्न राज्य—उनके प्रति बृटिश नीति—होल्कर के कारनामे—उन्माद—बन्दी जीवन—मृत्यु और चरित्र—अमीर खाँ का नियन्त्रण व संरक्षण—दल बन्दियाँ—अराजकता जनित परेशानियाँ—सिंधिया के राज्य की स्थिति—शिरजीराव घाटगे का देहान्त—रघूजी भोंसले के मसले—पिंडारियों का उद्भव—उनके एकत्रित होने एवम् आक्रमण करने के तरीके—उनकी उन्नति—मध्य भारत में अराजकता का दौर—लुटेरी शक्तियों की वृद्धि।

पिछले अध्याय में हमने मराठा इतिहास की उन महत्वपूर्ण घटनाओं का विवरण प्रस्तुत किया हैं जिनके परिणाम स्वरूप बेसीन की सन्धि के तुरन्त बाद में ही घटित हुई थीं। इस अवसर पर यहीं वांछित प्रतीत होता है कि अँगरेजों के साथ मराठा रियासतों के जो प्रबन्ध किये गये थे उन सबका पर्यवेक्षण कर लिया जाय। बृटिश सरकार को उस नीति का दिग्दर्शन करा देना आवश्यक प्रतीत होता है, जिसके कारण विभिन्न मराठा रियासतों के साथ ये प्रबन्ध किये गये थे। ऐसी स्थिति में उस अन्तिम तथा महान् क्रान्ति के कारणों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करना ही शेष रह जायगा, जिसमें पेशवा राज्य का प्रायः अन्त ही उपस्थित हो गया।

१८०६ ई०]

बारन हेस्टिंग्ज के आगमन के पूर्व समस्त मराठा सरदार एक ही शक्ति की सत्ता के अधीन था और पेशवा द्वारा निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक साथ प्रयत्न करते थे। उनके इस अभूतपर्व संगठन की एक कड़ी सालबाई की सन्धि के बाद से धीरे धीरे खिसकने लगी, जिसके अनुसार कम्पनी सरकार ने महादजी सिन्धिया को एक स्वतंत्र राज्य के राजा को मान्यता प्रदान कर दी। इसके पश्चात् बारेन हेस्टिंग्ज ने इस सशक्त परन्तु खिसकती हुई कड़ी को मराठा साम्राज्य रूपी विशाल भवन में से निकाल कर अलग ही कर देने के उद्देश्य से कुछ इस प्रकार की नीति ग्रहण की कि महादजी सिन्धिया को हिन्दुस्तान की ओर अपने राज्य क्षेत्र के विस्तार करने का अवसर सरलता से प्राप्त हो गया, जिससे पेशवा की सत्ता के निर्बलतर होने में बहुत सहायता मिली, साथ ही मराठा शक्ति के शीघ्र पतन का मार्ग भी प्रशस्त हो चला, क्योंकि सिन्धिया की देखादेखी मराठा मण्डल के अन्य सदस्यों में भी अपना अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित करने की लालसा जाग्रत हुई जिसके फलस्वरूप उनके स्वार्थ आपस में ही टकराने लगे और समान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पेशवा की सत्ता के अन्तर्गत संगठित प्रयत्न करने का उत्साह शनैः शनैः क्षीण होता गया। गायकवाड़ दरबार के साथ ब्रिटिश सरकार ने जिस प्रकार की सन्धि की थी, यदि उसे एक तरफ रख देवें तो हम देखेंगे कि बसीन (बसई) की सन्धि के पूर्व मराठा सरकार में जो भी महत्वपूर्ण परिवर्तन परिलक्षित हुज उनका मुख्य कारण धरेलू संघर्षथा जिसके उत्पन्न होने का कारण था, विभिन्न मराठा सरदारों एवम् मन्त्रियों का एक दूसरे के विरुद्ध

षड़यन्त्रों एवम् दुरभिसन्धियों की रचना करना। घरेलू संघर्षों की सूची में सर्व प्रथम नाना फड़नवीस और महादजी सिन्धिया के षड्यन्त्र सामने आए, क्योंकि वे दोनों ही पेशवा को अपने प्रभाव में लाने के लिए व्यग्र थे, जो उनके पारस्परिक संघर्षों का कारण बना; दूसरी बार मराठा दरबार में षड़यंत्रों का जाल बिछाने का श्रेय लिया स्वयम् पेशवा बाजीराव ने, जो नाना फड़नवीस और सिन्धिया दोनों के प्रभावों को समाप्त करना चाहता था और मराठा सरकार में अन्तिम बार साजिशों का जाल बिछाने का कारण बने मराठा मण्डल के दो प्रमुख स्तम्भ सिन्धिया और ढोलकर, जो उसी प्रकार मराठा दरबार ब्राह्मणों की सत्ता एवम् उनके प्रभाव का बलात् अपहरण कर लेना चाहते थे, जिस प्रकार से प्रारम्भ में पेशवाओं ने मराठा साम्राज्य को अपहरण कर लिया था।

बसीन की महत्वपूर्ण सन्धि तथा तत्पश्चात् रघूजी, भोंसले, दौलतराव, सिन्धिया तथा यशवन्त राव होलकर के साथ हुई ब्रिटिश सरकार की सन्धियों के फलस्वरूप से मराठों की परिस्थितियों और नीतियों में, सालबाई की सन्धि की अपेक्षा कहीं अधिक सीमा तक और विविध प्रकार के परिवर्तन परिलक्षित होने लगे। मराठों की नीति पर ब्रिटिश सरकार का प्रभाव कहीं अधिक स्पष्ट हो गया। पेशवा ने अपने राज्य का एक बड़ा भाग ब्रिटिश सरकार के हवाले कर दिया था; उसकी देश की विभिन्न रियासतों के साथ उसके राजनैतिक सम्पर्कों पर ब्रिटिश रेजिडेन्ड का पूर्ण नियन्त्रण था और अंग्रेजों की सहायक सेना के बल पर ही अपने देशवासियों की इच्छा के विरुद्ध वह पेशवा की मसनद पर आसीन था। अन्य मराठा सरदारों के राज्य का भी पर्याप्त भाग उनके अधिकार से निकल चुका था और मुगल सम्राट उनके महानतम प्रतिद्वन्दी के प्रभाव एवम् संरक्षण में चला गया था। अपना सब कुछ नष्ट कर लेने के बाद, अब मराठे हारे हुए जुआरी की भाँति जो समाप्त हो चुका था उस पर आश्चर्य करते हुए चुपचाप बैठ गए थे। अपने इस भयंकर विनाश के लिए वे स्वयम् कहाँ तक उत्तरदायी थे इसका कुछ कुछ आभास उन्हें हो रहा था, फिर भी अपनी पुरानी गलतियों से सबक लेकर भी वे पारस्परिक संगठन की आवश्यकता पर जरा भी विचार न करके बिना किसी योजना के हाथ पर हाथ रक्खे हुए बैठे थे; इस समय उनके हृदय में एक ही भावना प्रधान थी, अंग्रेजों के प्रति घृणा, जिन्होंने उनकी सत्ता का अपहरण कर लिया था।

इस बीच मराठों तथा अन्य देशी नरेशों के प्रति ब्रिटिश सरकार की नीति भी स्थिर नहीं रही थी और उसका कारण था कि प्रत्येक गवर्नर जनरल के हिन्दुस्तान की देशी रियासतों और मराठा नरेशों के साथ ब्रिटिश सरकार के व्यवहार के विषय में एक दूसरे से भिन्न धारणाएँ रखता था और अपनी विचारधारा के अनुसार ही अपनी नीति का निर्धारण करता था। यद्यपि उनमें से प्रत्येक की नीति पर भारत में ब्रिटिश शासन के प्रति इंग्लैण्ड के जनमत का कम या अधिक प्रभाव पड़ता था। जब लार्ड कार्नवालिस की पहली बार गवर्नर जनरल बनाकर भारत भेजा गया जो उसने कम्पनी के राज्य क्षेत्र की सुरक्षा के लिए कोई प्रभावशाली योजना बनाने और भारत में शान्तिपूर्ण वातावरण बनाने के लिए कोई न्यायपूर्ण कदम उठाने की आवश्यकता को महसूस किया। उसे आशा था कि उक्त दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उसने जो पारस्परिक सहयोग की योजना तैयार की है, देशी रियासतें उसके महत्व तथा उससे प्राप्त होनेवाले लाभों का अनुभव करेंगी और स्वेच्छा से ब्रिटिश सरकार के साथ इस प्रकार की सन्धि कर लेगी। उसे आशा थी कि जिस सद्भावना के साथ उसने इस योजना को तैयार किया है उतने ही उत्साह से देशी राज्य इस पारस्परिक सहयोग की योजना का स्वागत करेंगे। परन्तु उसने देश में फैली हुई राजनैतिक बुराइयों के निराकरण के लिए जितने श्रम से

अपनी सुरक्षा की गारन्टी की योजना तैयार की थी उसका उचित प्रतिफल उसे प्राप्त न हो सका और मराठों या निजाम अली की नीति में अपनी योजना के अनुकूल कोई विशेष परिवर्तन न करा सका।

उसके पश्चात् आया महान् कूटनीतिज्ञ मारक्विस वेल्सली जिसका ध्यान प्रारम्भ में दो दिशाओं में आकर्षित हुआ, प्रथम यह कि कहीं किसी विदेशी शक्ति के आक्रमण से ब्रिटिश भारत की सुरक्षा के लिए कोई संकट न उपस्थित हो जाय और दूसरा यह कि ब्रिटिश सरकार तथा देशी नरेशों के बीच युद्ध की सम्भावना को कैसे समाप्त किया जाय। सारी परिस्थितियों पर विचार करने पर कम्पनी की सुरक्षा के लिए, गवर्नर वेल्सली को यही मार्ग सबसे प्रभावशाली जान पड़ा कि प्रत्येक देशी नरेशों की राजसभा की कार्रवाइयों की पूर्ण जानकारी रक्खी जाय, जिससे कि प्रत्येक राज्य के आर्थिक एवम् राजनैतिक स्त्रोतों से अधिकतम लाभ उठाने की योजना बनाई जा सके, जिसमें से सम्बन्धित राज्य के साथ साथ कम्पनों सरकार को भी उचित भाग मिल सके। अपने इस विचार को कार्यरूप में परिणित करने के लिए वेलसली ने जो योजना तैबार की उसका लक्ष्य था कि कुमारी अन्तरीप से लेकर कच्छ की खाड़ी तक और कच्छ की खाड़ी से शिवालिक की श्रेणियों तक के क्षेत्र में जितने भी देशी राज्य स्थित हैं, उन सबको ब्रिटिश सरकार के नियंत्रणों में रक्खा जाय और उनके सन्धि, विग्रह और राजनैतिक सम्बन्धों पर रेजिडेन्टों के माध्यम से सदेव सतर्क दृष्टि रक्खी जाय। वह किस सीमा तक अपनी इस योजना के अनुसार चल पाया और उसका क्या प्रभाव हुआ, इसका विस्तृत विवरण पीछे के पृष्ठों में दिया जा चुका है। पूरे भारत में एक साम्राज्य की स्थापना की उसकी वृहत योजना, उसकी इस योजनाओं के क्रियान्वयन का ईस्ट इन्डिया कम्पनी के व्यापारिक हितो पर प्रभाव और उसके मार्ग में निरन्तर आने वाली बाधाओं और रुकावटों के विवरण से ईस्ट इन्डिया कम्पनी की नीति की इंग्लैण्ड में कड़ी आलोचना और निन्दा की गई और बेल्सली द्वारा देशी रियासतों के विरुद्ध उठाए गए कदमों के अन्यायपूर्ण होने का सन्देह किया जाने लगा। वास्तव में भारत में अंग्रेजों के पैर जमाने का कारण प्रारम्भ में राजनैतिक कम और व्यावसायिक अधिक था; अतः भारत पर एक साथ अधिकार कर लेने की नीति इंग्लैण्ड वासियों को पसन्द न आई क्योंकि इस प्रकार के राजनैतिक विचारों और साम्राज्य विस्तार में व्यस्त रहने के कारण कम्पनी अपनी व्यावसायिक नीति पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर पां रही थी जिसके फलस्वरूप कम्पनी पर ऋण बढ़ता ही जा रहा था। यह तो हुई लोगों की बातें जिनको कम्पनी पर बढ़ते हुए ऋण और अस्थिर व्यावसायिक नीति के कारण चिन्ता घेरे हुई थी परन्तु कुछ अन्य सदविचार एवम् सदभावना पूर्ण व्यक्तियों की दृष्टि भारत में वेल्सली कौ नीति, छल कपट और साजिशों के कारण व्याप्त बुराइयों और अराजकता पर पड़ी और उन्होंने भारत में फैली हुईं इन बुराइयों को रोकने और उनकी शान्तिपूर्ति करने के लिए वेल्सली की महत्वकांक्षी नीति में परिवर्तन करने की आवश्यकता का अनुभव किया। इंग्लेण्ड में वेल्सली के विरुद्ध इस प्रकार का वातावरण बन जाने के कारण उसे वापस बुला लिया गया। अब एक ऐसे व्यक्ति को गवर्नर जनरल बना कर भेजने का विचार किया गया जो भारत में व्याप्त इन बुराइयों का निराकरण कर सके। कोर्ट आव डाइरेक्टर्स ने यह कार्य भार लार्ड कार्नवालिस के अनुभवी कन्धों पर ही रक्खा और उसे पुनः गवर्नर जनरल के पद पर भारत भेज दिया गया; जहाँ पहुँचते ही उसने लार्ड लेक द्वारा की गई अनेक सहायक (सब्सीडियरी) सन्धियों की कड़ी को एकदम तोड़ दिया और उसके कार्य काल के दौरान में इस प्रकार की कोई सन्धि नहीं की गई। उसकी आकस्मिक मृत्यु हो जाने पर उसके उत्तराधिकारी सर जार्ज बार्लो ने विभिन्न रियासतों की विभिन्न समस्याओं पर तार्किक ढंग से विचार किए बिना ही लार्ड कार्नवालिस की नीति का अन्धानुकरण

किया, और सोचा कि प्रारम्भ में छोटी-मोटी देशी रियासतें ब्रिटिश सरकार का संरक्षण अपने ऊपर से हट जाने पर भले ही कुछ असुविधा एवम् संकट का अनुभव करें, परन्तु कालान्तर में वे भी अपनी परिस्थितियों के साथ समझौता कर के सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होंगी। सर जार्ज बार्लो ने अपने छोटे से शासन काल में जो कार्य किये वे अदूरदर्शितापूर्ण और संकुचित विचार से भरे होने के साथ साथ स्वार्थ और विवेचन हीनता से भरे हुए थे।

देशी राज्यों में से तीन प्रमुख शक्तियों—निजाम, पेशवा, और गायकवाड़ वेल्सली के शासन काल में ही ब्रिटिश सरकार के साथ प्रतिरक्षात्मक (डिफेन्सिव) और सहायक (सब्सीडियरी) सन्धियों के सूत्र में बँध चुके थे; अब उसके बाद, कार्नवालिस ने हिन्दुस्तान की रियासतों में से भरतपुर और मछिरी के अतिरिक्त शेष सभी पर से ब्रिटिश सरकार के सरक्षांण को समाप्त कर दिया। रघू जी भोंसले, दौलतराव सिन्धिया और यशवन्त राव होलकर अब भी विशाल भू-क्षेत्रों के स्वामी थे, परन्तु उनकी उनमें से प्रत्येक के व्ययस्था के अन्तर्गत इनामों और जागीरों को छोड़ कर, शेष भाग से जितनी वास्तविक मालगुजारी वसूल होती थी, वह तीन में से किसी के भी राज्य में ६० लाख रुपये से अधिक नहीं होती थी। जब कि रघू जी भोंसले की मालगुजारी से प्राप्त वार्षिक आय इससे भी काफी कम थी, परन्तु उसका व्यय भी अपेक्षाकृत कम था क्योंकि उसके पास सिन्धिया और होलकर जैसों के मुकबिले में सेना भी बहुत कम थी। सेना की साज सज्जा भी उतने उच्च स्तर की नहीं थी। ब्रिटिश सरकार एवम् सिन्धिया, भोंसले तथा होलकर के साथ जो सन्धियाँ हुई थीं, उनका उद्देश्य केवल दोनों पक्षों में मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाये रखना था। उनके ब्रिटिश सरकार के सहायकों के अतिरिक्त, अन्य किसी भी रियासत के साथ उनकी सन्धि विग्रह आदि की नीतियों में ब्रिटिश सरकार द्वारा किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जाता था। इस तथ्य को स्वीकार करने के अनेक उल्लेखनीय कारण उपस्थित थे कि भारत में शान्ति की स्थापना के लिए इस प्रकार की व्यवस्था अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्ण होने के साथ नीतिपूर्ण भी थी। अब कम्पनी की साम्राज्य विस्तार की गति को एक दम अवरुद्ध कर दिया गया था, प्रत्येक सरदार के अधिकार में पर्याप्त भूक्षेत्र थे जो कि पूर्ण रूपेण संतुलित भी थे और यह आशा की जाती थी कि अपने पारस्परिक संघर्षों, अपने पड़ोसियों के क्षेत्र में लूलपाट करने और जिसके अधिकार में कुछ था, उसके पुनः छिन जाने की आशंका के कारण वह ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध शत्रुता पूर्ण व्यवहार करने का साहस नहीं कर सकेंगे। युद्ध काल में ब्रिटिश सरकार ने अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाने के लिए बहुत अधिक संख्या में अनियमित सैनिकों की भरती कर ली थी जिनकी सेवाएँ जिन्हें युद्ध समाप्त होते ही समाप्त कर दी गईं थीं, अब इन बर्खास्त हुए सैनिकों की जीविका का हल ढूंढ़ा सिन्धिया होलकर आदि मराठा सरदारों ने जिनकी सेना में उन्हें भर्ती कर लिया गया। ब्रिटिश सरकार द्वारा यह आशा भी की जाती थी कि अब युद्ध समाप्त की आशंका के समाप्त हो जाने से ये सरदार निश्चिन्त हो कर धीरे-धीरे अपनी मालगुजारी वसूलने के ढंग को व्यवस्थित कर लेंगे; अपना व्यय कम करने के लिए अपनी सेनाओं के आकार को छोटा कर लेंगे और अपना ध्यान अपने राज्य के सुख समृति को बढ़ाने की ओर आकर्षित करेंगे। यह एक सामान्य नियम सा बन गया था कि प्रत्येक युद्ध के पश्चात् लुटेरों के दल विभिन्न क्षेत्रों में लूट मार कर के देश की शान्ति और सुव्यवस्था को चुनौती देने लगते थे; ब्रिटिश सरकार को यह आशा भी थी कि जब तक ये मराठा सरकार अपने राज्यों को समृद्ध बनाने की योजनाओं में व्यस्त रहेंगे, उस बीच ब्रिटिश सरकार एवम् उसके मित्रों की शक्ति इतनी बढ़ जायगी कि दस्युओं के उपद्रवों का दमन किया जा सकेगा।

इस विषय का अधिक विस्तृत विवरण देना इस पुस्तक के विषय क्षेत्र के बाहर है, अतः इस समय यही बता देना पर्याप्त प्रतीत होता है कि ब्रिटिश सरकार ने इस सम्बन्ध में किस प्रकार की नीति ग्रहण की और उससे उसे कौन से उद्देश्यों की पूर्ति की आशा थी; परन्तु इस नीति के कारण मराठों की शक्ति के निरन्तर पतन में सहायता मिली, और इसके कारण अनेक ऐसी घटनाएँ परिलक्षित हुईं जिनसे मराठा शक्ति के पूर्ण पतन का आभास मिलने लगा, अतः इस सम्बन्ध में कुछ और विस्तृत उल्लेख करना हमारे विषय क्षेत्र के विस्तार के लिए आवश्यक नहीं है।

जब यशवन्त राव होलकर सन्धि के पश्चात् हिन्दुस्तान से लौट कर मालवा स्थित अपने राज्य क्षेत्र में वापस लौटा तो उसने अपनी सेना को सूचना दी कि वह अपनी अश्वारोही सेना के २०००० सवारों की सेवाओं को समाप्त कर देने का इरादा कर रहा है, जिनमें से अधिकांश दक्षिणी भारतीय ही होंगे। परन्तु चूँकि इन सैनिकों का बहुत अधिक वेतन बकाया पड़ा हुआ था जिसको तुरन्त चुकता कर देना होलकर की तत्कालीन परिस्थितियों में, उसकी शक्ति के बाहर था। अब इन सवारों ने अपने बकाया वेतन के लिए धरना देना प्रारम्भ किया, अन्त में यशवन्त राव ने जमानत के रूप में अपने भतीजे खण्डेराव को उनके हवाले कर दिया और वादा किया कि शीघ्र ही उनका शेष वेतन दे दिया जायगा। यह अश्वारोही सेना तो पहले से ही विद्रोह एवम् उत्पात पर उतारू थी, अब जब होलकर राज्य का एकमात्र न्याय्य स्वामी उनके अधिकार में आ गया तो उन्होंने इस परिस्थिति से लाभ उठाने की योजना बनाना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने तुरन्त खण्डेराव को अपना सरदार मानकर यशवन्तराव के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा ऊँचा किया; उसको होलकर राज्य का वास्तविक स्वामी घोषित किया और यशवन्त राव की आज्ञाओं का पालन करने से इनकार दिया। परन्तु अभी पैदल सेना के रूप में यशवन्तराव के पास इतनी शक्ति बची हुई थी कि अश्वारोहियों के विद्रोह का शमन सरलता से किया जा सकता था, इसके अतिरिक्त इन विद्रोहियों को सन्तुष्ट करने के लिए उसने जयपुर के राजा से एक भारी रकम प्राप्त की और इनका वेतन चुकता कर दिया, उसके इस कार्य का तात्कालिक प्रभाव पड़ा और विद्रोह स्वयम् ही समाप्त हो गया।

परन्तु बेचारा खण्डेराव होलकर जो इस विद्रोह का अगुआ बना हुआ था और विद्रोहियों के हाथ कार्यसिद्धि का एक साधन मात्र था, अब बिलकुल अकेला पड़ गया और अन्ततः उसे अपने चाचा यशवन्तराव की कोपाग्नि में त्रस्त होना पड़ा; जिसने गुप्त रूप से खण्डेराव की हत्या करा दी। अब यशवन्तराव की स्वभावगत ईर्षा और क्रोध की भावनाए पुनः उत्तेजित हो उठीं जो तब तक शान्त न हो सकी, जब तक कि उसके भाई काशीराव होलकर के अस्तित्व को भी समाप्त नहीं कर दिया गया; काशीराव को भी खण्डेराव की ही तरह गुप्त रूप से मार डाला गया।

ये दुष्टतापूर्ण कारनामे एक उन्मादपूर्ण स्थिति के सूचक थे। यह उन्माद उन सैनिक तैयारियों से भी परिलक्षित होता था, जो उसको मानसिक असन्तुलन के समानुपाती हिंसा एवम् दुष्प्रवृति से पूर्ण थे। यह उन्माद इतना बढ़ गया कि हार कर उसे नियंत्रण में रखने की
१८०७ ई०] आवश्यकता प्रतीत हुई और सन् १८०८ ई० में उसे करीब करीब बन्दी बना लिया गया। बन्दी अवस्था में ही वह अपने कैम्प में तीन वर्षों तक जीवित रहा और उसी अवस्था में २० अक्टूबर सन् १८११ को उसके दुखी जीवन का अन्त हो गया।

यशवन्त राव होल्कर के चरित्र की मुख्य विशेषता यह थी कि उसमें शक्ति भी थी और साहसिकता भी, जो उसके अन्य साथियों के विपरीत कठिनतम परिस्थितियों में भी उसका साथ नहीं छोड़ती थी। सामान्य मराठा सर्दारों की अपेक्षा वह अधिक शिक्षित भी था और मराठी भाषा एवम

फारसी में भी उसकी समान गति थी। वह स्पष्टवादी स्वभाव का व्यक्ति था परन्तु शिष्टाचार भी कम नहीं था। वह एक लड़ाकू स्वभाव का व्यक्ति था और भारतीय सैनिक नीति का कुशल जानकार था। उसके सिपाही उसके आकर्षक नेतृत्व से प्रभावित रहते थे। इन गुणों के अतिरिक्त अन्य गुणों की कमी थी, क्योंकि यद्यपि कभी कभी वह अनावश्यक रूप से उदार हो जाता था, फिर भी वह लुटरू प्रवृत्ति का एवम् निर्दयता की उसमें कमों नहीं थी। उसका स्वभाव ऐसा था कि उसके संसर्ग में आने वाले लोग उससे जल्द ही ऊब जाते थे। उसकी ईर्ष्यावृत्ति एवम् हिंसा वृत्ति में कभी भी कमी नहीं रही। शरीर यद्यपि उसका छोटा था पर उसमें शक्ति व स्फूर्ति की कमी नहीं थी। उसका रंग भी काला था और एक तोप के फट जाने से उसकी एक आंख भी जाती रही थी फिर भी देखने में वह भद्दा नहीं लगता था। उसमें मानव सुलभ साहस व मनोरंजकता का भी अभाव नहीं था।

यदि उस समय होल्कर के राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था देखी जाय तो वह ऐसी ही थी, जैसी एक समिति के शासन प्रबन्ध में होनी चाहिये थी। लगान की नियमित वसूली तो होती नहीं थी। प्रशासन के पास इतनी शक्ति थी नहीं कि वह सेना अपने नियंत्रण में रखता। राज्य की स्थिति ऐसी हो गयी थी और उसका खर्च इतना बढ़ गया था कि योग्य से योग्य व्यवस्थापक भी उस व्यय भार को बहन नहीं कर सकता था। अतः सैनिकों को इसलिये बाहर भेज दिया गया कि वह सूबों से लगान वसूली करें और अपनी जीवन यात्रा योग्य आवश्यक रकम प्राप्त कर लें। इन सेनाओं को आदेश दिये जाते समय यह निरुपित नहीं किया गया कि वे किस ओर जायें। पड़ोसी रियासतों में भी लूट पाट करने से उन्हें रोका नहीं गया था। इस प्रकार की खुली छूट पाकर उनमें से कितने ही अनुसासन हीन हो गये। मुहम्मद अली खां बंगश की अधीनस्थ सेना अति प्रारम्भ में ही विद्रोह कर बैठी और उसने खान देश को लूट लिया। यदि पूना तथा हैदराबाद में रहने वाली सहायक सेनायें न होतीं और वे इनकी प्रगति को रोककर इन्हें तितर वितर न कर दिये होती तो शायद निजाम की प्रजा भी इन लुटेरुओं का शिकार बन गयी होती। हो सकता था कि निजाम के राज्य से होकर वे होल्कर द्वारा शासित अम्बर के जिले में ही घुस गयी होती। निजाम की सहायक सेना से इन विद्रोहियों को तितर वितर करके बंगश को कैदी बनाकर बम्बई के किले में भेज दिया गया।

यदि होल्कर राज्य को प्रशासन नाम पाने का अधिकार हो तो वह स्पष्ट दो दलों में बँटा हुआ था। एक दल पठानों का था और दूसरा दल मराठों का। ये दोनों ही एक दूसरे को नीचा दिखा कर शासन यन्त्र तो हथिया लेने के निम्नतम आचरण पर उतर जाया करते थे और इस प्रकार राज्य में अराजकता की स्थिति सी व्याप्त हो गयी थी। दर्बार में घूस, प्राणदण्ड एवम् हत्याओं का बाजार गर्म था और राज्य में हिंसा, लूटमार एवम् रक्तपात का दौर दौरा था।

सिन्धिया के राज्य की दशा भी कुछ अधिक अच्छी नहीं थी। उसकी अधीनस्थ सेना का व्यय इतना अधिक था कि उसकी समूची आय उस व्यय भार को सहन करने में असमर्थ थी। बकाया वेतन के लिये सेना की मरमराहट इतनी अधिक बढ़ गयी थी कि सिन्धिया को भी होल्कर राज्य की राह चलना पड़ा। उसकी सेनाओं को विभिन्न जिलों से अपना वेतन वसूल कर लेनी की आज्ञा देनी पड़ी। इस सेना ने इतना अवश्य किया कि उसने जा कर सिन्धिया के कितने ही करद किन्तु विद्रोही जमींदारों को कर देने पर मजबूर कर दिया। पहले इन सेनाओं को लूटपाट करने के लिये बड़ा भारी चेत्र मिल जाया करता था, परन्तु अंग्रेजी राज्य की सीमा बढ़ जाने से अब इनकी लूटपाट का चेत्र अत्यधिक संकुचित हो गया था और अंगरेज एवम् उनके मित्रों की सीमा में घुसने का

१८०६ ई०]

उनको साहस नहीं होता था। सेना अपना सारा खर्च बल्कि उससे कहीं अधिक ज्यादा इसी सीमित क्षेत्र से निकालने लगी, जिसका परिणाम यह हुआ कि इन क्षेत्रों से इतनी अधिक वसूली की जाने लगी कि संत्रस्त होकर लोग इधर-उधर भागने लगे और इस प्रकार बसे हुए क्षेत्र उजाड़ होने लगे। अपने व्यक्तिगत व्यय के लिये सिन्धिया को किसी न किसी महाजन की शरण लेनी पड़ती थी, जो भारी सूद पर रुपये कर्ज में दिया करते थे। इन कर्जों की रकमों की जमानत देने के लिये उसके पास एक ही अधिक साधन वस्तु था और वह था अंगरेजों द्वारा दी जाने वाली पेंशन जो उसे व उसके परिवार वालों को मिलती थी। अम्बा जी के मर जाने के बाद सिन्धिया ससैन्य उस ओर इस इच्छा से गया कि वह उसकी जागीर को अपने अधिकार में ले ले। उस जागीर पर उन दिनों अम्बा जी के परिवार वालों का आधिपत्य था। यह जागीर गोहद में थी। इस विचार से सिन्धिया ने १८१० ई० में ग्वालियर में पड़ाव डाला और यद्यपि उस स्थान से वह कई बार विभिन्न तीर्थों को गया, परन्तु उसका कैम्प वहीं पड़ा रहा। कई सालों तक एक ही स्थान पर पड़े रहने से उस जगह ही बस गया। इसमें सन्देह नहीं कि अम्बाजी इंगिलया की जागीर हस्तगत कर लेने से सिन्धिया में कुछ आर्थिक दृढ़ता आ गयी। पिछले वर्ष ही शेरजीराव घाटगे की भी मृत्यु हो चुकी थी। इस मृत्यु से सिन्धिया के पारिवार के विवाद भी कम हो गये और जनता को काफी सुख व सन्तोष मिला। क्योंकि वह व्यक्ति प्रायः ऐसे काम किया करता था कि दोनों ही में (परिवार एवम् राज्य में) अशान्ति की सृष्टि स्वयमेव हो जाया करती थी। उसकी मृत्यु के बाद ही ब्रिटिश सरकार ने सिन्धिया एवम् होल्कर से की गयी सन्धियों में घाटगे सम्बन्धित धाराओं को निकाल दिया। अन्तिम् सयय में घाटगे की शक्ति अत्यधिक बढ़ गयी थी और कभी कभी वह सिन्धिया को भी आदेश दे दिया करता था और वह आदेश भी इसने खुले और भद्दे रूप में होता था कि उसे सिन्धिया भी सहन नहीं कर पाता था। जिस लिये उसकी मृत्यु हुई उस कारण की उत्पत्ति हुई थी एक जागीर को लेकर सिन्धिया और घाटगे के बीच एक मतभेद से। शेरजी राव की इच्छा थी कि वह जागीर कुछ धनी सिल्लीदारों को दे दी जाय जो बातर के निम्बालकर के परिवार में थे। सिन्धिया घाटगे के व्यवहार से अत्यधिक परितप्त था और इसलिये क्षुब्ध हो उठा था। उसने घाटगे की गिरफ्तारी का आदेश दे दिया। शिरजी राव ने उस आदेश को मानने से इनकार किया। परिणाम स्वरूप एक छोटा सा संघर्ष हो गया; जिसमें आनन्द राव सिन्धिया ने अपने भाले के वार से शिरजोराव को समाप्त कर दिया। यद्यपि सिन्धिया (दौलतराव) ने उसे मार डालने का आदेश नहीं दिया था, फिर भी इस मृत्यु का उसने समर्थन ही किया। ऐसा कहा जाता है कि सिन्धिया को उस समय से कितने ही आदेशों के लिये यावज्जीवन पश्चात्ताप रहा, जब वह इस शैतान के कहने में था।

नागपुर में रघूजी भोंसले का प्रशासन भी कुछ वैसा ही था जैसा सिन्धिया तथा होल्कर का था। उसकी खराबियाँ भी कम न थीं। उसकी सेना अपेक्षाकृत छोटी थी जिसका परिणाम हुआ कि देश में अनुशासनहीन लुटेरों का आधिक्य हो गया। ये लुटेरे उसके राज्य में तो थे ही, बाहर ने भी जाया करते थे। सन् १८०९ ई० तक अमीर खां राजस्थान में अपने को प्रतिष्ठित कर चुका था अतः नागपुर की इन परिस्थितियों को ललचायी दृष्टि से देख रहा था। उसने भोंसले से दावा किया कि होल्कर की कुछ रकम भोंसले के यहां बाकी पड़ी थी।* इसी दावे को मानकर उसने अपने अधीनस्थ

---

* जिन दिनों होल्कर नागपुर में था उन दिनों बरार के राजा ने उसके कुछ कीमती जवाहरात रख लिये थे। अँगरेजों के वहकावे में आकर अमीर खाँ ने वे जवाहिरात या उनकी कीमत माँगी परन्तु कोई सन्तोषप्रद उत्तर न मिलने पर उसने हमला करने की तैयारी की।।अनुवादक—

पिन्डारियों को लूटपाट करने की छूट दे दी। ब्रिटिश फौजें उस समय बैठ कर खा रही थी; अतः अच्छा अवसर देखकर अँगरजों ने इस लूटपाट में हस्तक्षेप किया और इन अराजक लुटेरों को देश से बाहर नर्मदा के पार निकाल दिया। इस प्रकार मानो बरार की रक्षा हो गयी।

पिछले अध्यायों में एकाधिक स्थानों पर पिण्डारियों का नाम आया है। अतः अब उनका कुछ परिचय दे देना अवांछनीय न होगा। दक्षिण में इस नाम को लोग जानते थे। इनकी काफी बड़ी संख्या बाजीराव की सेना के पीछे पीछे चलती थी। शायद उसकी यह इच्छा थी कि इसी बहाने इन्हें स्वदेश से दूर रक्खा जाय। यह निश्चय है कि उसने इन पिण्डारियों को मालवा में छोड़ दिया और अपने सर्दारों को सिन्धिया तथा होल्कर के नियन्त्रण में कर दिया। प्रायः ऐसा नियम सा हो गया कि जब भी ये तीनों सर्दार मुगल शासित प्रदेशों पर छापा मारते थे तभी ये पिण्डारी लोग उनके साथ रहते थे। सिन्धिया तथा होल्कर के नियन्त्रण में रहनेवाले पिण्डारियों को सिन्धियाशाही तथा होल्करशाही कहा जाता था।

सन् १७९४ में सिन्धिया ने नर्मदातट पर कुछ क्षेत्र अपने अधीन पिण्डारियों को दे दिया। इन पिंडारियों ने शीघ्र ही समीपस्थ लोगों की भूमियों को छीन छीनकर अपना क्षेत्र काफी बड़ा बना लिया। उस समय पिंडारियों के मुखिया थे हीरु और बुरान जो भाई भाई थे। आगे चल कर उनके द्वारा की गयी कुछ हत्याओं के कारण सिन्धिया ने उन्हें प्राण दण्ड दे दिया और तब उनके लड़के पिंडारियों के मुखिया बने। करीम खां नामका एक पिंडारी था, जिसने हर्रा के युद्ध में निजाम की सेना को लूटकर काफी माल पाया था। वह अपनी कुटिलता एवम् कूटबुद्धि के लिये भी विख्यात था अतः अपनी कुशलता से वही इनका मुखिया बन बैठा।

अमीर खाँ ने शुजाहल पुर का जिला करीम खां को दे दिया। बाद में उसी जिले में कुछ और जोड़कर सिन्धिया ने भी अमीर खां की कार्यवाही को स्थायित्व दे दिया। यह सभी कार्यवाही घाटगे की राय से की गयी थी। सन् १८०३ के युद्ध में तथा युद्धोत्तर कालीन गड़बड़ियों से लाभ उठा कर करीम खां ने मालवा के कुछ जिलों पर अधिकार कर लिया। ये जिले सिन्धिया के जागीरदारों के थे। ऐसा कहा जाता है कि उस समय करीमखां द्वारा अधिकृत प्रदेश की लगान पन्द्रह लाख रुपये वार्षिक थी। उसने भोपाल के नवाब से भी कुछ भूमि ले ली और उस पर एक किला बनवाया जहां वह अपने परिवार और अपनी लूट पाट का माल सुरक्षा पूर्वक रख सका। शुरु शुरु में करीम सिन्धिया नियंत्रित पिंडारी था। होल्कर के पांच हजार पिंडारी सवारों को छोड़कर प्रायः सारे पिंडारी सिन्धियाशाही ही माने जाते हैं। होल्कर के पिंडारी तो उसके प्रति सदैव ही वफादार रहे मगर सिन्धिया के पिंडारी तो अक्सर पक्ष पनिवर्तन कर देते और सुअवसर देखकर अपने स्वामी के राज्य में भी लूटपाट मचा देते थे जिससे तंग आकर सिन्धिया ने कुछ तोपें देने के बहाने करीम खां को साक्षात्कार के लिये बुलवाया और उसके आ जाने पर उसे बन्दी बना कर ग्वालियर के किले में डाल दिया, उसके कैम्प को लूट लिया और उसके सभी क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया।

अँगरेजों की शक्ति वृद्धि के कारण जब मराठों की शक्ति एवम् प्रभाव विस्तार बन्द सा हो गया तो ये पिंडारी लोग जीवन यापन के लिये अपने भूतपूर्व स्वामियों के क्षेत्रों को ही लूटने खसोटने लगे और चूंकि इनको दबाने योग्य शक्ति उस समय किसी भी देशी राजा, महाराजाओं में न थी अतः इनकी संख्या में तेजी से वृद्धि होती गयी। बेकार सैनिकों के लिये विशेषकर मुसलमान सैनिकों के लिये पिंडारी दल एक महान आकर्षण की वस्तु बन गया, परन्तु पैत्रिक सत्तायुक्त ऐसे मराठे इस दल में कभी भी शामिल नहीं हुए, जिनको तनिक भी सम्माननीय स्थिति प्राप्त थी।

प्रति एक सहस्र पिंडारियों में प्रायः चार सौ पिंडारी ऐसे थे जो सामान्य सैनिकों की तरह शस्त्रास्त्रों से पूर्ण सुसज्जित थे। उन चार सौ में से प्रायः हर पन्द्रवें व्यक्ति के पास अपनी टोपीदार बन्दूकें थीं। उनका सर्वाधिक प्रिय शस्त्र था वह भाला जिसका मराठों में खूब प्रचार था। यह भाला बारह से अठारह फीट तक लम्बा होता था। शेष छः सौ सामान्य लुटेरे थे। ये प्रायः उन सैनिकों की तरह विभिन्न हथियारों से सुसज्जित रहते थे, जो बाजारों की सुरक्षा के लिये रक्खे जाते थे।

किसी भी अभियान पर प्रस्थान करने के पूर्व प्रायः सभी छोटे पिंडारी सर्दारों को नोटिस भेज दी जाती थी और वर्षाकाल की समाप्ति के पश्चात् दशहरा के आस पास उनका नेता किसी निश्चित स्थान पर अपना झंडा फहरा कर खड़ा हो जाता था। ज्यों ही नदियाँ पारगम्य हो जाती थीं और पिंडारियों की काफी बड़ी संख्या एकत्रित हो जाती थी तो वे प्रायः असामान्य रास्तों से अपने गन्तव्य स्थान की ओर चल पड़ते थे। शुरू में प्रायः दस मील दैनिक के हिसाब से चलकर वे अपनी प्रगति दैनिक तीस या चालीस मील तक ले जाते थे। वे तब तक चलते जाते थे जब तक कि किसी सुख शान्ति पूर्ण इलाके में वे नहीं पहुँच जाते थे। यही सुखशान्ति पूर्ण स्थान उनका लक्ष्य होता था। विवश एवम निरराध नागरिकों को थे लोग सब प्रकार से त्रस्त कर डालते थे। गाँवों से आग की लपटें दिखायी देने लगती थीं। गृहविहीन घायल किसान चतुर्दिक भागते दिखायी पड़ते थे। मोर्चे बन्द स्थानों के द्वार बन्द कर दिये जाते थे और उनकी दीवारों पर से निरन्तर गोलियाँ चलायी जाने लगती थीं। लुटेरे छोटे छोटे दस्तों में विभाजित होकर क्षेत्र भर में फैल कर आतंक की सृष्टि कर देते थे। उनके सभी कार्य एक सुनिर्धारित योजना के अनुसार होते थे। अर्द्ध चन्द्राकार स्थिति में वे आगे बढ़ते थे और रास्ते में पढ़ने वाले नागरिकों के साथ नाना प्रकार के निर्दय, दुष्टतापूर्ण एवम् गर्हित व्यवहार करते थे। रुपया निकलवाने के लिये लोगों को रोमांचकारी यंत्रणाएँ दी जाती थीं और अरक्षित गाँव वालों की निर्मम हत्या करने में भी वे नहीं हिचकते थे। उनमें एक मात्र यही नीति रहती थी कि जहां से पैसे मिलने की कोई आशा नहीं रहती थी, वहाँ वे किसी प्रकार का खतरा नहीं उठाते थे। जिस देश की सीमा से उनका उत्पात शुरु होता था उसकी दूसरी सीमा पर वे इकट्ठे हो जाते और वे अपने घरों की ओर चल देते थे। जिस समय वे लूटपाट का काम करते थे उन दिनों प्रायः नित्य ही कुछ न कुछ दुष्कर्मी उनकी जमात में दाखिल होते रहते थे या अलग रह कर ही व्याप्त अराजकता का लाभ उठाने लगते थे और इस प्रकार समूचा क्षेत्र लूट, हत्या और आगजनी के सुपुर्द हो जाता था।

शारीरिक यंत्रणाओं में वे लोगों के सर या सीने पर भारी पत्थर रख कर माल का पता पूछते थे या गरम लोहे की छड़ों से पांव के तलवों में मारते थे या किनी व्यक्ति का सर घोड़े के तोबड़े में ठूँसकर बाँध देते थे। इनके अतिरिक्त भी यंत्रणा के कितने ही नये नये उपाय खोजे और काम में लाये जाते रहते थे। जिन लोगों ने पिंडारियों एवम् उनके कारनामों को अपनी आंखों से नहीं देखा उन्हें उनके द्वारा किये जाने वाले रोमांचकारी कृत्यों की कल्पना कर पाना भी असम्भव है। जग तक मालवा मारवाड़, मेवाड़ तथा राजपूताने के अन्म इलाकों से उन्हें मनचाहा धन प्राप्त होता रहा, तब तक इस क्षेत्र के बाहर ताकने की उन्हें जरूरत नहीं पड़ी परन्तु इन प्रान्तों के अलाभप्रद हो जाने पर उन्होंने बरार की ओर रुख किया। उनमें से कुछ ऐसे भी थे जो साहस कर के प्रति वर्ष निजाम तथा पेशवा के राज्य में भी घुस कर लूटपाट किया करते थे क्योंकि इन छोटे मोटे प्रयत्नों पर ब्रिटिश सरकार भी कम विचार करती थी और ये पिंडारी भी इस बात का ध्यान रखते थे कि ब्रिटिश प्रजा को हानि न पहुंचने पावे। ब्रिटिश सरकार ने भारतीय राजाओं से सहसा सन्धि विच्छेद करके भारत को जिस अरक्षित अवस्था में छोड़ दिया था, उस स्थिति में अन्य उत्तेजक कारणों के अभाव में भी वही होता जो हो रहा

था अर्थात् पिंडारियों का उपद्रव उसी भांति बढ़ता जैसे बढ़ रहा था। इस भाग का कोई भी क्षेत्र इस प्रकार के लुटेरों से मुक्त रह ही नहीं सकता था। राजपूत रियासतों पर सिन्धिया, होल्कर, अमीरखां तथा पिंडारियों की गृद्ध दृष्टि हरदम लगी रहती थी और तनिक अवसर पाते ही वे भूखे भेड़ियों के समान टूट पड़ते थे। मालवा की भूमि में सिन्धिया के क्षेत्र थे और होल्कर के भी। इस समय वे दोनों ही कमजोर पड़ गये थे अतः मालवा भी पिंडारियों की निर्दयता का शिकार बन रहा था। यदि सिन्धिया में इतनी आर्थिक दृढ़ता होती कि वह अपने सैनिकों का वेतन चुकता करके अपने अधीन सर्दारों को स्वतंत्र रखता तो बहुत सम्भव था कि होल्कर की मृत्यु के बाद उसका सारा राज्य ही सिन्धिया के हाथों में आ गया होता, परन्तु सामाजिक सामर्थ्य के बदले दुष्प्रयत्नो से काम लिया गया और इसकी प्रतिक्रिया इतनी भयंकर हुई कि यद्यपि सिन्धिया, होल्कर, धार के राजा, राजपूतों तथा पिंडारियों में कभी युद्ध की निर्यमित घोषणा नहीं हुयी, परन्तु उनमें छोटे मोटे युद्ध सर्वदा ही होते रहे। इन युद्धों से देश और जर्जर होता जा रह था और बढ़ती हुई जर्जरता अराजकता को भी बढ़ाती जा रही थी। इसी अशान्ति में अमीरखां स्वयम् सिन्धिया को साम्राज्य के अधिष्ठाता के कुछ प्रकाश पाने की आशा हुई।

और अब हम उन्हीं के द्वारा महाराष्ट्र देश की उस क्रांति की पूर्ववर्ती घटनाओं का वर्णन करेंगे, जिसकी समाप्ति के साथ इस ग्रंथ।की भी समाप्ति होती है।

सैतालीसवां अध्याय

बाजीराव (द्वितीय) के समय में मराठा राज्य की दुर्दशा

[१८०३—१८१७]

पेशवा द्वारा फिर से मसनद प्राप्त कर लेने के बाद उसके कारनामे––बृटिश रेजिडेंसी से निबटने के लिये सदाशिव भाऊ की नियुक्ति––रियासत के प्राचीन सेवकों के अधिकारों की उपेक्षा—कोपरगांव में भीलों को छल से पकड़ना तथा उनकी हत्या––प्रतिनिधि का विद्रोह––अप्पा देसाई नेमनकर—कोल्हापुर एवम् सावन्तवाड़ी के युद्ध—मि० एलफिंस्टन की पूना के रेजिडेण्ट पद पर नियुक्ति—दक्षिण के जागीरदार तथा पेशवा—कोंकण में लुटेरुओं का दमन—कोलापुर एवम् सावन्त बाड़ी के साथ संधियाँ—पेशवा तथा उसका नया सैनिक प्रयत्न––बाजीराव का विस्तृत दृष्टिकोण—सैनिक भर्ती—त्र्यम्बक जी का प्रधान मंत्री बनना––कृषि में सुधार के ढंग—नागरिक प्रशासन के प्रति बाजीराव की उपेक्षा––वृहद् मंडल बनाने की योजना––गुजरात में मुख्यता प्राप्ति के प्रयत्न—बड़ौदा सरकार––ले० कर्नल वाकर का सुप्रबन्ध—पेशवा के दावे—गायकवाड़ के दावे—पेशवा का अँगरेजों के बिरुद्ध प्रयत्न—रेजिडेण्ट की प्रतिक्रिया—एकत्रित सेना को विद्रोही करार देना—उनका पीछा और उन पर आक्रमण––वार्ता स्थगित—बाजीराव की अस्वीकृति—प्रस्तावित शर्तों को मानने से इनकार––पूना का घेरा जाना—पेशवा की स्वीकृत––नयी सन्धि।

अभी बाजीराव पूना में आकर मसनद पर बैठा ही था कि उसने अपने नये मित्रों (अंग्रेजों) के प्रति अविश्वास का प्रदर्शन करना प्रारम्भ कर दिया और साथ ही अपने चरित्र की चंचलता भी दिखाने लगा। अपने कर्मचारियों से स्पष्ट शब्दों में उसने कहा कि उसने जो अंग्रेजों से सुलह की थी वह केवल बदले की भावना से प्रेरित हो कर ही की थी।

अंग्रेजों के विरुद्ध मण्डल बनाने वालों से उसका पत्राचार भी प्रारम्भ हो गया। उसने लोगों से कहा कि उसने जो अंग्रेजों से संधि की थी, उसकी आवश्यकता इसलिये पड़ गयी थी कि उसके मित्र उससे दूर थे और दक्षिण के जागीरदार शैतानी कर रहे थे। सन्धि के अनुसार उसे अपनी सेना को विसर्जित कर देना चाहिये था पर इस कार्य में उसने यथा सम्भव अधिक से अधिक सैनिकों को रोक लिया और पटवर्द्धनों को वेल्सली के साथ जाने से रोक लिया। इस कार्य के लिये उसने कोल्हापुर के राजा को गुप्त रूप से उत्तेजित किया कि वह पटवर्द्धन परिवार की जागीरों पर आक्रमण कर दे। इस उत्तेजना से उसका मन्तव्य यह भी था कि शायद वह इस कार्य से सिंधिया की सदिच्छा भी प्राप्त कर ले और इस प्रकार परशुराम भाऊ के परिवार से बदला लेने में सफल हो सके, क्योंकि वह सिंधिया को समझाना चाहता था कि भाऊ परिवार अँग्रेजों से सन्धि करने का विरोधी था, उसकी आज्ञाओं का पालन नहीं करता था और इसीलिये उसकी जागीरें जप्त कर ली गई थीं।

पेशवा के उपरोक्त कारनामों को अंग्रेजों ने एक अशुभ लक्षण के रूप में लिया और वे समझ

गये कि यदि कभी वृटिश शस्त्रों को जंग लग गया तो पेशवा भयभीत हो सकता है। जैसा कि पाठकों ने भी समझा होगा। बाजीराव में प्रशासनिक योग्यता का अभाव नहीं था, परन्तु षड्यंत्र की भावना उसकी एक एक नस में बसी हुई थी और शासन की योग्यता का उसमें सर्वथा अभाव था। वह छल-प्रपंचों से पूर्ण था और अपनी प्रत्येक योंजना को सर्वाङ्ग सम्पूर्ण मानता था। उस समय समूचे महाराष्ट्र में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था, जिसका वह पूरा पूरा विश्वास कर सकता हो। उसका लक्ष्य था कि वह अपने राज्य का सम्पूर्ण शासन स्पष्ट करे परन्तु उसमें एक बड़ी बाधा यह थी कि जिस अंग्रेज रेजिडेण्ट से वह बात भी नहीं करना चाहता था, कुछ अड़चनों के कारण उसकी सलाह के बिना वह कुछ भी कर सकने में असमर्थ था। जहाँ कहीं भी वह समझता था कि किसी विषय में राय लेने पर रेजिडेण्ट का मत विरोध में जायगा, वहां वह उसे (रेजिडेण्ट को) ताक पर रख देता था। उसे यह बात अनिवार्य जान पड़ी कि वह प्रशासन का सर्वेसर्वा उसी सदाशिव भाऊ को बना दे जो हैदरावाद में पेशवा के राजदूत गोविन्द राव पिंगले का एजेण्ट रह चुका था। उसके बाद पेशवा और सिंधिया ने उसे अपना एजेण्ट बना कर निजाम हैदराबाद की सेवा में इसलिये भेजा था कि वे अंग्रेज-विरोधी मण्डल में सम्मिलित हो जाय। उस समय अंग्रेजों का टीपू से युद्ध होने वाला था परन्तु जिस शीघ्रता से टीपू तथा श्रीरंगपट्टम् का नाश हुआ, उससे पेशवा एवम् सिंधिया के सभी इरादे धूल में मिल गये।

सदाशिव भाऊ एक देशस्थ ब्राह्मण था और तम्बूली गांव के देशपाण्डे लोगों के परिवार में से था। किसी समय वह पूना में कथा बांच बांच कर अपनी जीविका उपार्जित किया करता था। उसके बाद वह पिंगले की सेवा में आया। यद्यपि वह विशेष बड़े कुल का नहीं था परन्तु उसका आचार-व्यवहार प्रशंसनीय था तथा बातचीत में मिष्ठभाषी एवम् मित्रतापूर्ण था। एक राजनैतिक पुरुष की सभी योग्यताएँ उसमें थीं। सदाशिव को अँग्रेजों से सलटने का काम सौंपने का एकमात्र कारण यही था कि बाजीराव जानता था कि प्रारम्भ से ही वह अंग्रेजों से मैत्री करने के विपक्ष में रहा था। कई महीनों तक पेशवा लोगों को यह विश्वास दिलाने का पूर्ण प्रयत्न करता रहा कि परिस्थितियों से विवश हो कर ही उसने अंग्रेजों के साथ लिखे गये संधिपत्र पर हस्ताक्षर किया था। धीरे धीरे उसे प्रतीत होने लगा और उसने कई बार अपनी सम्पूर्ण ईमानदारी के साथ घोषित भी किया कि यदि उसने अंग्रेजों से सन्धि न किया होता तो उसे यह सुरक्षा कहाँ नसीब होती तथा जीवन के वे आराम उसे कहाँ से मिलते, जिनकी कल्पना भी वह इसके पहले न कर सका था। धीरे धीरे अग्रेजों के प्रति उसका द्वेष कम होने लगा और अनेक प्रकार से उसने अपने मन को समझा लिया एवं अंग्रेजों के साथ की गयी संधि को सौभाग्य की देन मानने लगा। अब तक जितने गढ़ अमृतराव तथा नाना फड़नवीस के अधिकार में थे, वे जीत कर पेशवा को दे दिये गये। युद्ध के दौरान में भारी व्यय के कारण पेशवा की आर्थिक स्थिति बिगड़ गयी थी, स्वतंत्र लुटेरों ने देश को बर्बाद कर दिया, लगान वसूल करने की व्यवस्था भी कुछ कम खराब न थी, पूना के बाहर उसका स्वत्व व प्रभाव नगण्य से ही थे, परन्तु कुछ ही दिनों के सुप्रयत्न के बाद उसकी आर्थिक समस्या भी सुधार पर आ गयी और उसके समूचे राज्य के लोग उसे सम्मान प्रदान करने लगे।

यद्यपि पेशवा की सहायक (सब्सिडियरी) सेना को कभी हाथ पैर हिलाने की आवश्यकता नही पड़ती थी, फिर भी पेशवा की स्थिति में जो धीरे धीरे दृढ़ता आ रही थी, उसका एकमात्र कारण यही था कि उक्त सेना की उपस्थितिमात्र से उपद्रवी प्रवृत्ति वाले भयत्रस्त रहने लगे थे। इस सेना की उपस्थितिमात्र से उसकी स्थिति में जो दृढ़ता आ रही थी, मसनद पर बैठने के बाद उस दृढ़ता का उसे

कभी आभास तक नहीं मिला था। अब उसके प्रशंसकों की कमी नहीं रह गयी थी और उनमें से कुछ तो विपत्तिकाल में भी उसके प्रति स्वामिभक्त बने रह गये। बाजीराव के पलायन के बाद से उसके पुनः मसनद प्राप्ति तक कोंकण का सरसूबेदार खण्डेराव रस्तिया पूर्णतया उसके प्रति वफादार रहा और उसकी स्वामिभक्ति से पेशवा को बहुत कुछ लाभ भी हुआ। सदाशिव के सामने आ जाने से रस्तिया की प्रतिष्ठा बहुत कुछ पृष्ठभूमि में चली गयी। सदाशिव ने तर्क किया कि शुरु से ही रस्तिया अंग्रेजों से मिला हुआ था और वह अँग्रेज रेजिडेण्ट की हाँ में हाँ मिलाया करता था। कुछ ही वर्षों में उस पर यह अभियोग लगा कर उसे पदमुक्त कर दिया गया कि उसने कोंकण के हिसाब में गोलमाल किया है, यद्यपि उस गोलमाल को कभी भी सिद्ध नहीं किया गया। उसकी १८०४ ई०] जागीर भी छीन ली गयी। जिस साल पेशवा को दुबारा मसनद पाने का सौभाग्य मिला, उसके दूसरे साल ही रस्तिया को राजहित में एक महत्वपूर्ण कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ था। जिस समय अमृतराव एवम् मोरोबा फड़नवीस वेल्सली से मिलने गये तो बाबाराव फड़के उनसे अलग हो गया और वृटिश सरकार के विरोध में रघूजी भोंसले का साथ दिया। शान्ति स्थापन के पश्चात् वह नागपुर से लौटा और अपने साथियों को भ्रमित करके मोरचे की ओर चला गया, जहां अप्पा साहब पटवर्द्धन ने उसे शरण दिया। यह अप्पा साहब परशुराम भाऊ का पुत्र था। फड़के की सेनापतिविहीन सेना ने चतुर्दिक लूटपाट शुरू करके विद्रोह का झण्डा ऊँचा किया, बाजीराव के पास इतनी सेना तो थी नहीं कि वह उसमें से पर्याप्त सैनिक इस विद्रोह को दबाने के लिये भेजता और वृटिश सेना को भी उस समय इतनी फुरसत नहीं थी कि वह विद्रोहियों का पीछा करती। पिछले वर्षों में खण्डेराव उन व्यक्तियों में से अधिकांश का सहकर्मी रह चुका था, जो इस विद्रोह का संचालन कर रहे थे। उसने विद्रोहियों को समझा बुझा कर शान्त कर दिया एवम् उन्हें पेशवा की स्वामिभक्ति पर तैयार कर लिया। इस प्रकार पेशवा की एक आपत्ति टल गयी, क्योंकि यदि यह विद्रोह शान्त न हुआ होता तो सम्भव था कि पेशवा के सामने और भी आपत्ति आतीं। फिर भी पेशवा ने सेना के सेनापतियों की कोई व्यवस्था नहीं की, न उसने देश के सैनिकों पर ध्यान किया और न नागरिक प्रशासन के कार्यकर्ताओं पर ही। बाजीराव के मन में एक ही विचार था कि वे सभी कर्मचारी पिछले वर्षों में नाना फड़नवीस के साथ काम कर चुके थे। उन सभी लोगों की आवश्यकताएँ थी और बाजीराव उनकी प्रार्थनाओं को ठुकरा रहा था एवं उनके किसी भी प्रकार के दावे को नहीं मान रहा था। इसलिये स्वाभाबिक था कि वे बाजीराव की पेशवाई के विरुद्ध हो जाते। यदि उसकी उपेक्षा स्थायी रह गयी होती तो समूचे वृटिश शासन की संयुक्त सेना भी उसे मसनद पर बना रखने में समर्थ न हो पाती, परन्तु सन् १८०४ के अकाल ने बहुसंख्यक सैनिकों एवम् घोड़ों को अपनी कराल गालों में दाब लिया और इस प्रकार बहुत सी वतनी भूमि स्वामीविहीन पड़ गयी, जिसे मृत सैनिकों के सम्बन्धियों ने अपनी आजीविका का साधन बना लिया। उधर चूंकि सिंधिया अपने मुसलमान एवम् राजपूत सैनिकों को हटा कर मराठों को भर्ती कर रहा था, इसलिये वहुत से ऐसे व्यक्ति भी शान्त हो गये जो अन्यथा उपद्रव की सृष्टि कर सकते थे। ऐसे लोगों में से कितनों ने ही स्थान परिवर्तन कर लिया।

कोल्हापुर और सावन्त बाड़ी की छोटी रियासतें सदा एक दूसरे पर तलवार खीचे रहती थीं। सन् १७८५ के आसपास वे दोनों ही आपस में भिड़ गयीं। बाड़ी के देसाई खेम सावन्त की स्त्री लक्ष्मीबाई ने अपने पति के लिये मुगल बादशाह से कुछ राजकीय अधिकार प्राप्त कर लिया। लक्ष्मीबाई महादजी सिन्धिया की भतीजी थी और इसी की कृपा से उसे उक्त अधिकार मिले थे, क्योंकि उन दिनों दिल्ली दरबार में चारों ओर सिन्धिया का ही दबदबा था। बीच बीच में रुक रुक कर दोनों रियासतों का

यह युद्ध तेईस वर्षों तक चलता रहा जब कि चाबुल गाँव के पास लड़े गये एक सम्मुख युद्ध में कोल्हापुर की सेनायें विजयिनी हुई और उन्होंने तत्काल ही बाड़ी के किले को घेर लिया। कुछ वर्षों पूर्व खेम सावन्त की मृत्यु हो चुकी थी और उसकी चार स्त्रियां विधवा हो गयी थी। चूंकि तीसरी स्त्री देवी बाई के गर्भ से उत्पन्न सावन्त का इकलौता पुत्र अभी नाबालिग था अतः सबसे बड़ी रानी लक्ष्मीबाई उसकी संरक्षिका रूप में प्रबन्ध करने लगी। जब किले पर घेरा पड़ गया तो लक्ष्मीबाई ने विश्वास राव घाटगे तथा अप्पा देसाई से सहायता मांगी। विश्वास राव के अधिकार में चिकूरी एबम् मानावली नाम के दो जिले थे, जो कोल्हापुर राज्य के थे। शिरजी राब घाटगे ने उसे इन जिलों का अधिकार दिया था। बात ऐसी थी कि माधवराव सिन्धिया ने इन जिलों को जीत लिया था और पटवर्द्धन परिवार को दे दिया था। चूंकि सिन्धिया को पटवर्द्धनों की जागीर पर पूरा अधिकार था अतः जब उसने शिरजी राव घाटगे को मालवा में अपना साथ देने के लिये बुलाया तो शिरजी राव ने इन जिलों को अपने भाई विश्वास राव के नाम कर दिया था। कोल्हापुर के राजा ने तो विश्वास राव को खदेड़ ही दिया होता मगर उसे सहायता प्राप्त थी अप्पा देसाई की जिसने इन जिलों को बाद में अपने लिये ले लिया। पेशवा को यह बात बुरी तो अवश्य लगी परन्तु वह सिन्धिया से झगड़ा नहीं करना चाहता था अतएव प्रकट रूप से उसने इसे टाल जाना ही उचित समझा, परन्तु देसाई ने उसी के गुप्त आदेश से इन जिलों को अधिकृत किया था और सन् १८१२ ई० में कुछ ऐसे कारण दिखा कर पेशवा ने इन जिलों पर अपना अधिकार जताया कि ब्रिटिश सरकार ने भी उसे स्वीकार कर लिया।

तत्कालीन परिस्थिति में जब लक्ष्मीबाई ने देसाई की सहायता मांगी तो पेशवा की गुप्त मंत्रणा से देसाई ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। बारी का घेरा उठा लिया गया और बाद में घाटों के ऊपरी भाग में स्थित कोल्हापुर के क्षेत्र पर आक्रमण किया गया, फिर बाद में कोल्हापुर की सेनाएँ राजधानी की रक्षा के लिये कोंकण से वापस बुलाली गयीं। बृटिश सरकार को प्रार्थना पत्र भेजा गया कि वह मध्यस्थता ग्रहण करे और विवाद को सुलझा दे, परन्तु तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मिन्टो ने उनकी प्रार्थना मानने से इनकार कर दिया। ये सारे विवाद पेशवा की ही प्रेरणा से हो रहे थे, अतः इस अवसर से लाभ उठा कर वह अनेक प्रकार से अपनी प्रधानता प्रदर्शित करने लगा। उसने अन्य मराठा सर्दारों का प्रधान बनकर नोच खसोट की, जिस प्रबृत्ति का दिग्दर्शन किया, यदि बृटिश सरकार ने प्रारम्भ से ही उस पर हस्तक्षेप किया होता तो शायद पेशवा राज्य की दृढ़ता एवम् उसके स्थायित्व के लिये यह एक अति महत्वपूर्ण बात हुई होती।

किसी भी प्रकार अप्पा जी देसाई ने चिकूरी तथा मेनावली जिलों को सम्पूर्णतया अपने अधिकार में कर लिया। उसने यह भी प्रयत्न किया कि वह सावन्तबाड़ी पर भी अपना अधिकार जताए। इस रियासत का अगला उत्तराधिकारी खेम सावन्त का पुत्र था। लक्ष्मीबाई एवम् पुन्द सावन्त की सहमति एवम् देसाई के कारकुन की प्रेरणा से उसकी हत्या कर
१८०६ ई०] दी गयी। देसाई की सेना का अधिकांश भाग घाटी के ऊपरी भाग में युद्धरत था अतः इस स्थिति का लाभ उठा कर पुन्द सावन्त ने उसके अधिकारियों को निकाल कर बाहर कर दिया और शासन प्रबन्ध को अपने हाथ में ले लिया।

इसके शीघ्र बाद ही लक्ष्मीबाई का देहान्त हो गया और पुन्द सावन्त के सामने दुर्गाबाई के व्यक्तित्व में एक समर्थ प्रतिद्वन्दी दिखायी पड़ा। यह दुर्गाबाई खेम सावन्त की दूसरी विधवा रानी थी और सुप्रसिद्ध मराठा सरदार खनवालकर की पुत्री थी।

इन दिनों प्रगट रूप से बृटिश रेजिडेण्ट तथा पेशवा के दरबार में काफी प्रेमपूर्ण सम्बन्ध चल

रहे थे। बाजीराव को ज्योंही थोड़ी सुविधा दिखायी पड़ती थी त्योंही वह उन लोगों की जागीरें हड़प लेने का प्रयत्न करता था जो उसके व उसके परिवार के विरोधी थे। इस प्रकार इन जागीरों कीं आय को वह अपने काम में लाने लगा था। इन दिनों दो एक सफलताओं के कारण बाजीराव अपने को भाग्यशाली समझ रहा था। अपने बृटिश मित्रों की मित्रता का उपयोग वह जी भर के कर रहा था, बृटिश रेजिडेण्ट के प्रति वह पूर्ण मित्रता प्रगट कर रहा था, परन्तु यह नही कहा जा सकता कि इस प्रकार के प्रदर्शनों में वह पूर्णतया ईमानदार था।

बृटिश रेजिडेण्ट कर्नल क्लोज का नियम था कि वह प्रत्येक भारतीय से अपने एक पारसी एजेण्ट खुसरोजी के माध्यम से मिला करता था, जिसे लोग प्रायः मुढों के नाम से जानते थे। यह पारसी पर्याप्त योग्य एवम् बिवेक पूर्वक काम करने वाला था अतः थोड़े ही दिनों में वह अपने स्वामी का विशेष प्रिय पात्र बन बैठा। सदाशिव राव तथा खुसरोजी ने एक मंत्रणा करके भाया जी नायक को भी अपना सहयोगी बना लिया। भायाजी नायक पेशवा का व्यक्तिगत सेवक था। उसको यह काम सौंपा नया कि वह बाजीराव के कान में धोरे धीरे यह बात डाले कि यदि खुसरोजी को मिलाया जा सके तो बृटिश रेजिडेण्ट के ऊपर पर्याप्त प्रभाव रक्खा जा सकता है। बाजीराव को इस प्रकार का प्रस्ताव पूर्णतया मान्य था क्योंकि उसकी आन्तरिक इच्छा थी कि किसी प्रकार बृटिश रेजिडेण्ट पर पूरी तरह से अपना प्रभाव जमाया जा सके। उसे इस प्रकार के प्रयत्न में भला क्या आपत्ति हो सकती थी?

इस तिगड्डे ने इतनी चतुराई से कार्यारम्भ किया कि कुछ दिनों तक चारों ओर संतुष्टि ही संतुष्टि के दर्शन होने लगे। व्यक्तिगत क्षेत्र में भी वे सफल होते रहे और जन साधारण के क्षेत्र में भी। यदि यह त्रिगुट देखता कि किसी विषय में उभयपक्ष के बीच वार्तालाप होने पर कही से किसी के अप्रसन्न होने की आशंका है तो या तो वे उसे टाल जाते थे या वार्तालाप प्रारम्भ करने के पूर्व ही तमाम अवांछनीय तत्वों का सफाया कर देते थे।

इसी समय कर्नल क्लोज को पूना से हटाकर हैदराबाद में कुछ विशेष प्रकार के कार्यो के लिये नियुक्त कर दिया गया और फिर उसे पूना में आने का अवसर न मिला। पूना में नव नियुक्त रेजिडेण्ट मि० एलफिक्टन उन दिनों एक मिशन पर काबुल गये हुए थे; अतएव मि० हेनरी रसेल को रेजिडेंसी का अस्थायी कार्यभार दे दिया गया। मि० रसेल के कार्यकाल में भी पेशबा दर्बार के साथ पुराना
सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध ही बना रहा। खुसरोजी नौकर तो बृटिश रेजिडेंसी का
१८१० ई०] था परन्तु पेशवा की सरकार में उसे कर्नाटक का सर सूबेदार बना दिया गया
था और उसने बापू सोनी नाम के एक ब्राह्मण को वहाँ का एजेण्ट बना
दिया था।

मि० एलफिस्टन पहले पूना के रेजिडेण्ट कर्नल क्लोज का सहायक रह चुका था किन्तु १८०३ ई० के युद्ध में उसे बहाँ से हटाकर गवर्नर जनरल के आफिस में कर दिया गया। अतः इस बार जब पूना में रेजिडेण्ट बना कर भेजा गया तो उसे स्थानीय स्थितियों का पर्याप्त ज्ञान था। वह स्वयम्
देशी लोगों से बात चीत कर सकता था, अतः उससे मिलने के लिये किसी
१८११ ई०] माध्यम की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इन्हीं दिनों खुसरोजी एवम् सदा-
शिव में कुछ मतभेद पैदा हो गया और वह मनमोटाव का रूप ले बैठा, जिसके कारण खुसरोजी को बड़ी आन्तरिक वेदना हो रही थी। ऊपर से एलफिस्टन द्वारा अपनायें गये नवीन ढर्रे ने उसकी चिन्ता को द्विगुणित कर दिया। इस परिस्थिति परिवर्तन ने खुसरोजी के

महत्व को भी कम कर दिया और उसके होने वाले लाभ को भी, परन्तु स्वयम् पेशवा पर उसका पर्याप्त प्रभाव था । इसी प्रभाव का प्रयोग करके उसने रेजिडेण्ट के प्रति पेशवा के मस्तिष्क को विषाक्त करना प्रारम्भ कर दिया । उसने पेशवा को यह समझाना शुरू किया कि मि० एलफिस्टन जनरल वेल्सली की ही प्रकृति एवम् प्रवृत्ति का था । पेशवा वेल्सली से इसलिये जलता था कि उसने उसे अमृतराव से बदला नहीं लेने दिया था । उसी की वजह से परशुराम भाऊ पटवर्द्धन का परिवार भी पेशवा के कोपानल में पड़ने से बँच गया था । कितनी ही इस प्रकार की अन्य बातें पेशवा को खुसरोजी द्वारा सुझायी गयी थीं । बीच बीच में खुसरोजी को बृटिश रेजिड़ेण्ट का एजेण्ट बनाए रखने के लिये पेशवा ने स्वयम् रेजिडेण्ट से बातें की और उसी क्रम में ऐसी बातों को भी वार्तालाप में आने का अवसर मिल गया, जिनकी सफाई हो जाने से पेशवा के मन में उत्पन्न किये गये तथा कुछ समय से पलते चले आ रहे अनेक कुतर्कों का समाधान हो गया ।

इधर स्वविरोधी जागीरदारों की जागीरों को हड़प लेने का कार्य तेजी से चलता रहा । जिस किसी भी जागीरदार ने उसकी या उसके पिता का आज्ञा पालन नहीं किया था या जिस किसी भी जागीरदार ने उसके विरोध में क्रियात्मक भाग लिया था, धीरे धीरे उन सबकी जागीरों को उसने अपने हाथ में ले लिया । तदनन्तर उसने गोकला से अपनी यह इच्छा प्रगट की कि वह भी अपने द्वारा जीते गये भूभाग को पेशवा राज्य में सम्मिलित कर दे, साथ ही उसने बड़े जागीरदारों विशेष कर पटवर्द्धन परिधार रस्तिया परिवार और कितूर के देसाई परिवार द्वारा भोगी जाने वाली जागीरों पर अपना अधिकार मांगा ।

उधर पटवर्द्धन परिवार बाजीराव के प्रति पूर्ण स्वामिभक्त बनने को तैयार न था, फिर भी बृटिश अधिकारियों के दबाव से विवश होकर उन्होंने सारी बातें मान ली । पेशवा की ही चालों से कोल्हापुर राज्य की राजधानी उसके राजा के हाथ से करीव-करीब निकल ही चुकी थी; साथ ही साथ पेशवा कोल्हापुर के राजा को इस बात के लिये भी उकसा रहा था कि वह बृटिश अधिकारियो द्वारा रक्खे गये प्रस्तावों का विरोध करे । पैशबा ने सोचा था कि इस टाल मटोल में अगर कुछ दिन और भी गँवाए जा सके तो उतने ही दिनों में देसाई कोल्हापुर को अपने हाथ में ले लेगा । प्रगट रूप में तो सभी यही जानते थे कि यह घेरा देसाई ने आपसी जगड़े के कारण डाल रक्खा है न कि पेशवा के आदेश से । इधर बाजीराव ने अँगरेज रेजिडेण्ट से कहा कि चू कि कोल्हापुर पेशवा का करद राज्य है अत: उस देश के विषय में अँगरेजों को कुछ भी करने का अधिकार नहीं है । पेशवा का यह कदम भी केवल समय बिताने के लिये उठाया गया था, यद्यपि पेशवा की बात गलत भी थी और दुस्साहस पूर्ण भी । पूर्व इसके कि किसी भी बात का निर्णय हो सके अँगरेज रेजिडेण्ट मि० एलफिस्टन को यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि वह पण्ढरपुर में थोड़ा सैन्य संग्रह करले । उसने ऐसा किया भी और इस सेना को दक्षिण में कृष्णा नदी की ओर चलाया । जागीरदारों के साथ किये जा सकने योग्य जिन व्यवहारों की चर्चा पीछे की जा चुकी है, उनके अतिरिक्त, अप्पा साहब पटवर्द्धन को इस बात पर विवश हो जाना पड़ा कि वह बाबा राव फड़के को पेशवा के हाथों में समर्पित करदे । फड़के समर्पण की यह कार्यवाही पेशवा को सन्तुष्ट करमें के लिये की गयी थी और कूटनीतिक दृष्टि से यह कदम चाहे जितना उपयोगी रहा हो परन्तु नैतिक दृष्टि से यह कार्य सर्वथा अनुचित था और इसी लिये समूचे महाराष्ट्र देश में इस कार्य की बड़ी निन्दा हुई । पेशवा ने बाबाराव को बेसीन के किले में बन्दी कर दिया । जहां थोड़े दिनों बाद उसका स्वर्गवास हो गया । जो प्रस्ताव राजा कोल्हापुर के सामने रक्खे गये, उसके द्वारा मान्य भी हो गये और उनके अनुसार चिचुरी तथा मेनावली जिलों पर से अपना

अधिकार हटा लेना पड़ा । ये दोनों जिले भी पेशवा को दे दिये गये । झगड़े की जड़ में जो अन्य चेत्र थे, वे सभी राजा कोल्हापुर को लौटाल दिये गये । कोल्हापुर के राजा ने मालवन का किला और साथ ही उसके सहायक किलों को अँगरेजों के हवाले कर दिया । उसने यह भी वादा किया वह जल दस्युता को त्याग देगा, सशस्त्र जहाज नहीं बन पायेगा, कभी भी अपने बन्दरगाहों में नहीं जायगा, डूबे जहाजों की पायी गयी सम्पत्ति लौटा दिया करेगा एवम् आपत्तिग्रस्त जहाजों की सहायता करेगा । उसने यह भी प्रतिज्ञा की कि बिना अँगरेजों की सहमति के यह किसी भी अन्य राज्य से विवाद नहीं ठानेगा । इन सबके बदले में कोल्हापुर राज्य के विरुद्ध अँगरेजों के जितने भी दावे थे, उन सब को वापस लेकर यह प्रतिज्ञा की गयी कि भविष्य में किसी भी बिदेशी शक्ति व राज्य से वे कोल्हापुर की रच्चा करेंगे ।

इसी समय के आसपास यद्यपि बाजीराव दच्चिण के जागीरदारों को बर्बाद तो न कर सका, परन्तु उन सभी ने उसकी आधीनता स्वीकार कर ली । जब पटवर्द्धन परिवार के लोग सम्मान प्रदर्शित करने के लिये बाजीराव के सामने आये तो बड़ी ही कठिनाई से उसने उनका अपमान करने से अपने को रोका । बाबूराव फड़के को एक दम अपने हाथों में पाकर उसे अतीव प्रसन्नता हुई । उसने कृतकृत्य होकर अँगरेज रेजिडेण्ट तथा गवर्नर जनरल के प्रति हार्दिक आभार प्रगट किया परन्तु उसी समय उसने यह भी घोषित कर दिया कि वह नहीं चाहता कि एक भी संरजामी* सवार उसे दिखायी पड़े, साथ ही उसने यह भी प्रस्तावित किया कि एक पैदल सेना खड़ी की जाय, जिसका प्रशिच्चण पूर्णतः यूरोपियन अफसरों के हाथों में हो और वृटिश सेनिको के समान ही उसे सेना के सैनिएों को नकद वेतन दिया जाय और यह वेतन स्वयम् उसी के खजाने से दिया जाय । गवर्नर जनरल ने उसकी राय को तुरन्त मान लिया और मद्रास सरकार का कर्मचारी कैप्टेन जानफोर्ड को पेशवा ने
१८१३ ई०] इस सेना को प्रशिच्चित करने कार्य सौंपा । कहने की आवश्यकता नहीं कि
पेशवा ने इस अफसर का चुनाव खुसरो जी के कहने पर किया था । इसके बाद कैप्टेन फोर्ड ने जिनजिन अफसरों को पसन्द किया वे पेशवा की नौकरी में रख लिये गये । इस कार्य के लिये बम्बई सरकार ने भी अनेक कर्मचारियी को पेशवा के यहां कार्य करने की आज्ञा दे दी । इस सेना में थोड़े से ही सैनिक मराठा थे और शेष वृटिश अधिकृत हिन्दुस्तान से बुलाये गये थे । इन सैनिकों ने तव तक पेशवा के प्रति वफादार बने रहने की शपथ ली जब तक पेशवा अँगरेजों का मित्र बना रहे ।

पूना से चार मील उत्तर पश्चिम में इस सेना की छावनी बनायी गयी । वृटिश सेना का एक दस्ता शहर के पास ही हर दम नियुक्त रहता था तथा बीस सहायक सेना पूना तथा अहमद नगर के बीचो बीच स्थित रहती थी । यह स्थान गोर नदी के तट पर सिरूर नामक ग्राम के पास था ।

शीघ्र ही पेशवा ने वृटिश सहायक सेना के एक अन्य उपयोग को समझा । बात यह हुई कि जब अप्पा देसाई दर्बार में आया और उससे कोल्हापुर के जीते हुए चेत्रों को पेशवा को अर्पित करने को कहा गया तो वह इस बात से इनकार कर गया और इस अवसर पर पास में पड़े हुए सहायक सेना के दस्ते को बुलाया गया । वृटिश रेजिडेण्ट ने समझौते का प्रयास किंया, परन्तु बाजीराव की चाल में फँसकर देसाई अन्त तक समझौता करने ते इनकार करता रहा और इसके कारण बाद में उसे अपने जागीर के चौथे भाग से हाथ धोना पड़ा ।

---

* जागीरदारों द्वारा भेजे गये सवार ।

जागीरदारों को स्ववश करने की योजना में सफलता पाने से बाजीराव का उत्साह बढ़ा और अपने प्रभाव विस्तार के लिये वह नयी नयी योजनाएँ बनाने लगा। वह बार बार निजाम के विरुद्ध दावे पेश करता, परन्तु जब रेजिडेण्ट उसके दावों की जांच करने पर तैयार होता तो वह स्वयम् कोई न कोई बहाना बना कर टाल जाया करता। इसी प्रकार वह सिंधिया तथा होल्कर पर भी अपने दावे पेश करता यद्यपि वह जानता था कि जिस संधिपत्र ने उनके सम्बन्धों को विछिन्न कर दिया उस पर स्वयम् उसके भो हस्ताक्षर थे। यद्यपि देखने में ऐसा प्रतीत होता था कि वह बड़ी गम्भीरता से गायकवाड़ से पुराने बकाया की माँग कर रहा था परन्तु उन मांगों में वास्तविक गम्भीरता तनिक भी नहीं थी। जिस बकाया रकम की बात पहले भी उठ चुकी थी अब हम उसका वर्णन करेंगे।

दुर्भाग्य की बात यह थी कि पेशवा का जो व्यक्तिगत कर्मचारी निम्न स्तर से उठ कर उसकी सेना में पहुँचा था, वह अन्तर्मन से यूरोपियनों से घृणा करता था। इसका चरित्र शीरजी राव घाटगे की तरह का ही था और वह स्वार्थ साधन के लिये कुछ भी कर सकता था। अपने प्रभाव क्षेत्र के विस्तार की भावना में वाजीराव बह अवश्य रहा था, परन्तु प्रारम्भ में उसमें अँग्रेजों के प्रति किसी प्रकार की विद्वेष भावना नहीं थी, परन्तु ज्यों ज्यों उसे सफलता मिलती गयी त्यों त्यों बिना इस बात का विचार किये ही कि उन सफलताओं का मूल कारण क्या था, वह रेजिडेण्ट से द्वेष सा करने लगा। वात यह थी कि त्र्यम्बक जी उसे सदा पट्टी पढ़ाता रहता था कि पेशवा के पूर्वजो ने जितना राज्य तलवार के बल पर जीता था, वही और उतना ही बड़ा राज्य वह (त्र्यम्बक जी) अपने बुद्धि बल से बना सकता है। इन मंत्रणाओं से बाजीराव के हौसले बढ़ते थे और इस प्रकार की भावना में वह जब भी कुछ अनुचित करना चाहता तभी रेजिडेण्ट उसे रोक देता। रेजिडेण्ट द्वारा बार बार डाली जाने वाली रुकावटों से वह क्षुब्ध हो उठता और समस्त यूरोपियनों को अपनी प्रगति का वाधक समझकर इसीलिये अपना शत्रु मानने लगता। उसे जितना अधिक क्रोध आता त्र्यम्बकजी उसे उतना ही और
१८१४ ई०] भड़काता और एक समय ऐसा भी आ गया कि बाजीराव का विद्वेष बात बात में प्रगट होने लगा। खुसरो जी एवम् त्र्यम्बक जी ने उसे सलाह दी कि अँग्रेजों से विवाद करने से पहले उसे अपनी सैनिक स्थिति शुदृढ़ कर लेनी चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से सारे भारत में उसका मान बढ़ेगा और उसको बातों का मूल्य भी उसके मित्रों (भारतीय राजाओं) की दृष्टि में बढ़ जायगा। उन दिनो बृटिश सरकार युद्धों में न फँसने की नीति का पोषण कर रही थी और इस नीति को अँग्रेजों की कमजोरी बतला कर पेशवा के मित्रों ने उसे राय दी कि यदि सैनिक स्थिति सुदृढ़ कर लेने के बाद युद्ध छेड़ दिया जाय तो मराठों की प्राचीन प्रतिष्ठा को फिर से प्राप्त किया जा सकता था। उन दिनों पिंडारियों का दौर दौरा था ही। उधर दो दो बार बाजीराव कर्नाटक स्थित तीर्थ की यात्रा पर गया। सैनिक शक्ति में बृद्धि करने के लिये ये दो बहाने ही पर्याप्त थे। वैसे इन बहानों की आवश्यकता यों भी नहीं थी कि बृटिश रेजिडेण्ट स्वयम् बार बार पेशवा से कहा करता था कि उसे अपने राज्य की रक्षा योग्य सेना रखनी ही चाहिये। यदि जागीरदारों द्वारा रक्खी जाने वाली सेनाओं को और सामयिक सैनिकों को छोड़ दिया जाय तो सन् १८१२ ई० तक बाजीराव के पास केवल पचीस सौ सवार व तीन हजार पैदल थे, जो सब के सब लगान वसूली का कार्य करते थे। सन् १८१२ में चार हजार सवारों को और रक्खा गया। बाद के वर्षों में भी प्रति वर्ष कुछ सौ सवार बढ़ाये जाते रहे। पिंडारियों को रोकने में सवार सेना सर्वाधिक उपयुक्त होती थी, परन्तु त्र्यम्बक जी की मंत्रणा पर उसने गोसाइयों की एक पैदल सेना खड़ी की। प्रारम्भ में वाजीराव अरबी सैनिकों के नाम से चिढ़ता था और उसकी चिढ़ का प्रमाण यह था कि उसने बम्बई सरकार से प्रार्थना की थी

थी कि यदि उधर से अरब सैनिक महाराष्ट्र में आने लगे तो उन्हें वापस कर दिया जाय और यदि वापस न हों तों उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाय परन्तु इस समय वह अरबों की एक सेना खड़ी करने के लिये अत्यधिक उत्साहित हो उठा।

अँग्रेज रेजिडेण्ट खुसरो जी के कार्यों के प्रति शुरू से ही सतर्क था। इस समय तक आते आते उसके कार्य कुछ ऐसे होने लगे कि उसे पूना से हटा देना आवश्यक जान पड़ने लगा, क्योंकि उसके विषय में लोगो की अजीब धारणा बनती जा रही थी। रेजिडेण्ट ने सोचा कि उन धारणाओं का प्रभाव रेजिडेंसी पर क्यों पड़े। बृटिश सरकार की जो सेनाएँ उसने पिछले वर्षों में ली थी उनके प्रकाश में उसे दंडित नहीं किया जाना चाहिये था। यह बात भी अनुचित होती कि उसके कार्यों के लिये उसका पुरस्कार उसे न देकर उसे दंड दिया जाता, क्योंकि ऐसी दशा में उसके कारनामों की चर्चा करनी पड़ती, जो वांछनीय नहीं समझा जाता था। अतः उसके लिये गुजरात में उदार व्यवस्था कर दी गयी, परन्तु अभी वह गुजरात के लिये प्रस्थान करने ही वाला था कि जहर से उसकी मृत्यु हो गयी। इसका पता नहीं लग सका कि उसे जहर दिया गया या उसने स्वयम् अपनी इच्छा से या धोखे से खा लिया। काफी छानबीन की गयी, परन्तु किसी भी निश्चित परिणाम पर न पहुँचा जा सका। यदि उसे इतने अधिक भेद ज्ञात थे, जितना कि बाजीराव एवम् त्र्यम्बक जी की इच्छा से अधिक था तो कहा जा सकता है कि उसकी मृत्यु के मूल में यही लोग थे, परन्तु पूना में सर्वसाधारण की यही धारणा बनी कि गौरवहानि के भय से उसने स्वयम् विष खा लिया था, क्योंकि वह जानता था कि उसके पदमुक्त होने के बाद उसके शतशः काले कारनामें सर्वसाधारण की वार्ता के विषय बन जायँगे। इस विषय में इतना और ज्ञातव्य है कि जिस बाजीराव ने एक बार खुसरो जी की जांच करने से बृटिश रेजिडेण्ट को टाल दिया था, उसी बाजीराव ने उसकी मृत्यु के बाद उसके एजेण्ट बापू सोनी को पूना बुलवाया और उसके स्वामी पर भ्रष्टाचार, दुराचार एवम् घूस लेने का अभियोग लगा कर उससे जवाव मांगा। अभी जवाबदेही की कार्यवाही पूरी भी नहीं हुई थी कि सोनी की भी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के वारे में जनसाधारण की यह धारणा बनी कि सोनी यह जान कर डर के मारे मर गया कि अब उसे त्र्यम्बक जी के हाथों का खिलौना बनना पड़ेगा।* बाद में इसी व्यक्ति को अँग्रेजों के साथ सम्पर्क रखने वाले विभाग का मंत्री बना दिया गया। त्र्यम्बक जो अपने स्वामी की मानसिक प्रवृत्ति को समझ चुका था और उसी के अनुसार काम करते रहने से उसका विशेष विश्वासपात्र बन बैठा था। वह जो कुछ भी करता था उसे बड़ी दृढ़तापूर्वक करता था, यद्यपि उसके प्रत्येक कार्य से उसकी अज्ञता ही सिद्ध होती है। उसकी हिंसा व निर्दयता की सीमा नहीं थी। उसके द्वारा दिये गये दण्डों में दयालुता एवम् निर्दयता का अजीब सम्मिश्रण होता था। वह बड़े से बड़े डकैतों व हत्याकारियो को थोड़ा सा जुर्माना ले कर ही छोड़ देता था, परन्तु लगानवसूली के ठेकों को पूरा न करना उसकी दृष्टि में अक्षम्य अपराध था।

१८१५ ई०]

पेशवा द्वारा प्रत्यक्षतः शासित जिले उन्हीं सीरदारों को दिये जाते थे जो अधिकतम देने की प्रतिज्ञा करते थे और इस प्रतिज्ञा की पूर्ति न होने पर उनकी जमानत तो जप्त हो ही जाती थी, कभी कभी उनकी पूरी सम्पत्ति ही जप्ती के चक्कर में आ जाती थी, इतने पर भी यदि पूरी रकम की वसूली न हो सकी तो पहाड़ी किले ही उनके यावज्जीवन को यंत्रणा के साक्षी होते थे। एक बार की बात है कि

---

* श्री सुन्दरलाल जी "भारत में अंग्रेजी राज्य" के द्वितीय भाग पृष्ठ ६८६ पर इन दोनों हत्याओं के लिये बृटिश रेजिडेण्ट एलफिंस्टन को ही दोषी माना है। अनुवादक

जब त्र्यम्बक जी शक्ति पर नहीं पहुँचा था तभी एक महाजन पर वह रुष्ट हो गया। उस महाजन ने किसी ठेकेदार की जमानत ली थी जो समय पर न पहुँच सकी। त्र्यम्बक ने उसे जमीन पर घिसटवाया और उसी बीच स्वयम् उसके सर पर अपने उसी हाथ से भारी आघात किया, जिसमें वह एक काफी वजनी अंगूठी पहने था। कहते हैं कि इसी चोट से वह महाजन मर गया, मगर उसकी कोई सुनवाई नहीं हुई।

इतनी सख्ती के होते हुए भी लोग ऊँचे दामों की बोली बोल कर ठेके लेते ही थे, क्योंकि बाजीराव स्वयम् उस कार्य को देखता था और उसके मीठे शब्दों से लोग बहक ही जाया करते थे। उसका दर्बार शान और ऐयाशी का अड्डा था जो तत्कालीन ब्राह्मणों की प्रवृत्ति के अनुकूल पड़ता था। उसके सभी काम ठेके पर ही चलते थे। उसके रियासत की जो वसूली वार्षिक एक करोड़ बीस लाख रुपये थी, जिसमें से प्रति वर्ष वह पचास लाख बचा लेता था और इस प्रकार इस समय तक उसके पास पांच करोड़ से अधिक रुपये जमा हो गये थे। इधर रुपये जमा हो रहे थे और उधर बाजीराव नाना प्रकार के दुर्व्यसनों में फँसा रहता था। उसके दर्बार में अन्धविश्वासों का जोर था। वह वर्ण व्यवस्था का पोषक था। नारायण राव की हत्या का अपराध उसके पिता पर लगाया गया था, यह सोच सोच कर उसकी अशान्ति बढ़ती जाती थी। अपने पितरों द्वारा किये गये अपराधों की शान्ति के लिये कई लाख आम के पेड़ पूना के आसपास लगवाये, ब्राह्मणों एवम् धार्मिक संस्थाओं को वृत्तियां दीं और विशेष कर पण्ढरपुर के मन्दिर का वह विशेष भक्त था। उसके अन्धविश्वास का एक प्रमाण यही है कि एक बार किसी पुजारी ने उससे कहा कि स्वप्न में प्रगट होकर नारायण राव ने आदेश दिया है कि उसके नाम पर एक लाख ब्राह्मणों को भोजन कराया जाय और बाजीराव ने तुरन्त ही उस स्वप्न में दिये गये आदेश का पालन किया।

अपने दर्बारियों की शिकायतों पर वह कभी कान नहीं देता था और यदि किसी तरह गांव वाले उसके पास कोई शिकायत ले कर आते तो उन्हें वह धक्के दे देकर निकलवा देता था। जिलों की खेती के ठेकेदार ही दीवानी एवम् फौजदारी के न्यायाधीश होते थे और वे भारी जुर्माने कर के अपनी आय बढ़ाया करते थे। पूना में एक नाममात्र का न्यायालय था, जिसका सर्वेसर्वा एक शास्त्री था, जिसका कार्यालय बड़ा विशाल था। इस कार्यालय का सारा व्यय उन्हीं रुपयों से चलता था जो जनता के पास से विभिन्न उचितानुचित ढंग से आता था। इस न्यायालय की विचित्रता यही थी कि हर मुकदमे में या तो धनी व्यक्ति की जीत होती थी या उसकी, जिसके सर पर किसी धनी का वरदहस्त होता था।

यद्यपि माधवराव बल्लाल के शासन प्रबन्ध में अनेक त्रुटियाँ थीं, फिर भी उसके समय में न्याय एवम् पंचायतों की देखरेख करने वाला शास्त्री इतना कर्तव्यनिष्ठ, न्यायप्रेमी एवम् दृढ़ था कि कहा जाता है कि माधवराव के राज्य में निर्बल गरीब के लिये भी न्याय सुलभ था। नाना फड़नवीस के शासन की भी प्रशंसा की जाती है, परन्तु बाजीराव ही एक ऐसा पेशवा था जिसे नागरिक प्रशासन की देखरेख करने के लिये सर्वाधिक समय मिला। फिर भी चूँकि न तो उसमें कार्य करने की योग्यता ही थी और न इच्छा ही, इसलिये वह इस क्षेत्र में भी कुछ न कर सका।

बाजीराव जागीरदारों की जागीरों के हड़पने को लिये कृतनिश्चय था। उधर माधवराव रस्तिया ने अपने लिये निर्धारित संख्या में घोड़े न दिखा सका। परिणाम स्वरूप बाजीराव ने बृटिश रेजिडेण्ट से शिकायत की कि यह बात माधवराव की असमर्थता के कारण नहीं हुई थी वरन् उसकी आज्ञा न मानने की इच्छा के कारण हुई थी। घोड़ों की संख्या बृटिश अधिकारियों के माध्यम से

निर्धारित हुई थी अतः रेजिडेण्ट ने रस्तिया को आदेश दिया कि वह पेशवा के प्रति किये गये इकरार को पूरा करे, अन्यथा परिणाम का उत्तरदायी वह स्वयम् होगा। पहले तो रस्तिया हिचकिचाया मगर बाद में उसने घोषित कर दिया कि वह निर्धारित संख्यानुकूल घोड़े रख सकने की स्थिति में नहीं था, क्योंकि स्वयम् उसके जागीरदार लोग अपने कर्तव्य की अवहेलना कर रहे थे। पेशवा की ही चालबाजियों से रस्तिया को विश्वास हो गया था कि इस प्रकार का उत्तर देने से सम्भवतः शर्तों में कुछ उदारता कर दी जायगी। रेजिडेण्ट की सारी कोशिशें बेकार गयीं फिर भी रस्तिया अपनी बात पर अड़ा रहा और फलस्वरूप पेशवा ने उसकी सारी जागीर हड़प ली।

दिन प्रति दिन यह बात स्पष्ट होती जा रही थी कि पेशवा की सरकार का उद्देश्य यह था कि प्राचीन मराठा नीति को पुर्नजीवित किया जाय। उसकी नीति का मेल अँग्रेजों से तभी तक चल रहा था, जब तक कि वह अँग्रेजों को दबा सकने की स्थिति में नहीं आ जाता। त्र्यम्बक जी की मंत्रणा से बाजीराव ने सिन्धिया तथा रघू जी भोंसले के दर्बारों में अपने दूतों को भेजा था। बाजीराव एवम् होल्कर में कभी भी अच्छे सम्बन्ध नहीं रहे थे, मगर उसके यहाँ भी दूत भेजा। यहाँ तक कि उसका राजदूत पिंडारियों के यहां भी गया था और उसने कोपरगांव में पिंडारियों के कई सर्दारों को बुला कर भेंट की थी। पेशवा बाजीराव की इच्छा थी कि एक बार फिर से मराठा मण्डल कायम हो और उसके सभी सदस्य एक दूसरे की सहायता को तत्पर रहें। ऐसी एक गुप्त सन्धि शायद हो भी चुकी थी। प्रगट रूप से इस सन्धि का यह उद्देश्य हो सकता था कि भविष्य में यदि कभी अँग्रेज किसी भी रियासत के साथ ज्यादती करें या किसी भी रियासत का कोई भी भाग माँगें तो उनका सर्वसम्मत विरोध किया जाय। इसका आन्तरिक उद्देश्य यह भी हो सकता था कि उस समय चल रहे नैपाल युद्ध में यदि अँग्रेज असफल हों तो उन्हें देश से बाहर निकालने का सम्मिलित प्रयत्न किया जाय। बाजीराव तथा उसके चरित्र को निकट से जानने वाले उसके देशवासियों का ऐसा विश्वास है कि भले ही उसकी कुछ योजनाएँ सफल हो गयी रही हों, मगर न तो अँग्रेजों से युद्ध छेड़ने की उसकी कोई सुनिश्चित योजना ही थी और न आन्तरिक इच्छा ही। जो कुछ भी हो मगर उसकी तत्कालीन कार्यवाहियां ऐसी थीं कि उसके मसनद से उतारे जाने का कारण बन सकती थीं, यदि अँग्रेजों ने उसकी कार्यवाहियों पर गम्भीर दृष्टिकोण अपनाया होता और शुद्ध राजनैतिक न्याय का पल्ला पकड़ा होता।

बाजीराव की अगली योजना थी कि वह गुजरात में अपनी प्रधानता स्थापित करे। उसने निजाम से हिसाब साफ करने के लिये भी बृटिश रेजिडेण्ट से एकाधिक बार कहा था। अब उसने बृटिश रेजिडेण्ट से बार बार यह कहना शुरू किया कि गायकवाड़ से उसका हिसाब साफ कर दिया जाय, परन्तु जभी बृटिश रेजिडेण्ट उस कार्य के लिये तत्पर होता था तभी बाजीराव कोई न कोई बहाना बना कर टाल जाया करता था। गोविन्द राव के समय से ही पेशवा और गायकवाड़ का हिसाब नहीं हुआ था। जैसा कि पहले कहा जा चुका है अम्बा शेलूकर के विद्रोह के दमन होने के बाद बड़ौदा सरकार पेशवा से अहमदाबाद को सीरदारी के पट्टे पर ले लिया था। साथ ही पितलौद, नय्यर, कुरारतपुर, धुंधुका, गोगो के साथ कटिवार के कर वसूलने का भार तथा केम्बे के कुछ अधिकार भी उसे मिले थे, जिनके बदले में वह प्रति वर्ष पांच लाख रुपये देने पर तैयार हो गया था। जब बम्बई सरकार ने बड़ौदा के राव जी अप्पा जी की सहायता के लिये सेना भेजा था तो बड़ौदा की स्थिति इस ढंग से अराजकता पूर्ण हो गयी थी कि उसमें सिंधिया एवम् होल्कर के प्रदेश भी फँस गये थे। यह तो ले० कर्नल वाकर के सुप्रबन्ध का फल था कि वह धनी इलाका बर्बाद होने से बँच गया था। यदि बृटिश सेना ने समय पर पहुँचकर क्रियात्मक हस्तक्षेप न किया होता तो देश न जाने किस

अधोगति को पहुँच गया होता । देश की वार्षिक आय थी पचपन लाख रुपये और व्यय हो रहा था प्रतिवर्ष बयासी लाख रुपये । देश का सारा प्रबन्ध अरब लुटेरों के हाथ में जा चुका था । बड़ौदा के शासक परिवार में आपसी विवादों के कारण अनेक प्रकार के अराजक तत्वों को खुलकर खेलने का मौका मिल गया था और देश के उस कोने में ऐसे अराजक तत्व भी एक दो नहीं थे । अँगरेजों के हस्तक्षेप से अरबों को निकाल बाहर कर दिया गया था । पेशवा के हिसाब को छोड़कर देश पर ४२ लाख रुपयों का कर्ज था । किसी प्रकार राज्य की जमानत पर इतना रुपया इकट्ठा किया गया । कुछ रुपये खजाने से भी निकाले गये । अँगरेजों ने भी कुछ मदद किया । मल्हार राव गायकवाड़ के विद्रोह को दमन करने के लिये अँगरेजों को बड़ौदा में स्थायित्व का अवसर मिल गया था ।

कटिवार का कर वसूल करने के लिये प्रति वर्ष बड़ौदा सरकार को सेना भेजनी पड़ी थी। मराठे गुजरात के समूचे अन्तरीप को ही कटिवार कहते हैं, परन्तु वास्तव में कटिवार उस क्षेत्र को ही कहा जाना चाहिये, जिस में सूर्य पूजकों की कट्ठी नामक एक विचित्र जाति के लोग रहते थे । यह समस्त क्षेत्र युद्ध प्रिय लोगों से भरा हुआ है, जिनमें राजपूत ही अधिक थे । इनके अलग अलग कई सर्दार थे और इन सर्दारों के आपसी संघर्षों के कारण ही कन्ता जी कदम तथा दम्मा जी गायकवाड़ के कदम इस क्षेत्र में जम सके थे । वड़ौदा के सैनिको के साथ एक वृटिश दस्ते को लेकर रेजिडेण्ट स्वयम् भी उपस्थित रहता था और उस क्षेत्र में शान्ति स्थापन में सहायक हुआ करता था । लगान में भी कई बार उसी के कारण सुधार हुए थे । बड़ी ही मानवता के साथ उसने उस क्षेत्र में जन्म होते लड़कियों को मार डालने वाले रिवाज को बन्द करना चाहा, जिसमें उसे पूरी सफलता तो नहीं मिली किन्तु यह अनाचार बहुत अंशों में कम हो गया । इन्हीं सब कारणों से बड़ौदा सरकार पर वृटिश रेजिडेण्ट का प्रभाव बढ़ता ही गया, परन्तु चूंकि रेजिडेण्ट को वृटिश सरकार का आदेश था कि बिना सरकार को कमजोर होने देने के ही सारे काम किये जायँ, अतः ले० कर्नल वाकर के सुप्रबन्ध से गुजरात प्रान्त में बहुत कुछ सुधार के लक्षण दिखाई पड़ने लगे ।

उस देश में परभू जाति के लोग अपनी वीरता के लिये भी उतने ही प्रसिद्ध हैं जितने अपनी स्वामिभक्ति के लिये; अतः सरकार के मंत्रियों में उन्हीं की संख्या अधिक थी । इस जाति के लोग गरीबी में लूटपाट न करके अपना खर्च ही घटाने के पक्ष में थे, परन्तु जभी उनमें शक्ति व सम्पन्नता आती तभी वे हाथ खोलकर खर्च करने लगते थे । मंत्रियों का मुखिया रावजी अप्पाजी जो १८०३ ई० में मर गया, मरने के पूर्व ही उसने सीताराम रावजी को गोद ले लिया था अतः रेजिडेण्ट की राय से उसे ही मुख्य मंत्री का पद भी दिया गया । उसकी योग्यता के कितने ही परीक्षणों के बाद देखा गया कि पद के कर्तव्यों का पालन करने की आवश्यक योग्यता उसमें एक दम नही थी । अब तक उसका चाचा बाबा जी सैनिक प्रधान था । उसे भी सीताराम की मदद करने के लिये निमंत्रित किया गया । वह फतह सिंह गायकवाड़ का भाई था और वही गद्दी का उत्तराधिकारी भी था । होल्कर के एक सेनापति के हाथों कैद होकर सन् १८०३ ई० में वह पूना से ले जाया गया था । बाद में काफ़ी जुर्माना देकर उसे छुड़ा लिया गया था और इस समय उसे भी प्रशासन के काम में ले लिया गया था । फतह सिंह ने गंगाधर शास्त्री को अपना सचिव बनाया जो शुरू में पूना के फड़के परिवार का कर्मचारी था । यह व्यक्ति अपनी कार्य कुशलता के लिये प्रख्यात था और अनेक योजनाओं में अँगरेज रेजिडेण्ट का सहायक था । रेजिडेण्ट वाकर का उस पर पूरा विश्वास था । बाबाजी की मृत्यु के बाद चूंकि सीताराम अपने पद भार को निभा नहीं पा रहा था अतः रेजिडेण्ट तथा फतहसिंह दोनों की कृपा से वह नाम को छोड़ कर शेष सभी प्रकार से मुख्य मंत्री ही बना दिया गया ।

पूना बड़ौदा विवाद को निपटाने की दिशा में बेसीन की सन्धि के बाद सबसे पहला काम था अहमदाबाद के सीरदारी के पट्टे का हिसाब करना। इसी को निपटा लेने के बाद ही शेष समस्याओं का समाधान पा लेना सरल हो जाता।

पहला समझौता (इकरारनामा) सन् १८०० के अक्तूबर मास में किया गया था, जो पांच वर्षों तक चलने वाला था। उधर बेसीन में लिखे गये संधिपत्र के अनुसार पेशवा ने रनपुर, गोगो, धुंधुका तथा कैम्बे में अपने अधिकारों को कम्पनी के हाथों में दे दिया था, अतः गायकवाड़ द्वारा देय धन में उसी हिसाब से कमी होनी चाहिये थी। इधर गायकवाड़ की इच्छा यह थी कि कम से शेष इलाके के पट्टे को फिर से पांच वर्षों के लिये उसके नाम कर दिया जाय, क्योंकि इससे विभाजन की गड़बड़ियों से बँचाव हो जाता था, साथ ही उसके स्वयम् के समीपस्थ जिलों में उसकी सत्ता को बल मिलता था। वृटिश सरकार की भी इच्छा थी पट्टे का नबीनीकरण हो जाय, क्योंकि इससे अनेक गड़बड़ियों के उभड़ने को आशंका का शमन हो जाता। पेशवा से जब कहा गया कि शेष भाग के लिये गायकवाड़ उसे वार्षिक साढे पांच लाख रुपया दिया करेगा, तो वह इस बात पर राजी हो गया कि इतनी रकम वार्षिक के बदले गायकवाड़ उक्त भूभाग को जून १८०४ से दस वर्षों तक के लिये रख सकता है। इसी आशय का एक नया अनुबन्ध (इकरारनामा) लिख भी दिया गया था। अब वह अवधि समाप्त होने वाली थी और इस समय तक पेशवा के दृष्टिकोण एक दम से बदल उठे थे। उसका विचार था कि गुजरात की सीमा पर जिस प्रकार राजनैतिक दबाव बढ़ रहा है और उससे अहमदनगर का जितना महत्व बढ़ा है उसे देखते हुए इस पट्टे के लिये पहले से पांच गुनी रकम भी नाकाफी होगी। पट्टे के नबीनीकरण के लिये किसी भी प्रकार पेशवा को राजी नहीं किया जा सका। जिस समय उस पट्टे का नवीनीकरण होना चाहिये था, उससे काफी पहले ही पेशवा ने अँग्रेज रेजिडेण्ट से प्रार्थना की थी कि उसका और गायकवाड़ का हिसाब साफ कर दिया जाय। सभी सम्बन्धित अधिकारियों का ध्यान इधर आकर्षित किया जा चुका था।

गवर्नर जनरल ने यही ठीक समझा कि दोनों ही रियासतें प्रत्यक्ष वार्ता द्वारा बिना रेजिडेण्ट के हस्तक्षेप के इस का निबटारा कर लें और वृटिश सरकार को इसमें न बोलना पड़े। यदि किसी भी तरह शान्तिपूर्ण समझौता न हो सके तभी अँग्रेज हस्तक्षेप करें। विवाद के अति प्रारम्भिक अवस्था में ही बापू मिरावट नाम का एक एजेण्ट गायकवाड़ से पूना दर्बार में भेजा था। उस समय जो हिसाब किया गया और जो करीब करीब ठीक ही था, उसके अनुसार पेशवा के करीब एक करोड़ रुपये गायकवाड़ के ऊपर निकलते थे। परन्तु चूंकि बड़ौदा की अधिकांश विपत्तियों का प्रारम्भ इसलिये हुआ था कि इस रियासत ने बाजीराव के पिता का साथ दिया था, अतः उसने इस बड़ी रकम में से करीव ६० लाख रुपये छोड़ देना स्वीकार कर लिया। इधर बड़ौदा सरकार पेशवा की उदारता को स्वीकार न करने की इच्छा प्रदर्शित करते हुए निम्नलिखित कारणों के आधार पर अपना प्रतिवाद उपस्थित किया।

जब दम्माजी गायकवाड़ ने सन् १७५१ में गुजरात का आधा इलाका पेशवा को सौंपा था तो उसने अविभक्त भड़ौच को अपने लिये सुरक्षित रख लिया था और उसके बदले में पेशवा को जम्बूसीर तथा कुछ जिले दे दिया था। सन् १७७५ ई० की बड़ौदा की संधि के अनुसार राघोबा ने भड़ौच में गायकवाड़ के अधिकार को ईस्ट इंडिया कम्पनी को दे दिया। पुरन्दर की सन्धि में पूना के मन्त्रिमण्डल ने भड़ौंच को पूरी तरह कम्पनी को दे दिया, जिसका उन्हें कोई भी अधिकार नहीं था। फतहसिंह ने भड़ौंच को देने वाले पेशवा से एवम् लेने वाली कम्पनी से इस त्रुटि के परिमार्जनार्थ अनेक प्रार्थनाएँ की, किन्तु

वे सभी निष्फल गयीं। जब अंग्रेजों और मराठों का युद्ध शुरू हो गया तो यद्यपि जनरल गोडार्ड ने पेशवा के कुछ इलाकों को फतहसिंह के हाथ में दे दिया था, किन्तु वे सबके सब सालबाई की सन्धि में वापस ले लिये गये थे। उस सन्धि के बाद बृटिश सरकार ने भड़ौंच सिन्धिया को दे दिया। यह स्थान तब तक सिन्धिया के उत्तराधिकारियों के हाथ में रहा जब तक १८०३ ई० में अँग्रेजों ने उसे फिर से नहीं जीत लिया। अब गायकबाड़ ने पेशवा से कहा कि भड़ौंच की आय पुरन्दर की सन्धि के बाद से ही उसे मिलनी चाहिये।

उसके द्वारा उपस्थित प्रतिवाद का दूसरा आधार यह था कि अम्बा शेलूकर के विद्रोह को दबाने में उसका बहुत रुपया खर्च हुआ था और अपने राज्य के साथ पेशवा के क्षेत्रों की सुरक्षा के लिये उसे अतिरिक्त सेना भीं रखनी पड़ी थी। ये दावे इतने उलझे हुए थे कि इन पर दोनों ओर से बहुत कुछ कहा जा सकता था। जब बाजीराव ने अम्बक जी की मंत्रणाओं के अनुसार काम करना शुरू किया तो वह निर्णय के रास्ते में अनेक बाधाएँ खड़ी करने लगा, क्योंकि इन दावों के बने रहने से उसे निजाम के साथ भी और गायकबाड़ के साथ भी विविध पत्राचार करने की सुविधा मिल रही थी, शायद इसीलिये पेशवा ने निजाम के ऊपर भी कुछ बकाया रकम निकाला था। इन दोनों ही दर्बारों से चूंकि अंग्रेजों के घनिष्ठ सम्बन्ध चल रहे थे, इसलिये यदि इन विवादों का निर्णय हो जाता तो उन्हें आपस में खुला पत्र व्यवहार करने का रास्ता ही बन्द हो जाता। बापू मिरावल सावधान एवम् निश्छल व्यक्ति था, पेशवा के षड्यन्त्रप्रिय मस्तिष्क से उसका मेल नहीं बैठा। पेशवा ने गायकबाड़ को लिखा कि बापू के बदले में वार्ता के लिये कोई दूसरा एजेण्ट भेजा जाय। अतः गायकबाड़ सरकार ने तै किया कि उसे गंगाधर शास्त्री को एजेण्ट बना कर भेजा जाय, जो हिसाब को तो दुरुस्त ही करे साथ ही साथ इस बात का भी प्रयत्न करे कि पेशवा पट्टे का नवीनीकरण कर दे।

इसी निश्चय के अनुसार शास्त्री पूना की ओर रवाना हुआ। परन्तु त्र्यम्बक जी की हिंसामयी वृत्ति से उस समय के सभी लोग इस प्रकार डरते थे कि शास्त्री को भेजने के पूर्व गायकबाड़ सरकार ने बृटिश सरकार से इस बात की प्रतिज्ञा चाही कि पूना में उसके एजेण्ट की जान सुरक्षित रहेगी। बात यह थी कि जो लोग त्र्यम्बकजी की आन्तरिक इच्छा के विपरीत चलने का साहस करते थे, उनके साथ यह कुछ भी कर सकता था। सितम्बर सन् १८११ ई० में जब बड़ौदा सरकार ने शास्त्री को भेजने का निर्णय किया था तो पेशवा को उसे भेजे जाने में कोई आपत्ति नहीं की थी, परन्तु सन् १८१४ में जब वह पूना में आ पहुँचा तो पेशवा ने उसे नापसन्द किया और यह कह कर उससे मिलने से भी इनकार कर दिया कि, जब शास्त्री फड़के की सेना में था, तब उसने पेशवा के प्रति अशिष्टाचरण किया था, परन्तु वास्तविकता यह थी कि बड़ौदा का मन्त्री सीताराम को पेशवा ने अपनी ओर फोड़ लिया था और उसी ने पेशवा को लिख दिया था कि शास्त्री पूरी तरह से अंग्रेजों के हाथ में है।

१८१४ ई०]

इस अवसर पर यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि जिस समय बड़ौदा में सीताराम का प्रभाव घटने लगा था, उसी समय पेशवा के दूतों ने उसे समझा बुझाकर पेशवा के अनुकूल बना लिया था। जब रेजिडेण्ट को इस परिवर्तन का पता चला तो उसने पेंशवा से पूंछा, जिसने पहले तो इस विषय में अपनी अज्ञानता ही प्रगट की परन्तु बाद में उसने इस आधार पर अपने पक्ष का समर्थन किया कि प्रारम्भ से ही पेशवाओं को बड़ौदा में मनवांछित दीवान रखने का अधिकार है। वास्तव में पेंशवाओं को न तो दीवान की नियुक्ति का आधार था और न सेनापति को। रेजिडेण्ट की राय थी कि यदि पेशवा को इस प्रकार का अधिकार था भी तो उसे रेजिडेंसी को सूचना देना चाहिये था और यदि पूर्व

सूचना नहीं दी गयी तो पेशवा को चाहिये कि वह उस शास्त्री से अवश्य वार्ता करे, जो उसके मित्र राज्य का एजेण्ट है तथा पेशवा ने स्वयम् जिसकी नियुक्ति को माना था ।

पिछली पंक्तियों में जिन कारणों का उल्लेख किया जा चुका है, उन्हीं आधारों पर पेशवा ने पट्टे के नवीनीकरण के प्रस्ताव को एक दम अस्वीकृत कर दिया । इधर त्र्यम्बक जी कर्नाटक का सूबेदार बन चुका था अतः अपने एजेन्टों को नियुक्त करके उसने सेना तैयार की और गुजरात के विवादग्रस्त जिलों पर अधिकार कर लिया । अब उसने सुनिश्चित योजना पूर्वक विद्रोह एवम् षड्यंत्र करने की बात पर विचार करना शुरू किया, जिससे यह भय होने लगा कि उधर के समूचे क्षेत्र में सुख शान्ति की सभी व्यवस्थाएँ नष्ट भ्रष्ट हो जायेगी । शास्त्री को पूना में कोई भी सफलता न मिली । अन्ततः रेजिडेण्ट की राय से शास्त्री ने निश्चय किया कि वह बड़ौदा को लौट जायगा । उसने यहां ठीक समझा कि पूना बड़ौदा विवाद वृटिश रेजिडेन्ट के माध्यम से तै हो ।

शास्त्री के इस निर्णय ने पेंशवा एवम् त्र्यम्वक जी के उसके प्रति किये गये अब तक के व्यवहारों में महान् अन्तर ला दिया, क्योंकि वे समझते ही थे कि यदि विवाद का निर्णय वृटिश अधिकारियों के हाथ में गया तो उनमें चल रहे आपसी वार्तालाप का रास्ता ही बन्द हो
१८१५ ई०] जायगा । अतः अब उन्होंने अति मधुर व्यवहारों द्वारा शास्त्री को अपने मतानुकूल बनाने का पूरा प्रयत्न किया । इसी समय पेशवा और अंग्रेजों के सम्पर्क को आगे बढ़ाने के लिये त्र्यम्बक जी नियुक्त हुआ ।

शास्त्री को पूना में और भी अधिक रुकने को राजी कर लिया गया और उसे अपनी ओर मिलाने की पूरी कोशिश की जाने लगी । त्र्यम्बक जी ने उसके आत्मगौरव को चुनौती दी और शास्त्री में यही कमजोरी थी कि वह आत्मगौरव के नाम पर कुछ भी कर सकता था । उसे यह भी समझाया गया कि पेशवा उसे अपना मंत्री बना लेगा । अपने प्रस्तावों को और भी गम्भीर बनाने के लिये पेशवा ने गंगाधर के पुत्र के साथ अपनी साली के विवाह का प्रस्ताव किया और इस बात का भी वादा किया कि वह गायकबाड़ को अपने राज्य का कुछ भाग दे देगा और इस कार्य के लिये पेशवा न तो अपने मंत्रियों की परवा करेगा और न रेजिडेण्ट के मतामत का ही । इस विवाह के लिये सारी आवश्यक तैयारियाँ हो गयीं थी, परन्तु उस समय तक चूंकि पेशवा के प्रस्तावों पर बड़ौदा सरकार का मतामत अभी तक शास्त्री को नहीं मिला था अतः वह डरा कि कहीं गायकबाड़ यह न समझ बैठे कि स्वार्थ के चक्कर में उसने स्वामी के कार्य को भुला दिया है । इसी भय के कारण उसने ठीक समय पर विवाह करने से इनकार कर दिया, जब कि तैयारियों में दोनों ओर से काफी रुपये फूँके जा चुके थे । शास्त्री के इस कार्य को पेशवा ने बड़े गम्भीर रूप में लिया और उसकी अप्रसन्नता की सीमा न रही । शास्त्री की स्त्री पेशवा की स्त्रियों से मिलने जाया करती थी, परन्तु शास्त्री ने उसे भी रोक दिया । इन बातों से पेशवा तो बौखला गया, किन्तु त्र्यम्बक का व्यवहार मधुर ही बना रहा ।

इन्हीं दिनों पेशवा पण्ढरपुर तीर्थ की यात्रा पर गया । शास्त्री भी उसके साथ ही था यद्यपि उसके सहकारी बापू मिरावल ने उसे सावधान कर दिया था और शास्त्री से प्रार्थना की थी कि कम से कम उसे (मिरावल को) भी साथ ले ले, परन्तु शास्त्री ने उसकी एक न सुनी । उस दिन शास्त्री ने पंढरपुर में पेशवा के साथ ही भोजन किया था । उसी दिन त्र्यम्बक जी ने दर्शनार्थ मन्दिर चलने का उसे निमंत्रण दिया । शास्त्री कुछ बीमार सा था, फिर भी उसने देव दर्शनार्थ दिये गये निमंत्रण को स्वीकार कर लिया और कुछ निःशस्त्र सेवकों के साथ मन्दिर को गया जहां पूजनोपरान्त उसने त्र्यम्बक जी से बात-

चीत की तथा पेशवा के प्रति भी सम्मान प्रदर्शित किया, जिसने उस दिन उससे भेंट करना स्वीकार किया था।

अन्य अभागों की तरह अभागा शास्त्री भी बाजोराव की मोहक बातों में आ गया। बड़े ही आनन्दपूर्वक वह पेशवा से विदा हुआ और वापस निवास स्थान की ओर चला। अभी वह तीन सौ गज भी न जा पाया होगा, जब एक गली में उस पर आक्रमण हुआ और उसके टुकड़े टुकड़े हो गये। त्र्यम्बकजी ने हत्यारों को इस कार्य के लिये नियुक्त किया था। बड़ौदा से सीताराम रावजी के दो एजेण्ट्स भी साथ थे। उन्होंने ही शास्त्री को पहचनवा दिया। पेशवा ने इस हत्या की यदि प्रेरणा नहीं दी तो उसने इस हत्या का समर्थन तो अवश्य ही किया। हिन्दुओं ने इस पवित्र स्थान पर की गयी इस ब्रह्म हत्या के लिये बाजीराव की बड़ी निन्दा हुई। पेशवा और त्र्यम्बक जी ने इस बात की जानकारी से भी इनकार कर दिया, अतः रेजिडेण्ट ने तुरन्त ही इसकी जांच का आदेश दिया, परन्तु यह जांच कभी भी नहीं की गयी। जनता ने अम्बकजी को हत्यारा माना। मिरावल ने खुले आम उस पर अभियोग लगाया और तब रेजिडेण्ट ने इस मामले की जांच कराया, जिसके अनुसार त्र्यम्बकजी दोषी प्रमाणित हुआ। पेशवा को कहा गया कि वह त्र्यम्बकजी को नियंत्रित दशा में रक्खे और बाद में ब्रिटिश सरकार के हवाले कर दे, परन्तु पेशवा ने इस आदेश को नहीं माना और रेजिडेण्ट की मांग को टाल दिया। ऐसा प्रतीत हुआ कि वह अपने इस कृपा पात्र के लिये सब कुछ छोड़ देने को तैयार था, परन्तु अन्त में भयभीत होकर उसने त्र्यम्बकजी को २५ सितम्बर को अंग्रेजों के हवाले कर दिया, जिसे उसने पहले से ही बसन्तगढ़ में कैद कर रक्खा था। सीताराम के दोनों एजेण्ट भी पकड़ लिये गये और गायकबाड़ को सुपुर्द कर दिये गये। सीताराम त्र्यम्बकजी के एजेण्टों के सहयोग से सैनिकों की भर्ती कर रहा था और इधर जब पेशवा त्र्यम्बकजी की सुपुर्दगी में हीला हवाला कर रहा था, तभी उसे बड़ौदा के प्रशासन से अलग कर दिया गया था। ब्रिटिश सरकार ने उसे भी बन्दी बना लिया। वृटिश सरकार के ये काम फतहसिंह को बहुत बुरे लगे और ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह भी बाजीराव का साथी बन चुका था।

१८१६ ई०] त्र्यम्बकजी को वृटिश सरकार ने सालसिट् स्थित थाना के किले में बन्द कर दिया था, * जहां से वह १२वीं सितम्बर † की रात में सात व आठ बजे के बीच दीवार फांद कर भाग निकला। त्र्यम्बकजी की रक्षा में अत्यधिक सावधानी के विचार से केवल यूरोपियन सिपाही ही पहरे पर रक्खे गये थे। पेशवा ने किसी प्रकार उससे सम्पर्क स्थापित कर लिया था और कई दिन से उसके आदमी किले के आसपास घूमते हुए देखे गये थे। एक मराठा साईस घोड़ों को टहलाता हुआ गाने गा गाकर त्र्यम्बकजी को सन्देश दिया करता था और यूरोपियन रक्षक उसका अर्थ समझ नहीं पाते थे। उसके भाग जाने की तुलना शिवाजी के भाग निकलने से की गयी ‡ और देश वासियों ने इस विषय में गीतों की रचना की। भागकर वह

---

* इस विवरण की सच्चाई जानने के लिये पढ़ें, श्री सुन्दर लाल जी के "भारत में अँगरेजी राज्य" के पूरे भाग में तीसरा मराठा युद्ध। अनुवादक

† डफ़ इस तारीख में कुछ भूल कर बैठा है, क्योंकि उसी के अनुसार २५ सितम्बर को त्र्यम्बक जी सुपुर्द किया गया था। अनुवादक

‡ इससे प्रमाणित होता है कि त्र्यम्बक जी बदमान नहीं बल्कि खुशनाम व्यक्ति था। यदि वह लोगों की दृष्टि में ब्राह्मण का हत्यारा होता तो उसके भागने के समाचार से लोगों को इतनी प्रसन्नता न

पेशवा से नहीं मिला, बल्कि दूर दूर ही छिपता रहा और इसी बीच उसने बलपूर्वक छत्रसिंह को पकड़ लिया, जो महाराष्ट्र में एक सूरमा के रूप में विख्यात था।

सन् १८०२ ई० के पूना युद्ध के बाद छत्रसिंह ने भारत के भिन्न भिन्न भागों में काम करके ख्याति प्राप्त की थी। एक दिन वह खान देश में होकर घर आ रहा था। राह में उसे त्र्यम्बकजी मिला और धोखे से उसे बन्दी बना लिया एवं उसने उसे कोकण स्थित कंगूरी के किले में बन्द कर दिया। उसे छुड़ाने के कई निष्फल प्रयत्न किये गये अन्त में छत्रसिंह नामक एक गोसाईं ने यह अफवाह फैला कर बहुत सी सेना इकट्ठी करली कि छत्रसिह भाग निकला है। इस सेना की सहायता से उसने परीचित गढ़ को ले लिया। उन लोगों ने बाद में कई किले और ले लिये परन्तु वे छत्रसिंह को न छुड़ा सके। हारकर उन लोगों ने ऐसा विद्रोह किया जो पेशवा के जीवन भर उसके सेनापति गोखले के दबाए न दब सका। यदि त्र्यम्बकजी उनके हाथ में पड़ गया होता तो उसकी मृत्यु निश्चित थी। छत्रसिंह बन्दी जीवन में ही अप्रैल १८१८ में मर गया। उसका भाई साहू सतारा में ३री मई १८०८ ई० को ही मर चुका था। साहू के बाद प्रतापसिंह गद्दी पर बैठा जो आज आज कल १६वें वर्ष में है।

हम लोग चाहे जितना कहें कि पेशवा ने त्र्यम्बकजी के भागने और छिपे रहने में मदद दी थी, परन्तु हमारे पास इसका कोई प्रमाण नहीं था। यह सोचा गया था कि त्र्यम्बकजी के स्वतंत्र हो जाने से पेशवा संतुष्ट हो जायगा, इसी लिये उसे खोजने के अधिक प्रयत्न भी नहीं किये गये। सदाशिव को फिर से पेशवा ने मंत्री बना लिया। बाजीराव ने मोरो दीक्षित तथा चिमणाजी नारायण नामक दो कोंकणस्थ ब्राह्मण विद्यार्थियों को प्रशासन में ले लिया। इन दिनों नियमित सेना के सेनापति कैप्टेन फोर्ड के माध्यम से पेशवा का सम्पर्क रेजिडेंसी से था। इस समय प्रगट रूप से पूना दर्बार तथा बृटिश रेजिडेंसी में खूब प्रेम भाव था, परन्तु बाजीराव का समूचा व्यवहार धोखे से भरा हुआ था। इस समय वह अंग्रेजों के विरुद्ध होल्कर, सिंधिया, भोंसले, अमीर खां तथा पिंडारियों से बेधड़क पत्र व्यवहार कर रहा था। उसने अपने सैनिकों की भी संख्या बढ़ायी और इसी काम के लिये त्र्यम्बक जी को भारी रकमें दीं। बाजीराव सारे काम इतनी चतुराई से कर रहा था कि यदि उसकी तैयार सेना कहीं दिखायी भी पड़ जाती तो अँग्रेज लोग उसे पिंडारी दल समझ कर ही चुप रह जाते। रेजिडेण्ट को त्र्यम्बकजी की कार्यवाहियों का पता था। उसने पेशवा के मंत्रियों से पूछा भी
१८१७ ई०] था कि क्या वह सेना पेशवा की राय से खड़ी की जा रही थी। उसे जवाब मिला कि पेशवा ने न केवल किसी सेना के लिये आज्ञा दी थी और न ऐसी कोई सेना कहीं आसपास उपस्थित ही थी। अतः रेजिडेण्ट ने यही सोचा कि अवश्य ही वे कोई विद्रोही होंगे। उसने मंत्रियो से कहा भी कि देश में सैनिक भर्ती जोरों से हो रही है और वह सेना नतपुता के आसपास इकट्ठी हो रही है, जो पूना से केवल पचास मील की दूरी पर है। रेजिडेण्ट ने यह भी कहा कि इसे तितर बितर कर देने की आज्ञा दी जाय। पेशवा के मंत्री सेना की उपस्थिति से तो इनकार करते रहे परन्तु उन्होंने बापू गोखले के सेनापतित्व में एक सवार सेना अवश्य भेज दी। गोखले ने उसी जिले में एक स्थान पर पड़ाव डाला, जिसमें उक्त सेना के होने का समाचार था और वापस सूचना

होती कि उसे उसे अमर करने के लिये गीतों की रचना की जाती। श्री सुन्दर लाल जी भी इसे देशभक्त एवम् स्वामिभक्त ही मानते है। अनुवादक

भेज दिया कि वहां पर कोई सेना नहीं थी। पेशवा ने भी त्र्यम्बकजीं * के बारे में तथा इस सेना द्वारा किये गये किसी विद्रोह के बारे में कोई जानकारी रखने से इनकार किया। उसने रेजिडेण्ट से यह भी कह दिया कि यदि उसे किसी विद्रोही सेना द्वारा किसी प्रकार के विद्रोह का विश्वास है तो वह स्वयम् उसका दमन कर दे। इसी समय रेजिंडेण्ट को सूचना मिली कि एक यात्रा पर जाने के बहाने पेशवा ने पूना से केवल सत्रह मील ही जाकर त्र्यम्बकजी से भेंट किया था। इस भेंट के बारे में यह सूचना चौंका देने वाली थी कि जब त्र्यम्बकजी पेशवा से फूलशहर नामक गांव में बात कर रहा था तो त्र्यम्बकजी के सवार एक बड़ी संख्या में गांव को घेरे खड़े थे। उस समय सहायक सेना पिंडारियों द्वारा सम्भावित लूटपाट को रोकने के लिये जफीराबाद में अग्रगामी स्थिति में पड़ी थी। गवर्नर जनरल की राय से इस सेना को आदेश दिया गया कि वह पीछे लौट कर विद्रोहियों का दमन कर दे। जब कि मद्रास सरकार की दो सेनाओं में से एक निज़ाम की सीमा पर तुलजापुर में और दूसरी बीदर में नियुक्त हो चुकी थी तो पूना की सहायक सेना के सेनापति कर्नल स्मिथ ने एक छोटे से दस्ते के साथ नीरा की ओर प्रस्थान किया और शेष सेना को आदेश दिया कि वह धीरे धीरे उसके पीछे आवे। इन दिनों नतपुता से यह सेना जट्ट की ओर चली गयी थी, परन्तु जब उसे कर्नल स्मिथ के आने का समाचार मिला तो वह घूमी और एक असामान्य मार्ग से महादेव पहाड़ी को पार करके आगे निकल गयी। कर्नल स्मिथ ने पीछा किया परन्तु तब तक वह सेना बहुत आगे निकल गयी थी। स्मिथ की सुरक्षित सेना की एक पैदल टुकड़ी ने फिर पीछा किया। इस टुकड़ी के नायक मेजर स्मिथ ने एक दिन उन पर सहसा आक्रमण किया और कुछ सैनिकों को काट डाला। वास्तव में खानदेश में भी एक इसी प्रकार की सेना संगठित हो गयी थी और उसी से मिलने के लिये यह सेना लगातार उत्तर की ओर चल रही थी। खानदेश की सेना त्र्यम्बक के सम्बन्धी गोदाजी ने जमा की थी परन्तु दूसरी सेना के आने के पूर्व ही बम्बई की सेना ने ले० डेवीज के सेनापतित्व में उस सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया था।

ऐसी स्थिति में पेशवा को उस सेना की स्थिति माननी पड़ी और उसने विंचूर के जागीरदार को आदेश दिया कि इस विद्रोह को दबा दिया जाय। इस जागीरदार ने थोड़े ही दिनों बाद पेशवा के पास इस आशय की एक सूचना भिजवा दी कि आक्रमण करके विद्रोहिनी सेना को तहस नहस कर दिया गया और वही रिपोर्ट रेजिडेण्ट को दिखा दी गयी।

इधर एक दिन के लिये भी पेशवा ने सैनिक भर्ती को बन्द नहीं किया। इस भर्ती में पैदल और सवार दोनों भर्ती किये जा रहे थे। पेशवा को इस कार्य से रोकने के सभी प्रयास बेकार हो गये। उसे यह धमकी भी दी गयी कि यदि वह इस प्रकार की कार्यवाहियों से विद्रोहिणी सेना को बढ़ावा देगा तो उसके जो भी परिणाम होंगे, उनका उत्तरदायित्व उसी पर होगा और उसका यह कार्य अँग्रेज सरकार के विरुद्ध माना जायगा। फिर भी बाजीराव की कार्यप्रणाली में कोई अन्तर नहीं आया। पेशवा के मंत्रियो की बातचीत का ढंग भी बदलने लगा। अब वे कभी कभी रेजिडेण्ट से ही

---

* ७ अप्रैल सन् १८१७ को गवर्नर जनरल ने सेनापति को लिखा था "पेशवा और अँगरेजों के बीच युद्ध छिड़ने वाला है और आप पेशवा के गुजरात के हिस्से और कोंकण के उत्तरी भाग पर अधिकार करने के लिये तैयार रहें"। वास्तव में यह पत्र सिद्ध कर देता है कि अँगरेज विद्रोहियों का दमन न करके पेशवा के राज्य को हड़पने को तैयारी कर चुके थे।

देखिये बम्बई गजटियर, जिल्द ५ पृष्ठ २२५—अनुवादक

पूछ बैठते कि वह शान्ति का इच्छुक है कि युद्ध का। रेजिडेण्ट मि० एलफिस्टन का विचार था कि जिस किसी भी तरह हो पेशवा को समझा दिया जाय कि युद्ध की स्थिति में उसकी क्या दशा होगी। इसीलिये जिन दिनों कर्नल स्मिथ विद्रोहियों का पीछा कर रहा था, उन दिनों पूना दर्बार से होने वाले वार्तालाप को रेजिडेण्ट ने स्थगित कर दिया था। बाद में उसने गवर्नर जनरल से निर्देश पाने की आशा में कर्नल स्मिथ को एक छोटे से दस्ते के साथ पूना की ओर बढ़ने को निर्देशित किया था, परन्तु इस समय तक गवर्नर जनरल की अनुमति प्राप्त हो चुकी थी अतः रेजिडेण्ट को विद्रोहियों के विरुद्ध काम करने का आदेश दे दिया गया। मद्रास सरकार की दो सेनाएँ निजाम की सीमा पर बढ़ीं। पेशवा को भी धमकी पूर्ण सूचना दे दी गई थी। रेजिडेंट की इच्छा थी कि ये सारे काम धीरे धीरे हों, ताकि यदि पेशवा चाहे तो अपनी गलतियों को दुरुस्त कर ले, परन्तु इस बात का भी ध्यान रक्खा गया कि इस विषय में जो भी कदम उठाया जाय, वह पूरी तरह दृढ़ हो और किसी प्रकार अंग्रेजों की अप्रतिष्ठा न होने पावे। विद्रोही खानदेश में अपने पैर जमा रहे थे। एक किले पर उनका अधिकार भी हो चुका था। पेशवा की सैनिक भर्ती भी चालू थी और उसके सभी किलों की मरम्मत भी हो रही धी। चूंकि वर्षाकाल आ रहा था अतः यह सोचा गया था कि पेशवा किसी पहाड़ी दुर्ग में चला जायगा जहाँ चाह कर भी वृटिश सेनाएँ न पहुँच सकें और वहीं से वह एक लम्बे युद्ध की ।तैयारी करेगा। यह भी भय था कि पेशवा अपना साथ देने के लिये पूरी मराठा जाति से ही अपील करेगा। इसी समय कटक में उपद्रव हो जाने के कारण पूना और कलकत्ता का पत्र व्यवहार भी बन्द हो गया। सौभाग्य से गवर्नर जनरल के प्राइवेट सेक्रेटरी का एक व्यक्तिगत पत्र रेजिडेंट को मिल गया था, जिसमें लिखा गया था कि पेशवा से कोई भी समझौता करने के पूर्व त्र्यम्बक जी* का समर्पण अत्यावश्यक है। इसी पत्र के आधार पर वह आक्रामक कार्यवाहियों के लिये तैयार हो गया। उसने पूना के मंत्रियों को कहलवाया कि वह उनसे भेंट करना चाहता है। इस भेंट की सारी बातें बड़े ही शान्त वातावरण में हुईं। मंत्री ने अपने स्वामी के कार्यों के औचित्य को स्पष्टतया सामने रक्खा। यदि रेजिडेंट को पेशवा की सभी कार्यवाहियों का ज्ञान न होता तो अवश्य ही उसे पूर्ण सन्तोष हो गया होता। चूंकि पेशवा की करनी उसकी कथनी के विरोध में थे, इसलिए रेजिडेंट किसी धोखे में नहीं पड़ा। उसने बार बार यही कोशिश की कि पेशवा के वचन और कार्य एक रूप हो जायँ, परन्तु कोई भी लाभ न हुआ। उसने स्पष्टतया कहा कि त्र्यम्बक जी का समर्पण होना ही चाहिये या कम से कम उसे पेशवा राज्य से निर्वासित ही कर दिया जाय। उसने यह भी बता दिया कि समर्पण न होने की स्थिति में राज्य पर संकट भी आ सकता है। अन्त में समर्पण के लिये रेजिडेंट ने एक माह की मुहलत दी और सिंहगढ़, रायगढ़ और पुरन्धर इन तीनों किलों को खाली कर देने को कहा ताकि ये प्रतिज्ञापूर्ति की जमानत के रूप में रहें। बाजीराव को अंग्रेजों की मित्रता पर इतना अधिक विश्वास था कि उसे विश्वास ही न हो सका कि इस छोटी सी बात के लिये वे युद्ध पर तैयार हो जायेंगे। उसने सोचा था कि अंग्रेज उसे इतना जलील करेंगे कि उसे जमानत भी देनी पड़े। वास्तव में वह चाहता था कि किसी प्रकार वर्षा समाप्त हो जाय

---

* देखिये प्रिन्सेप की "हिस्ट्र आवपद पोलिटिकल ऐंड मिलिट्री ट्रांजैक्न्स" जिल्द १ पृष्ठ ३२१ शास्त्री की हत्या से जो स्थिति पैदा हो गयी उसमें हम एक ब्राह्मण राजदूत की हत्या का बदला लेने वाले बन बैठे और स्वयम् पेशवा की सारी प्रजा का मत हमारे पक्ष में आ गया × × × यह राय इतनी प्रबल रही कि सभी मराठा राज्यों से युद्ध छिड़ जाने पर भी नहीं बदली × × × पेशवा के पतन पर जनता उतना उदासीन ही बनी रह गयी"। अनुवादक

और तब तक उसके मित्रगण भी तैयार हो जायें। ७वीं मई को एलफिंस्टन ने धमकी दी कि यदि त्र्यम्बक जी का समर्पण न किया गया तो पूना पर घेरा डाल दिया जायगा।

मई ८] तब भी पेशवा जमानत की अपमानजनक बात को नहीं माना। दूसरे दिन पेशवा का एक सन्देश वाहक रेजिडेंट से इसलिये मिला कि वह उसे अपने निश्चय से डिगा सके परन्तु जब दूत ने देखा कि रेजिडेंट अपनी धमकी पर दृढ़ है तो उसने कह दिया कि पेशवा उसकी सभी बातों को मान लेगा। वार्तालाप में ही सुबह हो गयी और पूना को घेरने के लिये वृटिश सेना में चलने के लक्षण दिखायी पड़ने लगे और अभी रेजिडेंट मौके पर पहुँचा भी न था कि सैनिकों ने पूरे नगर को घेरे में ले लिया। पेशवा ने तुरन्त किलों कों खाली कर देने का आदेश दिया और तभी घेरा उठाया गया। उसी समय त्र्यम्बक जी की गिरफ्तारी के लिये पुरस्कार की घोषणा की गयी। पकड़ने वालों को दो लाख रुपये तथा दस हजार रुपये का एक गांव इनाम में देने की बात कही गयी। उसने त्र्यम्बक जी के कुछ साथियों को बन्दी बना लिया और कुछ की जायदादें जप्त कर लीं और उस पेशवा के कार्यो से यह प्रतीत हुआ कि अपने मित्रों (अंगरेजों) के लिये वह कुछ भी कर सकता था। पेशवा के दर्बारी तो इस धोखे को समझ ही गये थे, स्वयम् एलफिंस्टन भी समझ गया था पर औपचारिक रूप में ही सही, उसे इतना तो सन्तोष हो ही गया कि अब किसी प्रकार समझौते का रास्ता तो खुला और अंग्रेजों की प्राथमिक मांग तो पूरी हो गयी।

गवर्नर जनरल के जो निर्देश १०वीं मई को पूना पहुँचे थे, उनके अनुसार पूना की शक्ति का अन्त ही कर दिया जाना चाहिये था और पेशवा को इस तरह पंगु कर देना था कि जैसी कार्यवाहियां वह पिछले कई वर्षो से करता चला आ रहा था, भविष्य में वैसे काम करने का साहस ही न कर सके और न किसी योग्य ही रह जाय। साथ ही वेसीन की सन्धि के पालन में जो कुछ भी कमी रह गयी थी, उसकी पूर्ति कर लेनी थी।

सन्धि का एक नया मसविदा तैयार किया गया और इस मसविदे की आवश्यकता को सिद्ध करने के लिये पेशवा से यह स्वीकार करा लिया गया कि त्र्यम्बक जी वृटिश रेजिडेंट द्वारा रचित, गायकवाड़ के अधिकार प्राप्त एजेंट गंगाधर शास्त्री की हत्या का दोषी था और वह हत्या पेशवा के ही राज्य में हुई थी। साथ ही उसी पर यह भार भी डाला गया कि वह हत्यारे को पकड़ कर वृटिश सरकार के हवाले कर देगा और न दे सकने की स्थिति तक त्र्यम्बक जी का समूचा परिवार अंग्रेजों के यहाँ जमानत रूप में रहेगा।

पेशवा से इस बात की भी प्रतिज्ञा ली गयी कि वह किसी भी विदेशी हुकूमत से पत्र-व्यवहार नहीं करेगा और न वकीलों का ही सम्बन्ध रक्खेगा। मराठा मण्डल के प्रधान की हैसियत से वह नर्मदा तथा तुंगभद्रा के बीच के समस्त भूभाग को अंग्रेजों के हवाले कर देगा। गायकवाड़ के ऊपर सभी दावों का परित्याग करने पर भी उसे विवश किया गया तथा यह तै पाया कि पिछले सभी बकाया के बदले वह केवल चार लाख रुपये वार्षिक लिया करेगा। अहमदावाद का पट्टा भी देने को उसे साढ़े चार लाख रुपये पर राजी किया गया। शेष कर सम्बन्धी सभी अधिकार रद्द कर दिये गये। वेसीन की सन्धि के अनुसार जो ५ हजार घोड़े एवम् ३ हजार पैदल सेना रक्खी गयी थी, उसके व्यय के लिये ३४ लाख का इलाका उसने उसे दे दिया। इस इलाके में धारवाड़, कुसगल तथा कर्नाटक के कुछ जिले थे, वम्बई के उत्तर में कोंकण का क्षेत्र था तथा ठालपुर एवम् अहमदाबाद को छोड़ कर शेष गुजरात की लगान थी। वाद में अहमदावाद भी इसी में शामिल कर दिया गया। नर्मदा के उत्तर में स्थित सभी क्षेत्रों के अधिकारों के साथ अहमदाबाद का किला भी देना पड़ा। जागीरदारों के विषय में सन्

१८१२ ई० का समझौता मान्य किया गया । माधवराव रस्तिया की जागीर उसे वापस मिल गयी । १८११ ई० में पेशवा ने निजाम की सीमा पर स्थित मेहा घाट पर अधिकार कर लिया था, उसे भी छोड़ दिया ।*

इस संधि से गायकवाड़ परिवार को ही सर्वाधिक लाभ पहुँचा था अतः उसके साथ भी अंग्रेज सरकार ने एक समझौता किया । इस समझौते में गुजरात में गायकवाड़ तथा वृटिश सरकार के क्षेत्रों का दो स्पष्ट विभागों में बँटवारा हो गया तथा गुजरात में सैनिक कार्यों के लिये गायकवाड़ का उत्तरदायित्व बढ़ा दिया गया । गायकवाड़ की सेना को प्रशिक्षित करने का निश्चय किया गया परन्तु सैनिक कार्यवाहियों का भार वृटिश सरकार के जिम्में रहा । निश्चय किया गया कि सामयिक सेना का कुछ भाग विसर्जित कर दिया जाय और सहायक सेना में एक हजार पैदल व दो रेजीमेंट सवारों की और बढ़ा दी जाय और इस व्यय के लिये गायकवाड़ वे जिले अंग्रेजों को दे दे जो उनके क्षेत्र में आ गये थे । यह सन्धि ६ नवम्बर को की गई ।

---

* पाठक ही देखें कि गंगाधर शास्त्री की हत्या से कौन कितना लाभान्वित हुआ । वास्तव में गुजरात के जिन इलाकों पर अँगरेजों के दांत लगे थे, उन्हीं को लेने के लिये इस हत्या का आयोजन करके अँगरेजों ने अपना स्वार्थ सिद्ध कर लिया । वास्तव में त्र्यम्बक जी का अपराध इतना ही था कि वह बाजीराव का स्वामिभक्त कर्मचारी था । अँगरेजों ने चुनार के किले में उसे बन्द कर जिस प्रकार घुला घुला कर मारा, उसे समझने के लिये “विशव हीवर एवम् मेजर आर्चर” के बयानों को पढ़िये । त्र्यम्बक जी इच्छा थी कि उसकी मृत्यु काशी में हो परन्तु वह पूरी नहीं की गयी । श्री सुन्दर लाल जी को तो इसमें ही सन्देह है कि वास्तव में त्र्यम्बक जी भागा भी या यह भी एक चाल दी थी । अनुवादक

अड़तालीसवां अध्याय

अनेक मराठा राज्यों पर अंग्रेजों का प्रभाव

[१८१४—१८१७]

लार्ड होस्टिंग्ज की गवर्नर जनरल पद पर नियुक्ति—भारत में लुटेरों की वृद्धि—भारत की दशा—पठान और पिंडारी—सुरक्षात्मक तैयारियाँ—भूपाल और जयपुर से विफल सन्धिवार्ता—नागपुर के संरक्षक अप्पा जी के साथ रक्षात्मक सन्धि—अप्पा साहब पूना के अनुकूल—परसा जी की हत्या—पिंडारियों की प्रगति—हेस्टिंज की योजनाएँ—राजनैतिक एवम् सैनिक व्यवस्थाएँ—सिंधिया की विवशता—विभिन्न सन्धिवार्ताओं की प्रगति।

१८१४ ई०]

अक्टूबर १८१३ ई० में लार्ड मिण्टो इंगलैण्ड लौट गया और उसके स्थान पर व्यक्तिगत रूप से हेस्टिंग्ज बृटिश भारत का गगर्नर जनरल बनाया गया। उस समय जितने भी ध्यान देने योग्य आवश्यक विषय थे वे सब तो हेस्टिंग्स के विचार केन्द्र बने ही, किन्तु उसने कार्यभार ग्रहण करते ही ब्रिटिश सरकार के प्रत्येक विभाग का निरीक्षण किया और एक एक कर्मचारी के चरित्र एवम् कार्य की विस्तृत सूचना उपलब्ध की। उसके इस कार्य से उसे प्रत्येक कर्मचारी के विषय में जानकारी ही नहीं प्राप्त हुई वरन् उससे ब्रिटिश भारत के अधिकारियों को तेजी से काम करने की भी प्रेरणा प्राप्त हुई, क्योंकि उन्हें मालूम हो गया कि सेवाकाल में किये जाने वाले अच्छे और बुरे कार्यों का फल उनके भविष्य की उन्नति पर पड़ेगा।

मालवा एवम् राजपूताना में तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने सन् १८०५-६ में जो प्रबन्ध किया था उसकी असफलता इसी बात से सिद्ध थी कि उक्त क्षेत्रों में अराजकता सी व्याप्त हो गयी थी और चारों ओर यह माना जाने लगा था कि पठानों एवम् पिंडारियों का दमन किया ही जाना चाहिये। इस समय तक इन लुटेरों की संख्या बढ़ कर ५० हजार तक जा पहुँची थी, जिसमें से आधे तो पिंडारी सवार ही थे। चाहे पठान हो या पिंडारी लुटेरे दोनों थे और वे व्यवस्था पूर्वक लुटपाट करते थे। अमीर खाँ के अधीन जो लुटेरे पठान संगठिन हो गये थे वे केवल रियासतों को ही लूटना पाटना अपना कर्तव्य समझते थे। शेष सब के सब विवेक रहित लुटेरे थे।

उपरोक्त कारण से पठानों की पैदल सेना की और तोपों को भी और जरूरत पड़ती थी इसीलिये सज्जा में ये लोग किसी भी देशी नरेश की सेना की तुलना में अच्छे पड़ते थे। इस सेना में तोपखाना भी था और यह सेना उन सैनिकों की भर्ती से प्रारम्भ हुई थी जो कभी होल्कर की सेना में पूर्णतया प्रशिक्षित किये गये थे। इसमें १० हजार पैदल और १५ हजार सवार थे। इनके सैनिकों का मासिक वेतन भी निर्धारित था।

चूंकि भारत के ये प्रदेश सुरक्षात्मक दृष्टि से एकदम असमर्थ हो गये थे, इसलिये इन लुटेरों का विशेषतया पिंडारियों की संख्या व शक्ति में निरन्तर वृद्धि होती रहती थी। एक भाला और एक घोड़ा

रख सकने वाला प्रत्येक असामाजिक तत्व इसमें शामिल हो सकता था । इसके अतिरिक्त जिसे भी जीवन यापन में कनिठाइयां पड़ती थीं वे सब के सब इन्हीं में शामिल हो जाते थे । इन नित नयी भर्ती से पिंडारियों की शक्ति भी बढ़ती थी और आवश्यकता भी । इस नित्य की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये लूटपाट की घटनाओं में वृद्धि करनी पड़ती थी । कभी कभी इन दलों को मराठा दरबारों की ओर से भी प्रोत्साहन मिल जाता था ।

तत्कालीन गवर्नर जनरल ने इन लुटेरों की पूर्णजानकारी पहले इंग्लैण्ड में कोर्ट आव डाइरेक्टर्स को भेजी थी परन्तु चूंकि इनका दमन करने के लिये कितने ही देशी राज्यों से फिर से सम्बन्ध स्थापित करने की आवश्यकता पड़ती थी, अतः १८०५-६ ई० में किये गये प्रबन्धों में वर्षों बाद भी कोई उलट फेर न किया जा सका था ।

इंग्लैण्ड में भारतीय कार्यों के अधिकारियों का मत था कि राजपूताना के राजाओं के हाथ से जो भाग निकल गये थे वे तो निकल ही चुके थे, परन्तु उनके पास जो कुछ भी रह गया था वह तो बँचा ही रहे और उसके बँचे रहने को गारन्टी ब्रिटिश सरकार ले । प्राथमिक रूप में राजा जयपुर को कम्पनी अपनी सुरक्षा में ले ले । १८१४ ई० में इसी आशय का एक आदेश बंगाल में गवर्नर जनरल को मिला, मगर, चूंकि हेस्टिंग्ज के मस्तिष्क में इससे भी बड़ी योजना पक रही थी अतः उसने उस आदेश को पालने के लिये और भी अनुकूल समय की राह देखने लगा । पहले उसने भूमिका बनानी शुरू की ।

अपनी वृहत्तर योजना की भूमिका के रूप में उसने नागपुर के भोंसले को अपना लक्ष्य पहला बनाया क्योंकि भोंसले इन लुटेरों से अत्यधिक संत्रस्त था । हेस्टिंग्ज ने निश्चय किया कि पहले भोंसले को ही भयमुक्त करना चाहिये । अतः उससे उसके अधिकारियों ने बताया था कि पिछले वर्षों में जब एक बार नागपुर बुरी तरह आपत्ति ग्रस्त था तो अँगरेजों ने उसे सहायता दी थी और शायद इसी के कृतज्ञता स्वरूप यह अब अँग्रेजों द्वारा प्रस्तावित सुरक्षात्मक संधि को मान ले । इसी विचार से नागपुर स्थित ब्रिटिश रेजिडेन्ट मि० जेंकिंस द्वारा इस प्रस्ताव को भोंसले की सेवा में प्रेषित किया गया, परन्तु उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसे बताया गया कि भोंसले ने इस प्रकार की कोई भी सन्धि करने को तैयार नहीं किया जा सका ।

वास्तव में हेस्टिंग्ज का उद्देश्य था कि बुदेलखंड से लेकर निजाम की सीमा तक सुरक्षित सीमाओं की एक श्रृंखला बना ली जाय । नागपुर इसी श्रृंखला की एकमात्र छिन्न कड़ी था । इसीलिये हेस्टिंग्ज ने यह प्रस्ताव किया था । इसी योजना के अन्तर्गत सागर के गोविन्द राव नाना तथा भूपाल के नवाब बजीर मुहम्मद से सुरक्षात्मक संधियों का प्रस्ताव किया गया था, परन्तु चूंकि अंगरेज इस समय नैपाल के युद्ध में फँसे थे और इन्हीं दिनों हेस्टिंग्ज को यह सूचना भी मिली थी कि रघूजी भोंसले तथा सिन्धिया के बीच एक आक्रमण एवम् सुरक्षात्मक सन्धि की वार्ता चल रही थी, साथ ही सिन्धिया और तुलसी-बाई होल्कर के बीच भी सन्धिवार्ताएँ चल रही थीं । हेस्टिंग्ज को यह भी बताया गया कि सिन्धिया भूपाल पर फिर से आक्रमण करने वाला था और बजीर मुहम्मद की वीरता भी असफल होने वाली थी, अतः वह शीघ्र ही अँगरेजों से स्वयम् रक्षा की प्रार्थना करने की स्थिति में पड़ गया था । इन अनेक कारणों से गवर्नर जनरल ने कुछ समय तक के लिये अपनी श्रृंखलता योजना को स्थगित कर देने का निर्णय किया परन्तु इन्हीं कारणों से उसे तुरन्त कार्यवाही करने के लिये भी विवश कर दिया ।

पिछली पंक्तियों में जिन कारणों का उल्लेख किया गया है उन पर विचार करके गवर्नर जनरल ने अपनी योजना को कार्यान्वित करने का निश्चय किया । अत; तुरन्त उसने नवाब भूपाल के पास

अपना प्रस्ताव भेजा जिसके अनुसार भूपाल में ब्रिटिश सेनाओं के निर्बाध आवागमन एयम् निवास का अधिकार मांगा गया था, साथ ही नवाब से कहा गया था कि वह ऐसी सेना के निवास के लिये एक किला अँग्ररेजों को दे दे। इस प्रस्ताव की गम्भीरता बढ़ाने के लिये बुन्देल खंड की सेना को शक्ति एवम् संख्या वृद्धि कर दी गयी। हैदराबाद स्थित सहायक सेना जालना से चलकर एलिचपुर आ गयी। पूना की सहायक सेना जफीराबाद में पहुँच गयी और दक्षिण में एक शक्तिशाली सुरक्षित सेना का निर्माण किया गया। गुजरात की सेना माही नदी के उत्तर में स्थित सोनीपुर में नियुक्त हो गयी।

१८१५ ई०]

वजीर मुहम्मद ने इस प्रस्ताव का स्वागत किया और इसका परिणाम यह हुआ कि सिन्धिया की छावनी में रहने वाले अँगरेज रेजिडेन्ट ने सिन्धिया को सूचित कर दिया कि भूपाल का उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार ने ले लिया है। सिन्धिया ने बड़े ही प्रबल रूप से अँगरेजों के इस कार्य का प्रतिवाद किया और कहा कि तमाम भूपाल उसका अधीनस्थ है। चतुर्दिक इकट्ठा सेनाओं की पर्वाह न करके उसने तत्क्षण ही भूपाल पर आक्रमण करने की धमकी दी। उसका एक दस्ता इस कार्य के लिये आगे भी बढ़ चला और ऐसा प्रतीत हुआ कि अँगरेजों से सारे सम्बन्ध टूट जाने के खतरे को झेलकर ही वह अडिग रहेगा, परन्तु उसकी करनी उसकी कथनी से पीछे रह गयी और आगे बढ़ी फौज वापस आ गयी। सिन्धिया के इस विचित्र व्यवहार का कारण यह था कि वह युद्ध के लिये तैयार भी नहीं था और उधर नेपाल में अँगरेजों को बिजय मिल कर युद्ध बन्द हो चुका था। फिर भी सिन्धिया के इस कार्य से उन सभी को एक आशा बँध गयी थी जो भारत से ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने के स्वप्न देख रहे थे। इस स्वप्न-देखने वालों में पेशवा का नाम सर्व प्रथम था। इसी ससय से यह भी माना जाने लगा कि मराठा मण्डल को फिर से संगठित करने की योजना नैपाल की थी, जो सिन्धिया के माध्यम से मराठों में प्रचारित हुई थी।

रघू जी भोंसले तथा पेशवा ने भूपाल ब्रिटिश गँठबन्धन पर प्रकट रूप से सन्तोष ही प्रदर्शित किया, परन्तु वजीर मुसम्मद से कोई अनुवन्ध न हो सका। जब तक सिन्धिया का डर बना रहा तब तक तो ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह अँगरेजों की किसी भी बातें को मान लेगा। उसने ब्रिटिश संरक्षण में होने की घोषणा भी कर दी, परन्तु इधर सिन्धिया के आक्रमण का भय घटा उधर उसने सैनिक निवास के लिये किला देना अस्वीकृत कर दिया और इसी बात पर उसके साथ की सन्धिवार्ता खत्म कर दी गयी। इस वार्ता की असफलता समाप्ति के बाद गोविन्द राव नाना के साथ इस प्रकार की बातचीत बेकार समझी गयी और उसका भी परित्याग कर दिया गया।

१८१६ ई०]

अगले वर्ष नैपाल युद्ध की समाप्ति के बाद जयपुर के राजा को अमीर खाँ ने बहुत दबाया। हार कर उसने ब्रिटिश सरकार से अपनी सुरक्षा के लिये प्रार्थना किया। हेस्टिंग्ज के मस्तिष्क में तो यह योजना पहले से थी ही अतः उसने झट वार्ता शुरू की। उधर ज्यों ही राजा ने अमीर खाँ को लौट जाने पर राजी कर लिया त्यों ही उसने सन्धिवार्ता का भी अन्त कर दिया। वजीर मुहम्मद की ही भाँति उसने परिस्थितियों के वश होकर ही सुरक्षा की प्रार्थना की थी।

१७वीं मार्च सन् १८१६ ई० को भूपाल के नवाब का स्वर्गवास हो गया। उसी के पाँचवें दिन अर्थात् २२वीं मार्च को रघू जी भोंसले का भी देहान्त हो गया। वजीर मुहम्मद का लड़का उसका उत्तराधिकारी हुआ और रघू जी का पुत्र पुरुषाजी उसकी गद्दी पर बैठा। पुरुषाजी का

का मस्तिष्क पहले से ही दुर्बल था अतः बेंका जी मुन्ना बापू का पुत्र अर्थात् पुरुषाजी का चचेराभाई अप्पा साहब उसका संरक्षण बनाया गया । अप्पाजी ने सुरक्षात्मक सन्धि की प्रार्थना की अतः २७वीं मई सन् १८१६ को अँगरेजों की उससे सन्धि हो गयी । इसके अनुसार ६ हजार की सेना के खर्च के लिये वह साढ़े सात लाख रुपया वार्षिक देने पर राजी हो गया तथा ऊपर से नागपुर में रहने वाली ३ हजार सवार तथा २ हजार पैदल सेना का पूरा खर्च देना स्वीकार किया । यह भी तै हो गया कि इनमें से दो बटालियन तो हर हालत में नागपुर में रहेगी तथा शेष को ब्रिटिश सरकार स्वेच्छा से इधर-उधर भेज सकेगी । अक्टूबर के महीने तक उसका पूरा प्रभाव जम गया मगर इसी समय यह पेशवा के चक्कर में फँस गया । उसे यह भी डर था कि पुरुषा जी के जीवन काल में वह निर्वाध अधिकार न भोग सकेगा । पहली फर्वरी १८१७ की सुबह वह अपने बिस्तर पर मरा पाया गया, यद्यपि उसकी मृत्यु स्वाभाविक मृत्यु थी या हत्या, इसे सब लोग जान गये ।

इस समय पिंडारियों का जोर बढ़ा हुआ था और ब्रिटिश सरकार उनका कुछ भी न बिगाड़ रही थी । विशेषकर १८१५-१६ के सालों में उन्होंने अँगरेजी सेनाओं को काफी परेशान किया । दो एक मुठभेड़ में कुछ पिंडारी मारे भी गये । पिंडारी लड़ते तो थे नहीं । सेना के आगमन का समाचार पाकर वे उड़न छू हो जाया करते थे । इन दिनों पिंडारियों का अधिकांश अत्याचार ब्रिटिश एवम् निजाम की सीमाओं में ही हुआ ।

पेशवा के ऊपर किसी प्रकार का शक न हो इसलिए स्वयम् अपने ही राज्य को लूटने के लिये उसने सवारों का एक दस्ता भेजा, जो अपने को पिंडारी कहता था । सिन्धिया ने भी पिंडारियों को दबाने की बड़ी बड़ी बातें की, परन्तु दोंनों सेनापतियों ने पिंडारियों को कभी नहीं दबाया ।

पेशवा का बुंदेलखंड स्थित क्षेत्र अँगरेज ले चुके थे । नागपुर में सहायक सेना थी ही, अतः उनकी सुरक्षापंक्ति बन चुकी थी । अब गवर्नर जरनल ने पिंडारियों का दमन करने के लिये संकल्प किया । उधर इंग्लैण्ड से भी इसी आशय का आदेश मिला कि बुन्देलखंड एवम् मालवा से पिंडारियों का सफाया कर दिया जाय ।

हेस्टिंग्ज की महत्वाकांक्षा थी कि मध्यभारत को इन लुटेरों से पूर्णतया रक्षित की जाय । बरार का राजा सहायक सन्धि कर चुका था । पेशवा लँगड़ा (निर्बल) हो चुका था । अतः हेस्टिंग्ज की गृद्ध दृष्टि सिन्धिया, होल्कर, नवाब भूपाल, राजस्थान के राजाओं एवम् बुंदेलखंड की छोटी रियासतों पर घूम रही थी । सिन्धिया तथा होल्कर के साथ की गयी सन्धियाँ बेकार करार दी जा चुकी थी, क्योंकि उन्हीं के अधीनस्थ पिंडारी लोग ब्रिटिश सीमा में लूटमार कर रहे थे । सभी मराठों ने पेशवा को प्रधान मान ही लिया था । गवर्नर जनरल को अनेक ऐसी सूचनाएँ मिलीं, जिनसे सिद्ध हुआ कि चुपके चुपके सिंधिया भी उपद्रव मचा रहा था । अतः उसने सिंधिया एवम् होल्कर के साथ की गयी संधिओं को अस्वीकार कर दिया, जिससे छोटी रियासतों से समझौते किये जा सके । जहाँ कहीं भी किसी ने लुटेरों को दबाने की बात कहा वहीं अँगरेज समझौता वार्ता करने लगे । निष्पक्ष रियासतों को मान्यता देना हेस्टिंग्ज अनुचित समझता था । अमीर खाँ को लालच दी गयी कि यदि वह पठानों को विसर्जित करके शान्ति से रहने की प्रतिज्ञा करे तो होल्कर द्वारा दी गयी जागीर उसे स्थायी रूप से दी जा सकती है । सारी तैयारी कर चुकने के बाद सभी पोलिटिकल एजेण्टों को तत्सम्बन्धी सूचनाएँ एवम् हिदायतें भेज दी गयीं ।

अँगरेजों का पिंडारी विरुद्ध अभियान साधारण एवम् समझ में आने योग्य था । जिन देशों का नाम ऊपर लिया गया है उनकी बाहरी सीमाओं से कई सेनाएँ एक निश्चित केन्द्र की ओर इस

प्रकार चलीं कि उनके घेरे को तोड़ कर कोई भी दल बाहर न जा पाए। इस कार्य के लिये दक्षिण में पाँच डिवीजन सेनाएँ तैयार की गयीं और मद्रास के सेनापति सर थामस सिसलॉय को उनका सेनापति बनाया गया। बंगाल से चार डिवीजन सेना का सेनापति बनकर स्वयम् हेस्टिंग्ज आया। गवर्नर जनरल के पोलिटिकल एजेंट के पद पर मालकम की नियुक्ति हुई साथ ही दक्षिण की एक डिवीजन सेना का सेनापति भी वही रहा। दक्षिण की तैयारियाँ खुले आम परन्तु उत्तर में की गयी तैयारियाँ गुप्त रूप से हुई ताकि सिन्धिया को सावधान होने का अवसर न मिलने पावे और जिससे उसे या तो संधि करनी पड़े या बिना तैयारी के युद्ध करना पड़े।

प्रायः ५७ हजार सैनिक पूना, हैदराबाद नागपुर की सुरक्षा के लिये बैठ गये, जिनमें पाँच हजार दो सौ पचपन सवार थे। बंगाल की सेना में ३४ हज़ार नियमत सैनिक थे, जिनमें ५ हजार सवार थे। इनके अतिरिक्त करीब १३ हजार सामायिक सवार दक्षिण की सेना में और १० हजार सामायिक सवार बंगाल की सेना में थे।

आगे आगे जान मालकम तथा उससे पीछे हिसलाय की सेनाएँ मालवा में बढ़ने वाली थीं। नागपुर की सेना का ५ वां डिवीजन होशंगाबाद के रास्ते बढ़ने वाला था। एक सेना बरार में तथा दूसरी खानदेश में स्थिर रहने वाली थीं और हर स्थिति को सँभालना उनका काम था। गुजरात की सेना को दोहद पहुँचना था।

बंगाल के चारों डिवीजन रेवाड़ी, सिकन्दरा तथा कालिंजर को आ रहे थे। दो सुरक्षित डिवीजन स्थिति का पर्यवेक्षण करने को पीछे पीछे चल रहे थे। बुन्देलखंड स्थित सेना दक्षिण की सेना के आ जाने पर उसी के साथ अवसर के अनुसार बढ़ने वाली थी। बंगाल से आने वाली रेबाड़ी सेना का सेनापति का कालोनी था।

सितम्बर के महीने में सिन्धिया के पास रहने वाले रेजिडेन्ट कर्नल क्लोज ने सिन्धिया को सूचित किया कि पिंडारियों का नाश करने से लिये दक्षिण से सेना चलने ही वाली की अतः औपचारिक रूप से इसे सिंन्धिया के देश से आने जाने का पासपोर्ट मिलना चाहिये। उस समय सिन्धिया की सेना ग्वालियर में उपद्रवरत थी क्योंकि उसे समाचार मिला था कि उसका प्रधान पेशवा शीघ्र ही अंगरेजों से सन्धि तोड़ने वाला था और शीघ्र ही उससे मिल जाने वाला था। सिन्धिया ने कहा कि वह तो स्वयम् पिंडारियों को दबाने पर तुला था। उसने प्रार्थना की कि आगे बढ़ने वाली सेनाएँ रोक दी जायँ रेजिडेंट के अनुसार सेनाओं का रुकना असम्भव था। अंततः सिन्धिया ने पासपोर्ट दे दिया। अक्टूबर के मध्य तक गवर्नन जनरल की पूर्ण योजना का पता सिन्धिया को लग गया। उसे एक पत्र मिला जिससे उसके ऊपर ब्रिटिश सीमा में लूटपाट मचाने का दोष लगाया गया था और कहा गया था कि उन दोनों के कारण उसके तथा अँगरेजों के बीच कोई सन्धि नहीं रह गयी थी। उसी पत्र में यह भी लिखा गया था कि पिंडारियों का नाश करना ही ब्रिटिश सरकार का एक मात्र ध्येय था और उससे आधिक कुछ नहीं। इस काम में सिन्धिया की भी मदद माँगी गयी थी। उससे कहा गया था कि वह अपनी समस्त सेना किसी अंगरेज के सेनापतित्व में कर दे और यह कि यदि उसका कोई सेनापति पिंडारियों के सान्नध्य में पाया गया तो उसे भी पिंडारी ही समझा जायगा। उसे आदेश दिया गया था कि पिंडारियों के दमन के लिये वह पाँच हजार सवार तीन वर्ष के लिये दे, जिनका व्यय उसे मिलने वाली पेंशन तथा बूँदी व जोधपुर से मिलने वाले कर से पूरा किया जायगा। इन बातों की जमानत के रूप में हिन्दिया एवम् असीरगढ़ के किले अंगरेजों को दे दिये जायँ परन्तु इन पर झंडा सिन्धिया का ही रहे और उसके भी थोड़े से सैनिक इन किलों में रहें। राजपूतों से जो भी सन्धि वृटिश सरकार

करेगी उसका असर सिन्धिया को मिलने वाले कर पर नहीं पड़ेगा । उपरोक्त शर्तों पर ५वीं नवम्बर को सिन्धिया के हस्ताक्षर हो गए और अगले ही दिन गवर्नर जनरल ने भी उन बातों को पक्का कर दिया । उधर असीरगढ़ के किलेदार यशवन्त राव लार ने किला समर्पित करने से इनकार कर दिया । सिन्धिया की तीन मुख्य सेनाओं की स्थिति भी समझ लेना ठीक होगा । पहली सेना अजमेर में बापू जो सिन्धिया के सेनापतित्व में, दूसरी सेना यशवन्त राव भाऊ के सेनापतित्व में जाऊद में थी और तीसरी सेना कर्नल जीन वेप्टिस्ट की अध्यक्षता में बहादुर गढ़ में पड़ी थी । इन सेनाओं को क्रमशः मेजर लुडलो, कैप्टेन कॉलफील्ड तथा मेजर बून ने सँभाला ।

इधर सिन्धिया ने समझौते पर हस्ताक्षर किया और इधर जनरल डंकिन का डिवीजन सामान्य योजना के अनुसार पश्चिम की ओर बढ़ चला परन्तु हेस्टिंग्ज बराबर ग्वालियर के दक्षिण की ओर इधर उधर घूमता रहा जिससे वह सिन्धिया की गतिविधि का पता लगा सके जो यद्यपि संधि पत्र पर विवशतः हस्ताक्षर कर चुका था, फिर भी दक्षिण की गतिविधि पर दृष्टि जमाये था । उसके विचारों का भेद भरा आदान प्रदान बराबर पेशवा से चल रहे थे, साथ ही वह नैपालियों को भी भड़का रहा था कि वे उस युद्ध में मराठों का साथ दें ।

इधर ब्रिटिश सरकार के पोलिटिकल एजेण्ट्स छोटी छोटी रियासतों से सन्धिवार्ताएँ चला रहे थे । करौली का राजा प्रति वर्ष पेशवा को २५ हजार रुपया कर देता था । उसने सबसे पहले समझौता किया और उसका कर मुआफ कर दिया गया । यह समझौता ९वीं नवम्बर को पूरा हुआ । उसी अमीर खाँ के दिल्ली स्थित एजेण्ट ने समझौता कर लिया । उसकी भी जागीर पक्की हो गयी । उसने वादा किया कि जागीर के प्रबन्ध के लिये आवश्यक सैनिकों के अतिरिक्त सभी पठानों को विसर्जित करके लुटेरों से कोई सम्बन्ध न रक्खेगा और ये थोड़े से सैनिक भी आवश्यकता पड़ने या बृटिश सरकार की सेवा करेंगे । उचित हर्जाना लेकर उसने अपना तोपखाना भी छोड़ दिया । इन्हीं दिनों कर्नल टॉड को राजपूताने की रियासतों से समझौता करने को भेजा गया । उसके प्रयत्न से कोटा राज के राना जालिम सिंह ने २६ वीं दिसम्बर को अँगरेजों से सन्धि कर लिया ।

बुन्देलखंड का गोविन्द राव नाना पहली नवम्बर को ही सन्धि कर चुका था और पेशवा के स्थान पर अँगरेजों की अधीनता स्वीकार कर लिया था । सागर के सर्दार विनायक राव ने संधि से इन्कार कर दिया । सिमथर के राजा, झाँसी के नवाब तथा भूपाल के नवाब अंगरेजों के मित्र बन गये । अमीर खाँ ने अपने एजेन्ट द्वारा किये गये समझौते पर कुछ समय तक स्वीकृति नहीं दी, क्योंकि उन्हीं दिनों वह पेशवा से सन्धिवार्ता चला रहा था और सिन्धिया की तरह पूना एवम् नागपुर की घटनाओं को देख परख रहा था ।

उनचासवां अध्याय

बाजीराव की अन्तिम पराजय से मराठाशाही का अन्त

[१८१८--१८१८]

पेशवा का पँढरपुर प्रस्थान—अपनी सैनिक शक्ति घटाने का बहाना—पूना की सहायक सेना—गवर्नर जनरल का पोलिटिकल एजेण्ट सर जान मालकम का पूना पहुँचना—पेशवा से माहोली में साक्षात्कार—बाजीराव द्वारा धोखा—दक्षिण की सेना का आगे बढ़ना—माहोली में पेशवा के काम—बापू गोखले को पूरा अधिकार—सेना को फोड़ने का प्रयास—सिपाहियों की वफादारी—प्रेसीडेंट को मरने से बँचाना—दशहरा का त्यौहार—पूना के लक्षण—पेशवा को हिचकिचाहट यूरोपियन रेजिमेन्ट का पहुँचना—वृटिश सेना का स्थिति परिवर्तन—पेशवा की सेना द्वारा सहसा आक्रमण—खिडकी का युद्ध—रेजिडेंसी का लूटा और जलाया जाना — पेशवा के हिंसक कार्य—प्रार्थनाएं—रेजिडेंट के मुंशी की गोखले से भेंट—जनरल स्मिथ का पूना लौटना—पेशवा का पलायन—पूना पर अधिकार—पेशवा का पीछा—कोरीगांव की रक्षा—पेशवा का भागते ही जाना—जनरल प्रिजलर द्वारा पीछा—जनरल स्थिमथ—मि० एलफिस्टन की कमिश्नर पद पर नियुक्ति—उसके अधीन दक्षिण की दो डिवीजन सेनाएँ—सतारा पर अधिकार—सतारा की घोषण – सेना का नया विभाजन—पेशवा की सेना पर स्मिथ का आक्रमण—सतारा के राजा को बचाना—नागपुर के कार्य—ब्रिटिश सैनिकों पर धोखे से हमला—सीतावल्डी का युद्ध—अप्पा साहब का समर्पण—उसकी तोपों पर आक्रमण एवम् अधिकार—नागपुर का आक्रमण वेकार करना—अरबों के कारनामें—उत्तरी जिलों को जीतना - अप्पा साहब फिर गद्दी पर—मालवा और हिन्दुस्तान का विवरण ।

इधर जुलाई के महीने में पूना की सन्धि के अनुसार कुछ परिवर्तन किये गये और उधर पेशवा पंढरपुर के मन्दिर की अपनी वार्षिक यात्रा पर चल पड़ा । अँगरेजों का विश्वास बनाये रखने के लिये उसे रेजिडेंट को भी साथ ले लेना चाहिये था मगर इस बार उसने उसे साथ नहीं लिया । उसने तुरन्त अपनी सेना और विशेषतया अपनी सवार सेना की संख्या कम कर दी, परन्तु वाद में ज्ञात हुआ कि उसने प्रत्येक सिल्लीदार को सात मास का वेतन इस आदेश के साथ दिया था कि वे अपने गांवों में रहें और जब भी बुलाये जायँ आने को तैयार रहें । आते समय अधिक से अधिक सैनिकों को साथ लावें ।

पेशवा ने जो नियमित सेना तैयार की थी, उसे ब्रिटिश सरकार के हवाले कर दिया और उसका नाम पूना अगजिलरी फोर्स रक्खा गया । पेशवा की इच्छा थी कि वह कैप्टेन फोर्ड को सेनापति बनावे अतः उसने कहा कि एक बटालियन का वेतन वह खुद देगा तथा इसके बदले एक नयी बटालियन भर्ती की जाय परन्तु पेशवा के आदमी गुप्त रूप से इसमें बाधा ड़ालते रहे । पेशवा बजाय राजधानी में आने के पँढरपुर से माहौली चला गया । माहौली सतारा के निकट एक गांव था, जहाँ मेना और कृष्णा नदियों

का संगम एक पवित्र स्थान माना जाता था। जिन दिनों पेशवा माहौली में था, उन्ही दिनों सर जॉन मालकम पूना पहुँचा। मालकम गवर्नर जनरल का पोलीटिकल एजेन्ट था और दक्षिण की प्रत्येक देशी रियासत का दौरा कर रहा था। उसके आने का समाचार सुन कर पेशवा ने उसे माहौली में ही भेट करने का निमंत्रण दिया।

सर जान मालकम से बात चीत के रूप में बाजीराव ने इस बात की शिकायत की कि पिछली सन्धि ने उसकी स्थिति को एकदम बिगाड़ कर रख दिया था। उसने इस बात का भी रोना रोया कि अंग्रेजों को जिस मित्रता से उसे इतना लाभ हुआ था वही मित्रता अँग्रेजों ने तोड़ दी। फिर भी उसने अँगरेजो के अतीत कालीन व्यवहारों के लिये कृतज्ञता प्रगट की। सर जान मालकम ने उसे धीरज बंधाने का प्रयत्न किया और पिंडारियों के नाश के लिये हेस्टिंग्ज की समूची योजना उसे समझाया। उसने पेशवा को यह भी समझाया कि वह ऐसा रास्ता पकड़े, जिससे भविष्य में अंगरेज उसने पुनः सन्धि करलें और फिर से उसके मित्र बन जायँ। उसने यह भी कहा कि बृटिश सरकार ने जो ले लिया था उसे तो नहीं लोटावेगी किन्तु यदि वह सच्चाई से हेस्टिंग्ज की योजना को कार्यान्वित करने में मदद दे तो बहुत सम्भव था कि उदार गर्वनर जनरल उसके उपयोगी कार्यों के प्रकाश में उसे बहुत कुछ दे सके, जो पिछले से कहीं अधिक हो। उसने पेशवा को समझाया कि जिस दोस्ती का वह दम भर रहा था, उसके प्रदर्शित करने का उपयुक्त समय आगया था और यदि वह उस अवसर का लाभ उठा सका तो अँगरेज फिर से उसके मित्र बन सकते हैं, परन्तु बाजीराव की बात चीत के प्रारम्भ से अन्त तक मालकम को भ्रम में डाले रही। जब लौट कर मालकम पूना आया तो उसे पूरा विश्वास हो चुका था कि बाजीराव अंगरेजी सेना का साथ देगा और यदि उसे सैनिक तैयारी में सहायता दी जाय और उससे समुचित एवम् उदार व्ययहार किया जाय तो वह विश्वासपात्र मित्र बन सकता था। यद्यपि मि० एलफिन्सटन की विपरीत राय थी, फिर भी मालकम ने वाजीराव के सौजन्य के अनुसार ही रिपोर्ट दी। एलफिन्सटन ने मालकम की संस्तुतियों का विरोध तो नहीं किया मगर उसने अपने इस विचार को सब के सामने रख दिया कि जनरल स्मिथ की सेनाएँ सीमा पर जायँगी तो पूना की छोटीसी सेना को देख कर वाजीराव उस अवसर का लाभ अवश्य उठावेगा।

अगस्त के महीने में रायगढ़, सिंहगढ़ तथा पुरन्दर के किले पेशवा को वापस दे दिये गये। इस साल का वर्षा काल काफी लम्बा रहा और इसीलिये दक्षिण की सेना के प्रस्थान में असाधारण विलम्ब हो गया। ६ वीं अक्टूबर को ब्रिगेडियर जनरल स्मिथ ने अपनी सेना को गोर नदी पार करा दिया था और २० वीं तारीख तक चन्दौर की पहाड़ी के साये में वह सेना सुविधापूर्वक जम गयी थी ताकि आवश्यकता पड़ने पर वह तुरन्त खानदेश में प्रवेश कर सके। कुछ सवारों के साथ एक हल्का ब्रिगेड अहमदनगर के बीच में स्थित था। अहमदनगर की छावनी की रक्षा के लिये एक दूसरा दस्ता नियुक्त था। पशवा के चार या पांच सौ सैनिक धापुरी में थे जो पूना से कुछ मील पश्चिमोत्तर में था। बम्बई की सेना पूना सैन्य से अक्टूबर के अन्त में मिल जाने के लिये तैयार खड़ीं थी।

सितम्बर के अन्त के पहले तक पेशवा राजधानी में नहीं लौटा था। माहौली में लगातार वह अपनी ब्रिटिश विरोधी योजनाओं में लगा रहा। बापू गोखले की राय के अनुसार जब ज्योंही अवसर मिले खुल कर ब्रिटिश सेना पर आक्रमण करने वाला था। मालकम ने कम्पनी की सहायतार्थ उसे सैनिक भर्ती की जो राय दे दी थी, उसी की ओर उसकी खिचड़ी पक रही थी। इस समय पेशवा के सभी काम गोखले के हाथों में थे। पेशवा ने अपने मुहर बन्द लेख द्वारा अपने सारे काम काज का अधिकारी उसे बना दिया था और शपथ द्वारा उसे पक्का कर दिया था। बात यह थी कि कितने ही

जागीरदारों को पेशवा में कम परन्तु गोखले में अधिक विश्वास था और इसीलिये उसे ऐसी कार्यवाही करनी पड़ी थी। युद्ध के प्रारम्भ होने तक किसी को इस अधिकार हस्थांन्तरण पर विश्वास नहीं था। बापू गोखले को आवश्यक तैयारी के लिये दस लाख रुपये दिये गये थे। जागीरदारों का सहयोग पाने के लिये उसने कितनों को ही जागीर वापस कर दी थी और इस प्रकार प्रजारंजक की ख्याति अर्जित करना चाह रहा था। उसने अपनी योजना को सतारा के राजा के सामने रक्खा यद्यपि उसने इस योजना को गुप्त रखने के लिये राजा और राजमाता से शपथ ली थी फिर भी उसने उन सबको करीब करीब बन्दी रूप में वसोटा के किले में भेज दिया। उसकी भर्ती पूरे जोरों पर थी। उसके किलों में आवश्यक प्रबन्ध हो रहे थे और युद्ध के जहाजों को तैयार रहने का आदेश दिया गया था। त्र्यम्बक जी ने उसके लिये भीलों व रमूसियों की सहायता प्राप्त कर दी थी। नागपूर, सिंधिया तथा अमीर खां के कैम्प में विशेष दूत भेजे गये थे। जिन योजनाओं को वह स्वयम् कार्यान्वित कर रहा था उनके अनुसार सिपाहियों को फोड़ना और रेजिडेन्ट की हत्या मुख्य काम थे। उसने यूरोपियनों को भी फोड़ने की कोशिश की थी और यशवन्त राव घोरपड़े इस कार्य के लिये उसका एजेन्ट था जो बहुत दिनों तक पूना में रहा था और ब्रिटिश सरकार से हजार रुपये मासिक पेन्शन पाता था। एंलफिन्स्टन ने उसके साथ बड़ी उदारता का व्यवहार किया था। परन्तु उसके कारनामों से स्पष्ट होकर रेजिडेन्ट उससे तनिक फट सा गया था। अतः बाजीराव ने मौका देख कर यशवन्तराव को बुलवाया और उससे शपथ ली कि वार्तालाप के विषय को वह पूर्णतया गुप्त रक्खेगा और तब उसने घोरपड़े के सामने यूरोपियन अफसरों की योजना रक्खी और वह राजी हो गया। इस काम के लिये उसे ५० हजार रुपये भी मिल गये। उसने अपनी शपथ का इसी सीमा तक पालन किया कि उसने इस बात को किसी से नहीं कहा, परन्तु घोरपड़े एलफिन्स्टन का अत्यधिक कृतज्ञ था और समय समय पर पेशवा की तैयारियों को देख कर रेजिडेण्ट को सावधान किया करता था। उस समय घोरपड़े परिवार में यशवन्त राव ही अकेला व्यक्ति था जो अंग्रेजों के काम में सहायक हो रहा था। अंग्रेजों के सर्वाधिक बड़े सहायक के रूप में एक ब्राह्मण बालाजी पन्त नाथू था, जिसकी विवेक, चौकन्नापन, स्वामिभक्ति व दृढ़ता सर्व प्रकारेण प्रशंसनीय थी। चारों ओर से इस बात की सूचनाएँ आ रही थी कि पेशवा के जासूस ब्रिटिश सेना में कार्यरत थे। कुछ सिपाहियों ने बड़े प्रलोभनों तक को ठुकरा दिया था परन्तु कुछ ऐसे भी थे जो प्रगट रूप से तो सहमत होकर सारी बातें सुन लेते थे परन्तु बाद में सारा समाचार ब्रिटिश अधिकारियों को दे देते थे। फिर भी यह पता लगाना कठिन हो रहा था कि ये कार्यवाहियाँ किस पैमाने पर हो रही थी। बाद में तो उनमें भी घबराहट फैलने लगी जो बम्बई सेना के सैनिकों की स्वामिभक्ति के प्रति बेखटके थे, क्योंकि उन सिपाहियों में से बहुतों के परिवार पेशवा के क्षेत्र में थे और जिन्हें उसने यातनाएँ देना प्रारम्भ कर दिया था। उनसे कहा जाता था कि यदि उनके परिवार का सैनिक ब्रिटिश सेना को नहीं छोड़ देगा तो उन्हें भयंकर विपत्ति का सामना करना पड़ेगा।

पेशवा की इच्छा थी कि बृटिश सरकार से कुछ छेड़ने के पूर्व वह एक बार एलफिस्टन को वार्ता के लिये निमंत्रित करे और उसे मार डाले परन्तु गोखले इस योजना का विरोधी था। गोखले इस बात में सहमत था और उसको इस बात की सफलता पर दृढ़ विश्वास था कि बृटिश सैनिकों में स्वामिविद्रोह फैलाया जाय, अतः वह इस निम्नस्तर पर नहीं आना चाहता था। विशेषतया इसलिये भी कि एकाधिक बार एलफिस्टन ने उसके साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार किया था। बाजीराव एलफिंस्टन का व्यक्तिगत शत्रु था अतः वह अपनी योजना से पीछे नहीं हटना चाहता था। उसने प्रस्ताव किया कि रेजिडेंट को उस समय मारा जाय जब वह घोड़े पर बाहर निकले और यदि वह इसमें

असफल हो तो भीलों की सेना लेकर त्र्यम्बक जी रात को रेजिडेंसी और बृटिश छावनी पर एक साथ आक्रमण करें।

पेशवा की एलफिंस्टन से आखिरी मुलाकात १४ अक्तूबर को हुई, जिसमें पेशवा ने पिछली संधि के कारण हुये अपनी हानियों का रोना रोया, फिर भी उसने अँग्रेजों की मित्रता से प्राप्त लाभों के लिये कृतज्ञता प्रगट किया। जब रेजिडेंट ने पिंडारियों के दमन की शीघ्रता पर अपनी अधीरता प्रगट की तो पेशवा ने सदा की तरह इस बार भी वही जवाब दिया कि दशहरा के बाद ही उसकी सेनाएँ चल पड़ेगी।

उस वर्ष दशहरे का त्यौहार १९वीं अक्तूबर को पड़ा। बाजीराव के गद्दी पर बैठने के बाद से ही इतना शानदार दशहरा कभी न हुआ था। इस अवसर पर दो दृश्यों ने सर्वाधिक ध्यान आकर्षित किया। एक तो रेजिडेंट के प्रति दिखाये जाने वाले सम्मान में बहुत थोड़ी सी परन्तु दृष्टि में आ जाने वाली कमी कर दी गयी और दूसरे ज्योंही पेंशवा ने अपना स्थान छोड़ा, त्योंही नारु पन्त आप्टे के सेनापतित्व में मराठा सवारों का एक दस्ता इस तेजी से बृटिश सेना की ओर झपटा कि प्रतीत हुआ कि वे आक्रमण ही करने जा रहे थे, परन्तु बृटिश सेना के एक दम पास तक पहुँच कर वे घूमे और काफी दूर चले गये। शायद इस प्रदर्शन का यही तात्पर्य था कि बृटिश सेना देख ले कि मराठों की उस विशाल वाहिनी के आगे उसकी क्या स्थिति थी। इस प्रकार त्रस्त करके उन्हें जोड़ने में सुविधा होने की आशा थी। उस समय मराठों को यह विश्वास दिला सकना कठिन था कि उनके सामने निर्बल सी दीख पड़ने वाली ३ बटैलियनों में से एक ही उन्हें अगले तीन महीनों में ही मैदान से भगा देगी।

दशहरा के बाद का प्रत्येक दिन अपने पहले से अधिक महत्वपूर्ण होता गया और अक्तूबर २५ तक पूना में चारों ओर से सैनिकों के ठट्ट के ठट्ट आने लगे। रात दिन इन सेनाओं का आना चालू रहने लगा। जनरल स्मिथ की सेना अभी कुछ दूरी पर थी और बम्बई की सेना तो १० दिन के पहले पूना तक पहुँच ही न सकती थी। स्मिथ की सेना पूना की उत्तरी सीमा के पास ही थी। आर्थर वेल्सली ने पूना की रक्षा के लिये इसी स्थान को पसन्द किया था, परन्तु इस समय परिस्थितियां बदल चुकी थी। इस स्थान और पूना के बीच में बाग लग गये थे, बाड़े बन गये थे और कितनी ही ऊँची कांटेदार झाड़ियां उग आयी थीं, जिनके कारण गोले तो चलाये ही नहीं जा सकते थे। इन बाधाओं से दोहरी असुविधा थी। एक तो हमारी सेना पर आक्रमण करना आसान हो गया था और हमारे भी सिपाही हमारे अनजान में ही हमें छोड़ कर चले जा सकते थे। सवारों के छोटे छोटे दल आ आ कर बृटिश छावनी के चारों ओर छिटपुट पड़ाव डाल रहे थे। धीरे धीरे इनकी संख्या बढ़ती जाती थी। गोसाइयों के एक बड़े पैदल दल ने हमारी छावनी की बगल पर ही पड़ाव डाल दिया। संगम बृटिश छावनी से थोड़ी दूर पर था। विंचूरकर की सेनाओं ने रेजीडेंसी एवम् बम्बूरी गांव के बीच में पड़ाव डाल दिया था। उसके साथ पैदल सेना भी थीं। बृटिश सेनापतियों को मिलने वाली सूचनाओं का सार भी यही थी और लक्षण भी इसी प्रकार के दिखायी पड़ रहे थे कि बृटिश छावनी पर शीघ्र ही हमला होने वाला था।

जब तक बृटिश सेना को यूरोपियन रेजिमेंट नहीं पहुँचाया उसके पूर्व की कई रातों से जान बूझ कर ऐसे प्रदर्शन किये जा रहे कि जिनका यही तात्पर्य होता था कि शीघ्र ही मराठा सेनाएँ आक्रमण करने वाली थीं। २८वीं अक्तूबर को तो उन्होंने तोपें भी तैयार कर लिया, सवार तैयार हो गये और पैदल सेना भी तैयार हो गयी। यह सूचना मि० एलफिंस्टन को अर्द्धरात्रि के पूर्व ही दे दी गयी थी

और ऐसे समय में बृटिश अधिकारियों को अपनी सुरक्षा के लिये आवश्यक जान पड़ने लगा कि पहले वे ही आक्रमण कर दें। यह एक संकटपूर्ण घड़ी थी और बृटिश छावनी और रेजिडेंसी में सन्नाटा था। बृटिश सैनिकों के स्वभाव में शान्ति भावना इतनी बढ़ गयी थी कि वे इस संकट के समयभी सुखपूर्वक सोये हुए थे परन्तु नगर के दक्षिण में पेशवा की जो छावनी थी उसमें घोर हलचल मची हुई थी। मि० एलफिंस्टन को तब भी पेशवा पर अविश्वास नहीं था। वह एक चबूतरे पर खड़ा हो कर इस शोर शराबे को सुन रहा था। वह जानता था कि दूसरे मराठा सरदार भी पेशवा का विश्वास नहीं करते थे और सिन्धिया तब तक कुछ न करेगा जब तक पेशवा पूरी तरह स्वयम् वचनवद्ध न हो जाय। एलफिंस्टन यह भी जानता था कि गवर्नर जनरल से सिन्धिया की संधि वार्ता चल रही थी, इसलिये वह ऐसा कुछ न करना चाहता था, जिससे हिन्दुस्तान की स्थिति पर तनिक भी कुप्रभाव पड़े। वह यह भी नहीं चाहता था कि सिन्धिया के उन गुप्त दूतों को इस बात का पता चल जाय कि युद्ध अवश्यम्भावी है जो पेशवा से वार्ता करने के लिये पूना में ठहरे हुए थे। रात बीत रही थी। एलफिंस्टन ने कुछ और देर तक प्रतीक्षा करना ठीक समझा। मेजर विल्सन बम्बई से आने वाली सेना का सेनापति था। उसे सूचना दे दी गयी थी और वह तेजी से पूना की ओर बढ़ा आ रहा था।

अगली सुबह पूना की बृटिश सेना के सेनापति को तैयार रहने का आदेश दिया गया। उसे सावधान कर दिया कि तैयारी गुप्त ही रहे। तीसरे पहर तीन बजे एलफिंस्टन ने पेशवा को संदेश भेजा कि उसके (पेशवा के) सवार ब्रिटिश छावनी की चतुर्दिक से घेरसे रहे थे और बृटिश सेना ने इस प्रकार के व्यवहार को कभी सहन नहीं किया था और न कभी किसी ने ऐसा करने का साहस ही किया था। एलफिस्टन ने यह भी कहलवाया कि मिले जुले सैनिकों में कोई झगड़ा न हो जाय इसलिये समूची बृटिश सेना छावनी में बन्द कर दी गयी थी, जब तक कि महाराज के सवार उस स्थान से पीछे नहीं हटते। यह सन्देश कैप्टेन फोर्ड ने पेशवा को दिया जिससे वहां बड़ी हड़बड़ी फैली। गोखले ने राय दी कि उसी समय हमला कर देना चाहिये। पेशवा ने यह कह कर हिचकिचाहट प्रगट की कि बृटिश सिपाहियों को तोड़ने के लिये उसे कुछ और वक्त चाहिये था। उसकी राय में बृटिश सेना शान्त जी, दूसरी सेना दूरी पर थी और स्वयम् उसकी सेना नित्यप्रति बढ़ रही थी। इस प्रकार के तर्क वितर्कों के के बीच एक रात और भी बीत गयी। अगले दिन शाम को चार बजे यूरोपियन रेजिमेंट छावनी में घुसी। मि० एलफिंस्टन ने इस असुविधापूर्ण स्थिति से अपनी सेनाओं को हटा कर अधिक सुविधापूर्ण स्थिति में ले जाने को सोचा। जनरल स्मिथ ने पहले ही वहां से ४ मील दूरी पर स्थित खिड़की नामक गांव को पसन्द किया था। उस समय जनरल स्मिथ की बात की गम्भीरता समझी गयी और पहली नवम्बर को सारी अंग्रेजी सेना खिड़की में पहुँच गयी और चूंकि रेजिडेंसी नगर के समीप थी अतः उसकी सुरक्षा के लिये दो सौ पचास सैनिक भेज दिये गये। पेशवा को उस स्थिति का पता था परन्तु यह समझकर उसकी सेना का साहस अत्यधिक बढ़ गया कि अंग्रेजी सेना भयभीत होकर हट गयी है। मराठों ने छावनी को लूट लिया और दिन के उजेले में बम्बई जाते हुए यूरोपियन मुसाफिर को लूट लिया। पेशवा के मंत्रियों की भाषा एकदम बदल गयी थी। उसके सैनिक राहगीरों को अपमानित करने लगे और अंग्रेजी सेना के सैनिक उदासीन हो आगे बढ़ने लगे। उनकी राय थी कि अंग्रेजी सेना पुरानी छावनी के बीच में पड़ाव डालें। इसके लिये कुछ सवार आगे बढ़ें। पेशवा के पास दूसरा सन्देश भेजा गया कि अंग्रेजों की स्थिति परिवर्तन का गलत अर्थ न लगाया जाय और यदि पहले की ही तरह उसकी सेना आगे बढ़ी तो उसे दुश्मन समझकर समुचित कार्यवाही की जायगी।

इस समय तक पेशवा को सूचना मिली थी कि बृटिश सैन्य के सिपाही पूरी तरह फूट चुके हैं। पेशवा का मंत्री मोरो दीक्षित कैप्टेन फोर्ड का मित्र था, अतः केवल उसकी जान बँचाने के लिये उसने ४थी नवम्बर को उसे सूचित किया कि पेशवा की राय थी कि अंग्रेजी दस्ते का एक भी सिपाही जीवित न बचने पावे। उसने फोर्ड को यह भी राय दी कि वह युद्ध में भाग न ले तो उसकी जान बच जायगी। कैप्टेन फोर्ड ने उससे कहा कि वह शीघ्र ही देशवासियों में मिल जायगा। इस बात के लिये उसने फोर्ड से भी इस बात की प्रतिज्ञा चाही कि यदि युद्ध का विपरीत परिणाम हुआ तो फोर्ड दीक्षित के परिवार की रक्षा करेगा। कैप्टन फोर्ड का नगर से बराबर सम्पर्क बना रहा करता था। रेजिडेंसी के भी सब समाचार एलफिन्टन उसे भेजा करता था, फिर भी उसे इसका तिलमात्र भी विश्वास नहीं था कि पेशवा युद्ध छेड़ देगा। इसलिये इस समाचार को पाकर उसे अत्यधिक आश्चर्य हुआ। पेशवा अब भी युद्ध को कुछ समय के लिये टालना चाहता था क्योंकि उसे आशा थी कि शीघ्र ही पटवर्द्धन और अप्पा देसाई आ जायँगे परन्तु उनके आने के पूर्व युद्ध छिड़ ही गया। जनरल स्मिथ अपनीं पूर्व स्थिति पर ही था। उसे खटका था कि युद्ध शुरू हो जायगा अतः बिना हिसलाय की आज्ञा की प्रतीक्षा किये ही उसने अपनी सेना को फुलतम्बा में जमाकर दिया। अपनी लाइट बटालियन को उसने सिरूर मे कर दिया। रेजिडेण्ट से उसने यह तै कर लिया था कि यदि समाचारो के आदान प्रदान में बाधा पड़ जाय तो स्मिथ को समझ जाना चाहिये कि पूना की सेना पर आक्रमण हो गया। नबम्बर ३ की रेजिडेण्ट ने थोड़ी सी सहायक सेना और सिरूर की लाइट ब्रिगेड को पूना की ओर बढ़ने का आदेश दिया। ज्योंही इस परिवर्तन की सूचन पेशवा को मिली, त्योंही उसने तुरन्त आक्रमण करने का निश्चय किया। उसने भी अपनी तैयारियों को अन्तिम रूप से पूरा किया, किन्तु ५वीं नवम्बर की सुबह उसने एक सन्देश द्वारा रेजिडेण्ट की शंकाओं को हटाना चाहा। उसने कहलवाया कि खिड़की की तैयारियों के समाचार से उसकी सेना में सनसनी फैल गयी थी, जब कि वह पार्वती के मन्दिर में पूजा करने को जाने वाला था और उसकी सेनाएँ मार्ग में दोनों ओर खड़ी होने के लिये तैयार हो रही थीं। तीसरे पहर तक उसके सभी अफसर उसके महल में पहुँच गये थे। पेशवा का व्यक्तिगत कर्मचारी विट्ठोजी गायकवाड़ एलफिस्टन की सेवा में उपस्थित हुआ और उसने कहा कि पेशवा की सेना अंग्रेजी सेना को देखकर अनियंत्रित हो गयी थी। उसने कहा कि यदि रेजिडेण्ट यूरोपियन ब्रिगेड को उस स्थान से फौरन ही नहीं हटा देता तो पेशवा स्वयम् पूना छोड़कर कहीं और जगह चला जायगा। पेशवा ने यह भी कहलवाया कि यूरोपियन सेना पेशवा द्वारा निर्धारित स्थान पर चली जाय। रेजिडेण्ट ने जवाब दिया कि पेशवा को इस प्रकार का आदेश देने का कोई अधिकार नहीं था। उसने यह भी कहा कि प्रतिज्ञा के अनुसार पेशवा की सेना की सीमा पर होना चाहिये न कि पूना में। अन्त में गायकवाड़ ने रेजिडेण्ट से कह दिया कि यदि वह पेशवा की बात नहीं मानता तो परिणाम का उत्तरदायित्व उसी पर होगा। इसके बाद अफसर अपनी सेनाओं में चले गये और पेशवा पार्वती के मन्दिर को चला गया। गायकवाड़ भी चुपके से रेजिडेंसी से चला गया। फौरन ही रेजिडेंसी को बचाने की बात हुई मगर असम्भव समझकर उसकी रक्षा की बात को छोड़ दिया गया। समूची सेना को खिड़की ले जाने का निश्चय किया गया। रेजिडेंसी से मराठों की सेना का कोई भाग नहीं दिखायी पड़ रहा था। थोड़ी सी ऊँचाई से देखने पर मालूम हुआ कि पूना के पश्चिम वाला मैदान घुड़सवारों से भर गया था।

रेजिडेण्ट ने सारी भूमि को खुद घूम घूम कर देखा था। उसे पता था कि एक स्थान से थोड़ी कठिनाई से ६ पौण्ड वाली तोपो को भी पार उतारा जा सकता था। आक्रमण की स्थिति में यह

प्रबन्ध किया गया था कि कैप्टेन फोर्ड ले० कर्नल से मिल जायगा। रेजिडेण्ट सबको समझा रहा था कि मराठों से विजय प्राप्त करने के लिये प्रथम ही आक्रमण कर देना चाहिये। ले० कर्नल बर की इच्छा थी कि सुरक्षात्मक युद्ध लड़ा जाय, परन्तु उसे आज्ञा थी कि वह आगे बढ़ कर आक्रमण करे। उसने सैनिक सामानों की रक्षा का समुचित प्रबन्ध करके प्रस्थान किया। पूना की सड़क पर एक मील के करीब चलकर वह धापुरी की ओर मुड़ गया ताकि आसानी से कैप्टेन फोर्ड से मिला जा सके और शत्रु उसके सामने पड़ जाय। थोड़ी देर बाद ही कर्नल बर आक्रमण के लिये बढ़ा। लाइट ब्रिगेड की तोपें चलने लगी थी और मराठे भौंचक थे। शहर से निकलने के पूर्व किसी प्रकार के झटके से उनका झंडा (पताका) गिर गया था। इसे अपशकुन जान कर उनका उत्साह मर गया था। एक बीर सेनापति की भावना से गोखले बराबर इधर उधर आ जाकर अपनी सेना को आदेश दे रहा था। पेशवा की हिम्मत पस्त हो गयी थी। उसने गोखले से कहलवाया था कि वह युद्ध में पहल न करे, परन्तु गोखले ने स्थिति की अनिवार्य मानकर ६ तोपों को पंक्तिबद्ध करके उनसे गोले फेंकने लगा। ऊँटों पर लदी तोपों का एक दस्ता दाहिनी ओर बढ़ा और उसके सवार सामने बढ़े। ऐसा प्रतीत हुआ कि उन्होंने अँगरेजी सेना को तीन ओर से घेर लिया। सवारों और ऊँटों की द्रुतगति के कारण उनकी पैदल सेना पिछड़ गयी थी। केवल डीपेराँ नामक एक पुर्तगाली तिर्छे रास्ते से सदलबल आ पहुँचा था। अंग्रेजी सेना बाड़े की आड़ में थी अतः समोप पहुँच जाने के पूर्व तक यह दल अंग्रेजी सेना से अदृश्य हो रहा। यह दल ७वीं रेजिमेंट की पहली बटालियन के सामने पहुँचा। ६वीं रेजिमेंट की दूसरी बटालियन भी समीप ही थी। शत्रु के दिखाई पड़ते ही दूसरी रेजिमेंट बढ़ी और उत्साहाधिक्य में मुख्य सेना से अलग हो गयी। गोखले ने ६ हजार सवारों की सुरक्षित सेना को इस पर हमला करने का आदेश दिया। इसको आगे बढ़ने देने के लिये मराठों की तोपे बन्द हो गयीं। सवार दस्ता गोलियां बरसाता और सहता हुआ ७वीं रेजिमेंट के सामने आ गया। यह सेना कर्नल बर की अधीनता में अनेक बार लड़ चुकी थी। बर को लड़ने की बीमारी दबा चुकी थी, परन्तु वह युद्ध क्षेत्र में कार्यरत था। मराठा सवारों के प्रस्थान को पहले उसी ने देखा अतः उसने अपने सैनिकों को डी पेराँ का पीछा करने से रोका और उन्हें गोले न चलाने का आदेश दिया। सौभाग्य से मराठा सवारों के रास्ते में एक ढलान थी, जिसका पता दोनों ही दलों को नहीं था। इस ढलान पर पहुँच कर मराठों के धोड़े लुढ़कने लगे और रुकते रुकते भी कुछ सौ सवारों का अंगभंग हो गया। इसी समय अंग्रेजी तोपों ने भी इसी स्थान पर गोले फेंकना शुरू कर दिया। मराठा सवारों की घबराहट देखने योग्य थी और वे लक्ष्य तक पहुँच ही न सके। केवल इने गिने सवारों को संगीनों का मजा मिला शेष या तो लौट गये या मर कट गये। कुछ सवार बाईं ओर घूमे जैसे स्टोर को लूटना चाहते हो, परन्तु वे भी भगा दिये गये। इस यूरोपियन रेजिमेन्ट के पहुँचने के पहले ही देशी सिपाहियों ने मराठा हमले को उन्हें भारी क्षति पहुँचा कर बिफल कर दिया था। रात्रि आ जाने के कारण दोनों ही सेनाएँ लौट पड़ी। अब तो गोखले का साहस नहीं पड़ रहा था कि वह नवीन आक्रमण करे। कैप्टेन फोर्ड के अधीन मराठों ने उसका साथ छोड़ दिया। सामयिक सेनाओं की एक टुकड़ी भी छूट गयी परन्तु स्थायी (नियमित) सैनिकों में से एक भी न हटा। ब्रिटिश सेना के ८६ व्यक्ति तथा मराठों के ५०२ सैनिक तथा इससे कुछ ही कम घोड़े हताहत हुए।

इधर युद्ध शुरू हुआ उधर पेशवा का वास्तविक व्यक्तित्व सामने आ गया। रेजीडेन्सी लूटी जा कर जला दी गयी और रेजिडेण्ट के पुस्तकालय की एक ईंट भी अपनी जगह पर न रही। हमारे कुछ सैनिकों के परिवारों को भी लूटा गया। रेंजिडेंसी के बगीचे बर्बाद हो गये। बाबा जी पन्त नामक एक

ब्राह्मण ने दो यूरोपियन यात्रियों को पकड़कर फांसी दे दी। रेजिडेण्ट ने तुरन्त ही गोखले को लिखा कि यदि किसी भी व्यक्ति ने एक भी बृटिश अफसर को फांसी दिया तो उसका भयंकर बदला लिया जायगा।

ज्योंही जनरल स्मिथ ने देखा कि समाचारों का आदान प्रदान बन्द हो गया था, अतः वह पूना की ओर बढ़ा। जब वह सिरूर से चला था तभी मराठे दस्ते उस पर छाये हुए थे। स्मिथ की सेना पैदल थी अतः मराठा सवारों का दल उसकी प्रगति में बराबर बाधा डाल रहा था। वह १३ नवम्बर को पूना पहुँचा और १५वीं नवम्बर की सुबह को पेशवा पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगा। इस समय तक पेशवा की सेना में दक्षिण के जागीरदार भी आ गये थे और पुरानी छावनी के पास हैदराबाद की सड़क पर पड़ाव डाल चुके थे। नदी को पार करके आक्रमण करने में कुछ कठिनाइयों का ध्यान करके १५वीं नवम्बर को किया जाने वाला आक्रमण स्थगित कर दिया गया १६वीं नवम्बर को सूर्यास्त के समय एक दस्ते को नदी पार करने की आज्ञा दी गयी, ताकि उस सेना से अगली सुबह को आक्रमण किया जा सके। पेशवा की सेना ने इस सेना पर छापा मारा और ८४ आदमियों को गंवाकर ही यह सेना घोरपड़े नामक गाँव में पहुँच सकी। १७वी नवम्बर को स्मिथ ने आक्रमण की तैयारी हो जाने पर पाया कि पेशवा सतारा की ओर चला गया था और उसका कैम्प खाली पड़ा था। पूना नगर दिन भर घिरा रहा और नगर में शान्ति छायी रही। स्मिथ पांच दिनों तक पूना में पड़ा रहा। इसी बीच उसने बम्बई सरकार से बात करने का प्रयत्न किया और सिंहगढ़ के पास से मराठों की कई तोपें छिनवा ली। सेना ने उन लोगों को अवश्य लूट लिया जो मालमते सहित पूना से भाग कर पहाड़ों में छिपे थे।

२२वीं नवम्बर को सवारों का एक दस्ता स्मिथ से मिला और तब उसने पेशवा का पीछा करना शुरू किया जो माहोली में था और सतारा के राजा को लाने के लिये एक सैन्य दल वसोटा भेजा था, परन्तु उसके आने के पूर्व ही वह वहां से चल पड़ा था, क्योंकि जनरल स्मिथ के आने का समाचार उसे मिल गया था। वह पंढरपुर की ओर चला गया था और सीमा के किनारे नागघाट तक जा पहुँचा और वहां बाम्हनवाड़ी में रुका था। देश के इस भाग में पहाड़ों की अधिकता है और सभी दर्रों पर त्र्यम्बकजी का अधिकार था और वह इस समय पेशवा से मिल चुका था। सतारा का राजा भी आ चुका था। स्मिथ उसका पीछा करता हुआ अहमदनगर, निम्बादेवराघाट होता हुआ संगमनेर तक जा पहुँचा। यहां उसे पता चला कि वह उत्तर की तरफ बढ़ गया है अतः वह बरसुराघाट पर चढ़ा और पेशवा के पीछे पीछे फिर पूना की ओर चल पड़ा परन्तु इसी समय एक महत्वपूर्ण बात हो गयी। जनरल फ्रिजलर दक्षिण की सुरक्षित सेना के साथ एडोनी से पंढरपुर की ओर बढ़ रहा था। जनरल स्मिथ ने सोचा कि ऐसा न हो कि वह फिर अधिक आगे बढ़ जाय और मराठा सेना घूमकर कहीं कोंकण स्थित बम्बई की छोटी सी सेना पर न टूट पड़े। अतः इस सम्भावना को रोकना जरूरी जान पड़ा। ऐसी स्थिति में पूना स्थित कर्नल बर को आदेश दिया गया कि यदि उसे इस बात की निश्चित सूचना मिले कि पेशवा कोंकण की ओर बढ़ रहा है तो वह कोंकण स्थित ले० कर्नल आर्थर की सहायता में आवश्यक सेना भेज दे और यदि उसे आवश्यकता पड़े तो वह सिरूर स्थित प्रथम रेजिमेंट की दूसरी बटालियन बुला ले। इधर बर को सूचना मिली कि पेशवा सीधे पूना आ रहा है अतः उसने झट सिरूर की सेना को बुला लिया।

सिरूर स्थित जो सेना ३१वीं दिसम्बर को ८ बजे रात को पूना की ओर चली उसमें पांच सौ सिपाही, दो छः पाउण्ड वाली तोपें, मद्रास तोप खाने के २४ यूरोपियन, तीन सौ अस्थायी (सामायिक)

सवार कैप्टेन फ्रांसिस स्टाप्टन के सेनापतित्व में थे। यह सेना सारी रात चलती रही और पहली जनवरी सन् १८१८ की सुबह को उस ऊँचे स्थान पर पहुँच गयी जो कोरीगांव के उत्तर में भीमा के तट पर था। वहाँ उसने देखा कि २५ हजार मराठा सवार भीमा के दूसरे तट पर डटे हुए थे। फिर भी वह तट की ओर चलती रही। पेशवा की सेना ने सोचा कि वह नदी को पार करना चाहती थी, परन्तु ज्योंही वह गाँव के पास पहुँचा, वह रुक गया और मोर्चा बन्दी करके शत्रु की गतिविधि परखने लगा। यह गाँव नदी तट से पचास साठ गज दूर था और समूचे तट पर काफी चढ़ाई थी। पेशवा की ५ हजार के करीब पैदल सेना मोरघाट की ओर बढ़ रही थी; परन्तु अंग्रेजी सेना को देखते ही उसे वापस बुलाने को सवार रवाना कर दिये गये थे। उसके वापस आते ही छः छः सौ चुने हुए अरबों, गोसाइयों एवम् अस्थायी पैदल सैनिकों के तीन दल तीन विभिन्न लक्ष्य पर आगे बढ़े। उनकी रक्षा में दो तोपें भी थीं। उनकी तोपों ने गाँव पर भी गोले फेंके, जिससे कितने ही घर जलने लगे। स्टाप्टन को यह पता नहीं था कि गाँव के बीचोबीच दीवालों से घिरा हुआ एक चौक था। शत्रु को उस स्थान का पता था अतः उस पर उसका अधिकार हो गया और उन्हें वहाँ से किसी तरह नहीं हटाया जा सका। मराठा सेना शीघ्रता पूर्वक नदी और अंग्रेजी सेना के बीच में आ गयी और कैप्टेन स्टाप्टन के पास रसद की कमी थी। रात भर के चलने से थकी, भूखी, प्यासी उस सेना ने कड़ी धूप में जिस धैर्य का सहारा लिया वह बृटिश भारत के सैनिक इतिहास में अभूतपूर्व था। इंच इंच पर युद्ध हुआ, गाँव की गलियाँ कितनी ली और छीनी गयीं परन्तु अन्त में मराठे एक मन्दिर तक पहुँच गए, जहाँ तीन बृटिश अफसर आहत अवस्था में पड़े थे, जिनमें से मि० बिग्रेट को मार डाला गया और थोड़ी देर बाद लें० जोंस ने मन्दिर पर अधिकार करके शेष दोनों को मुक्त किया। प्यास ने सभी को और विशेष कर घायलों को बेहाल कर रक्खा था। कुछ बड़ी वीरतापूर्वक लड़े हुए तोपचियों ने तो यहाँ तक कहा कि अगर शर्तें की जा सकें तो आत्मसमर्पण कर दिया जाय। इधर शत्रु ने झपट कर एक तोप पर भी अधिकार कर लिया। आहत पड़े ले० थामस पैरिसन ने तोप का समाचार पाकर अजीब कार्य किया। उसकी पसली में गोली लगी थी, परन्तु वह उठा और हाथ में संगीन लेकर सिपाहियों को पीछे आने का आदेश दिया और स्वयम् मारता काटता अरब सवारों में तब तक घुसता गया, जब तक दूसरी गोली ने उसका काम तमाम न कर दिया। उसके सिपाही भी बढ़े और अपनी तोप को उन्होंने फिर ले लिया। कैप्टेन स्टाप्टन के उत्साह जनक शब्दों को सुनकर सैनिकों ने एक स्वर से कहा "हम अन्त तक लड़ेंगे"। युद्ध फिर शुरू हुआ। ब्रिटिश सेना में केवल तीन अफसर ही काम के लायक रह गये थे। वे डटकर गाँव की रक्षा करते रहे। शाम तक उनकी दशा निराशाजनक हो गयी। कैप्टेन बर को इस स्थिति की सूचना मिल चुकी थी। पूना से समय पर सहायता न पहुँच सकी। रात को हमले का जोर कम हो गया। इधर कुछ पानी का प्रबन्ध हो गया। रात के ६ बजे तोपों का चलना बन्द हो गया और मराठों ने गांव को खाली कर दिया। अगले दिन भी मराठा सैन्य गाँव के चतुर्दिक मंडराता रहा। ज्योंही सुबह की सफेदी बढ़ी, स्टाप्टन ने गोलाबारी शुरू कर दी। ऐसा प्रतीत हुआ कि शत्रु पूना की ओर बढ़ रहा था। स्टाप्टन भी अधिकांश घायलों को लेकर गांव खाली किया और पूना की ओर बढ़ने का प्रचार करके सिरूर की ओर घूम गया, जहाँ वह अगली सुबह पहुँच गया। उसके १७५ आदमी हताहत थे और मराठों के पाँच छः सौ। एक तिहाई घोड़े मारे जा चुके थे। युद्ध काल में पेशवा वहाँ से २ मील दूर एक ऊँची जगह पर बैठा था। गोखले, देसाई तथा त्र्यम्बक युद्ध का संचालन कर रहे थे। एक बार तो त्र्यम्बकजी गाँव में भी दिखायी पड़ा था। बाजीराव बारबार कहता था, "हमारे सेनापतियों का समूची अंग्रेजी

सेना को हराने का दावा कहाँ गया, जो एक बटालियन को भी नहीं जीत पा रहे हैं" । राजा सतारा धूप से बचने के लिये एक चंदोवा तले पास में ही बैठा था । बाजीराव ने यह कहकर चंदोबा हटवा दिया कि "कहीं अंग्रेज चंदोबे को ही लक्ष्य मानकर गोली न चलाने लगें" ।

कोरीगाँव को छोड़कर पेशवा कर्नाटिक की ओर बढ़ा । जनरल फ्रिजलर पीछे ही था । वह सालपी घाट से ही उसके पीछे लग गया था । जिस समय पेशवा गतपुरवा पहुँचा तो उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह समूचा क्षेत्र बृटिश अधिकार में था । वास्तविकता यह थी कि पूना की संधि के अनुसार इन जिलों का हस्तान्तरण कराने के लिये मद्रास से मेजर मनरो भेजा गया था और स्थिति का लाभ उठा कर थोड़े से अस्थायी सैनिकों को इकट्ठा करके उक्त क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था ।

पेशवा समझता था कि दक्षिण में उसे मैसूर के राजा की मदद मिलेगी परन्तु इधर से निराश होकर और जनरल मनरो को सफल देख कर वह घूमा । जनरल फ्रिजलर को धोखा देता हुआ कृष्णा पार कर गया जहाँ थोड़ी सी सेना के साथ स्मिथ पड़ा था । स्मिथ ने उसे दबाया और वह फिर सालपी घाट पर जा पहुँचा और शोलापुर की ओर जा पहुँचा । जनरल स्मिथ रुक कर फ्रिजलर की प्रतीक्षा करने लगा । इन दिनों सारा काम एलफिंस्टन की राय से हो रहा था और उसी के आदेश से स्मिथ रुक गया था ।

जब गवर्नर जनरल हेस्टिंग्ज को पेशवा की कार्यवाहियों का पता चला तो उसने इस वंश के राज्य को ही खत्म कर देने का निश्चय किया । उसके निश्चय का एक अंग यह भी था कि सतारा के बन्दी राजा को गद्दी पर बैठाकर उसे पेशबा के राज्य का छोटा सा भाग दे कर देश के लोगों को सन्तुष्ट कर दिया जाय, क्योंकि बिना ऐसा किये कम्पनी के जिम्मे कुछ ऐसे लोगों के खर्च मी आ पड़ते, जिन्हें काम देना उसके लिये आवश्यक था । एलफिंस्टन को पूरे अधिकार देकर उसे उपरोक्त तात्पर्य के आदेश दे दिये गये और उसे ही वहाँ का कमिश्नर बना दिया गया । स्मिथ और फ्रिजलर की सेनाएँ सर थामस हिसलाय के नियंत्रण से हटा दी गयीं और कमिश्नर के नियंत्रण में दे दी गयी । जनवरी के प्रारम्भ में ही एलफिंस्टन को ये सूचनाएँ मिल चुकी थीं, परन्तु कई कारणों से इनका कार्यान्वियन तब तक के लिये रोक दिया था जब तक और अनुकूल समय न आ जाय । इन दिनों एलफिंस्टन के सारे प्रयत्नों का यही आधार रहा कि वह मराठा जाति को यह सभझा दें कि अँगरेजों के शासन में ही उनका भला होगा । अब तक पेशवा के पीछा करने का केवल यही परिणाम निकला था कि वह राजा न रह कर शरणार्थी हो गया था, जब कभी पेशवा घिर जाता था तो गोखले नाना उपायों से अंगरेजो सेना को अटका लेता था । कभी कभी छोटे मोटे युद्ध भी हो जाते थे परन्तु इनसे किसी को कोई लाभ न हो पाता था ।

रहमत पुर में स्मिथ और फ्रिजलर की सेनाएं मिली और स्मिथ के सेनापतित्व में सतारा की ओर बढ़ीं जिसे सर किये बिना मराठा जाति को यह विश्वास दिलाना कठिन हो जाता कि अङ्गरेज महाराष्ध्र को जीत चुके थे । इस स्थान पर पहुँच कर बड़ी ही सुविधा से बिना किसी विरोध के किले पर अधिकार कर लिया गया । किले पर अङ्गरेजी झंडा फहराने लगा मगर दूसरे ही दिन उसे उतार कर भगवा झंडा फहरा दिया गया । कमिश्नर ने एक ब्रिटिश सरकार की ओर से प्रचार पत्र प्रकाशित करवाया, जिसमें बाजीराव की तमाम कार्यवाहियों को बताया गया था और इस बात के कारण भी दिखाये गये थे कि उसे गद्दी से क्यों हटाया जा रहा था । इसी पत्रक के अनुसार उसे दक्षिण के सभी कार्यो से अलग किबा गया था, उसके समूचे क्षेत्र पर अधिकार कर लिया गया था, सारे क्षेत्र कम्पनी ने ले लिया था और केवल एक छोटा सा भाग राजा सतारा के अधिकार में था इस पत्रक में कहा

गया था किसी भी धर्म के साथ हस्तक्षेप नहीं जायगा, सभी के अपने अधिकार पूर्ववत् रहेंगे यदि वे बाजीराव से अपना सम्बन्ध विच्छिन्न कर लेगा और दो माह के भीतर अपने निवास स्थान पर लौट जायगा, पैत्रिक उत्तराधिकार युक्त सीरदारी को खत्म कर दिया गया था, यदि किसी ने पेशवा की कोई भी मदद की तो उसके सभी अधिकार छीने जा सकते थे। जो जागीरदार ब्रिटिश सरकार की अधीनता स्वीकार कर लेंगे, उनकी जागीरें उन्हीं के पास बनी रहने दी जायँगी और यह उनकी वफादारी का पक्का प्रमाण होगा।

जिन पाठकों ने अब तक के विवरण को सुचारू रूप से हृदयंगम किया है वे समझ जायँगे कि इस प्रकार का प्रचार पत्र कितना प्रभाव पूर्ण हो सकता था, विशेषतया उस स्थिति में, जब कि उसे लागू करने के लिये सैनिक शक्ति भी थी।

इस कार्यवाही में संलग्न सेना को दो भागों में बाँट कर एक को पेशवा का पीछा करने पर तथा दूसरे को पेशवा के किलों को अधिकृत करने पर नियुक्त किया गया। पीछा करने का काम जनरल स्मिथ को दिया गया। जनरल फ्रिजलर ने दूसरा काम सँभाला। सबसे पहले उसने पूना के दक्षिण के पहाड़ी किलों पर आक्रमण किया। उधर हिस्लाय की सेना के एक दस्ते ने चाकन के किले को घेरे रक्खा था। दूसरी सेनाएँ भी अलग अलग स्थानों को अधिकृत करने में लगी हुई थीं। कर्नाटक में जनरल मनरो सफलता पूर्वक कार्यरत था। कोंकण में यह काम प्रचार कर रहा था। बानकोट के दक्षिण में बम्बई की एक सेना इसी प्रकार के कार्यों में लगी हुई थी।

पूर्व अनुच्छेद में वर्णित कार्यों में जिन दिनों ब्रिटिश अधिकारी लगे हुए थे, उन दिनों पेशवा शोलापुर में था और वह उसे सदाशिव भाऊ के कारकुन से भारी रकम मिली थी। युद्ध शुरू होने के थोड़े ही दिनों बाद भाऊ की मृत्यु पूना में ही हो गयी थी। उसने बार बार पेशवा को उसकी कार्य वाहियों के विरुद्ध सावधान किया था और बताया था कि अङ्गरेजों से मिल कर चलने में ही उसकी भलाई थी परन्तु पेशवा उसे भी बराबर धोखा देता रहता था।

शोलापुर निवास काल में ही नागपुर का गनपतराव एक सेना के साथ पेशवा से आ मिला था। उस समय स्मिथ मराठा सेना की ही ओर आ रहा था। पेशवा भी पश्चिम की ओर चला। गोखले का विश्वास था कि या तो यह अङ्गरेजों को बचा कर निकलेगा और यदि आवश्यक हुआ तो उसे चीर कर। स्मिथ की प्रगति भी पूरी तेजी पर थी। १६ वीं फर्वरी को वह शोलापुर आ गया और यहीं उसे पता लगा कि पेशवा शोलापुर से पंदरपुर की ओर जा रहा था, अत: पेशवा पर जा धमकने के लिये सारी रात उसकी सेना चलती रही। सबेरे उसे पता चला कि पेशवा अष्टा की ओर चला गया था। शेष सेना को तेजी से पीछे आने का आदेश देकर वह सवारों को लेकर तेजी से चला और शाम को आठ बजे उस स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ से मराठे चलने को हो रहे थे। गोखले ने पेशवा को विश्वास दिलाया कि वह प्रस्थान करे और उसका पृष्ट भाग पूर्ण सुरक्षित रहेगा। गोखले ने देसाई को पेशवा की रक्षा का भार दिया और स्वम् पाँच सौ सवारों के साथ मरने मारने को तैयार हो गया। दोस्तों ने उसे समझाया कि पूरी तरह तैयारी किये बिना इस तरह अड़ने से काम नहीं बनेगा, परन्तु गोखले ने साफ कह दिया "जो कुछ भी होना है वह आज ही और यहीं हो जाय।" दो चार गोले स्मिथ की सेना पर फेंककर गोखले अपने सवारों को लेकर टूट पड़ा। अभी बृटिश सैन्य जम कर खड़ा भी न हुआ था कि गोखले आ धमका और मराठों के भालों की मार से उनमें काफी घबराहट फैल गयी, परन्तु कैप्टेन डावेस ने उनको सम्भाला और करारा हमला करके मराठों को तितर बितर कर दिया। गोखले प्रशंसनीय साहस के साथ अन्त तक लड़ता रहा और एक साधारण सैनिक के हाथ मारा

गया । वास्तव में अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार जब वह मर गया, तब भी उसकी तलवार दृढ़ता से उसकी मुट्ठी में बँधी हुई थी । गोविन्द राव घोरपड़े और आनन्दराव बबर भी मारे गये । कई मील तक मराठों का पीछा करके कई हाथी, बहुत सा सामान और कुछ घोड़े छीन लिये गये । इसी अवसर पर महाराज सतारा और राजमाता को भी बाजीराव की कैद से मुक्ति मिली । इस समय मराठे होल्कर के एक सर्दार रामदीन की प्रतीक्षा कर रहे थे । पेशवा की तोपों के साथ उसकी पैदल सेना कुराप पहुंच चुकी थी, परन्तु गोखले की मृत्यु ने पेशवा के उत्साह को भंग कर दिया अष्टा के युद्ध ने युद्ध की समाप्ति में शीघ्रता कर दी और इसमें वृटिश सैना का केवल एक आदमी मारा गया और अट्ठारह या बीस आहत हुए थे । घायलों में स्मिथ भी था । मराठों के करीब एक सौ आदमी मारे गये । सतारा का राज एल्फिस्टन को दे दिया गया । स्मिथ सिरुर की ओर लौट गया । बाजीराव कोपरगाँव में था । वहीं रामदीन भी उससे आ मिला, मगर पटवर्द्धनों ने उसका साथ छोड़ दिया । पेशवा चन्दौर की ओर बढ़ता रहा । उसकी इच्छा नागपुर जाने की परन्तु उन दिनों नागपुर की स्थिति क्या थी, उसे इसका पता नहीं था ।

हमने अप्पा साहब (नागपुर) को सन् १८१७ ई० में संरक्षक रूप में छोड़ा था । उस समय अंग्रेज इस बात को नहीं जानते थे कि पुरषा जी की हत्या में अप्पसाहब का भी हाथ था और इसीलिये उसे मूदा जी के नाम से पुरुषाजी का उत्तराधिकारी मान लिया गया था । बाद में पता चला कि अप्पा साहब बाजीराव से मिल गया था । पेशवा की पराजय का समाचार जान कर उसने रास्ता बदल दिया । यद्यपि इसके बाद भी पूना से उसका पत्र व्यवहार चलता रहा, परन्तु अंग्रेज रेजिडेण्ट को कभी भी इस बात की आशंका नहीं हुई कि वह सन्धि के विरुद्ध भी काम कर सकता है । इसी समय अप्पा साहब को समाचार मिला कि पेशवा ने अंग्रेजी फौज पर आक्रमण कर दिया । यह सुनकर उसने भी पेशवा का साथ देने को सोचा और अपनी मर्यादा के भीतर ही रह कर सैनिक शक्ति बढ़ाने लगा । रेजिडेण्ट मि० जेंकिस को खटका हुआ और उसने कर्नल एडम्स को लिखा कि एक दस्ता नर्मदा के दक्षिण में उसकी आश्यकता के लिये छोड़ दिया जाय और वह नागपुर जाने के लिये तैयार रहे । अप्पा साहब ने ऐसा कोई काम नहीं किया जिससे ज़ेंकिस को किसी प्रकार का खटका होता, उल्टे वह पेशवा को ही बुरा भला कहता रहा । २४ नवम्बर को उसने रेजिडेण्ट को सूचना दी कि पेशवा ने अप्पा साहब के लिये खिलअत भेजा था और साथ ही सेनापति का पद प्रदान किया था । उसने ज़ेंकिस को भी दर्बार में आने का निमंत्रण दिया था, परन्तु बाजीराव को इस प्रकार पेशवा मान कर खिलअत ग्रहण करने के लिये उसने अप्पा साहब को रोका । फिर भी अप्पा साहब नहीं माना और उसने सैनिकों को तैयार कर लिया । रेजिडेण्ट को भी आशंका हुई और उसने नगर से तीन मील दूर पड़ी सहायक सेना को बुलवा लिया । अगले दिन की स्थिति इतनी बिगड़ गयी कि रेजिडेन्सी की रक्षा का उपाय सोचना इतना आवश्यक हो गया कि दक्षिण सेना के जनरल डाबटन की अधीन सेना को नागपुर बुलाने के लिये आवश्यक दूत भेजा गया । नागपुर के अधिकाँश सैनिक इन दिनों बीमार पड़े हुए थे । ले० कर्नल डाबटन स्काट वंश का प्रधान सैनिक अधिकारी था ।

नागपुर की रेजिडेन्सी नगर के पश्चिम में थी । नगर और इसके बीच में एक पहाड़ी है जिसे सीताबल्दी कहते हैं । इस पहाड़ी पर दो ऊँचे स्थान भी हैं । उत्तर वाला शिखर दक्षिण वाले से कुछ ऊँचा था और रेजिडेन्सी के समीप था । दक्षिण शिखर गाँव के समीप था और इसी लिये सामरिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण था । इस पर ६ पौंड वाली एक तोप तथा ३०० सैनिकों की अध्यक्षता कैप्टेन सैम्डलर कर रहा था । रेजिडेन्सी के बाड़े पर तीस सवार दस्तों पर कै० फिजगेराल्ड नियुक्त था ।

बाकी सेना पहाड़ी पर जमी हुई थी। शाम को अभी बृटिश पहरेदार बदले ही जा रहे थे कि गाँव की ओर से गोले बरसने लगे। अंग्रेजी सेना ने भी गोले छोड़े और रात के दो बजे तक यह गोलाबारी उभयपक्ष से चलती रही। इसके बाद मराठों की गोलाबारी धीमी पड़ी परन्तु दिन निकलते ही फिर तेज पड़ गयी। छोटे शिखर पर अंग्रेजों की हानि भी हो रही थी। इस स्थल पर अरबों के आक्रमण के कारण बारबार मदद भेजी जा रही थी। अचानक अंग्रेजी सेना में ही एक भयानक विस्फोट हो गया, जिससे सिपाही थोड़ा घबरा गये और इस थोड़ी सी ही घबराहट का लाभ उठा कर अरबों ने तलवार के बल पर धावा किया। शिखर पर अधिकार करके बृटिश तोप को ही उन्होंने ऊँचे शिखर की ओर घुमा दिया और यहाँ के सैनिकों को भूनने लगे। उस घटना से उत्साह पाकर मराठों के पैदल और सवार चारों ओर से वहाँ जुटने लगे और जोरदार हमले की तैयारी करने लगे। बृटिश सिपाहियों की परेशानी उस समय और भी बढ़ गयी, जब अरबी लोग बृटिश सैनिकों के झोंपड़ों में पहुँच गये और वहाँ से औरतों व बच्चों की चीख युद्ध में सैनिकों के कानों में पहुँचने लगीं। फिजगेराल्ड पर भी आक्रमण हुआ। तोपें भी आ गयीं और सवार भी जुट गये। फिजगेराल्ड स्वयम् आक्रमण करना चाहता था, परन्तु कमांडिग अफसर कर्नल स्काट ने कहा कि "वह अपनी जिम्मेदारी पर ही आक्रमण कर सकता है।" फिजगेराल्ड ने अपनी ही जिम्मेदारी पर अपने सैनिकों को आगे बढ़ने का आदेश दिया। बाड़े के घेरे से निकलते ही उसने मुख्य सवार सेना पर आक्रकण करने का आदेश दिया और सैनिकों ने उन्हें उनको दोनों तोपों से दूर खदेड़ दिया और पैदल सेना को काट कर तोपों को घसीट लाये। अब छोटे शिखर पर आक्रमण का प्रस्ताव हुआ। इसी समय अरब सेना में भी एक भयंकर विस्फोट हो गया और तज्जनित घबराहट का लाभ उठा कर बृटिश सैनिकों ने छोटे शिखर को भी ले लिया और तोपों में कील ठोंककर बेकार करके वे वापस लौट आये। अरब फिर इकट्ठे हो गये और शिखर को लेने की कोशिश करने लगे, परन्तु कार्नेट स्मिथ की सवार सेना ने उन्हें छिन्न भिन्न कर दिया। दोपहर तक सभी मराठे सैनिक मैदान से हटा दिये गये।

अंग्रेजों के पास सीताबल्दी के युद्ध में काम लायक कुल १४ सौ भी सिपाही न थे, जब कि अप्पा साहब की सेना में कुल १८ हजार से ऊपर सैनिक थे। अंग्रेजों के ३३३ व्यक्ति हताहत हुए, जिनमें १२ यूरोपियन थे। मराठों की भी हानि इतनी ही रही। पूना में भी उभय दल का अनुपात ऐसा ही था, षरन्तु यहाँ एक यूरोपियन रेजिमेंट थी, जिसने मैदान सँभाल लिया।

अप्पा साहब का षड़यंत्र बेकार हो गया था। उसने वकील भेजकर दुःख प्रगट किया और कहलवाया कि उसने किसी भी प्रकार के भुद्ध का आदेश नहीं किया था, परन्तु ज़ेंकिन्स ने कहा कि जब तक बह अपनी समूची सेना विसर्जित नहीं कर देगा तव तक कोई बात नहीं होगी। चारों ओर से बृटिश सेनाएँ नागपुर पहुँचने लगीं। ले० कर्नल ग्राहम ससैन्य २९ वीं नबम्बर को आ गया। ५ वीं दिसम्बर को मेजर पिलमैन की सेना आ गयीं और मास के मध्य तक जनरल डाव्टन अपनी पूरी डिवीजन के साथ आ गया। १५वीं दिसम्बर की सुबह को जेनकिंस ने अप्पा साहब से अधिकार त्याग कर स्वयम् सैन्य विसर्ज़न की माँग की और कहा कि वह अपना सारा राज्य कम्पनी के जिम्मे कर दे। उससे यह भी कहा गया कि वह स्वयम् जमानत रूप में रेजिडेन्सी में आ जाय। उसे बताया गया कि उससे राज्य का केवल इतना भाग लिया जायगा, जिससे सहायक सेना का खर्च चल सके और उस पर इतना ही नियंत्रण रक्खा जायगा, जिससे भविष्य में ऐसे किसी षड़यंत्र की आशंका न रह जाय। उसके आने के लिये अगले दिन ४ बजे शाम तक का समय दिया गया। छः बजे सुबह अप्पा साहब ने समाचार दिया कि सेना उसे रोक रही थी। ४ बजे शाम के बाद बृटिश सेनाएँ तैयार हो गयीं और तब

अप्पा साहब रोजेडेंसी में आ गया । बृटिश सेन्य रुक गयी । तौपों का समर्पण तो हो गया परन्तु उन पर अधिकार करने के लिये गये हुए सैनिकों पर फिर उधर से गोले चलाये गये अतः आक्रमण करके तथा १४१ सैनिकों की आहुति देकर तोपो को अधिकृत किया गया । यह दिसम्बर २४] मालूम हुआ कि अप्पा साहब की अनुमति के बिना ही यह सब किया जा रहा था । मुख्य सर्दार गनपत राव पेशवा के राज्य की ओर चला गया, परन्तु मनू भट्ट ने नागपुर किले में शरण ली, जिसके फाटक पर अधिकार करने के लिये २४ वीं दिसम्बर को प्रयत्न किया पर वह असफल रहा । अन्त में अरबों ने आत्म समर्पण कर दिया और उन्हें अपने शस्त्र, धन तथा परिवार के साथ जाने दिया गया ।

अप्पा साहब की कार्यवाहियों को सुनकर हेस्टिंगज़ ने रीवांस्थित ब्रि० जनरल हार्डीमैन को भी ससैन्य नागपुर जाने का आदेश दिया, परन्तु जब वह पहुंचा तो जनरल डाबटन ने सारे कार्य समाप्त कर दिये थे, फिर भी उसने जबलपुर को अधिकृत करके ले० कर्नल मोराइन से सहयोग किया और अप्पा साहब के सभी उत्तरी किलों को सर कर लिया । पत्र व्यवहार बन्द हो जाने से जेनकिंस ने स्पष्ट आदेशों के अभाव में निश्चय किया कि अप्पा साहब को गद्दी पर बैठा कर राज्य का पूरा नियंत्रण स्वयम् किया जाय । अभी इन शर्तों पर सन्धिपत्र तैयार ही हो रहा था कि हेस्टिंग्ज का इस आशय का आदेश प्राप्त हुआ कि अप्पा साहब को गद्दी से हटा कर परुषा जी की बहन के एक अवययस्क पुत्र को गद्दी पर बैठा कर बृटिश सरकार ही उसका संरक्षण नियुक्त कर दे । फिर भी जब हेस्टिंग्ज को रेजिडेण्ट की निजी कार्यवाही का समाचार दिया गया और यह भी बताया गया कि उसके कहने पर अप्पा साहब स्वयम् रेजिडेण्सी में चला आया था तो उसने रेजिडेण्ट की शर्तों पर ही सन्धि करने का आदेश दे दिया और इस प्रकार ६ वीं जनवरी को संधि हो गयी ।

इस विवरण को यहीं छोड़ कर अब हम बृटिश सरकार की उन कार्यवाहियों की चर्चा करेंगे जो वह मध्य भारत में करने जा रही थी जब कि पूना और नागपुर की सत्ताओं ने समीपस्थ बृटिश सेनाओं को मिटा देने का प्रयत्न किया था ।

——।

पचाससवां अध्याय

दक्षिण की सारी रियासतों पर अंग्रेजों का प्रभुत्व

[१८१७—१८१८]

पिंडारी—करीम खां तथा वासिल मुहम्मद—चीतू का पीछा—होल्कर द्वारा शरण दान—गड़बड़ी की स्थिति—जनरल मालकम् व जनरल हिस्लाय का सम्मिलन—महीदपुर का संग्राम—होल्कर से संधि—जसवन्त राव भाऊ द्वारा चीतू को शरणदान—जसवन्तराव के साथ शत्रुता का व्यवहार—उसके कैम्प पर धावा—पिंडारियों का भगाया जाना—पठानों का संगठन भंग—राजपूतों के साथ सन्धि—बूंदी का राजा तथा भूपाल का नवाव—सर जान मालकम की नियुक्ति—पेशवा के विरुद्ध कार्यवाही—सिउनी में किये गये कार्य—बाजीराव का संकट—सर जान मालकम द्वारा वार्ता—साक्षात्कार—समर्पण—सन्धि—ज्ञातव्य—त्र्यम्बक जी का पकड़ा जाना—अप्पा साहब का भागना—असीरगढ़ पर अधिकार ।

१८१७ ई०]

सन् १८१७ के वर्षाकाल में पिंडारियों के तीन संगठन थे। चीतू, करीम खां और वासिल मुहम्मद इनके अलग मुखिया थे। ये सभी संगठन इन्दौर और सागर के बीच सक्रिय रहते थे। करीम खां अपने संगठन को सुदृढ़ करके आने वाले तूफान का सामना करने के प्रयास में था। चीतू से उसके सम्बन्ध अच्छे न होने के कारण वह सफल नहीं हो पा रहा था। यहां तक कि आत्मरक्षा के लिये भी उनमें सहयोग नहीं हो पा रहा था। तमाम देशी राजाओं ने उन्हें मदद देने का आश्वासन दिया था परन्तु सामने आने को कई नहीं तैयार था। २८वीं अक्टूबर को मेजर जनरल मार्शल के सेनापतित्व में बंगाल की एक सेना सागर पहुँच गयी। इस सेना के प्रयाणकाल में ही वासिल मुहम्मद का दल उसके पीछे ही सक्रिय था परन्तु गवर्नर जनरल की एक दूसरी सेना ने उसे मालवा की ओर भगा दिया था। पिंडारियों ने बृटिश सेना की प्रगति में भी काफी वाधा डाली। जनरल मार्शल अपने निर्धारित पथ पर बढ़ता गया और १०वीं नवम्बर को रायली पहुँच कर कर्नल ऐडम से लिखा पढ़ी शुरू किया जो उस समय होशंगाबाद में पड़ा था। हिस्लाय हर्दा तक पहुंच चुका था और दक्षिण सेना का कमांड ले चुका था। सर जान मालकम भी उसी क्षेत्र में था। गुजरात की सेना दोहद में थी। सारी तैयारी हो गयी थी परन्तु इसी समय पूना में गड़बड़ी के समाचार मिले। इस समाचार को पाकर हिस्लाय ने अपनी सेना का कुछ भाग मालकम के हवाले किया और स्वयम् बुरहानपुर की ओर बढ़ा। १६वीं नवम्बर को मालकम ने नर्मदा पार किया और ऐडम ने चौदहवीं को। जनरल मार्शल से सम्पर्क बना ही था। ये तीनों सेनाएं क्रमशः अष्टा, रायसीन, रतनगढ़ नामक स्थानों में २२वीं नवम्बर को पहुँची और उसी प्रकार अलग अलग रास्तों से चलकर तुलैन, वैरजी और गंज वसौदा में २६वीं नवम्बर को पहुँची। इस प्रकार इन सेनाओं के चलने से पिंडारी खिसकते गये और अपनी सुरक्षित स्थली से बाहर हो गये। अधिकृत स्थानों में से कुछ सिन्धिया

नवम्बर २२ व २६]

को और कुछ नवाब भूपाल को दे दिये गये। सिरोंज के आसपास करीम खां और वासिल मुहम्मद के दलों का मिलान हुआ और वहीं से सिन्धिया के निमंत्रण पर वे ग्वालियर की ओर चले। होल्कर से मदद पाने की आशा में चीतू उत्तर पश्चिम को ओर चला। लार्ड हेस्टिंग्ज इस एरिया में पड़ा था और उसकी निजी सेना मार्शल के साथ थी। करीम खां से रास्ते का सही पता पाकर एक दस्ता वरुआ सागर से दतिया के रास्ते चला ताकि वह ग्वालियर के रास्ते को रोक दे। इधर लार्ड हेस्टिंग्ज का सैन्य सिन्धिया से केवल २० मील की दूरीं पर आ गया। सिन्धिया इस कदम से काफी डरा। चारों ओर से घिर कर पिंडारी शाहाबाद में ठहर गये और तभी मार्शल ने पीछे से आ कर उनका वह रास्ता भी रोक लिया, जिधर से वे आये थे। अब पिंडारियों की स्थिति यह थी कि मार्शल और ऐडम्स दक्षिण से उन्हें दबा रहे थे। उन्हें किसी ओर जाने का रास्ता नहीं था। ऐसी दशा में बलपूर्वक रास्ता बना कर बे लदवाना घाट से होते हुए हरावती की ओर निकल गये और इस कार्य में जालिम सिंह के दल ने उन्हें सहायता दिया, जो इन्हें उधर से घेरने के लिये नियुक्त था। फिर भी मार्शल कुछ लोगों को मौत के घाट उतारने में सफल हुआ। लाहौरी घाट से चम्बल पार करने में उन्हें जनरल डंकिन ने रोका। पिंडारियों के ४ हजार संगठित सवारों के आगे करीम खां और वासिल मुहम्मद ऐडम्स की सेना को चीरते हुए पश्चिम में मेवाड़ की ओर चले गये। शेष पिंडारी दक्षिण की ओर चले गये और काफी आगे से घूम कर कर्नाटक में घुसे जहां या तो वे शांतिपूर्ण कार्यों में लग गये या खत्म कर दिये गये।

उपरोक्त घटना के बाद कार्यवाहियों के क्षेत्र में कुछ परिवर्तन हुआ। मार्शल सिरोंज में नियुक्त किया गया, जनरल ब्राउन पश्चिम की ओर चला और डंकिन शापुरा में आ गया। यद्यपि पिंडारी विरोधी का यह अभियान भी कम साहसपूर्ण नहीं था, फिर भी पश्चिम में और भी महत्वपूर्ण घटनाएँ हो रही थीं।

मालकम चीतू का पीछा कर रहा था। इधर ऐसी भी सूचनाएँ मिली थीं कि होल्कर की सेनाएँ भी वृटिश सेनाओं का विरोध करेंगी। इसलिये ऐडम्स भी उसी ओर चला। उधर सर जान मालकम ने समझ लिया कि हिस्लाय की वापसी को पसन्द नहीं किया अतः उसने चीतू का पीछा करना चालू रक्खा। अन्त में चीतू ने होल्कर के कैम्प में शरण लिया। यह कैम्प इस समय महीदपुर में था और वृटिश सेना की तीसरी डिवीजन ने ४थी दिसम्बर को अगूर में पड़ाव डाल दिया।

इधर होल्कर दर्बार की कार्यवाहियों की चर्चा को अनावश्यक समझ कर टाल दिया गया था परन्तु वहाँ भी गड़बड़ी कम न थी। तुलसी बाई का मराठा दल पठानों के प्रभाव को कम कर चुका था और मंत्री बालाराम सेठ को मौत के घाट उतार दिया था, इस प्रकार मुख्य शक्ति तात्याजोग के हाथों में थी। दीवान गनपत राव भी उसी के प्रभाव में था। वह भी तुलसी बाई का समर्थक था। जिन दिनों पेशवा के आदमी मराठा मंडल को फिर से संगठित करने का प्रयास कर रहे थे तो वे यह प्रयत्न भी कर रहे थे कि होल्कर दर्बार के मराठों और पठानों में सुलह हो जाय। इधर जब अंग्रेजी सेना के चम्बल पार होने का समाचार मिला तो होल्कर दर्बार में दो के बदले कई दल हो गये। गनपत राव पेशवा की ओर झुक चुका था, तुलसी बाई उसी के सुर में सुर मिला रही थी। चूंकि तात्या जोग अंग्रेजों की ओर झुका था, अतः उसका जीवन नियंत्रण में बीत रहा था। इस प्रकार इस दर्बार में भी पेशवा समर्थक दल प्रबल था। गवर्नर जनरल की इच्छा थी कि होल्कर से सन्धि हो जाय। जिस समय अमीर खां के यहां गवर्नर जनरल के सन्धि प्रस्ताव पहुँचे थे, उसी समय होल्कर के दर्बार में भी सन्धि प्रस्ताव भेजे गये थे, परन्तु नवम्बर के मध्य तक कोई जवाब नहीं मिला था। इसी

इसी समय मेंटकाफ को एक पत्र दिया गया, जिसमें तुलसी बाई ने बृटिश संरक्षण में आना स्वीकार किया था परन्तु चूंकि होल्कर दर्वार में सेना का प्राबल्य था, अतः तुलसी बाई को भी उधर ही झुकना पड़ा और पेशवा को मंडल का प्रधान बनाना पड़ा। होल्कर की सेना दक्षिण की ओर चली और इसी समय उसे कुछ अग्रिम धन इस वादे के साथ दिया गया कि इस सेना के नर्मदा पार होते ही उसे और भी रुपये दिये जायँगे। महीदपुर पहुँचने के पहले ही रोशनबेग भी अपनी १४ बटालियनों के साथ इसी सेना में आ मिला। यह पूरी सेना पेशवा के राय में थी। मालकम की सेना के आ पहुँचने का समाचार पाकर यह सेना इतनी अधिक उत्तेजिक हो गयी कि मालकम पीछे हट गया। गुजरात की सेना को योजनानुसार तब तक वहां पहुँच जाना था, परन्तु वह अभी दूर थी, क्योंकि पेशवा ने गुजरात में भी गड़बड़ी मचा रक्खा था। गवर्नर जनरल का आदेश पाकर यह सेना भी महीदपुर की ही ओर चली।

ऐसे ही समय में प्रथम और तृतीय डिवीजन की सेनाएँ मिल कर होल्कर के कैम्प की ओर चलीं। इधर प्रधान सेनापति से सन्धि वार्ता भी चल रही थी परन्तु पठान सवारों ने विरोधी प्रवृत्ति दिखलायी। उन्होंने बृटिश सैन्य के चारो दल को हैरान किया, पशुओं को हाँक ले गये और मैसूर की सवार सेना पर सीधा आक्रमण किया। ये पठान इस प्रकार बृटिश विरोधी हो उठे थे कि उन्होंने गनपत राव को कैद करके तुलसी बाई को मार डाला। इन घटनाओं के प्रकाश में हिस्लाय ने निर्णायक कार्यवाही करने का निश्चय किया। होल्कर की सेना में उस समय २० हजार जवान थे और वे शिप्रा के बाम तट पर स्थित थे। दक्षिण तट की ओर बृटिश सेनाएँ बढ़ रही थीं। सामरिक दृष्टि से होल्कर की सेना की स्थिति सुदृढ़ थी। जहां से हिस्लाय को नदी पार करना था, वहां से होल्कर की पैदल सेना ८ सौ गज पर थी। उनका बायाँ भाग नदी के ढलान से सुरक्षित था और दाहिनी तरफ भी एक गहरा नाला था। सामने तोपों की सुदृढ़ पंक्ति थी। इनमें अनेक भारी तोपें थी, जो हल्की बृटिश तोपों को बेकार किये देती थीं। बृटिश सेना पार उतर कर अभी खड़ी भी न हो पायी थी कि इन तोपों ने अपना काम शुरू कर दिया। सर जान मालकम की सेना को ही मुख्य काम करना था। मद्रास की राइफल सेना ने भी बहादुरी का काम किया, परन्तु इसकी हानि भी बहुत हुई। युद्ध में मराठा सेना के हट जाने पर भी उनके तोपची अपनी अपनी तोपों पर डटे रहे। पाँच छः हल्की तोपों को बे घसीट ले गये। शेष सब बृटिश सैन्य के हाथों मैं पड़ीं। मराठा सवारों ने पहले तो बड़ी वीरता दिखायी परन्तु बृटिश सैन्य के सक्रिय होते ही वे भाग चले। इस विजय ने बृटिश के ७८८ हताहतों की आहुति ली, जिनमें ३८ यूरोपियन थे। होल्कर के ३ हजार सैनिक खेत रहे। मराठा पैदल सेना इतने ढंग से पीछे हटी कि बृटिश सवारों के होते हुए भी बे बच कर निकल गये। इनमें से रोशनबेग के अधीन वाला दल रामपुरा पहुँचा जहाँ १०वीं जनवरी को जनरल ब्राउन ने उसे नष्ट भ्रष्ट कर दिया। दूसरा दल रामदीन के आधीन था। यह दल सीधा दक्षिण जाकर कोपरग्रंज में बाजीराव से मिल गया। मालकन ने उन मराठा सवारों का पीछा किया जो मन्दसौर की ओर भागे थे। कुछ दिनों के बाद हिस्लाय भी उधर ही चला। मन्दसोर में अल्पवयस्क मल्हार राव होल्कर ने आत्मसमर्पण कर दिया और ६वीं जनबरी को सन्धि हो गयी।

इस संधि द्वारा वह समझौता पुष्ट हो गया जो अमीर खां के साथ दिल्ली में हुआ था, अभी तक कोटा का राना जिन क्षेत्रों की केवल लगान ही अंगरेजों को देता था, अब वह उनका नियमित रूप से कर देने लग गया मौर बूंदी के उत्तर का पहाड़ी इलाका भी बृटिश सरकार को मिल गया सतपुरा की दक्षिणी पहाड़िया भी इन्हीं में शामिल थीं। वह राजी हो गया कि किसी भी देशी रियासत से सम्बन्ध नहीं रक्खेगा, किसी भी यूरोपियन या अमेरिकन को बिना बृटिश सरकार की स्वीकृति के नौकर

नहीं रक्खेगा, केवल दो हजार सवार रक्खेगा जो समय पर वृटिश सरकार की सहायता करेंगे, गफूरखाँ की जागीर अँगरेजों की जिम्मेवारी पर उसी के पास रहेगी, होल्कर का एक वकील कलकत्ता में रहेगा और होल्कर के दर्बार में एक अँगरेज रेजिडेण्ट रहा करेगा। इन सब के बदले में वृटिश सरकार उसकी रक्षा करेगी।

इन सन्धियों के कारण सिन्धिया भी निर्बल हो गया था मगर उसके कुछ सर्दार अब भी पिंडारियों का समर्थन कर रहे थे। महीदपुर युद्ध के बाद चीतू ने जाऊद की ओर जाकर यशवन्त राव भाऊ के कैम्प में शरण लिया। मि० कालफील्ड उन्हीं दिनों भाऊ की सेना का निरीक्षक नियुक्त हुआ था, परन्तु भाऊ ने उसे निरीक्षण की आज्ञा नहीं दी, परन्तु बाद में चीतू को हटा कर उसने निरीक्षण की आज्ञा दे दी। यह देखा गया कि वह पिंडारियों को शरण दिये हुए था, परन्तु न तो वह उन्हें निकालने पर तैयार हुआ और न गिरफ्तार करने पर। अतः हेस्टिंग्ज ने उसे जन-शत्रु घोषित कर दिया। ब्राउन को उसके विरुद्ध भेजा गया। रामपुरा की तरह यहां भी इन सैनिकों ने वीरता प्रदर्शित की और उसके कैम्प को तोड़ फोड़ डाला, उसकी तोपों को छीन लिया, जाऊद के एक फ़ाटक को जला दिया और २८वीं जनवरी को नगर पर अधिकार कर लिया। भाऊ ने अधिकांश उदयपुर की भूमि पर कब्जा किया था, इसमें कुम्भलनेर, रायपुर तथा रामनगर के किले मुख्य थे। १३ जनवरी को उदयपुर के राना के साथ सुरक्षा सन्धि हो ही चुकी थी। इन किलों को फर्वरी के मध्य तक जीत लिया गया।

उन दिनों चीतू अपने पिंडारियों के साथ पश्चिम उत्तर की ओर चला गया था जहां गुजरात की सेना उसका पीछा कर रही थी। उसका जत्था निर्बल पड़ गया था। परेशान हो कर चीतू दक्षिण की ओर घूमा और धार में प्रगट हुआ, मगर गुजरात की सेना यहां भी पहुँच गयी। उधर करीम खाँ और वासिल मुहम्मद के जत्थे भी समाप्त प्राय थे और करीम खां अकेला ही रह गया था, क्योंकि उसके साथी भाग चुके थे या मारे जा चुके थे। १५वीं फर्वरी को उसने मालकम के हाथों आत्मसमर्पण कर दिया। अब धीरे धीरे उसके सभी साथी समर्पण करने लगे। वासिल मुहम्मद के कितने ही साथियों ने भी कोटा के जालिम सिंह के हाथों समर्पण कर दिया। पिंडारियों के छोडे छोटे दल भी विलीन हो गये। वासिल मुहम्मद ने ग्वालियर में शरण लिया, जहां वृटिश अधिकारियों ने उसकी गिरफ्तारी के लिये सिन्धिया पर दबाव डाला। उसे जेल न भेज कर सुनियंत्रित दशा में गाजीपुर में रख दिया गया और अन्त में उसने जहर खा कर आत्महत्या कर ली।

पिंडारियों में अब चीतू का जत्था ही रह गया। २५वीं जनवरी को एक सैनिक टुकड़ी ने स्थानीय निवासियों की सहायता से सहसा उसे घेर लिया और समूचे जत्थे को नष्ट कर दिया, परन्तु २०० पिंडारियों के साथ चीतू भाग गया। उसने अँगरेजों से उदार शर्तें पाने में नवाब भूपाल की सहायता चाही परन्तु वह अत्यधिक रियायतें चाहता था। अतः फिर उसका पीछा शुरू किया गया। उसके साथी दिन प्रतिदिन कम होते गये और एक दिन असीरगढ़ के पास एक चीते ने उसका काम तमाम कर दिया। इस प्रकार पिंडारियों को छिन्न भिन्न कर दिया गया गया और आगे शायद ही कभी उनका नाम सुनायी पड़ा हो। यद्यपि उनके सवार जब तब इधर उधर तब तक दिखायी देते रहे, जब तक पेशवा का युद्ध समाप्त नहीं हो गया। भागे हुए लोग देश के किसानों में मिल गये।

जब तक नागपुर में युद्ध होता रहा, अमीर खां स्थिति को ताड़ता रहा। परन्तु नागपुर का पतन होते ही उसने समझ लिया कि मराठाशाही का अन्त हो गया। अतः तुरन्त उसने अपने एजेण्ट द्वारा की गयी सन्धियों को स्वीकार कर लिया और उनकी शर्तों को पूरा करने में दत्तचित्त हो गया।

इस क्षेत्र में सर डेविड आक्टरलोनी के आ जाने से राजपूतों से सन्धि करने में बड़ी सुविधा हो गयी और शीघ्र ही हेस्टिग्ज की योजना पूरी हो गयी। ६वीं जनवरी को जोधपुर के साथ और २री अप्रैल को जयपुर के साथ संधि हो गयी। सागर को कम्पनी ने ले लिया। शेष अन्य रियासतों से भी समझौते हो गये। सिन्धिया तथा होल्कर ने बूंदी का जो भी भाग ले लिया था उसे बूंदी के राना को लौटाकर मानो उसके उपकार का बदला दिया। कम्पनी की इस उदारता को देखकर प्रत्येक वृटिश नागरिक को प्रसन्नता होगी। भूपाल के नबाब तथा उसके पिता ने प्रारम्भ से ही अँग्रेजों का साथ दिया था अतः २६वीं फरवरी को एक सन्धि द्वारा उसे भी पुरस्कृत किया गया। उसे पांच जिले दिये गये, जिसके बदले में नबाब को केवल चार सौ पैदल और ६ सौ सवार रखने पड़े। सिन्धिया से उसे इस्लाम नगर का किला तथा विंचूरकर परिवार के जिले दिलवाये गये। अब भूपाल की स्थिति काफी अच्छी हो गयी। वृटिश सरकार के भारत में जितने भी मित्रतापूर्ण कारनामे हैं उनमें बूंदी और भूपाल के प्रति किये गये स्नेहदान अत्यन्त प्रशंसनीय है।

मध्यभारत की सामरिक कार्यवाही के समाप्त हो जाने पर मालकम गवर्नर का एजेण्ट बनकर वहीं रहने लगा और अपने सतत प्रयत्न द्वारा उसने मध्य भारत में वह सुख ।शान्ति का साम्राज्य स्थापित किया, जिसे वहाँ के निवासी सदियों से नहीं देख पाये थे।

जनरल मार्शल की सेना सिरोंज से बुन्देलखंड भेजी गयी जहाँ उसने एक के बाद एक करके सागर, धमौनी तथा मण्डला के किलों को सर किया। ये किले नागपुर के थे और अप्पा साहब के गुप्त आदेश के कारण समर्पण नहीं कर रहे थे। पहली, तीसरी और ५वीं डिवीजन की सेना एलफिंस्टन के जिम्मे कर दी गयी, जिसे दक्षिण की महत्वपूर्ण क्रान्ति में काम करना था।

सर थामस हिस्लॉय अब प्रधान सेनापति बनकर फोर्टसेंन्ट जार्ज की ओर चला और होल्कर द्वारा प्राप्त किलों को सर करता गया। तालनेर के किलेदार ने शुरू में समर्पण नहीं किया परन्तु जब किले के ५ फाटकों में से दो टूट गये तो तीसरे पर वह स्वयम् आकर आत्मसमर्पण कर दिया। पांचों फाटक पारकर जब वह दल किले के मैदान में पहुँचा तो कुछ अरब सैनिकों ने हमला करके मेजर गॉर्डन कैप्टेन मैकग्रीगर को तथा कितने ही सैनिकों को मार डाला। अन्त में बाहर के सिपाही दौड़ पड़े और ३ सौ रक्षकों में से २९९ को मार डाला। बाद में किलेदार को फांसी पर अविवेक पूर्वक लटका कर हिस्लाय ने तीन सौ की सँख्या पूरी कर दी, यद्यपि किलेदार का अपराध कुछ भी नहीं था।

इन किलों को अधिकृत करने में हिस्लाय को डाबटन से भी सहायता मिली थी, जो नागपुर में आवश्यक प्रबन्ध करके उधर चल पड़ा था। इधर मसनद पर बैठकर अप्पा साहब ने गोंडों को उकसा दिया और किलेदारों को समर्पण न करने का गुप्त आदेश भेज दिया। पेशवा से भी उसने सहायता की प्रार्थना की। एक इसी आशय का पत्र पेशवा को तब मिला जब वह शोलापुर में था।

हमने बाजीराव को चन्दौर के रास्ते में छोड़ा था। अंग्रेज सेना के आने का समाचार पाकर वह कोपरगांव वापस आ गया। यहां उसे स्मिथ का आने का समाचार मिला। बाजीराव ने गनपत राव को नागपुर की सहायतार्थ भेजकर बांदा की ओर प्रस्थान कर दिया। हिस्लाय पीछा करना असम्भव जानकर पूना की ओर बढ़ा और पीछा करने का काम डाप्टन एवम् स्मिथ पर छोड़ दिया। डाबटन कारंजा होकर चला और स्मिथ गोदावरी के किनारे किनारे।

मि० जेनकिन्स को जब अप्पा साहब के षड्यन्त्र का पता लगा तो उसने उसे कैद कर लिया और कर्नल स्काट को आदेश दिया कि वह गनपत राव को रास्ते में ही रोक दे। स्काट ने वर्धातट पर सामना करके गनपत राव को भगा दिया। कुछ दिनों बाद ऐडम्स भी वहीं आ गया। एक अनिश्चय

की सी स्थिति में बाजीराव वर्धा के पश्चिम पाड़रकूरा में रुक गया और यहीं वह डाबटन और ऐडम्स के घेरे में आ गया। डाब्टन की सेना से बचने के प्रयत्न में वह सिउनी के पास ऐडम्स की सेना के सामने पड़ गया, जहां उसके बहुत से साथी मारे गये। इस घटना के पूर्व ही अनेक जागीरदारों ने उसका साथ छोड़ दिया था। इस घटना के तुरन्त बाद ही कितने ही और लोग अपने घरों को लौट गये। बाजीराव का भाई चिमणाजी वहां से भागा और आगे जाकर स्मिथ के सामने आत्म समर्पण कर दिया। कर्नल ऐडम्स चांदा की ओर बढ़ा जो उस समय विद्रोहियों के अधिकार में था और उसे हमला करके ले लिया। बाजीराव घबराकर उधर से भी भागा। डाब्टन उसके पीछे ही था। छः रोज तक उसकी सेना भूखी प्यासी और थकी भागती रही। बीच में वह एलफिंस्टन के पास सन्धि प्रस्ताव भी भेजता रहता था परन्तु उसने बारबार यही उत्तर दिया कि आत्मसमर्पण के बिना कोई वार्ता नहीं हो सकती। इस बार उसने एलफिंस्टन तथा नागपुर के रेजिडेन्ट के पास फिर दूत भेजा मगर खुद नही रुका। ५वीं मई को तासी पार करके वह सिदवा की ओर नर्मदा पार करने के लिये बढ़ा, परन्तु उधर मालकम के होने का समाचार पाकर उसने अपने एजेन्ट आनन्दराव चन्दावरकर को मालकम की सेना में अपने एक पत्र के साथ भेज कर परिणाम की प्रतीक्षा में धलकोट में रूक गया। जसवन्त राव लार इस किले का किलेदार था। सिन्धिया ने ५वीं नवम्बर की संधि द्वारा यह किला अंग्रेजों को दे दिया था, परन्तु किलेदार ने समर्पण नहीं किया था। अपने ८,००० आदमियों के साथ पेशवा बड़ी ही अशान्ति एवम् निराशापूर्ण स्थिति में रहने लगा। बिचूंरकर एवम् अप्पा पुरन्धरी के अतिरिक्त सभी मराठा सर्दारों ने उसे छोड़ दिया था। उस पार जाने के सभी रास्ते अंग्रेजों ने रोक रक्खा था और चारों ओर से अंग्रेजी सेनाएँ उधर को बढ़ी आ रही थीं। १३बीं मई को आनन्द राव मालक़म के कैम्प में पहुँचा, जिसके पास गवर्नर जनरल का यह निर्देश पहुँच चुका था कि पेशवा के ही पत्र को संधि का आधार बनाया जाय। इसके अनुसार ले० लो और मैकडोनाल्ड को पेशवा के पास भेजा गया। इनको जिन शर्तों पर सन्धिवार्ता चलाने का अधिकार दिया गया था वे इस प्रकार थीं कि:-(१) वह दक्षिण पर से अपने तथा अपने परिवार के सारे अधिकार हटालेगा, (२) वह त्र्यम्बक जी तथा अन्य हत्यारों को सौंप देगा, (३) वह रामदीन को तुरन्त हटा देगा साथ ही घोषित बागियों तथा पिंडारियों से कोई सम्पर्क नहीं रक्खेगा। इन शर्तों के मामने के बाद मालकम का वादा था कि जीवन यापन योग्य समुचित सुबिधा पेशवा देकर वह जहाँ चाहेगा वहीं उसको आत्म निवास की सुविधा दे दी जायगी। गवर्नर जनरल की राय थी कि पेशवा से सन्धि न करके उसे समर्पण के लिये विवश किया जाय। दोनों की राय तर्क सम्मत थी परन्तु गवर्नर जनरल ने पेशवा के साथ की गयी किसी भी शर्त को मानने या मनाने का अधिकार अपने हाथ से सुरक्षित कर रक्खा था, क्योंकि उसकी राय में पेशवा ने एक आदरणीय राष्ट्र के साथ अत्यन्त कुरा व्यवहार किया था। अन्त में ३री जून को पेशवा ने अत्यधिक आगा पीछा के बाद इस शर्त पर आत्म समर्पण कर दिया कि उसकी पेंशन वार्षिक ८ लाख रुपये से कम न होगी क्योंकि उसके भाई अमृतराव को भी इतनी ही पेंशन मिली थी और इसी आधार पर मालकम ने मान भी लिया। हेस्टिंग्ज ने इस रकम को आवश्यकता से अधिक माना, क्योंकि उसकी राय में पेशवा के पास बहुत सम्पति थी। वह पदच्युत घोषित किया जा चुका था और उसके तमाम क्षेत्र वृटिश अधिकार में थे। वास्तव में मालकम ने जब पेशवा को ६ मास पूर्व देखा था तब वह वैभवपूर्ण स्थिति में था और कृष्णा तटपर नवनिर्मित भव्य प्रासाद में रहता था। वही पेशवा अब परेशान शरणार्थी था। इस स्थिति परिवर्तन को देख कर वह पेशवा के सारे षड्यंत्रों एवम् दुर्व्यवहारों को भूलकर उसके प्रति अत्वधिक उदार हो उठा। मालकम को यह भी याद आया कि वृटिश सरकार उस

नासमझ व्यक्ति से कितना अधिक लाभान्वित हो चुकी थी। इन्हीं बातों के प्रकाश में हेस्टिंग्ज ने मालकम की बातों को मान लिया और कानपुर के पास गंगातट पर स्थित बिठूर में रहने का आदेश दिया। जहां के लिये उसे तुरन्त रवाना कर दिया गया।

क्षमा का आश्वासन पाकर रामदीन ने भी अपने को समर्पणकर दिया। बाजीराव त्र्यम्बक जी के समर्पण की शर्त को टालता रहा और वह भागकर दक्षिण चला गया, जहां उसने कुछ साथियों को जुटाने का प्रयत्न किया, परन्तु अहीरगांव में ले० जान्स्टन ने उसे गिरफ्तार कर लिया। बाद में वह चुनारगढ़ ले जाया गया, जहाँ वह आज तक वन्दी है। बाजीराव का समर्पण एक महत्वपूर्ण घटना थी। अप्पा साहब के भाग निकलने से इसकी महत्ता और भी बड़ गयी थी, क्योंकि इसी से मालकम को प्रेरणा मिली थी कि पेशवा को पेन्शन देकर उसके देश से दूर कहीं और रक्खा जाने से ही वास्तविक शान्ति स्थापित हो सकती थी।

जेनकिंस ने जब अप्पा साहब को बन्दी बनाया तो गवर्नर जनरल ने उसे इलाहाबाद भेज देने का आदेश दिया। इसी के अनुसार वह नागपुर से भेजा भी गया, परन्तु किसी सिपाही को मिला कर तथा उसी की सैनिक पोशाक पहनकर वह १३वीं मई की सुबह निकल गया तथा नागपुर व नर्मदा के बीच में स्थित महादेव पहाड़ी पर जा पहुँचा, जहाँ वह वर्षा काल भर निश्चित रह सकता था। यहीं पर उसे चीतू भी मिल गया। पहरेदारों की असावधानी से भागे हुए अप्पा साहब के कारण अनेक स्थानों पर उपद्रव हुए, जिन्हें शान्त करने में वृटिश सरकार को कम परेशानी नहीं उठानी पड़ी।

रघूजी भोंसले की विधवा रानी अपने अवयस्क नाती गूजर को गोद लिया। वह अपने नाना का नाम धारण करके गद्दी पर बैठा। विधवा रानी उसकी संरक्षिका बनी। राजा की अवयस्कता काल में सारा काम काज रेजिडेन्ट ही करता था और राज्य के सभी अधिकारी उसी द्वारा नियुक्त किये गये थे।

अप्पा साहब पर आक्रमण करने के लिये उपयुक्त ऋतु की प्रतीक्षा में देर हो चुकी थी। आशा थी कि उसे शीघ्र ही पकड़ लिया जायगा परन्तु उसे चीतू की मंत्रणा मिल रही थी, अतः वह घेरने वाले दल को धोखा देकर वहां से निकल गया और रास्ते में पड़े एक वृटिश दस्ते से भी बचता हुआ वह असीरगढ़ के आसपास पहुँच गया।

उस शानदार किले पर डाब्टन और मालकम ने हमला किया। २० दिनों तक साहसपूर्ण रक्षा करते रहने के बाद ९वीं अप्रैल सन् १८१९ को यह किला भी समर्पित कर देना पड़ा। यदि अप्पा साहब किले में था भी, तो वह अवश्य ही निकल गया होगा। बाद में उसने सिक्खों के यहां शरण लिया जहाँ से उसे पकड़ मंगाने का अंग्रेजों ने कोई प्रयत्न नहीं किया। वास्तविकता यह थी कि तब तक अप्पा साहब नगण्य हो चुका था।

इक्यावनवां अध्याय

दक्षिण में अंगरेजी राज्य की स्थापना एवं शान्ति, सुव्यवस्था और सुधार

[१८१८–१८१६ ई०]

पेशवा के राज्य का अन्तिम प्रबन्ध--जनरल प्रिजलर द्वारा विभिन्न किलों पर अधिकार--राजा सतारा का स्थापन—जनरल मनरो की सफलताएँ—शोलापुरकी पैदल सेना का तितर बितर होना—बम्बई सरकार द्वारा कोकरण पर अधिकार--नागरिक प्रशासन के अधिकारियों की नियुक्ति—निर्देश--कार्यपद्धति—मालीगाँव एवम् परीक्षित गढ़ पर अधिकार--विद्रोहों के रोकने के उपाय—भीलों की समस्या का समाधान—षड्यंत्र का भंडाफोड़—विभिन्न लोगों के अधिकार—न्याय और लगान व्यवस्था—पंचायतें—पुरस्कार—धार्मिक अनुदान—हिन्दू कालेज--प्रबन्ध के विषय में ज्ञातव्य ।

पिछले अध्याय का प्रसंग ही ऐसा था कि हमें अंगरेज पेशवा युद्ध की अन्तिम घटना की चर्चा कर ही देनी पड़ी । इस अध्याय में हमें पेशवा के राज्य का किस प्रकार प्रबन्ध किया गया इसकी चर्चा करनी है । १० वीं अप्रेल तक सिंहगढ़, पुरन्धर तथा वसोटा के किलों के साथ
१८१८ ई०] जनरल प्रिजलर ने पेशवा के अन्य कई किलों को अधिकृत कर
लिया था। यद्यपि ये किले महत्वपूर्ण थे, परन्तु इन्हें अधिकृत करने में कोई विशेष बाधा नहीं पड़ी । बसोटा का किला अवश्य ही कुछ अपवाद स्वरूप सिद्ध हुआ । इस किले तक पहुँचने के लिये जिन सुन्दर तथा दुर्गम स्थानों के बीच से होते हुए बीस मील तक चलना पड़ा, अंग्रेज सैनिकों ने कभी उसकी कल्पना भी नहीं की थी । आवश्यक तोपों को कठिन परिश्रम से ले जाया गया । रास्ते में ऐसे भी स्थान मिले जहाँ मुट्ठी भर सैनिक बड़ी से बड़ी बाहिनी को उलझा सकते थे । जब इस किले पर बमबारी करने का समय आया तो फार्नट हण्टर तथा मारिसन नामक अंग्रेजों के कारण वातावरण में बड़ी उत्तेजना फैल गयी, क्योंकि वे दोनों अंग्रेज इसी किले में बन्दी दशा में पड़े थे। सतारा का राजा अपने परिवार के साथ इसी किले में था । किलेदार ने पहले ही समर्पण करने से इनकार कर दिया था । एक एक गोला बृटिश सेना के दिलों को दहला देता था, क्योंकि किले में अंग्रेज कैदी भी थे । २० घंटे तक गोलाबारी होती रही । तब कहीं किलेदार ने आत्म समर्पण किया । भाग्यवश कैदी सुरक्षित थे, उनका स्वास्थ्य भी ठीक था । उन्हें बाहर की किसी घटना का पता न था । गोखले ने स्वहस्तलिखित पत्र द्वारा किलेदार को हिदायत दी थी कि इन्हें आराम से रक्खा जाय ।

वसोटा के पतन के शीघ्र बाद ही सतारा का राजा शान से गद्दी पर बैठाया गया । उसने दो घोषणाएँ प्रकाशित करायीं । पहली घोषणा में कहा गया था कि वह ब्रिटिश सरकार का मित्र है और दूसरी घोषणा द्वारा उसने शासन प्रबन्ध का सारा काम एक अंग्रेज के जिम्मे कर दिया था जो एलफिन्टन का एजेण्ट था । प्रथम घोषणा में कहा गया था कि किस प्रकार बाजीराव ने बसोटा के किलेदार से कहा था कि सतारा के राजा परिवार को अंग्रेजों के हाथों में जाने के पहले ही उन्हें मार देना अधिक

अच्छा होगा । सतारा का राजा प्रतापसिंह उस समय २७ वर्ष का था और दर्बारी शिष्टाचार के अतिरिक्त अन्य सभी बातों में अज्ञान था । उसने अत्यधिक आशाएँ बाँध रक्खी थी इसलिये उसे तत्कालीन प्रबन्ध से सन्तोष नहीं हुआ या कम सन्तोष हुआ ।

चूँकि उस समय यह सम्भव नहीं था कि उस देश को पूरी तरह से अधिकृत किया जा सके, अत; ५०० सवारों के साथ सिपाहियों की एक बटालियन सतारा नगर और किले की रक्षा के लिए रख दी गयी । जनरल प्रिजलर कर्नाटक की ओर बढ़ गया और जनरल मनरो के आदेश से काम करने लगा । दोनों मिलकर पेशवा की उस पैदल सेना के विरुद्ध चले जो गनपत राव की अध्यक्षता में बीजापुर के समीप निजाम के जिलो में कर वसूली कर रही थी । इसमें १३ तोपों के साथ ४५ सौ आदमी थे । जनरल मनरो के आने का समाचार सुनकर वे शोलापुर दुर्ग की सुदृढ़ दीवारों की आड़ लेकर पीछे हठे परन्तु ब्रिटिश सैना भी आ पहुँची और उन्हें तितर बितर कर दिया । शोलापुर का किला जीता जा चुका था ।

बम्बई सरकार ने अपनी ही शक्ति से कोंकण को अधिकृत कर लिया था अतः उसका प्रबन्ध भी उसी के ऊपर छोड़ दिया गया । दक्षिणी कोंकण में मि० पेली तथा उत्तरी कोंकण में मि० मैरियाट सिविल प्रशासक नियुक्त हुए । शिवाजी की राजधानी रायगढ़ का किला जिब्राल्टर के समान ही अभेद्य समझा जाता था, परन्तु वह ७ वीं मई को प्राथर के हाथों समर्पित हो गया । इसमें पेशवा की बड़ी स्त्री वारानसी बाई भी रहती थीं, उन्हें सतारा के समीप बाई नामक स्थान में भेज दिया गया । बाद में वह भी विठूर चली गयीं ।

घाटों के ऊपर मनरोंने कर्नाटक को अधिकृत कर लिया था जो बाद में कुशल नागरिक प्रशासक मि० चैप्लिन के हाथ में दे दिया गया । वह कृष्णा के दक्षिण में मराठा क्षेत्रों का प्रमुख कलेक्टर नियुक्त किया गया । कौल्हापुर के राजा एवम् दक्षिण के जागीरदारों का पोलीटिकल एजेण्ट भी वही था ।

युद्धकाल में ही विभिन्न समयों पर कृष्णा और नर्मदा के बीच के क्षेत्र पर शासन करने के लिये एलफिंस्टन ने चार सहायक एजेण्ट नियुक्त किये थे । राजा सतारा के जीवनयापन के हेतु नीरा एवम् वारना के बीच का क्षेत्र दिया गया था, जो पश्चिम में सहयाद्रि से पूर्व में पटरपुर तक फैला हुआ था । सम्पूर्ण विजय हो जाने तक सतारा का प्रबन्ध अंग्रेजी सूबों की ही तरह का होता था । कैप्टेन राबर्ट्सन पूना का जज, कलेक्टर और मैजिस्ट्रेट था । उसका जिला नीरा और भीमा के बीच में था । भीमा से चन्दौर तक का क्षेत्र कैप्टेन हेनरी पॉटिंगर के हाथों में था और उसके अधिकार राबर्ट्सन के समान ही थे ।

इन सभी अफसरों के पद पेशवा के सर सूबेदारों के समान थे । सहायक पदों या देसी अफसर नियुक्त किये गये थे और उन्हें इतने भारी वेतन दिये जाते थे जिससे उनके पद सम्माननीय बने रहते थे । कमिश्नर ने अपने एजेन्टों को आदेश दिया था कि वे इस प्रकार प्रबन्ध करें कि समूचे क्षेत्र प्रशासन में आ जायँ, चालू साल की लगान या पेशवा का खजाना ब्रिटिश विरोधी कार्यों में लग सके, जनता की रक्षा हो सके, प्रशासन में कोई नवीकता न प्रदर्शित करें और इस प्रकार का आचरण करें जिससे जनता को यह मालूम हो कि उन्हीं प्राचीन नियमों का शासन है, जिनसे वे अब कर शासित होते रहे थे । धीरे धीरे सामयिक सेनाओं की सहायता से देश में शान्ति स्थापित हो रही थी, क्योंकि स्थायी सेनाएँ पेशवा का पीछा करने में लगी थीं । प्रायः ऐसा भी होता था कि पेशवा की सेवा छोड़ कर आये हुए सैनिक सामयिक सेनाओं में भर्ती होकर २४ घंटे बीतने के पूर्व ही तन मन से पेशवा विरोधी कार्यों में लग जाते थे और कभी भी ये बेवफा नहीं सिद्ध हुए ।

अहमदनगर तथा पहाड़ियों के बीच में कई सुदृढ़ दुर्ग थे वे सब के सब अधिकृत हो गये। इन दुर्गों की विशेषता थी कि इनमें रहकर बड़ी सेनाओं को मुट्ठी भर सैनिकों से रोका जा सकता था। चन्दोर की पहाड़ियों पर स्थित किलों पर भी अधिकार कर लिया गया। मई के अन्त तक केवल खानदेश के अरब सैनिक तथा छत्रसिंह ही अंग्रेजों के सक्रिय विरोधी रह गये। मराठों के राज्य का बाकी सारा क्षेत्र ब्रिटिश प्रशासन के अन्तर्गत आ गया।

१३ वीं जून को मालीगांव का दुर्ग ब्रिटिश प्रशासन में आ गया और अगले ही दिन परीचित गढ़ के साथ छत्रसिंह थी अंगरेजों के हाथों में आ पड़ा। असीरगढ पर अधिकार कर लेने के बाद सैनिक कार्यवाही की आवश्यकता की समाप्ति हो गयी। वृटिश सरकार १८१९ ई०] एक ओर तो नये स्थानों को अधिकृत करती जा रही थी और अधिकृत स्थानों में नागरिक प्रशासन की भी स्थापना करती जा रही थी। प्रशासकों को दिये गये निर्देशों के कार्यान्वित हो जाने के अनन्तर प्रशासन के लिये आवश्यक सूचनाओं के संग्रह का कार्य आरम्भ किया गया। सभी छोटे बड़े अधिकारी इस कार्य में लगाये गये। कार्यान्वियन के सम्बन्ध में देशी कर्मचारियों के माध्यम से प्रशासन व्यवस्था सम्बम्धी सलाहें जनता से ली गयीं। भविष्य के विद्रोहों को रोकने के लिये आवश्यक था कि युद्ध में जिनको हानि उठानी पड़ी थीं तथा ऐसे लोगों को जीवन यापन की सुविधाएँ दी गयीं, जिनके विषय में सर्वसाधारण का अच्छा मत था।

विद्रोहों को रोकने के लिये देश में भेदियों की नियुक्ति की गयी। इन गुप्तचरों द्वारा नाना प्रकार की लाभदायक सूचनाएँ मिलती रहती थीं। सशस्त्र घूमने वाले लोगों के दलों से हथियार रखवा लिये गये और जहां कहीं भी सरकारी सम्पत्ति मिली जप्त कर ली गयी। मराठा जाति को नि:शस्त्र तो नहीं किया गया मगर पेशवा के सैनिक शस्त्र जिनके पास थे, उनसे ले लिये गये। एक साल के बाद केवल उन्हीं लोगों को लाइसेंस लेने की आयश्यकता रह गयी जो २५ से अधिक के समूह में चलते थे। वेलगांव, कुरार, सतारा, शोलापुर, पूना, सिकर, जुन्नार, अहमद नगर तथा मालीगांव में सुदृढ़ सैनिक चौकियां स्थापित हो गयीं। पेशवा की सामयिक सेनाओं के अधिकांश सैनिकों को वृटिश सेना में रख लिया गया।

खानदेश के समीप की पहाड़ियों में रहने वाले भील यदा कदा उपद्रव मचाते रहते थे। उनमें जो लोग कृषि कार्य के इच्छुक थे, उन्हें भूमि दे दी गयी और एक निश्चित संख्या पर एक सर्दार बना कर उसे भत्ता दिया जाने लगा। अपनी मांगों को मनवाने के लिये बृटिश सरकार ने ऐसा प्रबन्ध किया कि उनकी जरूरत की चीजें उन्हें मैदानी भाग से न मिलने पायें। बागी सर्दारों को दबा कर रक्खा गया। वे दब तो गये परन्तु उनके स्वभाव को बदलने में कई वर्ष लगने वाले थे। छत्रसिंह को छुड़ाने के लिये किये गये एक षड़यंत्र का भड़ाफोड़ हो गया और इससे बहुत सी हत्याएँ रुक गयीं। कुछ ब्राह्मण अपराधियों को तोप से उड़वा दिया गया। इस कठोर दंडनीति ने शान्ति स्थापन में अत्यधिक सहायता दी।

अँगरेज सरकार के ऊपर दावे भी कम न थे। इनमें निजाम का दावा सर्वोपरि **था.** परन्तु इसका निर्णय तब तक के लिये टाल दिया गया जब तक यह पता न चल जाय कि इस विजय से वृटिश सरकार को कितना आर्थिक लाभ हुआ। निजाम के ऊपर पेशवा का ६ करोड़ का ऋण तुरन्त क्षमा कर दिया गया। इसके अतिरिक्त पेशवा के अपदस्थ होने से निजाम की वसूली में वार्षिक १२ लाख रुपयों की वृद्धि हो गयी। इसी प्रकार नागपुर तथा होल्कर के पतन से भी निजाम को वार्षिक ६ लाख रुपये की आय बढ़ गयी।

इस विजय से यद्यपि अँगरेजों का राज्य बढ़ा, शक्ति बढ़ी परन्तु आर्थिक लाभ नहीं के बराबर हुआ। २५वीं सितम्बर सन् १८१९ को सतारा के राजा से अत्यधिक उदार शर्तों पर सन्धि हो गयी और राजा के अनुभवी होने के पूर्व तक के लिये सारा राजकाज एक अँगरेज प्रबन्धक को दे दिया गया। कोल्हापुर के राजा को भी पुरस्कृत करना था क्योंकि पूरे युद्ध काल में वह सहायक बना रहा। उसे चिकूरी तथा मेनावली के जिले दे दिये गये और वह सन्तुष्ट हो गया।

अब जागीरदारों के दावे शेष रह गये थे। उन्हें तीन श्रेणी में बांट कर उनके साथ नये सिरे से प्रबन्ध किया गया। पैत्रिक सत्तायुक्त प्राप्त भूमिपतियों, कर मुक्त भू-स्वामियों, पेंशनाधिकारियों, इनाम पाये हुए लोगों और धार्मिक अनुदानों को स्वीकार कर लिया गया। केवल दक्षिणा में प्राप्त सुविधाओं का निर्णय स्थगित कर दिया गया। जागीरों के विषय अनेक विवादास्पद विषय थे। पेशवा के एजेण्टों के पास की जागीरें जप्त कर ली गयीं। पहली सरकार द्वारा जप्त जागीरें नहीं लौठायी गयीं। निजाम के क्षेत्र की मराठा जागीरें भी खत्म कर दी गयीं। पेशवा के अधिकांश साथियों को भी जागीरें नहीं दी गयीं। प्राचीनतम् मराठा परिवारों की वंशगत भूमि सीमित अधिकारों के साथ वापस कर दी गयीं। इनमें प्रतिनिधि आंग्रे, मनकर, प्रधान निम्बालकर मुख्य थे। प्राचीन वंशगत जागीरदारों की जागीरें भी वापस की गयीं। पन्त सचिव की ३ लाख आय की भूमि भी उसी को दे दी गयी। परशुराम भाऊ का एकमात्र जीवित पुत्र था गनपत राव पटवर्द्धन, उसे भी अपनी भूमि पर अधिकार मिल गया। अप्पा देसाई नेपानकर ने पूरे युद्धकाल में पेशवा का साथ दिया था, पर चूकि उसने एलफिस्टन से भी पत्र व्यवहार बनाये रक्खा था अतः उसकी जागीर का अधिकांश उसे लौटा दिया गया। मराठों में जागीर से दो कार्य होते थे। एक तो जागीरदार का जीवन यापन होता था और दूसरे इन्हीं की आय से जागीरदार सवार सेना रखते थे। ऐसे जागीरदारों को डर था कि कहीं अँगरेज उनके संग कठोर व्यवहार न करें, परन्तु ऐसा न करके उनकी जागीर का व्यक्तिगत भाग उन्हें दे दिया गया। प्रतिनिधि अकलकोट का राजा, डफले परिवार तथा निम्बालकर परिवार वालों को उन्हीं की प्रार्थना पर सतारा के राजा की सेवा में रख दिया गया तथा उनके क्षेत्रगत अधिकार उन्हें वापस कर दिये गये। शेष जागीरदारों के अधिकार पूर्ववत् वने रहे। शेष प्रबन्ध में भी कम से कम परिवर्तन कर के काम चलाया गया। कुछ ऐसे समानता सूचक नियम अवश्य प्रचलित किये गये जो ऊँचे लोगों को भी सह्य हुए और नीचे लोगों को भी।

मराठों की पंचायत प्रणाली ज्यों की त्यों रक्खी गयी क्योंकि अंगरेजों का भी विश्वास था कि इससे उत्तम न्याय व्यवस्था हो ही नहीं सकती, जिसे महाराष्ट्र में प्रचलित किया जा सके। हमारे देश वाले अदालत को पसन्द करते हैं। वे जिस समय पंचायत व्यवस्था कीं निन्दा करने लगते हैं तो भूल जाते हैं कि स्वयम् हमारी अदालतों में भी कितनी त्रुटियां हैं। मुझे आशा नहीं है कि हमारे देशवासी इसे पसन्द करेंगे और चलने देंगे क्योंकि उन्हें तो सिविल सर्विस वालों को न्यायालयों में बैठाना है वास्तब में पंचायतों की सफलता का श्रेय और असफलता की कुख्याति राज्य की है। यदि इन्हें देखा जाय, निरीक्षण में रक्खा जाय तो वे आदर्श न्यायपालिका का कार्य कर सकती है। निरीक्षणहीनता की स्थिति में तो वे भयावह हैं। वास्तव में यहां सफल वही होगा, जो जनता से कम से कम छेड़छाड़ करे। बाह्य निरीक्षण के प्रकाश में बे पंचायतें देशी लोगों के मनस् तक को बदलने की शक्ति रक्खेंगी। आज तो अँगरेज जज के फैसले को कोई भी महाराष्ट्रीय प्रसन्नता पूर्वक नहीं मानेगा, परन्तु वही लोग पंचायतों के न्याय को प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार करेंगे, क्योंकि पंचायत स्वयम् उनकी अपनी संस्था है।

एलफिस्टन ने जिलों को ठेकेदारी पर उठाने की जगह पर स्वयम् राजकीय एजेण्टों द्वारा लगान

वसूली की जो व्यवस्था अपनायी, उसके कारण लगान निर्द्धारण एवम् वसूली की कितनी ही त्रुटियां स्वयमेव परिमार्जित हो उठीं ।

पहली नवम्बर सन् १८१६ को एलफिंस्टन ने बम्बई के प्रशासन का कार्यभार ग्रहण किया और पूना में मि० चेप्लिन उनके उत्तराधिकारी हुये, परन्तु जिन लोगों ने पिछले युद्ध में बृटिश सरकार की सहायता करके अपने पुरस्कार का पात्र सिद्ध किया था, वे प्रायः सब के सब पुरस्कृत किये जा चुके थे । पेशवा सरकार के मंत्रियों के जीवन यापन का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया था । विशेषकर नाना फड़नवीस के समय के मंत्री लोग इस समय बुरी तरह अभावग्रस्त थे, उन्हें भी जीवन यापन के लिये लगान की जागीरें दी गयी थीं । छोटे मोटे सर्दारों को भी उनको स्थिति के अनुसार जीवन यात्रा पर सुविधा पूर्वक चल सकने की व्यवस्था की जा चुकी थी ।

पाठक समझ हो रहे होंगे कि दक्षिण दातव्य की वस्तु थी । जिसे दाफाड़े सेनापति ने शुरू किया था । यह प्रथा बाजीराव तथा उसके उत्तराधिकारियों द्वारा भी चालू रक्खी गयी थी । माधवराव ने दक्षिण को दीन हीन ब्राह्मणों तक हो सीमित कर किया था । विशेषरया यह दक्षिणा उन्हीं लोगों को दी जाती थी जो किसी न किसी बात में पारंगत होते थे । यह दक्षिण पात्र की आवश्यकतानुसार कम या अधिक हुआ करती थी । बाजीराव द्वितीय के समय में इस कार्य के लिये आवश्यक रकम पहले अलग रख ली जाती थी और तब शेष कार्यों के व्यय का चिट्ठा तैयार होता था । बाद में यही प्रथा ब्रह्मभोज में परिणाम हो गयी । बृटिश अधिकारियों की राय में यह प्रथा केवल व्यर्थ व्यय का साधन मात्र थी । अतः प्रारम्भ में कितनी ही सीमाओं से बाँध कर इस प्रथा का पालन किया जाने लगा और एक निश्चित रकम को विभिन्न अधिकारी व्यक्तियों में बाँट दिया जाता था । इस मितव्ययिता से जो बँचत हुई उससे पूना में एक कालेज खोला गया और उसका नाम हिन्दू कालेज रक्खा गया । प्रारम्भ में तो भारतीयों ने इस कालेज को अत्यधिक आशंका की दृष्टि से देखा परन्तु बहुत ही थोड़े दिनों में इसमें ब्राह्मणों के १२३ लड़कों ने नाम लिखाया जब कि अभी पूरी तरह अध्यापकों की नियुक्ति भी न हो चुकी थी ।

इस प्रकार के प्रबन्धों द्वारा सम्माननीय माउण्ट स्टुअर्ट एलफिंस्टन के निर्देश पूरे हुए और इस प्रकार पेशवा शासित महाराष्ट्र प्रदेश का सम्पूर्ण भाग अन्य अनेक क्षेत्रों के साथ बृटिश सत्ता के अन्तर्गत आ गया । शासन में मार्क्विस आफ हेस्टिंग्ज ने जो उदारता दिखायी वह भारतीय जनता के आशा से अधिक था । १८ महीनों के प्रयत्न से ही उस देश में जो शान्ति स्थापित हो सकी वह पिछले कितनी दशाब्दियों के लिये इस अशान्ति एवम् अव्यवस्थापूर्ण देश में अभूतपूर्व थी । बृटिश सरकार ने महाराष्ट्र सम्बन्धी कार्यों के साथ एलफिंस्टन का नाम जोड़ कर एक उचित कार्य ही किया है । आगे भी सम्भव है कि इस देश में महान् परिवर्तन हों पर उनके बाद भी महाराष्ट्रियों में एलफिंस्टन का नाम अमर रहेगा, ऐसा मेरा विश्वास है । मेरा यह भी विश्वास है कि ऐसे ही कामों से भारत में बृटिश साम्राज्य सुरक्षित भी रह सकेगा ।

समाप्त

अनुक्रमणिका

:०:

अ

अकबर—४३, ५७, १७५, १७६, १७७, १८५, १८९, १९०. १९८ २३८, २५५, ३२९

अलप खां—३६ ।

अजीम खाँ—५५, ७२, ७३, ७४ ।

अलाउद्दीन खिलजी—४५, ४८, ४९, ५० ।

अहमदशाह वली बहमनी—५०, ५२, ५६ ।

अलाउद्दीनशाह बहमनी—५०, ५३ ।

अहमदशाह बहमनी ५० ।

अबदुल्ला खाँ—६०, २४४, २६५; २७८ ।

अली आदिलशाह—६०, ६३: ७०, १११, ११३, ११४, ११९, १२६, १४२, १५२ ।

अब्दुल हुसैन कादरी—७० ।

अम्बर खाँ—९०, १६१ ।

अबदुल्ला कुतुबशाह—९५, ९६।

अफजल खाँ—१०३,१०८,११०,१७०,२३५ ।

अब्दुल फतह खां—११७ ।

अब्दुल करीम —१५१-१५३, १५६, १५७, १५९, १६३ ।

असद खां—२१२, २१४, २१५, २२१ ।

आजमशाह—२२१, २२२, २२३, २२७, २३३, २३५ ।

अमानुल्लाह खां—२२७ ।

अन्नाजी—२३१ ।

अनवर खां—२५४, २६२, ३४९ ।

अजीतसिंह,—२६६ २६८ ।

अन्नूबाई—२६७ ।

अजीमुल्ला खां—२७१, ३१९ ।

अभयसिंह—२८९, २९०, २९७, ३५१, ३८७ ।

अबुल मंसूर खां—३०१ ।

अन्टोनियों कारडिम फामस डांन—३०४ ।

अमीरूल ऊमर--३१३, ३३१, ३५७ ।

अलीवर्दी खां—३१३, ३१४, ३२०-३२३, ३२८, ३२९ ३४५, ३६७ ।

अहमद अली रुहेला—३१४ ।

अहमदशाह अब्दाली—३१९, ३२३, ३३०, ३३८, ३४५, ३४६, ३५८, ३८४, ३८६-३८८, ३९१, ३९३, ३९४, ४२१,४३६, ४३७, ६६४ ।

अनवर उद्दीन –३३१ ।

अब्दुल रहमान—३३९ ।

अली मुहम्मद रुहेला—३४६ ।

अब्दुल खां—३५१ ।

अब्दुल अजीज खां—३५२ ।

अब्दुल नवी खां—३७२ ।

अदीनवेग खाँ—३८६

अप्पाजी राव अदवारी—३९०, ४५८, ६०२, ६११, ७०८, ७११, ७३६-७३८, ८३८ ।

अहल्या बाई—४२०, ४२१ ।

अब्दुल मजीद खां—४११ ।

अमृतराव—४५७, ४८८, ५३५, ६५७, ६६०, ६७६, ६७८-६८२, ६८९, ६९०, ७०२, ७४५-७४७ ७५२, ७५३, ८१६, ८१९, ८६०।

अमीन खां—४८८ ।

अप्टन कर्नल—४९४-४९७, ४९९-५०२ ।

अलीरजा खां—५८३, ६१३ ।

अम्बाजी इंगलिया—५८६, ७७८, ७९३, ७९६, ८१० ।

अली बहादुर--५९४, ५९५, ६१८, ६१९, ६२०, ६२५, ७५८ ।

अब्दुल रहीम—५९८, ५९९, ६३८, ६३९।

अमीर खां—७१५, ७३२, ७७८, ७९०, ७९१, ८१३, ८३५, ८३७, ८३८।

अहमद खां—७२४।

अप्पा देशाई—७५२, ७६५, ८१७, ८२०, ८४६, ८६४।

अप्पा साहब पटवर्धन—८१६, ८१९, ८५३, ८५९, ८६१, ८८४।

अम्बा सेलूकर—८२७।

आ

आवाजी सोनदेव—९१, १०२, १०९, ११४, १२६, १४०, १५३, ३८९।

आरजेण्डन सर जार्ज—११९।

आजमशाह—१८८, १९०, २०२।

आबू हुसेन—१९१; १९३, १९४, २०२।

आवाजी पुरन्द्री—२३७।

आलम अली खां—२६३।

आसफ जाह—२६३, २६४।

आनन्दराव पवार—२८६, २८७, ३२०, ३५०, ५४७, ५६७, ५६८, ६३३, ६८४, ७१५, ७३५, ७३६, ७४१, ७४८, ८५२, ८६०।

आनन्दीबाई—४१२, ४२१, ४५६, ४७५, ५७०।

आबाजी शावजी—५३९।

आसफुद्दौला—५६४।

आजम खां—६१०।

आलीजाह—६५४।

आक्टर लोनी (कर्नल)—७८५, ८५९।

इ

इन्द्र—३३।

इस्माइल आदिल शाह—४७, ५८, ६३।

इब्राहिम आदिल शाह—५८, ६०, ६५, ६८, ६९, ७१, ७३, १०२. १९२।

इब्राहिम कुतुबशाह—६१।

इब्राहिम खां—११२, ११३, १९१, ३७६, ३७९, ३८१, ३८२, ३८९, ३९०, ३९२, ३९४, ३९५, ३९७।

इखलास खां—१४८, २०२, २३२।

इस्साजी मोहिते—१५३।

इतिकाद खां—२०५, २०८, २०९।

इरादत खां—२३८।

इन्तिजामुद्दौला—३५७; ३५८, ३८८।

इस्माइल खां—४५४।

इस्माइल वेग—५८७, ५९३, ५९५, ६१८, ६१९, ६२६।

उ

उम्मुदुलमुल्क तबरेजी—४७, ४८।

उमर सिद्दी—९०।

उमर खां—९३।

ऊ

ऊदाजी—२९५।

ए

एवज खां—२८३, २८४।

एन्टोनियों डान—३०५।

एल्सफिन्स्टन—७६९, ८१८, ८१९, ८३२, ८३३, ८५९, ८६०, ८६५, ८६६।

ऐ

ऐडमिरल वाट्सन—३६३, ३६४।

ऐडमिरल मोकोक—३६४।

ऐन्डयू वुचनन—३६४।

ऐडम्स कर्नल—८५२,८५९, ८६०।

ओ

ओर्मे—१०९, ३७७।

औ

औरंगजेब—७०, ७२, ७७, ८३, ८९, ९५, ११६, ११८, ११९, १२१. १२२, १२४, १३२, १४२, १४३, १४५, १४७, १५६, १५८, १५९, १६३, १६४, १७४, १७५, १७८, १८१, १९४, १९६. १९८, १९९, २०१, २०४, २०६, २०८, २१२, २१४, २१७, २१८, २२०, २२१, २२३, २२६, २३५, २३८, २४४, २४५, २५७, २७१, २९४, ३१३, ३२९, ३८८, ४१३, ४३७।

क

कबीर--३१ ।

कलीमुल्ला बहमनी--५० ।

कमरुद्दीन खां--२६५, २६६, २९९, ३००। ३१३, ३१४, ३३०, ३३१, ३४५, ६०४, ६०९, ६१४ ।

क्लाइव--३६३, ३६४, ३६९ ।

कमोडोर वाट्सन—४७४ ।

कुतुबुद्दीन—६०२, ६०५ ।

करीम खां—८११, ८२५, ८५६ ।

कोलब्रुक—३० ।

कानूपत्र—३१ ।

कामराज घाटगे—५१, ६५ ।

कासिम खां—१९३, १९४, २०६, २१६ ।

कन्होजी राव—२०६, २४७, २५७, २६०, २६३,२९२, २९४, ७३६, ७३७, ७४१, ७४३।

कांताजी—२७०, २७२, २७७, २७९, २८५, २९७, ८२५ ।

कार्टियर मि०—४४० ।

कार्नवालिस लार्ड--५८२, ६००, ६०४, ६१०, ६१२, ६१५, ६१७, ६१८, ६२१, ६२२, ६३९, ६४३, ६४५, ६९२, ७९७, ७९८, ८००, ८०२, ८०६, ८०७ ।

काशीराव—७१५, ७१६, ७२२ ।

कार्लफाण्ड (कैप्टन)--८४०,८५७ ।

कीटिंग कर्नल—४६४, ४६८, ४८०, ४९३, ५१५ ।

कुतलग़ खाँ—४७, ।

कुवंरसेन—६० ।

कुअंर जी सिरके—३३४ ।

केशवनायक पांडे--६७।

केदार जी—३५२, ३५३ ।

कैप्टन किगविन—१८३, १८४ ।

कृष्णा जी—१०१, १०४, १०५, २४२।

कृष्णा राव—२४६, २४७, ४२९, ४६८, ५८० ।

ल्कोज (कर्नल)—७४७, ८१८, ८३९ ।

ख

ख्वाजा जहां गावान—५५, ५६, ५७।

खफी खां—९९, ११६, १२८, १२९, १३२, १६६, १७५, १८८, १८९, १९२, १९५, २०१, २०२, २०९, २११, २१२, २१६, २२७, २३०, २३८, २४४, २५३ ।

खवास खाँ—१०२, ११२, ११३, १२९, १४२, १५०, १५२, १५५, १५९, १६३ ।

ख्वाजा आहूद—२७६ ।

खन्डेराव—५७१, ७१५, ७१६, ७२४, ७२७, ७३२, ७३४, ७५४, ८०८, ८१६ ।

खान मुहम्मद—१०२, १०४ ।

खाँ जहा—१६०, १६१, १६३, १८८, १८९, १९१ ।

खाकुर खां—१८८ ।

खान्जावद खाँ—१९४ ।

खुन्दो जी नानकर—३०७, ३६३, ३६४ ।

खुसरो जी—८१८, ८२२ ।

ग

गंगा बाई—४६२, ४६७, ४६८ ।

गंगाधर राव—४६५, ८२७, ८३३ ।

गनपत राव—७४०, ८५६, ८५९, ८६५, ८८४ ।

गनेश गोरुलर—७५२ ।

गफूर खां—८५८ ।

गाजिउद्दीन बहमनी—४९, ३०१, ३१३, ३३१, ३३८, ३४०, ३४२. ३४३, ३४५. ३४७, ३५० ।

गिरधर बहादुर—२७६, २७९, २८९ ।

गुलाम अली—६१३ ।

गुलाम क़ादिर—५८८, ५९३ ।

ग्राहम (कर्नल) —८५३ ।

गोविन्द देव—५१ ।

गोपीनाथ पंतो जी—१०३, १०५, १०७ ।

गीविन्द राव चिटनिस—३३२, ३४१, ४२३

६२७, ६३७, ६४६, ६४७, ६७६, ६७८, ६८२, ६९१, ७३३, ७३६, ७४०, ८१५, ८३६, ८३७, ८४० ।

गोपिकाबाई—३८०, ४१२ ।

गोविन्द पंत—३८७, ३९०, ३९२, ४६२, ४६७, ।

गोपालराव—४११, ४२६, ४३१, ४३२, ६१८, ६२६, ७६७ ।

गोकला—६०१ ।

च

चकमल—३१ ।

चन्दरराव—९३, ९४, १०२, १७०, ।

चन्द्रसेन जाधव—२४०, २४२, २४५, २४९, २५१, २५३, २६३, २८१, २८४, ३६७ ।

चन्दा साहब—३१७, ३१८ ।

चार्ल्स मिस्टर—२६०,३०५ ।

चिमड़ा जी दामोदर—२३६, २७९ ।

चिमणा जी अप्पा —२४३, २६१, २८५, २९३, २९५, ३००, ३०२, ३०६, ३०७, ३१२, ३१४, ३१९, ३६५ ।

चिकलीज खाँ—२४४ ।

चिन्तू विठ्ठल—५०८ ।

चितौरसिंह—७०६,७०७ ।

चितुरसिंह—७४६ ।

चिन्तामणिराव—७५२ ।

चिमना जी नारायण—७२९, ८६० ।

चीक्त—८२५, ८५६, ८६१ ।

चेल्लिन—८६६ ।

ज

जफर खाँ—४७, ४८ ।

जगपाल—६४, ६६, ६९, ७१, ८१ ।

जहांगीर खां—६८, ७१, ५९० ।

जगदेव राव जाधव—७१ ।

जयसिंह—१२१, १२२, १२४, १२७, १२९, १३२, १६६, २०८, २७२, २९१, २९७, ३२०, ३२३, ३२४ ।

जनार्दन बाबा—३१६, ३९८, ४०९,

जगजीवन—३३२ ।

जय अप्पा सिंधिया—३४६, ३५८, ३८६, ३८७, ३८८ ।

जफीर अली खां—३५७ ।

जहाँन खां—३८६ ।

जनको जी सिंधिया—३९०, ३९४, ३९८, ४०३, ४०७, ४०८, ८०६ ।

जसवन्त राव—३९०, ३९४, ३९५, ३९७, ७०४, ७१४, ७२३, ७२५, ७२९, ७३२, ७४४, ७४८, ७५०, ७५३, ७५४, ७५६, ७६५, ७६६, ७६९, ७७२, ७७४, ७७७, ७७८, ७७९, ७८२, ७८४, ७९३, ७९८, ७९९, ८०५, ८०८, ८४०, ८५८, ८६० ।

जबीता खाँ—४५८, ५६४, ५८८, ५८९ ।

जमान शाह—६९४ ।

जाधवराव—६६, ६७, ६९, ७१, ८१ ।

जानोजी भोंसले—३५६, ३५७, ३७९, ४१२, ४१३, ४२०, ४२३, ४२७, ४४८, ४५३,

जान्सटन—८६७ ।

जीजाबाई—८०, ८२, ५०३ ।

जुम्मन—१०७, १०८ ।

जुल्फिकार खां—२०८, २०९, २११, २१२, २१५, २१८, २२०, २२१, २२६, २३०, २३३, २३६, २३९, १४१, २४४, २५२, २५३ ।

जूना खां—४६ ।

जेम्स कमोदर—३६२, ३६३ ।

जेर लैण्ड (कर्नल) ७९० ।

जेन किन्स—७९३, ८३६, ८५९, ८६७ ।

जोम्स (कैप्टन)—७९०, ७९६, ७९८ ।

ट

टीपूसुल्तान—७०, ५६८, ५७४, ५७८, ५८०, ५८४, ६१३, ६३२, ६३५, ६४२, ६४४, ६४६, ६९१, ६९३, ६९६, ७०७, ७०८, ७११, ७७१ ।

टोडर मल—८३ ।

ड

डाब्टन (जेनरल)—८५३, ८५९, ८६० ।

डारबन जनरल—८५२ ।

डी वाइन —७५२ ।

डिसूल पेरशिने—३०७ ।

ड्रेपर मिस्टर—५०० ।

डंकन मि०—७३८ ।

त

तकरीब खाँ—२०२ ।

तरबीअत खाँ—२२२ ।

ताना जी—१०५, १०६, १२८, १४२, १४४ ।

ताराबाई—२२४, २२५, २३३, २३५, २३६, २३७, २३९, २४०, २४२, ३३३, ३३५, ३३६, ३३९, ३४२, ३५०, ३५५, ४००, ४०४ ।

तालिब खां—२६२ ।

तुकाराम—३१, ११८ ।

तुकाजी होल्कर—३६५ ३८६, ४२१, ४३६ ४४२, ४५६, ४५७, ४९५, ५०८, ५१८, ५३८, ५४१ ।

तुलसी बाई—८५७ ।

तैमूरशाह—३८५, ५९३ ।

थ

थामस ग्रेन्थम—१८३ ।

थामस वार्डफल्डी—३६९ ।

थामस पैरिसन—८४९ ।

द

दम्माजी थोराट—२४६, २४७, २४९, २६७, २८७, ३२०, ३२५, ३३२, ३४०, ३४२. ३५१, ३५५, ३६०, ३९०, ३९४, ३९७, ४०५, ४२३, ४४८, ८२५, ८२६ ।

दत्ताजी—३८६, ३८८ ।

दाउदशाह बहमनी—४९ ।

दादू नरसू—५२, ५३ ।

दादाजी कोणदेव—८३, ८४, ८६, ८८, ९१, ११७, १३८ ।

दाउद खाँ—२१७, २३०, २४०, २४२, २४४, २४६, २५२, २५३, ३१४ ।

दिलावअली खाँ—५३, २६३ ।

दिलेर खां—१६०, १६२, १६३, १६५, १६८, १७४, १८६,

दीपा बाई—६६,

दुर्गा देवी—५२,

दुर्गा बाई—४५४,

दौलतराव सिंधिया—६३३, ६३४, ६३८, ६४८, ६५९, ६६१, ६७२, ६७५, ६७६, ६७८, ६८०, ६८१, ६८७, ६८८, ६८९, ६९१, ६९३, ६९४, ७०४, ७०८, ७४९, ७५०, ७५१, ७५४, ७५५, ७५७, ७६१, ७६२, ७६४, ७६६, ७६८, ७६९, ७७०, ७७६, ७९३, ७९५, ७९८, ७९९, ८०२, ८०५, ८०७ ८१० ।

घ

घनाजी जाधव—२३५, २३७, २४०, २४४,

धनपतराव—८५१ ।

न

नवाज खां—३४७, ३५९, ३७२, ३७५ ।

नजीबुद्दौला मोमिन खां—३५१, ३५४, ३८५, ३८७, ३९१, ३९३, ३९७, ४३७, ४४१ ।

नजीफ खाँ—४५८, ५६३, ५६७, ५७० ।

नरोत्तम दास—४७६ ।

नरसिंह—७२४ ।

नसपंत—७६५ ।

नासिरूद्दीन—४७, ४८, ७३४ ।

नारूपंत हनुमंते—९३ ।

नादिरशाह—३०६, ३०८, ३०९, ३१३, ३३०, ३८५ ।

नासिर जंग—३२६, ३२७, ३३१, ३३८, ३४०, ३४५, ३४८, ३६१, ३६७ ।

नोरफर्ड—७८७ ।

निजामअली—३७४, ३७७, ७९, ३८१, ३८२, ४००, ४०२, ४०९, ४११, ४१३, ४१८, ४२०, ४२२, ४२५, ४५१, ४५४, ४६१, ४६६, ४६८, ४८८, ४९५, ४९७, ५०४, ५२७, ५३५, ५५०, ५५१, ५५९, ५६६, ५६८, ५७०, ५७४; ५७६, ५८०, ५९३, ५९८, ६०१, ६०४. ६१२, ६१४, ६२०, ६२१, ६३५, ६४०, ६४२, ६५३, ६७०, ६७२, ६७४, ६८०, ६९२, ६९३, ६९५, ६९७, ६९९, ७०२, ७१४, ७२४, ७४८, ७५२, ७५३, ७५५, ७६४, ७६५, ७६८, ७७१, ।

निकल केप्टन—७८२ ।

निजामशाह बहमनी—५०, ५८. ६०, ६८, ७३, ७४ ।

निजामुलमुल्क—५७, ५९, २६२, २७९, ३२६, ३२८, ३३१, ३४५, ३५१, ४०२, ४१३ ।

तुन्नराज--३७१

नारायणराव--४५१, ४५९, ४६२, ४६३, ४७१, ४७६, ४९२, ४९६, ४९७, ७०३, ७४९, ८२३ ।

नानाफड़नबीस--३६१, ३९८, ४०३, ४०५, ४०९, ४२८, ४४४, ४४५, ४४७, ४५२, ४५३, ४९४, ४९६, ५·४, ५०५, ५०७, ५०८, ५१५, ५१८, ५२२, ५२६, ५३३, ५३५, ५३७, ५३८, ५४९, ५५२, ५५४, ५५६, ५५९, ५६२, ५६५, ५६७, ५६९, ५७०, ५७२, ५७३, ५७५, ५७६, ५७८, ५८०, ५९९, ६१५. ६१७, ६२०, ६२९ ६३१, ६३४, ६३५, ६३७, ६३९, ६४१, ६४३, ६४५, ६४८, ६५२, ६८०, ६८२, ६८३, ६९०, ६९२, ६९५, ६९८, ७००, ७०१, ७०३, ७११, ७४५, ७५०, ८०५, ८१६, ८६६ ।

प

परशुराम--२६, २९, २१०, २२५, २३१, २३७, २४२ २४८, २६६, ३३६, ५०३, ५४७, ५५३, ५५६, ५७५, ५८८, ६०१, ६०५, ६०८, ६१२, ६१४, ६१५, ६१७, ६२७, ६४८. ६४९, ६६० ६६२, ६६४, ६६५, ६६७, ६६९, ६७१, ६७३, ६८३, ६८६, ६९७, ६९९, ७०१, ७०५, ७०६, ७०८, ७११, ८१४, ८१९, ८६५ ।

परसोंजी भोंसले—२३६, २५१, २५५, २५७ ।

पटेल नयम्बकजी—५०५ ।

पालगर--५१, ५३, ५५ ।

पार्वती—३३, ३९८ ।

पिजाजी गायकवाड़—३८७ ।

पुतली बाई—१७२ !

पुरषाजी—८३७ ।

प्रतापराव गूजर – १४८ ।

प्रतापसिंह--३१४, ५८६, ५८७, ८३०, ८६३ ।

फ

फतहउल्ला उम्मदुलमुल्क—५५, ५८ ।

फतेह खां—७३, ७६, ७९, ९०, १०२, १०८, १०९, ११२, १४५ ।

फजलउल्ला खां—१०८, ११०, ४०९, ४१० ।

फतेहसिंह—२३७, २६०, २७९, ३०३, ३१७, ३१८, ३३७, ४२६, ४९६, ५०२, ५०४, ५४१, ५४७, ५५०, ५६०, ५६२, ७२३, ७२४, ७२६, ७२८, ७४६, ७५२, ८२५, ८२७, ७२९ ।

फरूखसियर—२५१, २५२, २५५ ।

फतहयाब खाँ--३२६ ।

फरीदुद्दीन—६०९, ६१० ।

फार्स्टर वि०—३४७ ।

फिरंगोजी नरसल--११६ ।

फिजगोराल्ड--८५२, ८५३ ।

फीरोजशाह बहमनी--४९ ।

फराडि अन्ड्रेडा--३१ ।

फोर्ड केप्टन) ८२० ।

फिप्स मि०—२६०, ३७८ ।

फोर्ड कैप्पटन—८४१,

फ्रिजलट जनरल—८४८ ।

फ्रिजला—८६२, ८६३ ।

फ्रांसिस्कोडि अलमिडा—५९, ६० ।

फ्रांसिडी अलारका डॉन—३०६ ।

ब

बहराम खां मजीदुर्रानी—५१, ५२ ।

बहलोल खां—११२, ११३, १२६, १५० ।

बलवन्त राव—३७१, ३७३, ३८९, ३९३, ४३३, ६०९ ।

बसालतजंग—३७५, ३७६, ३७९, ४०९, ४१३, ४१८, ४२० ।

बरखुरद खां—३९४, ३९५ ।

बदरुज्जमा—६१२ ।

बापूजी भोंसले—६६, ७२८, ७७८. ७७९, ७९३ ।

बालाजी विश्वनाथ भट्ट—२३८, २४०, २४२, २४३, २४५, २४७, २५०, २५४, २५७, २५९, २६१, २६६, २६८, २७२, २९१, ३१२, ३१५, ४०४, ४४५ ।

बाजीराव (प्रथम)—२५९, २६७, २७१, २७५, २७९, २९०, ३००, ३०२, ३०४, ३०६, ३०९, ३१३, ३१५, ३१६, ३१९, ३८६, ३९८, ३९९, ४९९, ५०५, ५२८, ५३५, ५३९, ५७०, ५८९, ६२८, ६५७, ६८३, ६८६, ६९०, ६९१, ६९४, ६९८, ७०६, ७१०, ७१३, ७१७, ७१९, ७२२, ७२४, ७२६, ७२७, ७३०, ७३१, ७३३, ७३५, ७४४, ७५६, ८६१, ८६६, ८६७ ।

बाजीराव (द्वितीय)—७२९, ७४५, ७४७, ७४८, ७५१, ७५३, ८०५, ८११, ८१४, ८१६, ८१८, ८२०, ८२४, ८३० ८३२ ।

बालाजी बाजीराव—३१६, ३२५, ३२९, ३३३, ३३८, ३४१, ३५५, ३६८, ३७०, ३७२, ३७४, ३७७, ३७८, ३८०, ३८१, ३८३, ३९०, ३९८, ४००, ४१६, ४४५, ४४९, ४५२, ७६५, ८२३, ८४३ ।

बालकृष्ण शास्त्री—३९९ ।

बाबा राव फड़के—७४५. ८१६, ८१९, ८२०, ८४७ ।

बाबाजी—७३७, ७३८, ७४२, ७४४ ।

बापू गोखले—८३०, ।

बापू सोनी—८१८, ८२२,. ८२६ ।

ब्राइन—८५७ ।

बुरहान शाह—४२४ ।

बैजूनाथ पन्त—७४४, ७४६ ।

बोल्टस मि०—५०७ ।

ब्रोम मिस्टर—४२४ ।

भ

भलुद्दौला—५६४ ।

भगीरथी बाई—६८७ ।

भास्कर पन्त—३२०, ३२३, ३२८, ४०४ ।

भिवराव फाँसे—५०१ ।

भुवनराव—४४५, ४६४, ४६६, ४९९, ४९७ ।

म

महादेव—३१. ३५, ३७, ५२, ६६, १४४, १७१, २०६, २०८, २४६, ४०४ ।

मलिक काफूर—४५ ।

मलिक मंगू—४७ ।

महमूद शाह बहमनी—४९. ५०, ५७, ५९ ।

मसनद अली खां—५२ ।

मलिक उल तिजार—५२, ५४ ।

मलिक हुसेन—५६ ।

मलिक अहमद—५७, ५९ ।

महावत खां—७४, ७६, १४७, १४९ ।

महलदार खां—७५, ७६ ।

मसूद खां—१६३, १६५, १६७ १८१, १९५ ।

मल्हार राव होल्कर—३०५, ३०७, ३२४, ३३८, ३४६, ३५७, ३५८. ३७०, ३८६, ३८८, ३९०, ३९१, ३९३, ३९४, ३९६, ४२०, ४२१, ४३१, ४३६, ४३८ ४४८, ५१०, ५१२, ५१४, ७१५, ७३७, ७३९, ७४१, ८२५ ।

महादजी—२९०, ३१८, ३३७, ३३८, ३४३, ३४४, ३७४, ३८६, ३८७, ४२७, ४२८, ४३६, ४३९, ४४०, ४४१, ४२७, ४९५, ५२२, ५३८, ५३९, ५४४, ५६१, ५६९, ६३३, ६३४, ६४६, ६८७, ७०२, ७०४, ७१६, ७५०, ७६३, ७७१, ८०४, ८०५ ।

मन्नाजी—३६०, ३६१ ।

मालोजी—६६, ६७, ६९, ४५६, ५०५ ।

मानाजी मोरे—२५३ ।

माधव राव—४००, ४०३, ४०८, ४१३, ४१८, ४३५, ४४३, ४४४, ४४६, ४५३' ४५७, ४५८, ४६७, ४६८, ४७०, ४७३, ५०३, ५५६, ५७०, ६१५, ६५५, ६५६, ६५८, ४८३, ४९२, ४९८, ६६२, ६५९, ६६५, ६७२, ६८४, ६८६, ७१९, ७२०, ७२६, ८१०, ८२३, ८३४ ।

मानसन—७७७, ७७८, ७८०, ७८३, ७८४, ७८७ ।

मार्शल (जेनरल)—८५५, ८५९ ।

मीर जुमला—९५, ९९ ।

मीर कमरूद्दीन—२४४ ।

मीर हुसेन खाँ—३०० ।

मीर हबीब खाँ—३२०, ३·१, ३२२ ।

मीर मुन्नू—३४५, ३४६, ३८४, ३८५ ।

मीर शहाबुद्दीन—३५७, ३५८ ।

मुहम्मद शाह—४७, ५१, ५४, ५६, २९७, २९९, ३०६, ३०८, ३१३, ३२३ ।

मुहम्मद तुगलक—४९, ५० ।

मुहम्मद शाह वहमनो—४९, ५०, ५७ ।

मुजाहिद शाह बहमनी—४९ ।

मुहम्मद आदिल शाह—५८, ७०, ७१, ७३, ७४, ७७, ७९, ८१, ८२, ८३, ९१, ९३, ९७, ९८, १०२, १९२ ।

मुहम्मद हशीम खां—७० ।

मुहम्मद खाँ—९७, ९८, ११०, २९०, २९१ ।

मुराद बरश—९९, ४०७ ।

मुजफ्फर खां—१५०, १५१, २९६, ३००, ३५९, ३६६, ३६८, ३७०, ३८१, ६८८, ६८९।

मुहम्मद इब्राहिम तवरेजी—२४६ ।

मुहम्मद अमीन खाँ—२६४, २६५, २६८ ।

मुवारिज खां—२७५, २७६ ।

मुर्शिदकुली खां—३२०, ३२१ ।

मुतवासिल खां—३२६, ३२७ ।

मुइउद्दीन खां—३२७, ३२८ ।

मुजफ्फरजंग—३२८, ३३१, ३३९, ३४०, ३८०, ३८१ ।

मुहम्मद अतीस—३३१, ४२२, ४६१, ५६१ ।

मुराद राव—३७२, ४११, ४१२ ।

मुहम्मद युसुफ—४५५, ४५६ ।

मुहम्मद बेग हमदानी—५८५, ५८७ ।

मुतलक—५८५ ।

मुहम्मद अली बंगरा—८०९ ।

मूदाजी—४५३, ४५४, ४९५, ५०४, ५११, ५१४, ५१५, ५२९, ५३२, ५५८, ५८०, ५८१, ६३५ ।

मेरकाफ—८५० ।

मैक्लवेल(कर्नल)—७६१ ।

मैग्रीगर—८५९ ।

मैकडानल्ड—८६० ।

मोहिते—८७ ।

मोनाइम खाँ—२३९ ।

मोरोबा—५०८, ५१०, ५१३, ५१४, ५१७

मौलाना अहमद—९१ ।

मौकूब सिंह—२५३ ।

य

यस्माजी शिवदेव—३२५, ३३७ ।

यमीनउद्दौला—३७७ ।

यशवन्तराव पवार—३०२, ३०९, ३३५, ३३६ ।

याकूब खाँ—१६५, २९४, २९६ ।

यादव राव भास्कर—७६१ ।

यूसूफ आदिल खां—५५, ५७, ६४ ।

येसूबाई—२०५, २३५, २४९ ।

येसाजी—२९४ ।

र

रनदुल्ला खां—७३, ७४, ७६, ७९, ८१ ।

रघुनाथ राव—९३, १०१, १०३, १०९, १२४, १२६, १२७, १४०, १५२, १५५, १५९, १६०, १६४, १७४, १७७, १८१, १८२, १८९, १९१, २१८, २१९, २८४, ३१३, ३३०, ३३९, ३४२, ३४३, ३४७, ३५१, ३५४, ३५५, ३६१, ३६९, ३७०, ३८०, ३८१, ३८५, ३८७, ४००, ४०८, ४१०, ४१२, ४२०, ४२३, ४२८, ४४४, ४५१, ४५१, ४६४ ।

रघुबलाल—९४, १०२ ।

रणमस्त खाँ—१६६, १६७, १७८ ।

रम्भा जी—२४५, २४९, २८१, ३४३ ।

रहमत खाँ—२६२ ।

रघूजी भोंसले—२९२, २९३, ३०२, ३०६, ३१७, ३१८, ३२३, ३२५, ३२८, ३२९, ३३१, ३३५, ३३६, ३३९, ३४४, ३४५, ७६४, ७६६, ७६८, ७६९, ७७०, ८०२, ८०५, ८३७, ८६१।

रतन सिंह—३५१ ।

रमाबाई—४४३।

रन्ने खां—५९०, ५९१।

रणजीत सिंह—५९१ ।

रामदास—३१, ११२, १७६ ।

रामचन्द्र—३४, २०८, २१०, २२२, २२४, २३१, २३६, २४१, २४६, २४७, २७१, ३३८, ३५३, ३६७, ३७३, ३८०, ३९९, ४०२, ४५०, ४६०, ४९८, ५०४, ५४७, ५४८, ५५६ ।

रावण—३५, ४३ ।

रामदेव राव—३६, ४५, ५१, ६० ।

राजाराम—१९८, २०४, २०६, २०८, २०९, २१२, २१५, २१७, २२४, २३६, २९३, २९३, ३१२, ३३२, ३३३, ३३५, ३३७, ३३९, ३४२, ३५०, ३५६, ४५३, ५४५ ।

राजसबाई—२२४, ३३३ ।

रानोजी भोंसले—२९५, ३०६, ३१०, ३११

रामाजी पंत—३६४, ३६५, ४०१, ४०२।

रामसिंह—३८७

रामचन्द्र गनेश—४२६, ४२७, ४३६, ४४१

राम शास्त्री—४२५, ४२९, ४३०, ४४८, ४५६, ४५७, ४५९ ।

राघोबा—४९०, ४९३, ४९५, ५०१, ५०४, ५०७, ४१०, ५१२, ५१९, ५२०, ५२९, ५३३, ५३५, ५३८, ५३९, ५५०, ५५१, ५६० ५६१, ५७०, ७१३, ७१४, ७१९, ७२४ ।

राजासाहब—६१०, ६११।

रायजी पटेल,—५८६, ६६७ ।

राकल जी—६३३ ।

रोशन वेग —८५७ ।

रामदीन—८५७, ८६०, ८६१ ।

रिदुल्लाह खां—९१, ९२ ।

रुहउल्ला खां—१८९, २०९, २११ ।

रुस्तम अली—२७६, २७७ ।

रुकनुद्दौला—४२५, ४२७

ल

लक्ष्मी बाई—३३, २०४, ६३४, ८१०, ८१६ ।

लस्कर खां—३२७, ३३७, ३४०, ३४७, ३४९ ।

लखवा दादा— ७२५ ।

ल्यूकन (लेफ्टिनेन्ट)—७७८, ७७९ ।

लूखनसिंह—५०९, ५१०, ५१२ ।

लेविस मिस्टर—५०७, ५१४, ५१९ ।

लेक (जेनरल)—७७८, ७८४, ७८७, ७८९, ७९०, ७९३, ७९५, ७९७, ८०२; ७७३, ७७४, ७७५, ७७७ ।

लोदी खां—२३५ ।

लोवेस डाँन—३०१ ।

लुडलो (मेजर)—८४० ।

व

वर्न (कर्नलि)—७८५, ७८६ ।

वजीर मुहम्मद—८३६, ८३७, ८५६, ८८५।

वर्शियर रिचार्ड मि०—३६०, ३६३, ३६५, ३६८, ३७८ ।

वास्कोडिगामा—५९ ।

वाइन डी—५७७, ५८६, ५८७, ५९०, ५९२, ५९४, ५९५, ६१९, ६२६, ६२७, ६३३, ६३५, ७२५ ।

वालेस (कर्नलि)—७८८ ।

वाकर (कर्नल)—७२४, ८०३, ८२५ ।

वार्लो जार्ज—७९८, ८०० ।

विल्कस—३५, ४६, ५१, ३६८, ३७७, ४०९, ४१०, ४१२, ४१९, ४२४, ४३२, ४३५।

विष्णु—२६, ३१, ३३, ५०८ ।

विक्रमादित्य—३६ ।

विभीषण—४३ ।

इम्बाजी भोंसले—३५६ ।

विजय सिंह—३८१ ।

विस्वास राव होल्कर—३६३, २६४, ३९७, ३६८ ।

विसाजी पन्त—४२४, ४२५, ४३०, ४३६, ४३६, ४४०, ४४२ ।

विनायक राव—४४७, ७४५, ८३६ ।

विठ्ठलदेव शिवदेव—७५२ ।

विठ्ठोजी गायकवाड़—८४६ ।

वेन्कोजी—११४, १६२, १६४, १६८, १६६, २१५ ।

वेंकट राव नारायण—३०४, ३०५ ।

वेल्सली—७५०, ७५१, ७५३, ७५५, ७५७, ७५९, ७६०, ७९३, ७९६, ७६७, ७६२, ७६५, ७६८, ७७०, ७७४, ७७६, ८०६, ८१४, ८१६, ८१६ ।

श

शमसुद्दीन शाह बहमनी—४६ ।

शहाबुद्दीन खाँ—१८५, ३८४, ३८५, ३८७ ३८८ ।

शहादत खाँ—२६४ ।

शालिवाहन—३५, ३६ ।

शाहजी भोंसले—७२, ७४, ८२ ८४, ८७, ८६, ६३, ६५, १००, १०४, १०६, ११४, ११५, ११९, १५६, १६०, १६२, १७१, १७२, १७५, २०२, ५०५, ५०६ ।

शाहजादा मुअज्जम—६६, ११८, १२६, १३१, १३२, १४२, १४६, १६५, १६८, १७४, १७८, १८४, १८८, १६०, १६३, १९४, २२१, २३३, २३५, २३८, ५९२ ।

शाइस्ता खाँ—११५, ११८ ।

शाहआलम—२३३, ४३६, ४४०, ४४२, ५९२ ।

शाहजहाँ—५०, ५७, ६६, ७१, ७२, ७४, ७७, ७६, ८३, ८६, ६२, ६६, ६६ ।

शामरावजी पंत—१०२, १०३, २८५ ।

शाहजादा अजभ—२३८, २३६ ।

शाहनवाज खाँ—३२७, ३७३, ३७७ ।

शाहजादा अहमद—३३१ ।

शाहवर्नी खाँ—३६४, ३६५ ।

शाहपसंद खाँ—३६४, ३६५ ।

शिवाजी—२८, ३१, ४४, ५४, ६४, ७०, ७२ ७८, ८२, ८४, ६५, ६८, १००, १२६, १३१, १७७, १८०, १८२, १८४, १८८, १६५, १६६, १६८, २०१, २०४, २०८, २१०, २११, २१३, २१५, २१८, २१६, २२०, २२४, २२६, २३४, २३६, २३६, २४१, २५०, २५१, २५७, २५६, २७३, २७५, २८६, ३१२, ३१४, ३१५, ३३२, ३३३, ३३६, ३४०, ४०५, ४३५, ४४४, ४४५, ४६२, ४६५, ५०३, ५०५, ५२७, ५२८, ५४२, ६४२, ६६३, ६८३, ७०६, ७२६, ८६३ ।

शिवराम—३३, ६८३ ।

शिवसिंह—३००, ५०९ ।

शिरजी राव घाटगे—६८८, ६६०, ७०२, ७११, ७२१, ७२२, ७६३, ७९६, ७६७, ७७३, ७७५, ८००, ८१०, ८१७ ।

शुजापत खाँ—२७६ ।

शुजाउद्दीन खाँ—३१३ ।

शुजाउद्दौला—३८७, ३६०, ३६१, ३६४, ३६५, ३६७, ४३६, ४३७, ४४०, ४४१, ४४३, ४५८, ५६४, ७७५ ।

शंकराचार्य—३१ ।

शंकर जी पंत—३३, ६७, २१०, २१६, २३१, ३४१, ३७८ ।

शंकरजी नारायण—२३६, २३७, २४१, २४२, ३०७ ।

शंकर जी मुल्हर—२५३, २५४, २६३ ।

शंभूसिंह यादव—३०३ ।

स

सईबाई—९२ ।

स्याम राज—९३, ९५ ।

सलावत जंग—१०९, ३३१, ३४० ।

सहाबुद्दीन—१८४ ।

सआादतउल्ला खाँ—१९३, २३०, २६५, २६६, ३००, ३०१, ३०६, ३१४

सरे आजाद—२४४,

सन्दूल खाँ—२७६

सरबुलन्द खाँ—२०६, २७८, २८३, २८८, २९७, २९९, ३५१

सरफराज खाँ—३१४

सफदर अली—३१८

सदाशिवराव भाऊ—३१९, ३२०, ३२९, ३३०, ३३७, ३५१, ३५३, ३५९, ३६८, ३६९, ३७१, ३८०, ३८२, ३८६, ३८८, ३९५, ३९८, ४००, ४४६, ४५७, ७८२, ७८४, ७९३, ८१५, ८१६

सवावत जंग—३४०, ३४९, ३५४, ३५७, ३६०, ३६१, ३६३, ३६५, ३६८, ३७२, ३७३, ३७५, ३७९, ३८१, ३८७, ३८९, ४००, ४०२, ४०४, ४१७

सफदर जंग—३४६, ३५७, ३५९

सखाराम बापू—३७०, ४०३, ४०४, ४१०, ४२२, ४४३, ४४४, ४५२, ४५३, ४५५, ४५७ ४६२ ४६७, ४६९, ४७५, ४८७, ४९२, ४९४, ४९६, ४९८, ५०५, ५०८, ५१०, ५१४, ५१८, ५३३, ६८८,

स्पेन्सर मि०—३७०

समर सिंह—४५५, ४५६

स्टीवेन्सन—७५२, ७५३, ७५७, ७५९, ७६२, ७६४, ७६६, ७६७

स्टूआर्ट—७५७,

समशीर बहादुर—७५८

सरदार रामदीन—८५२

सावित्री—३३

सामन्त सदैव सुल्तान—५६,

सादूल्ला खाँ—३४६

सार्न्डस मि०—३६३

सावाजी—४५३, ४५४

सालबाई—५६५, ५७१

सिद्दी—१०७, ११२, १७४, १७८, १९२, २४८, २९५ ४७१

सैन्डलर कैप्टन—८५२,

स्मिथ—११९, ७८९, ७९१, ८३२, ८५९, ८६०,

सिरजे खाँ—१८१, १८९, २२२

सिद्दी रहमान—२९५, २९६,

सिराजुद्दौला—३६७

लिकन्दर जाँह—६१३, ७८३

सीताराम राव जी—७२९, ८२५, ८२७

सुल्तान युसूफ आदिल शाह—५८

सुल्तान लुसरो—६८,

सुल्तान सुजा—९६, ९८

सुल्तान मुअज्जम—२३९, २४०, २४४, २५५

सूर्या जी—२०५, २०९

सूरजमल—३५७, ३५८, ३८८, ३९०, ३९२, ४३८, ४३९

सैय्यद मुई उद्दीन—७१,

सोयरा बाई—१७२, १७४, २०४

संभा जी—८९, ९३, ९४, १२७, १२८, १३२, १६७, १६८, १७१, १८५, १८९, १९३, १९६, १९८, २०२, २०५, २०९, २२४, २२९, २३२, २३४, २३६, २३७, २४१, २४२, २४४, २४६, २६७, २८१, २८२. २८४, २८६, २९४, २९६, ३०१, ३१२, ३३२, ३६१, ४९०, ४९२, ४९८. ५०४,

संता जी—२०८, २११, २१३, २२०, २३३, २४६, २५५, २५६, ३००, ३१७, १११,

ह

हरिदास—३१

हरपालदेव—४६

हरनक पोहल—५१

हम्मीर राव—१५३, १५५, १५६, १६३, १६७, १६८, १७२, १७४, १८८, १९६

हरीपंत ५४७, ५५२, ५५५, ५५६, ५६२ ५७८, ५८०, ५८२, ५८३, ५९६, ७५३

हरीनाथ नायक—७४६

हामिद खाँ—२७०, २७६, २७९,

हार्नबी—५२६, ५२७, ५३०, ५३२, ५३७, ५४४, ५४६

हाफिज फरीउद्दीन—६०९, ६१०

हार्डीमन—८२४

हिम्मत बहादूर—५९३, ५९४, ७२०, ७५८

हिसलाय—८२५, ८३९, ८५७, ८५९,

हिमायूँ शाह बहमनी—५०

हुनूसखाँन—९०

हुसैनअली खाँ—१०७, २५२, २५६, २६४,

हुसेन दोस्त खां—३१८

हेमंतराव—९४

हेनरी आक्सडैन—१५४

हेनरी—१७४

हेस्टिंग्स वारेन—४९०, ४९१, ४९३, ४९६, ४९६, ४९९, ५११, ५१२, ५१५, ५२७, ५२८, ५३०, ५३२, ५५६ ५५७, ५६१, ५६६, ५६८, ५७३, ५७४, ८३५, ८३८, ८४०, ८५६, ८५९, ८६१, ८६६, ८८४

हेरसिंह—६२१

हेनरी पार्टिंगर—८६३

हैदर-कुली खां—२६५, २६८, ३१७, ३५१,

हैदरअली—३७२, ३७८, ४०९, ४१३, ४१८, ४२०, ४२३, ४२४, ४२६, ४३१, ४३५, ४५१, ४५९, ४६३, ४६४, ४६८, ४९५, ४९८, ५०३, ५०४, ५१०, ५३४, ५३५, ५४५, ५५०, ५५१, ५३६, ५९८, ६००, ६०६, ६१३, ७००,

हैदर जंग—३७३, ३७५, ३७[illegible],

हैवत राव फाल्के—५८६

त्र

त्र्यम्बक राव दाभाड़े—३२०, ३४४, ४०२, ४०३, ४३२, ४३५, ४५६, ७२०, ८२१, ८२२, ८२४, ८२७, ८२८, ८३१, ८३३, ८६१,

———